
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NAGRI PRCHARNI

PATRIKA



LIB. G.K.V.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1107

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय



विषय संख्या R ८०
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

206

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

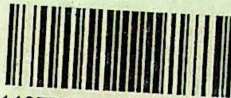
आगत नं ...संख्या १२८४-३१८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110778
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० ....
आगत सं० ....
तिथि० ....
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १८ } जूलाई और अगस्त १९१३ { संख्या १—२

मुद्रानन्द-चरितावली।

(ले० साहित्याचार्य पं० रामावतार पाण्डेय एम० ए०)

१७ वाँ अध्याय।

मैं इसी प्रकार आकाश में अपनी त्रिकाल-यात्रा के लिये घूम रहा था और अनेक तमाशे देख रहा था। पुरानी सभ्यता का नाश कर जो नई जातियाँ निकलीं उनमें एक एक करके सब का तमाशा मैं कायव्यूह से देखता चला। इन जातियों की उन्नति का वर्णन यदि किया जाय तो दस पाँच महाभारत बन जाँय। भाष्यकार भाई शेषजी यदि फिर किसी के तप से पाताल से ऊपर आ जाते तभी इन जातियों के इतिहास का वर्णन कर सकते। शरीर्कौ से जाकर वलियम ने जो आंग्ल भूमि एक बनार किया, इधर महामद के अनुयायियों ने जो सिन्ध के किनारे से सुफेन देश तक अपना राज्य जमाया, उधर महाकरल के राज्य के टुकड़े हो जाने पर शर्मण्य, फरासीसी आदि जो स्वतन्त्र हुए, ईशा की क़बर के लिए जो ईसाई व मुसलमान स्वस्तिक युद्धों के लिए करोड़ों कट गए या वीर लोग जो घोड़ों पर चढ़कर चक्रासुर आदि बड़े बड़े असुरों को मारते गये, शर्मण्यों में सभ्यता के केन्द्रस्वरूप जो महानगर उत्पन्न हुए, क्रमवल ने जो राजा करल की हत्या की, चौदहवें प्रवेश के समय में फरांसीसियों के जो रुपये फूँके गये. कुलुम्ब आदि ने जो अमेरिका का पता पाया था, वहाँ जाकर बसे हुए अँगरेज़ आदि ने जो पूर्वी बन्धन तोड़ कर नया प्रजाराज्य स्थापित किया, इधर बस्क महाशय ने भारत का रास्ता खोल कर जो इस पवित्र देश में यूरोप का रोज़गार और शासन जमने का अवसर दिया, जगदेकवीर नयपाल्य ने जो बीस वर्ष तक समूचे यूरोप को कँपाते हुए अपूर्व प्रचण्डता दिखाई, इन बातों का वर्णन मुझ से कैसे हो सकता है। हाल में इधर देखता हूँ तो और भी अपूर्व घटनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख पड़ती हैं। जापानवालों ने प्राचीन रूस को धक्का देकर भगा दिया है, चीनवालों ने टीक कटवाकर प्रजा-राज्य स्थापित कर लिया है, मुसलमानों का बुरा हाल है, मिसर ख़तम हो चुका, पारस के उत्तरीय व दक्खिनी टुकड़े दोनों दो ओर लुढ़क रहे हैं। कंसतन्तु पुरी में सुप्रिया के पुराने गिर्जा पर जो कई सौ वर्ष हुए तुर्कों ने अधिकार जमाया था सो डगमगा रहा है। भूत, भविष्य, वर्तमान ऐसी गड़बड़ों को देखकर मैंने अपनी त्रिकाल-यात्री आत्मा को तो हेमकूट वाली आत्मा में मिला दिया। हेमकूट वाली आत्मा चिरकाल तक समाधि में पड़ी रही, अपनी बाल्यावस्था के इष्ट बन्ध्यापुत्र जी के विरह में मैं तप रहा था, भविष्य महात्मा विलोकटानन्द सरस्वती आदि सज्जनों के ध्यान से अपने को कृतार्थ करता जा रहा था। कई हज़ार वर्ष तक खपुष्प के काँटों पर सोये सोये असम्प्रज्ञात समाधिनिद्रा में रहते हुए, बिना खाये पीये, बिना शौच आदि गये मुझे जीवन बिताना पड़ा। अन्ततः त्रेतायुग में जो हत्यारे रावण के कारण राम के सीता-वियोग के सदृश मुझे मूँछों का वियोग हुआ था उस वियोग के ताप से मेरे माथे से धूँआ निकलने लगा। इसे देखकर हेमकूट विश्वविद्यालय के चान्सेलर कुलपति कश्यपजी के पास जाकर उनकी धर्मपत्नी दाक्षायणी ने विश्वविद्यालय के लड़कों की ओर से अर्ज़ी पेश की कि वरुणलोकवासी त्रैलोक्य दिवाकर प्रचण्ड प्रकृतिक हिज़ होलीनेस श्री स्वामी मुद्गरानन्द जी आश्रम से न हटा दिये जायँगे तो सारी जंगली झाड़ी जल जायगी और राजनीति में दख़ल देनेवाले व्याख्याताओं के व्याख्यान से जितना हरज होता है उससे बढ़कर विश्वविद्यालय में हरज हो जायगा। इस अर्ज़ी पर बहुत कुछ विचार करने के बाद श्रीमान् कुलपतिजी ने अपने भयानक समाधि-बल से मुझे ज्यों का त्यों उठाकर हेमकूट से त्रिवेणी तट पर फेंक दिया। यहाँ भी मेरी समाधि लगी रही। दैवात् एक दिन आज से प्रायः बारह तेरह वर्ष पहिले, कुम्भ के मेले के समय बन्ध्यापुत्र के वाहन प्रसिद्ध पाँखवाले श्यामश्रुति दरियाई घोड़े की हिनहिनाहट सी आकाश में सुन पड़ी जिससे मेरी समाधि निद्रा खुली, तो मैं देखता क्या हूँ कि आकाश में घोड़ा आदि कुछ भी नहीं है केवल मुरादाबाद बरेली, हरिद्वार आदि से आये हुए सनातनी आर्य्य समाजी आदि धार्मिक व्याख्याता लोग व्याख्यान दे रहे हैं। समाधि के बाद ऐसे व्याख्यानों में क्या जी लगे। मुझे तो मेले में नागा लोगों के ब्रह्ममय शरीर के अतिरिक्त और कुछ देखने के लायक़ वस्तु नहीं मालूम पड़ती थी। इनके दर्शन से मायावाद का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगा। इन लोगों ने वस्त्र तक को माया समझ लिया था। मुझे भी इनके दर्शभाव से अपना शरीर और जगत् कुछ नहीं सूझता था। कभी केवल निराकार सन्तान सूझने लगता था और कभी हज़ारों अंगुष्ठ मात्र बालखिल्य पुरुष इधर उधर दीख पड़ते थे। थोड़ी देर में मैं ऐसा हो गया कि मैं तो सब को सूझता था पर मुझे "तुली ब्रह्म असी ब्रह्म" ब्रह्म ही ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझने लगा। प्रिय पाठक! समाधि टूटने के बाद की यह अवस्था है फिर समाधि का आनन्द कैसा हुआ होगा सो क्या कहा जा सकता है। ऋषियों ने कहा है:—

> समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो,
> निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
> न तद्गिरा वर्णयितुं हि शक्यते,
> स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८ वाँ अध्याय ।

मेरी समाधि-निद्रा के भङ्ग का राघव कृत पिनाक-भङ्ग-वृत्तान्त सा अद्भुत वृत्तान्त ब्रह्माण्ड में फैल गया । क्यों न फैले, मेरा आसन टूटते ही पृथ्वी काँप उठी, शेष के सिर दब गये ।

भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनिकर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं ।
कोदंड भंजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

इत्यादि तुलसीदासजी की कविता का असल अनुभव लोगों को हो चला । मेरे ब्रह्ममय उपदेशों के सुनने के लिये बहुत से लोग हिन्दू, मुसलमान कृस्तान, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, बाल, वृद्ध, युवा सभी आ जुटे । कितनेही सखाभाव में थे, कितनेही सखी-भाव में थे, कितने मद्य के प्रभाव में थे, कितनेही होश हवास में थे । मेरा अद्भुत श्याम वर्ण, बिना जूते के चरणारविन्द, मोटिया की दुलाई, और चमकता हुआ खासा ताजा सौंक का अंगरेज़ी टोप इत्यादि आभरणों से युक्त मनमोहिनी मूर्त्ति देखकर सभी मुग्ध हो जाते थे । थाल के थाल दिव्य हलुआ, पूरी, पावरोटी, लड्डुआ, कचौड़ी, ॐकार के साथ इश्तहार देनेवाले मेहतर व ब्राह्मण को एक समझने-वाले लोगों की बनाई हुई पवित्र शराब, पवित्र साबुन, घास पार्टीवाले के साग पात और मांस पार्टीवाले के कबाब कोफ्ता आदि देशी विदेशी विलायती रङ्ग बिरङ्गे कपड़े भूषण आदि सभी चीजें मेरे सामने रखी गईं । सब लोग अपनी अपनी भेंट के स्वीकार के लिये जैराज, श्रीजी, भगवान् आदि शब्दों से मेरी दुहाई देने लगे, और सभी मेरे पवित्र शरीर के एक बार छूने के लिये हल्ला करने लगे । एक बनारसी रईस चिल्लाते थे कि 'भयवा हम महाराज का चरणारविन्द अभी छुयबे औ भोग लगयबे । नाहीं त हमरी नोकरी चाकरी जैहे त जैहे । हमें बेगैर यह चरण के चैन नाहीं है' । इतना कहकर रईस फूट फूट कर रोने लगे और जैसे रथयात्रा के दिन गौरीशंकर के कूँए के पास रथ के सामने बूढ़े पण्डितजी लोटते थे वैसीही ज़मीन पर लोटने लगे । एक सारन का अहीर नंगे बदन खड़ा था सो बड़े ज़ोर से चिल्ला उठा 'हटों सभनी जी तनी हमरो के महराजजी के खुरनारविन्दवा टोये दीं' । इतना कहकर अपनी लाठी घुसेड़ता वह आगे बढ़ा । सब लोग हँसने लगे । रईस जी फूट फूट कर रोते थे वह भी हँसने लगे । इतने में एक मिर्ज़ापूरी गुण्डा आबेरवाँ का दुपट्टा ओढ़े हुए सुनहरी मुठ्ठी का चिकना मोटा डंडा चमचमाते हुए बोल उठा—'अरे ई का गुल गड़प्पा करत हौअ हो, हमरो के गुरु का दर्शन होए दः' एक दुबला बङ्गाली विद्यार्थी चिल्ला रहा था, ''कैनो, अत गण्डगोल कैनो । आमा के परमहंसेर दर्शन हबेना' । टोप लगाये एक काला यूरेशियन चिल्लाता फिरता था 'ह्वाय मी शुड सी हिज होलिनेस एट एनीं कास्ट । ही इज वन आफ अस ।' इस पर शाहेब शाहेब करते बहुत से स्त्री पुरुष हट गये । एक मारवाड़िन सेठानी रङ्गीन लहंगा पहिने गोद में बच्चा हाथ में मोहनभोग का थाल लिये चिल्ला रही थी । उधर एक मरहट्टे जंटिलमेन अपनी स्त्री को साथ लिये खड़े थे और कुछ कह रहे थे । एक बीभत्स मोटी मेम एक काले लड़के के साथ खड़ी थी, और लड़के से कुछ अवतार की बातें कर रही थी । इतना हल्ला गुल्ला हो रहा था कि मुझसे वरुणलोक के आदमी का इतने हल्ले में इस अपरिचितप्राय पृथ्वी की भाषाओं काल ख्या करना मुश्किल था । इस प्रकार हल्ला हो रहा था तब तक मेरे संक्षिप्त उदर में एक अपूर्व विकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हुआ और मैंने समीप बैठी हुई एक आज़मगढ़ की भक्तिन के थाल में से कई ठोकुये निकाल कर खा लिये। खाते खाते ब्रह्माद्वैत 'अन्नं ब्रह्मेति व्याजानात्' की धारा में श्री दुःखभञ्जन आदि आधुनिक और भैरवाचार्य आदि प्राचीन कवियों का गुणकीर्त्तन करते हुए अकालजलद के नाती वाल्मीकि, मेण्ठ व भवभूति के अवतार महामहर्षि राजशेखर के देखे हुए—

'रण्डा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा,
मज्जं मंसं पिज्जये खज्जये च।
भिक्खा भोज्यं चम्म खण्डं च सेज्जा,
कोलो धम्मो कस्सणो होई रम्मो॥'

इस महाब्राह्मणीय सूत्र को पढ़ते हुए जल के बदले एक पूरी बोतल किसी दूसरी ओर बैठे हुए एक विलायत यात्रा के परम विरोधी कल्यपाल जाति के भगतजन के हाथ से छीन कर मैंने गड़गड़ अपनी पवित्र गलरन्ध्र में खाली कर दी। इस प्रकार अकस्मात् भगत-भगतिनों पर कृपा करने के कारण लोग अत्यन्त हर्षित हुए और जय जय ध्वनि से आकाश गूंज उठा। इतने में सन्ध्या हुई। मेरी आंखों पर इधर वारुणी राग चढ़ा उधर भगवान् सूर्य भी वारुणी राग से लाल हुए। घनान्धकार आकाश में व मोहान्धकार जनचित्तों में छा गया। नदी तट पर चकवा चकई का विरह आ पड़ा। इधर लोगों के ख्याल में भक्ति और ज्ञान का विरह आ उमड़ा। रात्रि की वृद्धि के साथही साथ बन्ध्या-पुत्र चरितावली की वृद्धि जगत् में होने लगी।

—:०:—

१६ वाँ अध्याय।

हमको अधिक भोजन के कारण कुछ असुविधा सी मालूम पड़ने लगी। एक भगत की ओढ़ाई हुई दुलाई नीचे रखकर हम खड़े हो गये। ब्रह्मनिशा के साथ वारुणी-निशा की मिलावट होने के कारण मुझे यह नहीं ख्याल था कि चिरकालिक समाधि मे अपनी होश ठिकाने न थी। अब तो दुलाई व अन्धकार दो ही लज्जा देवी के शरण थे। मैंने एक अकाण्ड ताण्डव आरम्भ किया। बस कथ था, सभी भगत भगतिन नाचने लगे। तब तक कोलाहल हुआ कि प्रसिद्ध पतिव्रता गोवरिकादेवी भगवान् के दर्शन को आ रही हैं। सब लोग अन्धे ही में उठ खड़े हुए। धकम धुकी करती हुई गोवरि कादेवी पहुंचीं। मेरे श्री चरणों के समीप आक उन्होंने थाल आदि रक्खे। पूजा, अर्चा, आत्मनिवे दन, तन, मन, धन समर्पण आदि के बाद उन्हों मेरी आरती उतारनी चाही, पर दियासलाई न थी। सती लोग चाहैं तो शरीर से आग निकाल सकती हैं पर तपोव्यय के भय से पतिव्रता ने ऐसा न क आस पास के लोगों से दियासलाई मांगी जिस प १५, २० लाख रुपये खर्च से बने हुए जातीय स्कू के एक छोटे दुग्धमुख बालक ने पाकट से दियास लाई निकाल फर से अपनी चुरुट भी बाल ली औ पतिव्रता को भी बलती ही दियासलाई दे दी। दिया सलाई के प्रकाश से जरासी मेरी अद्भुत झलक लोगों को आई थी, पर पतिव्रता के आरती उतार के समय तो स्पष्ट ही ऐसा अद्भुत दर्शन हुआ कि कितने ही नये मतवाले इस दृश्य पर कुछ चक चकाये से थे। पतिव्रता लोग मुंह नीचा करने लगीं तब तक विद्यान्धकूप श्री खखनदेव शर्म्मा जी ने बड़े उच्चस्वर से शीत्कार किया और बोले "हे प्रियवर व प्रियवरा! क्या कुम्भ के नागा लोगों का धार्मिक दृश्य आप लोग भूल गये? क्या गया, काशीक्षेत्र, हरिद्वार आदि के बड़े बड़े आनन्दान स्वामियों का आपको स्मरण नहीं है। आर्य्य सन्तानों की आज भी वही तप में श्रद्धा है, कांटों पर सो वाले नङ्गे शरीर से शीत आतप आदि में रह वाले तपस्वियों को देखकर क्या हँसना व क्या मुंह नीचा करना। धिक्कार है आप लो को। शोक महाशोक यदि आप लोग ऐसा कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कोई बोले 'श्री महाराज की जय।' सब स्त्री पुरुष मुँह ऊपर कर रोमाञ्चित हो गद्गद स्वर से बोले 'श्री बाबा जी की जय'। छोटे बच्चे चिल्ला उठे 'सिलि बाबा की जय।, आरती हुई बाबा का प्रदक्षिण हुआ कितने दर्शकों के पास सस्ते देशी हार्मोनियम, झाल, खंजरी आदि बाजे थे सो बजने लगे। आरती में लोग कपूर आदि देते जाते थे। समीपही हलवाई मण्डी का बाजार था। वहां से दौड़ दौड़ कर लोग कपूर आदि लाते और फेंकते थे कि जिसमें कहीं आरती बुत जाने से फिर श्री जी अदृश्य न हो जायँ। कपूर आदि के लिये श्री खखन देव शर्माजी ने कहा कि एक चन्दा होना चाहिये जिससे आज रात भर जागरण हो। सबने चन्दा दिया पर मगह के आसपास के एक रायबहादुर या राजा बहादुर थे उन्होंने कहा "मैं तो एक धेला चन्दा नहीं दूंगा। मैं ख़ूब जानता हूं कि स्वामी जी या पतिव्रता जी चाहेंगी तो आरती की आग कभी नहीं बुतेगी। अरे नास्तिको! क्या तुमने नहीं सुना है कि पतिव्रताएं अपने शरीर से आग निकालकर चिता पर पति के साथ अब भी भारत में भस्म होती हैं। और भी नहीं सुना है कि ऋषि लोग अपने मुँह से आग निकाल कर अपनी खिचड़ी अलग पकाते थे। और यह भी ख्याल रक्खो कि आरती बलती ही रहे और स्वामीजी चाहें तो क्या प्राणायाम से चट अदृश्य नहीं हो जायँगे।" इसपर पञ्जाब के एक रहस्यवादी ने कहा, 'अजी! गुरु साहब इस समय अदृश्य भी हो जांय तो भगतजन पर कृपाकर साक्षात् निरङ्कार उनका रूप धारण कर जब तक हम लोग यहाँ हैं तब तक नाचते रहेंगे। फिर स्वामीजी आ जायँगे तो वह चले जायँगे'। इस बात पर सखी भाववाले लोग बहुत प्रसन्न हुए और अपने इष्टदेव के रूप में रामजी के आने का वृत्तान्त कहने लगे। इन बातों पर खखन-देव शर्मा जी ने कहा कि "मैं तो हेतुवादी हूं, मैं ख़ुदा और वेद के सिवाय और कुछ नहीं समझता यह सब पौराणिकों की बातें मैं नहीं मानता। यह क्या हवाई किला बाँध रहे हो। एक लात दूँगा किला टूट जायगा! अजी राय साहब पाकिट में पैसा हो तो चन्दा दो नहीं तो यहाँ से घर जाओ। हम लोग घी और कपूर का वैदिक होम करें और तुम दर्शन का मज़ा लूटो" ऐसा कह कर उसने राय साहब को जो गरदनिया दी कि वह एक खां साहब की नाली में जा पड़े और वहाँ से किसी प्रकार भक्ति बल से उठकर कमर पकड़े हुए श्रीराधे श्री वल्लभ कहते हुए फिर आकर उन्होंने दो पैसा चन्दा कहर कर दिया; और अपने दीवान से बोले कि दो पैसे धर्मखाते में लिख देना। मैं तो इन तमाशों को देखता हुआ उमङ्ग में नाचता जाता था और अङ्गरेज़ी फारसी हिन्दी संस्कृत आदि में गीत गाता जाता था, एकाध नमूने ख्याल हैं जिन्हें आपको सुनाता हूं—

जन्मप्रभृत्यशुद्धानां निष्फलोदयकर्मणाम्।
अणुमात्र क्षितीशानां पादुकाभिः खचारिणाम्॥
शैशवे विषयेच्छूनां यौवने क्लीवतायुषाम्।
वार्द्धके परिणेतॄणां शौचागारे तनुत्यजाम्॥
खलानामन्वयं वक्ष्ये महावाग्विभवोपिसन्।
तद्दोषः कर्णमागत्य गौरवाय प्रणोदितः॥
कश्चिद्वन्ध्यासुतविरहितः स्वाधिकारप्रमत्तः।
कोपेनास्तंगमितमहिमा कल्पभोग्येन भर्त्तुः॥
मूर्खश्चक्रे चपलविधवा स्नानरम्योदकेषु
रूढ्योच्छूष्यत्तरुषु वसतिं कामगिर्याश्रमेषु॥

We are Neptunians all,
We are Oh seven and small.
Six are under Railway lines.
I am in the black coal mines,
'Tis the latest fashion in dress,
Straw-hat on the stark nakedness.
The Jogins East and ladies West,
In Me you see all that is the best.

भजन करु भाई भजन करु भाई।
छारि मगरूरि भजन करु भाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहि भजनियां मे मेवा भलाई ।
मरद मेहरारु के सब कर भलाई ॥
श्याम वेद से ऋचा सुनाऊँ ।
पौराणों से गाऊँ ॥
तीन चरण सब कोई लगावें ।
मैं एक और लगाऊं ॥

ऐसी ही कितनी ही भाषाओं में कितनी गीतें मैंने गाईं । सबका मुझे आज ठीक स्मरण नहीं है। समाधि क्रियाओं से विस्मरण शक्ति कुछ बढ़ गई है । अन्ततः गाते गाते मुझे कुछ उदरशूल सा मालूम पड़ा । अब तो सचमुच अदृश्य होने की इच्छा होने लगी । मैं वहां से त्रिवेणी तट की ओर चला । पीछे पीछे मृदङ्ग आदि बजाते हुए भगत भगतिन आदि भी चले । अन्त को एक दुसाधिन की झोपड़ी के पास मैं ऐसा अदृश्य हुआ कि भगत भगतिन सब मेरे विरह में ऐसे विह्वल हुए कि मेरे झाड़ी की आड़ से देखतेही देखते पतिव्रता गोवरिका देवी के हाथ से आरती की थाली छूट गई और पहिया सी लुड़कते लुड़कते झोपड़ी की फूस की दीवार से जा मिली और झोपड़ी अकस्मात् जलने लगी । सब भगत भगतिन इस भयानक दृश्य को देख भाग चले । गोवरिका देवी अपनी आरती की थाली खोज रही थीं, इतने में पुलीस के पहरेवाले चिल्लाते हुए आ पहुँचे । उनका शब्द सुनतेही थाली का मोह छुड़ाकर वे वहां से भाग पड़ीं ।

—:o:—

२० वाँ अध्याय ।

प्रातःकाल नगर में बड़ा कोलाहल मचा । दुसाधिन के दो बच्चे और उसकी गैया का एक बच्चा रात को झोपड़ी में आग लग जाने से जल गये थे । नगर में खलभली सी मच गई थी । दरोगा लक्कूरूसिंह ने घोड़े पर आकर सवेरेही बहुतेरों का इजहार लिया था । थाने में आकर उसने पतिव्रता को बुलवाया और आधे घण्टे तक उससे बातें कीं । अन्त को मुझसे महात्मा को भी उसने पकड़वा मँगाया । आधे घण्टे के बाद लक्कूरूसिंह ने पतिव्रता गोवरिका देवी से सबके सामने पूछा कि सुना है कि तू स्वामी जी की भंगतिन है और स्वामी जी के साथ झोपड़ी तक गई थी। पतिव्रता ने कहा 'हाँ सरकार ।'

'झोपड़ी में आग तेरे सामने लगी ?
'हाँ सरकार ।'
'कैसे आग लगी ?"
'श्री जी कुंज के भीतर गणेश क्रिया करने गये तो वहां से आग की लहर आई ।'
'यह थाली किसकी है ?'
'मेरी ।'
'इस पर नाम किसका है ?'
मेरे सिन्दूरदाता का ।'
'यह क्यों लाई थी ?'
'इसमें स्वामी जी के लिए महाप्रसाद आया था।'
'अच्छा जाओ । जमादार ?'
हाँ हुजूर ।
'स्वामी जी हाजत में हैं ?'
'हाँ हुजूर ।'

कोर्ट में चलो । कई सिपाही पहरा दें, स्वामी को कोई कुछ मत खिलाओ । नहीं तो कमबख्त पाखाना करेगा तो शहर में आग लग जायगी ।

इतना कह कर कोतवाल साहब थाने से कचहरी चले । मजिस्टर साहब पहले के हिन्दू थें । इधर विलायत से हो आये थे । स्वामी जी का मुकद्दमा सुनकर लोग कचहरी में भरे हुए थे । इतने में स्वामी जी जमादार के साथ आये । कोर्ट बाबू ने कहा खुदावन्द, फिदवी रिपोर्ट करता है कि श्री १०८ स्वामी मुद्गरानन्द मुजरिम ने शहर के अन्दर पाखाना किया है । मुजरिम हाजत में है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहब 'राय चमरूदास जूनियर डिपुटी मजिस्टर के इजलास में १५ तारीख़ को मुद्दई हाजिर हो कोर्ट बाबू—मुद्दालह को हाजत देने का काम नहीं, जामनी पर छोड़ दो,।' इस पर कोर्ट बाबू बोल उठे खुदावन्द हुजूर ने सब बात बिना सुनेही जामिनी का हुकुम दिया। फिदवी सब कहने नहीं पाया। हुजूर मुक़द्दमा सेशन का है। मुजरिम ने सिर्फ़ आग पाखाना किया है जिससे एक दुसाधिन की झोपड़ी जल गई है। और उससे एक बछवा और दुसाधिन के दो बच्चे मर गये हैं। हजूर बड़ा खतरा हो गया है। हजूर हिन्दू हैं। गौहत्या और आदमी हत्या होगई है। हजूर मजहब और कानून दोनों की रू से ऐसी बात है कि मुकद्दमा सेसन भेजना होगा। जज साहब जो चाहें सो करेंगे। शहर का कोतवाल लङ्करूसिंह ऐसीही रिपोर्ट करता है। उसको बुलाकर सब हालात पूछ लिया जाय और स्वामी जी भी हाजिर हैं।' इस पर साहब हँस पड़े और बोले—पेशकार पागलखाने के सुपरडण्ड को मेरी तरफ से लिखो कि थानेदार लङ्करूसिंह पागल हो गया है आदमी सर्कारी खैरखाह है। पचीस वर्ष तक अच्छी नौकरी की है। आजअच्छे अच्छे मोलवी आलिम एम. ए. वगैरह भी मेसमेरीज़म, थियासोफी कादियान वगैरह के फेर में पड़े हैं और मुर्दों की चिट्ठी वगैरह मँगाया करते हैं। लङ्करूसिंह भी किसी ऐसेही फेर में पड़ा हुआ मालूम पड़ता है। आराम होने पर आधी तनखाह पर पागलखाने में रहेगा। हफ्ते हफ्ते मुझे खबर मिले कि इसका पागलपन घटता है, या बढ़ता है।' इस पर लङ्करूसिंह हजूर के सामने आकर लंबी सलाम करके बोला—'हजूर मां बाप हैं। हजूर धर्म के अवतार हैं ऐसी बेइनसाफी नहीं होनी चाहिये, फिदवी पागल नहीं है। स्वामी जी के बारे में जो कुछ कहा गया है सब सही है। हजूर गवाह चाहें तो मौजूद हैं। मुजरिम के जुर्म के एक गवाह बन्ध्यापुत्रान्वेषण समाज के महामहोपदेशक मौनमहोदधि विद्यान्धकूप श्री खखनदेव शर्मा जी हैं। और दूसरे गवाह दर्शनरत्न त्रैलोक्यमार्त्तण्ड स्नातक श्री विद्येश्वर जी हैं। दोनों ने आंखों से मुजरिम के जुर्म को देखा है। सनातन धर्म के वार्षिक पिण्डालय और अन्य समाजों के पिण्डालय से हल्ला होने पर बहुत से लोग स्वामी जी के पास आये थे। पिण्डालयों के वलूमटेर कितने ही इस बात के गवाह हैं।" यह सुनकर दर्शनरत्नजी और मौनमहोदधि जी दोनों ही आगे बढ़े। दोनों ही ने कहा 'सरकार! हमन एह बात के जनेऊ कसम कहत हईं कि हमन आँखन देखलीं कि स्वामी जी ऐसन काम कइलेन'। साहब बोले 'Well तुम लोग बिना पूछे क्यों बोल उठा है, तुम लोग अभी सामने से चला जाओ नहीं तो तुम को पागलखाना देगा या झूठी गवाही में जेल देगा। चपरासी! इनको निकालो।' दोनों गरदनियाँ देकर निकाले गए। खखनदेव शर्मा कहते गये कि कल क़िले के मैदान में झगरू पाण्डे को सभापति बनाकर इस अन्याय पर व्याख्यान होगा। दर्शनरत्नजी ने कहा 'मैं हितोपदेश के क़ानून से इसी बात पर व्याख्यान दूँगा। इन लोगों के साथ कचहरी से बहुत लोग निकले। तीन लड़के विश्वबलुभ, सिपारसदास व हरिकृष्ण नाम के, जो बन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाज के वलूमटेरों का वैज लगाये थे, बड़े ज़ोर से चिल्लाते गये कि हम लोग गोबरिया, कचरिया, और दही चूड़ा के क़ानून से व्याख्यान देकर अनृत पत्रिका आदि पत्रिकाओं में इन बातों को प्रकाशित कर देंगे और भीतरी बाहरी देशदूषक आदि महात्माओं को भी तार दे देंगे कि आज कैसा अन्याय हुआ। इतने में मैं जो खड़ा था सो भूख प्यास से बेहोश होकर धम से गिरा। साहब ने रोटी शराब मँगा कर देनी चाही पर सब लोग बोले 'स्वामीजी फिर समाधि लेंगे। यह मज़हबी बात है। हजूर इस वक्त खिलाने पिलाने का मौक़ा नहीं है। स्वामीजी ने सत्ययुग में समाधि ली थी सो अब उठे हैं। अब इस भ्रष्टयुग में समाधि लेंगे तो फिर सत्ययुग में उठेंगे। हाकिम लोग बारह लाख वर्ष मुक़द्दमा मुलतवी रक्खें। समाधि के वक्त में मुक़-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमा करना ख़िलाफ़ मज़हब व ख़िलाफ़ शाही हुकम के है।' थानेदार बोले 'हजूर ने इसे कुछ खिलाया और इसने कहीं पाखाना किया तो सारे दफ़्तर में अभी आग लग जायगी।' साहब ने एक की न सुनी। भीड़ हटवा कर ख़ुद पानी का छींटा देकर मुझे होश में लाकर रोटी खिलाई व शराब पिलाई। सो मैं पाँच सात गिलास ढाल गया। सर्कारी वकील भगत मुर्गावीमल्ल हलुआसिया एम० ए०, एल एल० बी० से साहब ने राय लेकर मेरी कमज़ोरी देखकर एक दम छोड़ देना चाहा और कहने लगे कि ऐसे ख़फ़ीफ़ जुर्म के लिए एक पगले के कहने पर दूसरे पगले को क्या सतावें। तब तक दो बारिस्टर एक हिन्दू और एक मुसल्मान कुछ आपस में बात चीत कर उठे और बोले—"Your honour! मुक़द्दमा असल में सेशन का है। हाईकोर्ट में रेफ़रेंस (Reference) जाने पर इस कोर्ट की बड़ी शिकायत होगी। हजूर सोच विचार कर काम करें। इस कोर्ट को ऐसे मुजरिम को छोड़ने का कोई हक़ नहीं है। पिङ्कल कोट के मुताबिक़ यह होमीसाइड और आरसन का कसूर है। हुजूर एक और भी बात है। हजूर हाकिम हैं। हजूर को मज़हबी बातों में दखल देने का कोई हक़ नहीं है। मुजरिम के जुर्म को नामुमकिन समझने से सभी मज़हबों में धब्बा लगता है। ख़ास करके हिन्दू मज़हब पर इसका बहुत बड़ा असर होगा। हुजूर इस जुर्म को नामुमकिन समझना पाँचवें वेद महाभारत के खिलाफ़ जायगा और पुराणों के खिलाफ़ जायगा"। साहब बहुत ताज्जुब में आकर बोले 'क्या आज समूची कहरी में पागलपन छा गया है। आप लोग क्या बोलता है हम कुछ नहीं समझता। हम ऐसी बातों में टाइम ख़राब करना नहीं माँगता। सर्कारी वकील! और कोई मुक़द्दमा है?" Your honour एक भी नहीं' बारिस्टर लोग—'हजूर कोई मुक़द्दमा नहीं है वक्त आख़िर फजूल ही है। हमारी दो बातें हजूर सुन लें।'

'अच्छा कहो।'

'हजूर हिन्दू हैं। महाभारत वग़ैरह अपनी मज़हबी किताबें हजूर ने देखी होंगी।'

हाकिम—'हम अठारह वर्ष की उमर में विलायत गया संस्कृत नहीं पढ़ा लेकिन दत्त और ग्रिफ़िथ वग़ैरह का तर्जुमा पढ़ा है। मगर महाभारत इस मुक़द्दमे से क्या तअल्लुक है सो समझ में नहीं आता है।' इसी बीच मुझे बोतल का असर आ पहुँचा। मैं नाचने लगा और गाने लगा—

> निपीय यस्य क्षितिभक्षिणः कथां—
> स्तथाद्रियन्ते न खलाः सुरामपि।
> गमिष्यति छत्रित पापमण्डलः
> स राशिरासीत् तमसां मलोज्ज्वलः॥

I am a Neptunian and come to see poor [earth
How she is hypnotised in gay occult [myth
Clairvoyance, and planchets and tele[pathy
Why telegraphy, why allopathy why [homeopathy

सब लोग हँसने लगे हाकिम भी हँस पड़े। बारिस्टर लोगों ने किसी प्रकार खाँसी के द्वारा हँसी दबा कर फिर हाकिम से कहा 'हजूर न्याय शास्त्र में चार सबूत कहे गये हैं। शब्द, अनुमान, उपमान और प्रत्यक्ष। स्वामी जी के जुर्म के बारे में हुजूर के सामने चारों सबूत पेश किये जाते हैं।

(नं १) महाभारत के शब्दों में साफ़ लिखा है कि उत्तङ्क ऋषि ने घोड़े की दुम फूँकी थी तो पाताल में आग लग चली थी। हयवान घोड़े के बदन से आग निकली। महामहर्षि मज़हबी श्री १०८ स्वामीजी के बदन से आग निकलना क्या मुशकिल है?

(नं २) अनुमान से भी यही बात निकलती है। कितने ही मुल्कों में बड़े बड़े लोग भी शौच के बाद काग़ज़ से शुद्धि कर लेते हैं। मगर हिन्दू लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोटा भर पानी लिए जाते हैं । अगर हिन्दुओं को आग लगने की शङ्का न होती तो वे भी आसानी से काग़ज़ लिए जा सकते थे, ख़ास कर के बी० एन० डबल्यु. रेलवे की गाड़ियों में जहाँ कि नालियों में अकसर पानी नहीं रहता है। इससे अनुमान होता है कि हिन्दुओं को नित्य क्रिया के समय ज़रूर आग लगने की शङ्का रहती है।

(नं० ३) इस बात के लिये उपमान प्रमाण भी है। हाल में प्रसिद्ध घोड़दौड़ वाले महाराजा मंझौली और एकतादर्शन के प्रणेता महाशय खण्डेलवाल भी पायु-प्रक्षालनालय में जल कर मर गए हैं।

(नं० ४) अगर हुज़ूर को इन तीनों सबूतों से यक़ीन न हो तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिया जा सकता है। अभी स्वामी जी को जुलाब दिया जाय तो हज़ूर यहाँ देख ले सकते हैं कि अभी हिन्दुस्तान के लोगों के बदन से आग निकल सकती है।

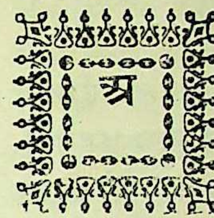
इतने ही में मुझे फिर कुछ उदर शूल सा मालूम पड़ने लगा और मैं अपनी जठर तुम्बिका पर हाथ फेरता हुआ नाचने लगा। अब तो लङ्करूसिंह के हर्ष का पारावार न रहा। वे चिल्ला उठे कि अगर भगवत्कृपा से इस वक्त श्री जी को दस्त आ जावें तो हाकिम लोगों को यक़ीन हो जावे कि महात्माओं में कितनी ताक़त है। इस पर हाकिम की ओर से हुक्म हुआ कि "हम दफ़्र में गड़बड़ नहीं माँगता। चपरासी! लङ्करूसिंह को व स्वामी जी को यहाँ से बाहर ले जाओ"। हज़ूर बदबू की बात करते हैं। मैं तो समझता हूँ कि दफ़्र में आग लग जायगी और दफ़्र का बुझाना मुश्किल हो जायगा" । ऐसी बातें बकते हुए लङ्करूसिंह मेरे साथ कचहरी से बाहर हुए और सलाह हुई कि जब हाकिम बासिकिल पर कचहरी से बँगले जाते रहेंगे तब सड़क के नीचे किसी खर-पात के समूह के पास मैं प्रातः क्रिया करता रहूँगा। खर पात में मेरी प्रातः क्रिया से आग लगती हुई देख कर ख़ुद ही हाकिम को अपनी भूलों पर पछतावा होगा।

—:०:—

मनोविकारों का विकाश।

(४)

करुणा।



न्वय व्यतिरेक की शक्ति के उपरान्त जब बच्चे को कार्य्य-कारण-सम्बन्ध कुछ कुछ प्रत्यक्ष होने लगता है तभी दुःख के उस भेद की नीव पड़ जाती है जिसे करुणा कहते हैं। बच्चा पहले यह देखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना-क्रम के, स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्य्य-कारण-सम्बन्ध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दुःख के कारण वा कार्य्य को देख कर उनके दुःख का अनुमान करता है और स्वयम् एक प्रकार का दुःख अनुभव करता है। प्रायः देखा जाता है कि जब माँ झूठ मूठ 'ऊँ ऊँ' करके रोने लगती है तब कोई कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। * इसी प्रकार जब उनके किसी भाई वा बहन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं। †

दुःख की श्रेणी में परिणाम के विचार से करुणा का उलटा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिस के प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दुःख और आनन्द दोनों की श्रेणियों में रक्खी गई है। आनन्द की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दुःख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनन्द की श्रेणी में रक्खा है, चाहे कभी कभी और व्यक्तियों वा वस्तुओं को हानि पहुँच जाय

* कार्य्य। † कारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जिसे जिस व्यक्ति वा वस्तु का लोभ होगा उसकी हानि वह कभी नहीं करेगा। लोभी महमूद ने सोमनाथ को तोड़ा; पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको ख़ूब सहेज कर रक्खा। नूरजहाँ के रूप के लोभी जहाँगीर ने शेर अफ़ग़न को मरवाया पर नूरजहाँ को बड़े चैन से रक्खा।

कभी कभी नम्रता, सज्जनता, धृष्टता, दीनता आदि मनुष्य के स्थायी भाव भी, जिन्हें गुण कहते हैं, तीव्र होकर मनोवेगों का रूप धारण कर लेते हैं पर वे मनोवेगों में नहीं गिने जाते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है उसके सुख और दुःख का बहुत सा अंश दूसरों की क्रिया वा अवस्था पर निर्भर हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दुःख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम जितना व्यापक है उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूँ, नहीं। हम अज्ञात-कुल-शील मनुष्य के दुःख को देख कर भी दुखी होते हैं। किसी दुखी मनुष्य को सामने देख हम अपना दुखी होना तब तक के लिए बंद नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाय कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है। यह और बात है कि यह जान कर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध वा अत्याचार किया है हमारी दया दूर वा कम हो जाय। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध वा अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी वा अत्याचारी का वर्त्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है। सारांश यह कि करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देख कर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद या सम्बन्धी हो अथवा अत्यन्त सज्जन, शीलवान् वा चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र वा हितू हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ वा कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनन्द का उदय नहीं होता। इस से प्रकट है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देख कर जो आनन्द होता है उसका न तो कोई अलग नाम रक्खा गया है और न उसमें वेग वा क्रियोत्पादक गुण है। पर दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है वह करुणा दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।

जब कि अज्ञात व्यक्ति के दुःख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तब जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है उसके उतने ही दुःख पर हमें अवश्य अधिक करुणा होगी। किसी भोली भाली सुन्दरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई बन्धु को दुःख में देख हमें अधिक व्याकुलता होगी। करुणा की यह सापेक्ष तीव्रता जीवननिर्वाह की सुगमता और कार्य्यविभाग की पूर्णता के उद्देश्य से इस प्रकार परिमित की गई है।

मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता वा दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके सम्बन्ध वा संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होती है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म्म सज्जनता वा दुर्जनता की कोटि में न आवेगा। उसके सब कर्म्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अतः सब के उद्देश्यों को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख का स्थापन और दुःख का निराकरण वा बचाव हुआ। अस्तु, जिन कर्म्मों से संसार के इस उद्देश्य का साधन हो वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्म्मों से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दुःख की निवृत्ति हो वे शुभ और सात्त्विक हैं तथा जिस अन्तःकरण-वृत्ति से इन कर्म्मों में प्रवृत्ति हो वह सात्त्विक है। कृपा वा प्रसन्नता से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है। पर एक तो कृपा वा प्रसन्नता में आत्मभाव छिपा रहता है और उसकी प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतीकार है। दूसरी बात यह कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दुःख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यन्त अधिक है।

दूसरे के उपस्थित दुःख से उत्पन्न दुःख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोवेगों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के संभाव्य दुख का ध्यान वा अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हैं जिनसे अकारण दूसरे को दुःख पहुँचे, शील वा साधारण सद्वृत्ति के अन्तर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता वा मुरौवत ही का भाव समझा जाता है जैसे 'उनकी आँखों में शील नहीं है,' 'शील तोड़ना अच्छा नहीं'। दूसरों का दुःख दूर करना और दूसरों को दुःख न पहुँचाना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है पर दुःशीलता वा दुर्भाव का नहीं। ऐसा मनुष्य झूठ बोल सकता है पर ऐसा नहीं जिस से किसी का कोई काम बिगड़े वा जी दुखे। यदि वह कभी बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसलिए कि वह उसे ठीक नहीं जँचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है, इसलिए नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे। मेरे विचार के अनुसार 'सदा सत्य बोलना,' 'बड़ों का कहना मानना' आदि नियम के अन्तर्गत हैं, शील वा सद्भाव के अन्तर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाय। पर मनोरंजन, खुशामद, और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी किसी अवस्था में तो धर्म्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाज़त तक दे दी गई है विशेषतः जब इस नियमभंग द्वारा अन्तःकरण की किसी उच्च और उदार वृत्ति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निःसहाय व्यक्ति अनुचित दण्ड से बच जाय तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील वा सद्वृत्ति का साधक है, समकक्ष नहीं। मनोवेग-वर्जित सदाचार केवल दम्भ है। मनुष्य के अन्तःकरण में सात्त्विकता की ज्योति जगानेवाली यही करुणा है। इसी से जैन और बौद्ध धर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है—

> पर-उपकार सरिस न भलाई।
> पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

यह बात स्थिर और निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी न किसी रूप में सात्त्विकशीलता ही है। अतः करुणा और सात्त्विकता का सम्बन्ध इस बात से और भी प्रमाणित होता है कि किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देख तीसरे को करुणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में और किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्षा, घृणा, आनंद आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। यह दिखलाया ही जा चुका है कि प्राणियों की आदि अन्तःकरण वृत्ति मन वा मनोवेग हैं। अतः इन मनोवेगों में से जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्त्विकता का आदि-संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य का आचरण मनोवेग वा प्रवृत्ति ही का फल है। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मनोवेग पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुनकर कार्य्य में प्रवृत्त हो। कुछ दार्शनिकों ने तो यहाँ तक दिखलाया है कि हमारे निश्चयों का अंतिम आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव वा कल्पना की तीव्रता ही है, बुद्धि द्वारा स्थिर की हुई कोई वस्तु नहीं। गीली लकड़ी को आग पर रखने से हमने एक बार धुआँ उठते देखा, दस बार देखा, हज़ार बार देखा अतः हमारी कल्पना में यह व्यापार जम गया और हमने निश्चय किया कि गीली लकड़ी आग पर रखने से धुआँ होता है। यदि विचार कर देखा जाय तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अन्तःकरण की सारी वृत्तियाँ केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूँढती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर कल्पना को और मनोवेगों को तीव्र करनेवाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है वह भी करुणा कहलाता है क्योंकि उसमें दया वा करुणा का अंश भी मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करुणा का विषय दूसरे का दुःख है। अतः प्रिय के वियोग में इस विषय की सम्प्राप्ति किस प्रकार होती है यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है वह उसके दूर होने से अनिश्चय में परिवर्त्तित हो जाता है। अस्तु, प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करुणा का विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दुःख के परिज्ञान से होती है वही करुणा हमें प्रिय जनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारण जनों का तो हमें दुःख असह्य होता है पर प्रिय जनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चित बात पर सुखी, वा दुखी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है इसी से इस प्रकार के दुःख वा करुणा को किसी किसी प्रान्तिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय के वियोग-जनित दुःख में जो करुणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दुखी होती हैं—

बन को निकरि गए दोउ भाई।
सावन गरजै, भादौं बरसै, पवन चलै पुरवाई।
कौने बिरिछ तर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई॥

(—गीत।)

प्रेमी को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए जहाँ सब प्रकार का सुख-वैभव था पर यशोदा इसी सोच में मरती रही कि—

प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन माँगे दैहै ?
को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छिन छिन आगो लैहै ?

और उद्धव से कहती हैं—

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो॥
उबटन, तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करिके न्हाते॥
तुमतो टेव जानतिहि ह्वै हौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै॥
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वै हैं करत सँकोच॥

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं कभी कभी घोर अनिष्ट की आशंका तक होती है जैसे एक पति-वियोगिनी स्त्री संदेह करती है कि—

नदी किनारे धुआँ उठत है, मैं जानूँ कछु होय।
जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय॥

प्रिय के वियोग-जनित दुःख में जो करुणा का अंश होता है उसे तो मैंने दिखलाया किन्तु ऐसे दुःख का प्रधान अंग आत्मपक्ष-सम्बन्धी एक और ही प्रकार का दुःख होता है जिसे शोक कहते हैं। जिस व्यक्ति से किसी को घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के सम्बन्ध द्वारा व्यक्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है । संसार तो कहने सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वेही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग वा व्यवहार है। अतः ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके लिए उसके संसार के एक अंश का उठ जाना वा जीवन के एक अंश का निकल जाना है। किसी प्रिय वा सुहृद के चिरवियोग वा मृत्यु के शोक के साथ करुणा वा दया का भाव मिल कर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर उसके प्राणी उसके साथ किए हुए अन्याय वा कुव्यवहार, तथा उसकी इच्छा-पूर्त्ति के निमित्त अपनी त्रुटियों को स्मरण कर और यह सोच कर कि उसकी आत्मा को सन्तुष्ट करने की सम्भावना सब दिन के लिए जाती रही बहुत अधीर और विकल होते हैं।

सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिये करुणा का प्रसार आवश्यक है। समाज-शास्त्र के पश्चिमी ग्रन्थकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की सहायता अपनी अपनी रक्षा के विचार से की जाती है; यदि ध्यान से देखा जाय तो कर्म्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देनेवाली किसी न किसी रूप में करुणा ही दिखाई देगी। मेरा यह कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में एक दूसरे की सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्थ परिणाम पर दृष्टि रख कर नहीं की जाती बल्कि मन की प्रवृत्ति-कारिणी प्रेरणा से की जाती है। दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की भी सम्भावना है इस बात वा उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक, विशेष कर सच्चे सहायक को तो नहीं रहता। ऐसे विस्तृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चंचल और परस्पर भिन्न वस्तु के भरोसे नहीं छोड़ती। किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज-रक्षा के लिए एक दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी यह समाज-शास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही जानते होंगे। यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पंचायत ही के कारण होती और यदि उसका उद्देश्य वहीं तक होता जहाँ तक ये समाज-शास्त्र के वक्ता बतलाते हैं तो हमारी दया मोटे, मुसंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन, अशक्त और अपाहज लोगों पर नहीं जिन से समाज को उतना लाभ नहीं। पर इसका बिलकुल उलटा देखने में आता है। दुखी व्यक्ति जितना ही अधिक असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही वा पहलवान को पिटते देख नहीं। इससे स्पष्ट है कि परस्पर साहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनका धारण करनेवाला मनुष्य का छोटा सा अन्तःकरण नहीं विश्वात्मा है।

दूसरे के थोड़े क्लेश, वा दूसरे की करुणा पर जो वेगरहित दुःख होता है उसे सहानुभूति कहते हैं। शिष्टाचार में इस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा सा हो गया है। अब प्रायः इस शब्द से हृदय का कोई सच्चा भाव नहीं समझा जाता है। सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म-शिष्टता मनुष्य के व्यवहार से सच्चाई के अंश को क्रमशः निकालती जा रही है।

पहले दिखलाया जा चुका है कि करुणा अनावर्त्ती मनोवेगों में से है अर्थात् जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करनेवाले पर भी करुणा नहीं करता (जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है) बल्कि कृतज्ञता, श्रद्धा वा प्रीति करता है। बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखलाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करनेवाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। उद्वेगशील बंगाला उपन्यासलेखक करुणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यन्त संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान वा उपलब्ध ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लाँघता हुआ अपना देश और काल-संबन्धी विस्तार बढ़ाता है। उपस्थित विषय के संबन्ध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार कभी कभी आवश्यक होता है। मनोवेगों की उपयुक्तता कभी कभी इस विस्तार पर निर्भर रहती है। किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है पर जब हम सुनते हैं कि कई स्थानों पर कई बार वह बड़े बड़े अपराध कर चुका है इससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि केवल मनोवेगों के सहायक हैं अर्थात् प्रकारान्तर से वे मनोवेगों के लिए विषय उपस्थित करते हैं। ये कभी तो आप से आप विषयों को मन के सामने लाते हैं। कभी किसी विषय के सामने आने पर ये उससे सम्बन्ध (पूर्वापर वा कार्यकारण-संबन्ध) रखनेवाले और बहुत से विषय उपस्थित करते हैं जो कभी तो सब के सब एक ही मनोवेग के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न मनोवेग को तीव्र करते हैं, कभी भिन्न भिन्न मनोवेगों के विषय हो कर प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न मनोवेग को परिवर्त्तित वा धीमा करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग वा प्रवृत्ति को मंद करनेवाली, स्मृति, अनुमान, वा बुद्धि आदि कोई दूसरी अन्तःकरण वृत्ति नहीं है, मन की क्रिया वा अवस्था ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग वा प्रवृत्ति ही में है। नीतिज्ञों और धार्म्मिकों का मनोवेगों को दूर करने का उपदेश घोर पाखंड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर शान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हें परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थों के साथ उनके उपयुक्त संबन्ध निर्वाह पर ज़ोर देते हैं। यदि मनोवेग न हों तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों को मारने और अशक्त करने पर विवश होता जाता है, इनका पूर्ण और सच्चा निर्वाह उसके लिए कठिन होता जाता है और इस प्रकार उसके जीवन का स्वाद निकलता जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनन्दित होने के लिए अब उसके हृदय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध वा घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की भी मुहँ पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन-निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ के कारण उसे दूसरे के दुःख की ओर ध्यान देने, उस पर दया करने और उसके दुःख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य हृदय को दबा कर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है--उसकी भावुकता का नाश होता जाता है। पाखंडी लोग मनोवेगों का सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बना बना कर कहने लगे हैं—"करुणा छोड़ो, प्रेम छोड़ो, क्रोध छोड़ो, आनंद छोड़ो। बस हाथ और पैर हिलाओ, काम करो"।

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार क्रिया करना और बात, पर अनुसारी परिणाम के निरन्तर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो चार बार उसे दया उत्पन्न होगी पर जब बार बार उस पर दया का कोई अनुसारी परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा।

बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें करुणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसारी परिणामों का विरोध प्रायः तीन वस्तुओं से होता है—१ आवश्य, २ नियम और ३ न्याय। हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढा और कार्य्य करने में अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया तो आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफ़सर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य्य करने की कौन कहे उसका चिह्न तक नहीं प्रकट होने देते। अब नियम को लीजिए। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रुपया देकर लोग कोई कार्य्य करने पावें तो जो व्यक्ति रुपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे हीन अकिंचन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चन्द्र ने अपनी रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी दुखिया स्त्री होती तो राजा हरिश्चन्द्र के उस नियम-पालन का उतना महत्त्व न दिखाई पड़ता, करुणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती। करुणा का विषय दूसरे का दुःख है। अपना दुःख नहीं। आत्मीय जनों का दुःख एक प्रकार से अपना ही दुःख है इससे राजा हरिश्चन्द्र के नियम पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करुणा से नहीं।

न्याय और करुणा का विरोध प्रायः सुनने में आता है। न्याय से उपयुक्त प्रतीकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे १०००) उधार लिए तो न्याय यह है कि वह हमें १०००) लौटा दे। यदि किसी ने कोई अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दंड मिले। यदि १०००) लेने के उपरान्त उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई तो न्याय पालने के विचार का विरोध करुणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता गिड़गिड़ाता है और कान पकड़ता है और पूर्ण दंड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करुणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करुणा करने का सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रुपया चाहिए वा जिसका अपराध किया गया है उसको न्यायकर्त्ता वा तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के १०००) अलग किए, वा अपराध द्वारा जो क्षति-ग्रस्त हुआ विश्वात्मा उसी के हाथ में करुणा ऐसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करुणा सेंत का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्त्ता को करुणा है तो वह उसकी शान्ति पृथक् रूप से कर सकता है, जैसे ऊपर लिखे मामलों में वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हज़ार पाँच सौ अपने पास से दे दे वा दंडित व्यक्ति तथा उसके परिवार की और प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करुणा का द्वार खुला है।

—:o:—

कनफूची।

(ले० बाबू रामचन्द्र वर्म्मा)

आदि पुस्तक का दूसरा ग्रन्थ सूकिंग एक संग्रह है। चीन के प्राचीन इतिहास का यह सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें चीन राज्य के स्थापनकाल से कनफूची के समय तक का सविस्तर वर्णन है। हमारे पुराणों की भाँति इस ग्रन्थ में भी धर्म्मनीति के उपदेश हैं। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में से मुख्य और आवश्यक अंशों का संग्रह करके कनफूची ने यह ग्रन्थ बनाया था। आदि पुस्तक के तीसरे ग्रन्थ सीकिंग में काव्य और संगीत है। उसका कुछ अंश कनफूची की रचना और कुछ संगृहीत है। इसमें की कविता और गीतों को चीनी प्रायः कण्ठ करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस पुस्तक में संगीत-शास्त्र पर कनफूची के लिखे हुए कई प्रबन्ध भी हैं। इस पुस्तक से चीनियों की रीति नीति और आचार व्यवहार का अच्छा पता चलता है।

कनफूची का लीकिंग चौथा ग्रन्थ सबसे बड़ा है। इसके विषय,—स्मृति और व्यवस्था हैं। इसमें धर्म्म-कर्म्म की विधि और व्यवस्था वर्णित है। अभी इस बात का कोई निर्णय नहीं हो सका है कि इस पुस्तक का मूल अंश कनफूची की रचना है या और किसी की। पाँचवें ग्रन्थ चुग्छिऊ में कनफूची की जन्मभूमि लू-राज्य का प्राचीन इतिहास है। चुंग शब्द का अर्थ बसन्तकाल और छिऊ शब्द का अर्थ शरत्काल है। कनफूची ने इस पुस्तक का लिखना वसन्तकाल में आरम्भ किया था और शरत्काल में उसे समाप्त किया था; इसी लिए उसका नाम चुंकछिऊ रक्खा गया। यह उनकी वृद्धावस्था की रचना है। इसमें ईम से लेकर गई तक के राजत्वकाल (चौदह वर्ष) का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ समाप्त कर चुकने पर कनफूची ने उसे अपने शिष्यों के हाथ में देकर कहा था कि "यदि मेरी रचना से मेरी कुछ यशोवृद्धि होगी तो इसी ग्रन्थ से होगी।" इस पुस्तक में ईश्वर या अध्यात्म-सम्बन्धी कोई उपदेश नहीं है। यह पुस्तक प्रश्नोत्तरी स्वरूप है। प्रत्येक विषय की प्रशंसा में उन्होंने कार्य्य-कारण का सम्बन्ध दिखाया है। एक स्थान पर प्रश्न किया गया है—मृत्यु क्या है? और उसका उत्तर दिया गया है—जब हम यही नहीं जानते कि जीवन क्या है, तो हम मृत्यु की व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं।

ईसा से ४४१ वर्ष पूर्व कनफूची के एक मात्र पुत्र ली का देहान्त हो गया। कनफूची की जीवनी में उनके पुत्र का कोई विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। उसमें केवल एक घटना का उल्लेख है जिससे मालूम होता है कि वह अपने पुत्र को किस प्रकार उपदेश दिया करते थे। एक बार कनफूची के किसी शिष्य ने ली से पूछा—"जितने विषयों की शिक्षा हम लोगों को दी गई है, उनके सिवा तुमने और भी किसी विषय की शिक्षा पाई है या नहीं?" ली ने उत्तर दिया—"नहीं, मुझे किसी और विषय की शिक्षा नहीं मिली है। एक बार पिता जी ने मुझसे पूछा था कि तुमने गीतों की पुस्तक पढ़ी है या नहीं। मैंने कहा—नहीं। इस पर वे बोले कि यदि तुम वह पुस्तक न पढ़ोगे तो कथोपकथन करने के योग्य न हो सकोगे। इसी प्रकार और एक बार उन्होंने मुझसे पूछा था कि तुमने आचार-व्यवहार-सम्बन्धी मेरा ग्रन्थ पढ़ा है या नहीं, पर मैंने वह ग्रन्थ भी नहीं पढ़ा था, इसलिए उन्होंने मुझसे कहा कि यदि तुम वह ग्रन्थ न पढ़ोगे तो तुम्हारा चरित्र कभी ठीक न रह सकेगा। इस पर उस शिष्य ने ली से कहा—"हम लोगों से भी येही दोनों बातें कही गई हैं। इसके सिवा एक बात और अधिक कही गई है और वह यह है कि विज्ञ लोग कभी अपने पुत्र के लिए किसी विशेष शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते।"

ली की मृत्यु के एक वर्ष बाद कनफूची के इयेनहिऊ नामक शिष्य का देहान्त हो गया। इस दुर्घटना से कनफूची को बहुत अधिक दुःख हुआ। एक वर्ष बाद, एक बार की-कंग शिकार करने गया और वहाँ से सींगवाला एक अद्भुत जीव पकड़ लाया। अब कोई उसका नाम न बतला सका तो कनफूची की बुलाहट हुई। कनफूची ने आकर कहा कि इसका नाम की-लिन है। लोग कहते हैं कि कनफूची के जन्म से पूर्व वह जानवर एक बार एक पर्वत पर उनकी माता को स्वप्न में दिखाई दिया था, और उनकी माता ने उसके सींग के एक फीता बाँध दिया था। वह फीता उस समय भी उसके सींग में बँधा हुआ मिला! उस पशु को देख कर कुछ लोग अमंगल की आशंका करने लगे। उस अवसर पर प्रसंग पड़ने पर कनफूची ने कहा था—"किसी महात्मा का नाम कभी लुप्त नहीं होता; लेकिन मेरे उद्देश्यों का प्रचार उचित रूप से नहीं हुआ इसलिए मैं नहीं कह सकता कि भविष्य में लोग मुझे किस दृष्टि से देखेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन प्रातःकाल कनफूची अपने मकान के दरवाजे पर टहलते हुए, संसार के नश्वर होने के सम्बन्ध में एक गीत गा रहे थे। इतने में जीकिंग वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर कनफूची ने कहा —इतने दिनों बाद एक व्यक्ति आ रहा है, जिसे मैं गुरु बनाऊँगा। अब मेरा अन्त समय निकट आ गया है।" इतना कह कर वह अन्दर अपने बिस्तर पर लेट गये और सात दिन बाद उनकी मृत्यु होगई।

उनके शिष्यों ने बड़े समारोह से उनकी अन्तिम क्रिया की। मृत्यु के बाद चीन-वासियों को उनका अभाव मालूम होने लगा, इसलिए उनकी मृत्यु के कारण बहुत दिनों तक देश में शोक छाया रहा। उनके बहुत से शिष्यों ने उनके समाधि-स्थान पर कुटियाँ बनाईं और उसी में वे लोग बहुत दिनों तक निवास करते थे।

क्यू-फो नगर के बाहर कं-वंश का समाधि-स्थान था। वहीं पर कनफूची की भी समाधि बनाई गई। उसके पासही एक बहुत ऊँचा स्तम्भ है जिस पर कनफूची की संगमरमर की मूर्त्ति बनी हुई है। इस समय उसके चारों ओर सुन्दर लताएँ और कुंज हैं। मूर्त्ति के नीचे स्यांग राजवंश की ओर से पत्थर पर खुदा हुआ एक लेख है जिसमें लिखा है कि ये बड़े बड़े ज्ञानियों में अग्रगण्य, सर्वविद्यानिपुण और सर्व्वज्ञ सम्राट् थे।

उस स्तम्भ के दोनों ओर दो और छोटे स्तम्भ और समाधियाँ हैं। एक समाधि ली की और दूसरी उसके पुत्र की है। पास ही वह स्थान भी है जहाँ उनके शिष्य शीकिंग ने अपने गुरु के शोक में पागल होकर अपने जीवन के शेष छः वर्ष बिताये थे। समाधि-स्तम्भ पर बनी हुई मूर्त्ति से मालूम होता है कि कनफूची बड़े हृष्ट पुष्ट और अच्छे डील डौल के थे। उनका मुखमण्डल पूर्णता-प्राप्त और मस्तक बृहत् था। इसके सिवा उनके शरीर में ४९ विशेष चिह्न थे।

कनफूची जिस समय राजसभा में राजा या शून्य सिंहासन के पास जाते थे, उस समय उनकी स्वतन्त्रता मानों नष्ट सी हो जाती थी। उनका गला रुँध जाता था और शरीर काँपने लगता था। आवश्यकता पड़ने पर जब कभी उन्हें राजचिह्न आदि धारण करने पड़ते थे, उस समय उनका शरीर बिलकुल बेबस सा हो जाता था। यदि कभी वे बीमार पड़ते और राजा तथा उनके परिवार के लोग उन्हें देखने के लिए आते तो वे उसी समय सब उचित वस्त्र आदि पहन कर तैयार हो जाते थे। दुर्भिक्ष आदि के लिए प्रति वर्ष जो उत्सव हुआ करते थे, उनमें वे बड़े उत्साह से सम्मिलित होते थे। वे सदा बड़े संयम से रहते थे और खाने पीने में दूसरी किसी तरह की बदपरहेज़ी न करते थे और भोजन के समय बातें अधिक करते थे। कभी कभी वे थोड़ी मदिरा भी पीते थे। जहाँ तक हो सकता वे भूखों तथा दीन दुःखियों की सहायता किया करते थे। मार्ग में वे बड़ी नम्रता से लोगों का अभिवादन करते थे, और सब छोटे बड़ों का समान रूप से आदर करते थे। तात्पर्य्य यह कि वे लोगों को केवल उपदेश देना ही न जानते थे, बल्कि वे स्वयं आदर्श-पुरुष थे।

संगीत से उन्हें बहुत प्रेम था और उसमें वे बहुत निपुण भी थे। उनका मत था कि बिना संगीत की सहायता के मनुष्य के हृदय में कभी जागृति नहीं हो सकती। नीति के अवलम्बन से चरित्र-गठन अवश्य होता है, लेकिन बिना संगीत के वह गठन अपूर्ण रह जाता है। कहीं गाना या उनका ज़िक्र सुनते ही कनफूची पागल से हो जाते थे; और यदि किसी को उनके विरुद्ध कुछ करते हुए देखते तो उससे झगड़ने और तर्क करने लग जाते थे।

कनफूची सदा नीति की शिक्षा दिया करते थे। उनके उपदेशों में दर्शन और विज्ञान-सम्मत व्यवहार-नीति, समाज-नीति और राज-नीति ही रहती थी। धर्म्म, कर्म्म या मत और विश्वास के सम्बन्ध में वे अधिक नहीं कहते थे। सर्वसाधारण के लिए उन्होंने एक व्यवहार-शास्त्र भी बनाया था। उसका नाम है लीकिंग। उसमें मनुष्य-जीवन के मुख्य कर्त्तव्यों की विवेचना की गई है। उसमें पिता, माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा बड़ों के साथ व्यवहार करने श्रौर उत्तम जीवन व्यतीत करने के नियम दिये गये हैं। उनके मत से परिवार एक जाति का छोटा स्वरूप था, जिस प्रकार पिता का अधिकार समस्त परिवार पर होता है, उसी प्रकार एक राजा का अधिकार समस्त जाति या देश पर होना चाहिए। इसी आधार पर उन्होंने सारी समाज श्रौर राजनीति की स्थापना की थी। आज तक भी इन नियमों में भी चीनवालों ने बहुत ही कम परिवर्त्तन किया है।

किसी किसी के मत से कनफूची नास्तिक थे श्रौर वे ईश्वर की सत्ता नहीं मानते थे। लेकिन अपने दर्शन-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में वे लिख गये हैं कि वास्तविक शून्य से किसी चीज़ की उत्पत्ति सम्भावित नहीं है। अवश्य ही अनादि अनन्त काल से कोई मूल पदार्थ वर्त्तमान है। वह मूल या कारण अनन्त, अक्षय, असीम, सर्व्वशक्तिमान् श्रौर सर्वव्यापी है। उस शक्ति का केन्द्रस्थल नील आकाश है श्रौर वहीं से सब कारणों का कार्य्य आरम्भ होता है। वहीं से समस्त संसार में वह शक्ति फैलती है।

उनके मत से मनुष्य का शरीर दो प्रकार के तत्त्वों से मिलकर बना है। एक तत्त्व सूक्ष्म, अदृश्य श्रौर ऊर्ध्वगामी है श्रौर दूसरा स्थूल, इन्द्रिय-ग्राह्य श्रौर अधोगामी। जब ये दोनों तत्त्व एक दूसरे से पृथक् होते हैं तो सूक्ष्म अंश आकाश की श्रोर चला जाता है श्रौर स्थूल अंश पृथ्वी में मिल जाता है। उनके मत से मृत्यु कोई चीज़ नहीं है। स्थूल शरीर तो मिट्टी में मिल कर नष्ट हो जाता है पर सूक्ष्म शरीर आकाश में सदा वर्त्तमान रहता है श्रौर कभी कभी इस पृथ्वी पर अपने पूर्व निवास-स्थान पर भी आ जाता है। यदि उसके परिवार के लोग उसका पूजन आदि करें तो वह प्रसन्न होकर उनका मंगल करता है। इसी लिए चीन में मृतक पितरों के लिए मन्दिर बनाने श्रौर उनके उत्सव मनाने का नियम है। ऐसे अवसरों पर वे लोग इतनी अधिक श्रद्धा श्रौर भक्ति दिखलाते हैं कि देखनेवालों को बहुत आश्चर्य्य होता है।

कनफूची या उनके शिष्य ईश्वर का कोई आकार नहीं मानते थे श्रौर न उसके किसी अवतार या प्रतिमा की ही कल्पना करते थे। वे अदृष्टवाद स्वीकार करते थे। उनके कुछ मुख्य उपदेश ये हैं:—

(१) जिन लोगों के हृदय में किसी प्रकार की अशान्ति न हो, वे ही पूरे धार्म्मिक हैं।

(२) मनुष्य का सबसे पहला लक्ष्य विश्वास श्रौर दृढ़ता पर होना चाहिए।

(३) इस बात का दुःख न करना चाहिए कि लोग हमें नहीं जानते, बल्कि दुःख इस बात का होना चाहिए कि हमने ही लोगों को नहीं जाना।

(४) बिना मनोयोग के विद्याध्ययन के लिए परिश्रम करना बिलकुल व्यर्थ है; इसी प्रकार बिना विद्या के मनोयोग भी व्यर्थ है।

(५) ज्ञानियों की बातें छोटी श्रौर व्यवहार बड़े होते हैं।

(६) ईश्वर को सदा सम्मुख उपस्थित समझकर उसकी आराधना करनी चाहिए। यदि आराधना में मन न लगे तो उसे तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

(७) धर्म्मभ्रष्ट होने पर जो धन श्रौर भाव मिलता है वह नीरस श्रौर व्यर्थ होता है।

(८) ज्ञानी जो कुछ ढूँढते हैं वह अपने आपमें श्रौर अज्ञानी दूसरों में ढूँढते हैं।

(९) जो उत्तम बात सीखो उसके अनुसार कार्य्य करो। प्रति दिन कोई न कोई नई बात सीखो।

(१०) मनुष्य बलपूर्वक किसी सत्कार्य्य में लगाया जा सकता है, लेकिन बलपूर्वक उससे हटाया नहीं जा सकता।

(११) जो व्यक्ति ईश्वर का अपराधी है, उसे कहीं शरण नहीं मिल सकती।

(१२) जो राजा धार्म्मिक होता है, वही न्याय श्रौर युक्तिपूर्ण कार्य्य श्रौर साहस से बातें कर सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो धार्म्मिक नहीं होता वह केवल सतर्क और सावधान होकर ही बातें कर सकता है।

चाहे कनफ़ूची में कितने ही दोष क्यों न हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि वे एक आदर्श व्यक्ति थे। उनके उपदेशों और आज्ञाओं का पालन चीन में आज तक होता आ रहा है। इस समय प्रत्येक ग्राम, बल्कि प्रत्येक घर में उनकी मूर्त्ति और मन्दिर वर्त्तमान हैं। सम्राट और उनके मन्त्री तक उनकी मूर्त्ति का पूजन करते हैं। और उसके सामने फल, फूल, सुगन्धि-द्रव्य तथा अन्य उत्तमोत्तम पदार्थ रखते हैं।

कनफ़ूची ने भूत, भविष्य पर-काल, सृष्टि-तत्त्व, वस्तु-तत्त्व आदि विषयों की मीमांसा करने की कभी चेष्टा नहीं की। उन्होंने सदा वर्त्तमान और इहजीवन की उन्नति और अवनति पर ही विचार किया था। उन्हीं के उपदेश से चीनवासी भी अब तक वर्त्तमान की उपासना में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

—:०:—

रामायण और भारत का समय।

[ले०—पंडित बालकृष्णभट्ट]

वैदिक ऋषि निरामिष और सीधे थे पर रामायण और भारत के समय के भाँति भाँति के यज्ञों से पता लगता है कि लोगों में मांस का भरपूर प्रचार हो गया था। छान्दोग्य उपनिषद में यज्ञों का बड़ा विधान लिखा है। जो पशु यज्ञ के बलि में प्रधान रहता था उसी के नाम से यज्ञ का नाम पड़ता था। लोग सोमपान के बड़े रसिक होते थे। बहुत से गुण सोमपान के लिखे हैं। समस्त वेद वेदांग में जो पारंगत हो जाता था उसे स्नातक कहते थे। १२ वर्ष ब्रह्मचारी रह गुरुकुल में नियमपूर्वक विद्याभ्यास कर गुरु से विदा हो जब स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था उस समय उसका बड़ा स्वागत किया जाता था, उसके लिये बड़ा उत्सव मनाया जाता था। बिना स्नातक हुये विवाह नहीं होता था। विवाह की कई एक रसमों में बर को पहिले मधुपर्क दिया जाता है। "गौर्गौर्मातादित्यानां दुहिलवसूनाम्" ऐसे ऐसे दो एक मंत्र उस समय पढ़े जाते हैं और खर के एक टुकड़े को दूसरे टुकड़े से तोड़ दोनों टुकड़ों को फेंक देते हैं। कन्यादान करने वाला तीन बार "मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्" कह बर को देता है। बर "प्रतिगृह्णामि" कह उसे ले लेता है और ओठ में उसे छुला पात्र पृथ्वी पर रख देता है। बाल्य विवाह की कुरीति चल जाने पर अब यह सब निरा फार्स या नाटक का एक तमाशा सा हो गया है। स्नातक का नाम कोई नहीं जानता तब गुरुकुल का विद्याभ्यास कहाँ रहा।

वैदिक समय से हर एक बात में उन्नति करते करते वाल्मीकि के समय समाज परम उन्नति की सीमा तक पहुँच गया था। बड़े राजाओं की राजधानी तथा राजसभा विद्या और विज्ञान की सिद्ध-पीठ थी। दूसरे देश के विद्वान् राजसभा में बुलाकर रक्खे जाते थे और उनका यथावत् आदर सत्कार किया जाता था। विदेह राजा जनक की सभा विद्वानों का समूह थी। दूर दूर के विद्वान् विदेह की सभा में आकर अपने अनेक प्रश्नों का उत्तर पा सन्तुष्ट हो जाते थे। न केवल ऐहिक बातों का विचार होता था किन्तु पारलौकिक बातों का विचार भी वहाँ होता था जैसे प्राण-विसर्जन के उपरान्त मनुष्य की क्या दशा होती है? आत्मा क्या है? देह से अलग हो जाने पर आत्मा का क्या होता है? किस दशा में रहती है इत्यादि। ऐसे ही राजा दशरथ की सभा में भी वसिष्ठ वामदेव जावालि आदि बड़े बड़े विद्वान् सदा राजसभा को सुशोभित किये रहते थे। राजा लोग बिना इन विद्वानों की सलाह के अपने मन से कोई काम नहीं कर गुज़रते थे। प्रत्येक राजा की राजसभा में विद्वान ब्राह्मणों की एक परिषद् रहती थी और वही प्रजा के हर तरह के झगड़े तै

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती थी। कृषि करनेवालों के सुख और आराम का विशेष ध्यान रहता था। राजा लोग प्रजा से उपज का छठा हिस्सा लेते थे। खेती करनेवाले ब्राह्मण छठा भाग छोड़ खेती काट लाते थे। राज-कर्मचारी उस राजभाग वा षष्ठांश का सब प्रबन्ध करते थे। विद्वान् ब्राह्मण राजसभा में रह राज्य में विद्यावृद्धि के अनेक उपाय सोचते थे। किसी बड़े यज्ञ या उत्सव में दूर देश देश, शहर तथा गाँव के रहने वाले विद्वान् पण्डित आते थे और अनेक जुदे जुदे विषयों पर वाद विवाद करते थे।

उनके वाद विवाद का निष्कर्ष छः दर्शनों की बुनियाद हुई। केवल राजाओं ही के दरबार में ऐसा हो सो नहीं विद्यावृद्धि के लिये ब्राह्मणों के परिषद रहते थे। श्वेतकेतु पांचाल के परिषद में विद्या पढ़ने गया था। परिषदों में कम से कम २१ ब्राह्मण रहते थे जो दर्शन, पुराण और धर्मशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता होते थे। पराशर ने लिखा है कि २१ न मिलें तो ३ या ४ ब्राह्मणों के भी परिषद बन सकते हैं जो षडंग वेद को अच्छी तरह पढ़े हों और अग्निहोत्र करते हों। इन परिषदों के अतिरिक्त बहुत सी अलग अलग ऐसी पाठशालाएँ होती थीं जिनमें द्विजाति मात्र के लड़के पढ़ते थे और गुरु की सेवा को अपना मुख्य काम मानते थे। १२ वर्ष तक गुरुकुल में रह विद्याभ्यास के उपरान्त गुरु को दक्षिणा दे विदा हो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। १० हज़ार विद्यार्थियों को जो पढ़ाता था उसे कुलपति की पदवी दी जाती थी। गृहस्थाश्रम के उपरान्त तीसरा आश्रम वानप्रस्थ का रक्खा गया है। किसी वन में कहीं एकान्तस्थान में बहुधा नदी के तट पर जहाँ का जल वायु अति स्वच्छ हो वहाँ जा बसते थे। कन्द मूल खाते थे और विद्यार्थियों को एकत्र कर उन्हें विद्यादान देते थे। पूर्ण विद्वान् के लिये यहाँ तक लिख दिया गया है कि वह अन्त में ब्रह्म में मिल जाता है, जिससे सिद्ध है कि पुरानी या नई किसी सभ्य जाति में कदाचित् विद्या की ऐसी उन्नति सहस्रों वर्ष तक नहीं रही जैसी हिन्दुओं में वैदिक समय में थी। जाति पाँति बिलकुल न थी सब लोग एक जाति के थे और हंस कहलाते थे। जाति पाँति का विभाग रामायण और भारत के समय अच्छी तरह स्थिर हो गया। जो जिस पेशे का था वह उसी से न्यायपूर्वक अपनी जीविका करता था, लोगों में मत्सर और डाह का कहीं लेश न था। सच बोलना सच्चा बर्ताव प्रजा मात्र में सब ठौर प्रचलित था। माता, पिता, गुरु, आचार्य्य की सेवा सुश्रूषा सब लोग अपना कर्तव्य समझते थे। "मातृ देवोभव" "पितृदेवो भव" इत्यादि उपदेश उपनिषदों में ठौर ठौर दिये गये हैं। सबके ऊपर उस समय मातृ भूमि का प्रेम एक एक मनुष्य में व्याप्त था। "इमेदवा अस-पत्नम्"। "आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम्" इत्यादि कई ऋचाये हैं जिनमें देश-प्रेम जल में डूबी सा उतरा रहा है। परमेश्वर से यज्ञ के अन्त में ऋत्विज लोग प्रार्थना करते हैं। ब्राह्मण हमारे यहाँ के ब्रह्म वर्चसी, क्षात्र धर्मनिपुण शूरवीर और बाण-विद्या में प्रवीण महारथी, शत्रु को अत्यन्त व्यथा पहुँचाने वाले हों, गाये ये बहुत दूध देने वाली हों। बैल बड़ा बोझा ढोनेवाले घोड़े बड़े वेगगामी हों। देश में स्त्रियां सदा अति पुत्रवती रहें। क्षत्री विजयी और रथ पर चढ़ने वाले शत्रु को जीतते रहें। हमारे इस यजमान के वीर पुत्र पैदा हो। मेघ समय समय पर पानी बरसें अकाल वृष्टि न हो। ओषधि, अन्न आदि बहुत फलें और पुष्टि वर्द्धक हों। देश में योग क्षेम अर्थात् जो अपने को अप्राप्त है उसके पाने का यत्न और जो प्राप्त है उसकी पूरी रखवारी रहे।

ऐसा ही यजुर्वेद में "आशुशिक्षावो" १७ ऋचाओं का एक अध्याय है जिस में ईश्वर से शत्रु पर विजय की प्रार्थना है, बाण या बरछी आदि शस्त्रों के चलाने के बड़े उत्तेजक मंत्र हैं, जिरहबख़्तर आदि पहिनने का कई प्रकार और मंत्र है उदाहरण के लिये दो एक यहाँ पर हम लिखते हैं—"उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वानां ममिकानां मनांसि" इन्द्र से प्रार्थना करता है "हे मघवन्! हमारे आयुधों को घोड़े, हाथी आदि सेना में समवेत जानवरों को तथा हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

योद्धाओं को उद्धर्षित करो अर्थात् उनका उत्साह बढ़ाते रहो—

> अवसृष्टा हरापतं शरव्ये ब्रह्मशंसिते ।
> नच्छामित्रा अपद्यस्यमामीषां कंचनोच्छ्रियः ॥

हे सखे ! तू वैदिक मंत्रों से तीखी और बाढ़ीदार कर दी गई है शत्रुओं पर जा गिर । उनमें से एक को भी न बचा रखना इत्यादि । इससे सिद्ध है कि कहाँ तक अपनी मातृभूमि को स्वाधीन रखने का उनको ध्यान था, प्रत्येक मनुष्य स्वाधीनता के बड़ा प्रेमी था अब के समान मुसलमान शासन में बहुत दिन तक रह स्वात्माभिमान और आत्मगौरव सर्वथा मनु ने स्पष्ट लिखा है "सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्" प्रजा के शासन या हुकूमत करने का एक एक छोटे राजा को उत्साह था। चाहे वे एक ही दो ग्राम के स्वच्छन्द अधिकारी क्यों न हों । पाण्डवों ने कौरवों से सन्धि करने के वादे पर ५ ही गाँव माँगे और कृष्णचन्द्र बिचवाई थे । पर दुर्योधन ने उसे भी स्वीकार न किया । उसे मालूम था कि पाण्डव बड़े प्रबल और शासन में प्रवीण हैं सब का सब निगल बैठेंगे, युधिष्ठिर ने जिसे सम्राज बनाने का उत्साह था कहा है—"गृहेरहिराजानः स्वस्थिरप्रियंकरऽसत्स्व सम्राजमासास्तै सम्राट् शब्दौहि कृच्छ्रभाक् अपने मन के माफिक शासन तथा अपना जिस में भला है ऐसे राजा तो घर घर में हैं। सम्राट् हो एकछत्रा पृथ्वी का शासन अति कठिन है, सम्राट् छोटे छोटे राजाओं को जीतने पर उन्हें सर्वथा नहीं निगल बैठता था वरन् उनसे एक बार कुछ कर की भाँति लेकर उन्हें अपने राज्य में फिर बहाल कर देता था, राजा जो युद्ध में मारा जाता था तो उसके पुत्र को उसके स्थान पर राजा कर देते थे, जरासन्ध के मारने पर उसके पुत्र सहदेव को कृष्ण ने राजतिलक किया था, यही कारण है कि राजधानी हस्तिनापुर के पास ही काशी कोशल विदेह चेदी सूरसेन पंचाल मत्स्य वृष्णि-भोज मालवा मद्र केकय गान्धार सिन्धु सौबीर कनौज कुशीनर आनर्त आदि बहुत से छोटे बड़े राज्य थे और सब के सब अपने अपने राज्य में स्वच्छन्द शासन करते थे, इस में सन्देह नहीं रामायण के समय से भारत का समय बड़ी उन्नति का था और जुदे जुदे राजाओं में अपना अपना बाहुबल था, वे अटूट संपत्ति के अभिमान में चूर थे, महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव में किसी एक का पक्ष ले कट मरे ।

राजा लोग बहुधा अपने मन से कोई काम नहीं कर डालते थे । किसी नई बात को राज्य में चलाने के लिये परिषद इकट्ठा करते थे और राजधानी में माननीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य की एक बड़ी सभा कर उनसे सलाह लेते थे, दशरथ ने जब रामचन्द्र को युवराज करना चाहा तो वशिष्ठ, जाबालि आदि ऋषियों को और अयोध्या के महत्तरजन को एकत्र कर उनसे पूछा था । इस से सिद्ध है कि शासन में प्रजा की भी सम्मति ली जाती थी, दशरथ की मौत और रामचन्द्र के वनवास पर फिर लोग इकट्ठे किये गये कि अब क्या करना उचित है ।

कभी कभी अपने मन से लोग राजा चुनते थे वेणु जो बड़ा अन्यायी था उसे ऋषियों ने शाप दे मार डाला और दस्युगण जब उपद्रव करने लगे तब पृथक लोगों ने राजा चुना तो सिद्ध हुआ कि राज-काज में प्रजा को पूरा अधिकार था । हम समझते हैं महाभारत का युद्ध न हुआ होता तो हिन्दुस्तान समस्त संसार का एकाधिपत्य रखता और सभ्यता की अन्तिम सीमा को पहुँच जाता ।

110778

विवाह का इतिहास ।

(ले० बाबू जगन्मोहन वर्म्मा)

संसार में जीव दो प्रकार के मिलते हैं एक वे जो अंडे से उत्पन्न होते हैं दूसरे वे जो सदेह माता के पेट से निकलते हैं । पहिले को अंडज और दूसरे को जरायुज वा पिंडज कहते हैं । अंडा एक प्रकार का अपूर्ण गर्भ कहा जा सकता है जिसमें बच्चे की प्रकृति रहती है और जो कुछ काल तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक वा कृत्रिम उष्णता पाकर जन्तु की आकृति में परिणत हो जाती है। इन के प्रधान दो भेद होते हैं। किसी किसी जन्तु के अंडे तो स्वाभाविक सूर्य्य ऋतु आदि के कारण परिपक्व हो जाते हैं, और फिर उनमें से बच्चे स्वयं वा माता के तोड़ने से बाहर निकल आते हैं। ऐसे जंतुओं के भरण पोषण का भार उनकी माता पर कम रहता है। दूसरे वे जिनके अंडों को माता पिता कृत्रिम उष्णता पहुँचा कर उनमें से बच्चे निकालते हैं। इस प्रकार के जन्तुओं के भरण पोषण का भार प्रायः उनके माता पिता के सिर रहता है। जरायुजों की जरा वा आँवल भी एक प्रकार का अंडा ही है पर इसमें और अंडे में भेद इतना ही है कि इसके भीतर परिपक्व बच्चा और अंडे के भीतर बच्चों की प्रकृति होती है। जीवतत्त्व-वेत्ताओं का मत है कि आँवला अंडे ही का एक अवान्तर रूप है। इस प्रकार के जन्तुओं के भरण पोषण का भार उनके पिता पर नहीं होता, माता पर होता है।

संसार में जीवों की पर्य्यालोचना करने से इस बात का अनुमान होता है कि सिवाय उन जन्तुओं के जिन की माताओं को अपने बच्चों के भरण पोषण के लिए किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता पड़ती है और जन्तु दम्पति वा जोड़े के रूप में नहीं रहते। ऐसे जन्तुओं में स्त्रियों के कोई निश्चित पति नहीं होते किन्तु ऋतुकाल में कितने ही पुरुष उनसे समागम करने के लिए परस्पर लड़ते भिड़ते हैं और स्त्रियाँ भी स्वेच्छानुसार किसी को थोड़ी देर के लिए ग्रहण कर लेती हैं और फिर दोनों अपनी राह लेते हैं। फिर स्त्री काल पाकर बच्चे वा अंडे देती है। ऐसे जन्तुओं में स्त्री और पुरुष में विशेष प्रेम नहीं होता और जाति में दोनों का समान अधिकार होता है। समस्त पशु कीट पतंगादि, केवल कुछ पक्षियों को छोड़, इसी कोटि के अन्तर्गत हैं। ऐसे जन्तुओं को अदाम्पत्यक कहते हैं। दूसरे वे जन्तु हैं जिनमें स्त्री और पुरुष परस्पर प्रेम पूर्वक रहते हैं। स्त्री अंडे देती है और दोनों पति पत्नी उसे बारी बारी से लेते हैं। बच्चे निकलने पर वे दोनों केवल उनके बड़े होने तक उनका भरण पोषण करते हैं। ऐसे जन्तुओं में पति की सहायता बिना स्त्री अपने बच्चों का पालन पोषण करने में असमर्थ होती है। कबूतर, मैना, पंडुक आदि पक्षी इसी कोटि के जन्तु हैं। इन्हें दाम्पत्यक कहते हैं।

दाम्पत्यक और अदाम्पत्यक जन्तुओं के भी बच्चों की संख्या के विचार से कई भेद हैं। एक-वत्सक, द्विवत्सक और बहुवत्सक। द्विवत्सक और बहुवत्ससक यद्यपि अंडज और पिंडज दोनों में मिलता है तथापि एकवत्सक जन्तु पिंडजों के अतिरिक्त अंडजों में नहीं मिलते। यद्यपि कभी कभी एकवत्सक जन्तुओं की भी स्त्रियाँ दो वा दो से अधिक बच्चे दे देती हैं तथापि ऐसा बहुत कम हुआ करता है। एकवत्सक जन्तु गाय, भैंस, बंदर मनुष्य आदि हैं। इनमें मातायें अपने बच्चों का भरण पोषण बिना पति की सहायता के करती हैं।

इससे प्रकट हुआ कि मनुष्य भी अदाम्पत्यक और एकवत्सक जन्तुओं की कोटि के अंतर्गत है और उसकी स्त्री पति की सहायता के बिना शिशु पालन कर सकती है। यह अनुमान की बात नहीं किन्तु प्रत्यक्ष की बात है कि कितनी विधवाएँ अपने बच्चों को पति के मर जाने पर तथा सहस्रों वेश्याएँ अपनी संतति को (जिनके पिताओं का उसी तरह पता नहीं चल सकता जैसे कि गाय के बच्चे वा कुत्ते के बच्चे के पिता का) पति की सहायता के बिना ही पालती पोसती हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए यह कहने का साहस होता है कि बहुत पूर्वकाल में मनुष्यों में दाम्पतिक प्रथा नहीं थी।

मनुष्य की साम्प्रतिक सभ्यता उसे विवेकपूर्वक ग्रहण और त्याग-शक्ति द्वारा प्राप्त हुई है। यह सभ्यता किसी ऐसी भूमि से चली है जिसमें मनुष्य अपने सवर्गीय जन्तु बंदर आदि के समान ही था पीछे अपने विवेक से उस भूमि से उन्नति करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ इस भूमि पर पहुँचा है जिस पर आज हम उसे देखते हैं।

मनुष्य जब अपनी आदि भूमि पर था तब उसमें स्त्री-संवरण की प्रथा वही थी जो अन्य अदाम्पतिक पशु पक्षियों में अब तक पाई जाती है। अर्थात् वह जोड़े वा दम्पती के रूप में नहीं रहता था। केवल काम के वेग में वह स्त्रियों से समागम करता था जिसके पीछे उसका उस स्त्री से कोई संबन्ध नहीं रह जाता था। वह कामान्धता की दशा में माता भगिनी पुत्री आदि का विचार नहीं करता था और न स्त्रियाँ ही पिता पुत्र भाई आदि से समागम करने में हिचकती थीं। ऐसी दशा में कभी कभी पुरुष स्त्रियों पर आक्रमण भी करते थे उन्हें नोचते और दांतों से काटते भी थे अर्थात् जिस प्रकार होता था अपनी पाशव वासना तृप्त करते थे। स्त्रियाँ भी अपने बचाव के लिये कभी कभी उन पर प्रहार भी करती थीं।

यह प्रथा अब तक कितनी ही वन्य और असभ्य जातियों में पाई जाती है। चिपेवायन (Chippewayan) बुशमैन (Bushman) एसकिमाक्स (Esquimaux) अलेउट (Aleut) आदि असभ्य जातियों में अब तक दाम्पत्य धर्म का अभाव है। चिपेवायन जाति में स्त्री के लिये कुत्तों की तरह लड़ाई होती है, जो सबको मार गिराता है वह उसके साथ समागम करता है। बुशमैन लोगों में यह बात देखी जाती है कि सभी पुरुष परस्पर अनुमति करके संभोग करते हैं। फिर यदि उसी बीच कोई दूसरा पहुँचा तो वह बलपूर्व उसे छीन लेता है। इसकिमाक्सों में पशुवत् बर्ताव है। आज एक स्त्री एक के पास है तो कल दूसरे के पास और परसों तीसरे के पास। यही अवस्था अलेउटों की भी है। किसी किसी जाति में बहुत सी स्त्रियों में एक पति हथनियों के झुंड में एक हाथी की तरह रहता है। टूपिस आदि में यह प्रथा अब तक मिलती है। चिपेवायन, कादियाक (Kadiak) आदि जातियों में अपनी माता भगिनी और कन्या से संभोग करने की प्रथा है।

अभ्यास अवस्था में यही प्रथा प्राचीन आर्यों में थी, महाभारत में स्पष्ट खोल कर कहा गया है:—

> पुराणमृषिभिर्दृष्टं पुरा धर्म्मविर्महात्मभिः।
> अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने॥
> कामाचारविहारिण्या अतन्त्राश्चारुहासिनी।
> तासां व्युचरमानानां कौमारात्सुभगे पतीन्॥
> नाधर्मोभूद्वारारोहे सहि धर्मः सनातनः। आदि १२३ अ०

अर्थात् "प्राचीन काल में स्त्रियाँ नंगी रहती थीं वे स्वतन्त्र और कामाचार-विहारिणी होती थीं और बिना ब्याह ही अनेक पुरुषों से समागम करती थीं। उनका यह कृत्य उस समय अधर्म नहीं माना जाता था" वेदों में भी देखते हैं तो हमें इस वाक्य की पुष्टि मिलती है। ऋग्वेद में एक स्त्री का वाक्य इस प्रकार है:—

> उपोपमे परामृष मामेदभ्राणि मन्यथ।
> सर्वाहमस्मि लोमशा गांधारीणामिवाविका॥

आवो आवो मेरे साथ परामर्श करो मुझ में कोई न्यूनता न समझो मैं गांधार की भेड़ की तरह सब बालों से ढकी हूँ।

ऋग्वेद मंडल दश के यमयमी सूक्त तथा 'यत्र-पिता दुहितुर्गर्भमाधात्' इत्यादि वाक्यों से चाहे वे उपमा वा रूपक ही क्यों न माने जायँ कम से कम इस बात का पता तो अवश्य चलता है कि आर्य्यों की अवस्था किसी न किसी समय में ऐसी थी जिसे हम पाशव कह सकते हैं।

मनुष्यों की सभ्यता का मूल मन्त्र 'योग' है जिसके लिये वेदों में सैकड़ों जगह साहकारी क्षेम के साथ 'योगः क्षेमो न कल्पंताम्' इत्यादि प्रार्थना की गई है। उपयोगी वस्तुओं को कालांतर में उपयोग में लाने के लिए संग्रह करना 'योग' कहलाता है। बरसात आदि के दुर्दिनों में जब लोगों ने देखा कि कई दिन बिना अन्न रहना पड़ता है तब उन्होंने वस्तुओं का संग्रह करना प्रारंभ किया। इसी संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये उन्हें घर बनाने की आवश्यकता पड़ी और अपने गृह कार्य्य की सहायता के लिये उन्हें किसी अन्य की आवश्यकता पड़ी। ऐसे काम के लिये उन्होंने किसी स्त्री को चुनना प्रारंभ किया, स्त्रियों को भी इसमें उतना ही सुबीता था। पर कभी कभी लोग किसी स्त्री को फुसला कर बलात् उठा लाते वा लड़ कर छीन भी लाते थे और वह तब तक उनके साथ रहती थी जब तक कोई दूसरा आकर उसे छीन नहीं ले जाता था। धीरे धीरे इन लोगों की सभ्यता बढ़ती गई और गृह-कार्य्य के लिये स्त्री का होना परमावश्यक माना जाने लगा। अतः यह प्रथा चली कि एक स्त्री किसी पुरुष के घर रहा करे पर स्त्री की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। महाभारत में इस प्रकार के कितने ही उदाहरण मिल सकते हैं। दीर्घतमस ऋषि का उदाहरण इसके लिये एक अच्छा प्रमाण है जिसका हाल ऋग्वेद मंडल १ में लिखा है। उस समय आर्य्यों में वर्णधर्म स्थापित हो चला था और यही गृह-प्रबंध बढ़ते बढ़ते प्रजापतित्व तक पहुँच गया। ये लोग गो आदि पशु पालना तथा दूध, दही, मक्खन आदि बनाना जान गये थे। कन्या को ये लोग संभुक्त स्त्री की अपेक्षा घर में लाना अच्छा जानते थे। अतः प्रायः कन्या के लिये ये लोग मार पीट भी करते थे। अथर्ववेद में इस प्रकार के झगड़ों का निबटेरा इस प्रकार लिखा है—

> उत यत्पतयो दश स्त्रियाश्चेदब्राह्मणाः।
> ब्रह्म चेद्धस्तमग्रभीत्स एक पितुरेकधा॥

यदि किसी स्त्री के लिये दश अब्राह्मण पुरुष पति होने के लिये विवाद करते हों और ग्यारहवाँ ब्राह्मण पति हो तो ब्राह्मण ही अकेला उसके पति होने का अधिकारी है।

(शेष आगे)

—:०:—

गोस्वामी तुलसीदास।

[ज्येष्ठ १९६९ की मर्यादा में श्रीयुत इन्द्रदेवनारायण ने हिन्दीनवरत्न पर अपने विचार प्रगट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवनसम्बन्ध में अनेक बातें ऐसी कही हैं जो अब तक निर्धारित बातों में बहुत उलट फेर कर देती हैं। यह आशा थी कि इस लेख पर हिन्दी के विद्वानों और गोस्वामी जी के भक्तों का ध्यान जायगा और इस विषय पर विचार कर सिद्धांत स्थिर किए जाँयगे परन्तु अभी तक किसी महाशय ने इस सम्बन्ध में कहीं कुछ लिखने की कृपा नहीं की है अतएव उस लेख का वह अंश जो गोस्वामी जी की जीवन-घटनाओं से संबन्ध रखता है पुनः नीचे प्रकाशित किया जाता है और यह आशा की जाती है कि इन में दी हुई बातों पर विशेष रूप से विचार किया जायगा।

सम्पादक।]

गोस्वामी तुलसीदास जी।

गोस्वामी जी रचित अलौकिक ग्रन्थों में अनेकानेक विषय समन्वित हैं। प्रथम "रामचरितमानस" ही को देखिये, इसमें कैसे कैसे गूढ़ विषय सन्निवेशित हैं। ग्रन्थकार का वचन है—

श्लोक।

> नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-
> रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
> स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा,
> भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

चौपाई।

> रघुपति "महिमा अगुन" अबाधा।
> बरनब सोई बर बारि अगाधा॥
> "राम सीय जस" सलिल सुधा सम।
> "उपमा" बीचि बिलास मनोरम॥
> पुरइन सघन चारु "चौपाई"।
> जुगुति मंजु मति सीप सुहाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"छन्द' 'सोरठा' सुन्दर दोहा ।
सोई बहु रङ्ग कमल कुल सोहा ॥
'अरथ' अनूप सुभाव 'सुभासा' ।
सोइ पराग मकरन्द सुवासा ॥
सुकृत पुञ्ज मंजुल अलि माला ।
'ज्ञान विराग विचार मराला ॥
धुनि 'अवरेव' 'कवित' 'गुन' 'जाती' ।
मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥
'अरथ' 'धरम' 'कामादिक' चारी ।
कहब 'ज्ञान' 'विज्ञान' विचारी ॥
'नवरस' 'जप' 'तप' 'जोग' 'विरागा' ।
ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
सुकृती साधु नाम 'गुन गाना' ।
ते विचित्र जल विहँग समाना ॥
संत सभा चहुँ दिसि अँवराई ।
सरधा रितु बसन्त सम गाई ॥
'भगति निरूपन' विविध विधाना ।
'छमा' 'दया' 'दम' लता बिताना ॥
'सम' 'जम' 'नियम' फूल फल ज्ञाना ।
हरि पद रति रस वेद बषाना ॥

पुनः

चैापाई ।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बषानी ।
जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी ॥
'भगति' 'ज्ञान' 'विज्ञान' विरागा ।
पुनि सब बरनहु सहित विभागा ॥
औरो राम रहस्य अनेका ।
कहहु नाथ अति विमल विवेका ॥
जो प्रभु मैं पूछा नहि होई ।
सोउ दयाल राषहु जनि गोई ॥

ग्रन्थकार-रचित मानस की आरती में लिखा है—

चारों वेद पुरान अष्ट दश,
षट् सास्त्र सद्ग्रन्थन्ह को रस ।
मुनिजन धन सन्तन को सर्वस,
सार अंस संमत सबही की ।

सारार्थ यह कि रामचरितमानस नाना पुराण, वेद, शास्त्र और रामायणादि-कथित सिद्धान्त और विषयों से विभूषित हैं तथा अन्यत्र से भी इसमें अनेकानेक विषय सन्निवेशित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित विषय विशेषतर कथित हैं—

साहित्य—भाषा, छन्द, अर्थ, उपमा, धुनि, अवरेव, काव्यगुण, जाति, नवरस, युक्ति, अलंकार, भावादिक ।

दर्शन—ज्ञान, विज्ञान, तत्त्वविचार, भक्ति, कर्म, योग इत्यादि ।

चतुर्वर्ग—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ।

चरित—सगुण, निर्गुण, लैाकिक, अलैाकिक ।

पुनः उपर्युक्त वचनों के अनुसार यह रामचरितमानस चारों वेद, छओं शास्त्र, अठारहों पुराण तथा अनेकानेक सद्ग्रन्थों का सारतत्त्व है। इसी कारण यह मुनिजनों का धन और सन्तों का सर्वस्व है। इसके अतिरिक्त इसमें राजनीति, साधारण नीति, देशभक्ति, पितृभक्ति, मातृभक्ति, भ्रातृभक्ति, पतिभक्ति, चरित्र-कथन इत्यादिक अनेकानेक विषय विभूषित हैं। श्रीगोस्वामीजी रचित अधिकांश ग्रन्थों में ये विषय व्यास समास रीति से आवश्यकतानुसार कथित हैं। अब आगे चलकर देखिये इन विषयों की समालोचना कहाँ तक यथेष्ट अनुसन्धानपूर्वक मिश्र महाशयों ने की है और कहाँ तक इस अलैाकिक ग्रन्थ की अलैाकिकता प्रतिपादन की है। आरम्भ में मिश्र महाशयों द्वारा लिखित गोस्वामीजी के जीवनचरित की ओर ध्यान दीजिये। इस विषय में डाकृर ग्रियर्सन ने जो कुछ अपने "नोटस् आन तुलसीदास" नामक अँगरेज़ी निबन्ध में लिखा है उसी को नागरीप्रचारिणी सभा के महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी प्रभृति पाँच सदस्यों द्वारा सम्पादित रामचरितमानस की भूमिका में दोहराया गया है और उसी आधार पर मिश्र महाशयों ने भी संक्षिप्त जीवनी इस निबन्ध में लिखी है। इस विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अनुसन्धान करने की कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। आप लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५८९ में हुआ था (पृष्ठ २) परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। डाकृर ग्रियर्सन ने लिखा है—

"The most trustworthy account states that he was born in Samvat 1589 (A. D. 1532) so that he must have been 42 years of age when he commenced writing the Ramayana.

तात्पर्य्य यह है कि अत्यन्त विश्वसनीय कथाओं से ज्ञात होता है कि उन्होंने (गोस्वामीजी ने) संवत् १५८९ में जन्म लिया था इससे वह ४२ वर्ष के रहे होंगे जब उन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया परन्तु किस आधार पर यह संवत् निश्चय हुआ सो कुछ नहीं लिखा। पण्डित रामगुलाम द्विवेदी की सुनी सुनाई कहावतों से संवत् १५८९ है जिसे डाकृर ग्रियर्सन ने भी लिखा है....................इसलिए जन्म संवत् १५८९ प्रायः ठीक जान पड़ता है"। इन्हीं कही सुनी कहावतों के अनुसार मिश्र महाशयों ने भी वही संवत् लिख मारा, वास्तविक बात का ज़रा भी अनुसन्धान नहीं किया।

श्रीगोस्वामीजी की शिष्य परम्परा के चौथे पुश्त में काशीनिवासी विद्वद्वर श्रीशिवलाल पाठकजी हुए, जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण पर संस्कृत-भाष्य तथा व्याकरणादि विषय पर भी अनेक ग्रन्थ निर्माण किये हैं। उन्होंने रामचरितमानस पर भी "मानस-मयंक" नामक तिलक रचा है। उसमें लिखा हैः—

दोहा।

मन ऊपर शर जानिये, शर पर दीन्हें एक।
तुलसी प्रगटे रामवत, राम जन्म की टेक॥

सुने गुरू ते बीच शर, सन्त बीच मन जान।
प्रगटे सतहत्तर परे, ताते कहे चिरान॥

अर्थात् १५५४ सं० में गोस्वामीजी प्रगट हु[ए] और पाँच वर्ष की अवस्था में गुरु से कथा सुनी पुनः चालिस वर्ष की अवस्था में सन्तों से भी व[ह] कथा सुनी और उन्होंने सतहत्तरवें वर्ष के बा[द] अठहत्तरवें वर्ष में रामचरितमानस को रचन[ा] आरम्भ किया। उनकी अठहत्तर वर्ष की अवस्था १६३१ संवत् में थी और १६८० संवत् में परमधा[म] सिधारे। एवं प्रकार १५५४ में ७७ जोड़ने से १६३[१] संवत् हुआ। संवत् १५५४ वाँ साल मिला कर अठ[-] हत्तर वर्ष की अवस्था गोस्वामीजी की थी ज[ब] मानस आरम्भ हुआ और १२७ वर्ष की दीर्घ आयु भोग कर गोस्वामीजी परमधाम सिधारे।

मिश्र महाशयों ने जो यह अनुमान किया है कि दस-बारह वर्ष की अवस्था में गोस्वामीजी ने राम[-] कथा गुरु से सुनी होगी सो सर्वथा अमूलक और अमाननीय है क्योंकि स्वयं ग्रन्थकार कहते हैंः—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझि नहीं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।

दस-बारह वर्ष की अवस्था अचेत नहीं कहलाती इस अवस्था में सर्व प्रकार सचेतत्व बना रहता है सो अचेत की कौन कहे मूल में तो अति अचेत लिखा है, अतः १०, १२ वर्ष की अवस्था कदापि माननीय नहीं।

मिश्र महाशय कहते हैं कि "इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था स्वयं इनका नाम रामबोला था परन्तु वैरागी हो[ने] पर इनका नाम तुलसीदास हुआ। दूसरी आपत्ति मुझको यह कहना है कि आप लोगों ने कैसे जा[ना] कि गोस्वामी जी का विवाह पाठकों के यहाँ हु[आ] था? यह आपत्ति तो जान बूझ कर बुलाई गई है

गोस्वामी जी का जीवन-चरित उनके शि[ष्य] महानुभाव महात्मा रघुबरदास जी ने लिखा है। इ[स] ग्रन्थ का नाम "तुलसीचरित" है। यह बड़ा ही बृह[त्] ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं (१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा। इनमें भी अने[क]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपखण्ड हैं । इस ग्रन्थ की संख्या इस प्रकार लिखी हुई है "चौ० एक लाख तैं तीस हज़ार, नौसै बासठ छन्द उदारा" यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है । इसमें गोस्वामी जी के जीवनचरित विषयक मुख्य मुख्य वृत्तान्त नित्य प्रति के लिखे हुए हैं । इसकी कविता अत्यन्त मधुर सरल और मनोरंजक है । यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबरदास जी विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्रीरामचरितमानस के टक्कर की है और यह "तुलसीचरित" बड़े महत्व का ग्रन्थ है । इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है । इस माननीय वृहद् ग्रन्थ के 'अवध खण्ड' में लिखा है कि जब श्रीगोस्वामी जी घर से विरक्त होकर निकले तो रास्ते में एक रघुनाथ नामक पण्डित से भेंट हुई और गोस्वामी जी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहाः—

गोस्वामीजी का वचन :—

चौपाई ।

काल अतीत यमुन तीरिनी के ।
रोदन करत चलेहुँ मुष फीके ॥
हिय विराग तिय अपमित बचना ।
कछु मोद बैठो निज रचना ॥
खींचत त्याग विराग बटोही ।
मोह गेह दिसि कर सत सोही ॥
भिरे जुगल बल बरनि न जाही ।
स्पन्दन वपु खेत बन माही ॥
तिनिहुँ दिशा अपथ महि काटी ।
आठ कोस मिसिरन की पाटी ॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला ।
बैठेहुँ देषि भूमि सुविसाला ॥
पण्डित एक नाम रघुनाथा ।
सकल शास्त्र पाठी गुण गाथा ॥
पूजा करत डरत मैं जाई ।
दण्ड प्रनाम कीन्ह सकुचाई ॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना ।
बैठि गयऊँ महितल भय माना ॥
बुध पूजा करि मोहि बुलावा ।
गृह वृत्तान्त पूछब मन भावा ॥

❋ ❋ ❋ ❋

जुवा गौर शुचि गढ़नि विचारी ।
जनु विधि निज कर आपु सँवारी ॥
तुम विलोक आतुर गति धारी ।
धर्मशील नहि चित्त विकारी ॥
देखत तुम्हहिँ दूरि लगि प्रानी ।
अद्‌भुत सकल परस्पर मानी ॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे ।
किमि न तात तुम्ह प्रान पियारे ॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाही ।
किधौं मूढ़ पुर वास सदाही ॥
सन्यपात पकरे सब ग्रामा ।
चले भागि तुम तजि वह ठामा ॥
तव यात्रा विदेश कर जानी ।
विदरि हृदय किमि मरे अयानी ॥
चित्त वृति तुव दुष मह ताता ।
सुनत न जगत व्यक्त सब बाता ॥
मोते अधिक कहत सब लोगा ।
अजहुँ जुरे देखत तरु योगा ॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी ।
तुम्हहिं धाय नहि गहे अनारी ॥
जाति पांति गृह ग्राम तुम्हारा ।
पिता पीठि का नाम अचारा ॥

दोहा ।

कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार ।
मैं जानत भलि भाँति सब, सत अरु असत विचार ॥
चले अश्रु गद गद हृदय, सात्विक भयो महान ।
भुवि नष रेष लग्यौं करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान ॥

चौपाई ।

दया शील बुधवर रघुराई ।
तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई ॥
अश्रु पोंछि बहु तोष देवाई ।
बिसे बीस सुत मम समुदाई ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखैं चिन्ह मिश्रन सम तोरा।
विसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीशा।
मेटहिं सकल दुसह दुख ईशा॥
धीरज धरि मैं कथन विचारा।
पुनि बुध कीन्ह विविध सतकारा॥
परशुराम परपिता हमारे।
राजापुर सुख भवन सुधारे॥
प्रथम तीर्थयात्रा मह आए।
चित्रकूट लखि अति सुख पाए॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनि वासा।
फिरे सकल प्रमुदित गत आसा॥
वीर मरुतसुत आश्रम आई।
रहे रैनि तहँ अति सुख पाई॥
परशुराम सोये सुख पाई।
तहँ मारुतसुत स्वप्न देषाई॥
बसहु जाय राजापुर ग्रामा।
उत्तर भाग सुभूमि ललामा॥
तुम्हरे चौथ पीठिका एका।
तप समूह मुनि जन्म विवेका॥
दम्पति तीरथ भ्रमे अनेका।
जानि चरित अद्भुत गहि टेका॥
दम्पति रहे पक्ष एक तँहवाँ।
गये कामदा शृङ्ग सु जँहवाँ॥
नाना चमतकार तिन्ह पाई।
सीतापुर नृप के ढिग आई॥
राजापुर निवास हित भाषा।
कहे चरित कुछ गुप्त न राखा॥
तरिवनपुर तेहि की नृपधानी।
मिश्र परशुरामहिं नृप आनी॥

दोहा।

अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र षट जासु।
बहु सन्माने भूप तँह, कहि द्विज मूल निवासु॥
सरयू के उत्तर बसत, मंजु देश सरवार।
राज मंझवली जानिये, कसया ग्राम उदार॥
राजधानि ते जानिये, क्रोश विंश त्रय भूप।
जन्मभूमि मम और पुनि, प्रगट्यौ बौध स्वरूप॥

चौपाई।

बौध स्वरूप पेंड ते भारी।
उपल रूप महि दीन बलारी॥
जैनाभास चल्यो मत भारी।
रक्षा जीव पूर्ण परिचारी॥
हेम सुकुल तेहि कुल के पण्डित।
क्षत्री धर्म सकल गुण मण्डित॥
मैं पुन गाना मिश्र कहावा।
गणपति भाग यज्ञ मंह पावा॥
मम बिनु महावंश नहि कोई।
मैं पुनि बिन सन्तान जो सोई॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा।
तिमि सम पत्नि जानि मति भ्राजा॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका।
तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा।
प्रगट स्वप्न बहु विधि दरसावा॥
भूप मानि मैं चलेहुँ रजाई।
राजापुर निवास की ताई॥
निर्धन बसब राजपुर जाई।
वृक्ष कलिन्दि तीर सचुपाई॥
नगर गेह सुख मिलै कदापी।
बसब न होंहि जहाँ परितापी॥
अति आदर करि भूप बसावा।
बाममार्ग पथ शुद्ध चलावा॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी।
जिनके प्रगट शम्भु गिरिवासी॥
परशुराम काशी तन त्यागे।
राम मन्त्र अति प्रिय अनुरागे॥
शम्भु कर्णगत दीन सुनाई।
चढ़ि विमान सुरधाम सिधाई॥
तिनके शङ्कर मिश्र उदारा।
लघु पण्डित प्रसिद्ध संसारा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा।

परशुराम जू भूप को, दान भूमि नहिं लीन।
शिष्य मारवाड़ी अमित, धन गृह दीन्ह प्रवीन॥
वचन सिद्धि शङ्कर मिस्सिर, नृपति भूमि बहु दीन।
भूप रानि अरु राज नर, भये शिष्य मति लीन॥
शङ्कर प्रथम विवाह तें, बसु सुत करि उत्पन्न।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध, निशि दिन ज्ञान प्रसन्न॥

चौपाई।

जोषित मृतक कीन अनु व्याहा।
ताते मोरि साख बुध नाहा॥
तिनके संत मिश्र द्वै भ्राता।
रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह मंह जाई।
लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी।
प्रथम पुत्र को नाम मुरारी॥
सो मम पिता सुनिय बुध त्राता।
मैं पुनि चारि सहोदर भ्राता॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा।
ताते लघु महेस गुण धामा॥
कर्म काण्ड पण्डित पुनि दोऊ।
अति कनिष्ठ मङ्गल कहि सोऊ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा।
तुला अन्न धरि तौलि स्वधामा॥
तुलसिराम कुल गुरू हमारे।
जन्म पत्र मम देखि बिचारे॥
हस्त प्रास पण्डित मतिधारी।
कह्यो बाल होइहिं व्रतधारी॥
धन विद्या तप होय महाना।
तेजरासि बालक मतिमाना॥
भरतखंड एहि सम एहि काला।
नहि महान कोउ परमति शाला॥
करिहिं खचित नृपगन गुरुबाई।
बचन सिद्ध ललु रहहिं सदाई॥
अति सुन्दर सरूप सितदेहा।
बुध मङ्गल भाग्यस्थल गेहा॥

ताते यह विदेह सम जाई।
अति महान पदवी पुनि पाई॥
पञ्चम केतु रुद्र गृह राहू।
जंतन सहस्र वंश नहि लाहू॥

दोहा।

राज योग दोउ सुख सुएहि, होंहि अनेक प्रकार।
अब्दै दया मुनीस कोउ, लियो जन्म बरबार॥

चौपाई।

प्रेमहि तुलसि नाम मम राखी।
तुलारोह तिय कहि अभिलाषी॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी।
कीन व्याह सुन्दरी विचारी॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे।
पिता मातु मम सहित निसारे॥
भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा।
षोडस मनुज रहे एक साथा॥

* * * *

बानी विद्या भगिनि हमारी।
धर्म शील उत्तम गुण धारी॥

* * * *

दोहा।

अति उत्तम कुल भगिनि सब; व्याही अति कुशलात।
हस्त प्रास पण्डितन्ह गृह, व्याहे सब मम भ्रात॥

चौपाई।

मोर व्याह द्वै प्रथम जो भयऊ।
हस्त प्रास भार्गव गृह ठयऊ॥
भई स्वर्गवासी दोऊ नारी।
कुलगुरु तुलसि कहेउ व्रतधारी॥
तृतिय व्याह कञ्चनपुर माहीं।
सोइ तिय वच विदेश अवगाही॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई।
मात भ्रात परिवार छोड़ाई॥
कुल गुरु कथन भई सब सांची।
सुख धन गिरा अवर सब कांची॥
सुनहु नाथ कञ्चनपुर ग्रामा।
उपाध्याय लछिमन अस नामा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिनकी सुता बुद्धिमति एका ।
धर्मशील गुनपुञ्ज विवेका ॥
कथा-पुराण-श्रवण बलभारी ।
अति कन्या सुन्दरि मति धारी ॥

दोहा ।

मोह विप्र बहु द्रव्य ले, पितु मिलि करि उत्साह ।
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतिय मम व्याह ॥

❋ ❋ ❋ ❋

चौपाई ।

निज विवाह प्रथमहि करि जहवां ।
तीन सहस्र मुद्रा लिय तहवां ॥
षट् सहस्र लै मोहि विबाहे ।
उपाध्याय कुल पावन चाहे ॥

ऊपर लिखे हुए पदों का सारार्थ यह है कि सरयू नदी के उत्तरभागस्थ सरवार देश में मधैाली से तेइस कोस पर कसेयां ग्राम में गोस्वामी के प्रपितामह परशुराम मिश्र का जन्म-स्थान था ग्रैार यहाँ के वे निवासी थे। एक बार वह तीर्थ यात्रा के लिए घर से निकले ग्रैार भ्रमण करते हुए चित्रकूट में पहुँचे, वहाँ हनुमानजी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजापुर में निवास करो, तुम्हारे चैाथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर के परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रान्त के राजा के यहाँ गये ग्रैार हनुमानजी की आज्ञा को याथातथ्य राजा से कह कर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान जान कर अपने साथ तीखनपुर अपनी राजधानी में ले आये ग्रैार बहुत सम्मानपूर्वक राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुआ इससे वह बहुत खिन्न होकर तीर्थयात्रा को गये तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ ग्रैार राजापुर लैाट आये। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर इन्होंने राजापुर में शिव-शक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रगट की परन्तु राजा ने इनके मत का अनुयायी हो कर बड़े सम्मानपूर्वक इनको रक्खा ग्रैार भूमिदान दिया परन्तु इन्होंने ग्रहण नहीं किया। इनके शिष्य मारवाड़ी बहुत थे उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह ग्रैार भूमि का लाभ हुआ। अन्तकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे ग्रैार यज्ञ में गणेशजी का भाग पाते थे।

इनके पुत्र शङ्कर मिश्र हुए जिनको वाकसिद्धि प्राप्त थी। राजा ग्रैार रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए ग्रैार राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र ग्रैार दो कन्याएं हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए (१) सन्त मिश्र, (२) रुद्रनाथमिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महा पुरुष के पुत्र गोस्वामीजी हुए।

गोस्वामी जी चार भाई थे (१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम, (४) मङ्गल।

यही तुलाराम तत्वाचार्यवर्य भक्तचुड़ामणि गोस्वामी जी हैं। इनके कुल गुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रक्खा था। गोस्वामी जी के दो बहिनें भी थीं। एक का नाम वाणी ग्रैार दूसरी का विद्या थीं।

गोस्वामी जी के तीन विवाह हुए थे प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ ग्रैार दूसरी स्त्री के मरने पर तीसरा। यह तीसरा व्याह कञ्चनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ, इस विवाह में इनके पिता ने छः हज़ार मुद्रा लिये थे। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुए।

अब तो यह निश्चय हुआ कि गोस्वामी जी सरवरिया ब्राह्मण गाना के मिश्र थे, इनके पिता का नाम मुरारी मिश्र था ग्रैार इनका नाम तुलाराम था ग्रैार ये अभुक्त मूल में नहीं जन्मे थे, इनके पिता माता इनके विरक्त होने के समय जीवित थे। मिश्र महाशयों का यह कथन कि ये दाने दाने को विल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलाते फिरते थे बिलकुल बेबुनियाद है। न मालूम मिश्र महाशयों पर क्या तीसरी आपत्ति आई जिससे विवश होकर वे कवितावली के इस पद के सहारे ज़बरदस्ती दरिद्रता गोस्वामी जी के माथे मढ़ते हैं—

"बारे तै ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारिहुं चनक कों"।

गोस्वामी जी ने गीतावली में भी कहा है—

"हुतो ललात कृस गात खात मोद पाइ, कोदो कनै"—वहां चने के चार दाने चारों फल सदृश कहा, यहां कोदो के कण ही से मोद प्राप्ति कही—भला यह तो विचारिए, इन दोनों बचनों में सत्य कौन है? पारमार्थिक ऐश्वर्य की अपेक्षा संसारी ऐश्वर्य सर्वदा तुच्छ है। इसी कारण गोस्वामी जी ने संसारी ऐश्वर्य को चने का चार दाना और कोदो के कण सदृश कहा है, ये पद उनकी दरिद्रता के बोधक नहीं हैं। आप लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था और तारक नामक पुत्र भी हुआ था। पर वह बचपन ही में स्वर्गवासी हुआ, यह बात भी असार सिद्ध हो ही चुकी। प्रायः सभी इस सोरठा के आधार पर "बन्दौ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि" गोस्वामी जी को नरहरिदास जी का शिष्य कहते हैं परन्तु यह बात सत्य नहीं है गोस्वामीजी श्री रामदासजी के शिष्य थे।

देखिये, जीवनचरित में लिखा है:—

चौपाई।

तब गुरु रामदास पहचानी।
राम यज्ञ बिधि श्रुति मत ठानी॥
द्वादस दिन फलहार कराई।
दिये मौनव्रत मेरी तांई॥
राम बीज जुत मन्त्र जपावा।
कष्ट साध्य सब नियम करावा॥
बीज मन्त्र तुलसी के याना।
लिखि त्रिकाल प्यावत हित ज्ञाना॥

इन्हीं श्री रामदास जी से गोस्वामी जी ने विद्या भी प्राप्त की।

चौपाई।

पुनि भारती यज्ञ मम हेता।
कियो परम गुरुदेव सचेता॥
पढ़ि मुनि पाणिनीय को ग्रंथा।
बसु अध्याय शब्द कर पंथा॥
दीक्षित ग्रन्थ समग्र बिचारी।
पढ़े कृपा गुरु शेखर भारी॥
कौस्तुभादि मह भाष्य बिचारा।
❋ ❋ ❋ ❋
बरष एक मह शब्दहिं जोई।
पुनि षट्शास्त्र वर्ष मह गोई॥
सकल पुरान काव्य अवलोकी।
तीन वर्ष मँह भयो बिशोकी॥

—:०:—

अफ़गानिस्तान।

(ले० श्रीमती हेमंत कुमारी देवी।)



अफ़गानिस्तान—इसके उत्तर में रूस राज्य, पश्चिम में जुलफ़कर और पूर्व में लेक विक्टोरिया है। यही अफ़गानिस्तान का उत्तर सीमान्त है, पूर्व सीमान्त प्रदेश चित्राल से लगा हुआ है। दक्षिण में बिलूचिस्तान है।

अफ़गानिस्तान में कई पर्वत हैं जिनमें हिन्दूकुश, कोह बाबा और सफ़ेद कोह प्रधान हैं। आक्सस हेलमंद और काबुल नदी अफ़गानिस्तान में होकर बहती हैं। अफ़गानिस्तान में नाना प्रकार के वृक्ष होते हैं जिनमें से देवदारु, बादाम और अखरोट के पेड़ सब स्थानों में देख पड़ते हैं। झाऊ, तूत, एप्रिकाट, सेब, नाशपाती, शफ़ालू के वृक्ष भी बहुत होते हैं। व्याघ्र और चीते, हरीरुद और मुर्गाब जंगलों में मिलते हैं। व्याघ्रों की संख्या कम है परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीते बहुत अधिक हैं। लकड़बग्घा, हैना, और सियार प्रत्येक स्थान में देख पड़ते हैं। प्रत्येक नदी में ऊदबिलाव पाये जाते हैं। कन्धार में फ़ारस का लिंकस भी देख पड़ता है। जंगली गधे भी बहुत होते हैं। धूसर वर्ण के रीछ और जंगली कुत्ते हिन्दूकुश में बहुत हैं और यहाँ काले रीछ, मारखोर, उड़ियाल आदि विचरते हैं।

अफ़गानिस्तान में साँपों की संख्या अधिक है। डेढ़ फ़ुट लम्बे एक प्रकार के विषविहीन नीलवर्ण साँप देख पड़ते हैं। ये चीटियाँ खाकर जीवन धारण करते हैं। रेगिस्तान में ह्वाइयर नामक एक प्रकार का विषैला सर्प होता है जिसके सींग होते हैं। उसका काटना प्राणघातक होता है। सुतरमार नामक एक प्रकार का स्लेट के रंग का सर्प होता है जिसका काटना भयानक होने पर भी उतना घातक नहीं है। गोखुरा अथवा फनारी साँप अफ़गानिस्तान के उष्ण प्रदेशों में मिलता है।

अफ़गानिस्तान शीत प्रधान देश है। गज़नी में सरदी के तीन महीने में ७२८० फ़ीट बर्फ़ गिरती है। उस समय निवासी अपना घर बार छोड़ दूसरी जगह चले जाते हैं। हज़ाराजात में भी ऐसी ही सरदी पड़ती है। हिरात में इससे कम सरदी होती है। ग्रीष्म ऋतु में गरमी भी अधिक होती है। गरमियों में काबुल की उष्णता ९०°। १००° और कन्धार में ११०° तक होती है।

इतिहास।

सिकंदर के युद्ध का हाल सब पर विदित है। इसके मरने पर सिल्यूकस निकेटर पूर्व प्रदेशों का राजा हुआ। इस समय काबुल अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त के अधिकार में था। इसके पीछे पार्थियन और शकों का आविर्भाव हुआ। तब यूची नामक एक जाति ने आकर यूनान और पार्थियन राज्य पर आक्रमण कर उन्हें हरा दिया। इस समय कुशन वंशी कनिष्क का राज्य पूर्व में बनारस और दक्षिण में मालवा तक फैला हुआ था। कनिष्क बौद्धधर्मावलम्बी था और उसने अनेक स्तूप बनवाये थे। कनिष्क की मृत्यु के पीछे उसका राज्य लुप्त हो गया। तब तुर्क लोगों ने काबुल पर अधिकार जमाया। चीनी यात्री हुएनशांग ने तुर्कों को बौद्धधर्मावलम्बी पाया था। तुर्कों के अनन्तर काबुल पर हिन्दू राजाओं का अधिकार हुआ। गज़नवी की लड़ाई में विजयलक्ष्मी ने हिन्दुओं का साथ छोड़ दिया।

नेहाविंद की लड़ाई में अरबों के विजयी होने पर अशिनद लोगों का फ़ारस का राज्य नष्ट हो गया और अरबों ने अफ़गानिस्तान की पश्चिमी सीमा तक दख़ल जमा लिया। फ़ारस के सफ़ारिद लोगों ने हिरात और बलख़ में राज्य स्थापित किया। फिर सामाजिक गणों का अभ्युदय हुआ। ये लोग भी गज़नी के तुर्कों से पराजित होकर भाग गये। गज़नवियों के प्रधान का नाम महमूद था। यह ९९८–१०३० ई० तक अफ़गानिस्तान का राजा रहा। भारत भी इसके आक्रमण से नहीं बचा। गज़नी में इसने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया और दान से मुग्ध होकर फ़रदोशी आदि कविगण उसके राज्य में आये। इसी के राजत्वकाल में गज़नी क़िला, उच्चअट्टालिकाएं मसजिद और उत्तम उत्तम मार्गों से शोभित हुई थी। महमूद के मरने पर अफ़गानों के विप्लव से उसका राज्य नष्ट हो गया।

अब गोरी वंश का अभ्युदय हुआ। इसका प्रसिद्ध राजा शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी था। इसने भारत की उत्तर सीमा पर अधिकार कर दिल्ली में मुसलमानों का राज्य स्थापित किया। इसकी मृत्यु के अनन्तर इसके तुर्क प्रतिनिधि ने अपने को स्वाधीन बनाया। इसका राज्य 'गुलाम' नाम से ख्यात है। थोड़े दिनों पीछे मोगलों ने चंगेज़ख़ाँ के सेनापतित्व में आकर गुलाम घराने पर हमला किया। तदनन्तर नरपिशाच तैमूरलंग आया। दिल्ली का ध्वंस इसने किया। इसके मरने पर इसका राज्य छिन्न भिन्न हो गया। इसके वंशधर इस समय हिरात, बलख़, गज़नी, काबुल और कन्धार में राज्य करते थे। बदख़शाँ काबुल और कन्धार का राजा बाबर तुर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अफ़गानों को लेकर भारत में आया और दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी को पानीपत में पराजित कर दिल्ली का अधिकारी बन बैठा। बाबर अधिक दिन तक राज्य न कर सका। उसका लड़का हुमायूँ शेरशाह से हार कर भागा। बाबर के पोते अकबर ने १५५६ से १६०५ ई० तक शासन कर मोग़ल राज्य को सुदृढ़ कर दिया। अब अफ़गानी लोग किसी गिनती में न रहे। इसके बाद उज़बग लोगों ने बदख़शाँ पर अधिकार कर लिया। फ़ारस वंशी शफ़ावद लोगों ने हिरात और कन्धार पर अधिकार किया। गज़नी और काबुल मुग़लों के हाथ में आए।

१७०८ ई० में कन्धार के ग़िलज़ाइयों ने फ़ारसियों को पराजित किया और कई वर्ष बाद फ़ारस के शरफ़ाबद लोगों को भगा दिया। अबदाली (दुरानी) हिरात और खुरासान के शासक बन गये। उक्त दोनों जातियों को नादिरशाह ने फ़ारस से भगा दिया। सारा अफ़गानिस्तान और मुग़ल साम्राज्य अब नादिरशाह के हाथ में आया। इसने दिल्ली में भयानक कत्ल-आम किया। १७४७ ई० में नादिरशाह गुप्त शत्रु के हाथ से मारा गया। इस समय अफ़गानिस्तान अबदाली वंश की सादोज़ाई जाति के नेता अहमदशाह की अधीनता में स्वतंत्र हो गया। अहमदशाह का राज्य खुरासान, कश्मीर, सिंध और पंजाब तक विस्तृत था। १७६१ ई० में अहमदशाह ने पानीपत में मरहट्टों को हराया। इसी पराजय से मानों अँगरेज़ी राज्य का सूत्रपात हुआ।

अहमदशाह की मृत्यु के पीछे उनकी तैमूरवंशी सन्तान सिंहासनारूढ़ हुई। इसने २० वर्ष तक राज्य किया। इस समय पुराने राज्य के बलख़ और अफ़गान-तुर्किस्तान के और और स्थान भी स्वाधीन हो गये और दुर्रानी लोग उन स्थानों का राज्य खो बैठे। खुरासान और कश्मीर में भी इस समय विद्रोह फैला। १७९३ ई० में तैमूर का देहान्त हुआ। उसका पुत्र जमान राज्याधिकारी हुआ। उसके राजत्व में पंजाब का पूर्व प्रदेश राज्य से निकल गया। १७९९ ई० में तैमूर के महमूद नामक एक दूसरे पुत्र ने राज्य पर अधिकार जमा लिया। १८०३ ई० में उसके भाई शुजा मिरज़ा ने षडयंत्र रच के राज्य को अपने हस्तगत किया। यह 'शाह शुजा उलमुल्क' नाम से ख्यात हुआ। १८०९ ई० में फ़ारस में नेपोलियन के षडयंत्र के कारण स्टुअर्ट एलफ़िनस्टन शाह शुजा के निकट प्रतिनिधिस्वरूप भेजे गये परन्तु उनसे कुछ नहीं बन पड़ा। इस समय अफ़गानिस्तान अन्तरविप्लव से पूर्ण था। शाहशुजा का शासन कोई पसन्द न करता था। कश्मीर में भी विद्रोह दमन के लिये शाहशुजा को लड़ाई लड़नी पड़ी। उपयुक्त समय देख राज्यच्युत महमूद शाह ने शाहशुजा पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में शाहशुजा पराजित होकर भाग गया। महमूद फिर राजा हुआ। ६ वर्ष पीछे शाहशुजा लुधियाने में अँगरेज़ों की शरण आया। महमूद ने ९ वर्ष राज्य किया परन्तु वह नाम मात्र को राजा रहा। राज्य का सब भार मन्त्री फ़तेहख़ाँ पर था। फ़तेह ख़ाँ ने ईरानियों को हराकर ईरान पर अधिकार कर लिया। १८६७ ई० में महमूद ने फ़तेहख़ाँ की आँखें निकलवा लीं। फ़तेहख़ाँ के भाई दोस्त मुहम्मद और मुहम्मद अज़ीम ने भी बदला लेने के लिये महमूद के साथ युद्ध किया। उसका फल यह हुआ कि महमूद काबुल से भगा दिया गया।

कई वर्ष तक अफ़गानिस्तान में कोई राजा न रहा। मुहम्मद अज़ीम राज्य-कार्य चलाते थे परन्तु वे न तो राजा ही थे और न अमीर। अतः अन्यान्य शासनकर्ता उनकी बात का तिरस्कार करने लगे। क्रमशः गड़बड़ पड़ने लगा। हिरात हस्तच्युत हुआ, अफ़गान, तुर्किस्तान और बदख़शां भी हाथ से निकल गये और रणजीतसिंह कश्मीर मुलतान, डेरागाज़ी ख़ाँ और अटक के अधिकारी बन बैठे। १८२३ ई० में नौशेरवां की लड़ाई में रणजीतसिंह ने अफ़गानों को हरा कर पेशावर पर अधिकार कर लिया। इसी समय मुहम्मद आज़िम का देहान्त हुआ। १८२६ ई० में दोस्त मुहम्मद ने काबुल और ग़ज़नी पर अधिकार किया। क्रमशः जलालाबाद भी उसके हाथ में आगया। १८२९ ई० में शाहशुजा अपने गये राज्य को फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाने के लिये अफ़ग़ानिस्तान में आया परन्तु युद्ध में हार कर भाग गया। १८३५ ई० में दोस्त मुहम्मद ने अपने को अमीर बना कर इस बात की घोषणा कर दी।

१८३६ ई० में रणजीतसिंह और अमीरों में सख्यभाव स्थिर रखने के लिये अँगरेज़ मध्यस्थ हुए। अमीर चाहते थे कि अँगरेज़ रणजीतसिंह के विरुद्ध उनकी सहायता करें। अँगरेज़ सर्कार उसमें सहमत नहीं हुई। इस समय कैप्टिन कूच नामक एक रूसी सेनानायक को अमीर ने नौकर रक्खा। अँगरेज़ों ने उसे हटाने की प्रार्थना की। अमीर के इस पर राज़ी न होने पर शाहशुजा को अफ़ग़ानिस्तान का राज्य दिलाना अँगरेज़ी सर्कार ने निश्चित किया। अँगरेज़ों ने रणजीतसिंह से मिलकर अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई की। दोस्त मुहम्मद मारा गया और शाहशुजा राज्याधिकारी बनाया गया।

१८४० ई० में दोस्त मुहम्मद ने आत्मसमर्पण किया और वह भारतवर्ष में लाया गया। १८४१ ई० में फिर विद्रोह हुआ। बर्न और अन्यान्य अँगरेज़ कर्मचारी मार डाले गये। विपद पर विपद आती गई। दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबरख़ाँ के परामर्श से सर विलियम मेकनाटन मार डाले गये। छठी जनवरी १८४२ ई० को अँगरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान छोड़ने की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किये। इस समय अँगरेज़ी सेना की संख्या ४६०७ थी जिसमें ६९० यूरोपियन थे। ये लोग मै बारबरदारों के भारत को आने लगे। इस समय जाड़ा बहुत पड़ता था। सेना वालों को अधिक शीत के कारण अत्यंत क्लेश उठाना पड़ा। अफ़गानों ने सुअवसर देख सेना पर आक्रमण किया। इसका फल यह हुआ कि अँगरेज़ी सेना नष्ट हो गई। केवल १३ सैनिक १३वीं जनवरी को गेंडार्माक में जीवित लौटे। जिन लोगों ने काबुल छोड़ा था उनमें से डाक्टर ब्राइडन मात्र ही घायल और अर्धमृत अवस्था में जलालाबाद लौट कर आये। बाद को ९२ आदमी शत्रु के हाथ से छुड़ाये गये। गज़नी की अँगरेज़ी सेना ने अफ़ग़ानों को आत्म-समर्पण किया। किन्तु सेनापति लाट कन्धार में सेना सहित ठहरे हुए थे। सेनापति सेल जलालाबाद को लौट आये।

अब अँगरेज़ सर्कार ने बदला लेने का संकल्प किया। १८४२ ई० के अप्रैल मास में सेनापति पोलक ख़ैबर पास से जलालाबाद में जा पहुँचा और सितम्बर में उसने काबुल पर अधिकार कर लिया। सेनापति नाट गज़नी को ध्वंस करके उससे आ मिले। बामियान में जितने क़ैदी थे सब छोड़ दिये गये। काबुल का बाज़ार भी नष्ट कर दिया गया। बदला लेने के पीछे दिसंबर सन् १८४२ में अँगरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान छोड़ दिया। इसी समय शाहशुजा गुप्त शत्रु द्वारा मारा गया। दोस्त मुहम्मद ख़ां अँगरेज़ी राज्य छोड़ काबुल में गया और १८६३ ई० तक राज्य करता रहा।

१८४८ ई० में सिक्ख युद्ध के समय सिक्खों ने दोस्त मुहम्मदख़ाँ को पेशावर लौटा देने का लोभ देकर अपने में मिला लिया। दोस्त मुहम्मद ने सिक्खों से मिल कर अटक पर अधिकार कर लिया परन्तु अँगरेज़ों के पेशावर पर अधिकार जमा लेने पर अफ़ग़ानों की आशा नष्ट हो गई।

१८५० ई० में दोस्त मुहम्मद ने बलख़ छीन लिया। १८५५ ई० में अँगरेज़ों से इनकी सन्धि हुई। कन्धार भी इस समय दोस्त मुहम्मद के अधिकार में आ गया। १८५६ ई० में ईरानियों ने हिरात पर दख़ल कर लिया। १८५७ ई० में अमीर ने पंजाब के चीफ़ कमिश्नर सर जान लारेंस के साथ पेशावर में सन्धि की। इस समय अँगरेज़ सर्कार ने अमीर को ईरानियों से बचाने के लिये अस्त्र शस्त्र दिये।

१८६३ ई० में दोस्त मुहम्मद ने हिरात ले लिया पर १३ दिन पीछे उसकी मृत्यु हो गई। उसका लड़का शेरअली गद्दी पर बैठा परन्तु भ्रातृविरोध आरंभ हुआ। अनेक लड़ाइयों के पीछे शेरअली राज्य में प्रविष्ट हुआ। १८६९ में शेरअली ने लार्ड म्यो के साथ अम्बाले में मुलाक़ात की और सख्य बनाए रखने की प्रतिज्ञा की। इस समय मित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाने के लिये अँगरेज़ों ने बाक़ी रुपया अमीर को दे दिया। अँगरेज़ों ने १२००००) पौंड देना अंगीकार किया था। इस समय वह सब चुका दिया गया। इसके पीछे कभी कभी रुपया और अस्त्र-शास्त्र भारतसरकार शेरअली को देती रही।

१८७८ ई० के जुलाई मास में रूस मिशन काबुल में आया। शेरअलीख़ाँ ने उन लोगों को तो आने दिया परन्तु अँगरेज़ी मिशन के काबुल जाने में आपत्ति की। अँगरेज़ों ने उन्हें बहुत समझाया कि उसकी सख्यता अँगरेज़ों से है रूस से नहीं, परन्तु उसने एक न मानी अतः अँगरेज़ों को हथियार उठाना पड़ा। अमीर पराजित होकर भाग गया और ३ महीने पीछे उसका देहान्त हो गया। उसका पुत्र याक़ूबख़ाँ अमीर हुआ। १८७९ ई० में याक़ूबख़ाँ अपनी इच्छा से गेंडामाक में आया और उसने अँगरेज़ों से संधि की। अँगरेज़ों ने प्रसन्न हो उसको कुर्रमघाटी और पेशीन लौटा दी। अमीर काबुल में एक रेज़ीडेंट रखने पर राज़ी हुए। मेजर सर लुइस कैवगेनरी रेज़ीडेण्ट नियुक्त हुए परन्तु वे भी अफ़गानों के हाथ से मारे गये। सेनापति राबर्ट्स ने जो अब लार्ड राबर्ट्स नाम से ख्यात हैं १८७९ ई० में काबुल को जीता। याक़ूबख़ाँ क़ैद करके भारत में भेजे गये। तब से वह भारत में ही रहने लगे। दोस्त मुहम्मद के पौत्र अब्दुर्रहमान को अँगरेज़ों ने अमीर बनाया। १८८० ई० के अगस्त मास में अँगरेज़ काबुल से लौट आये। उस समय सरदार शेरअलीख़ाँ को अँगरेज़ों ने कन्धार में स्वाधीन अधिकारी स्वीकार किया। जुलाई में याक़ूबख़ाँ के छोटे भाई सरदार मुहम्मद अयूबख़ाँ ने हिरात से ससैन्य आकर अँगरेज़ों से मैवंद और कन्धार छीन लिया। सेनापति राबर्ट्स ने कन्धार का पुनः उद्धार किया। शेरअलीख़ाँ अपने स्थान पर दृढ़ न रह सका अतः वह पेंशन देकर भारत को भेजा गया। आयूबख़ाँ ने हिरात से आकर अमीर अब्दुर्रहमान की सेना को पराजित कर कन्धार पर फिर अधिकार कर लिया परन्तु विजयलक्ष्मी बहुत दिन तक उसके आश्रित न रही। सितम्बर १८८१ ई० में अमीर अब्दुरहमान ने उसे हटा कर कन्धार पर फिर से अधिकार कर लिया।

अँगरेज़ों ने पहिले अब्दुर्रहमान को केवल काबुल का अमीर बनाया था परन्तु अब कृपा कर कन्धार और हिरात भी उन्हें दे दिया। उनके साथ अँगरेज़ों की यह सन्धि हुई कि उनकी स्वाधीनता पर अँगरेज़ राज्य हस्तक्षेप न करेगा परन्तु अन्य राज्यों के सम्बन्ध के लिये उन्हें अँगरेज़ों की राय लेनी होगी। अमीर इस पर राज़ी हुए। १८८३ ई० से अँगरेज़ उनको १२ लाख रुपये साल देने लगे। यह रुपया अमीर की सेना के व्यय के लिये और अफ़ग़ानिस्तान की दक्षिण पश्चिम सीमा दृढ़ करने को दिया गया।

१८८४ ई० में रूसियों के मर्व पर अधिकार करने पर अफ़ग़ानिस्तान का उत्तर सीमान्त ईरान से आक्सस तक स्थिर करना उचित समझा गया। अँगरेज़ और रूस सरकार में पत्र व्यवहार होकर अमीर की राय से सीमा स्थिर करने के लिये एक कमीशन बैठाई गई। शरक नामक स्थान में दोनों कमीशनों के बैठने का निश्चय हुआ। अँगरेज़ कमिश्नर सर पीटर लैंसडोन सीमान्त प्रदेश में उपस्थित हुए परन्तु रूस कमीशन आई ही नहीं। १८८५ ई० के मार्च में जब दोनों राज्य सीमा स्थिर करने में लगे थे तब रूसी सेना ने अफ़ग़ानों को पांजदे नामक स्थान पर आक्रमण कर पराजित किया। परन्तु इस समय अमीर भारत में थे इसलिये युद्ध विग्रह नहीं हुआ। जून १८८६ में अफ़ग़ान सीमा स्थिर हो गई। इस समय जुलफिकार से डुगची के मध्यवर्ती स्थान तक सीमान्त स्तंभ स्थिर किया गया। १८८८ ई० के जुलाई मास में कमीशन का कार्य समाप्त हो गया।

अमीर के अत्याचार से पीड़ित हो गिलज़ाई जाति १८८७ ई० में विद्रोही हुई किन्तु अन्त में परास्त हुई। विद्रोही लोगों ने अधीनता स्वीकार की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८८४ ई० में अमीर अब्दुर्रहमान का भतीजा मुहम्मद इशाकखाँ जो अफ़गान-तुर्किस्तान में अमीर का प्रतिनिधि स्वरूप था विद्रोही हुआ। यद्यपि पहिले अमीर की पराजय हुई परन्तु अन्त में अमीर विजयी हुआ। गज़नी की लड़ाई में मुहम्मद इशाकखाँ का भाग्यसूर्य अस्त हो गया। वह बुखारा भाग गया और रूस राज्य का पेंशन भोगी होकर वहीं रहने लगा। १८९० ई० में फ़ीरोज़-कोही स्थान के सिनवारी लोग विद्रोही हुए। यद्यपि अमीर विजयी हुआ परन्तु विद्रोह दमन करने में २ साल लग गये। १८९१ ई० में ईरान और अफ़गानिस्तान का सीमान्त मेजर जनरल सी० एस० मेकलीन द्वारा स्थिर हो गया। १८९३ ई० में पामीर और अफ़गानिस्तान सीमान्त विषय पर अँगरेज़ और रूसियों में जब मीमांसा हो गई, तब भारत सरकार के वैदेशिक मंत्री सर मार्टियर डुरंड ने मिशन लेजाकर अमीर को पूरा मामला समझा दिया। अमीर ने सन्तुष्ट होकर आक्सस नदी का बाहरी भाग जिस पर उसने अधिकार कर लिया था छोड़ दिया और उसके बदले में दरवाज़ प्रदेश उनको मिला। इस समय अँगरेज़ और अफ़गान सीमान्त भी स्थिर हुआ। अँगरेज़ सरकार अपनी बन्धुता दृढ़ करने के लिये अमीर को १८ लाख रुपया देने लगी। अमीर भी वृत्ति बढ़ने से अँगरेज़ों के कृतज्ञ हुए। १८९६ ई० में अमीर ने काफ़िरस्थान को जीत कर उसे अपने अधिकार में कर लिया।

२१ साल राज्य करने के अनंतर अमीर अब्दुर्रहमान अक्टूबर सन् १९०१ ई० में काबुल में मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके पुत्र हबीबुल्लाखाँ सिंहासनारूढ़ हुए। अमीर अब्दुर्रहमान अत्यंत अत्याचारी होने पर भी राज-कार्य में विशेष दक्ष थे। उनके राज्य-काल में अफ़ग़ानिस्तान ने जिस भाँति शांति उपभोग की पहिले वैसी शांति उसे कहीं नहीं मिली थी। सैन्य बल के भी नये भाव से गठित होने के कारण उसमें नया जीवन आ गया।

हबीबुल्ला सिंहासन पर बैठते ही नई नई उन्नति करने लगे। देश में शांति का राज्य हुआ। राज्यकर घटा दिया गया और सैन्य-विभाग की उचित उन्नति हुई।

हेलमन्द नदी की गति बदलने पर १९०३ ई० में अफ़गान ईरान सीमान्त सर ए० एच० मैकमोहन ने स्थिर किया। १९०४ ई० के दिसम्बर मास में सरदार इनायतुल्लाखाँ कलकत्ते में बड़े लाट के साथ भेंट करके काबुल लैाट गये। १९०५ ई० के मार्च मास में काबुल में एक मिशन भेजा गया। अमीर के पिता के साथ अँगरेज़ों की जो सन्धि थी वह उन्हें भी मान्य है, यह उन्हें भली भाँति समझा दिया गया। अमीर भी सम्मत हुए। इस कमीशन के नेता सर लुइ डेन थे। १९०७ में अमीर स्वयं भारत में आये।

अफ़गानिस्तान का पुरातत्त्व देखने से ही प्रतीत होगा कि ईरानी, ग्रीक, हिन्दू, बैाद्ध और मुसलमान अपनी अपनी शक्ति के चिह्न वहां छोड़ गये हैं। काबुल के उत्तर हेदामन नामक स्थान में सिकन्दर की प्रचलित अनेक मुद्राएं मिली हैं। मुसलमानों ने हिन्दू और बैाद्ध अट्टालिकाओं को तोड़ डाला। कोहे काबू के उत्तर काबुल प्रदेशांतर्गत बैाद्ध स्तूपादि अब भी देख पड़ते हैं। चंगेज़ ने जो देशध्वंस किया उसके भी चिह्न देख पड़ते हैं। ग़ज़नबी महमूद ने जो क़बरें, प्रासाद और मसजिदें बनाईं थीं काल के प्रभाव से आज उनके ध्वंसावशेष देख पड़ता है। पुलकी, किलाएफ़तेह नादाली, चकन शूर, जहीदान, दूशाक, पेशावरक और सामूर के ध्वंसावशेष आज भी तैमूर की विजय का परिचय दे रहे हैं। तख़ते रूसन में जनरल मेटलैंड ने १८८६ ई० में बैाद्ध स्तूप का पता लगाया था।

अफ़गानिस्तान में भिन्न-भिन्न जातियों का समावेश हुआ है। यद्यपि धर्म सूत्र से सब एक में बँधे हैं तथापि शिया और सुन्नी दल प्रथक् होने से ध...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धन और जाति-बन्धन में दृढ़ता नहीं है। किर्तलबासी और हज़ारावासी शियाधर्मावलम्बी और अल्प संख्यक होने के कारण सुन्नी लोगों से सताये जाते हैं। अमीर के अधीन कितने पुरुष बसते हैं यह निश्चय करना कठिन है क्योंकि आज तक वहाँ मर्दुमशुमारी हुई ही नहीं। अनुमान से ५ लाख पुरुष होंगे। पुराकाल के प्रासाद आदि देख कर यही अनुमान होता है कि जनसंख्या पहिले बहुत थी और पुरातन नगर की शोभा के सामने आधुनिक काबुल किसी गिनती में नहीं है।

यहाँ के लोगों को दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं (१) अफ़ग़ान, (२) अन-अफ़ग़ान। प्रथम संख्या में अधिक न होने पर भी शक्ति में बड़े हैं। अफ़ग़ान अपने को बनीसराइल कहते हैं। पैलेस्टाइन से मिडिया में नीबूकटनीज़ार जिन लोगों को बलपूर्वक पकड़ लाये थे अफ़ग़ान उन्हीं के वंशधर हैं।

दुरानी अथवा अब्दाली जाति राजा की जाति है। गिलज़ाई लोगों की संख्या डेढ़ लाख है। कन्धार प्रदेश कन्धार और हिरात का मध्यवर्ती स्थान है। अफ़ग़ानिस्तान के दक्षिण की भूमि में दुर्रानी लोग निवास करते हैं।

गिलज़ाई और सिनवारी लोग अफ़ग़ानों में अति शक्ति-शाली और साहसी हैं। ये लोग कन्धार के उत्तर के प्लैटो, सुलेमान पर्वत के पूर्व और पश्चिम, एवं काबुल नदी के उत्तर में बास करते हैं। ये लोग हिरात, काबुल और फ़री में देख पड़ते हैं। अनेक लोगों का अनुमान है कि गिलज़ाई जाति तुर्कों के ख़िलजी वंश से हैं। ग़ज़नी के महमूद के पिता सुबुक़्तगीन इन लोगों को जैकज़रटिज़ प्रदेश से लाये थे। परन्तु अफ़ग़ान अपने को 'गलज़ो' वंश का बतलाते हैं। 'गलज़ो' का अर्थ चोर है। ईरान के गोरी वंशोद्भव शाकहुसेन के साथ क़ईस अब्दुलरसीद की नतिनी बीबी मतो की अविवाहितावस्था में जो सन्तान हुई थी अफ़ग़ान उसी के वंशधर हैं। अफ़ग़ानों में ताज़िकों की संख्या अधिक है। ये लोग लग भग १ लाख हैं। इनका मुख्य निवासस्थान हिरात है परन्तु ये अफ़ग़ानों के साथ मिलकर वास करते हैं। येही प्राचीन ईरानी जाति के हैं। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। ये लोग कृषक हैं। किसी भी राजकार्य में ये लोग भाग नहीं लेते। शहर में ये लोग कारख़ानों में काम करते हैं क्योंकि अफ़ग़ान कारख़ानों में काम करना ये पसन्द नहीं करते।

इसके बाद हज़ारा जाति है जिनकी संख्या लगभग ½ लाख है। ये लोग मुग़ल जाति के हैं। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। हज़ाराजात में इनका निवास है। ये शिया हैं। परिश्रमी होने के कारण भारतीय सेना में भी ये भरती किये जाते हैं।

हिरात प्रदेश में जमशेदी, फ़ीरोज़कोही, तैमूरी और ताइमानी जातियाँ देख पड़ती हैं। ये चहार ऐमक कहलाते हैं। इनकी संख्या १८०००० है। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। बहुत से तैमूरी अब खुरासान में आकर बसे हैं।

उज़बक जाति की संख्या प्रायः ३ लाख है। ये लोग अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में रहते हैं। इनकी तिहाई संख्या कन्धार में है।

इज़ील बासियों की संख्या लगभग ५० हज़ार है। ये तुर्क जाति के हैं। नादिरशाह इन लोगों को १७३७ ई० में अफ़ग़ानिस्तान में लाया था। इनका वासस्थान काबुल है। ये लोग डाक्टर और लेखक होते और अमीर के दफ़्तरों में मुहर्रिरी का कार्य करते हैं। यद्यपि ये लोग शिया हैं तथापि अमीर इनको ऊँचे ऊँचे पदों पर नियत करते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में हिन्दू जाति की संख्या प्रायः ३५ सहस्र है। यद्यपि ये लोग सताये नहीं जाते तथापि इन्हें कुछ राजकर देने पड़ते हैं जो औरों को नहीं देने पड़ते।

अन्य जातियों में शफ़ी, कसीरी, लघमाती, अरब, सैय्यद, पराच और काफ़िर हैं। ये लोग काफ़िरस्तान के निवासी हैं। जलालाबाद के उत्तर में काफ़िर स्थान है।

अफ़ग़ान जाति की भाषा पश्तू है। अन-अफ़-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान फ़ारसी बोलते हैं। अफ़गानों में भी फ़ारसी का प्रचार होने लगा है। दफ़्र का काम सब फ़ारसी ही में होता है। हिन्दूकुश के उत्तर में जो लोग निवास करते हैं वे तुर्की बोलते हैं। बदख़शाँ में फ़ारसी बोली जाती है। आक्सस नदी के ऊपरी भाग में अनेक भाषायें प्रचलित हैं। लघमन और जलालाबाद के अनेक स्थानों में लघमानी भाषा में बात चीत की जाती है। ये लोग भी अन-अफ़गान हैं। काफ़िर स्थान में कई भाषायें बोली जाती हैं। अफ़गानिस्तान के दक्षिण पश्चिम में बलूची भाषा प्रचलित है।

स्वात का विजय इतिहास पश्तू भाषा का अति प्राचीन ग्रन्थ है। शेखमाली नामक एक इशुफजाई सेनापति इसका प्रणेता है। अफ़गान पुस्तकें पद्य में लिखी जाती हैं। अब्दुर्रहमान सर्वोत्तम कवि था। यह १७ वीं शताब्दी में हुआ था।

अफ़गान देखने में सुन्दर और बलिष्ठ होते हैं। दाम्भिकता इनका जातीय गुण है। बाल्य काल से ही ये लोग रक्तपान में अभ्यस्त होते हैं, मृत्यु से ये नहीं डरते, आक्रमण करने में ये बड़े ही साहसी हैं परन्तु हारने पर शीघ्र ही इनका दिल टूट जाता है। ये लोग विश्वासघातक और बदला लेनेवाले होते हैं। अपनी जान देकर भी ये लोग अपना उद्देश साधन करते हैं। दोष के लिये कठिन दण्ड पर भी ये डरते नहीं। सामान्य सी बात के लिये भी ये गुरुतर पाप कर बैठते हैं। स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दरी होती हैं। युवावस्था में ये गुलाब के फूल जैसी होती हैं। शारीरिक गठाव यहूदी स्त्रियों की भाँति होता है। परदे का नियम अत्यन्त कठिन होने पर भी इनमें व्यभिचार बहुत होता है। व्यभिचार का दण्ड फाँसी है परन्तु तब भी इसमें कमी नहीं होती। अफ़गान लोग अतिथिसेवी हैं। अतिथि और विदेशी लोगों को देशी अतिथिशाला में मुफ़ में खिलाया जाता है। ये लोग अपना जीवन देकर भी आश्रित की रक्षा करते हैं यहाँ तक कि कठिन शत्रु होने पर भी शरण आने पर उसकी रक्षा करना अपना धर्म मानते है। परन्तु तभी तक जब तक उनके मकान रहे। मकान से बाहर होने पर उसे लूट लेने में ये लोग नहीं चूकते। कुटुम्बी के घातक की जान लेने को 'किशास' कहते हैं।

अफ़गान अपने धर्म को कुछ नहीं जानते ईश्वर का अस्तित्व, पैग़म्बर, पुनरुत्थान और मृत्यु के बाद विचार के दिन (क़यामत) पर इनका विश्वास है। ये लोग मुल्लाओं की बात बहुत मानते हैं विशेषतः जब किसी को हानि पहुँचानी होती है। यह जाति बड़ी ही कुसंस्कारापन्न है। भूत, प्रेत, तावीज़, मन्त्र, वशीकरण आदि में इनका अटल विश्वास है। पीर लोगों पर इनकी अत्यंत श्रद्धा है। इनका विश्वास है कि पीर की कृपा से लोग अच्छे होते, बाँझ के लड़का होता और मृत व्यक्ति स्वर्गलाभ करता है। ये लोग यह भी मानते हैं कि मानवमात्र पापी है अतः ईश्वर तक पहुँचना अत्यंत कठिन है पीर की कृपा बिना परमेश्वर तक कोई नहीं पहुँच सकता।

अन्य मुसलमानों की भाँति ये लोग भी मुर्दे को दफ़न करते हैं। मृत्युकाल में मुल्ला आ कर तत्कालोचित कार्य करते हैं। मरने के समय ईश्वर का नाम लेकर मक्के की ओर मुँह करके मरते हैं। मर जाने पर मृत देह को धो कर एक कफ़न के अंदर रख कर गाड़ देते हैं। मुर्दे ईश्वर का नाम लेते हैं। धनाढ्य व्यक्ति क़बर के ऊपर एक पत्थर लगाते हैं।

अफ़गान लोग स्त्री मोल लेते हैं। स्वामी बिना किसी कारण के ही स्त्री को परित्याग कर सकता है। प्रबल युक्ति रहने से विवाह-बन्धन छिन्न करने के लिये स्त्री काज़ी के निकट प्रार्थना कर सकती है परन्तु प्रायः स्त्रियाँ ऐसा नहीं करतीं। स्त्री के जीवित रहते यदि स्वामी मर जाय और यदि रमणी दूसरा व्याह करे तो मृत पति के कुटुम्बी रमणी से व्याह का मूल्य फेर लेते हैं। विधवा स्त्री का व्याह साधारणतः मृत पति के भाई के साथ होता है। यदि और कोई व्याह करले तो देवर के लि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े ही अपमान का विषय है। यदि स्त्री न चाहे तो दूसरा व्याह करने का दबाव उस पर नहीं डाला जाता। यदि विधवा के पुत्रादि हों तो स्त्रियाँ अधिकतर पुनर्विवाह नहीं करती हैं। पुरुष २० वर्ष में और स्त्रियाँ १५ या १६ वर्ष में व्याह करती हैं। साधारणतः स्त्री मोल लेने को जब तक रुपया न हो या विवाहित जीवन की व्यय निर्वाह का जब तक सुबीता न हो तब तक विवाह नहीं किया जाता। धनाढ्य लोग यौवनावस्था के पहिले ही विवाह करते हैं। शहरवाले ग्रामवालों की अपेक्षा कम उमर में व्याह करते हैं। अफ़ग़ानिस्तान के पूर्वाञ्चल में १५ वर्ष के बालक के साथ १२ वर्ष की कन्या का व्याह होता है। साधारणतः अपनी जाति ही में व्याह किया जाता है परन्तु अफ़ग़ान ताजिक और ईरानी स्त्री भी ग्रहण करते हैं। शहर में पुरुषों को स्त्री देखने का अवसर नहीं मिलता अतः कुटुम्ब की स्त्रियाँ व्याह ठीक करती हैं। किन्तु व्याह में बर और कन्या की सम्मति अवश्य ली जाती है। कुटुम्बियों की सम्मति अग्राह्य है। जहाँ स्त्रियों का पुरुषों के साथ मिलने का विशेष निषेध नहीं है वहाँ प्रेम ही विवाह का कारण होता है। वह विवाह मुसलमानी धर्म के विरुद्ध न होने पर भी बहुतों को आज्ञा कठिनता से मिलती है। धनाढ्य लोगों में कोई कोई चार से भी अधिक व्याह करते हैं परन्तु उपपत्नी और ग़ुलाम रखने में उन लोगों को कोई निषेध नहीं है। वर्तमान अमीर प्रजा को ४ से अधिक स्त्रियाँ नहीं रखने देते और स्वयं भी १९०३ ई० में उन्होंने चार स्त्रियों को छोड़ शेष स्त्रियों को परित्यक्त कर दिया। एक समय में स्त्रियों को बहुपति करने का अधिकार नहीं है। अफ़ग़ानिस्तान में ग़ुलाम रखने की प्रथा अब नहीं है। पहिले प्रत्येक धनाढ्य विशेषतः हज़ारा जाति वाले ग़ुलाम रखते थे। परन्तु वर्तमान अमीर ने ग़ुलाम बेचने तथा ख़रीदने के विरुद्ध आज्ञा प्रचलित की है और उसके लिए कठिन दंड भी नियत किया है।

अफ़ग़ान लोगों को मजबूर होकर मिताहारी होना पड़ता है। प्रायः आधे साल वे लोग फलों पर ही निर्वाह करते हैं। चर्बीपूर्ण मांस के सिवाय और किसी मांस का आहार नहीं किया जाता। जो पशु हलाल नहीं किया जाता उसका मांस खाना निषिद्ध है। पशु का मुख मक्के की ओर करके ईश्वर के नामोच्चारण के साथ विशेष विशेष अंग को काटना ही हलाल करना कहा जाता है। धनाढ्य लोग पुलाव खाते हैं। चावल के साथ मांस पकाने से ही पुलाव बनता है। ग्रामवासी किसान फलों का समय बीत जाने पर 'कूट' खाकर रहते हैं। अन्न को चर्बी के साथ खाने को कूट कहते हैं।

पुरुषों के कपड़े दो रहते हैं। एक के ऊपर दूसरा पहिनते हैं। एक का नाम कमीज़ और दूसरे का नाम चोगा है। यह रुई या ऊँट के रोमों से बनाया जाता है। गरमी में इनमें अस्तर नहीं लगाया जाता। जाड़े के लिये रुई या रोवों के बने कपड़े का अस्तर दिया जाता है। नीचे का कपड़ा लांगक्लाथ का होता है। कमीज़ बहुत ही बड़ी होती है। इसके एक तरफ़ गले से कमर तक खुला रहता है। यह पाजामें तक होती है। पाजामा कमर में रस्सी से बाँधा जाता है। शिर पर सफ़ेद या नीले रंग की पगड़ी बाँधी जाती है। धनाढ्य लोग रेशम या ऊनी कपड़े पहनते हैं। जाड़े में सब लोग पोस्तीन पहिनते हैं। भेड़ के चमड़े के कोट को पोस्तीन कहते हैं। आजकल सरदार और काबुल के कर्मचारी लोगों में योरोप के बने हुए कपड़े पहिनने की वासना बढ़ती जाती है। अफ़ग़ान स्त्रियाँ बाहर जाते समय बुरका पहिनती हैं। यह सूत का बना होता है और सिर से पैर तक लटकता रहता है। केवल आँखों पर देखने के लिये दो छेद होते हैं।

गृहादि धूप में सूखी हुई ईंटों से बनते हैं। काष्ठाभाव के कारण मकानों की छतों में डाट लगाई जाती है। प्रत्येक मकान के चारों ओर दीवार खिँची होती है। सरदार और राज-कर्मचारियों के घर सुसज्जित होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकार, कुश्ती, कुत्ते के साथ दौड़, घुड़दौड़, बटेर की लड़ाई, मेढ़ों की लड़ाई, ऊँट की लड़ाई आदि इनके मुख्य आमोद के खेल हैं। पासे का रिवाज बहुत है। बूढ़े और लड़के गोली खेलते हैं।

रोगों में बुख़ार, बाई और सरदी साधारणतः होते हैं। जाड़े में फेफड़े का प्रदाह (न्यूमोनिया) ग़रीब लोगों को बहुत होता है क्योंकि शीत से बचने को ये लोग यथेष्ट वस्त्र नहीं पा सकते। जुलाई से अक्टूबर तक फलाहार के कारण पेट पीड़ा से बहुत से लोग मर जाते हैं। गरमी, गण्डमाला, पथरी, चर्म और चक्षुरोग अधिक होते हैं। चेचक भी थोड़ी बहुत होती है। बीस वर्ष के अंदर केवल ३ मृत्यु विशूचिका से हुईं। प्लेग का नाम भी नहीं है।

अनाज की दो फ़सलें होती हैं रबी और ख़रीफ़। रबी शरद में बोकर गरमी में काटी जाती है। ख़रीफ़ हेमंत में बोकर शरद में काटी जाती है। रबी में प्रधानतः गेहूँ, जौ, मसूर की दाल, और ख़रीफ़ में चावल, भुट्टा, जुनरी और कई भाँति की दालें होती हैं। अत्यंत उच्च स्थानों में फ़सल एक ही बार होती है जो हेमंत में बोई जाती और शरद में काटी जाती है। अफ़गानिस्तान में सर्वत्र ही गेहूँ प्रधान खाद्य है। अनाज के क्षेत्र दो भागों में विभक्त हैं (१) आबी (२) लामी। आबी भूमि में जल-सेचन की व्यवस्था है, लामी भूमि वर्षा के भरोसे ही रहती है। नदी से नहर काट कर सिँचाई बहुत की जाती है। कुँआ खोद कर नीचे नीचे नाली बनाते हैं इसको 'करेज़' कहते हैं। अफ़गानिस्तान के दक्षिण और पश्चिम में करेज़ बहुत प्रचलित है।

उपर्युक्त अनाजों के सिवाय योरोपीय शस्यों की खेती भी होती है, यथा मटर, सेब, गाजर, शलजम, चिटपालक, गोभी, प्याज, लटयूस, ककड़ी और विलायती बैंगन। ये सब उत्तम भूमि में उत्पन्न होते हैं। आलू की खेती थोड़ी होती है। लूसन और त्रिपर्ण घास की खेती चारे के लिये होती है। अफ़गानिस्तान के पूर्वांचल में गन्ने की खेती होती है परन्तु कम। शक्कर बाहर से जाती है।

हिरात, काबुल, कन्धार और जलालाबाद में अफ़ीम की खेती होती है परन्तु अधिक नहीं। हिरात में कपास की खेती अधिक और जलालाबाद में कम होती है। तम्बाकू अधिक उत्पन्न होता है। बदाम और रेंडी के पेड़ देश में सब स्थानों में देख पड़ते हैं। तिल और सरसों की खेती भी अधिक होती है। मदार पश्चिमांचल में बहुत होता है और भारत को बहुत भेजा जाता है।

अफ़गानिस्तान फल के लिये प्रसिद्ध है। सेब, नाशपाती, बदाम, शफ़ालू, एप्रिकट, जामुन, चेरी, अनार, अंगूर, अंजीर और तूत सभी स्थानों में होते हैं। इन सब में अंगूर प्रधान है। अंगूर ४० प्रकार के होते हैं और बहुत से खाने में बहुत ही उत्तम होते हैं। अंगूर और एप्रिकट सुखा कर भारत को भेजे जाते हैं। तूत को सुखा कर बूँक लेते हैं और उसके लड्डू बना कर ग़रीब लोग जाड़े में खाते हैं। अख़रोट और चिलगोज़ा उत्तर और पश्चिम के जंगले में होते हैं, हिरात प्रदेश, फ़ीरोज़ कोही और किला नाव स्थानों की पहाड़ी जगहों में ये फल स्वयं हो हैं। शारधा नामक एक प्रकार की फूट खाने में प्रा अंगूर की भाँति होती है।

मृत अमीर की जीवित दशा में शराब बनना प्रारम्भ हुआ था। मुसलमानी धर्म में शराब मना है परन्तु अमीर इसका प्रतिपालन न कर १९० ई० में एक आस्टियन कर्मचारी को नियुक्त कर उससे मद्य बनवाने लगे। जब अफ़गानिस्तान में अंगूर बहुत होता है तो मद्य न बनने का कोई कारण नहीं दे पड़ता।

अफ़गानिस्ताननिवासियों के घोड़े, ऊँट, गा भेड़, बकरी आदि पशु सम्पत्ति समझे जाते हैं आजकल घोड़े की रफ़्तनी अधिक है। अब्दुर्रहमा की जीवित दशा में एक आज्ञा घोड़ों को बाहर भेजने के लिये हुई थी। प्रत्येक घोड़े की रजिस्टरी थ और यदि कोई देश के बाहर जाता तो उसके लै

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने के लिये मालिक से ज़मानत ली जाती थी। याबू नामक एक जाति का घोड़ा गाड़ी खींचने के काम में आता है। ये घोड़े बहुत कम-सहिष्णु होते हैं। अमीर दोस्तमुहम्मदख़ाँ अरबी घोड़ों की संख्या बढ़ाने की सदैव चेष्टा किया करते थे। अमीर अब्दुर्रहमान ने अरब और इँगलिश घोड़ों की संख्या बढ़ाने के लिये एक पशु-शाला और एक अँगरेज़ चिकित्सक नियत किया था। पीछे यह सरदार की निगरानी में रक्खा गया। खेती और अनाज माड़ने के लिये बैल काम में आता है। दुम्बा मेढे की भाँति का होता है। एक का रंग श्वेत दूसरे का धूसर या काला होता है। हिरात और कन्धार से उनकी रफ़्नी अधिक होती है। आज कल अँगरेज़ी सौदागर ऊन अधिक ख़रीदते हैं। भेड़ का मांस ही अफ़ग़ानिस्तान में प्रधान खाद्य है। हिरात और अफ़गान-तुर्किस्तान में गर्भस्थित भेड़ के बच्चे की खाल का कारबार बहुत होता है। योरोप में इस भाँति के भेड़ के बच्चे की खाल को अस्त्राचम (Astracham) कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का ऊँट भारत के ऊँट से मोटा होता है; उत्तरांचल में ऊँट की पीठ पर दो कोहान होते हैं, इसे कूर्चा कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का ऊँट औसत में ५ मन बोझा ले जा सकता है।

अफ़ग़ानिस्तान में ५ प्रकार के कृषक होते हैं यथा (१) पृथ्वी के सत्वाधिकारी जो स्वयं खेती करते हैं (२) प्रजा सत्व या जो लोग रुपया या पैदावार से कुछ भाग देकर खेती करते हैं; (३) बजगर जो लोग छोटे छोटे किसान हैं भूमि की उपज का कुछ भाग देकर खेती करते हैं; (४) जो लोग तनख़ाह देकर खेती कराते हैं (५) दास—जो लोग अपने स्वामी की भूमि बिना वेतन पाए ही जोतते बोते हैं।

थोड़ी थोड़ी भूमि के सत्वाधिकारी लोग खेती करने में बहुधा परिवार वालों से सहायता लेते हैं, अथवा नौकरों द्वारा खेती कराते हैं। प्राचीन समय में यही रीति थी परन्तु अब कई कारणों से इसमें परिवर्तन हो गया है। अकाल अथवा अपव्यय के कारण बहुत से लोग भूमि बेच डालते हैं। घर का झगड़ा अथवा बेचने की इच्छा ही भूमि के दूसरे के पास जाने का प्रधान कारण है; सन्तानों में भूमि बँटने से थोड़ा थोड़ा भाग हिस्से में पड़ने से बहुधा लोग अपने भाई को अपना अंश यों ही या कुछ लेकर दे देते हैं। अमीर के कर्मचारी ही प्रायः भूमि ख़रीदते हैं क्योंकि उनके पास धन अधिक है। जो लोग सिँचाई की सुविधा कर सकते हैं वे ऊजड़ भूमि को ठीक बना कर उसके स्वामी हो जाते हैं। बहुत से आदमियों को अमीर से भी भूमि जागीर में मिलती है।

जो लोग भूमि पर कर देते हैं उनकी संख्या अधिक नहीं है। प्रायः वे लोग मध्यम अवस्था के होते हैं। ये लोग भूमि को बज़गर लोगों को उठा देते हैं। भूमि जोतने बोने का अधिकार २ वर्ष और अधिक से अधिक ५ वर्ष के लिये दिया जाता है। जहाँ बजगर लोग खेती करते हैं वहाँ भूमि के मालिक को बीज, बैल और हल आदि देना पड़ता है। बजगर केवल अपनी मेहनत लेते हैं। किसी किसी स्थान में बजगर कुछ व्यय भी करते हैं परन्तु कुछ स्थानों में बीज छोड़ और सब व्यय बजगर ही करते हैं। बजगर को मिलने वाले भाग में भी व्यतिक्रम देख पड़ता है; किसी किसी स्थान में पैदावार का १/१० भाग तथा किसी किसी स्थान में १/२ भाग मिलता है। बजगर मज़दूर लगा कर मेहनत कराते हैं और उनकी नियुक्ति १३ वीं मार्च से प्रारम्भ होकर ९ महीने के लिये होती है। किसी किसी स्थान में मज़दूरों को भोजन भी मिलता है और कुछ अनाज भी दिया जाता है।

शहर के मज़दूरों को भोजन और १०० दीनार दिये जाते हैं। दीनार साढ़े चार आने का होता है। शहर में गेहूँ का आटा रुपये का १६ सेर मिलता है परन्तु देहात में और भी सस्ता मिलता है।

अकरोबत कोटाल और कोहेदामन में पेंसिल बनने वाले पत्थर की खान है। हिरात के पूर्व में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोयले की खान है। शिलाजीत ग़ज़नी से १० मील उत्तर में मिलती है। तैलाक्त पत्थर बन्दी तुर्किस्तान में देख पड़ता है। तोबा अधित्यका में रसांजन की खान है। कन्धार के ३ मील उत्तर सोने की खान है। कोहिस्तान की नदी में भी स्वर्ण मिलता है। हिन्दूकुश पहाड़ की पांजशिर उपत्यका में चाँदी की खान है। शाहमकसूद पहाड़ में ताँबे की खान है। कन्धार से ६० मील उत्तर नेश नामक स्थान में ताँबे की उत्तम खान मिली है। साहकानी पास में मुशी नामक स्थान की भूमि के ऊपरी भाग में ताँबा देख पड़ता है। घोड़बंद उपत्यका के फिंजल नामक स्थान में सीसे की खान दिखाई पड़ती है। कन्धार में निकल-चाँदी भी मिलती है। हिन्दूकुश के बहुत भागों में लोहे की खानें हैं। काबुल और जलालाबाद के मध्यस्थान में चुन्नी पत्थर मिलता है। जामिनद्वार नामक स्थान के विश्लेषणकृत गन्धक पत्थर से फिटकरी तैयार होती है। हरसोट (Gypsum) बदख़शां और हिरात में मिलता है। खानाबाद में नमक की खान है। ऐसवेस्टो भी अफ़ग़ानिस्तान में होता है। लेपिस लांजूली पत्थर की खान कोचका उपत्यका में मिलती है। कोटिअश्रु में स्वेत पत्थर और वज़ीराबाद के निकट ख्वाज बगीरा नामक स्थान में हरा पत्थर मिलता है।

अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में उत्तम रेशम तैयार होता है। हिरात और कन्धार में भी रेशम बहुत तैयार होता है परन्तु वह अफ़ग़ान-तुर्किस्तान जैसा उत्तम नहीं होता। रेशम की रफ़्तनी कम है परन्तु रेशमी कपड़े की बहुत है। अफ़ग़ानिस्तान की दरी अब पहिले जैसी नहीं बनती परन्तु हिरात में दरी बहुत बनती है। यह अद्रकशा और सबज्वार दरी कहलाती हैं। सिसतान, क्वेटा और पेशावर में दरी की बिक्री बहुत होती है। हिरात प्रदेश में नमदे का काम भी होता है। अफ़ग़ानिस्तान के प्रायः प्रत्येक स्थान में भेड़ के चमड़े के पोस्तीन और कोट तैयार होते हैं परन्तु काबुल के बने कपड़े अधिक मूल्य के होते हैं। अफ़ग़ानिस्तान में ही पोस्तीन की बिक्री बहुत है। और पंजाब, बिलूचिस्तान तथा सिंध में भी इसकी बिक्री होती है। हिरात में हज़ारा जाति के लोग काकमा, बरक, एवं कुर्क तैयार करते हैं। काकमा ऊँट के कोमल ऊन से बनता है, इसका मूल्य भी बहुत होता है। बरक और कुर्क पेड़ और पहाड़ी बकरी के लोम से बनता है। कुर्क बरक से क़ीमती होता है। कन्धार में माला तैयार होती है जिनके दाम १ से १०० रुपये तक होते हैं। यह माला मक्के में बिकने को भेजी जाती हैं।

आज कल अग्न्यास्त्र तैयार करने को योरोपीय ढँग में योरोपीय कर्मचारियों की देख रेख में एक कार्यालय खोला गया है।

अफ़ग़ानिस्तान में भारत का व्यवसाय १९०४ ई० में १८० लाख रुपये का हुआ, जिसमें ८५ लाख की वस्तु भारत से गई। भारत से कपड़ा, चाय नील, शक्कर, और चमड़ा अफ़ग़ानिस्तान में जाता है। उधर से घी, रेशम, ऊन, पोस्तीन, चमड़ा और दरी भारत में आती हैं। पोयंदा नामक एक जाति ऊँट के द्वारा वाणिज्य की वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान को लेजाती है। पोयंदा कोई भिन्न जाति नहीं है, ऊँट से व्यवसाय करने वालों ही को यह नाम दिया जाता है।

वाणिज्य के लिये अफ़ग़ानिस्तान के नीचे लिखे मार्ग हैं:—(१) भारत से काबुल को ख़ैबर और जलालाबाद होकर। (२) ग़ज़नी और कन्धार को गोमल पास से। (३) क्वेटा से कन्धार। (४) बदख़शां से चित्राल होकर वाजूर और जलालाबाद। (५) बुख़ारा से आक्सस नदी के द्वारा काबुल। (६) बुख़ारा से मर्व होकर हिरात। (७) ईरान से मशहद होकर हिरात, कन्धार और काबुल जाने का मार्ग। उपर्युक्त मार्गों में ख़ैबर और क्वेटे का मार्ग उत्तम है। वाणिज्य वस्तु गाड़ी द्वारा नहीं ले जाते। यह काम ऊँटों द्वारा होता है। लकड़ी को नदी से बहा लाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८७० ई० में अमीर शेरअलीख़ाँ ने टिकट-लगाने की प्रथा प्रचलित की थी। दो बरस तक टिकट का व्यवहार नहीं होता था परन्तु पैसे ले लिये जाते थे। १८७२ ई० में टिकटें छपीं। इसका दाम १ शाही (=१ आना), १ अबासी (=$\frac{1}{3}$ काबुली रुपया), २ अबासी तथा १ काबुली रुपया था। डाक से छोटे छोटे पार्सल भेजे जाते हैं। बड़े बड़े शहरों में चिट्ठियां बाँटी जाती हैं परन्तु अमीर के कर्मचारी जहाँ हों वहाँ उनको चिट्ठी पहुँच जाती है। सप्ताह में दो बार डाक बँटती है। अफ़ग़ानिस्तान में तार नहीं है परन्तु बाग़ बगीचों से अमीर के महलों तक टेलीफ़ोन हैं।

१८७२ में अफ़ग़ान-तुर्किस्तान अकाल और विशूचिका में पीड़ित हुआ परन्तु कठिन अकाल यहाँ कभी नहीं हुआ। दुर्भिक्ष-समय में तुर्किस्तान में से नाज आदि लाकर दुर्भिक्ष मिटाया गया।

राजकार्यों में यह देश पूर्णरूप में स्वतंत्र है परन्तु देश से बाहिरी सम्बन्ध भारत सरकार पर अवलम्बित है। इस विषय में अमीर को कोई स्वतंत्रता नहीं। पहिले सिंहासनप्राप्ति रक्तपात के बिना नहीं होती थी। केवल अमीर हबीबुल्लाख़ाँ का सिंहासनारोहण ही शांति से हुआ। राजपरिवार के लोग काबुल के बाहर शासन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति ही प्रधान शासक है अतः शासन-प्रणाली में भी विशेष अंतर है। अमीर अब्दुर्रहमान के समय से शक्ति केन्द्रीभूत होने पर शासनकर्ता लोगों की शक्ति घट गई और छोटे छोटे शासनकर्ताओं के नियुक्त होने से काबुल के साथ अमीर का सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ। जो सरदार शत्रु समझ पड़ते थे उन्हें फाँसी न देकर देशनिकाले का दंड दिया गया। केवल अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में उसका पुत्र सरदार गुलाम अलीजान नाम मात्र का शासन करता था। इसके सिवाय और सब कर्मचारियों के अमीर द्वारा नियुक्त होने से राजशासन में किसी भाँति विघ्न नहीं उपस्थित हुआ।

शक्ति केन्द्रीभूत करने के विचार से काबुल में बहुत से दफ़्तर स्थापित हुए। कार्य चलाने के लिये पृथक् पृथक् दफ़्तरों में अमीर के भाई नियुक्त हुए। ये लोग भी अमीर के अधीन हैं। छोटे छोटे कार्य में भी अमीर की अनुमति लेना आवश्यक होता है।

राजकार्य चलाने के लिये अफ़ग़ानिस्तान ६ प्रदेशों में विभक्त है (१) अफ़ग़ान-तुर्किस्तान, (२) बदख़शाँ (३) हिरात (४) कन्धार (५) फ़र्रा (६) काबुल। अमीर स्वयं काबुल का शासन करते थे परन्तु अब वह नायबउल-हुकम अर्थात् शासनकर्ता के अधीन रक्खा गया है। प्रत्येक प्रदेश ज़िलों में बँटा है।

काबुल के दरबार में अमीर स्वयं राज्यकार्यादि देखते हैं। इसमें विचार विभागों की अपील होती है। प्रत्येक प्रदेश और ज़िले के शासनकर्ताओं को दीवानी तथा फ़ौजदारी के अधिकार प्राप्त हैं। इन लोगों की अदालत मुहकमाई-हाकिम कहलाती है। इनके नीचे काजी की अदालत है जो मुहकमाई-सरह नाम से ख्यात है। प्रत्येक काजी का एक २ सहकारी है जिसे मुफ़्ती कहते हैं। जिस विषय पर काजी और मुफ़्ती का मतभेद होता है वह काबुल के खती-मुल्ला के निकट मीमांसा को भेजा जाता है। अदालत के नियम आदि अब्दुर्रहमान ने बनाये थे और वर्तमान अमीर भी उसी के अनुयायी हैं। उच्च अदालत की आईन पुस्तक चाई-हुकूमती नाम से ख्यात है। काजी और मुफ़्ती लोगों की आईन पुस्तक का नाम असास-उल-हुज्जत है। यह मुसलमान आईन (शर) के आधार पर लिखी गई है। साधारणतः मुसलमान आईन से शासित विषय मात्रही हाकिम लोग काजी की अदालत में भेजते हैं। विद्रोह, राजकोश की चोरी, जाल, राजकर्मचारियों का घूस लेना, राजा या राजपरिवार के विरुद्ध नालिश आदि की मीमांसा अमीर स्वयं करते हैं। ये सब विषय आईन पुस्तक में लिखे न रहने पर भी अमीर अपनी राय के मुताबिक काम करते हैं और अभियोग प्रमाणित होने पर दोषी को प्राणदंड होता है। क़ाबुल के बाहर व्यभिचार, चोरी आदि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभियोग हाकिम काज़ीं शरह आईन के अनुसार निपटाते हैं। केवल काबुल में इसकी मीमांसा अमीर स्वयं करते हैं। चोरी पेशावालों के लिये आईन बड़ा ही कठोर है। हाथ पाँव काटने से मृत्युदंड तक दिया जाता है। हाकिम या काजी अपराध शरह आईन के अनुकूल होने से मृत्यु दंड तक की आज्ञा दे सकते हैं परन्तु अमीर की आज्ञा की आवश्यकता तब भी होती है। वाणिज्यादि विषयक विवाद शरह आईन के अन्तर्गत नहीं है हाकिम इन विषयों में पञ्चायत से फ़ैसला कराते हैं। आज कल काबुल में निम्न लिखित अदालतें हैं।

नायब-उल-सुलतानस, समुईन-उल-सुलतानस, सरियत और कोतवाली। हाकिम लोगों के फ़ैसले की अपील अमीर के पास होती है। दीवानी के मुक़द्दमों के लिये अब टिकटदार स्टाम्पों का चलन हुआ है। इसमें निवेदन लिखकर अमीर के पास भेजना होता है।

अफ़ग़ान राज्य की आय जिन मदों से होती है वे ये हैं—कर, आमदनी तथा रफ़्नी पर टैक्स, फल के बग़ीचों पर टैक्स, चराई का टैक्स (अर्थात् ४० पशुओं में से १ पशु पर टैक्स लगता है, जिसे छहालोअक या जकत कहते हैं), टिकट बिक्री, सरकारी बाज़ारों का एकाधिपत्य, जज़िया (यह टैक्स जो लोग मुसलमान नहीं हैं उन पर लगता है) एवं भारत सरकार से दिये जाने वाले १८ लाख रुपये। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक शासनकर्ता अमीर को सालाना भेंट भेजते हैं। उससे भी बहुत आय होती है। पचास साल में अफ़ग़ानिस्तान की आय चौगुनी हो गई। १८५६ ई० में अफ़ग़ानिस्तान की आय ३० लाख वार्षिक थी, दूसरे साल दोस्त मुहम्मद ने पेशावर दरबार में ३५ लाख कही थी। १८६९ में शेरअली के समय आय अँगरेज़ी रुपये में ७० लाख थी। १५ साल बाद वह काबुली रुपये में १ करोड़ रुपये हो गई। १८८५ ई० में अब्दुर्रहमान ने अफ़ग़ानिस्तान की आय अँगरेज़ी रुपये से १ करोड़ निश्चित की थी। व्यय आय के भीतर ही होता है और बचा हुआ धन काबुल में भेजा जाता है। लोगों का विश्वास है कि काबुल में संचित धन का एक बड़ा कोश है।

भूमिकर वार्षिक उपज पर लिया जाता है। सींचने की सुविधा और असुविधा देखकर कर लगाया जाता है। जिस भूमि में सिंचाई की व्यवस्था है उसमें उपज का तिहाई कर में लिया जाता है। जो झरनों से सींची जाती है उसकी उपज का $\frac{1}{10}$ भाग कर में जाता है। जो भूमि कारेज प्रणाली से सींची जाती है उसका कर उपज का $\frac{1}{10}$ भाग लिया जाता है परन्तु करेज यदि सरकारी हो तो उसका कर अधिक होता है। जो भूमि वृष्टि जल के भरोसे ही रहती है उस पर कर $\frac{1}{10}$ भाग है। फल और शाक भाजी के बग़ीचों पर प्रति ६० वर्ग गज़ पर ७॥) से ९) तक कर लगता है। यदि और अधिक कर न देना पड़ा तो कृषक की दशा अच्छी रहती है परन्तु क्षुधार्त सेना और धनिकों के नौकर प्रायः खेतों से अनाज ले जाते हैं। शहर के लोगों को इस विषय में अधिक डर नहीं है तथापि प्रजा कर-भार से पीड़ित है। वर्तमान अमीर ने इस कर-भार को कम कर दिया है।

अमीर अब्दुर्रहमान ने कुछ स्वर्ण-मुद्रा भी बनवाये थे परन्तु उनका प्रचार अधिक नहीं हुआ। १८९० ई० में काबुल में एक टकसाल स्थापित हुई। निम्नलिखित मुद्रा देश में प्रचलित हैं:—पाँच पाई=१ शाही (ताम्र मुद्रा); २ शाही=सन्नार (रौप्यमुद्रा); २ सन्नार=१ अबासी अथवा तेगा; ३ सन्नार=१ अन; २ अन=१ रुपया; १५ रुपये=१ काबुली तिला।

अमीर अब्दुर्रहमान ने ५ काबुली रुपयों का १ बड़ा मुद्रा बनवाया था परन्तु उसका चलन न हुआ। भारतीय रुपये के हिसाब से काबुली रुपये का मूल्य १३॥ से ८ आने तक कम है। जिसमें दाम और कम न हो इस विषय का अमीर विशेष ध्यान रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण तौल इस भाँति है:—काबुल में—१६ खर्द=१ चारक; ४ चारक=१ सेर (७ सेर) भारतीय १३॥ छटाँक के बराबर है); ८ सेर=१ मन; १० मन=१ खरवार (१५ मन=२७॥ भारतीय सेर अँगरेज़ी तौल)।

कन्धार में—२ मिसकल=१ सेर (४⅛ तोला भारतीय तौल); ४० सेर=१ मन (४ सेर २५ तोला भारतीय); १०० मन=१ खरवार (१० मन ३१ सेर ८ तोला भारतीय)।

हिरात प्रदेश की तौल कन्धार की ही भाँति है। अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में काबुल की तौल प्रचलित है। और स्थानों में मज़ारीशरीफ़ की तौल प्रचलित है:—

१ मज़ार सेर=१$\frac{3}{4}$ काबुली सेर (१४ अँगरेज़ी भारतीय सेर); १६ सेर=१ मज़ार मन (५ मन २४ सेर अँगरेज़ी); ३ मन=१ मज़ार खरवार (१६ मन ३२ सेर अँगरेज़ी)।

कन्धार में नाप के लिये गज़ प्रचलित है। गज़ दो प्रकार के होते हैं (१) गज़ी शाही, (२) गज़ी रिआयती। नापने में पहिले का ही व्यवहार होता है। दूसरा मकान और भूमि आदि नापने के काम में आता है। एक जरीब ६०×६० गज़ी रिआयती के बराबर है। हिरात में भूमि जरीब से नापी जाती है। जरीब=६०×६० गज़; और १ गज़=लगभग १ अँगरेज़ी गज़ के है। बड़े बड़े भूमिखंड नापने में जोज़ का व्यवहार होता है। इसका भी व्यतिक्रम गज़ की ही भाँति है। कहीं कहीं अस्सी जरीब का और कहीं कहीं सौ या उससे भी अधिक का होता है। अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में लम्बाई की नाप यह है—१६ तसू (१$\frac{3}{4}$ इंच)=१ क़दम (२८ इंच); १२००० क़दम=१ शंग अथवा फ़रसक (५ माईल ५३३$\frac{1}{3}$ गज़)। लम्बाई नापने का एक और पैमाना कुलाच है। यह ६ फ़ीट का होता है।

अफ़ग़ान लोग भारतीय सेनादल में प्रविष्ट होते हैं। ये लोग अफ़ग़ानिस्तान से भरती नहीं किये जाते परन्तु जो लोग अँगरेज़ी राज्य में आकर नौकरी करते हैं वेही लिये जाते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान की पुलिस शहर के कोतवाल के अधीन है। जेलख़ाने भी कोतवाल के अधीन रहते हैं। क़ैदियों को लम्बी सज़ा नहीं दी जाती। जो क़ैदी सरकार से भोजन पाते हैं उन्हें काम करना पड़ता है। जो लोग अपने घर से खाते हैं वे केवल नज़रबन्द रक्खे जाते हैं।

लोगों की शिक्षा पुरानी भाँति की है। मुल्ला लोग स्वयं कुसंस्कारापन्न और अबोध होने पर भी जन साधारण के शिक्षक हैं। भारत में जैसे शिक्षा के समय बालक इकट्ठे होकर शरीर का ऊपरी भाग हिला कर स्वर के साथ चिल्ला कर पढ़ते हैं अफ़ग़ानिस्तान में भी वैसा ही है। सब से पहिले क़ुरान पढ़ाया जाता है। पढ़ना लिखना जान लेने और क़ुरान पाठ कर सकने पर ही शिक्षा समाप्त हो जाती है। जो मुल्ला अधिक शिक्षित हैं वे थोड़ा सा गणित भी जानते हैं। उत्तम स्कूल या कालेज देश में नहीं हैं जिसमें देश के बालकों को शिक्षा प्राप्त हो, इसलिये अमीर ने अनिवार्य शिक्षा का प्रचार किया है। अमीर ने भारत से शिक्षक लेजाकर काबुल में मदरसा (College) स्थापित किया है।

चिकित्साव्यवसायी पुरुषों को अफ़ग़ानिस्तान में हकीम कहते हैं। वे लोग निदान, शवच्छेद अथवा अस्त्रचिकित्सा आदि कुछ नहीं जानते। डाक्टर मिस हैमिल्टन नामक एक योरोपियन महिला अमीर की सेवा में थीं। वर्त्तमान अमीर १ लेडी डाक्टर और कुछ भारतीय सब-असिस्टेंट सरजनों को नौकर रखते हैं।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गवासी बाबू देवकीनन्दन खत्री।



नके उपन्यासों की बदौलत आज हिन्दी-पुस्तकालयों में छोटे छोटे लड़के उपन्यासों की खोज में हैरान दिखाई पड़ते हैं, कचहरी के मुंशी लोग "चन्द्रकान्ता की क़िस्म की कोई किताब" मित्रों से माँगते फिरते हैं, बहुत से नवयुवक लेखकों और सम्पादकों की कोटि में घुसना चाहते हैं और घुसे हैं उन्हीं बाबू देवकीनन्दन खत्री का शरीरान्त १ अगस्त १९१३ को काशी में हो गया। हिन्दी-पठित समाज में उनका शोक जैसा चाहिए वैसा मनाया गया। नागरीप्रचारिणी सभा के हाल में उनका शोक मनाने के लिए पं० बालकृष्ण भट्ट के सभापतित्व में काशी-निवासी सज्जनों की एक बड़ी सभा हुई जिसमें कुछ कविताएं पढ़ी गईं और बाबू साहब के गुणों का दुःख के साथ स्मरण किया गया। सभापति महाशय ने अपने अनुभव-पूर्ण व्याख्यान में यह अच्छी तरह दिखलाया कि अपनी अनोखी प्रतिभा के बल से बाबू साहब ने हिन्दी के लिए क्या किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी पुस्तकों ने हिन्दी-पाठकों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी की। आरम्भ-काल में नागरीप्रचारिणी सभा का कार्य्य भी उन्होंने कुछ सँभाला था। सभा में सब लोगों की ओर से पंचत्व-प्राप्त बाबू साहब के लिए अत्यंत शोक और उनके दुखी परिवार के साथ गहरी सहानुभूति प्रकट की गई।

—:o:—

परलोकवासी राजा साहब भिनगा।



धर के पुराने राज-वंशों में ऐसे बहुत कम श्रीमान् निकलेंगे जिनमें शिक्षित-समाज के उद्योगों में योग देने की प्रवृत्ति वा क्षमता हो। अधिकांश तो अशिक्षा के कारण इन उद्योगों से परिचित ही नहीं। वे नहीं समझते कि देश की उन्नति से उनका भी कोई सम्बन्ध है। पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि इन राजाओं में से कोई इन उद्योगों की ओर ध्यान दें तो बहुत शीघ्र सफलता हो सकती है। सार्वजनिक अनुष्ठानों में द्रव्य की सहायता तो साहु, महाजनों तथा और और साधारण लोगों से भी मिल सकती है पर ऐसे राजाओं की आर्थिक सहायता के साथ ही लाखों मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है जो इनके उच्च पद के कारण उनसे लगाव, वा वंश-प्रतिष्ठा के कारण इन पर श्रद्धा रखते हैं।

राजा साहब भिनगा कैसे सुशिक्षा-सम्पन्न और विद्योत्साही थे यह बात देश में छिपी नहीं है। काशी का चम्पारन? हाई स्कूल उनके देश-कल्याणकारी दान की घोषणा कर रहा है। इस सभा का ग्रन्थ-प्रकाशन-विभाग कभी उनके द्रव्य से ख़ाली न रहा। बराबर उनकी सहायता से किसी न किसी उपयोगी पुस्तक में हाथ लगा रहा और अब तक लगा है। उनकी सहायता से सभा ने ये ये पुस्तकें लिखवाईं और लिखवा रही है—

(१) परिचर्य्या-प्रणाली
(२) वनिता-विनोद
(३) यूरोपीय दर्शन
(४) प्रबोध-चन्द्रिका
(५) राज्यप्रबन्ध-शिक्षा
(६) पूर्वीय दर्शन का इतिहास (छप रहा है)
(७) अमिताभ (Light of Asia का पद्यानुवाद—छप रहा है)
(८) अध्यात्मविद्या (Deussen's Metaphysics का अनुवाद—छप रहा है)

ऐसे सहायक श्रीमान् के परलोकवास से सभा को जो वेदना हुई वह सभा ही जानती है। जुलाई में एक बड़ी भारी शोक-सभा हुई जिसके सभापति रेवरेंड ई० ग्रीव्ज़ थे। पं० रमाशंकर मिश्र एम० ए० (रिटा० कलक्टर), आनरेब्ल बा० मोतीचंद तथा और बहुत से प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। ग्रीव्ज़ साहब ने परलोकवासी राजा साहब के अनेक गुणों की प्रशंसा की। इसके उपरान्त पं० केशवदेव शास्त्री ने राजा साहब के विषय में अपने अनुभव बड़े विस्तार के साथ बतलाए। उन्होंने और बहुत सी बातों के साथ यह भी कहा—"जो कार्य्य राजा साहब के चित्त में अच्छा जँच जाता था उसमें सहायता करने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहते थे, पर जिस कार्य्य को वे उपयोगी नहीं समझते थे लाख कहने पर भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे। विद्याप्रचार आदि के उद्देश्य से राजा साहब गुप्त रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दान करते थे। प्रायः ऐसा हुआ है कि कोई विद्वान् या उद्योगी उनके पास गया है और उन्होंने चलते समय उसकी जेब में १००)—२०) का नोट डाल दिया है।" सर्व सम्मति से सभा ने यशस्वी राजा साहब के परलोकवास पर अत्यन्त शोक और उनके परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

राजा साहब को अशिक्षितों और स्वार्थ-साधकों से बड़ी घृणा थी। वे इधर बहुत दिनों से एक प्रकार से एकान्त-वास करते थे। जन साधारण से, विशेष कर काशी के पंडितों से, मिलना जुलना पसन्द नहीं करते थे। इसी से पुराने ढर्रे के लोगों को उनसे सहानुभूति कम रहती थी। वे चुने चुने शिक्षितों से ही मिलते जुलते थे और उन्हीं के उद्योगों में सहायक होते थे।

—:०:—

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के बीसवें वार्षिक अधिवेशन में

सभापति का भाषण।



शी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवाँ वार्षिक अधिवेशन सोमवार ता० ४ अगस्त को हुआ था। इसका कार्य-विवरण अन्यत्र प्रकाशित है। सभापति पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० इस अवसर पर उपस्थित न हो सके। परंतु उन्होंने सभा के गत २० वर्षों के कार्य पर अपना भाषण लिख भेजा था जो उस दिन सभा में पढ़ा गया और अब यहाँ प्रकाशित किया जाता है।—

माननीय महाशयो!

यह बड़े आनन्द का विषय है कि आज हम लोग काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवाँ जन्मोत्सव मनाने को एकत्रित हुए हैं। सभा ने अभी थोड़े ही दिन हुए एक मंतव्य पास किया है कि उसका गत वर्ष का सभापति वार्षिक अधिवेशन के समय आप लोगों की सेवा में कुछ अवश्य कहे। इसी मंतव्य के आधार पर मैं आप महाशयों का कुछ अमूल्य समय लेने का साहस करता हूँ। ऐसे अवसर पर ऐसा होना किसी कृतविद्य और प्रसिद्ध हिन्दी-तत्त्वज्ञ का काम था और यदि ईश्वर की कृपा से इस दिन गोलोक-वासी पंडितवर मोहनलाल विष्णुलालजी पंड्या वर्तमान होते तो शायद आप लोग उनका महत्त्व-पूर्ण व्याख्यान सुन कर प्रसन्न होते। क्योंकि गत वार्षिक अधिवेशन में उन्हीं महानुभावजी का चुनाव सभापति के उच्च पद के लिए हुआ था। पर काल की कराल गति से थोड़े ही दिनों पीछे उनका वैकुंठवास हो गया और सभा के शेष अधिकारियों ने मुझ ऐसे अनभिज्ञ को उक्त पद ग्रहण करने पर बाधित किया। मैं अपनी अयोग्यता को भली भांति जानता था, और वह उक्त अधिकारियों पर भी अवश्य ही विदित थी क्योंकि इसी कारण उन्होंने मुझे आग्रहपूर्वक लिख भेजा कि तुम्हारी इस मामले में एक भी न सुनी जायगी और तुम्हें विवश यह पद स्वीकार ही करना पड़ेगा। अतः मुझे वह आज्ञा शिरोधार्य ही करनी पड़ी। अब आप महाशयों से यही प्रार्थना है कि मेरी भूलों और त्रुटियों को बिसार कर जो दो चार बातें मैं आप लोगों के सम्मुख निवेदन करता हूँ उन्हें सुन लेने की कृपा करें।

इस सभा का जन्म सन् १८९३ के जनवरी अथवा फ़रवरी मास में "कालेज के कतिपय उत्साही विद्यार्थियों" द्वारा हुआ था। "कालेज" से तात्पर्य क्वींस कालेज, बनारस से है क्योंकि सेंट्रल हिन्दूकालेज का उस समय जन्म तक न हुआ था। उन "उत्साही विद्यार्थियों" में से केवल तीन महाशय ऐसे हैं कि जो आज दिन तक सभा के सभासद बने हुए हैं और उसकी यथासाध्य सेवा करते जाते हैं। अवश्य ही आप लोगों को उनके शुभ नाम जानने की उत्कंठा होगी, अतः सुनिए। उनमें सबसे पहिले सभा के स्तम्भस्वरूप मान्यवर बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० हैं जो सदा ही इस सभा के मानो प्राण बने रहे हैं। इन्होंने सभा का जितना उपकार किया है उतना किसी से अब तक नहीं हो सका है, ऐसा कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होता। सभा ही क्यों वरन मुख्यांश में उसके द्वारा बाबू साहब ने जो सेवा हिन्दी-भाषा एवं नागराक्षरों की कर दिखाई है उतनी शायद भारतेन्दु जी के पीछे दो एक महानुभावों को छोड़ और किसी से भी न बन पड़ी होगी। इन्हीं "उत्साही विद्यार्थियों" में से दूसरे पं० रामनारायणजी मिश्र बी० ए० हैं जो सभा का सदा से बराबर उपकार और उसकी सेवा करते आए हैं और अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक कर रहे हैं। तीसरे महाशय का नाम बा० शिवकुमारसिंह है और इनकी हिन्दी-सेवा और इनका उत्साह परम प्रशंसनीय है। इस त्रिमूर्ति का हिन्दी और उसके रसिकों पर भारी ऋण है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि इनके नाम हिन्दी के इतिहास में चिर काल तक अचल रहेंगे। ईश्वर इन्हें चिरायु और सुयशी करे!

यद्यपि सभा का वास्तविक जन्म सन् १८९३ के प्रारम्भ में ही हो चुका था तथापि इसके नियमादि बनने और नियत रूप में हो जाने के कारण इसका जन्म-दिन १६ जुलाई १८९३ माना गया है। कुछ दिनों तक यह इधर से उधर मँगनी के मकानों में होती रही। इसका पहिला अधिवेशन नार्मल स्कूल बनारस में हुआ था। फिर किराए के मकानों में कुछ काल गुज़र किया गया और अंत को १९०१–०२ में जब कि भाग्यवश में भी काशी में ही प्रायः डेढ़ साल तक रहा था, सभा के स्थायी कोष के लिए चन्दा होने लगा और प्रायः तभी से सभा के इस विशाल भवन के बनने का सूत्रपात हुआ कि जिसे आप लोग इस समय सुशोभित कर रहे हैं। तारीख़ १८ फ़रवरी १९०४ को इसे हमारे भूतपूर्व छोटे लाट सर जेम्स ला टूश महोदय ने बड़े समारोह के साथ खोला था और तब से इसमें कई प्रतिभाशाली महानुभाव पदार्पण कर चुके हैं जैसे कि सर जान हिवेट, श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, सर कृष्ण गोविन्द गुप्त इत्यादि इत्यादि। इस सभा के संरक्षकों में श्रीमान् महाराजा साहब सिंधिया (ग्वालियर), श्रीमान् महाराजा साहब रीवाँ, श्रीमान् महाराजा गैकवाड़ बहादुर (बरोदा), और श्रीमान् महाराजा साहब बीकानेर हैं तथा हाल में निश्चय किया गया है कि तीन हिन्दी के अन्य प्रेमी महाराज इसके संरक्षकों में सम्मिलित किए जाँय अर्थात् श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, अलवर, व बनारस। इन बातों से सभा का महत्त्व प्रगट होता है क्योंकि साधारण सभा सोसाइटियों में न तो ऐसे भव्य पुरुष ही पदार्पण कर सकते हैं और न ऐसे भारी नृपतिगण उनके संरक्षक होना स्वीकार करेंगे।

अब सभा को स्थापित हुए बीस वर्ष पूरे हो चुके हैं अतः उचित प्रतीत होता है कि उसके इतने दिनों के संक्षिप्त हाल का आप महाशयों को थोड़े ही में दिग्दर्शन कराने का कुछ प्रयत्न किया जाय। जैसे बीस वर्ष का लड़का युवा पुरुष कहलाने का अधिकारी हो जाता है उसी प्रकार जो स[भा] इतने दिनों सफलतापूर्वक अपना काम चला कर आगे को और भी अधिक उत्साह के साथ बढ़ रही हो उसे अवश्यही आ[प] लोग समुचित प्रोत्साहन और सहायता देंगे कि जिसमें अ[प]नी मातृभाषा की सेवा जैसे पवित्र कर्तव्य के पालन का[र्य] में विशेष कृतकार्यता हो सके।

१—इस सभा के सभासदों की संख्या निरंतर बढ़ती ही आई है और इस बीस वर्ष के बृहद् समय में ऐसा ए[क] साल भी न हुआ कि पहिले की अपेक्षा उक्त संख्या में न्यूनत[ा] हुई हो। केवल यही नहीं बरन सभासदों की गणना प्रत्येक वर्ष बढ़ती ही गई है। प्रथम वर्ष उनकी संख्या ८२ थी और फिर क्रम से प्रति वर्ष १४५, १४७, २०१, २२२, २४[७], २७०, २९२, ३९१, ४५८, ५७६, ६६२, ६७७, ६८[१], ७०४, ७४२, ७९६, ९९०, १३२२, और १३४१ रही है। इससे स्पष्ट है कि हर साल कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य हु[ई] और किसी किसी वर्ष में तो बड़ी ही संतोषजनक बढ़[ती] हुई है जैसे नवें, ग्यारहवें, १८ वें और विशेष करके [१९] वें साल, अर्थात् सन् १९०१–०२, १९०३–०४, १९१[०]–११, और १९११–१२ में। कुल मिला कर २० वर्ष में [८२] से १३४१ सभासद हो जाना सभा के लिए अभिमान [और] गौरव की बात है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ महा[शय] केवल चन्दा न देने के कारण समय समय पर इस्तीफ़े [दिया] करते हैं पर समझने की बात है कि बिना आय के [सभा] अपने उद्देश्यों का पालन कैसे कर सकती है? ऐसी द[शा में] उसके कर्मचारियों को चन्दा के लिए तक़ाज़ा अवश्यही कर[ना] पड़ेगा और यदि इसीसे चिढ़ कर कोई इस्तीफ़ा देने दौड़े [तो] यही कहना पड़ेगा कि ऐसे महाशयों से सभा का जित[ना] जल्द पिंड छूट जाय उतनाही अच्छा। कभी कभी कोई महाशय मतभेद अथवा अन्य कारणों से भी ऐसा कर[ते हैं] पर इसमें भी सभा विवश है क्योंकि उसकी सारी कार[्रवाई] अधिक सम्मति पर ही चलती और चल सकती है। आप सभा में न तो कभी आने का कष्ट उठावें और [न] वार्षिक अधिवेशन तक के लिए किसी मित्र के नाम अ[पना] प्रतिनिधि पत्र ही भेज कर उसके द्वारा सभा पर अपनी स[म्मति] प्रगट करने की कृपा करें और फिर भी अपनी इच्छा[के] प्रतिकूल सभा के किसी सर्वसम्मति अथवा अधिक स[म्मति]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा निर्धारित कार्य से रुष्ट होकर इस्तीफ़ा देने दौड़ें तो इसमें सभा या किसी व्यक्ति विशेष का क्या दोष है? यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं यही कहने का साहस करूँगा कि इसमें आपही के निरुत्साह और अनुचित क्रोध का दोष होगा। कुछ महाशय ऐसे अहंकारी और क्रोधी होते हैं कि यदि वे एक ओर हों और सारी दुनिया दूसरी ओर हो तो भी डेढ़ अक़्ल वाली कहावत के अनुसार उन्हीं की बात अवश्य ही ठीक मानी जानी चाहिए नहीं तो वे बिना बिगड़े न रहेंगे। निदान ऐसी दशाओं में सभा कुछ भी नहीं कर सकती। वह तो यही चाहती है कि उसके सदस्यों की सभी बातें चलें पर अधिक सम्मति पर चलना उसे अनिवार्य है। आनन्द का विषय है कि सब प्रकार के इस्तीफ़ों और काल गति से अनेक सभासदों के न रहने पर भी उनकी संख्या बराबर बढ़ती ही चली जाती है और आशा है कि दिन दिन उसकी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी। परन्तु इन सब बातों पर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दी जाननेवालों की संख्या हज़ारों लाखों पर नहीं बरन करोड़ों पर है और उस हिसाब से हिन्दी की इस मुख्य सभा के सदस्यों की संख्या क्या दस बीस हज़ार भी न होनी चाहिए? यदि प्रत्येक सभासद यह प्रतिज्ञा करले कि जैसे बनेगा हम सभा के लिए दश नए सदस्य ढूँढ़ निकालेंगे तो सालही दो साल के भीतर उनकी संख्या वास्तव में बहुत अच्छी हो सकती है और वैसी दिशा में सभा भी वे काम करके दिखला सकती है कि जिनसे हिन्दी का आसन सचमुच ऊँचा हो जाय।

२—सभा के आय-व्यय का हिसाब देखने से वैसा संतोष नहीं होता जैसा कि उसके सभासदों के ब्योरे से। प्रथम दो वर्षों का हिसाब रिपोर्टों में नहीं लिखा है और न यह बात ...से महत्त्व की है कि उसकी जाँच परताल इस समय की ही ...ाय पर इतना विदित है कि दूसरे वर्ष के अंत में प्रायः ...६४) की बचत रही थी। उसके पीछे क्रम से प्रति वर्ष के आय-व्यय का ब्योरा यों है—

सन्		आय		व्यय
१८९५—९६	आय प्रायः	६८२)	व व्यय प्रायः	६८३)
१८९६—९७	,,	२७५)	,,	४३३)
१८९७—९८	,,	८९५)	,,	५९८)
१८९८—९९	,,	६५२)	,,	६९२)
१८९९—१९००	,,	१६२९)	,,	१२७३)
१९००—०१	,,	२५३२)	,,	२१३९)
१९०१—०२	,,	११२६२) ×	,,	३७३९)
१९०२—०३	,,	७४४०) ×	,,	१३५०५) ×
१९०३—०४	,,	११९७०) ×	,,	१३८२८) ×
१९०४—०५	,,	१०८०६) ×	,,	१२९४८) ×
१९०५—०६	,,	७८११)	,,	८१४५)
१९०६—०७	,,	७८२४)	,,	८६५६)
१९०७—०८	,,	७०८१)	,,	७२२६)
१९०८—०९	,,	१४७६९) ×	,,	९९०६)
१९०९—१०	,,	१०४३५)	,,	९७६६)
१९१०—११	,,	९८१५)	,,	९४८५)
१९११—१२	,,	९७२२)	,,	९९२०)
१९१२—१३	,,	१६४६२) ×	,,	१५९५७) ×

इस ब्योरे से विदित होगा कि सन् १९०१—०२ से सभा की आय में अच्छी उन्नति होने लगी और जिन वर्षों में विशेष आय हुई अथवा अधिक व्यय हुआ उन अंकों के सामने गुण का चिह्न (×) लगा दिया गया है। पहिले तो स्थायी कोष स्थापित होने के कारण आय में तथा सभा-भवन के बनने से व्यय में विशेषता हुई और १९०८—०९ से हिन्दी-कोश (शब्दसागर) के सम्बंध में विशेष चन्दा एवं व्यय होना प्रारम्भ हुआ। हर्ष का विषय है कि भवन कई वर्ष हुए पूरा हो गया और शब्दसागर का काम उत्तमता से चल रहा है। सबसे अधिक संतोष की बात यह है कि इस वर्ष बाबू श्यामसुन्दरदास तथा बा० गौरीशंकरप्रसाद एवं सभा के कुछ अन्य उत्साही सदस्यों और शुभचिन्तकों के उद्योग से सभा को ऋण-मुक्त करने के लिए एक विशेष चन्दा हुआ और हो रहा है कि जिस से उसके सिर का प्रायः आठ नौ वर्ष का लदा हुआ ऋण अब दूर होता देख पड़ता है। कदाचित् आप लोग यह स्वीकार करेंगे कि जिस सभा ने इतने दिनों से हिन्दी और तद्द्वारा आप लोगों की सेवा का बीड़ा उठा रक्खा है और अपने उद्देश्य में बहुत कुछ कृतकार्यता भी प्राप्त की है उसका केवल ऋण-मुक्त होना ही अलम् नहीं। अब उसका एक स्थायी कोष दृढ़तापूर्वक स्थापित ही हो जाना चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कम से कम एक लाख रुपये का अवश्य हो। ऐसा हो जाने से सभा की जड़ दृढ़ हो जायगी और उसका काम उत्तमता से चलता रहेगा। इतने दिनों में ऋण इत्यादि को छोड़ कर उसकी कुल २० वर्ष की आय डेढ़ लाख रुपया भी नहीं हो सकी है। इस पर विचार करने से हम लोगों को शायद कुछ लज्जा बोध होगी। अस्तु अब तक जो हुआ सो हुआ आगे के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

(३) सभा जिस उत्साह से अपना काम करती आई है सो आप लोगों से छिपा नहीं है। पहिले ही साल उसके ३६ अधिवेशन हुए और उसके पीछे प्रतिवर्ष क्रम से ३१, २८, १४, २७, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३७, ३३, ३१, २७, ३१, २६, २६, २८, २६, और २४ अधिवेशन हुए। इन में सभा के साधारण अधिवेशन २८१ और असाधारण २६ हुए तथा प्रबन्धकारिणी-समिति के २६७ हुए। इस तरह कुल मिला कर ५७७ अधिवेशन २० साल में हुए जिसका वार्षिक परता प्रायः २६ अधिवेशनों का पड़ता है जो कदापि कम नहीं कहा जा सकता। आप लोग देखते होंगे कि हमारे देश में अनेक सभाएँ स्थापित होती रहती हैं पर छः मास के पीछे उनके अधिवेशनों का पता कठिनता से लगता है। नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्य-संचालकों का उत्साह और उनकी कार्य-परायणता का उसके २० वर्ष के निरंतर अधिवेशनों से ही बहुत कुछ प्रमाण मिल जाता है। इतने दिनों का परता लगाने पर प्रायः हर बारहवें तेरहवें दिन एक अधिवेशन का होना पाया जाना कोई साधारण बात नहीं है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि समस्त भारतवर्ष में ऐसी बहुत सभाएँ न निकलेंगी कि जिनकी ऐसी कार्यपटुता सिद्ध हो सके। हमारा आप लोगों से फिर यही सविनय निवेदन है कि उसे और भी कार्यदक्षता प्रदर्शित कर सकने की सामग्री (अर्थात् आवश्यक धन) का प्रबंध आप महाशयों को अवश्य कर देना चाहिए।

(४) इसके प्रधान कर्मचारी अधिक नहीं बदलते रहे हैं और नीचे दिया हुआ ब्योरा शायद आप लोगों को रुचिकर हो—

सन्	नाम सभापति का	नाम मंत्री का
१८९३-९४-९५	बा० राधाकृष्ण दास,	बा० श्यामसुंदर दास बी.ए.
१८९५-९६	रायबहादुर पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र एम ए०	वही
१८९६-९७-९८	वही	बा० राधाकृष्णदास
१८९८-९९-१९००	,,	बा० श्यामसुंदरदास बी.ए.
१९००-०१	पद ख़ाली रहा	वही
१९०१-०२	रा० ब० पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम ए०	,,
१९०२-०३ से १९०५-०६ तक	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी	,,
१९०६-०७	वही	बा० राधाकृष्णदास
१९०७-०८-०९	म. म. पं० सुधाकर द्विवेदी,	बा० जुगुलकिशोर
१९०९-१०	,,	बा० गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एलएल०बी०
१९१०-११-१२	म. म. पं० आदित्यराम भट्टाचार्य एम० ए० और पं० गौरीशंकर हरिचंद ओझा	वही तथा पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०
१९१२-१३	पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया (प्रायः ४ मास) बाद को मैं।	,,

इन महाशयों में से मुझे छोड़ और सभी ने हिन्दी एवं सभा की अच्छी सेवा की है और कतिपय तो हिन्दी के बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक और सहायक हो गए एवं आज दिन वर्तमान हैं।

(५) यों तो जब से यह सभा स्थापित हुई है इसने प्रा[illegible] उसी दिन से हिन्दी की सभी प्रकार परम प्रशंसनीय से[illegible] की है और जो जो काम इसने अपने हाथ में प्रारम्भ ही[illegible] उठा लिए और जिनका विस्तृत विवरण पहिली ही वार्षि[illegible] रिपोर्ट में दिया हुआ है उनकी सूची मात्र देखने से सभा[illegible] संस्थापकों का उत्साह पूर्ण रीति से प्रगट हो जाता है प[illegible] जिन विशेष महत्त्व के कामों को सभा ने समय समय प[illegible] किया है तथा उसके विषय में जो अन्य कथनीय बातें हैं उन[illegible] संक्षेप में यहाँ कुछ वर्णन कर देना कदाचित् अनुचित अथ[illegible] अप्रसंग न समझा जाय—

(क) नागरी अक्षरों के प्रचार में सभा प्रथम वर्ष ही[illegible] प्रयत्न करती आती है। इस सम्बन्ध में उसने कायस्थ व वै[illegible] कान्फ्रेंसों में डेपुटेशन भेज कर उन जातियों में इनके समु[illegible] प्रचार कराने की चेष्टा की, तथा सन् १८९८ वाले उस म[illegible] प्रयत्न में योग दिया कि जो माननीय पं० मदनमोहन मालवी[illegible] और अन्य अनेक प्रतिष्ठित एवं उत्साही महापुरुषों द्वारा हु[illegible] था और जिसके द्वारा गवर्नमेंट को नागरी-प्रचार के लिए बू[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेमोरियल एक महा डेपुटेशन द्वारा भेजा गया था, और जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १६०० में सरकार ने इन प्रांतों की अदालतों व दफ़्तरों में नागराक्षरों का प्रचार कर ही दिया। कई अंशों में इसी सभा के उद्योग से अनेक देशी रियासतों के दफ़्तरों व अदालतों में भी उर्दू के ठौर हिन्दी भाषा और नागरी-अक्षरों का प्रचार हो गया है। सभा के स्थापित होने के चौथे साल कुछ ऐसी चर्चा थी कि शायद उर्दू के स्थान में संयुक्त प्रान्त में रोमन अक्षरों का प्रचार हो जाय पर सभा ने भी इसका विरोध किया और अपने विचार सप्रमाण प्रकाशित किए। अंत को हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट ने रोमन का प्रचार करना अस्वीकार कर दिया। इसके थोड़े दिनों पीछे जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उर्दू के साथ साथ संयुक्त प्रांत में नागरी अक्षरों का प्रचार हो गया। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यद्यपि हमारी न्यायशीला सरकार ने नागरी प्रचार की आज्ञा दे दी है तथापि कतिपय व्यक्तियों, जातियों, और कक्षाओं के विरोध एवं दूसरों के निरुत्साह और लापरवाई से इन अक्षरों का अभी पूरा क्या बरन थोड़ा बहुत भी वास्तविक प्रचार हमारी अदालतों व दफ़्तरों में नहीं हो पाया है। सभा इस कार्य की पूर्ति के लिए यथाशक्ति सदा से उद्योग करती आई है और उसकी ओर से कई एक लेखक कतिपय ज़िलों की कचहरियों में लोगों की दरख़ास्तें नागरी में लिखने को नियत हैं तथा इस कार्य के लिये लेखकों का उत्साह बढ़ाने को उसने पारितोषिक भी नियत किए, पर अभी कुछ भी संतोषजनक सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती! आशा है कि आप लोग इस कार्य के लिए सभा की समुचित सहायता करेंगे और स्वयं एवं अपने इष्ट मित्रों द्वारा भी इस महत् कार्य के साधन में तत्पर हो जाँयगे। इसी सम्बन्ध में सभा ने प्रारम्भ ही से हिन्दी-हस्तलिपि परीक्षा भी स्थापित कर रक्खी है। यह परीक्षा समस्त संयुक्त प्रांत तथा ग्वालियर राज्य में होती है और सभा अनेक विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष पारितोषिक एवं प्रशंसा-पत्र दिया करती है।

(ख) सभा के प्रबंध से ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हुआ और उसका प्रथम अधिवेशन सभा-भवन में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी के सभापतित्व में अक्तूबर १६१० में बड़े समारोह के साथ हुआ। तब से सम्मेलन के दो और अधिवेशन प्रयाग एवं कलकत्ता में हो चुके हैं और आशा की जाती है कि वे प्रतिवर्ष होते रहेंगे तथा सम्मेलन के उद्योग से हिन्दी की अच्छी सेवा हो सकेगी।

(ग) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के लिए भी सभा ने प्रथम वर्ष से ही उत्सुकता दिखलाई है और उसी साल सभा ने भारत सरकार एवं गवर्नमेंट पश्चिमोत्तर प्रदेश (अब संयुक्त प्रांत) व पंजाब, तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल को इसके बारे में प्रार्थना-पत्र भेजे। तभी से सभा इस कार्य के उद्योग में निरंतर लगी ही रही जिसका परिणाम यह हुआ कि सात वर्ष के पीछे सन् १६०० से हमारी प्रांतिक गवर्नमेंट की सहायता से सभा ही द्वारा खोज का काम प्रारम्भ हो गया। इस काम से अनेक नवीन कवियों एवं ग्रंथों का पता लगा, बहुतेरे जाने हुए कवियों के अज्ञात ग्रंथ विदित हो गए, अगणित विवाद एवं शंकापूर्ण बातों का निश्चय हो गया, कई ऐतिहासिक बातों का पता चल गया, हिन्दी के कतिपय ऐसे अंग कि जिन्हें लोग निर्मूल अथवा हीन समझते थे परिपूर्ण पाए गए, हमारा बहुत से महत्त्व के विषयों पर अज्ञान दूर हुआ (यथा हिन्दी गद्य कितना प्राचीन है, खड़ी बोली की कविता कब से होती है, इत्यादि) अगणित कवियों के सन् संवत् एवं वृत्तान्तों का ठीक पता चल गया, और ऐसे ही बहुतेरे कार्य सिद्ध हुए और होते जाते हैं। नौ वर्ष तक इस काम को बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए० ने बड़ी ही योग्यता और उत्तमता के साथ चलाया और सन् १६०६ से इस का भार मैंने ले रक्खा है। शोक का विषय है कि इस साल से गवर्नमेंट ने अपनी ५००) वार्षिक सहायता रोक दी है जिससे हम लोग बड़ी फ़िक्र में पड़े हैं क्योंकि धनाभाव से सभा अपने बाहुबल से इस कार्य को नहीं चला सकती पर उसकी परमोपयोगिता की ओर दृष्टि देने से उसके बन्द करने का साहस नहीं होता। इस साल का यश तो श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर ने लिया और इस कार्य के लिए ५००) की सहायता देकर श्रीमान् ने उसे बन्द हो जाने से रोक लिया, पर आशा की जाती है कि आगामि वर्ष से हमारी विद्यारसिक गवर्नमेंट अपनी सहायता फिर से जारी कर देगी क्योंकि श्रीमान् छोटे लाट साहब ने हाल ही में सभा के अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में जो कुछ श्रीमुख से भाषण किया है वह अवश्य आशाजनक है। खोज की छः वार्षिक और एक त्रिवार्षिक रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं और दूसरी त्रिवार्षिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिपोर्ट (१९०९–११) के छपने का प्रबंध हो रहा है। इन रिपोर्टों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है।

(घ) सभा आज कल तीन सामयिक पुस्तकें प्रकाशित करती है। (१) नागरी-प्रचारिणी पत्रिका तीसरे साल से ही निकलती है और इस में बड़े गम्भीर और उत्तम लेख समय समय पर निकले हैं। पहले यह त्रैमासिक थी पर १९०८–०९ से मासिक कर दी गई है। (२) नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला १९०१ से निकल रही है और इसमें विशेषतया खोज द्वारा प्राप्त उत्तम ग्रंथ ही छापे जाते हैं। यह त्रैमासिक पत्रिका है। (३) सन् १९१०—११ से एक और त्रैमासिक पत्रिका "नागरीप्रचारिणी लेखमाला" के नाम से भी निकली जाती है। सभा अपना वार्षिक विवरण भी प्रकाशित करती है। सभा के अधिवेशनों में व्याख्यान दिए जाते हैं और "सुबोध व्याख्यान" के नाम से सर्वसाधारण के लिए वैज्ञानिक एवं अन्य उपयोगी विषयों पर यथा समय और भी व्याख्यान होते हैं जिन में अकसर मैजिक लालटेन इत्यादि द्वारा लोगों का मनोरंजन तथा उनकी ज्ञानवृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है। हिन्दी एवं सभा के विशेष सहायकों और उन्नायकों के चित्र सभा-भवन में लटकाए जाते हैं। दो बार अच्छे हिन्दी-लेखकों की सूचियां भी तैयार कराई जा चुकी हैं। नवें वार्षिक विवरण के पृष्ठ २२ व २३ पर हिन्दी के अनेक उत्तम ग्रंथों के नामादि दिए गए हैं तथा प्रायः हर साल रिपोर्ट में उस वर्ष में प्रकाशित उत्तम ग्रंथों की सूची दे दी जाती है और हिन्दी की दशा पर संक्षिप्त नोट प्रकाशित किया जाता है।

(ङ) सभा ने प्रारम्भ से ही एक पुस्तकालय खोल रक्खा है जिस में आज दिन प्रायः ६६०० पुस्तकें हिन्दी की तथा कोई ४५० अँगरेज़ी की वर्तमान हैं। इसमें अनुमान एक सौ सामयिक पत्र पत्रिकाएँ भी आया करती हैं। यह पुस्तकालय सर्वसाधारण के लिए भी देर तक सदा खुला रहता है पर इसके मेम्बर अपने मकानों पर नियमानुसार पोथियाँ मँगा सकते हैं।

कोई २५ हज़ार रुपये की लागत से सभा ने अपना भवन भी बनवा लिया है इसी के कारण उस पर ऋण हो गया था पर अब वह शीघ्र ही चुक जायगा। सभा की ८–८ शाखा-सभाएँ भी हैं पर आशा की जाती है कि वे अपने कर्त्तव्य में शिथिलता न रख कर कार्य्यपटुता दिखलाने का प्रयत्न करेंगी।

(च) समय समय पर सभा लेखकों का उत्साह बढ़ाने और उत्तम ग्रन्थ तैयार कराने के विचार से अनेक पारितोषिक, मेडल, इत्यादि देती रहती है, जैसे हिन्दी-लेखों पर मेडल, हिन्दी ग्रन्थोत्तेजक पारितोषिक, डा० छन्नूलाल मेमोरियल मेडल, ललिता पारितोषिक, कालिदास रजत मेडल, रेडिची मेडल, राधाकृष्णदास मेडल, हिन्दी-व्याकरण के लिए ५००) पारितोषिक, इत्यादि इत्यादि। इस भांति सभा ने अपने उद्योग से अनेक उत्तम लेख और ग्रन्थ लिखाए हैं और निरंतर इस ओर सभा का ध्यान रहता है।

जिस ग्रन्थ के बनवाने का ध्यान सभा को सब से पहले हुआ था वह हिन्दीसाहित्य का इतिहास है। (उसके प्रथम वर्ष की रिपोर्ट पृष्ठ ८–१० देखिए।) यह हमारे सौभाग्य की बात है कि सभा ने इतने महत्त्व का काम हमें सौंपा और हम (मिश्र-बंधुवों अर्थात् पं० गणेशविहारी मिश्र, मैं, और शुकदेवविहारी मिश्र) ने इस काम को पूरा कर दिया। सभा की आज्ञा प्राप्त करके इस ग्रन्थ को जिसमें प्रायः १८०० पृष्ठ होंगे प्रयाग की हिन्दी-ग्रन्थप्रसारक मंडली इंडियन प्रेस में छपा रही है। शायद इसी साल के अंत तक यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेगा।

(छ) जब से सभा स्थापित हुई है बराबर वह हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों को तैयार कराती और प्रकाशित करती रही है। इनमें से कतिपय नामी ग्रंथों में से यह है—

१—तुलसीदास का रामचरितमानस अर्थात् प्रसिद्ध रामायण। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण अनेकों प्रेसों द्वारा भारतवर्ष के सभी हिन्दी-भाषी प्रान्तों के प्रायः सभी नामी स्थानों में प्रकाशित हुए हैं पर जहाँ तक हमारे देखने में आया है ऐसा शुद्ध और सर्वांगपूर्ण संस्करण कहीं भी नहीं निकला।

२—चन्दबरदाई के प्रसिद्ध रासो का इतने दिनों तक न छपना हिन्दी के लिए लज्जा का विषय था। इस बड़े अभाव को दूर करके सभा ने बड़े महत्त्व का काम कर डाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रायः यह पूर्ण ग्रन्थ अब छप चुका है और शेषांश के कुछ ही महीनों में निकल जाने की आशा है।

३—हिन्दी-वैज्ञानिक-कोश (the Hindi scientific glossary) के छपने से वैज्ञानिक ग्रन्थों के लिखने एवं अँगरेज़ी से अनुवाद करने में लेखकों को बड़ा सुभीता होने लगा है और सदा होगा। वैज्ञानिक विशेष शब्दों के लिए हिन्दी में समुचित शब्द मिलते ही न थे और बड़ी गड़बड़ी एवं अड़चन पड़ा करती थी। यह सब कठिनाइयाँ अब दूर हो गईं। सभा ने बड़े परिश्रम और विचार के साथ यह कोश तैयार किया है।

४—बनिताविनोद अर्थात् स्त्रियों के पढ़ने योग्य एक उत्तम ग्रन्थ जिस में कई बड़े ही विशद निबंध हैं। इसका बँगला और शायद मराठी या गुजराती में भी अनुवाद हुआ है।

५—अनेक पाठ्य पुस्तकें अर्थात् पाठशालाओं में पढ़ाई जाने लायक़ किताबें जिन का प्रचार भी हुआ।

६—हिन्दीसाहित्य का इतिहास जिस का ब्योरा ऊपर दिया जा चुका है।

७—संक्षेप लेख-प्रणाली अर्थात् हिन्दी-त्वरित-लेखन (Hindi short-hand) जो छप कर तैयार हो गई है। इसके परिपक्क हो जाने पर एक भारी अभाव की पूर्ति हो जायगी।

८—अनेक नामी और उत्तम ग्रन्थ जिनका सम्पादन [और] प्रकाशन ग्रन्थ-माला द्वारा हुआ है।

९—सब से बढ़ कर काम जो सभा अब कर रही है [व]ह "हिन्दी-शब्द-सागर" अर्थात् हिन्दी-भाषा का विस्तृत [को]श है। इसके बनाने का भी ध्यान सभा को पहिले ही वर्ष [हु]आ था और उसने श्रीमान् महाराजा साहब दर्भंगा की [स]हायता इस कार्य्य के लिए तभी माँगी थी। अभी इसके [ब]नने में ५०,०००) के व्यय का बजेट हुआ है। इसका पूरा [ब्यो]रा सभा की रिपोर्ट में मिलेगा पर इतना कह देना आव[श्य]क प्रतीत होता है कि यह बड़े ही महत्त्व का काम है और [इस]के तैयार हो जाने से हिन्दी की एक भारी त्रुटि दूर हो [जा]यगी। सभा ने इसके लिए ५०००) का पारितोषिक इसके [यो]ग्य सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दासजी को देना चाहा और उसके न लेने पर १००) मासिक का पुरस्कार स्वीकार करने को उनसे कहा पर उन्होंने दोनों ही बातें अस्वीकार कर यह महत् कार्य्य बिना कुछ लिए ही करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। काम भली भाँति चल रहा है और आशा है कि वह शीघ्र पूर्ण हो जायगा।

निदान सभा से जहां तक हो सकता है वह तन, मन, धन से हिन्दी की सेवा कर रही है। आशा है कि आप महाशय गण उसका दिनों दिन उत्साह बढ़ाते ही जाइएगा। अब मैं आप लोगों का बहुत सा अमूल्य समय नष्ट कर चुका हूँ और विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। आप लोगों से क्षमा माँगता हुआ अब मैं इस व्याख्यान को यहीं समाप्त करता हूँ।

श्यामविहारी मिश्र

सभापति, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा।

—:o:—

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के गत २० वर्षों के आयव्यय का लेखा।

[जुलाई १८९३ से जून १९१३ तक]

आय का ब्योरा		धन की संख्या		
		रुपया	आना	पाई
सभासदों का चन्दा	...	२४६२२	१४	३
विशेष चन्दा	...	३०६२	...	...
पुस्तकों की बिक्री	...	१२५८०	१५	८
ब्याज	...	७७	१३	१०
फुटकर आय	...	२४१२	८	२
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	...	४२६०	...	...
गवर्नमेंट की सहायता	...	८१२०	८	...
स्थायी कोश	...	२८३१६	१२	४
पुस्तकालय	...	६७०४	१३	६
पृथ्वीराजरासो	...	७०६८	७	७
सम्मेलन	...	१४३१	४	६
नागरीप्रचार	...	९४६	३	७½
पारितोषिक	...	३६०	...	...
अमानत	...	११२७	११	३
राधाकृष्णदास-स्मारक	...	२१७	४	...
हिन्दी-कोश	...	२५१८६	१४	११
उधार	...	१७४००	...	...
		१४४४९६	३	७½

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यय का ब्यौरा		धन की संख्या		
		रुपया	आना	पाई
छपाई	...	२०८१७	८	३
कार्य्य-कर्ताओं का वेतन	...	६२४६	१५	१०
डाकव्यय	...	४६३७	...	६
फुटकर व्यय	...	५९४७	१२	६
पारितोषिक	...	१०२७	११	...
नागरीप्रचार	...	३१४६	७	३
मकान का किराया	...	५६९	...	...
साहित्य-सम्मेलन	...	१५२३	१	१½
पुस्तकालय	...	७०८४	११	५
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	...	२८५५	२	..
पृथ्वीराजरासो	...	६६०४	...	६
हिन्दी-पुस्तकों की खोज	...	७२०१	१४	३
स्थायी कोश	...	३२४९१	९	५
ब्याज	...	१२३	३	३
हिन्दी-कोश	...	१८१३८	१३	९½
मरम्मत	...	७८	१३	१०½
उधार	...	१४२०५	...	...
अमानत	...	१२४३	५	...
राधाकृष्णदास-स्मारक	...	१३१	...	...
		१३७०७३	१	११½
	बचत...	७४२३	१	८
		१४४४९६	३	७½

—:०:—

नाम उन महाशयों के जिन्होंने गत २० वर्षों में सभा की सहायता ५००) वा उससे अधिक से की।

	रुपया	आना
संयुक्तप्रदेश की गवर्नमेंट	१४१२०	८
स्वर्गवासी श्रीमान् राजर्षि भिनगा-नरेश	४७५०	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर रीवाँ	४१४९	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर छत्रपुर	३३३०	...
भारत गवर्नमेंट	३०००	
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बीकानेर	२५००	
एक सहायक (राजकोट निवासी)	२२५०	
राय शिवप्रसाद	२०००	
राजा कमलानन्दसिंह	२०००	
श्रीमान् महाराजाधिराज बर्दवान	२०००	
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बनारस	२०००	
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर भावनगर	१५००	
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अलवर	१५००	
आनरेब्ल डाक्टर सुन्दरलाल सी० आई० ई०	१५००	
श्रीमान् ग्वालियर-नरेश	१०००	
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर काश्मीर	१०००	
श्रीमान् गायकवाड़ बहादुर बड़ोदा	१०००	
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अयोध्या	१०००	
आनरेब्ल बाबू मोतीचन्द	८५०	
राजा माधवलाल सी० एस० आई	५१५	
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर इन्दौर	५००	
राय राधारमण	५००	
राजा बलवंतसिंह	५००	

—:०:—

सभा का कार्य-विवरण

प्रबन्धकारिणी-समिति

(१) गत अधिवेशन (ता० २८ जून १९१३) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) मंत्री ने १ जूलाई १९१३ से ३० जून तक के आय-व्यय का हिसाब उपस्थित किया। निश्चय कि सन् १९१२—१३ के व्यय के लिये जो बजेट है उसमें निम्नलिखित संशोधन स्वीकार किया जाय—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	बजेट	संशोधन
आफ़िस के कार्यकर्ता	१०४६)	११३०)
छपाई	३२००)	२३००)
पारितोषिक	१६०)	६०)
पुस्तकालय	५००)	८००)
पृथ्वीराजरासो	१२००)	६१०)
स्थायी कोश	६६०)	७००)
पुस्तकों की खोज	५००)	१०००)
नागरी-प्रचार	५००)	५५०)
डाकव्यय	५००)	७६०)
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	३५०)	५०५)
फुटकर व्यय	३२०)	५७०)
बनारस बंक को देना	५८३६।।।)७	५६८७।।।)७
ब्याज	०	५०)
	१४८०२।।।)७	१४८०२।।।)७

(३) आगामी वर्ष के लिये निम्नलिखित बजेट स्वीकृत हुआ।

आमदनी

७४२३-)८	गत वर्ष की बचत
१२०।≡)।	अमानतखाते की बचत
३०००)	सभासदों का चन्दा
१०००)	पुस्तकों की बिक्री
११५०)	पुस्तकों की खोज
८००)	पृथ्वीराजरासो की बिक्री
४००)	स्थायी कोश
२५)	नागरी-प्रचार
३००)	फुटकर
५०)	पारितोषिक
६५०)	पुस्तकालय
[illegible]००)	हिन्दीभाषा का कोश
[illegible]१५)	साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण की बिक्री
२०४३३।।)११	

ख़र्च

१२००)	आफ़िस के कार्यकर्ता
२४५०)	छपाई
१००)	पारितोषिक
६२६)	पुस्तकालय
७५०)	पृथ्वीराजरासो
२००)	स्थायी कोश
९००)	पुस्तकों की खोज
१६०)	नागरी-प्रचार
६००)	डाकव्यय
३००)	पुस्तकों के लिये पुरस्कार
३७९)	फुटकर व्यय
८२४८-)$\frac{1}{2}$	हिन्दी-कोश
३१९५)	बनारस बंक का देना
१९१०८-)१$\frac{1}{2}$	

व्यय का ब्योरा

छपाई

पत्रिका की १३ संख्याएं	९५०)
ग्रन्थमाला की ५ संख्याएं	६२५)
लेखमाला	४५०)
बीसवें वर्ष का कार्य-विवरण	१५०)
फुटकर	२७५)
	२४५०)

पुस्तकालय

पुस्तकाध्यक्ष	१४४)
चपरासी	६६)
दफ़्तरी	१३२)
दफ़्तरी का लड़का	२६)
पंखाकुली	१८)
पुस्तकें	२००)
अलमारी	३०)
	६२६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यकर्त्ताओं का वेतन

सहायक मंत्री	६००)
क्लार्क १	१८०)
क्लार्क २	१२०)
चपरासी १	८४)
चपरासी २	६६)
मेहतर	१२)
पंखाकुली	१४)
माली	२४)
दफ़्तरी	६६)
फुटकर	४)
	१२००)

(४) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आगामी सम्मेलन के सभापति के चुनाव के लिये ५ सज्जनों के नाम निर्वाचित करने के लिये लिखा था। निश्चय हुआ कि इसके लिये निम्न लिखित सज्जनों के नाम निर्वाचित किए जांय अर्थात् बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, लाला मुंशीराम और बाबू जगन्नाथप्रसाद (भानु कवि)।

(५) बाबू भगवानदास एम० ए० और बाबू गौरीशंकर-प्रसाद बी० ए० एलएल० बी० का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी से प्रार्थना की जाय कि वे हिन्दी-शब्दसागर के सम्पादन में अपना पूरा समय लगा कर उस कार्य को करें और कम से कम १००) रु० का मासिक आनरेरियम कृपापूर्वक स्वीकार करें। साथ ही इस सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदासजी का पत्र भी उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने इसे अस्वीकार किया था। (यहाँ पर बाबू श्यामसुन्दरदासजी चले गए और पण्डित रामनारायण मिश्र ने सभापति का आसन ग्रहण किया)।

निश्चय हुआ कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी से निवेदन किया जाय कि यह प्रस्ताव आनरेरियम के लिये है, वेतन के लिये नहीं। सभा की सम्मति में वे इस आनरेरियम को स्वीकार करने से काशी में रह कर अन्य सब कार्यों से ख़ाली रह कर अपना पूरा समय कोश के कार्य में दे सकेंगे जिससे सभा को बहुत बड़ा लाभ होगा। बाबू साहब को वे सब अधिकार पूर्णतया प्राप्त रहेंगे जो इस समय उन्हें प्राप्त हैं और वे इस सभा की प्रबन्धकारिणी समिति आदि के सभासद उसी प्रकार रहेंगे। बाबू साहब से प्रार्थना की जाय कि जिस प्रकार अब तक वे सभा से आन्तरिक हित रखते आए हैं उसी प्रकार सभा के लाभ की ओर ध्यान कर इस प्रस्ताव को स्वीकार करें जिसमें कोश का कार्य भली भांति शीघ्र तथा निर्विघ्न समाप्त हो। साथही यह भी निश्चय हुआ कि मंत्री सर्व साधारण की सूचना के लिये एक पत्र प्रकाशित करें जिसमें यह भली भांति प्रकट करदें कि सभा ने बाबू श्यामसुन्दरदासजी को उनकी इच्छा के विरुद्ध किस प्रकार आनरेरियम लेने के लिये बाध्य किया है और इससे सभा का कितना कुछ हित साधन हो सकेगा।

(६) बाबू इन्द्रजी भगवानजी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि उन्हें छः आने रुपये के हिसाब कमीशन दिया जाय तो वे अन्त्येष्टिदीपिका और गोभिल गृह्यकर्मप्रकाशिका की जितनी प्रतियां सभा के पास हैं सब को नगद मूल्य पर ले लेंगे। निश्चय हुआ कि स्वीकार किया जाय।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

प्रबन्धकारिणी-समिति

शनिवार तारीख १२ जुलाई १०१३—सन्ध्या के बजे (१) बाबू गौरीशंकरप्रसाद के प्रस्ताव तथा बाबू मुकुन्द वर्मा के अनुमोदन पर बाबू शिवकुमारसिंह सभापति चुने गए।

(२) सभा के बीसवें वर्ष का कार्य्य-विवरण उपस्थित किया गया और आवश्यक संशोधन के उपरान्त स्वीकृत हुआ।

(३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

वार्षिक अधिवेशन।

सोमवार तारीख ४ अगस्त १९१३—सन्ध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन।

(१) पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव तथा जगन्मोहन वर्म्मा के अनुमोदन पर डाक्टर प्रियवरुण सभापति चुने गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) पंडित श्यामविहारीमिश्र एम० ए० का तार उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आज के अधिवेशन में अपनी अनुपस्थिति पर दुःख प्रकट किया था। निश्चय हुआ कि पण्डित श्यामविहारी मिश्रजी को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय।

(३) प्रबन्धकारिणी-समिति के बीसवें वर्ष का कार्य्य-विवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(४) सभा के सभापति पण्डित श्यामविहारी मिश्रजी का व्याख्यान पढ़ा गया जिस पर सभा ने बड़ा हर्ष प्रकट किया।

(५) बाबू वेणीप्रसाद के प्रस्ताव तथा पण्डित सरयू-नारायण त्रिपाठी के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकरप्रसादजी ने कृपापूर्वक मंत्री का पद स्वीकार कर अपना जो बहुमूल्य समय सभा के कार्यों में लगाया और उन्होंने जिस योग्यता और उत्साह से कार्य्य सम्पादन किया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय।

(६) प्रबन्धकारिणी-समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा के ११ वें नियम में जो दो उपमंत्री के चुने जाने का विधान है उसके स्थान पर एक ही उपमंत्री चुना जाया करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) पदाधिकारियों और प्रबन्धकारिणी-समिति के सभासदों के चुनाव के लिये उपस्थित सभासदों में निर्वाचन-पत्र बाँटे गये और उनका परिणाम जांचने के लिए सभापति ने बाबू केशवदास और पण्डित निष्कामेश्वर मिश्रजी को नियत किया।

(८) सन् १९१२-१३ के आय-व्यय के हिसाब के सहित आगामी वर्ष के लिये प्रबन्धकारिणी-समिति द्वारा स्वीकृत बजेट उपस्थित किया गया।

बाबू वेणीप्रसाद के प्रस्ताव तथा पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(९) सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि श्रीमान् महाराजा साहब छत्रपुर, श्रीमान् महाराजा साहब अलवर और श्रीमान् बीकानेरनरेश हिन्दीभाषा और इस सभा के बड़े सहायकों में हैं अतः ये नृपतिगण इस सभा के संरक्षक चुने जाँय।

(१०) निश्चय हुआ कि जिन महाशयों को सभा ने इस वर्ष मेडल देना निश्चित किया है उन्हें वार्षिकोत्सव पर मेडल दिए जाँय।

(११) प्रबन्धकारिणी-समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ की अब कोई आवश्यकता नहीं रही है और उसका सब काम वास्तव में प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होता है अतएव वह बोर्ड उठा दिया जाय और उस सम्बन्ध के नियम ४९-६४ के स्थान पर नए नियम स्वीकार किये जाँय।

निश्चय हुआ कि सभा के नियम ६३ के अनुसार पहिले यह प्रस्ताव बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ के सम्मुख उपस्थित किया जाय।

(१२) निर्वाचन पत्रों का निम्नलिखित परिणाम सूचनार्थ उपस्थित किया गया—

सभापति

पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०,

उपसभापति

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०

रेवरेंड ई० ग्रीव्स

मंत्री

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एलएल० बी०

उपमंत्री

बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

प्रबन्धकारिणी-समिति के सभासद्

बंगाल से—बाबू काशीप्रसाद जायसवाल

बिहार से—पण्डित रामावतार पांडेय एम० ए०

पंजाब से—राय मूलराज

काशी से—बाबू माधवप्रसाद

पण्डित देवीप्रसाद उपाध्याय

बाबू जयशंकरप्रसाद

राय शिवप्रसाद

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

साधारण सभा

शनिवार ता० ३० अगस्त १९१३—सन्ध्या के ५½ बजे

स्थान-सभाभवन

(१) तारीख २८ जून के साधारण अधिवेशन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ अगस्त के वार्षिक अधिवेशन के कार्य्यविवरण उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

(२) प्रबन्धकारिणी-समिति के ता० ३१ मई १९१३ और २८ जून १९१३ के कार्य्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(३) सभासद् होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए—(१) बाबू गुरुप्रसाद बी० एस०सी०, ला कालेज, इलाहाबाद १॥) (२) पण्डित कालूराम त्रिवेदी, ठि० रेखाराम रामेश्वर, ससराम १॥) (३) बाबू कौशलानन्द सहाय बी० ए०, एम० बी० प्रोफ़ेसर, हिन्दू-कालेज, काशी १॥) (४) बाबू रामकुमार साहु, रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट, ठाकुरद्वारा, ज़िला मुरादाबाद १२) (५) बाबू शिवप्रसाद सिंह, चेतगंज, काशी १॥) (६) पण्डित विद्याधर मोतीराम शर्म्मा, ठि० सेठ वंशीलालजी की दुकान, हथरुण, बरार ३) (७) बाबू गोवर्द्धनदास, ठि० मिसर्स गोवर्द्धनदास एण्ड को०, लाहोर ५) (८) बाबू राधेश्याम, ठठेरी बाज़ार, काशी ३) (९) बाबू सीताराम, ठठेरी बाज़ार, काशी ३) (१०) पण्डित जयदेव शास्त्री, प्रधानाध्यापक, संस्कृत पाठशाला, परस्पुर, गोंडा ३) (११) बाबू चिरंजीलाल, मेनेजर, सेठ अमृतलाल गुलज़ारीलाल जिनिंग फ़ेक्टरी, फ़ीरोज़ाबाद १॥) (१२) पण्डित दुर्गाप्रसाद गौड़ ज़मींदार, महल्ला अलीगंज, बाँदा १॥) (१३) बाबू शूरजी वल्लभदास वर्म्मा, पोस्ट नं० ३, बम्बई ५) (१४) पण्डित रघुनन्दन शर्म्मा, फ़ारेस्ट आफ़िसर, सरगूज़ा स्टेट ५) (१५) बाबू प्रियानाथ बसाक, ट्रेनिंग कालेज, जबलपुर १॥) (१६) बाबू मन्नालाल, रायपुर होस्टल, गवर्नमेंट कालेज, जबलपुर १॥) (१७) पण्डित बेनीप्रसाद तिवारी, गवर्नमेंट कालेज, जबलपुर १॥) (१८) बाबू बैजनाथ प्रसाद, गवर्नमेण्ट कालेज बोर्डिङ्ग, जबलपुर १॥) (१९) बाबू जगन्नाथ प्रसाद मालवीय, गवर्नमेण्ट कालेज, जबलपुर १॥) (२०) लाला रुद्रनाथसिंह, सभापति, हिन्दीहितैषिणी सभा, धेनुगावा पो० बेलवा जि० बस्ती ५) (२१) बाबू हरिबक्स मरोदिया, ११३ मनोहरदास का कटरा, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता ५) (२२) बाबू गिरिजाप्रसाद, हनुमान फाटक, काशी १॥)

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए (१) पंडित साधुशरण पांडे, मुदर्रिस, शिवपुर दियर पो० भरसर जि० बलिया, (२) पंडित सत्यदेव राम त्रिपाठी, ग्राम कोल्हुआ पो० हरिहर पुर, ज़ि० बस्ती, (३) बाबू लक्ष्मणप्रसाद वकील, लखनऊ, (४) पंडित कृष्णानन्द अध्यापक, दुरावल पो० शाहगंज, जि० मिर्ज़ापुर, (५) पंडित गोपीनाथ तिवारी, हेड मास्टर, मिडिल स्कूल बगहा, जि० चम्पारन, (६) बाबू शिवनन्दनप्रसाद, सेकेण्ड मास्टर, मिडिल स्कूल, बगहा, जि० चम्पारन, (७) बाबू जगपति राय, ४१ अवधगर्बी, काशी।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं—

संयुक्त प्रदेश की गवर्मेण्ट।

General Report on Public Instruction for the year ending 31st March 1912. Sacred Books of the Hindus Vol. V, VII and XII.

बाबू भगवानदास हालना, हाथरस
रामायण 'पीयूषधारा टीका सहित'

पण्डित रामेश्वरदत्त जोषी, बीबी हटिया, काशी
नसीरुद्दीन हैदर

पण्डित दुर्गाप्रसाद रघुनाथ प्रसाद खेवरिया, साग[illegible]
सेलिमा बेगम

बाबू हरिहरनाथ बी० ए०, काशी
तुलसी शिक्षावली

पण्डित गुरुसेवक उपाध्याय बी० ए०, डिपटी कलेक्टर गोरखपुर
जातिसुधार

बाबू श्यामलाल, जनरल पब्लिशिंग कम्पनी, मेरठ
सलाइयों की बुनावटें

पण्डित इन्द्रमल शर्म्मा, हाकिम, नागोर, मारवाड़
श्रीलघुस्तवराज

पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, दारागंज, प्रयाग
भारत में मन्दाग्नि

मंत्री, जीवदयाविभाग, भारतजैन महामण्डल, लखि[illegible]
अहिंसा २ प्रति

पण्डित सूर्यदत्त शर्म्मा मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल विद्या[illegible]
होशंगाबाद
धर्मोपदेशरत्नमाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित विश्वनाथप्रसाद दुबे, मास्टर हिं० मि० स्कूल, आरंग
एडवर्ड काव्य
ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, जैनमित्र कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई,
अनुभवानन्द
ठाकुर रामहर्षसिंह वर्म्मा, मंत्री आर्यसमाज, कटावाँ, ज़िला सुलतांपुर
क्षत्रियसभासंजीवनी
बाबू कन्हैयालाल, जौहरी टोला, काशी
मधुपलतिका प्रथम भाग, कनककुसुम
पण्डित रामलग्न त्रिपाठी, ब्रह्मपुर, गोरखपुर
शिवनिर्माल्यग्रहणमीमांसा
बाबू शिवप्रसाद खरे, डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपरेण्टेण्डेण्ट का दफ़्तर-फ़ैज़ाबाद
आत्मबोध
बाबू राजेन्द्रनाथ मित्र, हिन्दी स्कूल, भवानीपुर, कलकत्ता
ज्ञानोदय
भट्ट श्रीबलभद्र शर्म्मा, बड़ा मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई
सिद्धान्तसिद्धापगा
बाबू तेजूमल मुरलीधर कनल, उत्तम खैराती भंडार, अहमदाबाद
हमारे देश की प्राचीन उन्नति
स्वामी सच्चिदानन्द जी, काशी
आर्यसमाज और सनातनियों में जो विवाद हुआ करता है उसका समाधान
श्रीमती विद्यावती देवी, ठी० बाबू कालिन्दीपतिराय, कमाल की इमली, काशी
विद्यापुकार
डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, बनारस
Annual Administration Report for 1912-13.
बाबू हरिदास माणिक, मिश्र पोखरा, काशी
मेवाड़ का उद्धारकर्ता
महाराणा सांगा और बाबर
भारत की प्राचीन झलक दूसरा भाग
माणिक आदर्श अर्थात् राजपूतों की बहादुरी पहिला भाग।
बाबू व्रजचन्द्र, चौखम्भा, काशी।
Catalogue of the Archeological Museum at Mathura.
गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, बम्बई
ब्रिटिश हिन्दुस्तान नो आर्थिक इतिहास द्वितीय भाग (गुजराती)
लंडार ना काल्पनिक संवाद द्वितीय भाग ,,
सामाजिक सेवा ना सन्मार्ग ,,
अरिस्टोटल नो नीति-शास्त्र ,,
अकबर ,,
मलेरिया ताव ,,
करवसनर ने उदारता ,,
पंडित बटुकप्रसाद मिश्र, सराय गोवर्द्धन, काशी
ब्राह्मणोत्पत्तिभास्कर
विश्वेश्वर फ़ार्मेसी, काशी
संतानरक्षा
बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी
कर्मवीर गान्धी २ प्रति
पंडित भीमसेन शर्म्मा, महाविद्यालय, ज्वालापुर, सहारनपुर
संस्कारचन्द्रिका
पंडित शंभूदयाल तिवारी, उदयपुर
व्याधिमर्दनामृत शिवस्तोत्रकाव्यम्
भारत की गवर्नमेन्ट
Fauna of British India Vol III, Fauna Diptera Nomotocera excluding Chironomide and Gulidide
पंडित गुरुदयाल त्रिपाठी वकील, रायबरेली
सांवले रामवंशचरित्र
जैनमित्रकार्यालय, बम्बई
नित्यनेम पूजा भाषा द्वितीय भाग
खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त
नारी उपदेश, उत्तररामचरित छाया, लक्ष्मी बहू, प्रेमलता, सावित्री सत्यवान, शांता, लक्ष्मी, कर्मवीर, सांसारिक सुख, आदर्श बहू, सीताराम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्याप्रबोध, कन्यापत्रदर्पण, जान स्टुअर्ट मिल का जीवनचरित, स्वाधीनता, प्रतिभा, सीतादेवी, रणवीर अभिमन्यु, आर्यगौरव, आर्यसंगीत-शतक, भारतमय स्वप्न, अपूर्व संग्रह, पद्यप्रबोध, दयानंदचरित, वैदिकविवाहादर्श, स्वाधीन विचार, घटनाघटाटोप, अर्थ में अनर्थ भाग १ और २, भूतनाथ की जीवनी छठा भाग ।

Indian Antiquary for June 1913 and Index Vol XLI of 1912

प्रेम और पवित्र जीवन

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

—:०:—

प्रबन्ध-कारिणी समिति

शनिवार तारीख़ ३० अगस्त १९१३ संध्या के ५¾ बजे

स्थान सभा-भवन

(१) तारीख़ ७ जुलाई और १२ जुलाई १९१३ के कार्य-विवरण उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए ।

(२) निश्चय हुआ कि इस वर्ष नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और उसके सहायक सम्पादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा नियत किये जाँय । नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास बी०ए०, लेखमाला के सम्पादक पंडित चन्द्र धर शर्म्मा, सुबोध व्या-ख्यान के निरीक्षक पण्डित रामनारायण मिश्र, आर्यभाषा पुस्तकालय के निरीक्षक बाबू वृजचन्द्र और नागरीप्रचार के निरीक्षक बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एलएल बी० इस वर्ष भी रहें ।

(३) निश्चय हुआ कि पंडित सरयूनारायण त्रिपाठी से प्रार्थना की जाय कि लेखमाला में जो ग्रीस का इतिहास और स्त्रियों के रोग नामक ग्रन्थ छप रहे हैं उनका सम्पादन वे कृपापूर्वक कर दें ।

(४) मंत्री ने सूचना दी कि इस वर्ष प्रबन्धकारिणी समिति के अधिवेशनों में उपस्थित न होने अथवा उनके सम्बन्ध में सम्मति न भेजने के कारण १३वें नियम के अनु-सार उस समिति में रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स, पण्डित माधवप्रसाद पाठक, बाबू जुगलकिशोर और कवि गोविन्द गिल्ला भाई के स्थान खाली हुए हैं ।

निश्चय हुआ कि इन स्थानों पर ये ही सज्जन पूर्ववत् नियत रहें ।

(५) निश्चय हुआ कि इस वर्ष प्रबन्ध-कारिणी-समिति के प्रधान बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० और उसके उप-प्रधान पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० चुने जाँय ।

(६) निश्चय हुआ कि मंत्री और उपमंत्री का कार्य-विभाग इस वर्ष किस प्रकार किया जाय इसे वे लोग स्वयं निश्चित करलें ।

(७) हरदोई के नागरी-प्रचारक पुस्तकालय और टुंडला के आनन्दभवन पुस्तकालय के पत्र उपस्थित किए गए जिनमें इन्होंने सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के लिये प्रार्थना की थी ।

निश्चय हुआ कि इन पुस्तकालयों को प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति अर्द्ध मूल्य पर दी जाय ।

(८) बाबू माधवप्रसाद का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा अन्यत्र की उत्तम और उपयोगी पुस्तकों को अपनी पुस्तकों के परिवर्तन में लेकर उनकी बिक्री भी किया करे ।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव इस समिति में बाबू माधव-प्रसादजी की उपस्थिति में विचारार्थ उपस्थित किया जाय ।

(९) वेतनवृद्धि के लिये बनारस की दीवानी अदालत के मोहर्रिर पण्डित काशिनाथ नायक पालना का प्रार्थनापत्र उप-स्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि १ नवम्बर १०१३ से इनके वेतन में १) रु० की मासिक वृद्धि की जाय ।

(१०) पण्डित ज्वालाप्रसाद शर्म्मा का यह प्रस्ताव उप-स्थित किया गया कि सभा पण्डित रामावतार पाण्डेय से हिन्दी में एक समाजशास्त्र लिखवावे और महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी भाषा का विशेष उपकार किया है अतः उनका एक चित्र सभा-भवन में लगवाया जाय ।

निश्चय हुआ कि समाजशास्त्र-विषयक प्रस्ताव पण्डित रामावतार पाण्डेयजी की सम्मति के सहित समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाय और महर्षि दयानन्द का एक चित्र सभाभवन में लगाया जाय ।

(११) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बाबू राधाकृष्णदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनचरित के लिये सभा ने उन्हें जो पदक देना निश्चित किया है उसे सभा किसी अन्य उपयोगी लेख के लिये अन्य सज्जन को देने के काम में लावे ।

निश्चय हुआ कि पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय और लिखा जाय कि यह मेडल उन्हें महाराज कुमार बाबू कृष्णप्रसाद सिंह की ओर से दिया गया है अतः इसे और किसी काम में लाने का सभा को अधिकार नहीं है ।

(१२) पण्डित राजमणि त्रिपाठी का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा व्यवहारपत्र दर्पण का एक संशोधित संस्करण तैयार करावे और इसके लिये यदि आवश्यक होगा तो वे सभा को अपने नोट्स भेज देंगे ।

निश्चय हुआ कि इस सम्बन्ध में उनसे नोट्स मंगवाए जाँय ।

(१३) पण्डित जगन्नाथ पुच्छरत का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे सभा द्वारा एक रौप्यपदक उस विद्यार्थी को दिया चाहते हैं जो "राजयक्ष्मा के कारण और उससे बचने के उपाय" पर एक सर्वोत्तम लेख लिखे ।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यदि वे इस पदक को वैद्य सम्मेलन के द्वारा दें तो उत्तम होगा ।

(१४) पण्डित कामताप्रसाद गुरु का १६ अगस्त का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने हिन्दी-व्याकरण के प्रथम भाग की संशोधित प्रति भेजी थी और इसे पूरा करने के लिए आठ मास का समय और माँगा था ।

निश्चय हुआ कि समिति ने इसे साधारण दृष्टि से जहाँ तक देखा है यह संतोषजनक हुआ है । इसे समाप्त करने के लिये पण्डित कामताप्रसादजी को आठ मास का समय और दिया जाय ।

(१५) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय के मंत्री का पत्र उपस्थित गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनके पादपद क्र० १ के निश्चय नं० ७ और १२ में लेखों की जो विषय-सूची दी है उन विषयों पर सभा अपने सभासदों से लेख लिखवा कर सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति के पास भेजवा दे ।

निश्चय हुआ कि सभासदों की सूचना के लिये इस विषय में एक नोट नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कर दिया जाय ।

(१६) जालन्धर से निकलनेवाले "भारत" नाम के उर्दू समाचारपत्र के सम्पादक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने पत्र के परिवर्तन में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका दिए जाने के लिये लिखा था ।

निश्चय हुआ कि एक वर्ष तक उन्हें बिना मूल्य पत्रिका दी जाय ।

(१७) पुस्तकालय के निरीक्षक के नाम पुस्तकाध्यक्ष का ३० अगस्त १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि (क) एक ही पुस्तक की दो दो तीन तीन प्रतियाँ होने के कारण जो पुस्तकें पुस्तकालय से निकाल दी गई हैं उनके स्थान की पूर्ति के लिये १५० नवीन पुस्तकों के क्रय करने की आवश्यकता है (ख) पुस्तकालय के कई सहायकों के यहाँ बहुत दिनों का चन्दा और कुछ पुस्तकें रुकी हुई हैं जिन्हें वे महाशय निरन्तर तगादा करने पर भी नहीं देते (ग) पुस्तकों के जिल्द बाँधने का कार्य सन्तोषजनक नहीं हो रहा है ।

निश्चय हुआ कि (क) क्रय करने के लिये डेढ़ सौ पुस्तकों की सूची समिति के सम्मुख उपस्थित की जाय और जो पुस्तकें पुस्तकालय से निकाली गई हैं वे नीलाम द्वारा बेच डाली जाँय, (ख) जिन सहायकों के यहाँ ३ मास से अधिक का चन्दा बाक़ी पड़ गया हो उनके नाम नियम ७१ के अनुसार सहायकों की नामावली से अलग कर दिए जांय और आगे से इस नियम पर विशेष ध्यान रक्खा जाय । चन्दे का जो रुपया और जो पुस्तकें सभासदों के यहाँ रुक गई हैं उन्हें उचित कार्रवाई द्वारा प्राप्त करने के लिये सब आवश्यक पत्र मंत्री के पास भेजे जाँय, (ग) पुस्तकालय का दफ़्तरी सब कार्यों के पहिले पुस्तकों की जिल्द बाँधने का कार्य देखे ।

(१८) बाबू श्यामसुन्दर दास के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि जो सज्जन सम्पूर्ण पृथ्वीराजरासो एक साथ मँगावें उनसे इसका मूल्य केवल २४) रु० लिया जाय और सभा के स्टाक में सम्पूर्ण ग्रन्थ की जितनी प्रतियाँ हों अलग अलग बंडलों में बँधवा ली जांय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९) वेतन वृद्धि के लिये सुखनन्दन मिश्र चपरासी का प्रार्थना पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि १ सितम्बर १९१३ से उसे ७॥) रु० मासिक वेतन दिया जाय।

(२०) बाबू श्यामसुन्दरदासजी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि भरोस कहार को मासिक वेतन में इस मास से १) रु० की वृद्धि की जाय और यह एक रुपया कोश-विभाग से उसे दिया जाय।

(२१) बाबू गौरीशंकरप्रसादजी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० और पण्डित कृष्णराम मेहता बी० ए० एल एल० बी० जिन्होंने एक एक सौ रुपया सभा के सहायतार्थ दिया है वे इस सभा के स्थायी सभासद चुने जांय और उनके चन्दे का रुपया स्थायी कोश में जमा करके ऋण चुकाने के काम में लाया जाय।

(२२) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गौरीशंकरप्रसाद मंत्री।

विशेष सूचना।

सभा को इस बात का बड़ा दुःख है कि क[illegible] कारणों से, विशेष कर प्रेसों की गड़बड़ी [illegible] नागरीप्रचारिणी पत्रिका कुछ काल से यथासम[illegible] नहीं निकल सकी। इस त्रुटि के दूर करने का बहु[illegible] कुछ उद्योग किया गया पर इसमें यथेष्ट सफल[illegible] नहीं प्राप्त हुई। अब से यह पत्रिका प्रयाग के इं[illegible] यन प्रेस में छपेगी। इसका प्रबन्ध करने में [illegible] कुछ समय निकल गया, इससे इसकी संख्याएं औ[illegible] भी पिछड़ गईं। अब यह जुलाई-अगस्त की यु[illegible] संख्या प्रकाशित की जाती है। आशा है कि इसी [illegible] मास में सितंबर-अक्तूबर की संख्याएं भी निकल [illegible] जायँ। इन दो अंकों की सामग्री प्रेस में भेज दी [illegible] गई है। इसके अनन्तर आशा है कि पत्रिका यथा[illegible] समय बराबर निकलती जाय।

हिंदी के लेखकों से भी सविनय प्रार्थना है कि इस पत्रिका को अपने लेखों से विभूषित करने की कृपा करें।

काशी—
७—११—१३

गौरीशंकरप्रसाद
मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A414
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

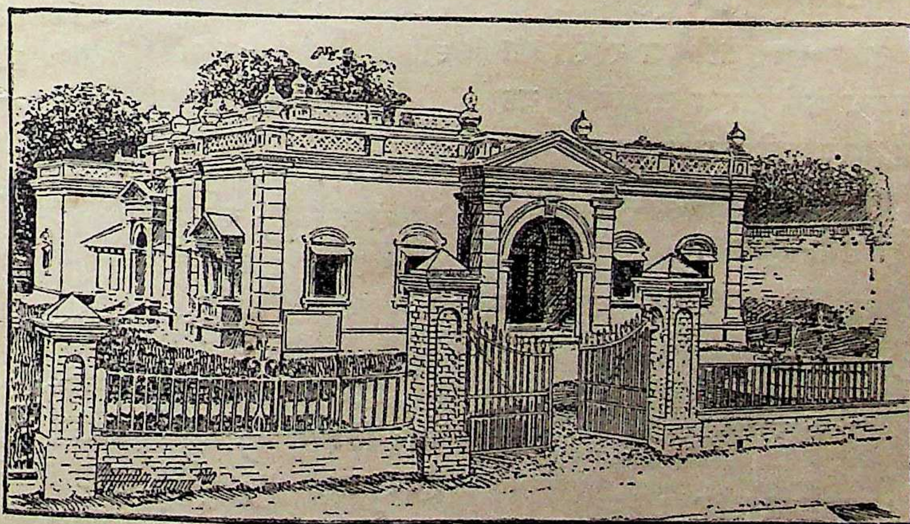
सितम्बर—अक्तूबर

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति का मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय सूची।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ

—:०:—

नवीन पुस्तकें

राज्य-प्रबन्ध शिक्षा—इस पुस्तक में इस बात की शिक्षा दी गई है कि राजा महाराजों तथा रईसों को अपने राज्यादि का प्रबन्ध कैसे करना चाहिये। यह एक बड़े अनुभवी महाशय की लिखी पुस्तक का अनुवाद है। सच तो यह यह है कि ऐसी पुस्तक आज तक दूसरी नहीं छपी—मूल्य ॥।)

राधाकृष्णदास का जीवन-चरित—छप कर तैयार है—मूल्य ॥=)

—:०:—

हिन्दी-शब्दसागर।

इसके पाँच अंक प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें १०७९८ शब्दों का ["अ" से लेकर "करोला" तक] सविस्तर वर्णन है। मूल्य प्रत्येक अंक का १) रु० है डाक-व्यय अतिरिक्त।

मंत्री-नागरीप्रचारिणी सभा—बनारस।

उपयोगी पुस्तकें।

इतिहास।

भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास (मिस्टर रमेशचन्द्रदत्त लि०) ४) मुगलवंश ≡) मेगास्थनीज ॥=) वरनियर की भारतयात्रा २) भारत का इतिहास ≡) बनारस का इतिहास ‑) राजस्थान का इतिहास २॥)

जीवनचरित।

शिवाजी ।) अहिल्याबाई ≡) देवीसहाय ≡) रामकृष्णदेव ।‑) विशुद्धानन्द ॥) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र १॥) सम्राट पंचमजार्ज ॥) बा० राधाकृष्णदास ॥=) महाराणा प्रतापसिंह (सचित्र) ।‑) श्रीकृष्ण ॥) मेज़िनी ।)

नाटक।

अंधेरनगरी =) रूपवती ≡) पद्मावती ।=) कृष्णकुमारी ॥) सरोजनी ॥) सती ॥) भारतजननी =) नाटक बनाने की विधि ।=)

स्त्री शिक्षा।

कुसुमसंग्रह १।) पंचबालिका =) सती-चरित संग्रह २) बनिताविनोद ॥=) सुघड़ दर्जिन ॥।) बालाबोधिनी ।=) रानी भवानी =) चाची ॥।)

उपन्यास।

वीर हम्मीर ≡) जीवनसन्ध्या ॥।) जीवनप्रभात १) संसार १) स्वर्णलता ॥।) माधवी ≡) रमाबाई ≡) कादम्बरी ॥=) दीपनिर्वाण ॥।)

फुटकर पुस्तकें।

हीरे का मोल ।) कथासरित्सागर ७) धर्म और विज्ञान २) देशी करघा ॥) व्याख्यान ॥=) हैदर अली ॥) नवीन दृष्टि में प्रवीण भारत १) हवाई नाव ।) सूर्यकांता ॥) चमनिस्तान १) हास्य विलास ।=) सलीमा बेगम ।‑)

बड़ा सूचीपत्र मँगा देखिए।

पता☞बालमुकुन्द वर्मा

नैपालीखपरा, बनारस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १८ } सितम्बर और अक्तूबर १९१३ { संख्या ३—४

वर्त्तमान कालिक हिन्दी-साहित्य के गुण-दोष। *

(ले० पंडित श्यामविहारी मिश्र और पंडित शुकदेव विहारी मिश्र)

हमारे यहाँ काव्य शब्द से केवल पद्य काव्य का आशय नहीं निकलता, जैसा कि अँगरेज़ी शब्द पोइट्री से है। यहाँ गद्य और पद्य दोनों में काव्य हो सकता है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग हुई, परन्तु उस समय की रचनायें अब हस्तगत नहीं होतीं। सबसे प्रथम की रचना जो अब मिलती है और जिसे काव्य भी कहना चाहिये, वह महाकवि चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराजरासो है। इस ग्रन्थ में बहुत कर शृंगार तथा युद्ध के वर्णन हैं। इस में वीर और शृंगार रसों का अच्छा चमत्कार है।

हम ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में संवत् ७०० से लेकर अब तक का साहित्य-काल आठ विभागों में बाँटा है। संवत् १५६० तक महात्मा सूरदास का रचना-काल नहीं प्रारम्भ हुआ था। अतः इस समय तक पूर्व प्रारम्भिक काल (७००—१३४३), उत्तर प्रारम्भिक काल (१३४४—१४४४) और पूर्व माध्यमिक काल (१४४५—१५६०) माने गये हैं। १५६१ से गोस्वामी तुलसीदास के मरण काल १६८० तक प्रौढ़ माध्यमिक काल माना गया है। इसके पीछे १७९० तक पूर्वालंकृत काल, १८८९ पर्यन्त उत्तरालंकृत काल, १९२५ तक परिवर्त्तन काल और १९२६ से अब तक वर्त्तमान काल चलते हैं। इन समयों के नाम इनकी भाषाओं का भी कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। वर्त्तमान समय के गुण दोष जानने के लिये आवश्यक प्रतीत होता है, कि इन समयों की भाषाओं की दशाओं का संक्षेप में कुछ कथन कर दिया जाय।

पूर्व प्रारम्भिक समय में भाषा प्राकृत-मिश्रित थी और वीर, शृंगार एवं कथा-विभागों का प्राधान्य रहा, परन्तु ये कथायें विशेषतया धर्म्म-सम्बन्धिनी न थीं। उत्तर प्रारम्भिक काल में कवियों ने भाषा

* यह लेख हिंदी साहित्यसभा लखनऊ के एक अधिवेशन में जो ११ अक्तूबर १९१३ को हुआ था, पढ़ा गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्राकृत से छुटकारा देना चाहा, या यों कहें कि देश से प्राकृत भाषा का साम्राज्य बिल्कुल उठ गया। फिर भी, जैसा कि स्वाभाविक था, कोई एक भाषा प्राकृत के स्थान पर न जम सकी और लोगों ने ब्रज, अवधी, राजपूतानी, खड़ी और पूर्व भाषाओं में रचना की, परन्तु यह विशेषता ब्रजभाषा को अवश्य मिली कि अपनी अपनी प्रान्तिक भाषाओं के साथ कवियों का उसकी ओर भी कुछ कुछ झुकाव देख पड़ा। इस स य र, श्रृंगार, शान्ति और कथा प्रासंगिक रचनाओं का प्राधान्य रहा और कथा-विभाग ने धर्म्मकथाओं से सम्बन्ध जोड़ा और राज-यश-कीर्त्तन से उसका सम्बन्ध शिथिल पड़ा। गद्य काव्य का भी आरम्भ इसी काल में हुआ और महात्मा गोरखनाथ पहले ब्राह्मण कवि थे, जिन्होंने हिन्दी को भी अपनाया। इनके पूर्व वाले कवि गण ब्रह्म भट्ट थे और कुछ मुसलमान। पूर्व माध्यमिक काल में ब्रज, अवधी, पूर्वी और पंजाबी भाषाओं का प्राधान्य रहा और शान्ति, कथा तथा नाटक विभागों में रचना विशेष हुई। इस समय में हिन्दी ने अच्छी उन्नति की और उसमें विद्यापति ठाकुर तथा कबीर-दास जैसे सुकवि हुये। इस काल में ब्रज-भाषा का बल बढ़ चला और धार्म्मिक विषयों की प्रतिभा देदीप्यमान हुई।

प्रौढ़ माध्यमिक काल से हिन्दी की उन्नति बहुत ही सन्तोषदायिनी हुई। इस समय में धार्म्मिक पुनरुत्थान के साथ वैष्णवता का बल बहुत बढ़ा और महात्मा वल्लभाचार्य्य, चैतन्य महाप्रभु, हितहरि-वंश, रामानन्द और हरिदास की शिक्षाओं के प्रभाव हिन्दी भाषा के पूर्ण उन्नायक हुये। इस प्रकार वैष्ण-वता का भाषा-साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और धार्म्मिक रचनाओं ने हिन्दी को भारी प्रभा प्रदान की। वैष्णवता का सम्बन्ध मथुरा और अयोध्या से विशेष था। मथुरावासी कवियों ने अधिकता से भजनों द्वारा ब्रजभाषा में कृष्ण-यश-गान किया और अयोध्या वालों ने कथा प्रासंगिक ग्रन्थों में अवधी भाषा द्वारा राम-यश गाया। इनमें दोहा चौपाइयों की विशेषता थी। माथुर कवियों में सूरदास सर्वप्रधान थे और इधर तुलसीदास। परन्तु इन दोनों महात्माओं को छोड़ कर उधर (माथुर) के कवियों और उनकी प्रणाली को अनेकानेक परमो-त्कृष्ट कवियों द्वारा बड़ी ही सहायता मिली और अवधी भाषा का प्रताप ब्रजभाषा के सामने बहुत मन्द रहा। माथुर वैष्णवता के साथ कृष्ण-यश-गान की प्रथा ने बहुत भारी बल पाया और साहित्य प्रथानुयायी अन्य सुकवियों ने उसी का अनुसरण किया, जिस से आगे चलकर श्रृंगारी विषयों की इतनी भरमार हुई कि अन्य साधारणतया रुचिकर एवं लोकोपकारी विषयों की कुछ भी सन्तोषकारिणी उन्नति न हो सकी। यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे विषयों का हमारे यहाँ अभाव है, परन्तु आनु-षंगिक दृष्टि से इन की बड़ी ही मन्द दशा है। इस समय के द्वितीयार्द्ध में अकबर के राजत्वकाल की स्थिर की हुई शान्ति ने वैष्णवता के साथ हिन्दी को पूरा लाभ पहुँचाया और उसका अच्छा विकास हुआ।

पूर्वालंकृत काल में भारत में वीरता का अच्छा प्रादुर्भाव हुआ और चिरविमर्द्दित हिन्दुओं ने बल पकड़ कर चिर स्थापित मुसलमानी राज्य का ध्वंस किया। ऐसी दशा में वीर काव्य का बाहुल्य स्वाभा-विक था और वह हुआ भी, परन्तु दृढ़तापूर्वक संस्थापित श्रृंगार काव्य का बल कुछ भी शिथिल नहीं हुआ। प्रौढ़ माध्यमिक काल में श्रृंगार, शान्ति और कथा विभागों का बल था परन्तु इस काल में वीर, शान्ति और रीति विभागों का प्राधान्य हुआ। उस समय में ही भाषा बहुत अच्छी उन्नति कर चुकी थी, सो इस काल में कवियों ने उसे अनुप्रास और भाषालंकारों से विभूषित करने का विशेष ध्यान रक्खा, जिस से उसकी छटा और भी बढ़ गई। उस समय ब्रजभाषा के साथ अवधी का भी कुछ बल था, परन्तु इस अलंकृत काल में ब्रजभाषा का बल और भी बढ़ा और अवधी का घट गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरालंकृत काल में अवधी ने कुछ उन्नति की और खड़ी बोली का भी कुछ कुछ प्रचार हुआ। इस में शृंगार और रीति विभागों का बल बहुत ही बढ़ा, तथा कथा ने भी फिर प्रबलता ग्रहण की। परिवर्त्तन काल में अवधी भाषा दब गई और ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली की प्रबलता हुई। इस में शृंगार का बल कुछ घट गया और गद्य ने प्रबलता पाई। इस में प्राचीन और नवीन विचारों में नोंक झोंक सी रही, क्योंकि अब अँगरेज़ी राज्य हो जाने से देश के साथ पाश्चात्य सांसारिक लाभप्रदायक नये विचारों का पदार्पण भाषा-साहित्य में भी हो रहा था। वर्त्तमान काल में गद्य और कथा-विभागों का बहुत बल है, तथा शान्ति, स्फुट और नाटक विभागों की भी कुछ प्रबलता है। अब लेखकों ने लोकोपकारी विषयों की ओर भी बहुत अच्छा ध्यान दिया है और लाभकारी पुस्तकों के अनुवाद भी हमारे यहाँ बहुतायत से हो रहे हैं। सूक्ष्म रीति से हमारे साहित्य की उत्पत्ति से अद्य पर्य्यन्त यह दशा रही है। इस पर ध्यान देने से आज की एकत्रित विद्वन्मंडली को आगे कहे जाने वाले गुण दोषों के समझने एवं उनके कारण जानने में विशेष सुभीता होगा।

वर्त्तमान साहित्य प्राचीन काव्य से तीन परम प्रधान बातों में भिन्न है, अर्थात् खड़ी बोली प्रचार, गद्य-गौरव और लोकोपयोगी-विषय-समादर। ये तीनों बातें वर्त्तमान साहित्य को ख़ूब ही गौरवान्वित करती हैं। इन तीनों भेदों का प्रादुर्भाव हमारी भाषा में अँगरेज़ी राज्य के कारण हुआ है। पूर्वीय और पाश्चात्य देशों में बहुत दिनों से संसारीपने की शिथिलता एवं प्रबलता का मुख्य भेद रहा है। हमारे यहाँ दया और संसार की असारता के भावों का बहुत दिनों से उचित से बहुत अधिक साम्राज्य रहा है। यहाँ दीन को देख कर उसे दान देने की इच्छा ऐसी बलवती रही कि उचितानुचित का विचार दाताओं के ध्यान से निकल सा गया। उन्होंने प्रायः यह नहीं सोचा कि दीन मनुष्य के दैन्य के कारण उसी के दुर्गुण हैं अथवा कुछ और। इस प्रकार कुपात्रों का दान हमारे यहाँ बहुत प्रचलित होगया, जिससे देश के द्रव्योत्पादक बल को भारी हानि पहुँची। देश के लिये वही दान लाभकारी है, जिससे भविष्य के द्रव्योत्पादक बल की वृद्धि हो। कुपात्रों को इतना बहुतायत से दान मिला कि हमारे यहाँ जीवन होड़ का उचित बल कभी नहीं हुआ, जिससे धनोपार्ज्जन में कमी हो कर देश में अवनति आगई और जातीय बल खोकर हम दानी लोग भी पतित और नीच हो गये। यही दशा बहुत करके स्याम, चीन, बरमा, लंका, जापान आदि सभी पूर्वीय देशों की हुई। जापान ने तो अपनी दशा सुधार ली, परन्तु अन्य देश अब तक अधःपतित दशा में हैं। भारत में अँगरेज़ी प्रताप से अब समुचित उन्नति हो रही है, यद्यपि हम लोगों की कादरता से उसमें अभी सन्तोषदायिनी शीघ्रता नहीं है।

वर्त्तमान साहित्य-प्रणाली के गुण दोषों में मुख्यता इसी उपर्युक्त कादरता के अभाव अथवा अस्तित्व पर निर्भर है। लोकोपकारी विषयों को आदर देने वाली नवीन प्रथा का स्थिर हो जानाही एक बहुत बड़ा उत्साहप्रद कार्य्य है। जैसी देशदशा होगी, वैसीही कविता भी स्वभावतः होगी। प्राचीन काल में जीवन-होड़ (struggle for existence) की निर्बलता से लोकोपकारी विषयों की ओर हमारे कविजन का विशेषतया ध्यान नहीं गया, यद्यपि यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि अन्य बातों में उन्होंने साहित्य-गरिमा पूर्णता को पहुँचा दी। इस समय उन्नायक दल के लेखकों की रचनायें विशेषतया इन्हीं विषयों से भरी रहती हैं, यद्यपि ब्रजभाषा के अनेकानेक कविजन अब तक प्राचीन प्रथा पर ही चलते हैं और उपर्युक्त नवीन भावों का आदर अज्ञान अथवा विचारशून्यता से नहीं करते। इस समय भी प्राचीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अधिक है, परन्तु उनकी संख्या दिनों दिन घटती जाती है और नवीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अच्छी शीघ्रता से बढ़ रही है। इन बातों पर विचार करने से चित्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम प्रसन्न होता है। गद्य काव्य से ब्रजभाषा का प्रयोग अब बिलकुल उठ गया है और पद्य से भी उठता जाता है। गद्योन्नति अधिकतर अवस्थाओं में देशोन्नति की सहगामिनी होती है। गद्य में प्रायः कारबारी विषयों का आधिक्य रहता है, और ऐसे ग्रन्थ तभी लिखे जाते हैं, जब देश में कारबार की प्रचुरता होती है। कारबारी ग्रन्थों के अतिरिक्त दर्शन, रसायन आदि के ग्रन्थ गद्य में पाये जांयगे। ये भी देशोन्नति के साथही चलते हैं। खड़ी बोली की उन्नति ऐक्य के कारण होती है। जब समस्त देश के विविध प्रान्त एक दूसरे से एकपन का भाव बढ़ाते हैं, तभी उन के चित्त में एक भाषा की भी आवश्यकता जान पड़ती है। अधिक दशाओं में सबको पसन्द आनेवाली कोई एक-देशीय भाषा न होगी। सब लोग प्रायः सर्व-व्यापिनी भाषा को ही पसन्द करेंगे। ऐसी भाषा खड़ी बोली ही है। इसी लिये अँगरेज़ी राज्य द्वारा ऐक्य वर्द्धन के साथ ही साथ खड़ी बोली की महिमा बढ़ी और एक-लिपि-विस्तार परिषद ने भारतवर्ष भर में एक लिपि जारी करने का शुभ प्रयत्न किया और कर रहा है।

अँगरेज़ी के नवागत भावों ने जातीयता-वर्द्धन में अच्छी सहायता दी, जिससे मातृभूमि-माहात्म्य, भ्रातृ-प्रेम, ऐक्य आदि विषयों पर साहित्य-रचना होने लगी है, जो वर्त्तमान समय के उन्नत विचारों का अच्छा परिचय देती है। प्राचीन समय में कवियों ने भक्ति, हिन्दूपन आदि पर समय समय पर ध्यान दिया और इन विषयों पर कवितायें भी प्रचुरता से बनीं, विशेषतया भक्ति पक्ष पर। फिर भी उस समय जातीयता के अभाव ने भारतवर्ष भर को एक समझने वाले विचारों को नहीं उठने दिया और इसलिये देशहित-सम्बन्धी साहित्य का चलन बिलकुल नहीं हुआ। वर्त्तमान गद्य-महिमा ने लोकोपयोगी विषयों की अच्छी उन्नति की है और दिनों दिन ऐसे ग्रन्थ बनते एवं अनुवादित होते जाते हैं। इन कारणों से केवल हिन्दी पढ़े हुये पाठकों को भी उन्नत विषयों के जानने का सुभीता होगया है। कभी कभी लेखक गण यह बात भूल से जाते हैं और ग्रन्थ के बीच में अँगरेज़ी शब्दों एवं वाक्यों को बिना अनुवाद किये भी ऐसा लिख देते हैं, मानों सभी लोग अँगरेज़ी जानते हैं। ऐसी दशाओं में अँगरेज़ी कोष्ठक (bracket) या पृष्ठपाद की टिप्पणी (footnote) में लिखना अच्छा है। आज कल लेखक बाहुल्य से उपयोगी ग्रन्थ-बाहुल्य की भी अच्छी वृद्धि हुई है जिससे भाषा-ग्रन्थभाण्डार-भरण बहुत उत्तमता से हो रहा है और हुआ भी है। इन बातों से गत तीस पैंतीस वर्षों में विविध उपयोगी विषयों का भाषा-भाण्डार इतना भरा, जितना कि इससे तिगुने समय तक किसी काल में नहीं हुआ। प्रायः २० वर्षों से समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं की भी अच्छी वृद्धि हुई है। इनसे केवल हिन्दी जानने वालों को विविध भाँति के समाचारों एवं विचारों के जानने का अच्छा सुभीता मिला है। इन में एक भारी दोष भी है कि अधिकतर पत्रों के सम्पादक प्राचीन विचाराश्रयी और बहुधा पूरे पुरानी लकीर के फ़क़ीर होते हैं। इन लोगों के कारण बहुतेरे लोगों के पुराने अशुद्ध विचार हटने के स्थान पर और भी दृढ़ हो जाते हैं। यह दोष पत्र प्रथा का नहीं है, वरन आज कल के हमारे मानसिक अधःपतन को प्रकट करता है। पत्रों के मालिकों को सम्पादक नियत करने में बहुत सोच विचार करना चाहिये, क्योंकि उनकी थोड़ी सी भूल से हज़ारों भाइयों के विचार गन्दे हो सकते हैं। संवत् १९५७ में हमने साहित्य-प्रणाली के तत्कालीन दोषों पर विचार करने में समस्यापूर्ति के पत्रों की वृद्धि पर खेद प्रकट किया था। हर्ष का विषय है कि अब ऐसे पत्रों का बल बिलकुल टूट सा गया है।

वर्त्तमान काल की गद्य-प्रणाली का सूत्रपात लल्लू लाल एवं सदल मिश्र के समय संवत् १८... में हुआ था और उसकी वृद्धि सितारे हिन्द राजा शिवप्रसाद ने की। येही महाशय (सं० १९...) प्रथम गद्य-लेखक थे कि जिन्होंने शुद्ध खड़ी बोली का गद्य में प्रयोग किया और ब्रजभाषा को बिलकुल छोड़ दिया। इनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द ने श्रेष्ठतर गद्य में रचना की। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से गद्य ने बहुत ही अच्छी उन्नति की। आज कल के अच्छे अच्छे गद्य-लेखक उस समय से भी श्रेष्ठतर भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा ने उन्नति करते करते अब अच्छा रूप ग्रहण कर लिया है, परन्तु फिर भी एक दोष यह है कि अब तक उन्नत भाषा लिखने में लोग संस्कृत भाषा के कठिन शब्द लिखना ही अलम् समझते हैं, और ऐसे ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न नहीं करते कि जैसे अँगरेज़ी के बड़े बड़े लेखक लिखते हैं और बहुत दिनों से लिखते आये हैं। अब तक गद्य में दर्शन, रसायन, विज्ञान, कारबार आदि के ग्रन्थ विशेषता से बने हैं, परन्तु ऊँचे साहित्य संबन्धी गद्य ग्रन्थ बहुत कम देख पड़ते हैं। गद्य में अलंकारों, रसों, प्रबन्धध्वनियों तथा अन्यान्य काव्यांगों को लाकर उसे उत्कृष्ट एवं कठिन बनाने का अभी पूरा क्या प्रायः कुछ भी प्रयत्न नहीं हुआ है। आशा है कि इस ओर हमारे लेखकगण ध्यान देंगे। भाषा गद्य की वास्तविक अवस्था अभी केवल ६० वर्ष की है। इससे उपर्युक्त प्रकार की ऊँची लेखन-शैली की ऊनता अभी उत्साह-विनाशिनी नहीं है, परन्तु लेखकों को इस ओर अब ध्यान अवश्य देना चाहिए।

अब तक हमारे लेखकों ने भाषा के गूढ़ीकरण में संस्कृताश्रय लेना ही आवश्यक जान रक्खा है, परन्तु इस बात पर सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अन्य भाषाश्रय किसी भाषा को बड़ा नहीं बना सकता। संस्कृत और भाषा में बहुत दिनों से संबन्ध अवश्य चला आता है, परन्तु इसकी वृद्धि भाषा-गौरव-वर्द्धिनी कदापि नहीं हो सकती। जैसे मनुष्यों के लिये आत्मनिर्भता एक आवश्यक गुण है, वैसे ही वह भाषाओं के लिये भी है। किन्तु आज कल के लेखक इस अनुपम गुण को भूल कर भाषा को संस्कृत की सेवकिनी बनाना चाहते हैं। शुद्ध भाषा के लिये व्याकरण की आवश्यकता है, परन्तु व्याकरण भाषा का अनुगामी होना चाहिए, न कि भाषा व्याकरण की। जिस भाषा का व्याकरण जैसा ही कठिन और दुर्बोध होगा, उस भाषा का वैसी ही शीघ्रता से पतन होगा। इसी कारण से संस्कृत आर्य्यों की भी मातृभाषा न रह सकी और केवल पुस्तकों में उसका प्रचार रह गया। यही दशा यथा समय प्राकृत की हुई। सर्वसाधारण बिना कुछ विशेषतया पढ़े लिखे दुर्ज्ञेय व्याकरणों के नियमों को हृदयंगम नहीं कर सकते। इसी लिये कठिन व्याकरणों के नियम स्थिर नहीं रह सकते और यदि बढ़ते बढ़ते वे भाषा के अंग हो जाते हैं तो उसका विनाश ही कर देते हैं। आज कल अनेक लेखकों में संस्कृत के नियमों के यथासम्भव भाषा में लाने की रुचि बढ़ती देख पड़ती है। संस्कृत में लिंग-भेद ऐसा कठिन है कि अनेक स्थानों पर बिना कोष देखे उसका ज्ञान ही दुस्तर हो जाता है। इन बातों का भाषा में लाना अनुचित है।

हमारी भाषा की श्रुतिमधुरता उसकी एक प्रधान महिमा है। संस्कृत में मिलित वर्णों के आधिक्य से आचार्य्यों ने श्रुतिकटु शब्द बहुत कम माने हैं, परन्तु हमारी भाषा में प्राचीन काल से आचार्य्यों एवं कवियों ने मिलित वर्णों को छन्दों में बहुत कम आने दिया है और बहुत से ऐसे शब्दों को श्रुतिकटु माना है। इसी कारण प्राचीन रचनाओं में कर्कशता का ऐसा अभाव है कि अन्य भाषा-प्रेमी लोग यदि हमारी भाषा की निन्दा तक करते हैं, तो भी उसके माधुर्य्य की प्रशंसा अवश्य कर देते हैं। खड़ी बोली के कवियों ने आजकल इस अनुपम गुण को प्रायः बिल्कुल ही विसरण कर दिया है। एक तो खड़ी बोली में बिना ख़ास प्रयत्न के श्रुतिकटु आही जाता है, और दूसरे ये लोग संस्कृत-शब्दानुरागी होने से और भी मिलित वर्णों की भरमार रखते हैं, जिससे खड़ी बोली के छन्दों से श्रुतिमाधुर्य्य का लोप हुआ जाता है।

इस एवं अन्य कारणों से आजकल खड़ी बोली में प्रायः शुष्क-काव्य पाया जाता है और नीरसता का ऐसा समावेश है कि दस पृष्ठों की भी कविता साद्यन्त पढ़ जाना बड़े धैर्य्यवान् व्यक्ति का काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वर्त्तमान कविगण प्रायः प्राचीन आचार्य्यों के ग्रन्थ अध्ययन किये बिना साहित्य रचना करने लगते हैं और कुछ लोगों में अहंकार की मात्रा ऐसी बढ़ी हुई है कि वे अपनी शिथिलातिशिथिल रचनाओं के आगे भी नामी आचार्य्यों तक के ग्रन्थों को पुराने, समय प्रतिकूल और भदेसिल समझते हैं। इन कारणों से वर्त्तमान खड़ी बोली के छन्दों में उच्छृंखलता की मात्रा बहुत आ गई है। खड़ी बोली के कवि गण दीर्घान्त छन्दों में भी ह्रस्व शब्द से काम प्रायः लेते हैं और यतिभंग दूषण से भी नहीं बचते। एक तो खड़ी बोली कविता मात्रा में कम है और दूसरे कवियों की उच्छृंखलता से ऐसी नीरस तथा शिथिल बनती है कि प्राचीन प्रथानुयायी उसको बिरहा, पँवारा आदि के ही समान बतला कर उसका उपहास करते हैं। आजकल की पद्य-रचनाओं में शाखाचंक्रमण तथा सुप्रबन्धाभाव के बड़े ही विकट दूषण आ जाते हैं। शाखाचंक्रमण कवियों का एक शाखा से दूसरी शाखाओं पर बार बार कूदने के समान रचना करने को कहते हैं। किसी भाव को लेकर उसे कुछ दूर चलाना चाहिए और उसके सम्बन्धी भावों एवं उप-भावों को उसके समीप स्थान देना चाहिए, जिससे रस की पूर्ति हो, न यह कि एक भाव का कथन मात्र करके दूसरे पर कूद जाना। यदि सूर्य्य की किरणों का वर्णन उठावे तो उनकी मालाओं, संख्या-बाहुल्य, तेज, नेत्रों के चकाचौंध करने का बल, कमल खिलाना, संसार में उष्णता के ह्रास या वृद्धि से ऋतुओं का बदलना, फलों का पकाना, रसों का उत्पन्न करना, संसार की जीवन वृद्धि आदि अनेकानेक गुणों में से कुछ भी कहे बिना दूसरे भाव पर झट से कूद जाना साहित्य-शक्ति-हीनता का ही प्रमाण देगा। सुप्रबन्ध गुण वर्णन पूर्णता ही में आता है। जिस कथन को उठावें उसका सांगोपांग कथन कविता-शक्ति का एक अच्छा प्रदर्शक है। यदि किसी में बहुत ऊँचे ऊँचे विचार लाने का बल न भी हो, तो केवल सुप्रबन्ध से वह सुकवि माना जायगा। आजकल बहुधा लोग न ऊँचे विचार ही लाते हैं और न सुप्रबन्ध की ओर ही कुछ ध्यान देते हैं। यदि मतिराम की रचना देखी जावे तो विदित होगा कि इस कविचूड़ामणि में कितना अधिक भाव पुष्टीकरण का गुण वर्त्तमान है। इसी कारण से प्राचीन प्रथानुयायी कविगण शिष्यों को रसराज ग्रन्थ सब से पहले पढ़ाते हैं। आजकल सुप्रबन्ध का ऐसा भारी निरादर है कि बहुतेरे विज्ञ लोग भी मतिराम आदि महाकवियों को महा साधारण कवि कहने में नहीं हिचकते। सुप्रबन्ध का अभाव एवं शाखाचंक्रमण का समादर अधिकतर वर्त्तमान नये प्रकार के कवियों की रचनाओं को कलंकित कर रहा है। इसका मुख्य कारण आचार्य्यों का निरादर एवं साहित्य रीति पठन पाठन प्रणाली का तिरस्कार है। लोगों को भाषा-साहित्य के विषय में कुछ जान कर तब छन्द रचना आरम्भ करनी चाहिए। बहुत लोग समझते हैं कि संस्कृत-काव्य-प्रणाली जानने से ही वे भाषा-साहित्य के पण्डित कहलाने के योग्य हो जाते हैं। यह भारी भूल है। यदि हमारे आचार्यों के रीति-ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि उन्होंने कितना श्रम एवं चातुर्य्य का फल अपनी रीति-रचनाओं में रक्खा है और संस्कृत-रीतियों से भाषा में कितना भेद है?

आज कल कल पद्य-रचना की बड़ी हीनता है और नवीन विचारों के पाठकों तथा सम्पादकों में बड़ा ही विकराल पद्य-निरादर है। हमीं ने दो तीन घंटों में जो गद्य लेख बिना ख़ास परिश्रम के लिख डाले, उन्हें तो सम्पादकों ने बड़े चाव से प्रकाशित किया और दस दस दिन के प्रयत्नों के फलस्वरूप छन्दों को सम्पादकों ने शील संकोच से काट छाँट कर छापा, यद्यपि उन्हों ने गद्य में कहीं एक मात्र भी नहीं घटाई बढ़ाई। इस पद्य-निरादर से भी खड़ी बोली की महिमा पद्य-काव्य में घट रही है अथवा होने नहीं पाती है। हमारे यहाँ प्राचीन कवियों ने अधिकतर दशाओं में धार्मिक कथाओं का ही कहना उचित माना। फल यह हुआ कि मेवाड़, जोधपुर, बूँदी, सिरोही, बुन्देलखंड, रीवाँ, दक्षिण आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैंकड़ों महाराज एवं महापुरुष हो गये हैं जिनके गुण-कथन से कवि-शक्ति-स्फुरण एवं जातीयता-वर्द्धन हो सकता है, परन्तु इनके वर्णन न प्राचीन प्रथा के कवियों ने किये और न नवीन प्रणाली के लोग करते हैं। हमारे यहाँ पद्य-संबन्धी विषय-बाहुल्य और उसका अनुपयोग देखकर बड़ा शोक होता है। आजकल गद्य-संबन्धी साधारण से साधारण विषयों पर भी लेखकों का ध्यान रहता है, यहाँ तक कि सात आठ सौ गद्य-लेखक आज वर्त्तमान हैं, परन्तु पद्य लेखकों की संख्या और उनके द्वारा सद्विषयों का सदुपयोग दोनों बड़ी हीनावस्था में हैं। हमारे यहाँ महाकाव्यों का प्रायः अभाव सा है। महाकाव्य ग्रन्थ का लक्षण संस्कृत के ग्रन्थों में दिया है। उसमें सात से अधिक अध्याय हों, किसी महापुरुष का वर्णन और प्रसंग वशतः सागर, नदी, पहाड़, जंगल, प्रातःकाल, सायंकाल आदि प्राकृतिक सुघराइयों के कथन होने चाहिए। ऐसे ग्रन्थ सभी भाषाओं के शृंगार होते हैं। प्राचीन कवियों ने ऐसे ग्रन्थ कुछ कुछ बनाये भी परन्तु वर्त्तमान समय में लोगों का ध्यान इस ओर नहीं है।

प्राचीन काल में तुकान्तहीन छन्दों की रचना बिलकुल नहीं हुई, परन्तु वर्त्तमान समय में इस ओर रुचि देख पड़ती है। ऐसे छन्दों की रचना बहुत लाभदायक और गौरव की बात है। आशा है कि भविष्य में इस विषय की उन्नति होगी।

हमारे प्राचीन प्रथानुयायी कविगण पुराने ढर्रे पर अब भी चले जा रहे हैं। उनमें अधिकांश लोग स्फुट छन्द, शृंगार काव्य और शृंगारपूर्ण षट्ऋतु एवं रीति-ग्रन्थों की रचना अब तक उचित समझते हैं, विशेष कर नायिका-भेद की। ऐसी रचनायें उचित से बहुत अधिक हो गईं हैं और अब इनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है।

हमारे यहाँ नाटक-विभाग ने भी अब तक समुचित क्या कुछ भी उन्नति नहीं की है। भारतेन्दुजी ने इसको जन्मदान सा दिया, परन्तु अभी तक इस की कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। आशा है कि कविजन इस ओर विशेषतया ध्यान देंगे, ख़ास कर इस कारण से कि नाटकों के उपयोगी विषय और अवर्णित कथायें प्रचुरता से प्रस्तुत हैं। उपन्यास-विभाग की हमारी भाषा में बड़ी ही कमी और साथ ही साथ भरमार है। असम्भव कथायें और अशिक्षाप्रद असत्य घटनायें तो हमारे यहाँ सैकड़ों उपन्यासों में कही गईं हैं, परन्तु पाठ योग्य उचित उपन्यासों की नितान्त ऊनता है। इस ओर हमारे उपन्यास-लेखकों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। हमारे हज़ारों महापुरुषों के चरित्र गाये जाने को पड़े हैं। उन पर ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने से वर्त्तमान असम्भव कथाओं का कथन कहीं निकृष्टतर है। फिर प्रत्येक उपन्यास का कोई मुख्य भाव होना चाहिए। उसे हमारे किसी प्रधान अवगुण के हटाने अथवा गुण-प्राप्ति की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिए। हमारे यहाँ समालोचना विभाग की भी समुचित उन्नति होनी चाहिए। आज कल की बहुतेरी समालोचनायें ईर्ष्याद्वेषजन्य होती हैं। समालोचना लिखने के लिये आलोच्य विषय से सहृदयता आवश्यक है। इस गुण और अच्छे परिश्रम के अभाव में आलोचनायें ज्योतिप्रदान के स्थान पर अन्धकार-वर्द्धन से भी बुरा काम करती हैं, क्योंकि वे कुछ न जानने वाले को मिथ्या ज्ञान प्रदान करती हैं। कोई अज्ञ भी मिथ्याज्ञानाभिमानी से कहीं श्रेष्ठतर है। समालोचना ग्रन्थ भी अब तक बहुत ही कम बने हैं।

आजकल के गद्य-लेखकों के सब से बुरे अवगुणों में से चोरी, सीनेज़ोरी, परावलम्बन, विचार-परतन्त्रता, अनात्मनिर्भरता आदि हैं। प्राचीन प्रथा के लेखक पुरानी लकीर के फ़क़ीर हो रहे हैं और नवीन प्रणाली वाले पाश्चात्य नवीन और प्राचीन लेखकों के दास। लेखकों में बहुत अधिक लोग यह भूल गये हैं कि उनके सिरों में भी एक एक दिमाग़ है। प्राचीन प्रथानुयायी लोग सभी प्राचीन बातों को सिद्ध किया चाहते हैं और नवीन प्रणाली के अवलम्बी प्रायः सभी प्राचीन मतों और लेखकों को प्राचीन अस्थि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिंजर (old fossils) समझते और पश्चिम के सम्मुख अपने देश के पूर्वजों एवं भाइयों को नितान्त मूर्ख मानते हैं। ये दोनों बातें बिल्कुल अशुद्ध हैं, ऐसा प्रकट है और सभी मानते हैं, यहाँ तक कि उपर्युक्त प्रकार के लेखक भी वचन द्वारा यही कहते हैं और समझते हैं कि वे इसी कथनानुसार चलते भी हैं, परन्तु वास्तव में उनके आचरण उनको उपर्युक्त दो विभागों में से एक में डालते हैं। वे अपने आप को भूले हुए हैं और यहाँ तक भूले हुए हैं कि पराये विचारों एवं सिद्धान्तों को ख़ास अपने ही न केवल कहने, वरन, समझने भी लगे हैं। इस प्रचंड मानसिक रोग (आदत) का निराकरण तभी हो सकता है जब मनुष्य अपने प्रत्येक मत के कारणों पर सदैव विचार रक्खे और समझता रहे कि उन कारणों में से उसके कितने हैं। यदि कोई शेक्सपियर को तुलसीदास से भी श्रेष्ठतर बतलावे, तो उसे समझना चाहिए कि उसमें उन दोनों के गुण दोष समझने की पात्रता है या नहीं और उसने उनके समझ ने का पूरा श्रम भी किया है या नहीं ? यदि इन दोनों प्रश्नों में से एक का भी उत्तर नहीं है, तो उसे उपर्युक्त तुलनाजन्य ज्ञान को अपना मत न समझ कर पराया समझना चाहिए।

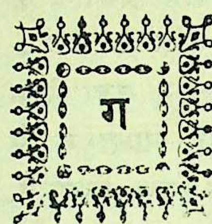
हमारे यहाँ गद्य का प्रचार थोड़े ही दिनों से हुआ है अतः अभी अनुवादों का बनना स्वाभाविक है। फिर भी अति सर्वत्र वर्जयेत् पर सदैव ध्यान रखना चाहिए।

हमारे बहुतेरे लेखक अनुवाद अथवा अनुकरण के अतिरिक्त कुछ लिखते ही नहीं और जिस ग्रन्थ को स्वतन्त्र कहते हैं प्रायः उसमें भी औरों से चोरी या सीनेज़ोरी निकल आती है।

सारांश यह कि आजकल गद्य की उन्नति हुई है परन्तु समुचित नहीं, नाटक विभाग अभी हीनावस्था में है परन्तु बढ़ता देख पड़ता है, पद्य की अवनति है और लेखकों में प्राचीन भारतीय अथवा नवीन पाश्चात्य प्रणालियों के अनुसरण में अन्ध-परम्परानुकरण का भारी दोष है।

—:०:—

यूनिवर्सिटी में संस्कृत शिक्षा पर विचार।



त १४ अक्तूबर को बम्बई यूनिवर्सिटी के सिनेट का एक साधारण अधिवेशन हुआ था। सभापति का आसन वाइस-चॅंसलर मि० जस्टिस हीटन ने ग्रहण किया था। उसमें कई आवश्यक कार्य्यों के बाद प्रान्तीय सरकार के उस पत्र पर विचार आरम्भ हुआ जिस में उसने पण्डितों की शिक्षा के लिये पूना में संस्कृत के एक स्कूल स्थापित करने, संस्कृत शिक्षा का पृ० अलग विभाग खोलने और उसमें पदवियाँ देने के सम्बन्ध में यूनिवर्सिटी की सम्मति माँगी थी। पूना में खोले जानेवाले इस प्रस्तावित स्कूल के सम्बन्ध में सरकार ने लिखा था कि उसमें एक बड़ा पुस्तकालय रहेगा जिसमें डेकन कालेज की हस्तलिखि० पुस्तकें भी रख दी जांयगी; प्राचीन पद्धति के अनु० सार शिक्षा पानेवाले पण्डितों के सिवा वे ग्रेजुए० भी इस स्कूल में पढ़ सकेंगे जिन्हें पुरातत्त्व की खो० अथवा भिन्न भिन्न मुख्य विषयों के अध्ययन क० शौक़ होगा; और पण्डितों के लिये अँगरेज़ी की थोड़ी आरम्भिक शिक्षा के सिवा ग्रेजुए० विद्यार्थियों के लिये कुछ जर्मन और फ्रेञ्च भाषा की शिक्षा का भी प्रबन्ध कर दिया जायगा जिसमें उन लोगों को वर्त्तमान काल की आलोचना-पद्ध० का भी कुछ ज्ञान हो जाय।

आर्ट फैकल्टी और सिंडीकेट की सहमति से सर रामकृष्ण भाण्डारकर ने प्रस्ताव किया—कि "सर० कार को इस बात की सूचना दे दी जाय कि उस० अपने पत्र में संस्कृत शिक्षा के सम्बन्ध में जो उपाय ब० लाये हैं, यदि उनके अनुसार प्रबन्ध कर दिया हो० यूनीवर्सिटी यह नया विभाग खोलने और ये० पदवियाँ देने के लिये तैयार है।" अपने प्रस्ताव० पुष्टि में श्रीयुत रामकृष्ण ने यह भी कहा कि मैं ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओरिएण्टलिस्ट कान्फ़रेन्स में (जिसका अधिवेशन गत जुलाई सन् १९११ में शिमले में हुआ था और जिसकी सिफ़ारिश से बम्बई सरकार ने यह प्रश्न उठाया था) सम्मिलित हुआ था। उसमें यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था। इस ढँग की शिक्षा से नये विद्वानों को बहुत अधिक सहायता मिलेगी। पुराने ढँग के पण्डितों और मौलवियों का नाश नहीं होना चाहिए। ऐसे पण्डित बड़े काम के होते हैं और उनसे तथा उनके ज्ञान से बड़े बड़े युरोपियन विद्वानों तक को बहुत अधिक सहायता मिलती है। यह कहा गया था कि ऐसे पण्डितों से इस नवीन विभाग के काम में विघ्न पड़ेगा, पर श्रीयुत रामकृष्ण ने इसका विरोध और खण्डन किया और कहा कि पण्डितों को उत्साहित करना और उन्हें योग्य पदवियाँ देना आवश्यक है और हम लोगों को इस विषय पर गूढ़ और सहानुभूतिपूर्ण विचार करना चाहिए।

मि० जमशेदजी मोदी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि प्राचीन काल की इस विद्या को बराबर जारी रखना चाहिए। यदि यह प्रस्ताव आज से २५ वर्ष बाद उठाया जाता तो मैं प्रिंसिपल परांजपे से सहमत होता; लेकिन अभी प्राचीन शिक्षा-पद्धति को नष्ट करने का समय नहीं आया है। बड़े बड़े युरोपियन विद्वान् तक इस श्रेणी के पण्डितों के रक्षण के पक्ष में हैं। उन लोगों को उत्साहित करके उनकी दशा और ज्ञान की उन्नति करनी चाहिए।

इस पर प्रि० आर० पी० परांजपे ने इस प्रस्ताव में यह संशोधन और परिवर्त्तन कराना चाहा कि यूनीवर्सिटी यह पद्धति तो स्वीकार नहीं करती; लेकिन यदि सरकार अपने पत्र में लिखे हुए ढँग पर प्रबन्ध कर दे तो वह लोगों को बी० ए० की डिग्री पास कर लेने के बाद संस्कृत अध्ययन के लिये एक नई डिग्री दे सकती है। प्रि० परांजपे ने इस प्रस्ताव को यूनीवर्सिटी के लिये हानिकारक बतलाते हुए उसका घोर विरोध किया। यूनीवर्सिटी का संगठन नये ढँग की स्वतन्त्र विचार की शिक्षा (Liberal Education) की उन्नति के लिए है, और प्रश्न यह है कि इस प्रकार की प्राचीन भाषाओं की शिक्षा उक्त शिक्षा के अन्तर्गत है या नहीं। यदि वह स्वतन्त्र विचार की शिक्षा के अन्तर्गत न हो तो यूनीवर्सिटी को उसे प्रोत्साहन न देना चाहिए। प्रिंसिल महाशय की सम्मति में प्राचीन भाषाओं की शिक्षा यूनीवर्सिटी की उद्दिष्ट शिक्षा के अन्दर नहीं आ सकती थी। उनकी सम्मति में ये दोनों प्रकार की शिक्षाएं परस्पर एक दूसरे के इतनी विरुद्ध थीं कि उनका परिचालन एक साथ हो ही नहीं सकता था। वर्त्तमान विचारों की कसौटी पर वह शिक्षा नहीं ठहर सकती। यूनीवर्सिटी का उसकी सहायता करना अनुचित होगा। पण्डितों को अपना काम आप ही करने के लिए छोड़ देना चाहिए। यदि सरकार उन लोगों को उत्साहित करना या उन्हें सहायता देना चाहे, तो दे सकती है; यूनीवर्सिटी को उससे कोई सम्बन्ध न रखना चाहिए। स्वतन्त्र विचार की शिक्षा की हानि करके प्राचीन ढँग की ऐसी शिक्षा नहीं देनी चाहिए।

मि० के० नटरंजन ने प्रिंसिपल परांजपे के इस संशोधन का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि मुझे इस बात का बहुत आश्चर्य्य है कि इस समय भी लोग पण्डितों की श्रेणी के संरक्षण का प्रस्ताव उठाते हैं। पण्डितों में काम की कुछ बातें हो सकती हैं, लेकिन उनकी शिक्षा-पद्धति इतनी हानिकारक है कि यूनीवर्सिटी को उनकी योग्यता की स्वीकृति में डिग्रियाँ कभी न देनी चाहिएँ। जो लोग जीवन का आज कल का उद्देश्य न जानते हों, यूनीवर्सिटी को उनकी योग्यता की स्वीकृति कदापि न करनी चाहिए। पण्डितों के विचार और उद्देश्य इतने संकुचित होते हैं और प्राचीन पद्धति की शिक्षा इतनी हानिकारक और नये ढँग की शिक्षा के इतनी विपरीत होती है कि यूनीवर्सिटी का उसे सहायता देना बहुत ही अनुपयुक्त होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मि० शाप ने कहा कि भारत सरकार की सलाह से प्रान्तीय सरकार ने यह प्रश्न यूनीवर्सिटी के सामने पेश किया है। यूनीवर्सिटी को उस पर केवल अपनी सम्मति देनी चाहिए। भारत सरकार पण्डितों का सुधार नहीं किया चाहती बल्कि वह उन्हें केवल प्रोत्साहित करना चाहती है।

यहाँ तक वादाविवाद होने के बाद यह विषय आगामी १४ नवम्बर के अधिवेशन के लिए मुलतबी कर दिया गया।

—:०:—

वैज्ञानिक खेती।

(ले० श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी)

[पूर्व प्रकाशितांतर]

ज़मीन की बीमारियाँ।



ज़मीन को उपजाऊ बनाने के लिये किसान लोग खाद डालते हैं। हर क़िस्म की खाद में खली जल्दी फायदा पहुँचाने वाली समझी जाती है। पर भांति भांति की खली के गुणों में बड़ा भेद है। यह नहीं कहा जा सकता इसे कितने किसान समझते हैं। सरसों, तिल, अलसी, रेड़ी, मूंगफली, नारियल, बिनौला और चिलगोजा वग़ैरह तिलहन को पेरने पर जो भाग बाकी बच जाता है, वही खली खेतों में खाद के तौर पर डाली जाती है। हर एक चीज़ में कोई न कोई ख़ास गुण रहता है। अनाज कितना ही क्यों न पेरा जाय, उसमें कुछ न कुछ तेल रह ही जाता है। इस हिसाब से कहना चाहिए कि खली में भी थोड़ा बहुत तेल रहता है। पर मामूली किसान यह नहीं जान सकते कि किस खली में कितना तेल है। इसलिये खेतों में खली की खाद देने पर भी एकसा फ़ायदा दिखाई नहीं देता। तिलहन के बीज में जो जीवित और अजीविक चीज़ें हैं, उनके विषय में यहाँ कुछ न लिख कर सिर्फ़ यही बतलाया जाता है कि खली मे जितना ही ज़ियादा तेल होगा, खेती को उतना ही ज़ियादा नुक़सान होगा। खली में तेल रहने से वह जल्दी गल नहीं सकती। क्योंकि तेल की तासीर है बचाने की है, बिगाड़ने की नहीं। इसी से चटनी और अचार वग़ैरह में तेल डाला जाता है जिस वे बहुत दिनों तक रह सकें। इसको सभी लो जानते होंगे कि अगर अचार में तेल न डाला जा तो उसे सड़ते देर न लगे। मांसभक्षी लोग दूस दिन तक रक्खे रहने के लिए तेल में मांस मछ बनाते हैं। इस सिद्धान्त को कोई भी समझ सक है कि तेल में चीज़ को बहुत दिन तक ठीक बना रखने की ताक़त है। तेल से मिली कोई चीज़ जल नहीं सड़ गल सकती। और ऐसी चीज़ पर हवा, पा सर्दी, गर्मी का असर भी जल्दी नहीं होता। वि इन चीज़ों के अन्दर पैठे कोई चीज़ सड़ ही न सकती। इससे साबित हुआ कि तेल से मिली खली के सड़ने में देर लगती है। देखा गया है धीरे धीरे खली से तेल निकल कर ज़मीन में ल करता है। इस अवस्था में खली तो हलकी ज़रूर जाती है; पर मिट्टी में तेल के लगने से खेत रो हो जाता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि तेल रक्षक नाशक नहीं। खाद खली की हो, या हड्डी, चम ना खून, बाल, चर्बी, ग्लेसरिन किसी की भी ज़मीन के अन्दर जाकर जीवित और अजीवि चीज़ों के सड़ने की राह रोकती है। बिना स चीज़ को पौधे चूस नहीं सकते। पानी की त पतली हालत में अगर तेल पौधे की देह में प जाय तो इससे उसे नुक़सान ही होगा। सर वग़ैरह तिलहन में तेल मिला दाना होता है; झाड़ को सोखने से नहीं होता वरन् पौधा तो ज़ से रसही लेता है; वही रस आगे तेल की सूर तबदील हो जाता है।

खेत में सिर्फ़ तेल मिली खाद डालने से को अम्ल रोग हो जाता है। अगर खेत में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो बिना तेज का चूना डालने से फ़ायदा होगा। चूना ही ज़मीन के अम्ल रोग की महौषधि है। अगर भूल से खेत में, ज़रूरत से ज़ियादा चूना गिर जाय; तो तुरन्त खली का चूरन डाल देना चाहिए। इससे चूने का तेज दब जाता है और कोई डर नहीं रहता।

कुछ लोग कहते हैं कि चूना भी पौधों की ख़ुराक है। ख़ास मौकों पर, ज़रूरत देख कर यद्यपि चूना डालना उचित है; पर इस बात का ध्यान रखना भी ज़रूरी है कि चूना न तो पौधों की खाद ही है न ख़ूराक ही। चूने का इस्तेमाल करने से ज़ियादातर धरती का रोग नाश हो जाता है और मिट्टी की तासीर भी बदल जाती है। एक ओर चूना खेत को तन्दुरुस्त करता है और दूसरी ओर मिट्टी का यवक्षारजन (nitrogen) निकाल कर उसकी उपज घटा देता है। इसलिये बड़ी सावधानी से इसे बर्तना चाहिए। चूने से एक फ़ायदा यह है कि ज़मीन के अन्दर जो चीज़ें वगैरह सड़ी पड़ी हों; उन्हें वह अन्दर घुस कर सड़ा देता है—वे इस लायक होजाती हैं कि उन्हें पौधे आसानी से चूस सकें। इतना होने पर भी चूने की तेज़ी को दूर करने के लिए ज़मीन में खाद ज़रूर दे। बिना ऐसा किए खेत में अच्छी उपज न होगी। चूना देने के बाद कुछ समय तक ज़मीन ख़ूब उपजाऊ हो जाती है, यहाँ तक कि दो तीन साल की उपज एक ही साल में हो जाती है। बार बार चूना देने से खेत बिलकुल बिगड़ जाता है, कभी कभी तो उसे छोड़ ही देना पड़ता है।

—:०:—

षष्ठ अध्याय।

पौधों के रोग।

मामूली तौर पर पौधे दो क़िस्म के रोगों से घिरे रहते हैं। फंगस (Fungus)—यह पौधे के किसी हिस्से पर हमला कर अन्दर घुस जाता है और उसकी देह के तन्तुओं को कमज़ोर कर मार डालता है। यह उद्भेद ख़ुर्दबीन की सहायता बिना दिखाई नहीं दे सकता। इसका बीज़ वायुमण्डल, मिट्टी और पानी में रहता है। बीज अंकुरित होकर पौधे के कोष (cells) में रक्खी हुई सामग्री से तैयार होता है। फिर उससे एक धागा सा निकल कर वृक्षों में फैल जाता है। ये वृक्ष के भीतर रक्खी हुई चीज़ों को खा जाते हैं। इससे पौधे निस्तेज तथा रोगी हो जाते हैं। ये रोग पैदा करनेवाले, पौधे ख़ुद हवा, पानी और मिट्टी से ख़ुराक नहीं ले सकते; इस लिए दूसरे की जमा पर कब्ज़ा कर बैठते हैं! किसी जीवित पौधे का रस सोख कर या मरे हुए और सड़े गले पदार्थ पर जम कर अपना बसर करते हैं!!

(२) कीड़े, फतिङ्गे वग़ैरह भी वृक्षों के शत्रु हैं। कीटों के झुंड की मामूली ४ हालतें हैं। वे इस तरह हैं:—(१) झुंड, (२) कीट, (larva) मामूली ढँग में इसे कीट ही कहना चाहिए, (३) कोया, (४) तितली। जिन्होंने कभी रेशम के कीड़े देखे होंगे वे इन चारों हालतों को आसानी से समझ सकेंगे। कीट की अवस्था में ये कीड़ों के झुंड की सूरत में बढ़ जाते हैं। कोये से निकलने पर इनकी बाढ़ रुक जाती है। किसी किसी फतिंगे में ऊपर लिखी चारों हालतें दिखाई नहीं देतीं। कोई कोई कीड़े कोये की हालत में न जाकर तितली बन जाते हैं। पूरी बाढ़ हो चुकने पर मामूली छः टाँगें या पाँव और दो सूँड़ें इनके होती हैं। बदन तीन हिस्सों में बँटा रहता है—सिर, छाती और पेट जिस में टाँगें लगी रहती हैं। इनके माथे की गढ़न अजीब क़िस्म की होती है। कुछ कीड़े मुँह से काटते हैं, कुछ सोखते हैं और कुछ दोनों काम करते हैं। सभी कीड़ों में दो जातियाँ स्त्री और पुरुष के भेद से हैं। स्त्री जाति के कीड़ों की देह, पुरुष जाति के कीड़ों की अपेक्षा कुछ भारी होती है। प्रायः कीड़े अंडे ही देते हैं।

बीज की सफ़ाई—बीज में भी कीड़े पड़ जाते हैं। इस लिये बीज और कलम वग़ैरह को लगाने, से पहिले ख़ूब साफ़ कर लेना ज़रूरी है। बीज वग़ैरह को साफ़ करने या रोग से बचाने के लिये उनमें कीड़ों को मारनेवाली या जीवाणुनाशक कुछ चीज़ें मिला देनी चाहिएँ। इन चीज़ों में विषैलापन बदबू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रैर तेज़ बू हो। तूतिया मिले पानी में बीज या कलम को डुबोकर उसी समय पिसे हुए विष, चूना, खार ग्रैर सरसों या रेंड़ी की खली के साथ मिलाकर, बीज को सुखाकर उसी दिन बोना चाहिए या कलम को रोपना चाहिए। अगर एक छटाँक तूतिये का चूरन मिलाना हो तो २०० छटाँक यानी १२—१३ सेर गरम पानी में उसे घोलना चाहिए। एक दिन के अन्दर ही इस तूतिया-मिले पानी का इस्तेमाल करे। विष बहुत ही थोड़ा डाले। अगर एक मन चूर्ण खली ग्रैर ५ सेर चूर्ण खार का इस्तेमाल किया जावे तो ख़ूब महीन पीस कर एक छटाँक ज़हर इनके साथ इस्तेमाल करना उचित है। तूतिये के पानी में बहुत देर तक बीज, कलम या जड़ को रखने से उसकी पैदा होने की ताक़त मारी जाती है। इस लिए उसमें एक मिनिट तक ही डुबोकर चूर्ण ग्रैर सूखी खाद से सुखा ले।

ग्रैर ग्रैर तरकीबें—देखा गया है कि कभी कभी अच्छी तरह जोत कर उम्दा बीज बोने पर भी कीड़े लग गये। जाँच करने पर मालूम हुआ कि रात को कीड़े आकर पौधे टहनियों ग्रैर पत्तियों पर अण्डे देकर चले जाते हैं। इन अंडों में से कीड़े निकल कर फूल, पत्ती खा जाते ग्रैर रस पीकर फसल को बिगाड़ते हैं। इसकी दवा यह है कि रात को खेत के किसी तरफ़ जगह बदल आग जलाते रहने से ये कीड़े घट जाते हैं। जेठ, असाढ़ ग्रैर कातिक के महीनों में कीड़े ज़ियादा बढ़ते हैं। इन्हीं दिनों में आग जलाने से कीड़े रोशनी की तरफ़ खिँच कर आग में जल मरते हैं। टिड्डियाँ दल बाँध कर एक सूबे से दूसरे सूबे तक धावा मारती हैं; जिस खेत में बैठ गईं; वहाँ सब स्वाहा कर दिया। अगर कुछ देर पहले मालूम हो जावे कि टिड्डी दल आरहा है; तो खेतों में जाकर हल्ला मचाने ग्रैर पीपा बजाने से वे भाग जाती हैं।

कुछ दिनों तक ठहरनेवाली फ़स्ल के पेड़ों में जैसे चा ग्रैर कपास वग़ैरह अगर कीड़े लग जावें तो संध्या के समय पाट या फूस की लकड़ी जला कर पेड़ में छुआने से कीड़े भाग जाते हैं। इससे पेड़ कुछ कुछ झुलस तो ज़रूर जाता है पर जल्दी पनप उठता है। अगर एक बार ऐसा करने से कीड़े पिण्ड न छोड़ें तो दुबारा यही काम करना चाहिए। आग से कीड़ों के महीन बीज भी मारे जाते हैं। पेड़ को आँच दिखाने की एक कल भी है। यह एक अस्बेस्टस (Asbestos) नामक अदह्य पदार्थों से बना हुआ गोला है; जो एक छड़ी में लगा मिट्टी के तेल में भिगोकर जलाया जाता है।

पौधे में कीड़े—अगर बैंगन ग्रैर गोभी वग़ैरह में कीड़े लग जावें तो ज़हर, चूना ग्रैर खार के महीन पीस कर पोटली में बाँध ले। ऐसी २०—२५ पोटलियाँ एक लम्बे बाँस में बाँध कर पौधों के ऊपर धीरे धीरे ठोंक ठोंक कर वह बुरादा गिराया जावे। १ हिस्सा ज़हर, १०० हिस्से चूना ग्रैर इतना ही खार इस काम में लावे। बाँस या लाठी के दोनों छोर पकड़ कर अगर दो आदमी छिड़कें तो थोड़ी ही देर में १ बीघा ज़मीन ज़हर से छिड़की जा सकती है। जब बैंगन ग्रैर गोभी फल रही हो, या ग्रैर कोई शाक सब्ज़ी खाने की हालत में आरही हो; तब भूल कर भी इस तरकीब से काम न लेना चाहिए।

मिट्टी के भीतर कीड़े दो क़िस्म के होते हैं (१) कैारा ग्रैर (२) चोरा। चोरा जाति के कीड़े रात को निकल कर पेड़ ग्रैर पत्ती खाकर पौधे का नाश कर देते हैं, ग्रैर कोरा रात दिन मिट्टी में ही रहकर पौधे की जड़ काटते रहते हैं। जब यह पतङ्ग की सूरत में होता है तब रात को निकल कर पत्ती खाजाया करता है। मिट्टी के इन कीड़ों को मारने के लिये मिट्टी के तेल या रेंड़ी के तेल के अर्क़ को पिचकारी से छिड़कना चाहिए। मिट्टी के तेल का अर्क बनाने की रीति यह है—मक्खन निकले हुए आधी बोतल दूध में ½ बोतल मिट्टी का तेल मिलाकर १० मिनट तक हिलावे। मिली हुई दवा ५० बोतल पानी में मिला कर पिचकारी के ज़रिये पेड़ की जड़ों में डाले। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर जांयगे । पिचकारी का काम दमकले से भी लिया जा सकता है । अगर कल से सींचना हो तो रात ही का समय ठीक है, क्योंकि रात को कीड़े मिट्टी से निकल कर पेड़ पर चढ़ते हैं । रेंड़ी के तेल को सोडे के साथ गरम करके हिलाने से रेंड़ी के तेल का अर्क़ तैयार होता है । यह भी ऊपर लिखी रीति से छिड़का जाता है ।

अगर पेड़ के ऊपरी हिस्से में कीड़ा लग कर फ़सल को ख़राब करता हो; तो यही अर्क़ कल के ज़रिये या और किसी ढँग से उस पर छिड़क देना चाहिए । तम्बाकू उबला हुआ पानी, हींग का पानी, हल्दी और पिसा हुआ मिर्च छिड़कने से भी कीड़े भाग जाते हैं या मर जाते हैं । महुए की खली जला कर उसका धुआँ देने से भी कीड़े भागते हैं ।

जब पेड़ १ फुट से ऊँचे हो जावें तब पालतू जानवर मुर्गी और पेरू वग़ैरह उसमें छोड़ दिये जावें । वे कीड़ों को चुग लेते हैं । तम्बाकू और बैंगन की पत्ती में कीड़े लगने पर यही उपाय करना चाहिए । छोटे पेड़ों में मुर्गी वग़ैरह छोड़ देने से फ़ायदा होता तो है पर पेड़ टूट जाते हैं ।

हरदा लगना—ज़मीन में पानी रह जाने पर या अच्छी तरह सूर्य्य की किरणों के न पड़ने से यह रोग होता है । धान के सिवा और कोई फ़सल बँधे हुए पानी में रह कर स्वस्थ और ताज़ी रह कर बढ़ नहीं सकती । पाट, अरहर, भुट्टा, ज्वार, गन्ना वग़ैरह के पौधे पानी में घिरे रहने से रोगी हो जाते हैं । बैंगन और मिर्चा के खेत में अगर पानी भरा रहे, तो वे मर जाते हैं । इसलिये पहले ही ऐसा इन्तिज़ाम कर दिया जावे जिसमें बरसात में वहाँ पानी जमा न होने पावे । पेड़ की जड़ की मिट्टी को खोद देने से ज़मीन पोली हो जाती है । इससे जड़ें आसानी से अपनी ख़ुराक़ पा सकती हैं—पौधा सतेज हो जाता है । जड़ के पास मिट्टी में अगर कीड़े मकोड़े होते हैं तो वे भी खोदने से भाग जाते या मर जाते हैं । सूर्य की किरणें काफ़ी तौर पर वहाँ पड़ सकती हैं । इसलिये पेड़ को दुरुस्त करने के उद्देश्य से जड़ के पास की मिट्टी को कभी कभी कुदाली से खोदना लाभदायक है । अब तक कोई अच्छा उपाय नहीं जाना जा सका है जिससे गेहूँ का हरदा रोग दूर किया जा सके । इस रोग की जड़ गेहुँओं के बीज के साथ ही आती है; इसलिये बोने से पहिले उसे तूतिये के पानी में धो लेना चाहिए । धान, भुट्टा और ज्वार के रोग भी इसी जाति के हैं । तूतिये के पानी में इनके बीज धो डालने से ही फ़ायदा होगा ।

बीज रक्षा—कई तरकीबों से कीड़ों का नाश करने पर भी फ़सल काटते समय बिना कीड़ों का अनाज पाना सम्भव नहीं है । फ़सल में कीड़े के अंडे कुछ न कुछ रह ही जाते हैं । अगर अनाज सावधानी से साफ़ कर न रक्खा जाय, तो बीज को अंडे से निकल कर कीड़े, भण्डार में ही खा जाते हैं । सच तो यह है कि किसान भुट्टे, गेहूँ और अनाज के बीज की कीड़ों से रक्षा नहीं कर सकते । इसलिए कीड़ों के जूँठे बीज को चौगुना बोने पर भी; कभी काफी फसल नहीं होती । बीज के अच्छे बनाये रखने का उम्दा उपाय कारबन बाइ-सलफाइट (Carbon bisulphite) अर्क़ का व्यवहार करना है । ४० मन बीज को १ सेर कारबन बाइ-सलफाइट बचा सकता है । इस अर्क़ में जलाने की तासीर है; इसलिये भूलकर कभी इसके पास आग या दीया न ले जावे । एक बड़े बर्तन में अच्छी तरह सूखे हुए बीज को पोटली में बाँध कर रख दे; ऊपर से एक प्याला अर्क़ डाल कर उस बर्तन का मुँह गोबर से बन्द कर दे । घंटे भर में बीज को निकाल कर टीन के बर्तन या नमक के थैले में रख देने से कीड़े न रहेंगे । थैले को नमक के पानी से धोकर सुखा लेने पर उसमें कीड़े नहीं जा सकते । किसी बर्तन में बीज भर कर ऊपर से नीम की पत्ती डाल दी जाय, तो कीड़े लगने का डर न रहेगा ।

धान—चावल में जो कीड़े देखे जाते हैं, उनका वैज्ञानिक नाम कैलंड्रा अक्सिजी calundra oxyzeae है । यद्यपि इससे खेत में धान के पौधों को कोई नुक़सान नहीं होता, पर घर में जमा किये हुए धान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ये भारी दुश्मन हैं। भूसी से छिपे चावल को ये नुक़सान नहीं पहुँचा सकते पर साफ़ चावलों पर तो ये बेतरह टूटते हैं। इनका डील १/८ इंच से कुछ बड़ा होता है। इनके काले परों पर ४ लाल बिन्दु होते हैं—यही इनकी पहचान है। गेहूँ और भुट्टों पर इनका जी चलता है।

इन्हें दूर करने के लिए बाइ-सलफाइट आफ कारबन, नीम की पत्ती और गन्धक का इस्तेमाल होता है। पर यह अभी तक साबित नहीं हो सका कि इनमें कौन चीज़ सब से अच्छी है। जिस स्थान में कीड़े एक बार लग चुके हों; वहाँ पर फिर अनाज को न रखने और कूड़ा, धूल वग़ैरह न रहने देने से भी कीड़े नहीं लगते।

बालेश्वर और चटगाँव में धान के बीज जमने पर एक क़िस्म का कीड़ा (cutworms Agrotis Suffura Habee) अंकुर को काटता है।

इस जाति का कीड़ा जिन जिन चीज़ों के पौधों में लगे; अंकुर निकलने से ही उनमें पेरिस ग्रीन (Paris green) नाम के विषैले पदार्थ का पानी छिड़क देना चाहिए। इससे पौधे की पत्ती खाकर कीड़ा मर जायगा। बाकरगंज, कटक, हजारीबाग़ और अन्य स्थानों भी धान में एक मूया (Leptocorisa Acuta Thumb) नाम का कीड़ा लग जाता है। वैशाख महीने के आरम्भ में जब पानी बरसता है (क्योंकि उड़ीसा में इस समय वर्षा होने लगती है) तो धान के बीज या अंकुर को ये कीड़े खा डालते हैं। जिस ओर हवा का ज़ोर हो; उसी ओर कूड़ा करकट जलाने से धुआँ फैल कर कीड़ों के ज़ोर को घटा देता है।

एक दूसरे क़िस्म का कीड़ा (Hispa Aenexeus Baly) बरसात में धान के खेतों में होता है। यह पेड़ की पत्ती और छाल को भक्षण कर भीतरी तन्तु निकाल देता है। यह सारी फ़सल को बर्बाद नहीं करता। मामूली तौर पर इस कीड़े के हमले से फ़ी सदी १० से ५० हिस्से तक फ़सल मारी जाती है।

इसके दूर करने के दो उपाय हैं:—सब से पहले खेत का पानी निकाल देना चाहिए। देखा गया है कि उसी खेत की फ़सल पर इन कीड़ों का ज़ियादा ज़ोर रहता है; जिसमें पानी भरा रहता है। दूसरा उपाय धुआँ देना है, जिससे इनकी मृत्यु होती है।

भुट्टा—इसमें भी ऊपर लिखा उद्भिद् जाति का रोग होता है। यह ज़मीन के नज़दीकी पेड़ के हिस्से पर हमला करता है। पेड़ के सारे हिस्सों में छोटे कोये फूले हुए दीख पड़ते हैं। फटने पर इन हिस्सों से एक क़िस्म की काले रंग की पतली चीज़ बहा करती है। जब फल को यह रोग हो जाता तब उसमें दाने नहीं पड़ते; सिर्फ़ काले रंग की बुकनी नज़र आती है। यहाँ सैकड़ों खेतों में, जहाँ भुट्टे उपजते हैं यह रोग देखा जाता है। इससे किसानों का बहुत नुक़सान होता है। यह रोग एक पेड़ से दूसरे में लग कर पूरे खेत में फैल जाता है इसलिए अगर इस रोग के होने का किसी पेड़ पर शक हो, तो फ़ौरन उसे उखाड़ कर जला देना चाहिए। बोने से पहले बीज में से फ़ी सदी दो हिस्से आग कसीस के पानी में तीन चार घंटे तक डुबो रक्खे तो यह रोग होता ही नहीं।

गन्ना—कई वर्ष पहले रोग के कारण गन्ने की खेती बम्बई के सूबे से एक तरह उठा दी गई थी। इस रोग का नाम घासा (Daetraea Basharatis Fabur) है। कहीं कहीं किसान इसे मजेरा भी कहते हैं। यह कीड़ा डंठल में घुस कर रेशा खाता है। सन् १८ ई० में बङ्गाल के हुगली, रंगपुर और वर्द्धमान ज़िले में होने वाली लाल बम्बैया ईख इस कीड़े के बिलकुल बिगड़ गई थी। जब पानी की कमी हो है; तभी यह रोग देखा जाता है। इसके अतिरि एक ही जाति का गन्ना यदि बार बार एक ही में बोया जाय, तो कुछ दिनों में पतला होकर वह रोग से ख़राब हो जाता है। जिन पेड़ों में इस के लक्षण दीख पड़ें, उन्हें उखाड़ कर खेत से लेजा कर जला दे; और फ़सल कट जाने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कूड़ा कर्कट हटवा दे। इस से फिर इसका डर नहीं रहता।

गन्ने का दूसरी दुश्मन फफूंदी है। जब गाँठ से अंकुर निकलता है; तब फफूंदी से बड़ा नुक़सान होता है। अगर खेत में भरपूर पानी दे दिया जाय, और वह अच्छी तरह गोड़ दिया जाय; तो इसका ज़ियादा डर नहीं रहता। पर मिट्टी का तेल इसकी सब से बढ़िया दवा है। फफूंद इसकी बदबू को बर्दाश्त नहीं कर सकती। बोने से पहले गन्ने के टुकड़ों को मिट्टी के तेल में पानी मिला कर भिगो देने से फिर फफूंदी का डर नहीं रहता।

आलू—बम्बई, बंगलोर, नीलगिरी और बङ्गाल के आलुओं में कीड़े हो जाते हैं। पेड़ का ऊपरी हिस्सा जब सूखने लगे, तब जानना चाहिए कि इसे रोग हो गया। इस वक़्त आलू की बाढ़ मारी जाती है। आलू सड़ने से बदबू फैलती है। आलू काटने पर उसमें काले काले गोल दाग़ दीख पड़ते हैं। खेत से खोदे जाने पर ताज़े आलू तो खाये जा सकते हैं; पर ये ठहर नहीं सकते, सड़ जाते हैं।

बचाने के उपाय—सदा उम्दा बीज बोना चाहिए। अगर एक ही क़िस्म का आलू बहुत दिनों तक बोया जाय, तो यह रोग अवश्य होगा। प्रति बीघे ७॥ सेर तूतिया, १२ छटाँक चूना, और ४० मन ७ सेर पानी डालने से इसका डर घट जाता है। किसी काठ के बड़े बर्तन में, पोटली में तूतिया बाँध कर डाल देने से गल जावेगा; किसी दूसरे बर्तन में चलनी से चूने को छान कर तूतिया में मिला दे। बाक़ी पानी इसी तूतिया के पानी में मिला कर सादे खेत को सींच दे।

आलू में एक और रोग होता है जिससे पत्ती सिकुड़ जाती है। फिर बाढ़ बन्द होकर पौधा मर जाता है। जिन पेड़ों में इसके होने के आसार दिखाई दें उन्हें उखाड़ कर जला डालना चाहिए। अगर ज़ियादा फैल जावे; तो फ़ी सैकड़े ५ हिस्से कसीस मिला कर पिचकारी के ज़रिये खेत भर में पानी छिड़क दे। पहले से सावधान रहने पर यह रोग दूर हो सकता है।

लंडन पारपल (London purple)—१० सेर मैदे के साथ ३—४ छटाँक लंडन पारपल मिलाकर १ पोटली में बाँध ५ मन पानी में मिलाने के बाद वृक्ष में सींचना चाहिए। आम के कीड़े भी इससे जाते रहते हैं।

पैरिस ग्रीन (Paris green)—७ या ८ छटाँक पैरिस ग्रीन १० सेर मैदे के साथ मिलाकर या ५ मन पानी के साथ लंडन पारपल की तरकीब से इस्तेमाल करे।

कारबोलिक एसिड—१०० हिस्से पानी में एक हिस्सा एसिड मिलाकर पेड़ की जड़ और पत्तियों में छिड़के।

कैरोसिन और दूध—आठ हिस्से दूध के साथ १ हिस्सा मिट्टी का तेल मिलाकर इस्तेमाल करने से कीड़े मर जाते हैं।

तम्बाकू का पानी—तम्बाकू की पत्ती को पानी में उबाल कर पेड़ में छिड़क देना चाहिए। इसकी कोई नाप मुक़र्रर नहीं। ज़रूरत देख कर इस्तेमाल करे।

—:o:—

सप्तम अध्याय

रबी अथवा जाड़े की फ़सल।

गेहूँ।

युक्त प्रदेश में बहुत क़िस्म की गेहूँ की खेती होती है। गेहूँ रबी के अनाज में गिनी जाती है। बलुई अथवा दोमट ज़मीन से मटियारी ज़मीन गेहूँ के लिये अच्छी समझी जाती है, क्योंकि जिस समय इसकी खेती होती है उस समय बरसात नहीं रहती। बलुई या दोमट ज़मीन का रस जल्दी सूख जाता है—तरी नहीं रहती। ऊँची ज़मीन से नीची ज़मीन अच्छी होती है। युक्त प्रदेश में बहुत उम्दा ज़मीन में दूसरे या तीसरे साल गोबर की खाद दी जाती है। गोबर की तादाद १०० मन होनी चाहिए। कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं, जैसे बिजनौर, फ़तेहपुर, गोरखपुर में ज़मीन के ऊपर भेड़ी बैठा कर ज़मीन को तैयार किया जाता है। मेरी राय यह है कि नीची ज़मीन में हड्डी का चूरा ग्रैार ऊँची ज़मीन में मिली हुई खाद डाली जाय।

बरसात के अन्त में क्वार से कातिक तक ज़मीन को अच्छी तरह तैयार करना चाहिये। गेहूँ के खेत में ८ या १० दफ़ा हल चलाना उचित है। गोरखपुर ज़िले में १० दफ़ा ज़मीन को जोता जाता है। पर बुँदेलखण्ड की काली ज़मीन में दो या तीन दफ़े हल चलाना काफ़ी समझा जाता है। डूथि ग्रैार फुलर साहब की राय यह है कि बरसात के शुरू में ज़मीन को अच्छी तरह जोत कर पड़ा रहने देना चाहिए, ताकि अच्छी तरह वर्षा का पानी उसमें जज़्ब हो जाय।

ज़मीन को ७ या ८ इंच गहरा जोतना उचित है, क्योंकि गेहूँ की जड़ ज़मीन के ऊपर न फैल कर ज़मीन के भीतर तक जाती है। ज़मीन कमज़ोर होने पर अच्छी तरह खाद डालना उचित है। जोतने के समय गोबर की खाद, ग्रैार पेड़ बड़ा होने पर ज़मीन में सोरा या नमक डालना चाहिये। नीची ज़मीन जो वर्षा के पानी में डूब जाती है उसमें खाद डालने की ज़रूरत नहीं होती, ग्रैार अगर खाद की ज़रूरत समझी जाय तो जोतने के समय हड्डी का चूरा दिया जाय। दानेदार खाद वर्षा के समय ज़मीन में छिड़क देनी चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से वह जल्दी गलती नहीं है। ज़मीन की हालत के अनुसार फ़ी बीघा ५ सेर से १५ सेर तक सोरा या नोन ग्रैार २ मन हड्डी का चूरा दिया जा सकता है।

कातिक का महीना बीज बोने का समय है। बीज साधारणतः छिड़ककर बोया जाता है। परन्तु कृषितत्त्व जानने वालों की राय यह है कि नाली बना कर बीज बोने से फ़सल ज़्यादा होती है। बिना खाद या पानी की ज़मीन से फ़ी बीघा २।३ मन अनाज मिलेगा। पर खाद ग्रैार पानी देने से फ़ी बीघा ९।१० मन तक फ़सल की आशा की जा सकती है। फ़्रांस से लैाट कर आये हुए कृषि-तत्त्ववेत्ता बाबू प्रबोधचन्द्र दे ने फ़ी बीघा आध मन सोरा डाल कर ग्रैार ज़मीन में दो दफ़े सिँचाई करके पर नौ मन के हिसाब से पैदावार पाई है। फ़ी बीघा सवा पाँच सेर बीज लगता है। उम्दा तरह खेती करने से साढ़े सात सेर बीज लगेगा। बीज कीड़े का खाया हुआ न होना चाहिये। इस पर विशेष ध्यान रहना ज़रूरी है। नाली बनाकर उसमें बीज बोने से पानी सींचने का विशेष सुभीता होता है। बहुधा देसी किसानों की राय यह है कि गेहूँ का बीज पतला बोने से लाभ ज़्यादा होता है। यह राय ग़लत है। क्योंकि बीज पतला बोने से सूर्य की धूप से ज़मीन सूख जाती है ग्रैार पेड़ का रस सूख जाता है, जिससे वह कमज़ोर भी हो जाता है। पर घनी बोग्राई करने से इतनी हानि नहीं पहुँच सकती।

युक्तप्रदेश में गेहूँ, जौ अथवा चने के साथ बोया जाती है। रुहेलखण्ड में गेहूँ के खेत में एक दफ़ा ग्रैार दोग्राब की ख़ुश्क ज़मीन में आठ दफ़े पानी सींचा जाता है। साधारणतः चार दफ़े सींचना काफ़ी होगा। बहराइच ज़िले में जब देखा जाता है कि पेड़ में बहुत पत्ती होने लगीं तब हँसिया से पेड़ का ऊपरी हिस्सा काट लिया जाता है। यह तरीक़ा पेड़ के तीन फुट ऊँचे होने पर काम में लाया जाता है। बहराइच का यह तरीक़ा बिरला ही समझा जाता है।

गेहूँ में एक तरह की बीमारी होती है। इसके बारे में 'कीड़ा ग्रैार रोग का प्रकरण' देखो। यहाँ उसका फिर उल्लेख ज़रूरी नहीं है।

फागुन से चैत महीने के बीच में गेहूँ पक जाता है ग्रैार पेड़ भी सूख जाता है। तब उसको काट कर बैलों से मड़ाकर फसल उठाई जाती है। टोकरी में भर कर ऊपर से हवा की तरफ़ छोड़ने से अनाज नीचे गिर पड़ता है ग्रैार गर्दा कूड़ा उड़ जाता है। पीछे गेहूँ सूप से झाड़ ली जाती है।

जौ।

इसकी गिनती रबी फ़सलों में है। वर्षा के बाद ज़मीन को अच्छी तरह तैयार करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़मीन को गहरा जोतना ज़रूरी है। दो दफ़े जोतने के बाद ४ या ५ गाड़ी गोबर डाल कर ज़मीन को फिर जोत कर खाद की मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिला दे। युक्तप्रदेश में बलुई ज़मीन में जौ की खेती होती है। इसलिये ज़मीन में ज़्यादह खाद नहीं दी जाती। अगर जौ के बाद गेहूँ बोई जाय तो जौ की खेती हूबहू गेहूँ की तरह की जाती है, अगर चना या मटर बोया जाय तो जौ की खेती में खाद और पानी कम दिया जाता है। युक्तप्रदेश में बोने के पहले चार दफ़े ज़मीन को जोतते हैं।

कातिक के महीने में बीज बोया जाता है। चैत बैसाख में जौ पक जाता है। फ़ी बीघा दस सेर बीज लगता है। युक्तप्रदेश में ज़्यादातर चना, मटर या गेहूँ के साथ जौ बोया जाता है। सरसों भी १५ फ़ुट की दूरी पर बोया जाता है। जौ की खेती में पानी नहीं सींचा जाता। पर पानी सींचने से फ़सल अच्छी होती है। बीज बोने के ५ या ६ दिन बाद अंकुर निकल आता है। पौधा कुछ बड़ा होने पर हर बीघे में सात आठ सेर शोरा छिड़क देना अच्छा है। ज़मीन अगर तर न रहे तो शोरा देने से कुछ फल नहीं होता।

युक्तप्रदेश में दो दफ़े पानी सींचा जाता है। पर जहाँ जहाँ जाड़े में पानी बरसता है, जैसे मेरठ, रुहेलखण्ड, वहाँ पानी कम दिया जाता है।

पेड़ काट कर जमा करके बैल वगैरह जानवरों से मड़ाकर अनाज निकाल लिया जाता है। फ़ी बीघा ५ मन से २० मन तक अनाज मिलता है।

खेती का ख़र्चा

चार बार जुताई	३)
,, ढेला तुड़ाई	॥)
बीज ६० सेर (एक एकड़ में) ...	२॥)
बोआई	॥।-)
मड़ाई	३)
साफ़ कराई	।=)
पानी सिंचाई	४)
ज़मीन का लगान	५)
कुल	२०॥।)

खाने के लिये जो जौ तैयार किया जाता है वह पहले ओखली में खूब कूटा जाता है, पीछे सूप से फटकारा जाता है। इसमें गेहूँ या चने का आटा मिला कर नमक, लहसुन, प्याज़, और लाल मिर्च मिला कर खाया जाता है। भारत के ग़रीब आदमी इसी तरह का खाना खाते हैं। जो जौ अच्छी तरह साफ़ नहीं होता है वह विलायत के बने हुए बार्ली से खेतसार में उम्दा है। पर जिसको बदहज़मी की बीमारी है उसको वह हज़म नहीं हो सकता।

जौ से दारू तैयार होती है। युरोप में इससे शराब बनाई जाती है।

जई।

कहा जाता है कि जई को चंगेज़ख़ाँ हिन्दुस्तान में लाया। मुग़ल सम्राटों को भी जई का नाम मालूम था। आईन अकबरी में भी जई का उल्लेख देख पड़ता है। आदमियों के लिये जई अच्छा खाना नहीं है। पकने पर अनाज गिर जाने के डर से यह कच्ची ही काटी जाती है। भारत में घोड़ों को खिलाने के लिये जई का इस्तैमाल किया जाता है। जई का डंठल जानवरों के खाने के लिये धान या गेहूँ के डंठल से भी उम्दा है। युक्तप्रदेश में थोड़े दिनों से इसकी खेती हो रही है। कनटुन्मेंट और घोड़शाल के आस पास घोड़ों के लिये उसकी खेती की जाती है। मेरठ और रुहेलखंड ज़िले में इसकी खेती ज़्यादा होती है।

जौ से जई की खेती में किसी क़िस्म का फ़र्क नहीं है। अच्छी ज़मीन में इसकी खेती होती है। यदि खेत अच्छी तरह सींचा जाय तो जाड़े के महीनों में घोड़ों को खिलाने के लिये जई तीन दफ़े काटी जा सकती है। फिर यह इतनी बढ़ती है कि एक दफ़े इससे थोड़ा सा अनाज भी मिल सकता है। जई की खेती में ज़मीन की उपजाऊ शक्ति जल्द घट जाती है। एकही ज़मीन में जितनी दफ़े इसकी खेती होगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतनी दफ़े इसकी पैदावार घट जायगी। एक एकड़ बे सींची हुई ज़मीन से १० मन, और सिंची हुई ज़मीन से १४ मन अनाज पैदा हो सकता है।

समतल प्रदेश में सितम्बर से अक्तूबर तक जई बोई जाती है। मुख्य बात यह है कि वर्षा बन्द होने पर ही इसका बीज बोना चाहिए। बंबई में जई रबी की फ़सल में गिनी जाती है, और इसकी खेती में ख़ूब सिंचाई होती है। जिस ज़मीन की मिट्टी बहुत चूर हो और पानी सींचने का सुभीता भी हो, ऐसी ज़मीन पर जई की खेती अच्छी होती है। एक एकड़ ज़मीन में ५० सेर बीज छिड़क कर बोया जाता है। साढ़े तीन महीने से चार महीने के अन्दर अनाज पक जाता है। किसी तख़्ते या बैल से मड़ा कर अनाज को अलग किया जाता है। बंगाल से जई मारिशस में ज़्यादातर भेजी जाती है।

ख़रीफ़ अथवा गर्मी की फ़सल।

धान, चावल।

धान पृथ्वी भर पर सब जगह पैदा होता है, पर हिन्दुस्तान में इसकी पैदावार ज़्यादा होती है। हिन्दुस्तान में बहुत क़िस्म का धान पैदा होता व देख पड़ता है। उनमें से जो युक्तप्रदेश में पैदा होते हैं उन्हीं का वर्णन इस पुस्तक में किया जायगा। यहाँ बासमती, बाँसफल, झिलमा उम्दा धान समझे जाते हैं। सिउनधी, सिमाढ़ा दूसरे दर्जे के धान गिने जाते हैं। तीसरे दर्जे के धान में साढ़ी उम्दा है।

समय—बोने और अनाज बटोरने के समय में धान में जितना फ़र्क़ देख पड़ता है उतना और किसी अनाज में नहीं। जनवरी से जुलाई तक धान बोया जाता है। ज़्यादातर जून से अगहन महीने तक छिड़क कर यह बोया जाता और जून से नवंबर तक रोपा जाता है। जो धान छिड़क कर बोया जाता है, वर्षा शुरू होने से ही उसका काम शुरू हो जाता है, और वह दो या ढाई महीने में यानी भादों या क्वार में काटने के लायक हो जाता है। इसलिये उसको भदोई या क्वांरी धान कहते हैं। यह धान ६० दिन में तैयार हो जाता है।

जो धान रोपा जाता है, अर्थात् जिसे जड़हन धान कहते हैं वह वर्षा शुरू होने पर अलग किसी ज़मीन में बीज की तरह बोया जाता है। जब बहुत अंकुर निकल आता है तब वह दूसरे खेत में रोपा जाता है। जड़हन धान अगहन में काटा जाता है इसलिये उसको अगहनी धान कहते हैं। एक क़िस्म का धान है, जिसे जेठी या बोरो धान कहते हैं यह जनवरी में बोया जाता और फ़र्वरी में रोपा जाता तथा मई में काटा जाता है।

धान अकेला बोया जाता है। कभी कभी ज़ुआर भी इसके साथ बोई जाती है।

खाद—सख़्त मटियार ज़मीन या इस तरह की ज़मीन जिसमें पानी ठहरता है, धान के लिए फ़ायदेमंद है। ऊसर ज़मीन में भी यदि पानी का बंदोबस्त रहे तो धान हो सकता है। जो धान छिड़क कर बोया जाता है उसके लिए अकसर कोई खाद नहीं दी जाती। जो धान रोपा जाता है उसके बीज की ज़मीन में खाद दी जाती है। मगर बीज की ज़मीन से पौधा उठाकर जिस ज़मीन में रोपा जाता है उसमें किसी तरह की खाद नहीं दी जाती। सिर्फ़ बनारस ज़िले में दो आध जगह में सुना गया है कि रोपने की जगह पर जानवर रक्खे जाते हैं, और जिस मट्टी में शोरा भरा रहता है वह मट्टी ज़मीन में डाली जाती है। युक्तप्रदेश में ऐसा ही तरीक़ा देखा जाता है।

मगर खाद के बारे में मैं अपनी राय नीचे लिखती हूँ—

माघ से वैशाख के भीतर दो एक दफ़ा वर्षा हो जाने पर ज़मीन को दो तीन दफ़ा जोतो। ज़मीन की उपज को बढ़ाने के लिए ज़मीन में छन्ई, नील या अरहर बो दो। असाढ़ के अंदर जो पैदा होगा उसको मई देकर ज़मीन पर लिटा दो। धीरे धीरे वह सड़ जायगा। इससे ज़मीन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी फ़ायदा होगा । इसको सब्ज़ी खाद (यानी Green manure) कहते हैं । इसके सिवा तरह तरह की जानदार खादों का इस्तेमाल होता है, जिनमें गोबर भी एक है । सख़्त मटियार ज़मीन में राख भी डाली जाती है । जानदार खाद देने से पौधों के लिए अक्सर सब क़िस्म की ज़रूरी चीज़ें आ जाती हैं, क्योंकि और और चीज़ों के सिवा इसमें शोरा, पोटासियम और फ़ासफ़ारिक एसिड रहता है । पौधे की पुष्टि के लिए ये तीन चीज़ें बहुत ज़रूरी हैं । राख डालने से पोटासियम और फ़ास-फ़ारिक एसिड मिल जाता है, मगर जवक्षार नहीं मिलता । साधारणतः बनावटी उपाय से शोरा देने की उतनी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि धान वर्षा की फ़सल है । इस समय आसमान के पानी के साथ काफ़ी जवक्षार अर्थात् शोरा ज़मीन में आ जाता है । इस लिए कुआँ या तालाब के पानी से बरसात का पानी पौधों के लिये फ़ायदा पहुँचानेवाला होता है । जानदार खाद और सरसों या रेंडी की खली धान के खेतों के लिए बहुत ही मुफ़ीद है । फ़ी बीघा ५ या ६-७ गाड़ी वह डाली जा सकती है । ज़्यादा खाद डालने से पौधा तेज़ होता है, मगर फ़सल अच्छी नहीं होती । पहली दफ़ा या दूसरी दफ़ा जोतने के वक़्त तमाम खेत में बराबर बराबर खाद को फैला कर तब खेत को जोतना चाहिए । थोड़ा पहले इस तरह न करने से खाद के गलने में देर लगती है । इसलिए नये रोपे हुए पौधे को पहली हालत में खाद खींचने का मौक़ा नहीं मिलता । अगर खली डाली जाय तो उसको कूट कर पौधा रोपने के बाद खेत में छिड़क देना चाहिए । फ़ी बीघा एक मन से दो मन तक खली डाली जा सकती है ।

हड्डी की बुकनी और शोरा मिली हुई खाद धान के लिए बहुत ही मुफ़ीद है । फ़ी बीघा एक मन हड्डी की बुकनी और १० सेर शोरा देना चाहिए । इससे हर एक बीघे में एक मन धान और २४-२५ मन पयाल मिल सकता है । यह खाद इस्तेमाल करने से फ़ी बीघा पाँच रुपया ख़र्च पड़ेगा । मगर ख़र्च निकाल कर बहुत मुनाफ़ा रहेगा ।

बीज ज़मीन अर्थात् जिस ज़मीन में बीज बोया जाता (और जिस से उठा कर दूसरी जगह रोपा जाता है) वह अच्छी तरह तर और चूर चूर होनी चाहिए । बीज ज़मीन की मिट्टी जितनी चूर हो उतनी ही ढीली होनी चाहिए । इस लिए बीज बोने के पहले एक दफ़ा मई लगा कर ज़मीन को दाब देना चाहिए । मिट्टी ढीली रहने से पौधों की जड़ें बहुत दूर तक चली जाती हैं, जिससे उखाड़ने के समय बहुत सी जड़ें टूट जाती हैं । बीज बोने के बाद भी एक दफ़ा अच्छी तरह मई लगानी चाहिए । मई लगाने से बीज ज़मीन में ढक जाता और इस कारण पौधा बहुत जल्दी पैदा होता है ।

अगर बीज छिड़क कर बोया जाता तो ४० सेर बीज एक एकड़ ज़मीन के लिए काफ़ी होता है । साधारणतः जब वर्षा होने लगे तब बीज को रात भर पानी में भिगोकर दो तीन रोज़ तक भीगी घास से ढक रखना उचित है । इससे अंकुर जल्दी निकल आता है । जब दूसरी जगह रोपा जाता है तब छः इंच की दूरी पर दो से छः तक पौधे एक साथ रोपे जाते हैं ।

पानी सींचना—गर्मी की ऋतु में जो धान बोया जाता है उसमें पानी की बहुत ही ज़रूरत होती है । जो धान वर्षा के शुरू में बोया जाता है और अगस्त या सितंबर में काटा जाता है उसके लिए किसी तरह के पानी की ज़रूरत नहीं होती । जो धान रोपा जाता है और नवंबर में काटा जाता है, उसमें वर्षा ख़तम होने पर दो तीन दफ़े पानी देना चाहिए ।

निराई—जो धान छिड़क कर बोया जाता है उसकी निराई एक दफ़े होनी चाहिये । जो धान रोपा जाता है उसमें निराई की ज़्यादा ज़रूरत होती है, पर इलाहाबाद में निराई बिलकुल नहीं होती ।

गेहूँ और जौ जिस तरह काटे जाते हैं उसी तरह धान भी काटा जाता है । पीट कर धान पौधे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अलग किया जाता है। किसी किसी जगह बैल से मड़ा कर धान अलग किया जाता है। धान के पौधे को पयाल कहते हैं। बैल वग़ैरह जानवरों को यह पयाल खिलाया जाता है। ढेंकली से धान कूट कर चावल तैयार किया जाता है। धान को गर्म पानी में उबाल कर सुखा लेने के बाद चावल तैयार किया जाता है।

बीमारी—गण्डूकी या तंकी नामक मक्खी धान की कट्टर दुश्मन है। अगस्त महीने के अन्त में ये मक्खियाँ धान को बहुत नुक़सान पहुँचाती हैं। इसके बारे में षष्ठ अध्याय देखो।

ख़र्च—एक एकड़ ज़मीन में नीचे लिखे मुताबिक़ ख़र्च पड़ता है—जो धान छिड़क कर बोया जाता है—

जुताई (दो दफ़ा)	१॥)
बीज (१ मन)	१॥)
बुआई	।)
निराई (दो दफ़े)	३)
रोपाई	१॥)
मड़ाई	१॥)
सफ़ा कराई	।=)
फ़ालतू ख़र्च	।)
लगान	५)
कुल	१४ ।॥=)

जो धान रोपा जाता है—

जुताई (चार दफ़ा)	३)
बीज (२५ सेर)	।॥=)
बुआई	-)
खाद (बीज ज़मीन के लिए) ...	॥)
रोपाई	४)
निराई (दो दफ़ा)	३)
सिंचाई	७)
कटाई	१॥)
मड़ाई	२)
सफ़ाई	।=)
लगान	६)
कुल	२८।=)

आज कल चावल का श्वेतसार (Powder-de riz नाम से) फ़्रांस से यहाँ आता है। इस देश की स्त्रियाँ उसे क़ीमती चीज़ समझ कर ख़रीदती हैं। इसलिए यहाँ इसी श्वेतसार के बनाने की रीति बतलाई जाती है।

चावल में श्वेतसार बहुत ज़्यादह है। इसमें फ़ी सदी ७५—८५ हिस्सा श्वेतसार (Starch) रहता है। और किसी उद्भिद पदार्थ में यह इतना अधिक नहीं पाया जाता। यदि चावल का श्वेतसार बनाना हो तो चावल को चूर्ण करने के पहले किसी खारे पानी में भिगो देना चाहिए। कास्टिक सोडा के साथ पानी मिलाने से खारा पानी तैयार हो जाता है। ३५० हिस्से पानी में एक हिस्सा कास्टिक सोडा मिलाना चाहिए। इस रीति से बनाये गये पानी के ५०० हिस्सों में १०० हिस्से चावल को २४ घंटे तक भीगने देना चाहिए। खारा पानी रखने के लिए ताँबा या टीन का कलई किया हुआ बर्तन अथवा लोहे के एनामेल से बना हुआ बर्तन अच्छा है। बर्तन की तली में एक पेंच (tap) होना चाहिए। पानी की कल में जैसा पेंच होता है; यह पेंच भी वैसाही होना चाहिए। पेंच के अन्दर पीतल की पतली जाली ज़रूर हो। क्योंकि जाली न होने से पानी निकलते समय चावलों के निकल जाने का डर है। इस लिए जाली का रहना ज़रूरी है। बर्तन की तली के टैप को बन्द कर खारा पानी तैयार करना होगा। इसी में २४ घंटे तक चावलों को भीगने देना चाहिए। फिर टैप खोल कर बर्तन से सब पानी बाहिर निकाल देना चाहिए। खारा पानी निकल जाने पर, उसमें चावलों से दूना पानी डाल कर, उन्हें अच्छी तरह हिलाते रहना चाहिए। इससे चावल साफ़ हो जाँयगे। फिर टैप के ज़रिये पानी निकाल कर चावलों को दूसरे बर्तन में रख देना चाहिए। अब चक्की या रोलर मिल से साफ़ किये हुए चावलों को पीसना होगा। चूर्ण को लेकर छोटे छेदवाली चलनी से छान डाले। जो चूर्ण चलनी में रह जाय; उसे दु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीस डाले। इस प्रकार दो तीन दफ़ा या जब तक वह अच्छी तरह पिस न जावे तब तक पीस कर चलनी से चालते रहना चाहिए।

चावल का चूर्ण तैयार होने पर एक बर्तन में रखकर उसमें दशगुना कास्टिक सोडा का पानी छोड़ देना चाहिए। अब फिर पहले की तरह २४ घंटे तक कास्टिक सोडा में इन्हें भिगोना चाहिए। बीच बीच में इसे हिलाते रहना चाहिए। फिर निथरे हुए चूर्ण को जमाने के लिए ७० घंटे तक उसे बर्तन में रख छोड़ना चाहिए। इस समय बर्तन का पानी बिलकुल स्थिर रहने दिया जाय—हिलने डुलने न पावे। अब चूर्ण बर्तन की तली में जम जायगा। चावल और बर्तन के साथ जो खनिज पदार्थ था, वह सबसे नीचे रह जायगा। उसके ऊपर चावलों का मोटा कन या धान की भूसी (अगर रह गई हो तो) जमा होगी। सबके ऊपर साफ़ सफ़ेद पालो (Starch) रह जायगा। पालो के ऊपर गँदला पानी रहेगा। इस पानी में चावल का दूध (Gluten)। द्रव अवस्था में रहने के कारण इसका रङ्ग पीलासा होता है। जमे हुए पदार्थों के पानी का ऊपरी हिस्सा साइफ़ोन नल से निकाल देने से चावल का श्वेतसार और उसके नीचे चावलों का कण अथवा भूसी रह जायगी। इन मिले हुए पदार्थों से अनावश्यक चीज़ों के निकाल डालने पर साफ़ पालो मिल जायगा।

पहिली दफ़ा बर्तन का पीलासा पानी साइफ़ोन नल से निकाल देने पर फिर उसमें दूना पानी डाल कर नली की तमाम चीज़ों को हिला देना होगा।

फिर एक घंटे तक पानी को स्थिर रहने देना चाहिए। इसके बाद बर्तन के ऊपर दूध के ऐसे सफ़ेद पानी को रेशमी कपड़े से बनी हुई चलनी में चालना होगा। फिर जो चीज़ बर्तन में रह जाय, उसे पानी मिलाकर बार बार छानते जाना चाहिए। इस प्रकार बार बार छानने से प्रायः सभी पालो नीचे गिर जायगा और पालो के अलावा दूसरी वस्तु चलनी में रह जायगी। चलनी के भीतर से पानी मिला हुआ जो पालो पात्र में गिर गया है, वह ७० घंटे के भीतर ही पानी से अलग होकर बर्तन की तली में जम जाता है। इस बर्तन का पानी स्थिर होने पर धीरे धीरे उसे फेंक देने पर बर्तन की तली में साफ़ गीला पालो मिलेगा। आवश्यकतानुसार एक या अनेक बार इस पालो में पानी मिलाकर हिलाने से और पानी स्थिर होने पर फेंक देने से पालो धुल सकेगा। पानी मैला रहने से बार बार धोने की ज़रूरत होती है।

चावल का साफ़ भीगा पालो सुखा लेने पर बिक्री के योग्य हो जाता है। पालो को बिलकुल न सुखाकर थोड़ा थोड़ा गीला रहते समय सांचे में ढालने से कई क़िस्म की चकती बन जाती है। यह चकतियाँ या सूखी पालो की बुकनी के रूप से बाजार में बिक सकेगा। चावल का पालो कपड़े की इस्त्री के लिए अरारोट के बदले में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस पालो से इस्त्री ख़ूब सख़्त और अच्छी होती है। चावल के पालो के साथ थोड़ासा नील मिलाकर इस्त्री करनी चाहिए।

आजकल कई प्रकार के पाउडर मुँह में लगाने के लिए स्त्रियाँ चाहती हैं। इस पाउडर के तैयार करने में भी चावल के श्वेतसार की ज़रूरत है। चावल का श्वेतसार खाया भी जा सकता है। इसके सिवा और नाना प्रकार के शिल्पकार्य में चावल के श्वेतसार की ज़रूरत होती है। इसलिए इसके बनाने से द्रव्य प्राप्ति का एक नया द्वार मिल जायगा।

मिजहिरी, कुटकी।

युक्त प्रदेश के दक्षिण में इसकी खेती होती है। ललितपुर में इसकी खेती देख पड़ती है। मगर ललितपुर मध्यभारत में गिना जा सकता है। यद्यपि ललितपुर बुन्देलखण्ड में शामिल है, तो भी उसे मध्यभारत की सरहद कहना चाहिये।

जून के महीने में यह बोया जाता है और अक्तूबर के महीने में काटा जाता है। इसके लिये अच्छी

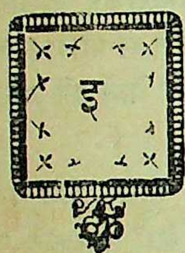
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़मीन की ज़रूरत नहीं होती। एक एकड़ ज़मीन में दो मन मिजहिरी पैदा होती है।

—:०:—

अखंडत्व।



स वर्ष ब्रिटिश असोसिएशन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इँगलड के प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता सर आलिवर लाज (Sir Oliver Lodge) ने जो व्याख्यान दिया उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है।

लोग पूछेंगे कि आज कल की स्थिति क्या है? भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रकार की राय देंगे पर मेरा उत्तर है कि 'उन्नति की क्षिप्र गति और संशयवाद'। १९ वीं शताब्दी में उन्नति की—विशेष कर भौतिक विज्ञान की उन्नति की—गति इतनी क्षिप्र नहीं थी। नीवँ दे दी गई थी और दीवारें तैयार होगई थीं पर नई नई ज़मीनों पर नई नई इमारतें खड़ी होने की आशा नहीं दिखाई देती थी। जब कि १८८८ में ईथर की धाराओं की भविष्यद्वाणी की की गई, १८९५ में पारदर्शक किरणों (X rays) का पता लगा, १८९९ में स्वप्रेरित प्रकाशविसर्जिनी क्रिया का निरूपण हुआ और विद्युदण्ड (Electron) की एकान्तता प्रतिपादित हुई तभी से विज्ञान के शीघ्र आगे बढ़ने की आशा दिखाई देने लगी। इस शताब्दी के आरम्भ से तो प्रत्यक्ष-सिद्ध, अनुमान-सिद्ध, और विवेचना-सिद्ध नई नई बातों की वर्षा ही होने लगी। इसीसे मैं ने उन्नति की क्षिप्र गति कही। इस उन्नति के विषय में तो मैं विशेष कुछ नहीं कहूँगा क्योंकि इसमें कुछ न कुछ सन्देह बना ही रहता है कि कौन सी गति यथार्थ उन्नति की ओर है, पर संशयवाद के विषय में मैं कुछ कहूँगा।

मैं यह चटपट बतला देना चाहता हूँ कि संशयवाद से मेरा अभिप्राय उस परलोक आदि सम्बन्धी पुराने झगड़े से नहीं है, क्योंकि यह झगड़ा अब मुल्तवी है। जिस क़िले में परलोकवादी ने शरण ली है वह आक्रमण के लिए लोगों को आकर्षित नहीं करता। जिस कोने को दबा कर वह बैठा है उस पर उसका हक़ है। अब जो झगड़ा चल रहा है वह वैज्ञानिक दलों ही के बीच है जिसमें दार्शनिकों का भी योग है। परलोकवादी तो अब एक कोने में बैठा दूर से आशा लगाए देख रहा है कि इस लड़ाई से कभी न कभी उसके काम की बात निकल आवेगी। वह बैठे बैठे सोचता है कि बहुत सी बातें जिन्हें लोगों ने अधूरे ही प्रमाणों पर उतावली करके झूठ ठहराया वे किसी न किसी रूप में आगे चल कर ठीक प्रमाणित होंगी। इस प्रकार धर्मोपदेशकों का पुराना द्वेष तो अब शान्त है।

आज कल के प्रधान विवाद।

यहाँ उन सब विवादों का वर्णन करना जो आज कल विद्या के भिन्न भिन्न विभागों में चल रहे हैं असम्भव है। मैं यहाँ थोड़े में प्रधान प्रधान विवादों का उल्लेख मात्र किए देता हूँ। भौतिक विद्या में शक्ति (Vitality) पर विवाद चल रहा है। रसायन में अणुओं की बनावट का झगड़ा है। प्राणिविज्ञान (Biology) में पैत्रिक परम्परा के नियमों की छान बीन है। इन मुख्य विवादों के अतिरिक्त और विषयों में भी परस्पर विचार लड़ रहे हैं। शिक्षा-पद्धति में बच्चों को अधिक स्वतंत्रता देने के लाभ बतलाए जा रहे हैं। राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति में तो दुनिया की कौन ऐसी बात है जिस पर झगड़ा न हो—केवल 'धन और धरती' ही पर नहीं, अदन के पुराने बाग़ से लेकर स्त्री और पुरुष के परस्पर सम्बन्ध तक पर विवाद छिड़ा है। इसी प्रकार गणित और विज्ञान की शाखाओं में आज कल का संशयवाद अखंडत्व (Continuity) के सम्बन्ध में है। इस शब्द का अभिप्राय मैं आगे चल कर खोलूँगा।

इन सब आंशिक विवादों से बढ़ कर गूढ़ सिद्धांत-मूलक सब प्रकार के विज्ञान के आधार की गहरी परीक्षा है जो आज कल हो रही है। इस प्रकार का दार्शनिक संशयवाद भी बढ़ती पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे बुद्धि के शुद्ध निरूपण-क्रम पर भी अविश्वास किया जा रहा है और विज्ञान की पहुँच भी परिमित बतलाई जा रही है।

न्यूटन की पदार्थ-व्यवस्था।

केवल दार्शनिक ही नहीं वैज्ञानिक लोग भी पुराने सिद्धान्तों के खंडन में लगे हैं। वैज्ञानिक और गणितज्ञ इस बात का विचार करने लगे हैं कि क्या न्यूटन के चिरपरिचित और अच्छी तरह निर्धारित पदार्थ-नियमों के स्थान पर अधिक नवीन सिद्धान्तों का स्थापन नहीं हो सकता—ऐसे सिद्धान्त जिनके पास तक न्यूटन के नियम केवल कुछ कुछ पहुँचते हैं। सच तो यों है कि एक पूरा अन्यूटनिक सिद्धान्त ही निकाला गया है जिसके आधार हाल में जाने हुए वे परिवर्त्तन हैं जो प्रकाश के तुल्य वेग से गमन करते हुए पदार्थों में होते हैं। वास्तव में यह पाया गया है कि मात्रा और आकृति वेग की क्रियाएँ वा गुण हैं। जैसे जैसे वेग बढ़ता है वैसे ही वैसे मात्रा बढ़ती है और आकृति में मोड़माड़ होता है पर साधारण अवस्था में हद से ज़्यादा सूक्ष्म रूप से। मैं यहाँ तक इस बात को मानता हूँ पर मैं इसे इतनी हलचल डालनेवाली नहीं समझता जिससे न्यूटन की सारी पदार्थ-व्यवस्था ही उलट पुलट हो जाय। मात्रा का परिवर्त्तन तो जानी हुई बात है पर यह कहना बड़ी भारी भूल है कि मात्रा सदा समान नहीं रहती। इससे न्यूटन का 'दूसरा नियम' (Second law) ही खंडित हो जाता है। पृथ्वी, जलबिन्दु आदि परिवर्त्तनशील मात्रा के उदाहरण हैं। परिवर्त्तनशील मात्रा तो बहुत देखी जाती है क्योंकि रगड़ से भी गतिवान् पदार्थ कुछ घसते हैं यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्म रूप से।

मात्रा सदा समान रहती है यह एक स्थूल बात है। मात्रा क्षमता (Energy) और वेग के हिसाब से होती है यह एक सूक्ष्म निरूपण है और बिलकुल ठीक हो सकता है। यह विद्युदण्ड (Electron) के विषय में भी ठीक घट सकता है जिसकी गति प्रकाश के तुल्य होती है। न्यूटन के ही दूसरे नियम के सहारे परीक्षा करके यह जाना गया कि वेग के साथ साथ मात्रा का परिवर्त्तन होता है। मेरा कहना यह है कि हम न्यूटन के नियमों का तिरस्कार न करें बल्कि उनके सहारे नई नई बातों का पता लगाते हुए परिशिष्ट रूप से उनकी कसर पूरी करें।

जितनी ही नई बातों का पता लगेगा उतनीही उलझन बढ़ेगी।

एक बात जो बहुत ध्यान देने की है वह यह है कि हमारे ज्ञान के अधिक सूक्ष्म और यथार्थ होने के कारण ही वह संशयवाद उत्पन्न हुआ है जिसका मैं ने ऊपर उल्लेख किया। वे सुगम नियम जिनका हम व्यवहार करते आते थे इस कारण सुगम थे और उनका पता लगना इस कारण सहज था कि स्थिति की पूर्ण जटिलता अन्वीक्षण साधनों की अपूर्णता के कारण हमसे छिपी थी। केपलर के नियम बिलकुल सटीक नहीं हैं। यदि उसके सामने वे सब बातें होतीं जो आज हमारे सामने हैं तो वह उन नियमों का पता शायद ही पा सकता। जैसा कि केपलर ने बतलाया था ग्रह वास्तव में दीर्घवृत्त (Ellipse) में नहीं भ्रमण करते बल्कि एक प्रकार के अतिचक्रालद (Hypocycloid) में भ्रमण करते हैं, सो भी ठीक ठीक नहीं।

भौतिक विज्ञान के अधिकांश विभागों में सुगमता के स्थान पर जटिलता आती जाती है। अब मेरा कहना यह है कि वे सीधे और सुगम नियम जहाँ तक उनकी पहुँच है वहाँ तक ठीक हैं। उनमें जो कसर है उसका पता आगे के यथार्थ आविष्कार से लगता चलेगा। जिन कारणों तक पुराने लोग नहीं पहुँच पाते थे आज उन तक हमारी पहुँच है। इससे सच पूछिए तो पुराने नियमों में कोई व्याघात नहीं होता बल्कि और अधिक कारणों का पता चल जाने से परिशिष्ट रूप से उनका संशोधन होता है। अस्तु, जो कुछ हो रहा है वह उन्नति ही के मार्ग पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखंडत्व और खंडत्व का विवाद ।

आज कल भौतिक विज्ञान में जो मुख्य विवाद चल रहा है उसके झुकाव का सारांश अखंडत्व और खंडत्व के विषय में है। ऊपर से देखने में सृष्टि के बीच हम पहले खंडत्व पाते हैं अर्थात् हम ऐसे पदार्थ देखते हैं जिन्हें अलग अलग गिन सकते हैं। फिर हम वायु तथा और और अन्तरवर्त्तियों का अनुभव करते हैं और अखंडत्व और प्रवाहित द्रव्य का समर्थन करते हैं। इसके अनन्तर हम अणुओं का पता लगाते हैं और फिर खंडत्व हमारे सामने आता है। तब हम ईथर का आविष्कार करते हैं। और फिर अखंडत्व पर विश्वास करते हैं। पर इस का अन्त यहाँ नहीं होने का। अन्तिम परिणाम क्या होगा, या अन्तिम परिणाम कुछ होगा भी, यह बतलाना कठिन है।

आज कल की प्रवृत्ति तो प्रत्येक पदार्थ को सखंड वा अणुमय बतलाने की है। द्रव्य की व्यष्टि (unit) अणु है जैसे कि समाज की व्यष्टि प्राणी है। जैसे समाज की व्यष्टियों को एक एक गिन कर हम कहते हैं कि इतने प्राणी हैं वैसे ही द्रव्य के अणु भी गिने जा सकते हैं।

यह ठीक है कि अखंडत्व का भ्रम भी होता है जैसे कि जल में। वह देखने में एक अखंड प्रवाह जान पड़ता है पर है अणुमय। किन्तु उसके अंतरों में ईथर की स्थापना करके हम उसे फिर अखंड निश्चित करते हैं। हाँ! आसबर्न रेनल्ड्स (Osborne Reynolds) ने अलबत नदी की रेत के दृष्टान्त पर सखंड और कणमय (granular) ईथर की उद्भावना की है। वे कहते हैं कि बालुकाकणों, सिर के बालों आदि का गिनना इसलिए नहीं कठिन है कि गिनने को कोई वस्तु नहीं है बल्कि इस लिए कि गिनने के लिए वस्तु अत्यंत असंख्य हैं। एक बूँद के अणुओं को लीजिए; उनकी संख्या शायद अटलांटिक महासागर के बूँदों से भी अधिक होगी!

असम्भावित स्थानों में संख्या का अधिकार।

विद्युत् वा विद्युत्प्रवाह भी—सुन कर आश्चर्य होगा—अणुमय प्रमाणित हुआ है। फैराडे और मैक्सवेल (Faraday and Maxwell) ने विद्युत्प्रवाह की व्यष्टि का अनुमान किया और जांस्टन स्टोनी (Johnstone Stoney) ने उसका नामकरण (Election वा विद्युदणु) किया। क्रुक्स (Crook[s]) ने वायुशून्य कोश (vacuum) में विद्युदणु के कु[छ] गोचर प्रभावों की परीक्षा की और सन् १८९९ [में] जे० जे० टाम्सन (J. J. Thomson) ने इस [को] ब्रिटिश असोसिएशन के सामने उसकी माप तौ[ल] बतलाई।

चुंबक-शक्ति तक के अणुमय होने का सन्दे[ह] किया गया है और उसकी व्यष्टि वा अणु का ना[म] पहले ही से चुंबकाणु (magneton) रख दि[या] गया है। इतना सब होने पर भी मैं अपने पु[राने] विचार से नहीं डिगा हूँ। इन सब को मैं असम्भा[]वित स्थानों में संख्या का अधिकार कहता हूँ। प्राणिविज्ञान के विषय में भी कह सकते हैं कि [वह] अणुवादी हो चला है। उसमें प्राणकोश (Cel[l]) आदि के रूप में प्राकृतिक व्यष्टियाँ बहुत दिनों [से] थीं और प्राणकोश के परदों (cell-walls) आदि [के] रूप में उसमें खंडत्व का अधिकार था ही। अब उस[की] पैत्रिक परम्परा के नियमों (Laws of heredit[y]) का अध्ययन कर मैंडल (Mendel) ने बतलाया कि गर्भोत्पादक प्राणकोशों (Reproductive ce[lls]) में भी संख्या और खंडत्व प्रत्यक्ष है और सन्तति [] भी गिने और पहले से बतलाए जा सकते हैं। डारविन के अनुसार अखंड भेदपरम्परा द्वारा [] फार माना जाता था वहाँ उसके स्थान पर, वा [] से कम उसके साथ साथ अब रूपान्तर द्वारा [] विशिष्ट, असम्बद्ध और परंपराखंडित परि[] माना जाने लगा है। जहाँ यह कहा जाता था [कि] प्रकृति अन्तर छोड़कर आगे नहीं कूदती वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहा जाने लगा है कि उसके सिवा वह और करती क्या है? उसकी वह शृंखलाबद्ध गति अब देखने में खंडित जान पड़ती है।

पर इसमें सन्देह नहीं कि अखंडत्व ही विकाश सिद्धान्त का मूल है जैसा कि प्रायः सारे प्राणितत्त्वविदों का कथन है। योनियों और जातियों के बीच कोई कृत्रिम सीमा निर्धारित नहीं—क्षुद्र कीट से लेकर मनुष्य तक एक अखंड पैत्रिक शृंखला दिखाई देती है।

खंडत्व और शुद्ध गणित।

शुद्ध गणित में भी खंडत्व अपना रूप दिखाने लगा है, यहीं तक नहीं, इससे भी बढ़ कर दुरूह और असम्भावित विषयों का प्रतिपादन किया जा रहा है और द्रव्य की क्षमता (energy) तक अणुमय बतलाई जाने लगी है। प्रोफ़ेसर प्लांक (Professor Planck) का क्षमताणु (quantum) वाद अत्यंत चित्ताकर्षक, और कुछ लोगों की समझ में अत्यन्त प्रबल है।

ज्योतिप्रवाह के भी सखंड और अणुमय सिद्ध होने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। ज्योतिप्रवाह (radiation) के कणमय होने की चर्चा अब उतनी धीमी नहीं है जितनी कि कुछ पहले पड़ गई थी। कोई कोई ज्योतिप्रवाह तो अवश्य कणमय हैं। पर ईथर-सम्बन्धी ज्योतिप्रवाह में भी ऐसे लक्षण दिखाई दे जाते हैं जिनसे भ्रम होता है कि वे धब्बेदार हैं, स्थान स्थान पर बिन्दुओं के रूप में और उसकी अग्रधारा धब्बों और धज्जियों की होती है। जे० जे० टाम्सन ने तो कह ही डाला है कि अग्रधारा एक सम-प्रकाशित सतह की अपेक्षा काली सतह पर चमकीले धब्बों के अधिक सदृश है। इससे ईथर के रेशेदार होने का आभास मिलता है इत्यादि।"

ज्योतिप्रवाह का महत्त्व।

इस बात में यथार्थता चाहे जितनी हो पर ज्योतिप्रवाह-सम्बन्धी जो विवाद है वह है बड़े काम का। इस विषय को इतना महत्त्व क्यों दिया गया है? इस लिए कि यह ईथर और द्रव्य के बीच की सब से अधिक ज्ञात और परीक्षित शृंखला है। हम लोगों का जाना हुआ यही एक ऐसा गुण है जो अकेले ईथर के निर्लिप्त विस्तार पर प्रभाव डाल सकता है। विद्युत् और चुंबकशक्ति का लगाव उसके उस विशेष और एकान्त रूपान्तर से है जिसे विद्युदणु कहते हैं। बाक़ी और बहुत से व्यापारों का लगाव सीधे द्रव्य से है। ज्योतिप्रवाह यद्यपि वेग-प्रेरित विद्युदणु ही से उत्तेजित होता है पर आगे चल कर वह आकाशीयतत्त्व ईथर ही में विचरण करता है और एक विशिष्ट वस्तु की तरह सम तथा नियमित गति से गमन करता है। यदि ईथर द्रव्य से लिप्त और लदा न हो, सर्वथा मुक्त हो, तो भी ज्योति की गति चली चलेगी, उसे किसी और बात की अपेक्षा न होगी। इससे ज्योतिप्रवाह के द्वारा हम बहुत सी बातें जान सकते हैं। अब देखना है कि इस अणुवाद, कणवाद और खंडवाद को लोग कहाँ तक लेजाते हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि यह बहुत दूर तक जा सकता है। पर जो बात है वह मैं कहे देता हूँ कि मैं अन्ततः अखंडत्व का समर्थक और आकाशरूप ईथर का पक्का विश्वासी हूँ।

कणों के अध्ययन की उन्नति।

इस खंडवाद की प्रवृत्ति को बड़ा भारी सहारा उस विलक्षण उन्नति से मिला है जो कणों के अन्वीक्षण और उनके क्रम-विभाग के अध्ययन में हुई है। गैसों के जो नियम हैं वे अधर में उड़ती महीन बुकनियों के सम्बन्ध में भी ठीक घटते पाए गए हैं। सब से बढ़ कर बात तो यह हुई कि पारदर्शक किरणों (X rays) के सहारे बिल्लौर आदि के कणों के क्रम देखे गए।

पुरानी बात का पक्ष।

मैं ने जिन विवादयुक्त बातों की सम्भावनाओं का ऊपर उल्लेख किया उनके विषय में मैं चाहता हूँ कि लोग पुराने पक्ष पर जमे रहें। मैं उन परीक्षा-

४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध परिणामों को स्वीकार करता हूँ जिन पर बहुत से सिद्धान्त—जैसे सापेक्षिकता का—निर्भर हैं। पर मैं उन्हें उतना हलचल डालनेवाले नहीं समझता जितना कि उनके प्रवर्त्तक समझते हैं। मेरी समझ में ऐसा ढंग निकल सकता है जिससे पुरानी बातों को रखते हुए भी हम नई बातों को ग्रहण कर सकते हैं। लक्ष्यों को हटाने में धैर्य्य से काम लेना चाहिए। इन लक्ष्यों में सब से प्रधान अखंडत्व है। मैं शून्य आकाश में किसी सूक्ष्म से सूक्ष्म भौतिक शक्ति की क्रिया का अनुमान नहीं कर सकता। उसके लिए एक अखंड मध्यस्थ अवश्य चाहिए। मैं दिक् (space) और काल में खंडत्व नहीं मान सकता और न कोई ऐसी परीक्षा ही जानता हूँ जिससे इस प्रकार का सिद्धान्त निकल सके। हम दिक् (आकाश) और काल की परीक्षा का कोई ढंग नहीं जानते। हम उनमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन उपस्थित नहीं कर सकते। हम लोग केवल द्रव्य खंड की परीक्षा कर सकते हैं।

ईथर का वास्तविक अस्तित्व।

बहुत अच्छा, तो अब ईथर के विषय में क्या कहा जासकता है? वह एक काल्पनिक निरूपण मात्र है अथवा कोई भौतिक अस्तित्व है जिसकी हम कोई परीक्षा कर सकते हैं? यह तो मान ही लेना पड़ेगा कि ईथर की किसी प्रकार की परीक्षा अत्यन्त दुःसाध्य है। न वह गोचर है और न किसी प्रकार हमारी पकड़ में आ सकता है। उसके विषय में हम केवल इतना ही जानते हैं कि किस वेग से उसके द्वारा शक्तिप्रवाह गमन करते हैं। यही एक बात स्पष्ट और निर्दिष्ट है जिससे हम ईथर को एक भौतिक मध्यस्थ मानते हैं। यद्यपि वह ग्राह्य और गोचर नहीं है पर उसका भौतिक अस्तित्व अवश्य है। वह हमारे परीक्षालयों की पकड़ में नहीं आ सकता। यदि हम उसके बीच से कोई द्रव्य तेज़ी से ले जाँय और इस युक्ति से उसकी धर पकड़ करना चाहें तो भी नहीं कर सकते क्योंकि कोई पदार्थ-घटित सम्बन्ध नहीं मिलता। यदि प्रकाश को लेकर परीक्षा करते हैं तो भी सफलता होती। जब तक कि प्रकाश की गति हमारे सा है तभी तक हम उसका अनुभव कर सकते हैं। जब एक द्रव्य की गति दूसरे के सापेक्ष नहीं है उसकी गति आदि का पता कुछ भी नहीं चल जैसे यदि दो मनुष्य साथ साथ समान गति गमन करते हैं तो एक को दूसरे की गति नहीं मा हो सकती। इसी से यह विचार होता है कि गति को ईथर के सापेक्ष बतलाना बात ही बात अब तक केवल द्रव्यखंडों की परस्पर सापेक्ष का पता चल सका है। यही बात 'सापेक्ष सिद्धा की जड़ है। कहने में तो यह एक साधारण सी जान पड़ती है पर यह सापेक्ष सिद्धान्त अत्यन्त और पेचीदा है। इसका प्रतिपादन प्रोफ़ेसर ऐंस (Professor Einstein) ने बड़ी विलक्षण योग के साथ किया है। बात यह है कि अब तक ऐसी गति नहीं देखी गई जो केवल ईथर ही के पेक्ष हो। भेद समझने के लिए गति का हि लगाने में कोई न कोई ऐसी विलक्षण भेद (compensation) बीच में अवश्य हो जा जिससे एकान्त गति का निर्धारण हो ही नहीं सक जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के पास से होकर जा तभी कोई बात देखी जा सकती है। उस अवस्था भी गतिवान् द्रव्य-खंड के बाहर ईथर में कोई वा फेरफार नहीं देखा जा सकता।

ईथर की गति की माप।

ईथर द्वारा गति की परीक्षा के लिए हमें युक्ति ही को काम में लाना चाहिए। हम प्रवाह से काम लें और पहले प्रकाश के वेग गति के अनुकूल और फिर प्रतिकूल मिलावें मिलान हम करें तो कैसे करें? यदि प्रक प्रस्थान किसी दूर पर रक्खी हुई घड़ी के हो और हम प्रस्थान का समय उस घड़ी में द्वारा देखें तो इस युक्ति से भी एक प्रकार पूर्ति होती है क्योंकि दूरबीन से भी हम प्र किरणों ही के सहारे देखते हैं। यदि अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हम प्रकाश छोड़ें और वह सामने दूर रक्खे हुए शीशे पर पड़ कर फिर हमारे पास प्रत्यावर्तित हो कर आवे तो भी यही बात होगी। यदि हम ऐसा प्रबन्ध करें कि दूर से छोड़े हुए प्रकाश के प्रस्थान का समय हमें तार द्वारा सूचित किया जाय तो उस तार की सूचना भी ईथर ही द्वारा हमारे पास आवेगी और भेद वा कसर की पूर्त्ति होगी, भेद ठीक न जान पड़ेगा। बिजली, चुंबकशक्ति, प्रकाश आदि सब ईथर ही के प्रभाव हैं। घनत्वयोजना (cohesion) द्वारा भी हम यह परीक्षा नहीं कर सकते क्योंकि यह बात निश्चित है कि ईथर ही विश्व में अणुओं का संयोजक है। तब कोई ऐसी क्रिया काम में लाई जाय जो ईथर पर अवलंबित न हो। पर ऐसी क्रिया हम लावेंगे कहाँ से ?

बात यह है कि हम लोगों का यह युग अत्यन्त सूक्ष्म कल्पनाओं का है। बीसवीं शताब्दी का बड़ा भारी आविष्कार है द्रव्य का वैद्युतिक सिद्धान्त। यह हम लोगों के समय का बड़ा भारी आविष्कार है। इस सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हमारे ही समय में हुआ। इससे हम इसके विषय में पूरी विवेचना नहीं कर सकते। इसे अभी पूर्ण रूप से जड़ पकड़ना है, इसके पूरे ब्योरों का अभी विकाश होना है। हाँ इतना इसके विषय में पहले से कह सकते हैं कि यह आगे चल कर किसी न किसी रूप में ठीक प्रमाणित होगा।

आगे चल कर इस सिद्धान्त से विलक्षण परिणाम निकलेंगे। इसके कारण बहुत कुछ उथल पुथल और संशय तो अभी से आरम्भ हो गया है। क्योंकि यदि यह सत्य है तो प्रत्येक भौतिक पारस्परिक क्रिया वैद्युतिक वा ईथरीय होगी। इसी से अड़चन पड़ती है। प्रत्येक प्रकार की शक्ति का सञ्चार ईथर ही द्वारा होता है। इससे जब तक हमारे सब साधन-यन्त्र एक ही वेग से गमन करते हैं तब तक गति के पता लगने की कोई सम्भावना नहीं। इसी बात पर सापेक्ष सिद्धान्त का ज़ोर है। परिवर्तन शून्य तो नहीं होते पर वे एक दूसरे को ऐसा काट देते हैं कि किसी का पता नहीं लग सकता।

आकाश के ईथर के अन्वीक्षण की कठिनता।

यह ईथर का सर्वव्यापकत्व, एकरूपत्व और सर्वसाधकत्व है जिससे उसका निरीक्षण इतना कठिन है। किसी वस्तु के अन्वीक्षण के लिए विभिन्नताओं का होना आवश्यक है। यदि कुछ दूर पर ईथर के बीच सब क्रियाओं का सञ्चालन समान गति से हो रहा है तो उनमें से एक की गति का भी पता नहीं लग सकता। कोई ऐसी वस्तु ढूँढ़ी जाय जिसका प्रसार ईथर द्वारा न होता हो तो काम चले। पर प्रत्येक भौतिक व्यापार का सञ्चार ईथर ही द्वारा होता है, शायद आकर्षण (gravitation) को छोड़ कर। उसके सहारे शायद कभी कुछ पता चले पर अभी तक उसकी सञ्चारण गति आदि की परीक्षा कुछ भी नहीं हो सकी है। उसकी माप की कोई युक्ति अभी तक हाथ नहीं आई है। शायद द्रव्य की सृष्टि और उसके विनाश को छोड़ और किसी प्रकार यह परीक्षा हो भी न सके। द्रव्य से तात्पर्य्य आकर्षण व्यष्टि (gravitational unit) से है चाहे वह अणु, विद्युदणु जो कुछ हो। सम्भवतः गुरुत्व (weight) की व्यष्टि भी विद्युदणु है, जैसे कि मात्रा की। अन्यूटनिक पदार्थ-व्यवस्था, जिसमें मात्रा और आकृति वेग की क्रियाएँ निश्चित हुई हैं, द्रव्य के वैद्युतिक सिद्धान्त ही का फल है। द्रव्य का वैद्युतिक सिद्धान्त बड़े मार्के का है और उससे बड़े बड़े परिणाम निकलेंगे। इसकी सहायता से हम उन परीक्षाओं को करते हैं जिनसे ईथर और द्रव्य के सम्बन्ध का कुछ आभास मिलता है। इसके स्थान पर जो सापेक्षवाद अग्रसर होना चाहता है वह निराकरण का सिद्धान्त है, निषेध करनेवाला निरूपण है। वह कहता है कि कुछ बातों का पता कभी लग ही नहीं सकता। ईथर और द्रव्य का कोई सम्बन्ध ही नहीं और न ईथर कोई वस्तु है। पर यदि हम उन वास्तविक परिवर्त्तनों को स्वीकार कर लेते हैं जो तीव्र वेग के कारण होते हैं तो हमारे आविष्कार के लिए सारा मैदान पड़ा है। इससे किसी दिन यह भी सम्भव है कि हम विद्युदणु की आकृति आदि के परिवर्तनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी पता लगा लें, 'क्योंकि यद्यपि वह अत्यन्त सूक्ष्म है पर उसकी गति प्रकाश की गति के लगभग है। फिर कौन जाने इसी प्रकार आकाश के ईथर के गुणों तक भी हमारी पहुँच हो जाय, यद्यपि ईथर अत्यन्त चक्कर में डालनेवाला है।

भौतिक अखंडत्व की नींव।

ईथर भौतिक विज्ञानवेत्ताओं ही का अधिकृत विषय है। कणों की परीक्षा आदि तो हम रासायनिकों से लेते हैं। भिन्न भिन्न रूपों में द्रव्य की परीक्षा तो सब वैज्ञानिक करते हैं पर आकाश के ईथर का अध्ययन भूतविज्ञान (physics) ही का विषय है। इस परम तत्त्व के महत्त्व का स्वीकार करनेवाला अकेला मैं ही नहीं हूँ। अपनी विलक्षण भ्रान्ति-कारिणी और अग्राह्य वृत्ति, अपनी विश्व-व्यापिनी और एकता-विधायिनी नित्यता, अपने अनन्त और अपार विस्तार तथा पूर्ण और नियमित गुण के कारण ईथर अत्यन्त कौतूहलप्रद और भौतिक ब्रह्मांड का सार तत्त्व है। सर जे० जे० टाम्सन ने विनिपेग (Winnipeg) नगर में कहा था—"ईथर दार्शनिकों की निरी कल्पना नहीं है। यह हमारे लिए वैसा ही आवश्यक है जैसी साँस लेने की हवा।......इस सर्वव्यापक तत्त्व का अनुसन्धान भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं का बड़ा भारी और परम मनोहर कर्त्तव्य है"। यह द्रव्य तो नहीं है पर भौतिक अवश्य है क्योंकि यह भौतिक ब्रह्मांड के अन्तर्गत है और भौतिक युक्तियों से जाना जा सकता है। पर इस कहने से यह न समझना चाहिए कि मैं इस बात को अस्वीकार करता हूँ कि इसके द्वारा सृष्टि की किसी और कोटि (भौतिक से परे) में मानसिक और आध्यात्मिक व्यापारों का साधन भी होता हो।

आकाशीय ईथर अखंडत्त्व का बड़ा भारी प्रवर्त्तक है। सम्भव है यह इससे भी महत्तर हो क्योंकि इसके बिना भौतिक ब्रह्मांड की सृष्टि ही नहीं हो सकती। इसमें तो सन्देह नहीं कि अखंडत्व के लिए यह परम आवश्यक है, क्योंकि यही एक ऐसा व्यापक पदार्थ है जो द्रव्य-खंडों को परस्पर बाँधता है। यह एक ऐसा संयोजक और मिला वाला मध्यस्थ है जिसके बिना यदि द्रव्य रहता तो इधर उधर छितराए खंडों में रहता। यह ज और अणुओं के बीच का मध्यस्थ है। इतने पर लोगों के लिए इसका अस्तित्व अस्वीकार कर सम्भव है क्योंकि यह हमारी इन्द्रियों को ग्राह्य न है, केवल दृष्टि को इसका अत्यन्त सूक्ष्म परि हो सकता है, सो भी इतने घुमाव फिराव के स कि साधारण रीति से पता नहीं लग सकता।

भौतिक विज्ञान की परिमित पहुँच।

मेरा यह कहना है कि विज्ञान ठीक ठीक नि करने में असमर्थ है चाहे वह ईथर ही का क्यों हो, और यदि वह ऐसा करता है तो अपने क के विरुद्ध करता है। विज्ञान को निषेध में न फँसना चाहिए, प्रतिपादन ही की ओर ध्यान र चाहिए। जो सूक्ष्म सार-कल्पना (abstractio के आधार पर है उसे अपने अधिकार के ब निषेध करने नहीं जाना चाहिए। ऐसा प्रायः है है कि सार रूप से निरूपित जिन बातों पर वि की एक शाखा ध्यान नहीं देती उस पर दू ध्यान देती है।

मैं देखता हूँ कि कुछ आलोचकों ने मुझे श वादी (vitalist) कहा है। एक प्रकार से मैं हूँ पर यदि शक्तिवाद से अभिप्राय है भौतिक रासायनिक विज्ञान-नियमों के विरुद्ध एक अनि और अज्ञात शक्ति का सहारा लेना तो मैं शक्तिवादी नहीं हूँ। इन नियमों में परिशिष्ट घटाव बढ़ाव हो सकता है पर इनका उल्लंघन प्रकार नहीं हो सकता। विज्ञान का काम य कि जहाँ तक हो सके सर्वत्र इन नियमों के प लन का पता लगावे, और सच्ची प्रज्ञा (inst वही है जो विज्ञान की क्रियाओं में आध्यात्मिक अज्ञात कारणों को लाना न देख सके। वि अदृष्टवाद का सहारा लेना अनुचित है उससे परीक्षा और अनुसन्धान में रुकावट है। यदि किसी घटना के विषय में केवल यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाय कि 'यह ईश्वर की लीला है' ग्रैार कुछ न कहा जाय ता वह घटना बिना समझी बूझी ही रह जाती है। सब के अन्त में जाकर यह कथन सत्य हो सकता है ग्रैार विश्वमात्र पर घट सकता है। पर धीरे धीरे करके परम्परा-क्रम से पहुँचते हुए बहुत से कारण बीच में होते हैं जिनका पता धैर्य्य के साथ लगाना चाहिए। ऐसा करने से हम बिजली, भूडोल आदि के प्राकृतिक कारणों तक पहुँचते हैं। मूल वा आदि कारण की व्यवस्था तक विज्ञान नहीं पहुँचता, वह केवल बीच के क्रमशः पहुँचते हुए कारणों की छान बीन करता है। इन्हीं के लिए वह है ग्रैार इन्हीं का ढूँढ़ना इसका काम है। पेड़ों का रस मूल से ऊपर कैसे चढ़ता है? इसके उत्तर में यदि कहा गया कि 'अज्ञात शक्ति के कारण' ता यह प्रश्न के परित्याग के अतिरिक्त ग्रैार कुछ भी न हुआ। सन्धियों में रस-सञ्चार शक्ति* (Osmosis) की क्रिया से विलक्षण परिणाम किस प्रकार उत्पन्न होते हैं यह जानने की बात है ग्रैार जानी गई है।

प्राण में अभौतिक तत्त्व।

बहुत से प्राणिविज्ञानवेत्ता अपने विषय की छानबीन करते हुए यह स्पष्ट देखते हैं ग्रैार बतलाते हैं कि प्राणियों के सब व्यापारों का समझने के पहले कुछ ऐसे कारणों का मान लेना आवश्यक है जिन पर अब तक ध्यान नहीं दिया गया। जे० आर० मेयर (J. R. Mayer) के समय से यह बात बराबर निश्चित होती जाती है कि अपनी क्रिया में प्राणी ग्रैार वस्तुग्रों के समान भौतिक विज्ञान के नियमों के अनुकूल ता चलता है पर वह ऐसी प्रणालियों का सूत्रपात करता है ग्रैार ऐसे ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है जो उसके बिना सम्भव नहीं। चिड़ियों का घोंसला लीजिए, मक्खियों का छत्ता लीजिए, जंगी जहाज़ लीजिए। जंगी जहाज़ पर से आते हुए गोलों का कारण ता हम क्षमता (energy) आदि कह कर बतला देंगे पर वह शत्रु ग्रैार मित्र की पहचान कैसे करता है इसका कोई वैज्ञानिक कारण हम नहीं बतला सकते। तूफ़ान ग्रैार अग्नि आदि की गति बतलाई जा सकती है। लाप्लेस (Laplace's) के मानयंत्र द्वारा हम अणुग्रों की प्रारम्भिक स्थिति, वेग आदि बतला सकते हैं, पर कोई गणितज्ञ मक्खी की उड़ान से बनी हुई परिधियों का हिसाब नहीं लगा सकता। यदि किसी वैज्ञानिक विद्युद्यंत्र में कोई मकड़ी आ जाय ता वह उसकी बातों को तब तक बतलाता जायगा जब तक उसे अभौतिक (भूतों से परे) बातें न मिलने लगेंगी। मुझे यह कहने में कोई खटका नहीं कि प्राण भौतिक नियमों के बीच एक अप्रमेय ग्रैार प्रयोजनीय तत्त्व का प्रवेश करता है। प्राण भौतिक नियमों में परिशिष्ट रूप से कुछ जोड़ देता है यद्यपि वह उनको ज्यों का त्यों रहने देता है ग्रैार उनके अनुकूल चलता है।

हम प्राण नहीं देखते, उसका प्रभाव मात्र देखते हैं। जीवित प्राणी ही द्वारा निरिन्द्रिय (inorganic) द्रव्य सेन्द्रिय (organic) में परिवर्तित होता देखा जाता है। यह परिवर्त्तन वास्तव में होता है ग्रैार उसकी प्रणाली का अध्ययन किया जा सकता है। इस परिवर्त्तन के लिए प्राण आवश्यक जान पड़ता है। यह परिवर्त्तन प्राणी ही के सहारे होता है यद्यपि इसकी प्रणाली भौतिक ग्रैार रासायनिक है। परीक्षालयों में भी इस प्रकार के परिवर्त्तन प्राणी ही के द्वारा होते हैं यदि प्राणी परीक्षक न हो ता वे न हों।

सड़ाव, ख़मीरी उबाल, ग्रैार व्याधि आदि केवल रासायनिक क्रियाएँ नहीं हैं। रासायनिक व्यापार वे हैं पर वे जीते जागते प्राणियों ही के अवलम्ब से होते हैं। जब ग्रैाषध-विषय प्राणि-सम्बन्धी हो रहा है ग्रैार शक्तिसम्पन्न लोगों का ध्यान उष्ण प्रदेशों को उद्योगी जातियों के स्वस्थतापूर्वक रहने के योग्य बनाने की ग्रोर है तब प्राणिविज्ञान वालों को रसायन ग्रैार भूत विज्ञान के पीछे अपनी विद्या को छोड़

* साही में सोख्ते का एक कोना छुलाने से इसका कुछ अनुभव होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठने का प्रयत्न न करना चाहिए । प्राणि-विज्ञान एक स्वतंत्र विद्या है, वह भूत-विज्ञान और रसायन से काम लेता है, उसके अधीन नहीं हो जाता ।

विज्ञान और अन्धविश्वास ।

वैज्ञानिक लोग अन्धविश्वास से चिढ़ते हैं, और उनका चिढ़ना ठीक भी है क्योंकि बहुत से प्रचलित अन्धविश्वास ऐसे हैं जिनसे कुढ़न और घृणा होती है । पर कभी कभी इस शब्द का व्यवहार ऐसी बातों के लिए भी होता है जिनके नियम अज्ञात होते हैं । स्वयं प्राणिशास्त्रविदों के बहुत से व्यवहार ऐसे हैं जो ऊपर से देखनेवालों को बिलकुल अन्धविश्वास-मूलक जान पड़ते हैं । मलेरिया ज्वर की शान्ति के लिए सर रोनल्ड रास (Sir Ronald Ross) बेदी बना कर माला फूल तो नहीं चढ़ाते पर तालाब में तेल देते हैं—माना उसके देवता का अभिषेक करते हैं । हाल में पनामा की नहर खोदते समय रोग को दूर रखने के लिए अमेरिकावालों ने जो टीन के रद्दी बरतनों में छेद करने के विलक्षण कृत्य पर ज़ोर दिया था वह देखने में जंगलीपन के सिवा और क्या मालूम होता था ? और सब जाने दीजिए भूमि को अधिक उपजाऊ करने के लिए उसे जलाने वा ज़हरीली करने से बढ़ कर मूर्खता ऊपर से देखने में और क्या जान पड़ेगी ? जो बात निश्चित जान पड़ती है वह यह है कि द्रव्य के बिना प्राण की कोई भौतिक व्यक्तता नहीं हो सकती । इसी से कुछ लोगों का यह कहना, या इस कहने को पसन्द करना, स्वाभाविक ही है कि "मैं द्रव्य में प्रत्येक प्रकार के प्राण की सम्भावना और सामर्थ्य देखता हूँ" । ठीक है, पर प्रत्येक प्रकार के प्राण की नहीं । प्रत्येक प्रकार के प्राण की भौतिक व्यक्तता की । क्योंकि प्राण हमें द्रव्य द्वारा व्यक्त होने के अतिरिक्त और किस प्रकार व्यक्त हो सकता है ? यह भी कहा जाता है कि "प्राणी में हम रसायन और भूत-विज्ञान के नियमों के अतिरिक्त और कुछ पाते ही नहीं" । बहुत ठीक ! यह भी स्वाभाविक ही है क्योंकि लोग प्राण के भौतिक वा रासायनिक रूप वा व्यक्तता का ही अध्ययन ही कर रहे हैं । स्वयं प्राण का, अर्थात् प्राण मन और चेतना का, अध्ययन तो वे करते नहीं हैं इनको तो वे अपनी छानबीन के बाहर रखते हैं । द्रव्य ही है जो हमारी इंद्रियों को ग्राह्य है । भूतवाद भौतिक जगत् के उपयुक्त है—पर दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में नहीं बल्कि चलते हुए व्यापार की व्यवस्था के रूप में, बीच की कारण-परम्परा के अनुसन्धान के रूप में । इसके परे जो बातें हैं वे दूसरे विभाग की हैं और दूसरे उपायों से जानी जाती हैं । आध्यात्मिक बातों को रसायन और भूत-विज्ञान के शब्दों में बतलाना असम्भव है इसी से उनका अस्तित्व ही अस्वीकार किया जाता है, वे केवल भ्रान्ति-लक्षण माने जाते हैं । पर ऐसी अनधिकार मीमांसा अनुचित है ।

प्राण और मन ।

यद्यपि प्राण और मन शरीर-विज्ञान के बाहर हैं पर विज्ञान के बाहर नहीं हैं । यह कहना ठीक नहीं कि किसी वस्तु का हम उपयुक्त रीति से अनुसन्धान नहीं करते इसलिए उसका पता ही नहीं लग सकता । पर ऐसा कभी कभी कह दिया जाता है ईथर इन्द्रियग्राह्य नहीं है इसीसे कुछ लोग कहने लगे हैं कि ईथर है ही नहीं । मन के विषय में भी कभी कभी यही कह दिया जाता है । प्राण का पता परीक्षालयों में नहीं लगता केवल उसकी रासायनिक और भौतिक व्यक्तता देखी जाती है पर यह मानना पड़ेगा कि वह एक विशेष रूप से द्रव्यों का परिचालन करता है । उसे हम निर्विकार (catalyt अर्थात् जो स्वयं विकृत न हो कर भी दो रासायनिक मिश्रणों में विकार उत्पन्न करता है) परिचालक कह सकते हैं । स्वयं प्राण के व्यापारों को समझने के लिए हमें सूक्ष्म जीवों की ओर न जाना चाहिए बल्कि स्वयं अपने को जीते जागते प्राणी समझ कर अपने ही अनुभवों की ओर ध्यान देना चाहिए इस ओर ध्यान देते हुए यदि हम कोई भी दृष्टान्त ले लें तो प्राण के अस्तित्व को अस्वीकार करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनेगा। यदि मन तथा उसकी प्रेरणा और क्रम-व्यवस्था इस कारण अस्वीकार की जाती है कि वह इंद्रियग्राह्य नहीं है तो एक ऐसे प्राणी का दृष्टान्त लीजिए जिसके सामने जगत् के सब नियम और व्यापार इसी प्रकार चल रहे हैं पर कोई मनुष्य वा जीव नहीं दिखाई देता। सोचिए तो कि ये सब व्यापार उसे कैसे जान पड़ेंगे। मान लीजिए कि इस दूसरे ग्रह के प्राणी को मनुष्य गोचर ही नहीं हैं। ऐसी अवस्था में इन व्यापारों को वह ऐसा ही बतलावेगा जैसा हम आज अपने व्यापारों को बतलाते हैं।

यदि वह फ़ोर्थ नदी के मुहाने (Firth of Forth) के पुल को देखेगा तो उसे पानी में उठे हुए खंभे दिखाई देंगे जो ऊपर की ओर जाकर विलक्षण रीति से मिल गए हैं। इन पर से वह कीड़ों की तरह की वस्तुएं बिना उनका प्रयोजन समझे आते जाते देखेगा। फिर मान लीजिए कि वह नील नदी की ओर देखता है और रेगिस्तान के बीच हरियाली उत्पन्न करने में उसकी उपयोगी गति की ओर ध्यान देता है। इसके उपरान्त आगे चल कर वह धारा के बीचों बीच उठता हुआ बाँध देखता है। उसके देखने में बड़े बड़े ढोंके एक प्रकार की ध्रुव शक्ति वा जड़ प्रवृत्ति (Heliotropism-पौधों की पत्तियों आदि के प्रकाश की ओर झुकने की प्रवृत्ति) द्वारा अपनी अपनी जगह पर जाकर बैठते जान पड़ेंगे। यहाँ तक तो उसे भूत-विज्ञान और रसायन के नियमों के आगे जाने की आवश्यकता न होगी; वह द्रव्य की क्षमता (energy) आदि द्वारा सब बातें समझ बूझ लेगा। उसे पहले किसी प्रकार की क्रम-व्यवस्था भी न दिखाई देगी। क्योंकि यद्यपि इस प्रकार के बाँध से पानी रुक कर ऊपर की ओर फैलता और वनस्पति उत्पन्न करता दिखाई देगा पर नीचे की ओर उसके इस प्रकार रुकने से और रेगिस्तान में नष्ट होने से हानि ही दिखाई देगी। पर इसके उपरान्त जब उसे नीचे फूटे हुए बड़े बड़े छेद दिखाई देंगे जिनसे नीचे नीचे आगे की ओर पानी बराबर जाता हुआ और अन्त में वनस्पति को लाभ ही पहुँचाता हुआ दिखाई देगा तब उसे 'उद्देश्य' का आभास मिलेगा।

क्रम-व्यवस्था का प्रमाण।

अब यदि इन दोनों बनावटों में से किसी के विषय में वह कहें कि इसे लंडन के एक इंजिनियर सर बेंजमिन बेकर (Sir Benjamin Baker-फ़ोर्थ नदी का पुल बनवानेवाले) ने बनाया है तो उसका यह कहना उसके साथियों को उपहासास्पद ही जान पड़ेगा। ऐसे कथन के विरुद्ध सबसे पक्की दलील तो यह होगी कि वह वहाँ है नहीं; और जो वस्तु जहाँ है नहीं वहाँ कोई काम नहीं कर सकती। यदि बहुत सी बातें मालूम होने से हम कहेंगे कि इस प्रकार के तटस्थ निरीक्षक को कोई अज्ञात परिचालक वा कर्त्ता मान लेना चाहिए; परन्तु साथ ही यह भी है कि व्यापारों को अज्ञात-शक्ति के कार्य्य बतलाना व्यर्थ होगा। रसायन और भौतिक विज्ञान के शब्दों ही में जितनी व्याख्या की जायगी उतनी ही स्पष्ट, निर्दिष्ट और जहाँ तक उसकी पहुँच है सत्य होगी। वह अपूर्ण होगी इसमें तो सन्देह नहीं। यह बात समझ रखनी चाहिए कि ऐसी अवस्थाओं में जो कुछ हम देखते हैं वह अन्तःकरण और द्रव्य की पारस्परिक क्रिया है, भ्रान्तिलक्षण (epiphenomenon) वा समन्वय (parallelism) नहीं हैं। उसमें हम द्रव्य और द्रव्यक्षमता (energy) के गुणों का ऐसे उद्देश्यों की सिद्धि के लिए सीधा उपयोग देखते हैं जिनका प्रादुर्भाव अन्तःकरण में होता है। पर प्रतिपक्षी कहेंगे कि इस प्रकार के दृष्टान्त देना अनुचित है क्योंकि फ़ोर्थ नदी के पुल और नील नदी के बाँध के विषय में हम जानते हैं कि वे एक क्रम पर बने हैं और उनके बनानेवालों को भी हम जानते हैं।

अर्थात् ये कट्टर प्राणिविज्ञानवेत्ता बराबर कहेंगे कि "यह सब कुछ नहीं। जहाँ जो कुछ हम देखते हैं सब भूतविज्ञान और रसायन की क्रियाएँ हैं। ऐसे ऐसे कामों में जो अन्तःकरण की स्वतंत्र क्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भान होता है वह भ्रान्ति है। भौतिक और रासायनिक नियम ही जो कुछ हैं सो हैं और उन्हीं से सारी बातों के हेतु आदि का पता लग सकता है।" ठीक है! पर उनसे कुछ दूर ही तक का पता लगता है। वे सूर्यास्त के रंग, पर्वत शृंग की विशदता, जीवों के चमत्कार आदि के हेतु की व्याख्या कुछ अंशों ही तक करते हैं। क्या वे सब बातों के कारण पूर्ण रूप से बता सकते हैं? क्या वे हमारे आनन्द की उमंग, और सौन्दर्य्य के भाव आदि का पूरा पूरा हेतु दे सकते हैं? क्या इनके द्वारा (भौतिक और रासायनिक से) अधिक उच्च, महान् आनन्दप्रद बातों का आभास नहीं मिलता जिनके लिए जीवन की यह सब हाय हाय है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृतिक पदार्थों के भीतर एक गूढ़ रहस्य भरा हुआ है। कट्टर वैज्ञानिक इस विषय में जो बातें बतलाते हैं वे यद्यपि अपनी पहुँच के अनुसार ठीक हैं पर आंशिक हैं। जब हम मोर की पूँछ की रंगविरंगी चंद्रिकाओं और ज़ेब्रा की पीठ पर की धारियों में रंगों का विचित्र मेल देखते हैं कि किस प्रकार वे अपनी अपनी जगह पर एक निश्चित नमूने और नक़शे को भरते हुए बैठे हैं तब यह कहना अत्यन्त कठिन होजाता है कि ऐसी क्रमव्यवस्था के साथ अंगों का परस्पर मेल केवल पदार्थ नियमों द्वारा होता है। फूल उर्वरता के लिए कीड़ों को आकर्षित करते हैं, और फल बीजों को फैलाने के लिए जानवरों को आकर्षित करते हैं। पर उनके सम्बन्ध में इतनी ही व्याख्या काफ़ी नहीं है। हमें स्वयं कीड़ों की स्थिति को समझना समझाना है। फूलों में इतनी सुन्दरता केवल कीड़ों को आकर्षित ही करने के लिए नहीं है। हमें जीवन के लिए जो इतनी हाय हाय रहती है उसे समझना चाहिए। जीव अपनी स्थिति के लिए इतना प्रयत्न क्यों करते हैं। इस प्रयत्न का कोई रहस्य होगा और विकाश का कोई उद्देश्य होगा। इस रीति पर विचार करने से हमारे सामने जीवन और विकाश का प्रश्न आता है।

जिस पदार्थ-योजना से जीवन का विकाश होता है वह बहुत कुछ जान ली गई है। स्वाभाविक ग्रहण-प्रवृत्ति (Natural Selection) का सिद्धान्त जहाँ तक पहुँचता है कारण आदि बताता है। पर यदि इतने सौन्दर्य्य की आवश्यकता कीड़ों के लिए है तो हम वन, पर्वत और मेघमाला आदि के सौन्दर्य्य के विषय में क्या कहेंगे? उनके सौन्दर्य्य से कौन सा काम निकलता है, कौन सा भौतिक अर्थ-साधन (utility) होता है। विज्ञान सौन्दर्य्य की विवेचना नहीं करता। न करे, पर उसका अस्तित्व अवश्य है। मैं उसके विषय में यहाँ तर्क वितर्क नहीं करना चाहता। मैं केवल इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि हमारे अनुसन्धान में ब्रह्मांड की सारी बातें नहीं आजातीं। इससे यदि हम निषेध करते चलते हैं और कहते हैं कि भूत-विज्ञान और रसायन ही के अन्तर्गत हम सारी बातों को ला सकते हैं तो हम केवल संकीर्ण पांडित्य का दम्भ दिखाते हैं और अपने मनुष्य-जन्म के अधिकार की पूर्णता और समृद्धि खोते हैं। इसके विरुद्ध एक भावुक पूर्वी कवि की उक्ति कितनी उचित है—

जगत् अपनी दृष्टि को तेरे चरणों पर झुकाए सारे मौन नक्षत्रों के साथ स्तम्भित और चकित खड़ा है'।

हमारी भौतिक पहुँच बहुत थोड़ी है। हमारी इन्द्रियाँ द्रव्य ही को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त हैं, उसके अतिरिक्त और बातों का बोध हमें सीधे नहीं होता। हमारे अंग द्रव्य में इच्छानुकूल परिवर्त्तन उपस्थित करने के उपयुक्त हैं, इसके अतिरिक्त हम और कुछ नहीं कर सकते। हमारा मस्तिष्क भौतिक जगत् के शेषांश से हमारा सम्बन्ध कराता है। हमारी इन्द्रियाँ हमें द्रव्य के क्रम और गति की सूचना देती हैं और हमारे अंग हमें उन क्रमों को परिवर्त्तन करने में समर्थ करते हैं। मानवजीवन के लिए बस इतना ही सामान हमारे पास है। इन अधिकारों को ले कर हमने जो कुछ किया है वह मनुष्य-जाति के इतिहास में दर्ज है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकाश में अखंडत्व।

विज्ञान द्वारा जो हमने यह जान लिया कि विकाश वास्तव में होता है सो बहुत कुछ किया। विज्ञान की दृष्टि से विकाश परम सत्य है। विकाश भ्रान्ति नहीं है। सृष्टि काल पाकर होती है। दिक्काल और द्रव्य सार-निरूपण (Abstractions) हैं पर सत्य हैं। अनुभव से उनकी प्रतिपत्ति होती है। काल ही विकाश का प्रवर्त्तक है। 'सैकड़ों वर्ष आते जाते हैं और एक जंगली फूल को उन्नत और पूर्ण करते हैं"। जीते जागते चलते फिरते सत् (Reality) से हम उसके एक स्थूल रूप का सारग्रहण (Abstract) करते हैं और उसे द्रव्य कहते हैं, इसी प्रकार उसकी अग्रसरता वा उन्नति के तत्त्व को हम साररूप से ग्रहण करते हैं और उसे काल कहते हैं। जब इन दोनों सारों का संयोग और सहकार्य्य होता है तब हमें फिर सत् का भान होता है। विकाशसिद्धान्त में काल का वास्तविक अस्तित्व मिलता है।

मुझे सारी भौतिक सत्ता भूत से भविष्य की ओर जाती हुई एक गति के रूप में दिखाई देती है। उसका एक ही अंश वा क्षण जो वर्त्तमान कहलाता है व्यक्त वा प्रत्यक्ष होता है *। भूत का अत्यन्ताभाव नहीं होता। उसका लेखा हमारी स्मृति में रहता है द्रव्य में रहता है और वह वर्त्तमान का आधार होता है। भविष्य वर्त्तमान का फल है और विकाश की उपज है।

सृष्टि करघे के तैयार माल के समान है। बुनावट का नक़शा नमूना वहाँ किसी न किसी रूप में पहले से रहता है। एक बार नमूने पर चलानेवाली ढरियाँ लगा दी जाती हैं फिर तो उस कालरूपी करघे में बहुत से स्वतंत्र परिचालक हो जाते हैं जो तन्तुजाल में जैसा फेर फार चाहें कर सकते हैं अर्थात् यदि वे काल-व्यवस्था के अनुकूल चलते हैं तो माल अच्छा होता है और प्रतिकूल चलते हैं तो बुरा। मेरी समझ में लोक में जो त्रुटियाँ दिखाई देती हैं उनका समाधान इससे होजाता है। स्वतंत्रता और किसी शर्त्त पर दी ही नहीं जा सकती। उसका सौदा इससे सस्ता हो ही नहीं सकता। अपने कर्म्मों द्वारा सुख वा दुःख उत्पन्न करने की सामर्थ्य भ्रम नहीं है सत्य है। चेतन कर्ता की यह एक ऐसी सामर्थ्य है जिसके ऊपर उसकी भलाई बुराई छोड़ दी गई है। अतः जो माल तैयार वा जो फल उत्पन्न होता है वह कोई पूर्व निर्धारित वा अटल वस्तु नहीं, यद्यपि हम आचरण के पूरे परिचय द्वारा कभी कभी उसका निश्चय कर सकते हैं। काल की एकरूप गति के अतिरिक्त और कोई वस्तु अटल नहीं। कपड़ा बुना जायगा यह बात तो रहती है पर उसका नक़शा नमूना न पूरा निश्चित रहता है और न पदार्थ-नियम द्वारा उसका कोई हिसाब किताब हो सकता है।

जहाँ केवल निरींद्रिय (Inorganic) द्रव्य का मामला रहता है वहाँ सब बातें निश्चित होती हैं। पर जहाँ कहीं पूर्ण चेतना का प्रवेश होता है वहाँ नई शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और चेतन अंशों की सामर्थ्य और इच्छा का प्रभाव समष्टि पर पड़ता है। इस समष्टि को प्रेरणा बाहर से नहीं भीतर से होती है और प्रेरणा करनेवाली शक्ति प्रत्येक क्षण अन्तर्व्याप्त रहती है। इस प्रेरणा-शक्ति के हम एक क्षुद्र अंश हैं पर बिलकुल निकम्मे नहीं।

विकाशोन्नति सत्य है, यह एक बड़े महत्त्व का सिद्धान्त है। सामाजिक उन्नति के लिए हमारे प्रयत्न इसलिए उचित हैं कि हम समष्टि-विधान के एक अंग हैं; अंग भी कैसे जो चेतन होगया है, जो थोड़ा बहुत समझता है कि वह क्या कर रहा है और उसका उद्देश्य क्या है। अस्तु-समष्टि में उद्देश्य और विधान का अभाव नहीं हो सकता क्योंकि हम

* श्रीकृष्ण भगवान् ने भी गीता में अर्जुन से कहा है—
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके एक अंग हो कर अपने आप में उनका अनुभव करते हैं ।

विज्ञान और आध्यात्मिक अन्वेषण ।

या तो हम अमर हैं या नहीं हैं । हम अपना भविष्य नहीं जानते, पर हमारा किसी प्रकार का भविष्य है अवश्य । जो अस्वीकार करते हैं वे वैसे ही भ्रान्त हो सकते हैं जैसे वे जो स्वीकार करते हैं । लोग वैज्ञानिकों को अधिकारी समझ उनसे ऐसी बातों की जिज्ञासा करते हैं अतः उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि वे लोगों को भ्रम में न डालें। वैज्ञानिक लोग मानव जीवन के आगे के भविष्य को नहीं जान सकते। न सही, पर वे उस पर धूल क्यों डालें ? जो बात जैसी है वैसी ही रहेगी, चाहे हम उसे जानें या न जानें । यदि हम बिना समझी बूझी बातें कह जाँयगे तो हमारी भावी सन्तति को हमारी असत्यता का पता लग जायगा । मैं उन लोगों में हूँ जिनकी धारणा है कि विज्ञान की अनुसन्धान-प्रणाली उतनी परिमित नहीं है जितनी समझी जाती है । उसका उपयोग और दूर तक हो सकता है और आध्यात्मिक अनुसन्धान भी नियम-बद्ध किए जा सकते हैं। इसके लिए प्रयत्न होने देना चाहिए। जो भूतवाद (Materialistic hypothesis) के सिद्धान्तों को उन्नत और परिवर्द्धित किया चाहते हैं वे ख़ुशी से जहाँ तक चाहें वहाँ तक करें, पर हमको आध्यात्मिक विभाग में अनुसन्धान करना चाहिए और देखना चाहिए कि अन्त में विजय किसकी होती है । अनुसन्धान की जो प्रणाली उनकी है वही हमारी है, भेद केवल विषय का है । इनमें से किसी को भी दूसरे को भला बुरा न कहना चाहिए ।

यद्यपि मैं यहाँ कट्टर विज्ञान का प्रतिनिधि बन कर खड़ा हूँ पर अपने ३० वर्ष के आध्यात्मिक अनुसन्धान के अनुभव को बिना कहे न रहूँगा और हमारे सभापति भी शायद विज्ञान की कट्टरता से बद्ध और परिमित होकर न बोलेंगे जैसा कि आज कल का फ़ैशन है ।

शरीर-वियोग के उपरान्त भी व्यक्तित्व बना रह[ता] है । यहाँ पर यदि न्याय से पूछा जाय तो मैं केव[ल] इतना ही नहीं कहता कि जो बातें अभी अदृष्टवा[द] के अन्तर्गत समझी जाती हैं वे वैज्ञानिक प्रणा[ली] द्वारा जाँची और नियमबद्ध की जा सकती हैं ब[ल्कि] यहाँ तक कहता हूँ कि जहाँ तक परीक्षा हुई है उस[से] मुझे यही निश्चय हुआ है कि स्मृति आदि अन्तःकर[ण] वृत्तियाँ द्रव्य के उस सम्बन्ध ही तक परिमित न[हीं] हैं जिसके द्वारा हमें वे व्यक्त होती हैं और शरी[र-] वियोग के उपरान्त भी व्यक्तित्व बना रहता है[।] परीक्षा द्वारा मुझे यह प्रतीत होता है कि शुद्ध भू[त] निर्लिप्त ज्ञान का हमारे साथ पारस्परिक व्याप[ार] भौतिक विभाग में दिखाई देता है और इस प्र[कार] घुमाव फिराव के साथ वह हमारी वैज्ञानिक परी[क्षा] के अन्तर्गत आ सकता है । इससे आशा होती [है] कि शायद धीरे धीरे हम लोग अधिक विस्तृत, शा[...] ईथरीय, स्थिति को और फिर उन नियमों को जि[नके] अनुसार शून्य के बीच पारस्परिक व्यापार-व्यव[हार] होती है, समझ सकें । कुछ सच्चे और विश्[वसनीय] अन्वेषक आशापूर्वक ज्ञान के एक नए क्षेत्र का [आ]भास दे रहे हैं । इससे और अधिक हम यह [कह] सकते हैं कि सत्य की छानबीन के लिए एक [ही] वैज्ञानिक ही प्रणाली नहीं है, यद्यपि यह प्र[णाली] हमारे उपयुक्त है ।

नये युग के प्रदर्शक ।

बहुत से वैज्ञानिकों को अब भी ब्रह्मवि[द्या] परमात्म-विद्या (Theology) से चिढ़ मालूम [होती] है क्योंकि उनके पूर्ववर्त्तियों को तत्सम्बन्धी ब[हुत] अत्युक्त वितंडावादों का सामना करना पड़ा [था।] उन्हें अपने ढँग पर सत्य और स्वतंत्रता का [मार्ग] साफ़ करने में बहुत लड़ना झगड़ना पड़ा था [।] लड़ाई झगड़े की नौबत दुर्भाग्यवश आई थ[ी और] उसका बहुत कुछ बुरा प्रभाव अब तक रह ग[या है।] उन बुरे प्रभावों में से एक यह है जिसके [कारण] हमारी सहानुभूति सत् के अन्य आध्यात्मि[क]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

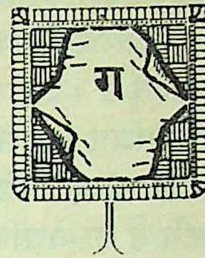
रूपों की ओर नहीं होती और हम उनसे खिँचे रहते हैं। यह हम कभी नहीं कह सकते कि इस लोक में सत्य का प्रादुर्भाव केवल दो एक शताब्दियों से ही होने लगा। वैज्ञानिक काल के पूर्व की प्रतिभा की—कवियों और महात्माओं की प्रतिभा की—पहुँच भी बड़े महत्त्व की थी। उन प्राचीन महात्माओं का ब्रह्मांड की आत्मा के विषय में बहुत कुछ प्रवेश था। उनके पीछे जो उनके अनुयायी हुए उनको इतनी सूझ नहीं थी, उनमें केवल हठ और दुराग्रह था जिसके कारण वे नए (वैज्ञानिक) युग का आभास देने वालों को पत्थर मारते थे।

अन्त में इस नए युग की विजय हुई और अब पत्थर हमारे (नए युग के वैज्ञानिकों के) हाथ में है। पर हम भी जो उन पुराने धर्म्माचार्यों की नक़ल करें तो यह मूर्खता है। हम यह कह कर कि ब्रह्मांड के अनेक प्रकार के रहस्यों की छानबीन के लिए हमारी ही प्रणाली उपयुक्त है और सब प्रणालियाँ कुछ नहीं हैं, पुरानी भूल को क्यों दोहरावें। ब्रह्मांड के विषय में हमारी जो धारणा है इससे वह कहीं बढ़ कर है; खोज की कोई एक प्रणाली उसके सारे रहस्यों को पूरा छान नहीं सकती।

सच्चे धर्म का मूल मनुष्य जाति के अन्तःकरण में, और वस्तुओं की सत्यता में है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपनी अनुसन्धान प्रणाली से हम उसका ग्रहण नहीं कर सकते। परमात्मा के कार्य हमारी किसी विशेष इन्द्रिय को ग्राह्य नहीं हैं, और हमारी अनुसन्धान प्रणाली ऐसी है जिससे किसी अखंड एकरूपता का पता ही नहीं लग सकता। यहाँ पर सापेक्षिकता का सिद्धान्त चलता है इससे जब तक हमें कोई व्याघात और भेद नहीं मिलते तब तक हमें कोई परिज्ञान नहीं होता। हम लोग अपने चारों ओर की अन्तर्व्याप्त विभूति को देख सुन नहीं सकते; इतना ही कर सकते हैं कि काल रूपी करघे से निकल कर पूर्णता की ओर अनन्त गति से गमन करते हुए वस्त्र को भूतों से परे उस परमात्मा का परिधान समझें।

हिंदी पर प्राकृत भाषाओं का प्रभाव।

[ले० बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]



गत वर्ष जब कलकत्ते में साहित्य-सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन होनेवाला था उस समय वहाँ की स्वागतकारिणी समिति ने मुझ से ऊर्ध्व लिखित विषय पर लेख भेजने की आज्ञा दी थी। पर उस वर्ष समय कम रहने से मैं उसका पालन न कर सका। इस वर्ष भागलपुर के सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री ने फिर मुझे उक्त विषय पर लेख भेजने के लिए आज्ञा देने की कृपा की है। यद्यपि इस वर्ष इस विषय पर लेख भेजने के लिए कई ऐसे विद्वानों से भी प्रार्थना की गई है जो इस विषय में अपने को प्रसिद्ध कर चुके हैं और जिनके सामने मेरा कुछ कहना साहस मात्र है फिर भी सम्मेलन की आज्ञा को शिरोधार्य्य करके मैं दो चार बातें इस विषय में कहना चाहता हूँ।

'प्राकृत' शब्द के भाषा अर्थ में दो अर्थ होते हैं एक प्रकृति अर्थात् जन साधारण के बोल चाल की भाषा जो समय समय पर भिन्न भिन्न होती आई है और वैदिक भाषा से लेकर आज तक की बोल चाल की भाषाएँ हिंदी, बँगला, मरहठी, गुजराती, पंजाबी आदि सभी जिसके अन्तर्भूत हैं, दूसरे प्रकृति* अर्थात् संस्कृत से व्याकरण-नियम द्वारा बनाई हुई कल्पित प्राकृत भाषा जो नाटकों और जैन-साहित्य में मिलती है।

पहले के विषय में तो हमें कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं केवल इतना कहना है कि साहित्य की भाषा सदा लौकिक वा प्रांतिक भाषा से विलक्षण होती आई है। यद्यपि उसमें सभी प्रान्तों

*'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवः तत आगतो वा प्राकृतम्' हेमचन्द्र। तथा 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात्प्राकृतं मतम्' प्राकृतचंद्रिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाषा के शब्द होते हैं और उसे सर्वसाधारण समझ भी सकते हैं पर वह किसी एक प्रान्त की भाषा नहीं होती बल्कि वह एक ऐसी भाषा होती है जिसे समझ तो सभी सकते हैं पर उसमें लिख केवल विद्वान् ही सकते हैं, इसीलिए ऐसी भाषा को देववाणी देवगिरा आदि कहते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी-भाषा ही को लीजिए। इसे समझते सब हैं पर विशुद्ध रूप से केवल पढ़े लिखे लोग ही लिख और बोल सकते हैं। यद्यपि इसका ढाँचा एक प्रान्त का है पर अब इसे सर्वथा प्रान्तिक नहीं कह सकते क्योंकि इसके विस्तार के कारण इसमें दिल्ली, मेरठ के अतिरिक्त और और प्रान्तों की बोलियों के शब्द ही नहीं बल्कि संस्कृत, फ़ारसी और अँगरेज़ी तक के शब्द मिल गये हैं। यही अवस्था वैदिक भाषा की है। उसमें म्लेच्छ भाषा तक के शब्द हैं और कितने ही प्रान्तिक प्रयोग भी हैं*।

अब दूसरी प्राकृत का हाल सुनिए। इस[े] प्रधान दो भेद हैं—आर्य्य प्राकृत और जैन प्राकृत।

आर्य्य प्राकृत के वररुचि आदि विरचित कई व्या[क]रण हैं और जैन प्राकृत के हेमचन्द्राचार्य्य आदि के ग्र[न्थ] हैं। इन प्राकृतों में यद्यपि उस समय की प्रांतिक बोल चाल के शब्द हैं पर वे सर्वथा न बोल चाल ही की भाषाएँ हैं और न ऐसी ही भाषाएँ हैं जिनका प्रयो[ग] किसी समय में विद्वानों में होता था। इन ग्रन्थ[ों] के देखने से यह भी अनुमान होता है कि वैयाकरणों ने प्राकृत के सौरसेनी, मागधी, पैशाची अपभ्रं[श] इत्यादि अनेक भेद किये हैं। पर यह उनका साह[स] मात्र है क्योंकि यह कभी स्वीकार नहीं किया [जा] सकता कि उन वैयाकरणों के पास ऐसे साधन [थे] जिनसे वे सभी प्रांतों की प्राकृत बोलियों का अव[गाहन] करने में समर्थ हुए होंगे। श्रद्धा करनेवा[ले] महात्माओं की तो बात ही जुदी है। जिनके मत [में] त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तक हो सकते हैं वे लोग सब कु[छ] मान सकते हैं और उनके लिए सब कुछ संभव है पर इस प्रमाण-प्रधान युग में शायद ही कोई ऐ[सा] महात्मा सभ्य समाज के सामने खड़े होकर [यह] कहने का साहस करें कि "वे लोग त्रिकालदर्शी [थे] अतः उन लोगों ने जो कुछ लिखा सब अपने यो[ग] बल द्वारा जान कर ही लिखा, और उस स[मय] भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में उन्हीं भाषाओं [का] प्रचार था जो उन वैयाकरणों के सूत्रों से सि[द्ध]

---

* वैदिक मन्त्रों में अनार्य्य शब्द भी हैं यह मेरा निज का सिद्धान्त नहीं। हम से बहुत पूर्व के महर्षि जैमिनि ने भी वेदों में ऐसे शब्दों का होना स्वीकार किया है। मीमांसादर्शन अध्याय १ पाद ३ सू० १० चोदितं तु प्रतीयेताविरोधात् प्रमाणेन।

इस पर शवर स्वामी लिखते हैंः—अथ यान् शब्दान् आर्य्या नकस्मिंश्चिदर्थे आचरन्ति, म्लेच्छास्तु कस्मिंश्चिन्प्रयुञ्जन्ते यथा पिक, नेम, सत तामरसादिशब्दास्तेषु सन्देहः, किं निगम निरुक्तव्याकरणवशेन धातुतोऽर्थः कल्पयितव्यः, उत यत्र म्लेच्छा आचरन्ति स शब्दार्थ इति। शिष्टाचारस्य प्रमाणमुक्तं नाशिष्टस्मृतेः। तस्मान्निगमादिवशेनार्थकल्पना। निगमादीनां चैवमर्थवत्ता भविष्यति। अनभियोगश्च शब्दार्थेष्वशिष्टानाम्, अभियोगश्चेतरेषाम्। तस्माद्धातुतोर्थः कल्पयितव्य इत्येवं प्राप्ते ब्रूमः—चोदितमशिष्टैरपि शिष्टानवगतं प्रतीयेत, यत् प्रमाणेनाविरुद्धं तदवगम्यमानं न न्याय्यं त्यक्तुम्। यत्तु शिष्टाचारः प्रमाणमिति—तत्प्रत्यक्षानवगतेऽर्थे। यत्त्वभियुक्ताः शब्दार्थेषु शिष्टा इति, तत्रोच्यते-अभियुक्ततरापक्षिणां पोषणे बंधने च म्लेच्छाः। यत्तु निगमनिरुक्तव्याकरणानामर्थवत्तेति—तत्तेषामर्थवत्ता भविष्यति, न यत्र म्लेच्छैरप्यवगतः शब्दः। अपि निगमादिभिरर्थे कल्प्यमाने अव्यवस्थितः शब्दार्थो भवेत्—तत्राऽनिश्चयः स्यात्। तस्[मात्] पिक इति। (वाजसनेयिसंहितायां) कोकिलो ग्राह्यः ने[म] (हिंत जनिम नेमभूद्यतम् ऋ० ६। ६८। ५) तामरसं पद्मं, सत (स तेन द्रोणकलसम् वा सं० १६। २७) दारुमयं पात्रं, परिमण्डलं शतछिद्रम्।'

अर्थात् पिक, नेम, तामरस, सत इत्यादि शब्द विदेशी[...]

इसी प्रकार कहीं 'कोवेद' का 'कुविद' जैसे—कु[...] गोपां करसे जनस्य इत्यादि, कहीं 'रत्न' का 'रतन', कहीं [...] का देवासो, हंति का हनति, इत्यादि इत्यादि लौकिक [...] मिलते हैं जिनमें किसी को निपात, किसी को आर्ष, कि[सी को] व्यत्यय कह के वैयाकरण अपना पल्ला छुड़ाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं" । अपने इस विचार की पुष्टि में हम यहाँ कुछ स्थालीपुलाक न्याय से ऐसे प्राकृत शब्दों के नमूने पेश करते हैं जिनका वा जिनके विकारों का प्रयोग किसी काल में किसी भाषा में किसी प्रकार से कोई समझदार मान ही नहीं सकता । इससे यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि नाटकों वा जैनियों की प्राकृत भी कभी बोलचाल की भाषा न थी, वह केवल वैयाकरणों की गढ़ी हुई एक कल्पित भाषा थी जिसका प्रयोग केवल लिखने में उन वैयाकरणों के पीछे होने लगा ।

संस्कृत	प्राकृत
पताका	पडाआ
पन्थः	पहो
पिशाचः	पिसल्लो, पिसाओ
प्रतिज्ञा	पईणा
मयूखः	मोहो, मउहो
भजनम्	भाअणं, भाणं
प्रभूत	बहुअ
भ्रमर	भसर
अपस्मारः	अम्हलो
पद्मः	पडमो, पोम्मो
रत्नम्	रअणं, रयणं
ललाटः	णड़ालो, णिडालो, णलाडो
वज्रम्	वइरं
विष्णु	आदियो
शकटः	सअड़ो
स्थानम्	ठीणं, थीणं

बात यह है कि आदि प्राकृत वैयाकरण ने—चाहे वह चंड वा जो कोई हो—अपने समय की जीती जागती भाषा के थोड़े से अपूर्ण और अव्याप्त नियम बनाए । पीछे कुछ काल बीत जाने पर जब आदि वैयाकरण की भाषा भी बोलचाल से उठ गई तब कुछ वैयाकरण उन अपूर्ण नियमों को अतिव्याप्त बनाकर उनके अनुसार सिद्ध करके बहुत से नये शब्द गढ़ने लगे, जैसे प्राचीन वैयाकरण ने एक नियम किया कि स्वर के परे 'क' का लोप हो जाता है (पर यह नियम उनका बिलकुल व्यापक नहीं था) जैसे 'कोइल' (कोकिल) आदि शब्दों में । फिर क्या था पीछे के महात्माओं ने जितने इस प्रकार के 'क' कार मिले सब का लोप करना शुरू किया और 'सकल' से 'सअल' आदि बहुत से शब्द गढ़ डाले । वृत्तिकारों ने भी सूत्रों के उदाहरण देने में यही ग़लती की है । यद्यपि आदि आचार्य्यों ने साफ़ कह दिया था कि हमारे ये नियम विभाषा वा विकल्प से लगते हैं । सारांश यह कि एक समय की प्रचलित भाषा के अपूर्ण और अव्याप्त नियमों को लेकर दूसरे समय के लोगों ने, जब कि उन नियमों की चरितार्थता की जाँच का साधन नहीं रह गया (अर्थात् वह भाषा उठ गई जिसे देख कर वे अपूर्ण नियम बने थे), बहुत से बेढंगे शब्द बना डाले और एक कल्पित भाषा की सृष्टि की । यहीं तक नहीं, संस्कृत के समकक्ष एक नया सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण खड़ा करने के लिये सैकड़ों नये नियम बनाए गए । जान बूझ कर भाषा का यह कृत्रिम ढडढा खड़ा करने में हेमचन्द्र ने बड़ी बहादुरी दिखाई । संज्ञा शब्दों के उदाहरण तो ऊपर दिए गए । कुछ उन क्रियाओं और धातुओं के उदाहरणों का भी नमूना देखिये जो इन त्रिकालज्ञ वैयाकरणों के सूत्रानुसार बनती हैं । यहाँ एक बात बतला देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि इन सूत्रकारों ने मनमाने आदेश किए हैं उनका लक्ष्य नाद वा स्फोट के नियम पर नहीँ था और न उन्होंने निरुक्त (Philology) पर ही कुछ ध्यान दिया ।

संस्कृत 'म्लै हर्षक्षये' धातु के स्थान में वररुचि ने 'म्लैवावाऔ' सूत्र से वा और वा औ आदेश किया है । भला सोचिये तो सही कि 'म्लै' का किस स्फोट नियम से वा और वा औ होगा । इसी प्रकार हेमचंद्राचार्य्य ने संस्कृत कथ धातु के स्थान में 'कथेर्वज्जर-पज्जरोप्पाल-पिसुण, सङ्घबोल्लचव्प जम्प सीससाहाः ।' से वज्जर, पज्जर, उप्पाल, पिसुण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्कबोल्ल, चव, जम्प, सीस, साह आदेश कर डाले हैं। अब पाठक विचारिये तो सही क्या इन सब का कथ से विकृत होकर निकलना संभव है। मेरी समझ में तो वज्र, से वज्जर, पज्जर; उपल से उप्पाल; पिसुन से पिसुण; शंस वा शंक से सङ्क, ब्रुव से बोल्ल, चर्व से चव, जल्प से जम्प, शिक्ष वा शिष से सीस, तथा शास् से सह निकला है। इसी प्रकार 'स्मृ' धातु के स्थान में 'सरेर्झरझर, भल, लढ़, विम्हर, सुमर, पयर, पम्हुहाः' से झर झर, भल, लढ़, विम्हर, सुमर, पयर, पम्हुस् आदेश किए हैं जिनमें 'सुमर' को छोड़ शेष सब कल्पित तथा दूसरे संस्कृत शब्दों से बने प्रतीत होते हैं। 'विम्हर' 'विस्मृ' का और 'पम्हुसं' 'प्रस्मृ' का विकार प्रतीत होता है जिसे 'विम्हुः पम्हुस् विम्हर वीसराः में उन्होंने स्वीकार किया है। इनमें 'वीसर' अति शुद्ध प्रतीत होता है।

आजकल कितने विद्वान् जिनका यह कथन था कि वर्त्तमान हिन्दी-भाषा प्राकृत से निकली है उसके शब्दों को शैारसेनी आदि प्राकृत के भेदों से न सिद्ध होते देख दुराग्रह वश यह कहा करते हैं कि वर्त्तमान हिन्दी-भाषा अपभ्रंश नामक प्राकृत भाषा से निकली है। हम ऐसे विद्वानों और उनके वाक्यों को 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' माननेवाले शिष्यों के लिये कुछ अपभ्रंश प्राकृत के शब्दों को उनके माने हुए संस्कृत के प्रकृति रूपों के साथ यहाँ उदाहृत करके सानुरोध उन से विचार करने की प्रार्थना करते और पूछते हैं कि क्या वे महात्मा यह बताने का परिश्रम उठावेंगे कि ये शब्द भाषातत्त्व और निरुक्त (Philology) के किस नियम के अनुसार अपनी प्रकृति से (वैयाकरणों की मानी हुई प्रकृति) से निकले हैं और क्या वे तीन काल में भी उन्हें उन उन संस्कृत शब्दों का विकार सिद्ध करने में कृतकार्य हो सकेंगे।

संस्कृत	प्राकृत
उद्भुत	ढक्करि
अपस्कंद	दड़वड
शीघ्रं	बहिल्लं
कौतुक	कोड्ड
कुक्कट	घप्पलो
वद	बोल्ल
भय	द्रवक
असाधारण	सड्ढल
मूढ़	नलिग्र
तक्ष	छोल्ल

हमें यहाँ प्राकृत वैयाकरणों की कुछ अयोग्य[ता] का परिचय देना आवश्यक जान पड़ता है। वह [यह] है कि उन वैयाकरणों ने जिस प्रकार अपने अ[न्य] कल्पित प्राकृत भाषाओं को नियमों से जकड़ [दिया] किया है उस प्रकार वे अपभ्रंश को नहीं कर सके। पहिले तो उन लोगों ने अपभ्रंश को छुआ ही न[हीं] है। पर जिन्होंने उसे छूने की चेष्टा की है जैसे हे[म]चंद्रादि ने वे केवल विभक्ति और प्रत्ययों ही [को] लिख कर रह गये हैं और 'शौरसेनीवत्' लिख [कर] ही अपना पीछा छुड़ाया है जिससे इस अनुमान [की] पुष्टि होती है कि उन लोगों ने अपभ्रंश शब्दों [के] अवगाहन करने में अपनी असमर्थता को सम[झा] था जो वास्तव में ठीक भी था। संस्कृत भाषा [के] अतिरिक्त यदि और किसी भाषा का पूर्ण रूप [से] अवगाहन किया गया तो वह पाली भाषा है जि[से] उसके सुयोग्य वैयाकरणों और कोशकारों ने संस्[कृत] की समकक्ष भाषा बना दिया और पीछे से बौ[द्धों] को यह कहने का साहस दिलायाः—

> सा मागधी मूलभासा नरायाआदि कप्पिका।
> ब्राह्मणा चास्सुता लापा सुम्बुद्धा चापिमासिरे॥

अपभ्रंश भाषा जिसका हेमचन्द्र पूरा अव[गाहन] नहीं कर पाया वह अवश्य मारवाड़ की भा[षा है] जिसके उदाहरणों में उसने अपनी शौरसेनी [आदि] कल्पित प्राकृतों के कुछ शब्दों को इधर उधर [कर] कर उसे कुछ अधिक क्लिष्ट कर दिया।

अब हम इसका विचार पाठकों ही पर छो[ड़ते] हैं, वे ही विचार कर देखें, कि क्या वह का[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृत जो व्याकरणों के सहारे बनती है कभी भारत-वर्ष के किसी प्रान्त की बोलचाल की भाषा वा विद्वानों की भाषा थी। जिन लोगों ने उन उन व्याकरणों को पढ़ा है उन्हीं ने उस भाषा में भले ही पुस्तकें आदि लिखी हैं जैसा कि नाटकों में और जैन-साहित्य में देखा जाता है। फिर जिनका प्रचार ही नहीं था उनसे अपनी भाषा का विकाश मानना भ्रम नहीं तो क्या है। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि कुछ इने गिने शब्द जैसे भुआल गाहा इत्यादि तुलसीदास के रामायण तथा अन्य काव्यों में मिलते हैं पर इसका कारण यह है कि तुलसी-दासजी संस्कृत के पण्डित थे और उन्होंने* नाटकादि को पढ़ा था और काव्यपरम्परा की रीति पर रामायण को बनाया था। अन्य कवियों ने भी उन्हें अपने पूर्व-वर्ती कवियों से लिया था।

यहाँ यह भी कह देना अनुचित न होगा कि हिन्दी कविता के प्रवाह के उद्गम संस्कृत और प्राकृत काव्य हैं और गद्य हिन्दी-भाषा का उद्गम लोकभाषा है। अतः काव्यों में प्राकृत शब्द मिलने से हम यह नहीं स्वीकार कर सकते कि हमारी हिन्दी-भाषा पर प्राकृत का प्रभाव पड़ा है। हाँ, यदि आप प्राकृत का अर्थ लें भिन्न भिन्न कालों में प्रचरित प्रजाजनों की भाषा तब भी यह कहना उचित न होगा कि उसका प्रभाव हिन्दी-भाषा पर पड़ा है वा पड़ सकता है। यह भले ही माना जा सकता है, और यह मानना ठीक भी है, कि हिन्दी-भाषा अपने पूर्व की प्रचलित भाषाओं से निकली है। उन पूर्वप्रचरित भाषाओं के कुछ नमूने गौतमबुद्ध के उपदेशों, अशोक के शिलालेखों, तथा इधर चंद आदि ग्रन्थों में पाए जाते हैं।

—:०:—

* तुलसीदास के प्राकृत ज्ञान का प्रमाण यह है।
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने॥

बुद्धघोष *।

परिचय।

संस्कृत साहित्य में जो स्थान सायण का है, पाली साहित्य में ठीक वही स्थान बुद्धघोष को प्राप्त है। उसका तथा उसके रचित ग्रन्थों का दक्षिणी (लंका, बरमा और स्याम के) बौद्धों में प्राचीन काल से बहुत अधिक आदर है। उन लोगों के धार्मिक और नैतिक जीवन पर बुद्धघोष के लेखों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और वे लोग उसे देवतुल्य मानते हैं।

बुद्धघोष के असली नाम का अब तक पता नहीं चला है। "बुद्धघोष" एक व्यक्तिगत पदवी मात्र है जो उसे या तो बौद्ध होने के समय या बाद में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार करने के कारण मिली थी। इस प्रकार की व्यक्तिगत पदवियों अथवा उपनामों की प्रथा, बुद्ध के बाद कई सौ वर्षों तक, बहुत अधिक प्रचलित थी और उन दिनों बुद्धप्रिय, बुद्ध-गुप्त, बुद्धमित्र, बुद्धभद्र और बुद्धघोष, इन्द्रघोष, आर्य्यघोष और मञ्जुघोष आदि नाम अधिकता से रक्खे जाते थे।

यद्यपि दक्षिणी बौद्धों में बुद्धघोष का बहुत आदर है और उन लोगों में उनके सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएं भी प्रचलित हैं, तथापि चीन, जापान, और मंगोलिया के बौद्ध उनके नाम से एक दम अपरिचित हैं। भिलसा और मथुरा आदि स्थानों में अब तक जो शिलालेख पाये गये हैं उनसे मालूम होता है कि उस समय भारत के पश्चि-मोत्तर प्रदेश में बुद्धघोष बौद्ध-समाज का एक प्रमुख था और लगभग पचास वर्षों तक समस्त भारत में वह बहुत आदरणीय रहा। चीनी यात्री फाहियान् जब सन् ४०५ से ४०९ के मध्य में पाटली-पुत्र गया था तो उस समय उसे वहाँ एक "विद्वान्

* इण्डियन एण्टिक्वेरी (The Indian Antiquary) के अप्रैल सन् १८९० के अङ्क के एक लेख के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण" मिला था। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह "विद्वान् ब्राह्मण" वही बुद्धघोष था। लंका वालों के कथनानुसार बुद्धघोष ने लंका के राजा महानाम के* राजत्वकाल में और बरमा वालों के कथनानुसार बरमा के राजा व्यांगडैक के † समय में अपना धार्म्मिक जीवन आरम्भ किया था।

बरमावासियों में बुद्धघोष के संबंध में जो दन्त-कथाएं प्रचलित हैं उनसे मालूम होता है कि वह ब्राह्मण था और विशुद्धिमार्ग नामक पुस्तक की,—जिसमें बुद्ध के सब अवतारों का पूरा विवरण है—रचना के लिए लंका भेजा गया था। सन् ३९७ के लगभग वह बहुत सी पाली पुस्तकें लंका से बरमा ले गया था। बरमा में बौद्ध-धर्म का पहले पहल उसी ने प्रचार किया था और अन्त में भारतीय ब्राह्मणों के भय से उसने अपना अधिकांश जीवन भी वहीं बिताया था। इसके सिवा स्याम के कुछ बौद्धों का यह भी कथन है कि बुद्धघोष ने गौतम बुद्ध के निर्वाण के २३६ वर्ष बाद लंका में जाकर बौद्ध-धर्म्म का प्रचार किया था। लेकिन लंकावालों के कथनानुसार लंका में उसी समय महीन्द्र ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। पहले वह भारत से बरमा गया था और वहाँ से सन् ४०० के लगभग कुछ पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ लाने के लिए लंका भेजा गया था। वहाँ तीन वर्षों तक रह कर उसने अनेक ग्रन्थों के भाष्य पाली भाषा में किये और प्रति-लिपियाँ लीं। जब वह लंका से लौटने लगा तब वहाँ के निवासियों ने बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं उनको भेंट की थीं।

लेकिन लंकावासियों का मत इससे बहुत भिन्न है। वहाँ के बहुत प्राचीन और मान्य ग्रन्थ महावंश में लिखा है—"राजा महानामन् के राजत्व-काल में जम्बूद्वीप (भारत) से लंका में एक विद्वान् आया था जिसका नाम बुद्धघोष था। राजा महानामन् ने उससे बुद्ध के बहुत से उपदेश संग्रह कराए और लिखवाये थे।" दूसरी पुस्तक राजरत्नाकरी में लि[खा] है—"राजा महानामन् के समय में जम्बूद्वीप से [बुद्ध]घोष आया था जिसने बुद्ध के २५७२५० उपदेशों [को] पाली भाषा में ३६०५५० उपदेश और बढ़ाए थे।" राजावली नाम की इतिहास-पुस्तक में लिखा है [कि] महानामन् के पुत्र ने बुद्धघोष तथा एक और [व्यक्ति] को भारत से बुलवाया था और वही लोग अपने सा[थ] अनेक ग्रन्थ आदि लेते गए थे। लेकिन महावंश [का] जो अनुवाद टरनर (Hon. George Turnour) साहब ने किया है, उसमें बुद्धघोष का कुछ विस्[तृत] वृत्तान्त दिया गया है। उसमें जो कुछ लिखा [है] उसका तात्पर्य्य यह है—"मगध देश में एक [बहुत] ही विद्वान् ब्राह्मण युवक रहा करता था। वह ती[नों] वेदों का ज्ञाता और बहुत अच्छा वक्ता था। [वह] वास्तविक "ज्ञान" की प्राप्ति के लिए समस्त प्र[देशों] में घूमता घूमता अन्त में एक बौद्ध-विहार में पहुँ[चा।] वहाँ उसकी भेंट महा-स्थविर रेवत से हुई। प[हले] रेवत और उस ब्राह्मण में कुछ शास्त्रार्थ हुआ जिस[में] वह ब्राह्मण हार गया। इसके बाद रेवत ने उ[स] ब्राह्मण की विद्वत्ता और योग्यता से प्रसन्न हो[कर] उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित कर लिया और उसे "बु[द्ध]घोष" की पदवी दी। इसके बाद उसने जम्बू द्वी[प] में "ज्ञानोदयन" नामक ग्रन्थ की रचना की और "अभिधर्म" नामक ग्रन्थ की "धर्मसंगिनी" टीका [भी] कुछ लिखा। तदुपरान्त उसने पिटकत्रय की "प[रि]तत्त्वकथन" नामक टीका करने का विचार किया। उस पर रेवत ने उसे लंका जाकर महीन्द्र रचि[त] सिंहली भाषा की "अत्थकथा" वा टीका प[ढ़ने] और पाली भाषा में उसका अनुवाद करके उस[के] द्वारा संसार का उपकार करने की सम्मति दी। तदनुसार वह महानाम के समय में लंका आया। वहाँ वह अनुराधापुर के महा-विहार में रहने [लगा और] "अत्थकथा" और "थेरवाद" सुनने लगा। कु[छ] समय बाद उसने वहाँ के प्रधान पर अत्थकथा का अनुवाद करने की अपनी इच्छा प्रकट की और पुस्तकों की सहायता माँगी। प्रधान ने उस[की]

* महानामन् सन् ४१० में लंका का राजा हुआ था।

† व्यांगडैक का देहान्त सन् ४१३ में हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्यता की परीक्षा के लिए पहले उसे केवल एक ही गाथा दी और कहा कि यदि इसका ठीक अनुवाद करने में तुम सफलता प्राप्त कर लोगे तो तुम्हें और ग्रन्थ भी दे दिये जायँगे। वहाँ कुछ समय तक बहुत परिश्रम करके उस गाथा पर उसने विशुद्धि-मग्ग" (विशुद्धि-मार्ग) नामक प्रसिद्ध टीका तैयार की। टीका समाप्त कर चुकने पर जब उसने उसे पढ़ना चाहा तो देवताओं ने वह टीका लुप्त कर दी। इस पर उसने दूसरी टीका की; पर वह भी पहली की भाँति लुप्त हो गई। उसने फिर तीसरी टीका की। तीसरी बार टीका तैयार हो जाने पर देवताओं ने उसकी दृढ़ता से प्रसन्न होकर पहली दोनों टीकाएं भी उसे दे दीं। जब लोगों ने उन तीनों टीकाओं का मिलान किया तो उन्हें मालूम हुआ कि मानों वह तीनों एक दूसरे की नक़ल हैं। उन तीनों टीकाओं में कहीं एक अक्षर का भी फरक न था। इस प्रकार जब बुद्धघोष की विद्वत्ता विहार के अधिकारी को मालूम हो गई तब उसने बड़ी प्रसन्नता से उसे सब ग्रन्थ दे दिए। वहाँ रह कर उसने सिंहली भाषा की अथ्थकथा का पाली भाषा में बहुत उत्तम अनुवाद कर डाला। उसके अनुवाद और टीका का बड़े बड़े आचार्य्य आदर करते हैं। अपना उद्देश्य पूरा करके बुद्धघोष जम्बूद्वीप लौट आया।" लेकिन यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि उक्त अंश असली महावंश में नहीं है बल्कि उसके उस अंश में है जो बाद में तेरहवीं शताब्दी में बढ़ाया गया था।

बुद्धघोष की जीवनी में तीन बातें ऐसी विचारणीय हैं जिनपर विद्वानों का मत-भेद है। (१) (उसका) आरम्भिक जीवन, (२) लंका-यात्रा और (३) अन्तिम जीवन। उसके आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में लोगों में उतना मतभेद नहीं है जितना और बातों में। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि वह जन्म का ब्राह्मण था, बहुत अच्छा विद्वान् था और शायद बौद्ध-धर्म्म का विरोधी भी था। युवावस्था में ही वह बौद्ध हो गया था। कोई कोई विद्वान् उसे प्राकृत का भी अच्छा ज्ञाता और लेखक मानते हैं। कुछ लोग उसे बरमा का निवासी बतलाते हैं, लेकिन यह उनका भ्रम है *। एक विद्वान् के कथनानुसार वह भारत के ब्राह्मणों के भय से भाग कर बरमा चला गया था; लेकिन इस मत की पुष्टि के लिए और कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके सिवा उसके आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अभी तक और कुछ पता नहीं चला है।

बौद्ध होजाने के बाद बुद्धघोष लंका गया था। महास्थविर रेवत ने ही उसे लंका जाकर सिंहली भाषा सीखने और वहाँ से त्रिपिटक का अनुवाद कर लाने के लिए कहा था। वहाँ उसने विशुद्धि-मार्ग नामक भाष्य किया था। किसी किसी का कथन है कि विशुद्धिमार्ग नामक पुस्तक वहाँ पहले से ही तैयार थी; बुद्धघोष ने उसकी नक़ल की थी। लेकिन यह बात ठीक नहीं है। कहा जाता है कि भाष्य लिखने के लिए स्वयं भगवान् बुद्ध ने उसे लोहे की एक क़लम दी थी। बरमावालों के कथनानुसार बुद्धघोष ने ही लंका में बौद्धधर्म्म का प्रचार किया था; लेकिन यह बात ठीक नहीं मालूम होती है, क्योंकि उससे पहले ही महिन्द वहाँ बौद्ध-धर्म्म का प्रचार कर आया था और वहाँ उस धर्म्म के अनेक ग्रन्थ और अनुयायी वर्त्तमान थे। हाँ, यह सम्भव है कि बुद्धघोष ने वहाँ उस धर्म्म का प्रसार और अधिक किया हो।

लंका में बुद्धघोष ने विशुद्धिमार्ग नामक भाष्य के अतिरिक्त वहांवालों के लिए बुद्ध के असंख्य उपदेशों का संग्रह भी किया था। इसके सिवा वह लंका से पाली भाषा की अनेक पुस्तकें बरमा ले गया था और वहाँ उसने बौद्ध धर्म्म और पाली भाषा तथा लिपि का प्रचार किया था।

उसके जीवन का अन्तिम भाग बरमा में बौद्ध-धर्म्म का प्रचार करने में व्यतीत हुआ था। उसके

* बरमावालों को अब उनका भ्रम मालूम हो चला है और वहाँ के नवीन विद्वान् बुद्धघोष का जन्म-स्थान भारत ही मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरमा पहुँचने के समय से वहाँवालों ने एक नया सम्वत् भी चलाया था, पर वह शायद अधिक दिनों तक नहीं चला। बरमा के बाद उसने स्याम देश में भी बौद्धधर्म्म का प्रचार किया था। उन्हीं दिनों में उसने और भी अनेक काम किये थे। लंका आने से पूर्व ही वह "ज्ञानोदय" और "अर्थशालिनी" नाम की दो पुस्तकें लिख चुका था। लंका से वह कात्यायन का पाली व्याकरण भी ले आया था जिसका उसने बरमी भाषा में अनुवाद और भाष्य किया। बुद्धवंश पर जो टीका हुई है वह भी बुद्धघोष की ही बतलाई जाती है। बरमा में जो मनुस्मृति है उसके विषय में भी यही कहा जाता है कि उसे बुद्धघोष लंका से लाया था; लेकिन उस स्मृति में इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है।

बुद्धघोष का बिलकुल ठीक समय भी अभी तक निश्चित नहीं हो सका है इस विषय में विद्वानों का बहुत मतभेद है। कोई तो उसे ईसा से ३०० वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं और कोई कोई उसे ईसा के ६०० वर्ष बाद तक का बतलाते हैं। कुछ लोग तो उसे और भी आगे पीछे घसीट ले जाते हैं; लेकिन वह सम्भवपर नहीं है। अधिकांश प्रमाण इसी बात के मिलते हैं कि वह चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में जीवित था।

—:o:—

गुजराती समाचार-पत्र।

[ले० पंडित श्रीसांवलजी नागर]

पाश्चात्य देशीय अँग्रेज़ विद्वानों के परिचय से, विद्या की अपूर्व उन्नति के कारण, हम भारतवासियों को जो जो अपूर्व लाभ हुए हैं उनमें सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रिय लाभ मुद्रण-कला का अन्वेषण और उसका प्रचार है। जिस प्रकार प्राचीन आर्यों की विद्वत्ता उनके तत्त्वज्ञान के ग्रंथों से स्मरणीय बौद्ध-राज्य का अस्तित्व उसके स्तूपों और भू स्थित प्राचीन मूर्तियों से जाना जाता है, यवनों नामस्मरण उनके मक़बरों और बड़े २ राज-प्रास से अविचल है उसी भाँति अँग्रेज़ी-राज्य का अस्ति भारत के इतिहास में छापे की कला के प्रचार स्मरणीय रहेगा। इतिहास-विज्ञ महाशयों को भ भाँति विदित है कि इस कला के अन्वेषण सौभाग्य अँग्रेज़ों को नहीं वरन् जर्मनीवालों को है। सोलहवीं शताब्दी में जर्मनी प्रदेश के गटन ने इस कला को निकाल उसे परिमार्जित किया वहाँ से वह योरोप में प्रचलित हुई। अँग्रेज़ों संसर्ग से इस देश में भी इसका शुभागमन हु जब से इस कला का आगमन हुआ है, आर्य की स्थिति पलट गई है। इसमें सन्देह नहीं, जिन अँग्रेज़ों के उद्योग से इसका यहाँ प्रचार हु प्रत्येक भारतवासी उनके कृतज्ञ हैं।

अँग्रेज़ी भाषा में "प्रेस" शब्द के दो अर्थ मुद्रण-कला और समाचार पत्र। मुद्रण-कला आविष्कर्त्ता गटनबर्ग थे। योरोप, अमेरिका एशिया आदि की बुद्धि-शक्ति के परिमार्जित और उसे सर्वोपरि सुशिक्षित बनाने में इस कल एक अद्भुत शक्ति प्रदर्शित की है। जर्मनी में के धर्मग्रन्थों के छापने के अभिप्राय से इस कला प्रारम्भ हुआ; परन्तु अन्यान्य भूभागों में, रा सम्बन्धी आलोचनाओं को सबके सामने प्रगट करने इच्छा से इस कला का प्रचार हुआ जिसका वर्त स्वरूप समाचारपत्र हैं। इन समाचारपत्रों उत्पत्ति; जिनमें राज्य-सम्बन्धी, सर्वसाधारण आवश्यकताओं को प्रगट करनेवाले और समाज की उन्नति एवं अवनति-सम्बन्धी समा हों, योरोप में हुई है।

सब से प्रथम इङ्गलेंड देश में एक समा पत्र प्रकाशित किया गया जिसमें केवल सम सुधार-सम्बन्धी ख़बरें रहती थीं। इसके उप एक दो पत्रों में राज-कर्मचारियों की आलोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी होने लगीं; परन्तु राज-दंड के भय से, इन्हें बड़ी २ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यद्यपि उस देश में स्वतंत्रता देवी की पूर्ण कृपा थी तथापि सन् १८८१ के पूर्व मुद्रण-कला को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त न थी। परन्तु वर्त्तमान समय की तरह कार्य-करने वाले प्रेसों का प्रचार इङ्गलैंड देश में सन् १७०४से १७४० ई० तक में हुआ। इस रीति के उत्पादक स्वफ्टि, डीफो, बोलिङ्गब्रूक, और पलटनी नामक सज्जन थे। यही कार्य फ़्रान्स देश में सन् १७८९ से और जर्मनी में सन् १७९६ से प्रारम्भ हुआ। उपर्युक्त सज्जनों के प्रयत्न का लाभ सबसे प्रथम "लण्डन टाइम्स" को हुआ। वाल्टर नामक एक सज्जन ने सन् १७८५ में "डेली यूनीवर्सल रजिस्टर" नामक पत्र निकाला; परन्तु कई कारणों से तीन वर्ष के पश्चात् इसका नाम बदल देना पड़ा और उसका नया नाम "दी टाइम्स" निश्चय हुआ जो आज तक प्रसिद्ध और प्रचलित है। ५० वर्ष लों यह केवल एक साधारण समाचारपत्र था, परन्तु सन् १८३७ से इसकी स्थिति का परिवर्त्तन आरम्भ हुआ। यहाँ तक कि आज कल यह एक जग-प्रसिद्ध समाचारपत्र हो रहा है। इस पत्र के कई वर्ष के लगातार परिश्रम के बाद कई समाचारपत्रों का जन्म हुआ, और आज दिन केवल ग्रेट ब्रिटेन में ही—जो भारतवर्ष से हिस्सा छोटा है, ३१८५ दैनिक और साप्ताहिकपत्र प्रकाशित हो रहे हैं! सम्पूर्ण योरोप में इस समय २५०० के लगभग तो केवल दैनिक पत्र निकलते हैं।

भारतवर्ष में इस कला का प्रवेश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय से हुआ था। सबसे प्रथम धर्मग्रंथ 'बाइबिल' के प्रकाशित करने की अभिलाषा से, अंग्रेज़ों ने, सन् १७८६ ई में बंगाल प्रदेश के श्रीरामपुर नामक नगर में एक प्रेस खोला था। पहिले पहल इसमें अँग्रेज़ी भाषा ही में कार्य होता था। लार्ड वेलस्ली के सुशासन में, सरकार के अधीनस्थ "दी वर्ल्ड"; "कलकत्ता गज़ेट" आदि इसी प्रेस से प्रकाशित किये जाते थे। उस समय मद्रास प्रान्त में इस कला का प्रवेश हुआ था कि नहीं यह अज्ञात है। परन्तु बम्बई प्रान्त में "बाम्बे हेरलड", "कुरियर", "गज़ेट" इत्यादि पत्र निकलने लगे थे।

सन् १७१२ के पूर्व गुजराती और हिन्दी (नागरी) अक्षरों का प्रेसों में कहीं पता भी न था। सन् १६७० ई० में "दिव" बन्दर के भीमजी पारिख नामक एक वैश्य ने बम्बई के गवर्नर के द्वारा एक पत्र डाइरेकृरों के बोर्ड को भेजा, जिसमें यह लिखा हुआ था कि यदि सरकार नागरी अक्षरों को ढाल दे तो वह एक प्रेस खोल कर कार्य करने को तैयार हैं। उस पत्र में यह भी प्रार्थना की गई थी कि सरकार किसी सुयोग्य मनुष्य को भेजकर इस कार्य में सहायता करे। इसके अनुसार कोर्ट आफ़ डाइरेकृरों ने ८००) वार्षिक वेतन पर मि० हेनरी हिल को एक मशीन, थोड़े अँग्रेज़ी अक्षर और कुछ और सामान के सहित भारतवर्ष में भेजा। परन्तु मि० हिल अक्षर ढालना न जानते थे अतएव महाशय भीमजी को आरम्भ में हताश होना पड़ा। भीमजी पारेख ने पुनः कोर्ट आफ़ डाइरेकृर्स की सेवा में निवेदनपत्र भेजा और सन् १६७८ ई० में डाइरेकृरों ने एक (अक्षर खोदने एवं ढालने के कार्य में) चतुर व्यक्ति को भेजा जिसकी सहायता से भीमजी ने नागरी अक्षर बना कर ढाले। इसके पश्चात् सन् १७९० ई० में रुस्तमजी खुरशेदजी नामक एक पारसी सज्जन ने अँग्रेज़ी अक्षरों में पञ्चाङ्ग प्रकाशित किया। इसी समय "बम्बे कुरियर" के सर्वस्व मि० डगलास निकलसन ने छः महाराष्ट्रों को कम्पोज़ करना सिखलाया और यहीं से देशी कम्पोज़िटरों की वृद्धि प्रारम्भ हुई।

जिस तरह नागरी अक्षरों के बनानेवाले भीमजी पारिख थे उसी भाँति गुजराती अक्षरों के बनानेवाले पारसी जाति के फ़रदुनजी मर्जबान थे। उन्होंने गुजराती अक्षर बना कर सन् १८१२ में 'समाचार' नामक प्रेस खोला। इसी प्रेस से सन् १८२२ ई० से "बम्बई समाचार" नामक पत्र भी निकलने लगा और अभी तक बराबर निकल रहा है। इसके बाद सन् १८३० ई० में सरकार की ओर से भी एक प्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोला गया। धीरे २ नागरी, गुजराती और अँग्रेज़ी प्रेस खुलने लगे। यहाँ तक कि सन् १८६७ में इस प्रान्त में प्रेसों की संख्या २५ थी और आज से दो वर्ष पूर्व इसकी संख्या १५० के ऊपर हो गई थी।

गुजराती तथा नागरी अक्षरों को चित्ताकर्षक बनानेवाला टामस ग्राहम और सूरत का जीवन नामक एक लोहार था। सन् १८३५ में टामस ग्राहाम ने, अक्षर खोदने और ढालने की युक्ति जीवन-दास लोहार को बतलाई। १२ प्वाइंट के सादे पाइका अक्षर जो बम्बई की कई फ़ाउंडरियों में बनते हैं, इसी जीवनदास के परिश्रम का फल हैं।

सीसे के अक्षर बनने के पूर्व भारतवर्ष में शिला-छाप द्वारा पुस्तक, पञ्चाङ्गादि छापने की रीति प्रचलित थी। सबसे प्रथम सरकारी फ़रमान, सर्क्यूलर, नोटिस इत्यादि इसी शिला द्वारा छपते थे। पाश्चात्य देशों में प्रेसों की स्थापना पुस्तकों के प्रकाशित करने की अभिलाषा से हुई परन्तु इस देश में समाचारपत्रों की इच्छा से इसकी स्थापना हुई।

बम्बई प्रान्त का देशी भाषा का सबसे पुराना पत्र "बम्बई समाचार" है। सन् १८२२ में इसका जन्म हुआ। यह पत्र सन् १८३२ में दैनिक होकर, कई कारणों से १८३३ में साप्ताहिक हुआ; परन्तु गुजराती-भाषा-भाषियों के उत्साह और उद्योग से पुनः सन् १८५५ में दैनिक हो गया और अभी तक सर्वो-त्तम दैनिकों में इसकी गणना है। गुजराती के प्रसिद्ध दैनिक "जामेजमशेद" (जो पायनियर के आकार से कुछ कम नहीं है) का जन्म सन् १८३१ में हुआ था। पहले यह साप्ताहिक था किन्तु भाषा-प्रेमियों के उत्साह से सन् १८५३ से दैनिक हो गया है। पारसी समाज का यह मुख्य पत्र है। यद्यपि हिन्दू-समाज-सुधार का यह उपदेशक है तथापि पारसियों के समाज-सुधार और नेशनल कांग्रेस के बिलकुल विरुद्ध है। और यही कारण है कि हिन्दु और यवन-समाज में इसका आदर कम है। इसी प्रकार सन् १८५० से सन् १८८० तक "दैनिक चाबुक" "व्यापार समाचार" "भीमसेन" "अख़बार सैादागर" आदि कई दैनिक पत्र निकले परन्तु कई कारणों से "अ[ख़]बार सैादागर" को छोड़ सब बन्द हो गये। हि[न्दी] भाषा-भाषियों को यह सुन कर बड़ा हर्ष होगा [कि] गुजराती भाषा में सन्ध्या समय भी पत्र निकलते [हैं]। इस समय सन्ध्या समय निकलनेवाले दैनिकों [में] "साँझ वर्त्तमान" सर्वश्रेष्ठ है। कुछ काल [तक] "पारसी" भी सन्ध्या समय प्रकाशित होता [था] परन्तु अब फिर प्रातःकाल निकलता है। इस स[मय] राष्ट्रीय विषयों की आलोचनाओं के लिये "बम्बई स[मा]चार" सबसे अग्रगण्य और सर्वोत्तम है। समाजसु[धार] के लिये "पारसी" प्रसिद्ध है। दूसरे दो दैनिकों की [कोई] ख़ास नीति (Policy) नहीं है। वे हर एक वि[षय] की कुछ कुछ आलोचनाएँ करते हैं। यह सब पारसियों के अधीन हैं। शोक है कि हिन्दु-सम[ाज] से अभी तक एक भी दैनिक नहीं निकलता। चारों ओर से गुर्जर प्रेमी उद्योग कर रहे हैं। आ[शा] है; परमात्मा उनकी अभिलाषा शीघ्र पूरी करेंगे।

गुजराती भाषा के साप्ताहिक पत्रों में सब[से] प्राचीन "रास्तगोफ़्तार" है। इसका जन्म, वयो[वृद्ध] महात्मा दादाभाई नैारोजी के सम्पादकत्व में [सन्] १८५१ में हुआ है। इसके एक ही वर्ष के [बाद] साहित्य-प्रेमी कृष्णदास जी ने गुर्जर भाषा के प्रे[मी] सेवी मंगलदास नथ्थूभाई तथा लक्ष्मीदास खी[…] की सहायता से "सत्यप्रकाश" नामक पत्र प्रका[शित] किया। सन् १८६० ई० में उपर्युक्त दोनों पत्र [एक] कर दिये गये। जिस प्रकार "इन्दुप्रकाश" के स[ंचा]लक भारत-रत्न मि० तैलंग, मि० रानाडे, मि० च[ं]वरकर आदि थे उसी प्रकार "रास्तगोफ़्तार" के स[ंचा]लक मि० दादाभाई नवरोजी, फ़रदूनजी, सो[राब]जी शापुरजी, काबराजी इत्यादिक महान् पुरुष थे। सन् १८८० तक इस की गणना सर्वोत्तम प[त्रों में] थी परन्तु काङ्ग्रेस की नीति के विरुद्ध होने के का[रण] इसकी महत्ता और उपयोगिता कम हो गई [और] इसकी ग्राहक-संख्या भी घट गई। "सत्य-प्रकाश" [के] बाद "सत्यदीपक" नामक पत्र भी सन् १[…] में निकाला गया, परन्तु गुर्जर-साहित्य-तत्वज्ञ[…]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युत मोहनलाल और श्रीमान् महीपतरामजी के संचालक रहते हुए भी, दैवयोग से यह पत्र दो वर्ष के बाद बन्द हो गया। इसके बाद, सन् १८६२ में "खोजादोस्त" सन् १८५० में "आर्य्यमित्र" सं० १८८२ में "यज़दांदोस्त" सं० १८५८ में "पारसीपंच" "लिबर्टी" आदि कितने ही पत्र निकले परन्तु धीरे धीरे सभों का अन्त हो गया। तो भी गुर्जर-भाषा-भाषी हताश न हुए वरन् उद्योग करते ही गये। सं० १८८० में प्रसिद्ध "गुजराती" का जन्म हुआ। राष्ट्रीय आलोचनाओं के साथ साथ सर्वसाधारण की अभिलाषा पूर्ण करने का प्रयत्न करना, जैसा कि कांग्रेस का मुख्य नियम है इस पत्र का मुख्य उद्देश्य था और अभी तक है। इसी भांति सं० १८८२ में "कयसरे हिन्द" सन् १८६० में "गुजरात मित्र" नामक कई पत्र निकले जो अभी तक विख्यात हैं और जिनकी ग्राहक-संख्या भी यथेष्ट है।

बम्बई प्रान्त के अँग्रेज़ी समाचारपत्रों में सबसे पहला नम्बर "बाम्बे हेरल्ड" का है। इसका जन्म १७८९ में हुआ था। इसके बाद क्रम से सन् १७९० में "बाम्बेकुरियर" और सं० १७९१ में "बाम्बे गज़ेट" प्रकाशित हुए थे। इसके बाद "बाम्बे" "क्रानिकल" "अरगस" "इडीस" "टाइम्स आफ़ इंडिया" आदि निकलने लगे। टाइम्स का जन्म सन् १८३८ में हुआ है। यह भारतवर्ष में सर्वप्रसिद्ध उत्तम पत्र है। बम्बई प्रान्त के गुजराती और अँग्रेज़ी समाचारपत्रों का उपर्युक्त अल्प इतिहास हैं। इससे मालूम होता है कि कितने ही पत्र दैनिक से साप्ताहिक हुए, कितने ही बंद हो गये, कितने ही के संचालकों को तरह तरह की असुविधाएं झेलनी पड़ीं, घाटे सहने पड़े, अपमानित भी होना पड़ा, परन्तु वे निरुत्साही, निरुद्योगी एवं कर्त्तव्यच्युत न हुए। गुर्जर-भाषा-सेवियों ने सब कुछ सहन कर, अपनी मातृ-सेवा से मुख न मोड़ा, और यही कारण है कि वे अपने भाषा भांडार की पूर्ति में सफली-भूत हुए। परन्तु हिन्दी-साहित्य-सेवियों में यह बात नहीं है। ज़रा ज़रा सी बातों पर निरुत्साही होना, किसी निस्वार्थी-साहित्य-सेवी से ईर्ष्या कर उसे अपमानित करने का प्रयत्न करना, हानि देख कार्य से विमुख होना आदि तो इनके लिये बाएं हाथ का खेल है। जिस सर्व-गुण-आगरी नागरी के किसी समय संसार की राष्ट्रभाषा होने की सम्भावना है, जिस नागरी के पक्षपाती ही नहीं वरन् सेवक गुजराती, मराठी, बंगाली, पंजाबी एवं महात्मा कृष्णस्वामी ऐय्यर सरीखे भारत-रत्न मद्रासी भी हों, उस लिपि में सर्व-गुण-सम्पन्न एक दैनिक पत्र भी न हो, यह कितने महान् दुःख की बात है। अंत में मेरी हिन्दी-प्रेमियों से भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी के आज्ञानुसार यही प्रार्थना है कि—

उठहु उठहु सब भ्रातृ-गण,
उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु,
प्रथम जो सब को मूल ॥ १ ॥

काव्य कला शिक्षा अमित,
ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देशन सों लै करहु,
भाषा मांहि प्रचार ॥ २ ॥

प्रचलित करहु जहान में,
निज भाषा करि यत्न।
राज काज दर्बार में,
फैलावहु यह रत्न ॥ ३ ॥

—:o:—

मनोविकारों का विकाश।

ईर्षा

जैसे दूसरे के दुःख को देख दुःख होता है वैसे ही दूसरे के सुख वा भलाई को देख कर भी एक प्रकार का दुःख होता है जिसे ईर्षा कहते हैं। ईर्षा की उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है इससे इस का प्रादुर्भाव बच्चों में कुछ देर में देखा जाता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुओं में तो होता ही नहीं। ईर्षा एक संकर भाव है जिसकी सम्प्राप्ति आलस्य, अभिमान और नैराश्य के योग से होती है। जब दो बच्चे किसी खिलौने के लिए झगड़ते हैं तब कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि एक उस खिलौने को लेकर फोड़ देता है जिससे वह किसी के काम में नहीं आता। इससे अनुमान हो सकता है कि उस लड़के के मन में यही रहता है कि चाहे वह खिलौना मुझे मिले या न मिले दूसरे के काम में न आवे अर्थात् उसकी स्थिति मुझ से अच्छी न रहे। ईर्षा पहले पहल इसी रूप में व्यक्त होती है।

ईर्षा प्राप्ति की उत्तेजित इच्छा नहीं है। एक के पास कोई वस्तु है और दूसरे के पास नहीं है तो वह दूसरा व्यक्ति इस बात के लिए तीन प्रकार से दुःख प्रकट कर सकता है—

१—क्या कहें हमारे पास भी वह वस्तु होती!

२—हाय! वह वस्तु उसके पास न होकर हमारे पास होती तो अच्छा था।

३—वह वस्तु किसी प्रकार उसके हाथ से निकल जाती, चाहे जहाँ जाती।

इन तीनों वाक्यों को ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ेगा कि इनमें दूसरे व्यक्ति की ओर जो लक्ष्य है उसे क्रमशः विशेषत्व प्राप्त होता गया है और वस्तु की ओर जो लक्ष्य है वह कम होता गया है। पहले वाक्य से जो भाव झलकता है वह ईर्षा नहीं है, साधारण स्पर्द्धा अर्थात् लाभ की उत्तेजित इच्छा का एक अच्छा रूप है। उसमें वस्तु की ओर लक्ष्य है, व्यक्ति की ओर नहीं। ईर्षा व्यक्तिगत है और स्पर्द्धा वस्तुगत। दूसरे वाक्य में ईर्षा का कुछ, और तीसरे में पूरा आभास है। इन दोनों में से एक (दूसरे) में दूसरे को वञ्चित न रख सकने का दुःख गौण और दूसरे (तीसरे) में प्रधान वा एकान्त है।

स्पर्द्धा में किसी सुख अर्थात् ऐश्वर्य्य, गुण वा मान से किसी व्यक्तिविशेष को सम्पन्न देख अपनी त्रुटि पर दुःख होता है, फिर प्राप्ति की एक प्रकार की उद्वेगपूर्ण इच्छा उत्पन्न होती है, वा यदि इच्छा पहले से होती है तो उस इच्छा को उत्तेजना मिल[illegible] है। इस प्रकार की वेगपूर्ण इच्छा वा इच्छा की [illegible]जना अन्तःकरण की उन प्रेरणाओं में से है जो मनु[illegible] को अपने उन्नति-साधन में तत्पर करती है। इसे [illegible] संसार को सच्चा समझने वाला बुरा नहीं [illegible] सकता। यह उत्तेजना ऐश्वर्य्य, गुण वा मान [illegible] किसी चित्ताकर्षक रूप वा प्रभाव के साक्षात्कार [illegible] उत्पन्न होती है और कभी कभी उस ऐश्वर्य्य, गुण [illegible] मान को धारण करने वाले की पूर्वस्थिति के परि[illegible] से बहुत बढ़ जाती है। किसी अपने पड़ोसी वा [illegible] की विद्या का चमत्कार और आदर देख विद्याप्रा[illegible] की इच्छा उत्तेजित होती है और यह जान कर [illegible] पहले वह एक बहुत साधारण बुद्धि वा वित्त [illegible] मनुष्य था, यह उत्तेजना आशा-प्रेरित होकर [illegible] भी बढ़ जाती है। प्राप्ति की इस उत्तेजित इच्छा [illegible] लिए सम्पन्न व्यक्ति ऐसा मूर्त्तिमान् और प्रत्यक्ष [illegible] धार हो जाता है जिससे अपनी उन्नति वा सम्प[illegible] की भी आशा बँधती है और कार्य्यक्रम की [illegible] मिलती है। किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छावाले [illegible] किसी ऐसे व्यक्ति को देख जिसने अपने पुरुषार्थ [illegible] उस वस्तु को प्राप्त किया हो, कभी कभी बड़ा स[illegible] हो जाता है और वह सोचता है कि 'जब उस म[illegible] ने उस वस्तु को प्राप्त किया तब क्या मैं भी [illegible] कर सकता?'। ऐसे सम्पन्न व्यक्ति की ओर [illegible] इच्छुक वा स्पर्द्धावान् का बार बार ध्यान जात[illegible] वह उसकी स्थिति में किसी प्रकार का परि[illegible] करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी स्थिति में परि[illegible] करने के लिए। स्पर्द्धा में अपनी कमी वा त्रुटि [illegible] दुःख होता है, दूसरे की सम्पन्नता पर नहीं। [illegible] में दुःख का विषय है "मैंने उन्नति क्यों नहीं की [illegible] और ईर्षा में दुःख का विषय है "उसने उन्नति [illegible] की?"। स्पर्द्धा संसार में गुणी, प्रतिष्ठित और [illegible] लोगों की संख्या में कुछ बढ़ती करना चाह[illegible] और ईर्षा कमी।

ऊपर के विवरण से यह बात झलक गई [illegible] कि ईर्षा एक अनावश्यक वस्तु है, इससे [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणना मूल मनोवेगों में नहीं हो सकती। यह यथार्थ में कई भावों के रासायनिक मिश्रण से संघटित एक विष है। जब किसी विषय में अपनी स्थिति को रक्षित रख सकने वा समुन्नत कर सकने के निश्चय में अयोग्यता वा आलस्य आदि के कारण कुछ कसर रहती है तभी इस इच्छा का उदय होता है कि किसी व्यक्तिविशेष की स्थिति उस विषय में हमारे तुल्य वा हम से बढ़ कर न होने पावे। यही इच्छा बढ़ कर द्वेष में परिवर्त्तित हो जाती है और तब उस दूसरे व्यक्ति का अनिष्ट, न कि केवल उसी विषय में बल्कि प्रत्येक विषय में वांछित हो जाता है। वैर और द्वेष में अन्तर यह है कि वैर अपनी किसी वास्तविक हानि के प्रतिकार में होता है, पर द्वेष अपनी किसी हानि के कारण वा लाभ की आशा से नहीं किया जाता।

यह बात ध्यान देने की है कि ईर्षा व्यक्तिविशेष से होती है। यह नहीं होता कि जिस किसीको ऐश्वर्य्य, गुण वा मान से सम्पन्न देखा उसी से ईर्षा हो गई। ईर्षा उन्हीं से होती है जिनके विषय में यह धारणा होती है कि लोगों की दृष्टि हमारे साथ साथ उन पर भी अवश्य पड़ेगी वा पड़ती होगी। अपने से दूरस्थ होने के कारण अपने साथ साथ जिन पर ध्यान जाने का निश्चय नहीं होता उनके प्रति ईर्षा नहीं उत्पन्न होती। काशी में रहनेवाले किसी धनी को अमेरिका के किसी धनी की बात सुन कर ईर्षा नहीं होगी। हिन्दी के किसी कवि को इटली के किसी कवि का महत्त्व सुन कर ईर्षा नहीं होगी। सम्बन्धियों, बाल-सखाओं, सहपाठियों और पड़ोसियों के बीच ईर्षा का विकाश अधिक देखा जाता है। लड़कपन से जो दो आदमी एक साथ उठते बैठते देखे गए हैं उन्हींमें से कोई एक दूसरे की बढ़ती से जलता हुआ भी पाया गया है। यदि साथियों में से कोई किसी अच्छे पद पर पहुँच गया तो वह इस उद्योग में देखा जाता है कि दूसरा किसी अच्छे पद पर न पहुँचने पावे। प्रायः अपनी उन्नति के गुप्त बाधकों का पता लगाते लगाते लोग अपने किसी बड़े पुराने मित्र तक पहुँच जाते हैं। जिस समय संसर्ग-सूत्र में बाँध कर हम औरों को अपने साथ एक पंक्ति में खड़ा करते हैं उस समय सहानुभूति, सहायता आदि की सम्भावना आरोपित होने के साथही साथ ईर्षा और द्वेष की सम्भावना की नीवँ भी पड़ जाती है। अपने किसी आचरण से हम भलाई ही भलाई की सम्भावना का सूत्रपात करें और इस प्रकार भविष्य के अनिश्चय में बाधा डालें यह कभी हो नहीं सकता। भविष्य की अनिश्चयात्मकता अटल और अजेय है, अपनी लाख विद्या बुद्धि से भी हम उसे बिलकुल हटा नहीं सकते।

अब ध्यान देने की बात यह निकली कि ईर्षा के सञ्चार के लिए ईर्षा करनेवाले और ईर्षा के पात्र के अतिरिक्त स्थिति पर ध्यान देनेवाले समाज की भी आवश्यकता है। इसी समाज की धारणा पर प्रभाव डालने के लिए ही ईर्षा की जाती है, ऐश्वर्य्य, गुण वा मान का, गुप्त रूप से बिना किसी समुदाय को विदित कराए, सुख वा सन्तोष भोगने के लिए नहीं। ऐश्वर्य्य वा गुण में हम चाहे किसी व्यक्ति से वस्तुतः बढ़ कर वा उसके तुल्य न हों, पर यदि समाज की यह धारणा है कि हम उससे बढ़ कर वा उसके तुल्य हैं तो हम संतुष्ट रहेंगे, ईर्षा का घोर कष्ट न उठाने जाँयगे। कैसी अनोखी बात है कि वस्तु की प्राप्ति से वञ्चित रह कर भी हम समाज की धारणामात्र से सन्तुष्ट होते हैं! ईर्षा सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न एक विष है। इसके प्रभाव से हम दूसरे की बढ़ती से अपनी कोई वास्तविक हानि न देख कर भी व्यर्थ दुखी होते हैं। समाज के संघर्ष से जो अवास्तविकता उत्पन्न होती है वह हम पर प्रभाव डालने में वास्तविकता से कम नहीं। वह हमें सुखी भी कर सकती है, दुखी भी। फ़ारसी मसल है "मर्गे अंबोह जशने दारद"। हम किसी कष्ट में हैं इसी बीच में कोई दूसरा व्यक्ति हम से अपना भी वही कष्ट वर्णन करने लगता है तो हमारे मुँह पर कुछ हँसी आ जाती है और हम कुछ आनंदित होकर कहते हैं "भाई! हम भी तो इसी बला में गिरफ़ार हैं"। यदि दस पाँच आदमी वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट बतलानेवाले मिलें तो हमारी हँसी कुछ बढ़ भी जाती है। एक बार किसी ने अपने सम्बन्धी के मरने पर एक विद्वान् से पूछा कि "हम धैर्य्य कैसे धारण करें?" उसने कहा कि थोड़ी देर के लिए सोचो कि इसी संसार में लाखों अनाथ इधर उधर ठोकर खा रहे हैं, लाखों बच्चे बिना मा बाप के हो रहे हैं, लाखों विधवाएँ आँसू बहा रही हैं। यदि हमें कोई कष्ट है तो क्या दूसरों को भी उसी कष्ट में देख कर थोड़ी देर के लिए हमारा वह कष्ट वास्तव में कुछ घट जाता है? यदि नहीं घटता है तो यह हँसी कैसी, यह धैर्य्य कैसा? यह हँसी केवल स्थिति के मिलान पर निर्भर है, जिससे अपनी स्थिति के विशेषत्व का परिहार होता है। यह समाज-शक्ति का एक गुण है कि कभी कभी स्थिति के बने रहने पर भी उसके विशेषत्व के परिहार से तत्सम्बन्धी भावना में अंतर पड़ जाता है। पर यह अंतर ऐसा ही है जैसे रोते रोते सो जाना वा फोड़ा चिराते समय क्लोरोफ़ार्म सूँघ लेना।

समाज में पड़ते ही मनुष्य देखने लगता है कि उसकी स्थिति दोहरी हो गई है। वह देखता है कि "मैं यह हूँ" और "मैं यह समझा जाता हूँ"। इस दोहरेपन से उसका सुख भी दोहरा हो जाता है और दुःख भी। 'मैं बड़ा हूँ' इस निश्चय के साथ एक यह निश्चय और जुड़ जाने से कि 'मैं बड़ा समझा जाता हूँ' मनुष्य के आनन्द वा सुख के अनुभव में वृद्धि होती है। इसी प्रकार 'मैं क्षुद्र हूँ' इस धारणा के साथ 'मैं क्षुद्र समझा जाता हूँ' इस धारणा के योग से दुःख के अनुभव की वृद्धि होती है। इस प्रकार स्थिति के एकान्त और सामाजिक दो विभाग हो जाने से कोई तो दोनों विभागों पर दृष्टि रख सकते हैं और कोई एक ही पर। शक्ति और प्रतिभा सम्पन्न मनुष्य पहले यह प्रयत्न करते हैं कि 'हम ऐसे हों'। फिर वैसे हो जाने पर यदि आवश्यक हुआ तो यह प्रयत्न भी करते हैं कि 'हम ऐसे समझे जाँय'। इन दोनों के प्रयत्न जुदे जुदे हैं। संसार में शक्ति-सम्पन्न सब नहीं होते, इससे बहुत से लोग स्थिति के पहले विभाग के लिए जिन प्रयत्नों की आवश्यकता उनमें अपने को असमर्थ देख दूसरे ही विभाग किसी प्रकार अपना सन्तोष करना चाहते हैं उसी पर दृष्टि रख कर प्रयत्न करते हैं। ईर्षा लोगों के हृदय में बहुत जगह पाती है और उ प्रयत्नों में सहायक भी होती है। भाव-परिव आदि के बल से जिस समुदाय के प्राणी परस्पर सन गए हैं कि अपने इन्द्रियानुभव और भावना तक को जवाब देकर दूसरों के इन्द्रियानु और भावनाओं द्वारा निर्वाह कर सकते हैं उसी ईर्षा का विकाश हो सकता है। अतः ईर्षा का अ अधिकार मनुष्य जाति ही पर है। एक कुत्ता कि दूसरे कुत्ते को कुछ खाते देख उसे स्वयं खाने इच्छा कर सकता है, पर वह यह नहीं चाह सक कि चाहे हम खाँय या न खाँय वह दूसरा कुत्ता खाने पावे। दूसरे कुत्तों की दृष्टि में हमारी स्थि कैसी है, इसकी चिन्ता उस कुत्ते को न होगी।

अपने विषय में दूसरों के चित्त में अच्छी धार उत्पन्न करने का प्रयत्न अच्छी बात है। इस प्र को जो बुरा रूप प्राप्त होता है वह असत्य के स वेश के कारण—दूसरों की धारणा की अवास्तवि और अपनी स्थिति की सापेक्षकता के कारण। हम अपने विषय में दूसरों की झूठी धारणा अपनी स्थिति के सापेक्षिक रूप मात्र से सन करना चाहते हैं तभी बुराइयों के लिए जगह हो है और ईर्षा की राह खुलती है। जैसी स्थिति ह नहीं है, जैसी स्थिति प्राप्त करने की योग्यता नहीं है, हम चाहते हैं कि लोग हमारी वैसी समझें। जैसी स्थिति से वास्तव में हमें कोई नहीं है वैसी स्थिति किसी दूसरे के समान वा से अच्छी स्वयं समझने से नहीं बल्कि दूसरों द्वारा समझी जाने से ही हम सन्तोष करते हैं। असत्य आरोपों के बीच यदि ईर्षा ऐसी असार का उदय हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है?

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे शायद धारणा हो सकती है कि ईर्षा अप्राप्त वस्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिप्त होती है। पर यह बात नहीं है। हमारे पास जो वस्तु है उसे भी दूसरे के पास देख कर कभी कभी हमें बुरा लगता है, हम दुखी होते हैं। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि एक ऊँची जाति का आदमी किसी नीच जाति के आदमी को अपने ही समान वस्त्र आदि पहने देख बुरा मानता और कुढ़ता है। इसका कारण यह स्थायी बुद्धि वा अहंकार है कि 'हम ऊँचे हैं वह नीचा है, हम बड़े हैं वह छोटा है'। मर्य्यादावादी लोग शायद इसे श्रेणी के नियम का पालन कहेंगे। वे कहेंगे कि यदि कोई नीच है तो नीच की वर्दी में आवे, ग़रीब है तो ग़रीब की वर्दी में आवे। चाहे कोई कुछ कहे, पर इस प्रकार का भाव अहंकार ही है। समाज में यह भाव प्रकट करने के स्थान पर कि 'हम जो कार्य्य करते हैं वह उससे श्रेष्ठ है जो दूसरा करता है' यह भाव प्रकट करना अधिक कल्याण-कर और सन्तोष-विधायक है कि 'हम जो कार्य्य करते हैं वह उस कार्य्य से केवल भिन्न है जो दूसरा करता है।' न्यायाधीश न्याय करता है, कारीगर ईंटें जोड़ता है। न्यायाधीश ईंटें जोड़ना नहीं जानता, कारीगर न्याय करना नहीं जानता। समाज-कल्याण के विचार से न्यायाधीश का साधारण व्यवहार में कारीगर के प्रति यह प्रकट करना उचित नहीं कि 'हम तुमसे बड़े हैं, हमारा काम तुमसे श्रेष्ठ है'। जिस जाति में इस छोटाई बड़ाई का अभिमान जगह जगह जम कर दृढ़ हो जाता है उसके भिन्न भिन्न वर्गों के बीच स्थायी ईर्षा स्थापित हो जाती है और संयुक्त शक्ति का विकाश बहुत कम अवसरों पर देखा जाता है। यदि समाज में उन कार्यों की, जिनके द्वारा भिन्न भिन्न प्राणी जीवन-निर्वाह करते हैं, परस्पर छोटाई बड़ाई का ढिंढोरा न पीटा जाय, बल्कि उनकी विभिन्नता ही स्वीकार की जाय तो बहुत सा असन्तोष दूर हो जाय, राजनैतिक स्वत्व की आकांक्षा से स्त्रियों को पुरुषों की हद में न जाना पड़े, सब पढ़े लिखे आदमियों को सरकारी नौकरियों ही के पीछे न दौड़ना पड़े। जहाँ इस छोटाई बड़ाई का भाव बहुत प्रचार पा जाता है और जीवन-व्यवहारों में निर्दिष्ट और स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है वहाँ लोगों की शक्तियाँ केवल कुछ विशेष विशेष स्थानों की ओर प्रवृत्त होकर उन उन स्थानों पर इकट्ठी होने लगती हैं और समाज के कार्य्य-विभाग का क्रम खंडित हो जाता है अर्थात् कुछ विभाग सूने पड़ जाते हैं और कुछ आवश्यकता से अधिक भर जाते हैं जैसा कि आजकल इस देश में देखा जा रहा है। यहाँ कृषि, विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य आदि की ओर तब तक पढ़े लिखे लोग ध्यान न देंगे जब तक कुछ पेशों और नौकरियों की शान लोगों की नज़रों में समाई रहेगी। इस प्रकार की शान प्रायः किसी शक्ति के अनुचित प्रयोग में अधिक समझी जाती है। कोई पुलिस का कर्मचारी जब अपने पद का अभिमान प्रकट करता है तब यह नहीं कहता कि 'मैं जिस बदमाश को चाहूँ पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'। बल्कि यह कहता है कि 'मैं जिसको चाहूँ उसको पकड़ कर तंग कर सकता हूँ'। अधिकार-सम्बन्धी अभिमान अनौचित्य की सामर्थ्य का अधिक होता है। यदि अधिकार के अनुचित उपयोग की सम्भावना दूर कर दी जाय तो स्थान स्थान पर अभिमान की जमी हुई मैल साफ़ हो जाय और समाज के कार्य्य-विभाग चमक जाँय। यदि समाज इस बात की पूरी चौकसी रक्खे कि पुलिस के अफ़सर उन्हीं लोगों को कष्ट दे सकें जो दोषी हैं, माल के अफ़सर उन्हीं लोगों को क्षतिग्रस्त कर सकें जो कुछ गड़बड़ करते हैं, तो उन्हें शेष लोगों पर जो निर्दोष हैं, जिनका मामला साफ़ है और जिनसे हर घड़ी काम पड़ता है, अभिमान प्रकट करने का अवसर कहाँ मिल सकता है? जब तक किसी कार्य्यालय में छोटे से बड़े तक सब अपना अपना नियमित कार्य्य ठीक ठीक करते हैं तब तक एक के लिये दूसरे पर अपनी बड़ाई प्रकट करने का अवसर नहीं आता है, पर जब कोई अपने कार्य्य में त्रुटि करता है तब उसका अफ़सर उसे दंड देकर अपनी बड़ाई वा अधिक सामर्थ्य दिखाता है। सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को क्षति-ग्रस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने और दूसरे को नम्र करने की सामर्थ्य का नाम है। अधिकार की सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को क्षति-ग्रस्त करने की सामर्थ्य है और धन वा गुण की सापेक्षिक बड़ाई दूसरे को नम्र करने की सामर्थ्य है। इससे विदित हुआ कि यह छोटाई बड़ाई हर समय तमाशा दिखाने के लिये नहीं है, बल्कि अवसर पड़ने पर संशोधन वा शिक्षा के लिये है। किसी अवध के तअल्लुक़ेदार के लिये बड़ाई का यह स्वाँग दिखाना आवश्यक नहीं है कि वह जब मन में आवे तब कामदार टोपी सिर पर रख, हाथी पर चढ़ ग़रीबों को पिटवाता चले। किसी दिहाती थानेदार के लिये यह ज़रूरी नहीं है कि वह सिर पर लाल पगड़ी रख गँवारों को गाली देकर हर समय अपनी बड़ाई का अनुभव करता और कराता रहे। अभिमान एक व्यक्तिगत गुण है, उसे समाज के भिन्न भिन्न व्यवसायों के साथ जोड़ना ठीक नहीं। समाज में स्थान स्थान पर अभिमान के अजायबघर स्थापित होना अच्छा नहीं। इस बात का ध्यान रखना समाज का कर्त्तव्य है कि धर्म और राजबल से प्रतिष्ठित संस्थाओं के अंतर्गत अभिमानालय और ख़ुशामदख़ाने न खुलने पावें।

इसी प्रकार किसी बड़े धनी वा गुणी का यह हर घड़ी का एक काम न हो जाना चाहिए कि वह औरों के धन वा गुण से अपने धन वा गुण का मिलान किया करे और अपनेसे कम धनी वा गुणी लोगों से अपनी श्रेष्ठता देख दिखाकर संतोष किया करे। इस प्रकार सन्तोष करना वस्तु को छोड़ छाया पर सन्तोष करना है। इस प्रकार के सन्तोष का सुख मनुष्य के लिये स्वाभाविक है पर वह ऐसे ही अवसरों तक के लिए निर्दिष्ट है, जब किसी त्रुटि का संशोधन हो, कठिनता का निराकरण हो वा आवश्यकता की पूर्त्ति हो। उसे ऐसे अवसरों के अतिरिक्त और अवसरों में घसीटना बुराई है। कई आदमी किसी रास्ते के पत्थर को हटाने में लगे हैं और वह नहीं हिलता है। एक दूसरा आदमी आकर अकेले उस पत्थर को हटा कर फेंक देता है। उस समय उसे अपने को बल में औरों से बढ़ कर दे
संतोष और आनन्द होगा और शेष लोग भी उस
कृत्य से प्रभावित रहने के कारण उस समय उस
इस सापेक्षिक आनन्द वा आनन्द-प्रदर्शन से कुढ़े
नहीं, बल्कि कुतूहल-युक्त होंगे और शायद कुछ शि
भी ग्रहण करेंगे। पर यदि उसे इस बड़ाई के आन
का चसका लग जायगा और वह हर घड़ी उस
अनुभव करना चाहेगा, उसे प्रकट किया करेगा
यह एक प्रकार का दुर्व्यसन हो जायगा और अहंका
के नाम से पुकारा जायगा। फिर उसके चित्त
अपने चारों ओर अपनेसे घट कर धन, मान, गु
वा बल देखने की स्थायी इच्छा स्थापित हो जाय
और जो वस्तु उसे प्राप्त है उसे भी दूसरों को प्र
करते देख उसे कुढ़न वा ईर्षा होगी। उसके अहंका
से आहत होकर दूसरे लोग भी उसकी उन्नति
देखना चाहेंगे और उससे एक प्रकार की अ
ईर्षा रक्खेंगे। इस प्रकार ईर्षा की अच्छी खेती हो
सारांश यह कि अभिमान हर घड़ी बड़ाई भोगने
दुर्व्यसन है और ईर्षा उसकी सहगामिनी है।
बड़ाई के अनुभव को भोगने का जिसे दुर्व्यसन
जाता है उसके लिये उन्नति का द्वार बंद सा
जाता है। उसे हर घड़ी अपनी बड़ाई अनुभव क
रहने का नशा हो जाता है, इससे उसकी सामर्थ्य
लिये वह सदा अपनेसे घट कर लोगों की
दृष्टि डाला करता है और अपने से बड़े लोगों
ओर नशा मिट्टी होने के भय से देखने का सा
नहीं करता। ऐसी अवस्था में वह उन्नति की उत्ते
और शिक्षा से वञ्चित रहता है। इसीसे अभि
को 'मद' भी कहते हैं। दुर्व्यसन किसी प्रकार
हो, मद है।

यह तो कहा ही जा चुका है कि ईर्षा दूसरे
असम्पन्नता की इच्छा की अपूर्त्ति है। ऐसी
यदि किसी हानि के बदले में अथवा हानि की आ
से हो तो वह शुद्ध ईर्षा नहीं है। किसी दूस
हानि उठा कर उसकी हानि की आकांक्षा
केवल बुराई का बुराई से जवाब देना है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा वैर के अन्तर्गत है। इसी प्रकार यदि किसी की सम्पन्नता से हमें क्लेश वा हानि की आशंका है और हम उसकी ऐसी सम्पन्नता की अनिच्छा वा उसका दुःख करते हैं तो केवल अपना बचाव करते हैं—आजकल के शब्दों में अपनी रक्षा के स्वत्व का उपयोग करते हैं। यदि हम किसी अन्यायी को कोई अधिकार पाते देख कुढ़ते हैं तो केवल अपने वा समाज के बचाव की तैयारी करते हैं, ईर्षा नहीं करते। यदि हमें निश्चय है कि हमारा कोई मित्र इतना घमंडी है कि जो उसे किसी वस्तु की प्राप्ति होगी तो वह हमसे ऐंठ दिखा कर हमारा अपमान करेगा, तो हमारा यह चाहना कि वह मित्र वह वस्तु न पावे अथवा इस बात पर दुखी होना कि वह मित्र वह वस्तु पा गया, ईर्षा नहीं बचाव की चिन्ता है। इसीसे अभिमानियों से ईर्षा करने का अधिकार मनुष्य मात्र को है। लोग इस अधिकार का उपयोग भी ख़ूब करते हैं। क्या राजनीति में, क्या साहित्य में, क्या व्यवहार में, मानवजीवन के सब विभागों में इस अधिकार का उपयोग होते देखा जाता है। ऐसा देखा गया है कि अच्छे से अच्छे लेखकों के गुणों पर, उनके अभिमान से आहत लोगों के प्रयत्न वा उदासीनता से, बहुत दिनों तक परदा पड़ा रहा है और वे ज़िंदगी भर भवभूति के इस वाक्य पर संतोष किए बैठे रहे हैं—

> " उत्पात्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्म्मा
> कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी। "

अभिमान-ग्रस्त गुण को लोग देख कर भी नहीं देखते हैं। अभिमानी स्वयं अंधा हो कर दूसरों की आँखें भी फोड़ता है। न उसे दूसरों के उत्कृष्ट गुण की ओर ताकने का साहस होता है और न दूसरों को उसके गुण को स्वीकार करने की उत्कंठा होती है। अभिमान दोनों ओर ज्ञान का निषेध करता है। अतः जिस प्रकार अभिमान न करना श्रेष्ठ गुण है उसी प्रकार दूसरे के अभिमान को देख क्षुब्ध न होना भी श्रेष्ठ गुण है।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि ईर्षा दूसरे की किसी वस्तु की प्राप्ति वा प्राप्ति की सम्भावना से उत्पन्न दुःख है, चाहे वह वस्तु हमें प्राप्त हो वा न हो। अतः ईर्षा धारण करनेवालों के दो रूप होते हैं, एक असम्पन्न और दूसरा सम्पन्न। असम्पन्न रूप वह है जिसमें ईर्षा करनेवाला दूसरे को ऐसी वस्तु प्राप्त करते देख दुखी होता है जो उसके पास नहीं है। ऐसे दुःख में आलस्य वा असामर्थ्य से उत्पन्न प्राप्ति की निराशा, दूसरे की प्राप्ति से अपनी सापेक्षिक छोटाई का बोध, दूसरे की असम्पन्नता की इच्छा, और अंत में इस इच्छा की अपूर्त्ति के मूर्त्तिमान् कारण उस दूसरे व्यक्ति पर एक प्रकार का मीठा क्रोध, इतने भावों का मेल रहता है। किसी वस्तु को हम नहीं प्राप्त कर सकते। दूसरा उसी को प्राप्त करता है। हम समझते हैं कि लोगों की दृष्टि जब हमारी स्थिति पर पड़ती होगी तब उसकी स्थिति पर भी पड़ती होगी। इससे उनकी दृष्टि में हमारी स्थिति अवश्य कुछ न्यून जँचती होगी। अस्तु, स्थिति की समानता के लिए हम चाहते हैं कि वह दूसरा व्यक्ति उस वस्तु को न प्राप्त करता वा खो देता। पर वह दूसरा व्यक्ति जीता जागता प्रयत्नवान् प्राणी होने के कारण उसे प्राप्त करता वा रक्षित रखता है। इससे हमारी इच्छा-पूर्त्ति में बाधा होती है और हम बाधक के ऊपर मन ही मन चिढ़चिढ़ाते हैं। ईर्षा में क्रोध का भाव किस प्रकार मिला रहता है इसका प्रमाण बराबर मिलता रहता है। दूसरे व्यक्ति को किसी वस्तु से सम्पन्न देख यदि कोई उससे ईर्षा करता है तो केवल यही नहीं होता कि वह उसी वस्तु को उससे अलग करके वा अलग करने का प्रयत्न करके सन्तोष कर ले, बल्कि वह उस सम्पन्न व्यक्ति को अवसर पाने पर, बिना किसी अन्य कारण के, कुवाक्य भी कह बैठता है। जी दुखाने का यह प्रयत्न बिना किसी प्रकार के क्रोध के नहीं हो सकता। इसी कारण जैसे 'क्रोध से जलना' कहा जाता है वैसे ही 'ईर्षा से जलना' भी कहा जाता है। अब यहाँ पर लगे हाथों यह भी देख लेना चाहिए कि यह क्रोध है किस प्रकार का। यह क्रोध बिलकुल जड़ क्रोध है। जिसके प्रति ऐसा क्रोध किया जाता है उसके मानसिक उद्देश्य की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं ध्यान दिया जाता। यदि हम असावधानी से दौड़ते समय किसी सोए आदमी से टकरा कर उस पर बिगड़ने लगें, या रास्ते में पत्थर की ठोकर खा कर उसे चूर चूर करने पर उतारू हों तो हमारा यह क्रोध जड़ क्रोध होगा; क्यों कि हमने यह विचार नहीं किया कि क्या वह आदमी हमें ठोकर खिलाने के लिए ही सोया था, या वह पत्थर हमारे पैर में लगने के ही नामाक़ूल इरादे से वहाँ आ पड़ा था। यदि हमारे पास कोई वस्तु नहीं है और दूसरा उसे प्राप्त करता है तो वह इस उद्देश्य से नहीं प्राप्त करता कि उससे हम अपनी हेठी समझ कर दुखी हों और हमारी इच्छापूर्त्ति में बाधा पड़े। यह दूसरी बात है कि पीछे से यह मालूम करके भी कि उसकी प्राप्ति से हम अपनी हेठी समझ समझ कर बेचैन हो रहे हैं, वह हमारे दुःख में सहानुभूति न करे और उस वस्तु को लिए आनन्द से कान में तेल डाले बैठा रहे। प्रायः तो ऐसा होता है कि किसी वस्तु को प्राप्त करनेवाले मनुष्य को पहले यह ख़्याल भी नहीं होता कि उसकी प्राप्ति से किन किन महाशयों की मानहानि हो रही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ईर्षा धारण करने वालों के दो रूप होते हैं, असम्पन्न और सम्पन्न। असम्पन्न रूप का दिग्दर्शन तो ऊपर हो चुका। सम्पन्न रूप वह है जिसमें जो वस्तु हमें प्राप्त है उसे दूसरे को भी प्राप्त करते देख हमें दुःख होता है। असम्पन्नता में दूसरे को अपने से बढ़ कर होते देख दुःख होता है, सम्पन्नता में दूसरे को अपने बराबर होते देख दुःख होता है। असम्पन्न रूप में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से घट कर न रहें, बराबर रहें और सम्पन्न रूप में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से बढ़ कर रहें, उसके बराबर न रहें। सम्पन्न ईर्षा में आकांक्षा बढ़ी चढ़ी होती है, इससे उसका अनौचित्य भी बढ़कर होता है। असम्पन्न ईर्षा वाला केवल अपने को नीचा समझे जाने से बचाने के लिए आकुल रहता है, पर सम्पन्न ईर्षावाला दूसरे को नीचा समझते रहने के लिए आकुल रहता है। असम्पन्न ईर्षा में निराशा का भाव और अपनी कमी का दुःख मि[illegible] रहता है, इससे उसकी कलुषता उतनी गहरी न[illegible] जान पड़ती। निराश और अभाव-पीड़ित मनु[ष्य] जैसे इधर उधर भूलता भटकता फिरता [है] वैसे ही ईर्षा की राह में भी जा पड़ता है। सम्पन्न ईर्षालु की स्थिति ऐसी क्षोभ-कारिणी न[हीं] होती। हमारा कोई साथी है जो किसी वस्तु [में] हम से कम है। उसकी कमी और अपनी बढ़[ती] देख दिखा कर हर घड़ी प्रसन्न होने का हमें [व्य]सन हो गया है। इसी बीच उसको भी वह व[स्तु] प्राप्त हो जाती है और हमें जान पड़[ता] है कि हमारी स्थिति जो सापेक्षिक थी म[ारी] गई। अपने आनन्द में इस प्रकार बा[धा] पड़ते देख हम अपने साथी की उस प्राप्ति से दु[खी] होते हैं और मन ही मन उस पर कुढ़ते भी हैं। सा[थी] को बहुत दिनों तक तो इसका पता ही नहीं चल[ता] पीछे पता चलने पर भी वह हमारे इस दुःख में [हम से] भी सहानुभूति नहीं करता। हमारी कुप्रवृत्ति [के] कारण बिना अवसर के हर घड़ी बड़ाई का अनु[भव] वा स्थिति की सापेक्षिकता का सुख भोगने की [इच्छा होती] है। किसी स्थिति की वास्तविकता पर मुख्य [और] सापेक्षिकता पर गौण दृष्टि रखनी चाहिए। सापे[क्षि]कता नज़र का खेल है और कुछ नहीं। यदि हमें [पेट] भर अन्न नहीं मिलता है, पर लोग समझते हैं [कि] हम अपने किसी साथी से अच्छे वा धनी हैं [तो] लोगों की इस धारणा से हमारा पेट नहीं [भर] सकता। लोगों की इस धारणा से आनन्द होता [है] पर वह उस आनंद का शतांश भी नहीं है जो वा[स्त]विक स्थिति के अन्य प्रभावों से प्राप्त होता है। [अपनी] स्थिति के और वास्तविक आनन्दों को छोड़ [कर] छाया-रूपी आनन्द पर मुख्य रूप से ध्यान र[खना] प्रमाद और स्थिति की रक्षा का बाधक है। यदि [हम] किसी वस्तु के वास्तविक रूपों की ओर ध्यान [देकर] आवश्यक प्रयत्न न करते रहेंगे तो उसकी [रक्षा] नहीं कर सकते।

कभी कभी ऐसा होता है कि लोगों की धा[रणा] का कुछ मूल्य होता है, अर्थात् उससे कोई वास्त[विक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति प्राप्त होती है। जैसे, यदि किसी गाँव में मूर्ख और विद्वान् दो वैद्य हैं तो लोग दूसरे को अधिक निपुण समझ उसके पास अधिक जाँयगे और उसकी आमदनी अधिक होगी। अब यदि पहला वैद्य भी परिश्रम करके वैद्यक पढ़ लेगा और लोगों की यह धारणा हो जायगी कि यह भी विद्वान् है तो उस दूसरे वैद्य की आमदनी कम हो जायगी। ऐसी अवस्था में उस दूसरे वैद्य का पहले वैद्य की उन्नति से कुढ़ना शुद्ध ईर्षा नहीं, हानि का दुःख वा झुँझलाहट है। ईर्षा निःस्वार्थ होनी चाहिए।

ईर्षा का दुःख प्रायः निष्फल ही जाता है। अधिकतर तो जिस बात की ईर्षा होती है वह ऐसी बात होती है जिस पर हमारा वश नहीं होता। जब हम में अपनी ही स्थिति में अनुकूल परिवर्त्तन करने की सामर्थ्य नहीं है तब हम दूसरे की स्थिति में कहाँ तक परिवर्त्तन कर सकते हैं। जितनी जानकारी हमें अपनी स्थिति से हो सकती है उतनी दूसरे की स्थिति से नहीं। किसी स्थिति में परिवर्त्तन करने के लिए उसके अंग प्रत्यंग का परिचय आवश्यक होता है। पर कभी कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं जिनमें ईर्षा की तुष्टि का साधन सुगम होता है। जैसे यदि किसी आदमी को किसी दूसरे से कुछ लाभ पहुँचने वाला होता है वा पहुँचता होता है तो हम उस दूसरे से उसकी कुछ बुराई कर आते और उसे उस लाभ से वञ्चित कर देते हैं। पर हमारी यह सफलता निरापद नहीं। यदि वञ्चित व्यक्ति को हमारी कार्रवाई का पता लग गया तो वह क्रुद्ध होकर हमारी हानि करने के लिए हमसे अधिक वेग के साथ यत्न करेगा। हमने तो केवल ज़रा सा जाकर ज़बान हिलाने का कष्ट उठाया था पर वह हमारी हानि करने के लिए पूरा परिश्रम करेगा। ईर्षा में प्रयत्नोत्पादिनी शक्ति बहुत कम होती है। उसमें वह वेग नहीं होता जो क्रोध आदि में होता है, क्योंकि आलस्य और नैराश्य के आश्रय से तो उसकी उत्पत्ति ही होती है। जब आलस्य और नैराश्य के कारण अपनी उन्नति के हेतु प्रयत्न करना तो दूर रहा, हम अपनी उन्नति का ध्यान तक अपने मन में नहीं ला सकते तभी हम हार कर दूसरे की स्थिति की ओर बार बार देखते हैं और सोचते हैं कि यदि उसकी स्थिति ऐसी न होती तो हमारी स्थिति जैसी है वैसी ही रहने पर भी बुरी न दिखाई देती। अपनी स्थिति को ज्यों की त्यों रख सापेक्षिकता द्वारा सन्तोष लाभ करने का ढीला यत्न आलस्य और निराशा नहीं तो और क्या है? जो वस्तु उज्वल नहीं है उसे मैली वस्तु के पास रख कर हम उसकी उज्वलता से कब तक और कहाँ तक सन्तोष कर सकते हैं? जो अपनी उन्नति के प्रयत्न में बराबर लगा रहता है उसे न तो निराशा होती है और न हर घड़ी दूसरे की स्थिति से अपनी स्थिति के मिलान करते रहने की फ़ुरसत। ईर्षा की सबसे अच्छी दवा है उद्योग और आशा। जिस वस्तु के लिए उद्योग और आशा निष्फल हो उस पर से अपना ध्यान हटा कर सृष्टि की अनन्तता से लाभ उठाना चाहिए।

जिससे ईर्षा की जाती है उस पर उस ईर्षा का क्या प्रभाव पड़ता है यह भी देख लेना चाहिए। ईर्षा अनावर्ती मनोवेग है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि किसी मनुष्य को अपने से ईर्षा करते देख हम भी उसके बदले में ईर्षा नहीं करने लगते। दूसरे को ईर्षा करते देख हम उससे घृणा करते हैं। दूसरे की ईर्षा का फल भोग हम उससे क्रोध करते हैं, जिसमें अधिक अनिष्ट-कारिणी शक्ति होती है। अतः ईर्षा एक ऐसी बुराई है जिसका बदला यदि मिलता है तो कुछ अधिक ही मिलता है। इससे इस बात का आभास मिलता है कि व्यवस्थापक सर्वात्मा के क़ानून में ईर्षा एक पाप वा जुर्म है। अपराधी ने अपने अपराध से जितना कष्ट दूसरे को पहुँचाया, अपराधी को भी केवल उतना ही कष्ट पहुँचाना सामाजिक न्याय नहीं है, अधिक कष्ट पहुँचाना न्याय है; क्योंकि निरपराध व्यक्ति की स्थिति को अपराधी की स्थिति से अच्छा दिखलाना न्याय का काम है।

ईर्षा अत्यन्त लज्जावती वृत्ति है। वह अपने धारणकर्त्ता स्वामी के सामने भी मुँह खोल कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आती। उसके रूप आदि का पूरा परिचय न पाकर भी धारणकर्त्ता उसका हरम की बेगमों से अधिक परदा करता है। वह कभी प्रत्यक्ष रूप से समाज के सामने नहीं आती। उसका कोई बाहरी लक्षण धारणकर्त्ता पर नहीं दिखाई देता। क्रोध में आँखें लाल हों, भय में आकुलता हो, घृणा में नाक भी सिकुड़े, करुणा में आँसू आवे, पर ईर्षा में शायद ही कभी असावधानी से ठंडी साँस निकल जाय तो निकल जाय। ईर्षा इतनी कुत्सित वृत्ति है कि सभा समाज में, मित्रमंडली में, परिवार में, एकान्त कोठरी में, कहीं भी स्वीकार नहीं की जाती। लोग अपना क्रोध स्वीकार करते हैं, भय स्वीकार करते हैं, घृणा स्वीकार करते हैं, लोभ स्वीकार करते हैं, पर ईर्षा का नाम कभी मुँह पर नहीं लाते; ईर्षा से उत्पन्न अपने कार्य्यों को दूसरी मनोवृत्तियों के सिर मढ़ते हैं। यदि हमें ईर्षा के कारण किसी की प्रशंसा अच्छी नहीं लग रही है तो हम बड़ी गंभीरता और सज्जनता प्रकट करते हुए उसके दोषों और त्रुटियों का निदर्शन करते हैं। वैर ऐसी बुरी वृत्ति तक कभी कभी ईर्षा को छिपाने का काम दे जाती है।

—:०:—

जम्बू-राजवंश।

सन् ६६७ (विक्रमी सम्वत् ७२४) में राजा विक्रमपाल ने दिल्ली के महाराज राय तालूक पर चढ़ाई की थी। उस समय जम्बू के राजा कीर्त्तिधर ने एक बड़ी सेना साथ लेकर राय तालूक की सहायता की थी। युद्ध में राजा विक्रमपाल मारा गया और राय तालूक विजय प्राप्त करके १४४ राज्यों का सम्राट् बना। उसी समय से दिल्ली-पति और कीर्त्तिधर में बड़ी मित्रता हो गई और वे परस्पर एक दूसरे के सहायक बन गये। कीर्त्तिधर ने ६० वर्षों तक बड़ी उत्तमता से राज्य किया। उसके बाद क्रम से उसका पुत्र अजयधर, पौत्र विजयधर और प्रपौत्र वज्रधर जम्बू का राजा हुआ। इन तीनों ने सब मिला कर १६ तक राज्य किया था। वज्रधर के पुत्र सूर्य राज्याधिकार पाकर न्याय, शासन आदि सात वि बनाये थे और प्रत्येक विभाग के लिए एक मन्त्री नियत किया था। वह एक दिन में केवल विभाग का कार्य्य देखता था और इस एक सप्ताह में सब विभागों की देखरेख हो करती थी। उसके ७२ वर्ष तक राज्य करने के उसका पुत्र भोजदेव राजा हुआ, जिसने ६६ तक राज्य किया। भोजदेव के चार पुत्र थे, पर उनमें से सबसे बड़े करणदेव को मिला था। प्रकार कई पीढ़ियों तक राज्य चलने के बाद भोजदेव द्वितीय राजा हुआ। वह बहुत बुद्धि और अच्छा राजनीतिज्ञ था। भारत के प्रायः बड़े बड़े महाराजाओं से, विशेष कर पंजाब-पति राज जयपाल से उसकी बहुत मित्रता थी।

सन् ९७५ (संवत् १०३२) में ग़ज़नी के शाह नसीरुद्दीन सुबुक्तगीन ने भारत पर च करने का विचार किया। इससे पूर्व उसने क़ाबुल अनेक प्राचीन हिन्दू निवासियों को मरवा डाला महाराज जयपाल ने नसीरुद्दीन के मुक़ाबले के राजपूतों की बहुत बड़ी सेना एकत्र की थी, जि भोजदेव ने भी बहुत अधिक सहायता दी थी। पुत्र अवतारदेव पर राजकार्य्य छोड़कर भोज स्वयं युद्ध में गया था और वहाँ वह मारा था। तब से अवतारदेव पर जयपाल और अधिक कृपा रखने लगा। नसीरुद्दीन की मृत्यु बाद उसके पुत्र महमूद (ग़ज़नवी) ने सन् १ (सं० १०५७) में भारत पर आक्रमण किया। समय भी जयपाल ने जम्बू-राज की सहायता उसका मुक़ाबला किया; लेकिन उसमें उसे सफ न हुई और उसका पुत्र इन्द्रपाल युद्ध से भाग पहाड़ों में जा छिपा। इसके बाद महमूद की चढ़ाइयों के समय अवतारदेव ने मुसलमानों .खूब दाँत खट्टे किये और एक युद्ध में महमूद एक शाहज़ादे को भी घायल कर दिया। अवतार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ४४ वर्ष तक राज्य करने के बाद उसका पुत्र यशदेव राजा हुआ, जिसने जसरौटा नामक नगर बसाया और ३० वर्ष तक न्यायपूर्वक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र संग्रामदेव और फिर पौत्र जगदेव जम्बू का राजा हुआ। जगदेव के समय में महमूद के वंशज मलिक ख़ुसरो ने भारत का कुछ अंश जीत लिया और उसके बाद सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी की कई चढ़ाइयाँ हुईं। इसी जगदेव की सहमति से सुलतान ग़ोरी ने स्यालकोट का क़िला बनवाया था। इसीके बाद ग़ोरी ने पृथ्वीराज को युद्ध में परास्त करके उन्हें क़ैद कर लिया था और उनकी आँखें निकलवा ली थीं।

सन् १३९२ में तैमूरलंग ने भारत पर चढ़ाई की, दिल्ली को अपने अधीन कर लिया और वहाँ बहुत से लोगों को मरवा डाला। वहाँ से तुर्किस्तान लौटते समय उसने हरद्वार में कई हज़ार यात्रियों का भी वध करा डाला था। वहाँ से कुछ दूर आगे बढ़ने पर पहाड़ों में उसे बहुत बड़ी सेना के साथ जम्बू का राजा मालदेव मिला और उसने मुसलमानी सेना को मार भगाया। ४० वर्ष तक राज्य करने के बाद सन् १३९९ (सं० १४५६) में मालदेव का देहान्त हो गया। उसकी तीसरी पीढ़ी में राजा ब्रजदेव हुआ, जिसके राजत्वकाल (सन् १५२५) में ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने भारत पर अधिकार करने की इच्छा से इस देश में प्रवेश किया। बहलोलपुर और स्यालकोट होता हुआ वह पानीपत पहुँचा और वहाँ उसने सुलतान इब्राहीम शाहसूर को परास्त किया था। उसी समय सिक्ख-धर्म्म के प्रवर्तक गुरु नानक का जन्म हुआ था।

इसके बाद दो ढाई शताब्दियों तक जम्बू के राजवंशियों की कोई उल्लेख-योग्य बात नहीं हुई। सन् १७८२ (सं० १८३९) में जम्बू में राजा भोजराज देव का राज्य आरम्भ हुआ। भोजराज देव का एक सम्बन्धी दलसिंह था, जिससे उनकी बहुत शत्रुता थी। एक दिन उसने अपने एक सरदार मियाँ साहब ज़ोरावरसिंह से कहा कि यदि वह किसी प्रकार दलसिंह के प्राण ले सके तो उसे एक जागीर दी जायगी। पर ज़ोरावरसिंह इस पर राज़ी नहीं हुए। लेकिन ज़ोरावरसिंह के छोटे भाई मियाँ मोटे ने यह बात स्वीकार करली और कुछ सिपाहियों को साथ ले जाकर दलसिंह और उसके साथियों को मार डाला। उस समय दलसिंह के सम्बन्धियों में से केवल अजीतसिंह नामक उनका एक बहुत छोटा पुत्र बच रहा था। महाराज रणजीतसिंह के पिता महान्सिंह से भोजराज देव की बड़ी मित्रता थी, पर अपने राज्यारोहण के पाँच वर्ष बाद उन दोनों में शत्रुता हो गई। एक बार भोजराजदेव जब बहुत बीमार पड़ा तो महान्सिंह ने अवसर पाकर अपनी सेना सहित उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी और जम्बू लूट लिया। महान्सिंह के चले जाने पर भोजराज देव फिर पूर्ववत् शासन करने लगा और अन्त में जंगी मिसल के सरदारों के झगड़े में मारा गया और उसकी रानी उसके मृतशरीर के साथ जम्बू में सती हो गई। उस समय उसका पुत्र और राज्य का अधिकारी सुवर्णदेव केवल एक वर्ष का था, इसलिए राज्य का कुल कारबार मियाँ मोटा करता था। बालक सुवर्णदेव ग्यारह वर्ष का होकर मर गया और भोजराजदेव के वंश का अन्त हो गया। उस समय राज्याधिकार दलसिंह के पुत्र राजा अजीतसिंह को दिया गया।

कुछ ही दिनों बाद अजीतसिंह, रानी बुन्दराल और मियाँ मोटा में कुछ खटपट हो गई और मियाँ मोटा वहाँ से नाराज़ होकर पुरमण्डल नामक स्थान पर चला गया। उसी समय से ज़ोरावरसिंह भी अपनी जागीर में रहने लगा। अजीतसिंह में शासन करने की योग्यता बिलकुल न थी, इसलिए रानी बुन्दराल ने धीरे धीरे कुल राज्याधिकार अपने हाथ में ले लिये। उस समय महाराजा रणजीतसिंह का प्रतिनिधि भाई हुकुमसिंह जम्बू के आस पास के ताल्लुक़ों का अधिकारी था। उसने एक बार रणजीतसिंह की आज्ञा से जम्बू पर चढ़ाई की, पर उसे मार्ग में ही मियाँ मोटा ने कुछ राजपूतों को साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर रोक लिया और लड़कर मार भगाया । इस युद्ध में ज़ोरावरसिंह के प्रपौत्र गुलाबसिंह ने अपने दादा की इच्छा के विरुद्ध मियाँ मोटा का साथ दिया और अच्छी वीरता दिखलाई । यही गुलाब सिंह आगे चल कर जम्बू और काश्मीर के राजा हुए । उक्त युद्ध सन् १८०८ में हुआ था और उस समय गुलाबसिंह की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी । गुलाबसिंह अपने जीवन में प्रायः इस बात का ज़िक्र किया करते थे कि उन्हें शत्रुओं के सिर पर वार करने के लिए उचकना पड़ता था । एक दिन गुलाबसिंह अपने दादा के एक घोड़े पर सवार होकर जंगलों में निकल गये । वहाँ उस घोड़े को कुछ चोट आ गई । जब ज़ोरावरसिंह को यह बात मालूम हुई तो वह गुलाबसिंह पर बहुत बिगड़े । इसलिए गुलाबसिंह नाराज़ होकर घर से कुछ लोगों के साथ पेशावर की ओर भाग गये । उनकी इच्छा क़ाबुल तक जाने की थी, क्योंकि उन्होंने सुना था कि वहाँ शाह शुजा फ़ौज भरती कर रहा है । लेकिन सिन्ध नदी के किनारे पहुँचने पर उनके हिन्दू साथियों ने पेशावर जाने से इन्कार कर दिया, क्योंकि उन्हें मियाँ मोटे की नाराज़गी का भय था । इसलिए वहाँ से लौट कर वह सुखू परगने में दीवान ख़ुशवक़्तराय के पास पहुँचे । सुखू परगना सरदार निहालसिंह अटारीवाले की जागीर थी और उसका प्रबन्ध उक्त दीवान के हाथ में था । दीवान ने गुलाबसिंह का बहुत आदर सत्कार किया, क्योंकि उसी अवसर पर ज़ोरावरसिंह के यहाँ के एक पुराने जमादार ने, जो उस समय वहाँ उपस्थित था, उनका परिचय करा दिया था । उन्हीं दिनों दीवान के अधीनस्थ एक ज़मींदार ने सिर उठाया था और सांग के क़िले के निकट दीवान के कुछ सिपाहियों को परास्त किया था । इस पर गुलाबसिंह ने अपने साथ थोड़ी सी सेना ले जाकर उस ज़मींदार को परास्त कर दिया । इसी बीच में गुलाबसिंह की वीरता और रण-कुशलता का समाचार महाराज रणजीतसिंह तक पहुँचा और उन्होंने मियाँ मोटा को आज्ञा लिख भेजी कि गुलाबसिंह को भेज दो । यह समाचार दीवान ख़ुशवक़्तराय को मिला उन्होंने गुलाबसिंह को एक उत्तम घोड़ा दे आदरपूर्वक विदा किया । जब गुलाबसिंह पहुँचे तो मियाँ मोटा उन्हें लेकर स्यालकोट से कोस दक्षिण उसका नामक स्थान पर पहुँचे महाराज रणजीतसिंह की छावनी थी । यह घ सन् १८१० की है ।

गुलाबसिंह दो वर्षों तक वहाँ यों ही रहे । बाद राजा ध्यानसिंह ने उन्हें तथा उनके मियाँ साहब केसरसिंह को अच्छे वेतन पर से भरती कर लिया ।

फ़तहख़ाँ बारकजाई ने सन् १८१३ में महा रणजीतसिंह को इस शर्त पर आठ लाख वार्षिक देना स्वीकार किया था कि महाराज स उसे काश्मीर को अपने अधीन करने में सेना सहायता देंगे । महाराज ने यह बात स्वीकार ली और तदनुसार दीवान मोहकमचन्द को बड़ी सेना के साथ उसकी सहायता के लिए भे उस समय अफ़गान साम्राज्य की ओर से मुहम्मद काश्मीर का शासन करता था । दी मोहकमचन्द ने अतामुहम्मद को परास्त करके ख़ाँ से अपना रुपया माँगा । पहले तो फ़तह रुपया देने में आनाकानी की, पर बाद में वह देकर और अपने भाई मुहम्मद अज़ीम को का का शासक बनाकर क़ाबुल चला गया । म उसने अटक के क़िले पर भी अधिकार करना पर ज्योंही दीवान मोहकमचन्द को उसका यह मालूम हुआ, त्योंही उन्होंने उस पर चढ़ाई दी । इस युद्ध में गुलाबसिंह ने अपनी वीरता अच्छा परिचय दिया था, लेकिन उनके पिता सिंह बहुत ज़ख़्मी हो गये थे । फ़तहख़ाँ को भाग जब सिक्ख सेना लौटने लगी तो मार्ग में गुलाब को पता लगा कि रानी बुन्दराल ने दो दुष्टों के मियाँ मोटासिंह को मरवा डाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मुहम्मद अज़ीम का शासन काश्मीर में भली भाँति जम गया तो उसने सिक्खों को कर देना बन्द कर दिया। इसलिए सिक्ख-सेना फिर उस पर आक्रमण करने के लिए सन् १८१६ में काश्मीर की ओर रवाना हुई। जब सिक्खसेना दीवान रामदयाल और दलसिंह की अधीनता में पीरपंजल पार करके काश्मीर की सीमा में पहुँच गई तो रजावरी के शासक राजा आजख़ां ने विश्वासघात करके सिक्ख सेना का पक्ष छोड़ दिया और उसे रसद आदि देना बन्द कर दिया। यही नहीं, बल्कि उसने और भी दुष्टता यह की कि महाराज रणजीतसिंह को कई समाचार इस आशय के भेजे कि उनकी सेना पीरपंजल में नष्ट हो गई। गुलाबसिंह उस समय मण्डी में थे। उन्होंने इन समाचारों पर विश्वास कर लिया और उलटे बशाहिर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में ही उनकी सेना ने बड़ी कायरता दिखलाई और इधर उधर भागने लगी। उसी अवसर पर आसपास के ज़मींदारों ने भी सिर उठाया और उन्हें दिक़ करना चाहा; पर गुलाबसिंह ने लड़ भिड़ कर उन सबको परास्त कर दिया। गुलाबसिंह के लाहौर पहुँचने पर उन्हें पुरस्कार-स्वरूप एक जागीर मिली और उनका बहुत आदर हुआ।

इसके बाद महाराज रणजीतसिंह गढ़दनाले का क़िला फ़तह करने के लिए जालन्धर दोआब की तरफ़ गये। इधर कुछ दिनों से गुलाबसिंह जम्बू में ख़ाली बैठे हुए थे, इसलिए यह सुअवसर देख वह ठीक समय पर महाराज की सहायता के लिए उनके पास आ पहुँचे। उस युद्ध में गुलाबसिंह ने जो वीरता दिखलाई थी उसके उपलक्ष में उन्हें महाराज ने रामगढ़ की जागीर दे दी। महाराज रणजीतसिंह अपने सहायकों का उत्साह बढ़ाने के लिए प्रायः इस प्रकार जागीरें दे दिया करते थे। उसी वर्ष महाराज ने नवाब मुजफ्फ़रख़ाँ को अधीन करने के लिए मुलतान पर चढ़ाई की। इस युद्ध में एक बार एक बड़ा सरदार मारा गया और महाराज ने उसकी लाश मँगवाने की आज्ञा दी। जिस स्थान पर वह लाश गिरी थी वहाँ चारों ओर से गोलियाँ बरस रही थीं। इसलिए किसी को वहाँ जाकर उस मृत सरदार का शव लाने का साहस न हो सका। गुलाबसिंह सबसे आगे झपट कर बढ़े और सबके देखते देखते वह लाश उठा लाये। नवाब के अधीन होने और नज़राना दे चुकने के बाद महाराज लाहौर लौट गये और गुलाबसिंह जम्बू चले गये।

सन् १८१७ में गुलाबसिंह को महाराज की ओर से रिआसी की जागीर मिली। इनसे पहले यह जागीर दीवानसिंह के पास थी, जो मियाँ मोटासिंह के हत्याकारियों में सम्मिलित था। रिआसी के क़िले पर अधिकार करके गुलाबसिंह ने दीवान अमीरचन्द की सम्मति से उसकी मरम्मत कराई और वहाँ थोड़े से सिपाही छोड़कर वह महाराज से मिलने लाहौर गये। पर वहाँ से उन्हें शीघ्र ही लौट आना पड़ा, क्योंकि उस क़िले पर एक दूसरे जागीरदार भूपदेव के आदमी अधिकार करने की चेष्टा करने लगे थे। लौट कर गुलाबसिंह ने इन उपद्रवियों को परास्त किया और उनके सरदार सरतापा को क्रोध में आकर अपने हाथ से टुकड़े टुकड़े कर डाला और इसी प्रकार उसके अन्य साथियों को भी मरवा कर उनकी लाशें पेड़ों पर लटकवा दीं। उधर भूपदेव और दीदू अपने सिपाहियों सहित मियाँ मोटासिंह की जागीर में जाकर लूट मार करने लगे। इसलिए गुलाबसिंह ने रिआसी को ज़ोरावरसिंह के सपुर्द करके उस ओर प्रस्थान किया और कई लड़ाइयों के बाद मियाँ दीदू को पहाड़ों में मार भगाया।

काश्मीर की हिन्दू प्रजा पर अफ़ग़ानसरकार के कर्मचारी बहुत अधिक अत्याचार करते थे, इसलिए महाराज रणजीतसिंह ने उस प्रान्त को अपने अधीन करना चाहा। उसी अवसर पर संयोगवश (सन् १८१९ में) पण्डित बीरबल तथा और कई आदमी काश्मीर से भाग कर लाहौर पहुँचे और महाराज से काश्मीर अपने अधीन कर लेने की प्रार्थना करने लगे। महाराज ने भी तदनुसार युद्ध आरम्भ कर दिया। उस युद्ध में गुलाबसिंह ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब्बारखां का मुक़ाबला करके उसे परास्त किया था। काश्मीर जीत कर महाराज ने दीवान मोतीराम को वहाँ का शासक (गवर्नर) बनाया और गुलाबसिंह को जम्बू-प्रान्त दे दिया। गुलाबसिंह को सिक्ख-सरकार के लिए सेना रखने के अतिरिक्त और किसी प्रकार का कर न देना पड़ता था।

काश्मीर और पेशावर से लौट कर महाराज ने डेरा ग़ाज़ीख़ाँ पर चढ़ाई की, जिसमें गुलाबसिंह भी अपनी सेना सहित सम्मिलित थे। उसी अवसर पर गुलाबसिंह के दादा ज़ोरावरसिंह का देहान्त हो गया और केसरसिंह छुट्टी लेकर जम्बू चले गये। इसके बाद पेशावर के यूसुफ़ज़इयों को दमन करने में भी गुलाबसिंह ने महाराज को बहुत सहायता दी थी।

यद्यपि जम्बू सिक्ख-साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया गया था और वहाँ के प्रबन्ध के लिए उक्त सरकार की ओर से दो सरदार नियुक्त थे तो भी मियाँ दीदू उसके आस पास के गाँवों में लूट मार करता फिरता था। इसके सिवा बहुत से राजपूत और ज़मींदार भी उसके सहायक हो गये थे। सिक्खसरदार कभी कभी इन उपद्रवियों के सरदारों को पकड़ लिया करते थे और उन्हें क़ैद या देश-निकाले की सज़ा देते थे। लेकिन मियाँ दीदू के उपद्रव दिन पर दिन बढ़ते जाते थे। एक बार जम्बू से कुछ फल महाराज के लिए आ रहे थे। मियाँ दीदू ने मार्ग में ही वे सब फल लूट लिये और उनके बदले टोकरों आदि में गोबर और कीचड़ भर दिया। जब यह समाचार लाहौर में महाराज तक पहुँचा तो वह बहुत क्रुद्ध हुए। उसी समय उन्होंने मियाँ दीदू को दण्ड देने का विचार किया। उस अवसर पर गुलाबसिंह ने महाराज को उस शेर का क़िस्सा सुनाया, जिसकी मोछें सोने के समय एक चूहा काट जाया करता था और जिसने विवश हो कर उस चूहे के लिए एक बिल्ली पाली थी। इसका अभिप्राय यह था कि पंजाब-केसरी एक बहुत छोटे शत्रु के लिए स्वयं कोई कष्ट न करें और उसका भार गुलाबसिंह पर सौंप दें। महाराज को यह बात पसन्द आ गई और उन्होंने गुलाबसिंह [को] अपना दोशाला ओढ़ाकर कई सरदारों के स[ाथ] जम्बू की ओर भेजा। गुलाबसिंह ने मियाँ दीदू [के] उन साथियों को छुड़वा दिया जो क़ैद किये जा [चुके] थे और इस प्रकार और लोगों की सहानुभूति प्र[ाप्त] की। मियाँ दीदू ने भागने की चेष्टा की, पर [वह] सिक्ख-सिपाहियों द्वारा मारा गया। गुलाबसि[ंह] उसके दो लड़कों को पकड़ कर लाहौर ले गये। एक बार शिकार में जब गुलाबसिंह एक निर[्जन] जंगल में पहुँचे तो वहाँ उन्होंने दीदू के पु[त्र] वसन्तसिंह से कहा कि मैं तुम्हारे पिता की ह[त्या] करने वाला हूँ, इसलिए तुम इस समय मुझसे अ[पने] पिता का बदला ले सकते हो। वसन्तसिंह ने ब[हुत] नम्र होकर उत्तर दिया कि मैं आपके अनुग्रह [और] कृपापूर्ण व्यवहारों से बहुत दब गया हूँ।

(शेष आगे)

—:०:—

सूचना और सम्मति।



बंबई विश्वविद्यालय के अन्तर्गत [एक] व्यापार-कालिज खुला है, जि[समें] व्यापार की शिक्षा दी जायग[ी।] अभी जब तक अलग भवन न [बन] जायगा यह कालिज एलफि[न्स्टन] कालिज ही में रहेगा। शिक्षा का समय सबेरे [...] १० बजे तक और सन्ध्या को ५ से ७ बजे तक [रखा] गया है। इससे निकले हुए छात्रों को बंबई [यूनि]वर्सिटी की बी० सी० (Bachelor of Comme[rce]) की उपाधि मिलेगी। इस कालिज की स्थाप[ना के] लिए जो उद्योग मि० के० सुब्रह्मण्य ऐयर ने [किया] उसके लिए बंबई के श्रीमान् गवर्नर महोद[य ने] उनकी बड़ी प्रशंसा की। अभी मि० सुब्रह्मण्य [ऐयर] ही इस कालिज के प्रधान प्रिंसिपल नियुक्त हु[ए हैं।] शेष अध्यापकों के नाम ये हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ श्रीनीलकंठ सदाशिव तकाखे एम० ए०—अँगरेज़ी के अध्यापक।

२ श्रीरामचन्द्र महादेव जोशी एम० ए०; एल एल० बी—अर्थशास्त्र के अध्यापक।

३ श्रीभास्कृरराव विट्ठलदास मेहता एम० ए०; एल एल० बी०—व्यापारक़ानून के अध्यापक।

४ मि० सोराबजी शकूर जी (इंजिनियर)—हिसाब किताब के अध्यापक।

—:०:—

इस सभा की रिपोर्ट देखने से पाठकों के मालूम ही होगा कि विज्ञान के प्रचार के लिये प्रयाग में एक विज्ञानपरिषद् स्थापित हुई है जो हिन्दी और उर्दू में विज्ञान-विषय की पुस्तकें बनवाएगी और व्याख्यान आदि का भी प्रवन्ध करेगी। परिषद् क्या कर रही है, इसका पता वह अपनी छपी अपील में इस प्रकार देती है—

"परिषद् ने......पहले पहल प्रारम्भिक पुस्तकों की रचना का काम अपने हाथ में लिया है। उसके कई सदस्य रसायन, भौतिक तथा जीव-विज्ञान पर छोटी पुस्तकें लिख रहे हैं और इस कार्य्य में योग देने के लिए कई कालिजों के उन विद्वान् अध्यापकों ने, जो हमारी प्रान्तीय (?) भाषा में ग्रन्थ लिख सकते हैं, सूचना दी है। परिषद् की कार्य्य-कारिणी समिति के विषयानुसार छ विभाग किये गए हैं जिनमें ग्रन्थ-रचना कार्य्य के अतिरिक्त वैज्ञानिक परिभाषा पर भी विचार होता है और शीघ्र ही परिभाषा का प्रकाशन भी सामयिकपत्रों में प्रारम्भ हो जायगा। अभी अर्थाभाव के कारण व्याख्यानादि का प्रवन्ध नहीं हुआ है किन्तु पत्रों में निवन्ध भेजना सदस्यों ने प्रारम्भ कर दिया है"।

हिन्दीप्रेमियों को चाहिए कि वे इस परिषद् की तन मन से पूरी सहायता करें, और नहीं तो कम से कम २) वार्षिक चंदा देकर इसके सदस्य अवश्य हो जायँ। पत्र-व्यवहार आदि इस पते से करना चाहिए—अध्यापक श्रीरामदास गौड़ एम० ए०, उपमंत्री विज्ञान-परिषद्; म्योर कालेज, इलाहाबाद।

—:०:—

फ़ैज़ाबाद में गत प्रान्तीय कान्फ़्रेंसों के अवसर पर देशी भाषाओं, विशेष कर हिन्दी के सम्बन्ध, में जो भाव प्रकट किये गए वे अत्यन्त निन्दनीय और अभिमान-सूचक थे। बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त ने जो हिन्दी-भाषा के अधिक व्यवहार पर ज़ोर दिया वह इस लिए जिसमें ये कान्फ़्रेंसें अभिनय मात्र न हों, जिन्हें अधिकांश लोग केवल दूर से देखें। खेद के साथ कहना पड़ता है कि बाबू शिवप्रसाद के विरोध के लिए ऐसे लोग खड़े हुए जिन्होंने अभी तक कोई सार्वजनिक कार्य्य नहीं किया है, और जो इधर थोड़े ही दिनों से अपना फ़ुरसत का वक़्त अपने को 'पवलिक मेन' प्रकट करने में लगाने लगे हैं। ऐसे लोगों के समझना चाहिए कि केवल देशी भाषाओं का विरोध करने से ही 'भारत-प्रसिद्ध' होने की योग्यता नहीं प्रमाणित होती। यदि कान्फ़्रेंसें प्रान्तीय न होतीं, भारतीय होतीं, तो इस प्रकार का विरोध किसी अंश में उचित भी था।

—:०:—

हाल में ब्रिटिश असोसिएशन के सामने डाकृर मेकडैानल ने 'हास्य' पर एक लेख पढ़ा था। उन्होंने कहा कि अब तक हास्य के जितने हेतु-निरूपण हुए हैं उनमें एक भी ठीक नहीं प्रमाणित हुआ। स्पेंसर ने हास्य का कारण यह बतलाया था कि शरीर की फ़ालतू शक्ति उन प्रेरक नाड़ियों के द्वारा निकलती है जिनका व्यवहार बहुत अधिक होता है जैसे श्वासवाहिनी तथा मुँह को खोलने और बंद करने वाली नाड़ियाँ। पर बहुत सी अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमें मस्तिष्क से किसी फ़ालतू शक्ति का वहिष्कार नहीं होता। जैसे किसी आदमी के अपनी टोपी पर बैठा देख देखनेवालों को हँसी छूटती है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जब जब ऐसे दृश्य दिखाई पड़ते हैं तब तब शरीर में फ़ालतू शक्ति रहती है। हँसी वास्तव में एक साथ मिली जुली कई प्रकार की गतियों का प्रवाह है। यह प्रवाह एक ऐसी प्रेरणा के द्वारा होता है जिस पर कभी कभी इच्छा का वश बिलकुल नहीं रहता। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की क्रिया से यह लक्षित होता है कि मनुष्य की रचना में एक प्रकार की भौतिक और मानसिक संयुक्त प्रवृत्ति होती है जिसका केन्द्र मस्तिष्क में होता है। मनुष्य जाति में जो इस क्रिया का स्थापन हुआ है उससे उपकार ही है।

हास्य दो प्रकार के होते हैं, एक वह जो किसी विलक्षण वस्तु वा व्यापार के देखने से होता है, दूसरा वह जिसे किसी वस्तु वा व्यापार की अपेक्षा नहीं होती। हँसी मानसिक क्रियाओं को एक दम रोक देती है और इस प्रकार बेढंगी वस्तु पर अधिक विचार करने से रोकती है। हँसी के द्वारा शरीर में गति उत्पन्न होती है, जिससे रक्त और श्वास का प्रवाह तेज़ हो जाता है और शरीर का स्वास्थ्य-साधन होता है। हँसी मनुष्य ऐसे प्राणी के लिए आवश्यक है। हँसी का आदि उद्देश्य सहानुभूति वा करुणा पर एक प्रकार की रोक रखना है। यद्यपि यह परम आवश्यक है कि हम अपने सहवर्गियों के दुःख से दुखी हों, पर यदि हम सब प्रकार के छोटे छोटे दुःखों और मूर्खताओं के लिए, जिन्हें अपने चारों ओर हम हर समय पाते रहते हैं, व्यथित होने लगें तो हमारा जीवन ही दुःखमय हो जाय।

—:o:—

सभा का बीसवाँ वार्षिकोत्सव।



त १ अक्तूबर सन् १९१३ बुधवार को सन्ध्या समय ५॥ बजे सभाभवन में काशी-नागरीप्रचारिणी सभा का बीसवाँ वार्षिकोत्सव बड़े समारोह से हुआ था। सभाभवन पताकाओं आदि से सजाया गया था। उत्सव में उपस्थित सज्जनों की संख्या ढाई तीन सौ के लगभग थी, जिसमें नगर के सभी पढ़े लिखे, रईस और प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित थे। सारा हाल दर्शकों से भरा हुआ था। सभापति का आसन बनारस के कमिश्नर मिस्टर ई० ए० मलोनी आई० सी० एस० ने सुशोभित किया था।

ठीक साढ़े पाँच बजे कमिश्नर साहब सभा-भवन में पधारे। द्वार पर श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दर-दास बी० ए०, बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल० बी० आदि सज्जनों ने उनका स्वागत किया। सबसे पहले कमिश्नर साहब ने सभा के कार्यालय, पुस्तकालय, तथा कोश-विभाग का भली भाँति निरीक्षण किया। पुस्तकालय में आपने प्रायः सब समाचारपत्रों को एक एक करके देखा और अपरि-चित भाषाओं के पत्रों और पत्रिकाओं के नाम तथा उद्देश आदि पूछे। कोश का पूरा कार्य्य-क्रम आप को भली भाँति समझाया गया। सब बातों को आप बड़े ध्यान से सुनते थे तथा बीच बीच में स्वयं प्रश्न करते जाते थे। कोश-विभाग का निरीक्षण कर आप हाल में आये जहाँ आप को सभापति के आसन पर बैठाकर करतल-ध्वनि की गई। इसके बाद सभा के मन्त्री बा० गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल० बी० ने सभा के बीसवें वर्ष का विवरण संक्षेप रूप में पढ़ सुनाया। उसी अवसर पर उस विवरण की छपी हुई प्रतियाँ भी उपस्थित सज्जनों में बाँट दी गईं। इसके बाद कमिश्नर साहब ने पं० रामचन्द्र शुक्ल को राधाकृष्णदास की जीवनी के लिये मेडल तथा पं० श्रीलाल उपाध्याय के लिये डा० छन्नूलाल मेमोरियल मेडल और लाला संतराम गोहल के लिये राधाकृष्ण-दास मेडल दिया। बा० गौरीशंकरप्रसाद के रिपोर्ट पढ़ चुकने और मेडल बँट जाने के बाद बा० श्याम-सुन्दरदास का व्याख्यान आरम्भ हुआ। आपका व्याख्यान बड़ा ही रोचक और प्रभावशाली था। बीच बीच में लोग करतल-ध्वनि करते और कहीं कहीं ख़ूब हँसते थे।

बा० श्यामसुन्दरदास जी ने अपने व्याख्यान के आरम्भ में सभा के आरम्भ से लेकर आज तक के वर्षों का संक्षिप्त इतिहास कह सुनाया। आपने कहा—"इस सभा में सभी तरह के पढ़े लिखे और प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित हैं। बड़े बड़े राजा महा-राजा इसके संरक्षक हैं और सदा सब प्रकार से इसकी सहायता किया करते हैं। इस सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य अन्य भाषाओं का विरोध करना नहीं है। आरम्भ में जिस समय यह सभा स्थापित हुई थी उस समय इस बात का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि हिन्दी को उर्दू के विरोध का भी अवसर मिलेगा। जिस प्रकार और सब भाषाएँ उन्नति कर नहीं हैं, उसी प्रकार हिन्दी को भी उन्नत करना ही इस सभा का मुख्य उद्देश्य है। आजतक इस सभा ने चन्दे आदि से संग्रह करके हिन्दी की उन्नति और प्रचार में १४०००० (एक लाख चालीस हज़ार रुपये) व्यय किये हैं। इस समय सभा की वार्षिक आय प्रायः सात आठ हज़ार रुपये है। इन बीस वर्षों में सभा ने अनेक बड़े बड़े काम किये हैं। इस बीच में सभा ने कोई ४००० नई हिन्दी-पुस्तकों की खोज की जिसकी रिपोर्ट के आधार पर पं० श्यामबिहारी-मिश्र ने हिन्दी का एक बड़ा इतिहास लिखा है। खोज में हिन्दी-गद्य की अनेक ऐसी पुस्तकें मिली जो १३ वीं शताब्दी की बनी हुई हैं। इसके सिवा सभा ने बहुत सी नई और उपयोगी पुस्तकें पुरस्कार और पदक देकर लिखवाई हैं।" इसके बाद आप ने पृथ्वीराजरासो का ज़िक्र किया और कहा कि यद्यपि सभा द्वारा प्रकाशित रासो में कुछ अंश प्रक्षिप्त या क्षेपक भी है तथापि उस रासो के असली होने में सन्देह नहीं है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के सम्बन्ध में आप ने कहा—"ऐसी दशा में जब कि यूरोप ऐसे बड़े देश में जहाँ अनेक जातियाँ और भाषाएं हैं, लोग एस्पिरेण्टो को राष्ट्र-भाषा बनाने का उद्योग करते हैं, तो यदि हम लोग भारतवर्ष में नागरी को राष्ट्र-लिपि बनाना चाहें तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है और यह बात सम्भव भी है।" सभा के पुस्तकालय का ज़िक्र करते हुए आप ने कहा—"यद्यपि हस्त-लिखित पुस्तकों के तो देशी रियासतों में बड़े बड़े पुस्तकालय हैं पर हिन्दी की छपी हुई पुस्तकों का सबसे बड़ा पुस्तकालय सभा ही है।" ... ... "सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय यह है कि हम लोगों को सब से अधिक सहायता युक्त प्रान्त की सरकार से ही मिली है। प्रायः सभी छोटे लाट, कमिश्नर, कलक्टर तथा अन्य सरकारी आफ़िसर बराबर इस सभा की सहायता करते तथा उसके कामों से सहानुभूति रखते आये हैं। पर इस बात का मुझे दुःख है कि कभी कभी हमारी पुकार गवर्नमेण्ट तक नहीं पहुँचती। आज कल गवर्नमेण्ट के कारण कई अंशों में हिन्दी की हानि हो रही है। वह उर्दू और हिन्दी को एक कर रही है जिससे पढ़नेवालों को बहुत कठिनता होती है। लोगों के बहुत शिकायत करने पर सरकार ने विज्ञों (Experts) की एक कमेटी बनाई; पर वह विज्ञ ऐसे हैं जिनका हिन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक ओर तो सरकार इस बात की शिकायत करती है कि लोग उसे सहायता नहीं देते और दूसरी ओर सहायता के लिये वह ऐसे लोगों को चुनती है जो हिन्दी से कोई सरोकार नहीं रखते।" इसके बाद आप ने हिन्दी की कई पाठ्य पुस्तकों में से, उनकी भाषा-सम्बन्धी भद्दी अशुद्धियों के कई उदाहरण दिखलाये जिस पर लोगों में ख़ूब हँसी हुई। आगे चलकर आप ने कहा—"इस सम्बन्ध में सरकार बहुत अन्याय कर रही है। इस अवसर पर मेरे कथन का उद्देश्य यह है कि बहुत सम्भव है कि हमारी यह शिकायत सभापति महाशय के द्वारा छोटे लाट तक पहुँच जाय। एक बार शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के पास सभा का एक डेपुटेशन गया था। उस समय उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया था कि इन पुस्तकों की भाषा की शिकायत स्कूलों के इंसपेक्टर तक करते हैं।" ... ...

"सुधाकर जी की आत्मा मुझे क्षमा करे, चलते चलाते वे भी हिन्दी का गला ख़ूब काट गये हैं। रामकहानी में उन्होंने भाषा का ख़ूब सत्यानाश किया है। उनकी यह पुस्तक शहर के लड़कों को देहाती बनाने का बहुत अच्छा साधन है। शकुन्तला ऐसी पुस्तक तो पाठ्य पुस्तकों में से निकाल दी जाय और रामकहानी उसके स्थान पर अचल हो जाय और हटाये भी न हट सके; यह भी हिन्दी का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। यदि सच पूछिये तो यह भी सर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार की पालिसी ही है । जहाँ हम लोग सरकार की कृपा का धन्यवाद देते हैं वहाँ हम लोग अपने कष्टों को उसके सामने उपस्थित करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं । आज कल की पाठ्य पुस्तकों की भाषा हमारे बच्चों को तुलसीकृत रामायण समझने योग्य भी न रक्खेगी । सरकार को चाहिए कि वह अपने भविष्य नागरिकों की रक्षा करे । कौंसिल में भी इस विषय की कुछ सुनाई होने की आशा नहीं दिखाई देती । लेकिन अभी शायद सरकार इस विषय पर विचार कर रही है और जबतक उसका निर्णय प्रकाशित न हो जाय तबतक हम लोगों को चुप रहना चाहिए । उस समय सभा फिर एक बार सरकार तक पहुँचेगी और उससे न्याय की प्रार्थना करेगी । हमें सरकार के साथ होकर चलना चाहिए, क्योंकि उससे हमारे कामों में सहायता मिलती रहती है ।"

इसके बाद सभापति मि० मलोनी की वक्तृता आरम्भ हुई । सबसे पहले आप ने बा० श्यामसुन्दर-दास की वक्तृता और वक्तृत्व-शक्ति की प्रशंसा की और साथ ही सभा तथा उसके उद्देश्यों की सराहना की । आप ने कहा—"सभा में अच्छे अच्छे लोग सम्मिलित हैं, उसके पास धन भी है और उसके काम भी अच्छे होते हैं । पुस्तकों की खोज का काम बहुत उत्तम और आवश्यक है । इसमें तथा कोश में सब लोगों को सहायता देनी चाहिए । पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में जो शिकायत की गई है, उसके दूर करने में जहाँ तक हो सकेगा सहायता दी जायगी, पर वक्ता महाशय की दो एक बातों से मेरा मतभेद है । भाषा में बराबर परिवर्त्तन होता है । जब मुसलमान इस देश में आकर बस गये तो उनकी भाषा के शब्दों का इस देश की भाषा में मिलना अनिवार्य्य था । फ़ारसी और इस देश की भाषा मिलकर और उसमें कुछ परिवर्त्तन होकर उर्दू भाषा बन गई । उन लोगों की भाषा का प्रभाव इस देश की भाषा पर भी पड़ा । इङ्गलैण्ड में नार्मनों की विजय (Norman Conquest) के बाद फ्रेञ्च और एंग्लो-सैक्सन (Anglo-Saxon) भाषाओं में झगड़ा रहा जो आज कल इस देश में उर्दू हिन्दी का है । लेकिन सैक्सन भाषा में अन्य भा के शब्द मिलते गये और इसी लिये अँगरेज़ी इतनी उन्नति भी हुई । यदि हम लोग केवल सै भाषा को लेकर बैठे रहते तो अँगरेज़ी भाषा इ उन्नत न दिखलाई पड़ती । पाठ्य पुस्तकों के स में सरकार के सामने बड़ी कठिन समस्या उप है । यदि हिन्दी और उर्दू की प्रारम्भिक शि लिये अलग अलग स्कूल खोले जाँय तो उसमें बहुत अधिक पड़ेगा ।

यदि सभा को इन पाठ्य पुस्तकों की भाषा विरोध हो तो उसे उचित मार्ग से सरकार अपनी प्रार्थना पहुँचानी चाहिए । आशा है कि अवश्य ध्यान देगी ।" इसके बाद आप ने अ फिर कोश और खोज के काम की प्रशंसा की कहा कि खोज के काम में सर्वसाधारण को उदारता दिखलानी चाहिए । सभापति महाश वक्तृता समाप्त होने पर उन्हें धन्यवाद दिया और करतल-ध्वनि होने के बाद सभा विसर्जित

—:०:—

सभा का कार्य-विवरण ।

प्रबन्ध-कारिणी-समिति ।

सोमवार ता० २९ सितम्बर १९१३—संध्या के ५

स्थान सभाभवन ।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३० अगस्त १ का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ

(२) बाबू ब्रजचन्द्र का १८ सितम्बर १९ पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने किया था कि (क) प्रति वर्ष विद्वानों की एक नियत कर दी जाया करे जो प्रकाशित पुस्त अपनी सम्मति दिया करे और जिनकी सम्म अनुसार उत्तम पुस्तकों के नाम वार्षिक रि दिए जाया करें, (ख) जो पुस्तकें सभा के पु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय के लिये आवें उनके विषय में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में विशेष रूप से सम्मति प्रकट की जाया करे, (ग) हस्तलिखित अमूल्य ग्रंथों, शिला-लेखों, ताम्रपत्रों, पुराने सिक्कों, प्राचीन चित्रों तथा पुरातत्त्व सम्बन्धी अन्य सामग्री का एक संग्रह सभाभवन में रक्खा जाय।

निश्चय हुआ कि (क) सभा की वार्षिक रिपोर्ट में उत्तम पुस्तकों के विषय में जितना उल्लेख रहता है उससे कुछ अधिक विवरण के दिए जाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। सभा के सभापति अपनी वार्षिक वक्तृता में यदि उचित समझें तो विशेष रूप से इनके विषय में उल्लेख कर सकते हैं, (ख) पुस्तकालय के निरीक्षक से प्रार्थना की जाय कि वे ऐसी पुस्तकों की एक सूची बना कर दिया करें और वह सूची सभा के कार्य-विवरण के साथ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में छाप दी जाया करे, (ग) यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय और प्रस्तावकर्त्ता से प्रार्थना की जाय कि इस की कार्य-प्रणाली आदि के सम्बन्ध में वे कृपा-पूर्वक विस्तृत रूप से अपने प्रस्ताव उपस्थित करें।

(३) साहित्याचार्य्य पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० ए० का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने हिन्दी में समाज-शास्त्र पर ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया था और पूछा था कि यह पुस्तक किस ढँग की लिखी जाय।

निश्चय हुआ कि पण्डित ज्वालाप्रसाद शर्म्मा को लिखा जाय कि वे इस सम्बन्ध में विस्तृत रूप से अपने प्रस्ताव भेजें और तब यह विषय आगामी अधिवेशन में समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(४) बुलन्दशहर की नागरी-प्रचारिणी सभा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने यहाँ की कलेक्टरी में नागरी का एक लेखक नियत करने के लिये सभा से आर्थिक सहायता माँगी थी।

निश्चय हुआ कि सभा को दुःख है कि धनाभाव से इस समय वह कुछ सहायता नहीं दे सकती।

(५) पण्डित केदारनाथ पाठक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बाबू राधाकृष्णदास के जीवन-चरित के तैयार करने में ग्रन्थकार को उन्होंने बड़ी सहायता दी थी अतः उन्हें इस पुस्तक की कुछ प्रतियाँ बिना मूल्य दी जानी चाहिएँ।

निश्चय हुआ कि पाठक जी का पत्र इस ग्रन्थ के लेखक—पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के पास भेजा जाय और उन्हें लिखा जाय कि इस पुस्तक की जितनी प्रतियाँ वे उचित समझें पण्डित केदारनाथ पाठक को दें।

(६) निश्चय हुआ कि सभा के स्थायी कोश में अब तक जितना द्रव्य प्राप्त हुआ है उसका पूरा हिसाब समिति की सूचना के लिये आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(७) वेतनवृद्धि के लिये सभा के क्लार्क बाबू माधवसिंह और पण्डित काशीप्रसाद तिवारी के प्रार्थना पत्र उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि धनाभाव से इस समय उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

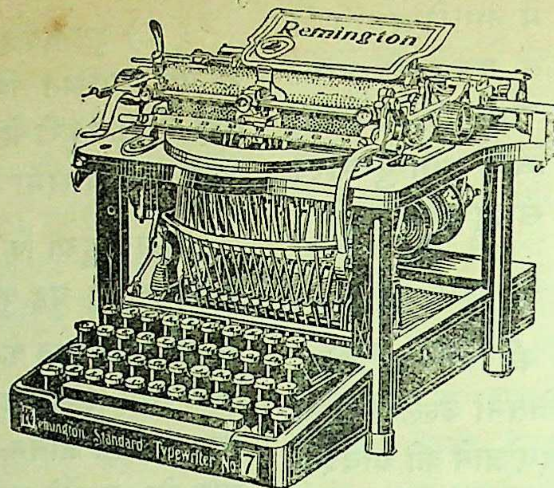
गौरीशंकरप्रसाद।
मंत्री

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नं० ६ रेमिङ्गटन स्टेण्डर्ड टाइपराइटर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस मेशीन से मराठी संस्कृत या देवनागरी अक्षरों में लिखा जा सकता है। समय और श्रम को बचानेवाली इन मशीनों को राजा महाराजा भारतवर्षीय रा[ष्ट्र] के दफ़्तर व्यवसायी सज्जन और प्रत्येक पुरुष जिसको समय और श्रम के बच[ाने] की क़दर है व्यवहार करते हैं और इन मशीनों की सफलता से प्रसन्न हैं। क़ल[म] से कहीं ज्याद: तेज़ लिखने के सिवाय इन मशीनों का लिखना सुन्दर और सह[ी] होता है और बड़ी बात यह होती है कि एक मज़मून की बहुतसी नक़लें एक साथ छापी जा सकती हैं। हमारे कारख़ाने की मेशीनें तमाम दुनियाँ में फैली [हुई] हैं और हमारा नाम इन मराठी संस्कृत और देवनागरी हिन्दी मेशीनों की मज़[बूती] और नेहायत कारआमद होने की गारेन्टी है।

मिलने का पता—

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी

(आफ न्यूयार्क एण्ड लन्दन)

नं० २६ ए केनिंग रोड इलाहाबाद

निम्नलिखित स्थानों से भी ये मेशीनें मिल सकती हैं:—

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
७ कौन्सिल हाउस स्ट्रीट, कलकत्ता।

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
वाइ. एम. सी. ए बिल्डिङ्गस, मदरास।

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
७५ हार्नबी रोड, बम्बई

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
चेयरिंगक्रोस बिल्डिङ्गस, लाहौर

इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १८ | नवंबर और दिसंबर १९१३ | संख्या ५—६

हिन्दी का महत्त्व।

(लेखक—पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०)

यह एक बड़ा ही गम्भीर विषय है, जिस पर छोटा और बड़ा, हर प्रकार का लेख लिखा जा सकता है। मुझे आज्ञा मिली है कि इसी गहन विषय पर आप लोगों के सम्मुख अपने विचार उपस्थित करूँ। इस विस्तीर्ण पांडित्य-पूर्ण विषय पर यदि किसी पंडित को कुछ कथन करने की आज्ञा मिलती, तो वह आज आप लोगों के सामने वह उच्च विचार उपस्थित करता कि आप भी प्रसन्न हो जाते। जान पड़ता है कि आप की इच्छा आज पांडित्य-पूर्ण लेख सुनने की नहीं है, प्रत्युत बाल-क्रीड़ा देखने की है, तब न आपने बालकों के समान ही ज्ञान-धारी मुझ ऐसे अल्पज्ञ को यह सेवा सौंपी है। अतः बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य समझ कर "निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहिँ अकास" के अनुसार यह लेख आप लोगों की सेवा में समर्पित करता हूँ।

हिन्दी के विचार में भाषा और वर्ण दोनों का कथन आता है। भाषा में साहित्य मुख्य है; अतः हम उसी से इस लेख का आरंभ करते हैं। साहित्य अथवा काव्य का शुद्ध लक्षण क्या है, इस विषय पर पंडितों का मत अब तक सर्वसम्मति से किसी ओर नहीं झुक सका है। फिर भी बहुमत का झुकाव इस ओर समझ पड़ता है कि "काव्य वह वाक्य है जिसके शब्द, अर्थ या दोनों से अलौकिकानन्द प्राप्त हो"। साहित्य के गद्य, पद्य और नाटक नामक तीन विभाग हैं। बहुत से लोग गीतों का एक चौथा विभाग सा मानते हैं, विशेषतया पाश्चात्य महाशय गण। विषय के अनुसार गद्य, पद्य और नाटक में यह भेद है कि गद्य में विचारों का भावों से बहुत आधिक्य रहता है, पद्य में ये दोनों प्रायः सम भाव से रहते हैं और गीतों में भावों का आधिक्य विशेषता से हो जाता है। विषय के अनुसार देखने से पद्य और गीत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग पृथक पृथक् हो जाते हैं, किन्तु वास्तव में ये मिले हुए हैं ग्रैार गीत भी पद्य का ही एक भाग है। गद्य के उपविभाग थोड़े ही से हैं, किन्तु पद्य के बहुत अधिक। नाटक के उपविभाग गद्य से अधिक हैं। नाटक को बहुधा दृश्य काव्य कहते हैं ग्रैार गद्य एवं पद्य को श्रव्य काव्य।

हमारे यहाँ संस्कृत एवं भाषा दोनों में काव्य के दश ग्रंग माने गये हैं। इसीलिये बहुधा लोग दशांग काव्य-ज्ञाता इत्यादि का कथन किया करते हैं। काव्य के ग्रंगों का जिस उत्कृष्टता ग्रैार विस्तार के साथ कथन हमारे यहाँ है, वैसा अन्यत्र स्वप्न में भी नहीं पाया जायगा। अँगरेज़ी भाषा में मेटानिमी, सेनेकडकी, सिमिली, मेटाफ़र ग्रादि दस ही पाँच काव्यांगों का कथन बहुत समझा गया है किन्तु हमारे यहाँ एक एक ग्रंग के अनेकानेक उपांग कहे गये हैं, यहाँ तक कि भावभेद के अन्तर्गत केवल नायिकाभेद के ३८४ उपभेद कहे गये हैं। इस दशांग वर्णन को हमारे यहाँ रीति वर्णन कहते हैं। इसके ग्रंग ये हैं—पदार्थनिर्णय, पिंगल, गणागण, गुण, दोष, दोषोद्धार, भाव, रस, वृत्ति, पात्र ग्रैार अलंकार। पदार्थनिर्णय में शब्दों ग्रैार वाक्यों के शुद्ध अर्थ लगाने में जिन जिन शक्तियों ग्रैार विचारों की ग्रावश्यकता होती है उनका कथन है। इसमें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि ग्रैार तात्पर्य्य प्रधान हैं। इनमें से प्रथम तीन विशेषतया शब्दों के सहारे पर चलती हैं ग्रैार अन्तिम दो वाक्यों के। इन शक्तियों से कोष से कोई सरोकार नहीं। कोष जानने पर भी मनुष्य बिना इनकी सहायता के शुद्ध अर्थ नहीं लगा सकता। इनमें से भी एक एक के अनेकानेक भेदान्तर हैं। जो महाशय व्यंजना ग्रैार ध्वनिभेद को भली भाँति समझ लेवें, वे भाषा काव्य-प्रणाली के अच्छे ज्ञाता समझे जांयगे।

पिंगल में मेरु, पताका, मर्कटी, नष्ट उद्दिष्ट, ग्रैार प्रस्तार एक प्रकार से गणित शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। इनके द्वारा गणित के कई भाग नये नियमों से सिद्ध होते हैं। किन्तु इन सबका जानना पि[...] ज्ञान के लिये ग्रावश्यक नहीं है। हमारे यहाँ [...] की संख्या अनन्त है। अन्य भाषाग्रों में दस [...] प्रकार के छन्द बहुत समझे गए हैं। किन्तु [...] यहाँ सैकड़ों प्रकार के छन्द प्रस्तुत हैं ग्रैार [...] नए छन्द पिंगल में कथित नियमों से बनाए जा [...] हैं। छन्द का विषय हमारे यहाँ बहुत परिपूर्ण है [...] अनेक ग्राचार्य्यों ने इसी का कथन किया है। [...] से सुखदेव मिश्र, मनीराम मिश्र ग्रैार दास [...] हैं। अन्य ग्राचार्य्यों ने भी विस्तारपूर्वक यह [...] कहा है।

गणागण-विचार बहुत कम भाषाग्रों में [...] जायगा। इस में नर काव्य वाले छन्दों के ग्रा[...] प्रथम तीन ग्रैार प्रथम छः अक्षरों पर विचार [...] उनके देवताग्रों के अनुसार फलाफल सोचा [...] है। वास्तव में इस विषय का धर्म्म से विशेष स[...] है ग्रैार काव्य से थोड़ा। जो लोग इस विषय [...] पर विश्वास नहीं रख सकेंगे, वे इसे अनाव[...] समझेंगे। किन्तु काव्य को धर्म्म से मिला कर [...] अड़चनों से बचाते हुए उसे निभा ले जाना [...] बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। गुणों में अट्ठार[...] प्रधान माने गए हैं ग्रैार हमारे साहित्य पर [...] करने से ज्ञात होगा कि इनका समावेश कवि[...] बहुतायत से किया है। अन्य भाषाग्रों में भी [...] जांयगे, किन्तु इस ग्राधिक्य से नहीं। दोषों [...] वर्णन हमारे यहाँ बहुत अधिकता से हुग्रा है [...] तक कि बहुत सूक्ष्मदर्शिता से देखने पर बहु[...] छन्द ऐसे मिलेंगे जिन में कोई भी छोटा [...] दोष न स्थापित किया जा सके। कुलपति [...] दोषों का वर्णन अच्छा किया है। दोषोद्धार [...] भी कथन हमारे यहाँ बहुतायत से हुग्रा है। [...] भेद, रसभेद ग्रैार अलंकार हमारी रीति[...] जीव हैं। इन्हीं पर उसका गौरव बहुतायत [...] लम्बित है। ध्वनिभेद ग्रैार इनका जानने वा[...] का पूर्णज्ञ कहा जा सकता है। इन्हीं के वि[...] गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखर अरथ अलंकृत नाना ।
छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा ।
कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ॥
तैान विवेक एक नहिँ मोरे ।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ॥

भाव के षट् उपभेद हैं, अर्थात् स्थायी, अनुभाव विभाव, सात्विक, संचारी ग्रैार हाव । इन्हीं का सांगोपांग अध्ययन करने से एक अनभिज्ञ भी समझ सकता है कि कोई भाव किस प्रकार से उठ कर स्थिर होता, किस के सहारे से, किस मौक़े पर, उसके अनुगामी क्या क्या होते हैं ग्रैार उसका प्रत्यक्ष फल देह पर क्या देख पड़ता है? इस प्रकार से भाव के अंकुरित होने से उसके पूर्णरूपेण दृढ़ हो जाने तक का वर्णन आचार्य्यों ने भावभेद, ग्रैार रस-भेद में कर दिया है । इनके जान लेने से एक साधारण मनुष्य भी काव्यरचना कर सकता है । कम से कम एक साधारण कवि को भी जान पड़ेगा कि किन वर्णनों के पीछे कैसे वर्णन होने चाहियें । इनका जानने वाला सहज ही में किसी कवि के साहित्य ज्ञान का पता लगा सकता है । यदि वह कवि उचित रीति से पूर्वापर क्रम से वर्णन करता चला जायगा, तो उसकी रचना में रसपूर्ण होते जावेंगे ग्रैार सुप्रबंध गुण एवं स्वभावोक्ति की अधिकता होगी; अन्यथा भावोदय ग्रैार भावशान्ति साथ ही साथ कहे जांयगे, जिससे रचयिता की शक्तिहीनता का पता लगेगा । इसी भाँति रस-शत्रु ग्रैार रस-मित्र को जान लेने से मनुष्य जान सकता है कि कैसे वर्णनों का साथ कथन होना स्वाभाविक है ग्रैार कैसों का नहीं? भावभेद ग्रैार रसभेद के विस्तीर्ण वर्णन स्वभावोक्ति एवं सुप्रबन्ध गुण के बड़े ही अच्छे पोषक हैं । इनको जानने से एक अज्ञ भी प्रकृति के अनुकूल वर्णन कर सकेगा ।

अलंकार काव्य-शरीर के अलंकारों के समान । इसके जानने से साहित्य में स्वभावोक्ति सम्बन्धिनी पूर्णता तो नहीं आवेगी, किन्तु उसका चमत्कार बहुत बढ़ जायगा । अलंकार शब्द ग्रैार अर्थ सम्बन्धी होते हैं । शब्दालंकारों से भाषा का चमत्कार बढ़ता है ग्रैार अर्थालंकारों से अर्थ-सम्बन्धी चमत्कार की वृद्धि होती है । कुल मिलाकर सैा से ऊपर अर्थालंकार हैं ग्रैार सात या आठ शब्दालंकार । इनके अतिरिक्त सात आठ परांग हैं, जिनकी गणना अलंकार ग्रैार रस दोनों में हो सकती है । अर्थ वाले अलंकारों में से बहुतों में एक एक के कई उपभेद हैं । केवल असम्भव हमारे यहाँ छः प्रकार का कहा गया है । यही दशा अनेकानेक अन्य अंगों की है । अलंकार, रस भाव आदि पर सैकड़ों हज़ारों ग्रन्थ हमारे यहाँ वर्त्तमान हैं, जिनके पढ़ने से विदित होता है कि हमारे कवियों ने कितना प्रचुर बुद्धिबल व्यय करके हज़ारों ग्रन्थ रचे हैं । एक एक छन्द पर दस दस प्रकार के भाव सोचे जा सकते हैं ग्रैार एक एक छन्द के अर्थ लगाने से सात सात आठ आठ पृष्ठ लिखने से भी सब प्रकार के साहित्य गुण नहीं दिखलाये जा सकते हैं । वृत्ति ग्रैार पात्र विचार रस विचार से बहुत कुछ मिलते हैं ।

साहित्यरचना ग्रैार तद्गुणग्रहण, इन दोनों बातों में हमारे यहाँ प्रचुर परिश्रम हुआ है । रचना में जैसे जैसे ऊँचे विचार लाये गये हैं वैसे ही साहित्याचार्य्यों ने दूसरों की रचनाग्रों में दिखलाने में भी श्रम किये हैं । बहुत सी टीकायें हमारे आचार्य्यों ने पद्य में भी रची हैं ।

हम गद्य, पद्य ग्रैार नाटक नामक साहित्य के तीन भाग ऊपर कह आये हैं । इन तीनों के विषय में यहाँ कुछ इतिहाससम्बन्धी घटनायें भी कहना उचित समझ पड़ता है । वास्तव में पद्य का इतिहास हमारे यहाँ साहित्य ही का इतिहास है, क्योंकि पद्य की मात्रा आनुषंगिक दृष्टि से इतनी अधिक है कि गद्य ग्रैार नाटक उसके किसी अंश में भी नहीं आते हैं । इस कारण से हम नाटक ग्रैार गद्य का सूक्ष्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास पहले कह कर फिर पद्य का इतिहास सम्बन्धी कुछ चमत्कारिक भाग दिखलाने का प्रयत्न करेंगे।

नाटक का प्रादुर्भाव हमारी कविता में पहले पहल विहारी कवि शिरोमणि विद्यापति ठाकुर से हुआ। रास-मंडलियाँ भी एक प्रकार से नाटक ही खेलती हैं और इनका प्रचार व्रज में अच्छा रहा है, किन्तु फिर भी नाटक का प्रादुर्भाव वहाँ से न हो कर विहार से हुआ। विहार ही की ओर हिन्दी-नाटकों ने बल पाया और शेष हिन्दीभाषी देशों में न उनका विशेष प्रचार हुआ और न निर्माण ही आधिक्य से किया गया। विद्यापति ठाकुर ने पारिजातहरण और रुक्मिणीपरिणय नामक दो नाटक ग्रन्थ रचे। आपका रचनाकाल संवत् १४४५ के निकट है। आप के पीछे कई विहारी कवियों ने नाटक रचे और वे अब तक रच रहे हैं; किन्तु इस ओर फिर भी नाटकों का प्रचार नहीं हुआ। महाकवि केशवदास ने विज्ञानगीता नामक एक नाटक-ग्रन्थ रचा, किन्तु फिर भी यह पूर्ण नाटक नहीं है। इन का रचनाकाल संवत् १६४८ से ७४ तक चलता है। महाकवि देव जी ने देवमायाप्रपंच नाटक नामक एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ रचा, किन्तु यह भी पूर्ण नाटक नहीं है। ये ग्रन्थ प्रवोधचन्द्रोदय के ढंग पर हैं। प्रवोध चन्द्रोदय के हमारे यहाँ कई अनुवाद हुए, किन्तु कोई भी बहुत उत्तम नहीं बना। वास्तव में वह संस्कृत में भी एक साधारण ग्रन्थ मात्र है।

देव जी ने संवत् १७४६ से १८०० के लग भग तक रचना की। इनके पीछे भी बहुत दिनों तक अच्छे नाटक नहीं बने। इधर आकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कई परमोत्कृष्ट नाटक ग्रन्थ रचे। इनमें से कुछ ग्रन्थ शेक्सपियर के ग्रन्थों तक का पूरा सामना करते हैं। इसी समय के पीछे और इस से कुछ पहले भी अनेक सुकवियों ने अनेकानेक उत्कृष्ट नाटक रचे यहाँ तक कि इस समय प्रायः सौ डेढ़ सौ नाटक ग्रन्थ हमारे यहाँ हो गये हैं, जिनमें बहुतेरे अच्छे भी हैं।

गद्य तो भाषा के जन्म से ही लिखा और बो जाता था, किन्तु प्राचीन गद्य के उदाहरण इस स बहुत नहीं मिलते। सबसे पुराने गद्य के उदाह महाराजा पृथ्वीराज और उनके बहनोई रा समरसिंह के समय के मिलते हैं। ऐसे नौ उदाह प्राचीन ताम्रपत्रों पर से काशी नागरी-प्रचा सभा ने खोज निकाले हैं। किन्तु ये उदाहरण सा के न होकर साधारण गद्य के हैं। सबसे पहले ग साहित्यनिर्माता प्रसिद्ध महात्मा गोरखनाथ जिन्होंने जगत्प्रसिद्ध गोरखपन्थ चलाया। आ रचनाकाल संवत् १४०७ के लगभग है, सो इसी सं में हमारे गद्य काव्य ने हरिगुणगान के साथ ज ग्रहण किया। इनके पीछे गंगा भाट नामक एक ने अकबरशाह के समय में चन्द छन्द बरनन महिमा नाम्नी खड़ी बोली के गद्य में एक पुस्तक र और सं० १६८० में जटमल नामक कवि ने ख बोली के गद्य में गोरा बादल की कथा बनाई।

इन गद्यलेखकों के अतिरिक्त सं० १६०० लगभग प्रसिद्ध महात्मा वल्लभाचार्य्य के पुत्र वि जी ने शृंगाररसमंडन नामक व्रजभाषा गद्य एक ग्रन्थ रचा और इनके पुत्र गोकुल नाथजी ने बड़े ग्रन्थ ब्रजभाषाभा गद्य में बनाये। इनके तुलसीदास, केशवदास, देवदास आदि अनेक सुकवियों के गद्य वाले उदाहरण मिलते हैं, इनके गद्य ग्रन्थ नहीं हैं, केवल उदाहरण देख हैं। इस समय से अनेकानेक टीकाकारों ने व्रज गद्य में भारी भारी कवियों के उत्कृष्ट ग्रन्थों की टी रची हैं। इस प्रकार के बहुत से प्राचीन ग्रन्थ पड़ते हैं। सूरति मिश्र ने संवत् १७६७ में ब्रज गद्य में बैताल पचीसी नामक ग्रन्थ रचा। इसी के कुछ अन्य ग्रन्थ भी बनाये गये, किन्तु फि गद्य काव्य का अच्छा प्रचार नहीं हुआ।

समय पाकर जब अँगरेज़ी राज्य यहाँ फैला पठन पाठन की प्रणाली ने उन्नति पाई, तब शालाओं के लिए गद्य ग्रथों की आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी दशा में गद्य ग्रन्थों का अभाव सा देख कर सरकार ने सं० १८६० में लल्लूलाल तथा सदल मिश्र से और पीछे से राजा शिवप्रसाद से अच्छे गद्य-ग्रन्थ बनवाये। उन दोनों कवियों ने खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा का भी थोड़ा बहुत संसर्ग रक्खा; किन्तु राजा साहब ने पहले पहल शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग किया। उनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह ने श्रेष्ठतर भाषा में रचना की और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने गद्य की महिमा आर्य्य-समाज और अपने प्रणीत ग्रन्थों से और बढ़ाई।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से वर्त्तमान द्य का प्रारम्भ होता है। इन्होंने बहुत अच्छा गद्य खा और नाटकों तथा पत्र पत्रिकाओं द्वारा इस ा बहुत विशद समादर एवं प्रचार बढ़ाया। इनकी ाषा उचित संस्कृतांश लिए हुए ख़ूब मज़े की थी। छे से लेखकों ने संस्कृत के शब्दों का अधिकाधिक योग बढ़ाया और वे अब भी बढ़ाते जाते हैं। संस्कृत ब्दों का अधिक बढ़ना बहुत से लोग इस कारण पसन्द नहीं करते हैं कि उनके कारण से हिन्दी ढ़तर होती जाती है और उसे एक दूसरी भाषा ा आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि यद्यपि संस्कृत क आर्य्य भाषा है, तथापि हिन्दी के लिए एक न्न भाषा अवश्य है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी को गौरव संस्कृत से ही प्राप्त हुआ है र भविष्य में भी हो सकता है। कुछ लोगों का ह भी मत है कि हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा ाने के लिए विशेष संस्कृताश्रय आवश्यक है, ोंकि एक देशीय शब्दों के आधिक्य से बंगाली, रासी, महाराष्ट्र, गुर्जर, पंजाबी आदि महा- य हिन्दी को नहीं समझ सकेंगे, किन्तु यदि में संस्कृत शब्दों का प्राधान्य रहेगा, तो लोग े अधिक सुगमता से समझ लेंगे, अथवा कम कम उसका भाव हृदयंगम कर लेंगे।

हिन्दी का सब से बड़ा गौरव यह है कि यह ा सारे हिन्द की एक प्रकार से राष्ट्र भाषा अथवा लिंगुवा फ़्रैंका है। इसकी सीमायें बंगाली, मदरासी, महाराष्ट्री, गुर्जर, राजपूतानी, पंजाबी, कशमीरी, नैपाली आदि सभी भाषाओं से मिलती हैं और यद्यपि वे सब भाषायें एक दूसरी से नितान्त पृथक् हैं, तथापि हिन्दी से वे सब कुछ कुछ मिलती हैं अतः हिन्दी उन सब के लिए राज़ीनामा या मिश्रण-स्थल है। यदि कोई एक भाषा सारे भारत के लिए सार्वदेशिक भाषा हो सकती है, तो वह अवश्यमेव हिन्दी है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हमारे अक्षर भी भारत के शेष सभी अक्षरों से श्रेष्ठतर हैं। अक्षरों के लिये चार बातें मानी गई हैं, अर्थात् सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन उपयोगिता और सुन्दरता। इन चारों बातों का सार इसी क्रमानुसार है। अक्षरों के लिए सब से अधिक आवश्यक गुण सामर्थ्य है। अर्थात् वर्णमाला में यह शक्ति होनी चाहिये कि वह मनुष्यों द्वारा व्यवहृत सब प्रकार की ध्वनियों को सफलतापूर्वक लिख सकै, और प्रत्येक ध्वनि के लिये उसमें एक ही चिह्न हो, सीन, स्वाद, से, की भाँति अनेक नहीं। अनेक चिह्नों में जिज्ञासु भ्रमवश नहीं जान सकता कि वह कब किसका प्रयोग करे। यह गुण हमारी वर्णमाला में पूर्णता से है। उर्दू में सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जो शुद्धता-पूर्वक लिखे ही नहीं जा सकते। ऊधव शब्द लिखकर उर्दू में उसे अनेकानेक प्रकार से पढ़ सकते हैं। यही दशा अँगरेज़ी आदि पाश्चात्य भाषाओं की है।

सामर्थ्य के पीछे सरलता भी वर्णों के लिये आवश्यक है। यदि ध्वनियों के लिये चिह्न ऐसे पेंचदार हों कि उनका स्मरण रखना ही कठिन हो, तो उनका सीखना दुर्घट होने से उनसे लाभ कम होगा। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे वर्णों में सरलता देशी और विदेशी सभी वर्णों से अधिक है। त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता में कुछ कुछ विरोध पड़ता है, क्योंकि जो चिह्न जल्दी लिखा जावेगा वह भ्रमहीन तथा सुन्दर नहीं होगा। सुन्दर चिह्न बिना अधिक समय लगाने के नहीं बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। रोज़ाना कारबार के लिये शीघ्रता विशेष आवश्यक है और चिरकाल रक्खे जाने वाले लेखों के लिये सुन्दरता एक प्रशंसनीय गुण है। हमारे यहाँ वर्णों के शिरों पर रेखा केवल सुन्दरता के लिये लगाई गई है, अन्यथा इसका कोई प्रयोजन नहीं। भ, म, घ, ध, आदि में थोड़ा अन्तर डाल देने से बिना शिरोभाग की रेखा के भी काम चल सकता है। यही रेखा हमारे वर्णों की सुन्दरता बढ़ाती और शीघ्रलेखन शक्ति को घटाती है। आज कल कामकाज की वृद्धि से शीघ्रता भी एक आवश्यक गुण हो गया है। इन कारणों से पंडित समाज का विचार है कि साधारण रोज़ाना लेखों में शिरोभाग की रेखा न लिखी जाय, किन्तु चिरकाल स्थिर रखने वाले लेखों तथा छपी हुई पुस्तकों में इसका स्थिर रखना आवश्यक है। इस प्रकार हमारी वर्णमाला में त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता दोनों स्थिर रहेंगी।

उपर्युक्त कथन में यह सिद्ध नहीं किया गया है कि हिन्दी अक्षरों में सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता भारतवर्ष में प्रचलित शेष सभी वर्णमालाओं से अधिक है; बरन् यह बात मान ली गई है। इसके सिद्ध करने के लिये एक भारी लेख की आवश्यकता है। ऐसा एक लेख हमने लिखा है और वह छपने गया है। यहाँ दिग्दर्शन की भाँति वर्णमाला के लिये आवश्यक गुण दिखलाए गए हैं। हिन्दी में इन गुणों का होना प्रमाणित होने के लिये देश के सभी अक्षरों को नागराक्षरों से मिलाना होगा। जो लोग सब अक्षरों को जानते हैं अथवा पा सकते हैं, वे जानेंगे कि शिरोभाग की रेखा छोड़ देने से नागराक्षरों की सरलता और त्वरालेखन-उपयोगिता और अक्षरों से बढ़ जाती है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि भारत में राष्ट्र-लिपि और राष्ट्र भाषा होने की योग्यता हिन्दी के अक्षर और भाषा दोनों में है। इसमें एक यह भी बहुत बड़ा गुण है कि इसके अक्षर और भाषा के अन्यान्य अक्षरों और भाषाओं के सामने बहुत अधिक और जन-संख्या में प्रचलित हैं। इनकी प्राची भी सबसे बहुत अधिक है और हिन्दीसाहित्य के अन्य साहित्यों से गुणों एवं पूर्णता में बहुत हुआ है।

ऐसी दशा में यह प्रश्न उठता है कि अ भाषा सब प्रकार से राष्ट्रीयता के योग्य है, तब शब्दभंडार एवं उसका उपयोग ऐसा क्यों न क जाय कि अन्य देशों के निवासी पंडित ग समझें, अर्थात् इसमें संस्कृत के अधिकाधिक क्यों न लाये जावें? इस प्रश्न को इस भांति पर सभी लोग इसका उत्तर 'हाँ' में देना चा माननीय बाबू शारदाचरण मित्र ने ऐसा ही भी है। किन्तु इसी के साथ ही इससे भी महत्ता का दूसरा प्रश्न उठता है, और वह कि, क्या अन्यदेशीय कुछ पंडितों के समझने करने के लालच से हम हिन्दी को ऐसा ब चाहते हैं कि उसी के देशों वाले साध जनसमुदाय उसे न समझ सकें, अर्थात् विदेशियों को सुगम और स्वदेशियों को दुर्ब जावे? इन कारणों से हमारा मत है कि की ऊँची शैली वाली और महत्तायुक्त पु में संस्कृतमिश्रित भाषा लिखी जा सकत किन्तु साधारण पुस्तकों में साधारण एवं हिन्दी लिखनी चाहिये। ऊँची श्रेणी की में भी प्रबन्धध्वनि, रस, अलंकार आदि अने चमत्कार लाकर उत्तमता की वृद्धि होनी च केवल संस्कृतवृद्धि से नहीं। भारतेन्दु बाबू चन्द्र के पीछे गद्योन्नति अच्छी हुई और अने विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकें हमारे यहाँ गईं। अब हमारा गद्य-भंडार कृश नहीं है और दिन उन्नति कर रहा है। हमारा प्राचीन स पद्य ही है। हिन्दी का पहला ग्रन्थ पुष्य ब कृत एक अलंकारों का ग्रन्थ है, जिसमें द्वारा वर्णन है। कहते हैं कि यह संवत् ७७० में इससे हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ पड़ती है। उस समय से अब तक के साहित्य काल को हमने अपने इतिहास-ग्रन्थ में आठ मुख्य भागों में विभक्त किया है। उनके नाम ये हैं:—

पूर्व-प्रारम्भिक हिन्दी (संवत् ७००—१३४४), उत्तर-प्रारम्भिक हिन्दी (१३४५—१४४४), पूर्व-माध्यमिक हिन्दी (१४४५—१५६०), प्रौढ़-माध्यमिक हिन्दी (१५६१—१६८०), पूर्वालंकृत हिन्दी (१६८१—१७९०), उत्तरालंकृत हिन्दी (१७९१—१८८९), परिवर्त्तन-कालिक हिन्दी (१८९०—१९२५) और वर्त्तमान हिन्दी (१९२६—अब तक)।

पूर्व प्रारम्भिक काल में थोड़े से ही कवि हुए, जिनमें चन्द और जल्हन प्रधान थे। इस समय में हिन्दी का प्राकृत भाषा से कुछ कुछ सम्बन्ध था। चन्द हमारे यहाँ का मानो चासर या वाल्मीकि है। इसने परम प्राचीन कवि होने पर भी युद्ध, शृंगार और मृगया के बहुत बढ़िया वर्णन किये और अनेकानेक अनमिल विषयों को भी सफलतापूर्वक व्यक्त किया। इसके रासो ग्रन्थ में वर्णन-पूर्णता और विषय-बाहुल्य के अच्छे चमत्कार देख पड़ते हैं।

उत्तर-प्रारम्भिक काल में महात्मा गोरखनाथ प्रधान कवि थे। इनके द्वारा समादृत हो कर हिन्दी ने ब्राह्मणों एवं पंडितों में भी मान पाया और समय पर बड़े बड़े ऋषियों तथा महाराजाओं ने इसका ऐसा स्वच्छ समादर किया, यहां तक कि उन्होंने स्वयं उसमें साहित्य-रचना की और सैकड़ों कवियों को आश्रय प्रदान किया। ऋषि-समादर एवं राज-मान हिन्दी का बहुत बड़ा सौभाग्य रहा है। इतने राजाओं और ऋषियों ने किसी अन्य भाषा में साहित्यरचना न की होगी। राजाओं ने हमारे कवियों को पुरस्कार भी बहुत भारी दिये, यहां तक कि एक एक छन्द पर छत्तीस छत्तीस लाख रुपयों के दान हुए हैं। पूर्व-माध्यमिक काल में विद्यापति और कबीरदास बड़े ही अच्छे कवि हुए और महात्मा रामानन्द ने हिन्दी को अपनाया। विद्यापति ने साधारण बोल चाल में ही वह अलौकिक काव्यछटा दिखलाई, जिससे पाठक का मन मुग्ध हो जाता है। कबीरदास ने भी रोज़ाना बोलचाल ही में अकथनीय साहित्य-सौन्दर्य्य भर दिया है। इनकी उल्टबाँसी बहुत प्रसिद्ध और आदरणीय हैं। महात्मा कबीरदास की रचनाओं में यद्यपि तुलसीदासजी की सी भक्ति-प्रगाढ़ता नहीं देख पड़ती है, तथापि उनमें सभी जगह सदुपदेश भरे हैं और साधारण घटनाओं के सहारे से इन्होंने बड़े बड़े दार्शनिक सिद्धान्त दिखलाए हैं। इनकी रचनाओं में अनोखापन ख़ूब है और वे सभी स्थानों पर खरी हैं। महात्मा वल्लभाचार्य्य और चैतन्य महाप्रभु ने इसी समय उत्तरी भारत में वैष्णवता द्वारा भक्ति-तरंगिणी की अटूट धारायें प्रवाहित कीं। वल्लभाचार्य्य से हिन्दी-साहित्य को बहुत बड़ा लाभ पहुँचा। इन के कारण से अनेकानेक ऋषियों ने भजनों द्वारा कृष्ण-यश का समय पर गान किया।

प्रौढ़ माध्यमिक काल में सैकड़ों सुकवि हुए, किन्तु उन में भी महात्मा सूरदास, हित-हरिवंश, नन्ददास, तुलसीदास, केशवदास, मीराबाई, जायसी, नरोत्तनदास, गंग, तानसेन, हरिदास, रहीम, रसखान, बीरबल, सुन्दरदास, घासीराम आदि बड़े बड़े कवि हुए।

महात्मा सूरदास के शरीर में मानो स्वयं वाल्मीकि ने दूसरा शरीर ग्रहण किया था। इन्होंने सैकड़ों विषयों का सांगोपांग विस्तार-पूर्वक कथन किया और जिसका वर्णन किया, उसकी तसवीर सी सामने खड़ी कर दी। वर्णन-पूर्णता में वाल्मीकि को छोड़ कर कोई भी कवि इस महात्मा की बराबरी नहीं कर सकता। ऐसा सजीव वर्णन प्रायः कोई भी कवि नहीं कर सका। यदि जी लगा कर इन का कृष्ण-बालचरित्र एक बार पढ़िये तो बहुत काल तक चित्त से खेलती हुई बालक की तसबीर नहीं हटती। यही दशा अन्य वर्णनों की भी है। इनकी रचना कोरी रचना नहीं समझ पड़ती, वरन् उससे सजीवपन भासित होने लगता है और चित्त में उसका नाटक सा ऐसा अंकित हो जाता है कि महीनों तक भुलाये नहीं भूलता। कारण यह है कि इन्होंने पूर्ण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तल्लीनता के साथ वर्णन किया है। जिस विषय का इन्होंने कथन किया है, उससे इन्हें पूर्ण सहानुभूति थी। उसी को इन्होंने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना रक्खा था। जो कुछ ये कहते थे, वही इनके चित्त में था। इसी कारण से इनकी रचना सच्ची बनती थी। महात्मा हितहरिवंश ने भी इसी प्रकार की चमकती हुई रचना की है, किन्तु वह मात्रा में थोड़ी है। महात्मा नन्ददास, मीराबाई और हरिदास भी उत्कृष्ट भक्त कवि थे।

महात्मा तुलसीदास की भक्ति-प्रगाढ़ता सूरदास से भी बढ़ी हुई समझ पड़ती है। इन्होंने समस्त संसार को राममय देखा और वर्णन किया। हर पदार्थ और हर व्यक्ति के वर्णन में इनकी अखंड भक्ति टपकती है। मिथिला, दंडक, लंका, अयोध्या आदि जिन स्थानों में इन्होंने राम का पदार्पण कहा, वहाँ उनका कथन न करके उनके सहारे से राम का ही तदनुसार कथन किया। परम प्रगाढ़ भक्ति के साथ साहित्य के अनेकानेक अंगों और विषयों को उत्तमतापूर्वक व्यक्त करने में गोस्वामी जी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनकी सब रचना प्राकृतिक, यथोचित और अनमोल है। रहीम ने नीति बहुत उत्तम कही है और सुन्दरदास तथा रसखान ने भक्ति के हृदय-ग्राही कथन किये हैं। घासीराम की अन्योक्ति और नरोत्तमदास की साधारण घटनाओं वाले उत्कृष्ट कथन चित्त को चुरा लेते हैं। केशवदास की रचनाओं में आचार्य्यता और पांडित्य, दोनों का अच्छा चमत्कार है। इसमें बहुज्ञता की मात्रा ख़ूब है। इस समय में अनेकानेक उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके कथन स्थानाभाव से नहीं हो सकते।

पूर्वालंकृत काल से अलंकृत भाषा का प्रचार बढ़ा। हिन्दी भाषा जितनी श्रुतिमधुर है उतनी शायद अन्य कोई भी न होगी। पदलालित्य और अनुप्रास हिन्दी के प्रधान गुणों में हैं। अलंकृत काल में भाव-गाम्भीर्य्य और भाषा-सौन्दर्य्य दोनों की हमारे यहाँ बहुत अच्छी उन्नति हुई।

पूर्वालंकृत काल में सेनापति, विहारी, मतिराम, देव और लाल नामक बड़े ही उत्कृ[ष्ट] हुए। इन के प्रवीण हाथों में हिन्दी की भा[षा] भाषा सम्बन्धी उन्नति कमाल को पहुँच गई। [सेना]पति ने भक्ति, श्लेष और अनुप्रास का बहुत चमत्कार दिखलाया। इन्होंने स्वयं बहुत ही कहा है कि इनकी रचना अमृत-धारा के स[मान] बहती है और अलंकारों से पूर्ण है। वे कहते हैं

मूढ़न को अगम सुगम एक ताको जाकी
तीखन बिमल बिधि बुधि है अथाह की।
कोई है अभंग कोई पद है सभंग सोधि
देखे सब अंग सम सुधा परबाह की॥
ज्ञान के निधान छन्द कोष सावधान जाकी
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै-अरथ कविताई निरबाह की॥

दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है
तौ कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहै।
बिनुही सिखाये सब सीखिहैं सुमति जोपै
सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है॥
दूषन को करि कोकवित्त बिनु भूषन को
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर मुनि है।
राम अरचत सेनापति चरचत दोऊ
कबित रचत याते पद चुनि चुनि है॥

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन को
बुध कवि के जो उपकंठहि बसति है।
जो पै पद मन को हरष उपजावत हैं
तजै को कुनर जौन छन्द सरसति है।
अच्छर हैं बिसद करत ऊखै आपुस मैं
जातै जगती की जड़ताऊ बिनसति है।
मानो छबिता की उदवति सबिता की
सेनापति कबिता की कबिताई बिलसति [है]

जो प्रशंसा सेनापति ने अपने छन्दों की [कि]
वही वास्तव में हिन्दी कविता की है। हमारे य[हाँ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य वास्तव में इन्हीं गुणों से युक्त है। उदाहरण के लिये सेनापति के चार छन्द यहाँ लिखे जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु।

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि जग झुरत झुरनि सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत
धमका विषम जो न पात खरकत है।
मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कोनो
घरी एक बैठि कहूँ छाँहैं बितवत है॥ १॥

इस में कवि ने शब्दों ही द्वारा जेठ बैसाख की उष्णता का पूरा कथन कर दिया है।

वर्षा।

सेनापति उनये नये जलद सावन के
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहूँ भाँति
आने हैं पहार मानो काजर के ढोय कै॥
घन सों गगन छप्यो तिमिर सघन भयो
जान्यो न परत मानो गयो रबि खोय कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम जानि
मेरे जान याही ते रहत हरि सोय कै॥ २॥

निवृत्ति मार्ग।

महा मोह कन्दनि मैं जकत जकन्दनि मैं
दिन दुख दन्दनि मैं जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भांतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै॥
आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं
डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै।
हरिजनपुंजनि मैं बृन्दाबन कुंजनि मैं
बैठि रहौं कहूँ तरवर तर जाय कै॥ ३॥

कैतो करौ कोय पैये करम लिखोय ताते
दूसरी न होय मन सोय ठहराइये।
आधी ते सरस बीति गई है बरस अब
दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये॥
चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥ ४॥

जान पड़ता है कि ये महाशय किसी मुसलमान या सरकार के नौकर थे, सो कमलेक्षण विष्णु को छोड़ कर म्लेक्षों के सेवक बनना बुरा कह गये हैं।

विहारी ने दोहों में बड़े ही बारीक विचार लिखे हैं और भूषण ने जातिप्रेम और जातीयता का चित्र खड़ा कर दिया है। साथही साथ आपने वीर-काव्य भी अद्वितीय किया। मतिराम की भाषा-मनोहरता और भावपूर्णता एवं सबलता बहुत ही सराहनीय है। देव कवि की भाषा बहुत ही अलंकृत और भाव बड़े ही ऊँचे हैं। इनका सामना सूर और तुलसी को छोड़ कर भाषा में दूसरा नहीं कर सकता। ये तीन कवि ऐसे हैं जो कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर, होमर, वरजिल आदि का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। हमारे त्रिदेव की भाँति ये तीनों कवि हिन्दीसाहित्य में हैं। लाल ने केवल दोहा चौपाइयों में बीरकाव्य बहुत उत्कृष्ट किया है, जो देखते ही बन आता है। इस पूर्वालंकृत काल में अनेकानेक परमोत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके नाम तक लिखने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। उत्तरालंकृत काल में दास, भूप गुरुदत्त सिंह, रघुनाथ, सूदन, बोधा, गोकुलनाथ, रामचन्द्र, बेनी प्रवीन, प्रताप, पद्माकर आदि बड़े बड़े भारी और सबल कवि हुए। इन्होंने भाँति भाँति के ग्रन्थों से हिन्दी-साहित्य भंडार को पूर्णता दी। इस समय भाषारमणीयता की ओर और भी अधिक ध्यान रहा।

परिवर्त्तन काल में कोई भी बहुत बड़ा कवि नहीं हुआ, किन्तु रचनाशैली में समयानुसार परिवर्त्तन हुआ। प्राचीन समय में आनन्दप्रदान तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा के लिये कविता होती थी, किन्तु लोकोपकार की ओर हमारे कवियों का ध्यान विशेषता से नहीं गया। परिवर्त्तन काल में इस देश में अँगरेज़ी राज्य फैला, जिससे जीवन-होड़ (struggle for existence) की उचित परिपाटी हमारे यहाँ दृढ़ हुई और दिनों दिन होती जाती है। इस कारण लोकोपकारी विषयों से भी काव्य का सम्बन्ध हुआ और इस नये प्रकार की कविता का भी प्रचार हो चला। इसी के साथ गद्य ने भी स्वाभाविक रीति से बल पाया।

वर्त्तमान काल में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सर्वोत्कृष्ट कवि हुए। इनकी रचनाओं में प्राचीनता और नवीनत्व दोनों का मिश्रण था। इन्होंने लोकोपकारी विषयों को भी लेकर देशभक्ति का मान बढ़ाया और शृंगार, हास्य तथा वीर रसों की भी सोहावनी कविता की। इनके पीछे खड़ी बोली का अच्छा प्रचार हुआ और कविता में भी उसका मान बढ़ रहा है। इस समय हमारे यहाँ उचित शिक्षाप्रद सत्य घटना-पूर्ण उपन्यासों, सामाजिक सुधार और देश-भक्तिपूर्ण उपदेशप्रद नाटकों तथा ऐतिहासिक विषयों से पूर्ण महाकाव्यों की पद्य में आवश्यकता है। अब तक केवल हमें ३८०० हिन्दी-कवियों का पता लग चुका है। जिनका वर्णन हमने अपने हिन्दी काव्य के इतिहास-ग्रन्थ में किया है। हिन्दी में सभी विषयों पर हज़ारों ग्रन्थ प्रस्तुत हैं, किन्तु उनमें से बहुत ही अधिक अप्रकाशित हैं।

सारांश यह कि, हिन्दी एक प्राचीन भाषा है, इसका फैलाव भारत की सभी भाषाओं से अधिक है, यह राष्ट्र भाषा होने के योग्य है। इसकी वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है। इसका साहित्य भाषा, भाव और ग्रन्थ-बाहुल्य में अद्वितीय है और सैकड़ों प्रकार के ग्रन्थ इसमें भरे पड़े हैं। इसकी काव्यरीति बड़ी ही पुष्ट और सुवर्णित है। भाषा-माधुर्य्य इसका बहुत बड़ा गुण है। यह सब प्रकार के सौन्दर्य्य से पूर्ण है, सरकारी राज्य के आरम्भ से इसमें लोकोपकारी विषय भी आ रहे हैं। बहुत बड़े कवियों का इसमें अच्छा बाहुल्य है और यदि यह एम० ए० तक पढ़ाई तो भी दस बीस वर्षों के लिये पाठ्य ग्रन्थ तो हम ही बतला सकते हैं।

यह एक ऐसा भारी विषय है कि इस पर चाहे जितना लिखता हुआ चला जाय। इसमें हरण-बाहुल्य से लेख की चमत्कार वृद्धि है किन्तु समयाभाव से हमने उदाहरण न देकर कवियों के विषय में प्रायः कुछ भी न कह कर हिन्दी के महत्व का दिग्दर्शन मात्र करा दिया। यदि उदाहरण देकर उसके गुण दिखलाये तो एक एक छन्द पर कई कई पृष्ठ लिखने पड़ें। दो चार उदाहरण हमने मिश्रबन्धुविनोद की भू में दिखलाए हैं, और यदि अवकाश मिला तो टीकावाले ग्रन्थ में और लिखेंगे। इस स्थान पर ही कह देना हम यथेष्ट समझते हैं कि जिन्हें काव्य के कुछ उदाहरण देखने हों, वे महाशय नवरत्न के पृष्ठ नं० २६, ४७, ५१, ६१, ६५। (तु (सूर) १५९, (देव) १७६, १८५, २०५, (विहारी) २२९, २३२, २३३, २३६ (गँवारी), २३७, २४१, २६३, २६४, २६५, (केशव) २८०, (मतिराम) ३११, (चन्द) ३४२ से, हरिश्चन्द्र ३७८ से ४ अवलोकन करें। *

—:०:—

राव मालदेव और सती उमादे

(लेखक—श्रीयुत साँवलजी नागर।)



सी देश की अवस्था, दे रीति नीति, देश के की कर्त्तव्यपरायणता बातें इतिहास के द्वारा जाती हैं। जितना ही प्राचीन होगा, उसका भी उतना ही प्राचीन होगा। जितना ही

* यह लेख लखनऊ आर्यसमाज के वार्षिकोत्स हिन्दी साहित्य समिति में गत फर्वरी मास में पढ़ा ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनाढ्य, उपजाऊ, और उत्तम होगा, उस देश का इतिहास भी उतना ही उत्तम, शिक्षादायक और विशेष-घटनासूचक होगा। यही हाल हमारे भारतवर्ष के इतिहास का भी है। संसार के इतर देशों से भारतवर्ष प्राचीन है; धनाढ्य है; उपजाऊ है; उत्तम है और सबसे विशेष शिक्षादायक भी है। यही कारण है कि भारतवर्ष का इतिहास इतना बड़ा है कि एक प्रकार से उसे संसार का इतिहास कहना चाहिए। रामायण, और महाभारत जिसे सभ्यताभिमानी अँगरेज़ लोग तक आदर की दृष्टि से देखते हैं, जिसकी सत्‌शिक्षा ग्रहण करने के लिए बड़े बड़े विद्वान्, जो कि भारतवासियों को असभ्य समझते हैं, उत्सुक हो रहे हैं; वह रामायण और महाभारत ग्रन्थ भारतमाता के दो चार सपूत राम, युधिष्ठिर, दुर्योधनादिकों की जीवनसम्बन्धी घटनाओं का समूह ही है। जिस भारत के एक बालक रामचन्द्रजी की जीवनसम्बन्धी घटनाओं को लिखने के लिए महात्मा बाल्मीकि को रामायण सरीखा बृहत् ग्रन्थ लिखना पड़ा; पाण्डवों का चरित्र लिखने के लिए वेदव्यास जी को महाभारत लिखना पड़ा, पृथ्वीराज का चरित्र लिखने में महाकवि चन्द को इतना बड़ा रासो लिखना पड़ा, उस भारतवर्ष का आज तक का इतिहास कितना बड़ा होगा यह समझना भी बहुत कठिन है। प्रेस नहीं था, ग्रन्थ हस्तलिखित होते थे। इस पर वे इतने बढ़ गए थे कि असभ्य यवनों को उन्हें देखने ही से व्याकुलता प्राप्त होने लगी और अन्त में ये ग्रन्थ हम्मामख़ाने में लकड़ी और कोयलों की जगह जलाये जाने लगे। यहाँ तक हुआ कि ये ग्रन्थ फाड़ डाले गए, इनकी गोलियाँ बना बना कर मछलियों को खिला दी गईं और ये जला दिए गए, सब सब नौबत हुई, परन्तु भारतवर्ष के सपूतों का चरित्र नष्ट न हो सका। आज तक जितने समाचार-पत्र और मासिक-पत्र आदि निकले हैं, निकलते हैं और निकल रहे हैं उन में इस भारतवर्ष के इतिहास का अंश अवश्य ही होता है। वर्त्तमान समय में जितनी ऐतिहासिक पुस्तकें प्राप्त होती हैं वे विशेषतः विदेशीय विद्वानों की कृपा से लिखी गई हैं। ये लोग हमारी भाषा आदि से भी पूर्णरूप से परिचित नहीं हैं, तब इनकी बनाई पुस्तकें कहाँ तक पूर्ण होंगी यह पाठक गण विचार लें। यही कारण है कि हर एक मासिक-पत्र इन इतिहासों की पूर्ति करने का उद्योग कर रहा है। यह घटना जो आज हिन्दीपाठकों के चित्तविनोदार्थ यहाँ लिखी जाती है, बहुत संक्षेप में गुजराती भाषा के ६० वर्ष के पुराने मासिकपत्र "बुद्धिप्रकाश" में अभी हाल में निकली है।

राव मालदेव जोधपुर का राजा था। टाड राजस्थान में लिखा है कि "मालदेव संवत् १५८८ (सन् १५३१ ई०) में जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। मारवाड़ के बड़े बड़े राजाओं के समान मालदेव भी मारवाड़ के इतिहास में एक महत् चरित्र स्थापित कर गया है। उसके राज्यकाल में मारवाड़ की जैसी उन्नति हुई थी, यदि उसमें कुछ भी चेष्टा की जाती तो वह देश रजवाड़ों में सब देशों का सिरमौर गिना जाता। परन्तु राव मालदेव ने अपने यत्न में न्यूनता न की। जिस स्थान से दिल्ली और मारवाड़ की सीमा विभक्त है उस स्थान पर कई एक क़िले बने थे, वे क़िले दिल्ली के राजाओं के अधीन थे। उस समय अवसर पाकर मालदेव ने उन सब क़िलों को अपने वश में कर लिया। उसका गौरव दिन दिन बढ़ने लगा। उसके गौरव-वृद्धि के मार्ग में उस समय एक भी काँटा वर्त्तमान न था। वीरकेसरी राणा साँगा के मरने पर मेवाड़-राज्य में जो घोर उलट पलट और विग्रह उपस्थित हुआ, उसमें सभी मुग़ल, पठान आदि शक्तिमान् मुसलमान लिप्त थे। उस समय मारवाड़ की ओर किसी की भी दृष्टि न पड़ी। अतएव राजा मालदेव ने अप्रतिहत प्रभाव से अपनी असीम प्रभुता प्रगट की थी। उसने ऐसा सुअवसर पा अपने राज्य के बढ़ाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की, इस कारण जो शत्रु मित्र उसकी उन्नति के मार्ग में कंटक-स्वरूप खड़े हुए थे, उन्हीं को अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलवार से काट उसने उनके राज्य पर अपना अधिकार किया। धीरे धीरे वह मारवाड़ का अति श्रेष्ठ राजा हो गया। इतिहासलेखक फ़रिश्ता ने उसे इसकी अपेक्षा और भी उच्च सम्मान दिया है। वह लिखता है कि "मालदेव ही उस समय में हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध राजाओं में गिना जाता था"।

कहते हैं कि इस वीरपुङ्गव राव मालदेव को बहुत बड़ी अवस्था तक दाढ़ी या मोंछ नहीं निकली थी। इस कारण अन्यान्य राजा लोग इसे अपनी बेटियाँ न देते थे। इसने अपने विवाह के लिये बड़े बड़े प्रयत्न किए, परन्तु कोई क्षत्रिय अपनी कन्या का विवाह करने पर राज़ी न हुआ। जेसलमेर के भट्टी राजा की एक परम सुन्दरी कन्या थी। मालदेव ने इसके लिये बड़ा ही प्रयत्न किया, परन्तु वह राज़ी न हुआ। इससे मालदेव बड़ा ही दुःखित हो गया। उसने सोचा कि मेरी यह विशाल सम्पत्ति, यह क्षत्रियत्व, यह देश-सेवा, यह यवन-विजय किस काम आवेगा। पुत्र के बिना यह सब व्यर्थ है। पुत्र के बिना इस देश के सम्बन्धियों की कौन कहे; पितृगण भी मुझे निपुत्री जान घृणा की दृष्टि से देखेंगे। सोचते सोचते उसने यह निश्चय किया कि चल कर हिमाचल पर्वत पर तपस्या करनी चाहिये। यदि महादेव प्रसन्न हुए तो ठीक ही है, नहीं तो जीवित रहकर शत्रुओं को कष्ट देने की अपेक्षा यमराज की सेवा स्वीकार करना सहस्र गुण श्रेय है। यह सोचकर वह अपना राज्य-भार मंत्री को सौंप हिमाचल पर्वत पर तपस्या करने के लिये चला गया। उसकी दृढ़ भक्ति से महादेव प्रसन्न हुए और उसे मनोवाञ्छित फल (दाढ़ी, मोंछ) की प्राप्ति भी हुई। प्रसन्नतापूर्वक वह जोधपुर लौटा, और एक सेना साथ ले जेसलमेर के भट्टी राजा के राज्य पर; जिसने बहुत समझाने, मनाने, फुसलाने और धमकाने पर भी अपनी कन्या का विवाह राव मालदेव के साथ सम्पन्न करना अस्वीकार किया था, चढ़ाई की। जब भट्टी राजा ने देखा कि मालदेव सरीखे प्रतापी वीरपुङ्गव को जीतना कठिन है तो उसने माफ़ी माँगी और अपनी परम रूपवती कन्या [उमा]देवड़ी का विवाह राव मालदेव के साथ [कर] दिया।

विवाह की रात्रि को राव मालदेव एक [अलग] रंग महल में ठहराए गए। इसी दिन महाराणी [उमा]देवड़ी भी इस रंग महल में शयन करने वाली [थीं]। परन्तु पति की सेवा में जाने के पूर्व उमादेवी [को] अपने सम्बन्धियों से भेंट करना और अपना [भली] भांति शृङ्गार करना परमावश्यक था। रात [पड़ते] ही मालदेव ने शराब पी ली और उमादेवी [को] बुलाने के लिये अपना सहचर भेजा। उमादेवी ने [कहला] लाया कि "सम्बन्धियों से भेंट कर मैं थोड़ी दे[र में] आती हूँ।" परन्तु राव तो नशे की तरंग में [था], उसे उस समय रीति नीति भले बुरे का ख़[याल] कहाँ था! थोड़ी ही देर में घबड़ाकर उसने दू[सरी] बेर आदमी भेजा। परन्तु उमा को देर थी। इ[स पर] राव मालदेव ने पुनः बुलावा भेजा। उमादेवी [ने] सोचा कि बार बार नौकरों के द्वारा कहलाना [ठीक] नहीं, क्योंकि महाराज रुष्ट होंगे। अतएव उसने [इस] बार अपनी ख़ास दासी से कहलाना नि[श्चय] किया। इसकी एक स्वरूपवान् दासी थी जि[सका] नाम ब्रह्मा था। महारानी ने ब्रह्मा को कह[ा कि] "रावजी से कहदे कि १० मिनट क्षमा क[रें], आभूषण पहिन अभी आती हूँ।" ब्रह्मा बहुत स[मझदार] थी। वह जानती थी कि राव मालदेव इस [समय] नशे की तार में है, अतः इस समय जाना उचित [नहीं] है। इससे उसने महारानी से बहुत निवेदन [किया] कि इस समय न भेजें। परन्तु महारानी ने [एक न] मानी। ब्रह्मा विवश हो गई। उमादेवी का [हुक्म] था। ब्रह्मा उसकी प्रधान सेविका थी, इससे [उसने] भी उस दिन अपना शृङ्गार किया था। ज्योंही [उस]ने रंगमहल में पैर रक्खा, मदान्ध मालदेव उ[स पर] झपट पड़ा। उसने यह न सोचा कि यह दा[सी है] या महारानी। थोड़ी देर में महारानी भ[ी] पहुँची। अपने पति को दासी के पास देखकर [महा]रानी के दुःख और क्रोध का ठिकाना न रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ से मद्यपात्र* नीचे गिर गया। यह देख ब्रह्मा बड़ी भयभीत हुई और पलंग से उतर खिड़की के रास्ते बाहर कूद गई। बाहर की ओर मालदेव का सरदार बाघोजी राठोर पहरा दे रहा था। उसने ब्रह्मा को गिरते देखा और अपने हाथ पर रोक लिया। सरदार ने जाना कि महारानी होंगी। परन्तु ब्रह्मा ने आद्योपान्त सब हाल उसे कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि यदि यहाँ से तू भाग न जायगा तो तेरा बचना कठिन हो जायगा। बाघोजी बेतवा नदी के समीप कोटडा नामक नगर का सरदार था। ब्रह्मा के स्वरूप पर मोहित हो उसे साथ लेकर उसने कोटडा की ओर भागने का निश्चय किया। उसने ब्रह्मा को अपने घोड़े पर बिठा लिया और कोटडा की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में जितने चारण, भाट आदि मिलते थे उन्हें ब्रह्मा अपने आभूषण देती जाती थी। इससे किसी ने भी यह न पूछा कि "तुम कौन हो"। कोटडा पहुँच कर बाघोजी ने ब्रह्मा को अपनी पटरानी बनाया। धीरे धीरे यह हाल अन्यान्य सर्दारों को विदित हुआ। जब भाटों तथा चारणों को यह विदित हो गया कि ब्रह्मा एक दासी थी, तब उन्होंने उसके हाथ से दक्षिणा लेना बन्द कर दिया। परन्तु राठोर वीर बाघोजी और ब्रह्मा ने यह एक व्रत लिया था कि चारणादिकों को कुछ दान देने के पश्चात् भोजन करना, इसके पूर्व नहीं। चारणादि के दान न ग्रहण करने से इनको बड़ा दुःख हुआ और ये लोग उपवास करने लगे। इनको निश्चय हो गया कि उपवास करते करते हमारी मृत्यु होगी। अतः ये लोग कोटडा नगर के एक देव-मंदिर में चले गए और वहाँ उपवास करने लगे। यहाँ इन लोगों ने [illegible] दिन तक उपवास किया। इनकी दृढ़ता पर महादेव जी प्रसन्न हुए और उन्होंने वरदान दिया कि "जब तक तुम लोग जीवित रहोगे, भाट चारण तुम्हारी दक्षिणा प्रसन्नता से ग्रहण करेंगे। तुम जितना चाहोगे, दे सकोगे और जब तुम्हें कोई संकट आ पड़ेगा, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।" महादेव अन्तर्द्धान हो गए। बाघोजी पत्नी सहित कोटड़ा राज-भवन को लौटे। यहाँ पहुँच उन्होंने कई सेर सोना अपने एक कवि को दान दिया। इनके इस दातव्य का समाचार सुन देश देश के ब्राह्मण दान लेने आने लगे। यह बात जोधपुर के राव मालदेव को खटकने लगी। उन्होंने अपने भाट को, जो कि सब भाटों का राजा था, बाघोजी को किसी प्रकार प्रतिज्ञा-च्युत कराने के लिए कोटड़ा भेजा। जब बाघोजी को जोधपुर के भाट के आने का हाल विदित हुआ तो वे सरहद पर भाट-राज की अगवानी करने को गए। इन्होंने भाट-राज का बहुत आदर सत्कार किया। भाट-राज ने कहा कि "रास्ते की गरमी से मैं व्याकुल हो रहा हूँ अतः मैं किसी बाग़ में ठहरना चाहता हूँ।" संयोग से कोटड़ा में कोई बाग़ ही न था। बाघोजी तो इच्छा-दान देते थे। एक यही ऐसी समस्या थी जिस की पूर्ति करना बाघोजी के लिये दुष्कर था। अस्तु, बाघोजी ने भाट से कहा कि "कुछ देर ठहरो मैं बाग़ की ताली लेकर आता हूँ"। बाघोजी महल में लौटे। उन्होंने सब हाल ब्रह्मा से कहा। ब्रह्मा ने कहा "कोई चिन्ता नहीं। भक्तिभूषण महादेव मेरी सहायता करेंगे। आप भाट को रथ पर बैठा कर आदर के साथ ले आइये, मैं बाग़ का प्रयत्न किये देती हूँ।" उसने महादेव का ध्यान किया। परमात्मा की कृपा से बाग़ तैयार हो गया। भाटराज उसी में ठहराया गया। भाट-राज समझ गया कि इन पर दैवी कृपा अवश्य है, नहीं तो ऐसा उत्तम बाग़ कैसे बन सकता

* उन दिनों प्रथम बार जब राजपूत-बाला अपने पति की [illegible] में जाती थी तब एक रिक़ाबी में पान इलायची और मद्य- [illegible] ले जाती थी। कितनी ही जातियों में बादाम, मिश्री, [illegible]यल आदि ले जाने की रीति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसने बाघोजी की बड़ी प्रशंसा की * और कुछ दिन वहां ठहर कर वह जोधपुर लौटा। जब जोधपुर के मालदेव ने दैवी सहानुभूति का हाल सुना ता फिर उसे बाघोजी के छेड़ने की हिम्मत भी न हुई। इस प्रकार बाघोजी की सत्कीर्ति दिन दिन बढ़ने लगी।

इधर राव मालदेव की स्त्री उमादेवड़ी ने शराब का पात्र भूमि पर फेंक दिया और प्रतिज्ञा की कि "आज से मालदेव; जिसने परस्त्रीगमन किया है, मेरे भाई के समान है और मैं जीते जी इनके साथ पत्नीभाव से न रहूँगी"। यह निश्चय कर वह रंग-महल से राजभवन लौट आई। राव मालदेव ने नशा उतरने पर महारानी को बहुत बहुत समझाया परन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्त में मालदेव जोधपुर लौट गया। उमादेवी के पिता ने सोचा कि मालदेव बड़ा क्रोधी है इस लिये उन्होंने भय के मारे उमादेवड़ी को हठात् जोधपुर भेज दिया। यहाँ भी उमादेवी को अनेक प्रकार से समझाया गया, परन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ रही। अन्त में मालदेव ने अपने भाट को उमा के समझाने के लिए भेजा। भाट ने राजा से कहा कि "मैं जाता हूँ। कुछ समय बाद आप भी वहीं पधारें"। भाट उमा के भवन में गया और उसके धैर्य, रूप, गुण की प्रशंसा करने लगा। रानी प्रसन्न हुई और कुछ भेंट देने लगी। भाट ने कहा कि "आप विरक्त भाव से अपना जीवन व्यतीत करती हैं ... शृङ्गार आदि करती हैं और न उत्तम वस्त्र ही ... करती हैं। अतः मैं आप से विरक्त आश्रम में भी नहीं ले सकता। जब आप शृङ्गार ... अच्छे वस्त्र धारण करेंगी उसी समय मैं आप से ... ले सकता हूँ।" रानी ने भाट को कुछ भेंट ... निश्चय कर लिया था, इससे उसने आभूषण, इत्यादि धारण किए। इतने ही में मालदेव भी पहुँचा। राव को देखतेही भाट-राज चले गए। ... ने स्वयं बड़ी ही विनय से उमा को समझाया, ... वह न मानी। आख़िर राव उमादेवड़ी पर ... परन्तु उमा नीचे कूद गई। संयोग से नीचे ते ... खाने की वस्तुएँ धूप में रक्खी गई थी। इससे ... को आघात न पहुँचा। वह जेसलमेर चली गई ... मालदेव की जीवित अवस्था तक न लौटी।

राव मालदेव ने और भी १६ रानियों से ... किया था। एक समय वह बीमार पड़ा। उसे ... हो गया कि मेरा अन्तिम समय निकट है। उसने अपनी १६ रानियों को बुलाया और पूछ ... "मेरे साथ कौन सती होने को तैयार है?" को ... तैयार न हुई। सबों की बोली बन्द हो गई। ... हाल देख भाट ने कहा कि "सरकार के साथ ... कोई सती होगी तो उमादेवड़ी ही होगी"। ... मालदेव को विश्वास न हुआ। उसने कहा ... स्त्री ने मेरी नीचता के कारण जन्म भर दुःख ... वह मेरे लिये क्योंकर सती होगी"। भाट के ... कहने पर मालदेव ने अपने मृत्यु-काल का स... उमादेवड़ी को कहला भेजा। उमादेवड़ी सुनते ही ... होने के लिये तैयार हो गई। यह देख उसके ... स्त्रियों ने उसे कितना ही समझाया कि " ... विवाह का कोई सुख नहीं पाया, फिर तुम क्यों ... होती हो"। यह सुन उमा ने कहा—"जिस के लिये हम्मीर रणथंभोर में मारा गया; जिस के लिये वीर पातल पावागढ़ के मैदान में लड़ ... जिस मान की रक्षा के लिये चंडूराव नाथों ... कहान्डदे झालेर में; दुदा जेसलमेर के मै...

---

* उसने बाघोजी की प्रशंसा में ये दोहे कहे थे—

कोटां सरे काटडो, गढ़ां जेसलमेर—
राणीयो सरेभरमदे, कुंवरां बाघ नरेश ॥ १ ॥
कीरतरो जामों बन्यो, माथो जसरो मोड—
गोठ करी घोड़ा दिये, ए बाघो राठोड ॥ २ ॥

अर्थ—क़िलों में सबसे बड़ा क़िला कोटड़ा का है, गढ़ में बड़ा जेसलमेर है, रानियों में सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मा है और राजाओं में बाघोजी श्रेष्ठ हैं। बाघोजी ने कीर्ति का जामा तथा सुयश का मुकुट धारण किया है। घोड़ा, हाथी दान करता है ऐसा दानी राठोर-नरेश बाघोजी है। भाट का इतना ही कहना बाघोजी के लिये बहुत था, क्योंकि भाट लोग गुरू थे। इनका वचन हर एक राजपूत के लिये मान्य होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारा गया, उसी मानरक्षण के लिये, अपने पिता माता की कीर्ति बढ़ाने के लिये, अपनी ज्ञाति की रक्षा और सन्मान के लिये हम सब रानियों को भी सती होना चाहिए * । यह कह कर उमादेवड़ी जी जोधपुर गई और अपने मानसिक पति मालदेव के शव के साथ सती हो गई। मालदेव अपने समय के राजपूतों में से एक साहसी और प्रचण्ड पराक्रमी राजा था। यदि वह कुछ दिन और भी जीवित रह कर यौवन का प्रचण्ड पराक्रम स्थिर रख सकता, तो वह वीरचूड़ामणि महाराणा प्रतापसिंह के साथ उदय होते हुए मुग़लपराक्रम के विरोध से राजपूत जाति की स्वाधीनता और गौरवगरिमा को अटल देख सकता। किन्तु मारवाड़ का अत्यन्त ही दुर्भाग्य था, इसी से वीर-कुल-तिलक राणा प्रताप से मित्रता होने के पहले ही वह राठोरवीर मालदेव इस असार संसार से चल बसा।

—:o:—

विवाह का इतिहास

(लेखक—बाबू जगन्मोहन वर्म्मा।)

(पूर्वप्रकाशित से आगे।)

धीरे धीरे सभ्यता बढ़ती गई और लोगों की स्त्री पुत्र में ममता अधिक होती गई। पर स्त्रियाँ स्वतंत्र बनी रहीं और एक के अधिकार में रहते हुए उनको पूर्ण अधिकार था कि जब चाहें जिससे संभोग करें। वे एक पति के होते ए अन्य पुरुषों की कामना करती थीं और उस समय उनका यह आचरण व्यभिचार नहीं माना जाता था। महाभारत के देखने से मालूम होता है कि इस प्रथा को उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने उठा दिया।

वभूवोद्दालकोनाम महर्षिरिति नः श्रुतम्।
श्वेतकेतुरितिख्यातः पुत्रस्तस्याभवन्मुनिः॥
मर्य्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना।
कोपात्कमलपत्राक्षि यदर्थं तन्निबोधसे॥
श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः।
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत्॥
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः।
मातरं तां तथा दृष्ट्वा श्वेकेतुमुवाचह॥
मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः।
अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामंगना भुवि॥
यथा गावस्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजा।
ऋषिपुत्रोऽथ तं धर्मं श्वेतकेतुर्न चक्षमे॥
चकार चैव मर्य्यादामिमां स्त्रीपुंसयोर्भुवि।
मानुषेषु महाभागे नत्वेवान्येषु जन्तुषु॥
तदा प्रभृति मर्य्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम्।
व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्य्यामद्यप्रभृति पातकम्॥
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम्।
भार्य्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम्॥
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि।
पत्यानि भुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च॥
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदेवहि।
इति तेन पुरा भीरु मर्य्यादा स्थापिता बलात्॥

(आदि पर्व १२२ अध्याय)

सुनते हैं कि उद्दालक नाम के कोई ऋषि थे। इन उद्दालक जी के श्वेतकेतु नामक महर्षि उत्पन्न हुए इन्हीं श्वेतकेतु जी ने कोप करके (नहीं उस समय की प्रथा को असभ्य और दूषित समझ) यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री पति के होते हुए उसकी आज्ञा के विरुद्ध किसी अन्य पुरुष से संभोग न करे। कहते हैं कि एक समय श्वेतकेतु के पिता उद्दालक जी के सामने एक ब्राह्मण आया और उसने उनकी माता

---

* जण लाज हमीर जुजे मुओ रणथंभर।
जण लाज पातल मुओ पावे गढ़ अंतर॥
जण लाज चंडूराव मुओ नाघोर त्तणे सल।
कानडदे झालोर मुओ दुदो जेसलमेर॥
वडगरां लाज वधारवां कल उजल सम वा करण।
सोय लाज काज उमासनी मडची सऊ कोई मरण॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हाथ पकड़ लिया और यह कह कर चलता हुआ कि हम दोनों जाते हैं। श्वेतकेतु से यह असभ्य व्यवहार देख कर रहा न गया और क्रोध के मारे उनकी आँखें लाल हो गईं। उनको कोप करते देख उनकी माता बोली, बेटा क्रोध मत करो। यह सनातन (नित्य नहीं प्राचीन) धर्म है। संसार में स्त्रियाँ सब वर्णों की अनावृत हैं अर्थात् वे स्वतंत्र हैं और जैसे गाय आदि पशु में व्यवहार है उसी तरह अपने वर्ण के साथ स्त्रियों को रमण करने का अधिकार है। पर ऋषि-पुत्र श्वेतकेतु को वह प्राचीन सनातन-धर्म अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उस समय से मनुष्यों के लिए यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री पति की आज्ञा के प्रतिकूल किसी अन्य के साथ संभोग न करे। उसी समय से पति की आज्ञा के विरुद्ध अन्य पुरुष से संभोग करना पतिव्रता स्त्रियों के लिए भ्रूणहत्या के समान पातक समझा जाने लगा है। कुन्ती से पांडु कहते हैं कि हे कुन्ती! यदि कोई स्त्री पति से आज्ञा पाकर पुत्र के लिए नियोग नहीं करती तो उसे भी भ्रूणहत्या के समान पातक लगता है। यह मर्य्यादा उसी धर्म-भीरु ऋषि ने स्थापित की है कि स्त्री पति की अवज्ञा न करे।

उस समय से स्त्रियाँ पति की आज्ञा पालन करने को बाधित हुईं। पर फिर भी महर्षि दीर्घतमा के समय तक पति की अयोग्यता की अवस्था में स्त्रियाँ उसके जीते जी दूसरा पति कर लेती थीं। महर्षि दीर्घतमा अंधे थे, अतः वे अपने बालबच्चों का भरण पोषण नहीं कर सकते थे। एक बार उनकी पत्नी ने जब उनकी अवज्ञा की तो उन्होंने यह मर्य्यादा बाँधी कि कोई स्त्री चाहे उसका पति कितना ही अयोग्य क्यों न हो उसे छोड़ न सके। उनके विषय में महाभारत में लिखा है कि एक समय दीर्घतमा जी ने अपनी स्त्री से कहा कि तू क्यों मुझसे द्वेष रखती है? पत्नी ने कहा कि पति को भरण करने ही से भर्त्ता कहते हैं। आप अंधे हैं, मैं परिश्रम करके आपका और आप के लड़कों का पालन करती हूँ। ऋषि ने कहा-मुझे राजा के यहाँ ले चलो तो मैं धन ला देता हूँ। पर स्त्री ने कहा कि मुझे आप के धन की आवश्यकता [नहीं]। उसके इस वाक्य पर ऋषि ने क्रोध कर के का[हा]—

> अद्य प्रभृति मर्य्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता।
> एक एव पतिर्नार्य्या यावज्जीवं परायणम्॥
> मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम्।
> अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः॥
> अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम्।
> यद्यस्ति चेद्धनं सर्वं वृथाभोगा भवंतु ताः॥
> अकीर्त्तिः परिवादश्च नित्यं तासां भवन्तु [वै]॥

आज से मैं यह मर्य्यादा करता हूँ कि याव[ज्जीवन] स्त्रियाँ पति के आश्रित रहें। पति के जीवन-का[ल] वा उसके मरने पर ये कभी दूसरे पुरुष का [आश्रय] न लें और यदि आश्रय लें तो वे पतित हो[ंगी] और आज से पतिहीन स्त्रियों के लिए यह पातक होगा और धन होने पर भी उनको वे [भोग] न सकेंगी और यदि भोगेंगी तो सदा उनकी अकीर्त्ति और निंदा होगी।

धीरे धीरे स्त्रियों की स्वतंत्रता जाती रही वे पशु अन्न धन आदि के समान पुरुषों के उ[पभोग] की सामग्री की तरह मानी जाने लगीं, यहाँ [तक] कि लोग उन्हें पति के मरने पर जिस तरह अन्य आमोद-प्रमोद की चीज़ों को शव के सा[थ] उद्देश से जलाते थे कि वे उन्हें स्वर्ग में वा[...] लोक में मिलेंगी उसकी पत्नियों को भी उन[के साथ] जला देते थे। यही पीछे बढ़ कर सती की प्र[था में] प्रकृति हुई। उस समय आर्य्य-जाति बड़ी व्या[भिचारी हो] गई थी। एक एक पुरुष के सैकड़ों स्त्रियाँ होती [थीं]। स्वयं ऋषियों की भी जो तपोधन कहलाते थे [कई] स्त्रियाँ होने का पता चलता है। याज्ञवल्क्यजी [जैसे] ब्रह्मवादी की भी दो स्त्रियाँ मैत्रेयी और गार्[गी थीं]। कहाँ तक कहें, आर्य्य-जाति अनार्यों की [स्त्रियों पर] गीध की नाईं टूटती थी और यज्ञों की दी[क्षा के] समय भी लोग अनार्य्य स्त्रियों से गमन कर[ते थे]। इसीलिए ब्राह्मण ग्रंथों में 'न रामामुपेयात्' [कह कर] यज्ञदीक्षा के समय रामा अर्थात् शूद्रा से ग[मन]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें—इत्यादि प्रकार के नियम बाँधने पड़े। इसी दुर्बलता के समय जब वंशोच्छेद होने लगा तो राजा वेणु ने नियोग की प्रथा को बलात् चलाया। मनुजी ने इस प्रथा को पशु-धर्म कहके अपनी स्मृति में इसकी निन्दा की है—

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेणे राज्यं प्रशासति॥
स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः॥

राजर्षि वेणु के समय में विद्वान् द्विजों ने मनुष्यों के लिए इस पशु-धर्म का उपदेश किया था। राजर्षि प्रवर वेणु समस्त भूमण्डलका राजा था। उसी कामी ने वर्णों का घाल-मेल किया।

नियोग में उत्तम संतान उत्पन्न करने के लिए सुन्दर बलवान् ब्रह्मचर्य्यपूर्ण पुरुष को ढूंढ़ कर उससे नियोग कराते थे। यह प्रथा आर्य्यों ने स्वयं निकाली वा अन्य असुर आदि जातियों से ली इसका ठीक पता नहीं लचता।

नियोग चला, अच्छे संतान उत्पन्न किये जाने लगे; पर स्त्रियों को उनके पतियों के साथ जलाने की प्रथा ने सती का रूप धारण कर लिया। स्त्रियों को अपने पतियों से परलोक में मिलने की चाट बढ़ हुई और वे सुख से अपने इच्छापूर्वक अपने पतियों के साथ सती होना अपना धर्म समझने लगीं*। उस अवस्था में कितने लोग उन्हें फुसलाया भी करते थे और यह समझाते थे कि क्यों तू इस मृतक पति के साथ पड़ी है और जल कर अपना प्राण देती है उठ चल हमारे साथ संसार में मौज उड़ा। स्वयं ऋग्वेद के इस मन्त्र से इसका पता चलता है:—

उदीष्वनार्य्यभिजीवलोके गतासुमेनंमुपशेष एहि।
हस्तग्रामस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ॥ सू० १०।१८

हे स्त्री, इस मरे हुए प्राणी के पास से उठ और जीवलोक अर्थात् जीते जागते लोगों का साथ पकड़। तेरा और इस हाथ पकड़ने वाले मृतपति का जनित्व संतान उत्पन्न करने का काम अब समाप्त हो गया।

यह सब सुधार हुआ पर उस समय तक विवाह दो ही प्रकार से होते रहे, एक तो छीन छान लड़ भिड़ कर वा उसकी सम्मति से कन्या को फुसला कर भगाले जाते थे अथवा यज्ञों के समय यजमान अपनी कन्याओं को ऋत्विजों को चाहे दक्षिणा रूप में वा धर्म समझ दे दिया करते थे। यज्ञों के समय ऋत्विजों को पूरी स्वतन्त्रता थी कि वे लोग यजमान की स्त्रियों, कन्याओं और कुटुंबियों से हँसी मज़ाक करें। बड़े बड़े यज्ञों में उनके लिए अच्छे अच्छे समाजों का प्रबंध श्रीमान् लोग करते थे। उनके खाने के लिए उत्तम उत्तम पशुओं के मांस, पीने के लिए यवसुरा सोमरसादि उपस्थित रहते थे। कितनी अप्सरायें आमंत्रित होती थीं जिनसे उन्हें हँसी दिल्लगी करने का अच्छा अवसर मिलता था। स्वयं यजमान भी अपने कुटुंबियों समेत यज्ञ के मंडप में ही रहता था। ऋत्विजों और यज्ञमंडप की रहनेवाली यजमान की संबंधी स्त्रियों में परस्पर फूहड़ हँसी मज़ाक़ का कुछ वर्णन यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र २०—३१ में आया है जिसे हम यहाँ देना उचित नहीं समझते। जिन्हें देखना हो वे वहाँ ही महीधर भाष्य वा शतपथ ब्राह्मण अध्याय १३।५।२। में देख लेवें।

धीरे धीरे ऋत्विजों के साथ अयोग्य विवाह की प्रथा लोगों को अनुचित मालूम होने लगी। तब विवाह करने का अधिकार पिता के हाथ में दिया गया। क्योंकि यह उचित न जान पड़ा कि ऐसे उत्तरदायित्व का अधिकार उन बालिकाओं के हाथ में दिया जावे जिन्हें संसार का कुछ भी तजुर्बा नहीं होता। जरा सी नादानी के कारण उनका सारा जीवन किरकिरा हो जाता है। साधारण लोगों ने तो यह बात मानली पर बड़े बड़े लोगों में प्रायः विवाह की प्रथा वैसीही

---

* इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यते उत त्वामत्यप्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं च धेहि॥
अथ० १८।३।१।१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। केवल इतना किया गया कि पिता योग्य वरों को एक समाज में आमंत्रित करके बुलाता था और कन्या उनमें से किसी को वरण करती थी। इतना होने पर भी क्षत्रियों में प्रायः स्वयंवर के मौकों पर छीना झपटी मार पीट लड़ाई झगड़े हो ही जाते थे।

उस समय बालक बालिकाओं की अवस्था २५ और १६ से न्यून नहीं होती थी, अतः वैधव्य की बहुत कम संभावना थी। धीरे धीरे नियोग पाशव और घृणित समझा जाने लगा, सभ्यता बढ़ती गई और भुक्ता स्त्रियों को ग्रहण करना जूठी पत्तल खाना समझा जाने लगा। युवावस्था में विवाह होने के कारण बड़े बड़े घरों में कन्याओं के विवाह के पहले भी संतान हो जाया करती थी, जैसे कुन्ती से कर्ण उत्पन्न हुआ था।

धीरे धीरे समय और सभ्यता बदलती गई। स्त्रियों के ऊपर पुरुषों की कड़ी दृष्टि रहने लगी। उनकी स्वतंत्रता जाती रही और वे पुरुषों की बंदी बना दी गईं। मनु लिखते हैं—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति॥

अर्थात् पिता कौमार में, पति यौवन में और पुत्र बुढ़ापे में स्त्रियों की रक्षा करे। स्त्रियों को कभी स्वतंत्रता न होनी चाहिये।

स्त्रियों की स्वतंत्रता छीनने और पुरुषों के अधिकार बढ़ने का यह प्रभाव पड़ा कि पुरुषों में बहु-विवाह की प्रथा चल पड़ी। स्त्रियाँ इस काल में पुरुषों के आमोद प्रमोद की सामग्री हो गईं और उनको उपयोग में लाने के अनेक ढंग सोचे और निकाले गये। काम शास्त्र और नायिकाभेदादि ग्रंथों की इसी प्रकार के विचारों से सृष्टि हुई। एक एक पुरुष के अनेक विवाह होने की अवस्था में भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अठगुनी कामेच्छा मानना उस समय के लोगों के हृदयंगम भावों के साक्षी हैं।

यह धींगा मुश्ती बहुत दिन न चली और थोड़े ही दिनों बाद ईसामसीह के छः सौ वर्ष पूर्व कपिलवस्तु नगर में महात्मा बुद्धदेव का प्रादुर्भाव हुआ जिन्हों एक बार स्त्रियों के अधिकार पर विचार किया और उन्हें संन्यास धर्म तक का अधिकारी माना। बौद्ध धर्म की उन्नति के समय में बड़ी बड़ी विदुषी स्त्रि हुई हैं जिनमें गोतमी, जटिला, संघमित्रा आदि प्रसि हैं।

बौद्धधर्म के बहिष्कार के साथ ही साथ हि स्तान के पुरुषों का धावा फिर एक बार स्त्रियों हुआ, पर थोड़े ही दिनों बाद मुसलमानों के आक्र से ये लोग इतने तंग हुए कि उन्हें न केवल अ ही किंतु स्त्रियों तक की रक्षा के लिये प्रबंध क पड़ा। युवा-विवाह की प्रथा बंद हुई और बा विवाह की प्रथा प्रचलित हुई। और यह देख कर मुसलमान लोग विशेष कर कन्याओं ही पर आक्र करते हैं, क्योंकि सधवा स्त्री पर बलात्कार करना उसे छीनना मुसलमानी धर्म के विरुद्ध है, यह प्र किया गया कि जहाँ तक हो सके कोई सयानी क अविवाहिता न रहने पावे। इसके बाद पराशर तिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसके अनुसार आठ व अधिक अवस्था में विवाह करना पिता माता के प्रायश्चित्तार्ह ठहराया गया और सब प्रकार विवाहों पर ब्राह्म विवाह श्रेष्ठ माना गया और वि की प्रथा ने वह रूप धारण किया जिसमें हम आज देखते हैं।

—:०:—

वक्तृत्व-शक्ति।
और
उसकी साधना के उपाय।

—:०:—

वक्तृता से लाभ।



श्वर ने मनुष्य को जितनी शक्ति प्रदान की हैं, वक्तृत्व-शक्ति उन में श्रेष्ठ है। मनुष्य जिन कर्तव्य पूरा करने के लिये संसार में गया है, वक्तृत्व-शक्ति से उन सब में बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता मिलती है। यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर पशु पक्षी भी परस्पर एक दूसरे पर अपना भाव प्रकट कर सकते हैं, तथापि उनके इस कार्य्य की गणना बातचीत करने में नहीं हो सकती और न उस प्रकार मनुष्य की आवश्यकताएँ ही पूरी हो सकती हैं; इसीलिये ईश्वर ने मनुष्य को यह सर्वोत्तम साधन प्रदान किया है।

जिस समय संसार में सभ्यता का आरम्भ हुआ, उस समय मनुष्यों ने अनुभव से जाना कि वक्तृत्व-शक्ति एक ऐसा उपयोगी साधन है कि यदि भली भाँति उसका उपयोग किया जाय तो संसार के समस्त कार्य्यों में बड़ी ही सरलता हो सकती है। उपदेशकों ने देखा कि यदि अच्छे ढंग से वक्तृता दी जाय तो श्रोताओं पर तत्काल ही उसका प्रभाव पड़ता है। राजमंत्रियों ने देखा कि अच्छी वक्तृता से शासकों पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वे उसपर पूरा ध्यान देते हैं। शिक्षकों ने देखा कि यदि अधिक परिमार्जित भाषा में कोई बात भली भाँति सिखलाई या समझाई जाय तो वह शीघ्र ही शिष्यों की समझ में आ जाती है और उसकी स्मृति भी अधिक समय तक बनी रहती है। तात्पर्य्य यह कि संसार में सब पर यह बात भली भाँति विदित और प्रमाणित हो गई कि अच्छी वक्तृता का परिणाम उत्तमतर होता है और कभी कभी उसके द्वारा ऐसे कार्य्य सम्पन्न हो जाते हैं जो साधारण युद्धों से भी सम्भावित नहीं। उस समय से विद्वानों ने बातचीत के ढंग में सुधार करना आरम्भ किया और अन्त में यह एक प्रकार की विद्या हो गई।

अन्य अनेक विद्याओं की भाँति इस विद्या में भी भारतवासी ही अग्रसर हुए थे। अधिक दूर क्यों जायँ, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति के द्वारा ही महाभारत का युद्ध कराया था। महात्मा बुद्ध ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति से ही आधे संसार को अपना अनुयायी बना लिया था। भगवान् शङ्कराचार्य्य के कामों में भी विद्या के साथ वक्तृत्व-शक्ति का बहुत कुछ अंश था। भारत के बाद यूनान और रोम वालों ने इसमें दक्षता प्राप्त की। उन लोगों में अनेक ऐसे वक्ता हुए जिन्होंने अपनी वक्तृता के बल से ही इधर की दुनिया उधर कर दी। जो काम आजकल कदाचित् विद्युत् शक्ति भी नहीं कर सकती, वह काम बड़े बड़े वक्ताओं की केवल ज़बान हिलने से हो जाते थे।

सभ्य-संसार में वक्तृत्व-शक्ति का बड़ा आदर है। एक अच्छे वक्ता में किसी अच्छे कवि से अधिक शक्ति होती है। जब वह खड़ा होता है तो बड़े बड़े वीरों के समूह को बात की बात में रुला सकता है और उसी प्रकार उन्हें हँसा भी सकता है। उसका एक एक शब्द मनुष्य के हृदय पर चिंगारी का काम कर सकता है। जो लोग संसार का इतिहास जानते हैं उन्हें कई ऐसी घटनाएँ मालूम होंगी कि जिनमें वीर सेनापतियों ने अपनी ओजस्विनी वक्तृता से निराश सिपाहियों को पुनः उत्तेजित और उत्साहित करके बड़े बड़े शत्रुओं पर विजय पाई है। फ़्रांस के सम्राट् प्रसिद्ध वीर नेपोलियन से यूरोप के सभी शासक काँपते थे। उसके इस आतंक का मुख्य कारण उसका चातुर्य्य और दूसरा कारण उसका वक्तृत्व-बल था। उसने कई अवसरों पर अपनी सेनाओं को उत्तेजित करने के लिये ऐसी ऐसी बातें कही थीं जो कि आज तक बहुत कम सेनापतियों के ध्यान में आई होंगी। एक अवसर पर उसने अपनी सेना के थके हुए सिपाहियों से कहा था—"बहादुरो! गत दो सप्ताहों में तुमने छः स्थानों पर विजय प्राप्त की है, शत्रुओं से ५५ तोपें छीन ली हैं और कई क़िलों पर अपना अधिकार जमाया है। दस हज़ार से अधिक सिपाहियों को तुमने मारा और घायल किया है। बिना तोपों की सहायता के तुमने तोपें छीन ली हैं, बिना पुलों के नदियाँ पार की हैं और बिना जूतों के पैदल कूच किए हैं। ब्राण्डी दूर रही, तुम्हें पेट भर रोटी भी नहीं मिली। लेकिन इतना होने पर भी तुमने ऐसे ऐसे युद्धों में विजय पाई है कि जिसकी समता करनेवाला संसार में और कोई नहीं है। तुम अपने समस्त देश के धन्यवाद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्र हो। जो लोग तुम्हारी बुरी दशा पर हँसते थे, वे तुम्हारे सामने न ठहर सके और भाग गये। जो लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे, वे अब तुम्हारी ओर से चौकन्ने हो गए हैं। लेकिन अब मैं सुनता हूँ कि तुममें से भी कुछ लोग ऐसे हैं जिनकी हिम्मत टूट गई है; पर तो भी मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता। जब तक मेरी बुद्धि ठिकाने है तब तक क्या मैं कभी यह बात मान सकता हूँ कि मेरी विजयी सेना के सिपाही हिम्मत हार रहे हैं!" इन वाक्यों ने प्रत्येक सिपाही के हृदय पर बिजली का काम किया था। राज्यच्युत होते समय नेपोलियन ने अपने सैनिकों से कहा था—"मेरे पुराने सेनापतियो और सैनिको! मैं तुम्हारे गत बीस वर्षों के कार्य्यों से बहुत ही सन्तुष्ट हूँ। मैंने तुम्हें सदैव विजय प्राप्त करते ही देखा है। इस समय यूरोप के सब राष्ट्र मिलकर मुझे राज्य से अलग होने के लिये विवश कर रहे हैं। यद्यपि तुम लोग मेरे विश्वासपात्र हो, तथापि मैं अपने प्यारे देश को विपत्ति में नहीं डालना चाहता। अब तुम्हें उचित है कि तुम लोग पहले की भाँति अपने नये अधिकारी की आज्ञा का पालन करो। अपनी जन्मभूमि के साथ कभी विश्वासघात न करना और न कभी मेरे अभाग्य की चर्चा करना। मैं तुम्हारा कुशल-समाचार सुनकर ही प्रसन्न होऊँगा। इस समय मेरे लिये मरने से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है, तथापि मेरी प्रतिष्ठा मुझे कभी आत्महत्या न करने देगी। मैं इस समय तुम सब लोगों से गले नहीं मिल सकता, इसलिये केवल तुम्हारे सेनापति से ही मिल लेता हूँ (इतना कह कर वह जनरल से गले मिला और फ्रांस की राजपताका को चूम कर, आँखों में आँसू भरकर फिर कहने लगा) वीरो, मुझे भूल मत जाना। जाओ ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।"

नेपोलियन के इन वाक्यों ने उसके सिपाहियों पर ऐसा जादू डाला कि जब उसने पुनः यूरोप से लड़ने का विचार किया तो वे सब लोग फिर उसके झंडे के नीचे आ गए। एक बार एक मुसलमान सेनापति अफ़्रिका के किनारे पर, स्पेनवालों से लड़ने के लिये उतरा था। उतरते ही उसने अ[illegible] जहाज़ों में आग लगा दी थी और अपने सिपाहि[illegible] से कहा था—"या तो शत्रुओं पर विजय प्राप्त क[illegible] और या यहीं मर जाओ। तुम लोग ख़ाली हा[illegible] लौट जाने के लिये यहाँ नहीं आए हो।"

यह तो हुईं योद्धाओं की बातें; अब कुछ [illegible] लोगों का हाल सुनिए जिन्होंने संसार के अन्य कार्यों [illegible] अपनी वक्तृत्व-शक्ति की सहायता से अनेक मह[illegible] पूर्ण परिवर्त्तन किए हैं। कुछ लोग गद्य को, पद्य [illegible] बाद दूसरा स्थान देते हैं। इसका मुख्य कारण [illegible] है कि गद्य की अपेक्षा पद्य में रस कुछ अधिक हो[illegible] है। लेकिन तो भी इसमें सन्देह नहीं कि संसार [illegible] गद्य से जितने काम निकलते हैं, पद्य से उ[illegible] कदापि सम्भावित नहीं। एक कवि गद्य की प्रश[illegible] में कहता है—"वक्तृत्व-शक्ति (गद्य) समस्त सं[illegible] की अधिष्ठात्री देवी है। संसार में आज तक जि[illegible] बड़े बड़े कार्य्य हुए हैं, उन सबमें किसी न कि[illegible] रूप में वक्तृत्व-शक्ति से अच्छी सहायता मिली [illegible] मनुष्य में स्वदेशप्रेम का अंकुर इसी के द्वारा उ[illegible] होता है। सर्वसाधारण में आन्दोलन उत्पन्न करने [illegible] यह बहुत उत्तम साधन है। इसके द्वारा बुरे वि[illegible] का नाश और अच्छे विचारों का संचार होता [illegible] उसी की सहायता से भयङ्कर युद्धों का आरम्भ हो[illegible] है और वही शक्ति उसका अन्त भी करती है।"

लार्ड बेकन ने अपनी "एडवांसमेण्ट [illegible] लर्निंग" (Advancement of Learning) ना[illegible] पुस्तक में लिखा है—"बुद्धिमत्ता की केवल प्र[illegible] और प्रतिष्ठा ही की जाती है, लेकिन वक्तृत्व [illegible] से संसार के बड़े बड़े कार्य्य सम्पन्न होते हैं।" [illegible] बार मैसिडोनिया के एक बादशाह ने वहाँ के [illegible] अच्छे वक्ता को उसकी योग्यता से प्रसन्न [illegible] हज़ार गाँव दे दिये और साथ ही यह भी [illegible] कि उसकी योग्यता को देखते हुए यह पारितो[illegible] कुछ भी नहीं है। दुःख है कि अन्य विद्याओं के प[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रोर ज्ञाता तो बहुत अधिकता से होते आये हैं, लेकिन अच्छे वक्ताओं की संसार में सदा से कमी ही रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि वक्तृता या भाषण में एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जो संसार के प्रत्येक कार्य्य में बहुत बड़ा परिवर्तन कर सकती है। यूनान के प्रसिद्ध वक्ता डिमास्थनीज़ ने अपनी वक्तृत्व शक्ति के द्वारा ही वहाँ के निवासियों को अपने अत्याचारी राजा से लड़वा दिया था। स्वयं उस अत्याचारी राजा ने एक बार उसकी प्रशंसा करते हुए कहा था—"यदि मैं भी उसकी वक्तृता सुनता तो मुझे विश्वास है कि मुझे उत्तेजित करने में उसे यहाँ तक सफलता प्राप्त होती कि मैं स्वयं अपनी तलवार खींच कर अपने आप से लड़ने लग जाता।" ठीक ऐसी ही घटना हाल में एक बार इंग्लैण्ड में भी संघटित हुई थी। लार्ड वारेन हेस्टिंग्स के शासन-काल में इस देश में बहुत सी ख़राबियाँ पैदा हो गई थीं। पारलीमेण्ट के प्रसिद्ध वक्ता बर्क ने उन पर रिश्वत का अभियोग लगाया था श्रोर अन्त में अपनी प्रभावशालिनी वक्तृता से उन्हें दोषी प्रमाणित करके छोड़ा था। लार्ड हेस्टिंग्स ने इस अभियोग का हाल लिखते हुए स्वयं कहा है—"आध घंटे तक टकटकी लगाये मैं बर्क की तरफ़ देखता रहा। प्रत्येक शब्द जो उसके मुँह से निकलता था, मेरे हृदय पर विलक्षण प्रभाव डालता था, यहाँ तक कि थोड़ी ही देर में मैं स्वयं अपने आप को दोषी समझने लगा।" प्रसिद्ध वक्ता सिसरो ने एक बार रोम के एक बादशाह के दरबार में अपनी वक्तृता के प्रभाव से एक ऐसे अभियुक्त को बिलकुल साफ़ छुड़वा दिया था जिसे बादशाह बिना सज़ा दिये कभी न छोड़ता। इसी सिसरो के विषय में लोग कहते हैं कि जब कभी वह किसी विषय पर बोलने के लिये खड़ा होता तो उसके सारे विरोधी डर कर सामने से हट जाते थे। मिस्टर माण्ट गोमरी के कथनानुसार प्रशिया के प्रसिद्ध वक्ता लूथर ने ही अपने वक्तृत्व-बल से वहाँ की पारलीमेंट न टूटने दी श्रोर अपने देश को एक अत्याचारी राजा के अधीन होने से बचा लिया।

जो लोग अमेरिका की स्वतंत्रता श्रोर वहाँ के प्रसिद्ध युद्ध का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम होगा कि अमेरिका को स्वतंत्र करने तथा वहाँ प्रजा-तंत्र स्थापित करने में जनरल वाशिंगटन ने ही सब से अधिक उद्योग किया था। यद्यपि वहाँ की सारी सेना को उसी ने अपने अधीन कर रक्खा था श्रोर बड़े बड़े कठिन अवसरों पर अमेरिका वालों के लिये उसने अपना जीवन संकट में डाला था, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि मिस्टर ऐडम नामक एक वक्ता ने जनरल वाशिंगटन की बहुत अधिक सहायता की थी। सब से पहले मिस्टर ऐडम ने ही वहाँ के नेताओं के समक्ष वाशिंगटन को समस्त सेना का कमांडर-इन-चीफ़ बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया था। पर उन लोगों ने यह कह कर उस प्रस्ताव को टाल दिया कि वाशिंगटन विदेशी हैं श्रोर यहाँ के सैनिक उनके अधीन रहना न चाहेंगे। प्रातःकाल जब यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो सारी सभा उसके विरुद्ध थी; लेकिन मिस्टर ऐडम के दिन भर वक्तृता देने के बाद सारे देश को उन्होंने अपना अनुमोदक बना लिया श्रोर जनरल वाशिंगटन अमेरिका की समस्त सेनाओं के कमांडर-इन-चीफ़ बना दिये गये। इसी सुवक्ता ने फ़्रांस सम्राट् के दरबार में जाकर अपनी बातों से उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि वह इंग्लैण्ड के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। इसी लिए लोग कहते हैं कि अमेरिका को स्वतंत्र करने में जनरल वाशिंगटन को मिस्टर ऐडम ने बहुत बड़ी सहायता दी थी।

वक्ता बनने के उपाय।

यद्यपि संसार में सब प्रकार के विद्वानों की दिन पर दिन वृद्धि होती जाती है, पर तो भी अब सिसरो या डिमास्थनीज के समान वक्ता उत्पन्न नहीं होते। यूरोप श्रोर अमेरिका आदि सभ्य देशों में अब भी अच्छे अच्छे वक्ता दिखलाई देते हैं। भारत में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँगरेज़ी शिक्षा के प्रचार के साथ साथ पुनः इस विद्या का प्रचार होने लगा है। ब्राह्म-समाज के संस्थापक और प्रवर्त्तक बाबू केशवचन्द्र सेन अँगरेज़ी भाषा में बहुत अच्छा व्याख्यान देते थे, यहाँ तक कि यूरोप तथा अमेरिका के बड़े बड़े विद्वानों ने आपकी वक्तृता की प्रशंसा की थी। मिस्टर डब्ल्यू० सी० बनर्जी, मि० रामस्वामी मुडालियर तथा मिस्टर लालमोहन घोष भी अच्छे वक्ता हो गये हैं। आजकल भी श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और श्रीयुत गोपालकृष्ण गोखले आदि कई अच्छे वक्ता भारत में मौजूद हैं। मिस्टर दादा भाई नौरोजी ने अपने व्याख्यानों से विलायत वालों को कई बार चकित कर दिया है। इसी प्रकार कई ऐसे भारतवासियों का नाम लिया जा सकता है जो अँगरेज़ी भाषा में बहुत अच्छी वक्तृता दे सकते हैं। जनवरी सन् १८९९ में डी० स्काट् नाम के एक विदेशी पादरी ने लाहौर के "ट्रिब्यून" में एक पत्र प्रकाशित कराया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि भारतीय कांगरेस में मैंने कई भारत-वासियों को अँगरेज़ी भाषा में ऐसी अच्छी वक्तृता देते सुना है, जैसी वक्तृता मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

दुःख है कि हमारे देश में हिन्दी भाषा में वक्तृता देनेवाले लोगों का नितान्त अभाव है। हमारे कहने का यह तात्पर्य्य नहीं है कि हिन्दी जगत् में कोई वक्ता ही नहीं है; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि आज कल के शिक्षित विद्वान् हिन्दी बोलने या लिखने में अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। तो भी अब धीरे धीरे लोगों के ये भाव दूर हो चले हैं और उनकी रुचि हिन्दी की ओर होती जा रही है। हिन्दी-जगत् में भी दो चार अच्छे वक्ता हैं पर अभी हमें बहुत से अच्छे अच्छे वक्ताओं की बड़ी आवश्यकता है। इस स्थान पर हम कुछ ऐसे उपायों का वर्णन करना चाहते हैं जिनके अवलम्बन से लोगों को इस विद्या के उपार्जन में सहायता मिले।

प्रायः हमारे देश के नवयुवकों की इच्छा हुआ करती है कि वे सर्वसाधारण में अच्छी वक्तृता देने के योग्य बन सकें। लेकिन उनके मार्ग में सब से बड़ी रुकावट लज्जा होती है। जिन लोगों को पहले पहल सर्वसाधारण में कुछ बोलने का अवसर प्राप्त होता है, वे यदि निःसंकोच भाव से कुछ कहने के लिये खड़े भी हो जायँ तो श्रोताओं का उन पर इतना आतंक पड़ता है कि वे घबरा जाते हैं और इसीलिये उनके विचार भी खंडित और क्रमविहीन हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सर्वसाधारण पर उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वक्ता का सारा परिश्रम नष्ट हो जाता है और उलटे उसे स[ब] लोगों के सामने लज्जित होना पड़ता है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि जब लोग पहले पहल कि[सी] सभा-समाज में वक्तृता देने के लिए खड़े होते हैं वे इतने लज्जित या भयभीत हो जाते हैं कि क[ठि]नता से दो चार वाक्य बोलने के योग्य होते हैं। प[र] तो वे काँपने लगते हैं और फिर घबराहट के का[रण] उनकी ज़बान लड़बड़ाने लगती है और अन्त में पसीने में तर होकर बैठ जाते हैं। उस समय उ[न्हें] यह भी नहीं मालूम होता कि घबराहट में उनके मुँ[ह] से क्या क्या निकल गया। इस दोष को दूर क[रने] का सबसे अच्छा उपाय यह है कि नवयुवक छोटी छोटी सभाएँ बनायें और वहाँ जाकर पर[स्पर] अपने विचार प्रकट किया करें। यदि प्रारम्भि[क] अवस्था में ही युवक ऐसी सभाओं में जाया करते तो फिर आगे चल कर वे बड़ी बड़ी सभाओं में बोलने के योग्य हो जाते हैं। लेकिन एक विद्वान[् का] कथन है कि यदि ऐसी सभाओं में केवल बालक [और] युवा ही सम्मिलित होंगे तो उनकी भूलों का [सुधा]रना कठिन हो जायगा। इसलिए ऐसी सभाओं [के] लिए किसी योग्य सभापति की बहुत आवश्य[कता] हुआ करती है। जिन लोगों को बाल्यावस्था में [ऐसी] सभाओं में योग देने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ [हो वे] बड़े होने पर भी उनसे लाभ नहीं उठा सकते हैं। कभी इस प्रकार की घबराहट बड़े बड़े विद्वानों को हुआ करती है। अर्ल आफ़ डरबी वक्तृता [के] समय प्रायः घबरा जाया करते थे। एक बार [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत में एक लार्ड मेयर की दावत में एक विद्वान् लार्ड को कुछ बोलना पड़ा था। उस अवसर पर आध घण्टे में उन्हें दो बार सोचने के लिये हाल के बाहर जाना पड़ा था।

कुछ लोगों में यह दोष होता है कि वे एक स्थान पर तो बहुत ही बेधड़क होकर बोलते हैं, लेकिन किसी नये स्थान पर उनसे कुछ भी बोला नहीं जाता। लार्ड एल्डन ने एक बार कहा था कि यद्यपि पारलीमेण्ट में मेरी वक्तृता बहुत ही अच्छी होती है लेकिन गोल्डस्मिथ के भोज के समय मेरा शरीर काँपने लगता है। मिस्टर गार्डन ने एक बार लार्ड जान रसल के बारे में कहा था कि हाउस आफ़ कामन्स में तो मैं उनसे सहम जाता हूँ, लेकिन यदि वे किसी और स्थान पर हों तो मैं उनकी ज़रा भी परवा नहीं करता। कोनल नामक एक प्रसिद्ध वक्ता जब पहले पहल पारलीमेण्ट में गया तो वह लोगों पर आक्षेप करने के सिवा और कुछ भी नहीं जानता था। लेकिन बाद में वह ऐसा योग्य वक्ता बन गया कि चाहे वह पारलीमेण्ट में विद्वानों के सामने या देहातों में अशिक्षितों के सामने अथवा न्यायालय में जजों के सामने हो, उसका भाषण सभी स्थानों पर विलक्षण प्रभाव डालता था।

जो लोग यह चाहते हों कि वे साधारण जन-समाज में बोलने योग्य एक अच्छे वक्ता बनें, उन्हें उचित है कि वे ध्यान-पूवक अच्छे अच्छे लेखकों की पुस्तकें पढ़ा करें। विलायती पारलीमेण्ट के मेम्बर स्वर्गीय मिस्टर जान ब्राइट का नियम था कि सदा सोने से पहले वे प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओं, लेखकों और वक्ताओं की पुस्तकें या वक्तृताएँ अवश्य पढ़ते थे। एक विद्वान् का कथन है कि—"मनुष्य की प्रकृति ... है।" अर्थात् वह दूसरों की अच्छी या बुरी बातों को बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेती है। इसलिये विद्वानों और योग्य आदमियों का ही सदा साथ करना चाहिये। अच्छी वक्तृता से यह तात्पर्य्य नहीं है कि चार अच्छे अच्छे वाक्य कण्ठ कर लिये जायँ। वक्तृता वही अच्छी होती है जिसमें उच्च विचार और ज्ञान भी सम्मिलित हो। परिमार्जित भाषा, वक्तृता का शरीर है और अच्छे विचार और विषय उसका जीवन हैं। इसलिये अध्ययन के अतिरिक्त विचार-शक्ति को भी प्रबल करना चाहिये। लोगों के केवल यह कह देने से कि—"भाषण अच्छा हुआ" यह न समझना चाहिये कि हम अच्छे वक्ता होगये। बल्कि जब लोग यह कहने लगें कि "विचार बहुत अच्छे हैं" तभी समझना चाहिये कि सफलता प्राप्त हुई। लेकिन अच्छे विचार जो कि वक्तृता के प्राण-स्वरूप हैं, केवल उत्तम साहित्य के अध्ययन करने और विद्वानों के साथ रहने से उत्पन्न होते हैं।

यदि आरम्भ में कुछ अधिक सफलता न हो तो निरुत्साह होना उचित नहीं है। ऐसे लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जन्म से ही कोई व्यक्ति किसी विषय का विद्वान् नहीं होता। कुछ लोगों की धारणा है कि डिमास्थनीज़ से बढ़ कर आज तक और कोई वक्ता नहीं हुआ और उनकी यह धारणा बहुत से अंशों में ठीक भी है। प्रारम्भिक अवस्था में डिमास्थनीज़ के भाषण में भी बहुत दोष हुआ करते थे। वक्तृता देते समय वह हकलाता था और बहुत ही भद्दे पन से अपने हाथों तथा कानों को हिलाता था। लेकिन एक उत्तम वक्ता बनने की उसकी प्रबल इच्छा थी। इसलिये उसने अपने आप को एक ऐसी कोठरी में बन्द किया जिसमें चारों ओर तेज़ छूरियाँ लगी हुई थीं। ये छूरियाँ उसने इसलिये लगाई थीं जिसमें उसका शरीर व्यर्थ इधर उधर हिलने न पावे। उसने यह भी प्रण कर लिया था कि जब तक मुझे भली भाँति भाषण करना न आ जायगा तब तक मैं इस कोठरी से बाहर न निकलूँगा। इसीलिये उसने अपनी एक ओर की मूछें भी मुड़वा ली थीं। मुँह में कंकड़ डाल कर उसने जल्दी जल्दी बोलने का अभ्यास किया और इस प्रकार उसका हकलाना भी दूर हो गया। इतने कठिन परिश्रम और अभ्यास के बाद भी जब वह बाहर निकला तो लोग उसके भाषण पर हँसते थे। लेकिन इतना होने पर भी डिमास्थनीज़ अपने विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर दृढ़ रहा और अन्त में उसने वक्तृता देने में संसार में सब से बढ़ कर प्रसिद्धि प्राप्त की।

लेकिन उक्त उदाहरणों का यह तात्पर्य्य नहीं है कि सभी लोग चेष्टा करने पर अच्छे वक्ता हो सकते हैं। अर्ल आफ़ जस्टर ने पारलीमेंट में पहले पहल खड़े होकर कहा था—"महाशयो! मैं—मैं, खड़ा होता हूँ।" मैं—मैं—मैं अपने वक्तव्य को चार भागों में विभक्त करता हूँ।" इसके उपरान्त बहुत देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—"माई लार्डस, यदि मैं फिर कभी इस हाउस में आप लोगों के सामने कुछ बोलने के लिये खड़ा होऊँ तो मैं आपको अधिकार देता हूँ कि आप लोग मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दीजियेगा।"

यह एक प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रायः एक ही विषय में दक्षता प्राप्त कर सकता है। ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जो एक से अधिक विषयों में पूर्ण विद्वान् या पारंगत हुए हों। कई बार ऐसा हुआ है कि अच्छे अच्छे लेखक बहुत ही छोटी सभाओं में भी एक अक्षर न बोल सकें। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध ग्रन्थकार एडिसन को एक बार एक सभा में बोलना पड़ा। आप ने खड़े हो कर कहा—"I conceive, I conceive, Gentlemen! I conceive." आगे एक शब्द भी मुँह से न निकला और आप चुपचाप अपने स्थान पर बैठ गये। इस पर एक लेडी ने आप के साथ बहुत अच्छी दिल्लगी की। उसने खड़े होकर कहा—"My friend, Mr. Addison, has conceived thrice, but brought forth nothing"

"ब" (शेष आगे।)

—:o:—

*अंगरेज़ी में conceive शब्द के दो अर्थ हैं, एक विचारना या समझना और दूसरा गर्भ धारण करना। इसलिये इस वाक्य का अर्थ होता है—"मेरे मित्र मि० एडिसन ने तीन बार विचार किया (अथवा गर्भ धारण किया) पर फलोत्पत्ति कुछ भी न की।"

बरसात की सैर।

(लेखक पं० लक्ष्मीशंकर द्विवेदी, मिर्ज़ापुर।)



मिर्ज़ापुर पहाड़ी ज़िला है, केवल ... का भाग भागीरथी के कुछ इस ... और कुछ उस पार समथर भूमि ... अवस्थित है। नगर गंगा जी ... दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है। विन्ध्याचल पर्वतश्रेणी नगर के दक्षिण की ओर दो ही ... से आरम्भ हो जाती है। वर्षाकाल में यहाँ का ... वायु बहुत उत्तम रहता है। नगर से थोड़ी ही ... दूर पर यहाँ बहुत से झरने हैं। ज़िले भर में "... प्रपात" (वाटरफ़ाल) भी बहुत से हैं, परन्तु अ... कांश बहुत दूर दुर्गम तथा हिंस्र जन्तुओं के ... लीला-निकेतन हैं; अतएव वहाँ के अपूर्व और प्रा... तिक विचित्रताओं से पूर्ण दृश्यों को बिरले ही ... व्यक्तियों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

नगर के समीप तीन और चार कोस की ... पर तीन बहुत बड़े जल-प्रपात हैं। इनमें से एक ... दृश्य तो बरसात में बहुत ही कम लोग देख ... हैं। नगर से आठ मील पर "टाँडे की दरी" (... फ़ाल) एक अतिशय रमणीक और बहुत बड़ा ... प्रपात है। यहाँ दो नदियाँ दो ओर से आकर ... स्थान में पर्वत से नीचे गिरती हैं। दक्षिण की ... से आने वाली नदी ने अपने गिरने का स्थान ... ढालुवाँ बना लिया है, परन्तु पश्चिम की ओर से ... वाली नदी बिलकुल सीधी लगभग दो सौ फ़ु... गहराई में गिरती है। जिस रात्रि में दक्षिण ... की ओर अच्छी वर्षा हो जाती है, उसके दूसरे ... प्रायः अधिक सैलानी लोग वहाँ पहुँच जाते हैं ... प्रपात का शब्द चार मील की दूरी तक ... तरह सुनाई देता है। जिस समय प्रचण्ड ... दोनों नदियाँ अधोमुख पतित होती हैं और ... से जल के छींटे बादल बन कर सैकड़ों फ़ुट ... उठते हैं उस समय एक अद्भुत दृश्य दिखला...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इनमें से दक्षिण दिशा वाली नदी को बाँध कर नगर में पानी पहुँचाने के लिये "वाटरवर्क्स" की ओर से कई साल से काम लगा हुआ है । सन् १९१५ ईसवी से नगर वालों को, उस अद्भुत दृश्य को अधूड़ा बना कर उसी नदी का पहाड़ी पानी दिया जायगा। इसी प्रकार नगर से लगभग ६ मील पर "वरघाट" नामक एक और बड़ा जलप्रपात है, जिसे अब हम जबलपुर के नर्मदा के जलप्रपात के आदर्श पर, विश्वकर्म्मा की कारीगरी की करतूत कह सकते हैं।

१ सितम्बर १९१३ से लेकर कई दिनों तक बादलों के दल आकाशमण्डल को घेर कर वारि-धारा से बराबर भूमि को भिगोते रहे। तीसरी तारीख़ को मैं प्रातःकाल घर में बैठा हुआ घन-घोर घटाओं की घुड़दौड़ देखता हुआ मित्रवर बाबू चन्दूलाल जी से बातें कर रहा था। सलाह ठहरी कि आज वरघाट चलना चाहिये। अस्तु, शीघ्र ही हम लोग भोजन कर और कुछ जलपानादि का सामान साथ लेकर एक्के द्वारा चल पड़े। रास्ते भर हम लोग बराबर पानी से भीगते गए। कभी-कभी वर्षा ऐसी प्रबल हो जाती कि विवश हो कर कहीं कहीं पर किसी वृक्ष के नीचे एक्का रोक देना पड़ता। हम लोग कठिनता से दो एक घंटे की राह घंटे में समाप्त कर १ बजे प्रपात पर पहुँचे। उस दिन नदी लगभग दो सौ फ़ुट की चौड़ाई में भयंकर नाद के साथ बाम्बे-मेल के चौगुने वेग में आ कर नीचे गर्त में तीन ओर से गिर रही थी। तीन ओर की जल-धाराओं के पतन के संघर्षण से अगणित जलकण एक विराट फ़ौवारे के रूप में ख़ूब ऊपर उठ रहे थे। हम लोग वर्षा काल में बहुत बार वहाँ गये हैं, परन्तु नदी और प्रपात का वैसा विशाल दृश्य कभी नहीं देखा। जिस समय हम लोग स्नान कर रहे थे उसी समय अकस्मात् अस्ताचल-गामी भगवान् भास्कर ने मेघ-माला को हटा कर दर्शन दिया। फिर क्या था, उस प्रपात से उठते हुए अतिशय ऊँचे आँधार में दो इन्द्र-धनुष उदय होगए। हम लोगों ने सुना और पढ़ा था कि जबलपुर के नर्मदा-प्रपात में इन्द्र-धनुष दिखाई देता है, और उसी समय में नर्मदा में भयानक बाढ़ आने का समाचार भी मिला था। बस उसी समय तीनों व्यक्तियों ने निश्चय कर लिया कि नर्मदा का प्रपात देखना चाहिए। घर आ कर सलाह ठहरी कि बम्बई तक चलना चाहिए और बीच में जितने प्राचीन और दर्शनीय स्थान हों उनको भी देखते चलें।

अस्तु १७ सितम्बर १९१३ को हम लोगों ने ११ बजे स्टेशन तक पहुँचाने वाले मित्रों को बिदा कर बम्बई मेल से करुई को प्रस्थान कर दिया। २ बजे मानिकपुर में मेल छोड़ना पड़ा। एकाएक वहाँ स्टेशन पर मेरे पुराने मित्र, हिन्दी भाषा के विख्यात भक्त और काशी नागरीप्रचारिणी सभा के स्थापकों में से एक श्रीयुत ठाकुर शिवकुमार सिंह जी सब-डिपुटी इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूलस करवी डिवीज़न से भेंट होगई। शोक है कि उनके भाई का देहान्त हो गया था जिससे वे छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। परन्तु उन्होंने कृपा कर के हम लोगों को पंडों से सावधान कर, ठहरने के लिये उचित प्रबन्ध कर दिया। हम लोग घर से पानी में भीगते हुए चले थे। परन्तु मानिकपुर में आकर कुछ ही घंटों के पश्चात् स्वच्छ आकाश तथा कड़ी धूप देखनी पड़ी। थोड़ी देर में झाँसी जानेवाली जी० आई० पी की गाड़ी भी आ गई, हम लोग उस पर चढ़ कर कर्वी की ओर चले। मानिकपुर से कर्वी तक एक उत्तम और विचित्र पहाड़ी दृश्य दिखाई देता है। दोनों ओर घनघोर और भयानक वन पड़ते हैं, बस्ती का दिखाई देना दुर्लभ है। कहीं कहीं पर पहाड़ को काट कर लाइन लेगये हैं और कहीं कहीं पर सैकड़ों फ़ुट गहिरे गर्त को पत्थर के ढोकों से पाट कर लाइन बिछाई गई है इसी प्रकार उस पर्वतमाला में चक्कर काटती हुई गाड़ी चली जा रही थी। दोनों ओर अनेक प्रकार के वन-वृक्ष दिखाई दे रहे थे, जो वर्षा के अभाव से मुरझा रहे थे। मानिकपुर से कर्वी के बीच में एक स्टेशन पड़ता है। यहाँ गरमी के दिनों में पीपों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर कर अन्यत्र से जल लाया जाता है। खेद है कि इस प्रान्त में प्रायः श्रावण ही से सूखा पड़ा हुआ था, नहीं तो इस राह का दृश्य बहुत ही आनन्द-दायक होता। मेरे एक मित्र का, जो समग्र भारतवर्ष का भ्रमण कर चुके हैं, कथन है कि दार्जिलिङ्ग हिमालियन रेलवे को छोड़ कर भारतवर्ष भर में मानिकपुर से झांसी तक इस जोड़ का रेलवे दृश्य कहीं नहीं है। परन्तु एक दूसरे मित्र इसी को सबसे उत्तम बताते हैं। जो कुछ हो, इस लाइन के निकालने में जी० आई० पी० रेलवे ने बहुत द्रव्य व्यय किया है। सायंकाल चार बजे के समीप हम लोग कर्वी पहुँच गए।

कर्वी—सीतापुर वा चित्रकोट* ।

कर्वी में केवल एकही पक्का है, पर वह भी ठीक नहीं। कर्वी से सीतापुर बैलगाड़ी में आना जाना पड़ता है। गाड़ी बहुत हलकी, छोटी और तंग होती है। दो बैल जुतते हैं। इस प्रकार की गाड़ी मैंने जगदीश पुरी में देखी थी। कर्वी के असिस्टेण्ट स्टेशन-मास्टर मेरे सहगामी बाबू चन्दूलालजी के पुराने सहपाठी निकले। उन्होंने झटपट एक बैलगाड़ी ठीक कर दी, उसी पर हम लोग अपना अपना सब सामान रख कर चले। कर्वी एक अच्छी बस्ती है। श्रीमन्त नारायण राव पेशवा का बनवाया हुआ एक बड़ा मकान और तालाब है, जिसमें इस समय थाना, तहसील, स्कूल और ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के कार्यालय हैं। बन्दर यहाँ बहुत हैं। पेशवा का प्रासाद देखते हुए पयस्विनी नदी पार कर, कुछ दूर पक्की फिर बहुत ही भ्रष्ट ऊँची नीची कच्ची सड़क में उलटते पलटते सूर्यास्त होते होते सीतापुर हम लोग पहुँच गये। लगभग तीन मील कच्ची सड़क है और लाखों यात्री प्रतिवर्ष आते जाते हैं, परन्तु खेद है कि पी० डब्लू० डी० या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड उसे पक्की नहीं बनवाती। उस कच्ची सड़क की मरम्मत भी नहीं कराई जाती। हिन्दुओं का तीर्थस्थान है न! इस निर्जीव जाति से ऐसे कार्यों में व्यय करने के लिये धन कहां! देवालय व्यर्थ बनवाने या पंडित को कुकर्म करने के लिए चाहे कितना ही द्रव्य दे देने के लिये सब है!!

सायंकाल के पश्चात् हम लोगों ने चित्रकूट की छोटी परिक्रमा कर डाली। इस परिक्रमा में बहुत से मन्दिर और शिवालय हैं; जिनमें बुंदेलखंड के महाराजों के बनवाये मुख्य हैं। भगवान् रामचन्द्र की "पर्णकुटी" भी इसी परिक्रमा में है। यहां अब छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास जी की कुटी वाला स्थान टूटा पड़ा है, उनके नाम पर नदी किनारे एक साधु एक छोटा सा मन्दिर बनवा कर उसमें गोस्वामी जी की मूर्ति स्थापित कर, अपनी जीविका चला रहा है। मृदंग जी के नाम पर जिनसे रामचन्द्रजी ने चौमासा बिताने के लिए भूमि माँग पर पर्णकुटी बनाई थी, मन्दिर है; जिसमें शिवलिङ्ग स्थापित है। यह परिक्रमा चारों ओर पक्की बनी हुई है और नदी के घाट से आरम्भ होती है। रात सीतापुर के प्रधानाध्यापक एक महाशय के यहाँ बिता कर दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग "कामतानाथ" की परिक्रमा के लिये चले।

कामतानाथ ।

पाठशाला से एक मील से कुछ ऊपर कामतानाथ की पहाड़ी है। रास्ते में कई एक बड़े बड़े और मन्दिर मिलते हैं। साधुओं की दूकानें बहुत हैं। कामतानाथ एक छोटा सा पहाड़ी टुकड़ा है, जिसे लोग शालग्राम की मूर्ति और उसकी परिक्रमा करते हैं। यह परिक्रमा लगभग चार मील की और पक्की बनी हुई है। बराबर मन्दिर मठ और शिवालय बने हुए हैं, अधिकतर बुंदेलखण्ड के राजाओं के और कर महाराज अमानसिंह के बनवाए हुये हैं। राजा बड़ा ही धर्मात्मा और दानी हो गया, मनुष्यों की कौन कहे वह पशु पक्षियों तक के की व्यवस्था करता था। हमारे यहाँ होली

---

* चित्रकूट की एक बस्ती का नाम "सीतापुर" है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग नटों की नक़ल करते हैं. वे गाते हैं "कहाँ गए राजा अमान हो, रोवें बन की चिरैय्या।" ये प्राचीन मन्दिर, टूटे फूटे और जीर्ण दशा में हैं. परन्तु महन्तों के मन्दिर और मठ अच्छी अवस्था में हैं और उनमें गावँ तथा जागीरें लगी हुई हैं। पूर्व और दक्षिण की ओर एक मन्दिर में पहाड़ का एक कोना निकला हुआ है, जिसे कामनानाथ का मुखारविन्द कहते हैं। इस पहाड़ी के पश्चिम "खोई" नाम की एक बस्ती है, इसमें एक पाठशाला भी है और यहाँ का खोआ बहुत उत्तम होता है। इस परिक्रमा में एक चैापाड़े के महन्त हैं। इनके सुविशाल मन्दिर के साथ एक बाग़ और एक पक्की और उत्तम बावली है। महन्त भी सच्चे साधु हैं।

इस पहाड़ी का बरसाती पानी जहाँ जहाँ से बहता है वहाँ वहाँ एक एक पत्थर पर एक एक तीर्थ का नाम खोद कर लगाया हुआ है। सबसे विशेषता इस पहाड़ी में यह है कि काँटेदार वृक्ष इस पर नहीं उगते।

इस परिक्रमा को पूर्ण कर, हम लोगों ने डेरे पर आकर भोजन बनाया और खा पीकर आराम किया। फिर ३ बज जाने पर एक पथप्रदर्शक को साथ लेकर "हनुमानधारा" देखने के लिये प्रस्थान किया।

हनुमानधारा।

हनुमानधारा सीतापुर से तीन मील से कुछ ऊपर है। यहाँ भूमि से ३६० सीढ़ियां पर्वत पर चढ़कर हनुमानधारा पर पहुँचना होता है। पहाड़ के नीचे रस्ते में दोनों ओर बबूल के वृक्षों में रंग बिरंगे कपड़ों के अगणित टुकड़े लगे हुए थे। पूछने पर किसी ने सन्तोषदायक उत्तर न दिया। परन्तु एक महाशय ने कहा कि "भगवान् रामचन्द्रजी राह भूलने के भय से, मार्ग के वृक्षों में अपना बल्कल फाड़ फाड़ कर अटकाते जाते थे, वही प्राचीन परिपाटी यात्रियों द्वारा, विशेष कर स्त्रियों द्वारा, अब तक चली आ रही है।" यहाँ पर्वत के नीचे एक बहुत बड़ी पक्की बावली बनी है। हनुमानधारा में दो स्थानों से जल गिर रहा था, उसमें प्रधान धारा के नीचे एक ढाल् चट्टान में हनुमानजी की मूर्ति बनाई हुई है। मूर्ति की बाईं भुजा पर जलधारा गिरती है। फिर वही जल कई एक बड़े बड़े कुण्डों में होता हुआ पर्वत के अज्ञात दरारों में गुप्त हो जाता है। यहाँ के पुजारी वा महन्त के एजेण्ट पूरे कलियुगी आचार्य्य हैं। जिस समय हम लोग वहाँ पहुँचे आप एक दासी से धर्म्मोलाप कर रहे थे। इसी प्रकार चित्रकूट भर में अगणित महन्तों में अधिकांश नाम-मात्र के साधु और पूरे डबल गृहस्थ हैं। उनके मन्दिर में एक दो दासियाँ वर्त्तमान हैं।

हनुमानधारा से कुछ ऊपर चढ़ कर एक अत्यन्त साधारण मन्दिर में भगवती जानकी जी की मूर्त्ति स्थापित है। इसे लोग सीताजी की रसोई का स्थान कहते हैं। पूछने पर प्रगट हुआ कि इस पहाड़ पर कुछ दूर पर दो बड़े तालाब भी हैं। परन्तु अँधेरा हो जाने से हम लोग शीघ्रता-पूर्वक लौट पड़े और डेरे पर पहुँचकर भोजन इत्यादि कर सो रहे।

अनुसूयाजी।

तीसरे दिन प्रातःकाल एक राह दिखानेवाले मजूर के सिर पर बिस्तर और भोजन का सामान रख कर हम लोग चले। यह चक्कर दो दिन और एक रात का सोच लिया गया।

प्रमोदवन—चित्रकूट से एक मील पर पहले प्रमोदवन पड़ा। प्रमोदवन को महाराज रघुराजसिंह बाँधवेश ने बनवाया था। यह बहुत बड़ा बाग़ परन्तु बेमरम्मत दशा में है। चारों ओर पक्की और ऊँची चहारदीवारी है, जिसमें भीतर की ओर एक सी बराबर कोठरियाँ बनी हुई हैं। पूरब पश्चिम में दो प्रकाण्ड फाटक और बीच में दो विशाल मन्दिर हैं। इनमें भी कई एक परिक्रमाएँ नीचे ऊपर बनी हैं। इस प्रकार सात परिक्रमाओं के बीच में "लक्ष्मी-नारायण" की भव्य और दर्शनीय मूर्त्ति महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुराजसिंह जी की अनन्य भक्ति की द्योनक विद्यमान है। प्रमोदवन के पूर्व की ओर पास ही से पयस्विनी नदी गई है। इससे यह स्थान अतिशय रमणीक है। यहाँ २२ आचारियों के लिये नित्य भोजन तथा आगन्तुकों के लिये सदावर्त मिलता है। आचारी यहाँ के सज्जन विद्वान् और निर्लोभी हैं। चित्रकूट भर में यह सबसे उत्तम और बेजोड़ स्थान है तथा इसका "प्रमोदवन" नाम सर्वथा सार्थक है। इसके व्यय-निर्वाहार्थ महाराज ने कुछ जागीर दे दी थी और प्रबन्ध उनके आचार्य्य के अधीन अब तक होता आ रहा है। वर्त्तमान महाराज का ध्यान इसकी ओर तनिक भी नहीं है।

जानकीकुण्ड—प्रमोदवन से आगे एक मील पर जानकीकुण्ड है। पयस्विनी नदी के बीच में पत्थर की चट्टानें पड़ गई हैं, जहाँ जल चक्कर देकर कुछ वेग से बहता है। उसी का नाम लोगों ने जानकी-कुण्ड रख छोड़ा है। ऊपर दो तीन साधुओं के घर हैं। परन्तु लौटने पर मैंने एक महाशय से सुना कि वहाँ नदी के करारों में कई एक गुफाएँ हैं, जहाँ अच्छे महात्माओं का तपस्थान है।

फटिकशिला—जानकीकुण्ड से दो मील आगे "फटिकशिला" है। दो बड़ी समथर और ऊँची चट्टानें नदी के किनारे हैं, इसी का नाम फटिकशिला है। पत्थर भी साफ़ और कुछ श्वेत है। इस समय मुझे "फटिकशिला बैठे दोउ भाई" गोस्वाजी की यह चौपाई याद आ गई। यहीं पर जयन्त, जनकनन्दिनी के चरण में चोंच मार कर सामने के पर्वत शृंग पर जा बैठा था, जहाँ रामचन्द्रजी के बाण ने उसकी एक आँख फोड़ दी थी। यह स्थान अत्यन्त रमणीक और चारों ओर पहाड़ तथा घनघोर जंगल से घिरा हुआ है। यहाँ स्नान और जलपान कर ९ बजे हम लोग अनसूयाजी के लिये चले। अब इस अटपटी राह में भगवान् भास्कर की प्रखर किरणों ने चलना कठिन कर दिया। बीच में बाबूपुर ग्राम में दस मिनिट विश्राम कर फिर आगे चले। यहाँ से थोड़ी दूर आगे पथ पहाड़ के एक दर्रे में से होकर गया। दोनों ओर बड़े और गभ्भिन वृक्ष तथा हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण भयानक जंगल है जिसमें केवल एक पगडंडी मात्र है। कोई बाहरी मनुष्य इस पगडंडी से अकेले जाने का साहस कदापि नहीं कर सकता। जंगल के बीच में अनसूयाजी का पुराना टूटा फूटा फाटक पड़ता है। प्रातःकाल से बराबर चलते चलते उस कड़ी धूप में कई एक नाले और एक नदी नाँघ कर ... बजे हम लोग अनसूयाजी पहुँचे। यहाँ ... से ऊपर अनसूयाजी, अत्रिमुनि तथा दत्तात्रेय के तीन छोटे छोटे मन्दिर हैं। इनसे सटा हुआ "सिद्ध बाबा" का समाधि स्थान है। यहाँ सिद्ध बाबा अच्छे महात्मा हो गए हैं। उनकी समाधि के नीचे एक पक्की और बड़ी धर्म्मशाला है। यहाँ पहाड़ बिलकुल सीधा और वृक्षशून्य है, जिसमें मधुमक्खियों के बहुत से छत्ते लगे हुए हैं। उनके डर से यहाँ दिन में आग नहीं जलाई जाती।

पयस्विनी नदी का उद्गम स्थान अनसूयाजी मानी जाती हैं। लोग उन्हीं के तप से इस नदी की उत्पत्ति बताते हैं। परन्तु नदी में जल और आगे दिखाई देता था। अनसूयाजी और सिद्ध बाबा के स्थान के नीचे से कई सोतों द्वारा जल नदी में जा रहा था। वहाँ के पुजारी ने बताया कि गर्मी के दिनों में आगे पानी सूख जाता है और केवल अनसुयाजी के नीचे से नदी में जल रह जाता है। अतएव पयस्विनी नदी को अनसूयाजी ने अपने तपोबल वा पातिव्रत-बल से बहाया था और अत्रि मुनि के दर्शनार्थ भगवान् राचन्द्रजी उनकी तपोभूमि में आए थे। यहीं पर अनसूयाजी ने सीताजी को पातिव्रत-धर्म का उपदेश दिया था। अनसूयाजी और सिद्ध बाबा के नीचे नदी के किनारे पर पड़ी हुई बड़ी बड़ी शिलाओं पर हनुमान आदि की बहुत सी मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। नदी के दोनों पार्श्व का जंगल बहुत ही सुहावना है। यदि किसी प्रकार इस पहाड़ के ऊपर ... जाता तो इस स्थान का अद्भुत दृश्य पूरा ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता। परन्तु हम लोग बहुत थके और भूख से व्याकुल हो रहे थे। अस्तु, कुछ दूर आगे जाकर नदी के किनारे एक वट-वृक्ष के नीचे हम लोगों ने भोजन बनाया। यहाँ भोजन बनाने और खाने में दो बड़े बन्दरों ने बहुत तंग किया। किसी प्रकार खा पीकर ४ बजे सायंकाल को वहाँ से हम चले। अनसूया जी बहुत रमणीक, अतिशय उत्तम और एक अलौकिक स्थान है। यद्यपि यहाँ तक पहुँचने में कष्ट भी बहुत है परन्तु चित्रकूट आने वालों को इस अपूर्व स्थान का अवलोकन अवश्य करना चाहिये।

अनसूया जी से गुप्त गोदावरी की गुफा लोग चार कोस बताते थे, किन्तु मेरी समझ में ६ कोस से कम नहीं है। चार बजे दिन के चले हुए पथरा-ग्राम तक पहुँचते २ बिलकुल अँधेरा हो गया। भला जंगल पार कर एक ग्राम में तो पहुँच गये। अस्तु, उस ग्राम में एक ब्राह्मण देवता के द्वार के चबूतरे पर उनकी आज्ञा से रात काटने के लिये बिस्तर बिछाया। दैव-दया से गाँव में दूध मिल गया। उसी को थोड़ा थोड़ा पीकर हम लोग सो रहे। साढ़े चार बजे प्रातःकाल अँधेरे ही में वहाँ से कूच कर किसी प्रकार साढ़े आठ बजे हम लोग गुप्त-गोदावरी की गुफा के द्वार पर पहुँचे।

गुप्त-गोदावरी की गुफा।

यह स्थान भी पहरा के जागीरदार के अधिकार में है। किन्तु कर्वी के एक महन्त के एजेण्ट पैसा वसूल करने के लिये यहाँ भी रहते हैं। चमगादड़ों की यहाँ अत्यन्त अधिकता है, जो वहाँ के छोटे छोटे मन्दिरों, गुफा और पर्वत की दरारों में भरे हुए हैं। वहाँ पहुँचने पर इनकी विष्ठा की भयंकर दुर्गन्ध से जी घबड़ाने लगा। हम लोग साथ में एक बक्स दिया-सलाई और रास्ते के एक ग्राम से तेल लेते गये थे कि मसाल जला कर गुफा को भली भाँति देखेंगे। परन्तु वहाँ के चतुर और धूर्त पुजारी ने कुल तेल रख लिया और केवल एक बड़ा दीपक जला कर हम लोगों को गुफा में ले चला। गुफा पहाड़ के मध्य-भाग में है। गुफा के द्वार तक पहुँचने का मार्ग उस बातूनी पुजारी ने ऐसा बना रक्खा है कि अन-जान मनुष्य का वहाँ तक पहुँचना भी कठिन है। जहाँ गुफा के भीतर जाने का मार्ग है वहाँ पहाड़ में दरवाज़े की भाँति छेद हो गया है। द्वार की ऊँचाई अच्छी है, परन्तु चौड़ाई एक मनुष्य के अच्छी तरह जाने भर की है। हम लोगों के भीतर पहुँचते ही अगणित चमगादड़ों के उड़ने के शब्द से गुफा गूँज उठी। यहाँ भी इनकी विष्ठा की असह्य दुर्गन्ध का सामना करना पड़ा। भारतवर्ष भर में प्रकृति देवी की बनाई हुई इसके बराबरी की कोई गुफा नहीं है। इस गुफा को हम प्रकृति की आश्चर्य्यमयी अलौकिक विचित्रता कह सकते हैं। गुफा खूब चौड़ी है और लम्बाई का पता तो आज तक किसी ने नहीं पाया। दाहिनी ओर से हम लोग उस ऊँची नीची और पत्थर के ढोकों से पूर्ण भूमि में सँभलते हुए चले। पहले एक बहुत बड़ा और गोलाकार स्थान मिला, जिसमें लग भग एक सहस्र मनुष्य समा सकते हैं। इसके आगे थोड़ी दूर और जाने पर एक झरना मिला। कुंड में पानी के गिरने का कलकल शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा था। हम लोगों ने उस दीपक के प्रकाश में वहीं स्नान किया। इसी झरने का नाम "गुप्त-गोदावरी है"। अब पुजारी वा पंडा वहाँ रक्खी हुई मूर्त्तियों पर पैसा चढ़ाने के लिये हठ करने लगा। हम लोग अपना अपना कमीज़, वेस्टकोट और कोट सब बाहर छोड़ आये थे। अतएव उनसे विनय करनी पड़ी कि महाराज बाहर चल कर सब एक साथ चढ़ा देंगे। फिर और आगे कुछ दूर तक पुजारी हम लोगों को प्रार्थना करने पर ले गया, परन्तु अन्धकार की अधिकता, ऊँची नीची और बड़े बड़े ढोकों से पूर्ण भूमि तथा आगे वट-वृक्ष की जड़ वा कंघी के दाँतों की भाँति ऊपर लटकती हुई चट्टानों से सिर फूट जाने के भय से हम लोग लौट पड़े। आगे रास्ता तंग और छत की ऊँचाई भी कम होती जाती थी। लगभग एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़र्लांग के हम लोग गुफा में चले गये थे, यदि प्रकाश का प्रबन्ध यथेष्ट होता तो ग्रैार भी कुछ ग्रागे जाने का साहस पड़ता पर वहाँ साँप ग्रधिक हैं यह भी पहले से सुन रक्खा था तथा ग्रागे मार्ग भी जल से पूरित है ग्रतएव ग्रब हम लोग बाईं ग्रोर से लैाटे। एक स्थान पर ऊपर छत में पहाड़ ठीक शिवालय के गुम्बज की भाँति बड़ी सफ़ाई के साथ कट गया है जैसे किसी ने चाकू से छील कर बनाया हो। शिवालय में ऊपर घंटे के लिये साँकल जहाँ लटकाई जाती है, ठीक उसी स्थान पर बीचो बीच घंटे के ग्राकार का एक बड़ा सा पत्थर ऊपर एक धरन की भाँति पड़े हुए पत्थर के सहारे लटक रहा था। घंटे वाला पत्थर किसी बड़े बाँस से हिलाने पर हिलता है। खेद है कि हम लोग ग्रपने साथ कोई बड़ी लकड़ी नहीं ले गये थे। इसका नाम "खटखटा चोर" लोगों ने रख छोड़ा है ग्रैार कहते हैं कि "एक चोर ने सीता जी के ग्रलङ्कार चुरा कर इसी गुफा में छिपाये थे, उस चोर को लक्ष्मण जी ने बाण से मार कर यहाँ लटका दिया है"। श्रीयुत ठाकुर शिवकुमार सिंहजी कहते थे कि "मैं इस गुफा में ग्राठ मशाल ग्रैार हरीकेन लेकर दे फ़रलाँग तक गया हूँ।" उन्हीं के द्वारा यह भी विदित हुग्रा कि इस प्रान्त के स्कूल-इंसपेक्टर श्रीयुत पण्डित दीनदयालु जी तिवारी उनसे बहुत ग्रधिक दूर तक गये थे। यदि यह गुफा साफ़ कराई जाय तो एक ग्रत्यन्त ग्रद्‌भुत ग्रैार दर्शनीय स्थान हो जाय। गुफा के भीतर वाले झरने का जल बहुत ही मीठा ग्रैार साफ़ है *। खेद है कि चित्रकूट से बहुत दूर ग्रैार ठीक तथा सुगम राह न होने से केवल बिरले ग्रन्धभक्त यहाँ तक ग्राते ग्रैार उस जल में स्नान तथा उसका पान कर चले जाते हैं, उनमें से दैवात् ही किसी का ध्यान प्रकृति की इस विचित्रता पर पड़ता होगा। चित्रकूट से लेकर यह सब स्थान पहरा के रावबहादुर की जागीर है, ग्रैार राव साहिब बुँदेलखंड एजेंसी के ग्र[illegible] हैं, किन्तु खेद है कि उनका ध्यान भी इसकी तनिक नहीं है।

बाहर से देखने में लगभग सैा गज़ की चै[illegible] तक पहाड़ की कुल चट्टानें फटी हुई हैं। मेरी स[illegible] में यहाँ कई वार वज्रपात हुग्रा है, जिससे स[illegible] चट्टानें चटक गईं ग्रैार यह गुफा बन गई। [illegible] यहाँ का पत्थर भी कुछ नरम है। बाहर भी प[illegible] के भीतर एक बड़ी कोठरी की भाँति कुण्ड है। कुण्ड में से वर्षा का जल नीचे बने हुए एक के [illegible] दूसरे कुण्डों में से होता हुग्रा नीचे चला जाता [illegible] बाहर गुफा की बाईं ग्रोर वर्षा में एक छोटा [illegible] प्रपात बन जाता है। ग्रस्तु बाहर का भी दृश्य ग्र[illegible] शय रमणीक ग्रैार मनोरम है।

साढ़े दस बजे गुप्त-गोदावरी से डेढ़ मील [illegible] कर "पहरा" की राजधानी चैाबेपुर में ग्राकर [illegible] हलवाई से पूरी बनवाकर हम लोगों ने पेट [illegible] की। उस समय ग्रवर्षण से जेठ बैशाख की भ[illegible] लू चलने लगी तथा हम लोगों के पैरों में चलते च[illegible] छाले पड़ गए थे। ग्रस्तु, कुछ घंटों के लिये एक [illegible] के यहाँ विश्राम करना पड़ा।

चैाबेपुर ग्रच्छी बस्ती है। यहाँ के जागीर[illegible] राव बहादुर चैाबे रामचन्द्र जी महाराज, ग्रँग[illegible] फ़ारसी के विद्वान् तथा हिन्दी भाषा के कवि [illegible] ग्रापकी बनाई हुई "दधिलीला, माखनलीला" [illegible] भाँति कई एक लीलाएँ मैंने वहाँ एक मनुष्य के [illegible] देखीं। कुछ लड़कों को नैाकर रख कर राव स[illegible] प्रायः रास कराते ग्रैार ग्रपनी कविता का ग्रा[illegible] ग्रनुभव करते हैं। खेद है कि उधर किसी गाँ[illegible] एक भी पाठशाला नहीं है। वहाँ एक मनुष्य [illegible] दैवात् भेंट हो गई जो पहिले मिरज़ापुर में रह [illegible] था। उसके दो लड़के ग्राठ ग्रैार दस बरस के [illegible] खेल रहे थे। मैंने कहा 'तुम इनको पढ़ाते क्यों न[illegible] उसने शोक के साथ उत्तर दिया, "महाराज

---

* वास्तव में वहाँ पर दो सोते हैं। एक ठंडे जल का ग्रैार दूसरा गरम जल का। परन्तु लोभी ग्रैार धूर्त पुजारी ने उस समय हम लोगों को नहीं बतलाया। वहाँ वाले उन सोतों को "जूड़ी, तातीं" कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें, यहाँ तथा आस पास के किसी गाँव में कोई पाठशाला नहीं है, कैसे पढ़ावें। यदि यह इलाक़ा सरकार अँगरेज़ बहादुर का होता तो यहाँ अवश्य पाठशाला होती और आप मेरे लड़कों को निरक्षर न देखते।" वह व्यक्ति चार रुपए मासिक पर नौकर है और उसे चार प्राणियों का पालन करना पड़ता है। चौबेपुर में राव साहेब के पूर्वजों का बनवाया हुआ एक शिवालय और एक पक्का और अच्छा तालाब है। यहाँ से ढाई बजे चल कर किसी प्रकार उठते बैठते ७ बजे रात को हम लोग सीतापुर पहुँचे।

सीतापुर से दो तीन कोस पर "देवाङ्गना" और "कोटितीर्थ" दो और अच्छे स्थान हैं, जहाँ एक एक झरने हैं। वहाँ से ७ कोस पर "भरत कूप" है, जहाँ सब तीर्थों का जल भरत जी ने उस कूप में छोड़ा था। और इससे भी अधिक दूर पर महर्षि वाल्मीकि जी का आश्रम है। परन्तु हम लोगों ने चित्रकूट की उष्णता और चलने की थकावट से घबड़ा कर यहाँ से दूसरे ही दिन चलने का निश्चय कर लिया। मथुरा, अयोध्या की भाँति चित्रकूट में भी प्रत्येक स्थानों में बन्दरों की अत्यन्त अधिकाता है। इनके भय से सीतापुर के मकानों के खपरैल काँटों से ढाँके जाते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल सीतापुर से पयान कर कर्वी में वहाँ का उजाड़ दुर्ग और गनेशबाग़ देखते हुए जबलपुर चलने का विचार स्थिर हुआ। परन्तु प्रातःकाल हमारे एक सहगामी ने इतना विलम्ब किया कि हमारी उपर्युक्त अभिलाषा पूर्ण न होने पाई। "गनेश बाग़" और एक अत्यन्त सुन्दर बावली तथा मन्दिर सन् १८३७ ईसवी में विनायक राव पेशवा ने बनाया था। यहाँ के पहिले के राजाओं का दुर्ग बिलकुल टूटा फूटा और उजाड़ है। अस्तु, यहाँ से साढ़े ग्यारह बजे की गाड़ी में चल कर फिर मानिकपुर पहुँचे और वहाँ से ९ बजे रात की गाड़ी से दूसरे दिन प्रातःकाल जबलपुर पहुँचे।

जबलपूर

२२ सितम्बर १९१३ को प्रातःकाल हम लोग जबलपुर पहुँचे। स्टेशन से थोड़ी ही दूर पर राजा सेठ गोकुलदासजी की एक सुन्दर और दो खण्ड की पक्की धर्म्मशाला है। धर्म्मशाला का प्रबन्ध हेल्थ आफ़िसर के निरीक्षण में एक मुसलमान सज्जन के अधीन है। हर कमरे में १ लोहे का पलँग, १ टेबुल और दो तीन कुर्सियाँ हैं। रसोई बनाने के लिये बर्तन और लोहे का चूल्हा भी मिलता है तथा धर्म्मशाला ही में आटे, दाल चावल आदि की दूकान भी है। तीन दिन तक यहाँ लोग ठहर सकते हैं, अधिक दिनों के लिये विशेष आज्ञा लेनी होती है। इस धर्म्मशाला में जहाँ सब बातों का सुख है वहाँ एक बात का घोर कष्ट भी है। शौचालय कुल चार हैं, दो पुरुषों के लिये और दो स्त्रियों के लिय। प्रातः और सायंकाल एक जाते हैं तो चार लोटा लिये किवाड़ खट खटाते हैं। यहाँ पथिकों का आवागमन अधिक रहता है अतएव हेल्थ आफ़िसर को उचित है कि कम से कम चार शौचालय और बनवा दें।

जबलपुर में हम लोगों को नर्मदा का जल-प्रपात देखना था, परन्तु उस दिन हम लोग नगर-भ्रमण करना निश्चित कर एक ताँगा दिन भर के लिये भाड़े करके चले। जबलपुर की सड़कें अच्छी हैं। नगर का बाहरी भाग प्रयाग का सा प्रतीत होता है, किन्तु भीतरी भाग वैसा नहीं है। मकान बहुत ही साधारण हैं। दो या तीन खण्ड के दोही चार अच्छे देखने में आये। सबसे बड़ा और अच्छा प्रासाद राजा सेठ गोकुलदासजी का एक बड़े सरोवर के किनारे बना हुआ है। भवन और मन्दिर में पत्थर की कारीगरी तथा जड़ाऊ काम देखने योग्य है। इसे देख कर तथा पास ले कर हम लोग उनके पुतलीघर में गये। काटन मिल की दशा अब अच्छी है, किन्तु अब भी उस पर ऋण अधिक है। यहाँ से हम लोग उनका काँच का कार्यालय (ग्लास फ़ैक्टरी) देखने गये, उस समय केवल साधारण चूड़ियाँ काटी और चिकनी की जाती थीं। भट्ठी टूट गई थी। वहाँ पूछने पर प्रगट हुआ कि शीघ्रही इसकी मरम्मत होनेवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परन्तु वास्तव में बात यह है कि सेठजी को इस कार्य में बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी है, किन्तु अब भी वे हतोत्साह नहीं हुए हैं। मैनेजर एक जर्मन है। इस समय मुझे इस बात की चिन्ता उत्पन्न हो गई कि क्या भारत के भाग्य में काँच के कार्य्य में कहीं भी कृतकार्य्य होना नहीं बदा है? यहाँ से हम लोग "गोविन्दभवन" देखने गये। गोविन्द-भवन राय-बहादुर सेठ जीवनदास के चिरंजीव सेठ गोविन्ददास जी के नाम पर बनाया गया है। सेठजी ने भवन और उसकी वाटिका को प्रचुर द्रव्य व्यय कर के प्रत्येक प्रकार से विभूषित किया है, और काम अब भी बराबर लगा हुआ है। प्रत्येक स्थान में बिजली के प्रकाश और पंखे का प्रबन्ध है। छत भूमि और दीवारों पर जयपुरी जड़ाऊ काम बने हैं। चित्र, मूर्तियाँ तथा रँगाई के काम भी अच्छे हैं। वाटिका की सजावट भी सराहनीय है। इस बाग़ को जबलपुर का बुटानिकल-गार्डन तथा ज़ूलोजिकल गार्डन भी कह सकते हैं। इसे देखकर हम लोग धर्मशाला लौट आये। पहले हम लोगों ने ताँगा द्वारा जल-प्रपात जाने का विचार किया, परन्तु ताँगा द्वारा प्रातःकाल जाने से नौ या दस बजे तक पहुँचते. सुतरां धर्म्मशाला के मुंशी की मन्त्रणा से उसी रात की साढ़े दस बजेवाली गाड़ी से मीरगंज जाने के लिये हम लोग स्टेशन पहुँचे। मीरगंज में रात स्टेशन ही पर बितानी पड़ी। स्टेशन मास्टर एक महाराष्ट्र ब्राह्मण और सज्जन पुरुष थे, उन्होंने सादर हम लोगों को स्थान प्रदान किया।

प्रातःकाल उठकर और झटपट नित्य कृत्य से निपट कर हम लोग चले। सड़क बहुत साफ़ और अच्छी तथा दोनों ओर मैदान और शस्यविहीन खेत देखते एवं प्रातःकालीन शीतल मन्द समीर का स्पर्श-सुख लूटते हुए चलने लगे। दो मील पर राह कुछ कुछ ढालू होने लगी तथा तीसरे मील के पूरे होने पर हम लोग नर्मदाजी के तीर पर पहुँचे। यहाँ भी पंडा-दल ने चित्रकूट की भाँति चारों ओर से घेर लिया। किसी प्रकार इन पंडों से पिंड छुड़ाकर पहले "भेंड़ाघाट" के घाट पर स्नान किया। नर्मदा कलकल नाद करती हुई तीव्र और वक्र से गमन करती है, क्योंकि यहाँ नदी में नीचे की चट्टानें पड़ गई हैं; अतएव उस प्रखर धारा सावधानी से स्नान करना पड़ता है। यहाँ से चढ़कर एक दूकान से कुछ पेड़े और दूध ले तथा दस आने पर दिन भर के लिये एक सेवक साथ लेकर हम लोग प्रपात की ओर चले। भेंड़ाघाट से लगभग पौन मील पर प्रपात है। राह में और उन दो अँगरेज़ों की समाधि मिली जिन्हें चुरुट के धुएँ की दुर्गन्धि से कुपित होकर मक्खियों ने मार डाला था।

नर्मदा का जलप्रपात वास्तव में बहुत ही रम्य है। जल ख़ूब गिर रहा था और जल की छींटें बहुत बड़े घेरे में ख़ूब ऊँची उठ रही थीं। हम को सेवक एक अच्छा पथप्रदर्शक मिल गया, उसकी सहायता से हम लोग कठिनता-पूर्वक प्रकार प्रपात के किनारे पहुँच पाए। बर्सात के कारण नदी में जल अधिक होने से प्रपात का अधिक भरा हुआ था, इससे छींटें कुछ कम उठती थीं। वहाँ वालों के कथनानुसार गर्त की गहराई तीन सौ फ़ुट से भी अधिक है। जाड़े के दिनों में जब गर्त की गहराई कम हो जाती है, उस समय फ़ौवारा और भी ऊँचा उठता है। गर्त का प्रकार धन्वाकार है, अतएव जल के लगभग चारों ओर से गिरने के कारण फ़ौवारा बँधा हुआ एक सा बराबर उठा करता है, इसी का नाम धुआँ-धार है। जल ने अपने गिरने के स्थान पर कई नालियाँ बना ली हैं, जिनमें दक्षिण वा नदी के ओर एक बहुत बड़ी नाली बन गई है, जिससे बड़े वेग के साथ जल का प्रवाह गर्त में गिरता है। गर्त के ऊपर दोनों करारों के बीच में नदी की चौड़ाई भी बहुत अधिक है। पतन के पश्चात् नर्मदा जिस दर्रे वा दोनों ओर की चट्टानों के बीच से निकल गई हैं, उसका दृश्य हमें अधिक आकर्षक प्रतीत हुआ। दोनों ओर की विशाल चट्टानें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर कटी हुई पर्तदार हैं जैसे किसी ने बिना काटी हुई पुस्तकें बराबर में चुन दी हों। इस प्रकार नर्मदा की जलधारा से गढ़ी हुई मैली मर्मर की पर्तदार अद्भुत चट्टानें दूर तक एक सी दिखाई देती हैं। अस्तु, एक घंटे से अधिक इस प्रपात की विचित्र शोभा देखते देखते सूर्य की किरणों के असह्य हो जाने से हम लोग लौटे ग्रौर फिर उसी घाट पर बोट मँगवा कर मार्वल की चट्टानों की सैर करने चले।

वास्तव में नौका द्वारा "मार्बल राक" की सैर करने में जो अपार आनन्द आया, उतना प्रपात के देखने में नहीं। इस राक के भीतर नर्मदा की गहराई अत्यन्त अधिक है। नाविक (बोटमैन) के कथनानुसार कहीं कहीं दो सौ, तीन सौ फ़ुट तक की गहराई है, इसी से उस राक के भीतर जल बिलकुल स्थिर दिखाई देता है।

थोड़ी दूर नाव के चलने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि म लोग चारों ग्रोर से घिरे हुए एक बड़े सरोवर में ा गये। वहाँ इस प्रकार का घुमाव है कि नदी के ाने की राह का अनुमान करना कठिन होता है। ससे आगे चलकर कहीं नीले पत्थर की चट्टानें हैं ा कहीं लाल पत्थर की; एक ग्रोर काले पत्थर की ट्टानें दिखाई देती हैं तो दूसरी ग्रोर पीले पत्थर ी। इस प्रकार दो फरलांग चलने पर मर्मर की त चट्टानें आरम्भ होती हैं। यहाँ बीच में एक काण्ड चट्टान है, जिस पर भूतपूर्व होल्कर-नरेश ने क श्वेत शिवलिङ्ग स्थापित कर दिया है, जिनका म "सिद्धेश्वर महादेव" है। इसके आगे महारानी गावती के महल पर जाने की टूटी सीढ़ियाँ खाई देती हैं, ग्रौर उसी के सम्मुख "शृङ्गारशैल" जिस पर रानी पूजन को जाती थीं। इससे बढ़कर क ग्रोर की चट्टान में कुछ ऐसे काले दाग़ दिखाई ते हैं जिन्हें लोग "कालभैरव" की मूर्त्ति कहते हैं। सके आगे "सिद्धकुण्डी" मिली, फिर "दत्तात्रेय हाराज की गुफा"। इसके आगे चलकर सूर्य, चन्द्र या गणेशजी के आकार से कुछ मिलती जुलती मूर्त्तियाँ दिखाई देती हैं। वहाँ के लोग कहते हैं कि जिस समय नर्मदा जी आई थीं उस समय यह पहाड़ मक्खन का था ग्रौर समस्त देवता उनकी अगवानी के लिये यहाँ एकत्र हुए थे। अस्तु, कहीं कहीं सूर्य्य के घोड़े इन्द्र के ऐरावत के ग्रौर शेषनाग के आने के चिह्न दिखाई दिए। मेरी समझ में तो यह सब केवल जल की कारीगरी-मात्र है। एक स्थान में नदी का मार्ग संकुचित हो गया है ग्रौर दोनों ग्रोर के करारे समीप हो गए हैं, उसे "बन्दर-कूदनी" कहते हैं। किसी समय कोई बन्दर इस पार से उस पार कूद गया होगा। एक स्थान पर ढालू घाट सा बन गया है, जिसे "स्वर्गद्वार" कहते हैं। यहाँ एक तपस्वी एक प्रस्तर-खण्ड पर बैठे माला फेर रहे थे, हम लोगों ने बोट से उतर कर उन्हें कुछ दक्षिणा दी ग्रौर रंग बिरंगे पत्थरों के टुकड़े चुने। यहाँ आस पास की चट्टानों में मधुमक्खियों के छत्ते दिखाई दिए। छत्ते कुल उस समय सात थे, जो उसी रात में जलाए जानेवाले थे। किसी समय यहाँ पर बहुत छत्ते लगे रहा करते थे, जिनमें अगणित मधुमक्खियों का निवास रहता था। जब से इन मधुमक्षिकाओं ने दो गोरों का प्राण हरण किया तबसे सरकार की दृष्टि इनकी ग्रोर आकर्षित हुई। अब समय समय पर जहाँ ये छत्ते बढ़े कि जलवा दिए जाते हैं। स्वर्गद्वार के आगे "जनेऊधारा" है। यहाँ दोनों ग्रोर के करारे बहुत ही समीप हो गए हैं ग्रौर नीचे भी ऊँची चट्टानें हैं। गरमी के दिनों में यहाँ नर्मदाजी एक पतली धारा के रूप में आती दिखाई देती हैं। यह स्थान एक विचित्र चित्र सा दिखाई देता है। इसके आगे बोट नहीं बढ़ सकता है। अस्तु, यहाँ से हम लोगों का बोट लौटा। इस राक के भीतर मर्मर की नरम चट्टानों में जल ने तरह तरह के चित्र बना दिए हैं, उन्हीं को देखकर लोगों ने अपनी अपनी कल्पनाओं के अनुसार नाना प्रकार के नाम रख दिए हैं। मार्वल-राक की जोड़ का दृश्य इस देश में तो नहीं है, प्रत्युत संसार में भी दैवात् ही कहीं दिखाई दे। हम लोगों ने दिन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे देखा, जिस समय धूप भी अधिक थी; परन्तु पूर्णिमा की निर्मल चाँदनी में इसका दृश्य देखने ही योग्य होता है। चाँदनी रात की अकथनीय और अनुपम शोभा केवल महाकवियों के लिये एक सर्वोत्तम सामग्री समझनी चाहिए। इस विचित्र दृश्य को देखकर और घाट पर बोट से उतर कर हम लोग ऊपर आए।

यहाँ कई एक मन्दिर और शिवालय हैं, जिनमें मुख्य और सब से ऊँचे स्थान पर "श्रीगौरीशंकर" का मन्दिर है। गौरीशंकर जी की अर्द्धाङ्गिनी मूर्ति प्राचीन और सुन्दर है। मन्दिर के चारों ओर की दीवार में ओसारे बने हुए हैं, जिनमें इस समय ८३ खण्डित मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं। किसी समय यहाँ ६४ योगिनियों की मूर्तियाँ स्थापित थीं जिन्हें क्रूरात्मा औरंगज़ेब ने तुड़वा डाला था। अब गवर्नमेंट ने उन मूर्तियों को चारों ओर के बरंडों में रखवा कर उनके ऊपर की छत मरम्मत करवा दी है। बहुत सी मूर्तियों के टुकड़े शिवालय के पास भी पड़े हैं, उन ८३ मूर्तियों में दो चार गणेश इत्यादि की भी हैं। कोई कोई ऐसी खण्डित हैं कि उनसे यह अनुमान करना कि यह किसकी मूर्ति है, बहुत कठिन है।

यहाँ एक डाँक बँगला और एक सरकारी मुसाफ़िरख़ाना है, एक और बड़ा डाँकबँगला बन रहा है। भेंड़ाघाट के इस पार राजा सेठ गोकुलदासजी की भी एक धर्म्मशाला है, जहाँ यात्रियों को हर प्रकार का सुख मिलता है। मार्बल की खानें नर्मदा के इस पार और उस पार दोनों ओर हैं। नए बँगले के लिए गिट्टियाँ तक संगमरमर के ढोकों से तोड़ी जारही थीं। यहाँ कई एक दूकानों में सफ़ेद, लाल, पीले इत्यादि अनेक रङ्ग के पत्थरों के पेपरवेट तथा शिवलिङ्ग आदि बिकते हैं। यद्यपि वे चुनार के बने पेपरवेट की तुलना में कुछ भी न थे, किन्तु वहाँ का चिह्नस्वरूप तथा लड़कों के खेलने के लिये, हम लोगों ने भी उन्हें क्रय किया। यहाँ एक मुसलमान कारीगर के पास बहुत अच्छी तरह २ की छोटी मूर्तियाँ और बटन इत्यादि थे, किन्तु वह मूल्य ब[...] अधिक माँगता था। यहीं डाँकबँगले के पास, [...] मुनि के स्थान पर एक बंगाली साधु की कुटी [...] घर के हाते के भीतर हम लोगों ने भोजन बनाय[...] भृगु-आश्रम नर्मदा के बिल्कुल किनारे पर है। सर[...] ने उसके चारों ओर जँगला लगवा दिया है। आ[...] में अब केवल एक शिवलिङ्ग मात्र है और आश्रम [...] नीचे एक जल का सोता भी है।

जिस समय हम लोग भोजन करने लगे उसी स[...] पश्चिमोत्तर की ओर से बड़े वेग के साथ जल आ[...] अतएव बहुत शीघ्रता से भोजन समाप्त कर [...] लोगों को साधु महाराज की धूनी का आश्रय ले[...] पड़ा। घंटे भर तक जल बरसता रहा। तब तक [...] लोग उनसे बातें करते रहे। साधु ने वह स्थान दि[...] लाया जहाँ से लोग नर्मदेश्वर नामक लिङ्ग स्थाप[...] लाते हैं। उन्होंने कहा कि जब (जाड़े के दिनों [...] नर्मदा घट जाती है उस समय बहुत तरह के प[...] और शिवलिङ्ग यहाँ मिल जाते हैं। उन्होंने एक [...] हरे और एक संग-सितारे का बहुत सुडौल सु[...] शिवलिङ्ग दिखलाया, जो निःसन्देह बहुमूल्य [...] ऐसे भी पत्थर (वाटरस्टोन) यहाँ मिल जाते हैं [...] जिनके भीतर जल भरा रहता है।

पानी निकल जाने पर हम लोगों ने शीघ्रता [...] साथ स्टेशन की ओर प्रस्थान किया। स्टेशन पर [...] चने के थोड़ी देर बाद गाड़ी आई, जिस पर सवार [...] कर जबलपुर लौटे। निदान ८॥ बजे रात को धर्मश[...] में पहुँच कर आगे चलने के लिए हम लोग सो[...] लगे यहाँ से हम लोगों का विचार नागपुर जाने [...] था। परन्तु इसी समय नागपुर से कई एक [...] राष्ट्र और गुजराती सज्जन धर्मशाला में आ[...] इन लोगों की बातों से हतोत्साह होकर [...] नासिक जाने का निश्चय कर दिन भर की थ[...] मिटाने के लिए निद्रादेवी की गोद में हम लो[...] विश्राम किया।

दूसरे दिन २४ सितम्बर को प्रातःकाल की [...] से हम लोगों ने नासिक के लिये प्रस्थान [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटारसी तक जी० आई० पी० की पसेंजर ट्रेन में आना पड़ा। इसकी गाड़ियाँ सब पुरानी और झूले की तरह हिलती थीं। दो गाड़ियों को छोड़ कर किसी भी गाड़ी में "संडास और मुत्ता"* न था। पिपरिया स्टेशन के पास पहुँचने पर आकाशस्पर्शी सतपुड़ा की पर्वतश्रेणी दिखाई दी। पँचमढ़ी के यात्री पिपरिया स्टेशन पर उतरते हैं। यहाँ मोटर, ताँगे और गाड़ियाँ मिलती हैं। इटारसी के पास एक टनल वा सुरंग मिला स्टेशन पर खाने पीने की वस्तुएं बहुत ही भ्रष्ट और निकृष्ट मिलती हैं। थोड़ी देर में यहाँ "देल्ही एक्सप्रेस" आगई जिस पर चढ़ कर हम लोग १॥ बजे रात्रि को नासिक पहुँचे।

—:०:—

सूचना और सम्मति।

त्रैमासिक रिपोर्टें।




पाठकों को यह देख बड़ा ही हर्ष होगा कि भारतवर्ष में जितनी नागरी-प्रचारिणी सभाएँ स्थापित हैं, काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा औरों से विशेष पुरानी, माननीय, विश्वसनीय एवं प्रशंसनीय है। सरकार भी इसको मानती है और समय समय पर कितनी ही पुस्तकें, रिपोर्टें आदि भेजा करती है। आज हम जिन रिपोर्टों के विषय में लिखना चाहते हैं वह बंगाल एवं बर्मा गवर्नमेन्ट की अप्रेल से जून तक की और युक्तप्रदेश तथा मद्रास गवर्नमेन्ट की जूलाई से सितम्बर तक की पुस्तकों की है। किस प्रान्त में किस भाषा की कितनी पुस्तकें निकलीं यह निम्नलिखित कोष्ठ से विदित हो जायगा—

बंगाल		मद्रास		युक्त प्रदेश		बर्मा	
अँगरेज़ी	७१	अँगरेज़ी	१२३	अँगरेज़ी	३६	अँगरेज़ी	९
बंगला	४५५	तामिल	२३६	हिन्दी	१६७	बर्मी	२९
संस्कृत	११	तेलगू	१७०	उर्दू व फ़ारसी	७५	पाली	१४
हिन्दी	११	संस्कृत (नागरी)	१८	संस्कृत	९	तामील	२
उर्दू फ़ारसी	२	संस्कृत (तेलगू)	१४	मराठी	३	बंगला	१
आसामी	१०	कनारी	१७	गुजराती	१	हिन्दी, उर्दू, संस्कृत	०
मुसलमानी बंगला	८	उर्दू, अरबी व फ़ारसी	१३	बंगला	४		
अन्यान्य भाषाओं की	१८७	अन्यान्य भाषाओं की	८३	अन्यान्य भाषाओं की	९३	अन्यान्य भाषाओं की	१५
कुल जोड़	७५५	कुल जोड़	६७४	कुल जोड़	३८८	कुल जोड़	७०

हिन्दीप्रेमियों को यह देख अतीव दुःख होगा कि मद्रास तथा बर्मा प्रान्त से हिन्दी भाषा की एक

* जी० आई० पी० की गाड़ियों में पैखाना और पेशाब पैखाना के स्थान में संडास और मुत्ती लिखा रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई। यद्यपि संस्कृत-भाषा की कृपा से मद्रास प्रान्त में नागरी-लिपि की १८ पुस्तकें निकलीं परन्तु बर्मा में तो वह भी न देखा गया। जो हिन्दी-भाषा भारतवर्ष की राष्ट्र भाषा होने की योग्यता रखती हो, जिस भाषा के पक्षपाती मद्रास प्रान्त के रत्न महात्मा कृष्णस्वामी ऐय्यर, डा० आनन्द कुमार स्वामी सरीखे सज्जन हों, उस भाषा की एक पुस्तक भी मद्रास या बर्मा-प्रान्त से न प्रकाशित हो यह कितने बड़े दुःख की बात है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सेवी तथा सम्मेलन के कार्यकर्त्तागण इस ओर विशेष ध्यान देंगे और व्याख्यानों एवं सभाओं द्वारा इस सर्वमान्य अंश की पूर्ति करेंगे।

यह भी कम दुःख की बात नहीं है कि जिस प्रान्त से हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र प्रकाशित होते हों, जिस प्रान्त के प्रसिद्ध प्रसिद्ध बालक श्रीयुत जस्टिस दिगम्बर चटर्जी, श्रीयुत शारदाचरण मित्र इत्यादि भी इस भाषा को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा मानते हों उस बंगाल प्रान्त से केवल ११ ही पुस्तकें इस भाषा की प्रकाशित हों। मैं आशा करता हूँ कि बंगाल के प्रसिद्ध नगर कलकत्ते को आधुनिक हिन्दी की जन्मभूमि माननेवाले सज्जन अपनी उक्ति को चरितार्थ करने के निमित्त कुछ प्रत्यक्ष कार्य करके हिन्दी भाषा का उपकार करेंगे। यद्यपि युक्तप्रदेश से १६७ पुस्तकें प्रकाशित हुईं तथापि बंगला-साहित्य से मिलान करने पर यह संख्या संतोषदायक नहीं है। बंगाल प्रान्त से जब केवल नाटक-विषयक अच्छी अच्छी ३२ पुस्तकें निकलीं, वहां हमारे प्रदेश से केवल ४ ही अनुवादित हुईं। लाला सीताराम जी को अनेक धन्यवाद हैं जिन्होंने उपर्युक्त चारों नाटक अनुवाद किये हैं। इन नाटकों की प्रथम संस्करण में १२०० प्रतियाँ छापी गई हैं परन्तु बँगला भाषा के नाटकों में २२ नाटकों के प्रथम संस्करण १ से ५००० तक के हुए हैं। इनमें ९ नाटक ऐसे जिनके २, ३, ४ संस्करण तक हो चुके हैं। के पाठ्य पुस्तकों को छोड़ हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्त बहुत कम हैं जिनकी प्रकाशित संख्या तीन, हज़ार से विशेष हो, परन्तु बंगला भाषा में पा पुस्तकों के अतिरिक्त भी कई पुस्तकों के जैसे "आ पाथ" का ८वाँ संस्करण २००००, "आदर्श ब साहित्य पाठ" का नवीन संस्करण २२,५००, "शि शिक्षा" का चतुर्थ संस्करण १५,०००, "बृहत् साहि प्रवेश" का ५५वाँ संस्करण ६०००, "साहित्य पुस्त का ११वाँ संस्करण १२,००० प्रतियों का हुआ इसी प्रकार तामील भाषा में भी "सेण्ट मार्क गास्पल" नामक पुस्तकादिकों के दो दो, तीन संस्करण १०,००० प्रतियों के हुए हैं।

सरस्वती से बढ़ कर हिन्दी भाषा में कोई नहीं है। योरोप और अमेरिका तक इसकी है। परन्तु इसकी कुल ४५०० प्रतियाँ छापी हैं जब कि मद्रास के "यङ्ग सिटिज़न" की ग्रा संख्या दस हज़ार है। तामील और बंगला भाषा कितने ही मासिक पत्रों की ग्राहक संख्या छ सात सात हज़ार है।

इन सबसे क्या सिद्ध होता है? यही कि हि वालों में उत्साह, प्रेम, एकता, स्वार्थत्याग इ गुण कम हैं। जरा जरा सी बातों पर कुपित महीनों अख़बारों के कालम रँगेंगे परन्तु यह न कि वही स्थान उत्तम उत्तम लेखों से परिपूर्ण कर अ भाषाभाषियों को इसकी उपयोगिता समझा राष्ट्रभाषा का प्रचार करें।

आशा है कि हिन्दी-साहित्य-मर्मज्ञ इस ओर कृपा दृष्टि करेंगे। *

—:०:—

* यह नोट श्रीयुत् साँवलजी ने कृपा कर भेजा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्त्व।

[पं० हीरानन्द शास्त्री एम० ए० का व्याख्यान।]

भारतवर्ष अपनी प्राचीन सभ्यता और परम्परागत विद्या के कारण अनुसन्धान के लिये एक आदर्श देश है। यह एक ऐसा देश है जहाँ पुरातत्त्व और प्राचीन-लेखोद्धारिणी विद्या को उत्तेजित करना चाहिये, क्योंकि उससे बहुत कुछ फल निकल सकता है। बात यह है कि मुसलमानी विजय (सन् १००० ई० के लगभग) से पहले की कोई कोई क्रमबद्ध ऐतिहासिक पुस्तक न मिलने के कारण हमें इस देश के प्राचीन इतिहास की सामग्री के लिये इन्हीं का अधिकतर सहारा लेना पड़ता है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस देश के लोगों ने इतिहास लिखने की ओर ध्यान न दिया। मैं यह नहीं कहता कि प्राचीन हिन्दुओं में ऐतिहासिक प्रभा नहीं थी बल्कि मेरा अभिप्राय केवल यह है कि उन्होंने इतिहास लिखा नहीं, वे तो इस लोक की भौतिक मनुष्य स्थिति की ओर कुछ विशेष ध्यान न देकर परलोक की ओर लौ लगाए रहते थे। उनके निकट तो यह संसार माया-मय था और परलोक ही सत्य था। मेरी समझ में वेदान्त का यही भ्रान्त अर्थ इस देश में ऐतिहासिक ग्रन्थों के अभाव का कारण हुआ, जिससे भारत के बड़े बड़े महान् पुरुषों के चरित्रों पर परदा पड़ा हुआ है। इस अंधकार के परदे को पुरातत्त्व-विभाग की पैनी कुदाल भी उसके फाड़ने में कुंठित हो जाती है। त्रेता और द्वापर के वीरों की बात छोड़ दीजिये यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि, कालिदास और शंकर जैसे ऐसे विद्वानों और कवियों तथा अशोक, कनिष्क, समुद्रगुप्त, हर्षवर्द्धन ऐसे ऐसे बड़े बड़े सम्राटों के केवल नाम ही नाम लोगों को मालूम हैं। यह ठीक है कि आजकल की छानबीन से उनके सम्बन्ध की बहुत सी बातें खुली हैं पर उनसे उनके विषय में पूरी जानकारी नहीं होती। जो बात मिस्टर स्मिथ ने समुद्रगुप्त वा भारतीय नेपोलियन के विषय में कही है वह यहाँ के और और महाराजाओं के विषय में भी ठीक घटती है। मिस्टर स्मिथ कहते हैं—"यह भाग्य का फेर है कि इस महाविजयी सम्राट् का, जिसने सारे भारतवर्ष को विजय करके अपना राज्य वंक्षु (Oxus) नद से लेकर सिंहल तक बढ़ाया, नाम तक भारत के इतिहासकारों को विदित नहीं। इन्हीं सत्तर वर्षों के बीच उसकी कीर्त्ति का थोड़ा बहुत उद्धार शिलालेखों और सिक्कों को परिश्रम-पूर्वक पढ़ने से धीरे धीरे हुआ है जिससे उसके राजत्वकाल की घटनाओं का विस्तार-पूर्वक वर्णन लिखना अब सम्भव प्रतीत होता है। एक इसी बात से यह पता लग सकता है कि पुरातत्त्व-विभाग को धैर्य्यपूर्वक अनुसन्धान करने में कितनी बड़ी सफलता हुई है और उसने किस परिश्रम के साथ उन खंडों को जोड़ जोड़ कर एकत्रित किया है जिनके आधार पर ही भारत का सच्चा प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सकता है।"

अहा! क्या अच्छा होता यदि हमें भारत के महान् पुरुषों के वृत्तान्त भी उसी प्रकार विदित होते जिस प्रकार यूरोप के लोगों के हैं। पर इसमें दोष किसका है? इसी देश के निवासियों का। यह काम भारत-वासियों का है कि वे अपने देश के इतिहास लिखे जाने के लिये सामग्री ढूँढ़ें और अपने पूर्वजों के छोड़े हुए कीर्त्तिचिह्नों को रक्षित रक्खें। पर हममें से कितने हैं जो इस बात को समझते हैं? यदि सरकार अपने हाथ में यह कार्य्य न ले लेती तो बहुत सी ऐति-हासिक सामग्री जिसके आधार पर आज पुरातत्त्व-विद् कार्य्य कर रहे हैं सब दिन के लिये नष्ट हो गई होती। पर सरकार ने अपने ऊपर पूर्ववर्त्तियों के ऋण को स्वीकार किया और इस बात को समझा कि पूर्वकाल के कीर्त्तिचिह्नों को सुरक्षित रखना उसका पहला कर्त्तव्य है। इस महादेश के इतिहास के उद्धार के निमित्त सरकार जो प्राचीन चिह्नों की रक्षा कर रही है और पुरातत्त्वविभाग चला रही है उसके लिये प्रत्येक भारतवासी को कृतज्ञ होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस देश के शिक्षित लोग भी पुरातत्त्व की खोज के महत्त्व को नहीं समझते। बहुत से लोग तो इसे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। मुझे दौरे में बहुत से ऐसे लोग मिले हैं जो इस कार्य्य को व्यर्थ समय नष्ट करना समझते हैं। बहुतेरे लोग ऐसे भी मिले जिन्होंने कहा कि यह मुहक़मा तो केवल ख़ज़ाना ढूँढ़ने के लिए जारी किया गया है। इन पिछले लोगों का कहना एक प्रकार से ठीक भी है, क्योंकि पुरातत्त्व विभाग जिस ख़ज़ाने को खोद कर निकालता है वह अमूल्य है। वह विद्या का ख़ज़ाना है, जिससे भारत के इतिहास के अंधकारमग्न अंश प्रकाशित होते हैं। मैं आज इन्हीं रत्नों के ख़ज़ानों के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ जिनकी कान्ति से भारत का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ झलक उठा है। मैं यहाँ पर बहुत संक्षेप में उन बातों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिनका पता पुरातत्त्व-विभाग ने इन ५ या ६ वर्षों के बीच लगाया है। इनसे आप लोग समझ सकते हैं इस विभाग ने उन सामग्रियों का कितना बड़ा भाण्डार खोल दिया है जिनके आधार पर भारतीय इतिहास फिर से खड़ा किया जा सकता है।

सबसे पहले तो मैं पेशावर में मिले हुए कनिष्क के स्तूप के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ, जिसके भीतर बुद्ध की धातु (अस्थि आदि) पाई गई है। कोई समय था जब लोग बुद्ध के अस्तित्व में भी शंका करते थे और उन्हें एक कल्पित व्यक्ति समझते थे। चौदह वर्ष हुए कि पुरातत्त्व विभाग ने नैपाल की तराई में उनके जन्मस्थान का पता लगाया, जहाँ अब तक महाराज अशोक का स्तम्भ खड़ा है। उस स्तम्भ पर जो लेख मिला उससे उस लुम्मिनी वन का स्थान निश्चय रूप से स्थिर हो गया जहाँ सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। क्योंकि शिलालेख में स्पष्ट लिखा हुआ है—

> हिदा बुध जाते साक्यमुनि ति। हिदा भगवन जाते ति लुम्मिनी गामे।

इस लुम्मिनी गाम को आज कल रुम्मि
कहते हैं। इस लेख के प्रमाण ने बुद्ध के अस्ति
सम्बन्ध में जितनी शंकाएँ थीं सबको दूर
दिया। इससे यह अच्छी तरह प्रमाणित हो
कि बुद्ध-नामधारी वास्तव में एक महापुरुष हुए
ईसा से ४८३ वर्ष पहले एक स्थान पर उनकी
और अग्निक्रिया हुई, जिसे प्राचीनकाल में कुशी
वा कुशीनार कहते थे। उनकी धातु के आठ
किए गए जो भिन्न भिन्न देश के लोगों को
इच्छानुसार बाँटे गए। वे इन धातुओं को अपने
देशों में ले गए और उन्हें स्थापित करके उन्हों
पर अपने वित्तानुसार स्तूप उठवाए। स्तूप
घंटे के आकार के बड़े बड़े ढूह होते हैं जिनके
पर छत्र होता है। पहले तो ये स्तूप बुद्ध वा
सत्त्वों की धातु स्थापित करने के लिये उठाए गए।
ये बुद्ध के जीवन के किसी घटना-स्थल पर स्
रूप में उठाए जाने लगे। इसके उपरान्त तो ये
पुण्य के लिये स्थापित होने लगे और लोग छोटे
स्तूप बनवाकर बुद्ध वा बोधिसत्त्वों के नाम
उत्सर्ग करने लगे।

शक-वंशीय महाराज कनिष्क के आदेश से
की कुछ धातु पेशावर (प्राचीन पुरुषपुर) गई
एक स्तूप के भीतर स्थापित की गई। बौद्ध
के विषय में सबसे अधिक जानकारी रखने
फ़ाउचर साहब ने इस स्तूप का स्थान आदि
ही बतला दिया था जिसे डाक्टर स्पूनर ने चा
हुए खोद कर निकाला। इसकी लंबाई एक छो
दूसरे छोर तक २८५ फ़ुट है। इतना बड़ा
अब तक नहीं मिला था। बहुत सा ब्योरा न
मैं थोड़े में इसका कुछ वर्णन करता हूँ। २०
के नीचे इस स्तूप के एक प्रकोष्ठ में एक धा
डिब्बा मिला जिसके साथ ही बिल्लौर की डिबि
बुद्ध की धातु रक्खी मिली। ढकन खिले क
आकार का था जिसके ऊपर तीन मूर्त्तियाँ
थीं। बीच में बुद्ध की आसीन मूर्त्ति थी और
और दो बोधिसत्त्वों की मूर्त्तियाँ थीं। डि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सब वर्णन छोड़ मैं उस पर स्थापित एक मूर्त्ति का उल्लेख करना चाहता हूँ। यह मूर्त्ति स्वयं महाराज कनिष्क की है। महाराज सीधे होकर खड़े हैं और उनके दोनों ओर दो देवता फूल की माला लिये खड़े हैं। इसके अतिरिक्त महाराज की दाहिनी ओर सूर्य्य और बाईं ओर चन्द्रमा हैं। सूर्य्य महाराज कनिष्क का अभिषेक कर रहे हैं। कनिष्क की इस मूर्त्ति का उसकी और मूर्त्तियों से मिलान करने से जो सिक्कों पर मिली हैं तथा उस मूर्त्ति के साथ मिलाने से जो अभी हाल में मथुरा से निकली है, यह निश्चय हो जाता है कि यह कनिष्क ही की मूर्त्ति है। डिब्बे पर जो लेख है उससे भी यह बात अच्छी तरह प्रमाणित हो जाती है। यह लेख खरोष्ठी लिपि में है जो इस देश की अत्यन्त प्राचीन लिपियों में से है और जो शारदा, ब्राह्मी, नागरी आदि के विरुद्ध दाहिनी ओर से बाईं ओर को (फ़ारसी की तरह) लिखी जाती थी। ये लेख संख्या में चार हैं और कमलदलों के किनारे किनारे लिखे हुए हैं। इनमें से एक तो पढ़ा नहीं जाता, केवल कनिष्क का नाम भर स्पष्ट पढ़ा जाता है। शेष का सारांश यह है कि यह दान सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के स्वीकारार्थ तथा सब प्राणियों के कल्याण के लिये किया गया। चौथे लेख से पता लगता है कि कनिष्क के विहार और महासेन के संघाराम का शिल्पकार वा परीक्षक कोई अजिसाल नामी था। यह अजिसाल शब्द तथा उसके लिए जो विशेषण आया है ध्यान देने योग्य है। अजिसाल अजिसेलस या ऐसे ही और किसी यूनानी शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। लेख में दास अजिसाल लिखा है। इससे जान पड़ता है कि वह शिल्पकार कनिष्क का मोल लिया हुआ गुलाम था। इन सब बातों से कनिष्क का संबन्ध स्पष्ट ज्ञात होता है। अंतिम पंक्ति में कनिष्क शब्द के अक्षर इस प्रकार लिखे गए हैं कि आधे तो कनिष्क की मूर्त्ति की एक ओर पड़ते हैं और आधे दूसरी ओर। धातु के डब्बे के भीतर जो डिबिया थी वह स्फटिक की थी और उसमें चार अस्थिखंड रक्खे हुए थे। ह्वेन्सांग नामक चीनी यात्री, जो सातवीं शताब्दी में यहाँ आया था, इन अस्थियों के विषय में कह गया है कि ये गौतम बुद्ध ही की हैं। ये हड्डियाँ किस स्थान से पेशावर गई होंगी, यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि कनिष्क ऐसे प्रतापी राजा के लिये, जो बुद्ध के थोड़े ही दिनों के बाद हुआ, बुद्ध की असली धातु का पाना कुछ कठिन बात नहीं थी। यह उसके लिए स्वाभाविक था कि वह अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) की शोभा और पवित्रता के लिये उन्हें वहाँ स्थापित करता। कनिष्क का समय अभी बिलकुल ठीक ठीक निश्चित नहीं हुआ है, पर इतना कहा जा सकता है कि वह ईसा की पहली शताब्दी में हुआ था। ये हड्डियाँ वास्तव में बुद्ध की हैं या नहीं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। पर इतना अवश्य पता लगता है कि पहली शताब्दी में वे हड्डियाँ बुद्ध ही की समझी जाती थीं।

पेशावर के इस आविष्कार से कनिष्क के समय के कलाकौशल की अवस्था का भी बहुत कुछ पता लगता है। डिब्बे के देखने से कला की उन्नति का नहीं, अवनति का प्रमाण मिलता है। बहुत से लोगों ने लिखा है गान्धार-शिल्प की जो उन्नति हुई वह कनिष्क के कारण हुई। डिब्बे पर जो मूर्त्तियाँ हैं उनसे इस मत का समर्थन नहीं होता; क्योंकि उनकी रचना उतनी सुन्दर नहीं है जितनी अधिकांश गांधार-मूर्त्तियों की है जो (तख़्तेभाई के पास) सहरी बहलोल तथा और कई स्थानों में मिली हैं। आज तक गांधार में जितनी मूर्त्तियाँ मिली हैं उनमें कुबेर और यक्षिणी हारीति की, जिन्हें बुद्ध ने अपने धर्म में दीक्षित किया था सबसे सुन्दर हैं। एक बुद्ध की पद्मासन मूर्त्ति भी बड़ी सुन्दर है।

अब मैं एक और महत्त्व के आविष्कार का कुछ वर्णन करता हूँ, जो १९०८-१९०९ में पुरातत्त्व-विभाग द्वारा किया गया। इससे इतिहास का बड़ा उपकार हुआ। यह पहला लेख है, जिसमें पंजाब के अर्द्ध-यवन (यूनानी) राजाओं का स्पष्ट उल्लेख मिला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह लेख किस प्रकार प्राप्त हुआ इसका पूरा पूरा ब्योरा रायल एशियाटिक सोसाइटी के जनरल (१९०९) में निकला है। वहीं पर मिस्टर मारशल ने उस स्तम्भ का वर्णन भी दिया है जिस पर उन्हें लेख मिला है। यह स्तम्भ ग्वालियर राज्य में भिलसा (प्राचीन विदिशा) के पास बेसनगर के एक पुराने ढूह के पास है। इस पर जो लेख है दो भागों में विभक्त है, सात पंक्तियाँ तो एक ओर हैं और दो पंक्तियाँ दूसरी ओर। लेख से जाना जाता है कि यह गरुड़ध्वज है जिसे महाराज अंतलिकिदस के राजत्वकाल में तक्ष-शिला-निवासी डियन के पुत्र परमभागवत हेलियो-डोरस ने वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान् के प्रीत्यर्थ स्थापित किया था। अंतलिकिदस पंजाब का एक यवन (यूनानी) राजा था जो ईसा से १४० वर्ष पहले हुआ था। शिलालेख में एक भागभद्र नामक हिन्दू राजा का भी नाम आया है जिसकी राजधानी कदाचित् उज्जयिनी थी। यदि यह शिलालेख न मिलता तो इस राजा का नाम तक लोगों को न मालूम होता। शिलालेख का अनुवाद डाकृर फ़्लीट ने इस प्रकार किया है—

"त्राता काशिपुत्र भागभद्र के निमित्त उसके राज्य के चौदहवें वर्ष में संकाश्य के राजा चंडदास ने देवाधिदेव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज महाराज अंतलिकिदस के यवन-राजदूत दिय (डियन) के पुत्र परम भागवत हेलिओडोरस द्वारा निर्माण कराया।"

लेख के 'त्रातृ' शब्द से यह पता लगता है कि उस समय मध्यभारत में कोई प्रबल हिन्दू राज्य था जिसके अधीन आसपास के बहुत से राजा थे। धर्म की दृष्टि से भी यह लेख बड़े महत्त्व का है, क्योंकि यह वासुदेव सम्प्रदाय का है; जिसका मुख्य सिद्धान्त वासुदेव कृष्ण की भक्ति है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि वैष्णव धर्म बहुत प्राचीन धर्म है, हाल का गढ़ा हुआ नहीं है; जैसा कि कुछ लोग समझते हैं।

तीसरे आविष्कार से भी इतिहास के एक बहुत अंधकार में पड़े हुए समय की अर्थात् कुशनवंशियों के राजत्वकाल की बात का पता लगा है। तीन वर्ष हुए कि मथुरा के सामने ईसापुर [...] एक शिलालेख मिला, जिससे भारत के शक-का[...] इतिहास में नई बात मालूम हुई। इस लेख से [...] णित होता है कि कुशन-वंश में महा प्रतापी क[...] के बाद ही हुविष्क नहीं हुआ बल्कि इन [...] राजाओं के बीच एक वसिष्क नाम का राजा हुआ है। यह शिलालेख एक लाल स्तम्भ पर है [...] यज्ञ का यूप था। यह बहुत सुन्दर बना हुआ [...] यह दोनों छोरों पर कुछ टूट गया है और [...] ज्यों का त्यों है। सबसे ध्यान देने की बात [...] विषय में यह है कि यह हिन्दू-चिह्न है और इस[...] का लेख समस्त संस्कृत में है। समस्त संस्कृ[...] लिखे हुए जितने लेख पाए गए हैं उनमें यह स[...] प्राचीन है। इसमें २४ संवत् दिया हुआ है जो [...] फ़्लीट के अनुसार ईसा से ३३-३४ वर्ष पहले प[...] है। लेख का सारांश यह है। महाराजाधिराज [...] वसिष्क के राजत्वकाल में भरद्वाजगोत्री ब्रा[...] रुद्रिल के पुत्र द्रोणल ने द्वादशाह यज्ञ किया [...] यूप खड़ा किया। लेख में जो संवत् दिया हु[...] वह कौन संवत् है, यह निश्चित नहीं होता। स[...] है कि वह राजा कनिष्क का चलाया हुआ [...] हो। पर डाकृर फ़्लीट उसे विक्रम-संवत् मानते हैं।

इस लेख से यह विषय अच्छी तरह से निश्चि[...] हो जाता है कि ईसा की पहली शताब्दी के ल[...] वसिष्क नामक एक राजा हुआ जिसका आधि[...] मथुरा में था और कदाचित् साँची में भी; जहाँ [...] नाम का एक और शिलालेख पाया गया है [...] लोग अच्छी तरह जानते हैं कि कुशन-वंश का [...] कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों के स[...] ख़ूब बढ़ा चढ़ा था। कनिष्क का राज्य काबुल [...] से लेकर मथुरा क्या उसके और आगे तक [...] ह्वेन्सांग के अनुसार तो मध्य-भारत का भी बहु[...] भाग उसके राज्य में था।

दूसरा बड़ा काम पुरातत्त्व-विभाग ने यह [...] कि उसने प्राचीन श्रावस्ती का पता ल[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रावस्ती के खंडहर आजकल सहेत महेत के नाम से प्रसिद्ध हैं और गोंडा ज़िले में बलरामपुर के पास हैं। इस स्थान के श्रावस्ती होने का निश्चित प्रमाण लेखों में पाया गया है। एक लेख तो कुशान-समय की एक बुद्ध मूर्त्ति पर है जिसमें उस छत्र-दंड-युक्त मूर्त्ति का श्रावस्ती में कौशाम्बकुटी के भीतर उस स्थान पर स्थापित किया जाना लिखा है जहाँ भगवान् बुद्ध टहला करते थे (भगवतो चंकमे)। दूसरा लेख ताम्रपत्र पर है और कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के समय का है, इसमें विक्रम संवत् ११८६ (सन् ११३०) दिया हुआ है। ये दोनों लेख हमारे प्रान्तीय अजायबघर में सुरक्षित हैं। सब संस्कृत पढ़नेवाले लोग श्रावस्ती के नाम से परिचित होंगे। इसी स्थान पर वह प्रसिद्ध जेतवन आराम था जहाँ बुद्ध रहते थे। श्रावस्ती और जेतवन आराम का ठीक ठीक पता लग जाना पुरातत्त्वविदों ही के मतलब की बात नहीं है, बल्कि करोड़ों बौद्धों के लिए, जो भगवान् बुद्ध के आवास को संसार में अत्यन्त पवित्र स्थान मानते हैं, बड़े महत्त्व की बात है।

इसी प्रकार कुशीनार के विषय में भी समझना चाहिए, जहाँ बुद्ध का निर्वाण हुआ था। इस स्थान के विषय में बहुत झगड़ा था जो अब मेरी पाई हुई वस्तुओं से तै हो गया है। जनरल कनिंहम और उनके सहायक मिस्टर कालहिल बहुत पहले गोरखपुर ज़िले के कसया नामक स्थान को कुशीनार बतला गए थे। पर उनकी बात संदिग्ध समझी गई और कसया पर पुरातत्त्व-विभाग की कई चढ़ाइयाँ हुईं। कुछ मोहरें पाई गईं जिन पर 'महापरिनिर्वाण' वाक्य लिखा हुआ था, ये मोहरें यथेष्ट प्रमाण थीं। पर जब मैंने निर्वाणचैत्य के भीतर से एक लेख निकाला तब यह बात अन्तिम रूप से निश्चित हो गई कि कसया ही कुशीनार है। मैंने चैत्य के ऊपर का भाग साफ़ किया और उसके बीचोबीच एक सुरंग खोदी, जिसके सहारे से बहुत से बहुमूल्य प्राचीन लेख मिले जो म्यूज़ियम में रक्खे हैं। इनमें सबसे महत्त्व का एक ताम्रपत्र है। उस पर जो लेख है उसकी

६

अंतिम पंक्ति में "निर्वाण-चैत्य ताम्रपत्र" स्पष्ट लिखा हुआ है। यह लेख पूर्ण-रूप से प्रमाणित करता है कि बुद्ध का निर्वाण कसया में हुआ था।

पाँचवीं वस्तु जो काम की पाई गई वह सारनाथ का अशोक-स्तम्भ है। यह समूचा एक पत्थर का है और इस पर बहुत बढ़िया पालिश (रोग़न) किया हुआ है। यह उस स्थान पर स्थापित किया गया था जहाँ बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करके पहले पहल धर्म-चक्र का प्रचार किया था। यह अब सारनाथ के म्यूज़ियम में रक्खा हुआ है। इसके सिरे पर बड़ी सुन्दर कारीगरी है। जान पड़ता है कि यह स्तम्भ उस समय स्थापित किया गया था जब ईसा से २४९ वर्ष पूर्व महाराज अशोक बौद्ध-तीर्थ-स्थानों की यात्रा के लिए निकले थे। बड़े दुःख की बात है कि कारीगरी का ऐसा सुन्दर चिह्न गिरा कर खंडित कर दिया गया। उसका एक अंश ही अब अपने आधार पर स्थित बच गया है।

दूसरा बड़ा काम जो इस विभाग ने किया वह प्राचीन वैशाली के स्थान का पता लगाना है। यह स्थान मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के अन्तर्गत बसाढ़ में है और इसे आज-कल राजा विशाल का गढ़ कहते हैं। यद्यपि इसकी खुदाई से कोई विशेष महत्त्व के चिह्न नहीं मिले हैं पर मिट्टी की मुद्राएँ आदि जो कुछ छोटी मोटी चीज़ें पाई गई हैं वे बड़े काम की हैं। उनसे उस प्राचीन समय की राजनैतिक, धार्मिक तथा कलाकौशल-सम्बन्धी अवस्था का बहुत कुछ पता चलता है। इन बड़ी बड़ी राजमुद्राओं (मुहरों) से उस समय की प्रचलित राज-पद्धति का बहुत कुछ आभास मिलता है। इनमें से एक का, जो ईसा से लगभग तीन सौ वर्ष पहले की है, यहाँ पर मैं विशेष उल्लेख करना चाहता हूँ। जितनी मुद्राएँ आज तक मिली हैं उनमें यह सबसे पुरानी है। यह चौखूँटी है और बिल्कुल अखंडित है। इस पर तीन प्राचीन संकेत बने हैं और मौर्य्यकाल की लिपि में तीन पंक्तियों का एक लेख भी है। इस मुद्रा के विषय में दो भिन्न मत हैं। डाक्टर स्पूनर का अनुमान है कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशाली नगर की पुलिस की प्रधान मुद्रा है जो टकार नामक ग्राम की चौकी पर रक्खी गई थी। पर डाकृर वीनिस का मत है कि यह लेख उस जाँच से सम्बन्ध रखता है जिसके लिए हर तीसरे वर्ष अशोक की आज्ञा से दौरा होता था। यह दूसरा अनुमान अधिक सम्भव और ठीक जान पड़ता है। यहाँ पर यह बात कह देना आवश्यक है कि ऐसे चिह्न केवल सिद्धान्त स्थिर करने में सहायकमात्र हो सकते हैं। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाए जा सकते हैं। इससे केवल उन पर किसी सिद्धान्त का स्थिर करना ठीक नहीं होता। उदाहरण के लिए इन्हीं मुद्राओं के साथ एक जंतर (तावीज़) मिला है जिस पर 'Made in Austria' (आस्ट्रिया का बना) लिखा हुआ है। अब क्या इससे हम यह सिद्धान्त निकालें कि वैशाली में कभी आस्ट्रिया का राज्य था?

दूसरी मुद्रा से, जिस पर लक्ष्मी की एक खड़ी मूर्त्ति बनी है, यह प्रमाणित होता है कि तक्षशिला के समान वैशाली में भी पाटलिपुत्र के राजवंश का एक प्रतिनिधि शासक रहता था। लेख जो मुद्रा पर है वह बहुत स्पष्ट नहीं है पर उसका यह अर्थ लगाया गया है--"वैशाली नामक कुंड के प्रतिनिधि राजकुमार के मंत्री की मुद्रा"। तीसरी मुद्रा यद्यपि छोटी है पर बड़ी कुतूहल-पूर्ण है। इसकी बनावट तथा लेख की अंकनशैली देखने से आज कल की भारतीय सरकार की मुहर का ध्यान होता है।

अब मैं तक्षशिला की खुदाई का कुछ वर्णन करूँगा जो जारी है और जिससे पुरातत्वज्ञ लोग बड़े बड़े ऐतिहासिक रहस्यों के खुलने की आशा कर रहे हैं। डाकृर मार्शल की अध्यक्षता में जो काम गत वर्ष हुआ उससे इतिहास के बहुत से विवाद-ग्रस्त विषयों पर प्रकाश पड़ा है। मैं यहाँ बहुत संक्षेप में उस काम का उल्लेख करूँगा जो वहाँ हुआ।

तक्षशिला रावलपिंडी से दस कोस उत्तर-पश्चिम एक हरे भरे मैदान में है, जहाँ से कश्मीर की हिमावृत पर्वत श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं। इस प्राचीन नगरी की स्थिति एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर [illegible] जहाँ से होकर फ़ारस, तुर्किस्तान आदि से [illegible] करनेवाले व्यापारी आते जाते थे। इस नगरी के खँड़हरों को देखने से जान पड़ता है कि [illegible] तरह भिन्न भिन्न राजाओं के अधिकार में [illegible] इसकी बस्ती भी समय समय पर बदलती [illegible] तक्षशिला की स्थापना अत्यंत प्राचीन काल [illegible] थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि रामचन्द्र के भाई [illegible] के पुत्र तक्ष ने यह नगरी बसाई थी। [illegible] ऐसे प्राचीन काल के विषय में कुछ नहीं कहा [illegible] सकता। एक बात तो निश्चित है कि तक्षशिला [illegible] समय एक प्रधान विद्यापीठ और कलाकौशल [illegible] केन्द्र थी। सिकन्दर जब भारत में आया ([illegible] ईसा से पूर्व) तब पहले पहल तक्षशिला ही के [illegible] ने अधीन होकर उससे मित्रता की। पर इसके [illegible] वर्ष उपरान्त जब मौर्य्य चन्द्रगुप्त सम्राट् हुआ [illegible] उसने पंजाब से यूनानी सेना को निकाल [illegible] अशोक के समय तक तक्षशिला पर मौर्य्यों [illegible] अधिकार रहा। इसके पीछे उस पर बलख़ के [illegible] यवन (यूनानी) राजाओं का अधिकार हुआ [illegible] फिर पारदों (Parthians) का। पारदों [illegible] फिर उस पर कुशन राजाओं का अधिकार [illegible] जिनमें कनिष्क महा प्रतापी हुआ। खँड़हरों [illegible] टीला ही मौर्य्यकाल की बस्ती का चिह्न बतला[illegible] 'सिरकप' और 'चिर' नामक ढूह और और का[illegible] बस्तियों के चिह्न हैं जिनमें पारदों के समय [illegible] का काम विशेष ध्यान देने योग्य है। चार [illegible] के बीच इस नगरी पर मगध, यूनान पश्चिम [illegible] ऐसे भिन्न भिन्न देशों की सभ्यता का प्रभाव [illegible] कुशन वंश की शक्ति के ह्रास और गुप्त [illegible] प्रबल प्रताप के उदय के साथ ही इस न[illegible] श्री भी लुप्त होने लगी। ईसा की सातवीं [illegible] में जब चीनी यात्री हुएन्सांग भारत में [illegible] तब तक्षशिला कश्मीर राज्य के अधीन [illegible] उसके सब स्थान उजड़ गए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक्षशिला के खँड़हर बारह वर्ग मील के विस्तार में हैं। चार स्थानों पर जो जाँच के लिए खुदाई हुई उनसे यह पता चला कि कुशन वंश की इमारतें पारदों के खँड़हरों के ऊपर बनी थीं। कदफ़िसस, कोज़ौल श्रौर वेमा के सिक्के नीचे की तह में मिले हैं। कनिष्क श्रौर हुविष्क के सिक्के उनके ऊपर पाए गए हैं। वासुदेव के सिक्के चतुर्थकाल की इमारतों से सम्बन्ध रखते हैं। डा॰ मार्शल का कहना है कि ये कोठरियाँ ईसा की पहली शताब्दी के मध्य में बनी थीं श्रौर उनकी मरम्मत श्रौर वृद्धि दूसरी शताब्दी में हुई थी। चतुर्थकाल के भवन तीसरी शताब्दी के आरम्भ में उठे थे। इसी अनुमान के अनुसार उन्होंने कदफ़िसस के सिक्कों का काल पहली शताब्दी का अन्तिम भाग वा दूसरी शताब्दी का प्रारंभ निश्चित किया है श्रौर कनिष्क श्रौर हुविष्क के सिक्के दूसरी शताब्दी के मध्य श्रौर वासुदेव के सिक्के दूसरी शताब्दी के अन्त श्रौर तीसरी शताब्दी के प्रारंभ के बतलाए हैं। डा॰ मार्शल कहते हैं कि ये सिक्के यहाँ गाड़े जाने के पहले प्रचलित रहे होंगे। जो कुछ हो इस खोज से इतना पता तो अवश्य लगता है कि कनिष्क ने दूसरी शताब्दी में राज्य किया था, पहली में नहीं, अतः उसका ईसा से ५७ वर्ष पहले राजसिंहासन पर बैठना सिद्ध नहीं होता।

कनिष्क के काल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। अतः जब तक कोई प्रामाणिक लेख नहीं मिलता तब तक एकमत नहीं हो सकता। यदि इस विषय में अधिक जानना हो तो डा॰ मार्शल का व्याख्यान देखिए, जो उन्होंने ४ सितंबर १९१३ को पंजाब हिस्टारिकल सोसाइटी के सामने दिया था।

तक्षशिला की इस खोज से भारत की भवन-निर्माणकला का बहुत कुछ सूत्र मिलता है श्रौर भारतीय शिल्प के विकाश के सम्बन्ध में बहुत सी बातें निश्चित हुई हैं। पारदों की शिल्पकला में यूनानी भावों की प्रधानता पाई जाती है। उसके द्वारा भारत में यूनानी भावों का बहुत कुछ प्रचार हुआ होगा।

ऊपर जो बातें लिखी गईं उनसे पुरातत्त्व-विभाग की उपयोगिता प्रकट होती है। प्राचीन-लेखोद्धार जो इसका एक प्रधान अंग है भारत की अनेक अतीत श्रौर विस्मृत घटनाओं को निश्चित रूप से जानने का प्रधान द्वार है। यही नहीं, यह अर्वाचीन इतिहास के लिए भी बड़ा उपयोगी है। यहाँ पर मैं मछलीशहर (ज़ि॰ जौनपुर) में मिले हरिश्चन्द्र के उस ताम्रपत्र का उल्लेख भी कर देना चाहता हूँ जिसे मैंने Epigraphia Indica. में प्रकाशित किया है। कन्नौज के राजवंश में हरिश्चन्द्र का नाम नया मिला है। पुरातत्त्व-विभाग ने हिन्दू बौद्ध श्रौर जैनकला के श्लोक-चिह्न खोद निकाले हैं। इनमें से बहुत से तो म्यूज़ियमों में रक्खे हुए हैं।

यहाँ मथुरा की तक्षणकला (संगतराशी, पत्थर की कारीगरी) के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। जैसे कि भारत की श्रौर श्रौर विद्याओं श्रौर कलाओं के सम्बन्ध में वैसे ही तक्षण-कला के सम्बन्ध में भी पहले लोगों की धारणा थी कि उसका विकाश यूनानी संसर्ग के प्रभाव से हुआ। कुछ लोगों ने यहाँ तक अनुमान भी लड़ा डाला कि बलख़ के कुछ यवन (यूनानी) शिल्पकारों को मथुरा के धनाढ्य बौद्ध अपने यहाँ ठीक उसी प्रकार नौकर रखते थे जिस प्रकार पिछले खेवे मुग़ल बादशाह यूरोपियन कारीगरों को नौकर रखते थे। पर अब मथुरा की शिल्पकला का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह बात प्रमाणित हो गई कि उसका विकाश भारतीय कारीगरों ही ने किया था। इन कारीगरों को वायव्य से कुछ उत्साह अवश्य मिला, पर इन्होंने गांधार की कारीगरी को बिल्कुल भारतीय साँचे में ढाला। मथुरा के शिल्प में भारतीय-भाव सबसे अधिक पत्थर के चित्रित बेंड़ों (railings) में लक्षित होता है जो स्तूपों के किनारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

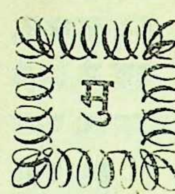
लगे हुए थे। ये बेंड़े उत्तर-पश्चिम में नहीं मिलते। मथुरा के ये बेंड़े भारत के पुराने ढाँचों पर बने हैं यह उनकी बनावट और नक़्क़ाशी से साफ़ झलकता है। इन बेडों पर स्त्री पुरुषों के बड़े सुन्दर चित्र बने हुए हैं। इस प्रकार के कई खंभे लखनऊ के म्यूज़ियम में रक्खे हैं।

एक बात मुझे और कहनी है। कई जगह ताँबे के अस्त्र और औज़ार मिले हैं जिनमें से कई एक लखनऊ के म्यूज़ियम में हैं। इनके विषय में साधारण लोगों की धारणा है कि ये रामायण और महाभारत के समय के हैं। बिठूर (ज़ि० कानपूर) और परियार (ज़ि० उन्नाव) में जो मिले हैं उनके विषय में जनश्रुति है कि वे लवकुश की लड़ाई के समय के हैं। वे जो कुछ हों, पर वे ऐसे अतीत काल के विलक्षण चिह्न हैं जहाँ तक इतिहास की पहुँच नहीं। इसी प्रकार बहुत से पत्थर के हथियार मिले हैं जो प्रस्तर-युग के अर्थात् ईसा से दो तीन हज़ार वर्ष पहले के हैं। ये सब चिह्न ऐतिहासिक काल के पूर्व के हैं और उन जिज्ञासुओं के बड़े काम के हैं जो सतयुगी बातों को जानना चाहते हैं। अब तक हम लोगों को कोई ऐसे चिह्न नहीं मिले हैं जिनसे वैदिक तथा रामायण वा महाभारत के काल की सभ्यता का कुछ पता चलता हो, पर यह निश्चय है कि यदि उस काल के कोई चिह्न मिलेंगे तो इसी हमारे आर्य्यावर्त्त में मिलेंगे। आशा की जाती है कि इस पुरातत्त्व-विभाग को अभी और न जाने कितने ऐसे चिह्न मिलेंगे जिनके सहारे इतिहासकार भारत का एक शृंखलाबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने में समर्थ होंगे।

—:०:—

जम्बू-राजवंश।

(२)



ल्तान और काश्मीर के युद्धों में गु सिंह अफ़ग़ानों से बहुत वीरता लड़े थे। इसके पुरस्कार-स्वरूप १८२२ में महाराज रणजीतसिं अमरगढ़ से एक परवाना करके, उन्हें जम्बू और रामनगर का राज्य प्र किया था। उस परवाने पर स्वयं महाराज रण सिंह के दाहिने पंजे की केसरिया छाप थी। गुल सिंह को राजगद्दी देते समय भी, महाराज ने उ मस्तक पर इसी प्रकार पंजे की छाप लगाई थी, यह छाप किसी प्रकार उलटी लग गई थी। दरबारी के इस उलटी छाप का कारण पूछने महाराज ने कहा भी था कि उन्होंने गुलाब का वृक्ष, चिरकाल तक बने रहने के लिए, भू लगा दिया है। उक्त परवाने पर चौथी, असाढ़ १८७९ वि० (सन् १८२२) की तिथि दी हु राज्य पाने के कुछ दिनों बाद गुलाबसिंह जम्बू और महाराज लाहौर लौट आये। गुलाबसिं जम्बू पहुँचने पर प्रजा ने बहुत प्रसन्नता प्रग थी; राज्य की ओर से कई दावतें दी गई थीं प्रत्येक मकान का कर दो रुपये कम कर दिया था।

कुछ समय बाद सरदार अज़ीमख़ाँ बाग़ी गया और बहुत अधिक उपद्रव करने लग इस पर महाराज रणजीतसिंह ने आठ सिपाहियों को राजकुमार शेरसिंह की अधीन सरदार की ओर भेजा। उस समय गुलाब सरदार हरीसिंह सिन्धानदालिया, और अटारी सरदार भी उनके साथ थे। सेना ने अटक के सिन्धुनद पार किया; वहाँ शत्रुओं से उसका मुक़ाबला भी हुआ। पर जब यह सेना आगे ब तेहरी नाम की नदी पार कर चुकी, तो वहाँ पास के स्थानों से अचानक ४०००० ग़ाज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये। उनमें से १५००० आदमी तो सरदार अहमद-ख़ाँ की अधीनता में थे और शेष सय्यद अहमद के अनुयायी थे। सय्यद अहमद ने जहाद का झंडा खड़ा किया था और इसी लिए धर्म्म के नाम पर उसे बहुत से आदमी मिल गये थे। जब शत्रुओं की इतनी प्रबलता का समाचार महाराजा रणजीतसिंह को मिला तो वे स्वयं युद्धस्थल पर पहुँच गये। पर वह स्थान युद्ध के लिए उपयुक्त न देख कर महाराज ने तेहरी के क़िले पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया। सरदार अहमदख़ाँ ने क़िलेवालों की सहायता करने के अभिप्राय से अपनी सेना को नाव पर चढ़ा कर नदी पार करना चाहा था; पर उसी अवसर पर महाराज की सेना ने उसकी सारी नावें डुबा दीं। सरदार अहमदख़ाँ बड़ी कठिनता से इस दुर्घटना से अपनी जान बचा कर काबुल की ओर भाग गया।

रामनगर के निकट पिंड नामक पहाड़ी इलाक़े में एक क़िला था। उस क़िले और उसके आस पास के स्थान का नाम समरथ था। सन् १८२४ में दीवान अमीरचन्द की सम्मत्ति से गुलाबसिंह ने उस क़िले पर आक्रमण करने का विचार किया, १००० योद्धा साथ लेकर वह क़िला जा घेरा और उसके चारों ओर खाँई खोद डाली। उसी अवसर पर गुलाबसिंह ने क़िले वालों से यह भी कहला दिया कि यदि वे शीघ्र ही आत्मसमर्पण न कर देंगे तो बड़ी विपत्ति में पड़ जायँगे। क़िले वाले भी इतने भयभीत हो गये थे कि उन्होंने कुछ निश्चित धन देना और आत्म-समर्पण करना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि उनका जीवन और उनकी सम्पत्ति नष्ट न हो। गुलाबसिंह ने भी यह शर्त स्वीकार करके क़िले पर अपना अधिकार कर लिया और मियाँ बिशन्न को वहाँ का थानेदार नियुक्त करके वह जम्बू लौट आये। जब इस विजय का समाचार रणजीतसिंह को मिला तो उन्होंने दिलारामसिंह को उस क़िले पर अधिकार करने के लिए भेजा; पर पीछे से वह क़िला उन्होंने रामकोट और सानियों के अधिकारी सुचेतसिंह को दे दिया।

एक बार महाराज रणजीतसिंह के बहुत बीमार होने का समाचार सुनकर सरदार बुधसिंह सन्धान-वालिया ने गोविन्दगढ़ के क़िले पर अधिकार करना चाहा। रात के समय बुधसिंह इसी अभिप्राय से क़िले के दरवाज़े पर पहुँचा और उसने क़िले वालों से फाटक खोलने के लिए कहा। पर क़िले वालों ने उत्तर दिया कि उन्हें सूर्य्यास्त से पहले क़िले का दरवाज़ा न खोलने की आज्ञा मिली हुई है; इसलिए विवश होकर बुधसिंह लौट गया। महाराज को समय समय पर बुधसिंह से अच्छी सहायता मिला करती थी, इसलिए उन्होंने उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसे पेशावर जाकर अफ़ग़ानों से युद्ध करने की आज्ञा दी। अफ़ग़ानों का उपद्रव उस समय बहुत बढ़ गया था। पेशावर पहुँच कर बुध-सिंह ने देखा कि बहुत बड़ी अफ़ग़ान सेना उसका सामना करने के लिए उपस्थित है। उस सेना में सय्यद अहमद, यार मुहम्मदख़ाँ, सुलतान मुहम्मद-ख़ाँ और मीर मुहम्मदख़ाँ आदि कई बड़े बड़े सरदार थे, इसलिए बुधसिंह वहीं रुक गया और उसने वहाँ का सब समाचार महाराज के पास लाहौर भेज दिया। महाराज ने उसी समय गुलाबसिंह और दीवान अमीर चंद के पास आज्ञा भेजी कि जहाँ तक शीघ्र हो सके, वे अपनी सारी सेना लेकर बुधसिंह की सहायता के लिए पेशावर जायँ। इसी बीच में अफ़ग़ान सेना हसन अब्दाल पर अपना अधिकार कर चुकी थी। महाराज की आज्ञा पाकर सुचेतसिंह और अटारी वाले सरदार भी बुधसिंह की सहायता को पहुँच गये थे और अफ़ग़ानों के साथ उनकी कई बार मुठभेड़ भी हो चुकी थी। जब सारी सिख-सेना एकत्र हो गई तो उसने कई छोटे छोटे युद्धों में अफ़ग़ानों को परास्त किया और अन्त में उसने संवत् १८८२ के फागुन की १४वीं तिथि को (सन् १८२५) सैदू के युद्ध में पठानों को वहाँ से हटा कर ही छोड़ा। गुलाबसिंह अपने जीवन में अन्तिम बार इसी युद्ध में वीरता-पूर्वक लड़े थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिंड दादनख़ाँ, मेरा, मियानी, क़ादिराबाद, डुंभी मंडी आदि झेलम के दाहिने किनारे के सभी स्थानों के अधिकारी बड़े अराजक हो गये थे और उन प्रान्तों में कुप्रबन्ध के कारण बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी। इसलिए सन् १८३० में महाराज रणजीतसिंह ने गुलाबसिंह को उन सब स्थानों का अधिकारी बना दिया। गुलाबसिंह ने अधिकार पाते ही अनेक डाकुओं और लुटेरों को क़ैद कर लिया और कुछ को मरवा डाला; इस कार्य्य से वहाँ की प्रजा बहुत सुखी और सन्तुष्ट हो गई। इसके सिवा गुलाबसिंह ने बहुत सी परती भूमि के जोतने बोने का भी प्रबन्ध कर दिया। सन् १८३३ में महाराज ने उन्हें झेलम और रोहतास के ज़िले दे दिये और सन् १८३६ में उन्हें गुजरात का अधिकार भी मिल गया।

उन दिनों पेशावर महाराज रणजीतसिंह के अधीन था, और सरदार हरीसिंह वहाँ के अधिकारी थे। सन् १८३४ में महाराज को समाचार मिला कि अफ़ग़ानिस्तान-नरेश दोस्त मुहम्मदख़ाँ पेशावर पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन करने का विचार कर रहा है। उसी समय महाराज ने पेशावर की ओर प्रस्थान किया। जब पेशावर में लोगों को महाराज के आने की ख़बर मिली तो सरदार हरीसिंह, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह आदि मुख्य मुख्य सरदार महाराज के स्वागत के लिए क़िले से निकले। पर शत्रुओं ने बीच में ही किसी प्रकार नदी का जल रोक कर उसका रुख़ बदल दिया था। इसलिए महाराज की सेना को जल के लिए बड़ी कठिनता हुई। बहुत ढूँढ़ने पर अन्त में उन्हें वह स्थान मिल गया जहाँ शत्रुओं ने बाँध बाँधा था। उसी स्थान पर महाराज की छावनी पड़ी; दोस्त मुहम्मदख़ाँ भी निकट ही अपनी सेना सहित ठहरा हुआ था। महाराज ने अपने सरदारों को सेना सहित तुरन्त आकर लश्कर में सम्मिलित होने की आज्ञा दी। महाराज नित्य अपनी और अपने सरदारों की सेना का निरीक्षण किया करते थे और शत्रुओं को सुनाने के लिए रण-वाद्य बजवाया करते थे। जब अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के भाई सुलतान मुहम्म[द] और पीर मुहम्मदख़ाँ को महाराज की इन तैया[रियों] का समाचार मिला तो उन्होंने गुलाबसिंह के [द्वारा] एक दूत भेज कर महाराज से भेंट करने की [इच्छा] प्रकट की। सब बातों का निश्चय हो जाने पर सु[लतान] सुलतान मुहम्मदख़ाँ आकर गुलाबसिंह से मि[ले]। गुलाबसिंह ने उनका यथेष्ट आदर सत्कार क[र] उन्हें महाराज के समक्ष उपस्थित किया। ख़ाँ [पर] प्रभाव डालने के लिए वे उन्हें उस मार्ग से ले [गये] थे, जिसके दोनों ओर विशाल सिख सेना यु[द्ध के] लिए तैयार खड़ी हुई थी। पर इस भेंट का [फल] आशानुरूप न हुआ और महाराज ने कुछ नि[श्चित] वार्षिक कर, घोड़े, तलवारें और फल आदि ले[ने पर] ही, अमीर को पेशावर और डेरा ग़ाज़ीख़ाँ [के] प्रान्त दे देना निश्चय किया। इस निश्चय से [सर]दार हरीसिंह इतने अधिक असन्तुष्ट थे कि उ[न्होंने] महाराज को उसी समय अमीर दोस्त मुहम्मदख़ाँ [को] बन्दी कर लेने की सम्मति दी; पर गुलाबसिं[ह ने] बीच में ही रोक दिया, क्योंकि वह अमीर [को] कुशल वहाँ से लौटा लाने का वचन दे चुके [थे]। जब अमीर दोस्त मुहम्मदख़ाँ ने अपने भाई से [महा]राज तथा सिख-सेना के सम्बन्ध की सब [बातें] विस्तृत रूप से सुनीं तो वह तुरन्त क़ाबुल [चला] गया। इसके बाद महाराज ने सरदार सुलतान [मुह]म्मदख़ाँ को अपनी ओर मिलाना चाहा और [इस] कार्य्य का भार गुलाबसिंह पर सौंपा। सिखों [और] अफ़ग़ानों में फ़क़ीर अज़ीज़उद्दीन दूतत्व करते [थे]। गुलाबसिंह ने उन्हीं की सहायता से महाराज [की] इच्छा पूर्ण कर दी। तदुपरान्त कोहाट, [टांक] पेशावर आदि जागीर की भाँति सुलतान मुहम्म[दख़ाँ], पीरमुहम्मदख़ाँ और सैयद मुहम्मदख़ाँ को [देकर] और वहाँ का पूरा प्रबन्ध करके महाराज [लाहौर] लौट गये।

सन् १८३७ में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के [पुत्र] वज़ीर मुहम्मद अकबर ने जमरूद के क़िले पर [चढ़ाई] की। जमरूद का नाम सिखों ने फ़तहगढ़ रक्खा [था]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब यह समाचार सरदार हरीसिंह को मिला तो वे तुरन्त पेशावर से चल पड़े। जब वह तक्खल नामक स्थान पर पहुँचे तो उनका सामना ५० अफ़ग़ानों से हुआ; शेष अफ़ग़ान उस समय अली मसजिद के निकट एक पहाड़ी के पीछे छिपे हुए थे। हरीसिंह ने अफ़ग़ानों पर आक्रमण किया और अफ़ग़ान अपने शेष साथियों से मिलने के लिये जान बूझकर पीछे हटने लगे। इस युद्ध में सरदार हरीसिंह बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे और अन्त में वे बुरी तरह घायल होकर जमरुद के क़िले में चले गए और वहीं उनका देहान्त हो गया। लेकिन सेनापति महान्‌सिंह बराबर क़िले की रक्षा करते रहे और सरदार हरीसिंह की मृत्यु का समाचार छिपाए रखने के लिये दोनों समय उनके लिये बराबर भोजन भेजते रहे। महान्‌सिंह ने महाराज को सरदार की मृत्यु की सूचना देने के लिये एक दूत भी भेजा, पर दरबार में किसी को ऐसा दुःसंवाद सुनाने का साहस ही न होता था। अन्त में फ़क़ीर अजीज़-उद्दीन ने महाराज को यह समाचार सुनाया। महाराज को सरदार की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत अधिक दुःख हुआ और उन्होंने राजा ध्यान-सिंह और सुचेतसिंह को तुरन्त जमरुद की ओर भेजा। मार्ग में रोहतास के निकट शहजादाराय भी अपनी सेना सहित उनमें आ मिले और सब लोग प्रति दिन ६० कोस का धावा मारते हुए पेशावर की ओर बढ़े। वहाँ जमादार खुशहालसिंह नई सहायक सेना की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। राजा ध्यानसिंह के साथ फ़्रांसीसी योद्धा एलार्ड भी था। सिख-सेना की प्रबलता देखकर अफ़ग़ानों को उसका सामना करने का साहस न हुआ और वे लौटकर खैबर घाटी की ओर चले गए। गुलाबसिंह को भी, जो कि उस समय चिनियोट में थे, महाराज की ओर से सेना सहित पेशावर जाने की आज्ञा मिल चुकी थी। मार्ग में खैराबाद के निकट डाकुओं ने उनके कुछ ऊँट ले लिए थे जो कि गुलाबसिंह ने उनका पीछा करके फिर उनसे छीन लिए। जब उनकी सेना लन्दा नदी पार करके यूसफजइयों के मध्य में पहुँची तो उनमें से कुछ ने तो गुलाबसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली, पर कुछ लोगों ने उनका विरोध किया। गुलाबसिंह ने युद्ध करके उन सबको भी परास्त और अधीन किया। इसके बाद पुंछ के परगने में भी थोड़ा बहुत उत्पात हुआ और वहाँ के शम्स नामक एक व्यक्ति ने विद्रोह किया था; पर गुलाबसिंह ने उसे भी युद्ध में मार डाला और रजावड़ी की ओर प्रस्थान किया।

सन् १८३८ में महाराज रणजीतसिंह जम्बू गए थे। गुलाबसिंह और ध्यानसिंह ने उस अवसर पर महाराज का बहुत आदर सत्कार किया था और उनके स्वागत, भेंट और भोज आदि में प्रायः सवा-लाख रुपए ख़र्च किए थे। वहीं गुलाबसिंह ने रणवीरसिंह को भी महाराज के समक्ष उपस्थित किया और दरबार में उन्हें महाराज के सामने स्थान दिलाया था। दूसरे दिन महाराज ठाकुरजी के दर्शनों के लिये ठाकुरद्वारे में गए थे; उस दिन उनके साथ केवल गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और मिश्र रामकृष्णजी थे। दो दिन जम्बू में ठहर कर महाराज वहाँ से चले गए। चलते समय गुलाबसिंह ने एक हाथी, एक सुनहला हौदा, कई घोड़े और अन्य अनेक बहु-मूल्य पदार्थ महाराज को भेंट किए थे। इसके अतिरिक्त महाराज के दरबारियों को भी उन्होंने बहुत कुछ भेंट किया था। मि० फ़्रेडरिक मैकिसन को भी एक ख़िलत मिली थी और फ़क़ीर अजीज़-उद्दीन द्वारा उन्हें कह दिया गया था कि गुलाबसिंह का लाहौर वाला मकान भी उनकी नज़र था।

दूसरे वर्ष सन् १८३९ में (शुक्रवार, १५ आषाढ़ संवत् १८९६ वि०) महाराज रणजीतसिंह का देहान्त हो गया। जब पेशावर में यह समाचार गुलाबसिंह को मिला वे अत्यन्त दुःखी हुए। महाराज खड़गसिंह ने राज्याधिकार पाकर चेतसिंह को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। चेतसिंह दुश्चरित्र और दुष्ट स्वभाव का आदमी था। स्वयं खड़गसिंह भी अदूरदर्शी थे और उन्होंने छल करके कई सरदारों को मरवा डाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इसलिये एक दिन राजा सुचेतसिंह जमादार ख़ुशहालसिंह लहनासिंह मजीठिया आदि कई बड़े बड़े सरदारों ने राजकुमार नौनिहालसिंह के पास जाकर उन्हें राज्य की दुरवस्था आदि की सूचना दी। इस पर राजकुमार ने उत्तर दिया कि यद्यपि किसी दूषित अंग को काट डालने से शरीर को कुछ वेदना होती है तथापि उससे जीवन की रक्षा अवश्य होती है; इसलिये यद्यपि चेतसिंह के न रहने पर महाराज खड़गसिंह को कुछ कष्ट अवश्य होगा पर तो भी अनेक भारी संकटों से बचने के लिये यदि कल आप लोग सूर्य्योदय से पहले राजमहल में आकर चेतसिंह के प्राण लेलें तो बहुत अच्छा हो। सब लोग इस प्रस्ताव से सहमत हुए और उन्होंने चेतसिंह की हत्या करने की शपथ खाई। सरदार लहनासिंह साधु पुरुष थे, इसलिये उन्होंने हत्या में सम्मिलित होना तो अस्वीकार किया, पर इस बात की शपथ खा ली कि वे यह भेद किसी पर प्रकट न करेंगे। इसी निश्चय के अनुसार दूसरे दिन प्रातःकाल सब सरदार राजमहल में राजकुमार नौनिहालसिंह के पास पहुँचे और उन्हें साथ लेकर महाराज खड़गसिंह के शयनागार में घुसे। आहट पाकर पहरेदार भी जाग उठे, पर जब उन्होंने राजकुमार नौनिहालसिंह और राजा ध्यानसिंह को देखा तो वे चुप हो रहे। इस बीच में महाराज भी उठकर ईश्वराराधन कर रहे थे; इतने में गुलाबसिंह ने कान्हसिंह और एक दूसरे फ़र्राश को बन्दूक़ से मार गिराया। इसपर महाराज ने उठकर अपने शयनागार का द्वार अन्दर से बन्द कर लेना चाहा, पर राजकुमार द्वार के आगे अड़कर खड़े हो गए और सब सरदार अन्दर चले गए। महाराज का स्नेह चेतसिंह पर बहुत अधिक था, इसलिये उन्होंने चेतसिंह को अपने गले से लगा लिया। सब सरदार बलपूर्वक चेतसिंह को अपनी ओर खींचने लगे। चेतसिंह वहाँ से छूटकर तहख़ाने की ओर भागे, पर राजा ध्यानसिंह ने उन्हें भागने का अवसर न दिया और वहीं अपने ख़ंजर से उन्हें मार डाला। महाराज बहुत दुःखी होकर सब सरदारों को दु-चन सुनाने लगे। अपने पुत्र पर उनका क्रोध अधिक था, क्योंकि वे समझते थे कि उन्होंने राज पाने के अभिप्राय से यह षड्यन्त्र रचा है। इसलि उन्होंने अपने पुत्र से यह भी कह दिया कि य तुमने राजपद पाने की अभिलाषा से यह किया है, तथापि तुम विश्वास रक्खो कि मेरी के बाद भी तुम्हें यह राज्य प्राप्त न होगा।

महाराज खड्गसिंह की यह भविष्यद्वाणी बहुत ठीक उतरी और सन् १८४० में जब उन देहान्त हो गया तो उनकी दाह-क्रिया करके लौ समय राजकुमार नौनिहालसिंह और मियाँ ऊ सिंह पर क़िले की छत में से टूट कर एक पत्थर आप ही आप गिर पड़ा और वे दोनों समाप्त हो गये। मृत्यु के समय नौनिहालसिंह अवस्था २३ वर्ष से कुछ ही अधिक थी। गुलाब ने रामनगर में जब महाराज की मृत्यु का समा सुना तो वे पहले तो जम्बू गए और कुछ दिन रह कर लाहौर चले आए। इधर राजा ध्यानसिंह नौनिहालसिंह की मृत्यु का समाचार छिपाने के उनका मृत शरीर हजूरीबाग में भिजवा दिया यह प्रसिद्ध कर दिया कि राजकुमार को अधिक चोट आई है। उनकी चिकित्सा के लिए में चिकित्सक और वैद्य आदि भी भेजे जाते गुलाबसिंह के लाहौर पहुँचने पर यह समा महाराज रणजीतसिंह के पुत्र कुमार शेरसिंह पास भेजा गया और उन्हें लाहौर बुलाया ग उन्होंने लाहौर आकर नौनिहालसिंह की अन्त्य क्रिया की। पहले तो शेरसिंह को राजपद की आशा थी और राजा ध्यानसिंह तथा गु सिंह उनके सहायक भी थे; पर जब उन्हें म हुआ कि सन्धानवालिए तथा अन्य बड़े बूढ़े स रानी चन्दकौर (कुँवरि) के पक्ष में हैं और उन्ह राज्य दिलाना चाहते हैं तो वे लौट कर का नामक स्थान पर चले गये। राजा ध्यानसिंह उनके साथ ही थे और उन्होंने शेरसिंह को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलवाने के लिये अनेक उपाय भी किए थे। राजा-ध्यानसिंह का खालसा सेना पर पूरा अधिकार था और उनकी आज्ञा पाकर सारी सेना शेरसिंह को राज्य दिलाने में सहायता देने के लिये तैयार होगई थी। सेना के बड़े बड़े सरदारों ने इस बात की भी प्रतिज्ञा करली थी कि शेरसिंह के लाहौर आते ही वे उनकी सलामी उतारेंगे और उनके अधीन हो जायँगे। सब प्रबन्ध ठीक करके राजा ध्यानसिंह जम्बू चले गये और करमसिंह नामक उनके विश्वासनीय सरदार लाहौर पहुँचे। करमसिंह ने लाहौर में सारी व्यवस्था अनुकूल देख कर शेरसिंह को समाचार भेजा और कहला दिया कि खालसा सेना के सरदार आप को निमंत्रण देते हैं और आप के स्वागत के लिए तैयार हैं। शेरसिंह भी यह समाचार पाते ही तुरन्त लाहौर पहुँचे। गुलाबसिंह ने एक नई चाल चली और सेना के सरदारों को एकत्र करके उनसे कहा कि राज्य की वास्तविक अधिकारिणी रानी साहबा हैं, इस लिये आप लोग भी उन्हीं के पक्ष में रहें। सरदारों ने ऊपर से तो यह बात मान ली, पर शेरसिंह के छावनी के समीप पहुँचते ही उन्होंने उनकी सलामी उतारी। यह दशा देख कर गुलाबसिंह क़िले में चले गये और अपनी तथा क़िले की रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। ध्यानसिंह के पुत्र राजा हीरा-सिंह भी उस समय क़िले में ही थे। गुलाबसिंह ने उनसे कहा कि आप के पिता क़िले के बाहर हैं, इस लिए आप भी यहां से निकल जायँ। पर हीरासिंह ने उत्तर दिया कि आप भी मेरे पिता के तुल्य हैं, इसलिये मैं आप को छोड़ कर क़िले से बाहर नहीं जा सकता।

गुलाबसिंह के पास उस समय केवल एक छोटी सी तोप और दो हज़ार डोगरे सैनिक थे; पर क़िले के बाहरवाली सेना की संख्या पचास हज़ार थी। इसके सिवा उन लोगों के पास तोपें भी ३०० थीं। बाहर की सेना ने हजूरीबाग के सामनेवाले मैदान में मोरचा बाँध कर क़िलेवालों से आत्मसमर्पण कराना चाहा; पर सूबेदार छपाछप ने उत्तर दिया कि बिना गुलाबसिंह की आज्ञा के ऐसा नहीं हो सकता। इस पर बाहरवाली सेना ने क़िले पर धावा करके सूबेदार और उसके सिपाहियों को मार डाला और क़िले का दरवाज़ा तोड़ दिया। पर तो भी गुलाबसिंह की सेना लड़ती और गोलियाँ बरसाती ही रही और शत्रु आगे न बढ़ सके। क़िले में दो पलटनें पहले से ही थीं जो आरम्भ में शेर-सिंह के पक्ष में थीं, इसलिए गुलाबसिंह ने उनके अस्त्रागार पर अपना अधिकार करके उन्हें बेकाम कर दिया। खालसा सेना ने बादशाही मसजिद को अपना अस्त्रागार बना रक्खा था। इसलिये तोपख़ाने के अफ़सर गार्डन साहब ने उसे उड़ा देने का विचार किया। यदि गुलाबसिंह यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेते तो शेरसिंह की बहुत सी शक्ति नष्ट हो जाती; पर न जाने क्यों गुलाबसिंह ने ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। इसी अवसर पर राजा ध्यानसिंह और राजा सुचेतसिंह भी बहुत सी नई सेना एकत्र करके आ पहुँचे। उन लोगों ने गुलाबसिंह से आत्म-समर्पण करने के लिए कहलाया। गुलाब-सिंह ने उत्तर दिया कि जब तक खालसा सेना गोलियाँ बरसाना बन्द न करेगी तब तक हमारी सेना आत्म-रक्षा करती ही रहेगी। इसी बीच में रानी चन्दकौर ने भी गुलाबसिंह के पास एक परवाना भेज कर उनसे कहा कि जिस प्रकार हो इस युद्ध की समाप्ति की जाय। इसके बाद ही गुलाबसिंह को एक और परवाना मिला, जिस पर महाराजा शेरसिंह, सरदार विजयसिंह, भाईसिंह, लहनासिंह, श्यामसिंह, अटारीवाले, और वेराटूरा साहब के हस्तक्षर थे। उस परवाने में लिखा था कि यदि क़िले की सेना युद्ध बन्द कर दे तो गुलाब-सिंह को खालसा छावनी में प्रतिष्ठा-पूर्वक लाने के लिये बाबा महासिंह भेजे जा सकते हैं। गुलाबसिंह ने यह निमन्त्रण तुरन्त ही न स्वीकार कर लिया और एक पत्र इस आशय का लिख भेजा कि यदि शेरसिंह सात लाख रुपये वार्षिक आय की एक जागीर रानी हुसाबा को देना स्वीकार करें तो युद्ध बन्द हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। अन्त में एक दिन प्रभात के समय गुलाबसिंह क़िले में से निकल कर अपने साज सामान और हाथी घोड़ों सहित रावी नदी के किनारे पर जा ठहरे। उसी स्थान पर राजा ध्यानसिंह, सुचेतसिंह, तथा अन्य कई बड़े बड़े सरदार उनसे मिलने और उनके अनेक साथियों के मारे जाने का समाचार सुनाने के लिए उनके पास आये। कुछ सरदारों ने उनसे महाराज का पक्ष छोड़ कर महारानी की ओर जा मिलने का कारण भी पूछा। इस पर गुलाबसिंह ने उत्तर दिया कि यदि मैं क़िले पर अपना अधिकार न कर लेता तो वहाँ के अनेक बहुमूल्य पदार्थ लूट लिए और नष्ट कर दिए जाते; इसके सिवा राजमहल की स्त्रियों की रक्षा करना भी मेरा अभीष्ट था। महाराज शेरसिंह उनकी इन बातों से सन्तुष्ट हो गये और इसलिए उन्होंने गुलाबसिंह को ख़िलत और मनावर की जागीर देकर जम्बू भेज दिया।

जिस समय खालसा सेना लाहौर के क़िले को चारों ओर से घेर कर पड़ी हुई थी उस समय क़िले के अन्दर वाली सेना के अधिकारी और गुलाबसिंह के चचा दीवान हीराचन्द ने किसी प्रकार रानी चन्दकौर से गढ़ी और गढ़वाली के तालुक़ों को अपने अधीन कर लेने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी। इसलिये पहले तो दीवान हीराचन्द ने सराय औरंगाबाद को—जिसे महाराज खड्गसिंह की सेना ने अपने अधीन कर लिया था—अपने अधिकार में किया और उसके बाद सुखचैनपुर का क़िला ले लिया। आगे चल कर उन्होंने कोट और मांगले के क़िले पर भी अपना अधिकार जमा लिया।

सन् १८४१ में काशमीर के सूबेदार मन्दवानसिंह को कुछ विद्रोहियों ने मार डाला था; इसलिए कुँअर-प्रतापसिंह की अधीनता में महाराज शेरसिंह ने एक गोरखा पलटन को उन विद्रोहियों को दमन करने के लिये भेजा। महाराज के आज्ञानुसार गुलाबसिंह भी चार पलटनें, ६०० रुपया और दीवान नि-चन्द को अपने साथ लेकर भिंभर में प्रतापसिं-जा मिले। उस प्रान्त में रसद की बहुत कमी इसलिये गुलाबसिंह ने अपनी आधी सेना को वहीं रोक रक्खा और शेष आधी सेना को दी-निहालचन्द की अधीनता में आगे भेजा। मा-बहुत अधिक वर्षा होने के कारण दीवान निहाल-को चार दिन तक शामियान नामक स्थान में ही जाना पड़ा। इसके बाद दूधगंगा पार करने के जब वे नैपुर नामक स्थान पर पहुँचे तो उ-सामना विद्रोहियों की दो पलटनों से हो ग-उसी अवसर पर कुँअर प्रतापसिंह और गुलाब-भी वहीं आ पहुँचे और उन लोगों ने युद्ध विद्रोहियों को परास्त कर दिया। इस युद्ध में साहब के ६०० सैनिक मारे गये थे। वहाँ से लौ-गुलाबसिंह नैपुर पहुँचे और वहाँ उन्होंने यु-सम्मिलित होने वाली सेना में तैंतालीस हज़ार बाँटे। वहीं उन्होंने अपने रोगी और आहत सै-की औषधि और सेवा-शुश्रूषा का भी प्रबन्ध कि-इसके बाद वे सेना को दीवान निहालचन्द अधीनता में वहीं छोड़ कर शेरगढ़ चले गये। गढ़ पहुँचने पर उन्हें और कुँअर प्रतापसिं-महाराज की ओर से आज्ञा मिली कि वे लोग ज़िले पर अपना अधिकार कर लें। तदनु-लोग हज़ारा की ओर बढ़े पर पोखली और तक—जहाँ के निवासी विद्रोही हो गये थे—ने भी उनका विरोध न किया। हज़ारा ज़िले अंश तो योंही और कुछ सेना की सहायता से कार में कर लिया गया। इसके बाद कुँअर सिंह तो अपने निवास-स्थान कृष्णगढ़ के चले गये और गुलाबसिंह ने वहाँ से चार को दूरी पर बाराकोट नामक स्थान में अपना डेरा

(शेष आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा का कार्य-विवरण ।

साधारण सभा ।

शनिवार ता० २६ अक्टूबर १९१३, सन्ध्या के ५ बजे
स्थान सभाभवन ।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३० अगस्त १९१३) का कार्य्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) प्रबन्धकारिणी-समिति के ता० ७ जूलाई, २ जूलाई, और ३० अगस्त १९१३ के कार्य्य-विवरण सूचनार्थ पढ़े गए ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए ।

(१) बाबू गोविन्दवल्लभ पन्त, वकील, नैनीताल ॥) (२) बाबू रघुनन्दनप्रसाद गुप्त वैद्य, पो० टीटागढ़, ज़िला २४ पर्गना १॥) (३) बाबू मोहनदास टैल, बीबी हटिया, काशी १॥) (४) बाबू बसोरेलाल सराफ़, पो० भरगावाँ, तहसील सिहोरा रोड, ज़िला जबलपुर १॥) (५) पंडित प्रेमशंकर दवे, सरिम, डिस्ट्रिक् जजेज़ कोर्ट, भंडारा ३) (६) पंडित सीताराम पन्त शेष, सूत टोला, काशी १॥) (७) बाबू ब्रजराजदास, सिद्ध माता की गली, काशी ॥) (८) बाबू मुकद्दमदास, सोरा का कुवाँ, काशी) (९) पंडित महावीर शर्म्मा, संस्कृत पाठशाला, सपुर, ज़ि० गोंडा १॥) (१०) बाबू मंगलाप्रसाद त्री, ठि०भगवानदास गोपीनाथ, कुंजगली, काशी १॥) (११) बाबू भगवानदास चेतनदास डागा, डागों का महल्ला, बीकानेर ५) (१२) बाबू गुलाबचन्द, गणेश दीक्षित का महल्ला, काशी १॥) (१३) पंडित सोमनाथ नायक पालना, भिखारीदास का महल्ला, काशी काशी १॥) (१४) पंडित कृष्णराव नायक मालवतकर, महल्ला नारायण दीक्षित, काशी १॥) (१५) पंडित हरिराम पाठक कावले, महल्ला नारायण दीक्षित, काशी १॥) (१६) बाबू लक्ष्मीनारायण, भावसिंह का महल्ला, काशी १॥) (१७) पंडित मन्नू जी जोशी, भिखारीदास का महल्ला, काशी १॥) (१८) बाबू छगनलाल, भिखारीदास का महल्ला, काशी १॥) (१९) बाबू रघुनन्दन प्रसाद बी० ए०, वकील विहार ज़ि० पटना १॥) (२०) बाबू गौरीशंकरसहाय, वकील, खंजरपुर, भागलपुर १॥) (२१) पं० जगन्नाथ प्रसाद पाँड़े, गोविन्दपुरा, काशी १॥) (२२) पं० भवानीशंकर गौर, महल्ला भिखारीदास, काशी १॥) (२३) पं० विश्वनाथशर्म्मा उपाध्याय, ताल महारानी कोठी, बनारस १॥) (२४) बाबू भगवान दास, काशी १॥) (२५) पं० सर्वानन्द शर्म्मा, संस्कृत पाठशाला, परसपुर ज़ि० गोंड़ा १॥) ।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए ।

(१) पं० लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री, गवर्नमेंट स्कूल–बाँदा । (२) पं० धूरन दुबे–मुन्सरिम मुन्सफ़ी–आज़मगढ़ । (३) बाबू कमलाप्रसाद गोभिल–वैश्य बोर्डिङ्ग हाउस । आगरा । (४) पं० विनायक राव केशव–फारेस्ट सटिलमेन्ट आफ़िसर, पिछोर । (५) पं० गणपति लाल चौबे, पेंशनर एजेन्सी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स–रायपुर । (६) पं० चन्द्रसेन जैन वैद्य–इटावा । (७) बाबू ज्वालाप्रसाद मारवाड़ी, शिवपुर, हावड़ा । (८) बाबू लायकसिंह–डिपटी कलेक्टर हरदोई । (९) बाबू सर्यू-सिंह कलना खोर–पो० उसका–ज़ि० बस्ती । (१०) पं० खेतलदास मिश्र–एलायन्स बंक आफ़ शिमला–मसूरी । (११) लाला बाबूलाल–सेवाय होस्टल–मसूरी । (१२) लाला ज़ोरावरसिंह, कामदार महारानी राठौजी साहबा झालावाड़ । (१३) पं० भागवत-प्रसाद दुबे–कटरा–बाँदा । (१४) बाबू सिद्धगोपाल–मास्टर पो० खण्डेह–ज़ि० बाँदा । (१५) पंडित अलोपी कविराज–कालाकाँकर । (१६) बाबू माताप्रसाद निगम–रजिस्ट्रार क़ानूनगो–हमीरपुर । (१७) लाला बासुदेव मल रामस्वरूप–नज़ीबाबाद । (१८) पं० पंचाननशर्म्मा–सुरेमनपुर–बलिया । (१९) बाबू कुन्दनलाल–वकील–मुज़फ़्फ़रनगर । (२०) पं० मानचन्द शर्म्मा–मसूरी । (२१) बाबू राजाराम अग्रवाल ओवरसियर–सतलज सर्वे डिविज़न–लाहौर । (२२) पं० बदरीनारायण मिश्र–डिपटी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स–सीतापुर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२३) पं० प्रयागदत्त त्रिपाठी–ज़ि० बहराइच। (२४) पं० दयालाल दुबे–द्वितीयाध्यापक–हिन्दी स्कूल डूंगरपुर। (२५) बाबू श्यामलाल क्लर्क–स्टेशन अस्पताल–रुड़की ज़ि० सहारनपुर। (२६) बाबू जगन्नाथ नायक बोर्धा। (२७) बाबू आनन्दीलाल गुप्त–जुरहरा–भरतपुर। (२८) पं० दत्तात्रय काशीनाथ करमरकर–हेड-क्लर्क–राली आफ़िस–धावर। (२९) बाबू महावीर-प्रसाद ख़ज़ानची–नानपारा–बहराइच। (३०) बाबू रामलाल–भूपाल। (३१) बाबू पूर्णेन्दु श्रीवास्तव–हेड-क्लर्क–डिस्ट्रिक् बोर्ड–बहराइच। (३२) ठाकुर दिग्विजयसिंह–कामदार पलसू पो० सहार–ज़ि० मथुरा। (३३) पं० द्वारकाप्रसाद ब्रह्मभट्ट–रोहली पो० सराय पिराग ज़ि० फर्रुखाबाद। (३४) पं० उदयराम शर्म्मा–बाडिया। (३५) कुं० मोतीलाल जैन, ठि० राय बहादुर सेठ चम्पालालजी–ब्यावर। (३६) बाबू लक्ष्मी-नारायण–मुरादाबाद। (३७) बाबू रामनाथराय–ज़ि० बलिया। (३८) पं० सदाशिव पाठक–अध्यापक सागवाड़ा–स्कूल डूँगरपुर। (३९) पं० रामदहिन पाठक–सुमेरपुर–ज़ि० बलिया। (४०) पं० जवाहिरलाल शास्त्री–खुरजा।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि यदि इनके इस्तीफ़े का कोई विशेष कारण न हो तो वे कृपापूर्वक उस पर पुनः विचार कर उसे लैाटा लें।

(५) मंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी—(१) बाबू सरयूप्रसादनारायणसिंह–सूर्य्यपुर, ज़ि० आज़मगढ़। (२) बाबू कन्हैयालालबी० ए० माडल हाई स्कूल–जबलपुर। (३) पं० गंगाशरण मिश्र–पुलिस इन्सपेकृर–हरदोई। (४) ठाकुर सरयू-प्रसाद सिंह–सब डिपटी इन्सपेकृर आफ़ स्कूल्स–फतहपुर। (५) पं० छविनाथ मिश्र बी० ए० असिस्टेन्ट इन्सपेकृर आफ़ स्कूल्स, अलमोड़ा।

सभा ने इस पर शोक प्रकट किया।

(६) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं। कुंवर क्षत्रपतिसिंह जी कालाकांकर

पञ्चाननपञ्चकम्
ऋतुविलासिका
श्रीरामविलाप
श्रीरमेशाष्टक
पुत्रशोक
ऋतुरसरूपक
फाग नहीं समर

एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल—कलकत्ता
Journal and Proceedings of the Asiatic Society December, 1912 and January to May, 1913,

पं० बांकेबिहारीलाल—मुग़लसराय
शिवाजी विजय

बाबू पन्नालाल जैन—काशी
सनातन जैनग्रन्थमाला माला १ और २
सनातन जैनधर्म्म
महावीरस्वामी
षट्द्रव्यदिग्दर्शन
पं० बालगंगाधर तिलक का व्याख्यान (जैनधर्म)
आर्यधर्म्म
जैनतत्व ज्ञान एवं चरित्र
मनुष्येर स्वाभाविक खाद्य कि
जैन धर्म्म

स्वामी प्रकाशानन्दगिरि—काशी
औरङ्गज़ेबनामा भाग २

ठाकुर राधावल्लभ पाठक, मथुरा
स्वयं चिकित्सक

जैनमित्र कार्य्यालय, हीराबाग़—बम्बई
गृहस्थ धर्म्म

पं० रामदीन मिश्र—काव्यतीर्थ, ट्रेनिङ्गस्कूल, हारी
भारत का मेट्रिक्युलेशन हिन्दी इतिहास

पं० जीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ, उपदेशक सम्मेलन, प्रयाग
बाबा का ब्याह

राय आत्माराम साहब, सिविल इञ्जीनियर,
धर्म्मदिवाकर

गोस्वामी तुलसीधर शास्त्री, बैठक गोस्वामी नन्द—झंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिव्रताभूषण
दिगंबरजैनकार्य्यालय—सूरत
पुत्री को माता का सिखापन
श्री महावीर चरित्र
बाबू मथुरादास
प्रश्नोत्तर जड़तत्व विज्ञान भाग १ ग्रैार २
सारस्वत अरोड़ वंश पुरोहित पंचज्ञाति सभा, अमृतसर
स्वजातिहितपत्र
मन्दराज की गवर्नमेंट
South Indian Inscriptions vol II (New Imperial Series vol X-1.
ख़रीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त
ध्यानयोगप्रकाश
महाभारतसार
नारीधर्मविचार भाग १ ग्रैार २
सीता चरित्र भा० १, ५ ग्रैार ६
एक अनपढ़ स्त्री की यात्रा
स्त्री ज्ञानमाला भा० १ ग्रैार २
भारतवर्ष की वीर ग्रैार विदुषी स्त्रियाँ भा० १ ग्रैार २
गर्भरक्षाविधान
धर्म्म शिक्षा
भारतवर्ष की सच्ची देवियाँ
जापानी की कहानी
शिवाजी व रोशनआरा
कामकुसुमोद्यान
वनिताहितैषिणी भा० १
बालपंचरत्न
मादकद्रव्यखंडन
द्वैतानन्दतरंगिणी
श्रीमान् हनुमानजी का जीवनचरित्र भा० १ ग्रैार २
महाराष्ट्रोदय
स्त्रीहितोपदेश
प्रार्थनाविधि
उपदेशमाला प्रथम भाग
शिशुपालन
भारत की प्राचीन झलक, पहिला भाग
संगीतरत्नप्रकाश प्रथम भाग
धर्म्मशिक्षा दूसरा भाग
ब्रह्मकुलवर्तमानदशादर्प्पण
बालाबोधिनी भा० १. २. ३. ४. ग्रैार ५
मारवाड़ी ग्रैार पिशाचिनी
सूरजमुखी
भैरवी अर्थात् वीरकुमारी
आशिकों की कमबख़्ती
वीराङ्गना
आफ़त की बुढ़िया
शेक्सपियर के नाटक
आल्हा रामायण लंकाकांड
सतीदहन नाटक
शिवविवाह नाटक
आल्हारामायण आठों काण्ड
एकादशीमाहात्म्य भाषा
धनुषयज्ञलीला नाटक
वीरविनोद अर्थात् कर्ण पर्व
गंगनामा
अश्वविचार अर्थात् शालिहोत्र बड़ा
चोर की तीर्थयात्रा
कल्याणी
प्रेमयोगिनी
नेपाल का प्राचीन इतिहास
Indian Autiquary for August, 1913.

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई

—:o:—

प्रबन्धकारिणी समिति ।

शनिवार ता० २९ नवम्बर १९१३ सन्ध्या के ५½ बजे
स्थान सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २९ सितम्बर १९१३) का कार्य्यविवरण पढ़ा गया ग्रैार स्वीकृत हुआ।

(२) बाबू श्यामसुन्दरदास जी के निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किए गए (क) सभा का वार्षिक अधिवेशन ग्रैार वार्षिकोत्सव एक ही दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ करे और उसमें बाहर के लोग भी निमन्त्रित किए जाया करें। प्रातःकाल सभा का वार्षिक अधिवेशन हो जिसमें वार्षिक रिपोर्ट हिसाब आदि पर विचार हो तथा अधिकारी चुने जाँय। दोपहर को विशेष विषयों पर विचार हो तथा सन्ध्या समय वार्षिकोत्सव किया जाय (ख) सभा के संरक्षकों के पास डेपुटेशन भेज कर कुछ वार्षिक सहायता प्राप्त करने का उद्योग किया जाय (ग) युक्तप्रान्त की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की जो व्यवस्था इस समय वर्तमान है उससे हिन्दी को विशेष हानि पहुँचने की सम्भावना है—अतएव इस विषय पर विचार कर सभा गवर्न्मेंन्ट की सेवा में अपना वक्तव्य उपस्थित करे और यदि आवश्यक हो तो प्रान्त भर में इसके लिये आन्दोलन करे। (घ) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों का कार्य्य इस वर्ष संयुक्त प्रदेश में समाप्त हो जायगा, व १९१४ का समय खाली है—अतएव इस वर्ष हरद्वार, मथुरा, प्रयाग, और काशी आदि स्थानों में पंडों की प्राचीन बहियों की जाँच की जाय और प्रत्येक शताब्दी के लेखों तथा अक्षरों की कई नक़लों का संग्रह किया जाय। इससे हिन्दी गद्य के इतिहास को जानने में सुगमता होगी।

निश्चय हुआ कि (क) यह स्वीकार किया जाय और मंत्री नियमों पर विचार कर आगामी अधिवेशन में सभा को यह सम्मति दें कि इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये क्या प्रबन्ध किया जाय। (ख) संरक्षकों की सेवा में वार्षिक सहायता के लिये प्रार्थनापत्र भेजे जाँय। (ग) इस प्रस्ताव से सभा सहमत है, यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं, सेकेण्डरी शिक्षा तथा प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में गवर्न्मेण्ट की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजे जाँय और इसे तयार करने के लिये निम्नलिखित सज्जनों की सब-कमेटी बना दी जाय अर्थात् बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०, बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी० और पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०। (घ) यह स्वीकार किया जाय और सन् १९१४ में काशी प्रयाग, मथुरा, हरद्वार, नैमिषारण्य, मिश्रिक, चित्रकूट, सूकरक्षेत्र, बिठूर और अयोध्या के पंडों की बहियों की जाँच की जाय और इसकी सूचना गवर्न्मेण्ट को दी जाय।

(३) बाबू माधवप्रसाद का १८ अक्टूबर १९[illegible] का पत्र उपस्थित किया गया, जिसमें उन्होंने काशी में न रहने के कारण सभा की प्रबन्धकारिणी समिति से इस्तीफ़ा दिया था।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० समिति के सभ्य चुने जाँय।

(४) भागलपुर के हिन्दी साहित्यसम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा से हिन्दी साहित्य प्रदर्शिनी के लिये चीज़ें माँगी थीं।

निश्चय हुआ कि उन्हें लिखा जाय कि वे कृपापूर्वक अपने किसी अधिकारी को सभा में भेज दें कि वे [illegible] से प्रदर्शिनी के लिये उपयुक्त वस्तुओं को ले जाँय।

(५) सभा की ऋण की पूर्ति के लिये जिन सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई है उनकी नामावली तथा [illegible] कोश का आज तक का निम्नलिखित हिसाब उपस्थित किया गया।

३१६१०॥≡)॥	कुलचन्दा आजतक प्राप्त
१०००)	व्याज मद्धे सभा ने अपनी [illegible] में से दिया।
३२६१०॥≡)॥	
२४८०९)१	सभाभवन
२३७॥-)	फुटकर व्यय
१९२३।=)।	यात्राव्यय
१८३०॥)॥	असबाब
३४४०।≡)४	व्याज
३१८।-)॥	छपाई
३२५५९॥)११	
५१।=)१०	बचत
३२६१०॥≡)॥	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

निश्चय हुआ कि (क) सभा की आय में से जो १०००) रु० व्याज मद्धे दिया गया है वह स्थायी कोष में जमा कर लिया जाय और व्याज मद्धे उसका व्यय लिख दिया जाय। (ख) ऋण की पूर्ति के लिये जिन सज्जनों ने सहायता दी है उनकी नामावली नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कर दी जाय। (ग) आगामी अधिवेशन में मंत्री उन सज्जनों की नामावली उपस्थित करें जिनके नाम पत्थर पर खुदवा कर सभा के पूर्व निश्चय के अनुसार लगाये जाने चाहिएं।

(६) निश्चय हुआ कि स्थायी कोश की बचत का रुपया पोस्टआफिस के सेविंग बंक में रख दिया जाय और मंत्री को अधिकार दिया जाय कि जब १००) रु० पूरा हो जाय तब वे उसका प्रोमिसरी नोट खरीद लिया करें।

(७) निश्चय हुआ कि सभाभवन के किवाड़े आदि रँगवाने तथा एक दफ्तरी ख़ाने के बनवाने का प्रस्ताव आगामी वर्ष के बजेट के समय विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(८) बिहार और उड़ीसा की गवर्न्मेंन्ट के हिन्दी और उर्दू ट्रांसलेटर का २० नवम्बर १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने कार्यालय में एक असिस्टेंट की नियुक्ति के लिये किसी ऐसे ग्रेजुएट को चुनने के लिये लिखा था जो अँगरेज़ी और हिन्दी में पूर्ण योग्यता रखता हो और उर्दू भी जानता हो।

निश्चय हुआ कि इसकी सूचना नागरी प्रचारिणी पत्रिका में दे दी जाय और इसके लिये उपयुक्त व्यक्ति मिलने पर उन्हें लिखा जाय।

(९) पूना के भारत-इतिहास संशोधक मंडल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा अपनी प्रकाशित पुस्तकें उनकी पुस्तकों के परिवर्तन में उन्हें दिया करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(१०) मिर्ज़ापुर के उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने १००) रु० की स्वरचित पुस्तकें सभा को देने के लिये लिखा था और मंत्री ने सूचना दी कि पंडित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री की १०० प्रतियाँ सभा को दी हैं।

निश्चय हुआ कि ये धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाँय।

(११) निश्चय हुआ कि बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा कर भागलपुर में साहित्य सम्मेलन के समय सभा की पुस्तकों की बिक्री का यथोचित प्रबन्ध कर दें।

(१२) बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति साहित्यसम्मेलन के पुस्तकालय के लिये दी जाय और प्रथम सम्मेलन की रिपोर्टें की पचास पचास प्रतियाँ रखकर शेष पुस्तकें सम्मेलन कार्यालय में भेज दी जायँ और जितनी आय इसकी बिक्री से हुई हो वह उनसे माँगी जाय।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

साधारण सभा

शनिवार तारीख़ २९ नवम्बर १९१३—सन्ध्या के ५ बजे स्थान-सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख़ २६ अक्टूबर १९१३) का कार्य-विवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए—

(१) बाबू माधवप्रसाद, ठठेरीबाज़ार, काशी ६॥) (२) कुंवर सुखसिंह पोकरन, सुपरेण्टेण्डेण्ट आफ़ हाकिम्स, जुनूवी डिवीज़न, सोतज, मारवाड़ ५) (३) बाबू सतीशचन्द्र चक्रवर्ती, सेक्रटरी नवग्राम साहित्य समिति पोष्टाफिस हेमनगर, ज़ि० मैमनसिंह ५) (४) बाबू बेचीप्रसाद खत्री, भक्तिकुटीर, लकसा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी १॥) (५) बाबू गंगाराम महाजन, स्थान लाल-ग्राम, ज़िला फ़र्रुख़ाबाद १॥) (६) पण्डित शिवदर्शन-लाल वाजपेयी, औरैया इटावा ३) (७) बाबू नवाब-लाल बी० ए०, वकील, बलिया ५) (८) पण्डित नारायण लाल तिवारी—ए० आर० इन्स्टीटयूट—पूसा १॥) (९) बाबू रामेश्वरदयाल—ए० आर० इन्स्टीट्यूट—पूसा १॥) (१०) बाबू रामदास, महल्ला ख़ालिसहाट—रायबरेली १॥) (११) श्रीयुत पं० हरिशङ्कर दयाशंकर दवे—एग्रिकल्चरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूसा १॥) (१२) श्रीयुत मिस्टर जहाँगीर सोहराबजी तारापुरवाला—हेडमास्टर सेण्ट्रल हिन्दू कालिजिएट स्कूल काशी ५) (१३) पण्डित जयगोपाल शर्म्मा चटर्जी—जनरल सेक्रेटरी—श्री संस्कृत पुस्तकोन्नतिसभा इटावा ३) (१४) कुंअर दिल्लीपति सिंह—बरगावा—पो० पिसावा—ज़िला सीतापुर ३) (१५) पण्डित मनसाराम सारस्वत—बोपाराय पर्गना नकोदर—ज़िला जालंधर ३) (१६) श्रीयुत पण्डित शिवदान थानवी—मैनेजर डायमंड जुबिली बुकडिपो—जोधपुर (मारवाड़) १॥) (१७) महाराजकुमार समर्थ सिंहजी—रावटी, जोधपुर ४)

(३) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गएः—

(१) पण्डित जगन्नाथ शर्म्मा—कानपुर। (२) बाबू रामरत्नलाल—डिपटी कलेक्टर—फ़तहगढ़। (३) ठाकुर शिवलाल शर्म्मा—मेरठ सिटी।
निश्चय हुआ कि इनके इस्तीफ़े स्वीकार किये जाँय।

(४) उपमन्त्री ने कलकत्ते के बाबू रामनारायण खन्ना की मृत्यु की सूचना दी। जिस पर सभा ने शोक प्रगट किया।

(५) निश्चय हुआ कि चतुर्थ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिये निम्न लिखित सज्जन सभा की ओर से प्रतिनिधि चुने जायँ—(१) महात्मा मुंशीराम काँगड़ी। (२) पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा अजमेर। (३) पण्डित श्याम बिहारी मिश्र एम० ए० छत्रपुर। (४) पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा बी० ए०—अजमेर। (५) आनरेबल पण्डित मदनमोहन माल बी० ए०, एल एल० बी० प्रयाग। (६) बाबू का प्रसाद जायसवाल कलकत्ता। (७) पण्डित महा प्रसाद द्विवेदी—कानपुर। (८) पण्डित सूर्यनारा दीक्षित एम० ए० वकील—लखीमपुर। (९) लक्ष्मीनारायणलाल वकील गया। (१०) प चन्द्रशेखरधर मिश्र चम्पारन। (११) पण्डित कृष्ण भट्ट, अहियापुर, प्रयाग। (१२) उपाध्याय प बदरीनारायण चौधरी मिर्ज़ापुर। (१३) पण्डित ईश्वरप्रसाद ओझा—दरभंगा। (१४) बाबू जा प्रसाद नन्दे, मऊ वाजिदपुर (१५) राय पूरनचन्द पटना। (१६) पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० बाँकीपुर। (१७) ठाकुर लक्ष्मीपति—दानापुर। बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा—भागलपुर। पंडित राधाचरण गोस्वामी, वृन्दावन। (२०) पं जगन्नाथप्रसाद पांडेय, वकील मुज़फ़्फ़रपुर। बाबू गोपाललाल खत्री, लखनऊ। (२२) बाबू सुन्दरदास बी० ए०—लखनऊ। (२३) राय कृ काशी। (२४) पण्डित कृष्णराम मेहता बी० ए०, एल० बी० काशी। (२५) बाबू गौरीशंकरप्रसाद ए०, एल एल० बी०, काशी। (२६) बाबू जगन्न वर्म्मा—काशी। (२७) पण्डित देवीप्रसाद उपा काशी। (२८) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा—काशी। पंडित रामचन्द्र शुक्ल काशी। (३१) पण्डित द्विवेदी गजपुरी बी० ए०—काशी। (३२) पंडित नेश्वर मिश्र—वकील—दरभंगा। (३३) पंडित देव विहारी मिश्र बी० ए०—सीतापुर। (३४) गणेशविहारी मिश्र—लखनऊ। (३५) बाबू शिव गुप्त—काशी। (३६) बाबू पुरुषोत्तमदास ट प्रयाग। (३७) बाबू जयरामदास—काशी।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वी हुईं।

संयुक्त-प्रदेश के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर—
The Sacred Laws of the Aryans.
पं० शंकर गजानन पुरोहित बी० ए० एल बी० सदाशिव पेठ पूना।
श्रीतुलसी रामायण (मराठी भाषान्तर स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० बच्चन पाँड़े-गवर्नमेंट हाई स्कूल-इटावा
होरेशियस २ प्रति।
पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० काशी
भारत के प्रसिद्ध पुरुष। सरवरिया।
बाबू पन्नालाल, मंत्री जैनधर्म्म-प्रचारिणी सभा-काशी
तत्त्वार्थ राजवार्तिक।
पं० लज्जाराम शर्म्मा-बूँदी
उमेदसिंह चरित्र।
पं० हरिशंकर शर्म्मा, हरदुआगंज-अलीगढ़
अनुरागरत्न।
पं० राजेन्द्रनाथ, श्यामसवाई मंदिर, डवोई
भारतीयमत-दर्पण। सम्राट् शुभागमन।
पं० इन्दु शर्म्मा भारद्वाज निरुक्तरत्न, महाविद्यालय, ज्वालापुर
अनङ्गराज कर्ण।
गृहलक्ष्मी कार्य्यालय, कर्नलगंज-इलाहाबाद
कन्याकौमुदी। वनिता-बुद्धि-विलास।
बाबू गौरीशंकर प्रसाद-वकील—काशी
मेडिकल जूरिसप्रडेन्स।
सद्धर्मप्रचारक कार्य्यालय-दिल्ली
उपनिषदों की भूमिका।
बाबू ज्योतिप्रसाद, सम्पादक, जैनप्रचारक, देवबन्द सहारनपुर
ज्योतिप्रसाद भजनमाला। मनोरमा।
सुन्दर चरित्र।
बाबू मूलचन्द किशनदास कापड़िया, दिगम्बर जैन कार्य्यालय, कनावाड़ी सूरत
शुं ईश्वर जगत कर्त्ता छे। जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका।
मुंशी रामध्यानलाल-सुपरवाइज़र कानूनगो-जौनपुर
शतपंच चौपाई रामायण।
पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा-अजमेर
टाड राजस्थान प्रथम खंड। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री १०१ प्रति।

बाबू विश्वनाथप्रसाद खत्री-कचौरी गली—काशी
जयन्त। महाराष्ट्र रहस्य।
बाबू जयशंकरप्रसाद-काशी
काननकुसुम।
पं० माधवप्रसाद पाठक—काशी
हिन्दी-व्याकरण।
पं० माधवराव सप्रे—रायपुर
दासबोध।
पं० देवीदत्त शर्म्मा, भुआली, ज़ि० नैनीताल
तमाकू सिग्रेट निषेध। किन्डरगार्टन बुक नं० १।
जपाकुसुम।

ख़रीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त—
विनय पत्रिका।
चोर सुलतान।
हिन्दी केमिस्ट्री।
विद्युत्-शास्त्र।
वनस्पति-शास्त्र।
बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य।
महाभारत भा० १ और २।
बुद्धदेव का जीवन चरित्र।
स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान नं० १-८।
बादशाह लियर।
प्रेम वा प्राणसमर्पण।
नीति-संग्रह।
शिरोमणि।
हिन्दी बँगला शिक्षा भाग १ और २
भारत में पोर्चुगीज़।
राजसिंह।
भगवद्गीता।
राधाकान्त।
अङ्गरेज़ी शिक्षा भाग १, २, ३, और ४।
स्वर्ण-कमल।

गौरीशंकर प्रसाद।
मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचना ।

सभा के नियमानुसार आगामी वार्षिक चुनाव के संबंध में जिन सभासदों को कोई प्रस्ताव करना हो वे कृपाकर २० मई १९१४ तक उसे लिख कर भेजने का कष्ट करें ।

गौरीशंकर प्रसाद,
मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा ।
काशी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A414

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १८]

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

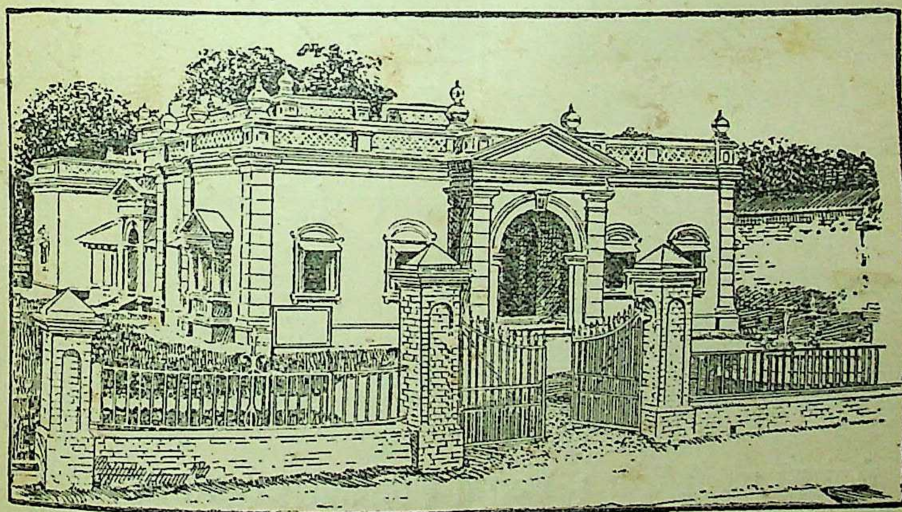
जनवरी—फरवरी । १९१४

सम्पादक-रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

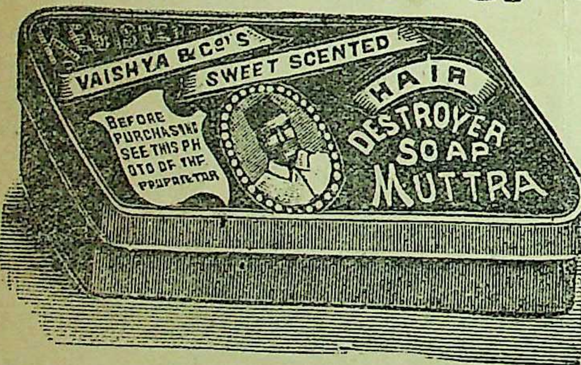
वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय-सूची ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वैश्य एण्ड कौं० मथुरा का

वाल उड़ाने का साबुन

३-४ मिनट मे बाल उड़ा कर चमड़ी साफ और कोमल करता है

खरीदनेसे पहिले विलायती रंगीन ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केबड़ा, खस, का फी टिकिया ॥) ३ टि. का १।=)

नीबू, कपूर, संतरे का फी टिकिया ।~) आना ३ टिकिया का बक्स ।॥)

जरूरत है एजेण्टोंकी जरूरत है एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५)रु. सैंकड़ा कमीशन देंगे और खर्च माफ

पता:—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग १९ } जनवरी और फ़रवरी, १९१४. { संख्या ७—८

राविया*

[ले० पंडित केदारनाथ पाठक ।]


स भांति हिन्दू नारियों में गार्गी, मीराबाई, कर्माबाई इत्यादि, और ईसाइयों में सेण्ट सिसिलिया, गोया प्रभृति, धार्मिक जीवन में उन्नति कर संसार के इतिहास में अपना नाम चिरस्थायी कर गई हैं और आगे आनेवाले भक्तों की श्रद्धा भक्ति आकर्षण करने की अधिकारिणी हैं उसी भाँति मुसल्मान महिलाओं में ज़ुलेख़ा, ज़ुबेदा प्रभृति मनस्विनी, उन्नतहृदया नारियों ने अपने सच्चरित्र के द्वारा अगणित भक्तों का हृदय सिंचन किया है। मुसल्मानों में, शिया और सुन्नी ये दो सम्प्रदाय* प्रधान माने जाने पर भी और अनेकों उपसम्प्रदाय हम लोगों की भाँति हैं। सब शाखा-सम्प्रदायों में "सूफ़ी" सम्प्रदाय प्रधान और जगत् प्रसिद्ध है। इस महत् सम्प्रदाय में बहुतेरे भक्त तथा ज्ञानी पुरुषों ने दीक्षित होकर इसकी जैसी उज्ज्वल कीर्ति बढ़ाई है वह जगत् के किसी धर्म की अपेक्षा कम नहीं कही जा सकती। इस धर्म में वेदान्त मत का प्रतिपादन यथेष्ट भाव से दिखाई देता है। हमारे वैष्णव धर्म के साथ इसकी यथेष्ट सहृदयता पाई जाती है।

* मूल-प्रबन्धलेखक महाशय ने "रबिया" नाम दिया है। शुद्ध शब्द क्या है, मैं नहीं जानता। पर फ़ारसी के सुयोग्य विद्वान् और हिन्दी के जानकार लेखक स्वर्गीय लाला बालमुकुन्द गुप्त से पूछा तो उन्होंने बताया कि शुद्ध शब्द है "राबिया"; "रबिया" बङ्गाली सांचे में ढाला गया है। अस्तु मैंने भी उक्त महानुभाव के ही आदेशानुसार "राबिया" रक्खा है। यदि इसमें भी कोई त्रुटि हो तो मेरी ही अल्पज्ञता का दोष है। तदर्थ पाठकगण मुझको क्षमा करें।

अनुवादक।

* शिया सम्प्रदाय के प्रधान धर्म्म ग्रन्थ "मजलिस-उल-मोमीन" द्वारा अनुमोदित और-Oriental Biographical Dictionary द्वारा समर्थित। किन्तु 'ग़यास उल लुग़ात' नामक कोश में तीन सम्प्रदायों का उल्लेख है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि "सूफ़ी" शब्द का ठीक अर्थ क्या है। कोई कोई विद्वान् इसे अरबी "सूफ़" (पशम्) धातु से निकला मानते हैं; कारण, इस सम्प्रदाय के साधु संन्यासी पशमी पोशाक पहनते हैं। कोई इसकी व्युत्पत्ति साफ़ (पवित्र) शब्द से बताते हैं, क्योंकि "सूफ़ी" मतावलम्बी कायमनोवाक्य से पवित्रता से रहना ही आत्म-साधन का परम उपाय मानते हैं। कोई यूनानी "सोफ़िया" (ज्ञान) से भी इसे निकालते हैं क्योंकि सूफ़ी "ब्रह्मसाधन" का प्रधान साधन ज्ञान मानते हैं*। सूफ़ी सम्प्रदाय के दो भेद हैं एक "मुकल्लम" अर्थात् तोषामोदकारी सम्प्रदाय, जो कृत्रिम कर्म्मों और आडम्बरों के अनुष्ठान का पक्षपाती† है और दूसरा "सूफ़ी" जो आत्मनिग्रह और कृच्छ्रतासाधन द्वारा मनसंयम का यत्न ही परम कर्त्तव्य मानता है। इस "सूफ़ी" धर्म का पारस देश में ही अधिक प्रचार हुआ था। इसके अनुयायी .कुरान को केवल भगवद्वाणी मान कर उसपर श्रद्धा मात्र करते हैं। धर्म्मपालन करने में वे "पीर" (गुरु) के उपदेश तथा अपने विज्ञान और विचार ही का अनुसरण करते हैं। पाँच बार नमाज़ पढ़ने की अपेक्षा वे निरन्तर उपासना करने के पक्षपाती हैं। .कुरान के निर्दिष्ट मंत्र पाठ करने की अपेक्षा वे अपने अपने मनोभावों के द्वारा उपासना और प्रार्थना उत्तम समझते हैं। वे प्रेम तथा अन्य निरपेक्ष स्वाधीन उपासना ही को साधन का सर्वोत्तम उपाय मानते हैं। "इलहाम" वा साधन के तीन सोपान हैं। पहला प्रार्थना तथा विषय-चिन्ता-विसर्जन। दूसरा .कुरान, हदीस, सुन्नत-प्रभृति का पाठ छोड़ एकान्त में एकाग्र चित्त से ईश्वराराधन तथा "अल्लाह" के नाम का निरंतर स्मरण। यहाँ तक कि वह नाम अनायास ही 'जागृतः स्वपतो वापि गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा' उच्चरित होने लगे। तीसरा मानस जप, यहाँ तक कि शब्द का लोप हो जाय केवल अर्थ और भाव में समग्र हृदय परिपूर्ण हो जाय। इन तीनों के उप[...] सामीप्य प्राप्त होता है। जो लोग ब्रह्मसामीप्य [...] करते हैं वे "इलहामिया" कहलाते हैं। इलहा[...] होने के उपरान्त फिर जो ब्रह्मसायुज्य प्राप्त [...] हैं वे "इत्तिहादिया" कहलाते हैं। इन लोगों [...] मत से सिर्फ़ शुष्क ज्ञान ही ब्रह्मप्राप्ति का [...] नहीं है। विचार वितर्क से सारा परदा नहीं [...] सकता; आत्म-निवेश के द्वारा ही आन्तरिक [...] परिस्फुट होती है*। जैसे नदी के जल से बुलबुल[...] फेन उठता है और फिर उसी नदी के जल में वि[...] हो जाता है, उसी भाँति ब्रह्म में आत्मा का [...] जाना भी मानव जीवन की सार्थकता है। [...] अपने अहंभाव को विसर्जन कर देना ही सूफ़ियों [...] एकान्त वासना होती है। आत्मा परमात्मा का [...] मात्र है, परमात्मा में आत्मा को मिला देने [...] सूफ़ी लोग चेष्टा किया करते हैं। विश्ववस्तु [...] ही प्रच्छन्न रूप में ईश्वर हैं। सभी पदार्थों में [...] वास कर रहा है, वही एक मात्र सत्य, शिव, [...] सुन्दर है, और सब मिथ्या-माया है। इसलिये [...] ही सबका सार है। महात्मा शेख़ सादी ने क[...] "हम सत्यस्वरूप ईश्वर के नाम की शपथ [...] कहते हैं कि जब उसने अपनी विभूति को [...] सम्मुख प्रकाशित किया तब सारा मिथ्या माया [...] छिन्न भिन्न हो गया; वर्तमान जीवन प्रियतम के [...] की भाँति है"। सूफ़ी अनेक प्रकार के तुच्छ [...] घृणित पदार्थों में विक्षिप्त मन को प्राकृतिक सौ[...] सङ्गीत, शिल्पकला इत्यादि मनोमुग्धकारी [...] विषयों में घुमा फिरा कर फिर प्रियतम के स[...] पहुँचाने की चेष्टा करते हैं। वे कहते हैं कि म[...] को उचित है कि वह इस प्रेम की सयत्न र[...] और संयम तथा चित्तनिवेश के द्वारा सारी चि[...] तथा भावनाओं को ईश्वर के पवित्र चरणों में ल[...] तब वह धीरे धीरे उसके समीप पहुँचेगा [...]

*सांख्य दर्शन का मत।

†अनेक अंशों में पूर्वमीमांसा के अनुकूल।

* पतञ्जलि दर्शन का मत।

† वेदान्त का मत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में उसमें लीन हो जायगा *। हिजरी की दूसरी शताब्दी में सूफ़ी धर्म्म ने अद्वैत वाद का आश्रय लेकर धर्मप्रेमियों में एक अपूर्व कौतूहल उत्पन्न कर दिया। इसी कारण इस सम्प्रदाय को मुसलमान-समाज में विरोध लाञ्छन सहना पड़ा जिससे ये लोग अपने को गुप्त रखने की अधिक चेष्टा करते थे। "हम सत्य स्वरूप हैं, हम जिससे प्रेम करते हैं वही हम हैं और हमीं वह है। हममें और उसमें कोई भेद नहीं, अभेद है। जब तुम उसको देखते हो तब हमें देखते हो; जब हमें देखते हो तब उसको देखते हो" इसी महत् सिद्धान्त को सर्वसाधारण में फैलाने के कारण बग़दादनिवासी 'अलहुल्लाज' नामक महात्मा को ३०९ हिजरी में अपने प्राण से हाथ धोना पड़ा। अथवा यों कहिए कि इस महत् धर्म के प्रचार के हेतु इस महात्मा ने अपने को क़ुरबान कर दिया। मुसलमान-जगत् में जितने प्रेमिक ईश्वर-भक्तों ने जन्म धारण किया है, उन सबकी जीवनी और महत् उपदेशों का संग्रह करके सूफ़ी साहित्य भी हम लोगों के वैष्णव साहित्य के सदृश मधुर कोमल और नये नये भावों से भरा पूरा है। इनमें से महाकवि सादी, हाफ़िज़, खुसरो*, निज़ामी, सनाई, फरीदीन अत्तार और मौलाना जलालुद्दीन रूमी प्रधान हैं। इन लोगों के रचित ग्रन्थ सूफ़ियों के निकट पूजनीय और विद्वानों के निकट आदर की वस्तु हैं। जलालुद्दीन रूमी की मसनवी इस धर्म में बड़ी ही श्रद्धा तथा आदर की दृष्टि से देखी जाती है। कितने लोग "उमरख़याम" को भी सूफ़ी कहने का दावा करते हैं। उनकी दो चार ब्रह्मवादपूर्ण कविताएँ प्राप्त होने पर भी उनकी संशयवादपूर्ण कविताओं की अधिकता मन में द्विविधा उत्पन्न कर देती है। स्त्री भक्तिनों में राबिया, ज़ुलेख़ा, ज़ुबेदा, (इतिहासप्रसिद्ध हारून-अलरशीद की पत्नी) इत्यादि प्रधान हैं। इन लोगों का सम्पूर्ण इतिहास किसी ग्रन्थ में लिखा हुआ नहीं पाया जाता। इन लोगों के वृत्तान्त श्रुतिपरम्परा द्वारा उसी सम्प्रदाय के भक्त लोगों के पास रक्षित हैं। इन लोगों की सब बातों का अनुसन्धान करने के लिए किसी योग्य सूफ़ी मौलवी की सहायता के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। पर उनको पहचान लेना भी कुछ सहज नहीं है।

इन सूफ़ी भक्तों की उपासना-प्रणाली के जुदा जुदा भेद हैं। इन लोगों ने क़ुरान-निषिद्ध चीज़ों को लेकर उनका एक एक कल्पित अर्थ गढ़ा है और उन्हीं को अपनी उपासना का अंग बना लिया है। जैसे मदिरा—ईश्वरीय प्रेम; साक़ी—गुरु इत्यादि। ये लोग उपासना को "सुल्क" (यात्रा) कहते हैं और उपासक को "सालीक" (यात्री)। इस यात्रा की आठ अवस्थाएं हैं। (१) आबदियत—सेवा, (२) इश्क़—प्रेम, (३) ज़हद—निवृत्ति वा एकान्तवास, (४) मारफ़त—ज्ञान, (५) वज्द या हाल—मत्तता, (६) हक़ीक़त—सत्य, (७) वस्ल—मिलना वा सायुज्य प्राप्ति, (८) फना—निर्वाण—मोक्ष।

* इस विषय में अँगरेज़ी भाषा के राजकवि टेनिसन लिखते हैं—

"That each who seems a separate whole,
Should move his rounds, and finishing all,
The skirts of Self, again should fall,
Remerging in the general soul.
Is faith as vague as all unsweet?
Eternal form shall still divide,
The eternal soul from all beside;
And I shall meet him when we meet."

† "Mysticism developed into Sufism."
Spirit of Islam and faith of Islam.

* Beal's Oriental Biographical Dictionary.
History of the Saracens.

* खुसरो कहता है :—
प्रेम ही हमारे पूजन की सामग्री है। इस्लाम की हमें क्या आवश्यकता है—जैसे—

"काफ़िरे इश्कम मुसलमानी मरा दरकार नेस्त।
हर रगे मन तार गश्तः हाजते ज़न्नार नेस्त॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाफ़िज़ के जीवन में मत्तता का, सादी के जीवन में ज्ञान का, .ज़ुलेख़ा के जीवन में प्रेम का, .ज़ुबेदा के जीवन में सेवा का बहुत ही उत्तमता के साथ परिस्फुरण हुआ है। राबिया का जीवन सभी अंशों में चमत्कार का विकाश रूप है। राबिया दरिद्र पिता की कन्या थी *। उसके पिता का नाम "इस्माइल" था; जो 'आदर'वंश का था। इसी से राबिया पिछले जीवन में "राबिया-अल-अदारिया" नाम से प्रसिद्ध हुई † कारण, राबिया आजन्मकुमारी थी। अरब की मरु भूमि के एक छोटे से गाँव में उसका जन्म हुआ था। वह बचपन में ही मातृविहीना हो गई थी। उस समय इस्माइल को ही माता और पिता दोनों का काम करना पड़ता था। बूढ़ा इस्माइल मेहनत मज़दूरी करने के लिये रोज़ घर से बाहर चला जाया करता था। बालिका राबिया अकेली निर्जन कुटी में बैठ सन्ध्या तक पिता के आने की राह देखा करती। दिन भर के थके हुए पिता के हेतु उस मरू भूमि में दुष्प्राप्य जल दूर से लाकर पहले रख देती थी। आने पर क्लान्त पिता को दाना पानी देकर शीतल करती। धीरे धीरे राबिया बालिका से किशोर अवस्था को प्राप्त हुई, तथा कर्म्मठ, सेवा-परायण और गम्भीर हो चली। नौ, दस वर्ष की अवस्था में ही वह सयानी स्त्रियों के समान बातचीत और घर का काम धन्धा करती थी।

राबिया के गाँव के चारों ओर 'बद्दू' जाति के डाकुओं का वास था। वे लोग कभी २ गाँवों पर आक्रमण किया करते और स्त्री पुरुष जिसको पाते पकड़ ले जाते और उनको गुलाम बना कर बेच देते या अपने पास ही रखते थे। जिस समय राबिया की अवस्था १२—१३ वर्ष की थी उस समय एक दिन इन डाकुओं के झुंड ने ग्राम पर आक्रमण किया और वे अन्यान्य नर नारियों के साथ राबिया के वृद्ध पिता इस्माइल को भी पकड़ ले गए। अब राबिया संसार में अकेली हो गई। अभी वह योग्य भी न थी कि कहीं किसी के यहाँ मे[illegible] मज़दूरी करके पेट पालने का प्रबन्ध कर स[illegible] इस निस्सहाया बालिका को ऐसी शोच[illegible] अवस्था में देख सब गाँववाले बहुत दुःखित हु[illegible] अंत में सब बड़े बूढ़े लोगों ने मिल कर यह नि[illegible] किया कि राबिया क्रमशः एक एक दिन एक[illegible] गृहस्थ के यहाँ मेहमान रहा करे और उस दिन [illegible] तक बन पड़े अपने उस अन्नदाता गृहस्थ के घ[illegible] काम काज में भी सहायता दिया करे जिसमें उस[illegible] सुगमता से निर्वाह हो जाय। ग्रामवासी गृह[illegible] प्रायः दरिद्र होते हैं, किन्तु दरिद्र होने पर भी [illegible] ग्रामीणों का आतिथ्य प्रसिद्ध है। इस प्रकार रा[illegible] का दिन कटने लगा। वह किसी न किसी गृहस्[illegible] घर नित्य जाकर काम करती और खाने को पा[illegible] सन्ध्या समय अपने दयामय पूज्य पिता की कुटी[illegible] गोद में जाके आश्रय लेती। गाँव की बड़ी बूढ़ी[illegible] राबिया पर दया कर के उसी के पास आके[illegible] रहतीं। राबिया रात को सोते २ अपने स्ने[illegible] पिता की चिन्ता किया करती—ठंढी साँस से [illegible] हृदय की वेदना को दूर करती। इसी प्रकार एक[illegible] कट गया। एक दिन तीसरे पहर सब का[illegible] छुट्टी पा राबिया अपनी क्षुद्र कुटी के द्वार पर[illegible] उस दूर तक फैली मरु भूमि तथा वालुकामयी [illegible] माला की ओर देख रही थी और क्षण क्षण पर [illegible] वृद्ध पिता को स्मरण करके व्याकुल होती थी[illegible] मरुभूमि की जलती वायु उसके कोमल शरी[illegible] निकलती हुई ठंढी साँस को उड़ाए लिए जाती[illegible] इसी बीच एक दुर्बल और क्षीण वृद्ध उसके [illegible] दौड़ता हुआ आया और पछाड़ खाके गिर [illegible] धीमे तथा रुँधे हुए कंठ से उसने इतना [illegible] "राबिया हम बद्दुओं की छावनी से भाग[illegible] हैं; बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी दो।"

राबिया ने पहचान लिया कि उसके पित[illegible] उस समय राबिया के झोपड़े में ज़रा भी [illegible] था। वह अपने घर में बहुत कम रहती थी [illegible]

* कितने ही लोगों का मत है कि यह चतुर्थ सन्तान थी। अरबी में "रबा" धातु का अर्थ ही चौथी सन्तान है।

† Ibn Khalikan's Biographical Dictionary.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी दूर से दुर्लभ जल लाकर रखने की वह विशेष आवश्यकता भी न देखती थी। प्यासे पिता के मुख से, "थोड़ा पानी दो" सुनने के साथ ही वह हाथ में बर्तन लेकर तुरन्त झरने की ओर चल पड़ी। बड़ी तेजी के साथ आने जाने पर भी उसे लौटने में आध घंटे से भी अधिक लग गया। जब पानी लाकर वह पिता को देने चली तब उसने देखा कि उनका प्राणपखेरू उनके जीर्ण शरीर को छोड़ उड़ गया है। जिस स्नेहमय पिता के दर्शनों के लिए वह इतने दिनों से बराबर छटपटाया करती थी उसी को अपने सामने प्यास से प्राण त्याग करते देख राबिया के हृदय में भारी वेदना हुई। जिस पिता ने मातृ-विहीना कन्या को कितने आदर और लाड़प्यार के साथ और कितने शारीरिक कष्ट भोग कर पाला था, उस स्नेहाधार पिता की एक दिन भी सेवा शुश्रूषा करने का अवसर न पाने के कारण राबिया अतिशय मर्माहत हुई। राबिया ने पिता का धूलिधूसरित मस्तक उठा कर अपनी गोद में रख लिया और ठंढे पानी से उस सूखे स्तब्ध होंठ में, नेत्र में, छाती में, शरीर में पानी का छींटा देने लगी। पिता मुँह से अपना कुछ हाल भी न कहने पाए, राबिया यही सब बार बार कह कर अपने पिता के मृत-शरीर पर हाथ रख कर रोती थी। उसके सूखे हुए चेहरे पर कितने ही उपवास और प्यास की असह्य यन्त्रणा भोगने के चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे, कितने ही दिनों तक रात में जागते रहने के कारण उसकी आँखों के नीचे कालिमा छा रही थी; कितने ही निष्ठुर चाबुकों की मार से खाल उपटी हुई दिखाई देती थी। बूढ़े गुलाम (इस्माइल) का दाम थोड़ा लगने के कारण डाकुओं ने उसे बेचा नहीं था, अपनी ही गुलामी में रक्खा था। आज बूढ़े ने किसी दाँव घात से छुटकारा पाया था। राबिया को अन्तिम बार देखने दिखाने की लालसा से आज इस मुक्ति के दिन, उसकी चिरमुक्ति हुई। यही सब सोच सोच कर राबिया का मन भीतर ही भीतर मसोस रहा था। मैंने एक चुल्लू पानी घर में क्यों न रख छोड़ा; मेरे ही कारण पिता की इस प्रकार मृत्यु हुई, ऐसे ही ऐसे विचार उसे संतप्त कर रहे थे।

जब ग्रामवासियों ने बूढ़े की मृत्यु का संवाद पाया तब वे उसका अंतिम संस्कार करने के लिये उपस्थित हुए। उस समय भी उन लोगों ने देखा कि राबिया मृत पिता के शरीर को अपने गरम आँसुओं से चुपचाप सींच रही है।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। शोक और संताप से राबिया का जीवन पूर्ण होने लगा। राबिया ने यौवनावस्था में प्रवेश किया। वह अरब नारियों के सौन्दर्य्य से वंचित थी। वह केवल साँवली ही न थी बल्कि बड़ी कुरूपा भी थी। इसी से विवाहादि करके गृहस्थी में आने की उसे कभी स्वप्न में भी अभिलाषा न थी। उसने दृढ़ रूप से निश्चय कर लिया था कि लोगों की मेहनत मज़दूरी करके अपना पेट भरूँगी और अपने पिता की कुटी में ही अपने निरुद्देश्य जीवन को व्यतीत करूँगी। कुछ दिनों में वह सब तरह से निश्चिन्त भी हो गई।

इसी भाँति कई वर्ष बीत गये। एक दिन एकाएक "बद्दू" जाति के डाकुओं का फिर आक्रमण हुआ और वे कितने ही लोगों को पकड़ ले गये, जिसमें एक राबिया भी थी।

यद्यपि हज़रत मुहम्मद साहब के समय में यह दासत्व प्रथा दूषित ठहराई जा चुकी थी पर उस समय अरब देश के सभी स्थानों में इस प्रथा का विशेष प्रचार था। अमीर लोग ख़ूबसूरत औरतों को ख़रीद कर पत्नी रूप में या यों ही अपने भोग-विलास साधन के लिए घर में ठाट बाट से रखते थे। मजलिस आदि के अवसरों पर ये दासियाँ अपने रूप की छटा के द्वारा तथा सुन्दर नाच रङ्ग और विनीत सेवाओं से अमीरों के घर आए हुए मेह-मानों की ख़ातिरदारी और मनोरंजन करती थीं। रूप-गुणसम्पन्न दास दासियाँ बड़े बड़े नगर के बाज़ारों में अधिक मूल्य पर बिकती थीं। राबिया बसरा के बाज़ार में लाई गई और वहाँ एक शौक़ीन अमीर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये वह ख़रीदी गई। राबिया को, काली और कुरूपा होने के कारण, उस धनाढ्य की विलाससामग्री नहीं होना पड़ा, उसके भाग्य से उसे मेहनत का काम सौंपा गया था। उसे मालिक के आनन्दभवन में खिलाने पिलाने, बिस्तर बिछाने आदि का काम करना पड़ता था, इससे विलास की भली बुरी सभी लीलाएँ उसे नित्य देखनी पड़तीं। स्वामी के भोग-विलास में उसे सहायता करनी पड़ती थी।

उस समय और भी एक प्रथा थी—धनिकों के यहाँ विद्वानों का समागम हुआ करता था। मध्य-युग में जिस भाँति फ्रांस में प्रसिद्ध प्रसिद्ध वेश्याओं के यहाँ विद्वानों का सम्मेलन होना एक रवाज सा हो गया था, उसी प्रकार अरब के धनिकों के यहाँ भी विद्वानों का सम्मेलन हुआ करता था।

अमीर लोग प्रसिद्ध विद्वानों का परिचय पाने के लिए अनेक विद्वानों को रात्रिभोज में निमंत्रित करके प्रशंसाभाजन होते थे। राबिया के मालिक के घर इस प्रकार का समागम प्रायः हुआ करता था। इसी से राबिया को भी हद से ज्यादा परिश्रम करना पड़ता था। इसी अधिक परिश्रम के कारण कितने ही दास दासियाँ अस्वस्थ शरीर होकर प्रति वर्ष मृत्यु के मुख में जाया करती थीं; और फिर कितने ही नए अभागे उन लोगों के स्थान को पूरा करने के लिये आ जाते थे। थोड़ी सी भी चूक होने पर चाबुक और गालियों से बिचारों की ख़बर ली जाती थी। राबिया बाल्यावस्था से ही काम काज करने में बहुत होशियार और मेहनती थी इससे उसकी तन्दुरुस्ती में कुछ फ़र्क़ न आने पाया और उसे गाली गुफ़्ता भी बहुत कम सुनने की नौबत आती थी। आमोद में अधिक मद्यपान करके गृह-स्वामी और उसके आगन्तुक मेहमान लोग जब अचेत हो जाते, तब दास दासियों को भी विश्राम करने का समय मिलता था। मालिक के बचे हुए मद्य मांस प्रसाद स्वरूप पाकर दास दासियाँ बड़ी आनन्दित होतीं और भोजनोपरान्त सारे दिन की थकावट दूर करतीं। पर साध्वी राबिया उन लोगों के आमोद में साथ न देती। वह गम्भीरहृ[दया] स्त्री अवकाश पाने पर चुपचाप अपनी को[ठरी] में चली जाती। इसी से दूसरे नौकर चाकर उ[ससे] प्रसन्न न रहते थे। पर उसके धैर्य और गा[म्भीर्य] चरित्र को देख किसी के मन में उसकी बुराई क[रने] की इच्छा नहीं होती थी।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर, एक [दिन] सदा की भाँति अनेक प्रसिद्ध कवि, दार्शनि[क], ज्योतिषी, चिकित्सक आदि निमंत्रित हो कर राबि[या] के आश्रयदाता के यहाँ आए थे। परस्पर पंडि[तों] में एक दूसरे के साथ तर्क वितर्क हो रहा था; सभी अपने संचित विद्याभंडार को खोल मा[नों] कल्पतरु बने बैठे थे। पर गृहस्वामी सांख्य[के पुरुष] की भाँति निष्क्रिय भाव से शराब के नशे में [चूर] हो रहे थे। जिसके लिए सब विषयों की आ[लोच]नाएँ हो रही थीं वही उनकी ओर से उदास[ीन] भाव धारण किए बैठा था। राबिया एक एक का[र] खाने की चीज़ें सामने रखती जाती थी; शराब [की] बोतल पर बोतल ख़ाली हो रही थी। इतने में ए[क] अतिथि महाशय एक हड्डी के टुकड़े का मांस चू[सते] हुए बोले "वाह, यह गाँठ कैसी ज़ायक़ेदार है! क[्या] इन्सान के बदन में भी ऐसी नली होगी"। उ[सी] समय एक हकीम साहब बोल उठे "हाँ, इन्सान [के] बदन में भी ठीक इसी तरह की नलियाँ हैं। चौपा[ये] और दोपाये (मनुष्य) के चलने फिरने की री[ति] भिन्न है, इसलिए दोनों में कुछ भिन्नता है"। [एक] व्यक्ति ने कहा, "मनुष्य के साथ चौपाये की [सी] पैर की नली को मिलाकर देखने की इच्छा हो[ती] है।" यह बात मदमस्त गृह स्वामी के कानों [में] जा पड़ी। उसी अशुभ या शुभ अवसर में राबि[या] एक थाल में अनेक प्रकार का आहार सजा [कर] लाई। उसे देख कर गृहस्वामी ने कहा, "यह कौन [सी] कठिन बात है? इसी दाई का पैर काट कर देख लिया जाय"। इतना कहने के साथ ही [दो] आदमियों ने राबिया को जोर से धर द[बाया] और हकीम साहब ने उसी समय एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाकू निकाल जंघे का एक पर्त काट कर वहाँ की हड्डी निकाल बाहर की । राविया ने ज़रा भी चूँ न की, उसकी मूर्ति उसी भाँति गम्भीर, अचल, और अटल बनी रही । मनुष्य के पैरों का जोड़ देख कर एक मनुष्य ने कहा, "वाह भगवान् की कैसी विचित्र लीला है ।" इस असीम पीड़ा के समय में सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का नाम याद आया । चिकित्सक ने सब हड्डियों को एक २ करके बैठाया और कुछ औषध आदि लगा कर पट्टी बाँध दी । नौकरों ने उसे ले जाकर उसकी कोठरी में सुला दिया । राविया का सारा जीवन दुःख ही में बीता था पर यह शारीरिक वेदना उसे अत्यंत असह्य जान पड़ी । जीवन में अनेक प्रकार के दुःख झेलते झेलते वह कठोर हो गई थी पर उसके हृदय में ईश्वर के प्रति जो अटल विश्वास था उसका प्रकाश दूर नहीं हुआ । आज इस असीम यन्त्रणा के समय, जिस मधुर नाम ने राविया के कानों में अमृत ढाल दिया था, वह उसके जीवन में व्यर्थ नहीं होने पाया । राविया ने बड़े यत्न से उस नाम को इस पवित्र महामंत्र से आवाहन कर—

"मन मन्दिर महँ थापि कै, तव मूरति सहप्रेम ।
भक्ति-पुष्प, दृगजल अरपि, पुजिहौं चरण सनेम ॥"

—लाला भगवानदीन ।

निज मनोमन्दिर में सादर प्रतिष्ठित किया । राविया की पहिली उपासना "शुक्र ख़ुदा" (ईश्वर का धन्यवाद) हुई ।

इसके उपरान्त राविया ने कहा, "आज दुःख देकर भगवान् ने सचेत कर दिया । इतने दिनों तक हमें कितने सुखों में रक्खा था । हे भगवन् आज शरीर के एक भाग को काट कर आपने समझा दिया, कि आप कितने यत्न से हमारी रक्षा करते हैं । हमारे लिए आपको कितना परिश्रम और कष्ट उठाना पड़ता है सो मैं सोचने में असमर्थ हूँ । इस कृतज्ञता के बोझ से तथा मारे लज्जा के मेरा माथा नीचा हो रहा है । फिर, प्रभो ! प्रार्थना करने में कौन सी लज्जा की बात होगी ?" राविया का जो निष्काम प्रेम प्रच्छन्न कलिका की भाँति था वह एकाएक प्रस्फुटित हो उठा और दिनों दिन बढ़ने लगा । महीने भर से ऊपर उसे अकेली चारपाई पर पड़े हो गए । नौकर लोग बीच बीच में आके उसे कुछ खाने पीने को देकर देख जाया करते थे । उस समय निरन्तर ईश्वरसान्निध्य अनुभव करने के कारण साध्वी राविया बहुत ही सुखी रहा करती थी । कुछ दिनों में आरोग्य होने पर राविया फिर अपने स्वामी के यहाँ पूर्ववत् काम करने लगी । यद्यपि वह ऊपरी मनसे सांसारिक कार्य किया करती थी, पर उसका हृदय निरंतर भगवान् की उपासना में ही निमग्न रहता था । वह ईश्वर के प्रति निस्वार्थ प्रेम करके अतिशय तृप्त हुई । यदि उसने कभी प्रार्थना में किसी प्रकार की याचना प्रगट की तो वह दूसरों के लिए, न कि अपने लिए । वह कहा करती थी "जब जब दुःख पाती हूँ तब तब रोती हूँ, पर अपने हेतु नहीं । सोचती हूँ कि इसी प्रकार की यातना कितने ही लोग भुगत रहे हैं । हाय, कब अपने सब दुःखों को हमें सौंप के लोग प्रसन्न मुख से आपके शुभ नाम का गान करेंगे ? समग्र शरीर का रक्त देने पर भी, यदि इस तापित मरु भूमि में एक मनुष्य के खड़े होने का स्थान शीतल हो तो मेरे ही रक्त से यह पृथ्वी तराबोर कर दी जाय । प्रभो ! हमें ऐसा बनाओ जिसमें हम मर्मान्तिक असह्य दुःखों को अपने हृदय में गोपन करके इस हा-हतोस्मि-पूर्ण संसार को सुखी कर सकें । जिस पर्वत में दाहिका शक्ति विद्यमान है उसमें क्या श्याम छाया या श्याम शोभा नहीं फैलती ? जिस दिन हमारी तीव्र वेदना हमारे हृदय को चीर के निकलेगी, उसी दिन मानो तुम्हारे उत्सङ्ग से वही तीव्र उच्छ्वास बाहर होगा । यही यदि हो, तब, भी हाय, संसार यदि तप्त हो ?" इसके उपरान्त राविया को कभी किसी ने उदासीन भाव में नहीं पाया । वह समस्त दुःखों को ईश्वरप्रदत्त प्रसाद जानके झेलने में समर्थ हुई थी । वह कहती है, "प्रभो, तुम हमारे दुःखों को क्या समझोगे ? तुमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबसे हमारी ओर दृष्टिपात किया है, तब से मेरे हृदय में सैकड़ों आनन्द प्रस्फुटित हो रहे हैं। सूर्य ने कभी कमलिनी का उदासीन मुख भी देखा है? निज प्रेमास्पद का मुख देखने पर दुःख कहाँ रहता है?"

इसी भाँति उसका दिन कटने लगा। एक दिन उसके स्वामी के यहाँ निमंत्रित मित्रगण न आए, गृहस्वामी महाशय बैठे उन लोगों की राह देख रहे हैं। आधी रात बीत गई, फिर भी वे लोग न आये। उन्होंने भी अब तक खाने पीने की कौन कहे मद्य पानादि भी नहीं किया है, सब सामान ज्यों का त्यों रक्खा है। रात अधिक बीत गई यह देख मालिक सब दास दासियों को विदा कर स्वयं आनेवाले मित्रों की आशा में बैठे। सूर्योदय तक तो उन्हें अतिथियों की प्रतीक्षा करनी ही थी। अंत में मद्य की तृष्णा बहुत बेचैन करने लगी; जिससे वे घर में न रह सके। घबड़ा कर टहलते हुए धीरे धीरे बाहर चले आए। उनके जीवन में आज पहला अवसर कहा जा सकता है जब कि उन्होंने अपनी सज्ञानावस्था में मदशून्य सादी आँखों से प्रकृति का दर्शन किया है। चाँदनी में चमचमाते हुए अपार बालू के मैदान में छोहारे की घनी झाड़ियों की शोभा आज उन्होंने देखी। देखने के साथ ही एक अपूर्व भावरस से उनका चित्त आर्द्र हो गया। उन्होंने सुना कि एक मधुर ध्वनि न जाने कहाँसे आकर एक अपूर्व घोषणा फैला रही है। उस मधुर स्वर का अनुसरण करके उन्होंने नौकरों के घर में जाकर देखा कि सब नौकर तो सो रहे हैं पर राबिया जाग रही है। उसके कोमल कण्ठ से एक अपूर्व तथा अश्रुतपूर्व स्वर्गीय वीणा की झनकार निकल रही है। राबिया कहती है—

"स्वामिन्, आपको सैकड़ों धन्यवाद हैं। हे हमारे आश्रयदाता पार्थिव प्रभो! तुम्हें भी सैकड़ों धन्यवाद हैं। तुम्हारे आश्रय में रह कर जो सुख हमने पाया है, उसके हेतु तुम्हें धन्यवाद है। तुम्हारे द्वारा जो कुछ हमने क्लेश पाया है उसके लिए और भी अधिक धन्यवाद। मैंने तुम्हारी ही से जगदाधार जगत्पति को पहचाना है। हे जग... स्वामी! मैं आपके समीप और किस सुख की ... करूँ? प्रभो! आपका नाम लेकर पुकारने ... जो अनन्त सुख पाती हूँ, इच्छा होती है ... चीर कर आपको दिखाऊँ। हे सखा, तुम ... भोग नहीं सकते* इसी से हमारा प्राण ... करता है।"

"प्रभो, संसार को क्यों दुख देते हो? ... जगत् में तुम्हारी निन्दा होती है। तुम्हारी निन्दा ... असह्य है। समुद्र में जिस भाँति सब नदियाँ आ... गिरी हैं उसी प्रकार, प्रभो, संसार के दुःख ... जितनी धाराएँ हैं वे सब आकर मेरे ऊपर गि... दुर्बल होने पर भी तुम्हारे नाम पर सब कुछ ... करने को तैयार हूँ।"

इसके उपरान्त अपने स्वामी और दूसरे ... चाकरों की शुभ कामना करके तथा उनके ... में किए हुए पाप, दुराचार, अत्याचार आदि ... लिए क्षमा की प्रार्थना करके परहितावलम्बिनी ... राबिया सो गई। गृहस्वामी महाशय थक कर ... कमरे में गये। उन्होंने जिसको इतना अधिक ... दिया है उसी ने आज उनकी शुभ कामना ... ईश्वर-प्रेम का अपूर्व परिचय देकर जिस नए ... और जिस नए जीवन का सुन्दर आभास दिया ... उसे हृदयस्थ करने की वे चेष्टा करने लगे। सारी ... बीत गई। सारा दिन भी चिन्ता ही चिन्ता में ... कट गया। आधी रात के उपरान्त वे फिर ... पवित्र कण्ठ स्वर से आकृष्ट हो राबिया के द्वार ... जा उपस्थित हुए। उस समय साध्वी राबिया उपा... में निमग्न हो कर कह रही थी—

"अरे किस अभागे ने, सारी रात सखा ... के बाहर बिताया है?

अरे, तू कौन है जो उस बन्द दरवाजे ... खड़ा तप रहा है? तेरी आँखों में क्यों जल नहीं ...

* निर्गुण ब्रह्म।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे हृदय में क्यों अग्नि धधक रही है ? अरे, दुःखार्त्त मानव तेरा हृदय जल रहा है इसीसे तेरी आँखों का जल सूख गया ! अरे, प्यासे, अरे धूल में लोटनेवाले, अरे भिक्षुक तू बड़ा दुःखी है; आ, हमारे दुखिया भाई, आ, हमारे हृदय में आके बैठ; तू अपने हृदय का उत्ताप मुझे दे, मैं अपना नयनजल तुझे दूँगी। अरे, तृषित एक बार जी भर रोकर देख कि कितनी शान्ति है ? क्या तू दुखी होने के कारण दुखी है, तू अपने जीवन में एक दिन भी जी भर के नहीं रोया है ! आज तुझे खूब रुलाऊँगी; अगर तू रोना चाहता है तो हमारे शीतल हृदय में, छाती में आ बैठ, तेरी आँखों से आँसू बहेंगे, .खूब बहेंगे"।

"हे सखा, जब तक तुम इन सब पतितों का हाथ पकड़ कर न उद्धार करो, तब तक मेरा हाथ मत पकड़ना। जब तक तुम इन दुखियों का आँसू न पोंछो, तब तक हमारे आँसुओं की ओर देखना भी मत। जब तक संसार का हृदय शीतल न कर लो तब तक हमारे हृदय रूपी मरुभूमि को योंही रहने दो, उस पर तुम्हें करुणा दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

"प्रभो, जो पतित है, क्या वह न उठेगा ? जिसकी दोनों आँखें आँसुओं से भीग रही हैं, उसे क्या धैर्य्य न दिया जायगा ? जो प्राणविहीन हो रहा है, उसे क्या नया जीवन न दिया जायगा ? हमारे तो केवल तुम्हीं हो। प्रभो, उन लोगों का नाथ कौन है ?

"मुझे अत्युन्नत पर्वतशिखर मत बनाना। प्रभो मुझे नीच शस्यश्यामला समतल भूमि बनाना, जिसमें भूखे, कङ्काल प्राणियों को अन्न दान कर मैं उनकी यथोचित सेवा कर सकूँ। मुझे विशाल लवणसमुद्र मत बनाना। मुझे इस दहकती पृथ्वी पर छोटा सा सोता बनाना जिसमें प्यासे को मैं जल दान कर सकूँ। वीरों की भाँति मेरे हाथों को चमकती तथा लपलपाती हुई तेज़ धार की तलवार मत बनाना। प्रभो! मुझे साधारण लाठी बना दो जिससे मैं पापी और दुर्बल प्राणियों को आधार और सहारा दे सकूँ।"

गृहस्वामी महाशय ने दूसरे दिन भी कुछ नहीं खाया पिया, सारा दिन चिन्ता ही में बिता दिया। रात को मन्त्रमुग्ध की भाँति फिर गए तो देखा कि राबिया आज भी उसी प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करने में डूबी हुई थी। वह कह रही थी—

"यदि मैं स्वर्ग पाने की इच्छा से तुम्हारा नाम लेकर पुकारती होऊँ तो वह स्वर्ग मेरे लिये हराम हो। ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिये। यदि नरक-यातना से बचने के भय से निरन्तर जपती होऊँ तो नरक ही मेरी गति हो। प्रभो, यदि तुम स्वर्ग में हो तो मैं स्वर्ग की भिखारिन हूँ। यदि तुम नरक में हो तो मैं निरन्तर नरकवास की भिक्षा माँगती हूँ। जिस समय लोभ आकर मुझे अपने जाल में फँसाना चाहता है उस समय मैं रोने लगती हूँ। दुःख से नहीं, अपमान से। वह नहीं जानता, हमारे सखा तुम आप-रूप हो।"

दूसरे ही दिन सवेरे गृहस्वामी महाशय ने सब दास दासियों को सेवावृत्ति से छुटकारा दिया और उन्हें इनाम इत्यादि देकर बिदा किया। राबिया से कहा, "तुम्हारी निष्काम ईश्वर-भक्ति और मेरे जीवन की शुभकामना देखकर मेरे चित्त की भ्रान्ति दूर हो गई। मैंने तुम्हारी कृपा से इस जीवन में माधुर्य्य प्राप्त किया है, ईश्वरप्रेम का महत्त्व अनुभव किया है। तुम्हें मैंने मुक्त किया। तुम और क्या चाहती हो ? कहो; कोई ऐसी वस्तु हमारे पास नहीं है जो तुम्हारे लिये अदेय हो"।

राबिया लज्जित हो कर कहने लगी, "प्रभो, मैं निराश्रित हूँ, आपके आश्रय में रह कर मैं बड़ी ही सुखी हूँ। अब भी मैं वही आश्रय और आपकी सेवा के अधिकार की भिक्षा माँगती हूँ। आपने जो मेरा उपकार किया है, मैं आपकी सेवा करके उसकी कृतज्ञता के दिखाने का समय पाऊँ, यही याचना है। आशा है आप मुझे अलग न करेंगे।"

उसी दिन से राबिया बसरा में स्वतन्त्र भाव से वास करने लगी। उसका प्रसिद्ध नाम "राबिया-ए-बसरी" हुआ। वह ज्ञान और पवित्रता, विनय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और निष्कामना के हेतु बहुत प्रसिद्ध हो गई। देशसेवा करने में वह अपने समय में एक ही थी। कहा जाता है कि उसने अपने कठिन परिश्रम की कमाई से बग़दाद से मदीने तक एक नहर खुदवाई थी। उसकी निरन्तर उपासना में अद्भुत बात थी।

वह विख्यात मुसलमान साधक "सारशक्ति*"(?) की समसामयिक थी। ८०१ ई० में उसकी मृत्यु हुई†। 'इब्न-अल-जओज़ी' ने निज लिखित "शजर उल अक़द" ग्रन्थ में ७५२–५३ ई० में उसकी मृत्यु‡ होना लिखा है। उसने अपने "सफ़ात उल-सफ़ात" नाम के ग्रन्थ में राबिया के सम्बन्ध में एक प्रबन्ध भी लिखा है जिसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है।

"आब्दा नाम की राबिया की एक दासी और भगवान् की परिचारिका थी। राबिया के सम्बन्ध में वह कहती है,—"राबिया सारी रात उपासना में बिताकर संध्या समय तक उसी उपासनामन्दिर में ही सो जाया करती थी। आँखों तक दीप का प्रकाश पहुँचते ही वह चारपाई से घबड़ा कर कहने लगती, "अरे जीव? कब तक तू निद्रा में अचेत पड़ा रहेगा? कब तेरी मोह निद्रा टूटेगी? शीघ्र ही तेरी निद्रा का समय आ रहा है। प्रलय के विचार के दिन (कयामत) तक तू स्वच्छन्दता से सोवेगा। अब कुछ चैतन्य हो जा"। अपनी मृत्यु निकट जान एक दिन उसने आब्दा को बुला कर कहा, "आब्दा! मेरी मृत्यु का हाल किसी से मत कहना; मृत्यु के उपरान्त इस बुरक़े से मेरे शरीर को ढाँप देना।" वह बुरक़ा पशम का बना था, वह उसी को ओढ़ कर सबके सो जाने पर एकान्त में बैठकर ईश्वर का आराधन करती थी। मृत्यु के एक वर्ष उपरान्त आब्दा ने राबिया को स्वप्न में देखा कि वह ख़ूब चमकते हुए साटन के वस्त्र से सुशोभित हो रही है; उज्वलता, चिकनाई तथा कोमलता में उस साटन के ऐसा कोई कपड़ा आब्दा ने पृथ्वी में कभी नहीं देखा था। आब्दा ने उससे कुशल पूछ कर आबू कल्लाब (?) की कन्या ज़ुबेदा का कुशलसम्वाद पूछा। राबिया ने उत्तर दिया—"उसका सुख और आराम बयान से बाहर है। अल्लाह की मेहरबानी से वह हम लोगों को लाँघ कर सब से ऊँचे स्वर्ग में जा पहुँची है"। आब्दा ने पूछा ऐसा क्यों हुआ? यहाँ इस लोक में तो आप ही लोग सब गुणों में श्रेष्ठ कही जाती थीं। राबिया ने कहा, "उन्हें भविष्यत् की चिन्ता न थी; कल, सवेरे, या संध्या को क्या होगा इस बात की उन्हें कभी चिन्ता नहीं थी। इसी से उन्होंने यह श्रेष्ठ पद प्राप्त किया है*"। फिर आब्दा से कहा, "निष्काम भाव से सदैव उसका भजन करो, तुम्हारी आत्मा का शान्ति प्राप्त करेगी"।

राबिया के निष्कामत्व के विषय में अब्दुलक़ासिम अल् कुशायरी कहते हैं, "वह ईश्वर में चित्त का समाधान करके प्रायः कहती, "या अल्ला, जो हृदय लोभ के वशीभूत होकर तुम्हें प्यार करता है उसे तुम आग में जला दो"।

---

* सारशक्ति एक निष्काम जनहितैषी प्रसिद्ध मुसलमान साधु थे। एक बार बग़दाद नगर में आग लगने से बहुतेरे लोगों का घर द्वार जल के खाक हो गया। एक मनुष्य ने आके उनसे कहा कि आपकी दुकान और मकान बच गया। इन्होंने कहा "शुक्र ख़ुदा" (ईश्वर को धन्यवाद है) उस समय उनमें स्वार्थ की मात्रा, परार्थ की अपेक्षा बहुत ही अधिक हो गई थी। इसी अपराध के हेतु वह तीस वर्ष तक ईश्वर के निकट अनुनय और क्षमा की प्रार्थना करते रहे।

† Beals Oriental Biographical Dictionary.

‡ मि० अमीरअली ने भी अपने "History of the Saracens" में यही लिखा है।

* श्री चैतन्य महाप्रभु का संन्यास भी इसी भाँति भविष्य-चिन्ता से रहित है। उनके सेवक गोविन्दघोष ने दूसरे दिन के हेतु कुछ साग, भाजी उठा कर रख दिया था इसी संचयकारिणी बुद्धि होने के कारण महाप्रभु ने उन्हें फिर गृहस्थ आश्रम में लौटा दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन "सूफ़िया-अस-सौरी" ने राबिया के सामने कह डाला "आह, हमें कितना भारी दुःख है।" राबिया ने उनसे कहा "झूठ मत बोलो। बल्कि कहो हमें बहुत कम दुःख है। यदि सचमुच तुम दुःखित होते तो तुम ठंडी साँस लेने से शान्ति न पाते।"

राबिया प्रायः कहा करती थी कि "मेरे कार्य्य संसार में प्रचारित तथा प्रशंसित हों; मैं इसे तुच्छ समझती हूँ।" वह सबको यही उपदेश दिया करती "जैसे तुम पाप को गुप्त रखते हो वैसे ही सत्कार्य्य को भी प्रगट मत होने दो"।

राबिया सदैव, सब स्थानों में ईश्वर से साक्षात् करती थी। एक बार बसरा के राजमार्ग में उसने देखा कि एक युवक एक बुरक़ेवाली स्त्री के पीछे लोलुप चित्त घबड़ाया हुआ जा रहा है। उन्होंने उससे ऐसा घृणित कार्य्य करने का कारण पूछा। मालूम हुआ कि, वह मनुष्य सुन्दरता को पूर्ण रूप से भोगने के लिए तरस रहा है। तब राबिया ने उससे कहा "जिसने बहुत ही सुन्दर, फूल-फल लतादि से अपने को छिपा रक्खा है उसके घूंघुट के खोलने की इच्छा तुम्हें क्यों नहीं होती?" राबिया के इस मर्मभेदी वाक्य में ऐसा प्रभाव था कि वह मनुष्य अन्तिम जीवन में परम "धार्मिक" पदवी प्राप्त करके प्रसिद्ध साधक हुआ।

अवारिफ़-उल-मारिफ़ नाम के ग्रन्थ में शेख साहब-उद्दीन सोहारावरदी ने राबिया की वाणी का संग्रह किया है।

"हे प्रभु, मैंने अपने चित्त को तुम्हारे ही संसर्ग के हेतु पृथक् कर रक्खा है। यहाँ जो लोग मेरी शुभ कामना में लग रहे हैं, उन लोगों के लिये हमारा यह शरीर है। आगन्तुक दर्शक अतिथियों का साथी हमारा शरीर है। हमारा प्यारा हमारे हृदय का साथी है"। यह राबिया की उपासना के नैरन्तर्य्य का प्रमाण है।

राबिया नियमबद्ध उपासनाप्रणाली की विरोधी थी। स्वतः उत्साहित हार्दिक भाव से ईश्वर पूजा का ही उसने अवलम्बन किया था। वह उपासना के समय प्रायः प्रार्थना करती कि "प्रभु तुम्हारे लिए संसार के मायाजाल को वेध के निकल आई हूँ, अब उपासना के जाल से फिर उसमें न जा फँसूँ। वह जाल बड़ा ही पेचीला है—उससे इसमें बड़ा सुख है"। राबिया की समाधि यरुशलम के पूर्वांश में "ज़ैबुल-एत-तर" (Mount-of-Olives) पहाड़ पर आज भी विद्यमान है। वह समाधिस्थल आजकल एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। प्रति वर्ष बहुत से भक्त वहाँ एकत्रित होते हैं। उमल ख़ैर राबिया (मङ्गल माता) आज भी बहुत से भक्तों से पूजा पाती हैं।*

—:o:—

फ़र्ग्यूसन कालेज।

(लेखक—श्रीयुत साँवलजी नागर।)



द्वानों का सिद्धान्त है कि—मानवी समाज के धर्मतत्वों से यदि कुछ लाभ हुए हों तो उसका श्रेय इसी भारतमाता को है। संसार की यावत् धर्म-परम्परा यहीं से आरम्भ हुई। समस्त धर्म वेदप्रणीत धर्म की सन्तान हैं। हिन्दूधर्म से महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म निकाला। उसी बुद्ध-धर्म से क्रिस्तानी धर्म की

* यह प्रबन्ध बङ्गला मासिक पुस्तकों के सुप्रसिद्ध और सिद्धहस्त लेखक प्रवासी के सहायक सम्पादक बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय महाशय के (भारती में प्रकाशित) प्रबन्ध का अनुवाद है। इसके लिये उक्त महाशय के समीप मैं आन्तरिक भाव से कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त हमारे परम प्रिय आत्मीय बाँकेबिहारीलालजी यदि मेरी हस्तलिखित कापी को साफ़ करने की कृपा न दिखलाते तो शायद आज इसके प्रकाशित होने का अवसर न मिलता। इसके लिये उक्त महाशय को भी साधुवाद देना न भूलूँगा। अनुवादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्ति हुई । उसी को मुम्मद ने तलवार के ज़ोर से महम्मदी धर्म का रूप दिया । और उसी धर्म को 'नानक' ने पुनः सनातन धर्म में मिलाया। धर्म यदि तुम्हारा प्राण हो तो हे संसार के सब सभ्य समाजो ! तुम्हें जिसने वह प्राण दिया उस हमारी भारतमाता को प्रणाम करो । वैदिक धर्म इस भूमि का प्राण है । उसके रक्षण के लिये शरीर को तुच्छ समझनेवाले श्रीमद्शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य, वल्लभाचार्य आदि समस्त धर्म-वीरों ने हमारी ही भूमि में जन्मग्रहण किया है। हे वीर्यशाली जापान ! यदि तू और भी पचासों 'सुशीमा' की लड़ाइयाँ जीत ले तथापि वह भाग्य, जो भारत को प्राप्त है, तू नहीं प्राप्त कर सकता । क्योंकि बुद्ध भगवान् को जन्म देने का महद्-भाग्य परमेश्वर ने इसी भूमि को प्रदान किया है। भारतीय धर्म्म का यह कदापि आग्रह नहीं है कि केवल अमुक मार्ग से ही ईश्वर मिल सकता है। उसके सन्तानों में से चाहे कोई विष्णु को पूजे, चाहे "अल्लाहो अकबर" कह कर पुकारे, चाहे नानक को माने, चाहे बुद्ध को धर्मदेव समझे, इस उदारचरित भारत का धर्म के सम्बन्ध में उन सन्तानों पर कुछ भी दबाव नहीं है। इस भारतीय मातृ-धर्म का मूलतत्व केवल दूसरे का उपकार करना है। इससे बढ़ कर कोई पुण्य नहीं है और दूसरों को कष्ट देना—इससे बढ़ कर पाप कर्म नहीं है ।*

इसी मूल-तत्व को कार्य रूप में परिणत करने के निमित्त संसार के सपूत सार्वजनिक कार्य करते हैं और इसे सुख्याति मान तन, मन, धन व्यय कर यथा-शक्ति संसार की सेवा कर जन समुदाय का उपकार करने का प्रयत्न करते हैं। कोई स्कूल और कालेज खोलता है, कोई अस्पताल बनवाता है, कोई धर्मशाला बनवाता है तो कहीं कोई वाचनालय, कूएँ और तालाब बनवाता है। इसी तत्व को सामने रख कर यदि हम भारतवर्ष के भिन्न भिन्न नगरों की ओर दृष्टिपात करें तो हमें बम्बई प्रदेश का पू[ना] नगर इन सबों में अग्रसर दिखाई देगा । अन्य नगरों में जब कि सार्वजनिक कार्य बड़े बड़े धनि[कों] और अमीरों के हाथों से सम्पन्न हुए हैं, वहाँ पू[ना] नगर में निर्धन, सुशिक्षित, विचारशील, उत्[साही] एवं उत्साही व्यक्तियों द्वारा सम्पादित हुए हैं। क[हने] की आवश्यकता नहीं कि दक्षिण-कालेज, दी [न्यू] इंग्लिश स्कूल, डेकन एजुकेशन सोसाइटी, फ़र्[ग्यू]सन कालेज, आनरेबल मि० गोखले की भारतसे[वक] समिति, प्रो० कर्वे का विधवाश्रम इत्यादि इसके उ[दा]हरण हैं । सम्पूर्ण भारतवर्ष में नहीं तो पश्चि[मी]मीय भारत में इसके मुकाबले का सार्वजनिक का[र्य] करनेवाला एक भी नगर नहीं है ।

ऊपरोक्त संस्थाओं में दक्षिण एजुकेशन सोसाइटी, दी न्यू इंग्लिश स्कूल और फ़र्ग्यूसन का[लेज] का एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस[लिये] एक का पूरा वृत्तान्त जानने के लिये हमें तीनों [के] इतिहास के जानने की आवश्यकता पड़ेगी। दी [न्यू] इंग्लिश स्कूल और फ़र्ग्यूसन कालेज का निरी[क्षण] और प्रबंध डेकन एजुकेशन सोसाइटी के [हाथ में] है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से 'दी न्यू इंग्लिश स[्कूल'] सब से पुराना है। और इसके बाद क्रम से डे[कन] एजुकेशन सोसाइटी और फ़र्ग्यूसन कालेज [की] स्थापना हुई है। अतएव फ़र्ग्यूसन कालेज का [पूरा] परिचय प्राप्त करने के लिये पाठकों को दी न्यू इंग्लि[श] स्कूल के इतिहास की ओर दृष्टि फेरनी पड़े[गी]।

दी न्यू इंग्लिश स्कूल ।

सन् १८७९ ई० में महाराष्ट्र-कुल-तिलक श्री[युत] पं० बालगंगाधर तिलक ने एल० एल० बी० [की] डिग्री प्राप्त की । जिस समय आप क़ानून का अ[ध्ययन] करते थे उस समय आपकी मित्रता श्रीयुत गो[पाल] गणेश आगरकर के साथ हुई। आप लोगों की मि[त्रता] आज कल की भाँति कलयुगी-मित्रता नहीं [थी]। स्वार्थ, गर्व, द्वेष आदि का कहीं ठिकाना [न] था । वहाँ तो स्वार्थत्याग, देशसेवा, कर्तव्य[...]

*"अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ता एवं "परोपकारः पुण्याय" इत्यादि की ही मात्रा अधिक थी। "हमारे देशभाइयों का कल्याण किस प्रकार से हो सकता है"—यही विचार उनके हृदय-मंदिर में रात दिन घूमा करता था। अन्त में इन दोनों ने निश्चय किया कि सरकारी नौकरी न करनी चाहिए, वरन् स्वतंत्र पाठशाला आदि स्थापित कर देश के भाइयों को उत्तमोत्तम शिक्षा प्रदान करने की देश की नौकरी करनी चाहिए। आप लोगों का विचार था कि लाख रुपये मासिक वेतन भी स्वतंत्रता रूपी अमृतफल के बराबर नहीं है। बाबू राधाकृष्णदास ने ठीक लिखा है—

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवों जग माहिँ।
को पहिरै दासत्व-शृङ्खला निज पग माँहि॥
इक दिन की दासता अहै शतकोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपना स्वर्गहुँ तें उत्तम॥"

हमारे पाठकों को पं० विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूनकर का नाम भली भाँति ज्ञात होगा। गुजराती भाषा में जो पद श्रीगोवर्धनराम त्रिपाठी को, बंगला भाषा में जो पद श्रीयुत बंकिमचन्द्र जी को, अँग्रेजी भाषा में जो पद शेक्सपियर को, तथा हिन्दी भाषा में जो पद श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को प्राप्त है—वही स्थान चिपलूनकर महाशय को मराठी भाषा में प्राप्त था। पहिले आप सरकारी नौकर थे, परन्तु कुछ समय के बाद आपने राज-कर्मचारियों से मतभेद हो जाने के कारण अपनी नौकरी छोड़ दी और एक स्वतंत्र स्कूल स्थापित करने के विचार से आप पूना आए। जब उनका समाचार श्रीयुत तिलक और पं० आगरकरजी को विदित हुआ तो ये लोग भी पं० चिपलूनकर से मिले और एक स्वतंत्र स्कूल की स्थापना के सम्बन्ध में विचार करने लगे। इन लोगों के इस कार्य का समाचार सुनकर, एक परमोत्साही बुद्धिमान् सज्जन भी, जिनका नाम पं० एम० बी० नामजोषी था, इस महत् कार्य में योग देने के निमित्त सम्मिलित हो गये। इन लोगों ने निश्चय किया कि स्वतंत्र रूप से व्यवस्था कर स्कूल और कालेज आदि स्थापित करना चाहिये, जिसमें अल्प व्यय कर जनसमुदाय अपने बालकों को शिक्षा दे सकें और अपने बालकों को चरित्रवान्, देशभक्त एवं देशसेवक बना सकें। दूसरी बात उनके हृदय में यह भी समा गई थी कि जब जब प्रजा की सामाजिक अवस्था में परिवर्त्तन होता है तब तब शिक्षा-क्रम में भी रद्दोबदल करने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु गवर्नमेन्ट की नीति इस शिक्षा-विभाग में बहुत सुस्ती से कार्य करने की है—इस कारण नवीन ढंग से, नवीन उत्साह से एवं नवीन प्रणाली के अनुसार नवीन सार्वजनिक द्रव्य से जो कार्य किया जाता है वह सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा विशेष माननीय समझा जाता है। यह सब सोच कर ता० २ जनवरी सन् १८८० ई० को म० तिलक, श्रीयुत चिपलूनकर तथा पं० नामजोशी महाशय ने "दी न्यू इंगिलश स्कूल" स्थापित किया। इधर एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो विख्यात संस्कृत-भाषा-मर्मज्ञ पं० वामन सदाशिव आपटे तथा उपर्युक्त पं० आगरकरजी एम० ए० भी इस पुण्य-कार्य में योगदान देने के लिये सम्मिलित हो गए। इन पाँचों महाराष्ट्र-पांडवों ने ऐसे उत्साह और परिश्रम से कार्यारम्भ किया था कि जिसके कारण आज दिन ये संस्थाएँ भारतरत्न हो रही हैं। इतना ही कर इन लोगों से शान्त न रहा गया, वरन् इन्होंने सुप्रसिद्ध "मराठा" एवं "केसरी" नामक दो पत्र भी प्रकाशित किए जिनके जोड़ का देशी भाषा में कोई पत्र नहीं है। अंग्रेज़ी भाषा में एक कहावत है कि "ईश्वर उनकी अवश्य सहायता करता है जो प्रयत्न करते हैं—"God helps those who help them selves." पं० विष्णुकृष्ण चिपलूनकर ने इन पत्रों के लिये "आर्य्यभूषण" नामक एक प्रेस का बन्दोबस्त किया और ये समाचारपत्र इसी प्रेस में छपने लगे।

यह एक साधारण नियम है कि अच्छे कामों में विघ्न बहुत होते हैं। परन्तु जो मनुष्य वास्तव में सज्जन होते हैं वे इन विघ्न बाधाओं से कदापि हतोत्साह नहीं होते। इस प्रकार इन उत्साहियों को भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने ही संकटों का सामना करना पड़ा था। सन् १८८२ में मि० तिलक और पं० आगरकरजी को कोल्हापुर की सरकार का कोप-पात्र बनना पड़ा था। महाराज शिवाजीराव के बाल्यकाल में राज्य का कुल इन्तिज़ाम बर्वे नामक महाशय करते थे। मि० तिलक और पं० आगरकरजी ने अपने समाचारपत्र "केसरी" और "मराठा" में बर्वे महाशय की कुछ आलोचना की। बर्वे महाशय ने इन पर मानहानि का अभियोग उपस्थित किया। अभियोग चल ही रहा था कि इसी बीच में पं० चिपलूनकरजी की ३२ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई। इधर अभियोग चल रहा था उधर इनके एकमात्र सहायक की मृत्यु हो गई। कैसा विकट अवसर था, यह पाठक गण स्वयं अनुमान कर लें। इतना ही नहीं, श्रीयुत तिलक एवं पं० आगरकरजी को चार चार मास की सज़ा भी हो गई। परन्तु महाराष्ट्रवीर ज़रा भी विचलित न हुए। फल यह हुआ कि चारों ओर से सहायता मिलने लगी और सम्पूर्ण महाराष्ट्रसमुदाय इस स्कूल के चिरस्थायी बनाने का उद्योग करने लगा। इसी साल (सन् १८८२) में "एजुकेशन कमीशन" के सभापति सर विलियम हन्टर जब अन्यान्य स्कूलों का अवलोकन करते हुए पूना आए तब इस स्कूल को भी देखने गए थे और यहाँ की कार्यप्रणाली देख ऐसे प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने Visitors Book में लिखा था कि "इस स्कूल का प्रबन्ध और कार्यप्रणाली ऐसी उत्तम है और यह स्कूल इतने ही अवसर में ऐसी उच्च अवस्था तक पहुँच गया है कि मैंने ऐसा स्कूल सम्पूर्ण भारतवर्ष में कहीं नहीं देखा।"

डेकन एजूकेशन सोसाइटी।

जिन उत्साही देशभक्तों ने निःस्वार्थ भाव से इस कार्य का आरम्भ किया था वे केवल एक हाईस्कूल खोलकर ही कैसे शान्त रह सकते थे। पं० विष्णु शास्त्री चिपलूनकरजी की असामयिक मृत्यु के बाद इस स्कूल का सम्पूर्ण कार्यभार श्रीयुत तिलक के सिर आ पड़ा। कार्य के अनुभव से उन्हें ज्ञात हुआ कि ऐसा आर्टस् कालेज स्थापित करना चाहिये जि से चरित्रवान्, देशसेवक एवं राजभक्त वि निकला करें और जो सम्पूर्ण देश में, केवल निर्वाह योग्य वेतन ग्रहण कर, स्वतंत्र स्कूल देशवासियों को विद्यादान दें तथा इन स् की देखभाल एक कमेटी के अधीन रहे, जि सदस्य विख्यात यूरोपियन तथा देशी विद्या हों। इस विषय में इनके विचार कहाँ तक प थे यह स्कूल की १८८३ की (२ री) रि से मालूम होता है। कार्यकर्त्ताओं ने लिखा था "सर्वसाधारण की शिक्षा का कार्य जिस समय लोगों ने आरम्भ किया हमें विश्वास था कि मा उन्नति के सब मार्गों में शिक्षा ही एक ऐसा मा है जिसके द्वारा गिरी हुई जाति की आर्थिक, नैति तथा धार्मिक उन्नति हो सकती है और उसे धीरे उच्चाति उच्च जाति की पंक्ति में परिगणित सकती है। इस कार्य में पूर्ण सफलता करने के लिये शिक्षा का प्रबन्ध देशवासियों के हा में होना चाहिये। *

इस विचार की पूर्ति सन् १८८४ के अक्टू मास में की गई। "डेकन एजुकेशन सोसाइटी" नामक एक संस्था स्थापित की गई और स्कूल कुल कार्य इस सोसाइटी के सुपुर्द कर दिया गया कार्यकर्त्ताओं ने अपने अधिकार छोड़ दिए इस सोसाइटी के (लाइफ़ मेम्बर) जीवन-सभास होकर इसकी उन्नति की चेष्टा करने लगे।

इस कार्य में अप्रतिहत सफलता प्राप्त करने इच्छा से प्रधान कार्यकर्त्तागणों ने एक

* "They had undertaken the work of pop education with the firmest conviction and belief of all agents of human civilisation education is only one that brings about material, moral religious regeneration of fallen countries and r them up to the level of most advanced nations slow and peaceful revolutions. And in order it should be so, it (education) must be ultim in the hands of the people themselves."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ला। इसमें द्रव्य एकत्रित करने की इच्छा से हाशय नामजोषी जी महाराष्ट्रदेशी रियासतों में मने निकले। कोल्हापुर-केस में कार्य-कर्त्ताओं की र्दोषता प्रमाणित हो चुकी थी। इससे नामजोषी हाशय ने थोड़े ही समय में ५२०००) रुपया एकत्र कर लिया। सहायकों में कोल्हापुर के पोलिटिल एजेन्ट और रीजेन्ट महाशय भी थे। बम्बई के जावत्सल, लाट सर जेम्स फ़र्ग्यूसन भी इस सोसाइटी के कार्य से प्रसन्न थे और स्कूल और लेज के लिये पूना के पेशवाओं के महलों में से ष्ट भूमि गवर्न्मेंट ने प्रदान करने का वचन या था।

सर जेम्स फ़र्ग्यूसन साहब बड़े ही शिक्षाप्रेमी। आपही की कृपा से इस स्कूल की इतनी उन्नति। आपही की कृपा से स्कूल को ऊँचे क्लासों के लने की उस समय आज्ञा मिली थी जब कि सर लियम वेडरबर्न ने, जो उस समय प्रबन्धकारिणी मिति के सभासद थे, सरकार से ऊँचे दरजों के लने की आज्ञा माँगी थी। इन्हीं सब कृपाओं के रणार्थ इसका नाम "फ़र्ग्यूसन कालेज" रक्खा या।

ता० २ जनवरी स० १८८५ को कालेज लने का विधान एलफ़ीनिस्टन कालेज के सीपल प्रसिद्ध विद्वान् डाक्तर वर्डज़्वर्थ के हुआ था। ऊँचे २ क्लासों के खोलने की री बम्बई विश्वविद्यालय से मिलती गई। यहाँ क कि सन् १८९१ में प्रीवियस एम० ए० तक की री प्राप्त हो गई। तबसे आज तक लगभग ० विद्यार्थियों को यह संस्था विद्यादान दे रही अल्पमूल्य पर शिक्षा देनेवाली इससे बढ़ कर री संस्था नहीं है। कालेज में पढ़नेवालों में थे से ऊपर ऐसे हैं जो यदि यह कालेज न होता कदापि विद्यालाभ कर ही न सकते। आधे लक ऐसे भी हैं जिनके घरवालों की आय ५००) अधिक नहीं है। इस प्रकार इस सोसाइटी से ना लाभ हम भारतवासियों का, विशेष कर पश्चिमीय प्रदेशवालों का, हुआ है और होने की सम्भावना है यह पाठकगण स्वयं समझ लें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक भारतवासी इन महात्माओं के जिन्होंने अपने भविष्य का कुछ भी ख़याल न कर इस परोपकार-मय महत्कार्य का आरम्भ किया और इसे इस उच्च श्रेणी तक पहुँचाया, सर्वदा कृतज्ञ रहेंगे। धन्य हैं वे माता पिता जिनके पवित्र घर में श्रीयुत तिलक, श्रीयुत गोखले, महाशय चिपलूनकरजी एवं श्रीमान् आगरकरजी का जन्म हुआ है। किसी ने ठीक कहा है—

> "तया गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
> किं कृतं तेन जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः" ॥

इस सोसायटी ने अभी हाल में सतारा और पूना में और भी कई स्कूल खोले हैं। लगभग छः लाख रुपया तो इस सोसाइटी ने केवल इमारत में व्यय किया है। कालेज में एक वृहत् पुस्तकालय भी है जिसमें लगभग ७५०००) रुपयों के मूल्य की पुस्तकें हैं। कहते हैं कि वैज्ञानिकशिक्षा, अर्थात् रसायन, भूतविज्ञान्, प्राणिशास्त्र वग़ैरह में यह कालेज बम्बई प्रान्त के किसी कालेज से कम नहीं है। जिस स्थान पर यह कालेज विद्यमान् है वह स्थान पूना नगर से १½ मील पर है। यह कालेज ३७ एकड़ भूमि घेरे हुए है। मनोरञ्जन का भी यहाँ अच्छा इंतज़ाम है। क्रिकेट, फुटबाल, टेनिस आदि अँग्रेज़ी एवं देशीय कसरतों के सब सामान पृथक् पृथक् स्थानों में तैयार हैं। हर एक कसरत के लिये अलग अलग भूमि बनी हुई है। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार मनोरञ्जनीय विभाग भी यहाँ यथेष्ट है।

फ़र्ग्यूसन कालेज की जन्मदात्री तथा प्रबन्धकर्त्री "डेकन एजुकेशन सोसाइटी" है। परन्तु इस सोसाइटी के प्राण इसके आजन्मसभासद (life members) हैं। अतः इन सभासदों के विषय में यहाँ कुछ विशेष लिखना अनुचित न होगा। इस सोसाइटी की रजिस्टरी सन् १८६० के २१ वें ऐक्ट के अनुसार हो गई है। सोसाइटी में तीन प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभासद हैं। (१) फेलो (Fellow) (२) संरक्षक (Patron) और (३) आजन्मसभासद (life members)। जो लोग सोसाटी के फंड में भारी रकम प्रदान करते हैं उन्हें सोसाइटी की काउन्सिल "फेलो" चुनती है। जो लोग १०००) या इससे अधिक प्रदान करते हैं वे "पेट्रन" समझे जाते हैं। और जो सज्जन निस्वार्थभाव एवं देश सेवा के ख़याल से बहुत ही अल्प वेतन पर कम से कम २० वर्ष तक इस सोसाइटी की सेवा करते हैं वे लाइफ़ मेम्बर कहे जाते हैं। सोसाइटी की काउन्सिल दो प्रकार के मेम्बरों की बनी हुई है। एक भाग में कुल लाइफ़ मेम्बरस् होते हैं और दूसरे भाग में वे फेलो और पेट्रन होते हैं जिन्हें फेलो और पेट्रन हर तीसरे वर्ष चुनते हैं। ये संख्या में लाइफ मेम्बरों के बराबर होते हैं। इसी काउन्सिल के अधीन सोसाइटी के कुल प्रबन्ध हैं।

आजन्मसभासद का केवल शिक्षक स्वरूप से पढ़ाना ही कर्त्तव्य नहीं है वरन् ये लोग और २ तरह के भी काम करते हैं, जैसे चन्दा एकत्रित करना, व्याख्यानों द्वारा इस कालेज की महत्ता प्रगट करना; वार्षिक बजेट तैयार करना इत्यादि। इसके सिवा ये लोग निस्वार्थ रूप से कितनेही सार्वजनिक कार्य भी करते हैं, जैसे अकाल पीड़ितों की सहायता करना, स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना, दीन-दुखी भाइयों की सहायता करना इत्यादि।

मुख्य और प्रधान आजन्म समासद

प्रधान संस्थापकों में से पं० विष्णुशास्त्री चिपलूनकरजी का इस सोसाइटी के अस्तित्व के पूर्व ही देहान्त हो चुका था। इन्हें छोड़ कर लाइफ मेम्बरों की सूची में लगभग ३४ मनुष्यों के नाम आ चुके हैं। इनमें से श्रीयुत तिलक और प्रो० पाटनकरजी सन् १८९० के अन्त में इस्तीफ़ा दे कर अलग हो गए। इनके पृथक् होने का कारण कार्यकर्त्ताओं का धर्म-संबन्धो मतभेद था। यदि श्रीयुत तिलक अड़े रहते तो सम्भव था कि दो चार दूसरे सज्जन इससे पृथक् हो जाते। इसी ख़याल से उन्होंने इ[illegible] दे दिया था। श्रीयुत तिलक गणितशास्त्र के प्रो[illegible] थे। परन्तु समय २ पर वह संस्कृत और [illegible] शास्त्र की प्रोफ़ेसरी भी करते थे। विद्यार्थि[illegible] आप माननीय प्रेमपात्र थे।

प्रो० पाटनकरजी इस सोसाइटी से पृथ[illegible] कर काशी के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में चले [illegible] और यहाँ सन् १९११ तक संस्कृत के प्रोफ़ेसर [illegible] सन् १९११ में आपने यह पद भी छोड़ दिया [illegible] अब आप इन्दौर चले गए हैं।

पं० वामन सदाशिव आपटे एम० ए० [illegible] प्रिन्सिपल थे। आप संस्कृत भाषा के अ[illegible] विद्वान् थे। आपकी बनाई "कुसुममाला" (Apte's Guide) आपटेज़ गाइड ये दो पु[illegible] विद्यार्थियों के लिये बड़े काम की चीज़ें [illegible] आप बहुत अच्छे कार्यदर्शी थे। विशेष परिश्र[illegible] कारण आप प्रायः रोगग्रस्त रहा करते [illegible] एकाएक सं० १८९२ ई० की ९ वीं अगस्त को [illegible] के कारण आप पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

श्रीमान् पं० गोपाल-गणेश-आगरकर एम० [illegible] जिनका वर्णन पीछे किया जा चुका है और जो [illegible] से इस कार्य के सहायक थे, इतिहास और [illegible] सफ़ो के प्रोफ़ेसर थे। आगरकर जी एक [illegible] समाजसुधारक थे। आपने मि० गोखले के [illegible] "सुधारक" नामक एक मराठी-अंग्रेज़ी [illegible] हिक पत्र प्रकाशित किया था। समाज-सुधार [illegible] आप अग्रगण्य थे। सन् १८९५ के जून मास में [illegible] के रोग से पीड़ित हो आप इस असार संसा[illegible] चल बसे।

महाशय आगरकर जी की मृत्यु के एक [illegible] पूर्व प्रो० वासुदेव बालकृष्ण केलकर जी का [illegible] सान हुआ था। आप बड़े ही सीधे मनुष्य थे। [illegible] कार तो कहीं छू तक नहीं गया था। [illegible] सहन भी आपकी एक दम सादी थी। पूर्व [illegible] ही "केसरी" एवं "मराठा" पत्र के सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक थे। यह कार्य आपने बड़ी योग्यता से चलाया था।

फ़र्ग्यूसन कालेज के तृतीय प्रधानाध्यापक श्रीयुत महादेव शिवराम गोल एम० ए० थे। २० वर्ष की विकट प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से प्रतिपालन कर आपने सन् १९०२ में विश्रान्ति ग्रहण की। आप विज्ञान के प्रोफ़ेसर थे। आपका सिद्धान्त था कि हमारी उन्नति बिना विज्ञान तथा औद्योगिक शिक्षा के नहीं हो सकती। आप एक अच्छे इंतिज़ामकार एवं तीव्र लेखक भी थे।

फ़र्ग्यूसन कालेज के प्रधानाध्यापक का पद आजकल मिस्टर आर० पी० परांजपे, सीनियर रेंग्लर, एम० ए० (केन्टब) बी० एस सी० (बंबई) सुशोभित कर रहे हैं। आपने अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता के द्वारा बड़े बड़े अंग्रेज़ तथा देशी विद्वानों को चकित कर दिया है। हज़ारों रुपये व्यय कर आप विलायत गए। अपूर्व परिश्रम कर इतनी विद्वत्ता प्राप्त की। परन्तु बड़ी से बड़ी सरकारी नौकरी छोड़ कर आप इस समय अपने देशवासियों की सेवा में तत्पर हैं—यह कितनी प्रशंसा तथा निःस्वार्थता की बात है। ऐसे ही सज्जनों से हमारा वास्तविक उपकार हो सकता है—इसमें कोई सन्देह नहीं।

परन्तु प्रसिद्ध देश भक्त आनरेबुल महात्मा गोपालकृष्ण गोखले बी० ए०, सी० आई० ई० ने इस सोसाइटी तथा इस कालेज की जो अद्वितीय सेवा की है उसके विषय में कुछ लिखना बहुत आवश्यकीय है। बिना इसके यह लेख अधूरा ही रह जायगा। आप सन् १८८४ में आजन्मसभासद् हुए। तब से आज तक आपने जिस उत्साह, निष्कामता एवं निस्वार्थता से इसकी सेवा की है वह अवर्णनीय है। सचमुच आप ही के उद्योग से इसकी यहाँ तक उन्नति हुई है कि सरकार अपनी रिपोर्ट में इसे सर्वोत्तम लिखती है। आप बहुत समय तक इसके प्रिन्सिपल भी थे। आपही की वक्तृत्व शक्ति तथा अविरल प्रयत्न से लाखों का चन्दा एकत्रित हुआ है। जिस काम को आपने उठाया उसे पूरा किए बिना न छोड़ा। मिस्टर एच० शार्प सी० आई० ई० ने गवर्नमेंट की ओर से सं० १९०७ से सं० १९१२ तक की जो रिपोर्ट लिखी है उसके ६७ वें पृष्ठ में बम्बई का ज़िक्र आया है। आपने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "बम्बई प्रान्त में उच्च शिक्षा की व्यवस्था संकुचित है। यद्यपि विद्यार्थियों की संख्या युक्त-प्रदेश से अधिक है तथापि वहाँ केवल ११ कालेज हैं। बम्बई का एलफ़िनिस्टन कालेज और पूना का डेकन कालेज सरकारी होते हुए भी छोटे हैं। सब से बड़ा पूना का फ़र्ग्यूसन कालेज है जो "डेकन एजुकेशन सोसाइटी के अधीन है"*। आपने सन् १९०२ में अवकाश ग्रहण किया।

फ़र्ग्यूसन कालेज का यह अल्प इतिहास है। निःस्वार्थभाव एवं देश सेवा के ख़याल से जो कार्य होता है उसमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हो सकती है इसका यह अच्छा उदाहरण है। कार्य करके फल की आशा करना—यह मनुष्य का स्वभाव है। हिन्दी-साहित्य-सेवियों की सेवा में उदाहरण प्रस्तुत कर किसी महत् कार्य की आशा करना भी स्वाभाविक है। मुझे पूरी आशा है कि प्रत्येक प्रान्त, प्रत्येक नगर एवं प्रत्येक ग्राम में हिन्दी के लिये भी ऐसा ही परिश्रम होगा। म० तिलक, महात्मा गोखले, साहित्य-रत्न चिपुलूनकर आदि का अब इससे संबंध नहीं है। परन्तु इनकी निस्वार्थता एवं देशभक्ति की यशोविजयनामाङ्कित ध्वजा फहरा रही है और हमें सूचित करती है कि संसार में जन्म लेकर जो लोग इनके समान परोपकार का कार्य्य करते हैं उनके

* College education in Bombay is concentrated. Though the number of students exceed that in U. P., there are only eleven Colleges. The two Government Colleges—the Elphinstone College at Bombay and the Deccan College at Poona—are kept comparatively small. The largest College is the Fergusson College at Poona managed by the Deccan Education Society. "Progress of Education in India" by H. Sharp, C.I.E,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश की ध्वजा सूर्यचन्द्र के अस्तित्व तक इसी भाँति फहराया करती है। परमात्मा हिन्दी-सेवियों में भी इस प्रकार की शक्ति प्रदान करे।

—:o:—

वक्तृत्व-शक्ति
और
उसकी साधना के उपाय।

(पूर्व-प्रकाशित से आगे।)



वक्ता को सब से पहले चाहिए कि वह निश्चित विषय पर अपने वक्तव्य या विचारों को पहले से ही सोच कर उनका क्रम ठीक कर ले। आरम्भ में, बिना नोट किए वक्तृता याद रखना बहुत कठिन काम है। इसी लिये प्रायः लोग अपने विचारों को किसी काग़ज़ पर नोट कर लेते हैं। लेकिन, आगे चलकर जहाँ तक हो सके बिना नोट किये ही काम चलाने का अभ्यास डालना चाहिये। यह बात कुछ कठिन तो अवश्य है; पर इससे अनेक लाभ होते हैं। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो का कथन है, कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ कहने से पहले अपने वक्तव्य पर कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। हैल्प्स साहब का मत है कि पहले वक्तृता के विषयों का क्रम ठीक कर लो और तदुपरान्त एक एक करके प्रत्येक बात पर, मन ही मन, वादविवाद करो। प्रायः लोग खड़े होते ही बे-सिलसिले और इधर उधर की बातें कहने लगते हैं जिससे सुननेवालों की तबीयत बहुत घबरा जाती है। वक्तृता की उपमा किसी सिकड़ी या जंजीर से दी जा सकती है। यदि सिकड़ी में से कहीं कोई एक कड़ी भी निकल गई तो फिर वह व्यर्थ हो जाती है,—किसी काम की नहीं रहती। ठीक यही दशा वक्तृता की भी है; जहाँ उसमें से कोई बात छूट गई, अथवा आगे पीछे हो गई, फिर उसका पूरा पूरा अभिप्राय समझ में नहीं आता और उससे सुननेवाले उकता जाते हैं।

कुछ लोग वक्तृता के पहले से इस प्रकार नोट कर लेने को बहुत अनुचित समझते हैं। लेकिन अधिकांश लोग नोट करने के ही पक्ष में हैं और उसे अधिक उत्तम समझते हैं। बहुत से अच्छे अच्छे वक्ता अपनी वक्तृता को पहले से नोट कर लेते हैं; कोई कोई तो उसे आदि से अंत तक एक या अनेक बार लिख भी डालते हैं। इस प्रकार एक या अनेक बार लिखने से सब बातें भली भाँति कण्ठाग्र हो जाती हैं। ब्रह्म-समाज के नेता और प्रसिद्ध सुवक्ता बाबू केशवचन्द्रसेन अपना भाषण सदैव लिखकर ही याद करते थे। भारत के भूतपूर्व बड़े लाट लार्ड डफरिन के एक भाषण के संबंध में कलकत्ते की दैनिक अँगरेज़ी अमृत बाज़ार पत्रिका ने एक बार लिखा था कि वह भाषण लार्ड महोदय ने एक बोर्ड पर लिख कर याद किया था।

वक्तृता कण्ठ करते समय कुछ लोग तो वक्तृता के विषय अथवा उसके मुख्य अंगों का ही विशेष ध्यान रखते हैं; पर कुछ लोग उसे अक्षरशः याद करते हैं। कुछ लोगों की स्मरण शक्ति इतनी तीव्र होती है कि जिस चीज़ को वे एक बार भी पढ़ लेते हैं वह उन्हें बहुत समय तक स्मरण रहती है। ऐसे लोगों को अपना भाषण याद करने के लिये बहुत ही कम परिश्रम करना पड़ता है। मि० जान ब्राइट ने एक अवसर पर कहा था—"वक्तृता स्मरण रखने के अनेक उपाय हैं। प्रत्येक वक्ता को उनमें से अपनी रुचि के अनुसार, कोई उपाय अपने लिये निर्धारित कर लेना चाहिये। पहले भाषण को एक बार लिखने और फिर उसे याद करने में दूना श्रम करना पड़ता है, जो मेरी समझ में ठीक नहीं है। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर बिना पहले से कुछ विचार किए हुये, किसी गूढ़ विषय पर वक्तृता देना भी बुद्धिमत्ता का काम नहीं है। किसी विषय पर वक्तृता देने से पहले मैं सोचता हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे श्रोताओं के सामने कौन कौन सी बातें उपस्थित करनी चाहिएँ। मैं कभी अपने विचार या युक्तियाँ नहीं लिखता। हाँ, स्मरण रखने के लिये कठिन रचना के वाक्य अवश्य लिख लेता हूँ।" यह उपाय बहुत ही अच्छा है। इस प्रकार यद्यपि वक्ता को अपने विचारों के संबंध में अधिक स्वतंत्रता होती है तथापि वह बहुत से अंशों में अपने नोट किए हुए विचारों को प्रकट करने के लिये ही बद्ध होता है। यदि वक्तृता देने से पहले नोट न लिए जायँ तो वक्ता को विचारों के लिये प्रायः इधर ही उधर भटकना पड़ता है। वक्तृता लिख लेने में एक विशेष लाभ है। जो लोग अपनी वक्तृता शब्दशः लिख लेते हैं उन्हें उसमें से अनावश्यक बातों को निकाल देने और नए आवश्यक विषयों और विचारों को मिला देने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है। लेकिन जो लोग केवल उसकी मुख्य मुख्य बातें नोट करते हैं वे कभी तो अनावश्यक बातें भी कह जाते हैं और कभी बहुत आवश्यक बातों को भी छोड़ देते या बहुत संक्षेप में कहते हैं। इनमें से जो लोग चतुर होते हैं वे तो किसी न किसी प्रकार अपना निर्वाह कर ही लेते हैं, पर जो लोग दुर्बल हृदय के होते हैं उन्हें अपने थोड़े से विचार प्रकट करने में भी बड़ी भारी कठिनता होती है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका काम केवल नोट करने या लिख लेने से ही नहीं चल सकता। वे लोग जिस काग़ज़ पर वक्तृता लिखते हैं उसे भी सभा-समाज में अपने साथ ही लेते जाते हैं। उसे देख कर वे लोग वक्तृता क्या देते हैं मानों गुरु को पाठ सुनाते हैं। ऐसे लोग कभी वक्ता नहीं बन सकते। वक्तृता देते समय वक्ता को उचित और आवश्यक है कि वह श्रोताओं की ओर देखे, और आवश्यकता और समय के अनुसार अपनी आवाज़ तेज या धीमी करे। जो लोग देखकर लिखा हुआ लेख पढ़ते हैं वे उसे एक ही सीधे स्वर से पढ़ते चले जाते हैं, और श्रोताओं को उससे कुछ भी आनंद नहीं मिलता। न तो ऐसी वक्तृताओं को लोग पसन्द करते हैं और न श्रोताओं पर उनका कुछ प्रभाव ही पड़ता है। जो लोग केवल लेखों पर निर्भर रहते हैं उनके विषय में एक बड़े विद्वान् का कथन है कि ऐसे लोगों के भाषण एक गँवार के भाषण से भी निकृष्ट होते हैं।

प्रायः देखने में आता है कि जब कोई व्यक्ति किसी वक्ता की बातों का खंडन करता है तब वक्ता महाशय बहुत नाराज़ होकर उसका उत्तर देने के लिये पुनः खड़े हो जाते हैं। यह उत्तर देते समय वे लोग प्रायः बहुत अधिक आवेश में आ जाते हैं और कभी कभी शिष्टता की सीमा का उल्लंघन तक कर जाते हैं; और अंत में बहुत कुछ ज़िद्द करके अपनी ही बात को सबसे ऊपर रखने का प्रयत्न करते हैं। यह बात बहुत ही अनुचित है। सबसे पहले तो यदि अपनी कोई भूल हो तो उसे तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिये। और नहीं, तो कम से कम क्रोध कभी न करना चाहिये। यदि ऐसे आक्षेपों का उत्तर कोमल शब्दों में दिया जाय तो श्रोता भी उस वक्ता के साथ सहानुभूति प्रकट करने लगते और उसके पक्ष में हो जाते हैं।

कुछ लोग अपनी सारी योग्यता शब्दों की गढ़ंत पर ही समाप्त कर देते हैं; फल यह होता है कि उनके भाषण में अच्छे विचारों की बहुत ही त्रुटि रह जाती है। वे लोग समझते हैं कि यदि रंगीन और चटकीली भाषा में वक्तृता दी जाय तो, चाहे उसमें कुछ भी विचार न हो, पर लोग उन्हें अधिक पसन्द करते हैं। पर ऐसा समझना उनकी भारी भूल है। हम पहले ही कह चुके हैं कि वक्तृता में भाषा की अपेक्षा विचारों का सौन्दर्य्य अधिक आवश्यक होता है। हाँ, यदि अच्छे विचारों के साथ साथ भाषा भी उत्तम हो तो यह बात सर्वश्रेष्ठ है। कुछ लोग दूसरे की निंदा करना, या अच्छे वक्ताओं की भूलें दिखलाना और उनकी निंदा करना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ बैठते हैं। यह बात भी बहुत अनुचित और व्यर्थ है। इसी लिए ग्रीस का सुप्रसिद्ध विद्वान् सुकरात वक्तृता देने का बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी था। वह अपने शिष्यों से कहा करता था—"जिसे जो कुछ कहना होगा वह स्वयं उसकी प्रणाली आदि का निर्णय कर लेगा।" अर्थात् उनके लिये किसी प्रकार के विशेष उद्योग की कोई आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार एक और प्रसिद्ध विद्वान् भी इस विद्या का बहुत विरोधी था। लार्ड बेकन के कथनानुसार उसका सिद्धान्त था कि वक्तृत्व-कला और पाक-विद्या में बहुत कुछ समानता है। अर्थात् जिस प्रकार पाक-विद्या की सहायता से अनेक हानिकारक भोजन बहुत स्वादिष्ट बनाए जा सकते हैं और उत्तम भोजन भी महा निकृष्ट और बेसवाद हो सकते हैं उसी प्रकार वक्तृत्व-शक्ति से अच्छे विषय बुरे और बुरे विषय अच्छे सिद्ध किए जा सकते हैं। यह बात भी बहुत से अंशों में ठीक है और उन लोगों के विशेष ध्यान देने योग्य है जिन्हें अपनी वक्तृत्व-शक्ति पर बहुत भरोसा या घमंड है।

एक और बड़े विद्वान् ने एक अवसर पर कहा था—"अच्छी वक्तृता अवश्य अच्छी है, पर विशेष अच्छी वह उसी समय समझी जायगी जब कि उसका फल भी अच्छा ही हो।" इसका तात्पर्य्य यह है कि कुछ वक्तृताओं की भाषा तो अवश्य चटकीली और भड़कदार होती है और सुनने के थोड़ी देर बाद तक श्रोताओं पर उसका थोड़ा बहुत प्रभाव भी रहता है; लेकिन उसमें विशेष तत्त्व की बातें न होने के कारण उसका कोई अच्छा फल नहीं होता। यह एक स्वाभाविक बात है कि लोग प्रत्येक विषय के फल पर विशेष ध्यान देते हैं। वक्तृता सुनने के समय मनुष्य पर जो प्रभाव पड़ता है वह क्षणिक होता है और थोड़ी ही देर बाद बिलकुल मिट जाता है। डिमास्थनीज़ एक कल्पित भाषण में सिसरो से कहता है—"तुम तो लोगों से केवल यही कहला सकते हो कि सिसरो बहुत अच्छा वक्ता है; पर मैंने उन्हें हथियार लेकर लड़ाई के लिये तैयार कर दिया।" सब से अधिक ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जिसे अपनी वक्तृता पर स्वयं दृढ़ विश्वास नहीं होता और जो अपने भाषण को अच्छा और प्रभावशाली नहीं समझता उसके भाषण का श्रोताओं पर भी कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक बार एक मनुष्य ने सिसरो के सामने यह अभियोग उपस्थित किया था कि अमुक व्यक्ति ने उसे विष दे दिया था। लेकिन अभियोगसंबंधी बातें कहते समय वह मनुष्य कई बार हँसा था। और केवल इसी लिये सिसरो ने उसके अभियोग को मिथ्या ठहरा दिया था।

रिचर्ड शेल को लोग बहुत अच्छा वक्ता समझते थे। रिचर्ड के भाषण में किसी प्रकार का सौंदर्य्य नहीं था; उलटे उसकी प्रणाली बहुत बेढंगी थी। लेकिन उसकी उक्तियाँ बहुत ही सत्य-पूर्ण होती थीं, इसलिये सभी छोटों बड़ों पर उसकी बातों का समान रूप से प्रभाव पड़ता था। उसके श्रोताओं में एक आदमी भी ऐसा नहीं निकलता था जिसकी उसके साथ सहानुभूति न होती हो। इन सब बातों का तात्पर्य्य यह है कि चटकीली और भड़कदार वक्तृता की अपेक्षा सच्ची और गूढ़ बातों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और ऐसी वक्तृता सर्वप्रिय भी होती है।

कुछ लोग वक्तृता में ऐसे वाक्यों का प्रयोग करते हैं जो केवल लिखने में ही भले मालूम हो सकते हैं, बोलने में नहीं। बोलने में केवल ऐसे वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए जो रोज़ की बोलचाल में आते हैं। व्यर्थ की बातों या विषयांतर में जाने से भी वक्तृता का सौंदर्य्य जाता रहता है। कुछ लोग छोटी और अनावश्यक बातों के लिए बड़ी और महत्त्वपूर्ण बातें छोड़ बैठते हैं। वास्तव में वही वक्तृता सब से अच्छी समझी जाती है जिसमें काम की बातें अधिक और शब्द कम हों। वक्तृता के आरंभ में बहुत लंबी चौड़ी भूमिका भी शोभा नहीं देती। बहुत लंबा भाषण, चाहे वह अच्छा भी हो, सर्वप्रिय नहीं होता। ऐसी बड़ी [illegible] से श्रोता घबरा जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्ता जिस समय भाषण करने के लिये प्लेटफ़ार्म पर खड़ा हो उस समय उसे अपने श्रोताओं की अवस्था का भी बहुत कुछ ध्यान रखना चाहिए। सदा श्रोताओं की ओर मुँह करके वक्तृता देनी चाहिए। भाषण के समय ऐसे भाव दिखलाने चाहिएं जिनसे लोगों के हृदय में किसी प्रकार की ग्लानि उत्पन्न न हो। यह दोष नए वक्ताओं में ही नहीं, बल्कि कभी कभी बहुत बड़े और पुराने वक्ताओं में भी पाया जाता है। वक्तृता देते समय साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारी बातों का श्रोताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है अथवा उनके विचारों में कैसे कैसे परिवर्त्तन हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि श्रोता लोग किस ढंग की वक्तृता अधिक पसन्द करते हैं या कैसी बातें उनकी रुचि के अनुकूल होती हैं। यदि किसी अवसर पर श्रोताओं के घबराने के लक्षण दिखाई दें तो उसी समय यदि संभव हो तो अपना रुख पलट देना चाहिए और नहीं तो तुरंत भाषण समाप्त कर देना चाहिए। क्योंकि श्रोताओं को ऐसे अवसरों पर समय काटना भी बहुत कठिन हो जाता है। कुछ लोग वक्तृता देते समय जब अपने सम्बन्ध की कोई बात सोचने लगते हैं, तो बहुत घबरा जाते हैं। ऐसी अवस्था में किसी प्रकार की सफलता बिलकुल असंभव हो जाती है। वक्तृता देते समय कम से कम इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि हमारी बातों का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ेगा। प्रोफ़ेसर ब्लेकी ने अपनी सेल्फ़ कलचर (Self-Culture) नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है— "सर्वसाधारण में वक्तृता देनेवाले लोगों को इस बात का ध्यान रखना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए कि जो कुछ वे कहते हैं वह केवल श्रोताओं पर प्रभाव डालने के अभिप्राय से ही कहते हैं। लेकिन साथ ही इस कर्त्तव्य का इतना अधिक ध्यान भी न हो कि वह चिंता-रूप में परिणत हो जाय।"

वक्ता की आवाज़ सदा साफ़ और ऊँची होनी चाहिए। आवाज़ इतनी ऊँची अवश्य हो कि कम से कम पास के किसी दूसरे कमरे के लोग सुन सकें। कुछ लोग इस ढंग से चिल्ला कर बोलते हैं कि उनकी बातें लोगों की समझ में भी नहीं आतीं; और कुछ लोग इतने धीरे से गुनगुनाते हैं कि पास बैठे हुए लोगों को भी सुनने में कठिनता होती है। आवाज़ साफ़ और साधारण होनी चाहिए,—न बहुत ऊँची हो और न बहुत नीची। वक्तृता देते समय सुर अलापने की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, भाषण के आरंभ में आवाज कुछ नीची होनी चाहिए और ज्यों ज्यों लोगों पर उस का प्रभाव पड़ता जाय त्यों त्यों आवाज भी ऊँची होती जाय। सर सदा सामने की ओर और उठा हुआ होना चाहिए और आवाज में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होनी चाहिए। सम्बोधन, दुःख, आश्चर्य, प्रेम, दया आदि भावों के वर्णन की आवश्यकता पड़ने पर आवश्यकतानुसार यथोचित रीति से आवाज ऊँची या नीची होनी चाहिए। ग्रीस के एक अच्छे वक्ता की प्रशंसा में किसी ने लिखा है—"उसकी प्रभावशालिनी वक्तृता के समय केवल उसकी जबान ही नहीं बोलती थी बल्कि उसका अंग प्रत्यंग जबान बन कर बोलने लग जाता था"। और वास्तव में अच्छे वक्ता का चिह्न भी यही है।

वक्तृता संबंधी विषयों में से अधिकांश का साधारण वर्णन हो चुका। यद्यपि इस लेख में सभी बातों का सविस्तर वर्णन नहीं आ सका है तो भी प्रायः बहुत सी आवश्यक बातों का थोड़ा बहुत समावेश हो गया है। जो लोग इस विद्या के उपार्जन के इच्छुक हों, या उसके लिए किसी प्रकार की चेष्टा करते हों उन्हें इस प्राकृतिक नियम का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि सच्चे परिश्रम का फल निस्संदेह अच्छा ही होता है। यह एक साधारण नियम है कि यदि कोई विद्या प्राप्त करने के लिए अधिक परिश्रम किया जाय तो सफलता होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वक्तृत्व-शक्ति से बड़े बड़े काम निकल सकते हैं। इसके द्वारा छोटे बड़े, धनी निर्धन सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी सरलता से वश में किए जा सकते हैं। इसके प्रभाव से कोई वंचित नहीं रह सकता। सभी बड़े बड़े वक्ता भी हम लोगों की तरह सांसारिक जीव ही थे; और उन्होंने भी केवल अभ्यास और परिश्रम से ही यह विद्या प्राप्त की थी। इसमें सब से अधिक ध्यान केवल इसी बात का रखना चाहिए कि इससे सत्यता कभी विलग न हो। संसार की सभी बातों का सत्यता से बहुत घनिष्ठ संबंध है। जिस बात में सत्यता नहीं होती, उसका कोई मूल्य भी नहीं होता। दूसरी बात यह है कि वक्ता को कभी अपनी योग्यता का घमंड न करना चाहिए। चाहे तुम किसी विषय के कितने ही बड़े विद्वान् क्यों न हो जाओ, पर तो भी तुम, न्यूटन के कथनानुसार उस बालक के समान ही हो जो समुद्र के केवल किनारे किनारे घूमता है और उसके भीतर का कुछ भी हाल नहीं जानता। ग्रीस का प्रसिद्ध विद्वान् सुकरात किसी मूर्ख से बातें करते समय भी, बड़ी ही नम्रता और दीनता का व्यवहार करता था। यद्यपि संसार के सभी व्यवहारों में उपर्युक्त दोनों बातों की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है, पर उपस्थित विषय में तो यह बातें नितांत आवश्यक हैं।

कुछ उपयोगी बातें।

कुछ समय पूर्व इंगलैंड के एक प्रसिद्ध डाकृर को वक्तृत्व-कला के संबंध में एक लेख लिखने के लिए अच्छा पारितोषिक मिला था। उस लेख में बहुत सी उपयोगी बातें हैं; इसलिए पाठकों के मनोरंजन के लिए उस लेख का सारांश यहाँ देकर, हम यह निबंध समाप्त करते हैं।—

"कुछ लोग सार्वजनिक सभाओं में खड़े होकर किसी प्रकार का भाषण नहीं कर सकते। यदि उन लोगों को कभी वक्तृता देने का अवसर प्राप्त होता है तो उनका शरीर काँपने लगता है और जीभ लड़खड़ाने लगती है। इस विषय पर ध्यानपूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि इसका मुख्य कारण वक्ता का अपने आपपर अविश्वास [illegible] उसपर श्रोताओं का आतंक ही है। यों तो [illegible] स्थिति और सभी अवस्थाओं में लोगों में यह [illegible] पाया जाता है; पर युवा अवस्था में इसकी [illegible] अधिकता होती है, प्रौढ़ावस्था में यह दोष कुछ [illegible] हो जाता है तथा वृद्धावस्था में यह बिलकुल [illegible] जाता रहता है। यदि यह रोग स्त्रियों को हो [illegible] उसका उपाय शीघ्र और सरल होता है, लेकिन [illegible] पुरुषों में हो तो वह बहुत कष्ट-साध्य होता [illegible] लेकिन इतना अवश्य है कि एक बार मनुष्य [illegible] इस रोग से मुक्त हो जाता है, तो फिर उसे [illegible] आजन्म यह रोग नहीं होता।

इस रोग के तीन मुख्य कारण हुआ करते [illegible] जो शरीर, मन और शिक्षा से संबंध रखते [illegible] शारीरिक कारण तो वही होते हैं जो शरीर [illegible] निर्बल कर देते हैं और मनुष्य को भली [illegible] सशक्त नहीं होने देते। शारीरिक दुर्बलता [illegible] उत्पत्ति प्रायः अधिक भोजन करने से ही होती [illegible] अधिक भोजन करने से पाचन शक्ति नष्ट हो [illegible] है जिसका सारे शरीर पर बहुत ही बुरा प्र[illegible] पड़ता है। इसलिये, जो लोग उचित परिमा[illegible] अधिक भोजन करते हैं उनमें अपने आव[illegible] कर्त्तव्यों को पूरा करने की बहुत ही कम शक्ति [illegible] जाती है। फलाहार करने से अन्य शारीरिक श[illegible] के साथ साथ पाचन शक्ति भी खूब बढ़ती [illegible] इसलिये जो लोग फलाहारी या शाकाहारी [illegible] हैं वे मांसाहारियों की अपेक्षा वक्तृता देने के [illegible] योग्य होते हैं। मद्य पीने या अन्य मादक द्रव्यों [illegible] व्यवहार करने से भी लज्जा, संकोच या झि[illegible] उत्पत्ति और वृद्धि होती है। चाय आदि [illegible] शरीर में जो प्रसन्नता या फुरती उत्पन्न होती [illegible] वह क्षणिक हो होती है; इसके अतिरिक्त [illegible] अंतिम परिणाम भी ठीक नहीं होता; क्योंकि [illegible] अनेक हानियाँ होती हैं। यद्यपि चाय या [illegible] पीने से लज्जा या संकोच की उत्पत्ति नहीं [illegible] तथापि ये चीज़ें शरीर को निर्बल अवश्य कर[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, और फिर उस निर्बलता से लज्जा या संकोच की उत्पत्ति होती है। अथवा दूसरे शब्दों में ये चीज़ें मनुष्य की लज्जा या संकोच को दबाने के योग्य नहीं रखतीं।

जिन चीज़ों में एलकोहल (Alcohol) का मेल होता है, उनसे दूसरी हानि यह होती है कि मस्तिष्क के सब अंग खराब हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य में थोड़ी सी धृष्टता आ जाती है। यद्यपि लज्जा को रोकने में धृष्टता बहुत से अंशों में उपयोगी होती है, लेकिन एलकोहल के प्रभाव से उत्पन्न धृष्टता मनुष्य में उसी समय तक रहती है, जब तक कि उसपर एलकोहल का प्रभाव रहता है। और ज्योंही उसके प्रभाव का अंत होता है त्योंही मनुष्य की दशा, पहले की अपेक्षा और भी अधिक खराब हो जाती है। एलकोहल का व्यवहार मनुष्य को स्वभावतः दुर्बल बना देता है। जो लोग किसी प्रकार का व्यायाम नहीं करते, उनमें भी लज्जा या संकोच की मात्रा अधिक हो जाती है। व्यायाम न करनेवालों की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ उतनी प्रबल नहीं होतीं; जितनी कि व्यायाम करनेवालों की हुआ करती हैं।

हमारे पाठकों में से बहुतों ने अमेरिकन-इंडियनों की वीरता की कहानियाँ अवश्य पढ़ी होंगी। इसमें संदेह नहीं कि उनकी इस वीरता का प्रधान कारण शारीरिक शिक्षा है; तो भी खुले स्थान के निवास और व्यायाम आदि ने उसमें बहुत कुछ सहायता दी है। मेरा निज का अनुभव है कि व्यायाम करने से मनुष्य का संकोच कम हो जाता है और तबीयत खूब साफ़ रहती है। जब कभी मैं लेक्चर देना चाहता हूँ, तो उससे पहले पाँच छः मील का लंबा चक्कर लगाता हूँ; और तब उसके उपरांत सीधा जाकर प्लेटफार्म पर खड़ा हो जाता हूँ। व्याख्यान के प्रारंभ में भी मैं सबसे पहले लोगों को व्यायाम करने तथा खुली हवा में टहलने के लाभ बतलाता हूँ जिससे उन्हें इन बातों की उपयोगिता भली भाँति मालूम हो जाती है। अपने विवाह से पहले, मैंने अपनी वर्त्तमान स्त्री से कई बार विवाह की बात छेड़ने का विचार किया। लेकिन जब जब मैं उसके सामने जाता, तब तब मुझे इतना अधिक संकोच आ घेरता कि मैं उसपर अपना अभिप्राय प्रकट करने का साहस न कर सकता। मैंने कई बार उससे कुछ कहने का उद्योग किया मगर मुझे कभी सफलता नहीं हुई। अंत में एक दिन, जब कि मैं लंदन के बाहर चौदह मील का चक्कर लगा कर आया था, मैं सीधा उसके मकान पर चला गया। उस समय मुझे तनिक भी संकोच न मालूम हुआ और मैंने बेधड़क होकर बड़ी दृढ़ता से अपने हृदय की सारी बातें उसे कह सुनाईं।

ख़राब हवा में रहने से भी मनुष्य में यह दोष आ जाता है। बात यह है कि जिन लोगों की तबीयत औरों से डरती है, उन्हीं को संकोच भी हुआ करता है। दूसरी बात यह है कि जिन लोगों को सांसारिक अनुभव कम होता है उन्हीं को संकोच भी हुआ करता है। संकोच का मुख्य कारण यही है कि हम लोग अपने आपको अविद्या के अंधकार में फँसा हुआ समझते हैं। हमें भय होता है कि लोग हमारे विषय में ऐसी सम्मतियाँ स्थिर कर लेंगे जिनसे हमारी वर्त्तमान प्रतिष्ठा में बहुत कुछ भेद आ जायगा। अथवा हम डरते हैं कि लोग हमपर हँसेंगे, हमें मूर्ख या छोटा समझेंगे और हमें तुच्छ या घृणा की दृष्टि से देखेंगे। इसका कारण भी सांसारिक अनुभव का अभाव ही है। हमें अपनी योग्यता या अवस्था पर किसी प्रकार का दृढ़ विश्वास नहीं होता और इसी लिये हमें औरों से संकोच होता है।

संकोच का अंतिम कारण, जो विशेष ध्यान देने योग्य है, हमारी शिक्षा है। ऐसी दशा में जब कि हमारी शिक्षा एकान्त में होती है, अथवा किसी ऐसे स्थान में होती है जहाँ किसी का आना जाना नहीं होता, अथवा जहाँ हम और लोगों से मिलने जुलने नहीं पाते, तो बड़े होने पर हममें लज्जा या संकोच होना बिलकुल ही स्वाभाविक है। हम लोग प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़ ही देखा करते हैं कि जो बालक अपने माता पिता के अतिरिक्त और किसी से नहीं मिलता, वह, जब तक उसे और बाहरी आदमियों से मिलने का अभ्यास न डाला जाय, सदा दूसरों से बहुत संकोच करता है। ठीक यही दशा नवयुवकों की है। इसलिये घर ही में बन्द रह कर सारा समय व्यतीत करना बहुतही अनुचित और हानिकारक है।

लज्जा या संकोच के चिह्नों का वर्णन करना मैं उतना आवश्यक नहीं समझता; क्योंकि प्रायः सभी लोग जानते हैं कि जिसे किसी प्रकार का संकोच होता है वह अपने स्थान से पीछे हटता है, किसी नए या अजनबी आदमी के आते ही चुप हो जाता है, कोई काम करते समय उसे दृढ़ विश्वास नहीं होता और इन्हीं सब कारणों से कोई अच्छा अवसर पाकर भी वह उसका यथोचित उपयोग नहीं कर सकता। यही कारण है कि प्रायः बहुत से योग्य और विद्वान् सदा छोटे पदों पर ही रह जाते हैं और कभी उन्नति नहीं कर सकते। नए लोगों के सामने वे कोई काम नहीं कर सकते और न कुछ बोल ही सकते हैं। जब कभी उन्हें अपने अफ़सर या किसी अजनबी से बातें करने का अवसर आता है तो वे हिचकिचाते हैं, काँपते हैं और पसीने पसीने हो जाते हैं। यदि कोई उन्हें लिखते या और कोई काम करते समय देख ले तो वे थोड़ी देर के लिये रुक जाते हैं। ऐसे लोग जब कभी कभी टहलने आदि के लिये घर से बाहर निकलते भी हैं तो उन्हें भय होता है कि लोग हमें देख रहे हैं अथवा हमारे गुण-दोष की विवेचना कर रहे हैं। यदि वे किसी को हँसते हुये देखते हैं तो वे यही समझते हैं कि लोग हमारी हँसी उड़ा रहे हैं। और यही कारण है कि वे लोग सर्वसाधारण के सामने बहुत ही कम आते हैं। जब कभी सर्वसाधारण के सामने उन्हें कोई काम करना पड़ता है, या किसी ऐसे आदमी से बात करने का अवसर मिलता है जिससे वे अकारण ही डरते हों, तो उन्हें बहुत अधिक कष्ट होता है। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें हैं जिनसे ऐसे लोगों को कभी कभी बड़ी भारी [illegible]नता का सामना करना पड़ता है। वे सदा [illegible] चाहते हैं कि हमें किसी के सामने जाना ही [illegible] और या हम इस संसार से ही अलग हो जायँ।

इस प्रकार का संकोच दूर करने के कई [illegible] हैं। सबसे पहले माता पिता का यह कर्त्तव्य [illegible] चाहिये कि वे अपने बालकों को बाहरी आद[illegible] से स्वतंत्रतापूर्वक मिलने जुलने की शिक्षा दें, [illegible] इस प्रकार आरम्भ से ही उन्हें ऐसा अनुभव [illegible] जिसकी उन्हें आगे चलकर बहुत बड़ी आवश्य[illegible] पड़ती है। बाल्यावस्था में लड़कों को जब इस प्र[illegible] की शिक्षा मिल जायगी तो फिर बड़े होने पर [illegible] कभी कोई कठिनता नहीं होगी। साथ ही [illegible] पिता का यह भी कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे [illegible] बालकों को ऐसी दशा में रक्खें जिसमें समय [illegible] पर और लोगों का ध्यान उनकी ओर आ[illegible] होता रहे। (इस देश की अधिकांश स्त्रियाँ तो [illegible] लग जाने के भय से अपने बालकों को कि[illegible] सामने भी नहीं होने देतीं।) इसके अतिरिक्त [illegible] और लोगों के साथ बात चीत करने का ढं[illegible] सिखलाना चाहिये। उदाहरणार्थ—यदि [illegible] लड़के की जन्म-गाँठ हो तो उसे इस बात के [illegible] उत्साहित करना चाहिये कि वह उपस्थित स[illegible] का शिष्टतापूर्वक अभिवादन करे और उन्हें ध[illegible] दे। लड़कों को ऐसे खेलों में सम्मिलित [illegible] चाहिये जिनमें उन्हें एक दूसरे से भली भाँति [illegible] करने का अच्छा अवसर मिल सके। इसके अ[illegible] इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि [illegible] लड़कियाँ परस्पर एक दूसरे के साथ स्वतंत्रता[illegible] मिलें और बातें कर सकें। इससे उन्हें लो[illegible] हिलने मिलने का अभ्यास पड़ जायगा और [illegible] संकोच बहुत से अंशों में मिट जायगा। [illegible] संबंध में भारतवासियों के विचार बहुत [illegible] भिन्न हैं।)

इन सब बातों के अतिरिक्त संकोच दूर [illegible] के लिये कुछ शारीरिक उपाय भी आवश्य[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहले भोजन की बात लीजिये। साधारणतः दिन में तीन बार भोजन करना चाहिये और प्रत्येक भोजन में कम से कम पाँच पाँच घंटों का अंतर रखना चाहिये। भोजन धीरे धीरे और ख़ूब चबा कर करना चाहिये। किसी दशा में भी आवश्यकता से अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। भोजन का अधिकांश, रोटी, दूध और फल आदि ही हों। मांस और मछली आदि से सदैव बचना चाहिये। जिन लोगों में संकोच की मात्रा बहुत अधिक हो उन्हें कफ-कारक पदार्थ एक दम छोड़ देने चाहिएँ। यह एक प्राकृतिक नियम है कि भूख से भी लज्जा बहुत कुछ दूर हो जाती है। कभी कभी चटनी आदि चटपटी चीज़ों का भी उपयोग करना चाहिये। चाय या कहवा का कभी व्यवहार न करना चाहिये और अलकोहल मिश्रित पदार्थों से भी सदा दूर रहना चाहिए। किसी प्रकार के मादक द्रव्य का कदापि व्यवहार न करना चाहिये। साधारणतः मादक द्रव्यों का उपयोग दुर्बलता दूर करने के लिये किया जाता है; लेकिन उसका फल सदैव विपरीत होता है।

नित्य प्रति दो घण्टे तक नियमपूर्वक व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम चाहे किसी प्रकार का हो, सदा लाभदायक होता है। टहलना, दौड़ना, तैरना, क़वायद करना, टेनिस, फ़ुटबाल, क्रिकेट आदि खेलना भी लाभदायक हैं। वर्षा में या और कभी किसी प्रकार भीगना न चाहिये। जो लोग दिन भर परिश्रम करते हों उन्हें प्रातःकाल व्यायाम करना चाहिए और सन्ध्या समय टहलना चाहिए। यदि संभव हो तो सप्ताह में एक दिन, या छुट्टी के दिन किसी गाँव या देहात में घूम आना चाहिए। जो लोग आवश्यकता से अधिक लज्जाशील हों उनके लिये बाहर घूमना बहुत लाभदायक होता है। जाड़े के दिनों में भी सोने के कमरे की खिड़कियाँ तीन चार इंच खुली रहनी चाहिएँ। सोने के समय मुँह बराबर बंद रहना चाहिए और नाक के द्वारा साँस लेना चाहिये। संकीर्ण या ऐसे स्थान में जहाँ हवा बिलकुल न हो कभी न रहना चाहिए। दुर्गन्धि और बुरी हवा से भी सदा बचना चाहिए, क्योंकि इनसे शरीर तुरंत शिथिल हो जाता है और स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है। स्नान के समय शरीर को मोटे तौलिए या अंगोछे से ख़ूब रगड़ कर पोंछना चाहिये। सप्ताह में एक दिन गरम पानी से स्नान करना भी बहुत लाभदायक होता है। इस प्रकार शरीर का शोधन भली भाँति हो जाता है और मनुष्य की दुर्बलता बहुत से अंशों में कम हो जाती है जिससे संकोच छूट जाता है।

मानसिक दुर्बलता दूर करने का उपाय यह है कि मनुष्य सदा समाज के लोगों से मिलता जुलता रहे और अपनी योग्यता पर विश्वास रक्खे। पुस्तकें पढ़ने से भी मानसिक दुर्बलता दूर हो जाती है। वृद्धों और बड़ों की संगत में रहने से भी इस संबंध में बहुत लाभ होता है। वक्तृता देते समय जब वक्ता कुछ घबराने लगे तो उसे उचित है कि वह तुरंत किसी पास बैठे हुए वृद्ध की ओर मुँह करके अपना वक्तव्य सुनाने लगे। और इस प्रकार जब चित्त स्थिर हो जाय तब सर्वसाधारण की ओर देखना चाहिए। सबसे आवश्यक बात यह है कि मनुष्य स्वयं दृढ़ और स्थिर-चित्त रहे। एक बार जब मनुष्य का संकोच दूर हो जाता है तो फिर वह कभी उसका वशीभूत नहीं हो सकता।

यह समझना बड़ी भारी भूल है कि दुर्बल मनुष्य कभी कोई बड़ा या साहस का कार्य्य नहीं कर सकता। संसार के बहुत बड़े बड़े कार्य्य करनेवाले प्रायः दुर्बल ही हुए हैं; और जिन लोगों ने रणक्षेत्र में अपनी वीरता से ही विजय पाई है उनमें से अधिकांश मनुष्य ऐसे ही थे जो छोटी छोटी बातों से डर जाया करते थे। लार्ड नामक एक प्रसिद्ध योद्धा ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। पर साधारणतः वह पशुओं का बध होते नहीं देख सकते थे। बाल्यावस्था में वह अपने एक मित्र की उँगली कटते देख और दूसरी बेर युवावस्था में गली में दो मज़दूरों को लड़ते देख वह अचेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गए थे। एक फ़्रान्सीसी मार्शल अपने टेबुल पर अचानक नमक की एक डली गिर पड़ने के कारण मर गया था। एक और बड़े योद्धा के विषय में प्रसिद्ध है कि वह रणक्षेत्र में तो सदा सबसे आगे रहता था, पर बहुत सी स्त्रियों के सामने जाते ही वह संज्ञा-शून्य हो जाता था। यह बात भी बहुत प्रसिद्ध है कि जनरल ग्रांट को सदा इस बात का भय लगा रहता था कि कहीं उन्हें किसी सार्वजनिक सभा में कुछ बोलना न पड़े। लार्ड क्लाइव की अधीनता में, आरकट के युद्ध में लड़नेवाले सिपाहियों में से अधिकांश लंडन के जेलखानों के कैदी ही थे। पर अपने वीर सेनापति के उत्साह दिलाते ही उन सबों ने बड़ी योग्यतापूर्वक युद्ध किया था।

नेपोलियन ने कहा है—"समस्त युद्धों में एक ऐसा समय आता है जब कि बड़े बड़े वीर योद्धा भी रणभूमि छोड़ कर भागने की इच्छा करते हैं। इस दोष का कारण यह है कि उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं होता।" अनेक उदाहरण हैं जिनमें कि बड़ी बड़ी विजय प्राप्त करनेवाली पलटनें दूसरे अवसरों पर युद्ध आरंभ होते ही भाग खड़ी हुई हैं। अनेक अवसरों पर छोटे छोटे बालकों और कोमलांगी स्त्रियों ने भी बड़ी वीरता और साहस के काम किए हैं। लगातार विपत्तियों में पड़ते रहने से मनुष्य में एक स्वाभाविक साहस उत्पन्न हो जाता है। किसी विशेष अवसर पर दूसरों को कोई कार्य्य करते देखकर भी मनुष्य में साहस आ जाता है। जिस स्थान पर अपने कर्त्तव्य या प्रेम का ध्यान रहता है वहाँ मनुष्य में बहुत शीघ्र साहस आ जाता है। साधारणतः जो स्त्रियाँ एक चूहे को देखकर भय से चिल्ला उठती हैं वे ही स्त्रियाँ अपने बालकों को बचाने के लिये जलती आग में कूद पड़ती हैं और बड़े बड़े साहसी पुरुष पास ही खड़े उनका मुँह देखते रह जाते हैं। इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि दुर्बलता स्थायी नहीं होती। बल्कि एक विद्वान् का तो यहाँ तक कथन है कि अधिक साहस का कार्य्य प्रायः दुर्बल लोग ही कर सकते हैं। इसलिये दुर्बल मनुष्य संतुष्ट रह कर अपने आपको ऐसा वीर सम[झना] चाहिए जिसे अभी अपनी वीरता या साहस [का] परिचय देने का अवसर ही नहीं मिला। "व"

—:०:—

जम्बू-राजवंश।

(पूर्व प्रकाशित से आगे।)



डाखाँ नामक एक मुसलमान कि[सी] की अध्यक्षता में मानसरोवर [के] निवासियों ने बहुत उत्पात [का] आरंभ कर दिया था। यह [उत्पात] शांत करने के लिए राजा गुलाब[सिंह] के मंत्री जोरावरसिंह गहलोरिया अपने साथ सेना लेकर मानसरोवर गए और वहीं युद्ध में [मारे] गए। जब यह समाचार राजा गुलाबसिंह को [मिला] तो उन्होंने भी वहाँ पहुँच कर शत्रुओं को दमन [किया] और तदुपरांत वह स्वयं वहाँ कुछ दिन तक [रहे]। उसी अवसर पर जनरल पोलाक के साथ का[बुल] जाते समय सर हेनरी माण्टगोमरी और सर [जान] लारेन्स ने राजा गुलाबसिंह से भेंट की और [उनसे] कहा कि यदि आप अँगरेज़ी सेना के साथ पे[शावर] चलें और उसे खैबर घाटी के पार कर दें तो [अँग]रेज़ सरकार आपकी बहुत अनुगृहीत होगी [और इस] कार्य्य से सिखों और अँगरेज़ों की मित्रता [भी] दृढ़ हो सकती थी इसलिए महाराज शेरसिं[ह भी] इस प्रस्ताव के पक्ष में ही थे। तदनुसार गुला[बसिंह] अँगरेज़ी सेना के साथ पेशावर तक गए और [वहाँ] वह जनरल पोलाक तथा अन्य बड़े बड़े अधिका[रियों] से मिले। उसी अवसर पर सरदार बुधसिंह [ने] पहुँच कर अँगरेज़ी सेना का कुछ अपकार [करना] चाहा। जब यह बात गुलाबसिंह को मा[लूम हुई] तब उन्होंने सब हाल सर हेनरी लारेन्स से [कह] दिया। अँगरेज़ अधिकारियों ने आपस में [सलाह] करके गुलाबसिंह से कहा कि इस संबंध [में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा उचित समझें करें। इस पर गुलाबसिंह ने बुधसिंह के पक्षवाली सेना को कुछ पुरस्कार आदि देकर अपनी ओर मिला लिया और एक गुप्त सभा करके उन लोगों को भली भाँति समझा दिया कि अँगरेज़ों से शत्रुता करने में स्वयं सिक्खों की ही हानि होगी और उनके बहुत से आदमी व्यर्थ मारे जायँगे। इससे उत्तम यही है कि अँगरेज़ों के लिए खैबर की घाटी खुली छोड़ दी जाय। यदि अफ़ग़ानों की जीत हुई तो खालसा सेना को अँगरेज़ी सेना का बहुत सा सामान, जो इस ओर रह जायगा, हाथ आवेगा और यदि अँगरेज़ों की जीत हुई तो वह सदा खालसा सेना के अनुगृहीत बने रहेंगे। खालसा सेना और उसके अधिकारियों ने यह सम्मति स्वीकार कर ली और गुलाबसिंह उस सेना सहित अँगरेज़ों के साथ साथ जमरूद तक गए।

इधर लद्दाख़ का राजा विद्रोही हो गया और उसे दमन करने के लिए वज़ीर रतनू ने राजा गुलाबसिंह की ओर से अपनी सेना सहित उसपर आक्रमण कर दिया। लद्दाख़ के राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली और उसपर तीस हज़ार रुपए जुर्माना हुआ जिसमें से पीछे से पाँच हज़ार रुपए माफ़ कर दिए गए। उसी अवसर पर इस्कारदो के राजा अहमदशाह का पुत्र मुहम्मदशाह अपने पिता के विरुद्ध होकर खालसा सेना की शरण में आ गया था। जब लद्दाख़ के राजा को यह बात मालूम हुई तो उसने मुहम्मदशाह को कैद करके उसके पिता के पास भेज दिया। पिता ने अपने पुत्र मुहम्मदशाह को अनेक प्रकार के कष्ट देकर दंडित किया। जब राजा गुलाबसिंह को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने अपनी सेना को इस्कारदो के राजा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। गुलाबसिंह की सेना बढ़ती बढ़ती उस स्थान तक पहुँच गई जहाँ अँगरेज़ी और नैपाली राज्य की सीमा मिलती है। उस अवसर पर मि० कनिंघम,—जो आगे चलकर पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल हो गए थे—किसी सरकारी काम से वहाँ पहुँचे और गुलाबसिंह की सेना के सेनापति से मिले। उस समय पहाड़ों पर सरदी बहुत कड़ी पड़ती थी और रसद मिलने में भी बहुत कठिनता होती थी, इसलिए खालसा सेना को बहुत अधिक कष्ट उठाना पड़ा और अंत में विवश होकर वह लद्दाख़ लौट आई। यह बात सन् १८४१ की है। उस समय गुलाबसिंह पेशावर में थे और जनरल पोलाक की सेना को सकुशल खैबर घाटी से पार करने में सहायता दे रहे थे। दूसरे वर्ष सन् १८४२ में लद्दाख़ के राजा पर वज़ीर रतनू और दीवान हरिचंदने पुनः आक्रमण किया। इस बार लद्दाख़ के राजा ने संधि करके राजा गुलाबसिंह, चीन के सम्राट् और लासा के प्रधान लामा गुरु से सदा मित्रभाव रखने का संकल्प किया। इसके अतिरिक्त उसने आस पास के निवासियों को सदा शांत रखने और प्रतिवर्ष पुराने नियम के अनुसार शाल, ऊन और चाय आदि भेजने का भी वचन दिया। उस संधि में यह भी निश्चय हुआ था कि वह अपने राज्य में राजा गुलाबसिंह के विरोधियों और शत्रुओं को भी न रहने देगा और लद्दाख़ में आनेवाले व्यापारियों की सदा सब प्रकार से सहायता किया करेगा।

यद्यपि ध्यानसिंह की सहायता से महाराज शेरसिंह राज्यासन पर आरूढ़ हो चुके थे तथापि कई दुष्टों ने धीरे धीरे उन दोनों में द्वेष और विरोध उत्पन्न कर दिया। सरदार खुशहालसिंह के विचार भी महाराज की ओर से बदल गए और उन्हें संधानवालिए सरदारों पर भी यह संदेह हुआ कि वे लोग रानी चन्द्रकुँवर से मिल गए हैं। इसलिए सरदार अतरसिंह और अजीतसिंह सतलज पार करके अँगरेज़ी राज्य में चले आए; पर सरदार लहनासिंह वहाँ से भाग न सके और कैद कर लिए गए। यद्यपि महाराज ऊपर से सरदार ध्यानसिंह और राजा गुलाबसिंह से मित्रभाव रखते थे पर भीतर से उनके विचार बहुत बुरे हो गए थे, लोग कहते हैं कि वेण्टूरा साहब और सरदार लहनासिंह मजीठिया को महाराज साहब बहुत मानते थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज के विचारों से अभिज्ञ होकर इन्हों दोनों ने उन्हें यह सम्मति दी थी कि वे तीनों भाइयों को एक साथ ही गिरिफ़्तार करा लें। जब लद्दाख़ के झगड़े से छुट्टी पाकर गुलाबसिंह जम्बू पहुँचे तो महाराज शेरसिंह ने उन्हें बुलाने और आकर मिलने के लिए कई पत्र लिखे। गुलाबसिंह को यद्यपि महाराज के विचारों का कुछ परिचय अवश्य था, तो भी वे जाकर उनसे कांगड़ा—ज्वाला जी में मिले। यह भेंट बिलकुल मित्रभाव से हुई थी, इसलिए गुलाबसिंह महाराज के बहुतही समीप बैठे थे। राजा ध्यानसिंह को भी इस षड्यंत्र का पता लग चुका था इसलिए उन्होंने राजा सुचेतसिंह को लाहौर में ही रहने दिया, हीरासिंह को जसरौटा भेज दिया और वह स्वयं महाराज के साथ काँगड़ा गए। हत्या के लिए जो दिन निश्चित हुआ था, उस दिन संयोगवश वहाँ गुलाबसिंह उपस्थित नहीं थे और इसी लिए महाराज ने खाली ध्यानसिंह की हत्या करना उचित न समझा। इसके उपरांत शायद सरदार लहनासिंह मजीठिया ने महाराज को समझा दिया कि यदि ध्यानसिंह मरवा डाले जायँगे तो यहाँपर गुलाबसिंह और लाहौर में सुचेतसिंह बड़ा उपद्रव करेंगे और सम्भव है कि अपने भाई की हत्या का बदला लेने के लिए आपके राजकुमार प्रतापसिंह की आँखें भी निकलवा लें। अंत में यह निश्चय हुआ कि सब लोग मिलकर शिकार खेलने चलें और वहीं कुछ निश्चित आदमी ध्यानसिंह और गुलाबसिंह को गोलियों से मार डालें। लेकिन जिन लोगों को इन दोनों की हत्या का भार दिया गया था उनके प्रति ध्यानसिंह ने कई अवसरों पर अनेक उपकार किए थे, इसलिए उन लोगों ने इस षड्यंत्र की सूचना ध्यानसिंह को दे दी। इसपर ध्यानसिंह किसी आवश्यक कार्य्य का बहाना करके रुक गए और महाराज के साथ शिकार में न जाकर अपने ही खेमे में रह गए। महाराज ने वहाँ भी उनके प्राण लेने का प्रबंध किया पर उसमें उन्हें सफलता न हुई क्योंकि ध्यानसिंह ने पहले से ही अपनी रक्षा के लिए खेमे के चारों कड़ा पहरा बैठा दिया था। उसी अवसर सरदार ध्यानसिंह ने एक गीदड़ का पीछा उसे घायल किया था और उसकी घात में रहने के बहाने से वह रात भर जागा करते। इसके थोड़े ही दिनों के बाद रणवीरसिंह का वि करने के लिए वे जम्बू चले गए। इन्हीं रणवीर को गुलाबसिंह ने आगे चलकर दत्तक लिया

रणवीरसिंह का विवाह विजयसिंह की कन्या से हुआ था। विवाह के अवसर पर महा शेरसिंह की ओर से राजा ध्यानसिंह भी उप थे। विवाह के उपरान्त गुलाबसिंह ने ध्यानसिं जम्बू में रहने के लिए बहुत आग्रह किया पर उ नहीं माना और वे लाहौर चले गए। ला पहुँचने पर महाराज ने ऊपर से तो ध्यानसिं साथ बहुत अच्छा और मित्रतापूर्ण व्यवहार पर गुप्त रूप से उन्होंने अजीतसिंह को ध्यानसिं हत्या करने की आज्ञा दे रक्खी थी। अजीतसिं यह समाचार हीरासिंह से कहा और ध्यानसिं बदले स्वयं महाराज को मार डालने की प्रकट की, पर हीरासिंह ने उन्हें कुछ उ दिया। महाराज शेरसिंह को संधानवालिए सर पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं था इस उन्होंने लहनासिंह और अजीतसिंह को लाहौ निकट शाहबिलावल नामक स्थान में सेना की यद देखने के लिए निमंत्रण दिया और उन लो भी यह निमंत्रण प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार लिया। उसी अवसर पर अजीतसिंह ने महा शेरसिंह को एक दोनली बन्दूक दिखाने के बहा उनपर गोली चला दी और महाराज वहीं गि मर गए। लहनासिंह भी अपनी सेना सहित पा एक बाग में ठहरे हुए थे। जब इधर महाराज के के कारण सेना में हुल्लड़ हुआ और उ समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने उसी स्था राजकुमार प्रतापसिंह का बध कर दिया (राज को वह अपने साथ सेना की क़वायद दिखाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले गए थे।) प्रतापसिंह को बध करके लहनासिंह किले की ओर बढ़े। उसी अवसर पर राजा ध्यानसिंह, जिन्हें इन सब दुर्घटनाओं का कुछ भी पता न था, एक गाड़ी पर सवार होकर टहलने के लिए जा रहे थे। रास्ते में उन्हें अजीतसिंह के साथ बड़ी भारी भीड़ जाती हुई दिखाई दी। अजीतसिंह ने उन्हें सब समाचार सुनाकर अपने साथ किले की ओर चलने के लिए कहा। उस समय ध्यानसिंह के साथ केवल तीन चार आदमी थे, इसलिए विवश होकर वे अजीतसिंह के साथ चल पड़े और थोड़ी दूर आगे चल कर वे भी मारे गए। उसी अवसर पर लहनासिंह ने वहाँ पहुँच कर ध्यानसिंह की हत्या करने के कारण अजीतसिंह को बहुत सी खोटी खरी बातें सुनाईं और लाश को शाल में लपेट कर हवेली में पहुँचा देने और युद्ध के वास्ते तैयार होने के लिए कहा।

इन सब उपद्रवों के कारण लाहौर की प्रजा बहुत भयभीत हो गई। राजा सुचेतसिंह ने जब महाराज की हत्या का समाचार सुना और जब उन्हें मालूम हुआ कि राजा ध्यानसिंह का घोड़ा अस्तबल में खाली आया है तब उन्होंने सूबेदार ईश्वरीसिंह को सब बातों का पता लगाने के लिए किले में भेजा। ईश्वरीसिंह ने लौट कर सब बातें सुचेतसिंह से कह सुनाईं। सुचेतसिंह ने सब समाचार तुरंत हीरासिंह को कहला भेजा और केसरीसिंह को भी एक पत्र भेजकर उनसे प्रार्थना की कि वह सारी सेना को महाराज शेरसिंह और राजा ध्यानसिंह की हत्या का समाचार सुना दें। राजा हीरासिंह और राय केसरीसिंह सेना सहित आधी रात के समय किले में पहुँचे। दोनों पक्षों में युद्ध हुआ और अजीतसिंह और लहनासिंह मारे गए। राजा ध्यानसिंह की स्त्री अपने पति के शव के साथ सती हो गई। सुचेतसिंह ने रानी से यह भी कहा था कि यदि आप कुछ विलंब करें तो मैं आपके पति की हत्या का बदला ले लूंगा। पर पंडित जल्ला ने विलंब होना उचित न समझा और ४७ वर्ष और २६ दिन की अवस्था में रानी सती हो गई।

राजा सुचेतसिंह और हीरासिंह ने विद्रोहियों की अच्छी तरह खबर लेकर दलीपसिंह को राज्यासन पर आरूढ़ कराया। हीरासिंह प्रधान अमात्य बने। पर यह प्रबन्ध बहुत दिनों तक न चल सका और शीघ्र ही चाचा और भतीजे में परस्पर विरोध हो गया। विरोध का मुख्य कारण यह था कि राजा सुचेतसिंह ने सरकार से जसरौटा के इलाके का ठीका लिया था और इससे पहिले ही हीरासिंह को जसरौटा जागीर की भाँति मिल चुका था। जब तक राजा ध्यानसिंह जीवित रहे तब तक उन्होंने इन लोगों में विरोध न होने दिया, पर उनकी मृत्यु के उपरान्त दोनों में प्रकट रूप से वैर ठन गया। बात यह थी कि राजा हीरासिंह ने अधिकांश राजकार्य्य पण्डित जल्ला को सौंप रक्खे थे; और राजा सुचेतसिंह चाहते थे कि राजा केसरीसिंह की जागीर बढ़ा दी जाय। पर पण्डित जल्ला ने उनकी इच्छा पूर्ण करने में आनाकानी की। इसके अतिरिक्त पण्डित जल्ला ने राजा ध्यानसिंह की हत्या में अजीतसिंह को सहायता देनेवाले भाई गुरुमुखसिंह और बेलीराम मिश्र को पकड़ कर मरवा डाला था; इस कारण राजा सुचेतसिंह उनसे और भी अप्रसन्न हो गए थे। अब उन्होंने अवसर देख कर सरदार लहनासिंह के साथ का अपना सारा बैर भुला दिया और जाकर उनकी ओर सम्मिलित हो गए। इस कारण हीरासिंह का असंतोष और भी बढ़ गया।

जब ये समाचार गुलाबसिंह को मिले तब वे जम्बू से चल कर लाहौर पहुँचे। जब वे मार्ग में शाहदरा में ही ठहरे हुए थे, तभी राजा हीरासिंह, राजा सुचेतसिंह, तथा नगर के अन्य प्रतिष्ठित सरदार उनसे भेंट करने के लिए वहाँ पहुँचे। लाहौर पहुँच कर गुलाबसिंह ने हीरासिंह को दबाना और सुचेतसिंह को राज्याधिकार देना चाहा पर सब सरदारों ने एक मत हो कर यह बात अस्वीकार कर दी। लाहौर में रह कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलाबसिंह ने वहाँकी राजनैतिक अवस्था का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया और वे वह समझ गए कि शीघ्र ही यहाँ बड़ा भारी उत्पात मचेगा। इसलिये उन्होंने वहाँसे टल जाना ही अधिक उत्तम समझा। वे राजा सुचेतसिंह को अपने साथ लेकर जम्बू चले गये। गुलाबसिंह को न तो कोई सन्तान थी और न भविष्य में होने की सम्भावना ही थी, इसलिये इस बार जम्बू पहुँचने के कुछ ही दिन बाद उन्होंने रणवीरसिंह को दत्तक ले लिया। उधर राजा हीरासिंह ने बालक महाराज दलीपसिंह को दबा रक्खा और पण्डित जल्ला को अपना प्रधान मंत्री बना लिया। पण्डित जल्ला के अन्यायों के कारण बहुत से लोग उनसे असंतुष्ट हो गए थे, और इसी कारण उपद्रव की संभावना देखकर राज्य के दो उच्च कर्मचारी अपने पद से अलग हो गए। ये कर्मचारी फ़क़ीर अजीज-उद्दीन और सरदार लहना सिंह थे। फ़क़ीर अजीज-उद्दीन ने तो संसार से विरक्त हो जाने के कारण लोगों से मिलना जुलना छोड़ दिया था और सरदार लहनासिंह अपना पद छोड़ कर काशी आ रहे थे।

गुलाबसिंह जम्बू तो चले गए, पर अपनी सेना को दीवान हरीचन्द्र की अधीनता में शाहदरे में ही छोड़ गए। रणजीतसिंह के पुत्र पिशौरासिंह ने स्यालकोट के किले पर अपना अधिकार जमाकर कुछ उपद्रव करने का विचार किया था, इसलिए गुलाबसिंह ने आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया। उधर राजा सुचेतसिंह राज्याधिकार प्राप्त करने के विचार से खालसा सेना के अधिकारियों से पत्र व्यवहार कर रहे थे। लाहौर में बैठे बैठे दीवान जवाहिरसिंह इस कार्य्य में उनकी सहायता कर रहे थे। अंत में सब बातें निश्चित हो गईं और खालसा सेना के अधिकारियों ने गुप्त रूप से राजा सुचेतसिंह का राजधानी में आह्वान किया। तदनुसार राजा सुचेतसिंह अपने परम मित्र राय केसरीसिंह तथा अन्य सरदारों के साथ लाहौर जाने के लिए तैयार हो गए। गुलाबसिंह ने उनके इन विचारों का बहुत विरोध किया, उन्हें अनेक प्रकार से समझाया और अपनी पगड़ी उनके सामने रख कर उन्हें इस दु[illegible] हस से रोकना चाहा पर कुछ भी फल [illegible] हुआ। सुचेतसिंह एक घोड़े पर सवार हो शिकार के बहाने जम्बू से निकले। उनके चले [illegible] की सूचना पाकर मियाँ रणवीरसिंह और दी[illegible] हरीचन्द भी उनके पीछे गए। मार्ग में उन लोगों [illegible] सुचेतसिंह को बहुत कुछ कह सुनकर लौट [illegible] की सम्मति दी, पर उसका भी कोई फल न हु[illegible] सुचेतसिंह तीन घण्टे में साँबा पहुँचे। वहाँ जा[illegible] वह अपने रनवास से विदा हुए, रनवास से [illegible] निकलते ही उन्हें जवाहिरसिंह का एक पत्र मि[illegible] जिसमें लिखा था कि सारी खालसा सेना को अ[illegible] और मिलाने में उन्हें पूरी सफलता हो गई है। [illegible] पत्र पाकर वह इतने आपे से बाहर हो गए [illegible] अपने तीन चार हज़ार आदमियों को वहीं [illegible] कर और केवल ४५ सवारों को अपने साथ ले[illegible] लाहौर की ओर चल पड़े। इन ४५ सवारों [illegible] कुछ तो हथियारबंद थे और कुछ खाली हाथ [illegible] जब वह लाहौर के समीप पहुँचे तब उन्हें मा[illegible] हुआ कि खालसा सेना रुपये माँगती है। यदि [illegible] रुपये न दिये जायँगे तो वह उनपर आक्रमण कर[illegible] इसलिए उनको वहीं से लौट जाना चाहिए। [illegible] पर राजा सुचेतसिंह ने उत्तर दिया कि रणक्षेत्र [illegible] भागना वीरों का काम नहीं है। राय केसरीसि[illegible] ने सम्मति दी कि यहाँसे लौट कर फ़ीरोज़पुर च[illegible] और युद्ध के लिए तैयार होना अथवा लाहौर [illegible] शालामार बाग में अपनी पिछड़ी हुई सेना [illegible] आसरे ठहरना ही अधिक उत्तम होगा। पर सु[illegible] सिंह ने यह बात अस्वीकार की और डेरा [illegible] नामक स्थान पर ठहर गये। वहीं जवाहिरसि[illegible] उनसे मिलकर अनेक विषयों पर बातें कीं। [illegible] ही दिन प्रातःकाल खालसा सेना ने, जिसमें [illegible] हज़ार पैदल और बहुत से सवार थे, आकर [illegible] ओर से वह स्थान घेर लिया जहाँ राजा सुचेतसिं[illegible] ठहरे हुए थे। यह समाचार पाकर राजा सुचेतसिं[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम वस्त्र और आभूषण आदि पहन कर मृत्यु के लिये तैयार हो गये। उसी अवसर पर एक माली बहुत से बढ़िया फूल एक टोकरी में रखकर उनके सामने लाया, जिनमें से एक फूल उन्होंने स्वयं ले लिया, एक केसरीसिंह को दे दिया और एक दीवान भीमसिंह को दे दिया। थोड़ी ही देर बाद खालसा सेना ने गोलियाँ बरसानी आरंभ कर दीं और जिस कमरे में राजा सुचेतसिंह अपने साथियों सहित बैठे थे उसकी छत टूट कर गिर पड़ी। उसी समय एक मनुष्य ने उनका घोड़ा लाकर सामने खड़ा कर दिया पर उन्होंने इस प्रकार भागने की अपेक्षा उसी स्थान पर युद्ध करके प्राण देना अधिक उत्तम समझा। केसरीसिंह को किसी मनुष्य ने तलवार से काट डाला दीवान भीमसेन भी एक गोली लगने के कारण गिर कर मर गये, निहालसिंह अपने प्राण लेकर भाग गये और राजा सुचेतसिंह युद्ध में बहुत से शत्रुओं को मार कर अंत में वीर-गति को प्राप्त हुए। पण्डित जल्ला सदा सुचेतसिंह से अनुचित व्यवहार करते रहे थे; और उनके मर जाने के उपरांत भी उन्होंने हीरासिंह को शोक मनाने तथा उस संबंध में और क्रियाएँ करने से रोका। यह भी कहा जाता है कि जब युद्ध प्रायः शांत हो चला और करनल इलाहीबख़्श ने आज्ञा माँगी तो हीरासिंह तो चुप हो रहे पर करनल दीवान अयोध्याप्रसाद, साधूसिंह तथा और लोगों के मना करते रहने पर भी पण्डित जल्ला ने बराबर बन्दूकें दागते रहने की आज्ञा दी थी।

जब गुलाबसिंह को इन सब बातों की सूचना मिली तब वे बहुत दुःखी हुए और राजा सुचेतसिंह की मृत्यु पर उन्होंने बहुत शोक प्रकट किया। मृत्यु के समय राजा सुचेतसिंह की अवस्था ४३ वर्ष की थी। पण्डित जल्ला ने हीरासिंह को सम्मति दी थी कि वह राजा सुचेतसिंह की जागीरें ज़ब्त कर लें। पर सुचेतसिंह की उत्तराधिकारिणी रानियाँ सती होने के समय अपनी सारी सम्पत्ति गुलाब-सिंह को दे गई थीं। इसका कारण यह था कि राजा सुचेतसिंह सदा गुलाबसिंह को अपने पुत्र के समान मानते और उन्हींको अपना उत्तराधि-कारी बनाना चाहते थे। गुलाबसिंह ने देखा कि आगे चल कर इस सम्पत्ति के संबंध में झगड़ा खड़ा होगा, इसलिए उन्होंने पहले से ही उसे तै करने के लिए लाहौर भेजा और दरबार से साँबा, सुचेतगढ़ आदि इलाके, जो स्वर्गीय राजा साहब ने ठीके पर लिये हुए थे, माँगे। उन भेजे हुए दो आदमियों में से एक पं० चरणदास भी थे जो पण्डित जल्ला के बड़े भाई थे। पण्डित चरणदास ने इस बात की बहुत चेष्टा की कि गुलाबसिंह के प्रस्ताव से पण्डित जल्ला सहमत हो जायँ, पर उसका कुछ भी फल न हुआ। राजा हीरासिंह सब प्रबंध पण्डित जल्ला को सौंप चुके थे, और इस संबंध में किसी की कुछ भी न सुनते थे। अन्यान्य सरदार भी पं० चरणदास के पक्ष में थे, पर पण्डित जल्ला के भय से वे लोग भी कुछ बोल न सकते थे। इसलिये चरणदास अपने साथी के साथ बिना किसी प्रकार की सफ-लता प्राप्त किए लौट आए। कुछ समय के उपरांत राजा हीरासिंह ने राजा दीनानाथ, भाई रामसिंह और इमाम-उद्दीन को यह झगड़ा तै करने के लिये गुलाबसिंह के पास भेजा। तीनों आदमी जाकर राजा गुलाबसिंह से मिले। बात चीत करते करते राजा दीनानाथ ने पिता शाहजहान और पुत्र औरंग-ज़ेब के परस्पर व्यवहारों का ज़िक्र किया और कहा कि राजा हीरासिंह आपके पिता के तुल्य हैं। इस पर राजा गुलाबसिंह ने उत्तर दिया कि उपस्थित विषय की शाहजहान की बातों से कोई समता नहीं है। और राजा सुचेतसिंह के मुक़ाबले में राजा हीरासिंह को सांसारिक व्यवहारों का कुछ भी अनुभव नहीं है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि यदि राजा हीरासिंह मुझपर आक्रमण करेंगे तो मैं अपने राज्य की रक्षा के लिये तलवार से उनका मुक़ाबला भी अवश्य करूँगा। इसपर हीरासिंह के तीनों दूत जम्बू से लाहौर लौट आए। गुलाबसिंह को गुजरात, जलालाबाद, पिंडदादनखाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि परगनों का ठीका मिला हुआ था और वह प्रांत उन्हींके अधिकारियों के अधीन थे। इन प्रांतों तथा उन स्थानों को, जो गुलाबसिंह की सम्पत्ति थे और पंजाब की सीमा के अन्दर थे, ज़ब्त करने और जम्बू प्रांत लूट लेने के अभिप्राय से राजा हीरासिंह ने बहुत सी पलटनें भेजीं जो एमनाबाद में जाकर ठहरीं। गुलाबसिंह ने भी बहुत से राजपूतों को एकत्र किया और घोषणा कर दी कि जो लोग चाहें प्रसन्नतापूर्वक सेना में भर्ती हो सकते हैं। इस प्रकार उनके सैनिकों की संख्या बहुत बढ़ गई; इसके अतिरिक्त लाहौर से भी बहुत से राजपूत आकर उनकी सेना में मिल गए। रणवीरसिंह और दीवान हरीचन्द इस सेना के सेनापति बनाए गए और सेना ने जम्बू नगर के निकट छावनी डाली। पर संयोगवश युद्ध होने की नौबत न आई। राजा जवाहिरसिंह ने परामर्श करके हीरासिंह को इस बात पर राजी कर लिया कि वह साँबा, सुचेतगढ़ और सुचेतसिंह की आधी सम्पत्ति स्वयं ले लें और शेष आधी सम्पत्ति गुलाबसिंह को दे दें। इसपर गुलाबसिंह ने रणधीरसिंह* नामक एक सुयोग्य युवक को लाहौर भेजा और उसी के द्वारा गुलाबसिंह और धीरसिंह में सन्धि हो गई।

अंत में पण्डित जल्ला को भी अपने अनुचित कृत्यों का फल मिलने का समय आ गया। रानी चन्दा बीबी के भाई सरदार जवाहिरसिंह पर पण्डित जल्ला ने पहरा रक्खा था। इसलिये बीबी चन्दाँ यह चाहती थीं कि यदि सम्भव हो तो पण्डित जल्ला का उपार्जित सारा वैभव खालसा सेना के अधिकारी और सैनिक लूट लें। इसलिये रानी, दलीपसिंह और जवाहिरसिंह तीनों मिलकर खालसा सेना के अधिकारियों के पास गए और उनसे पण्डित जल्ला के विनाश के प्रार्थी हुए। खालसा सेना के अधिकारियों ने उन लोगों की यह प्रार्थना स्वीका[र] कर ली और राजा हीरासिंह से कहा कि [आ]प पण्डित जल्ला को हम लोगों के सपुर्द कर दें। हीरासिंह ने यह बात स्वीकार न की और बहुत लोगों के मना करने पर भी अकेले एक घोड़े [पर] सवार होकर लाहौर से निकल जाना चाहा। हीरा[सिंह], रणधीरसिंह और पण्डित जल्ला थोड़े [से] आदमियों को साथ लेकर लाहौर से निकल भागे। खालसा सेना ने भी उनका पीछा किया और [मार्ग] में लड़ भिड़ कर उन तीनों और उनके साथियों [को] मार ही डाला। पण्डित जल्ला का कटा हुआ सि[र] लेकर खालसा सेना लाहौर लौटी। यह घट[ना] सन् १८४४ के जाड़े की है। जब गुलाबसिंह [को] इस दुर्घटना का पता लगा और लाहौर से रणधी[र]सिंह का कटा हुआ सिर लेकर बघेलसिंह उ[नके] पास पहुँचा तो वह बहुत दुःखी हुए। इससे [पह]ले ही रणधीर की माता मियाँ उद्यमसिंह की मृत्यु [के] कारण बहुत दुःखी थीं, इसलिये उन्होंने रणधीर [की] मृत्यु का समाचार भी उनतक न पहुँचाया।

उस समय गुलाबसिंह को यह भी सूचना मि[ली] कि मृत्यु से पूर्व हीरासिंह ने जसरौटा आदि प्रां[तों] को अपने अधीन करने के लिये श्यामसिंह [और] लालसिंह को भेजा था। उसी अवसर पर बीबी चन्दाँ और जवाहिरसिंह के भेजे हुये लाला रत्न[चन्द] और बाबा मियाँसिंह भी लाहौर से उनके पा[स] पहुँचे। उन लोगों ने आकर उन्हें राजा हीरासिं[ह] और पण्डित जल्ला के उन अन्यायों का स्म[रण] दिलाया जो स्वयं उन्हें और राजा सुचेतसिंह [को] सहने पड़े थे। रणधीरसिंह की हत्या के लिये उन लोगों ने हीरासिंह और जल्ला को ही दो[षी] ठहराया था। बीबी चन्दाँ चाहती थीं कि रा[जा] हीरासिंह की सारी सम्पत्ति और उन्हें मिली सुचेतसिंह की आधी सम्पत्ति मुझे मिल जाय [और] राजा रणजीतसिंह से मिली हुई जागीरें पहले [की] भाँति गुलाबसिंह स्वयं अपने पास रक्खें। गुला[ब]सिंह इस प्रस्ताव से सहमत न हुए और उन्होंने

* इस घटना का उल्लेख ज़फ़रनामा में भी है; पर उसमें लिखा है कि इस व्यक्ति का नाम सोहन था और वह गुलाबसिंह का पुत्र था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना को रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लेना चाहा जिसे हीरासिंह ने चंबा पर अधिकार करने के लिये जसरौटा में ठहरा रक्खा था। रणधीरसिंह उस समय राजा सुचेतसिंह के स्थानापन्न होकर रामनगर में ठहरे हुए थे। गुलाबसिंह ने उन्हें तथा अन्य कई बड़े बड़े सरदारों को अपनी सेना सुसज्जित करने की आज्ञा दी। जब हीरासिंह की मृत्यु का समाचार फैला तब चोरों और उपद्रव होने लगे। खालसा सेना के कुछ सैनिकों ने गुलाबसिंह के राज्य में लूट मार आरंभ कर दी और जम्बू नगर घेर लिया; पर शीघ्र ही वे लोग वहाँसे हटा दिए गए। उन्हें लौटाने के लिये गुलाबसिंह ने प्रत्येक सैनिक को पाँच पाँच रुपए दिए थे। इसके अतिरिक्त उनके सेनापति मेवासिंह को उन्होंने पचीस हज़ार रुपए नक़द और एक घोड़ा मै जीन के दिया था। जब यह सेना लाहौर के निकट पहुँची तब सरदार जवाहिरसिंह और बीबी साहिबा ने कई दूत भेजकर सेना के इस कार्य्य से तथा गुलाबसिंह को अपने साथ ले आने के कारण बहुत असंतोष प्रकट किया। शाहदरा पहुँचते पहुँचते खालसा सेना में परस्पर विरोध हो गया। उसका एक अंश तो गुलाबसिंह के साथ मिल गया और दूसरा अंश उनसे बिलकुल अलग हो गया। जब गुलाबसिंह ने हाथी पर सवार होकर नगर में प्रवेश करना चाहा तब उन्हें कई सरदारों का एक पत्र मिला जिसमें यह आज्ञा थी कि गुलाबसिंह कड़े पहरे में नगर में प्रवेश करें और अपने साथ किसी को न लावें। पर दीवान निहालचन्द ने सारी सेना के सामने उस पत्र का आशय छिपा कर अपनी ओर से पढ़ सुनाया—"बीबी साहबा और महाराज दलीपसिंह की आज्ञा है कि सारी सेना बड़ी प्रतिष्ठा से महाराज गुलाबसिंह को नगर में लावे।"

(शेष आगे।)

—:०:—

मुद्रण-कला

(लेखक—श्रीयुत सांवल जी नागर।)



द्यपि वर्तमान प्रचलित छापे के अक्षरों का आविष्कार युरोप ही में हुआ है तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आरम्भ में यह विद्या चीन-देश-निवासियों को मालूम थी। अँग्रेज़ी भाषा के प्रसिद्ध विश्वकोष 'इन्साइक्लोपीडिया' के देखने से विदित होता है कि चीन देश में इस कला का प्रथम आविष्कार छठवीं शताब्दी में हुआ था। मिस्टर जुलियन के मतानुसार पहले पहल महीन लसदार मिट्टी की लेई समथल कर उसपर अक्षरों के आकार खोदे जाते थे और फिर वही मिट्टी का समथल तख्ता गरम करके सुखाया जाता था। इसके पश्चात् एक लोहे की चद्दर में लेई लगाकर, (जो राल, मोम और चूने की बनी होती थी) उसपर ये मिट्टी के अक्षर जमाए जाते थे और पुनः सुखाकर किसी प्रकार कार्य्य में लाए जाते थे। एक बार कार्य में लाए हुए अक्षर पुनः काम न दे सकते थे। *

पाठकों को यह देख बड़ा आश्चर्य होगा कि भारतवर्ष में भी आज से हज़ार वर्ष पूर्व छापने की विद्या का प्रचार नहीं तो ज्ञान तो अवश्य था।

* Such as had been the course of literature up to this time, so it continued until the close of the 6th century, when the art of printing, which became known in Europe nearly 900 years later, was invented in China....................It was during this last epoch that a further improvement was made in the art by the introduction of movable types, by a blacksmith named Pe Ching. This inventor, writes Mr. Julien, used to take a paste of fine and glutinous clay, and make it a regular plate, of the thickness of a piece of money, on which he engraved the characters. For each character he made a type, which he hardened at the fire. He then placed an iron plate on the table, and covered it with a cement composed of resin, wax and lime.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय बा० राधाकृष्णदास अपने "हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों के इतिहास" में उपर्युक्त विषय पर लिखते हैं—"यद्यपि छापने की विद्या का ठीक सिलसिलेवार पता युरोप ही से लगता है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसका बीज भारतवर्ष में बहुत काल पूर्व से था। अँग्रेज़ों के प्रथम गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंगज़ के समय में काशी में एक मुद्रायंत्र गड़ा हुआ मिला था जो कि अनुमान किया जाता है कि एक हज़ार वर्ष से कम का न था। परन्तु मेरा अनुमान है कि या तो यह वस्तु जो काशी में मिली थी मुद्रायंत्र ही न थी बल्कि और कोई वस्तु थी, या यह यंत्र उन चीनी यात्रियों का था जो काशी जी के दर्शन करने, संस्कृत पढ़ने, ग्रन्थों की नकल करने एवं बुद्धदेव की प्राचीन भूमि सारनाथ और तत्सम्बधी प्राचीन बातों को जानने के लिये आते थे। परन्तु ऐसे अक्षरों तथा यंत्रों का आविष्कार जैसे वर्तमान समय में हैं, युरोप में हुआ है। भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र जी अपनी 'नाटक' नामक पुस्तक में उपर्युक्त विषय पर लिखते हैं कि यद्यपि छापे की विद्या बहुत दिनों से भारतवर्ष में प्रचलित है इसमें कुछ सन्देह नहीं, किन्तु आज कल जैसी इसकी उन्नति है और इससे पत्र और पुस्तकें आदि छप २ कर प्रकाशित होती हैं, यह भी कभी यहाँ था कि नहीं सो कुछ निश्चय नहीं है। श्रीकृष्ण के समय में जब राजा शाल्व ने द्वारावती पुरी पर आक्रमण किया उस समय वहाँ यह बन्दोबस्त किया था कि "नच ऽमुद्रोऽभिनिर्याति नैवान्तः प्रविशेदपि" (महाभारत वनपर्व) अर्थात् बिना राजकीय नाम की मोहर छाप के कोई नगर से निकल नहीं सके और कोई भीतर भी न आवे। यहाँ स्पष्ट ही देख लीजिए कि छापे की मुद्रा से एक जगह के अक्षर दूसरी जगह उतारे जाते थे। मुद्रा राक्षस नाटक में भी, जो विशाखदत्त का बनाया राक्षस नामाङ्कित मुद्रा का वर्णन है। इस प्रकार यद्यपि मुद्रण-विधि का मूल तो आर्य्यशास्त्रों में पाया जा[ता] है, किन्तु इसकी उन्नति करके देशान्तरीय लोगों ने जैसा इससे लाभ उठाया है वैसा भारतीय आ[र्य] लोगों ने नहीं उठाया। अतएव यह मुद्रण वि[धि] देशान्तर ही से चली और विदेशी लोग ही इस[के] आदि आचार्य हुए, यह बात हमको भी स्पष्ट कह[नी] पड़ती है।"

यद्यपि छापेका यंत्र बनाने के निमित्त अनेक लो[ग] यश के भागी हो सकते हैं; किन्तु वास्तव में इङ्गलैं[ड] देश के हार्लेम नगर में यह यंत्र पहले ही पह[ल] निर्मित हुआ, यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। उक्त नगर के शासनकर्त्ता लारेन्स कोस्टर ने, स[न्] १४४८ में इसका निर्माण किया और आद्यप्रादुर्भा[व] कर्त्ता के निमित्त, सबसे प्रथम वही सम्मानन[ीय] हुआ। वह एक दिन, अपने समीपस्थ किसी बगी[चे] में जाके एक वृक्ष की गीली छाल काट कर उस[में] अपने नाम के अक्षर बना बना कर एक क्रीड़ा[-सी] कर रहा था, वे ही अक्षर काट काट कर जब उस[ने] एक कागज़ पर रख दिए तब उसी समय ए[क] वायु का झोंक आया और उन अक्षरों की, जो उस वृक्ष के रस से गीले हो रहे थे, समस्त आकृ[ति] वायुवेग से हठात् उस कागज़ पर उभड़ आ[ई]। साहब ने जब उक्त घटना देखी तब अपनी विवेक[बुद्धि] द्वारा वह और भी अनेक प्रकार की परीक्षाएँ क[रने] लगा; फिर उसने काठ के अक्षर बनाकर एक प्र[कार] के सघन और द्रव पदार्थ में उनको डुबा के छाप[ा,] इससे और भी उत्तम फल देख कर, पीछे उस[ने] शीशा एवं शीशा और राँगा मिली हुई धातु[के] अक्षर बनाकर उन्हें छापने के लिये एक स्वतंत्र [यंत्र] निर्माण किया। इस प्रकार तब से अब तक [यह] उत्तम मुद्रण-विद्या की वृद्धि होती ही चली आ[ई]।

* When he wanted to print, he took an iron frame divided by perpendicular threads of the same metal, and placing it on the iron plate, ranged his types in it. The plate was then held near the fire, and when the cement was sufficiently melted, a wooden board was pressed tightly upon it, so as to render the surface of the type perfectly even.

Encyclopœdia Britannica. Vol. V. Page 662.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उक्त लारेन्स साहब के पास उसका एक नौकर "शेहन् फ़स्तम्" नामक रहता था । उसने गुप्त भाव से अपने स्वामी की विद्या चुराई और वहाँसे आकर "मेण्डस" नामक नगर में उक्त मुद्रण विद्या का प्रकाश किया । अतएव उस देश में उस नवीन विद्या द्वारा वह विद्वान् और मायावी समझा जाने लगा ।

भारतवर्षीय उन्नति के समय तथा यूनान और रोमदेशीय लोगों की उन्नति के समय में भी केवल जो धनी और बड़े आदमी होते थे अथवा अधिक परिश्रम करते थे, वे ही हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा विद्या उपार्जन कर सकते थे, किन्तु आज छापे के द्वारा विविध विद्या विभूषित पुस्तकें, सर्वसाधारण को सहज ही में प्राप्त हो सकती हैं, इससे मनुष्य-समाज में नवीन युग सा आविर्भूत हुआ दिखाई देता है । इस प्रकार छापेखाने से जो लाभ हम लोगों को हुआ है वह अवर्णनीय है । *

—:०:—

श्रीयुत रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी एम. ए.

(लेखिका—श्रीमती वंग-महिला ।)



ज से कोई दो सौ वर्ष पहले वंधन (वामदेव) गोत्रज जुझौतिया वंशोद्भव पं ०त हृदयराम त्रिवेदी इस पश्चिम देश से मुर्शिदाबाद के ज़िले के टेया नामक ग्राम में जा बसे थे । उनके प्रपौत्र बलभद्र त्रिवेदी जेमो ग्राम के राज-परिवार में विवाह संबंध कर के वहीं रहने लगे । बलभद्र त्रिवेदी के दो पुत्र हुए, कृष्णसुन्दर और व्रजसुन्दर । ये दोनों भाई बड़े ही धार्म्मिक, सुशील और सर्वलोकप्रिय थे । व्रजसुन्दर महाशय अति विज्ञ पौराणिक थे । उन्होंने वङ्ग भाषा में "माधवसुलोचना" नामक नाटक और "स्वर्णसिंदूरसिंह" नामक प्रहसन की रचना की थी । कृष्णसुन्दर महाशय के दो पुत्र हुए । गोविन्दसुन्दर और उपेंद्रसुन्दर । गोविन्दसुन्दर महाशय एक प्रतिभाशाली पुरुष थे । वे अपने देशानुराग और चरित्र बल के कारण अपने समाज के शिरमौर समझे जाते थे; उपेंद्रसुन्दर महाशय दयार्द्र और कोमल स्वभाव के पुरुष थे । उन्होंने निज उदारचरित्र के द्वारा सब को अपना अनुरागी और पक्षपाती बना लिया था । परोपकार तो मानो उनके जीवन का एक मात्र व्रत था । अंग्रेज़ी और संस्कृत भाषा के वे अच्छे पंडित थे । उन्होंने शेक्सपियर के "पेरिक्लिस" नामक नाटक और भारतवर्ष के इतिहास का संस्कृत भाषा में पद्यानुवाद किया था । बाबू रामेंद्रसुन्दर त्रिवेदी के पूर्व पुरुषों के संक्षिप्त परिचय से आप लोग यह बात भली भाँति जान गए होंगे कि चरित्र-नायक महाशय के सभी पूर्व पुरुष विद्या, बुद्धि, प्रतिभा, स्वदेशानुराग, और उदारता के हेतु चिरकाल से प्रसिद्धि और सुख्याति-प्राप्त थे । अस्तु, ऐसे उच्च गुणसम्पन्न गृह में माननीय रामेंद्रसुन्दर त्रिवेदी ऐसे विद्वान् और प्रतिभाशाली महानुभाव का आविर्भाव हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ?

गोविन्दसुन्दर महाशय के भी दो पुत्र हुए । प्रथम हमारे चरित्र-नायक रामेंद्रसुन्दर और दूसरे दुर्गादास (वर्त्तमान) हैं । रामेन्द्रसुन्दर १८६४ ई० में उत्पन्न हुए थे । अर्थात् इस समय उक्त महाशय की अवस्था ५० वर्ष की है ।

उक्त त्रिवेदी महाशय ने एक छोटे से प्रबन्ध में अपना जो कुछ आत्म-परिचय दिया है उसीको लेकर मैं अपने शब्दों में लिखती हूँ जिससे भली भाँति प्रगट हो जायगा कि उक्त माननीय सज्जन किस गौरव, क्षमता और योग्यता के पुरुष हैं ।

* पत्रिका के गतांक में मैंने "गुजराती समाचार-पत्रों का इतिहास" शीर्षक एक लेख लिखा था । उसमें मैंने मुद्रण-कला-सम्बन्धिनी अनेक बातें लिखी थीं । उसीसे सम्बन्ध रखनेवाली उपर्युक्त बातें मुझे पीछे से मालूम हुईं जो यहाँ दी जाती हैं ।

सांवल जी नागर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये छः वर्ष की अवस्था में अपने गाँव ही के मिडिल स्कूल में भर्ती हुए थे। इनके पूज्य पिता गोविन्द-सुन्दर महाशय बारबार यही कहा करते—"वार्षिक परीक्षा में सब से प्रथम स्थान प्राप्त करना तुम्हारे लिए कोई गौरव की बात न होगी। पर साथ ही जालसाजी करके उक्त स्थान पाने की चेष्टा करना भी कम 'लज्जा' की बात न होगी।" उसी समय इनके हृदय में स्वधर्मानुराग और स्वदेश भक्ति का भी बीज अङ्कुरित हुआ। विज्ञानानुराग का उत्पन्न होना भी उसी अवस्था की पितृदत्त शिक्षा का फल है। इनके पूज्य पिता ज्योतिष और गणितशास्त्र में असामान्य अधिकार रखते थे। इससे बाल्यावस्था ही में इन्होंने भी उक्त शास्त्रों में अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली। पाठशाला की वार्षिक परीक्षा में प्रतिवर्ष प्रथम पुरस्कार इन्हींको प्राप्त होता रहा। बँगला भाषा की मिडिल परीक्षा में ज़िले भर में प्रथम स्थान और वृत्ति इन्हींको प्राप्त हुई। इसी समय इन्हें वंग भाषा के पुस्तकावलोकन का भी अनुराग उत्पन्न हुआ था। इसके अनंतर इन्हों ने कांदी गाँव के अँग्रेज़ी स्कूल में नाम लिखाया, पहले वर्ष की परीक्षा में दूसरा नंबर पाने से इनके पिता को कुछ खेद हुआ था, परंतु भविष्य में पितृभक्त होनहार पुत्र ने पुनः ऐसा अवसर न आने दिया कि जिससे पूज्य पिता के हृदय को दुःख पहुँचता। जिस समय ये अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ने लगे थे उसी समय वंग भाषा की कविता भी रचने लगे थे। जिस समय यह इन्ट्रेन्स परीक्षा देने को प्रस्तुत हो रहे थे उसी समय इनके पूज्य पिता का स्वर्गवास हो गया। इस शोकदायक दुर्घटना से इनका जी टूट गया और परीक्षा में पास होने की आशा जाती रही। १८८१ ई० में इन्ट्रेन्स परीक्षा में ये प्रथम हुए और २५) स्कालरशिप (छात्रवृत्ति) प्राप्त करके उक्त परीक्षा पास कर लेने पर ये अपने चाचाजी के साथ कलकत्ता, प्रेसीडेन्सी कालेज में जाकर भर्ती हुए। उस समय इनका पढ़ने में चित्त नहीं लगता था। पाठ्य पुस्तकें (Text Books) न पढ़ कर और अंग्रेज़ी साहित्य और इतिहासादि की पुस्त पढ़ते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रथ वार्षिक परीक्षा (First year) में ये सेकेन्ड (दूसरे) हुए। पर इस बार भी २५) का स्कालरशिप और एक सोने का मेडल इन्होंने (पदक) प्राप्त किया। १८ ई० में पूज्य चाचाजी के देहान्त हो जाने से ये फि हतोत्साह हो गए जिससे बी० ए० परीक्षा समय जी लगा कर नहीं पढ़ सके थे। उसी सम इन्हें विज्ञान (साइन्स) शास्त्र में आनर (Honou सहित प्रथम स्थान और ४०) का स्कालरशिप मिला उन्हीं दिनों नवजीवन नामक बँगला मासिक पुस में इनका पहला प्रबंध प्रकाशित हुआ। इसके इन्होंने दो एक प्रबंध बिना नाम के भी लिखे दूसरे साल ये पदार्थ-विद्या और रसायन शास्त्र में ए. परीक्षा देने को प्रस्तुत हुए। रसायन शास्त्र अध्यापक पेडलर साहब इनकी एक क्लास एक्स साइज़ (Class exercise) देख कर इनपर अत्य प्रसन्न हुए थे और उसी समय उन्होंने इन्हें "प्रेमचं रायचंद," वृत्ति पाने के हेतु उत्साहित किया। ए. परीक्षा में पेडलर साहब रसायन के परीक्ष थे। इनके पर्चे के विषय में उन्होंने उसी दिन अप अभिप्राय क्लास के सामने प्रकट किया "मैंने अ तक जितने रसायन के प्रश्नोत्तर पत्र देखे हैं उन यह–Out of the way the best है।" पेडलर सा के उपर्युक्त वाक्य से उत्साहित हो कर ये वृत्ति प्राप्त करने के हेतु तैयार होने लगे। १८८७ ई एम. ए. की परीक्षा दी; इस परीक्षा में भी प्रथम प्राप्त कर फिर सोने का पदक और १००) की पुस् इन्होंने पारितोषिक में पाईं। १८८८ ई० में इ पदार्थ विद्या और रसायन शास्त्र ले कर दूसरे "प्रेमचंद रायचंद" स्कालरशिप पाई। परीक्षकों यह मन्तव्य था कि;—"The candidate who up Physics and Chemistry is perhaps best student that has yet taken up t subjects at this examination." अर्थात् तक रायचंद प्रेमचंद परीक्षा के लिए जितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़िज़िक्स (Physics) और केमिस्ट्री (Chemistry) ही है उन सभों में मालूम होता है यही सर्वश्रेष्ठ हैं। इसके अनन्तर दो साल तक प्रेसीडेन्सी कालेज की वैज्ञानिक यन्त्रालय (Laboratory) में इन्होंने बिना फ़ीस दिये विज्ञान चर्चा करने की अनुमति पेडलर साहब से प्राप्त की । १८९० ई० में यह एन्ट्रेन्स परीक्षा के परीक्षक नियुक्त हुए। ४ वर्ष के उपरान्त एफ़० ए० के परीक्षक हुए और तदनन्तर पाँच वर्ष के उपरान्त इन्ट्रेन्स के प्रधान परीक्षक (हेड एग्ज़ामिनर) नियत हुए और तब से उसी पद पर नियुक्त हैं।

१८९२ ई० में ये सुप्रसिद्ध रिपन कालेज में विज्ञानाध्यापक (प्रोफ़ेसर आफ़ साइन्स) हुए और उक्त कालिज के अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) कृष्णकमल बाबू के पद परित्याग करने पर उनका पद इन्हें मिला जिसे आज तक ये सुख्याति के साथ सुशोभित कर रहे हैं।

कालिज के बाहर ये बहुधा विज्ञान शास्त्र अथवा दर्शन शास्त्र की आलोचना किया करते हैं। "साधना" नामक बँगला मासिकपत्र के निकलने के समय से इन्होंने बँगला प्रबंधों का लिखना आरंभ किया था । १८९६ ई० में निज लिखित वैज्ञानिक प्रबंधों को एकत्रित करके इन्हों ने "प्रकृति" नामक पुस्तक प्रकाशित की और १९०३ ई० में निज लिखित दार्शनिक प्रबंधों का संग्रह करके "जिज्ञासा" नामक पुस्तक प्रकाशित की। अभी इनके सामाजिक प्रबंध पुस्तक रूप में नहीं प्रकाशित हुए हैं। "प्रकृति" और "जिज्ञासा" के अतिरिक्त "बँगला संक्षिप्त इतिहास" और "पत्रावली" नामक और दो पुस्तकें भी आप की लिखी हैं । गत वर्ष वंगविच्छेद के उपलक्ष में आप ने "वंग लक्ष्मीर व्रतकथा" (सत्यनारायण व्रत कथा की भाँति) नामक एक छोटी सी पुस्तिका लिखी है। उसकी कथा बड़ी ही रोचक है। १९०५ ई० के १६ अक्टूबर को इनकी विदुषी कन्या ने अपने विष्णु मंदिर में पाँच हज़ार से अधिक वंग ललनाओं के सामने इसका पाठ करके सुनाया था। तभी से १६ अक्टूबर को वंग ललनाएँ उक्त पुस्तक के लिखे अनुसार व्रत धारण कर के उक्त कथा को श्रद्धा के साथ सुनती हैं। इस पुस्तक का यहाँ तक प्रचार हुआ कि एक ही साल में इसके दो संस्करण हो गए और किसी संवादपत्र में संस्कृत में भी उसका अनुवाद होकर प्रकाशित हो गया।

१८९४ ई० में 'वंगीय साहित्य परिषद्" नामक सभा स्थापित हुई; तब से ये निरंतर उसकी उन्नति की चेष्टा में दत्तचित्त रहते हैं। आज तक उक्त परिषद् ने जो कुछ उन्नति की है वह सब इन्हीं के अध्यवसाय, परिश्रम और उद्योग का फल है। उक्त परिषद् के द्वारा प्राचीन वंग साहित्य का बड़ा भारी उपकार हुआ है। १८९८ से १९०३ तक ये "परिषद्पत्रिका" (उक्त सभा से निकलनेवाली त्रैमासिक पुस्तक) के अवैतनिक सम्पादक रह चुके हैं। उक्त पत्रिका में प्रायः समय समय पर इनके उच्च विचारपूर्ण प्रबंध प्रकाशित हुआ करते हैं। प्राचीन वंग साहित्य में इनका अच्छा प्रवेश है। इन्होंने अनेक प्राचीन ग्रंथकारों की लुप्त कीर्त्ति का उद्धार किया है।

प्राचीन वङ्ग भाषा की कविताओं पर इनकी बड़ी ही मधुर और सारगर्भित आलोचनाएँ होती हैं। इनके प्रबंध वङ्ग भाषा के भिन्न भिन्न मासिकपत्रों में तो आदर के साथ दिए ही जाते हैं, साथ ही, सुना है, अंग्रेज़ी भाषा की प्रसिद्ध मासिक पुस्तकों में भी इनके प्रबंध निकला करते हैं। संस्कृत भाषा के ये पूर्ण पंडित हैं। आधुनिक सभ्यता, शिष्टता, सौजन्य और सदाचार आदि उत्तम गुण तो इनके जीवन के प्रधान भूषण हैं। अति क्लिष्ट वैज्ञानिक और दार्शनिक गूढ़ विषयों को ये सरलता और सुगमता से समझा देते हैं। मैं सुनती हूँ ये बड़े ही सभ्य, सज्जन, सदाचारी, उदारचरित्र और मिलनसार मनुष्य हैं। निज लिखित जीवनी के अंत में पं० रामेन्द्रसुन्दर बहुत विनय और नम्रता के साथ लिखते हैं "बँगला साहित्य" और उसके द्वारा यथासाध्य स्वजाति की सेवा करते करते जीवनान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, बस यही मेरी प्रार्थना है।" उपर्युक्त वाक्यों से रामेन्द्र बाबू के आन्तरिक उच्च विचार भली भाँति प्रकट होते हैं। ये साहित्य, समाज और स्वजाति के कैसे भक्त हैं, इस बात के साक्षी इन महानुभाव के ऊपर दिए हुए वाक्य ही हैं। आप अपने पूर्व पुरुषों की मातृभाषा हिन्दी को बिलकुल भूल नहीं गए हैं; समय समय पर इसके कामों में भी सहायता किया करते हैं। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के वैज्ञानिक कोश को संशोधन और उचित परामर्श द्वारा इन्होंने उत्तम सहायता दी है। पर आज कल ये बँगला को राष्ट्रभाषा बनाने के उद्योग में लगे हुए हैं। माननीय शारदाचरण मित्र बी० ए० (जस्टिस, कलकत्ता हाईकोर्ट) द्वारा स्थापित "एक लिपि-विस्तार-परिषद्" के आप प्रधान हैं।

बंगाली विद्वत् समाज में इन की बड़ी प्रतिष्ठा है। बड़े बड़े विद्वान् इनके साथ मित्रता का व्यवहार रखते हैं। विद्या, बुद्धि और प्रतिभा के कारण इनको बहुत लोग सन्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं और इनकी उच्च विचारपूर्ण सम्मति आदर के साथ ग्रहण करते हैं। मेरी समझ में ऐसे ही गुण सम्पन्न महानुभाव देश और समाज के लिए पूजनीय हो सकते हैं और स्वजातिवालों की तो कोई बात ही नहीं; उनके लिए तो ये गौरव के स्तम्भ स्वरूप हैं। एक बात और भी कह देना अनुचित न होगा कि माननीय रामेन्द्रसुंदर त्रिवेदी एम. ए. महाशय चिरकाल से प्रवासी होने के कारण एक प्रकार वंगवासी से हो गए हैं। उनके परिवारादि की रहन सहन रीति नीति, चाल चलन, खान पान और परिधानादि सब बंगालियों के समान ही हैं। अर्थात् उक्त महाशय को देख कर किसीको यह कहने का साहस न होगा कि यह वंगवासी नहीं, बुंदेल खंडवासी हैं।

—:o:—

मनोविकारों का विकाश।

आनन्द कोटि।



आरम्भ ही में कहा जा चुका है कि प्राणियों के अन्तःकरण के मूल वेग दो हैं—दुःख और आनन्द। आगे चल कर इन्हीं दोनों मूल वेगों के, अवस्था-ज्ञान के अनुसार, ऐसे रूप हो जाते हैं जो एक दूसरे से इतने विभिन्न जान पड़ते हैं कि उनके लिए अलग अलग नाम संसार की प्रत्येक भाषा में रखे गए हैं। ज्ञानेन्द्रियों और अन्तःकरण-वृत्तियों की वृद्धि और समाजिक सम्पर्क की वृद्धि के साथ साथ मनोवेगों की अनेकरूपता का विकाश होता है। हानि के कारण में चेतनता का परिज्ञान होने पर हमारा काम उस मूल मनोवेग से नहीं चलता जिसे दुःख कहते हैं बल्कि उसके क्रोध आदि रूपान्तर की आवश्यकता होती है। जब हमारी इन्द्रियाँ दूर से आती हुई क्लेशकारिणी वस्तु का पता देने लगती है, जब हमारा अन्तःकरण किसी भावी आपदा का अनुमान कराने लगता है तब हमारा काम निष्क्रिय दुःख से नहीं चलता बल्कि भागने या बचने की प्रेरणा करनेवाले भय से चलता है। जिस वस्तु से सुख मिलता है उसके विषय में केवल सीधा सादा आनन्द प्राप्त करके जंगम प्राणी संतुष्ट नहीं रह सकता; वह उसकी प्राप्ति वा रक्षा की उत्तेजना करनेवाले लोभ वा प्रेम के वशीभूत अवश्य होगा। अपने मूल रूप में दुःख और आनन्द दोनो निष्क्रिय हैं। न एक में निराकरण की प्रेरणा की शक्ति है और न दूसरे में प्राप्ति की उत्तेजना। शुद्ध दुःख में हम बहुत करेंगे हाथ पैर पटक कर रोएँगे, और चिल्लायँगे, इसी प्रकार शुद्ध आनन्द में हम बहुत करेंगे दाँत निकाल कर हँसेंगे कूदेंगे। पर इस रोने पटकने और दाँत निकालने से तो काम चलता नहीं। हम कितना ही उछलें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र हँसें, कितना ही सिर पटक कर रोवें पर इस
सने रोने को प्रयत्न नहीं कह सकते। ये आनन्द
र दुःख के अनिवार्य्य लक्षण मात्र हैं जो अनिच्छा
ते भी प्रकट हो जाते हैं। इच्छा के बिना प्रयत्न
हीं हो सकता।

मूल दुःख और आनन्द के साथ जब इच्छा का
योग होता है तब उसी इच्छा की अनेकरूपता
अनुसार उन मूल मनोवेगों के क्रोध, भय, करुणा,
आदि भिन्न भिन्न रूपों का विकाश होता है और
भिन्न प्रयत्न देखे जाते हैं। जब प्राणी को स्थिति
वर्त्तमानता में उसके अभाव के अनुमान की
मर्थ्य वा अभ्यास हो जाता है तभी इच्छा का
दुर्भाव होता है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि
त का जन्मा बच्चा जो भूख लगने पर रोता है
क्या उसे भी खाली पेट रहने पर भरे पेट की
स्था का अनुमान होता है? मैं समझता हूँ
नहीं, उसका रोना केवल उसके दुःख का चिह्न मात्र
प्राप्ति का प्रयत्न नहीं है। दुःख के चिह्न को देख
हम दूध पिला कर उसका दुःख दूर करते हैं।
लक्षण-क्रिया का कुछ अनुकूल फल है अतः
के फल की पूर्ववर्त्तिनी इच्छा कहीं अवश्य है,
वह बच्चे में नहीं है उसके बाहर है। इच्छा के
काश के लिए संवेदना के अतिरिक्त स्थिति के
रत्व की भावना भी आवश्यक जान पड़ती है।

यह पहले कहा जा चुका है कि दुःख के जितने
क विभाग हुए हैं उतने आनन्द के नहीं, तथा
के विभागों की परस्पर विभिन्नता जितनी स्पष्ट
पड़ती है उतनी सुख के विभागों की नहीं।
न्द की कोटि में उत्साह, भक्ति, तथा प्रेम वा
म ही ऐसे मनोवेग हैं जिनके लक्षण परस्पर भिन्न
पड़ते हैं। इनमें सबसे पहले हम उत्साह को
हैं।

उत्साह।

दुःख की कोटि में जो स्थान भय का है आनन्द
कोटि में वही स्थान उत्साह का है। भय से हम
आगामी दुःख के निश्चय से दुखी और प्रयत्नवान्
भी होते हैं, उत्साह में हम आगामी सुख के निश्चय
से सुखी और अवश्य प्रयत्नवान् होते हैं। मूल दुःख
से भय की विभिन्नता प्रयत्नावस्था और अप्रयत्नावस्था
दोनों में स्पष्ट देख पड़ती है पर आगामी सुख के
निश्चय का प्रयत्नशून्य आनन्द मूल आनन्द से कुछ
इतना भिन्न नहीं जान पड़ता। यदि किसी भावी
आपत्ति की सूचना पाकर कोई एक दम ठक हो
जाय कुछ भी हाथ पैर न हिलावे तो भी उसके दुःख
को साधारण दुःख से अलग कर के भय की संज्ञा
दी जायगी, पर यदि किसी प्रिय मित्र के आने का
समाचार पाकर हम चुपचाप आनन्दित हो कर बैठे
रहें वा थोड़ा हँस भी दें तो यह हमारा उत्साह
नहीं कहा जायगा। हमारा उत्साह तभी कहा
जायगा जब हम अपने मित्र का आगमन सुनते ही
उठ खड़े होंगे, उससे मिलने के लिए चल पड़ेंगे और
उसके ठहरने इत्यादि का प्रबन्ध करने के लिए
प्रसन्नमुख इधर से उधर दौड़ते दिखाई देंगे। प्रयत्न
वा चेष्टा उत्साह का अनिवार्य्य लक्षण हैं। प्रयत्न-
मिश्रित आनन्द ही का नाम उत्साह है। हँसना,
उछलना, कूदना आदि आनन्द के उल्लास की उद्देश्य-
विहीन क्रियाओं को प्रयत्न नहीं कह सकते। उद्देश्य
से जो क्रिया की जाती है उसी को प्रयत्न कहते हैं।
जिसकी प्राप्ति से आनन्द होगा उसकी प्राप्ति के
निश्चय से उत्पन्न जिस आनन्द के साथ हम प्राप्ति
की साधन-क्रिया में प्रवृत्त होते हैं उसे तो उत्साह
कहते ही हैं, इसके अतिरिक्त सुख के निश्चय पर उसके
उपभोग की तैयारी वा प्रयत्न जिस आनन्द के साथ
करते हैं उसे भी उत्साह कहते हैं। साधन-क्रिया में
प्रवृत्त होने की अवस्था में प्राप्ति का निश्चय प्रयत्ना-
धीन वा कुछ अपूर्ण रहता है। उपभोग की तैयारी
में प्रवृत्त होने की अवस्था में प्राप्ति का निश्चय
स्वप्रयत्न से स्वतंत्र अतः अधिक पूर्ण रहता है।
पहली अवस्था में यह निश्चय रहता है कि यदि हम
यह कार्य्य करेंगे तो यह सुख प्राप्त होगा। दूसरी में
यह निश्चय रहता है कि वह सुख हमें प्राप्त ही होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः हम उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में नहीं बल्कि उपभोग के प्रयत्न में प्रवृत्त होते हैं। किसी ने कहा कि यदि तुम यह काम कर दोगे तो तुम्हें यह वस्तु देंगे। इसपर यदि हम उस काम में लग गए तो यह हमारी प्राप्ति का प्रयत्न है। यदि किसी ने कहा कि तुम्हारे अमुक मित्र आ रहे हैं और हम प्रसन्न हो कर उनके ठहराने आदि की तैयारी में इधर से उधर दौड़ने लगे तो यह हमारा उपभोग का प्रयत्न या उपक्रम है। कभी कभी इन दोनो प्रयत्नों की स्थिति पूर्वापर होती है अर्थात् जिस सुख की प्राप्ति की आशा से हम उत्साहपूर्ण प्रयत्न करते हैं उसकी प्राप्ति के अत्यन्त निकट आ जाने पर हम उसके उपभोग के उत्साहपूर्ण प्रयत्न में लगते हैं। फिर जिस क्षण वह सुख प्राप्त हो जाता है उसी क्षण से उत्साहकी समाप्ति और मूल आनन्द का आरम्भ हो जाता है।

ऊपर के विवरण से यह बात मन में बैठ गई होगी कि जो आनन्द सुखप्राप्ति से साधन-सम्बन्ध वा उपक्रम-सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाओं में देखा जाता है उसी का नाम उत्साह है। पर मनुष्य का अन्तःकरण एक है इससे यदि वह किसी एक विषय में उत्साहपूर्ण रहता है तो कभी कभी अन्य विषयों में भी उस उत्साह की झलक दिखाई दे जाती है। यदि हम कोई ऐसा कार्य्य कर रहे हैं जिससे आगामी सुख का पूरा निश्चय है तो हम उस कार्य्य को तो उत्साह के साथ करते ही हैं अन्य कार्य्यों में भी प्रायः अपना उत्साह दिखा देते हैं। यह बात कुछ उत्साह ही में नहीं अन्य मनोवेगों में भी बराबर देखी जाती है। यदि हम किसी पर क्रुद्ध बैठे हैं और इसी बीच में कोई दूसरा आकर हमसे कोई बात पूछता है तो उसपर भी हम झुंझला उठते हैं। इस झुंझलाहट का कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं। यह केवल क्रोध की स्थिति के व्याघात को रोकने की क्रिया है, क्रोध की रक्षा का प्रयत्न है। इस झुंझलाहट द्वारा हम यह प्रकट करते हैं कि हम क्रोध में हैं और क्रोध ही में रहना चाहते हैं। इस क्रोध को बनाए रखने के लिए हम उन बातों से भी मौ
संग्रह करते हैं जिनसे दूसरी अवस्था में हम
रीत भावों को ग्रहण करते। यदि हमारा
किसी विषय में उत्साहित है तो हम अन्य विष
भी अपना उत्साह प्रकट कर सकते हैं। यदि ह
मन बढ़ा हुआ है तो हम बहुत से काम प्रस
पूर्वक करने के लिए तैयार हो सकते हैं। इस अ
को हम मनोवेगों द्वारा स्वरक्षा का प्रयत्न कह सक
इसी का विचार करके सलाम करनेवाले
हाकिमों से मुलाक़ात करने के पहले अर्दलि
उनका मिज़ाज पूछ लिया करते हैं।

उत्साह उपयुक्त कर्म के साथ ही अनुकूल
का आरम्भ है जिसकी प्रेरणा से कर्म में प्र
होती है। यदि फल दूर ही पर रक्खा दिखा
उसके परिज्ञान के साथ ही उसका लेश मा
कर्म वा प्रयत्न के साथ साथ लगा हुआ न
पड़े तो हमारे हाथ पाँव कभी न उठें और
फल के साथ हमारा संयोग ही न हो। इससे
फल के आध्यात्मिक अंश का किञ्चित् संयोग
समय से होने लगता है जिस समय हमें
प्राप्ति की सम्भावना विदित होती है और हम
में अग्रसर होते हैं। यदि हमें यह निश्चय है
अमुक स्थान पर जाने से हमें किसी प्रिय व्यक्ति
दर्शन होगा तो हमारे चित्त में उस निश्चय-का
फल स्वरूप एक ऐसा आनन्द उमड़ेगा जो हमें
न रहने देगा। हम चल पड़ेंगे और हमारे
प्रत्येक गति में प्रफुल्लता दिखाई देगी। इसी
लता के बल पर हम कर्मों की उस शृंखला
पार कर सकते हैं जो फल तक पहुँचाती है
की इच्छा मात्र से जो प्रयत्न किया जाय
अभावमय और आनन्दशून्य होने के कारण
नहीं होगा। कभी कभी उसमें इतनी अ
होगी कि वह उत्तरोत्तर क्रम का निर्वाह
सकने के कारण बीच ही में चूक जायगा
लीजिए कि एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर
हुए किसी व्यक्ति को बहुत दूर नीचे तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीढ़ियां दिखाई दीं और यह मालूम हुआ कि नीचे उतरने पर सोने की खान मिलेगी। यदि उसमें इतनी सजीवता है कि इस सूचना के साथ ही वह उस स्वर्ण के साथ एक प्रकार का संयोग अनुभव करने लगा तथा उसका चित्त प्रफुल्लित और शरीर क्रियमाण हो गया तो उसे एक एक सीढ़ी स्वर्णमयी दिखाई देगी, एक एक सीढ़ी उतरने में उसे आनन्द मिलेगा, एक एक क्षण उसे सुख से बीतता हुआ जान पड़ेगा और वह प्रसन्नता के साथ उस खान तक पहुंचेगा। उसके प्रयत्न-काल को भी फल-प्राप्ति-काल के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि उसका हृदय दुर्बल होगा और उसमें इच्छा मात्र ही उत्पन्न हो कर रह जायगी तो अभाव के बोध के कारण उसके चित्त में यही होगा कि कैसे झट से नीचे पहुँच जायँ। उसे एक एक सीढ़ी उतरना बुरा मालूम होगा और आश्चर्य्य नहीं कि वह या तो हार कर लौट जाय अथवा अड़बड़ा कर मुँह के बल गिर पड़े।

इसी से कर्म के साथ ही साथ उसके फल के अनुभव का अभ्यास बढ़ाने का उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने फलासंग-शून्य कर्म के सिद्धान्त द्वारा इस प्रकार दिया है।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैव किञ्चित्करोति सः॥

फल की विशेष आसक्ति से कर्म के लाघव की वासना उत्पन्न होती है, चित्त में यही आता है कि कर्म बहुत कम करना पड़े और फल बहुत सा मिल जाय। श्रीकृष्ण के लाख समझाने पर भी भारत-वासी इस वासना से ग्रस्त हो कर कर्म से उदासीन हो बैठे और फल के इतने पीछे पड़े कि गरमी में ब्राह्मण को एक कुम्हड़ा देकर पुत्र की कामना करने लगे; चार आने रोज़ का अनुष्ठान बैठा कर व्यापार में लाभ, शत्रु पर विजय और न जाने क्या क्या चाहने लगे। आसक्ति प्राप्ति वा उपस्थित वस्तु में होनी चाहिए। कर्म सामने उपस्थित रहता है इससे उसी में आसक्ति चाहिए, फल दूर रहता है इससे

६

उसकी इच्छा ही काफ़ी है। जिस आनन्द से कर्म की उत्तेजना मिलती है, वा जो आनन्द कर्म करते समय मिलता है वही उत्साह है। कर्म के मार्ग पर आनन्दपूर्वक चलता हुआ उत्साही मनुष्य यदि अंतिम फल तक न भी पहुंचे तो भी उसकी दशा कर्म न करनेवाले की अपेक्षा, अधिक अवस्थाओं में अच्छी रहेगी क्योंकि एक तो कर्म-काल में जितना उसका जीवन बीता वह सुख में बीता; इसके उपरान्त फल की अप्राप्ति पर भी उसे यह पछतावा न रहा कि मैंने यह प्रयत्न नहीं किया। लोग कह सकते हैं कि जिसने निष्फल प्रयत्न करके अपनी शक्ति और धन आदि का कुछ ह्रास किया उसकी अपेक्षा वह अच्छा जो किनारे रहा। पर फल पहले से कोई बना बनाया तैयार पदार्थ नहीं होता। अनुकूल साधन-क्रम के अनुसार उसके एक एक अंग की योजना होती है। इससे बुद्धि द्वारा पूर्ण रूप से निश्चित किए हुए उपयुक्त साधन ही का नाम प्रयत्न है। किसी मनुष्य के घर का कोई प्रिय प्राणी बीमार है। वह वैद्य के यहाँ से जब तक औषध ला ला कर रोगी को देता है और इधर उधर दौड़ धूप करता है तब तक उसके चित्त में जो सन्तोष रहता है वह उसे कदापि न प्राप्त होता यदि वह रोता हुआ बैठा रहता। इसके अतिरिक्त रोगी के न अच्छे होने की अवस्था में भी वह उस आत्मग्लानि के कठोर दुःख से बचा रहेगा जो उसे जीवन भर यह सोच सोच कर होता कि मैंने पूरा प्रयत्न नहीं किया। कर्म में आनन्द अनुभव करनेवालों ही का नाम कर्मण्य है। धर्म और उदारता के जो महत्कर्म्म होते हैं उनके अनुष्ठान में एक ऐसा अपार आनन्द भरा रहता है कि कर्त्ता को वे कर्म ही फल-स्वरूप प्रतीत होते हैं। अत्याचार को दमन करने तथा क्लेश को दूर करने का प्रयत्न करते हुए चित्त में जो उल्लास और सन्तोष होता है वही लोकोपकारी कर्मवीर का सच्चा सुख है। उसके लिए सुख तब तक के लिए रुका नहीं रहता जब तक कि फल प्राप्त न हो जाय, बल्कि उसी समय से थोड़ा थोड़ा करके मिलने लगता है जब वह कार्य्य आरम्भ करता है।

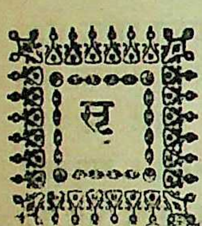
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा और उत्साह में जो अन्तर है उसे भी विचार लेना चाहिए। आशा में सुख के निश्चय की अपूर्णता के कारण क्रियमाणता नहीं होती पर उत्साह में क्रिया वा चेष्टा का होना ज़रूरी है। लोग बैठे बैठे वा लेटे लेटे भी आशा करते हैं पर उत्साहित हो कर कोई पड़ा नहीं रहता।

—:o:—

सदाचरण और उत्तम प्रकृति।



सृष्टि के आरंभ से आज तक जिस सदाचरण की प्रशंसा होती आई है, जिसके अनुयायियों के नाम बात चीत में नित्य दो एक बार आते हैं, जिसके अतुल प्रभाव से भगवान् को दौड़ दौड़ कर कई बेर इस पृथ्वी पर आना पड़ा है, वह सदाचरण क्या है? इस बात के जानने के हेतु यत्न करना हमारे समय—संयमी पाठकों को कदाचित न खलेगा। एक ग्रंथकार कहता है "अच्छा गणितज्ञ होना, अच्छा कवि होना सहज है, किंतु अच्छा मनुष्य होना बड़ा कठिन है।" कोई आवश्यक नहीं कि मनुष्य उत्तम कवि वा दार्शनिक हो पर यह उसका प्रधान कर्त्तव्य है कि वह सात्विकशील हो। उत्तम प्रकृति मनुष्य का भूषण है। अकेले एक इसी गुण की संपन्नता से मनुष्य सब धनियों से धनी, सब विद्वानों से विद्वान् और सब भाग्यमानों से भाग्यमान है। संभव है कि यह कुटिल संसार उसका यथावत् आदर न करे, पर उसका सम्मान स्वयं उसकी आत्मा करेगी, जिसके बिना मनुष्य लक्षाधिप वा सर्वविद्या विशारद हो कर भी एक राह के भिखमंगे और गाँव के गँवार से भी हीन है।

एडिसन लिखता है "उत्तम प्रकृति की मनुष्यों को इतनी आवश्यकता देख पड़ी कि उन्हें सामाजिक व्यवहार में सुगमता लाने के लिए एक कृत्रिम उत्तम प्रकृति का आविष्कार करना पड़ा जिसका नाम उन्होंने शिष्टाचार रक्खा।" इसी शिष्टाचार की बदौलत हमें ऐसे लोगों के श्रीमुख से भी "आइए, आइए, विराजिए, विराजिए" इत्यादि कोमल वाक्य सुनने को मिलते हैं जिनकी आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि 'जाव जाव, उठो उठो।' इससे उस कलह और उपद्रव का बचाव होता है जिसमें हम तुरन्त तत्पर हो जाते यदि भाषा का प्रयोग भावों को छिपाने के बदले उन्हें प्रकाशित करने के अर्थ किया गया होता।

सब से पहले तो हमें यह देखना है कि सदाचरण कहते किसको हैं। यदि हम उन समस्त कर्मों की सूची तैयार करने बैठें जो इस सदाचरण के नाम से पुकारे जाते हैं तो यह बात हमारे सामर्थ्य के बाहर ही नहीं वरन् हमारे अभिप्राय साधन के लिए निष्प्रयोजनीय भी होगी। किसी कर्म विशेष में कर्त्ता से पृथक् कोई दोष वा गुण नहीं होता। इस कहने से कि अमुक कर्म्म अच्छा वा बुरा हुआ हमारा केवल यही तात्पर्य्य रहता है कि उस परिणाम को उपस्थित करने में कर्त्ता के चित्त का संस्कार अच्छा वा बुरा था।

यदि कोई पूछे कि एक कर्म्म करने से मनुष्य को क्यों आदर और यश मिलता है और दूसरे के करने से क्यों छिः छिः सुनना पड़ता है तो इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि एक कार्य का विचार करते समय श्रद्धा और आदर का उत्पन्न न होना और दूसरे के द्वारा घृणा और क्रोध का जागृत न होना असंभव है; ठीक उसी प्रकार जैसे जिह्वा पर रखने से संभव नहीं कि चीनी मीठी और इंद्रायण कड़ुवा न लगे। अतः जिस प्रकार हमारी इंद्रियों को कुछ पदार्थ रुचिकर और कुछ अरुचिकर प्रतीत होते हैं उसी प्रकार हमारी आत्मा को भी कुछ कर्म्मों के चिन्तन से सन्तोष और कुछ के चिन्तन से घृणा और क्रोध प्राप्त होता है।

*पदार्थों के बीच परिवर्त्तन उपस्थित करना। प्रत्येक कर्म्म में मानसिक संस्कार भी संयुक्त रहता है इसलिए गुण और दोष का विचार होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा सौन्दर्य का भाव केवल रंग और आकार का साक्षात्कार मात्र नहीं है, वह भाव इन सब से उत्पन्न अवश्य है पर इनसे सर्वथा भिन्न है। इसी प्रकार हमारे आचरण की उत्कृष्टता विषयक विचार केवल क्रियाओं का साक्षात्कार अथवा उपकार का पता लगना मात्र नहीं है—वह एक और ही वस्तु है। यदि कोई पूछे कि चीनी क्यों रुचिकर और सौन्दर्य्य क्यों आह्लादकारक होता है तो इसका क्या उत्तर है? सदाचारी से भिन्न सदाचार और दुराचारी से भिन्न दुराचार केवल नाम मात्र है। कर्म्म कुछ नहीं केवल कर्त्ता ही का किसी अवस्था में किसी परिणाम का विचारना और उसको उत्पन्न करना है। किसी अंग विशेष का प्रकार विशेष से परिचालित करना और भौतिक पदार्थों के बीच परिवर्त्तन उपस्थित कर देना स्वयं कोई दोष वा गुण नहीं रखता। अतएव किसी कर्म्म के सत् और असत् का विचार करने के लिए हमें उसको तीन खंडों में विभाजित करना पड़ेगा।

(१) अवस्था जिसमें कर्त्ता स्थित है;

(२) कर्त्ता का मानसिक संस्कार; और

(३) परिणाम अर्थात भौतिक वा मानसिक परिवर्त्तन।

इन तीनों में से यदि दूसरा खंड निकाल लिया जाय तो कर्त्ता सब दोषों से मुक्त और सब गुणों से रहित हो जायगा। शेष दो का काम केवल मानसिक संस्कार के अनुसंधान में सहायता पहुँचाना है। तात्पर्य्य यह कि किसी कर्म्म के भले वा बुरे होने का विचार चित्त ही की ओर देख कर किया जा सकता है। जैसे जब हमें कोई किसी व्यक्ति की ओर यह कह कर दिखलावे कि इसने एक मनुष्य का बध किया है तो हम तुरंत उसको दुराचारी कह देंगे और उसके प्रति क्रोध और घृणा हमारे चित्त में जागृत हो जायगी। पर वही इङ्गितकर्त्ता यदि इतना और कहे कि 'वह मनुष्य जिसका बध हुआ लुटेरा था और मारनेवाले की ओर आक्रमण करने के लिए झपटा था' तब हम फिर चट उसके साहस और पराक्रम की प्रशंसा करने लगेंगे। अथवा यदि कोई मनुष्य जानबूझ कर किसी वृद्ध मनुष्य को ऊँचे स्थान से धक्का देकर नीचे ढकेल दे तो वह तुरंत मनुष्य-बध के घोर पातक का भागी हो जायगा। पर वही मनुष्य यदि मार्ग में चला जाता हो और अचानक उस वृद्ध से टकरा जाय और वह वृद्ध उसके धक्के से नीचे एक नदी में गिर कर प्राण त्याग कर दे तो हमें उसपर किसी प्रकार का दोषारोपण करने का अधिकार नहीं है। शारीरिक क्रिया तो दोनों में एक ही है—जिस प्रकार एक के लिए उसको अपना अंग हिलाना पड़ा उसी प्रकार दूसरे के लिए भी; पर दूसरे में उस मानसिक तत्त्व का अभाव रहा जिसके बिना किसी परिवर्त्तन को मानव कर्म्म की संज्ञा दी ही नहीं जा सकती। अन्तःकरण की स्थिति का अवश्य विचार करना होता है। इसके बिना क़ानून भी अपना प्रचंड दंड नहीं उठाता। सारांश यह कि गुण दोष के विचार के लिए यही मानसिक संस्कार ही मुख्य है, स्वयं कोई कर्म्म अर्थात् भौतिक वा अभौतिक परिवर्त्तन भला वा बुरा नहीं होता।

बहुतों का मत है कि जिस कर्म्म से दूसरों का उपकार साधन हो जाय वही श्लाघनीय और उसका कर्त्ता लौकिक प्रशंसा का अधिकारी है। इसमें मानसिक संस्कार का कुछ विचार नहीं किया गया है। तब तो स्टीम इंजिन तथा और बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ वैसी ही श्रद्धा और प्रतिष्ठा के योग्य ठहरती हैं जैसे संसार के उपकारी महात्मागण। यह तो ठीक है कि संसार में जितने सत्कर्म्म हैं सब का अंतिम परिणाम सृष्टि का उपकार ही है, पर यह कह देना कि किसी पिंड को प्रशंसा वा घृणा का पात्र बनने के लिए उसकी उपकारिणी वा अपकारिणी गति ही आवश्यक है, भूल है; संभव है कि उसकी गति अचेतन अवस्था में, किसी दूसरे पिंड के द्वारा अथवा विपरीत परिणाम उपस्थित करने का प्रयत्न करते समय उत्पन्न हुई हो। इस अवस्था में उसकी कुछ भी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात को यहाँ पर स्वीकार करना पड़ता है कि संसार के सब प्राणी हर समय एक ही कार्य्य को विचार करके एक ही भाव नहीं प्राप्त करते। अतएव इस सद्विषयक भाव की व्यापकत्व-संबंधी तीन सीमाएं स्थिर करनी पड़ती हैं।

(१) पहले तो बहुत से अवसर ऐसे देखने में आते हैं जिनमें चित्त सत् असत् का विवेक नहीं कर सकता अर्थात् चित्त की उस क्रिया ही का ह्रास हो जाता है जो इस विभिन्नता का मूल है। ये अवसर वे ही हैं जब चित्त क्रोध, शोक आदि मनोवेगों से विचलित हो जाता है। अन्तःकरण इन अवसरों पर दूसरे प्रकार की प्रबल भावनाओं से परिपूर्ण रहता है इससे किसी कर्म्म की इस भावना को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति में अंतर नहीं पड़ा, क्योंकि उस समय न कि केवल यही सत् असत् का विवेक वरन् समस्त प्रकार के विवेक (बुद्धि से संबंध रखनेवाले भी) नष्ट हो जाते हैं। उस समय रेखागणित के तत्त्व भी इसी प्रकार अधिकार रहित हो कर चित्त से दूर हटे रहते हैं। किन्तु यह बात मनोवेगों के अत्यन्त भयानक अवस्था पर पहुँचने पर होती है; सामान्यतः तो यह होता है कि चित्त में इस सत् असत् के विभेद बने रहने पर भी मनुष्य उसके अनुसार कार्य्य करने की परवा नहीं करता अर्थात् उसकी इंद्रियाँ इन्हीं मनोवेगों के अटल आदेश पर परिचालित होती हैं।

(२) दूसरी सीमा उन जटिल कर्म्मों पर जा ठहरती है जिनके परिणाम परस्पर विरोधी होते हैं अर्थात् उपकार और अपकार दोनों की ओर प्रवृत्त रहते हैं। कोई कर्म्म जो कि हमारी श्रद्धा वा घृणा का विषय है वास्तव में अभिप्राय से युक्त कर्त्ता ही है। अतएव कोई तो उस कर्त्ता को भला और कोई बुरा कहते हैं। इस अंतर पड़ने का यह कारण है कि कोई तो उस उपकार की ओर दृष्टि रखते हैं जो उस कर्म्म से निकलता है और कोई अपकार की ओर; कोई तो यह निश्चय करते हैं कि कर्त्ता का चित्त भलाई की ओर प्रवृत्त था और कोई यह समझते हैं कि उसका मुख्य अभिप्राय अनिष्ट ही था। यह बड़ केवल परिणामों की जटिलता के का[illegible] होता है जिनकी ओर देख कर हम कर्त्ता [illegible] अभिप्राय निकालते हैं। यदि हमारे पास कर्त्ता [illegible] मानसिक वृत्ति जानने का कोई और अधिक [illegible] साधन होता तो यह गड़बड़ कदापि उपस्थित [illegible] होता। प्रकट है कि मानसिक संस्कार के अनुसं[illegible] का यह साधन कभी कभी धोखा भी दे जाता [illegible] उदाहरणतः जैसे कोई मनुष्य किसी गहरी खा[illegible] एक किनारे पर खड़ा हो कर किसी अशक्त मनु[illegible] का, जो कि खाई के दूसरे किनारे पर है, हाथ प[illegible] कर अपनी ओर खींचे और वह अशक्त व्यक्ति [illegible] जा रहे तो निरीक्षक को कर्त्ता की मानसिक प्र[illegible] का निर्णय केवल इस घटना ही की ओर देख [illegible] करना बड़ा कठिन होगा। लोगों में जो थोड़ा [illegible] मतभेद इस सत् असत् के निश्चय में पाया जात[illegible] उसका कारण एक यह भी है। ऐसे जटिल कर्म्मों [illegible] विषय में जो हम पृथक् पृथक् सम्मति स्थिर कर[illegible] इसका कारण यह है कि हम कर्म्मों के मान[illegible] तत्त्वों का पूरा पूरा विचार नहीं कर सकते। [illegible] यह दोष कर्म्मों के यथावत् ज्ञान प्राप्त करने में [illegible] स्वयं कर्म्मों में नहीं। यदि मानसिक संस्कार [illegible] ओर हम देखने पावें तो हमें भले बुरे का नि[illegible] करने में कुछ भी देर न लगे। हमारी रसना [illegible] ही कोई पदार्थ उसपर रक्खा जाता है मीठे कड़[illegible] का निर्णय कर देती है। छोटे से बच्चे के मुँह में [illegible] यदि ऐसे पदार्थ रख दिए जाते हैं तो उसे भी उ[illegible] आनंद वा पीड़ा प्राप्त होती है। मीठे और क[illegible] का फ़रक़ बच्चे को भी उसी प्रकार प्रत्यक्ष रह[illegible] जिस प्रकार एक सयाने व्यक्ति को। चीनी की [illegible] इच्छा और इंद्रायन की ओर अनिच्छा प्रगट [illegible] के लिए कोई शिक्षा वा मारपीट नहीं दरकार [illegible]

(३) इन दो सीमाओं के अतिरिक्त एक [illegible] सीमा भी बाँधनी ज़रूरी है जो कि कर्म्मों के वि[illegible] हमारी सम्मति पर बड़ी शक्ति के साथ [illegible] डालती है—यह संबंध वा सहयोग है। हमें [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ लेना चाहिए कि कर्म्मों के विषय में भावना उत्पन्न होने की शक्ति हमें और दूसरी मानसिक क्रियाओं के प्रभाव से वंचित रखती है। संबंध वा सहयोग इस शक्ति को हरण तो नहीं कर लेता पर उसे नवीन नवीन विषय प्रदान करता है अथवा किसी व्यक्ति के किसी कर्म्म विशेष पर विचार करते समय उस व्यक्ति से संबंध रखनेवाली और और बातों को सामने लाकर खड़ा कर देता है जो कि उस कर्म्म विशेष के निरीक्षण द्वारा स्थिर किए हुए भाव को या तो तीव्र कर देती है अथवा हलका।

इस संबंध का सब से प्रचुर विस्तार उस समय देखने में आता है जब हम किसी समुदाय संबंधी भावना का तदंतर्गत किसी कर्म्म विशेष में प्रयोग करते हैं। वास्तव में तो प्रकृति में कोई समुदाय नहीं होने पर हम लोगों ने बहुत से पृथक् पृथक् कर्म्मों को किसी किसी अंश में समानता के विचार से एक श्रेणी के अंतर्गत मान लिया है और उस समूह को व्यक्त करने के लिए एक पृथक् नाम रख लिया है। न्याय, अन्याय, दया, क्रूरता आदि ऐसे ही शब्द हैं।

इन शब्दों के सुनते ही हमारी भावना केवल एक ही कर्म पर नहीं स्थिर हो जाती वरन् उन सब कर्म्मों का मिश्रित पंचामृत किया हुआ भाव चित्त में उद्भूत होता है जो उस समुदायसूचक शब्द के अंतर्गत माने गए हैं। इससे किसी एक ही कर्म्म के विचार में बड़ी तीव्र भावना का उद्गार होता है। इतना भर हम सुन पावें कि अमुक कार्य्य उस समुदाय के अंतर्गत आता है जिसको 'अत्याचार' कहते हैं फिर चट न कि केवल अकेले उस कर्म्म ही के विषय में हमारे चित्त में उद्गार होता है वरन् उन समस्त घोर अनर्थों और उपद्रवों से थोड़ा बहुत भाव ग्रहण करके जिन पर इस मनाहृत शब्द का अधिकार है चित्त उस से कहीं तीक्ष्ण और उद्विग्न भावना का अनुभव करता है जो केवल एक कर्म के चिंतन से उसे प्राप्त होता।

ऊपर कहा जा चुका है कि इस संबंध वा सहयोग के प्रभाव से भावनाएं तीव्र ही नहीं वरन् हलकी भी हो जाती हैं। किसी किसी समय उस निर्भयता और निर्दयता की बड़ी प्रशंसा होती है जो दूसरे अवसरों पर निंदनीय कही जाती है। यह प्रायः तब होता है जब शरीर और धन की रक्षा बिना इस निर्भयता तथा निर्दयता का अवलंबन किए नहीं हो सकती। ऐसी दशा में दया और भय को चित्त में स्थान देना भीरुता और निर्बलता समझी जाती है। उस समय प्राणियों का रुधिर-पात करते हुए भी संबंध के विचार से कर्त्ता का मन कलुषित नहीं वरन् उज्ज्वल रहता है। बहुत सी जंगली जातियाँ विदेशियों का बध करने के लिए सदैव सन्नद्ध रहती हैं। इससे यह न अनुमान करना चाहिए कि वे स्वयं इस कर्म को दूसरे को हानि पहुँचानेवाला जान कर ही अच्छा समझती हैं। वे यह कार्य्य या तो हानि की आशंका से अथवा अपने समाज की रक्षा का हेतु समझ कर करती हैं। उनके बीच भी ऐसा कोई अधम न होगा जो किसी व्यक्ति को कष्ट के साथ प्राण त्याग करते देख दो चार बूँद आँसू न गिरा दे। इसी संबंध के विचार से जिसे हम निकृष्ट कर्म कहते हैं उनके बीच निंदनीय नहीं होता। इसी प्रकार जब कोई बुराई हम उन व्यक्तियों में देखते हैं जिन्हें हम प्यार करते हैं—जैसे पिता, माता, स्त्री, पुत्र इत्यादि—तो इसी संबंध का प्रभाव उनके प्रति हमारी आन्तरिक घृणा में कमी कर देता है। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि हम उन दुष्कर्म्मों को पसंद करने लगते हैं जो उन लोगों में होते हैं जिनसे हम स्नेह रखते हैं। परन्तु यह संबन्ध या सहयोग उन कर्म्मों की ओर दृष्टिपात करते समय उन बातों को भी सम्मुख ला कर उपस्थित कर देता है जिनके हेतु हम उन्हें प्यार करते हैं। स्नेह जो स्वयं एक उत्कृष्ट भाव है हमारे चित्त में उन दुष्कर्म्मों से आविर्भूत घृणा को भली भाँति ठहरने नहीं देता। हम अपने उपकारी माता पिता से स्नेह करने में सदाचार का व्यवहार करते हैं इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उनके कर्म्मों की आलोचना का भाव हमारी कृतज्ञता के भाव के आगे दब जाता है।

मेरी जान में यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि कर्म्मों के सदसद्विषयक विवेक का प्रादुर्भाव हमारी आत्मा में अवश्य होता है। शंका की जा सकती है कि यदि इस प्रकार की भावना मनुष्य मात्र में स्वाभाविक है तो संसार में अनेक प्रकार के दुष्कर्म्म और अत्याचार होते क्यों हैं? मैं पहले कह चुका हूँ कि कुछ अवसर ऐसे हैं जिनमें ये भेद-सूचक भाव उदय नहीं होते अथवा उनके उदय होने पर भी मनुष्य दूसरे प्रबल मनोवेगों के हाथ में काठ का पुतला हो जाता है। उसकी इंद्रियाँ इन्हीं क्रोध, शोक और इच्छा आदि प्रबल मनोवेगों के आदेश पर परिचालित होती हैं। चोर जिस समय चोरी के लिये जाता है तो यह नहीं समझता कि हम कोई बड़ा पुण्य करने जाते हैं; वह इस बात को भली प्रकार जानता है कि उसके चित्त की वृत्ति बुरी है; किन्तु वह अपनी प्रबल इच्छा को रोकने में असमर्थ रहता है। क्या एक हत्यारे को किसी निरपराध के हृदय में छूरी धँसाते देख कर किसी को हँसी छूटेगी? क्या ऐसा भी कोई नराधम इस भूमंडल पर होगा जो अपने पिता माता का बध करके प्रसन्नता के साथ लोगों में अपने कर्म्म की घोषणा करता फिरे? क्या एक पशु का रुधिर भी पृथ्वी पर गिरता हुआ देख कर किसी मनुष्य कहलानेवाले जीव के मुख से चकार न निकलेगा।

बहुत से तत्वज्ञ इस सत् असत् के भेद को बिलकुल कल्पित और मनुष्यकृत बतलाते हैं। इस विलक्षण मत के संस्थापकों में से सब से साहसी और अग्रसर डाक्टर मैंडेविल (Dr. Mandeville) हैं। इनके हाथ में पड़ कर इस सिद्धांत ने अत्यन्त ओजस्वी और प्रभावशाली रूप धारण किया है। इन महाशय के विचार में सदाचार आदि की प्रशंसा केवल राजनैतिक युक्ति है, और जिस सत्कर्म्म की प्रशंसा करना संसार स्वीकार करता है वह केवल कर्त्ता का ऊपरी दिखाव के लिए आडंबर मात्र है। ये कहते हैं कि मनुष्य का जीवन परस्पर पाखं
में व्यतीत होता है जिसमें कि छल से अपना
वर्त्तमान सुख उस शाबाशी की लालसा से परि
किया जाता है जिसको कि समाज, जो उस
त्यागी व्यक्ति से भी बढ़ कर धूर्त्त है, सदैव
लिए प्रस्तुत रहता है। किन्तु यह साधुवाद
सुख-परित्याग के प्रतिकार में दिया जाता है
उसके अर्थात् समाज के लाभ के हेतु किया
है। इनका कहना है कि मनुष्य भी स्वभावतः
जीवधारियों की तरह केवल अपनी ही तुष्टि चा
है; दूसरे के सुख वा दुःख का कुछ विचार
करता। अतएव सब से पहला काम प्रत्येक दे
शास्त्रकारों को यह देख पड़ा कि किसी न कि
प्रकार इनसे अपना अपना कुछ सुख समाज
भलाई के लिए परित्याग करावें। किन्तु यह
ऐसे जीवों से प्राप्त करना जो कि अपना ही
देखते थे बिना उस परित्यक्त सुख का पूरा ब
दिए हुए संभव नहीं था। परिवर्त्तन में इंद्रि
भोग की तो कोई ऐसी सामग्री मिली नहीं जि
कर संतुष्ट किया जाता, इससे मनुष्य को एक दू
ही तृष्णा का सहारा लेना पड़ा। इस कार्य्य के
मनुष्य की प्रशंसा के हेतु स्वाभाविक तृष्णा उत्प
हुई। लोगों को फुसला कर यह विश्वास दिला
गया कि स्वार्थ परित्याग के कारण उनकी गि
महात्माओं में की जायगी। लोग चट इस
के लिए सन्नद्ध हो गए और अपने किसी आ
वा सुख को—जिसको वे कदापि परित्याग न
यदि अधिक लाभ न दिखाई पड़ता—उस साधु
के बदले में दे डालने को तैयार हो गए जि
उन्होंने अधिक मूल्यवान विचारा। The m
virtues are the political offspring wh
flattery begot on pride.

इस सिद्धान्त में यथार्थता का कितना अं
पाठकगण विचार सकते हैं। यह कहता
निरपराध स्त्री बालकों का हत्या-कांड देख कर
कोई दो चार बूँद आँसू गिरा देता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रश]ंसा की इच्छा प्रगट करता है वह केवल संसार को दिखाने के लिए; अर्थात् उस सुख अथवा आनंद को जो इस घटना के निरीक्षण के पूर्व उसमें था, वह कदापि परित्याग न करता और अपने चित्त को आँसू गिरा कर व्यथित न करता यदि एक भीड़ उसके इस कर्म के देखने को वहाँ न खड़ी होती। इस मत के दृष्टान्त इस संसार में इतने अधिक मिलते हैं कि एक सामान्य विवेचनावाले मनुष्य को उसके व्यापकत्व में प्रतीति लाने को बाध्य कर दे सकते हैं। बात यह है कि सच्चे सदाचार को संसार में प्रतिष्ठा और आदर पाते देख लोगों ने उसके बाहरी लक्षणों की नक़ल उतारनी आरंभ की। धीरे धीरे लोगों के लिए स्वार्थ-साधन का यह एक मार्ग निकल गया। इस तरह के स्वाँग बहुत दिख-लाई देने लगे। कोई देश काल के विरुद्ध चौगोशिया टोपी दिए और छः कली का घेरदार अंगरखा कटकाए इस आसरे में बैठा है कि कोई आकर देखे और कहे कि "अहा! बाबू साहब भी कैसे सीधे सादे और सज्जन व्यक्ति हैं।" कोई चंदन चर्चित कलेवर में किसी हवादार मैदान में खड़ा हो कर शंखनाद द्वारा अपने सदाचार की घोषणा कर रहा है। पर जिस तर्कनाप्र-णाली पर उपर्युक्त सिद्धान्त अवलंबित है वह दूषित है। उसमें यह पहले ही मान लिया गया है कि समस्त सद्विचार पाखंड हैं तदुपरान्त इस कथन का विस्तार बड़े कौशल के साथ किया गया है और संसार में प्राप्त अधिकांश उदाहरणों का बड़ा सजीव और तद्रूप चित्र खींचा गया है। अच्छा, हम थोड़ी देर के लिए मान भी लेते हैं कि हम सब लोग वास्तव में पाखंडी हैं और जीवन की धूर्तता से जानकार हैं; ऐसी अवस्था में हम सदाचार का लक्षण स्वयं बना सकते हैं पर औरों पर जिन्हें हम उसी कपट-वेष में देखते हैं क्योंकर श्रद्धा कर सकते हैं जब कि हम सदा-चरण के मूलतत्त्व से पूर्णतया विज्ञ हैं? अर्थात् स्वयं गहरे पाखंडी हो कर हम पाखंडियों के कार्य्य पर क्यों कर श्रद्धा और विश्वास रखते हैं?

यदि सत्यतः इस जगत में किसी एक की प्रस-न्नता दूसरे पर होती है, किसी एक की आराध्य-दृष्टि अन्य पर होती है तो यह स्पष्ट है कि यह श्रद्धा वा पूज्य बुद्धि कदापि जान बूझकर पाखंड के प्रति नहीं होती बल्कि उस सच्ची सात्विक-शीलता के लिए होती है जिसके चिंतन और हमारी श्रद्धा के बीच कोई दूसरा भाव नहीं घुस सकता। यह कैसे अनर्थ की बात होगी यदि हम उन लोगों को जो हमारे निकटवर्ती मित्र कहलाते हैं सदा अविश्वास की दृष्टि से देखा करें; माता, पिता, भार्य्या की स्नेह भरी दृष्टि तथा अनुराग पूरित वचनों में, बच्चों की मीठी मीठी बोली में, मित्रों के आश्वास-वाक्यों में कपट ही कपट देखें और जैसे २ वाक्य अधिक कोमल सुनाई पड़ें वैसे २ हम उनकी ओर से और अधिक कपट समझें और सोचें कि वे उनको इसी हेतु कोमल करते जाते हैं जिससे धोखा देने में और भी कम कसर रह जाय। यदि यह विचार अभाग्यवश किसी के चित्त में समा जाय तो उसके लिए समाज नरक हो जायगा, उसे निर्जन स्थान ही का निवास वांछित होगा। उपर्युक्त मतानुसार सदाचरण केवल प्रशंसा की खोज है। यह (सदाचार) एक सुख का त्याग अवश्य करता है, पर काल और मात्रा के विचार से अधिक के लिये अथवा यों कहिए कि इस सदाचार की आड़ में स्वार्थ छिपा बैठा है। इस विचित्र बात को सिद्ध करने के लिए इस मत के अनुयायीगण यह युक्ति उपस्थित करते हैं। यदि हम किसी की भलाई की इच्छा करते हैं तो यह हमारे लिए आनंद का विषय होगा कि वह सुखी हो और यह इच्छा यदि पूर्ण न हुई तो हमें क्लेश होगा। इस पूर्त्ति के आनंद को तथा विफलता के क्लेश को सामने रख कर क्या हम संशय कर सकते हैं कि हमारा अभीष्ट वास्तव में अपना ही हित-साधन नहीं था? यह तर्क वास्तव में उलझन में डालने के लिए रचा गया है; परीक्षा करने पर यह सर्वथा निरर्थक ठहरेगा। हमारा प्रश्न यह नहीं है कि अमुक रीति से कार्य्य होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनंदकारक और न होना क्लेशकारक है वा नहीं; हमें तो यह देखना है कि क्या आनंद ही हमारी इस इच्छा का उद्देश्य है ? इस स्वार्थवादी सिद्धांत का आधार वह आनंद समझा गया है जो किसी सत्कर्म्म के उपरान्त हमें प्राप्त होता है। परंतु थोड़े ही विचार से स्पष्ट हो जायगा कि वह कार्य्य वा परिणाम है, कारण नहीं। हमें परोपकार करने में आनंद अवश्य मिलता है—पर वह इसलिए कि हम उपकार करते हैं और उसके करने की पूर्व से अभिलाषा रखते हैं। यह आनंद हम अनुभव करते हैं इसलिए हम उपकार नहीं करते। यदि हम उपकार न किए होते तो इस उपकार के आनंद को उसी प्रकार न जानते जिस प्रकार बिना रूप रङ्ग को देखे हुए सौन्दर्य्यगत आनंद को। यह कहना कि हम अपने आनंद ही के हेतु उपकार करते हैं ऐसा ही है जैसा कि यह कहना कि रूप और रंग की ओर दृष्टि पड़ जाने का कारण तद्गत आनंद ही है। उपकार की इच्छा हम पूर्व से रखते हैं। यदि हमारी यह इच्छा किसी दूसरे पर प्रकट हो जाती है तो तुरंत हमारी ओर उसके चित्त में श्रद्धा वा रुचि उत्पन्न हो जाती है। बस सदाचार का नित्यलक्षण यही है। कुमार्गी से कुमार्गी मनुष्य भी यदि इसका सच्चा उदाहरण कहीं पा जायगा तो चट साधुवाद देकर अपनी आध्यात्मिक अभिरुचि प्रकट करेगा। परोपकारी मनुष्य आनन्द अवश्य अनुभव करता है परन्तु वह उस आनन्द को त्यागने में भी कुछ कसर न करेगा यदि उसकी यह क्षति उस स्वार्थ-परित्याग का कोई अंश हो सके जिसको उसने किसी के भले के लिए किया है। यह सत्य है की सदाचारी पुरुष दूसरे का उपकार करके स्वयं अपना उपकार करता है, किन्तु उपकार करते समय वह अपना कुछ भी ध्यान नहीं रखता, वह अपने को बिलकुल भूला रहता है। उसका महान् उद्देश्य यही रहता है कि वह दूसरे का भला करे; स्वयं उसके सुख की योजना करना तो विश्वात्मा का उद्देश्य है।

यदि सात्त्विकशीलता कुछ नहीं केवल अपना लाभ है तो वह प्रशंसा और भक्ति भी जो सदाचारी की जाती है केवल अपने ही लाभ के लिए हुई। बात इस मत के अनुयायिओं ने ही अपने श्री से कही है। अब मान लीजिए कि नादिरशाह, आदि घोर अत्याचारी हममें से किसी के अपनी लूट का समस्त धन रख दें और कहें "यह सब तुम्हारा है यदि तुम हम पर श्रद्धा भक्ति करना स्वीकार करो" तो क्या श्रद्धा हृदय में चट उमड़ आवेगी ? क्या हम ऐसे पर इतनी सुख-सामग्रियों के दाता उन दुराचारी के प्रति एक भी ऐसा मानसिक उद्गार अनुभव जैसा किसी एक सामान्य व्यक्ति के तुच्छ से सद्व्यवहार के लिए जो हमारे सांसारिक सु कुछ भी वृद्धि नहीं कर सकता। यदि सत्कर्म स्वार्थ है तब क्यों उपर्युक्त अवस्था में हमारी और घृणा में उसी हिसाब से अन्तर नहीं जाता है जिस हिसाब से सांसारिक उपभोगों नवीन नवीन प्रलोभन हमें दिखाया जाता है। दुराचारी के प्रति हमें जो घृणा होती है वह इस नहीं कि दुराचार स्वयं उत्कृष्ट से उत्कृष्ट उदा की अपेक्षा हमारी श्रद्धा के कम योग्य है इसलिए कि उससे हमारे स्वार्थ में हानि पहुँचती संभव है कि यदि कोई घोर दुराचारी हमें घूस करे तो उसके प्रति जो पहले हमें घृणा थी वह हलकी चिढ़ के रूप में हो जायगी, और वह भी एक सामान्य अप्रसन्नता के रूप में हो जाय और यदि घूस और भी बढ़ा दी जाय तो अप्रसन्नता भी थोड़ी श्रद्धा के रूप में हो जा यहाँ तक कि ज्यों ज्यों हमारे सामने घूस की लगती जायगी त्यों त्यों यह श्रद्धा भी भक्ति, प्र आराधना इत्यादि स्नेह की विविध श्रेणियों में हुई उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी और अन्त में हम दुराचारी को, जिसने हमें इतना सुख-साधन किया, उसी पूज्य और आराध्य दृष्टि से देखने जिस दृष्टि से कि हम संसार के प्रातःस्म महोपकारी महात्माओं को देखते हैं। मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यह ऐसा ही असंभव है जैसा द्रव्य का लालच दिखला कर किसी व्यक्ति को लाल रंग को हरा अनुभव करा देना। यह हो सकता है कि हम उस दुराचारी को साष्टांग दंडवत करें, निरपराध बच्चों और अबलाओं को काटते हुए देख कर धन्य धन्य करें किन्तु इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकते। हम अपनी जिह्वा को झूठी बना सकते हैं, अपने घुटनों को पृथ्वी पर गिरा सकते हैं किन्तु अपने अन्तःकरण पर हमारा कोई वश नहीं है। वहाँ पर न्याय अपनी वाणी नहीं रोकेगा, वहाँ पर पाप जिसको हम सराह रहे हैं तिरस्कृत ही रहेगा और जिसको हम देवता कह कर पुकार रहे हैं वह पिशाच ही रहेगा।

इस सदसत्सम्बन्धी विवेक के अनुसन्धान में हमें यह भी देख लेना है कि बुद्धि की उसमें कहाँ तक पहुँच है; क्योंकि बहुत से तत्त्वविदों के विचार में अन्तःकरण वृत्ति (बुद्धि) से यह विवेक भी उत्पन्न होता है। डा० क्लार्क (Dr. Clarke) इस सिद्धान्त के स्थापक हैं। इनके विचार में सदाचरण अपने व्यवहार को उस उपयुक्तता के अनुकूल ले चलना है जो हम पदार्थों में देखते हैं अर्थात् उनके पारस्परिक विलक्षण सम्बन्ध को देख भाल कर काम करना है। इस मत में और लक्षण दोष जो है वह तो है इसके अतिरिक्त उस भावना का आरोप पहले कर लिया गया है जिसका हेतु यह उपयुक्तता उसको लक्ष्य करने की शक्ति कुछ भी नहीं हो सकती। बुद्धि से पृथक् एक रुचिकर वा अरुचिकर भावना अवश्य होनी चाहिए अन्यथा ये हज़ारों उपयुक्तता और यथार्थता व्यर्थ ही होंगी तथा एक ग़लत घड़ी वा गणित क्रिया की बुद्धि देख कर उतना ही तीव्र क्रोध और घृणा अनुभव करेगी जितना एक लुटेरे को किसी ऐसे निर्धन को लूटते देख कर जिसे दिन भर में भी अन्न का ठिकाना नहीं लगता।

उपयुक्तता एक सापेक्षिक शब्द है। यह केवल कर्म की योग्यता ही प्रकट करता है चाहे अन्तिम परिणाम कुछ ही हो। अन्तिम परिणाम निकाल देने से यह केवल योग्यता ही योग्यता रह जाती है अर्थात् इसमें भलाई बुराई का समावेश नहीं हो सकता। पर हम तो परिणाम की भलाई बुराई की ओर देखते हैं अतएव हमें तो सदा स्वयं उपयुक्तता ही की भलाई बुराई की परीक्षा करनी रहती है। यदि केवल उपयुक्तता ही का विचार किया जाय तब तो सदाचार की अत्यंत प्रसन्नता तथा सुख उत्पन्न कर देने की उपयुक्तता से दुराचार की घोर हलचल तथा आपत्ति उत्पन्न कर देने की उपयुक्तता कुछ घट कर प्रशंसनीय न होनी चाहिए।

बुद्धि कर्म्मों के द्वारा उपस्थित किए हुए परिवर्त्तनों तथा उनकी भिन्न भिन्न मात्रा की संभावनाओं ही को दिखलाती है, हमारा सदसत्संम्बन्धी विवेक अन्तःकरण की एक दूसरी वृत्ति पर स्थित रहता है। यदि हममें पहले ही से लोगों (व्यक्ति वा समुदाय विशेष नहीं जिन्हें हम अपने सद्भावों का अधिकारी नहीं समझते) के हित से अनुराग और उनके अनिष्ट से अश्रद्धा न रहे तो हमें कौन बतलावे कि अमुक कर्म जिससे दूसरे को लाभ पहुँचता है उस कर्म की अपेक्षा अधिक श्रेय है जिससे दूसरों को हानि पहुँचती है। बुद्धि का काम तो केवल इतना ही है कि वह आपको बतला दे कि अमुक रीति से कार्य्य करने में सांसारिक पदार्थों के बीच ये ये परिवर्त्तन उपस्थित होंगे और उनसे इतने प्राणियों को सुख और इतने प्राणियों को दुःख पहुँचेगा। बुद्धि की सहायता की सीमा यहीं तक है। वह आपको यह न बतलावेगी कि आप उस परिणाम को त्याग कर जिससे लोगों को दुःख पहुँचता है उस परिणाम को उपस्थित करने की चेष्टा करें जिससे लोगों को सुख पहुँचे। यह पवित्र आदेश तो उसी मानव अन्तःकरण की रुचि का है जो विश्वात्मा की रुचि का एक अंश है*।

—:o:—

* Dr. Brown के Philosophy of the Human Mind, के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरी लिपि।

भारतवर्ष के प्रायः सब भागों में अपने अपने देशभाग की मातृभाषा की उन्नति के लिये अनेकानेक सभाएं हैं और वे यथाशक्ति उन्नति भी करती हैं। इसी प्रकार हमारे इन प्रान्तों में भी देशभाषा तथा लिपि के प्रचार और उन्नति की अनेक संस्थाएं हैं जैसे 'हिन्दी भाषा सम्वर्द्धिनी सभा,' 'हिन्दी साहित्य समिति,' 'नागरी प्रचारिणी सभा,' 'नागरीभाषोत्तेजनी सभा' आदि। इन सब के नामों को देखने से सन्देह होता है कि क्या 'हिन्दी' और 'नागरी' दो भाषाएं हैं। परन्तु 'हिन्दी' और 'नागरी' दोनों एक ही भाषा मानी जाती हैं। प्रथम यह विचार कर्तव्य है कि 'हिन्दी' शब्द से क्या तात्पर्य्य है। भिन्न भिन्न विद्वानों के इस विषय में जुदा जुदा मत हैं। किसी किसी का यह मत है कि 'हिन्दी' शब्द विदेशी भाषा का है जो इस देश की भाषा में मिल गया है। विदेशी 'हिन्दी' शब्द को काफ़िर वा डाकू के अर्थ में प्रयोग करते थे और विरुद्धधर्मी होने के कारण वे पीछे से इस देश के वासियों को 'हिन्दी' या 'हिन्दू' कहने लगे। बहुत काल तक शब्द के व्यवहार में रहने से इस देशवासियों ने उसके बुरे अर्थ की ओर ध्यान न देकर उसे अपना लिया और स्वयं 'हिन्दी' कहने और कहे जाने को गौरव मानने लगे। दूसरे पक्ष वाले यह कहते हैं कि यह शब्द विदेशी विधर्मी भाषा का नहीं है वरन् इसी देश का है और इस शब्द के वे अर्थ नहीं हैं जिनमें विदेशी कभी इसका प्रयोग करते होंगे।

ऐसा देखने और सुनने में आता है कि बाहरी देशों के लोग यहाँ के निवासी तथा भाषा दोनों ही को हिन्दी कहते हैं। पुराने काल की ज़न्दभाषा की और फ़ारसी भाषा की पुस्तकों के देखने से ज्ञात होता है कि 'हिन्दी' शब्द सामान्य रूप में इस देश के सब वासियों के लिए प्रयुक्त किया जाता मौलाना रूम ने इस देश के मुसल्मानों 'हिन्दी' कहा है जिससे यह स्पष्ट है कि पूर्व में भी 'हिन्दी' शब्द विदेश में धर्मी विधर्मी लिए समान व्यवहृत होता था। ज़ंद संस्कृ प्राकृत भाषा के मिलान करने से जाना जाता ये दोनों भाषा एक ही होंगी; क्योंकि ज़ंद भा संस्कृत शब्द कुछ बिगड़ कर व्यवहृत हुए है काल पाकर दोनों देश के निवासियों में धर्म यक कुछ मतभेद होजाने से संस्कृत के शब्द रीत अर्थ में प्रयुक्त किये जाने लगे। 'हिन्दी' शब्द भाषा में आया ही है जिससे ऐसा अनुमान है कि वहाँ वह विदेशी के अर्थ में लिखा गया है वह किसी संस्कृत के विशेष शब्द का अपभ्रंश गुजरात काठियावाड़ और पश्चिमी राजपूता भागों में गँवारी वा मामूली भाषा में 'स' 'ह'कार उच्चारण करते हैं जैसे सगा को हगा, को हाहू. सांभल्यूं को हांभल्यूं आदि बोल इसी प्रकार पूर्व समय में 'सिन्ध' का 'हिन्द 'सिन्धी' का 'हिन्दी' होगया था। भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा सदा से 'सिन्ध' नदी और पुरानी पुस्तकों के देखने से ऐसा भी जाता है कि इस देश के वासी शाकद्वीप (स आदि विदेशों को जाया करते थे जैसा कि की ज़रतुश्त की आयत में लिखा है कि व्यास नाम का हिन्द से आया?" जब इस के वासी बाह्य देशों में जाते थे तो वे 'सिन्ध' पार बासी कहते थे और 'स' कार कर ह करने से 'सिन्ध' का 'हिन्द' हो गए 'सिन्ध' पार के वासी 'सिन्धी' वा हो गये और इस प्रकार भारतवर्ष के इस देश और परदेश दोनों स्थान में 'हिन्दी' जाने लगे। भारतवर्ष के सब धर्म वा मनुष्य और उनकी सब भाषा तथा लिपि नामधारी हो गईं। यही व्यवस्था इस देखने में आती है कि ईरान, तूरान, रूम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशों में इस देश के सब धर्म तथा जाति के लोग 'हिन्दी' बोले जाते हैं। वहाँ लोग इस देश के मुसलमानों को भी हिन्दी कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि 'हिन्दी' शब्द बुरे अर्थ में व्यवहृत नहीं होता। पर इसके संग यह भी है कि जैसे यहाँ पर 'हिन्दी' शब्द किसी एक विशेष अर्थ सूचन करने में प्रयोग किया जाता है उस अर्थ में पहले वह काम में नहीं आता था। वास्तव में देखा जाय तो 'हिन्द' देश की भाषा 'हिन्दी' है जिसमें पंजाबी, सिन्धी, मारवाड़ी, ब्रजभाषा, पूरबी, बुन्देली, बिहारी आदि आ सकती हैं, क्योंकि भारतवर्ष का उत्तर भाग 'हिन्द' कहा जाता है और 'हिन्दी' भाषा में उरदू भी गिनी जा सकती है। इस हेतु 'हिन्दीभाषा' तथा 'हिन्दीसाहित्य' कहने से साधारण रीति पर पंजाबी पूर्वी उर्दू आदि हिन्द की भाषा से तात्पर्य्य हो सकता है परन्तु 'हिन्दी' सभा वा समिति वालों का तात्पर्य्य एक विशेष भाषा और लिपि से है और वह 'नागरी' शब्द से और इसी 'नागरी' की उन्नति तथा प्रचार के लिये वे प्रयत्नशील हैं। यह अवश्य माना जाता है कि आजकल 'हिन्दी' शब्द सब रीति से 'नागरी' के ही अर्थ में उपयोग किया जाता है, परन्तु विचारपूर्वक देखने से 'हिन्दी' का 'नागरी' एक भेद है परन्तु 'नागरी' 'हिन्दी' कहाने पर भी भिन्न स्वयं एक भाषा और लिपि है। जैसे इस देशवासियों को हिन्दी कहने से पंजाबी, बंगाली, गुजराती आदि सभी आ जाते हैं परन्तु गुजराती वा बंगाली कहने से हिन्द के एक प्रान्त के रहने वालों से तात्पर्य्य होता है इसी प्रकार हिन्दी और नागरी भाषा का प्रयोग है। अस्तु।

इसे सब विचारवान् सुज्ञ महाशय जानते मानते हैं कि जब कभी किसी देश ने समयानुकूल उन्नति की है तो उसने अपने देश की मातृभाषा ही के द्वारा की है क्योंकि सर्वसाधारण में पदार्थविज्ञान, रसायन, कलाकौशल, नीति आदि का ज्ञान इन इन विषयों सम्बन्धी मातृभाषा की पुस्तकों ही द्वारा हो सकता है और उसको सर्वजन सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए अपनी मातृभाषा का कोष विस्तृत करने की अत्यावश्यकता होती है और अपनी भाषा की लिपि को भी सुधारना अनिवार्य होता है। बिना लिपि के सुधारे और और भाषाओं के कितने ही शब्द ठीक नहीं लिखे जा सकते। मनुष्य के आन्तरिक विचारों को सबके समक्ष प्रगट करना भाषा का काम है पर लिपि का काम उन विचारों की प्रतिमा अक्षरों में निर्माण कर उनको अमर बनाना है और इन प्रतिमाओं द्वारा ही ज्ञान पा कृतकार्य होना है। क्योंकि जो आज संसार में लिपि न होती तो हमारे पूर्वकाल के ऋषि महर्षियों के विचार और उपदेश तथा प्रत्येक प्रकार की विद्या ऐसे पूर्ण रूप में आज हमको ज्ञात न होती और इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि उन्नत और समृद्ध देशों के अनेकानेक विषय के अनुभव वा ज्ञान हमको सहस्रों कोस पर बिना प्रयास न मिलते। इससे यही अनुमान होता है कि भाषा की अपेक्षा उसकी प्रतिमा लिपि का गौरव विशेष है। भारतवर्ष में अनेक भाषायें प्रचलित हैं और उनकी जुदी जुदी लिपियाँ भी हैं। हमारे प्रान्त की भाषा 'नागरी' है तो लिपि भी 'नागरी' नाम की है। और और लिपियों की अपेक्षा नागरी लिपि कितने ही अंशों में पूर्ण और शुद्ध मानी जाती है।

हमारे देश के तथा बड़े बड़े पाश्चात्य विद्वानों की खोज से जो सामग्री अब तक प्राप्त हुई है उसके सहारे ही 'नागरी' लिपि के जन्म का समय नियत करना दुःसाध्य काम है। कोई कोई महाशय यह कहते हैं कि जब से लेखन-प्रणाली चली है उसी काल से 'नागरी' लिपि प्रचलित है। उन लोगों का यह कथन पुरानी पुस्तकों, शिलालेखों और ताम्र पत्रों के आधार पर है। पर वे लोग जब तक किसी बलिष्ठ प्रमाण से अपने कथन का समर्थन न करें उसके मानने में संकोच ही होता है। बौद्ध धर्म का, ललितविस्तर नाम का एक पुराना ग्रंथ है, जो अनुमान विक्रम संवत् से पूर्व लिखा गया माना जाता है। उसमें लिखा है कि युवराज सिद्धार्थ (बुद्ध)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब अपने गुरु विश्वामित्र दारुकाचार्य के पास विद्याध्ययन करने गये तो उस समय वह ६४ लिपियों को जानते थे। उन ६४ लिपियों के नाम ये हैं:—

ब्राह्मी, खरोष्ठी, पुष्करसारी, अंग, बंग, मगध, मांगल्य, मनुष्य, अंगुलीय, शकारि, ब्रह्मवल्ली, द्राविड़, किनारी, दक्षिण, उग्रसंख्या, अनुलोम, अर्धधनुष, दरद, खास्य, चीन, हूण, मध्याक्षरविस्तर, पुष्प, देव, नाग, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, महोरग, असुर, गरुड़, उत्तरकुरुद्वीप, अपर गोड़ादि, पूर्वविदेह, मृगचक्र, वायुमरुत, भौमदेव, अन्तरिक्षदेव, उत्क्षेप, विक्षेप, प्रक्षेप, सागर, वज्र, लेखप्रतिलेख, शास्त्रावर्त, गणनावर्त, उत्पेक्षावर्त, निक्षेपावर्त, पादलिखित, द्विरुत्तर-पद-सन्धि, यावद्दशोत्तरपद-सन्धि, मध्याहारिणी, सर्वरुतसंग्रहणी, विद्यानुलोम, विमिश्रित, ऋषितपस्तप्त, रोचमान, धरणप्रेक्षण, सर्वौषधनिष्यंद, सर्वसारसंग्रहणी, और सर्वभुतरुत संग्रहणी।

इन ६४ लिपियों में 'नागरी' लिपि का कहीं नाम भी नहीं है। जैन लोगों के प्राचीन एकादश अंगों में समावाय नाम के चतुर्थ सूत्र में ऐसा वर्णन है कि ब्राह्मी लिपि, आदि जिन ऋषभदेवजी की पुत्री ब्राह्मी ने प्रचलित की थी और इसी कारण वह ब्राह्मी लिपि के नाम से प्रख्यात हुई। उसी स्थल पर १८ लिपियों के नाम इस प्रकार लिखे हैं।

ब्राह्मी, यवनाली, दाशपूरिका, खरोष्ठी, पुष्कर शारिका, पार्व्वतीया, उच्चत्तरिया, अक्षरपुस्तिका, भोगवयस्था, वेयणतिया, निराहइया, अंकलिपि, गणितलिपि, गंधर्व, आदर्श, माहेश्वर, दाम और बोलिदि।

इस स्थल के सिवा जैनों के चतुर्थ उपांग प्रज्ञापना सूत्र में भी जो श्यामार्य ने महावीर के निर्वाण के ३७६ वर्ष पश्चात् अर्थात् विक्रम संवत् से १०० वर्ष पूर्व लिखा गया था, इस प्रकार १८ लिपियों के नाम लिखे हैं।

ब्राह्मी, यवनाली, दाशपूरी, खरोष्ठी, पुष्करसारी, भोगवटिका, पार्वतीया, अंतरकरी, अक्षरपुस्तिका, वेणतिया, निहइया, अंकगणित, ग आदर्श, माहेश्वरी, द्राविड़ी और पोलिन्दा।

इन दोनों स्थलों में भी 'नागरी' लिपि का नहीं है। जैनों के मतानुसार सब अंग महावी समय में लिखे गये थे और उनके १७४ वर्ष प विक्रमी संवत् से २५० वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र श्रीसंघ में सब अंग एकत्र किये गये थे, जि यही अनुमान होता है कि महावीर के समय नागरी लिपि का नाम नहीं था। हाँ, ऐसा अनु किया जा सकता है कि इन लिपियों में से कोई आगे जाकर नागरी बन गई हो।

गुजरात प्रान्त में बड़नगर नामक स्थान वहाँ के बड़नगरे ब्राह्मण प्रख्यात हैं। उस न वलभी राजा ध्रुवसेन की आज्ञा से जैनियों कल्पसूत्र प्रसिद्ध हुआ था। यह समय विक्र छठी शताब्दी के आदि का था। कल्पसूत्र से काल पूर्व नन्दीसूत्र रचा गया था जिसमें 'ना लिपि का नाम देखने में आता है।

कल्पसूत्र कल्पद्रुमकलिका ग्रंथ में जैन प लक्ष्मीवल्लभगणि प्रचलित लिपियों को इस वर्णन करते हैं।

हंसलिपि, भूतलिपि, राक्षसीलिपि, उड्डी यक्षलिपि, यावनीलिपि, तुरकीलिपि, कीरी द्राविड़ीलिपि, सैन्धवीलिपि, मालवीलिपि, नडी नागरीलिपि, पारसीलिपि, लाटीलिपि, अनि लिपि, चाणकीलिपि, और मौलदेवी। इनके अ देशभेद से १८ लिपियाँ और लिखी हैं।

लाटी, चौड़ी, डाहली, कणाडी, गूजरी, स मरहठी, कौङ्कणी, खुरासाणी, मागधी, सि हाडी, कीरी, हम्मीरी, परतीरी, मसी, म महायोधी, इत्यादि।

ऊपर कहे हुए बौद्ध और जैन ग्रंथों के दे इतना स्पष्ट है कि विक्रम की तीसरी शता

* गुजरात देश के छत्रप राजा नहपान के 'नगरी' अक्षर प्रथम ही लिखे देखने में आते हैं विक्रमी तीसरी शताब्दी में हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व नागरीलिपि का नाम नहीं मिलता और उस समय के पीछे की पुस्तकों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों में नागरीलिपि का कुछ पता चलता है। कुछ पण्डितों का यह कहना है कि पुरानी पुस्तकों में जो देव, भौम-देव, अन्तरिक्षदेव आदि लिपियाँ लिखी हैं, उनमें से एक आज कल प्रचलित नागरी लिपि की जन्मदातृ है। पर जब तक कोई प्रमाण द्वारा वा दोनों लिपियों के सादृश्य द्वारा सिद्ध न किया जाय तब तक यह अविश्वसनीय है। इतना अवश्य है कि 'नागरी' लिपि किसी पूर्व की लिपि का रूपान्तर है पर यह निश्चय करना कि अमुक लिपि में से ही नागरी लिपि उत्पन्न हुई है, बहुत कठिन काम है। यह अनुमान करने का कि 'नागरी' मागधी अशोकलिपि का जो ब्राह्मी ही मानी जाती है, रूपान्तर है, एक प्रबल कारण विद्यमान है। ऐसा देखने में आता है कि जब एक सार्वभौम राजा का राज्य बहुत विस्तार का होता है और कई देशों पर प्रसरित होता है तो उन उन देशों की जुदी जुदी भाषा और लिपि होने पर भी राज्य भाषा और लिपि दोनों का प्रचार सब देशों में न्यूनाधिक हो जाता है। आज भारतखंड भर में इँगलैंड के महाराज का सार्वभौम राज है और अँगरेज़ी राजभाषा और लिपि में राज्य के सर्व कार्य्य होते हैं और इसी कारण अँगरेज़ी भाषा और लिपि का प्रचार केवल ब्रिटिश इण्डिया में ही नहीं है वरन देशी राज्यों में भी न्यूनाधिक फैला हुआ है और फैलता जाता है और लोगों के मन का झुकाव ऐसा होता जाता है कि एक समय अँगरेज़ी भाषा ही का उनकी मातृभाषा हो जाना सम्भव है। ठीक इसी रीति से पूर्वकाल में महाराज अशोक और गुप्तवंशीय राजाओं का सार्वभौम राज्य भरत-खंड के उत्तर भाग में बंगाल के समुद्र से सिन्ध नद के पार तक विस्तृत था और मागधी भाषा और लिपि का भी प्रचार भले प्रकार था जिसका समर्थन अशोक आदि मगध महाराजों के स्तंभ, शिलालेख और ताम्रपत्रों की भाषा और लिपि से जो सिन्ध तक देखने में आई हैं होता है। ऐसे ही कारणों पर ध्यान देने से यह अनुमान करने में आता है कि जहाँ जहाँ आज 'नागरी' लिपि का प्रचार देखने में आता है वहाँ की पूर्वकाल की प्रचलित लिपि पर मागधी का प्रभाव पड़ने वा मागधी लिपि पर उन देशों की लिपि का प्रभाव होने से मागधी लिपि ही रूपान्तर को पहुँचती चली गई और लक्ष्मीवल्लभ-गणि के समय में रूपान्तर को प्राप्त लिपि 'नागरी' नाम से प्रसिद्ध हुई। विद्वानों का ऐसा कथन है कि गया ज़िले में अफ़सड ग्राम में बाराहमूर्ति के पास जो एक शिलालेख है, उसकी लिपि को मागधी कुटिला बताते हैं और वह लिपि 'नागरी' लिपि से मिलती जुलती है। इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि मागधी लिपि का ही एक रूपान्तर 'नागरी' है।

'नागरी' लिपि के प्रचार का समय निश्चय करने में ताम्रपत्रों से भी कुछ पता चलता है। विक्रम की तीसरी-शताब्दी के राजा नहपान के सिक्कों में नागरी अक्षर हैं ऐसा विद्वानों का शोध है। विक्रमी छठी शताब्दी में गुजरात देश में गुर्जर राजों का राज्य था उनमें के एक राजा दद्दप्रशांत का एक ताम्रपत्र मिला है जो उस समय वहाँ की प्रचलित गुर्जर लिपि में है परन्तु उसके अन्त में राजा के हस्ताक्षर 'नागरी' लिपि से मिलती हुई लिपि में हैं और शोधक लोग उसको नागरी का रूप बताते हैं। इससे यही ध्वनित होता है कि 'नागरी' लिपि या तो राजा की लिपि हो वा राजा परदेसी थे इस कारण वह लिपि वे ही उत्तर देश से संग ले गये और निज काम में लाते रहे। इसके सिवा द्वारिका के पास धिनकि ग्राम में से सौराष्ट्र के एक राजा जिंकदेव का संवत् ७९४ का ताम्रपत्र मिला है। उसकी लिपि देखने से प्रतीत होता है कि उस समय 'नागरी' लिपि उस प्रान्त में प्रचलित थी। शक ६७५ के गुजरात के राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग खड्गावलोक के ताम्रपत्र की लिपि में तथा कोल्हापुर राज्य के शासनगढ़ ग्राम के ताम्रपत्र की लिपि में अक्षर विन्यास के देखने से स्पष्ट जाना जाता है कि उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इ, घ, च, ण, ध, न, ल और श अक्षर गुजरात में उस समय प्रचलित गुप्त लिपि से मिलते हैं और शेष अक्षर विकसित नागरी अक्षरों से मिलते हैं। इसी राष्ट्रकूट वंश के राजा, द्वितीय ध्रुवसेन, इन्द्र-नित्यवर्ष, गोविन्दसुवर्णवर्ष के नवीं और दसवीं शताब्दी के ताम्रपत्रों में त, घ, ण और न के सिवा और अक्षर वर्त्तमान नागरी अक्षरों से मिलते हैं और उक्त लिपियों के संयुक्त अक्षरों को देखने से ऐसा अनुमान किया जाता है कि वे पुराने गुप्त अक्षर विकास को प्राप्त हुए हैं। उत्तर भरतखंड में सिले-नियन राजाओं के सिक्के मिले हैं जिनमें से एक राजा के सिक्कों में 'श्रीवासुदेव वहमन' शब्द नागरी अक्षरों में लिखे कहे जाते हैं। ये सिक्के सातवीं शताब्दी के हैं। इन सब ताम्रपत्र तथा सिक्कों को देखते इस अनुमान को पुष्टी मिलती है कि 'नागरी' लिपि दूसरी शताब्दी में आजकल के प्रचलित रूप में आगई और जब तक कोई और विरुद्ध सबल प्रमाण न मिले यह अनुमान ठीक ही ज्ञात होता है।

जब यह सिद्ध सा हो गया कि 'नागरी' लिपि मागधी का रूपान्तर है तो यह प्रश्न उठता है कि इस मागधी के रूपान्तर का नाम 'नागरी' क्यों हुआ? मैथिली (विहारी) तथा बंगाली लिपियां भी मागधी का रूपान्तर कही जाती हैं और वे देश-भेद से मैथिली तथा बंगला लिपि कहाईं। परन्तु 'नागरी' नाम के लिए क्या कारण हुआ इसका अभी विचार करना है। ऊपर जो बौध और जैन ग्रंथों से भाषा और लिपियों के नाम दिये गये हैं उनके देखने से यह सिद्ध होता है कि भाषा और उसकी लिपि के नाम या तो देशपरत्व से वा जनसमुदाय के नाम से जिनमें वे प्रचलित थे रक्खे गये थे। जैन पंडित लक्ष्मीवल्लभगणि ने दो विभाग में लिपियों के नाम लिखे हैं, प्रथम उन लिपियों को लिखा है जो देशवासी जनों वा जन-समुदाय के नाम से बोली जाती थीं और दूसरी जगह वे लिपियां लिखी हैं जो देशभेद से नामांकित थीं। 'नागरी' लिपि को इस श्रेणी में लिखा है जो किसी विशेष जनसमुदाय वा देशवासियों के नाम से कही जा थीं। शेषवंशोद्भव नृसिंह के पुत्र शेषकृष्ण ने कृष्णपंडित के नाम से विख्यात थे और ७५० पूर्व हुए हैं अपनी प्राकृतचन्द्रिका नाम की पुस्त में उन भाषाओं के नाम लिखे हैं जो देश के नाम बोली जाती थीं। वहाँ 'नागरी' को भी लिखा है। यथ

महाराष्ट्री तथावन्ती शौरसैन्यर्धमागधी।
वाल्हीकी मागधी चैव षड़ेता दाक्षिणात्यजाः॥
ब्रचण्डो, लाट, वैदर्भौ उपनागर-नागरौ।
बार्वरा,–अवन्त्य,–पाञ्चाल,–टाक्का,–मालव,–कैकया;
गौडोलड,–दैव,–पाश्चात्य,–पाण्ड्य,–कौन्तल,–सैंह
कालिङ्ग,–प्राच्य,–कार्णाट,–काञ्च्य,–द्राविड,–गौर्ज
आभीरो, मध्यदेशीयः, सूक्ष्मभेद व्यवस्थिताः।
सप्तविंशत्यपभ्रंशा वैडालादि प्रभेदतः॥

इस स्थल पर 'नागरी' को देश भेद से बता उसको अपभ्रंश भाषा कहा है जिससे यह प्र होता है कि देश के किसी भाग विशेष की भाषा और भाषाओं के मेल से भ्रष्ट कर 'नागरी' भा में परिवर्त्तन किया था। जब 'नागरी' भाषा देश से कही जाती है और अपभ्रंश है तो इस भाषा 'लिपि' भी देशभेद से हुई और अपभ्रंश भी हु कल्पसूत्र, कल्पद्रुमकलिका के कर्ता के कथनानुस 'नागरी' नाम जनसमुदाय के नाम से हुआ है। इन दोनों स्थलों को मिलाने से यह सिद्ध होता कि 'नागरी' नाम एक जनसमुदाय के नाम से जिसके नाम से उसका निवास स्थान भी बो जाता था और उनकी भाषा और लिपि के नाम उस जनसमुदाय के नाम से ही रक्खे गये थे।

यहाँ तक तो यह निश्चय हुआ कि 'नागरी' न किसी स्थान विशेष और वहाँ के निवासियों के न से पड़ा है और उस स्थान के वासियों की भा तथा लिपि दोनों 'नागरी' कहाने लगीं। भरतखंड अनेक स्थानों के नाम नगर वा 'नागर' हैं। मह राज्य का एक भाग 'नगर' वा नागर है, जलाला के समीप का देश पूर्वकाल में 'नागरहार' के न से प्रख्यात था, नेपाल में 'नागरजंक' नाम का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इनके अतिरिक्त यदि किसी नगर के नाम से 'नागरी' लिपि वा भाषा का होना मानें तो पूर्व में अनेक ग्राम, वा क़सबे 'नगर' नामधारी थे जैसे चित्तौरगढ़ के पास 'नागरी' नाम का प्राचीन ग्राम है जिसके समीप से सिक्के मिले हैं जिनको देख तथा ग्रौर ग्रौर शोध कर मिस्टर कनिङ्घाम साहब इस निर्णय पर आये हैं कि यह ग्राम ईसा से पूर्वकाल का है ग्रौर इसका नाम त्रंबावती नगरी था। पंजाब में एक नगरकोट नाम का स्थान है ग्रौर यह भी पुराना गिना जाता है। तीसरे महाभारत में लिखा स्थान मालिनी नगरी था ग्रौर चौथा ग्राम गुजरात के अन्तरगत शड़नगर ग्राम है जो पुराने समय में आनन्दपुर ग्रौर नगर के नाम से प्रख्यात था। इस आनन्दपुर का नाम नगर होने के विषय में स्कंदपुराण के हाटकेश्वर माहात्म्य की कथा में लिखा है कि एक समय नागों का आक्रमण आनन्दपुर पर हुआ ग्रौर वहाँ के ब्राह्मण मारे गये ग्रौर जो बचे वे भाग गये। त्रिजात ने जो भर्तृयज्ञ के नाम से प्रख्यात हुआ उपाय कर नागों को निकाल दिया ग्रौर ब्राह्मणों को जो भाग गये थे दूर दूर से बुला कर फिर बसाया ग्रौर जो कि उसने पुर की रक्षा नागों से की थी इसलिए आनन्दपुर 'नगर' नामधारी हुआ ग्रौर वहाँ पर जो ब्राह्मण पुनः बसाये वे 'नागर' कहलाये। इनके सिवा देश में अनेक ग्राम वा पुर नगर नाम के हैं। अब जो यह माना जावे कि 'नागरी' भाषा वा लिपि का नाम किसी नागर नामधारी जनसमुदाय के कारण हुआ है तो प्रत्येक नगरवासी 'नागर' कहे जाने के सिवा मुख्य दो जनसमुदाय वा जाति 'नागर' नाम की ज्ञात हुई हैं। एक जाति काबुल के उत्तर भाग में रहती है ग्रौर वह अपने को क्षत्रिय ग्रौर राजपूताने की रहनेवाली बताती है। वह बहुत काल से देश से बाहर चली गई है ग्रौर अब मुसलमान धर्म में है। पूर्वकाल में राजा सगर ने जैसे चक, जात, हूण, कलचूरी, हैहय, कम्बोज, पल्हव, पारद आदि क्षत्रियों को देशबाह्य किया ग्रौर वे दूर देशों में जा बसे ग्रौर धर्मभ्रष्ट हुए इसी प्रकार यह काबुल के उत्तर भाग के निवासी देश से बाह्य जा बसने से आज परदेशी माने जाते हैं। क्या आश्चर्य कि वास्तव में वे इस देश के ही वासी हों ग्रौर उनका निवासस्थान सिन्धनद के समीप रहा हो ग्रौर इनके निवास के कारण जलालाबाद के समीप का भाग नागरहार नाम से प्रख्यात हुआ हो। इस जाति के सिवा 'नागर' नाम की प्रख्यात ब्राह्मण जाति गुजरात में है जिसकी पूर्व कथा स्कंद पुराण के 'नागरखंड' में लिखी है ग्रौर गुजरात काठियावाड की रियासतों के इतिहास में इस समुदाय के लोगों ने राज कार्य भार में सदा से जो भाग लिया है उसका वर्णन मिलता है। ऊपर कहे हुए दोनों समुदाय वा जाति के अतिरिक्त काशमीरी ब्राह्मण, जट, गूजर, मैथिल ब्राह्मण, संथाल के कृषक, आदि में नागर नाम की उपजाति हैं परन्तु इन सब उपभेदों की इतनी प्रख्याति कहीं जानने सुनने में नहीं आई कि जिस से इनमें से किसी के लिए यह अनुमान किया जा सके कि 'नागरी' नाम इनके ही कारण हुआ था।

ऊपर कहे हुए नागर वा नगर नाम के स्थानों ग्रौर 'नागर' नाम के जनसमुदाय वा जाति पर विचार करने से यही अनुमान होता है कि नागरहार नाम के स्थान ग्रौर वहाँ के पूर्ववासी नागरों से जो अब काबुल देश में हैं 'नागरी' लिपि की उत्पत्ति ग्रौर नाम हुआ हो वा गुजरात प्रान्त की प्रख्यात नागर ब्राह्मण जाति जिसका मुख्य ग्राम बड़नगर था 'नागरी' लिपि की जन्मदातृ थी। बंगाली विश्वकोश के रचयिता श्रीयुत नगेन्द्रनाथ वसु ने स्पष्ट लिखा है कि 'नागरी' लिपि का उद्भव नागर ब्राह्मणों से हुआ था। एक महानुभाव का अनुमान है कि पंजाब के नगरकोट नामी ग्राम के वासी नागर कहे जाते थे ग्रौर वहाँ से जो लोग देश में दूर दूर तक जा बसे वे सब 'नागर कहे जाने लगे। इसी कारण काशमीर के ब्राह्मण, जाट, गूजर, गुजरात के नागर ब्राह्मण, मैथिल आदि में 'नागर' उपनाम हो गया, वास्तव में सब एक थे ग्रौर एक स्थान के वासी थे। इनके लेख को विचारते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नागरी' लिपि और भाषा का उद्भव स्थान 'नगरकोट' हो सकता है और 'नागरी' भाषा तथा लिपि उसी नगरवासियों की भाषा और लिपि मानी जा सकती है। एक समय ऐसा हुआ हो परन्तु आज यदि पंजाब में जायँ और नगरकोट को भी देखें तो न वहाँ के वासियों को ही कोई 'नागर' कहता है और न वहाँ की भाषा और लिपि ही नागरी है और न वहाँ के वासी अपने को 'नागर' कहते हैं। दूसरी ओर 'नागर' ब्राह्मणों के विषय में यह कहा जाता है कि वे उत्तर देश से जाकर आनर्त देश अर्थात् गुजरात में बसे थे और इस बात का समर्थन स्कंद पुराण के नागरखंड से भी होता है। जिस समय ये गुजरात में जाकर बसे अपनी देश लिपि को भी संग ले गये और उसे अपने काम में लाने लगे। जो नागर ब्राह्मण शास्त्रज्ञान धर्मकर्मानुष्ठान तथा राज व्यवहार में निपुण और कुशल थे वे लोक में और राज्य कार्यभार में आगे आने लगे और सामयिक शासनकर्ता राजाओं के पूरे कृपापात्र विश्वसनीय मंत्री होने लगे। वे धर्मकर्मानुष्ठानों में भी मुख्य गिने जाने लगे और इस कारण उनकी लिपि ने भी राज्य कुल में मान आदर पाया। यही कारण है कि नहपान के सिक्कों की लिपि के सिवा दूसरे ध्रुवसेन के समय में 'नागरों' की लिपि 'नागरी' का नाम जैन ग्रंथों में भी लिखा गया था। गुर्जर राजा दद्दप्रशान्त के ताम्रपत्र के देश की गुहा लिपि में लिखे जाने पर भी राजा ने अपने हस्ताक्षर 'नागरी' लिपि में किये जिसका भी अभिप्राय यही होता है कि राजकुल में राज के मंत्री और पुरोहितों की लिपि का आदर और प्रचार था। इन सब बातों को मनन करने से यह सिद्ध होता है कि 'नागर' ब्राह्मण उत्तर से गुजरात में बसे और नाग भय से देश को छोड़ और देशों में चले गये और जब नागों को गुजरात से भगा दिया गया तो वे फिर देश देशान्तर से जाकर अपने पुराने नगर आनन्दपुर में बसे और उस नगर का नाम 'नागर' पड़ा और वे ब्राह्मण 'नागर' कहाये। दूसरी बेर देश में जाने के समय वे अपने संग उत्तर देश की प्रचलित लिपि को [illegible] मागधी होगी लेते गये और उन्होंने उसकी लेख प्रणाली में कुछ परिवर्तन भी किया जिसके कारण गुजरात अर्थात् आनर्त देश में वह नागर ब्राह्मणों [illegible] नाम से 'नागरी' कही जाने लगी। आज भी यदि गुज-रात की प्रचलित लिपि को ब्राह्मी वा मागधी [illegible] मिलावें तो बहुत से अक्षर थोड़े बहुत तोड़ मरोड़ से ब्राह्मी लिपि से ही बने ज्ञात होते हैं [illegible] दोनों लिपियों के मस्तक नहीं वेधते यह भी [illegible] सादृश्य विद्यमान है। काल पाकर यह लिपि [illegible] विस्तार को पहुँची और उत्तर तथा मध्य भारत [illegible] उसका मुख्य स्थान भी हुआ परन्तु नाम जो उस लिपि का 'नागरी' हो चुका था वही बना रहा। इतने पर भी 'नागरी' भाषा और लिपि को पू[illegible] विकास पाने का स्थान मध्य देश ही ज्ञात होता [illegible] जहाँ की भाषा और लिपि 'नागरी' नाम से आ[illegible] भी बोली जाती है, नाम चाहे जिस देश [illegible] जाति से पड़ा हो।

ऊपर लिखे तुच्छ विचारों को सभ्य विद्व[illegible] मंडल के समक्ष निवेदन कर मैं प्रार्थी हूँ कि वे अ[illegible]चित वा असमंजस लेख को क्षमा करेंगे और इस[illegible] जो त्रुटि हो उसको सूचित करके और उसके सुध[illegible] बता के अनुगृहीत करेंगे*।

—:०:—

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार ता० २९ जनवरी १९१४ सन्ध्या के ५½ [illegible]

स्थान सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (ता० २९ नवम्बर १९१[illegible] का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) हरदोई के बाबू गिरिशचन्द्र गुप्त का पत्र [illegible] स्थित किया गया जिस में उन्होंने लिखा था [illegible] हिन्दी की उन्नति के उपाय पर एक सर्वो[illegible]

---

*एक महाशय ने जो एतद्देशीय ज्ञात नहीं होते [illegible] कर यह लेख हमारे पास भेजा है पर अपना नाम लि[illegible] की कृपा नहीं की। इससे हम उसे प्रकाशित करने [illegible] असमर्थ हैं।—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख लिखने वाले को वे सभा द्वारा ५) रु० का एक पदक दिया चाहते हैं।

निश्चय हुआ कि उन्हें लिखा जाय कि वे हरदोई के सरस्वती क्लब के द्वारा कृपापूर्वक इस पदक का प्रबन्ध करें।

(३) बाबू सारदाचरण मित्र का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने निम्न लिखित मिमोरियल की एक प्रति लिपि सभा की सूचना के लिए भेजी थी और पूछा था कि सभा इस सम्बन्ध में क्या किया चाहती है :—

THE RIGHT HONOURABLE

The Secretary of State for India.

The undersigned memorialists desire to call the tention of Government to the following facts :—

That according to the Report of the census of dia (1911) out of a total population of 31,51,32,537 ere were 29,48,75,811 illiterates ; and

That while the illiteracy varies according to sex d religion the amount is lamentably great in all sses, 90 per cent of the males and 99 per cent of females being illiterate and whole classes of the ople being in almost total ignorance of the arts of ding and writing ; and

That according to Dr. Isaac Taylor "the distinct habets (really syllabaries) employed by this vast regate of human beings (the population of India) number all the alphabets used by the remainder the world, many of them being among the most borate that have ever been devised ;" and

That though there are on an average only 37 ele-ntary sounds, which, with an alphabet, would uire separate letters, and only 53 for the whole of languages, yet with the indigenous script from 0 to 1000 complicated types are required for each nacular, and, in all, there are from 10,000 to 000 elaborate types used for printing, the confu-n being sometimes increased by the same language ng printed in various scripts and the same script ng used for various languages ; and

That all the complication of the 500 to 1000 types of the syllabary must be mastered before any reading is possible ; and

That according to Sir Monier Williams "the employment of (these) complicated symbols places a serious obstacle in the path of advancing education" ; and

That the difficulty of learning to read is such that "out of 55,23,730 children under instruction, about 40,00,000 are in primary schools, and that out of these four millions the greater part are in the three lowest classes" ; and

That according to the census of 1901 "the spread of education does not depend on the number of schools, and there are large sections of the population who will remain ignorant however many schools there may be, unless something is done to attract them more than has hitherto been attempted" ; and

That the Government contemplate a wide extension of elementary education, which, if carried out in the complicated syllabic scripts will cause a continuation of the present difficulties of the indigenous character ; and

That many of the indigenous scripts cause a serious strain on the eyesight both in the written script and the printed books ; and

For these and many other reasons set forth at length in pamphlets and extracts of the views of oriental scholars, educationalists, Indian civil servants, missionaries and others, copies of which are in the India office, your memorialists pray that Government will appoint a commission, on which Indians and Indian interests shall have full representation, to consider the question of a common alphabet for Indian languages and to decide upon some alphabets, which, on approval by Government, shall be sanctioned for optional use in schools and public courts.

निश्चय हुआ कि बाबू सारदाचरण मित्र को सूचना दी जाय कि यद्यपि यह सभा मेमोरियल देने वालों के सिद्धान्तों से सहमत नहीं है तथापि वह इस कमीशन के नियत होने में कोई हानि नहीं देखती। जिस समय कमीशन नियत हो जायगा उस समय सभा अपना कर्त्तव्य निर्धारित करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) बाबू तेजूमल एम. कनल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने 'देशसेवा' पर एक सर्वोत्तम लेख लिखने वाले को सभा द्वारा ५) रु० का एक पदक देने की इच्छा प्रगट की थी।

निश्चय हुआ कि बाबू तेजूमल एम कनल से पूछा जाय कि देश सेवा से उनका क्या अभिप्राय है।

(५) हरदोई के सरस्वती क्लब का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने लिखा था कि उनके क्लब ने निश्चय किया है कि सभा अपनी अध्यक्षता में उस क्लब को चलावे और उसकी कुल सामग्री की मालिक रहे।

निश्चय हुआ कि मंत्री से प्रार्थना की जाय कि वे इस सम्बन्ध का क़ानून देख कर सभा को उचित सम्मति दें।

(६) ठाकुर केशरीसिंह बारहट का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने नागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित 'ज्योतिषप्रबन्ध' शीर्षक लेख को पुस्तकाकार छपवाने की आज्ञा माँगी थी।

निश्चय हुआ कि इसके एक संस्करण के प्रकाशित करने की आज्ञा दी जाय और इस संस्करण के लिये वे सभा को इस पुस्तक की १०० प्रतियाँ दें।

(७) विश्वेश्वरगंज के पोस्ट मास्टर का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्होंने कुछ समय तक नये पोस्ट आफिस के लिये सभा में कुछ स्थान के लिये प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि सभा को दुःख है कि उसके भवन में कोई स्थान ख़ाली नहीं है।

(८) डाकृर छन्नूलाल मेमोरियल मेडल के लिये शरीर साधन पर मुरादाबाद के मिस्टर एम. डी. चतुर्वेदी और शाहपुर के बाबू बलदेवप्रसाद के लेख उपस्थित किये गये।

निश्चय हुआ कि इन पर विचार कर [सम्मति] देने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की सब-[कमेटी] बना दी जाय अर्थात् पंडित रामनारायण [मिश्र] बी. ए. डाक्टर कालीचरण दुबे और बाबू का[शीप्रसाद] माणिक।

(९) राधाकृष्णदास मेमोरियल मेडल के [लिये] "मानव जीवन पर नाटकों का प्रभाव [और] हिन्दी में उनकी अवस्था" के सम्बन्ध में [...] के पंडित सांवल जी नागर और जब[लपुर के] बाबू प्रियानाथ बसक के लेख उपस्थित [किये] गये।

निश्चय हुआ कि इन पर विचार कर स[म्मति] देने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की सब-[कमेटी] बना दी जाय अर्थात् पंडित मन्नन द्विवेदी ग[जपुरी] बी० ए०, पंडित सूर्य्यनारायण त्रिपाठी एम० ए० [और] पंडित रामचन्द्र शुक्ल।

(१०) निश्चय हुआ कि इस वर्ष के पदकों के [लिये] निम्न लिखित विषय नियत किये जायँ।

राधाकृष्ण दास मेडल

विश्वविद्यालयों में हिन्दी की शिक्षा

रेडिचे मेडल

हवाई जहाज़

छन्नूलाल मेमोरियल मेडल

ग्रामों की सफ़ाई तन्दुरुस्ती

(११) "परिचर्य्या-प्रणाली" के रचयिता [...] महेन्दुलाल गर्ग का १९ जनवरी का प[त्र उप]स्थित किया गया जिसमें उन्होंने १०) [...] मूल्य की इस पुस्तक की प्रतियाँ सभा से [...] मूल्य पर माँगी थीं।

निश्चय हुआ कि ये उन्हें अर्द्ध मू[ल्य पर] दी जायँ।

(१२) गोरखपुर के बाबू पुरुषोत्तम दास [का पत्र] उपस्थित किया गया जिसके साथ [...] "फिजियालोजी" का एक ग्रंथ सभा [से] प्रकाशित कराने के लिये भेजा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय हुआ कि इस ग्रंथ की भाषा बहुत ही क्लिष्ट है। यदि वे इसकी भाषा को सर्वसाधारण के समझने योग्य बना दें तो सभा इसे स्वयम् प्रकाशित कर देगी अथवा अन्यत्र प्रकाशित करा देगी।

(१३) ओरिएण्टल ट्रेनिङ्ग कम्पनी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा यदि अपना टाइप राइटर बेचना चाहे तो वे २॥) रु० सैकड़े कमीशन लेकर उसकी बिक्री का प्रबन्ध कर देंगे।

निश्चय हुआ कि ३००) रु० तक मूल्य मिलने पर टाइप राइटर बेच डाला जाय।

(१४) निश्चय हुआ कि ता० २० नवम्बर १९१३ के निश्चय नं० २ के क, ख, और ग तथा निश्चय नं० ५ ग पर मंत्री का ध्यान दिलाया जाय और उनसे प्रार्थना की जाय कि वे इस सम्बन्ध में शीघ्र ही आवश्यक कार्रवाई करें।

(१५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण अधिवेशन

शनिवार ता० ३१ जनवरी १९१४ सन्ध्या के ५ बजे
स्थान सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (ता० २९ नवम्बर १९१३) का कार्यविवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(२) प्रबन्धकारिणी समिति का ता० २९ सितम्बर १९१३ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(३) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किये गये और स्वीकृत हुए— (१) पंडित सम्पूर्णानन्द बी. एस सी. जालपादेवी काशी १॥) (२) कुँवर विजयसिंह शर्म्मा, रईस, रियासत लाखन, अलीगढ़ ३) (३) बाबू महावीरप्रसाद वकील, बलिया ५) (४) पंडित मथुराप्रसाद शुक्ल, मौज़ा सिठमरा पो० वनीपारा जि० कानपुर १॥) (५) बाबू वासुदेवसिंह कण्ट्रेक्टर, गुरपा, ई० आई० आर० ३) (६) पंडित पारसनाथ द्विवेदी, असिस्टेण्ट मेनेजर, रामादास स्टेट, काशी ३) (७) बाबू अम्बिकाप्रसादसिंह ज़मीदार, दारानगर, काशी १॥) (८) बाबू ब्रजगोपाल भाटिया, मेनेजर फ्रेण्ड एण्ड कम्पनी, मथुरा १॥) (९) बाबू लक्ष्मण प्रसाद नागर, मालिक, एल. वी. को नागर एण्ड को मथुरा १॥) (१०) बाबू बनारसीदास भाटिया, होली दरवाज़ा मथुरा १॥) (११) बाबू जमुनादास पोद्दार, नई सड़क, लाल कटरा दिल्ली ३) (१२) बाबू श्रीराजेन्द्रनारायण चौधरी, वल्लीपुर पो० हथौड़ी, दर्भंगा ३) (१३) बाबू नारायण लछिराम गुप्त, इन्दौर क्लाथ मिल्स, इन्दौर ३) (१४) पंडित नारायण शास्त्री खिस्ते, दूध विनायक काशी १॥)

(४) मंत्री ने इस सभा के निम्न लिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी (१) राय कृष्णचन्द्र, काशी (२) स्वामी प्रकाशानन्द गिरि काशी।

सभा ने इन सज्जनों की मृत्यु पर शोक प्रगट किया।

(५) काशी के बाबू रामकिशोरसिंह का इस्तीफ़ा उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(६) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं।

बाबू हरिदास माणिक काशी
ऐतिहासिक झलक, पहली संख्या।

पंडित खुन्नूलाल रावत, के. वी. प्रेस, फर्रुख़ाबाद
शिवा जी का आत्म दमन २ प्रति।

जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई
आँख की किरकिरी, उपमितिभव प्रपंच कथा, फूलों का गुच्छा।

पंडित राधाचरण गोस्वामी, वृन्दावन
हंसदूतम्।

ठाकुर महादेवप्रसादसिंह काशी
चन्देल वंशावली।

बाबू नारायणदास वाजोरिया कलकत्ता
शिवावावनी, लोकरहस्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू बेणीप्रसाद काशी
आदर्श नागरी प्रथम भाग।
कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन, आरा
उपदेशरत्नमाला, बालिकाविनय।
श्रीयुत सुमन्त कवि, कोल्हापुर
मौतकमाला (मराठी)।
कन्यादानफल, शोकतरंगिणी।
पंडित विनायक राव पेंशनर, लार्डगंज, जबलपुर
रामायण अयोध्याकांड, आरण्यकांड, किष्किन्धाकांड और सुन्दरकांड श्री विनायकी टीका सहित अयोध्यारत्न भंडार।
बाबू रामनारायण, उदयपुर
राजस्थान रत्नाकर।
बाबू रामशंकर, शाहपारा, अलीगढ़
स्त्रीधर्म्मशिक्षक।
मिसर्स पाठक एण्ड को, मथुरा
स्वयं चिकित्सक।
राय साहब शिवनाथ, फीरोज़पुर
विवाह पद्धति।
पंडित रूपनारायण पांडेय प्रयाग
शुकोक्तिसुधासागर।
पंडित बटुकप्रसाद मिश्र, गोवर्द्धन की सराय, काशी रामाश्वमेध भास्कर।
डा० सी० एन हालदार, त्रिपुरा, भैरवी, काशी
गृहचिकित्सा।
भारतीभवन फीरोज़ाबाद, आगरा
उत्तररामचरित्र नाटक।
मुँशी देवीप्रसाद, मुंसिफ़, जोधपुर
औरङ्गज़ेबनामा, खानखानानामा, राजा कामकेतु का जसग्रंथ, आमेर के राजा श्री पृथ्वीराज, पूरणमल; रतनसिंह, आसकरण, राजसिंह भारमल और भगवन्त दास का जीवनचरित्र, नारी नवरत्न।
पंडित शिवनाथ शर्म्मा, सम्पादक, आनन्द, लखनऊ घंड्डलदास, वहसी पंडित, मिस्टर व्यास की कथा, कलियुगी प्रह्लाद मृगाङ्क, नागरी निरादरप्रहसन।
सेठ मेलाराम, वैश्य सभा, पत्रवानी जि० हि[illegible]
उपदेशकभजनावली, गृहस्थविचार।
पंडित गदाधरप्रसाद शर्म्मा वैद्य, जानसेन[illegible] प्रयाग
ब्रह्मकुलपरिवर्तन।
मुंशी मूलचन्द, ट्रेनिङ्ग इंस्ट्रक्टर, अकब[illegible] ज़ि० कानपुर
उर्दू-हिन्दी-शिक्षक।
राय आत्माराम साहब, सिविल इञ्जी[illegible] पटियाला
धर्म्मदिवाकर, अर्थात् मनुष्य का [illegible] आदर्श।
पंडित ज्वालादत्त शर्म्मा, मुरादाबाद
सोऽहं तत्त्व।
पंडित केदारनाथ पाठक काशी
सच्चा मित्र प्रथम भाग।
स्वामी प्रकाशानन्द गिरि काशी
औरङ्गज़ेबनामा दूसरा भाग।
डाक्टर प्रियवरुण काशी
ब्रह्मदर्शन।
पंडित रामचन्द्र कालिकागली, काशी
आश्चर्यजनक घंटी।
मिस्टर एस. एच. होडवाला एम. ए. बहा[illegible] कालेज, जूनागढ़
An analysis of Adam Smith's inquiry in[to the] nature and causes of the wealth of nations—Book[s]
बाबू महावीरप्रसाद गहमरी, स्वर्गमाला कार्यालय, काशी
स्वर्ग के रत्न
संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंएट
अध्यात्म रामायण, General Rep[ort on] Public Instruction for the year ending 31st [March] 1913.
खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त
विलायती रमणी, आपानी राज्य[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूसजापानयुद्ध भाग १, २, भारतमही, अबलाबलदर्शन, भारत इतिहास संशोधक मंडल अहवाल शके १८३२, १८३३ और १८३४ षाण्मासिक वृत्त शके १८३४, मराठ्यां का इतिहास चीं साधने खंड १२ वां, प्रथम संमेलन वृत्त,

Indian Antiquary for October, 1913.

Indian Thought Vol VI No. 1.

(१) सभापति को धन्यवाद दे के सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा

शनिवार ता० २८ फ़रवरी १९१४ सन्ध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (ता० ३१ जनवरी १९१४ का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) प्रबन्धकारिणी समिति का ता० २९ नवम्बर १९१३ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(३) निम्न लिखित सज्जनों के फ़ार्म सभासद होने के के लिए उपस्थित किये गयेः—(१) बाबू मुकुन्द-लाल अजमतगढ़. पे० संगड़ी जि० आज़मगढ़ ५) (२) बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसाद. आमदेव पो० देव. जि० गया १॥) (३) डाकृर पेड़ामल साहब एम. डी. एस. आर. सी. एस. एल. आर. सी. पी. कूचा कलालां. अमृतसर ३) (४) पंडित कैलाशपति भट्ट. चौखंडी. बिहार ३) निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(४) मेरठ के पंडित विजयशंकर शर्म्मा का इस्तीफ़ा उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं।

बाबू चतुर्भुजसहाय वर्म्मा. वृन्दावन

वेदान्ततत्त्वसुधा, वैद्यकतत्त्व, कविताकुसुम और श्रुतिसिद्धान्तरत्नाकर

मिसर्स एस. पी. ब्रादर्स एण्ड को. झालरापाटन

शुश्रूषा

श्रीमती महादेवीजी धर्म्म पत्नी बाबू ज्योतिः-स्वरूप. वकील दिल्ली

धर्मपुस्तक प्रथम भाग २ (प्रति)

फूलों का हार चौथा भाग (२ प्रति)

बाबू व्योहार रघुवीरसिंह, तालुकेदार और आनरेरी मजिस्ट्रेट. जबलपुर

शास्त्रसिद्धान्त.

जैन मित्र कार्यालय

धनवीर सेठ हुकमचन्द्रजी का जीवन चरित

ठाकुर शिवकुमारसिंह. कर्वी. जि० बान्दा.

महाराज जार्ज पंचम का जीवनचरित.

ख़रीदी गई

विनयपत्रिका, आश्चर्यघटना, सुशीला चरित, योगवाशिष्ठसार. पतिव्रता, मानस-दर्पण. रामाश्वमेध, समाज।

बदले में आईं

Indian Antiquary for November and December, 1913.

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

सूचना और सम्मति।

सरकारी रिपोर्ट।



ज हम जिन रिपोर्टों को सम्मुख रख कर विचार किया चाहते हैं वे बंगाल, बम्बई, मद्रास, युक्तप्रदेश, पंजाब, अजमेर व मारवाड़ और मध्यप्रदेश तथा बर्म्मा गवर्न्मेंट की गत सितम्बर से दिसम्बर मास तक की हैं। किस प्रान्त में कितनी पुस्तकें राष्ट्रभाषा हिन्दी की निकली हैं यह इस कोष्ठ से विदित हो जायगाः—

बंगाल	बम्बई	मद्रास	युक्तप्रदेश
१४	३२	०	२२०
मध्यप्रदेश	अजमेर	पञ्जाब	बर्म्मा
११	१	१	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों को यह देख कर बड़ा ही दुःख होगा कि मद्रास और बर्मा प्रान्त हमारी मातृभाषा से विरक्त सा हो रहा है। विशेष दुःख की बात तो यह है कि जब कि हमारे बंगाली भाइयों ने अकेले बंगाल ही से अपनी मातृभाषा की २८८ पुस्तकें प्रकाशित कीं—हम हिन्दीवाले, जिनकी मातृभाषा भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा होने का दावा रखती है, केवल २७९ पुस्तकें ही सब मिलाकर निकाल सके और इस प्रकार बंगाली भाइयों से पिछड़े रहे। यद्यपि यह देख संतोष होता है कि गुजराती, मराठी, सिन्धी, मारवाड़ी, गुरुमुखी, आदि भाषाओं की कितनी ही पुस्तकें तथा मद्रास सरीखे विरक्त प्रान्त की संस्कृत भाषा की सब पुस्तकें नागराक्षरों में प्रकाशित हुईं हैं तथापि इतने से काम नहीं चल सकता। गुजराती भाषा में "सरल देश नामा नी पद्धति" नामक पुस्तक के २५ संस्करण हुए और बराबर प्रत्येक संस्करण की ८००० प्रतियाँ छपती रहीं। मराठी भाषा में "महाराष्ट्रा चा गोष्टी रूप इतिहास" नामक पुस्तक के ४ संस्करण हुए और बराबर १५ हज़ार प्रतियाँ प्रकाशित होती रहीं। बंगला-भाषा में "बंग देशेर इतिहास" और "आदर्श-साहित्य-पाठ" नामक पुस्तकों के क्रम से १२ तथा ८ संस्करण हुए और तीन एवं पचीस हज़ार प्रतियाँ छपती रहीं। परन्तु हिन्दी भाषा की पुस्तकों को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त है। यदि भाग्य से किसी पुस्तक के कई संस्करण हुए भी हैं तो आदर्श सखी (पृष्ठ संख्या ६, भजन) और विश्रामसागर के जिसका १० वाँ संस्करण ६००० का बिना मूल्य हुआ है। यह कितने खेद की बात है कि श्रीरवीन्द्रनाथ टागोर की प्रसिद्ध गीताञ्जलि का अनुवाद अँगरेज़ी में हो, उर्दू में हो, मराठी में हो, गुजराती में हो, यहाँ तक कि तैलगू भाषा में भी हो परन्तु हिन्दी-भाषा में न हो! नाटकों की तो कुछ बात ही न पूछिए। तैलगू भाषा में १९, बंगला में १५, गुजराती में १३, तामील में १०, और मराठी में जब ३ नाटक प्रकाशित हुए तब हमारी हिन्दी-भाषा में रो गाकर केवल तीन ही प्रकाशित हों, यह कितने दुःख की बात है! ज़रा समाचार पत्रों की ओर ध्यान दीजिए। हि[न्दी] के मासिक पत्रों में "सरस्वती" का स्थान [सबसे] ऊँचा है परन्तु उसकी प्रकाशन संख्या केवल [...] है जब कि मराठी भाषा के मनोरञ्जन की प्रका[शन] संख्या ८०००, बंगला के प्रवासी की ६०००, भा[रत]वर्ष की ५०००, स्वास्थ्यसमाचार की [...] तथा बंगला "साहित्य और शिशु" की प्रका[शन] संख्या ४००० है। हिन्दी-भाषा में मनोरञ्जन, [...] ईश्वर और इन्दु नामक मासिक पत्र दो दो चार [...] वर्ष से निकल रहे हैं परन्तु इन सभों की प्रका[शन] संख्या केवल ५०० है जब कि गुजराती भा[षा] "गपशप" एवं मराठी भाषा के "मधुकर" ना[मक] पत्रों की संख्या, जिन्हें प्रकाशित होते अभी [...] एक ही वर्ष हुआ, क्रम से २००० और १२०[०] मराठी "चित्रमय जगत्" की ३५०० प्रतियाँ छ[पती] हैं। यह एक आनन्द का विषय है कि "प्रभा" [...] "चित्रमय जगत्" की भी १००० प्रतियाँ प्रका[शित] होती हैं और करीब करीब सभी खप भी जा[ती हैं] परन्तु एक बूँद जल से प्यास नहीं बुझती। [...] भाषा में जैसा "नाट्य मंदिर" निकलता है म[राठी] भाषा में वैसा ही "रंग मंच" नामक पत्र प्रका[शित] होता है। उसकी ग्राहक संख्या भी १००० के [लग]भग है; परन्तु हिन्दी में वैसा एक भी पत्र न[हीं।] यह सब लिखने का यह तात्पर्य कदापि नहीं [है कि] हिन्दी-भाषा में लोग काम नहीं कर रहे हैं। मेरा तात्पर्य है कि हिन्दी की अवस्था अभी शोच[नीय] है। जो लोग कार्य कर रहे हैं उनमें निस्[वार्थ] बहुत ही कम हैं। इन में भी शुद्धचित्त से [काम] करनेवाले इने गिने हैं। इसी से हमारी यह [दशा] है। शुद्धचित्त से, निस्वार्थ भाव से, यदि कुछ [लोग] ही इस साहित्य-क्षेत्र में कार्य करने के लिये [तैयार] हो जाँय तो भी बहुत कुछ कार्य हो सकता [है।]

—:०:—

* यह नोट काशीनिवासी श्रीयुत साँवलजी नागर [...] कर भेजा है। प० सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजन पुस्तकमाला ।

अर्थात्

हिन्दी में विविध विषयों पर सर्वोत्तम १०० ग्रंथों की एक पुस्तकावली, जो एक ही आकार में एक ही प्रकार के काग़ज़ पर तथा एक से अक्षरों में छापी जायगी, जिसके प्रत्येक भाग की जिल्द कपड़े की एक सी सुन्दर होगी, जिसके प्रत्येक ग्रंथ की भाषा सरल, मुहाविरेदार तथा पुष्ट होगी और जिसके किसी भाग में ऐसी कोई बात न आवेगी जो माता अपने पुत्र से पिता अपनी कन्या से अथवा भाई अपनी बहिन से कहने वा समझाने में असमर्थ हो या संकोच करे।

सम्पादक

श्यामसुन्दर दास, बी० ए०

लेखक

साहित्याचार्य पंडित रामावतार शर्म्मा एम० ए०, पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, पंडित गणपत जानकी राम दुबे बी० ए०, पंडित द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी, पंडित माधव राव सप्रे बी० ए०, बाबू वृन्दाबन लाल बी० ए०, बाबू हरिकृष्ण अग्रवाल, बाबू राधामोहन गोकुल जी, बाबू जगन्मोहन वर्म्मा, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, पंडित गणेश बिहारी, मिश्र, बाबू अमीरसिंह, बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, पंडित चन्द्रमौलि शुक्ल एम० ए०, ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा, ठाकुर गदाधरसिंह, ठाकुर महेन्दुलाल गर्ग, बाबू कृष्णबल्देव वर्म्मा, पंडित हरिराम दिग्वेकर एम० ए०, बाबू बेणीप्रसाद, बाबू ब्रजनन्दन सहाय बी० ए०, प्रोफेसर बसंतलाल बी० एससी०, बाबू संपूर्णानन्द बी० एससी०, बाबू शिवप्रसाद गर्ग, बाबू रामदास गौड़ एम० ए०, पंडित रघुनाथ बलवन्त भागवत, पंडित लज्जाराम मेहता, बाबू कन्हैयालाल भार्गव, पंडित केशवराम जोशी, पंडित मन्नन द्विवेदी बी० ए०, पंडित हीरानन्द शास्त्री एम० ए०, बाबू हरिकृष्ण जौहर, पंडित बद्रीनाथ भट्ट बी० ए०, पंडित जीवनशङ्कर याज्ञिक, बाबू सूर्यनारायण बी० ए०, बाबू काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए०, पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०, बाबू दयाचन्द बी० ए०।

प्रकाशक

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

मूल्य

प्रति पुस्तक ।।।) रु० डाक व्यय अतिरिक्त

जो लोग एक साथ ७५) रु० भेज देंगे उन्हें १०० पुस्तकें बिना किसी अन्य प्रकार के व्यय के भेज दी जाँयगी। जो लोग ५) रु० पेशगी भेजकर ग्राहक श्रेणी में अपना नाम लिखावेंगे उन्हें ५० पुस्तकें बिना डाक व्यय लिए ।।।) में भेजी जाँयगी तथा फिर ५) रु० जमा करने पर बाकी ५० पुस्तकें इसी प्रकार भेजी जाँयगी। फुटकर संख्याएँ लेने वालों से प्रति पुस्तक का मूल्य १) रु० डाक व्यय अतिरिक्त लिया जायगा।

मिलने का पता

मंत्री नागरी प्रचारिणी सभा,

बनारस सिटी।

इस पुस्तकमाला का छपना प्रारम्भ हो गया है। पहली पुस्तक शीघ्रही प्रकाशित हो जायगी। प्रत्येक मास में दो पुस्तकों के प्रकाशित करने का दृढ़ संकल्प है।

इस पुस्तकमाला के लिए निम्नलिखित ग्रंथों के लिखे जाने का प्रबंध हो चुका है।

(१) चंदबरदाई के पृथ्वीराज रासो के उत्तम अंशों का संग्रह

(२) कबीरदास के ग्रन्थों के उत्तम उत्तम अंशों का संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) जायसी की पदमावती के उत्तम अंशों का संग्रह
(४) सूरदास के मनोहर अंशों का संग्रह—दो खंडों में
(५) तुलसीदास—रामायण, कवितावली, गीतावली तथा विनयपत्रिका के उत्तम उत्तम अंशों का संग्रह-दो खंडों में
(६) बिहारी, रसनिधि और रसलीन के उत्तम उत्तम दोहों का संग्रह
(७) केशवदास की रामचंद्रिका, रसिकप्रिया और कविप्रिया के उत्तम उत्तम अंशों का संग्रह
(८) रहीम, गिरिधर राय, वृंद, और दीनदयाल गिरि की कविता के उत्तम उत्तम अंशों का संग्रह
(९) भूषण, चंद्रशेखर और लाल के ग्रंथों से ओजस्वितापूर्ण तथा हृदयग्राही अंशों का संग्रह
(१०) पद्माकर और ठाकुर की उत्तम कविताओं का संग्रह
(११) घनानंद और रसखान की कविता के उत्तम अंशों का संग्रह
(१२) मतिराम, चिंतामणि, श्रीपति तथा सेनापति की कविताओं के उत्तम अंशों का संग्रह
(१३) नागरीदास, और नन्दास की कविताओं के उत्तम अंशों का संग्रह
(१४) दूलह, देव और दास " "
(१५) गिरधरदास (गोपालचंद), गुमान और बलभद्र
(१६) सिक्खों के ग्रंथसाहब के उत्तम अंशों का संग्रह
(१७) स्माइल के क्यारैक्टर (Character) नामक ग्रन्थ का छायनुवाद उदाहरण सहित
(१८) स्माइल के ड्यूटी (Duty) नामक ग्रन्थ "
(१९) " थ्रिफ़्ट (Thrift) " "
(२०) " सेल्फ हेल्प (Self-help) "
(२१) लबक के प्लेज़र्स आफ़ लाईफ़ (Pleasures of life) दो खंडों में
(२२) लबक के यूसेज़ आफ़ लाइफ़ (Uses of life) नामक ग्रंथ का छायानुवाद उदाहरण सहित
(२३) ब्लैकी के सेल्फ़-कल्चर (Self-culture) "
(२४) ईजिप्ट का उदय और अस्त
(२५) रोम " "
(२६) यूनान " "
(२७) भारतवर्ष की ऐतिहासिक घटनाएँ
(२८) मुसलमानों का उदय और अस्त
(२९) सिक्खों का उदय और अस्त
(३०) मरहठों का उदय और अस्त
(३१) चीन का इतिहास
(३२) भारतवर्ष के दृश्य, १ भाग—उत्तर भारत तथा राजपूताने के मुख्य मुख्य स्थानों का वर्णन
(३३) " २ भाग—बंगाल और दक्षिण भारत के मुख्य मुख्य स्थानों का वर्णन
(३४) राजपूताने की ऐतिहासिक कहानियाँ
(३५) संसार का इतिहास, दो खंडों में
(३६) भारतवर्ष की प्रधान लड़ाइयाँ
(३७) ब्रिटिश शक्ति का प्रसार
(३८) नेपोलियन का जीवनचरित
(३९) लिंकन "
(४०) गारफ़ील्ड "
(४१) वाशिंगटन "
(४२) गैरीवाल्डी का जीवनचरित
(४३) मेज़ीनी "
(४४) महारानी विक्टोरिया "
(४५) पृथ्वीराज "
(४६) अशोक "
(४७) अकबर "
(४८) औरंगज़ेब "
(४९) शिवाजी "
(५०) रणजीतसिंह "
(५१) राणा प्रताप "
(५२) भीष्म पितामह "
(५३) दयानन्द सरस्वती "
(५४) महादेव गोविंद रानाडे "
(५५) गौतम बुद्ध "
(५६) गुरु गोविंदसिंह "
(५७) शंकराचार्य "
(५८) नाना फड़नवीस "
(५९) जंगबहादुर (नेपाल) "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६०) सालार जंग (हैदराबाद) ,,
(६१) कृष्ण ,,
(६२) रानी लक्ष्मी बाई ,,
(६३) अहिल्याबाई ,,
(६४) बालाजी विश्वनाथ ,,
(६५) महादाजी सीधिया ,,
(६६) गुजराती भाषा के उपन्यास "सरस्वतीचन्द्र" के आधार पर एक उपन्यास
(६७) अङ्ग्रेज़ी के "सिलास मार्नर" उपन्यास के आधार पर एक उपन्यास
(६८)
(६९)
(७०)
(७१)
(७२)
(७३)
(७४)
(७५) } उपन्यास
(७६) Plain living and high thinking के आधार पर एक ग्रन्थ
(७७) Up from slavery ,, ,,
(७८) Indian Antiquities पर एक ग्रंथ
(७९) Jurisprudence—शास्त्र के प्रधान प्रधान सिद्धान्तों का वर्णन
(८०) Political Economy—के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन
(८१) Moral Philosophy
(८२) Psychology
(८३) Biology
(८४) Botany } के सिद्धांतों का वर्णन
(८५) Sociology—के सिद्धांतों का वर्णन
(८६) Man's place in Nature के आधार पर एक ग्रन्थ
(८७) The Riddle of the Universe के आधार पर एक ग्रन्थ
(८८) The History of Creation के आधार पर एक ग्रन्थ
(८९) Buckle's History of Civilization के आधार पर एक ग्रन्थ
(९०) Physics—के सिद्धांतों का वर्णन
(९१) Geology के सिद्धांतों का वर्णन
(९२) Chemistry के सिद्धांतों का वर्णन
(९३) Astronomy के सिद्धांतों का वर्णन
(९४) Electricity के सिद्धांतों का वर्णन
(९५) Engineering के सिद्धांतों का वर्णन
(९६) शासनपद्धति
(९७) Mill's On subjugation of women के आधार पर
(९८) Mill's Representative Government के आधार पर ।
(९९) राजतीति शास्त्र ।
(१००) भारतवर्ष का भौगोलिक, ऐतिहासिक औद्योगिक तथा शासन संबंधी वर्णन ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर-सीरीज़।

इस ग्रन्थमाला के लिए हिन्दी के नामी नामी विद्वानों की सम्मति से ग्रन्थ चुने जाते हैं और धुरन्धर लेखकों के से वे लिखवाये जाते हैं। प्रत्येक ग्रन्थ की छपाई सफ़ाई काग़ज़ जिल्द आदि सभी बातें लासानी होती हैं। स्थायी ग्राहकों को सब ग्रन्थ पौनी क़ीमत पर दिये जाते हैं। ऐसे ग्राहकों को पहले डिपाजिट के तौर पर आठ आने भेज कर नाम लिखा लेना चाहिए। सिर्फ़ पाँच सौ ग्राहकों की ज़रूरत है। नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। सभी समाचारपत्रों ने इनकी प्रशंसा की है।

१ स्वाधीनता—पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी कृत २)

२ प्रतिभा—भावपूर्ण शिक्षाप्रद उपन्यास १।)

३ फूलों का गुच्छा—सुन्दर गल्पों का संग्रह ॥=)

४ आँख की किरकिरी—साहित्यसम्राट् रवीन्द्रनाथ के प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद १॥।)

५ चौबे का चिट्ठा—बंकिम बाबू के कमलाकान्तेर दफ़्तर का हिन्दी अनुवाद ॥=)

६ मितव्ययिता—डा० सेमवल स्माइल्स के 'थिरिफ्ट' का सुन्दर हिन्दी अनुवाद

और कई ग्रन्थ तैयार हो रहे हैं।

मैनेजर—हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय
हीराबाग़, पो० गिरगाँव—बम्बई।

—:०:—

सम्राट्-शुभागमन

इस पुस्तक में महाराज युधिष्ठिर से लेकर … तक इंद्रप्रस्थ के तमाम राजे महाराजे और बादशाहों का तारीख़वार विवरण और घटना दिल्ली के … नीय स्थलों का विवरण हनोवर वंश और श्रीमान् सम्राट्-पंचमजार्ज महोदय और श्रीमती मेरी म… दया का विलायत से भारत का आवागमन … रीति से वर्णित है।

चित्र

कई सुन्दर चित्रों के अतिरिक्त "दिल्लीदरबार वाला चित्र बहुत दर्शनीय है श्रीमान् सम्राट् … महोदय सम्राज्ञी सह विराजमान हैं और भारत … राजकीय उच्च पदाधिकारी तथा राजामहाराजे नवाब, सब उपस्थित हैं मंडप दर्शनीय है आज्ञा पढ़ा जा रहा है झंडे चढ़े हैं रिशाला खड़ा है।

कविता

राज्य प्रशंसा संबन्धी लगभग १५० पंडितों … कविता है जिनमें संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उरदू, बंगाली, अँगरेज़ी इत्यादि में एक एक से … कर कविता हैं अन्त में राजाज्ञा है अक्षर नागरी पृष्ठ सचिक्कन मज़बूत हैं। मूल्य एक रुपया।

पता—पंडित राजेन्द्रनाथ
श्यामसवाई मंदिर
पो० डभोई, राज्य बड़ौदा (गुजरात)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A414
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

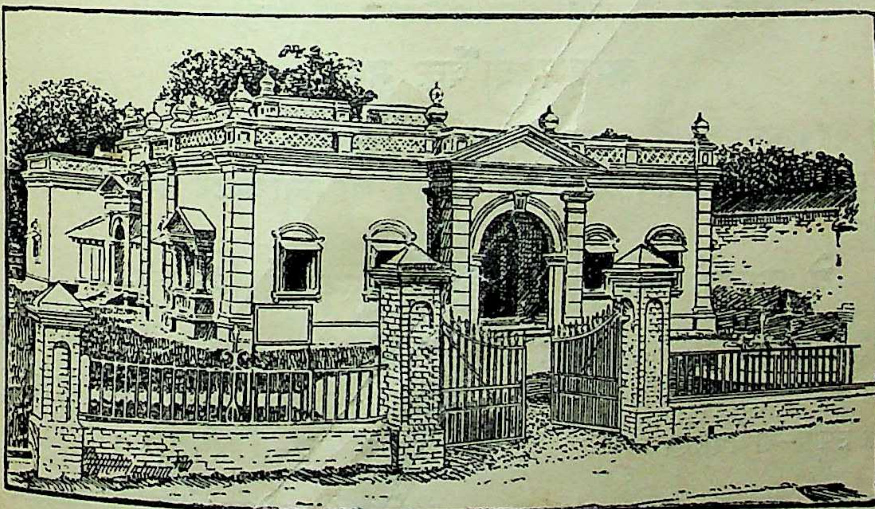
मार्च—अप्रैल।

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित।

वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची।

बड़ा आकार ! **राजभक्त।** बड़ा आकार !!

सचित्र साप्ताहिक समाचार-पत्र।

सम्पादक—

(१) श्रीयुत बीरेन्द्रबहादुर बी० ए०, एल एल० बी०। (२) श्रीयुत लाला भगवानदीन।

यह पत्र अक्तूबर के अन्त से प्रति शनिवार को बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त अध्यक्ष आर्ट प्रिंटिंग बनारस के द्वारा प्रकाशित होगा। इसका उद्देश्य राजनैतिक, व्यापारिक, साहित्यिक, शिक्षा इत्यादि विचारों और संसार भर के आवश्यक तथा रोचक समाचारों का शीघ्रता के साथ करना होगा। यह पत्र नागरीप्रचारिणी सभा और क्षत्रिय उपकारिणी महासभा के उद्देश्यों का साध्य पोषण करेगा। हिन्दी के प्रायः सभी नामी लेखकों के लेख इसमें रहा करेंगे। श्रीमान् साहब ने इसके प्रकाशित होने की सूचना पाकर प्रसन्नता की चिट्ठी भेजी है।

अग्रिम वार्षिक मूल्य—

सर्वसाधारण से २॥) धनी लोगों से कम से कम ५) संरक्षकों से ५०) और १००) छः महीने से कम समय के लिये कोई ग्राहक न हो सकेंगे। ३१ दिसम्बर तक जो मनीआर्डर भेज कर ग्राहक होंगे उनसे रुपये लिये जायँगे।

ये पुस्तकें ग्राहकों को आधे मूल्य में मिलेंगी—

दुःख और सुख—(अंगरेज़ी, संस्कृत, हिन्दी तीन भाषाओं का आनन्द देनेवाली अति रोचक निबन्ध-पुस्तक ॥।)
वीर क्षत्राणी—लाला भगवानदीन लिखित ॥।)
धनी होने के उपाय—अर्थशास्त्र =)
हरिश्चन्द्र-जन्मोत्सव—(कविता) -)

☞ रुपया भेज कर ग्राहक होने में विलम्ब न कीजिये, कृपा कर आजही लिखिये और अपने ... को भी ग्राहक बनाइये। विज्ञापनवाले शीघ्र पत्र-व्यवहार करें।

पताः—मैनेजर "राजभक्त", आर्ट मेशीन प्रिंटिंग वर्क्स, बनारस

पवित्र काश्मीरी केसर—

दर्जे अव्वल ॥।=) तोला। शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला। चीनी ममीरा २) तोला।

कश्मीरस्टोर्स, श्रीनगर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ | मार्च और अप्रैल, १९१४. | संख्या ९—१०

जुझार तेजा।

(लेखक—पण्डित लज्जाराम मेहता।)

अध्याय १

चरित्र में चमत्कार।

जुझार तेजा का नाम किसी इतिहास में नहीं है। उसके पैदा होने के साल संवत् का भी अभी तक किसी को पता नहीं। यहां के पढ़े लिखे विद्वान् जब उसके चमत्कारों को वाहियात ढकोसला समझते हैं, जब कि उनकी उपेक्षा से भारतवर्ष के इतिहास का एक बहुत बड़ा ख़ज़ाना बड़े बड़ों के मन-मंदिर में छिपा हुआ है, जब कि प्राचीन वीरों, महात्माओं और विद्वानों का चरित्र-संग्रह परंपरा से बाप दादों की धरोहर में मिलने पर भी हमारी बेपरवाही की आँधी के झोंकों से दिन दिन नष्ट होता चला जा रहा है अथवा हमारी कृतघ्नता की कड़ी धूप से दिन दिन क्षीण होता जा रहा है तब यहाँ के इतिहास में तेजा जुझार का वर्णन न हो तो आश्चर्य नहीं; किन्तु राजपूताने की "दंतकथा में" तेजा का आसन ऊँचा है। उसकी असाधारण बहादुरी, उसका अप्रतिम साहस, उसका अद्वितीय प्रतिज्ञापालन, उसकी असीम सत्यनिष्ठा और उसका अनुकरणीय आत्मविसर्जन राजपूताने के लाखों आदमियों के हृदय की पट्टी पर दृढ़ता की लेखनी से चिरस्थायी है। जुझार तेजा पढ़ा लिखा नहीं था, वह उन वीर राजपूतों में से नहीं था जो अपने असामान्य गुणों को दुनिया के इतिहास में सदा के लिये अमर कर गए हैं और वह उन जाटों में से भी नहीं था जिन्होंने भारतवर्ष में एक नहीं अनेक राज्य स्थापित करके अपना नाम वीरों की फ़िहरिस्त में लिखवा लिया है।

तेजा जाट एक साधारण खेतिहर था। इस बात का कहीं पता नहीं लगता कि उसने कभी किसी उस्ताद से हथियार चलाना सीखा हो; किन्तु उसकी असीम प्रतिभा ने उसका नाम अमर कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। लोग देवताओं की तरह उसकी पूजा करते हैं। जब राजपूताना के लाखों आदमियों को विश्वास है कि उसका नाम लेकर "डसी" बाँध देने पर साँप का॰ काटा हुआ मरता नहीं है तब वह अवश्य पूजने योग्य है। उसने यह साबित कर दिया है कि पूजन में जाति पांति की उच्चता की आवश्यकता नहीं है। चाहे ब्राह्मण हो अथवा चमार ही क्यों न हो—दुनिया में आदर गुणों का है। अथवा एक साधारण से भी साधारण मनुष्य को ऊँचा बनने के लिये तेजा के से गुण ग्रहण करने की आवश्यकता है। पुराणों में जो नीचे से ऊपर को पहुँचे हैं वे किसी विश्वविद्यालय की डिगरी लेकर नहीं। मनुष्य के ऊपर चढ़ाने के लिए तप चाहिए और जिनमें तप होता है उनको ऊँचा बनने की आवश्यकता नहीं है। तेजा एक साधारण किसान—एक सामान्य जाट—होने पर भी ब्राह्मणक्षत्रियों से पूजा जाता है, वह अपढ़ होने पर भी विद्वानों का वंदनीय है और वह किसी समय मनुष्य-देह धारण करने पर भी अब देवता है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक जोधपुर-निवासी हमारे गौरवास्पद मुंशी देवीप्रसादजी ने अपनी खोज से पता लगाया है कि:—

"जाटों में तेजा धौलिया कौम का खडनाल परगने नागौर राज्य जोधपुर का रहनेवाला था। उसका विवाह गाँव पनेर राज्य किशनगढ़ में हुआ था। जब वह अपनी स्त्री को लेने पनेर गया उस समय वहां के गूजरों की गायें घेर कर मीने लोग ले जा रहे थे। गूजरों की पुकार जब किसी ने नहीं सुनी तब तेजा उनकी मदद पर चढ़ दौड़ा। वह लड़ कर उनसे गायें अवश्य छुड़ा लाया परन्तु वह भी स्वयं बहुत घायल हो कर गिर पड़ा। वहाँ एक साँप बैठा था। उसने उसकी ज़बान पर काट खाया और इस तरह जब वह मर गया तो उसकी स्त्री उस पर सती हो गई।"

राजपूताने में ऐसा कोई गाँव नहीं जहाँ भाद्र-शुक्ला १० को तेजा का पूजन न होता हो। पूजन होता है "डसी" काटने के लिए। ढोलक [...] अलगोजे बजा बजा कर लोग उसे पहले खूब [...] लेते हैं फिर उसका पूजन करके तब "डसी" [...] हैं। साल भर के किसी दिन, किसी समय, [...] अवस्था में मनुष्य को चौपाए को, किसी को [...] जैसे महा भयंकर ज़हरीले साँप ने डस लि[या...] उसके घरवाले, संगी साथी अथवा अ[...] पड़ोसी दवा के लिए किसी अस्पताल में दौड़े [...] जायँगे, किसी वैद्य से अथवा किसी हकीम से [...] कर यह नहीं कहेंगे कि "हमें दवा दो"। और [...] दुनिया में अभी तक ऐसी "रामबाण" द[वा का] आविष्कार ही नहीं हुआ अथवा हुआ भी तो [...] आगे अज्ञानांधकार का परदा पड़ा हुआ है [...] उन लोगों के लिये हर जगह सुलभ नहीं त[...] कर जाने से, किसी से दवा माँगने से ला[भ] क्या ? बस वे लोग उसी समय चाहे जिसके [...] का साफा, पगड़ी अथवा और कपड़ा लेकर [...] लंबाई की ओर फाड़ते हैं। फाड़ कर उसे थो[ड़ा] बटते हैं और तब "जय तेजा राजकुमार! ते[जाजी] की जय!" कह कर उस बीमार के गले में बां[धते] हैं। लाखों का विश्वास है कि रोगी मरने [नहीं] पाता। उसका ज़हर उस समय अवश्य "छू[मंतर]" हो जाता है। उस समय इतना ज़रूर करते [हैं कि] रोगी को एक दिन रात सोने नहीं देते। ज़हर [...] ज़ोरदार हुआ तो "बाबा तेजाजी" की म[...] मानते हैं। वह कपड़ा जो "डसी" के ना[म से] प्रसिद्ध है यदि भाद्रपद शुक्ला १० से पहले [...] डाला जाय अथवा टूट पड़े तो सर्पदंश से [...] दो महीने अथवा आठ दश महीने तक भी रो[गी के] मर जाने का भय है। इसलिए उस "डसी" [की] खूब रक्षा रखनी चाहिये।

बस भाद्रपद शुक्ला १० के दिन उस रो[गी को] लेकर "डसी" काटने के लिए तेजाजी के "देव[रे" में] जाते हैं। वह रोगी वास्तव में किसी दिन [रोगी] अवश्य था किन्तु आज हट्टा कट्टा तन्दुरुस्त है। [उसके] नख में भी रोग का नाम नहीं। वह जेठ की [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में खूब हल जोतता है, सावन की झड़ियों में घंटों तक अपने शरीर पर मेह झेल कर निरानी करता रहता है और जाड़ों की रात में जंगल में पड़े रहने पर भी उसे कभी ज़ुकाम नहीं होता है। जिस व्यक्ति को विषधर सर्प ने काट खाया था उसकी यह वर्ष भर के तीन सौ उनसठ दिनों की दिनचर्या है किन्तु भाद्रपद शुक्ला १० के दिन एक बार फिर उसे रोगी बनना पड़ता है। यह दशा यदि केवल मनुष्य की ही तो कहा जा सकता है कि यों ही ढोंग करता है अथवा साँप के भय ने उसे विकल कर दिया है किन्तु गाय बैलों को, घोड़े गदहों को, भैंसों को "डसी" काटते ही साँप का ज़हर चढ़ते देखा है। दिनों पूर्व—महीनों पहले आदमी अथवा जानवर की जो दशा साँप के काटने पर हुई थी वही तेजाजी की मूर्ति के सामने भाद्रपद शुक्ला १० के दिन विद्यमान है। वैसा ही ज़हर का चढ़ाव और वैसी ही लहरें आना। ख़ैर "डसी" काटते समय चार आदमी उसे इस तरह पकड़े रहते हैं कि वह गिरने न पावे। "गिरा सो गया" ही लोगों का सिद्धान्त है। नीम के मौर से तेजाजी की मूर्त्ति के स्नान के जल को छिड़के यही उस समय इलाज है। बस यों तेजाजी के "देवल" की सात प्रदक्षिणा करते करते वह भला चंगा हो जाता है। ऐसा लाखों आदमियों का विश्वास है। इसी विश्वास से, इसी श्रद्धा से, वे "जुझार तेजा" का पूजन करते हैं और "जहाँ विश्वास है वहीं विकाश है।" इस सिद्धान्त से उनकी कामना पूर्ण होती है। वे यहाँ तक मानते हैं कि तेजाजी के मंदिर के निकट कहीं न कहीं एक श्वेत सर्प अवश्य रहता है। कितने ही लोग कहते हैं कि हमने दर्शन किए हैं। लोगों के सिद्धान्त के अनुसार यही तेजाजी हैं। और जब लाखों आदमी जिनसे कार्य की सिद्धि पाकर काल के चंगुल से अपने प्राणों को बचानेवाले, अपने स्वजनों की रक्षा करनेवाले हैं, हज़ारों गाँवों में उनकी मूर्तियाँ स्थापित होकर उनका पूजन होता है तब इस बात को असत्य मानने से भी लाभ क्या? जिन महानुभावों को इस पर श्रद्धा न हो, जो इसे वाहियात बतला कर अपने द्वारा लोगों का "अंधविश्वास" छुड़ाना चाहते हों वे गाँव गाँव, घर घर सर्पदंश की दवा पहुँचा कर तब शताब्दियों के अनुभव को मिथ्या सिद्ध करने का यत्न करें।

कुछ भी हो उसके चरित्र के लिये आगे के कुछ पृष्ठों का अवलोकन करने पर पाठकों को विदित हो जायगा कि एक सामान्य किसान किन उत्कृष्ट गुणों के कारण इस तरह लाखों आदमियों से पूजा जाता है। जो चमत्कार के उपासक हैं वे उसके चमत्कार का और जो गुणों के भक्त हैं वे उसके गुणों का पूजन करें।

अध्याय २

माना का ताना।

हाड़ौती, मेवाड़, मारवाड़ और अजमेर जहाँ जहाँ तेजा का आदर है वहाँ वहाँ की भाषा में उसका गुण-कीर्तन किया जाता है। उसके जन्म से लेकर शरीरान्त तक की कथा का ही इस गायन में वर्णन है। कविता किसी साहित्य-शिरोमणि विद्वान् की नहीं, यमक, अनुप्रास, श्लेष और काव्य की ऐसी ऐसी बारीकियों का उसमें लेश तक नहीं और न उसमें रसिक जनों के मनों को आर्द्र कर देने के लिये शृंगार रस है और न उनके लिये "लपटाने दोऊ पट ताने परे हैं"—की छटा है; किन्तु उस तुकबंदी का भाव बड़ा महत् है और उसके अक्षर अक्षर में जोश भरा हुआ है। चौमासे के दिनों में जिस समय काली घटाएं छा छा कर दिन को रात बना देती हैं, मेंह बरस बरस कर नालों को नदियाँ बना देने की वाहवाही लूटता है और धरती हरी भरी धोती ओढ़ कर अपना मनमोहन सौन्दर्य छिपा रखती है उस समय यहाँ के किसान गले में ढोलक लटका कर अलगोजों के साथ नाचते जाते हैं और लड़ा लड़ा कर "तेजाजी" गाते जाते हैं। गाते समय वे सचमुच अपना आपा भूल जाते हैं, उनके सिरों पर से साफे गिर गये तो कुछ परवा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तंबाकू पीने की यदि उन्हें चाट भी लग रही है तो कुछ चिंता नहीं। यह गायन, यह नृत्य तेजा-दशमी से पहले होता है।

मुंशी देवीप्रसादजी की खोज का जो वर्णन प्रथम अध्याय में है वह केवल मारवाड़ के गायन के आधार पर है और उसके अतिरिक्त इस लेखक को जो लिखना है वह हाडौजी के गायन का सारांश है। मुंशी जी की तलाश में और हाडौजी के गायन में थोड़ा बहुत अंतर है। मुंशीजी उसे खड़नाल परगने नागोर राज्य जोधपुर का रहनेवाला बतलाते हैं और हाड़ौतीवालों की राय में वह रूपनगर राज्य किशनगढ़ का निवासी था। ससुराल दोनों ही ने पनेर में बतलाई है किन्तु मुंशीजी के मत से पनेर किशनगढ़ के राज्य में है और हाड़ौती वाले अपने गायन में इस बात का पता नहीं देते कि यह गाँव किस राज्य में है और कहाँ पर है। ख़ैर! हाड़ौतीवालों के मत से इस बात का यदि पता न चले तो मत चलने दीजिये किन्तु कुछ पृष्ठों के अवलोकन से विदित हो जायगा कि पनेर किशनगढ़ के राज्य में नहीं किन्तु ऐसी जगह पर है जहाँ जाने के लिये तेजा को बनास नदी पार करनी पड़ी थी।

अस्तु इतना पता अवश्य लग गया है कि तेजा के बाप का नाम बख़्शराम था और तेजा को बदनो जाट की बेटी ब्याही थी। जिस समय वह केवल छः महीने का था तभी उसका विवाह कर दिया गया था। इतनी जल्दी विवाह क्यों किया गया सो मालूम नहीं किन्तु गाँववालों की कविता में कहा जाता है किः—

"थाली में परणायो रे कँवर तेजा
ऊँडो ऊँडो भादूडो सो गाजै रे।"

बस यह कविता इस बात की गवाही दे रही है। गाँववाले अपने गीत में तेजा के केवल इस जन्म का ही हाल सुनाते हों सो नहीं उन्हें किसी तरह मालूम हो गया होगा कि यह पूर्व जन्म में कौन था और किस तप के प्रभाव से इस जन्म में अथवा मृत्यु के बाद इतना पूजनीय समझा जाने लगा। कहते हैं कि पूर्व जन्म में भी तेजा गायों का ग्वा[ला] था। गाँव की गायें चराना ही शायद उसका पे[शा] था। अपनी गायें चराने के लिये वह नित्य जंगल जाया करता था। एक दिन अकस्मात् उसे कि[सी] महात्मा के दर्शन हो गए। तेजा ने उनकी ब[ड़ी] सेवा की। फल यह हुआ कि एक दिन महात्मा प्रसन्न होकर उससे कहाः—"बेटा माँग! जो माँ[गे] सो ही पावेगा।" उसने हाथ जोड़ कर उनके [पैरों] में पड़ कर प्रार्थना की "महाराज, जो आप मु[झ पर] सचमुच प्रसन्न हुए हैं तो मुझे ऐसा वरदान दी[जिए] जिससे मेरा नाम होवे और लोग मुझे पूजने लगें।" इस पर महात्मा बोले—"बेटा तू जंगली गँवार [है] न तो तू भक्ति जानता है और न ज्ञान; फिर कि[स] बल से मैं बताऊँ कि तू महात्मा बन जायगा। [अ]भगवती यमुना महारानी के तट पर जा कर तप[स्या] कर, तेरा कल्याण होगा।" वह बोला—"महा[राज] जब आपका बरदान है तब कल्याण अवश्य [होगा] परन्तु मैं गायें चराने के सिवा और जंगल के [...] खेजड़ों के सिवा यह भी तो नहीं जानता हूँ [कि] तपस्या किस चिड़िया का नाम है।" इस पर [महात्मा] ने योग की साधना का कुछ प्रकार बतला कर यमुना तट के किसी वृक्ष विशेष पर उलटे लट[कने] का उपदेश दिया। हठयोग का साधन करते [करते] वर्षों तक वह कदंब के वृक्ष तले उलटा लट[का] रहा। बस यों लटके लटके ही उसके प्राण [पखेरू] उड़ गये। उसकी इस तरह मृत्यु हो जाने के [...] यमुना जल में उसके शरीर से रक्त की बूँदें गिर [कर] पुष्प बन कर बहने लगीं। उस पुष्प को [...] (लक्ष्मी) जाटनी उठा लाई और उसी के प्रभाव [से] उसके तेजा का जन्म हुआ। इसके तारा और फूल[...] ये दो नाम और भी थे किन्तु वह प्रसिद्ध हुआ [तेजा] के नाम से।

अब तेजा के पूर्व जन्म की कथा को कोई [माने] या न माने उन्हें अधिकार है किन्तु इतना अ[वश्य] मानना पड़ेगा कि पूर्व जन्म के किसी ऐसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप के प्रभाव से खेतिहर तेजा तेजस्वी तेजा बन गया। यदि उसके हाथ से कोई ऐसा कार्य न बना होता तो तेजा में इस जन्म में कभी ऐसा गुण आना संभव न था, कभी उसे ऐसे असाधारण पराक्रम करने का, प्रतिज्ञापालन का और सत्यनिष्ठा का सौभाग्य ही प्राप्त होना असंभव था और इस तरह उसकी पूजा होना भी महा कठिन! अस्तु जो कुछ हो तेजस्वी तेजा के पूर्व जन्म की यही कहानी है।

यह पहले लिखा जा चुका है कि तेजा का विवाह केवल छः महीने की उमर में हो चुका था; किन्तु कहा जाता है कि जब तक उसका वय पचीस वर्ष का न हो गया उसे यह ख़बर भी न होने पाई कि उसकी शादी हुई है या नहीं। भला जब वह निरा गोद का बालक था तब यदि उसे ख़बर नहीं थी तो नहीं सही किन्तु पीछे से घर-वालों ने उसे क्यों नहीं जतलाया कि तेरा विवाह हो गया है। जब गोद के बच्चों के आगे बहू का नाम आते ही वे हँस पड़ते हैं, जब कुछ २ बड़े होने ही पर घर में बालक के विवाह की चर्चा होने लगती है और जब लड़का खेल खेलने में भी प्यारी दुलहिन का नाम लेकर मन ही मन राज़ी हुआ करता है तब यदि बेटे की शादी हो गई थी तो इस विवाह की बात उससे छिपाई क्यों गई? और जब उसे अपने विवाह होने की ख़बर तक नहीं थी तो उसने ही अपने संगी साथियों द्वारा इस बात का प्रस्ताव क्यों नहीं कर दिया कि—"मैं जब पचीस वर्ष का हट्टा कट्टा जवान हूँ तो मेरी शादी क्यों नहीं की जाती है" बेशक यह एक भेद है और इसका मतलब प्रकाशित होना न होना आगामी पृष्ठों का विषय है।

अस्तु! इस उमर में जब तेजा अपने ग्वाल भाइयों के साथ जंगल में गायें चराने जाया करता था तब वहाँ अपनी गायों को अपने भाइयों के भरोसे छोड़ कर भगवान् की आराधना किया करता था। किसी जलाशय के तीर पर जहाँ वह बैठा हुआ भजन कर रहा था कि वहाँ पानी भरने के लिये एक गूजरी आ निकली। तेजा शायद अपने ध्यान में इतना मस्त था कि उसे इस पनिहारी के आने तक की ख़बर न हुई। गूजरी थोड़ी देर तक खड़ी २ योंही उसकी ओर देखती रही परन्तु जब तेजा की आँखें नहीं खुलीं तब लाचार हो कर बोली:—

"भाई, ज़रा पानी तो भर लेने दो। मेरे घर का किवाड़ खुला हुआ है और बालक रो रहा है।"

"दूसरे घाट से (आँखें खोल कर) भर ले। हम इस समय ठाकुर-सेवा कर रहे हैं।"

"और दूसरे घाट पर मेरा पैर फिसल जाय तब? मेरी गागर टूट जाय, मेरी चूड़ी फूट जाय और न मालूम मेरे कहाँ २ चोट लग जाय। तू कब का ऐसा पंडित बन गया है जो घाट पर किसी को पानी तक नहीं भरने देता। तेरी लुगाई अपने बाप के यहाँ पड़ी २ तेरी जान को रो रही है और योंही अपनी जवानी खो रही है और तू यहाँ पंडित बना बैठा है।"

"हैं मेरी औरत! क्या मेरी विवाहिता? जब मेरी शादी ही नहीं हुई तब औरत आई कहाँ से? तू झूठ बोलती है। अच्छा जो सच्ची है तो खा कसम! खा अपने चूड़े की सौगंद या अपने छोटे भैया की?"

"मुझे ग़रज़ ही क्या पड़ी है जो मैं झूठ बोलूँ। क्या मुझे झूठ बोलकर तुझसे जागीर लेनी है? जिस गाँव में तेरी ससुराल है उसी में मेरा पीहर (मैका) है इसलिये मैं जानती हूँ और इसी लिये मैं सौगंद खाती हूँ।"

यों माना गूजरी के सौगंद खाने पर उसने जाना और साथ ही माना कि "मेरी शादी हो चुकी है।" बस पति और पत्नी के बीच में जो एक अलौकिक प्रेम होता है वह पत्नी का नाम सुनते ही उसके हृदय में लहरें मारने लगा। आजकल पचीस वर्ष के लड़के चार पाँच लड़कों के बाप बन जाया करते हैं किन्तु तब तक तेजा की स्त्री का शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार तक नहीं हुआ था। कामशास्त्र के विद्वानों की तरह नहीं, ग्रामीणों के ग्राम्य धर्म का भी उसे थोड़ा बहुत ज्ञान होता तो अवश्य वह किसी न किसी तरह अपनी गृहिणी का पता पा सकता था। किन्तु आज ही अभी उसे ख़बर हुई और तुरंत ही वह पूजा पाठ समेट कर अपनी माता के पास पहुँचा। केवल पहुँचा ही क्यों उसने उदास होकर अपनी जन्मदात्री माता से पूछा :—

"मां! क्या मैं अभी तक कुँवारा ही हूं? मेरे संगी साथी इस सावनी तीज पर अपनी २ बहुओं को लाने के लिये अपनी २ ससुराल में जाने की तैयारी कर रहे हैं।"

"हैं! किस निपूते ने तुझे बहका दिया? किस मुई ने ऐसा बोल मार दिया! हाय! तीर की मार अच्छी और "बोल" की मार खोटी। जिसने तुझे बहकाया है उस पर—राम जी करें-बिजली गिरे।"

"नहीं मां! नहीं! जिन्होंने मुझसे कहा है उन्हें ऐसी गाली न दे। भगवान् करे उनका मंगल हो। वे फलें फूलें और सुख पावें। उन बिचारों ने तेरा बिगाड़ा ही क्या है जो तू उन्हें कोसती है। जिनके हाथ से हमारा कुछ नुकसान हो जाय उन्हें भी गाली देना अच्छा नहीं। बस तू मुझे जवाब दे कि मैं अभी तक व्याहा हूँ या कुंवारा।"

"बेटा! बेशक तेरी शादी हो चुकी है। तू केवल छः महीने का था तब ही तेरा विवाह कर दिया गया था।"

"अच्छा तो तब मैं ससुराल जाऊँगा।"

"हां! जावेगा तो सही परंतु घर की लीला घोड़ी दुबली है।"

"नहीं मैं ज़रूर जाऊँगा। बस दिन निकलते ही रवाना।"

"हां हां! जायगा तो सही परंतु पहले अपनी बहन को तो ससुराल से ला। उसे गये बहुत अर्सा हो गया। औरों की लड़कियाँ दो दो फेरे पीहर हो गईं और तेरी बहन तब से ससुराल में पड़ी हुई है।"

मालूम होता है कि तेजा के और भाई भी थे उनके नाम का कुछ पता नहीं परंतु भाई थे। तेजा ने कहा :—

"बहन को लिवा लाने के लिये छोटे भैया को भेज दे। और वह अभी बालक है तो चाचा को भेज दे।" मालूम होता है कि तेजा का बाप काम काज कुछ नहीं करता था क्योंकि माता ने जो पुत्र को उत्तर दिया उससे स्पष्ट है कि घर में कर्ता धर्त्ता इसका चाचा ही था। बस इस बहाने से चाचा भी जब न भेजा गया तब बहन को लाने के लिये माता की आज्ञा सिर पर चढ़ा कर तेजा तैयार हुआ।

अध्याय ३

शत्रुओं की चुनौती।

माता की आज्ञा को माथे चढ़ा कर तेजा को एक बार, थोड़े समय के लिये ससुराल जाने का संकल्प त्यागना पड़ा। वह जब बहन को लिवा लाने के लिये घर से विदा हुआ तब ख़र्च के लिये उसके साथ डेढ़ सौ रुपये बाँधे गये, एक घोड़ी उसकी सवारी के लिये दी गई और शायद बहन के लिये बढ़िया बैलों का एक तांगा। मालूम होता है कि तेजा आज कल के दरिद्र किसानों की तरह भूखा बंगाली नहीं था। अच्छी तरह खाता पीता था। यदि आजकल की तरह धरती पर अनाप शनाप लगान होतो, मंहगी पर मंहगी और अकाल पर अकाल पड़ते रहते, टैक्स पर टैक्स लग जाते और घर गृहस्थी का ख़र्च बहुत बढ़ा चढ़ा होता तो बिचारे तेजा को घर की घोड़ी रखने का समय कहां से मिलता! ख़ैर चारे और दाने की जब बहुतायत थी तब किसान के घरू बैलों की जोड़ी अच्छी हो तो इसमें आश्चर्य्य क्या? परंतु तेजा को समधियों के यहाँ लिवा ले जाने के लिये यह जोड़ी पसंद न आई। उसने पूरे डेढ़ सौ रुपये ख़र्च करके एक बढ़िया जोड़ी ख़रीदी। इससे पाठक शायद यह समझें कि उस समय भी बैलों की जोड़ी का यही भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अब है और आज कल गायों और बैलों के मारे जाने का नाम लेकर चौपाये मंहगे हो जाने की जो दुहाई दे रहे हैं वे भूलते हैं, सो नहीं। जैसा माल वैसा मोल। घोड़ा पचीस को भी मिल सकता है और पांच हज़ार में भी सस्ता। साधारण कामों के लिये उस समय चालीस पचास रुपये में जोड़ियाँ मिलती थीं। अस्तु तेजा ने जोड़ी ख़रीद कर राज्य की कोतवाली अथवा सायर में महसूल चुकवाया। कोतवाली अथवा सायर लिखने से प्रयोजन वही है जिसे गानेवाले चबूतरा कहते हैं और देशी रजवाड़ों में दोनों ही चबूतरा कहलाते हैं। सिद्ध होता है कि आज कल की तरह हिन्दू राज्य में रह कर भी बैल की बिक्री पर महसूल लेने का उस समय रवाज था।

तेजा की बहन का नाम राजा था। वह किस गाँव में ब्याही गई थी सो मालूम नहीं किन्तु तेजा वहाँ दो रात बीच में रह कर पहुँचा। इससे अनुमान होता है कि पचीस तीस कोस से कम न होगा। तेजा के समधी का नाम जैांरा था। गाँव के किसी पनघट की बावली पर तेजा शरीर कृत्य से निवृत्त होकर बहन से मिलने के इरादे से ठहर गया। गाँव की पनिहारिनें जब वहाँ पानी भरने के लिये आईं तब उन्होंने बातचीत से उसे पहचाना और तब राजा को जा कर ख़बर दी कि—"तुझे लिवा ले जाने के लिये तेरा भाई आया है।" इन स्त्रियों में राजा की ननद भी थी। उसका नाम मालूम नहीं। ननद का पैगाम सुन कर राजा ने यह बात मिथ्या समझी। वह बोली :—

"मुझे पीहर से आये बारह वर्ष हो गये। अभी तक जब किसी ने मेरी सुध नहीं ली तो अब कौन आने लगा! घर से निपूता ढोर खो जाने पर भी उसकी तलाश की जाती है। इसलिये नाहक मेरी दिल्लगी करके मुझे क्यों कुढ़ाती हो। उनके लेखे तो मैं मर गई।"

"नहीं २ भाभी कुढ़ो मत! उदास मत हो! मैं तुमसे दिल्लगी नहीं करती, सच कहती हूं। तुम्हें विश्वास न हो तो (अपनी चूड़ियाँ दिखाकर) सौगंद खाकर कहती हूँ कि तुम्हारा भाई आया है और पनघट की बावली पर ठहरा हुआ है।"

इससे पाठक समझ सकते हैं कि जब हिन्दु रमणियां पति के लिये स्वप्न में भी कभी अशुभ चिन्तन न करने का दावा करती हैं, जब चूड़ी की सौगंद उनके लिये सिर कट जाने से भी बढ़कर है और जब उन्हें मर जाना मंज़ूर परन्तु चूड़ी की क़सम खाना मंज़ूर नहीं तब राजा की ननद ने एक हलकी सी बात के लिये इतनी भारी क़सम क्यों खाई? उनकी ऐसी समझ में भूल नहीं किन्तु इस बात से यदि वे यह परिणाम निकाल लें कि हिन्दू समाज उस समय इतना गिर गया था कि पति की शपथ खाने में उसने किंचित् भी आनाकानी न की तो उनका यह भ्रम है। क़सम खानेवाली जाटनी थी जिनमें धरेते का रिवाज सदियों से चला आता है। हां, इससे यह नतीजा अवश्य निकल सकता है कि जिन जातियों में एक पति के मर जाने पर अथवा उससे खटपट हो जाने पर दूसरा खसम कर लेने की चाल है उनके यहाँ पति की क़दर इतनी ही है।

ननद के सौगंद खाने पर जब राजा को भरोसा हुआ कि सचमुच उसका भाई आया है तब वह फूले अंग न समा सकी। लोग कहते हैं कि पनघट की बावली से तेजा चल कर जब बहन के यहाँ गया तब नगर के लोग लुगाइयाँ उसे देखने को इकट्ठी हो गई थीं। सब आपस में कहते थे कि—"जिसे देखने की मुद्दत से अभिलाषा थी उसे आज आँखों से देख लिया।" बोध होता है कि या तो गांव के ज़मींदार का नातेदार समझ कर लोग तेजा को देखने आये हों अथवा तेजा की वीरता का डंका इससे पहले बज चुका हो; किन्तु अब से पहले उस ने कब कहाँ वीरता की सो पता नहीं। प्राचीन समय में द्विजों के यहाँ द्विज जब अतिथि होता था तब मधुपर्कादि से उसका सत्कार करने की जैसे चाल थी वैसे ही अपने किसी आत्मीय स्वजन प्यारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाहुने के आने पर उसके लिये आरती उतारने का काम सुहागिनी माता, बहन इत्यादि किया करती थीं। बस इसी तरह राजा ने तेजा का भी स्वागत किया। भारतवर्ष के भाषा काव्य में जैसे अत्युक्ति का बहुत आदर है वैसे ही इन गँवारों के गीत में भी कमी नहीं है। कहा जाता है कि मोतियों से थाल भर कर राजा ने भाई की आरती उतारी। मोती सच्चे थे अथवा झूठे सो राम जाने। शायद मोती नहीं ज्वार हो। ज्वार के दाने मोती से होते हैं। लोग सेर ज्वार के लिये सिर कटा दिया करते हैं। "ज्वार बिना कोई द्वार न आवै, जग में नाता ज्वारी का।" बस ऐसे भाई को वधा (?) लिया और तब दोनों ओर के कुशल प्रश्नों का समय आया। तेजा ने अपनी माता का सँदेसा बहन और उसकी सास को सुनाया। उसने अपने गांव की ख़बर सुनाते हुए कहा कि—"छोटा भाई अब इतना बड़ा हो गया है कि बछड़े चराने लगा है।" गाँववालों को अब तक भी अपनी उमर के साल याद नहीं रहते हैं। वे ऐसे ही इशारे से उमर बतलाया करते हैं। इसका मतलब यही है कि लड़के की उमर दश बारह वर्ष की है। खैर बहुत वर्षों में भाई के आने पर बहन उसे उलाहना देने से भी न चूकी। उसने कह दिया:—

"ओ हो! हो! इतने वर्षों में आया! मैं तेरी सूरत भी अच्छी तरह न पहचान सकी। मैं तो भैया, पीहर का रास्ता तक भूल गई।"

इसके अनंतर बहनोई से मिलने की बारी आई। दोनों ओर से "जुहार साहब! जुहार!" हुई। साले का आतिथ्य सत्कार हुआ। नई हंडिया में चावल तैयार किए गए। वहाँ पर भी तेजा ने भगवान् के भजन पूजन में संकोच नहीं किया। तेजा का शृंगार इस तरह का था। पैरों में चमकीला जूता, हाथ में भाला, धोबी से धुलाई हुई मिरजई और कंधे पर रंगीन धोती। माथे पर क्या था सो याद नहीं। भोजन करते समय तेजा की समधिन से यों बातें हुईं:—

"समधिन, राजा को भेज दे। दस दि वहाँ भी रह आवेगी। मेरी मा का इसके लि बहुत जी लगा हुआ है।"

"नहीं इस समय मैं नहीं भेज सकती। बहू को भेज देने में मेरी खेती चैापट हो जायगी, और तो और परंतु दही कौन बिलोवैगा।"

इसके उत्तर में जब तेजा ने समधिन को प भूरी भैंस देने का वादा किया तब वह राजा को भे देने पर राजी हुई। यों सब लोगों से मिल भेंट क राजा की सास के पैरों पड़ने के अनंतर वह बहन को लेकर वहाँ से चल दिया। वास्तव में मार्ग की र का उस समय आज का सा प्रबंध नहीं था। शाय तब इतनी आबादी भी नहीं थी। बहन की ससुरा और भाई के घर के बीच का रास्ता बिलकुल जंगल जंगल में हो कर था। पीलेखाल के पास उनको मी ने घेर लिया। तेजा सिर से पहले नाक कट वाला, मरे मारे बिना एक ही घुड़की में कपड़े ल दे देनेवाला नहीं था। मीने भी बिना घाय किये अथवा बिना घायल हुए किसी को लूट ले कायरता समझते थे। यदि कोई मुसाफ़िर चोरों डर से चुपचाप कपड़े उतार देने को तैयार जाय तो वे कहा कहा करते थे कि—"यों देना तो किसी ब्राह्मण को देना। हम खून निकाले बि ऐसा दान नहीं लेंगे।" बस परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर से लड़ाई ठन गई। तेजा बोला:—

"लड़ो बेशक! मैं भी रणभूमि को पीठ दिखा वाला कुपूत कायर नहीं हूं। मारूंगा; और सब को मार कर मरूंगा परंतु लड़ने झगड़ने पहले (धरती में अपना बरछा रोप कर) उखाड़ लो तब मुझसे संग्राम करने की हिम करना।"

लोग कहते हैं कि तेजाने अपना भाला पत्थर गाड़ दिया था। खैर गाड़ा किसी जगह पर हो पर जब मीनों से बरछा उखड़ न सका तब वे कह कर किः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा आज हम तुझे ज़िन्दा छोड़ देते हैं परंतु जब तू सुसराल जावेगा तब रास्ते के पहाड़ों में तुझ से ज़रूर बदला लेंगे।" चलने लगे।

"ख़ैर! मैं तब भी तुम्हें पानी का लोटा पिलाने को तैयार हूँ। बेशक! मेरी ससुराल ऐसी ही विकट जगह में है जहाँ लूट खसोट, मारकाट और डकैती का बाज़ार हमेशा गर्म रहता है।"

तेजा से ऐसा जवाब पाकर मन ही मन वैर लेने की प्रतिज्ञा करते हुए वे लोग वहाँ से चले गये और यह भी अपनी बहन को लिये हुए घर आ पहुँचा। घर पहुँच कर तेजा ने फिर वही ससुराल जाने की बात छेड़ी। माता ने बहुतसमझाया परंतु उसने माना नहीं। बड़े भाई और भौजाई के नाम का पता नहीं परंतु भाभी ने उसे समझाया। उसने यहाँ तक कहडाला किः—

"जहाँ तेरी ससुराल है वहाँ "दौड़ों" का दौर-दौरा है। मैं तुझे एक की जगह दो—एक मेरी सगी बहन और दूसरी चचेरी बहन—विवाह दूँगी। तू वहाँ मरने के लिये मत जा। वहाँ जायगा तो अवश्य मारा जायगा। मैंने स्वप्न में देखा है कि तुझे नाग डस गया और तेरा देवल बन गया। इसलिये प्यारे देवर मैं तुझे हरगिज़ न जाने दूँगी।"

जब उसकी ससुराल ऐसे भयंकर प्रदेश में थी तब उसके चचा और भाई ने उसे रोका क्यों नहीं अथवा उसकी मदद के लिये दस पाँच हथियारबन्द साथ क्यों न हुए—सो कोई नहीं कहता, परंतु यह निश्चय है कि यह अकेला ही जाने को तैयार हुआ। तेजा की घोड़ी का नाम लीला अथवा लीलाधरी था और उसका रंग समंद था। घोड़ी बड़ी मन-चली थी। जाने की तैयारी देखते ही वह रणोन्मत्त की तरह नाचने और उमंग दिखलाने लगी। तेजा ने तीर कमान, भाला, सिरोही, तलवार, तोड़ेदार बंदूक और कमर में कटार—इतने हथियार साथ लिये। उसके शिर पर सुरंग पगड़ी, उस पर कलंगी टँकी

हुई थी। सब साज सामान से लस कर वह घोड़ी के पास गया और उसे चलने के लिये उतावली देखकर ज्योंही वह घोड़ी पर चढ़ने लगा त्योंही उसकी मा, भौजाई और बहन ने उसे पकड़ लिया। उन्होंने फिर भी उसे समझाया परंतु उसने किसी की एक भी न सुनी। बहन के पूछने पर उसने इकरार किया कि—"पीपल के जितने पत्ते हैं उतने ही दिनों में वापस आऊँगा।" बस इससे सबने समझ लिया कि "तेजा वापस आने के लिये नहीं जाता, मरने को जाता है।" यह समझ कर सब की सब रो पीट कर रह गईं और सचमुच ही तेजा मरने के लिये–मर कर अपना नाम अमर कर जाने के लिये घोड़ी पर सवार होकर वहाँ से चल दिया।

अध्याय ४

प्रतिज्ञा की परिसीमा।

जब तेजा अपने घर से सचमुच मरने मारने अथवा मर मिटने के लिये चला था, जब उसने माता और बहन तथा भौजाई के हजार समझाने पर भी अपनी गृहिणी से मिलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी और जब उसे मीनों की चुनौती के बदले के लिए, समर भूमि में अपने हाथों की परीक्षा देकर अपना नाम अमर कर जाना था तब मार्ग में यदि बुरे से भी बुरे शकुन हुए तो क्या? यद्यपि देहाती लोग शकुनों के बहुत कायल हैं, वे इस काम को समझते भी अच्छा हैं और अनुभव से अनेक बार सिद्ध हो चुका है कि शकुन झूठे नहीं होते हैं परंतु तेजा ने बुरे शकुनों की किंचित् भी परवा न की। निश्चय है कि तेजा गँवार देहाती होने पर भी कर्त्तव्य-दक्ष था। वह जानता था कि आदमी अपने कर्त्तव्य-पालन के लिये पैदा हुआ है। वह नितांत निरक्षर होने पर भी जानता था कि चाहे कोई प्रशंसा करे अथवा निन्दा, चाहे धन आवे अथवा चला ही क्यों न जाय, चाहे आजही शरीर छूट जाय अथवा सौ वर्ष बाद परंतु धीर पुरुष न्याय का मार्ग नहीं छोड़ते हैं। वह सचमुच हीः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलंति पदं न धीराः॥"

इस लोकोक्ति का ज्वलन्त उदाहरण था। बस इसलिये उसने अपनी जन्मदात्री माता की आज्ञा को तुच्छ समझा; देहातियों के लिये जिन शकुनों पर ही उनकी दुनियादारी का आधार है, जो ज्योतिष के मेघ गर्भों से, गवर्नमेंट की मेटिरिओलाजिकेल रिपोर्ट से वृष्टि खेती और फसल के काम में हज़ार दर्जे ठीक मिलते हैं उन्हें पैरों से रौंद कर चला और यों उसने दिखला दिया कि जिसे कुछ कर दिखाना है उसके लिये ये तिनके के समान रद्दी हैं।

उसे मार्ग में काले और खाली कलश लिये कुंभारी मिली, उसके सामने काले बैलों की जोड़ी जुती हुई गाड़ी मिली, उसके जाते समय बाईं ओर गीदड़ बोला, और इसी तरह खोटे से खोटे अपशकुन उसे होते गये। जब तेजा ऐसे ऐसे भयंकर अपशकुन देखने पर भी न डरा, न लौटा और उसने अपना संकल्प न बदला तब यदि शकुन देखते ही मनमें एक बार दगदगा भी हुआ तो क्या और न हुआ तो क्या!

अस्तु! जिस समय वह यों घोड़ी दौड़ाता चला जा रहा था उस समय एकाएक उसकी नज़र जलते हुए जंगल पर पड़ी। वहाँ का जंगल जल जल कर भयंकर ज्वालाएं उगल रहा था, चारों ओर धुआँ ही धुआँ होकर आकाश धुआँधार हो रहा था। जो पशु और पक्षी भाग कर, उड़कर अपना प्राण बचा सकते थे वे अवश्य भागे, उन्होंने अपनी प्राणरक्षा का भरसक प्रयत्न किया किन्तु जब यमराज का छोटा भाई भीषण दावानल प्रलयकाल की अग्नि की तरह अपने हज़ार हज़ार हाथों से पकड़कर जीव जन्तुओं को अपने विश्वनाशक मुख में डाल रहा था तब जान बचाने का उपाय ही क्या! यों भाग जाने पर भी, उड़ जाने पर भी जल भुन कर भुरता हो गये। वहाँ की यह दशा देख कर उसका कोमल हृदय एक दम पसीज गया। गृहिणी से प्रथम समागम की उसकी लालसा और प्रतिज्ञा हवा हो गई। उसने गाएं चरानेवाले ग्वालों से इसका कारण पूछा। उसने पूछा कि—"ऐसा घोर कर्म करनेवाला कौन है?" शायद उसे यदि आग लगा देनेवाले का नाम धाम मालूम हो जाता तो वह अवश्य उसे मजा चखाए बिना नहीं मानता परंतु जब बाँसों के संघर्षण से आग लगी थी तब वह दंड भी देता तो किसे देता? जो जंगल जल रहा था वह घास से हरा भरा था। गोचारण के लिये परती छोड़ी हुई भूमि थी। यह सच्चा गोरक्षक गोसेवा के सिवाय अभी तक उमर भर में इसने कुछ काम ही नहीं किया और जब गोरक्षा के लिये मरने को जा रहा है तब गोग्रास—गाय का चारा—जलते देख कर उसका हृदय उछल पड़ा।

तेजा ने घोडी से उतर कर उसे एक अधजले वृक्ष से बाँध दिया। वह धोती ऊपर चढ़ाकर, हाथ की बाँहें ऊँची समेट कर आग बुझाने के लिये तैयार भी हुआ परंतु वहाँ बंबई कलकत्ते की तरह आग बुझाने की कल नहीं, पास कोई कुआँ नहीं, बावली नहीं, तालाब नहीं। पुराण-प्रसिद्ध कथा है कि एक बार किसी पक्षी के अंडे समुद्र बहा ले गया। पक्षी को उस पर क्रोध आया। "कमजोर और गुस्सा ज्यादह" इसके अनुसार वह पखेरू समुद्र जैसे महा बलवान् शत्रु की अनंत जलराशि को उलीच उलीच कर फेंक देने को तैयार हुआ। जल भर भर कर फेंकने के लिये उसके पास कोई पंप नहीं, पखाल नहीं और मशक नहीं—तब उसने अपनी जरा सी चोंच में भर भर कर पानी फेंकना प्रारंभ किया। बस तेजा का उद्योग उसी पक्षी के समान था। वह पक्षी चोंच से समुद्र उलीच कर बदला लेना चाहता था और तेजा ने बिना जल, बिना मदद आग बुझाने का साहस किया। आग किस तरह बुझाई गई सो कोई नहीं बतलाता किन्तु "जो आकाश पर तीर मारता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पेड़ की फुनगियों तक अवश्य पहुँचा देता है।" अथवा जो दृढ़प्रतिज्ञ होकर कार्य आरंभ करता है परमेश्वर, उसका अवश्य सहायक होता है। बस इसी न्याय से उसने आग बुझाई।

यों आग जरूर ठंढी पड गई पर एक घटना देखते ही उसके आश्चर्य का पारावार न रहा। उसने समझ लिया कि वास्तव में मारनेवाले से जिलाने-वाला बलवान् होता है। जो कुछ करता है परमेश्वर अपनी इच्छा से करता है। प्राणी केवल निमित्त मात्र हैं। उसे आश्चर्य इसलिये हुआ कि "महा-भारत" के संग्राम में जैसे घमासान युद्ध के समय लाशों पर लाशें गिरने की जगह, रक्त की नदियों के बीच, टिटिहरी के अंडे हाथी का घंटा गिरजाने से उसकी पोलाई के बीच में बच गये थे वैसे ही एक काला नाग बच गया। जलती हुई आग के बीच जाकर उसने अपने बरछे की नोक के सहारे वह सर्प उछाला और तब धरती पर गिरते गिरते अपनी ढाल में रोक लिया। यों जलते हुए उसने नरशत्रु नाग के प्राण बचाकर अच्छी रक्षा की। अपने दुपट्टे पर उसे रख दिया। किन्तु फल उसका उलटा हुआ। तेजा का कृतज्ञ होकर उसे धन्यवाद देने-आजीवन उसका शुभचिन्तक रह कर उसे सहायता देने-के बदले नरशत्रु नाग उलटा उससे नाराज हुआ। नाराज होकर उसने दिखला दिया कि दुर्जनों का उपकार करके मौत मोल लेना है। उसने साबित कर दिया कि जो बुरे हैं वे अपनी बुराई से कभी नहीं चूकते। और इसी लिये बड़े लोगों ने ठीक कहा है कि—"पयः पानं भुजंगानां केवलं विष वर्द्धनम्"।

खैर! वह साँप बोलाः—"ओहो बड़ा गजब हो गया। तैने मुझे बचाया क्यों? मैं यदि जल जाता तो कष्टों से छूटता। मैं हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी के दारुण संग्राम में मारा गया चाँपावत सरदार हूँ। मेरा नाम बलूसिंह (बलदेवसिंह अथवा बलवंतसिंह का संक्षेप) है। अपनी घोड़ी का मूल्य चुकाए बिना मर जाने से और मरती बार मन में इस तरह की ग्लानि रह जाने से मुझे सर्पयोनि में आना पडा है। मैं मर जाता तो दुःख से छूटता। अब मैं तुझे डसूँगा। मारे बिना हरगिज़ न छोडूँगा।"

एक विषधर भुजंग का, नरजाति के चिरशत्रु का, ऐसा इरादा देखकर, उससे ऐसा बर्ताव पाकर यदि तेजा चाहता तो उसी समय उसका सफाया कर सकता था किन्तु जिसको बनाया उसे बिगाडना, जिसे बचाया उसको मारना और जिसका उपकार किया है उसका घात करना हिन्दू जाति ने कभी सीखा नहीं। हज़ार जमाना बिगड़ जाने पर भी ऐसी नीचता हिन्दू से कभी स्वप्न में भी नहीं हो सकती। हाँ! तेजा के लिये इस समय एक रास्ता और भी था। वह यदि चाहता तो उसकी खुशामद कर सकता था, उसके आगे रोकर—गिड़गिड़ा कर प्राणों की भिक्षा माँग सकता था। किन्तु "हाहा खाये न ऊबरै बैरी बस पडियाँ।" यह लोकोक्ति उसके दिमाग में चक्कर काट रही थी। जो हथेली पर जान लेकर केवल मरने ही के इरादे से घर से निकल पड़ा है यदि वह शत्रु की और सो भी एक ऐसे दुश्मन की जिसको वह अभी मरते मरते बचा चुका है खुशामद करे, तो सचमुच उसकी बहादुरी में बट्टा लग जाय। उसकी जननी लजा जाय। बस इसी लिये तेजा ने उस सर्प को वचन दिया। वह बोलाः—

"अच्छा तुझे उपकार के बदले में मेरा अपकार करके कृतघ्न बनना है तो भले ही बन। मैं तैयार हूँ। मैं मरने को तैयार हूँ। मुझे किंचित् भी तुझसे भय नहीं है किन्तु आज से सर्प जाति पर कोई उपकार नहीं करेगा।"

"कुछ भी हो परंतु जब मेरी नागिन इसी आग में जल कर मर चुकी है तब तैंने उससे मेरा विछोह क्यों किया? मैं तुझे जरूर डसूँगा।"

"हाँ हाँ! डस लेना! डस लेना! मैं कब कहता हूँ कि मुझे प्राण दान दे; परंतु एक ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात मैं तुझ से कहता हूँ। मेरी शादी हुए बारह और बारह चौबीस वर्ष हो गये हैं। तब से मेरी स्त्री अपने मैके में पड़ी पड़ी कौवे उड़ा रही है। एक बार जीते जी उससे मिल आने दे। तब मैं ज़रूर तेरे पास आ जाऊँगा। उस समय जो कुछ तेरे जी में आवे सो करना।"

इस पर सूर्य चंद्रमा की गवाही से, धरती माता की शहादत से सर्प ने तेजा की बात स्वीकार की। वास्तव में हिन्दू जाति की सत्यनिष्ठा का यह नमूना है, तेजा की सच्चाई की सीमा है कि शत्रु भी उसके वचन का विश्वास करे, एक कृतघ्न सर्प तक को उसके प्रतिज्ञा-पालन का भरोसा हो। इससे सिद्ध होता है कि उस समय तक हिन्दू जाति के हृदय से विश्वास का विनाश नहीं हुआ था।

यों तेजा काल के गाल में से बच कर वहाँ से चल अवश्य दिया और चला भी एक और प्रतिज्ञा के भार से अपने हृदय को लाद कर अपनी प्राण प्यारी के प्रिय दर्शन के लिये। किन्तु वहाँ से दो मंजिल निकल कर जब तीसरी मंजिल पर पहुँचा तो बनास नदी ने उसका रास्ता रोक लिया। घोड़ी समेत तेजा को नदी पार कर देने के लिये मल्लाह अवश्य तैयार थे किन्तु वह जेरबंद खोल कर ऊपर बाँध लेने के बाद, घोड़ी समेत चौमासे की चढ़ी हुई बनास के, पार हो गया। पार जाकर उसने दूसरे किनारे पर श्रीबदरीनाथ महादेव के दर्शन किए। गानेवाले कहते हैं कि यह वही महादेव हैं जो आज कल गोकर्णेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। गोकर्णेश्वर महादेव का मंदिर बनास के किनारे जयपुर राज्य के राजमहल नामक कस्बे में है। यह स्थान छावनी देवली से पाँच कोस पर अब तक विद्यमान है। यहाँ तेजा ने महादेव के दर्शन कर ब्राह्मण भोजन कराया, आप भोजन किया और घोड़ी को खूब चूरमा खिलाया। और तब दो दिन बीच में ठहर कर अपनी ससुराल के गाँव पनेर पहुँचा।

अब पाठकों ने अवश्य समझ लिया होगा कि मुन्शी देवीप्रसाद जी की बतलाई हुई पनेर और इस पनेर में कोसों का अंतर होना चाहिए। मुन्शी देवीप्रसाद जी की तलाश के अनुसार तेजा की जन्मभूमि चाहे मारवाड़ के खड़नाल गाँव में हो अथवा गानेवालों के विचार के अनुसार रूपनगर राज्य किशनगढ़ में हो किन्तु उसके गाँव और ससुराल का फासला कम से कम पांच सात मंजिल होगा और इन दोनों के बीच नदी बनास भी होनी चाहिये। यद्यपि, पनेर गाँव बूँदी अथवा जयपुर के इलाके में कहाँ पर है अथवा उस ज़माने में था सो अभी तक मालूम नहीं किन्तु जो आदमी रूपनगर से चलकर राजमहल के निकट बनास नदी के पार उतरे और राजमहल से उसकी ससुराल दो तीन मंजिल पर हो तो उसकी ससुराल अवश्य बूँदी के इलाके में डुगारी के आस पास होनी चाहिये। डुगारी में अब भी तेजा दशमी पर बहुत बड़ा मेला होता है। दूर दूर के यात्री अपनी अपनी डसियाँ कटवाने के लिये वहाँ जाते हैं। जब अटकल से ही काम लेना है तब यह कहा जा सकता है कि इसकी ससुराल केकड़ी में थी क्योंकि वहाँ भी भारी मेला होता है परन्तु इस अटकल से सच्चाई नहीं मालूम होती क्योंकि रूपनगर से केकड़ी जानेवाले को शायद प्रथम तो बनास उतरने की आवश्यकता ही नहीं और सो भी राजमहल के पास!

अध्याय ५

ससुराल में तिरस्कार।

गत अध्याय के अन्त में तेजा पनेर पहुँचता है परन्तु जिसने पचीस वर्ष की उमर में कभी ससुराल नहीं देखी, सास ससुर नहीं देखे, अपनी सात फेरे की औरत नहीं देखी अथवा यों कहो कि जिसको किसी ने न देखा वह योंही–बिना किसी तरह के इशारे के—ससुराल में जाकर कहे कि "मैं तुम्हारा दामाद हूँ और" यदि वहाँ पर पहचाना न जाय और ऐसा संभव भी है क्योंकि जब उसका ब्याह हुआ था तब उस की उमर छः महीने की थी–तो ज़रूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ से जूते मार कर निकाल दिया जाय । क्योंकि हिन्दुओं में दूसरे किसी का दामाद बन जाना गाली है। और यह उस ज़माने की बातें हैं जब राजपूत जाति किसी को अपना दामाद बनाने में अपनी हेठी—अपने लिए लज्जा समझ कर कोमल कन्याओं का जन्म लेते ही कलेजा मसोस डालती थी । "न रहेगा बांस और न बजेगी बाँसुरी" की लोकोक्ति के अनुसार जन्मते ही बालिका के रक्त से अपने हाथ रँगने की नीचता दिखाने में नहीं हिचकती थी। सब नहीं, अनेक परन्तु अनेकों की नीचता से कलंक सब पर था और उस काले टीके को मिटाने का यश ब्रिटिश गवर्नमेंट को है ।

अस्तु ! तेजा ने गाँव के बाहर जाकर किसी बगीचे में विश्राम लिया । यह बाग़ उसके ससुराल-वालों का था । किन्तु तेजा नहीं जानता था कि किसका है। जब वह जाकर वहाँ पहुँचा तब बग़ीचे का ताला बन्द था । इसके कहने से मालिन ने ताला नहीं खोला । गीतों में कहा जाता है कि उसके प्रताप से ताला अपने आप खुल पड़ा और शायद ससुराल में आकर अपनी मस्ती दिखाने के लिए ही उसने बगीचे में घोड़ी योंही छोड़ दी । घोड़ी ने बग़ीचे के पेड़ तहस नहस कर डाले तब मालिन को ग़ुस्सा आया और उसने ख़ूब कोड़े मार मार कर घोड़ी की खाल उड़ा डाली । घोड़ी की ऐसी दुर्दशा देखकर तेजा का भी क्रोध भड़क उठा । उसने मालिन को पीटा । मालिन रोती पीटती अपनी मालिकिन के पास गई और इस तरह तेजा के वहाँ आने का पैगाम उसकी ससुराल में पहुँचा । यह बगीचा उसकी स्त्री की निगरानी में था । उसका नाम बोडल था । उमर उसकी वही बारह और बारह चौबीस वर्ष की होगी । इस तरह बाग़ को नष्ट भ्रष्ट कर डालना और तिस पर मालिन को मारना—ये दो अपराध तेजा के थे । मालिकिन को सुनकर पहले बहुत ही क्रोध आया । एक चौबीस वर्ष की अबला बालिका में बल ही क्या जो प्रचंड तेजस्वी तेजा का मान मर्द्दन कर सके । यदि दोनों के भाग्य में दाम्पत्य सुख बदा होता तो शायद किसी दिन मानिनी बनकर तेजा का मान भी मर्द्दन कर सकती थी किन्तु इस समय युवती बोडल ने लूट मार के केन्द्र पनेर के निवासी लुटेरों के सरदार बदना जाट के बल पर यहाँ तक कह डाला कि—"मैं और तो और परन्तु पानी तक में आग लगा सकती हूँ। आकाश के तारे उतार सकती हूँ । तू घबराय नहीं । जिसने मेरा बाग़ बिगाड़ कर तुझे मारा है उसे अवश्य दंड दिया जायगा ।" घर में बेटी लाडली थी और ससुरालवालों के न सँभालने से बेटी का लाड और भी बढ़ गया था । बस इसने अपनी भाभी को हुक्म दिया कि—"पानी भर लाने के मिस से जाकर देखो तो वह कौन आदमी है ?" ननद के कहने से भौजाई गगरी माथे पर रखकर बग़ीचे की बावली में पानी भरने को गई । यह बावली बदना की बनवाई हुई थी ।

जिस समय भौजाई ने वहाँ पहुँच कर माथे की गगरी सीढ़ियों पर धरी तेजा जपस्थली में हाथ डाले हुए "राम राम" जप रहा था । तेजा के लिए इस तरह भजन करने का यदि यह पहला ही अवसर हो तो पाठक कह सकते हैं कि उसने ससुराल-वालों को दिखलाने के लिए ढोंग फैलाया था । किन्तु नहीं—यह उसका नित्य नियम था और सच-मुच ही वह बड़ा आस्तिक था । वह खाते पीते उठते बैठते, सोते जागते, चलते फिरते कोई काम भगवान् का नाम लिए बिना नहीं करता था । इस गायन में पद पद पर इसका संकेत है । और फिर वह ज़माना भी ऐसा नहीं था जिसमें भगवान का भजन भी झूठा ढकोसला ख़याल किया जाय ।

बादल की भौजाई और तेजा के साले की बहू ने घूँघट की ओट से उसे शिर से पैर तक अच्छी तरह निरखकर कुछ कुछ पहचाना, कुछ अटकल लगाई और तबकुछ मुसकुरा कर, होठों से अपनी मंद मंद हँसी को दबाते हुए परदेशी अनजान से बात करने में अथवा यदि कुछ पहचान भी लिया तो अपने ननदोई से बात चीत करने में लजाते हुए पूछा और पूछने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही थोड़ा सा विनोद झलका कर अपनपे का परिचय दे डाला। वह बोलीः—

"ए परदेशी पखेरू! किस नगरी का निवासी है और किसके यहाँ का प्यारा पाहुना है?"

"मैं रूपनगर का रहनेवाला हूँ। और इसी नगरी में बदना का प्यारा पाहुना। बदना मेरा ससुर और मैं उसका दामाद!" तेजा से ऐसा उत्तर पाकर उसकी कली कली खिल उठी। वह वैसे ही मृदु हास्य से कहने लगी—"कुँवर साहब! हैं आप पधारे हैं! भले पधारे! आज किधर भूल पड़े। मेरी ननद तो आपकी राह देखती देखती थक गई।" उसने इस तरह तेजा को अपना परिचय देकर उसका परिचय ले लिया किन्तु हिन्दुओं में योंही स्त्री जाति को स्वतंत्रता नहीं फिर घर की बहू बेटी और जवान क्योंकर एक जवान मेहमान से कह सके कि "तुम घर चलो।" बस यों वह भी जाते जाते ननदोई को उसी घूँघट की ओट से निरखती हुई, सिंहावलोकन की तरह फिर फिर कर इसकी ओर निहारती हुई चल दी और घर पहुँचकर तब ननद से बोलीः—

"लाओ हमारी मिठाई! बोलो आज क्या इनाम दिलवाओगी? मैं अभी ऐसी ख़बर सुनाना चाहती हूँ जिससे तुम्हारी कली कली खिल उठें।"

"हैं हैं! क्या ख़बर? कहो तो सही कौन सी ख़बर? ऐसी कौन ख़बर है जिसके लिए तुम मिठाई माँगती हो। मिठाई दो तो तुम दो। भगवान ने तुम्हें सुख दिया है। तुमने इस बार गनगौर पर ही मिठाई नहीं दी! मुझ अभागी से मिठाई क्या और इनाम क्या? जिसे ज़िन्दगी भर तुम्हारे टुकड़ों पर गुज़ारा करना है उससे मिठाई? भाभी योंही काँटों में न घसीटो!"

"नहीं! सच कहती हूँ। हँसी नहीं करती। आज ज़रूर मिठाई लूँगी (हँस कर) प्यारे पाहुने का—तुम्हारे ही प्यारे का पैगाम लेकर आई हूँ। जिसके लिए तुम बरसों से आस लगाये बैठी थीं वह आ पहुँचा और तुम्हें ही लेने के लिए आये हैं। और......" इतना कहते कहते ननद ने भौजाई का मुँह पकड़ लिया। इसके बाद क्या बात चीत हुई सो कहने का अधिकार इस लेखक को नहीं। कहने की आवश्यकता भी नहीं। मेरी कल्पना ने जहाँ तक इसे पहुँचा दिया उतना ही बस है।

ख़ैर पनिहारियों के कहने से तेजा को मालूम हुआ कि बदना जाट की हवेली के दरवाज़े पर पारस पीपल का पेड़ है, उसका बेटा कानों में मोती पहने हुए है, और वह ख़ूब धनवान है परन्तु उसके वहाँ जाने पर शायद इसका बिलकुल उलटा पाया। जिस समय तेजा ने अपनी सास के पास जाकर जुहार किया तो वह पीढ़े पर बैठी चरखा कात रही थी और जब ससुर से मिला तब वह भैंस चरा रहा था। उसके घर की औरतें आँगन बुहार रही थीं और लड़का चौसर खेल रहा था। दामाद की ख़ातिर करने के लिए पलँग बिछाया गया और कसूँबा डाला हुआ तम्बाकू उसे पीने को दिया गया। तेजा ने ससुरालवालों का ऐसा आतिथ्य स्वीकार तो कि[या] परन्तु वहाँ जाते ही फिर भगवान की सेवा के लिए जल की गगरी माँगी। इधर उसका [नि]त्य प्रकार से नित्य नियम आरंभ हुआ और उधर भोजन बनने लगा। घर से घी देकर बदले में तेल, [गेहूँ] का आटा देकर उसकी जगह कुलत्थ, और दाख [दामाद] को परोसने के लिए बाकले तैयार किये गये। इस पर बेटी बहुत कुढ़ी, बहुत रोई और मुँह फुला बनकर उसने माता से यहाँ तक कह दिया कि—

"घर में सब कुछ मौजूद होने पर भी मेहमान का इतना तिरस्कार क्यों करती है? क्या तुझे [वह] अच्छा नहीं लगा?"

"हाँ हाँ! जमाई और जम, दोनों की एक राशि है।"

अस्तु वह योंही रो झींक कर रह गई और [दामाद] के लिए परसा वही गया जो तैयार किया गया था। तेजा ने उस थाल में से दो तीन ग्रास अवश्य [लिये] परन्तु ससुराल में जाने पर ऐसा अपमान! [जहाँ] देवता के समान पूजा होने की आशा वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुर! विवाह के बाद चौबीस वर्ष में पहली बार ससुराल आने पर ऐसी बेइज़्ज़ती! तेजा इस अपमान को सहन न कर सका। वह तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ। क्रुद्ध होकर उसने थाली को एक लात मारी और तब वहाँ से यह गया वह गया, चल दिया। जाती बार उसने सास से जुहार की या न की सो मालूम नहीं किन्तु उसने सास की गाली अवश्य खाई। उसे जाता देखकर वह बोली:—

"अच्छा जाता है तो जा निपूते! तुझ पर गाज पड़े। जा! तुझे काला खा जावे! जा!"

तेजा गाली खा कर नहीं गया। गाली के बदले गाली ही उलटी गाली देकर वहाँ से वह चल दिया और तब उसने उसी बगीचे में अपना डेरा डाल दिया। वहां ठहरकर तेजा ने बस्ती भर के ब्राह्मणों को भोजन कराया। केवल ब्राह्मण भोजन ही क्यों, बस्ती के सब आदमी, लुगाई बालक-बूढ़ों को न्योता दिया; एक न दिया अपनी ससुराल वालों को और ब्राह्मण रसोई बनानेवालों के हाथ से चूरमा बनवा-कर सब को जिमाया। जब सब लोग राजी खुशी भोजन कर चुके तब तेजा की पारी आई। भग-वान के ध्यान पूजन से निवृत्त हो कर यह भी भोजन करने बैठा सही परन्तु ससुराल की तरह वहां भी उसकी थाली उसके सामने से खींच ली गई। अन्न भला बुरा चाहे जैसा हो किन्तु तेजा ने वहां उसके लात मारी थी। हिन्दू अन्न को देवता मानते हैं तब उसने उसका अपमान किया था। यहां तेजा के भोजन आरंभ करके दो तीन ग्रास लेते लेते ही माना गूजरी ने इसके आगे हाय तोबा मचाई। शायद यह वही माना गूजरी थी जो एक बार जंगल में जलाशय के किनारे उससे मिलकर उसके विवाह होने की याद दिला चुकी थी। माना ने कहा:—

"हाय हाय! अब मैं क्या करूँगी? घर में इस समय कोई आदमी नहीं। निपूते इस गांव के कोई मेरी पुकार सुनते नहीं और लुटेरे जंगल में से चरती मेरी सब गाएं लिये जा रहे हैं।"

"ले गये तो ढोली (ढोल बजानेवाले) को बुलाकर गाँव की "बार" चढ़ा। सब के साथ में भी चलने को तैयार हूँ।"

"बार क्या चढ़ाऊं? गांव के सारे मर गये। जब तू ही डरके मारे मरने के डर से आनाकानी करता है तब हद हो गई। हाय अब मैं क्या करूँगी। हाय मेरी सब गाएँ गईं। गवाड़ा-खिड़क खाली हो गया। अरे! ये वेही चांदा के मीने हैं जिनसे तैने चुनौती का बदला लेने की सौगंद खाई थी। ऐसा नामर्द था तो घर से आया ही क्यों था? मेरी तरह घाघरा पहन लेता।"

"हैं वे ही मीने? अच्छा तब जरूर जाऊँगा। अवश्य मारूँगा और मरूँगा परन्तु तेरी गाएँ छुड़ा कर लाऊँगा। जो न छुड़ा लाऊँ तो मैं तेजा नहीं। तेजा और तेजा की सात पीढ़ी को धिक्कार।" यों कहते हुए तेजा ने भूखे पेट थाली हटा दी। हाथ धोकर कुल्ली करने के अनंतर तेजा ने कपड़े पहने, हथियार सजाये और तब घोड़ी कसकर उसपर सवार हो गया। सवार क्या हुआ चढ़कर अकेला ही गाँववालों की मदद लिये बिना चल दिया। घर से जब चलने लगा था तब माता ने उसे रोका था किन्तु "बेटी देकर बेटा लेनेवाले" सास ससुर ने इससे कुछ न कहा। मालूम होता है कि ससुराल-वालों से इसकी दुश्मनी थी।

अध्याय ६

डेढ़ सौ से अकेला।

तेजा अथवा उसकी माता से बदना और उसकी जोरू की यदि शत्रुता न होती तो माता इसे ससुराल जाने से क्यों रोकती और बदना की औरत ही ऐसे प्यारे पाहुने का इतना अपमान क्यों करती? तेजा की माता के लिये तो यह भी खयाल किया जा सकता है कि बेटे का अमंगल विचार कर उसने भेजने में नाहीं की क्योंकि इधर तेजा मुठमर्द और उधर का प्रदेश भयंकर किन्तु बदना की जोरू के बर्ताव का कोई कारण ध्यान में नहीं आता। संभव है कि आज कल हिन्दू समधियों के आपस में जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरा जरा सी बात के लिये खिंचाखिंची हो जाया करती है और इस समय समधियों अथवा समधिनों के परस्पर अड़ाव से जैसे आजीवन स्त्री पुरुष में जूती पैजार हुआ करती है वैसे ही कुछ हो पड़ा हो !

खैर ! माना गूजरी के उभारने से तेजा सज-धज के साथ डेढ़ सौ मीनों से लड़ मरने के लिये अकेला ही चढ़ दौड़ा। उसकी शरणागतवत्सलता ने, उसके प्रतिज्ञा पालनने अथवा उसके भावी ने उसे पीठ तक फेर कर न देखने दिया कि कोई उसकी मदद के लिये आता तो नहीं है। अस्तु, वह घोड़ी दौड़ाता वहाँ से चला और जब तक उसे गायों को लिये हुए मीने जाते दिखाई न दिये उसने कहीं विश्राम तक न लिया। अंत में उसे दूर से गोरज उड़ती दिखलाई दी। फिर गाएं देख पड़ीं और साथ ही डेढ़ सौ हथियार बंद मीनों का झुंड। एक ओर डेढ़ सौ और दूसरी ओर अकेला वह। यदि तेजा कच्चे दिल का होता, यदि उसे प्राणों का लोभ होता और यदि वह माना से की हुई प्रतिज्ञा को तिनके की तरह तोड़ डालना चाहता तो उसी समय वापिस जा सकता था। परन्तु नहीं ! रणभूमि से विमुख होकर भाग जाना और मर जाना उसके लिये समान था। वह ऐसे नाक [illegible] कर जीने से सिर कटा कर मर जाने को सीधे स्वर्ग चला जाना समझता था। बस इसलिये उसने अपने प्यारे प्राणों को समर यज्ञ में होम देने के दृढ़ संकल्प के साथ ही लुटेरों को ललकारा:—

"ठहरो ! ठहरो ! कहां लिये जाते हो इन गायों को ? जो मर्द ूमी है तो लड़ो ! अपने प्रण का पालन करो और जो हिम्मत नहीं हो तो गायों को छोड़ कर भाग जाओ। देखना तुम डेढ़ सौ और मैं अकेला हूँ परन्तु इस अकेले के हाथों का मजा चख जाओ।"

"जा जा ! अपना मुंह लेकर लौट जा। नाहक औरों के काम के लिये दिये में पतंग क्यों बनता है। उस रांड़ गूजरी ने यों ही जीजा जीजा और जमाई जमाई कहकर तेरी जान लेने के लिये जोश दिला दिया है। याद रखना ! डेढ़ सौ आदमी हैं। [...] तेरी ओर थूंक दें तो भी तू बह जायगा। तेरी [...] मजाल जो हमपर हाथ उठा सके।"

"हैं ! मैं लौट जाऊँ ? चला जाऊँ तो मेरी ज[...] लाज जाय। तुम यदि डेढ़ सौ बकरियाँ हो तो [...] शेर और डेढ़ सौ चिड़ियों में अकेला बाज़ हूँ। [...] राओ नहीं ! अभी एक एक को गिन गिन कर ख़बर [...] लेता हूं। अगर तुम्हें गिन २ कर मज़ा न चखाऊं [...] मैंने माता लछमा का दूध पीकर झख मारी।"

हैं ! तू लछमा का बेटा है ? तब तो तू ह[...] भानजा हुआ ! वह हमारे राखी बांधती थी।"

"राखी बांधती थी तो अच्छी बात है ! माम[...] गायों को छोड़ जाओ और मेरी मामियों को [...] कांचलियां पहना कर विधवा मत बनाओ।"

"अरे छोकरे ! फज़ूल बातें बनाता है ! भा[...] अपनी जान लेकर। हम डेढ़ सौ बहादुर औ[...] अकेला छोकरा।"

"अच्छा लीजिये डेढ़ सौ बहादुर मामा सा[...] संभालिये।" कहकर तेजा ने तीर बरसाना आ[...] कर दिया। सचमुच ही उधर डेढ़ सौ और [...] वह अकेला था। एक दम से एक ही बार में [...] पर यदि डेढ़ सौ तीर पड़ें तो उसका शरीर [...] टुकड़े २ होकर लाश तक का पता लगना मुश[...] हो जाय। परंतु क्या अकेले तेजा पर डेढ़ सौ [...] डेढ़ सौ ही तीर मार सकते थे। गायों की सं[...] विदित नहीं परंतु जब उन्हें घेर कर ले जाने[...] डेढ़ सौ थे तब यदि दो हज़ार गायें मान ली [...] तो आश्चर्य नहीं। बस इतनी गायों को रोकने [...] भी तो चाहिएँ। यदि न रोकी जायं तो [...] जंगल में तितर बितर हो जायँ। गाएं [...] ऐसी नहीं थीं जो उन्हें पहचान कर बोली प[...] सकें। फिर डेढ़ सौ होने से उन लोगों को [...] भी था कि अकेला छोकरा हम डेढ़ सौ का [...] कर सकता है ? बस तेजा के तीरों की भर[...] सचमुच ही उनको व्याकुल कर दिया। उसने [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा था वैसा ही कर दिखाया। उसके एक २ तीर से एक एक आदमी मर मर कर, घायल हो हो कर, जब एक, दो, तीन, चार गिरने लगे तब मीनों के पैर उखड़ गए। पैर उखड़ जाने से पाठक शायद यह समझ बैठें कि क्या मीनों ने तेजा पर वार किये बिना ही उसे गायें सौंप दी होंगी। नहीं! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हो सकता है कि तेजा को अकेला समझ कर उन्होंने इसकी परवा न करने से धोखा खाया। परंतु वे भी खाली हाथों नहीं भागे। जिस समय गायें छोड़ कर मीने भागे उनके तीरों की मार से तेजा और उसकी घोड़ी भी कम घायल नहीं हुई थी। दोनों का शरीर सचमुच छिन्न भिन्न हो गया था। उनका सारा बदन लहूलुहान होकर कपड़े .खून से रंग गये थे। दोनों के शरीर में से रक्त टपक टपक कर धरती भिगोता जाता था, गायें आगे आगे घर की ओर मुंह किये हुए अपने २ बछड़े बछिओं से मिलने के लिये उतावली हो कर चली जा रही थीं और तेजा भी घायल वीरों की तरह मतवाले मातंग की नाईं विजय के जोश में झूमता हुआ पनेर की ओर चला जा रहा था।

उस समय उसे अवश्य ख़याल हुआ होगा कि माना को उसकी पूरी की पूरी गायें पहुंचाने से उसको धन्यवाद मिलेगा।" किन्तु धन्यवाद के बदले तेजा को उलाहना मिला। कृतघ्न माना ने तेजा की तारीफ़ करने के बदले, उसका उपकार मानने की जगह और मीठे वचनों से उसका स्वागत करने के स्थान में सचमुच ही अपनी नीचता दिखाई। उसने यह साबित कर दिया कि ऐसी ही नीचातिनीच नारियों की बदौलत रमणी-समाज कलंकित हुआ है। वह बोली:—

"अरे सब ले आया तो क्या हुआ? हाय मेरा काला सांड़! अरे वही सब की जान था। हमारे गाँव में दस बीस कोस तक ऐसा कोई सांड़ नहीं था। उसी की बदौलत मेरी गायों में अच्छे २ बैल पैदा होते थे और यों मैं हज़ारों रुपया कमाती थी। हाय अब मैं क्या करूंगी? ले जा, तेरी गायें मुझे नहीं चाहिएं। इतनी गायें! भले ही उनको वापस दे दे। बस मेरा सांड़ ला दे और नहीं तो पहन ले लँहगा! तैने कुछ भी न किया! जब मेरा सांड़ ही नहीं आया तो औरों का आना किस काम का?"

"अरे माना गूजरी। मुझे मत मरवा। मैं यों ही मारा जाऊँगा। उधर वे डेढ़ सौ और इधर मैं अकेला। मेरी चिंदिया बिखर जायगी और मुझे भय है कि मैं उस नाग-देवता से अपना वादा पूरा करने न पाऊँगा।"

"अच्छा तो तू डेढ़ सौ देख कर घबरा गया? गूलरफल के डेढ़ सौ मच्छरों से? बड़ा बहादुर बनता था ना? लंहगा पहन ले!"

"हैं! मैं लंहगा पहनूं? लंहगा पहनें पनेर के मर्द! मैं मारूंगा और मरूंगा।" कह कर तेजा ने फिर समरभूमि की ओर घोड़ी की बाग़ मोड़ दी। पहली बार जब तेजा गया था तब उसे प्रतिज्ञा-पालन के लिए जीता लौट कर नाग-देवता के दर्शन पाने की आशा थी। मरना तब भी था और अब भी है परंतु तब वचन का निर्वाह करके मरना था और अब प्रतिज्ञा की धरोहर छाती पर लाद कर मरने चला। तब शत्रु के बाणों की मार से उसका शरीर छिन्न २ हो गया था और अब जीवित लौटने की आशा त्याग कर चला और ठान कर चला कि अब समराग्नि में अपने शरीर को, प्राण को, प्रतिज्ञा को और सर्वस्व को होम कर देना है। बस यही ठान कर वह रणोन्मत्त हो कर चला और मारा-मार घोड़ी को दौड़ा कर तेजा ने फिर उन मीनों को जा पकड़ा। दूर से ही वह ललकार कर बोलाः—

"मामा जी, बैल लेकर कहाँ जाते हो? इसे तो दे जाओ। इतनी जानें खो कर भी यदि लड़ने से पेट न भरा हो तो एक बार फिर देख लो भानजे के हाथ!"

बस, इसके अनंतर .खूब ही मारा मारी हुई। इधर मीनों के तीरों की मार से तेजा के घाव पर घाव लगने लगे और उधर तेजा के तीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर पहले की तरह एक एक वार से एक एक आदमी को गिरा गिरा कर धराशायी करने लगे। वास्तव में घमासान युद्ध मच गया। मरनेवालों की लाशों से, घायलों के आर्तनाद से और तेजा के रक्तप्रवाह से गहरा झगड़ा मच गया। मांसभोजी रक्तलोलुप पशु पक्षियों की ख़ूब दावतें हुईं। अंत में मीने हार कर भाग गए। एकला सांड़ अथवा गानेवालों के शब्दों में "काने बछड़े" को लेकर तेजा विजय की हँसी हँसता वापस आ गया।

अध्याय ७

प्रतिज्ञापालन में आत्मबलि।

जिस समय माना गूजरी का "काना बछड़ा" लेकर, तेजा घायल शरीर से, रणोन्मत्त होकर झूमता झामता, गिरता पड़ता और फिर सँभलता शत्रुओं का दमन करता हुआ सचमुच ही गूलर-फल के जीवों की तरह रणचंडी के वीर मीनों की बलि चढ़ाता, पनेर के पास पहुंचा तो पहली मुठ-भेड़ उसकी गूजरी माना से ही हुई। माना ने तेजा का अपने ही स्वार्थ के लिये विनाश करवाने पर भी अपना "एकल सांड़" पाकर उसे धन्यवाद दिया या नहीं सो गानेवाले नहीं कहते; वे यह भी नहीं बतलाते कि "वचने का दरिद्रता" के सिद्धान्त से उसने तेजा से दो चार मीठे शब्दों से उसका मन का थोड़ा बहुत समाधान भी किया या नहीं। जब वह तेजा को मरवाने के लिये ही पैदा हुई थी, जब रण देवी को तेजा जैसे वीर की बलि चढ़ाना ही उसका इष्ट था और जब गानेवाले उसे तेजा का विनाश करनेवाली देवी बतलाते हैं तब वह तेजा को आशीर्वाद ही क्यों देने लगी। वह इस तरह के एक शब्द का उच्चारण किये बिना ही अपना "काना बछड़ा" लेकर वापस चल दी। वह इस तरह चल दी और तेजा ने भी अब उसे वहाँ ठहरने न दिया। आजकल के लोगों की तरह तेजा का उस समय भी ख़याल था कि मैली कुचैली औरत की परछांही पड़ने से उसके घाव बिगड़ जायंगे। जब वह तेजा का सचमुच ही काम तमाम कर चुकी थी तब उसे गरज़ ही क्या पड़ी थी जो अब वहाँ ठहर कर वह तेजा की मरहम पट्टी करने की झूंठ मूंठ मनुहार करती।

अस्तु! उसने वहाँ से चल कर तेजा के "अ[illegible]नब" हो जाने की ख़बर उसकी ससुरालवालों [illegible] दी। जिनको तेजा पर न मालूम क्यों घृणा थी, [illegible] उसके साथ साफ़ दुश्मनी दिखला चुके थे [illegible] जिन्होंने तेजा की जान की तिनके की तरह बिल[illegible] परवाह न की, वे आते तो आते ही क्यों? वहाँ से [illegible] केवल तेजा की गृहिणी और उसे अपने पति के [illegible] जाने से रोकने के लिये उसकी कृत्या माता। ते[illegible] की स्त्री पति की ऐसी दशा देख कर रोने ल[illegible] उसने रो रो कर आकाश गुंजा डालने में बिल[illegible] कोताही नहीं की। उसने पति के चरणों में [illegible] कर उसे बहुतेरा समझाया—बहुत कुछ प्रार्थना [illegible] और यहाँ तक कहा कि गाँव में चलो, मैं तु[illegible] सेवा करूँगी और तुम्हें अवश्य आराम होगा [illegible] परंतु तेजा ने उसकी बात पर कान नहीं दि[illegible] उसने साफ़ कह दिया :—

"मैं अपना कर्त्तव्य पालन कर चुका। अब [illegible] जी कर ही क्या करना है? मैं मर चुका और जब [illegible] मैं नाग देवता के पास पहुंच कर अपनी प्र[illegible] पालन न कर लूं तब तक एक एक मिनट मेरे [illegible] भारी है। मैं यदि उसके निकट पहुंचने से पहले [illegible] मर जाऊँ तो मेरी बात में बट्टा लग जाय। [illegible] लिये मैं उधर जाता हूं और तू अपने बाप के [illegible] जाकर मौज कर।"

"सो मुझ से नहीं हो सकेगा। जहाँ तुम [illegible] मैं। तुम जिओगे तो मैं जिऊँगी और तुम......" [illegible] कहते कहते बोदल का कंठ भर आया। वह न [illegible] सकी कि "तुम मरोगे तो मैं भी मर जाऊँगी।" हि[illegible] में भले घर की बहू बेटियाँ सौभाग्यवती र[illegible] अपनी ज़बान से ऐसा कभी नहीं कह सकतीं [illegible] यदि भूल से भी उनके मुँह से ऐसी बात नि[illegible] जाय तो उन्हें मरणान्त कष्ट होता है। अच्छा, उ[illegible] गला भर जाने से उसने आगे नहीं कहा और [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने दिया उसकी राक्षसी माता ने। उसने फ़ौरन ही बेटी का गला पकड़ लिया। वह बोली:—

"इस निपूते के साथ तुझे मैं कभी मरने न दूँगी। यह कल मरता आज ही क्यों न मर जाय। अच्छी बात है मर जाय तो मैं तुझे दूसरा अच्छा ख़सम करा दूँगी। मेरी गोरी गोरी बेटी के लिए एक नहीं—अनेक तैयार हैं। इस मुए से हज़ार दर्जे अच्छे। जिनके यहाँ जाकर मेरी बेटी मौज उड़ावे।"

"अपनी दूसरी बेटी को ख़सम कराइयो अथवा तू ही बुढ़ापा भड़काने के लिए दूसरा ख़सम कर लीजियो। ख़सम का नाम लेते तेरी जीभ नहीं जल जाती? जो बेटी के लिए ऐसी बुराई सोचती है उसपर भगवान् करे बिजली पड़े। यह माता नहीं पूतना माता है। अपने बेटे बेटी को दूध के बदले ज़हर पिला देनेवाली माता है।"

"अरे मान जा बेटी। मरे के साथ मत मर। जब जाटों में एक मरने पर दूसरा और दूसरा मर जाने पर तीसरा कर लेने की चाल है और जब जाटनी पति से कष्ट पाकर अपने सात फेरे के ख़ाविन्द को छोड़ सकती है तब तू नाहक ही इस मुए के साथ क्यों मरती है। इसका हाथ पकड़ कर तूने सुख ही कौन सा पाया है जो तू मरने चली है।"

"अम्मा, दुःख सुख अपने नसीब का है। जो जैसा करता है वैसा ही पाता है। मैंने जैसा किया वैसा पा लिया। जब एक से ही सुख नहीं मिला तो दूसरे से मिलने की क्या आशा है? फिर सुख भी मिले तो किस काम का? फूँक दे ऐसे सुख को। आग लगा दे ऐसे नये ख़ाविन्द को! मुझे ऐसा नहीं चाहिये।"

'अरे मान जा बेटी। अपनी जननी का कहा मान जा! मरे के साथ कोई भी नहीं मरता है। जिनमें दूसरा ख़ाविन्द करने की चाल नहीं है वे भी नहीं मरती हैं।"

"यह अपना अपना मन है। अपनी अपनी ताक़त है। मैं मरूँगी और अपने बहादुर स्वामी के चरणों में बैठ कर जल मरूँगी।"

"अरे बावली! जो रोटियाँ सेंकने में उंगली जल जाने से रो रो कर घर भर डालती है उससे दहकती हुई चिता में—ज्वाला छोड़ छोड़ कर ज़मीन आसमान एक कर डालनेवाली आग—में कैसे जला जायगा। मान जा। कहा मान। बेटी ज़िद्द मत कर। नाहक हठ करके अपनी फ़ज़ीहत न करा।"

"बस जा! जा! अपना मुँह लेकर चल दे। ऐसी झूठी बातें करके मेरा सत मत डिगा। मैं मरूँगी और ज़रूर ही जल मरूँगी।"

यों कोरा उत्तर पाकर बोडल की माता वहाँ से चल दी किन्तु गई तेजा को कोसती और बेटी को गालियाँ सुनाती हुई। सास के चले जाने के बाद तेजा ने भी अपनी स्त्री को बहुत कुछ समझाया बुझाया – बहुतेरा उसको बाप के यहाँ लौटा देने का हठ किया किन्तु प्राणनाथ के चरण पकड़ कर उनमें अपना शिर रख देने के सिवा, आँसुओं के धारा-प्रवाह से पति-चरणों को सिंचन कर प्राणनाथ की अंतर्दाह को शमन करने और अपने कलेजे की दहकती हुई ज्वाला को शान्त करने के अतिरिक्त उसने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। बस इससे तेजा ने समझ लिया कि विवाह के बाद चौबीस वष के अवसर में एक दिन के लिए भी दाम्पत्य सुख प्राप्त न होने पर भी बोडल का व्रत अटल है। अब हज़ार सिर पटकने पर यह माननेवाली नहीं। जब पति के साथ जाने की इसने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है तब सचमुच आग्रह करके इसका सत बिगाड़ना अच्छा नहीं। बस मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा में इसकी दृढ़ प्रतिज्ञा मिल गई। इस तरह पक्का मनसूबा बाँध कर दोनों वहाँ से चल दिये। पहले तेजा अकेला था किन्तु अब यदि दोनों के अलग प्राण और अलग तन माने जायँ तो एक और एक ग्यारह हो गये। किन्तु नहीं, हिन्दुओं के सिद्धान्त के अनुसार "एक प्राण दो तन"; और इस बात को दोनों ने थोड़ी देर के बाद सिद्ध भी कर दिखाया।

वे दोनों मार्ग में किस तरह गये सो कोई बतलानेवाला नहीं है किन्तु बन बन भटक कर दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उस साँप की बाँबी का पता लगाया। दोनों की संयुक्त प्रार्थना से जब नागदेव बाहर आये तब हाथ जोड़ कर, धरती पर माथा टेक कर और आँचल पसार कर रोती हुई बोडल बोली:—

"राजाओं के राजा, हे वासक (वासुकि) राजा, मुझ ग़रीब पर दया करके मेरे ख़ाविन्द को छोड़ दो। चौबीस वर्ष में एक दिन के लिए, एक पल के लिए भी मैंने सुख नहीं भोगा। एक के बदले दो दो हत्या क्यों लेते हो?"

"नहीं! इसमें मेरा दोष नहीं है। तेरा ख़ाविन्द ख़ुद मुझसे प्रण कर गया है। यदि वह अब भी कह दे कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी तो मैं छोड़ सकता हूँ। वह यहाँ अपना प्रण पूरा करने के लिए स्वयं आया है। मैं उसे बुलाने नहीं गया हूँ।" नाग देवता से ऐसा उत्तर पाते ही तेजा इस तरह उछल पड़ा जिस तरह पका फोड़ा छूने से बीमार उछल पड़ता है। वह अवश्य "अब तब" हो रहा था किन्तु अपने जोश को न सँभाल सका। उसने घावों की पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल होने पर भी नशे में आकर ज़ोर के साथ कहा:—

"नहीं! हरगिज़ नहीं! मैं अवश्य अपने वचनों का बाँधा हाज़िर हूँ। मैं अपने प्रण को लातों से कुचलनेवाला नहीं हूँ। मुझसे यह कभी नहीं हो सकता कि मैं वचन चूक जाऊँ। दुनिया में वचन चूक जाने के बराबर पाप नहीं। महाराज मुझे "वचन-चूक बाँदी का जाया" नहीं कहलाना है। आप ख़ुशी से जहाँ जी में आवे डसें। मैं तैयार हूँ।"

"हाँ हाँ! तू तैयार है तो मैं भी तैयार हूँ। तू अपना प्रण निर्वाह करना चाहता है तो मुझे भी उज्र नहीं है परन्तु (तेजा को नख से शिख तक निहार कर) तुझे डसूँ भी तो कहाँ पर डसूँ। सिर से पैर तक कोई जगह भी तो ख़ाली मिले! सारा बदन तीरों की मार से छिन्न भिन्न हो रहा है। ख़ून में तर है। मांस निकल पड़ा है। कहीं तिल धरने की भी तो जगह नहीं।"

"अच्छा इनके बदन में जगह नहीं है तो चाहे बासक (वासुकि) मुझे डस ले। मेरा सारा शरीर ख़ाली है और (पति की ओर इशारा करके) जैसे यह वैसी मैं। जिस दिन हमारा हथलेवा हुआ जिस दिन से हमने भाँवरी फिरी उस दिन से प्राण दो तन हुए। और एक हो चाहे अलग अलग हो तुम्हें एक की हत्या करने से ग़रज़। बस इनको छोड़कर मुझे काटो। इनके सामने मर जाने ही में मेरा भला है। यह जीते रह कर सुख पावें तो मैं सुख से मरूँ।"

"अजी, आप इन दोनों ही को क्यों डसते हो? मैं (घोड़ी बोली) तैयार हूँ। मुझे डसो और इन मालिक मालिकिन को सुख पाने के लिए छोड़ दो। मुझ जैसी इन्हें बहुत मिल जायँगी।"

"बस बस! समझ लिया! तू इन दोनों को वकील बनाकर अपने प्राण बचाने आया है। मरने से नहीं डरता है तो इन्हें क्यों लाया। अब भी जान प्यारी है तो भिक्षा माँग।"

बस नाग देवता के मुँह से ऐसी बात निकलते ही फिर तेजा को जोश आया। फिर वह ललकार कर कहने लगा:—"नहीं नहीं! ऐसा हरगिज़ नहीं होने दूँगा! मैं ज़रूर अपने वचनों को पालूँगा। अगर सारा शरीर ही आपके डसने लायक़ नहीं रहा है तो (जीभ निकाल कर) इसे डसिये महाराज। यह अछूत है।"

"अच्छा आपको एक के साथ तीन जान लेनी है तो भले ही डसें।" इस तरह बोडल के मुँह से और "मालिक मर जाय तो मुझे भी जीकर क्या करना है।" यों घोड़ी के कहने पर तेजा ने अपनी जीभ फैलाई और तब नागराज ने तेजा की जीभ का ख़ून पीकर अपना कलेजा ठंढा किया। इस तरह जब वह अच्छी तरह तृप्त हो चुका तो बोडल से बोला:—

"तुम (घोड़ी की ओर संकेत करके) हम तीनों के लिए अपने मेरे और ... लिए एक ही चिता तैयार करो। इस ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छे तेजा के साथ तू ते जलेहीगी, सात फेरे की औरत है परन्तु मैं भी जलूँगा। मैंने सारी लीला इसी लिए की है। एक ही चिता में तीनों के भस्म हो जाने बाद तेजा की पूजा तेजा के नाम से और देवाल जी के नाम से होगी। हमारे मंदिर में जो मूर्ति पधराई जायगी उसमें तेजा, उसके गले में मैं और पास तू खड़ी हुई होगी। घोड़ी तेजा की अवश्य होनी चाहिए क्योंकि यह उसे बहुत प्यारी थी परन्तु यह भी अगर यहां मर मिटेगी तो तेजा के घर पर ख़बर देने कौन जायगा, और वहां पहुँचे बिना मेरा काम सिद्ध क्योंकर होगा?"

जब बोदल ने पूँछा "आपका काम कौन सा?" तो नागराज ने उत्तर में कहा कि—"वही हमारी पूजा होने का। इसी मतलब से मैंने इसे डसा है। मतलब मेरा यही है कि तेजा के नाम पर जो कोई आदमी या जानवर को "डसी" बाँध देगा उसपर साँप के काटे का असर बिलकुल न होगा। बस इस तरह नाम अमर करके लोगों का सैकड़ों पीढ़ियों तक उपकार करने के लिए—हज़ारों लाखों जीवों के प्राण बचाने के लिये यह कौतुक है।"

"अच्छा महाराज! आपकी इच्छा" कह कर बोदल चुप हो गई। तब उसने पति का मस्तक अपनी गोदी में से उतार कर एक साफ़ सुथरी सी जगह पर धरती में लिटाया। पति को लिटाने के बाद उसने हँसते हँसते प्रसन्न होकर जंगल की लकड़ियाँ इकट्ठी कीं। यों चिता तैयार की। कहीं से तलाश करके चिता में आग दी और जब नीचे से वह अच्छी तरह जल उठी तब पति को उसपर लिटा कर लपक कर उसपर चढ़ बैठी। पति का मस्तक अपनी गोदी में रख कर बड़ी दृढ़ता के साथ बैठ गई। उसकी आँखों में आँसू की एक बूँद नहीं। मुख पर उदासी की बिलकुल झलक नहीं। बस मुख कमल पर मुसकुराहट, आँखों में मीठी मीठी हँसी और जबान पर भगवान के नाम के साथ पति के चरणों में टकटकी। जलते जलते उसने माता पिता को शाप अवश्य दिया कि। "तू सुअरी होजा और तू खोभड़ा।" क्रोध के मारे उसकी ज़बान से इतना निकला सो निकला। उसने भाई को फलने फूलने का, अन्न धन बढ़ने का आशीर्वाद भी दिया। किन्तु आनन्द के साथ अपने कर्तव्य पालन से प्रसन्न होते हुए—मानो आज अखंड ऐश्वर्य पा लिया—इस प्रकार के हर्ष से उसने सच्ची चिता के साथ पातिव्रत की अनंत ज्वाला में अपना सुख, अपना सौभाग्य, अपना शरीर और अपना प्राण तक होम दिया। ज़रा सी चिनगारी छू जाने पर जो सत्ताईस बार "सी सी" करती थी, जो मरने की गाली सुन कर मारने को दौड़ती थी उसने आज पैर जलने पर, हाथ जलने पर, शरीर जलने पर और मस्तक जल जाने पर एक बार "सी" तक नहीं की। लोग कहते हैं कि स्वामी की मुहब्बत स्त्री को विह्वल कर चिता में भस्म कर डालती है परंतु उसे स्वप्न में भी पति से प्यार करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। विवाह के दिन यदि संयोग से दंपती की चार नज़रें हो गई हों तो याद नहीं। वे चार नज़रें दुधमुँहे बालक बालिका की थीं, किन्तु आज के सिवा दोनो एक दूसरे ने कभी नज़र भर देखा तक नहीं। तब प्रेम का वास्ता कैसा? किन्तु जैसे तेजा ने अपने कर्त्तव्य की रक्षा के लिए, अपना नाम अमर कर जाने की इच्छा से, अपने प्यारे प्राणों की प्रतिज्ञा देवी को बलि चढ़ा दी उसी तरह बोदल ने आत्म-विसर्जन कर दिया। यों दोनों शरीर छोड़ देने पर भी मरे नहीं, जीते हैं। उनका यश उसी समय चिता की ज्वाला के साथ गगन-मंडल को भेदता हुआ स्वर्ग की अप्सराओं से गाया जाने लगा। बस इसी का यह परिणाम है कि अनेक वर्ष बीत जाने पर भी देवताओं की तरह उनकी पूजा होती है।

अध्याय ८

यों दम्पती की चिता में नागराज को भस्म कर देनेवाली ज्वालाएं "सूँ सूँ!" शब्द के साथ धुवों के हरकारों को आगे भेज कर जब आकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
पुस्तकालय

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सूर्य मंडल को भेदती हुई स्वर्ग के देवताओं द्वारा विष्णु भगवान के चरण कमलों में तेजा के, और बोदल के कर्तव्य पालन का नागराज की कामना का पैग़ाम पहुँचा रही थीं तब घायल घोड़ी ने अपने मालिक के चिर वियोग का मरणान्त दुःख आजीवन अपने हृदय में धारण कर माता लछमा (लक्ष्मी) के पास यह हृदय-विदारक शोक-संवाद पहुँचाने के लिये रास्ता लिया। घोड़ी बेशक घायल हो चुकी थी। उसके प्राण भी अपना सदा का अड्डा छोड़ कर कंठ में आ चुके थे। कदम कदम पर "यह गिरी, वह पडी" की हालत आ पहुँची थी। जब ऐसा बहादुर मालिक मर चुका था तब उसे जी कर ही क्या करना था? अब मरी तो मरी और घंटे भर बाद मरी तो मरी। परंतु यदि पैग़ाम पहुँचाने का कर्तव्य पालन करने से पहले ही मर जाय तो घोड़ी की जाति पर बट्टा लग जाय। उसका खेत ही कलंक का टीका लगने से बदनाम हो जाय। आज से फिर कभी कोई "सूर्य पुत्र" का भरोसा न करे।

शीघ्र गति में मोटर रेलवे और आकाशयान ने यदि घोड़े का आसन छीन लिया तो छीन लिया, जल्दी पहुँचने के काम में यदि लोग घोड़े घोड़ो का धिक्कार कर, उनका निरादर कर, विज्ञान की सवारियों पर चढ़ने में ही अपना सौभाग्य समझें तो उन्हें अधिकार है। परमेश्वर के न्यायालय के सिवा संसार में ऐसी अदालत कहीं नहीं है जहां अश्व जाति फरियाद करे। किन्तु आज कल की मोटर, रेल और आकाशयान घोड़े के पैरों की भी बराबरी नहीं कर सकते। दोनों में दिन रात का सा, धरती आकाश का सा और कौड़ी मोहर का सा अंतर है। वे निर्जीव हैं और यह सजीव। वे हृदयशून्य हैं और इसका अन्तःकरण स्वामिभक्ति और अपने कर्तव्य पालन से "लबालब" भरा हुआ है। मोटर, रेल और आकाशयान आदि सवारियां जिन विद्वानों की बनाई हुई हैं अथवा जो उनके स्वामी हैं उन्हें भी उनकी चूक का दंड देने से कभी नहीं चूक सकते। उनके यहां ज़रा सी चूक के लिये प्राण-दंड है। उनका भयंकर कुंभकर्णी कोप सैकड़ों हज़ारों को च की बात में विनष्ट कर डालता है। किन्तु घोड़ा घोड़ा संसार में अपनी बराबरी नहीं रखता। उस समान स्वामिभक्त, संसार में उससे अठगुना म पाकर अठगुना ख़र्च करानेवाला हाथी नहीं। स्वामि भक्ति का सार्टिफ़िकेट पानेवाला कुत्ता नहीं। कुत्ता चाहे कितना ही मख़मल के गद्दे क्यों न लिटाया जाय परंतु गोली की चटाचट और त वार की खचाखच होते ही दुम दबा कर अल किन्तु अच्छा घोड़ा मरने मारने के समय मैदा के बीच। वह जैसे रणभूमि में मालिक के साथ मिटने के लिये तैयार है वैसे ही सवार के प्राण ब कर निकाल ले जाने में भी चतुर। उस की नस न में वीरता, उसके अंतःकरण में स्वामिभक्ति उसके हृदय में मनुष्य के समान प्रेम। मनुष्य हृदय से भी बढ़कर। मनुष्य का हृदय स्वार्थपू और उसके हृदय में प्रेम के सिवा स्वार्थ का भी नहीं।

बस इन गुणों से ओत प्रोत भरी हुई ली अपने मालिक के भस्म हो जाने की ख़बर ले रूपनगर में अपनी बूढ़ी मालिकिन के दर्वाज़े पर हिनहिनाई। "हैं बेटा आगया? घोडी तो अपनी है, चलो अच्छा हुआ। बहू को भी ले आया होगा अच्छी बात है। फलो फूलो।" कहती हुई बेटे के मुखदर्शन की लालसा से, आनन्दसागर गोते खाती सीढियां उतर कर मकान से बा हुई। उसने घोड़ी देखी किन्तु सवार नहीं। उस सारा शरीर लहू लुहान। गोली की मार से जगह शरीर छिद रहा है। तीर जो बदन में रहे हैं उन्हें कोई निकालनेवाला नहीं। "बस, गजब हो गया! हाय रे बेटा! मैं तो तुझे पहले मना करती थी" यों कहती हुई मालिकिन मूर्छित हो एक तरफ़ और अपने कर्तव्य से निवृत्त होकर धड़ा घोड़ी दूसरी तरफ गिर गई। धड़ाम धड़ाम की दो आवाज़ें सुनकर घर के, बाहर के, मुहल्ले के दौड़े हुए आये। वास्तव में पैग़ाम देनेवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था परंतु अटकल से उन्होंने जान लिया कि मारा गया। जब लछमा सचेत हुई तब खूब ही रोई झींकी और घरवाले भी रोये; गाँववालों ने, पड़ोसियों ने उनके साथ सहानुभूति दिखलाई। और विशेष लिखकर पाठकों का हृदय दुखाने से कुछ लाभ नहीं है। ऐसे समय में जो कुछ होता आया है सब ही हुआ।

गानेवाले कहते हैं कि—"माता से घोड़ी ने सारा क़िस्सा कह सुनाया था।" इस पर कोई भरोसा करे या न करे उसे अधिकार है। यदि उसका आदमी की तरह बोलना असंभव है, यदि इसी तरह साँप का बात चीत करना असंभव है तो तेजा को मरते मरते जिला देनेवाले—साँप के काटे को प्राणदान करनेवाले और यों असंभव को संभव कर दिखानेवाले चमत्कार के पासंग में हैं। राजपूताने के जो लाखों आदमी इन चमत्कारों को सत्य मानते आए हैं उनके लिये तो सत्य है ही किन्तु जिनके हृदय की ऊसर भूमि में हज़ार बीज पड़ने पर भी विश्वास का अंकुर नहीं जम सकता वे मान लें कि घोड़ी ने दोनों जगह इशारों से समझा दिया था। जो घोड़े घोड़ी के स्वभाव का अध्ययन करनेवाले हैं अथवा जिन्होंने प्राणिविद्या का अनुशीलन किया है वे अवश्य मानेंगे कि पशु पक्षियों, कीट पतंगादिकों की भी कोई भाषा है और अभ्यास करता है उसके लिये असाध्य नहीं है; दुस्साध्य भले ही हो।

अच्छा जो जैसे माने उसे वैसे ही मानने दीजिये। घोड़ी के बताये हुए ठिकाने पर तेजा की तलाश करने के लिये घायल घोड़ी के खुरों तथा उसके रक्त-बिन्दुओं के चिह्न के सहारे सहारे तेजा की माता, उसका पिता और सगे साथी बैल गाड़ी पर सवार होकर चल दिये। घोड़ी के प्राण तो वहीं उड़ गये।

अपने मालिक मालकिन के आत्मविसर्जन की सूचना देने के अनंतर जब घोड़ी ने अपने प्यारे प्राणों का त्याग कर दिया तब उसकी तो कथा ही समाप्त हो गई। ऐसी स्वामिभक्त घोड़ी का यदि किसी ने स्मारक बनाया तो क्या और न बनाया तो उसे क्या! जब घर में एक दम से दो २ स्वजनों का चिर-वियोग हो गया तब उस विचारी की सुध लेनेवाला भी कौन? अस्तु तेजा के मातापिता, बंधुबांधव, नौकर चाकर जंगल जंगल ढूंढ़ते हुए उसी जगह जा पहुंचे जहाँ तेजा की, उसकी अर्द्धांगिनी बोडल की और साथही उस सर्प की राख का ढेर चिता-भस्म में मिल कर उनका नाम शेष रह गया था। थोड़ी सी हड्डियाँ और थोड़ी सी आग के सिवा वहाँ कोई नाम निशान नहीं। यदि तेजा और उसकी स्त्री का भस्मावशेष हो गया तो हो गया किन्तु उसके शस्त्रों के सिवाय ऐसी कोई चीज़ नहीं बची जिसे छाती से लगाकर उसके माता पिता अपना कलेजा ठंढा कर सकें। प्रियजनों की प्यारी वस्तु का उनके चिरवियोग के अनंतर दर्शन प्रियदर्शन नहीं है। उसे देखने से सुख के बदले दुःख होता है। बस यही दशा उसके मातापिता की हुई। "हाय तेजा! अरे प्यारे पूत! ओ बुढ़ापे की लकड़ी! हाय हमें मंझधार में डाल कर कहाँ चल दिया! हाय र! हे भगवान् हमें भी मौत दे दो।" कहते कहते दोनों बेहोश! वे दोनों इस तरह अचेत भी हुए और समय पाकर उन्हें होश भी आया। उन्होंने उस जगह दम्पती की अंत्येष्टि क्रिया की अथवा नहीं। दोनों की अस्थियाँ गंगा जी भेजी गईं अथवा नहीं सो कोई नहीं कह सकता किन्तु जब तेजा इतना पराक्रम दिखला कर, केवल सत्य के लिये अपनी बलि चढ़ा कर स्वर्ग को सिधारा था, जब उसकी अभिलाषा और नागराज की आज्ञा थी तब उस जगह चबूतरा बनवा कर उसपर उनकी मूर्त्ति स्थापित की गई और इस तरह इस दुःखान्त कथा की यहाँ समाप्ति हो गई।

संस्कृत-साहित्य में 'दुःखान्त' नाटक दूषित समझा जाता है और मैं भी उसे पसंद नहीं करता हूं। 'दुःखान्त से दर्शकों अथवा पाठकों के अन्तः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण पर प्रभाव पड़ता है सही परंतु जिसके असर से हृदय कांपता रहै वह प्रभाव नहीं । भय की छाया है । और भय, शोक, और वेदना मनुष्य को कीट भृंग की नाईं उसी में गिरा देती है इसलिये दुःख के अनन्तर सुख होना चाहिये । मैंने अभी तक जो कुछ लिखा लिखाया है सब केवल इसी उद्देश्य से । परंतु यह नियम कल्पना के मनोराज्य में आसन पा सकता है । सत्य घटना में नहीं । और तेजा की जो कहानी है वह सत्य घटनामूलक है । बस इस लिये मुझे 'दुःखान्त' लिखने की लाचारी ग्रहण करनी पड़ी । अस्तु जो कुछ होना था सो हो गया । जब मुझे दुःखान्त लिखना ही इष्ट नहीं है तब इस पुस्तक के अन्तिम दृश्य को अधिक मर्मभेदी, विशेष हृदयद्रावक, शब्दों में दिखला कर पाठकों को चर्मचक्षुओं से वा हृदय की आँखों से रुलाना भी अच्छा नहीं ।

तेजा का परलोकवास भाद्र शुक्ला १० को हुआ । इसमें किसी तरह का संदेह नहीं । राजपूताना भर में इसी दिन तेजा दशमी के नाम से उत्सव होता है किन्तु उसके जन्म का दिन कौन और संवत् कौन था ? इस बात का पता जब राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रसाद जी को ही नहीं लगा तब मुझ अकिंचन को लगने की आशा क्या ? हाँ ! गानेवालों के कथन से विदित हुआ है कि संवत् १ की यह घटना है । परंतु यह एक किस शताब्दी का एक है सो किसी को मालूम नहीं । इसलिये इस "एक" का मालूम होना और न होना बराबर है । गत पृष्ठों के पढ़ने से इतना अनुमान होता कि जिस समय की यह घटना बतलाई जाती है उस समय राजपूताने बल्कि भारतवर्ष में भयानक अराजकता थी । किसी की जान और माल की ख़ैर नहीं थी । और यदि कोई कारण हो सकता है तो यही जिससे तेजा को उसकी माता ने पीहर में बहू जवान हो जाने पर भी उसका मुकाबला कराने के लिये नहीं जाने दिया । मुन्शी देवीप्रसाद जी की खोज से जब पर्वतसर (मारवाड़) में तेजा जी की मूर्त्ति के निकट संवत् १७९१ मिती भाद्रपद कृष्ण ६ शुक्रवार को महाराज अभयसिंह जी के राज्य में प्रधान भंडारी विज... राज का मूर्त्ति पधराकर प्रतिष्ठा करने का उल्लेख... तब यह तो निश्चय हो ही गया कि यह घटना संवत् १७९१ अर्थात् १८० वर्ष से पूर्व की है । कितने व... पूर्व की ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये कु... अटकल से काम लेना पड़ेगा । जो महाशय अप... अटकल पर ज़ोर लगाकर परिणाम निकाल... चाहें वे निकाल सकते हैं । मेरे अनुमान से यह घट... उस समय की होना चाहिये जब राजपूत-नरे... की शक्ति नामशेष रह गई थी । वह समय और... ज़ेब के शासन के लगभग है । अस्तु ।

पुस्तक को समाप्त करने से पूर्व तेजा के ज... स्थान का, उसकी ससुराल का और उस स्थल... जहाँ उसने आत्मविसर्जन किया पता लगाने... आवश्यकता है । मुन्शी देवीप्रसाद जी न मा... किस आधार पर बतलाते हैं कि तेजा खड़... परगने नागोर राज्य जोधपुर का रहनेवाला... किन्तु गानेवाले उसकी जन्मभूमि रूपनगर रा... किशनगढ़ में बतलाते हैं । मैं गानेवालों के क... से मुन्शी जी की खोज को विशेष प्रामाणिक मा... हूँ किन्तु एक ही बात से मुझे "खोज" पर स... होता है । बात यह है कि तेजा के लिये जब स्मार... बनना मुन्शी जी पर्वतसर में स्वीकार करते हैं... संभव नहीं है कि खडनाल छोड़ कर उसके मा... पिता ने उसका चबूतरा इतनी दूर पर पर्वत... में बनाया हो । गानेवाले तेजा का घर रूपनग... बतलाते हैं और यहाँ से पर्वतसर दो तीन क... से अधिक नहीं । बस इसलिये अधिक संभव... है कि उसकी जन्मभूमि रूपनगर में थी ।

ख़ैर कुछ भी हो पनेर के विषय में भी... तरह का मतभेद है । मुन्शी जी की खोज के... सार गाँव पनेर किशनगढ़ राज्य में बतलाया ज... है किन्तु न तो नक़शे के देखने से किशनगढ़... में किसी पनेर नामधारी गाँव का पता लगा...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न गानेवालों की बात पर ध्यान देने से यह बात अटकल के तराज़ पर तुल सकती है। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गानेवालों के मत से तेजा को रूपनगर से गोकर्णेश्वर के निकट बनास पार करके पनेर जाना पड़ा था। राजमहल राज्य जयपुर में छावनी देवली के निकट गोकर्णेश्वर महादेव का सुप्रसिद्ध मंदिर है। इस बात पर विश्वास करने से पनेर का होना डुगारी के निकट कहीं आस पास पाया जाता है क्योंकि तेजाजी के मुख्य धामों में से एक डुगारी भी है। यह डुगारी बूँदी राज्य में है। मंदिर में शिलालेख नहीं इसलिए इस विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता। हाँ, एक पनेर मेवाड़ राज्य में भी है। उसका नाम पंदेर है। यह बनास नदी के किनारे जहाजपुर से पश्चिम की ओर दो तीन कोस होगा। परन्तु इस जगह पहुँचने के लिए राजमहल के निकट बनास उतरने की आवश्यकता नहीं।

मुन्शी जी के अनुमान से तेजा को साँप डसने की घटना कहीं पनेर के आस पास की ही पाई जाती है और हाड़ोती के गानेवालों ने तेजा की पूजा के पर्वतसर, उकलाना और डुगारी—ये तीन मुख्य पीठ बतलाने के सिवा किसी ख़ास जगह का पता नहीं दिया है। संभव है कि यह जगह उकलाना हो। परन्तु उकलाना किस राज्य में है सो अभी तक मालूम नहीं हो सका। रूपनगर से पनेर जाते समय गानेवालों ने तेजा के लिए जो मार्ग बतलाया है उसपर ग़ौर करने से निश्चय होता है कि जाती बार जिस जगह उसे साँप के दर्शन हुए थे वह बनास नदी और रूपनगर के बीच में है। साँप ने तेजा को अपने रहने का जो स्थान बतलाया उस जगह ऊँचे और नीचे चौरे बतलाये गये हैं। चौरे रणभूमि में काम आनेवाले वीर पुरुषों के लिए अथवा राजा तथा राजपुरुषों के लिए बनवाये जाते हैं। पता लगानेवाले उकलाने की खोज करते समय यदि जाँचना चाहें तो इसे भी देख सकते हैं।

मुन्शी देवीप्रसादजी की खोज के अनुसार तेजा के आत्मविसर्जन का स्थान पनेर है और इसी लिए वहाँ तेजा का पूजन भाद्रपद शु० १० को होता था किन्तु किशनगढ़ राज्य के हासिल (?) से कष्ट पाकर मारवाड़ के जाट और गूजर पनेर से तेजा की मूर्त्ति उखाड़ कर पर्वतसर ले गये। वहाँ अब बड़ा भारी मेला होता है और गाय बैलों की बिक्री होती है। संभव है कि यह बात सत्य हो परन्तु जब पर्वतसर और रूपनगर का फासला केवल २ या ३ कोस है तब रूपनगर से उखाड़ ले जाने और ससुराल पनेर की होने से उसके नाम की अटकल लगाई गई हो तो कुछ आश्चर्य्य नहीं। अब यों तो तेजा दशमी का मेला बड़े बड़े गाँवों में सब जगह होता है किन्तु पर्वतसर, केकड़ी और डुगारी--ये तीन स्थान मुख्य हैं। यहाँ मेले के ब्याज से ख़ूब व्यापार भी होता है।

तेजा का चरित्र समाप्त करने से पूर्व अब एक ही बात शेष रह गई है। उसके चरित्र में चमत्कार भी है और उत्कृष्ट गुणों का समुदाय भी। जो चमत्कार के उपासक हैं वे राजपूताना के लाखों आदमी अपने अटल विश्वास से उसकी भक्तिपूर्वक पूजा करके सर्पदंश के भय से मुक्त होते हैं। सर्पदंश के प्राणान्तकारी विष के लिए यदि राजपूताने में कोई औषध है तो तेजाजी की डसी और मंत्र है तो उसका नाम। ख़ैर जो इस प्रकार के अलौकिक चमत्कार के उपासक हैं वे प्रसन्नता से उसकी पूजा करके अपने, अपने स्वजनों के और सर्वसाधारण के प्राणों की रक्षा करें। आज कल के अविश्वास और अश्रद्धा के ज़माने में जब हैदराबाद के निज़ाम स्वर्गवासी महबूबअली ख़ाँ साहब के नाम लेने से सर्पविष दूर हो सकता था तब तेजस्वी तेजा के नाम से क्यों न हो! किन्तु मैं चमत्कार का उपासक नहीं। गुणों का पूजक हूँ। तेजा ने अपने उत्कृष्ट चरित्र से साबित कर दिया है कि कैसे एक क्षुद्रातिक्षुद्र मनुष्य भी अपनी आत्म-शक्ति से, अपना आत्मविसर्जन करके अपने सर्वस्व और प्राणों की बलि चढ़ाकर मनुष्य से देवता बन सकता है। "नर से नारायण" बनने के विशाल उद्योग का यह एक छोटा सा नमूना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

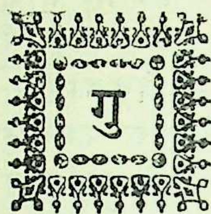
तेजा सचमुच ही प्रतिज्ञापालन, सत्यनिष्ठा और परोपकार का आदर्श था। एक खेतिहर अपढ़ जाट होने पर भी क्षत्रियत्व उसके अन्तःकरण में ठसाठस भरा हुआ था। यदि उसके मन में पराक्रम की परिसीमा न होती, यदि उसका अंतःकरण परोपकार-व्रत का व्रती न होता तो वह कभी डेढ़ सौ आदमियों से अकेला न भिड़ पड़ता! यदि उसे अपनी जान प्यारी होती तो "काने बछड़े" को छुड़ा लाने के लिए दुबारा क्यों जाता? यदि उसका शरीर और उसका अंतःकरण सत्यनिष्ठ न होता तो अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए साँप के पास जाकर अपने प्राणों की पूर्णाहुति ही क्यों करता? उसका प्राणान्त करने का प्रधान कारण गूजरी माना थी। उसी ने उसे मरवाया परन्तु उसने हँसकर उसका स्वागत करने के सिवा उसकी इच्छा पूर्ण करने के अतिरिक्त एक शब्द भी उसके लिए बुरा नहीं कहा। ससुरालवालों के निरादर को वह ज़हर के घूँट की तरह पी गया। जैसा असाधारण चरित्र तेजा का था वैसी ही उसकी अर्द्धांगिनी निकली। केवल हथलेवे के सिवा पति का कभी संपर्क न होने पर भी और जाटों में धरेजे की चाल होने पर भी बोडल उसकी सहगामिनी हुई। पातिव्रत का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

यदि देशी विद्वान् परंपरा से बाप दादे की धरोहर में मिलनेवाले इतिहास की खोज करके उसे ज़बानी से लेखबद्ध करना चाहें तो तेजा ऐसे क्या उससे भी बढ़कर सत्पुरुषों, महात्माओं और महावीरों के हज़ारों ही प्रातःस्मरणीय चरित्र मिल सकते हैं। भारतवर्ष के आधुनिक इतिहास पर एक नई रोशनी पड़ सकती है। खोजनेवाला चाहिए। इस देश का ऐसा कोई गाँव न होगा अथवा ऐसा कोई कुटुँब न होगा जिसका कुछ इतिहास न हो। जिसके इतिहास में किसी न किसी तरह की विशेषता न हो। वह दिन सचमुच ही देश के लिए शुभ दिवस होगा जब इस बात की खोज होने लगेगी। परमेश्वर विद्वानों को ऐसी ही सुबुद्धि प्रदान करे।

—:o:—

जम्बू-राजवंश।

(पूर्व प्रकाशित से आगे।)



लाबसिंह ने बड़े ठाट बाट से लाहौ[र] नगर में प्रवेश किया और नगर-वासियों द्वारा उनका ब[हुत] अच्छा स्वागत हुआ। उन्हें देख[ने] के लिए कोठों और छतों पर ब[ड़ी] भीड़ हुई थी और सब लो[ग] ईश्वर से गुलाबसिंह के कल्याण की प्रार्थना क[रते] थे। लोगों ने उन्हें स्वर्गीय कुवँर नौनिहालसिंह [के] मकान में जा उतारा; पर वहाँ उनपर कड़ा प[हरा] बैठा दिया गया था। इस गारद के सिपाहियों [को] गुलाबसिंह की सेना ने एक बार जम्बू में बुरी त[रह] परास्त किया था। इस गारद को यह आज्ञा मि[ली] थी कि दीवान के अतिरिक्त और किसी को गुलाब[सिंह] के पास न जाने दिया जाय। उस मकान में उ[तरते] ही दीवान ने एक कूएँ से पानी खींचना च[ाहा] पर लोगों ने उसे रोक दिया। दूर से एक बुढ़ि[या] यह दृश्य देख रही थी; उसने उसे तुरंत बुला[कर] उसके तथा महाराज के लिए जल और भो[जन] दिया। दीवान ने उसी समय बीबी साहबा के दर[बार] में जाकर कहा—"यदि कोई अपराधी दंडित भी [कर] दिया जाय तो भी उसे भोजन और जल देने [का] नियम है; पर गुलाबसिंह को—जो केवल हवाल[ात] में हैं—भोजन क्या, बैठने के लिए बिस्तर तक [नहीं] मिला।" उसी समय बीबी साहबा ने आज्ञा दी [कि] गुलाबसिंह के लिए सब आवश्यक पदार्थों [का] प्रबंध कर दिया जाय। यद्यपि वहाँ के दरबा[री] गुलाबसिंह से अप्रसन्न थे और उनका अनिष्ट चा[हते] थे तथापि उन्हें इस बात का भय अवश्य था [कि] यदि उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुँची [तो] खालसा सेना कदाचित् कोई उपद्रव खड़ा [कर] देगी। वहाँ गुलाबसिंह के विरुद्ध दिन भर जि[तनी] बातें होती थीं उन सब की सूचना उन्हें [...] द्वारा मिल जाती थी। एक दिन उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सुना कि दरबार के लोग उनके छिपे हुए ख़ज़ाने का पता लगाने के लिए उनके दीवान और वज़ीर ज़ोरावरसिंह पर कुछ अत्याचार करने का विचार कर रहे हैं। इसपर महाराजा ने दीवान को जम्बू भेज दिया। उसी समय दीवान ने उनके सामने प्रण किया था कि चाहे प्राण चले जायँ पर मैं किसी को ख़ज़ाने का पता न बताऊँगा। एक बार दरबारियों ने यह भी विचार किया था कि स्वयं गुलाबसिंह पर अत्याचार करके उनसे ख़ज़ाने का पता पूछा जाय। खालसा सैनिक इन बातों की सूचना पाकर बहुत अप्रसन्न हुए। इस पर रत्नसिंह ने राजा लालसिंह को सम्मति दी कि वे किसी न किसी प्रकार गुलाबसिंह को मुक्त कर दें नहीं तो खालसा सेना कुछ उपद्रव करेगी। उसी अवसर पर दीवान दीनानाथ ने भी यह सूचना दी कि सैनिक उन्हें धमकाते और गुलाबसिंह को मुक्त कर देने के लिए कहते हैं। इन बातों से दरबार के लोग बहुत चिंतित हुए। सेना को शान्त रखने के अभिप्राय से सरदार ज़ोरावरसिंह ने यह प्रबंध किया कि एक दिन मियाँमीर के मैदान में महाराज दलीपसिंह खालसा सेना का निरीक्षण करें। उस अवसर पर सेना ने गुलाबसिंह को मुक्त करने की बात उठाई। सैनिकों के हृदय में उनके लिए बहुत आदर था और उन लोगों ने गुलाबसिंह को लाहौर लाते समय उन्हें इस बात का वचन दिया था कि वे सब प्रकार से उनकी रक्षा करेंगे। केवल इतना ही नहीं, बल्कि सेना ने उसी समय पर जवाहिरसिंह को मार डालने और दलीपसिंह को हाथी पर से नीचे खींच लेने की धमकी दी। इसलिए दलीपसिंह को विवश होकर गुलाबसिंह के निवास-स्थान से पहरा उठा लेना पड़ा। दूसरे दिन उन्होंने गुलाबसिंह को अपने दरबार में बुलवाया और उनसे पूछा कि राजा सुचेतसिंह और राजा हीरासिंह की धन-सम्पत्ति कहाँ है? उस अवसर पर दलीपसिंह और उनके दरबारियों ने गुप्त रूप से ऐसा प्रबंध कर रखा था कि इशारा होते ही गुलाबसिंह का बध हो सके। गुलाबसिंह भी यह बात भली भाँति जानते थे। पर उस दिन वह बात बढ़ी नहीं और गुलाबसिंह दरबार से सकुशल लौट आये। इसके उपरांत एक दिन वह सूर्य्योदय के समय स्नान करके और केसर का टीका लगा कर दरबार में गए। उस समय वहाँ सरदार जवाहिरसिंह, लालसिंह, श्यामसिंह तथा अन्य बड़े बड़े दरबारी बैठे हुए थे। गुलाबसिंह को इस रूप में देखकर सब लोग बहुत चकित हुए। गुलाबसिंह ने उन लोगों से कहा,—"मैंने स्वर्गीय महाराज रणजीतसिंह की बहुत सेवा की है और उनके लिए अनेक लड़ाइयाँ लड़ी हैं। पर इस समय लोग मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं और मेरा बध करने के लिए गुप्त रूप से हत्यारों को नियुक्त करते हैं। यदि मेरे विरोधियों में से कोई वास्तविक योद्धा और वीर हो तो वह इस समय मेरे सामने आवे और मुझसे लड़े। यदि एक का साहस न पड़े तो दो आदमी मिलकर मेरा सामना करें। मैं अपने रक्त से दरबार की भूमि रंग दूँगा और यहाँ के उपस्थित लोगों में से एक को भी जीता न छोड़ूँगा।" दरबारी भली भाँति जानते थे कि गुलाबसिंह बहुत वीर आदमी हैं, इसलिए उन्होंने उनकी बात का कोई उत्तर न दिया और चुप रहना ही अधिक उत्तम समझा। अंत में सब लोगों ने गुलाबसिंह से क्षमा-प्रार्थना भी की और सदा उनके शुभचिंतक बने रहने के लिए शपथ खाई।

इसके उपरांत एक बार शरबत में हीरे की कनियाँ डालकर भी गुलाबसिंह के प्राण लेने का प्रयत्न किया गया था, पर उन्हें यह बात पहले ही मालूम हो गई थी, इसलिए उन्होंने शरबत न पीकर केवल बरफ़ का पानी पीया था। एक दूसरे अवसर पर दरबार से रजावड़ी के रहमउल्लाख़ाँ और सुलतानख़ाँ के पुत्र फ़ैजतलब को सड़क पर खड़े रहने और दरबार से लौटते हुए गुलाबसिंह को गोली मार देने की आज्ञा मिली थी। तदनुसार एक बार अँधेरी रात में वे लोग दो सौ आदमियों को अपने साथ लेकर गुलाबसिंह की घात में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पर छिप रहे। पर उस दिन दरबार से उठकर गुलाबसिंह किसी साधु के पास चले गए थे और बहुत देर तक उसी से बातें करते रह गए थे। उस समय उनका दीवान दूसरे मार्ग से घर चला गया था। जब बहुत अधिक रात बीत गई तो फैजतलब और रहमउल्लाख़ाँ के साथी निराश होकर चलते बने। थोड़ी देर पीछे गुलाबसिंह अपने दलबल सहित वहाँ पहुँचे और षड्यंत्र के कुछ लक्षण देखकर उन्होंने सबका पीछा किया और उनमें से कुछ लोगों को पकड़ कर उनसे सब भेद जान लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल गुलाबसिंह ने उन लोगों को साथी बना कर अपने दीवान के साथ दरबार में भेज दिया। दीवान ने वहाँ लोगों को सब समाचार सुना दिया। सब दरबारियों ने कानों पर हाथ रखे और इस षड्यंत्र से अनभिज्ञता प्रकट की। अंत में दीवान के कहने पर निश्चय हुआ कि गिरिफ़्तार किए हुए लोग कहीं दूर भेज दिए जायँ और तदनुसार वे लोग हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहना कर गोविंद-गढ़ भेज दिए गए।

उधर सरदार जवाहिरसिंह और राजा लालसिंह में बहुत वैमनस्य हो गया था। लोग यह भी समझते थे कि यदि गुलाबसिंह इन दोनों में से किसी का भी पक्ष ले लेंगे तो झगड़े की समाप्ति असंभव हो जायगी। गुलाबसिंह के शुभचिंतक सरदार मुहम्मदख़ाँ ने अवसर पाकर राजा लालसिंह को स्मरण दिला दिया कि गुलाबसिंह—जिनकी योग्यता के कारण खालसा सेना उनपर मुग्ध हो रही है,—बहुत दिनों से लाहौर में ठहरे हुए हैं; बहुत संभव है कि आगे चलकर किसी प्रकार का उत्पात खड़ा हो, इसलिए उन्हें जम्बू जाने के लिए मुक्त कर देना ही अधिक उत्तम होगा। तदनुसार जम्बू जाने के लिए गुलाबसिंह मुक्त कर दिए गए; पर उन्होंने कहा कि जब तक मेरी ज़ब्त की हुई जागीरें परवानों सहित मुझे न मिल जायँगी तब तक मैं यहाँ से न हिलूँगा। अंत में उन्हें सब जागीरें मिल गईं और वह सकुशल जम्बू लौट गए। वहाँ सारी प्रजा ने बड़ी प्रसन्नता से उनकी अभ्यर्थना की। पर उनकी अनुपस्थिति से लाभ उठा कर कुछ दुष्टों ने राज्य में उपद्रव मचा रखा था। राज्य के कई अधिकारियों की शह पाकर किवस्तार नामक स्थान के ज़मींदारों ने प्रजा को बलवा करने के लिए भी भड़काया था। यूसुफख़ाँ नामक एक व्यक्ति ने, जिसके साथ गुलाबसिंह ने बहुत उपकार किए थे, उन उपकारों को भुलाकर, किस्तवार के भूतपूर्व राजा तेगसिंह के विद्रोही पुत्र दिलावरसिंह से मिल कर दूध नामक क़िले को, जिसमें गुलाबसिंह की फ़ौज थी, चारों ओर से घेर लिया था; पर अंत में गुलाबसिंह की सेना ने उनको मार भगाया। रामनगर में रणधीरसिंह पर भी आक्रमण किया गया था; उस समय स्वर्गीय राजा सुचेतसिंह के वज़ीर निहालसिंह खालसा सेना सहित वहीं थे। पुंछ के क़िले में दीवान करमचंद को भी विद्रोहियों का सामना करना पड़ा था। जसरौटा प्रांत पर विद्रोहियों का अधिकार भी हो गया था। तात्पर्य यह कि जिस समय गुलाबसिंह लाहौर में नज़रबंद थे उस समय बहुत से सरदारों ने उनका राज्य दबा लेने की चेष्टा की थी; पर गुलाबसिंह ने वहाँ से लौटते ही सबको निकाल बाहर किया।

उन दिनों जिस सरदार को आवश्यकता होती थी वह धन का लोभ देकर अपना काम निकालने के लिए खालसा सेना को अपनी ओर मिला लेता था। इस प्रकार काम निकालनेवालों के उदाहरण सिंधनवालिए सरदार, राजा सुचेतसिंह और राजा हीरासिंह हैं। महाराज रणजीतसिंह के एक पुत्र महाराज पिशौरासिंह जब स्यालकोट में कोई उपद्रव न खड़ा कर सके तो आगे बढ़ कर अटक पर अपना अधिकार जमा बैठे। पर छतरसिंह और फतेहसिंह नामक दो सरदारों ने कुछ उपाय करके उन्हें वहाँ से हटा दिया। इन दोनों सरदारों ने पहले पिशौरासिंह के सामने यह भी शपथ खाई थी कि वे उन्हें कोई हानि न पहुँचावेंगे। इसके बाद उन दोनों ने जवाहिरसिंह की आज्ञा से पिशौरासिंह को मार डाला। इस पर खालसा सेना बिगड़ खड़ी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहिरसिंह के बध पर उतारू हो गई; साथ ही उसने राजा लालसिंह, राजा दीनानाथ और बख़शी भगतराम को अपनी हिरासत में कर लिया। सरदार जवाहिरसिंह अपनी एक सेना को साथ ले कर सेना का निरीक्षण करने और महाराज दलीपसिंह से मिलने के लिए मियाँमीर गए; वहाँ पर खालसा सेना ने महाराज को खींच कर हाथी पर से उतार लिया और जवाहिरसिंह को छुरियों से वहीं मार डाला।

इस घटना के उपरांत खालसा सेना ने महाराज गुलाबसिंह को बुलाने के लिए एक एक करके कई दूत जम्बू भेजे, पर महाराज ने सबों को कुछ न कुछ बहाना करके टाल दिया। लाहौर-सरकार को उस सेना से बहुत भय था, क्योंकि बीबी-साहब चंदाँ अपने भाई के बध का बदला लेना चाहती थीं और सेना को अपनी तनख़ाह बढ़वाने तथा दूसरी बातों के लिए भड़का रही थीं। उन्होंने सेना से यह भी कह रक्खा था कि अँगरेज़ लोग सतलज के इस पार, पंजाब पर भी चढ़ाई करना चाहते हैं। इस पर खालसा सेना फूल कर कुप्पा हो गई थी। एक अवसर पर जब कि सेना के अफ़सर शालाबाग में परस्पर कुछ मंत्रणा कर रहे थे, खालसा सेना अपनी मियांमीर की छावनी से निकल कर सीमा-प्रांत की ओर चल पड़ी। राजा लालसिंह भी इस विषय में उनसे सहमत थे, पर और लोग कई कारणों से इसके विरुद्ध थे। खालसा सेना अपना ही देश लूटती और नष्ट करती हुई सतलज के किनारे तक आ पहुँची। उधर बीबी साहबा ने अपना षड्यंत्र पूरा करने के लिए महाराज गुलाबसिंह को लिख दिया कि आप पेशावर जा कर उस प्रांत का प्रबंध करें। महाराज ने उत्तर में उन्हें लिख भेजा कि मैं अँगरेज़ों के साथ की हुई मित्रता की संधि नहीं तोड़ सकता क्योंकि इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। इसके उत्तर में बीबी साहबा ने उनकी बहुत प्रशंसा की और खालसा अफ़सरों के नाम एक घोषणा-पत्र निकाला जिसमें लिखा था कि अँगरेज़ अधिकारी संधि तोड़ना नहीं चाहते और उनपर अकारण आक्रमण करना अनुचित होगा। पर मूर्ख और उद्दंड सिखों ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और वे सतलज नदी के पार चले गये। जब उन्हें सूचना मिली कि फ़ीरोज़पुर की रक्षा के लिए लोधियाने से अँगरेज़ी सेना चल चुकी है तो उन लोगों ने उसका सामना करना निश्चय किया। गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंज के एजेण्ट मेजर ब्राडफूट ने इन कार्रवाइयों की सूचना उक्त लाट महोदय को दी। इस पर लाट साहब ने लार्ड गफ़ को कूच करने की आज्ञा दी। लार्ड गफ़ के अधीन सेना ने मुदकी में सिखों का सामना किया। युद्ध में सिखों ने ख़ूब वीरता दिखलाई पर अंत में उन्हें अपना सारा सामान वहीं छोड़कर भागना पड़ा। उनके नायक राजा लालसिंह भी भाग गए और उनका कोई पता नहीं मिला। इस पराजय के उपरांत खालसा सेना के अधिकारियों ने एक सभा की और उनमें से कुछ लोग सम्मति लेने के लिए महाराज गुलाबसिंह के पास भी गए। महाराज ने उनसे कहा कि अभी कोई चिंता की बात नहीं है; इस समय सेना जहाँ है, वहीं ठहरी रहे। पर खालसा सेना ने इस सम्मति पर कुछ भी ध्यान न दिया और एक पुल बना कर नदी पार की और दूसरी ओर जाकर छावनी डाली। सरदार रणछोड़सिंह ने, जो उस समय दुआब में सेना एकत्र कर रहे थे, वहाँ पहुँच कर सतलज के किनारे फिलौर में अपनी छावनी डाली। खालसा सेना ने आवेश में आकर लोधियाना छावनी में आग लगा दी। लाडवा के राजा भी अपनी सेना सहित आ कर सरदार रणछोड़सिंह के साथ मिल गए। उधर महाराज पटियाला ने अँगरेज़ों को सहायता दी। लाहौर-सरकार की आज्ञा से अपनी अपनी सेना सहित सरदार तेजसिंह तथा लालसिंह मुरारिया, जो उन दिनों लाहौर सरकार की ओर से जसरौटा का इंतज़ाम कर रहे थे, आकर खालसा सेना में मिल गए। राजा लालसिंह भाग कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुआब में जा छिपे थे और लज्जा के कारण किसी को अपना मुँह तक न दिखाते थे। जब उनका पता लगा तब लाहौर-सरकार ने उन्हें भी खालसा सेना की सहायता करने की आज्ञा दी और तदनुसार वे भी जाकर उसमें सम्मिलित हो गए।

ऊपर कहा जा चुका है कि खालसा सेना के कई अफ़सर महाराज गुलाबसिंह की सम्मति लेने तथा उन्हें युद्ध-स्थल में उपस्थित होने का निमंत्रण देने के लिए जम्बू गए थे। एक दिन उन अफ़सरों ने मूर्खता और घमंड में आकर महाराज के सामने अपने पूर्वजों का बनाया हुआ एक पंजाबी पद पढ़ा जिसका अभिप्राय यह था कि खालसा सेना कभी न कभी दिल्ली के तख़्त पर बैठेगी। इस पर महाराज ने कहा कि समझ में नहीं आता कि लगभग एक लाख आदमियों की खालसा सेना इतने छोटे से तख़्त पर किस प्रकार बैठ सकेगी। इस पर सब उपस्थित सरदार मुसकरा पड़े। गुलाबसिंह ने उन लोगों का आदर सत्कार तो यथेष्ट किया पर उनका निमंत्रण स्वीकार करने में अनेक प्रकार की आना-कानी की। बीच बीच में वह भगवती के दर्शनों के लिए रियासी भी चले जाते थे; कभी वह पुरमंडल में जा रहते थे और कभी अशुभ मुहूर्त्त का बहाना कर देते थे। असल बात यह थी कि वह बिना बीबी साहबा का निमंत्रण पाए युद्ध में सम्मिलित होना नहीं चाहते थे। अंत में बाबा महान्‌सिंह और दीवानसिंह बीबी साहबा की ओर से उन्हें रण में सम्मिलित होने का निमंत्रण देने के लिए आ ही पहुँचे। इसी बीच में उन्होंने एडवर्ड लेक साहब को भी एक पत्र लिख भेजा था जिसका केवल ज़बानी उत्तर उन्हें यह मिला कि—"जो आदमी ऊँचे पहाड़ पर चढ़ना चाहता है उसे प्रातःकाल ही प्रस्थान कर देना चाहिए।" इस पर गुलाबसिंह ने खालसा सेना के अधिकारियों को एक परवाना भेज कर उन्हें अपने स्थान पर ठहरे रहने की सम्मति दी और स्वयं सेना सहित लाहौर की ओर प्रस्थान किया। लाहौर पहुँच कर उन्होंने रावी के किनारे डेरा डाला। राजा दीनानाथ, भाई रामसिंह तथा अ[illegible] बड़े बड़े सरदारों ने राज्य की ओर से उनका स्वा[गत] किया। इसके उपरांत दरबार में उन्हें बीबी साह[बा] की ओर से एक भारी ख़िलअत और वज़ीर [की] उपाधि मिली। गुलाबसिंह ने सेना के अधिकारि[यों] के नाम तुरंत एक परवाना भेज कर उन्हें [ठहरे] रहने की आज्ञा दी। पर उधर सरदार [ले]छोड़सिंह मजीठिया ने सतलज पार करके [युद्ध] आरम्भ कर दिया था जिसमें दोनों ओर के बहुत [से] लोग मारे जा चुके थे। इस युद्ध में यद्यपि [सिख] लोग परास्त हो गए थे तो भी उन्होंने उन्नीस गुर[खि]यनों को क़ैद कर लिया था। इसलिए गुलाब[सिंह] ने अंगरेज़ अधिकारियों से एक पत्र लिख कर [क्षमा] माँगी और उन्हें विश्वास दिलाया कि महा[राज] दलीपसिंह के अल्पवयस्क होने के कारण मू[र्खता]वश अंगरेज़ों पर आक्रमण हुआ था; साथ ही उ[न्होंने] यह भी प्रार्थना की कि महाराज रणजीतसिं[ह के] साथ अंगरेज़ों की जो मित्रता की संधि हुई है [वह] बनी रहनी चाहिए। यह पत्र लाला चुन्नी[लाल] और लाला अनंतराम के द्वारा सर हे[नरी] लारेन्स के पास भेजा गया था जिसके [उत्तर] में उन्होंने ११ फरवरी १८४६ को फ़ीरोज़पुर [की] छावनी से लिख भेजा था कि सिख-राज्य को [नष्ट] करने का विचार आन० ईस्ट इण्डिया कम्पनी [का] नहीं है; पर वह उन आक्रमणों को अवश्य रो[कना] चाहती है जो सिख सेना चार बार पराजि[त हो] चुकने पर भी अब तक कर रही है। और [यदि] भविष्य में इन विद्रोहियों को दण्ड देने की आव[श्य]कता हुई तो सिख-सरकार को उसका उत्तरदायी ह[ोना] पड़ेगा। पर इस पत्र के लिखे जाने से पहले [ही] अंगरेज़ी सेना ने प्रातःकाल के समय सिखों [पर] छापा मारा था। सिख सेना के नायक स[रदार] तेजासिंह ने अपने साथियों को भागते हुए देख [कर] उन्हें रोकने के लिए, भागने के मार्गवाला पुल तु[ड़वा] दिया, तिस पर भी बहुत से सिख नदी में डूब [कर] मर गये। सरदार श्यामसिंह अटारीवाले ने [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरतापूर्वक लड़कर अपने प्राण दिये। पर राजा लालसिंह को अंगरेज़ी सेना का सामना करने का साहस न हुआ और वह चुपचाप एक कोने में बैठे रहे। उसी अवसर पर १३ फरवरी सन् १८४६ को मेजर (सर हेनरी) लारेन्स ने गुलाबसिंह को एक पत्र भेजकर उनसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की और इसके लिए उन्हें उचित प्रबंध करने के लिए कहा।

इस प्रकार पंजाब में विजय प्राप्त करके अँगरेज़ी सेना ने लाहौर के निकट डेरा डाला और बड़े लाट ने एक घोषणापत्र प्रकाशित किया। इस घोषणा-पत्र का आशय यह था कि अंगरेज़ों ने सिखों को कई युद्धों में परास्त किया है और उनसे २२० से अधिक तोपें छीन ली हैं। इन युद्धों का कारण यह था कि सिखों ने सन् १८०९ वाली संधि की धाराओं का अतिक्रमण किया था। इसलिए जब तक सिख लोग अंगरेज़ों को हरजाना न देंगे और संतोषजनक निबटारा न करेंगे तब तक अंगरेज़ लोग पंजाब खाली न करेंगे। यद्यपि अंगरेज़ सरकार अपने राज्य की सीमा बढ़ाना नहीं चाहती तथापि भविष्य की अधिक रक्षा के लिए वह लाहौर की सरहद का कुछ हिस्सा अपनी सरहद में मिला लेना चाहती है जिसमें सतलज और व्यास के बीच के ज़िले और कुछ पहाड़ी ज़िले सम्मिलित हैं। इन ज़िलों का दाम सिख-सरकार हरजानों की उस रकम में से काट ले जो वह अंगरेज़ों को देगी। अंत में वह महाराज रणजीतसिंह के लड़कों में से एक को पंजाब के राज्यासन पर बैठाना चाहती है। पर यदि भविष्य में और कोई उत्पात खड़ा होगा तो अंगरेज़ों को फिर उसे दमन करने की आवश्यकता पड़ेगी।

इधर महाराज गुलाबसिंह ने उन अंगरेज़ों को, जिन्हें सिख सेना ने युद्ध में वंदी किया था, भारी भारी खिलअतें दीं और उन्हें हाथियों पर चढ़ा कर बहुत से सिपाहियों के साथ कसूर की छावनी में भेज दिया। इसके उपरांत महाराज ने भाई रामसिंह, दीवान दीनानाथ, फ़क़ीर नूरउद्दीन तथा अन्य बड़े बड़े दरबारियों और सरदारों से शांति और संधि के विषय में सम्मति ली और सब बातें निश्चय कर लीं। अंत में बीबी साहबा से भी सम्मति माँगी गई। वह भी महाराज के निश्चय से सहमत हो गईं और उन्होंने तुरंत अपनी खास मोहर और सब कार्रवाइयों के हस्ताक्षर सहित उस संबंध में एक परवाना निकाला। तदुपरांत दीवान दीनानाथ, फ़क़ीर नूर-उद्दीन, दीवान देवीसहाय तथा अन्य बड़े बड़े सरदारों और पाँच सिख पलटनों को अपने साथ लेकर अंगरेज़ों से मिलने के लिए रवाना हुए। इन पलटनों के प्रत्येक सिपाही को उन्होंने पाँच पाँच रुपये दिए थे। पर यह सिपाही बड़े उद्दंड और स्वेच्छाचारी थे, इसलिए पुराने नौशहरा तक पहुँचते पहुँचते महाराज के साथ केवल एक पलटन बाकी रह गई। वहाँ से चल कर वह लोग बड़े लाट के पास कसूर पहुँचे। जब कसूर एक कोस रह गया तो समाचार पाकर सर हेनरी लारेन्स जो उस समय नेपाल के रेसिडेण्ट थे, उनका स्वागत करने और उन्हें बड़े लाट के डेरे तक ले चलने के लिए आए। बड़े लाट के निवास-स्थान तक पहुँचने पर चीफ़ सेक्रेटरी सर फ़्रेडरिक करी उन्हें लाट साहब के खेमे तक ले गए। लाट साहब स्वयं खेमे से बाहर आकर, गुलाबसिंह से हाथ मिलाकर उन्हें अंदर ले गए। भीतर आकर सब लोगों के बैठने पर महाराज ने उन्हें भली भांति समझा दिया कि सिख सेना क्यों इतनी उद्दंड और ख़राब हो गई है। इसके उपरांत उन्होंने शांति और संधि की बात चलाई। इस पर बड़े लाट ने कहा कि यदि सिख-सरकार हरजाने के दो करोड़ रुपए और दुआब प्रांत अंगरेज़ों को दे दे तो यह झगड़ा तै हो सकता है। पर गुलाबसिंह ने कहा कि इतना अधिक धन संग्रह करना असम्भव है। इस पर सर फ़्रेडरिक करी और सर हेनरी लारेन्स उन्हें एक ओर एकांत में ले गए और उनसे कहने लगे—इन झगड़ों में आप के भाइयों तथा अन्य कई संबंधियों के प्राण चले गए हैं; इसलिए सिख राज्य का इतना समर्थन करने की आपको कोई आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त बड़े लाट आपको कोहिस्तान और काशमीर का राज्य देकर स्वतंत्र बनाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हैं और महाराज की पदवी से विभूषित किया चाहते हैं। गुलाबसिंह ने उत्तर दिया कि बड़े लाट की इच्छा ही आज्ञा स्वरूप है पर मेरे संबंधियों के प्राण देने का कारण यह है कि वे सिख-सरकार के सेवक थे। महाराजा दलीपसिंह अभी नाबालिग़ हैं और बड़े लाट से संधि करने के लिए मैं भेजा गया हूँ। ऐसे अवसर पर यदि मेरी शक्ति और स्वतंत्रता की वृद्धि हो भी तो इससे मेरी और मेरे उत्तराधिकारियों की प्रतिष्ठा में सदा के लिए बट्टा लग जायगा। अतः मेरी प्रार्थना है कि स्वर्गीय महाराज रणजीतसिंह के साथ की हुई संधि का बड़े लाट सदा ध्यान रक्खें; क्योंकि सेना के इन अनुचित कृत्यों में बालक दलीपसिंह का कोई दोष नहीं है। उक्त दोनों महाशयों ने यह बातें बड़े लाट से कहीं। इस पर बहुत रात तक संधि की बातें होती रहीं और अंत में निश्चय हुआ कि सिख-सरकार हरजाने का डेढ़ करोड़ रुपया देने के अतिरिक्त दुआब प्रांत भी अँगरेज़ों के लिए छोड़ दे। गुलाबसिंह ने भी दुआब प्रांत और पचास लाख रुपया तत्काल और शेष एक करोड़ तीन किश्तों में देना स्वीकार किया। इसके उपरांत बड़े लाट ने दलीपसिंह से भेंट करने की इच्छा प्रकट की; तदनुसार गुलाबसिंह ने इस आशय का एक पत्र बीबी-साहब के नाम भेज दिया। दूसरे ही दिन महाराज दलीपसिंह वहाँ आ पहुँचे। उनके आने पर अँगरेज़ी छावनी में सलामी सर हुई और बड़े लाट ने दलीपसिंह और गुलाबसिंह को खिलअतें दीं।

अँगरेज़ी सेना के पहलेपहल लाहौर नगर में प्रवेश करने पर गुलाबसिंह ने पहले तो कुछ आपत्ति की पर अंत में वह सहमत हो गए; क्योंकि अँगरेज़ों ने कह दिया था कि हरजाने की पहली किश्त के पचास लाख रुपए मिलते ही हम लोग नगर से निकल जायँगे। इसके उपरांत बीबी साहबा ने लालसिंह को ठीक करके अँगरेज़ अधिकारियों के पास इस आशय का एक पत्र भेजा कि गुलाबसिंह को कोई अधिकार नहीं है और हमारे वकील और संधि करनेवाले लालसिंह ही हैं। तदनुसार लालसिं[ह] उक्त धनके जमानतदार हुए; उन्होंने अँगरेज़ी से[ना] के लाहौर नगर में ठहरने और रसद आदि [का] प्रबंध कर दिया और एक करोड़ रुपए के बदले ब्यास नदी के दूसरे ओर के जिले, काँगड़ा, को[हि]स्तान, काशमीर, हजारा और चंबा सदा के लि[ए] अँगरेज़ों को दे दिये। इस प्रकार मानों जम्बू [के] गुलाबसिंह के अन्य अधिकृत प्रांत भी अँगरेज़ों [के] हाथ लगे। इस पर गुलाबसिंह को बहुत आ[श्चर्य]... आश्चर्य हुआ और उन्होंने दीवान ज्वालासहाय [को] तुरंत सर हेनरी लारेन्स के पास भेजा। इससे [पहले] ही एक बार पेशावर में सर लारेन्स से उन[की] भेंट हो चुकी थी। सर लारेन्स ने पर राष्ट्र-स[चिव] सर फ़्रेडरिक करी से सलाह करके गुलाब[सिंह] को इस आशय का एक पत्र लिख भेजा कि अँ[गरेज़ी] सरकार ने अब तक उनके अधिकृत प्रांत केवल [उन्हें] भेंट कर रखे थे; पर अब यदि गुलाबसिंह चा[हें तो] धन देकर वह प्रांत ले सकते हैं। बड़े लाट ने [एक] करोड़ रुपए लेकर ब्यास और सिंध नदी का [मध्य]वर्त्ती प्रांत, काँगड़ा, काशमीर, हजारा और [कोहि]स्तान गुलाबसिंह को दे देना स्वीकार किया। उस समय गुलाबसिंह के पास इतना रुपया नहीं [था] इसलिए उन्होंने थोड़े रुपए देकर कुछ कम [प्रांत] लेना चाहा। पर बीबी साहबा इस प्रबंध से संतुष्ट नहीं हुईं और उन्होंने राजा दीनानाथ, फ़[क़ीर] नूर-उद्दीन और भाई रामसिंह को सर लारेन्स [और] सर करी के पास भेजकर कहला दिया कि [यह] प्रबंध नहीं होना चाहिए और यदि होगा तो मैं [इसके] इसके प्रतीकार के लिए लंडन जाऊँगी। पर अँ[गरेज़] अधिकारियों ने इन बातों पर कुछ ध्यान न दि[या]। इस पर बीबी साहबा ने गुलाबसिंह को क़ैद [करने] के लिए सिख सेना को भेजा पर इससे पहले [ही] मेजर मेगरेगर एक रसाले के साथ जाकर गुला[ब]सिंह को अँगरेज़ी छावनी में ले आए, और वहीं अँगरेजों के साथ उनकी संधि हो गई। (शेष [आगे])

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जीवन पर नाटकों का प्रभाव और हिन्दी में उनकी अवस्था ।

(लेखक श्री साँवलजी नागर ।)

हिन्दी नाटकों की अवस्था ।

विषयारम्भ—मानव-जीवन के इतिहास में दो शक्तियाँ बहुत मुख्य हैं। इन्हीं के आधार पर मनुष्य का कार्य होता है। यदि ये दोनों न हों तो मानव-जीवन का निर्माण वृथा है। मनुष्य की इन दो प्रधान शक्तियों के नाम (१) सुनना और (२) देखना है। सच पूछिए तो संसार की सभी वस्तुओं में इनकी प्रधानता है। इसी लिए हमारे प्राचीन विद्वानों ने काव्य के भी दो विभाग कर दिये हैं, एक श्रव्य दूसरा दृश्य। श्रव्य काव्य वह है जिसमें कवि कुछ स्वयं वर्णन करता है और जिसके केवल सुनने ही से आनन्द प्राप्त होता है जैसे क़िस्से, कहानियाँ, उपन्यास, इत्यादि। दृश्य काव्य वह है जिसमें कवि को जो कुछ वर्णन करना होता है वह आप कुछ नहीं कहता उन विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों से ही कहला देता है। ऐसे काव्यों को प्रत्यक्ष देखने ही से आनन्द प्राप्त होता है। जैसे नाटक, प्रहसन इत्यादि। इन दृश्य काव्यों का दूसरा नाम नाटक वा रूपक है।

यह बात तो निर्विवाद है कि भारतवर्ष में नाटक और नाट्यकला बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है। मुसलमानों के समय में यह कला प्रायः गुप्त सी हो गई थी। जिस समय ईरान, अरबिस्तान आदि देशों में नाटक या नाट्यकला का ज्ञान भी नहीं था उस समय भारतवर्ष में उसका अत्यधिक प्रचार था। इससे यह निश्चय है कि हमारे नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति स्वतंत्र है।

नाटक के समय और विदेशियों की सम्मति।

प्राचीन समय में भारतवर्ष की भाषा संस्कृत थी। यदि हम प्राचीन से प्राचीन नाटकों का पता लगाएँ तो हमें मृच्छकटिक, कालिदास के शाकुन्तल और भवभूति के उत्तर-रामचरित इत्यादि नाटक मिलेंगे। उपर्युक्त नाटकों के लेखक प्रथम से दसवीं शताब्दी तक में भारतवर्ष में उत्पन्न हुए और अपने परिश्रम से संस्कृत भाषा के नाटक लिख कर भारत-साहित्य का मुखोज्ज्वल कर गए। इसके बाद चौदहवीं शताब्दी तक के समय को नाटक का द्वितीय काल समझना चाहिए। इस समय में चन्द्रोदय, रत्नावली, नागानन्द, और मुद्राराक्षस इत्यादि नाटक लिखे गए हैं। भारतवर्षीय राष्ट्रभाषा हिन्दी के ख़याल से राजा लक्ष्मणसिंह और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का समय अथवा १९ वीं शताब्दी का समय नाटक का तृतीय काल है। इसके प्रथम कि हम नाटकों के विषय में कुछ लिखें, अन्यान्य विदेशी विद्वानों की सम्मतियाँ इसकी महत्ता सूचित करने के लिये लिख देना उचित समझते हैं। मेनचेस्टर ओवन कालेज के प्रोफ़ेसर वार्ड साहब का मत है कि:—

Thus clothing itself in a diction always tropical in which the prose is the warp and the verse the woof, in which words become allusions, allusions similes and similes metaphors, the Indian drama essentially depended on its literary qualities, and upon the familiar sanctity of its favourite themes for such effect as it was able to produce.

यह सब तो नाटक और उसकी रचना के सम्बन्ध में लिखा गया किन्तु उस समय की रंगभूमि का कोई विशेष वर्णन नहीं दिया है। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि उस समय के पात्र वर्तमान समय के पात्रों से विशेष कार्यकुशल एवं सुशिक्षित थे। प्राचीन समय में स्त्रियों का कार्य स्त्रियाँ ही सम्पादन करती थीं। British Encyclopædia Drama नामक पुस्तक में उपर्युक्त विषय का प्रमाण दिया हुआ है। उसके लेखक लिखते हैं कि

The minister of arts practised under such condition cannot but be regarded with re-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

spect. Companies of actors seem to have been common in India at an early date and the inductions show the players to have been regarded as respectable members of society. In later if not earlier times individual actors enjoyed a wide-spread reputation. The directors were usually Brahmins."

प्राचीन नाटकों की कविता के विषय में उपर्युक्त लेखक का मत है—

The distinctive excellence of the Indian Drama is to be sought in the poetic robe which envelopes it as flowers over-spread the bosom of the earth in the season of spring. In its nobler production at least it is never untrue to its half religious, half moral origin; it weaves the wreaths of the fancies in an unbroken chain, adding to its favourite familiar blossoms ever fresh beauties from an inexhaustible garden. Nor is it unequal to depicting grand aspect of nature in her mighty forests and the shores of the ocean. The poetic beauty of the Indian drama reveals itself in the mystrious charm of its outline, if not in its full glow, even to the untrained, nor the study of it, for which materials may yet increase, be left aside by any nobler literature."

ऐसी ऊँची ऊँची भावनाओं के नाटक, ऐसे भावक, विद्वान् पात्र और ऐसी कवित्वमय रचना-शैली से हमारा इस प्रकार का अधःपतन हुआ है यह देख किस साहित्य-प्रेमी को दुःख न होगा। अपने पूर्व पुरुषों की उन्नत अवस्था पर आनन्दित और गर्वित हो हम लोगों को संतोष न करना चाहिए, वरन् वर्त्तमान समय के नाटकों की शोचनीय अवस्था पर विचार कर हम लोगों को अपनी कुप्रथाओं का निवारण कर उन्नति की चेष्टा करनी चाहिए। अतः सबसे प्रथम हमें वर्त्तमान समय के नाटक और रंग भूमि पर विचार करना उचित है।

रचनाशैली—नाटक साहित्य के अन्तर्गत है। यद्यपि वर्त्तमान समय में साहित्य की उन्नति की बहुत कुछ चेष्टाएं की जा रही हैं तथापि संगीत, नाट्य, शिल्प, चित्र एवं कविता आदि की दशा अभी तक शोचनीय ही है। हर्ष का विषय है कि विद्वानों का ध्यान अब कविता की ओर विशेष आकर्षित हुआ है और आशा है कि थोड़े ही समय में यह भाग उच्चश्रेणी में परिगणित हो सकेगा। नाटक लिखने तथा अभिनय करने का भी शौक रसिकों के चित्त में जम गया है परन्तु गूढ़ तत्त्वों की ओर अभिरुचि न होने के कारण इस कला की अभी तक वास्तविक उन्नति नहीं हो रही है। संसार में जितने मनुष्य हैं सबकी प्रकृति भिन्न भिन्न है। एक का स्वभाव, एक का जीवन, एक का चरित्र दूसरे से पृथक् है। इन सब चरित्रों का वर्णन उपन्यास वा नाटक द्वारा किया जाता है। पुस्तकों के पढ़ने की अपेक्षा प्रत्यक्ष दृश्यों के देखने से मानव-जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इन दृश्यों को जनसमूह के सन्मुख उपस्थित करना ही नाट्य कला है। नाटक की सफलता उसकी रचना पर अधिक निर्भर है क्योंकि संगीत और नाट्य कला दोनों परस्पर आश्रित हैं और ये दोनों कलाएं कवि की उसकी रचना-शक्ति पर ही निर्भर करती हैं। कविता उच्चश्रेणी की एवं प्रभावशालिनी हो तो संगीत अवश्य रुचिकर होगा; इसी प्रकार यदि नाटक उत्तमता से लिखा गया हो तो उसका अभिनय भी सफलता-पूर्वक और प्रभावशाली होगा। जैसे संगीत अगर में गीत नीरस, अर्थहीन और अप्रिय हो—जैसे "तुही मेरी नानी, तुही मेरी मामी, तुही मेरी अम्मा खालाजान"—आदि तो साक्षात् गन्धर्वराज और तानसेन भी उसे उत्तमता से गा नहीं सकते। इसी तरह यदि नाटक की रचनाशैली उत्तम न हो, कविता भी शुष्क ही हो, दृश्य भी निरर्थक हों (जैसे काशी का दृश्य दिखलाने के समय इङ्गलैण्ड के राजमहल का पर्दा दिखलाना), आख्यान (प्लाट) भी प्रभावशून्य और रसहीन हो तो कैसे ही कुशल पात्रगण क्यों न हों नाटक में स्वप्न में भी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। इन सब बातों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करने से और हिन्दी भाषा में नाटकों की अवस्था देखने से सिद्ध होता है कि आजकल के नाटकों और अभिनय-मंडलियों की दशा अतीव खेदजनक है। हिन्दी में मूल नाटकों के कर्त्ता—

श्रीभारतेन्दुजी—यद्यपि भारतेन्दुजी के पूर्व हिन्दी भाषा में पं० लक्ष्मीरामजी ने "करुणाभरण नाटक"—जिसका उल्लेख Manuscript Report में है—और महाराज श्रीविश्वनाथसिंह ने "आनन्दरघुनन्दन नाटक" लिखा था तथापि हिन्दी भाषा के नाटकों का इतिहास राजा लक्ष्मणसिंह और श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के समय से ही प्रारम्भ होता है। वास्तव में भारतेन्दुजी नाटकों के प्रारम्भकर्त्ता थे। हिन्दी-साहित्य में नाटकों के दो भाग हैं, एक तो मूल और दूसरे भाषान्तर से अनुवाद किए हुए। हिन्दी भाषा में जितने नाटक प्रकाशित हुए हैं उनका अधिक अंश अनुवाद ही है। मूल नाटक लिखनेवालों में श्रीहरिश्चन्द्रजी का नम्बर सबसे पहला है। इनके नाटक सबसे उत्तम और उच्चश्रेणी के हैं। भारतेन्दुजी ने जितने नाटक अपनी कल्पना से लिखे हैं उनमें चन्द्रावली, सत्य हरिश्चन्द्र का कुछ भाग, नीलदेवी, प्रेमयोगिनी, सतीप्रताप, भारतदुर्दशा, अन्धेरनगरी, विषस्यविषमौषधम्, और वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति मुख्य हैं। जैसी उच्च कल्पना, सौन्दर्यमयी भाषा, चित्ताकर्षिणी कविता और उत्तम शिक्षादायक शास्त्रोक्त रचनाशैली श्रीभारतेन्दुजी के नाटकों में पाई जाती है वैसी हिन्दी संसार के किसी नाटक में भी नहीं प्राप्त होती। उदाहरण के लिए "सत्य हरिश्चन्द्र" लीजिए। यद्यपि यह चण्डकौशिक के आधार पर [या उसके बंगला छायानुवाद के आधार पर ? सं०] बना है तथापि उत्तमता में मूल से कम नहीं है। आज तक मैंने जितने नाटक देखे हैं उनमें यह सर्वोत्तम है। इन्द्र के दरबार में नारद मुनि का सज्जन पुरुषों के लक्षण कहना बड़ा ही शिक्षादायक है। लेखक ने हरिश्चन्द्र की सत्यप्रियता, गंगातट-वर्णन, स्मशान-वर्णन और शैव्या का विलाप ऐसी उत्तमता से लिखा है मानो वे स्वयं राजा हरिश्चन्द्र ही हों, पढ़ते पढ़ते प्रत्यक्ष दृश्य ही सम्मुख उपस्थित हो जाता है। मृत शरीर को देख हरिश्चन्द्र ने संसार की अनित्यता का जो वर्णन किया है वह बहुत उपयुक्त है। शैव्या का विलाप देख किस वज्रहृदय का चित्त न पसीजेगा ? देवी के प्रसन्न होने पर भी हरिश्चन्द्र का अपने स्वामी का भला चाहना, पुत्रशोक उपस्थित होने पर भी धीरज न छोड़ना और अपना कर्त्तव्य पालन करना, साक्षात् स्त्री को अपने पुत्र का दाह कर्म न करने देना और उसके बराबर समझाने पर भी हरिश्चन्द्र का यही कहना कि "आध गज़ कपड़े के लिए मेरा सत्य न छुड़ाओ" कैसा धीरतायुक्त प्रशंसनीय, हृदय-विदारक और शिक्षादायक है। "चन्द्रावली" भी ऐसी ही है। यह प्रेम रसपूर्ण नाटिका है। इसमें आदि से अन्त तक प्रेम ही प्रेम है। इसमें नारद, चन्द्रावली के प्रेम छिपाने और योगिनी के वर्णन बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। जिस प्रकार हरिश्चन्द्र में गंगा-वर्णन है उसी तरह इसमें यमुना-वर्णन है। वर्णन तो ऐसे उत्तम हैं मानो पाठक स्वयं नदी के तट पर उपस्थित होकर वह दृश्य ही देख रहा हो। नीलदेवी भी कुछ कम नहीं है। यवनों की बातचीत शुद्ध उर्दू भाषा में बहुत ही समयानुसार लिखी गई है। कवि ने क्षत्रियों का वीरत्व सन्मुख उपस्थित कर दिया है, पागल का पार्ट तो ऐसा उत्तम लिखा गया है मानों प्रत्यक्ष आगे उपस्थित है। इससे मालूम होता है कि लेखक को पागलपने तक का पूर्ण अनुभव था। भारतवर्ष की वास्तविक स्थिति और इसकी अवनति के प्रधान प्रधान कारण दिखलानेवाला यदि कोई नाटक हिन्दी भाषा में है तो "भारतदुर्दशा" है। छः सभ्यों की एक सभा में दिखलाया गया है कि किस प्रान्त में कैसी हिन्दी बोली जाती है और किस प्रान्त के कैसे विचार हैं। "प्रेमयोगिनी" में लेखक ने स्वयं वल्लभीय सम्प्रदाय के अनुयायी हो कर उसकी कुरीतियों और गोस्वामियों के निन्दनीय आचरणों की निन्दा की है। यदि किसी को काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कृष्णमन्दिरों, गैबी, पण्डों, बदमाशों और गुण्डों का हाल जानना हो तो उसे इस नाटक को एक बार अवश्य देखना चाहिए । भारतेन्दु जी की प्रख्यात विद्या-रसिकता और उदारता से काशी के कई सज्जन जलते थे । इस नाटक में भारतेन्दु जी ने अपनी निन्दा स्वयं कर यह दिखला दिया है कि इनके प्रति लोगों के विचार कैसे थे । यह काम सामान्य नहीं है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतेन्दु जी हिन्दी-भाषा और विशेषतः नाटकों के सम्बन्ध में अद्वितीय कार्य्य कर गए ।

लाला श्रीनिवासदास—

लाला श्रीनिवासदास जी के भी इसी समय के दो नाटक मुख्य हैं (१) संयोगता स्वयम्बर और (२) रणधीर प्रेममोहिनी । यद्यपि इनकी रचना-शैली ऐसी उत्तम तो नहीं है जैसी कि भारतेन्दु जी की; तथापि लालाजी ने ये नाटक ऐसे समय में लिखे हैं जब कि हिन्दी-क्षेत्र में नाटकों का बीजा-रोपण आरम्भ हुआ था, इस लिये आप धन्यवाद के भागी अवश्य हैं । स्वतंत्र और उत्तम नाटकों के लेखकों में इनके बाद बाबू राधाकृष्णदास का नम्बर है । आपको जन्म ही से भारतेन्दु जी की शिक्षा और उनके सत्संग का सौभाग्य प्राप्त था । अतः इनकी भाषा और रचनाशैली कई अंशों में भार-तेन्दु जी से मिलती जुलती है । इसका उदाहरण भारतेन्दु जी कृत "सती प्रताप" है । इस अपूर्ण नाटक की पूर्ति बाबू राधाकृष्णदास ने की है परन्तु न तो उसमें कहीं विशेष भेद ही दृष्टिगोचर होता है और न कहीं उसका स्वरूप ही बिगड़ने पाया है । इनके स्वरचित नाटकों में राजस्थानकेशरी या महाराणा प्रतापसिंह और महाराणी पद्मावती मुख्य हैं । इनकी गणना अभिनय योग्य नाटकों में सर्वोत्तम है । पहले नाटक में एक गुण यह भी है कि हल्दी घाटी के युद्ध की छोटी से छोटी घटनाओं का भी उसमें समावेश है । प्रतापसिंह का स्वदेशप्रेम, मानसिंह का क्रोध, अकबर का पृथ्वीराज की रानी पर आसक्त होना, परन्तु रानी के क्रुद्ध होने पर अकबर का माफ़ी माँगना, सक्ता जी का भ्रातृप्रेम, अकबर का हिन्दुओं के प्रति विश्वास और वीरों का आदर आदि बहुत उपयुक्त और चित्ताकर्षक है । मानसिंह के गर्वपूर्ण वाक्य सुन और स्वयं अपनी मूँछों पर हाथ फेरता हुआ देख राणा का यह कहना कि "सुनो सुनो महाराजा मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ-बस दूर बहाई ।
जीवन में जिन खोय दई आपनी बड़ाई ।
जिन जग सुख हित करी जाति की जगत हँसाई ।
लखि जिनको मुख वीर रहे शिर सबै नवाई ।
तिनके संग खानो कहा मुख देखतहू पाप है ।
जाहि शील अरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है ।।"

कैसा शिक्षाप्रद है । प्रतापसिंह को युद्ध में जाते हुए देख बालक राजकुमार का अपनी माँ के प्रति कहना कि "माँ ! दलवाल जवनों से छिकाल खेलने जांयगे......भाई अब तो छहजा को मालेंगे......इत्यादि बहुत रोचक, हृदयग्राही और वीरतादर्शक है । महारानी पद्मावती भी ऐसा ही वीर-रस युक्त प्रभावशाली एवं ओजस्वी नाटक है । कई जगह रोमाञ्च और क्रोध हो आता है । इस नाटक के बनने के पूर्व बाबू उदितनारायणलाल वर्म्मा ने अश्रुमती नाटक का अनुवाद किया था । इसमें लेखक ने प्रतापसिंह की पुत्री "अश्रुमती" का शाहज़ादा सुलेमान के प्रति प्रेम करना बहुत ही अनुचित एवं निन्दनीय रीति से वर्णन किया है । जिस समय यह नाटक लिखा गया था हिन्दी-संसार में घोर आन्दोलन उठा था और इसकी कुल प्रतियाँ जल में डुबा दी गई थीं तथापि इसकी कुछ प्रतियाँ कहीं कहीं देख पड़ती हैं । इसी प्रेमवार्ता को बाबू राधाकृष्णदासजी ने गुलाबसिंह और मालती की प्रेममयी वार्ता में बड़ी ही उत्तमता से परिवर्तित कर दिया है । मिर्ज़ापुर निवासी पंडित बदरीनारायणजी चौधरी का लिखा हुआ "भारत-सौभाग्य" नामक एक नाटक महारानी विक्टोरिया की जुबिली के समय का है परन्तु उसके अभिनय में १२५ पात्रों की आवश्यकता है ! १०० पृष्ठ की पुस्तक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...चार पृष्ठ तो पात्रों की तालिका से ही भरे हुए हैं। ...सी प्रकार मूल नाटकों में और भी छोटे बड़े कई ...नाटक हैं परन्तु वे उल्लेख योग्य नहीं हैं। अभिनय ...योग्य तो भारतेन्दुजी के भी कई नाटक नहीं हैं ...क्योंकि एक तो वे छोटे हैं दूसरे उनके दृश्यों के ...टेज पर दिखलाने में भी बहुत अड़चन पड़ती है। ...रन्तु इसमें भारतेन्दुजी का दोष नहीं है। वर्तमान ...समय के ढंग की "अभिनय मंडलियाँ" उस समय ...हीं थीं इस कारण रंगभूमि का पूरा पूरा अनुमान ...न लेखकों को न था। पर तो भी साहित्य के ...विचार से भारतेन्दुजी के नाटक रत्न हैं। इस प्रकार ...खने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि हिन्दी भाषा में ...ल नाटकों की दशा बहुत ही शोचनीय है।

(२) अनुवाद—जिस प्रकार मूल नाटकों की ...शा खेदजनक है उसी प्रकार अन्यान्य भाषाओं से ...नुवादित नाटकों की दशा भी शोचनीय ही है। ...नुवाद करना कुछ सामान्य बात नहीं है। इसमें भी ...छ मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। हिन्दी भाषा ...जिन नाटकों का अनुवाद हुआ है उनमें ऐसे ...टक बहुत कम हैं जिन्हें यथार्थ "अनुवाद" कह ...कें। गद्य का गद्य में, एवं पद्य का पद्य में मूललेखक ...यथार्थ भाव प्रगट करते हुए जो अनुवाद होता ...से यथार्थ अनुवाद कहना चाहिए। बिना पूर्व ...का पूरा भाव समझे अनुवाद करना केवल ...य और परिश्रम नष्ट करना है। इन सब बातों ...विचार करने से विदित होता है कि अनुवादक ...में भी भारतेन्दुजी की गणना प्रथम है। आपने ...राक्षस, धनञ्जयविजय, कर्पूरमंजरी, रत्नावली, ...यासुन्दर, भारतजननी, दुर्लभबन्धु, आदि कई ...स्कृत, बँगला और अँग्रज़ी नाटकों के अनुवाद ...ये हैं। यद्यपि आपसे भी पहले आपके पिता ...बू गिरधरदासजी (उपनाम बाबू गोपालचन्द्रजी) ...नहुष नाटक तथा राजा लक्ष्मणसिंहजी ने शकुं- ...ला नाटक का संस्कृत भाषा से हिन्दी में अनुवाद ...या था; तथापि साहित्यभांडार की पूर्ति के ख़याल ...भारतेन्दुजी का आसन ऊँचा है। उपर्युक्त राजा साहब ने शकुन्तला नाटक का अनुवाद बड़ी ही मनोहर सरल भाषा में किया था। इस में कोई सन्देह नहीं कि आपको इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

विद्यासुन्दर का अनुवाद बाबू हरिश्चन्द्रजी ने १८ वर्ष की अवस्था में किया था परंतु इसकी भाषा ऐसी सरल और छन्द ऐसे मनोहर हैं कि प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। इसी प्रकार धनञ्जय-विजय, भारतजननी, दुर्लभबन्धु आदि के अनुवाद इतने उत्तम हुए हैं कि वे किसी स्वतंत्र ग्रन्थ से किसी बात में कम आनन्ददायक नहीं हैं। मुद्राराक्षस का भी बहुत उत्तम अनुवाद हुआ है और कई वर्ष तक मेट्रीकुलेशन आदि के कोर्स में था। उदाहरण के लिये प्रथम ही श्लोक और उसका अनुवाद लीजिए।

मूल श्लोक—

"धन्याकेयं स्थिता ते शिरसि, "शशिकला" किन्नुनामैतदस्याः
'नामैवास्यास्तदेतत् परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः।
'नारीं पृच्छामि नेन्दुं' कथयतु विजयानप्रमाणं महीन्दु
र्देव्यानिन्होतु मिच्छेोरिति सुरसरितं शाठ्य मव्याद्विभोर्व॥ १॥

अक्षरशः अनुवाद—

"कौन है शीश पै?" 'चन्द्रकला' कहा याको है
नाम यही त्रिपुरारी?।
हां यही नाम है भूल गई किमि जानत हौ
तुम प्रान पियारी॥
नारिहिं पूछत चन्द्रहिं नाहिं कहे विजया
यदि चन्द्रलबारी।
यों गिरिजै छलिगंग छिपावत ईश हरौ
सब पीर तुम्हारी॥ १॥

कैसा शुद्ध, सच्चा और प्रशंसनीय अनुवाद है! इंगलैंड के कविवर शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद करना सामान्य काम नहीं है। परन्तु जैसा अनुवाद (Merchant of Venice) मरचेण्ट आफ़ वेनिस का श्री भारतेन्दुजी ने किया है वैसा कम देखने में आता है। इसी नाटक का एक अनुवाद "आर्य्य" नामक सज्जन ने और दूसरा पण्डित गोपीनाथजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एम० ए० ने किया है परन्तु इनमें बहुत कुछ अन्तर है। उदाहरण के लिये कुछ वाक्य उद्धृत करता हूँ। पाठकगण उत्तमता स्वयं विचार लें।

"आर्य"—सं०१८८७

शैलाक्ष—"हे महाशय, मैंने आपसे निवेदन किया है और पवित्र विश्राम की प्रतिज्ञा की है कि अपना मूल धन और उस नियम के अनुसार चलूँगा, यदि आप उसको स्वीकार न करें तो तुम्हारा शासनपत्र और पैारजनाधिकार दुःखित होय। यदि आप मुझसे पूछेंगे कि क्यों मैंने एक टुकड़ा सड़ी मांस तीन सहस्र डुकेट्स की अपेक्षा स्वीकार करता हूँ, मैं इसका उत्तर न देऊँगा परन्तु जानो कि यह मेरे विचार में आया है क्या इससे उत्तर मिला? यदि मेरा गृह मूसा से उपद्रवित होय और उसको विषद्वारा नाश करने को दस सहस्र डुकेट्स देना स्वीकार करें तो क्या? अभी तक आपने उत्तर नहीं पाया। किसी मनुष्य को शूकर शावक का करकस शब्द अप्रिय है और दूसरा ऐसा है जो विड़ाल को देखते ही पागल के समान वर्तता है। स्वभाव ही विधि और निषेध की ओर झुकाता है अब इस पर तुम्हारा उत्तर जैसे इस विषय में उत्तर देने को कोई योग्य हेतु नहीं है कि क्यों एक मनुष्य को शूकर शावक का शब्द अप्रिय लगता है और दूसरे को अनपकारी बिल्ली का। ऐसे ही मैं कारण नहीं कह सकता और न कहूँगा, केवल वही कारण कह सकता हूँ कि आटोनियो से विभवोत्पादक द्वेष रखता हूँ यह मेरी विज्ञापन निष्फल होय तथापि मैं उसका पीछा करूँगा क्या आपको उत्तर मिला?" इसी कथन को जो यहाँ कदाचित् कठिनाई से भी समझ में नहीं आता, भारतेन्दुजी ने ऐसे मधुर शब्दों में लिखा है जो मूल से कमरोचक नहीं है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी का अनुवाद किया हुआ यही अंश इस प्रकार है,—

"शैलाक्ष—महाराज को अपने उद्देश्य से सूचित कर चुका हूँ और मैंने अपने पवित्र दिन रविवार की शपथ खाई है कि जो कुछ मेरा दस्तावेज़ अनुसार चाहिए वह भग्न-प्रतिज्ञ होने के दण्ड स्वरूप लूँगा। यदि महाराज उसको दिलवाना अंगीकार न करें तो इसका अपवाद महाराज के न्याय और महाराज के नगर की स्वतंत्रता के सिर पर। महाराज मुझसे यही न पूछते हैं कि मैं इतना मृत मांस ६ छःहज़ार रुपयों के बदले लेकर क्या करूँगा इसका उत्तर मैं यही देता हूँ कि मेरे मन की प्रसन्नता; बस अब महाराज को उत्तर मिला? यदि मेरे घर में किसी घूँस ने बहुत सिर उठा रक्खा हो और मैं उसके नष्ट करने के लिए बीस सहस्र मुद्रा व्यय कर डालूँ तो मुझे कौन रोक सकता है? अब महाराज ने उत्तर पाया या नहीं। कितने लोगों को सूअर के मांस से घृणा होती है; कितने ऐसे हैं जो बिल्ली को देख कर आपे से बाहर हो जाते हैं अब आप मुझसे उत्तर लीजिए कि जैसे इन बातों का मूल कारण नहीं कहा जा सकता कि वह सूअर के मांस से क्यों दूर भागते हैं और यह बिल्ली सरीखे दीन और सुखदायक जन्तु से क्यों इतना घबराते हैं वैसे ही मैं भी इसका कोई कारण नहीं बतला सकता और न कहूँगा सिवाय इसके कि मेरे चित्त में उसके पुरानी शत्रुता चली आती है और मुझे उसके स्वरूप से घृणा है जिसके कारण से मैं एक ऐसे विषय का जिसमें मेरा इतना घाटा है उद्योग करता हूँ कहिए अब तो उत्तर मिला?" यह बहुत ही सरस रोचक और मनोहर अनुवाद है। अनुवाद के गुण यही हैं कि जो लोग मूल पुस्तक नहीं पढ़ सकते उन्हें भली भाँति समझ में आ जाय और उन पर यथेष्ट प्रभाव पड़े। जिस नाटकाचार्य शेक्सपियर के एक नाटक का यह अनुवाद है उसके और कई नाटकों के भी अनुवाद हो गए हैं परन्तु जैसा रोचक अनुवाद भारतेन्दुजी का है वैसा एक भी नहीं है। श्रीयुत पुरोहित गोपीनाथ जी एम० ए० को कोटिशः धन्यवाद है जिन्होंने [illegible] नाटकों का अनुवाद किया है। यद्यपि अनुवाद [illegible] सरस है नहीं तथापि आपका परिश्रम सराहनीय [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके अनुवाद के उदाहरण के लिए (Romeo and Juliet) "प्रेमलीला" को लीजिए ।

बैनवोलियो—आवो, उसने अपने को उन वृक्षों में छिपा लिया है कि वह इस शीतल रात्रि के साथ सहवास कर सके । उसकी प्रणय दृष्टि-हीन है और इसलिए वह सब प्रकार से अन्धकार के ही योग्य है ।

मरकुटियो—प्रणय यदि अन्ध होता तो लक्ष्य का भेद कदापि नहीं कर सकता । अब वह मेडलर जाति के वृक्ष के तले बैठ कर यह इच्छा करेगा कि उसकी प्रेम-पात्री वह फल दे कि जिसको कुमारियाँ अपने एकान्त हास्य के समय मेडलर के नाम से पुकारा करती हैं । हे रोमियो ! मैं चाहता हूँ कि वह इत्यादि इत्यादि होती और तू पपैरिक देश का पीअर नाम फल होता !—

रोमियो—स्वस्ति ।

आपके सब अनुवाद इसी प्रकार के हैं । इनकी रोचकता आदि का पाठकगण स्वयं निर्णय कर लें, परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि आपके अनुवाद अच्छे हैं । पूज्य श्रीबदरीनारायण चौधरीजी के भ्राता पण्डित मथुराप्रसाद बी० ए० ने इसी महाकवि के "मैकवेथ" नामक नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया है । "बी० ए० की विकट परीक्षा देने के उपरान्त" आप इस विचार में पड़े कि इस कठिन परिश्रम के पश्चात् ऐसा कौन कृत्य छेड़ें जो विश्राम और मनोविनोद के संग समय सार्थकारी हो—ऐसा समझ कर आपने इसमें हाथ लगाया । उदाहरण के लिए इसके दो पद्य काफी होंगेः—

१ डाइन—अरी बहिन तू रही कहाँ ।
२—शूकर मारत रही वहाँ ।
३—तू अपनी कह रही जहाँ ।
हुई बात क्या और तहाँ ? ।
१ डाइन—पूग लिए मल्लाहिन अङ्क कूँच कूँच
खाती थी निसङ्क मैं बोली मुझको भी दो
"दैव कृपा से दूर तू हो ।"

हाँ, काशी की "ग्रन्थ-प्रकाशक समिति" ने हैमलेट का जो अनुवाद जयंत के नाम से किया है वह इन सबों से उत्तम है । अनुवाद तो और भी कई हुए हैं परन्तु उनमें रोचकता कम है । जिस प्रकार अँग्रेज़ी भाषा के कई नाटकों के अनुवाद हुए हैं उसी प्रकार से मातृभाषा संस्कृत के भी नाटकों के कई अनुवाद हो चुके हैं । संस्कृत भाषा में भवभूति के समान और कोई नाटककार नहीं हुआ । जिस तरह अँग्रेज़ी भाषा में शेक्सपियर थे उसी प्रकार संस्कृत-साहित्य के लिए महात्मा भवभूति थे । संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदासजी की "शकुन्तला" और महात्मा भवभूति के उत्तररामचरित से बढ़ कर कोई नाटक नहीं है । उत्तररामचरित्र के भी कई अनुवाद हुए हैं परन्तु शुद्ध एवं सर्वांग सुन्दर कदाचित् ही कोई हो । अभी तक इसके जितने अनुवाद हुए हैं उनके नाम और क्रम यों हैः—

१ पण्डित देवदत्त तिवारी कृत सन् १८७४ कुल गद्य
२ पण्डित नन्दलाल दुबे ,, ,, १८८७ गद्य-पद्य
३ श्रीयुत बाबू सीताराम बी० ए० ,, १९०० ,, ,,
४ ,, ,, पं० हरि मंगल मिश्र एम० ए० ,, १९१२ ,,
५ ,, ,, पं० सत्यनारायणजी ।

कौन अनुवाद कहाँ तक शुद्ध और रोचक है यह दिखलाने के लिए मैं हर एक का एक एक वाक्य उद्धृत करता हूँ—पाठकगण स्वयं उनकी उत्तमता विचार लेवें ।

पण्डित देवदत्त तिवारी—

राम——हे देविजी इन दिव्य अस्त्रों को प्रणाम करो ।

पण्डित नन्दलाल जी—कौशिल्या लव से पूछती हैं—

गद्य—कौशिल्या—तेरो भाई कहै बेटा ?

लव—हां माता । आर्य कुश नाम को ।

कौशिल्या—यह बड़ो होय ऐसो तेरे कहे ते जान पड़त है ।

लव—हां केवल प्रसव क्रम से वह कुछ बड़ा है ।

जनक—तो क्या तुम दोनों युग्मज हो । इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह गद्यांश ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली में मिला हुआ है अब पद्य भी देखिए।

पद्य—स्मरसि सुतनु याही शैल पै लक्ष्मण ने।
करि ऋपनऽलि सेवा दिन्न जाते न जाने॥
स्मरसि! पुनि सुरम्ये तीर गोदावरी के।
बिहरि निकटकाटे सुक्खते दिन्न जाके॥१॥

लाला सीताराम जी—(रामचन्द्र जी से लक्ष्मण कहते हैं)

गद्य—ल०—दादा की जय हो! दादा चितेरे ने हम लोगों के कहने से भीतियों पर आपका चरित उतारा है उसे आप देख लीजिए।

तथा—

बरुए—(बालक गण)।
पीछे है पूछ बड़ी लटकाए,
सो बारहि बार हिलावत है।
चारहि हैं खुर वाके गला,
अति लांबो सो मूड़ उठावत है।
खात है घास औार आम बराबर,
लीद तुरंग गिरावत है।
आओ चलैं तेहि देख सखा,
न भजै अति वेग सों धावत है।

श्रीयुत पण्डित हरिमंगल मिश्र जी—

पण्डित जी का अनुवाद सर्वोत्तम होने पर भी गँवारू भाषा में है। लक्ष्मण जी सीता जी को "भौजी" और सीता जी लक्ष्मण को "बबुआ" कह कर संबोधन करती हैं। यह युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता।

अब पद्य का भी नमूना लीजियेः—

बूढ़ चरित्र को करइ विचारा।
नहिं कुमार यह काज हमारा॥

पं० सत्यनारायणजी का अनुवाद बहुत रोचक है। इस प्रकार मिलान करने पर विदित होता है कि यद्यपि इस नाटक के कई अनुवाद हुए परन्तु एक भी अनुवाद उल्लेखनीय नहीं हुआ।

लाला सीताराम जी और पंडित नन्दलाल जी ने और भी कई संस्कृत नाटकों के अनुवाद किये हैं परन्तु यह भी वैसे ही हैं। संस्कृत और अंग्रेजी बाद हिन्दी भाषा में कितने ही नाटक दूसरी दूसरी भाषाओं से भी अनुवादित हुए हैं। जैसे बँगला, मराठी, उर्दू आदि। इनमें जो नाटक बंगला व मराठी से अनुवादित हैं वे स्टेज पर खेलने योग्य एवं प्रभावोत्पादक हैं परन्तु जो नाटक पारसी के उर्दू नाटकों के अनुवाद हैं वे एक तो नाट्यशास्त्र के नियमों के विरुद्ध हैं दूसरे अशुद्ध एवं अश्लील हैं। उदाहरण के लिए बाबू आनन्दप्रसाद खत्री का "कलियुग" नाटक देखिए। यद्यपि बाबू साहब अपने को स्वतंत्र लेखक लिखते हैं तथापि वास्तव में यह उर्दू के "सफ़ेद ख़ून" का अनुवाद मात्र है। हां कहीं कहीं कुछ अदल बदल और तोड़ मरोड़ अवश्य किया है। यह दुर्गुण और भी कितने लेखकों में पाया जाता है। इस पुस्तक के लिखने में भारतेन्दुजी कृत अनेक नाटकों से अनेक वाक्य ज्यों के त्यों ले लिए गए हैं।

समर्पण में एक स्थान पर आप लिखते हैं "यह एक नया कौतुक देखो। तुम्हारे सत्यपथ पर चलनेवाले को कितना कष्ट होता है यही दिखाया है"। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने "सत्य हरिश्चन्द्र" के समर्पण में अक्षरशः यही वाक्य लिखे हैं पृष्ठ सं० ८ में आप यह लिखते हैं:—

"चन्द्र टरै सूरज टरै टरै पृथ्वी आकाश।
पै मेरो यह दृढ़ बचन कबहुं न होत विनाश॥"

यह सत्यहरिश्चन्द्र के इस दोहे को तोड़ मरोड़ कर लिखा गया है।

"चन्द्र टरै सूरज टरै टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को टरै न सत्य विचार॥"

जो अंश उर्दू का हिन्दी लिपि में लिख दिया गया है और जिसे आप स्वरचित बतलाते हैं वह पारसी थियेटरवालों के ढंग पर है। यह किसी काम का नहीं है।

आपकी अपूर्व कवित्व शक्ति का भी नमूना लीजिएः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाना—पृष्ठ—२३

प्यारी अकड़ फबन से मैं चलूँ
सारे गाँव का राय बहादुर बनूं
आगे पीछे सिपाही दो चार रखूँ
तनिक छाती को खूब निकाल चलूँ
देखो मेरा सम्मान और प्रतिष्ठा

वाह ! कैसी अच्छी कविता और भाषा है ! यह सब लिखने से मेरा नाटककार पर आक्षेप करने का तात्पर्य नहीं है; मेरा मतलब केवल यही बतलाने का है कि वर्तमान समय में जो लोग नाटक लिखने और अनुवाद करने लगे हैं उन्हें हिन्दी-भाषा और गँवारू भाषा का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। "कलियुग" नाटक महाकवि शेक्सपियर के "किंग लियर" नामक नाटक का एक प्रकार से अनुवाद है। छोटे छोटे ६८ पेज के नाटक में मूल कवि के कहाँ तक भाव आए होंगे इसे पाठक स्वयं विचार लें। भाषा और देवनागरी लिपि में कितने ही प्राचीन नाटक—जैसे सज्जाद सम्बुल, मदनमंजरी, सतीनाटक, प्रबोध-चन्द्रोदय, प्रेमविलास आदि—एवं अर्वाचीन याने वर्तमान समय के नाटक ऊषाहरण, सुभद्राहरण, वेणीसंहार इत्यादि हैं जिनमें से स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्म्मा के कई नाटक बहुत उत्तम हैं। तथापि राष्ट्र-भाषा के ख्याल से और बंगला, मराठी, गुजराती भाषाओं के भांडारों के आगे इनकी गणना कुछ भी नहीं है। और जो हैं उनमें ऐसे बहुत कम हैं जिनके अभिनय हो सकें। नाटक दृश्य काव्य है। इसकी रचना केवल इसी लिए होती है कि यह रङ्गमञ्च पर प्रत्यक्ष खेला जाय। जो नाटक खेले ही नहीं जा सकते उनके लिखने से क्या लाभ ? परन्तु इसमें दोष हमारे पुराने लेखकों का नहीं है। इसमें समय का दोष है। उस समय हिन्दी नाटक मंडलियों के न होने से लेखकों को स्टेज (रंगमंच) का अनुभव न था। वे नहीं जानते थे कि किस दृश्य में कितनी देर होने से उसके बादवाले दृश्य तैयार हो सकेंगे। दरबार और युद्ध के पहले और पीछे कितने बड़े

और कैसे दृश्य होने चाहिएँ, राजा अथवा पैदल सैनिकों को तैयार होकर आने में कितना समय लगता है इत्यादि इत्यादि बातों पर उनका ध्यान न था। यही कारण है कि कितने ही नाटकों के ठीक ठीक अभिनय नहीं हो सकते।

कोई कार्य करके फल की आशा करना प्रकृति का नियम है। पेड़ इसी लिए लगाए जाते हैं जिसमें कुछ फल हों। कोई कार्य ऐसा नहीं है जिसका अच्छा वा बुरा अंत न हो। पुस्तकें इसी लिए लिखी जाती हैं जिनसे मनुष्य समाज को ज्ञान प्राप्त हो। नाटक इसी लिए रचे जाते हैं कि जिसमें उनका प्रत्यक्ष अभिनय हो। अभिनय इसी लिए किए जाते हैं कि जिसमें दर्शकों पर अच्छा प्रभाव पड़े। जिस नाटक का प्रभाव नहीं पड़ता वह नाटक नहीं। जिस नाटक से सद्‌शिक्षा न मिले उस नाटक की रचना ठीक नहीं। शिक्षा तभी प्राप्त हो सकती है जब नाटक प्रभावशाली हो। मानव-जीवन पर नाटकों का, कैसा एवं किस प्रकार से प्रभाव पड़ता है इस पर भी विचार करना आवश्यक है।

मानव जीवन पर नाटकों के प्रभाव ।

मानव-जीवन के साथ शिक्षा का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य का कोई अंश इससे खाली नहीं है। जन्म लेने के बादही जब उसे भूख मालूम होती है तब वह रोने लगता है; परन्तु जब माता अपना स्तन उसके मुख में दे देती है तब चुप होकर उसे चूसने लगता है। इस प्रकार विचार करने से मालूम होता है कि जीवन का कोई अंश शिक्षा और अनुभव से खाली नहीं है। इस संसार में आकर मनुष्य को जितने काम करने पड़ते हैं वे सब बड़े बड़े प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ताओं के मत से पाँच भागों में बाँटे जा सकते हैं।

(१) वे काम जिनकी सहायता से मनुष्य अपनी प्राण-रक्षा प्रत्यक्ष रीति से कर सकता है।

(२) वे काम जो निर्वाह के लिए आवश्यक बातों को प्राप्त करा कर परोक्ष रीति से, मनुष्य की जीवन रक्षा में सहायता देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) वे काम जो संतान के पालन, पोषण और शिक्षण आदि से सम्बन्ध रखते हैं ।

(४) वे काम जिनकी जरूरत समाज, नीति और राजनीति की उचित व्यवस्था के लिए होती है ।

(५) वे काम जिन्हें लोग और बातों से फुरसत पाने पर मनोरञ्जन के लिए करते हैं ।

इन पाँचों का क्रम अपने अपने महत्व के अनुसार है । जो शिक्षा जिस श्रेणी के काम से सम्बन्ध रखती है उसे उतनी ही उच्च और उतने ही अधिक महत्व की समझना चाहिए । अब हमें यह देखना है कि नाटक से इन विभागों का कहाँ तक सम्बन्ध है क्योंकि इन्हीं विभागों पर मानव जीवन के सब कार्य निर्भर हैं—

(१) प्राण-रक्षा सम्बन्धिनी शिक्षा—

मानव जीवन के साथ चरित्र का बड़ाही घनिष्ठ सम्बन्ध है । जिस मनुष्य के जैसे चरित्र होंगे वैसाही वह मनुष्य भी हो जायगा । जिस मनुष्य के चरित्र जितने अच्छे होंगे उतनी ही अच्छी वह अपनी रक्षा कर सकेगा । यदि कोई मनुष्य सत्यवक्ता, मधुरभाषी, नम्र एवं शीलवान् होगा तो उसका जीवन भी उत्तम और रक्षित होगा । उसके जीवन के उत्तम होने से उसके मित्र बान्धव आदि सभी को सुख प्राप्त होगा । उसका अनुकरण कर वे लोग भी सच्चरित्र बन सकेंगे । उनके चरित्र अच्छे होने से उनकी जाति की उन्नति होगी । उस जाति की उन्नति होने से उसके प्रान्त को लाभ होगा और उसके प्रान्त को लाभ होने से उसके देश का उपकार होगा । देश की उन्नति होने से उसके निवासी भाइयों को सुख प्राप्त होगा । संसार में सुख ही मुख्य वस्तु है । मनुष्य जितने काम करते हैं सब सुख प्राप्त होने के लिए ही करते हैं । अनेकानेक आपत्तियों को झेलते हुए अत्यधिक परिश्रम कर लोग धन एकत्रित करते हैं । परन्तु किसके लिए ? केवल सुख के लिए । सुख पाने की इच्छा सब को रहती है । परन्तु यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि सुख का मूल सच्चरित्रता है । यदि हमारे चरित्र अच्छे नहीं हम मद्यसेवी, वेश्यागामी या द्यूतप्रेमी हैं हमसे सभी लोग अप्रसन्न रहेंगे और हमें में भी सुख की प्राप्ति न हो सकेगी । हम बुरा आचरण देख हमारे मित्र बान्धव भी ह सरीखे हो जायँगे । इस प्रकार हमारे जाति की, जाति से प्रान्त की, प्रान्त से देश और देश से देशवासियों की हानि होगी । किसी भी हमारे बुरे आचरण से लाभ न होगा । च सुधार के कई उपाय हैं । कहीं व्याख्यानों द्वारा उपन्यासादि और पुस्तकों द्वारा चरित्र सुधार उपदेश दिए जाते हैं; कहीं कोई सभा की जाती कहीं कोई सोसाइटी स्थापित हो रही है । परन्तु च सुधार का सर्वोत्तम उपदेशक नाटक है । रंग में किसी के घृणित चरित्रों और सच्चरित्रों आधार पर बड़े बड़े उपदेश राजा महाराजों अन्य दर्शकों को दिये जाते हैं । यदि किसी पुस्त सत्य हरिश्चन्द्र की कहानी लिखी हो तो उ प्रभाव जनसमुदाय वा उसके पाठकों पर उतना पड़ सकता है जितना कि रंगभूमि में किसी हरिश्चन्द्र, किसी को शैव्या बना कर उनके धैर्य, दान, संतोष, कर्तव्यपालन इत्यादि का दृश्य उपस्थित करने से हो सकता है । वह रिक एवं चरित्रसुधारक शिक्षा जो मनुष्य प्रत्यक्ष रीति से अपनी रक्षा के लिये योग्य बना है नाटक के प्रभावों द्वारा सहज में प्राप्त हो स है । नाटक ही के प्रभाव से मनुष्य का वह जो चरित्र के हीन होने से बिगड़ रहा हो सु है और सुधर सकता है ।

(२) उदर-निर्वाह सम्बन्धिनी शिक्षा—

यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं है मानवजीवन के साथ उदर का क्या सम्बन्ध इस संसार में जितने प्राणी हैं, चाहे वे मनुष्य या पशु, जलचर हों वा स्थलचर, पेट की चिन्ता को है । कोई जीव ऐसा नहीं है जो भोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना अपना जीवन व्यतीत कर सके। अतः भोजन (उदर-निर्वाह) से सम्बन्ध रखनेवाली शिक्षा सर्वव्यापिनी और बड़े महत्त्व की है। मनुष्य-समाज में इसके दो भाग हैं; एक तो वह शिक्षा जो बिना दूसरे का काम किये व्यापार के द्वारा मनुष्य का निर्वाह करती है; दूसरी वह शिक्षा जो मनुष्य को दूसरे का काम कर अपना उदर पोषण करने की ओर प्रवृत्त करती है। हर एक मनुष्य को अपने जीवन निर्वाह के लिये इन दोनों की अथवा इनमें से किसी एक की अवश्य ही आवश्यकता पड़ती है। नाटकों के द्वारा यह शिक्षा भी थोड़े समय में बड़ी उत्तमता से प्राप्त हो सकती है। थोड़ेही समय में किस प्रकार दूकान सजाना, ग्राहकों से किस तरह बातें करना, ठगों को कैसे बातों में लाकर पहचान लेना, दलालों की चालाकियाँ आदि सभी बातें जिनका सम्बन्ध व्यापार से है नाटकों के द्वारा दिखलाई जा सकती और इसके प्रत्यक्ष दृश्यों से मनुष्य इस विभाग की सभी बातें जान सकता है। दूसरे का काम किस तरह करना चाहिए, राजा से शासनकार्य्य के कुछ भाग का भार ले कर उसे कैसे निबाहना चाहिए इत्यादि बातें बहुत भली भाँति नाटकों द्वारा प्रत्यक्ष कराई जा सकती हैं। जिन्होंने सत्य हरिश्चन्द्र नाटक पढ़ा है उन्हें विदित होगा कि, एक बार स्मशान-देवी श्री हरिश्चन्द्रजी पर प्रसन्न हुईं। उन्होंने प्रसन्न होकर उनसे बर माँगने के लिये कहा। हरिश्चन्द्र उस समय डोम के दास थे। यदि वे चाहते तो स्त्री, पुत्र, राज्य, धन, सब कुछ देवी से मांग सकते थे और देवी भी, जो प्रसन्न हो चुकी थीं उनकी अभिलाषा को अवश्य पूर्ण करतीं। परन्तु सेवक हरिश्चन्द्र ने भगवती से यही कहा—"भगवती यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिये।" इस दृश्य से सेवक समाज को स्वामि-भक्ति की कैसी उत्तम शिक्षा मिलती है। जब बीरबर प्रतापसिंह का सब कुछ नष्ट हो गया उस समय भामाशाह मंत्री ने अपने संचित विपुल धन से उनकी सहायता की थी। क्या राजस्थान केसरी नामक नाटक के उक्त दृश्य से सेवक समाज को अपने स्वामी के प्रति विपत्ति के समय सच्चे सेवक के कर्तव्यों की शिक्षा नहीं प्राप्त होती? नाटक के प्रभाव से केवल यही शिक्षा नहीं मिलती वरन् यह भी सिद्ध हो जाता है कि ऐसी स्वामि-भक्ति का क्या फल होता है। इस प्रकार नाटक के सुप्रभाव और मानव जीवन से चोली दामन का साथ रखनेवाली उदर निर्वाह सम्बन्धिनी शिक्षा भी प्राप्त होती है।

(३) सन्तान-सुधारिणी शिक्षा—

देश का उद्धार, देश की उन्नति, देश का गौरव सुसंतानों पर अवलम्बित है। सच पूछिये तो मातृभूमि का सब से प्रिय धन उसके प्यारे नवयुवक हैं। यदि ये नवयुवक सुशिक्षित होंगे तो मरुभूमि को भी अपने रक्त से सींच कर अनाज उत्पन्न करेंगे, रेतीले मैदानों को अपने प्रयत्न और प्रयास द्वारा पानी से भर देंगे, खानें खोद डालेंगे और भूगर्भ में से छिपे हुए सोने चांदी के भांडार निकालेंगे। शिक्षित नवयुवक अपने पराक्रम अपने बल और अपने उत्साह से जननी जन्मभूमि का नाम चारों दिशाओं में फैलावेंगे। उसे संसार की सब जातियों में अग्रगण्य और सम्मानित करेंगे। बाल्यावस्था में स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र होती है। उस समय की समझी हुई बातें मरण पर्यन्त नहीं भूलतीं; दूसरी बात यह है कि बालकों का शिक्षण, और चरित्रसुधार जैसा नाटकों द्वारा हो सकता है वैसा उत्तम और उतने ही अल्प समय में शायद अन्य उपायों द्वारा नहीं हो सकता। जब बालक छोटा रहता है तब वह ज़रा ज़रा सी बातों पर हठ करता, कभी कुछ चुरा कर खा लेता और कभी झूठ भी बोलता है। ऐसी अवस्था में माता पिता या पोषक उसे यह कह कर कि "अगर जिद्द करोगे तो हम बाबाजी को बुला कर तुम्हें पकड़ा देंगे" "अगर अब कभी चोरी करोगे तो तुम्हें खाने को न देंगे " अगर कभी झूठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलोगे तो उस लाल पगड़ीवाले सिपाही से तुम्हें पकड़वा देंगे" बालकों को धमकाते, फुसलाते और समझाते हैं। परन्तु यही सब बुरी बातें और उनका बुरा फल नाटकों के द्वारा बालकों के चित्त में जमा दिया जाय तो सम्भव नहीं कि वे बालक जो माँ बाप की झूठी धमकियों से उस काम को छोड़ देने की कोशिश करते हैं नाटकों में उनका प्रत्यक्ष दृश्य देख कर न छोड़ें। अच्छे अच्छे शिक्षा-दायक दृश्यों के प्रभाव से बालकों की प्रकृति बदल जाती है और उनके कोमल हृदय में बुरे के स्थान पर अच्छे आचरण के बीज बोए जाते हैं; सम्भव नहीं है कि इन बीजों से सत्कार्य्य रूपी वृक्ष उत्पन्न न हों और इन वृक्षों में संसार का कल्याण करनेवाले फल न हों। इस प्रकार विचार करने से सिद्ध होता है कि वह सन्तान सुधारनेवाली शिक्षा जिसके बिना किसी समाज नगर या देश की किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती, इन नाटकों के प्रभावों द्वारा थोड़े समय में प्राप्त हो सकती है।

(४) सामाजिक एवं राजनैतिक शिक्षा—

प्रत्येक देश की अवस्था उस देश के इतिहास द्वारा जानी जाती है। जैसे जैसे देशवासी नवयुवक इतिहासों का अध्ययन करते जायँगे वैसे ही वैसे उनके कोमल हृदय में श्रद्धा, भक्ति तथा देश-सेवा के अंकुर बढ़ते जायँगे। बिना इतिहास का ज्ञान प्राप्त किए मनुष्य इस संसार में अपनी, अपने समाज की तथा अपने देश की स्थिति नहीं जान सकता। इतिहास ही के द्वारा हम लोग अपने पूर्व-पुरुषों के चरित्र, उनकी विद्या, स्वदेश-प्रियता, चाल व्यवहार आदि जान सकते हैं। प्राचीन समय में हमारे समाज की क्या दशा थी; उस समय लोग अपने समाज की सेवा, उन्नति और भलाई किस प्रकार करते थे, यवनों के समय में हमारे समाज तथा आचरण की क्या दशा हुई, वर्त्तमान समय में हमारे समाज की क्या दशा है, किस कार्य के करने से हमारा समाज उन्नत हो सकेगा, इत्यादि इत्यादि बातें इतिहास ही के द्वारा जानी जा सकती हैं। प्राचीन समय में राजा महाराजाओं के राज्य नियम क्या थे, वे किस तरह मनुष्य समाज पर अपना प्रभुत्व जमाये हुए थे, विदेशियों के आने पर उन नियमों में किस तरह एवं कैसे परिवर्तन हुए, समाज पर इन परिवर्तनों का क्या प्रभाव पड़ा, आज कल हमारी क्या दशा है, आदि ये सब बातें भी इतिहास ही के द्वारा जानी जाती हैं। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आजकल जो इतिहास की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उनसे इन बातों का बहुत ही कम ज्ञान प्राप्त होता है। उनसे केवल राजा महाराजाओं के साधारण जीवनचरित्र और उनकी सेना की संख्याएँ तथा कुछ मुख्य मुख्य घटनाओं की तिथियाँ ही मालूम होती हैं। इस का कारण यही है कि ये ऐतिहासिक पुस्तकें उन लोगों की बनाई हुई हैं जो हमारे समाज संस्कार, हमारे पूर्वजों के प्राचीन राजनियम, यहाँ तक कि हमारी भाषा से भी पूर्ण परिचित नहीं हैं। ऐसी अवस्था में नाटक और उपन्यास ही हमारा काम देते हैं। इनमें भी नाटक तो मानों प्राण है। यदि आज हमारे पास मृच्छकटिक नाटक न होता तो हमें उसके बनने के समय की अवस्था का पूरा हाल बहुत कठिनता से ज्ञात होता। राजस्थान केशरी नाटक से महाराणा प्रतापसिंह के नगर निवासियों की सामाजिक अवस्था ज्ञात होती है। भारतेन्दुजी के "भारतदुर्दशा" से इस देश की वास्तविक दशा का बहुत कुछ ज्ञान होता है।

"महारानी पद्मावती", "नीलदेवी", आदि नाटकों के अभिनय से उस समय के इतिहास का अनुमान होता है। एक बार काशी की भारतेन्दु नाटक मण्डली ने "राजस्थान केसरी" नाटक खेला था, उसमें श्रीमान् महाराज काशिराज भी पधारे थे। जब उन्होंने प्रतापसिंह के मुख से उस दृश्य के कुछ प्रभावशाली वाक्य सुने तब वे सहसा चौंक उठे और उन्होंने अपनी तलवार अपने हाथ में ले ली। सत्य हरिश्चन्द्र के अभिनय के समय दर्शकों में ऐसे बहुत से लोग निकलते हैं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठते हुए मन ही मन विश्वामित्र को हज़ारों उलटी सीधी सुनाते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का जैसा अच्छा ज्ञान नाटकों द्वारा प्राप्त होता है वैसा उत्तम और उपायों से संभव नहीं ।

मनोरञ्जनीय शिक्षा ।

दिन भर परिश्रम करने के उपरांत हर एक मनुष्य को अपना दिल बहलाने और अपना मस्तिष्क शान्त एवं पूर्ववत् करने के लिए कुछ न कुछ मनोरञ्जन की आवश्यकता होती है । जब कोई मनुष्य अस्वस्थ होता है तब उसका स्वभाव बदल जाता है। बहुत शांत प्रकृति के मनुष्य में भी उस समय क्रोध उत्पन्न हो जाता है; ऐसे समय में नाटक का दृश्य बड़े काम का होता है । उससे उसका मनोरञ्जन भी होता है और साथही साथ उसका बिगड़ा हुआ स्वभाव भी सुधर जाता है । गायन सुनने से उसका चित्त मोहित हो जाता है और उसकी वेदना कम हो जाती है। नाटक में मनोरञ्जनीय दृश्य तो होते ही हैं इनके सिवा उनसे बहुत कुछ शिक्षाएँ भी मिलती हैं, जैसे शराबी को देख कर हँसी तो आती है साथ ही साथ उसकी दुर्दशा देख शराब न पीने की शिक्षा भी मिलती है । इस प्रकार नाटकों द्वारा शिक्षा भी प्राप्त होती है और मनोरञ्जन भी होता है।

सारांश ।

किसी काम के करने के पहले उस कार्य्य के करने की रीति जानने की आवश्यकता पड़ती है । भोजन करने के पहले यह जानने की आवश्यकता होती है कि किस तरह उसे हाथ से उठाना और किस तरह दाँतों से चबा कर निगलना चाहिए। किसी सभा में जाने से पूर्व यह जानना आवश्यक होता है कि उस सभा के क्या अधिकार हैं, उसके सभासदों के क्या कर्तव्य हैं, उस सभा या उसके सभासदों को किस बात की ज़रूरत है। इसी तरह संसार रूपी वृहत् सभा में प्रवेश करने के समय भी जिसके प्रत्येक जीव सभासद हैं, हमारा यह जानना बहुत जरूरी है कि हमारे लिए संसार के क्या नियम हैं और हमें, हमारे परिवार, हमारे देश अथवा संसार को किन बातों की आवश्यकता है और हमारे किस कार्य से हमारे समाज जाति नगर देश और साथ ही साथ संसार का भला होगा। नाटकों द्वारा हम लोगों को इन सब बातों का बहुत अच्छा ज्ञान हो जाता है। अथवा यों कहिये कि जिन कामों को हमें संसार में करना पड़ता है उन सबों का ज्ञान हम नाटकों द्वारा प्राप्त कर सकते हैं और जब इस प्रकार हमें नाटकों द्वारा अपने कर्तव्य ज्ञात हो जाँय तब फिर उनके पालन में हमारे लिए बहुत सरलता हो जाती है। जब हमने अपना कर्तव्य पालन कर लिया तब निश्चयही हमारा जीवन सार्थक है और संसार के लिये लाभकारी है । इस प्रकार मानव जीवन को सार्थक बनाना और उसे अपने कर्त्तव्य-पालन की ओर प्रवृत्त करना, नाटकों के प्रभाव का कार्य है। यही कारण है कि प्रत्येक देश के साहित्य में नाटक को बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है।

परन्तु हिन्दी साहित्य में इसकी दशा संतोषदायक नहीं है। इस लेख के पूर्व भाग के देखने से आपको विदित हो गया होगा कि इसकी अवस्था कैसी शोचनीय है।

हिन्दी के अधिकांश नाटक केवल पढ़ने अथवा गिनती गिनने के योग्य ही हैं। जिन नाटकों के प्रभाव से मनुष्य अपने कर्त्तव्यों को जान सकता है, अपनी चाल चलन सुधार कर अपना जीवन आदर्श बना सकता है और संसार का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है, उनकी हिन्दी-संसार में ऐसी शोचनीय अवस्था हो—यह कितने दुःख की बात है। जुलाई-सितम्बर, १९१३ की सरकारी रिपोर्टों के देखने से विदित होता है, कि जहां मराठी, गुजराती और बंगला भाषा में तीस तीस और चालीस चालीस नाटक लिखे गए वहाँ हिन्दी में केवल तीन या चार ही नाटक प्रकाशित हुए और वह भी उपर्युक्त भाषाओं के सन्मुख केवल नामभर के हैं। परन्तु इससे हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हताश न होना चाहिये। एक समय भारतेन्दुजी के पूर्व का था जब कि हिन्दी भाषा में नाटकों का नाम निशान भी न था, और एक समय आज है। जब कि हम उस भाषा में सैकड़ों नाटक देख रहे हैं। जब तक पेड़ छोटा होता है उसके फल कच्चे और छोटे होते हैं। इसी तरह नाटकों का पवित्र वृक्ष जिसे श्रीमान् भारतेन्दुजी ने जमाया है अभी छोटा है और इसीसे इसके फल अभी परिपक्व और स्वादिष्ट नहीं हैं। परन्तु निश्चय रहे कि एक समय आवेगा जब साहित्य-सेवियों के जल-सिंचन से यह नाट्य-वृक्ष बहुत बड़ा हो जायगा और इसके सुस्वादु फलों का रसास्वादन कर हम लोग प्रसन्न होंगे और इस की शिक्षादायक छाया में बैठकर निज कर्त्तव्य मार्ग में अग्रसर होंगे।

—:०:—

अशोक के अभिलेख।

[लेखक बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]

(प्रस्तावना)



शोक के अभिलेख तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। पहला 'आदेश' दूसरा 'स्तंभभिलेख' और तीसरा फुटकर 'अभिलेख'।

आदेशाभलेख जो आज तक मिले हैं वे मुख्य चौदह हैं जो भिन्न भिन्न स्थानों में वहाँ की प्रांतिक भाषा में खुदी हुई है। इन स्थानों में गिरिनार शाहबाज़गढ़ी, मनसेहरा और कालसी प्रधान स्थान हैं जहाँ चौदहों अभिलेख मिलते हैं। ये अभिलेख मुख्य कर दो लिपियों में हैं; पंजाब वा उसके आस पास के स्थानों में खरोष्ठी लिपि में और इतर स्थानों में ब्राह्मी लिपि में।

इसी प्रकार स्तंभाभिलेख और फुटकर अभिलेख भी कई स्थानों में उन्हीं लिपियों में मिलते हैं। ये लिपियाँ बड़ी असावधानी से खोदी हुई प्रतीत होती हैं। खरोष्ठी लिपि में दीर्घ स्वरों का सर्वथा अभाव है। मालूम होता है कि उस समय में ये लिपि[यां] सर्वथा फारसी लिपि की की तरह अटकल से प[ढ़ी] जाती थीं, क्योंकि यह कभी संभव नहीं है कि कि[सी] प्रांत में सर्वथा दीर्घ वर्णों का अभाव ही हो। किन्हीं किन्हीं स्थानों के अभिलेखों में हेर फे[र] बहुत मिलता है जिससे यह अनुमान होता है [कि] खोदनेवाले उन अक्षरों के अभ्यासी तो थे पर ऐ[से] व्युत्पन्न नहीं थे कि वे उसे शुद्ध खोद सकें। संयुक्त अक्षरों में प्रायः विपर्य्यय देखा जाता है जै[से] 'ठय' का 'यत्र' र्थ का थ्, र्व का व्र इत्यादि प्रायः मि[लते] हैं। कहीं कहीं तो 'सर्व' को 'स्रव'' सव्र' तक दे[खा] जाता है। व्यर्थ दुरूह संयुक्त वर्णों की भरमार जै[से] पटि के स्थान में 'प्रटि' आदि का होना तथा एक ही में भिन्न भिन्न पाठ मिलने से, तथा दुहरे पाठ, और प[दों] के छूट जाने से यह भी अनुमान किया जा सकता [है] कि इन लिपियों के खोदनेवाले प्रायः विदेशी [वा] अनपढ़ थे जिनको पाठ बोल बोल कर खोदवाया [जाता] था। इत्यादि कई प्रकार के अनुमान उक्त अभिले[खों] की ध्यानपूर्वक अलोचना से किया जा सकता [है]।

हमारा विचार है कि हम हिन्दी प्रेमियों के सा[मने] तीनों प्रकार के अभिलेखों को स्थानानुसार अ[लग] अलग देकर अंत में उनके सामने उन अभिलेखों [का] विशुद्ध मूल अनुवाद आदि प्रस्तुत करें और यदि [हो] सकै तो अंत में विभक्ति के अनुसार उन अभिलेखों [में] आये पदों की ऐसी सूची लगा दें जिससे इस बात [का] पता चले कि अशोक के समय में भारत के भिन्न भि[न्न] प्रांतों में विभक्तियों के क्या चिह्न प्रचलित थे। हमा[रा] अनुमान है कि ऐसा करना हिंदी के निरुक्त के लि[ए] अत्यंत उपकारी होगा और उन लोगों को भी अ[पने] सिद्धांतों के सत्यासत्य निर्णय करने में लाभदा[यक] होगा जिन लोगों ने बिना सोचे समझे यह सिद्धा[न्त] कर रक्खा है कि प्राचीन काल में नाटकों वा साहि[त्य] की प्राकृत का प्रचार भारतवर्ष के भिन्न भि[न्न] प्रांतो में था।

इसमें संदेह नहीं कि ये अभिलेख प्राचीन इ[ति]हास के जानने में भी बहुत सहायक हो सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर हिंदी भाषा की निरुक्ति के लिए हिंदी-प्रेमियों को उनका ज्ञान होना अत्यंतावश्यक है ।

जगन्मोहनवर्म्मा

—:०:—

(१) आदेशाभिलेख ।

गिरनार ।

[राजपूताना-लिपि-ब्राह्मी]

(१)

इयं धंमलिपी देवानं प्रियेन प्रिय दासिना राञा लेखापिता, इध न किंचि जीवं आरभित्वा प्रजूहितव्यं, न च समाजो कतव्यो । बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानं प्रियो प्रियदसि राजा । अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो । पुरा महानसम्हि देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो अनुदिवसं बहूनि प्राण सतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय । से अज यदा अयं धंमलिपी लिखिता ती एव प्राणा आरभरे सूपाथाय—द्वो मोरा एको मगो । सोपि मगो न धुवो । एते पि ती प्राणा पछा न आरभिसरे ।

(२)

सर्वत विजितंहि देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो एवमपि प्रचंतेसु यथा चोड़ा पाड़ा सतियपुतो केतलपुतो आ तंबपंणी अंतियको योनराजा ये वापि तस अंतियकस सामीपं राजानो सर्वत्र देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो द्वे चिकिछा कता—मनुसचिकीछा च पसुचिकीछा च । ओसुढानि च यानि मनुसोपगानि च पसोपगानि च यत यत नास्ति सर्वत्र हारापितानि च रोपापितानि च; मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत्र हारापितानि च रोपापितानि च । पंथेसु कूपा च खानापिता व्रछा च रोपापिता परिभोगाय पसुमनुसानं ।

(३)

देवानं प्रियो प्रियदसि राज एवं आह द्वादस वासाभिसितेन मया इदं आञपितं, सर्वत विजिते मम युता च राजुके च प्रादेसिके च पंचसु पंचसु वासेसु अनुसंयानं नियातु, एतायेव अथाय, इमाय धंमानुसस्टिय, यथा अञाय पि कंमाय । साधु मातरि पितरि च सुस्रूसा मितासंस्तुत ञातीनं बाम्हणसमणानं साधु दानं प्राणानं साधु अनारंभो अपव्ययता अपभांडता साधु । परिसापि युते आञपयिसति गणनायं हेतुतो च व्यंजनतो च ।

(४)

अतिकातं अंतरं बहूनि वाससतानि वढितो एव प्राणारंभो विहिंसा च भूतानं ञातिसु असंप्रतिपती ब्राम्हण स्रमणानं असंप्रतिपती । त अज देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो धंमचरणेन भेरीघोसो अहो धंमघोसो विमानदसणा च हस्तिदसणा च अगिखंधानि च अञानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्वा जनं । यारिसे बहूहि वाससतेहि न भूतपुवे तारिसे अज वढ़िते देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो धंमानुसस्टिया अनारंभो प्राणानं अविहीसा भूतानं ञातीनं संपटिपती ब्राम्हण स्रमणानं संपटिपती मातरि पितरि सुस्रुसा थैर सुस्रुसा । एस अञे च बहुविधे धंमचरणे वढिते वढयिसति चेव देवानं प्रियो प्रियदसि राजा धंमचरणं इदं । पुत्राच पोत्रा च प्रपोत्राच देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो वढयिसंति इदं धंमचरणं आव संवटकपा । धंमम्हि सीलम्हि तिष्टंतो धंमं अनुसासंति । एस हि सेस्टे कंमेया धंमानुसासनं धंमचरणो पि न भवति असीलस । त इमम्हि अथम्हि वधी च अहीनी च साधु । एताय अथाय इदं लेखापितं, इमस अथस वधि युजतु हीनि च मा लोचेतव्या । द्वादस वासाभिसितेन देवानं प्रियेन प्रियदसिना राजा इदं लेखापितं ।

(५)

देवानं प्रियो प्रियदसि राजा एवं आह कलाणं दुकरं ये अ······कलाणस सो दुकरं करोति । त मया बहु कलाणं कतं । त मम पुता च पोत्रा च परं च तेन य मे अपचं आव संवटकपा अनुवतिसरे तथा सो सुकतं कासति । यो तु एत देसं पि हापेसति सो दुकतं कासति । सुकरं हि पापं । अतिकातं अंतरं न भूतपुर्वं धंममहामाता नाम । त मया त्रैदस वासाभिसितेन धंममहामाता कता । ते सवपासंडेसु व्यापता धमाधिस्टानाय··········धंमयुतस च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योन कंबो (ज) गंधारानं रिस्टिक-पेतेणिकानं ये वा पि अंञे अपराता। भतमयेसु वा..........खाय धंमयुतानं अपरिवोधाय व्यापता ते।...बंधनबधस पटिविधानाय ;............ प्रजाकताभीकारेसु वा थेरेसु वा व्यपता ते...पाटलि पुते च बाहिरेसु च...... ...... `वापि ने अंञे गञातिका सर्वत व्यापता ते। यो अयं धंमनिस्त्रितो ति व.................. `धंम-महामाता। एताय अथाय अयं धंमलिपि लिखिता।

(६)

देवानं प्रि [यो प्रियद] सि राजा एवं आह अतिक्रांतं अंतरं न भूतपुर्वं सव [का] ल अथ-कंमे वा पटिवेदना वा। त मया एवं कतं सव काले भुंजमानस मे ओरोधनम्हि गभागारम्हि वा विनीतम्हि च उयानेसु च सर्वत्र पटिवेदका स्टिता अथेमे जनस पटिवेदेथ इति। सवत्र च जनस अथे करोमि। यच किंचि मुखतो आञपयामि स्वयं दापकं वा स्रावापकं वा य वा पुन महामात्रेसु आचायिक आरोपितं भवति ताय अथाय विवादो निझति व संतो परि-सायं।..

....

....

आनंतरं परिवेदेतव्यं मे सर्वत्र सर्वे काले। एवं मया आञपितं नास्ति हि मे तोसो उस्टानम्हि अथ-संतीरणाय व। कतव्यमते हि मे सर्वलोकहितं। तस च पुन एस मूले उस्टानं च अथसंमीरणा च। नास्ति हि कंमतरं सर्वलोक हितत्पा। य च कंचि पराक्रमामि अहं किंति [?] भूतानं आनंणं गछेयं इध च नानि सुखापयामि परत्राच स्वगं अराधयंतु। त एताय अथाय अयं धंमलिपी लेखापिता किंति [?] चिरं तस्टेय इति, तथा च मे पुत्रा पोता च प्रपोत्रा च अनुवतरं सव लोकहिताय। दुकरं तु इदं अञत अगेन पराक्रमेन।

(७)

देवानं पियो पियदसि राजा सर्वत इछति सवे पासंडा व सेयु। सवे ते समयं च भावशुधिं च इछति जनो तु उचावचछंदो उचावचरागो। ते सर्वं व कसंति एकदेसं व कसंति। विपुले तु पि दाने यस नास्ति सयमे भावसुधिता व कतंञता व दृ भतिता च निचा बाधं।

(८)

अतिकातं अंतरं राजानो विहारयातां आयासु एत मगध अंञानि च एतारिसनि अभीरमका अहुंसु। सो देवानं पियो पियदसि राजा दसव भिसितो संतो अयाय संबोधिं। तेने सा धंमयाता एतय होति बम्हणसमणानं दसणे च दाने च थैरा दसणे च हिरंणपटिविधानो च जानपदस जानस दसणं धंमानुसस्टी च धंमपरिपुछा च तदोपया एसा भुय रति भवति देवानं प्रियस प्रि दसिनो राञो भागे अंञे।

(९)

देवनं पियो पियदसि राजा एवं आह, अ जनो उचावचं मंगलं करोते आवाधेसु वा आव विवाहेसु वा पुत्रलाभेसु वा प्रवासम्हिवा। एतम्हि अञम्हि च जनो उचावचं मङ्गलं करोते। एते तु म डायो बहुकं च बहुविधं च छुदं च निरथं च मंग करोते। त कतव्यमेव तु मंगलं। अपफलं तु एतारिसं मंगलं। अयं तु महाफले मंगले य मंगले। तत दासभातकम्हि समयप्रतिपती गुरु अपचिति साधु पाणेसु संयमो साधु बम्हणसम साधु दानं। एत च अञ च एतारिसं धंममंगलं नाम त वतव्यं पिता वा पुतेन वा भात्रा वा स्वामिकेन वा इदं साधु इदं कतव्यं मंगलं आव तस अथ निस्टानाय। अस्ति च वुतं साधु दानं इति। न एतारिसं अस्ति दानं व अनगहो व यारिसं धंमा गहो व। त तु खो मित्रेण वा सुहृदयेन वा अति वा सहायेन वा ओवादितव्यं तम्हि तम्हि पकरणे कचं इदं साधु इति, इमिना सकं स्वगं आरा इति। किंच इमिना कतव्यतरं यथा स्वगाराधि।

(१०)

देवानं प्रियो प्रियदसि राजा यसो व कीर्ति न महाथावह मंञते अञत तदात्पनो दिघाय व जनो धंमसुस्रुसा धंमस्रुतं धंमवुतं व अनुविधियतां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकाय देवानं पियो पियदसि राजा त सवं परिचकाय किंति [?] सकले अप्पपरिस्रव अस । एस तु परिस्रव य अपुंञं । दुकरं तु खो एत छुद केन व जनेन उसटेन व अञत्र अगेन पराकमेन सवं परिचजित्पा । एत तु खो उस्टेन दुकरं ।

(११)

देवा नं प्रियो पियदसि राजा एवं आह । नास्ति एतारिसं दानं यारिसं धंमदाने धंमसंस्तवो वा धंमविभागो वा धमसंबधो वा । तत इदं भवति दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती मातरि पितरि साधु मितसंस्तुत ञातिकानां बाम्हणसमणानं साधु प्राणानं अनारंभो साधु । एता वतव्यं पिता वा पुत्र वा भ्राता वा मितसंस्तुत ञातिकेन वा आव प्रतिवेसियेहि इदं साधु, इदं कतव्यं । सो तथा करु इलोकस च आरधो होति परत च अनंतं पुंञं भवति तेन धंमदानेन ।

(१२)

देवानं पिये पियदसि राजा सवपासंदानि च प्रवजितानि च घरस्तानि च पूजयति दानेन च विविधाय च पूजाय पूजयति ने । न तु तथा दानं व पूजा व देवानं पियो मंञते यथा किंति [?] सारवढी अस सवपसंडानं । सारवढी तु बहुविधा । तस तु इदं मूलं य वचिगुती किंति [?] आत्पपासंडपूजा व परपासंडगरहा व नो भवे अपकरणम्हि लहुका व अस तम्हि तम्हि प्रकरणे । पूजेतया तु एव परपासंडा तेन तेन प्रकरणेन एवं करुं आत्प पासंडं च वढयति परपासंडं च उपकरोति । तदंञथा करोतो आत्पपासंड च छणति परपासंडस च पि अपकरोति । यो हि कोचि आत्पपासंडं पूजयति परपासंडं वा गरहति, सवं आत्पपासंडभतिया किंति [?] आत्पपासंड दीपयेम इति, सो च पुन तथ करातो आत्पपासंडं बाढतरं उपहनाति । त समवायो एव साधु किंति अंञमंञस धंमं स्रुणारु च सुस्रुसेरा । एवं हि देवानं पियस इछा च किंति सवपासंडा बहुस्रुता च असु कलानागमा च असु । ये च तत्र तत्र प्रसंना तेहि वतव्यं देवानं पियो नो तथा दानं व पूजा व मंञते तथा किंति सारवढी अस सर्वपासंडानं बहका च । एताय अथा व्यापता धंममहामाता च इथीझखमहामाता च वचभूमिका च अंञे च निकाया । अयं च एतस फल य आत्पपासंडवढी च होति धंमस च दीपना ।

(१३)

....

.... ढे सतसहस्रमात्रं तत्र हतं बहुतावतकं मते । तता पछा अधना लधेसु कलिंगेसु तिवो धंमवायो..............................

............वधो व मरणं व अपवाहो व जनस । तं बाढे वेदनमतं च गुरु मतं च देवानं......स......

.... सा मातापितरि सुसूसा गुरुसुसूसा मितसंस्तुतसहायञातिकेसु दासभ..............................

............हायञातिका व्यसनं प्रायुनणति । तत्र सो पि तेसं उपघातो होति । पटिभागो चेसा सव......

सान..म्हि यत्र नास्ति मनुसानं एकतरम्हि पासंडम्हि न नाम प्रसादो । यावतको जनोतदा..............................

न य सकं छमितवे । या च पि अटवियो देवानं प्रियस पिजिते पाति..............................

........सवभूतानं अछतिं च समयं च समचेरां च मादवं च....................योनराजा परंच तेन चत्पारो राजानो तुरमाये च अंतकिना च मगा च...

.... अंधोपिरिंदेसु सवत देवानं पियस धंमानुसस्टिं अनुवतरे । यत पि दूति..............................

विजयो सवथा पुन विजयो पीतरसो सो । लधा सा पीती होति धंमविजयम्हि..............................

......विजयं मा विजेतव्यं मञा सरसके एव विजये छतिं च..............................

........................इलोकिका च पारलोकिका च ।

(१४)

अयं धंमालिपि देवानं प्रियेन प्रियदसिना राजा लेखापिता अस्ति, एव संखितेन अस्ति मझमेन अस्ति विस्ततन । न च सर्वं सर्वत घटितं । महालके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हि विजितं बहु च लिखितं लिखापयिसं चेव। अस्ति च एत कं पुन पुन वुतं तस तस अथस माधूरताय किति जनो तथा पटिपजेथ। तत्र एकदा समातं लिखितं अस देसं व सछाय कारनं व अलोचेत्पा लिपिकरोपराधेन व। ....

शाहबाज़गढ़ी

(पेशावर के पास, लिपि खरोष्ठी)

(१)

अयं ध्रंमदिपि देवन प्रियस रञो लिखपितु हिद नो किचि जीवे अरभित प्रयुहोतवे नोपिच समाज कटव। बहुक हि दोषं समयस देवनं प्रियो प्रियद्रशि रया देखति। अस्ति पि च एकतिए समये स्रे स्तमति देवनं प्रियस प्रियद्रशिस रञो। पुरा महनससि देवनं प्रियस प्रियद्रशिस रञो अनुदिवसो बहुनि प्रणशतसहस्रनि अरभियिसु सुपठाये। सो इदनि यदअयं ध्रंमदिपि लिखित तद त्रयो वो प्रण हंञंति मजुर द्वि २ म्रुगो १। सोपि म्रुगो न ध्रुवं। एत पि प्रणत्रयो पच न अरभिशंति।

(२)

सव्रत्र विजिते दवनं प्रियस प्रियद्रशि स ये च अंत यथ चोड़ पंडिय सतियपुत्र केरलपुत्र तंबपंनि अंतियोको नम योनरज ये च अंञे तस अंतीयोकस समंत रजनो सव्रत्र देवनं प्रियस प्रियद्रशिस रञो दुवे चिकिस किट्र मनुशचिकिस च पशुचिकिस च। ओषुढनि मनुसोपकनि च पशोपकनि च यत्र यत्र नस्ति सवत्र हरोपित च वुत च कुप च खनपित प्रतिभोगय पशु मनुशनं।

(३)

देवनं प्रियो प्रियद्रशि रज अहति दवयवसभिसितेन ....सव त्रविजिते युत रजुको प्रदेशिके पंचसु पंचषु वषेषु अनुसंयनं निक्रमतु एतसि वो करण इमिस ध्रंमनुशस्ति यथ अञये पि क्रमये सधु मतपितुषु सुश्रुष मित्रसंस्तुत ञतिकनं व्रमणश्रमणनं सधु [दनं। प्रणनं सधु अनरभो*] अपवयत अपभंडत सधु। परि पि युत नि गणनसि अणपेशंति हेतुतो च वञनतो च।

(४)

अति क्रतं अंतरं बहुनि वषशतनि वढितो प्रणरंभो विहिस च भुतनं ञतिनं असंपतिप श्रमणब्रमणनं असंप्रतिपति। सो अज दे प्रियस प्रियद्रशिस रञो ध्रंमचरणेन भेरिघोष ध्रंमघोष विमननं द्रशनं हस्तिनो जोतिकं अञनि च दिवनि रुपनि द्रशयितु जनस। य बहुहि वषशतेहि न भुतपुवे तदिशे अज वढिते दे प्रियस प्रियद्रशिस रञो ध्रंमनुशस्तिय अन प्रणनं अविहिस भुतनं ञतिनं संप्रतिपति श्रमणनं संप्रतिपति मतपितुषु वुढानं सुश्रुष अञं च बहुविधं ध्रंमचरणं वढितं वढिशति देवनं प्रियस प्रियद्रशिस रञो ध्रमचरणो इम... पि च कु नतरो च प्रनतिक देवनं प्रियस प्रियद्र रञो वढेसंति......ध्रंम चरणं इमं अवकपं शिले च तिस्तिति ध्रंमं अनुशशिशंति। एतहि ध्रंमं यं ध्रमनुशनं। ध्रंमचरणं पि च न अशिलस। सो इमिस अथ्रस वढि अहिनि च स एतये अठये इमं दिपिस्त इमिस अठस वढि हिनि च म लोचेषु। बदयवषभिसितेन देवन प्रियद्रशिन रञइदंनं दिपपितं।

(५)

देवन प्रियो प्रिय द्रशि रय एवं अह ति कलणं दुक यो अ.........कलणस सो दुकरं करोति। सो बहु कलं किट्रं। तं मह पुत्र च नतरो च परं च य मे अप च अछंति अवकपं तथं ये अनुवटिशं सुकिट्रं कषंति। यो चु अतो [कं पिदयेशति] कटं कषति। पापं हि सुकरं। सो अतिक्रंत न भुतप्रुव ध्रमंमहमत्र नम। सो तिदशवषभिसि मय ध्रमंमहमत्र किट्र। ते सव्रप्रषंडेषु व मध्रियनये ध्रमंवढिये हिद सुखये च ध्रमंयुतस कंबोय-गंधरनं रस्तिकनं पितिनिकनं ये वपि अपर भटमयेषु ब्रमणिभेषु अनथेषु वुढेषु हितसुखये ध्रमयु अपलिबोधे वपटते। बंधनबधेस पटिविधनये अ लिबोधये मोछये इयं अनुबधं प्रजव किटभिक

---

*यहाँ अक्षर नहीं पढ़ा जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…हलक व वियपटू । इअ बहिरेषु च नगरेषु सव्रे षु-
…रोधनेषु भ्रतुनं च मे स्पसुनं च ये व पि अंञे अतिक
…सव्रत्र वियपुट । यं इयं ध्रंमनिश्रिते ति व ध्रंमध्रिथने
…ति व दनसयुते तिव सवत्र विजिते महध्रंमयुतसि
…वियपट ते ध्रंममहमत्र… एतये अठये अयं ध्रंमदिपि
…दिपित्त चिरथतिक भोतु तथ च प्रज अनुवततु ।

(६)

देवनं प्रियो प्रियद्रशि रय एवं अहति अतिक्रतं
…अंतरं नभुतप्रुवं सव्रं कलं अथक्रमं व पटिवेदन व ।
…तं मय एवं किटं सव्रं कलं अशमनसमे ओरोधनस्पि
…व्रअस्पि व्रचस्पि विनितस्पि उयनस्पि सव्रत्र पट्रिवेदक
…अठं जनस पट्रिवेदेतु मे सवत्र च जनस अठं
…करोमि । यं पि च किचि मुखतो अणपयमि अहं दपकं
…व स्रवकं व यं व पन महमत्रनं वो अचयिक अ [रो]
…पितं भोति तये अठये विवदे व निभ्रति व संतं परिषये
…अनंतरियेन प्रटिवेदेतवो मे सवत्र च अठं जनस करोमि
…अहं । यं च किचि मुखतो अणपेमि अहं दपकं व
…स्रवक व य व पन महमत्रनं अचयिकं अरोपितं भोति
…तये अठये विवदे संतं निभ्रति व परिषये अनंतरियेन
…पट्रिवेदितवो मे सवत्र सव्रं कलं । एवं अणपितं मय ।
…नास्ति हि मे तोषो उठनसि अठसंतिरणये च । कटवमतं मे
…सव्रलोकहितं । तस च मुलं एत्र उठन अठसंतिरण
…च नास्ति हि क्रमतरं सव्रलोकहितेन यं च किचि पर-
…क्रमामि किति [?] भूतनं अनणियं व्रचेयं इध च
…नि सुखयमि परत्र च स्पगं अरधेतु । एतये अठये
…अयं ध्रमंदिपिस्त, चिरथतिक भोतु तथ च मे पुत्र-
…पुतरो परक्रमंतु सवलोलहितये । दुकरं तु खो इमं
…अञत्र अग्रे परक्रमेन ।

(७)

देवनं प्रियो प्रिय[द]शि रज सवत्र इछति सव्रे
…पषंड वसेयु । सव्रे हि ते सयम भवशुधि च इछंति । जनो
…तु उचवुचछंदो उचवुचरगो । ते सव्रं व एकदेशं
…व पि कषंति । विपुले पि चु दने यस, नस्ति सयम भव-
…शुधि किट्रञत दिढभतित निचे पढं ।

(८)

अतिक्रजं अंतरं देवनं प्रिय विहारयत्र नम
…निक्रमिषु । अत्र म्रुगय अञनि च हेदिशनि अभिरमनि
अभवसु । सो देवनं प्रियो प्रियद्रसि रज दशवषमेसितो
सतो निक्रमि सबोधिं । तेनंद ध्रमयत्र । अत्र इयंहोति
श्रमणब्रमणनं द्रशने दनं वुढनं द्रशने हिरञे पटिविधने
च जनपदस जनस द्रशनं ध्रंमनुशस्ति ध्रंमपरिपुछ
च । ततोपयं एष भुये रति होति देवनं प्रियस प्रियद्र-
शिस रञोभगि अञे ।

(९)

देवनं प्रियो प्रियद्रशि रय एवं अह ति जनो उच-
वुचं मंगलं करोति अबधे अवहे विवहे पजुपदने प्रवसे ।
एतये अंञे च एदिशिये जनो ब [हु] मंगलं करोति ।
अत्र तु स्त्रिक बहु च बहुविधं च पुतिकं च निरठ्रियं च
मंगलं करोत्ते । सो कटवो च खो मंगलं । अपफलं
तु खो एवं । इमं तु खो महफल ये मंगलं । अत्र इम-
दसभटकस सम्मप्रटिपति गरुन अपचिति प्रणनं
संयम श्रमणब्रमणन दन । एतं अञं च ध्रंममंगलं
नम । सो वतवो पि तु न पि पुत्रेन पि स्पमिकेन पि मित्र
संस्तुतेन अव प्रतिवेशियेन, इमं सधु इमं कटवो
मंगलं यव तस अठस निवुटिय । निवुटस्पि व पन
इमं केष [?] येहि एतरके मंगले संशयिके तं । सिय वो
तं अठं निवटेय ति सिय पन इअलोकचे वोतिथे । इय
पुन ध्रंममंगलं अकलिकं । यदि पुन तं अठं न निवटे
हिय अथ परत्र अनंतं पुंञं प्रसवति । हंचे पुन अथं नि-
वटेति ततो उभयस लध्रं भोति इह च सो अठो परत्र
च अनंतं पुंञं प्रसवति तेन ध्रमंमंगलेन ।

(१०)

देवन प्रियो प्रियद्रशि रय यशो वकिट्रि व नो मह-
ठवह मञति योपि यशो किट्रि व इछति तदत्तये अय-
तिय च जने ध्रंमसुश्रुष सुश्रुषतु मे ति ध्रमंवुतं च अनु-
विधियतु । एतकये देवनं प्रिये प्रियद्रशि रय यशो व
किट्रि व इछति । यं तु किचि परक्रमति दवनं प्रियो
प्रियद्रशि रय तं सव्रं परत्रिकये व, किति (?) सकले
अपरिस्रव सिय ति । एषे तु परिस्रवे यं अपुञं । दुकरं
तु खो एषे खुद्रकेन वग्रेन उसटेन व अंञत्र अग्रेन
परक्रमेन सवं परितिजितु । एतं चु [उसटे दुकटं]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११)

देवनं प्रियो प्रिद्रशि प्रिद्रशि रय एवं अह ति, नस्ति एदिशं दनं यदिशं ध्रमदनं ध्रमसंस्तव ध्रंमसविभगो ध्रमसबंधो। तत्र एतं दसभटकनं सम्मप्रटिपति मतपितुषु सुश्रुषमित्र संस्तुत ञतिकनं श्रमणब्रमणनं दनं प्रणानेअनंरभो। एतं वतवो पितुन पि पुत्रेन पि भ्रतुन पि समिकेन पि मित्रसंस्तुतेन अव प्रतिवेशियेन इमं सधु इमं कटवो। सो तथ कंतं इअलोकं च अरधेति परत्र च अंतरे पुंञं प्रसवति तेन ध्रमदनेन।

(१२)

देवनं प्रियो प्रियद्रशि रय सप्र व्रषंडनि प्रव्रजित ग्रहठनि च पुजेति दनेनविविधये च पुजये। नो चु तथदनं व पुज व देवनं प्रियो मञति तथकिति। सलवढ़ि सिय सव्प्रषंडनं। सलवढ़ि तु बहुविध। तस तु इयो मुल यं वचगुति किति [१] अत प्रषंडपुज व परप्रषंडगर-[ह] न व नो सिय अप्रकरणसि, लहुक व सिय तसि तसि प्रकरणे। पुजेतविय व चु परप्रषंड तेन तेन अ-करणेन। एवं करंतं अतप्रषंडं वढेति परप्रषंडसपि च उपकरोति। तद् अञथ करत च अतप्रषंडं छणति परप्रषंडस च अपकरोति। यो हि कोचि अतप्रषंड पुजेति परप्रषंडं गरहति सव्रे अतप्रषंडभतिय व; किति अतप्रषंडं दिपयमि ति। सो च पुन तथ करंतं [सो च पुनतथ करंत *] वढतरं उपहंति अतप्रषंडं। सो सयमो व सधु; किति [१] अंञमञस ध्रमो श्रुणेयु च सुश्रुषेयु च ति। एवं हि देवनं प्रियस इछ, किति [१] सव्रप्रषंडं बहुश्रुत च कलणगम च सियसु। ये च तत्र तत्र प्रसन तेषं वतवो, देवनं प्रियो न तथ दनं व पुज व मञति यथ किति [१] सलवढ़ि सिय ति सव्र-प्रषंडनं बहुक च। एतये [अथये] वपट ध्रमंमहमत्र इस्त्रिधियछमहमत्र वच भुमिक अञे च निकये। इमं च एतिस फलं यं अतप्रषंडवढि भोति [च] ध्रमस च दिपन।

(१३)

अस्टवषअभिसितस देवन प्रियस प्रियद्रशिस रञो कलिग विजित दियधमत्रे प्रणशतसहस्रे येततो अपवुढे शतसहस्रमत्रे तत्र हते बहुतवतके मुटे। तते पछ अधुन लधेषु कलिंगेषु तिव्रे ध्रंमपलनं ध्रंम-मत ध्रमंनुशस्ति च दवनं प्रियस। सो अस्ति अनुसो-चनं देवन प्रियस विजिनितु कलिंगनि। अविजितं हि विजितमनिये तत्र वधो व मरणं व अपवहो व जनस तं बढं वेदनियमतं गुरुमतं च देवनं प्रियस। इमं पि ततो गुरुमत[त]रं देवनं प्रियस। तत्र हि वसं-ब्रमण व श्रमण व अंञे व पषंड ग्रहथ व येसु वि-एष अग्रभुति सुश्रुष मतपितुषु सुश्रुष गुरुणं सुश्रु-मित्रसंस्तुतसहयञतिकेषु दसभटकनं सम्मप्रति-दिढभतित। तेषं तत्र भोति अपग्रथो व वधो अभिरतन व निक्रमणं। येषं व पि संविहितनं नेहो अ-प्रहिनो एतेष मित्रसंस्तुतसहयञतिक वसन प्रपुण-तत्र तं पि तेष वो अपग्रथो भोति। प्रतिभगं चएतं स-मनुशासनं गुरुमतं च देवनं प्रियस। नस्ति च ए-तरस्पि पि प्रषंडस्पि न नम प्रसदो। सो यमत्रो जनो कलिगे हतो च मुटो अपवधो च ततो शतभगे सहस्रभगं व अज गुरुमतं वो देवनं प्रियस। यो च अपकरेय ति छमितव्यमते वो देवनं प्रियस, यं श-छमनये। यपि च अटवि देवनं प्रियस विजिते भो-त पि अनुनेति अनुनिभपेति अनुतपेपि च प्रभवे दे-प्रियस। वुचति तेष किति [१] अवत्रयेयु न च हंञेयु। इछति हि देवनं प्रियो सव्रभुतन अछति संयमं संच-रभसिये। एषे च मुखमुते विजये देवनं प्रियस यो ध्र-विजयो, सो च पुन लधो देवनं प्रियस इह च सव्रेषु च अतेषु अषषु पि योजंनशतेषु अं-अंतियोकेन चतुरे ४ रजनि तुरमये नम अंति-नम मके नम अलिकसुंदरे नम, निच चोड पंड-तंबपंनिय एवमेव हिदरज विषवज्रि-योन-कं-नभके नभितिन भोज पितिनिकेषु अंध्रपुलिंदेषु स-देवनं प्रियस ध्रंमनुशस्ति अनुवटंति। यत्र पि देवनं प्रियस दुत न व्रचंति तेपि श्रुतु देवनं प्रि-ध्रंमवुटं विधेनं ध्रंमनुशस्ति ध्रमं अनुविधियंति अनु-विध्रिशंति च। यो च लधे एतकेन भोति सवत्र वि-सवत्र पुन विजयो प्रतिरसो सो। लध भोति प्रि-ध्रंमविजयस्पि। लहुक तु खो स प्रिति। परत्रि-महफलमेञति देवनं प्रियो। एतये च अठये आयो-

*पुनरुक्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...पि दिपित्त; किति ? पुत्र पपोत्र मे असु नवं विजयं म-
...विजेतविय मञिषु ...क...यो विजये छंति च लहुदंड
...तं च रोचेतु तं एव विज मञ । यो ध्रमविजयो । सो
...हिदलोकिको परलोकिको । सव्र च निरति भोतु य
...ध्रमरति । स हि हिदलोकिक परलोकिक ।

(१४)

अयो ध्रमदिपि देवनं प्रियेन प्रि [द्र]* शिन र ञ
...दिपपितो अस्ति वो संखितेन अस्ति यो विस्त्रिटेन । न
हि सवत्र सो सव्रे घटिति । महल के हि विजिते बहु
च लिखिते लिख पेशमि चेव । अस्ति च अत्र पुन पुन
...पितं तस तस अठस मधुरिय ये येन जने तथ प्रटि-
...जेय ति । सो सिय व अत्र किंचि असमतं लिखितं
...शं व संखये करण व अलोचेति दिपकरस व
अपरधेन ।

कालसी ।

[देहरादून-लिपि ब्राम्ही]

१

इयं धंमलिपि देवानं पियेन पिय दसिना लेखिता
...द ना किछि जिवे आलभितु पजोहितविये नोपिचा
समाजे काटविये । बहुकाहि दोसा समाजसा देवानं
...ये पियदसी लाजा दखति । अथि पि चा एकतिया
समाज साधुमता देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने ।
... महानससि देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने
...नुदिवसं बहुनि पान–सहसानि आलभिसु सुपठाये ।
... इदानि यदा इयं धंमलिपि लेखिता तदा तिंनि येवा
पानानि आलभियंति–दुवे मजुला, एके मिगे । से पि च
मिगे नो धुवे । एतानि पि च तिंनि पानानि नो आल-
भियसंति ।

२

सवता विजितसि देवानं पियसा पियदसिसा
लाजिने ये च अंता अथा चोडा पांडिया सातिय-
पुतो केललपुतो तंबपंनि अंतियोगे नाम योनलाजा येचा
अंनेतसा अंतीयोगसा सामंता लाजानो सवता देवानं
पियसा पियदसिसा लाजिने दुवे चिकिसा कटा
मनुसचिकिसा चा पसुचिकिसा चा । ओसधानि मनुसो
पगानि च पसोपगानि च अतता नथि सवता हाला-
पिता चा लोपापिता चा । एवमेवा मूलानि चा
फलानि चा अतता नथि सवता हालापिता
चा लोपापिता चा । मगेसु लुखानि लोपितानि उद-
पानानि खानापितानि परिभोगाये पसुमनुसानं ।

(३)

देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आह दुवाडसव-
साभिसितेन मे इयं आनापयिते 'सवता विजितसि
ममयुता, लजुके पादेसिके, पंचसु पंचसु वसेसु, अनु-
समयानं निखमंतु, एतायेवा अथाये इमाये धंमनुसथिया
यथा अंनायेपि कंमाये, साधु मातपितिसु सुसुसा मित-
संथुतनातिक्यानं चा, बंभनसमनानं चा साधुदाने,
पानानं अनालंभे साधु, अपवियाता अपभंडता साधु ।
पलिसा पि च युतानि गंननसि अनपयिसंति हेतुवता
चा वियंजनते च ।

(४)

अतिकंतं अंतलं बहुनि वससतानि वधितेवा पाना-
लंभे विहिसा चा भुतानं नतिनं असंपटिपति समण
बंभनान असंपटिपति । से अजा देवानं पियसा पिय-
दसिने लाजिने धंमचलनेना भेलिघोसे अहो धंमघोसे
विमनदसना हथिनि आगिकंधानि च अंनानि
चा दिव्यानि लुपानि दसयितु जनस । आसदिसे
बहुहिवससते हि नाहुत पुलुवे तादिसे अज वढिते
देवानं पियसा पियदसिने लाजिने धंमनुसथिये
अनालंभे पानानं अविहिसा भूतानं नतिसु संपटिपति
बंभनसमनानं संपटिपति मातापितिसु सुसुसा । एस
चा अंने चा बहुविधे धंमचलने वधिते वधियिसति चेवा
देवानं पिये पियदसि लाजा इमं धंमचलनं । पुताचकं
नताले चा पनातिक्या चा देवानं पियसा पियदसिने
लाजिने पवढयिसंति चेव धंमचलनं इमं अवकपं
धंमंसि सिलसि चा चिठितु धंमं अनुसासि संति ।
एसेहि सेठे कंमं (अं) धंमानुसासनं । धंमचरणे पि
च नोहोति असिलसा चा से वधिइमसा अथसा

* यह छूटा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिनि चा साधु। एताये अथाये इयं लिखिते इमसा अथसा वधि युजंतु हिनिच मा अलोचयिसु। दुवाडस वशाभिसितेना देवानं पियेन पियदशिना लाजिना लेखापितं।

(५)

देवानं पिये पियदसि लाजा अहा। कयाने दुकले। ए आदिकले कयानसा से दुकलं कलेति। से ममया बहुकयाने कटे। ता मम पुता चा नताले चा पलं चा ते हिये अपतिये मे आवकपं तथा अनुवटिसंति से सुकटं कछंति। ये चु हेता देसं पि हापयिसंति से दुकटं कछंति। पापेहि नाम सुपदालये। से अतिकंतं अंतलं नो हुतपुलुवे। धंममहामाता नाम। ते दसवसाभिसितेना ममया धंममहामाता कटा। ते सब पासंडेसु वियापटा धंमाधिथानाये चा धंमवढिया हिद सुखाये चा धंमयुतसा योन-कंबोज-गंधालानं एवापि अंने अपलंता। भटमयेसु बंभनिभेसु अनथेसु वधेसु हिद सुखाये धंमयुताये बियापटाते। बंधनबधसा पटिविधानाये अपलिबोधाये मोखाये चा एयं अनुबधं पजावति वा कटाभिकालेति वा महालकेति वावियापटाते ते। हिदा बाहिलेसु चा नगलेसु सवेसु ओलोधनेसु भातिनं चाने भगिनिना एवापि अंने नातिकये सवता वियापटा। ए इयं धंमनिसितेति वा दानंसंयुते ति वा सवता विजितसि मम धंमयुतसि वियापटाते धंममहामाता। एताये अथाये इयं धंमलिपि लेखिता चिलथिक्या होतु तथा च मे पजा अनुवतंतु।

(६)

देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आह अतिकंतं अंतलं नो हुतपुलुवे सवं कालं अठकंमे वा पटिवेदना वा। से ममया हेवं कटे सवं कालं अदमनसा मे ओलोधनसि गभागालसि वचसि विनितसि उयानसि सवता पटिवेदका अठं जनस पटिवेदतु मे। सवता जनसा अठं कछामि हकं। ये पि चा किछि मुखते आनपयामि हकं दापकं वा सावकं वा ये वा पुना महामातेहि अतिचायिके आ[लो]पितं होसि ताये ठाये विवादे निझति वा संतं पलिसाये अनंतलियेना पटि[वेदितविये मे सवता सवं कालं हेवं आनपयितं ममया। नथि हि मे दोसे व उठानसा अठसंतिलनाये च। कटवियमुते हि मे सव लोकहिते। तसा पुना एसे मुले उठाने अठसंतिलना च। नथि हि कंमतला सवलोकहितेना। यं च किछि पलकमामि हकं किति (?) भुता नं अननियं येहं हिद च कानि सुखायामि पलत च स्वगं आलाधयितु। से एताये इयं धंमलिपि लेखि[ता] चिलठितिक्या होतु तथा च मे पुतदाले पलकम[तु] सवलोकहिताये। दुकलेच इयं अनत अगेना पल[कमे]न।

(७)

देवानं पिये पियदसि लाजा सवता इछति। स[वे] पासंड वसेयु। सवे हि ते सयमं भावसुधि चा इछंति जने चु उचावुचाछंदे उचावुचलागे। ते सवं एकदेसं कछंति। विपुले पि चु दानं असा नथि सयमे भावसुधि किटंनाता दिढभतिता चा निचेवाढं।

(८)

अतिकंतं अंतलं देवानं पिया विहालयातं नि[ख]मिसु। हिदा मिगविया अंनानिचा हेदिसानि अभिलामानि हुसु। देवानं पिये पियद[सि] लाजा दसवसाभिसिते संतं निकमिठा संबोधि। तेन ता धंमयाता। हेतो इयं होति समनबंभन[ानं] दसने चा दाने च बुधानं दसने च हिरंन[पटि]बिधाने चा जानपदसा जनसा दसने धंमानु[स]थि चा धंमपलिपुछा च। ततोपया एसे भुयेलाति[...] होति देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने भागे अंने।

(९)

देवानं पिये पियदसि लाजा आह जने उचा[वुचं] मंगलं कलेति। आबाधसि अवाहसि विवाहसि प[जुप]दाये पवाससि एतये अंनये चा एदिसाये जने [बहु] मंगलं कलेति। हेत चु अबकजनियो बहु चा [बहु]विधं चा खुदा चा निलथियं चा मंगलं कलेति। से कटवि चेव खो मंगले अपफले चु खो एसे। इयं चु खो महाफले ये धंममंगले। हेता इयं दासभटकसि समया-पटिपाति गुलुना अपचिति [पानेसु] सयमे समनबंभनानं दाने। एसे अंने चा हेदिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धंममंगले नामा। से वतविये पितिना पिपुतेनपिभाति-नापि सुवामिकेनापि मितसंथुतिना आव पटिवेसियेनापि इयं साधु इयं कटविये मंगले अवतसा अथसा निठुतिया। इमं कथम इति[?]पहि चले मगले संसयिक्ये से होति। सिया वा तं अठं निवटेया, सिया पुना नो हिदलोकिके च वसे। इयं पुनाधंममंगले अकालिक्ये। हं चे पितं अथं नो निवटेति हिद अठं पलत अनंतं पवसति। हंचे पुनातं अठं निवतेति हिद ततो उभये लधे होति, हिद चा से अठे पलता चा अनंतं पुंनं पसवति तेनं धंम मंगलेन।

(१०)

देवानं प्रिये पियदषिलाजा यषो वा कितिवा नो महथा वा मनति अनता यंपि पसोवा कितिवा इछति तदत्वाये अयतिये चा जने धंमसुसुषा सुसुषातुमेति धंमवतं वा अनुविधियतु ति। पतकाये देवानं पिये पियदसि लाजा यषो वा किति वा इछति। अंचा किछि [?] लकमति देवानं पिये पियदषि लाजा त षवं पालतिक्याय वा किति[?]। सकले अपपलाषवे षिया-ति। पषे चु पलिसवे पअपुंने दुकले चु खो पषे खुद-केन वावगेन उषुटेनवा अनत अगेन पलकमेन षुवं पलितिदितु। हेत चु खो उषटेन वा दुकले।

(११)

देवानपिये वियदषिलाजा हेवंहा। नथि हेडिषे दाने दिषं धंमदाने धंमषंविभगे धंमषंबधे। तत पषे दाष-भटकषि षमया पटिपति मातापितिषु षुषुषा मितषं-थुतनातिक्यानं समनबंभनानं दानेपानानं अनलंभे। पषे वतविये पितिनापि पुतेपि भातिनापि सुवामिक्येनापि मितसंथुताना अवा पटिवेसियेन इयं साधु इयं कटविये। से तथा कलंत हिदलोकिक्ये च कं आलधे होति पलतच अनंत पुंना पसावति तेन धंमदानेन।

(१२)

देवाना पिये पियदषि लाजा षवा पाषंडनि पव-जितानि गहथानि वा पुजेति दानेन विविधेन च पुजाये। नो चु तथा दाने वा पूजा वा देवानं पिये मनति अथा-किति[?] शालवढि सिया ति शवपाषंडानं। साल-वढिना बहुविधि। तश चु इयं मुले अवचगुति किति[?] त अतपाशंडे पुजे पलपाशंड गलहा वा नो शया अपकलनशि लहका वा शिया तशि तशि पकलनशि। पुजेतविय चु पलपाषड़ा तेन तेन अकालन। हेवं कलत अतपाशड़ा बाढं वढियति पलपाशड पि वा उपकलेति। तदा अंनथा कलत अतपाशड च छनति पलपाशड़ पि अपकलेति। येहिकेछ अतपशड पुनति पलपाषड वा गलहति शवे अतपाशंड भतिया वा किति[?]। अत पाशंडदिपयेम शो च पुना तथा कलं तं बढतले उपहंति अतपाषंडषि समवाये व षाधु किति[?] अंनमनषा धंमं षुनेयु चा षुषुषेयु चा ति। हेवं हि देवानं पियषा इछाकिति[?] सवपाषंड बहुषुता चा कयानागा च हुवेयु ति। पव तत तता पषंडन तेहि वतविये देवा-ना पिये नो तथा दानं वा पुजा वा मंनति अथा किति, षालवढि शिया षवपाषंडति बहुका चा। पतायाथाये वियापटा धंममहामाता इथिधियखमहामाता वच-भुमिकया अने वा निकाया। इयं च पतिषा फले यं अतपाषंडवढि चा होति धंमष चा दिपना।

(१३)

अठवषाभिसितशा देवानं पियष पियदषिने लाजिने कलिग्या विजिता। दियाढमात पानषतहसे येतफा अपबुढे शतषहषमाते तत हते बहुतावंतके वा मटे। तता पछा अधुना लधेषु कलिग्येषु तिवे धंम-वाये धंमकामता धंमानुषथि चा देवानं पियषा। शे अथि अनुशये देवानं पियषा विजिनितु कलि-ग्यानि। अविजितंहि विजिनमने पतता वधं वा मलने वा अपवहे वा जनषा। षे बाढ वेदनियमुते गुलुमुते चा देवानं पियषा। इयंपि चु ततो गलुमततले देवानं पियषा। सवता वषति बंभना वा षम वा अने वा पाशंड गिहथा वा येषु विहिता पष अगभुत-षुषुषा मातापितिषुषुषा गलुषुषा मितषंथुतषहायनातिकेषु दाशभतकषि शमयापटिपति दिढभतिता। तेषं तता होति उपघाते वा वधे वा अभिलतानं वा विनिखमने। येषं वा पि संविहितानं शिनेहे अविपहिने पतानं मित-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंथुतशहायनालिक्य वियषने पापुनाति । तत षे पि तानमेव उपघाते होति । पटिभागे चा एष षव मनुषानं गुलुमतेचा देवानं पियषा । नाथि चा षे जनपदे यता नथि इमे निकाया आनंता येनेष वंह्मने चा षमने चा नथि चा कुवापि जनपदषि यता नथि मनुषानं एकतलषि पि पाषडषि नो नाम पषादे । षे आवतके जने तदा कलिंगेषु...
......षु हते च मटे चा अपबुढे चा तता षतेभागे वा षतषहषभागे वा अज गुलुमते वा देवानंपियषा...
....नेयु ।
इछ..................षवभु..............................मयषंच लियंमदवति । इयंमुबु.........देवानं पियेषा ये धंम-विजये षे च पुना लधे देवानं पियषा [हि]द च षवेषु च अतेषु अ षषु पियोजनषतेषु अत । अतियेगे नाम योन...
......पलं चा तेन अतियेगेना चतालि ४ लाजाने-तुलमये नाम अंतेकिने नाम मका नाम अलिक्युदले नाम निचं चोड पंडिया अवं तंबपंनिया हेवमेव हिदलाजा विश-विज-योन-कंवोजेषु नामके नाभंपंतिषु भोज-पितिनिक्येषु अधपुलिदेषु षवता देवानं पियषा धंमानुसथि- अनु-वतंति । यत पि दुता देवानं पियसा नो यंती तेपि सुतु देवानं पियंय धंमयुतं विधनं धंमानुसथि धंमं-अनुविधियंति अनुविधियिसंति चा । येसे लधे एत-केना होति सवता विजये पितिलसे से । गधा सा होति पिति धंमविजयषि । लहुका तु खो सा पिती । पालंतिक्यमेवे महफला मंनंति देवनं पियो । एताये चा अठाये इयं धंमलिपि लिखिता किति[?] पुता पापोता मे अ-नवं विजयम विजयंतविय मनिषु । षयकषि नोविजयषि खंति चा लहु दंडता चा लोचेतु तमेव चा विजयं मनतु ये धंमविजये । षे हिदलोकिक्य-पललोकिकये । षे वा च निलति । होतु उयमालति षा हिदलोकिकअपललोकिक्या ।

(१४)

इयं धंमलिपि दवानं पियेना पियदषिना लजिना लिखापिता अथि येवा सुखितेन अथि मझिमेना अथि-विथटेना । नो हि सवता सवे घटिते । महालके हि विजिते बहु च लिखिते लेखापेसमि चेव निक्यं । अथि चा हेत पुनंपुन लिपिते तषा तषा अथषा मधु-लियाये येन जने तथा तथा पटिपजेया । षे षिया अत किछि असमति लिखिते दिषा वा षंखेये येकालं वा अलोचयितु लिपिकलपलाधेनवा ।

मनसेहरा ।

[हजारा-लिपि खरोष्ठी]

अपि ध्रमदिपि देवन प्रियेन प्रियद्रशिन रजिन लिखपित हिद नो किचि जिवे अरभित प्रयुहोतवे नोपिच समज कटविय । बहुक हि दोष समजस देवन प्रिये प्रियद्रशि रजख । अस्ति पिचु एकतिय समज सधुमत दवन प्रियस प्रियद्रशिने रजिने । पुर महनसि देवन प्रियस प्रियद्रशिस रजिने अनुदिवसं बहु प्रणशतसहस्रनि अरभिसु सुपथये से [इदनि] अयि ध्रंमलिपि लिखित तद तिनि ये प्रणनि अरभियन्ति दुवे २ मजुर एके १ म्रिगे । से पि चु म्रिगे नो ध्रुवं एतनि पि चु तिनि प्रणनि पच नो अरभिसंति ।

(२)

सवत्र विजितसि दवन प्रियस प्रियद्रशिस राजिने ये च अंत अथ चोड़ पंडिय सतियपुत्र केरलपुत्र तंबपणि अंतियोंके नाम योनरजे ये च अंतियोकस समंत रज [नो सवत्र देवनं] प्रियस प्रियद्रशिस रजिने दुवे २चिकिस कटा मनुशचिकिस च पशुचिकिस च । ओसढ़िनि मनुशोपकनि च पशोपकनि च यत्र यत्र [नस्ति] सवत्र हरपित च रोपपित च । एवमेव मूलनि च फलनि च अत्र अत्र नस्ति सव हरपित च रोपित च । मगेषु ... [च रोपि] तनि कू [पनि] [खनपि] तनि पटिभेगये पशुमनुशन ।

(३)

देवन प्रिये प्रियद्रशि रज एवं अह । दुवडशवषअ-भिसेतेन मे अयं अणपयिते सवत्र विजितसि ... युत रजुके प्रदेशिके पंचषु पंचषु वषेषु अनुसंयन निक्रमंतु एतये वं अथ्रये इमये ध्रंमनुशस्तिये अंणयेपि क्रमने । सधु मतपितुषु सुश्रूषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

संस्तुत अतिकनं च ब्रमणश्रमननं सधु दने प्रणन अनरभे सधु, अपवयत अपभडत सधु। परिष पि च युतनि गणनसि अणपयिशति हेतुते च वियजनते च।

(४)

अतिक्रतं अंतरं बहुनि वषशतनि वढिते वं अरंभे विहिस च भुतनं ञतिन असंपटिपति श्रमण ब्रमणनं असंपटिपति। से अज देवनं प्रियस प्रियद्रशिने रजिने ध्रंमचरणेन भेरिघोषे अहो ध्रंमघोषे विमनद्रशन हस्तिने अगिकंधनि अञनि च दिवनि रूपनि द्रशेति जनस। अदिशे बहुहि वषशतेहि न भुतप्रुवे तदिशे अज वढिते देवन प्रियस प्रियद्रशिन रजने ध्रमनुशस्तिय अनरभे प्रणनं अविहिस भुतन ञतिन संपटिपति वमणश्रमणनं संपटिपति मतु पितुषु सुश्रुष वुध्रन सुश्रुष। एषे अञे च बहुविधे ध्रमचरणे वध्रिते। वध्रयिशति येव देवन प्रिये प्रियद्रशि रज ध्रंमचरण इम। पुत्र पि च कु नतरे च पनतिक देवनं प्रियस प्रियद्रशिने रजिने पवढपिशंति ध्रमचरण इमं अव कपं ध्रमे शिले च तिस्तितु ध्रम अनुशशिशंति। एषे हि स्रेठे (क्रंमं) ध्रमनुशशन। ध्रमचरणे पि च न होति अशिलस। से इमस अथ्रस वध्रि अहिनि च सधु। एतये अथ्रये इमं लिखिते, एतसअनिस वध्र युजतु हिनि च म अनुलोचयिसु। दुदश वषभिसितेन दवन प्रियेन प्रियप्रिद्रशिन रजिन इयं लिखपिते।

(५)

देवनं प्रिये प्रिये प्रियद्रशि रज एवं अह कलणं दुकरं। ये दुकरं अदिकरे कयणस से दुकरं करोति। तं मय बहु कयणे कटे। तं म पुत्र च नतरे परं च तेन ये अपतिये मे अवकपं तथं अनुवटिशति से सुकर कषति। ये चु अत्र देश पि हपेशति से दुक्रट क्रषति। पपे हि नम सुपदरे व। से अतिक्रतं अंतरं न भुतप्रुव ध्रममहमत्र नम। से त्रेदशवषभिसितेन मय ध्रम महमत्र कट। ते सव्र पषंडेषु वपुट ध्रमधियनये च ध्रमवध्रिय हिद सुखये ध्रमयुतस येन-कंबोज गंधरन रटक पितिनिकन ये वपि अञे अपरत। भटमयषु व्रमणिभ्येषु अनथेषु वुध्रेषु हिदंसुखये ध्रमयुत अपलिबोधये वियपुट ते। बध्रनं बध स पटिविधनये अपलिबोधये मोछये च इयं अनुवध पज ति व क्रट भिकर ति व महलके ति व वियप्रटते। हिदं बहिरेषु च नगरेषु सव्रेषु ओरोधनेषु भतन च स्पसुन च ये पि अंञे ञतिके सव्रत्र वियपट। ए इयं ध्रमनिशिति ति व ध्रमधियने ति व दनसंयुते ति व सव्रत्र विजितसि म अ ध्रमयुत सिवपुटते ध्रममहामत्र। एतये अथ्रये अयि ध्रमदिपि लिखित, चिरठितिक होतु तथं च मे प्रज अनुवटेतु।

(६)

देवनं प्रिये प्रियद्रशि रज एवं अह अतिक्रंतं अंतरं नो हुतप्रुवे सव्रं कल अथ्रक्रम व पटिवेदन व। त मय एवं किटं सव्रकलं अशतस मे ओरोधने ग्रभगरसि चस्पि विनितस्पि उयनस्पि सव्रत्र पटिवेदक अथ्र जनसपटिवेदेतु मे सव्रत्र च जनस अर्थं करोमि अहं। यंपि किंचि मुखति अणपेमि दपकं स्रवकं व यं व पुन महमत्रेहि अचयिके अरोपित होति तये अथ्रये विवदे निभ्रत व संत परिषये अनंतलियेन परिवेदितविये मे सव्रत्र सव्र कल। एवं अणपित मय। नस्ति हि मे तोषे उठनसि अथ्रसंतिरणये च। कटवियमते हि मे सव्र लोकहिते। तस चु पुन एषे मुल उठने अथ्र संतिरणच। नस्ति हि क्रमतर सव्रलोकहितेन। यं च किंचि क्रममि अहं किति (?) भूतनं अनणियं येहं इअ च ष सुखयमि परत्र च स्पग्रं अरधेतु ति। से एतये अथ्रये इयं ध्रंमदिपि लिखित चिरठितिकं होतु तथं च मे पुत्र नतरे परक्रमंते सव्रलोकहितये। दुकरे चु खो अञत्र अग्रेन परक्रमेन।

(७)

देवन प्रिये प्रियद्रशि रज सव्रत्र इछति सव्र पषड़ वसेयु। सव्रे हि ते सयम भवशुध्रि च इच्छंति जने चु उचवुचचदे उचवुचरगे। ते सव्र एकदेशं व पि क्रषति। विपुले पि चु दने यस नस्ति सयमे अवशुति किटंत द्रिढ भतित च निचे बढं।

सन्दर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

अतिक्रतं अंतरं देवेन प्रिय विहरयत्र नम निक्रमिषु। इह म्रिगविय अञनि च एदिशनि अभीरमनि हुसु। से देवनं प्रिये प्रियद्रशि रज दशवषभिसितै संतं निक्रमि संबोधि। तेनदं ध्रंमेयद्र। अत्र इय होति श्रमणब्रमणन द्रशने दने च वध्रन द्रशने च हिञपटिविधने च जनपदस जनस द्रशने ध्रमनुशस्ति च ध्रमपरिपुच्छ च। ततोपय एषेभुये रति होति देवन प्रियस प्रिद्रशिस रजिने भगे अञे।

(९)

देवन प्रिये प्रियद्रशि रज एवं अह जने उचवुचं मंगलं करोति अबधसि अवहसि विवहसि प्रजोपदये प्रवसस्पि। एतये अंञये च एदिश ये जने बहु मंगलं करोति। अत्र तु बलिक जनिक बहु च बहुविधय च खुद च निरथिय च मंगलं करोति। से [कटवियं] च खो मंगले। अपफलेचु खो एषे। इयं चु खो महफले ये ध्रंममंगले। अत्र इयं दसभटकसि समयपटिपति गुरुन अपचिति प्रणन सयमे श्रमणब्रमणन दने। एषे अंञे च एदिशे ध्रंममंगलं नम। से वतवियं पितुन पि पुत्रेन पि भतुन पि स्पमिकेन पि मित्रसंस्तुतेन अव पटिवशियेन पि, इयं साधु इयं कटविये मगले अव तस अथ्रस निवुटिय। निवुटसिव पुन इम केषमिति। एहि अत्रकम...शशयिके से ...सियवतं अथ्रं निवटेय, सिय प ननो इह च लोकि च वसे। इयं पुन ध्रममंगले अकलिके। हचे पि तं अथ्रं न निवटेति हिद[अ...परत्र]......अनंतपुंञं प्रसवति। ह चे पुना तं अथ्र निवटेति हिद ततो उभयस व लधे होति हिद च से अथ्रे परत्र च अनंतं पुंणं प्रसवति तेन ध्रममगलेन।

(१०)

[देवान] प्रिये प्रियद्रशि रज यशो व किटि व न महथ्रवहं मञति अंतर यं पि यशो व किटिव इछति तदत्तये अयतिय च जने ध्रमसुश्रुष सुश्रुषतु मे ति [ध्रमम] तं अनुविधियतु ति। एतकये देवन प्रिये प्रियद्रशि रज यशो व किटि व इछति। ए तु किचि परक्रमति देवनं प्रिये प्रियद्रशि रज तं सव्रं परत्रिकये [illegible] किति (?) [सका] अपपरिसव सिय तिति। पे[illegible] परिसवे ए अपुञं। दुकुरं चु खो एषे खुद्रकेन व [illegible] उसटेन व अञत्र अग्रेन परकमेभ सवं परिति[illegible] तु। एषे तु खो उसटेन वदुकर।

(११)

[देवनं] प्रिये प्रियद्रशि रज एवं अह नस्ति [illegible] दिशो दने अदिशो ध्रमदने ध्रमंसस्तवे ध्रमंसंविभगे ध्रं[illegible] संबंधे। तत्र एषे दसभटकस समयसंपटिपति [illegible] पितुषु [सुश्रुष मित्र] संस्तुतञतिकन श्रमणब्र[illegible] न दने प्रणन अनरंभे। एषे वतविये पितुन पि पु[illegible] पि भतुनपि स्पमिकेनपि मित्रसस्तुतेन अव परि[illegible] येन, इयं सधु इयं कटविये। से तथ करंतं हिद ले[illegible] अरधेति परत्र च अनंतं पुञं प्रसवति, तेन ध्रंमदने[illegible]

(१२)

[देवन] प्रिये प्रियद्रशि रज सव्र प्रषंडनि प्र[illegible] तनि गहथनि च पुजेति दनेन विविधये च पु[illegible] नोञु तथ दन व पुज व देवनं प्रिये मञति अथ किति [illegible] सलवढ़ि सिय सव्रप्रषंडन ति। सलवुढ़ि तु [illegible] विध्र। तस चु इयं मुले अंवचगुति, किति (?) अत[illegible] डपुज व परपषंडगरह व नो सिय अप करणसि लहु[illegible] सिय तसि पकरणसि। पुजेतविय व चु परपषंड[illegible] तेन अकरेन। एवं करतं अतमप्रषड बढं वढ[illegible] परपषंडस पि च उपकरोति। तदञथं करतं अत[illegible] षंड च छणति परपषड़स पिच अपकरोति। [illegible] केचि अतमपषड पुजेति परपषड व गरहति [illegible] अतमपषड भति यव, किति (?) अतमपषड दि[illegible] मति [सोच] पुन तथ करतं बधंतरं उपह[illegible] अतमपषड। से समवय व सधु किति (?) अञम[illegible] ध्रमं श्रुणेयु च सुश्रुषेयु च ति। एवं हि देवनं प्रि[illegible] इछ किति (?) सव्रपषड बहुश्रुत च कयणगम च [illegible] यु ति। ए च तत्र तत्र प्रसंनतेहि वतविये देवन[illegible] नो तथ दनं व पुजं व मञति अथ किति (?) सल[illegible] सिय सव्रपषडन बहुक च। एत ये अथ्रये [illegible] ध्रममहमत्र इस्त्रिभछमहमत्र व्रचभुमिक अ[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकय। इयं च एतिस फले यं अतमपषड वढि च
नाति ध्रमस च दिपन।

(१३)

..........कालग..........य..........
....
शा..
......पछ अधुन लधेषु कलिगषु..........
.... मनुश च..........
......अपवहे व जन..........से..........
नियम..
......एष अग्रभु ...सुश्रुष मतपिषु ...सुश्रुष...
सुश्रुष मित्रसंस्तु..........वअभि......नं व विनि-
मणे। येषं व पि संवि......नं सिनेहे अवि प्रहिने एत
...मित्रसं..
......सव्रं मनुशनं गुरुमते च देवनं प्रियस।
ति च से जनपद यत्र नस्ति इमे निकय अ......येनेष
जने......सि..........नोनम प्रसदे।
यवतके जने तद कलिगेषु हते च..........अपबुढे
तत शतभगे व सहस्रभगे अज गुरुम...देवनं—
यस।......क......मितवि.......... . य पि च
टवि देवनं प्रियस विजितसि होति त पि अनुनयति
नुनिझपये ति अनुतपे पि च प्रभवे देवनं प्रियस।
ति तेषं..........वनं प्रिये..........
...मुते विजये देवनं प्रियस ये ध्रंमविजये सेच पुन-
दे देवनं प्रियस हिद च सव्रेषुच अंतेषु अ षुषु पिय
...त...षु......योक नम योन ....मके नम
लिकसुदरे नम निचं च चोड पंडिय अं तब्रपंनिय
मेव......रज विषवज्रियेनक......षु अंधप......
..........न प्रियस नो यंति तेपि श्रुतु
नं प्रियस ध्रमवुतं विधनं ध्रंमनुशस्ति ध्रंमं अनु-
यियंति अनुविधियिसंति च य...तकेन होति
विज..प्रिये। एतये
ये इसं ध्रमलिपि लिखित किति[1](?) पुत्र प्रपोत्र मे
......नव..........लोकिके। सव्रं च
ति होतु यस्रमरति सोहि हिद लोकिक पर-
लिक।*

* मनसेहरा में चौदहवाँ आदेश नष्ट हो गया है।

विशेषः—इन चारों स्थानों के अतिरिक्त उडेसा में धौली और मद्रास में जौगडा में भी आदेशाभिलेख मिलते पर वे पूरे नहीं हैं इसीलिये यहाँ उनके पाठ नहीं दिये गये।

अनुवाद

[गि = गिरिनार, का = कालसी, शा = शाहबाजगढ़ी,
म = मनसेहरा]

(१)

यह धर्मलिपि देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखाया है। यहाँ किसी जीव को आलंभन (मार) करके होम न किया जाय और न समाज किया जाय। देवानं प्रिय प्रियदर्शी राजा को समाज[1] में बहुत दोष दिखाई पड़ते हैं। देवानां प्रिय प्रियदर्शी को केवल एक प्रकार का ही समाज (अर्थात् साधु समाज वा धर्म समाज) साधु (अच्छा) जान पड़ता है। पहले देवानं प्रिय प्रियदर्शी राजा के महानस (सूपागार) में प्रति दिन अनगिनत लाखों प्राणी सूप के लिये मारे जाते थे। वहां आज से जब से यह धर्म लिपि लिखाई गई अब केवल तीन ही प्राणी सूप के लिये मारे जायँगे—दो मोर और एक मृग—वह मृग भी ध्रुव नहीं है। ये भी तीन प्राणी पीछे* नहीं मारे जायँगे।

(२)

देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अपने उन राज्यों में जिसे विजय किया है और अपने सीमावर्ती राज्य में, जैसे चोड़ा, पांड्या, शातिपुत्र, केरलपुत्र, तथा यवनराज अंतियोक और उसके समीपवर्ती † राजाओं के राज्य में सर्वत्र दो प्रकार की

१—प्राचीनकाल में लोग नैमित्तिक वा आहूत उत्सवों पर किसी नियत स्थान में इकट्ठे होते थे जहां उन लोगों के खान पान आमोद प्रमोद आदि का प्रबंध रहता था इसे समाज कहते थे। पुराणों और बौद्ध ग्रंथों में इसका वर्णन प्रायः मिलता है।

*'का' में 'पीछे' नहीं है।

† 'गि' के अतिरिक्त अन्यत्र 'सामंत' पाठ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा नियत की है—मनुष्य-चिकित्सा और पशुचिकित्सा। जहां जहां मनुष्योपयोगी और पशूपयोगी ओषधियाँ न थीं वहां वहां सर्वत्र ओषधियों को लेजाकर लगवाई है। 'जहाँ फूल फल (केवृक्ष) न थे वहां मूल और फल (के वृक्ष) लेजाकर बैठवाया है' *। मनुष्य और पशुओं के सुख के लिये मार्गों पर †कूये खोदाये गये हैं और पेड़ लगवाये गये हैं।

(३)

देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा यह कहता है:—आज मैं अपने अभिषेक से बारहवें वर्ष यह आज्ञा देता हूँ:—उस राज्य में जिसे मैंने विजय किया है मेरे युक्त, ‡ राजुक और प्रादेशिक, पाँचवें पाँचवें वर्ष इक काम के लिये अर्थात् धर्मानुशासन के लिये उसी प्रकार अनुसंयान (दौरा) पर निकला करें जैसे वे अन्य कामों के लिये निकला करते हैं ; [वह

* यह वाक्य 'शा' में नहीं।

† 'शा' में 'मार्गों पर' नहीं है।

‡ युक्त दो प्रकार के होते थे एक राजुक(Imperial) दूसरे प्रादेशिक (Provincial)। राजुक युक्तों का नियोग राजा करता था और प्रदेशिकों का नियोग प्रादेशिक राज-पुरुष करते थे।

कलिंग के 'तोसली' के अभिलेख में अशोक ने लिखा था कि 'नगर के शासक लोग सदा नागरिकों का व्यर्थ अकारण बंधन और दंड रोकने का प्रयत्न करें। इस आज्ञा के धर्मानुसार पालन के लिये मैं पांच पांच वर्ष पर नरम और दयालु पुरुषों को बाहर भेजा करोंगा जिन्हें जीवन की पवित्रता का ख्याल होगा और जो इस काम को ध्यान में रखते हुये मेरी शिक्षा के अनुसार चलेंगे। उज्जयिनी के राजकुमार ऐसे लोगों को प्रति तीसरे वर्ष बाहर भेजा करेंगे। तक्षशिला के लिये भी यही आज्ञा है' इनमें वे पुरुष जिन्हें महाराज अशोक स्वयं भेजते थे 'राजुक' युक्त और जिन्हें उज्जयिनी और तक्षशिला के राजकुमार भेजते थे 'प्रादेशिक' युक्त कहलाते थे। इन्हीं युक्तों के सिपुर्द महाराज अशोक ने धर्मानुशासन का काम भी किया था और उन्हें आज्ञा दी थी कि वे इसे उसी प्रकार किया करें जैसा वे अन्य कामों को करते थे।

धर्मानुशासन यह है] "माता पिता की सुश्रु[षा] मित्र संस्तुत और ज्ञातिवालों [की शुश्रूषा] श्र[मणों] और ब्राह्मणों [की शुश्रूषा] अच्छी है। दान दे[ना] अच्छा है, प्राणों का अनारंभ (यज्ञों मे पशुबलि [न] करना] अच्छा है, अल्पव्ययता (थोड़ा व्यय करना) और अल्पभांडता (थोड़ी पूँजी रखनी) अ[च्छा] है" परिषद * भी युक्त और गणों को हेतु [और] व्यंजन से यह आज्ञा दे।

(४)

बहुत दिन हुए, सैकड़ों वर्ष बीत गये [यज्ञों [में] पशुओं का आलंभन और जीवहिंसा बढ़ती गई, ज[ाति]वालों का अनादर और श्रमणों और ब्राह्मणों [का] अपमान होता गया। उसे आज देवानां प्रिय प्रि[य]दर्शी राजा के धर्माचरण ने भेरि घोष से—[अर्थात्] वह धर्म घोष है—विमान दर्शन, हस्तिदर्शन, अ[ग्नि] स्कंध (आतशबाजी) और अन्य दिव्य रूपों [को] दिखा कर, जैसे पहले सैकड़ों वर्ष से म हुआ था [वैसा] आज देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशा[सन से]

* मंत्रिपरिषद् जिसका वर्णन कैाटिलीय अर्थशास्त्र [अधि]करण १ अध्याय १५ में है। जिसके विषय में लिखा है:—

मंत्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः।
'षोडशेति' बार्हस्पत्याः।
विंशतिमित्यौशनशाः।
यथासामर्थ्यमिति कैाटिल्यः॥

ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं चिंतयेयुः। अकृतारम्भमारब्धानु[ष्ठान]मनुष्ठितविशेषं नियोगसम्पदं च कर्मणां कुर्युः। आ[त्ययिके कार्ये मन्त्रिभिर्मन्त्रिपरिषदा च] सह कर्य्याणि पश्येत्। अनासद्यैस्सह पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्[रयेत]।

अनुमान होता है कि अशोक को भय था कि [परिषद्] उसके इस काम का कि वह 'श्रमणों और ब्राह्मणों [की] शुश्रूषा को समान बताता है और यज्ञ में पशु आलं[भन] गर्हित बताता है' अनुमोदन न करेगी तभी उसने यह लि[खा] 'परिषद भी युक्त और गणों को यह आज्ञा हेतु और [व्यंजन] से दे।' ऐसा हुआ भी, परिषद् ने उसके इस काम का [अनु]मोदन नहीं किया; इसीलिये उसने दूसरे वर्ष विवश हो[कर] इस काम के लिये 'धर्म महामात्रा' नियत किया [जिनके] नियोग का वर्णन पाँचवे शासनाभिलेख में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (यज्ञों में) पशुओं का अनारंभ भूतों की अहिंसा ज्ञातिवालों का आदर और श्रमणों और ब्राह्मणों का मान बढ़ गया।

इसे और अन्य अनेक प्रकार के धर्माचरणों को बढ़ाया है और इस धर्माचरण को देवानां प्रिय और भी बढ़ावेगा। देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र और पौत्र इस धर्माचरण को संवर्तकल्प तक बढ़ाते ही जावेंगे। धर्म और शील में स्थित [पुरुष] ही धर्म का अनुशासन कर सकते हैं। यही श्रेष्ठ कर्म है जिसे धर्मानुशासन कहते हैं, अशील [पुरुष का किया] धर्मानुशासन नहीं होता। इस लिये इस अर्थ में वृद्धि, और अहीनता ही अच्छी है। इस लिये यह लिखाया गया, इस अर्थ की वृद्धि ही के लिये लोग योग दें और हीनता का ध्यान भी न करें। यह धर्मानुशासन देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अपने अभिषेक के बारहवें वर्ष लिखाया।

(५)

देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा यह कहता है:— कल्याण करना दुष्कर है। जो अति कर्तव्य कल्याण का करता है वह दुष्कर [काम] करता है। मैंने बहुत कल्याण किया। मेरे पुत्र, नाती* और मेरे [भावी] अपत्य जो संवर्तकल्प तक इसका अनुसरण करेंगे वह सुकृति करेंगे। जो इसे कुछ भी विरुद्ध करेंगे वे दुष्कृति करेंगे। पाप करना सरल है।

बहुत दिन हुए आज से पहले कभी धर्म महामात्र का नाम तक नहीं [सुनागया] था। मैंने अपने अभिषेक के तेरहवें वर्ष † धर्ममहामात्रा नियत किया।

* 'शा' 'म' और 'का' में 'पौत्र' शब्द है।

† परिषद से बिगड़ कर अशोक ने धार्मिकसंशोधन के लिये धर्म महामात्रा नियत किया।

वे [धर्ममहामात्र] सब पाषंड * [धार्मिक क्रिया कलाप-कर्मकांड] में धर्माधिष्ठान और धर्म-वृद्धि के लिये, और धर्म युक्त लोगों के हित और सुख के लिये, व्याप्त (काम करते) रहेंगे। यवन, कांबोज, गांधार, पितिनिक वा अपरांत के [लोगों के] तथा भटमय, ब्रह्मनिभ, अनाथ [और] बुड्ढों के हित और सुख के लिये "और धर्मयुक्त लोगों के अपरिबोध [कि कोई विक्षेप न करे] के लिये"† व्याप्त रहेंगे। बंधन और वध के प्रतिविधान, अपरिबोध, और मोक्ष के लिये यह अनुबंध प्रजा, कृताभिकारी वा महल्लकों ‡ [सब] पर व्याप्त है। यहां से बाहर के नगरों में हमारे भाई बहिनें और अन्य जाति वालों के अवरोधनों (अंतःपुरों) में सर्वत्र यह [अनुबंध] व्याप्त रहेगा। चाहे वह धर्म निश्रित हो वा धर्माधिष्ठान § हो वा दानसंयुत हो मेरे धर्मयुक्त विजित राज्य में सर्वत्र धर्म महामात्रा (का अधिकार) व्याप्त होगा। इसी प्रयोजन के लिये यह धर्मलिपि लिखी गई। 'यह चिरस्थायी हो और मेरी प्रजा इसके अनुसार वर्तें'।§§

—:०:—

* मिलाओः—तस्माद्दे वताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्य-स्थानानां बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथानां स्त्रीणां पश्येत्' कौटिलीय अर्थशास्त्र अधि० १ अध्या० १९ इससे अनुमान होता है कि पाषंड पहले अच्छे अर्थ में प्रयोग होता था ईसामसीह के जन्म के पीछे यह ढोंग और भडंग के अर्थ में प्रयोग होने लगा और इसी पिछले अर्थ को ग्रहण कर मनुस्मृति में "पाषंडिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्" लिख गया है, जिससे वर्तमान मनुस्मृति का काल अशोक से पीछे का सिद्ध होता है।

† 'का' में इस वाक्य के स्थान में केवल 'धंमयुताये' अर्थात् धर्मयुक्त बनाने के लिये' मात्र है।

‡ 'गि' में महल्लक की जगह थेर (स्थविर) आया है।

§ 'का' यहां 'धर्मधिष्ठान' पद नहीं हैं।

§§ 'गि' में ये अंतिम वाक्य नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा का कार्य-विवरण

साधारण सभा

शनिवार तारीख २८ मार्च १९१४ संध्या के ५½ बजे स्थान सभा-भवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख २८ फरवरी १९१४) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभासद होने के लिए निम्न लिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गए:—

(१) बाबू माताप्रसाद, ईश्वरगंगी, काशी २)

(२) बाबू गुलाबचंद मोहर्रिर मुंशी पीताम्बरप्रसाद वकील महल्ला मिलोनीगंज—जबलपुर—३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाँय।

(३) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद-पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

हाजीअलीख़ां, दमोह

हाजी दृष्टान्तमाला

शराब की ऐसी तैसी

वेश्या की यारी

बाबू लक्ष्मीप्रसादसिंह, मंगलपुर, पो० संग्रामपुर, चम्पारन

शाक्तविनोद

दुर्गाविनयपचीसी

पंडित माधव शुक्ल

भारतगीताञ्जली

मंदराज की गवर्नमेंट

A triennial catalogue of manuscripts 1910-1911 to 1912-1913 for the Government Oriental Mss. Library, Madras. Vol. I. Part I. A. B. &C.

Indian Antiquary for January and February 1914.

बाबू पन्नालाल जौहरी, काशी

पंनवणा सूत्र

भगवती शतक

संयुक्त-प्रदेश की गवर्नमेंट

List of Sanskrit Jaina and Hindi manuscripts deposited in the Sanskrit College, Benares during the year 1911-1912.

Do. do. during the year 1912-1913.

मुंशी देवीप्रसाद, बिजावर

प्रह्लादचरित्र

कुंवर खड्गसिंह वर्म्मा, भरतुआ, पो० शाहपुर जि० अलीगढ़

संगीतप्रवेश

एशियाटिक सोसायटी आफ़ बंगाल

Journal and Proceedings of the Society for June, July, August and September 1913.

बाबू पन्नालाल, काशी

सनातन जैन ग्रन्थमाला, चतुर्थ और पंचम खण्ड

बुद्धिमनरंजनप्रकाश भजनावली

(४) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गोपालदास

सहायक मंत्री।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered No. A414 [संख्या १—२

[भाग १९]

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

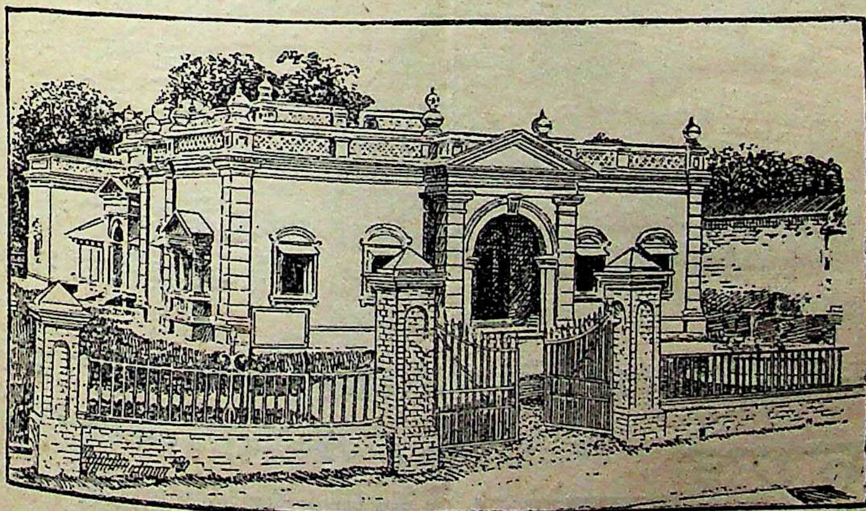
जुलाई, अगस्त, १९१४

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

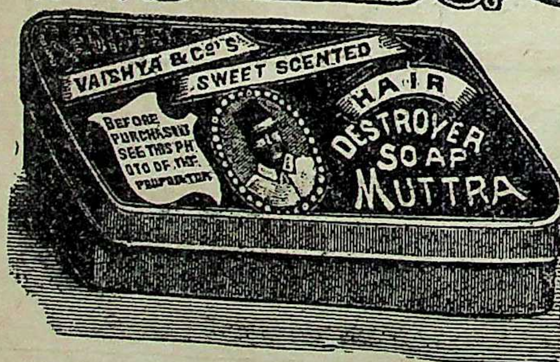
पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी

कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये, पताः—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

वैश्य एण्ड कौं. मथुरा का

बाल उड़ाने का साबुन

३-४ मिनट में बाल उड़ा कर चमड़ी साफ और कोमल करता है.



खरीदनेसे पहिले विलायती रंगीन ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केवड़ा, खस, का फी टिकिया ।।) ३ टि. का १।≈)

नींबू, कपूर, संतरे का फी टिकिया ।≠) आना ३ टिकिया का बक्स ।॥)

जरूरत है एजेण्टोंकी जरूरत है एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५) रु. सैंकड़ा कमीशन देंगे और खर्च माफ

पताः—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

पवित्र काश्मीरी केशर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक अधिवेशन की सूचना।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा का बाईसवाँ वार्षिक अधिवेशन सोमवार तारीख २ अगस्त १६१५ को सन्ध्या के साढ़े पांच बजे सभाभवन में होगा। आशा है कि सभासद्गण नियत समय पर पधार कर कार्य सम्पादन में सहायता देंगे। जो महाशय किसी कारण से उपस्थित न हो सकें वे कृपापूर्वक प्रतिनिधिपत्र पर एक आने का टिकट लगा कर हस्ताक्षर करके भेज देने की कृपा करें।

कार्य-क्रम।

(१) बाईसवीं वार्षिक रिपोर्ट हिसाव सहित विचारार्थ उपस्थित की जायगी।

(२) आगामी वर्ष के लिये बजेट विचारार्थ उपस्थित किया जायगा।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति के इस प्रस्ताव पर विचार किया जायगा कि बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई है और उसका सब काम प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होता है। अतएव उस सम्बन्ध के नियम ४६-६४ के स्थान पर निम्नलिखित नियम स्वीकार किए जांय।

"(क) काशी नागरी प्रचारिणी सभा के स्थायी कोष का पूर्ण अधिकार साधारण सभा को होगा। इसका यह कर्तव्य होगा कि इस कोष से जो आय हो उसे नागरी प्रचारिणी सभा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही केवल उस सभा की प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा व्यय करे

(ख) स्थायी कोष के मूल धन में से रुपया न व्यय, किया जायगा जब तक काशी नागरीप्रचारिणी सभा के सभासदों का $\frac{3}{4}$ भाग वैसा करने की स्पष्ट आज्ञा और सम्मति न दे।

(ग) प्रति वर्ष वार्षिक अधिवेशन में ४१ वें नियम के अनुसार दो हिसाब जांचनेवाले चुने जांयगे।"

(४) आगामी वर्ष के लिये पदाधिकारियों का चुनाव।

(५) जिन महाशयों को इस वर्ष मेडल आदि सभा ने अर्पित किये हैं उन्हें वे दिये जांयगे।

(६) प्रबन्धकारिणी समिति के सभासदों का चुनाव।

(७) सभा के स्थायी सभापति का कथन।

(८) वार्षिक अधिवेशन के सभापति (यदि वे स्थायी सभापति न हुए) का कथन।

(९) अन्य आवश्यक कार्य यदि कोई हो।

गौरीशंकर प्रसाद
मंत्री।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्धकारिणी समिति ने पदाधिकारियों और प्रबन्धकर्ताओं के चुनाव के लिये निम्न लिखित सूची बनाई है:-

(क) एक सभापति और दो उपसभापति।

(इनमें से एक का काशीस्थ होना आवश्यक है)

(१) पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, डिपटी कलेक्टर, बुलन्दशहर—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और विद्वान तथा सभा के वर्तमान सभापति।

(२) बाबू श्याम सुन्दर दास बी० ए०, हेडमास्टर, कालीचरन हाई स्कूल, लखनऊ-हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और विद्वान तथा सभा के संस्थापक और वर्तमान उपसभापति।

(३) पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०, हेडमास्टर, हरिश्चन्द्र हाई स्कूल, काशी-सभा के संस्थापक सहायक और हिन्दी के लेखक।

(४) बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल-बी०, वकील हाईकोर्ट, काशी-सभा के वर्तमान मंत्री तथा हिन्दी के परम सहायक और हितैषी।

(५) रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स, मिशनरी, कलकत्ता-हिन्दी के लेखक और विद्वान तथा सभा के विशेष सहायक और वर्तमान उपसभापति।

(६) साहित्याचार्य पण्डित रामावतार पांडेय एम० ए०, प्रोफ़ेसर, पटना कालेज, बांकीपुर-हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान और लेखक।

(ख) एक मंत्री और एक उपमंत्री।

(१) बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल०, एल०, बी०, काशी-ऊपर क (४) देखो।

(२) बाबू श्रीप्रकाश बी० ए०, एल एल बी० बैरिस्टर-एट-ला, प्रोफ़ेसर, हिन्दू कालेज, काशी-बाबू भगवान दास एम० ए० के ज्येष्ठ पुत्र तथा हिन्दी के परम हितैषी।

(३) बाबू हरिप्रसाद पालोदी बी० ए०, चुंगी के निरीक्षक म्युनिसिपल बोर्ड, बनारस-हिन्दी के हितैषी और सहायक।

(४) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, बुकसेलर, काशी-सभा के वर्तमान उपमंत्री और हिन्दी के हितैषी तथा सहायक।

(५) बाबू वेणीप्रसाद, काशी—हिन्दी के हितैषी और लेखक।

(६) पण्डित सांवल जी नागर, काशी-हिन्दी के हितैषी और लेखक।

(७) बाबू बांके बिहारीलाल बी० ए०, एल. टी., अध्यापक, हरिश्चन्द्र हाई स्कूल, काशी।

(ग) प्रबन्धकारिणी समिति के सभासद।

(जो सज्जन मंत्री और उपमंत्री चुने जांय उन्हें छोड़ कर बाकी लोगों में से चुनाव होगा)

काशी से चार सभासद।

(१) पण्डित राम नारायण मिश्र बी० ए०, काशी [ऊपर क (३) देखो]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी०ए०, एलएल बी०, काशी [ऊपर क (४) देखो]

(३) बाबू श्रीप्रकाश बी०ए० एलएल बी०, बैरिस्टर, काशी [ऊपर ख (२) देखो]

(४) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, काशी [ऊपर ख (४) देखो]

(५) बाबू हरि प्रसाद पालोदी, काशी [ऊपर ख (३) देखो]

(६) बाबू अम्बिका प्रसाद गुप्त, काशी—सम्पादक और प्रकाशक इन्दु।

(७) पण्डित विजयानन्द तिवारी, काशी—ज़मीदार रईस और हिन्दी के प्रेमी।

(८) बाबू जगन्नाथ दास बी० ए०, अध्यापक, क्वीन्स कालिजिएट स्कूल, काशी।

(९) बाबू बांके बिहारीलाल बी० ए०, एल. टी, अध्यापक, हरिश्चन्द्र हाई स्कूल, काशी।

(१०) बाबू केशव दास, अध्यापक, हरिश्चन्द्र हाईस्कूल, काशी।

(११) बाबू छन्नूलाल " " "

संयुक्त प्रदेश से एक समासद।

(१) ठाकुर हनुमन्तसिंह, सम्पादक और प्रकाशक, स्वदेश बांधव, आगरा—हिन्दी के लेखक और सहायक।

(२) बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०, लखनऊ [ऊपर क (२) देखो]

(३) बाबू शिवकुमार सिंह, सुपर्वाइज़र, म्युनिसिपल स्कूल्स, इलाहाबाद—सभा के संस्थापक तथा हिन्दी के लेखक और सहायक।

बम्बई से एक समासद।

(१) बाबू लक्ष्मीचन्द एम० ए०, प्रोफ़ेसर, बरोदा—हिन्दी के लेखक और हितैषी।

(२) पण्डित तनसुख राम मनसुख राम त्रिपाठी, बम्बई।

मध्य प्रदेश से एक समासद।

(१) पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर, छिन्द्वारा-हिन्दी के लेखक और सहायक।

(२) माननीय पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल, सिहोरा, जबलपुर-रईस और ज़मीदार।

नोट १-यदि बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज के अधिकार प्रबन्धकारिणी समिति को देना निश्चय हुआ तो दो हिसाब जाचने वाले भी चुने जायंगे।

नोट २-सभा के गत वर्ष का आय व्यय का लेखा और आगामी वर्ष के लिये बजट यदि वह सभासदों के पास न पहुँच जाय तो जूलाई के अन्तिम सप्ताह में जो महाशय चाहें उन्हें लिख कर मंगवा लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि पत्र ।



मैं निवासी जो कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा का सभासद हूं उसी सभा के सभासद को अपना प्रतिनिधि नियत करता हूं कि जिसमें वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के बाईसवें वार्षिक अधिवेशन में जो सोमवार तारीख २ अगस्त १९१५ को होगा अथवा जो उस दिन टल कर किसी दूसरे दिन हो मेरे लिये तथा मेरी ओर से सम्मति दें और उसके साक्षी स्वरूप मासके दिन यह हस्ताक्षर मैंने किया ।

साक्षी————————

एक आनेके टिकट पर हस्ताक्षर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ | जुलाई, अगस्त, १९१४. | संख्या १—२

लार्ड नेलसन।

(१)

जन्म, बाल्यावस्था और पहली नौकरी।

अंगरेजी जल-शक्ति को सर्वप्रधान बनाने और समस्त जगत् में उसका यश फैलानेवाले वीर शिरोमणि नेलसन का जन्म इंगलैण्ड के बर्नहम् थार्प नामक गाँव में २९ सितम्बर सन् १७५८ को हुआ था। उन दिनों इंगलैण्ड आजकल की तरह आबाद नहीं था। एडिनबरा से लण्डन आने में प्रायः ६ दिन लगते थे और महीने में केवल एक बार घोड़ों की डाक जाती थी। जिस प्रान्त में नेलसन का जन्म हुआ था वह प्रान्त और भी कम प्रसिद्ध और आबाद था और वहाँ से अन्य प्रदेशों में जाने का मार्ग बहुत ही बीहड़ था।

नेलसन का पूरा नाम होरेशियो नेलसन था। उसका पिता एडमण्ड नेलसन अपने गाँव में पादरी था। एडमण्ड नेलसन के पिता ने अपने विवाह में बहुत सी सम्पत्ति पाई थी, जिसका बहुत सा अंश कुछ समय तक एडमण्ड के पास भी रहा। इसके सिवा उसके पूर्वजों की निज की भी बहुत कुछ सम्पत्ति थी। होरेशियो नेलसन की माता इंगलैण्ड के राजमन्त्री सर राबर्ट वालपोल की परपोती थी, जो लगातार २१ वर्षों तक इंगलैण्ड के प्रधान सचिव (Prime Minister) रह चुके थे। नेलसन का मामा मारिस सर्कलिंग सेना में कप्तान था और फ्रान्सीसियों से कई बार बहुत वीरतापूर्वक लड़ चुका था। कुछ दिनों बाद वह और ऊँचे पद पर पहुँच गया था। नेलसन पर वह अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा रखता था और सब कामों में उसकी सहायता भी करता था। प्रारम्भ में सेना-विभाग में उसी की कृपा से नेलसन की जल्दी उन्नति हो सकी थी।

नेलसन की बाल्यावस्था का हाल लोगों को बहुत ही कम मालूम है। एक बार जब वह बहुत छोटा था, देहात में लड़कों के साथ खेलते खेलते रास्ता भूल गया। घण्टों तक खोजने के बाद अन्त में लोगों ने उसे एक छोटे नाले के किनारे बैठा हुआ पाया। घर पहुँचने पर जब उसकी दादी ने कहा—"मुझे आश्चर्य है कि जंगल में अकेले तुम्हें भय न लगा।" तो उस वीर ने बड़ी निर्भीकता से कहा—"मुझे कभी भय नहीं लगता!" नेलसन उन बड़े बड़े वीरों में से था जिनमें भय की अपेक्षा साहस अधिक होता है। बड़े होने पर वह प्रायः कहा करता था कि अच्छे अच्छे वीर भी रण-क्षेत्र में जाने के समय स्वभावतः कुछ चिन्तित हो जाते हैं। भविष्य की सङ्कटमय दशा के पूरे ज्ञान का ही नाम भय है। भय का अभाव मानों उसकी अज्ञानता है। जिन लोगों ने बड़े बड़े युद्ध और योद्धा देखे हैं उन लोगों को प्राणी-मात्र में भय के अभाव में बहुत अधिक सन्देह है।

कहते हैं कि बाल्यावस्था में उसका पिता उसके भविष्य-जीवन के सम्बन्ध में अनेक बड़ी बड़ी बातें कहा करता था। वह कहता था कि इसे चाहे जिस दशा में छोड़ दिया जाय, यह बहुत शीघ्र उन्नति कर लेगा। बाल्यावस्था से ही उसमें साहसी और धीर होने के अनेक लक्षण दिखाई देते थे। यह लक्षण प्रत्येक बड़े आदमी के लिए परम आवश्यक हैं। लेकिन उनका विकास घर के लोगों को ही भली भांति मालूम हो सकता है, बाहरी लोगों को नहीं।

उसकी प्रारम्भिक शिक्षा नारविच और नार्थ वाशम में हुई थी। नार्थ वाशम में अब तक एक दीवार की ईंट पर नेलसन के हाथ का खोदा हुआ हस्ताक्षर "H. N." वर्त्तमान है। उन दिनों चौदह वर्ष की अवस्था में ही बालकों की शिक्षा समाप्त करा दी जाती थी। लेकिन उसका स्वास्थ्य प्रायः खराब रहा करता था और वह सैनिक या नावि[क] होने के योग्य न था। एक बड़े सेनापति का कथ[न] है कि यदि नेलसन आजकल के जमाने में पैदा हुआ होता तो वह कदापि सेना में भर्ती न किया जाता। यद्यपि उसके बड़े भाई शरीर से हृष्ट पु[ष्ट] थे, पर वह बहुत ही दुबला पतला था और प्रा[यः] बीमार रहा करता था; और उसकी यह दशा अ[न्त] समय तक बनी रही। उसके पिता ने जब उ[से] पहले पहल सेना में भर्ती करना चाहा तो [उ]त्तर मिला कि वह दुर्बल है और कदापि सैनि[क] नहीं हो सकता। उस जमाने में बड़े बड़े सेनापति[यों] के लड़के १५–१६ वर्ष की अवस्था में ही सेना [में] कप्तान हो जाया करते थे। नेलसन को भी कु[छ] अधिक कठिनता नहीं हुई और वह अ[पने] मामा की सहायता और कृपा से शीघ्र ही ए[क] जंगी जहाज पर नौकर हो गया। उस स[मय] (१ ली जनवरी सन् १७७१ को) नेलसन [की] अवस्था बारह वर्ष से कुछ ही अधिक थी। [य]
नेलसन को अपने जीवन में पहले पहल क[भी] वास्तविक दुःख हुआ तो वह अपने मित्रों [और] सम्बन्धियों को छोड़कर जहाज पर जाने के सम[य]। जिस जहाज पर वह नौकर हुआ था, उसका ना[म] "रैसनेबुल" था। जिस समय वह जहाज पर पहुँ[चा] उस समय उसका मामा वहाँ उपस्थित नहीं [था] इसलिए और किसी ने उससे बात तक न की। इससे बालक नेलसन और भी अधिक दुःखी हु[आ] पर तो भी सुख-मय भविष्य की आशा से [उसने] वर्त्तमान कठिनाइयों की कुछ भी परवा न [की] और प्रसन्नतापूर्वक अपना काम जारी रक्खा। प्रा[यः] जिन पुस्तकों को पढ़कर लड़के नाविक होना चा[हते] हैं उनमें समुद्र की कठिनाइयों की अपेक्षा वीर[ता] आदि का वर्णन ही अधिक होता है। बस, [यही] "वीर" होने की लालसा नेलसन को भी [थी]। अपनी इस प्रारम्भिक दशा को अपने जीवन में [उसने] कभी नहीं भूला और उसी के फल-स्वरूप वह [ज]हाज पर आनेवाले नये युवकों से बहुत ही [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण व्यवहार किया करता था और जहाँ तक होता उन्हें चिन्तित या उदास न होने देता था।

इस अवसर पर उस समय के जहाजों का कुछ वर्णन कर देना असंगत न होगा। उन दिनों के जहाज क्या थे, बहुत बड़ी बड़ी साधारण नावें थीं। आजकल की तरह उनके चलाने के लिए बड़े बड़े इंजनों और इतने कोयलों को आवश्यकता नहीं हुआ करती थी। पीने का पानी लाने के लिए उन जहाजों को कभी कभी समुद्र-तट पर भी जाना पड़ता था। प्रत्येक जहाजी बेड़े में ५० से ११० तक तोपें हुआ करती थीं जो ३२ पौण्ड तक के गोले फेंक सकती थीं। आजकल को बड़ी बड़ो तोपों और जहाजों का काम केवल उन्हीं से लिया जाता था। टारपेडो आदि का तो उन दिनों कोई नाम भी न जानता था। उनके स्थान पर एक प्रकार की बड़ी नाव हुआ करती थी जिसे शत्रु-दल में ले जाकर आग लगा देते थे।

उस समय फाकलैंड द्वीप के सम्बन्ध में इंगलैंड और स्पेन में कुछ झगड़ा हुआ था; इसलिए "रैसनेबुल" जहाज लड़ाई पर जाने को था। लेकिन शीघ्र ही स्पेन ने उक्त द्वीप पर से अपना अधिकार हटा लिया इससे लड़ाई रुक गई। एक वर्ष बाद उसका मामा "ट्रायम्फ" नामक जहाज का कप्तान हो गया और उस समय के नियमानुसार अपने भाञ्जे को भी अपने साथ लेता गया। इस बीच में समुद्र की हवा से उसका स्वास्थ्य कुछ अच्छा हो गया था और वह नौ-कार्य्य भी भली भाँति सीख चला था।

सन् १७७३ में इंगलैण्ड की सरकार ने उत्तर ध्रुव का मार्ग ढूँढ़ निकालने के लिए आर्टिक समुद्र (Arctic Sea) की ओर एक मुहिम भेजना निश्चय किया। उक्त समुद्र में जाने के लिए दो बड़े मजबूत जहाज तजवीज किए गए। उत्साही नेलसन ने भी उसी मुहिम के साथ जाने का विचार किया। मामा की सहायता से उसकी यह इच्छा भी पूरी हो गई और उसे जहाजों के साथ जानेवाली एक छोटी नाव की सरदारी मिल गई। लेकिन इस यात्रा में कोई विशेष महत्व की बात नहीं हुई। पहले जहाज स्पिट्ज़बर्जेन के उजाड़ किनारों से होकर चले जहाँ नेलसन ने समुद्र में बरफ के बड़े बड़े पहाड़ देखे। एक स्थान पर बरफ के पहाड़ पर से ३०० फोट की ऊँचाई से कट कट कर बरफ की चट्टानें गिरती थीं। वहाँ से आगे बढ़ने पर नोवा जेम्बला में सब जहाज चारों ओर से बरफ से घिर गए। सब तरफ से बरफ के पहाड़ आकर जहाज़ों से टकराने लगे! ऐसी दशा में जहाजों के चकनाचूर हो जाने का भय था। दो शताब्दी-पूर्व उसी स्थान और उसी अवस्था में कप्तान पेल और उसके बहुत से साथियों के प्राण जा चुके थे। उस समय सब लोग निराश हो चुके थे और जहाज़ छोड़ कर उतरने की तैयारी कर रहे थे। उसी अवसर पर संयोग-वश प्रतिकूल वायु बन्द हो गई और अनुकूल वायु चलने लगी। दो पहाड़ों के बीच थोड़ा सा मार्ग निकल आया और हवा और समुद्र के बहाव की सहायता से सब जहाज उस संकट से निकलकर खुले समुद्र में पहुँच गए। उसी अवसर पर एक बार आधी रात के समय नेलसन अपने एक और साथी सहित चोरी से किनारे पर उतर गया था और वहाँ उसने एक भालू का पीछा किया था। उसकी गोली चूक गई और भालू उलट कर उसपर झपटा था। संयोग-वश जहाज पर से कप्तान ने नेलसन को इस विपद में पड़े हुए देख लिया और वहीं से उसने गोली चला कर भालू को मार डाला। इस प्रकार नेलसन की उस विपत्ति से रक्षा हुई। जहाज पर लौट कर, कप्तान के पूछने पर उसने कहा था—"मैं भालू का शिकार करके अपने पिता के लिए उसका चमड़ा लेना चाहता था।"

बड़ी कठिनता से उस संकट से बच कर सब जहाज निकल आए और उसी वर्ष के अन्त में इंगलैण्ड पहुँच गए। उसी समय ईस्ट इण्डीज़ की ओर कुछ जंगी जहाज़ जानेवाले थे। संसार में भ्रमण करने की नेलसन की बहुत प्रबल इच्छा थी; इसी लिए अपने मामा की कृपा से वह उनमें से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जहाज पर नियुक्त हो गया। उस यात्रा में टामस ट्राउब्रिज नामक उसका एक मित्र भी उसके साथ था जो बाद में कुछ दिनों तक उसके अधीन कप्तान रहा। नेलसन के जहाज का नाम था "सी हार्स"। उसी जहाज पर वह प्रायः दो वर्षों तक बंगाल और फ़ारस की खाड़ियों के बीच में घूमता रहा। इस प्रवास में उसे पूर्व की अनेक बातों का ज्ञान हो गया। दो वर्ष बाद उसका स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया और सन् १७७६ में वह इंगलैण्ड लौट गया। १७ वर्ष की अवस्था में ही उसने आर्टिक समुद्र तथा पूर्व के अनेक प्रदेश देख डाले थे और उनके सम्बन्ध में अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था; पर तो भी उस समय तक उसके गुणों का विशेष विकास न हो सका था।

सन् ७६ की बीमारी से नेलसन का दिल टूट गया था। उसे इस बात की दृढ़ आशंका हो गई कि वह अपने कार्य्य में यथेष्ट उन्नति न कर सकेगा। लेकिन उच्चाकांक्षा से ही मनुष्य में काम करने की शक्ति उत्पन्न होती है; जिन लोगों के उद्देश्य बहुत बड़े नहीं होते, वह लोग बहुत अधिक उन्नति भी नहीं कर सकते। यद्यपि नेलसन के उद्देश्य बहुत बड़े थे पर तो भी उसे अपने मार्ग में अनेक प्रकार के विघ्न दिखलाई पड़ते थे। विशेषतः उसकी अस्वस्थता उसे और भी अधिक निराश किये देती थी। इस प्रकार की निराशा और भय का प्रभाव बहुत बड़े बड़े लोगों पर पड़ा करता है। इब्राहीम लिंकन ने अपनी युवावस्था में एक बार अपने एक मित्र से कहा था—"मैंने अपने जीवन में कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके कारण लोग मेरे मर जाने के बाद मुझे स्मरण करें। मेरे जीवन का उद्देश्य यही है कि मेरे देश और देशवासियों के साथ मेरे नाम और मेरे कामों का सदा के लिए सम्बन्ध हो जाय।" नेलसन भी अपने नाम को अमर करनेवाली ऐसी ही प्रसिद्धि चाहता था। एक बार जब वह इसी प्रकार की निराशा में डूबा हुआ था, उसके मन में आप ही आप किसी विशेष शक्ति का संचार हुआ। वह शक्ति उसे उत्तेजना देने लगी। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं अपने देश की सेवा करूँगा और मेरे देशवासी तथा राजा मेरा संरक्षण करेंगे; मैं भविष्य में ईश्वर पर विश्वास रखकर सब प्रकार के संकटों का सामना करूँगा। कुछ लोग कहते हैं कि किसी फ़रिश्ते ने उसे इस प्रकार की उत्तेजना दी थी। क्रामवेल के विषय में भी यही कहा जाता है कि एक बार जब वह अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था, तब एक फ़रिश्ते ने आकर दरवाजे पर से परदा हटाया और उससे कहा कि तुम्हारी गणना इंगलैण्ड के बहुत बड़े आदमियों में होगी। नेपोलियन के चचा ने भी उसके लक्षण देख कर पहले ही से कह दिया था कि वह किसी समय समस्त संसार का शासन करेगा। चाहे आप उसे फरिश्ता समझें और चाहे कोई दैवी-शक्ति; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उसके कारण मनुष्य में काम करने की बहुत बड़ी शक्ति पैदा हो जाती है। ठीक उसी समय से नेलसन की योग्यता का विकास आरम्भ हुआ। अपने जीवन में उसने जो कुछ किया उसका आरम्भ उसी समय हुआ था। उसने अपने जीवन का केवल एक ही उद्देश्य रक्खा; और वह उद्देश्य "अपने देश को सर्वश्रेष्ठ विभवशाली बनाना" था। उसने कभी स्वयं धनवान् या यशस्वी होने का विचार नहीं किया इसी लिए दरिद्रता भी किसी अंश तक अन्त तक उसके साथ लगी रही। लेकिन जो लोग वास्तविक देश-सेवा करना चाहते हैं, वह लक्ष्मी की कभी परवा नहीं करते। नेलसन भी उन्हीं में से एक था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

अमेरिका का युद्ध ।

(सन् १७७६ से १७९३ तक)

इस समय नेलसन ईस्ट इण्डीज में था उस समय इंगलैंड की पारलीमेंट के लगाए हुए करों के कारण अमेरिकन उपनिवेशों में बहुत असन्तोष फैल रहा था । फ्रांस और स्पेनवालों के व्यवहार बहुत ...ग्ध हो रहे थे और लोग युद्ध के लिए उपयुक्त ...य की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उस समय युरोप की ...यः सभी शक्तियाँ इंगलैंड के विरुद्ध हो रही थीं ...र तरह तरह के षड़यन्त्र रचती थीं । युरोप क्या ...स्त संसार में भी ढूँढ़ने से अँगरेजों का कोई ...न मिलता था; हाँ, चारों ओर शत्रु बहुत से ...न्न हो गये थे।

फ्रांस की जल-सेना ने उसी समय "सात वर्ष...ले" प्रसिद्ध युद्ध से छुट्टी पाई थी। अब वह ...ग अँगरेजों से लड़ने की तैयारियाँ कर रहे थे। ...रेजों के पास पोर्ट्समाउथ में केवल ८०० जंगी ...ज बनानेवाले कारीगर थे; लेकिन फ्रांस के ब्रेस्ट ...र में ३००० कारीगर काम कर रहे थे। युद्ध की ...ारियाँ बड़ी फुर्ती से की जा रही थीं। यहाँ तक "पेगेस" नामक एक जहाज़ केवल अस्सी दिनों में ...र करके समुद्र में छोड़ दिया गया था। सैनिकों ...र नाविकों की संख्या दिन पर दिन बढ़ाई जाती थी ...र भिन्न भिन्न नगरों और प्रान्तों की प्रजाएँ अपनी ...-हितैपिता का परिचय देने के लिए चन्दे से बड़े ...जहाज बनवाकर अपने सम्राट् और साम्राज्य ...भेंट करते थे। सन् १७७८ में फ्रांसवालों के ...स ६९ बड़े बड़े जंगी जहाज़ थे। ठीक यही दशा ...न की भी थी। वहाँ भी अँगरेजों से लड़ने के ...र नवीन जल-सेना भर्त्ती की जा रही थी। सन् ...७ तक स्पेनवालों ने भी ६२ बड़े जहाज तैयार ...र लिये। शायद उस समय तक उन लोगों को यह बात मालूम नहीं थी कि केवल जहाज़ों और तोपों से ही काम नहीं चल सकता; उसके साथ में योग्य कार्य्य करनेवालों की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है। स्पेन ने जो नए आदमी रक्खे थे वह एकदम अशिक्षित और अयोग्य थे और इसी लिए युद्ध में उनका कोई अच्छा उपयोग न हो सका था।

अमेरिकन उपनिवेशों से सब लोगों को सहानुभूति हो चुकी थी और वह उनकी सहायता करने के लिए तैयार हो रहे थे। उस समय यदि राजा या प्रजा दोनों में से कोई थोड़े विचार से काम लेता तो शायद एक बहुत बड़े युद्ध होने की नौबत न आती। उपनिवेश (वर्त्तमान् युनाइटेड स्टेट्स) वालों की ओर से लड़ने के लिए फ्रांस तैयार ही हो चुका था और स्पेन सब कामों में उसका साथी था। इसी लिए युद्ध के आरम्भ में ही अँगरेज़ों ने निश्चय कर लिया था कि अब युनाइटेड स्टेट्स हाथ से निकल जायगा। लेकिन तो भी अँगरेज उन पर अपना दाँत गड़ा चुके थे और उसे सहज में निकल जाने देना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने अमेरिका से फ़्रांसीसियों को निकाल देने में अपनी ओर से असंख्य धन और बल लगाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी।

युद्ध के आरम्भ में ही अँगरेज़ों को एक बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा। उस समय व्हिग और टोरी (Whig and Tory) दलों के परस्पर वैमनस्य के कारण अँगरेज़ी सेना के लिए अच्छे सेनापति नहीं मिलते थे। उन दिनों की गवर्नमेंट टोरी थी और सेना-विभाग का अफ़सर कैपेल, व्हिग दल का था। सेना में लोगों को अपनी इज़्ज़त बचाना कठिन होता था। मन्त्रि-मण्डल लोगों की योग्यता का निर्णय न कर सकता था। उसी अवसर पर एक बार पॉल जोन्स नामक एक अमेरिकन कप्तान ने इंगलैंड जाकर समुद्र तट पर से एक अँगरेज पीयर को जबरदस्ती उठा ले जाना चाहा था और ह्वाइटहेवेन नामक स्थान को जला देने की चेष्टा की थी। सन् १७७९ से ८१ तक इंगलिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चैनल में फ्रांस श्रौर स्पेनवालों का बहुत ज़ोर था। उस समय अँगरेज़ों की प्रायः सभी अच्छी सेनाएँ अमेरिका में थीं श्रौर इंगलैंड में बाहरी आक्रमण रोकनेवाला कोई भी न था। यदि शत्रु चाहते तो बड़ी सरलता से इंगलैंड अपने अधीन कर सकते थे। लेकिन इतिहास के अन्तर्गत यह प्रश्न समस्त संसार को चक्कर में डालनेवाला है कि उन लोगों ने ऐसा अच्छा अवसर हाथ से क्यों जाने दिया?

जिस नेलसन का अन्तिम जीवन भयंकर युद्ध करने के लिए जगत् प्रसिद्ध है उस नेलसन ने अभाग्यवश इस बड़े युद्ध में कुछ भी काम न किया। उसने शत्रु-दल तक पहुँचने की बहुत चेष्टा की पर उसे शायद बन्दूकों श्रौर तोपों का धुआँ देखना भी नसीब न हुआ। सन् १७७६ में वह लेफ़टिनेण्ट बनाया गया था। उस समय वह केवल अट्ठारह वर्ष का था श्रौर इस लड़ाई में उसे युद्ध-स्थल से दूर रहकर निगहबानी करने का काम सपुर्द किया गया था। इसके बाद वह एक जहाज का अधिकारी बना दिया गया था श्रौर एक ऐसे योग्य अफसर के अधीन काम करता था जो उसके साथ अपने पुत्रों की भाँति व्यवहार करता था।

उसी अवसर पर एक बार एक अमेरिकन जहाज को नेलसनवाले जहाज ने पकड़ लिया था। उस अमेरिकन जहाज का काम अँगरेजी जहाजों को लूटना था। उस समय समुद्र में तूफान आया हुआ था। एक छोटी नाव पर नेलसन, उसका अफ़सर श्रौर थोड़े से आदमी थे। तूफ़ान के कारण अमेरिकन जहाज़ पर जाकर लूट का माल ले आने का किसी को साहस न होता था। ऐसी दशा में नेलसन सब से आगे बढ़ा श्रौर एक दूसरी नाव पर सवार होकर अमेरिकन जहाज़ पर से सारा माल उठा लाया। यद्यपि उस समय तूफ़ान ज़ोरों पर था श्रौर नेलसन के साथ बहुत ही थोड़े आदमी थे, तोभी नेलसन सब सामान लेकर सकुशल अपने जहाज पर लौट आया।

इसके बाद धीरे धीरे नेलसन की तरक्की होने लगी। पहले वह एक "शूनर" (एक प्रकार का मस्तूलवाला जहाज़) का अधिकारी बनाया गया श्रौर उसके बाद एडमिरल पारकर के अधीन, अपने मामा की सिफारिश से, अव्वल दरजे का लेफ्टिनेन्ट बन गया। कुछ समय बाद उसकी श्रौर तरक्की हुई श्रौर वह कमांडर बना दिया गया। उस समय उसके अधीन एक बड़ा जहाज भी था। कमांडर बनने के समय उसकी अवस्था केवल बीस वर्ष की थी। उसकी इतनी जल्दी जल्दी तरक्की होने का कारण मामा की सिफारिश श्रौर उसकी योग्यता के सिवा यह भी था कि अमेरिका के जिस मध्यवर्ती प्रान्त में वह नियुक्त था वहाँ का जल वायु अच्छे स्वास्थ्यवालों की अपेक्षा नेलसन सरीखे रोगी के अधिक अनुकूल था। उसका अफ़सर एडमिरल श्रौर उसकी स्त्री, दोनों ही उससे बहुत प्रसन्न थे श्रौर उसे अपने पुत्र के समान मानते थे। आजकल साधारणतः किसी व्यक्ति को ३५–४० वर्ष की अवस्था से पहले कमांडर का पद नहीं मिलता; लेकिन उस समय सेना विभाग में बहुत जल्दी तरक्की होती थी। जल-युद्ध में नेलसन ने श्रौर स्थल-युद्ध में नेपोलियन ने समस्त जगत् को जिस प्रकार चकित कर दिया था, उसका कारण यही था कि उन लोगों को थोड़ी अवस्था में ही ऊँचा पद श्रौर अधिकार मिल गया था।

कमांडर होने के दूसरे ही वर्ष नेलसन पोस्ट कैप्टन हो गया। लेकिन उस पद पर उसे कोई बड़ा काम करने का अवसर नहीं मिला। तो भी जमायका टापू में उसने ८०० पौण्ड के इनाम पाए थे। सन् १७८० में स्पेन के अधिकृत नगरों श्रौर कुछ किलों को अपने अधीन करके अँगरेजों के लिए पैसफिक समुद्र का रास्ता खोलने के लिए एक मुहिम भेजी गई थी। उस मुहिम में नेलसन ने खूब काम किया श्रौर बहुत नाम पाया। वेस्ट इण्डीज का वह भाग जहाँ यह मुहिम गई थी बहुत बीहड़ था श्रौर वहाँ का जल-वायु भी खराब था। तिसपर मौसिम भी बरसात का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए वहाँ के जंगलों में बहुत से सैनिक बीमार होकर मर गए। नावों को बड़ी कठिनता से खींच-कर नदी द्वारा एक निर्दिष्ट क़िले तक ले जाने में सत्तरह दिन लग गए थे। वहाँ पहुँचते ही नेलसन तुरन्त चढ़ाई कर देना चाहता था क्योंकि सेना में बीमारी फैल गई थी और विलम्ब करने में अपनी ही अधिक हानि की सम्भावना थी। लेकिन सैनिक इस पर राज़ी न थे। इसलिए वह किला अपने अधीन करने में उसे बहुत सी कठिनाइयाँ सहनी पड़ी थीं। अन्त में किला उसके हाथ आ गया। लेकिन बीमारी के कारण उसके १८०० आदमियों में से केवल ३०० आदमी बच रहे। यद्यपि वह स्वयं बीमार होकर मरते मरते बच गया तो भी उसे वहाँ जो अतिसार और ज्वर हुआ था, उसका प्रभाव बाद में बहुत दिनों तक बना रहा। जमायका पहुँचने पर वहाँ के एडमिरल की स्त्री लेडी पारकर ने उसकी बहुत सेवा शुश्रषा की और वह बहुत कठिनता से अच्छा हो सका।

तबियत कुछ संभल जाने पर नेलसन एक बड़े जहाज का अधिकारी बनाया गया लेकिन अस्वस्थता के कारण उस समय उसका इंग्लैण्ड लौट जाना परम आवश्यक था। इसलिए वह इंगलैण्ड लौट गया और वहाँ अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए बाक नामक स्थान में रहने लगा। उस समय बाक का जल-वायु बहुत अच्छा था और बड़े बड़े लोग अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए वहाँ जाकर रहा करते थे। बाक पहुँचने के समय नेलसन में उठने बैठने तक की शक्ति न थी। वह सेवा का कार्य्य करते करते इतना बीमार हो गया था इसलिए वहाँ एक सज्जन डाकृर ने बिलकुल मुफ़्त में उसका इलाज किया। डाकृर उसे देखने के लिए दिन में तीन बार आता था और उसे देखकर जाता था। उसका बायाँ हाथ और पैर बिलकुल बेकाम हो गया था इसलिए उस समय लोगों को उसके बचने की बहुत ही कम आशा थी।

सन् १७८१ के अगस्त में वह अच्छा हो गया और उसे फिर एक जहाज मिल गया। उस जहाज में काम करनेवाले आदमियों से वह अधिक प्रसन्न रहता था और अपने मित्रों से उनकी प्रशंसा किया करता था। एक बार वह व्यापारियों के जहाज़ के साथ बाल्टिक की ओर भेजा गया था; मार्ग में उसने डाकुओं के एक जहाज का पीछा किया लेकिन वह उसे पकड़ न सका। वहाँ से लौटने पर वह क्वेबेक भेज दिया गया। लेकिन इस नियुक्ति से वह बहुत अप्रसन्न था क्योंकि वहाँ फिर उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाने का भय था। क्वेबेक में उसने एक फ्रेञ्च-कनेडियन सुन्दरी को अपनी प्रेमिका बनाया। प्रेम-मार्ग में उसने पहले पहल वहीं पैर रक्खा था। उस स्त्री के प्रेम में वह यहाँ तक फँस गया था कि उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग देने के लिए तैयार था। घर बार, नौकरी, देशसेवा सबको वह तिलाञ्जली देने पर उतारू हो गया था। कुछ वर्ष बाद उसकी ठीक यही दशा लेडी हैमिलटन के लिए भी हुई थी। क्वेबेकवाली स्त्री के लिए उसने अपनी नौकरी छोड़ देना निश्चय कर लिया था। लेकिन उसके देश के सौभाग्यवश उस स्त्री के माता पिता राज़ी नहीं हुए, साथ ही उसके मित्रों ने भी उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया और अन्त में उसने अपना विचार बदल दिया।

क्वेबेक से चलकर वह न्यूयार्क पहुँचा। उस समय वहाँ लार्ड हुड का कैम्प पड़ा हुआ था। इससे पूर्व १२ अप्रैल सन् १७८२ को लार्ड हुड ने फ्रान्सीसियों को बुरी तरह परास्त किया था और वह लोग अंगरेजों से सन्धि करने पर तैयार हो गए थे। लेकिन युनाइटेड स्टेटस उस समय तक स्वतन्त्र हो चुका था। न्यूयार्क में हुड से मिलकर नेलसन ने उसे बहुत प्रसन्न कर लिया था और उसके साथ वेस्ट इण्डीज़ जाने की इच्छा प्रकट की थी। उस समय अँगरेज़ कप्तानों को अमेरिका के भिन्न भिन्न भागों में अपनी कारगुजारी दिखलाकर बड़े बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनाम पाने की धुन सवार थी। देश के लिए वास्तविक कार्य करने की ओर लोगों की प्रवृत्ति बहुत ही कम थी। वहीं न्यूयार्क में इंगलैण्ड के भविष्य अधिपति चतुर्थ विलियम से उसका परिचय हुआ जो उस समय वहाँ जल-युद्ध का काम सीखने आए हुए थे। प्रिन्स विलियम ने उसकी पुराने ढंग की विचित्र पोशाक की प्रशंसा करते हुए उसके सम्बन्ध में लिखा था—"उससे बातचीत करके मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। युद्ध-विद्या के सम्बन्ध में बातें करते समय उसमें जो उत्साह दिखाई पड़ता था उससे मालूम होता था कि वह कोई साधारण आदमी नहीं है। अमेरिका के युद्ध के समय सदा उसकी यही इच्छा रही कि वह एक जंगी बेड़े को अपनी अधीनता में रख कर युद्ध करे। इनाम पाने की ओर उसका कभी ध्यान न गया।"

एक बार नेलसन के इनाम पाने पर जब एडमिरल डिग्बी ने प्रसन्नता प्रकट की तो उसने कहा—"इनाम के लिए नहीं बल्कि प्रतिष्ठा के लिए काम करने का यह स्थल है।" इस प्रकार धन की अपेक्षा प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्व देनेवाले बहुत से लोग हो गए हैं और वीर नेलसन का उक्त कथन सदा ध्यान रखने योग्य है। अन्त समय तक नेलसन के दरिद्र और कर्जदार रहने का भी मुख्य कारण शायद यही था। यदि अपने अन्तिम जीवन में वह चाहता तो अपने सिवा और भी अनेक योद्धाओं के इनाम वह स्वयं मार रखता; लेकिन उसने कभी ऐसा नहीं किया। बल्कि वह उलटे अपने इनाम औरों को दे दिया करता था।

युवक नेलसन से लार्ड हुड इतना अधिक प्रसन्न था कि उसने साधारण शिक्षा के लिए प्रिन्स विलियम को उसी के पास भेजा। नेलसन और विलियम दोनों ही एक दूसरे से बहुत हिले मिले रहते थे। लेकिन विलियम का स्वभाव कुछ उद्दण्ड था और वह अपने अफसरों और पिता से लड़कर वहाँ से चले गये थे इसलिए उनकी मित्रता से नेलसन किसी प्रकार का लाभ न उठा सका।

उन्हीं दिनों सब बातों में इंगलैंड बहुत अधि[illegible] उन्नति कर चला था। दक्षिण की ओर न्यूसा[illegible] वेलस में अंगरेज़ों का अधिकार हो गया था, [illegible] कारख़ानों में भाप के इंजनों का प्रचार तेज़ी [illegible] बढ़ रहा था, व्यापार और जल-शक्ति में [illegible] अधिक वृद्धि हो रही थी और दिन पर दिन उ[illegible] प्रतापसूर्य्य चढ़ता जाता था।

हुड के साथ वेस्ट-इण्डीज़ जाने में नेलसन [illegible] कोई लाभ नहीं हुआ। कोई अच्छा काम [illegible] प्रसिद्धि प्राप्त करने का उसे कोई अवसर [illegible] मिला। उसका जहाज़ इंगलैण्ड लौटा दिया [illegible] और बेकार रहने के कारण उसकी तनख़ाह [illegible] आधी कर दी गई। सन् १७८४ में अपनी उन्नति[illegible] निराश होकर उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की [illegible] सेना में कमांडर का पद पाने की चेष्टा की पर[illegible] व्यर्थ हुई। लेकिन यह भी उसके लिए एक प्र[illegible] से बहुत अच्छा ही हुआ। क्योंकि यदि वह [illegible] की ओर चला आता तो उसे अपनी उच्चाकांक्षा[illegible] करने का वह अवसर न मिलता जो उसे अन्तिम [illegible] में मिला था। मार्च में उसे एक दूसरा जहाज़ [illegible] था और उस पर सवार कराके उसे कमांडर[illegible] की स्त्री लेडी ह्यूग तथा और बहुत से यात्रियों [illegible] वेस्ट इंडीज की ओर ले जाना पड़ा। लेकिन [illegible] कारणों से लेडी ह्यूग से उसकी नहीं बनी। लार्ड [illegible] का स्वभाव भी नेलसन को पसन्द नहीं आया। [illegible] एक स्थानों पर उसने उनके स्वभाव की शिका[illegible] भी की है। लेकिन उसके साथ कालिंगउड [illegible] एक और कप्तान था, जो बहुत योग्य और उस[illegible] समान देशभक्त था। उसके साथ रहने में उसे [illegible] प्रसन्नता होती थी। एण्टीगुआ नामक स्थान में [illegible] एक सधवा स्त्री मिली थी। उसके स्वभाव [illegible] व्यवहार की भी नेलसन ने बहुत अधिक प्रशं[illegible] है। इस अवसर पर यह बतला देना भी अनु[illegible] न होगा कि नेलसन को स्त्रियों का साथ [illegible] अधिक पसन्द था और उनसे शिष्ट व्यवहार [illegible] भी वह खूब जानता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिनों काम करने के बाद नेलसन और उसके अफसर एडमिरल हुड से बहुत विरोध हो गया। इस विरोध का कारण हुड का कर्तव्य-च्युत होना था। उस समय इंगलैण्डवालों ने नैविगेशन लाज़ (Navigation Laws) बनाए थे। उन नियमों के अनुसार केवल अँगरेज़ी जहाज़ों के अतिरिक्त और किसी को उपनिवेशों में जाकर व्यापार करने का अधिकार नहीं था। यह नियम अंगरेजों ने स्वयं अपने लाभ के लिए बनाए थे। इस युद्ध से पहले अमेरिकन उपनिवेशों के निवासियों को अंगरेज़ी प्रजा होने के कारण वेस्ट इण्डीज़ में अपने जहाज ले जा कर व्यापार करने का पूर्ण अधिकार था। लेकिन इस युद्ध के बाद वह लोग स्वतन्त्र हो जाने पर भी अपना वह पूर्व अधिकार बनाए रखना चाहते थे। वह लोग अपने जहाज ले जाकर द्वीपों में व्यापार करते थे और द्वीपनिवासियों को उनसे सस्ती चीजें मिलती थीं और साथ ही उनकी चीज़ों की भी खपत होती थी इसलिए वह लोग भी उपनिवेशवालों को इस कार्य्य में सहायता और उत्तेजना देते थे। इस प्रकार के व्यापार को रोकना एडमिरल और कप्तानों का काम था लेकिन एडमिरल हुड से वह न हो सकता था। जिस समय नेलसन लीवार्ड द्वीप में पहुँचा उस समय वहाँ इस प्रकार का व्यापार प्रायः हुआ करता था।

नेलसन उस समय सब से बड़ा कप्तान था और एडमिरल के बाद दूसरे नंबर का अधिकारी था। एडमिरल की कर्तव्य-विमुखता और वहाँ होनेवाले व्यापार को देखकर उसे बहुत दुःख हुआ। उसने देखा कि इस प्रकार के व्यापार से उसके देश को बहुत बड़ा धक्का पहुँचेगा। उस समय यदि नेलसन के स्थान पर और कोई व्यक्ति होता तो वह अपनी भविष्य हानि के भय से चुपचाप बैठा रहता और अपने अफसर से विरोध न करता। लेकिन नेलसन निर्भीक आदमी था और उसका ध्यान सदा अपने कर्त्तव्य की ओर रहता था; इसलिए उसने सब बातों की परवा छोड़ कर अपने अफसर का विरोध किया और उससे वैमनस्य उत्पन्न किया। नेलसन की शारीरिक शक्ति के विषय में तो बहुत सी बातें सुनने में आती हैं; लेकिन उसकी मानसिक शक्ति की प्रबलता का भी यह एक बहुत अच्छा उदाहरण है।

इस विषय में उसके मित्र कालिंगउड ने भी उसका पूरा साथ दिया। सब से पहले उन दोनों ने मिलकर एडमिरल का ध्यान उस कानून की ओर आकर्षित कराया; लेकिन एडमिरल की बातचीत से उन लोगों को यह मालूम हुआ कि मानो उसे उस कानून का हाल ही नहीं मालूम है। इसलिए उन लोगों ने स्वयं उस पर जोर डालकर उससे वह कानून वहाँ जारी कराया। उस समय कई अमेरिकन जहाज व्यापार करने के लिए निकले हुए थे इसलिए सब लोग भयभीत हो गए। द्वीपों के निवासी और गवर्नर भी बहुत बिगड़ गए। उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए नेलसन स्वयं लिखता है—"वहाँ के निवासियों में मैं सर्व-प्रिय नहीं हो सका और न मैंने कभी किसी के घर में पैर रक्खा। और यह सब बातें केवल मेरे देश-हित की ओर उचित ध्यान रखने के कारण ही हुई थीं।" एक बार उपनिवेश के कुछ निवासियों ने मिलकर एडमिरल पर हमला भी किया था। इसलिए लाचार होकर बेचारे वृद्ध एडमिरल को फिर दब जाना पड़ा और उसने आज्ञा दे दी कि अमेरिकन जहाजों से किसी प्रकार की रोक टोक न की जाय।

अब नेलसन बड़ी कठिनता में पड़ा। यदि वह इस आज्ञा का पालन करता तो वैसा करना नियम-विरुद्ध होता और साथ ही उससे उसके देश का अहित भी होता था। और यदि वह उस आज्ञा के विरुद्ध कार्य्य करता तो सेना के नियमानुसार दोषी और दण्डित होता। सेना में सबको आरम्भ से आज्ञा-पालन की यथेष्ट शिक्षा दी जाती है और जो व्यक्ति अपने अफसर की आज्ञा नहीं मानता वह दण्डित होकर सदा के लिए निकम्मा हो जाता है। इस काम में उसे अपनी नौकरी जाने के सिवा आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हानि का भी भय था। क्योंकि यदि वह एडमिरल की आज्ञा से चलनेवाले जहाजों को रोकता तो उन द्वीपों के विचारालयों में उस पर हरजाने के दावे होते और उसे हरजाने के रुपये देने पड़ते; और अन्त में हुआ भी वही। एक नए और धनहीन अफसर के लिए वह स्थिति बड़ी ही भयंकर थी; लेकिन नेलसन जरा भी भीत या विचलित नहीं हुआ। उसने घमण्ड और दृढ़ विश्वास के साथ लिखा था—"मुझे भरोसा है कि अपने विचार की सत्यता और अपने देश के व्यापार की रक्षा के लिए ही मेरा सर्वस्व कदापि नष्ट न होगा।"

अब चारों ओर से नेलसन पर विपत्तियाँ आने लगीं। लीवार्ड द्वीप के गवर्नर सर शरली से नेलसन ने मिलकर इस विषय में बातचीत की। गवर्नर ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया और अपने अफसर का विरोध न करने की राय दी। उसने नेलसन से यह भी कहा कि वृद्ध और अनुभवी जनरल कभी युवक छोटे अफसरों से सलाह नहीं लिया करते। इस पर नेलसन ने गर्व-पूर्वक कहा—"महाशय! मैं इस समय उतना ही बड़ा हूँ जितना बड़ा इंगलैण्ड का प्रधान सचिव। और मैं अपने आपको जंगी बेड़ों का प्रबन्ध करने के लिए उतना ही उपयुक्त और योग्य पाता हूँ जितना समस्त साम्राज्य का प्रबन्ध करने के लिए वह प्रधान सचिव उपयुक्त और योग्य है।" उसी समय नेलसन पर मुकदमा चलाने के लिए चन्दा किया गया और उसमें चार हजार पाउण्ड जमा हो गए। नेलसन अपने जहाज पर ही बन्द कैदियों की भाँति रहा करता था; क्योंकि स्थल पर उतरते ही वह पकड़ा जाता। उस विपत्ति के अवसर पर एकमात्र कालिंगउड ही प्रकाश-रूप से नेलसन के पक्ष पर था।

नेलसन पर एडमिरल बहुत ज्यादा नाराज था और उसका सत्यानाश करने की चिन्ता में था। तमाम बेड़ों में खलबली पड़ गई थी; लेकिन सब लोग यह बात अवश्य स्वीकार करते थे कि नेलसन का काम कर्त्तव्य और न्याय की दृष्टि से बहुत ठीक है। लेकिन मुकदमे में बड़ी विलक्षणता हुई। अंगरे[ज] सरकार ने मुकदमे का कुल खर्च दिया और इस[के] सिवा नेलसन को नहीं बल्कि उलटे एडमिरल को इस कार्य्य के लिए सरकार से बहुत धन्यवा[द] मिला। तो भी नेलसन को इस बात का विश्वास था कि उसने केवल अपना कर्त्तव्य पाल[न] किया है और वह वास्तव में दोषी नहीं है। अ[पने] सहायकों की ओर दृष्टि दौड़ाते हुए उसे एसिस्ट[ेंट] के एडमिरल कमिश्नर की स्त्री श्रीमती मौट्रे [का] ध्यान आया; लेकिन उसके अभाग्यवश, अपने [पति] की बीमारी का हाल सुनकर वह उसी स[मय] इंगलैण्ड जा रही थीं। श्रीमती मौट्रे से उसे ब[हुत] कुछ आशा थी; और उसे और कोई सहायक दि[खाई] न देता था। इसलिए एकदम अकेला पड़ जा[ने के] कारण वह बहुत अधिक दुःखी हुआ।

लाचार होकर नेलसन नेविस पहुँचा [और] वहाँ के प्रेसिडेण्ट की भतीजी श्रीमती निस्बेट [से] मिला। स्त्रियों से नेलसन स्वभावतः ही जल्दी मिल जाया करता था इसलिए श्रीमती निस्बे[ट से] उसकी अच्छी जान पहचान हो गई। उसने [जो] पत्र उसे लिखे हैं उनसे प्रकट होता है कि उ[सकी] मित्रता बहुत से अंशों में प्रेम की सीमा तक [पहुँच] गई थी। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि श्रीमती नि[स्बेट] उसके हृदय में पूरा पूरा स्थान न पा सकी [थीं।] उनकी यह मित्रता धीरे धीरे लोगों पर विदि[त होने] चली; और एक बार प्रिन्स विलियम ने उन[के] के सम्बन्ध में कहा भी कि नेलसन उसे प्या[र की] दृष्टि से नहीं बल्कि आदर की दृष्टि से देखता [है।] नेलसन ने उत्तर दिया—"हाँ, आपका कहना [...] ठीक है। मेरा प्रेम आदर की भित्ति पर ही [...] और इसी लिए वह शीघ्र नष्ट नहीं हो सक[ता।"] आगे चलकर अन्त में श्रीमती निस्बेट कुछ [...] हो गई और नेलसन का जी उससे फिर गया [...]

श्रीमती निस्बेट को उसके चचा से कुछ [...] सहायता मिलती थी और साथ ही उसकी [...] सम्पत्ति भी उसे ही मिलने की आशा थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार नेलसन को भी उसके चचा से कुछ मासिक
वृत्ति मिला करती थी। सन् १७८७ में दोनों
का विवाह हो गया। उसी वर्ष के मध्य में नेल-
सन इंगलैण्ड लौट गया। लगातार तीन वर्ष तक
वेस्ट इण्डीज के खराब जल-वायु में रहने पर भी
उसका एक भी आदमी न मरा। इंगलैण्ड लौटने
पर वह स्वयं फिर बीमार हो गया। पहले उसे
जाड़े में जुकाम हुआ और फिर बुखार आया। उस
समय उसकी स्त्री वहाँ से सात मील की दूरी पर
एक व्यापारी जहाज पर रहती थी। उसी वर्ष
दिसम्बर में नेलसनको उसका जहाज खाली हो जाने के
कारण आधा वेतन, १२० पौण्ड वार्षिक मिलने लगा।
न तो सेना विभाग में और न राज-दरबार में ही
उसका आदर हुआ। इंगलैण्ड के तत्कालीन अधि-
पति तृतीय जार्ज शायद इसलिए उससे नाराज
रहते थे कि वह प्रिन्स विलियम के मित्रों में से था।
वेस्ट इण्डीज में नेलसन ने कई ठीकेदारों की
चोरियाँ और जालसाजियाँ पकड़ी थीं जिनमें शायद
उसके देश को बीस लाख पाउण्ड की हानि सहनी
पड़ी थी। इसलिए देश-हित के विचार से उसने बड़े
अधिकारियों का ध्यान उस ओर आकर्षित कराया।
उसी के उद्योग से उक्त धन का कुछ अंश निकल
आया और भविष्य में ऐसी जालसाजियों को
रोकने की ओर अधिकारियों का ध्यान रहने लगा।
लेकिन इन सब कार्रवाइयों से नेलसन का किसी
प्रकार का लाभ न हुआ। किसी ने उसकी देश-
हितैषिता की प्रशंसा भी न की। ठीकेदार बड़े बड़े
अमीर और बलवान् थे इसलिए उलटे वह बेचारा
उन लोगों के शत्रुओं में गिना जाने लगा। उसने
कई बार पूरे वेतन पर काम पर बहाल होने की
प्रार्थना की पर उसका कुछ फल न हुआ। यदि कुछ
फल हुआ भी तो वह यही कि उसके बड़े अधिकारी
उससे चिढ़ गए।

अब नेलसन को सेना-विभाग में कोई काम
नहीं था; इसलिए वह अपने जन्म-स्थान बर्नहाम में
रहकर रहने लगा। सम्भवतः वहाँ वह अपना समय
प्रसन्नता-पूर्वक ही व्यतीत करता था; उसकी स्त्री
और पिता दोनों उस समय उसके साथ थे।
वहाँ वह खेती बारी और चिड़ियों का शिकार किया
करता था। अब तक नेलसन की शिक्षा भली भाँति
न हो सकी थी और बीच बीच में उसमें अनेक विघ्न
पड़ते थे। इसलिए अपने गाँव में रहकर उसने
पढ़ना आरम्भ किया। या तो अधिक पढ़ने और
या किसी और कारण से उसकी आँखें खराब हो
चलीं और उसे कष्ट होने लगा। इसी प्रकार धीरे
धीरे पाँच वर्ष बीत गए। इन पाँच वर्षों में प्रायः
उसे यही चिन्ता लगी रहती थी कि अभी तक वह
अपना उद्देश्य पूरा न कर सका। संसार में युद्ध के
उपक्रम और युद्ध हुआ करते थे लेकिन नेलसन
का किसी को ध्यान भी न था; सब लोग उसे एक-
दम भूल गये थे क्योंकि वह संसार से प्रायः एकदम
बाहर हो गया था।

---

(३)

फ्रान्स की राज्यक्रान्ति और युद्ध।

(सन् १७९३ से १७९७ तक)

जिस समय नेलसन अपने गाँव में रह
कर खेती बारी करता था उस
समय फ्रान्स की प्रसिद्ध राज्य-
क्रान्ति का आरम्भ हो गया था।
फ्रान्स की जल-सेना उस समय
बहुत ही अव्यवस्थित थी। इस अव्यवस्था के उत्तर-
दाता फ्रान्स के कुछ समदर्शी विद्वान् थे जो इस
सिद्धान्त का प्रचार करते थे कि एक मनुष्य को
दूसरे मनुष्य पर शासन करने का कोई अधिकार
नहीं है। उधर सेना-विभाग का मूल-मन्त्र "आज्ञा-
पालन" था जिसका फ्रान्स की सेना में नितान्त
अभाव था। इसलिए सैनिकों को "आज्ञा-पालन"
का उपदेश करने के लिए राज्य की ओर से एक
उपदेशक ब्रेस्ट भेजा गया। उस व्यक्ति का नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेन एण्ड्र्‌ था। सैनिकों के मध्य में उसने बड़ी बड़ी वक्तृताएँ दीं। उसने उन लोगों को भली भाँति समझा दिया कि यदि हमारी जल-सेना विद्रोहियों में न मिल जायगी तो उसके शत्रु सदा परास्त होते रहेंगे और उसकी जीत होगी। लेकिन इस उपदेश का जो प्रभाव और फल हुआ वह तो जगत्-विदित ही है।

जो शोचनीय दशा विद्रोही जल-सेना के अफ़सरों और सिपाहियों की थी वही दशा उनके जहाजों और सामान की भी थी। उनके मस्तूल तो बहुत बड़े बड़े थे पर पाल छोटे और पुराने, रद्दी कपड़ों के थे। रस्से आदि भी पुराने ही थे और तूफ़ान में उनका कोई उपयोग न हो सकता था। बाल्टिक समुद्र के जिस मार्ग से सन, पटुआ आदि फ़्रान्स जाता था उसे अँगरेजों ने रोक रक्खा था। उनकी तोपें भी भारी और भद्दी थीं और उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में बहुत कठिनता होती थी। जहाज के लोहे के बन्द और बाल्टू भी जल्दी टूट और खुल जाते थे। इसलिए जब कभी फ़्रान्सीसी बेड़ा युद्ध करने के लिए समुद्र में आगे बढ़ता था तो इन्हीं सब कठिनाइयों और त्रुटियों के कारण उसे फिर पीछे लौट जाना पड़ता था।

अँगरेजी जहाज जब कभी अवसर पाते तो इधर उधर फ़्रान्सीसियों को पकड़ लेते थे। अँगरेजी सैनिक शिक्षित और व्यवस्थित थे और फ़्रान्सीसी सैनिक बिलकुल नये और अव्यवस्थित। यद्यपि देशहितैषिता दोनों में ही भरी थी लेकिन फ़्रान्सीसियों में शक्ति और उत्साह का अभाव था। अँगरेजों के पास बहुत अच्छे अच्छे नाविक थे लेकिन दूसरी ओर इनकी बहुत कमी थी। आरम्भ में अँगरेजी सेना में भी कुछ अव्यवस्था अवश्य थी जिसके कारण वह अपनी विशेषताओं का पूरा उपयोग न कर सकी। उस समय नेलसन गर्वपूर्वक कहा करता था कि जल-युद्ध में एक अँगरेज तीन फ़्रान्सीसियों पर भारी है और उसका यह कथन बहुत से अंशों में ठीक भी था।

जनवरी सन् १७९३ में अँगरेजी सेना सज्जित होने लगी और अधिकारियों का ध्यान नेलसन की ओर भी गया। लोगों को उसका स्मरण था और अब देश को उसकी सेवा की आवश्यकता थी। उसे ६४ तोपोंवाला एक जहाज दिया गया और इस प्रकार अधिकार-प्राप्त कप्तान होने की उसकी इच्छा पूरी हुई। उस समय उसके पूर्ण यौवन का विकास था और उसकी अवस्था ३४ वर्ष की थी। भविष्य उन्नति के लिए उसके सामने बहुत बड़ा मैदान था। इसके सिवा अब तक वह अपने निर्भीक और स्वतन्त्र-चित्त होने के अनेक प्रमाण दे चुका था। यद्यपि अब तक उसकी शारीरक शक्ति का बहुत अच्छा उपयोग न हो सका था तो भी उसे अपने बल पर पूर्ण विश्वास था। जिस अभाग्य ने उसे अब तक युद्ध और कीर्त्ति से दूर रक्खा था, उसने अब उसका पीछा छोड़ दिया था। अब वास्तविक योग्यता दिखलाने का उसे बहुत अच्छा अवसर हाथ आया था। यद्यपि उसकी आरम्भिक उन्नति दूसरों की सहायता और सिफ़ारिश से हुई थी लेकिन उस अवस्था से आगे बढ़ कर उन्नति के शिखर तक पहुँचने में उसकी योग्यता ही सहायक हुई थी। यद्यपि उसका शरीर अस्वस्थ रहता था तथापि उसके उद्देश्य और इच्छा की पूर्त्ति में उसके विचार उसे यथेष्ट सहायता देते थे।

वास्तव में नेलसन का सैनिक जीवन सन् १७९३ से ही आरम्भ होता है। उस समय से उसका जीवन व्यक्तिगत नहीं रह जाता बल्कि अँगरेजी राष्ट्र की उसकी जल-शक्ति के इतिहास के साथ सम्बद्ध हो जाता है। जो गुण नेपोलियन को स्थल-युद्ध के लिए प्रसिद्ध करते हैं वही गुण नेलसन को जल-युद्ध के लिए विख्यात करते हैं। सब प्रकार की विपत्तियों को धैर्य्यपूर्वक सहन करने, कभी किसी दशा में विचलित न होने और सब से बढ़कर अपनी [illegible] अपने देश की कीर्त्ति सदा अमर रखने की इसकी इच्छा ने ही उसे अद्वितीय वीर बनाया था। उसके अधीनस्थ अफ़सर और कप्तान आदि भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों से विभूषित थे। उसके युद्ध के सम्बन्ध
सब से विलक्षण बात यह थी कि जिन जिन
अवसरों या स्थानों पर वह स्वयं उपस्थित था तभी
और वहाँ उसकी सेना ने भी विजय प्राप्त की थी।
नेलसन की सदा यही इच्छा रहती थी कि
उसके जहाज और सैनिक सब से बढ़कर काम
करें। अपने मातहतों के साथ उसका व्यवहार
बहुत अच्छा हुआ करता था, इसी लिए उसे उनकी
शिकायत का भी कभी कोई अवसर नहीं मिला।
युद्ध में जहाँ जहाँ विजय प्राप्त हुई वहाँ वहाँ उसी
का जहाज सब से आगे दिखाई पड़ता था। इसके
साथ ही वह अपने अन्य सहयोगियों में बहुत ही
सर्वप्रिय भी था।

लार्ड हुड की नियुक्ति मेडिटरेनियन सागर में
इस जहाज़ों के साथ हुई थी। नेलसन का जहाज
उन्हीं दस में से था। रास्ते में एक स्थान पर
नेलसन पाँच जहाज़ों के साथ पीने का पानी लेने के
लिए उतरा। वहाँ उसने स्पेनवालों का जंगी बेड़ा
बुरी ही रही दशा में देखा। उस समय उसके
सम्बन्ध में उसने जो कुछ लिखा है उससे मालूम
होता है कि उन बेड़ों को जीत लेना उसके आदमियों
के लिए कोई बड़ी बात न थी। वहाँ से आगे बढ़ने
पर उसे और जो बातें मालूम हुईं उनसे उसका
अनुमान और भी दृढ़ हो गया। जुलाई मास में
अँगरेजी बेड़े को २१ जहाजों का एक और स्पेनिश
बेड़ा मिला। वह बेड़ा दो महीने से समुद्र में ही था
और उसमें के दो हजार आदमी बीमार थे। कई
घंटों तक लगातार चेष्टा करने पर भी वह युद्ध
के लिए अपना क्रम ठीक न कर सके। उस अवसर
पर नेलसन ने हँसते हुए कहा था—"ईश्वर करे,
ये लोग बहुत दिनों तक इसी दशा में पड़े रहें।"
टाउलन नामक स्थान में उस समय सत्तरह
फ्रांसीसी जहाज युद्ध के लिए तैयार खड़े थे।
लेकिन हुड ने अपना बेड़ा ले जाकर उनका मार्ग
रोक दिया और उन्हें आगे न बढ़ने दिया। उस
समय फ्रांसीसी बड़ी विपत्ति में पड़े। उनकी फसल
मारी गई थी; देश में अकाल था और बाहर से
गल्ला आने का मार्ग बन्द हो गया था। अगस्त मास
के अन्त में लाचार होकर उन लोगों ने अपना नगर
और किला अँगरेजों और स्पेनवालों के सपुर्द कर
दिया। उस समय अँगरेजों को फ्रांसीसियों के
इकतीस बड़े और कई छोटे जहाज अनायास ही
मिल गए। ऐसे कामों में नेलसन स्वभाव से ही
उग्र था और वह चाहता था कि यह सब जहाज
जलाए या और किसी प्रकार नष्ट कर दिए जायँ।
लेकिन स्पेनवालों ने उसका विरोध किया इसलिए
यह झगड़ा हुड के सामने पेश किया गया। उस समय
स्पेनवालों को यह उज्र था कि फ्रांसवालों ने राजा
लुई अट्ठारहवें (जिनके लिये वह लोग लड़ रहे थे)
को आत्म-समर्पण किया है। हुड भी उस समय इस
संबन्ध में कुछ निर्णय न कर सका और वह झगड़ा
युद्ध के अंतिम निर्णय तक मुलतवी रक्खा गया।
अन्त में जब प्रजा-पक्षवालों (Republicans) ने
टाउलन ले लिया तो उस समय उन्होंने उनमें से
अट्ठारह जहाज फिर पकड़ लिए। तथापि विद्रोहियों
की मूर्खता से जो शेष तेरह जहाज उनके हाथों से
निकल जा चुके थे उन्हीं के कारण फ्रांस की जल-
सेना की भारी हानि हुई और उसकी शक्ति घट
गई थी।

इधर चार पाँच महीनों में वह केवल एक या
दो ही बार किनारे पर गया था और इस बीच में
उसे या उसके आदमियों को ताजा गोश्त या फल
आदि न मिले थे; इसलिए वह सितम्बर सन् १७९३
में नेपुल्स गया और वहाँ अँगरेजी साम्राज्य के
प्रतिनिधि सर विलियम हैमिलटन से मिला। उसकी
बात-चीत और योग्यता से प्रसन्न होकर अपनी
स्त्री से उसका परिचय कराते हुए हैमिलटन ने कहा
था कि आगे चलकर यह कप्तान बहुत बड़ा आदमी
होगा। उसकी वहाँ इतनी अधिक प्रतिष्ठा की गई
कि उसे ठहरने के लिए वह स्थान दिया गया जो
तृतीय जार्ज के पुत्र प्रिन्स ऑगस्टस के लिए नियत
किया गया था। इसके सिवा नेपुल्स की राजसभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी उसका यथेष्ट आदर हुआ। चार दिन में वह तीन बार राजा फरडिनैण्ड से मिला और एक बड़े भोज में उनकी दाहिनी ओर बगल में बैठा। लेडी हैमिलटन से इस समय तक उसका अधिक मेल जोल नहीं हुआ था। उस समय उसका ध्यान और तरफ था। लेडी के विषय में उसने लिखा था—"उसकी सभी बातें बहुत प्रिय मालूम होती हैं और वह जिस स्थान या पद पर पहुँचा दी जाय उसी की शोभा बढ़ाती है।"

नेपुल्स से वह फिर टाउलन लौटा। उस समय वहाँ नेपोलियन की बहुत सी सेना छावनी डाले पड़ी थी। इसलिए फ्रांसीसियों के जितने जहाज मिल सके उतने अँगरेज़ों ने नष्ट कर दिए और नवम्बर में नगर को विद्रोहियों के लिए छोड़ दिया। विद्रोहियों के अत्याचार से पीड़ित प्रजा वहाँ से भागने की चिन्ता करने लगी और उनमें से कुछ लोग निकल भी गए और शेष बड़ी दुरवस्था में वहीं पड़े रह गए। तमाम बन्दरगाह में स्थान स्थान पर जलते हुए फ्रांसीसी जहाज दिखाई पड़ते थे।

जब अंगरेज़ों के हाथ से टाउलन निकल गया तो वह कार्सिका की ओर बढ़े। रास्ते में २२ अक्तूबर सन् १७९३ की रात को दो बजे नेलसन का जहाज पाँच फ्रान्सीसी जहाज़ों से जिनमें १७४ तोपें थीं, घिर गया था। दिन चढ़ने पर कुछ तेज हवा के कारण नेलसन के जहाज़ के मस्तूल भी टूट गए थे। लेकिन नेलसन जरा भी विचलित न हुआ और अपने जहाज की मरम्मत में लग गया। सौभाग्यवश उस समय कोई युद्ध नहीं हुआ और नेलसन उस विपत्ति से साफ निकल गया।

सन् १७९४ के आरम्भ में अँगरेजी सेना कार्सिका में उतरी। इस बीच में नेलसन ने अनेक फ्रान्सीसियों और उनके जहाज़ों को पकड़ा और बैस्टिआ नगर को घेर लिया था। जहाज बहुत खराब हो गया था और उसमें प्रायः सभी सामान कम हो गया था तो भी नेलसन वहीं डटा रहा। उस समय नेलसन चारों ओर से शत्रुओं से घि[illegible] हुआ था और उसका जीवन-मरण कुछ भी निश्चि[illegible] नहीं था। इसलिए उसने अपनी स्त्री को लिखा— "याद रक्खो कि वीर मनुष्य एक ही बार मरता [illegible] और कायर अपने सारे जीवन भर मरता रहता है [illegible] यदि इस समय यहाँ मेरी मृत्यु भी हो जाय तो [illegible] उसी परमेश्वर की इच्छा समझनी चाहिए जि[illegible] अधिकार में जीवन और मरण है।" अपने भाई [illegible] उसने लिखा था—"मेरा हृदय कहता है कि मैंने [illegible] कुछ किया वह उचित ही है। अब या तो हम ले[illegible] इसे (बैस्टिआ को) ले लेंगे और या हममें से [illegible] लोगों की जानें जायँगी।" और अन्त में जब २३ [illegible] को वह स्थान उसके अधिकार में आ गया तो [illegible] विजय की पूरी प्रसन्नता हुई। लेकिन इस कार्य [illegible] उसे कुछ भी श्रेय न मिला और हुड ने उसके का[illegible] की बहुत ही साधारण प्रशंसा की। लेकिन नेल[illegible] को इस बात का कुछ अधिक दुःख नहीं हु[illegible] क्योंकि वेस्ट इण्डीज़ में उसे इस बात का अनु[illegible] हो चुका था कि मनुष्य प्रायः अन्याय ही करता [illegible]

जून १७९४ में फिर अंगरेज़ी और फ्रान्सी[illegible] बेड़े का मुक़ाबला हुआ। युद्ध में जाने से पहले [illegible] सन ने अपनी स्त्री को लिखा था—"यदि मैं यु[illegible] मारा गया तो भी मुझे आशा है कि मेरे व्यवहारों [illegible] कारण तुम पर राज्य की कृपा रहेगी। लेकिन [illegible] मुझे विश्वास है कि मैं विजय प्राप्त करके लौटूँगा [illegible] तुमसे मिलूँगा। मेरे नाम के कारण मुझसे स[illegible] रखनेवालों को कभी कलङ्क न लगेगा।...... मैं तुम्हें खर्च के लिए कुछ अधिक भेजा करता; ले[illegible] क्या करूँ मैंने आज तक कभी एक पाई भी बेई[illegible] से नहीं ली।" फ्रेञ्च बेड़े से युद्ध नहीं हुआ [illegible] नेलसन कैलवी भेज दिया गया। वहाँ सैनिकों [illegible] नाविकों को तोपों और गाड़ियों के लिए स[illegible] बनानी पड़ी थीं। उसी अवसर पर सड़क के [illegible] पत्थर से नेलसन के सिर में भारी चोट लगी [illegible] और उसकी दाहिनी आँख भी जख्मी हो गई [illegible] जिससे उसे दिखलाई कम पड़ता था। इससे [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...रिआ में भी उसकी पीठ में एक बड़ा जख्म हुआ ...। लेकिन इन जख्मों का उसने मुद्दत तक किसी ... ज़िक्र भी न किया।

एक मास बाद नेलसन ने कैलवी अपने अधि...र में कर लिया और इस बार उसको यथेष्ट ...ा मिला। लार्ड हुड ने उसकी अधिक प्रशंसा की ...र उसे ७४ तोपोंवाला बड़ा जहाज दिया। इसके ...द लार्ड हुड वहाँ से इंगलैण्ड चला गया और नेल...न वहीं रह गया। उस समय वहाँ केवल वृद्ध ...डमिरल हाथम बच गया था। हाथम को विजय की ...तनी अधिक अभिलाषा नहीं थी जितनी विपत्तियों ...र उत्तरदायित्व से बचने की। उधर टाउलन ... फ्रान्सीसी जहाज़ युद्ध के लिए तैयार हो ...हे थे। लेकिन उनके १२००० सैनिकों में से ...००० सैनिक बिलकुल नये थे और उन्हें केवल ...क्तृता द्वारा उत्साहित करके युद्ध के लिए ...यार किया गया था। उन लोगों ने कसम खा ... थी कि या तो विजय प्राप्त करेंगे और या ... में मर जायँगे। ८ मार्च सन् १७९५ को हाथम ...सुना कि फ्रान्सीसी बेड़ा आगे बढ़ रहा है और ...० मार्च को वह अँगरेज़ी बेड़े के सामने आ गया। ...लसन भी ईश्वर पर विश्वास रखकर युद्ध के ...ए तैयार हो गया। अपनी स्त्री को उसने लिखा—"...कलङ्क-युक्त जीवन बहुत ही बुरा है और कीर्त्ति-युक्त ...यु सब से अच्छी है।"

अँगरेजी बेड़े ने फ्रान्सीसियों का पीछा करना ...रम्भ किया। १२ मार्च को अँगरेज़ी बेड़े युद्ध के लिए, ...ज्ञा पाकर, तैयार होने लगे। अँगरेज़ी सेना युद्ध ...लिए उतावली हो रही थी। सारी रात तैयारी ... बीत गई और पौ फटने के समय दोनों बेड़े एक ...सरे के बहुत निकट आ गए। इतने में शत्रु-दल के ...के जहाज़ के दो मस्तूल टूट गए और एक अँगरेजी ...हाज़ उसकी ओर बढ़ा। लड़ाई छिड़ गई। नेलसन ... जहाज सबके आगे था और उसके मुकाबले में १२० ...तोपोंवाला एक बहुत बड़ा जहाज़ खड़ा था। इसके ...सिवा उसके दोनों ओर दो और बड़े जहाज थे। एक घण्टे बाद किसी प्रकार नेलसन ने उनमें से एक जहाज़ जला दिया और दूसरी तरफ़ रुख किया। इसके बाद वह उन दोनों जहाज़ों से घोर युद्ध करने लगा। हाथम ने जब देखा कि नेलसन संकट में पड़ा है और शीघ्र ही शत्रुओं से घिर जायगा तो उसने नेलसन को लौट आने की आज्ञा दी। लाचार नेलसन को वापस होना पड़ा। उस समय तक नेलसन के सात आदमी जख्मी हुए थे और उसका जहाज थोड़ी मरम्मत के काबिल हो गया था। वह दिन इसी प्रकार बीत गया और दूसरे दिन फिर युद्ध आरम्भ हुआ। उसमें भी नेलसन ही सब से आगे था। उस दिन उसने पहले दिनवाले दोनों जहाजों के झण्डा गिरा दिए और उन्हें बहुत अधिक क्षति पहुँचाई। फ्रेञ्च जहाज़ पीछे लौटने लगे। उस समय अँगरेजी बेड़े को उनका पीछा करना चाहिए था लेकिन एडमिरल हाथम ने वैसा नहीं किया और वह सुयोग व्यर्थ हाथ से खो दिया। इसका परिणाम बहुत ही खराब हुआ। यदि उस समय फ्रान्सीसी जहाज़ों का पीछा करके उन्हें नष्ट कर दिया जाता तो वह कभी इटली पर आक्रमण न करते और न स्पेन ही प्रजा-पक्षवालों से मिल सकता।

इसी अवसर पर नेलसन ने सुना कि हुड और बड़े अधिकारियों में कुछ झगड़ा हो गया और अब वह न लौटेगा। यद्यपि हुड ने कोई बहुत बड़ी विजय नहीं प्राप्त की थी, तो भी वह हाथम की भाँति अकर्मण्य नहीं था। नेलसन को हुड के अभाव का सबसे अधिक दुःख १३ जुलाई सन् १७९५ को हुआ जब कि हाथम ने दोबारा फ्रान्सीसी बेड़े को नष्ट करने का अवसर जान बूझकर छोड़ दिया। उस समय टाउलन के निकट ही नेलसन ने फ्रान्सीसी बेड़े पर आक्रमण करना चाहा था। लेकिन हाथम ने उसे रोककर एक दूसरा जहाज उस ओर भेजा और थोड़ी देर बाद हवा चलने के कारण उसे भी वापस बुला लिया। उसके इस कार्य्य से उसके सहकारी एडमिरल गोडल को बहुत अधिक क्रोध आया। नेलसन भी उससे बहुत नाराज था। हाथम भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद अपनी दुर्बलता और अयोग्यता समझ गया। इसी लिए उसने विलायत से लिखा पढ़ी करके अपनी बदली करा ली और वह इंगलैण्ड लौट गया। उस समय लोगों को नेलसन की योग्यता मालूम हो चली थी और वह समुद्र-तट की रक्षा करने और उत्तर इटली में लड़नेवाली आस्ट्रियन सेना की सहायता करने के लिए छोड़ दिया गया।

हाथम के चले आने के बाद उसका स्थान एडमिरल सर जरविस को मिला था। जरविस बहुत योग्य, रण-कुशल और तीव्र स्वभाव का आदमी था। वह केवल वीरों और योद्धाओं से ही प्रसन्न रहता था और सदा कड़ाई से अपने मातहतों का शासन करता था। उसके आते ही अँगरेजी जहाजों और सैनिकों में एक प्रकार का विलक्षण परिवर्त्तन हो गया। सभी चीज़ें हर तरह से तैयार और दुरुस्त की गईं। उसे अपने सैनिकों के स्वास्थ्य का भी बहुत अधिक ध्यान रहता था। दिन पर दिन अँगरेजी बेड़े की दशा सुधरने और फ्रान्सीसी बेड़े की बिगड़ने लगी। नेलसन को इन सब बातों से सबसे अधिक प्रसन्नता होती थी। जरविस भी उससे बहुत खुश था। उसने उसे जनेवा के सामने का मार्ग रोकने से लिए भेजा। सन् १७९६ में उसे एक छोटे बेड़े का अधिकार मिला। इधर बहुत दिनों से उसकी इंगलैण्ड जाने की इच्छा थी और यदि वह चाहता तो इस समय जा भी सकता था। पर ऐसे अवसर पर रण-स्थल छोड़कर उसने कहीं जाना उचित न समझा।

उस समय अँगरेजी बेड़े का एक भाग फ्रान्सीसियों के मुक़ाबले में टाउलन में और दूसरा भाग नेलसन की अधीनता में लेगहोर्न में था। एक बार नेलसन ने एक जहाज़ पकड़ लिया जिसमें नेपोलियन के लिए पुस्तकें और नक़शे आदि थे। अब अँगरेज़ों को एल्बा नामक स्थान अपने अधीन कर लेने की आवश्यकता हुई क्योंकि कार्सिका में वह लोग सुरक्षित नहीं थे। नेलसन ने एल्बा भी बड़ी सरलता से ले लिया। लेकिन इस कार्रवाई से भी उसे किसी प्रकार का यश नहीं मिला। तो भी अप[ने] उत्तम कार्य्यों के कारण उसे इस बात की दृढ़ आ[शा] थी कि एक न एक दिन उसका नाम समस्त संसा[र] में प्रसिद्ध हो जायगा।

अब युद्ध और उसके कारणों का स्वरूप बद[लने] लगा। अँगरेजों के सभी सहायक एक एक कर परास्त हो चुके थे और किसी न किसी रूप में फ्रा[न्स] की ओर जा मिले थे। अब इंगलैण्ड अकेला [रह] गया था और उसे विजय के लिए नहीं बल्कि अप[ना] अस्तित्व बनाये रखने के लिए लड़ना पड़ता था। अँगरेज सरकार को जब मालूम हुआ कि हालै[ण्ड] विपक्ष में मिल गया है और स्पेन ने फ्रान्स के प[क्ष] पक्ष को पन्द्रह जहाज़ों से सहायता देने का व[चन] दिया है तो उसने अपने सब सेनापतियों को स[...] कर दिया। अँगरेज़ लगातार तीन बरसों से लड़ र[हे थे] और जिस फ्रान्स की सत्ता नष्ट कर देने की उनकी [...] और आशा थी वह फ्रान्स विजय के सर्वोच्च शि[खर] पर पहुँच चला था। फ्रान्सीसी सेना इंगलैण्ड [पर] आक्रमण करने के विचार से उसके सामने चैनेल [के] उस पार एकत्र हो रही थी। इंगलैण्ड में [...] और भयङ्कर अन्नकष्ट दिखाई देता था। प्रि[वी] कौंसिल ने लाचार होकर सब लोगों से अन्न [...] खर्च करने की प्रार्थना की। यहाँ तक कि शौ[कीन] अमीरों को आटे से अपने बाल साफ करने की मनाही कर दी गई। इंगलैण्ड के बादशाह [...] ऐसी किफायतों के लिए आदर्श बने। लेकिन [...] नियमों के होते हुए भी गरीब दाने दाने के [लिए] तरसने लगे। प्रत्येक नगर की गलियों में [...] "भोजन और शान्ति" (Bread and Pea[ce]) के लिए चिल्लाते फिरते थे और जगह जगह फसाद होते थे। तात्पर्य्य यह कि इंगलैण्ड [...] और दुःख और कष्ट से घिरा हुआ था।

स्पेन से युद्ध होने की सम्भावना जानकर [अँग]रेजी जल-सेना के नवयुवकों में कुछ प्रसन्नता फै[ली]। नेलसन और उसके साथियों को आशा थी कि [...] के जहाजों में उन लोगों को लूट का माल [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिकता से मिलेगा । क्योंकि मेक्सिको और पेरू स समय तक स्पेन के ही अधीन थे और वहाँ से नेक जहाज बहुमूल्य पदार्थ लेकर एटलाण्टिक गर में आया जाया करते थे। अँगरेज नाविकों ी दृष्टि उनपर बहुत दिनों से लगी हुई थी। फ्रान्स युद्ध में उन्हें लूट का जो माल मिला था वह प्रायः ी ही था, लेकिन स्पेन के साथ युद्ध करने में उन्हें लामाल हो जाने की आशा थी। इसके अतिरिक्त ह बात भी निश्चित ही थी कि फ्रान्स और स्पेन की ल-सेना तथा सामग्री बहुत ही रद्दी थी और अँग- ों की सबसे अधिक प्रबल।

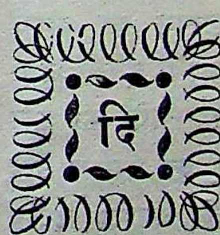
अँगरेज़ी बेड़े का एक भाग जरविस के अधीन उलन की ओर गया और दूसरा भाग एडमिरल न की अधीनता में कारथग्ना की ओर। लेकिन बेड़ों में भोजन तथा अन्य सामग्री का अभाव इसलिए उसे लाने के लिए मैन पहले जिबरालटर ी ओर भेजा गया। लौटते समय राह में उसे नवालों का मुकाबला करना पड़ता इसलिए वह निश्चय के अनुसार जरविस के पास न पहुँच का और उधर जरविस उसका आसरा देखता रह ा। अन्त में इंगलैण्ड से आज्ञा आई कि अँगरेजी मेडिटरेनियन सागर से हट जाँय। इस दुर्बलता नेलसन को बहुत क्रोध आया। उसने आवेश में र लिखा था—"शायद बड़े अधिकारी नहीं नते कि यह बेड़ा कितना प्रबल और सब काम ने के लिए कहाँ तक योग्य है। मुझे इस आज्ञा इसलिए दुःख है कि समस्त जगत् की जल-सेना मुकाबला कर सकनेवाले अँगरेज़ी बेड़े को वापस ा लेना इंगलैण्ड के लिए बड़ा भारी कलङ्क है।" किन उसे शायद मैन की भूल मालूम नहीं थी। बेड़े के चले जाने के बाद मेडिटरेनियन में एक अँगरेज़ी झण्डा न रह गया और एक मात्र एल्बा उनके अधिकार में बच रहा। ज्योंही जरविस ाल्टर पहुँचा त्योंहीं उसे इंगलैण्ड से आज्ञा ी कि वह एल्बा से भी अपनी सेना हटा ले। किन एल्बा चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था और वहाँ जाकर अँगरेज़ी सेना को ले आना कोई साधारण काम नहीं था। नेलसन साहस करके अपने साथ दो जहाज लेकर एल्बा गया। मार्ग में उसने स्पेन के एक जहाज को तीन घण्टे तक युद्ध करने के बाद पकड़ लिया और बड़ी सफाई से शत्रुदल में से लड़ता भिड़ता वह निकल गया। एल्बा में लोगों ने बड़े उत्साह से उसका स्वागत किया। लेकिन वहाँ का गवर्नर वह स्थान छोड़ना नहीं चाहता था इसलिए वह फिर जिब्राल्टर की ओर लौटा। रास्ते में उसे फिर भारी शत्रु-दल का सामना करना पड़ा। उसी अवसर पर उसका एक आदमी जहाज से समुद्र में गिर गया और उसे बचाने के लिए उसका एक मातहत एक छोटी नाव लेकर समुद्र में उतरा। वह नाव भी शत्रुओं से घिर गई थी, पर नेलसन स्वयं जाकर बड़ी वीरता से उसे बचा लाया और लड़ता भिड़ता वहाँ से साफ बच कर जिब्राल्टर पहुँच गया।

---

(४)

स्पेन का युद्ध।

(सन् १७९६ से १७९८ तक)



सम्बर सन् १७९६ में एडमिरल जरविस जिब्राल्टर पहुँचा था। उसी समय एक भारी तूफान के कारण उसके तीन जहाज लंगर पर से हट गए और उनमें से एक मरक्को के किनारों से टकरा कर टूट भी गया। इसी बीच में टाउलन से एक फ़्रान्सीसी जंगी बेड़े ने आकर ब्रेस्ट पर अपना अधिकार जमा लिया। कुछ दिनों बाद जरविस लिस्बन की ओर बढ़ा। रास्ते में उसके दो जहाज और टूट गये और पन्द्रह जहाजों में से केवल ग्यारह जहाज ही काम के रह गए। उस समय फ़्रान्स और स्पेन के जहाज उत्तर की ओर बढ़ रहे थे और अँगरेज़ों के साथ उनके बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी युद्ध की सम्भावना थी। उसी अवसर पर जरविस को पाँच और नये जहाज मिल गए थे। जरविस को समाचार मिला कि इस समय कम से कम स्पेन के तीस जहाज उसके चारों ओर घूम रहे हैं। शत्रु-दल को जरविस के जहाजों के नष्ट हो जाने का समाचार मिल चुका था और उसे अपनी विजय की पूर्ण आशा थी।

दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ पहले ही हो चुकी थीं। एक दिन प्रातःकाल जब चारों ओर कुहिरा पड़ रहा था छः अँगरेज़ी जहाजों ने शत्रुओं का पीछा किया। दिन चढ़ने पर युद्ध होने लगा। उस समय स्पेन के जहाजों का कोई ठीक क्रम नहीं था। उन लोगों को आशा थी कि अँगरेज़ों के केवल दस ही जहाज होंगे। पर जब उन लोगों ने पन्द्रह जहाज देखे तो वे घबरा से गए। दोपहर के समय अँगरेज़ों ने बड़ी वीरता से उनपर आक्रमण किया और उन्हें तितिर बितिर कर दिया। स्पेन के थोड़े से छोटे जहाजों ने अँगरेज़ों को आगे बढ़ने से रोकना चाहा लेकिन उसके सबसे आगेवाले जहाज को गोलों की बौछार से घबराकर फिर पीछे लौट जाना पड़ा। उसके बाकी बचे हुए अट्ठारह बड़े बड़े जहाजों में नेलसन ने अपना जहाज ले जाकर उनपर गोले बरसाने आरम्भ कर दिये। उसके मित्र कालिंग-उड ने भी उस आक्रमण में नेलसन का साथ दिया। इन लोगों ने स्पेन के जहाजों में इतनी घबराहट डाल दी कि वह लोग अपनी तोपों का कुछ भी उपयोग न कर सके। इस बात का प्रमाण उस समय मिला था जबकि उनके कुछ जहाज पकड़ और लूट लिए गए और बहुत सी तोपें एकदम खाली मिलीं। लेकिन इससे पहले ही एक दुर्घटना हो गई थी। नेलसन के जहाज का मस्तूल और कुछ अंश टूट गया था और वह बेकाम हो चला था। उसी समय शत्रुदल का साहस बढ़ गया और उसने नेलसन के जहाज को पकड़ लेने के विचार से चारों ओर से घेर लिया। उसी समय पेट में लकड़ी की एक बड़ी पट्टी घुस जाने के कारण नेलसन भी बेतरह जख्मी हो गया था। तुरन्त तीन अँगरेज कप्तान अपने जहाज लेकर नेलसन की सहायता के लिये उस स्थान पर पहुँच गए। शत्रुओं के कई जहाजों के गोले बन्द करके उन्हें परास्त करने में उन लोगों ने बहुत अधिक श्रम किया था। नेलसन का जहाज बेकाम हो चुका था इसलिए उसे बचाकर उन लोगों ने शत्रुओं से युद्ध करना आरम्भ किया। थोड़ी देर में नेलसन की तबीयत भी कुछ संभल गई और उसने अपना टूटा फूटा जहाज लेकर ही अपने साथियों को सहायता देना आरम्भ कर दिया। उनका मुकाबला शत्रुओं के एक जहाज से हो गया और थोड़ी देर तक लड़ने के बाद वह सब से पहले उस जहाज पर जा चढ़ा। उस जहाज में जिस कोठरी में नेलसन घुसा था, शत्रुओं ने बाहर से उसका दरवाजा बन्द कर दिया और एक खिड़की की राह से भीतर बन्द नेलसन पर वे गोलियाँ चलाने लगे। इतने में नेलसन के और साथी भी उस जहाज पर आ गए जिससे नेलसन की इस विपत्ति से भारी रक्षा हो गई। अँगरेज़ सैनिकों ने उस जहाज वालों को परास्त कर दिया और नेलसन ने निकलकर उन सबसे हथियार रखवा लिये। उस समय उसे स्पेनी कप्तान की तलवार भी मिली। चारों ओर से और अँगरेज़ी जहाज भी एकत्र हो गए और प्रसन्नता से नेलसन के लिये तालियाँ बजाने लगे। लेकिन नेलसन इतनी ही विजय से सन्तुष्ट हो कर न बैठ गया। उसके सामने एक ऐसा स्पेनी जहाज गया था जो उस समय के संसार भर के जहाज़ों से बड़ा था। उस समय सन्ध्या हो गई थी। नेलसन ने उससे युद्ध आरम्भ कर दिया लेकिन अँगरेज़ सैनिक सवेरे से लड़ते लड़ते गए थे; शायद यही समझकर जरविस ने लोगों को लड़ने से रोक दिया और वापस लिया।

उस दिन के युद्ध में नेलसन ने अपनी और साहस सब पर भली भाँति प्रकट कर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयोगवश उसी अवसर पर सर ईलियट—जो बाद
र्ड लार्ड मिण्टो कहलाए,—भी वहीं उपस्थित थे और
न्होंने नेलसन की सारी कारगुज़ारी भली भाँति देख
ली थी। अपने दल में लौटने पर नेलसन का योग्य
स्वागत हुआ। जरविस ने उसे गले से लगा लिया
और बहुत धन्यवाद दिया। लेकिन इस युद्ध का जो
विवरण इंगलैण्ड भेजा गया था उसमें भी नेलसन
का कोई ज़िक्र नहीं हुआ था। इसका कारण, नेलसन
से द्वेष और ईर्ष्या रखनेवाले कुछ अफसर ही थे।
न अफसरों में से कैलडर नामक एक अफसर की
शंसा अवश्य की गई थी जिसने वास्तव में कोई
ड़ा काम नहीं किया था। लेकिन वीरता-पूर्वक
ड़नेवाले नेलसन या उसके सहायकों का उसमें
ई ज़िक्र नहीं था। हाँ, नेलसन ने अपने पिता
जो पत्र भेजा था उसमें उसने अपने तथा अपने
हायकों के कार्य्यों का अवश्य वर्णन किया था।
अँगरेजी समाचारपत्रों में भेजने के लिए नेल-
न ने इस युद्ध का जो विवरण लिखा था उसमें
सने अपनी कारगुजारियों का बहुत ही थोड़ा ज़िक्र
या था। इसके सिवा उसने एक पत्र कालिंगउड को
कर उसकी बहुमूल्य सामयिक सहायता के
र उसे बहुत धन्यवाद दिया था। लेकिन कालिंग-
ने उसकी प्रशंसा करते हुए उसे उत्तर दिया था
सब काम आपने ही किए हैं; हम लोग तो
यक मात्र हैं। जहाज़ों पर के अन्य सैनिक और
सर भी उसकी बुद्धिमत्ता और साहस की बहुत
सा करते थे। धीरे धीरे यह प्रशंसा उन्हीं लोगों
द्वारा इंगलैण्ड पहुँची। इसके सिवा नेलसन के
सर ईलियट ने भी विलायत जाकर उसकी
प्रशंसा की और उसे "नाइट" का ख़िताब
ाने के लिए सिफारिश की। लेकिन नेलसन
नी दरिद्रता देखते हुए वह ख़िताब लेना नहीं
ता था। उसी समय से लोगों का नेलसन पर
ास जमना आरम्भ हुआ और उसके मरने तक
पर दिन और अधिक दृढ़ ही होता गया।
ैण्डवाले समझने लगे कि वीरता और साहस
में नेपोलियन का मुकाबला करनेवाला उनके देश
में भी उत्पन्न हो गया। उस समय देश दरिद्रता
और अकाल से पीड़ित हो रहा था और समुद्र में
अँगरेजों की चारों ओर लड़ाइयाँ छिड़ी हुई थीं।
ऐसी दशा में विजय प्राप्त करके इंगलैण्ड का मुख
उज्ज्वल करनेवाले नेलसन को लोग अपने हृदय-
मन्दिर में बैठाकर उसका यथेष्ट पूजन करने लगे।
उसी समय से लोग यह भी समझने लगे कि अँग-
रेजी बेड़े जहाँ जायँगे वहीं विजय प्राप्त करेंगे।
नेलसन के पिता और स्त्री को लोग चारों ओर से
धन्यवाद देने लगे। उसका पिता जिस ओर जा
निकलता उसी ओर लोग उसका अभिवादन और
आदर करते और उसे बधाई देते। उसके साहस से
उसकी बेचारी स्त्री तो यहाँ तक भयभीत हो गई
थी कि उसने उसे भविष्य में जहाज पर न चढ़ने
या लड़ाई में न जाने की प्रार्थना की थी।

यह युद्ध सेण्टविन्सेण्ट नामक स्थान में
हुआ था इसलिए जरविस "अर्ल सेण्ट विन्सेण्ट"
बनाया गया और नेलसन को "नाइट" (Knight-
hood of Bath) का ख़िताब मिला। इसके सिवा
लार्ड स्पेन्सर ने उसकी रण-कुशलता और साहस
की भी बहुत अधिक प्रशंसा की थी। नेलसन तथा
अन्य कप्तानों को सोने के तमगे भी दिए गए थे।
तात्पर्य्य यह कि राज्य और देश ने उन लोगों का
यथोचित आदर सम्मान किया। इसके सिवा इस
युद्ध का समाचार इंगलैण्ड पहुँचने से पहले ही
२० फरवरी सन् १७९७ को ३८ वर्ष की अवस्था में
वह रीयर एडमिरल (Rear Admiral) (एडमिरल
का एक प्रकार का बड़ा सहायक) बना दिया
गया था।

उस युद्ध से निवृत्त होकर लिसबन् में अँगरेजी
जहाज फिर लैस हुए और नेलसन अपने साथ तीन
जहाज लेकर उस स्पेनी जहाज की ताक में चला
जिस पर खजाना और गोदाम था। लेकिन इस
उद्योग में उसे सफलता नहीं हुई। उस जहाज पर
मेक्सिको का गवर्नर सवार था और उसके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा के लिए तीन और बड़े जहाज़ थे। स्पेनियों को नेलसन के इस विचार की शायद पहले से ही सूचना मिल गई थी और वह लोग सचेत हो गए थे। नेलसन समझता था कि वह जहाज टैनरिफ द्वीप की ओर गया होगा इसलिए उसने उसी द्वीप पर आक्रमण करने का विचार किया। खज़ाना लूटने में केवल उसका और उसके जहाज़ियों का ही स्वार्थ नहीं था बल्कि उससे शत्रुओं का बल बिलकुल नष्ट हो जाता और उसका देश बहुत बड़ा धनी हो जाता। उस खज़ाने में साठ सत्तर लाख पौण्ड नक़द थे। इंगलैण्ड में सोने और चाँदी के सिक्कों की बहुत अधिक कमी थी और इसी लिए बैंक आफ़ इंगलैण्ड को स्पेन के डालरों का, स्पेन के राजा के चेहरे पर इंगलैण्ड के राजा तृतीय जार्ज के चेहरे का ठप्पा लगा कर, व्यवहार करना पड़ा था।*

अप्रैल मास में नेलसन, एलबा से अँगरेज़ी रिसाला लाने के लिए मेडिटरेनियन समुद्र की ओर भेज दिया गया; इससे उसका खज़ाने के जहाज़ को लूटनेवाला विचार कार्य्यरूप में परिणत न हो सका। छः सप्ताह बाद वह वहाँ से लौटा और केडिज में—जहाँ अँगरेज़ों और स्पेनियों का युद्ध हो रहा था—अँगरेज़ी बेड़े में सम्मिलित हो गया। उस समय उसे थीसियस नामक जहाज दिया गया। थीसियस उसी समय इंगलैण्ड से आया था और उसमें काम करनेवाले लोग यथेष्ट आज्ञाकारी नहीं थे। उनके इस दुर्गुण का अन्य जहाज़वालों पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और अँगरेज़ी बेड़े में अव्यवस्था फैल गई थी। इससे पूर्व फरवरी मास में ही जब कि सेण्ट विंसेण्टवाली लड़ाई हो रही थी, इंगलैण्ड के समीप इंगलिश चैनेल के जंगी बेड़े के कमांडर के पास अनेक गुमनाम पत्र इस आशय के आए थे कि जहाज़ियों का वेतन बहुत थोड़ा है, उन्हें निकृष्ट भोजन मिलता है और उनकी छुट्टियाँ बहुत कम हैं। इन प्रार्थना[ओं] की अवहेलना की गई जिससे नौ-सैनिक बिगड़ [कर] शोख हो गये थे। अफसर अपने मातहतों के सा[थ] बहुत सख़्ती करते थे और बरसों उन्हें अपने मका[न] नहीं जाने देते थे। उसी अवसर पर तीन [...] कारणों से अँगरेज़ी बेड़े की दशा बहुत शोचनीय [हो] गई थी। नौ-सेना में से पढ़े लिखे लोग [...] प्रकार से देश-सेवा करने के लिए इंगलैण्ड बुला[...] गए थे और सेना में केवल अशिक्षितों और अस[...] की ही अधिकता थी; दूसरे बहुत से लुटेरे, [...] और अन्य प्रकार के अपराधी अँगरेजी जेलखा[नों] से छोड़ दिए गए थे जो इधर उधर समुद्र में [...] करते थे और तीसरे नौ-सैनिकों में हज़ारों [...] आइरिश भरे हुए थे जो राज-द्रोही सभाओं [...] समितियों से सम्बन्ध रखते थे।

वास्तव में जहाजियों के साथ सख्ती [...] बरताव किया जाता था जिसे दूर करना परम[ाव]श्यक था। सब से पहले इंगलैण्ड से रवाना हो[ने के] समय ही जहाज़ियों ने लंगर उठाने और पोर्ट[स]माउथ बन्दर से चलने से इन्कार कर दिया। [...] ने मिलकर एक सभा की और पार्लामेन्ट में [...] के लिए एक प्रार्थनापत्र तैयार किया जिसमें [...] कष्ट भली भाँति दिखलाए गए थे। वे लोग [...] अधिक वेतन, पूरा भोजन और समय पर घर [...] के लिए छुट्टियाँ चाहते थे। सैनिकों की ऐसी [...]नाएं करने के लिए विवश होना देश और [...] विभाग दोनों के लिए लज्जा की बात थी[...] दिनों जख्मी सिपाही गलियों में भूखों मरने [...] मांगने के लिये छोड़ दिए जाते थे जिससे ले[...] बहुत असन्तोष फैलता था। तौभी सैनिकों ने [...] सहनशीलता दिखलाई थी और इसी लिए [...] वासियों को भी उनके साथ सहानुभूति थी[...] समय नौ-सेना की बहुत अधिक आवश्यक[ता ...]

* उस समय इंगलैण्डवालों ने इस सम्बन्ध में यह पद्य बनाया था:—

The additional head on the dollar impressed
Is to circulate Jervis's fame:
To his valour, 'tis owing, it must be confessed,
England made an impression on Spain.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का वचन दिया था। इसलिए उसके कष्ट दूर करने का वचन दिया गया और लोग फिर अपने अपने कामों पर लग गए। केवल एक जहाज पर सेना के बड़े अधिकारियों की आज्ञा से सैनिकों पर गोलियाँ चलाई गई थीं जिनसे ग्यारह आदमी मरे और जख्मी हुए थे; पर यह झगड़ा तुरन्त ही शान्त हो गया था। प्लाईमाउथ में भी इसी प्रकार का असन्तोष फैला हुआ था पर वह भी शान्त हो गया। उसके कुछ ही समय बाद उत्तरी समुद्र (North Sea) के नोर नामक स्थान में एडमिरल डनूकन के अधीनस्थ उस बेड़े में असन्तोष फैला जो डचों पर निगाह रखने के लिए नियुक्त था। सैनिकों और नाविकों ने काम करना छोड़ दिया और रिचर्ड पारकर नामक एक नाविक को—जो पहले किसी अटर्नी का क्लर्क था—अपना सरदार बना लिया। यद्यपि पारकर योग्य आदमी था पर उस समय उसका दिमाग बहुत अधिक बढ़ गया था। उसने अपने आपको "सामुद्रिक प्रजातन्त्र का सभापति" (President of the Floating Republics) बना लिया और केवल दो जहाजों को छोड़कर बेड़े के बाकी सब जहाजों पर काम करनेवालों को अपनी ओर मिला लिया था। इससे पूर्व फ्रान्स और अमेरिका के सैनिक और नाविक मिलकर इस प्रकार की कई संस्थाएं और सभापति बना चुके थे जिन्हें अँगरेज अधिकारी घृणा की दृष्टि से देखते थे। जब बड़े अधिकारियों से पारकर और उसके अनुयायियों को उत्तर मिला कि अब तक जो रिआयतें हो चुकी हैं उनसे अधिक और कोई रिआयत उनके साथ नहीं की जा सकती, तो उन लोगों ने जाकर टेम्स नदी का मुहाना रोक लिया और उधर से आने जानेवाले जहाजों को रोकने की चेष्टा आरम्भ की। उस समय ग्रेट ब्रिटन को बड़ी कठिनता में फँसना पड़ा। फ्रान्स, स्पेन और हालैण्ड के अतिरिक्त उसका निज का एक बेड़ा उसके विरुद्ध हो गया था और उसके समीप ही फ्रान्सीसी सेना भी आक्रमण करने के लिए तैयार खड़ी थी। आयर्लैण्डवाले अलग विद्रोह करने के लिए तैयार हो रहे थे। भिन्न भिन्न देशों में इंगलैण्ड के केवल ४७ ही दूत बच रहे थे जिनसे और कम इंगलैण्ड के इतिहास में कभी नहीं हुए थे। बंकों की दशा एक दम खराब हो गई थी और उनमें बिलकुल धन न बचा था। लाचार होकर बड़े अधिकारियों को भी दूसरा मार्ग अवलम्बन करना पड़ा और उन लोगों ने विद्रोही जहाजों को नष्ट करने के उपाय किये जिनसे डरकर सब जहाज एक एक करके पारकर की अधीनता से निकल आए और पूर्ववत् कार्य्य करने लगे। पारकर को पकड़कर फाँसी दे दी गई और इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन ने इस विपत्ति का अन्त कर दिया।

जरविस के पास बड़े अधिकारियों ने वही जहाज भेजे थे जिनके कर्म्मचारी अधिक उद्दण्ड और विद्रोही थे। मई सन् १७९७ में जब नेलसन मेडिटरेनियन से लौटा तो उसे भी उन्हीं में से एक जहाज मिला। एक विद्रोही जहाज का सरदार जब फाँसी पर चढ़ाया जाने को था तो उसके कप्तान ने एडमिरल जरविस से कहा कि उसे अपने मातहतों पर विश्वास नहीं है। जरविस ने दृढता-पूर्वक उत्तर दिया—"यदि तुम उस जहाज को अपने अधिकार में नहीं रख सकते हो तो मैं तुरन्त एक ऐसा आदमी दूँगा जो उसे भली भाँति अपने अधीन रख सके।" दूसरे दिन आठ बजे उस कप्तान को फाँसी दी जाने को थी। उससे एक घण्टा पूर्व ही वह जहाज चारों ओर से नावों से घिर गया। इन नाववालों को आज्ञा मिल चुकी थी कि यदि जहाजवाले जरा भी रुख बदलें तो उनपर गोलियाँ और गोले बरसाओ और आवश्यकता पड़ने पर उस जहाज को भी डुबा दो। निश्चित समय पर उसी जहाज पर विद्रोही सरदार को फाँसी दे दी गई और उसके अनुयायियों में से किसी को चूँ करने का भी साहस न हुआ। डिफेन्स नामक जहाज पर भी इसी प्रकार एक विद्रोही को फाँसी दी गई थी। एक और अवसर पर दो विद्रोहियों को फाँसी की आज्ञा दी जा चुकी थी पर विद्रोही चाहते थे कि उन्हें पाँच दिन का समय और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाय। लेकिन जरविस ने उन दोनों को भी कई स्पेनी जहाजों के सामने और अपनी असन्तुष्ट सेना के बीच में सब के देखते देखते रविवार के दिन फाँसी दिलवा दी! इसके बाद उसने यह भी कहा कि यदि उस दिन रविवार ही नहीं बल्कि बड़ा दिन भी होता तो वह उन्हें अवश्य फाँसी दिलवा देता! वास्तव में उस अवसर पर विद्रोही सेना को दबाने के लिए ऐसे ही साहस और दृढ़ निश्चय की आवश्यकता थी।

कालिंगउड और नेलसन अपने मातहतों को कड़ा दण्ड देने के विरोधी थे और उनके कथनानुसार कप्तानों का कठोर व्यवहार ही सैनिकों और नाविकों को असन्तुष्ट कर देता था। नेलसन के सुव्यवहार ने ही थीसियस जहाज के आदमियों को शान्त और सन्तुष्ट कर दिया। जरविस से तो लोग केवल भयभीत ही रहते थे पर नेलसन से डरते भी थे और प्रेम भी करते थे। उसके जहाज में सब लोग उसका जयजयकार मनाया करते थे और अपने आपको, ऐसा योग्य अफसर पाने के कारण बहुत भाग्यवान् समझते थे। नेलसन और कालिंगउड भी उनसे बहुत अच्छा व्यवहार करते थे और समय समय पर उन्हें दावत और नाच में शरीक कर लेते थे।

उन दिनों रात के समय कुछ नावें कैडिज के किनारे की ओर शत्रुओं की थाह लेने के लिए भेजी जाया करती थीं जिनसे कभी कभी स्पेनी नावों की मुठ-भेड़ भी हो जाती थी। एक बार ऐसी ही मुठ-भेड़ के अवसर पर नेलसन के एक बहुत पुराने मातहत ने आगे बढ़कर अपने अफसर पर लगनेवाली गोली को अपने ऊपर रोक लिया और इस प्रकार नेलसन की जान बचाई। नेलसन ने उसे लेफ्टिनेण्ट बना देने का विचार किया था पर वह बीच में ही मर गया।

अब फिर नेलसन का ध्यान टेनरिफ के खजाने की ओर गया। वहाँ उसे एक बहुत बढ़िया जहाज मिलने की भी आशा थी। इस सम्बन्ध में उसने अपनी स्त्री से कोई जिक्र नहीं किया; क्योंकि वह समझ
था कि वह उसे रोक देगी।

टेनरिफ द्वीप में कई ज्वालामुखी पहाड़ हैं
पचासों मील दूर से दिखलाई देते हैं। वहाँ की
खाड़ी में वह "मनिला" जहाज खड़ा था जिस
नेलसन की नजर थी। खाड़ी के पास किनारे
जमीन बहुत खराब थी। इसके सिवा वहाँ प
का बहुत तोड़ था और सदा तेज आँधियां च
करती थीं। इन सब कारणों से वहाँ तक पहुँच
बहुत कठिन था। नेलसन इन कठिनाइयों का साम
करने को तैयार था पर उसे योग्य सैनिक न मि
सके। इसलिए वह खुले-आम तो उसपर धावा
कर सका पर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लि
उसने एक उपाय ढूँढ़ निकाला और गुप्त रूप
सब तैयारियाँ आरम्भ कीं और शीघ्र ही अपनी अ
नस्थ अनेक नावों और तीन छोटे छोटे जहाजों
सब सामान से दुरुस्त कर लिया।

सन् १७९७ के जुलाई मास के अन्त में नेल
सब सामान से दुरुस्त होकर वहाँ पहुँच गया।
पहुँचते ही उसे भारी तूफान के कारण बहुत
उठाना पड़ा। ट्राउब्रिज आक्रमण करने से हिच
था। देर होने के कारण उन लोगों ने वह सुअवस
भी हाथ से खो दिया और शत्रु सचेत हो गए। लेकि
नेलसन ऐसा आदमी न था जो दैव को प्रतिकू
देखकर भी हताश हो जाता। उस अवसर
उसने अपने एडमिरल को लिखा था कि अपनी
अपने सम्राट् की प्रतिष्ठा के विचार से वह अब
कार्य्य बिना पूरा किए न रहेगा और विपक्षियों
यह दिखला देगा कि अँगरेज किसी बात में कि
से कम नहीं हैं। तात्पर्य्य यह कि उसका पह
आक्रमण तो खजानेवाले जहाज के लिए था
दूसरा आक्रमण अपनी जाति की मान-रक्षा
लिए!

उस समय वहां ८००० स्पैनिश थे जो
सचेत हो कर जहाज की रक्षा कर रहे थे।
पास युद्ध का सामान भी भरपूर था और वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...तैयार भी थे। नेलसन के तीनों बड़े जहाज ...तूफ़ान के कारण बन्दर तक नहीं जा सकते थे। ...वल नावें जा सकती थीं और उन नावों में अधिक ...अधिक एक हजार आदमी सवार हो सकते थे। ...के समय तो इतने थोड़े से आदमियों को लेकर ...क्रमण करना नितान्त असम्भव ही था और रात ...समय किनारे की पहाड़ी चढ़ाइयों पर चढ़ना ...त दुःसाध्य था। पर यह सब कठिनाइयाँ नेल-...को उसके दृढ़ निश्चय से डिगा न सकीं और ...ह स्वयं सब से आगे बढ़ने के लिए तैयार हो गया। ...२४ जूलाई की शाम को किनारे पर उतरने का ...केत किया गया। उस समय भी तेज़ आँधी चल ...ही थी। रात ग्यारह बजे घोर अन्धकार में सब ...ण किनारे की ओर बढ़े। शत्रुओं को भी उनके ...ने का पता लग गया और उन्होंने अपने साथियों ...सचेत करने के लिए भय-सूचक संकेत किया। ...ड़ी ही देर बाद दोनों ओर से गोलियाँ चलने ...गीं। अँधेरे में नेलसन की सब नावें भी तितर-...तर होकर एक दूसरे से अलग हो गईं। उस ...कुछ साथी मारे गए और कुछ हताश होकर लौट ...र। बड़ी कठिनता से थोड़े से आदमियों को साथ ...र ट्राउब्रिज किनारे पर पहुँच गया। उसके ...थियों की संख्या केवल २४० थी जिनमें जहाजी ...ाह भी सम्मिलित थे। किनारे पहुँचकर वह ...त होने तक नेलसन के आसरे रुका रहा।

उधर नेलसन थोड़े से आदमियों को साथ लेकर ...री ओर गया। ज्योंही वह अपनी नाव पर से ...नारे पर उतरना चाहता था त्योंही उस पर ...लियों की बौछार हुई। उसके सात आदमी ...ख़्मी हुए। इसके सिवा वह स्वयं भी बेतरह ...यल हुआ। गोली उसकी दाहिनी बाँह में लगी ...जिसके लगते ही उसके हाथ से तलवार छूट ...र ज़मीन पर गिर पड़ी। उसकी बाँह से ख़ून की ...रा बह निकली और वह नाव में लेटा दिया ...या। लोगों ने उस पर पट्टी बाँध दी और उसकी ...के पूर्व-पति-जात पुत्र निस्बट ने नाव किनारे की ओर बढ़ाने की आज्ञा दी। उस समय उन लोगों पर बराबर गोलियों की वर्षा हो रही थी।

थोड़ी देर बाद नेलसन चैतन्य हुआ। लोग उसे निकट के एक जहाज पर ले गए जहाँ उसके घाव पर मरहम पट्टी होने को थी। नेलसन समझता था कि उसकी बाँह काट डाली जायगी और वह उसके लिए साहस-पूर्वक तैयार भी था। उन दिनों अस्त्र-चिकित्सा के लिए क्लोरोफार्म का आविष्कार नहीं हुआ था इसलिये अस्त्र-चिकित्सा में लोगों को बहुत अधिक कष्ट होता था। पर नेलसन ने बहुत धैर्य-पूर्वक उसे सहन किया और अपना हाथ कटा डाला। कई महीनों बाद वह बहुत कष्ट पा कर अच्छा हुआ। उधर ट्राउब्रिज थोड़े से आदमियों सहित बड़ी विपत्ति में फँस गया। इसलिए उसने एक विचित्र युक्ति निकाली। उसने शत्रुओं से कह दिया कि यदि मुझे तुम साथियों सहित चुपचाप न निकल जाने दोगे तो मैं तुम्हारे नगर में आग लगा दूँगा। इसके सिवा उसे भविष्य में उस स्थान पर आक्रमण न करने की भी प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी। शत्रुओं ने उसकी बातें स्वीकार कर लीं और वह अपने निशान फहराता हुआ वहाँ से लौट आया।

नेलसन ने ज़ख़्मी होने के दूसरे ही दिन अपने कमाण्डर-इन-चीफ़ को इस आक्रमण का जो समाचार भेजा था उसमें और सब बातें तो थीं पर उसके ज़ख़्मी होने के सम्बन्ध में एक शब्द भी न था। लेकिन लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट को उसने जो पत्र भेजा था उसमें उसने अपने कष्ट का वर्णन करते हुए लिखा था कि मैं अपने साथियों के लिए भार-स्वरूप हो रहा हूँ और अपने देश की कोई सेवा नहीं कर सकता। वह समझता था कि अब उसकी नौकरी जाती रहेगी। उसी अवसर पर उसने अपने लिए निराश होकर १७ वर्ष की अवस्था के अपने लड़के निस्बेट के कमाण्डर बनाए जाने के लिए सिफारिश की थी जो स्वीकृत भी हो गई। सन् १७९७ के मध्य में वह इंगलैण्ड लौटा। उसी अवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर डनकन ने कैम्परडाउन के युद्ध में डच जल-सेना नष्ट करके विजय प्राप्त की थी। नेलसन ने जब यह समाचार सुना तो वह उसमें सम्मिलित होने के लिए अधीर हो उठा था। पर ज्योंही उसे मालूम हुआ कि अभी वहाँ और युद्ध की सम्भावना है तो वह तुरन्त वहाँ के लिए तैयार हो गया। यद्यपि उस समय तक उसे बहुत अधिक कष्ट था और अफीम तथा अन्य मादक द्रव्य खाने पर भी हाथ की पीड़ा के कारण उसे रात को नींद न आती थी तथापि उसने इस बात की जरा भी परवा न की। जिस दिन कैम्परडाउन की विजय का समाचार लन्दन पहुँचा था, उस दिन सन्ध्या के समय नगर में खूब रोशनी हुई थी। उस अवसर पर लोगों में इतना अधिक उत्साह था कि जिन घरों में रोशनी नहीं हुई थी लोगों ने उनकी खिड़कियाँ तक तोड़ डाली थीं। नेलसन अपने मकान में बीमार पड़ा था और इसलिए वह रोशनी न कर सका था। लोगों ने उसके मकान के दरवाजे पर ठहर कर मकान में रोशनी न होने का कारण पूछा। जब उन्हें मालूम हुआ कि टेनरिफ के युद्ध से बुरी तरह घायल होकर सर होरेशियो नेलसन यहाँ आकर ठहरा हुआ है तो वे लोग चुपचाप वहाँ से चले गये।

सन् १७९७ के दिसम्बर के आरम्भ में उसकी बाँह का घाव बिलकुल अच्छा हो गया और उसे फिर काम की फिक्र लगी। लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट ने प्रार्थना की थी कि नेलसन फिर उसके मातहत काम करने के लिए भेज दिया जाय। स्वयं नेलसन भी अपने पुराने सुयोग्य अफसर के अधीन काम करने के लिए उत्सुक हो रहा था। सरकार ने नेलसन की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे १००० पौण्ड पुरस्कार दिया था। इन सेवाओं में उसे अपनी एक आँख और एक बाँह गँवानी पड़ी थी।

सन् १७९८ के आरम्भ में उसे फिर काम मिल गया और वह कैडिज (Cadiz) में जाकर सेण्ट विन्सेण्ट के बेड़े में सम्मिलित हो गया। नेलसन को इंगलैण्ड से भेजने के समय एडमिरैलटी के सर्व-प्रधान लार्ड ने सेण्ट विन्सेण्ट को जो पत्र लि[खा] था उसमें उसकी योग्यता की बहुत प्रशंसा [की] थी। कैडिज पहुँचते ही उसे एक स्काडरन [का] अधिकार मिल गया और उसकी नियुक्ति मेडिटरेनि[यन] में हो गई। उस समय टाउलन में एक बड़ा [जंगी] बेड़ा जल-युद्ध के लिए तैयार हो रहा था। चा[रों] ओर से वहाँ फौजें जमा हो रही थीं। लेकिन [अब] तक इस बात का कुछ भी पता न लगा था [कि] फ्रान्सीसियों की इस तैयारी का उद्देश्य क्या [है।] इस उद्देश्य का पता लगाना और उसे सिद्ध न हो[ने] देना नेलसन का काम था।

---

(५)

मिस्र और नील।

(सन् १७९८)



स्र देश पर फ्रान्सीसियों की [बहुत] पुश्त से कड़ी निगाह थी। [इसके] लिए इटली विजय करने के [बाद] विजय-यश-लोलुप नेपोलि[यन] का उस ओर रुख करना ही स्वाभाविक था। योरप की प्रायः सभी शक्ति[यों] को फ्रान्स दबा चुका था; केवल इंगलैण्ड ही उस[का] एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी बच गया था। जब तक [वह] इंगलैण्ड को अपने अधीन न कर ले तब तक उस[का] या उसके नव-विजित राज्यों का सुरक्षित र[हना] सम्भव नहीं था। उस अवसर पर एक बार ने[पो]लियन ने कहा भी था—"आस्ट्रियावाले अकर्मण्य [हैं,] उनसे भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन इसके विरुद्ध अँगरेज सुयोग्य और कर्म[ण्य हैं] और हमारे राजकार्य्य में हस्तक्षेप कर सकते [हैं।] हम लोगों को चाहिए कि या तो ब्रिटिश राज[्य को नष्ट] कर दें और नहीं तो उसके द्वारा स्वयं [नष्ट] होने के लिए तैयार रहें। इस समय हम लोगों [को] बहुत अच्छा अवसर मिला है। अब हम लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल-सेना की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए और इंगलैण्ड को नष्ट कर देना चाहिए। बस, इसके बाद सारा योरप हमारे चरणों में आ जायगा।"

इसके अतिरिक्त भारत के वैभव के कारण नेपोलियन का मन उसके लिए भी ललच रहा था। अपने प्रारम्भिक जीवन में भी उसने नौकरी करके भारत जाने का विचार किया था; पर उसका वह विचार पूरा न हो सका। भारत विजय करके उसे असीम प्रसिद्धि मिलने की आशा थी। उसी अवसर पर फ्रान्सवालों में एक और विचार उत्पन्न हुआ। वह लोग समझने लगे कि यह सब विजय हम लोगों की वीरता और साहस का ही फल है; नेपोलियन की इसमें कोई बड़ाई नहीं है। उधर फ्रान्स के उत्तर में इंगलैण्ड पर चढ़ाई करने के लिए धूमधाम से तैयारियाँ हो रही थीं। लेकिन उस अवसर पर नेपोलियन को यह चढ़ाई करने का साहस न होता था और वह इससे अलग रहना चाहता था। वह समझता था कि अंगरेज़ों को परास्त करना साधारण काम नहीं है। अतः अपना पीछा छुड़ाने के लिए उसने कुछ लोगों को उत्साह दिला कर इंगलैण्ड पर जाकर चढ़ाई करने की सम्मति दी और स्वयं दूसरी तरफ़ का निश्चय किया। उसका विचार मिस्र पर चढ़ाई करने का था और उसके सहायक तथा देशवासी इससे सहमत भी थे। टाउलन में सब तैयारियां होने लगीं और फ़ौजें एकत्र हो चलीं। पर इन तैयारियों के सब काम बहुत ही गुप्त रूप से होते थे। मिस्र पर अधिकार करके उसे अपने ढंग पर लाने के लिए सैनिकों के अतिरिक्त बड़े बड़े ज्योतिषी, पुरातत्त्ववेत्ता, इतिहासज्ञ, प्रकृतिवादी तथा अन्य विषयों के विद्वान् भी तैयार हो रहे थे। नेपोलियन ने मार्ग में दिल बहलाने के लिए बंगाल के नक्शे तथा अनेक उपन्यास भी रख लिये थे। तेंतिस हजार सैनिकों के वहां एकत्र हो चुकने पर नेपोलियन भी वहां पहुँच गया और पहुँचते ही उसने एक ओजपूर्ण भाषण द्वारा अपने सैनिकों को युद्ध के लिए उत्साहित किया।

उधर मेडिटरेनियन समुद्र में एक बरस से केवल फ्रान्सीसियों का ही अधिकार था। इस बीच में वहाँ कभी एक भी अँग्रेजी जहाज न गया था। १९ मई सन् १७९८ को फ्रान्सीसी बेड़ा आगे बढ़ा। उसमें तेरह बड़े और बीस छोटे जहाज थे। स्वयं नेपोलियन उनका प्रधान कमांडर था। लेकिन फ्रान्सीसी बेड़े का प्रबन्ध ठीक नहीं था और उसके अधिकांश नाविक अशिक्षित थे। राज्यक्रान्ति के कारण उसके अफसर विद्रोही तथा उद्दण्ड हो गये थे। उसका प्रधान अफसर एक एडमिरल था जिससे न तो उसके मातहत डरते थे और न जिसका वे आदर ही करते थे। उसे भी यह चढ़ाई करने का साहस न होता था। इसके अतिरिक्त उसके किसी जहाज में तीन महीने से अधिक की रसद न थी।

मई के आरम्भ में ही जिब्राल्टर से नेलसन चल चुका था। उसके साथ तीन बड़े और पाँच छोटे जहाज थे। उसे टाउलन में होनेवाली तैयारियों का पहले ही पता लग चुका था। नौ दिनों तक चलने के बाद वह टाउलन के निकट पहुँचा। अपने आशानुसार उसने बन्दरगाहों को जहाजों से भरा हुआ पाया। लेकिन वहां के सब काम इतने गुप्त रूप से होते थे कि शत्रुओं के वास्तविक उद्देश्य का उसे कुछ भी पता न लगता था। १९ तारीख को जब फ्रान्सीसी बेड़ा आगे बढ़ा तो नेलसन के एक जहाज का मस्तूल तथा ऊपरी भाग एक भारी तूफ़ान के कारण बिलकुल टूट गया। लेकिन तीन ही चार दिन में उसकी पूरी मरम्मत हो गई और वह फिर काम में आने के योग्य हो गया। इसी बीच में उसके पांचो छोटे जहाज भी एक दुर्घटना के कारण उससे छूट गये। कुछ समय बाद इंगलैण्ड से लार्ड जरविस की सहायता के लिए और कई जहाज आ गये और साथ ही कुछ बहुत गुप्त परामर्श भी आये। इनमें से बारह जहाजों को टाउलन जाकर वहाँ की तैयारियों का पता लगाने और शत्रुओं का सब सामान हस्तगत या नष्ट करने का काम सौंपा गया था। इस सम्बन्ध में एडमिरैल्टी से जो परामर्श आये थे उनमें से एक यह भी था कि यदि लार्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरविस स्वयं न जाना चाहें तो इस कठिन कार्य्य के लिए सर होरेशियो नेलसन भेजा जाय। इसका कारण यह था कि सर गिलबर्ट ईलियट (लार्ड मिण्टो) ने एड्मिरैलटी के प्रधान लार्ड से नेलसन की योग्यता की बहुत अधिक प्रशंसा की थी। लेकिन कुछ लोगों को "नवयुवक और अननुभवी" अफसर का ऐसे बड़े काम पर भेजा जाना ठीक न जँचा। स्वयं लार्ड जरविस के बेड़े में भी इसकी चर्चा हुई थी। उस बेड़े में दो अफसर नेलसन से अधिक पुराने और अनुभवी थे। उन्होंने इस बात की शिकायत भी की थी; पर उसका कुछ फल न हुआ। हाँ, एडमिरैलटी के प्रधान लार्ड स्पेन्सर और लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट को इस बात की चिन्ता अवश्य हुई थी कि यदि इस युवक को कार्य्य में सफलता न हुई तो लोग क्या कहेंगे?

इंगलैण्ड से सहायता के लिए नये जहाज आते ही नेलसन अपने जहाजों सहित वहाँ से चल दिया। उस समय उस बेड़े में सब मिलाकर चौहत्तर तोपोंवाले ग्यारह जहाज थे। उन सब जहाजों के सब के सब अधिकारी युवक, वीर और यशस्वी थे; लार्ड जरविस को उन सब पर पूरा विश्वास था और वह समझता था कि यह लोग जहाँ जायँगे वहीं विजय प्राप्त करेंगे। नेलसन का पचीस बरस का पुराना साथी और मित्र ट्राउब्रिज भी उसके साथ ही था। केवल कालिंगउड उन लोगों में न था; वह उस समय अपना जहाज लिए हुए कैडिज के निकट पड़ा था। ऐसे योग्य और उत्साही साथियों को पाकर नेलसन बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उन लोगों को भली भाँति समझा दिया कि जिस प्रकार हो सके फ्रान्सीसी जहाजों को यहाँ से पश्चिम की ओर बढ़ने से रोकना होगा। इसके अतिरिक्त जो शक्तियाँ इस युद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं रखती हैं वह यदि हम लोगों को रसद पहुँचाने में आनाकानी करें तो लड़-भिड़ कर उन्हें भी रसद देने के लिए बाध्य करना होगा। ७ जून सन् १७९८ को टाउलन के समीप नेलसन को नये सहायक जहाज मिले थे। उसी समय उसे यह भी समाचार मिल चुका था कि टा[उ]लन से फ्रान्सीसी बेड़ा चल चुका है। उस अवसर पर उसने लार्ड जरविस को लिखा था—"आ[प] विश्वास रक्खें, ज्यों ही मैं फ्रान्सीसी बेड़े के सा[मने] पहुँचूँगा त्योंही मैं युद्ध आरम्भ कर दूँगा; [उस] समय उनके जहाज चाहे लंगर डाले पड़े हों [और] चाहे पालों पर उड़े चले जाते हों।"

उस समय नेलसन के पास छोटे तेज जहाज [न] थे जिन्हें वह फ्रान्सीसी बेड़े के मार्ग का पता ल[गाने] के लिए भेजता। फ्रान्सीसी बेड़े के सब काम [बहुत] गुप्त रीति से होते थे और नेलसन के पास शत्रु के उद्देश्य का पता लगाने के लिए अनुमान के [अ]तिरिक्त और कोई साधन न था। नेलसन अपने जहा[जों] को लिये हुए तेजी से आगे बढ़ता गया। उसने [जो] जहाज तो फ्रान्सीसी बेड़े पर आक्रमण करने के [लिए] नियुक्त किये थे और शेष जहाजों को उसे नष्ट [करने] और डुबाने का काम सपुर्द किया था। ले[किन] अब तक फ्रान्सीसी बेड़े का उसे कहीं पता [न] लगा। कई दिनों बाद जब वह कार्सिका और स[ार्डीनिया] के मध्य से हो कर आगे बढ़ा तो उसे फ्रान्सीसी [बेड़े] की पक्की खबर मिली। ट्यूनिस के किसी जहाज[वाले] ने समुद्र में यात्रा करते समय एक ग्रीक से कहा [था] कि उसने दो सप्ताह पूर्व फ्रान्सीसी बेड़े को सि[सली] से पूरब की ओर जाते हुए देखा था; अतः [और] अधिक सूचना पाने के लिए नेपुल्स की ओर नेल[सन] बढ़ा। वहाँ जाकर उसने ट्राउब्रिज को वहाँ की [महा]रानी तथा मन्त्रियों के पास भेजा। पर न तो उसे [कुछ] कुछ पता ही लगा और न किसी और प्रकार [की] सहायता की आशा ही हुई। इसलिए उसने सर वि[लि]यम हैमिलटन को लिखा कि वह कृपा कर ऐसा प्र[बन्ध] कर दें जिसमें उसके बेड़े को सिसली का स्वतन्त्र [उप]योग करने का अधिकार मिल जाय। नेपुल्स [और] फ्रान्स के मध्य में जो सन्धि हुई थी उसके अनु[सार] नेपुल्स अपने बन्दरगाहों में फ्रान्स से युद्ध करने[वाली] शक्तियों के चार से अधिक जहाज नहीं ठहरा स[कता] था। लेकिन नेपुल्स बहुत कमजोर राज्य था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय उसकी दशा चक्की के दो पाटों के बीच पड़े हुए मुट्ठी भर दानों के समान थी। एक ओर समुद्र में प्रबल अँगरेजी बेड़ा और दूसरी ओर स्थल पर विपुल फ़्रान्सीसी सेना। यदि वह नेलसन की प्रार्थना स्वीकार कर लेता तो फ्रान्स को उससे युद्ध करने का एक बहाना मिल जाता; लेकिन इटली उस समय युद्ध के लिए तैयार न था। उधर यदि वह नेलसन की प्रार्थना अस्वीकार कर देता तो अँगरेजी बेड़े को रसद प्राप्त करने में बहुत कठिनता होती और उसे लाचार होकर मेडिटेरेनियन समुद्र छोड़ देना पड़ता। स्वयं नेपुल्स की महारानी ने लेडी हैमिलटन को कहा था कि वह लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट को इटली की सहायता करने के लिए पत्र लिखें। उस अवसर पर लेडी हैमिलटन ने नेलसन की बहुत सहायता की और उसने इटली की महारानी से सिसली के गवर्नर के नाम एक आज्ञापत्र इस आशय का भिजवा दिया कि वह नेलसन के बेड़े को रसद पहुँचाया करे।

नेलसन के मन में आप ही आप यह सन्देह था कि फ्रान्सीसी मिस्र की ओर बढ़ रहे हैं और वहाँ से वे हिन्दुस्तान की तरफ रवाना होंगे।* और वास्तव में नेपोलियन का वास्तविक अभिप्राय भी यही था। क्योंकि उसने एक जगह लिखा भी था—"मैं अपने साथ सिटिज़न पिबरन को भी ले जाना चाहता हूँ क्योंकि वह कुछ दिनों तक टिप्पू के यहाँ काम कर चुका है। भारत से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वह वहाँ भेजा जा सकता है।" नेलसन के मन में उसका नेपोलियन के इस उद्देश्य का अनुमान कर लेना, बहुत ही महत्त्व-पूर्ण घटना है। एक बार जब उसने लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट से भविष्य के कार्य के सम्बन्ध में आज्ञा माँगी तो उसे उत्तर मिला था—"अपनी समझ से काम करो।" यद्यपि अँगरेजी गुप्त दूतों ने उसे समाचार दिया था कि फ़्रान्सीसी या तो आयर्लैण्ड पर और या पुर्त्तगाल पर चढ़ाई करेंगे; लेकिन उसने उस पर विश्वास न करके स्वयं ही अनुमान किया और वह अनुमान बिलकुल ठीक निकला। उसने लिखा था—"यदि फ़्रान्सीसी बेड़ा टाउलन जैसे मज़बूत बन्दरगाह में न रुक रहेगा तो मैं उस पर अवश्य आक्रमण करूँगा और परमात्मा की कृपा से पूर्ण विजय प्राप्त करूँगा।" इसके अतिरिक्त लेडी हैमिलटन को उसने जो पत्र भेजा था उसमें लिखा था कि या तो मैं विजय प्राप्त करके लौटूँगा और या मर कर।

इस चढ़ाई में नेलसन ने आदि से अन्त तक न तो किसी प्रकार की अव्यवस्था की और न शीघ्रता ही। सिसली के पूर्व तट से आगे बढ़ते हुए उसने सुना कि माल्टा द्वीप को जीत कर फ़्रान्सीसी आगे बढ़ गये। यह समाचार उसे एक विदेशी जहाज से मिला था जिसका कुछ अंश असत्य भी था। उसने सुना था कि फ़्रान्सीसी १६ जून को माल्टा से चले गये; लेकिन वास्तव में वह लोग वहाँ से २० तारीख़ तक न चले थे। जिस समय नेलसन ने यह समाचार सुना था यदि उसी समय वह वहाँ से माल्टा की ओर चल पड़ता तो वह फ़्रान्सीसियों को समुद्र में ही पकड़ लेता। अथवा यदि वह उस जहाज के मालिक से स्वयं बात-चीत कर सकता तो वह उससे असल बात का पता लगा लेता। लेकिन वह जहाज तीन घण्टे पहले ही चला गया था और उसके पास उसका पीछा करके ठीक ख़बर लाने के लिए छोटी नाव भी न थी। माल्टा भेजने के लिए भी उसके पास छोटे जहाज न थे। इसलिए उसने अपने विवेक से और अपने ही उत्तरदायित्व पर कार्य्य करना उचित समझा। लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट को उसने जो पत्र भेजा था उसमें उसने अपने विचार-पक्ष का भली भाँति समर्थन किया था और मिस्र जाने के लिए अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा प्रकट की थी। वह लिखता है—"जब तक मैं पूरा पता न पा लेता तब तक क्या मैं चुपचाप बैठा हुआ प्रतीक्षा करता? यदि उनका उद्देश्य मिस्र जाने का था तो जब तक मुझे

* उस समय हिन्दुस्तान में अँगरेजों और टिप्पू सुलतान में भयङ्कर विरोध चल रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका समाचार मिलता तब तक वह लोग भारत जा पहुँचते।" उसने निश्चय किया कि कुछ जोखिम सही जाय और कार्य्य किया जाय। एक स्थान पर उसने यह भी लिखा है—"मैंने समझा कि कुछ न करना अप्रतिष्ठा-कारक होगा।"

उस समय पश्चिमी हवा बह रही थी इसलिए अँगरेजी बेड़े का उसी ओर आगे बढ़ना बहुत कठिन था। २२ जून को अँगरेजी और फ़्रान्सीसी बेड़े एक दूसरे के बहुत ही निकट पहुँच गये थे। यहाँ तक कि सांकेतिक बन्दूकों के शब्द भी परस्पर सुनाई देते थे। लेकिन फ़्रान्सीसी बेड़ा तो उत्तर की ओर बढ़ गया और नेलसन एलेक्ज़ेण्ड्रिया की ओर चला। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि बन्दर बिलकुल खाली पड़ा है। उसके दुःख और आश्चर्य की सीमा न रही। उसने समझा कि मैंने बड़ी भूल की; अवश्य ही फ्रान्सीसी बेड़ा कहीं पीछे छूट गया और कुछ न कुछ अनिष्ट या अपकार करेगा। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ सा हो गया था। उस दिन उसने कई बरसों बाद अपने आद-मियों से घोर निराशा प्रकट की। इधर कई बरसों से ऐसी ही अकृतकार्य्यता उसके भाग्य में बदी थी। उस दिन उसे छोटे तेज जहाजों के अभाव के कारण जो दुःख हुआ वह जन्म भर नहीं भूला। दुःखित और निराश होकर वह एलेक्ज़ेण्ड्रिया से आगे बढ़ा। उधर अँगरेजी बेड़ा उत्तर-पूर्व के कोने की ओर बढ़ा और इधर फ्रान्सीसी बेड़ा उत्तर-पश्चिम के कोने में आया। सिर्फ एक दिन का फेर पड़ा। यदि उसे कुछ घण्टे और देर हो जाती तो इतना कष्ट बोध न करना पड़ता। पहले तो वह एशिया माइनर की ओर बढ़ा और तब फिर रसद के लिए सिसली लौटा। जब वह सिराक्यूज बन्दर में पहुँचा तो वहाँ के गवर्नर ने कुछ आपत्ति की। मालूम होता है कि उसे इस सम्बन्ध में कोई गुप्त आज्ञा मिली होगी। लेकिन कुछ समय बाद उसने नेलसन को रसद आदि दे दी थी; इससे प्रकट होता है कि अँगरेजी बेड़े के लिए उसकी आपत्ति केवल फ्रान्सीसियों को सन्तुष्ट करने के लिए थी। २३ जुलाई को नेलसन फिर मिस्र की ओर बढ़ा। इस बार उसे पू विश्वास था कि नेपोलियन उसे वहीं मिलेगा।

रास्ते में नेलसन ने अपने अधीनस्थ अधिकारि को युद्ध-सम्बन्धी सब आवश्यक बातें बतला और सब स्थिति समझा कर उन्हें कर्त्तव्य ब दिया। उसने निश्चय किया था कि यदि फ्रान्सी बेड़ा उसे लंगर डाले हुए मिलेगा तो वह अप सारी शक्ति से उसके किसी अंश पर धावा क देगा। उस समय किसी विशेष संकेत की आवश्य कता न होगी और अँगरेज एकाएक शत्रुओं पर पड़ेंगे। समय का मूल्य, नेलसन और नेपोलि दोनों ही खूब जानते थे। नेलसन ने एक बार क था—"समय ही सब कुछ है। पाँच ही मिनट का फा पड़ने में परास्त या विजय हो जाती है।" नेपोलि कहा करता था—"जिस समय मुझे कुछ भी नहीं रहता, उस समय भी मैं यही समझता हूँ मेरे पास नष्ट करने के लिए जरा भी समय नहीं है

इस बीच में फ्रान्सीसी बेड़े ने एलेक्ज़ेण्ड्रिया लंगर डाला। उस समय फ्रान्सीसियों ने प पहल जाना कि जिस बेड़े को फ्रान्सीसी जहाजों ने देखा था उसका कमांडर नेलसन उन्होंने यह भी सुना कि अँगरेजी बेड़ा अभी यहाँ गया है और सम्भवतः अब न लौटेगा। नेपोलि ने (किस्मत के) सितारे से प्रार्थना की कि केवल पाँच दिन का समय दो। जल्दी जल्दी ज पर से फौजें उतरीं और नेपोलियन उन्हें वहाँ कर स्थल की ओर गया। फ्रान्सीसी बेड़ा रसद होने के कारण अबूकीर की खाड़ी में ठहरा फ्रान्सीसी सेना में व्यवस्था, आज्ञाकारिता, प्र आदि का अभाव था। इसलिए फ्रान्सीसी बेड़ा खाड़ी में लंगर डाले पड़ा था और अँगरेजी उसकी खोज में समुद्र छान रहा था।

अबूकीर की खाड़ी, नील के मुहाने और ए जेण्ड्रिया के मध्य में कई मील तक चली ग फ्रान्सीसियों ने एक छोटे द्वीप में थोड़ी सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर मोरचाबन्दी की थी। लेकिन उनके जहाज एक दूसरे से इतनी दूरी पर खड़े थे कि शत्रुओं के जहाज उनके बीच से हो कर आसानी से गुजर सकते थे। इसके अतिरिक्त युद्ध-नियम के विरुद्ध अन्तिम जहाज और किनारे के मध्य में भी उतनाही स्थान छूटा हुआ था। उन्होंने लंगर भी केवल एक ही डाला था और दूसरा लंगर शत्रुओं के दिखलाई देने पर गिराने के लिए बचा रखा था। सबसे आगे जो जहाज थे वे इतने पुराने और कमजोर थे कि स्वयं अपनी तोपों के धक्के न सँभाल सकते थे। इसके अतिरिक्त रसद और पानी का इतना अभाव था कि शत्रुओं के आने का समाचार देने के लिए वह चार छोटे जहाज भी गहरे समुद्र में न जा सके थे।

नेपोलियन ने कई बार अपने एडमिरल को लिखा कि वह एलेक्ज़ेण्ड्रिया के सामने तैयार हो कर ठहरा रहे पर उसकी आज्ञा का पालन नहीं हुआ। एडमिरल ने उत्तर में नेपोलियन को यही लिखा कि यहाँ सब काम मजे में चल रहा है। अगस्त के दिन हवा उत्तर-पश्चिम को बह रही थी। अधिकांश सैनिक छोटी नावें लेकर पानी लाने के लिए किनारे पर गये हुए थे। कप्तान लोग मजे में टेबुल कुरसी लगाये बैठे थे। एक भी फ्रान्सीसी जहाज सचेत या पहरे पर न था। अचानक दोपहर को प्रायः २ बजे के समय एक फ्रान्सीसी जहाज ने संकेत द्वारा सूचित किया कि कुछ अजनबी जहाज दिखाई पड़ते हैं। थोड़ी ही देर बाद उसने दूसरा संकेत किया कि शत्रु इस ओर आ रहे हैं। उस समय फ्रान्सीसी सैनिकों की जो दशा हुई होगी उसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं।

उसी समय किनारे पर गई हुई नावों को वापस बुलाने का संकेत किया गया। लेकिन उनके आने में बड़ा विलम्ब हुआ। सब अफसर मिल कर परामर्श करने लगे। उनका प्रधान एडमिरल ब्रुएज चाहता था कि जहाजों के लंगर उठा लिये जायँ और चल कर अँगरेजों का मुकाबला किया जाय; पर उसके अधीनस्थ कर्मचारी इस पर सहमत न होते थे। इसके अतिरिक्त उस समय उनके पास काफी आदमी भी न थे। तो भी किसी न किसी प्रकार फ्रान्सीसी अफसर युद्ध की तैयारी में लगे। ब्रुएज को उस समय तक यह आशा न थी कि अँगरेज आज ही उस पर आक्रमण करेंगे। इस तरह जल्दी के कारण उसका कोई प्रबन्ध पूरा न हो सका। नावों के अभाव के कारण जो उस समय तक लौटी न थीं, कठिनता और भी बढ़ गई। इसी के परिणाम-स्वरूप फ्रान्सीसी जहाजों का रुख तक न बदला जा सका था।

लेकिन अँगरेजी सेना ने शत्रुओं पर आक्रमण करने में जरा भी विलम्ब न किया। तुरन्त संकेत किया गया और सब लोग अपने अपने काम पर मुस्तैद हो गये। वह लोग पहले ही सब तैयारियाँ कर चुके थे और शायद उन्हें विजय की भी पूरी आशा थी। अँगरेजी सेना के पास उस खाड़ी के नक्शे नहीं थे, पर तो भी उसने इसकी कुछ परवा न की। दिन थोड़ा सा ही बाकी रह गया था और रात के समय अनजान स्थान में भटकने में कठिनता होती। एक एक करके सब अँगरेजी जहाज फ्रान्सीसी बेड़े की ओर बढ़ते गये; केवल तीन जहाज पीछे छूट गये। द्वीप पर की मोरचाबन्दी से अँगरेजों पर कुछ गोलियाँ बरसाई गईं पर थोड़ी ही देर बाद वह रुक गईं। अब दोनों ओर से गोलों और गोलियों की वर्षा होने लगी। उस समय आकाश निर्मल था और समुद्र भी शान्त था। सूर्य्य अस्त हो चुका था और अन्धकार बढ़ रहा था। अँगरेज इस कठिनाई से पार पाने के लिए कई दिन पहिले से ही तैयार हो चुके थे, इसलिए उन्होंने शीघ्र ही रोशनी का भी प्रबन्ध कर लिया।

रात का युद्ध बहुत भयङ्कर होता है और उसमें सुव्यवस्था और साहस की बहुत आवश्यकता होती है। उस समय शत्रु और मित्र में भेद करना भी कठिन हो जाता है। लेकिन कहा जाता है कि अँगरेजों ने इस युद्ध में कोई भूल या त्रुटि नहीं की और प्रत्येक अफसर ने भली भाँति अपना कर्त्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन किया। लेकिन अँगरेजों के आक्रमण कर देने के समय तक अधिकांश फ्रान्सीसी जहाज़ों पर उनके पूरे सैनिक और कप्तान भी न पहुँच सके थे। रात होते ही युद्ध पूरी तरह से आरम्भ हो गया। एक अँगरेजी जहाज़ से टक्कर खाने के कारण एक फ्रान्सीसी जहाज के पेंदे में छेद हो गया और वह बेकाम हो कर किनारे पर चला गया। थोड़ी ही देर बाद फ्रान्सीसी जहाज़ों पर बहुत से जख्मी और मरे हुए सैनिक दिखाई देने लगे। दूसरी ओर भी एक कप्तान और कुछ सिपाही मारे गये। उस समय आठ अँगरेजी जहाज़ों ने छः फ्रान्सीसी जहाज़ों को चारों ओर से घेर रखा था। एक और अँगरेजी जहाज दूसरे फ्रान्सीसी जहाज से एक ओर अलग लड़ रहा था। इसके सिवा सात फ्रान्सीसी जहाज इस युद्ध से प्रायः अलग ही थे। इसका कारण यही था कि उनका एडमिरल बहुत ही सुस्त आदमी था और उन्हें कोई निश्चित आज्ञा नहीं मिलती थी। रात को दस बजे एक और फ्रान्सीसी जहाज टूट कर बेकाम हो गया। थोड़ी देर बाद एक और जहाज जल गया। किसी प्रकार एक अँगरेजी जहाज की रोशनी बुझ गई थी और उसके सैनिकों में बहुत गड़बड़ी फैल गई थी। इतने में उसका सामना एक और अँगरेजी जहाज से हो गया। लेकिन उस दूसरे जहाज ने बिना जाने बूझे उस पर वार करना अनुचित समझा और इस प्रकार वह नष्ट होते होते बच गया। इसके बाद एक दूसरे फ्रान्सीसी जहाज के गोदाम में आग लग गई पर वह थोड़ी ही देर बाद बुझा दी गई। उस समय ख़ूब घमासान युद्ध हो रहा था और दोनों ओर से गोलों और गोलियों की ख़ूब बौछार हो रही थी। नेलसन अपने जहाज पर खड़ा हुआ अपने सैनिकों को कुछ आज्ञा दे रहा था; इतने में उसके माथे पर लोहे का एक टुकड़ा आकर जोर से लगा जिससे उस स्थान से मांस का एक टुकड़ा और उसके साथ ही उसकी दाहिनी आँख कट कर झूलने लगी। वह जमीन पर गिरना ही चाहता था कि पीछे से एक कप्तान ने उसे पकड़ लिया। लोग उसे उठा कर नीचे के एक कमरे में ले गये। डाक्टर आकर उसके घाव पर पट्टी आदि बाँधने चा[हता था] पर उसने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि प[हले] मेरे अन्य साथियों की मरहम-पट्टी कर लो। [और] लोगों की मरहम-पट्टी करने के बाद डाक्टर ने उस[के] सिर पर भी पट्टी बाँधी। उस समय मालूम हु[आ] कि घाव बहुत भारी नहीं है।

ग्यारह बजे एक और फ्रान्सीसी जहाज टू[ट] गया। इसे मिलाकर अब तक पाँच फ्रान्सीसी जहा[ज] टूट चुके थे। इसके सिवा थोड़ी देर पहले दो [और] फ्रान्सीसी जहाज़ों पर अँगरेज अपना अधि[कार] कर चुके थे। युद्ध के आरम्भ में ही फ्रान्सीसी क[मां]डर-इन-चीफ की गरदन और टाँगें जख्मी हो [गई] थीं पर वह बराबर अपने काम पर मुस्तैद था। [पर अन्त] को वह बहुत अधिक घायल हो गया और उस[के] बचने की कोई आशा न रह गई। उस समय उस "ओरिएण्ट" नामक जहाज के सैनिकों ने जिस वीर[ता] से युद्ध किया था उसकी प्रशंसा बड़े बड़े अँग[रेज] वीरों और सुलेखकों ने की है। पर अभाग्य[वश] उसमें आग लग गई। उस पर से फ्रान्सीसी सै[निक] समुद्र में कूदने लगे। उस समय नेलसन ने उन[की] सहायता के लिए अपनी नावें भेजने की उदार[ता] दिखलाई। अन्य अँगरेजी जहाज़ों ने भी इसी प्र[कार] उसकी सहायता की। पर उसमें आग बहुत भय[ानक] रूप से लगी हुई थी जो किसी प्रकार न बुझ सकी [और] अन्त में वह जहाज वहीं बैठ गया। उसमें छः ला[ख] पाउण्ड नगद थे जो फ्रान्सीसी प्रजातन्त्र ने रोम [और] स्विजरलैण्ड से लिये थे। यह विपुल धन भी उ[सी] जहाज़ के साथ समुद्र तल में चला गया।

इस दुर्घटना के कारण प्रायः चार सौ फ्रान्सी[सी] सैनिकों को समुद्र में तैरते हुए जहाज के मस्तू[लों] पर शरण लेनी पड़ी थी जिनमें से केवल [...] आदमियों के प्राण बच सके थे। अधिकांश की [मृत्यु] तो लगातार बरसनेवाली गोलियों के कार[ण] हुई थी। थोड़ी देर बाद एक अँगरेजी जहाज में [आग] लगी पर वह तुरन्त बुझा दी गई। उस समय [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...रह से मालूम होता था कि विजय अँगरेजों की होगी; इसलिए वह लोग और भी अधिक उत्साह से ...ने लगे। उसी समय नेलसन ने आज्ञा दी कि ...पहर को दो बजे सब जहाजवाले ईश्वर को ...की कृपा के लिए धन्यवाद दें। और इसके बाद ...त थके होने के कारण वह अपने शयनागार में ...कर सो रहा। थोड़ी देर बाद लड़ाई भी बन्द हो ...।

...सवेरे फिर युद्ध आरम्भ हुआ। उस समय ...गरेज सैनिक इतने थके हुए थे कि वह थोड़ा अव-...र पाते ही झपकी लेने लगते थे। कुछ दिन चढ़ने ... फ्रान्सीसी जी तोड़ कर लड़ने लगे। नये उत्साह ... उन्होंने अँगरेजी बेड़े पर आक्रमण किया। फिर ...र युद्ध होने लगा। बहुत देर तक युद्ध होता रहा ... सितारा उस समय अँगरेजों का ही तेज था। ...रेजों ने एक एक करके सभी फ्रान्सीसी जहाज ...ड़ डाले थे। केवल दो जहाज उनके और बच गये ... लेकिन नेलसन उन दोनों को भी सही सलामत ...जाने देना चाहता था। उसने लार्ड मिण्टो को ...खा था कि यदि वह घायल न हो जाता तो वह ...त्रुओं की एक नाव भी बिना नष्ट किये न छोड़ता। ... प्रायः कहा करता था कि यदि शत्रुओं का एक जहाज बच कर निकल जाय तो वह पूर्ण विजय ...हीं है।

अस्तु, अँगरेजों ने इस युद्ध में फ्रान्सीसियों को ...रूप से परास्त किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। ...किन फ्रान्सीसियों ने भी उनका खूब मुकाबला ...था। अँगरेजों के केवल तीन जहाज बेकाम ...ये। उनके ७४०० सैनिकों में से २१८ मरे और ...८ घायल हुए थे। अँगरेजों का जो जहाज युद्ध ...सब से आगे था उसमें के केवल आठ ही आदमी ...थे। इससे मालूम होता है कि फ्रान्सीसी अच्छा ...शाना लगाना नहीं जानते थे। नेलसन के कथना-...ार ११२०० फ्रान्सीसी सैनिकों में से ५२२५ ...क मरे, डूबे और घायल हुए थे। इस परास्त से ...न्सीसियों की सारी हिम्मत छूट गई। नेपोलियन को उस समय भारत की ओर बढ़ने की अपेक्षा अपनी सेना की रक्षा की अधिक चिन्ता हुई।

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद सबसे पहले अँगरेज सैनिकों को धन्यवाद दिया गया। इसके बाद लाशें गाड़ी गईं और जहाज़ों की मरम्मत की गई। एक पत्र द्वारा अँगरेज सैनिकों को यह सूचना दी गई कि उन लोगों के सुव्यवस्थित और आज्ञाकारी होने के कारण ही यह विजय हुई है। यह सूचना विशेषतः उन जहाज़ों के लिए थी जो हाल में कैडिज़ और स्पिटहेड के विद्रोह में सम्मिलित हो चुके थे। लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट को इस विजय की सूचना देने के लिए एक जहाज़ रवाना किया गया। इस अवसर पर नेलसन ने जो डिस्पैच भेजे थे वह बहुत ही नम्रता और योग्यता-पूर्ण थे। नेलसन ने उनमें अपनी कोई बड़ाई नहीं जतलाई थी। उसने सैनिकों की आज्ञाकारिता और अफसरों के सुप्रबन्ध और साहस की ही अधिक प्रशंसा की थी। अपने घायल होने का उसने बहुत ही साधारण जिक्र किया था। यही नहीं, बल्कि घायलों की जो (६७७) संख्या लिखी गई थी उसमें नेलसन का नाम सम्मिलित नहीं था।

विजय का सन्देसा लेकर जो जहाज़ इंगलैंड जा रहा था उसे रास्ते में एक फ्रान्सीसी जहाज ने बहुत तंग किया था। फ्रान्सीसी अपनी हार के कारण बहुत खिजलाये हुए थे; इसलिए उन्होंने उस जहाज का सब माल असबाब लूट लिया। लेकिन यही सन्देसा और डिस्पैच की दूसरी नकल देकर नेलसन ने एक दूसरा जहाज भी नेपुल्स और वायना के रास्ते इंगलैंड भेजा था। वह जहाज़ विजय के ठीक दो मास बाद २ सितम्बर को इंगलैंड पहुँचा था। उस समय तक कुछ समाचार न मिलने के कारण इंगलैंड में सब लोग बड़ी असमंजस में पड़े हुए थे। कुछ लोग तो यही समझते थे कि फ्रान्सीसी बेड़े को नेलसन न पा सका होगा। उसके मित्रों से लोग हँसी उड़ाते और उन्हें ताने दिया करते थे। पर जिस समय इस विजय का समाचार इंगलैंड पहुँचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वहाँवालों के आश्चर्य और आनन्द की सीमा न रही। वास्तव में नेलसन के कार्यों ने उसका तथा उसके देश का सिर बहुत ऊँचा कर दिया था।

उस समय अंगरेज़ों की प्रसन्नता का वारापार न रहा। तमाम नगर में खूब रोशनी हुई। समाचार-पत्रों ने सारे देश की ओर से कृतज्ञता प्रकट की। सबसे अधिक प्रसन्नता लार्ड स्पेन्सर को हुई थी क्योंकि उसी की सिफारिश से नेलसन इस युद्ध में भेजा गया था। लेडी स्पेन्सर ने तो उसे जी खोल कर आशीर्वाद दिया था। यह सब कुछ हुआ पर सरकार ने उसकी पूरी कदर न की। ६ अक्तूबर को गजट में प्रकाशित हुआ कि नेलसन नील और बर्नहम थार्प का बैरन बनाया गया है। इससे छोटी छोटी विजय के लिए डन्कन "वाईकाउण्ट" और जरविस "अर्ल" बनाया गया था। उसके प्रति सरकार की इस उदासीनता का कोई ठीक कारण नहीं मालूम होता। लार्ड स्पेन्सर ने नेलसन को मुबारकबादी देते हुए जो पत्र भेजा था उसमें लिखा था कि इतने थोड़े दिनों के नौकर को आज तक इससे बड़ी उपाधि नहीं मिली और न कमांडर-इन-चीफ से कम ओहदे के अफसर को ही। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि एडमिरैल्टी में कई आदमी ऐसे थे जो नेलसन से द्वेष रखते थे और उसका अभ्युदय न देख सकते थे। लेकिन इन बातों से नेलसन की कीर्ति में कोई भेद नहीं पड़ सकता। सरकार ने उसके लिए २००० पाउण्ड वार्षिक वृत्ति भी नियत कर दी थी। लेकिन ज्यों ज्यों नेलसन की आय बढ़ती जाती थी त्यों त्यों उसकी उदारता भी बढ़ती जाती थी; इसलिए वह दरिद्रता के चंगुल से न निकल सका। और लोगों को वैसी ही विजय करने के कारण सरकार से ३००० पाउण्ड वार्षिक मिलते थे; इसलिए दरिद्र नेलसन को इस अन्याय के कारण बहुत अधिक दुःख हुआ। इसलिए अन्त में उसने यही समझकर सन्तोष किया कि मैंने जो कुछ किया है वह मेरा कर्त्तव्य ही था।

लेकिन अन्य देशवासियों ने उसकी अच्छी प्रतिष्ठा की और उसे बहुत से बहुमूल्य उपहार भी दिये। लार्ड मिण्टो ने हाउस आफ लार्ड्स में उसकी बहुत अधिक प्रशंसा की और यह दिखलाया कि वह केवल वीर ही नहीं बल्कि और सब प्रकार से भी बहुत योग्य है। ईस्ट इंडिया कम्पनी को उसने बड़ी भारी विपत्ति से बचा लिया था, इसलिए कम्पनी ने उसे १०००० पाउण्ड पुरस्कार स्वरूप दिये थे। इस रकम में से उसने २००० पाउण्ड अपने पिता को दे दिये थे। रूस के बादशाह ने एक जड़ाऊ सोने का बक्स, रूम के सुलतान ने एक जड़ाऊ कलग़ी, उनकी माता ने एक जड़ाऊ बक्स और १००० पाउण्ड नगद और सार्डीनिया के राजा ने एक जड़ाऊ बक्स उसे उपहार-स्वरूप दिया था। नेपुल्स के राजा ने उसे वह तलवार भेंट की थी जिससे स्पेन के तृतीय चार्ल्स ने नेपुल्स को विजय किया था। इसके सिवा और बड़े बड़े लोगों ने उसकी जो समुचित प्रशंसा की थी वह इससे अलग है। बहुतों की सम्मति में तो नेलसन की यह विजय इंगलैंड के इतिहास में अभूत-पूर्व थी।

नेलसन तथा उसके अन्य साथी कप्तानों को इंगलैंड के महाराज ने एक एक पदक दिया था। उनमें से बेरी नामक कप्तान जिसने नेलसन को जखमी होकर गिरते समय संभाला था, 'नाइट' बनाया गया। सुलतान रूम तथा इंगलैंड के देश-सेवकीय फण्ड की ओर से घायल सैनिकों और नाविकों को धन की सहायता दी गई थी। फ्रान्सीसी जहाज़ों पर से लूट का जो माल आया था वह भी उन्हीं लोगों में बांट दिया गया।

युद्ध में घायल होने के कारण नेलसन को लिखने पढ़ने में बहुत कठिनता होती थी और वह प्रायः बीमार रहा करता था। ९ अगस्त को उसने एक लेफटिनेण्ट को विजय-समाचार देकर भारत की ओर भेजा। नेपोलियन के जो पत्र-व्यवहार और डिस्पैच आदि नेलसन ने गिरफ़्तार किये थे उनका जिक्र करते हुए उसने बम्बई के गवर्नर को लि[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था—"उसके पत्रों में इतनी लम्बी चौड़ी बातें लिखी हुई हैं कि उनमें से सच्ची बातों का पता लगाना बहुत ही कठिन है। पर तो भी उनमें भारत का कोई जिक्र नहीं है। मैं जानता हूँ कि फ्रान्सीसियों का पहला उद्देश्य बम्बई ही है। पर मुझे विश्वास है कि मनुष्य का रक्त बहानेवाले इन फ्रान्सीसियों का ईश्वर शीघ्र ही दमन कर देगा।" यद्यपि नेलसन अपने शत्रु फ्रान्सीसियों से बहुत घृणा करता था, पर फ्रान्सीसी उसकी वीरता और योग्यता की सदा प्रशंसा ही करते थे।

इस युद्ध की समाप्ति पर नेलसन को लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट ने आज्ञा दी कि वह अपने जहाजों को मीनारका टापू पर आक्रमण करने के लिये तैयार कर दे। लड़ाई में मिले हुए ६ जहाज बड़ी कठिनता से इंगलैण्ड पहुँचाये गये। तीन जहाज बहुत अधिक खराब होने के कारण वहीं रखे गये। नेलसन उन जहाजों को जला देना चाहता था क्योंकि उसे आशा थी कि उसके बदले में सरकार की ओर से नगद रुपये मिल जायँगे। उसने एक बार लिखा भी था कि बड़े अफसर तो केवल प्रतिष्ठा और पदवी से भी संतुष्ट हो सकते हैं पर छोटे कर्म्मचारियों और सैनिकों को संतुष्ट करने के लिए लूट के माल के सिवा और कोई उपाय नहीं है। उन लोगों से भविष्य में काम लेने के लिए यह आवश्यक था कि उनके प्रति न्याय किया जाय। नेलसन ने वह तीनों जहाज वहीं जलवा दिये और सैनिकों को सरकार से उनका कुछ मूल्य दिलवा दिया।

अपने जहाज को मेडिटरेनियन में भेज कर अगस्त के मध्य में अपने साथ तीन जहाज लेकर नेलसन नेपुल्स की ओर बढ़ा। नेपुल्स उस समय फ्रान्स से युद्ध के लिए तैयार हो रहा था। इसलिए उसकी सहायता के लिए नेलसन अपने तीन बड़े और चार छोटे जहाज एलेक्ज़ेण्ड्रिया में ही छोड़ गया। यह लोग इतनी चौकसी करते थे कि नेपोलियन को वहाँ का समाचार मिलना बन्द हो गया।

इस परास्त के कारण नेपोलियन की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। कई वर्षों बाद उसने एक बार कहा भी था—"मैं एक नया धर्म्म चलाना चाहता था। मैं कल्पना करता था कि मैं पगड़ी बाँधे हुए, एक हाथी पर सवार, अपने हाथ में एक कुरान लिये हुए,—जो कि मैं अपने सुभीते के अनुसार बनाता—एशिया की तरफ बढ़ता जा रहा हूँ। मैंने अपने आप को भारत पर आक्रमण करने की स्थिति में देखा था। पर मेरे भाग्य ने अन्यथा निर्णय कर दिया।" इस परास्त के कारण उसे अधिक धक्का इसलिए पहुँचा था कि जहाज जल जाने के कारण उनके जो हजारों आदमी मारे गये थे, उनके स्थान की पूर्त्ति के लिए उसे धन की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। लेकिन धन्य था नेपोलियन, जो इतना हो चुकने पर भी निराश होकर न बैठ रहा। उसने सीरिया और कुस्तुनतुनिया होते हुए युरोप की ओर बढ़ना चाहा। लेकिन जिस जल-सेना से वह शंकित रहता था, उसी जल-सेना ने फिर उसका रास्ता काटा और उसके उद्योगों में बाधा डाली। नेलसन का पहला वार ठीक हुआ था और अब हम यह दिखलावेंगे कि आगे चल कर वह नेपोलियन के कार्य्यों में विघ्न डालने में कहाँ तक समर्थ हुआ था।

(६)

बाल्टिक और कोपनहेगन।

(सन् १८००—१८०१)

सन् १८०० के ग्रीष्म-काल में नेलसन ट्रीस्ट में उतरा और वहाँ से नेपुल्स की महारानी और लार्ड तथा लेडी हैमिल्टन के साथ वायना गया। उसकी यात्रा के समय आस्ट्रिया में खूब धूमधाम हुई। वहाँवालों ने उसके दर्शनों के लिए जो उत्साह दिखलाया था उससे वह गद्गद हो गया। सब की दृष्टि में उसी की मूर्त्ति थी और सब की जबान पर उसी का नाम था। वायना में भी जहाँ वह लार्ड मिण्टो से मिला था, उसका कम स्वागत नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन लेडी हैमिल्टन के साथ उसका जो अनुचित सम्बन्ध था वह वहाँ के लोगों को भी खटकता था। यद्यपि उसके बहुत घनिष्ट मित्र भी यही समझते थे कि खुशामदें और तारीफें उसे बिगाड़ देंगी, पर वह बात नहीं हुई। लार्ड और लेडी मिन्टो ने उसे पहले की ही भाँति सच्चा और सरल पाया। यदि वह कोई घमण्ड-पूर्ण व्यवहार भी कर बैठता तो लोग उसे उसकी सरलता का ही कारण समझते थे। भोजन के समय लेडी हैमिल्टन उसके पास मांस के टुकड़े काटने के लिए बैठ जाती थी और वह उसके जेब से रूमाल चुरा लिया करता था। वायना के सभ्य-समाज में इस पर उसकी हँसी भी हुआ करती थी।

आस्ट्रिया के आर्क ड्यूकों और प्रिन्सों के यहाँ खूब दावतें खाकर वह लार्ड और लेडी हैमिल्टन के साथ ड्रेसडेन गया। वहाँ वह श्रीमती सेण्ट जार्ज से मिला था जिसने उसके स्वभाव और योग्यता की प्रशंसा करते हुए लेडी हैमिल्टन-सम्बन्धी उसके अपवाद की पुष्टि की थी। लार्ड हैमिल्टन के सम्बन्ध में उसने कहा था कि वह वृद्ध है और सब प्रकार अपनी स्त्री के वश में है। वहीं पर सेक्सनी के अँगरेज राजदूत मि० ईलियट ने यह भी भविष्यद्वाणी की थी कि लेडी हैमिल्टन अपने जाल में प्रिन्स-आफ-वेल्स को भी फँसा लेगी क्योंकि दोनों का स्वभाव एक समान है।

नेलसन वहाँ से चल कर जर्मनी पहुँचा। वहाँ भी उसका यथेष्ट स्वागत हुआ। हैम्बर्ग में लोगों ने उससे स्वयं अपनी जीवनी लिखने के लिए प्रार्थना की थी। वहाँ से वह जहाज पर सवार हुआ और लेडी हैमिल्टन सहित ६ नवम्बर सन् १८०० को यारमाउथ में उतरा।

इसी अवसर पर उसने अँगरेज जाति में पहले पहल सर्वप्रियता सम्पादित की। उसके देशवासी समझ गये थे कि वह उसके बहुत ऋणी हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि इंगलैंड को शत्रुओं से बचाने के लिए उसने बहुत बड़ा काम किया है। जहाँ चार आदमी एकत्र होते थे वहीं उसकी वीरता की चर्चा छिड़ जाती थी। लन्दन के लोगों ने उसकी गाड़ी स्वयं खींची थी। उसे देखने के लिए सड़कों पर ठठ के ठठ लोग जमा होते थे। उसने बड़े दिन सर हैमिल्टन के एक सम्बन्धी के यहाँ वहीं बिताये थे।

जनवरी सन् १८०१ में नेलसन वाइस एडमिरल बनाया गया। पर दरिद्रता अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। उस समय लूट के माल के सम्बन्ध में उसका एक मुकदमा लार्ड सेन्ट विन्सेण्ट के साथ चल रहा था। लेडी हैमिल्टन को भी शीघ्र ही सन्तति होनेवाली थी। इस कारण नेलसन और भी चिन्तित था। अधिक चिन्ता उसे लेडी हैमिल्टन और प्रिन्स आफ वेल्स (बाद में चतुर्थ जार्ज) सम्बन्धी अपवाद की थी। इंगलैण्ड के राजदरबार में नेलसन का स्वागत भी यथेष्ट नहीं हुआ था। नेपुल्स के राजदरबार में जिसका इतना आदर हुआ था इंगलैण्ड में उसी के साथ इतनी उदासीनता दिखलाई गई। महाराज तृतीय जार्ज ने दरबार में उससे केवल दो ही चार बातें की थीं। इस उदासीनता का कारण शायद लेडी हैमिल्टन से उसका अनुचित सम्बन्ध ही था। तो भी सर्वसाधारण के हृदय में उसके लिए बहुत उच्च स्थान था।

थोड़े ही दिन विश्राम करने के बाद उसके कार्य पर जाने का समय फिर निकट आ चला। उसकी निज की परिस्थिति उसे घर पर रहने के लिए ही विवश करती थी; डाक्टर उसकी शल्य-चिकित्सा करना चाहते थे; लेडी हैमिल्टन का प्रसवकाल भी निकट ही था और वह स्वयं भी आनन्द-पूर्वक घर ही बैठना चाहता था। लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी अपने कर्तव्य की ओर उसका पूरा ध्यान लगा हुआ था। इसलिए १७ जनवरी को वह फिर जहाज पर सवार हो गया। लार्ड विन्सेण्ट को उसने लिखा था कि अपने देश और राजा की सेवा करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। लेकिन जो जहाज नेलसन को दिया गया था वह बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही था जिसका उसे बहुत अधिक दुःख हुआ। तो भी उसने यही कहा—"कोई चिन्ता नहीं। फिर भी मैं ही सर्वप्रथम रहूँगा।"

डेनमार्क, स्वीडन और रूस तीनों इंगलैण्ड से लड़ने के लिए तैयारियाँ कर रहे थे क्योंकि वह उनके व्यापार में विघ्न डालता था। अँगरेज चाहते थे कि वह लोग अपने जहाजों में वह सामान न ले जायँ जिनसे फ्रान्सीसियों तथा अन्य शत्रुओं को किसी प्रकार की सहायता मिले; लेकिन यह तीनों, अँगरेजों को अपने जहाजों की तलाशी न लेने देना चाहते थे। यदि अँगरेज उनके जहाजों की तलाशी न लेते तो अँगरेज व्यापारियों का जो माल फ्रान्सीसी लूट लेते वह उनके द्वारा बेखटके ठिकाने लग जाता। लेकिन पेरिस की सन्धि करके अँगरेज राजनीतिज्ञों ने यह कठिनाई सदा के लिए दूर कर दी। जो जाति भविष्य की ओर ध्यान नहीं रखती उसे शान्ति के समय में भी बहुत हानि सहनी पड़ती है।

१७ फरवरी को उसे आज्ञा मिली की वह एडमिरल सर हाइड पारकर की अधीनता में काम करने के लिए चला जाय। तदनुसार वह यारमाउथ पहुँच कर सर हाइड के बेड़े में सम्मिलित हो गया। इस बार अपनी प्रेमिका को छोड़ने के कारण वह इतना अधिक दुःखी हुआ था कि उसने लार्ड सेण्ट विन्सेण्ट से कह दिया था कि यही मेरी अन्तिम सेवा होगी। सर हाइड शायद इतने बड़े पद के लिए अनुपयुक्त था इसी लिए नेलसन की उससे अनबन हो गई। नेलसन का यह भी अनुमान था कि सर हाइड कोई षड़यन्त्र रच कर उसे हानि पहुँचावेगा। नेलसन समय का महत्त्व जानता था इसलिए बेड़े में पहुँचते ही उसने लंगर उठाने के लिए जल्दी मचा दी थी। लेकिन एडमिरल एक नाच कराना चाहता था और इसी लिए वह बेड़े को रोके हुए था। पर जब इसकी सूचना एडमिरैलटी को मिली तो वहाँ से उसे तुरन्त चले जाने के लिए आज्ञा आई। १२ मार्च सन् १८०१ को सर हाइड अपने साथ सत्तरह बड़े और ग्यारह छोटे जहाज तथा और बहुत सी छोटी नावें लेकर रवाना हुआ। चलते समय उसने आज्ञा दी थी कि जहाँ तक शीघ्र हो सके कोपनहेगन पहुँचने की चेष्टा की जाय और वहाँ पहुँच कर डेन्मार्क को इस बात के लिए विवश किया जाय कि यदि वह वास्तव में किसी पक्ष में नहीं रहना चाहता तो वह युद्ध-स्थल के आस-पास सशस्त्र रहना छोड़ दे। वहाँ से वह रिवेल जाकर बारह रूसी जहाजों को पकड़ना या नष्ट कर देना चाहता था। इसके सिवा वह स्वीडन को भी इस युद्ध से कुछ सम्बन्ध न रखने के लिए विवश करना चाहता था। अवश्य ही यह उद्देश्य बहुत ऊँचे थे, उनकी पूर्त्ति के लिए युद्ध-कौशल और राजनीतिज्ञता की बहुत बड़ी आवश्यकता थी और मार्ग में बड़ी बड़ी कठिनाइयों की भी सम्भावना थी। क्योंकि तीनों शत्रुओं की सेनाओं की संख्या सर हाइड की सेना से दूनी थी। कुछ समय बाद हाइड की सहायता के लिए इंगलैण्ड से छः और नये जहाज भी आ गये थे।

२१ मार्च को अँगरेजी बेड़े ने कोपनहेगन से थोड़ी दूर इधर ही लंगर डाला। वहाँ से सर हाइड ने एक नाव पर कुछ आदमियों को डेन्स से सन्धि करने के लिए भेजा; लेकिन उन लोगों ने खाली हाथ लौट कर सूचना दी कि वहाँ आत्मरक्षा के लिए बड़ी बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं। सर हाइड ने व्यर्थ ही अब तक इतना विलम्ब किया था। यदि उसके स्थान पर नेलसन या और कोई योग्य व्यक्ति होता तो वह इससे एक सप्ताह पूर्व ही कोपनहेगन जा पहुँचता। उस समय तक शत्रु निर्बल और आत्मरक्षा के लिए असमर्थ थे इसलिए वह लोग केवल धमकी देने से ही अँगरेजों के कथनानुसार कार्य्य करने के लिए तैयार हो जाते। रंग ढंग से नेलसन समझ गया था कि इस सशस्त्र निष्पक्षता का मूल कारण डेन्मार्क नहीं बल्कि रूस है। वह व्यर्थ युद्ध और रक्तपात का विरोधी था। बाद में उसने लेडी हैमिल्टन से कहा था कि रूसी बेड़े को नष्ट करते ही हमारा सब काम हो जाता; डेन्मार्क और स्वीडन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा रूस को अधिक दण्ड देने की आवश्यकता थी। यदि मूल का नाश कर दिया जाता तो शाखाएँ आप से आपही नष्ट हो जातीं। ऐसी दशा में नेलसन सब से पहले रिवेल ही पहुँचता।

समुद्र से कोपनहेगन नगर तक पहुँचने के लिए तीन रास्ते हैं। पहला रास्ता 'लिटिल बेल्ट' है जो बहुत संकीर्ण और खराब है। दूसरा रास्ता 'ग्रेट बेल्ट' है जो चौड़ा तो अवश्य है पर अनेक छोटे छोटे टापुओं से भरे होने के कारण बड़े बड़े जहाजों के जाने योग्य नहीं है। तीसरा रास्ता 'साउण्ड'* है जो बहुत ज्यादा चौड़ा और साफ है। यह रास्ता भी आगे चल कर दो भागों में बँट गया है। उन दोनों मार्गों के बीच में जो टापू है वह 'मिडिल ग्राउण्ड' कहलाता है। इन दोनों रास्तों में एक तो मिडिल ग्राउण्ड के पूरब होकर गया है जो 'आउटर डीप' कहलाता है और कुछ दूर पड़ता है। दूसरा रास्ता जो पास का है वह 'किङ्ग्स चैनेल' कहलाता है। इसी तरफ कोपनहेगन का मुहासिरा भी है। कोपनहेगन बन्दर से तीन मील इधर ही यह दोनों रास्ते फिर मिल जाते हैं। उक्त बन्दर इस स्थान से उत्तर-पश्चिम की ओर है। कोपनहेगन नगर की रक्षा के लिए आगे एक बड़ा और मजबूत किला है जो 'ट्रिकोनर' कहलाता है। उस समय किले पर ७०-८० बड़ी बड़ी तोपें चढ़ी हुई थीं जिनकी बाढ़ 'किङ्ग्स चैनेल' के मुहाने पर पड़ती थी। उत्तर की ओर से आनेवाले जहाजों पर किले से भली भाँति गोले बरसाये जा सकते थे। दक्षिण की ओर भी सौ तोपें और बहुत सी सेना रखी हुई थी। सर हाइड के विलम्ब करने के कारण डेन्स ने किङ्ग्स चैनेल में भी अपने अट्ठारह बड़े जहाज भेज दिये थे। इसके सिवा बन्दर के मुहाने पर उन्नीस और जहाज तैयार खड़े थे। आत्मरक्षा के इतने दृढ़ उपाय करने के कारण मालूम होता था कि वह लोग अँगरेजों के आक्रमण का पहले ही अनुमान कर चुके थे।

अँगरेजी बेड़े को केवल डेन्स जहाजों और किले का ही नहीं बल्कि रूसी और स्वीडिश बेड़ों का भी मुकाबला करना था। यदि अँगरेजी बेड़ा किङ्ग्स चैनेल से होता हुआ आगे बढ़ कर डेन्स जहाजों पर आक्रमण करता और ऊपर से रूसी और स्वीडिश बेड़े उनकी सहायता के लिए आ जाते तो अँगरेज बड़ी कठिनता में पड़ जाते। नेलसन चाहता था कि पूरबवाले बाहरी रास्ते से आगे बढ़ कर डेन्स पर आक्रमण किया जाय क्योंकि उनका वह पक्ष बहुत निर्बल था। ऐसी दशा में आवश्यकता पड़ने पर अँगरेजी जहाजों को पीछे लौटने के लिए भी सुगम मार्ग मिल जाता। नेलसन का विचार था कि थोड़े से जहाजों से इधर डेन्स पर आक्रमण किया जाय और उधर दूसरी ओर शेष जहाजों से रिवेल के रूसी जहाज नष्ट किये जायँ। यह तजवीज बहुत अच्छी थी और उसमें सफलता की बहुत कुछ आशा हो सकती थी। वह जानता था कि डेन्स अच्छे निशानेबाज और बहादुर हैं। इसी लिए उसने उनके निर्बल पक्ष पर आक्रमण करना विचारा था।

लेकिन सर हाइड ने बहुत सा समय योंही खाली बैठे बैठे गँवा दिया। अन्त में उसने 'ग्रेट बेल्ट' की ओर से कोपनहेगन की तरफ बढ़ना निश्चय किया। साउण्ड के दूसरे सिरे पर डेन्स की मोरचा-बन्दी देखकर वह शायद सहम गया था। लेकिन नेलसन आक्रमण करने के लिए बहुत उत्सुक हो रहा था। व्यर्थ समय नष्ट करने की अपेक्षा वह किसी न किसी मार्ग द्वारा आगे बढ़ना ही उत्तम समझता था। उसने यही कहा—'चाहे जिस मार्ग से हो, आगे बढ़ो। पर एक घण्टा समय भी नष्ट न किया जाय, लंगर उठाये गये और जहाज आगे बढ़े। दो छोटे जहाज चट्टानों से टकराये। सर हाइड फिर रुक गया। नेलसन ने उसे आगे बढ़ाने की चेष्टा की पर उसका कुछ फल न हुआ। सर हाइड ने वहीं ठहर और आदमी भेज कर वहाँ के राजमहल से दरियाफ़्त कराया कि मार्ग में डेन्स आपत्ति तो न करेंगे। उसी अवसर पर एक डेनिश एडिकांग पार-

* इसी 'साउण्ड' के मुहाने पर सर हाइड के बेड़े ने लंगर डाला था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जहाज पर आया । वहाँ उसने कुछ लिखने के कलम माँगी; पर जो कलम उसे दी गई वह न थी। इस पर उसने कहा—"एडमिरल ताय! यदि आप की तोपें भी वैसी ही हैं जैसी कि की यह कलम, तो उत्तम हो कि आप यहीं से लौट जाँय।" इस पर नेलसन ने मुँह फेरकर था—"मूर्ख कहाँ का!" लेकिन पारकर पर का भी कुछ असर न हुआ। तेज हवा के कारण और २९ मार्च को अँगरेजी बेड़ा जहाँ का तहाँ रहा। इससे पहले २६ को ही नेलसन अपना जहाज छोड़ कर दूसरे अच्छे जहाज पर गया था। ३० तारीख को राम राम करके जी बेड़ा आगे बढ़ा। उस दिन अपनी प्रेमिका हैमिल्टन को विदाई के पत्र में नेलसन ने लिखा —"भोजन तैयार है। छोटी मोटी लड़ाइयों के मैं कभी अपना भोजन नहीं छोड़ता।" जब डेन्स दूसरी ओर व्यर्थ तोपें चला रहे थे तब अँगरेजी बेड़े ने कोपनहेगन के उत्तर-पश्चिम ड पर जाकर लंगर डाल दिया। दोपहर का आउटर डीप पर पीपों का पुल बाँधने में बीत । नेलसन ने डेनिश जहाजों को कई बार बड़े से देखा। उसी रात को उसने लेडी हैमिल्टन लिखा था—"जो लोग अभी युद्ध में बहुत कच्चे हैं वह अवश्य भयङ्कर मालूम हो सकते हैं; मैं समझता हूँ कि यदि मुझे केवल दस मिल जायँ तो मैं उन्हें सर कर लूँ। + + ईश्वर मेरी रक्षा करे और मैं विजयी होऊँ।" वहाँ के रंग ढंग से कुछ भयभीत होकर दूसरे सर हाइड ने सब लोगों को कुछ विचार करने लिए एकत्र किया। उस समय भी नेलसन दस लेकर उन्हें सर करने के लिए तैयार हो गया। लोगों ने कहा भी कि स्वीडिश बेड़ा बहुत भारी इस पर नेलसन ने कहा—"उनके जहाज संख्या जितने अधिक हों उतना ही अच्छा है।" उन ने कहा कि रूसी जहाज भी तो कम नहीं हैं। पर नेलसन ने उत्तर दिया—"मैं तो चाहता हूँ कि वह इससे भी दूने हो जायँ"। वह भली भाँति जानता था कि न तो स्वीडिश और न रूसी अपने जहाजों का भली भाँति प्रबन्ध कर सकेंगे; इसलिए उनके जहाज संख्या में जितने अधिक होंगे उतनी ही जल्दी या तो उनमें गड़बड़ी फैल जायगी और या वह कम पानी में किनारों पर चढ़ जायँगे।

कमांडर-इन्-चीफ पारकर ने उसकी बात स्वीकार कर ली और निश्चय किया कि नेलसन बारह जहाजों को साथ लेकर आक्रमण करे। यह भी निश्चय हुआ कि डेन्स पर आतङ्क जमाने के लिए शेष जहाजों को लेकर सर पारकर उत्तरी मुहाने पर ठहरा रहे। पुल के निशान और सामान डेन्स ने हटा बढ़ा दिये थे इसलिए रात को फिर से पुल बाँध कर तैयार किया गया। दूसरे दिन १ अप्रैल को नेलसन अपने साथ बारह जहाजों को लेकर आगे बढ़ा। इस बार भी उसके साथ अच्छे अच्छे कप्तान थे। रात को भोजनोपरान्त नेलसन ने सब को आवश्यक बातें बतला दीं और उनका कर्त्तव्य समझा दिया। रात ग्यारह बजे कप्तान हारडो आस पास के जल की गहराई की थाह लेकर लौटा। रात एक बजे नेलसन सोने के लिए गया पर उसे नींद न आई। उस रात को सौभाग्यवश वायु भी अनुकूल चल रही थी।

२ अप्रैल, युद्ध का दिन था। रात भर डेन्स भी अपनी तैयारियाँ करते रहे थे। नेलसन सवेरे छः बजे सोकर उठा। सात बजे उसने अपने कप्तानों का और आठ बजे जहाज को मार्ग बतलानेवालों का मुलाहजा किया। वह मार्ग बतलानेवाले आज तक इतने कम पानी में इतने बड़े जहाज कभी न ले गये थे इसलिए कुछ हिचकिचाए; पर नेलसन ने अपनी बातों से उनका उत्साह बढ़ा कर उन्हें अपने कार्य्य के लिए तत्पर कर दिया। साढ़े नौ बजे लंगर उठाया गया और सब जहाज एक कतार में रवाना हुए। उधर पहले जहाज पर से ही डेन्स ने गोलियाँ चलाईं पर अँगरेजों ने उनका कुछ उत्तर न दिया। अँगरेजी बेड़े का सब से आगेवाला जहाज बढ़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गया और डेन्स के तीसरे जहाज तक पहुँच कर उसने लंगर डाल दिया। अब अँगरेजों की ओर से भी तोपें और बन्दूकें चलने लगीं। तीन अँगरेजी जहाज रास्ते में ही पिछड़ गये थे; उनकी चतुर्थांश शक्ति यों ही व्यर्थ हो गई थी। नेलसन उस समय बहुत चिन्तित हुआ। उसने देखा कि सारा परिश्रम व्यर्थ हुआ चाहता है। उस समय नेलसन ने संकेत किया कि शत्रुओं के बहुत पास पहुँच कर, उनसे गुथ जाओ लेकिन एक विशेष कारण-वश अँगरेजी जहाज बहुत आगे न बढ़ सके।

उस समय डेन्स जहाजों की कतार के ठीक मुकाबले पर अँगरेजी जहाजों की कनार लगी हुई थी। उन तीन जहाजों के अभाव के कारण अँगरेजों को बहुत कठिनता होने लगी; लाचार उनका स्थान चार दूसरे छोटे जहाजों को दिया गया। खूब घमासान युद्ध होने लगा। सारा आकाश धुएँ से भर गया। वायु अनुकूल न होने के कारण सर हाइड के जहाज किसी प्रकार की सहायता न दे सके। दोपहर के लगभग डेन्स तोपें कुछ मन्द पड़ चलीं पर तो भी इस बात की कोई आशा न दिखलाई दी कि वह लोग परास्त स्वीकार कर लेंगे। डैनिश जहाजों में ऊपरी मस्तूल नहीं थे इसलिए धुएँ में उनका पहचानना भी कठिन होता था। उसी अवसर पर रायो नामक अँगरेज कप्तान जो चार छोटे जहाजों को लेकर सब से आगे किलेवालों से मोरचा ले रहा था, बहुत घायल हो गया। उसके जहाजों की स्थिति भी बहुत खराब हो रही थी। इतने में सर हाइड ने रायो और उसके जहाजों को वापस बुलाने का संकेत किया। पर थोड़ी ही देर बाद रायो के प्राण निकल गये और उसके जहाजों की सहायता के लिए एक और जहाज वहाँ पहुँच गया। इधर नेलसन के जहाजों ने शत्रुओं के बहुत से आदमी मार गिराये। पर वह सब भी अँगरेज ही थे और उनके स्थान पर और नये आदमी आते जाते थे। उस अवसर पर डेन राजकुमार स्वयं वहाँ उपस्थित था और युद्ध का प्रबन्ध कर रहा था। दोनों ओर से सिपाही और अफसर जी तोड़ कर लड़ रहे थे और अपनी अ[illegible] वीरता दिखा रहे थे। नेलसन भी अपने स्वाभा[illegible] उत्साह और वीरता का प्रकाश कर रहा था। [illegible] में उसे समाचार मिला कि कमांडर-इन-चीफ [illegible] कर ने उसे वापस बुलाने का संकेत किया है। [illegible] उस समय नेलसन वहां से पीछे हटता तो [illegible] किले और जहाजवालों का हौसला बढ़ जाता [illegible] वह लोग गोलों की बौछार से अँगरेजी जहाजों [illegible] तहस नहस कर डालते। शायद एक भी अँग[illegible] जहाज सही-सलामत किङ्गस चैनेल के बाहर निकल सकता। उस समय वहीं अड़े रहने में [illegible] यत थी। नेलसन ने आज्ञा दी कि १६ नं० का सां[illegible] तिक झण्डा ("शत्रुओं के बहुत समीप होकर [illegible] गुथे रहे।") बराबर फहराया जाय। इस बार [illegible] उसने अपने डरपोक अफसर की आज्ञा का उल[illegible] किया और अपना निश्चय न बदला। यदि नेल[illegible] के अन्य जहाज सर हाइड की आज्ञा मान कर [illegible] की ओर हटते तो शत्रुओं के गोलों की बौछा[illegible] कारण उनका पता भी न लगता। लेकिन नेल[illegible] के आज्ञानुसार उस समय उसके सब जहाज [illegible] के तहाँ दृढ़ खड़े रहे। केवल चार छोटे जहाज [illegible] रायो की अधीनता में किले के नीचे लड़ रहे थे, [illegible] हट आये। शेष सब पहले की भाँति लड़ते [illegible]

नेलसन को अपने दृढ़ निश्चय का बहुत ही [illegible] युक्त फल भी मिला। थोड़ी ही देर बाद [illegible] जहाजों की गति मन्द पड़ गई। अँगरेजी जहा[illegible] का हौसला बढ़ चला। विजय उन्हें बहुत ही स[illegible] मालूम होने लगी। कई डैनिश जहाजों ने हथि[illegible] रख दिये थे। जब अँगरेज उन पर अधिकार [illegible] के लिए आगे बढ़े तो किनारों पर से उन पर [illegible] बरसने लगे। यद्यपि वह सब जहाज केवल आ[illegible] से ही भरे हुए थे तो भी उन पर अधिकार क[illegible] उन्हें जलाना या डुबा देना बहुत ही [illegible] श्यक था। उस समय केवल दो ही उपाय थे [illegible] तो अँगरेज उनमें आग लगा दें और या गोलों [illegible] मार से उन्हें डुबा दें। लेकिन नेलसन के मत [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें न जमती थीं । वह ऐसे पाशविक कार्य्यों
बहुत हिचकता था । इसलिए उसने निश्चय किया
थोड़ी देर के लिए युद्ध रोकने का झण्डा लेकर
आदमी डेन राजकुमार के पास जाय और उससे
कि अपनी सेना से शस्त्र रखवा दो । वहीं जहाज
पर खड़े खड़े उसने यह पत्र लिखा—"अँग-
के भाई डेन्स के नाम । यदि आप लोगों की
से युद्ध बन्द कर दिया जाय तो लार्ड नेलसन
छोड़ सकते हैं ; नहीं तो वह पकड़े हुए
में आग लगा देंगे और आत्मरक्षा करनेवाले
डेन्स की रक्षा करने में असमर्थ हो जायँगे ।"
यह न समझ लें कि पत्र जल्दी या घबराहट में
गया है, इसलिए नेलसन ने उसे एक
में बन्द करके उस पर नियमानुसार मोहर
। कप्तान थेसिगर वह पत्र लेकर एक नाव
गया ; और वहाँ जाकर उसने राजकुमार के
में वह पत्र दे दिया ।

यद्यपि नेलसन के लिए अपने जहाजों को उस
से बाहर निकाल ले जाना कुछ कठिन था
शत्रुओं के जहाजों को नष्ट कर देना सर्वथा
अधिकार में था । उस समय तक केवल
किला और स्थल-सेना ही सुरक्षित थी । यदि
वहाँ से पीछे हटता तो किले और स्थल की
अवश्य उसके जहाजों को नष्ट कर सकती थी;
यदि नेलसन उनके जहाजों को नष्ट करना
तो उसकी रक्षा वे न कर सकते थे । राज-
भी इस स्थिति को बहुत भली भाँति समझता
और नेलसन की भाँति वह भी व्यर्थ रक्तपात न
चाहता था । इसलिए डेन्स ने लार्ड लिंडहोम
एलिफ़ेंट नामक अँगरेज़ी जहाज पर सन्धि की
बातचीत करने के लिए भेजा । नेलसन ने प्रस्ताव
कि युद्ध बन्द कर दिया जाय, घायल डेन्स
पर से उतार लिये जायँ और उसे अधिकार
जाय कि वह लूट के माल और कैदियों को
साथ वहाँ से ले जाय । उसी समय सामने
जहाज जल रहा था; सैनिक उस पर से
कूद रहे थे और अँगरेजी नावें उन्हें जल में से
निकाल रही थीं । यदि नेलसन का प्रस्ताव राज-
कुमार स्वीकार न कर लेता तो उसके सैनिक और
जहाज जला दिये जाते और कोपनहेगन नगर पर
गोलों की भयङ्कर वर्षा होने लगती । डेन्स ने युद्ध
रोक दिया और लिंडहोम वहाँ से चार मील दूर,
सर हाइड के जहाज पर गया । इस बीच में अँग-
रेज जहाजों के लंगर उठा कर उस भयङ्कर चैनेल से
बाहर निकल आये ।

सर हाइड की आज्ञा के विरुद्ध नेलसन ने वहाँ
ठहर कर युद्ध किया था इसलिए उसे दण्ड मिलना
भी सम्भावित था । एक बार पहले भी सेण्ट-
विन्सेण्ट के युद्ध में उसने इसी प्रकार लार्ड जरविस
की आज्ञा के विरुद्ध लड़ कर विजय प्राप्त की थी ।
पर उसका यश उसे नहीं बल्कि जरविस को मिला
था और इसी लिए वह सेण्टविन्सेण्ट का अर्ल बनाया
गया था । उसी घटना का ध्यान करके नेलसन ने
अपने भाई से कहा था—"यदि लोग चाहें तो उस
(सर हाइड) को भी लार्ड कोपनहेगन बना दें ; मुझे
उसमें कोई आपत्ति नहीं है । मैं केवल यही चाहता
हूँ कि मेरे साथ न्याय किया जाय और मुझे घर जाने
के लिए अवकाश दिया जाय ।" सब मिला कर
उसने डेन्स के सत्तरह जहाज जलाये, डुबाये और
छीन लिये थे । पर उसका एक भी जहाज नष्ट नहीं
हुआ था । इस युद्ध में अँगरेजों के ९४३ और डेन्स
के १६०० या १८०० आदमी मरे और घायल हुए थे ।

दूसरे दिन नेलसन सन्धि करने के लिए डेन
राजकुमार के पास गया । उस दिन सारे नगर में
शोक छाया हुआ था । घर घर लोग युद्ध में मारे
गये अपने सम्बन्धियों के लिए रो रहे थे । अस्पताल
अधमरों से भरे हुए थे । लोगों ने मन ही मन
आश्चर्य्य और सराहना करते हुए उसका स्वागत
किया । 'आश्चर्य्य और सराहना' इसलिए कि वह
शत्रुओं के नगर में बेधड़क चला गया था । उस दिन
उसने नगर में राजकुमार के साथ भोजन किया ।
एक डैनिश अफ़सर जो बहुत योग्यतापूर्वक लड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, उसके सामने पेश किया गया। उसे दिखला कर नेलसन ने राजकुमार से कहा कि यह व्यक्ति एडमिरल बनाने के योग्य है। इस पर राजकुमार ने उत्तर दिया—"माई लार्ड! यदि मैं अपने सभी वीर अफसरों को एडमिरल बना दूँ तो मेरे पास कप्तान और लेफ्टिनेण्ट न रह जायँगे।" यह बात नेलसन को कुछ खटकी और वह फिर अकड़ चला। उसने फिर इस प्रस्ताव पर जोर दिया कि अँगरेजों की सब शर्तें डेनमार्क स्वीकार कर ले, अपने हथियार रख दे और रूस से अपनी मित्रता छोड़ दे। इसी प्रकार ९ तारीख तक बात-चीत होती रही और अन्त में सन्धि का मसौदा तैयार किया गया। यह सन्धि सोलह सप्ताहों के लिए होने को थी। डेन्स कुछ हिचके; उन्हें भय हुआ कि इस अवधि के बीत जाने पर रूस हम से बदला लेगा। लेकिन नेलसन अपनी बात पर अड़ा रहा। उसने कहा कि यह सन्धि उसी समय तक के लिए होगी जब तक हम रूस से युद्ध करते रहेंगे। इस पर एक डेन ने कहा कि तब फिर से युद्ध आरम्भ हो। इसके उत्तर में नेलसन ने दुभाषिये से कह दिया—"हाँ, युद्ध आरम्भ कर दिया जाय; हम लोग अभी उसके लिए तैयार हैं। आज ही रात को यह नगर तहस नहस कर दिया जायगा।" उस समय इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय न हुआ। सब लोग राजकुमार के साथ भोजन करने के लिए उठ खड़े हुए। राजमहल के कमरों में किसी प्रकार का सामान न देख कर नेलसन ने कहा था—"यह सब बड़े मजे में जल जायँगे।" दोपहर बाद निश्चय हो गया कि डेन्स चौदह सप्ताह तक रूस से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखेंगे। इस प्रकार डेनमार्क के हाथ पैर बाँध दिये गये और अब अँगरेजी बेड़े को केवल रूस और स्वीडन से मुकाबला करना बाकी रह गया। इंगलैंड बड़ी भारी विपत्ति से बच गया। दक्षिण में तो नेलसन ने फ्रान्सीसियों के उपाय रद्द कर ही दिये थे, इस बार उसने उत्तर में भी उनका जोर तोड़ दिया।

नेलसन को अपने मातहतों का सदा बहुत खयाल रहता था। ५ अप्रैल को उसने लेडी [illegible]ल्टन को लिखा था—"आज मैंने विवश होकर [illegible] लेग्ट विन्सेण्ट को एक पत्र लिखा है। मुझे [illegible] है कि उस पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़े[illegible] स्वयं मुझ पर उसका बहुत असर हुआ है। [illegible] पत्र में मैंने उन लोगों की विधवाओं और [illegible] बालकों की रक्षा की सिफारिश की है जिन्होंने [illegible] आज्ञा से अपने बादशाह के लिए जान दी है। [illegible] वह समय भली भाँति स्मरण है जब कि मैंने [illegible] योद्धाओं और कप्तानों से हाथ मिलाया था [illegible] आशा की थी कि वह सब विजयी होंगे। पर [illegible] कि वह सब युद्ध में मारे गये।"

अँगरेजी बेड़ा वहाँ से आगे बढ़ गया और [illegible] सन एक जहाज पर दो दिन के लिए पिछड़ [illegible] इतने में उसे समाचार मिला कि स्वीडिश [illegible] समुद्र में आ गया है और सम्भवतः शीघ्र ही [illegible] होगा। जिस जहाज पर नेलसन था उस [illegible] तोपें चैनेल पार करने के लिए स्थल पर उता[illegible] गई थीं इसलिए वह बिलकुल बेकाम था। [illegible] बेड़ा उस स्थान से चौबीस मील दूर था और [illegible] की सरदी पड़ रही थी। युद्ध की सम्भावना [illegible] समाचार सुनते ही नेलसन बिना कोई भारी [illegible] लिये ही एक नाव पर उतर पड़ा और उसने [illegible] अपने आदमियों को आज्ञा दी कि वे उसे [illegible] अँगरेजी बेड़े तक पहुँचा दें। एक अफसर ने [illegible] अपना कोट देना चाहा; पर उसने उत्तर दि[illegible] "मुझे सरदी नहीं लगती; स्वदेश-सेवा की [illegible] मुझे गरम रखेगी। यदि अँगरेजी बेड़ा वहाँ से [illegible] भी चुका होगा तो मैं ईश्वर की शपथ खाकर [illegible] हूँ कि मैं इसी नाव में कार्ल्सक्रोना तक जाऊँ[illegible] कार्ल्सक्रोना वहां से डेढ़ सौ मील पर था और [illegible] में भोजनादि का कुछ भी प्रबन्ध न था; पर [illegible] नेलसन ने इतनी बड़ी यात्रा करने का साहस [illegible] था! यदि अँगरेजी बेड़ा उसके आसरे [illegible] होता तो वह अवश्य कार्ल्सक्रोना तक उसी [illegible] चला जाता। किसी ने उसके सम्बन्ध में [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ठीक कहा है—"स्वदेश-सेवा के अतिरिक्त और सब प्रकार के सांसारिक विचारों को वह तिलाञ्जलि दे चुका था।"

एक तो नेलसन योंही प्रायः बीमार रहा करता था, दूसरे इस यात्रा में उसे समुद्र की हवा और सरदी लगी जिससे उसका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। उस अवसर पर उसने स्वदेश लौट जाना चाहा। लेकिन अब लार्ड स्पेन्सर के स्थान पर लार्ड सेंट विन्सेण्ट सर्वप्रधान लार्ड हो गया था और वह नेलसन और लेडी हैमिल्टन दोनों को एक दूसरे से अलग रखना चाहता था; इसलिए उसे छुट्टी न मिली। लार्ड विन्सेण्ट ने सर हाइड को तो वापस बुला लिया और नेलसन को उसके स्थान पर कमांडर-इन-चीफ बना दिया।

जब कोपनहेगन की विजय और सन्धि का समाचार इंगलैण्ड पहुँचा तो वहाँ के लोग मारे प्रसन्नता के नेलसन और उसके मातहतों के परिश्रम को भूल गये। चार घण्टों के भीषण-युद्ध, स्वदेश के लिए हजारों आदमियों के मरने कटने और बड़ी बड़ी विपत्तियाँ झेलने का कोई उपयुक्त पुरस्कार नहीं दिया गया। इसी से सन्देह होता है कि बड़े बड़े राजनीतिज्ञ रणचण्डी का भयङ्कर स्वरूप जानते हैं या नहीं। वह केवल वाइकाउण्ट बना दिया गया और लोगों ने पारलीमेण्ट में खड़े होकर कह दिया—"वह जितना ही वीर है उतना ही बुद्धिमान् है" "वह सब प्रकार की प्रशंसा करने और कृतज्ञता जतलाने का पात्र है" आदि। अक्तूबर में इंगलैण्ड-नरेश ने जो वक्तृता दी थी उसमें इस युद्ध का कुछ भी जिक्र न था। युद्ध में वीरता-पूर्वक लड़नेवालों को धन्यवाद देना तो दूर रहा उलटे उनका हक़—लूट का माल—भी छीन लिया गया। जो जहाज आदि अँगरेज सैनिकों ने बड़े परिश्रम से जीते थे उन्हें सर हाइड ने जलवा दिया। सर हाइड को क्या था; उसे ऐसी तुच्छ चीज़ों की कोई परवा न थी। उसका यह अन्याय नेलसन कभी न भूला। बड़े बड़े परिश्रम से अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के विचारों को बदलने न दिया और उन्हें शान्त रखा।

नेलसन ने अधिकार प्राप्त करते ही सुस्ती और अकर्मण्यता की इति कर दी। रिवेल पहुँचकर रूसियों का मुकाबला करने के लिए तुरन्त बेड़े का लंगर उठाने का संकेत किया गया। नेलसन ने बारह बड़े और कुछ छोटे शीघ्रगामी जहाजों को लेकर प्रस्थान किया और शेष जहाजों तथा नावों को कुछ पास ही पीछे छोड़ दिया। रिवेल की ओर वह इस प्रकार बढ़ा मानों वह रूस की नीति से एक दम अपरिचित और उनका मित्र है। पर साथ ही आवश्यकता पड़ने पर वह उनका घोर शत्रु बनने के लिए भी तैयार था। कोपनहेगन पर अँगरेजों के आक्रमण करने से पहले ही रूस के जार पाल पर उसके महल में ही एक षड्यन्त्र रचा जा चुका था और वह मारा जा चुका था। उसकी हत्या २४ तारीख को ही हो चुकी थी। नेपोलियन ने तो अँगरेजों के आक्रमण और जार की हत्या को परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होने तक की सम्भावना बतलाई थी। पर अँगरेजों के सौभाग्यवश यह बात सिद्ध न हुई। बात यह थी कि पाल पागल था और उसकी प्रजा उसे भय और घृणा की दृष्टि से देखती थी। फ्रान्स से मित्रता और अँगरेजों से शत्रुता होने के कारण रूस का व्यापार नष्ट हो रहा था। इसके अतिरिक्त उसके और भी अनेक ऐसे कृत्य थे जिनसे लोग असन्तुष्ट थे। एक दिन अवसर पाकर कुछ दारबारी उसके शयनागार में घुस गये और उसे एक त्यागपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश करने लगे। पर उसने उनकी बात न मानी इसलिए हाथाबाँही होने लगी जिसमें पाल को कुछ अधिक चोट आ गई। दरबारियों ने इस भय से कि कहीं यह हम लोगों को मरवा न डाले, वहीं उसे मार डालना निश्चय किया। दया के लिए उसके बहुत कुछ रोने चिल्लाने पर भी वे उसे पैरों से कुचलने और उसके सिर पर आघात करने लगे। थोड़ी देर में पाल मर गया। उस समय उसका पुत्र एलेक्जैण्डर नीचे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कमरे में जबरदस्ती बन्द कर दिया गया था। एलेक्ज़ेण्डर के राज्याभिषेक के अवसर पर कुछ लोगों ने गुप्त रूप से एक दूसरे से कहा भी था कि वह अपने पिता के हत्याकारियों से घिरा हुआ था। थोड़े ही दिनों बाद एलेक्जैण्डर की भी रहस्यमयी मृत्यु हो गई।

दो ज़ारों की मृत्यु या हत्या इंगलैंड के लिए लाभदायक अवश्य हुई। नेपोलियन ने पाल से मिल कर फारस के रास्ते भारतवर्ष पर चढ़ाई करना निश्चय किया था। यद्यपि ट्रैफिलगर की परास्त के बाद भी नेपोलियन प्रायः इस सम्बन्ध में मन के लड्डू बनाया करता था पर तो भी पाल की मृत्यु ने ही उसके विचारों में मुख्य बाधा डाली थी। जिस समय नेलसन रूस की ओर बढ़ रहा था उस समय एलेक्जैण्डर ही रूस का ज़ार था। अभी तक एलेक्जैण्डर के विचारों और नीति का विकाश न हो सका था इसलिए रिवेल पहुँचने पर नेलसन को वहाँ रूसी जहाज न मिले। हाँ, लोग उसे और उसके बेड़े को सन्देह की दृष्टि से अवश्य देखते थे। वहाँवालों ने उसकी सलामी नहीं उतारी और उससे वापस चले जाने की प्रार्थना की। पर नेलसन के बहुत कुछ कहने सुनने पर लोगों ने उसकी सलामी उतारी; और इसके बाद उसने वहाँ से लौट जाने की बुद्धिमानी की। उसकी सम्मति थी—"यदि अँगरेजी बेड़ा वहाँ अप्रैल के आरम्भ में ही पहुँच गया होता तो उसे वहाँ से हटने की आवश्यकता न होती।" इस अकृतकार्य्यता का कारण सर पारकर का विलम्ब ही था। नेलसन के वहाँ से हटने के कुछ ही दिनों बाद रूस ने अँगरेजों की सब बातें मान लीं और दोनों में सन्धि हो गई। इस बीच में नेलसन कई बार अपनी छुट्टियों के लिए लिख चुका था इसलिए अन्त में उसके स्थान पर कार्य्य करने के लिए एक और आदमी चुन लिया गया। लार्ड विन्सेण्ट ने उसको लिखा था—"आपके स्थान पर ठीक कार्य्य करने के लिए किसी को चुनना कोई सहज काम नहीं है। मैंने सैनिकों में आप और ट्राउब्रिज के अतिरिक्त और किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा जिसमें स्वयं कोई जादू भरी शक्ति हो और साथ ही वह उस शक्ति को दूसरों में भर देने में भी समर्थ हो। जब से आपने कार्य्य आरम्भ किया है तब से आज तक आपके सभी कार्य्य प्रशंसनीय हुए हैं। मैं किसी से आपकी तुलना नहीं किया चाहता; क्योंकि सबकी सम्मति में अपने काम में आप अद्वितीय ही हैं।" १९ जून को एडमिरल पोल ने उसके बेड़े का अधिकार ले लिया और वह एक छोटे जहाज पर इंगलैण्ड की ओर रवाना हुआ। उस समय उसे घर जाने के लिए एक बड़ा जहाज मिलता था पर ऐसे विकट अवसर पर उसने बड़ा जहाज लेना स्वीकार न किया। उसे इस बात का अभिमान था कि उसके १८००० अधीनस्थ कर्मचारियों में से किसी ने भी कभी उसकी कोई शिकायत नहीं की थी। इसके अतिरिक्त उसका बेड़ा भी बहुत अच्छी दशा में रहता था। सैनिकों के खाने पीने की चीजों की पवित्रता और उत्तमता पर भी सदा उसका बहुत ध्यान रहता था। इन सब बातों के अतिरिक्त सबसे बड़ा गुण उसमें यह था कि वह सदा सब लोगों को एक न एक काम में लगाये रहता था।

(७)

ट्रैफलगर का युद्ध और मृत्यु।

(सन् १८०५)

इंगलैण्ड पहुँच कर नेलसन वहाँ प्रायः दो सप्ताह रहा। तदुपरान्त उसे फिर युद्ध पर जाना पड़ा। यद्यपि इस बार लेडी हैमिल्टन को छोड़ कर उसे जाने की बिलकुल इच्छा न थी पर वह अपने कर्त्तव्य से विवश था। लेडी हैमिल्टन भी उसके जाने का समाचार सुन कर बहुत दुःखी हुई। जिस दिन वह जाने को था उस दिन लेडी ने अन्न जल बिलकुल ग्रहण न किया था। वह दिन भर टेबुल पर सिसकती रही। १३ सितम्बर को नेलसन ने सदा के लिए सदा के लिए प्रस्थान किया; इस यात्रा से वह कभी न लौटा। चलते समय उसने ईश्वर से प्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरिका के नवजात शिशु के मंगल की प्रार्थना की थी। इस यात्रा का मुख्य कारण उसका कर्त्तव्यज्ञान था। अपनी प्राइवेट डायरी में जिसे कोई देखने न पाता था, उसने लिखा था—"अपने देश और देश-जाति की सेवा के लिए, संसार में अपनी सबसे प्यारी वस्तु को मरटन में छोड़ कर मैं वहाँ से साढ़े दस बजे रवाना हुआ। मेरे देशवासी मुझसे जो आशा रखते हैं वह ईश्वर पूर्ण करे। यदि मैं ईश्वर की कृपा से कुशलपूर्वक लौट आया तो अपने जीवन भर उस दयामय को धन्यवाद देता रहूँगा। और यदि उसकी यही इच्छा हो कि इस बार मेरे जीवन का अन्त ही हो जाय तो मैं उसके लिए भी सिर झुकाये तैयार हूँ और आशा करता हूँ कि अपने जिन परम प्रेमियों को मैं इस संसार में छोड़ जाऊँगा, ईश्वर सदा उनकी रक्षा करेगा। उसकी जो इच्छा होगी वही होगा।"

शनिवार १४ सितम्बर को प्रातः काल वह पोर्टसमाउथ पहुँचा। वहाँ उसके स्वागत और दर्शनों के लिए बड़ी भारी भीड़ लगी हुई थी। लेकिन वह नियमित स्थान पर न उतर कर एक छोटी नाव पर दूसरे मार्ग से किनारे पर चला गया। उसे देखने के लिए लोग एक पर एक टूटे पड़ते थे और भीड़ इतनी अधिक थी कि उससे बचना बहुत कठिन था। शायद ऐसा स्वागत किसी बड़े भारी महात्मा का भी न होता।

नेलसन की कैडेज-यात्रा में कोई उल्लेख-योग्य बात नहीं हुई। वहाँ पहुँच कर उसने अँगरेजी एडमिरल के पास अपने आने का समाचार भेज दिया और कहला दिया कि मेरे आगमन पर सलामी की तोपें न सर की जायं। इसका अभिप्राय यह था कि वह शत्रुओं को इस बात की सूचना नहीं दिया चाहता था कि वह आ गया है अथवा इंगलैंड से कुछ और सहायता आई है। एक अँगरेज लेखक तो यहाँ तक कहता है कि नेलसन के नाम में इतना प्रभाव था कि यदि फ्रान्सीसी और स्पेनी उसके आने का समाचार सुन पाते तो उनके लिए युद्ध करना बहुत कठिन हो जाता। उस समय कालिंगउड अपने साथ पचीस जहाजों को लिए कैडिज के सामने ठहरा हुआ था। उसके चार पाँच जहाज तो बन्दर के बहुत ही समीप थे और कुछ वहाँ से पन्द्रह बीस मील की दूरी पर भी थे। बन्दर के अन्दर अट्ठारह फ्रान्सीसी और सोलह स्पेनी जहाज खड़े हुए थे। यह जंगी बेड़ा वाइलनेव के अधिकार में था और समुद्र में आगे बढ़ने के लिए बिलकुल तैयार खड़ा था।

२८ सितम्बर की सन्ध्या को नेलसन अपने जहाज सहित अँगरेजी बेड़े में जा मिला। उसी समय नेलसन कमांडर-इन-चीफ हो गया और कालिंगउड उसका दूसरा सहकारी बना। कालिंगउड और नेलसन में सदा से बहुत अधिक मित्रता थी। कभी किसी में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या या द्वेष का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। दोनों बड़ी प्रसन्नता से एक दूसरे को सहायता दिया करते थे। नेलसन ने एक बार उससे कहा था—"हम लोगों में परस्पर ईर्ष्या द्वेष होने का कोई कारण नहीं है। अपने शत्रुओं को नष्ट करना और अपने देश के लिए महत्त्व-पूर्ण शान्ति सम्पादन करना ही हम लोगों का मुख्य उद्देश्य है। जितना विश्वास मैं तुम पर रखता हूँ उतना शायद कोई किसी पर न करेगा। हम लोग एक हैं और आशा है कि सदा एक रहेंगे।" लेकिन नेलसन और कालिंगउड के स्वभाव में जमीन आसमान का फरक था। कालिंग मेहनती अवश्य था पर किसी गूढ़ विषय पर विचार करने या किसी बात को पहले से ही सोचने की शक्ति उसमें नहीं थी। वह मिलनसार और हँसमुख भी नहीं था इसलिए बेड़े में वह सर्वप्रिय न हो सका। उसके सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध थी कि वह सब बातों को अपने तक ही रखता था, दूसरों को कुछ नहीं बतलाता था। वह गरीब था और मामूली तौर पर रहता था। इसके विरुद्ध नेलसन कर्ज में डूबे रहने पर भी सदा बहुत उदार रहता था। उसके अधीनस्थ कर्मचारी उसे केवल यशस्वी अधिकारी ही नहीं समझते थे बल्कि उसे दयावान्, उदार और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय मित्र भी समझते थे। उसका स्वागत लोग बड़े उत्साह और प्रेम से करते थे। उसके बेड़े में पहुँचने पर सब अधीनस्थ कर्म्मचारी उसे सलाम करने के लिए आया करते थे। आक्रमण आदि के सम्बन्ध में वह जो विचार निश्चय करता था उसे अपने कप्तानों को बहुत भली भाँति समझा दिया करता था। उसके विचार और निश्चय आदि बहुत प्रशंसनीय होते थे जिन्हें देख सुन कर लोग अवाक् रह जाते थे। जिन लोगों को उसने अपने साथ काम करने के लिए चुना था वह लोग भी बहुत ही अनुभवी और योग्य थे। सबके हृदय में उसके लिए बहुत ऊँचा स्थान था। उसके अधीनस्थ कप्तान डफ ने एक स्थान पर लिखा था—"वह इतना योग्य और प्रसन्नचित्त है कि हम लोग विना उसकी आज्ञा के ही उसके इच्छानुसार सदा कार्य्य करने के लिए तैयार रहते हैं।" दूसरे कप्तान कार्डिंगटन ने कहा था—"लार्ड नेलसन के आते ही यहाँ सब लोग बहुत प्रसन्न हो गये।" तात्पर्य्य यह है कि नेलसन के पहुँचते ही अँगरेजी बेड़े में नये उत्साह का संचार हो गया।

नेपोलियन की भाँति नेलसन भी यह बात बहुत अच्छी तरह समझ गया था कि सफलता प्राप्त करने के लिए अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के उत्साह की बहुत बड़ी आवश्यकता है। और उनमें उत्साह उत्पन्न करने के लिए उनके साथ प्रेम और दया का व्यवहार करने की आवश्यकता है। एक बार नेलसन के बेड़े से डाक का एक जहाज इंगलैंड जा रहा था। जब वह जहाज चल चुका तो उसे मालूम हुआ कि एक अफसर का उसकी पत्नी के नाम का पत्र बाकी रह गया है। उसने तत्काल डाक के जहाज को वापस बुलाने का संकेत करने की आज्ञा दी और कहा—"कौन कह सकता है कि कल को वह युद्ध में मारा जाय। उसका पत्र अवश्य जाना चाहिए।"

अँगरेजी बेड़े में एक आदमी ऐसा भी था जो नेलसन से ईर्ष्या और द्वेषभाव रखता था। वह आदमी वाइस-एडमिरल कैलडर था। उसने युद्ध में एक बड़ी भूल की थी इसलिए न्यायालय में विचार करने के लिए वह इंगलैण्ड बुलाया गया था। लेकिन इस विपत्ति के अवसर पर नेलसन ने उसके साथ बहुत उत्तम व्यवहार किया। कैलडर को एक छोटे और साधारण जहाज पर इंगलैण्ड जाना चाहिए था। लेकिन उसने नेलसन से कहा कि मुझे मेरा वही बड़ा और शानदार जहाज दिया जाय; नेलसन ने भी उसकी बात स्वीकार कर ली और उसे वही जहाज दे दिया।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में नेलसन का स्वभाव बहुत बदल गया। अब वह कठिनाइयों के कारण जरा भी दुखी या चिन्तित न होता था। यद्यपि इस बार उसका बेड़ा बहुत कमजोर था तो भी उसे विजय की पूर्ण आशा थी। सहायता के लिए कुछ नये जहाज मँगवाने के लिए भी उसने उद्योग किया था। उसे विजय की इतनी दृढ़ आशा थी कि उसने अपने एक मित्र को लिखा था—"मुझे पूर्ण विश्वास है कि शीघ्र ही युद्ध आरम्भ होगा। इसलिए मैं समझता हूँ कि शीघ्र ही मेरे देश को या तो मेरा स्मृति-चिह्न बनवाने या मुझे पुरस्कार आदि देने में कुछ धन व्यय करना पड़ेगा।' यद्यपि लेडी हैमिल्टन के पत्र में उसने आशा और इच्छा प्रकट की थी कि मैं विजय प्राप्त करके स्वदेश लौट आऊँगा; लेकिन उसके हृदय में अब जीवन की आशा नहीं थी। उसे इस बात की कुछ आशंका अवश्य थी कि इस युद्ध में उसके जीवन का अन्त हो जायगा।

कैडिज के सामने नेलसन अपना बेड़ा लिये हुए इस प्रकार ठहरा हुआ था कि यदि शत्रु बन्दर से निकलना चाहें तो उन्हें पूरा मार्ग भी मिल सके और आवश्यकता पड़ने पर वह उनका पीछा करके उन पर आक्रमण भी कर सके। नेलसन ने अपने बेड़े के जहाजों को इस प्रकार छितरा कर रखा था कि शत्रु उसके बल का अनुमान भी न कर सकते थे। अक्तूबर के आरम्भ में उसकी सहायता के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जहाज इंगलैण्ड से आये। यह नये जहाज नामक अफसर की अधीनता में आये थे। बेरी सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध थी कि वह जहाँ ता है वहाँ युद्ध अवश्य आरम्भ हो जाता है। लिए आते ही नेलसन ने निश्चय कर लिया कि युद्ध अवश्य होगा। रास्ते में ही बेरी के जहाजों पाँच फ्रान्सीसी जहाजों ने पीछा किया था, पर किसी प्रकार बच कर निकल आया। इस बीच नेलसन के पाँच अच्छे जहाजों में रसद और की कमी हो गई इसलिए युद्ध के अवसर पर र होकर लौट आने के अभिप्राय से उसने उन्हें लाने के लिए भेज दिया था। कुछ ही समय नेलसन को उनके पीछे एक और जहाज भेजना । एक जहाज कैलडर को लेकर इंगलैण्ड गया था। इसलिए उस समय नेलसन के पास सत्ताईस जहाज बच गये थे। रसद पानी के लिए छः जहाजों को भेजने के समय नेल- समझता था कि अभी शत्रुओं के आगे में विलम्ब है। पर इस बार नेलसन से हुई। ज्योंही उनके छः जहाज चले गये त्योंही लनेव अँगरेजी बेड़े पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। उसका अनुमान था कि अँगरेजी बेड़े में स जहाज होंगे। उसने सब कप्तानों को पहले अपने विचारों से अवगत कर दिया था। पास सब सहायकों के कुल मिला कर छिया- जहाज थे जिनमें से चौंतीस फ्रान्सीसी और जहाज तो कैडिज में ही मौजूद थे, सात जहाज कार्थेगना के आस पास घूम रहे थे बाकी पाँच फ्रान्सीसी जहाज बन्दर के बाहर ों पर घूम रहे थे और बन्दर में जाने का स न कर सकते थे।

वाइलनेव के बन्दरवाले चौंतीस जहाजों में से ोनी जहाज बिलकुल बेकाम हो गया था। अतिरिक्त उसके शेष जहाज भी कमजोर और रा में थे। फ्रान्सीसी जहाजों में २२०० आद- की कमी थी। इसलिए उनमें सैनिक ही नाविक बनाये गये थे। स्पेनी जहाजों के कप्तान आदि बिल- कुल नये थे। इसके अतिरिक्त फ्रान्सीसियों और स्पेनियों में कुछ वैमनस्य भी था। आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे को रसद आदि की भी सहायता न दे सकता था। फ्रान्सीसियों के पास रसद और सामान की कमी थी और स्पेनियों के पास धन की। यहाँ तक कि अक्तूबर में स्पेन के राजा और रानी बिलकुल खाली हाथ हो गये थे। अँगरेजों ने बन्दर के आगे घेरा डाल रखा था इसलिए कहीं से रसद भी न जा सकती थी। जहाजों के वेस्ट इण्डीज की यात्रा से लौटने के कारण बहुत से आदमी बीमार हो गये थे और कैडिज के कुल अस्पताल रोगियों से भरे हुए थे।

इसी अवसर पर नेपोलियन की आज्ञा पहुँची कि कैडिज में ठहरे हुए कुल जहाजों को लेकर वाइ- लनेव कार्थेगना की ओर बढ़े और रास्ते में शत्रुओं से युद्ध करे। फ्रान्स के नव-विभाग के मन्त्री ने भी लिखा था कि यदि हमारे जहाज प्रतिष्ठापूर्वक लड़ कर नष्ट हों तो श्रीमान् (नेपोलियन) को उनके लिए जरा भी चिन्ता न होगी। उसी अवसर पर विचार के लिए वाइलनेव जाने को था और उसके स्थान पर एक नया एडमिरल आ रहा था। वाइल- नेव ने कप्तानों की एक सभा की थी जिसमें सब लोगों ने युद्ध न करने की राय दी। उन लोगों ने निश्चय किया था कि न तो हमारे जहाजों का प्रबन्ध ही ठीक है और न हमारे आदमी ही अनुभवी हैं। इस पर वाइलनेव ने उनको नेपोलियन का आज्ञापत्र दिखलाया। लाचार होकर अफसरों को वह आज्ञा शिरोधार्य करनी ही पड़ी।

१९ अक्तूबर को प्रातःकाल नेलसन को समाचार मिला कि शत्रुओं ने आगे बढ़ना आरम्भ किया है और उसी दिन संध्या तक आठ जहाज बन्दर से बाहर भी निकल आये। उसी समय एक जहाज उन जहाजों को वापस बुलाने के लिए भेजा गया जो रसद और पानी लाने के लिए किनारे पर गए हुए थे। रात भर शत्रुओं की कुल कार्रवाइयों का समा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार नेलसन को मिलता रहा। २० तारीख़, रविवार का दिन भी इसी प्रकार बीता। २१ अक्टूबर को दोनों बेड़ों का सामना हुआ। अँगरेजी बेड़े के कुल जहाज युद्ध के लिए बिलकुल तैयार हो रहे थे। शत्रुओं के जहाज कुछ आगे बढ़ गये थे और नेलसन उनका पीछा करता हुआ चला जा रहा था। रास्ते में उसने एक स्थान पर कहा था कि जब तक मैं अपने शत्रुओं के कम से कम बीस जहाज न पकड़ लूँगा तब तक मेरा सन्तोष न होगा। अँगरेजी बेड़े में इतना अधिक उत्साह था कि उस दिन एक नाविक ने अपने माता-पिता को लिखा था—"अब युद्ध होने में देर नहीं है। यदि मैं अपने देश की सेवा करता हुआ मारा जाऊँ तो आप लोग किसी प्रकार का दुःख न करें। मुझे अपने लिए किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।"

नेलसन ने अपने सब अफसरों को भली भाँति समझा दिया था कि इस युद्ध में हमारा मुख्य उद्देश्य शत्रुओं और उनके सामान को नष्ट करना ही है। नेलसन ने जो कोट पहना हुआ था उस पर कुछ विशेष चिह्न बने थे। शत्रु उन्हीं चिह्नों पर लक्ष न कर सकें, इसलिए लोगों ने उसे समझाया कि वह एक रूमाल से उन्हें ढक ले। इस पर नेलसन ने उत्तर दिया—"मैंने प्रतिष्ठापूर्वक इसे प्राप्त किया है और प्रतिष्ठापूर्वक ही इसे अपने साथ लेकर मरूँगा।" कुछ लोगों ने उसे यह भी समझाया कि वह या तो अपने जहाज को सबसे आगे न रखे और या अपना निशान किसी दूसरे जहाज पर भिजवा दे। इस पर उसने यही कहा कि प्रधान अफसर को स्वयं एक उत्तम उदाहरण उपस्थित करना चाहिए। यह बात ठीक है कि स्वदेश और बेड़े के लिए मेरा जीवन अधिक मूल्यवान् और प्रयोजनीय है और मेरी मृत्यु के उपरान्त बेड़े में बहुत कुछ गड़बड़ फैलने की सम्भावना है; लेकिन मेरा साहस देख कर तमाम बेड़ा उत्तेजित हो उठेगा और सबको बहुत बड़ा सहारा मिलेगा। नेलसन को जितना अवसर मिला उतने में उसने जाकर सब जहाजों और तोपों का निरीक्षण किया और सब कप्तानों से कुछ बातचीत करके उन्हें उत्तेजित और उत्साहित कि[या।] अँगरेजी बेड़े में युद्ध की कुल तैयारि[याँ हो] चुकने के बाद नेलसन ने अपने दानपत्र का मसौदा तैयार किया। उसमें उसने अपनी [कन्या] और उस स्त्री को जिसे उसके मरने का स[बसे] अधिक दुःख होता, अपने देश और देशपति [पर] छोड़ा था। नेलसन ने अपने देशपति से पक[ा] यही प्रार्थना की थी और वह भी ऐसे अवसर [पर] जब कि वह उसके लिए युद्ध में लड़ने जा रहा [था।] इसके उपरान्त नेलसन ने अपने कमरे में जा[कर] ईश्वर से प्रार्थना की और डायरी में लिखा—"[साधा]रणतः युरोप के उपकार के लिए ईश्वर हमारे [बेड़े] को विजय प्रदान करे। ****** मैं [अपना] जीवन उसी पर छोड़ देता हूँ जिसने मुझे [उत्पन्न] किया है। सच्चे हृदय से स्वदेश-सेवा करने [के] बदले वह मेरे कार्य्यों पर प्रकाश डाले।" [इसके बाद] कमरे से बाहर निकल कर वह छत पर [टहलने] लगा। उस समय दोपहर के साढ़े ग्यारह बजे [थे।] अँगरेजी बेड़ा जल्दी जल्दी शत्रुओं के बेड़े की [ओर अग्रसर] होता जा रहा था। नेलसन ने दूर से देखा कि [सबसे] आगे कालिंगउड अपना निशान फहराता [हुआ] शत्रुओं की ओर बढ़ रहा है। युद्ध आरम्भ [होने में] बहुत ही थोड़ा समय बाकी रह गया था। [उस] समय नेलसन ने अनुमान किया कि अपने [सैनिकों में] नया उत्साह—नयी शक्ति लाने के लिए किसी [विशेष] संकेत की आवश्यकता है। उसने सोचा—"[नेलसन] विश्वास रखता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना [कर्त्तव्य] पालन करेगा।" पर पीछे उसने उसे दूसरा [रूप] दिया और अपने स्थान पर इंगलैंड का नाम रख [दिया।] थोड़ी देर में संकेत करनेवाला बड़ा झण्डा फ[हराने] लगा जिस पर लिखा था—"इंगलैण्ड आशा [करता] है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्त्तव्य पालन करे[गा।]" जब यह झण्डा अँगरेजी बेड़े की दोनों [कतारों के] बीच में से फहराता हुआ निकला तो दोनों [ओर] सैनिकों, नाविकों और अफसरों की ताल[ियाँ] ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...आकाश गूँज उठा। नेलसन का सबसे अधिक ...भावशाली यही कृत्य हुआ था। उस समय ...सने कहा था—"अब इससे अधिक मैं कुछ नहीं ...र सकता। हम लोगों को विश्वास रखना चाहिए ...ईश्वर हमारे कार्य्य में सफलता देगा। अपना ...र्तव्य पालन करने के लिए उसने मुझे जो यह ...वसर दिया है उसके लिए मैं उसे धन्यवाद ...ता हूँ।"

...आवेश और उत्साह से पूर्ण, विजय के आशा-...गर में डूबे हुए वीरों ने जीवन मरण की कुछ भी ...न्ता न करके आक्रमण कर ही दिया। शायद ...से पहले ही दो संकेत किए जा चुके थे। तूफान ...या चाहता था इसलिए पहला संकेत करके तो ...लसन ने अपने जहाजों को लंगर गिराने के लिए ...र किया और दूसरा प्रसिद्ध संकेत अधिक ...ीप होकर लड़ने का था। बहुत दूर किनारे पर ...ड़े हुए शत्रु-पक्ष के लोग यह युद्ध देख रहे थे। ...तीन अँगरेजी जहाजों ने आगे बढ़ कर आक्रमण ...या और थोड़ी देर तक दोनों ओर से तोपें चलने ...बाद उन्होंने शत्रुओं के बेड़े का क्रम तोड़ दिया। ...बीच में दो और अँगरेजी जहाज वहाँ पहुँच गये ...नकी तोपों पर खड़िया से लिखा हुआ था—"...विजय या मृत्यु"!

युद्ध छिड़ गया था और दोनों ओर से तोपें चल ...थीं। उस समय ब्लैकउड जब नेलसन के जहाज ...से अपने जहाज पर जाने लगा तो उसने नेलसन ...कहा—"श्रीमान्! मैं आशा करता हूँ कि मेरे ...टने तक आप शत्रुओं के बीस जहाज पकड़ ...गे।" नेलसन ने बहुत ही गम्भीर पर दुःखपूर्ण ...र में कहा—"अब मैं तुमसे बात चीत न कर ...सकूँगा।" इसके थोड़ी ही देर बाद शत्रुओं का एक ...हाज नेलसनवाले 'विकृरी' नामक जहाज के बहुत ...समीप आ गया। उसकी एक तोप की मार से ...विकृरी का बड़ा मस्तूल गिर पड़ा। क्षण भर बाद ...स पर दो सौ तोपों की मार पड़ने लगी। पहले ...लसन का सेक्रेटरी और उसके बाद आठ नाविक मारे गये। थोड़ी ही देर बाद एक कप्तान का पैर कट गया। इसी प्रकार विकृरी की छत पर प्रायः पचास साठ लाशों का ढेर लग गया। घमासान युद्ध होने लगा। तोपों से निकलनेवाले कील काँटों और धूएँ से आकाश भर चला था। अँगरेजी जहाजों ने शत्रुओं के बेड़े को दो भागों में विभक्त कर दिया था।

एक बजे के बाद विकृरी और एक फ्रान्सीसी जहाज का मुकाबला हो गया। थोड़ी देर तक दोनों में भयङ्कर युद्ध होता रहा जिसमें विकृरी पर के बहुत से आदमी मारे गये। कोई आध घण्टे में ही वह बिलकुल खाली हो गया और डाकृर का कमरा घायलों से भर गया। इतने में एक गोली नेलसन को आकर लगी और वह कप्तान हार्डी के घुटनों पर यह कहता हुआ गिर पड़ा—"अन्त में उन्होंने मेरा काम भी खतम कर दिया।" कप्तान ने कहा—"नहीं, मेरी समझ में अभी नहीं।" चार आदमी उसे उठा कर जहाज पर से नीचे ले गये। नीचे पहुँच कर उसने रूमाल से अपना मुँह इसलिए ढक लिया कि कहीं और लोग हतोत्साह न हो जाँय। उस कमरे में और भी अनेक घायल पड़े हुए कराह रहे थे। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था! मृत्यु की भयङ्करता का बड़ा ही बुरा प्रमाण उस समय मिल रहा था!

बहुत से आदमी नेलसन को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। कराहते हुए उसने सर्जन बीटी से कहा—"गोली मेरी पीठ को आर पार छेद गई है; अब तुम मेरे लिए कुछ नहीं कर सकते।" लेमनेड आया; उसके शरीर से कपड़े उतार कर लोग उसे पंखा झलने लगे। उसे निश्चय हो गया था कि जख्म कारी लगा है और वह अपने जीवन से निराश हो चुका था। उसका नीचे का धड़ बिलकुल सुन्न हो गया और साँस लेने में उसे बहुत कठिनता होने लगी। सर्जनों ने परीक्षा करके निश्चय किया कि गोली कन्धे में धँस कर छाती से होती हुई नीचे चली गई है और अब उसके बचने की कोई आशा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्टरी उस समय चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ लड़ रहा था। इतने में पाँच फ़्रान्सीसी उसके लंगर पर से होते हुए उस पर चढ़ आये और एक टूटा हुआ मस्तूल लेकर उस पर से अपने जहाज पर पुल बाँधने लगे। इतने में एक और अँगरेजी जहाज उसकी सहायता के लिए आ गया। उसने आकर घोर युद्ध किया और किसी प्रकार शत्रु के जहाज को वहाँ से मार भगाया। थोड़ी थोड़ी दूर पर अलग अलग भयङ्कर युद्ध हो हो रहे थे। समुद्रतल खून और लाशों से भर गया था। दो बजे के बाद अँगरेजों का पक्ष बहुत प्रबल हो गया और उन्हें विजय की पूर्ण आशा हो गई इसलिए वह और भी जान लड़ा कर लड़ने लगे। तीन बजे नेलसन ने अपने मित्र हार्डी को बुला कर उससे युद्ध का समाचार पूछा। उसे उत्तर मिला कि शत्रुओं के बारह जहाज नष्ट हो गए और अपने सब मौजूद हैं। मरते समय उसे युद्ध, स्वदेश और लेडी हैमिलटन की चिन्ता बनी रही। इसी अवसर पर एक और जहाज ने आकर विक्टरी पर आक्रमण कर दिया। नेलसन उसी समय जोर से चिल्ला उठा—"विजय! विजय! तू मेरे निर्बल मस्तिष्क को कितना चकरा रही है!" जब अन्त समय निकट आ गया तो उसने कहा—"जीवन भी सब को कितना प्यारा होता है।" मृत्यु उसके बहुत समीप आ गई थी। पर तो भी अन्त समय तक वह बातें करता रहा और उसके होश ठिकाने थे। उसने कई बार कहा कि मैंने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया। एक बार उसने यह भी कहा कि अब वेदना बहुत बढ़ गई है और मैं मर जाना चाहता हूँ। उसके कहने पर हार्डी ने झुक कर उसका माथा चूमा। थोड़ी देर बाद "ईश्वर और स्वदेश" का ध्यान करते करते वह ठंढा हो गया! इसके प्राण शरीर से निकल गये!! इस प्रकार अपने समय के उस प्रसिद्ध वीर का अन्त हो गया!!!

नेलसन का देहान्त साढ़े चार बजे हुआ था। इससे एक घण्टा पूर्व ही शत्रुओं के कई जहाजों की तोपें बन्द हो गई थीं। पाँच बजे शत्रुओं के [illegible] वाले केवल दो ही जहाज बच गये। साढ़े पाँच [illegible] उनमें से एक जहाज में आग लग गई और युद्ध [illegible] अन्त हो गया। अँगरेजों की जीत हो गई।

इस युद्ध में अँगरेजों के ४०२ आदमी मरे [illegible] ११३९ घायल हुए थे। शत्रुदल के मृतकों [illegible] घायलों की संख्या सात हजार के लगभग थी। इसके सिवा दोनों ओर बहुत से कैदी भी पकड़े गये। उसी रात को बड़ा भारी तूफान आया जो २२ [illegible] २३ तारीख तक बना रहा। २४ तारीख को [illegible] जहाज वहाँ से हट बढ़ गए।

ट्रैफलगर की विजय बहुत ही महत्त्व-पूर्ण [illegible] इंगलैण्ड का उससे बहुत बड़ा उपकार हुआ। [illegible] शक्ति ने उसके मार्ग के सब कण्टक दूर कर [illegible] और अब केवल स्थल-शक्ति का काम बाकी रह गया। नेपोलियन ने इस परास्त का हाल चुपचाप [illegible] लिया और बहुत दिनों बाद तक उसने कभी इस[illegible] कोई जिक्र नहीं किया। सन् १८०६ में उसने [illegible] बार कहा था—"युद्ध होते समय तूफान के का[illegible] हमारे कई जहाज नष्ट हो गये थे।"

रात के समय अँगरेजी बेड़े को नेलसन [illegible] मृत्यु के समाचार ने शोक-सागर में डुबा दिया। जब यह समाचार इंगलैण्ड पहुँचा तो वहाँ [illegible] वही दशा हुई। विजय के सुसमाचार के साथ साथ यह हृदय-विदारक समाचार भी आया था। दिसम्बर सन् १८०५ में नेलसन का शव विक्टरी जहाज पर इंगलैण्ड पहुँचा। ८ जनवरी को उस[illegible] शव लन्दन के बाजारों में से निकाला गया। [illegible] देखने के लिए बड़ी भारी भीड़ जमा हुई थी। सन्ध्या समय गिरजा में उसकी आत्मा को शा[illegible] देने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई।

नेलसन का भाई ट्रैफलगर का अर्ल बना[illegible] गया और उसे लोगों से एक लाख आठ हजार पाउण्ड नगद मिले। इसके सिवा उसके लिए ५०[illegible] पाउण्ड वार्षिक की वृत्ति नियत हो गई। [illegible] नेलसन को भी २००० पा० वार्षिक वृत्ति मिल[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गी। पर बहुत दिनों तक नेलसन का कोई स्मृति-चिह्न न बन सका और कई वर्षों बाद जो बना भी वह अधिकांश रूसियों के ही धन से बना ।

सन् १८१५ के आरम्भ में लेडी हैमिल्टन का ...लोन में दरिद्रावस्था में देहान्त हो गया । नेलसन की बहन अन्त समय तक उसकी सहायता करती रही थी। सन् १८३१ में लेडी नेलसन का भी देहान्त हो गया । उसकी कन्या ने विवाह कर लिया था और उसे कई बालक भी हुए थे ।

--:o:—

जर्मनी की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ।

(लेखक—श्रीयुक्त राधामोहन गोकुल जी, कलकत्ता ।)

(१)

यद्यपि जर्मनी की शिक्षा-प्रणाली अनेक बातों में युरोप के अन्य समस्त प्रांतों से कहीं अधिक प्रशंसनीय है, यद्यपि जर्मनी में प्रजा अपनी सन्तति को शिक्षा देने के लिये राज-नियमों से बाध्य है और भारतवर्ष में भी प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य कराने के लिये सरकार से बराबर प्रार्थनाएं की जा रही हैं परन्तु फिर भी हम लोगों में ऐसे शिक्षा-प्रेमियों की संख्या बहुत कम है जो उससे यथेष्ट जानकारी रखते हों। इसलिये मैं लगातार तीन लेखों द्वारा जर्मनी की प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षापद्धति पर प्रकाश डालने की चेष्टा करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि इन लेखों से हमारे देश के शिक्षकों को लाभ होगा ।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है जर्मनी की शिक्षा तीन भागों में विभक्त है। (१) प्रारंभिक (२) माध्यमिक और (३) उच्च । इनमें से प्रारंभिक शिक्षा हमारे इस प्रथम लेख का विषय होगा ।

इस प्रारंभिक शिक्षा के स्कूलों को हम अपने सुबीते के लिये दो श्रेणियों में विभक्त किए लेते हैं ।

(क) प्रारंभिक पाठशालाएं (स्कूल) ।
(ख) छोटे डिपार्टमेंटल स्कूल ।

प्रारंभिक स्कूल ।

जर्मनी के ये प्रारंभिक स्कूल ऐसे हैं जिन में समस्त जर्मन संतान, क्या पुत्र, क्या पुत्री, राज-नियमानुसार एक निर्णीत वयस से कुछ निश्चित काल तक स्कूलों में जाने को बाध्य हैं। इन्हें लगातार स्कूल में जाते रहना पड़ता है। यद्यपि शिक्षा का समय समस्त मंडल राज्यों (Federal States) में एक नहीं है, परंतु शिक्षा के आरंभ करने की अवस्था और अनिवार्य्य शिक्षा की व्यवस्था सर्वत्र एक समान है। कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे जर्मनी में सामरिक सेवा प्रत्येक जर्मन पुरुष के लिए राजनियमानुसार अनिवार्य्य है वैसे ही शिक्षा भी है। सच भी है, जो राज्य अपनी प्रजा को शुद्ध बुद्धि से संतानवत् देखता है, कैसे संभव है कि वह उसे मूर्ख बना रहने दे और उसका जी न दुखे। फिर जिस प्रजा को विद्या-द्वारा कर्तव्य ज्ञान न कराया जायगा, देश की रक्षा और राज्य की सहायता के साधन यथावत् न बतलाए जायँगे वह अपनी वा राज्य की सहायता ही क्या करेगी। हमें रघुवंश में दिलीप के विषय में कालिदास के ये वाक्य मिलते हैं ।

प्रजानां विनयाधानात् रक्षणात् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ १—२४ ॥

अर्थ—महाराज दिलीप अपनी प्रजा को शिक्षा देते, उसे पालते पोसते थे, उसके पिता तो केवल जन्म देनेवाले ही थे ।

जर्मनी में यह अनिवार्य्य शिक्षा की पद्धति पहले पहल सन् १८१९ ई० में आरंभ की गई थी। बालकों के माता पिता व अन्य अभिभावक जो इस नियम का पालन नहीं करते उन्हें अर्थ दंड और कभी कभी कारावास का दंड भी भोगना पड़ता है, और राज्य, पुलिस-द्वारा बालक बालिकाओं को बलात् पाठशाला में ले जाता है। साधारणतः यह बलात् शिक्षा बालकों को ६ वर्ष की अवस्था से १४ वर्ष की अवस्था तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी जाती है। अर्थात् सात वर्ष तक इस प्रकार की शिक्षा देने का नियम है।

प्रायः समस्त जर्मनी देश में अलग अलग समुदायें व संप्रदायें की अलग अलग पाठशालाएँ हैं; यथा—प्रोटेस्टेंट, केथालिक इत्यादि की। फिर जिस समुदाय या संप्रदाय की पाठशाला होती है प्रायः शिक्षक भी उसी समुदाय या संप्रदाय के होते हैं। नासा वा वेमार (Nassau and Weimar, &c) आदि स्थानें में सम्मिलित (simultaneous) स्कूल भी हैं। इनमें शिक्षकगण बिना धर्म व संप्रदाय आदि के विचार के नियुक्त किए जाते हैं। परंतु इन सब स्कूलें में चाहे वे किसी प्रकार के क्यों न हों उनका उद्देश्य एक ही है। सभी जगह बच्चों को धार्मिक, सदाचारी व देशभक्त बनाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उदाहरण के लिए प्रशिया को देखिए जिस में प्रारंभिक पाठशालाओं के कर्तव्य नियमानुसार ये हैं:—

"प्रारंभिक पाठशालाओं का कर्तव्य होगा कि बच्चों को शिक्षा, दीक्षा तथा आदर्श वा व्यावहारिक उदाहरणों द्वारा धार्मिक, सदाचारी और पितृ-भूम्य-नुरक्त बनावें और उनके हृदय में ऐसा ज्ञान स्थापित करें जो उनके नित्यप्रति के जीवन में आवश्यक हो और जिससे बच्चे देश के लाभदायक अंग बनें। ऐसी शिक्षा केवल काल्पनिक वा पुस्तकों की ही न हो, व्यावहारिक रीति से भी होनी चाहिए।"

इन पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा का स्थान सबसे उच्च रक्खा गया है; वह अन्य सब प्रकार की शिक्षाओं में प्रधानतम है। किन्तु शोक है कि समय के फेर से नास्तिकता जोर पकड़ती जाती है और अनेक प्रकार से लोग चेष्टा कर रहे हैं कि धार्मिक शिक्षा राजकीय स्कूलें से उठा दी जाय, क्योंकि यह काम पुरोहित-मंडल अर्थात् पोपों वा पादरियों का है न कि राजा की सार्वजनिक पाठशालाओं का। ब्रीमन (Bremen) प्रभृति अनेक स्थानें में इन नवीन विचारवालों को कृतकार्य्यता भी हुई है अर्थात् वहाँ की पाठशालाओं से धार्मिक शिक्षा का बहिष्कार कर दिया गया है।

इन प्रारंभिक पाठशालाओं में उक्त शिक्षाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित विषयें का अध्यापन भी आवश्यक रक्खा गया है—जर्मन भाषा, पाटीगणित, यामिति, जर्मनी का इतिहास वा भूगोल, पदार्थ-विद्या, चितेरी, मानचित्र बनाना, वाद्य वा व्यायाम। पिछला विषय अर्थात् व्यायाम अब लड़कियों के लिए भी अनिवार्य्य हो गया है। उदाहरण के लिए हम कोयनिसबर्ग (Koenigsberg) की प्रारंभिक पाठशालाओं की पाठ्य पद्धति नीचे देते हैं। इस तालिका के देखने से प्रकट होगा कि धार्मिक शिक्षा का घोर विरोध होने पर भी अभी तक उसका प्राधान्य है, किन्तु आशा नहीं कर सकते कि यह प्राधान्य आगे भी रहने पावेगा।

नीचे दी हुई तालिका में जोड़ ठीक नहीं मिलेगा। इसका कारण यह है कि किसी किसी श्रेणी में किसी किसी विषय को एक घंटा कम या ज्यादः भी पढ़ाया जाता है।

	श्रेणी						
	७	६	५	४	३	२	१
विषय—	घंटा प्रति सप्ताह—						
धर्म्म	४	४	४	४	४	४	४
जर्मनभाषा	११	११	१०	९	८	७	६
पाटी गणित	४	४	४	४	४	४	४
यामिति	०	०	०	०	२	२	२
इतिहास	०	०	०	२	२	२	२
भूगोल	०	०	३	२	२	२	२
भौतिकतत्त्व	०	०	०	२	२	४	४
बाजा	१	१	२	२	२	२	२
व्यायाम	१	१	१	२	२	२	२
मैदान का खेल	०	०	०	१	१	१	१
नक़शा	०	०	२	२	२	२	२
सुई का काम	२	२	२	२	२	२	२
जोड़	२१	२१	२२	२६	३०	३२	३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ सुई का काम केवल लड़कियों को ही सिखाया जाता है।

२ उपर्युक्त कार्य्य-क्रम (routine) एक सप्ताह का है।

पाठक देखेंगे कि भारत में जितनी शिक्षा बालकों को हाई स्कूलों में दी जाती है अनुमान उतनी ही शिक्षा जर्मनी में प्रारंभिक (Lower Primary) कक्षा में समाप्त हो जाती है। इसमें भारत सरकार का कुछ दोष नहीं है। पिछली बार जब लाट कर्जन ने शिक्षा की मानमात्रा बढ़ाई तो प्रजा ने बड़ा शोर मचाया। शिक्षा की मानमात्रा (Standard) अभी भारत में और ऊँची करनी पड़ेगी तब अन्य जातियों के बराबर योग्यता-संपन्न छात्र यहाँ पैदा हो सकेंगे। एक बात जरूर है कि पढ़ाई का वर्तमान् सरकारी ढंग बहुत ही असंतोष-जनक है जिसका भारत सरकार को अवश्य ध्यान होगा, चाहे जल्दी हो या कुछ देर से।

वार्नविक में उच्चश्रेणियों में शारिरक ज्ञान सिखाया जाता है और हैवर्ग में बालक-बालिकाओं को अँगरेजी सीखनी पड़ती है। वहाँ बालकों को राज-काज की बातें, दंडविधि, वणिज व्यवसाय आदि कई बातें और भी सिखलाई जाती हैं, किंतु पिछले विषय छात्रों की इच्छा पर निर्भर हैं, अनिवार्य्य नहीं हैं। इतिहास और भूगोल तोतों की तरह नहीं रटाए जाते किंतु शिक्षक छात्रों को अपने साथ ले जा कर अनेक ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थान और प्राकृत दृश्य दिखलाता है। जर्मनी का बड़प्पन बालकों के हृदय पटल पर अंकित किया जाता है, देश के भूत व वर्तमान् महज्जनों के जीवनचरित्र भी बड़े ध्यान से पढ़ाए वा बतलाए जाते हैं। इन पिछली शिक्षाओं के कारण प्रत्येक जर्मन संतति बड़ी होने पर जर्मन होने का अभिमान करती है और सच्ची देशभक्त बन जाती है। यदि कभी किसी को किसी जर्मन बालक या बालिका के मुख से जर्मनी के किसी महापुरुष की बात, किसी महत्त्व की कथा सुनने का काम पड़े तो निश्चय वह सुन कर भक्त और मुग्ध सा हो जाय। फ्रेडरिक दि ग्रेट की बातें और बड़े बड़े युद्धों की गाथाएँ इन बच्चों के मुख से सुनतेही बनती हैं।

छोटे बालक बालिकाओं को पाटीगणित की शिक्षाएँ बड़ी मनोरंजक रीति, व बड़ी खूबी के साथ दी जाती हैं, इसी से वे गणित के शुष्क नियमों को सरलतापूर्वक याद रख सकते हैं।

बच्चों के हृदयों में कलाकौशल वा गाने बजाने का भी प्रेम उत्पन्न किया जाता है, वाद्य तो बिना नागा कक्षाओं में सिखाया जाता है। बड़े दिन के अवसर और अन्य त्योहारों पर जर्मन-बालक बहुत बड़ी हद्द में योगदान करते हैं। मिट्टी के ढाँचे वा मानचित्र बनाना सिखाने में भी त्रुटि नहीं की जाती। छात्र छात्राएँ अपने शिक्षकों के साथ नाट्यशालाओं वा रंग भूमियों में जाती हैं, शिक्षकगण उनके हृदय में उन समस्त महत्त्व की बातों को जो देखने में आती हैं, दृढ़ करते हैं। बच्चे मैदानों में बैठ कर अपने मन से अपनी कापियों पर प्रकृति के दृश्यों को अंकित करते हैं, इन कापियों को देख कर शिक्षक लोग उनके गुण दोषों को समझाया करते हैं।

उक्त प्रारंभिक पाठशालाओं के अतिरिक्त नागरिक शिक्षालय वा पादरियों के स्कूल भी हैं जिनकी गणना उच्चप्रारंभिक (Upper Primary) स्कूलों में की जाय तो कुछ अनुचित न होगा। इनमें नीचे की पाठशालाओं की शिक्षा के अतिरिक्त भौतिक तत्त्व, रसायन-शास्त्र, फ्रान्सीसी-भाषा वा कहीं कहीं लातीनी भाषा भी सिखाई जाती है। इस श्रेणी की पाठशालाएँ बहुत ज्यादः नहीं हैं, तो भी प्रशिया में ही अनुमान ६४० ऐसी शालाएँ विद्यमान हैं, जिनमें डेढ़ लाख लड़के लड़कियाँ पढती हैं। ६-७ वर्ष के अनजान बच्चों के लिए किंडरगार्टन पाठशालाएँ हैं।

किंडरगार्टन शिक्षा-पद्धति के संचालक फ्रेडरिक विलहेम अडाल्ट फ्रोबेल महाशय हो गए हैं। वे उच्च श्रेणी के दार्शनिक, स्वदेश भक्त, मनुष्य-हितचिंतक और शिक्षा-पद्धति के सुधारक वा उद्धारक सज्जन थे। उनका जन्म थूरिंजियन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ोरेस्ट नामक स्थान में सन् १७०२ ई० में हुआ था। बाल्यावस्था में ऐहिक कष्ट पाने से उनका हृदय दयालु और परोपकारी हो गया था इसलिए उन्होंने अपने देश के बच्चों के हित की कामना से बड़ी कोशिश करके नई शिक्षा-प्रणाली का आविष्कार किया और उसमें भी वे कृतकार्य हुए।

१८वीं शताब्दी के अंत में पेस्तालेत्सी वा ग्रोवरलिन ने बच्चों के लिए दिवाश्रम (day asylum) खोला। पीछे इंगलैंड ने भी इन आश्रमों का अनुकरण किया और इनका नाम शिशु-शिक्षालय रक्खा, लेकिन फ्रोबेल के किंडरगार्टन के आदर्श में वा इन इंगलैंडीय शिशु-शिक्षालयों में बड़ा अंतर है। हम किंडरगार्टन शिक्षा-प्रणाली के संबंधी में कुछ बातें इस पत्रिका के पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

फ्रोबेल का मत था कि देश के बच्चे केवल अपने माता-पिता वा कुटुंब के ही नहीं किंतु समाज मात्र के बच्चे हैं। यह दृढ़ विचार था और ठीक भी था कि बच्चों के साथ बहुत से ऐसे सलूक हो सकते हैं जैसे कि आदर्श कुटुंब के अच्छे पिता माता से भी नहीं बन पड़ सकते। हमारा धर्म्म है कि हम आनेवाली संतति को ऐसा बनावें कि जिससे वह गृहस्थी में पैर धर कर अपनी जाति, वर्ग, वा देश की स्थिति में, उपयुक्त अंग बन कर काम कर सकें। इसी लिए इसने अपनी पाठशालाओं का नाम 'पाठशाला' न रख कर 'किंडरगार्टन अर्थात् 'बच्चों की वाटिका' रक्खा था। इन किंडरगार्टन पाठशालाओं में बड़ी बड़ी उमर के नहीं, किंतु छोटे छोटे बच्चों को शिक्षा दी जाती थी वा है। इनमें बच्चों को खेल में लगाया जाता है और प्रत्येक को अपनी एक छोटी सी वाटिका बना कर समुन्नत करनी होती है। इन पाठशालाओं का नाम फ्रोबेल किंडरगार्टन इस कारण नहीं रक्खा था कि बच्चों को अपनी अपनी छोटी वाटिका बनानी पड़ती है, परंतु इस नाम से उसका अभिप्राय था शिशु-वाटिका अर्थात् वह वाटिका जिसमें मानवी पौधे लगाये व पोसे जायँ। इन वाटिकाओं का अभिप्राय यह था कि बच्चे जो स्वभाव से खेल के प्रेमी होते हैं खेलें और साथ ही स्वतः उनके मन ठीक मार्ग की ओर आकर्षित हों और उनको किसी प्रकार का भार या जबरदस्ती न प्रतीत हो।

लोक वा फ्रोबेल ने एकमत होकर यह सिद्धांत कर लिया था कि बच्चों की यथेष्ट उन्नति तभी हो सकती है जब उनके खेल का सामान इस तरह पर जुटाया जाय कि उनके मनोभाव, विचारशक्ति, उनकी रचना, निर्म्माण वा कल्पनाशक्ति स्वयं जागृत होकर समुन्नत हो वा फले फूले। फ्रोबेल महाशय का स्वयं यह कथन था कि "मैं चाहता हूँ कि बालकों को उनकी प्रकृति के अनुसार काम करने वा मनोनिवेश का कारण मिले जिससे उनके अंग दृढ़ हों, शरीर में बल हो, ज्ञानेन्द्रियों में जागृति हो और उन्हें अपने ज्ञान वा कर्म्मेन्द्रियों के लगाने का खुला अवसर मिले, बालक जागृत-हृदय होकर मन लगा कर, प्रकृति और मनुष्य जाति के मर्म को समझें, केवल इतना ध्यान रहे कि वे बहकें नहीं। अकारण उनके मन वा बुद्धि के विकाश वा विस्तार में तनिक भी बाधा न डाली जाय"।

विकाश के सिद्धांतानुसार प्रकृति का मनन समस्त शिक्षा का आधार होना चाहिए क्योंकि उसीके ऊपर उन्नति निर्भर है। फ्रोबेल महोदय ने बालकों के स्वभाव का अच्छी तरह पर मनन किया था। इन्होंने बच्चों के स्वभाव में यह बात विचार-पूर्वक लक्ष्य की थी कि वे कैसे अपने हाथों से काम लेने के प्रेमी होते हैं। बच्चे किसी चीज को लेकर और उसे खूब देख भाल कर संतुष्ट नहीं होते किंतु उनका मन तब खुश होता है जब कि वे उस चीज में अपना मनमाना हेरफेर करलें जो उनके हाथ पड़ी है। फिर बच्चों में नकल करने की विचित्र शक्ति होती है, जब उन्हें गीली मिट्टी मिल जाती है तब वे उससे ऐसी चीजों के रूप बनाते हैं जो उन्होंने देखी होती हैं। पेन्सिल कागज मिलने से वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के चित्रों वा नकशों के बनाने की चेष्टा होते हैं। उन्होंने बच्चों के मन लगने के नए नए आविष्कृत किए, जिनमें से अनेक तो सामाजिक थे। इन्हें वे बच्चों के पुरस्कारों में रखते और के साधारण खेल की चीज समझते, जैसे छ गेंद, काठ के गेंद, वा एक वर्तुल (cylinder) एक घन (cube) जो ऐसा कटा होता कि से आठ छोटे छोटे घन बन जाते, एक दूसरा जिससे आठ समानांतर चतुष्कोण (Parallelograms) बनते, रँगी हुई लकड़ी की वर्गाकार (square), त्रिकोणाकार (Triangular) तख्तियाँ, की लकड़ी की धारियाँ छल्ले और वृत्त। इनके बच्चे खेलते और इन्हीं को देख देख अपने से भी कागज पर पेंसिल से या गीली मिट्टी दूसरी वैसी ही चीज़ें बनाते हैं। उस विचार-पंडित ने न केवल कला-संबंधिनी योग्यता पर ध्यान दिया था, वरन् इसी प्रकार खेल ही खेल में को गाना, बजाना, ताल, स्वर, वा कविता का भी कराने के लिये यत्न किया था। बच्चों की दृष्टि, (sound) और स्पर्श (touch) को संस्कृत के लिये उसने बहुत काम किया था।

बालकों की योग्यताओं को समुन्नत करने के पेस्टालोत्सी और फ्रोबेल में मत भेद था; उसका था कि योग्यताएँ (Faculties) अभ्यास से (developed) होती हैं, और इसका मत नहीं, बच्चों की योग्यता उनकी स्वेच्छा-उद्योगिता को जागृत करने से बढ़ती वा समुन्नत होती है, और शिक्षा का प्रधान कृत्य ऐसा होना जिससे उनमें अपने मन से काम करने की जागृत हो वा बढ़े। फ्रोबेल का यह विचार अवस्था के संबंध में था। रूसो की भाँति वह नहीं मानता था कि जीवन की प्रत्येक अवस्था (युवा, प्रौढ़, वृद्ध) स्वयं पृथक् एक पूरी चिट्ठी पिछली अवस्था की संपन्नता पूर्व अवस्था की ता पर निर्भर होती है। अपने आप बच्चों को की ओर चलायमान होने की योग्यता की जरूरत होती है। जो अर्भक ऐसा ही है जैसा कि अर्भक को होना चाहिए तो बालक भी ठीक बनेगा; जो बालक ऐसा है कि जैसा बालक होता है तो वह युवा भी अच्छा बनेगा इत्यादि। प्रत्येक अवस्था में यह देखना चाहिए कि वह उसी अवस्था की पूर्णता को प्राप्त करे। इस प्रयत्न के लिए हमें प्रकृति की ओर ध्यान देना चाहिए क्योंकि फ्रोबेल का मौलिक दृढ़ विश्वास है कि सृष्टि की प्रवृत्ति और भौतिक जगत् में परमात्मा ने हमें सच्ची शिक्षा का आदर्श प्रदान किया है। जब मनुष्य और प्रकृति दोनों का मूल एक ही है तो दोनों एक ही नियम के अधीन होने भी चाहिएँ। इन्हीं सब विचारों को लेकर फ्रोबेल महाशय ने १८३७ में किंडरगार्टेन शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की थी। अब यह प्रथा समस्त युरोप में थोड़ी बहुत जारी है, किंतु इस प्रथा का सबसे अधिक प्रचार बेलजियम में पाया जाता है, जिसका जर्मनी ने धृष्टता से अकारण हाल में ही सत्यानाश कर डाला।

जर्मनी में ऐसा एक भी सरकारी शिक्षालय नहीं है। जो हैं वे या तो किसी व्यक्ति के हैं या किसी सभा समाज के। जर्मनी में किंडरगार्टेन शिक्षा-पद्धति की शिक्षिका बनाने के लिए अनुमान २० स्थानों में लड़कियों की किंडरगार्टेन संस्थाएँ हैं।

रोगी वा अयोग्य बच्चों के लिए पृथक् प्रबंध हैं। अंधे, बहरे, क्षीण दृष्टिवाले बालकों के लिए और अन्य दीर्घस्थायी रोगों से पीड़ित बच्चों के लिए भी शिक्षा का प्रबंध है। १०० स्कूल गूँगे बहरों के लिए हैं जिनमें ७००० बच्चे शिक्षा पाते हैं। ४० अंधे बच्चों के स्कूल हैं जिनमें ४००० छात्र शिक्षा पाते हैं। बदचलन वा बिगड़े हुए बच्चों के वास्ते भी सुधार करनेवाले स्कूल हैं। इनमें बच्चे ८ दिन से कम वा २ मास से अधिक दिन के लिये नहीं लिए जाते। कुछ लोग और सभाएँ भी कुचाली लड़कों के सुधारने का भार लिया करती हैं। लड़के लड़कियों का एक साथ पढ़ाना अच्छा समझा जाता है। १९०७ में ३९,३३,५७५ बच्चे मिल कर पढ़ते थे और २२,३०,८२३ बच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़के लड़कियों की अलग अलग पाठशालाओं में जाते थे। बवेरिया में १९०५ में ७५१७ प्राइमरी स्कूलों में से ५१० लड़कों के और ५२६ लड़कियों के और शेष सम्मिलित स्कूल थे।

१९०६ में जर्मन सरकार ने जो लेखा छापा था, उसके अनुसार प्रत्येक बच्चे पर पढ़ाई का खर्च ३३) वार्षिक पड़ा, लेकिन इसमें उनके खान पानादि का व्यय, निरीक्षकों का व्यय और शिक्षक के काम के लिये आदमियों को तैयार करने का व्यय शामिल नहीं है। कालेज या स्कूल से परीक्षोत्तीर्ण होने के पीछे जब तक शिक्षक का काम करना शिक्षक-शिक्षालय में न सीख ले कोई आदमी जर्मनी में शिक्षक पद पर नियुक्त नहीं किया जाता।

सारे युरोप में प्रति वर्ष साढ़े आठ करोड़ पौंड अर्थात् १,२७,५०,००० रुपया व्यय होता है। इसमें से एक तिहाई जर्मनी का व्यय है और शेष दो तिहाई में सारा युरोप। इंगलैंड एक चौथाई, रूस—जिसमें सारे युरोप की एक चौथाई मनुष्य संख्या है-द्वादशांश देता है। सारे युरोप में ४,६१,४५१ प्राइमरी स्कूल हैं जिनमें १०५०,६३२ शिक्षक वा ४,५२,८१,६९१ छात्र हैं।

युरोप में शिक्षितों की संख्या यों है:—

१—जर्मनी जिसमें सौ में ०·००५ बेपढ़े हैं।
२—स्वीडेन " ०·१
३—डेनमार्क " ०·२ "
४—ग्रेट ब्रिटन " १·० "
५—नेदरलैंड " २·१ "
६—फ्रांस " ४·० "
७—फिनलैंड " ४·९ "
८—बेलजियम " १०·२ "
९—आष्ट्रिया-हंगरी " २५·७ "
१०—ग्रीस (यूनान) " ३०·० "
११—इटली " ३१·३ "
१२—बलगेरिया " ५२·७ "
१३—सर्विया " ६१·६ "
१४—रशिया " ६१·७ "
पुर्तगाल बेपढ़े प्रति सौ ७०·० "
रोमानिया " ७५·० "
टर्की " ९०·०

से अधिक हैं परंतु ठीक लेखा नहीं मिल सक

(ख) छोटे डिपार्टमेंटल स्कूल।

यह स्कूल दो प्रकार के हैं:—

१—वे जो बराबर छः दिन प्रति सप्ताह खुलते हैं
२—वे जो सप्ताह में २ या ३ बार या सायंकाल खुलते हैं। पहले तो डिपार्टमेंटल स्कूल कहे हैं और पिछले कंटिन्युएशन स्कूल कहे जाते पिछले स्कूल भी दो प्रकार के हैं, एक उद्देश्य है कि जो लड़के लड़की धन-संपन्न हैं, १४ वर्ष की अवस्था में पढ़ना छोड़ कर काम करने लगे हैं, उन्हें नियमित सभ्यता जीवन-निर्वाह करना बतलाया जाय वा त्तिक ज्ञान दिया जाय; दूसरे का अभिप्रा कि इस प्रकार के लड़कों को किसी व्यव विशेष में निपुण बनाया जाय। इनमें व्यवसाय के स्कूल, ग्राम्य स्कूल आदि स लित हैं। उनमें जर्मन-साहित्य, संपत्तिशा सिद्धांत, देश की राजनीति वा शासन-सं आदि बतलाया जाता है।

इन कंटिन्युएशन स्कूलों में विशेषता के निम्नलिखित विषय सिखाए जाते हैं—

१—नकशा बनाना, प्रतिमा गढ़ना, व्यव करना, लेनदेन, हुंडी पुरजे के भुगतान इत्या व्यवसाय संबंध में प्रधान विषय ये सि जाते हैं:—

पत्र व्यवहार, अलंकृत अक्षर लिखना, राइटिंग, संक्षिप्तलेख (shorthand), गणित, खाता, भू-राज्य-विभाग इत्यादि इत्यादि।

ग्राम्य पाठशाओं में खेती बारी के मूल सि और कृषि-संबंधी कलकांटों का काम सिखाया है और गार्हस्थ्य स्कूलों में युवतियों को गृहस्थ प्रबन्ध की शिक्षा दी जाती है। खाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...पिरोना सिखलाने के लिए अनेक निज के (Private) स्कूल भी हैं। देशसेवा, समाजसेवा मनुष्यसेवा के लिए 'देश-प्रेमिणी महिला पाठशाला' (Patriotic Women's School) भी हैं। अनेक मंडल राज्यों (Federal States) में ...र डिपार्टमेंटल स्कूलों की शिक्षा ११ वर्ष की ...था तक अनिवार्य रक्खी गई है। इनमें कारखानों ...दूकानों पर काम करनेवाले लड़के लड़कियाँ शिक्षा ...ती हैं। १९०० के नए नियम के अनुसार समस्त ...री देश के कारखानों के डाइरेकृर, कोठियों के ...नाग, आदि बाध्य किए गए हैं कि वे अपने यहाँ ...उम्मेदवारों तथा अन्य नौकरों को इन स्कूलों में ...क्षा प्राप्त करने जाने के लिए समय दें, साथ ही ...की निगरानी रक्खें कि ये लोग बराबर स्कूल ...हैं, कहीं नागा या असावधानी तो नहीं करते! ...या व्यवसाय समवायों (Guilds) और व्यवसाय ...दों (Chambers of Commerce) को ऐसे ...ल स्थापित करने वा चलाने पड़ते हैं। इन स्कूलों ...शिक्षक अनेक प्रकार के व्यवसायियों में से चुने ...हैं। बहुधा ये लोग या तो प्रारंभिक पाठशालाओं ...के शिक्षक होते हैं अथवा पशु-चिकित्सक, वा ...य की कोठियों के पदाधिकारी होते हैं। ये ...अनुभव के आधार पर शिक्षक चुने जाते हैं। ...पाठशालाओं में दो परीक्षाएँ होती हैं—(१) ...सियेट (२) मास्टर ट्रेड्समैन अर्थात् व्यवसाययोगी ...व्यवसायदक्ष की उपाधियाँ इन परीक्षोत्तीर्ण ...ों को दी जाती हैं।

...सच्चे डिपार्टमेंटल स्कूल तो वे हैं जो सप्ताह ...लगातार खुलते हैं। इस प्रकार के प्रारंभिक ...आजकल जर्मनी में यों हैं:—६१ शिल्प के (Ar...tecture), २६ निर्माण विद्या के (Engineering), ...खनिज के (Mining) १० धातु के काम के (Metal ...sing) १०४ कताई बुनाई के (Spinning and ...ving), २६ चितेरी के, २७ कारीगरों के ...sans), २४ काठ की नकाशी के, ६ कुम्हारी ...(Ceramic), ६१ नालबंदी आदि के, ४० नौ-शिक्षा के, ५२ नदी झील आदि में नाव या जहाज चलाने (Inland navigation), की शिक्षा के ४३ गार्हस्थ्य कर्म के (Domestic), १५ सूचीकारी के (Tailors) ६ संधान के (distillery or brewing), ५ संगतराशी के, १०० कारबार के शिष्यों को व्यवसाय की शिक्षा देने के; सब मिला कर इस प्रकार के स्कूल ६३९ हैं। इनके अतिरिक्त, छापा, चित्रकारी, छपाई, चमड़ा पकाने, हाथी दाँत का काम करने, खिलौने या वाद्ययंत्र बनाने, टोपी बनाने, तथा और नाना प्रकार की कारीगरी आदि के स्कूल भी हैं। सार यह कि कोई ऐसी मनुष्योपयोगी विद्या की शाखा नहीं है जिसकी शिक्षा का प्रबंध जर्मनी में न हो। फिर इन स्कूलों में कोई भी ऐसा नहीं है जिसकी शिक्षा वैज्ञानिक आधार पर न हो। साधारणतया प्रति सप्ताह ३४ घंटे स्कूलों में शिक्षा मिलती है। हमने उक्त स्कूलों की गणना में निम्नश्रेणी के कृषि-स्कूलों को नहीं लिया, क्योंकि उनका विवरण बहुत बड़ा है। कुल ४१६ स्कूल हैं। इनमें किसानी, खेती के जोतने बोने का काम, बागबानी, चीनी बनाना, पशु-पालन, मद्य वा आसव बनाना और दूध दही प्रस्तुत करना सिखलाया जाता है। जाड़े के, खेतीबारी के स्कूल भी हैं, जिनमें दो वर्ष शिक्षा दी जाती है और केवल किसान लिए जाते हैं। इन में राजनीति, गणित, वनस्पति शास्त्र, रसायन, पशु पालन इत्यादि इत्यादि अनेक परमोपयोगी बातें सिखाई जाती हैं। हमने विस्तार के भय से इस संबंध में भी अनेक बातें छोड़ दी हैं।

चीनी बनाने के २ बड़े बड़े स्कूल हैं। इन में से एक राजधानी बर्लिन में है; इसके साथ राजकीय कृषिमहाविद्यालय और अजायब घर (Museum) भी हैं। यद्यपि ये स्कूल निम्नश्रेणी के डिपार्टमेंटल स्कूलों में गिने जाते है, परंतु यहाँ चीनी बनाने का काम पूरी पूरी वैज्ञानिक रीति से सिखाया जाता है। लेकिन इस स्कूल में विदेशी नहीं भरती हो सकते। इसके सिवा और भी अनेक ऐसे व्यावहारिक काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जो जर्मन लोग विदेशियों को नहीं सिखलाते, विद्या-वा कला की चोरी में जर्मन समस्त युरोपीय जातियों से बढ़ चढ़ कर चोर हैं। ये समझते हैं और एक सीमा तक ठीक समझते हैं कि जो हम अपना हुनर दूसरों को दे देंगे तो हमारे देश की आमदनी घट जायगी।

जर्मनी ने पिछले सौ वर्षों में जो उन्नति की है उसे देख कर चकित होना पड़ता है। हम लोग, अँगरेजों वा जापानियों की उन्नति देख कर चकित होते हैं, किंतु जर्मनी की उन्नति, विद्या, अध्यवसाय और चातुरी देखकर कहना पड़ता है कि जिन देशों को हम विद्या वा कारीगरी में बहुत बढ़ाचढ़ा समझते हैं वे अब भी जर्मनी से कई बातों में कम हैं।

—:०:—

ऋग्वेद की यज्ञ प्रशस्तियाँ।

(२)

(लेखक—बा० जगन्मोहन वर्म्मा, काशी।)

१२—वरु सुषाम्ण की प्रशस्ति।

वरु राजा औषिणदवंशी सुषामन का पुत्र था। इसने अपने पिता के मरने पर व्यश्व गोत्रियों को अपने पिता के उद्देश से बहुत धनादि दिया था। व्यश्व लोग अत्रिजी के गोत्र के थे। इन व्यश्व के पुत्रों में विश्वमना की रची हुई राजा वरु की दान प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त २४ में है:—राजा वरु गोमती के किनारे राज्य करता था।

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम्
व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥ १ ॥
आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः
स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥ २ ॥
यत्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहया कृते
एषा आपश्रितो वलो गोमतीमवतिष्ठति ॥३॥

हे सुभगे अन्नवाली! जिस प्रकार सुषाम्ण के पुत्र वरु ने अपने पिता के उद्देश्य से याचक व्यश्वों को धन दिया (उसे सुन) ॥१॥ नर्य गोत्री वरु की दक्षिणा सोमयाजी व्यश्वों को सौ गुनी और हजार गुनी होकर मिली ॥२॥ यदि तुमसे कोई उस यज्ञ करने वाले का पता 'वह कहाँ रहता है, वह कहाँ रहता है' कह कर पूछे (तो उत्तर देना कि) वह सब का आश्रयदाता वल (वरु) गोमती के किनारे रहता है ॥३॥

१३--पृथुश्रवस् कानीत की प्रशस्ति।

पृथुश्रवा कुमारी कन्या से उत्पन्न हुआ था। उसने वशोऽश्वय को साठ हजार अयुत घोड़े, बीस सौ ऊँट, दस सौ श्यावी, तीस हजार अरुषी, दस हजार गाएँ, दस काले घोड़े युक्त सुनहले रथ आदि दिए थे। यह दानप्रशस्ति वशोऽश्व्य की रची हुई है। यह ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ४६ में है।:*—

आस एतुय ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथु श्रवसि कानीते ३स्या व्युष्याददे।
षष्टि सहस्राश्व्यस्यायुतमुष्ट्राणां विशंतिं शता।
दश श्यावीनां शता दशत्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा।
दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः।
मंथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥३॥
दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृतश्रवः ॥४॥

जो इस प्रकार धन ग्रहण करै वह अदेव आवें, जिस प्रकार अश्व के पुत्र वशु को कानीत पृथुश्रवा से प्रातः काल के समय धन मिला। साठ हजार अयुत घोड़ियां, बीस सौ ऊँट, दस

*इसी सूक्त के २७ मंत्र से यह पता चलता है कि पृथुश्रवा अत्त, नहुष सुक्रतु का समकालीन था और इसके समय उचथ्य और वपु भी थे। इसने घोड़े, रज (गधा) और कुत्तों पर अन्न लदवा कर भेजा था।

उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...वाली, दस हजार अरुषी और दस हजार गाएं । २ । ...स श्यावा (काले) घोड़े, वेगवान् और बलवान् ...थनकारी नेमि को खींचते थे । ३ । अन्नवाले पृथुश्रवा ...नीति का यह दान है । उसने हिरण्यमय (सुनहला) ...या दिया, वह बड़ा सूरि और दान बरसानेवाला है ...उसने अपूर्व यश लाभ किया । ४ ।

१४--प्रस्कण्व की प्रशस्ति ।

प्रस्कण्व कण्वगोत्रियों का यजमान था । यह ...ह शिकारी जाति का राजा था । इसने कण्व को ...सफेद बैल, सौ बाँस, सौ कुत्ते सौ सुखाये चमड़े, ...आँटे घास, और सौ अरुषी गाएँ दी थीं । इसकी ...शस्ति (क) कृश कण्व ने लिखी है । इसने एक बार ...अपनी माता पूतक्रता के उद्देश से कण्वों को दस ...हजार धन, सौ गदहे, सौ भेड़ें; सौ दास दिये थे । ...इसकी प्रशस्ति (ख) पृषध्र कण्व ने लिखी । यह दोनों ...प्रशस्तियां ऋग्वेद खंड ८ सूक्त ५५ और ५६ में है । ...ये दोनों वालखिल्य सूक्त के अंतर्गत है ।

(क)

भूरिदिंद्रस्य वीर्यं व्यख्यमभ्यायति ।
...राधस्ते दस्यवे वृक ॥१॥
शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते ।
...मह्ना दिवं नतस्तभुः ॥२॥
शतं वेणूञ्छतंशुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं वल्वजस्तुका अरुषीणां चतुः शतम् ॥३॥
सुदेवाःस्थ कण्वायना वयोवयो विचरन्तः ।
अश्वासो न चंक्रमत ॥४॥
आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महिश्रवः
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषाचनसंनशे ॥५॥

...इंद्र के कर्म का अधिक व्याख्यान करने, हे ...दस्युओं के वृक, तुम्हारा धन हमारे पास आता ...॥१॥ सौ सफेद बैल अपनी महिमा से आकाश ...में तारागणों के समान स्वर्ग को स्तंभित करते हैं ॥२॥ ...सौ वेणु (बांस), सौ कुत्ते, सौ सुखाए हुए चमड़े, सौ वल्वज (एक प्रकार की घास जिसकी रस्सी बटी जाती थी) की अँटिया, और सौ अरुषी गाएँ ॥३॥ हे कण्वायन (कण्वगोत्रिय) तुम्हारे अच्छे दिन आए रोज रोज विचरो घोड़ों की तरह कूदो ॥४॥ सातों आदित्य इसके प्रक्षिप्त (दिए हुए) अन्न के महत्त्व की प्रशंसा करते हैं, काले (अंधकारमय) मार्ग को पार करते हुए आँखों के न नाश होने पर ॥५॥

(ख)

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१॥
दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः ।
नित्याद्रायो अमंहत ॥२॥
शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् ।
शतं दासा अतिस्रजः ॥३॥
तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता ।
अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥४॥

हे दस्युओं के वृक आपका ऐश्वर्य अक्षय और अतुल हो आपका यश द्युलोक के समान विस्तृत हो ॥१॥ हे पूतक्रता के पुत्र दस्युओं के वृक् आप के अक्षय धन में से दस हजार हमें मिला ॥२॥ सौ गधे सौ भेड़े और एक सौ दास आपने मुझे दिए ॥३॥ यह सब दिए हुए धन पूतक्रता के पास जावें जैसे घोड़ों के यूथ ॥४॥

१५ ऋक्ष और अश्वमेध के पुत्रों की प्रशस्ति ।

इंद्रोत के वंश के तीन पुरुष थे एक अतिथिग्व का पुत्र, दूसरा ऋक्ष का पुत्र, तीसरा अश्वमेध का पुत्र । ये सब के सब खेतिहर थे । इन तीनों ने अंगिरस गोत्री प्रियमेध नामक ऋषि को एक एक घोड़ा और एक एक घोड़ी दी थी । उसकी दान-प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ६८ में है ।

उप मा षड् द्वा द्वा नरः सोमस्य हर्ष्या
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋज्राविन्द्रोतआददे हरी ऋक्षस्य सूनवि ।
आश्वमेधस्य रोहिता ॥ २ ॥
सुरथा आतिथिग्वे स्वभीशूँ रार्क्षे
अश्वमेधे सुपेशसः ॥ ३ ॥
षळश्वाँ अतिथिग्व इद्रोते वधूमतः ।
सचा पूतक्रतौ सनम् ॥ ४ ॥
एषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी
स्वभीशुः कशावती ॥ ५ ॥
न युष्मे वाजबंधवो निनित्सुश्चनमर्त्यः ।
अवद्यम विदीरयत् ॥ ६ ॥

मेरे पास छओ घोड़े दो दो करके सोम के लाने वालों के समान अच्छे और सुख देने वाले हर्ष के हेतु खड़े हैं ॥१॥ (इन छ घोड़ों में) इंद्रोत ने दो ऋज्र (ऋजुगामी) ऋक्ष के पुत्र ने दो हरि (सब्जे) और अश्वमेध के पुत्र ने दो रोहित (लाल) अश्व (दिए) ॥२॥ अतिथिग्व के पुत्र इंद्रोत के घोड़े सुरथ (रथ खींचने वाले), ऋक्ष के पुत्र के घोड़े स्वभीशू (जीन सवारी के) और अश्वमेध के पुत्र के घोड़े सुपेशस् (कोतल चलनेवाले) ॥३॥ छ घोड़े, पवित्र इंद्रोत के ये घोड़े बधूमन्त (जोड़ी के) थे उस पवित्र कर्म के ॥४॥ इन छओ ऋजुगामी घोड़ों में एक वृषण्वती दूसरी अरुषी और तीसरी सुपेशु कशावती घोड़ी है ॥५॥ हे अन्न के वंधुओ (अन्नदाताओ) कोई निन्दक पुरुष तुम्हारे विरुद्ध कुछ अपद्य न कहै ॥६॥

१६ श्रुत [प] र्वण आर्क्ष्य की प्रशस्ति।

ऋक्ष के पुत्र श्रुतर्वण शविष्ट ने चार घोड़े गोपवन ऋषि को परुषाति (रावी) नदी के किनारे दान में दिए थे। उसकी दान-प्रशस्ति ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ७४ में यह है:—

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षाशीर्षा चतुर्णाम् ॥१॥
मा चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवत्निवः ।
सुरथासो अभिप्रयो वक्षन्वयो च तुग्र्यम् ॥२॥
सत्यमित्वा महेनदि परुष्णव देदिशम् ।
ने मापो अश्वदातारः शविष्ठादस्तिमर्त्यः ॥ ३ ॥

मैं बुलाया हुआ ऋक्ष के पुत्र मदच्युत श्रु[तर्वा] के दिए चारो चोटीवाले (घोड़ों) के शिरों [को] शीघ्रगामी मरुत् के समान मार्जन करता हूँ ॥१॥ [मुझे] यह चारो रथवाले घोड़े शविष्ठ के दिए, तुग्र के पु[त्र] के समान ओज को प्रकाश करते हुए चलते हैं [॥२॥] हे महानदि परुष्णी मैं यह सत्य सत्य कहता हूँ [कि] यह (तेरा) पानी घोड़े के देनेवाले शविष्ठ से प्रशंस[नीय] नहीं है ॥३॥

—:०:—

सभा का कार्यविवरण।

प्रबन्धकारिणी समिति

शनिवार ता० ४ जूलाई १९१४ सन्ध्या के ६ ब[जे]
स्थान-सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (तारीख २७ जून १९१४) [का] कार्य्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सन् १९१४-१५ के लिये निम्नलिखित ब[जट] स्वीकृत हुआः—

आय

२४६२॥=)७	गत वर्ष की बचत
५७५=)॥	अमानत खाते की बचत
३०००)	सभासदों का चन्दा
१०००)	पुस्तकों की बिक्री
४००)	हिन्दी पुस्तकों की खोज
८००)	पृथ्वीराजरासो की बिक्री
२०)	नागरीप्रचार
१८०)	फुटकर आय
५०)	पारितोषिक
५६०)	पुस्तकालय का चन्दा
३०००)	हिन्दी कोश
२५)	साहित्यसम्मेलन के कार्यविवरण की बिक्री
१६०००)	मनोरंजन पुस्तकमाला
२८०७२॥=)१	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यय

आफिस के कार्य्यकर्ताओं का वेतन	२००)
छपाई	३५००)
पारितोषिक	१००)
पुस्तकालय	५००)
स्थायी कोश	१००)
हिन्दी पुस्तकों की खोज	५००)
नागरीप्रचार	१००)
डाकव्यय	५००)
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	१८०)
फुटकर व्यय	२५०)
हिन्दी कोश	३१८)
मनोरंजन पुस्तकमाला	२००)
सभाभवन की मरम्मत	१००)
	७७९१८)

व्यय का ब्योरा

छपाई

नागरीप्रचारिणी पत्रिका की १८ संख्याएँ	१५००)
नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला की ५ संख्याएँ	६४०)
नागरीप्रचारिणी लेखमाला	३८०)
सभा की वार्षिक रिपोर्ट	१५०)
[illegible]र	११६)।
...यन प्रेस और तारा प्रेस के पिछले बिल	७१३॥।≡)॥।
	३५००)

पुस्तकालय

पुस्तकाध्यक्ष	...	...	१४४)
चपरासी	...	...	७२)
[illegible]री	...	...	९६)
पंखा कुली	...	...	१८)
पुस्तकें	...	...	१७०)
			५००)

कार्य्यकर्ताओं का वेतन

सहायक मंत्री	...	...	६००)
क्लार्क १	...	...	१८०)
क्लार्क २	...	...	१२०)
चपरासी १	...	...	८४)
चपरासी २	...	...	६०)
मेहतर	...	...	१२)
पंखा कुली	...	...	१४)
माली	...	...	२४)
दफ़्तरी	...	...	९६)
फुटकर	...	...	१०)
			१२००)

(३) निश्चय हुआ कि दीवानी अदालत में सभा की ओर से जो लेखक नियत है उसकी इस समय आवश्यकता नहीं है।

(४) सन् १९१३–१४ के कार्य्यविवरण का एक अंश पढ़ा गया और आवश्यक संशोधन के उपरान्त स्वीकृत हुआ।

(५) निश्चय हुआ कि संयुक्त प्रदेश की अदालतों में नागरी अक्षरों में फार्मों के छपने और भरे जाने की इस समय जैसी अवस्था है उसके सम्बन्ध में इस प्रदेश की हाईकोर्ट की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा जाय।

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्धकारिणी समिति

वृहस्पतिवार तारीख ३० जूलाई १९१४–सन्ध्या के ६ बजे स्थान-सभाभवन।

(१) बाबू गौरीशंकरप्रसाद के प्रस्ताव तथा बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के अनुमोदन पर पण्डित रामनारायण मिश्र सभापति चुने गए।

(२) इस सभा के सन् १९१३–१४ के कार्य्यविवरण का शेष अंश पढ़ा गया और आवश्यक संशोधन के उपरान्त स्वीकृत हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) संयुक्त प्रदेश की टेक्स्टबुक कमेटी के सेक्रेटरी का ११ जुलाई १९१४ का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने हिन्दी की लेखप्रणाली के संबन्ध में अनेक विषयों पर लाला सीताराम बी० ए० के पत्र की नकल भेजी थी और इन विषयों पर सभा की सम्मति माँगी थी। साथ ही इस संबन्ध में पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० की सम्मतियाँ भी उपस्थित की गईं जिनके आधार पर इस पत्र का उत्तर स्वीकृत हुआ।

(४) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा।

शनिवार तारीख २५ जुलाई १९१४—सन्ध्या के ५ बजे
स्थान-सभा भवन

(१) बाबू बालमुकुन्दवर्म्मा के प्रस्ताव तथा बाबू अमीरसिंह के अनुमोदन पर बाबू वेणीप्रसाद सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (ता० २७ जून १९१४) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबन्ध-कारिणी समिति के तारीख १६ मई और २७ जून १९१४ के कार्य-विवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(४) सभासद होने के लिए निम्न लिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

(१) श्रीयुत बनिया बनेराम मोतीचन्द रतन सी—जामनगर—काठियावाड़ ५) (२) गोस्वामी केशवपुरी-शाक्षीविनायक-काशी १॥) (३) बाबू खुशालचन्द खजानची, आनरेरी सेक्रेटरी—उपन्यास वाचनालय—कामटी ५)

(५) निम्न लिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

(१) बाबू देवनारायण भक्त-हेडमास्टर, गवर्नमेंट स्कूल, सरायपाली (२) डाकृर लक्ष्मीचन्द बैजल—मेरठ (३) पण्डित फूलचन्द शर्म्मा, श्रीकृष्णपाठशाला, नं० ३७ मलिकस्ट्रीट, कलकत्ता (४) पण्डित अमृ मिश्र, जतनबर, काशी।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृ हुईं:—

बाबू गंगाप्रसाद गुप्त—काशी
- ऋग्वेद के बनानेवाले ऋषि
- धनी होने के उपाय
- वीर क्षत्राणी

श्रीयुत रणछोड़ भाई उदयराम
- नाट्यप्रकाश
- रणपिंगल भाग १. २ और ३

बाबू नाथूरामप्रेमी, हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई
- कर्नाटक जैनकवि
- श्रमण नारद
- मितव्ययता

बाबू कृष्णप्रकाशसिंह अखौरी, औरंगाबा जि० गया
- नेलसन

बाबू रामदास गौड़ एम० ए०, विज्ञान परि म्योर कालेज, इलाहाबाद
- विज्ञान प्रवेशिका

वैद्य जयशंकर लीलाधर त्रिवेदी, सम्पा वैद्यकल्पतरु, अहमदाबाद
- वाजीकर कल्पतरु

पण्डित छोटेराम शुक्ल, दूकान गोटाकिना औरंगाबाद सिटी
- हीरे की अंगूठी २ प्रति

पण्डित श्यामजी शर्म्मा काव्यतीर्थ, संस्कृता ध्यापक, जिला स्कूल, भागलपुर
- अबलारक्षक

पण्डित कालूराम त्रिवेदी, जसरापुर
- बालविवाह कुठार

बाबू रामभजन वर्म्मा धवन, लाहौरी टोला, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी भाषा महाभारत सचित्र पर्व १ खण्ड १

संयुक्त प्रदेश के शिक्षाविभाग के डाइरेकृर

श्रीशान्तिमहाकाव्यम्
प्राकृतमार्गोपदेशिका
विजय प्रशस्ति महाकाव्यम्
अहिल्या दिग्दर्शन
श्रीधर्म महोदयम्
म० म० श्रीगंगाधरजी के जैन दर्शन के विषय में असत्य आक्षेपों के उत्तर
निर्भय भीम व्यायोग
जैनतत्व दिग्दर्शन
श्रीशब्दरत्नाकर
जैनशासन
प्रमाणनय-तत्वालोकालंकार
मल्लिनाथ चरित्रम्
न्यायसंग्रह
प्राचीन श्वेताम्बर अर्वाचीन दिगम्बर
विजय प्रशस्तिसार
सुजनसम्मेलनम्
गुरुगुण रत्नाकर काव्यम्
हेमविभ्रम
शील दूतम्
षड्दर्शन समुच्चय
पुरुषार्थ दिग्दर्शन
जैन शिक्षा दिग्दर्शन
पार्श्वनाथ चरित्रम्
The Sacred Books of the Hindus, Vol. VIII.
भक्ति रत्नावली
अन्ययोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका
उपदेश तरंगिणी

पण्डित शिवानन्द शर्म्मा

श्री सदाचार

बाबू शुकदेव वर्म्मा चौहान, प्राइवेट क्षत्रिय हाई स्कूल, काशी

पारस्कर गृहसूत्रम्

बाबू बैजनाथ प्रसाद गुप्त, गणेशगंज, मिर्जापुर

चतुरा की चतुराई

पण्डित तारकनाथ मिश्र, कन्नौज सिटी

ईश-पताका

बाबू शिवचन्द्र भरतिया, बम्बई

सूर्य्यचक्रवेध

मंदराज की गवर्नमेण्ट

A descriptive catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Government Oriental Manuscripts Library, Madras, Vol. XVII. (Stotras.)

एशियाटिक सोसायटी आफ़ बंगाल, कलकत्ता

Journal and Proceedings of the Asiatic Society, Vol. IX. Nos. 10 and 11.

एक सज्जन

अशोक की प्रशस्तियां।

खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त

नवकुमार या कपाल कुण्डला
धात्री शिक्षा
हिन्दी किताब
जमींदारी
श्रीरामस्तवराज
नियुद्ध शिक्षा
भाषा प्रभाकर
रसिक विलास
पुराणतत्व प्रकाश
भारतवर्ष की वीर माताएं
राजस्थान का इतर
राजस्थान की वीर नारियां
अर्थ शास्त्र
दाराशिकोह
चाणक्य
विधवा-विवाह-मीमांसा
वनिताप्रबोध
मांस भक्षाभक्ष विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला जीवन
क्रस्टोफर कोलम्बस
योगदर्शन
सांख्य दर्शन
महात्मा विदुरजी का जीवनचरित्र
महाराज दशरथ का जीवनचरित्र
महाराज भरथ जी का जीवनचरित्र
सन्ध्या
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जीवनचरित्र
आदर्श महिलाएं भाग १ और २
विनोद
विदूषक
जमुनाबाई
लावण्य और अनङ्ग
बालाविनोद
कृष्ण के काइस्ट
युवक धर्ममंडल
महात्मा श्रीकृष्ण
कुहवनदहन नाटक
वैदिक राष्ट्रगीत
रामोपदेशमाला
चुंगी की उम्मेदवारी
नवदर्शन संग्रह
राजा युधिष्ठिर का जीवन चरित्र
दरोगाजी
राधास्वामी मत परीक्षा
उदयसरोज
वेदमंत्रों से स्तुति और प्रार्थना
Indian Antiquary for June 1914.

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

वार्षिक अधिवेशन।

सोमवार ता० ३ अगस्त १९१४ —सन्ध्या के ५½ बजे
स्थान-सभाभवन

(१) बाबू गैारीशंकरप्रसाद के प्रस्ताव तथा बा० बालमुकुन्द वर्म्मा के अनुमोदन पर बाबू माधवप्रसाद सभापति चुने गए।

(२) प्रबन्धकारिणी समिति का इक्कीसवें वर्ष का कार्य्यविवरण पढ़ा गया।

बाबू मुरारीदास ने प्रस्ताव किया कि यह कार्य्यविवरण सभा के मंत्री बाबू गैारीशंकरप्रसाद जी के हस्ताक्षर से छपेगा अतः इसमें नागरीप्रचार वाले अंश में उक्त बाबू साहब का नामोल्लेख ठीक न होगा। कुछ विचार के अनन्तर बाबू मुरारीदास जी ने यह प्रस्ताव लैाटा लिया पर बाबू गैारीशंकर प्रसाद जी ने इसे स्वयम् उपस्थित किया। अधिक सम्मति से निश्चित हुआ कि यह कार्यविवरण प्रबन्धकारिणी समिति की ओर से लिखा गया है और उसी समिति ने ही नागरी प्रचार वाले अंश में बाबू साहब का नाम बढ़ाया है। अतः उनका नाम इस कार्य-विवरण में अवश्य होना चाहिये।

सर्व सम्मति से यह कार्य-विवरण स्वीकृत हुआ।

(२) पण्डित रामनारायण मिश्र जी के प्रस्ताव पर सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि बाबू गैारीशंकरप्रसाद जी ने गत वर्ष सभा का कार्य जिस उत्साह और योग्यता से सम्पादित किया है और विशेषतः सभा की ऋणपूर्ति के लिए उन्होंने जो परिश्रम और उद्योग किया है उसके लिए उन्हें सभा का हार्दिक धन्यवाद दिया जाय।

(३) पदाधिकारियों और प्रबन्ध कारिणी समिति के सभासदों के चुनाव के लिये उपस्थित सज्जनों में निर्वाचन पत्र बांटे गये और उनका परिणाम जांचने के लिये सभापति ने बाबू वेणीप्रसाद तथा पण्डित सांवलजी नागर को नियत किया।

(४) सन् १९१३—१४ के आयव्यय के हिसाब के सहित आगामी वर्ष के लिये निम्नलिखित बजट उपस्थित किया गया।

आय

२५६२॥=) ७ गत वष की बचत
५७५=)॥ अमानत
३०००) सभासदों का चंदा
१०००) पुस्तकों की बिक्री
४००) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज
८००) पृथ्वीराजरासो की बिक्री
२०) नागरी प्रचार
१८०) फुटकर आय
५०) पारितोषिक
५६०) पुस्तकालय
३०००) हिन्दी कोश
२५) साहित्यसम्मेलन के कार्य्यविवरण की बिक्री
१६०००) मनोरंजन पुस्तकमाला

२८०७२॥=)१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यय

१२००) आफिस के कार्य्यकर्ताओं का वेतन
३५००) छपाई
१००) पारितोषिक
५००) पुस्तकालय
१००) स्थायी कोश
५००) पुस्तकों की खोज
१००) नागरीप्रचार
५००) डाक व्यय
१८०) पुस्तकों के लिए पुरस्कार
२५०) फुटकर व्यय
७३८८) हिन्दी कोश
१२५००) मनोरंजन पुस्तकमाला
१००) सभाभवन की मरम्मत

२७९१८)

विशेष विचार के अनन्तर यह सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

(५) निर्वाचनपत्रों का निम्नलिखित परिणाम उपस्थित किया गया।

सभापति
पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०

उपसभापति
बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०
रेवरेंड ई० ग्रीव्स

मंत्री
बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल बी०

उपमंत्री
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

प्रबन्ध कारिणी समिति के सभासद

मध्य भारत से—पण्डित गणपति जानकीराम दुबे बी० ए०
युक्तप्रदेश से—बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन बी० ए० एल एल बी०
राजपूताना से—बाबू रामस्वरूप जैन
काशी से—बाबू ब्रजचन्द्र
बाबू वेणीप्रसाद
पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी एम० ए०
दुबे साँवल जी नागर

(६) सभा के सभापति पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० का व्याख्यान पढ़ा गया जिस पर सभा ने बड़ा हर्ष प्रगट किया।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

साधारण सभा

शनिवार तारीख २९ अगस्त १९१४ सन्ध्या ५½ बजे
स्थान—सभाभवन

(१) बाबू जगन्मोहन वर्म्मा के प्रस्ताव तथा पण्डित साँवलजी नागर के अनुमोदन पर मुंशी भगवानदीन सभापति चुने गए।

(२) तारीख २५ जुलाई १९१४ के मासिक अधिवेशन और अगस्त १९१४ के वार्षिक अधिवेशन के कार्य्यविवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(३) सभासद होने के लिए निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

(१) बाबू भगवानदास भार्गव—मुंसिफ, मोहम्मदाबाद, आजमगढ़ ३) (२) बाबू गंगाशंकर पंचौली—हेडमास्टर, सदर हाई स्कूल, भरतपुर ३) (३) बाबू लक्ष्मणदास गुप्त—कोसी, जि० मथुरा १॥) (४) पण्डित शंकर श्रीकृष्णदेव—वकील, धुले ३) (५) पण्डित केदारनाथ—स्टेशन मास्टर जी० आई० पी० रेलवे, वारन ३) (६) बाबू जगन्नाथप्रसाद खन्ना—चौक-काशी १॥) (७) अखौरी गोपी किशोर लाल डिपटी कलेक्टर—गिरिडीह ५) (८) बाबू नारायणदास—ठि० गंगेश्वरनाथ, चुनार १॥) (९) बाबू गोविन्दचन्द्र—सोरा का कुआँ काशी १॥)

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) बाबू रंगलाल जाजोदिया-सूतापट्टी—कलकत्ता। (२) बाबू रामस्वरूप वैश्य बी० ए०, एस० सी०, डिस्ट्रिक् हाई स्कूल, सीतापुर (३) बाबू रामनारायण चैाधरी—बिहारीपुर, बरेली (४) पंडित काशीनाथ नायक पालना—भिखारीदास का मुहल्ला—काशी।

(५) उपमंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दीः—

(१) बाबू धन्नूलाल अग्रवाल एटर्नी—मदन मोहन चटर्जी लेन—कलकत्ता (२) पण्डित रामप्रसाद एम० ए०—सर्कारी वकील—मेरट (३) बाबू गोपीराम खेताण—पो० जहानाबाद—जि० गया।

सभा ने इस पर शोक प्रकट किया।

(६) उपमंत्री ने काशी के एकमात्र हिन्दी साप्ताहिक पत्र के अध्यक्ष बाबू श्रीकृष्ण वर्म्मा की मृत्यु की सूचना दी।

निश्चय हुआ कि उक्त बाबू साहब की मृत्यु पर शोक प्रकट किया जाय और उनके उत्तराधिकारियों के पास सहानुभूति का पत्र भेजा जाय।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईंः—

श्रीमती पुष्पकुमारी देवी, ठि० बाबू भैरवसिंह, रामनगर।

गृहिणी दुर्गति

अहिल्या कलंक विमोचन

बाबू महावीरप्रसाद गहमरी, स्वर्गमाला कार्यालय मुरादाबाद

स्वामी रामतीर्थ के सदुपदेश भाग १

बाबू पन्नालाल, बुकसेलर, मैदागिन, काशी

कुँअर कामरूप व कामकला

बाबू शिवचन्द्र भरतिया—इन्दौर

सूर्य्यचक्र बोध

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय—आजमगढ़

प्रियप्रवास

मंत्री, हिन्दीसाहित्यसम्मेलन कार्यालय—प्रयाग

तृतीय हिन्दीसाहित्यसम्मेलन कलकत्ता का कार्य्यविवरण भाग १—२

मनीषी गुरुशरण लालजी वर्मा, मुख्तार—गाजीपुर

भर्तृहरि शतकत्रयम्

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गौरीशंकरप्रसाद मंत्री

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered No. A414

भाग १९] [संख्या ३

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

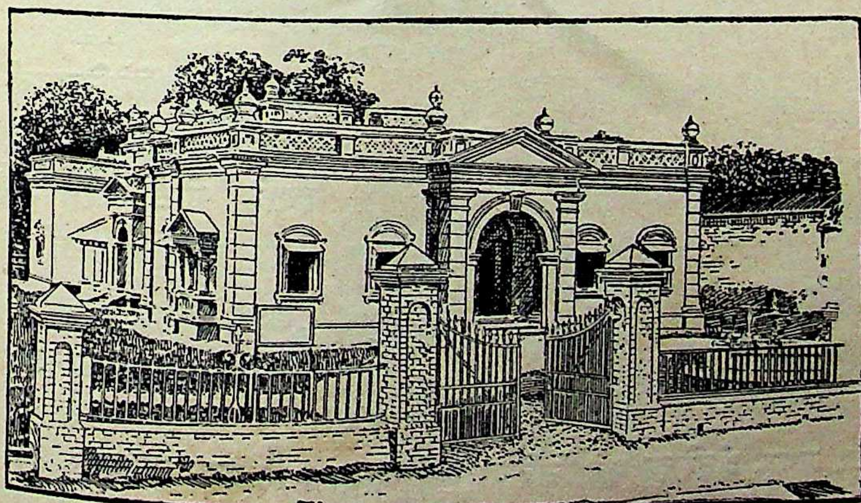
सितम्बर, १९१४

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

वैश्यएण्डकों. मथुराका

बालउड़ानेका साबुन

३-४ मिनट में बाल उड़ा कर चमड़ी साफ और कोमल करता है.



खरीदनेसे पहिलेविलायती रंगीन ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केबड़ा, खस, का फी टिकिया ॥) ३ टि. का १।≈)

नीबू, कपूर, संतरे का फी टिकिया ।≠) आना ३ टिकिया का बक्स ।॥)

जरूरतहै एजेण्टोंकी जरूरतहै एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५)रु. सैंकड़ा कमीशनदेंगे और खर्च माफ

पता:—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

इन समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये, पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी

पवित्र काश्मीरी केशर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग १९ | सितम्बर, १९१४. | संख्या ३

युद्ध की कुछ बातें ।

युद्ध क्या है ? जर्म्मनी और युद्ध-कला, बल और बुद्धि, ...धुनिक युद्ध, नियम आदि, घायल सैनिक, सेंसर और ...टोरियम, स्थल-सेना, सैन्य संग्रह, तोपें, लड़ाई के जहाज, ... और टारपेडो, हवाई जहाज, युद्ध के ढंग और सिद्धान्त, ... पर कुछ विचार ।

युद्ध क्या है?

दो ऐसे व्यवस्थित दलों का, जिनका उद्देश्य और स्वार्थ परस्पर एक दूसरे से भिन्न हो, अपने अपने उद्देश्य और स्वार्थ की पूर्त्ति के लिए लड़ना ही "युद्ध" है। सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य परस्पर लड़ते ...आते हैं; पर सभ्यता की वृद्धि से साथ ही साथ ...स लड़ाई में भी अनेक सुधार होते गए हैं। किसी ...समय एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को खा जाता था अथवा ...की स्त्री को हर लेता था । धीरे धीरे उसकी ...समझदारी बढ़ती गई और लोग दल बाँध कर एक ...दूसरे का सर्वस्व हरण करने लगे। इसके बाद राज्य और शासन की सृष्टि हुई और राज्यों में, युद्ध के लिए कुछ अंशों में संगठित सेनाएँ रक्खी जाने लगीं। अभी बहुत हाल की बात है कि एक देश वा जाति का सरदार अपने साथ बहुत से वीरों को लेकर दूसरे देश पर चढ़ दौड़ता था और वे वीर लूट मार करके ही अपना निर्वाह कर लेते थे। आज कल की भाँति अपने देश से रसद आदि मँगाने का प्रबंध वे नहीं कर सकते थे और इसी लिए कभी कभी शत्रु के देश में अन्न न मिलने के कारण ही उन्हें स्वदेश लौट आना पड़ता था। पर आज कल का युद्ध उससे बहुत भिन्न और व्यवस्थित है ।

युद्ध में साधारणतः तीन बातों की आवश्यकता हुआ करती है,—सैन्य परिचालन, सामग्री और शत्रु-विनाश। नई नई रेलों और सड़कों के बनने तथा माल लाद कर ले जानेवाली नई नई गाड़ियों के तैयार होने से सैन्य-परिचालन और दिन पर दिन बढ़ते हुए व्यापार और फसल आदि के कारण सामग्री मिलने में आगे की अपेक्षा बहुत सुभीता हो गया है। शत्रु विनाश के लिए तो आजकल इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयंकर विनाशक यंत्र बन गए हैं जिन्हें देख कर आज से कुछ ही वर्ष पूर्व कुछ लोगों का विश्वास था कि अब लोगों को युद्ध करने का साहस ही न होगा। ऐसे यंत्र दिन पर दिन बराबर बनते ही जाते हैं। इन यंत्रों से काम लेना जानकारों और दक्षों के लिये ते बहुत सहज है पर साधारण लोगों के लिए वे बिलकुल व्यर्थ हैं।

इन बातों के सिवा युद्ध में शत्रु की अवस्था और शक्ति आदि जानने की भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। जब तक इन बातों का पता न लगे, अपनी सेना को उसका निश्चित उद्देश्य और लक्ष्य नहीं बतलाया जा सकता। दूरबीनों, ऊँचे टीलों, अथवा इसी काम के लिये बनाई हुई ऊँची ऊँची सीढ़ियों से शत्रुओं का हाल जानने तथा तार, टेलिफोन और झण्डी आदि से अपनी सेना को उसका लक्ष्य बतलाने में बहुत सहायता मिलती है। सफलता के लिए यह बात भी बहुत आवश्यक है कि शत्रु को अपनी अवस्था और शक्ति का पता न लगने दिया जाय। इससे शत्रु धोखे में रहता और मारा जाता है। आधुनिक सेन्सर Censor आदि का मूल यही सिद्धान्त है।

आजकल युद्ध पहले की अपेक्षा बहुत सी बातों में सरल और दूसरी बहुत सी बातों में बहुत कठिन हो गया है। अब युद्ध-विद्या का अध्ययन केवल योद्धाओं को ही नहीं बल्कि राजनीतिज्ञों को भी करना पड़ता है। यों तो प्रायः सभी को अपने से अधिक बलवान शत्रु का भय लगा रहता है पर इधर कुछ दिनों से यह भय युरोप में बहुत अधिक बढ़ गया है। आजकल वहाँ की स्थिति ऐसी है कि युद्ध छिड़ते ही देश के सारे सशक्त पुरुष हथियार ले लेकर स्वदेश और स्वजाति की रक्षा के लिए सीमा-प्रदेश पर आ पहुँचते हैं। केवल ग्रेटब्रिटेन को छोड़ कर वहाँ की शेष सारी शक्तियाँ युद्ध छिड़ते ही अपना भरपूर शारीरिक, मानसिक और आर्थिक बल तुरंत युद्ध में लगा सकती हैं।

जर्म्मनी और युद्ध-कला।

सन् १८०६ में जर्म्मनी में घोर विप्लव हुआ। पवित्र रोमन साम्राज्य का अंत हो गया और जर्मन राजा की रोमन सम्राट्वाली पदवी बिलकुल उ[ठ] गई। उस समय फ्रांसीसियों के कारण प्रशिया की बहुत बड़ी हानि हुई, उसक[ा] सब प्रकार का बल एकदम टूट गया। तब [से] जर्म्मन लोग भविष्य में अपनी रक्षा करने के उपा[य] सोचने लगे। उन्होंने देखा कि युद्ध में स्थान, सम[य] और अवसर ही प्रधान हैं। एक ही स्थान से ए[क] ही व्यक्ति न तो अपनी सारी सेना को देख सकता है और न उसे आज्ञा ही दे सकता है। उसे न[तो] शत्रु की सेना के दोष मालूम होते हैं और न अप[नी] सेना के। अतः उन्होंने अफसरों को निश्चितरूप [से] शिक्षा देने की प्रणाली निकाली। इससे पह[ले] युद्ध में व्यवस्था का प्रायः अभाव ही रह[ता] था। न तो साधारण अफसर अपने सेनापति [का] ठीक ठीक अभिप्राय समझते थे और न सैनि[क] अपने अफसरों की आज्ञाओं का यथावत् पालन करते थे। नेपोलियन कैद हो जाने पर सेंट हेले[ना] में प्रायः अपने अधीनस्थ कर्म्मचारियों का जिक्र क[रते] हुए कहा करता था कि अमुक अफसरने मेरा ठीक [ठीक] अभिप्राय नहीं समझा और इसी से युद्ध में हार ग[या]। जर्म्मन सेनापति माल्के (Moltke)* ने उ[स] इस कथन का ठीक ठीक अर्थ समझ लिया था [और] इसी लिए उसने युद्ध-कला की व्यवस्थित शिक्षा [का] आरंभ किया। इससे जर्म्मनी को लाभ भी ब[हुत] अधिक हुआ। साधारण सैनिक अपने अफसरों

* काउंट बर्नहार्ड वान माल्के (जन्म १८ अक्टूबर १८००, मृत्यु २४ अप्रैल १८९१) जर्म्मनी का [प्रसिद्ध] फील्ड मार्शल था। यह पहले प्रशियन सेना में नौकर [था] और १८७० वाले युद्ध में सम्मिलित था। प्रथम विलि[यम के] साथ इसने जर्म्मनी को महाशक्ति बनाने का बड़ा प्रयत्न किया [था।] पीछे यह डेनमार्क की सेना में चला गया। इसने युद्ध-[विद्या] पर चार बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखी हैं जो बहुत आदर से [देखी] जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ठीक अभिप्राय समझ कर काम करने लगे और कोई अच्छा मौका हाथ से जाने न देते थे। युद्ध-विद्या-विशारदों का कथन है कि जर्म्मनी के सन् १८७०—७१ में फ्रांस पर विजय प्राप्त करने का मुख्य कारण भी यही था। यद्यपि जर्म्मनी की देखा-देखी युरोप के अन्य सभी देशों में सामरिक शिक्षा के लिए विद्यालय खुल गए हैं और सैनिक अफसरों को भी ठीक वैसे ही यत्न-पूर्वक शिक्षा दी जाती है जैसी कि किसी वकील या डाकृर को; तथापि इस बात में लोगों को सन्देह है कि अन्य देशों ने भी इस शिक्षा से उतना ही लाभ उठाया है या नहीं, जितना उसके आविष्कर्त्ता जर्म्मनी ने।

'बल' और 'बुद्धि'।

सैनिकों में बल, साहस, विजय-कामना और जोश की जरूरत होती है और अधिकारियों में विचार-शक्ति की। यह समझना बड़ी भारी भूल है कि केवल बल से ही विजय होती है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें थोड़े से सैनिकों ने अपने बहु-संख्यक शत्रुओं को बुरी तरह परास्त किया है। युद्ध एक राजनैतिक कार्य है क्योंकि साम्राज्य-रक्षा का प्रश्न उसी पर निर्भर करता है *। युद्ध का वास्तविक स्वरूप जानने के लिए स्वयं युद्ध करने की आवश्यकता होती है, केवल उसके सिद्धांतों का अध्ययन करने से काम नहीं निकलता। साधारण राजनीतिज्ञ इन बातों को भली भाँति न समझने के कारण कभी कभी देश की बड़ी हानि कर बैठते हैं। आज कल की फ्रांसीसी सेना की दशा खराब होने का मुख्य कारण यही है कि जब जब युद्ध-सचिव ने सेना-विभाग के व्यय के लिए धन माँगा तब तब अर्थ-सचिव ने उसे व्यर्थ समझा और उसकी अवज्ञा की। पर जिस देश के निवासी इन बातों को भली भाँति समझते हैं वे उनकी बातों में नहीं आते। युद्ध छिड़ने पर तो ऐसे राजनीतिज्ञों की अपनी भूल स्वयं ही प्रकट हो जाती है। राज-नीतिज्ञों के लिए यह बात बहुत आवश्यक है कि वे परिस्थिति को तुरंत समझ लें और आवश्यकता पड़ते ही अपने देश को युद्ध के लिये तैयार कर लें। जिस प्रकार किसी मकान के आराम और तकलीफ का पता उस मकान में रहनेवाले को ही पूरा पूरा लग सकता है, उसे बनानेवाले राज मजदूरों को नहीं; उसी प्रकार युद्ध का ठीक ठीक हाल योद्धा ही जान सकते हैं, कोरे राजनीतिज्ञ नहीं। यही कारण है कि राष्ट्रों को एक अलग युद्ध-सचिव की आवश्यकता होती है।

आधुनिक युद्ध।

प्राचीन काल में शत्रु का सामना आजकल की अपेक्षा अधिक देर में होता था और युद्ध भी बहुत दिनों तक चलता था। पर आज कल के युद्ध की दशा इससे बिलकुल भिन्न है। आजकल युद्ध लगातार होता है, उसमें व्यय पहले की अपेक्षा बहुत अधिक होता है और सैनिक भी बहुत अधिक मारे जाते हैं। यही कारण है कि आधुनिक युद्धों का निपटारा पहले की अपेक्षा प्रायः शीघ्र होता है। जब से नए भयंकर अस्त्र बने हैं तब से गुथ कर लड़ना हानिकारक होने के कारण बंद हो गया है। रणक्षेत्र में हत्या की अधिकता देख कर सैनिकों के पीछे हटने की संभावना अधिक होती है; और अफसर बहुत गुथ कर लड़नेवालों का ठीक ठीक प्रबंध भी नहीं कर सकता। अतः आजकल युद्ध में सेनाएं दूर दूर पर और फैलाकर रक्खी जाती हैं। युद्ध-स्थल में सेना को रसद, चारे और गोले बारूद आदि की जरूरत होती है और यह जरूरत प्रायः रेलों की सहायता से पूरी की जाती है। केवल दो रेल-गाड़ियाँ कई सौ मील पर पड़े हुए एक लाख सैनिकों को सब आवश्यक सामग्री पहुँचा सकती हैं। पर कभी कभी शत्रु रेल-लाइनें तोड़ दिया करते हैं इसलिए बड़ी बड़ी गाड़ियों, छकड़ों और मोटरों का भी प्रबंध किया जाता है। नहरों और नदियों द्वारा भी कभी कभी सामग्री पहुँचाई जाती है।

युद्ध में पहले एक केन्द्रस्थल निश्चित कर लिया

* कुछ आधुनिक विद्वान् इस सिद्धांत के विरोधी हैं; उनके विचार आदि आगे के पृष्ठों में दिए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है जिसे अँगरेजी में Base कहते हैं। वहाँ सैनिकों के अतिरिक्त बहुत सी सामग्री भी रहती है। वहाँ से आगे बढ़ कर सेना लड़ने के लिए जाती है और केन्द्र से इसे रसद आदि पहुँचाई जाती है। जिस मार्ग से रसद भेजी जाती है और युद्ध-क्षेत्र से घायल सैनिक लौटते हैं उसे Line of Communication कहते हैं। इस मार्ग की रक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। यदि शत्रु का यह मार्ग किसी प्रकार बंद कर दिया जाय तो उसकी बड़ी भारी हानि होती है, उसकी शक्ति कम हो जाती है और उसके शीघ्र हारने की संभावना होती है।

नियम आदि।

युराप के बड़े बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने समय समय पर अनेक सभाएं करके युद्ध के बहुत से नियम बनाए हैं जो वास्तव में बहुत उपयोगी हैं। इन नियमों का उल्लंघन करनेवाला दोषी तो अवश्य समझा जाता है पर उसके लिए किसी विशेष दंड का विधान नहीं हो सकता। यही कारण है कि कुछ राष्ट्र जब अपना विशेष स्वार्थ देखते हैं तो इन नियमों की अवज्ञा भी कर बैठते हैं। जब कभी कोई छोटा मोटा झगड़ा उपस्थित होता है और राष्ट्र आपस में जूझना नहीं चाहते, तब तो कुछ सुयोग्य विचारकों की एक खास अदालत बना दी जाती है और उसका किया हुआ फैसला लोग मान भी लेते हैं। पर जिस अवसर पर राष्ट्रों की नीयत लड़ने की ही हो तो फिर न तो नियम-पालन का ध्यान रह जाता है और न अदालत या पचायत का ही। उस समय "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात ही रह जाती है।

प्राचीन काल में जब दो देशों में युद्ध छिड़ता था तो वहाँ की प्रजाओं पर ही अधिक विपत्ति आती थी। प्रजा को केवल सेना के लिए योद्धा ही नहीं देने पड़ते थे बल्कि युद्ध का अधिकांश व्यय भी प्रायः उसी के सिर डाला जाता था। पर अब यह बात कुछ अंशों में कम हो गई है। यद्यपि इस बात के प्रयत्न अनेक बार किए गए हैं कि साधारण प्रजा पर उनका किसी प्रकार का प्रभाव न पड़ने पावे पर यह बात असंभव नहीं तो अत्यंत दुष्कर अवश्य है। स्थल युद्ध के समय लड़नेवाले देशों की प्रजाओं के अधिकार कुछ अधिक सुरक्षित रहते हैं। पर यदि वहाँ की सरकार चाहे तो अपनी प्रजा से आर्थिक सहायता माँग सकती है और वह सहायता देने के लिए बाध्य भी है। उस अवस्था में उस देश में रहने वाली शत्रु या तटस्थ देश की प्रजा भी यह सहायता देने के लिए वैसी ही बाध्य समझी जाती है जैसे कि स्वयं उस देश की। स्थल-युद्ध में केवल रक्षित नगरों पर ही गोले बरसाए जाते हैं; अरक्षित नगरों पर नहीं। सन् १९०७ वाली हेग कानफरेन्स के बनाए हुए नियमों के अनुसार अरक्षित नगर, गाँव, मकान और अन्य निवास-स्थानों पर किसी प्रकार गोले नहीं बरसाए जा सकते; और जो नगर अरक्षित हो और उसके निवासी शत्रुदल पर किसी प्रकार का आक्रमण न करें तो आक्रमण करनेवाली शत्रु-सेना के प्रधान अधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह उस नगर पर गोले बरसाने से पहले यथासाध्य सब प्रकार से वहाँ के अधिकारियों को सूचित कर दे। इसके सिवा गोले बरसाते समय जहाँ तक हो सके धर्म्म-मंदिरों, विद्या, कला या दानसंबंधी कार्य्यों के लिए बने हुए मकानों, ऐतिहासिक स्मृति-चिह्नों, अस्पतालों तथा बीमारों और घायलों के रहने के स्थानों को भी बहुत बचाना चाहिए। जब तक युद्ध-संबंधी कार्य्यों के लिए बहुत ही विशेष आवश्यकता न आ पड़े तब तक आक्रमण करनेवालों को शत्रु-प्रजा की निज की कोई चीज अपने व्यवहार में लाने का अधिकार नहीं है। साधारण युद्ध में कुछ विशेष प्रकार की और अधिक हानि पहुँचानेवाली गोलियां चलाने की भी मनाही है। लेकिन जल-युद्ध के समय प्रजा की विशेष हानि की संभावना होती है। सन् १८५६ वाले पेरिस के निर्णय के अनुसार शत्रुओं के जहाज और उन पर लदा हुआ शत्रुओं का माल पकड़ा जा सकता है। मछली मारनेवाली नावों तथा एकदम व्यक्तिगत सम्पत्ति पर यह नियम प्रयुक्त नहीं होता। समुद्र में व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ति केवल इसी विचार से अधिकृत कर ली
...ती है कि उससे शत्रु का बल न बढ़े, अथवा
...ससे होनेवाले व्यापार से उसकी आय न बढ़े।
...त नियम को तोड़ने के अनेक प्रयत्न भी हो चुके
...पर उनका कोई फल नहीं हुआ। अभी सन् १९०७
...हेग में जो सभा हुई थी उसके छठे निश्चय के
...नुसार शत्रु केवल उन्हीं व्यापारिक जहाजों की रक्षा
...रने के लिए बाध्य है जो कि युद्ध छिड़ने के समय
...सके बंदरों में हों अथवा युद्ध छिड़ने का हाल बिना
...ने उन बंदरों में पहुँच जायँ।

युद्ध छिड़ने पर साधारणतः लड़नेवाले देशों की
...ओं का परस्पर व्यापार संबंध टूट जाता है अथवा
...द्ध की समाप्ति तक स्थगित कर दिया जाता है। युद्ध
...छिड़ने से पहले के ठीकों या निश्चयों पर बिना युद्ध की
...समाप्ति के कोई कार्रवाई नहीं हो सकती। पर कभी
...भी पारस्परिक निश्चय के अनुसार दो लड़नेवाले
...शों की प्रजाओं को शत्रु-प्रजा से व्यापार करने का
...धिकार भी मिल जाता है जैसा कि गत क्रीमियन
...था १८६० वाले चीन युद्ध के समय हुआ था। ऐसे
...क देश से दूसरे देश में, थोड़ी सी विशेष अवस्थाओं
...छोड़ कर और वह भी रियायत के तौर पर,
...सी प्रकार के समाचार आदि नहीं आ जा
...ते। प्रत्येक राज्य को यह अधिकार है कि वह
...पने प्रतिद्वंदी राज्य की प्रजा में से किसी एक
...व्य को, अथवा उन सब को, अपने देश से
...काल दे। अथवा यदि वह उन्हें देश में रहने भी
...तो उनके लिए जैसे चाहे वैसे नियम बना सकता
...। किसी राज्य पर का ऋण अथवा उसका व्याज
...भी जब्त नहीं किया जा सकता, चाहे वह अपनी
...प्रजा से लिया गया हो और चाहे शत्रु की प्रजा
...से। हां, उसे इतना अधिकार अवश्य है कि जब
...तक युद्ध होता रहे तब तक वह ब्याज न दे; पर
...युद्ध की समाप्ति पर उसे सारा पिछला ब्याज चुका
...ना पड़ेगा।

युद्ध का प्रभाव प्रायः तीन प्रकार के संबंधों पर
...ता है। एक तो राज्यों के पारस्परिक संबंध पर,
चाहे वह युद्ध-लिप्त हों और चाहे तटस्थ; दूसरे राज्य
और प्रजा के संबंध पर, चाहे वह प्रजा अपनी हो,
चाहे शत्रु की और चाहे किसी तटस्थ देश की; और
तीसरे साधारण प्रजा के पारस्परिक संबंध पर,
चाहे वह स्वजातीय हो, चाहे शत्रु की और चाहे
तटस्थ देश की। पहले दो प्रकार के संबंधों पर
विचारवानों का सदा से विशेष ध्यान रहा है और
उसके लिये अनेक उपयोगी अंतर्राष्ट्रीय नियम भी
समय समय पर बन चुके हैं। समुद्र में शत्रुओं के
पकड़े हुए जहाजों के विषय में विचार करने के
लिये जो न्यायालय बनाए जाते हैं उनके निर्णय और
सिद्धांतों में बहुत कुछ मतभेद है। पर यह मतभेद
उस दशा में अधिक महत्त्व का नहीं रह जाता जब
कि कोई राज्य अपने उस अधिकार का प्रयोग करने
लग जाता है जिसके अनुसार वह शत्रुओं के साथ
सब प्रकार का व्यवहार करने में एकदम स्वतंत्र है।
प्रत्येक राज्य अपने लिए आप नए नियम बना लेता
है और संकट की संभावना होने पर पूर्व निश्चयों
को तोड़ देता है।

पहले ऐसा होता था कि इंगलैंडवाले अपने देश
में रहनेवाली शत्रु की प्रजा के माल और जहाजों
को, बिना उन्हें नष्ट किए, केवल अपने अधिकार
में कर लेते थे और उस समय तक उनके विषय में
कुछ भी न करते थे जब तक कि उन्हें यह न मालूम
हो जाय कि शत्रु हमारे ऐसे माल और जहाजों के
विषय में क्या निश्चय करता है। अर्थात् शत्रुओं का
व्यवहार देख कर तब इंगलैंड अपना व्यवहार
निश्चित करता था। अब भी अनेक देशों में पारस्प-
रिक संधि के अनुसार ऐसा ही व्यवहार होता है।
पर इधर पेरिस, टयूरिन, लंदन और हेग में जो
सभाएँ हुई हैं उन्होंने इस संबंध में कुछ विशेष
नियम बना दिए हैं।

समुद्र में शत्रु का जो माल असबाब पकड़ा
जाता है वह लूट के अंतर्गत (Prize) समझा जाता
है। वास्तव में लूट की संपत्ति राज्य की होती है,
पर राज्य उसका अधिकार पकड़नेवाले को दे देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर यदि पकड़नेवाला जहाज सरकारी और युद्ध का जहाज न होकर केवल व्यक्तिगत हो तो वह संपत्ति नौ-विभाग की समझी जाती है। साधारणतः व्यापारिक जहाज कभी शत्रु के जहाज को पकड़ते भी नहीं; पकड़ते हैं केवल युद्धवाले जहाज। सन् १८५४ में ब्रिटिश और फ्रांसीसी सरकार ने इस बात की घोषणा कर दी है कि शत्रुता केवल लड़ाई के और हथियारबंद जहाजों में ही रहेगी, व्यापारिक और दूसरे प्रकार के जहाजों में नहीं। पहले लड़ाई के और साधारण जहाजों में बहुत ही कम भेद होता था। साधारण व्यापारिक जहाजों पर तोपें चढ़ा दी जाती थीं और राज्य की ओर से कुछ लोग उस पर नियुक्त कर दिए जाते थे जो लड़ाई और लूटमार करते थे। इससे हानि बहुत अधिक होती थी इसलिए यह नियम उठा दिया गया।

मछलियाँ पकड़नेवाली नावें, और धार्म्मिक, सामाजिक, वैज्ञानिक अथवा किसी सार्वजनिक उपयोगी कार्य्य के उद्देश्य से जानेवाले जहाज नहीं पकड़े जा सकते। इसके अतिरिक्त अन्य व्यापारी जहाज जो समुद्र में पकड़े या अपने बंदरों में रोक लिए जाते हैं उनका केवल सामान उतरवा लिया जाता है और उन्हें ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है। युद्ध समाप्त होने पर तो पकड़नेवाला राज्य उन जहाजों को छोड़ देने के लिये बाध्य है ही; पर यदि युद्ध समाप्त होने से पहले ही शत्रु उन जहाजों को छुड़ाना चाहे तो उसके बदले में हरजाने की कुछ उचित रकम देनी पड़ती है। जो जहाज एक बार छोड़ दिया जाय वह यदि अपने अथवा तटस्थ देश के किसी बंदर पर ठहरने के बाद फिर यात्रा आरंभ करे तो पुनः पकड़ा जा सकता है। यह सब नियम केवल उन्हीं जहाजों के लिए हैं जो विशुद्ध व्यापारिक जहाज हों और जिनकी आकृति और बनावट से यह न झलकता हो कि वे कभी किसी दशा में युद्ध के लिये भी उपयोगी हो सकते हैं।

युद्ध छिड़ने के कुछ ही पहले या उसके उपरांत यदि शत्रु अपना कोई जहाज किसी तटस्थ राज्य के हाथ बेच दे तो वह जहाज उस समय तक शत्रु का ही जहाज समझा जाता है जब तक कि उसका कुल मूल्य चुका न दिया जाय। यदि इस प्रकार का क्रयविक्रय कुछ संदिग्ध मालूम पड़े तो यह रिआयत नहीं की जाती। फ्रांसवाले तो युद्धकाल में इस प्रकार के क्रयविक्रय को उचित ही नहीं समझते। यदि किसी तटस्थ देश का कोई जहाज युद्ध के काम आनेवाली चीजें अथवा शत्रु के कागज पत्र या वेतनभोगी अफसरों को लेकर कहीं जाता हो तो वह भी पकड़ लिया जाता है। पर यदि उस जहाज पर शत्रु के किसी तटस्थ देश में रहनेवाले राजदूत के पत्र और खरीते आदि ही हों तो वह इस नियम से मुक्त समझा जाता है। हेग कानफरेन्स में तो यह भी निश्चय हो चुका है कि तटस्थ या लड़नेवाले देशों के सब प्रकार के डाक के पत्र आदि कभी छूने न चाहिए और यदि किसी कारणवश उस डाक को ले जानेवाला जहाज पकड़ भी लिया जाय तो डाक तुरंत उद्दिष्ट स्थान पर भेज दी जानी चाहिए।

जिस बंदर का मुहाना रोका गया हो वहाँ कोई जहाज नहीं जाने पाता। यदि किसी प्रकार कोई तटस्थ जहाज वहाँ पहुँच भी जाय तो उसे इस काम के लिए बने हुए न्यायालय के सामने यह प्रमाणित करना पड़ता है कि अमुक अनिवार्य्य कारण से उसे वहाँ जाना पड़ा था। यदि ऐसा कोई जहाज वहाँ पहले से ही उपस्थित हो और उस पर मुहाना रोकने से पहले का माल खरीदा और लादा हुआ हो तो वह छोड़ दिया जाता है।

लड़नेवाले देश के जहाज के कमांडर को इस बात का अधिकार है कि वह मार्ग में मिलनेवाले जहाजों पर जाकर उसके कागज पत्र भली भाँति देख सके और यदि उसे कुछ संदेह हो तो सारे जहाज की तलाशी ले ले। यदि किसी जहाज का कप्तान अपने कागज आदि दिखलाने या तलाशी देने में किसी प्रकार की आनाकानी करे तो उसका जहाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ड़ लिया जाता और उसपर का माल लूट का माल समझा जाता है। तटस्थ देश के समुद्रों या खाड़ियों कोई जहाज नहीं पकड़ा जा सकता। पर यदि ड़नेवाले देश का कोई जहाज किसी तटस्थ समुद्र बंदर घुस कर वहाँ का कोई जहाज पकड़ ले तो तटस्थ देश को इस बात का अभियोग लगाने का अधिकार है कि उसकी तटस्थता भंग की गई। कड़ा हुआ जहाज जिस देश का हो उस देश को संबंध में कोई शिकायत करने का हक नहीं है। र यदि वह तटस्थ देश भी किसी प्रकार की आपत्ति करे तो अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (International ize Court) को इस बात का अधिकार है कि वह यं इस विषय पर विचार करे।

अँगरेजी साम्राज्य में भिन्न भिन्न स्थानों पर ऐसे न्यायालय (Prize Court) हैं जिनकी बैठक काल में आवश्यकता पड़ने पर होती है और लूट के माल के संबंध में उठनेवाले प्रश्नों पर य करते हैं। कभी कभी ऐसे न्यायालय अँगरेजी साम्राज्य के बाहर भी स्थापित किए जा सकते हैं। से न्यायालयों को अधिकार है कि वे जहाज और ल को "लूट का माल" निश्चय करें, उसके कों से पकड़नेवालों को धन दिलवा कर सब और जहाज छुड़वा दें, बिना कुछ लिए ही छोड़ दें अथवा उलटे पकड़नेवालों को ही दें कि वह माल मालिक को उनका दाम और जाना दें। अँगरेजी कानून के अनुसार प्रत्येक ड़े हुए जहाज को बंदर में लाना पड़ता है न्यायालय से यह निश्चय कराना पड़ता है कि वास्तव में लूट का माल है। इस निश्चय के रांत कुछ विशेष नियमों के अनुसार उस पर का पकड़नेवालों में बाँट दिया जाता है।

यदि किसी अँगरेजी प्रजा का कोई जहाज या समुद्र में शत्रुओं द्वारा पकड़ लिया जाय और उपरांत फिर कोई अँगरेजी जहाज वह माल से छीन ले तो न्यायालय उस पकड़नेवाले जी जहाज के आदमियों को माल-मालिक से माल के मूल्य का आठवाँ भाग दिलवाता है। कुछ विशेष अवसरों पर वह उसका एक चौथाई भी दिलवा सकता है।

ग्रेट ब्रिटेन को छोड़ कर प्रायः और सभी देशों में ओल की प्रथा भी है। यदि कोई पकड़ा हुआ जहाज चाहे और पकड़नेवाले स्वीकार करें तो वह कुछ धन देकर अपनी मुक्ति करा सकता है। पर यदि उस समय उसके पास धन न हो और वह धन देने का वादा करे तो पकड़नेवाले उस जहाज पर के दो एक आदमियों को ओल में ले लेते हैं और धन मिल जाने पर उन आदमियों को छोड़ देते हैं। पर अँगरेजी न्यायालयों में इस प्रकार ओल में लेनेवाले मनुष्य को ५०० पाउँड तक जुर्माना होता है।

कुछ विशेष दशाओं में पकड़नेवालों को यह भी अधिकार है कि वे पकड़े हुए जहाज या माल को समुद्र में ही डुबा दें। पर जो जहाज या माल समुद्र में डुबा दिया जाय उससे डुबानेवालों की हानि ही होती है। क्योंकि उन्हें लूट के माल का वह धन नहीं मिलता जो कि बंदर में लाकर न्यायालय से निर्णय कराने पर मिल सकता।

जिस युद्ध-लिप्त राष्ट्र की नौ-शक्ति दुर्बल हो वह अपने क्रूज़रों को पकड़ा हुआ माल समुद्र में ही डुबा देने की आज्ञा दे सकता है। यदि पकड़नेवाला जहाज पकड़े हुए जहाज को अपने बंदर तक लाने में असमर्थ हो, समुद्र में तूफान हो, पकड़ा हुआ जहाज खराब हो, जब कि उसके फिरसे पकड़े जाने की संभावना हो, कोई प्रबल शत्रु उसे बचाने के लिए आ रहा हो, पकड़े हुए जहाज की निगरानी के लिए पकड़नेवालों के पास काफी आदमी न हों अथवा पकड़नेवाले के राज्य का बंदर उस स्थान से बहुत दूर हो तो पकड़नेवालों को पूरा अधिकार है कि वह पकड़े हुए जहाज को समुद्र में ही डुबा दें। अँगरेजी न्यायालयों का भी यही नियम है कि यदि पकड़ा हुआ जहाज बंदर तक लाना असंभव हो तो पकड़नेवाले का कर्त्तव्य है कि वह पकड़ा हुआ जहाज वहीं डुबा दे। यदि पकड़ा हुआ जहाज बंदर में लाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी उसका मामला अदालत के सामने न पेश किया जाय और तुरंत युद्ध समाप्त हो जाय तो वह जहाज मालिक को ही लौटा दिया जायगा। यह सारे नियम केवल शत्रु के जहाजों के लिए हैं, तटस्थों के लिए नहीं। पर यदि किसी तटस्थ देश का माल शत्रु के जहाज के साथ डुबा दिया जाय तो तटस्थ देश को उसका हरजाना माँगने का अधिकार नहीं है।

साधारण लूट के न्यायालयों के सिवा हेग कानफरेन्स का स्थापित किया हुआ एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Prize Court) भी है जहाँ साधारण न्यायालयों की अपीलें होती हैं। यदि शत्रु का माल किसी तटस्थ देश के जहाज पर हो, शत्रु का जहाज तटस्थ देश के समुद्र में पकड़ा गया हो अथवा किसी प्रकार का नियम भंग हुआ हो तो उसका अभियोग इसी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में चलाया जा सकता है, अथवा अपील की जा सकती है। युद्ध में सम्मिलित होनेवाली सब शक्तियों का एक प्रतिनिधि, जज या डिप्टी जज इस न्यायालय में रहता है। वर्त्तमान अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में ग्रेट ब्रिटेन, जर्म्मनी, फ्रांस, आस्ट्रिया, इटली, जापान, रूस और अमेरिका के नियुक्त किए हुए जज सदा बुलाए जाते हैं। अन्य शक्तियों के जजों को भी बारी बारी से उसमें बैठने का अधिकार है। न्यायालय के कुल जजों की संख्या १५ है जिनमें से ९ तक की उपस्थिति न्यायालय का कार्य्य आरंभ करने के लिए यथेष्ट समझी जाती है।

घायल सैनिक।

पहले युद्ध में घायल होनेवाले सैनिकों की बड़ी दुर्दशा हुआ करती थी। एक विद्वान् तो इस संबंध में यहाँ तक कहता है कि फौजों के हट जाने पर गाँवों से स्त्रियाँ निकल आती थीं और शत्रु के घायल सैनिकों को काट डालती थीं! सुनते हैं, एक देश में तो यहाँ तक नियम है कि योद्धा अपने घायल सैनिकों को बड़े बड़े टोकरों में भर कर रस्सियों से बाँधते और उन्हें अपने साथ ले जाते हैं; क्योंकि उन्हें भय होता है कि शत्रु इनके साथ और भी अधिक बुरा बर्ताव करेंगे। पर तो भी मनुष्य की प्रकृति में कुछ दया अवश्य है और सभ्यता के विस्तार के साथ साथ उसका भी विकास होता जाता है। सन् १८६२ में जनेवा नगर के हेनरी डूनेंट नामक एक महात्मा ने एक पुस्तक प्रकाशित करके सभ्य जगत का ध्यान युद्ध-स्थल के घायल सैनिकों की दुर्दशा की ओर आकर्षित कराया था। इस पुस्तक का प्रभाव लोगों पर यहाँ तक पड़ा कि जनेवा में १६ बड़े बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक महासभा स्वीजरलैण्ड की सरकार ने सन् १८६४ में बुलाई। उस अधिवेशन में घायलों के लिए जो नियम बने थे वह केवल स्थल-युद्ध के लिए थे, पर १८६८ में उन नियमों में कुछ परिवर्त्तन और परिवर्द्धन हुआ और वे जल-युद्ध के लिए भी प्रयुक्त होने लगे। इंगलैण्ड पहली महासभा में सम्मिलित नहीं था पर बाद में उसने भी वह सब नियम स्वीकार कर लिए। हेग कानफरेन्स के स्थापित हो जाने से इस उद्देश्य की सफलता और भी बढ़ गई और उसी ने जनेवावाली महासभा में सम्मिलित होनेवाले सब राष्ट्रों को इन नियमों के पालन के लिए बाध्य किया।

उक्त महासभा के निर्द्धारित नियमों के अनुसार सैनिक अस्पताल आदि से किसी प्रकार की छेड़ छाड़ नहीं की जाती। पर यदि उन अस्पतालों में घायल सैनिक न हों और उन पर सेना विभाग ने अधिकार कर लिया हो तो उन पर अवश्य आक्रमण हो सकता है। अस्पतालों के समस्त छोटे बड़े कर्म्मचारी सदा तटस्थ समझे जाते हैं। यदि अस्पतालों पर शत्रुओं का अधिकार हो जाय तो भी उनकी तटस्थता नष्ट नहीं की जाती और अस्पताल के कर्म्मचारी इच्छा प्रकट करने पर अपने सामान आदि के सहित अपनी सेना में सम्मिलित होने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। ऐसे लोगों को उनकी सीमा तक पहरे में पहुँचा देना शत्रु का कर्त्तव्य है। अस्पताल के कर्म्मचारी जाते समय अस्पताल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान ही अपने साथ ले जा सकते हैं, अपना निज का सामान नहीं। जिस मकान में कोई घायल पड़ा हो वह भी सुरक्षित समझा जाता है और जो लोग किसी प्रकार घायलों की सेवा शुश्रूषा करते हों उनसे कोई छेड़छाड़ नहीं करता। जनरलों को यह भी उचित है कि वे यह सब बातें साधारण प्रजा को समझा दें। जिस मकान में घायल रक्खे गए हों उनमें सेना नहीं ठहराई जा सकती। इन नियमों का पालन प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति के लोगों के साथ समान रूप से किया जाता है।

केवल कमांडर-इन-चीफ़ को यह भी अधिकार है कि शत्रु के कमांडर से निश्चय करके पकड़े हुए शत्रु के घायल सैनिकों को उसके पास भेज दे और अपने घायल सैनिक वहाँ से मँगवा ले। जो घायल सैनिक अच्छे हो जाने पर भी युद्ध के काम के नहीं रहते वे स्वदेश लौटा दिए जाते हैं। शत्रु के ऐसे लड़ने योग्य सैनिक भी उस अवस्था में लौटाए जा सकते हैं जब कि वह उस युद्ध में फिर कभी हथियार न उठाने की दृढ़ प्रतिज्ञा करें। राज्यों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे फिर कभी ऐसे छूटे हुए लोगों से उस युद्ध में काम न लें। प्रत्येक अस्पताल और सेवाश्रम के साथ उसका एक जातीय झंडा और एक रेडक्रास झंडा (सफेद जमीन पर एक सीधी लाल धारी—जो कि अस्पतालों और घायलों की सेवा शुश्रूषा करनेवालों का चिह्न है) होना भी आवश्यक है। कर्म्मचारियों को भी अपनी बाँह पर इसी प्रकार का एक बैज लगाना पड़ता है।

पूर्व काल में युरोप के प्रायः सभी देशों में यह नियम था कि ग्रंथ, समाचार-पत्र आदि प्रकाशित होने से पूर्व एक सरकारी विभाग द्वारा जाँच लिए जाते थे और यदि उनमें कोई बात आक्षेप योग्य पाई जाती तो उसे प्रकाशित होने से रोक दिया जाता था। यह नियम राजनीतिक और धार्म्मिक विषयों के ग्रंथों के लिए था। इसका आरंभ पहले सन् १५१५ में रोमन कैथोलिक चर्च से हुआ और अब तक कुछ अंशों में उसके अधिकार के अंतर्गत प्रचलित है। सन् १६३७ में स्टार चेंबर (Star Chamber) के निश्चयानुसार इस प्रकार की जाँच की प्रथा इंगलैण्ड में भी प्रचलित हुई जिसका पुष्टीकरण सन् १६४३ में पारलीमेण्ट के एक कानून से हुआ। इस नियम का प्रयोग सिविल वार (Civil War) में हुआ था। मिल्टन ने अपनी एक वक्तृता में इस प्रथा का बहुत विरोध किया था। सन् १६९४ में यह प्रथा इंगलैण्ड से उठा दी गई। सन् १७८९ तक यह प्रथा फ्रांस में भी थी और उसके बाद भी कई बार प्रचलित हुई और फिर नष्ट हो गई। इसके उपरांत कुछ परिवर्त्तन करके वह फिर से प्रचलित की गई और अब तक कुछ अंशों में वहाँ वर्त्तमान है। रूस में भी यह प्रथा अब तक है और उसका पालन बहुत दृढ़तापूर्वक होता है। सन् १८३७ के बाद से स्पेन में यह प्रथा नहीं है। बड़ी बड़ी कठिनाइयों से सन् १८४८ में जर्मनी से भी यह प्रथा उठी। नारवे, स्वीडन, डेन्मार्क, बेलजियम और हालैंड में इसके लिये कोई कानून नहीं है तथापि प्रकाशकों को किसी अनुचित विषय के प्रकाशन के लिये दंड अवश्य मिलता है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों में न तो कभी किसी प्रकार का सेन्सर था और न अब है। वहाँ लेखकों और प्रकाशकों को पूरी स्वतंत्रता है।

यद्यपि अधिकांश देशों में अब यह प्रथा नहीं है, तथापि कुछ विशेष अवसरों पर आवश्यकता पड़ने पर सभ्य राज्यों को यह अधिकार होता है कि वे सेंसर स्थापित कर सकें। युद्ध-काल में इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है कि अपनी तैयारी, कार्रवाई और विचारों आदि का पता शत्रु को न लगने पावे। इसके अतिरिक्त ऐसी प्रजा से, जिसे सांसारिक और अंतर्राष्ट्रीय विषयों का ज्ञान नाममात्र को हो अथवा बिलकुल न हो, बहुत सी बातों को गुप्त रखना बहुत ही आवश्यक समझा जाता है। वर्त्तमान युद्ध में इंगलैंड में सेन्सर का दफ़्र स्थापित हुआ है जहाँ रण-स्थल से आए हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे समाचार सब से पहले पहुँचाए जाते हैं। वहाँ कुछ उच्च अधिकारी उन समाचारों को देख लेते हैं और यदि उनमें कोई अनुचित, अनावश्यक या हानिकारक बात हो तो उसे निकाल कर शेष भाग पत्र सम्पादकों के पास भेज देते हैं। बिना सेंसर आफिस से पास हुए कोई समाचार प्रकाशित नहीं होने पाता। ऐसा ही एक दफ़र यहाँ बंबई में भी स्थापित हुआ है जो विलायत से आनेवाले समाचारों को एक बार पहले देख लेता और तब छपने के लिये भेज देता है। जर्म्मनी में आजकल जो सेंसर स्थापित हुआ है वह अपने कर्त्तव्यों का पालन बहुत अधिक कड़ाई से करता है। अन्यथा वर्त्तमान स्थिति में वहाँ बहुत अधिक आंतरिक उपद्रव खड़े होने की संभावना होती।

युद्ध-काल में देश का सब प्रकार संरक्षण करना शासक का परम कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्य के पालन के लिए उसे अनेक प्रकार के उपयोगी कानून बनाने का अधिकार है। युद्ध के सब काम एक मात्र रुपए पर अवलंबित रहते हैं और उस समय युद्ध में लिप्त होनेवाले सभी देशों को रुपए की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। बहुत से राष्ट्रों को तो प्रायः युद्ध के समय अपनी अथवा पराई प्रजा से ऋण ही लेना पड़ता है। कभी कभी युद्ध के कारण ही राष्ट्रों का दिवाला निकल जाने की आशंका होती है और उसके प्रामेसरी नोटों आदि का भाव बहुत गिर जाता है और उनके सूद का भाव बहुत अधिक बढ़ जाता है। १८७० वाले फ्रांस-जर्म्मन युद्ध के समय फ्रांस का सौ रुपए का नोट बाजार में ६५ रुपए को बिकता था! युद्ध के समय सरकारी बंकों से लोग अपना अपना रुपया निकालने लगते हैं जिसके कारण राष्ट्र को और भी अधिक हानि पहुँचने की संभावना होती है। ऐसे अवसर पर लोगों को लालच दिलाने के लिये विवश होकर बंक अपने सूद की दर भी बहुत कुछ बढ़ा देते हैं। ज्योंही वर्त्तमान युद्ध के छिड़ने की संभावना हुई थी त्योंही (३१ जूलाई १९१४) को इंगलैंड बंक के सूद की दर ४) सैकड़े से बढ़ कर ८) और दूसरे ही दिन १०) सैकड़े तक पहुँच गई थी। सन् १८७३ के बाद इंगलैंड बंक के सूद की दर आज तक कभी इतनी नहीं बढ़ी थी। साथ ही वहाँ का सराफा भी बंद हो गया था। तथापि सरकार ने लोगों को यह विश्वास दिला दिया था कि वर्त्तमान स्थिति किसी प्रकार की चिंता करने योग्य नहीं है। ७ अगस्त को जब यह निश्चय हो गया कि वहाँ किसी प्रकार के आर्थिक कष्ट की संभावना नहीं है, तो सब कारबार सरकार के विश्वास दिलाने पर फिर से खुल गए, सूद की दर ६) कर दी गई और शीघ्र ही उसे घटा कर ५) तक कर देने का विश्वास दिलाया गया। युद्ध-काल में ऐसी घटनाएँ प्रायः सभी देशों के लिये साधारणतः अनिवार्य्य हुआ करती हैं।

बड़े बड़े युद्धों के समय सभी देशों में हलचल मच जाने के कारण अनेक आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। इन कठिनाइयों से बचने के लिये जो उपाय और नियम किया जाता है, उसे मोरेटोरियम कहते हैं। मोरेटोरियम का साधारण अर्थ है—भारी आवश्यकता के समय सरकारी बंकों का देना चुकाने में कानून की सहायता से किसी प्रकार का सुभीता उत्पन्न करना। ऐसे अवसर पर शासक को इस बात का अधिकार है कि वह बंकों का सब देना कुछ निश्चित समय के लिए रोक दे। पावने-दारों को इसमें किसी प्रकार का खटका नहीं होता क्योंकि निश्चित समय के उपरांत उनका रुपया मिल जाता है। वर्त्तमान युद्ध के आरंभ में इंगलैंड में जो मोरेटोरियम जारी हुआ था उसके अनुसार देना चुकाने का समय केवल एक महीना और बढ़ा दिया गया था और साथ ही यह भी आज्ञा दे दी गई थी कि कुछ विशिष्ट और बहुत आवश्यक व्यय आदि के लिए देना तुरंत चुका दिया जाय। लोगों को यह आशंका थी कि भारत में भी मोरेटोरियम प्रचलित होगा; पर भारत-सरकार की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी थी इसलिये यहाँ उसकी कोई आवश्यकता न पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज कल की लड़ाइयाँ स्थल, जल और आकाश तीनों स्थानों में होती हैं। स्थल-सेना दो प्रकार की होती है,—एक पैदल और दूसरा रिसाला। इसके अति- स्थल-सेना। रिक्त तीसरा तोपखाना भी होता है। १२० जवानों के समूह को कम्पनी और एक हजार पैदल सैनिकों के समूह को बटालियन कहते हैं। दो सौ सवारों का समूह स्काडर्न कहलाता है और ३ स्काडर्न की एक रेजिमेंट होती है। एक बैटरी या तोपखाने में ६ तोपें होती हैं। चार बटालियनों का (जिनके साथ मैशीन तोपें, बड़ा अस्पताल और रसद आदि पहुँचानेवाली सेना भी रहती है) एक पैदल ब्रिगेड होता है। रिसाले के ब्रिगेड में तीन रेजिमेंटें और कुछ मैशीन तोपें तथा तोपखाने के ब्रिगेड में तीन तोपखाने होते हैं। इससे भी बड़ा समूह एक डिवीजन कहलाता है। पैदल डिवीजन में पैदल सेना के तीन ब्रिगेड, तोपखाने के दो या इनसे अधिक ब्रिगेड और रिसाले के कई स्काडर्नों के अतिरिक्त इंजीनियरों, चिकित्सकों और रसद पहुँचानेवालों की कम्पनियाँ होती हैं। साधारणतः एक डिवीजन में २० हजार आदमी रहते हैं; पर युद्धकाल में यह संख्या और बढ़ जाती है। रिसाले के डिवीजन में रिसाले के दो या अधिक ब्रिगेड, एक से चार तक घोड़ोंवाले तोपखाने, घोड़सवार इंजीनियर, मैशीन तोपें तथा और सामान रहते हैं। एक आरमी कोर में दो या तीन डिवीजन होते हैं। यह हिसाब अंगरेजी सेना का है; और देशों की सेनाओं में इससे कुछ अन्तर भी हो सकता है। जिन स्थानों पर सड़कें साफ मिलती हैं वहाँ बाइसिकिल सवार सैनिक भी जाते हैं। ऐसे सवारों को बाइसिकिल पर चढ़े चढ़े बंदूक चलाने का अभ्यास होता है।

साधारणतः पैदलों के पास एक बंदूक रहती है जिस पर १७ इंच की एक संगीन भी लगी रहती है। सिपाही के पास १५० गोलियां होती हैं और एक गोली प्रायः दो मील तक जा सकती है। सवारों के पास एक बंदूक, तलवार, तमंचा और भाला होता है। साधारण तोपों में "श्रैपनेल" और बड़ी हाविजर तोपों में "श्रैपनेल" और "लिडाइट" दोनों तरह के गोले छोड़े जाते हैं। एक श्रैपनेल गोले में ३—४ सौ तक गोलियां भरी होती हैं। यह गोला जहाँ गिरता है उसके आस पास दो सौ गज तक कोई बचने नहीं पाता। लिडाइट गोले में पिकरिक एसिड भरा रहता है। साधारणतः ऐसी तोपों के गोले दस हजार गज दूर तक जा सकते हैं।

सेना के साथ साथ इंजनीयर, आरमी सर्विसवाले और चिकित्सक भी रहते हैं। इंजीनियर स्थान स्थान पर पुल बांधते, शत्रुओं के तोड़े हुए पुलों की मरम्मत करते, रेल की सड़कें बनाते तथा इसी प्रकार के और ऐसे काम करते हैं जिन से सेना को कूच करने में सुभीता हो। यह सेना के आगे आगे रहते हैं। आर्मी सरविस कोरके आदमी सेना के खाने पीने का प्रबंध करते हैं और ट्रांसपोर्टवाले सब सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। घायलों और बीमारों की चिकित्सा करना तथा छावनी में सफाई आदि का ध्यान रखना, मेडिकल कोर का काम है। शत्रुदल का समाचार लाने और जासूस के दूसरे काम करनेवाले युवक और बालक भी सेना के साथ रक्खे जाते हैं।

सेना का सर्वप्रधान अफसर कमांडर-इन-चीफ कहलाता है। वह सेनाओं को आज्ञा देता, उनका निरीक्षण करता, उन्हें युद्धस्थल में नियुक्त करता, शत्रु पर आक्रमण करने और उसके आक्रमण से रक्षित रहने के उपाय सोचता और छोटे अफसरों की तरक्की, इनाम आदि की सिफारिश करता है। एडजूटेंट जनरल का कर्त्तव्य सैनिक शिक्षा का प्रबंध करना, वरदी आदि बनवाना, सैनिकों की स्थिति का ध्यान रखना और कमांडर इन-चीफ की अनुपस्थिति में उस का काम करना है। कार्टर मास्टर जनरल रसद, चारे, ईंधन, रोशनी, रहने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान ले जाने, गोले बरूद तथा वेतन आदि बाँटने का प्रबंध करता है। किले बंदियों का भी एक इंसपेक्टर जनरल होता है जो किले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारिक, गोदाम, रेल, तार, आदि का निरीक्षण करता और इंजीनियरों को काम पर नियुक्त करता है ।

केवल ग्रेट ब्रिटेन को छोड़ कर शेष सारे युरोप में सैनिक सेवा अनिवार्य्य है । वहां आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक योग्य और सशक्त मनुष्य को सेना में अवश्य सम्मिलित होना पड़ता है । पर ग्रेट ब्रिटेन में यह बात नहीं है । वहां सेना में केवल वही लोग लिए जाते हैं जो स्वेच्छापूर्वक उसके लिए तैयार हों । अन्यान्य देशों में केवल शासक की आज्ञा पाते ही सब लोग सेना में आकर सम्मिलित हो जाते हैं पर ग्रेटब्रिटेन में वक्तृताएं आदि देकर लोगों को सेना में सम्मिलित कराया जाता है । कुछ समय पूर्व लोगों का विश्वास था कि अनिवार्य्य सैनिक-सेवा के कारण लोगों की अनेक मानसिक शक्तियां नष्ट हो जाती हैं और वे अच्छे व्यापारी, शिल्पकार या विद्वान् नहीं हो सकते । पर कई देशों ने इस प्रकार की अनिवार्य्य सैनिक सेवा प्रचलित रख कर भी जब व्यापार, विद्या-बुद्धि और आविष्कार आदि में इतनी उन्नति की तो धीरे धीरे लोगों की वह धारणा बदल चली । बात यह है कि युद्ध-काल में साधारण धन दान की अपेक्षा व्यक्ति-गत सहायता अधिक बहुमूल्य होती है ।

सैन्य-संग्रह । वेतन-भोगी सैनिकों की सेना प्रस्तुत सेना (Standing Army or Peace Strength) कहलाती है; इस के अतिरिक्त जो लोग केवल युद्ध-काल में सेना में सम्मिलित होते हैं उनकी गणना रिज़र्व (Reserve or War Strength) में होती है । ऐसे लोगों को संग्रह करके सेना तैयार करना सैन्य संग्रह (Mobilisation) कहलाता है । सैन्य-संग्रह में शांतिपूर्वक सांसारिक कार्य्यों में लगी हुई प्रजा को बुला कर युद्ध के लिए तैयार करना पड़ता है । सबसे पहले आवश्यकता पड़ने पर राज्य की ओर से सैन्य-संग्रह की घोषणा की आज्ञा होती है और विशिष्ट स्थानों पर रिज़र्व सेना के लोग एकत्र होते हैं । इंगलैंड आदि देशों में जहां सैनिक सेवा अनिवार्य्य नहीं होती, स्थान स्थान पर डीपो खोल दिए जाते हैं और जो लोग युद्ध में सम्मिलित होना चाहते हैं वे वहीं आकर सेना में भर्त्ती होते हैं । सुनते हैं, वर्त्तमान युद्ध में भारत में हिमालय की तराइयों में भी दो एक ऐसे डोपो खुले हैं जहाँ प्रायः नैपाली और पहाड़ी आदि के लोग सेना में भर्त्ती किए जाते हैं ।

प्रत्येक देश में सैन्य-संग्रह के नियम एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्न हैं । अधिकांश देशों में रिज़र्व सेना को बंदूक, वर्दी और घोड़े आदि सेना में सम्मिलित होने पर ही मिलते हैं, पर कहीं कहीं (जैसे रूस की कज़्ज़ाक सेना तथा सरविया में) यह सब सामान रिज़र्व सैनिकों के पास ही रहते हैं । सैन्य-संग्रह की आज्ञा के साथ ही साथ किसी देश में रिज़र्व सैनिकों के पास अधिकारपत्र भेजा जाता है जिसकी सहायता से वे बिना किसी प्रकार के [illegible] के पहले अपने घर और तब एकत्र होने के नियत स्थान पर पहुंच जाते हैं; और किसी देश में इन कार्यों के लिए उनके पास कुछ निश्चित रकम मनीआर्डर द्वारा भेजी जाती है । प्रायः प्रत्येक प्रांत में सैन्य-संग्रह होने के स्थान नियत कर दिए जाते हैं [illegible] प्रत्येक रिज़र्व सैनिक अपने प्रांत के निश्चित स्थान पर पहुँच जाता है । वहां पहुँचते ही उसे युद्ध का सब सामान, (वर्दी, गोली, बारूद) मिल जाता है और उसे सम्मिलित होने के लिए कम्पनी या स्क्वाड्रन बतला दिया जाता है ।

इंगलैंड और जर्म्मनी की सेनाएं सब देशों की अपेक्षा जल्दी तैयार होती हैं । जर्म्मनी में सारी सेना केवल पाँच दिनों में एकत्र हो जाती है और छठे दिन सवेरे से सीमा प्रांत की ओर सैनिकों से भरी रेलें जाने लगती हैं । पर वहाँ सेना की संख्या इतनी अधिक होती है कि उन्हें ढोकर ले जानेवाली अंतिम रेलगाड़ी सीमाप्रांत पर ग्यारहवें दिन पहुंचती है । पर इन सेनाओं के पहुँचने से पहले ही सीमा प्रांत की प्रस्तुत सेना युद्ध आरंभ कर देती है और रिज़र्व सेना पीछे से जाकर उसमें सम्मिलित हो जाती है । फ्रांसीसी सेना को भी प्रायः इतना ही समय [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...पहुँचने में लगता है। आस्ट्रिया की सेना को ...होकर युद्ध-क्षेत्र तक पहुँचने में प्रायः तीन ...ह तक लग जाते हैं और रूसी सेना को तो ...भी अधिक विलंब होता है। इस विलंब के कई ...हैं। एक तो वहाँ के अधिकांश रिजर्व सैनिक ...होते हैं और कृषकों को अपना कारबार छोड़ ...युद्ध के लिए तैयार होने में ज्यादा देर लगती ...। दूसरे रूस देश का विस्तार बहुत बड़ा है और ...मा प्रांत तक रेलों के पहुँचने में भी बहुत विलंब ...ता है। साधारणतः सैन्य-संग्रह के समय देशों के ...कांश कारबार बंद हो जाते हैं क्योंकि सेना रसद ...दूसरे सामान आदि पहुँचाने तथा इसी प्रकार ...और तैयारियों में सारा देश लग जाता है। ...सी किसी देश में तो सैन्यसंग्रह के समय बड़े ...राजकर्म्मचारियों तक को अपने काम पर पहुँ-...ने में बहुत विलंब हो जाता है। सारी सेना को ...मा प्रांत तक पहुँचाना कितना विशाल काम है, ...का अनुमान केवल एक इसी बात से हो सकता ...कि फ्रांस को अपनी सेना सीमा प्रांत तक पहुँ-...ने में लगातार तीन दिन तक ३०—३० डब्बों की ...गाड़ियाँ प्रति दिन भेजनी पड़ती हैं। बहुत से ...और गाँवों में तो प्रायः स्त्रियाँ और बालक ही बच जाते ...। वर्तमान युद्ध में जब इंगलैंड में सैन्यसंग्रह होने ...था तो अधिकांश प्रजा ने अपनी घोड़ा-गाड़ियाँ, ...रें और बाइसिकिलें आदि सेना को सीमा प्रांत ...र ले जाने के लिये सरकार को दे दी थीं।

आधुनिक युद्ध-कला और विशेषतः युद्ध में काम आनेवाले भयंकर मनुष्य-संहारक यंत्र ...। आदि उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गए हैं। इन यंत्रों में अनेक प्रकार की नई ...ही सबसे प्रधान हैं। आजकल युद्ध में अनेक ...र की तोपों का व्यवहार होता है और उनके ...अलग पारिभाषिक नाम भी हैं। साधारणतः ...युद्ध में ७ प्रकार की तोपों का व्यवहार होता ...—मशीनगन, हार्स आर्टिलरी गन, फील्ड गन, ...हाविजर, हेवी गन माउंटेन गन और मार्टरगन।

मशीन गन—इसे एक प्रकार की बहुत शीघ्र चलनेवाली बन्दूक ही समझना चाहिए। इसका मुँह और तोपों की अपेक्षा बहुत छोटा होता है और उसमें से बहुत की बंदूक सी गोलियाँ बहुत शीघ्रता-पूर्वक निकल कर शत्रुओं पर भयंकर रूप से बरसने लगती हैं। इसमें एक ही बार बहुतसी गोलियाँ भर दी जाती हैं और वह आप ही आप यंत्र की सहायता से बराबर छूटती रहती हैं। प्रत्येक अँगरेजी रिसाले या पलटन के साथ ऐसी दो तोपें रहती हैं। इसका उपयोग केवल उसी समय होता है जब कि शत्रु बहुत समीप आ जाता है और उससे बहुत गुथ कर लड़ने की आवश्यकता होती है। इसका निशाना बहुत ठीक लगता और बड़ा घातक होता है। एक बार ४२ अच्छे सैनिकों और एक मशीन गन ने एक टारगेट पर बराबर एक मिनट तक गोलियाँ बरसाईं। बाद में मालूम हुआ कि सैनिकों की ४०८ गोलियों में से ६२ और गन की २२८ गोलियों में से ६९ ठीक निशाने पर लगीं थीं।

आर्टिलरी गन—इसे घोड़े खींचते हैं और यह बहुत सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजी जा सकती है। यह केवल सवारों के साथ रहती है। संहारक दृष्टि से इसका उपयोग फील्ड गन की अपेक्षा कुछ कम होता है।

फील्ड गन—रण-स्थल में पैदल सेना के साथ यही तोपें रहती हैं और इनसे पैदल सेना को ही नष्ट करने का काम लिया जाता है। इनमें से अधिकांश तोपें बहुत जल्दी जल्दी गोला चलानेवाली (Quick firing) होती है और इनसे अन्य तोपों की अपेक्षा अधिक काम निकलता है। इनसे एक मिनट में २० गोले चलाए जा सकते हैं।

फील्ड हाविजर—इस तोप का आकार छोटा पर गोला फेंकनेवाला मुँह बहुत बड़ा होता है और इसमें बारूद भी बहुत कम लगती है। गड़गज, खाई और गाँव आदि पर प्रायः इसी से गोले बरसाए जाते हैं। यदि शत्रु किसी छोटी मोटी पहाड़ी की आड़ में हो तो भी इसके गोले उसका विनाश करने में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूकते। इस ढंग की छोटी तोपों से ४७ सेर और बहुत बड़ी तोपों से ५ मन तक के गोले फेंके जा सकते हैं। बहुत बड़ी तोपों का उपयोग केवल विशेष अवसरों पर ही होता है। इस ढंग की छोटी तोपों का व्यवहार इंगलैंड के अतिरिक्त और सब देशों में और विशेषतः फ्रांस में अधिकता से होता है। इसे ले जाने के लिए अलग और रख कर चलाने के लिये अलग गाड़ी होती है। एक गाड़ी पर से दूसरी गाड़ी पर तोप ले जाने में केवल दो मिनट लगते हैं। बहुत बड़ी हाविजर तोपें किले में भी रक्खी जाती हैं जिनके मुँह का व्यास १२ इंच होता है और जिनमें से ४९० सेर तक के गोले छूटते और एक सेकंड में २७०० फुट तक जाते हैं। ऐसी तोपें जर्म्मनी के क्रुप कारखाने की बनी हुई बहुत प्रसिद्ध हैं।

हेवी आर्टिलरी गन—यद्यपि इसके गोले बहुत अधिक संहारक होते हैं पर इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना बहुत कठिन होता है। मैदानी तोपों और मजबूत किले-बंदियों को उड़ाने के लिये ही प्रायः इसका उपयोग होता है।

माउँटेन गन—यह तोपें हलकी होती हैं और इनसे संहार भी कम होता है। ऊँची नीची और पहाड़ी भूमि पर खच्चरों या कुलियों पर लाद कर ये तोपें बड़ी सरलता से भेजी जा सकती हैं। इनके आकार आदि को देखते हुए, इनसे जो काम निकलता है वह बहुत अच्छा समझा जाता है। इस प्रकार की तोपें सर्विया में बहुत अच्छी होती हैं।

मार्टर गन—ये तोपें छोटी होती हैं और केवल जमीन पर रख कर चलाई जा सकती हैं। इनके गोले भूमि से सीधे समानान्तर पर जाते हैं। इनमें की सब से प्रसिद्ध तोपें जर्म्मनी की ८॥ इंच वाली हैं जिनसे १२५ सेर तक के गोले छूटते हैं। इस ढंग की इससे बड़ी तोप और किसी के पास नहीं है। इनसे सीमा पर के मोरचे तोड़े जाते हैं जिससे सेना को शत्रु के प्रदेश में बढ़ने में सरलता होती है। इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में कठिनता होती है और अच्छी सड़कों पर इन्हें खींचने [illegible] लिये प्रायः आदमी ही लगाए जाते हैं।

इन सब तोपों की अपेक्षा एक और महा भ[illegible]कर तोप होती है जिसे सीज गन या घिराव की [illegible] कहते हैं। यह तोप हाविजर जाति की पर ब[illegible] भारी होती है और इसे एक स्थान से दूसरे स्था[illegible] तक ले जाने में प्रायः सभी कल पुरजे अलग कर[illegible] पड़ते हैं। इसे खोलने और बैठाने में बहुत सम[illegible] लगता है और यदि शत्रु के आक्रमण के कारण से [illegible] भागना चाहे तो ऐसी तोपों को जहाँ का तहाँ छो[illegible] देना पड़ता है। बिलकुल नये सैनिक तो इनके छू[illegible] के भयंकर शब्द भी नहीं सुन सकते! इनका [illegible] हार बहुत बड़े बड़े किलों को उस समय घेरते [illegible] लिये होता है जब कि कई महीनों तक घिराव [illegible] आवश्यकता समझी जाती है। इनकी सहायता [illegible] लिये जो बहुत बड़ी बड़ी मैदानी तोपें [illegible] जाती हैं वह भी अपेक्षाकृत छोटी ही सम[illegible] जाती हैं। इस ढंग की भिन्न भिन्न देशों की तो[illegible] का आकार आदि इस प्रकार है:—

देश		तोपों का वजन		गोले का व्या[illegible]
ग्रेटब्रिटन	...	५॥ टन	...	... ९·४
जर्मनी	...	६ ”	...	... ११·२
फ्रांस	...	५॥। ”	...	... १०·[illegible]
रूस	...	६ ”	...	... १२

इन तोपों के चढ़ाने के लिये जो गाड़ियाँ हो[illegible] हैं उनका वजन १५ से २० टन (१ टन = २८ म[illegible] तक होता है और उन्हें खींचने के लिए तीन [illegible] इंजन लगते हैं। इन गाड़ियों के पिछले पहियों [illegible] लोहे के भारी भारी चौकोर टुकड़ों की माला [illegible] रहती है जिसमें गोला छूटने के समय वे [illegible] जमीन में ही अड़ जायँ और तोप के धक्के से [illegible] पीछे न हट जाय। इसके सिवा तोप स्वयं [illegible] प्रकार के झूले पर रक्खी रहती है जिसमें [illegible] लगी रहती है और जो पीछे हटी हुई तोप को [illegible] आगे कर देती है। साधारण पहियों में [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। यह प्रबंध प्रायः मैदान की भारी ... में भी होता है।

साधारण मैदानी तोपें प्रायः उतनी ही ... बनाई जाती हैं जिन्हें छः घोड़े सरलता ... खींच सकें। जो तोप जितनी ही भारी होती ... वह उतनी ही दूर तक गोला फेंक सकती ... छोटी तोपों के लिये केवल एक और बड़ी ... के लिये दो गाड़ियाँ होती हैं। एक तोप के ... प्रायः ६ आदमी और गोले बारूद की एक अलग ... रहती है। कभी कभी उसके साथ १२ ... मी और दो गाड़ियाँ भी कर दी जाती हैं। ... चलाने के समय केवल दो गोलंदाज ही तोप ... रहते हैं और बाकी सामान और आदमी एक ... सुरक्षित स्थान पर छोड़ दिए जाते हैं। जिस ... पर गोलंदाज खड़े होते हैं उसके सामने फौलाद ... बहुत मोटी चद्दर जड़ी होती है जिस पर बंदूक ... साधारण गोलियों का कोई असर नहीं होता। ... बारूद की गाड़ी भी इसी प्रकार की भारी ... से ढँकी होती है। एक साधारण तोप की ... पर प्रायः ७२ गोले होते हैं। किसी तोप में ... धारण और किसी में बिना धूएँ की बारूद काम ... जाती है।

साधारणतः तोपों से दो प्रकार के गोले छोड़े ... हैं; एक शेल और दूसरा श्रैपनेल। शेल या ... गोले में लिडाइट नामक बारूद भरी होती ... प्रायः पिकरिक एसिड से बनती है। यह गोला ... स्थान पर गिर कर तब फटता है और प्रायः ... की दीवारें तोड़ने के काम में आता है। श्रैपनेल ... के ऊपरी भाग में लोहे का एक पतला पत्तर ... होता है और उसके भीतर छोटी छोटी गोलियाँ ... होती हैं जिनकी संख्या कई सौ तक होती है। ... गोला तोप से छूटने के कुछ निश्चित समय के ... आपसे आप फूट जाता है और उसमें की ... इधर उधर उड़ कर शत्रु का काम तमाम ... देती हैं। अँगरेजी गोलों में प्रायः २६४ और ... गोलों में ३०० गोलियाँ रहती हैं। सेना का संहार करने में इन गोलों से बहुत काम निकलता है पर इनसे दीवारें आदि नहीं तोड़ी जा सकतीं। यदि यह गोला किसी तोप पर जा पड़े तो वह तोप और उसके गोलंदाज सब नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि अधिकांश तोपों का उपयोग केवल किले, इमारतें और खाइयाँ तोड़ने के लिए ही होता है तथापि शत्रु-दल के विनाश और उसमें घबराहट उत्पन्न करने में भी इनसे बहुत सहायता मिलती है। अभी हाल में वर्त्तमान युद्ध छिड़ने के उपरांत ही फ्रांसीसियों और बाद में जर्मनों ने एक ऐसे गोले का आविष्कार किया है जिसमें से केवल जहरीला धूँआँ ही निकलता है। यह धूँआँ जिसे लगता है वह ज्यों का त्यों मर जाता है; उसके शरीर पर किसी प्रकार का घाव भी नहीं होने पाता। ऐसे गोलों के धूँएँ से मरे हुए अनेक ऐसे सिपाही देखे गए हैं जिन पर खाई में खड़े होकर बंदूक चलाने के समय ये गोले छोड़े गए थे और जो खड़े खड़े और हाथों में बंदूक लिए ही मर गए थे।

जहाजी तोपों का आकार प्रकार आदि इन तोपों से बहुत भिन्न होता है। ये तोपें साधारण मैदानी तोपों की अपेक्षा बहुत बड़ी होती हैं और इनकी नली भी बहुत लंबी होती है। नली को छोड़ कर इसका शेष साराभाग लोहे की बहुत मजबूत मोटी चद्दरों से ढँका होता है और भारी तोप एक स्थान पर इस प्रकार जड़ी होती है कि सामने के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर उसके गोले दाहिनी या बाईं ओर भी छूट सकें। तोपें जहाजों के चारों ओर रहती हैं। बड़ी तोपों से जहाजों के पेंदों में छेद करने और छोटी तोपों से उन पर के सब सामान और यंत्र आदि तोड़ने के काम लिए जाते हैं। साधारणतः जहाजों पर ६, ९, १२ और १३ इंचवाली तोपें * रक्खी जाती हैं। १२ इंचवाली तोप से ४२५ सेर का गोला निकलकर प्रति सेकेंड २७०० फुट के

* जिस तोप के मुँह का व्यास जितना बड़ा होता है और उसमें से जितने इंच व्यासवाला गोला निकल सकता है, वह उतनी ही इंचवाली तोप कही जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिसाब से चलता है। १३ इंचवाली तोपें अभी हाल में बनी ग्रैर जहाजों पर चढ़ाई गई हैं ग्रैर वर्त्तमान युद्ध में अँगरेजों ने एक बार उन्हें जहाजों से उतार कर स्थल में भी चलाया है। इस अवस्था में वे तोपें बहुत ही उपयोगी पाई गई हैं। अभी हाल में १७॥ इंच चैाड़े मुँह की तोपें भी तैयार हुई हैं जिनसे २० मन तक के गोले निकलते हैं। पर ये तोपें उतनी मजबूत नहीं होतीं ग्रैर उनके भीतरी कल-पुरजे बहुत ही थोड़े समय में बिगड़ जाते हैं। हवाई जहाजों पर जो तोपें चलाई जाती हैं उनका मुँह ऊपर की ग्रोर होता है। ये तोपें किले की दीवारों तथा अन्य ऊँचे स्थानों पर रक्खी रहती हैं ग्रैर उनका मुँह चारों ग्रोर घुमाया भी जा सकता है। युद्ध-स्थल में ऐसी (तथा साधारण तोपें भी) प्रायः बड़ी बड़ी मोटर गाड़ियों पर रख कर भेजी जाती हैं। ऐसी तोपें बहुत हाल में बनी हैं ग्रैर उनमें बहुत सुधार की आवश्यकता है। तथापि ये तोपें बहुत उपयोगी सिद्ध हो चुकी हैं। साधारणतः हवाई जहाज तीन मील तक ऊँचे उड़ते हैं पर इन तोपों का निशाना पाँच मील ऊँचे तक लग सकता है। यद्यपि इस तोप के गोले केवल साढ़े चार सेर भारी होते हैं तथापि इनकी भयंकरता बहुत बढ़ी चढ़ी है। एक तोप से प्रति मिनट तीस गोले निकलते हैं। तोप से निकलकर सौ गज ऊपर जाने के बाद इन गोलों में से अग्नि-शिखा उत्पन्न होती है जिससे हवाई जहाजों में आग लग जाती है।

जो तोपें हवाई जहाजों पर रक्खी जाती हैं ग्रैर जिनसे नीचे की ग्रोर गोले फेंके जाते हैं वह बहुत ही हलकी होती हैं। अधिकांश हवाई जहाजों पर हलकी मशीन गन या दूसरी छोटी तोपें ही रहती हैं। क्योंकि भारी बोझ लेकर हवाई जहाज तेजी से नहीं उड़ सकते। बंदूकें ग्रैर तोपें छोड़ने के सिवा हवाई जहाज पर से बम के गोले भी फेंके जाते हैं जिनका परिणाम बहुत भयंकर होता है।

इस अवसर पर तोपेंबनानेवाले संसार के सबसे बड़े कारखाने का कुछ वर्णन कर देना अप्रासंगिक न होगा। यह कारखाना प्रशिया (जर्म्मनी) के वेस्टफालिया प्रांत के एसेन नगर में है। इस कारखाने को लोग सारी दुनियाँ का मेगजीन कहते हैं। संसार के अधिकांश देशों में यहीं की तोपें ग्रैर युद्ध की दूसरी आवश्यक सामग्री की माँग रहती है। संसार की सबसे बड़ी ग्रैर भयंकर तोपें यहीं बनती हैं। नगर के चारों ग्रोर इस कारखाने की साठ बहुत बड़ी बड़ी फैक्टरियाँ हैं जिनमें सदा ४० हजार मजदूर ग्रैर ४०० अफसर काम करते हैं। इसके अतिरिक्त केवल इसी कारखाने के कच्चे माल के लिए जर्म्मनी में दस हजार मजदूर कोयले की खानें खोदते हैं। स्पेन तथा दूसरे स्थानों में इससे भी अधिक मजदूर इसी कारखाने के लिए काम करते हैं। बहुत सम्भव है कि वर्त्तमान युद्ध के समय इस कारखाने के कर्म्मचारियों की संख्या डयोढ़ी या दूनी हो गई हो क्योंकि जर्म्मनी ग्रैर उसके साथियों को लड़ाई के हथियारों की बहुत आवश्यकता है। यही कारखाना जर्म्मनी के प्राण समझा जाता है। जर्म्मनों का दृढ़ विश्वास है कि जर्म्मनी का अस्तित्व उसी समय तक है जब तक यह कारखाना चलता है; ग्रैर यह बात बहुत से अंशों में ठीक भी है। युद्ध की सामग्री के अतिरिक्त रेलों का ग्रैर आवश्यक सामान भी यहीं बनता है। बड़ी बड़ी मोटर गाड़ियाँ, जो लाखों सैनिकों को बहुत ही थोड़े समय में कहीं से कहीं पहुँचा देती हैं, यहीं बनती हैं। यही कारण है कि अभी से बहुत से लोग यह जानने के लिए उतावले हो रहे हैं कि अँगरेजी सेना उस कारखाने के कितने समीप पहुँची है ग्रैर उसे कब तक हस्तगत कर लेगी।

लड़ाई के जहाज। माल या यात्री आदि ले जानेवाले साधारण जहाजों की अपेक्षा लड़ाई के जहाजों की बनावट बहुत भिन्न होती है। आज कल के बड़े बड़े लड़ाई के जहाजों को जल पर तैरते हुए बड़े किले ही समझना चाहिए। जो बहुत बड़े जहाज केवल लड़ाई के लिए बनाए जाते हैं उनको अँगरेजी में बैटल् शिप (Battleship)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ip) कहते हैं। इस प्रकार के लड़ाई के बड़े बड़े जहाजों की लंबाई ४२५ से ६२५ फीट तक और चौड़ाई ७५ फीट से ९५ फीट तक होती है। ये जहाज ...से ३० हजार टन तक के होते हैं और इनमें १५ ...४५ हजार घोड़ों तक की ताकत होती है। इनके ...के भाग में ६ से १८ इंच तक के मोटे लोहे के ...जड़े होते हैं जो शत्रु के गोलों से उनकी रक्षा ...ते हैं। ऐसे जहाजों में २ से ५ तक टारपेडो छोड़ने ...नलियाँ लगी रहती हैं और उन पर छोटी बड़ी ...मिला कर ३०—३२ तक तोपें रहती हैं। ...धारणतः बहुत बड़े जहाजों पर चार सब से बड़ी ...ें (दो नीचे और दो उनके ऊपर कुछ पीछे हट ...र) आगे की ओर और चार ऐसी ही तोपें पीछे की ...र रहती हैं। शेष सब तोपें दोनों बगलों में ...ती हैं। इन तोपों की नली मात्र बाहर निकली ...ती है और उसका शेष सारा भाग (जिसमें गोलं-...ज़ों के खड़े होने की जगह भी सम्मिलत है) बहुत ...बूत मोटे लोहे के पत्तरों से मढ़ा रहता है। इन ...ों की नली आवश्यकता पड़ने पर दाहिनी ओर ...ं ओर भी घुमाई जा सकती है।

क्रूजर जहाज इन से कुछ छोटे होते हैं और ...पर भी पत्तर मढ़ा रहता है तथा तोपें चढ़ी ...ती हैं। यद्यपि इनका मुख्य उद्देश्य केवल शत्रु ...व्यापारी जहाजों पर आक्रमण करके उन्हें पकड़ ..., शत्रु के लड़ाई के अथवा दूसरे जहाजों का ...श करना और शत्रु के आक्रमण से अपने देश के ...पारी जहाजों को बचाना ही है, तथापि ये बड़े ...जों को लड़ाई में बहुत सहायता देते और स्वयं ...कहते हैं। अब तो केवल लड़ाई के काम के ...र ही अलग बनने लगे हैं जिन्हें बैटल क्रूजर (Battle Cruiser) कहते हैं। क्रूजर तीन प्रकार ...श्रेणियों के होते हैं। पहली श्रेणी के क्रूजरों का ...वाला और दूसरी श्रेणी के क्रूजरों का ऊपरी ...लोहे से मढ़ कर सुरक्षित किया जाता है। ...री और तीसरी श्रेणी के क्रूजरों में भारी हलके ...के अतिरिक्त यह भी भेद होता है कि दूसरी श्रेणी के क्रूजरों का ऊपरी भाग (Deck) ६ इंच मोटे लोहे के पत्तरों से और तीसरी श्रेणीवालों का डेक १½ इंच मोटे लोहे के पत्तरों से सुरक्षित किया जाता है। इनपर भी छोटी बड़ी २५–३० तोपें और टारपेडो चलाने की २–३ नलियाँ लगी होती हैं।

इसके अतिरिक्त एक प्रकार की साधारण बड़ी नावें होती हैं जिन्हें गन-बोट (Gun-Boat) कहते हैं। ये प्रायः १५० फुट लंबी और २५ फुट चौड़ी होती हैं और बहुत शीघ्रता से किनारे पर या मुहानों द्वारा नदियों के अंदर चली जाती हैं। इन पर २ से ६ तक तोपें होती हैं। इनका प्रधान कर्त्तव्य मछली पकड़नेवाली नावों और व्यापारी जहाजों की शत्रुओं से रक्षा करना है। जो नावें केवल टारपेडो चलाने के काम की होती हैं उन्हें टारपेडो बोट (Torpedoe Boat) और जो उन नावों को नष्ट करने या डुबा देने के अभिप्राय से बनाई जाती हैं उन्हें टारपेडो बोट डिस्ट्रायर (Torpedoe Boat Destroyer) कहते हैं।

इनके अतिरिक्त एक विशेष प्रकार की नावें होती हैं जो जल के ऊपर भी चल सकती हैं और जल के भीतर भी। इन्हें सब मरीन (Submarine) कहते हैं। ये नावें बहुत भारी होती हैं पर आवश्यकता पड़ने पर भीतर भरी हुई भारी हवा की सहायता से तुरंत गोता मार कर बहुत दूर तक जा सकती हैं। इन नावों के ऊपर तथा चारों ओर शीशे के ऐसे यंत्र लगे रहते हैं जिनसे समुद्र के अंदर आस पास और ऊपर नीचे के दृश्य बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। इसके अंदर जो लोग रहते हैं उनके सांस लेने के लिये दो बड़ी नलियाँ होती हैं जो नाव के समुद्र के अंदर रहने पर ऊपर समुद्र तल पर निकली रहती हैं। इसके अतिरिक्त एक अलग झंडी भी बाहर निकली रहती है जिससे समुद्र तल पर के लोगों को उसके अस्तित्व का पता चलता है। पर ये झंडियाँ बहुत छोटी होती हैं और केवल बहुत समीप रहनेवाले को ही दिखाई देती हैं। यदि किसी दुर्घटना के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण स्वच्छ वायु लानेवाली नलियाँ टूट भी जायँ तो भीतर भरी हुई हवा से ही उसमें रहनेवालों का घंटों काम चल सकता है। कुछ निश्चित घंटों के उपरांत हवा बदलने के लिए ऐसी नावों को समुद्र तल पर भी अवश्य आना पड़ता है। नाव की छत में एक द्वार होता है जो जमाई हुई हवा (Condensed air) के जोर से बंद रहता और आवश्यकता पड़ने पर तुरंत खोला जा सकता है। इस नाव के साथ कई तोपें भी होती हैं जिनका व्यवहार समुद्र तल पर आकर किया जाता है। ये तोपें चौकियों पर जड़ी होती हैं और नाव ज्योंही गोता मारना चाहती है त्योंही वह चौकी समेत अंदर चली जाती हैं और सब द्वार बंद हो जाते हैं। ये नावें समुद्र के अंदर ही अंदर जाकर शत्रु के जहाजों का पता लगाती और टारपेडो या अन्य साधनों से उन्हें डुबा देती हैं। इन सब मरीन नावों की भयंकरता से ही घबरा कर अँगरेजी नौविभाग के एक प्रधान अधिकारी सर परसी स्काट ने लंडन के टाइम्स में गत ५ जून को एक पत्र प्रकाशित करा के इस संबंध में अपनी सम्मति प्रकट की थी। सर परसी का मत है कि ये सब मरीन नावें बड़े बड़े ड्रेडनाट जहाजों को बहुत सरलता से नष्ट कर सकती हैं अतः अब भविष्य में बड़े बड़े युद्ध के जहाज न बनवा कर ऐसी सब मरीन नावें ही अधिकता से बनवानी चाहिएँ। उनका यह भी कथन है कि ऐसी नावें सब प्रकार से बहुत उपयोगी होंगी और उनसे खर्च में बहुत बड़ी किफायत होगी। सर परसी के इस लेख से विलायत में बहुत आंदोलन मचा था और राइट आनरेबुल मि० चर्चिल सरीखे बड़े बड़े अधिकारियों ने उस पर सम्मति-दान तथा खंडन मंडन आदि किया था।

कुछ गन-बोट तथा दूसरी प्रकार की नावें केवल माइनों आदि को समुद्र से हटाकर जहाजों का मार्ग साफ करने के लिये ही नियुक्त रहती हैं। ऐसी नावों को माइन स्वीपर (Mine sweeper) या ट्रालर (Trawler) कहते हैं।

कई बड़े बड़े लड़ाई के जहाजों के वर्ग को स्काडर्न कहते हैं। एक स्काडर्न में ३ से ८ तक बड़े जहाज, दो एक क्रूजर, दो एक साधारण जहाज और कुछ टारपेडो बोट डिस्ट्रायर तथा माइन स्वीपिंग नावें रहती हैं। कई स्काडर्नों के समूह को फ्लीट (Fleet) या बेड़ा कहते हैं।

माइन और टारपेडो।

माइन और टारपेडो ऐसे छोटे साधन हैं जिनकी सहायता से बहुत ही थोड़े व्यय और समय में शत्रु के भारी से भारी युद्ध के जहाज और क्रूजर आदि नष्ट किए जा सकते हैं। इन दोनों में भेद केवल यही है कि माइन स्थायी होती है और उसी दशा में किसी के जहाज को डुबा सकती है जब कि वह स्वयं संयोगवश चलता फिरता उसके पास पहुँच जाय। पर टारपेडो स्वयं चल कर शत्रु के जहाज के पास पहुँच जाता और उसे डुबा देता है। ये दोनों ही साधन जहाजों के लिये बड़े भयंकर होते हैं और उनसे रक्षित रहना यदि असंभव नहीं तो कम से कम दुस्साध्य अवश्य है।

माइन (Submarine Mine) केवल बारूद तथा अन्य विस्फोटक पदार्थों से भरा हुआ लोहे का पीपा है जो समुद्र में छोड़ दिया जाता है। इस पीपे के ऊपरी भाग में हवा भरी रहती है जिसके कारण वह डूबने नहीं पाता। मध्य भाग में तथा नीचे बारूद तथा अन्य भभकनेवाले पदार्थ होते हैं। इसके ऊपरी स्थान पर दो तीन कीलें भी बाहर निकली होती हैं जिनके जहाज के पेंदे से टकराते ही बारूद तथा दूसरे पदार्थ भभक उठते हैं और उनसे टकरानेवाला जहाज उसी स्थान पर डूब जाता है। इस पीपे के नीचे एक और दूसरा बक्स भी होता है जिसमें बाहर की ओर निकला हुआ एक लंगर और उसके अंदर की ओर लंगर में बँधी हुई रस्सी लपेटी होती है। माईन को समुद्र में छोड़ते ही उस बक्स में की रस्सी खुलने लगती है और लंगर समुद्र में जाकर बैठ जाता है। इस प्रकार वह माइन स्थायी हो जाती है और अपने समीप आनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाज को नष्ट करने के लिए तैयार रहती है। रहकर ही लंगर में कभी कभी तीन चार पीपे तक बँधे रहते हैं। यह माइन भी साधारणतः दो प्रकार की होती है। एक तो वह जो जहाज से टकराते ही तुरंत फटती और अपना काम कर जाती है और दूसरी वह जो केवल बिजली की सहायता से फट सकती है। ऐसी माइनों का तार द्वारा या तो चलानेवाले अपने जहाज से संबंध होता है और या समुद्र-तट के किसी किले या बन्दर आदि से। ऐसी माइनों से अपने जहाजों की तो रक्षा रहती है पर शत्रु के जहाजों का नाश हो जाता है। ग्रेटब्रिटेन में बंदरों और मुहानों की रक्षा का काम ऐसी ही माइनों से लिया जाता है। ऐसी माइनें कई रेखाओं में बिछा दी जाती हैं और जब शत्रु के जहाज दिखाई देते हैं तो उनमें से प्रत्येक में अलग अलग बिजली की शक्ति उत्पन्न कर दी जाती है जिसकी सहायता से वह फट जाती हैं। पर जिस समय बहुत कुहरा पड़ता हो उस समय ऐसी माइनों का कोई उपयोग नहीं हो सकता। इसी प्रकार की कुछ माइनें ऐसी भी होती हैं जिनमें अलग अलग विद्युत् पहुँचाने की आवश्यकता नहीं होती। उन सब माइनों के अंदर एक एक छोटी बैटरी होती है और किनारे की एक कुंजी से उन सब में बिजली पैदा हो जाती है। ऐसी माइनें बिजली भरी और चलती रहने पर भी उस समय तक नहीं फूटतीं जब तक कि कोई जहाज उनसे टक्कर न खाय। पर यदि ऐसी माइनों का वह तार जो उन्हें किनारे से संबद्ध रखता है, तोड़ दिया जाय तो फिर वे बिलकुल व्यर्थ हो जाती हैं। तीसरे प्रकार की माइनें, जिनमें विद्युत् नहीं होती और जो आप ही आप फूटती हैं, अपने तथा शत्रु के जहाज के लिए समान रूप से घातक होती हैं। जर्मनी साधारण व्यापार मार्गों में ऐसी ही असंख्य माइनें बिछाता है जिनसे तटस्थ देशों के भी बहुत से जहाज डूब जाते हैं। इसके सिवा अँगरेजी बेड़े के आक्रमण से अपने बेड़े को बचाने तथा बंदरों की रक्षा के लिए उसने मुहानों पर ऐसी ही असंख्य माइनें बिछा रक्खी हैं। हिंदी में ऐसी माइनों को सुरंग भी कहते हैं।

जहाजों को देखते देखते विध्वंस करनेवाला दूसरा साधन टारपेडो है। टारपेडो अनेक प्रकार के होते हैं पर सिद्धांत और कार्य्य आदि में सब एक से हैं। अतः केवल एक प्रकार के टारपेडो का कुछ विवरण दे देना ही पर्य्याप्त होगा।

यह टारपेडो सिगरेट के आकार की १५-२० फीट लंबी और १५-२० इंच व्यास की एक नली होती है जिसके अंदर चार या पाँच खाने होते हैं। सब से पहले खाने में जो आगे की ओर रहता है, बारूद तथा अन्य भभकनेवाले पदार्थ होते हैं। बीचवाले खाने में छोटे छोटे कल पुरजे होते हैं जिनकी सहायता से वह चलता है। दूसरे और चौथे खानों में जमाई हुई हवा भरी होती है और अंतिम या पाँचवें खाने में एक छोटा सा इंजन होता है जो भरी हुई जमी हवा के सहारे से चलता रहता है। आगे की ओर टकराने और भभकाने के लिये दो या चार कीलें लगी होती हैं और पीछे की ओर दो दो पंखों के दो चक्कर निकले होते हैं जो टारपेडो को गति देते हैं और जिन्हें भीतर का इंजन चलाता है। इसके साथ एक या दो तार भी होते हैं जो चलानेवाले आदमी के हाथ में दूसरे जहाज पर रहते हैं। इसके चलाने में बहुत योग्यता की आवश्यकता होती है और प्रत्येक सभ्य देश में इसे चलाने की विद्या सिखलाने के लिये पृथक् विद्यालय होते हैं। चलानेवाला इसे अपने इच्छानुसार सब ओर और सब अवस्थाओं में चला सकता है। टारपेडो पानी के अंदर चलता रहता है और उसके स्थान का पता देने के लिये समुद्र तल पर उसकी एक छोटी झंडी निकली रहती है। युद्ध के बड़े बड़े जहाजों, सबमरीनों, क्रूजरों तथा टारपेडो की नावों में ५-६ तक नालियाँ होती हैं जिन में से शत्रु के जहाज नष्ट करने के लिए टारपेडो छोड़े जाते हैं। इन नालियों को टारपेडो ट्यूब कहते हैं। पहले यह ट्यूब बिजली की सहायता से चलाया जाता था पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब केवल पानी के ज़ोर से चलता है। कभी कभी उसे चलाने के लिये पम्प से भी सहायता ली जाती है जिसे तीन चार आदमी चलाते हैं। इसी ट्यूब के बीच में से एक एक करके टारपेडो छोड़े जाते हैं। जिस जहाज़ के ट्यूब में से टारपेडो छोड़ा जाता है, टारपेडो उससे प्रायः कई सौ गज़ आगे आगे चलता है और जिस जहाज़ से टकराता है उसे तुरंत डुबा देता है। बड़े बड़े बंदरों के बाहरी मुहानों पर टारपेडो को रोकने के लिए लोहे के तारों के बहुत बड़े बड़े जाल समुद्र में लगा दिए जाते हैं। कभी कभी जहाज़ के पेंदे में भी कुछ गहराई तक चारों ओर इन सर्वनाशक यन्त्रों से बचने के लिए ऐसे ही जाल लगा दिए जाते हैं; पर ऐसे जालों के कारण जहाज़ों को हटने बढ़ने में बहुत कठिनता होती है।

हवाई जहाज़। हवाई जहाज़ों का आविष्कार बहुत हाल में हुआ है और अब तक युद्ध में उन से बहुत ही कम काम लिया गया। यद्यपि गत दो वर्षों के दक्षिणी युरोपवाले युद्धों में हवाई जहाज़ों का थोड़ा बहुत उपयोग हुआ था; पर वह उतने महत्त्व का नहीं है। वर्त्तमान युद्ध में हवाई जहाज़ों से अपेक्षाकृत अधिक काम लिया गया है और अभी भविष्य में उनसे और भी अधिक काम लिए जाने की संभावना है। जर्म्मनी यह बात भली भाँति जानता है कि जल-युद्ध में वह इंगलैंड का मुकाबला करने में नितांत असमर्थ है। उसे पूरा भरोसा या तो अपनी स्थल-सेना पर है और या हवाई जहाज़ों पर। इसलिए बहुत से लोगों को आशा है कि अभी वर्त्तमान युद्ध में आगे चल कर आकाश-युद्ध भी होंगे और उस समय हवाई जहाज़ों की उपयोगिता आदि जानने का अधिक अवसर मिलेगा।

युद्ध में शत्रु की शक्ति और अवस्था आदि जानना बहुत आवश्यक और उपयोगी होता है। पहले युद्धों में इस काम के लिए जासूस नियुक्त होते थे; पर अब अनेक कारणों से इस प्रकार पता लगाना संभव नहीं। पहले तो किसी जासूस का शत्रु-दल में पहुँचना ही मुशकिल है; और यदि वह किसी प्रकार पहुँच भी जाय तो वह वहाँ से जीता नहीं लौट सकता। पर हवाई जहाज़ की सहायता से शत्रु का पता बड़ी सुगमता से लग जाता है और प्रायः वे सब भेद लेकर सही सलामत लौट आते हैं। इसके सिवा मार्ग में अथवा अन्य स्थानों पर वे शत्रु की रसद और गोले बारूद आदि भी ऊपर से बम और तोप के गोले चला कर नष्ट कर देते हैं। बड़े बड़े नगरों तथा अफसरों के कम्पों के ऊपर भी गोले बरसा कर वे शत्रु की भारी हानि करते हैं।

हवाई जहाज़ के कामों में कठिनाइयां भी कम नहीं होतीं। बहुत ऊपर आकाश में रह कर वे शत्रु का पूरा पूरा भेद नहीं ले सकते और न वहाँ से गोलों का ठीक निशाना लगा सकते हैं। यदि वे नीचे उतर कर पृथिवी के समीप आ जायँ तो नीचे के गोलों और गोलियों की मार से वे वहीं गिर पड़ते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए जर्मनों ने अभी हाल में एक बहुत बढ़िया उपाय निकाला है। वे हवाई जहाज़ को तो आकाश में बहुत ऊपर रखते हैं और उस में से मज़बूत लोहे का एक चौकोर बक्स बहुत नीचे लटका देते हैं। उस बक्स में दो तीन आदमी रहते हैं जो शत्रु का भेद लेते और उन पर गोलों के अचूक निशाने लगाते हैं। कभी कभी बादल, वर्षा और आँधी आदि के कारण भी जहाज़ों को बहुत कठिनता होती है। बादलों से तो हवाई जहाज़ों की थोड़ी बहुत रक्षा भी हो जाती है क्योंकि पृथिवी पर की शत्रु सेना उसे देख नहीं सकती और इस प्रकार वह गोलों की बौछार से बचा रहता है। यदि उड़ते समय किसी हवाई जहाज़ का इंजन या दूसरे कल पुरज़े बिगड़ जायँ तो बड़ी कठिनता होती है। और यदि विवश हो कर पृथिवी पर उतरना पड़ता है और यदि वहाँ शत्रु सेना उपस्थित हुई तो वह किसी प्रकार नहीं बच सकता।

बहुत ऊँचाई पर और तेज़ उड़नेवाले जहाज़ों पर न तो गोलों का निशाना ही ठीक लग सकता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] निश्चय किया जा सकता है कि वह शत्रु का है अथवा अपना। प्रायः सभी हवाई जहाजों पर छोटी छोटी तोपें होती हैं जो सरलता से शत्रु की बहुत भारी हानि कर सकती हैं। यद्यपि पृथिवी पर की तोपें भी कभी हवाई जहाजों को बेकाम करके नीचे गिरा देती हैं तथापि वे उन्हें उतनी हानि नहीं पहुँचा सकतीं जितनी कि स्वयं हवाई ज़हाज पहुंचा सकते हैं। हवाई जहाजों का ठीक ठीक मुकाबला हवाई जहाज ही कर सकते हैं, दूसरी शक्ति नहीं। बहुत [illegible] जल और स्थल-सेनाएं उनकी बहुत ही कम हानि कर सकती हैं। इसी लिये लोगों का विश्वास है कि शीघ्र ही वह समय आ जायगा जब कि किसी [illegible] की पूरी पूरी रक्षा करने में केवल हवाई जहाज ही समर्थ हो सकेंगे।

हवाई जहाज छोटे बड़े अनेक प्रकार और आकार के होते हैं। जर्मनी के पास एक प्रकार के सब से बड़े हवाई जहाज हैं जो जेप्लिन कहलाते हैं। इन के आविष्कर्त्ता का नाम जेप्लिन था और वह जर्म्मन [illegible] के एक अधिकारी थे। जिस समय उन्होंने पहले पहल इस जहाज का आविष्कार किया था और वे परीक्षार्थ उस पर सवार होकर उड़े थे, उस समय उनके जमीन पर उतरने की प्रतीक्षा में स्वयं जर्मन सम्राट् डेढ़ घंटे तक बराबर खड़े रह गए थे! उनके उतरते ही सम्राट् उनसे हाथ मिला कर और अपने साथ गाड़ी पर सवार करा के ले गए [illegible]। अब तो उतने बड़े बड़े जहाज़ अनेक बड़े बड़े [illegible] के पास भी हो गए हैं और उनकी यह शक्ति भी बहुत कुछ बढ़ गई है। छोटे जहाज भी कई प्रकार के होते हैं जो दो या चार आदमियों और एक दो [illegible] को लेकर ही उड़ सकते हैं। बड़े बड़े जहाज [illegible] शक्ति-सम्पन्न होते हैं कि वे सैकड़ों मन का [illegible] लाद कर ८० मील प्रति घंटे के हिसाब से दो [illegible] मील तक का सफर कर सकते हैं! समुद्री जहाजों के साथ एक प्रकार के हवाई जहाज रहते हैं जो जमीन पर उतरने के सिवा समुद्र में भी साधारण जहाजों की भाँति तैरते हैं। इन जहाजों से प्रायः सब मरीन नावों को नष्ट करने का काम लिया जाता है।*

युद्ध के ढंग और सिद्धान्त।

आधुनिक युद्ध-विद्या भी संसार की किसी दूसरी विद्या या कला से उन्नति में किसी प्रकार कम नहीं है। यद्यपि जगत् दिन पर दिन अधिक सभ्य और सुशिक्षित होता जाता है और उसमें मानव-जाति की स्वाभाविक प्रीति और सहानुभूति की मात्रा दिन पर दिन अधिक होती जाती है तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि उसकी हिंसक वृत्ति भी दिन पर दिन अधिक बढ़ती जा रही है। यद्यपि घायल सैनिकों से साथ—चाहे वह अपने दल के हों चाहे शत्रु-दल के—बहुत ही उत्तम व्यवहार किया जाता है, तथापि सैनिकों को घायल और हत करने के साधन भी दिन पर दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। यह बात बहुत ठीक है कि शत्रु के नाश करने में कभी कोई उपाय उठा न रखना चाहिए; पर सैन्य-वृद्धि के साथ ही साथ शत्रुओं की संख्या की वृद्धि होने के कारण विनाश की मात्रा भी बहुत बढ़ जाती है जो स्वभावतः मनुष्य की हिंसक वृत्ति को बढ़ाने का कारण होती है। युद्ध छिड़ने पर केवल शत्रु की सेना का ही नाश नहीं किया जाता बल्कि सब प्रकार से उसका व्यापार, आय, शक्ति-वृद्धि का मार्ग, प्रतिष्ठा आदि सभी बातें नष्ट करने के उपाय किए जाते हैं। ये सब उपाय तो युद्ध-स्थल से बाहर किए जाते हैं; पर युद्ध-स्थल में भी शत्रु को छल कपट से नष्ट करना न्यायसंगत ही माना जाता है। आनेवाले शत्रु के मार्ग में गड्ढे खोद कर और ऊपर से उन्हें पत्तियों से ढक कर शत्रु को उस गड्ढे में मार गिराने की चेष्टा की जाती है। इसी प्रकार और भी अनेक उपाय हैं जो प्रायः सभी जातियाँ करती है। इसके अतिरिक्त युद्ध

* हवाई जहाज की बनावट और विशेष विवरण आदि के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र लेख फरवरी १९१५ की ना० प्र० पत्रिका में दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के कुछ विशेष सिद्धान्त ऐसे हैं जो प्रत्येक जाति या देशवालों के पृथक् पृथक् हैं। इस स्थान पर उन्हीं सिद्धान्तों का थोड़ा वर्णन किया जाता है।

जर्म्मन लोग अपनी सेना का अगला भाग बहुत लंबा और विस्तृत रखते और शत्रु को देखते ही उस पर एक दम से टूट पड़ते हैं। इस प्रकार वे शत्रु को चारों ओर से दबा लेने का प्रयत्न करते हैं। रिजर्व सेना वे कुछ कम ही रखते हैं। पर फ्रांसीसी सिद्धान्त इससे बहुत भिन्न है। आगे की ओर फ्रांसीसी सेना बहुत कम रहती है जिसके साथ कुछ तोपें भी होती हैं। यह सेना शत्रु से युद्ध छेड़ देती है, जिससे उसके पीछेवाली बड़ी सेना को यह बात मालूम हो जाती है कि शत्रु-सेना का कौन सा अंग वा भाग दुर्बल और कौन सा पुष्ट है। उस समय कमांडर यह निश्चय करता है कि शत्रु-सेना के मध्य भाग पर आक्रमण करके उसके दो टुकड़े कर दिए जायँ अथवा उसके दोनों पार्श्वों पर आक्रमण किया जाय। कमांडर के साथ बहुत बड़ी सेना रहती है जो तुरंत उसके आज्ञानुसार शत्रु पर आक्रमण कर देती है। जर्म्मनी का ढंग बिलकुल सादा है और उसमें केवल सैनिकों की संख्या की अधिकता और जी तोड़ कर लड़ने पर ही सफलता निर्भर करती है। पर फ्रांसीसी सेना में सेनापति की योग्यता पर विजय अवलंबित रहती है। दूसरी बात यह है कि जर्म्मन सेनापति जब एक बार सेना को आगे की ओर बढ़ा देता है तब फिर उसका अपनी सेना पर कोई अधिकार नहीं रह जाता, वह उसके अधीनस्थ अफसरों के हाथ में चली जाती है। न तो उसके पास कोई रिजर्व सेना ही रहती है और न वह शत्रु के विषय में कोई बहुत उपयुक्त समाचार पाकर भी अपनी सेना का रुख ही बदल सकता है। इसके सिवा जर्म्मन सेनापति को, यदि वह फ्रांसीसियों से लड़ रहा हो तो, शत्रु की रिजर्व सेना का सदा भय लगा रहता है। अँगरेजी सेनाओं में सेनापति सदा अपनी सेना के आगे की ओर और जर्म्मन सेनापति अपनी सेना के पीछे रहता है।

अँगरेजी सेना में साधारणतः युद्ध आरंभ होने से पहले सेनापति युद्ध-स्थल के नकशे तैयार कर लेते और उन्हें अपने अधीनस्थ अफसरों को भली भाँति समझा कर उनकी पृथक् पृथक् नियुक्ति का स्थान बतला देते हैं। इसके बाद कूच होता है और सेना का कुछ भाग आगे की ओर बढ़ता है। यदि शत्रु ने उसी समय गोलेबारी आरंभ कर दी तो वह सेना उसका उत्तर देने में असमर्थ हो जाती है पर तोपखाना तुरंत आगे बढ़ कर अपना कार्य्य आरंभ कर देता है। इसी बीच में सेना भी गोलों की बौछार सहती हुई शत्रु के सिर पर जा पहुँचती है। इसके बाद सेना छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त होकर सुर-क्षित स्थानों में ठहरती और वहीं से अपना कार्य आरंभ करती है। उसका पहला काम लड़ने के लिये खाइयाँ खोदना है। आगे बढ़ने के समय सेना का जो भाग नष्ट हुआ था उसकी वहीं पूर्त्ति होती है और उपयुक्त स्थानों पर तोपखाने लगा दिए जाते हैं। इसके बाद युद्ध आरंभ होता है और संध्या समय यदि शत्रु पीछे न हटा तो रात को लड़ने के लिए कुछ और नई सेना मँगवा ली जाती है। यदि शत्रु किसी स्थान पर तोपखाने लगाता या खाई खोदता हो तो गोलों की वर्षा करके उसकी सफलता में बाधा डाली जाती है। इसी प्रकार युद्ध कई दिन तक बराबर चलता रहता है।

संध्या समय, युद्ध समाप्त हो जाने पर पलटनों के अफसर युद्ध-स्थल में अपनी अपनी पलटनों में जाकर घायलों की सेवा शुश्रूषा का प्रबंध करते हैं। उनके साथ भोजन के अतिरिक्त मरहम पट्टी के सामान से भरी हुई गाड़ियाँ भी रहती हैं। युद्ध-स्थल में मरे हुए सैनिकों की निज की चीजें संग्रह की जाती हैं जो बाद में उनके संबंधियों के पास पहुँचा दी जाती हैं। यदि वह पलटन कई दिन से लड़ती हो और थकी हो तो उसके स्थान पर नई पलटन लाई जाती और पहलेवाली पलटन को आराम करने के लिए छुट्टी दी जाती है। और यदि वह अधिक थकी न हो तो केवल उसके हत और आहत सैनिकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ति कर दी जाती है। उसी समय सवेरे के फिर गोली-बारूद बाँटी जाती है और सैनिकों को, यदि संभव हुआ तो, कुछ आराम करने दिया जाता है। यदि सेना या तोपखाने आदि का स्थान बदलने की आवश्यकता हुई तो वह रात को ही बदला जाता है। तात्पर्य्य यह कि रात को ही सब तैयारियाँ हो जाती हैं और सवेरे सैनिक फिर ताजा होकर लड़ते हैं। यदि एक स्थान पर सेना हार जाय तो वह अपनी क्षति की पूर्त्ति करके दूसरे मौके पर शत्रु से जाकर भिड़ जाती है। इस अवसर पर यह बतलाने की कदाचित् कोई आवश्यकता न होगी कि जो सेना अपने शत्रु पर आक्रमण नहीं करती और केवल अपनी रक्षा के ही उपाय करती है वह अपना आधा कर्त्तव्य बिलकुल ही छोड़ देती है और अपने देश की सीमा नहीं बढ़ा सकती।

इधर कुछ दिनों से जल-युद्ध बहुत कम हुए हैं। संसार का अंतिम जल-युद्ध सन् १९०५ में रूस और जापान में हुआ था। अँगरेजी बेड़ों को तो गत १०० वर्षों से इधर, सौभाग्यवश कभी लड़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। तथापि संसार की सभी बड़ी बड़ी शक्तियों ने इस विद्या में बहुत अधिक उन्नति कर ली है। अनेक प्रकार के नए नए आविष्कार भी हुए हैं जिनकी पूरी पूरी परीक्षा न होने के कारण ही बहुत अधिक प्रशंसा की जाती है। अभी यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान युद्ध में भी उनकी परीक्षाओं का अवसर मिलेगा या नहीं और आगे चल कर कोई बड़ा जल-युद्ध होगा या नहीं। क्योंकि संसार भली भाँति जानता है कि जर्म्मन बेड़े में अँगरेजी बेड़े का मुकाबला करने की शक्ति नहीं है और वह सुरक्षित बंदरों में ही दबा पड़ा है। तथापि इस अवसर पर जल-युद्ध संबंधी कुछ मुख्य बातें बतला देना ही आवश्यक जान पड़ता है।

गत रूस-जापान युद्ध के बाद से बहुत भारी भारी जहाज तो बनने ही लग गए हैं; पर साथ ही यह जानते हुए भी की जापानियों की थोड़ी सी छोटी तोपों ने ही रूसियों की बहुसंख्यक भारी तोपों पर विजयप्राप्त की थी, बहुत भारी भारी तोपें बनाने में संसार की किसी महाशक्ति ने कमी नहीं की। जहाजी तोपें चलानेवाले विज्ञ दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। एक दल तो थोड़ी सी गोलाबारी करके ही शत्रु की भारी हानि करने का पक्षपाती है। वह बहुत भारी भारी मजबूत गोलों से शत्रु के जहाज के पेंदे में छेद करके उसे डुबाता अथवा बेकाम करता है। दूसरा दल बहुत हलकी चद्दरों से बने हुए हलके गोलों की निरंतर वर्षा करके शत्रु का जहाज निकम्मा कर देता है और तब समय पाकर निश्चिन्तता से उसे टारपेडो आदि की सहायता से डुबा देता है। जापानियों ने इसी प्रकार के गोले चला कर रूसी जहाजों के ऊपर के सब सामान नष्ट भ्रष्ट कर दिए थे। उनके गोलों से रूसी जहाजों के सब यंत्र टूट फूट जाते थे और सारे जहाज में धूआँ भर जाने के कारण उस पर के आदमी किसी कार्य्य के योग्य न रह जाते थे। रूसी जहाजों से जो चार फुट लंबे और एक फुट घेरेवाले बड़े बड़े गोले चलाए जाते थे उनमें देर भी लगती थी और उनसे काम भी अपेक्षाकृत कम होता था। अस्तु।

बहुत बड़े जहाजों में, विशेषतः युद्ध के समय, बहुत अधिक कोयला रखने की आवश्यकता है; पर छोटे जहाजों में कोयला कम रहने के कारण जगह की किफायत होती है जिससे उसमें बारूद और गोले अपेक्षाकृत अधिक रह सकते हैं। स्थल-युद्ध में आक्रमण करना अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है पर जल-युद्ध का अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अंग स्वरक्षा करना ही है। इस स्वरक्षा के लिए सब से अधिक आवश्यक यही है कि शत्रु को बंदरों से निकलने ही न दिया और उनका मुहाना रोक लिया जाय। यदि संयोगवश ऐसा न हो सके तो स्वदेश-तट की रक्षा के लिए कुछ जहाज छोड़ कर बाकी बेड़े समुद्रों में घूमते रहते हैं और शत्रु का सामना होते ही युद्ध छेड़ देते हैं। शत्रु के बंदरों का मुहाना रोक कर शेष समुद्र को सुरक्षित रखने में कई कठि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाइयाँ होती हैं। एक तो स्वदेश से दूर होने के कारण कोयला और रसद आदि पहुँचाने का विशेष प्रबंध करना पड़ता है और दूसरे शत्रु के टारपेडो और सब मरीन् के आक्रमणों से अपने जहाजों को बचाने के लिये बहुत सावधानी करनी पड़ती है। यदि शत्रु का कोई जहाज़ किसी प्रकार वहाँ से निकल भागे तो उसका पीछा करने के लिए अच्छे तेज क्रूज़रों की भी आवश्यकता होती है। जो राज्य अपने लिए रसद आदि का पूरा प्रबंध रखता है उसे अपने बंदरों के मुहाने रुक जाने के कारण अपेक्षाकृत थोड़ी हानि होती है। इसके सिवा उसे दूसरा लाभ यह होता है कि उसकी टारपेड़ो-नावें आदि तो जब चाहें तब आराम करती हैं और जब अवकाश और इच्छा हो तब शत्रु पर आक्रमण करने निकलती हैं। पर मुहाना रोकनेवाले बेड़े को सदा सचेत रहना पड़ता है। तूफान के समय मुहाना रोकनेवाले बेड़े को कोयला पाने में भी बड़ी कठिनता होती है।

समुद्र में रह कर शत्रु को तंग करने का एक और उपाय उसके बंदरों पर गोले बरसाना और उसके व्यापारी जहाजों को पकड़ लेना है। शत्रु का व्यापार नष्ट करना भी उतना ही उचित समझा जाता है जितना कि उसके बेड़े और बंदर नष्ट करना। पर इस उपाय से विजय प्राप्त करने में यथेष्ट सहायता नहीं मिलती। यद्यपि नेपोलियन के साथ युद्ध छिड़ने पर उसके जहाजों ने अँगरेजी व्यापार की बहुत भारी हानि की थी तथापि उससे नेपोलियन परास्त होने से बच न सका था।

युद्ध के नियमानुसार जिस प्रकार स्थल में अरक्षित गाँव और नगर आदि शत्रु के गोलों से सुरक्षित रहते हैं उसी प्रकार जल युद्ध में भी अरक्षित स्थानों पर गोले नहीं बरसाए जाते। पर हाँ, रेल, तार, गोदाम, जहाज बनने के कारखाने या बंदरों में पड़े हुए साधारण जहाज जिनसे शत्रु को किसी प्रकार का समाचार या सहायता मिलने की संभावना हो, अवश्य नष्ट कर दिए जाते हैं। इधर कुछ दिनों से युरोप में व्यापारी जहाजों पर भी तोपें रख कर उन्हें युद्ध के लिए उपयुक्त बनाने का रिवाज सा हो गया था। पर ऐसे अधिकांश पुराने जहाज स्वयं अपनी ही तोपों के धक्के नहीं सह सकते। उनका काम तमाम करने के लिए एक ही गोला बहुत है।

युद्ध पर कुछ विचार।

स्वभावतः यह प्रश्न उठ सकता है कि जिस युद्ध में लाखों जानें जाती हैं और करोड़ों रुपए व्यय होते हैं उसका मुख्य कारण क्या है और किस प्रकार सदा के लिए उसका अंत हो सकता है या नहीं। महाभारत के कारण भारत की जो हानि हुई वह वर्णनातीत है। पृथ्वीराज चौहान के निरंतर बहुत से युद्ध करते रहने के कारण ही भारत पर विदेशियों का आधिपत्य हुआ। अनेक युद्धों में उनके अधिकांश वीर मारे गए थे और जब विदेशियों को देश से रक्षित रखने की आवश्यकता हुई थी उससे पहले ही देश वीरों से खाली हो चुका था। नेपोलियनी युद्धों में सारे युरोप के प्रायः तीस लाख चुने हुए आदमी मारे गए थे। इन सब युद्धों में अनेक आवश्यक और अनेक अनावश्यक थे। प्राचीन काल में राजा लोग या तो अपने राज्य की सीमा बढ़ाने की इच्छा से या परस्पर के द्वेष के कारण उत्पन्न हुई मन की जलन बुझाने के लिए ही युद्ध किया करते थे। शत्रुओं से देश की रक्षा करने के लिए भी युद्ध की आवश्यकता होती थी। कभी कभी युद्ध से प्रजा के कष्टों और उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों का भी अंत हो जाता था। बहुत दिनों तक सांसारिक कार्य्यों में फँसे रह कर मानसिक झगड़ों से छुट्टी पाने तथा मनोविनोद के लिए भी युद्ध होता था। इन कारणों में से अनेक युक्ति युक्त और प्रशंसनीय कहे जा सकते हैं और अनेक अनुचित तथा निंदनीय।

अधिकांश युरोपीय राजनीतिज्ञों का मत है कि शांति की उत्पत्ति या रक्षा करने के लिए ही युद्ध होता है। कुछ लोग व्यवसायी राज्यों की अपे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...निक राज्यों को अच्छा समझते हैं और कुछ लोग ...द्ध को मनुष्य जाति के अनेक उत्तम गुणों का ...त्पादक मानते हैं।

युद्ध, किसी के मत से जीवन और उन्नति का ...हुत ही आवश्यक अंग है और किसी के कथना-...नुसार उसके अभाव में मानव-जाति और संसार ...की दशा बहुत ही बुरी हो जायगी। अधिकांश युरो-...पियन प्रजा का इन सिद्धांतों पर दृढ़ विश्वास है ...और यही कारण है कि इधर बीसियों वर्षों से सारा ...युरोप बराबर अपनी सामरिक शक्ति बढ़ाने के ...उद्योग में ही लगा रहा है। बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और ...लेखक वक्तृताएं दे कर तथा लेख लिख कर साम-...रिक शक्ति का महत्त्व सिद्ध करते रहे हैं और अपने ...अपने राज्यों को सेनाएं, तोपें और जहाज बढ़ाने ...के लिये उत्तेजित करते रहे हैं। वैज्ञानिकों ने भी ...अपनी ओर से उसमें सहायता देने में कोई कमी ...नहीं की। आज कल के बड़े बड़े भयंकर नाशक ...यंत्र उन्हीं की कृपा के फल हैं।

जहाँ सारे सभ्य राष्ट्र अपनी १५ आना शक्ति युद्ध ...के साधन बढ़ाने में व्यय करते रहे हैं वहाँ उनकी १ ...आना शक्ति उसे रोकने में भी लगी है। सब राष्ट्रों ...के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ प्रतिनिधियों की कई सभाएँ ...हो चुकी हैं और हालैंड देश के हेग नगर में एक ...शांति-मंदिर भी बन चुका है जो राष्ट्रों की पंचायती ...कचहरी का काम देता है। पर उसका उद्देश्य कहाँ ...तक सफल हो सका है, इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण ...वर्तमान युद्ध ही है। शांति के सभी बड़े बड़े पक्षपाती ...सारा प्रयत्न करके हार गए पर अंत में हुआ वही ...जिसकी तैयारी बहुत दिनों से सभी राष्ट्र कर रहे थे। ...अँगरेजी में नारमन एंजेल नामक एक अँगरेज ...सज्जन ने (The Great Illusion) नाम की एक ...पुस्तक लिखी है*। युरोप में वह पुस्तक बहुत अधि-कता से पढ़ी गई है और उसकी अधिकांश बातें युक्तिपूर्ण और सुपाठ्य होने के कारण थोड़ा सा लोकमत भी उसके पक्ष में हो गया है। वह पुस्तक बहुत बड़े बड़े शासकों और राजनीतिज्ञों के हाथों में पहुँच चुकी है और कुछ लोगों ने उसकी प्रशंसा भी की है। उसने कुछ अंशों में लोगों के विचारों का रुख भी बदल दिया है। सारी पुस्तक में आदि से अंत तक अनेक प्रकार की युक्तियाँ लड़ा कर और अनेक दृष्टियों से यही सिद्ध किया गया है कि कम से कम वर्त्तमान समय में युद्ध से हानि के अति-रिक्त और कोई फल नहीं निकलता। बहुत से लोगों को यह विश्वास है और अब तक की अनेक घटनाओं से यही प्रमाणित भी हुआ है कि ब्रिटिश साम्राज्य और उसके व्यापार की वृद्धि और रक्षा का प्रधान कारण उसकी जल सेना है और जर्म्मनी के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ने में भी वही बाधक है। पर एंजेल महाशय बड़ी युक्ति से इस मत का खंडन करते और कहते हैं कि ड्रेडनाटों का व्यापार से कोई संबंध नहीं। जिन देशों के पास कुछ भी जल-सेना नहीं है उनका व्यापार जन-संख्या की दृष्टि से लड़ाई के लिए तैयारी करनेवाले देशों की अपेक्षा बढ़ा चढ़ा है। पुस्तक लिखते समय नारमन एंजेल महाशय को तो यह भी विश्वास नहीं था कि इंगलैंड और जर्म्मनी का कभी युद्ध होगा। वह यही समझते थे कि दोनों की तैयारियाँ किसी निश्चित सीमा तक पहुँच कर रुक जायँगी और उनके पहले के किए हुए सारे प्रयत्न व्यर्थ जायँगे। बड़े बड़े प्रमाणों से उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि इंगलैंड के सारे उपनिवेश उसके लिये बोझ मात्र हैं और साम्राज्य के लिए उनका अभाव ही अधिक लाभदायक है। उनका विश्वास है कि यदि एक राज्य किसी दूसरे देश को जीत ले तो उससे विजेता की अपेक्षा विजित को ही अधिक लाभ होगा; आज कल किसी देश को केवल जीत लेने से ही वहाँ की संपत्ति पर अधिकार नहीं हो सकता; युद्ध से बलवानों की हानि और निर्बलों का लाभ होता है; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार परस्पर की साख

* बाबू रासदास गौड़ एम० ए० ने "भारी भ्रम" के ...से हिंदी में उसका अनुवाद किया है जो मि० एफ टी० ...न, व्यासाश्रम पुस्तकालय, मैलापुर (मदरास) के पते से ...सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ही निर्भर है और किसी देश या जाति की वास्तविक उन्नति और समृद्धि के लिए एक मात्र व्यापार ही यथेष्ट है—व्यापार-संबंधी लागडाँट ही आवश्यक, निर्दोष, युक्तिपूर्ण और उपयोगी है, सामरिक लागडाँट नहीं। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि मनुष्य की प्रकृति दिन पर दिन शांत होती जाती है और अब वह समय आ चला है जब कि युद्ध को छोड़ कर संसार केवल अपनी उन्नति में ही लगा रहे। विचार करने से अंतिम बात का अधिकांश बहुत ठीक भी मालूम होता है। पर इसका वास्तविक महत्त्व उसी समय है जब कि सारा संसार इन बातों को मान कर युद्ध से सदा के लिए विमुख हो जाय। युद्ध छिड़ जाने पर इन सब बातों का कोई मूल्य नहीं क्योंकि उस समय एंजेल महाशय के अनेक सिद्धांतों का आप ही आप खंडन हो जाता है। वर्त्तमान युद्ध में अँगरेजी जल-सेना ही अपने व्यापार और देश को सुरक्षित रखने और जर्म्मनी का व्यापार बंद करने तथा शेष संसार से उसका संबंध तोड़ देने में समर्थ हुई है; धन बल आदि से उपनिवेशों ने उसी की सहायता की है, जर्म्मनी को कहीं से एक पैसा या एक आदमी भी नहीं मिला। युद्ध उसी समय तक दोषपूर्ण है जब तक कि सारा संसार उससे दूर रहे: आरंभ होने पर भी उससे हानि ही अधिक होती है और लाभ कम। इस बात को सभी विचारवान् स्वीकार करेंगे कि संसार में किसी एक शक्ति का बहुत अधिक बढ़ जाना बड़ा ही अनर्थकारक होगा और संसार का कल्याण इसी में है कि उस शक्ति को दबाने योग्य एक और शक्ति भी उसके मुकाबले में तैयार रहे। जब तक कि एक राष्ट्र भी युद्ध को उपयोगी मान कर उसकी तैयारी करता रहेगा तब तक और शेष राष्ट्रों को भी उसी का अनुकरण करना पड़ेगा। यदि सारे संसार को किसी प्रकार यह शिक्षा दी जा सके कि "युद्ध नितान्त व्यर्थ और हानिकारक है" तो अवश्य बहुत कुछ फल-सिद्धि हो सकती है। पर युरोप की वर्त्तमान सभ्यता अब तक ऐसी शिक्षा देने में असमर्थ ही प्रमाणित हुई है। नारमन एंजेल के कथनानुसार "युद्ध, विजय और उनसे होनेवाले लाभ" भले ही "ऐतिहासिक धारणा मात्र" हों, पर उनसे संसार का पीछा छूटना बहुत ही कठिन है। यह बात बहुत ठीक है कि दिन पर दिन मानव-प्रकृति शांति-प्रिय होती जाती है और युद्ध आदि से वह दूर रहना चाहती है। पर साथ ही यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि अधिकांश एकतंत्री राष्ट्र (Absolute Monarchy) अपनी प्रजा को युद्ध-प्रिय बनाने में ही अपनी बहुत सी शक्ति लगाते हैं। प्रजातंत्र या नियंत्रित राज्यों का तत्संबंधी प्रयत्न कुछ कम होता है। लोग कहते हैं कि युद्ध के बाद शांति होती है और यह बात बहुत ठीक भी है। जो युद्ध जितना ही बड़ा और व्यापी होगा उससे उतनी ही अधिक शांति भी फैलेगी। यदि वर्त्तमान युद्ध कुछ अधिक समय तक चलता रहा तो अंत में वह आप ही लोगों की आँखें खोल देगा; नहीं तो सौ पचास वर्ष बाद संसार को इससे भी भयंकर एक युद्ध में सम्मिलित होना पड़ेगा जो संभवतः उसे बहुत दिनों के लिए शान्त बना देगा। उस समय तक लोगों की प्रकृति में भी बहुत बड़ा परिवर्त्तन हो जायगा और तब, बहुत संभव है, सारा संसार नारमन एंजेल के सिद्धांतों का अनुयायी हो जाय।*

—:०:—

* "युरोपीय महासंग्राम" नामक अप्रकाशित पुस्तक के पहले भाग का एक अंश।—लेखक, रामचन्द्र वर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी की शिक्षाप्रणाली।

(लेखक—श्रीयुक्त राधामोहन गोकुल जी।)

(२)

माध्यमिक शिक्षा।

(SECONDARY EDUCATION.)

हम प्रथम लेख में जर्मनी की प्रारंभिक शिक्षा पद्धति पर यथोचित विस्तार के साथ अपनी शक्ति वा योग्यता के अनुसार प्रकाश डाल चुके हैं। अब इस द्वितीयांश में हम वहाँ की माध्यमिक शिक्षा अर्थात् (Intermediate or Secondary Education) पर कुछ लिखने का साहस करते हैं, और आशा करते हैं कि इससे भी हमारे देश के विद्यानुरागी सज्जन यथासंभव लाभ उठाएँगे; विशेषतः वे विद्यानुरागी सज्जन जिनके हाथ में गैर सरकारी पाठशालाएँ हैं और शिक्षा की डोर जिनके हाथों में है।

जर्मनी में जिस प्रकार से प्रारंभिक शिक्षा के स्कूल साधारण (General) और असाधारण (Departmental) हैं, उसी तरह से माध्यमिक शिक्षा के स्कूल भी दो प्रकार के हैं। इन शिक्षालयों के उद्देश्य दो हैं, एक तो बालक बालिकाओं को विविध व्यवसायों के लिए प्रारंभिक शिक्षा देना, दूसरे उन्हें विश्व-विद्यालय की उच्च श्रेणी की शिक्षा के लिए तैयार करना।

अ—लड़कों की उच्च पाठशालाएँ।

ये पाठशालाएँ अभ्यासभूमि, वास्तविक अभ्यासभूमि और वास्तविक उच्च पाठशालाएँ कहलाती हैं, जिनमें लड़कों को माध्यमिक शिक्षा देना अभिप्रेत होता है; किंतु कुछ थोड़ी सी पाठशालाएँ ऐसी भी हैं जिनमें लड़कियाँ भी ली जाती हैं। ये पिछली पाठशालाएँ (Federate States) सम्मिलित राज्यों की हैं। इनके सिवा अनेक अभ्यास भूमि, वास्तविक अभ्यासभूमि वा वास्तविक पाठशालाएँ भी हैं। इन पाठशालाओं में केवल ६ कक्षाएँ होती हैं और उनकी अंतिम परीक्षा से सर्वथा छात्रों को यह अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि वे विश्वविद्यालय में भरती हो सकें। जर्मन लोग अपने बच्चों को प्रायः इन पाठशालाओं में पूरी शिक्षा देकर हटा लेते हैं, क्योंकि बिना इतनी शिक्षा के कोई जर्मन शिक्षित नहीं समझा जाता। जो लोग माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं करते उन्हें सेना में ३ वर्ष तक प्राइवेट (private) अर्थात् सिपाही का काम करना पड़ता है और वे उच्च अधिकार-प्राप्त सैनिक (जनरल आदि) नहीं हो सकते। पाश्चात्य देशों में सैनिक उद्धतन कर्म्मचारियों के दो भेद हैं—एक उच्च (commissioned) और दूसरे अनुच्च (non-commissioned)। पर जो लोग उपर्युक्त तीन प्रकार के स्कूलों की अंतिम परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं उन्हें केवल एक वर्ष सेना में सेवा करनी पड़ती है और वे ऊँचे से ऊँचे सैनिक पद प्राप्त करने के अधिकारी भी होते हैं।

यदि हम पिछली अभ्यास-भूमियों वा वास्तविक पाठशालाओं को छोड़ कर पहले की कही हुई अभ्यास भूमियों वा उच्च वास्तविक पाठशालाओं पर दृष्टि डालते हैं तो इन सब के उद्देश्य एक नहीं पाते; यद्यपि इनकी महत्ता में कोई तारतम्य नहीं है परंतु इनके उद्देश्य में अन्तर हैं। विविध प्रकार की स्वाभाविक योग्यतावाले छात्रों को उनके स्वभाव के ही अनुकूल शिक्षा देना उनका उद्देश्य है। गत शताब्दी के अंत तक अभ्यासभूमि ही लातिन ग्रीक आदि की शिक्षा का केंद्र समझी जाती थी और उसी को विश्वविद्यालयों में अपने छात्रों को भेजने का अधिकार था, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वास्तविक स्कूल' जहाँ कि लातिन वा ग्रीक भाषाओं के बदले नवीन भाषाएँ और व्यावहारिक विज्ञान सिखाए जाते थे छोटी कक्षा के स्कूल समझे जाते थे। परंतु अभ्यास भूमियों की यह इजारदारी सन् १८७१ में टूट गई जब कि कई राज्य मिल कर एक बड़ा शक्ति-संपन्न साम्राज्य बन गया। तब तो इस बात की प्रबल अभिलाषा उत्पन्न हुई कि वह भी विद्या, कला, कौशल और वणिज व्यवसाय में दूसरी शक्तियों के बराबर हो जाय। सुतरां सन् १९०० के नवंबर मास में एक राजाज्ञा निकली। उसके अनुसार अभ्यासभूमि, वास्तविक अभ्यासभूमि और स्कूल तीनों ही शिक्षा-भवन एक समान अधिकारवाले बना दिए गए। तीनों के ही छात्रों के अधिकार बराबर हो गए। यह राजाज्ञा जर्मनी की माध्यम शिक्षाधिकार का अधिकारपत्र मेगनाचार्टा समझी जाती है। अब इन तीनों स्कूलों में नौ कक्षाएँ होती हैं अर्थात् उच्च प्रथमा, निम्न प्रथमा, उच्च द्वितीया, निम्न द्वितीया, उच्च तृतीया, तृतीया, निम्न चतुर्थ कक्षा, पंचम कक्षा वा षष्ठ कक्षा। इनमें केवल बालक लिए जाते हैं सो भी वे जो नौ वर्ष से कम उमर के न हों अर्थात् वे बालक जिन्होंने कम से कम ३ वर्ष प्रारंभिक शिक्षा पाई हो। अभ्यासभूमि में अब भी लातिन वा ग्रीक भाषाओं की शिक्षा प्रधान है। वास्तविक अभ्यासभूमि में इन भाषाओं में कम समय लगा कर अँगरेजी, फरासीसी भाषाओं और गणित वा प्राकृत विज्ञानों को अधिक समय दिया जाता है, और वास्तविक स्कूलों में लातिन वा ग्रीक को एकदम छोड़ कर छात्रों को प्राचीन साहित्य-भांडार भाषांतर द्वारा हृदयस्थ कराया जाता है। इनमें अधिकतर समय अँगरेजी वा फरासीसी भाषा, गणित, प्राकृत विज्ञान वा चितेरी (Drawing) में लगाया जाता है। हम नीचे एक तालिका देते हैं जिससे जर्मन साम्राज्य के प्रशिया, बवेरिया और सेक्सनी के राज्यों के माध्यामिक हाई स्कूलों का पाठक्रम स्पष्ट जाना जा सकेगा।

बवेरिया वा सेक्सनी की अभ्यास भूमियाँ।

विषय	कक्षाएँ								
	९	८	७	६	५	४	३	२	[illegible]
	घंटे प्रति सप्ताह								
धर्म्म	२	२	२	२	२	२	२	२	२
जर्मन	५	४	३	२	२	१	२	३	४
लातिन	८	८	८	८	८	७	७	६	६
ग्रीक	०	०	०	६	६	६	६	६	[illegible]
फ्रेंच	०	०	०	०	०	३	३	२	[illegible]
इतिहास	१	१	२	२	२	२	२	३	[illegible]
भूगोल	२	२	२	२	१	०	०	०	[illegible]
गणित	३	३	३	२	४	४	३	३	[illegible]
भौतिकतत्त्वरसायन	१	१	१	१	१	२	२	२	[illegible]
अलंकृत लिपि	२	१	१	०	०	०	०	०	[illegible]
चितेरी	०	२	२	२	२	२	२	२	[illegible]
व्यायाम	२	२	२	२	२	२	२	२	[illegible]
वाद्य	२	२	२	२	२	२	२	२	[illegible]
Stenography = संकेत—लिपि शोर्टहैंड	०	०	०	०	०	२	२	२	[illegible]
Hebrew इबरानी	०	०	०	०	०	२	२	२	[illegible]
अँगरेजी	०	०	०	०	०	२	२	२	[illegible]
इतालियन भाषा	०	०	०	०	०	२	२	२	[illegible]
जोड़	२८	२८	२८	३१	३२	४२	४१	४१	[illegible]

उक्त तालिका के अंतिम ४ विषय लोग चाहें तो पढ़ें या न भी पढ़ें। हेनोवर प्रांत में अँगरेजी अनिवार्य है। यही बात हैंबर्ग, लूबेक, रोस्टोक, ओल्डिनबर्ग और अर्नस्टेट में है। इसके सिवा बहुत से स्कूलों में उच्च कक्षा के छात्रों को स्वास्थ्य, सफाई वा [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...से स्वास्थ्य-संबंधी व्याख्यानों के सुनने के लिए ...स्थित होना पड़ता है।

...शिया के उच्च वास्तविक स्कूल का पाठक्रम यह है:—

विषय	कक्षाएँ								
	९	८	७	६	५	४	३	२	१
	घंटे प्रति सप्ताह								
...र्म	२	२	२	२	२	२	२	२	२
...न	४	३	४	३	३	३	४	४	४
...च	६	६	६	६	६	५	४	४	४
...ारेजी	०	०	०	५	४	४	४	४	४
...तिहास	१	१	३	२	२	२	३	३	३
...गोल	२	२	२	२	२	१	१	१	१
...णित	५	५	६	६	५	५	५	५	५
...कृत विज्ञानसमूह	२	२	२	२	४	६	६	६	६
...कृतलिपि	२	२	२	०	०	०	०	०	०
...री	३	२	२	२	२	२	२	२	२
...ार	३	३	३	३	३	३	३	३	३
...ादि	२	२	२	२	२	२	२	२	२
...	३२	३०	३४	३५	३५	३५	३६	३६	३६

...प्राकृत विज्ञानों में भौतिक तत्व, रसायन, खनिज, ...व और वनस्पति विद्या शामिल है। उच्च स्कूलों ...व्यावहारिक अभ्यास भी श्रमालयों (Laborato-...) में करना पड़ता है। उच्चतम कक्षाओं में ...के बी० एस सी० तक की पढ़ाई हो जाती है ...छात्रों को स्वतंत्र खोजों, अन्वेषणों वा आवि-...ों का अवसर दिया जाता है। जो छात्र चाहे ...काश लेकर एक दो दिन घर पर भी अपने प्रिय ...पर खोज का काम करे, कोई रोक नहीं है। ...प्रायः व्यावहारिक होती है न कि पुस्तकीय।

छात्रलोग शिक्षकों के साथ (वासिल नगर के स्कूलों की भाँति) जा जाकर भूवृत्त वा वानस्पति शास्त्र-संबंधी खोजें करते हैं। प्रायः सभी छात्रों के पास धातु, हड्डी, पैाधों आदि का एक अच्छा संग्रह रहता है, अच्छी अच्छी इमारतों के नक़शे होते हैं जिन्हें छात्र अपने शिक्षकों के साथ जाकर दार्शनिक दृष्टि से देखते हैं। विज्ञान वा कला की उन्नति के लिए छात्रों की अलग समितियाँ वा सभाएं भी होती हैं। उत्तम उत्तम प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं के नाटक होते हैं, विशेषतः वमार नामक स्थान में जहाँ कि दूर दूर के छात्र आकर उपस्थित होते हैं और योग-दान करते हैं।

लड़के सदा स्वतंत्र, अभ्यासी, मननशील जीवन के विद्यार्थी होने की कामना किया करते हैं, सदा पुस्तक के कीड़े नहीं बने रहना चाहते। आप किसी बच्चे से प्रश्न करें कि तुम स्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् क्या करोगे?" तो वह उत्तर देगा, "मैं स्वतंत्र अभ्यासी विद्यार्थी बनूँगा" और लिप-जिक वर्जेना प्रभृति स्थानों का नाम लेगा जिनमें मातृभूमि के ऐसे बड़े बड़े विश्वविद्यालय हैं जिनका लक्ष्य केवल स्वतंत्र जीवन, गहरा ज्ञान, और आनन्द है।

इन स्कूलों के शिक्षकगण विश्वविद्यालय के उत्तीर्ण व्यक्ति होते हैं। उनका वेतन भी बहुत ज्यादः नहीं होता। ३ से ४-५ वर्ष विश्वविद्यालय में पढ़ कर एक दो वर्ष सहायक शिक्षक रहना पड़ता है तब उसे प्रधान शिक्षक की उपाधि मिलती है। फिर कुछ वर्ष उत्तम काम करने के उपरांत वह अध्यापक (Professor) हो सकता है। प्रोफ़ेसर अर्थात् महा-महोपाध्याय की उपाधि राजा के द्वारा प्रदान की जाती है।

प्रुशिया में ७१० माध्यमिक उच्च स्कूल हैं जिनमें १०४०० शिक्षक हैं और ७ करोड़ मार्क (= १ रुपया) का व्यय है। इसमें से दो या डेढ़ करोड़ राजकोष से, सवा करोड़ म्युनिस्पेलिटी से और २० लाख लोगों के दान से और शेष फीस आदि से आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़कियों के हाई स्कूल।

सन् १८७२ से लड़कियों के स्कूलों पर भी विशेष ध्यान दिया गया है और अब ये स्कूल लड़कों की अभ्यास-भूमियों वा वास्तविक स्कूलों की समता करते हैं। १९०९ से विश्वविद्यालयों में स्त्रियाँ भी ली जाती हैं। पहले लड़कियों को शिक्षा देने के लिए ऐसे स्कूल न थे जिनमें उन्हें विज्ञ व्यवसायों के योग्य बनाया जाता इसलिए एकेडेमीज स्थापित हुई। इन एकेडेमीज में लड़कों के उच्च स्कूलों की भाँति तीन भेद किए गए अर्थात् अभ्यासभूमि, वास्तविक अभ्यास-भूमि और वास्तविक हाई स्कूल। लड़कियों की अवस्था जब कम से कम १३ वर्ष की हो तब वे अभ्यास भूमियों में प्रविष्ट हों और जब १४ वर्ष की हो तब वास्तविक स्कूलों में प्रविष्ट हों।

लड़कियों का पाठक्रम यद्यपि लड़कों से सरल है और वनितोचित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है तथापि इनकी शिक्षा भारत की बी० ए० कक्षा से कम नहीं है।

बालक और बालिकाओं को अमेरिका में एक साथ शिक्षा दी जाती है, यहाँ तक कि माध्यमिक उच्च स्कूलों में ९५ प्रति १०० युक्त छात्र छात्राएं होती हैं। इसी प्रणाली का अनुकरण जर्मनी भी कर चला है और दिनों दिन इस प्रथा को बढ़ाता जाता है।

लड़कियों के पृथक स्कूलों में छात्राओं को वनितोचित काम अधिक सिखाया जाता है, उन्हें गार्हस्थ्य धर्म्म कर्म्म का महत्त्व हृदयंगम कराया जाता है, यही कारण है कि जर्मनी की स्त्रियाँ गृहकार्य्यों में जितनी निपुण होती हैं उतनी इंगलैंड और फ्रांस की कदापि नहीं होतीं। जर्मनी की गृहस्थी का खर्च अँगरेजों से कहीं कम होता है, यद्यपि वे अँगरेजों से खाने पहनने में कम नहीं बल्कि ज्यादः हैं। इसका कारण यही है कि जर्मनी की स्त्रियाँ अपने घरों का उत्तम प्रबंध कर सकती हैं और अँगरेज स्त्रियाँ धन बिगाड़ती हैं। गृहस्थी के कामों में वे उदासीन और असावधान होती हैं। जर्मनी में स्त्रि[याँ] इंगलैंडीय स्त्रियों की तरह अपनी संतति की ओर असावधान नहीं पाई जातीं। जर्मनी की उच्च क[न्या] पाठशालाएँ पढ़ाई में यद्यपि इंगलैंड, फ्रांस, स्वि[ट्ज]रलैंड वा डेनमार्क से बहुत पीछे हैं परंतु शि[क्षा] अनिवार्य्य होने के कारण वहाँ की स्त्रियाँ कुपढ़ [नहीं] हैं, न गृह कार्य्यों में युरोप के अन्य स्थानों [की] स्त्रियों की भाँति बुरी वा नादान हैं। पढ़ी लि[खी] स्त्रियों का औसत भी जर्मनी का ही बढ़ा हु[आ] है। जर्मन कन्या-पाठशालाओं में केवल यही ब[ड़ा] दोष है कि उनमें स्त्रियों के स्वभाव के अनुसा[र] शिक्षा देने पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता, इस[का] संभवतः यह मतलब होगा कि जर्मन स्त्रियों को [भी] सिपाही बनाना चाहते होंगे, जैसा कि वर्तमान यु[द्ध] की कई गाथाओं से प्रकट होता है।

अभी तक जर्मनी कुछ कुछ भारत की भाँ[ति] अपनी स्त्रियों को देखता है और बिलकुल मर्द [नहीं] बनाता, पर यह बात दिनों दिन घटती जाती है। फिर जर्मनी में समस्त कन्याशिक्षा-भवन पुरुषों [के] ही हाथ में हैं, यह भी एक दोष है। स्त्रियों के का[म] उनकी अभिरुचि, उनकी आवश्यकता को जितना [स्त्री] जान सकती है उतना पुरुष नहीं जान सकता। [इस] से जर्मनी की कन्याएँ एक प्रकार से गृह में मा[तृ]भाव नहीं पातीं और यह एक बड़ा भारी अभाव है। इंगलैंड में यह बात नहीं है वहाँ स्त्री अपनी जाति [को] आप सुध लेती है, और या स्त्री पुरुष मिलकर का[म] करते हैं। इस बात में हम अवश्य जर्मनी की अपेक्षा इंगलैंड की ही सराहना करेंगे।

नेपोलियन के समय से फ्रांस का स्त्री-शिक्षा [में] उच्च-स्थान रहा है। १७ वीं शताब्दि में प[ादरी] फलेना वा मेंटेनां, प्रभृति व्यक्तियों ने इस संबंध [में] बड़ा काम किया था। यहां भी कन्याशिक्षा भ[वनों] में स्त्रियों का ही हाथ प्रधान है।

सार यह की जर्मनी शिक्षा में भूमंडल की सम[स्त] जातियों में शिरोमणि है; तो भी उसे अभी अ[पनी] पुत्रियों की शिक्षा में से अनेक त्रुटियों को निका[लना है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बहु]त बड़ी जरूरत है। परंतु यह जरूरत वहाँ ही [है] जहाँ तक वह विलासिनी, फजूल खर्च और [...]लवान बन कर अपना स्त्रीत्व न नष्ट करें।
[...]सिवा अभागे भारत के हम जहाँ देखते हैं वहाँ ही [शिक्षा] का प्रकाश सराहनीय मिलता है। डेनमार्क, [...]सलैंड, स्वीटजरलैंड तो हैं ही पर रूस, आस्ट्रिया, [आ]दि भी शिक्षा के संबंध में भारत से अधिक बुरे [न]हीं है।

(ख) असाधरण माध्यमिक शिक्षालय।

[...]ये वे पाठशालाएँ हैं जिनमें पारिभाषिक, [वाणि]ज्य वा कृषिविषय, और कलासंबंधी विद्याएँ [पढ़]ाई जाती हैं, इसी विभाग के अंतर्गत लड़की [ल]ड़कों की प्रारंभिक शिक्षा के लिए शिक्षक वा [शि]क्षिकाओं के भी तैयार करने के स्कूल हैं। इन [शाला]ओं में भी वही छात्र लिए जाते हैं जिन्होंने किसी '[वास्]तविक पाठशाला' की अंतिम परीक्षा पास की हो, [वा] अभ्यासभूमि की यही परीक्षा पास की हो, [अथ]वा किसी वास्तविक, उच्च वास्तविक पाठशाला या [अभ्]यास भूमि में तीसरी श्रेणी तक शिक्षा पाई हो।

पारिभाषिक पाठशालाएँ।

जर्मनी में उच्चतर पारिभाषिक स्कूल ४० हैं, [जिन]में यंत्रविद्या, विद्युत्विद्या, रसायनविद्या और [शिल्प]कर्म (Civil Engineering) सिखाया जाता [है औ]र १३ पाठशालाएँ तंतुवाय (Textile Indus[try]) उद्योग की है। प्रुशिया में भी सरकारी पाठ[शाल]ाएँ हैं जिनमें यंत्रकला सिखाई जाती है। यह [...]ना प्रभृति अनेक स्थानों में हैं। इनमें माध्यमिक [...] स्कूल की तीसरी कक्षा तक पढ़े छात्र लिए [जाते] हैं और शर्त यह है कि इन छात्रों ने कम से कम दो [वर्ष] तक किसी कारखाने में व्यावहारिक अभ्यास प्राप्त [किय]ा हो। ऐसे स्कूल पहले पहल सन् १८१७ में [स्थाप]ित हुए थे, जिनका उद्देश्य था नकशा खींचनेवाले [...]सम प्रबंधकर्त्ता वा मुनीम तैयार करना। इनमें से जो छात्र अंतिम परीक्षोत्तीर्ण होकर निकलता है वह राजा के जलसैन्य विभाग में पारिभाषिक-मंत्री का पद पाने के योग्य हो जाता है अथवा रेल्वे विभाग में इंजिनियर आदि उच्च कर्मचारी बन सकता है। इनकी पढ़ाई में अभ्यास के अतिरिक्त दो वर्ष में ४२ व्याख्यान (Lectures) प्रति सप्ताह हुआ करते हैं।

प्रुशिया के ७ तंतुवाय (Textile) शालाओं को प्रति वर्ष राज-कोष से तीन लाख मार्क (=एक रुपया) की सहायता मिलती है। इनमें नमूनों का विश्लेषण (Analysis), नया नमूना तैयार करना (designing), रासायनिक विश्लेषण, बुनने की कलों का यंत्रज्ञान, कल की इंजीनियरी, कातना, बुनना, रँगना व कारखाने बनवाना आदि समस्त आवश्यक बातें सिखाई जाती हैं। इन स्कूलों में से प्रसिद्धतम क्रेफेल्ड की तन्तुवाय-शाला है। इनमें से प्रत्येक शाला या तो व्यक्ति विशेष की होती हैं या व्यवसाय समवायों की (Chamber of Commerce की) परंतु परीक्षाएँ और सब प्रकार के नियम बर्लिन के वणिज-अमात्य के अधीन होते हैं।

बेवेरिया, सेक्सोनी, वर्टमबर्ग, हेम्बर्ग, ब्रीमेन आदि स्थानो में एक न एक बड़ा कलाकौशल सिखानेवाला प्रधान वा प्रसिद्ध शिक्षा-भवन सर्वत्र मौजूद है। किसी में कोई बात किसी में कोई बात पढ़ाई जाती है, परंतु कोई ऐसा विषय नहीं है जिसकी पाठशाला जर्मनी साम्राज्य में न हो।

इनमें से प्रायः सभी स्कूलों में ३½ वर्ष की शिक्षा है और छः छः मास की बैठक होती है। यहाँ अनेक विदेशी पढ़ने आते हैं परन्तु देशी लोगों की संख्या ही सबसे अधिक रहती है। पहली बैठक में बीजगणित वा विश्लेषण, विश्लेषक वा निर्देशक रेखागणित (समिति), सांकेतिक लेख, त्रिकोण, भौतिक तत्त्व, कारखाना बनाना बतलाया जाता है। भौतिक तत्त्व श्रमालय में भी काम करना पड़ता है। साथ ही सब प्रकार की यंत्रकला, यंत्रों का नकशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाना, राष्ट्रीय संपत्ति शास्त्र, भूवृत्त, फ़ोटोग्राफ़ी आदि विषय भी सिखाए जाते हैं ।

इसी प्रकार सब बैठकों में विविध विद्याओं वा कलाओं की शिक्षा होती है, जिनका नाम हम नीचे केवल इस अभिप्राय से देते हैं कि हमारे देशवासी कम से कम उन अनेक विद्याओं के नाम तो जान लें जो जर्मनी में पढ़ाई जाती हैं ।

बिना औज़ार की चित्रकारी, विविध देशों की प्राचीन वा नवीन भाषाओं का साहित्य, गणित जहाँ तक संसार ने आज तक खोज पाया है, सब प्रकार की ढलाई का काम, व्यापार विद्या सब प्रकार की और उनके सार्वभौम नियम, धातु विद्या, साँचे बनाना, कला इतिहास, स्वास्थ्य रक्षा, देश इतिहास, पारिभाषिक गणित, लेखा जोखा, व्यवहार का काम, अंजन वा उसके कल पुर्जे बनाना, बड़े बड़े घर, पुल, गढ़ आदि बनाना, गति स्थिति शास्त्र पराकाष्ठा तक, नीति, समाज वा राजनीति विद्याएँ, जल बल, भाप बल, अग्नि बल, बिजली बल, गैस, भाप बल, शासन विधि (jurisprudence) धरती पहाड़ नापना वा निरीक्षण करना, सर्व सब प्रकार की, मोटर, पंप, हैड्रालिक मेशीन बनाना, रेल, तार आदि का बनाना और इन सब विद्याओंकी शाखाओं का अलग अलग पांडित्य प्राप्त करना ।

हमने बहुत विद्याओं के नाम छोड़ दिए हैं क्योंकि कुछ नाम ऊपर आ चुके हैं और कुछ नाम ऐसे हैं जिन्हें हिंदी में बतलाना कठिन है जब तक लंबी लंबी परिभाषा न दें ।

शिक्षकों के तैयार करने के शिक्षालयों में शिक्षा का जैसा उत्तम ढंग है ऐसा शायद ही संसार में कहीं दूसरी जगह हो । इन शिक्षक शिक्षिकाओं वा पाठशालाओं के निरीक्षकों के उत्पन्न करने में राज्य का प्रतिवर्ष २ करोड़ मार्क (रुपया) व्यय होता है ।

प्रथम परीक्षा पास करके पाँच वर्ष तक परीक्षार्थ (on probation) काम करके फिर दूसरी परीक्षा देनी पड़ती है तब कोई स्थायी रूप से शिक्षक नियत किया जाता है । इसके पीछे फिर रेकृरशिप की परीक्षा होती है । जो इसमें उत्तीर्ण होता है व[illegible] स्कूल रेकृर नियत हो सकता है या ज़िला स्कूलों [illegible] इंस्पेकृर किया जाता है । परीक्षा देने के अभिला[illegible] शिक्षक घर पर पढ़ कर भी परीक्षा दे सकते [illegible] तातीलों में अलग ही पढ़ाई के प्रबंध होते हैं उ[illegible] जाकर भी प्राइवेट पढ़नेवाले तातीलों में पढ़ स[illegible] हैं । दर्शक की भाँति भी लोग विश्वविद्यालयों [illegible] व्याख्यान सुन कर ज्ञान लाभ कर सकते हैं । स्कू[illegible] के शिक्षकों ने सैंकड़ों सभाएँ खोल रखी [illegible] जहाँ विश्वविद्यालयों के बड़े बड़े नामी अध्यापकों [illegible] निमंत्रित कर वे व्याख्यान सुनते हैं और लाभ उठा[illegible] हैं । इस तरह पर शिक्षक लोग ज्ञान वृद्धि [illegible] करते परीक्षोत्तीर्ण हो अपनी अभिलाषा पूरी करते हैं ।

१५० शिक्षिका-शिक्षाभवन हैं । इनमें ४० स[illegible] कारी हैं वा शेष व्यक्तियों के या नगर की म्युनिसि[illegible] टियों के हैं । इनमें अन्य शिक्षाओं के अतिरिक्त ना[illegible] भाँति के गान, वाद्य, सीने पिरोने वा कसीदे[illegible] के काम सिखाए जाते हैं । स्त्रियाँ भी पाँच वर्ष पीछे द्वितीया परीक्षा पास करती हैं । इन्हें दो वि[illegible] इच्छानुसार लेने पड़ते हैं और दर्शन शास्त्र अनिवा[illegible] होता है ।

जर्मनी साम्राज्य में अनेक औपनिवेशिक स्कूल [illegible] हैं जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध स्कूल केसल नगर [illegible] है । इनमें श्रमालय, कारखाने, तापगृह, दूध आदि [illegible] कारखाने, पशु वा वनस्पति के पालनागार (Nu[illegible] series) तमाकू, केला वा अंगूर आदि की खेती [illegible] काम घोड़े पर चढ़ना, नटी आदि कला भी सिख[illegible] जाती हैं । इनमें ३ वर्ष में शिक्षा समाप्त होती है । इस प्रकार के स्कूल स्त्रियों के लिए भी हैं ।

अंधे, लूले, लँगड़े, बहरे, गूँगे भी जर्मनी सर[illegible] और प्रजा की दया से वंचित नहीं हैं । उनकी शिक्षा [illegible] लिए भी बहुत बड़े बड़े व्ययसाध्य प्रबंध मौजूद हैं ।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered No. A414

भाग १९] [संख्या ४—५

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

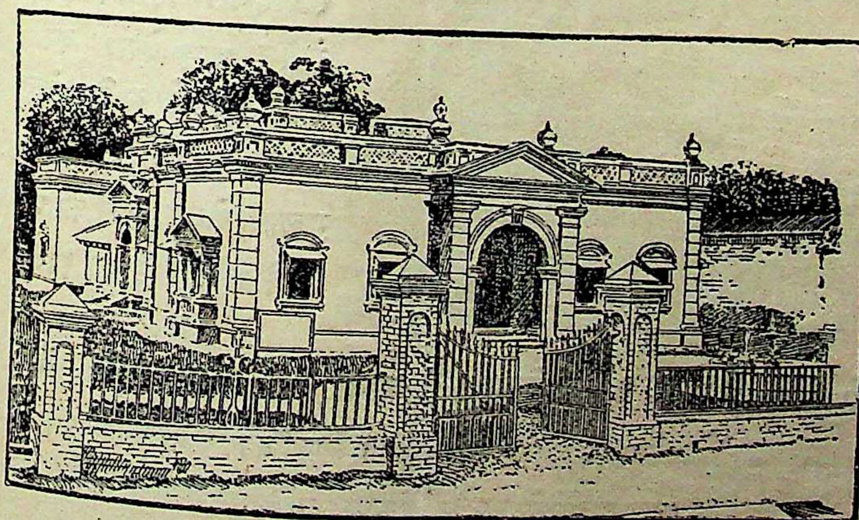
अक्तूबर, नवंबर, १९१४

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

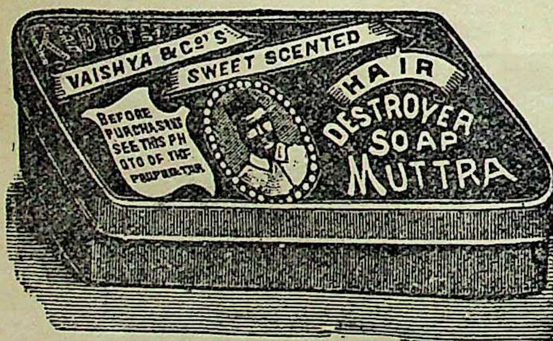
श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



खरीदनेसे पहिलेविलायती रंगीन ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केवड़ा, खस, का फी टिकिया ।।) ३ टि. का १।=)

नींबू, कपूर, संतरे का फी टिकिया ।-) आना ३ टिकिया का बक्स ।।।)

जरूरतहै एजंण्टोंकी जरूरतहै एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५) रु. सैंकड़ा कमीशनदेंगे और खर्च माफ

पताः—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

पण्डित ऋषिकादत्त व्यास जी

कुल समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मंगाइये, पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

पवित्र काश्मीरी केशर—

शुद्ध अम्बुल ।।।=) तोला । शुद्ध शिलाजीत ।।) तोला चीनी ममीरा २) तोला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग १९ | अक्तूबर, नवंबर १९१४. | संख्या ४—५

पृथ्वीराज चौहान ।

(पृथ्वीराज रासो के आधार पर)

प्रथम प्रकरण ।

(चौहान वंश की उत्पत्ति—चौहान वंश—दिल्ली-किल्ली—पृथ्वीराज का जन्म—बाल्यावस्था—यौवराज्याभिषेक और शिक्षा ।)

चौहान वंश की उत्पत्ति ।

एक बार विश्वामित्र, गौतम, अगस्त और मारकण्डेय आदि अनेक ऋषियों ने मिल कर एक बहुत बड़ा यज्ञ करने का विचार किया। सब सामग्री एकत्र करके शुभ ... में उन लोगों ने यज्ञ आरम्भ भी कर दिया। राक्षसों ने पहले से ही उस यज्ञ को विध्वंस का विचार कर रखा था। ठीक यज्ञ के समय लोगों ने आकर यज्ञ-क्षेत्र में रक्त और मांसादि निषिद्ध पदार्थों की वर्षा आरम्भ कर दी। इस उपद्रव से दुःखित होकर सब ऋषियों ने वशिष्ठ मुनि के पास जाकर उनसे यह सब समाचार कहा। वशिष्ठ जी वहाँ से चल कर यज्ञ-क्षेत्र में पहुंचे और अग्नि-कुण्ड के पास जाकर उन्होंने परिहार, चालुक्य और प्रमार नामक तीन क्षत्रिय उत्पन्न किए और उन्हें राक्षसों का विनाश करने की आज्ञा दी। लेकिन उन तीनों द्वारा राक्षस पराजित नहीं हो सके और उपद्रव बढ़ता ही गया। इसपर वशिष्ठ जी ने एक और नवीन यज्ञ-कुण्ड की रचना की, जिसमें से चार हाथोंवाला एक बहुत तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका वर्ण रक्त था और चार हाथ थे, जिन चारों में एक एक खड्ग था। इसके सिवा उसके शरीर पर कवच, धनुष, बाण, ढाल और तलवार आदि शस्त्र भी थे। वशिष्ठ जी ने उस व्यक्ति का नाम "चहुवान" रखा और वेदमन्त्रों से उसका राज्याभिषेक करके उसे राक्षसों से युद्ध करने की आज्ञा दी। साथ ही चहुवान की सहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यता के लिए उन्होंने भगवती आशापुरी का आह्वान किया। तदनुसार सिंह पर सवार होकर देवी वहाँ आ उपस्थित हुईं। युद्ध हुआ; उसमें कुछ राक्षस मारे गए और बाकी भाग गए। चलते समय देवी ने चहुवान से कहा कि तुम मुझे अपनी कुल-देवी मानना। मेरे नाम के स्मरण मात्र से तुम्हारे अभीष्ट की सिद्धि होगी। देवी के अन्तर्धान हो जाने पर यज्ञ-कुण्ड से चार मुखवाला एक और तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ जो अग्नि से उत्पन्न इन चारों क्षत्रियों के गोत्र, प्रवर और वेदादि बता कर लोप हो गया। इसी चहुवान के वंशज चौहान क्षत्रिय कहलाते हैं।

चौहान वंश।

चहुवान के वंश में, १७३ वीं पीढ़ी में बीसलदेव नामक एक परम प्रतापी राजा हुए। वैशाख शुक्ला १ सम्वत् ९११ को वे अजमेर के राज्यासन पर बैठे थे। उन्होंने ६४ वर्ष तक बड़ी योग्यतापूर्वक वहाँ का राज्य किया। लेकिन वृद्धावस्था में वह शाप-वश राक्षस हो गए थे। जब उनकी पँडिहारिन पटरानी से सारंगदेव का जन्म हुआ तो रानी का देहान्त हो गया। राजा ने अपने पुत्र के पालन के लिए एक बनिए की स्त्री को नियत किया। उस स्त्री की नन्दिनी नाम की एक कन्या भी थी। सारंगदेव और नन्दिनी के एक साथ रहने के कारण उन दोनों में बहुत प्रीति हो गई थी। नौ वर्ष की अवस्था में नन्दिनी का विवाह एक वणिक के साथ कर दिया गया। दैव-योग से विवाह के थोड़े ही दिनों बाद उस वणिक को सिंह खा गया; वह कन्या विधवा हो गई और एक वन में जाकर तपस्या करने लगी। इस घटना के कारण सारंगदेव के मन में वैराग्य समा गया। इसलिए पिता ने उनका जी बहलाने के लिए उन्हें समझा बुझा कर संभर का राज्य करने के लिए भेज दिया। वहाँ उनका विवाह यादव वंशीय देवदत्त की गौरी नाम्नी कन्या से हो गया।

बीसलदेव की कई रानियाँ थीं, पर उनका प्रेम पँवारिन पटरानी पर अधिक था। एक बार अन्य सब रानियों ने आपस में सलाह कर एक योगिनी की सहायता से राजा बीसलदेव को सोते में नपुंसक करा दिया। इस संकट से छुटकारा पाने के लिए बीसलदेव ने पुष्कर की यात्रा की। वहाँ एक योगिराज की सम्मति से उन्होंने शिवार्चन कर तीन उपवास किए। तीसरे दिन उन्होंने पुनः पुंसत्व प्राप्त किया। इस प्रसन्नता के उपलक्ष में उन्होंने वहाँ एक बहुत बड़ा तालाब बनवाया, एक बहुत सुन्दर नगर बसाया और कुछ दिनों तक वहाँ रह कर वे अजमेर लौट गए।

लेकिन इस बार, पुंसत्व प्राप्त करने के बाद से बीसलदेव की विषय-तृष्णा बहुत अधिक बढ़ गई थी। उसकी तृप्ति के लिए वह प्रजा पर अधिक अत्याचार करने लगे।

सं० ९८६ में बीसलदेव दिग्विजय को निकले। उस अवसर पर उनके अधीनस्थ और सब राजा तो उनकी सहायता के लिए उनके साथ हो लिए, पर गुजरात के सोलंकी राजा नहीं आए। इससे सबसे पहले उन्होंने गुजरात पर ही चढ़ाई की और उसे विजय करके अपने कीर्ति-स्वरूप वहाँ बीसल नगर बसाया। वहाँ उन्होंने एक बनिए की कन्या से विवाह भी कर लिया और उसे अपने साथ लेकर अजमेर लौट आए।

अजमेर पहुँचने पर थोड़े दिनों बाद एक बनिए की उस कन्या ने राजा से, पुष्कर जी में तपस्या करनेवाली एक सुन्दरी का समाचार कहा। कुछ ही दिनों बाद पुष्कर जी पर एक बहुत बड़ा मेला लगा। राजा बीसलदेव भी उस मेले में गए और वहाँ उन्होंने कामान्ध होकर उस तपस्या करनेवाली सुन्दरी का* सतीत्व

* यह सुन्दरी वही वणिक-कन्या थी जिसके पति को सिंह खा गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। अत्याचार से पीड़ित उस सुन्दरी त्यन्त विकल और क्रुद्ध होकर राजा को शाप कि "तुम मनुष्य का मांस भक्षण करनेवाले स हो जाओगे"। इस पर राजा बहुत घबराए र उन्होंने गिड़गिड़ाकर इस शाप से मुक्ति पाने लिए उस सुन्दरी से प्रार्थना की। उस सुन्दरी ह दिया कि अच्छा, तुम्हारा उद्धार तुम्हारे द्वारा होगा। इतना कह कर उस सुन्दरी तुरन्त वहीं अपने प्राण त्याग दिए।

कुछ दिनों बाद, बीसल तड़ाग पर सर्प के ने से बीसलदेव की मृत्यु हो गई और उनकी याँ उनके शव के साथ सती हो गईं। उनकी में से एक भीषण राक्षस निकला जो आस के उपस्थित लोगों को खाने लगा। खाने लिए वह मनुष्यों को इधर उधर ढूँढ़ता ता था, इसलिए लोगों ने उसका नाम ढूँढ़ा दिया।

जब देश में ढूँढा का उपद्रव बहुत बढ़ गया सारंगदेव ने अपनी गर्भवती स्त्री को तो उसके रणथम्भौर भेज दिया और स्वयं ढूँढा को ने के लिए वह एक सहस्र सेना लेकर अजमेर । वहाँ वह अपनी सेना सहित ढूँढा द्वारा गया। उधर रणथम्भौर में रानी को एक पुत्र जिसका नाम आनलदेव रखा गया उसका पालन ननिहाल में ही हुआ। बड़े होने पर एक दिन देव ने अपनी माता से अपने पितृवंश का हाल । उसके बहुत हठ करने पर माता ने कुल आदि से अन्त तक उसे कह सुनाया। देव ने माता से ढूँढा को मार आने की माँगी पर माता ने पुत्र को बालक समझकर ऐसा करने से निषेध किया, लेकिन आनलदेव नहीं माना। उसने अपनी माता को बहुत कुछ समझाकर विशेष आग्रहपूर्वक उससे आज्ञा ले और वहां से अजमेर की ओर प्रस्थान किया। पहुँचने पर नगर के बाहर ही एक गुफा में ढूँढा मिला। आनलदेव ने बातों बातों में ढूँढा को प्रसन्न करके उससे अजमेर का राज्य माँग लिया। ढूँढा ने भी उसे अपनी तलवार और अक्षय राज्य करने का आशीर्वाद देकर आकाश-मार्ग से तपस्या करने के लिए काशी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में वह यमुनातट पर हारित ऋषि के उपदेशानुसार तप करने के अभिप्राय से ठहर गया।

एक बार तोअर-वंशी दिल्लीपति राजा अनंगपाल की ८ वर्ष की कन्या जो भवानी की पूजा करने जा रही थी, वर्षा से बचने के लिए अपनी सखियों सहित ढूँढा की गुफा में चली गई और वर पाने की इच्छा से उसी का पूजन करने लगी। पाँच वर्ष और दो मास तक पूजा करने पर ढूँढा ने उसकी मनोभिलाषा पूर्ण हो जाने का आशीर्वाद दिया और वह स्वयं काशी की ओर चला गया। काशी पहुँच कर उसने एक वेदिका में अपने अंग के सौ टुकड़े करके होम कर दिए। कहते हैं, इसकी मूल-ज्योति से पृथ्वीराज, जिह्वा से चन्द, नेत्रों से संयोगिता और शरीर के सौ टुकड़ों से सौ सामन्तों की उत्पत्ति हुई थी।

इधर आनलदेव ने अजमेर को भली भाँति बसा कर बहुत योग्यतापूर्वक ७१ वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र जयसिंहदेव राजा हुआ। १०८ वर्ष तक राज्य करके जयसिंह देव अपने पुत्र आनलदेव को राज्य देकर स्वयं तप करने चला गया। इसी प्रकार आनलदेव भी १०० वर्षों तक राज्य करके अपने पुत्र सोमेश्वर को राज्य देकर स्वयं तप करने लगा। सोमेश्वर के राज्य-काल में अजमेर की खूब उन्नति हुई थी।

दिल्ली-किल्ली।

पूर्वकाल में पृथ्वीराज के मातृवंश में कल्हण नामक एक राजा हुआ था जो हस्तिनापुर में राज्य करता था। एक बार वह शिकार खेलते खेलते उस स्थान पर पहुँचा जहाँ इस समय दिल्ली बसी हुई है। वहाँ एक खरगोश उसके साथ के शिकारी कुत्तों पर झपटा। राजा ने उस स्थान को वीर भूमि समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उत्तम मुहूर्त्त में वहां कल्हणपुर नामक नगर बसाया। कई पीढ़ियों के बाद उनके वंश में राजा अनंगपाल (पृथ्वीराज के नाना) हुए। अनंगपाल ने एक गढ़ बनवाना चाहा। उसकी नींव रखने के समय उनके कुल पुरोहित ने उत्तम मुहूर्त्त विचार कर ६० अंगुल लंबी एक कील जमीन में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा लगी है जिसके कारण आपके तोंअर वंश का राज्य इस भूमि पर अचल होगा। लेकिन राजा को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और उन्होंने वह कील उखड़वा दी। कील के उखड़ते ही वहाँ से लहू की धारा निकलने लगी; इसके सिवा कीलका दूसरा सिरा भी रक्त से भरा हुआ मिला। इस पर राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उस ने पुनः वह किल्ली उस स्थान पर गड़वाई पर वह ठीक नहीं बैठी और ढीली रह गई। इसी से उसके आस पास के स्थान का नाम "ढीली" पड़ गया और बाद में बिगड़ कर दिल्ली हो गया।

पृथ्वीराज का जन्म।

एक बार कमधज्जराय ने कन्नौज के राठौर राजा विजयपाल की सहायता से दिल्ली पर चढ़ाई की। दिल्ली के राजा अनंगपाल ने सोमेश्वर से सहायता मांगी। तदनुसार सोमेश्वर ने घोर संग्राम करके कमधज्ज और विजयपाल की सेनाओं को परास्त कर दिया। उनकी वीरता से प्रसन्न होकर अनंगपाल ने अपनी बड़ी कन्या का विवाह सोमेश्वर से तथा छोटी कन्या का विवाह विजयपाल से कर दिया। सोमेश्वर की स्त्री (अनंगपाल की कन्या) को बाल्यावस्था में ढूँढा से उसकी गुफा में जो वर मिला था, उसके अनुसार कुछ दिनों बाद, सम्वत् १२०५ विक्रमी में, उसके गर्भ से पृथ्वीराज उत्पन्न हुए। पृथ्वीराज के जन्म के समय उनकी माता अपने नैहर दिल्ली में ही थी। पृथ्वीराज का जन्म वैशाख बदी २ बृहस्पतिवार को सिद्धि योग, चित्रा नक्षत्र, गर करण में एक घड़ी रात रहते हुए हुआ था। इस प्रसन्नता में पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल, मौसा विजयपाल तथा पिता सोमेश्वर ने बहुत कुछ दान-पुण्य किया था। सोमेश्वर ने रासो के कर्त्ता कवि चन्द के पिता वेण को उस अवसर पर बहुत सा द्रव्य और हाथी घोड़े दिए थे। थोड़े दिनों बाद सोमेश्वर ने अपने पुत्र तथा स्त्री को दिल्ली से बुलवा लिया। उनके सकुशल अजमेर पहुँचने पर सोमेश्वर ने बहुत ज्यौतिषियों को एकत्र करके अपने पुत्र का जन्म तैयार कराया और उसका फल पूछा। ज्यौतिषि ने गणित करके कहा—"कुण्डली के दशम स्थान गुरु, बुध और शुक्र, अष्टम में शनि, पञ्चम में सो द्वितीय में मंगल, ग्यारहवें में राहु और बारहवें सूर्य्य होने के कारण यह बालक बड़ा प्रतापी पराक्रमी राजा होगा। इसके दस विवाह होंगे इसे कहीं से आप ही आप असंख्य धन मिलेगा। वर्ष की अवस्था तक यह एकान्त राज्य करेगा। इसका नाम पृथ्वीराज रखें।" कहते हैं कि पृ राज के जन्म के समय भिन्न भिन्न स्थानों पर अ प्रकार के उपद्रव हुए थे। कहीं भूकम्प हुआ, बाढ़ आई और कहीं कहीं स्त्रियों के गर्भ तक गए थे। साथ ही उसी अवसर पर कन्नौज, मण्डोवर, नागौर, दिल्ली, जालौन, धामनगढ़ भिन्न भिन्न स्थानों में निड्डर, जैत सलख, प बलभद्र, चंद्र, अत्ताताई, रामदेव, कैलास पृथ्वीराज के सामन्तों ने भी जन्म लिया था।

बाल्यावस्था।

साधारणतः दो वर्ष की अवस्था में बा जितने बड़े होते हैं, पृथ्वीराज एक ही वर्ष अवस्था में उतने बड़े हो गए थे। उनके रूप शरीर की गठन, और बुद्धि सभी में कुछ न विलक्षणता और विशेषता पाई जाती थी। ६-७ की अवस्था में जब वह अपने साथी छोटे सामन्तों के साथ खेलते तो उनमें से जो अ वीरता और पराक्रम दिखलाता उसे वे कई प्र के पारितोषिक देते थे। आठ वर्ष की अवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके पिता ने उनका उपनयन संस्कार करा दिया और तदुपरान्त नगर के बाहर एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवा कर कुछ आचार्यों और पण्डितों के संरक्षण में उन्होंने पृथ्वीराज को विद्याध्ययन के लिए वहाँ भेज दिया। उस समय रासोकार कवि चन्द भी उनके साथ था।

यौवराज्याभिषेक और शिक्षा।

राज्य-परिचालन का यथोचित ज्ञान कराने के अभिप्राय से सब सामन्तों की सम्मति लेकर सोमेश्वर ने १० वर्ष की अवस्था में ही पृथ्वीराज का यौवराज्याभिषेक बड़े समारोह से कर दिया और उनका शिक्षा-क्रम पहले की तरह जारी रखा। थोड़े ही समय में पृथ्वीराज ने साहित्य, धर्म्म, युद्ध-विद्या तथा अन्य आवश्यक और उपयोगी कलाओं और विद्याओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके अतिरिक्त घोड़े की सवारी और शिकार में भी वह बड़े निपुण हो गए। उनके साथ साथ चन्द की शिक्षा भी भली भाँति होती रही। पृथ्वीराज की उस समय की दिनचर्य्या बहुत ही क्रम-बद्ध थी। वे प्रति दिन सन्ध्यावन्दन, व्यायाम, पाठ, दरबार तथा विद्वानों और वीरों से भेंट किया करते थे, उनसे विदेशों के समाचार सुनते थे और राजनीति के गहन विषयों पर विचार करते थे। नित्य सन्ध्या समय वह हथसार और घुड़सार देखने जाते थे। तात्पर्य्य यह कि कौमार-अवस्था में ही पृथ्वीराज अनेक भाषाओं, विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गए थे।

दूसरा प्रकरण।

(पहला विवाह—भीमदेव से बैर—मीरहुसैन—भीमदेव और सलख का युद्ध—पृथ्वीराज का भीमदेव और शहाबुद्दीन से युद्ध।)

पहला विवाह।

जिस समय पृथ्वीराज दो वर्ष के थे, उस समय एक बार अपनी माता के साथ अपनी ननिहाल दिल्ली गए थे। उस समय मण्डोवर का राजा नाहरराय पँड़िहार भी वहीं आया हुआ था। पृथ्वीराज को होनहार देख कर नाहरराय ने प्रसन्न होकर उन्हें एक माला पहनाई थी और कहा था कि इनकी अवस्था सोलह वर्ष की होने पर, मैं अपनी कन्या का विवाह इनसे कर दूँगा। निदान जब पृथ्वीराज सोलह वर्ष के हुए तो उनके पिता सोमेश्वर ने अपने पुत्र का विवाह निश्चय करने के लिए नाहरराय के पास एक दूत भेजा। लेकिन अब नाहरराय का विचार बदल गया था, इससे उसने विवाह करने से इनकार कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर पृथ्वीराज ने अपने पिता से आज्ञा लेकर बहुत से वीरों और सामन्तों को साथ ले नाहरराय पर चढ़ाई कर दी। यह समाचार सुनकर नाहरराय भी तैयार होकर आगे बढ़ा। मार्ग में ही दोनों ओर की सेनाओं के कुछ अंशों का युद्ध हुआ और अन्त में पट्टनपुर में नाहरराय और पृथ्वीराज का भी मुकाबला हो ही गया। लगातार पाँच दिनों तक पहाड़ियों पर घोर युद्ध होता रहा। अन्त में नाहरराय भाग गया और पृथ्वीराज ने पट्टनपुर अपने अधिकार में कर लिया।

उधर नाहरराय भाग कर गिरनार पहुँचा। वहाँ से उसने अपनी कन्या का सम्बन्ध करने के लिये पृथ्वीराज को तिलक भेजा और पृथ्वीराज ने वहीं जाकर उसकी कन्या जम्भावती से विवाह किया। चलते समय नाहरराय ने ग्यारह डोले भी दिए थे।

भीमदेव से वैर।

अजमेर की राजगद्दी पर बैठनेवाले वीरशिरोमणि पृथ्वीराज का प्रताप दिन पर दिन बढ़ रहा था और उसके यश और गुणों की कीर्त्ति चारों ओर फैल रही थी। उस समय गुजरात में चालुक्य-वंशीय द्वितीय भीमदेव राज्य करता था। उसकी प्रिय प्रजा बड़े आदर से उसे भोला भीम कहा करती थी। भीमदेव के भाई सारंगदेव के प्रतापसिंह, अरिसिंह,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोकुलदास, गोविन्दराज, हरिसिंह, श्यामसिंह और भगवान् ये सात पुत्र थे। प्रतापसिंह ने अपने पिता सारंगदेव की गद्दी पर बैठकर प्रजा पर अत्याचार करना आरम्भ किया। इसलिए भीमदेव कुछ सेना लेकर प्रतापसिंह को पकड़ने चला। मार्ग में ही उन सातों भाइयों ने एक स्थान पर भीमदेव के अकेले महावत और हाथी को मार डाला। इससे भीमदेव का क्रोध और भी बढ़ गया।

प्रतापसिंह आदि भीमदेव का मुकाबला करने में बिलकुल असमर्थ थे इसलिए वे लोग अपना देश छोड़ कर पृथ्वीराज की शरण में चले आए थे। पृथ्वीराज ने भी उन्हें जागीर देकर अपने सरदारों में भर्त्ती कर लिया था। एक दिन प्रतापसिंह ने भरे दरबार में मूछों पर ताव दिया। पृथ्वीराज के चचा कन्ह को उनकी यह धृष्टता बहुत अखरी और उन्होंने क्रोध में आकर एक ही हाथ में प्रतापसिंह का सिर धड़ से अलग कर दिया। यह देख कर बाकी छओ भाई कन्ह पर जा टूटे। कैमास कन्ह की ओर हो गया। पृथ्वीराज उठ कर दरबार से चले गए और कन्ह ने एक एक करके उन सब को वहीं मार गिराया। यह समाचार फैलते ही प्रतापसिंह के दल के लोग कन्ह के महलों पर टूट पड़े और दोनों ओर के योद्धाओं में सन्ध्या तक युद्ध होता रहा। अन्त में कन्ह की जीत हुई। लेकिन इस घटना से पृथ्वीराज की बहुत बदनामी हुई। कन्ह भी एक सप्ताह तक दरबार में न आए। एक सप्ताह बाद पृथ्वीराज ने कन्ह को स्वयं बुलवा कर उन्हें बहुत कुछ समझाया बुझाया और उसी समय पचीस हजार रुपए मूल्य की सोने की एक जड़ाऊ पट्टी उनकी आँखों पर बांध दी गई। कन्ह की यह पट्टी केवल रात के समय सेज पर या रण-स्थल में खोली जाती थी। अस्तु।

अपने भतीजों के इस प्रकार बध किए जाने का समाचार सुन कर भीमदेव की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने उसी समय एक पत्र-द्वारा पृथ्वीराज को रण-क्षेत्र का निमन्त्रण दिया। पृथ्वीराज ने भी उत्तर भेज दिया कि मैं तुमसे युद्ध करने के लिए सदा तैयार हूँ। भीमदेव ने उसी समय अजमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी लेकिन मन्त्रियों के यह समझाने पर कि अभी वर्षा-काल सिर पर है, उसने कुछ समय के लिए वह विचार छोड़ दिया।

मीर हुसैन।

गज़नी के बादशाह शहाबुद्दीन गोरी का मीर हुसैन नामक एक चचेरा भाई था। अपने बल, बुद्धि और विद्या के कारण शहाबुद्दीन के दरबार में उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। किसी प्रकार उसका सम्बन्ध शहाबुद्दीन की एक वेश्या से हो गया। जब यह भेद खुला तो बादशाह के भय से मीर हुसैन अपने परिवार तथा उस वेश्या को साथ लेकर गजनी से भाग निकला और भारत पहुँच कर नागौर के निकट खट्टू पुर नामक गाँव में पृथ्वीराज की शरण में आया। पृथ्वीराज ने उसकी अच्छी खातिर की, उसे अपने दरबार में रख लिया और जागीर तथा हाथी घोड़े दिए। जब शहाबुद्दीन ने यह समाचार सुना तो उसने अरबखाँ नामक एक सरदार को तीन सौ सवारों सहित पृथ्वीराज के पास नागौर भेजा। नागौर पहुँच कर अरबखाँ पृथ्वीराज के दरबार में गया; लेकिन वहाँ के रंग ढंग और बातचीत से उसे मालूम हो गया कि चौहान मीर हुसैन को उसके सुपुर्द न करेंगे। अरबखाँ वहाँ से लौट कर गजनी चला गया। वहाँ जाकर उसने यहाँ का कुल समाचार तथा पृथ्वीराज के ऐश्वर्य और प्रभुता का कुल हाल कह सुनाया। इस पर शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई करके उनसे बदला लेना निश्चय किया।

भीमदेव और सलख का युद्ध।

उस समय आबूगढ़ में सलख नामक पँवार राजा का राज्य था। सलख की मन्दोदरी और इच्छनी नामक दो कन्याएँ और जैतसिंह या जैतसी नामक एक पुत्र था। बड़ी मन्दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ी का विवाह गुजरात के राजा भीमदेव से हो ...ुका था और छोटी कन्या इच्छनी कुमारी का ...म्बन्ध सलख ने अपने पुत्र जेतसी की सम्मति से ...ृथ्वीराज से करना निश्चय कर लिया था। लेकिन ...च्छनी के रूप और गुण की प्रशंसा सुन कर भीम-...देव उस पर मोहित हो चुका था और वह उसका ...पाणिग्रहण किया चाहता था। उसकी इच्छनी-परिणय ...की कामना इतनी प्रबल थी कि राज-कार्य्य तक में उसका चित्त न लगता था। अन्त में उसने अपने ...प्रधान के हाथ एक पत्र सलख के पास भेजा जिसमें ...लिखा था कि—"यदि इच्छनी का विवाह मुझसे ...कर दोगे तो मैं आबूगढ़ पर अपना अधिकार ...करके तुम्हें सपरिवार नष्ट कर दूँगा।" लेकिन ...सलख उसकी बातों में न आया और उसने अपने ...प्रधान से साफ कह दिया कि इच्छनी का विवाह ...पृथ्वीराज के अतिरिक्त और किसी से हो ही नहीं ...सकता। उसका पुत्र जैतसी भी इस अनुचित प्रस्ताव ...को सुन कर बहुत बिगड़ा था; इसलिये प्रधान ने ...सलख के दरबार से चलते समय कह दिया कि अब ...तुम लोग सावधान रहो; मैं शीघ्र ही आकर तुम ...लोगों का उचित प्रबन्ध करूँगा। सलख ने यह सब ...वृत्तान्त नागौर में पृथ्वीराज को लिख भेजा। उधर ...भीमदेव ने जब सुना कि सलख ने पृथ्वीराज से ...सहायता माँगी है तो उसने पत्र द्वारा पृथ्वीराज को ...सलख की सहायता करने से रोकना चाहा; ...पृथ्वीराज ने उसकी बात पर ध्यान न दिया और ...सलख की सहायता के लिए अपने कुछ सरदार और ...थोड़ी सी सेना भेज दी। भीमदेव ने आबू पर ...चढ़ाई करने की तैयारी की। सलख ने यह ...समाचार सुन कर अपनी कन्या इच्छनी कुमारी ...को तो अचलगढ़ के सुरक्षित दुर्ग में भेज दिया ...और स्वयं वह भीमदेव के मुकाबले के लिए ...तैयार हो गया। भीम और सलख में कई दिनों ...तक युद्ध होता रहा। अन्त में जीत भीमदेव की ...हुई और उसने सलख तथा उसके सामन्तों ...को मार कर आबूगढ़ पर अधिकार कर लिया और पैंतीस दिनों तक वहाँ रह कर वह गुजरात लौट गया।

गुजरात पहुँच कर पृथ्वीराज से बदला लेने के लिए भीमदेव ने मकवान नामक एक सभासद के हाथ एक पत्र भेज कर शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने की सलाह दी और स्वयं उसे सब प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। शहाबुद्दीन के पास उसने बहुत से घोड़े तथा अन्य बहु-मूल्य पदार्थ भेंट-स्वरूप भी भेजे थे। लेकिन शहाबुद्दीन ने एक तुच्छ राजा के इस प्रस्ताव और साहाय्य-दान के वचन से अपना अपमान समझा। अपने दरबारियों और सरदारों की सलाह से उसने अकेले ही पृथ्वीराज पर चढ़ाई करना निश्चय किया। दरबार में ही मुसलमान सरदारों और मकवान में कुछ कहा-सुनी भी हो गई थी जिसके कारण दो तीन दरबारियों को मारने के बाद मकवान भी वहीं मारा गया। भीमदेव ने जब यह समाचार सुना तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने अकेले ही पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन दोनों से लड़ना निश्चय किया।

पृथ्वीराज का भीमदेव और शहाबुद्दीन से युद्ध।

जिस समय पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन की चढ़ाई और भीमदेव की तैयारी का समाचार मिला, उस समय वे नागौर में डेरा डाले पड़े थे। पृथ्वीराज ने देखा कि दोनों शत्रुओं को पराजय करने का यह बहुत ही उपयुक्त अवसर है। उस समय उनके पास केवल आठ हजार सेना थी, इसलिए उन्होंने देहली से चार हजार सेना और मँगाई। बारह हजार सेना एकत्र हो जाने पर उन्होंने अपने योग्य मन्त्रियों की एक सभा की। उस सभा में चामुण्डराय, जैतराय, बड़गुज्जर, कैमास आदि सब सामन्तों ने घोर युद्ध करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। दूसरे ही दिन लोहाना आजानुबाहु भी पांच हजार सेना लेकर पृथ्वीराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सहायता के लिए पहुँच गया। पृथ्वीराज ने अपनी सारी सेना के दो भाग किए। एक भाग का नायक तो उन्होंने कैमास को बनाया और उसकी सहायता के लिए चामुण्डराय को उसके साथ कर दिया। सेना का यह भाग तो भीमदेव के मुकाबले के लिए नागौर में छोड़ दिया गया और दूसरे भाग को अपने अधीन रख कर शहाबुद्दीन का मुकाबला करने के लिए पृथ्वीराज सारुंड जा पहुँचे।

जब भीमदेव ने पृथ्वीराज और कैमास की तैयारियों का हाल सुना तो उसने भी अपना कर्त्तव्य निश्चय करने के लिए अपने मन्त्रियों की एक सभा की। कुछ सरदारों ने तो उसे कैमास और शहाबुद्दीन दोनों से लड़ने की सम्मति दी और कुछ लोगों ने कैमास से अकारण और व्यर्थ लड़ कर अपनी शक्ति नष्ट करने के विरुद्ध राय दी और कहा कि पृथ्वीराज से सन्धि कर लेना ही उत्तम है। पर उसके मन्त्री अमरसिंह सेवरा को अन्तिम बात पसन्द न आई और उसने कहा कि मैं अकेला शहाबुद्दीन और कैमास दोनों को परास्त करूंगा। कहते हैं कि अमरसिंह मन्त्र तन्त्र आदि का प्रयोग जानता था और उसे अपने इसी बल पर बहुत भरोसा था। निदान दोनों शत्रुओं से लड़ना ही निश्चय हुआ। जिस समय कैमास नागौर में मोरचाबन्दी कर रहा था उस समय अमरसिंह ने एक भाट के हाथ कुछ बहुमूल्य पदार्थ और एक कल्पित सुन्दरी का चित्र उसके पास भेज कर उसे अपनी ओर मिला लिया। जब यह समाचार चन्द को मालूम हुआ तो उसने नागौर पहुंच कर युक्तिपूर्वक कैमास को अमरसिंह के जाल से छुड़ाया और अमरसिंह तथा उसके साथियों को नागौर से निकाल बाहर किया। इसके बाद एक रात को भीमदेव ने सहसा नागौर पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि कैमास के पास बहुत अधिक सेना नहीं थी, तो भी वह बड़ी वीरतापूर्वक लड़ा और अन्त में उसने भीमदेव को परास्त ही कर के छोड़ा। इस युद्ध में भीमदेव के तेरह हज़ार और कैमास के तीन हज़ार योद्धा मारे गए। इसके बाद कैमास ने भीमदेव का पीछा करके आबू पर पृथ्वीराज का राज्य स्थापित कर दिया और सलख का पुत्र तेजसी वहाँ का सूबेदार बनाया गया।

इधर पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन की सेना का पता लगाने के लिए एक दूत भेजा। दूत ने लौट कर कहा कि शत्रु की सेना प्रायः तीन लाख है। उसमें काबुली, काश्मीरी, हबशी तथा जाट आदि सभी हैं। शत्रु की सेना की अधिकता की कुछ भी चिन्ता न कर पृथ्वीराज केवल पन्द्रह हज़ार योद्धा लेकर ही शहाबुद्दीन के मुकाबले के लिए आगे बढ़े। पाँच हज़ार सेना लेकर लोहाना सदा आगे चलता था और पाँच हज़ार सिपाहियों के साथ पृथ्वीराज सदा बीच में रहते थे। शेष पाँच हज़ार सेना पीछे रहती थी। इस प्रकार वह सेना तीन चार दिन में ही सारुंडपुर से दि[illegible] जा पहुँची। वहाँ पर शहाबुद्दीन की फौज से सामना हुआ। शत्रु की ओर से खुरासानी सेना हरावल में थी जिसे लोहाना ने बड़ी सरलता से मार भगाया। पृथ्वीराज के योद्धा शत्रु-दल में घुस कर अद्‌भुत पराक्रम से युद्ध करने लगे। उसी अवसर पर कन्ह और जैतसी भी कैमास को छोड़कर इसी युद्ध में आ मिले। दोनों ओर के सरदार, सेनापति और योद्धा बड़ी वीरता से युद्ध करने लगे। एक बार जैतसी बड़ी विकट अवस्था में पड़ गया था। उस समय पृथ्वीराज ने स्वयं वहाँ पहुंच कर उसकी रक्षा की। इससे उसका उत्साह और भी बढ़ गया और वह पूरी जान लड़ा कर युद्ध करने लग गया। थोड़ी देर में यवन सेना के पैर उखड़ गए। शहाबुद्दीन उस समय हाथी को छोड़ घोड़े पर सवार हो गया। उसने अपनी सेना को धैर्य दिलाने की बहुत चेष्टा की पर उसका कुछ फल न हुआ। उसकी सारी सेना भाग निकली। अन्त में माघ शुक्ला ९ संवत् १२२६ को पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कैद कर लिया । इसके बाद पृथ्वीराज ने बड़ी धूम धाम से इच्छनी कुमारी से विवाह किया श्रौर शहाबुद्दीन से कुछ दण्ड लेकर उसे छोड़ दिया ।

तीसरा प्रकरण ।

(पृथ्वीराज का दिल्लीश्वर होना—पद्मावती से विवाह—पृथा का विवाह—धन-प्राप्ति—शशिव्रता से विवाह ।)

पृथ्वीराज का दिल्लीश्वर होना ।

इच्छनी कुमारी से विवाह करने के एक वर्ष बाद पृथ्वीराज ने चन्द्रपुण्डीर की कन्या के रूप, गुण श्रौर यौवन की प्रशंसा सुनकर उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की । चन्द्रपुण्डीर ने भी प्रसन्नतापूर्वक यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया श्रौर शुभ मुहूर्त्त में बड़े समारोह से पृथ्वीराज का विवाह चन्द्रपुण्डीर की कन्या से हो गया । इसके बाद पृथ्वीराज ने कैमास की दोनों बहनों से भी विवाह कर लिया । दोनों विवाहों में उन्हें बहुत से डोले श्रौर हाथी घोड़े भी मिले थे ।

एक दिन पृथ्वीराज अपने दरबार में बैठे हुए थे । दिल्ली से एक दूत ने आकर कैमास के हाथ में एक पत्र दिया । उस पत्र में पृथ्वीराज के नाना दिल्ली-पति अनंगपाल ने लिखा था कि मैं अब वृद्ध हो गया हूँ । मेरी इच्छा है कि मैं बदरिकाश्रम जाकर तप करूँ श्रौर कुल राज्य तुम्हारे सुपुर्द कर दूँ । कैमास ने यह पत्र ज़ोर से पढ़ सुनाया । सब लोग इस पर विचार करने लगे । कुछ वादाविवाद के बाद यह पत्र सोमेश्वर के सामने उपस्थित किया गया । सोमेश्वर ने अपने सामन्तों श्रौर मन्त्रियों की एक सभा की जिसमें चन्द्रपुंडीर की सम्मति से यही निश्चय हुआ कि आता हुआ राज्य छोड़ना न चाहिए । निदान पृथ्वीराज का दिल्ली जाना ही निश्चय हुआ । दूसरे दिन पृथ्वीराज ने अन्तरंग सभा में दिल्ली से आए हुए दूत को बुला कर उससे अनंगपाल के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होने का कारण पूछा । पहले तो उस दूत ने अनंगपाल की नीतिज्ञता श्रौर स्वाभाविक गुणों की प्रशंसा की श्रौर तदन्तर कहा कि उन्होंने स्वयं तप करने के लिए बदरिकाश्रम जाना निश्चय किया है । राजसभा में कुछ मन्त्रियों ने युक्ति-पूर्वक इस निश्चय का विरोध भी किया था पर राजा ने उन लोगों की बात न सुनी श्रौर यह पत्र मुझे देकर आपकी सेवा में भेजा है । पृथ्वीराज ने उसी दूत के द्वारा नाना को अपने आने की सूचना दे दी श्रौर वे स्वयं दिल्ली चलने की तैयारी करने लगे ।

शुभ मुहूर्त्त में पृथ्वीराज ने अपने सामन्तों सहित दिल्ली की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर अनंगपाल ने बड़े समारोह से पृथ्वीराज का राज्याभिषेक किया श्रौर उन्हें मार्गशीर्ष शुक्ला ५ गुरुवार सम्वत् १२२८ को मृगशिरा नक्षत्र सिद्धनाम योग में राज्यासन पर बैठाया । दूसरे दिन नगर में पृथ्वीराज की सवारी निकली श्रौर मुख्य मुख्य देवस्थानों श्रौर बाजारों से होती हुई सन्ध्या समय राजमहल में लौट आई । रात को सामन्तों श्रौर सरदारों ने दरबार में पृथ्वीराज को नजरें दीं । उस अवसर पर अजमेर में भी घर घर आनन्द मनाया गया था । अनंगपाल सस्त्रीक बदरिकाश्रम चले गए श्रौर पृथ्वीराज दिल्ली का शासन करने लगे ।

पद्मावती से विवाह ।

पूरब में विजयपाल नामक एक यादव-वंशी राजा समुद्र-शिखरगढ़ पर राज्य करता था । उसका शासन सर्वप्रिय था श्रौर प्रजा बहुत सुखी थी । उसकी पद्मसेना नामक रानी से पद्मावती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो बहुत सुन्दरी श्रौर गुणवती थी । उसके रूप श्रौर गुणों की प्रशंसा चारों श्रोर फैल रही थी । एक दिन अपने बाग में टहलते समय उसने एक सुन्दर तोता पकड़ा श्रौर अपने महल में लाकर सोने के पिंजड़े में रक्खा । उसका अधिकांश समय उसी तोते के साथ चित्त-विनोद में बीतता था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब पद्मावती विवाह-योग्य हुई तो राजा विजयपाल ने अपने पुरोहित को वर ढूँढ़ने के लिए विदेश भेजा। पुरोहित ने उत्तर में कुमाऊँ के पहाड़ी राजा कुमोदमणि से पद्मावती का विवाह निश्चय किया और उसी को तिलक चढ़ा दिया। विवाह निश्चय हो गया और दोनों ओर से उस की तैयारी होने लगी। विवाह से कुछ काल पूर्व राजा कुमोदमणि बड़ी भारी बारात लेकर समुद्र-शिखर-गढ़ की ओर चला। पद्मावती ने जब यह सब समाचार सुने तो वह बहुत अधिक दुःखित हुई। बहुत कुछ सोच विचार कर उसने अपने उद्देश्य-साधन का एक उपाय सोचा। उसने पृथ्वीराज को एक पत्र लिखा जिसमें उसने अपना परिचय देते हुए अपनी सारी दशा का वर्णन किया था। वह पत्र उसने उसी तोते के गले में बाँध कर पृथ्वीराज के पास भेजा। पृथ्वीराज ने वह पत्र पाकर अपने कुछ सामन्तों सहित समुद्र-शिखरगढ़ जाने की तैयारी कर दी। ठीक समय पर पृथ्वीराज वहाँ पहुँच गए। पद्मावती उनकी प्रतीक्षा ही कर रही थी। उनके आने का समाचार सुन कर वह बहुत प्रसन्न हुई। रात के समय वह अपनी सखियों को साथ लेकर राजहल के पश्चिम ओर के शिवालय में दर्शन करने गई। पृथ्वीराज वह संकेत-स्थान पहले ही से जानते थे; इसलिए वह भी वहाँ पहुँच गए। ज्योंही पद्मावती दर्शन करके मन्दिर से निकली त्योंही पृथ्वीराज उसे अपने घोड़े पर बैठा कर वहाँ से चलते बने। सब सखियाँ तथा अन्य उपस्थित लोग देखते ही रह गए। कुमोदमणि के कुछ सिपाहियों ने उनका पीछा भी किया; लेकिन पृथ्वीराज के सैनिकों ने बड़ी सरलता से उन्हें मार भगाया। दिल्ली पहुँच कर पृथ्वीराज ने पद्मावती से शुभ लग्न में विवाह कर लिया और उसके साथ वह सुख से रहने लगे।

पृथा का विवाह।

पृथ्वीराज की एक छोटी बहन थी जिसका नाम पृथाकुमारी था। जब वह विवाह के योग्य हुई तो सोमेश्वर ने उसका सम्बन्ध चित्तौराधिपति रावल समरसिंह से कर दिया। तिलक चढ़ाने के लिए कन्ह और गुरुराय चित्तौर गए थे। उनके एक मास पश्चात् बारात आई और बड़ी धूम धाम से पृथा का विवाह अजमेर में हो गया। विवाह में सोमेश्वर ने रावल जी को रणथम्भ देश, मेवात के साठ गांव, बहुत से हाथी और अनन्त धन दिया था। विवाह के बाद बारात बारह दिनों तक पृथ्वीराज के बारह सामन्तों के घर मेहमान रही।

धन-प्राप्ति।

नागौर के पास खट्टूबन नामक एक स्थान है। वहाँ एक बहुत सुन्दर तालाब था जिसके किनारे एक पत्थर की एक पुतली खड़ी थी। उस पुतली के मस्तक पर लिखा थाः—

"सिर कट्टे धन संग्रहै सिर सज्जै धन जाय।"

जब पृथ्वीराज को यह समाचार मिला, तो उन्हें बहुत कौतुक हुआ। एक दिन उन्होंने अपने दरबार में इसका जिक्र चलाया और अपने मन्त्री कैमास की योग्यता और बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए उससे इसका अर्थ और भेद पूछा। कैमास ने उत्तर दिया कि पूर्व काल में वीरवाहन नामक एक बहुत बड़े राजा ने अपनी प्रजा को बहुत कष्ट देकर और उस पर अत्याचार करके बहुत सा धन संग्रह किया था। दीन प्रजा के शाप के कारण वह राजा निःसन्तान मर गया और यह धन छोड़ गया। "सिर कट्टे" का तात्पर्य्य उस पुतली के सिर काटने से है, जिसके कारण वह धन सिर काटनेवाले को मिलेगा। राजा ने वह धन प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। इस पर कैमास ने उन्हें समझाया कि इस समय कई शत्रु चारों ओर आप की ताक में लगे हैं; ऐसी दशा में आप पहले चित्तौर के रावल समरसिंह जी को बुलवा लें और तब उस धन को निकालने का प्रबन्ध करें। राजा ने तदनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...पृथ्वीराज ने ... को चित्तौर भेजा और रावल जी बहुत बड़ी सेना सहित उसके साथ दिल्ली पहुँचे। रावल जी की अगवानी के लिए स्वयं पृथ्वीराज आगे बढ़ आए और बड़े आदर से उन्हें नगर में ले गए। कई दिनों तक वहां रहने के बाद सब लोग नागौर पहुँचे*। वहां से शुभ मुहूर्त्त में वह लोग खट्टू बन ... और उस पुतली के पास पहुंचे। कैमास ने वहां का बीजक पढ़ कर और उसी के अनुसार स्थान आदि नाप कर निर्दिष्ट स्थान खोदने की आज्ञा दी। कुछ जमीन खोदी जाने पर वहां पत्थर की एक ... पुतली मिली। पृथ्वीराज ने तीर से उस पुतली का सिर काटा और खजाने का द्वार खोला। वहां पृथ्वीराज को बहुत अधिक धन मिला। पृथ्वीराज ने उसमें से आधा धन रावल जी को देना चाहा; पर रावलजी ने उसके लेने से इनकार कर दिया। पृथ्वीराज के लौट आने पर दिल्ली में बहुत खुशी मनाई गई। पृथ्वीराज ने उस प्राप्तधन में से बहुत सा दान-पुण्य किया और शेष धन राज-कोष में जमा करा दिया।

शशिव्रता से विवाह।

एक बार गरमी के दिनों में सन्ध्या समय पृथ्वीराज एक बाग में बैठे हुए थे; इतने में विदेश से एक नट आया। पृथ्वीराज ने उसे नाट्य-कला दिखलाने की आज्ञा दी। उस नट ने भी अपने कला-चातुर्य से उनको बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट किया। इसके बाद राजा ने उससे उसका निवास-स्थान आदि पूछा तो मालूम हुआ कि वह देवगिरि नगर का रहनेवाला है। इसके सिवा नट ने यह भी कहा कि वहाँ के राजा की कन्या का सम्बन्ध उज्जैन के राजकुमार से होना निश्चय हुआ था, लेकिन अब उसका विवाह कन्नौज के राजा के भतीजे से होगा। उस कन्या का नाम शशिव्रता है और उसका रूप और गुण दोनों ही अपूर्व और अवर्णनीय हैं। इसके बाद एकान्त में पृथ्वीराज को उस नट से शशिव्रता के सम्बन्ध में और भी बहुत सी बातें मालूम हुईं जिनके कारण पृथ्वीराज ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। नट ने भी इस सम्बन्ध में उन्हें सब तरह से सहायता देने का वचन दिया। पृथ्वीराज ने उसे बहुत सा धन पुरस्कार-स्वरूप देकर विदा किया।

वर्षा ऋतु बीत जाने पर शरद ऋतु में एक बार पृथ्वीराज बहुत से सरदारों और सेना सहित शिकार खेलने गए। वहाँ उन्हें समाचार मिला कि जयचन्द का भतीजा बड़ी भारी बारात लेकर शशिव्रता से विवाह करने के लिए देवगिरि की ओर जा रहा है। इस पर पृथ्वीराज ने भी कुछ और सेना लेकर देवगिरि के लिए कूच कर दिया। उधर (नट की चतुराई से) शशिव्रता का मन पहले से ही पृथ्वीराज की ओर आकृष्ट हो चुका था। इसलिए जयचन्द के भतीजे की बारात के आने का समाचार सुन कर वह बहुत दुःखित हुई। उसकी सहेलियों ने उसे बहुत समझाया बुझाया और कहा कि बहुत सम्भव है कि इसी अवसर पर पृथ्वीराज भी आ पहुँचें; क्योंकि वह भी तुझ पर अवश्य मुग्ध हैं। लेकिन शशिव्रता किसी प्रकार शान्त न हुई। यह समाचार उसके पिता राजा भानु को मिला। राजा ने अपने मन्त्री को बुला कर उससे सब समाचार कहा और उससे सम्मति माँगी। मन्त्री तथा अन्य सामन्तों ने यही सम्मति दी कि शशिव्रता का विवाह जयचन्द के भतीजे कमधज्ज से ही करना ठीक है। लेकिन जब राजा ने देखा कि उसकी कन्या किसी प्रकार नहीं मानती तो उसने पृथ्वीराज को पत्र लिख कर बुलवाया। पृथ्वीराज अपनी सेना को कन्ह के सुपुर्द करके

* चन्द ने यह भी लिखा है कि उसी अवसर पर धन मिलने का समाचार पाकर शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज ने उसे परास्त करके कैद कर लिया। और बाद में उससे शृंगारहार नामक हाथी और ३० हजार घोड़े दण्ड स्वरूप लेकर उसे छोड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दो सामन्तों को साथ लेकर चटपट देवगिरि जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि नगर में विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूम-धाम से हो रही हैं। किसी प्रकार शशिव्रता ने भी पृथ्वीराज को अपने महल के झरोखों में से देख लिया, इससे वह निश्चिन्त हो गई।

दूसरे दिन वह स्नान तथा शृंगार आदि करके माता-पिता से आज्ञा लेकर सखियों सहित पूजन के लिए एक रत्नजटित चौडोल में सवार होकर एक शिवालय में गई। वहाँ उसने शिवजी का पूजन करके पृथ्वीराज की पत्नी बनने का वर माँगा। उस अवसर पर पृथ्वीराज भी वहाँ पहुँच गए और शशिव्रता के शिवालय से निकलते ही उसे अपने घोड़े पर बैठा कर वहाँ से चल दिए। उसी अवसर पर पृथ्वीराज की सेना भी पीछे से आ पहुँची थी। पृथ्वीराज और कमधज्ज की सेनाओं में कई दिनों तक घनघोर युद्ध होता रहा। उस युद्ध मे कन्ह की आँखों की पट्टी भी खोली गई थी। पृथ्वीराज के सरदारों ने उनसे शशिव्रता को लेकर दिल्ली चले जाने की प्रार्थना की; पर पृथ्वीराज उसे अस्वीकार करके स्वयं रण-स्थल में उपस्थित रहे। अन्त में पृथ्वीराज की सेना ने शत्रु-दल को मार भगाया। कमधज्ज और उसकी सेना के भाग जाने पर राजा भानु ने शशिव्रता के साथ पृथ्वीराज को और भी बारह डोलियाँ दीं और पृथ्वीराज सबको साथ लेकर दिल्ली लौट आए।

उधर कमधज्ज ने यह सब समाचार अपने चचा कन्नौज के राजा जयचन्द को कहला भेजा और उनसे सेना सहित शीघ्र आने की प्रार्थना की। जब भानु राजा को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने भी पृथ्वीराज से सहायता माँगी। लेकिन उसी समय पृथ्वीराज को यह भी मालूम हुआ कि कुछ लोग उनके नाना अनंगपाल को उनके विरुद्ध भड़का रहे हैं। इसलिए उस समय उन्होंने राज्य छोड़ कर जाना उचित न समझा और सब समाचार रावल समरसिंहजी को कहला दिया। रावलजी ने अपने छोटे भाई अमरसिंह को कुछ सेना सहित देवगिरि की ओर भेज दिया। उधर जयचन्द भी सेना सहित देवगिरि पहुँचे। उन्होंने देवगिरि जीतने की बहुत चेष्टा की पर उसका कोई फल न हुआ। अन्त में उन्होंने राजा भानु से सन्धि कर लेना उचित समझा। पर राजा भानु ने सन्धि करने से भी इन्कार कर दिया। इसलिए लाचार होकर जयचन्द अपनी सेना सहित कन्नौज लौट गए।

चौथा प्रकरण।

(मालव-पति से युद्ध—अनंगपाल की चढ़ाई—भीमदेव से युद्ध—हंसावती से विवाह—सारंगदेव से युद्ध।)

मालव-पति से युद्ध।

मालव के राजा यादवराय और सोमेश्वर में पुरानी शत्रुता थी। जब मालव-पति ने सुना कि दिल्ली का राज्य सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज को मिल गया है तो उसकी द्वेषाग्नि और भी प्रबल हो उठी और उसने पहले अजमेर और फिर दिल्ली पर चढ़ाई करने का विचार किया। इस युद्ध में सहायता देने के लिए उसने अपने कई मित्र और करद राजाओं को भी बुला भेजा और उन लोगों के आ जाने पर वह अजमेर पर चढ़ाई करने के लिए चंबल पार करके आगे बढ़ने लगा। जब यह समाचार सोमेश्वर को मिला तो उन्हें बहुत चिन्ता हुई। क्योंकि पृथ्वीराज उस समय दिल्ली में थे और अजमेर में उनके पास सेना बहुत थोड़ी थी। सरदारों ने उन्हें रात को सोते समय मालव-पति की सेना पर छापा मारने की सम्मति दी पर सोमेश्वर को वह बात पसन्द न आई। लेकिन पीछे सामन्तों के समझाने बुझाने पर उन्होंने वह बात स्वीकार कर ली और सेना सब तैयारी करके एक दिन रात के समय उन्होंने चंबल के इस पार बरवाम नगर में यादवराय पर धावा कर दिया। कोई एक पहर तक युद्ध करके सोमेश्वर की सेना ने यादवराय की सेना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। यादवराय बहुत जख़्मी होकर पकड़ा गया। सोमेश्वर ने उसे एक मास तक अपने पास रख और आरोग्य करके उसे सरदारों के साथ स्वदेश भेज दिया।

अनंगपाल की चढ़ाई।

अनंगपाल अपना समस्त राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बदरिकाश्रम चले गए थे और वहाँ रह कर तपस्या करते थे। ऐसे अवसर पर दिल्ली के कुछ प्रतिष्ठित सामन्तों आदि ने बदरिकाश्रम पहुँच कर अनंगपाल से पृथ्वीराज की विलासता और अन्याय की शिकायत की। अनंगपाल ने एक दूत द्वारा पृथ्वीराज से कहला दिया कि मैं तुम्हारे कार्यों से सन्तुष्ट नहीं हूँ; इसलिए तुम दिल्ली छोड़ कर अपने राज्य अजमेर को चले जाओ; लेकिन पृथ्वीराज ने दिल्ली छोड़ना अस्वीकार किया। इस पर अनंगपाल को बहुत क्रोध आया और उन्होंने कुछ सेना एकत्र करके दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। जब पृथ्वीराज को यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने नाना के विरुद्ध शस्त्र उठाना अनुचित समझ कर केवल अपनी और नगर की रक्षा का ही प्रबन्ध किया। जब अनंगपाल ने देखा कि उनकी चढ़ाई का कोई फल नहीं दिखाई देता तो अन्त में वह अपनी सेना को छोड़ हरिद्वार चले गए। वहाँ से उन्होंने फिर दूत पृथ्वीराज के पास भेजा लेकिन पृथ्वीराज अपनी बात पर अड़े रहे और उन्होंने तिल भर भूमि देनी भी अस्वीकार किया। इस पर अनंगपाल ने शहाबुद्दीन से पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने की प्रार्थना की। शहाबुद्दीन भी तैयार हो गया और दोनों ने मिल कर दिल्ली पर धावा कर दिया। दिल्ली से कुछ कोस की दूरी पर पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन और अनंगपाल से युद्ध किया और उन दोनों को परास्त करके पकड़ लिया। कुछ दिनों बाद सुलतान कुछ दण्ड लेकर पृथ्वीराज ने उसे छोड़ दिया। अनंगपाल १३ मास तक दिल्ली में रहे और पृथ्वीराज ने उनकी खूब सेवा की। इसके बाद अनंगपाल ने फिर बदरिकाश्रम जाने की इच्छा प्रकट की और पृथ्वीराज ने बहुत सा धन और दास-दासियाँ देकर उन्हें हरिद्वार तक पहुँचा दिया।

भीमदेव से युद्ध।

एक बार पृथ्वीराज मालवा के जंगलों में शिकार खेलने गए थे। उस समय उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर उज्जैन के राजा भीमदेव ने अपनी कन्या का विवाह पृथ्वीराज से करना निश्चय किया और तदनुसार वहीं उन्हें तिलक भी चढ़ा दिया। इसके बाद दोनों ओर से विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। उसी अवसर पर पृथ्वीराज को समाचार मिला कि गुजरात का राजा और उनका पुराना शत्रु भीमदेव चौलुक्य चित्तौर पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहा है। इसलिए पृथ्वीराज उससे लड़ने के लिए स्वयं तैयार होने लगा। उधर विवाह का समय निकट आ रहा था इसलिए पृथ्वीराज ने पज्जूनराय को अपना खड्ग देकर* विवाह करने के लिए उज्जैन भेज दिया और वह स्वयं चितौर की ओर चल पड़े। मार्ग में ही उन्हें रावल जी की सेना भी, जो उनके सहायतार्थ आई थी, मिल गई। उस सेना के आदमियों से पृथ्वीराज को मालूम हुआ कि भीमदेव की सेना इस समय चित्रकोट से दस कोस की दूरी पर है और सम्भव है कि शीघ्र ही उससे मुठभेड़ भी हो जाय।

यह समाचार सुन कर पृथ्वीराज ने तुरन्त आगे बढ़ कर भीमदेव की सेना पर चित्रकोट में चढ़ाई कर दी। उस दिन लगातार पाँच पहर तक युद्ध होता रहा। दूसरे दिन फिर सवेरा होते ही

* प्राचीन राजपूतों में यह प्रथा थी कि यदि कोई वर किसी कारणवश स्वयं विवाह में उपस्थित न हो सकता तो वह अपने किसी आत्मीय के हाथ अपना खड्ग भेज देता था। विवाह की सब क्रियाएँ वही आत्मीय करता था और भाँवरी उस खड्ग के साथ पड़ती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध होने लगा। भीमदेव की सेना ने भी बड़ी वीरता से अपने विपक्षियों का सामना किया। दिन भर खूब युद्ध हुआ जिसमें दोनों ओर के बहुत से योद्धा मारे गए। अन्त में सन्ध्या समय पृथ्वीराज की जीत हुई और भीमदेव अपनी सेना सहित भाग गया। लेकिन उसी रात के पिछले पहर में भीमदेव ने फिर पाँच हजार सैनिकों को लेकर पृथ्वीराज की सोई हुई सेना पर छापा मारा। पृथ्वीराज की सेना में चारों ओर कोलाहल मच गया; सब लोग उठकर शत्रु का आक्रमण रोकने की तैयारी करने लगे। यद्यपि पृथ्वीराज के बहुत से सरदार उस समय मारे गए थे, तो भी उनकी सेना खूब जी खोल कर लड़ी। दो पहर तक युद्ध होने के बाद भीमदेव की सेना फिर परास्त होकर भागी और पृथ्वीराज विजयपताका फहराते हुए दिल्ली पहुँचे।

उधर पज्जूनराय तथा पृथ्वीराज के अन्य सरदार जब विवाह के लिए उज्जैन पहुंचे तो भीमदेव ने इस प्रकार खड्ग के साथ अपनी कन्या इन्द्रावती का विवाह करने से इनकार कर दिया। कवि चन्द्र तथा और लोगों के बहुत समझाने बुझाने पर भीमदेव इस बात पर राजी हो गया कि यदि किसी प्रकार पृथ्वीराज यहाँ पांच दिनों के अन्दर पहुंच जायँ तो मैं उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दूँगा। लेकिन पांच दिन का समय बहुत ही थोड़ा था और इस बीच में दिल्ली तक समाचार जाना और वहाँ से पृथ्वीराज का आना असम्भव था, इसलिए वह अवधि योंही बीत गई। उसके बाद पृथ्वीराज के सब सरदार फिर भीमदेव के दरबार में गए और वहाँ उस पर विवाह कर देने के लिए जोर देने लगे। वहाँ बात बात में झगड़ा ही होना चाहता था; इस लिए भीमदेव ने रंग बेढंग देख कर युक्तिपूर्वक झगड़ा रोकने के लिए उन लोगों को शान्तिपूर्वक दरबार से बिदा कर दिया और उनके चले जाने पर अपने पुरोहित और मन्त्री की सम्मति ली। उन लोगों ने भी विवाह कर देने के पक्ष में ही अपनी सम्मति दी पर भीमदेव को यह बात पसन्द न आई।

पृथ्वीराज के सरदारों ने जब देखा कि भीमदेव किसी प्रकार विवाह कर देने के लिए तैयार नहीं होता, तो उन लोगों ने विचार करके दूसरे दिन प्रातःकाल के समय उज्जैन नगर के चारों ओर मोरचाबन्दी करके युद्ध की तैयारी कर दी। जब भीमदेव को यह समाचार मिला तो वह भी उनसे युद्ध करने के लिए तैयार होकर निकल आया। दो दिनों तक युद्ध होने के बाद पृथ्वीराज के सरदारों ने भीमदेव को पकड़ लिया। उस अवसर पर कवि चन्द ने बहुत कुछ समझा बुझा कर भीमदेव को विवाह कर देने पर राजी कर लिया। भीमदेव ने विवाह की सब तैयारी पहले से ही ठीक कर रखी थी; इसलिए शुभ मुहूर्त में उन्होंने अपनी कन्या का विवाह करके उसे दासियों सहित बिदा किया। पृथ्वीराज के सब सरदार भी प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रावती सहित दिल्ली लौट आए।

हंसावती से विवाह।

उन दिनों रणथम्भ में यादववंशी राजा भान का और चँदेरी में शिशुपालवंशी राजा पंचाइन का राज्य था। रणथम्भ-पति राजा भान की हंसावती नामक एक बहुत रूपवती और गुणवती कन्या थी। उसके रूप और गुण की प्रशंसा दूर दूर तक हुआ करती थी और कई राजा उससे विवाह करने की इच्छा रखते थे। उन्हीं में चँदेरी-पति राजा पंचाइन भी था। कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद एक बार पंचाइन ने राजा भान को एक पत्र लिख कर प्रस्ताव किया कि अपनी कन्या का विवाह उससे कर दे। लेकिन राजा भान को यह सम्बन्ध स्वीकार न था, इस लिए उसने साफ इन्कार कर दिया। इस पर पंचाइन बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने तुरन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयारी करके रणथम्भ पर चढ़ाई कर दी। जब पंचाइन की सेना रणथम्भ के पास पहुँच गई तो उसने फिर एक दूत राजा भान के पास भेजा और उसे समझाया कि इस प्रकार व्यर्थ युद्ध करने की अपेक्षा उसका विवाह कर देना ही उत्तम है। लेकिन भान ने उसपर कुछ ध्यान न दिया और वह स्वयं भी लड़ने के लिए तैयार हो गया। उस अवसर पर राजा भान ने पृथ्वीराज को भी यह सब समाचार कहला दिया था और उनसे सहायता माँगी थी। पृथ्वीराज ने स्वयं राजा भान की सहायता के लिए सेना सहित प्रस्थान कर दिया। साथ ही उन्होंने दूत भेज कर रावल समरसिंह जी से भी सहायता के लिए कुछ सेना मंगवा ली थी। रणथम्भ के पास मैदान में राजा भान और पंचाइन में बड़ा भारी युद्ध हुआ और पृथ्वीराज की सहायता से राजा भान ने अपने शत्रु को मार भगाया। इसके बाद राजा भान ने अपनी कन्या हंसावती का विवाह पृथ्वीराज से करना निश्चय किया और अपने राज-पुरोहित के हाथ तिलक भेज दिया। विवाह के लिए तिथि भी निश्चित हो गई और राजा भान उसकी सब तैयारियाँ करने लगा।

सारंग से युद्ध।

विवाह में अभी कुछ देर थी, इसलिए पृथ्वीराज अपने कुछ सामन्तों को साथ लेकर शिकार खेलने के लिए वहाँ से कुछ दूर खट्टू बन में चले गए। उस अवसर पर गुजरात के राजा भीमदेव के पुत्र सारंग ने पृथ्वीराज से अपने पिता के अपमान का बदला लेने का विचार किया। उसके सामन्तों ने भी उसे अनुकूल सम्मति दे दी। इसके बाद उसने मंगलगढ़ के राजा को भी अपनी ओर मिला कर षटचक्र रचना आरम्भ किया। सारंग ने मंगलगढ़ में पृथ्वीराज की दावत का सब सामान ठीक किया और वहाँ के राजा हाड़ा ने पृथ्वीराज के पास जाकर बड़ी नम्रता से उन्हें अपने यहाँ ले चलने के लिए निमन्त्रण दिया। पृथ्वीराज भी वह निमन्त्रण स्वीकार करके अपनी सेना सहित मंगलगढ़ पहुंचे। ज्यों ही यह लोग किले के अन्दर गए त्यों ही सारंग और हाड़ा के आदमियों ने किले के सब द्वार बन्द कर दिए। उसी समय उन दोनों का इशारा पाते ही चारों ओर से बहुत से आदमी निकल आए और पृथ्वीराज, रावल जी तथा उनके सरदारों पर शस्त्र चलाने लगे। इस पर पृथ्वीराज के सामन्तों आदि ने आगे बढ़ कर उन लोगों की खूब खबर ली और बहुत से योद्धाओं को मार गिराया। किसी प्रकार यह समाचार किले के बाहर पड़ी हुई पृथ्वीराज की सेना को भी मिल गया। सब सैनिक अस्त्र शस्त्र लेकर किले की दीवारों पर चढ़ गए और किले के अन्दर कूद पड़े। पृथ्वीराज की सेना ने हाड़ा और सारंग के बहुत से आदमियों को मार डाला। उसी समय सब लोग वहाँ से द्वार खोल कर बाहर निकल आए। बाहर आने पर पृथ्वीराज को मालूम हुआ कि चंदेल राजा ने फिर रणथम्भ पर आक्रमण किया है। इसलिए वह तुरन्त वहाँ से कूच करके रणथम्भ पहुँचे। वहाँ उन्होंने चंदेल राजा को परास्त करके नियत तिथि को हंसावती से विवाह किया और उसे लेकर दिल्ली लौट आए।

पाँचवां प्रकरण।

(भीमदेव की अजमेर पर चढ़ाई—युद्ध में सोमेश्वर का मारा जाना—राज्याभिषेक—गुजरात पर चढ़ाई—भीमदेव का मारा जाना।)

भीमदेव की अजमेर पर चढ़ाई।

गुजरात का राजा भीमदेव पृथ्वीराज से दो बार परास्त हो चुका था। इसलिए तथा अन्य कई पुराने वैरों के कारण सोमेश्वर और पृथ्वीराज सदा भीमदेव के हृदय में काँटे से खटका करते थे। जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार हारा हुआ जुआरी फिर दांव पर जाने की घात में लगा रहता है उसी प्रकार वह भी सदा उन दोनों से वैर निकालने की चिन्ता में लगा रहता था। एक दिन उसने अपने बड़े बड़े सामन्तों को एकत्र करके उनसे इस सम्बन्ध में परामर्श किया और अपने पुराने वैरों का उल्लेख करते हुए उनसे भविष्य-कर्त्तव्य के सम्बन्ध में सम्मति माँगी। सबने अनुकूलता जतलाते हुए सोमेश्वर और पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने की सम्मति दी। भीमदेव ने भी तदनुसार पहले अजमेर पर चढ़ाई करके सोमेश्वर को नीचा दिखलाना निश्चय किया। समस्त करद राजाओं, सामन्तों और सरदारों के पास यह समाचार भेज दिया गया और थोड़े ही समय में वह लोग अपनी अपनी सेना और अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर भीमदेव की छावनी में पहुँच गए। उन वीरों के उत्साह को देखकर भीमदेव को भी विश्वास हो गया कि इस बार उसी की विजय होगी।

किसी कार्य्य को सम्पन्न करने के लिए राजा साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार साधनों का उपयोग करता है। भीमदेव ने इन चारों साधनों के लिए अमरसिंह सेवरा, भैरो भाट, लीला ब्राह्मण और देवक्रम चारण नामक चार मन्त्री रखे थे। उनमें से अमरसिंह को भीमदेव बहुत मानता था और प्रायः उसी के परामर्श से सब काम किया करता था। भीमदेव ने जब इन चारों मन्त्रियों से सम्मति माँगी तो वह सब भी उसके अनुकूल होकर उसे युद्ध के लिए उत्तेजित करने लगे। निदान सारी सेना के एकत्र हो जाने पर भीमदेव ने अजमेर की ओर कूच किया। उसकी सेना में सबसे आगे हाथी, मध्य में घोड़-सवार और पीछे पैदल फौज रहती थी। मार्ग में पड़नेवाले गांवों को लूटती और आस पास के देशों को उजाड़ती हुई यह सेना आगे बढ़ने लगी।

सोमेश्वर को जब यह समाचार मिला कि भीमदेव बड़ी भारी सेना लेकर उस पर आक्रमण करने के लिए चला आ रहा है, तो वह भी युद्ध के लिए तैयार होने लगे। उस समय पृथ्वीराज उत्तर की ओर गए हुए थे और दिल्ली की रक्षा के लिए थोड़े से चुने हुए सामन्त वहाँ बच गए थे। वे सामन्त भी इस युद्ध का समाचार पाकर दिल्ली से अजमेर चले आए। सोमेश्वर ने भी युद्ध की सब तैयारी कर ली और जब भीमदेव की सेना अजमेर के निकट पहुंच गई तो वह भी अपनी सेना को लेकर मैदान में उसके सामने जा डटे।

युद्ध में सोमेश्वर का मारा जाना।

अजमेर के बाहर का मैदान बड़े बड़े वीरों और योद्धाओं से भर गया। रणवाद्यों और कड़खों से उत्साहित होकर सब लोग युद्ध के लिए तैयार होने लगे। सोमेश्वर की सेना के नायक जैसिंहदेव और कन्ह बनाए गए थे। ठीक युद्ध के समय कन्ह की आंखों पर से पट्टी हटाई गई। कन्ह ने थोड़े से शब्दों में अपने वीरों के हृदय उमँग और उत्साह से भर दिए और क्षत्रिय-धर्म्म का स्मरण दिला कर उन्हें मरने मारने के लिए उद्यत कर दिया। युद्ध होने लगा और दोनों ओर के वीर अपने विपक्षी दल में घुस कर एक दूसरे को काटने लगे। रण-भूमि में लाशों के पहाड़ लग गए और खून की नदियां बहने लगीं। सोमेश्वर की सेना को कुछ प्रबल होते देख भीमदेव ने क्रोध से अपना हाथी आगे बढ़ाया जिस से उसके सैनिक भी विशेष उत्साह से युद्ध करने लगे। लगातार कई बार हल्ला करने के बाद एक बार भीमदेव की सेना ने सोमेश्वर का आगे का मोरचा तोड़ दिया और आगे बढ़ कर सोमेश्वर को वहाँ घेर लिया। अवसर देख कर भीमदेव भी वहाँ पहुँचा। उस समय सोमेश्वर और उसके पन्द्रह सवारों को भीमदेव और उनकी कई हजार सेना ने घेर लिया था। जब सोमेश्वर ने देखा कि इस विकट अवसर पर और कोई उपाय नहीं है तो वह जीवन की आशा छोड़ कर शत्रु-सेना को काटने लगे। युद्ध में सोमेश्वर और भीमदेव दोनों ही घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़े। सोमेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...का देहान्त हो गया और भीमदेव को उनके सैनिक ...ली में रखकर वहां से ले गए और कुछ दिनों की ...कित्सा के बाद वह अच्छा हो गया। इस युद्ध ...की इसी प्रकार यहीं शान्ति हो गई और भीमदेव ...की सेना लौटकर गुजरात चली गई।

राज्याभिषेक।

जब पृथ्वीराज को अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वे क्रोध और शोक से विकल ...हो गए। ज्यों त्यों करके उन्होंने अपना चित्त शान्त ...किया और सोमेश्वर की भली भांति अन्त्येष्टि-...क्रिया की। शौच-काल में वह ब्रह्मचर्य्य से रहे और ...उसकी समाप्ति पर उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत सा धन, ...भूमि और स्वर्ण आदि दान दिया। शौच से निवृत्त ...होते ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि जब तक मैं ...भीमदेव से अपने पिता का बदला न ले लूँगा तब ...तक मैं पगड़ी न बांधूँगा। पृथ्वीराज की तो यह ...इच्छा थी कि वह उसी समय गुजरात पर चढ़ाई ...कर दें पर मन्त्रियों ने सम्मति दी कि सब ...से पहले अजमेर में आपका राज्याभिषेक हो जाना ...परम आवश्यक है। पृथ्वीराज ने भी यह बात मान ...ली। समस्त राज्य में इस राज्याभिषेक की सूचना ...दी गई और अभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं। ...नियत तिथि को शुभ मुहूर्त्त में दरबार लगा। ...समस्त मण्डप बड़ी उत्तमता से सजाया गया था। ...राजगुरु ने पृथ्वीराज का अभिषेक किया। समस्त ...राजाओं और सामन्तों ने मुजरे किए और नजरें ...दीं। इसके बाद अन्य सामन्तों ने भी पृथ्वीराज के ...माथे पर तिलक लगाया। उस अवसर पर रानी ...इच्छिनी भी उनकी बाईं ओर राज्यासन पर बैठी ...थीं। उस समय की शोभा का जो उत्तम वर्णन ...कवि ने किया है, वह बहुत ही मनोहर है।

गुजरात पर चढ़ाई।

सोमेश्वर की मृत्यु के बाद से पृथ्वीराज दिन रात अपने पिता का बदला लेने की चिन्ता किया करते थे। श्राद्ध तथा राज्याभिषेक से निवृत्त होकर पृथ्वीराज ने अपने चुने हुए सरदारों और वीरों का एक बड़ा दरबार किया। सब लोगों के आ चुकने पर पहले तो पृथ्वीराज ने अजमेर के युद्ध में दिखलाए हुए कन्ह के पराक्रम की प्रशंसा और उनकी योग्य प्रतिष्ठा की और इसके बाद उन्होंने भीमदेव से बदला लेने की बात चलाई। बात क्या चलाई, उन्होंने एक प्रकार अपने समस्त वीरों को गुजरात पर चढ़ाई करने की आज्ञा ही दे दी और इसके लिए सबों को बहुत जल्दी तैयार हो जाने के लिए कहा। वीरों और योद्धाओं को इसके सिवा और चाहिए ही क्या? वह लोग तुरन्त सहमत हो गए और युद्ध के लिए अधीर हो चले। तुरन्त राज्य के प्रधान ज्यौतिषी को बुला कर युद्ध के लिए प्रस्थान करने का मुहूर्त्त पूछा गया और ज्यौतिषी के बतलाए हुए समय पर कूच करना निश्चय हुआ।

समस्त सेना और वीरों के तैयार हो जाने पर निश्चित समय पर पृथ्वीराज ने दिल्ली से गुजरात की ओर कूच किया। जब यह सेना गुजरात की सीमा पर जा पहुँची तो वहांके गुप्त दूतों ने पृथ्वीराज के सैन्य आने का समाचार भीवदेव तक पहुँचाया। भीमदेव ने तुरन्त अपने अधीनस्थ राजाओं को सेना सहित युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा भेजी। तदनुसार झालावाड़, कावा, काठियावाड़ आदि राज्यों के नरेश अपनी अपनी सेनाएं लेकर भीमदेव की सेना में आ मिले। इधर पृथ्वीराज ने भी अपने कई गुप्त-दूतों को भीमदेव की सेना का भेद लेने के लिए आगे भेज दिया था। जब वह लोग वहाँ का समाचार लेकर लौट आए तो पृथ्वीराज शत्रुसेना की संख्या जान कर निश्चिन्त हो गए और उन्होंने अपनी सेना को गुजरात की सीमा के अन्दर शिकार खेलने की आज्ञा दे दी। कई दिनों तक शिकार खेलने के बाद एक दिन एक सिंहनी और उसके दो बच्चों को कई सामन्तों ने घेर लिया। इतने में सिंह आकर कन्ह पर झपटा। सिंह को उसी समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्ह ने मार गिराया। सब लोगों ने इस शकुन को बहुत शुभ समझा और उसी समय पट्टनपुर की ओर पृथ्वीराज ने सेना-सहित प्रस्थान किया। उस समय समस्त सेना के सेनापति कन्ह थे। सेना के अगले भाग का अधिकार निड्डुरराय को तथा पिछले भाग का अधिकार जैत प्रमार को दिया गया था। जब पृथ्वीराज की सेना पट्टनपुर से थोड़ी दूर पर रह गई तो उन्होंने चन्द को कुछ सन्देसा लेकर भीमदेव के पास जाने की आज्ञा दी और साथ ही उसे एक पगड़ी और एक कंचुकी भी दी। आज्ञानुसार कवि चन्द वह दोनों चीज़ें लेकर भीमदेव के दरबार में पहुँचा। भरे दरबार में उसने भीमदेव से कहा—"वीर शिरोमणि पृथ्वीराज ने तुमसे अपने पिता का बदला लेने की दृढ़ प्रतिज्ञा की है। यदि तुम इस समय उसकी कोपाग्नि से बचना चाहते हो तो यह कंचुकी पहन कर उनकी शरण में चले चलो और यदि तुम्हें यह बात स्वीकार न हो और तुम युद्ध करना चाहो तो यह पगड़ी ले लो। लेकिन ऐसी दशा में तुम विश्वास रक्खो कि पृथ्वीराज की प्रबल सेना तुम्हारा सारा राज्य विध्वंस कर डालेगी।" चन्द बरदाई को आकर इस प्रकार भरे दरबार में ऐसी बातें करते देख, सब दरबारी चकित हो गए। भीमदेव ने मुस्करा कर अपने प्रधान मन्त्री अमरसिंह सेवड़ा की ओर देखा। अमरसिंह ने क्रोध में आकर चन्द को उत्तर दिया कि हमारे राजा सदा ऐसे अभिमानियों का गर्व चूर्ण करने को उद्यत रहते हैं। पृथ्वीराज ने अपने पिता का बदला बिना लिए पगड़ी न बाँधने का जो प्रण किया है वह उनके किए पूरा न हो सकेगा। चन्द ने अनेक प्रकार से उनपर अपने स्वामी का आतङ्क जमाना चाहा पर भीमदेव या अमरसिंह उन बातों पर न गए और उन लोगों ने यही कहा कि हम उनसे लड़ने के लिए सब प्रकार से तैयार हैं। चन्द ने लौट कर पृथ्वीराज से सब समाचार कहा। युद्ध होना पूर्ण रूप से निश्चय हो गया।

भीमदेव का मारा जाना।

पृथ्वीराज ने अपने सेनापतियों को बुला कर उन्हें उत्तेजित करने के लिए कई वीरोचित बातें कहीं और जतलाया कि ऐसे विकट अवसर पर सब बातें उन्हीं वीरों पर अवलम्बित हैं। साथ ही उन्होंने निड्डुरराय को अपने गले से उतार कर मोतियों की एक बहुमुल्य माला पहनाई तथा अन्य सामन्तों को भी बहुत कुछ पुरस्कार दिया। कन्ह के पैरों में भी एक बहुमूल्य आभूषण पहनाया गया। समस्त सामन्तों और वीरों ने शत्रु को परास्त और महाराज का प्रण पूरा करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

इतने में भीमदेव के सेना सहित आने का समाचार मिला। कुछ समय बाद जब दोनों सेनाएं एक दूसरे के सामने हुईं तो दोनों ओर से व्यूह रचे जाने लगे। रणवाद्य बजने लगे और दोनों ओर से अग्न्यास्त्र चलने लगे। इसके बाद कुछ वीर भी तलवारें लेकर अपने विरुद्ध दल में घुस गए और शत्रुओं को मार कर यम-धाम पहुँचाने लगे। सभी वीर स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से अथवा सेवा धर्म्म पालन के अभिप्राय से जी छोड़ कर लड़ने लगे। दिन भर युद्ध होता रहा और दोनों दलों के बहुत से सैनिक मारे गए। जब सन्ध्या हुई और दोनों दल अपने अपने स्थान पर ही जमे रहे तो पृथ्वीराज स्वयं आगे बढ़ कर भीमदेव के सामने चले गए और उसे ललकारने लगे। भीमदेव भी कृपाण खींच कर पृथ्वीराज पर झपटा। उसी दिन उन दोनों वीरों को अपना अपना बल दिखाने का सुयोग प्राप्त हुआ था। बहुत देर तक युद्ध होता रहा और दोनों के शरीरों में बहुत से घाव हो गए। अन्त में पृथ्वीराज ने तलवार का एक ऐसा हाथ चलाया कि भीमदेव वहीं ढेर हो गया। पृथ्वीराज ने अपना मनोरथ सिद्ध होते देख प्रसन्नता प्रकट की। शरीर में अनेक घाव हो जाने के कारण वह बहुत शिथिल हो गए थे इसलिए अपने खेमे में चले गए। दूसरे दिन प्रातःकाल पृथ्वीराज ने रण-भूमि में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ने की आज्ञा दी। इसके बाद पृथ्वीराज ने भीम-...व के पुत्र कचराराय को, उनके अधीनता स्वीकार ...ने पर, गुजरात के राज्यासन पर बैठाया और ...जरात का कुछ अंश अपने राज्य में मिला कर ...उसके सुपुर्द कर दिया और स्वयं विजय-पताका ...हराते हुए दिल्ली चले आए।

छठा प्रकरण।

(...विजयपाल और जयचन्द्र,—संयोगिता,—जयचन्द्र का राज-सूय यज्ञ,—युद्ध में बालुकाराय की मृत्यु,—संयोगिता का हठ,—जयचन्द्र और पृथ्वीराज का युद्ध।)

विजयपाल और जयचन्द्र।

कन्नौज के प्रसिद्ध राष्ट्रकूट वंशी परम प्रतापी ...राजा विजयपाल ने अपने खड्ग-बल से बड़े बड़े ...राजाओं को अपने अधीन करके अनन्त राज-लक्ष्मी ...प्राप्त की थी। वह राजा बहुत धार्म्मिक और न्यायी ...था, इसलिए उसकी प्रजा भी बहुत सुखी और ...सन्तुष्ट थी। उसका राजनगर कन्नौज ऊँचे ऊँचे ...प्रासादों, लम्बे चौड़े बाजारों और बड़े बड़े देव-...मन्दिरों से सुशोभित था। बड़े बड़े राज-कुलों से ...उत्पन्न अनेक सामन्त सदा उनके पास रहा करते ...थे। एक बार दिग्विजय करते हुए विजयपाल ...देश की ओर गया था और वहाँ से सोम-...वंशी राजा मुकुन्दराय की कन्या से, विवाह करके ...अपने साथ कन्नौज ले आया था। इसके अति-...रिक्त दिल्ली के राजा अनंगपाल तँवर की कन्या, ...सोमेश्वर की साली सुर-सुन्दरी से भी उसका ...विवाह हुआ था। उसके गर्भ से विजयपाल का ...जयचन्द्र नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था जो विजय-...पाल के स्वर्गवासी होने पर कन्नौज का अधिकारी ...हुआ। जयचन्द्र ने अपने पिता के राज्य और ऐश्वर्य्य ...में अपने बाहुबल से बहुत कुछ वृद्धि भी की थी। ...आस-पास के बड़े बड़े राजा उसके अधीन थे। ...उसके पास इतनी अधिक सेना थी कि जिसके ...कारण उसको एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में बहुत कुछ कठिनता और रुकावट होती थी। सेना की इसी अधिकता के कारण लोग उसे दल-पंगुल या पंगु राजा कहा करते थे। जयचन्द्र को कोई पुत्र न था। उसे केवल एक कन्या थी जो सिंहलद्वीप के राजा की कन्या जुह्नाई के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। उस कन्या का नाम संयोगिता था।

संयोगिता।

संयोगिता के जन्म के समय कन्नौज में घर घर बहुत उत्सव मनाया गया था। उसका रूप-लावण्य एक दम अपूर्व था। पद्मिनी स्त्री के समस्त लक्षण उसमें वर्त्तमान थे। उसके मुख की उज्ज्वलता के आगे पूर्ण चन्द्र का प्रकाश भी मन्द पड़ जाता था। अपनी सखी-सहेलियों में वह ऐसी ही शोभा पाती थी जिस प्रकार तारों से घिरा हुआ पूर्णिमा का चन्द्र। बाल्यावस्था से ही जयचन्द्र ने उसकी शिक्षा आदि का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। साहित्य, काव्य आदि के अतिरिक्त वह अनेक कलाओं में भी बहुत निपुण थी। वह वीणा बड़ी उत्तमता से बजाती थी और सुन्दर सुन्दर चित्र बनाया करती थी। तात्पर्य्य यह कि जिस प्रकार वह लावण्य और सौन्दर्य्य में अनुपम थी, उसी प्रकार विद्या और गुण में भी अद्वितीय थी। उसके रूप और गुण की प्रशंसा समस्त देश में फैल रही थी और बड़े बड़े नरेश उसके पाणिग्रहण के इच्छुक थे। लेकिन जयचन्द्र ने अभी तक उसके विवाह की कहीं कोई बात चीत नहीं चलाई थी। पृथ्वीराज ने भी उसके गुण और रूप का समाचार सुना था और उन्होंने एक ब्राह्मण को उसका समाचार लाने के लिए गुप्त रूप से कन्नौज भेजा था। उस ब्राह्मण ने लौट कर उनसे संयोगिता के सौन्दर्य्य की बहुत अधिक प्रशंसा की थी। पृथ्वीराज स्वभाव से ही अत्यधिक विलासी थे इसलिए वह भी संयोगिता के पाणिग्रहण के लिए घबरा रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयचन्द्र का राजसूय यज्ञ ।

जयचन्द्र ने अपने बाहुबल से अनेक राजों महाराजों को परास्त करके अपने अधीन किया था । उसका राज्य बहुत विस्तृत और राजकोष बहुत परिपूर्ण था । ऐसे अनुकूल सुअवसर पर उसने एक राजसूय यज्ञ करने का विचार किया । यद्यपि मंत्री ने उसे समझाया कि कलियुग में राजसूय यज्ञ वर्जित है; पर जयचन्द्र ने इस बात पर ध्यान न देकर यज्ञ की तैयारी की आज्ञा दे दी । अनगिनत हाथी, घोड़े, बहुत सा सोना, मोती, चाँदी, केसर, कस्तूरी तथा अनेकानेक अन्यान्य पदार्थ संग्रह किए जाने लगे । राजसूय यज्ञ में सभी कार्य्य राजाओं द्वारा सम्पादित हुआ करते हैं, इसलिए जयचन्द्र ने चारों ओर के बड़ी बड़ी दूर तक के राजाओं के पास दूत भेजे और उन्हें आकर यज्ञ में भाग लेने के लिए निमन्त्रण दिया । कन्नौज के राजमहलों तथा अन्य स्थानों में आगन्तुकों के ठहराने का प्रबन्ध किया गया । चारों ओर से दूतों ने लौट कर जयचन्द्र को समाचार दिए कि सब बड़े बड़े राजाओं ने यज्ञ का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया । उसी अवसर पर जयचन्द्र ने अपने मन्त्री सुमन्त को बुला कर कहा कि तुम दिल्ली जाकर पृथ्वीराज से कहो कि वह हमारी सार्वभौम राजसत्ता के विचार से दिल्ली की आधी भूमि हमें दे दे । सुमन्त ने पहले ही जयचन्द्र को यज्ञ करने से मना किया था और वह यह भी जानता था कि व्यर्थ बैठे बैठाए पृथ्वीराज से नया झगड़ा करना किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है । इसलिए उसने पहले तो सब प्रकार से अपने स्वामी को समझाने की चेष्टा की पर जब उसने किसी प्रकार नहीं माना तो लाचार वह दिल्ली पहुँचा । वहाँ उसका यथोचित स्वागत हुआ । उसी अवसर पर जयचन्द्र का एक और दूत भी पृथ्वीराज को राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण देने के लिए दिल्ली पहुँच गया । पृथ्वीराज ने अपने चुने हुए सामन्तों की एक सभा करके उसमें सुमन्त तथा दूत के सन्देसे सुने । सब कुछ सुन कर पृथ्वीराज तो चुप हो रहे लेकिन उनके सामन्त गोविन्दराय ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारे राजा जो कलियुग में यज्ञ करने का साहस करते हैं मालूम होता है कि उसे बहुत अधिक अभिमान हो गया है । विशेषतः हमारे राजा (पृथ्वीराज) के रहते तो उनका यह उद्योग और भी मूर्खता-पूर्ण है । इसी उत्तर से सुमन्त और दूत ने सब अभिप्राय समझ लिया और वह लोग वहाँ से चले गए । कन्नौज पहुँच कर उन्होंने सब वृत्तान्त जयचन्द से कहा । जयचन्द ने अपने भाई बालुकाराय को तुरन्त बहुत बड़ी सेना लेकर शत्रुओं से, विशेषतः विघ्न करनेवाले पृथ्वीराज से राज्य की रक्षा करने की आज्ञा दी और वह स्वयं यज्ञ के प्रबन्ध में लगा । उसी समय उसने यह भी आज्ञा दे दी कि यज्ञ में द्वारपाल के स्थान पर पृथ्वीराज की एक स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित कर दी जाय । चारों ओर यह समाचार फैल गया और कन्नौज में यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं ।

युद्ध में बालुकाराय की मृत्यु ।

उधर जयचन्द की आज्ञा पाकर बालुकाराय बड़ी भारी सेना लेकर राज्य-रक्षा के अभिप्राय से कन्नौज की सीमा पर खोखंदपुर में जा डटा और इधर पृथ्वीराज ने जयचन्द को यज्ञ के लिए सन्नद्ध देख कर उसका यज्ञ विध्वंस करने के विचार से सेना सहित कन्नौज की ओर कूच करने का विचार किया । कन्ह, चन्द्रपुण्डीर, जैतप्रमार, निड्डुरराय आदि सामन्त इस विचार से सहमत थे । लेकिन कैमास ने यह सम्मति दी कि यज्ञ को विध्वंस न करके उसमें किसी न किसी प्रकार विघ्न डाल देना ही युक्ति-संगत होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बड़े बड़े राजा महाराज ससैन्य उपस्थित होंगे। इसलिए यदि पहले खोखन्दपुर पर चढ़ाई करके बालुकाराय को मार डाला जाय तो अशौच के कारण जयचन्द्र कम से कम एक वर्ष तक यज्ञ न कर सकेगा। सबको यह बात बहुत पसन्द आई। शुभ मुहूर्त्त में पृथ्वीराज ने ससैन्य प्रस्थान किया। निड्डुराय थोड़ी सेना लेकर आगे बढ़ा और पृथ्वीराज शेष सेना के साथ पीछे पीछे चलने लगे। कन्नौज की सीमा में खोखन्दपुर के पास पहुँच कर पृथ्वीराज की सेना ने वहाँ की प्रजा पर अत्याचार करना और वहाँ के गाँवों को लूटना आरम्भ कर दिया। प्रजा पीड़ित होकर हाहाकार करती हुई बालुकाराय के राज-द्वार पर पहुँची। बालुकाराय ने तुरन्त अपने सैनिकों को युद्ध के लिए तैयार होने और मोरचाबंदी करने की आज्ञा दी। जब पृथ्वीराज की सेना बहुत निकट आ पहुँची तो बालुकाराय ने भी अपने निशान उठाए। पृथ्वीराज ने अपनी सेना को युद्ध के लिए व्यूहबद्ध किया; दोनों ओर से तैयारियाँ हो चुकने पर युद्ध आरम्भ हो गया। बालुकाराय स्वयं अपने वीरों को उत्साह दिलाता हुआ आगे बढ़ने लगा और थोड़े समय में पृथ्वीराज के हाथी के पास पहुँच गया। दोनों ओर के योद्धा अपने अपने स्वामी और इष्टदेव का जयघोष करते हुए एक दूसरे को स्वर्ग का मार्ग दिखाने लगे। बहुत देर तक युद्ध होने के बाद, एक स्थान पर कन्ह और बालुकाराय का सामना हो गया। उसी समय कन्ह ने तलवार का एक हाथ ऐसा मारा कि बालुकाराय का सिर और धड़ दोनों अलग अलग ज़मीन पर गिर गए। लेकिन इतना होने पर भी बालुकाराय की सेना कई दिनों तक लड़ती रही। अन्त में पृथ्वीराज के सामन्तोंने उसे परास्त कर मार भगाया। सेना को परास्त करने के बाद पृथ्वीराज ने खोखन्दपुर भी लूट लिया, बालुकाराय की स्त्री वहाँ से भाग कर कन्नौज चली गई और पृथ्वीराज अपना उद्देश्य सिद्ध करके दिल्ली लौट आए।

संयोगिता का हठ।

जयचन्द का राजसूय यज्ञ विधि-पूर्वक हो रहा था। उसी यज्ञ के अन्त में उसने अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर करना निश्चय किया था। उसी स्वयंवर में संयोगिता को उपस्थित राजाओं और राजकुमारों में से किसी एक को वर करना पड़ता। लेकिन संयोगिता इस स्वयंवर से बहुत दुःखी थी। क्योंकि पृथ्वीराज के गुणों का वर्णन सुन कर वह उन पर मोहित हो चुकी थी और उन्हीं को पति रूप में ग्रहण किया चाहती थी। पृथ्वीराज वहाँ उस अवसर पर उपस्थित नहीं थे, इसलिए संयोगिता बहुत दुःखी थी और वह कुछ कर्त्तव्य निश्चय न कर सकी थी। इसी बीच में खोखन्दपुर से भाग कर आए हुए लोगों ने वहां का सब वृत्तान्त जयचन्द्र से कह सुनाया। बड़े क्रोध में आकर उसने तुरन्त अपने मन्त्री सुमन्त को आज्ञा दी कि पृथ्वीराज तथा उनके सहायक समरसिंह को बांध लाने के लिए अभी सेना तैयार की जाय। लेकिन अपनी रानी जुन्हाई के समझाने बुझाने पर उसने पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने से पूर्व संयोगिता का स्वयंवर कर लेना निश्चय किया। स्वयंवर की तैयारियाँ होते देख संयोगिता और भी दुःखित और चिन्तित हुई। जुन्हाई ने जयचन्द्र के आगे संयोगिता की दशा का वर्णन किया। लेकिन जुन्हाई संयोगिता की विमाता थी इसलिए जयचन्द्र को उस पर पूरा पूरा विश्वास नहीं हुआ। अतः उसने संयोगिता की कई सहेलियों और दासियों को बुला कर उन्हें संयोगिता की सम्मति लेने के लिए भेजा। उन सहेलियों के पूछने पर संयोगिता ने स्वयं तो कोई उत्तर नहीं दिया पर अपनी एक सखी की ओर इशारा कर दिया। उस सखी ने स्पष्ट समझ कर कह दिया कि संयोगिता का दृढ़ निश्चय है कि वह पृथ्वीराज को वर करे। अन्त में संयोगिता ने भी उसकी इस बात का समर्थन कर दिया। जयचन्द को जब यह बात मालूम हुई तो वह बहुत नाराज़ हुआ। तो भी उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयोगिता के। एक बार श्रीर समझाने के लिए उसकी मां को उसके पास भेजा। संयोगिता ने नम्र श्रौर संकुचित भाव से उसे भी अपना निश्चय बतला दिया। मां ने उसे अनेक प्रकार से समझा बुझा कर उसका विचार पलटना चाहा, लेकिन उसने किसी प्रकार नहीं माना। लाचार होकर उसकी मां ने जयचन्द्र के सब बातें जा सुनाईं; जयचन्द्र क्रोध के मारे लाल हो गया। उसने आज्ञा दी कि इसी समय संयोगिता को गंगा किनारे के महलों में नजरबन्द किया जाय। वहीं वह या तो जल में अपनी परछाईं देख कर रहेगी या उसमें डूब मरेगी। उसकी सेवा के लिए जयचन्द्र ने सौ दासियां भी वहां रख दीं। संयोगिता की श्रोर से इस प्रकार छुट्टी पाकर जयचन्द्र ने आगत राजाओं आदि को सम्मानपूर्वक विदा किया। पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने के लिए उसने सेना को पहले ही से तैयार होने की आज्ञा दे रखी थी। अब कुछ दूतों को गुप्त रूप से पृथ्वीराज का समाचार लाने के लिए उसने दिल्ली भेज दिया।

जब वह दूत दिल्ली का समाचार लेकर लौट आए तो जयचन्द्र ने बड़ी भारी सेना लेकर दिल्ली की श्रोर कूच कर दिया।

जयचन्द्र श्रौर पृथ्वीराज का युद्ध।

शीघ्र ही जयचन्द्र की सेना दिल्ली जा पहुँची। जयचन्द्र ने पहले ही से एक दूत को पृथ्वीराज के पास भेज कर कहला दिया कि वह कुछ भूमि मुझे दे कर सन्धि कर लें। लेकिन पृथ्वीराज के सामन्तों ने उसे ऐसा उत्तर दिया कि वह चुपचाप अपने स्वामी के पास लौट गया। इस पर जयचन्द्र की सेना ने चारों श्रोर से दिल्ली को घेर लिया। दोनों श्रोर से बाणों की वर्षा होने लगी। दिन भर घोर युद्ध होने के बाद जयचन्द्र की सेना पीछे हटी श्रौर जमुना तट के मैदानों में युद्ध होने लगा। कई दिनों तक लगातार युद्ध होने के बाद पृथ्वीराज की जीत हुई श्रौर जयचन्द्र के बहुत से सैनिक मारे गए। जयचन्द्र अपनी शेष सेना को साथ ले[कर] कन्नौज वापस चला गया।

सातवाँ प्रकरण।

(परमाल से वैर,—ऊदल श्रौर आल्हा को दे[श] निकाला,—पृथ्वीराज की चढ़ाई श्रौर आल्हा, ऊदल [का] स्वदेश लौटना,—महोबा का युद्ध।)

परमाल से वैर।

पृथ्वीराज के समय में वर्त्तमान बुन्देलखण्ड [में] चंदेलों का राज्य था। चंदेल राजा कन्नौज-पति [के] अधीन श्रौर करद थे। उस समय वहां पर[माल] नामक राजा राज्य करता था। राजा में राजका[र्य] चलाने की योग्यता न थी, इसलिए आल्हा [श्रौर] ऊदल नामक दो सरदार वहाँ का राजकार्य्य क[रते] थे। यह दोनों सरदार सगे भाई थे श्रौर उनके पि[ता] ने राज्य की रक्षा के लिए बड़ी वीरता से लड़[कर] अपने प्राण दिए थे। ऊदल बहुत अच्छा राजनीति[ज्ञ] था श्रौर उसने राज्य का सब कारबार सँभाल र[खा] था। आल्हा राज्य की सेना का नायक श्रौर ब[ड़ा] भारी योद्धा था। उसने कई बार राज्य को मुस[ल]मानों के आक्रमण से बचाया था श्रौर युद्ध कर[के] अनेक देशों को जीता श्रौर अपने राज्य का विस्[तार] बढ़ाया था।

एक बार पृथ्वीराज जब किसी युद्ध से लौट र[हे] थे, तो मार्ग में उनके कुछ घायल सैनिक रास्ता भू[ल] गए श्रौर कुछ दिनों बाद भटकते भटकते चंदेलों [की] राजधानी महोबा नगर में पहुँच गए। वहां [उन] लोगों ने राजा के एक बाग में डेरा डाला। कि[सी] बात में बाग के मालियों श्रौर पृथ्वीराज के [उन] सैनिकों में कुछ झगड़ा हो गया। सैनिकों ने कि[तने] मालियों को मार डाला श्रौर स्वयं बाग [से] निकल कर उसके बाहर कहीं डेरा डाल दिया।

मालियों के मारे जाने पर उनकी स्त्रियाँ रो[ती] हुई राजमहल में पहुँचीं श्रौर परमाल की रानी [से]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वीराज के सैनिकों के आने और मालियों के मारे जाने का सब वृत्तांत कहके विलाप करने लगीं। रानी ने सब समाचार राजा से कहा और उसे उन सैनिकों को दण्ड देने के लिए उसकाया; तदनुसार राजा ने ऊदल को कुछ सेना लेकर जाने और उन सैनिकों को दण्ड देने की आज्ञा दी। ऊदल ने वहाँ पहुँच कर सबको घेर लिया और सैनिकों तथा उनके सरदार कनक चौहान को मार डाला। दिल्ली में पृथ्वीराज को जब अपने भूले हुए सैनिकों की इस दुर्दशा का हाल मालूम हुआ तो वे बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने तुरन्त महोबा पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी।

ऊदल और आल्हा को देश-निकाला।

परमाल के दरबार में मेहला और भूपति नामक दो सरदार रहते थे। आल्हा और ऊदल से उन दोनों का वैमनस्य था और वे लोग सदा राजा से आल्हा और ऊदल की शिकायत किया करते थे। परमाल राजा अविचारी और कानोंका पतला था। उसको मनुष्यों की पहचान नहीं थी इसलिए वह दूसरा औरों के कहने पर ही चलता था। इन्हीं सब बातों से वह राजा राजकार्य्य के योग्य न था। लोगों के बहकाने से राजा का मन आल्हा और ऊदल की ओर से फिर गया था। ऊदल ने यद्यपि रानी की आज्ञा से विवश होकर पृथ्वीराज के सैनिकों को मार डाला था, तथापि उसने परमाल से इतना अवश्य कह दिया था कि यह बात ठीक नहीं हुई। आपने व्यर्थ पृथ्वीराज को अपना शत्रु बना लिया। पृथ्वीराज आपसे इसका बदला अवश्य लेंगे। ऊदल की इस बात से राजा और भी चिढ़ गया था। अवसर पाकर ऊदल के शत्रुओं ने एक और झगड़ा खड़ा कर दिया। ऊदल के पास छः बहुत अच्छे अच्छे घोड़े थे। लोगों के बहकाने में आकर परमाल ने एक बार ऊदल से वह घोड़े माँगे। लेकिन माता के मना करने पर ऊदल ने उन घोड़ों के देने से इनकार कर दिया। इस पर परमाल ने क्रुद्ध होकर आल्हा और ऊदल को अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। उन दोनों ने भी ऐसे अविचारी राजा के देश में रहने की अपेक्षा उसे छोड़ कर विदेश चले जाना ही अधिक उत्तम समझा और वह लोग अपनी माता तथा कुटुम्बियों को साथ लेकर महोबा से निकल गए। परमाल के राज्य से चल कर वे लोग कन्नौज पहुँचे और वहाँ जयचन्द्र के आश्रय में रहने लगे। जयचन्द्र ने भी उनका यथोचित सम्मान करके उन्हें अपने सरदारों में रख लिया। एक स्थान से कुछ अपमानित होने के बाद दूसरे स्थान पर विशेष सम्मानित होकर वे लोग भी सन्तुष्ट हो गए और आराम से कन्नौज में रहने लगे।

पृथ्वीराज की चढ़ाई और आल्हा तथा ऊदल का स्वदेश लौटना।

पृथ्वीराज बड़ी भारी सेना लेकर चंदेल से युद्ध करने के लिए दिल्ली से रवाना हुए। चंदेल के राज्य में पहुँच कर पृथ्वीराज के सैनिकों ने बहुत से गाँव और घर जलाए और वहाँ के निवासियों तथा राजा के अनेक कर्म्मचारियों को मार डाला। जब इस उपद्रव का समाचार परमाल को मिला तो उसकी आँखें खुलीं। जब चारों ओर से प्रजा आ आकर उसके दरबार में पुकार करने लगी, तो परमाल ने अपना कर्त्तव्य निश्चय करने के लिए अपने सरदारों की एक सभा की। लेकिन उस सभा में उपस्थित लोगों में से एक भी ऐसा न निकला जिसमें युद्ध करने का साहस होता। प्रायः सभी लोग चुप थे; इस पर कुछ लोगों ने राजा को सम्मति दी—"आल्हा और ऊदल को महाराज ने रुष्ट होकर निर्वासित कर दिया है। यदि इस अवसर पर महाराज पुनः उन्हें सम्मान पूर्वक अपने राज्य में बुला लें, तो उनसे बहुत कुछ सहायता मिल रहेगी और शत्रुओं से देश की रक्षा हो जायगी।" सब सरदारों ने यह सम्मति मान ली लेकिन परमाल के पुत्र ब्रह्मजित्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। ब्रह्मजित् ने यद्यपि कोई युद्ध न किया था, तथापि उसमें वीरता, साहस, आत्माभिमान आदि क्षत्रियोचित सभी गुण वर्त्तमान थे। उसने भरी सभा में बिगड़ कर कहा—"मालूम होता है कि अधिक वृद्ध हो जाने के कारण आप लोगों का पराक्रम जाता रहा है और इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं। राजपूतों के घर में जन्म लेकर ऐसी बातें कहना बहुत ही लज्जाजनक है। आप लोगों ने आज तक वीरता के अनेक कार्य्य करके बहुत कीर्त्ति पाई है। आप ही लोग राज्य के स्तम्भ हैं। यदि आप लोग ऐसे अवसर पर आगे न बढ़ेंगे तो देश हाथ से जाता रहेगा और आप लोगों की बदनामी होगी।" कुछ लोगों की यह भी सम्मति थी कि परमाल अपनी सेना सहित युद्ध के लिए महोबा में तैयार रहें और जयचन्द्र से सहायता माँगें। जब पृथ्वीराज सेना सहित महोबा पहुँच जायँ तो इधर से महोबा की सेना और दूसरी ओर से जयचन्द्र की सेना उन पर आक्रमण करके उन्हें परास्त कर दे। ब्रह्मजित् को यह बात भी पसन्द न आई। उसने कहा—"राजा का यह धर्म्म नहीं है कि वह स्वयं तो सहायता की अपेक्षा करता हुआ अपने किले में पड़ा रहे और शत्रु-दल को देश में प्रजा का सर्व-नाश करने का अवकाश दे। एक क्षत्रिय के लिए इस प्रकार अपकीर्त्ति सह कर जीते रहने की अपेक्षा रणभूमि में मर जाना, कहीं बढ़ कर है। यदि आप लोगों में इतना साहस न हो तो चलिए मैं आगे चलता हूँ। आप लोग शत्रु से युद्ध करने के लिए मेरे साथ चलें।" राजकुमार को इस प्रकार आवेश में देख कर सरदारों में कुछ उत्साह भर आया। मलखान, अरिसिंह, वरसिंह, नरसिंह और जयसिंह नामक पाँच सरदार राजकुमार को शान्त करके एक हज़ार सरदार तथा आठ हज़ार सैनिकों को अपने साथ लेकर पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिए महोबा से रवाना हुए। सिरसा नगर के पास दोनों दलों का सामना हुआ। कैमास, चन्द्रपुण्डीर, चामुण्डराय आदि बड़े बड़े सरदारों के अधीन पृथ्वीराज की सेना के कई भाग थे। इसलिए प्रत्येक भाग के मुकाबले के लिए मलखान, नरसिंह और जयसिंह भी थोड़ी थोड़ी सेना लेकर अलग हो गए।

सब टोलियों में अलग अलग युद्ध होने लगा। नरसिंह जब चन्द्रपुण्डीर द्वारा मारा गया तो उसके स्थान पर लड़ने के लिए वरसिंह आ गया। कुछ समय तक लड़ने के बाद वह भी मारा गया। उधर चामुण्डराय ने जयसिंह को अधमरा करके जमीन पर गिरा दिया। इस प्रकार परमाल राजा की ओर के बहुत से आदमी मारे गए और पृथ्वीराज की जीत हुई।

जब इस पराजय का समाचार परमाल को मिला तो उसे बहुत चिन्ता हुई। कल्याण कायस्थ, जगनक भाट, केशवदास पुरोहित आदि विश्वसनीय पार्श्ववर्त्तियों के सिवा उसने अपनी रानी से भी सलाह ली। रानी ने कहा—"आपकी तथा राजकुमार की जो आशा थी, उस पर तो अब पानी फिर गया। अब यही उचित है कि आप किसी न किसी प्रकार आल्हा और ऊदल को अपने राज्य में बुलवा लें और उन्हें साथ लेकर शत्रु से युद्ध करें। केवल इसी प्रकार आपकी तथा आपके राज्य की रक्षा सम्भावित है। कन्नौज से आल्हा और ऊदल को बुलवाने और फिर से युद्ध की तैयारी करने के लिए आप पृथ्वीराज से दो मास का अवकाश लें। आशा है, वीर पृथ्वीराज आपकी बात मान कर आपको युद्ध के लिए तैयार होने का अवकाश देंगे। यदि आप चाहें तो इस अवसर पर कन्नौज-पति राजा जयचन्द्र से भी सहायता ले सकते हैं।" राजा तथा उनके पार्श्ववर्त्तियों को यह बात बहुत पसन्द आई और उन्होंने पृथ्वीराज से अवकाश माँगने और आल्हा ऊदल को बुलवाना ही निश्चय किया। उसी समय इत्र, गुलाब, पान, बन्दूक, बरछी और दो कच्छी घोड़े नज़राने के तौर पर पृथ्वीराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास भेजे गए और उनसे दो मास का अवकाश माँगा गया। नज़राना लेकर जानेवाले भाट के प्रार्थना करने और चन्द के सिफारिश करने पर पृथ्वीराज ने दो मास का अवकाश दे दिया और भाट को पुरस्कार देने के सिवा उन्होंने परमाल के लिए एक बढ़िया तलवार और एक जड़ाऊ ढाल भी दी।

जब परमाल को युद्ध के लिए दो मास का अवकाश मिल गया तो उसने आल्हा और ऊदल को लाने के लिए जगनक भाट को कन्नौज भेजा। भाट ने कन्नौज पहुँच कर दोनों को परमाल के पत्र दिए और जबानी सब हाल कह कर उनसे महोबा चलने की प्रार्थना की। इस पर आल्हा ने अपनी तथा अपने पूर्वजों की की हुई राज-सेवा का स्मरण दिलाते हुए कहा कि हम लोगों के साथ बहुत अन्याय किया गया है। जगनक ने उनको अनेक प्रकार से समझाया बुझाया और कहा कि दुष्टों के बहकाने पर राजा ने आपके साथ ऐसा अनुचित व्यवहार किया था। पर अब स्वयं उन्हें पश्चात्ताप हो रहा है। अब आपका हठ करना और विशेषतः ऐसी दशा में जब कि राज्य की रक्षा आप ही पर निर्भर हो, ठीक नहीं है। आल्हा और ऊदल ने अपनी माता को भी परमाल का वह पत्र दिखलाया। राजा और जगनक दोनों का इतना आग्रह देख कर माता ने उन लोगों को महोबा चलने की सम्मति दे दी। इसके बाद वह लोग अपने नए स्वामी और आश्रयदाता जयचन्द के पास गए और उनसे महोबा जाने की आज्ञा माँगने लगे। लेकिन जयचन्द ने उन्हें आज्ञा न दी। उलटे उन्हें महोबा जाने से मना किया और उनके रोकने के अनेक उपाय किए। उसने उनको उनके मानापमान का स्मरण दिलाते हुए अपने दरबार में ही रखना चाहा। उस अवसर पर जगनक भाट ने आगे बढ़ कर जयचन्द को आशीर्वाद दिया और उसकी प्रशंसा करते हुए वह पत्र आगे बढ़ाया जो परमाल ने अलग जयचन्द

के नाम भेजा था और जिसमें उसने जयचन्द से भी इस युद्ध में सहायता देने की प्रार्थना की थी। उस पत्र को देख कर जयचन्द का विचार बदल गया और उसने बड़ी प्रसन्नता से उन दोनों को महोबा जाने की आज्ञा दी। चलते समय उसने दोनों भाइयों को खिलअत, मोतियों की मालाएँ, घोड़े और शस्त्र आदि भी दिए और अपनी ओर से आठ दस अच्छे अच्छे योद्धा भी उनके साथ कर दिए। इसके सिवा जयचन्द ने जगनक भाट को भी बहुत सा इनाम देकर उसका यथोचित सम्मान किया था। जयचन्द से आज्ञा लेकर सब लोग कन्नौज से चल पड़े। उनके महोबा पहुँचने पर समाचार पाकर परमाल अपनी रानी और मन्त्रियों सहित उनके स्वागत के लिए नगर के बाहर निकल आया। आल्हा और ऊदल ने जब देखा कि स्वयं राजा और रानी उन्हें लेने के लिए आए हैं तो बहुत लज्जित हो कर उन लोगों ने राज-दम्पति के पैरों पर अपने सिर रख दिए। इसके बाद सब लोग नगर में आए और समस्त नगरनिवासियों ने भी बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया। सारा नगर सजाया गया और स्थान स्थान पर उनपर पुष्प-वृष्टि की गई। उस अवसर पर राजा ने उन दोनों भाइयों को चार परगने, दो हाथी तथा और बहुत से मूल्यवान् पदार्थ दिए और सब प्रकार से उनका मान बढ़ाया।

महोबा का युद्ध।

आल्हा और ऊदल के आ जाने पर परमाल ने राजमहल में एक बहुत बड़ा दरबार किया और सब सरदारों को एकत्र करके उनकी सलाह से युद्ध आरम्भ करने की तिथि निश्चय करके पृथ्वीराज को उसकी सूचना दे दी। दोनों ओर से तैयारियाँ हो जाने के बाद रणभूमि में सेनाएँ एकत्र हुईं। उस समय का वर्णन चन्द कवि ने बड़ा ही विलक्षण और अपूर्व किया है। वह लिखता है—"इधर (पृथ्वी पर) प्रातःकाल के समय शूर-वीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान दान आदि कृत्य करने लगे, उधर (आकाश पर) रण-स्थल में मरनेवाले वीरों को उठा लाने के लिए अप्सराएं स्नानादि करने लगीं। इधर योद्धा लोग कवच और मुकुट धारण करने लगे, उधर अप्सराएं वस्त्र तथा कंचुकी धारण करने लगीं। इधर वीर लोग मोजा* पहनने लगे, उधर अप्सराएं नूपुर पहनने लगीं। शूरों ने सिरपेच पहने और अप्सराओं ने सीस-फूल धारण किए। योद्धाओं ने हाथों में बाघनख पहने, अप्सराओं ने हाथों में कंकण पहने। शूरों ने हाथों में बरछियाँ लीं, अप्सराओं ने हाथों में फूलों की मालाएं लीं। सैनिक घोड़ों पर सवार हुए और अप्सराएं विमानों पर चढ़ीं। वीर पुरुष जय और यश-प्राप्ति की इच्छा से युद्ध करने के लिए रण-भूमि में उतरे और अप्सराएं उनमें से वीरतापूर्वक युद्ध में लड़ कर मरनेवालों को प्राप्त करने की इच्छा से उनका मार्ग देखने लगीं।†"

अस्तु। परमाल अपने राजकुमार ब्रह्मजित्, आल्हा, ऊदल, अपनी पांच हजार तथा जयचन्द्र की सहायतार्थ आई हुई सेना को ले कर रणभूमि में पृथ्वीराज के मुकाबले जा खड़ा हुआ। आल्हा और ऊदल जब अपनी माता देवल देवी से युद्ध में जाने की आज्ञा माँगने गए तो उसने उन्हें प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देते हुए विजयी होने का आशीर्वाद दिया था। ऊदल की स्त्री ने भी अपने पति से चलते समय कहा था—"प्राणनाथ! आप कुछ चिन्ता न करें। यदि आप वीरगति को प्राप्त हुए तो मैं भी अपना धर्म्म पालन करते हुए सती हो जाऊँगी।"

पृथ्वीराज की सेना भी सज धज कर रण-भूमि में सामने आ खड़ी हुई। सब से आगे सेना का, वह भाग था जिसका अधिकार कन्ह चैाहान को दिया गया था। कन्ह तथा उसकी सेना को देख कर परमाल भयभीत हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि अब मैं पृथ्वीराज से युद्ध न करूँगा और उन्हें अपना आधा राज्य, आधा कोष, और कन्या देकर यह युद्ध बन्द करूँगा। लेकिन राजकुमार ब्रह्मजित् तथा आल्हा और ऊदल को यह बात बहुत नापसन्द हुई। वे लोग इस प्रकार कायरता से पीछे हट जाना या सन्धि करना नहीं चाहते थे। उन लोगों के बहुत कहने सुनने और उत्साह दिलाने पर परमाल युद्ध के लिए तैयार हो गया। लेकिन युद्ध आरम्भ होते ही उसे फिर बहुत भय मालूम होने लगा और वह थोड़े से सिपाहियों को साथ लेकर रण-स्थल से चुपचाप भाग गया और कालिंजर के किले में जा छिपा।

परमाल के कालिंजर भाग जाने पर आल्हा ने राजकुमार ब्रह्मजित् से कहा—"आप अभी सोलह वर्ष के बालक हैं। इसलिए आपको हम लोगों के साथ युद्ध-क्षेत्र में न रहना चाहिए। आपके लिए भी इस समय यही उचित है कि आप हम लोगों को मरने मारने के लिए यहीं छोड़ कर अपने पिता के पास कालिंजर के किले में चले जायँ।" लेकिन उस वीर क्षत्रिय ने यह बात न मानी और कहा—"इस प्रकार भाग कर मैं नरक का अधिकारी होना नहीं चाहता। यदि क्षत्रिय रणक्षेत्र में लड़ कर अपने प्राण दे तो उसे इस लोक में कीर्त्ति तथा परलोक में स्वर्ग प्राप्त होता है। रण से भाग कर नरकगामी होने और जगत में अपकीर्त्ति सहने की अपेक्षा समर में मर जाना मैं कहीं अच्छा समझता हूँ।" अपनी बात समाप्त करते ही ब्रह्मजित् एकदम शत्रुदल पर टूट पड़ा और मार्ग में आनेवालों को काट कर गिराने लगा। पृथ्वीराज की ओर से कन्ह, नीरधराय, कैमास, सलख, पज्जू, पहाड़ आदि सरदार तथा चँदेल की ओर से तालनखाँ, रूपन

---

* हाथों की रक्षा के लिए लोहे का बना हुआ एक प्रकार का कर-त्राण जो कलाई और पहुँचे पर पहना जाता है।

† प्राचीन ग्रन्थों में योद्धाओं को धैर्य्यशाली बनाने के लिए उन्हें अनेक प्रकार के स्वर्गसुखों का आभास दिखलाया गया है। एक स्थान पर लिखा हुआ है—"जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि वरांगनाः।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…पन, कुमारपाल आदि योद्धा परस्पर घमासान युद्ध करने लगे। तालनखाँ तथा आल्हा की ओर के बहुत से सिपाही मारे गए। तालनखाँ पठान के मरते ही कन्नौज से आई हुई फौज के पैर उखड़ गए और वह पीछे हटने लगी। अपनी सेना को भागते देख लाखनसिंह आगे आया और सैनिकों को धैर्य और उत्साह दिला कर फिर लड़ने लगा। बहुत देर तक वीरता से लड़ने के बाद लाखनसिंह भी मारा गया। चौहान पक्ष का नीरधराय भी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। कन्ह ने अपने विपक्षी भगवानसिंह को मार डाला था इसलिए बाबूहरी, नारायणदास और नरबद ने उन्हें आ घेरा; लेकिन कन्ह ने बड़ी वीरता से उन तीनों को मार गिराया। उधर संजमराय, चामुण्डराय और धीर पुंडीर ने महोबा और कन्नौज की सेना के धुर्रे उड़ा दिए। चौहान की सेना प्रबल हो चली। …नी तथा कन्नौज से आई हुई सेना की यह दुर्दशा देख कर आल्हा और ऊदल केसरी बाना पहन कर रण-क्षेत्र में उतर आए। पहले ही वार में इन लोगों ने संजमराय को मृतप्राय करके ज़मीन पर गिरा दिया। थोड़ी देर बाद होश आने पर जब संजमराय ने उठना चाहा तो देवकर्ण ने उसके सिर पर गदा मार कर उसे फिर वहीं गिरा दिया। संजमराय फिर न उठ सका। इसके बाद ऊदल ने बड़ी वीरता से कन्ह पर वार करके उसे भी मूर्च्छित कर दिया। इतने में कैमास वहाँ पहुँच गया और ऊदल उसकी ओर बढ़ा। ऊदल की गदा से कैमास भी मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जब नन्ह पंड़िहार ने देखा कि ऊदल इन दोनों वीरों को समाप्त ही किया चाहता है तो वह उठ कर उस पर झपटा। अब कन्ह और ऊदल में युद्ध होने लगा। थोड़ी देर बाद कन्ह और कैमास ने भी उठ कर कन्ह की सहायता की और ऊदल का सिर धड़ से उड़ा दिया। ऊदल बड़े जोश में आकर युद्ध कर रहा था इसलिए सिर कट जाने पर भी उसके नंगे धड़ ने कई वीरों को मार गिराया! चन्द ने ऊदल की इस वीरता की बहुत प्रशंसा की है।

जब ऊदल के मारे जाने का समाचार आल्हा को मालूम हुआ तो वह बहुत क्रोध में आकर शत्रु-दल का बुरी तरह संहार करने लगा। लोग कहते थे कि आल्हा को एक सिद्ध से एक मोहनास्त्र मिला था जिसके कारण उसे परास्त करना बहुत असम्भव था। इसलिए पृथ्वीराज ने उसके मुकाबले के लिए देवी द्वारा रक्षित आततायी चौहान को भेजा था। आततायी और आल्हा में जो भयंकर युद्ध हुआ था, उसका वर्णन कवि चन्द ने बड़ी उत्तमता से किया है। लड़ते लड़ते अन्त में दोनों ही वीर बेतरह घायल होकर जमीन पर गिर पड़े। तब तक पृथ्वीराज ने ब्रह्मजित् को मार डाला था। अपना सारा पराक्रम दिखला चुकने पर भी जब आल्हा ने विजय की कोई सम्भावना नहीं देखी तो अन्त में उसे वैराग्य हो गया और वह अपना धनुषबाण तोड़ और फेंक कर अपने गुरु सिद्ध के उपदेशानुसार उनके साथ जंगल की ओर चला गया। आल्हा के संबन्ध में कवि चन्द तथा अन्यान्य कवियों का वर्णन ऐसा ही है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्त में जीत पृथ्वीराज की ही हुई और चंदेल की सेना भाग गई।

इस लड़ाई में पृथ्वीराज भी बेतरह घायल होकर जमीन पर गिर पड़े थे। उनके आस पास घायलों और लाशों के ढेर लगे थे और चारों ओर बाज और गिद्ध मंडलाते फिरते थे। एक गिद्ध ने पृथ्वीराज की आँखें निकालनी चाहीं पर पृथ्वीराज में उसे हटाने की शक्ति न थी। संजमराय ने, जो उस समय उनके समीप ही घायल होकर पड़ा हुआ था, अपने शरीर से मांस का एक टुकड़ा नोच कर उस गिद्ध के आगे फेंक दिया और इस प्रकार अपने स्वामी की रक्षा की। थोड़ी देर बाद संजमराय के प्राण निकल गए। रामगुरु पुरोहित तथा कवि चन्द ने तुरन्त वहाँ पहुँच कर पृथ्वीराज को उठा लिया और डेरे में ले जाकर उनकी चिकित्सा की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चामुण्डराय कालिंजर पर चढ़ाई करके वहाँ से परमाल को पकड़ लाया। उस किले में सात करोड़ रुपए थे, वह भी चामुण्डराय अपने साथ ले आया। अन्त में पृथ्वीराज ने परमाल को गद्दी से उतार दिया और उसका देश अपने अधीन करके पज्जून कछवाहे को अपनी ओर से वहाँ का कर वसूल करने के लिए नियुक्त कर दिया। महोबा की लड़ाई समाप्त हो गई और पृथ्वीराज विजय-पताका फहराते हुए दिल्ली लौट आए।

आठवाँ प्रकरण।

(चामुण्डराय पर विपत्ति,—कैमास का वध,—कैमास की स्त्री का सती होना,—दुर्गा केदार।)

चामुण्डराय पर विपत्ति।

पृथ्वीराज के सामन्तों और मन्त्रियों में से चार पाँच सामन्त ऐसे थे जो उनके बहुत ही प्रिय और विश्वासपात्र थे। चामुण्डराय भी उन्हीं मुख्य सामन्तों में से एक था। सम्बन्ध में वह पृथ्वीराज का साला भी लगता था। कई कारणों से दाहिम के पुत्र धीर पुण्डीर और चामुण्डराय में कुछ वैमनस्य हो गया था और दोनों परस्पर एक दूसरे की घात में लगे रहते थे। चामुण्डराय की बहिन रानी दाहिमी के गर्भ से पृथ्वीराज को रेणसी नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। चामुण्डराय अपने भाञ्जे रेणसी पर बहुत प्रीति रखता था, और सदा अपने साथ रख कर उसे अस्त्र-शस्त्रादि का अभ्यास कराता था। एक दिन पुण्डीर ने अवसर पाकर एकान्त में पृथ्वीराज से कहा कि चामुण्डराय अपने भाञ्जे से जो इतना हेल-मेल रखता है उसका कारण यह है कि वह आपसे कुछ विरोध करके अपने भाञ्जे को राज्यासन पर बैठाना चाहता है। इसके अतिरिक्त उसने और भी कई बार इसी प्रकार पृथ्वीराज से चामुण्डराय की शिकायत की थी। यद्यपि पृथ्वीराज ने ऐसी बातों की ओर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया था तो भी उनका मन चामुण्डराय की ओर से कुछ फिर सा गया था।

पृथ्वीराज ने एक बार युद्ध में शहाबुद्दीन को कैद करके उससे दण्डस्वरूप श्रृङ्गारहार नामक एक हाथी लिया था। वह हाथी प्रायः मत्त होकर हथसाल से निकल जाया करता था और नगर में मनुष्यों को मार डालता, घर गिरा देता तथा अन्य उपद्रव किया करता था। एक दिन चामुण्डराय अपने साथ कुमार रेणसी को लेकर जंगल में शर-सन्धान-विद्या सिखलाने के लिए गया हुआ था। सन्ध्या को वहाँ से लौटते समय उन दोनों को मार्ग में वही मत्त श्रृङ्गारहार हाथी मिला और उन्हें देखते ही उन पर झपटा। उस दिन भी वह हाथी नगर में कई आदमियों का ख़ून करके और कई मकान गिरा कर आया था। उस समय उस हाथी के सिर पर ख़ून सवार था। चामुण्डराय ने उस समय अपनी तथा कुमार की रक्षा का और कोई उपाय न देख कर अपना घोड़ा आगे बढ़ाया और तलवार का एक ऐसा हाथ मारा कि उस हाथी का सूँड़ दोनों दाँतों सहित जड़ से कट कर गिर पड़ा और उस कष्ट से वह मत्त हाथी जमीन पर गिर कर लोटने लगा। बाजार में जिस स्थान पर वह हाथी गिरा था, उसके आस पास की कई दूकानों का भी बहुत नुकसान हुआ। तुरन्त सारे नगर में यह समाचार फैल गया कि चामुण्डराय ने श्रृंगारहार हाथी को मार डाला। चामुण्डराय से द्वेष रखनेवालों को यह अच्छा अवसर हाथ आया और उन्होंने पृथ्वीराज को उस सम्बन्ध की कई उलटी सीधी बातें सिखा पढ़ा दीं। इस पर पृथ्वीराज को उसकी और भी कई पुरानी बातें स्मरण हो आईं। पृथ्वीराज ने तुरन्त पुरोहित राम गुरु और लोहाना आजानबाहु को आज्ञा दी कि वे चामुण्डराय को हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहना कर ले आवें। उस समय राज-सभा में उपस्थित सामन्तों ने इस सम्बन्ध में राजा को कुछ समझाया का भी विचार किया; लेकिन उस समय पृथ्वीराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत क्रुद्ध थे इसलिए किसी को कुछ कहने का साहस न हुआ। रामगुरु तथा लोहाना ने जाकर चामुण्डराय को पृथ्वीराज की आज्ञा कह सुनाई। उस पर चामुण्डराय ने कहा—"मुझे राजाज्ञा मान्य है। लेकिन हथकड़ी बेड़ी पहनने से पूर्व मुझे हाथ से शस्त्र रख देने पड़ेंगे। और जब मैं एक बार हाथों से शस्त्र रख दूँगा, तब उसके बाद मैं कभी शस्त्र नहीं उठाऊँगा। यदि महाराज को यह बात स्वीकार हो तो मैं बड़ी प्रसन्नता से हथकड़ी और बेड़ी पहनने के लिए तैयार हूँ।" उन लोगों ने यह बातें पृथ्वीराज को जा सुनाईं। उस समय पृथ्वीराज क्रोध में भरे बैठे थे, इसलिए उन्होंने उस बात को तुरन्त स्वीकार कर लिया। उसी समय चामुण्डराय निःशस्त्र करके कैद किया गया। लेकिन चामुण्डराय ने किसी दूसरे के हाथ से हथकड़ी बेड़ी पहनना स्वीकार नहीं किया था। अन्त में उसने कहा था कि यदि स्वामी मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो न सही, लेकिन मैं कदापि उनके विरुद्ध न होऊँगा। इतना कहकर उसने अपने हाथों से बेड़ियाँ पैर में पहन लीं। चामुण्डराय की ऐसी विलक्षण स्वामि-भक्ति देखकर सब सरदारों ने उसकी बहुत प्रशंसा की। उस समय कुछ लोगों को यह भी आशा थी कि इस अन्याय के कारण राज-मंडल में कुछ गड़बड़ी भी होगी, लेकिन वह बात नहीं हुई और सब लोग अपने अपने स्थानों पर चुपचाप और स्तब्ध हो कर रह गए। इतना अवश्य हुआ कि कुछ सरदारों के विचार एक दम बदल गए और राजा के प्रति लोगों के हृदय में जो भक्ति थी, उसका स्थान अश्रद्धा ने ले लिया।

कैमास का वध।

यद्यपि क्रोध में आकर पृथ्वीराज ने चामुण्डराय को कैद कर लिया था तथापि बाद में उनको इस घटना तथा अपने अविचार पर बहुत दुःख हुआ। साथ ही उन्हें यह भी भय होने लगा कि कहीं सामन्त आदि बिगड़ न खड़े हों और कोई विषम प्रसंग न उपस्थित हो जाय। इसके सिवा यह भी निश्चय नहीं था कि जयचन्द्र कब अपना बदला लेने के लिए दिल्ली पर चढ़ आवेगा। इसी प्रकार की चिन्ताएँ पृथ्वीराज को प्रायः लगी रहती थीं। इन चिन्ताओं से छूटने तथा हृदय को शान्ति मिलने की इच्छा से उन्होंने शिकार खेलने के लिए जंगल में जाना निश्चय किया। कैमास राजा का बहुत ही विश्वासपात्र सामन्त था। उसने कई युद्धों में अच्छा पराक्रम दिखलाया था और उसी के बाहुबल से चौहान-राज्य का अच्छा अभ्युदय और विस्तार हुआ था। योद्धा होने के अतिरिक्त वह बहुत अच्छा राजनीतिज्ञ भी था। इसलिए पृथ्वीराज अपने राज्य का कुल कारबार उसी को सौंप कर स्वयं शिकार करने के लिए जंगल में चले गए। कभी कभी वह अकेले घोड़े पर सवार होकर हाल-चाल देखने के लिए नगर में भी आ जाया करते थे।

कैमास बहुत बड़ा राजनीतिविशारद था, इसलिए पृथ्वीराज के बाद उसने राज्य का सब कारबार बहुत अच्छी तरह सँभाल रखा था। लेकिन भवितव्य बहुत ही विचित्र होता है। इस संसार में कनक और कान्ता का मोह बड़ा प्रबल होता है। इन दोनों के सामने बड़े बड़े विचारी, विद्वान् और दूरद्रष्टाओं की बुद्धि चकरा जाती है और इनके कारण संसार में सदा बहुत से लोगों द्वारा अनेक अनर्थ हो जाया करते हैं। कैमास के साथ भी वही बात हुई। भादों के महीने में एक दिन प्रातःकाल के समय कैमास किसी आवश्यक राज-कार्य के लिए राजमहल में गया था। पृथ्वीराज ने जब कर्नाटक देश पर चढ़ाई की थी तो उस समय वह वहाँ से एक बहुत सुन्दर वेश्या को अपने साथ ले आए थे। लौटते समय कैमास उसी कर्नाटकी के महल से नीचे होकर गुजरा। उस समय कर्नाटकी अपनी दो चार दासियों सहित सजधज कर खिड़की में बैठी हुई थी। कैमास ने ऊपर की ओर देखा; दोनों की आंखें चार हुईं और दोनों ही परस्पर एक दूसरे पर मोहित हो गए। कैमास और कर्नाटकी दोनों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी कठिनता से वह दिन बिताया। रात के समय जब कैमास अपने पलँग पर लेटा हुआ था, उस समय उसके पास कर्नाटकी की एक दासी अपनी स्वामिनी का प्रेम-पत्र लेकर आई। उस पत्र में कर्नाटकी ने कैमास को अपने महल में बुलाया था। कैमास उस समय विचारने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए। बहुत कुछ तर्क वितर्क के बाद उसने सोचा कि कर्नाटकी मेरे स्वामी की विवाहिता स्त्री तो है ही नहीं; वह एक साधारण दासी बल्कि वेश्या है। ऐसी दशा में मेरा उसके बुलाने पर उसके पास जाना अधिक अनुचित नहीं है। इसके सिवा वह स्वयं भी दिन भर उसी कर्नाटकी के ध्यान में बेचैन था। वह उस समय कामान्ध हो रहा था और उसे वास्तविक उचित और अनुचित का कुछ भी ज्ञान न रह गया था। इसलिए वह तुरन्त दासी के कथनानुसार स्त्री का वेष धारण करके उस अँधेरी रात में उसके साथ कर्नाटकी के महल में चला गया। वहाँ कर्नाटकी ने कैमास के लिए पहले से ही अनेक प्रकार के मांस मद्य आदि तैयार रखे थे। इसके सिवा उसने अपना कमरा भी खूब सजाया था और उसमें खूब रोशनी की थी। दासी के साथ कैमास वहाँ जा पहुँचा और खूब राग रँग होने लगा।

रानी इच्छनी कुमारी का महल भी कर्नाटकी के महल के बहुत ही समीप था। जब उसने दासी के महल में इतनी तैयारी देखी तो गुप्त रूप से उसने अपनी एक सखी को वहाँ का समाचार लाने के लिए भेजा। सखी ने लौट कर वहाँ का आँखों देखा सब वृत्तान्त कह सुनाया। इच्छनी रानी को यह बात बहुत ही बुरी मालूम हुई और उसने तुरन्त राजा के पास जंगल में एक दूत द्वारा पत्र में सब वृत्तान्त लिख कर भेज दिया और यह भी लिख दिया कि यदि आप अपनी आँखों से यह सब वृत्तान्त देखना चाहें तो अभी इस दूत के साथ यहाँ आ जायँ। पत्र देखते ही पृथ्वीराज क्रोध के मारे लाल हो गए और उसी समय तीर-कमान लेकर घोड़े पर सवार होकर दूत के साथ राजमहल में पहुँचे। वहाँ रानी इच्छनी ने उनसे सब समाचार कह कर एक खिड़की से उन्हें कर्नाटकी के महल का सब दृश्य भी प्रत्यक्ष दिखला दिया। राजा ने स्वयं अपनी आँखों से जब यह हाल देखा तो क्रोध के मारे उनका सिर घूमने लगा। उन्होंने सोचा कि कर्नाटकी तो नीच कुल की और वेश्या ही है लेकिन कैमास को ऐसा करना कदापि उचित न था। इसलिए उसी को दण्ड देना आवश्यक और युक्तिसंगत है। यह सोच कर पृथ्वीराज ने उसी खिड़की में से अन्धेरी रात की बिजली की चमचमाहट में एक तीर छोड़ा। वह तीर तो चूक गया लेकिन राजा ने दूसरा जो तीर चलाया वह जाकर ठीक कैमास की छाती में लगा। कैमास समझ गया कि यह तीर पृथ्वीराज के सिवा और किसी का नहीं हो सकता। वह "राम राम" करता हुआ पलंग पर गिर पड़ा और थोड़ी ही देर बाद उसके प्राण निकल गए। कैमास की यह दशा देख कर कर्नाटकी ने वहाँ अधिक रहना उचित न समझा और वह किसी प्रकार महल के गुप्त द्वार से भाग गई। पृथ्वीराज के कोप से बचा कर शरण देनेवाला उसे जयचन्द्र के अतिरिक्त और कोई न दिखलाई देता था इसलिए वह दिल्ली से भाग कर सीधी कन्नौज चली गई और वहाँ संयोगिता की सहेली बन कर रहने लगी।

कैमास की स्त्री का सती होना।

कैमास के मर जाने पर पृथ्वीराज ने उसकी लाश कर्नाटकी के महल में ही जमीन में गड़वा दी। दिन चढ़ते ही राजा ने आज्ञा दी कि आज दरबार होगा। उस समय तक कैमास के वध का हाल गिने गिने आदमियों को ही मालूम था। ठीक समय पर नियमानुसार दरबार लगा और सब सामन्त और सरदार आ आकर अपने स्थान पर बैठने लगे। जब दरबार लग गया तो पृथ्वीराज ने इधर उधर की बातें आरम्भ कर दीं। दिन भर बहुत सी बातें होती रहीं। सन्ध्या समय पृथ्वीराज ने उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरबारियों से पूछा कि आज कैमास कहाँ है ? और सब दरबारी तो राजा के प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सके, पर चन्द वरदाई को पहले ही उसकी उपास्य देवी ने कैमास के मारे जाने का पूरा हाल बतला दिया था; इसलिए उसने उत्तर दिया कि कैमास इस समय स्वर्ग में है। राजा को इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। अन्त में होते होते सब बातें खुल गईं और पृथ्वीराज ने स्वयं भरे दरबार में स्वीकार कर लिया कि उन्हीं ने कर्नाटकी के कारण कैमास को मारा है। उसी समय समस्त दरबार में शोक और सन्नाटा छा गया और थोड़ी देर बाद दरबार बरखास्त भी हो गया। सब लोग अपने अपने घर चले गए। इसके बाद कैमास की स्त्री चन्द वरदाई के पास पहुँची और उससे प्रार्थना करने लगी कि वह किसी प्रकार उसके पति की लाश उसे दिलवा दे। चन्द ने पृथ्वीराज से जाकर प्रार्थना की और उन्हें प्रसन्न करके कैमास की लाश माँग ली और कैमास की स्त्री के सपुर्द कर दी। कैमास की स्त्री उस लाश के साथ सती हो गई। कुछ समय बाद चन्द वरदाई के कहने पर पृथ्वीराज ने कैमास के पुत्र को हाँसीपुर का परगना दे दिया और उसे अपने सरदारों में मिला लिया।

दुर्गा केदार।

यद्यपि कैमास ने भारी अपराध किया था और वह दण्ड के योग्य भी था, तो भी पृथ्वीराज को उसका वध करके पश्चात्ताप हुआ। वह समझते थे कि यह दण्ड बहुत ही कठोर हुआ है। इसके सिवा वह पृथ्वीराज का मित्र था, राज्य का एक स्तम्भ था और उसमें अनेक गुण थे; इसलिए पृथ्वीराज बहुत उदास रहने लगे। दरबार के अन्य सामन्तों को भी इस दुर्घटना से बहुत दुःख हुआ था। पर जब उन लोगों ने देखा कि स्वयं राजा ही बहुत दुःखी हैं और पश्चात्ताप कर रहे हैं तो उन लोगों का दुःख कुछ कम हुआ और वह लोग राजा को प्रसन्न करने तथा उनका मन बहलाने के उपाय ढूँढ़ने लगे। पृथ्वीराज को बाल्यावस्था से ही शिकार का बहुत शौक था इसलिए सब लोगों ने शिकार से राजा का मन बहलाना निश्चय किया। पृथ्वीराज ने भी यह बात स्वीकार कर ली और अनेक सामन्तों को साथ लेकर पानीपत की ओर शिकार खेलने के लिए निकल गए। उनके साथ कई सौ कुत्ते, चीते, जुर्रे, बाज तथा और बहुत से शिकारी जानवर थे। शिकार में राजा तथा उनके सामन्त आनन्दपूर्वक समय व्यतीत किया करते थे। एक दिन जंगल में केदार नामक एक भाट ने पृथ्वीराज के सामने उपस्थित होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। अपना परिचय देने के बाद केदार ने कवि चन्द से कुछ विद्यावाद करने की इच्छा प्रकट की। राजा ने उसकी वह प्रार्थना स्वीकार कर ली और इसके लिए एक तिथि नियत करके उन्होंने एक बहुत बड़ा दरबार किया। उस दरबार में सब सामन्तों और अच्छे अच्छे विद्वानों के सामने कवि चन्द तथा केदार ने अपनी अपनी विद्या का बहुत अच्छा चमत्कार दिखलाया। सब लोगों ने दोनों की विद्या और चतुरता की बहुत प्रशंसा की। राजा ने भी प्रसन्न होकर केदार का यथोचित सम्मान किया और उसे योग्य पुरस्कार दिया।

पृथ्वीराज के दरबार से बहुत सन्तुष्ट होकर केदार गजनी की ओर चला। रास्ते में सोनपुर नामक गाँव में उसने देखा कि शहाबुद्दीन की सेना छावनी डाले पड़ी है। केदार ने शहाबुद्दीन के दरबार में जाकर उसे आशीर्वाद दिया। बादशाह ने उसका यथोचित सम्मान करके उसे मुहब्बत-खाना नामक तंबू में ठहराया। एक दिन दरबार में केदार ने देखा कि एक दूत ने, जो सारे शरीर में भस्म रमाए लंबी जटा बढ़ाए और शरीर पर मृगचर्म धारण किए हुए था, आकर बादशाह को सलाम किया और कहा—"हुज़ूर, चामुण्डराय कैद कर लिया गया, कैमास को पृथ्वीराज ने मार डाला और स्वयं पृथ्वीराज राजपाट छोड़ कर सामन्तों को साथ लिए वन में शिकार खेल रहे हैं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय अवसर बहुत अच्छा है।" केदार ने समझ लिया कि यह शहाबुद्दीन का जासूस है और गुप्त रूप से पृथ्वीराज का समाचार लेकर आया है। इसलिए उसने अपने डेरे पर लौट कर तुरन्त एक साँडनी-सवार द्वारा गुप्त रूप से पृथ्वीराज से कहला दिया—"आप सावधान रहें। मुहब्बतखाँ प्रधान की सम्मति से शहाबुद्दीन ने आप पर चढ़ाई करना निश्चय किया है और उसके लिए वह सुयोग ढूँढ़ रहा है।" इस पर पृथ्वीराज सावधान हो गए और उन्होंने अपने सरदारों को सदा तैयार रहने की आज्ञा दी। थोड़े ही समय बाद शहाबुद्दीन की सेना निकट आ गई और पृथ्वीराज के दल पर बाण-वर्षा करने लगी। चौहान की सेना भी तैयार होकर युद्ध करने लगी। दोनों ओर से ख़ूब तलवारें चलीं। पृथ्वीराज के तो कम, लेकिन शहाबुद्दीन के बहुत अधिक सैनिक मारे गए। अन्त में पहाड़राय तूँअर ने घोड़े को आगे बढ़ा कर शहाबुद्दीन का हाथ पकड़ कर उसे हैादे में से खींच लिया। बादशाह की यह दशा देख उसकी सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार शहाबुद्दीन को गिरिफ़्तार करके और उसकी सेना को परास्त करके पृथ्वीराज आनन्दपूर्वक दिल्ली लौट आए। दिल्ली में बादशाह को एक मास तक कैद रख कर पृथ्वीराज ने उससे कुछ दण्ड लिया और तब छोड़ दिया।

नवाँ प्रकरण।

(पृथ्वीराज का कन्नौज जाना,—लंगड़ीराय की मृत्यु,—पृथ्वीराज और संयोगिता,—जयचन्द का युद्ध और संयोगिता का विवाह,—आनन्द और सुखभोग।)

पृथ्वीराज का कन्नौज जाना।

एक दिन पृथ्वीराज अपने दरबार में बैठे हुए थे। समाचार मिला कि कन्नौज से एक जंगम आया है। पृथ्वीराज ने उसे अपने सामने बुलवाया और नियमानुसार उससे कन्नौज का समाचार पूछने लगे। जंगम ने पहले तो जयचन्द्र के यज्ञ का वर्णन किया और उसके बाद संयोगिता का सारा हाल कह सुनाया। जब पृथ्वीराज को यह मालूम हुआ कि संयोगिता उन्हीं के विरह में अपने जीवन के दिन एक अलग महल में नजरबन्द होकर बिता रही है तब उनको बहुत दुःख हुआ और उन्होंने तुरन्त कन्नौज जाकर संयोगिता को मुक्त करना निश्चय किया। जंगम ने यह भी कहा था कि—"जयचन्द्र ने आपकी सोने की एक प्रतिमा बनवा कर द्वारपाल के स्थान पर खड़ी की थी। यज्ञ विध्वंस हो जाने के बाद जब उसी स्थान पर स्वयंवर हुआ तो संयोगिता ने समस्त उपस्थित राजाओं को छोड़ आपकी प्रतिमा को ही माला पहना दी।" भला यह समाचार सुन कर पृथ्वीराज क्योंकर स्थिर रह सकते थे। उन्होंने उसी समय अपने सामन्तों से सलाह की। कुछ लोगों ने राय दी—"आपका उद्देश्य जयचन्द का यज्ञ विध्वंस करना था सो तो आप कर ही चुके। अब आप उसकी कन्या हरण करना चाहते हैं। इसलिए इस समय वही युक्ति काम में लानी चाहिए जो श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी हरण के समय की थी। उस युक्ति से बिना युद्ध और रक्तपात किए ही आपका उद्देश्य सिद्ध हो जायगा।" पृथ्वीराज को भी यह बात पसन्द आ गई और उन्होंने यही निश्चय किया कि यज्ञ के लिए कन्नौज में जो बड़े ब्राह्मण तथा चारण आदि एकत्र हुए हैं उन लोगों से भेंट करने के लिए कवि चंद जाय और मैं स्वयं उसके साथ भेस बदल कर सेवक की भाँति चलूँ। इस प्रकार कन्नौज में कुछ दिनों तक रहने और वहाँ का हाल चाल लेने का अवसर मिलेगा। इसके बाद जो उचित होगा वह किया जायगा। तदनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयारियाँ की गईं और शुभ मुहूर्त्त में कवि चन्द ग्यारह हजार सैनिकों को अपने साथ लेकर कन्नौज की ओर चल पड़ा। साथ में पृथ्वीराज भी सेवक के वेष में थे। मार्ग में पहले ही एक अपशकुन हुआ पर पृथ्वीराज ने अपने दृढ़ निश्चय के कारण उस अपशकुन का कुछ भी ध्यान न किया और वह आगे बढ़ते गए। पृथ्वीराज और चन्द के साथ कुछ तथा अन्य बड़े बड़े सरदार भी थे।

चलते चलते यह लोग कन्नौज के निकट पहुँचे। दूर से ही सब लोगों को सुवर्ण कलशों से सुशोभित ऊँचे ऊँचे शिखर दिखाई दिए। नगर के नीचे पतित-पावनी गंगा धीरे धीरे बह रही थीं। गंगा-तट पर उत्तमोत्तम फलों और फूलों के वृक्ष तथा अनेक रमणीय वाटिकाएँ थीं जिनके कारण वहाँ का दृश्य बहुत ही भला मालूम होता था। उसी स्थान पर पृथ्वीराज ने अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया और चन्द से गंगाजी का माहात्म्य सुन कर, वहाँ स्नान तथा बहुत सा दान पुण्य आदि किया।

सारे लशकर को शहर के बाहर ठहरा कर दूसरे दिन चन्द कवि राजा जयचन्द्र के दरबार में गया। उसके साथ सेवक के वेष में पृथ्वीराज भी थे। दरबार के द्वार पर पहुँच कर चन्द ने द्वारपाल से कहा कि तुम जाकर अपने महाराज से कहो कि चन्द भाट आपको आशीर्वाद देने आया है। द्वारपाल ने जाकर जयचन्द्र से कहा। जयचन्द्र ने चन्द को सम्मान-पूर्वक दरबार में ले आने की आज्ञा दी। चन्द ने दरबार में जयचन्द को जो आशीर्वाद दिया उसका सारांश यह था—"जिसने समस्त क्षत्रियवंश को एक मार्ग पर लगाया, बड़े बड़े राजा जिसे स्वर्ण-भार कर देते हैं, सुवर्ण-पर्वत जिसके अधिकार में है, जिसने समस्त दक्षिण भारत को अपने अधीन कर रखा है, हीरे की बड़ी बड़ी खानें जिसके अधिकार में हैं, समुद्र पार करके जिसने लंका तक को विजय किया, ऐसे महाप्रतापी राजा विजयपाल के पुत्र जयचन्द्र के राजसूय यज्ञ में समस्त कुलों के राजा सम्मिलित हुए। लेकिन एक मात्र पृथ्वीराज चौहान वहां नहीं आए।" आशीर्वाद का आरम्भ और मध्य सुन कर तो जयचन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ था, लेकिन उसका अन्तिम चरण सुन कर वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने नाराज होकर कहा—"विधाता ने तुम भाटों के भाग्य में वंश परम्परा के लिए जो दरिद्रता लिख दी है, वह तुम लोगों के ऐसे कृत्यों के कारण ही कभी दूर नहीं हो सकती। तुम लोगों के सिरों पर अवदशा का जो छत्र लगा हुआ है, वह तुम्हारे शरीर पर पावस के जल की एक बून्द भी नहीं पड़ने देता।" इसके बाद जयचन्द्र और चन्द कवि में चोज की कई बातें हुईं। बरद का अर्थ वरदाई और बैल दोनों हैं। चन्द को लोग वरदाई या बरद कहते थे। इस अर्थ से उसमें चन्द को बैल बना कर उसके दुबले होने का कई बार कई प्रकार से कारण पूछा और चन्द्र ने उत्तर में उसका कारण पृथ्वीराज का प्रबल प्रताप ही सिद्ध किया। यद्यपि पृथ्वीराज की प्रशंसा से जयचन्द्र बहुत नाराज हो रहा था तो भी उसने चन्द की होशियारी और हाजिरजवाबी देख कर मन ही मन उसे बहुत सराहा। जयचन्द्र ने उसे बहुत कुछ इनाम देकर पूछा कि तुम्हारे ऐसे योग्य साथियों के रहते भी पृथ्वीराज ने मुझसे वैर क्यों किया? चन्द्र ने कहा कि कलियुग में आपको राजसूय यज्ञ करते देख उन्हें बुरा मालूम हुआ। इससे पूर्व वह सदा आपके पक्षपाती और सहायक थे। इसी प्रकार बहुत देर तक चन्द और राजा में अनेक बातें होती रहीं। उस समय जयचन्द्र को कुछ सन्देह हुआ कि भाट के साथ का सेवक पृथ्वीराज ही है। उसने सेवक को कैद कर लेने का विचार किया। लेकिन फिर कुछ सोच कर वह रुक गया और उसने पृथ्वीराज को पहचानने के लिए कर्नाटकी को बुलवाया। कर्नाटकी केवल पृथ्वीराज को ही पुरुष समझती थी और उन्हीं के सामने घूंघट काढ़ती थी। चन्द ने इशारे से कर्नाटकी को मना कर दिया था, तोभी घबराहट में कर्नाटकी ने पहले तो घूंघट काढ़ लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर फिर चन्द का इशारा समझ कर सिर से कपड़ा हटा लिया। जयचन्द्र के कारण पूछने पर उसने कहा कि पृथ्वीराज और चन्द दोनों ही एकांशभूत और मित्र हैं इसलिए मैंने चन्द को देख कर घूँघट काढ़ा था। कवि चन्द कहता है कि जिस समय कर्नाटकी ने यह उत्तर दिया उस समय जयचन्द्र के दरबार में नौ रसों का आभास दिखलाई देता था—"जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को सेवक के वेष में देखा, यह अद्भुत रस था। कर्नाटकी की चतुरता देख कर पृथ्वीराज को हास्य रस का अनुभव हुआ। वीर शिरोमणि पृथ्वीराज का इस प्रकार हीन दशा में जयचन्द्र के दरबार में जाना करुणा रस था। चन्द ने राजा को जो मुँहतोड़ उत्तर दिया था, उसमें रुद्र रस था। राजा ने चन्द को जो विलक्षण विशेषण दिया था उसमें बीभत्स रस था। शूरों की बाँहें फड़कने लगीं, यह वीर रस था। परदे से शृङ्गार किए हुए संयोगिता यह सब देख रही थी; वह शृङ्गार रस था। भविष्य का ध्यान करके कुछ लोग भयभीत हो गए थे; यह भयानक रस था। और अन्त में राजा की आज्ञा लेकर चन्द अपने साथ पृथ्वीराज को लेकर दरबार से सकुशल लौट चला, यह शान्ति रस था।" इस उक्ति से कवि के काव्य-चातुर्य और प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है।

अस्तु। कर्नाटकी की चतुरता से पृथ्वीराज और चन्द पर आनेवाली विपत्ति टल गई और चन्द आज्ञा लेकर दरबार से लौट आया। पृथ्वीराज ने उसके पास डेरे पर भी बहुत सा पुरस्कार आदि भेजा और साथ ही कई दूतों को गुप्त रूप से चन्द के सेवक पर कड़ी निगाह रखने के लिए नियुक्त कर दिया। उसकी रानी जुन्हाई तथा कन्या संयोगिता ने भी अपनी दासियों के हाथ उसके पास अनेक प्रकार की चीजें भेजीं।

लंगड़ीराय की मृत्यु।

एक दिन एकान्त में पृथ्वीराज बात चीत करते हुए, चन्द से कहने लगे—"अब मैं इस प्रकार सेवक के वेष में छिपे रहने का कोई कारण नहीं देखता। इसलिए कल मैं अपना राजसी वेष धारण कर लूँगा और फिर जो कुछ होगा वह देखा जायगा।" चन्द ने भी इसे स्वीकार कर लिया लेकिन कन्ह ने कहा कि यह बात ठीक नहीं है। चन्द तो भाट होने के कारण छूट जायगा और क्षत्रिय अपनी आन के कारण विपत्ति में पड़ जायँगे। इतने में अस्त्र शस्त्रों की खड़खड़ाहट और घोड़ों की टापों के शब्द सुनाई दिए। जयचन्द्र की सेना ने पृथ्वीराज की छावनी को चारों ओर से घेर लिया था और दोनों ओर से योद्धाओं में मार काट आरम्भ हो गई थी। पृथ्वीराज ने संजमराय के पुत्र लंगड़ीराय को शत्रु दल का सामना करने की आज्ञा दी। पूरे दो पहर तक लगातार युद्ध होता रहा। दोनों ओर के सहस्रों योद्धा मारे गए। उसी युद्ध में, तोप के एक गोले के झपट्टे में लंगड़ीराय भी मर गया। लेकिन इतना होने पर भी युद्ध नहीं रुका और दोनों ओर के वीर बराबर लड़ते रहे।

पृथ्वीराज और संयोगिता।

इधर युद्ध आरम्भ हुआ और उधर पृथ्वीराज अपने राजसी ठाठ से एक बढ़िया घोड़े पर सवार होकर गंगा-तट के उस महल के पास पहुँचे जहाँ संयोगिता रहती थी। वहाँ उन्हें एक खिड़की में संयोगिता बैठी हुई दिखलाई दी। पृथ्वीराज एक वृक्ष से घोड़ा बाँध कर बहुत देर तक चुपचाप वहाँ खड़े रहे। थोड़ी देर बाद एक दासी आई और बहुत आदरपूर्वक उन्हें महल में ले गई। दासी वही कर्नाटकी थी और उससे पृथ्वीराज को सब हाल मालूम हो गया था। यद्यपि पृथ्वीराज बड़ी विकट अवस्था में थे, तो भी उस समय उनका विवेक जाता रहा और वह एक गुप्त द्वार से उसके साथ महल में चले ही गए। वहाँ पहुँच कर कर्नाटकी ने पृथ्वीराज और संयोगिता का गान्धर्व विवाह करा दिया। पृथ्वीराज को उधर युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...बहुत चिन्ता लगी हुई थी, इसलिए वह संयोगिता से जल्दी लौटने का वादा करके अपनी छावनी की ओर चले। महल से बाहर निकलते ही उन्हें थोड़े से पठान सवार मिले और पृथ्वीराज से उनसे मुठभेड़ हो गई। पृथ्वीराज ने उन सबों को अकेले ही मार भगाया। उन सवारों ने भाग कर सब समाचार जयचंद्र से जा कहा और इधर पृथ्वीराज अपने लश्कर में पहुँचे। कन्ह ने जब सुना कि पृथ्वीराज गुप्त रूप से संयोगिता से गान्धर्व विवाह कर आए हैं, तो उन्होंने तुरन्त पृथ्वीराज को संयोगिता सहित दिल्ली भाग जाने की सम्मति दी। शेष सरदारों की भी यही सम्मति हुई। इसलिए पृथ्वीराज बड़े बड़े सामन्तों को साथ लेकर फिर संयोगिता के महल में पहुँचे।

उस दिन चैत्र की पूर्णिमा थी। रात ठीक दो पहर बीत चुकी थी। चारों ओर शान्ति का अधिकार था। संयोगिता बैठी हुई पृथ्वीराज की प्रतीक्षा कर रही थी। पृथ्वीराज ने वहाँ पहुँच कर संयोगिता से अपने साथ भाग चलने के लिए कहा। जब उसने अपने पिता का भय दिखलाया तो पृथ्वीराज ने कहा कि तुम उनसे कुछ भी भय नहीं है। निदान संयोगिता महल से नीचे उतर आई और पृथ्वीराज उसे घोड़े पर उसे बैठा कर दिल्ली भगा ले गए।

जयचन्द्र का युद्ध और संयोगिता का विवाह।

कन्नौज से चलते समय पृथ्वीराज ने चन्द से कह दिया था कि जयचन्द्र से दरबार में जाकर कह देना कि पृथ्वीराज, तुम्हारे यज्ञ में विघ्न डालने के अतिरिक्त तुम्हारी कन्या भी हर ले गए। ज्योंही यह समाचार जयचन्द्र को मिला त्योंही उसने बड़े क्रोध से भरकर अपनी सारी सेना को पृथ्वीराज का पीछा करने की आज्ञा दी। पृथ्वीराज ने भी जयचन्द्र की सेना का सामना करने तथा उसे रोकने के लिए स्थान स्थान पर अपने सामन्तों को पीछे छोड़ दिया था। सबसे पहले गोविन्दराय गिहलौत ने जयचन्द्र की सेना का मुकाबला करके उसके बहुत से सैनिक मार डाले। इसके बाद कहरकंठीर और चन्द्रपुण्डीर में खूब युद्ध हुआ। आततताई से लड़ता हुआ कहरकंठीर आगे बढ़कर पृथ्वीराज और संयोगिता तक जा पहुँचा। कहरकंठीर ने पृथ्वीराज के गले में अपनी कमान डाल कर उन्हें घोड़े पर से खींचना चाहा; इतने में संयोगिता ने अपने दाँतों से उस कमान की डोरी काट कर पृथ्वीराज की रक्षा की। इस पर कहरकंठीर ने लौट कर जयचन्द से कहा कि पृथ्वीराज बलपूर्वक आपकी कन्या को नहीं ले गए, बल्कि कुमारी स्वेच्छा से ही उनके साथ गई हैं। इसके बाद उसने फिर जाकर आततताई से युद्ध किया। यह युद्ध ऐसा विलक्षण हुआ कि उसमें दोनों ही एक दूसरे के हाथ की तलवारों से एक साथ मारे गए। सिर कट कर गिर जाने के बाद भी उन दोनों के धड़ कुछ देर तक रणभूमि में सैनिकों का संहार करते रहे। इस प्रकार इन दोनों वीरों का अन्त हो गया। कहरकंठीर के इस प्रकार वीरता से लड़ने का कारण यह था कि जयचन्द्र ने उसे अपनी कन्या का वाक्दान दिया था और संयोगिता का विवाह उसी से होनेवाला था।

इसके बाद और भी अनेक स्थानों पर पृथ्वीराज और जयचन्द्र के सामन्तों में युद्ध हुआ। जयचन्द्र भी अपने शत्रु से बदला लेने के लिए आगे बढ़ा। जयचन्द्र ने कनक गुर्जर, नीरधराय, कन्ह, हरिसिंह आदि अनेक सरदार मारे थे। कन्ह ने अनेक स्थानों पर बड़ी वीरता से युद्ध किया था जिनका वर्णन यथास्थान हो चुका है। इस अवसर पर भी कन्ह ने बड़ी वीरता दिखलाई थी; पर चन्द ने उसकी मृत्यु का बहुत ही संक्षेप में वर्णन किया है। जयचन्द्र के भी अनेक बड़े बड़े सरदार युद्ध में काम आए थे। अन्त में केवल अल्हन परिहार नामक सरदार जो पृथ्वीराज का भान्जा था, बच गया था। जब अल्हन ने देखा कि जयचन्द्र सेना सहित पृथ्वीराज के सिर पर पहुँचा चाहता है तो उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—"महाराज अब शत्रु बहुत निकट आ गए हैं इसलिए मैं आपको अपना सिर काट कर देता हूँ। आप जब तक सकुशल दिल्ली न पहुँच जायँ तब तक मेरे सिर को जमीन पर न रखें। जब तक यह सिर आपके हाथ में रहेगा तब तक मेरा धड़ रण-भूमि में लड़ता रहेगा।" यदि पृथ्वीराज यह बात मान लेते और उसी के अनुसार कार्य्य करते तो उन्हें सम्भवतः कीर्त्ति और यश मिलता। लेकिन भवितव्यता कुछ और ही थी। संयोगिता के कारण बड़े बड़े अनर्थ होनेवाले थे जो आगे चल कर हुए ही। अल्हन ने अपना सिर काट कर पृथ्वीराज को दे दिया और उसका धड़ लड़ने लगा। इधर पृथ्वीराज उसका सिर लेकर दिल्ली चले। रास्ते में संयोगिता को प्यास लगी; राजा ने एक कूएँ से पानी निकाला। लेकिन संयोगिता ने वह जल नहीं पीया और कहा कि आपके हाथ में शव का कटा हुआ सिर होने के कारण यह जल अपवित्र और अपेय हो गया। पृथ्वीराज ने समझाया कि अभी अल्हन मरा नहीं; उसका धड़ रण-भूमि में लड़ रहा है। लेकिन संयोगिता ने नहीं माना। लाचार पृथ्वीराज को वह मस्तक जमीन पर रख कर फिर से पानी निकालना पड़ा।

मस्तक के जमीन पर रखे जाने के साथ ही रण-भूमि में अल्हन का धड़ भी जमीन पर गिर पड़ा। अब तक उस धड़ ने जयचन्द्र और उसकी सेना को रोक रखा था, लेकिन उसके जमीन पर गिरते ही जयचन्द्र सेना सहित आगे बढ़ा। रास्ते में भाटी, विजयराज चालुक्य, लाखनसी बघेल, और तुँवर पहाड़ आदि सरदारों ने भी उसका मुकाबला किया। लेकिन अन्त में वह सब भी मारे गए। पृथ्वीराज बड़ी कठिनता से संयोगिता सहित दिल्ली पहुँच सके। उनके साथ केवल रामगुरु पुरोहित, चन्द भाट और हाहुलीराय ही सकुशल दिल्ली पहुँचे। शेष सभी बड़े बड़े सरदार और समस्त सैनिक उस युद्ध में मारे गए। चन्द ने लिखा है कि इस युद्ध में फ्रांक नामक एक फरासीसी भी था। पृथ्वीराज का पीछा करते हुए जयचन्द्र भी दिल्ली जा पहुँचा। रास्ते में उसने अपनी आँखों से देख लिया कि उसकी कन्या पृथ्वीराज के पीछे उसके घोड़े पर बैठी है। अपनी कन्या को देख कर जयचन्द्र का मन प्रेम और दया से विह्वल हो गया। इसके सिवा वह पृथ्वीराज की वीरता और साहस से भी बहुत प्रसन्न था, इसलिए उसने श्रीकंठ भाट को दिल्ली जाकर पृथ्वीराज और संयोगिता का विवाह करने की आज्ञा दी और वह स्वयं कन्नौज लौट गया। श्रीकंठ ने तदनुसार दिल्ली जाकर विवाह करा दिया और पृथ्वीराज से बहुत कुछ पुरस्कार पाया। ग्यारह हजार सेना तथा सैकड़ों बड़े बड़े सरदारों के मारे जाने का किसी को दुःख न हुआ; क्योंकि उस समय राजपूत रण में मारे जाने को गौरव समझते थे।

आनन्द और सुख-भोग।

संयोगिता-हरण के कारण बड़े बड़े अनर्थ हुए और सैकड़ों वीर और योद्धा मारे गए। इसके सिवा युद्ध में दोनों ओर के जो साधारण सैनिक काम आए उनकी तो कुछ गिनती ही नहीं। लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, किसी को इस भयंकर मनुष्य संहार के लिए कुछ दुःख नहीं हुआ। हाँ पृथ्वीराज के सकुशल दिल्ली लौट जाने पर समस्त दिल्ली-वासियों ने खूब आनन्द मनाया और प्रसन्नता प्रकट की। इसके सिवा संयोगिता के विवाह के कारण नगर में और भी धूमधाम हुई। विवाह हो जाने के बाद जिन जिन स्त्रियों को अपने पति का सिर मिल सका वे उन सिरों को लेकर सती हो गईं और शेष वैराग्य धारण करके ईश्वराराधन में अपने दिन बिताने लगीं।

विवाह के बाद अनेक प्रकार के आमोद प्रमोद होने लगे। दूर दूर के सुरम्य उपवनों में शिकार तथा भोजनादि का प्रबन्ध होने लगा। राजा तथा उनके पार्श्ववर्त्ती खूब आनन्द मनाने लगे। एक बन में एक दिन राजा को समाचार मिला कि पास ही एक गुफा में बड़ा भारी सिंह है। पृथ्वीराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुफा से हुँकुआ लोगों ने उस सिंह को गुफा से बाहर निकालने के अनेक प्रयत्न किए। थोड़ी देर में उस गुफा में से सिंह-चर्म धारण किए हुए एक वृद्ध ऋषि निकले *। बाहर निकल कर ऋषि ने बहुत क्रुद्ध होकर पृथ्वीराज को शाप दिया कि तुमने व्यर्थ मुझको इतना कष्ट दिया है और मेरी तपश्चर्य्या भंग की है। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम्हारा शत्रु तुम्हारी आँखें फोड़ डालेगा। पृथ्वीराज के बहुत प्रार्थना करने और गिड़गिड़ाने पर ऋषि ने कह दिया कि इस शाप का फल तुम्हें एक वर्ष के बाद मिलेगा।

राजा परीक्षित को जो शाप दिया गया था उसके अनुसार उनकी मृत्यु एक ही सप्ताह के अन्दर हो गई थी; लेकिन उस एक सप्ताह में ही उन्होंने परलोकसाधन और परोपकार के बहुत से कार्य्य कर डाले थे। इसके सिवा उन्होंने राज्य तथा संसार के अनेक सुखों का खूब भोग कर लिया था, इसलिए उन्हें संसार से शीघ्र ही विरक्ति हो गई थी। लेकिन पृथ्वीराज से वैसा न हो सका। यद्यपि उन्होंने भी संसार के सब प्रकार के बहुत से सुखों का भोग कर लिया था इसलिए यदि वह चाहते तो इस एक वर्ष में धर्म्म और परमार्थ के अनेक अच्छे अच्छे कार्य्य कर डालते। लेकिन पृथ्वीराज आरम्भ से ही बड़े विलासी और विषयी थे और उनका अधिकांश समय दुर्व्यसनों में ही बीतता था, इसलिए शाप का उनपर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। अपने सारे जीवन में उन्होंने शौर्य्य और शृंगार का अनुभव किया था। धर्म्म और वैराग्य का उन्हें स्वप्न में भी ध्यान न हुआ था। इसलिए वह कुछ दिनों तक इधर उधर जंगल में शिकार खेल कर दिल्ली लौट आए और वहाँ अपने महलों में आमोद प्रमोद में लग गए। राज-कार्य्य आदि उन्होंने एक दम से छोड़ दिए। वह प्रातःकाल स्नान आदि करके थोड़ी देर के लिए दरबार करते और फिर महल में चले जाते और सारा दिन तथा रात वहीं बिताते। कुछ दिनों बाद उन्होंने यह नाम मात्र का दरबार भी बन्द कर दिया। कवि चन्द कहता है कि जिस प्रकार मनुष्य की छाया सदा उसके साथ लगी रहती है, पृथ्वीराज भी ठीक उसी प्रकार सदा संयोगिता के साथ रहने लगे। राज-कार्य्य का ध्यान उन्हें स्वप्न में भी न होता था। सामन्तों को महाराज के दर्शन तक दुर्लभ हो जाते थे!

संयोगिता की सात सौ दासियाँ थीं जो सौ सौ की सात टुकड़ियों में विभक्त थीं। उन्हीं दासियों के द्वारा सामन्त लोग राज्य सम्बन्धी सन्देसे महाराज से कहला देते थे और पहरों बाद उन्हें उत्तर मिलते थे। दीन दुःखियों की पुकार का राजा तक पहुँचने का कोई भी उपाय न बचा। इस प्रकार राज-कर्म्मचारियों और प्रजा का राजा के साथ कोई सम्बन्ध न रह गया। जब आवश्यक कार्य्यों के लिए बाहर से सन्देसे आने में पृथ्वीराज और संयोगिता को बहुत कष्ट होने लगा तो संयोगिता ने अपने स्वामी को उस कष्ट से बचाने के लिए पहरेवाली दासियों को कड़ी आज्ञा दे दी कि आगे से बाहर का कोई भला बुरा समाचार महाराज तक न पहुँचाया जाय।

उधर मद्य, मांस तथा अनेक प्रकार के पौष्टिक पदार्थों और भोग-विलास में पृथ्वीराज इतने निमग्न हो गए कि उन्हें सूर्य्योदय और सूर्य्यास्त की भी खबर न होती थी। इस लम्पटता का परिणाम भी अवश्य ही बहुत भयङ्कर था। राज्य में चोर, डाकू, तथा बदमाश जगह जगह उपद्रव करने लगे। किसी को राजा या राज्य का कुछ भी भय न रह गया। चारों ओर अन्धाधुन्धी फैल गई। इसलिए राज्य के शुभचिन्तक कई सामन्तों ने एक दिन मिल कर एक सभा की और उसमें निश्चय किया कि जिस प्रकार हो राजा को समझा बुझा कर मार्ग पर लाना चाहिए। राजा के समझाने का भार चन्द भाट को दिया गया। लेकिन चन्द ने पहले ही कह दिया कि

* चन्द ने लिखा है कि यह ऋषि दुर्वासा के शिष्य चक्षुः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार के समझाने बुझाने का कुछ प्रभाव या फल न होगा। तथापि सब लोगें के बहुत आग्रह करने पर चन्द ने उनकी बात मान ली और दासियों के हाथ पृथ्वीराज के पास एक परचा भेजा। उस परचे में लिखा थाः—

"तूं पर गोरी रत्तियं अरु ता घर गोरी तक्कियं।"

अर्थात् आप तो गोरी (नायिका) के साथ रमण करते हैं और गोरी (शहाबुद्दीन) की निगाह आपके राज्य पर लगी है। यह परचा पृथ्वीराज तक न पहुँच सका और संयोगिता ने मार्ग में ही उसे ले लिया। हाहुलीराय के साथ चन्द भाट स्वयं यह परचा लेकर राज-महल की ड्योढ़ी तक गया था। संयोगिता ने अपनी दासियों से उन दोनों का अपमान कराके उन्हें महल के अहाते से बाहर निकलवा दिया। बाहर निकल कर हाहुलीराय ने चन्द से कहा—"अब राजा और राज्य दोनों के विनाश का समय आ गया है। संयोगिता नहीं बल्कि हिन्दू-राज्य की वियोगिता महाराज के गले पड़ी है। इसलिए इस राज्य में रहकर मैं अपना अपमान कराना नहीं चाहता।" चन्द ने उसे सब प्रकार से समझा बुझा कर शान्त करना चाहा पर उसका उद्योग व्यर्थ हुआ। हाहुलीराय तुरन्त दिल्ली से निकल कर गजनी की ओर चल पड़ा, लेकिन पृथ्वीराज को इन सब बातों की कुछ भी खबर न हुई। हाहुलीराय चलते समय यह प्रतिज्ञा भी कर गया था कि मैं शीघ्र ही शहाबुद्दीन को लाकर संयोगिता का गर्व चूर्ण करूँगा और पृथ्वीराज की आँखें खोल दूँगा। इसलिए दिल्ली में सब लोगों को बहुत अधिक भय हुआ। भविष्य में दिल्ली की होनेवाली दुर्दशा लोगों की आँखों के सामने फिर गई। उन लोगों को अपने सामने घोर संकट दिखलाई पड़ने लगा।

—:०:—

दसवाँ प्रकरण।

(पृथ्वीराज का पुनः राजकार्य्य में लगना—चामुण्डराय की मुक्ति—अन्तिम युद्ध—दिल्ली में हाहाकार—शब्द-वेधी शर-सन्धान।)

पृथ्वीराज का पुनः राजकार्य्य में लगना।

हाहुलीराय दिल्ली से चल कर गजनी पहुँचा। वहाँ उसने शहाबुद्दीन के दरबार में पृथ्वीराज की विलासिता और राजकार्य्य की ओर से उदासीनता आदि का कुल वर्णन किया और भली भाँति प्रकट कर दिया कि न तो इस समय वहाँ की प्रजा ही सुखी और सन्तुष्ट है और न राज की रक्षा के लिए योग्य वीर ही बच गए हैं। दिल्ली की यह दुरवस्था सुन कर शाह को बहुत प्रसन्नता हुई और उसने इस सुयोग से लाभ उठाना चाहा। उसी अवसर पर उसे अपने गुप्त दूतों द्वारा भी दिल्ली की दुरवस्था का पता लग गया। इसलिए वह तीस हजार योद्धाओं को अपने साथ लेकर दिल्ली की ओर चल पड़ा।

इधर पृथ्वीराज को संसार की कुछ भी खबर न थी। वह दिन-रात महलों में आनन्द मग्न किया करते थे। उन्हें इन बातों का जरा भी ध्यान न था कि हमारे बिना राज्य और प्रजा की क्या दुर्दशा होती होगी, हाहुलीराय क्या क्या गुल खिलाएगा, सैनिकों और युद्ध-सामग्री के अभाव रह जाने के कारण किसी शत्रु के अचानक आ जाने पर क्या दशा होगी। जब रावल समरसिंह को पृथ्वीराज की दिनचर्य्या आदि का समाचार मिला तो वह बहुत चिन्तित हुए और उन्होंने स्वयं तेरह हजार सेना साथ लेकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। कूच करते करते वह दिल्ली पहुँचे और वहाँ उन्होंने नगर के बाहर छावनी डाली। लेकिन उनके आदर सम्मान के लिए कोई भी न आया। कई दिनों तक राज्य से किसी के आने की प्रतीक्षा करने के बाद अन्त में उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वीराज को पत्र भेजना निश्चय किया। दूसरे दिन उन्होंने पत्र द्वारा पृथ्वीराज को अपने आने की सूचना देने का भी प्रबन्ध कर लिया। पृथ्वीराज वह पत्र पाकर पढ़ने लगे। संयोगिता ने अपने आनन्द में विघ्न पड़ने के विचार से उन्हें पत्र पढ़ने से रोकना चाहा, पर पृथ्वीराज उसे आदि से अन्त तक पढ़ गए। अन्त में उन्होंने उस पत्र तथा रावल जी के आने का कुल समाचार संयोगिता को भी सुना दिया और तुरन्त राजमहल से बाहर निकले। बाहर आकर उन्होंने अपने दरबारियों को एकत्र किया। सामन्तगण मुजरा करने के लिए सामने आए। आवश्यक प्रारम्भिक कृत्यों के बाद पृथ्वीराज ने भरी सभा में अपने पूर्व कृत्यों पर बहुत अधिक पश्चात्ताप किया। सबसे अधिक दुःख उन्हें इस बात का था कि उनके प्रिय सखा रावल जी इतने दिनों से आए हुए हैं; पर वह उनसे अब तक न मिल सके। इसके बाद उन्होंने स्त्रियों के माया-जाल की बहुत निन्दा की और चल कर रावल जी से भेंट करना निश्चय किया। उसी समय वह बहुत सी सेना और बड़े बड़े सरदारों को लेकर नगर के बाहर रावल जी के डेरे पर पहुँचे और उनसे भेंट और क्षमा-प्रार्थना करके आदरपूर्वक उन्हें अपने साथ महलों में ले आए। दूसरे दिन पृथ्वीराज ने फिर दरबार किया जिसमें रावल जी भी सम्मिलित थे। उस अवसर पर प्रजा ने घर घर आनन्द मनाया था और नगर में बहुत बड़ा उत्सव हुआ था।

चामुण्डराय की मुक्ति।

इसके दूसरे दिन पृथ्वीराज ने फिर दरबार किया। दरबार में इधर उधर की अनेक बातों के पीछे रावल जी ने चामुण्डराय का जिक्र छेड़ा और भविष्य की आपत्ति का ध्यान करके उसे छुड़ाना चाहा। पृथ्वीराज के भी बहुत से योद्धा मारे जा चुके थे और उस समय उन्हें ऐसे वीर सहायकों की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने भी चामुण्डराय को मुक्त कर देने का विचार किया और तदनुसार चन्द वरदाई तथा अन्य कई सामन्तों को उसे लाने के लिए भेजा। थोड़ी देर बाद चामुण्डराय सभा में लाया गया। पृथ्वीराज ने उसकी बेड़ियाँ काटने की आज्ञा दी और उसे खड्ग धारण करने के लिए कहा। लेकिन चामुण्डराय पहले ही बेड़ियां पहनने के समय कह चुका था कि अब मैं कभी खड्ग धारण न करूँगा, इसलिए उसने बहुत नम्रता-पूर्वक अपनी असम्मति प्रकट की। लेकिन चन्द ने उसे देश-दशा का ध्यान दिलाते हुए खड्ग धारण करने का अनुरोध किया। इसके सिवा अन्य कई सामन्तों ने भी उसे समझाया बुझाया। लाचार चामुण्डराय को भी स्वीकार करना पड़ा। महाराज ने तुरन्त उसे अपना निज का खड्ग, एक हजार घोड़े, सोलह हाथी तथा अन्य बहुत से बहु-मूल्य पदार्थ पुरस्कार-स्वरूप दिए और उसका यथेष्ट आदर-सम्मान किया। तुरन्त यह समाचार सारे नगर में फैल गया और सबने महाराज के इस कृत्य पर अपना सन्तोष प्रकट किया।

अन्तिम युद्ध।

शहाबुद्दीन की चढ़ाई का समाचार सब लोगों को पहले से ही मिल चुका था, इसलिए सब लोगों को उसकी चिन्ता लगी हुई थी। दूसरे दिन दरबार में इस युद्ध का जिक्र चला। सब सामन्त अपनी अपनी सम्मति देने लगे। कोई रात के समय छापा डालना चाहता था और कोई खुले मैदान में लड़ने की राय देता था। सबको शान्त करके रावल जी ने पहले तो सब सामन्तों के वीर-कृत्यों की बहुत प्रशंसा की और तदुपरान्त सब को परस्पर का राग द्वेष छोड़ कर विदेशियों के आक्रमण से अपने देश को बचाने की सम्मति दी। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि युद्ध खुले मैदान में हो और उसमें राजकुमार रेणसी न सम्मिलित हो। इसके बाद पृथ्वीराज ने जैतराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमार को बुलवा कर उसे राज्य का प्रबन्ध सौंपा और कुमार रेणसी को भी उसी के सपुर्द किया।

अब युद्ध की तैयारी होने लगी। फौजें सजने लगीं और बड़े बड़े वीरों और योद्धाओं के लिए नाकें और काम तजवीज होने लगे। पृथ्वीराज भी वीर-वेष धारण करके संयोगिता से अन्तिम भेंट करने के लिए महल में गए। कवि कहता है—'यद्यपि संयोगिता अपने हाथों से पृथ्वीराज को कवच आदि पहना रही थी तो भी भावी अरिष्ट उसकी आँखों के सामने नाच रहा था। उसके नेत्रों में जल भरा हुआ था और उसका जी बैठा जाता था। जिस प्रकार भूखा अपने सामने रखी हुई सोने की डली को देखता है, संयोगिता भी उसी प्रकार पृथ्वीराज की ओर देख रही थी।" इतने में रणवाद्य बजने लगे और महाराज को युद्ध की तैयारी का समाचार मिला। संयोगिता उन रणवाद्यों को यमराज का आवाहन समझती थी। पृथ्वीराज ने संयोगिता को आलिङ्गन करके चलना चाहा। संयोगिता उनका हाथ पकड़ कर मार्ग में खड़ी हो गई और सजल नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी। थोड़ी देर तक उसी प्रकार खड़े रहने के बाद पृथ्वीराज ने उसे बहुत धैर्य दिलाया और वहाँ से प्रस्थान किया।

पृथ्वीराज की सेना में इस समय दो ही वीर सामन्त बच रहे थे। एक चामुण्डराय और दूसरे पुरोहित रामगुरु। तो भी सेना ने बड़े उत्साह के साथ कूच किया। उसी अवसर पर धीर पुण्डीर का पुत्र पावस भी अपनी सेना सहित आकर उसमें मिल गया। सुलतान के चनाब पार कर चुकने का समाचार सबको पहले ही मिल चुका था इसलिए सेना उसी ओर बढ़ने लगी। धीरे धीरे दोनों सेनाओं के मध्य का अन्तर कम होने लगा और अन्त में दोनों का मुकाबला हो ही गया।

चामुण्डराय को पृथ्वीराज ने अपनी सेना में सबसे आगे रखा था। समस्त सेना की गृद्धव्यूह रचना की गई थी। इस रचना में सेना के पङ्ख, चोंच, पीठ, पूँछ आदि अनेक अङ्ग बनाए जाते हैं। उन अंगों पर पृथ्वीराज ने अपने चार पांच मुख्य मुख्य सरदारों को नियुक्त किया था। मुसलमानों की सेना भी चार भागों में विभक्त थी। प्रातःकाल होते ही रणवाद्य बजने लगे और दोनों ओर के वीर योद्धा घोर युद्ध करने के लिए उत्सुक होने लगे। चामुण्डराय ने पृथ्वीराज से पूछा कि पहले किस पर शर-सन्धान किया जाय। पृथ्वीराज ने कहा कि पहले इस झगड़े की जड़ हाहुलीराय को मार डालना सर्वोत्तम है। चामुण्डराय की इच्छा थी कि पहले गोरी पर वार किया जाय, क्योंकि उसके बाद और लोगों का मारना बहुत सरल हो जायगा; लेकिन पृथ्वीराज की आज्ञा से विवश होकर उसे हाहुली को ही अपना लक्ष्य बनाना पड़ा। सुलतान ने पहले ही हाहुली को एक सुरक्षित स्थान पर रक्खा था। इसलिए उसतक पहुँचने के लिए चामुण्डराय को सैकड़ों वीरों के सिर धड़ से अलग करने पड़े थे। इसके बाद रावल की सेना के नायक कन्ह ने शत्रुदल में घुस कर घमासान युद्ध आरम्भ कर दिया। यवन सेना के प्रधान वीर तातारखाँ से उसका मुकाबला हो गया। अन्त में तातार के बहुत से साथी मारे गए और उनका पक्ष निर्बल हो चला तो सुलतान ने तुरन्त और वीरों को उनकी सहायता के लिए भेजा। इसी प्रकार दोनों दलों में लगातार तीन दिनों तक घोर युद्ध होता रहा। लेकिन यवन-सेना संख्या में बहुत अधिक थी और पृथ्वीराज की ओर साधारण योद्धाओं और बड़े बड़े वीर सरदारों की बहुत कमी थी। तीन दिन बाद चित्तौर के रावल समरसिंह, उनके पुत्र कल्याण और अनेक योद्धाओं का अन्त हो गया। अनेक शत्रुओं का विनाश करने के बाद चामुण्डराय भी बहुत घायल हो गया और अन्त में वह एक मुसलमान के हाथ से मारा गया। चामुण्डराय के मरते ही चौहान की सेना में हाहाकार मच गया। उसके बाद जैत प्रमार सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़ कर युद्ध करने लगा। पर प्रबल शत्रु-सेना के सामने उसकी भी कुछ न चली और वह मारा गया। धीरे धीरे और वीर और योद्धा भी एक एक करके वीरगति को प्राप्त होने लगे। रणभूमि में चारों ओर लाशों के ढेर के सिवा और कुछ भी दिखाई न देता था। जब पृथ्वीराज ने देखा कि सब तरफ सर्वनाश ही हो रहा है तो वह भी अपना धनुष लेकर आगे बढ़े और शत्रु-दल पर तीरों की भयङ्कर वर्षा करने लगे। उनके साहस और वीरता से बड़े बड़े योद्धा चकित हो गए। पृथ्वीराज के तीर रुकना जानते ही न थे। उनके सामने जो आता उसे वह वहीं ढेर कर देते। इस प्रकार उन्होंने कई बड़े बड़े मुसलमान वीरों को मार गिराया। जब सुलतान को और कोई उपाय न सूझा तो वह स्वयं थोड़े से चुने हुए साथियों को लेकर पृथ्वीराज के सामने आ पहुँचा। उस समय तक पृथ्वीराज का तर्कश भी तीरों से खाली हो चुका था इसलिए वह हाथ में खड्ग लेकर आगे बढ़े। अकेले पृथ्वीराज ने बीसियों शत्रुओं का अन्त कर दिया। लड़ते लड़ते जब उनका खड्ग भी टूट गया तो वह दो शत्रुओं के सिर पकड़ कर उन्हें परस्पर टक्कर लड़ा कर तोड़ने लगे। इसी प्रकार युद्ध करते करते दिन बीत चला और सूर्यास्त का समय आया। उस समय एक यवन सरदार ने पीछे से जाकर पृथ्वीराज को पकड़ कर ज़मीन पर गिरा दिया और कई अन्य यवनों ने मिल कर उन्हें हाथ पैर बाँध कर हाथी पर बैठा दिया।

दिल्ली में हाहाकार।

पृथ्वीराज को कैद करते ही सुलतान का हौसला बढ़ा। क्षत्रिय-सेना का अधिकांश पहले नष्ट हो चुका था। जो लोग बाकी बच रहे थे वे भी मुसलमानों के हाथों वहीं मार डाले गए। समरसिंह का पहले ही अन्त हो चुका था इसलिए सुलतान का मार्ग रोकनेवाला कोई भी न बच रहा। उसने तुरन्त आगे बढ़ कर दिल्ली और चित्तौर अपने अधीन कर लिया। दिल्ली में क्षत्रियों ने मुसलमानों का कुछ मुकाबला किया था पर उसका कोई फल न हुआ। पृथ्वीराज का पुत्र रेणसी भी इसी युद्ध में मारा गया और मुसलमानी सेना ने नगर में प्रवेश किया। इससे पूर्व ही संयोगिता को युद्ध में पृथ्वीराज के पकड़े जाने का समाचार मिल चुका था। इसके अतिरिक्त अनेक बड़े बड़े सरदारों के मारे जाने का हाल भी राजमहल में पहले ही पहुँच चुका था और उनकी स्त्रियाँ, रानी संयोगिता, इच्छनी, पद्मावती तथा पृथ्वीराज की बहन पृथा कुमारी आदि सभी चिता लगा लगा कर भस्म हो चुकी थीं। सती होने से पूर्व उन लोगों ने सारा धन, आभूषण और वस्त्रादि बांट और लुटा दिए थे। सारा नगर शोक-सागर में डूबा हुआ था। छोटे बड़े सभी दुःखी थे। तिस पर यवन-सेना ने वहाँ पहुँच कर और अधिक उत्पात आरम्भ कर दिया था जिससे नगर में और भी हाहाकार मच गया। सारा नगर उजाड़ सा मालूम होता था।

यह युद्ध कागर नदी के किनारे हुआ था; पर अब वह नदी नहीं रही। टाड साहब ने इस सम्बन्ध में अनुसन्धान करके जो कुछ लिखा है उसके देखने से मालूम होता है कि वह नदी शिवालिक पहाड़ से निकली थी और हंसा, भटनेर, रङ्गमहल, फुलेरा और जैसलमीर आदि नगर उसके किनारे पर बसे थे।

पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी में जो यह अन्तिम युद्ध हुआ था उसमें कन्नौज से जयचन्द भी पृथ्वीराज की सहायता के लिए आया था। पर क्षत्रियों का पक्ष निर्बल देख कर वह वापस भाग गया। गोरी के कुछ सिपाहियों ने उसका पीछा किया था। जब उसने उनसे रक्षा का और कोई उपाय न देखा तो लाचार उसने गंगा में कूद कर अपने प्राण दे दिए। उसी दिन से दिल्ली और कन्नौज से हिन्दुओं का अधिकार उठ गया। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना विक्रम सम्बत् १२४९ (सन् ११९२) की है।

यों तो समस्त भारत में पहले से ही बहुत अव्यवस्था थी, इस युद्ध के बाद यहां ग्रौर भी लूट पाट ग्रौर अराजकता आरम्भ हो गई। गोरी के साथ आए हुए क्रूर असभ्यों ने केवल यहां के धर्म ही नहीं बल्कि कला कौशल ग्रौर विद्या आदि के नष्ट करने में भी कोई बात उठा न रखी। उन दिनों राजस्थान के प्रत्येक नगर की गलियों में रक्त की नदियां चला करती थीं। भारत से शहाबुद्दीन के चले जाने के बाद प्रत्येक गांव ग्रौर नगर में लुटेरे सिपाहियों की टोलियां आतीं ग्रौर लूट मार करके चली जातीं। काफिरों (इतर धर्मावलम्बिग्रों) की हत्या करना वह लोग पुण्य समझते थे। लूटपाट करना भी उनके लिए नीति के अनुकूल ही था। देवमन्दिरों ग्रौर मूर्त्तियों के तोड़ने की आज्ञा उन्हें पैगम्बर से ही मिल चुकी थी। इस उत्पात का फल यह हुआ कि अनेक जातियों ग्रौर शिल्पकला आदि का नाममात्र अवशेष रह गया।

शब्दवेधी शर-सन्धान।

दिल्ली तथा अन्य स्थानों में लूट पाट करने के बाद सुलतान गोरी अपने साथ पृथ्वीराज को कैदी की भाँति लेकर गजनी पहुँचा। वहां पृथ्वीराज को बहुत भारी भारी हथकड़ियां ग्रौर बेड़ियां पहनाई गईं ग्रौर वह एक काल-कोठरी में बन्द कर दिए गए। कुछ समय बाद सुलतान की आज्ञा से उनकी दोनों आँखें भी फोड़ दी गईं। वहां उन्हों ने अपना भोजनादि बहुत कम कर दिया ग्रौर बड़े कष्ट से अपने दिन बिताने लगे।

उधर कवि चन्द ने जब देखा कि दिल्ली नगर बिलकुल उजड़ गया ग्रौर समस्त भारत में अराजकता फैल रही है तो उसने ग्रौर कोई उपाय न देख कर गजनी की ग्रोर प्रस्थान किया। गजनी पहुँच कर उसने बड़ी चतुरता से कैदखाने में पृथ्वीराज से भेंट की। पृथ्वीराज की दशा देख कर उनकी आंखों में आंसू भर आए। पर वह अवसर केवल दुःख ग्रौर पश्चात्ताप करने का नहीं था। इसलिए चन्द ने अपने स्वामी को सब प्रकार धैर्य दिलाया ग्रौर उन्हें सुलतान से बदला लेने का एक बहुत अच्छा उपाय बतलाया। इस उपाय के सम्बन्ध में दोनों में सब बातें निश्चित हो गईं ग्रौर चन्द वहां से चला आया।

शहाबुद्दीन के दरबार में चन्द की किसी प्रकार रसाई हो गई थी ग्रौर वह प्रायः वहां जाया करता था। एक दिन जब दरबार में इधर उधर की अनेक बातें हो रही थीं तो चन्द ने पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन करते हुए कहा—"अनेक प्रकार के कष्टों के कारण पृथ्वीराज इस समय बहुत क्षीण ग्रौर दुर्बल हो रहे हैं। ग्रौर नहीं तो उनमें अनेक ऐसे बड़े बड़े गुण ग्रौर चमत्कार हैं जिन्हें देखकर मनुष्य की बुद्धि चकरा जाती है। उनके सब गुणों में शब्द-वेधी शर-संधान बहुत ही विलक्षण है। इस दीनावस्था में ग्रौर अंधे हो कर भी वह अपने तीरों से लोहे के भारी तवे फोड़ सकते हैं।" सुलतान को इस पर बहुत कौतुक हुआ ग्रौर उसने यह चमत्कार देखने की इच्छा से एक दिन बड़ा दरबार करना निश्चित किया। इस पर चन्द ने उससे कह दिया कि कैद में पड़े रहने के कारण पृथ्वीराज बहुत अशक्त हो गए हैं। इसलिए उन्हें स्वस्थ करने के लिए यह आवश्यक है कि वह मुक्त कर दिए जायं ग्रौर उन्हें उत्तम पौष्टिक भोजन दिए जायँ। सुलतान ने यह बात स्वीकार कर ली ग्रौर उसी के अनुसार सब प्रबन्ध कर दिया गया। इस बीच में चन्द फिर जाकर पृथ्वीराज से भेंट कर आया ग्रौर उन्हें सब भविष्य-कर्त्तव्य बतला आया।

निश्चित तिथि को सुलतान ने बहुत बड़ा दरबार किया। बड़े बड़े सरदार ग्रौर उमराव पद-मर्यादानुकूल अपने अपने स्थान पर बैठे। रंग-भूमि नीचे की ग्रोर बीच में थी ग्रौर उसमें चारों ग्रोर ऊपर बरामदों ग्रौर झरोखों में सब सरदार आदि बैठे थे। एक ग्रोर एक बरामदे के मध्य में तख्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलतान बैठा था और उसके पास ही दीवार लोहे के सात बहुत बड़े बड़े तवे लटकाए गए सुलतान की आज्ञा से पृथ्वीराज रङ्ग-भूमि में गए और उन्हें एक उत्तम धनुष और कुछ दिए गए। पर पृथ्वीराज के हाथ में लेते ही धनुष टूट गया। एक एक करके सात आठ धनुष गए पर पृथ्वीराज के प्रत्यंचा चढ़ाते ही वह टूट जाते थे। अंत में पृथ्वीराज का वह धनुष लाया जो कैद होने के समय उनके पास था। वह धनुष हाथ में आते ही उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। चन्द ने पृथ्वीराज का उत्साह बढ़ाने के लिए कहा—

इक बान चहुआन राम रावन्न उथप्पे ।
इक बान चहुआन करण सिर अर्जुन कप्पे ॥
इक बान चहुआन त्रिपुरसुर संकर बिद्धिय ।
इक बान चहुआन भ्रमर लक्खन पारिद्धिय ॥
सो एक बान संभर धनिय, बियो ब्यान तह मुक्किए ।
... एक इक मुग्गरिय, एक बानन नृप चुक्किए ॥
चार बांस चौबीस गज अगुंल अष्ट प्रमान ।
ता ऊपर सुलतान है, मत चुक्के चहुआन ॥

पहले बादशाह की आज्ञा पाकर पृथ्वीराज ने तीर से एक तवा छेद दिया। उसकी योग्यता से प्रसन्न होकर सुलतान ने उसका उत्साह बढ़ाने के लिए "शाबास" कहा। दूसरे तवे पर तीर चलाने की आज्ञा पाते ही पृथ्वीराज ने सुलतान के शब्दों को लक्ष्य करके तीर चलाया। वह तीर छूटते ही सुलतान के मस्तक पर लगा और वह लड़खड़ा कर तख्त पर से नीचे जमीन पर गिर पड़ा। उसी समय सारे दरबार में बड़ा कोलाहल मचा और लोग पृथ्वीराज और चन्द को पकड़ने दौड़े। लेकिन उन दोनों ने शत्रुओं को उतना अवसर नहीं दिया और आपस में ही खड्ग से एक दूसरे का सिर काट लिया। इस प्रकार वीरवर पृथ्वीराज और रासो-कार चन्द का अंत हो गया।

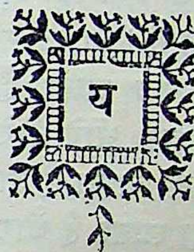
—:o:—

कृषि-विद्या ।

(लेखक—श्रीयुक्त गंगाशंकर पंचोली, हेड मास्टर, हाई स्कूल, भरतपुर ।).

(१)

धरती की बनावट ।



ह बात सभी लोग जानते हैं कि कृषि विद्या के विद्यार्थियों तथा किसानों के लिए धरती कितने महत्त्व की वस्तु है। अतएव ऐसे बड़े उपयोग की वस्तु की उत्पत्ति और बनावट तथा गुणों का जानना भी अत्यावश्यक है। हमारी पृथ्वी के ऊपर का समतल भाग जिस पर वनस्पति उगती है और जिसको हल से तोड़ सकते हैं धरती कहलाती है। यह धरती देश, जिले तथा गाँव में और कभी कभी एक ही गाँव में जुदा जुदा स्वभाव तथा गुण की देखने में आती है। किसी स्थान की धरती वनस्पति के उगने के योग्य होती है और कोई धरती वनस्पति के लिए अनुपयुक्त होती है। किसी खेत की धरती एक विशेष प्रकार की वनस्पति के अनुकूल होती है और किसी खेत की दूसरे प्रकार की वनस्पति के काम की होती है। यह भेद धरती की बनावट वा उसकी स्थिति और स्थान के कारण होता है। प्रायः सब प्रकार की धरती पत्थरों से बनी हुई है और इसलिए जिस प्रकार के पत्थरों से वह बनी है उनके गुण धरती में अवश्य विद्यमान होते हैं। पत्थरों के धरती की सूरत में बदल जाने के मुख्य कारण, (१) वातावरण (वर्षा, हिम, वायु), (२) गरमी-सरदी, (३) नदी-नाले और (४) वनस्पति हैं।

(१) जब वर्षा होती है तो वर्षा का पानी पत्थरों को तर कर देता है और सन्धियों में होकर उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर उतर जाता है। जिन देशों में बरफ पड़ती है उनमें पत्थरों के भीतर का रुका हुआ पानी जम जाता है; और जब वह जम कर बर्फ की सूरत में फैलता है तो उसके पत्तरों को उखाड़ देता है। गरमी की ऋतु में पत्थरों के भीतर का जमा हुआ यह पानी पिघल कर बाहर निकलता है और उसके टूटे पत्तरों को संग बहा लाता है। इस प्रकार प्रति वर्ष उनके पत्तर बनते रहते हैं और जल के बहाव के साथ बहते रहते हैं। वर्षा के पानी के साथ वायु में की कार्बन डायोक्ज़ाइड नाम की गैस पत्थर को गलाने का काम करती है; परन्तु यह काम बहुत धीरे धीरे होता है। जो पत्थर नरम जाति का होता है वह शीघ्र गल जाता है और जो कठोर तथा दृढ़ होता है वह धीरे धीरे गलता है। जब पानी पर्वतों में से बहता है तो पत्थरों के टुकड़ों को अपने संग बहा लाता है और ये टुकड़े ज्यों ज्यों पानी के साथ लुढ़कते चलते हैं त्यों त्यों वे स्वयं भी घिसते जाते हैं और जिन पत्थरों पर होकर वे लुढ़कते हैं उनको भी घिसाते जाते हैं। इस प्रकार पानी के बहाव से उनके टुकड़े रेत वा मिट्टी बनते रहते हैं और नालों-नदियों में होकर पर्वतों से बाहर आकर मैदान में फैल जाते हैं। भिन्न भिन्न जाति के पत्थरों से रेत और मिट्टी बनती है। रेत पानी में घुलती नहीं इसलिए नदियों के बहाव का तोड़ अधिक होने के कारण बह कर नीचे बैठ जाती है। परन्तु मिट्टी पानी में घुल जाती है और पानी के साथ बही चली जाती है और जहाँ बहाव का वेग घटना प्रारम्भ होता है वहाँ मिट्टी नीचे बैठने लगती है।

वातावरण वा वायु में आक्सीजिन नाम की गैस होती है। वह जब लोहे के संग मिलती है तो उस पर जंग उत्पन्न कर देती है। इसी प्रकार वायु में की यह गैस पत्थर में के लोहे के अंशों पर अपना प्रभाव डाल कर उनको जुदा कर देती है और वह जंग मिट्टी में मिल कर बह जाता है।

पत्थरों की बनावट में बहुत से ऐसे पदार्थ भी रहते हैं जो पानी में सुगमता से घुल जाते हैं और जल और वायु में के कुछ पदार्थ कार्बोनिक एसिड के स्पर्श से जुदा होकर जल में घुल जाते हैं। कार्बोनिक एसिड एक सूक्ष्म वायु रूपी पदार्थ है जो हमारे स्वाँस द्वारा बाहर निकलता रहता है पर दिखाई नहीं देता। जब चूने को पानी में बुझा कर उसका स्वच्छ निथरा पानी जुदा करके किसी पतली नली द्वारा उस पानी में फूँक मारो तो वह निथरा पानी सफेद हो जाता है; बस यही कार्बोनिक एसिड है जिससे पानी दूध सा सफेद हो गया।

(२) किसी पत्थर के टुकड़े को लेकर अग्नि में तपाओ और फिर उस पर ठंढा जल डालो तो वह टुकड़े टुकड़े होकर बिखर जायगा। बस इसी प्रकार गरमी और सरदी का प्रभाव भी पत्थरों पर पड़ता रहता है। जब दिन की तेज़ धूप से पत्थर तप जाते हैं और रात में ठंढी हवा चलती है वा वर्षा हो जाती है तो पत्थर बिखर जाता है और अधिक काल तक गरमी सरदी के कारण चूर्ण हो जाता है।

(३) वर्षा के जल तथा वायु में के कार्बोनिक एसिड से वा गरमी सरदी के प्रभाव से पत्थर के जो टुकड़े होते रहते हैं वे नदी-नालों के बहाव के साथ बहते हैं और बहने के साथ साथ घिसते भी जाते हैं और जहाँ होकर बहते हैं वहाँ के पत्थरों को भी पीसते और संग बहाते लिए जाते हैं।

(४) पुराने बने पक्के मकानों और किले आदि की भीतों में देखा जाता है कि पेड़ उग आते हैं। प्रथम वे थोड़ा सा स्थान घेरते हैं परन्तु धीरे धीरे वे बड़े बड़े छिद्र कर स्वयं बड़े पेड़ हो जाते हैं। ये पेड़ बहुत छोटे छोटे बीजों से उत्पन्न होते हैं जो उन स्थानों पर पवन वा पक्षियों द्वारा पहुँच जाते हैं। ठीक इसी प्रकार वनस्पतियों के सूक्ष्म बीज पत्थरों के छिद्रों तथा दरारों में पहुँचते और जम जाते हैं। प्रथम वे छोटे रहते हैं पर अपनी जड़ों द्वारा पत्थरों को फाड़ते रहते हैं। ज्यों ज्यों वे छिद्र वा दरार चौड़े होते जाते हैं त्यों त्यों नए पौधे भी उगते हैं और पत्थरों को बिखेरते जाते हैं। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...स्पतियाँ पत्थरों को चूर करने में सहायता ...ती रहती हैं। जो वनस्पति मुरझाती और सूखती ...ती है वह गल सड़ कर मिट्टी में मिलती जाती है। ऊपर वर्णित रीति से पत्थर टूट टूट कर चूर होते ...ते हैं और रेत या मिट्टी की सूरत में बदलते रहते ...थे रेत और मिट्टी भूभाग पर जल वा पवन द्वारा ...ती रहती है। जिस सूरत में पत्थरों से बनी ...और मिट्टी वहीं इकट्ठी हो जाती वा फैल जाती ...जहाँ वे पत्थर हैं तो ऐसी रेत वा मिट्टी से बनी ...ती को स्थानोत्पन्न धरती कहते हैं। परन्तु जब ...नालों के प्रवाह के संग रेत और मिट्टी उत्पत्ति-...न से वह कर दूर चली जाती है और जल के ...ह के कम हो जाने से निथर कर नीचे बैठ ...ती है और काल पा कर जल का प्रभाव हट ...ता है और तले की धरती जुदा रह जाती है तो ...दी प्रवाहजनित (दरियाबरार) धरती कहते हैं। तीसरे ...र की वह धरती है जो पवन के वेग के साथ ...कर आई हुई रेत और मिट्टी के एकत्र हो जाने ...ती है। इस प्रकार की धरती को पवनप्रसारित ...ती कहते हैं।

(२)

धरती में के पदार्थ ।

...पत्थरों और धरती की मिट्टी और पौधों की ...का रासायनिक क्रिया से पृथक्करण कर देखा ...है तो जानने में आया है कि बहुत से पदार्थ ...तीनों धरतियों में एक से मिलते हैं। विज्ञान-...वेत्ताओं ने ये पदार्थ दो प्रकार के बताए हैं। ...तो सेन्द्रिय पदार्थ दूसरे निरेन्द्रिय पदार्थ। जब किसी ...को अग्नि में भस्म किया जाता है तो उसका ...जो भाग जो राख रूप रहता है निरेन्द्रिय कहा ...ता है और जो वायुरूप होकर निकल जाता है ...सेन्द्रिय भाग कहा जाता है। सेन्द्रिय को वानस्पत्य ...निरेन्द्रिय को धात्विक वा भौतिक पदार्थ भी ...ते हैं।

...सेन्द्रिय पदार्थ जो पत्थर मिट्टी आदि में होते हैं ...वायु में भी होते हैं, जिनमें आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बोनिक एसिड गैस, आर्गोन और जलकण मुख्य हैं। इन सेन्द्रिय पदार्थों का परिमाण जानने के लिए प्रथम वस्तु को, चाहे वह मिट्टी हो और चाहे पौधा हो, अग्नि में तपाते वा दाह करते हैं। दाह करने से जो भाग निकल कर वायु में मिल जाता है वह सेन्द्रिय भाग होता है। १० तोला मिट्टी को महीन चलनी से छान कर उसमें से पथरीले कण जुदा कर लेने और फिर महीन मिट्टी को और पथरीले कणों को जुदा जुदा तौलने से मिट्टी और पथरीले कणों का भाग जुदा जुदा ज्ञात हो जाता है। मिट्टी के भाग को इतना तपावे कि वह लाल वर्ण का हो जाय। ऐसा करने से सेन्द्रिय पदार्थ वायु में मिल जाते हैं और शुद्ध धात्विक पदार्थ रह जाते हैं जिनको तौलने से उन निरेन्द्रिय पदार्थों का भाग ज्ञात हो जाता है। बाकी का भाग जो वायु में मिल गया, वह सेन्द्रिय पदार्थों का भाग है। परन्तु मिट्टी के तपाने में चूने के कार्बोनेट में से कार्बोनिक एसिड निकल जाता है। इस हेतु मिट्टी को तपा कर नीचे उतार ठंढा होने पर उसमें इतना एमोनियम कार्बोनेट मिलाते हैं कि जिससे मिट्टी तर हो जाय। इसके पीछे पुनः मिट्टी को २१२ अंश की गरमी तक तपाते हैं। ऐसा करने से तरी और एमोनिया की विशेषता जाती रहती है और चूने का गया हुआ भाग लौट आता है। इस क्रिया के पीछे मिट्टी की जो तौल बैठे वही शुद्ध निरेन्द्रिय पदार्थ है।

आक्सीजन सब पदार्थों में मुख्य है। वायु में इसी के कारण वह शक्ति विद्यमान है जिससे दीपक अग्नि आदि जलती रहती हैं और वस्तुएँ सड़ती गलती रहती हैं। कैल्सिअम के साथ जब यह मिलता है तो चूना हो जाता है, लोहे के संग मिल के लोहे को जंग बनाता है, पोटेसिअम के साथ मिल कर पोटास बना देता है और कार्बन से मिलने से कार्बोनिक एसिड उत्पन्न करता है। हाइड्रोजिन के साथ योग होने से वह जल हो जाता है।

नाइट्रोजन वह पदार्थ है जिसके बिना प्राणी तथा वनस्पति नहीं बढ़ सकतीं। शुद्ध अवस्था में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ विशेष उपयोग में नहीं आता; परन्तु जब उसमें नाइट्रोजन और एमोनिया (नौसादर) मिलता है उस समय वह वायु से वनस्पति में पहुँचता है और उसकी वृद्धि का कारण होता है। नाइट्रोजन एक गैस वा वायु है जो दिखाई नहीं देती, पर वायु में रहती है। वर्षा के जल से वायु में का एमोनिया घुल कर धरती में पहुँचता रहता है। एमोनिया धरती में भी उस समय मिलता है जब कि सेन्द्रिय द्रव्य धरती में गलने सड़ने लगते हैं। सड़ांद की बास ही एमोनिया है। कार्बोनिक एसिड एक गैस है जो वायु में सदा बनी रहती है। यह गैस प्राणियों के स्वाँस लेने से बाहर निकल कर वायु में मिलती रहती है वा वनस्पतियों के सड़ने वा लकड़ी आदि के जलने से उत्पन्न होकर वायु में मिलती रहती है। यह गैस आक्सीजन और कार्बन के संयोग से बनी हुई है और पौधों के लिए आवश्यक है। कोयला कारबन का एक विशेष रूप है। कोयला जल कर जो राख रहती है वह निरेन्द्रिय पदार्थ है; जो भाग उड़ जाता है वह कार्बन है।

वायु में के आर्गान पदार्थ का हाल में ही पता लगा है। इसके सम्बन्ध में विशेष हाल मालूम नहीं हुआ; पर यह नाइट्रोजन के साथ मिला रहता है।

जलकण आक्सीजन और हाइड्रोजन का मेल हैं। वायु में जलकण अवश्य होते हैं। जितनी वायु उष्ण होगी उतनी उसमें तरी को शोषण करने की शक्ति विशेष होगी; और उष्मा के निकल जाने से वायु के जलकण मेंह, ओस, बरफ आदि रूप में बदल जाते हैं।

निरेन्द्रिय पदार्थ जो पत्थर, धरती आदि में मिलते हैं और जो मुख्य समझे गए हैं वे निम्न-लिखित हैं।

सिलिका (रेत)	एमोनिया (नौसादर)
फास्फरिक एसिड (प्रकाशादम्ल)	पोटास (वनस्पति क्षार)
कार्बोनिक एसिड	चूना
सल्फरिक एसिड (गंधक का तेजाब)	सोडा (शोरे में का क्षार, सज्जी)
क्लोराइन (हरिद्वर्ण)	मेगनेशिया
एल्यूमिना (चिकनी मिट्टी)	औक्साइड आयरन (लोहक्षार)

सिलिका चकमक पत्थर का अंग है और रेत व बालू उसका विशेष रूप है। फास्फरिक एसिड में फास्फरस और अम्ल पदार्थ का योग है। फास्फरस हड्डियों में विशेष पाया जाता है। यह हवा के योग से जल उठता है। सल्फरिक एसिड गंधक का अम्ल है और पौधों के लिए बड़ा उपयोगी है। क्लोराइन एक गैस है जो प्रायः नोन में होती है। इसका रंग हरा पीला होता है जो नोन को अग्नि में जलाने के समय वायु में मिलता दिखाई देता है। एल्यूमिना एल्यूमिनम धातु का विशेष रूप है और चिकनी मिट्टी में पाया जाता है। एमोनिया नाइट्रोजिन और आक्सीजिन का एक मिश्र गैस वा वायु रूप पदार्थ है जो नौसादर में बहुतायत से होता है और इसी कारण नौसादर के नाम से प्रसिद्ध है। पोटास एक क्षार है और यह वनस्पति की राख में विशेष होता है। शोरे में पोटास 'नाइट्रिक एसिड' (अग्निद्राव) के संग मिला रहता है। सोडा भी एक क्षार है जो सज्जी खार के नाम से प्रख्यात है। चूना केवल केल्शियम धातु का विशेष रूप है। मैग्नेशिया एक धातविक पदार्थ मेग्नेशियम का विशेष रूप है। औक्साइड आयरन लोहे पर का जंग है।

ऊपर लिखे सेन्द्रिय और निरेन्द्रिय पदार्थ धरती में रहते हैं। जुदा जुदा स्थान की धरती में जुदा जुदा प्रमाण में ये पदार्थ होते हैं और इनके न्यूनाधिक होने के ही कारण धरती भिन्न भिन्न प्रकार वा गुणों की मानी जाती है। इन सेन्द्रिय व निरेन्द्रिय पदार्थों के प्रमाण जानने के लिए एक रीति ऊपर लिखी गई है; पर उसके संग निरेन्द्रिय पदार्थों में के मुख्य मुख्य पदार्थों के प्रमाणों का अन्दाज़ा करने के हेतु कुछ रीति लिखते हैं।

खेत के कई भागों में से पाँच वा छः इंच गहरे तक की मिट्टी एकत्र तौल कर उसका प्रमाण [illegible] लिखो। पश्चात् एक लोहे के पत्तर पर कागज बिछा कर उस पर मिट्टी को फैला कर इतना उष्ण करो कि उसमें का जल-भाग वायु रूप होकर निकल जाय पर मिट्टी जलने न पावे। जल भाग के इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ल जाने पर फिर तौलो; जो कमी हो वह उसमें जलभाग जानो । यदि मिट्टी को विशेष तपाया तो जलभाग के संग सेन्द्रिय पदार्थों के भी उड़ने का भय रहता है । इस हेतु यदि मिट्टी धूप में कर सुखा ली जाय तो भी अच्छा है । कोई काम में लाओ, जलभाग निकल जाना चाहिए सेन्द्रिय पदार्थ न उड़ना चाहिए ।

जब सेन्द्रिय पदार्थों के भाग जुदा जुदा जानने तो जैसा पूर्व में लिख चुके हैं, मिट्टी को इतना तपाओ कि धूआँ निकलने लगे, जलावट की बास लगे और मिट्टी ललाई लिए भूरी हो जाय और तौलो । अब जो तौल आवे उसका और मिट्टी जाने के पश्चात् जो तौल थी उसका अन्तर य पदार्थों का भाग जानो । इसके पश्चात् जो वह निरेन्द्रिय पदार्थों का भाग है । इस सूखी हुई मिट्टी में हाइड्रो क्लोरिक एसिड नाम का तेजाब ने से वह खदबद करने लगेगी । खदबद जितनी और जोर से हो उतना उसमें चूना जानना ए। यदि चूने का फास्फेट जानना हो तो २०० (१०० रत्ती) मिट्टी एक काँच के प्याले में और उसमें हाइड्रो क्लोरिक एसिड का मिश्रण १॥ डालो । (२५ तोला जल में १। तोला एसिड ने से मिश्रण सिद्ध होता है) मिश्रण मिला मिट्टी को काँच की सलाई से अच्छी तरह ओ और ३० घंटे तक जुदा रख दो । इसके उसमें १ तोला जल और मिलाओ और फिर र कागज में रख कर छान लो । छने हुए पानी नी एमोनिया डालो जिससे पानी के ऊपर तेल फीके रंग की एक तलछट निकलेगी । ज्यों सवाही नौसादर डालते जाओगे त्यों त्यों वह तर होती जायगी । जब तर होना रुक जाय नो कि सल्फेट चूना इतना ही है ।

र लिखित रीति से हाइड्रो क्लोरिक एसिड मिलाने मिट्टी में का जो जल छन कर निकला है एक वा दो बूंद प्रूसिएस पोटास की डाल देने हिला देने से यदि उसका बहुत अच्छा आसमानी जाय तो उसमें लोहे का अंश जानो ।

मिट्टी को पानी से इतना तर करो कि पानी उसके ऊपर अच्छी तरह फैल जाय और फिर उसे हिला कर गँदले पानी को जुदा बरतन में निथार लो । यह क्रिया यहाँ तक करो कि पानी स्वच्छ निथरने लगे । पीछे से जो भाग नीचे बैठा मिले उसको सुखा लो और तौलो, यह सिलीका होगा ।

२५० रत्ती मिट्टी ५ तोले जल से तर करो और खूब हिला कर थिर होने दो, और फिल्टर कागज से छान कर उस जल को अग्नि पर उबालो । जब पानी एक चाय के चमचे भर रह जाय उस समय उसमें अखबार के कागज को डुबा कर धूप में सुखा लो । फिर जब इस कागज को जलाने से वह टेस्ट पेपर की तरह हो जाय तो जानो कि मिट्टी में नाइट्रेट पोटास अर्थात् शोरे का अंश है ।

मिट्टी में चूने का अंश जानने के लिए दूसरी रीति यह है कि मिट्टी को तौल कर नाइट्रिक एसिड में गलाओ और फिर उसमें एमोनियम ओक्सेलेट डालो और पानी को निथार कर खुश्क करो; जो पदार्थ नीचे बच रहेगा वह केलिसयम आक्सेलेट होगा; उसको तौल लो । केलिसअम आक्सेलेट में १२८ भाग में ५६ भाग चूना होता है । इस रीति से हिसाब लगा कर जान सकते हो कि मिट्टी में कितना चूना है । चूने का अंश जानने की एक और रीति यह है कि मिट्टी को खूब लाल तपा कर पानी में घोल कर भली प्रकार हिला कर थिर होने दो । जब निथरे पानी पर महीन महीन कणों की पपड़ी पड़े तो पानी निकाल लो । इस प्रकार पानी को उस समय तक निथारते रहो जब तक पपड़ी पड़ना बन्द न हो जाय । पीछे से मिट्टी को २१२ अंश तक गरम कर सुखा लो और तौलो । तौल में जो कमी हो उसे चूना जानो ।

सब खारों का इकट्ठा भाग जानना हो तो मिट्टी को पानी में मिला कर उबालो और भली भाँति हिलाओ और थिर होने दो । जब ऊपर ऊपर साफ पानी रह जाय तो उसे निथार कर सुखाओ । पानी के सूख जाने पर बरतन में जो क्षार रह जाय उसे तौल लो और उसी को मिट्टी में के क्षार का अंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना। इसमें पोटास, सोडा, मैग्नेशिया आदि खार शामिल हैं।

(३)

(क) धरती के वर्ग, गुण और सुधार।

पूर्व के पाठों में भूमि के ऊपर के पड़ अर्थात् धरती की बनावट और उसमें के मुख्य मुख्य पदार्थों का वर्णन किया गया है। इस पाठ में यह दिखाया जाता है कि कृषि कार्य के लिए धरती के भेद वा वर्ग कितने और किन किन कारणों से नियत किए जाते हैं। जैसा पूर्व में कहा गया है, धरती में सेन्द्रिय और निरेन्द्रिय दो पदार्थ हैं; जिनमें से निरेन्द्रिय रेती और चिकनी मिट्टी दो रूप में है। ये दोनों पदार्थ वनस्पति मात्र की उत्पत्ति और पालन के लिए आवश्यक हैं। पर किसी स्थान की धरती में मिट्टी के भाग विशेष होते हैं और किसी धरती में रेत के भाग अधिक। इसलिए विद्वान् लोगों ने धरती के वर्ग वा जाति बाँधने के लिए मिट्टी और रेत के अंश वा भाग नियत कर धरती के जुदा जुदा नाम रख दिए हैं।

जिस धरती में केवल शुद्ध चिकनी मिट्टी वा शुद्ध रेत ही होती है वह प्रायः कृषि के उपयोग की नहीं होती। इस हेतु इनके न्यूनाधिक होने के कारण धरती मुख्य तीन वर्गों में बाँटी जाती है—(१) मटियाल, (२) दुमट और (३) भूड़ा*। इन तीन वर्गों में फिर दुमट के दो और भेद हैं। ये सब भेद इस प्रकार हैं:—

(१) मटियाल वह धरती है जिसमें $\frac{2}{3}$ से अधिक मिट्टी होती है, अर्थात् १०० भाग में ७० भाग से अधिक मिट्टी।

(२) जब धरती में मिट्टी और रेत के भाग बराबर होते हैं तो वह धरती दुमट कहाती है। पर जब मिट्टी प्रति सैकड़ा ५० भाग से ७० भाग तक हो जाती है तो वह मटियाल दुमट कही जाती है और इसी प्रकार जब रेत ५० भाग से बढ़ कर ७० भाग त[क] पहुँच जाती है तो धरती भूड़ा दुमट कही जाती है।

(३) जिस अवस्था में रेत ७० भाग से ऊपर हो[ती] हो तो वह धरती भूड़ा कही जाती है।

मिट्टी और रेत के सिवा धरती में चूने के [भी] अंश होते हैं पर चूना प्रति सैकड़ा २० तक रहता है। जब तक इस में चूना रहता है तब तक तो वह धरती को सुधारती है; परन्तु जब पंचमांश से विशेष हो जाता है तो धरती कभी तो फसल को लाभकारक हो जाती है और कभी उसकी मिट्टी दूसरे खेतों में खाद के काम में आती है।

स्वच्छ मिट्टी बहुत मुलायम होती है। कण ब[हुत] महीन होने के कारण वह चिकनी होती है। पा[नी] में गूंध कर हाथ में दबाने से वह मक्खन की [तरह] मुलायम मालूम देती है और लसीली भी होती है। ऐसी मिट्टी को कुम्हार काम में लाते हैं। [जब] वह सूख जाती है तो जैसी सूरत में उसको छो[ड़ा] जाता है उसी में बनी रहती है। यह रंग में सफेद हो[ती] है। पानी में तर कर गूंधने से उसमें जल को निक[लने] देने की शक्ति नहीं रहती। ऐसी मिट्टी कृषि [के] लिए उपयोगी नहीं होती। खेतों की धरती शु[द्ध] मिट्टी की नहीं होती। उसमें थोड़ा बहुत अंश [रेत] का भी होता है और उसका स्वरूप और गुण उ[सी के] अनुसार ही होता है। मटियार धरती में जब [...] होती है तो वह फूल जाती है और चिपकनी त[था] लसदार हो जाती है। उस समय खेत में हो[कर] चलना कठिन हो जाता है। सूखने पर वह क[ड़ी] हो जाती है क्योंकि वह दशमांश सिकुड़ जाती [है] और इसी कारण उसमें दरारें पड़ जाती हैं। [...] मिट्टी में चूने का अंश हो तो उसमें होकर पा[नी] निथर जाता है और उसकी लसी भी कम हो जाती [है] और सूखने पर सिकुड़ती भी नहीं।

जिस धरती में मिट्टी का भाग अधिक हो[ता है] उसमें नीचे लिखे गुण होते हैं:—

(१) ऐसी धरती पानी को बहुत देर तक अ[पने] भीतर रख सकती है। (२) हवा में से तरी को [...]

* ये नाम प्रान्तिक हैं। अन्य प्रान्तों में इन नामों में कुछ अन्तर भी हो सकता है। प० सम्पा०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ती है। (३) जो खाद उसमें दी जाय उसमें के ु में उड़ जानेवाले तथा घुल जानेवाले द्रव्यों रोक कर धारण कर सकती है। (४) उसके र जल और वायु अच्छी तरह जा सकते हैं।) पौधों की जड़ों को पकड़ ठीक मिलती है। (६) में पौधों के उपयोगी पदार्थ बहुत होते हैं।

इन गुणों के सिवा उसमें दुर्गुण भी होते हैं। त् (१) ऐसी धरती को जोतना कठिन होता है।) पानी दिए जाने पर वा वर्षा होने पर कई दिनों क हल चलाने आदि के काम की नहीं रहती, ोंकि पानी धरतो में भीतर शीघ्र नहीं उतर सकता र ऊपर ही भरा रहता वा बह जाता है। (३) कारण सिँचाई के विशेष काम की नहीं होती। ये ऊपर लिखे दुर्गुण निम्न-लिखित उपायों से दूर ए जा सकते हैं:—(१) खेत को जोत कर उसमें मिलाने से जिस से वह कम लसीली हो जाती ौर पानी भी उसमें नीचे उतर सकता है। (२) की धरती को ऊपर से १ वा २ इंच छील कर को छोटे छोटे ढेरों में इकट्ठा कर उसमें घास जो खेत में हो मिला कर जला देने और पीछे को खेत की धरती में जोत कर मिला देने से।) खेत में चूना छिड़क कर वा चूनेवाली और द डाल कर हल चला देने से। (४) गोबर और की तथा घास भूसे आदि की सड़ी खाद देने से। हरे पौधों की खाद देने से अर्थात् एक फसल कर खेत में हरी हरी जोत देने से (ऐसा करने रती के छिद्र खुल जाते हैं)। (६) नाली आदि ा खेत के जल को निकाल देने से खेत में थोड़े अन्तर पर गहरी नाली खोद कर उनमें नल कर ऊपर से खेत की मिट्टी से ढक देने से का पानी नीचे उतर जाता है और वह यों द्वारा खेत से बाहर चला जाता है। (७) में गहरा हल चलाने से भी मटियार धरती रती है क्योंकि उसमें वायु अच्छी तरह घुस ती है और सोए हुए पदार्थों में शक्ति उत्पन्न के पौधों के लिए उपयोगी कर देती है।

शुद्ध रेत कड़ी और छूने में खुरदरी होती है। वह लसीली नहीं होती और पानी में भिगोने पर भी नहीं बँध सकती। वह नीचे बैठ जाती है और गरमी मिलने पर शीघ्र सूख जाती है। वह बहुत सफ़ेद होती है और प्रायः नदी वा समुद्र के तट पर मिलती है। रेताल वा भूड़ा धरती के मुख्य गुण ये हैं:—(१) वह खुली होती है अर्थात् उसके कण बहुत सटे हुए नहीं होते और उस पर जल इकट्ठा न होकर धरती के भीतर उतर जाता है। (२) उसमें खाद देने की आवश्यकता होती है और इस कारण वह भूखी धरती कहाती है। उसमें जो खाद दी जाती है वह जल के सहारे धरती में नीचे उतरती जाती है और बहुत नीचे जाने से पौधों से दूर हो जाती है। (३) रेत के रजकण बड़े होने के कारण उनके बीच में होकर वायु धरती में घुस जाती है।

रेताल वा भूड़ा धरती को सींचने के लिए बहुत पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए वह कुएं से सिंचाई करने के योग्य नहीं, बलिक नदी नहर आदि के पानी से सिंचाई के योग्य होती है। भूड़ा धरती निम्न-लिखित रीति से सुधारी जा सकती है:—

(१) तालाब, पोखर आदि की मिट्टी खेत में बिछा कर मिलाने से, (२) गोबर मूत आदि की सड़ी खाद देने से, (३) खेत में हरी फसल को जोत देने से, (४) हरे सूखे पत्तों को जोत देने से (५) नदी नाले का गँदला पानी धरती पर फैला देने से, क्योंकि पानी में की मिट्टी निथर कर खेत बैठ जाती है। जब मिट्टी नीचे बैठ जाती है तो पानी को निकाल देते हैं और उसकी मिट्टी को बैठने देते हैं। इस क्रिया से खेत पर मिट्टी जमा हो जाती है और धरती को सुधार देती है।

खेत की धरती मटियार वा भूड़ा की हद को जितनी पहुँचती जाती है उतनी ही वह कम उपयोगी होती जाती है। दुमट धरती खेती के बड़े काम की है और वैसी ही मटियार दुमट और भूड़ा दुमट धरती है। इस देश की वायु गरम और सूखी होने के कारण यहाँ पर मटियार दुमट बड़े काम की होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। धरती कैसी ही हो वह सेन्द्रिय द्रव्यों के मिलाने से सुधरती और उपजाऊ हो जाती है।

धरती में यदि चूने का भाग हो तो वह धरती हलके रंग की होती है और कभी कभी सफेद भी होती है। ऐसी धरती बहुत कम अच्छी होती है। उस देश में जहाँ की आब हवा ठंढी होती है और मेंह रह रह कर और धीरे धीरे बरसता है, ऐसी भूमि कुछ फसलों के लिए गुण-कारक भी होती है।

धरती के ऊपरी पड़ के नीचे जो भाग है उसको धरती का अन्तर पड़ कहते हैं। कहीं कहीं इन दोनों पड़ों की बनावट में बहुत अन्तर नहीं होता, पर साधारणतः ऊपर की धरती गहरे रंग की होती है; क्योंकि ऊपर के पड़ में सेन्द्रिय पदार्थ बहुत होते हैं और वायु उसमें अच्छी तरह आ जा सकती है। अन्तर पड़ के अच्छे या बुरे होने पर धरती की उर्वरा-शक्ति निर्भर है। जब भीतरी पड़ पथरीला वा मटियार होता है तो खेत का पानी नीचे नहीं उतर सकता और खेत में ही इकट्ठा रहता है और पौधों की जड़ नीचे नहीं उतर सकती। यदि धरती का नीचे का पड़ रेतीला हो वा रोड़ों का तो पानी शीघ्रता से नीचे उतरता चला जाता है और ऊपर की धरती सूखी हो जाने से फसल के काम की नहीं रहती।

जिस प्रकार धरती के ऊपर लिखे हुए वर्ग वा भेद रेत और मिट्टी के अंशों से किए गए हैं वैसे दूसरे प्रकार के भेद केवल मिट्टी के रंग से किए जाते हैं। इन वर्गों में मुख्य ये हैं।

काली धरती—यह रंग में काली होती है और रुई की फसल को बहुत उपयोगी है। यह वास्तव में मटियार धरती है जो भीगने पर गहरी काली हो जाती है और सूखने पर नीली झाँईं देती है। इस रंग की धरती की मिट्टी में वनस्पति के सेन्द्रिय पदार्थ गल सड़ कर मिले रहते हैं और वह ह्यूमस कहलाती है। कभी कभी ऐसा देखा गया है कि काली धरती के नीचे का पड़ पत्थर के रोड़ों का होता है वा भीतर का पथरीला पड़ कभी ऊपर भी निकल आता है। सूखी ऋतु में यह धरती कड़ी और दरारों से भरी हुई हो जाती है और मेंह बरसने पर चिपकनी और लसीली हो जाती है जिससे उस पर चलना भी कठिन हो जाता है और हल भी नहीं चल सकता। ऐसी धरती ऊपर से सूख जाती है पर भीतर से तर रहती है और वायु में की तरी भी सोखती रहती है। काली धरती का ऊपरी पड़ कहीं तो कई फुट तक गहरा होता है और कहीं बहुत कम गहरा होता है।

लाल रंग की धरती—यह धरती मटियार और भूड़ा दोनों तरह की होती है और लोहक्षार के कारण रंगत में लाल होती है। यदि मिट्टी का भाग अधिक हो अर्थात् मटियार दुमट हो तो वह हलकी गिनी जाती है परन्तु दुमट हो तो बहुत उपजाऊ समझी जाती है।

हलके रंग की वा पीली—इस प्रकार की धरती हलके पीले रंग की होती है और प्रायः भूड़ा होती है। कभी कभी ये धरती चूने के अंश के कारण सफेद रंग की भी होती है। पर चूना और क्षारों के अधिक होने के कारण पैदावार के काम की नहीं होती।

ऊपर के वर्गों के सिवा दो और भेद धरती में के तत्वों की स्थिति के अनुसार किए गए हैं। [illegible] सब तत्वों की वह स्थिति है जिसमें तत्व वायु और जल से घुल कर पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं अर्थात् पौधों को खुराक देते रहते हैं। दूसरी स्थिति वह है जिसमें सब तत्व घुल सकने की स्थिति में नहीं होते और इस कारण पौधों का पोषण नहीं कर सकते। पहिली सूरत में वे तत्व सजीव वा सा[illegible] कहाते हैं और वह धरती भी सजीव कही जा सकती है। दूसरी अवस्था में तत्व निर्जीव वा सुप्त होते हैं और वह धरती सुप्त कही जाती है। धरती में के सजीव अंश पौधों की वृद्धि करते ही हैं पर जब पानी बर[illegible]सता है तो वायु में के कार्बोनिक एसिड को लेते हुए धरती पर आते हैं और वहाँ वायु के संग मिट्टी के के सुप्त तत्वों को जागृत कर देते हैं। धरती [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...त कर छोड़ दिया जाय और फिर उस पर मेंह ...स जाय, ओस पाला पड़ जाय और सरदी की ...यु निकल जाय तो धरती की मिट्टी वायु और तरी ...प्रभाव से केवल महीन ही नहीं हो जाती बल्कि ...समें के तत्व मुक्त और प्रसारित होकर पौधों ...पुष्ट करने के उपयोगी हो जाते हैं। ज्यों ज्यों ...रती में फसल होती जाती है त्यों त्यों सार्थक अंश ...म में आते जाते हैं और सुप्त तत्व धीरे धीरे जल ...यु के संयोग से घुल कर सार्थक बनते जाते हैं।

(ख) रेतीली मटियार और 'पीट' अर्थात् वनस्पति के अंशयुक्त धरती पर पानी का प्रभाव।

मेंह नहर वा कूएँ आदि का जो पानी मटियार और ...स्पति अंशयुक्त (ह्यू मस) धरती को दिया जाता है वह ...स खेती की धरती में रहता है और नीचे के अन्तर ...ड़ में नहीं उतरता; और इस कारण धरती में तरी ...नी रहती है। परन्तु रेतीली धरती में दिया हुआ पानी ...घ्र ही अन्तर पड़ में उतर जाता है और ऊपर का पड़ ...ख सा जाता है। मटियार धरती में पानी इतने धीरे ...रे नीचे उतरता है कि धरती के ऊपर जल भरा ...हता है। यदि ऊपरी पड़ को खूँद दिया जाय तो ...नी का नीचे की ओर उतार और भी रुक जाता है। ...मिट्टी और 'पीटी' धरती में जल के रोक रखने ...शक्ति की जाँच के लिए चित्र नं० १ में दिए ...नुसार एक बराबर की काँच की तीन नालियाँ ...चिमनियाँ लेकर उनके एक सिरे पर महीन कपड़ा ...सूत बांधो और उनमें क्रम से रेत, मिट्टी और 'पीट' ...ही को बराबर गहराई तक भरो। इन चिमनिओं ...काँच के बड़े प्यालों वा कनस्तरों पर चित्र में ...के अनुसार रक्खो और इन चिमनियों में ऊपर से ...बर बराबर पानी भरो। थोड़ी देर तक इन चिम...नियों में से नीचे के प्यालों में पानी टपकता रहेगा ...फिर टपकना बंद हो जायगा। पानी का टप...कना बंद होने पर मालूम होगा कि रेतवाली चिमनी से अधिक पानी नीचे के प्याले में आ गया है और उससे कम मिट्टीवाली चिमनी से टपका है; पर 'पीट' मिट्टी में से बहुत कम पानी टपका है। इस क्रिया से यह सिद्ध होता है कि रेत में पानी रोकने की कम शक्ति है और 'पीट' पानी को अच्छी तरह रोक सकता है। जब पानी का टपकना बंद हो जाय उस समय इन चिमनियों को बंधे मुँह की ओर से सखी रेत पर खड़ा करने से रेत में तरी आती जायगी। जब यह जान पड़े कि अब नीचे की रेत तर नहीं होती उस समय यह कहा जाता है कि रेत, मिट्टी तथा 'पीट' मिट्टी में जल सोख लेने की इतनी शक्ति है। 'पीट' में सबसे विशेष जल रह सकता है और उससे कम मिट्टी में, और रेत में जल बहुत ही कम रुक सकता है। इसलिए 'पीटी' धरती में मेंह का और सींचा हुआ पानी रह जाता है और अन्तर पड़ में नहीं उतर जाता। जल के सोखने में 'पीट' के पीछे मटियार धरती का नम्बर है पर भूड़ा धरती में जल बहुत कम रुकता है और अन्तर पड़ में उतर जाता है।

अब यह भी अनुभव करना चाहिए कि महीन रेत, मोटी रेत और मिट्टी इन तीनों में कौन जल को विशेष और शीघ्र आकर्षण करता अर्थात् खींचता है। तीन बहुत लम्बी काँच की नलियाँ वा चिमनियाँ लेकर उनमें क्रम से मोटी रेत, महीन रेत और मिट्टी की बुकनी ऊपर तक भरो और फिर तीनों नलियों को पानी की रकाबी में खड़ा रक्खो जैसा चित्र नं० २ में दिखाया गया है। अनुमान घंटे भर के पीछे देखने से मालूम होगा कि मोटी रेत में पानी बहुत ऊँचा चढ़ गया है और उससे कम ऊँचाई पर महीन रेत में; पर मिट्टी में पानी बहुत ही कम चढ़ा है। परन्तु यदि ये चिमनियाँ पानी में कुछ अधिक समय तक खड़ी रक्खी जाँय तो मिट्टी में पानी बहुत ऊँचा चढ़ जाता है और महीन रेती में उससे कम चढ़ता है जब कि रेती में बहुत कम चढ़ने पाता है। (देखो चित्र नं० २) इस प्रकार अनुभव करने से यह फल सिद्ध होता है कि मोटी रेत पानी को शीघ्रता से आकर्षण करती है पर अधिक प्रमाण में नहीं करती, जब कि मिट्टी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी धीरे धीरे आकर्षित होता है पर बहुत ऊँचाई तक चढ़ सकता है। महीन रेत में पानी न बहुत शीघ्र ही चढ़ता है और न बहुत ऊँचाई तक जाता है।

जब कभी मेंह की कमी के कारण धरती का ऊपरी पड़ सूखा हो जाय और अन्तर पड़ में तरी हो तो रेतीले खेत में तरी ऊपर को शीघ्रता से चढ़ेगी परन्तु बहुत ऊँची न चढ़ सकेगी। पर मटियार धरती में धीरे धीरे ऊपर तरी आ सकेगी और इस कारण पूरी तरी फसल को न मिलेगी। इसलिए भूड़ा और निरी मिट्टी की धरती विशेष लाभदायक नहीं होती और लोग दुमट को ही अच्छा मानते हैं क्योंकि ऐसी धरती में पानी ऊँचा भी आता है और शीघ्र भी चढ़ता है।

एक यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मटियार धरती ऊपर और नीचे ठोस होगी तो जो तरी नीचे से ऊपर खिंच कर आवेगी वह ऊपर आकर भाप होकर वायु में मिल जायगी और इस क्रिया से धरती के अन्तर पड़ की भी तरी निकल जायगी। परन्तु जब धरती के ऊपर का पड़ हल चला कर पोला कर दिया जाता है तो भीतर की तरी उस पोली की हुई धरती में होकर ऊपर नहीं आती। परीक्षा के लिए दो छोटे छोटे गमले लेकर उनके पेंदे में छेद करके फलालेन की धज्जी वा लैम्प की बत्ती पिरोओ और जो सिरा गमले के भीतर रहे उसकी तीन चार धज्जियाँ करो और गमलों में मिट्टी इस प्रकार ठूस कर भरो कि जिससे बत्ती की धज्जियाँ चित्र नं० २ में दिखाई हुई रीति से फैली रहें। एक गमले में ठूस कर मिट्टी नीचे से ऊपर तक भरो और दूसरे में गमले की मिट्टी का ऊपरी भाग खोद कर पोला कर दो। अब इन गमलों को पानी भरे हुए बरतनों के ऊपर इस प्रकार रक्खो कि जिससे बत्तियों के दूसरे सिरे पानी में डूबे रहें। गमलों में की मिट्टी को पानी से तर भी कर दो। ऐसा करने से बत्तियों के सहारे पानी ऊपर चढ़ने लगेगा और तरी ऊपर आने पर भाप बन कर उड़ती जायगी। यह क्रिया उस गमले में शीघ्रता से होगी जिसमें मिट्टी ठूस कर भरी गई है। परन्तु दूसरे गमलों में जिसके सिरे की मिट्टी पोली रक्खी गई है यह क्रिया थोड़ी होगी, अर्थात् पहिले गमले के नीचे के बरतन में से पानी अधिक ऊपर चढ़ कर हवा में उड़ जायगा पर दूसरे गमले में जो पानी चढ़ेगा वह पोली मिट्टी तक ही चढ़ कर रह जायगा और इस कारण नीचे के बरतन में पानी अधिक नीचे न उतरेगा। इससे यह अनुभव हुआ कि यदि खेत की मिट्टी गरमी की ऋतु में बिना जुती छोड़ दी जाय तो अन्तर पड़ की तरी आकर्षित होकर वायु में मिल जाती है और अन्तर पड़ भी सूख जाता है। परन्तु जब हल चला कर खेत के ऊपरी पड़ को पोला कर दिया जाता है तो अन्तर पड़ में तरी बनी रहती है और जल न बरसने की दशा में भी पौधों की जड़ों को तरी मिल जाती है।

(४)

पौधों की बनावट और खुराक।

(१) पौधों में के पदार्थ वा तत्त्व।

यह नियम है कि जिन तत्वों की प्रधानता वाला पदार्थ खाने में आता है वही तत्त्व शरीर में प्रबल हो जाता है। घी खाने से चरबी बढ़ती है और 'नाइट्रोजिन' की अधिकतावाले पदार्थ के सेवन से शरीर में गरमी और बल बढ़ता है। ठीक यही दशा पौधों की भी है। पौधे अपनी खुराक धरती, जल और वायु से लेते रहते हैं और उस खुराक के तत्वों के अनुसार ही उनके के अंगों की वृद्धि और पुष्टि होती रहती है। पौधों का पृथक्करण करने से यह ज्ञात हुआ है कि उनके अंग भी उन्हीं तत्वों के बने हैं जो धरती [illegible] बनावट में पाए जाते हैं, पर इनमें जल का भाग बहुत बढ़ा हुआ है। जब बीज से अंकुर निकलता है उस समय जल का प्रमाण १०० में ८८ भाग होता है, जब पौधा तरुण होता है उस समय [illegible] भाग और पक जाने पर १२ भाग जल रह जाता है। पौधे जल को अपनी जड़ द्वारा धरती में से सोखते हैं, जो उनके तने, डाल और पत्तों तक पहुँ[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र पत्तों के छिद्र द्वारा वायु में निकल जाता है। ...ना जल के प्राणी नहीं रह सकता और ...तना अधिक जल पीया जाता है वह शरीर के ...व से बच रहने पर मूत्र पसीने आदि के रूप में ...कल जाता है। ठीक यही क्रिया पौधों के साथ ...ती रहती है। धरती में के पदार्थ जल के संयोग ...अलग हो जाते हैं और जड़ द्वारा सब पौधों के ...ना में पहुँच कर उनकी वृद्धि करते हैं; पीछे ...वह जल पौधों के पोषण का कार्य कर पत्तों द्वारा ...कल जाता है।

पौधों में पानी से कम सेन्द्रिय पदार्थ होते हैं ...र पृथक्करण करने पर ये पदार्थ १०० भाग इस प्रकार जाने गए हैं—कारबन ५० भाग, ...क्सीजन ३३ भाग, हाइड्रोजिन ५ भाग, नाइट्रोजिन ...से ४ भाग तक, गंधक ०·१६ से ५ भाग तक ...र फास्फ़रस १ भाग।

इन पदार्थों के सिवा पौधों में जो भौतिक पदार्थ ...उनके दो भेद हैं। एक वे जिनमें 'नाइट्रोजन' होता ...ार दूसरे वे जिनमें 'नाइट्रोजन' नहीं होता।

नाइट्रोजिन वाले	बिना नाइट्रोजिनवाले
आल्व्यूमैन	स्टार्च (मांडी) गोंद
फाइब्रिन	शक्कर (चीनी)
केसीन	सेल्यूलोज तेल

ऊपर के सब पदार्थों में कारबन, हाइड्रोजन ...र आक्सीजन होते हैं पर नाइट्रोजन सब में ...ीं होता। जिनमें नाइट्रोजन होता है उनमें ...आल्व्यूमैन मुख्य है जो अंडों की सफेदी में पाया ...जाता है। यह पौधों के रस, दाने और जड़ में होता ...। आटे को एक पोटली में बाँध कर पानी में भिगोया ...और मथ कर छोड़ दिया जाय तो जो लसदार ...जो पोटली में बच रहती है उसे ग्लूटन (सरेस) ...कहते हैं। इस ग्लूटन में फाइब्रीन रहता है और यह ...रुधिर में भी होता है। ताजे रुधिर को यदि किसी ...लकड़ी से हिलावें तो वह उससे चिपक जाता है। ...खाने की सब वस्तुओं में पाया जाता है और ...उनका स्वाद भी बनाता है। केसीन वह पदार्थ है ...जिसके कारण दूध में सफेदी रहती है और जब दूध जमाते हैं तो यह सफेद लोंदे की सूरत में जम जाता है। दूध में पुष्टि करने का गुण इसी के कारण होता है।

बिना नाइट्रोजन वाले पदार्थों में मांडी सब पौधों में होती है और अनाज और कंद में बहुतायत से होती है। गेंहूँ के आटे की पोटली को पानी में मथ कर छोड़ देने से जो सफेद तलछट नीचे बैठ जाती है उसे मांडी समझना चाहिए। गोंद और चीनी पौधों के रस में रहती है। डाली तोड़ने पर वा छुरी से डाली वा तने को काटने से जो पानी वा दूध सा रस निकल कर जम जाता है वह गोंद का भाग होता है। चीनी ईख में बहुत होती है। अन्न वा फल में जो मिठास है वह चीनी के कारण है। चीनी के भाग के रहने से पौधों का पोषण होता है। सेल्यूलोज वह वस्तु है जिससे पौधों के छिद्र बनते हैं। पौधे के उगने के समय ये कोमल होते हैं पर ज्यों ज्यों पौधा बढ़ता जाता है त्यों त्यों ये दृढ़ होते जाते हैं। सेल्यूलोज में हाइड्रोजन से आक्सीजन अठगुना होता है। सब पौधों में न्यूनाधिक तेल का भी अंश होता है। जिनमें अधिक अंश होता है उनसे ही तेल निकाला जाता है।

(२) पौधों के अंग।

खेत में से एक पौधा इस प्रकार उखाड़ो कि उसका कोई भाग खंडित न हो। उसमें की मिट्टी रेत आदि को झाड़ पोंछ लो। अब देखो तो उसमें कई भाग जुदा जुदा बनावट के दिखाई देंगे। पौधे के नीचे का भाग जो भूमि में रहता है वह जड़ कहाता है। इससे ऊपर का भाग जो भूमि के ऊपर रहता है उसको पेड़ी कहते हैं। पेड़ी में से जो कई पतली शाखाएँ और फिर उनमें से प्रशाखाएँ निकली दिखाई देती हैं वे शाखा व टहनी कहलाती हैं। इन टहनियों पर जो पक्षियों के पर की सी हरी फरहरियां वायु में उड़ती दिखाई देती हैं वह पत्तियां हैं और टहनियों के अग्रभाग पर जो जुदा जुदा रंग के छोटे बड़े उड़नेवाले जन्तुओं की सी आकृति के हैं वे पुष्प हैं। जहां पर पुष्प की पखड़ियाँ झड़ गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वहां पर हरे पीले आदि रंग की गाँठें दिखाई देती हैं वे बीज, दाने वा फल के नाम से प्रख्यात हैं। इस प्रकार प्रत्येक पौधे में जड़, पेड़ी, टहनी, पत्ती, फूल और बीज वा फल होते हैं। प्रत्येक भाग की आकृति, स्वभाव, गुण और कर्म जुदा जुदा हैं। पौधों की पूर्ण वृद्धि के लिए इन अंगों का ठीक ठीक काम करते रहना अत्यावश्यक है।

प्रथम पौधों की जड़ को देखो (चित्र नं० ३)। जड़ दो प्रकार की देखने में आती है। एक तो पेड़ी की नाईं सीधी चली जाती है और उसमें से छोटी छोटी शाखाएँ टहनियों की तरह फैल जाती हैं। इस प्रकार की जड़ को मूसला जड़ कहते हैं और चुकंदर, गाजर, रुई, अरहर आदि के पौधों और नीम, बबूर आदि वृक्षों में इसी प्रकार की जड़ होती है जो धरती में बहुत गहरी उतर जाती है और वहां से पौधों को खुराक पहुँचाती है। दूसरे प्रकार की वह जड़ है जो एक जाले की सूरत में बिखरी हुई होती है और इसकी शाखा-प्रशाखाएँ बहुत झीनी होती हैं। इस प्रकार की जड़ को झबरा जड़ कहना चाहिए। यह प्रायः घासवर्गवाले पौधों (गेंहू, जौ, जुआर आदि) में होती है। झबरा जड़ धरती के ऊपरी पड़ में ही रहती है नीचे तक नहीं उतरती और इस कारण सूखा और मेह का असर उस पर शीघ्र पड़ता रहता है। तीसरे प्रकार की जड़ इससे विचित्र है। पौधे की मूसला जड़ तो सीधी धरती में जाती है पर पेड़ी धरती पर ही फैलती है और उसकी प्रत्येक पत्ती उत्पन्न करनेवाली गाँठ से जड़ फूटती है। गेहूं आदि घासवर्ग के पौधों के जमने के समय असली जड़ मर जाती है और उसके स्थान में धरती के पास के पेड़ीवाले भाग से महीन तन्तु निकल कर गुच्छे की तरह फैलते हैं। वे Adventitious जड़ कहाती हैं। जो पौधे (ईख आदि) पोई काट कर बोने से होते हैं उनकी जड़ें इसी भेद की होती हैं। इन सब प्रकार की जड़ों पर बहुत छोटे और महीन बाल वा तन्तु होते हैं। इन्हीं तन्तुओं से जड़ मिट्टी में से पानी और खुराक चूसती रहती है और इनके न रहने पर पौधा बिना खान पान के सूख जाता है। ये तन्तु एक प्रकार का तेजाब छोड़ते हैं जिससे मिट्टी में के भौतिक और सेन्द्रिय तत्वों को जुदा कर चूसते हैं और वे पेड़ी पत्तों पर से पानी के वाष्प होकर उड़ते रहने से ऊपर को केशाकर्षण शक्ति से चढ़ते रहते हैं जिससे पौधे का पोषण होता है। सब प्रकार की जड़ों का कार्य पौधे को धरती पर जमाए रखना और पेड़ी, टहनियों, पत्तों आदि को जल और खुराक पहुंचाना है; और कन्द मूल की जाति के पौधों में ये खुराक को इकट्ठा रखने के लिए गोदाम का काम देती हैं।

दूसरा अंग पौधे की पेड़ी है। यह धरती से ऊपर को सीधी और किसी किसी पौधे में धरती पर आड़ी फैलती हैं। पेड़ी के जिस स्थान से पत्ते निकलते हैं उस स्थान को गाँठ वा ग्रंथि कहते हैं। पेड़ी का अन्तिम भाग जिसमें छोटी कोंपल और गुच्छा सी छोटी टहनी रहती है वह कल्ला कहलाता है। पत्ते की जड़ और टहनी के नीचे का कोण बगल होती है। कल्ले ही परिवर्द्धित होकर टहनियाँ हो जाते हैं। गेहूं आदि घास वर्ग के पौधों में धरती के समीप के पत्तों की बगल में कल्ले फूट कर टहनियाँ हो जाते हैं और फिर इनमें से और शाखाएं हो जाती हैं। इस प्रकार मुख्य पेड़ों से जो शाखा-प्रशाखाएं निकलती हैं वे चोषक कही जा सकती हैं। जब धरती उपजाऊ हो और बीज दूर दूर बोया जाय और खेत पटेला और गहवा से कमाया गया हो तो चोषक टहनियां विशेषता से उगती हैं और प्रत्येक में बाल लगती है। पौधे की पेड़ी और टहनियों का मुख्य काम जड़ से आई हुई खुराक को पत्ते और फूलों तक पहुंचाना है। बहुत से पौधों की पेड़ी जिनमें कन्द मूल उत्पन्न होते हैं धरती के भीतर ही होती है। आलू, रतालू शलगम आदि इसी प्रकार के पौधे हैं जिनकी पेड़ी का मुख्य भाग धरती में रहता है और इनमें ही जड़ों द्वारा खींची हुई खुराक इकट्ठी रहती है। इनमें असली जड़ में बहुत महीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ज़ु होते हैं जो कन्द-मूल में से निकल कर मिट्टी ...फैलते हैं।

पौधे का तीसरा भाग पत्ते हैं। पशु-पक्षियों में ...काम उदर करता है वही काम पौधों में पत्ते ...ते हैं। जड़ों द्वारा जो खुराक पौधे चूसते हैं वह ...में आकर पाचन होती है। अर्थात् पौधे की वृद्धि के ...योगी पदार्थ पत्तों में आकर पचते हैं। पत्ते बहुत ...ीन झिल्लियों के बने होते हैं जिनमें असंख्य छोटे ...और छिद्र हैं। इन नलियों द्वारा वायु में का ...र्बन पौधे में पहुंचता रहता है जब कि और ...राक को जड़ें पेड़ी द्वारा धरती में से पहुँचाती ...। हरे पत्तों में का कार्बन डायोक्साइड (कार्बन एसिड ...र आक्सीजन वायु का योग) का पृथक्करण सूर्य ...गरमी से होता है जिससे कार्बन तो पौधे में ...जाता है और आक्सीजन निकल जाता है। कार्बन ...पत्ते में के जलकणों से मिल कर कार्बन हाइड्रेट बन ...ता है जो पौधे में के मांड़ी (स्टार्च) नामक पदार्थ ...होता है और यह तेल, आल्ब्यूमन, आदि के लिए ...वश्यक है। पौधे की खुराक को पचाने में और ...भाग को निकाल देने में पत्ते बड़े काम के हैं ...यह क्रिया उन छिद्रों द्वारा होती है जो पत्तों ...नीचे की ओर होते हैं। जैसे मनुष्य की आरो-...ग्य की सूचक चहरे पर की ललाई समझी जाती ...वैसे ही पौधे की सजीवता उसके पत्तों की हरि-...याली पर निर्भर है। पत्तों को नोच लेने से पौधे ...की वृद्धि रुक जाती है और वह धीरे धीरे मर ...जाता है। पौधे का चौथा भाग फूल है। और सब ...अंगों की अपेक्षा फूल बड़े महत्व का है क्योंकि इसके ...बिना फसल बोने का अन्तिम फल जो अनाज वा ...बीज वा फल प्राप्त करना है सिद्ध नहीं हो सकता। ...प्राणियों में जो गर्भाशय और रेताशय के कार्य हैं ...वही काम वनस्पतियों में फूल करता है और उसके ...बिना फल-सिद्धि नहीं। फूल भी भिन्न भिन्न वृक्षों में ...अलग अलग आकृति वा अवयव के होते हैं; परन्तु ...कुछ अवयव सब फूलों में पाए जाते हैं और जिनके ...होने से वे बीज वा फल उत्पत्ति का कार्य्य करने में असमर्थ होते हैं उन्हीं का इस स्थान पर वर्णन किया जाता है। पौधों की टहनियों के सिरे पर फूल लगते हैं। फूलों का प्रारम्भ एक ऊपरी भाग से होता है जिसको आधार कहते हैं। इस आधार स्थान वा कोष के पास हरी पत्तियां होती हैं जो फूल के खिलने से पूर्व कली को ढके रहती हैं। जब फूल खिलता है तो ये पत्तियां फैल जाती हैं और फूल आगे को बढ़ जाता है। कली जब खिलती है तो उस परकी पखड़ियां चारों ओर फैलती हैं। इन पत्तियों वा पखड़ियों वा दल के भिन्न भिन्न रङ्गों के होने के कारण फूलों में सुन्दरता वा मनोहरता दिखाई देती है। पखड़ियों के बीच में एक भोगली होती है जो एक सूक्ष्म झिल्ली से मढ़ी हुई होती है और उसके ऊपर बोंड़ी रहती है। झिल्ली के उतर जाने पर कई नालियां दिखाई देती हैं जिनमें एक बड़ी नली बीच में होती है और बाकी की नलियां छोटी होती हैं जो बड़ी नली के चारों ओर रहती हैं। बीच की बड़ी नली को गर्भनाल और आस पास की छोटी नालियों को पुंनाल कहते हैं। इन नलों के अग्र भाग पर बोंडियां होती हैं और बोडियों के भितर केसर-कण रहते हैं जो फूल के पूरे खिलने और बोंडियों के फट जाने पर बुकनी की सूरत में हो जाते हैं। गर्भनाल पर की बोंडी एक लसदार वस्तु से ढकी हुई होती है और गर्भनाल का नीचे का सिरा गर्भकोष से मिला रहता है। जब फूल पूरा खिल जाता है तो पुंनाल का केसर-रज उड़ कर वा छोटे छोटे जन्तुओं के उड़ उड़ कर पुष्पों पर बैठने से गर्भनाल की बोंडी पर चिपट जाता है। केसर वा पराग के गर्भनाल की बोंडी पर पड़ने से ही फूल में बीज उत्पन्न होता है और फल लगता है। जब तक पुंनाल का पुंकेसर गर्भनाल के अग्र भाग पर न पड़ेगा तब तक बीज वा फूल का होना असम्भव ही है। किसी किसी जाति के पौधों में पुंनाल और गर्भनाल जुदा जुदा फूलों में होती हैं; उनमें पुंकेसर गर्भनाल के मुख पर पवन द्वारा वा कीट पतङ्गों द्वारा पहुंचता रहता है। जब गर्भनाल की बोंडी पर पुंकेसर पड़ता रहता है तो वह अंकुरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है और उसमें से एक सूक्ष्म नली नीचे की ओर गर्भकोष को जाती है। बस इस नली द्वारा पुंकेसर गर्भकोष में पहुंचता है और बीज की उत्पत्ति होती है। ज्योंही गर्भकोष में पुंकेसर स्थापित होता है त्योंही फूल की पखड़ी, पत्ती और नली आदि सब झड़ जाती हैं और गर्भनाल तथा बोंडी कुम्हला जाती है और ज्यों ज्यों बीज बढ़ता जाता है त्यों त्यों गर्भकोष भी फैलता जाता है। परिपक्व गर्भकोष और उसके अवयव फल कहलाते हैं। मटर की फली और गेहूँ की बाल परिपक्व गर्भकोष हैं और इसी कारण ये पौधों के फल ही हैं।

पौधे का पाँचवां अङ्ग बीज वा फल है। गर्भनाल में होकर पुंकेसर का गर्भकोष में पहुंचना ही फल वा बीज का अंकुरित होना है। जब बीज बनने लगता है तो गर्भकोष उसके चारों ओर बढ़ने लगता है और पक जाने पर फल हो जाता है। ऊपर दिखाया गया है कि पौधे के जो भाग हैं उन सबके क्रम से पोषण पाने से अन्त में बीज वा फल बनता है। इस स्थान पर यह दिखाना है कि बीज से पौधा किस प्रकार हो जाता है। बीज के अंगों और उनकी क्रिया को समझने के लिए सेम, मटर वा गेहूँ आदि के बड़े बीज को लेकर उनमें से कुछ को तर कर गरम स्थान में रक्खो जिससे उनमें कल्ला फूट आवे और फिर बीज के अंगों को देखो। भीगने से मुलायम हुए बीज को हाथ से मलोगे तो एक पतली झिल्ली उस पर से उतर जायगी। यह झिल्ली दो तरह की होती है और बीज को चारों ओर से ढके रहती है। झिल्ली के जुदा हो जाने पर अन्तर्भाग के दो दल दिखाई देते हैं जो सहज में जुदा हो सकते हैं और जिनको आदिदल वा दाल कहते हैं। दोनों आदिदल आपस में चिपटे भी नहीं होते और न जुदा ही होते हैं बल्कि उन दोनों के बीच में एक जुदा ही पदार्थ होता है जिससे ये दल चिपके रहते हैं। सूखे बीज को देखने से उसमें एक और छोटा सा दाग दिखाई देगा। बस यही उस भीतर के पदार्थ के स्थान का सूचक है और इसको आँख कहते हैं। इस आँख में बहुत महीन छेद होता है जिसमें होकर अंकुर बाहर निकलता है। आँख के भीतर एक छोटा और पतला तन्तु रहता है जो ऊपर कहे आदिदलों से चिपका रहता है। यह उसी रीति की वस्तु है जैसी कि मनुष्य-गर्भ में कलल और पक्षियों के अंडों में जर्दी में होती है। बीज से अंकुर फूटने के समय इस थैली में ही विक्रिया उत्पन्न होती है और वह आदिदल में इकट्ठी खुराक से परिवर्द्धित होता है। ताप लगने से वायु का आक्सीजन बीज के भीतर के स्टार्च (श्वेतसार) पर असर डालता है और उससे कार्बोनिक एसिड १२ भाग और आक्सीजिन ३२ भाग निकल कर चीनी और गोंद की सूरत में पानी में घुल जाता है और यही अंकुर के पोषण के काम आता है। ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ेगा कि अंड तन्तु का एक सिरा गोल और अनीदार है और दूसरा सिरा चपटा है और आदिदल के भीतर खाली जगह में है। गोल और अनीदार सिरा टेढ़ा होकर आँख के छिद्र में से बाहर निकलता है और बीज पर की झिल्ली को फाड़ देता है। अंकुरित हुए बीज को देखने से मालूम होता है कि वह गोल अनीदार भाग टेढ़ा होकर धरती में घुस गया है और यह जड़ है; और भीतर का चपटे सिरेवाला भाग बीज में की आँख में से निकल कर धरती के ऊपर वायु और प्रकाश की ओर बढ़ता है और इसकी नोक पर पत्ते मालूम देते हैं। यही पौधे की पेड़ी है। अंड के दोनों सिरे धरती में और वायु में फैलते परन्तु मध्य का भाग आदिदल से चिपटा रहता है और दल में से अपनी खुराक पाकर बढ़ता रहता है। जब अंकुर बढ़ कर धरती से बाहर आ जाता है तब पत्ते वायु से भी पोषण पाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक बीज में तीन भाग अत्यावश्यक हैं (१) बीज की झिल्ली वा छिलका, (२) आदिदल जिसमें नए पौधे की खुराक रहती है और (३) गर्भ वा आँख जिसमें पौधा सूक्ष्म रूप से रहता है।

(३) पौधों का स्वासोच्छ्वास और प्रस्वेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य वा प्राणी मात्र के जीवन के लिए जिस
ार स्वाँस लेना आवश्यक है उसी प्रकार पौधों
भी श्वासोच्छ्वास का होना अत्यावश्यक है; इसके
ा पौधा मर जाता है। साँस लेने में वायु में का
सजन मिला कार्बोनिक एसिड अर्थात् कार्बन-
ाक्साइड भीतर जाता है और उच्छ्वास में आक्साइड
शरीर में रह जाता है और कार्बोनिक एसिड छूट
र बाहर निकल आता है। ठीक इसी प्रकार पौधों
भी क्रिया होती रहती है। स्वासोच्छ्वास की यह
ा पौधे के प्रत्येक भाग से और दिन-रात होती
ती है। मनुष्य को जितना विशेष परिश्रम करना
ता है उतनी ही स्वासोच्छ्वास की क्रिया तीव्र
ती है और कार्बन डायोक्साइड विशेष निकल जाता
। जितना शीघ्र पौधा बढ़ता है उतना ही उसका
सोच्छ्वास भी तीव्र होता है। वे पौधे जो धीरे
बढ़ते हैं और धरती के भीतर ही खुराक लेते
े शीघ्रता से स्वाँस नहीं लेते। पौधों में स्वाँस
शीघ्र लेना उनके भीतर के भौतिक भाग को
करता है। काँच की एक नली में चूने का
ा पानी भरो और उसमें जोर से फूँक मारो
यह पानी खड़िया के रंग का सफेद हो जाता
ठीक इसी प्रकार गेहूँ वा किसी और पौधे के
ुमान ५० वा ६० अंकुरित हुए बीजों को काँच
नली में रख कर काक लगा दो और उसको
गरम जगह में रक्खो। दो दिन पीछे काक
कर उस नली में की वायु को चूने के पानी-
नली में डालो तो उसमें का पानी सफेद हो
और यदि दीपबत्ती उसमें ले जाई जायगी
वह बुझ जायगी। इससे यह सिद्ध होता है कि
की नाईं पौधे भी कार्बोनिक एसिड को वायु में
रहते हैं जिससे चूने का पानी सफेद हो
है। पौधों के भीतर आक्सीजन वायु में से
है और वहाँ पर कार्बन को जलाता है; वह
कार्बन डायोक्साइड होकर बाहर निकल जाता है।
के भीतर जलने से गरमी उत्पन्न होती है और
स्वाँस से बाहर भी निकलती रहती है।

स्वासोच्छ्वास के प्रतिकूल पौधों में पाचन क्रिया होती है अर्थात् स्वाँस से वायु में का आक्सीजन भीतर जाता है और कार्बन डायोक्साइड बाहर आता है; पर पाचन क्रिया में आक्सीजन बाहर फेंका जाता है और कार्बन डायोक्साइड भीतर रहता है। इन दोनों का मुकाबला इस रीति से किया जा सकता है।

स्वाँस क्रिया

१ आक्सीजन का ग्रहण और कार्बन डायोक्साइड का त्याग।

२ यह क्रिया पौधे के सब अंगों से रात दिन होती है।

३ इससे पौधे के सूखे तत्त्वों में कमी होती है।

४ यह वायु को बिगाड़ती है।

पाचन क्रिया

१ कार्बन डायोक्साइड का ग्रहण और आक्सीजन का त्याग।

२ पाचन क्रिया हरे अंगों में केवल दिन में होती है।

३ इससे सूखे भाग की वृद्धि होती है।

४ यह वायु को शुद्ध करती है।

पौधे अपने अंगों में से जल या वाष्प निकालते रहते हैं और यही उनका प्रस्वेद होना वा पसीने का निकलना है। जिस दिन आकाश निर्मल हो, गेहूँ जौ आदि के पौधे की एक पत्तेदार शाखा को एक चौड़ी काँच की नली में रक्खो और उसके मुख पर हलकी डाट लगाओ। दूसरे दिन सुबह तुमको उस नली में जलकण मालूम होंगे। यह जलकण पौधे के पत्तों में से निकले हैं और उसका पसीना हैं। मनुष्यों में शरीर के छिद्र बन्द हो जाने से प्रस्वेद नहीं निकलता और रोग उत्पन्न हो जाता है और बहुत जल पीने से प्रस्वेद विशेष होता है। वैसे ही पौधों में भी यदि प्रस्वेद न निकले तो वे मुरझा जाते हैं और उनको अधिक पानी देने से प्रस्वेद अधिक हो जाता है। मिस्टर ग्रीन साहब अपनी छोटी पुस्तक 'रयूरल साइन्स' में लिखते हैं कि यह अनुमान किया गया है कि १ सेर सूखे द्रव्यों के उत्पन्न करने में २०० से ३०० सेर तक जल-भाग निकल जाते हैं। मि० वालनी के अनुभव में निम्नलिखित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौधों में एक सूखा भाग उत्पन्न करने में उनको निम्न लिखित पानी चाहिए।

मका	२३३	गुना
बाजरा	४१६	”
जौ	७७४	”
राई	८४३	”
सरसों	९१२	”

पौधों में से प्रस्वेद द्वारा पानी के निकल जाने से भूमि में की तरी उतनी भी नहीं रहती जितनी उसके पड़ती रहने में रहती है। धूप, सूखी वायु, पवन और गरमी में प्रस्वेद अधिक निकलता है। जब प्रस्वेद विशेष निकले और भूमि में से पौधे को पानी न मिले तो पौधा मुरझा जाता है और यदि खेत में उस समय पानी न दिया जाय तो वह मर जाता है। धरती में तरी रहने से जितना पानी प्रस्वेद होकर निकलता है उतना ही जड़ों द्वारा खुराक के साथ पहुँचता रहता है जिसमें का जल-भाग वाष्प के रूप में निकल जाता है परन्तु खुराक पौधे में रह कर उसकी वृद्धि करती है।

प्रस्वेद द्वारा निकल जानेवाले जल का परिमाण जानने के लिए पत्ते सहित डाली को एक बड़े गिलास में रख कर जल से भर दो और पानी के ऊपर एक तह तेल की डालो जो पानी को ढक ले। अब इस गिलास को कांटे में तोलो। कुछ समय के पश्चात् तुमको तोलने से ज्ञात होगा कि कितना जल भाग निकल गया। परीक्षा करने पर रसायन-शास्त्रियों को ज्ञात हुआ है कि सूरजमुखी के एक वृक्ष में से २४ घंटों में १ सेर के अनुमान जल निकल जाता है। बहुत से ऐसे भी वृक्ष हैं जिनमें पानी का निकलना पत्तों की नोक पर बूँद में स्पष्ट दिखाई देता है जैसे मका आम आदि में होता है। यह जल मेंह वा ओस आदि का नहीं होता वरन् वृक्ष अपनी गहरी जड़ों द्वारा भूमि के भीतर से जल चूसते रहते हैं जिसके साथ पौधों की खुराक जड़ से डालियों में होकर पत्तों तक आती है और वहाँ खुराक तो पौधे की वृद्धि में काम देती है पर जलभाग वायु में निकल जाता है। इस क्रिया से यह भी सिद्ध होता है कि वृक्ष जिनकी जड़ भूमि में गहरी जाती है नीचे का जल ऊपर ले आते हैं। बड़े जँगलों के बनाए रखने के लिए यह भी मुख्य कारण हो सकता है; क्योंकि उनके काट देने से जड़ के भीतर का पानी ऊपर को न आ सकेगा और ऊपर का पेड़ सूखा, बिना तरी का हो जाने से वायु में की भी तरी निकल जायगी।

(४) पौधों की खुराक।

पौधों में जो तत्त्व वा पदार्थ पाए जाते हैं उनका और उनके अंग प्रत्यंग तथा उनमें होनेवाली क्रियाओं का थोड़ा सा वर्णन ऊपर किया गया है। अब पाठक वृन्द को यह दिखाया जाता है कि पौधे किस प्रकार बढ़ते और पानी तथा अपनी खुराक पाते हैं। पौधों की वृद्धि के लिए धरती में तरी गरमी और उनकी खुराक का होना अत्यावश्यक है और उसमें प्रकाश और वायु भी मुख्य सहायक हैं। पौधों के अंगों की बनावट और कार्य्य तो पाठक पढ़ चुके। जड़ें धरती के भीतर उतर जाती हैं और पौधे को धरती में जमाए रखती हैं। जड़ों में बहुत महीन सूत के से तन्तु वा रोएँ होते हैं। ये तन्तु ही धरती में से जल और खुराक लेकर पौधों को पहुँचाते हैं। जिन तत्त्वों का शरीर बना होता है उन्हीं तत्त्वों की खुराक मिलने से वह बना रहता है। पौधों की बनावट में जो जो तत्त्व हैं उनमें सब से मुख्य जल है। जल पौधों को वायु से धरती द्वारा मिलता है, इसके बिना पौधा बढ़ ही नहीं सकता। जल स्वयं पौधों की खुराक होने के सिवा धरती में से पौधों की खुराक के तत्त्व गला कर पौधों के अंगों तक ले जाने के काम का भी है। धरती में की खुराक को पौधे अपनी जड़ों के सूक्ष्म तन्तुओं द्वारा चूसते रहते हैं और रस को पौधे के हर एक अंग तक पहुँचाते हैं। पौधों को मेंह, ओस, पाले आदि से पानी मिलता रहता है। मेंह का पानी धरती में समा जाता है जिससे जल के सोते बनते हैं और वही कूएँ नदी या नालों में पानी के कारण होते हैं। भिन्न भिन्न जाति के पौधों को भि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान में पानी की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पौधे की जुदा जुदा अवस्था, अंग और ऋतुओं में जुदा जुदा मिकदार में पानी दरकार होता है। जड़ें रात दिन धरती से पानी चूसती रहती हैं और पत्ते दिन में निरर्थक भाग को वायु में अपने छिद्रों द्वारा बाहर निकालते रहते हैं। गरमी और खुश्की में पत्ते जल का अधिक भाग फेंकते रहते हैं जिसकी मिकदार पौधे के वजन से कहीं अधिक होती है। इसलिए पौधों की जड़ों को पूरा पूरा पानी दरकार होता है और वह तब ही मिल सकता है जब धरती में काफी तरी हो। तरी बनाए रखने के लिए धरती हल आदि से अच्छी तरह कमाई जानी चाहिए और उसमें सेन्द्रिय पदार्थ विशेष पहुँचाने चाहिएँ जिससे वर्षा, ओस का पानी और कूएँ तालाब नदी से दिया गया पानी धरती में नीचे उतर जाय और उसमें तरी बनाए रक्खे।

पौधों को जो खुराक वायु से सीधी मिलती है उसमें कार्बोनिक एसिड मुख्य है। वायु में कार्बोनिक एसिड रहता है और वह प्राणियों के श्वास, लकड़ी वनस्पति आदि के सड़ने और जलने से उत्पन्न होती रहती है। इस एसिड को हरे पत्ते दिन के प्रकाश में भीतर लेते और पचाते हैं जो प्रकाश और गरमी से आक्सिजन और कार्बन दो तत्वों में बँट जाता है। पहले को पत्ते वायु में फेंक देते हैं परन्तु पिछला पौधे में रह जाता और उसका शरीर बनाता है। पौधे के जलने पर जो कोयला मिलता है वही शुद्ध कार्बन का स्वरूप है। इस प्रकार पत्तों में आया कार्बन रस के सहारे पौधे के अंगों में पहुँचता है और उसकी वृद्धि करता या कंद मूल आदि में पहुँच कर इकट्ठा होता है।

पौधों की खुराक की तीसरी वस्तु नाइट्रोजन है। यह भी वायु में से प्राप्त होती है। यह पदार्थ अपने असली स्वरूप में पौधों में नहीं पहुँचता बल्कि परिवर्तित होकर एमोनिया रूप से जाता है। नौसादर और चूना मिलाने और उस पर जल डालने से जो तीव वायु उत्पन्न होती है वह एमोनिया गैस है। यह गैस नाइट्रोजन और हाइड्रोजन दो गैसों के मेल से बनती है। एमोनिया गैस वायु में रहती है और मेंह बरसने पर वह पानी में मिल कर धरती में मिल जाती है। धरती में जब वनस्पति आदि सड़ती हैं तो उस सड़ांद से भी यह गैस बनती और धरती में मिल जाती है। पौधे की वृद्धि के लिए यह बहुत जरूरी है। यह गैस पानी में घुल जाने से धरती में बहुत नीचे तक पहुँच जाती है और वायु में भी उड़ कर मिल जाती है। इसलिए किसान को इसको खेत में पौधे के उपयोग में आते रहने की सूरत में रखने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए।

एमोनिया की सूरत के सिवा नाइट्रोजन शोरे की सूरत में भी बहुत होता है क्योंकि शोरा नाइट्रिक एसिड और पोटास का संयोग है। इस प्रकार के नाइट्रिक एसिड के जितने मिश्रण वा योग हैं वे नाइट्रेट कहलाते हैं। यह पदार्थ भी पौधों के लिए मुख्य खुराक है। एमोनिया भी जब धरती के भीतर नाइट्रेट की सूरत में हो जाता है, तभी पौधों के काम का होता है।

ऊपर लिखे सेन्द्रिय पदार्थों के सिवा पौधों की खुराक के कई भौतिक पदार्थ भी हैं जिनमें फास्फरस, पोटास, सोडा, चूना, लोहक्षार, गंधक आदि हैं। ये सब धरती में रहते हैं और पानी में घुल जाने पर जड़ों द्वारा पौधे के अंगों में पहुँचते रहते हैं और उसकी वृद्धि के कारण होते हैं। * फास्फरस वह पदार्थ है

* ये भौतिक पदार्थ जागृत और सुप्त दो अवस्थाओं में होते हैं। जागृत पदार्थ पौधों के उपयोग में आने को तैयार होते हैं और सुप्त धरती में होते हुए भी बिना विशेष विकृति के उपयोग में नहीं आते। भौतिक पदार्थों को पौधों के उपयोगी होने के लिए द्रव अवस्था में होना चाहिए। बिना उनके जल में घुले पौधे उन्हें नहीं ले सकते। पानी में लाल स्याही को घोल कर उसमें पौधों की जड़ को रखने से कुछ समय में रंग पत्तों तक पहुँच जाता है जिससे प्रकट होता है कि खुराक के पत्तों तक पहुँचने के लिए उसका जल में घुल जाना जरूरी है। पौधों की जड़ों में से कार्बन डायोक्साइड नाम का तेजाब छूटता रहता है जिसके कारण धरती में के पदार्थ जुदा होकर पानी में घुल जाने की सूरत में बदल जाते हैं और फिर जड़ों द्वारा पौधे का पोषण करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे दियासलाई की नोक रंगी जाती है। यह हड्डियों में विशेषतः होता है और पौधों के लिए एक अमूल्य खुराक है। पोटास और सोडा क्षार हैं। पहला शोरे में और दूसरा नोन में बहुत होता है। ये दोनों पौधों की राख में रहते हैं। भूमि पर के पौधों में पोटास और सामुद्रिक वनस्पति में सोडा विशेष पाया जाता है और ये दोनों पौधों के धरती से जड़ों द्वारा पानी में घुल जाने पर पहुँचते हैं।

इसी प्रकार धरती में जल द्वारा घुल कर चूना, लोह, क्षार, गंधक आदि पदार्थ पौधों में पहुँचते हैं और उनकी वृद्धि का कारण होते हैं। किसी पौधे को किसी एक विशेष पदार्थ की आवश्यकता होती है तो दूसरे पौधे को किसी दूसरे पदार्थ की। परन्तु सब पौधों की वृद्धि के लिए मुख्य मुख्य पदार्थों की खुराक मिलने की अत्यावश्यकता होती है जिसके बिना पौधे नहीं उगते और धरती मरी हुई कही जाती है। उस समय पौधों की खुराक के पदार्थ बाहर से धरती में ऐसी सूरत में पहुँचाए जाते हैं कि वे जल में शीघ्र घुल कर पौधों के उपयोग में आ सकें। इनका वर्णन खेत में दिए जाने के लिए उपयोगी खादों के साथ किया जायगा।

(५) खेत की स्थिति और सुधार।

प्रत्येक जमींदार और काश्तकार को अपनी कृषि के लिए बहुत सी बातों का सुधार करना अत्यावश्यक होता है जिसके बिना वह खेती से लाभ नहीं उठा सकता। इन सुधारों में मुख्य मुख्य ये हैं। (१) खेत की धरती की बनावट और गुणों को खेती के अनुकूल करना। (२) देश की ऋतु, (३) खेत का स्थान। अर्थात् खेत ऊँची भूमि पर है वा निचान में है, उसमें ढाल है तो कितनी है और व्यापारिक स्थानों के समीप है या दूर, आदि बातें जान कर उनके अनुसार खेत को उपयोगी बनाना।

(१) धरती की बनावट, उसके गुण दोष और उसके सुधार का विषय तीसरे प्रकरण में वर्णन किया गया है। यहाँ पर वही बातें लिखी जाती हैं जो उस स्थान पर नहीं दी गईं। यह दिखाया जा चुका है कि धरती का ऊपर का पड़ कृषि के काम का होता है परन्तु धरती के अन्तर पड़ का प्रभाव भी ऊपर के पड़ पर पड़ता है। जिन खेतों में धरती का बाह्य और अन्तर पड़ एक सा हो और वह प्रवाहजनित बनावट की हो तो उसमें जोताई आदि करने से अच्छा फल मिल सकता है। यदि ऊपर का पड़ हलका अर्थात् सछिद्र हो और अन्तर पड़ दृढ़ हो तो अच्छा होता है क्योंकि उसमें पहुँचा हुआ पानी इकट्ठा रह सकता है और पौधे को भीतर से तरी मिल जाती है। गहरी जोताई से भीतरी मिट्टी का पड़ उखड़ कर ऊपर की हल की धरती में मिल जाने से उसमें पानी की तरी रख लेने की शक्ति बढ़ जाती है। यदि ऊपर का पड़ निरी मिट्टी का हो और नीचे रेत या छोटे छोटे रोड़े हों तो उसे भी अच्छा मानते हैं क्योंकि ऐसी धरती में से पानी सहज में नालियों द्वारा निकाला जा सकता है। ऐसी हालत में भी बाहर और भीतर के पड़ों की धरती को अच्छी तरह मिला देने से अधिक लाभ हो सकता है। यदि अन्तर पड़ थाली का सा हो अर्थात् उसमें पानी भर जाता हो तो उसको तोड़ देने से धरती सुधर सकती है। नीचे का दल कँकरीला वा रोड़ीवाला होने पर ऊपर की धरती में जो खाद आदि पदार्थ उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए दिए जाते हैं वे सब पानी के साथ अन्तर दल में होकर बहुत गहरे उतर जाते हैं और फिर पौधों की जड़ों को नहीं मिल सकते। अन्तर दल चट्टान का होने से पौधों की जड़ें पूरी नहीं घुस सकतीं; पर ऐसी धरती में घास आदि अच्छी तरह हो सकती है। जो धरती पहल पहल खेती के काम के लिए जोती जाती है उसमें फसल अच्छी नहीं होती। यदि धरती में वृक्ष और झाड़ियां उगी हों तो पहले उनको हटाना जरूरी है। बड़े बड़े वृक्षों को तो जड़ तक से उखाड़ देना चाहिए। भूमि पर पर जंगलों के होने से वायु में और धरती के भीतर भी तरी रहती है। देश में जंगलों को काट देने से धरती की तरी जाती रहती

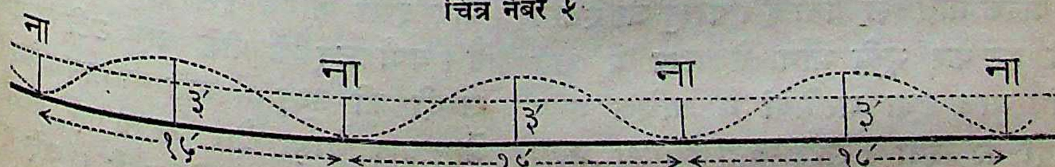
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र धरती वंध्या हो जाती है। परन्तु खेती के वृक्ष झाड़ी आदि उस समय हानिकारक त्य हैं जब कि वे खेत के मध्य में रहें। यदि के खेत की मेंड़ पर रहने दिया जाय तो हानि के ले लाभ ही होता है। भूमि में तरी रखने के सिवा फ़सल को आँधी से बचाते हैं, उनसे किसान को न मिल जाता है, हल आदि औज़ारों के लिए ड़ी मिल जाती है और जो पत्ते गिरते हैं वह ती के भीतर रह कर सड़ गल जाते हैं और की उर्वराशक्ति को बढ़ाते हैं। अथवा इकट्ठे र के गाय भैंस बैल आदि की शालाओं में बिछाए ते हैं और उनके मूत्र गोबर आदि के संग मिल खाद का काम देते हैं।

जिस खेत की धरती में क्षार का भाग अधिक ता है वह सब फसलों के लिए एक सी काम की हीं होती और उसको ऊसर धरती कहते हैं। धरती के क्षार रेह सज्जी नोन आदि होते हैं। जब खेत मेंह बरसता है या नदी नालों का पानी दिया ता है तो मिट्टी में के क्षार पानी में घुल जाते हैं र पानी के भाफ होकर उड़ जाने पर वे धरती ऊपर सफेद चद्दर की तरह दिखाई पड़ते हैं। ऐसी ती को ऊसर कहते हैं। यदि धरती का पड़ सछिद्र तो पानी क्षारों सहित नीचे उतर जाता । परन्तु जब ऊपर का पड़ सूख जाता है भीतर के पड़ का पानी मिट्टी के कणों द्वारा र को चढ़ता है और उसके साथ क्षार भी ऊपर जाते हैं और धरती को ऊसर कर देते हैं। ही में प्रति सैकड़ा दो भाग या उससे अधिक र होने से वह काम की नहीं रहती। जब की मिट्टी में हवा नहीं जा सकती तो मिट्टी के पौधों की खुराक जुदा नहीं हो पाती और मिट्टी में एक प्रकार की खटाई उत्पन्न हो जाती है जिसे धरती का खट्टा पड़ जाना कहते हैं। इन दोनों दोषों—क्षार और खटाई—को भूमि में से दूर करना किसान का काम है। प्रथम खारी कूएं या पोखर आदि से खेत को पानी न दिया जाय क्योंकि खारी कूओं के पानी में खार होता है और वह अच्छे खेत में जाकर उसमें खार पैदा कर देता है। दूसरे खेत के भीतर जाड़ों के दिनों में दो दो फुट के अंतर से उथली अर्थात् कम गहरी नाली बना दी जाय जिन सब की ढाल खेत के कोने में एक गढ़े की तरफ हो। बैसाख जेठ के महीनों में गरमी ज़ोर की पड़ने के कारण धरती सूखी हो जाती है और उसके भीतरी पड़ का पानी ऊपर को खिंचता है जिसके संग खार भी ऊपर आ जाता है। जब आषाढ़ श्रावण में पानी बरसता है तो यह ऊपर का खार पानी में घुल जाता है और पानी इन नालियों में होकर गढ़े में पहुंच जाता है। इस प्रकार खेत का सब खार बह कर गढ़े में पहुँचता है जिसको मिट्टी में भर देने से खार एक ओर इकट्ठा होता रहता है। इस प्रकार खार से धरती साफ रहती है। दूसरी रीति वह है जो मि० वेन्सन ने लिखी है। वह यह है कि खेत को ऐसी क्यारियों में बाँटे जो खेत की चौड़ाई या लम्बाई के बराबर लम्बी और पंद्रह फुट चौड़ी हों। जहाँ जहाँ दो क्यारियाँ आपस में मिलें उन स्थानों से मिट्टी खोद कर दोनों ओर की क्यारियों के बीच में तीन तीन फुट ऊँची लम्बाई भर लगावे और उसमें सिरों की ओर ढाल रक्खे; ऐसा करने से क्यारियाँ बीच में ऊँची रहेंगी और दोनों ओर को ढाल हो जायगी और उसकी आकृति इस प्रकार की हो जायगी।

चित्र नंबर ४



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब गरमी पड़ती है तो धरती के भीतर का खार युक्त पानी आकर्षण से ऊपर चढ़ आता है और खेत में दिखाई देता है। जब मेंह बरसेगा तो वह खार घुल कर पानी के संग "ना" निशान-वाली नालियों में होकर बह जायगा जो खेत के किनारे पर बनी बड़ी नाली में होकर एक ओर इकट्ठा हो जायगा; वहाँ से वह अलग कर दिया जा सकता है। रेह को दूर करने की तीसरी रीति यह है,—उस धरती में पौधों को उगाने से और उसमें सेन्द्रिय पदार्थ विशेष मात्रा में पहुँचाने से बड़े बड़े वृक्ष और घास के उगते रहने से ऊसर धरती सुधर जाती है।

(२) देश और ऋतु के प्रभाव को खेती के अनुकूल करने के उपाय करना मामूली किसान का काम नहीं है। देश की आब हवा (जलवायु) का प्रभाव खेती पर विशेष होता है और धरती की बनावट एक सी होने पर भी अलग अलग आब हवा के देशों की पैदावार में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। देश की आब हवा से तात्पर्य्य उस देश पर की सूर्य की किरणों के प्रकाश, गरमी और वायु तथा धरती में की तरी से है। प्रकाश, गरमी और तरी जितनी अधिक होगी वनस्पति उतनी ही ज़ोरदार होगी। प्रत्येक स्थान की आब हवा समुद्र से धरती की उँचाई और निकटता तथा वृक्षों की अधिकता पर निर्भर है। स्थान समुद्र-तल से जितना ऊँचा होगा उतना ही ठंडा होगा और बहुत उँचाई पर होने से वहाँ बरफ गिरने का भी डर होगा; इसलिये विशेष ऊँचाई की धरती कृषि कर्म के लिए उपयोगी नहीं होती। इसी प्रकार स्थान के समुद्र के पास होने से वहाँ की आब हवा न विशेष गरम होती है और न सरद बल्कि मातदिल होती है। परन्तु जो स्थान समुद्र से हट कर भूमि भाग के मध्य में होते हैं उनकी आब हवा गरमियों में अधिक गरम और सरदी के दिनों में सरद होती है। जो देश-भाग जंगलों से घिरा हुआ होता है उसकी धरती में तरी रहती है, आब हवा भी त[illegible] होती है और धरती पर छाया रहने से सूर्य की किरणें नहीं घुस सकतीं। ऐसे जंगलों को कटवा देने से धरती खेती के लिए उपयोग की हो सकती है परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि सब जंगल न कटवाए जायँ। जितने भाग में खेती कराना है उतने भाग के वृक्ष जड़ मूल से उखाड़ देने चाहिए। बाकी के वृक्ष रहने देने से धरती बाँझ न होगी। क्योंकि उन वृक्षों के कारण जैसा पूर्व में कहा गया है खेतों में तरी रहेगी, आँधी आदि से रक्षा होगी, पत्तों से खाद मिलेगी और ईंधन और लकड़ी प्राप्त होती रहेगी। यदि भूमि भाग रेगिस्तान में हो तो वहाँ ग्रीष्म ऋतु में दिन में गरमी और रात्रि में ठंढक भी होगी पर वर्षा बहुत कम होगी जिससे खेती के विशेष काम की न होगी। जंगलों के काट देने से देश में सूखा और वर्षा दोनों हद्द को पहुँच जाते हैं। वर्षा बड़े वेग से टूट कर होती है और पानी बिना रोक बह जाता है और अनावृष्टि के समय धरती का अंतर पड़ तक सूख जाता है। किसान को जैसे धीरे धीरे और समय पर वर्षा की आवश्यकता होती है वह पूरी नहीं पड़ती और जब आँधी चलती है तो उससे भी खेतों को हानि होती है। यदि पवन गरम होता है तो तरी जाती रहती है, फसल सूख जाती है और झील तालाब में का पानी भी उड़ जाता है। एक विशेष देश भाग की ऋतु पर वर्षा का सब से अधिक प्रभाव पड़ता है और इस कारण खेती पर भी उसका असर पहुंचता है। हिन्दुस्तान में वर्ष में एक निश्चित काल में वर्षा होती है और उस काल को वर्षा ऋतु कहते हैं। वर्षा ऋतु का प्रारम्भ पूरी गरमियों से हो जाता है और इसी कारण इस ऋतु में खेती बहुत होती है। वर्षा ऋतु के पीछे वायु ठंढी हो जाती है और सरदी की ऋतु में रबी की फसल बोई जाती है। मेंह यदि थोड़ा और समय पर बरसता है तो अधिक लाभदायक होता है। यदि एक [illegible]

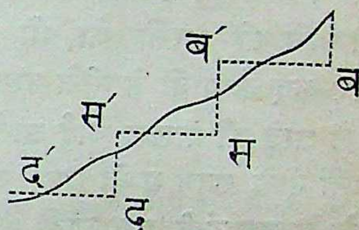
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...में इतना मेंह बरसे कि उस पर एक इंच पानी ...तह जम जाय ते वह पानी अनुमान २७५० मन ...ता है अर्थात् एक घन फुट पनी ३१ सेर के लग- ...भग होता है। यदि एक वर्ष में २५ इंच वर्षा का ...औसत हो ते एक एकड़ में ६८७५० मन पानी का ...गिना माना जाता है जिसमें से ७० प्रति सैकड़ा ...भाफ होकर उड़ जाता है और केवल ३० प्रति ...सैकड़ा धरती में समाता है अर्थात् अन्तर पड़ में ...उतरता है और पौधे के उपयोग में आता है। यदि ...पानी अधिक पड़ी ते केवल २० वा २५ भाग ही ...धरती में भरता है और बाकी वायु में उड़ जाता ...। मेंह के खेती के काम का होने के हेतु इन बातों ...की आवश्यकता होती है। चौमासे के आदि में ...इतनी वर्षा हो कि जिससे खेत में तरी आ जाय ...जिससे किसान खेत को जोत सके और उसके ...बाद रह रह कर थोड़ा थोड़ा पानी बरसता रहे ...जिससे पूरी ऋतु भर फसल बढ़ती रहे। खेती ...के लिए मेंह न बहुत हलका ही होना चाहिए और ...न बहुत ज़ोर का। यदि पानी बहुत थोड़ा थोड़ा ...बरसता है ते धूप की तेज़ी में उड़ जाता है और ...धरती के भीतर उतरने नहीं पाता और यदि एक ...दम टूट कर बरसता है तो उसका अधिक भाग ...बह जाता है और धरती के ऊपर का महीन उप- ...जाऊ भाग बहा ले जाता है और जहाँ होकर ...बहता है वहाँ नालियाँ बन जाती हैं जिससे खेत ...ऊबड़ खाबड़ हो जाता है। इस हेतु यदि मेंह ...थोड़ा थोड़ा और कुछ अंतर से पड़ता है तो वह ...खेती के विशेष लाभ का होता है। फसल में फूल ...आने, दाना पड़ने और काटने के समय मेंह का ...पड़ना अच्छा नहीं होता।

(३) खेत की अवस्थिति के स्थान का भी खेती पर ...असर पड़ता है। खेत के उँचाई पर होने से वर्षा ...का पानी बह जाता है और यदि उस ऊँची धरती ...में ढाल हुई तो जितना पानी बरसता है वह सब ...नीचे की ओर बह जाता है। ढाल यदि तीखी ...या अधिक होगी तो पानी धरती पर नहीं ठहरेगा। पर्वतों की बगल में इसी लिये खेती नहीं हो सकती। ढाल के थोड़ा होने पर खेत को खेती के लिए उपयोगी किया जा सकता है। मि० वेन्सन ने जो रीति इस सम्बन्ध में बताई है उसका इस स्थान पर देना उचित जान पड़ता है। खेती के उपयोगी बनाने के लिये ढाल को काट छाँट कर क्यारियों में एक के ऊपर दूसरी सीढ़ी के आकार में बनाते हैं।

चित्र नंबर ६



चित्र नं० ६ में अ, अ मानों ढाल है जिस पर खेती करना है। जितना वर्षा का पानी बरसता है वह सब धरती पर न रह कर नीचे बह जाता है और बहने के संग धरती में से मिट्टी काटता जाता है जिससे गार पड़ जाते हैं और धरती खेती के काम की नहीं रहती। यदि किसान वा जमींदार ढाल को चित्र में दिखाई हुई रीति से काट कर समतल करता जाय तो जमीन खेती करने के योग्य हो सकती है। सब ढाल को ब ब,' स स,' द द,' आदि सीढ़ियों की सूरत में काट लेते हैं। प्रत्येक टुकड़ा समतल कर लिया जाता है पर इतना ध्यान अवश्य रखते हैं कि इन सीढ़ियों के भीतरी सिरे ब, स, द, आदि नीचे रखते हैं और आगे के ब,' स,' द,' कुछ ऊँचे रखते हैं जिससे वर्षा का पानी आगे को न बह कर पीछे की ओर जाता और खेत की हर एक क्यारी को तरी पहुँचाता है। इस प्रकार ढाल के कुछ भाग को काट दूसरे भाग में मिट्टी की भरती कर क्यारियां एक के ऊपर एक समतल बना लेते हैं जिनमें खेती की जाती है।

यदि खेत नीची भूमि में हो और धरती की ढाल के कारण चारों तरफ का पानी खेत में होकर जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो या तो ऊँचे स्थान से मिट्टी लेकर उस नीचे स्थान को भरकर बराबर कर लेते हैं या जिस ओर पानी का बहाव होता है उधर ढाल के मध्य में एक बंद बांध देते हैं जिस से ढाल पर से बह जानेवाला पानी बन्द से रुक जाता है और पानी के चौमासे में इकट्ठा रहने से धरती के अन्तर पड़ तक तरी उतर जाती है। बन्द में जहाँ तहाँ मोरियां भी रक्खी जाती हैं जिनमें होकर इकट्ठा किया हुआ पानी समय पर बन्द से आगे नीचे की धरती में दिया जाता है। इस रीति से नीचे की धरती को भी सींचा जा सकता है और बन्द के पानी के नीचे उतर जाने वा निकल जाने से जाड़े की फसल बोई जाती है।

यदि धरती नीचे स्थान में हो और उसमें पानी भरा रहता हो तो वह ठंढी पड़ जाती है और खेती के उपयोग की नहीं रहती। पौधे की बाढ़ के लिए तरी, गरमी और हवा की आवश्यकता होती है। पानी भरी हुई धरती में गरमी और वायु नहीं पहुँच सकती। धरती में गरमी और वायु के पहुँचाने के लिए खेत में से पानी का निकाल देना ही मुख्य उपाय है। यह दो प्रकार से हो सकता है। प्रथम खेत में नालियाँ बना कर पानी को नीचे की ओर निकाल दिया जाय। दूसरे बड़े हल से धरती के अन्तर पड़ को तोड़ दिया जाय जिससे पानी विशेष गहरा उतर जाय और ऊपर भरा न रहे।

जिस स्थान पर खेत है यदि उसके समीप ही व्यापार की मण्डी भी हो तो किसान को विशेष लाभ रहता है; क्योंकि वह अपने खेत के माल को तैयार होने पर मण्डी को स्वयं ले जा सकता है और बाजार भाव से बेच कर स्वयं लाभ उठा सकता है और मंडी के समीप ही होने से उसे माल के ढोने आदि की सुगमता रहती है। परन्तु यदि खेत मंडी से दूर हो तो किसान खेत के तैयार माल को सुगमता से वहाँ नहीं ले जा सकता और यदि ले भी जाय तो विशेष खर्च और मेहनत होती है जिससे विशेष लाभ नहीं होता। इसलिए किसान को अपने गाँव के ही व्यापारी के हाथ बेचना पड़ता है और वह बाजार भाव से सस्ता खरीदता है क्योंकि उसे भी तो माल मंडी में ही बेचना पड़ेगा, इसलिए वह अपने रुपए का सूद, ढुलाई, मेहनत का खर्च और अपना मुनाफा सब का पड़ता लगा कर भाव नियत करता है। इस प्रकार किसान घाटे में रहता है।

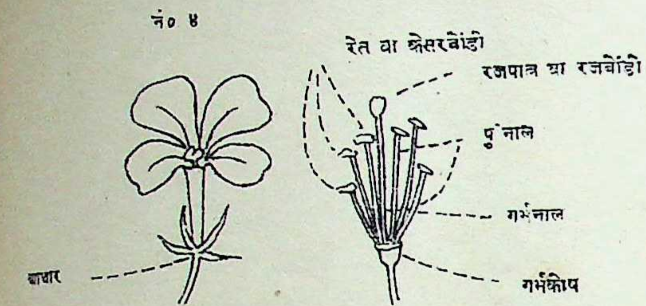
(शेष आगे।)

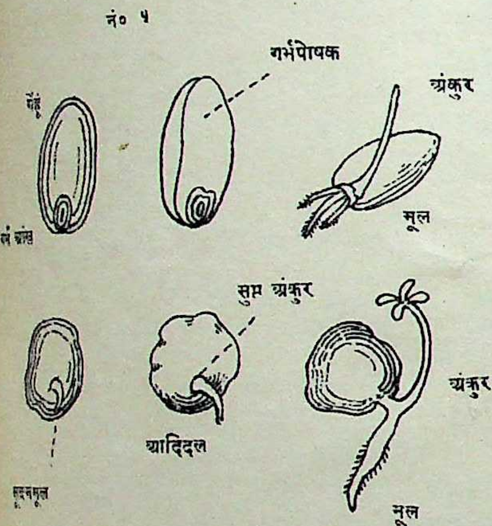
—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

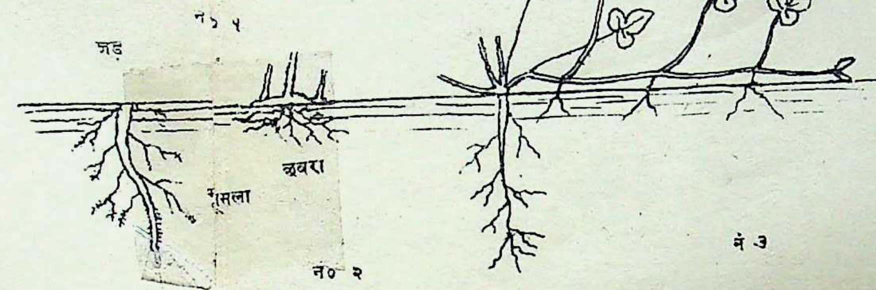
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

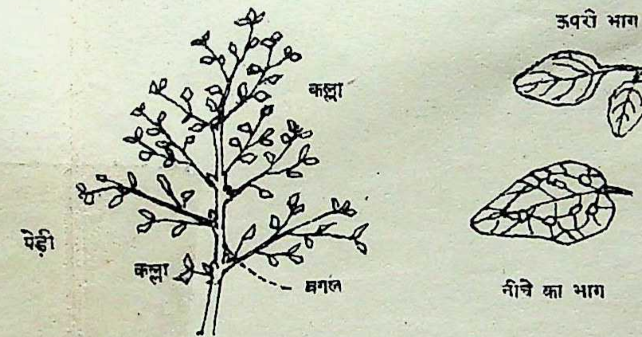
चित्र नं० ४



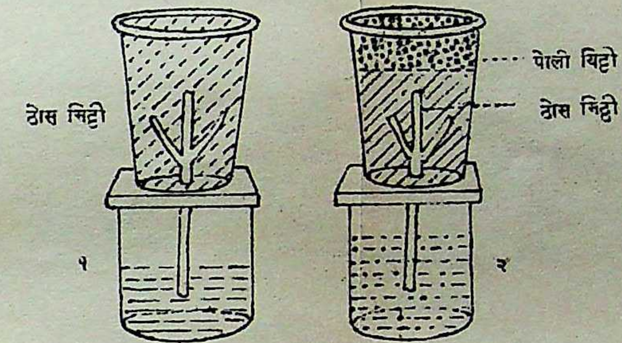


चित्र नं० ३

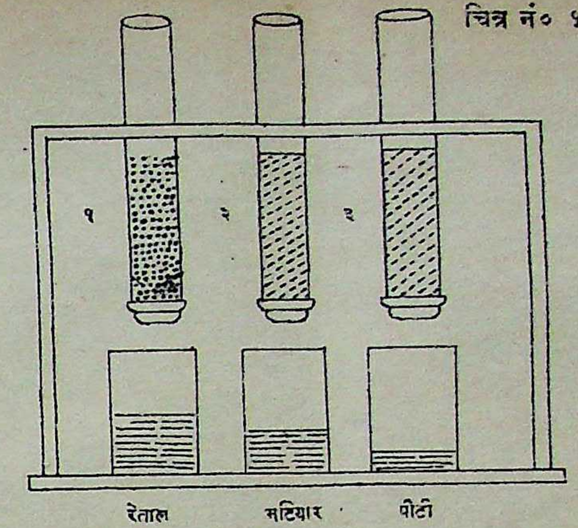




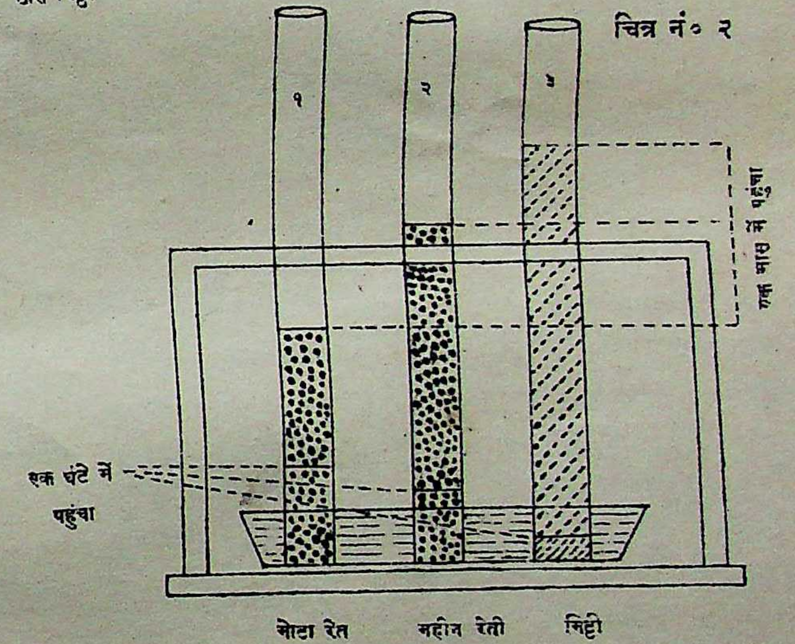
चित्र नं० २ क



चित्र नं० १



चित्र नं० २



PRINTED AT THE "INDIAN PRESS", ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered No. A411

[संख्या ६

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

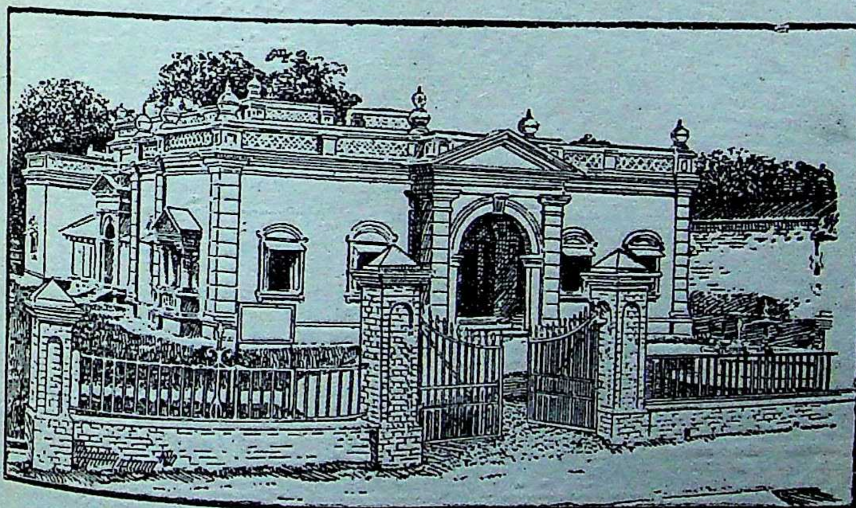
दिसम्बर, १९१४

सम्पादक-रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु बिलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

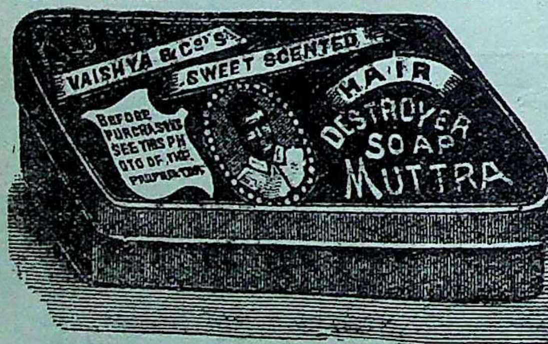
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

वैश्य एण्ड कों. मथुरा

बाल उड़ानेका साबुन

३-४ मिनट में बाल उड़ा कर चमड़ी साफ और कोमल करता है.



खरीदनेसे पहिलेविलायती रंगीन ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केवड़ा, खस, का फी टिकिया ।।)३ टि. का १।≈)

नींबू, कपूर, संतरे का फी टिकिया ।-) आना ३ टिकिया का बक्स ।।।)

जरूरत है एजेण्टोंकी जरूरतहै एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५)रु. सैंकडा कमीशनदेंगे और खर्च माफ

पता:—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी

कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मंगाइये, पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

ग १९ } दिसम्बर १९१४. { संख्या ६

जर्मनी की शिक्षा-प्रणाली।

(३)

उच्च शिक्षा।

(लेखक—श्रीयुत राधामोहन गोकुलजी।)

[पृष्ठ ६६ से आगे।]

यह शिक्षा भी दो प्रकार की है; एक का उद्देश्य है नवयुवक और युवतियों को शिक्षित व्यवसायों के लिए तैयार करना, यथा वकील, चिकित्सक, अध्यापक इत्यादि। और दूसरी ...देश्य है, उन्हें ऐसे विविध कामों के लिए तैयार ... जिन में विशेष वैज्ञानिक जानकारी दरकार ... प्रथम श्रेणी के साधारण विश्व-विद्यालय हैं ...क्षीसियम कहते हैं और दूसरी श्रेणी के विश्व-...ओं को पारिभाषिक विद्वत्परिषद् कहते हैं। इनमें खनिज, कृषि, अरण्य आदि विद्याएं सिखाई जाती हैं।

(क) साधारण विश्वविद्यालय।

जर्मनी के विश्वविद्यालयों में खास जर्मनी के अतिरिक्त स्विटजरलैण्ड, आष्ट्रिया के जर्मन विश्वविद्यालय और डोरपट व जरजेफ (रूस देश गत) के भी जर्मन विश्वविद्यालय शामिल हैं। परन्तु पीछे कहे हुए स्थानों के विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध, शिक्षा और दीक्षा में जर्मनी खास से अन्तर है। जर्मन विश्वविद्यालय भारत की भाँति केवल परीक्षक व सम्मेलक (affiliative) ही नहीं होते। जर्मन शिक्षा-संस्थाएं एक ओर सरकारी संस्थाएं हैं और दूसरी ओर स्वतन्त्र विज्ञ-समवाय भी हैं। इनकी संस्थापिका व पालिका सरकार होती है; पर स्वतन्त्र विद्यापरिषत् (Senate) के साथ मिल कर अलग अलग विद्वन्मण्डली (Faculty) के लिए शासन-सत्र (Laws) बनाती है और विभिन्न सर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी परीक्षाओं के निमित्त नियम निर्धारित करती है। सरकार के अधिकार क्यूरेटर में सन्निविष्ट होते हैं। यह अधिकारी शिक्षामात्य के नीचे होता है। लेकिन सब अन्तरंग कामों में विश्वविद्यालय ही प्रधान अधिकार रखता है। विश्वविद्यालय प्रति वर्ष अपना शासक (Rector) और डीनो (Deans) चुनता है। इनके साथ साधारण अध्यापकों (Professors in Ordinary) को मिलाकर एक आत्म-शासक समुदाय, सीनेट अर्थात् विश्वविद्यापरिषत् बनती है। इस तरह जहाँ अध्यापक सरकारी सेवक होता है वहाँ स्वतन्त्र सावन्त भी होता है। कारण यह है कि इन विश्वविद्यालयों का उद्देश्य केवल छात्रों को विज्ञ-व्यवसायों के लिए तैय्यार करना मात्र नहीं है, प्रत्युत कलाओं व विज्ञानों को समुन्नत व प्रतिपालित करनेवाले योग्य पुरुषों को तैय्यार करना भी है। यह लोग स्वतन्त्र वैज्ञानिक अन्वेषणों के कार्य्यालय स्वरूप होते हैं। इस प्रकार के सम्बन्ध के कारण इस में सन्देह नहीं कि कभी कभी विश्वविद्यालय व राज्य में वैमत्य भी खड़ा हो जाता है। परन्तु सरकार को 'विज्ञान और उसकी शिक्षा स्वतन्त्र है' वाले सिद्धान्त के आगे सिर झुकाना ही पड़ता है। एक बड़े भारी जर्मन-शिक्षा-सिद्धान्तज्ञ (फ़्रेडरिक पाल्सेन) का कथन है कि 'सरकार का प्रजा पर कितना विश्वास है, इस बात का ठीक पता विश्वविद्यालयों की स्वतन्त्रता से लग सकता है'। इसमें सन्देह नहीं कि फ़्रेडरिक का कथन अक्षरशः निर्विवाद सत्य है।

साधारणतः जर्मनी में चार पीठ (फ़ेकलटी) हैं, अध्यात्म, राजनियम (Law) आयुर्वेद और दर्शन; इनमें भी दर्शन पीठ सर्वप्रधान और बहुत बड़ी है। दर्शन पीठ के दो विभाग हैं, भाषातत्वेतिहासिक और विज्ञान गणित विषयक (Philologic-historical and Scientific-mathematical) इन्हें डाकृर अर्थात् महामहोपाध्याय की उपाधि देने के अधिकार हैं।

शिक्षक भी दो प्रकार के होते हैं, अध्यापक (Professors) और असरकारी शिक्षक। हम ऊपर कह चुके कि प्रोफ़ेसरों के अधिकार क्या हैं। इन प्राइवेट डोसेंट अर्थात् असरकारी शिक्षकों को वह अधिकार नहीं है। ये अपनी फ़ीस लेकर पढ़ाते हैं, किन्तु विद्यालय के संचालन में इनका कोई हाथ नहीं होता; न इनके पढ़ाने का नियत आसन होता है न कोई वेतन। ये प्रायः युवा विद्वान् होते हैं, जिन्हें किसी वक्तृता या लेख पर मन्य-पंडित वा साक्षर पंडित की उपाधि मिलती है। पुराने होने पर इन्हें प्रोफ़ेसर की उपाधि दी जाती है। प्रोफ़ेसर वा अध्यापक की उपाधि जर्मनी में केवल राजा की ओर से ही मिल सकती है। प्रोफ़ेसर भी दो श्रेणी के होते हैं एक साधारण दूसरे असाधारण। साधारण प्रोफ़ेसर ही विश्वविद्यालय के स्वराज्याधिकार में भाग पाने के अधिकारी होते हैं। असाधारणों को सदा नियत वेतन नहीं मिलता, न इनके आसन (Chair) ही साधारण अध्यापकों की भांति नियत होते हैं। साधारण अध्यापकों में भी कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें कोई (Honorarium) निर्वाहव्यय (एक भांति का वेतन) नहीं मिलता। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के नवीन भाषाओं और कलाओं (नकशा, बाजा, नटी, अश्वारोहण, पटेबाजी और नृत्य आदि) के भी अध्यापक होते हैं। इन्हें विश्वविद्यालय का व्याख्याता कहा जाता है। ये बहुधा विदेशी होते हैं। प्रति वर्ष इस प्रकार के अध्यापकों का आदान-प्रदान अदल-बदल अमेरिका के संयुक्त राज्य व जर्मनी में होता रहता है। अमेरिका के युक्त राज्यों के प्रसिद्ध अध्या[पक] एक प्रायः जर्मनी में व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रि[त] हुआ करते हैं और इसी निमित्त जर्मन अध्याप[क] भी अमेरिका जाया करते हैं।

इस प्रकार के सार्वजनिक और विशिष्ट दो प्रकार के व्याख्यान होते हैं। सार्वजनिक ... सब को अशुल्क सुनने को मिलते हैं, ... विशिष्ट व्याख्यानों में प्रति घंटा ५ मार्क (अनुमान ४) रु०) शुल्क श्रोताओं को समस्त बैठक के लि[ए] (For the whole session) देना पड़ता है। इस तरह पर जो विद्यार्थी सप्ताह में ५ विशिष्ट व्याख्या[न] ... सुनता है वह समस्त बैठक तक—चाहे जितने दि[न] ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठक हो (प्रायः ३ मास की एक बैठक होती प्रति सप्ताह ५ व्याख्यान सुन सकता है । किन्तु २५ मार्क (२०)) देना पड़ता है । सार्वजनिक व्याख्यानों का नाम यद्यपि सार्वजनिक होता है किन्तु में बाहरी आदमी नहीं आने पाते; अन्तर केवल शुल्क देने वा न देने का ही होता है ; सुतरां हम सार्वजनिक व्याख्यान को अशुल्क और विशिष्ट सशुल्क व्याख्यान कहें तो बहुत ठीक होगा । व्यावहारिक शिक्षा के निमित्त अनेक संस्थाएँ, श्रमालय और अभ्यासालय होते हैं जिनमें नई बातों की खोज और आविष्कार का काम हुआ करता है । अध्यापकों व विद्यार्थियों के व्यावहारिक श्रमालय पृथक् पृथक् होते हैं । इनके प्रति वर्ष अनेक नए अनुसन्धान व अभिनव अविष्कार हुआ करते हैं । जर्मनी के श्रमालय व अभ्यासालय इंग्लैण्ड और अमेरिका की अपेक्षा बहुत सस्ते हैं, इसी जर्मनी में विज्ञान-वेत्ताओं की संख्या और उन्नति अन्यत्र से अधिक पाई जाती है ।

प्रोफेसरों की जीविका का आधार उनका वेतन और पढ़ाई की फीस है । प्रुशिया में असाधारण अध्यापकों का वेतन मध्यांश में ३२५० मार्क (मार्क = ।।।)) साधारणों का ५५०० मार्क वार्षिक होता है । अर्थात् सब का मध्यांशिक वेतन २७५) मोटी तौर से रु० मासिक कह सकते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ भत्ता निधि-विशेष (Special Fund) में और रहने का खर्च आदि भी मिलता है । इस तरह सब मिला कर मध्यांशिक वेतन ७७०) पड़ जाता है अर्थात् १२००० मार्क वार्षिक । अवसर-प्राप्त अध्यापकों को जीवन भर पूरा वेतन मिलता रहता है और मरने पर उसके घरवालों को निधि-विशेष से खासा एकमुश्त दान मिल जाता है पर ऐसे अध्यापक बहुत कम होते हैं; अतः यह समझना भूल है कि जर्मनी में अध्यापक का व्यवसाय बड़ी आय का है ।

हम कह चुके हैं कि माध्यमिक स्कूल के उत्तीर्ण विश्वविद्यालय में लिए जाते हैं । विदेशी छात्रों को इस बात का प्रमाणपत्र दिखलाना पड़ता है कि उन्होंने अपने देश में जर्मन हाई स्कूल के बराबर शिक्षा पाई है । दार्शनिक-मण्डल के अतिरिक्त और सर्वत्र अमेरिका व इंगलैण्ड के ग्रेजुएट (स्नातक) ले लिए जाते हैं । योग्य बाहरी छात्र भी कतिपय अवस्थाओं में (with exception) दर्शकों या पाहुनों की भाँति विश्व-विद्यालय में ले लिए जाते हैं । स्त्री-पुरुषों के लिए कोई भेद-भाव करनेवाले नियम नहीं हैं अर्थात् अन्यत्र की भाँति यहाँ मरदों में कुत्सित स्वार्थपरता और पक्षपात नहीं है ।

१९०९ में २०४८ महिलाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं; विषयवार संख्या यों थीः—(Theology) धर्म्म २३, राजनियम (Law) ३८, आयुर्वेद ३६०, विविध दर्शन १६२७ । अर्थात् समस्त ५१७०० छात्रों में अनुमान प्रति सौ ४ के लेखे छात्राएँ थीं ।

जर्मन-महाविद्यालयों (Colleges) का जीवन बड़ा ही मनोरञ्जक होता है ; अन्यत्र के देखते तो धरती-आकाश का सा अन्तर है । उच्च शिक्षा के छात्रों की सी स्वाधीनता, सुविधा और योग्यता और कहीं नहीं देखी जाती । जर्मनी में अध्यापक व छात्र पढ़ने व पढ़ाने में स्वतन्त्र हैं, उन्हें उनका कर्तव्य बतलाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती । छात्र चाहे जिस अध्यापक का चाहे जो व्याख्यान सुने उसकी इच्छा व रुचि पर किसी की जबरदस्ती नहीं है; वह चाहे एक ही व्याख्यान का शुल्क दे, उसी को सुने । यह नहीं है कि जो एक विद्या में नैपुण्य प्राप्त करना चाहता है या विषय-विशेष में ही वह निर्बल है तो उसे व्यर्थ और विषयों में भी घसीटा ही जाय । विद्यानुराग जर्मनों की पवित्र बपौती है और इसका वह बड़ा ही सद्व्यवहार करते हैं । फिर ये पुस्तकों के कीड़े ही नहीं होते, खेल-कूद, आनन्द-उमंग का भी पूरा अवसर पाते हैं और बालकों की भाँति खूब उमंगों में रहते हैं । सच भी है, जब कोई आप ही भद्र सदाचारी न बनना चाहेगा तो लठ्ठ कहाँ तक उसे दबा कर रखेगा। इसलिए बालकों को आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही थोड़ी थोड़ी स्वतन्त्रता दे कर उच्च शिक्षा तक पहुँचने पर बिल्कुल स्वाधीन कर देना चाहिए। जर्मनी इसी भाव के अनुसार काम करता है। मेट्रीकुलेशन अर्थात् माध्यमिक शिक्षा समाप्त कर लेने पर छात्र को एक प्रमाण-पत्र (Certificate = Passport) मिलता है कि वह विद्यात्मक नागरिक है। इस पर प्रधान रेकृर व पुलिस के प्रधान दोनों के हस्ताक्षर होते हैं। इसके आधार पर वह अपना प्रोग्राम (programme) आप बनाता है कि किस व्याख्याता के पास पढ़ूँ, कौन सा व्याख्यान सुनूं या क्या करूँ। यदि वह काम करना चाहता है तो उसे काम के सम्बन्ध की सूची दे दी जाती है, वह चाहे जो काम चुने और तदनुसार व्याख्यान सुने वा हाथ पैरों से अभ्यास करे। केवल उसे इतना दरकार होता है कि अपना नाम छात्र-सूची-भुक्त करावे व अध्यापक से अपना परिचय कर ले। अध्यापक सदा सहायता के लिए तैयार ही मिलते हैं जिससे छात्र को कोई अड़चन नहीं होती।

मेट्रीकुलेशन वर्ष में दो बार होता है गरमी में अप्रैल और जाड़े में अकतूबर नियत है। यह परीक्षा विश्वविद्यालय के गर्भागार (Hall = Aula) में दोनों तीनों प्रकार के अध्यापकों और छात्रवर्ग के प्रतिनिधिगण के समक्ष होती है। विश्वविद्यालय का अनुशासन व शासनपद्धति नए छात्रों को दे दी जाती है, रेकृर कुछ शब्दों में छात्रों का स्वागत करता है, एक एक छात्र का उसे परिचय दिलाया जाता है, रेकृर छात्र को एक अधिकार-पत्र देता है और हाथ मिला कर कहता है कि देखो, जो अधिकार तुम्हें मिले उनकी प्रतिष्ठा करना, उनकी प्रतिष्ठा तुम्हारे कल्याण का हेतु होगी। छात्र चाहे जब व जितनी बार विश्वविद्यालय परिवर्त्तन करे कोई रोक टोक बाधा व्यवधान नहीं होता।

इन छात्रों के लिए छात्रालय (Boarding House) नहीं होते, न जर्मनी में साश्रम-विश्वविद्यालय ही हैं। नगर में जहाँ जी चाहे छात्र अपने रहने का प्रबन्ध किसी गृहस्थ के साथ कर ले। जर्मनीवाले साश्रम-विश्वविद्यालयों के विरोधी हैं। वे कहते हैं, बालक के चलनों को स्वतन्त्रता के साथ बिना संसार में मिलते रहने के पूरा व स्वयम्भूत विकाश-प्राप्ति का अवसर नहीं मिलता। जो भाड़ेदार छात्रों को लेना चाहते हैं वे विश्वविद्यालय में सूचना दे रखते हैं, छात्र आते ही वहाँ जाकर इच्छानुसार स्थान ग्रहण कर लेते हैं। यद्यपि छात्र धनी और तुरन्त टके फेंकनेवाले नहीं होते, तो भी उनको सब लोग सम्मान व प्रेम से अपने घर के आदमी की भांति रखते हैं। यही बात बाजार में भी होती है, छात्रों को सर्वत्र जो चीज दरकार होती है उधार मिल जाया करती है। इसी का नाम जातीयता, आत्म विश्वास और नागरिकता है। यदि छात्र न्याय (honest) न हों या जातीयता दोनों पक्षों की रगों में न हो तो यह बात नहीं हो सकती; इस लेखे जर्मन देश का प्रेम, जातीयता व भ्रातृ-भाव भूमण्डल के सब स्थानों से अधिक सराहनीय और अनुकरणीय है।

प्रत्येक विश्वविद्यालय के अनेक दल व स्वतन्त्र योग वा संघ हैं। नए छात्र को वे आमन्त्रित करते हैं और जो दल उसे रुचता है उसी में वह भुक्त हो जाता है। इन दलों के अंग शिक्षा-बैठक के आरम्भ में स्टेशनों आदि पर जा कर नवागन्तुक से मिलते हैं और उसे साथ लाते हैं। इससे नवागत को एकाकिता नहीं व्यापती, वह आते ही मित्रमण्डल में आनन्द से रहने लगता है। इनमें से प्रत्येक दल की पृथक् कञ्चुक (Uniform) वा वर्दी होती है। इनमें प्रधानों व मन्त्री आदि पदाधिकारियों के परिच्छद बड़े ही सुहावने व तड़क भड़क के होते हैं, रंगों की चमक जवानी की सज धज टपकी पड़ती है; त्यौहारों में इन दलों व सभाओं को देखते ही बनता है। इनमें द्वन्द्व युद्ध आदि बातें प्रधान हुआ करती हैं। गम्भीर, निर्व्याज, यथार्थ और दरबारी सज धज से जब इनके उत्सव होते हैं तो उनमें प्राचीन काल की शोभा व सुन्दरता मूर्त्तिमान दिखाई देती है। जर्मनी के इन दलों में तलवार से द्वन्द्वयुद्ध हुआ ही करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यों के बदन पर शत्रु के खड्ग के जो क्षत-दिखलाई देते हैं वे वहाँ की स्त्रियों के मोहन-मन्त्र का काम करते हैं। एक ही के छात्र परस्पर प्राण-पन से सहायता ते हैं। द्वन्द्व-युद्ध, कैसर की वर्ष गाँठ आदि वों के सिवा दो दल परस्पर नहीं मिलते। यह जिन्हें, 'कामर्स' कहते हैं, छात्रों के सार्वजनिक न्ति व प्रेम के दिवस होते हैं।

प्रत्येक शिक्षा-बैठक के आरम्भ में प्रत्येक दल मजक्षपोकाण्डी (Magister pocundi) ता है। यह नवागत सदस्यों को पटेबाजी खेल सिखलाता है और अपने दल के हिमान्वित इतिहास, रीति, नीति आदि का बनाता है। साथ ही अन्य दलों व की भी इस प्रकार की बातों से जान-री कराता है। छः मास के पीछे इस प्रकार से ाए हुए नवागतों की इन्हीं वीर करतबों में क्षा होती है। तत्पश्चात् वह ईश्वर को साक्षी दे कर दल का वृद्ध सदस्य (Brush) बनता है। वृद्ध आजीवन सदस्य होते हैं और नवागतों को पथ न करते हैं। प्रत्येक शनिवार को दल के सदस्य अपने निप (गोष्ठिभवन Kneip) में ठीक प्रातः सम्मिलित होते हैं। प्रत्येक निप में लम्बी मेज होती है और दल के दो प्रधान sidents) उसके एक एक कोने पर दोनों ओर े हैं। प्रत्येक के हाथ में एक लम्बा दुधारा खाँडा है; अन्य सदस्य इनकी बगलों में बैठते हैं। क सदस्य के सामने एक बड़ा ढकनेदार प्याला शराब का धरा होता है और एक भजनावली mers Book) होती है जिसमें छात्रों के चुने गीतों का संग्रह होता है। ठीक सवा आठ बजे ति-द्वय अपनी तलवार से मेज को खड़काते हैं हते हैं कि सभा खुल गई (प्रारम्भ हुई) और नावली में से एक गीत गाने के लिए चुनते हैं। विश्वविद्यालय, अध्यापकों, नगर, पितृभूमि, दल की स्वतन्त्रता, महिलाओं और मद्य आदि की प्रशंसा में खूब गीत पर गीत गाए जाते हैं। यह व्यवहार रात तक जारी रहता है। कभी कभी छोटे व्याख्यान भी उक्त विषयों पर होते हैं। यदि कहीं कोई विश्वविद्यालय का अध्यापक मेहमान हुआ तो उसकी प्रतिष्ठा में नमस्कार की रीति मनाई जाती है। प्रत्येक सदस्य एक नया प्याला लेता है और सभापतियों की आज्ञा पाते ही सब खड़े होकर एक साथ प्याले की शराब तुरन्त गटक जाते हैं और खाली गिलास सब एक साथ मेज पर पटकते हैं जिससे खासा शैतानी शोर हो उठता है। इसी का नाम गरज की सलाम या 'थंडरिं सलामाण्डर' है। इसी प्रकार से हर एक मेहमान की प्रतिष्ठा (मैं तो दुर्गति कहूँगा) होती है। ११ बजे रात के पहले कोई सदस्य क्लब से जा नहीं सकता। सब काम सैनिक प्रथा के से हैं, पर जो नियम भंग करता है उसको जो दण्ड होता है वह भी सुनिए। नियम भंग करनेवाले को सभापति 'बियर-मद्य की अप्रतिष्ठा' बतलाता है और कुछ बियर-मिनिट तक वह बियर-पान नहीं कर सकता। एक बियर-मिनिट पांच मिनिटों का होता है। इसके उपरान्त कुछ रीति रसम कर के एक सदस्य उसको 'बियर-धार्मिक' कह कर समाप्त करता है। अपराधी को जितनी देर मद्य पीने का अधिकार नहीं रहता उतनी देर उसे अपने कोट का कालर उलटा कर बैठे रहना पड़ता है। कभी कभी सभापति उस अपराधी को मद्य का भरा प्याला एक घूँट में ही उड़ा जाने का दण्ड देते हैं। कभी कभी मामला तै करने को उन्हीं की अदालत बैठती है। इन अदालतों के नियम समस्त जर्मन विश्वविद्यालयों में एक समान हैं।

विज्ञान और कलादि विषयों की उन्नति के लिए भी जर्मनी के विद्यार्थियों ने कई संस्थाएं स्थापित की हैं। अपराधी का एक प्रधान उद्देश्य यह है कि, मजूरों में भी विज्ञान की चर्चा का आदर बढ़े। इसकी पूर्ति के लिए विद्यार्थी विश्वविद्यालय में अनेकों विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। यहूदियों का इन संस्थाओं में गुज़र नहीं है, उनका अलग ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्ध है जो बहुत कुछ इनसे मिलता जुलता है।

कभी कभी विद्यार्थी चपलतावश ऐसे काम कर बैठते हैं जो कि अन्यान्य देशों में जनपद-अहितकारी कहलाते हैं। परन्तु जर्मनी के मनुष्य तथा पुलिस-वाले इस पर ध्यान नहीं देते। यहां पर विद्यार्थी ग्रैार अध्यापकों की बड़ी इज्ज़त है। दरिद्र से दरिद्र मजूर भी अपने विश्वविद्यालय को संसार में सर्व्व-श्रेष्ठ मानता है ग्रैार वहाँ के अध्यापकों को जगत् में अद्वितीय समझता है। वहाँ के विद्यार्थी रास्ते में यही गाते हैं कि "हमारा देश जर्मनी संसार में शिरोमणि है।" विद्यार्थियों का न्याय विश्वविद्यालय स्वयं करता है। हर एक विश्वविद्यालय की अधीनता में एक जेल-खाना रहता है। अपराध करने पर विद्यार्थी उसी जेल में भेजा जाता है। जब कोई विद्यार्थी उस जेल में भेजा जाता है तो उसके साथी आनन्द से फूल जाते हैं ग्रैार वे उसके लिए नाना प्रकार की शराब लाते हैं ग्रैार वह विद्यार्थी को कई एक घण्टों की जेल अत्यन्त आनन्ददायिनी बन जाती है।

जेल में भेजा हुआ विद्यार्थी जेल की दीवारों पर नाना प्रकार की व्यङ्गपूर्ण तसवीरें खींचना पसन्द करता है। छोटे छोटे शहरों में यह नियम है कि जब अपराधी विद्यार्थी उस जेल के बाहर आता है तब साथी लोग खुशी मानते हैं।

अपनी तरफ से सिनेट में प्रतिनिधि भेजने के लिए सारे विद्यार्थी मिल कर एक कमेटी कायम करते हैं। इसके साथ एक फण्ड भी रहता है जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी चन्दा देता है। इसी कमेटी में विश्वविद्यालय, उसके इन्स्टिट्यूशनस (संस्थाएं) ग्रैार विद्यार्थी समाज से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नों पर विचार किया जाया है। जरूरी विषयों में सिनेट इस कमेटी से सलाह पूछती है। कोई शिक्षक किस प्रकार पढ़ाता है, लड़कों से अध्यापक का कैसा सम्बन्ध है ग्रैार अध्यापक का चालचलन कैसा है इत्यादि विषय कमेटी में पेश किए जाते हैं, उन पर विचार होता है ग्रैार आवश्यकीय बोध होने से वे सिनेट में भेज दिए जाते हैं। इस प्रकार से विद्यार्थी विश्वविद्यालय के संचालन का बहुत कुछ अधिकार रखते हैं। जर्मनी में आन्दोलन जारी है कि रेक्टर ग्रैार सिनेट की शक्ति ग्रैार भी सीमाबद्ध कर दी जाय।

जर्मनी में नियम है कि प्रत्येक विद्यार्थी की बीमारी ग्रैार दुर्घटना से प्राणरक्षा के लिए उसका जीवन बीमा कराया जाता है। जर्मनी की यह प्रथा सबसे निराली है। वहां पर अनेक बाधाविघ्न रहते हुए भी मजूरों की दशा ग्रैार देशों से अच्छी है। प्रत्येक विद्यार्थी को साल भर में कुछ बीमा कराने की फीस देनी पड़ती है वह ३ शिलिङ्ग प्रति सेशन से अधिक नहीं होती। इसके बदले में उसको डाक्टरी इलाज, दवा ग्रैार पथ्य मुफ्त में मिलती हैं।

इन सभा सोसाइटियों में विद्यार्थी को सांसारिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक स्थान में परस्पर सहायता, देशभक्ति ग्रैार वीरता के भाव सिखाए जाते हैं ग्रैार संगीत विद्या ग्रैार ललित कलाओं का प्रेम बढ़ता है। विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर जर्मन विद्यार्थी नवीन उत्साह, नई शक्ति ग्रैार स्फूर्ति के साथ कार्य्यक्षेत्र में उतरता है। भारत के अधिकांश विद्यार्थियों की भाँति वह अस्थिचर्म्मसार मनुष्य नहीं बन जाता। भारत में पढ़ाई समाप्त करने के बाद शरीर में कुछ भी दम बाकी नहीं रहता ग्रैार अत्यधिक पठन ग्रैार विकट परीक्षाओं के कारण विद्यार्थी भविष्य जीवन में कार्य्य सिद्धि के लायक नहीं रहता। अधिकांश स्थानों में वह जीवन संग्राम करने के अयोग्य हो जाता है। दूसरा लाभ यह होता है कि जर्मन विद्यार्थी सामयिक राजनैतिक कार्य्यों में अपना बहुमूल्य समय नष्ट नहीं करता। जर्मनी के प्रसिद्ध पुरुष एक समय ऐसे ही विद्यार्थी थे।

व्यायाम विद्या (Gymnasium) में पारदर्शिता लाभ करने पर ही विद्यार्थी की विश्वविद्यालय की उन्नति अनेकांश में निर्भर करती है। जर्मनी में विद्यार्थी को सर्व्वाङ्गपूर्ण शिक्षा प्राप्त होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यत्र की भाँति वहाँ संशयपूर्ण शिक्षा नहीं दी जाती। विश्वविद्यालय में विद्यार्थी किसी एक खास विषय में पण्डित बनता है। परन्तु राजनीतिक शिक्षा में जर्मन विद्यार्थी पारङ्गत नहीं होता।

जर्मनी में शिक्षक और विद्यार्थी का बर्ताव सन्तोष प्रशंसनीय है। अन्यत्र शिक्षक और विद्यार्थी में जान पहिचान तक नहीं रहती है। परन्तु वहाँ पर गुरु शिष्य का सम्बन्ध शिक्षाप्रद है। गुरु शिष्य के बन्धु और सहचर रहते हैं। प्रायः शिक्षक को विद्यार्थियों के क्लबों में निमन्त्रण दिया जाता है। वहाँ पर गुरु और शिष्य आपस में खूब आनन्द में समय बिताते हैं। जब आवश्यकता आ पड़े विद्यार्थी अपने शिक्षकों की सहायता ले सकता है। शिक्षक सदा ही अपने शिष्यों को परामर्श देता रहता है।

जर्मनी में २१ विश्वविद्यालय हैं। सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय हिडेलबर्ग में है। यह सन् १३८५ में स्थापित हुआ था। सब से बड़ा विश्वविद्यालय बर्लिन राजधानी में है। यह १८०९ ई० में स्थापित हुआ था। सिर्फ प्रशिया के विश्वविद्यालयों में वार्षिक ३० करोड़ मार्क खर्च किए जाते हैं। सरकार सैंकड़े पीछे ७५ भाग खर्च उठाती है। इसके सिवा १० लीसियम (Lyceums) भी हैं। इनमें दार्शनिक और धार्मिक शिक्षा दी जाती है। बवेरिया के समवर्ग लीसियम सब से प्रसिद्ध है। विश्वविद्यालय में दो तरह की परीक्षाएं ली जाती हैं। एक सरकारी परीक्षा (State Examination) और दूसरी डाक्टरी उपाधि के लिए परीक्षा। यह परीक्षा लिखित और मौखिक होती है। इन परीक्षाओं में विद्यार्थी के प्रकृत ज्ञान का पता लगता है। अन्यत्र विचित्र प्रथा है। प्रायः असम्पूर्ण और अधूरी शिक्षा दी जाती है। परीक्षा असंगत, कठिन और संशययुक्त होती है। वहाँ प्रश्न इस लिए नहीं दिए जाते कि, विद्यार्थी क्या जानता बल्कि इसलिए कि विद्यार्थी क्या नहीं जानता। यदि किसी कारणवश विद्यार्थी परीक्षा के प्रश्नों का यथोचित उत्तर न लिख सके तो फेल (अनुत्तीर्ण) हो जाता है। यह विचारा नहीं जाता कि, विद्यार्थी कालेज में कैसे पढ़ता था। विद्यार्थी अत्यधिक पढ़ने और चिन्ता के कारण संदिग्ध चित्त से परीक्षा मन्दिर में प्रवेश करता है। शान्ति के समय वही लड़का बहुत कुछ लिख सकता था। इस प्रकार लड़कों की मानसिक शक्तियों का विकाश नहीं होने पाता और विद्यार्थी को बड़ी हानि पहुँचती है। शिक्षकों की सम्मति कोई नहीं पूछता। विश्वविद्यालय मनमानी करता है। इस कारण कभी कभी एक बार फेल होने से सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है। बड़े बड़े विद्वानों की सम्मति है कि इस प्रकार की परीक्षा-प्रणाली सामाजिक और राजनैतिक बुराइयों से भी अधिक हानि-कारक है। जर्मनी में जो शिक्षक हैं वे ही परीक्षक हैं। वे अपने विद्यार्थियों की शक्ति भली भाँति जानते हैं। यदि कोई विद्यार्थी एक विषय में फेल हो जाता है, तो उसको फिर से समस्त विषयों में परीक्षा नहीं देनी पड़ती। छः महीनों के बाद उसी विषय में उसकी परीक्षा ली जाती है जिसमें वह फेल हो गया था। यदि चाहे तो वह आगे के लिए भी साथ साथ पढ़ सकता है। व्यावहारिक ज्ञान की जाँच कुछ घन्टों में नहीं की जाती परन्तु उसको (Research work) खोज करने के लिए काम दिया जाता है। वह उसको समयानुसार पूरा कर सकता है। प्रत्येक शिक्षक, लायब्रेरी में जो काम होता है, उसकी दैनिक रिपोर्ट रखता है। परीक्षा में विद्यार्थी के लिए हुए काम के फलाफल और उस पर शिक्षकों की सम्मति अत्यन्त सहायता पहुँचाती है इससे उसके व्यावहारिक ज्ञान और मौलिक शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

परीक्षा के बाद किसी एक या दो विश्वविद्यालयों में ३ वर्ष तक अध्ययन करने से दर्शन-शास्त्र के डाक्टर की पदवी मिलती है। उसमें स्वाधीन और मौलिक शक्ति का परिचय देना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी और अन्यान्य पाश्चात्य देशों में खास किसी विषय में पारङ्गत होने की प्रथा है। यह प्रथा आधुनिक है। प्राचीन काल में विद्या-शिक्षा का भार पादरियों के हाथ में था, इसलिए केवल दर्शन-शास्त्र का ज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान समझा जाता था। मानव-ज्ञान नाना शाखाओं में विभक्त होकर पृथक् पृथक् विज्ञान नहीं लिखे गए थे। पदार्थ-विद्या-विज्ञान बहुत ही आधुनिक है। विज्ञान का भी क्रमविकाश हो रहा है।

पहले एक मनुष्य नाना विद्याओं में कुछ कुछ शिक्षा लाभ कर लेता था क्योंकि उस समय के विज्ञान की सीमा विस्तृत नहीं हुई थी। उस समय के विद्या-धुरन्धरों में से वेपलम, निउटन और लिब-निज के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं।

परन्तु अब समय दूसरा आ गया है। नए नए वैज्ञानिक विषयों का पता लग रहा है। विद्या का प्रचार बढ़ गया है। मनुष्यों के ज्ञान की सीमा वृद्धि को प्राप्त हो रही है। ज्ञान के विषय अधिक होने से मनुष्य प्रत्येक विषय में पारङ्गत नहीं हो सकता। इसलिए यही मंगलकर है कि किसी खास विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त किया जाय।

जर्मनी में रासायनिक उन्नति अत्याश्चर्य्य-जनक हुई है। इसका कारण यही है कि, वहां पर विषयों में विशेषज्ञ होने की विशेष चेष्टा की जाती है। चिकित्सा-विज्ञान में जर्मनी ने संसार भर से अधिक उन्नति की है।

अब थोड़ी देर के लिए जर्मनी के विश्वविद्यालयों के इतिहास पर विचार करना चाहिए। सर्व-प्रथम १३४८ ई० में प्रेग में विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था। यही मध्य यूरोप का सर्व-प्राचीन विश्वविद्यालय है। सन् १४१५ ई० में लेपजिक में एक विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। १३६५ ई० में वियना में, १३८६ में हीडेलबर्ग में, १३८८ में कोलोन में, १३९२ में एटफर्ट में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। मध्ययुग के विश्व-विद्यालयों में शिक्षक और छात्र एकत्रित होते थे। शिक्षकों के मुख से छात्रगण वक्तृता सुन लेते और पीछे घर लौट जाते थे। भारत के वर्तमान विश्व-विद्यालय इसी श्रेणी के हैं। इन विश्वविद्यालयों में न्याय के सिद्धान्त और दर्शन के गहन विषयों पर वादानुवाद होता रहता था। धर्म्म, कानून, ओषधि और दर्शन इन चार विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सर्व प्रथम दर्शन शास्त्र पढ़ाया जाता था। उस अन्धकारमय समय में भी जर्मनी का स्थान विज्ञान में सर्व्वोपरि था। बारूद, छपाई और नाविक-विद्या का आविष्कार सर्वप्रथम जर्मनी में हुआ था। बारूद के आविष्कार से (Feudal System) का अधःपतन हुआ। कारण कि साधारण से साधारण मनुष्य भी तोप और बन्दूक की सहायता से योद्धा का सामना करने लग गए। जोहानेस मूलर साहब ने गणित और ज्योतिष विद्या में आश्चर्य्यजनक उन्नति की। सर्व्व-प्रथम वेधशाला (Observatory) नूरेनबर्ग में स्थापित की गई। ज्योतिष विद्या के उपकरण भी तैयार होने लग गए। विश्वविद्यालयों की संख्या धीरे धीरे बढ़ने लगी। उस समय कोपर-निकस ऐसे महापुरुष ने जन्म ग्रहण किया। (Re-formation) परिवर्तन का युग जर्मनी से आरम्भ हुआ जिस कारण यूरोप में जर्मनी सब विद्याओं में श्रेष्ठ समझा जाने लगा। महात्मा लूथर ने अत्याश्चर्य का परिवर्तन कर डाला। उसी समय वर्तमान जर्मन-साहित्य के बीज बोए गए थे।

कौशल विश्वविद्यालय।

(Technical Universities)

जर्मनी के कला-कौशल-भवन संसार भर में सर्वोच्च हैं। आज कल तो यह नवीन सुधारों के साथ विश्वविद्यालय के रूप में परिणित हो गए हैं। इनका प्रबन्ध अन्य विश्वविद्यालयों का सा ही है। इनमें नवीन खोजें होती हैं, नित्य नए आविष्कार किए जाते हैं। औद्योगिक शिक्षा भी कला-कौशल के साथ साथ जर्मनी में ज़ोर के साथ बढ़ी व बढ़ती जा रही है। आजकल संसार में कोई ऐसी शिक्षा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बड़े बड़े विश्वविद्यालय जर्मनी में प्रस्तुत हैं।

सन् १९०० में कला-कौशल-भवनों को भी पूरी स्वतन्त्रता मिली और वे भी डाकृर की डिगरी प्रदान करने लगे। ये डिगरियाँ परीक्षा व प्रतिष्ठा दोनों तरह से दी जाती हैं। सब विश्वविद्यालयों में एक साधारण-शिक्षा-विभाग भी है; उसमें परीक्षा नहीं होती। अन्य विभागों के विद्यार्थियों को उसमें व्याख्यान सुनने का स्थान मिलता है और उस विषय का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता है जिस विषय का कि कोई साधारण विभाग होता है। इस साधारण विभाग में प्रायः निम्न विषय सिखाए जाते हैं:—

हाथ का काम, चित्र कारी, जर्मनसाहित्य, फरासीसी व अंगरेजी, साहित्य, इतिहास, वणिज-विज्ञान, स्वास्थ्य व सफाई, कला व कला-इतिहास, धर्म, न्याय व शासन-विज्ञान, समाजनीति, राजनीति, अर्थशास्त्र, राष्ट्रीय सम्पत्ति-विज्ञान आदि।

यद्यपि जर्मनी सभी विद्याओं में संसार से आज बढ़ा चढ़ा है किन्तु दर्शन, धातुविद्या व रसायनशास्त्र में उसका अधिकार बड़ा ही आश्चर्यजनक है। उस की विद्या सम्बन्धिनी सोसाइटी, चित्रशागार (म्यूजियम) पुस्तकालय आदि ऐसे पूर्ण हैं कि संसार में शायद ही अन्य देश की कोई ऐसी होगी जो उसकी समता कर सके।

अब हम जर्मनी के मासिक, साप्ताहिक व दैनिक सम्वादपत्रों का कथन करके इस लेख को समाप्त करते हैं। जर्मनी ही छापे की कला की जननी मातृभूमि है। वहाँ के लोग अमेरिका की भाँति सम्वादपत्रों के पढ़ने के बड़े प्रेमी हैं। अनुमान ४००० सम्वादपत्र देश में निकलते हैं। पहला सम्वादपत्र जर्मनी में १५०५ में निकला था। वहाँ के सम्वादपत्रों की गठन बड़ी विचित्र होती है। सभी सम्वादपत्रों में एक न एक सामाजिक उपन्यास होता है। साहित्य, समाज, कला-कौशल विज्ञान-सम्बन्धी लेख भी जरूर ही हुआ करते हैं। वहाँ के मासिक व त्रैमासिकों की समता संसार भर में कहीं नहीं देखी जाती।

कृषि-विद्या।

(लेखक—श्रीयुक्त पं० गंगाशंकर जी पंचोली।)

[गतांक से आगे।]

(६)

खेत की जोताई।



किसान का मुख्य उद्देश्य खेत से अच्छी फसल लेना है। खेत में फसल उस समय अच्छी प्राप्त हो सकती है जब पौधों की जड़ों को धरती में से खुराक मिलती रहे। जड़ों को उस समय खुराक ठीक ठीक मिलती है जब खुराक के तत्त्व ऐसी अवस्था में हों कि वे पानी में घुल कर जड़ों के तन्तुओं द्वारा चूसे जा सकें। तत्वों के पौधों के काम में आने के लिए धरती का बहुत महीन होना जरूरी है क्योंकि उसी समय पानी और वायु उसके भीतर जा कर उनका पृथक्करण करते हैं। धरती के कणों को तोड़ कर महीन करना ही जोत है और कमाई शब्द में हल चलाना, खोदना, हेंगा देना, समार फेरना आदि काम जिनसे खेत की मिट्टी टूटे, महीन हो और समतल बने, सम्मिलित हैं। खेत को निराना अर्थात् घास पात उखाड़ कर साफ करना धरती की सफाई करना है। अच्छी कमाई और सफाई से ही धरती बीज के काम की होती है। जुदा जुदा प्रकार के पौधों के बीज उगने के लिए जुदा जुदा प्रकार की कमाई हुई धरती चाहिए। किसी को बहुत महीन मिट्टी चाहिए और कोई थोड़ी मोटी मिट्टी में ही उग कर वृद्धि पा जाते हैं। परन्तु सब के लिए धरती में तरी रहना और घास-पात का न रहना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेत की धरती को नीचे तक महीन, साफ और तर बनाना उसकी कमाई करना कहा जाता है। धरती के महीन मुलायम और तर होने से जड़ें गहरी जाती हैं जिसके कारण वे पौधे को पूरी पूरी खुराक पहुँचा देती हैं और पौधा भी जड़ पकड़ जाता है अर्थात् दृढ़ता से धरती को पकड़ लेता है। धरती के महीन होने से पानी और वायु भी भीतर जा सकते हैं और पौधे के आहार के तत्वों का पृथक्करण कर जड़ों को आहार पहुँचाते हैं। यह सब काम वायु के सेन्द्रिय-तत्व और वर्षा वा पानी आदि स्वभाव से ही करते रहते हैं। परन्तु फसल काट लेने के पश्चात् सरदी की ऋतु के आरम्भ में यदि किसान खेत को हल चला कर जोत दे तो यह काम और भी सुगमता से हो जाता है। सरदी गरमी के क्रम से बँधी हुई मिट्टी बिखर जाती है और महीन हो जाती है। वर्षा होने पर पानी नीचे तक उतर जाता है। वसन्त ऋतु के अन्त में धरती के जुत जाने से सूर्य की गरमी गहराई तक पहुँचती है और धरती को सुखा देती है जिससे घास-पात जो मौजूद होते हैं वे सूख कर मर जाते हैं और खेत साफ हो जाता है।*

धरती को नीचे तक तोड़ने और मिट्टी को उलट देने का काम हल चलाने से हो सकता है। इस देश के पुरानी चाल के हल केवल तीन चार इंच गहरी खुदाई करते हैं और इतनी ही गहरी मिट्टी काट देते हैं; पर उसको उलटते नहीं क्योंकि उनकी फाल ∧ इस आकृति की होती है और सीता भाग चपटा होता है जिसके कारण धरती में जो कूँड बनती है वह भीतर को नोकदार होती है और सीता के चपटे होने के कारण नीचे की मिट्टी ऊपर और ऊपर की नीचे नहीं होती। जो मिट्टी कटती है वह कूँड के इधर उधर रहती है और इस कारण दो कूँडों के बीच में धरती ऐसी छूट जाती है जो कई दफे खेत को बिना आड़े तिरछे जोते नहीं टूटती। सुधरा हुआ हल जो आजकल धरती की गहरी जोत और मिट्टी के पलट देने में काम आता है मिट्टी पलटनेवाला हल कहा जाता है। इस सुधरे हल से पाँच इंच तक की गहराई की मिट्टी उखड़ कर ऊपर आ जाती है और कूंड में की मिट्टी महीन और मुलायम हो जाती है।

चित्र नं० ७ में दोनों हलों के चित्र दिए हुए हैं। सुधरे हल कई प्रकार के होते हैं; उनमें से दो की आकृतियाँ यहाँ पर दी गई हैं। मिस्टर वेन्सन ने इन दोनों हलों के काम का मुकाबिला किया है जिससे यह प्रकट होता है कि सुधरे हुए हल से काम लेने में बहुत लाभ रहता है। देसी हल से ४ इंच गहरी और ऊपर से पाँच इंच चौड़ी कूंड परन्तु धरती के भीतर नोकदार इस ∨ आकार की बनती है जिससे कूंड़ का कटाव (सेकशन) १२ वर्ग इंच का होता है। मिट्टी पलटनेवाले सुधरे हल से ५ इंच गहरी और ऊपर से ७ इंच चौड़ी कूंड बनती है और उसके कटाव (सेकशन) का क्षेत्रफल ३५ वर्ग इंच होता है। अर्थात् सुधरा हल तिगुनी मिट्टी उखाड़ता है। देसी हल मिट्टी को केवल फाड़ता है पर सुधरा हल मिट्टी पलट देता है। एक एकड़ में देसी हल ५३८ घन गज मिट्टी फाड़ता है और इतना काम वह खेत में आड़े तिरछे चलाने से कर सकता है। क्योंकि एक ओर को ही हल चलाने से धरती में की कूंड इस



आकृति की सी बनती जाती है और इस कारण दो कूंडों के बीच के भाग अ को तोड़ने के लिए हल आड़ा तिरछा भी चलाना पड़ता है। इस हेतु बैल को हल ले कर अनुमान १३ × ३ = ३९ मील चलना पड़ता है जब कि सुधरे हल के चलाने में केवल २० मील ही चलना पड़ता है; क्योंकि उससे कूंडों के बीच का भाग भी कटता जाता है और उसको आड़े तिरछे चलाने की आवश्यकता नहीं

* परन्तु कड़ी धरती में ऊपर की महीन मिट्टी नीचे हो जाती है और भीतर से ढेले बाहर आ जाते हैं। यदि धरती हलकी होती है तो जैसा ऊपर कहा गया है, वह सूख जाती है। पर जो मध्यम धरती है उसको इस जोत से लाभ होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोतती। यदि एक दिन में बैलों की जोड़ी का १३ मील चलना मानें तो देसी हल को अनुमान एक एकड़ की मिट्टी पूरा फाड़ देने के लिए ३ दिन चाहिए और सुधरे हल से वही काम १½ दिन में किया जा सकता है। यदि एक जोड़ो बैल का किराया ।=) रोज मानें और देसी हल की मरम्मत का ।) रोज और विलायती की मरम्मत आदि का ॥) रोज और मजदूर के =)॥ रोज मानें तो देसी हल चलाने का ॥-) रोज का और एक एकड़ धरती जोतने का तीन दिन का १॥≡) होता है जब कि सुधरे हल से वही काम ॥'=) खर्च से हो सकता है। यदि देसी हल से ६७२ घन गज मिट्टी तोड़ने का काम लिया जाय तो २=) खर्च बैठेगा। इस प्रकार देखने से जाना जाता है कि दोनों हलों से एक सा बराबर काम लेने से देसी हल चलाने में १=) अधिक खर्चा होता है। देसी हल बहुत थोड़े दामों में बन जाता है पर सुधरा हल ५) से ८०) तक में आता है। सुधरा हल देसी की अपेक्षा कुछ भारी भी अवश्य होता है।

इतना लाभ दिखाई देने और काम अच्छा होने पर भी किसान इस हल को काम में नहीं लाते; इसका कारण यही ज्ञात होता है कि वे नई चीज व्यवहार करने में संकोच करते हैं और यदि उसमें कोई पुरजा टूट जाय तो गाँव के खाती और लोहार उसको दुरुस्त नहीं कर सकते। दोनों हाथों से थाम कर चलानेवाले हल में बैल हाँकने में बड़ी अड़चन पड़ती है और वे यह भी मानते हैं कि लोहे के भारी हल चलाने में विशेष बल की आवश्यकता होती है। यह ऊपर लिखी सब बातें थोड़ी परीक्षा और अभ्यास से हल हो जाती हैं। यदि एक बार सुधरे छोटे हल का उपयोग किया जाय तो उसके सम्बन्ध में और सब चीजों का भी अनुभव हो सकता है। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि जब धरती विशेष तरी लिए हो तो सुधरे हल से जोतने पर भीतर से मिट्टी की कत्तलें पड़ती हैं और वे सूख जाने पर कठोर हो जाती हैं जिससे मिट्टी न महीन ही हो सकती है और न पलटी ही जाती है। इसलिए सुधरे हल को कुछ नम धरती में चलाना ही ठीक होता है।*

सुधरे हल चलाने से नीचे की मिट्टी ऊपर आ जाती है और ऊपर की तले चली जाती है जिससे उस का कुछ भाग तो महीन हो जाता है परन्तु बहुत सा भाग अभी छोटे बड़े ढेलों की आकृति में ही रहता है। इन ढेलों को तोड़ने और मिट्टी विशेष महीन करने तथा हल के साथ भीतर से उखड़ कर आए हुए घास फूस को इकट्ठा करने और बाहर निकालने के लिए धरती पर सरावन अर्थात् हेंगा फेरा जाता है। सरावन की आकृति चित्र नं० १० में दी गई है। उसके देखने से स्पष्ट होता है कि उसके दाँते इस प्रकार लगे हुए हैं कि घास आदि जो कूड़ा उनके सामने आ जायगा वह उनमें ही उलझ रहेगा। जब हल चले हुए खेत पर एक वर्षा हो जाय उस समय यदि सरावन फेर दें तो धरती में मेंह का पानी नीचे उतर जाता है और तरी भी रहती है। बीज बो देने के पीछे भी यदि सरावन फेरा जाय तो उससे बीजों पर मिट्टी पड़ जाती है और धूप तथा पक्षियों से उनकी रक्षा भी हो जाती है।

हल से धरती कमाने के बाद जो कुछ ढेले आदि रह जाते हैं उनको तोड़ कर महीन करने और खेत को एक सा सपाटीदार करने के लिए पटेला फेरते हैं। पटेले से ढेले टूट कर मिट्टी महीन हो जाती है और धरती के ऊपर की मिट्टी का पड़ दब कर कुछ दृढ़ हो जाता है जो विशेष कर बहुत छोटे बीजों के बोने के समय उपयोगी होता है।

धरती में हल चलने तथा सरावन और पटेला फिर चुकने पर खेत की जोताई पूरी हो जाती है और

---

* जब नई धरती तोड़ना अभीष्ट हो वा धरती का अन्तर पड़ तोड़ने की आवश्यकता हो तो एक और ही प्रकार का हल काम में आता है जो 'सब सायल' अर्थात् अन्तर-पड़ भेदक हल कहाता है और वह पौन फुट गहराई तक की धरती तोड़ सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पूरा कमाया हुआ कहा जाता है। जब खेत कमाया जा चुकता है तो उस समय वह बीज बोने के काम का होता है।

---

(७)

खेती के औज़ार।

पिछले पाठ में वर्णन हुआ है कि खेत को जोतने और कमाने के लिए हल, सरावन, पटेला आदि औज़ारों की आवश्यकता होती है। इस पाठ में खेती के उन उपयोगी औज़ारों का वर्णन किया जाता है जिसमें पाठक उनकी आकृतियों को भली प्रकार जान लें और प्रत्येक का उपयोग भी समझ सकें।

प्रथम हल को लेकर देखें। नं० ७ में देसी हल का चित्र है। इसमें फ हल की फाल (फल भाग) है जो हल चलाने पर धरती में घुस जाती है और मिट्टी फाड़ती है। देसी हल में यह फाल नोकदार होती है। ब इस हल का वह भाग है जिसमें आगे की ओर बैलों के जोतने के लिए जूआ लगाया जाता है और ह भाग हत्था है जिसको हल चलानेवाला पकड़े रहता है और कुछ जोर दे कर फाली को धरती में दबाता या गड़ाता चलता है जिससे कूंड़ बनती जाती है। देसी हल की फाल नोकदार होती है जिसके कारण वह धरती में तो घुस जाती है परन्तु कूँड़ V इस आकृति की बनाती है और मिट्टी पलटती नहीं। इसी कारण देसी हल से खेत जोत कर कमाने में कई बार हल चलाना पड़ता है।

खेत को अच्छी तरह कमाने के लिए यह अत्यावश्यक है कि उसकी मिट्टी उलट पलट हो जाय। देसी हल से यह काम नहीं होता इसलिये इस देश में सुधारे हुए हल बनाए गाए हैं जिनसे खेत जोतने सें कूंड़े भी गहरी बनती है और जो मिट्टी फाल से कटती है वह सीता पर आ कर पलट भी जाती है। चित्र नं ८ में नए सुधरे हलों की आकृतियाँ दी गई हैं। जुदा जुदा प्रान्तों में जुदा जुदा रूप के हल बनाए गए हैं परन्तु यहां पर केवल दो हलों की आकृतियां दी गई हैं। इन हलों में स भाग का नाम सीता है। यह सीता लोहे वा इस्पात का एक पतला पत्तर होता है और फाल के ऊपर की ओर इस प्रकार से जड़ा रहता है कि मिट्टी का वह भाग जिसको फाल ने काटा है सीता पर आ कर एक ओर उलट कर गिर जाता है।

इन हलों में जो फाली बनाई गई है वह आगे के सिरे पर पैनी और कुछ चौड़ी पचड़ की सुरत की होती है जिसके कारण कूँड नीचे ऊपर एक सी इस आकृति की अनुमान ५ इञ्च गहरी कटती है। इन सुधरे हलों के खींचने में बैलों को विशेष बल करने की आवश्यकता नहीं होती और हाँकनेवाले को भी हल पर ज्यादा जोर वा दबाव देने की जरूरत नहीं पड़ती। उसको केवल सीधा रखने या मोड़ने के लिए ही दस्ता पकड़ने की जरूरत रहती है।

चित्र नं० ९ में जो आकृति दी गई है वह अन्तरपट भेदक हल की है; अर्थात् इस प्रकार का हल धरती को बहुत गहरा जोतने के उपयोग में आता है। इस हल में जुए के बाँधने की डंडी और हलों की अपेक्षा छोटी होती है और उसके सिरे पर एक कड़ी लगी होती है जो चित्र नं० ९ में क से सूचित की गई है। इस कड़ी में एक जंजीर बाँधी जाती है जिसके दूसरे सिरे पर जूआ लगाया जाता है। कड़ी ऐसी तरकीब से बनी होती है कि उससे जंजीर नीची ऊँची हो सकती है। जंजीर को ऊँचा बाँधने से हल धरती में गहरा जा सकता है और नीचा बांधने से उथली कूँड बनती है। इस कड़ी के सिवा अन्तरपड़ हल में फाल के सामने एक पहिया 'च' भी लगा रहता है जो लोहे का होता है और एक छोटी लोहे की डंडी में लगा रहता है। यह पहिया भी नीचा ऊँचा किया जा सकता है। जब यह नीचा कर दिया जाता है तो फिर हल की फाल धरती में नहीं घुस सकती परन्तु ऊँचा करने पर फाल गहरी चली जाती है। पहिए का एक और बड़ा काम यह होता है कि हल खींचने में बैलों को अधिक बल नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ना पड़ता और हाँकने या जोतनेवाले को भी ...पर विशेष दबाव देने की आवश्यकता नहीं ...हो। ऐसे अन्तरपड़ हल से धरती १२ इञ्च से ...इञ्च तक गहरी जोती जा सकती है।

चित्र नं० १० में सरावन वा हेंगे की आकृति दी ...है। यह एक लोहे वा काठ का चौखटा है ...इसमें आगे पीछे अनेक दाँते ऐसी रीति से लगाए ...रहते हैं कि वे हेंगे के चलने के समय आगे पीछे ...कर भी बराबर दूरी पर पास २ कूंड बनाते ...जाते हैं और मिट्टी को महीन करते हुए घास पात ...दाँतों में उलझा कर लेते जाते हैं। हिन्दुस्तानी ...हेंगे में दाँतों की इकहरी पंक्ति होती है। हल ...के पीछे धरती को सपाट करना और ढेलों ...का तोड़ना तथा घासपात से खेत को साफ ...करना अत्यावश्यक होता है और इसी काम ...के लिए हेंगा फेरा जाता है जिससे मिट्टी भी ...महीन हो जाती है और घास पात भी खेत में ...से निकल जाता है। इसके सिवा खेत में बीज बो ...ने के पीछे यदि हेंगा फेरा जाता है तो उससे ...बीज के ऊपर मिट्टी की हलकी तह पड़ जाती ...है। परन्तु इस पिछले काम के लिए देशी हेंगा ...कम काम का होता है।

चित्र नं० ११ में पटेले की सूरत दी गई है। यह ...भी औजार है। खेत की जोत के पीछे से ...इससे ढेले टूट जाते हैं और खेत समतल अर्थात् ...सपाट हो जाता है। यह औजार काठ का एक ...तख़्ता वा स्लीपर के टुकड़े का सा होता है ...इस पटेले के दोनों सिरों के पास कुन्दे होते हैं ...उनमें रस्सों के सिरे बाँध बैलों के जूए से बाँध ...देते हैं। पटेले के बीच में एक खड़ा बाँस लगाते हैं ...जिसको पकड़ कर बैलों का हाँकनेवाला पटेले पर ...खड़ा चलता है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ...पटेले पर बाँस लगाया ही जाय। जो किसान खेत में ...पटेला फेरने में निपुण होते हैं उनको बैलों के हाँकने ...और पटेला खेत पर फेरने में बाँस के सहारे की ...आवश्यकता ही नहीं पड़ती। पटेले को पेंदे की तरफ सपाट न रख उसको खोद कर पोला कर दिया जाय तो खेत की मिट्टी के ढेले उस पोल में फँस जायँगे और पटेले के खिंचने पर वे टूट कर महीन हो जायँगे जिससे खेत अच्छी तरह सपाट हो सकता है। विलायत में पटेले के स्थान में लोहे का दाँतीवाला बेलन (चित्र नं० १२) काम में लाते हैं।

चित्र नं० १३ विलायती 'हो' अर्थात् खुरपे का है जो खेत को निराने के काम में आता है। जब कूँड़ में पौधे कुछ निकल आते हैं उस समय इस हो से कूँड़ के आस पास धरती में जो घास पात उग आता है वह उखाड़ दिया जाता है। हो कई प्रकार के होते हैं। बड़े बड़े हो एक समय में कई कूँड़ों के दोनों ओर की निराई करते जाते हैं और बैलों की एक जोड़ी से चल सकते हैं। यहाँ पर जिसका चित्र है उसे एक ही मनुष्य पीछे से धक्का देकर आगे को चला सकता है। यदि विशेष बल लगाने की आवश्यकता हो तो दूसरा मनुष्य या तो रस्सी से आगे खींच सकता है वा पीछे ही दोनों हत्थों पर लग सकता है। इस हो से एक कूँड़ के दोनों बगल की निराई की जा सकती है। कूँड़ दोनों खुरपों के बीच में रहती है और पहिया भी कूँड़ की बगल में चलता है। देशी रीति से निराने की अपेक्षा हो से काम लेने में कम मेहनत और खर्च पड़ता है।

चित्र नं० १४ में देशी ढंग के औजारों की आकृतियाँ दिखाई गई हैं। अ आकृति उस खुरपे की है जो पूने की ओर खेत के निराने में काम आता है और बम्बई प्रान्त में इसको राँपड़ी कहते हैं। इस राँपड़ी से कूँड़ के दोनों ओर की निराई होती है। पर यह बैलों की एक जोड़ी से चलाई जाती है। आकृति क देशी फाल की है। इसमें दो कूँड़ों के बीच की धरती की निराई हो सकती है और यह भी बैलों की जोड़ी से खींची जाती है। आकृति ख एक काँटा है; यह प्रायः घास पात को एकत्र करने के काम में आता है।

ऊपर वर्णित औजारों के सिवा कृषिकर्म के उपयोगी और भी अनेक औजार हैं जो एंजिन तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ से चलाए जाते हैं, जो अनेक कामों में साधनभूत होते हैं और जिनके व्यवहार से मेहनत और खर्च में किफायत होती है। पर यह लेख पाठशालाओं के उन विद्यार्थियों के लिए है जो अपनी पढ़ाई में कृषि विद्या को ऐच्छिक विषय लेकर पढ़ते हैं और उनके लिए इन्हीं औजारों की जानकारी पर्य्याप्त होगी।

(८)

बीज।

(१) बोने योग्य बीज पसन्द करना।

कहावत है कि "जैसा बीज वैसा फल" तथा 'जैसा बोओ वैसा काटो'। वास्तव में ये कहावतें ठीक ही हैं परन्तु खेद है कि हमारे देश के किसान इन कहावतों पर जब कि ये उन्हीं के रात दिन के धंधे—खेती—से ही ली गई हैं जैसा चाहिए वैसा ध्यान नहीं देते। यह बात सब किसान मानते हैं कि बिना कस का बीज बोने से फसल अच्छी नहीं होती तो भी बीज के छांटकर बोने में वे लापरवाही ही करते हैं। यदि बीज भरा पूरा और नीरोग होगा तो उससे होनेवाली उपज भी भरी पूरी होगी। बीज के पुष्ट न होने और रोगी होने से अन्नादि की उत्पत्ति भी हीन और रोगी ही होना स्वाभाविक है।

बीज पसन्द करने के लिए किसान को इन बातों पर ध्यान देना चाहिए कि बीज अवयव में ठीक और बड़ा हो, पुष्ट और नीरोग हो। यदि बीज भरा पूरा और बड़ा हो तो यह जाना जाता है कि उसमें होनेवाले अंकुर को पोषण करने की पूरी सामग्री मौजूद है। यदि बीज देखने में तो भरा पूरा दिखाई दे पर रोगी हो, घुन का खाया हुआ हो, उसमें छिद्र हो तो वह बीज बोने के काम का नहीं। जो बीज कीड़ों का खाया होता है वह पूरा पुष्ट न हो कर सिकुड़ जाता है। वह यदि पानी में डाला जाय तो ऊपर तैरता रहता है और हृष्टपुष्ट नीरोग बीज नीचे बैठ जाता है। किसानों को उचित है कि बीज को जाँ[illegible] कर काम में लावें।

बहुत से किसानों का यह कहना है कि जिस[illegible] खेत में जो बीज उत्पन्न हुआ है उसे उसी [illegible] बोना चाहिए। पर जब यह देखने में आता है कि[illegible] एक खेत से उत्पन्न अनाज को उसी खेत में बा[illegible] बर बोने से पैदावार कम होती जाती है तो[illegible] फिर यह कहना कि "जिस खेत का बीज हो, उसे[illegible] उसी में बोना चाहिए" कहाँ तक ठीक हो सकता[illegible] है, यह विचार-योग्य ही है। यदि किसान को यह[illegible] अभीष्ट हो कि अपने खेत से प्राप्त बीज ही बोया[illegible] जाय तो उसको चाहिए कि बीज के लिए पूरे भरे[illegible] और पुष्ट दानेवाली बालों वा फलियों को तो[illegible] कर किसी पात्र में भर कर अलग रक्खे और जिस[illegible] उसके अंदर वायु न जा सके और कीड़ा न ल[illegible] सके इस लिए उस पात्र में ऊपर से राख भर क[illegible] मुँह अच्छी तरह बंद कर दे। इस प्रकार रक्खा[illegible] हुआ बीज एक वर्ष के भीतर काम में लाया जा[illegible] तो और भी उत्तम फल होता है। खेत में बोने के[illegible] हेतु बाल में बीज के भाग के दाने बीज के काम में ला[illegible] चाहिएँ क्योंकि बाल में नीचे और ऊपर के दाने छोटे[illegible] हलके और कमजोर होते हैं। इस प्रकार बीज को[illegible] छाँटकर रखने और समय पर बोने से फसल अच्छी[illegible] होती है और दाना भी भरा पूरा होता है। ऊपर[illegible] लिखी रीति उस समय के लिए है जब और कोई[illegible] उपाय न हो। सब से श्रेष्ठ तो यही है कि जहाँ[illegible] का बीज भरा पूरा और नीरोग मिले वहीं से ला कर[illegible] अपने खेत में बोना चाहिए।

बीज के अंकुरित न होने वा अंकुर निकलने के पीछे[illegible] बढ़त ठीक न होने के कई कारण हैं। प्रथम य[illegible] बीज वर्ष भर से अधिक पुराना होता है तो वह औ[illegible] के साथ नहीं बढ़ता और जितना बीज बोया जा[illegible] है उसका आधा भी ठीक नहीं उगता। जब बीज का[illegible] ऊपरी भाग सिकुड़ा और उसका रंग बदला जान पड़े[illegible] तो यह अनुमान ठीक ही हो सकता है कि बीज पुरा[illegible] है। दूसरे जब अनाज की बाल वा फली पूरी[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...से पहिले ही तोड़ ली जाती है तो उसके दाने ...से वे नहीं उगते और उगते भी हैं तो बहुत कम ...उगते हैं। तीसरे, यदि फसल काट कर तर ...में रक्खी जाती है तो बीज भीतर ही भीतर गरमा ...ता है और फिर उसमें का हीर जल जाता है और ...नहीं उगता। चौथे, यदि फसल काटकर रखने ...समय दानों पर तर हवा का असर हो जाय और ...में वा रास में अंकुर फूट निकले तो भी वह बीज ...काम का नहीं रहता। अच्छे बीज का पौधा खूब ...ता है और उससे फसल भी अच्छी होती है।

किसान को अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए ...हिए कि कई नमूनों में से छाँट कर ऐसा बीज ...सन्द करे जिसके मोल लेने में कम दाम लगे और ...ल अच्छी और बहुत हो। जब कई प्रकार ...बानगी में से बीज पसन्द करना हो तो दो तीन ...गी के ढेरों में से अलग अलग अनुमान सेर ...भर के दाने ले और उनको हिला मिला कर ...दो भाग करे और फिर इन भागों के और ...दो भाग करे। इस प्रकार भाग कर प्रत्येक ...गी के एक एक भाग को तौले और फिर ...क बानगी के उस भाग में से दाने जुदा करे ...दानों के अतिरिक्त जो कूड़ा करकट हो उसे ...करे और तौले। इस रीति से यह ज्ञात हो जाता ...कि अमुक बानगी में इतना कूड़ा करकट गया ...र इतना शुद्ध दाना रहा। अब हर एक बानगी ...भाग में शुद्ध दानों को गिने और प्रत्येक बानगी के ...बराबर की गिनती के दाने जुदा जुदा रकाबियों ...में इस प्रकार बोए,—प्रत्येक रकाबी में महीन की हुई ...मिट्टी बिछावे और जुदा जुदा बानगी के उन गिने हुए ...दानों को जुदा जुदा रकाबी में फैला दे और ऊपर से ...एक हलकी तह महीन मिट्टी की बुरक कर मिट्टी को ...तर कर दे और ढक कर गरम स्थान में रक्खे। दिन में ...एक बार उसका ढकन उठा कर उसमें हवा लगने दे ...और मिट्टी में तरी बनाए रक्खे। जब रकाबियों में दानों ...के अंकुर निकलें तब उनको गिन ले और लिख ले कि ...अमुक बानगी की इतनी संख्या के दानों में इतने अंकुरित हुए और इतने नहीं हुए। दो चार दिन के पश्चात् फिर गिने कि प्रत्येक बानगी के कितने दाने और अंकुरित हुए। इस प्रकार प्रत्येक बानगी के दाने अंकुरित होने की संख्या और समय लिखता जाय और हिसाब निकाले कि अमुक बानगी में कितने दाने प्रति सैकड़ा शुद्ध और उत्तम थे और कितने प्रति सैकड़ा अंकुरित हुए। जब प्रत्येक बानगी के बीजों की शुद्धि और प्रति सैकड़ा अंकुरित होने की संख्या ज्ञात हो जाय तो दोनों को गुण करके १०० से भाजित करने से जो मिलेगा वही प्रति सैकड़ा उस बीज की शुद्धता है। जिस बीज की यह शुद्धता अधिक है वही बीज उत्तम समझा जाता है। जब जुदा जुदा बानगी की शुद्धता ज्ञात हो जाय उस समय यह हिसाब भी लगाना चाहिए कि कौन सा बीज सस्ता पड़ेगा।

मानों कि दो बानगी के दाने परीक्षा के लिए दो प्रकार के गेहूं—कानपुरी और पटनी में से लिए। कानपुरी गेहूं १०ऽ में ९॥ऽ खालिस गेहूं निकले और ॥ऽ कूड़ा करकट गया जिस कारण गेहूं खालिस ९५ प्रति सैकड़ा रहा। कानपुरी गेहूं को जब रकाबी में बोया गया तो ४ दिन में १०० दानों में ९० अंकुरित हुए। इस लिए कानपुरी गेहूँ $\frac{९५ \times ९०}{१००} = ८५\frac{१}{२}$ प्रति सैकड़ा शुद्ध रहा। भाव इस गेहूं का ॥) पसेरी है। ऊपर की रीति से पटनी गेहूं की उतनी ही बानगी के खालिस दाने ९० प्रति सैकड़ा हैं और ४ दिन में ८० प्रति सैकड़ा दाने अंकुरित हुए इसलिए पटनी गेहूँ की शुद्धता $\frac{९० \times ८०}{१००} = ७२$ हुई और ऐसे गेहूं का भाव ।≡) पसेरी है। अब यह देखना है कि कौन सा बीज सस्ता पड़ता है। त्रैराशिक से यह देखा कि पटनी गेहूं ८५ शुद्धता वाला होता तो उसकी क्या कीमत पड़ती अर्थात् पटनी गेहूं का भाव = $\frac{८५ \times ७}{७२}$ = ॥) होता। जिससे यह पाया गया कि पटनी गेहूँ सस्ता अवश्य पड़ता है परन्तु कानपुरी के खरीद कर बोने में लाभ है क्योंकि जितनी बीज की शुद्धता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष होगी उतना प्रति बीघा बीज कम बोया जायगा। मानों कि कानपुरी ८५ शुद्धता का गेहूँ २० सेर प्रति बीघा लगता है तो पटनी ७२ शुद्धतावाला $\frac{८५}{७२} \times २०$ $=२३॥$ सेर लगेगा जिसकी कीमत $\frac{२३\cdot५ \times ७}{५} = २\text{-)}$ होती है जो कानपुरी २० सेर की कीमत २) से बढ़ जाती है। इसलिए कानपुरी गेहूँ का बीज सस्ता पड़ता है और किसान को यही खरीदना चाहिए।

बीज के अच्छे बुरे होने की जांच की एक सुगम रीति यह है कि एक बड़ा टब ले कर उसमें पानी भरो और एक बड़ी चलनी जिसमें दस पन्दरह सेर बीज आ सकें लो और उसमें बीज भर कर चलनी को पानी के टब में डुबाओ। ऐसा करने से चलनी में के हलके बीज पानी पर तैर आवेंगे। उनको निकाल कर अलग रक्खो। इस प्रकार चलनी के बीज को बार बार शुद्ध जल में डुबाते जाओ और जो दाने ऊपर तैर आवें उनको अलग करते जाओ। दो वा तीन बार ऐसा करने से हलके बीज जुदा तैर आवेंगे और शुद्ध पुष्ट बीज चलनी में नीचे रह जाँयगे। अब टब में से पानी निकाल ढोर का बासी मूत्र भरो और उस चलनी को पहली रीति से फिर डुबाओ और इस बार भी जितने बीज ऊपर तैर आवें उनको अलग कर लो। अन्त में जो बीज चलनी में रहें उनको साफ सुथरी भूमि पर बिछा कर ऊपर कलई चूना बुरकते जाओ और फावड़े से मिलाते जाओ जिससे सब बीजों पर चूना लग जाय और फिर बीजों को सूख जाने पर खेत में बो दो।

बीज के पसन्द करने की ऊपर जो तरकीबें दी गईं हैं उनसे हृष्ट पुष्ट बीज जुदा छँट जाते हैं। पर यह देखना शेष रह गया कि वह छाँट कर पसन्द किया हुआ बीज रोगी है या नीरोग। ऐसा प्रायः देखने में आया है कि देख भाल कर बीज बोया गया पर पीछे से 'स्मट' (खुवा) नाम के रोग से वा ऐसे ही और रोग से सब खेत वा उसका अधिक भाग मारा गया। इस प्रकार के रोग बहुत सूक्ष्म वनस्पति के रूप में बीजों से चिपटे रहते हैं। अपने आश्रय को खा जानेवाली ये वनस्पतियाँ बिना खुर्दबीन के दिखाई नहीं देतीं। इस कारण बीज को खेत में बोने से पूर्व इन सूक्ष्म वनस्पति रूपी रोगों से उनका छुड़ाना आवश्यक है और इस हेतु बीजों को निम्न लिखित रीति से औषध से धोया जाता है।

बीज धोने के लिए कई औषधियाँ जैसे नीला थोथा, चूना, नोन, लोहे का फास्फेट, सोडे का फास्फेट आदि काम में आती हैं और ये जुदा जुदा जाति की जिन्स के बीजों के धोने के उपयोग की हैं। पर इन सब में नीलाथोथा प्रायः अनाज के बीजों के धोने में बरता जाता है। ३० तोले नीलेथोथे को ८ सेर गरम पानी में खूब गला कर ठंढा किया जाय। इतना पानी ३ मन अनाज के लिए पूरा है। बीज को किसी समतल पक्की भूमि पर ४ वा ५ इञ्च मोटा बिछा कर ऊपर से नीलेथोथे का पानी छिड़कता जाय और बीज को फावड़े से उलट पुलट करता जाय जिससे प्रत्येक दाना तर हो जाय। इनको ३ वा ४ घण्टों के लिए यों ही छोड़ दे जिसमें बीज सूख जाय। इसके बिना बीज बोने के योग्य नहीं होता। यदि पुराना बीज हो वा नाजुक जाति का बीज हो तो नीलाथोथा कम मिलाया जाय या बीज के सूखने के पीछे शुद्ध पानी से धोकर सुखा लिया जाय क्योंकि नीलाथोथा कमजोर बीज को जला देता है और इसी लिए सब प्रकार के बीज इस औषधि से नहीं धोए जाते।

कपास का बीज पसन्द करने में कपास के बीनने के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जो ढेंड पूरे सूखा खिला और अधिक रूईवाला हो उसको जुदा रक्खे और उस कपास को देसी चरखी में ओट कर बिनौले निकाल जुदा रक्खे। बोने के समय बिनौलों को 'टार' नाम की दवा के मिश्रण में (५ तोले टार को सेर भर पानी में गलावे; यह २५ वा ... सेर बिनौले के लिए काफी है) ऊपर लिखी (नीले थोथे के मिश्रण की) रीति से धोए और जब सब तर हो जाय तो ऊपर से रेत वा मिट्टी बुरक कर फावड़े से एक मेल करे जिसमें रेत वा मिट्टी सब पर ... जाय। इस क्रिया से यह लाभ होता है कि एक ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज को कीड़ा नहीं लगता और दूसरे बोने के समय आपस में नहीं चिपटते और जुदा जुदा गिरते हैं। बिनौलों के सिवा मक्के आदि के बीजों को जिनको खेत में चिड़ियां चुग जाती हैं वा कीड़े खा जाते हैं इसी प्रकार 'टार' के मिश्रण में धो लिया जाय तो अच्छा होगा।

(२) बीज बोना

खेत की अच्छी जुताई का यही परिणाम होता है कि धरती बीज बोने योग्य हो जाती है। पर केवल अच्छी तरह खेत को कमा लेना ही बीज के बोने की योग्यता उत्पन्न नहीं करता वरन् उसके साथ यह भी देखना पड़ता है कि बीज बोने के अनुकूल समय भी है या नहीं।

जुदा जुदा देश भाग में बीज बोने का समय जुदा जुदा होता है जिसका पहिचानना अपने अपने अनुभव पर है। अच्छे खादयुक्त खेत में भी बिना समय का बोया हुआ बीज सफल नहीं होता। बीज बोने का योग्य समय हाथ से न गँवाने के लिए किसान को उचित है कि खेत को पहिले से कमा कर ठीक कर घास पात से साफ़ रक्खे। समय के आते ही काम प्रारम्भ कर दे। बोआई के लिए न पूरी सूखी धरती काम की है और न बहुत भीगी ही। प्रथम वर्षा हो जाने पर मेंह का पानी धरती में उतर जाता है और जब धरती फरहरी हो जाती है उस समय बोआई का काम शुरू करना चाहिए क्योंकि उस समय नमी और गरमी दोनों उपयोगी होने के कारण अंकुर जल्दी ही निकलता है।

बोआई के समय बीज को हलकी मिट्टी से ढके जिससे उसकी धूप से रक्षा हो और अंकुर निकल आने पर उसको प्रकाश शीघ्र मिल सके। कोई बीज जोरदार होता है और कोई नाजुक होता है; इसलिए जोरदार बीज थोड़ा गहरा भी बोया जाय तो वह ज़मीन से बाहर निकल आता है पर नाजुक बीज गहरा न बोना चाहिए। बीज के जोरदार वा नाजुक होने के हिसाब से १½ इञ्च गहराई से लेकर ½ इञ्च गहराई तक बोना उचित है। जो बड़े बीज हैं वे गहरे बोए जाते हैं और जो बहुत छोटे हैं (जैसे नील और तम्बाकू के बीज) वे धरती के ऊपरी भाग में बोए जा कर हलकी मिट्टी से ढक दिए जाते हैं क्योंकि गहरे बोने में उनके नाजुक अंकुर बाहर नहीं आ सकते और अपने ऊपर की मिट्टी के बोझ से दब कर मर जाते हैं*। सब दशाओं में बीज के ऊपर मिट्टी अवश्य रहनी चाहिए नहीं तो पक्षी खेत में से उनको चुग जाते हैं।

बोआई करने की तीन रीतियाँ हैं। (१) बीज को हाथ से खेत में बिखेर कर छिड़कवाँ बोना, (२) बीज को कूँड़ में हल के सहारे अकरी वा ओरनी द्वारा बोना और (३) खेत में हाथ से गड़ा कर एक एक बीज को कतार में रख ऊपर से मिट्टी से ढकते जाना।

(१) हाथ से बिखेरवाँ बोने में यह लाभ तो अवश्य है कि खेत बहुत शीघ्र बोया जाता है पर इसके साथ हानियाँ भी बहुत होती हैं। बिखेरवाँ बोने से दाने एक से अन्तर पर नहीं पड़ते। कहीं तो एक ही जगह कई दाने इकट्ठे हो जाते हैं और कहीं बहुत अन्तर से मिलते हैं। बिखेरवाँ बोने में बीज को मिट्टी से ढकना कठिन होता है। इसलिए बहुत से बीज धूप में झुलस जाते हैं वा चिड़ियाँ दानों को चुग जाती हैं और जो बीज गहरा दब जाता है वह अंकुरित नहीं होता। इस रीति की बोआई में अधिक बीज खर्च होता है। सब से बड़ा ऐब इस प्रकार की बोआई का यह है कि खेत में निराव ठीक नहीं हो सकता और घास पात आदि धरती में के पुष्टिकारक अंशों को स्वयं चूस लेते हैं जिससे फसल की पुष्टि में बाधा उपस्थित हो जाती है। खेत की निराई बराबर सुगमता से होती रहने के लिए बीज का नियमित अन्तर से बोया जाना आवश्यक है।

---

* इस सम्बन्ध में सब से अच्छा सिद्धान्त यह है कि जो बीज जितना मोटा या बड़ा हो उस पर उतनी ही मोटी तह मिट्टी की होनी चाहिए। प० सम्पा०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) बीज को एक कतार से बराबर अन्तर से बोने के लिए देशी किसान हल के पीछे अकरी वा ओरनी (चित्र नं० १५ अ को देखो) लगा लेते हैं और उसमें से बीज बोते जाते हैं। हल के चलने से आगे आगे कूँड बनती जाती है और पीछे से अकरी में हो कर बीज कूँड में गिरता जाता है। इस तरकीब से बीज एक कतार में और बराबर दूरी पर गिरता है। विलायत में बोआई के लिए एक विशेष यंत्र काम में लाया जाता है जिसको 'ड्रिल' या 'सीड ड्रिल' (ओरनी) कहते हैं। इस देश के बम्बई, मदरास आदि प्रान्तों में भी देशी 'ड्रिल' काम में आता है और उन प्रान्तों में उसको 'चावल', 'दंताली', 'तरफेण' आदि कहते हैं। चित्र नं० १५ में इस औजार की दो आकृतियाँ दी गई हैं। ये बहुत सादी बनावट के हैं और इनका वर्णन पं० बापालाल भाईशंकर भट्ट और मि० बेन्सन ने अपनी अपनी खेती सम्बन्धी पुस्तकों में किया है। आकृति १ में अ क एक लकड़ी है जिसमें नीचे की ओर हल की फाल की सूरत की ४ फालें हैं और प्रत्येक में पीछे एक एक छेद ऊपर की ओर है और वे इस प्रकार पीछे को ढालुवाँ बने हुए हैं कि ऊपर से बीज गिराया जाय तो वह पीछे को निकल कर धरती में उस कूँड में क्रम से गिरता जायगा जिसको फाल ने धरती में बनाया है। इन छेदों में ऊपर को 'ब' बाँस की पोली नलियाँ लगी हुई हैं और नलियों का सम्बन्ध ऊपर लगे हुए 'प' प्याले के पेंदे से इस प्रकार है कि प्याले के मुख में पड़ा हुआ बीज एक एक कर के नलियों द्वारा नीचे उतरता है और फालों के छिद्र में होकर कूँड में जाता है। अ, क लकड़ी के दोनों सिरों से दो मोटे बाँस वा बल्ली के टुकड़े म, म लगे हुए हैं जो आगे ज स्थान पर आपस में जुड़े हुए हैं और वहाँ पर जूआ बँधा रहता है जिसमें बैलों को जोता जाता है। इस औज़ार के चलाने में एक मनुष्य प्याले में बीज डालता है और दूसरा बैलों को हाँकता जाता है। हर एक फाल से जो कूँड बनती है वह १ फुट तक दूरी पर बनती है। इस 'ड्रिल' द्वारा बोआई करने में बीज बराबर अन्तर पर और एक सी गहराई में बोया जाता है और कूँडों के बीच में अन्तर ठीक ठीक रहने से निराव भी सुगमता से हो जाता है। यदि प्याले में बीज डालनेवाला सुघड़ हो तो बीज कम खर्च होता है। बोनेवाला मनुष्य कमर में झोली बाँध उसमें बीज भर लेता है और मुट्ठी भर कर प्याले में डालता जाता है और इस बात का भी ध्यान रखता है कि प्याले में अधिक बीज के गिर जाने से बाँस की नलियाँ भर कर बंद न हो जाँय। क्योंकि यदि नलियाँ रुक गईं तो बीज कूँड में न पहुँचेगा और जितने बीच में बीज नहीं गिरा उसमें कुछ भी न होगा। इसके साथ साथ उसका यह भी काम है कि प्याले में इस प्रकार बीज भरे कि एक स्थान पर कई बीज इकट्ठे न गिरें। जब तक बोनेवाला अनुभवी और सुघड़ न होगा काम जैसा ठीक होना चाहिए वैसा न होगा। विलायती 'ड्रिल' (चित्र नं० १६) इस काम में बहुत अच्छे और पूरे औज़ार हैं परन्तु वे हमारे देश के किसानों के लिए जो थोड़ी थोड़ी धरती जोत कर गुजरान करते हैं मँहगे पड़ते हैं। विलायती 'ड्रिल' केवल बीज बोने के ही काम नहीं आते वरन् वे ऐसे भी बनाए जाते हैं कि उसी 'ड्रिल' में एक नली द्वारा कूँड में बीज पड़ता जाय और दूसरी नली द्वारा बीजों के ऊपर खाद पड़ती जाय। परन्तु ऐसे बड़े औज़ार उन काश्तकारों के काम के हैं जो सैकड़ों बीघों में काश्त करते हैं।

(३) बोआई।

बोआई की तीसरी रीति इस प्रकार है कि कमाए हुए खेत में देशी हल से उथली कूँड करते जाते हैं और हाथ से उसमें बीज को छः से बारह इंच की दूरी पर जैसी बोआई करनी हो रख कर ऊपर से मिट्टी डालते जाते हैं। इस रीति से बोआई करने में बीज पहिली रीति की अपेक्षा तिहाई लगता है और जो फसल बोई जाती है वह अच्छी होती है, उसका दाना बड़ा और भरा होता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य करनी होती है। ऐसी बोआई के खेत की निराई भी अच्छी तरह हो सकती है। जब खेत में ही अच्छा बीज पैदा करना हो तो हृष्ट पुष्ट बीज को पसन्द कर ऊपर की रीति से छितरा कर बोना चाहिए।

कृषि सम्बन्धी और और बातों के सिवा किसान को यह भी ख़्याल रखना चाहिए कि बोआई में बीज का खर्च अधिक न हो जाय। यह उस समय हो सकता है जब खेत में बीज दूर दूर अर्थात् छितरा कर बोया जाय। छितरुवाँ अर्थात् छः वा सात इंच के अन्तर पर बीज बोने से ये लाभ हैं। जो पौधे उगते हैं वे आपस में एक दूसरे के बढ़ने में बाधक नहीं होते। यदि धरती उपजाऊ हो तो पौधा और दाना दोनों अच्छे भरे पूरे बढ़ते हैं और खेत का निराव भी सुगमता से हो सकता है। यदि बीज घना अर्थात् बहुत पास पास बोया जाय तो पौधे एक दूसरे के बढ़ने में बाधक होते हैं और पौधा लम्बा तो होता है पर दाना ज़ोर नहीं पकड़ता। यदि धरती कमज़ोर हो या फसल चारे के लिए वा भूसा प्राप्त करने के लिए बोई गई हो तो बीज घना ही बोना ठीक है। घना बीज बोने से एक लाभ यह होता है कि पौधे सटे हुए होने से धरती पर छाया करते हैं और इस कारण धरती में की तरी शीघ्र नहीं निकल जाती। पर इसके साथ हानि यह होती है कि खेत की निराई ठीक नहीं हो सकती।

—:०:—

(६) सिंचाई।

पौधे पाठ में बताया गया है कि पौधे के उगने और बढ़ने के लिए जल एक अत्यावश्यक वस्तु है जिसके बिना पौधा अपनी पोषण करनेवाली खुराक धरती में से नहीं ले सकता। वहाँ पर यह भी बताया है कि पौधों की प्रारम्भिक बनावट ही जल की है क्योंकि उसमें उस समय ८८ प्रति सैकड़ा जल रहता है और बड़े होने पर भी पौधे में जल रहता ही है। पौधे में जड़ के सूक्ष्म बालों द्वारा पहुँचता है और धरती के तत्व जल में घुल कर पेड़ी के रास्ते पत्तों तक पहुँचते हैं। जड़ों को जल धरती से पहुँचता है। जड़ें जितनी गहरी जाती हैं उनको उतनी अधिक तरी मिल सकती है क्योंकि धरती के ऊपर का जल गरमी के कारण वाष्प होकर उड़ जाता है और जो जल धरती के अन्तरपड़ में रहता है वह जड़ों को मिल सकता है। वर्षा से वा जलसिञ्चन से जो जल खेत में पहुँचता है वह धरती की जुती हुई न होने की अवस्था में बह जाता है और भाफ होकर उड़ जाता है। परन्तु यदि गहरा हल चलने से अच्छी जुती हुई धरती हो और यदि उसमें सड़ी गली वनस्पति की खाद भी पड़ी हो तो जल नीचे उतर जाता है और धरती उसे धारण किए रहती है और बहुत नीचे नहीं उतरने देती। इतना ही नहीं, सड़ी गली वनस्पति की खाद से धरती में वायु में से भी तरी सोख लेने का गुण उत्पन्न हो जाता है। इस लिए वर्षा के जल का और नहर तालाब कूएँ आदि से सींचे हुए जल का पूरा पूरा उपयोग करने के लिए धरती गहरी जोतना और उसमें वनस्पति की खाद देना अत्यावश्यक है।

पौधों को पानी दो रीति से मिलता है—एक तो दैवी और दूसरी मानुषी रीति से। दैवी रीति से जो जल मिलता है वह वर्षा द्वारा मिलता है और यह दैवी रीति का पानी साल भर में जब आवश्यकता हो तब ही तुरन्त नहीं मिलता वरन् वर्ष में केवल चैामासे ही में विशेष मिलता है। जाड़े की ऋतु में महावट की वर्षा बहुत कम होती है। इसलिए चैामासे के पानी से बहुत काल तक लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि पानी धरती के भीतर ऐसी स्थिति में रह जाय कि पौधों की जड़ें उससे लाभ उठा सकें। वर्षा के पानी का उपयोग उसी समय हो सकता है जब धरती में गहरी जुताई हो और पानी भीतर पहुँचाया जाय और ऊपरी पड़ को हल से पोच और भुरभुरा रक्खा जाय जिसमें भीतर का पानी ऊपर आ कर भाफ बन कर न उड़ जाय; और हरी खाद से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती में जल-धारणा की शक्ति बढ़ाई जाय जैसा कि पूर्व में कहा गया है। इस पर भी जब कभी जलसिञ्चन की आवश्यकता हो तो मानुषी सहायता से धरती सींची जाय।

जलसिञ्चन की मानुषी क्रिया में कई रीतियाँ खेत सींचने की हैं। प्रथम नदियों से नहरों द्वारा खेत में जल पहुँचाया जाय। दूसरे देश में बड़े बड़े तालाब वा बन्द बाँध कर नालियों द्वारा खेत सींचे जायँ। तीसरे पोखरे कूएं आदि से जल खींच कर नालियों द्वारा खेतों में सींचा जाय।

जिस देश भाग में नदियाँ बहुत हों, भूमि सपाट हो ग्रैार ढाल भी ठीक हो वहाँ नदियों से नहरें सुगमता से निकल सकती हैं ग्रैार उनसे फिर रजबहे बम्बे आदि निकाल कर पानी खेतों तक पहुँचाया जा सकता है ग्रैार कृषकों को ग्रनावृष्टि तथा चौमासे के ग्रतिरिक्त दूसरी ऋतुग्रों में भी जल मिल सकता है। परन्तु यह काम किसान व जमींदार के बूते का नहीं। ऐसे बड़े काम सरकार या राजे महाराजे ही कर सकते हैं। ब्रिटिश सरकार ने किसानों तथा जमींदारों के लाभ ग्रैार ग्रनावृष्टि में खेती की उपज की वृद्धि के लिए नहरें खोल दी हैं जिनसे लाखों बीघा धरती की सिँचाई होती है ग्रैार प्रजा-रक्षा भी होती है। जहाँ जहाँ नहर के पानी से खेत सींचे जाते हैं वहाँ प्रायः ऐसा देखा गया है कि धरती में रेह उत्पन्न हो जाती है ग्रैार फिर फसल की हानि होती है। रेह एक खार है ग्रैार खार के ऊपर ग्रा जाने से धरती सफ़ेद दिखाई देती है। नदियों का पानी नहरों में, नहरों का बम्बों में, तथा बम्बों का नालियों ग्रैार बरहों आदि में होता हुग्रा ग्राता है ग्रैार मार्ग में खार की धरती में हो कर ग्राने से खार को संग लेता ग्राता है। खेत में पानी के फैल जाने पर जब पानी भाफ हो कर उड़ जाता है तो ऊपर खार की पपड़ी जम जाती है ग्रैार यदि धरती के भीतर नीचे उतर भी जाता है तो जब ऊपर की गरमी के कारण धरती के भीतर का पानी केशाकर्षणशक्ति से ऊपर ग्राता है तो उस खार को भी ऊपर तक ले ग्राता है। इस खार के कारण ही धरती ऊसर हो जाती है। नहर के पानी का धरती को ऊसर करने में जितना दोष होता है उससे किसी प्रकार कम किसान का दोष भी नहीं है। कूएं से पानी देते समय किसान उतने ही खेत को पानी देते हैं जितने की आवश्यकता होती है ग्रैार खेत को खाद दे कर ज़ोत कर ठीक बनाते हैं; पर जब नहर से खेत सींचते हैं तो प्रथम तो पानी ही आवश्यकता से अधिक लेते हैं ग्रैार फिर नहर के पानी को खाद के गुण से युक्त जान कर खेत में खाद देने से लापरवाही करते हैं।

जिस देशभाग में नदियाँ विशेष नहीं हों ग्रैार धरती ऊँची नीची तथा ढालुवाँ वा पहाड़ी हो वहाँ पर धनाढ्य ज़मींदारों तथा राजों महाराजों को अपने किसानों की रक्षा के लिए तालाब बनवा देने चाहिएँ जिनसे खेतों की सिँचाई अच्छी तरह हो सके। यदि भूमि ढालुवाँ हो तो ऊपर की ग्रोर ऐसे स्थान पर जहाँ भूमि के एक बड़े भाग का पानी बह कर जाता हो बन्द बनवा दिए जायँ ग्रैार उनमें स्थान स्थान पर मोरी रख बंद से नीचे के भाग के खेतों में पानी पहुँचाया जाय तो भी बहुत से किसानों के खेतों की सूखे से रक्षा हो सकती है। जिस समय बंद का पानी खर्च हो जाय उस समय उसकी तरीवाली धरती जोतने से उसमें गरमी की फसल अच्छी तरह हो सकती है। तालाब ग्रैार बंद में जो पानी भरता है वह अपने साथ मिट्टी भी लाता है ग्रैार वह मिट्टी निथर कर नीचे बैठ जाती है ग्रैार उसमें जो वनस्पति मिल जाती है वह सड़ बुस कर खाद का काम देती है। इसलिए इन तालाबों ग्रैार बन्दों की मिट्टी यदि भूड़ा धरती में खाद के तैार पर मिलाई जाय तो वह भूड़ा धरती सुधर जाती है।

बंदों ग्रैार तालाबों के सिवा पोखरों, झीलों आदि में भी पानी भरा रहता है ग्रैार उनका पानी भी किसान खेती के उपयोग में लाते हैं। पोखरे ग्रैार झीलें प्रायः खेतों की सतह से अधिक गहरी नहीं होतीं। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र इनका पानी २ वा ३ फुट ऊँचा उठा कर खेतों ... पहुँचाना पड़ता है उन स्थानों पर किसान अपना ...त वा बाड़ी सींचने के लिए परोये या बीड़ी से पानी ...ुँचाते हैं। इस यंत्र के चलाने में दो मनुष्य लगते ...ओ पानी के किनारे खड़े हो जाते हैं और सूप की ...कृति का चमड़े का एक डोल ले कर उसके सिरों ... रस्सी बाँध दोनों हाथों में पकड़े रहते हैं और ...स डोल से पानी उलीचते हैं जिससे पानी बरहों ...हो कर खेत में जाता है। इस रीति से पानी ...ाने में एक एकड़ धरती दो दिन में सींची ...ा सकती है।

दूसरा औज़ार ढेकली है जिससे १२ फुट की ...हराई पर का पानी ऊपर लाया जा सकता है। इस ...त्र की बनावट इस प्रकार की होती है—जल के ...िनारे वा कूएं की जगत से हट कर दो बल्लियाँ ...ी ऊँची गाड़ते हैं और उनके ऊपरी सिरों पर ...े के मोटे कड़े पहिनाए जायँ तो मज़बूती रहती ...। इन दोनों बल्लियों को पास पास गाड़ते हैं और ...ों पर लोहे वा काठ की धुरी आर पार पहनाते ...। इस धुरी में सोंटों वा बल्लियों के बीच एक ...ो लम्बी बल्ली पिरो देते हैं जिसे मोटे सिरे ... और सिर्फ़ उतनी बड़ी रखते हैं कि जिस से ...ों के खड़ा करने पर वह सिरा भूमि से ...ड़ा ऊँचा रहे और बल्ली का दूसरा पतला सिरा ...क बड़ा रखते हैं। बल्ली के ऊँचे सिरे में कूएं ...गहराई से कुछ बड़ी रस्सी बाँध कर उसके दूसरे ...े पर एक डोल बाँध देते हैं। बल्ली के छोटे ...े के सिरे पर पत्थर का बोझ बाँधा जाता है ...जिससे बल्ली खड़ी रहती है। एक मनुष्य कुएं के ...या जगत पर खड़ा हो कर रस्सी पकड़ डोल ...े में ढीलता है और जब डोल में पानी भर ...ता है उस समय धीरे धीरे डोल को ऊपर चढ़ने ...ता है। डोल के ऊपर चढ़ने में बल्ली में दूसरे सिरे ...बँधा हुआ पत्थर मदद करता है इसलिए मनुष्य ...खींचने में मेहनत नहीं होती। केवल यह देखना ...ता है कि बल्ली पीछे के बोझ के कारण एक साथ खड़ी न हो जाय। जब डोल पारचे के पास आ जाता है उस समय मनुष्य डोल का पानी पारचे पर उँडेल लेता है जो बरहे के रास्ते खेत में चला जाता है। ढेंकली से एक एकड़ भूमि की सिँचाई १० घंटे रोज के हिसाब से मि० फुलर के कथनानुसार ११ दिन में होती है और खर्चा १॥=) होता है।

कुएं से पानी खींचने का तीसरा औज़ार पुर वा चरसा है। इस पुर के आकार तथा पानी खींचने की क्रिया का विशेष वर्णन आवश्यक नहीं है क्योंकि सब किसान इसे अच्छी तरह जानते हैं। हाँ, चरसे से सिँचाई करने की रीति में जो नया ढंग काम में लाया जाता है और जिस में कम खर्च से अधिक काम होता है उसको चित्र सहित दिखाना अत्यावश्यक है जिस से किसानों को भी अनुभव कर काम लेने में सुगमता हो। चित्र नं० १७ में दोहरे पुर से पानी खींचने की रीति दिखाई गई है।

चित्र में देखने से जाना जाता है कि कुएं की जगत और चरसा खींचने के चौखटे में कोई विशेष योजना नहीं है। केवल दो चरसे पास पास एक ही पारचे पर आते जाते हैं और चरसों में सूंड लगी हुई हैं जिस से चरसे के ऊपर आते ही पानी पारचे पर खाली हो जाता है। इस प्रकार के सूंडदार चरसे जोधपुर, बीकानेर, गुजरात आदि की तरफ़ काम में आते हैं। दो चरसों के कुएं में ढीलने और खींचने के लिए चौखटे के सिरे पर घ१, घ२, घिरनियाँ लगी हुई हैं जिन पर हो कर च१, और च२, चरस की बरत क्रम से घूमती है। चौखटे के नीचे पारचे के पास छोटी छोटी छ१, और छ२ घिरनियाँ और हैं जिन पर चरसों की सूंड़ों में बँधी रस्सी चलती है। कुएं के चौखटे से कुछ ही पीछे दो बल्ले गड़े हुए हैं और वे चरसों की घिरनी की सीध में हैं। इन बल्लियों में दो गराड़ियाँ और लगी हुई हैं जिन पर हो कर चरसों की बरत तथा सूंड़ों की रस्सी पीछे की ओर जाकर चरखे में मिल गई है। चरसा च१ की बरत घिरनी घ१ पर हो कर और उसी चरसे की सूंड़ की रस्सी र घिरनी छ१ व छ२ पर होती हुई चरखे में सामने की ओर से लिपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई हैं। चरसे च२ की बरत ग्रोर रस्सी घिरनी घ२ ग्रोर गराड़ी छ२ ग्रोर छ४ पर होती हुई चरखे की पीठ पर हो कर लिपटी हैं। कुएं से अनुमान ८ फुट के अन्तर पर पारचे के चैाखटे के पीछे चरखा दो बड़े बल्लों के बीच में खड़ा किया गया है। प ध उस चरखे की धुरी है जो प ग्रोर ध चूलों पर घूमता है। चरखे के नीचे धुरी से एक छोटो बल्ली जड़ी हुई है जो चरखे से एक ग्रोर को कुछ निकली हुई है। इस बल्ली में एक सिरे की तरफ ज जूग्रा लगा हुग्रा है जिस में दो बैल जोते जाते हैं। जूग्रा बल्ली में एक कील पर इसलिए घूमता हुग्रा रक्खा जाता है कि जिस समय बैलों को एक ग्रोर घूमते हुए दूसरी ग्रोर घुमाने की जरूरत हो उस समय बैलों का मुँह सुगमता से बिना जूग्रा हटाए फेरा जा सके। जिस समय बैल जोते जाते हैं उस समय एक बैल चरखे के नीचे रहता है ग्रोर दूसरा चरखे से बाहर घूमता है।

अब इस चरखे से चरसों के ग्राने जाने का ढंग देखिए। जब चरसा च१ ऊपर ग्राता है तो उस चरसे की बरत ग्रोर रस्सी दोनों चरखे से लिपट जाती हैं ग्रोर रस्सी के तन जाने से चरसे की सूंड़ लम्बी हो जाती है ग्रोर घिरनी छ१ पर सूंड़ के ग्रा जाने से चरसे का पानी पारचे पर गिर जाता है। दूसरी ग्रोर चरसा च२ बरत व रस्सी के चरखे पर से खुलने पर ढीला हो कर नीचे उतरता है ग्रोर पानी तक पहुँचने पर उसमें पानी भर जाता है। जब चरसा च१ खाली हो जाता है तब बैलों के घूमने की दिशा बदल दी जाती है जिस से चरसा च१ की बरत ग्रोर रस्सी ढीली होती जाती है ग्रोर चरसा च१ नीचे उतरता है ग्रोर चरसा च२ की बरत ग्रोर रस्सी चरखे पर लिपटती जाने के कारण वह ऊपर ग्राता है ग्रोर पारचे पर ग्रा कर उक्त रीति से सूंड़ द्वारा खाली हो जाता है। इस प्रकार एक चरसा भरा ऊपर ग्राता है ग्रोर दूसरा खाली हो कर नीचे जाता है।

इस दोहरे चरसे के चरखे से सिंचाई करने में एक मनुष्य ग्रोर एक जोड़ बैल से काम लिया जाता है ग्रोर नियत समय में एक मामूली चरसे की अपेक्षा पानी भी अधिक खिंचता है अर्थात् कम खर्च ग्रोर मेहनत से अधिक पानी लिया जाता है। मान लें कि एक मिनट में चरसा पानी निकालता है ग्रोर प्रत्येक चरसे में ४ मन पानी समाता है तो एक घंटे में ३६० मन पानी खिंचा। दिन में ९ घंटे कुग्राँ चले तो एक दिन में ३२४० मन पानी हुग्रा। इतने पानी से अनुमान एक एकड़ धरती सींची जाती है ग्रोर एक जोड़ी बैल ग्रोर एक मनुष्य का खर्चा ।≡) रोज का होता है। यदि एक जोड़ी बैल ग्रोर दो मनुष्य काम करें तो ॥=) ग्राने में १। एकड़ धरती सींची जा सकती है।

दोहरे चरसे से पानी खींचने के लिए कुग्राँ चैाड़ा होना चाहिए। उसके बिना दो चरसे बराबर नहीं चल सकते। कूग्राँ जितना कम गहरा होगा पानी उतना अधिक निकाला जा सकेगा ग्रोर यदि चरखा भी अधिक घेर का बनाया जाय तो बैलों को भी उतने ही थोड़े चक्कर करने पड़ेंगे। ४० फुट गहरे कुएं से पानी खींचने में एक मिनट में एक चरसे का ग्रोसत ग्राया था। यदि कुग्राँ इस से कम गहरा हो तो पानी अधिक खिंच सकता है।

चैाथा तरीका रेंट से पानी खींचने का है। चित्र नं० १८ में दो ग्राकृतियाँ दी गई हैं। एक हलका सस्ता ग्रोर खेल है ग्रोर दूसरा बड़े बड़े फारमों के उपयोग का है ग्रोर उसे धनी जमींदार ही बना सकते हैं। ग्राकृति एक में गोल गट्टे ग्रोर ग्राकृति दूसरी में धात के डोल एक माला की सूरत में पहिए के ऊपर घूमते हैं। इन गट्टों वा डोलों की माला इतनी बड़ी होती है कि उसका एक सिरा पानी में डूबा रहता है। पहिए के चक्कर खाने से माला भी चक्कर पर चढ़ती है ग्रोर गट्टे व डोल कूएँ में नीचे जाते हैं ग्रोर वहाँ से पानी खींचते हुए या भरे हुए ऊपर ग्राते हैं। पहिए के ऊपर ग्राते ही ग्रोंधे हो जाने के कारण उनका पानी पारचे पर गिरता है ग्रोर वहाँ से खेत में जाता है। गट्टे या डोल पास पास होते हैं इसलिए पानी की धार बँध जाती है। दूसरी ग्राकृति में बड़ा रेंट है। इस से ३० फुट गहराई से एक घंटे में अनुमान २२५ मन पानी खिंचता है ग्रोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] प्रति दिन १० घंटे काम लिया जाय तो २२५० [illegible] पानी खिंचे जिस से पौन एकड़ धरती सींची जा [illegible]ती है जब कि बैल १॥ मील प्रति घंटे की चाल [illegible] घूमे। यदि चाल बढ़ाई जाय तो विशेष पानी खींचा [illegible] है। ऐसा रेंट एक बैल और एक मनुष्य से [illegible]ता है इसलिए खर्च भी कम ही होता है। ये रेंट [illegible] प्रकार के होते हैं। यहाँ पर एक बैल से चलने[illegible]के का हाल दिया गया है। यदि दो बैलों से काम [illegible] जाय तो दूना काम हो सकना सम्भव है।

ऊपर लिखे पानी खींचने के इन औज़ारों के [illegible] पम्प भी काम में आते हैं। ये पम्प दो प्रकार [illegible] होते हैं। एक तो एन्जिनों के बल से काम करते [illegible] ये कीमती होते हैं और छोटे ज़मींदारों के लिए [illegible]दायक नहीं क्योंकि इन पम्पों के लिए फारम [illegible] बड़े चाहिएँ। दूसरे वे पम्प हैं जो बैल [illegible] मनुष्य से चलते हैं। इस प्रकार के पम्पों [illegible] काम होता है वह बैलों के पुर के काम के [illegible] ही होता है और कीमत अधिक होती है और [illegible] कोई ऐब हो जाय तो गाँव में वह ठीक नहीं [illegible] सकता। इसलिये पम्प से खेत की सिंचाई [illegible]रण किसान नहीं कर सकता।

ऊपर कहे हुए साधनों से कितना पानी ८ घंटे [illegible] में खिंच सकता है इस बात की परीक्षा [illegible] जे० वेकर साहब ने बंगाल में की थी। उसका [illegible]म यहाँ देना विषय-बाह्य न होगा।

साधन का नाम	कूएँ की गहराई	पानी खिंचा प्रति घंटा मन	पानी खिंचा प्रति दिन ८ घं० मन	मनुष्य	बैल	दैनिक खर्च
[illegible]	५ फुट	५९८	४६२	४	...	॥=)
[illegible]	१६ फुट	४५०	३६२	२	...	।–)
[illegible]ों का पुर	४० ,,	२३१	१८४८	२	२	॥।–)
[illegible] पुर	४० ,,	२६१	२०८८	२	२	॥।–)
[illegible] बैल का रेंट	४० ,,	१०७	८५६	१	१	।=)॥
[illegible]ों का रेंट	४० ,,	३१०	२४८०	१	२	॥=)॥
[illegible] का सक-[illegible]शन पम्प	२५	११७	९३६	८	...	१।)
[illegible] का फोर्स पम्प	४०	२७०	२१६०	८	...	१।)

कोष्ठक के देखने से स्पष्ट है कि दो बैलों से चलनेवाला रेंट अधिक पानी खींचता है और उसमें खर्चा भी अधिक नहीं होता और एक दिन में एक एकड़ साधारण धरती तर की जा सकती है। एक एकड़ धरती पर एक इंच पानी भरने में २७५० मन पानी चाहिए।

—:०:—

(१०) परती धरती और फसल।

ऐसा देखने में आया है कि खेत में प्रति वर्ष फसल लिए जाने और खाद न देने से खेत की उर्वरा-शक्ति कम हो जाती है और इसलिए किसान खेत को कुछ काल के लिए परती छोड़ देते हैं और फसल नहीं बोते। इस प्रकार परती रखने के बाद जो फसल पैदा की जाय वह कुछ अच्छी होती है; क्योंकि धरती में के पौधे की पुष्टि करनेवाले पदार्थ धूप और हवा के कारण चैतन्य हो कर अपना कार्य्य करने लगते हैं। धरती को उपजाऊ रखने के लिए किसान को उचित है कि या तो धरती को परती रख और एक जाति की फसल के बाद दूसरी जाति के बोने का अनुक्रम स्वीकृत कर उर्वरा-शक्ति बनाए रक्खे या जो तत्व धरती में से कम हुए हों उनको खाद द्वारा पहुँचा कर खेत की उपज-शक्ति बनाए रहे। इस स्थान पर पहले परती रखने के विषय में थोड़ा सा विवेचन किया जाता है।

जुदा जुदा जाति के पौधों की पुष्टि और वृद्धि के लिए जुदा जुदा तत्वों की आवश्यकता होती है। एक ही जाति की फसल बराबर कई वर्षों तक बोने से धरती में से उस फसल की वृद्धि और पोषण करनेवाले तत्व कम होते जाते हैं और इसी कारण उस फसल की पैदावार भी कम होती जाती है। ऐसी दशा में धरती को कुछ काल के लिए विश्राम दिया जाता है और उसमें कोई फसल नहीं बोई जाती। इस विश्राम को ही परती रखना या छोड़ना कहते हैं। इस देश के किसान धरती को बिना जोते ही विश्राम देते हैं जिस से धरती के भीतर हवा, धूप तथा हिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि का प्रभाव नहीं पहुँचता और बहुत काल तक वह काम में नहीं आती। धरती परती रखने के जितने लाभ हैं वे उसी समय प्राप्त हो सकते हैं जब कि विश्राम के दिनों में वह अच्छी तरह गहरी जोत दी जाया करे, क्योंकि जोते जाने से वायु, सूर्य्य के प्रकाश और वर्षा के पानी को भी धरती के भीतर जा कर सुप्त तत्त्वों को जागृत और उपयोगी करने का अवकाश मिलता है। ऐसा करने से धरती की गई हुई उर्वरा-शक्ति लौट आती है। कभी कभी ऐसा भी करते हैं कि विश्राम के दिनों में खेत जोत कर उसमें चारे की फसल बो देते हैं और उसके कुछ बढ़ जाने पर खेत में ही जोत देते हैं जिस से धरती में खाद पड़ जाती है। कई वर्षों तक लगातार विश्राम न देकर ऐसा भी करते हैं कि एक दो फसलें खेत में पैदा करके एक फसल का विश्राम देते हैं या खेत के तीन चार विभाग कर एक विभाग को प्रति वर्ष विश्राम दे कर बाकी के विभागों को जोत बो देते हैं। ऐसा करने से प्रति तीसरे वा चौथे वर्ष हर एक भाग परती रह जाता है और विश्राम पा लेता है।

धरती को परती रखने के सिवा यदि फसलों को उलट फेर कर बोया जाय तो भी धरती की उर्वरा-शक्ति बनी रहती है और इस उलट फेर के संग फसलों का खेत से लेना उनका अनुक्रम कहा जाता है। अनुक्रम से फसल बोने से यह तात्पर्य्य है कि एक फसल जिस को एक विशेष तत्व अपनी वृद्धि के लिए चाहिए, बोने और काटने के बाद दूसरी फसल जिसको और ही तत्व पुष्टिपोषण को ज़रूरी हो बोई जाय। इस प्रकार तीन वा चार वर्ष तक तीन चार जुदा तत्व चाहनेवाली फसलें बो कर फिर पूर्व के क्रम से खेत में फसल बोना ही अनुक्रम है।

कृषि-रसायन-शास्त्र वेत्ताओं ने अपने अनुभव से जाना है कि गेहूँ की फसल को जितना पोटास चाहिए उस से पाँच गुना शलजम को, तीन गुना सेम को, और दुगना जई को दरकार होता है। और गेहूँ की फसल से पाँच गुना चूना जई को, और पचीस गुना 'सिलीका' जौ की फसल को दरकार होता है।

सब अनाज की फसलों को 'नाइट्रोजन' और 'फासफरस' की ज़रूरत होती है और जितनी दाल वा फली वाली फसलें हैं उनको चूना विशेष चाहिए। इस कारण यदि अनाज की ही पैदावार प्रति वर्ष खेत में की जाय तो 'नाइट्रोजन,' और 'फासफरस' एक दिन बहुत कम हो जायगा और फसल गिरती चली जायगी क्योंकि वायु, गरमी, प्रकाश और जल के प्रभाव से मिट्टी में से ये दोनों तत्त्व उपयोगी अवस्था में जितने परिवर्तित होंगे उस से अधिक की आवश्यकता फसल को होगी और वह पूरी न पड़ने पर फसल बलहीन ही होती जायगी। यदि अनाज की फसल लगातार न बो कर बीच बीच में दाल व फली की फसल बोई जाती है तो वह 'नाइट्रोजन' और 'फासफरस' के स्थान पर चूने का विशेष भाग लेगी और भूमि में के 'नाईट्रोजन', और 'फासफरस', के सुप्त परमाणुओं को वायु, प्रकाश और जल-तत्वों के संयोग से जीवित तथा उपयोगी होने का अवकाश मिलेगा और फिर अनाज की जो फसल बोई जायगी उस को पोषक खुराक विशेष मिल सकेगी। इस कारण एक तत्व से परिवर्धित होनेवाली फसल के बाद दूसरे तत्त्व से वृद्धि पानेवाली फसल बोई जाय तो बहुत लाभ होता है।

दूसरे, बहुत सी फसलों की जड़ें धरती में बहुत गहरी जाती हैं और बहुतों की जड़ें धरती के ऊपरी भाग में ही फैल जाती हैं। जिनकी जड़ें गहरी जाती हैं उन पौधों को धरती के अन्तरपड़ से ही खुराक पहुँचती है और जो जड़ें ऊपर के ही पड़ में फैलती हैं वे वहीं से खुराक लेती हैं और अन्तर पड़ को तत्त्व छोड़ देती हैं। रूई, नील, सेम, क्लोवर आदि की जड़ें गहरी जाती हैं और दाल, जौ, मडुआ आदि की जड़ें गहरी नहीं जातीं। इसलिए गहरी जड़ जानेवाली और ऊपर के पड़ में जड़ों को फैलाने वाली फसलें बारी बारी से बोई जायँ तो फायदा होता है और धरती की उर्वरा-शक्ति में अधिक तारतम्य नहीं होता।

अनेक फसलें ऐसी हैं जिनके कारण एक मु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ति के जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं और यदि उन्हीं फ़सलों को बराबर बोया जाय तो ये जन्तु अधिक ...ते जाते हैं। इस हेतु इन जन्तुओं की बढ़ती रोकने ...े लिए उन फ़सलों के पीछे ऐसी फ़सल बोनी चाहिए जिस से जन्तुओं को खुराक न मिले और ...सब नष्ट हो जायँ।

कोई कोई फ़सल ऐसी होती है जिसे बोने से खेत ...निकम्मी घास आदि बहुत उग आती है और कितनी ...ी फ़सलों के पौधे खुद इतने फैलते हैं कि अखोर ...ो बढ़ने का अवकाश ही नहीं मिलता। यदि प्रति ...र्ष कपास की ही फ़सल बोई जाय तो खेत में ...खोर इतना बढ़ जाता है कि उसका निकालना ...ठिन हो जाता है। परन्तु यदि कपास की फ़सल ...े पीछे ऐसी फ़सल बोई जाय जिस से अखोर रुक ...ाय तो धरती ख़राब नहीं होने पाती।

...कई फ़सलें (जैसे कि तम्बाकू, ईख आदि) ...ती हैं कि वे धरती में से अपनी खुराक इस ढंग ...लेती हैं कि उनको धरती में पहुँचाना कठिन हो ...ता है और धरती सतहीन और निर्बल पड़ जाती ...। दूसरी ओर ऐसी भी फ़सलें हैं जो धरती में से ...िए हुए तत्वों को उनके धरती में ही जोत दिए ...ाने से वापस ही नहीं पहुँचातीं बल्कि धरती की ...उर्वरा-शक्ति बढ़ा देती हैं। इन दोनों प्रकार की ...फ़सलों को हेर फेर से बोने से धरती में विशेष ...कमज़ोरी नहीं होने पाती।

जब किसान ने अपने खेत को उत्तम स्थिति में ...कर लिया हो तो उसमें ऐसी दो फ़सलें जिन का ...ना सफ़ेद होता है बोने से कोई हानि नहीं होती। ...यदि धरती हलकी जाति की हो तो गेहूँ के ...पीछे जौ बो सकते हैं और यदि धरती उत्तम ...दशा में हो तो गेहूँ के पीछे जई की फ़सल हो ...सकती है। पर इन फ़सलों का बोना उसी समय ...ठीक है जब धरती स्वच्छ और उत्तम स्थिति ...में हो।

...धरती में फ़सलों को हेर फेर वा अनुक्रम से बोने ...से (१) धरती स्वच्छ होती है, अखोर की बढ़वार रुकती है, (२) मनुष्य और पौधों को हेर फेर से खुराक मिल जाती है, (३) किसान को पूरे वर्ष भर के लिए काम मिल जाता है और (४) किसान की जोखों घट जाती है।

यहाँ पर यह भी दिखाना, कि फ़सलों को किस अनुक्रम से बोया जाता है, विषय-बाह्य न होगा। जहाँ छः वर्ष तक अनुक्रम रखते हैं वहाँ फ़सलों का क्रम बाजरा, आलू, दाल (फली की फ़सल) गेहूँ, और जौ है।

बहुत सी जगह चार फ़सलों का अनुक्रम रखते हैं। वहाँ बाजरा या और घासवर्ग की फ़सल तम्बाकू या आलू, तेलहन, बाजरा या धान।

गेहूं, कपास, तेलहन और गेहूं, इस प्रकार का भी हेर फेर फ़सलों में पाया गया है।

मि० बेन्सन साहब ने अपनी पुस्तक में चार वर्ष की फ़सलों का जो अनुक्रम लिखा है वह इस प्रकार है—

पहले वर्ष—	गरमी में	तिल (बोए जायँ)।
	सरदी में	जुआर और कपास।
दूसरे वर्ष—	गरमी में	कपास (खेत में रहे)।
	सरदी में	चना।
तीसरे वर्ष—	गरमी में	बाजरा।
	जाड़े में	नील।
चौथे वर्ष—	गरमी में	नील की फ़सल खड़ी रहे।
	जाड़े में	महुआ और अरहर।

---

(११)

खेतका निराव और सफ़ाई।

खेत में हल चलाना, हेंगा फेरना, पटेला फेरना, बीज बोना और सिंचाई करना ही काश्तकार के काम नहीं हैं। उसका यह भी काम है कि बीज बो देने के पश्चात् अपने खेत को साफ़ सुथरा रक्खे जिस से खेत में अखोर अर्थात् निरर्थक घास पात न उग आवे। यदि वह उगेगा तो धरती में से अपनी खुराक अवश्य लेगा, जिससे जो फ़सल बोई गई है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका पेट कटेगा और उसको खुराक का टोटा रहेगा। इन घास पात के न बढ़ने देने के हेतु कहीं कहीं बोए हुए खेत में हेंगा चलाते हैं जिस से घास-पात जड़ से उखड़ जाता है, धरती ढीली और मुलायम होती है। हेंगा उसी समय तक चलाना चाहिए जब तक फ़सल अंकुरित होने के बाद कुछ बढ़ न आई हो। जब पौधे कुछ ऊँचे हो जाते हैं उस समय खेत को हाथ से ही निराया जाता है। निराने का भी मुख्य उद्देश्य यही है कि धरती ढीली हो जाने से वायु, प्रकाश और पानी का प्रभाव धरती के भीतर पहुँच जाय, पौधों को भोजन ठीक ठीक मिलता रहे और खेत में घास पात न उग आवे।

जहाँ तक बन पड़े किसान को अपने खेत को घासपात रहित और साफ़ सुथरा रखना चाहिए। खेतों की मेड़ों, बरहों तथा पगडंडियों आदि समीप के स्थानों पर भी अखोर न उगने देना चाहिए; नहीं तो घासपात निरर्थक पौधों के बीज पवन द्वारा उड़ कर खेत में आवेंगे और वहाँ पर जम जायँगे। इसी प्रकार बहुत सी वनस्पतियों के बहुत सूक्ष्म बीज जल-प्रवाह के संग तथा पक्षियों द्वारा भी आ जाते हैं। जब धरती पर घासपात अधिक उग जाता है तब धरती गंदी कही जाती है। जैसे मनुष्य अपने शरीर को स्वच्छ और सुथरा रखने से नीरोग रहता है वैसे ही धरती को घासपात आदि बाधक और निरर्थक वनस्पतियों से रहित शुद्ध और सुथरा रखने से पौधे अच्छी तरह उगते हैं। निराव करने से जो घासपात मिले उसको यों ही न छोड़ना चाहिए वरन् उसको या तो जला कर राख कर दे या खेत के एक कोने में गाड़ दे। यदि हो सके तो इन वनस्पतियों को एक गड्ढे में रख कर तरी गरमी से सड़ावे और फिर खेत में खाद के काम में लावे।

कोई कोई वनस्पति ऐसी होती है जिसकी जड़ें बहुत गहरी धरती में उतर जाती हैं और किसी किसी की जड़ों में कंद की सी बहुत छोटी छोटी गाँठें होती हैं। यदि इन जड़ों को काट दें तो जड़ों के टुकड़े ही फूट कर उग निकलते हैं। इस प्रकार की वनस्पतियों को निरा कर निकालना कठिन काम है और हेंगा, कुदाल, फावड़े आदि से ही ये उखाड़ी जा सकती हैं। निराने वा हेंगा चलाने के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आदमी वा बैलों के पैर से उखाड़ी हुई घास फिर दब न जाय। यदि वह धरती में दब गई तो उसके पुनः उग उठने का भय ही है और यदि कहीं उस समय धरती में नमी भी हुई तो वह अवश्य ज़ोर पकड़ लेगी। इसलिए जहाँ तक बने निराव में घासपात को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए।

—:०:—

परिशिष्ट।

खाद।

खाद के विषय में एक छोटा सा निबन्ध मैंने अपनी लिखी पुस्तकावलि में कृषिविद्या भाग २ में दिया है। वह निबन्ध श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय के स्वामी ने अपने सत्व से छपाया है। इस हेतु उसका इस कृषिविद्या भाग १ में लिखना ठीक नहीं। जिन महाशयों को वह निबन्ध देखना हो वे उक्त प्रेस से मँगवा कर देखें। परन्तु उस निबन्ध को छपे आज चौदह पन्द्रह वर्ष हो गए और इतने वर्षों में कृषि-सम्बन्धी अनेक बातें अधिक मालूम हुईं जिनका हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियों के समक्ष रखना भी अत्यावश्यक है; क्योंकि यह ग्रंथावलि हिन्दी छात्रों के लिए ही है, इसलिए उस निबन्ध के लेखों के सिवा और जो कुछ मालूम हुआ वह इस स्थल पर लिखना अनुचित न होगा। इसी विचार से यह परिशिष्ट और जोड़ा गया है।

खेत से प्रति वर्ष फसल लेते रहने से धरती में के पौधों के पोषक द्रव्यों की कमी होती जाती है और ज्यों ज्यों ये द्रव्य वा तत्त्व कम होते जाते हैं त्यों त्यों खेत की उपज कम होती है। धरती की उपज शक्ति को बनाए रखने के कई उपाय हैं जिनमें धरती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती रखना और फसल का अनुक्रम पूर्व में बताया गया है। इस स्थान पर खाद देकर उर्वरा-शक्ति को बनाए रखने के उपाय लिखे जाते हैं।

हमारे देश के किसान प्रायः अनपढ़ हैं और कृषि-विद्या के सिद्धान्तों से अंज्ञान हैं और इस कारण कृषि-सम्बन्धी रसायन विद्या द्वारा सिद्ध की हुई नवीन उंच श्रेणी की खादों का उपयोग आदि कुछ भी नहीं जानते और सहस्रों वर्ष की पुरानी रीति पर ही आरूढ़ हैं। ऐसे मनुष्यों के लिए उनकी बहुकाल से अवलम्बित रीति में ही फेर फार कर उनको सुधार पर लाना ठीक है। जो जो वस्तुएं किसानों को सुगमता से प्राप्त हो सकती हैं उनका ही वे ठीक रीति से उपयोग करें तो आशा है कि वे धरती की घटती हुई उर्वरा-शक्ति को फिर चेतन कर सकते हैं। वे वस्तुएं जिन को वे सुगमता से खाद के उपयोग में ला सकते हैं, पशुओं का गोबर, लीद, मेंगनी, मूत्र, हरी वनस्पति, सूखे पत्ते, खर और मनुष्य का मलमूत्र हैं।

हर एक गाँव में गाय बैल भैंसें आदि होती हैं। उनका गोबर और मूत्र, घोड़ों गधों की लीद और मूत्र, इन पशुओं के खाने के पश्चात् बचा चारा आदि और गाँव का कूड़ा करकट इतना हो सकता है कि जिसको यदि खाद के काम में लाया जाय तो गांव के बहुत से खेत अधिक उपज देने योग्य हो जायँ। पर हमारे देश भाई ऐसी बढ़िया खाद गोबर को उपयोग में न लाकर कंडे थापते और जलाने के काम में लाते हैं वा लीपने के काम में लाते और कंडों की जो राख होती है उसको तथा ढोरों के खाने से बचे चारे को और गाँव के कूड़े को वृथा फेंक देते हैं। उनको उचित है कि वे अब इस ओर अपना ध्यान लगावें और अपनी धरती सुधारें। गोबर मूत्र लीद आदि गाँव की खादें कई रीतियों से बनाई जाती हैं परन्तु यहाँ पर एक दो रीतियाँ ऐसी लिखी जाती हैं जिनसे किसान सुगमता से खाद बना सकता है। गोबर का उपयोग ईंधन के तौर पर न किया जाय तो किसानों को अपनी रोटी बनाने को ईंधन ही न मिले; क्योंकि जंगल रहे नहीं, जहाँ से ईंधन मिल सके और जो मिलता भी है वह पहले समय की अपेक्षा अधिक मँहगा मिलता है। इस ईंधन की कठिनता को दूर करने के लिए किसानों को चाहिए कि अपने अपने खेतों की हद पर ईंधन देनेवाले पेड़ उगावें और जहाँ तक बने गोबर को खाद के काम में लावें तो अति श्रेष्ठ है। गोबर लीद मूत आदि की खाद पौधों की खुराक है जो खेत की धरती में मिला दी जाती है और वह धरती में के स्वाभाविक तत्वों की कमी पूरी कर देती है। इस खाद का उपयोग धरती में के भौतिक तत्वों को पोषण करना ही नहीं है वरन् उन तत्वों को गलाना अर्थात् उनके परमाणुओं को जुदा जुदा कर देना है जो वनस्पतियों की जड़ों को आहार पहुँचाते हैं। इस खाद के संग मिला भूसा, पयार आदि धरती में जब सड़ते हैं और उनके तत्वों के परमाणु बिखरते हैं तो वे कठोर धरती के परमाणुओं को जुदा जुदा कर देते हैं जिससे पानी और वायु धरती के भीतर घुस सकते हैं। गोबर, लीद, मूत आदि की खाद में उन सब तत्वों के साथ जो वनस्पति की राख में होते हैं 'नाइट्रोजन' नाम की गैस भी होती है और जब इसके साथ भूसा पयार आदि भी मिल जाते हैं तो यह खाद सब फसलों और धरतियों में सब ऋतुओं और सब देशों के काम की हो जाती है और इसी कारण ऐसी खाद को सर्वोपयोगी साधारण खाद कहते हैं। गोबर आदि की पशुजन्य खाद अर्थात् 'खेत की खाद' के तीन भाग हैं। (१) द्रव भाग (मूत्र) जो बहुत शीघ्र ही गुण करता है और शीघ्र ही उड़ भी जाता है और इसमें 'नाइट्रोजन' वायु तत्त्व विशेष होता है। (२) मूत्र से कम शीघ्र गुण दिखानेवाले गोबर लीद आदि हैं। (३) गौशाला घुड़शाला आदि का भूसा घास और कूड़ा जो धरती में बहुत दिनों तक ज्यों का त्यों रहता है और धीरे धीरे धरती में उसे उर्वरा करने के गुण प्रकट करता रहता है। पशुमल की खाद के गुण बहुत धीरे धीरे मालूम होते हैं और बहुत वर्षों तक होते रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पश्चिमी कृषकों के अनुभव के अनुसार यह कह सकते हैं कि एक समय की दी हुई खाद तीस चालीस वर्ष तक थोड़ा बहुत गुण देती है। एक बहुत बड़े समय तक पशुमल की खाद के गुण प्रकट होते रहने से स्पष्ट होता है कि खाद देने से धरती की उर्वरा-शक्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है। प्रति चौथे वर्ष खाद देते रहने और धरती की पूरी सँभाल रखने से ज़रखेजी बढ़ती है। इस से यह अनुमान होता है कि इंगलिस्तान की धरती की उपज-शक्ति पशुमल की खाद से ही आज के समय की उच्च स्थिति तक पहुँच गई है।

पशुमल की खाद के श्रेष्ठ गुण निम्नलिखित बातों पर निर्भर हैं।

(१) ढोर की जाति पर, अर्थात् गाय भैंस का गोबर पतला और ढीला होता है। यदि ढेर लगा कर भी रक्खा जाय तो शीघ्र गरमा नहीं जाता; पर घोड़ों आदि की लीद सूखी होने से शीघ्र ही गरमा जाती है और ढेर लगा कर रखने में उस पर सफ़ेद पपड़ी उत्पन्न हो जाती है और भूसा पयाल आदि जो उसमें मिला होता है वह सब उससे भर कर सूख जाता है। भेड़ बकरी की मेंगनियां मध्यम होती हैं। सब पशुमलों के जुदा जुदा स्वभाव और गुण के होने के कारण इन सब को एक में कर के रखना चाहिए। (२) पशुओं की अवस्था और स्थिति पर। छोटे छोटे बच्चों के शरीर, अवयव और अंगों की वृद्धि के लिए चारे और खुराक का उत्तमांश काम में आ जाता है; इस हेतु उनका मल (गोबर, लीद, मेंगनी) कमजोर होता है जब कि जवान ढोर के गोबर में पौधे की खुराक के अंश अधिक रहते हैं। पतले दुबले पशु खुराक वा चारे में के पोषक तत्त्वों को शरीर में अधिक रख लेते हैं और उनका मल हलका होता है पर हृष्ट पुष्ट पशु में इसके विपरीत होता है। अर्थात् मोटे ताजे ढोर के मल में पौधों के उपयोगी पदार्थ अधिक रहते हैं। गाभिन और दूध देनेवाली गाय भैंस का गोबर हलका होता है क्योंकि पौधों की वृद्धि के उपयोगी तत्त्व गर्भ और दूध के बनने में काम आ जाते हैं। (३) ढोर के चारे आदि खुराक पर। जिन ढोरों को निरा भूसा कड़वी वा घास ही खिलाई जाती है उनका मल अनाज और खल खानेवाले पशुओं से हलके गुण का होता है। परीक्षा करने पर ढोरों के गोबर पर चारे वा खुराक का जैसा प्रभाव पड़ा है उसको उत्तम मध्यम कनिष्ट क्रम से इस भाँति दिखाया गया है;—भूसी, उनरे बिनौलों की खली, सरसों की खली, अलसी की खली, बिनौलों की खली; मटर, चना, भूसी, जई, गेहूँ, जौ, क्लोवर घास; और मटर आदि का भूसा, जई का भूसा, गेहूँ का भूसा, जौ का भूसा, आलू, शलगम, गाजर आदि। (४) ढोर के स्थान गोशाला थान आदि पर। गौ भैंस घोड़े आदि पशुओं के बाँधने के स्थान छायावाले होने चाहिएं जहाँ उनकी और गोबर लीद आदि खाद के उपयोगी पदार्थों की वर्षा, सरदी और धूप से रक्षा हो सके। उनके रहने के स्थान पर भूसा, सूखी घास, पत्ते आदि बिछाने चाहिएं जो उनके मूत्र को अच्छी तरह सोख लें और गोबर लीद आदि उनके पैरों से खुँदने से अच्छी तरह उनमें मिल जाय। (५) गोशाला वा थान में भूसे घास के फैलाने पर। गोशाला वा थान की भूमि खुली या नंगी न रक्खी जाय क्योंकि ऐसी रखने से मूत्र या तो बह जाता है या धरती में सूख जाता है वा भाफ होकर वायु में मिल जाता है। ढोर के बँधने के स्थान पर भूसा, सूखी घास, चरी आदि जो खाने से बच रही हो जिस को, ढोर खाते न हों बिछौने की भाँति फैलाने से मल मूत्र उस में ही मिल जाता है और पैरों से खुँद कर एक मेल हो जाता है। पशु के इस बिछौने को दूसरे तीसरे दिवस बदलते रहना चाहिए और मल मूत्र सहित सब को किसी छायावाले गड्ढे में एकत्र करना चाहिए। पर इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि भूसा घास आदि का भाग अधिक न हो जाय; नहीं तो खाद का कमजोर हो जाना सम्भव है। (६) खाद के एकत्र करने तथा उसके उपयोगी करने की रीति पर। प्रायः किसान तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य जो गाय भैंस आदि पालते हैं गोबर या खुले में जमा करते हैं। वहाँ वे या तो मेंह धुल कर बह जाते हैं या धूप में सूख जाते हैं। या लीद की खाद खुले में रखने से उसमें के अधिक भाग गरमी से भाफ हो कर उड़ जाते हैं वा खमीर उठने के कारण सड़ जाते हैं और फिर के पानी में घुल कर बह जाते हैं। इसलिए लीद मूत्र आदि पशु-मल मूत्र को इकट्ठा करने और उससे उत्तम खाद बनाने के लिए ऐसा करना उचित है कि जिस स्थान पर वे बँधते हैं वहाँ की भूमि ठोस और चिकनी करे और एक ओर को ढालुआं दे। यदि शाला वा थान इतना चौड़ा हो कि पशुओं की दोहरी कतार बँध सकती हो तो ढाल की ओर होनी चाहिए। ढाल की ओर एक नाली बनावे जो शाला से बाहर एक हौज या टब में जा मिले। इस नाली में हो कर ढोर का मूत्र हौज या टब में एकत्र होगा। पशु का गोबर और लीद, प्रति दिन एक गड़हे में जो पास ही हो एकत्र किया जाय। गड़हे के पेंदे और बगलों को चिकनी पोतनी मिट्टी से प्लास्टर कर ऐसा ठोस किया जाय कि उसमें पानी न जा सके। गड़हे पर छाया भी होनी चाहिए जिस से सूर्य की धूप और मेंह का असर उस पर न पड़े और उसके चारों ओर मेंड़ बाँधी जाय जिससे आस पास का पानी गड़हे में न जा सके। प्रथम गड़हे के पेंदे में दो तीन इंच का राख का पड़ लगावे और फिर प्रति दिन का गोबर, लीद, बचा हुआ चारा, सूखी घास, पत्ते तथा और कूड़ा करकट उसमें डाले और हौज या टब में का मूत्र उस पर से छिड़क कर सब को खूँद कर एक मेल कर दे। जब सब एक हो जाय तब उसको गड़हे में भर कर ऊपर से एक दो इंच मिट्टी का थड़ जमा दे। गड़हे के भरने में यह अवश्य ध्यान रक्खे कि दिन की इकट्ठी की हुई खाद गड़हे में खूब दबा कर भरी जाय। शाला वा थान की भूमि पर पशुओं के मूतने से मूत्र का कुछ भाग धरती में शोषण होता रहेगा, इस लिए दूसरे चौथे दिन वहाँ की भूमि की मिट्टी खुरच कर गड़हे में गोबर आदि पर फैला दिया करे और गोशाला वा थान के तल पर नई मिट्टी बिछा कर पीट पाट कर ठोस कर दिया करे। जब एक गड़हा भर जाय तब उसके ऊपर मिट्टी का मोटा थड़ जमा कर छोड़ दे और दूसरे गड़हे को भरना शुरू करे। जब खाद सड़ गल कर तैयार हो जाती है उस समय वह काले रंग की हो जाती है और इसमें दुर्गंध भी नहीं रहती। खाद को गड़हे में से निकालने के समय ऊपर ऊपर का जितना भाग न सड़ा हो और कच्चा रहा हो उतने को जुदा कर बाकी को खेत में देना चाहिए और कच्ची बची खाद नए गड़हे के पेंदे में रखनी चाहिए।

ऊपर लिखित रीति से जब खाद तैयार हो जाय उस समय वह खेत में देने योग्य होती है। जिस समय खाद खेत में लाई जाय उसी समय उसको खेत में फैला कर हल चला देने से वह खाद धरती में मिल जायगी। कदाचित् खाद को खेत में ढेर लगा कर इकट्ठा करना हो तो उसको इकट्ठा कर ऊपर से उसे मिट्टी से अवश्य ढक दो; परन्तु उसको छोटी छोटी ढेरियों में मत लगाओ जैसा कि किसान प्रायः करते हैं। वरन् बड़ा ढेर लगा कर उसको मिट्टी से ढक दो। जब खेत में देना हो तब उसको फैला कर हल चला देना चाहिए।

हरी वनस्पति की खाद—धरती की उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए खेत में उगी हुई हरी फसल जोत देते हैं जिसके धरती में सड़ गल कर मिल जाने से पौधों की खुराक के सब तत्त्व ज्यों के त्यों पहुँच जाते हैं। हरी वनस्पति की खाद से भूड़ा धरती में पानी के शोषण और धारण करने की शक्ति बढ़ती है और मटिआर धरती में से चिकनापन दूर होता है और उसके परमाणु जुदा जुदा हो कर जुताई आदि करने में सुगमता उत्पन्न करते हैं। ऐसी खाद के लिए ऐसी फसल होनी चाहिए जो शीघ्र तो उग जाय और फैल कर धरती को ढक ले पर उसमें घास पात आदि निरर्थक पौधे न बढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकें। खाद के लिए जो फसल बोई जाय उसको फूल निकलने से पहिले ही जोत देना ठीक है और उसके एक मास पीछे दूसरी फसल बोनी चाहिए। इतने काल में हरी खाद सड़ कर धरती में एक-जीव हो जायगी।

नीली वा हरी खाद के लिए फली में अनाज उत्पन्न करनेवाली फसल कुलथी, सन, नील, चैाराई, सरसों, राई, आदि हैं क्योंकि इन पैाधों की जड़ों में बहुत छोटी छोटी गाँठे होती हैं। उनमें 'बेक्टीरिया' नाम के सूक्ष्म वानस्पत्य जीव होते हैं। ये सूक्ष्म जन्तु वायु में से 'नाइट्रोजन' चूसते हैं और इसी कारण हरी खाद के लगने के पीछे धरती में अनाज की फसल को नाइट्रोजन मिल जाता है।

ऊपर की रीति के सिवा हरे वृक्षों और पैाधों की कोमल डालियां और पत्तों को इकट्ठा कर खेत की धरती में फैला कर हल से जोत कर मिला दिया जाय तो भी हरी खाद लग जाती है। यह रीति ऐसे खेतों में काम की होती है जहाँ धरती तर रहती हो जैसे धान के खेत में।

सूखे पत्तों की खाद—ऐसा देखा जाता है कि पेड़ों के पतझड़ होने से जो पत्ते भूमि पर गिरते हैं वे विशेष कर व्यर्थ जाते हैं या भड़भूँजे उन्हें भाड़ में झोंकने के लिए ले जाते हैं। यदि सूखे पत्ते सड़ा कर खाद में दिए जायँ तो भी धरती की शक्ति बनी रहती है। सड़े पत्तों की खाद माली बहुत काम में लाते हैं क्योंकि वह फूलवाले पेड़ों के बड़े काम की होती है। उस खाद में १/२ नाइट्रोजन, १/१० भाग से ३/१० तक 'फास्फ़ेरिकएसिड', और १/१० से ३/१० तक 'पोटास' प्रति सैकड़ा होता है। सूखे पत्तों को यदि गोशाला में बिछाने के काम में लावें तो उनमें गोमूत्र आदि मिल कर अच्छी खाद बन सकती है।

इन ऊपर कही हुई खादों के सिवा लकड़ी को आरी से चीरने से उत्पन्न बुरादा, पत्थर के कोयले का महीन चूरा, जुदा जुदा पैाधों की पराल भी खाद के काम आती है। लकड़ी का बुरादा गोशाला में बिछाने से गोबर और मूत्र में मिल कर खाद हो जाता है। कोयले की राख में पोटास होता है जो दुर्गन्धि दूर करता है; इस हेतु कोयले के चूरे को दुर्गन्ध-वाली खाद में मिला कर देते हैं। इसमें 'एमोनिया' अर्थात् नौसादर का अंश विशेष होता है। अनाज के पैाधों की पराल में ३/१० भाग 'नाइट्रोजन' रहता है और तेलहन की जाति के पैाधों में २ प्रति सैकड़ा होता है, इस हेतु खाद के काम में अच्छा रहता है।

खली की खाद—वनस्पति-जन्य खादों में खली बहुत गुणवाली खाद है। नियम यह है कि खली में तेल का अंश जितना कम रहेगा खली खाद के लिए उतनी ही विशेष उपयोग की होगी। क्योंकि वह धरती में मिल कर शीघ्र ही सड़ गल जायगी और शीघ्र ही गुण दिखावेगी। यदि खली पुरानी हो और बुस गई हो तो खेत में दे देनी चाहिए। खेत में मिलाने से पूर्व खली को तोड़ कर महीन किया जाता है और तब उसको प्रति एकड़ ६ मन से १२ मन तक बिखेर कर हेंगे से धरती में मिला देते हैं। खली को पैाधों के उग आने पर बुरक देते हैं। पर सबसे श्रेष्ठ रीति वही है कि बीज बोने से पूर्व ही खेत में खली को मिला दिया जाय। ईख, केले, पान, अदरख, हलदी, धान आदि पीत की फसलों के लिए खली की खाद विशेष काम की है। यह खाद एक समय में ही सब नहीं देते वरन् थोड़ी थोड़ी कई बार कर के देने में अच्छा रहता है। जिस जाति की खली ढोर की खुराक के लिए अच्छी मानी गई है उसको खाद के काम में लाना उचित नहीं है क्योंकि उस खली को ढोरों को खिलाने से उनके गोबर में खली के गुण आ जाते हैं और पशुमल की खाद में उसकी भी खाद लग जाती है।

(शेष आगे)

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा का कार्यविवरण।

साधारण सभा

शनिवार ता० ३१ अक्तूबर १९१५ संध्या
के बजे स्थान सभा-भवन।

(१) बाबू गौरीशंकरप्रसाद जी के प्रस्ताव, तथा बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के अनुमोदन पर बाबू माधवप्रसाद सभापति चुने गए।

(२) प्रबन्धकारिणी समिति के ४ जुलाई और ३० जुलाई के कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(३) गत अधिवेशन (तारीख़ २९ अगस्त १९१४ का) कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(४) सभासद होने के लिए निम्न-लिखित सभासदों के फ़ार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१ सांवलिया बिहारीलाल वर्म्मा—ठि० बाबू मथुराप्रसाद रजिस्ट्रार मुजफ़्फ़रपुर ५)
२ ठक्कर मुरारजी बल्लभदास उमरसी—मुम्बई-बाज़ार करांची १॥)
३ पंडित हुबलाल शर्म्मा ओवरसियर—बरिया-घाट मिर्ज़ापुर १॥)
४ बाबू रामगोपाल चौधरी—चीना नायकर स्ट्रीट नं० ८ मदरास ५)
५ बाबू कृष्णदेवनारायणसिंह रईस और ज़मींदार—आज़मगढ़ ३)

(५) पंडित सत्यदेव जी का ५ अक्तूबर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे अब से चन्दा नहीं दे सकते। निश्चय हुआ कि पंडित सत्यदेव जी का नाम उन सभासदों की नामावली में लिख लिया जाय जिन का चन्दा क्षमा है।

(६) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१ पंडित दत्तात्रय काशीनाथ करमरकर ब्यावर
२ बाबू बिठ्ठलदास बाजारगंज मुरादाबाद
३ बाबू देवीप्रसाद हेडमास्टर एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल बिजावर
४ पंडित शिवप्रसाद अग्निहोत्री दारागंज प्रयाग
५ पंडित चुन्नीलाल शर्म्मा पेन्शनर पोस्ट-मास्टर सागर
६ ठाकुर जगरामसिंह बजाजा आगरा
७ बाबू आनन्दीलाल गुप्त जुरहरा भरतपुर
८ बाबू प्यारेलाल हेडमास्टर तलाड़—सिहोरा ज़िला जबलपुर

(७) मंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दीः—

१ स्वामी सत्यगुरुप्रसादशरण—गोंड़ा
२ पंडित दामोदर ध्यानी—नैनीताल
३ ठाकुर गणपतिसिंह वर्म्मा—चन्द्रखुरी रायपुर
४ बाबू बैजनाथप्रसाद कौलापुरी केराकत ज़िला जौनपुर
५ बाबू कुन्दनलाल मालवीय—बैतूल
६ बाबू दुर्गाप्रसाद रघुनाथप्रसाद खेवरिया-सागर, सी. पी.
७ बाबू मल्लूमल वकील—मेरठ
८ पंडित गौरीशंकर मिश्र—संकठा जी का मन्दिर—काशी

सभा ने इनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया।

(८) निश्चय हुआ कि पंचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए निम्नलिखित सज्जन सभा की ओर से प्रतिनिधि चुने जायँ। —(१) बाबू गोपाल-लाल खत्री—लखनऊ (२) पंडित गोकरणनाथ मिश्र—लखनऊ (३) पंडित बद्रीनाथ शर्मा वैद्य मिर्ज़ापुर (४) राय पूरनचन्द—पटना (५) ठाकुर शिवकुमार सिंह—इलाहाबाद (६) पंडित सूर्य-नारायण दीक्षित एम० ए० खीरी—लखीमपुर (७) बाबू हरिकृष्ण जौहर—कलकत्ता (८) पंडित रामानन्द द्विवेदी—कलकत्ता (९) बाबू दामोदर-दास खण्डेलवाल—कलकत्ता (१०) बाबू पुरु-षोत्तमदास टंडन—प्रयाग (११) पंडित अयोध्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह उपाध्याय—आज़मगढ़ (१२) ठाकुर हनुमन्त सिंह—आगरा (१३) पंडित चन्द्रधर शर्म्मा बी० ए०—अजमेर (१४) बाबू काशीप्रसाद जायसवाल बी० ए०—बांकीपुर (१५) पंडित रामावतार पाण्डेय एम० ए०—बांकीपुर (१६) पंडित मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०—बस्ती (१७) पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०—लखनऊ (१८) बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०—लखनऊ (१९) माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय बी० ए० एल एल० बी०—इलाहाबाद (२०) पंडित श्रीधर पाठक—इलाहाबाद (२१) बाबू सूर्यप्रसाद गुप्त—गया (२२) मास्टर वृन्दाबन अग्रवाल—छत्रपुर (२३) पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी -कानपुर (२४) पंडित गणेशविहारी मिश्र—लखनऊ (२५) बाबू दामोदरदास खण्डेलवाल—कलकत्ता (२६) बाबू देवीप्रसाद—बस्ती (२७) बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त—काशी (२८) डाकृर कालीचरण दुबे—काशी (२९) बाबू गंगाप्रसाद गुप्त—काशी (३०) बाबू जयरामदास—काशी (३१) पंडित जानकीशरण त्रिपाठी—काशी (३२) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा काशी (३३) बाबू जगन्मोहन वर्म्मा काशी (३४) दुबे सांवल जी नागर—काशी (३५) पंडित देवीप्रसाद उपाध्याय—काशी (३६) पंडित गिरिजाकान्त ओझा—काशी (३७) बाबू बेणीप्रसाद खत्री—काशी (३८) लाला भगवानदीन काशी (३९) बाबू रामचन्द्र वर्म्मा—काशी (४०) पंडित केदारनाथ पाठक—काशी (४१) बाबू गौरीशङ्करप्रसाद जी--काशी (४२) पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० -काशी (४३) पंडित रामचन्द्र शुक्ल—काशी (४४) बाबू देवीप्रसाद खत्री—काशी (४५) बाबू रामशङ्कर नेपाली काशी और (४६) पं० ब्रजभूषण ओझा—काशी।

(९) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं:—

पंडित श्रीराम शर्म्मा १६० सूतापट्टी-कलकत्ता
श्रीमद्भगवद्गीता विचारदर्पण सहित

पंडित रघुनाथ माधव भगाड़े मुन्सिफ़ भंडारा
हिन्दी ज्ञानेश्वरी

पंडित बलवन्तरावसिंह सी० वी० ग्रो० ग्वालियर, श्रीस्मरण मंगलस्तोत्र

श्रीजैन-धर्म प्रचारिणी सभा बाराबंकी
गृहस्थाचरण

मेसर्स हरिदास एण्ड को० कलकत्ता
रामराज्य वियोग नाटक
साहित्यसेवा
माधवमंजरी
मेवाड़गाथा
नीतिकविता
प्रेमप्रशंसा

सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

मंत्री
नागरी प्रचारिणी सभा
काशी।

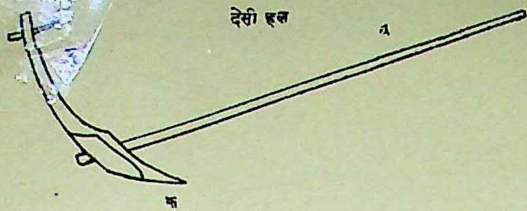
—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

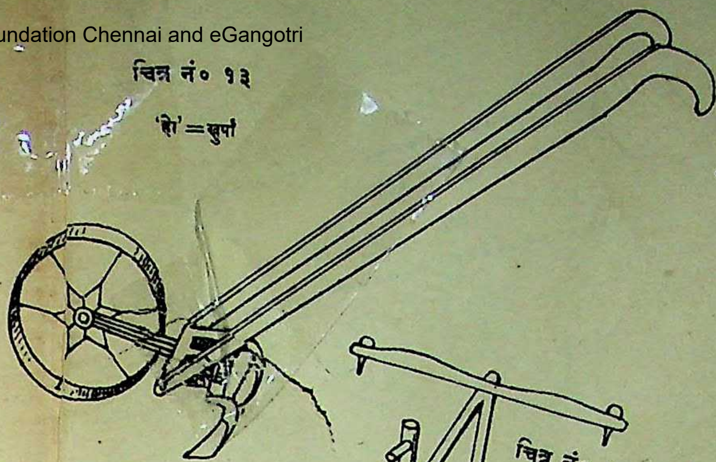
चित्र नं० ७

देशी हल



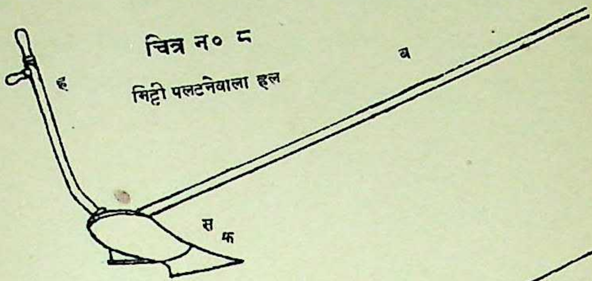
चित्र नं० १३

'हो'=खुर्पा



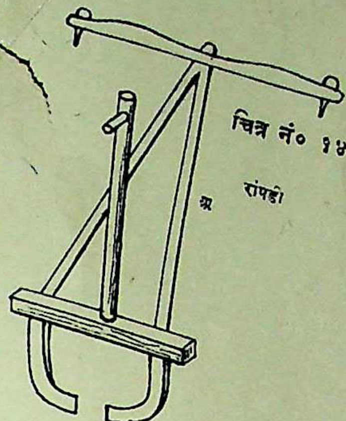
चित्र नं० ८

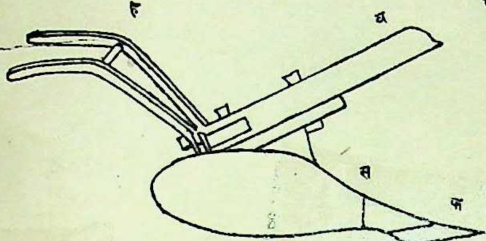
मिट्टी पलटनेवाला हल



चित्र नं० १४

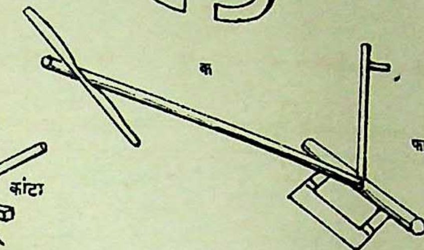
रांपड़ी

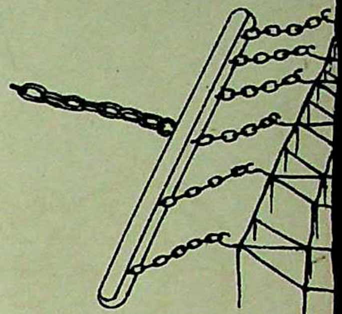




रोकड़ा हल

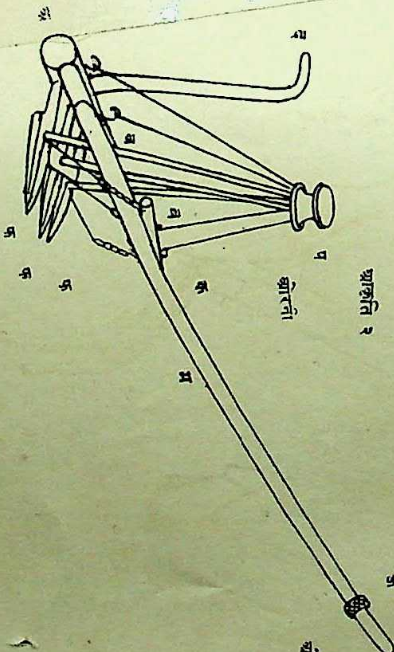


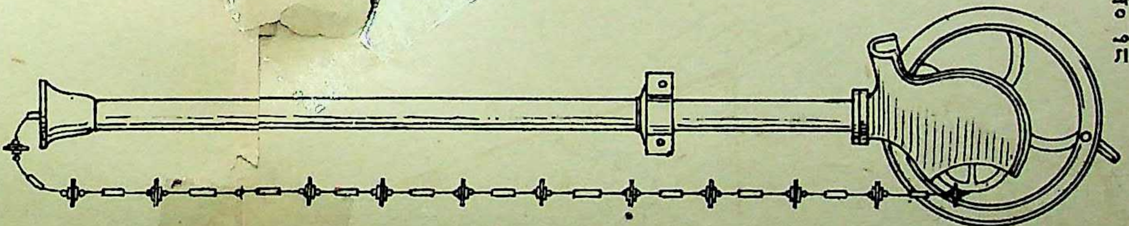




प्रति

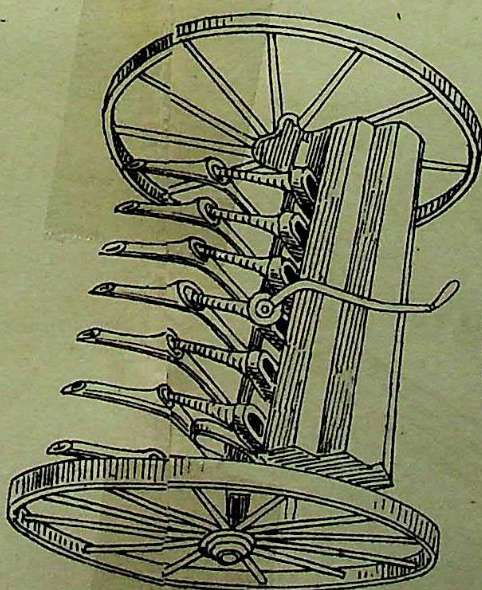
...क मूल्य १।



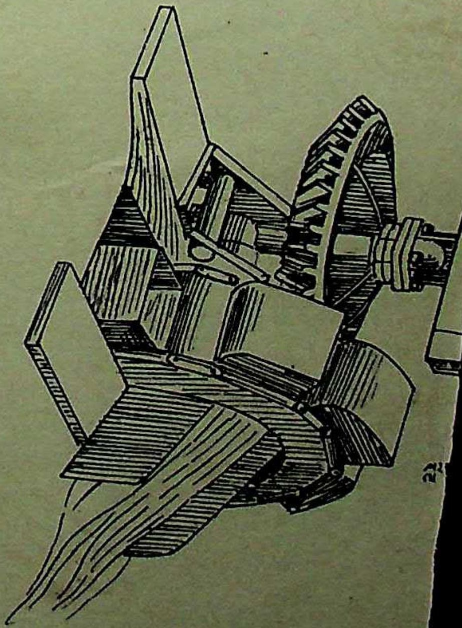


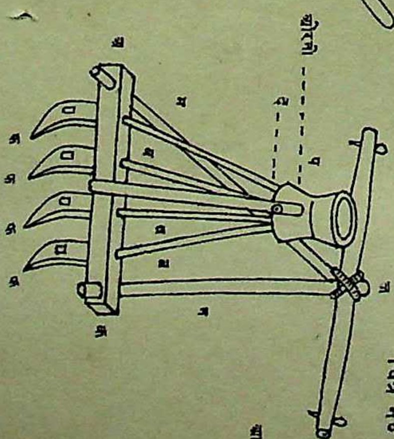
चित्र नं० १८

आकृति १



चित्र नं० १६





चित्र नं० १९

आकृति १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A 414

[संख्या ७

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

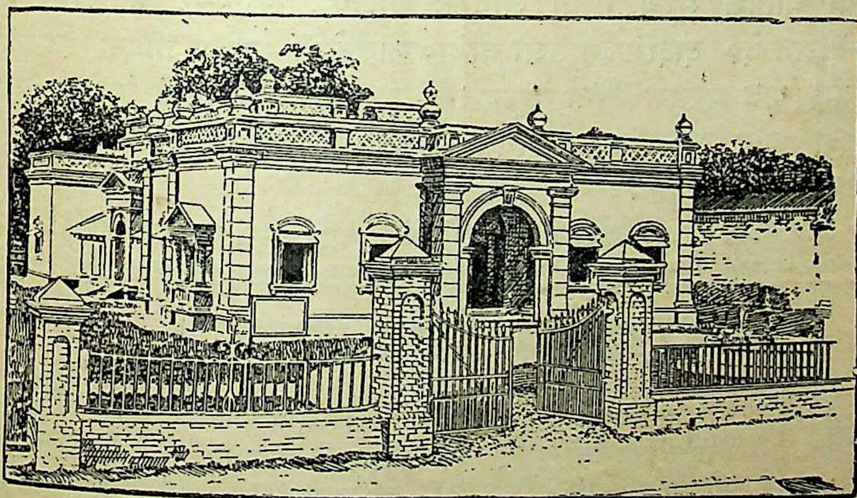
जनवरी, १९१६

सम्पादक—रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य २॥)

प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

विषय-सूची ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रोंसे युक्त।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त ।]

लीजिये! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है!—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक। तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २–), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दे० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य। शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये। नमूनेके लिये ।॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी
कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये,
पताः—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

पवित्र काश्मीरी केशर—दूज अव्वल ।।।=) तोला। शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला चीनी ममीरा २) तोला।
काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर। ५—१३—८—१४

भयंकर मार काट।

जर्मन जासूस	।–)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मी	–)	कौशलकिशोर	
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	
राजपूतों की बहादुरी	।।।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	॥)	नवाबनंदिनी (दो भाग)	
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहां	।)	रानाप्रताप नाटक	
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियाँ	।)	नारदमोह नाटक	
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	।।।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर संगीत	
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१।।।)	व्यापारतत्व	
रानी पद्मा	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	विकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

ग २० | जनवरी, १९१६. | संख्या ७

पाश्चात्य तर्क-शास्त्र।

(लेखक—श्रीयुक्त बा० हरिहरनाथ बी० ए०)

(१)

लक्षण।

तर्क वह शास्त्र है जिसमें शुद्ध विचार वा अनुमान करने के नियमों का विवरण होता है; अर्थात् वह शास्त्र जिसके द्वारा मनुष्य यह जान सकता है कि अमुक समय में उसका अनुमान क्यों अशुद्ध था अमुक समय में क्यों शुद्ध हो गया। अतएव तर्क के जानने से मनुष्य अपने अनुमानों को शुद्ध कर सकता है।

(२)

पद।

किसी वाक्य पर ध्यान देने से जान पड़ेगा कि उसमें सर्वदा दो भाग होते हैं। एक तो वह जिसके विषय में कुछ कहा जाय और दूसरा वह जो कुछ कहा जाय। पहले को उद्देश्य और दूसरे को विधेय कहते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त एक भाग और होता है जिसके कारण उद्देश्य और विधेय में एक प्रकार का सम्बन्ध हो कर सार्थ वाक्य बनता है। इसको संयोजक कहते हैं; जैसे:—

'राम	आदमी	है'
उद्देश्य	विधेय	संयोजक

इस उद्देश्य और विधेय को पद कहते हैं। पद एकशाब्द तथा बहुशाब्द होते हैं। एकशाब्द पद में एक ही शब्द रहता है और बहुशाब्द में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अधिक शब्द रहते हैं। बहुशब्द पद का उदाहरणः—

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली एक पाश्चात्य-प्रणाली है।
उद्देश्य विधेय संयोजक

(३)

पदों की जाति।

पद कई प्रकार (जाति) के होते हैं। उनका विवरण यह हैः—

एक-वाचक पद और सामान्य-वाचक पद—(क) एक-वाचक पद वह है जिससे किसी एक का बोध हो (और जब तक उसके अर्थ में परिवर्तन न हो, एक से अधिक का वाचक न हो) जैसे,—कलकत्ता, भारत के वर्तमान सम्राट्, इत्यादि। (ख) सामान्य-वाचक पद वह है जो (बिना अर्थ में परिवर्तन हुए) एक जाति के किसी एक व्यक्ति का वाचक हो। जैसे; मनुष्य—यह पद मनुष्य जाति के किसी एक व्यक्ति का वाचक हो सकता है।

२—निषेधक पद और विध्यात्मक—(क) निषेधक पद वह है जो किसी गुण वा व्यक्ति के अभाव को सूचित करता है। जैसे, अशोक अनुचित* इत्यादि। (शोक तथा औचित्य का अभाव-सूचक) (ख) विध्यात्मक पद वह है जो किसी व्यक्ति वा गुण के वर्तमान होने को (उपस्थिति) सूचित करता है। जैसे बुद्धिमान् इत्यादि।

३—मूर्त पद और भाव वाचक पद (अमूर्त)—(क) मूर्त पद वह है जो ऐसी वस्तु का नाम हो जिसमें कोई गुण हो। जैसे मनुष्य, पुस्तक इत्यादि। (ख) भाव-वाचक पद किसी गुण के नाम को कहते हैं। जैसे कालिमा, स्वच्छता, इत्यादि।

४—सापेक्ष पद और निरपेक्ष पद–(क) सापेक्ष पद वह है जिसके अर्थ की पूर्ति में किसी अन्य सम्बद्ध वस्तु के उल्लेख की आवश्यकता होती है; जैसे 'पिता' 'पुत्र' इत्यादि–'पिता' का अर्थ बिना 'पुत्र' के उल्लेख के नहीं हो सकता है, क्योंकि जब 'पिता' कहा जायगा तो अवश्यमेव 'पुत्र' की आवश्यकता होगी। अर्थात् बिना 'पुत्र' के कोई 'पिता' नहीं हो सकता। (ख) निरपेक्ष पद में किसी के उल्लेख की आवश्यकता नहीं होती। जैसे चारपाई, मनुष्य इत्यादि।

५—गुण-बोधक और गुणावबोधक--गुणबोधक पद वह है जिसका नाम है उसके गुणों का बोध कराता है। जैसे 'घोड़ा'। घोड़ा किसी विशेष पशु का नाम है और बतलाता है कि उस पशु में 'घोड़ापन' है और जिस जिसमें घोड़ेपन का गुण होगा वे सब घोड़े कहलावेंगे। गुणावबोधक पद वह है जो केवल किसी व्यक्ति वा वस्तु का बोधक हो (और उसके गुणों का नहीं) जैसे 'गोविन्द'। यह पद केवल एक व्यक्ति का बोधक है (और यह नहीं बतलाता कि गोविन्द में अमुक अमुक गुण भी हैं) और जैसे कृष्ण, यह पद केवल एक विशेष व्यक्ति का सूचक है और इसका यह अर्थ नहीं है कि वह काला है क्योंकि 'कृष्ण' किसी गोरे मनुष्य का भी नाम हो सकता है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि जितने एकवाचक पद होते हैं वे प्रायः गुणावबोधक होते हैं और जितने सामान्य पद होते हैं वे प्रायः गुणबोधक होते हैं।

* इनमें प्रायः अन, निः, अव इत्यादि उपसर्ग लगे रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

गुणवाचकता और व्यक्तिवाचकता ।

प्रत्येक पद दो काम करता है। एक तो वह व्यक्ति वा वस्तु के नाम का बोधक होता है दूसरे जिसका नाम होता है उसके गुणों का बोधक होता है। इन दो कामों को क्रमशः व्यक्तिवाचकता और गुणवाचकता कहते हैं। जैसे 'चौपाया' पद की व्यक्तिवाचकता यह है कि वह घोड़ा, गाय, बैल इत्यादि चार पैरवाले पशुओं का बोधक है, और उसकी गुण-वाचकता यह है कि जिनके चार पैर होते हैं वे सब 'चौपाए' कहे जाते हैं अर्थात् 'चार पैर का होना' जो गुण है, यह पद उसका वाचक है।

व्यक्ति-वाचकता और गुण-वाचकता का एक साधारण नियम यह है कि यदि पहले को घटाइए तो दूसरा बढ़ता है और यदि दूसरा घटाइए तो पहला बढ़ता है। यह जाति-विभाग करने में स्पष्ट रूप से समझ में आता है और जाति-विभाग करने में ही यह नियम भली भाँति लगता भी है। जैसे नीचे लिखे जाति-विभाग में ऊपर से नीचे जाइए तो व्यक्तिवाचकता घटती है और गुणवाचकता बढ़ती है और नीचे से ऊपर आइए तो व्यक्तिवाचकता बढ़ती है और गुणवाचकता घटती है:—

जीवधारी, प्राणी।

पशु | पक्षी | इत्यादि इत्यादि

बी॰ ए॰ पास मनुष्य, एफ़॰ ए॰ पास मनुष्य, इत्यादि

हाईकोर्ट के वकील | इत्यादि इत्यादि

देखिए कि जितनी संख्या जीवधारियों की है उतनी हाईकोर्ट के वकीलों की नहीं है। परन्तु जितना गुण हाईकोर्ट के वकीलों में है उतना सब जीवधारियों में नहीं है।

(५)

विधेय सम्बन्ध ।

विधेय सम्बन्ध उन सम्बन्धों को कहते हैं जो किसी उद्देश्य और विधेय में हों।

सामान्यतः पाँच विधेय सम्बन्ध होते हैं:—

(१) व्यापक जाति (सामान्य) (२) व्याप्त जाति (३) व्यावर्तक (४) धर्म और (५) उपाधि।

(१,२) व्यापक जाति और व्याप्त जाति—दोनों एक ही हैं। इनमें भेद यही है कि व्यापक जाति में कई व्याप्त जातियाँ होती हैं।

(३.) व्यावर्तक—उन गुणों को कहते हैं जो किसी व्यापक जाति की किसी दो व्याप्त जातियों को परस्पर अलग अलग करता है, दोनों में भेद बतलाता है अथवा व्यवच्छेद करता है।

(४.) धर्म—उस गुण को कहते हैं जो उस वस्तु का अत्यन्त आवश्यक, प्रधान वा सारभूत गुण नहीं है, परन्तु उस पद के अर्थ (गुणवाचकता) से निकलता है।

(५.) उपाधि—उस गुण को कहते हैं जो न वस्तु की गुणवाचकता ही से निकले है और न उसके अर्थ ही से सम्बन्ध रखता हो; पर किसी प्रकार उस वस्तु के साथ सम्बन्ध रखता हो।

उदाहरण—(१) मनुष्य—व्यापक जाति।

(२) हिन्दू, मुसलमान इत्यादि—'मनुष्य' की व्याप्त जातियाँ।

(३) मूर्त्तिपूजा—हिन्दू, मुसलमान आदि व्याप्त जातियों का एक व्यावर्तक।

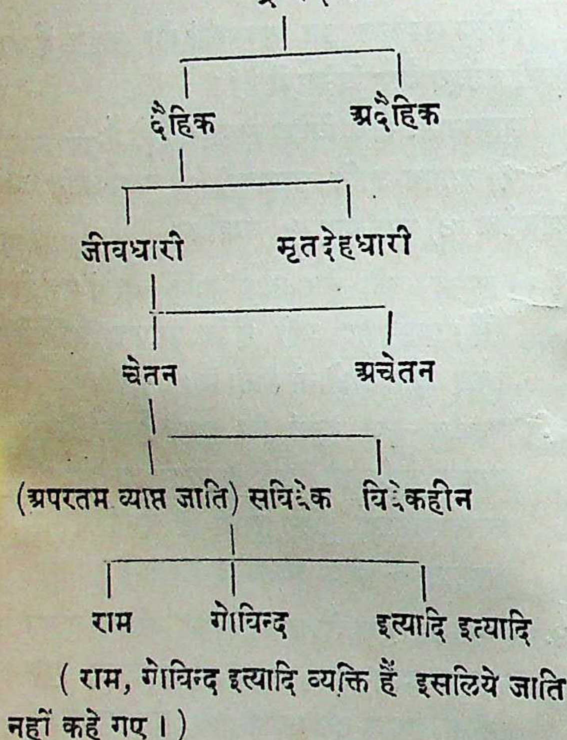
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. पाक बनाना—'मनुष्य' का धर्म।

५. वस्त्र पहनना—'मनुष्य' की उपाधि।

जाति-विभाग में जो व्यापक जाति सबसे बड़ी होती है उसको परम व्यापक जाति कहते हैं; और जो व्याप्त जाति सबसे छोटी होती है उसको अपरतम व्याप्त जाति कहते हैं। उदाहरण के लिये एक जाति-विभाग का नमूना यहाँ देते हैं:—



(राम, गोविन्द इत्यादि व्यक्ति हैं इसलिये जाति नहीं कहे गए।)

(६)

लक्षण।

किसी वस्तु के प्रधान और सारभूत गुणों को (जिनके कारण उसको वह वस्तु कहते हैं) लक्षण कहते हैं। अर्थात् किसी वस्तु की गुणवाचकता के निरूपण को लक्षण देना कहते हैं*। किसी के लक्षण बनाने में नीचे लिखे नियमों का पालन होना चाहिए:—

१. लक्षण में उसकी व्यापक जाति और व्याव-र्तक का होना आवश्यक है। (अन्य विषय सम्बन्धों को लिखना व्यर्थ है)

२. लक्षण स्पष्ट, सरल, अलङ्कार-रहित और यथा-सम्भव विध्यात्मक भाषा में होना चाहिए।

३. जिस पद का लक्षण कहना हो वह पद लक्षण में न आना चाहिए।

(उदाहरणार्थ,—यदि यह कहा जाय कि 'मनुष्य' मनुष्य को कहते हैं तो यह कोई लक्षण नहीं हुआ।)

(७)

जाति विभाग।

वस्तु-समूह वा व्यक्ति-समूह को भली भाँति समझने के लिये साधारणतः लोग उनको जातियों में विभक्त कर लेते हैं जिससे आगे उनके विषय में अन्वेषण वा विचार करने में सुगमता हो। जैसे किसी ने हमको १०० फल दिए और कहा कि इन फलों के विषय में अमुक बात का अन्वेषण करो, तो पहला काम जो हम करेंगे वह यह होगा कि उन फलों में से एक एक जाति के फलों को अलग अलग रख लेंगे। (जैसे मान लीजिए कि उपर्युक्त १०० फलों में से २० अमरूत, ५० आम, और ३० नारंगियाँ हैं।) अब ऐसा कर लेने पर हमको १०० वस्तुओं पर नहीं वरन् केवल तीन वस्तुओं पर विचार करना रह गया क्योंकि जो विचार एक अमरूत के विषय में होगा वही बीसों के लिये सत्य होगा इत्यादि। अतएव विचार करने के लिये जाति-विभाग बड़ा आवश्यक और उपयोगी विषय है।

जाति-विभाग का अर्थ व्यापक जातियों को व्याप्त जातियों में विभक्त करना है।

जिस व्यापक-जाति का विभाग करना होता है उसको विभेद्य-जाति कहते हैं। जिन व्याप्त

* अतएव गुणावबोधक पदों का लक्षण नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...जिनमें वह विभेद्य जाति विभक्त होती है उनको ...सहकारी व्याप्त-जाति कहते हैं। और जिस ...का विचार कर के विभाग किया जाता है उसको ...नियम वा विभाग-तत्व कहते हैं। उदाहरणः—

१

मनुष्य

धन के विचार से | विद्या के विचार से

(विभाग नियम) (विभाग नियम)

निर्धन	मध्यमोत्तीर्ण	आचार्य
३	२	३

(यहां १=विभेद्यजाति और २ तथा ३=परस्पर-...कारी व्याप्त-जातियां हैं।)

...विभाग करने के लिये निम्न लिखित नियम आव-...श्यक हैं:—

(१) प्रत्येक विभाग में केवल एक ही विभाग-...नियम होना चाहिए।

...ऊपर दो विभाग-नियम हैं इसलिये वस्तुतः ...विभाग हुए हैं। यदि यह नियम न माना जाय तो ...मनुष्य का विभाग यों हो जायः—

मनुष्य

धनी	आचार्यपरीक्षोत्तीर्ण
१	२

परन्तु यह विभाग अशुद्ध है; इसमें १ और २ ...कारी व्यक्ति-जाति नहीं हैं क्योंकि १ का विभाग-...नियम वह नहीं है जो २ का है; जैसा कि ऊपर के ...विभाग के उदाहरण से स्पष्ट है।

(२) व्याप्त जातियाँ सब मिल कर व्यापक-जाति के ...आकार से बढ़ न जायँ।

अर्थात् 'मनुष्य' का विभाग करने में 'घोड़े' को ...व्याप्त-जाति न बना देना चाहिए। जैसे १) की रेजगी भुनाने में ऐसा न हो कि अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी और एकन्नी आदि सब मिलाकर १।) हो जाय।

इस भय को दूर करने के लिये कि व्याप्त-जातियां व्यापक-जाति से बढ़ न जायँ, ऐसा किया जाता है कि जब एक व्याप्त-जाति निकल आई तो दूसरी व्याप्त-जाति के स्थान में उसी पहली को एक निषेध-वाचक उपसर्ग के साथ रख देते हैं जिसमें दोनों मिल कर कदापि व्यापक से बढ़ न जायँ जैसे,—

मनुष्य

धनी	निर्धन

इसका सबसे उत्तम उदाहरण ऊपर 'द्रव्य' के जाति-विभाग का दे चुके हैं। ऐसी रीति के विभाग को 'डाइकाटोमीय' रीति का विभाग कहते हैं।

(८)

प्रतिज्ञा ।

प्रतिज्ञा उस वाक्य या शब्द-समूह को कहते हैं जिसके द्वारा किसी प्रकार के निर्णय का बोध हो और उस निर्णय की सत्यता वा असत्यता की परीक्षा हो सके।

प्रतिज्ञाएं तीन प्रकार की होती हैं:—

(१) निरपेक्ष प्रतिज्ञा—जब कि वाक्य का अर्थ अनन्य सम्बद्ध और निरपेक्ष हो। जैसे 'सब मनुष्य नश्वर हैं'।

(२) सापेक्ष प्रतिज्ञा—जब कि वाक्य में प्रतिबन्ध (शर्त) हो। जैसे 'यदि इच्छा होगी तो वहाँ जायँगे'।

(३) वैकल्पिक—जब कि वाक्य में विकल्प सहित निर्णय हो। जैसे, 'प्रत्येक पक्षी वनस्पति वा मांस खाता है'।

(९)

निरपेक्ष प्रतिज्ञा ।

प्रत्येक निरपेक्ष प्रतिज्ञा में दो पद होते हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

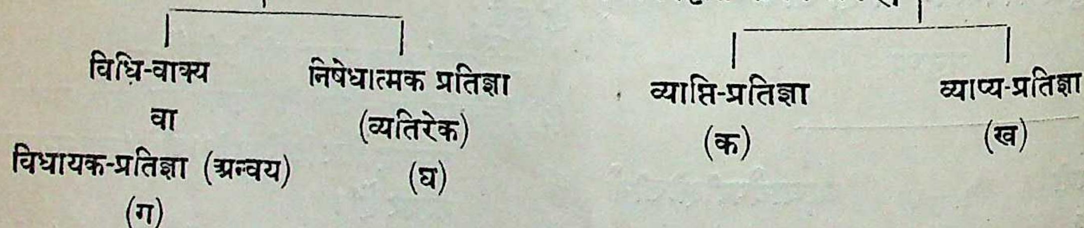
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य और दूसरा विधेय; और ये दोनों संयोजक द्वारा सम्बद्ध रहते हैं।

संयोजक सर्वदा वर्तमान कालिक क्रिया होती है और उसमें प्रायः सदैव "है" वा "नहीं है" रहता है। जब वाक्य का संयोजक 'है' होता है तो वह प्रतिज्ञा 'विधायक' कही जाती है (अथवा उसे विधि-वाक्य कहते हैं) और जब संयोजक "नहीं है" होता है तो प्रतिज्ञा-निषेधात्मक कहलाती है।

प्रतिज्ञा में जो निर्णय (विधेय) होता है वह उद्देश्य के विषय में ही होता है। जैसे 'राम मनुष्य है।' इस प्रतिज्ञा में 'मनुष्यत्व' का होना राम ही के विषय में निर्णीत है। यह निर्णय कई प्रकार से होता है। (१) जब जिस पद के विषय में वह निर्णय होता है तब उस जाति भर के व्यक्तियों वा प्रत्येक व्यक्ति के विषय में वह कहा जा सकता है। जैसे "मनुष्य नश्वर हैं" इस प्रतिज्ञा में 'नश्वरत्व' का होना प्रत्येक 'मनुष्य' के विषय में सत्यतापूर्वक कहा जा सकता है। इसलिये 'मनुष्य' पद का अर्थ विस्तार-युक्त है और ऐसे पद विस्तृत पद कहलाते हैं। स्पष्टता के लिये ऐसे पदों के पहले अर्थ-विस्तार-सूचक 'सब' 'प्रत्येक' 'कोई' आदि शब्द लगा दिए जाते हैं। (२) जब कि वह निर्णय जाति भर के कुछ व्यक्तियों के विषय में कहा जा सकता है। जैसेः—मनुष्य मूर्ख हैं। इस प्रतिज्ञा में 'मनुष्य' से केवल कुछ मनुष्य समझे गए हैं, क्योंकि मूर्खत्व सम्पूर्ण मनुष्य-जाति के विषय में सत्यतापूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसलिये 'मनुष्य' यहाँ अविस्तृत पद है। स्पष्टता के लिये ऐसे पदों के पहले 'कुछ' लगा दिया जाता है।

जिस प्रतिज्ञा का उद्देश्य विस्तृत पद होता है उसको व्याप्ति-प्रतिज्ञा और जिसका अविस्तृत होता है उसको व्याप्य प्रतिज्ञा कहते हैं। अतएव प्रतिज्ञा का विभाग यों हुआः—



अतएव दोनों मिला कर चार प्रकार की प्रतिज्ञाएँ हुईंः—

नाम	संकेत
(१) [(क)+(ग)]=अन्वय व्याप्ति प्रतिज्ञा	ए
(२) [(क)+(घ)]=व्यतिरेक व्याप्ति प्रतिज्ञा	ई
(३) [(ख)+(ग)]=अन्वय व्याप्य प्रतिज्ञा	आ
(४) [(ख)+(घ)]=व्यतिरेक व्याप्य प्रतिज्ञा।	ओ

(नोट,—इन चार प्रकार की प्रतिज्ञाओं के नाम बड़े होने के कारण उनके लिये ये संकेत रख लिए गए हैं। अब से केवल इन्हीं संकेतों का उल्लेख किया जायगा इसलिये इन्हें स्मरण कर लेना चाहिए।)

ऊपर लिखी चार प्रकार की प्रतिज्ञाओं के उदाहरण ये हैंः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण	प्रकार
सब[१] मनुष्य[२] नश्वर[३] हैं[४]	ए
कोई पत्थर[२] जीवधारी[३] नहीं[५] हैं[४]	ई
कुछ मनुष्य[२] धर्मात्मा[३] हैं[५]	आ
कुछ फूल[२] सुगन्धहीन नहीं है[४]	ओ

…उदाहरण की आवश्यकता होती है तब उपर्युक्त …सदृश दूसरे और उदाहरणों को सोच कर लिखने …चाव के लिये यह किया जाता है कि मुख्य मुख्य …ों का ध्यान रख कर उद्देश्य और विधेय के लिये …लविक नामों को न दे कर उद्देश्य के लिये केवल … और विधेय के लिये केवल 'वि' रख देते हैं; …र संयोजक, विधायकता, निषेधात्मकता, …प्ति तथा व्याप्य के चिह्न अवश्य रखते हैं। जैसे …दाहरण के तौर पर उपर्युक्त वाक्यों के लिये नीचे …के संकेत होंगे:—

१=विस्तृति वा अविस्तृति (व्याप्ति वा व्याप्य) का चिह्न
२=उद्देश्य
३=विधेय
४=संयोजक
५=निषेधात्मकता वा विधायकता का चिह्न

…ज्ञा के रूप का संकेत ।	प्रतिज्ञा के नाम का संकेत
सब[१] उ[२] वि[३] हैं[४]	ए
कोई उ[२] वि नहीं है[४]	ई
कुछ उ[२] वि हैं[४]	आ
कुछ[१] उ[२] वि[३] नहीं[५] हैं[४]	ओ

[यह स्मरण रखना चाहिए कि ई प्रतिज्ञा के …विस्तृति का चिह्न 'सब' के स्थान पर 'प्रत्येक' वा 'कोई' रखना चाहिए क्योंकि 'सब' रखने से अर्थ में गड़बड़ी हो जाती है। जैसे "सब मनुष्य बुद्धिमान् नहीं हैं"। इस प्रतिज्ञा का अर्थ यह समझा जा सकता है कि 'सब नहीं' पर 'कुछ' नहीं हैं। इसलिये इस प्रतिज्ञा का अर्थ होगा कि 'कुछ मनुष्य बुद्धिमान् नहीं हैं' जो 'ओ' प्रतिज्ञा हो गया। अतएव इ प्रतिज्ञा में 'सब' के बदले 'कोई' रखना चाहिए।]

१=विस्तृति वा अविस्तृति का चिह्न
२=उद्देश्य
३=विधेय
४=संयोजक
५=विधायकता वा निषेधात्मकता का चिह्न

विस्तृति और अविस्तृति के विचार से यह नियम होता है कि:—

ए प्रतिज्ञा में उद्देश्य विस्तृत और विधेय अविस्तृत होता है।

ई प्रतिज्ञा में उद्देश्य भी विस्तृत और विधेय भी अविस्तृत होता है।

आ प्रतिज्ञा में उद्देश्य भी अविस्तृत और विधेय भी अविस्तृत होता है।

ओ प्रतिज्ञा में उद्देश्य अविस्तृत और विधेय विस्तृत होता है।

(शेष आगे।)

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युरोप का पुनरभ्युत्थान-काल ।

[लेखक श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी ।]

(विगत अङ्क से आगे ।)

इसके प्रतिकूल, इटली में सेना का बल और महत्त्व सोलह आने अधिष्ठाता या सञ्चालक की सैनिक चातुरी और वीरता पर निर्भर होता, यहाँ तक कि सरदार अपनी पृतना या सेनांग की प्रतिमूर्त्ति होता। जिस सरदार को चतुर, साहसी और बहादुर देखते, जान लेते कि इसका दल अवश्य अच्छा है; इसी तरह गुणहीन निकम्मे सरदार की अधीनस्थ सेना भी निकम्मी ही होती। यद्यपि सैनिक अपने अधिष्ठाता की आज्ञा को सर्वप्रधान मानते लेकिन उसकी व्यक्ति की गुलामी का दम नहीं भरते थे। जब इनको कहीं और अधिक वेतन मिलता, या वर्तमान से उत्तमतर किसी अफ़सर की अधीनता मिलती तो यह पहले को छोड़ कर दूसरे के अधीन चले जाते। विदेशी योद्धाओं की तरह अपने सरदार के हाथ बिके न रहते। समर दूरदर्शी, पथ-प्रदर्शन-समर्थ और चतुर मस्तकवाले का काम बन गया। सेना अपने सञ्चालक के नाम और साहस के बल पर एक सूत्र में बँधी रहती, हरएक समरकौशल मानों सञ्चालक (Commander) का ही सैनिक आविष्कार या निर्म्माण होता।

इस तरह पर अलबेरिकोडा बारबिआनो का एक समर-शिक्षालय बन गया और पीछे ब्रेकियोडा मानटोन के लोगों ने और स्फोर्जा आदि अनेक घरानेवालों ने इस शिक्षा का अनुकरण किया और एक दूसरे की अधीनस्थ सेना में रह कर योद्धाओं और अफ़सरों का काम सीखना आवश्यक समझा व सीखा। इटली के पृतनापतियों (कप्तानों) ने समर का कौशल तथा विज्ञान उत्पन्न कर दिया, जैसे राजाओं ने शासन का विज्ञान व कौशल पैदा किया था। इन दोनों ही में (शासन और समर-विज्ञानों में) जहाँ सबसे ऊँचे दरजे की मेधा व व्यक्तित्व का विकाश पाया जाता था वहाँ दोनों ही में उस नीति-धर्म्म के बल की कमी थी जिसके बिना मनुष्य के किसी काम में भी सच्ची दृढ़ता और पायदारी नहीं होती। कोई व्यक्ति मध्यकालीन शिष्टाचारों के बन्धनों से कहीं इतना स्वतन्त्र न था जितना इन सैनिक दलों और कदम्बों में था। हर सैनिक की ख्याति और शक्ति दोनों एक समान उसी की बुद्धिमत्ता और हिम्मत पर निर्भर होती थी।

मूजिओ अटेण्डोलो स्फोर्ज़ो नाम का एक व्यक्ति अपने समय का बड़ा ही विकट कप्तान था जो धीरे धीरे नेपुल्स राज्य का हाई-कांस्टेबल हो गया था। आदि में वह खेत में काम करनेवाला एक निर्धन (मजूर) था। और सेना में पहले पहल भरती होने पर अस्तबल का बालगीर छोकड़ा (Stable boy) बनाया गया। इसका सगा बेटा फ्रांसिसको मीलान का रावत (ड्यूक Duke) हुआ था। वेनिस की अत्यन्त विकराल और बड़ी सेना का प्रधान सेनापति और कई ज़मींदारियों का स्वामी कामेगनोला पहले भेड़ें चराया करता था। इसी तरह निकोलो पिसीआइनी प्रसिद्ध कप्तान होने के पूर्व पेरुगिया में बूचड़ों की सभा का सदस्य था। लेकिन इस प्रकार की बातों से, ऐसे छोटे लोगों के बढ़ कर इतने ऊँचे हो जाने से, किसी को रत्ती भर भी अचम्भा नहीं होता था। स्वतन्त्र सेना श्रमशीलों के लिये खुला व्यवसाय-क्षेत्र हो रहा था। शक्ति, भाग्य और चातुरी मात्र की ही प्रधानता चलती थी। किसी तरह के ऐतिहासिक, रिवाजी या नैतिक झगड़े टन्टे न थे। यह स्वतन्त्र सेनांग बिना किसी सिद्धान्त या मातृभूभक्ति के विचार के युद्ध को तैयार रहते और युद्ध करते। कभी वे मित्र की ओर से और कभी शत्रु की ओर से जिसमें उन्हें अधिक वेतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या अधिक लाभ का भरोसा दिलाया जाता पक्ष पर वे खड़े हो जाते। इन स्वतन्त्र (पृतनापतियों) में सैनिक-प्रतिष्ठा, शपथ के और अपने झण्डे के अनुराग या भक्ति का तक न था। इन बातों को ये कप्तान लड़कपन की समझी की तथा हास्यास्पद समझते थे। क्योंकि समझ में ऐसे तुच्छ विचारों का जीवन की के मार्ग में बाधक होने देना सिवा मूर्खता के कुछ न था। अनेक तरह पर इन सेनापतियों कप्तानों में तथा इटली के स्वेच्छाचारी शासकों (राजाओं) में कोई अन्तर न था। हर कप्तान को कठिन और उलझे हुए सैनिक प्रबन्ध का सिर- होने के कारण नित्य नए सिपाही भरती करके सेना के खाली स्थानों को भरना पड़ता, प्रायः सिपाही काम छोड़ छोड़ कर बिना कहे- भागा ही करते थे; यहाँ तक कि जितने लोग के सामने से समर त्याग कर न भागते उतने से आपा-पंथी मनमुखी हो कर भागते। नित्य को सेना का ख़र्च देने के लिये रुपए की बनी रहा करती थी, चाहे युद्ध हो या शान्ति। कप्तान लगातार इटली की रियासतों से बनाए रहता और नौकरियाँ ढूँढ़ा करता, कभी वादे कर के अथवा धमकी दे कर ही सतों से रुपए ऐंठता और सेना का तथा अपना चलाता। साथ ही जिनसे रुपया वसूल करता विरोधियों से भी लिखा-पढ़ी करता रहता। वे लोग अधिक रुपए दे कर उसे अपनी ओर की चेष्टा में रहते। निस्सन्देह इस तरह का उस नगर के स्वामी की भाँति होता, जो अपनी सरलता से शासन न कर सकने के कारण से उधर और उधर से इधर चिन्ता में घूमता हो। फिर यथेच्छाचारी राजा की भाँति जीवन भी सदा भय और संकट में पड़ा रहता, का डर लगा रहता, स्वतन्त्र कप्तान को यह भय जितना युद्ध-काल में न रहता उतना शान्ति के समय रहता। इन कप्तानों का यह भय अकारण न था, प्रतिद्वन्द्वी दलों या सेनांगों के मुखिया या कप्तानों में लगातार लाग-डाँट बनी रहती थी। इनके मातहत लोग उच्च पद की लालसा से सदा इस फिकर में रहा करते थे कि कब अवसर मिले और हम अपने सरदार का काम तमाम करके स्वयं सरदार बन जायँ। साथ ही इन्हें यह भी चिन्ता लगी रहती कि यदि हम बे-जीविका हुए तो धन की कमी के कारण हमें अपना दल बिखरा कर बेबस हो जाना होगा और फिर कोई टके को भी न पूछेगा। जिन रियासतों में ये काम करते उनको भी इनकी शुभनिष्ठा और सत्यता का निश्चय न होने के कारण सदा इनकी ओर से सन्देह ही लगा रहता और बहुधा इस सन्देह का फल कृत्य के रूप में प्रकट हो जाता, अर्थात् रियासत का सन्देह दृढ़ हुआ कि उसने इनका सिर कटा, जैसी कि फ्लोरेंस और वेनिस में कार्मेगनोला व पावलो की गति हुई थी। ये जिस रियासत की ओर से लड़ते थे, उसीके हाथ से प्राणदण्ड के भागी हुए। ये लोग थे भी अविश्वस्त, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। एक बड़ी विचित्रता यह भी थी कि यह सभी लोग प्रायः नीच घराने के अपढ़, लंठ होते; इनके शिविरों में ऐसे दूतों, कवियों व विद्वानों की भीड़ लगी रहती जो 'लाइवी' और 'सिसिरो' आदि के ग्रन्थ इन्हें पढ़ कर सुनाते, इनकी प्रशंसा में नए पद्य भी रच कर पढ़ते और इनको इतना बढ़ाते कि सिसिरो, हेनी-बाल, केसीजर, और सिकन्दर तक के बराबर कर देते। जब कभी कोई कप्तान अपने पशुबल से लड़ाई कर के कोई धरती छीन लेता या अपनी सेवा के बदले में विजयी होने पर कोई प्रदेश किसी राजा से पाता, तो कप्तान रहने के साथ साथ स्वयं एक प्रदेश का पूर्ण अधिकारी राजा भी होता था।

यों उस समय इटली के राज्यों के लिये समर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकैतव और वाणिज्य का एक काम हो रहा था। वही विजेता माना जाता जिसके पास बहुत सा धन होता, बहुत से मित्र और सहायक होते, जिसे बहुत से बढ़िया बढ़िया चापलूस घेरे रहते, जो अपने पक्ष के प्रसिद्ध कप्तानों को बड़े बड़े पारितोषिक दे सकता और देता; और उन्हें नमकहलाल बनाए रहने के लिये समय समय पर देता ही रहता; क्योंकि बिना पुजते रहने के यह भाड़े के टट्टू भाग खड़े होते, इनमें शत्रु मित्र की पहचान न थी, केवल धन ही इनका धर्म्म और ईमान था। लेकिन उन सिपाहियों का वीरभाव विनष्ट होने लगा जो आज जिसका पक्ष लेकर लड़ते कल उसीके शत्रु के साथ मिल कर अपने ही सहयोगी साथी सिपाहियों के साथ लड़ते नज़र आते, और फिर परसों, एक दिन रात के पीछे, उन्हीं पहले साथियों में आ मिलते। इन लोगों में परस्पर का प्रेम, झण्डे की प्रतिष्ठा बिलकुल शेष न रही। इनका समर-विजय बड़ाई, श्रद्धा, भक्ति और सिद्धान्त के लिये नहीं वरन् लूट मार के लिये होता। इस पाशविक आचरण के कारण ये स्वतन्त्र कप्तान और उनके दलभुक्त सिपाही ऐसे गिरे कि एक दम अपना अस्तित्व खो बैठे। और इनके स्थान में स्थायी वेतनभोगी सेना रहने लगी जिसके लिये इन्होंने स्वयं रास्ता तैयार किया था। लेकिन नाश होने के पहले यह देश में चारों ओर विपत्ति और दुःख का .खूब बीज बो गए। इस विपत्ति के समय में इटलीवालों ने अच्छी संथा सीखी, बुद्धिमानी और वीरता का परिचय दिया, युद्ध के नये कौशल की नीव डाली। परन्तु शोक है कि फिर भी लगातार निर्बल और आचार भ्रष्ट होते ही चले गए।

इस समय जो फेरफार इटली में हुए उनका हमें सबसे ज्यादः पता स्पष्ट रूप से इटली के तत्सामयिक साहित्य में मिलता है। इटली के इतिहासकार दुःख करते हैं, क्योंकि उन्हें इसका कारण समझ में नहीं आता कि क्यों इटली के साहित्यज्ञ इतना उत्तम नया साहित्य पैदा कर लेने पर भी भ्रम में पड़ कर पुराने ही लेखों की नकल उतारते चले गए। और अपनी स्पष्ट समुन्नत भाषा की अवज्ञा कर के पुरानी लैटिन की लीक पीटने में लगे रहे। डिवाइन कमेडिया, डिकेमेरोन इत्यादि भाषा तथा साहित्य के अनेक अच्छे अच्छे जानकारों ने एक पुष्ट, भव्य और विशाल साहित्य-तरु खड़ा कर दिया जिसकी छाया में इटली के भाव और प्रतिभा को सब प्रकार का सुपास था। फिर भी जिन लोगों ने महाकवि डेंटी व पेट्रीआर्क प्रभृति के ग्रन्थ पढ़े हैं वे सहज में मुक्त-कण्ठ से कह देंगे कि जिस पथ पर हो कर पन्द्रहवीं सदी की जनता चली थी, वह इन्हीं महापुरुषों ने निकाला था। साहित्य के सम्बन्ध में हम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का समय ही ले कर आज से तथा उनके पहले के समय से मिलान करें तो ज्ञात होगा कि प्रत्यक्ष में ही इस जातीय महाकवि की हिन्दी, भाषा तथा भाव सब ही बातों में नवीन और प्राचीन को जोड़नेवाली शृङ्खला है। आपकी हिन्दी में जहाँ पुरानी हिन्दी ब्रजभाषा का रङ्ग है वहाँ नवीनता का भी रंग मौजूद है, जहाँ प्राचीन हिन्दी साहित्य की महत्ता और महिमा की असीम प्रशंसा या अनुकरण है वहाँ नवीनता की वह झलक भी प्रस्तुत है जिसके प्रकाश में आज हम लोग चल रहे हैं। मुझे विश्वास है कि जिन्होंने इस श्रद्धास्पद उदारचेता के लेखों को ऐतिहासिक दृष्टि से पढ़ा है वे कदाचित् मेरी बात का विरोध नहीं कर सकते। इसी प्रकार के समय को, दो युगों के मध्यवर्ती काल को, जो दो जंजीरें जोड़नेवाली छोटी सी गोल कड़ी होती है, अँगरेज़ी में ट्रांसिशन का समय कहते हैं। इसे हम हिन्दी में युग-संक्रान्त-काल और इस विशेष विषय में विहारी के शब्दों में साहित्य रूपी नायिका का वयस-सन्धि-संक्रोन कह सकते हैं।

जो लोग १३ वीं सदी के इटालियन लेखकों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...वीं सदी के अन्त या १६ वीं सदी के आदि के ...ों से मिलान करके देखेंगे उन्हें स्पष्ट हो जायगा ...स संक्रान्त काल में जो समय साहित्य सेवा में ...गया था वह व्यर्थ नहीं गया। जिस तरह आज ...साधारण पढ़नेवाले हरिश्चन्द्र की कविता को ...कर समझेंगे कि हम मानों नई दुनिया में आ गए; ...ही डेन्टी के 'मोनारकिया' और 'कानविटो' को ...कर भी कहना पड़ता है; क्योंकि ग्रन्थकार की ...शैली प्राचीन पण्डितों के ढङ्ग की है और जान ...ता है कि जैसे हम जगत को देखते या विचारते हैं, ...वह नहीं देखता या विचारता था। लेकिन जब ...मेकियावेली या उसके सहयोगियों के ग्रन्थों को ...ते हैं तो उनके और अपने विचार या दृष्टि में कुछ ...र नहीं पाते। इनमें पण्डिताई शैली, गूढ़ता, ...ल विचार, व्यर्थ भूल भुलैयां, मध्य-कालीन ...क, दृष्टान्त और पेंचदार अलंकारिक बातों का ...म कहीं नाम निशान तक नहीं मिलता।

अब हम इस भूमि पर सच्चाई और प्रत्यक्षता के ...में हैं, अब वह बे सिर-पैर के विचारों, अन्ध ...सों, धर्म्मान्धकताओं का समय नहीं रहा, ...के ऊपर से गूढ़ता निर्मूल विचारों का परदा ...चुकी है, सब के नेत्र खुल चुके हैं, आजकल ...लोग अपनी बुद्धि से काम लेने लगे हैं। आँखों ...विश्वास के आगे कानों का विश्वास तुच्छ समझा ...जाता है। यह शाब्द-प्रमाणों का समय नहीं है, ...आँखों से देखने या प्रत्यक्षवाद का काल है, ...कल हमारे प्रमाण प्रत्यक्ष के ही आधार पर ...सकते हैं न कि केवल बातों पर। इस दशा में ...प्रश्न उठता है कि पन्द्रहवीं सदी के विद्वानों ने ...कैसे प्राचीन साहित्य से एक नए संसार के ...रचना का प्रयत्न किया?

...मध्यकालीन लोगों ने मनुष्य जाति में नया जीवन ...के जागृत करने के लिये संसार की बातों से घृणा ...समाज की ज़रूरतों को तुच्छ जाना, दर्शनों को धर्म्मज्ञान के पैरों तले डाल दिया, राजकाज को धर्म्म-मन्दिरों के हाथ बेच डाला। कैसा विचित्र समय था? सच्ची बातों को, प्रत्यक्ष चीज़ों को तो केवल मनोमयी कल्पना के बतलाने को उदाहरण खयाल करते थे, संसार के नगरों, पदार्थों और सच्चे साधनों को वैकुण्ठ की तैयारी का मसाला समझते थे। इसी समय वे लोग हुए, जिन्होंने वास्तविक अनीश्वरवाद का खण्डन किया, प्राचीन कला-कौशल को नया प्राणदान किया; जो बुद्धियाँ थोथे दार्शनिक विवादों में गुप्त, अन्धकार के परदे में ढकी पड़ी थीं, उनको गर्त से निकाल कर प्रकाश में ला धरा। लेकिन जब इटली में ये नए ज्ञानी, सत्यवादी और सचाई को सचाई माननेवाले पैदा हुए, जब ऐसे नए सच्चे कवियों, कोविदों और पण्डितों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने मनुष्यों के सच्चे अभिभावों, मनोवेगों और विकृतियों को प्रकट किया तो उनको मध्यकाल के लोगों ने बदला क्या दिया? प्राणदण्ड। यह बात एक इटली के इतिहास में ही नहीं और देशों के प्राचीन और नवीन इतिहासों भी में मिलती है। जिस तरह डेन्टी को दण्ड मिला था, उसी तरह सुकरात को भी। क्या भारत में सच्ची साफ़ बात कहनेवालों को विष नहीं दिया गया? जिस होमर और शेक्स-पियर को उनके देशवालों ने उनके जीते जी नहीं पहचाना उन्हीं के नाम पर आज वही देशवासी अभिमान करते हैं।

बात यह है कि अन्धकार की पुरानी बातें आज-कल के प्रकाश के आगे नहीं ठहर सकतीं। नए ठीक विश्लेषण, सुन्दर विचार, नई पवित्र भाषा और शैली जिनमें होकर शुद्ध विचार हीरे की तरह चमक रहे हैं, हमें पुराने रद्दी ठीकरों का संस्कार और मर-म्मत करने का अनुरोध करते हैं। नए साहित्य ने जहां हमें नए मार्ग की ओर चलने का अनुरोध किया वहाँ नई आवश्यकताओं को भी जन्म दिया, पर तत्काल हमारी सारी ज़रूरतें पूरी न हो सकीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने रङ्ग-ढङ्ग में परिवर्तन होने पर भी पुरानी झलक बनी थी; नए दर्शनों, विज्ञानों, लेखों, वाग्मिता और इतिहास का जन्म अभी न हुआ था। तेरहवीं शताब्दी के लेखक उस मनुष्य के समान थे, जो हट्टा कट्टा होते हुए भी यदि कण्टकाकीर्ण तङ्ग रास्ते में हो कर चलता है तो उसे बीच बीच में सहारे की ज़रूरत होती है। यही सहारा नए युग में पुरानी झलक का कारण था जो किसी के वश में न था। कौन कह सकता है कि महाकवि डेन्टी का भी एक पैर प्राचीन काल में और दूसरा नवीन में नहीं था? क्योंकि हम देखते हैं कि इसने अपनी 'मोनार्किया' नाम्नी पुस्तक में इस बात पर वादानुवाद किया है कि 'क्या पोप को सूर्य्य से और राजा को चन्द्रमा से उपमा देनी चाहिए? क्या इस बात से कि सेमुएल ने साल को राजसिंहासन से उतार दिया और मागी ने दूध पीते मसीह की पूजा की, राज्य का पुरोहितों के अधीन होना सिद्ध होता है?" एक दूसरा बड़ा भारी विषय-चित्रकार (लेखक) हुआ है जिसकी सूक्ष्म दृष्टि से संसार का शायद ही कोई विषय बचा होगा। इसने युद्ध, राजनीतिक और सामाजिक विप्लव, शासन-सत्ता के रूपों और बनावटों, नए निर्म्माणों, प्रासादों, चित्रों, साहित्य के विभिन्न अंगों, कर, वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योग, कारीगरी, प्रजातन्त्र के आय-व्यय आदि सभी विषयों पर विज्ञानोचित विचार किए हैं। इस तरह से अनेक विषयों पर लिखने का कारण यह था कि वह समझता था और ठीक समझता था कि मनुष्य-समाज इन सब बातों को ले कर बना है और इन्हीं से राष्ट्र या राज्य की शक्ति और समुन्नति का प्रादुर्भाव होता है। फिर भी इसके लेखों में ऐतिहासिक शृङ्खला नहीं है, क्योंकि यह तेरहवीं शताब्दी का लेखक है। जब कभी यह दर्शन या राजनीति का वर्णन करता है या कोई छन्द या पत्र लिखता है तो जान पड़ता है कि मानों पिछली रीतियों का अनुकरण करते हुए किसी वस्तु से वञ्चित सा होता है क्योंकि यह अपनी ओर से पिछले सारे बन्धनों को तोड़ चुका था।

अब इस बात की आवश्यकता ज्ञात होने लगी कि शैली की मर्य्यादा बढ़ाई जाय, बन्धन तोड़े जायँ, भाषा को फैलावें और इस तरह बना लें कि वह अधिक भूखण्ड में समझी जाय और नए नए अनेक भावों के प्रकाशन में समर्थ हो। व्यर्थ वाकवितण्डा, शब्दों पर सिर फोड़ना छोड़ दें, भाषा में वह लचक पैदा करें कि आवश्यकतानुसार तुड़ मुड़ कर हमारे सब भावों को प्रकट कर सके।

और यह जरूरत उसी क्षण से मालूम होने लगी जब कि राष्ट्रीय शक्ति की नवीन और बलवती वृत्ति को उन राजनीतिक और सामाजिक गोलमालों ने जिनका ऊपर बहुत कुछ उल्लेख हो चुका है, रोक दिया। इस तरह एकाएक अपूर्वता का वह स्रोत रुक गया जिसने इटली का साहित्य उत्पन्न किया था और उसकी पूर्त्ति करने का एक मात्र कारण वही हो सकता था जो उसे अभीष्ठ नए रूपों की ओर ले जाता। लेकिन यह रचनाएं ऐसे नहीं होतीं कि जब हमारी इच्छा हो तभी बदल दें, वरन् प्रकृति और मानसिक कल्पना के अधीन होता हैं और सब से पहले ग्रीक और रोमवालों ने इन्हें निकाला था और उन्हीं के लेखों में रचनाओं की वह अपूर्वता, ओजस्विता और शोभा यथावत् मौजूद है जो कि नवीन कौशल में पहलेपहल जन्म लेने के समय हुआ करती है। इसलिये पिछले साहित्य की ओर इटलीवालों का उलट पड़ना स्वभावतः उनकी उन्नति का कारण हुआ। फिर इटली-भाषा का लैटिन के साथ (जैसे हिन्दी का संस्कृत के साथ है) घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण उसके भावों का अनु... करण इटालियन भाषा में ऐसा जान पड़ने लगा जैसे पुरानी खान का नया नगीना; और यही प्राचीन राष्ट्रीय महत्ता की ओर लौटना था। ग्रीकों और लातीनियों ने इटली को ऐसा साहित्य प्रदान किया जो सचाई और प्रकृति से अनुप्राणित था। विशुद्ध ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्क अनुमोदित, थोथे शाब्द-प्रमाण की भरमार से
अलंकारों, पहेलियों, कूटों और गूढ़ताओं से
था। ऐसे पवित्र साहित्य का अनुकरण मानों
काल की बेड़ियों को तोड़ फेंकना हुआ, क्योंकि
ज्ञात में इटली का झुकाव पुराने जगत की ओर
लगा।

इन सब बातों में प्राचीन मध्यकालीन और नवीन
की प्राचीन इटली से बहुत कुछ समता हो
ती है। वेदों, उपनिषदों का साहित्य, मध्यका-
पुराणों का साहित्य और नवीन साहित्य (जो
बन रहा है) तीनों प्रत्यक्ष पृथक् कालों के द्योतक
अर्थ में पाए जाते हैं जिस अर्थ में हमने ऊपर
लों के साहित्य को लिखा है।

प्राचीन साहित्य में ही चितेरी, पूर्त्ति, निर्म्माण,
आदि का प्राकृतिक ज्ञान, निर्दोष-मानसिक
कल्पना और मनुष्यों के रूप, रंग चाल-ढाल का
चिन्तन पाया गया, कारीगरियों की उसी में से
खोज हुई, सामाजिक जीवन की अनेकों जरू-
की पूर्त्ति के मार्ग उसी में मिले, उसी से विद्वानों
उत्तम शैली का ज्ञान हुआ, कहाँ तक कहें दार्श-
महत्ता, विचारों और तर्कों की स्वतन्त्रता, प्रकृति
देखनेवाली नेत्रों की तीव्रता उसी से मिली, राज-
नीतिज्ञों ने उसी में राज्य की उस एकता को देखा
की खोज में विज्ञान ही नहीं, सारा समाज
हो रहा था।

वेदों, उपनिषदों और संस्कृत महाकाव्यों में हमें
युक्त आवश्यक बातों में से ऐसी कौन है जो
मिलती? कालिदास ने जो कुछ दिलीप और रघु
वंश में लिखा है उसको दृष्टि गड़ा कर देखने
अनेकों ही राजनीतिक रत्नों की झलक आँखों के
आती है। इस दशा में यदि १५ वीं शताब्दी
वालों को अपने प्राचीन साहित्य आदि के
और उनकी नकल उतारने की झक समाई तो
अचम्भे की बात थी।

परन्तु हाँ इस प्रकार की नकल के साथ कुछ मौलिकता, नवीनता और वर्तमान का भी अनुकरण अवश्य मौजूद था।

इतिहासकार बतलाते हैं कि पुरानी चाल के अनुकरण की तृष्णा इटली में उस समय इतनी बढ़ गई थी कि यथेच्छाचारी एकमुखी सीज़र वा अगस्टस का अनुकरण करने की इच्छा करने लगे, प्रजातन्त्रवादी ब्रूट्स के रास्ते पर चलना चाहते, स्वतन्त्र सेना-नायक सीपियो और हेनीबाल की, दार्शनिक अरस्तो व प्लेटो की, साहित्यज्ञ लोग वर्जिल, सिसरो आदि की पैरवी करने पर उतर पड़े थे। यहाँ अनुकरण की इच्छा इतनी प्रचण्ड हो गई थी कि ग्रामों, नगरों आदि तक के नाम लोगों ने बदल दिए थे।

मध्य कालवालों ने भी प्राचीन लेखकों को एकदम भुलाया न था, वे उल्टे बहुतों की तो धर्म्म दृष्टि से प्रतिष्ठा करते थे, जैसे आजकल के हिन्दू व्यास वशिष्ठादि को समझते हैं, परन्तु मध्य-कालीन उग्र साहित्य थोड़ी बहुत बातों के सिवा नए साहित्य से जो बन रहा था, एक दम अलग था। और थोड़े से इने गिने कुछ और इधर के लातिन ग्रंथकारों पर ही परिमित था। ये ग्रंथकार उस रोम के साम्राज्य में रहे हुए थे, जिसका प्रभाव इस समय तक संसार में विद्यमान था और यह समझा जाता था कि इनके भावों का कभी नाश या परिवर्त्तन होता ही नहीं। इन ग्रंथकारों के विचार बाइबिल या ईसाई धर्म्म सिद्धान्तों से कम रचे हुए न थे, इनके ग्रंथ लोग सहयोगी लेखकों के ग्रंथों के समान पढ़ते और आवश्यकतानुसार खींचतान कर ऐसा अर्थ करते जिससे ईसाई धर्म्म-सिद्धान्तों की पुष्टि हो। वर्जिल के ग्रंथ से ईसा के आने की भविष्यद्वाणी निकालते, सिसरो के नीति-दर्शन में धर्म्म-ग्रंथों के समान भावों के होने की अनिवार्य्य जरूरत समझते और वैसा ही अर्थ करते, अरस्तो (अरस्टोटल) के ग्रन्थों में जो केवल लातिन अनुवाद से ही पढ़े जाते और जिन पर व्याख्याताओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और टीकाकारों ने परदा डाल दिया था, जीवात्मा की अमूर्तता और नित्यता सिद्ध की जाती; यद्यपि ग्रंथकार (अरस्तो) को इन सिद्धान्तों में कुछ भी विश्वास न था। १५वीं शताब्दी की इच्छा और रुचि इन मध्यकालीन इच्छाओं और रुचियों से नितान्त भिन्न थी। अब इस बात की तनिक भी इच्छा न रह गई थी कि मूर्त्तिपूजकों को ईसाई बना दिया जाय, उलटे, यह शताब्दी मूर्त्ति-पूजन की ही ओर लौट कर ईश्वर के नगर में जाने की अभिलाषिणी थी। स्वर्ग छोड़ कर संसार में आने की इच्छा करती थी। इन कारणों से उपर्युक्त उग्र साहित्य का ज्ञान उस समय काफी न था, पूरा पूरा, सब और अधिकतर प्राचीन साहित्य पढ़ने की जरूरत बढ़ी, क्योंकि उनमें ज्यादः मानसिक श्रम करना पड़ता और कल्पना-शक्ति को कहीं ज्यादः लम्बी दौड़ लगाने की जरूरत होती। इस अभिप्राय से पुरानी हस्त-लिपियाँ बड़ी सरगर्मी से खोज खोज कर उनपर टीकाएं और टिप्पणियां होने लगीं और प्राचीन स्मारकों पर उस अभूतपूर्व उत्ते-जनापूर्ण क्रियाशीलता से छानबीन और वादानुवाद आरम्भ हुआ जिसकी समता इतिहास में कहीं भी देखने में न आती थी। जान पड़ता था कि इटली-वाले न केवल प्राचीनों का अनुकरण करने को उद्यत हैं वरन् चाहते हैं कि मुरदों को कबरों से निकाल कर फिर उनमें प्राण फूंक देंगे जिससे मध्यकालीन समय और संसार के स्थान पर प्राचीन समय और संसार फिर से व्यक्त हो कर वर्तमान हो जायगा। क्योंकि वह समझने लगे कि हमें हमारे वास्तविक रूप का ज्ञान उसी से हुआ है और अभी ज्यादा स्पष्टता से हो सकता है। यही सच्चा, यथार्थ और अकृत्रिम अभ्युत्थान या पुनरभ्युत्थान था। इस काम में वे ऐसे मस्त हो गए कि उन्हें यह भी मालूम न पड़ा कि वे अपने अनु-करण वा अनुसरण में ऐसी नई शक्ति से अनुप्रा-णित और ऐसे नए व्रतों के व्रती हो गए हैं जो क्रमशः उन्हें भीतर ही भीतर समुन्नत करते जाते हैं। यह उन्नति पहले तो अदृश्य रूप में होती रही, अन्त में अचानक नवीन और राष्ट्रीय रूप में एकदम ऐसी प्रकाश-मान् हुई जैसे प्राची दिक् को फाड़ता हुआ प्रभात में सूर्य्य निकलता दिखाई देता है। इससे हमारे पाठक समझ लेंगे कि प्राचीन बातों का मनन करना ही था जिसने उसे, नहीं नहीं समस्त युरोप को मध्य-कालीन बेड़ियों को तोड़ फेंकने के योग्य बनाया और यह शक्ति दी जिससे १३वीं शताब्दी के लेखकों के आरम्भ किए हुए कामों में बाधा पड़ने के बदले, साधारणतः युरोप और विशेषतः इटली प्रदेश लागातार अग्रसर होता चला गया और अन्त में एक दूसरे ही रूप में पूर्ण-काम हुआ। सच है जिसके पास पुराना महत्त्व-पूर्ण भव्य इतिहास है, जिसके घर उग्र प्राचीन साहित्य है, जिस जाति के पुरुषाओं की कर्म्मठता संसार को बता रही है कि यह राष्ट्र क्या था और कैसा था, वह राष्ट्र अपने प्राचीन साहित्य के मनन से क्या नहीं कर सकता; हाँ मालूम करने को हृदय, देखने को नेत्र, सुनने को कान, सोचने को बुद्धि और मनुष्यता का भाव बचा होना चाहिए।

अनेक उत्तम बातों के होते हुए भी कभी कभी जातियों की अधोगति क्यों होती है और फिर उसके पुनरुत्थान के साधन क्या हुआ करते हैं? इसी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर पाठकों को इस छोटे से निबन्ध में संक्षेप से मिलेगा। इसी सम्बन्ध में हम इटली की दो चार बातें और कह कर इस लेख को समाप्त करेंगे।

एक इतिहासकार कहता है कि महाकवि डेंटी के जीवनकाल की भाँति इटली में नवीन साहित्य और कला के काम उत्साह और विश्वास-पूर्ण, दृढ़ सदा-चार और अभेद्य अनुराग-सम्पन्न, युवा और बलवान समाज-जनित प्रचार और बलिष्ठ उद्बोधन के परिणाम न थे। ऐसे समय में जब कि डावाँडोल मानसिक उद्योग तो जारी थे लेकिन मानवी हृदय की ऊँची अभिलाषाओं का अभाव हो चुका था, साहित्य और

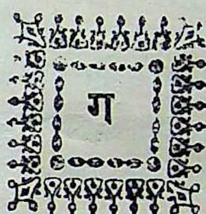
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...की सृष्टि ने युग का प्रभाव दिखलाया था। ...सब प्रकार के कामों में जिनमें प्रत्यक्ष प्रकृति, ...ष्य का बाहरी चिंतन और मनुष्य के हाथ पैरों ...द्वारा प्रधानता रखता है निस्सन्देह आश्चर्य-... कृतकार्यता होती है। स्वभाव से ही सभ्य ...नारियों से पुराने जमाने के कविगण के वर्णित ...न्दर्य और महत्त्व जाते रहे, ईसाई देवालयों के ...द्वेबोधित भाव विदा हुए। लोग अपनी समझ में ...पुराने ढांचों को अपना रहे थे, लेकिन इनके ...ना जाने कलाओं का परिवर्तन और रूपान्तर होता ...रहा था। यूनानी चातुर्य्य से मोहित मन प्रकृति ...अनुकरण करता चला जाता था, नए नए ढंग ...काम अपने आप हाथों से निकलने लगे, मानो ...वती प्रकृति प्रसन्न हो कर नाना प्रकार से ...लियन जनता के हृदय में अपना प्रकाश करने ...। ईसाई रंग-रूप की कलम मूर्त्तिपूजक रंग-...के साथ लगा देने से कला ने अपने आप नया सौन्दर्य्य, पवित्रता और अनूठापन धारण कर ...और युग तथा राष्ट्र पर वह अमित शोभा बरसाने ...। यही पूर्ण पुनरुत्थान का व्यक्त होना था, ...चीनता का नवीनता के रूप में राष्ट्र में अवतरण ...था। इस समय के काव्य, नाटक, उपन्यास ...की ही शोभा देने लगे। राजनीति-विज्ञान और ...मनुष्य के व्यक्त और अव्यक्त भावों तथा कृत्यों का ..., उनके व्यावहारिक फल स्पष्ट करने लगा, ...विचार का सुधार, अन्तरात्मा का संस्कार, ...क भावों की परिमार्ज्जना न केवल पवित्रता ...को पहुँच गई बल्कि १५ वीं और १६ वीं शताब्दी ...सने नया जगत ही बना कर दिखा दिया। ...जा अटूट शक्ति से काम करने लगी, जिस प्रकार ...साहित्य उसने खोजा वही उसे मिला। क्या ...था पद्य दोनों ही में उसे सुगमता के साथ ...सचाई हाथ लगी। सौभाग्यवती प्रजा ने भाषा, ...पत्य की शैली को नीति-कौशल, इतिहास, दर्शन और विज्ञान के साथ नया जन्म दिया; साथ ही सूखे धार्म्मिक झगड़े उठ गए, व्यर्थ के वितण्डे जाते रहे। यद्यपि कुछ दोष भी रहे, पर ब्रह्मा की सृष्टि में निर्दोष जाति या व्यक्ति का मिलना कठिन है। कोई विरले महात्मा ही ऐसे होंगे जो संसार का हित करते हुए अपने हाथों की कमाई खाते हुए संसार के लोगों से सर्वथा निर्दोष समझे जाते हों।

—:०:—

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ।



त २९, ३० और ३१ दिसंबर को प्रयाग में श्रीयुक्त बा० श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० के सभापतित्व में षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन सफलतापूर्वक और धूमधाम से हो गया। यद्यपि प्रयागवालों को सम्मेलन की तैयारियाँ करने के लिये केवल आठ ही दस दिनों का समय मिला था, तो भी इस थोड़े से समय में उन लोगों ने जितना उत्तम प्रबन्ध कर लिया था उसके लिये वे अवश्य ही बहुत कुछ धन्यवाद के पात्र हैं। सभापति बा० श्यामसुन्दरदासजी ने भी केवल एक सप्ताह में अपना जो वक्तव्य तैयार कर लिया था वह अवश्य ही बहुत प्रशंसनीय और लोगों को चकित करनेवाला था। आपका वक्तव्य पहले सम्मेलनों के सभापतियों के वक्तव्यों से बड़ा तो था ही; दूसरे उसमें सबसे बड़ा गुण यह था कि उसमें हिन्दी-सम्बन्धी सभी प्रश्नों और अंगों पर योग्यतापूर्वक विचार किया गया था। हिन्दी-सम्बन्धी सरकारी नीति का भली भाँति मनन कर के आपने जो विचार प्रकट किए हैं वे अभूतपूर्व होने के अतिरिक्त हिन्दी के लिये बहुत हितकर हैं। हमें इस समय सबसे बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता उन कठिनाइयों को दूर करने की है जो हिन्दी के मार्ग में पड़ कर रुकावट डालती हैं अथवा जिनके कारण हिन्दी का प्रचार सरलतापूर्वक नहीं होने पाता। हर्ष का विषय है कि बाबू साहब ने वर्त्तमान समय की इस भारी आवश्यकता पर अच्छी तरह विचार किया और उसके सम्बन्ध की मुख्य मुख्य बातों को सर्वसाधारण के सामने उपस्थित किया। आपका सम्बन्ध शिक्षा-विभाग से ही अधिक रहा है; अतः आपने अपने अनुभव से उसके सम्बन्ध में जो बातें कही हैं वे अवश्य इस योग्य हैं कि समस्त हिन्दी-संसार उनके लिये आन्दोलन करे और शिक्षा-विभाग उनपर विचार करके हिन्दी के साथ होनेवाले अन्याय रोके।

सम्मेलन हो गया और अच्छी तरह हो गया। सम्मेलन हो गया यह तो हर्ष की बात है; पर वह लाहौर में न हो कर प्रयाग में हुआ, यह बात बड़े दुःख की है। यद्यपि सभापति महाशय ने अपनी वक्तृता में इसका कारण केवल "संयोग" ही बतलाया था; पर इस संयोग के अतिरिक्त इसका कोई विशिष्ट कारण भी था। यदि लाहौरवाले थोड़ी सी भूल और थोड़ा सा हठ न करते तो स्थायी समिति को भी अपने अधिकार जतलाने का अवसर न मिलता और हिन्दी को पंजाब में विशेषतः उर्दू-वालों के सामने इस प्रकार अपमान न सहना पड़ता। यद्यपि इस बार पंजाब में सम्मेलन न होने के कारण हिन्दी की हानि हुई है; पर पंजाबवालों को उचित है कि वे शीघ्र ही इस हानि को पूरा करने के साथ साथ अपनी बदनामी भी धो डालें। हमें आशा है कि यदि दो चार या पाँच बरस के अन्दर अन्दर लाहौर में सम्मेलन का एक अधिवेशन सफलतापूर्वक हो जायगा तो पंजाबवाले विशेष यश के भागी होंगे और हिन्दी की केवल पिछली हानि ही न पूरी हो जायगी बल्कि उसका और कुछ लाभ भी हो रहेगा। अस्तु।

पहला दिन।

सम्मेलन की पहली तिथि २९ दिसंबर निश्चित थी। उसी दिन प्रातःकाल बा० श्यामसुन्दरदास जी लखनऊ से बा० पुरुषोत्तमदास ककड़, बा० गोपाललाल खत्री, पं० रामचन्द्रशुक्ल और पं० महेशनाथ आदि के साथ प्रयाग पहुंचे। आपका स्वागत करने के लिये स्वागतकारिणी के सभासद और बाहर से आए हुए प्रतिनिधि आदि स्टेशन पर उपस्थित थे। प्रायः ९ बजे स्टेशन से आपका जुलूस बड़ी धूमधाम से निकाला गया जो चौक होता हुआ मुंशी रामप्रसाद के बाग में, जहाँ सम्मेलन होने को था, पहुँचा। बीच बीच में लोग मातृभाषा का बहुत उत्साहपूर्वक जयजयकार करते जाते थे।

उसी दिन ठीक एक बजे दोपहर को सम्मेलन का कार्य्य आरम्भ हुआ। एक बड़े शामियाने के नीचे बाहर से आए हुए प्रायः सभी प्रतिष्ठित और प्रधान हिन्दीप्रेमी उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त नगर के भी बहुत से गण्य-मान्य सज्जन उपस्थित थे। उस दिन के उपस्थित सज्जनों में पंचम हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति पं० श्रीधर पाठक का नाम विशेष उल्लेख-योग्य है, क्योंकि यह पहला ही अवसर था कि सम्मेलन के एक भूतपूर्व सभापति भी उसके अधिवेशन में उपस्थित थे। सबसे पहले मंगलाचरण और मंगल गान हुआ और तदनन्तर पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय और पं० गंगाधर ने अपनी अपनी कविताएं सुनाईं।

कविताओं के पढ़े जाने के उपरान्त स्वागत-कारिणी समिति के सभापति पं० श्रीकृष्णजी जोशी उठे। आप समयाभाव से स्वागत-सम्बन्धी कोई लिखित लेख पहले से तैयार न कर सके थे। आपने आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए कहा:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"धन्य वे जातियाँ हैं जो उन्नति किया करती हैं उन जातियों के लोग श्लाघ्य हैं, क्योंकि वे जाति को ऐश्वर्यशाली बनाने की चेष्टा करते हैं वे जो अपनी मातृभाषा की उन्नति के निरंतर उद्योग किया करते हैं। परन्तु आप उनसे भी अधिक धन्य हैं, क्योंकि आप अपनी भाषा से निष्काम प्रीति करते हैं। तात्पर्य यह एक दूसरी भाषा जीविका की भाषा होते हुए आप अपने देश के नाते से हिन्दी को प्यार हैं।

"यथा, वेदों का पढ़ना ब्राह्मणों के लिये अकारण बिना आवश्यकता के भी लिखा है, उसी भाँति लोगों का हिन्दी से निष्काम प्रेम करना गौरव-क है अतः आप लोग धन्य हैं।

"बौद्ध धर्म पहले भारतवर्ष में एक बड़े महात्मा द्वारा प्रवर्त्तित होने पर भी तिरस्कृत रहा, पर अशोक ने उसे राजधर्म बनाया, तब उसका हुआ। ईसा का मत भी जब तक रोम के ओं ने स्वीकृत नहीं किया, मछुओं और गड़रियों का कहाता था, पर जब रोम के बादशाहों ने ग्रहण किया तब उसका आदर हुआ। परन्तु भाषा को राजदरबारों में राजभाषा होने का न मिलने पर भी और फारसी आदि भाषाओं क्रान्त और परिभूत रहने पर भी उसके करने और उससे प्रीति करने के कारण धन्य हैं।

"प्राचीन समय में यवन बादशाहों के राज-में जीविकावश लोगों को फारसी पढ़नी थी। फिर जो लोग सेवावृत्ति न भी करते थे सभ्य पुरुषों से फारसी में ही बातचीत के कारण फारसी सीखनी पड़ती थी, अतएव भाषा फारसी से उस समय आक्रान्त थी। हम लोगों में उसी का संस्कार चला आता है और हम लोग देशी भाषा की अपेक्षा विदेशी भाषाओं में अधिक योग्य हो जाते हैं। राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि सज्जन फारसी के उत्कट विद्वान् थे। परन्तु बङ्गाल प्रांत में तो ये संस्कार ढीले पड़ रहे हैं और बङ्गला भाषा फारसी के स्थान को ग्रहण कर चुकी है। युक्त प्रदेश में केवल अक्षर बदल कर हम लोगों को हिन्दी को कचहरियों में रख देने का दिलासा दिया गया है जिससे हमारी हिन्दी अभी तक स्वतन्त्र नहीं होने पाई है।

"स्कूलों में लोग अपने बालकों को फारसी दूसरी भाषा या विज्ञान दिलाते हैं और संस्कृत को, जिससे मातृभाषा का उद्भव हुआ है, कठिन बता कर तिरस्कृत करते हैं। इसी प्रकार उसका भी लोप कर रहे हैं। यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं है। संस्कृत को कठिन मान कर देश की एक प्राचीन भाषा को सदा के लिये उठा देना अपनी अवनति करने की भाँति है।

"यूरोप में लोग प्राचीन सभ्यता का मुख्य स्थल यूनान मानते हैं। पर यह वे भूल ही रहे हैं कि, भारत उससे भी पूर्व सभ्य तथा उन्नतिशील रह चुका है और उससे ही यूनान को यह पद प्राप्त हुआ है। हमारी शब्दावली की धातुएं उनकी भाषा की धातुओं से मिलती हैं और यह स्पष्ट है कि, भारत यूनान से अधिक प्राचीन है। अतः यह स्वयंसिद्ध है कि, भारत संसार भर में एक देश है जो प्राचीनता में श्रेष्ठ है। पर उसकी उन्नति तभी तक रही जब तक मातृभाषा का आश्रय रहा। पर अब उसके बिना वह अवनति का स्थान बन रहा है। मातृभाषा गँवारी बोली समझी जाती है और यदि कोई फारसी के शब्दों से अलंकृत करके न बोले तो गँवार कहाता है। हमको अपनी भाषा को मान दे कर पूर्ववत् उन्नति करना उचित है।"

जोशी जी की वक्तृता के उपरान्त सभापति के लिये प्रस्ताव करनेवाले बा० पुरुषोत्तमदास

---

*जोशी जी की वक्तृता भारतमित्र से ली गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टण्डन खड़े हुए। पर आपने प्रस्ताव करने से पहले उपस्थित सज्जनों को यह बतला देने की आवश्यकता समझी कि सम्मेलन लाहौर में न हो कर प्रयाग में क्यों हो रहा है। यह बतला चुकने के उपरान्त आपने सभापति के लिये प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा कि आजका सम्मेलन दो कारणों से अन्य सम्मेलनों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। पहला कारण तो यह है कि सम्मेलन बहुत सी झंझटों और गड़बड़ी में पड़ने के बाद हो रहा है; और उसकी महत्ता के दूसरे कारण उसके सभापति महोदय हैं। अब तक सम्मेलन के सभापति वे ही सज्जन हुए थे जिन्होंने बहुत दिन पहले हिन्दी की सेवा की थी; पर आज जिनके लिये प्रस्ताव किया जा रहा है वे इस समय भी कमर कस कर साहित्य-क्षेत्र में काम कर रहे हैं। आपके प्रस्ताव का अनुमोदन पं० लक्ष्मीनारायण नागर और समर्थन राय लाल बिहारीलाल बी० ए० तथा पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने किया था। समर्थन हो चुकने के उपरान्त सभापति महाशय ने आसन ग्रहण किया और अपना विस्तृत वक्तव्य पढ़ सुनाया*। वक्तव्य पढ़ने में आपको प्रायः दो घंटे लगे। उसकी समाप्ति पर बहुत से बाहरी हिन्दी-सेवियों के सहानुभूति सूचक तार और पत्र पढ़े गए और तब उस दिन का कार्य्य समाप्त हुआ।

दूसरा दिन।

दूसरे दिन ठीक बारह बजे सभापति महाशय अपने स्थान पर पहुँच गए। प्रतिनिधियों और दर्शकों आदि को आने में कुछ विलंब हो गया था। उस दिन तीसरे पहर तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति श्रीयुक्त पं० बदरीनारायण चौधरी ने भी सम्मेलन में पधारने की कृपा की थी। उस दिन प्रस्तावों की उपस्थिति से कार्य्यारम्भ हुआ।

सभापति ने पहला प्रस्ताव यह उपस्थित किया कि, "यूरोपीय राज्यों में जो भयङ्कर युद्ध हो रहा है, उसमें ब्रिटिश सरकार से इस सम्मेलन की पूरी सहानुभूति है और परमात्मा से उसकी विनीत प्रार्थना है कि हमारे प्रजा-प्रिय राजराजेश्वर का पक्ष शीघ्र ही विजयी हो।"

इस प्रस्ताव को सब लोगों ने खड़े हो कर स्वीकृत किया।

दूसरा प्रस्ताव यह था कि, 'यह सम्मेलन रा[illegible] देवीप्रसादजी (पूर्ण), पं० तुलसीरामजी स्वामी, बाबू शिवचन्द्रजी भरतिया, स्वामी ब्लाकटानन्द तथा डा० सतीशचन्द्र बनर्जी की असामयिक मृत्यु पर अपना आंतरिक दुःख प्रकट करता है और उनकी हिन्दी सेवा का स्मरण करता हुआ उन[illegible] संबंधियों से अपनी समवेदना प्रकट करता है।' इस प्रस्ताव को भी सभापति महाशय ने उपस्थित किया और यह भी खड़े हो कर सबने स्वीकृत किया।

तीसरा प्रस्ताव यह था—"इस सम्मेलन [illegible] इस बात का अत्यन्त दुःख है कि, भारत गवर्नमेंट ने नागरी से परिचित बहुसंख्यक भारतीय प्रजा की सुविधा की ओर ध्यान न दे कर नोटों पर से नागरी अक्षरों को उठा दिया है और अनेक बार प्रार्थना करने पर भी इस सम्बन्ध में सम्मेलन के निवेदन को स्वीकार नहीं किया है। इस सम्मेलन [illegible] सिक्कों पर नागरी अक्षर रखने के लिये भी कई [illegible] भारतीय गवर्नमेण्ट का ध्यान आकर्षित किया है [illegible] अभी तक कोई फल नहीं हुआ। अतः यह सम्मेलन भारत गवर्नमेंट से पुनः सानुरोध प्रार्थना करता है कि, नोटों और सिक्कों पर शीघ्र नागरी आक्षरों को स्थान दे।" इसे उपस्थित करते हुए सभापति [illegible] कहा कि, "यह प्रस्ताव कई वर्षों से सम्मेलन [illegible] उपस्थित किया जा रहा है और प्रार्थना की जा [illegible] है कि नोटों और सिक्कों पर नागरी अक्षरों को स्थान दिया जाय, पर नहीं विदित है कि सर[illegible]

*यह वक्तव्य गतांक में प्रकाशित किया जा चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...सी नीति पर चल कर बहुसंख्यक प्रजा की ...ई की ओर ध्यान नहीं देती है। आवश्यक ... यह प्रस्ताव पुनः पास कर के सरकार की ... में भेजा जाय।" यह प्रस्ताव भी सर्वसम्मतिसे ...त हुआ।

...था प्रस्ताव—"यह सम्मेलन प्रयाग-विश्वविद्या-... को धन्यवाद देता है कि उसने देशी भाषाओं ... शिक्षा में उपयुक्त स्थान देने का विचार प्रकट ...या है। इस सम्मेलन की सम्मति में प्रयाग और ...जाब दोनों विश्वविद्यालयों को शीघ्र ही देशी ...षाओं की पढ़ाई को भी अन्य विषयों की भाँति ...क्रम में उपयुक्त स्थान देना चाहिए।" सभापति ...शय ने इसे उपस्थित करते समय कहा कि, "गत ...भी यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया था और ...का यह रूप था कि विश्वविद्यालयों को देशी ...षाओं की ओर ध्यान देना चाहिए। अब प्रयाग ...वविद्यालय में इसके सम्बन्ध में विचार हो गया ...और विश्वविद्यालय के एक सदस्य के ऊपर ...का विचार करना छोड़ा गया है, पर पञ्जाब के ...वविद्यालय ने अभी तक कोई कार्य इसके सम्बन्ध ...नहीं किया है, अतः प्रयाग और पंजाब दोनों ...नों के विश्वविद्यालयों में शीघ्र ही देशी भाषाओं ...की पढ़ाई भी अन्य विषयों की तरह प्रारम्भ हो ...नी चाहिए।" यह प्रस्ताव भी स्वीकृत ...आ।

पांचवां प्रस्ताव—"यह सम्मेलन संयुक्त प्रान्त ... शिक्षा-विभाग को आठवीं कक्षा तक हिन्दी को ...क्षा का माध्यम बनाने के लिये धन्यवाद देता है ...र प्रार्थना करता है कि, पाठक्रम में ऐसी पुस्तकें ...खी जायँ जिनकी हिन्दी पुष्ट और शुद्ध हो और ...नमें हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों का पूरा पूरा ...व्यवहार रहे। यह सम्मेलन भारतीय तथा अन्य ...देशीय सरकारों से भी प्रार्थना करता है कि वे ऐसी ...आज्ञा निकालें कि समस्त स्कूलों में कम से कम आठवीं कक्षा तक सब विषयों की पढ़ाई देशी भाषा में हुआ करे।'

इसे भी सभापति ने उपस्थित किया और यह सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

छठा प्रस्ताव—'इस सम्मेलन को इसलामिया स्कूलों और मकतबों के खोलने के सम्बन्ध में युक्त-प्रान्त की गवर्नमेण्ट से विरोध नहीं है, किन्तु दुःख है कि गवर्नमेण्ट ने हिन्दी की शिक्षा के लिये ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं किया है जैसा उसने इसलामिया स्कूल खोल कर उर्दू शिक्षा के लिये किया है। अतः यह सम्मेलन गवर्नमेण्ट से निवेदन करता है कि हिन्दी की पढ़ाई के लिये भी हिन्दी बोलनेवालों की संख्या के अनुसार वैसी ही सुविधाएं कर दे जैसी उसने उर्दू के लिये की हैं।' सभापति महोदय ने इसे उपस्थित कर के कहा कि, "जैसे सरकार ने उर्दू के लिये पाठशाला खोल कर सुविधा की है, उसी प्रकार उसका हिन्दी के प्रति भी कर्त्तव्य है। हिन्दी की पाठशालाएं खोल कर उसका प्रचार करना भी उसका परम कार्य है।" यह प्रस्ताव सब ने हाथ उठा कर स्वीकृत किया।

सातवाँ प्रस्ताव—"यह सम्मेलन हिन्दू विश्व-विद्यालय के सञ्चालकों से आग्रहपूर्वक अनुरोध करता है कि, उसका नाम और काम सार्थक करने के लिये उक्त विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम हिंदी रखा जाय।" सभापति ने इसे उपस्थित करते समय कहा कि, "विश्वविद्यालय के सञ्चालकों को हिन्दी का ध्यान रखते हुए और मातृभाषा होने के कारण कम से कम शिक्षा का माध्यम हिन्दी बनाना चाहिए।" यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ।

आठवां प्रस्ताव—"यह सम्मेलन गुजराती सा-हित्य-सम्मेलन तथा महाराष्ट्रीय साहित्य-सम्मेलन को हृदय से प्रेमपूर्वक धन्यवाद देता है कि, उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर के अपने शिक्षालयों में उसे दूसरी भाषा की भाँति पढ़ाने का मन्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिर किया है। यह सम्मेलन आशा करता है कि, ऐसा प्रेम-सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता जायगा।"

इसे उपस्थित कर के सभापति ने कहा कि यह आनन्द एवं सन्तोष की बात है कि देश के कुछ अन्य भाषा-भाषी हिन्दी की उपयोगिता स्वीकार करने लगे हैं और उसे राष्ट्रभाषा बनने के योग्य समझते हैं। गुजराती तथा महाराष्ट्रीय-साहित्य सम्मेलनों के विचार हिन्दी तथा नागरी के प्रति वास्तव में उदार हैं और वे इसके लिये धन्यवाद देने के योग्य हैं। आशा है कि अन्य भाषावाले—यथा बङ्गला इत्यादि के पक्षपाती भी उनका अनुकरण कर के सत्यता का पक्ष समर्थन करते हुए हिन्दी के प्रति वे ही भाव लावेंगे। यद्यपि यह सम्भव है और उचित है, क्योंकि मातृभाषा का प्रेम स्वाभाविक है और इसके बिना मनुष्य मनुष्य ही नहीं कहा जा सकता, पर तोभी परस्पर के प्रेम और प्रीति के लिये सत्य बात को शीघ्र मानना चाहिए।" यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

सभापति के इन प्रस्तावों के पश्चात् परीक्षा-समिति के संयोजक श्रीयुत प्रो० ब्रजराजबहादुर ने अपनी समिति की रिपोर्ट पढ़ी जिससे विदित हुआ कि, इस वर्ष प्रथमा के परीक्षार्थियों के १४७ आवेदन-पत्र आए, ७३ परीक्षा में बैठे और ५५ उत्तीर्ण हुए। ८ कन्याओं में ६ बैठीं, ४ उत्तीर्ण हुईं। 'मध्यमा' में ११ उत्तीर्ण हुए। इन परीक्षाओं में कन्याओं को सम्मिलित होते देख हर्ष होता है और अब अगले वर्ष से उनके परीक्षा के विषयों में स्त्री-जाति सम्बन्धी विषय भी रख दिए जायँगे।

इसके पश्चात् संयोजक तथा सभापति महाशय ने उपस्थित परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को कन्वोकेशन की भाँति प्रमाण-पत्र प्रदान किए। जो वाक्य कन्वोकेशन में कह कर प्रमाण-पत्र दिए जाते हैं उन्हीं सब वाक्यों में यहाँ भी काररवाई हुई। इसके पश्चात् संयोजक जी ने परीक्षकों को भी धन्यवाद दिया।

इसके उपरान्त पदक और दूसरे पुरस्कार आदि दिए गए।

पदक और पुरस्कार आदि दे चुकने के उपरान्त सभापति महाशय ने परीक्षा-समिति के कार्यों पर बहुत सन्तोष प्रकट करते हुए उसकी उपयोगिता बतलाई और कहा कि, "आगे चल के ये परीक्षाएं 'हिन्दी यूनिवर्सिटी' की अंग होंगी और परमात्मा करेगा एक ऐसा दिन आवेगा जब केवल कन्याओं को प्रमाण-पत्र देने में एक दिन लगा करेगा।"

बा० रामदास गौड़ ने उठ कर उपस्थित सज्जनों से प्रार्थना की कि, आगामी परीक्षाओं के लिये वे पदकों तथा पारितोषिकों की प्रतिज्ञा कर के परीक्षार्थियों को उत्साहित करें। इसके पश्चात्, आपने स्वर्गीय भट्टजी तथा राय देवीप्रसाद की स्मृति के लिये प्रतिवर्ष दो पदक देने के वास्ते अपील की और कहा कि, एक एक पदक के लिये एक एक हजार रुपए की आवश्यकता पड़ेगी। भट्टजी के लिये पाँच सौ का चन्दा हो गया और राय साहब के लिये लगभग दो सौ रुपए का।

उसी समय आगामी वर्ष की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों के लिये अनेक सज्जनों ने प्रायः पचास पदक और दूसरे अनेक प्रकार के पुरस्कार आदि देने की प्रतिज्ञा की। उनमें कन्याओं के लिये कई आभूषण आदि भी थे। इन सब कार्रवाइयों के उपरान्त "हिन्दी पत्र-सम्पादन" पर स्वामी सत्यदेव जी का व्याख्यान हुआ। पत्र-सम्पादन के सम्बन्ध में आपने कई उपयोगी और सम्पादकों के ध्यान देने योग्य बातें तो अवश्य बतलाई थीं; पर उसमें एक त्रुटि यह थी कि आपकी सम्मति एक पाठक की दृष्टि से थी, न कि एक सम्पादक की दृष्टि से। हिन्दी पत्रों के सम्बन्ध में आपने जो त्रुटियाँ बतलाई थीं वे यदि सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। व्याख्यान के कुछ अंश को छोड़ कर शेष ध्यान देने और विचार करने योग्य था।

...जी के व्याख्यान के उपरान्त पं० जगन्नाथ-...चतुर्वेदी ने अपना "अनुप्रास-अन्वेषण" नामक ...का कुछ अंश और पं० सुखराम चौबे ने ...तिहास' पर एक लेख पढ़ सुनाया। इसके ...फिर प्रस्ताव उपस्थित होने लगे। बा० ...मदासजी टंडन ने नवाँ प्रस्ताव यह उपस्थित ...कि—'प्रयाग के विश्वविद्यालय में हिन्दी-साहित्य ...उचित समावेश करने के लिये इस सम्मेलन ...सम्मति में उक्त विश्वविद्यालय को एक स्वतन्त्र ...का वर्ग (Board of Studies for Hindi) ...त करना चाहिए जिसमें हिन्दी के विद्वान् ही ...हों।' इसके सम्बन्ध में आपने कहा कि, ...बात प्रकट है कि आजकल के सरकारी ...में जो पुस्तकें देशी भाषा तथा विशेष ...हिन्दी की पढ़ाई जाती हैं उनकी भाषा खराब होती है। यह अनुचित है और शिक्षा को भी धक्का पहुँचता है। इनकी खराब है। इसका क्या कारण है? इसका यही ...है कि, प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी के किसी विद्वान् को अपने वर्ग में न रखते हुए और बिना ...हुए कि, हिन्दी में भी उत्तमोत्तम पुस्तकें विद्य-...हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ तथा भारतीय भावों ...परिचित अँगरेजों से अंगरेजी भाषा में पुस्तकें ...कर फिर उनका अनुवाद देशी भाषाओं में ...पाठ्यक्रम में नियत करता है। विश्वविद्यालय ...धारणा, उसमें हिन्दी का कोई विद्वान् न होने ...हो गई है कि न हिन्दी में अच्छी पुस्तकें ...न विद्वान् जो अच्छी पुस्तकें लिख सकें। यदि ...का कोई ज्ञाता वहाँ होता तो बताता कि ...कैसी पुस्तकें हैं और बन रही हैं तथा उसमें ...से विद्वान् भरे पड़े हैं। ...गों की यह धारणा सी हो गई है कि, हिन्दी दीन दुखिया है, इसका साहित्य-भांडार अपूर्ण और खाली है, पर वास्तव में बात तो यह है कि भारत की किसी भाषा का साहित्य हिन्दी-साहित्य की समता नहीं कर सकता है। हां, यह सम्भव है कि कुछ आधुनिक विषय की पुस्तकें तथा अन्य भाषाओं से अनुवादित ग्रंथ उसमें न हों पर इससे वह दीन कहाने योग्य नहीं है।

विश्वविद्यालय में जो हिन्दू सदस्य रखे जाते हैं उन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान नहीं होता। वे हिन्दी की पुस्तकों के बारे में भी कुछ नहीं कह सकते, इसलिये विश्वविद्यालय अँगरेज़ों से पुस्तकें लिखा कर प्रचलित करता है। अतः प्रयाग विश्वविद्यालय से कहा जाता है कि, हिन्दी के विज्ञानों का एक वर्ग बना कर वह उनकी सम्मति से कार्य करे; इन्हीं हिन्दी के पण्डितों द्वारा पुस्तकें चुनी और बनवाई जायँ।

पं० मुरलीधर मिश्र ने इसका समर्थन किया और कहा कि, "शोक की बात है कि, हिन्दी में पुस्तकें रहते हुए भी विदेशी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद कर के शिक्षा का क्रम बिगाड़ा जाता है।"

पं० नन्दकुमारदेव शर्मा ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि "यह सम्मेलन सनातनधर्म्म, जैन, सिक्ख आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज, देवसमाज, आदि सभी धर्म और सुधार-सभाओं से तथा कायस्थ, भार्गव, आदि जातीय सभाओं से सानुरोध प्रार्थना करता है कि:—

(१) "वे अपनी सारी कारखाई हिन्दी-भाषा और देवनागरी अक्षरों में करें।

(२) अपने स्थानों पर और विशेष कर तीर्थ और मेलों के स्थानों पर हिन्दी-वाचनालय और पुस्तकालय खोलें।

(३) अपने आश्रित पाठशालाओं और विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी रखें और हिन्दी साहित्य की अभिज्ञता बढ़ाने का प्रयत्न करें।" प्रस्तावक ने कहा कि, प्यारे भाइयो, भारत देश में उत्पन्न हो कर यदि हम अपनी सभा संस्थाओं का कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में न करें तो कैसी लज्जा की बात है। सर्व-साधारण की सुविधा के लिये तीर्थ तथा मेलों में हिन्दी के वाचनालय तथा पुस्तकालय खोले जाने चाहिए जिससे उनकी ज्ञान-वृद्धि हो। देशी संस्थाओं के अधीन पाठशालाओं में हिन्दी को उच्च स्थान मिलना चाहिए, नहीं तो वे कम से कम शिक्षा का माध्यम तो इसे रखें।

श्रीयुत पुत्तनलाल विद्यार्थी ने इसका अनुमोदन उत्तम रूप से किया। फिर पं० रामाधार वाजपेयी ने समर्थन करते हुए कहा कि बड़ी आवश्यकता है कि ग्रामों में हिन्दी पुस्तकों का प्रचार किया जाय। गश्ती पुस्तकालयों का भी प्रबन्ध हिन्दी के लिये अत्यन्त उपकारी होगा।

इतनी कार्रवाइयों के उपरान्त उस दिन का कार्य्य समाप्त हो गया।

तीसरा दिन।

तीसरे दिन ३१ जनवरी को १२ बजे मंगलाचरण के उपरान्त फिर प्रस्ताव उपस्थित और पास होने लगे और सब से पहले निम्न-लिखित ६ प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

"यह सम्मेलन गुरुकुल कांगड़ी, ज्वालापुर-महाविद्यालय, ऋषिकुल-हरिद्वार, गुरुकुल तथा प्रेम-महाविद्यालय वृन्दावन, आदि हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देनेवाली समस्त संस्थाओं से प्रार्थना करता है कि वे अपने पाठ्यक्रम में उच्च कोटि के हिन्दी-साहित्य को भी स्थान दें तथा हिन्दा की उपयुक्त शिक्षा का प्रबन्ध करें।"

प्रस्तावक—पं० पद्मसिंह जी शर्मा (ज्वालापुर)

अनुमोदक—पं० जगन्नाथप्राद चतुर्वेदी (कलकत्ता)

"[क] चुङ्गी, टैक्स आदि की रसीदें तथा अन्यान्य नोटिसें जो कि सर्वसाधारण को म्युनिसिपेलिटी आदि से दी जाती हैं अंगरेज़ी तथा उर्दू में हुआ करती हैं जिससे हिन्दी जाननेवालों को बड़ा कष्ट होता है। अतएव यह सम्मेलन म्युनिसिपेलिटी आदि संस्थाओं से प्रार्थना करता है कि वे अपने नोटिसें आदि हिन्दी में प्रकाशित किया करें।

[ख] नहर की सिँचाई के पट्टे व पर्चे गांव के लोगों को उर्दू में दिए जाते हैं। उर्दू न जाननेवाले ग्रामीण किसानों को उनके पढ़ाने के लिए दूसरे ग्रामों में जाना पड़ता है और प्रायः धोखे में आ जाने के कारण हानि भी उठानी पड़ती है। अतएव यह सम्मेलन नहर के अधिकारियों से प्रार्थना करता है कि वे हिन्दी में भी पर्चे व पट्टे दिलाने का प्रबन्ध कर दें।"

प्रस्तावक—डा० पुरुषोत्तमदास कक्कड़ (लखनऊ)।

अनुमोदक—पं० राजनारायण शुक्ल।

समर्थक—पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी।

"स्थायी समिति सम्मेलन की नियमावली पर पूरा विचार कर आगामी वार्षिक सम्मेलन से कम से कम दो मास पूर्व संशोधन का मसौदा विचारार्थ प्रकाशित कर दे तथा सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में विचार और स्वीकार करने के लिये वह उपस्थित रहे।" (सभापति द्वारा)

"यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि स्थायी समिति का प्रत्येक सदस्य आर्थिक सहायतार्थ प्रति वर्ष समिति को १२) दे।" (सभापति द्वारा)

"यह सम्मेलन महाराज साहब इन्दौर, अलवर, दतिया, कोठी तथा राघवगढ़-नरेश को अपने अपने राज्यों में देवनागरी लिपि के प्रचार और हिन्दी भाषा की उन्नति में सहायता देने के लिये तथा महाराज नाभा को उनके हिन्दी-प्रेम और सहानुभूति के लिये धन्यवाद देता है और दूसरे महाराजाओं से प्रार्थना करता है कि वे भी अपने अपने राज्यों में हिन्दी का प्रचार करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावक—रायबहादुर बा० लालबिहारीलाल (सतना)

अनुमोदक—पं० व्रजनारायण शर्मा, (अलवर)

"यह सम्मेलन इलाहाबाद यूनीवर्सिटी से प्रार्थना ता है कि अपनी परीक्षा के नियमों में वह ऐसा वर्तन कर दे जिसमें विद्यार्थी विज्ञान के साथ थ संस्कृत भी पढ़ सकें।"

प्रस्तावक—पं० श्रीकृष्ण जोशी।

अनुमोदक—पं० महेशराम।

"इन प्रस्तावों के स्वीकृत हो जाने के उपरान्त न्ध प्रान्त से आए हुए प्रतिनिधि पं० गिरधारीलाल र्मा ने "सिन्ध में हिन्दी की दशा" नामक लेख सुनाया और तदुपरान्त श्रीयुक्त राधामोहन कुलजी ने अपनी एक कविता पढ़ी। अनन्तर काशी ो० लक्ष्मीचन्द एम० ए० ने निम्न-लिखित १७ वाँ ताव उपस्थित किया जिसका अनुमोदन देहरादून लाला बलदेवसिंह और समर्थन श्रीयुक्त राधा-हन गोकुलजी ने किया।

"यह सम्मेलन इस बात को परम आवश्यक मझता है कि भारतवर्ष में ऐसे विद्यालय अधिका-क संख्या में स्थापित हों जिनमें सब प्रकार की क्षा हिन्दी द्वारा हो और जो सम्मेलन की परी-क्षाओं के लिये परीक्षार्थी तैयार करें, जिसमें आगे कर यह सम्मेलन उन्हें विश्वविद्यालय के रूप प्रतिष्ठित कर सके।"

१८ वें प्रस्ताव द्वारा सम्मेलन का वार्षिक विव-और आय-व्यय का लेखा स्वीकृत हुआ। इसमें सम्मेलन के उपमन्त्री ने सम्मेलन की वार्षिक र्ट पढ़ सुनाई और प्रो० रामदास गौड़ एम० ए० स्ताव और श्रीयुक्त राधामोहन गोकुलजी के र्थन पर वह रिपोर्ट स्वीकृत हुई। इसके उप-पं० श्रीकृष्ण जोशी ने पैसा फण्ड के लिये ल की। पं० जीवानन्द शर्म्मा ने भी इसके ये अपील की और पं० माधव शुक्ल ने इसके सम्बन्ध में अपनी एक कविता पढ़ी। प्रायः ५००) का चन्दा हुआ।

पैसा फण्ड का काम समाप्त हो चुकने पर आनरेबुल रायबहादुर पं० विष्णुदत्त शुक्ल ने आगामी वर्ष के लिये सम्मेलन को जबलपुर में निमंत्रित किया। इस निमन्त्रण के सर्वसम्मति से स्वीकृत हो जाने पर प्रभा-सम्पादक पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने सम्मेलन को निमन्त्रण स्वीकार करने के लिये धन्यवाद दिया।

इसके उपरान्त २० वें प्रस्ताव द्वारा परीक्षा-समिति के नियमों में यह संशोधन किया गया कि स्थायी-समिति ही परीक्षा-समिति के लिये ११ सदस्य चुन दिया करे। इनमें ७ स्थायी समिति के सदस्य हों और शेष ४ चाहे सदस्य हों अथवा कोई बाहरी सज्जन हों। इस प्रस्ताव पर मतभेद हो गया था परन्तु अधिकांश मत से यह स्वीकृत हुआ। तदनन्तर नवीन वर्ष के लिये स्थायी समिति का निर्वाचित संगठन पढ़ कर सुनाया गया जिससे प्रकट हुआ कि बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ही प्रधान मन्त्री के पद पर काम करेंगे।

इतना कृत्य हो चुकने पर दो घण्टे के लिये सब लोग उठ गए। उस समय सम्मेलन की ओर से प्रतिनिधियों को जलपान कराया गया। उधर सभा-मण्डप में प्रो० लक्ष्मीचन्द एम० ए० ने विज्ञान के प्रचार के सम्बन्ध में एक वक्तृता दी। सन्ध्या समय प्रो० रामदास गौड़ एम० ए० ने "विज्ञान द्वारा मानवी शक्ति की वृद्धि" पर मैजिक लैन्टर्न की सहायता से एक बहुत उपयोगी और सुबोध व्याख्यान दिया। व्याख्यान के उपरान्त फिर सभा बैठी। उस समय राय बहादुर लाला बिहारीलाल तथा पं० जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी ने सभापति को धन्यवाद दिया जिसके उत्तर में सभापति महोदय ने एक छोटी किन्तु भावपूर्ण वक्तृता दी। आपने कहा कि इस सफलता के कारण प्रथमतः तो वे प्रतिनिधि हैं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल ८ दिन की सूचना पा कर ही यहाँ मातृयज्ञ में सम्मिलित होने आए हैं। स्वयंसेवकों ने भी जैसे अच्छे प्रकार से हम लोगों की सेवा की है, उसके लिये उनको आशीर्वाद देना आवश्यक है। अन्त में यह बता देना आवश्यक है कि इस सम्मेलन का प्रयाग में इतना शीघ्र प्रबन्ध करने के लिये पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, मु० नव्वाबबहादुर प्रभृति कई सज्जनों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। अन्त में आपने कहा कि अब इस सम्मेलन का कार्य समाप्त होता है। आप लोगों को आवश्यक है कि घर जा कर सम्मेलन को भूल न जायँ वरन् ऐसा हिन्दी-प्रचार करें जिसमें घर घर मातृभाषा का प्रचार हो। मुझे दृढ़ आशा है कि वह दिन शीघ्र ही आवेगा जब हम लोगों को केवल परीक्षा-समिति के उपाधि-वितरण के लिये ही एक दिन अलग कार्य करना पड़ेगा।

इस प्रकार सम्मेलन का कार्य निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हो गया। प्रतिनिधियों की संख्या दो सौ से अधिक रही। रात्रि में प्रयागीय हिन्दी नाट्य-समिति ने 'महाभारत' नाटक दिखाया। यह नाटक बड़ी उत्तमता से खेला गया था और इसके लिये समिति के उत्साही सभासद प्रशंसा के पात्र हैं।

इस प्रकार षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सब कार्य्य निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हो गए।

सम्मेलन के अन्त में एक बात और हुई। शुक्रवार ता० ३१ दिसम्बर १९१५ ई० को सवेरे प्रयाग के प्रेम-भवन-पुस्तकालय का सम्मेलन के सभापति बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए० ने निरीक्षण किया। उनको अभिनन्दन-पत्र देने के लिये पुस्तकालय पुष्पमालादि से भली भाँति सजाया गया था।

निम्नलिखित सज्जन उपस्थित थे:—

पं० श्रीकृष्ण जोशी, बा० बाँकेबिहारीलाल अग्रवाल एम० ए० एल एल० बी०, लाला सीताराम बी० ए०, प्रोफ़ेसर ब्रजराजबहादुर बी. एस.सी. बा० राधामोहन गोकुल जी (कलकत्ता), बा० बजरङ्गबहादुर श्रीवास्तव, पं० रमाशङ्कर अवस्थी, पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी, बा० बैजनाथप्रसाद, बा० काशीनाथ, बा० हीरालाल इत्यादि।

पं० श्रीकृष्ण जोशी ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। आरम्भ में सहायक मंत्री पं० वैद्यनाथ मिश्र ने सरस्वती-प्रार्थना का गान किया। उपसभापति बा० सङ्गमलाल अग्रवाल बी. ए. ने पुस्तकालय की विवरण-सूची पढ़ सुनाई।

तत्पश्चात् पुस्तकालय के सभापति ठा० शिवकुमारसिंह ने अभिनन्दन-पत्र पढ़ा और बा० श्यामसुन्दरदास जी को दिया। उन्होंने अपनी ओजस्विनी वक्तृता में पहले के हिन्दी पुस्तकालयों की दशा वर्णन की और 'नागरी-प्रचारिणी सभा' के पुस्तकालय का हवाला दिया। अन्त में आपने भवन के कार्यकर्त्ताओं के कार्य्य की प्रशंसा करते हुए कुछ आदेश दिए और पुस्तकों से भी सहायता देने का वचन दिया। बा० राधामोहन गोकुलजी और प्रोफ़ेसर ब्रजराजबहादुर ने भी पुस्तकें दान देने का वचन दिया। पुस्तकाध्यक्ष पं० जगन्नाथ मिश्र ने 'हिन्दी के प्रचार' पर एक कविता पढ़ी। ठाकुर शिवकुमारसिंहजी ने बा० श्यामसुन्दरदासजी को धन्यवाद दिया। अन्त में कुछ भजन भी गाए गए। 'हिन्दी की जय'—ध्वनि करते हुए सभा विसर्जित हुई।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्ध प्रान्त में हिन्दी की उन्नति* ।

उत्थानिका ।

सभापति महोदय और प्रिय भ्रातृगण !

इस बात को प्रकट करते हुए मेरा हृदय अकथनीय आनन्द से भर जाता है कि आप लोगों ने इस जातीय तथा अत्यन्त पवित्र महायश में सम्मिलित होने के हमारे सिन्ध प्रान्त का स्मरण किया है । मैं को अपने प्रान्तीय भाइयों की तरफ से हार्दिक वाद देकर नितान्त कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ आपने हिन्दी भाषा के उन्नतिरूप जातीय कार्य में हमें भी योग देने का सुअवसर प्रदान है। आपने भारत के एक उस प्रान्त को ...त किया है जिस प्रान्त के महानद (सिन्धु) के आप लोगों का नाम हिन्दू, देश का नाम ...तान और जिस भाषा को भारतव्यापी भाषा के लिये आप इतना प्रयत्न कर रहे हैं और की उन्नति के निमित्त आज इतना समारोह है का नाम हिन्दी पड़ा है। क्या यह अस्वाभाविक जो इतने दिनों तक आपने इस प्रान्त को भुला दिया था ? निश्चय है कि कभी न कभी वह अवश्य आता जब कि आपको बाध्य हो कर स्मरण करना पड़ता और हमारे सम्मिलित के बिना यह बड़ा भारी कार्य भी अङ्गहीन सा होता।

...ना कह कर मैं अपने प्रस्तुत विषय की ओर ...ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

देश की पूर्वावस्था ।

इतिहास जाननेवालों को अच्छी तरह मालूम है कि प्राचीन समय में हमारा प्रान्त भारत के और प्रदेशों से किसी बात में कम न था । येही प्रान्त है जिसे देवगुरु बृहस्पति जी के क्षेत्र होने का सौभाग्य प्राप्त है । यह वही भूमि है जिसने वाग्भट्ट सरीखे विद्वानों को जन्म दिया है । शल्य तथा जयद्रथ आदि महाभारतीय महारथी भी तो इस ही प्रान्त के रत्न थे । राजा रहूगण सरीखे आत्मजिज्ञासु भी तो यहीं की सन्तान थे । थोड़े समय की बात है कि स्वामि मेघराज, प्रसिद्ध स्वामी चिद्घनानन्द, शाह अब्दुललतीफ़, सचल रोहल प्रभृति वेदान्त के अद्वितीय विद्वान् भी यहाँ ही अवतीर्ण होकर घोर अशान्ति के समय में भी अपने अमृतमय वचनों से लोगों को आप्यायित करते रहे हैं । यह एक सार्वदेशिक नियम है कि 'सब दिन जात न एक समान' ।

अधःपात ।

जो देश आज उन्नति के शिखर पर बैठ कर शक्ति-गर्व से संसार को तुच्छ समझ पद पद पर उसकी अवहेलना कर रहा है, वह कल ही ठोकरें खाता हुआ अत्यन्त हीन और करुणाजनक अवस्था में दीख पड़ेगा और जो देश आज हमें तुच्छ और घृण्य प्रतीत होता है वह किसी वक्त संसार का आदर्श कहलावेगा । इसी भाव को हृदय में रख कर भारत के कविकुलचूड़ामणि महाकवि कालिदास जी ने 'शेष रात्रि कितनी है' इस अभिप्राय से आकाश की ओर देखनेवाले कण्व ऋषि के शिष्य से यह श्लोक कहलाया हैः—

"यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां,
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोयस्द्भय युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥"

---

* यह लेख श्रीयुत गिरधारीलाल भारद्वाज मुख्याध्यापक ...कृत विद्यालय सक्खर ने अष्ट सम्मेलन में पढ़ कर ...था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनुसार हमारा प्रान्त भी उस अवनति के झमेले में आए बिना न रहा। इसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता ने इसपर अपना कब्ज़ा कर लिया। पराधीन अवस्था में प्रायः देशों की जो दशा हुआ करती है वही इसकी भी हुई। पेट के कारण तथा धर्मान्ध मौलवियों के असह्य अन्यायों के कारण देश का अपना वेष तो नष्ट हो ही गया किन्तु भाषा भी अरबी वा फ़ारसी के सम्पर्क से छूटने न पाई। इतना ही नहीं किन्तु नौकरीपेशा लोगों की लिपि भी देवनागरी के बदले अरबी से निकली हुई 'अरबी सिन्धी' हो गई। परन्तु ब्राह्मणों ने अपनी लिपि अर्थात् देवनागरी न छोड़ी और भाषा को भी यथाशक्य विदेशी संसर्ग से बचाया। व्यापारी लोगों की लिपि तो 'महाजनी' रही, परन्तु भाषा में वे ब्राह्मणों का ही साथ देते रहे! ये सब बातें मुग़लों के राज्य की अर्थात् सन् १८४३ से पहले की हैं।

मध्यकालीन अवस्था।

इसके बाद जब वर्तमान सरकार का राज्य हुआ तब कुछ समय तक यही ढङ्ग जारी रहा। परन्तु राज्य की व्यवस्था कुछ ठीक हो जाने पर गवर्नमेंट की ओर से सबसे प्रथम कराची में कमिश्नर्स प्रेस स्थापित हुआ। उसमें केवल अङ्गरेज़ी के टाइप थे। तदनन्तर स्कूलों के खुलने की बारी आई। इससे प्रथम स्कूलों का काम मसजिदें और अध्यापकों का कामा मौलवी वा मुल्ला लोग देते थे। सरकार ने मात्राओं द्वारा महाजनी अक्षरों को कुछ सुधार कर उन्हें कोर्टों में जारी कर दिया, और इन्हीं अक्षरों में पाठ्य-पुस्तकें छपवाई गईं जो स्कूलों में पढ़ाई जाने लगीं। ऐसा करने का मुख्य कारण यह था कि सिन्ध में ब्रिटिश राज्य की स्थापना बहुत कुछ महाजनों की सहायता से हुई थी। इस नए नियम के कारण, बेचारे 'अलिफ़ बे' रटनेवाले नौकरीपेशा लोगों के सिर बड़ी आफ़त आ पड़ी। ये बेचारे मुंशीजी जब नए सिरे से सुधरे हुए महाजनी अक्षर, जो कि 'हिन्दू-सिन्धी' के नाम से प्रसिद्ध हैं, पढ़ें तब जा कर कहीं इनके पेट में टुकड़ा पड़े, वरना घर में बैठे बैठे मक्खियाँ मारते रहें। इसी कारण इन्होंने अर्थात् सिंध के कायस्थों ने मुसलमानों को उकसा कर इसके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसके साथ ही उन्होंने यह भी चाल खेली कि महाजनों को इस तरह समझा कर शान्त कर दिया कि "आप लोगों को नौकरी तो करनी नहीं है, और दूसरे ये 'हिन्दू-सिन्धी' अक्षर आपकी बहियों में लिखे ही जाते, फिर भी नाहक़ हमें तकलीफ़ झेलनी पड़े इसमें आपको फ़ायदा ही क्या?" स्वार्थ मनुष्य से क्या क्या नहीं कराता। बस, महाजन तो शान्त हो गए, मुसलमान और नौकरीपेशा लोगों की बात बन गई। लाचार हो कर सरकार को अपनी नीति बदलनी पड़ी। कोर्टों में और स्कूलों में 'हिन्दू-सिंधी' के स्थान पर 'अरबी-सिंधी' का प्रभुत्व हो गया। अतएव यही भाषा इस प्रान्त की प्रान्तीय भाषा (Vernacular) कहलाने लगी। जब इसी ढँग से कुछ समय तक कार्य होता रहा तब पढ़े लिखे ब्राह्मणों को यह बात कुछ अखरने लगी। उनमें श्रद्धेय स्वर्गवासी श्रीमान् पं० चतुर्भुज ओझा जी मुख्य थे।

पुनः सजीवता।

जब ये शिक्षा-विभाग के डिप्टी बनाए गए, तब से इन्होंने और लोगों को अपने साथ मिला, उनकी तरफ़ से प्रादेशिक सरकार की एक लंबा चौड़ा प्रार्थनापत्र भिजवाया। तब सरकार ने प्रान्तीय शिक्षा-विभाग को पहली तीन पुस्तकें अर्थात् पहली, दूसरी, और तीसरी, अरबी-सिंधी पुस्तकों के अनुवादरूप देवनागरीअक्षरों में छपवाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी। तदनुसार पहली पुस्तक सन् १८८८ में ...शित हुई। और सन् १८९४ तक दूसरी और ...री भी प्रकाशित हो गईं। इससे पहले और पीछे १८८६ से करांची, हैदराबाद, शिकारपुर और ...र की म्यूनिसिपेलिटियों ने अपनी अपनी ... से संस्कृत की पाठशालाएँ खोल दीं और ...म्भिक शिक्षा उपर्युक्त तीन पुस्तकों द्वारा दी ... लगी। इससे ब्राह्मण, साधु तथा इने गिने ... के सिवा दूसरों का कुछ भी लाभ न देख कर ...ची की सनातनधर्म सभा ने अपनी प्रारम्भिक ...शाला की चतुर्थ कक्षा में अरबी-सिंधी के ... साथ हिन्दी की शिक्षा जोड़ दी। इसके बाद ...रपुर की प्रियतम धर्म सभा ने रात्रिशाला ...कर दिन भर स्कूलों में पढ़नेवाले लड़कों के लिये ... और संस्कृत सीखने का यथाशक्य प्रबन्ध ... दिया और पुस्तकालय तथा वाचनालय भी ... दिए। इससे भी यथोचित उन्नति न देख कर रात्रिशाला को दैनिक पाठशाला में परिवर्त्तित ...या और हिन्दी भाषा के साथ साथ महाजनी, ...सिंधी तथा व्यापारी काम चलाने योग्य ...जी भाषा भी संयुक्त कर दी गई। इससे वैश्य के लड़कों और उसी ढँग की शिक्षा चाहनेवाले हिन्दुओं को बहुत कुछ लाभ हो रहा है। ... बाद हैदराबाद में ब्रह्मचर्याश्रम खुला, तदनन्तर ... में आर्यसमाजियों की ओर से एक कन्या-...श्रम खोला गया और फिर शिकारपुर, ... और दादू में भी क्रम से ब्रह्मचर्याश्रम, ...कुल और सनातनधर्म-विद्यालय नामों से ... खुलते गए। ये भी अपने ब्रह्मचारियों को ...की शिक्षा दे रहे हैं। लगभग ढाई वर्षों से ... में मित्रमण्डली की ओर से हिन्दी और ... की शिक्षा देने के लिये एक रात्रि-पाठशाला ... दिन की पाठशाला खुली है और ये अपना अच्छी तरह कर रही हैं। इसके सिवा शिकारपुर के योगी महन्त द्वारकानाथ जी, एक रात्रिशाला तथा बाबा दयालुदास जी एक बाला-पाठशाला और कुछ रात्रि-शालाएँ खोल कर हिन्दी की भरसक सेवा कर रहे हैं। कन्याओं को भी देवनागराक्षर और हिन्दी भाषा सिखाने के लिये यत्र तत्र बहुत सी पाठशालाएँ खुल गई हैं। करांची में कुछ हिन्दी-हितैषी सज्जनों के उत्साह से 'हिन्दी-साहित्य-भवन' नामक वाचनालय के साथ हिन्दी का एक अच्छा पुस्तकालय लगभग तीन वर्षों से खुल गया है।

उन्नति के उपाय।

इतना होने पर भी हैदराबाद के कुछ नवयुवकों को सन्तोष न हुआ। उनके मन में यह धुन समाई कि तब तक इन उपर्युक्त कार्यों से देवनागरी अक्षरों और हिन्दी भाषा की वांछित उन्नति न होगी जब तक कि कचहरियों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार न होगा, प्रारम्भिक शिक्षा अरबी-सिंधी के समान देवनागराक्षरों में भी न दी जायगी और अँगरेज़ी प्रथम श्रेणी से तृतीय श्रेणी तक हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य न की जायगी। आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि ये काम बिना सरकार की सहायता और अजस्र परिश्रम के होनेवाले नहीं। और यह भी प्रसिद्ध है कि सरकार लोकमत के दबाव के बिना अपनी नीति बदलती नहीं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने गत मार्च मास में नागरी-प्रचारिणी-सभा की स्थापना की। आरम्भ में कुछ मास तक सभा का मंत्री हो कर सेवा करने का सौभाग्य इस दास को भी प्राप्त हुआ था। इस सभा की ओर से शीघ्र ही दो रात्रिशालाएँ और एक वाचनालय खोला गया। सभा ने अपना ध्येय तो स्थिर कर दिया है और उसकी पूर्ति के लिये वह यथाशक्य प्रयत्न भी कर रही है, परन्तु बहुत परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मैं अन्त में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्थायी कार्यकर्त्ताओं से विनीत प्रर्थना कर आशा रख सकता हूं कि वे जैसे हिन्दी के प्रचारार्थ लोकमत जागृत करने के लिये अन्य प्रान्तों में अपने उपदेशक भेजा करते हैं वैसे ही सिन्ध में भी भेजने की कृपा करेंगे ?

—:o:—

जातीयता का विकाश।

(पृष्ठ ५२ से आगे।)

[लेखक,—श्रीयुक्त बा० शारदाप्रसादजी एम० ए० एल एल० बी०]

—:o:—

जातीयता और सभ्यता का सम्बन्ध।



जैसा पहले लेख में दिखलाया गया है, मनुष्यों में जातीयता का ज्ञान कतिपय नियमों के अनुसार उत्पन्न होता है और तदन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। इन नियमों के निश्चित करने के हेतु विविध देशों के इतिहासों में यह देखने की आवश्यकता है कि किस प्रकार उन देशों के निवासियों में ऐतिहासिक घटनाओं के कारण जातीयता का ज्ञान दृढ़ होता गया। किसी एक देश के इतिहास को भी यदि भली भाँति विचारा जाय, और तदनन्तर गत घटनाओं की जाँच की जाय, तो उससे जो नियम निश्चित होंगे, उनके अनुसार यह निश्चित कर सकते हैं कि अन्य देशों में भी जातीयता के ज्ञान की वृद्धि किस प्रकार हुई। इसमें संदेह नहीं कि बहुत से ऐसे वाह्य कारण होते हैं जिनके प्रभाव से प्रत्येक देश की सभ्यता के वृद्धि-क्रम विशेष और पृथक् रीति से होते हैं। परन्तु सारांश में इन नियमों में एक दूसरे के साथ बहुत से अंगों में साहश्य पाया जायगा। इस सिद्धान्त के अनुसार हम देखते हैं कि जातीयता का ज्ञान और सभ्यता कुछ इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि सभ्यता का प्रत्येक अंग जातित्व के ज्ञान को दृढ़ करता है। प्रथम सभ्यता के एक अं साहित्य को प्रमाण स्वरूप लीजिए। साहित्य का सञ्चित भण्डार जातित्व के ज्ञान का मूल-आधार है। जिस देश में साहित्य नहीं होता उस देश में जातित्व के ज्ञान की भी पूर्ण रूप से उत्पत्ति होती है। सभ्यता के अङ्ग तो तत्वज्ञान, विज्ञान, शिल्प, विविध कला व्यवसाय और वाणिज्य इत्यादि सब ही हैं और कि देश में सभ्यता की उन्नति और वृद्धि का इतिहा वस्तुतः इन सब अङ्गों की वृद्धि का इतिहास होता इन सब जातीय विविध व्यापारों पर जातित्व-विका सर्वथा निर्भर रहता है। किसी देश का साहित्य अप प्रभाव उस देश की सभ्यता और जातित्व-ज्ञान-वृ पर कहाँ तक डालता है, इसका अनुमान प्र इङ्गलैन्ड के इतिहास से हम करते हैं। हम देखते कि इस द्वीप में आदि में एन्ज़ल्स तथा डेन्स ना की जातियाँ निवास करती थीं। इनका निवास उ द्वीप में निर्विघ्न था और पार्श्ववर्त्ती जातियों अत्याचारों से इनको अपने व्यापारों में कि प्रकार की कोई हानि नहीं पहुँचती थी। उ समय की प्रथा के अनुसार ये लोग पशु इत्या जिनकी गृह के कार्यों में आवश्यकता थ भली भाँति रखते थे; और उनके पोषण इत्या में समर्थ थे, कृषि-कर्म में भी ये यथोचित प्रकार निपुण थे और उसके नियमों से उनका भली भाँ परिचय था। इन सब कारणों से इस जाति स्थानीय आन्तरिक उन्नति भी हुई थी। राजनीति प्रबन्ध कुछ न कुछ संतोष-जनक रीति से ही हो था। प्रजा के हितार्थ न्यायालयों की भी स्थापना गई थी। इन न्यायालयों में उस समय के साम नियमों के अनुसार अभियोगों का फैसला होता परन्तु किसी जाति की स्थिति के हेतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...नैतिक और सामाजिक विविध वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उनकी किसी न किसी प्रकार ...इनमें अवश्य उपस्थिति थी। इन सब कारणों का परिणाम यह अवश्य हुआ था कि इनमें जातित्व ज्ञान उत्पन्न हो गया था और एक जाति भी ...गई थी, जो इङ्गलैण्ड द्वीप में छः सौ वर्ष तक ...त रही। परन्तु जैसा कि इतिहास से विदित ...इस जाति में साहित्य मात्र का अभाव था। इस ...य उसके तत्कालीन साहित्य का कुछ भी अव... नहीं रह गया है, यदि है भी तो कदाचित् ...क्षित, असभ्य तथा गूढ़ विचारों व तत्वों से ...त कुछ गीत ही रह गए हैं, और वह भी कठि... से उस जाति के कहे जा सकते हैं। इस ...हित्य के अभाव से जाति की दृढ़ स्थिति पर जो ...व पड़ा, वह स्पष्ट है। इसमें सन्देह नहीं कि ...सारिक घटनाओं में बल ही की प्रधानता है, ...उसी की जय है। परन्तु यह निश्चय है कि "मति-...बलाद् गरीयसी" का सिद्धान्त अनिर्वचनीय है; ...विशेष ऐतिहासिक घटना के सम्बन्ध में भी ...उस सिद्धान्त को पूर्ण रीति से व्याप्त देखते हैं। ...चिरकाल से स्थित जाति का नारमन्स के ...क्रमण से नाश हो गया। नारमन्स फ्रांस देश के ...नेवाले थे और इनमें डेन्स के मुक़ाबले में अव... ही सभ्यता, शिक्षा और साहित्य को स्थिर रूप ...वर्तमान रखनेवाले कारणों की उपस्थिति थी।

(शेष आगे।)

विविध विषय।

प्राचीन भारतीय उपनिवेश।

अँगरेज़ी के थियासोफ़िस्ट नामक मासिक-पत्र में श्रीयुक्त पी० एल० नरसिंहम् नामक एक सज्जन ने एक लेख में यह दिखलाया है कि प्राचीन भारतवासी विदेशों में जाकर बसते और उन्हें अपने उपनिवेश बनाते थे। यवद्वीप, (जावा), सुमित्र-द्वीप (सुमात्रा), भरणी-द्वीप (बोर्निओ) और शलभ द्वीप (सेलिबीस) आदि में प्राचीन भारत-वासी जाकर निवास किया करते थे। वहाँ के प्राचीन निवासियों को वे लोग दस्यु या राक्षस कहा करते थे। विद्वानों का मत है कि जावा तथा सुमात्रा द्वीपों में भारतवासियों ने ईसवी शताब्दी से लगभग ७२ वर्ष पूर्व पदार्पण किया था। ईसवी चौथी शताब्दी में बहुत से भारतीय बौद्ध गुजरात तथा सिन्ध से चल कर लंका गए थे और वहाँ से आगे बढ़ कर वे लोग सुमात्रा पहुँचे थे। सुमात्रा के हिन्दुओं ने वहाँ उनका अच्छा स्वागत किया था। उस समय वहाँ के हिन्दुओं और बौद्धों में बहुत मेल-मिलाप और घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था। यहाँ तक कि दोनों धर्म्मा-नुयायियों ने वहाँ शिव-बुद्ध और ज्ञानी-रुद्र आदि अनेक युग्म-मन्दिर भी बनवाए थे। सुमात्रा में शिव-मन्दिर बहुत अधिकता से हैं इसलिये लोगों का विश्वास है कि वहाँ शाक्तों की अपेक्षा शैवों की ही अधिकता थी और बौद्ध-धर्म्म का प्रचार भी अपेक्षा-कृत कम ही था। उत्तर सुमात्रा में हिन्दुओं की अधिक प्रबलता थी और वहाँ उन्होंने भारतीय प्रथा के आदर्श पर राज्य भी स्थापित कर लिया था। पर दक्षिण सुमात्रा में वहाँ की भौगोलिक स्थिति के कारण जावावालों का ही विशेष अधिकार रहता था। सिंगापुर उस समय सुमात्रावालों का एक उप-निवेश-मात्र था। सन् १२५२ में जावा के एक राजा ने सिंगापुर को जीत कर अपने अधिकार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में मुसलमानों ने जावा में प्रवेश किया था और सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक वहाँ इस्लाम धर्म्म की बहुत प्रबलता हो गई।। सन् १८३७ में वहाँ का सब से प्रबल मुसलमानी राज्य उच्च सरकार ने दबा कर अपने अधीन कर लिया। इसके बाद बहुत दिनों तक सुमात्रा के भिन्न भिन्न प्रान्तों को पूर्ण रूप से अपने अधिकार में लाने के लिये पुर्त्तगालियों और डचों को वहाँ के निवासियों से युद्ध करना पड़ा था।

***

डा० स्यूनर का मत।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका के गतांक में विविध विषय के अन्तर्गत भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के कार्य्यों का संक्षिप्त विवरण दिया गया था। उसमें एक स्थान पर यह कहा गया था कि डाकृर स्यूनर का मत है कि बुद्ध, अशोक और चन्द्रगुप्त आदि पारसी थे। डाकृर महाशय के मत की सत्यता पर विश्वाश करनेवाले भारतवासी इने गिने ही हैं; उनकी यह बात सहसा किसी के मन में बैठ नहीं सकती। पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजों में नित्य नए सिद्धान्त निकला करते हैं और उनसे पुराने सिद्धान्तों का बराबर खंडन-मंडन—बहुधा खंडन ही—होता रहता है। अनेक कारणों से बहुत कुछ सम्भावना इसी बात की है कि स्यूनर साहब की बातें भ्रम-पूर्ण ही सिद्ध हों। पर तौ भी पुरातत्त्व-सम्बन्धी प्रमाणों से उनके मत का खंडन होने में अभी कुछ समय लगेगा। तथापि सर्वसाधारण को उनके मत की मुख्य मुख्य बातों से अवगत हो जाना बहुत आवश्यक है। रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल की जनवरी और जूलाईवाली संख्याओं में उनके जो लेख छपे हैं उनके नए सिद्धान्त की प्रायः सब बातें आ गई हैं। उन्हीं में स्यूनर साहब ने मौर्य्य-काल की इमारतों को पारसी ढंग की इमारतें कहा है और चन्द्रगुप्त को जाति का ईरानी और पारसी धर्म्म का अनुयायी बतलाया है। आप का यह भी कथन है कि मेगास्थनीज ने चन्द्रगुप्त के अन्तिमजीवन के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उससे भी यही सिद्ध होता है। हमारे मि० काशीप्रसाद जायसवाल पहले ही मौर्य्य शब्द की व्युत्पत्ति किसी फारसी शब्द से बतला चुके हैं। मौर्य्य राजाओं के जो सिक्के मिले हैं उन पर सूर्य्य, साँड़ आदि के चिह्न अंकित हैं। ये चिह्न मुख्यतः ईरानियों के हैं, इससे भी मैर्य्यों का पारसी-पन ही सिद्ध होता है। हिन्दुओं की धर्म्म-पुस्तकों में मौर्य्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। उत्तर-पश्चिम-भारत के इतिहास में चन्द्रगुप्त का नाम सब से पहले सिकंदर के साथ पाया जाता है। मुद्रा-राक्षस में लिखा है कि उसने बहुत बड़ी पारसी सेना की सहायता से मगध देश जीता था। वहाँ उसने पारसी ढंग की इमारतें बनवाई थीं और उनकी सजावट आदि भी पारसी ढंग से ही की थी। उसके दरबार की रस्में आदि भी पारसी ही थीं। चन्द्रगुप्त का यहाँ के नन्द-वंश के साथ सम्बन्ध था। पर डाकृर महाशय का मत है कि मौर्य्यों की तरह नन्द भी विदेशी ही थे। ब्राह्मण चाणक्य को भी आप ऐन्द्रजालिक पारसी धर्म्माधिकारी से मिलता जुलता बतलाते हैं। स्वयं मगध शब्द भी आपकी सम्मति में पारसी ही है और उसका सम्बन्ध आप फारस के मगों से स्थापित करते हैं। प्रबोध चन्द्रोदय तथा भविष्य पुराण आदि में लिखा है कि मगध देश पर विदेशियों का अधिकार था। उस देश की भाषा भी पूरब तथा पश्चिम के अन्य देशों से भिन्न थी। आगे चलकर तो डाकृर स्यूनर ने इस पारसी-पन की हद कर दी है। शक्ति-पूजा और यहाँ तक कि स्वयं बुद्धदेव को भी पारसी कहने में आप नहीं हिचके हैं।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ौदे की श्रीमती महारानी चिमनाबाई साहेबा स्त्री-शिक्षा की बहुत बड़ी पक्षपातिनी हैं। आप अपने पति के साथ कई बार युरोप और अमेरिका की जा कर आई हैं। आपने उन देशों की केवल सैर ही नहीं की है बल्कि वहाँ की स्त्रियों की सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक अवस्थाओं सम्बन्धी बहुत सा ज्ञान और अनुभव भी प्राप्त किया है। वहाँ की स्त्रियों की दशा का विचार करते हुए आपको भारतीय स्त्रियों में जो जो त्रुटियाँ मिली हैं, आप उनके दूर करने के लिये सदा बहुत कुछ प्रयत्न करती रहती हैं। आपके इस प्रयत्न का एक अंग The Position of Women in Indian Life (भारतीय जीवन में स्त्रियों की स्थिति) नाम की एक पुस्तक भी है जिसके थोड़े ही दिनों में दो संस्करण हो चुके हैं। इस पुस्तक में आपने यह बतलाया है कि भारतीय स्त्रियाँ किन किन क्षेत्रों में क्या क्या कार्य्य कर सकती हैं। ... सकते हैं, पंजाब की तरफ़ के किसी सज्जन ने इसका हिन्दी अनुवाद भी कर डाला है। अभी हाल में आपने डेढ़ लाख रुपए भारतीय स्त्रियों को वृत्तियां देने के लिये अलग कर दिए हैं। इस धन की रक्षा और उपयोग आदि के प्रबन्ध के लिये बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ भी बना दिया गया है। रुपयों के सूद में से ... वृत्ति ३५) मासिक की, चार २५) मासिक की, ... १०) मासिक की और सोलह ५) मासिक की ... इस प्रकार कुल मिला कर प्रति वर्ष उन्तीस स्त्रियों को वृत्तियाँ मिला करेंगी। यह वृत्तियाँ देने के अनन्तर जो धन बचेगा उससे उन स्त्रियों को वृत्तियां दी जायँगी जो विदेश में जा कर शिक्षा प्राप्त करना चाहेंगी। ये सब वृत्तियां केवल हिन्दू-स्त्रियों के लिये ही हैं, अन्य जातियों की स्त्रियों के लिये नहीं।

*
* *

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार तारीख २७ नवम्बर १९१५-संध्या के ५ बजे

स्थान—सभाभवन।

उपस्थित

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी—सभापति
बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०
पंडित हरिप्रसाद पालोधी बी० ए०
बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल एल० बी०
पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०
बाबू बेणीप्रसाद
पंडित कृष्णराव पावगी
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त
पंडित सांवल जी नागर

सम्मति भेजनेवाले

पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०
पंडित गणपत जानकीराम दूबे बी० ए०

(१) गत अधिवेशन (तारीख १९ सितम्बर १९१५) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) संयुक्त प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर का १५ नवम्बर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि नए पाठ्यक्रम के लिये हिन्दी की जो पुस्तकें विचारार्थ आ रही हैं उनपर विचार करने के लिये हिन्दी के विद्वानों की एक छोटी कमेटी बना दी गई है और इस कमेटी में सम्मिलित होने के लिये सभा अपने एक सभासद को निर्वाचित कर दे।

निश्चय हुआ कि इसके लिये सभा की ओर से बाबू श्यामसुन्दरदास जी निर्वाचित किए जांय और बाबू साहब से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा पूर्वक इसे स्वीकार करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) पुस्तकालय के निरीक्षक के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि आगे से आर्य-भाषा-पुस्तकालय के खुलने का समय १ नवम्बर से ३१ मार्च तक प्रातःकाल ७ बजे से १० बजे तक और सायं-काल ३ बजे से ७ बजे तक कर दिया जाय और १ अप्रैल से ३१ अक्तूबर तक के लिये यह पुस्तकालय प्रातःकाल ७ बजे से १० बजे तक और सायंकाल ४ बजे से ७ बजे तक खुला करे।

(४) बाबू जगन्मोहन वर्म्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्हेंाने अपनी कन्या की विदाई के लिये अपने वेतन में से ५०) रु० पेशगी माँगा था। निश्चय हुआ कि बाबू जगन्मोहन वर्म्मा को ५०) दे दिया जाय जिसमें से २५) उनके नवम्बर के वेतन से, और २५) दिसम्बर के वेतन से काट लिया जाय। पर आगे से किसी कार्यकर्ता को किसी अवस्था में पेशगी रुपया न दिया जाय।

(५) प्रयाग के इण्डियन प्रेस का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्हों ने लिखा था कि कादम्बरी की एक हज़ार प्रतियों के प्रत्येक संस्करण के लिये वे सभा को ५०) इस शर्त पर दे सकते हैं कि अब सभा इस पुस्तक के प्रकाशन का प्रबन्ध अन्यत्र न करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(६) हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के संयोजक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनकी परीक्षाओं के विवरण के विज्ञापन के लिये नागरीप्रचारिणी पत्रिका में एक वर्ष के लिये ४ पंक्तियों का स्थान दिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र तथा ४ अन्य सभा-सदों का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के वाम भाग पृष्ठ में "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" और दक्षिण भाग पृष्ठ के ऊपर लेख का नाम छपा करे।

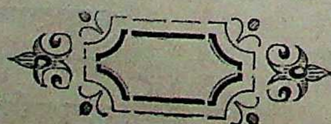
निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(८) बाबू खानचन्द्र का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि नागरीप्रचारिणी पत्रिका में लेखमाला भी सम्मिलित कर ली जाय और पत्रिका का वार्षिक मूल्य १॥) रु० के स्थान पर २) कर दिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव मंत्री जी की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(९) पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि हिन्दू-विश्वविद्यालय की नींव देने के समय जो श्रीमान् राजे महाराजे काशी में पधारेंगे वे सभा-भवन में निमंत्रित किए जायं। इसके लिये भवन की मरम्मत और सफ़ाई करा ली जाय और सभा की २२ वर्षों की एक रिपोर्ट भी छपवाई जाय। इन सब कार्यों के लिये २००) रु० का व्यय स्वीकार किया जाय और इसके प्रबन्ध के लिये निम्नलिखित सज्जनों की सब कमेटी बना दी जाय, अर्थात् बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, बाबू हरिप्रसाद पालोधी बी० ए० बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा और बाबू श्रीप्रकाश बी० ए०, एल एल० बी०। इस कमेटी का कोरम दो सज्जनों का रहेगा और कमेटी को अधिकार होगा कि वह अन्य जिन सज्जनों को चाहे अपना सदस्य चुन ले।

(शेष आगे)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered No. A 414

[संख्या ८

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

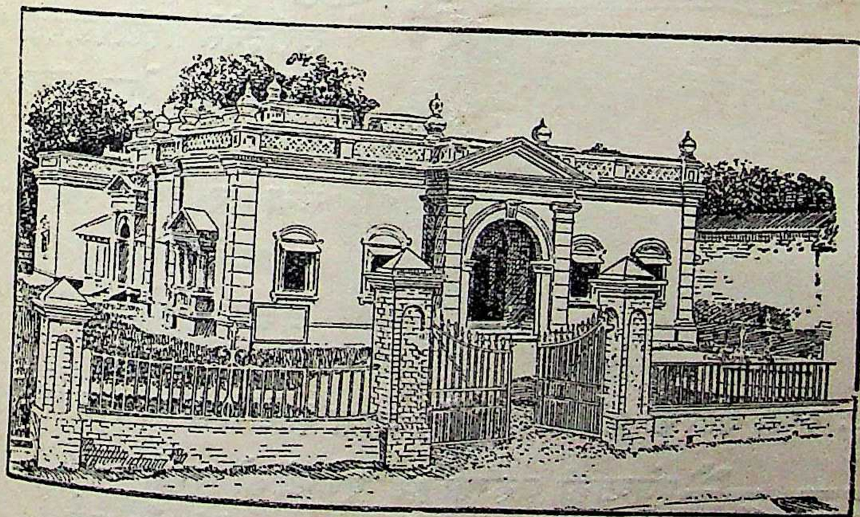
फरवरी ।

सम्पादक–रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुदित ।

प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

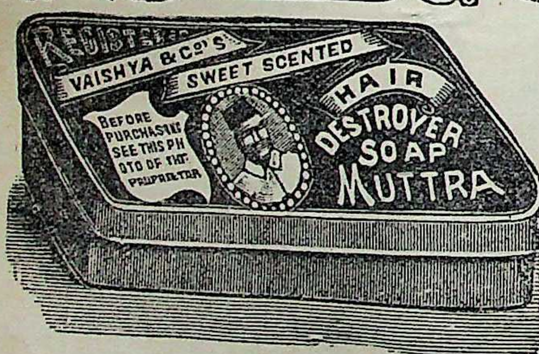
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

बैश्यएण्डकों, मथुराका

बालउड़ानेका साबुन

३-४ मिनट में बाल उड़ा कर चमड़ी साफ़ और कोमल करता है.



खरीदनेसे पहिलेविलायती रंगीन ☞ ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केवड़ा, खस, का फी टिकिया ॥) ३ टि. का १।=)

नींबू, कपूर, संतरे का फी टिकिया ।-) आना ३ टिकिया का बक्स ।॥)

जरूरतहै एजेण्टोंकी जरूरतहै ☞ एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५)रु. सैंकडा कमीशनदेंगे और खर्च माफ

पता:—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये, पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

पवित्र काश्मीरी केशर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ | फरवरी, १९१५. | संख्या ८

मनोविकारों का विकाश।

श्रद्धा-भक्ति।

किसी मनुष्य में जन-साधारण से विशेष गुण वा शक्ति का विकाश देख उसके सम्बन्ध में जो एक प्रकार का स्थायी आनन्द हृदय में स्थापित हो जाता है उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति है। यदि निश्चय हो जायगा कि कोई मनुष्य बड़ा वीर, बड़ा सज्जन, बड़ा गुणी, बड़ा दानी, बड़ा विद्वान्, बड़ा परोपकारी, वा बड़ा धर्म्मात्मा है तो वह हमारे आनन्द का एक विषय हो जायगा। हम उसका नाम आने पर प्रशंसा करने लगेंगे, उसे सामने देख आदर से सिर नवावेंगे। किसी प्रकार का स्वार्थ न होने पर भी हम सदा उसका भला चाहेंगे, उसकी उन्नति से प्रसन्न होंगे और अपने आनन्द में व्याघात पहुँचने के कारण उसकी निन्दा न सह सकेंगे। इससे सिद्ध होता है कि जिन कर्म्मों के प्रति श्रद्धा होती है उनका होना संसार को वांछित है। यही विश्व-कामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।

प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर उतना निर्भर नहीं—कभी कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है; पर श्रद्धा ऐसी नहीं है। किसी की सुन्दर आँख या नाक देख कर उसके प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होगी, प्रीति उत्पन्न हो सकती है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य जान-बूझ कर अपने को ऐसी स्थिति में डाले जिससे किसी जन-समुदाय का सुख वा भला हो। श्रद्धा का व्यापार-स्थल विस्तृत है; प्रेम का एकान्त। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। किसी मनुष्य से प्रेम रखनेवाले दो ही एक मिलेंगे, पर उस पर श्रद्धा रखनेवाले सैकड़ों, हज़ारों, लाखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या करोड़ों मिल सकते हैं। सच तो यों है कि इसी श्रद्धा के आश्रय से उन कर्म्मों के महत्त्व का भाव दृढ़ होता रहता है जिन्हें धर्म्म कहते हैं और जिनसे मनुष्य-समाज की स्थिति है। कर्त्ता से बढ़ कर कर्म्म का स्मारक दूसरा नहीं। कर्म्म की क्षमता प्राप्त करने के लिए बार बार कर्त्ता ही की ओर आँख उठती है। कर्म्मों से कर्त्ता की स्थिति को जो मनोहरता प्राप्त हो जाती है उस पर मुग्ध हो कर बहुत से प्राणी उन कर्म्मों की ओर प्रेरित होते हैं। कर्त्ता अपने सत्कर्म द्वारा एक विस्तृत क्षेत्र में मनुष्य की सद्वृत्तियों के आकर्षण का एक शक्ति-केन्द्र हो जाता है। जिस समाज में किसी ऐसे ज्योतिष्मान् शक्ति-केन्द्र का उदय होता है उस समाज में भिन्न भिन्न हृदयों से शुभ भावनाएँ मेघ-खंडों के समान उठ कर तथा एक ओर और एक साथ अग्रसर होने के कारण परस्पर मिल कर इतनी घनी हो जाती हैं कि उनकी घटा सी उमड़ पड़ती है और मंगल की ऐसी वर्षा होती है कि सारे दुःख और क्लेश बह जाते हैं।

हमारे अन्तःकरण में प्रिय के आदर्श रूप का संघटन प्रिय के व्यक्तित्व मात्र के आश्रय से हो सकता है पर श्रद्धेय के आदर्शरूप का संघटन उसके फैलाए हुए कर्म्म-तन्तु के उपादान से होता है। प्रिय का चिन्तन हम आँख मूँदे हुए, संसार को भुला कर, करते हैं; पर श्रद्धेय का चिन्तन हम आँख खोले हुए, संसार का कुछ अंश सामने रख कर, करते हैं। यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागृति है। प्रेमी प्रिय को अपने लिए और अपने को प्रिय के लिए संसार से अलग करना चाहता है। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा में तीन। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं, पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है। प्रेमी और प्रिय के बीच कोई और वस्तु अनिवार्य्य नहीं, पर श्रद्धालु और श्रद्धेय के बीच कोई वस्तु चाहिए। इस बात को स्मरण रखने से यह पहचानना उतना कठिन न रह जायगा कि किसी के प्रति किसी का कोई आनन्दान्तगर्त भाव प्रेम है या श्रद्धा। यदि किसी कवि का काव्य बहुत अच्छा लगा, किसी चित्रकार का बनाया चित्र बहुत सुन्दर जँचा और हमारे चित्त में उस कवि वा चित्रकार के प्रति एक सुहृद भाव उत्पन्न हुआ तो यह भाव श्रद्धा है क्योंकि यह काव्य वा चित्र रूप मध्यस्थ द्वारा प्राप्त हुआ है। प्रेम का कारण अनिर्दिष्ट और अज्ञात होता है पर श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात होता है। कभी कभी केवल एक साथ रहते रहते दो प्राणियों में यह भाव उत्पन्न हो जाता है कि वे बराबर साथ रहें, उनका साथ कभी न छूटे। प्रेमी प्रिय के सम्पूर्ण जीवन-क्रम के सतत साक्षात्कार का अभिलाषी होता है। वह उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना, सोना, खाना, पीना सब कुछ देखना चाहता है। संसार में बहुत से लोग उठते, बैठते, चलते फिरते हैं पर सब का उठना, बैठना, चलना फिरना उसको वैसा अच्छा नहीं लगता। प्रेमी प्रिय के जीवन को अपने जीवन से मिला कर एक रासायनिक मिश्रण तैयार करना चाहता है। वह दो से एक करना चाहता है। सारांश यह कि श्रद्धा में दृष्टि पहले कर्म्मों पर से होती हुई श्रद्धेय तक पहुँचती है और प्रीति में प्रिय पर से होती हुई उसके कर्म्मों आदि पर जाती है। एक में व्यक्ति को कर्म्मों द्वारा मनोहरता प्राप्त होती है और दूसरी में कर्म्मों को व्यक्ति द्वारा मनोहरता प्राप्त होती है। एक में कर्म्म प्रधान है, दूसरी में व्यक्ति।

यद्यपि ऊपर दोनों भावों में भेद दिखला दिया गया पर यह भेद उनकी उत्पत्ति के ही समय अधिक स्पष्ट रहता है परिपक्वावस्था में नहीं। कभी कभी एक के द्वारा दूसरे की प्राप्ति और पुष्टि होती है। कहीं कहीं तो यह भेद अत्यन्त सूक्ष्म रहता है। किसी के रूप को स्वयं देख कर हम तुरन्त मोहित हो कर उसले [illegible] कर सकते हैं पर उसके रूप की प्रशंसा किसी दूसरे से सुन कर चट हमारा प्रेम नहीं उमड़ पड़ेगा हमारा पहला भाव श्रद्धा का होगा फिर उस के उपरान्त वह प्रेम में परिणत हो सकता है। [illegible] यह है कि प्रेम एक मात्र अपने ही अनुभव [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है पर श्रद्धा अपनी समाजिक विशेषता के कारण ों के अनुभव पर भी निर्भर है। रूप की भावना बहुत कुछ सम्बन्ध व्यक्तिगत रुचि से होता है। किसी के रूप और हमारे बीच यदि तीसरा आया तो इस व्यापार में सामाजिकता आ गई कि हमें पहले यह ध्यान हुआ कि उस रूप से तीसरे व्यक्ति को आनन्द वा सुख मिला और ों को मिलता होगा। जब तक हम किसी के शील, स्वभाव, गुण आदि का बखान सुन कर वाह' करते जायँगे तब तक श्रद्धालु ही कह- ेंगे; पर जब हम उसके दर्शन के लिए आकुल ो, उसे बराबर अपने सामने ही रखना चाहेंगे प्रेम का सूत्रपात समझा जायगा। श्रद्धा-भाजन व्यक्तित्व पर श्रद्धावान् अपने लिए किसी प्रकार अधिकार नहीं चाहता, पर प्रेमी प्रिय के हृय पर ा अधिकार चाहता है।

श्रद्धा एक सामाजिक भाव है इससे अपनी ा के बदले में हम श्रद्धेय से अपने लिए कोई नहीं चाहते। श्रद्धा धारण करते हुए हम अपने उस समाज में समझते हैं जिसके किसी अंश चाहे हम व्यष्टि रूप में उसके अन्तर्गत न भी जान बूझ कर उसने कोई शुभ प्रभाव डाला। स्वयं ऐसे कर्म्मों के प्रतिकार में होती है ा लक्ष्य अकेले हम नहीं बल्कि सारा मनुष्य ज है। श्रद्धा एक ऐसी आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है हम केवल समाज के प्रतिनिधि रूप में प्रकट हैं। सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर ा घृणा प्रकट करने के लिए समाज ने प्रत्येक ि को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रक्खा है। यह इसने इतना भारी समझा है कि उसका भार मनुष्यों को बाँट दिया है, दो चार माननीय ो ही सिर पर नहीं छोड़ रक्खा है। जिस में सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर प्रकट करने के लिए जितने ही अधिक लोग पाए जायँगे उतना ही वह समाज जागृत ा जायगा। श्रद्धा की समाजिक विशेषता एक इसी बात से समझ लीजिए कि जिस पर हम श्रद्धा रखते हैं उस पर चाहते हैं कि और लोग भी श्रद्धा रक्खें, पर जिस पर हमारा प्रेम होता है उससे और दस पाँच आदमी प्रेम रक्खें इसकी हमें परवा क्या इच्छा ही नहीं होती, क्योंकि हम प्रिय के व्यक्तित्व पर लोभवश एक प्रकार का अनन्य अधिकार वा इजारा चाहते हैं। श्रद्धालु अपने भाव में संसार को भी सम्मिलित करना चाहता है पर प्रेमी नहीं।

जब तक समष्टि रूप में हमें संसार के लक्ष्य का बोध नहीं होता और हमारे अन्तःकरण में सामान्य आदर्शों की स्थापना नहीं होती तब तक हमें श्रद्धा का अनुभव नहीं होता। बच्चों में कृतज्ञता का भाव पाया जाता है पर सदाचार के प्रति उस कृतज्ञता का नहीं जिसे श्रद्धा कहते हैं। अपने साथ किए जानेवाले जिस व्यवहार के लिये वे कृतज्ञ होते हैं उसी को दूसरों के साथ होते देख कर्त्ता के प्रति कृतज्ञ होना वे देर में सीखते हैं—उस समय सीखते हैं जब वे अपने को किसी समुदाय का अंग समझने लगते हैं। अपने साथ वा किसी विशेष मनुष्य के साथ किए जानेवाले व्यवहार के लिये जो कृतज्ञता होती है वह श्रद्धा नहीं है। श्रद्धालु की दृष्टि सामान्य की ओर होनी चाहिए, विशेष की ओर नहीं। अपने सम्बन्धी के प्रति किसी को कोई उपकार करते देख यदि हम कहें कि उस पर हमारी श्रद्धा हो गई है तो यह हमारा पाषंड है, हम झूठ-मूठ अपने को ऐसे उच्च भाव का धारणकर्त्ता प्रकट करते हैं। पर उसी सज्जन को दस पाँच और ऐसे आदमियों के साथ जब हम उपकार करते देखें जिन्हें हम जानते तक नहीं और इस प्रकार हमारी दृष्टि विशेष से सामान्य की ओर जाय, तब यदि हमारे चित्त में उसके प्रति पहले से कहीं अधिक कृतज्ञता वा पूज्यबुद्धि का उदय हो तो हम श्रद्धालु की उच्च पदवी के अधिकारी हो सकते हैं। सामान्य रूप में हम किसी के गुण वा शक्ति का विचार सारे संसार से सम्बद्ध करके करते हैं अपने से वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या करोड़ों मिल सकते हैं। सच तो यों है कि इसी श्रद्धा के आश्रय से उन कर्म्मों के महत्त्व का भाव दृढ़ होता रहता है जिन्हें धर्म्म कहते हैं और जिनसे मनुष्य-समाज की स्थिति है। कर्त्ता से बढ़ कर कर्म्म का स्मारक दूसरा नहीं। कर्म्म की क्षमता प्राप्त करने के लिए बार बार कर्त्ता ही की ओर आँख उठती है। कर्म्मों से कर्त्ता की स्थिति को जो मनोहरता प्राप्त हो जाती है उस पर मुग्ध हो कर बहुत से प्राणी उन कर्म्मों की ओर प्रेरित होते हैं। कर्त्ता अपने सत्कर्म द्वारा एक विस्तृत क्षेत्र में मनुष्य की सद्वृत्तियों के आकर्षण का एक शक्ति-केन्द्र हो जाता है। जिस समाज में किसी ऐसे ज्योतिष्मान् शक्ति-केन्द्र का उदय होता है उस समाज में भिन्न भिन्न हृदयों से शुभ भावनाएँ मेघ-खंडों के समान उठ कर तथा एक ओर और एक साथ अग्रसर होने के कारण परस्पर मिल कर इतनी घनी हो जाती हैं कि उनकी घटा सी उमड़ पड़ती है और मंगल की ऐसी वर्षा होती है कि सारे दुःख और क्लेश बह जाते हैं।

हमारे अन्तःकरण में प्रिय के आदर्श रूप का संघटन प्रिय के व्यक्तित्व मात्र के आश्रय से हो सकता है पर श्रद्धेय के आदर्शरूप का संघटन उसके फैलाए हुए कर्म्म-तन्तु के उपादान से होता है। प्रिय का चिन्तन हम आँख मूँदे हुए, संसार को भुला कर, करते हैं; पर श्रद्धेय का चिन्तन हम आँख खोले हुए, संसार का कुछ अंश सामने रख कर, करते हैं। यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागृति है। प्रेमी प्रिय को अपने लिए और अपने को प्रिय के लिए संसार से अलग करना चाहता है। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा में तीन। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं, पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है। प्रेमी और प्रिय के बीच कोई और वस्तु अनिवार्य्य नहीं, पर श्रद्धालु और श्रद्धेय के बीच कोई वस्तु चाहिए। इस बात को स्मरण रखने से यह पहचानना उतना कठिन न रह जायगा कि किसी के प्रति किसी का कोई आनन्दान्तगर्त भाव प्रेम है या श्रद्धा। यदि किसी कवि का काव्य बहुत अच्छा लगा, किसी चित्रकार का बनाया चित्र बहुत सुन्दर जँचा और हमारे चित्त में उस कवि वा चित्रकार के प्रति एक सुहृद भाव उत्पन्न हुआ तो यह भाव श्रद्धा है क्योंकि यह काव्य वा चित्र रूप मध्यस्थ द्वारा प्राप्त हुआ है। प्रेम का कारण अनिर्दिष्ट और अज्ञात होता है पर श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात होता है। कभी कभी केवल एक साथ रहते रहते दो प्राणियों में यह भाव उत्पन्न हो जाता है कि वे बराबर साथ रहें, उनका साथ कभी न छूटे। प्रेमी प्रिय के सम्पूर्ण जीवन-क्रम के सतत साक्षात्कार का अभिलाषी होता है। वह उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना, सोना, खाना, पीना सब कुछ देखना चाहता है। संसार में बहुत से लोग उठते, बैठते, चलते फिरते हैं पर सब का उठना, बैठना, चलना फिरना उसको वैसा अच्छा नहीं लगता। प्रेमी प्रिय के जीवन को अपने जीवन से मिला कर एक रासायनिक मिश्रण तैयार करना चाहता है। वह दो से एक करना चाहता है। सारांश यह कि श्रद्धा में दृष्टि पहले कर्म्मों पर से होती हुई श्रद्धेय तक पहुँचती है और प्रीति में प्रिय पर से होती हुई उसके कर्म्मों आदि पर जाती है। एक में व्यक्ति को कर्म्मों द्वारा मनोहरता प्राप्त होती है और दूसरी में कर्म्मों को व्यक्ति द्वारा मनोहरता प्राप्त होती है। एक में कर्म्म प्रधान है, दूसरी में व्यक्ति।

यद्यपि ऊपर दोनों भावों में भेद दिखला दिया गया पर यह भेद उनकी उत्पत्ति के ही समय अधिक स्पष्ट रहता है परिपक्वावस्था में नहीं। कभी कभी एक के द्वारा दूसरे की प्राप्ति और पुष्टि होती है। कहीं कहीं तो यह भेद अत्यन्त सूक्ष्म रहता है। किसी के रूप को स्वयं देख कर हम तुरन्त मोहित हो कर उससे प्रेम कर सकते हैं पर उसके रूप की प्रशंसा किसी दूसरे से सुन कर चट हमारा प्रेम नहीं उमड़ पड़ेगा, हमारा पहला भाव श्रद्धा का होगा फिर उसके उपरान्त वह प्रेम में परिणत हो सकता है। बात यह है कि प्रेम एक मात्र अपने ही अनुभव पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र है पर श्रद्धा अपनी समाजिक विशेषता के कारण ...रों के अनुभव पर भी निर्भर है। रूप की भावना ...बहुत कुछ सम्बन्ध व्यक्तिगत रुचि से होता है। ...किसी के रूप और हमारे बीच यदि तीसरा ...आया तो इस व्यापार में सामाजिकता आ गई ...कि हमें पहले यह ध्यान हुआ कि उस रूप से ...तीसरे व्यक्ति को आनन्द वा सुख मिला और ...यों को मिलता होगा। जब तक हम किसी के ..., शील, स्वभाव, गुण आदि का बखान सुन कर ...वाह' करते जायँगे तब तक श्रद्धालु ही कह-...वेंगे; पर जब हम उसके दर्शन के लिए आकुल ..., उसे बराबर अपने सामने ही रखना चाहेंगे ...प्रेम का सूत्रपात समझा जायगा। श्रद्धा-भाजन ...व्यक्तित्व पर श्रद्धावान् अपने लिए किसी प्रकार ...अधिकार नहीं चाहता, पर प्रेमी प्रिय के हृय पर ...ना अधिकार चाहता है।

श्रद्धा एक सामाजिक भाव है इससे अपनी ...के बदले में हम श्रद्धेय से अपने लिए कोई ...नहीं चाहते। श्रद्धा धारण करते हुए हम अपने ...स समाज में समझते हैं जिसके किसी अंश ...चाहे हम व्यष्टि रूप में उसके अन्तर्गत न भी ...जान बूझ कर उसने कोई शुभ प्रभाव डाला। ...स्वयं ऐसे कर्म्मों के प्रतिकार में होती है ...का लक्ष्य अकेले हम नहीं बल्कि सारा मनुष्य ...है। श्रद्धा एक ऐसी आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है ...हम केवल समाज के प्रतिनिधि रूप में प्रकट ...हैं। सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर ...वा घृणा प्रकट करने के लिए समाज ने प्रत्येक ...को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रक्खा है। यह ...इसने इतना भारी समझा है कि उसका भार ...मनुष्यों को बाँट दिया है, दो चार माननीय ...के ही सिर पर नहीं छोड़ रक्खा है। जिस ...में सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर ...प्रकट करने के लिए जितने ही अधिक लोग ...पाए जायँगे उतना ही वह समाज जागृत ...जायगा। श्रद्धा की समाजिक विशेषता एक इसी बात से समझ लीजिए कि जिस पर हम श्रद्धा रखते हैं उस पर चाहते हैं कि और लोग भी श्रद्धा रक्खें, पर जिस पर हमारा प्रेम होता है उससे और दस पाँच आदमी प्रेम रक्खें इसकी हमें परवा क्या इच्छा ही नहीं होती, क्योंकि हम प्रिय के व्यक्तित्व पर लोभवश एक प्रकार का अनन्य अधिकार वा इजारा चाहते हैं। श्रद्धालु अपने भाव में संसार को भी सम्मिलित करना चाहता है पर प्रेमी नहीं।

जब तक समष्टि रूप में हमें संसार के लक्ष्य का बोध नहीं होता और हमारे अन्तःकरण में सामान्य आदर्शों की स्थापना नहीं होती तब तक हमें श्रद्धा का अनुभव नहीं होता। बच्चों में कृतज्ञता का भाव पाया जाता है पर सदाचार के प्रति इस कृतज्ञता का नहीं जिसे श्रद्धा कहते हैं। अपने साथ किए जानेवाले जिस व्यवहार के लिये वे कृतज्ञ होते हैं उसी को दूसरों के साथ होते देख कर्त्ता के प्रति कृतज्ञ होना वे देर में सीखते हैं—उस समय सीखते हैं जब वे अपने को किसी समुदाय का अंग समझने लगते हैं। अपने साथ वा किसी विशेष मनुष्य के साथ किए जानेवाले व्यवहार के लिये जो कृतज्ञता होती है वह श्रद्धा नहीं है। श्रद्धालु की दृष्टि सामान्य की ओर होनी चाहिए, विशेष की ओर नहीं। अपने सम्बन्धी के प्रति किसी को कोई उपकार करते देख यदि हम कहें कि उस पर हमारी श्रद्धा हो गई है तो यह हमारा पाषंड है, हम झूठ-मूठ अपने को ऐसे उच्च भाव का धारणकर्त्ता प्रकट करते हैं। पर उसी सज्जन को दस पाँच और ऐसे आदमियों के साथ जब हम उपकार करते देखें जिन्हें हम जानते तक नहीं और इस प्रकार हमारी दृष्टि विशेष से सामान्य की ओर जाय, तब यदि हमारे चित्त में उसके प्रति पहले से कहीं अधिक कृतज्ञता वा पूज्यबुद्धि का उदय हो तो हम श्रद्धालु की उच्च पदवी के अधिकारी हो सकते हैं। सामान्य रूप में हम किसी के गुण वा शक्ति का विचार सारे संसार से सम्बद्ध करके करते हैं अपने से वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी विशेष प्राणी से सम्बद्ध करके नहीं। हम देखते हैं कि किसी मनुष्य में कोई गुण वा शक्ति है जिसका प्रयोग वह चाहे जहाँ और जिसके प्रति कर सकता है।

श्रद्धा का मूल तत्त्व है दूसरे का महत्त्व-स्वीकार। अतः जिनकी स्वार्थबद्ध दृष्टि अपने से आगे नहीं जा सकती है अथवा अभिमान के कारण जिन्हें अपनी ही बड़ाई के अनुभव की लत लग गई है उनमें इतनी उदारता नहीं आ सकती कि वे श्रद्धा ऐसे पवित्र भाव को धारण करें। स्वार्थियों और अभिमानियों के हृदय में श्रद्धा नहीं टिक सकती। उनका अन्तःकरण इतना संकुचित और मलिन होता है कि वे दूसरों की कृति का यथार्थ मूल्य नहीं परख सकते।

स्थूल रूप से श्रद्धा तीन प्रकार की कही जा सकती है—

(१) प्रतिभा-सम्बन्धिनी,
(२) शील-सम्बन्धिनी और
(३) साधन-सम्पत्ति-सम्बन्धिनी।

प्रतिभा से मेरा अभिप्राय अन्तःकरण की उस उद्भाविका क्रिया से है जिसके द्वारा कला, विज्ञान आदि नाना क्षेत्रों में नई नई बातें (वा कृति) उपस्थित की जाती हैं। यह ग्रहण और धारणाशक्ति से भिन्न है जिसके द्वारा उपलब्ध ज्ञान (विद्वत्ता) संग्रह किया जाता है। कला-सम्बन्धिनी श्रद्धा के लिये श्रद्धालु में भी थोड़ी बहुत मार्मिक निपुणता चाहिए इससे उसका अभाव कोई भारी त्रुटि नहीं, वह क्षम्य है। यदि किसी उत्तम काव्य वा चित्र की प्रशंसा करके हम कवि वा चित्रकार पर श्रद्धा नहीं कर सके तो यह हमारा अनाड़ीपन है, हमारे रुचि-संस्कार की त्रुटि है। इसका उपाय यही है कि समाज साधारण शिक्षा के प्रचार की व्यवस्था करे जिससे विविध कलाओं के सामान्य आदर्श की स्थापना जनसमूह में हो जाय। पर इतना होने पर भी कला-सम्बन्धिनी रुचि की विभिन्नता थोड़ी बहुत अवश्य रहेगी। अश्रद्धालु रुचि का नाम लेकर ईर्षा वा अहंकार के दोषारोपण से बच जाया करेंगे। पर शील-सम्बन्धिनी श्रद्धा प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। शील वा धर्म के सामान्य लक्षण संसार के प्रत्येक सभ्य जनसमुदाय में प्रतिष्ठित हैं। धर्म ही से मनुष्य-समाज की स्थिति है अतः उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का रुचिभेद, मतभेद आदि नहीं। सदाचारी के प्रति यदि हम श्रद्धा नहीं रखते तो समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। यदि किसी का दूसरों के कल्याण के लिए भारी स्वार्थत्याग करते देख हमारे मुँह से 'धन्य धन्य' भी न निकला तो हम समाज के किसी काम के न ठहरे। समाज को हमसे कोई आशा नहीं, हम समाज में रहने योग्य नहीं। किसी कर्म्म में प्रवृत्त होने के पहले यह स्वीकार करना आवश्यक होता है कि वह कर्म्म या तो हमारे लिए या समाज के लिए अच्छा है। इस प्रकार की स्वीकृति कर्म्म की पहली तैयारी है। श्रद्धा द्वारा हम यह आनन्दपूर्वक स्वीकार करते हैं कि कर्म के अमुक अमुक दृष्टान्त धर्म के हैं, अतः श्रद्धा धर्म की पहली सीढ़ी है। धर्म के इस प्रथम सोपान पर प्रत्येक प्राणी को रहना चाहिए जिसमें जब कभी अवसर पड़े तब वह कर्म्म रूपी दूसरे सोपान पर हो जाय।

अब रह गई साधन-सम्पत्ति-सम्बन्धिनी श्रद्धा की बात। यहाँ पर साधन-सम्पन्नता का ठीक ठीक भाव समझ लेना आवश्यक है क्योंकि आलंकारिक भाषा में प्रतिभा सम्पन्न, शील-सम्पन्न आदि वाक्य भी बराबर सुने जाते हैं। साधन-सम्पत्ति का अनुपयोग भी हो सकता है, सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी को पद्य रचने की अच्छी अभ्यास-सम्पन्नता है। यदि शिक्षा द्वारा उसके भाव उन्नत हैं, वह सहृदय है तो वह अपनी इस सम्पन्नता का उपयोग मनोहर उच्चभाव-पूर्ण काव्य प्रस्तुत करने में कर सकता है; यदि उसकी अवस्था ऐसी नहीं है तो वह या तो साधारण, भावशून्य गद्य को गीतिका, शिखरिणी आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दों में परिणत करेगा या अपनी भद्दी और भावपूर्ण भावनाओं को श्लोक-बद्ध करेगा। उसके कृत्य पर श्रद्धा रखनेवाले भी बहुत मिल जायँगे। एक उठते हुए कवि के विषय में सुना है कि उनके पास गद्य लिख कर भेज दिया जाता और वे स्लेट पेंसिल लेकर उसे पद्य रूप में ढाल देते थे। धीरे धीरे उन्होंने बहुत से ऐसे पद्यों का, लोगों के मुँह से नित्य प्रति सुनाई पड़नेवाली साधारण बातों के अतिरिक्त कोई चमत्कार-पूर्ण असाधारण उक्ति नहीं, ढेर लगाया और एक विशेष ढंग से गठित सम्प्रदाय के बीच वे कवि भी कहलाने लगे। ऐसे व्यक्ति के प्रति जो श्रद्धा होती है वह साधन-सम्पन्नता-सम्बन्धिनी है साध्य की पूर्णता-सम्बन्धिनी नहीं। देशी कारीगरी, चित्रकारी, संगीत आदि में नियमपालन के अभ्यास द्वारा प्राप्त इस साधन-सम्पन्नता ही पर इधर बहुत दिनों से अधिक ध्यान दिया जाने लगा था और मानव हृदय पर मनोहारिणी कलाओं के प्रभाव का बहुत कम विचार होने लगा था। बहुत से पुराने मकानों की कारीगरी देखिए तो उसमें बहुत सा काम गिचपिच हुआ दिखाई देगा, ऐसे महीन बेल-बूटों की चित्र-विचित्र पटरियाँ दीवारों में जमाई हुई मिलेंगी जो आँख को पास ले जा कर सटाए स्पष्ट न जान पड़ें। सारे मकान को एक बेर में देखने से इन का सम्मिलित प्रभाव दृष्टि और मन पर क्या पड़ेगा इसका कुछ भी चिन्तन बनानेवालों ने नहीं किया यह स्पष्ट देख पड़ेगा। ऐसे कामों में अभ्यास तथा समय और श्रम के व्यय (वा अपव्यय) का परिचय मिलता है पर विचार और सहृदयता के उपयोग का बहुत कम। समझने की बात है कि इमारत हाथ पर ले कर देखने की चीज़ नहीं, दस पाँच हाथ दूर पर खड़े होकर देखने की है।

चित्रकारी की दशा भी इसी प्रकार की हो गई है। राधाकृष्ण कदंब के नीचे खड़े हैं। कदंब की एक एक पत्ती अलग अलग बारीकी के साथ बनी दिखाई पड़ती है। राधा की चुनरी की एक एक बूटी बड़ी सावधानी और मिहनत के साथ बैठाई देख पड़ती है। देखनेवाले को यह नहीं जान पड़ता कि वह कुछ दूर पर खड़ा हो कर कदंब और राधाकृष्ण को एक साथ देख रहा है बल्कि यह जान पड़ता है कि कभी तो पत्तियाँ गिनने के लिए वह पेड़ पर चढ़ता है और कभी नमूना लेने के लिए चुनरी हाथ में लेता है। ऐसी रचनाओं के प्रति यदि श्रद्धा प्रकट की जायगी तो वह अभ्यास और श्रम अर्थात् साधन-सम्पन्नता के विचार से होगी, साध्य की पूर्णता अर्थात् कला के विचार से नहीं जिसका उद्देश्य मानव हृदय पर मधुर प्रभाव डालना है। ऐसी रचनाओं की पोषकता के लिए कलकत्ते में एक नया सम्प्रदाय खड़ा हुआ है जो भारतीय कला-क्षेत्र में वही काम कर रहा है जो विचार-क्षेत्र में थियासोफ़ी कर रही है। पाश्चात्य उन्नति-क्रम के संयोग से राजा रविवर्म्मा भारतीय चित्रकला में जो एक नई जान डाल गए थे उसे यह सम्प्रदाय धीरे धीरे निकाल रहा है। संगीत के पेंच पांच देख कर भी हठयोग याद आता है। जिस समय कोई कलावंत पक्का गाना गाने के लिए आठ अँगुल मुँह फैलाता है और 'आ आ' करके विकल होता है उस समय बड़े बड़े धीरों का धैर्य्य छूट जाता है—दिन दिन भर चुपचाप बैठे रहनेवाले बड़े बड़े आलसियों का आसन भी डिग जाता है। जो संगीत नाद की माधुर्य्य-मिश्रित गति द्वारा मन में माधुर्य्य का सञ्चार करने के लिए था वह इन पक्के लोगों के हाथ में पड़ कर केवल स्वर-ग्राम की लंबी चौड़ी क़वायद हो गया। श्रद्धालुओं के अन्तःकरण की मार्मिकता इतनी स्तब्ध हो गई कि एक खर-स्वन के गले से भी इस लंबी क़वायद को ठीक उतरते देख उनके मुँह से 'वाह वाह' 'ओहो हो' निकलने लगा। काव्य पर शब्दालंकार आदि का इतना बोझ लादा गया कि उसका सारा रूप ही छिप गया। बात यह हुई कि इन विविध कलाओं के जितने अभ्यास-गम्य और श्रमसाध्य अंग थे वे तो हद से बाहर घसीटे गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर जितने सहृदयता से सम्बन्ध रखनेवाले थे उन पर ध्यान ही न रहा। यदि ये कलाएँ मूर्त्तिमान् रूप धारण करके सामने ग्रातीं तो देख पड़ता कि किसी को जलोदर हुआ है किसी को फ़ीलपाव! इनकी दशा सोने ग्रौर रत्नों से जड़ी गुठली धार की तलवार की सी हो गई।

किसी मनुष्य में बहुत ग्रधिक शारीरिक बल देख उस पर जन-साधारण की श्रद्धा होती है ग्रौर होनी चाहिए। प्रो० राममूर्त्ति को मोटर रोकते ग्रौर लोहे के मोटे मोटे सीकड़ तोड़ते देख, छाती पर ४० मन का पत्थर रखते, हाथी खड़ा करते ग्रौर गाड़ी दौड़ाते देख उनके शारीरिक बल के कारण उन पर श्रद्धा होती है। ग्रब इस सम्पन्नता का वे सदुपयोग भी कर सकते हैं, दुरुपयोग भी कर सकते हैं ग्रौर ग्रनुपयोग भी कर सकते हैं। वे इसके द्वारा किसी भारी संकट से ग्रपनी या दूसरे की रक्षा भी कर सकते हैं ग्रौर किसी निरपराध को पीड़ित भी कर सकते हैं। पर हमारी श्रद्धा बिना सदुपयोग वा दुरुपयोग की सम्भावना की कल्पना किए शुद्ध साधन-सम्पन्नता ही पर होती है। कोरे विद्वानों के प्रति जो श्रद्धा होती है वह भी साधन-सम्पन्नता ही के सम्बन्ध में होती है उसके उपयोग की निपुणता वा प्रतिभा पर निर्भर नहीं होती। विद्वत्ता किसी विषय की बहुत सी बातों की जानकारी का नाम है जिसका सञ्चय बहुत कष्ट, श्रम ग्रौर धारणा से होता है। यह बात विद्वान् की प्रतिभा पर निर्भर है कि वह ज्ञान का भंडारी ग्रौर उपयोगकर्त्ता दोनों हो ग्रर्थात् वह उत्तम चिन्तक, वक्ता, लेखक, ग्रन्वेषक वा कवि भी होकर उस संचित साधन का उपयोग करे ग्रौर ग्रपने मूल विचारों का प्रभावपूर्ण प्रकाश करे। यदि विद्वान् को यह प्रतिभा नहीं है, यह शक्ति नहीं है तो वह ग्रपनी संचित जानकारी को कला-कुशल ग्रौर प्रतिभाशाली लेखकों वा तत्त्वान्वेषकों के सामने रख दे कि वे उससे ग्रावश्यकतानुसार काम लें। इस रीति से उसकी विद्वत्ता सामाजिक उपयोग में ग्रा जायगी।

भिन्न भिन्न मानसिक संस्कार के लोगों में किसी विषय से सम्बन्ध रखनेवाली श्रद्धा भिन्न भिन्न मात्रा की हुग्रा करती है। यदि किसी को शारीरिक बल, साहस या चतुराई पर ग्रत्यंत ग्रधिक श्रद्धा है तो वह इनका दुरुपयोग देख कर भी बनी रह सकती है। ग्रत्याचारियों के बल, डाकुग्रों के साहस ग्रौर लम्पटों की चालाकी की तारीफ़ संसार में थोड़ी बहुत होती ही है। एक बात ग्रौर है। यदि किसी पर किसी एक विषय में ग्रत्यन्त ग्रधिक श्रद्धा है तो उसकी ग्रन्य विषयों की त्रुटियों पर ध्यान नहीं जाता है ग्रौर कभी कभी ध्यान भी जाता है तो वे भी सुहावनी लगती हैं। कोई प्रतिभाशाली कवि विलास-प्रिय, मद्यप वा सनकी है तो जो ग्रत्यन्त काव्य-प्रेमी होंगे उनकी घृणा को उसके ये दुर्गुण पूर्णरूप से ग्राकर्षित न कर सकेंगे यहाँ तक कि उसके इन दुर्गुणों की चर्चा भी वे मनोरंजकता के साथ करेंगे ग्रौर सुनेंगे। बात यह है कि मनुष्य का ग्रन्तः करण एक है उसकी एक साथ दो परस्पर विरुद्ध स्थितियाँ नहीं हो सकतीं। इस प्रकार की मानसिक स्तब्धता को श्रद्धान्धता कह सकते हैं। यद्यपि श्रद्धान्ध समाज में उतना ग्रनर्थकारी नहीं हो सकता, उतना ग्रपराधी नहीं ठहराया जा सकता जितना मदान्ध, क्रोधान्ध वा ईर्षान्ध पर उसकी श्रद्धा के बढ़ते बढ़ते क्रियमाण रूप धारण करने पर ग्रौर शीलसम्बन्धिनी चेतना को बिलकुल जवाब मिल जाने पर, समाज के ग्रनिष्ट में व्याज से सहायता पहुँच सकती है। यदि किसी ग्रपव्ययी ग्रौर मद्यप कवि पर ग्रत्यंत श्रद्धालु होकर कोई उसकी ग्रार्थिक सहायता करता जाता है तो वह उस ग्रन्याय ग्रौर उपद्रव का थोड़ा बहुत उत्तरदाता ग्रवश्य होता है जो कविजी ग्रपने सहवर्त्तियों के बीच करने में समर्थ होते हैं। यदि किसी पहलवान के बल पर प्रसन्न होकर कोई उसे हलुवा पूड़ी खाने के लिए कुछ महीना बाँधता है तो उसके गुंडेपन के कारण लोगों को पहुँची हुई पीड़ा के दोष का वह कम से कम उतना भाग ग्रवश्य पा सकता है जितना इन्द्रकृत हत्या की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्य के समय बहुतों को मिला था। उद्देश्य के भाव के बल से यद्यपि इन दोनों श्रद्धालुओं पर दोष ठीक ठीक नहीं लग सकता पर समाज की दृष्टि में दान के पात्रता-सम्बन्धी अविवेक के अभियोग से नहीं बच सकते। अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि शील, कला और साधन-सम्पत्ति श्रद्धा के इन तीनों विषयों में से किसका ध्यान मनुष्य को पहले रखना चाहिए और किसका पीछे। इसका बेधड़क उत्तर दिया जा सकता है कि जन साधारण के शील का ही सबसे पहले ध्यान होना स्वाभाविक है क्योंकि उसका सम्बन्ध मनुष्य मात्र की सामान्य स्थिति-रक्षा से है, उसके अभाव में समाज के उस आधार की स्थिति ही नहीं रह सकती जिसमें कलाओं की उपयोगिता वा मनोहारिता का प्रसार और साधन-सम्पत्ति की प्रचुरता का वितरण और व्यवहार होता है।

दूसरों की श्रद्धा संसार में एक अत्यन्त वांछनीय वस्तु है क्योंकि वह एक प्रकार का ऐसा परनिश्चय वा विश्वास है जिसके सहारे स्वकीय जीवन सुगम होता है—जीवन की कठिनता कम होती है। जिस पर लोगों की अश्रद्धा होती है उसके लिए व्यवहार के सब सीधे और सुगम मार्ग बंद हो जाते हैं—उसे या तो काँटों पर या ढाई कोस नौ दिन में चलना पड़ता है। पर जो किसी प्रकार दूसरों की श्रद्धा सम्पादित कर लेता है उसके पैर रखने के लिए फूलों की पखरियाँ—आज कल लाल बनात—बिछाई जाती हैं। समाज में ये वस्तुएँ गुणियों और परोपकारियों के लिए हैं पर इन्हें छीनने और चुराने की ताक में बहुत से चोर, ठग और लुटेरे रहते हैं जो इनके द्वारा स्वार्थसाधन करना वा अपनी तुच्छ मानसिक वृत्तियों को तुष्ट करना चाहते हैं। इनसे समाज को हरघड़ी सावधान रहना चाहिये—इन्हें सामाजिक दंड देने के लिए उसे सदा सन्नद्ध रहना चाहिए। ये अनेक रूपों में दिखाई पड़ते हैं। कोई गेरुआ वस्त्र लपेटे धर्म का डंका पीटता दिखाई देता है, कोई देशहितैषिता की पगड़ी बाँधे देशोद्धार की पुकार करता पाया जाता है। मनुष्य किसी और तीन प्रकार से प्रवृत्त होता है—मन से, वचन से और कर्म से। इनमें से मन तो देखने दिखाने की चीज़ नहीं। वाणी और कार्य्यप्रणाली की नक़ल की जाती है, और बड़ी सफ़ाई से की जाती है। हितोपदेश के गदहे ने तो बाघ की खाल ही ओढ़ी थी पर ये लोग बाघ की बोली भी बोल लेते हैं। कहीं कहीं केवल वचन ही से काम निकल जाता है। एक दिन मैं काशी की एक गली से जा रहा था। एक ठठेरे की दूकान पर कुछ परदेशी यात्री किसी बरतन का मोल भाव कर रहे थे और कह रहे थे कि इतना नहीं इतना लो तो लें। इतने ही में सौभाग्यवश दूकानदार जी को ब्रह्मज्ञानियों के वाक्य याद आ गए और उन्होंने चट कहा—"माया छोड़ो और इसे ले लो"। सोचिए तो, काशी ऐसा पुण्य क्षेत्र! यहां न माया छोड़ी जायगी तो कहां छोड़ी जायगी? थोड़े दिन हुए कि किसी लेखक ने कहीं पढ़ा कि प्रतिभाशाली लोग कुछ उग्रता और पागलपन लिए होते हैं। तब से वे बराबर अपने में इन दोनो शुभ लक्षणों की स्थापना के यत्न में लगे रहते हैं। सुनते हैं कि पहले में वे कुछ कृतकार्य्य भी हुए हैं, पर पागलपन की नक़ल करना कुछ हँसी-खेल नहीं, भूलचूक से कुछ समझदारी की बातें मुँह से निकल ही जाती हैं।

जैसे और सब विद्याओं की वैसे ही परश्रद्धाकर्षण की विद्या की भी आज कल खूब उन्नति हुई है। आश्चर्य्य नहीं कि इसके लिए कुछ दिनों में एक अलग विद्यालय खुले। श्रद्धा के यथार्थ कारण का जितना ही अभाव हो आकर्षक को अपनी विद्या में उतना ही दक्ष समझना चाहिए। आज कल सार्वजनिक उद्योगों की बड़ी धूम रहा करती है और बहुत से लोग निराहार परोपकार-व्रत करते सुने जाते हैं। ऊपर कहा जाचुका है कि परश्रद्धा के सहारे कार्य्य में सुगमता आती है अतः किसी कार्य्यसाधन के लिए जो लोग प्रयत्न द्वारा दूसरों के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करते हैं वे उस कार्य्य के अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार चतुर, नीतिकुशल, धूर्त्त वा पाषंडी कहे जाते हैं। पर संसार में बहुत से ऐसे लोग भी होते हैं जिन्हें अपने विषय में पराई श्रद्धा के चिन्तन से जो एक प्रकार का आनन्द मिलता है उसकी लत पड़ जाती है, वे पर-श्रद्धा को मनोरंजन वा मानसिक भोग विलास की एक सामग्री समझते हैं। वे पराई श्रद्धा केवल इसी निमित्त चाहते हैं, और किसी उद्देश्य से नहीं। ऐसे परश्रद्धाभिलाषियों को मानसिक दुर्व्यसन रहता है और वे उसी प्रकार दुर्व्यसनी कहे जा सकते हैं जिस प्रकार शराबी, गँजेड़ी और चंडूबाज़ आदि। पर समाज की श्रद्धा ऐसे अपव्यय के लिए नहीं है, प्रयोजन के लिए है। ऐसे लोग अपनी धुन में कभी कभी बड़े बड़े सार्वजनिक कार्य्य भी छेड़ बैठते हैं जिनका होना उन्हें इतना अभीष्ट नहीं होता जितना अपने द्वारा होना। ये लोग पहचाने इस प्रकार जाते हैं कि ये उन कार्य्यों से अपने व्यक्तित्व का वियोग घड़ी भर भी नहीं सह सकते; यहाँ तक कि यदि वे दूसरों को कोई ऐसा कार्य्य हाथ में लेते देखते हैं जिसमें समाज के साधुवाद की सम्भावना होती है तो इनका पेट फूलने लगता है और ये या तो गुप्त रूप से उसमें विघ्न की व्यवस्था करते हैं या कम से कम उसके महत्त्व को बहुत कम करके दिखाया करते हैं। दूसरी पहचान यह है कि ये लोग ऐसे ही काम ठानते हैं जिनका नाम और आडंबर बड़ा होता है। यदि बीच में कोई इनसे प्राप्त सामग्री आदि को किसी दूसरे ऐसे काम में लगाने को कहे जिसकी तड़क भड़क उससे कम और उपयोगिता अधिक हो तो ये नहीं मानेंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रद्धावान् अपनी श्रद्धा द्वारा श्रद्धेय में कोई ऐसा परिवर्त्तन उपस्थित नहीं किया चाहता जिसका अपने लिए कोई अनुकूल फल हो। श्रद्धावान् श्रद्धेय को प्रसन्न करने की इच्छा कर सकता है पर उस प्रसन्नता से आप कोई लाभ उठाने की नहीं। श्रद्धा न्याय-बुद्धि के पलड़े पर तुली हुई एक वस्तु है जो दूसरे पलड़े पर रक्खे हुए श्रद्धेय के गुण, कर्म्म आदि के हिसाब से होती है। श्रद्धा सत्कर्म्म वा सद्गुण ही का मूल्य है जिससे और किसी प्रकार का सौदा नहीं हो सकता। पर जब कि इस व्यापार-युग में ज्ञान बिकता है, न्याय बिकता है, धर्म बिकता है तब श्रद्धा ऐसे मनोवेग क्यों न बिकें? पर असली मनोवेग तो इस लेन देन के व्यवहार के लिए उपस्थित नहीं किए जा सकते। ख़ैर, नक़ली सही। एक मनोविकार पर दूसरे मनोविकार की क़लई करके हम बाज़ार में क्यों न जायँ? अपनी भीरुता वा चापलूसी को हम 'श्रद्धा श्रद्धा' कह कर गलियों और सम्वादपत्रों में क्यों न पुकारें? ऐसे झूठे श्रद्धावानों से घिर कर झूठे श्रद्धापात्र सच्चे श्रद्धापात्रों को क्यों न मात करें जब कि आज कल झूठे मोती सच्चे मोतियों को मात करते हैं?

कला कुशल वा सदाचारी अपने चारों ओर प्रसन्नता देखना चाहता है, अतः अपनी श्रद्धा द्वारा हम उसे अपनी प्रसन्नता का निश्चय मात्र कराते हैं। हमारी प्रसन्नता से उसे अपनी सामर्थ्य का बोध हो जाता है और उसका उत्साह बढ़ता है। इस प्रकार अपनी श्रद्धा द्वारा हम भी समाज का मंगलसाधन करते हैं। दूसरे की श्रद्धा का श्रद्धेय पर इतना ही प्रभाव पड़ना चाहिए, इससे अधिक नहीं। यदि हमारी श्रद्धा के कारण वह हमें किसी प्रकार का लाभ पहुँचाना चाहता है तो वह हमारी श्रद्धा को .ख़ुशामद समझता है और हमारा अपमान करता है। श्रद्धा में याचकता का भाव लेशमात्र भी नहीं है। श्रद्धा द्वारा हम अपने हृदय का परिचय मात्र देते हैं कि उसमें धर्मभाव है—सात्विक आचरण से प्रसन्न होने की क्षमता है। यदि हमें किसी पर श्रद्धा है तो हमें उसके पास जाकर यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि "महाराज! मेरी यह श्रद्धा स्वीकार हो"। इस प्रकार की स्वीकृति की हमें कोई आवश्यकता नहीं। हम अपनी श्रद्धा के लिए अपने घर बैठे रह सकते हैं या उसे इस रीति से प्रकट कर सकते हैं जिस पर श्रद्धेय का कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। यदि हमें किसी सुलेखक पर श्रद्धा है वह हमसे रुष्ट है तो भी हम उसका सच्चा और चरित्र छाप सकते हैं। इसका स्वत्व हमें द्वारा प्राप्त है—इसका हक़ हमें क़ानूनन है। पर वही यदि हम उस सुलेखक से प्रेम बलें, उसके साथ साथ लगे फिरें और हर उसे घेरे रहें तो वह हमें हटा सकता है, यदि की बेहयाई से हम नहीं हटते तो वह पुलिस कर कह सकता है—"यह आदमी हमें बहुत करता है, इसे हटाओ"। श्रद्धा प्रदर्शित करने जितना विस्तृत सामाजिक अधिकार हमें प्राप्त है उतना उसके विपरीत भाव अश्रद्धा वा घृणा प्रकट का नहीं क्योंकि श्रद्धा यदि हमने भूल से वा वश प्रकट की तो किसी की उतनी हानि पर यदि घृणा भूल से वा द्वेषवश प्रकट की र्थ का सन्ताप और दुःख फैल सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रद्धा के विषय हैं—शील, प्रतिभा और साधन-सम्पत्ति। शील से समाज की स्थिति, प्रतिभा से सुख, और सम्पत्ति से शील-साधन और प्रतिभाविकाश की सम्भावना है। श्रद्धेय समाज की स्थिति सुख का विधान करता है और समाज उसकी और सुख का विधान करता है। समाज श्रद्धालु प्रतिनिधियों को कभी तो उसे आपत्ति बचाने के लिए भेजता है कभी कुछ भेंट उसके रखने के लिए। श्रद्धावश जो दान दिया है वह भी इसी प्रकार की भेंट है। दान दो का होता है एक वह जो श्रद्धावश दिया है, दूसरा वह जो दयावश दिया जाता है। , विद्वानों और धार्मिकों को जो दान दिया है वह श्रद्धावश दिया जाता है; अंधों, लूलों लँगड़ों को जो दान दिया जाता है वह दयावश जाता है। श्रद्धा सामर्थ्य के प्रति होती है दया असामर्थ्य के प्रति। जन साधारण अपनी द्वारा केवल असामर्थ्य के उपस्थित परिणामों स्थान के बीच और कुछ काल तक के लिए, निवारण कर सकते हैं अतः श्रद्धा द्वारा वे ऐसे असाधारण जनों को अपने वित्तानुसार थोड़ी थोड़ी शक्ति-प्रदान करते हैं जो असामर्थ्य वा असामर्थ्य के कारणों के निराकरण में समर्थ होते हैं। श्रद्धावश दान में उपयोगिता का तत्त्व छिपा हुआ है। स्मृतियों में श्रद्धावश दान पर बड़ा ज़ोर दिया गया है। और ऐसे दान के विषय में पात्रापात्र का विचार भी खूब किया गया है। विद्यादान में रत विद्वानों को परोपकार में रत कर्म्म वीरों को, मानव-ज्ञान की वृद्धि में तत्पर तत्त्वान्वेषकों को जो अभाव हो उसे हमें समाज की भूख समझना चाहिए। इन्हें जो कुछ हम श्रद्धावश देते हैं वह ठीक समाज के सुधरे पेट में जाता है जहां से रस रूप में उसका संचार अंग अंग में होता है। इसके विरुद्ध स्वार्थियों, अन्यायियों आदि को जो कुछ दिया जाता है वह समाज के अंग में उसी प्रकार नहीं लगता जिस प्रकार अतीसार संग्रहणीवाले को खिलाया हुआ अन्न। भारतवर्ष में श्रद्धा का सम्बन्ध दान के साथ इतना गहरा समझा जाता है कि अश्रद्धा पूर्वक दिया हुआ दान निष्फल माना जाता है इसी से शुष्क प्रथानुसरण के रूप में भी यदि कुछ दिया जाता है तो श्रद्धा का नाम ले लिया जाता है। पंडों पुरोहितों को देते हुए यजमान भी कहता है कि "महाराज! इतनी ही श्रद्धा है" और पंडे पुरोहित भी कहते हैं कि "जितनी श्रद्धा हो उतना दो" यद्यपि इन पंडों और पुरोहितों के सम्बन्ध में सदा यह निश्चय नहीं रहता कि वे बड़े विद्वान, बड़े धार्मिक वा बड़े परोपकारी हैं। मनोवेगों के उपयुक्त विषयों के निश्चय में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कभी कभी बुद्धि की भी थोड़ी बहुत आवश्यकता होती है। क्यों एक ही व्यक्ति के प्रति किसी को श्रद्धा होती है और किसी को अश्रद्धा इसका कारण घृणा के अन्तर्गत अच्छी तरह दिखला दिया गया है।

श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्य-भाव की वृद्धि के साथ साथ श्रद्धाभाजन के सामीप्य-लाभ की प्रवृत्ति हो, उसके व्यक्तित्व के कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपों के साक्षात्कार की वासना हो तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्त्तन, ध्यान आदि में आनन्द का अनुभव होने लगे, जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के अतिरिक्त विषयों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे तब भक्ति-रस का संचार समझना चाहिए। जब श्रद्धेय का उठना, बैठना, चलना, फिरना, हँसना, बोलना, क्रोध करना आदि भी हमें अच्छा लगने लगे तब हम समझ लें कि हम उसके भक्त हो गए। भक्ति की अवस्था प्राप्त होने पर हम अपने जीवन-क्रम का थोड़ा या बहुत अंश उसे अर्पित करने को प्रस्तुत होते हैं और उसके जीवन-क्रम पर भी अपना कुछ प्रभाव रखना चाहते हैं। कभी हम अर्पण करते हैं और कभी याञ्चा करते हैं। सारांश यह कि भक्ति द्वारा हम भक्ति-भाजन से विशेष विस्तृत सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उसके जीवन में विशेष रूप से योग देना चाहते हैं। किसी के प्रति श्रद्धा धारण करके हम बहुत करेंगे समय समय पर उसकी प्रशंसा करेंगे, उसकी निंदा करने वालों से झगड़ा करेंगे या कभी कुछ उपहार लेकर उपस्थित होंगे पर जिसके प्रति हमारी अनन्य भक्ति हो जायगी वह अपने जीवन के बहुत से अवसरों पर हमें अपने साथ देख सकता है—वह अपने बहुत से उद्योगों में हमारा योगदान पा सकता है। भक्त वे ही कहला सकते हैं जो अपने जीवन का बहुत कुछ अंश स्वार्थ (परिवार वा शारीरिक सुख आदि) से विभक्त करके किसी के आश्रय से किसी ओर लगा सकते हैं।

महात्माओं के ऊपर श्रद्धा मात्र करके हम उन्हें जीवनशक्ति द्वारा उपार्जित कोई फल-प्रदान कर सकते हैं पर उनके भक्त हो कर हम उन्हें अपने जीवन ही के कुछ अंश को अर्पित कर देते हैं। किसी व्रीरव्रती महात्मा पर बहुत श्रद्धालु हो कर हम आर्थिक सहायता द्वारा उसके लिए कुछ सुबीता कर सकते हैं, अपने वचनों से उसे प्रसन्न और उत्साहित कर सकते हैं पर उसके भक्त बन कर हम अपने शारीरिक बल को उसका शारीरिक बल बनावेंगे, अपनी जानकारी और चतुराई को उसकी जानकारी और चतुराई बनावेंगे, अपनी वाग्मिता को उसकी वाग्मिता बनावेंगे, अपनी तत्परता को उसकी तत्परता बनावेंगे यहाँ तक कि जो कुछ हम में होगा उसे हम उसका कर डालेंगे, इस प्रकार उसके जीवन में अपने जीवन का योग देकर उसके सामाजिक महत्त्व वा प्रभाव को बढ़ावेंगे और उसके थोड़े बहुत हम भी भागी होंगे। श्रद्धा द्वारा हम दूसरे के महत्त्व के किसी अंश के अधिकारी नहीं हो सकते पर भक्ति द्वारा हो सकते हैं। यहाँ तक कि दूसरे की भक्ति करके हम तीसरे की भक्ति के अधिकारी हो सकते हैं। राम पर अनन्य भक्ति करके हनुमान् अन्य राम-भक्तों की भक्ति के अधिकारी हुए। श्रद्धालु महत्त्व को स्वीकार करता है पर भक्त महत्त्व की ओर अग्रसर होता है। श्रद्धालु अपने जीवन-क्रम को ज्यों का त्यों छोड़ता है पर भक्त उसकी काट छाँट में लग जाता है। अपने आचरण द्वारा दूसरों की भक्ति के अधिकारी हो कर संसार के बड़े बड़े महात्मा समाज के कल्याण-साधन में समर्थ हुए हैं। गुरु गोविन्द सिंह को यदि केवल दंडवत करनेवाले और गद्दी पर भेंट चढ़ानेवाले श्रद्धालु ही मिलते, दिन रात साथ रहने वाले, अपने सारे जीवन को अर्पित करनेवाले भक्त न मिलते तो वे अन्यायदमन में कभी समर्थ न होते। अस्तु; भक्ति के सामाजिक महत्त्व को, इसकी लोकहितकारिणी शक्ति को स्वीकार करने में किसी को आगा पीछा नहीं हो सकता। सामाजिक महत्त्व के लिए आवश्यक है कि या तो आकर्षित करे या आकर्षित हो। जैसे इस आकर्षण-विधान के बिना अणुओं द्वारा व्यक्त पिंडों का विकाश नहीं हो सकता वैसे ही मानव-जीवन की विशद अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकती।

भक्ति में किसी ऐसे सान्निध्य की प्रवृत्ति होती है जिसके द्वारा हमारी महत्त्व के अनुकूल गति का विस्तार और प्रतिकूल गति का संकोच होता है। इस प्रकार का सामीप्य लाभ करके हम अपने ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...बैठा देते हैं—अपने को ऐसे स्वच्छ आदर्श के ...कर देते हैं जिसमें हमारे कर्मों का प्रतिबिंब ...ठीक दिखाई पड़ता है। जिसे अपनी वास्तविक ...ता का परिज्ञान अरुचिकर होगा वह सापेक्षि-...के भय से ऐसे महत्त्वादर्श का सामीप्य कभी ...चाहेगा, दूर दूर भागा फिरेगा। 'हमीं हम' वाले ...भी' नहीं सह सकते 'तुम्हीं तुम' की क्या बात ...ऐसे लोग तो स्वयं अपने लिए भक्त ढूँढ़ने ...लगते हैं। भक्ति के लिए दैन्य अर्थात् दूसरे के ...त्व के साथ अपने अल्पत्त्व की भावना पहली ...ता है। इस भावना के साथ जब दुःख के स्थान ...आनन्द मिश्रित होगा और हम दूसरे पर श्रद्धा ...लगें तब हम उसके महत्व के सतत साक्षात्कार ...लिए—अनेक रूपों में परिचय के लिए—उसके ...मीप्य की इच्छा करते हुए प्रेम का भी मिश्रण ...से और अपने बहुत से क्रिया-कलाप को उसके ...करके स्वयं महत्त्व के अभ्यास में प्रवृत्त ...। जन-साधारण के लिए इस प्रकार के आश्रय ...महत्त्व की प्राप्ति सुगम होती है। जो उच्चपथ ...कष्टकर और श्रमसाध्य जान पड़ता है वह ...द्वारा मनोहर लगने लगता है।

...भक्ति-सम्बन्ध हीन सिद्धान्त-मार्ग निश्चयात्मिका ...हो चाहे व्यक्त हों पर प्रवर्त्तक मन को अव्यक्त ...। वे मनोरंजनकारी तभी लगते हैं जब किसी ...के सम्बन्ध में देखे जाते हैं। यह मनोहारिता ...रूपों में देख पड़ती है। मनुष्यजाति ने जब ...संभाला तब से वह इन अनन्त रूपों को ...के आचरणों तथा आख्यानों और चरित्र-...पुस्तकों में देखती चली आ रही है। जब ...पर मनुष्य मोहित होता है तब सात्त्विक-...की ओर आपसे पास आकर्षित होता है। ...सिद्धान्त-वाक्यों में निज की कोई आकर्षण-...प्रवृत्तिकारिणी क्षमता नहीं होती। 'सदा ...बोलो', 'दूसरे की भलाई करो', 'क्षमा करना-...', ऐसे ऐसे सिद्धान्त वाक्यों को किसी को ...बकते सुन वैसा ही क्रोध आता है जैसा किसी बेहूदे की बात सुन कर। जो इस प्रकार की बातें करता चला जाय उससे चट कहना चाहिए "बस चुप रहो, तुम्हें बोलने की तमीज़ नहीं, तुम बच्चों वा कोलभीलों के पास जाओ। ये बातें हम पहले से जानते हैं। मानव-जीवन के बीच हम इनके सौन्दर्य्य का विकाश देखना चाहते हैं। यदि तुम्हें दिखाने की प्रतिभा वा शक्ति हो तो दिखाओ, नहीं चुपचाप अपना रास्ता लो"। गुण प्रत्यक्ष नहीं होता उसके आधार और परिणाम प्रत्यक्ष होते हैं। अनुभवात्मक मन को आकर्षित करने वाले आधार और परिणाम हैं, गुण नहीं। ये ही अनुभूति के विषय हैं। अनुभूति पर प्रवृत्ति और निवृत्ति निर्भर है। अनुभूति मन की पहली क्रिया है, संकल्प विकल्प दूसरी। अस्तु, सिद्धान्तपथों के सम्बन्ध में जो आनन्दानुभाव करने की बातें हैं, जो अच्छी लगने की बातें हैं वे पथिकों में तथा उनके चारों ओर पाई जायँगी। सत्पथ के दीपक उन्हीं के हाथ में हैं—या वे ही सत्पथ के दीपक हैं। सात्त्विकशील प्राणियों के लिए ऐसे पथिकों के सामीप्य-लाभ की कामना करना स्वाभाविक ही है।

सामीप्य से अभिप्राय केवल किसी के साथ साथ लगा रहना नहीं है। श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण आदि भी सामीप्य लाभ ही के अन्तर्गत हैं। बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रयत्नों से सामीप्य की सिद्धि होती है। स्मरण द्वारा हम अपने आराध्य को, उसके कर्मक्षेत्र को, अपने अन्तःकरण के सामने उपस्थित करते हैं। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि जब हम इष्ट के कर्मक्षेत्र को सामने लाते हैं तब उसमें ऐसे लोग भी तो आ जाते हैं जिन पर हमारी कुछ भी भक्ति नहीं। हाँ, अवश्य आते हैं। इनके द्वारा हमारे इष्ट के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास देख पड़ता है—इनके बीच उनका (इष्ट का) रंग और भी खुल पड़ता है। राम भी हमारे काम के हैं, रावण भी हमारे काम का है। एक में हम अपने लिए प्रवृत्ति का क्रम पाते हैं, दूसरे में निवृत्ति का। जीवन में इस निवृत्ति और प्रवृत्ति का प्रवाह साथ साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता है। दुराचारी भी यदि अपने दुराचार का फल संसार के सामने पूर्ण रूप से भोग लेता है तो समाज के लिए उपयोगी ठहर जाता है। राम के हाथ से मारे जाने से रावण का जीवन भी कुछ सार्थक हो गया। यदि पापी अपने पाप का फल एकान्त में वा अपनी आत्मा ही में भोग कर चला जाता है तो वह अपने जीवन की सामाजिक उपयोगिता की एक मात्र सम्भावना को भी नष्ट कर देता है। इसी से बहुत से प्रायश्चित्तों के विधान में पाप का सब के समक्ष कथन आवश्यक होता है। पाप का फल छिपानेवाला पाप छिपानेवाले से अधिक अपराधी है। पर ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो किसी का घर जलाते हाथ जलता है तो कहते हैं कि होम करते जला है। दुराचारियों के जीवन का सामाजिक उपयोग करने के लिए, संसार में धर्म की मर्य्यादा स्थापित करने के लिए ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त किया। यदि अधर्म में तत्पर कौरवों का नाश न होता और पांडव जीवन भर मारे मारे ही फिरते तो संसार में अन्याय और अधर्म की ऐसी लीक खिँच जाती जो मिटाए न मिटती। जिस समाज में सुख और वैभव के रंग में रँगी अधर्म की ऐसी लीक दिखाई पड़े उसमें रक्षा करनेवाली आत्मा का अभाव तथा विश्वात्मा की विशेष कला के अवतार की आवश्यकता समझनी चाहिए क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

> यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति, भारत !
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अब भगवद्भक्ति को लीजिए। ऊपर जो कुछ कहा गया उससे स्पष्ट हो गया होगा कि मनुष्य की भक्ति के आधार क्या क्या हैं। मनुष्य विश्वविधान का एक क्षुद्र चेतन अंश है। उसके धर्म, अधर्म, दया, निष्ठुरता आदि के भाव विश्व के उतने ही अंश से सम्बन्ध रखते हैं जितने के भीतर उसे कार्य्य करना है। यह कार्य्य और कुछ नहीं अपनी समष्टि-स्थिति और सुख-सन्तोष का प्रयत्न मात्र है। अपने कार्य्य-क्षेत्र के बाहर यदि वह अपने इन भावों का सामंजस्य ढूँढ़ता है तो नहीं पाता है—कहीं उसे 'जीवो जीवस्य जीवनम्' का सिद्धान्त चलता दिखाई पड़ता है कहीं लाठी और भैंस का। वह सोचता है कि इन सिद्धान्तों का अनुसरण मनुष्य समाज में भी जान बूझ कर क्यों न किया जाय, यह नहीं सोचता कि मानव जाति की स्थिति इन अवस्थाओं से बहुत आगे बढ़ी है और चेतना की श्रेणी में उससे आगे की और कोई स्थिति उसे दिखाई नहीं पड़ रही है। वह दया को निरर्थक समझ अपने अन्तःकरण का एक अंग ही खंडित करना चाहता है। वह किसी को काना देख कर अपनी भी एक आँख फोड़ने चलता है। कुछ दिनों पहले की सभ्यता मनुष्य जीवन को देवतुल्य बनाने में थी अब मर्कटतुल्य और मत्स्यतुल्य बनाने में समझी जाने लगी है। पर यह सभ्यता जड़त्व और नाश की ओर ले जानेवाली है। जब अन्तःकरण की कुछ प्राप्त वृत्तियाँ बोझ मालूम होने लगी हैं तब और प्राणियों की अपेक्षा उसकी (अन्तःकरण की) पूर्णता का गर्व मनुष्य जाति कब तक कर सकती है? उसकी (अन्तःकरण की) अनेकदिग्गामिता के ह्रास और एकदिग्गामिता की वृद्धि के भयंकर परिणाम का आभास योरप का वर्त्तमान् महायुद्ध दे रहा है। मन, बुद्धि, चित्त अन्तःकरण की जितनी वृत्तियाँ हैं उनमें से कोई निरर्थक नहीं, सब का उपयोग है। इनमें से किसी की शक्ति फालतू नहीं। यदि मनुष्य इनमें से किसी को निष्क्रिय करने का अभ्यास डालेगा तो अपनी पूर्णता को खोवेगा और अपनी स्थिति को जोखों में डालेगा।

मिट्टी के ढेले, गुलाब के पौधे, कुत्ते और बिल्ली की अपेक्षा मनुष्य अपने में अंशी का अधिक अंश समझता है—उस सर्वात्मा का अधिक अंश समझता है जिसकी नित्य क्रिया विश्वविधान है, अतः स्थिति-रक्षा-विधान की जो जो बातें अपने में हैं उनका अभाव उससे अंशी वा सर्व में मानते नहीं बनता। दया, दाक्षिण्य, प्रेम, क्रोध आदि अपनी अंशात्मा में देखते हुए सर्वात्मा में उनके अभाव की धारणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar .

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे तो कैसे करे ? अस्तु, ज्ञानक्षेत्र में ईश्वर
खोज हम उतने ही घेरे में करेंगे जितने में
की सहायता लेकर बुद्धि पहुँचती है, और
त्र में उसकी भावना हम उसे उतने ही भावों
मित करके करेंगे जितने की हमारे मन में
है। हम हैं, हम समझते हैं कि हम हैं, और
चाहते हैं कि हम रहें, ऐसी अवस्था में हम
स्थितिरक्षा-सम्बन्धी भावों को परमावस्था पर
कर ही उस परमभावमय की भावना
। हम उसे धर्ममय, दयामय, प्रेममय मानेंगे
यह दया, यह धर्म, यह प्रेम उसी रूप का होगा
रूप में उसका व्यवहार मनुष्य-जाति में देख
है—जिस रूप में मनुष्य-जाति को उसकी
श्यकता पड़ती है। अत्याचारी से पीड़ित होकर
उसके कोप का आह्वान करता है, आपत्ति-
होकर उसकी दया का भिखारी होता है, सुख
सम्पन्न होकर उसके धन्यवाद के लिए हाथ
है, भक्ति से पूर्ण हो कर उसके आश्रय की
करता है। ये ही व्यवहार वह मनुष्यों के साथ
रता है। अपने व्यवहार-पथ में आश्रय प्राप्ति
त उसके लिए ईश्वर की स्वानुरूप भावना
है। स्वानुभूति ही द्वारा वह उस परमा-
की धारणा कर सकता है। इसी से भर्तृहरि
नुभूत्यैकमानाय" कह कर नमस्कार किया
दि चिन्मय में अपनी इतनी अनुभूति का भी
मनुष्य को न हो तो वह प्रार्थना आदि क्यों
जाय? कुत्ते प्रार्थना क्यों नहीं करते? उनमें धर्म
निष्ठा नहीं है, अर्थात् वे चेतना की उस कोटि
हीं पहुँचे हैं जिसमें समष्टि-स्थिति की रक्षा से
रखनेवाले भावों की स्थापना होती है। वे
हीं जानते कि एक दूसरे को काटने दौड़ने से
समाज की उन्नति और वृद्धि नहीं हो सकती।
रक्षा वा धर्म की ओर प्रवृत्त करनेवाले दया
मनोवेग उन्हें प्राप्त नहीं हैं। उनमें स्वार्थ का
परमार्थ का भाव नहीं है। 'धर्मो रक्षति
' की धारणा उन्हें नहीं होती। जहाँ धर्म
भाव है, वहीं ईश्वर की भावना है। जिन प्राणियों
में जो भाव नहीं हैं उनमें उनकी चरितार्थता की
आवश्यकता प्रकृति नहीं समझती।

भक्ति का स्थान मानव अन्तःकरण है, वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहे जा चुके हैं उन्हीं को परमात्मा में अत्यन्त विशद रूप में देख कर ही उसका मन खिंचता है और वह उस विशद-रूप-विशिष्ट का सामीप्य चाहता है। उसके हृदय में जो सौन्दर्य्य का भाव है, जो धर्म का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है उसे वह अत्यन्त पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरुष की भावना से उसका हृदय गद्गद हो जाता है और उसका धर्मपथ आनन्द से जगमगा उठता है। धर्म वा व्यवहार-पथ में वह अपने मतलब भर की ईश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख उसके अन्तःकरण की सारी शुभ और आनन्दमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती हैं, उसके प्रेम श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलंब मिल जाता है, उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य्य और बल का सञ्चार हो जाता है। उनके सामीप्य का आनन्द लेने के लिए कभी वह उनके अलौकिक रूप सौन्दर्य्य की भावना करता है, कभी उनकी बाल-लीला के चिन्तन से विनोद प्राप्त करता है, कभी धर्मबल-पूर्ण उनके निर्मल चरित्र का गान करता है, कभी सिर झुका कर वंदना करता है, यहाँ तक कि जब जी में आता है प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह मन द्वारा अर्थात् आनन्द अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने का सुगम मार्ग है। भक्ति मन वा हृदय से की जाती है। बुद्धि से भक्ति करना ऐसा ही है जैसा नाक से खाना और कान से सूँघना। निराकारवादी ईश्वर की भक्ति और विनय के भजन गाकर किस मानसिक क्रिया का अभिनय करते हैं, नहीं जानते। हमारे यहाँ भक्ति-विधान के अन्तर्गत श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, सेवा, अर्चन, वंदन, दास्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सख्य और आत्मनिवेदन ये नौ बातें ली गई हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कोरी श्रद्धा में आत्मनिवेदन वा याचकता का भाव नहीं है, जब प्रेम के साथ उसका संयोग होता है तभी इस भाव की प्राप्ति होती है। श्रद्धावान् श्रद्धेय पर अपने निमित्त किसी प्रकार का प्रभाव डालना नहीं चाहता, पर भक्त दाक्षिण्य चाहता है।

रामलीला, कृष्णलीला आदि सामीप्य सिद्धि ही के विधान हैं। इस सामीप्य की कामना भक्तवर रसखान ने बड़ी मार्मिकता से इस प्रकार प्रकट की है—

> मानुष हों तो वहीं रसखान
> बसौं सँग गोकुल गाँव के ग्वालन।
> जो पसु हों तो कहा बस मेरो,
> चरौं मिलि नन्द की धेनु मझारन॥
> पाहन हों तो वही गिरि को
> जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन।
> जो खग हों तो बसेरो करौं
> मिलि कूल कलिंदी कदंब के डारन॥

रामलीला द्वारा लोग वर्ष में एक बार अपने पूज्यदेव की आदर्श मानवलीला का माधुर्य्य देखते हैं। जिस समय दूर दूर के गाँवों के लोग एक मैदान में आकर इकट्ठे होते हैं तथा एक ओर जटामुकुटधारी विजयी राम लक्ष्मण की मधुर मूर्त्ति देखते हैं और दूसरी ओर तीरों से बिधा रावण का विशाल शरीर जलता देखते हैं उस समय वे धर्म के सौन्दर्य्य पर लुब्ध और अधर्म की घोरता पर क्षुब्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार जब हम कृष्णलीला में जीवन की प्रफुल्लता के साथ धर्मरक्षा के अलौकिक बल का विकाश देखते हैं तब हमारी जीवन धारण की अभिलाषा दूनी, चौगुनी हो जाती है। हिन्दू जाति इन्हीं की भक्ति के बल से इतनी प्रतिकूल अवस्थाओं के बीच अपना स्वतंत्र अस्तित्व बचाती चली आई है—इन्हीं की अद्भुत आकर्षण-शक्ति से वह इधर उधर ढलने नहीं पाई है। राम और कृष्ण को बिना आँसू बहाए छोड़ना हिन्दू जाति के लिए सहज नहीं [...] क्योंकि ये अवतार अलग टीले पर खड़े होकर उप[देश] देनेवाले नहीं थे, बल्कि मानव-जीवन में पू[र्ण] रूप से सम्मिलित हो कर उसके एक एक अंश [की] मनोहरता दिखानेवाले थे। मंगल के अवसरों पर उनके गीत गाए जाते हैं, विमाताओं की कुटिलता की, बड़ों के आदर की, दुष्टों के दमन की, जीवन के कष्ट की, घर की, बन की, संपद की, विपद की जहाँ चर्चा होती है वहाँ इनका स्मरण किया जाता है। पर भक्तजनो, सावधान! तुम अपने इन इष्ट देवों की पूरी परख रक्खो। कामी, लंपट और इन्द्रिय-लोलुप जनों ने जो भावजाल इनके चारों ओर बिछा रक्खा है और अब तक बिछाते जाते हैं उसे हटाते रहो। कृष्ण की बाललीला तो युवतियों की रास-लीला हुई, अब राम की रासलीला वालों से बचाओ।

—:o:—

गुजराती साहित्य का विकास।*

(अनुवादक—पं० गणपति जानकीराम दुबे बी० ए०,)

वस्तुमात्र में रूपान्तर होता ही रहता है। सामान्यतः इतिहास का अर्थ रूपान्तर के यथावत् विवरण में आ जाता है। अमुक वस्तु किस प्रकार और कैसी परिस्थिति में उत्पन्न और विकसित हुई इसका विवरण सर्वसाधारण के लिए लाभदायी होगा, इसमें संदेह नहीं। गुजराती साहित्य के जन्म और विकास का वृत्तान्त नीरस नहीं है; किन्तु रसमय और कई अंशों में गर्वप्रद है। साहित्योद्यान में से चुने हुए कुसुमों का परिमल उद्यानविहारी ले सकें इसलिए उसका संक्षिप्त रूप में अवलोकन करना आवश्यक है। व्यावहारिक, नैतिक, और आध्यात्मिक ज्ञान के दिव्य मंदिर के पथ में हमारे साहित्य-रसपोषक लोग बुद्धि [...]

* गुजराती से अनुवादित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...य की ज्योति का उज्वल प्रकाश डालते गये ...र उसी प्रकाश के सहारे अज्ञान-पट को ...र और उनके किए हुए स्तुत्य कार्य्य का संक्षिप्त ...कर कृतकार्य होना अपना परम धर्म है।

...—साहित्य शब्द का प्रयोग जितना रूढ़ है, ...गूढ़ अर्थ समझने को उतनाही भाग्य चाहिए। ...वेत्ता इमर्सन का कथन है कि "The man ...f himself, the other half is his expre-..." मानव जाति का भाषा एक विशेष लक्षण ...थ्वी पर मनुष्य जन्म के साथ ही भाषा का ...है। भाषा के बिना मनुष्य-समाज पशु-कोटि ...ची पंक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। एक ओर ...और दूसरी ओर सर्वशक्तिमान् ईश्वर के साथ ...नेवाली भाषा रूपी सुवर्ण की कड़ी है। भाषा ...द्ध और विशाल प्रयोग और सुसंगत विकास ...उच्च साहित्य के लक्षण हैं। साहित्य की अभि-...प्रजा के अभ्युदय का सूचक है। जिस प्रजा का ...य अधिक विकसित होता है और निरंतर ... खिलता चला जाता है वह प्रजा राष्ट्र ...में ऊँचा स्थान पाती है। यह सिद्धान्त ऐति-... प्रमाणों से अशंकनीय हो चुका है। ...य की अभिवृद्धि दिन दूनी होती जाय, यही ...कों का लक्ष्य होना चाहिए। युवकों के उस ...क पहुँचने का मार्ग सरल करने के अभिप्राय ...र साहित्य विकास की रूप-रेखा संक्षेप से ...करने का यत्न किया जाता है।

...—साहित्य के मुख्य तीन विभाग हैं—पद्य, गद्य ...य। अन्य देशों के साहित्याराम के अनुसार ...साहित्य का आरंभ भी पद्य ही से है। ऐतिहा-...निरीक्षण से ज्ञात होता है कि पंद्रहवीं शताब्दी ...गुजराती भाषा मिश्र थी। अर्थात् पंद्रहवीं ...से ही गुजराती साहित्य का आरंभ समझा ...है। परन्तु दूसरी ओर से देखा जाय तो नर-...ता की भाषा आज कल की भाषा से बहुत ...है और उससे यह अनुमान सहज हो ...है कि नरसिंह मेहता के जन्म के पूर्व कुछ समय तक उसकी भाषा के समान भाषा बोल चाल में प्रचलित रही होगी। इस अनुमान के आधार पर यदि गुजराती भाषा के प्रयोग और प्रचार का इतिहास और दूर तक ले जावें तोभी, गुर्जर साहित्य का आरंभ नरसिंह मेहता ही के समय से माना जायगा। क्योंकि कोई एक भाषा बोलने चालने की बन जावे और उसका विकास होकर साहित्य का आरम्भ होवे इन दो घटनाओं के बीच थोड़ा बहुत समयान्तर होना ही चाहिए। इसलिए गुजरात के आदि कवि का मान, गुजरात के चासर का नाम भक्तराज नरसिंह मेहता को ही देना योग्य है। इसमें संदेह नहीं कि उसके पहले अथवा उसके समय में कितनेही पद्यकार जीवित थे। थोड़े बहुत अंशों में भालण ने भी गुर्जर साहित्य का सूत्रपात किया था। परन्तु भालण विशेष करके अनुवादक था। नैसर्गिक विचार संपूर्ण स्वतंत्रता से सरल और प्रबल शैली में पद्यरूप में चित्रित करनेवाला नरसिंह मेहता ही है, यह बात निर्विवाद है। नरसिंह मेहता की कविता में विविध रसों का सम्मेलन है। तथापि प्रधान रूप से भक्ति रस का अनुभव ही आता है।

"जागि के देखूँ तो जगत भासे नाहिं
स्वप्न में अटपटे भास भासैं"

नरसैंयाँ की यह और कितनी ही अन्य पंक्तियाँ वैराग्य सीमा की सूचक हैं, उनसे विशुद्ध भक्ति टपकती है तथा स्वाभिमान, आत्मज्ञान और आत्म संयम का बोध होता है। नरसिंह मेहता की कविता को नीरस कहना तो मूर्खता की परमावधि है। और यदि रसाविर्भाव सुव्यक्त हो तो अलंकार का अभाव काव्य शास्त्र के नियमों के अनुसार दोष नहीं कहा जाता। परन्तु नरसिंह मेहता की कविता में अलंकार भी जहाँ तहाँ देखने में आते हैं। उसकी शैली की सजावट अनन्य है। प्रत्येक देश और काल में विशुद्ध भक्ति का उदय दैवांश से प्रस्फुरित होता है, और जब ज़ोरदार पद्य में वह उतारी जाती है उस समय हृदय का आनंद से आंदोलित होने लगना स्वाभा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक ही है। मेहताजी की प्रभातियाँ पढ़ते समय आज भी किस मूढ़ का हृदय डोलने नहीं लगेगा?

"What comes from the heart must appeal to the heart." नरसैंयाँ के स्वयंभू उद्गार आंतरीय प्रेम को सचेत क्यों न करेंगे! विष्णुस्तुति और विशुद्ध भाव ही जिसका जीवनसत्व था ऐसे दिव्य पुरुष की हृदयोर्मि यदि बड़े से बड़े जड़ और मंदबुद्धि व्यक्ति के अंतःकरण को भी पिघला दे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

हम नरसिंह मेहता की अनन्य भक्ति का एक उज्वल पद्य यहाँ देकर आगे बढ़ेंगे।

पद।

तमे तमारो बीद सामलो प्रभु!
लाजसु करणी हमारीजी ॥ ध्रु० ॥
अपराध कारण अहेल्या परी थी,
सम शिला थइ भारी जी।
तमरे चरण श्री रघुनंदन,
थइ अनुपम्य नारी जी ॥ तमे० ॥ १ ॥
ध्रुव प्रहलाद अजामिल तारिया,
गज गणिका ने तारी जी।
भरी सभा मो चीर जो पुरव्या,
द्रौपदिनी पत राखी जी ॥ २ ॥
हमें पतित तमे पतित उधारण,
कुबजा जेवी दासी जी।
कृपा की दी नरसि मेतैया,
तमने लाज हमारी जी ॥ ३ ॥

प्रभाती।

हरि हरि रटण कर कठण कलि कालमां,
दाम बेसे नहीं काम सरशे।
भक्त आधीन छे श्यामसुन्दर सदा,
ते तारा कारजो सिद्ध करशे ॥ हरि ॥
अल्प सुख सारुंशू, मूढ़ फूल्यो फरे,
शीश पर काक रह्यो दंत करडे।
पामर पलकनी खबर तुजने नहीं,
मूढ़ शूं जोइने मूछ मरडे ॥ हरि ॥
प्रौढ पापे करी, बुद्धि पाछे फरी,
पर हरी थड शूं डाले वलग्यो।
ईशने ईर्षा, छे नहीं जीव पर,
आपणे अवगुणे, रह्योरे अलगो ॥
परपंच परहरो सार हृदये धरो,
उच्चारो हरि मुखे अचल वाणी।
नरसैंया हरितणी, भक्ति भूलीश मा,
भक्ती विना बीजुं धूलधणी ॥

नरसिंह मेहता के पश्चात् साहित्योद्यान में विचरनेवाला एक स्त्री-विहंग था। यदि नरसिंह मेहता की कविता में और सब रसों की अपेक्षा भक्ति ने प्रधानता पाई है तो मीराबाई की कविता में भक्ति के साथ प्रेम का सम्मेलन हुआ है। स्त्रीत्व के लक्षण भी स्थान स्थान में भली तरह व्यक्त हैं।

"सास हमारी सुषुमना रानी,
ससुरजी हैं संतोषजी"

इत्यादि पदों में बुद्धि विकास की अपेक्षा हृदय की प्रबलता अधिक है। मीराबाई की कविता पाठकों के हृदय में विशुद्ध प्रेम का सिंचन करती है और उस प्रेम के सींचने से ही भक्ति का अंकुर उगने लगता है। इस कारण मीराबाई की कविता सांसारिक लोगों को विशेष हृदयग्राही मालूम होती है। व्यावहारिक कार्यों से घृणा न करके परमेश्वर-भक्त बने रहने का उपदेश कई स्थलों में मिलता है। मीराबाई के हृदय-कुंज में से काव्य के फ़ौवारों से उत्पन्न होनेवाली प्रेमोर्मियां सचमुच अन्तःकरण को अत्यंत प्रशांत और सुखमय कर देती हैं।

नरसिंह मेहता और मीराबाई ये दोनों जाति-बंधनों को तोड़ कर आत्मबल के प्रभाव से अपने जीवन के कार्य में सदा मग्न रहते थे; संसार के बंधन उन्हें अत्यंत दुखदायी थे। "भले हम [illegible] दिवाने रे" इत्यादि पंक्तियों से मीराबाई की अ[illegible] स्वतंत्रता व्यक्त होती है। साधारणतः कवि, त[illegible] चिंतक, इत्यादि महाव्यक्तियों को संसार की भूल[illegible] रहना व्यर्थ मालूम होता है। एक ओर प्रवाद [illegible] हँसी से भरी हुई दुनिया और दूसरी ओर भक्ति[illegible] लवलीन नरसिंह मेहता और मीराबाई के सम[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ग्म व्यक्ति—इन दोनों के बीच का युद्ध और ...था के पराजय के साथ भक्त कवियों के विजय ...विचार जितना आश्चर्यमय है उतना ही आनंद-...क भी है।

...नरसिंह मेहता को भक्त कहना चाहिए या कवि, ...विषय में आधुनिक साक्षर लोगों में कभी २ ...वाद होता सुनने में आता है। इस विवाद का ...तना इतने ही में हो सकता है कि कवि का क्षेत्र ...चित नहीं होता किन्तु अत्यंत विशाल होता है ...उसमें भक्त नरसिंह, रफ़ दयाराम, स्नेही ...लापी, ये सब आ जाते हैं। नरसिंह मेहता को ...और कलापी को स्नेही कहने से उनके विशिष्ट ...ता सफ़्ग्रता से सीमाबद्ध होते हैं इसमें संदेह नहीं; ...नु साथही कवि का प्रदेश ही मानों निराला होगा, ...असत्य भावना उत्पन्न होती है।

...यहाँ पर साहित्य-क्षेत्र का एक समय पूरा होता ...उसके पश्चात् अनेक संयोगों के कारण कुछ ...तक साहित्य-क्षेत्र में काम बन्द पड़ा रहा। ...रास के कथन से मालूम होता है कि उस समय ...जरात की राजकीय स्थिति व्यवस्थित नहीं थी ...इसी कारण गुजरात की प्रजा की स्थिति बहुत ही नाजुक थी। साधारणतः ऐसे ...ल समय में जन-समाज का चित्त कविता की आकर्षित होना असंभव दीखता है। ऐसी ...ा रहते भी ध्रुवाख्यान के लेखक तुलसी, ...ाख्यान के लिखनेवाले वस्तो और रसमंजरी-वत्सराज नामक कवियों के जन्म से सोलहवीं ...दि एक दम वंध्या नहीं रही। यद्यपि एक ओर ...रसपूर्ण नरसिंह मेहता और मीराबाई की ...और दूसरी ओर से अनेक रसमय प्रेमानंद ...म के साथ तुलना करने में तुलसी और ...के लेख रसहीन प्रतीत होते हैं तथापि ...ध्यान में रखने योग्य है कि नरसिंह-मीरा की ...उन्मत्त रस और प्रेमानंद का साहित्य पर ...प्रेम तथा उसके विकास में अनन्य आनंद इन दोनों को मिलानेवाली देवाख्यानों की प्रवृत्ति तुलसी वत्सराज इत्यादि कवियों से आरंभ हुई है।

परन्तु गुर्जर साहित्य क्षेत्र में नवीन समय प्राप्त करने के लिये एक महा कृषक की आवश्यकता थी, और उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए ईश्वर ने प्रेमानंद कृषीवल को गुर्जर भूमि में जन्म देकर भेजा और उसके अत्यंत स्तुत्य मनोबल और कार्य-बल से उस क्षेत्र में कितने ही प्रकार की नवीन प्रवृत्तियों का प्रचार हुआ।

गुर्जरसाहित्य के लिये प्रेमानंद ने भगीरथ प्रयत्न किया है। गुर्जर भाषा की दुःस्थिति इसके हृदय का शल्य था। उसके समय में गुर्जर भाषा का स्थान स्वतंत्र नहीं माना गया था। नाट्य तो संस्कृत ही में दिखाई देता था और कविता हिन्दी के सिवा कहीं थी ही नहीं। गद्य का तो जन्म भी नहीं हुआ था। ऐसे समय में गुर्जरों के हृदयों में स्वभाषा-भिमान प्रकट करनेवाला, भक्ति भाव के अनन्तर अन्य नैतिक और व्यावहारिक विषयों को साहित्य में स्थान दे कर साहित्य को अनेक देशीय बनानेवाला, पद्य के पश्चात् नाटक इत्यादि को भी सर्वसाधारण के मत के अनुसार साहित्य के मुख्य अंग गिनने-वाला प्रेमानंद हुआ। उसको हम जितना मान देवें उतना थोड़ा है। प्रेमानंद की कृति में श्रोता के चित्त में विषयानुसार शैली जमाने की दुर्लभ शक्ति सुव्यक्त है। उसके लेखों में संस्कृत शब्दों का उप-योग बहुत प्राचुर्य के साथ किया हुआ देखने में आता है। कभी गुजराती भाषा के प्रबल आकर्षण से और कभी किसी एक विशेष वर्ग के पाठकों की रुचि के पोषण के हेतु ग्रामीण पदों का उपयोग किया गया है। परन्तु नवीन रस में अवगाहन करानेवाली शिष्ट और कर्णमधुर शैली का उत्पादक प्रेमानंद का कवि-वर्ग में आद्य स्थान निर्विवाद रूप से है। श्रांत जगपथिक! प्रेमानंद के रचित साहित्य उपवन में तुझे अपूर्व विश्राम मिलेगा! तेरी वृत्ति और रुचि के अनुसार तुझे कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त हो जायगा। तेरा क्षोभ शम पावेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्यरसपूर्ण ममेरा, वीररसपूर्ण ऊषाहरण, द्रौपदी-हरण इत्यादि कृतियां प्रेमानंद की कवित्वशक्ति की परिसीमा का यथार्थ ज्ञान कराती हैं।

प्रेमानंद के समकालिक कवियों में मुख्य अखा और सामल की गिनती हो सकती है। वेदान्त का परिशीलनशील स्वयं कवि का पद धारण करने की इच्छा न करनेवाला अखा एक भिन्न ही प्रदेश में विचर रहा है। आध्यात्मिक ज्ञान के अगाध विषय को ज्यों का त्यों उतार देने का उसका बहुत अंशों में सफल यत्न उस समय के पद्य की प्रबलता का सूचक है। कल्पना की उत्तमता से ही कविता रसवती और अर्थवती बनती है। कल्पनाहीन कविता रसहीन और श्रवण-कटु होती है। कहाँ तो आध्यात्मिक विषय के विवरण के लिये उपयुक्त न्याय-संगत विचार शृंखला और कहाँ सम्पूर्ण विश्व को एक चरण, एक पंक्ति, एक शब्द से दामिनी की दमक की तरह प्रकाशमान करनेवाली कविता की स्वतन्त्रता! परन्तु जब कि नवीन युग के नेता अठारहवीं शताब्दि के कवीश्वरों में से एक कविवर दलपतराम "प० बी० सी० डी०" को कविता में गूंथते हैं तो सोलहवीं शताब्दि का पद्यकार, कवि न कहलानेवाला अखा भाषा, अध्यात्म इत्यादि के लक्षणों के विषय की तत्वविद्या पद्य में लिखे तो इस में कोई आश्चर्य्य नहीं।

विषय की उच्चता के कारण अखा की भाषा-शैली में कई जगह तोड़ मरोड़ और क्लिष्टता देखने में आती है। ऐसा होते हुए भी उसके शब्द-बाण बहुधा हृदयवेध करनेवाले हैं। स्थान स्थान में उसकी कविता हास्य रस से भरी हुई है। परन्तु उसकी कविता के पाठ से एक अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि अखा ने अपने विचार गद्य में लिखे होते तो उसका परिणाम यदि विशेष रूप से नहीं तो भी विस्तृत रूप से तो अवश्य ही होता। परन्तु उसकी वाणी की पद्य रूप ही में पाठक पर गहरी और सच्ची छाप पड़ सकती है। आध्यात्मिक विषय को क्लिष्ट भाषा में ही सही परन्तु रसमय बना कर, जान कर या अनजान में जन-समूह की रुचि के प्रवाह में प्रवाहित हो जाने की अखा की अप्रतिम शैली की बलिहारी है। अनेक कवियों के अनुकरण किये हुए देखने में आते परन्तु अखा की अनुकृति दैववश ही देखने में आवेगी। इस विषय में अखा की कृतिपूर्ण कल्पना की अनन्यता प्रत्यक्ष है।

श्रोतागणों में मिलकर उन्हें आनंद देनेवाले अनेक प्रदेशों में से विषयों को घुमाकर मध्यम वर्ग के मनुष्यों के चित्त को आकर्षित करनेवाले साम भट के छप्पय, तर्कपूर्ण, हृदयग्राही और बोध-प्रद हैं कृषीवल जैसे मध्यम वर्ग के मनुष्यों के साथ अप जीवन व्यतीत करने के कारण सामल की कवि के विषय और पात्र भी उसी ढब के हैं। औ कविता संसार के व्यवहार प्रदेश के अनुकूल है विद्या, मृत्यु, सत्य वचन इत्यादि कई साधार विषयों पर सामल के छप्पय अत्यंत सुघर हैं कहावत है कि—

"चौपाई तुलसीदास की, छप्पय सामल खास" सामल कृत अपनी कविता की व्याख्या भी इसकी सूचक हैः—

दोहा (अनुवाद)

सादी भाषा सादी कड़ी, सादी बात विवेक।
सादी में शिक्षा कहे वो है कविजन एक॥

राजकीय अशांति और तत्परिणामरूप साम जिक अशांति के कारण साहित्य क्षेत्र फिर बं पड़ा रहा। प्रेमानंद के लगभग ३७ शिष्य अ गुरु की पद्धति के अनुसार साहित्य वृक्ष को करने में यत्न करते रहे परन्तु उनमें से कदाचित् कोई यशस्वी हो सका। इन शिष्यों में प्रेमा का एक ज्येष्ठ पुत्र वल्लभ उल्लेख योग्य मालूम हो है। इसकी भाषा प्रसंगवश यावनी शब्दों से क्लि हो कर भी कवित्वशक्ति से रहित नहीं है। गुज साहित्य को अनेक देशीय बनाने के प्रशंसनीय से प्रेमानंद ने अपने शिष्यों के लिये कार्यक्रम नि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था; परन्तु बहुत से शिष्य स्वेच्छाचार साहित्य को खिलौना बनाने के प्रयास में लग और प्रेमानन्द के अनन्तर थोड़े समय में अन्धकार हो गए।

थोड़े समय के पश्चात् कवि श्री दयाराम प्रगट हुए। उनकी कविता भक्तिरस से पूर्ण तो रही है पर उसमें भक्तिरस, शृङ्गाररस में विलीन होता प्रतीत होता है। तथापि उनकी कविता उच्च कक्षा की है। इस कारण जैसे चमकीले तारागणों में प्रशांत चन्द्र की कान्ति सबसे बढ़ती हुई निकल आती है उसी प्रकार दयाराम की कविता विशेष रूप से झलकती हुई दिखाई देती है। नरसिंह मेहता और मीराबाई के विशुद्ध भक्तिप्रेम से बढ़ कर निकलती हुई दयाराम की 'रति' छिपी नहीं रहती। परन्तु जिस प्रकार नरसिंह मेहता की प्रभातियाँ और मीराबाई के भजन गुजरात में सब जगह प्रशंसा पा रहे हैं और गाए जा रहे हैं उसी प्रकार दयाराम की गरबियाँ भी गुजरात के स्त्री-समाज में प्रसंग पड़ने पर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती हैं। प्रभाती नरसिंह मेहता की; भजन मीराबाई के और गरबी दयाराम की, इसी से दयाराम को गुजरात का 'बायरन' कहते हैं।

कवि श्रीदयाराम के पश्चात् आनंद और उपदेश की शैली में लिखनेवाले धीरपुरुष, जगत् के दम्भ की ओर ध्यान आकर्षित करानेवाले और मिथ्याज्ञानियों को तीव्र वाग्बाणों से छेदनेवाले, भोजा, ..., निरभेराम, गिरिधर, प्रीतम, ब्रह्मानंद, ...नंद इत्यादि पुरुष गुर्जर माता के चरणों पर बहुत प्रसादी अर्पण कर गये हैं। विशेष करके ... कवि और जैन यतियों ने गुर्जर साहित्य में वृद्धि की है, परन्तु उनके पारिभाषिक शब्दों से साधारण के अपरिचित होने के कारण उनके का यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ है।

भारतभूमि पर पाश्चात्य विद्या का प्रकाश विशेष पड़ने लगा, शान्ति देवी ने करकमल फैलाकर साहित्य विकास की शीघ्र गति के लिये अवकाश दिया। भारतसन्तान पाश्चात्य साहित्य-कुसुम के परिमल को हृदयस्थ करने लगे। इस समय को हम क्रांतिसमय कहेंगे। इस साहित्य संभ्रमण समय में मुख्य दो गुर्जर-साहित्य-प्रतिनिधि हो गये हैं।

प्राचीन और नवीन लेखन-शैली के बीच सेतु रूप कविवर दलपतराम की शैली के विषय में स्वर्गीय श्री नवलराम भाई के शब्द संस्मरणीय हैं। "हृदय को उल्लसित करनेवाला हास्य, मर्मविभेदी कटाक्ष, वाणी की मधुरता और रचना की अनेक प्रकार की चातुरी के लिये दलपतशैली के प्रशान्त और प्रबोधक वर्णन गुर्जर साहित्य में जगमगा रहे हैं। संक्षेप में यों कहिये कि दलपत शैली में गौरव के साथ माधुरी का अतीव मनोरम सम्मेलन हुआ है, वह शांत सरिता की भांति रमती हुई प्रवाहित होती चली जाती है। साहित्य के उत्कर्ष और प्रचार के लिये कवि श्रीदलपत के किए हुए अविरत प्रयास के चिरभोग्य फल आज तक "गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी" नामक संस्था और "बुद्धिप्रकाश" नामक मासिक पुस्तक के रूप में उपस्थित हैं। कवित्व-शक्ति के कारण सी० आई० ई० की गौरवयुत पदवी कवि श्री दलपतराम के यश को दुगुना करती है।"

पिंगल शास्त्र के अनुसार छन्दोबद्ध काव्य लिखने की ओर ही कवि श्रीदलपतराम की अभिरुचि थी। इस कारण छन्द मात्रा इत्यादि की दृष्टि से देखा जाय तो कवि श्रीदलपतराम की कविता दोष-रहित प्रतीत होती है। उनके इकतीसे सवैये बहुत ही प्रशंसा के योग्य हैं। उनकी शैली का अनुकरण रा० बुलाखीराम, रा० केशवलाल, रा० छोटालाल इत्यादि लोगों ने अच्छी तरह किया है।

जिस समय कविवर दलपतराम अपने शांत और उपदेशपूर्ण वर्णनों से लोगों के चित्त आकर्षित कर के उन पर नीति की छाप अंकित कर रहे थे उस समय प्रचलित गद्य को जन-समाज में प्रचारित करानेवाला आद्यकोषकर्त्ता और संसार सुधारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्यक्ति जनता की सेवा करने में लवलीन हो रहा था और वह व्यक्ति कवि नर्मदाशंकर था। जिस प्रकार किसी न किसी तरह मार्ग के मिलते ही "आर्टीशियन वेल्स" का पानी एकबारगी भूमि में से जोर से बाहर निकल आता है उसी प्रकार नर्मद-हृदय भूमि में से कविता रूप फव्वारे अप्रतिहत उछलते हुए निकलते मालूम होते हैं; अथवा जिस प्रकार ज्वालामुखी पर्वत का मुंह खुलते ही एकाएक बड़ी गड़गड़ाहट के साथ कितनी ही चीज़ें बड़े वेग से निकल कर बाहर गिरती हैं उसी प्रकार नर्मद हृदय ज्वालामुख से कविता के अनेक रूप उद्घारित हुए हैं। सारांश नर्मद की शैली अन्तर्क्षोभ और गड़गड़ाहट से उभड़ती हुई मालूम होती है। कवि नर्मदाशंकर ने साहित्य क्षेत्र को अविश्रान्त श्रम से कृषित किया है। साहित्य में उन्होंने अपार पुष्टिसत्व भरा है। आधुनिक समय का प्रत्येक गुर्जर बालक नर्मद के नाम का स्मरण करते ही अत्यन्त आनंदित हो तो इस में आश्चर्य्य नहीं। उनका उत्साह स्वच्छन्दोन्माद का रूप भले ही धारण करे, क्वचित् ग्राम्य शब्दों के उपयोग करने से उनकी भाषा क्लिष्ट भले ही हो परन्तु गुर्जर साहित्य-विकास के कार्य में जो भगीरथ प्रयत्न नर्मद ने किये हैं वे उनके अमर नाम के साथ चिरस्मरणीय रहेंगे। जिस प्रकार कवि श्रीदलपत के एकतीसे सवैया विशेषरूप से प्रशंसा पाप हुए हैं उसी प्रकार कवि श्रीनर्मदाशंकर के रोलावृत्त भी आख्यात हैं; इनकी शैली के अनुयायी रा० विजयाशंकर रा० सवितानारायण इत्यादि सज्जन हैं।

जिस प्रकार नाट्य का आरंभ गुजर साहित्य में विशेषतः प्रेमानन्द से होना समझा जाता है उसी प्रकार गद्य का आरंभ कवि श्री नर्मदाशंकर से लिया जाता है। यह समय गुर्जर भाषा के अभ्युदय का सूचक है। जिस समय नर्मदाशंकर और दलपतराम ने स्वयं लेखनी उठाकर लोगों को जागृत किया तब उनके सहयोगी रा० नवलराम भाई ने साहित्य वर्द्धन का एक नया ही मार्ग ढूँढ़ निकाला। नवलराम भाई के लेख बहुत अंशों में अन्य ग्रन्थों पर टीका टिप्पणी रूप हैं परन्तु इस टिप्पणी रूप विवेचन की विशेषता यह है कि लेखक के दोषों का दिग्दर्शन करा कर उसे और ग्रंथ लिखने का उत्साह बढ़ाया गया है।

इस अवसर पर संस्कृत भाषा और साहित्य का संस्कारप्राप्त एक लेखक वर्ग प्रसिद्धि को पहुँचा। रा० रा० रणछोड़ भाई उदयराम ने कितने ही नाटक लिखे। रा० रा० मनसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी ने 'अस्तोदय' नामक सुविख्यात पुस्तक लिखी। रा० रा० हरगोविन्ददास द्वारकादास कांटेवाले ने प्राचीन काव्यमाला और कितने ही उपन्यास लिखे। रा० रा० गणपतरामभाई ने प्रताप नाटक लिखा। रा० मणिलाल छबिराम भाई ने "गुजरात की प्राचीन कहानियाँ" लिखीं। रा० रा० महिपतरामभाई ने बनराज चावड़ा और नन्दशंकर तुलजाशंकर ने करणघेला का अति सुन्दर ऐतिहासिक उपन्यास लिखा। और रा० इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने चंद्रकान्त वगैरह ग्रंथ लिखे।

ग्रेजुएट लेखकों में प्रथम ही सफल और लोक-विश्रुत यत्न करनेवाले मणिलाल नत्थूभाई हैं। और रा० हरीलाल हर्षद राय का "कुंजविहार" और रा० दौलतराम कृपाराम पंड्या का इन्द्रजीतवध काव्य, सुमनगुच्छ, अमरसत्र और कुसुमावलि सुप्रसिद्ध हैं। कुसुमावली को तो गुर्जर कादंबरी की उपमा दी गई है। परन्तु इस श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किये हुए एक अलौकिक व्यक्ति हुए हैं जिनका नाम रा० गोवर्धनराम है। उनके अद्वितीय उपन्यास "सरस्वतीचन्द्र" के लिये तो बर्क के लेखों के इतिहासकर्त्ता लेकी का अभिप्राय यथार्थ रूप से चरितार्थ हो सकता है। लेकी ने लिखा है कि "ऐसा समय कदाचित् आवे कि उनकी पुस्तक पढ़ी न जाय परन्तु ऐसा समय कदापि नहीं आवेगा जब कि उसके पढ़ने से मनुष्य के हृदय में सच्चा परिणाम पैदा न हो।" पद्य की अपेक्षा गद्य में वे अधिक चम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई देते हैं तो भी उनकी कविता में कल्पना साम्राज्य सुव्यक्त है।

कवि श्री नर्मदाशंकर के समय से गद्य पद्य त की रूपरेखा अंकित करने में स्वतन्त्र रचना-ग्रंथों पर ही विशेष ध्यान दिया है। परन्तु यह न समझना चाहिए कि गुर्जर-साहित्य में शाली अनुवादों की कमी है। परभाषाओं में सुविख्यात पुस्तकों के अनुवाद भी गुर्जरगिरा हैं। इस विषय में लोगों को प्रेरणा करने का अहमदाबाद की गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी है। इस प्रसिद्ध संस्था ने एक न एक रीति गुजराती साहित्य की वृद्धि करने में निःसंदेह श्रम उठाए हैं। रा० केशव हर्षद ध्रुव ने मुद्रा-, विक्रमोर्वशीय और गीतगोविंद के अनुवाद हैं। गीतगोविंद के विषय में तो यह कहा जाता मूल ग्रंथ संस्कृत में है, यह बात यदि किसी सर्वनाशक काल के पंखों के नीचे ढक जावे अनुवाद के रहते हुए मूल कौन सा और कौन सा है यह निश्चित करना कठिन हो। रा० छगनलाल हरीलाल पंड्या कृत का अनुवाद भी उत्तम श्रेणी का है। महा-कालिदास के अप्रतिम शकुन्तला नाटक के ३ अनुवाद गुजराती भाषा में प्रकाशित उनमें से रा० खखर कृत अनुवाद मेट्रि-क्युलेशन परीक्षा के लिये पाठ्य पुस्तक नियत है, लाल और रा० बलवंतराव कृत अनुवाद हैं। रा० कमलाशंकर त्रिवेदी तथा रा० राम त्रिवाडी के स्माइलस के अनुपम ग्रंथों वाद प्रसिद्ध हैं, स्पेंसर के "एज्युकेशन" पुस्तक का अनुवाद रा० बुलाखीराम ने किया नारायण हेमचंद्र ने बहुत से बँगला ग्रंथों वाद किया है।

प्रकार थोड़े बहुत अंशों में कविवर नरसिंह के समय से गुर्जरगिरा का साहित्य विकास-हुआ दिखाई देता है। पद्य तथा गद्य और नाटकों के पढ़ने योग्य अनुवादों को एक न एक समय में गुर्जर साहित्य विकास में स्थान मिला है। नाट्य का विकास एक अंश में अप्रतिहत है। रा० डाह्याभाई घोलसाजी और बाघजी आसाराम के बनाए हुए जनता और विद्वत्समाज को रिझाने-वाले कितने ही नाटकों को अवश्य ही साहित्य में स्थान देना चाहिए।

अब हम साम्प्रत काल के साहित्य की ओर अपनी दृष्टि फेरेंगे। प्रथम दर्शन में तो कितनी ही नवीनता दिखाई देती है; विचार शैली और लेखन परिपाटी में साम्यता के बदले भिन्नता विशेष देखने में आती है, परन्तु यह भिन्नता रसबाधक न होकर रसवर्धक है। सब अपने २ प्रदेशों में विचरते हुए ज्ञानलहरी को जीवित रखते रहे हैं। आज कल विशेष कर काव्य और उपन्यास अधिक दिखाई देते हैं। जिस प्रकार समय समय पर किसी एक विषय के स्वरूप के संभ्रमण के समय भिन्न २ मत पैदा होना आवश्यक और स्वाभाविक है उसी प्रकार गुर्जर साहित्य विकास में भाषा शैली, वाक्य-विन्यास इत्यादि के विषय में वाद प्रतिवाद प्रचलित है और वह बहुधा साहित्य के उत्कर्ष का सूचक है। उप-र्युक्त नवीनता के जन्मदाताओं में अगुआ रा० नरसिंहराव भोलानाथ हैं। इन्होंने कुसुममाला तथा हृदयवीणा नामक दो काव्य-संग्रह प्रकाशित किए हैं।

एक पारसी सज्जन अरदेसर फरमजी खबरदार के काव्य रसिकविलासिका और प्रकाशिका सभ्य भाषा में लिखे हुए हैं। लाठी के स्वर्गवासी ठाकुर सुरसिंह जी ने 'कलापी' उपनाम से बहुत से करुणा-रसपूर्ण काव्य लिखे हैं। उनका संग्रह उनके मित्र और उत्तम काव्यकर्त्ता रा० रा० मणिशंकर रत्नजी भट्ट द्वारा "कलापी नो केकारव" नामक पुस्तक रूप में किया गया है। इसके सिवा कविवर दलपतराम के पुत्र रा० नानालाल के "कितने ही काव्य" रमण भाई मा० नीलकंठ का भद्रंभद्र, फुटकर काव्य, तथा विनोदी लेख; रा० लखणलाल जव्हेरी का "कृष्ण चरित"; रा० छगनलाल मोदी की "इरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

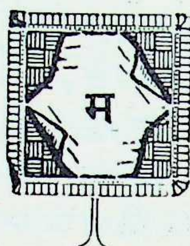
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वती"; रा० ललित कृत "सीतावनवास नाटक"; रा० रणजीतराय बाबाभाई के स्फुट लेख; रा० हिम्मतलाल आंजरियाकृत "काव्यमाधुर्य"; रा० तनसुखराम त्रिपाठी के "फुटकर लेख"; रा० भोगींद्रराव दिवेटिया का "उषाकान्त" नामक उपन्यास; रा० मोहनलाल दवे कृत लँडोर के कल्पित संवाद नामक विद्वन्मनोविनोदकारी ग्रंथ; रा० अतिसुखशंकर त्रिवेदी कृत "जापान की शिक्षा पद्धति"; रा० कांतिलाल पंड्या कृत गोवर्द्धनराम की संक्षिप्त जीवनी और उसकी तुलना; रा० सागरकृत कलापी की सच्ची प्रतिकृति के काव्य; रा० राजेन्द्र सोनारायण दलाल कृत 'विपिन' नामक सुन्दर नवलकथा; तथा रा० कुंज कृत 'काव्यसंग्रह' इत्यादि अनेक लेखकों के ग्रंथ, जिन की संपूर्ण नामावली यहाँ देना आवश्यक नहीं है गुर्जर साहित्य भंडार को सुशोभित कर रहे हैं। इन सब साहित्य-सेवियों के ग्रंथों पर आलोचना करना इस स्थान में योग्य नहीं है परन्तु इतना अवश्य कहना चाहिये कि साहित्य के पोषण करनेवालों की बढ़ती हुई संख्या ही उनके परिश्रमों का उत्तम फल है और यही उनके ग्रंथों की समालोचना है।

हे प्यारे साहित्य-विलासियो! गुर्जर साहित्य की यह अत्यल्प रूपरेखा, भारत के गुर्जर साहित्योद्यान में क्रीड़ा करनेवाले और सम्प्रति किलोलें करनेवाले विविध विहंगम-वृंद आपके चित्त को आकर्षित कर रहे हैं। प्यारे साहित्य विहारी विहंग! तुम्हारे मधुर आलाप के श्रवण करने के लिये यह सज्जन भृङ्गवृंद एकत्रित हुआ है, उसे अपने मधुरतम स्वर से इस उद्यान में गीत गा कर दंग कर दो। घोंसले के बाहर निकलनेवाले प्यारे बाल हिन्दी-साहित्य विहंग! तू भी अपने अन्य भाइयों की भांति अपने पंख फड़फड़ा कर संपूर्ण स्वाधीनता तथा आत्मसंयम के साथ अखिल भारताकाश में विचरण कर और निःशेष हिन्दी साहित्योद्यान को विशेष रमणीय और दर्शनीय बना।

—:०:—

हवाई जहाज़।



नुष्य बहुत दिनों से आकाश में उड़ने का प्रयत्न करता आया है। प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि अनेक प्रकार के स्वर्गीय जीवों में उड़ने की शक्ति होती है और वे उसी शक्ति से इस भूमि पर भी आया करते हैं। उड़नेवाले देवों और परियों का अस्तित्व अब भी कुछ न कुछ लोग मानते ही हैं। हिन्दुओं के अनेक धार्मिक ग्रंथों में कई प्रकार के विमानों और आकाशयानों का उल्लेख है और कुछ लोगों को इसकी सत्यता के संबन्ध में भी अनेक प्रमाण मिले हैं। अस्तु।

आधुनिक काल में आकाश में उड़ने के प्रयत्न तो समय समय पर लोगों ने अनेक बार किए हैं। उनमें सब से पहले सन् १६६० में एलर्ड नामक एक फ्रांसीसी ने तथा सन् १६७५ में बेस्निअर नामक दूसरे फ्रांसीसी ने यंत्रों की सहायता से उड़ने में कुछ सफलता प्राप्त की। सन् १७८३ में फ्रांस के एक धनी व्यापारी के दो पुत्रों ने गुब्बारों में गरम हवा भर के उनकी सहायता से उड़ने का उद्योग किया। उन्होंने पहले यह बात ढूँढ़ निकाली कि यदि किसी पतली थैली में गरम हवा भर दी जाय तो वह ऊपर की ओर उठने लगती है। इन गुब्बारों से उड़ने में अच्छी सफलता हुई थी। उसी वर्ष राबर्ट नामक दो भाइयों ने इन साधनों में कुछ परिवर्तन किया। उन्होंने थैले में गरम हवा की जगह हाइड्रोजन गैस भरी और आरोहियों के बैठने के लिए उसमें एक गाड़ीनुमा संदूक़ लटकाया। तभी से गरम हवा की जगह हाइड्रोजन से और कागज के थैलों की जगह रबर की तह चढ़ाये हुए रेशमी कपड़े से काम लिया जाने लगा। सन् १७८५ में इसी प्रकार के गुब्बारे में ब्लैंचर्ड नामक एक व्यक्ति ने फ्रांस और इंगलैंड के बीच की प्रणाली पार की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद पचास वर्ष तक इस संबंध में कोई बात नहीं हुई। सन् १८३६ में एक बहुत गुब्बारा बना था जिसमें ८५००० घन फुट गैस गई थी। उस गुब्बारे पर भी लंडन से चल कर प्रणाली पार की गई थी। तब से बराबर समय पर उसमें सुधार और उन्नति करने तथा उसे नुसार चलाने के प्रयत्न होते रहे।

सन् १८५२ में गिफर्ड नामक एक व्यक्ति ने पहले एक ऐसा गुब्बारा बनाया जो इच्छानुसार या जा सकता था। उसने १९४ फीट लंबा मध्य में ३९ फीट व्यास का, सिगार के आकार एक गुब्बारा बनाया जिसमें सवा मन तौल और घोड़ों की शक्ति का एक छोटा भाप का इंजिन लगा था। उसने इस प्रकार के कई गुब्बारे बनाए पर उनमें खर्च बहुत पड़ता था इसलिए उनका प्रयोग न हो सका। इसके बाद और भी आविष्कर्त्ताओं विशेषतः फ्रांसीसियों ने समय पर उद्देश्य-सिद्धि के लिए अनेक यंत्र बनाए में से कुछ तो मनुष्य द्वारा और कुछ विद्युत् द्वारा ए जाते थे।

वर्त्तमान शताब्दी के आरंभ में जब पेट्रोल से वाले इंजिनों की उपयोगिता और पूर्णता बहुत बढ़ गई तो आकाश-यात्रा बहुत कुछ सरल संभावित हो गई। जब मोटर गाड़ी का आवि- हुआ और छोटे आकार के, हलके और अधिक वाले इंजिनों की आवश्यकता बढ़ी तो बड़े बड़े नियरों का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ और प्रकार के पेट्रोल से चलनेवाले इंजिन तैयार गए जिनका व्यवहार हवाई जहाजों में भी गया।

यहाँ तक तो गुब्बारों का जिक्र हुआ जो "हवा के" होते थे। अब उन यंत्रों को लीजिए आकाशयान (Aeroplane) कहते हैं और हवा से भारी" होते हैं। सन् १८६७ से ही बहुत से लोग हवा से भारी की सहायता से उड़ने का प्रयत्न करने लग गए थे। अमेरिका के प्रोफेसर लैंगले तथा सर हिरन मैक्सिम ने इस संबंध में अनेक काम की बातें ढूँढ़ निकालीं। प्रोफेसर महाशय ने पहले पहले आकाश-यान का एक छोटा नमूना तैयार किया जो उसी में लगे हुए इंजिन से चलनेवाले पंखों की सहायता से बहुत ऊँचे तक उड़ सकता था। उन्होंने हवा की लहरों और आकाश में यान को स्थिर रखने के संबंध में जिन नवीन सिद्धांतों का आविष्कार किया था वे बहुत अधिक महत्त्व के और उपयोगी थे और उनकी मृत्यु से इस विद्या में बहुत कुछ हानि पहुँची थी।

सर हिरन मैक्सिम ने २०००० पाउन्ड लागत का एक बहुत बड़ा आकाशयान तैयार किया। यद्यपि उस यंत्र से उड़ने में कोई सफलता नहीं हुई तथापि उससे बहुत बढ़िया पंखों के व्यवहार, हवा के दबाव और दूसरी अनेक काम की बातों का पता अवश्य लग गया। पर इस काम में पूरी सफलता लिलिएंथल नाम के दो भाइयों को जिनमें से एक के प्राण सन् १८९९ में इसी प्रयत्न में निकल गए थे, और अमेरिका के राइट नाम के दो भाइयों को हुई थी। राइट ने अपने सब प्रयोग लड़कों की मामूली गुड्डी के आधार पर किए थे। आकाशयान के साधारण सिद्धांत गुड्डी से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। गुड्डी बढ़ाने के लिए उसकी नख या डोर खींचनी पड़ती है; आकाशयान में यह काम एक पेंच से लिया जाता है जो उसे आगे की ओर ढकेलता है। आकाशयान तैयार करने में गुड्डी के सिद्धांतों से बहुत कुछ सहायता मिली है। साधारण गुड्डी के आधार पर बक्सनुमा गुड्डी बनाई गई थी और उस बक्सनुमा गुड्डी के आधार पर लिलिएंथल और राइट भाइयों ने यान के आकाश में आगे बढ़ने और इंजिन की सहायता से आगे बढ़नेवाले पंखों को चलाने के संबंध में कई सिद्धांत निकाले और प्रयुक्त किए थे। इन सिद्धांतों के अनुसार सब से पहले लिलिएंथल ने कार्य्य किया था और उसके उपरांत अनेक उड़नेवालों ने अपने यंत्रों में उन्हीं सिद्धांतों का बहुत कुछ व्यवहार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले पहल सन् १९०५ में अमेरिका के राइट भाई बाईप्लेन (Biplane) पर जो कि उक्त सिद्धांत में कुछ परिवर्द्धन करके बनाया गया था, उड़े थे। सन् १९०६ में हेनरी फरमान नामक एक व्यक्ति ने ऐसा ही एक यान बनाकर उसपर आध मील की यात्रा की थी । सन् १९०८ में राइट भाइयों में से एक को २०००० पाउन्ड का पुरस्कार भी मिला था। सन् १९०९ में लंडन के डेली मेल पत्र की ओर से यह घोषणा की गई थी कि वायुयान द्वारा प्रणाली पार करनेवाले को १००० पाउन्ड का पुरस्कार दिया जायगा । उस समय ब्लीरियट नामक एक व्यक्ति ने मानोप्लेन (Monoplane) तैयार करके उसकी सहायता से प्रणाली पार की ओर उक्त पुरस्कार पाया। इस व्यक्ति ने एक कारखाना खोला है जहाँ अब कई तरह के वायुयान बनते हैं। तभी से इस कला की बहुत जल्दी जल्दी उन्नति होने लगी ओर हवा से हलके तथा भारी दोनों प्रकार के यान बराबर बनते गए। गत पाँच वर्षों में इस विद्या की जो उन्नति हुई है वह बहुत ही अधिक है। अब भिन्न भिन्न प्रकार के उड़नेवाले यंत्रों का कुछ विवरण सुनिए।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, छोटे, मज़बूत ओर बढ़िया पेट्रोल इंजिनों की सहायता से ही आकाश में उड़ना संभावित हुआ है । उड़नेवाले यंत्र दो भागों में बाँटे जा सकते हैं; एक तो "हवा से हलके" ओर दूसरे "हवा से भारी"।

"हवा से हलके" यंत्र ।

इस प्रकार का सबसे पहला यान गोल गुब्बारा है जो कि केवल प्रत्येक चलनेवाली वायु की कृपा पर अवलंबित है । हवा का साधारण झोंका भी उसे जिधर चाहे उधर ले जा सकता है। यह बात प्रायः सभी पाठक जानते हैं कि गुब्बारा ओर कुछ नहीं केवल गैस से भरी हुई एक थैली है जो कि हवा में उसी प्रकार तैरती रहती है जिस प्रकार जल में नाव तैरती है। जितने स्थान को गुब्बारा घेरता है उतने स्थान में आनेवाली हवा मान में उस गैस से बहुत अधिक होती है जो उस गोल थैली के अंदर भरी होती है ओर यही उसके आकाश में ठहरने का कारण है। यह तो हुआ साधारण गुब्बारा। अब उसको एक जाल में भर कर उस जाल के नीचे संदूक या टोरी के आकार की कोई चीज लटका देते हैं जिसमें आदमी बैठते हैं। हवाई जहाज़ (Air-Ship) इसी तरह का एक गुब्बारा है जो इंजिन की सहायता से इच्छानुसार चलाया, घुमाया ओर ऊपर चढ़ाया या नीचे उतारा जा सकता है। गोल गुब्बारा हवा के विरुद्ध ले जाना प्रायः असंभव सा ही है; केवल लंबोतरा या बहुत लंबा (सिगरेट के आकार का) गुब्बारा ही हवा के विपरीत ले जा सकते हैं। ओर इसी लिए हवाई जहाज में ऊपर की ओर सिगरेट के आकार का एक बहुत बड़ा गुब्बारा होता है। ऐसे हवाई जहाज छोटे बड़े कई तरह के होते हैं ओर उनमें एक से लेकर पचास आदमी तक बैठ सकते हैं । ऊपर के गुब्बारे की थैली में हाइड्रोजन गैस भरी होती है। आदमियों के बैठने का बक्स एल्यूमिनम मिश्रित धातु से बनाया जाता है ओर बहुत मजबूत ओर हलका होता है। इस प्रकार के छोटे यानों में बैठनेवाले बक्स का ऊपर वाले गुब्बारे से प्रत्यक्ष संबंध होता है; पर बहुत बड़े हवाई जहाज़ों में बैठने के बक्स धातु की बनी हुई उन बड़ी चद्दरों में लटकते रहते हैं जो गुब्बारे के नीचे की ओर लटकती हुई बँधी रहती हैं। ऐसे सभी यान पेट्रोल इंजिनों की सहायता से चलाए जाते हैं जिनकी शक्ति ३५ से ४०० घोड़ों तक की होती है। बड़े जहाजों में दो या इससे अधिक पंखे होते हैं जो दो या अधिक इंजिनों से चलाये जाते हैं।

अँगरेजी में "Aviation"* नाम की एक पुस्तक है जिसमें इस प्रकार के हवाई जहाजों

* Aviation: Its principles, its present and future. By. Sydney F. Walker, R.N. Price 6 d. J.C. and E.C. Jack, London.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलाने, दाहिने बाएँ घुमाने और ऊपर नीचे उतारने के साधनों का बहुत ही सरल विव-[illegible] दिया है। इस स्थान पर पाठकों की जानकारी [illegible] उसी पुस्तक के एक अंश का सारांश दिया [illegible] है,—

"जिस तरह पतवार की सहायता से नाव [illegible] या बाएँ घुमाई और चलाई जाती है उसी [illegible] हवाई जहाज भी पतवार की सहायता से [illegible] और चलाया जाता है। हवाई जहाज की [illegible] अपेक्षाकृत बड़ी होती है और कनवास [illegible] उसी प्रकार के किसी और पदार्थ से बनाई [illegible] है। नाव और हवाई जहाज की पतवार में [illegible] केवल यही है कि यदि नाव का मुँह दाहिनी [illegible] घुमाना हो तो पतवार को बाईं ओर कर देते [illegible] यदि बाईं ओर घुमाना हो तो पतवार [illegible] ओर कर देते हैं। पर हवाई जहाज का यह [illegible] नहीं है। यदि उसे दाहिनी ओर घुमाना हो [illegible] पतवार को दाहिनी ओर और यदि बाईं ओर [illegible] हो तो पतवार को बाईं ओर कर देंगे।

हवाई जहाज दो प्रकार से ऊपर चढ़ाया या उतारा जाता है। एक तो जिस कोण पर पंखा [illegible] हो उस कोण में परिवर्त्तन करके और दूसरे आड़ी पतवार की सहायता से हवाई जहाज़ ऊपर या नीचे ले जा सकते हैं। गुब्बारे को [illegible] चलानेवाला इंजिन अपना कार्य्य करने के [illegible] या अधिक पंखों को तेजी से हवा में घुमाता [illegible] पंखे साधारणतः दो ही होते हैं। इन पंखों [illegible] साधारण कलवाले पंखे की पत्तियों से [illegible] लंबी, चौड़ी और दृढ़ होती हैं। जब कि [illegible] सीध में ले जाना होता है तो घूमनेवाले [illegible] मध्य में गुब्बारे के समतल खड़ा रखते हैं। पर [illegible] ऊपर या नीचे ले जाना होता है तो पंखे [illegible] या पीछे की ओर ले जाकर एक कोण पर [illegible] हैं। अर्थात् यदि पंखे को पीछे की ओर हटा [illegible] गुब्बारे का सिरा नीचे की ओर हो जायगा और यदि उसे आगे की ओर बढ़ा दें तो गुब्बारा ऊपर की ओर चढ़ने लगेगा।

जलमग्न नाव और हवाई जहाज की आड़ी पतवार प्रायः समान ही होती है। हवाई जहाज की आड़ी पतवार में जहाज के दोनों सिरों पर एक एक चौखटा होता है जिस पर कनवास या उसी प्रकार का और कोई पदार्थ मढ़ा होता है। यह पतवार इस प्रकार जड़ी होती है कि यदि वह जरा भी टेढ़ी होकर ऊपर या नीचे की ओर दबे तो उसमें हवा टकराने लगती है। यदि इस आड़ी पतवार का अगला भाग नीचे की ओर झुका दिया जाय तो गुब्बारा नीचे की ओर उतरने लगता है और यदि अगला भाग ऊपर की ओर कर दिया जाय तो गुब्बारा भी ऊपर की ओर चढ़ने लगता है। अब पाठक भली भाँति समझ गए होंगे कि पंखे, दाहिनी और बाईं ओर घुमानेवाली पतवार, ऊपर या नीचे की ओर ले जानेवाली आड़ी पतवार और इन सबों को चलाने के लिए पेट्रोल इंजिन हो तो जहाज चलानेवाला उसपर अपना पूरा अधिकार रखकर उसे जिस ओर चाहे ले जा सकता है।

इस स्थान पर एक और बात बतला देना बहुत आवश्यक है। वह यह है कि गरमी या सरदी पाकर गैस फैलती या सिकुड़ती है और गुब्बारे के चलाने पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि गुब्बारा दोपहर के समय बहुत ऊँचे आकाश में चढ़ जाय और उसके गैस-कोश पर अधिक गरमी पड़े तो उसके अंदर की गैस बहुत अधिक फैलने लगेगी; और यदि उसमें से कुछ गैस बाहर न निकाल दी जायगी तो वह कोश अवश्य फट जायगा। इस कठिनता को दूर करने के लिए गुब्बारे में कमानीदार ढकने होते हैं जो केवल अंदर की गैस बढ़ने पर ऊपर की ओर खुल सकते हैं और जिनके द्वारा भीतर की बढ़नेवाली गैस तो बाहर निकल सकती है पर बाहर की साधारण हवा उसके अंदर नहीं जा सकती। अब यदि कुछ देर तक धूप में रहने के बाद गुब्बारा अचानक छाँह या बादल में पहुँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय तो ठंढ के कारण गैस सिकुड़ने लगेगी । इसलिए गैसवाली थैली या कोश के अंदर एक और छोटी थैली लगाई जाती है जिसमें साधारण हवा भरी होती है। बड़े गुब्बारे में इस प्रकार की कई छोटी थैलियाँ होती हैं। साधारण स्थिति में इस थैली का एक निश्चित आकार होता है और निश्चित मान में वायु उसके अंदर रहती है। जब गुब्बारे के धूप में जाने के कारण हाइड्रोजन या गैस फैलने लगती है तो उस भीतरवाली छोटी थैली में से कमानीदार ढकने की राह से हवा निकाल देते हैं। इस प्रकार थैली का आकार घट जाता है और फैलनेवाली गैस को अधिक स्थान मिलता है। थैली की हवा घटने के कारण उसका दबाव कम हो जाता है और तब गैस को फैलने में और भी सहायता मिलती है। जब गुब्बारा नीचे की ओर उतरता या ठंढे स्थान में आता है और गैस सिकुड़ने लगती है तो भीतरवाली थैलियों में पंखे की सहायता से हवा भरी जाती है जिससे वे थैलियाँ बढ़ जाती हैं और गैस सिकुड़ने के कारण जो स्थान खाली होता है उसे वे भर देती हैं। हवा भरनेवाला यह पंखा या तो इंजिन से और या हवा में गुब्बारे को चलानेवाले पंखों में से किसी एक की सहायता से चलाया जाता है। बड़े बड़े गुब्बारों में घटने बढ़नेवाली थैलियों की संख्या के अनुसार ही उनमें हवा भरनेवाले पंखे भी होते हैं।

गुब्बारेवाले हवाई जहाज की पूर्णता और उपयोगिता में अभी बहुतों को सन्देह है और उसपर अनेक प्रकार की टीकाएं और टिप्पणियाँ होती रहती हैं। यह उतना अधिक विश्वसनीय नहीं समझा जाता और अपने बड़े आकार के कारण तेज़ हवा में इसे बहुत अधिक कठिनता होती है। इस प्रकार के बहुत से गुब्बारे तेज हवा में जाकर जल्दी जल्दी टूट चुके हैं। पर उतनी ही तेज़ हवा में वायुयान (Aeroplane) सरलता से स्थित रक्खा जा सकता है। यह कठिनता दूर करने के लिए तीन प्रकार के यंत्र बनाए गए हैं।

पहले प्रकार का यंत्र तो सिगार के आकार का सीधा सादा गुब्बारा है जो कि बिलकुल लचीला होता है। इसमें की गैस बड़ी जल्दी निकल जाती थी और एक एक मील पर उसकी थैली का आकार बदलता जाता था जिसके कारण उसकी उपयोगिता बहुत ही अल्प मानी जाती थी। अतः उसे दृढ़ रखने के लिए उसके अंदर हवावाली दूसरी थैली की योजना की गई। यह थैली आवश्यकतानुसार हवा से भर या खाली कर सकते हैं।

दूसरे प्रकार के यंत्र में हवा भरनेवाली थैली नीचे की ओर धातु के चौखटे में जड़ी रहती है और आदमियों के बैठने का संदूक और इंजिन उसी धातुवाले चौखटे में लगा रहता है। इस प्रकार के यंत्र का आधा (गुब्बारेवाला) भाग लचीला होता है और आधा (सवार होनेवाला) उसके विपरीत।

तीसरे प्रकार का यंत्र ठोस होता है और कभी लच नहीं सकता। इसमें एक बहुत बड़ा और मजबूत लकड़ी का चौखटा विशेषतः सिगरेट के आकार का होता है जिसके अंदर बहुत से मजबूत गुब्बारे अलग अलग जड़े होते हैं। इस प्रकार के हवाई जहाज में चाहे गैस रहे और चाहे न रहे, पर उसका आकार सदा ज्यों का त्यों रहता है, कभी बदलता नहीं। इस प्रकार के जहाज बनाने की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है और इस ढंग का सबसे अच्छा और पूर्ण यान जर्म्मनी का जेप्लिन है। इसके अंदर कभी न सिकुड़नेवाले अलग अलग खाने होते हैं जिनमें से प्रत्येक में गैस की एक थैली होती है। इसमें भीतरी दबाव कम होने पर भी न तो गिरने का भय होता है और न थैली में किसी और गैस बढ़ जाने के कारण एक सिरे के नीचे दबने और दूसरे के ऊपर उठने की संभावना रहती है। इसमें बैठने के संदूक और पंखे आदि दृढ़तापूर्वक उसी चौखटे में जड़े रहते हैं और पंखों से पूरा पूरा काम लिया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार का हवाई जहाज बहुत ऊँचे आकाश में जाने पर पृथिवी पर देखने में वायुयान (Aeroplane) की अपेक्षा अधिक विशाल और प्रभावशाली जान पड़ता है। बहुत ऊँचे जाने पर वायुयान बहुत ही छोटा दिख पड़ता है। पर विशाल आकारवाले हवाई जहाज का दृश्य बहुत ही सुहावना होता है। इसके अतिरिक्त इतने बड़े जहाज को आकाश से गोले फेंकते देख युद्ध में लोग भयभीत भी हो सकते हैं। पर अभी तक दोनों की आपेक्षिक उपयोगिता अनिर्णीत ही है।

ऊपर लिखे हुए सब प्रकार के गुब्बारेवाले यानों के संबंध में ये आपत्तियाँ की जाती हैं।

(१) गैस निकल जाने के कारण वे विश्वसनीय नहीं हैं।

(२) आकार बड़ा होने के कारण हवा के साथ अधिक ज़ोर करना पड़ता है और उनमें अधिक शक्तिवाले इंजिनों की आवश्यकता होती है।

(३) आँधी आदि के समय इस प्रकार के कुछ यानों में से गैस निकाल देने की आवश्यकता होती है और जब एक बार उनमें की गैस निकल जाय तो फिर उन्हें अपने अड्डे या किसी ऐसे स्थान पर जाना पड़ता है जहाँ उनमें गैस भरी जा सके। युद्धकाल में यह दोष बहुत ही बुरा होता है।

(४) अंतिम प्रकार का ठोस हवाई जहाज केवल उसी समय जल पर उतर सकता है जब कि आँधी का ज़ोर न हो। उसे आँधी से बचाने के लिए विशेष स्थान की आवश्यकता होती है। इसलिए युद्ध में उसकी उपयोगिता बहुत ही परिमित हो जाती है।

(५) उसका विशाल आकार भी बड़ा भारी दोष है जिससे शत्रु को उसपर निशाना चलाने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है।

(६) उसके प्रबंध के लिए अधिक आदमियों का आवश्यक होना, उसका धीरे चलना और थोड़ी ऊँचाई तक उठना आदि ऐसे दोष हैं जिनके कारण वह किसी काम का नहीं रह जाता।*

"हवा से भारी" यंत्र।

यह बात सब लोग जानते हैं कि साधारण गुड्डी उसी समय उड़ सकती है जब कि हवा चलती हो; और जितनी तेज हवा चलेगी उतनी ही तेज वह उड़ेगी और साथ ही उसे सँभालना भी उतना ही कठिन होगा। लिलिएंथल तथा और लोगों ने साधारण गुड्डी में कुछ परिवर्त्तन करके एक बक्स नुमा गुड्डी बनाई थी जिसमें दो गुड्डियां एक दूसरे से कुछ दूरी पर इस प्रकार बँधी हुई थीं कि उड़ते समय वायु उन दोनों के तल के मध्य में से होकर निकले। इसी सिद्धांत पर वह यंत्र बनाया गया जिसे अँगरेज़ी में (glider) कहते हैं और जिसकी सहायता से ऊँचे स्थानों से सरलतापूर्वक नीचे उतर सकते हैं। इसमें ऊपर नीचे कुछ दूरी पर दो चौखटे होते हैं। नीचे के चौखटे में एक आदमी के बैठने का भी स्थान होता है। पहले पहल यह यंत्र बनाकर एक ऊँची पहाड़ी पर पहुँचाया गया था। वहाँ उस पर एक मनुष्य सवार हुआ और यन्त्र अपने स्थान से अधर में ढकेल दिया गया। यन्त्र उस मनुष्य को साथ लिए हुए धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। ज्यों ज्यों वह जमीन के पास पहुँचता जाता था ज्यों त्यों उसकी गति भी कुछ मंद पड़ती जाती थी। आजकल का आकाशयान (Aeroplane) इसी का संशोधित और परिवर्द्धित रूप है।

पाठक यह जानना चाहते होंगे कि आकाशयान वायु में किस प्रकार उड़ता है। पहले एक साधारण पतंग लीजिए। उसका आकार चाहे जो हो पर

* इन सब के अतिरिक्त गुब्बारेदार हवाई जहाज (Airship) में एक और दोष यह है कि वह १०००० फ़ीट से अधिक ऊँचाई पर बड़ी कठिनता से जा सकता है। पर वायुयान (Aeroplane) १६००० फ़ीट की ऊँचाई तक पहुँच कर बड़ी सरलता से नीचेवाले हवाई जहाज़ पर गोले फेंक सकता है। प० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह है आकाशयान ही। आकाशयान को उड़ानेवाला इंजिन पतंग की डोर का काम देता है। यदि पतंग का सारा चपटा भाग आनेवाली हवा के बिलकुल सन्मुख हो तो हवा उसके साथ टकरायगी और उसे नीचे की ओर उतने ही कोण पर गिराती चली जायगी। इस कोण का समद्विभाग करनेवाली रेखा पर ही डोर होती है और वही उसे ऊपर उठने या आगे बढ़ने में सहायता देती है। यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि आपात कोण और परावर्त्तन कोण दोनों ही समान होते हैं। समद्विभाग करनेवाली उक्त रेखा पर डोर होती है और उसी डोर के खिंचने के कारण गुड्डी हवा में उड़ती रहती है। जब तक कि गुड्डी को पूरी गति प्राप्त न हो जाय तब तक आरंभ में उसे कुछ देर तक किसी कोण पर रख कर बढ़ाने के लिए ठुमकी देते रहते हैं। वायुयान का उड़ाना आरंभ करने के समय भी इसी प्रकार की क्रिया करनी पड़ती है।

यन्त्र के उड़ने में हवा बहुत अधिक रुकावट डालती है और यन्त्र बढ़ानेवाले का उद्देश्य यह रहता है कि वह अपने यन्त्र का आकार ऐसा बनावे कि जिसमें उसकी यह रुकावट दूर हो जाय।

हवा की लहरें आकाश में निश्चित रेखा या सीध में चलती हैं; उनमें किसी प्रकार का चक्कर या घुमाव नहीं होता। यदि किसी प्रकार इन लहरों में व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाय तो उनमें चक्कर पैदा हो जाते हैं जिनसे किसी पदार्थ के हवा में आगे बढ़ने में रुकावट होती है। इसलिए उड़नेवाले यन्त्र ऐसे आकार के होने चाहिएं कि उनके ऊपर और बगल से हवा सरलतापूर्वक निकल जाय।

अनुभव से यह बात सिद्ध हुई थी कि सब से अच्छा उड़नेवाला यन्त्र वही हो सकता है जो कि गावदुम हो। इसी लिए ऐसे यन्त्रों का अगला भाग चौड़ा और भारी होता है और पीछे की ओर बराबर घटता जाता है। वास्तव में इसे चिड़िया के डैने के आकार का ही समझना चाहिए और यही आकार अभी तक सर्वोत्तम प्रमाणित हुआ है। क्योंकि अनुभव से इस बात का पता लगा है कि ऐसे आकार के यन्त्र में ऊपर उठने की शक्ति सब से अधिक होती है। बात यह है कि हवा की लहरें यन्त्र के अगले बड़े भाग से टकराती हैं और न्यून कोण में यन्त्र से दूर ऊपर की ओर निकल जाती हैं। फल यह होता है कि यन्त्र के पिछले भाग के ऊपर की ओर हवा कुछ कम हो जाती हैं और यन्त्र ऊपर की ओर खिँचने लगता है। अगले भाग के नीचे की हवा बोझ के कारण दबी रहती है और नीचे की ओर बढ़ती हुई यन्त्र के पिछले भाग तक चली जाती है। यही हवा एकत्र करके यन्त्र के नीचे की जाती है और जिस समय यन्त्र पूरी तेज़ी से आकाश में उड़ता रहता है उस समय यही हवा उसे नीचे से सँभाले रहती है।

यन्त्र चलानेवाले को यन्त्र संबंधी बहुत सी बातों के अतिरिक्त हवा की लहरों आदि पर भी बहुत ध्यान रखना पड़ता है। इन लहरों में कभी कभी बहुत शीघ्रतापूर्वक और बड़ा विलक्षण परिवर्त्तन हो जाता है। किसी किसी स्थान पर हवा* बहुत ही कम और एकदम गति-रहित होती है। जब यन्त्र ऐसे स्थान में पहुँच जाता है तो यन्त्र की आधार-भूत हवा के कम हो जाने के कारण उसकी ऊपर उठने की शक्ति जाती रहती है और वह नीचे की ओर गिरने लगता है। ऐसी अवस्था में यन्त्र और उसके यात्रियों को बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता है और यदि कर्णधार सचेत न हो तो यन्त्र बहुत नीचे चला जाता है और उसका सँभालना असंभव हो जाता है।‡ (शेष आगे)

—:o:—

* ऐसे स्थानों को अँगरेजी में (Air pockets) कहते हैं।

‡ वायु और उसकी लहरों के संबंध में बड़े बड़े सिद्धान्त जानने के लिए—जिनसे कि वायुयानों की बनावट और प्रबंध आदि में बहुत सहायता मिलती है—Aero Dynamics संबंधी पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा का कार्य विवरण।

साधारण अधिवेशन

शनिवार तारीख २ जनवरी १९१५ संध्या के ...स्थान—सभा-भवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३१ अक्तूबर १९१४) ...कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभासद होने के लिए निम्न लिखित ...नों के फ़ार्म उपस्थित किए गए:—

(१) बाबू महादेव प्रसादजी—कर्वी—जि० बाँदा (२) बाबू रघुनन्दन सिंह—तहसीलदार—कमा...—जि० बाँदा ५) (३) पण्डित विश्वम्भरनाथ ...ठी—मौजा चतिया—पो० बाँसी—जि० बस्ती (४) बाबू धर्मसिंह—महल्ला गुदड़ी—बहराइच (५) पण्डित रामखेलावन राव—लक्ष्मीकुंड—...शी १॥) (६) बाबू जुगेश्वरनाथ—मध्यमेश्वर—...शी १॥) (७) ठाकुर शिवशंकरसिंह—मेनेजर—...बदायूं ३) (८) बाबू विक्रमादित्यसिंह—अमीन ...रा—बाज़ारपांड़े—आजमगढ़ १॥) (९) बाबू ...नाथ प्रसाद—हरिश्चन्द्र स्कूल—काशी १॥) (१०) बाबू गणेश प्रसाद डी० एस० सी०—युनि...टी प्रोफ़ेसर—कलकत्ता ५) (११) बाबू श्याम...र—गोलाबाग-औसानगंज—काशी १॥) (१२) विनोद बिहारी सेनराय—मेस्टन हाई स्कूल—...नगर—बनारस ३) (१३) ठाकुर कान्हसिंहजी—...शी—क्षत्रिय अमरसभा—जम्बू १॥) (१४) ...र जगदीशनारायण गहलोत वैदिक—पो० नं ७ ...पुर—मारवाड़ १॥) (१५) पण्डित रामकुमार ...—अजमतगढ़ पेलेस—काशी १॥)।

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाँय।

(३) निम्न लिखित सभासदों के इस्तीफ़े उप...स्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—(१) बाबू बिरदी...सहार, वार्द्धा (२) बाबू नरसिंहसहाय वकील ...पुर (३) बाबू संकटा प्रसाद—लक्खीचबू...—काशी (४) बाबू उमरावसिंह—मुख्याध्यापक—देवनागरी पाठशाला—हल्दौर (५) पण्डित गणपत लालचौबे—रायपुर।

(४) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

बाबू हरिदास वैद्य, नं २०१ हेरिसन रोड, कलकत्ता।

- स्वास्थ्य रक्षा
- रामायण रहस्य
- अनुवाद शिक्षक
- लवङ्गलता
- नीति संग्रह शिरोमणि
- अंगरेज़ी शिक्षा भाग १
- राजसिंह
- मानसिंह
- बालगल्पमाला
- नीति कविता
- साहित्य सेवा
- प्रेम-प्रशंसा
- सावित्री
- पार्वती
- दमयन्ती
- प्रवासी
- हिन्दी बँगला शिक्षा भाग १–२
- स्वर्ण कमल
- ख़ूनी मामला
- शान्ति और सुख
- बिछुड़ी हुई दुलहिन
- राम-राज्य वियोग

श्रीयुत मैनेजर, बीर भारत, कलकत्ता

- दिल्ली दरबार
- योगवासिष्ठ रामायण
- गंधी चरित
- डाली
- शेक्सपियर ग्रन्थावली

श्रीयुत मेनेजर' भारत मित्र कार्यालय, कलकत्ता

- सती सुखदेई
- स्वामी और स्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त निबन्धावली
विचित्र विचरण
गुप्तचर
हिन्दुओं की राजकल्पना
राजतरङ्गिणी
कृष्ण चरित भाग १-२
हुमायूं नामा

बाबू यसोदानन्दन अखौरी, कलकत्ता
जोज़फ़ विलमट भाग १ और ५

बाबू बिसाहूराम, धमतारी, रायपुर
कृष्ण कहानी

बाबू शिवकुमार सिंह—प्रयाग
यूरप की लड़ाई और ब्रिटिश गवर्नमेंट २ प्रति

मुंशी भगवानदीन, काशी
अघट घटना

पण्डित सोमेश्वर दत्त शुक्ल, सीतापुर
स्पेन का इतिहास

लाला राधेलाल अग्रवाल, पीलीभीत
रसोल्लास
संसारोप बन बाटिका

भारती भवन, फीरोज़ाबाद, आगरा
फ़ोजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष

पण्डित जानकी शरण त्रिपाठी, काशी
जापान चरित्र

साहित्य सम्वर्द्धिनी समिति, कलकत्ता
भगवद्गीता

बाबू जीवनराखन लाल, कटनी, मुड़वारा
सन्तति रत्न

पण्डित चन्द्रमणि विद्यालंकार
महर्षि पातंजलि और तत्कालीन भारत

गुरुकुल, कांगड़ो, पो० शामपुर जि० बिजनौर
आर्य पथिक

पण्डित राधावल्लभ वैद्यराज, विजयगढ़, जि० अलीगढ़
वेदों मे वैद्यक ज्ञान

बाबू रामलाल वर्म्मा, ४०१। २ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता
जासूसी चक्कर
यूरोपीय महायुद्ध का इतिहास भाग १

बाबू जीतनसिंह, प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीमान महाराजा साहब बहादुर, रींवा
रूस रूम युद्ध खण्ड १-२

बाबू ब्रजबिहारीलाल, दारानगर, काशी
वाराणसी आदर्श

बाबू चन्द्रसेन जैन वैद्य, इटावा
संसार में सुख कहां है

पण्डित राम कृष्ण शुक्ल, चौधर महल्ला, अजमेर
सारस्वत ब्राह्मण राजस्थान

खरीदी गई वा परिवर्तन में प्राप्त ।

रणवीर भाग १, प्रभात सुन्दरी, खूनी औरत, मोतियों का खज़ाना भाग १, अभागे का भाग्य भाग १, नकाबदार कलंगी, अंगरेज़ डाकू, शीशमहल, त्रैलोक्य सुन्दरी, खूनी कलाई, रामरखा का खून, श्यामा, मल्लिका देवी भाग १—२, जासूसी चक्कर, राज राजेश्वरी भूलभुलैया ।

(५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

—:०:—

प्रबन्धकारिणी समिति ।

शनिवार तारीख २ जनवरी १९१५ सन्ध्या के ५½ बजे

स्थान—सभा-भवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख ५ सितम्बर १९१४) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) संयुक्त प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूचना दी थी कि गवर्न्मेन्ट ने कृपापूर्वक हिन्दी पुस्तकों की खोज के लिये सन् १९१२, १९१३ और १९१४ की ५००) रु० की वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया है और यदि सभा सर ज्यार्ज ग्रियर्सन के प्रस्ताव के अनुसार इस कार्य्य को चलावे तो आगें के लिये भी यह सहायता देना और हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...कों की खोज के विषय में सभा की रिपोर्टों को ...वा देना स्वीकार किया है ।

...निश्चय हुआ कि गवर्न्मेन्ट को इसके लिये धन्य... दिया जाय और लिखा जाय कि सर ज्यार्ज ...र्सन के प्रस्ताव अवश्यही बहुत अच्छे हैं और ...से रिपोर्ट का महत्व बहुत बढ़ जायगा । पर इन ...वों के अनुसार कार्य करने में ५००) रुपये की ...र्षिक सहायता से कार्य नहीं चल सकेगा । कम ...कम ८००) रुपये में इस प्रणाली पर कार्य हो ...केगा और १०००) रुपये में यह भली भाँति हो ...यगा । साथ ही सन् १९१२, १९१३, और १९१४ ...जो कार्य हुआ है उनमें सरज्यार्ज ग्रियर्सन के प्रस्ताव ...अनुसार नोट नहीं लिए गए हैं । अतः इन तीन ...र्षों की रिपोर्ट में पुस्तकों का संक्षिप्त विषय नहीं ...या जा सकेगा ।

(३) बाबू मुरारीदास के प्रस्ताव पर निश्चय ...आ कि आर्य-भाषा पुस्तकालय के जो सहायक वर्ष ...का चन्दा अग्रिम दिया चाहें उनसे ।) आना ...सिक के स्थान पर केवल २) रुपया वार्षिक ...या जाय ।

(४) उप मंत्री के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि ...की पुस्तकों के अधिक प्रचार के लिये उनका ...नीचे लिखे अनुसार घटा दिया जाय अर्थात् ...वीर हठ ।), सिन्ध का इतिहास ।), अखरावट ..., युवती योग्यता =), इन्द्रावती ।।।), राज-...रास १), चित्रावली १), देवग्रन्थावली ।।।), ... ग्रन्थावली १), भारतेन्दु बाबू ...श्चन्द्र का जीवन चरित ।।), प्रबोध-...दिका ।=), वीर विरुदावली ।=), महिला मृदु-...णी ।।), संक्षेप लेख प्रणाली ।।), श्री राधाकृष्ण-...।।), हम्मीर रासो १), राज्य प्रबन्ध शिक्षा ।।), ...र तेजा =) और पृथ्वीराज रासो २०) । ...ही यह भी निश्चय हुआ कि स्कूलों और ...सोसायटियों को एक पत्र इस बात की सूचना ...भेजा जाय कि सभा ने पुस्तकों का मूल्य ...किया है और यदि पारितोषिक के लिये कोई स्कूल १०) रु० वा उससे अधिक की पुस्तकें मँगावेगा तो मूल्य में २५) रुपये सैकड़े की कमी कर दी जायगी ।

(५) निश्चय हुआ कि बाबू माधवप्रसाद और बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा से प्रार्थना की जाय कि सभा की पुस्तकों का जो स्टाक बढ़ रहा है उसके लिये लोहे के रेक बनवाने में कितना व्यय पड़ेगा इसका एक एस्टिमेट वे कृपा कर तैयार करा दें ।

(६) हरदोई के सरस्वती क्लब का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपनी सम्पत्ति का व्योरा लिखा था और यह प्रार्थना की थी कि सभा उस क्लब को अपनी अध्यक्षता में चलावे ।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यह उचित जान पड़ता है कि यह क्लब इस सम्बन्ध में साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति को लिखे ।

(७) भरोस नौकर का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिसमें उसने प्रार्थना की थी कि सभा कृपा कर उसके डेढ़ मास की बीमारी का वेतन दे ।

निश्चय हुआ कि नियमानुसार उसे इस वर्ष के १५ दिन की बीमारी का वेतन दिया जाय ।

(८) डाक्टर छन्नूलाल मेमोरियल मेडल के लिये ग्रामों की सफ़ाई तन्दुरुस्ती पर पण्डित दुखहरन मिश्र और कुँअर गोपालसिंह वर्म्मा के लेख उपस्थित किए गए ।

निश्चय हुआ कि डाक्टर शोभाराम और पण्डित रामनारायण मिश्र से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इन लेखों के विषय में अपनी सम्मति दें ।

(९) रेडिचे मेडल के लिये "वायुयान" पर पण्डित उमरावसिंह शर्म्मा का लेख उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि इसके सम्बन्ध में पण्डित रामनारायण मिश्र की सम्मति माँगी जाय ।

(१०) निश्चय हुआ कि सन् १९१५ के मेडलों के लिये निम्न-लिखित विषय नियत किए जायँ:—

डाक्टर छन्नूलाल मेमोरियल मेडल के लिये "स्कूलों की स्वास्थ्यरक्षा" ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडचे मेडल के लिये।

"रसायन शास्त्र के मुख्य सिद्धान्त"।

(११) निश्चय हुआ कि महाराणा प्रताप का २००० प्रतियों का नया संस्करण डबल क्राउन सोलह-पेजी आकार में छपवाया जाय और इस पुस्तक का मूल्य आठ आना रक्खा जाय।

(१२) मंत्री के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि प्रिविलेज़ छुट्टियां ११ मास कार्य्य करने पर १ मास के लिये उन्हीं कार्य्य-कर्त्ताओं को दी जाया करें जिन्होंने वर्ष में १० दिन की साधारण छुट्टियों के अतिरिक्त और किसी प्रकार की छुट्टी न ली हो।

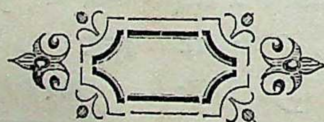
(१३) काशीप्रसाद तिवारी का प्रार्थना-पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि कि अब वे पहले की भांति सभा से अनुपस्थित न रहा करेंगे और उन्हे एक बार पुनः अपने स्थान पर कार्य्य करने की आज्ञा दी जाय।

निश्चय हुआ कि परीक्षार्थ तीन मास तक इनका कार्य्य और देखा जाय।

(११) बाबू पन्नालाल बाकलीवाल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पुस्तकालय के अँगरेज़ी विभाग से पुस्तकें लेने की आज्ञा माँगी थी।

निश्चय हुआ कि उन्हें एक बार में एक पुस्तक दी जाया करे।

(१२) निश्चय हुआ कि मध्यप्रदेश की प्रस्तावित युनिवर्सिटी में हिन्दी को उचित स्थान दिलाने के लिये उस युनिवर्सिटी कमेटी को एक पत्र भेजा जाय और बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० तथा बाबू गौरीशंकरप्रसाद जी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा-पूर्वक इस पत्र का ड्राफ्ट ठीक कर दें।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

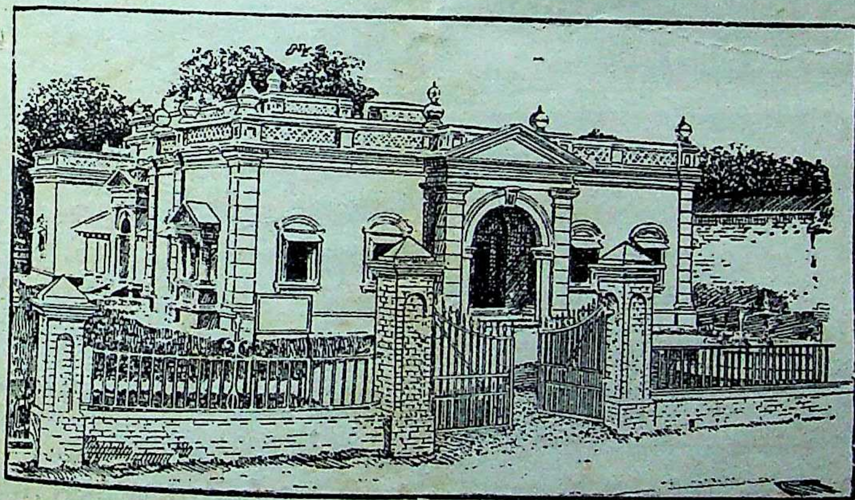
मार्च १९१५

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

...क मूल्य १॥)

प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

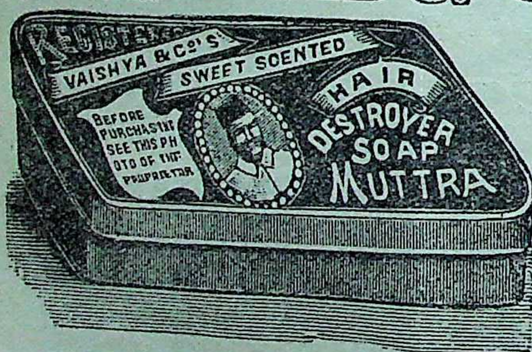
पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी

कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये, पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

वैश्यएण्डकौं.मथुराका

बाल उड़ानेका साबुन

३-४ मिनट में बाल उड़ा कर चमड़ी साफ और कोमल करता है.



खरीदनेसे पहिलेविलायती रंगीन ☞ ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केबड़ा, खस, का फी टिकिया ।।)३ टि. का १।≈)

नींबू, कपूर, शंतरे का फी टिकिया ।−) आना ३ टिकिया का बक्स ।।।)

जरूरतहै एजेण्टोंकी जरूरतहै ☞ एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५)रु.सैंकडा कमीशनदेंगे और खर्च माफ

पता:—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

पवित्र काश्मीरी केशर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९. | मार्च, १९१५. | संख्या ९

जहाज़ी बेड़ा।

(बनारस के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट जी० जे० ओ बाइरन साहब का व्याख्यान जो उन्होंने १० जनवरी सन् १९१५ को नागरी-प्रचारिणी सभाभवन में दिया था।)

सज्जनो,

आज लेक्चर देने के लिए मैंने जहाजी बेड़े का विषय चुना है, क्योंकि जहाज़ी बेड़े के बारे में हिन्दुस्तान के लोगों के विचार अधूरे ग्रैर ठीक नहीं हैं। आप लोग ऐसे सूबे में रहते हैं जो समुद्र के पानी से छू तक नहीं गया है। आप लोग हिमालय को अपनी सरहद जानते हैं ग्रैर उपजाऊ मैदान जो क्षितिज तक फैला हुआ है आप लोगों को अन्त-रहित (बेहद) मालूम होता है। बाढ़ जिनको आप जानते हैं बादलों से पानी के फट पड़ने से आती हैं। जहाज़ जिनको आप जानते हैं वे गंगाजी की लहरों पर चलनेवाली डोंगियाँ ग्रैर बजड़े हैं। मुश्किल से आप लोगों में से किसी ने २२० गज लंबा मोटे लोहे का जंगी जहाज़ देखा होगा, जिस पर १००० आदमी काम करते हैं, जो अंजन की तरह धुआँ फेंकता है ग्रैर जो रेल गाड़ी की तरह तेज चलनेवाला होता है। इसलिए यह सहज में ही समझा जा सकता है कि आप लोग इस बात को नहीं जानते कि इंगलैंड ग्रैर सब अंग्रेजी सल्तनत की रक्षा का बोझ उन भारी २ तोपों पर है जो लोहे के जहाज़ों पर चढ़ी रहती हैं ग्रैर उन आदमियों के हाथ में है जिन्होंने अपना घर द्वार खारे पानी पर बनाया है। इस लड़ाई के समय में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा करने ग्रैर दुश्मन को मारने के लिए दो बांहें ऊपर उठाई गई हैं। उनमें से दाहिनी ग्रैर ज्यादः मजबूत बाँह तो जहाज़ी बेड़ा है ग्रैर बाँईं ग्रैर कमजोर बाँह अंग्रेजी ग्रैर हिन्दुस्तानी फौजें हैं।

इस लेक्चर में मैं आप लोगों को यह दिखाना चाहता हूँ कि इंगलैंड के लिए एक मज़बूत बेड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना और समुद्री हुकूमत कितनी ज़रूरी है, पिछले ज़माने में वह अपने बेड़े का कितना ऋणी है, लकड़ी की जगह लोहा और पाल की जगह भाप होने के सबब से आजकल के बेड़े के जहाज़ों में क्या तरक्की हुई है, इंगलैंड को बतौर धमकी के जर्मन बेड़े की क्या बढ़ती हुई है और इस लड़ाई में बेड़े ने क्या कामियाबी हासिल की है।

इंगलैंड जैसा कि आप सब लोग जानते हैं, एक टापू है। युरोप के दूसरे देशों को अपनी सरहद की हिफ़ाज़त करनी पड़ती है और इसलिए उनको भारी भारी सेनाएँ रखनी पड़ती हैं, पर इंगलैंड में कोई भी दुश्मन पैर नहीं रख सकता जब तक वह जहाज़ में बैठकर खारे समुद्र को पार न कर ले। इस बड़ी लड़ाई में इंगलैंड ही एक ऐसा देश है जहाँ की मिट्टी को दुश्मन के पैर ने अभी तक नहीं रौंदा है। इंगलैंड एक ऐसा देश है जहाँ बड़े बड़े कल कारख़ाने हैं पर खेती बारी बहुत कम है। लोग बहुत करके शहरों में रहते हैं और देश उनके लिए काफी खाना नहीं पैदा कर सकता। राज्य के बड़े २ हिस्सों में रोज़ गेहूँ, जौ, रुई, मांस और फलों से लदे जहाज़ खाली किये जाते हैं और उनके बदले में इंगलैंड सूती और ऊनी कपड़े, कल पुर्ज़े और दूसरी तरह की दस्तकारी की चीजें दुनियाँ के सब हिस्सों को भेजता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अगर इंगलैंड समुद्र की हुकूमत खो बैठे और अगर खाने की चीज़ें ले जानेवाले जहाज़ रोक दिये जायँ तो इंगलैंड के लोगों की छः हफ़्ते में भूखों मरने की बारी आ जाय। फिर इंगलैंड की दौलत और उसका बल व्यापार के सबब से है और अगर इंगलैंड का व्यापार नष्ट हो जाय तो उसका बल भी कम हो जायगा। इसके सिवा इंगलैंड, हिन्दुस्तान और उपनिवेशों में जो सम्बन्ध हैं वह सब टूट जायँगे और अगर उसकी समुद्री हुकूमत चली जाय तो वह अपनी बेटियों से जुदा की हुई माँ की तरह हो जायगा। इसलिए हर तरह से इंगलैंड अपनी क़ायम मुक़ामी के लिए एक सबल बेड़ा रखने के लिए मजबूर है। समुद्री हुकूमत उसके लिए ज़रूरी है जिसमें कि वह खाने की चीज़ें न पाने की वजह से भूखों न मरने पावे, जिसमें व्यापार नष्ट होने के कारण वह दरिद्र न होने पावे, जिसमें वह अपने लड़कों की फ़ौजी मदद से महरूम न रहने पावे और जिसमें कि उसको अपने देश में दुश्मनों को ऊधम मचाते हुए, अपने लड़कों को मारते हुए, पवित्र यादगारों को तोड़ते हुए और अपनी उपज, कारीगरी और शहरों को नाश करते हुए देखने का बेलजियम की तरह कठिन दुःख न उठाना पड़े। अंग्रेजी राजनीतिज्ञों ने बहुत दिनों से इस बात का ख्याल रक्खा है और लोगों पर भी इसको जमाया है। लोगों ने भी खुशी से अपना धन दिया है—७[illegible] या ८० करोड़ रुपया सालाना एक बली और अजेय बेड़ा रखने के लिए और देश के समुद्री पुत्र लोग खुशी से उन जहाज़ों में भर्त्ती होने के लिए आगे आए हैं जिनकी गिनती इतनी बड़ी है और देश-रक्षा की ज़रूरत के मुताबिक सदा बढ़ती जाती है।

अंग्रेज़ों ने आल्फ़्रेड दी ग्रेट के ज़माने से हमेशा उन समुद्रों पर हुकूमत रक्खी है जो टापुओं को घेरे हुए हैं पर करीब ३०० बरस के पहिले यह निश्चित बड़प्पन युरोप की दूसरी जातियों के ऊपर नहीं जमा था। पहली क़ौम जिसने भारी सूरत में बेड़ा रखने की कोशिश की, वह पोरचुगीज़ थी। पोरचुगीज़ लोगों के ही जहाज़ पहिले पहल हिन्दुस्तान के किनारे पर लगे और आज तक गोआ उन्हीं के हाथ में है। उनके जहाज़ अमेरिका के किनारे तक गये, और ब्रेजिल और अफ़्रिका के दक्खिन से सीधे घूम कर चीन के किनारे तक पहुँचे। सन् १५८० ईसवी में स्पेन ने पोरचुगाल को पकड़ दबाया और पूरब और पच्छिम में सल्तनत बढ़ाई और अमेरिका के पूर्वी और पच्छिमी किनारे उसके हाथ में आ गये। स्पेन के बादशाह ने सोचा कि अंग्रेज़ी टापुओं को अपने राज्य में मिला लेने का मौक़ा आ गया है और उन्होंने इंगलैंड को जीतने के लिए सबसे बड़ा बेड़ा भेज दिया। यह आरमेडा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अंग्रेज़ी बेड़े से नष्ट कर दिया गया और बाकी कर नष्ट हो गया। बादशाह को यह दुःख की सुनाने के लिए बहुत कम जहाज़ बच कर को जा सके। स्पेन के हटने पर डच और लोगों ने समुद्री हुकूमत के लिए झगड़ा या। ख़ैर करीब २५० बरस हुए कि डच लोग में दबे और करीब १०० बरस के हुए कि सन ने ट्राफलगर में फ्रेंच लोगों के आखिरी बेड़े को हराया। तब से अब तक यानी जर्मन के मैदान में आने तक इंगलैंड के बड़प्पन को सी ने नहीं ललकारा।

यह सिर्फ़ संयोगी घटना (साथ होनेवाली त) नहीं है कि इंगलैंड का रिश्ता हिन्दुस्तान के साथ निश आरमेडा के हार के ज़माने से चला आता क्योंकि उसी वक्त, से इंगलैंड के समुद्री बल की गिनती होने लगी। पहिले अंग्रेज़ लोग हिन्दुस्तान कुछ शहरों में बतौर सौदागर के बसे और १५० स तक देशों के मिलाने में उन्होंने बहुत कम की। मोगल बादशाह और हिन्दू राजा अपने रों की हिफ़ाज़त के लिए कोई बड़ा बेड़ा नहीं थे। वे समुद्री कौमों को किनारे के शहरों सने देने और बढ़िया रेशमी कपड़े, मलमल मसाले जो आपके देश में पैदा होते हैं जाने देने में सन्तुष्ट थे। जमीन से किसी हमले लिए हिन्दुस्तान अच्छी तरह से रक्षित है। श्वर ने चारों तरफ़ पहाड़ों की दीवारें खड़ी दी हैं—पहाड़ जो कि दुनियाँ में सब से ऊँचे और उन दर्रों के पार करने की कोशिश में जो उत्तरी हिन्दुस्तान के फाटक हैं हमला करनेवाली को बड़ा नुकसान उठाना पड़ेगा। पिछले में यूनानी, अफगानी और मोग़ल लोग इन्हीं से हिन्दुस्तान में घुस पड़े। पर वे मार भगा गये या नहीं तो हिन्दुस्तान के बेशुमार लोगों गये। युरोप की जातियाँ समुद्र के खुले से आई हैं। इसलिए उनको किसी कठिनाई का नहीं करना पड़ा, क्योंकि वे ऐसी जगह चुन सकती थीं जो सबसे कम बचाव की हो। तब भी इंगलैंड को इस तरह से हमला करने में दूसरे खतरे का सामना करना पड़ा। उसके हिन्दुस्तान आनेवाले जहाज़ों पर फ़्रांस पोरचुगाल और हालैंड के दुश्मन बेड़ों के हमले हो सकते थे। बिना समुद्र पर हुकूमत जमाये हिन्दुस्तान के किसी देश पर कब्ज़ा नहीं किया जा सकता था। १७५९ में अंग्रेज़ी बेड़े ने फ्रेंच बेड़े पर बड़प्पन हासिल किया जिसकी ज़रूरत थी। इसी तरह क़रीब उसी समय के क्लाइव ने प्लासी की लड़ाई जीती और इंगलैंड फ्रेंच लोगों से कैनेडा लेने में समर्थ हुआ। हिन्दुस्तान और इङ्गलैंड के बीच का आने जाने का रास्ता साफ हो गया और फ़ौजों से लदे जहाज़ समुद्र को रक्षित रूप से पार करने में समर्थ हुए और हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज्य शुरू हुआ। इस तरह १५० बरस यानी प्लासी की लड़ाई तक इंगलैंड ने हिन्दुस्तान में बहुत कम तरक्की की और उसके बाद १०० वर्षों में समुद्री हुकूमत की वजह से वह अपने राज्य को पेशावर से सीलोन और मद्रास से बम्बई तक फैला सका। मेरे यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि आस्ट्रेलिया के बहुत से उपनिवेश दक्षिण पूर्वी और पश्चिमी अफ्रिका भी इसी तरह कब्ज़े में लाये गये और समुद्र की चौड़ी सतह अंगरेज़ी राज के लिये एक कुदरती सड़क है जो किसी पक्की सड़क से ज़्यादः फैली हुई, ज़्यादः रक्षित और ज़्यादः किफायत है जिसका कभी किसी इंजीनियर या ठीकेदार ने नक़शा खींचा हो या बनाया हो।

अंगरेजी बेड़ा जो सन् १५८८ ईसवी में स्पेनिश बेड़े से लड़ा क़रीब ८० जहाज़ों का था और स्पेनिश जहाज गिनती में १३० थे। अंगरेजी जहाज सब लकड़ी के बने थे और उनमें लंबे लंबे मस्तूल लगे थे जिन पर बड़ी बड़ी चादरों के समान पाल लटके रहते थे। हवा उन पालों में भरती थी तब जहाज चलते थे। जहाज़ उन बजड़ों से जिनको आप दशाश्वमेध घाट पर देखते हैं बहुत बड़े नहीं थे और उन पर सिर्फ़ क़रीब १५० आदमी के होते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका चलना हवा की दया पर रहता था और अगर बाधक हवा ने उनको रोक रक्खा तो उनको बन्दरगाहों में हफ़्तों रुक जाना पड़ता था। अंगरेज़ी जहाज़ों पर के मल्लाह स्पेनिश मल्लाहों से अच्छे थे। इसलिये उन्होंने एक एक करके स्पेनिश जहाज़ों को बेड़े से काट दिया और पकड़ लिया। बाक़ी स्पेनिश जहाज़ डूब कर नष्ट हो गये—सिर्फ़ थोड़े से स्पेन को लौटकर जा सके।

स्पेन की हार के बाद समुद्री इज़्ज़त के लिये दूसरे भारी मुक़ाबला करनेवाले डच लोग थे। फिर फिर के उन्होंने नये बेड़े तैयार किये पर बिना किसी कामियाबी के। अन्त में वे हरा दिये गये और करीब २५० साल हुए कि हालैंड के बेड़े ने लड़ाई से हाथ खींच लिया और इस वक्त, उसका बेड़ा बहुत छोटा और किसी गिनती में नहीं है। सन् १८०५ ईसवी के पहले तक समुद्र पर इंगलैंड का गहिरा मुक़ाबला करनेवाला सिर्फ़ फ्रांस था पर ट्राफ़लगार की खाड़ी में नेल्सन ने एक सदी के लिये इंगलैंड का बड़प्पन समुद्र पर जमा दिया।

मैंने आप लोगों से कहा था कि ३५० साल हुए कि जहाज़ बहुत बड़े नहीं थे—पर वे धीरे धीरे बड़े होते गए। उन जहाज़ों पर जो ११० साल हुए ट्राफलगार में लड़े थे १०० तोपें थीं। सन् १८२२ ईसवी में—यानी करीब ९० साल हुए कि भाप का बतौर अंजन चलानेवाली ताकत के इस्तेमाल किया गया और पहिला जहाज़ बना जो कि भाप से चलता था। बलवे के समय बेड़े के सब जहाज़ लकड़ी के थे पर उनमें से कुछ तो भाप से चलते थे और कुछ पाल से। आप लोगों को याद होगा कि करीब उसी ज़माने के रेल भी हिन्दुस्तान में आई थी। भाप के इस्तेमाल से इंगलैंड को दूसरी कौमों की बनिस्बत एक बड़ा भारी फायदा हुआ है क्योंकि भापवाले जहाज़ों के लायक सबसे बढ़िया कोयला इंगलैंड ही में मिलता है। खैर यह जल्द मालूम हो गया कि लकड़ी के जहाज़ तोप के बड़े बड़े गोलों की मार नहीं सह सकते जो रोकनेवाली चीज़ों से टकराने पर फट पड़ते हैं और वे लकड़ी के जहाज़ों में आग लगा देते थे और लकड़ी आप जानते हैं, आसानी से जलती है। इसलिये इंगलैंड में उन लोगों ने जिनके हाथ में बेड़े का काम था पहिले लोहे के और फिर इस्पात के जहाज़ बनाये। ठीक ५० साल हुए कि यह नया इस्पात के जहाज़ों का बेड़ा तैयार किया गया और पुराने लकड़ी के जहाज़ ईंधन के भाव बेच डाले गये। पहिले लोहे के जहाज़ पर ४½ इंच का मोटा पत्तर चढ़ा था। अब जब उस पत्तर को छेदने के लिये ज्यादः बड़ी तोप की ज़रूरत हुई तो तोप बनानेवालों ने इस काम के लिए तोप की तरक्की की। जहाज़ बनानेवालों ने भी जवाब में एक ऐसा जहाज बनाया जिस पर २४ इंच मोटी लोहे के इस्पात की चद्दर चढ़ी थी। तोप बनानेवालों ने भी अपनी तोपों की और तरक्की की और जहाज़ बनानेवालों ने लोहे की जगह इस्पात लगा कर जहाज़ के पत्तर की मज़बूती को बढ़ाया। पर जीत तोप बनानेवालों ही की है क्योंकि कोई ऐसा तैरता हुआ जहाज नहीं है जो आजकल की बनी हुई तोपों की आग सह सके।

अब मैं आप लोगों को यह समझाऊँगा कि आज कल के अंग्रेज़ी बेड़े में किन किन प्रकार के जहाज़ होते हैं। आजकल के बेड़े के लिए ४ जुदे दरजे के जहाज बनाए जाते हैं। मैं उम्मेद करता हूँ कि आप लोग मुझे अंग्रेज़ी नामों को इस्तेमाल करने के लिये माफ करेंगे।

पहला दरजा Battleship यानी असली जंगी जहाज़ों का है। दूसरे दर्जे में Cruiser यानी छोटे और तेज़ चलनेवाले जहाज़ होते हैं जिनका काम है जाकर खबर लाना और बड़े जहाज़ों को बचाना है। तीसरा दर्जा Destroyer यानी नाशक जहाज़ों का है जो क्रूज़रों से छोटे होते हैं और बचाने का सा काम करते हैं और चौथे दर्जे में Submarine यानी गोताखोर जहाज़ होते हैं जो पानी की सतह के नीचे चल सकते हैं और दिखलाई नहीं पड़ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग जानते हैं कि मजबूत आदमी किस तरह कमजोर आदमी को सता सकता है और आप लोगों में से बहुतेरे यह भी जानते होंगे कि बड़ी मछलियाँ छोटी छोटी मछलियों का शिकार करती हैं और उनको खा जाती हैं। उसी तरह असली जंगी जहाज़ को जब Cruiser मिलता है तो जंगी जहाज़ उसे डुबा देता है क्योंकि उसकी तोपें ज्यादः ताकतवाली होती हैं। इसी तरह क्रूजर तो Destroyer यानी नाशक जहाज़ को डुबा देगा और नाशक Submarine यानी गोताखोर को। इससे यह मतलब नहीं है कि एक छोटा जहाज़ बड़े जहाज़ को नहीं डुबा सकता—क्योंकि जिस तरह एक कमजोर आदमी चालाकी से पीछे से हमला करके एक मजबूत आदमी को हरा सकता है उसी तरह एक बड़ा जहाज़ अगर औचट में पड़ जाय तो छोटे जहाज़ से डुबा दिया जा सकता है। मामूली कायदा यह है कि बड़ा जहाज ही छोटे को डुबाता है और छोटा जहाज़ जैसा कि कायदा है बड़े को देख कर भाग जाता है। इस पर आप यह भी पूछ सकते हैं कि छोटे जहाज बनाये ही क्यों जाते हैं? अच्छा, तो इसका सबब ठीक यह है कि बड़े जहाज़ों को बेमालूम पकड़े जाने और उनसे मार खाने से बचाना। अलावा इसके छोटे जहाज़ के बनाने में लागत कम पड़ती है और मुमकिन है कि यह दुश्मन के बड़े जहाज़ को डुबा सके। इसके अलावा उनके पास बड़ा भारी हरबा Torpedo होता है। Torpedo असल में एक दो फुट लंबा छोटा गोला है जिसके भीतर एक छोटी कल होती है जो अपने आप काम करती है। अगर वह पानी के भीतर छोड़ा जाय तो जाकर दूसरे जहाज़ के पत्तर से टकराय कर वह फटता है और एक बड़ा सूराख कर देता है जिससे वह जहाज़ डूब जाता है। पानी के भीतर Torpedo नहीं दिखलाई देता। अगर जहाज़ जिस पर Torpedo चलाया जाता है चुपचाप खड़ा हो तो उस पर आसानी से चोट बैठती है। अगर जहाज चलता हो तो मुश्किल से चोट बैठती है।

अब मैं थोड़े में आप लोगों को सब से हाल के एक जंगी ज़हाज़ का बयान सुनाऊँगा जिसका नाम Tiger है। वह २२० गज़ लंबा और ३० गज़ चौड़ा है। और उसका खोल बीच में ११ इंच मोटा सख्त इस्पात का है। वह पानी पर ३५ मील घंटे के हिसाब से यानी बहुतेरी रेलों और मोटर गाड़ियों से तेज जाता है। उसपर कई छोटी छोटी तोपों के अलावः १३½ इंचवाली ८ तोपें हैं जो जिधर चाहे उधर घुमाई जा सकती हैं। ये तोपें १५ गज़ लंबी हैं और करीब २००० मन तौल में हैं और उनमें से हर एक १७ मन के गोले दाग सकती है और गोले घंटे में १९०० मील के हिसाब से जाते हैं। इस जहाज़ पर ११०० अफ़सर और मल्लाह हैं। इस भारी जहाज के बनाने में ३ करोड़ और ३ लाख रुपया खर्च पड़ा था।

अंग्रेज़ी बेड़े में इस वक्त ७० असली जंगी जहाज रहते हैं जिन में ३२ पहिले दर्जे के हैं जब कि जर्मनी के पास सिर्फ़ ४० हैं जिन में १८ पहिले दर्जे के हैं।

आप लोगों को याद होगा कि दूसरे दर्जे के लड़ाई के जहाज जिनका मैंने ज़िक्र किया था क्रूज़र हैं। सब क्रूज़र एक ही कद के नहीं होते पर मामूली क्रूज़र करीब १५० गज़ लंबे होते हैं और उनके इस्पात के खोल की मोटाई ४ या ६ इंच होती है। वह घंटे में ३० मील के हिसाब से जाते हैं और उनपर ६ इंचवाली तोपें होती हैं जो सवा मन के गोले फेंकती हैं। इनके बनाने में करीब आधा करोड़ रुपया लगता है। जब लड़ाई शुरू हुई उस समय अंग्रेज़ी बेड़े में १३४ क्रूज़र थे और जर्मनी के पास ५२ थे।

इसके बाद दूसरा दर्जा जिसका मैंने ज़िक्र किया था Destroyer यानी नाशक जहाज़ों का है। ये छोटी हलकी और जल्द चलनेवाली किश्तियाँ हैं जिनकी चाल ३० या ४० मील फ़ी घंटे होती है और उसके भीतरी हिस्से और पानी के बीच में सिर्फ़ एक पतली इस्पात की चद्दर होती है। लड़ाई के शुरू में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँग्रेजी बेड़े में २२७ Destroyers थे और जर्मनी के पास १५२

आखिरी किस्म का जहाज जिसको मैंने बतलाया था Submarine यानी गोताखोर जहाज़ है। जहाज की यह किस्म सबसे हाल की है। सबसे पहिले गोताखोर को बने सिर्फ़ २० साल हुए। ये किश्तियां इस तरह से बनी रहती हैं कि वे पानी के ऊपर और पानी के नीचे दोनों तरह से चल सकती हैं। ये गोताखोर क़रीब ५० गज़ लंबे होते हैं। जब वे पानी के नीचे डूबना चाहते हैं तो वे भारी होने के लिए काफी पानी भर लेते हैं जिससे वे डूब जाते हैं और जब सतह पर उठना चाहते हैं तो भीतर की कल पानी को निकाल बाहर कर उनको हलका बना देती है। उनका हमला करने का हरबा Torpedo है जिसका मैंने अभी आप लोगों से बयान किया है कि यह एक तरह का गोला है जो पानी के नीचे चलाया जाता है। इन किश्तियों से बड़ा भारी फ़ायदा यह है कि जब वे हमला करने जाती हैं तो वे दिखाई नहीं देतीं पर बड़ा भारी नुक़सान उनमें यह है कि वे पानी के नीचे अन्धी रहती हैं। सिर्फ़ ऊपर सतह पर उठ कर ही वे देख सकती हैं या पेरिस्कोप यानी पानी की दूरबीन लगाकर देख सकती हैं जो कि उनकी आँखें हैं और जो असल में मानिन्द एक आइने के हैं जो नीचे को अक्स फेंकता है। अंग्रेज़ी बेड़े में ७५ गोताखोर हैं और जर्मनी बेड़े में क़रीब ४० के हैं

सब किस्मों को मिलाकर अँग्रेज़ो बेड़े में ५७८ लड़नेवाले जहाज़ हैं और जर्मनी के पास सिर्फ़ ३०० हैं। हमारे जहाज़ों पर १½ लाख अफ़सर और मल्लाह काम करते हैं जब कि जर्मनी के ८०००० अफसर और मल्लाह काम करते हैं। बेड़े के रखने में इंगलैंड के लोगों का करीब ७१ करोड़ रुपया सालाना खर्च होता है और जर्मनी का करीब ३७ करोड़ के।

मैं उम्मेद करता हूँ कि अब आप समझ गए होंगे कि बेड़े में क्या होता है, कितने ज्यादः मल्लाह जहाज़ों पर काम करते हैं, कैसी ताक़तवाली तोपें होती हैं जो प्रलय की गरज गरजती हैं, कितना ज़्याद: रुपया ख़र्च होता है और क्यों इंगलैंड ने दुनियां में सबसे बड़ा बेड़ा रखने में आगा पीछा नहीं किया है, क्योंकि उसका रहना या न रहना उसी के ऊपर है। अब इस बात की जाँच करनी चाहिये कि जर्मनी का पावा कैसा है और क्यों उसने समुद्री हुकूमत को ललकारने के लिये एक बेड़ा बनाया।

जर्मनी की शिकायत है कि यूरोप की दूसरी कौमों ने दुनिया के उन सब हिस्सों को ले लिया है जो सचमुच में फायदेवाले हैं और उसके लिये उन सब हिस्सों को छोड़ दिया है जिनकी कि उन्हें जरूरत न थी। वह कहता है कि अब मैं मज़बूत और ताक़तवाली कौम हो गया हूँ और दूसरे मुल्कों ने दुनिया की सब जमीनों को ले लिया जब मैं बचपन में था। उसकी बहस को मैं और भी सहल सूरत में रखे देता हूँ और थोड़ी देर के लिये जर्मनी का वकील बन जाता हूँ। जर्मनी यह कहता है कि यूरोप के दूसरे कौमवाले सब मेरे बड़े भाई हैं, जब मैं बच्चा था, मेरे बड़े भाइयों ने सब अच्छी जमीन जिसकी कि उन्हें जरूरत थी ले ली। अब मैं बड़ा हो गया और खूब तगड़ा और पूरा जवान हो गया हूँ मेरे बहुत से लड़के बाले हो गये हैं और बहुत से लोगों को खिलाना पड़ता है इसलिये मैं अपने बड़े भाइयों के पास गया और मैंने उनसे कहा कि मुझे और कुछ जमीन दीजिये। उन्होंने कहा कि जो कुछ ले सकते हो ले लो पर हमारी जमीन छोड़ देना इसलिये मैंने जाकर जो कुछ जमीन ले सका ली और उसको जोता बोया पर मुझे मालूम हुआ कि जो कुछ ज़मीन उन्होंने मेरे लिये छोड़ दी थी वह ऊसर थी और उसमें कुछ भी नहीं पैदा होता था। इसलिये मैं फिर अपने बड़े भाइयों के पास गया और मैंने कहा कि आप लोग बुड्ढे हो रहे हैं और मैं जवान और मज़बूत हूँ, मुझको कुछ अपनी ज़मीन दे दीजिये। उन्होंने नहीं माना। इसलिये मैंने जवाब दिया कि मैं जबरदस्ती लूँगा। यह जर्मनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहस है। पर वकीलों की बहुत सी बहसें तरह एकतरफ़ो है और सच्ची बातों को खोल नहीं दिखलाती। हम लोगों का जवाब यह है जब तुम छोटे थे तो हम लोगों ने तुम्हारी कोई सी जमीन नहीं ले ली—तुम्हारी सब जमीन तक तुम्हारे पास है। हम लोग तुमको वह जमीन दोगे जिसको हम लोगों ने खुद साफ किया जोता बोया है—यह तुम्हारा कसूर है कि तुम नहीं बढ़े और तुमने जमीन लेना नहीं शुरू। और भी हम लोगों का यह जवाब है कि मुल्कों में बुढ़ापा नहीं आया है—आदमी की कौम नहीं बुड्ढी होती—कौम के भीतर एक होता है जो सदा उसको जिन्दा रखता है। कौम बुड्ढो होती होती तो आप लोगों के देश स्तान में, जो हज़ारों वर्ष का पुराना है, एक सिपाही उसकी रक्षा के लिये न होना चाहिये और न एक टुकड़ा जोतने बोने लायक ही।

अब हम लोग जर्मनी की बहस को नहीं सकते और न जर्मनी हम लोगों की बहस को; समझता हूँ कि मैं आप लोगों को दिखला हूँ कि एक मज़बूत बेड़े ही के सहारे समुद्र के २ देशों पर क़ब्जा किया जा सकता है। जर्मनी ने एक मजबूत बेड़ा बनाने की

८ तक यानी १६ साल के पहले जर्मनी ने बेड़ा बनाना नहीं शुरू किया था। उस जर्मनी के बेड़े का ख़र्च सिर्फ़ ८ करोड़ रुपया था जब कि इंगलैंड का ख़र्च ३१ करोड़ था। साल जर्मनी का ख़र्च बढ़ कर ३४ करोड़ और इंगलैंड का ७० करोड़। करोड़ों रुपये करना सहज है बिना यह समझे हुए कि क्या मतलब है। पर आप लोग उसको अच्छो समझ जायँगे अगर मैं आप लोगों को यह कि तमाम हिन्दुस्तान की मालगुज़ारी की सिर्फ़ ३० करोड़ रुपया होती है।

जर्मनी का ३४ करोड़ रुपया सालाना खर्च करना यह दिखलाता है कि वह एक शानदार बेड़ा तैयार करना चाहता है और वह इसमें कामियाब भी हुआ है। इंगलैंड के लोग भी बेवक़ूफ़ नहीं हैं। वे लोग समझते थे कि जर्मनी की क्या मंशा थी। इसलिये जर्मनी के एक जहाज़ बनवाने पर उन लोगों ने कभी एक कभी दो और कभी तीन तीन जहाज़ बनवाए। जब कि जर्मनों ने १३½ इंच की तोप-वाला जहाज बनवाना शुरू किया तो हम लोगों ने १५ इंच की तोपवाला जहाज़ बनवाया। इस तरह से हम लोगों ने अपना बड़प्पन कायम रक्खा है। हमारे जहाज़ों की गिनती उनसे ज़्यादः है और हमारे सबसे बढ़िया जहाज उनके सबसे बढ़िया जहाजों से ज्यादः मजबूत हैं।

जब यह लड़ाई शुरू हुई उस वक्त इंगलैंड का बेड़ा तैयार था और उसका बड़ा हिस्सा समुद्र में टापुओं के चारों तरफ़ था। भूमध्य सागर में फ़्रेंच और अंग्रेज़ी बेड़े बड़े प्रबल थे। जब कि लड़ाई छिड़ी उस वक्त, सब लोगों ने उम्मेद की थी कि कोई भारी समुद्री लड़ाई होगी पर सब लोगों को ना उम्मेद होना पड़ा। अब मैं आप लोगों को समझाऊँगा कि इस का सबब क्या है। जर्मनी ने समझा कि हमारा बेड़ा उनके बेड़े से ज्यादः मज़बूत है और इसलिये उन्होंने अपने जहाज़ों को लड़ाई में जोखिम में नहीं डालना चाहा। इस वजह से हम लोगों को यह न समझना चाहिये कि जर्मन लोग डरपोक हैं क्योंकि असल में खतरा बहुत बड़ा था। इसलिये वे अपने ही किनारों और बन्दरगाहों को हट कर चले गए। इसका नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजी सौदागरी जहाजों के लिए समुद्र का रास्ता साफ़ हो गया और जर्मन सौदागरी जहाज़ समुद्र से हटा दिए गए। अब यह पूछा जा सकता है कि अंग्रेज़ी बेड़े ने जो ज्यादः मज़बूत है जाकर जर्मन बेड़े पर क्यों नहीं हमला किया। इसका पहिला सबब यह है कि जब दुश्मन भाग जाता है और बिना लड़े हुए किसी को जोत के फल का सुख लेने के लिये छोड़ जाता है तो उसको चाहिये कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तुष्ट हो जाय। दूसरा सबब यह है कि जहाज़ में बैठ कर जर्म्मनी के किनारे के पास जाना बड़ा मुश्किल है क्योंकि वहां पर पानी के नीचे बड़े बड़े बालू के ढूहे हैं। इसलिये जिसको वहांका रास्ता नहीं मालूम है उसके लिये वहाँ जहाज़ ले जाना मुश्किल है। तीसरा सबब यह है कि जर्मनी ने हिलीगोलैंड, बोरकूम और नदियों के मुहानों पर बराबर किनारे किनारे मज़बूत किले बना दिये हैं और पानी पर बहुत सी सुरंगें बिछा दी हैं। ये सुरंगें बड़े बड़े धातु के बर्त्तन हैं जिन की ऊँचाई आदमी के बराबर होती है और जिनके भीतर भड़कने-वाली चीज़ें भरी रहती हैं। जब कोई जहाज किसी सुरंग से टकराता है तो वह सुरंग भभकती है और जहाज़ में सूराख कर देती है जिससे वह जहाज़ डूब जाता है। इसलिये आप समझ सकते हैं कि उनके किनारों के पास जाना हमारे जहाज़ों के लिये बड़ा खतरनाक होगा। साथही जब कभी जर्मन जहाज़ लड़ने के लिये बाहर आवेंगे तो हम लोग उनके लिये तैयार हैं और इससे बढ़कर और किसी बात के लिये हम लोगों की चाह भी नहीं है। चूंकि जर्मन बेड़ा लड़ना नहीं चाहता इसलिये हम लोगों ने उत्तरी समुद्र के दोनों रास्ते बन्द कर दिये और किसी जहाज़ को तेल, धातु, या खाने की चीज़ें ले कर जर्मनी नहीं जाने दिया। अब इस वक्त अंग्रेज़ी बेड़ा क्या कर रहा है? जहाँ तक हम लोगों को मालूम है—नाशक जहाज़ों और क्रूज़रों का एक बेड़ा इंगलैंड के किनारों की हिफाजत कर रहा है और उत्तरी समुद्र से जर्मन जहाजों को निकल भागने से रोकता है।

यद्यपि जब से लड़ाई शुरू हुई तब से कोई बड़ी समुद्री लड़ाई नहीं हुई तौभी छोटी छोटी लड़ाइयाँ कई एक हुई हैं। जर्मनी के बहुत से लड़नेवाले जहाज़ जो उस वक्त चीन में थे, वहाँ से निकल भागे। वे लौटकर घर नहीं जा सकते थे। इसलिये उन्होंने यह ठाना कि चलो जितना नुकसान अँगरेज़ी सौदागरी जहाज़ों का करते बने करें। ये सब […] सब जहाज़—सिवाय दो के—बरबाद कर दिये गये और डुबा दिये गये। इन जहाज़ों में से एक क्रूज़र एमडेन ने जिसके बारे में आप सब लोगों ने सुना है, बहुत से सौदागरी अँगरेज़ी जहाज़ तो डुबाये पर अंगरेज़ी जंगी जहाजों में से एक को भी नहीं। इसको खोज निकालना मुश्किल था पर पहले अं[…] जहाज़ से भेंट होते ही वह नवम्बर की ९ तारीख को डुबा दिया गया। सौदागरी जहाजों को डुबाना सहज है क्योंकि उनपर तोपें नहीं होतीं। पाँच और जर्मन जहाज़ जो कि सब क्रूज़र थे दक्षिणी अमेरिका के पच्छिमी किनारे से कुछ दूर पर थे। पहली नवम्बर को ३ अंगरेज़ी क्रूज़रों ने उनपर हमला किया—पर जर्मन जहाज़ों ने अ[…] से दो को डुबा दिया। ८ वीं दिसम्बर को ह[…] बेड़े की भेंट इन ५ जर्मन लड़ाऊ जहाज़ों से हुई। उसने इनमें से चार को तो डुबा दिया और […] बच कर निकल गया। इस तरह फ़ायदे में हमही रहे क्योंकि हम लोगों ने चार जहाज़ डुबाये […] जर्मनों ने सिर्फ दो।

यह सच है कि हम लोगों की बनिस्बत […] लोग गोताखोरों के साथ ज्यादः कामयाब हुए। उन्होंने हमारे छः क्रूज़रों को गोताखोरों से डु[…] और हम लोग उनके सिर्फ़ दो जहाज़ इस […] डुबा सके। अब मैं आप लोगों को यह दिख[…] कि जब से लड़ाई शुरू हुई तब से हर एक […] के सब जहाज़ मिला कर कितने नुकसान हुए […]

असली जंगी जहाज़ों में से हम लोगों का […] जहाज नुक़सान हुआ जो कि इत्तिफाकन बा[…] उड़ गया। जर्मनी का एक भी जंगी जहाज़ […] सान नहीं हुआ। हम लोगों के १० क्रूज़र नु[…] हुये हैं और जर्मनी के १६ हुए हैं। हमारा […] नाशक जहाज़ नहीं बरबाद हुआ और जर्मनी […] हुए हैं। हमारे दो गोताखोर नष्ट हुए हैं और जर्म[…] पाँच हुए हैं। इससे आप समझ सकते हैं कि […] जर्मनी का नुकसान हम लोगों से ज्यादः […]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ा पाया इस वक्त कहीं बढ़ कर है बनिस्बत के कि जो वह लड़ाई के शुरू में था। इसके बेड़े ने फौज को बड़ी मदद दी है। जब कि र्ट में बेल्जियम की फौज को जर्मनी की फौज ब कस कर दबाया था तो उस वक्त अंगरेज़ी जहाजों ने फौज की मदद की, जर्मन फौजों मय मचा दिया और उनको पीछे हटा दिया। अन्दाज किया जाता है कि बेड़े की तोपों ने फौज के १५००० सिपाहियों का काम म किया।

आप लोगों में से कुछ लोगों ने अखबारों में ा होगा कि हमारी फौज ने तुर्की के एक शहर रा को दखल कर लिया है। यह जंगी जहाजों मदद से किया जा सका। उन्होंने यूफ्रेटीज में जाकर तुर्की किलों को बरबाद कर दिया। अंगरेजी बेड़े का पहला फर्ज तो दुश्मन के जों को बरबाद करना है और दूसरा फर्ज समुद्र की पुलिस के काम करना है। चूँकि ों ने अपने जहाजों को बचाव की जगहों में लिया है—पहला मतलब नहीं पूरा हो सकता तक कि जर्मन लोग लड़ने के लिए बाहर न । अब मैं आप लोगों को यह दिखाऊँगा कि खूबी के साथ बेड़ा समुद्री पुलिस का काम रहा है। हमारी निगाह में दुश्मन के जहाज करते हैं जब कि वे अपना बन्दरगाह छोड़ते इन जंगी जहाजों के अलावः जिनको मैंने बत- है, जर्मनी के पास बहुत से सौदागरी जहाज माल, लेकर दुनियाँ के सब हिस्सों को जाते जर्मनी के इन जहाजों की गिनती, जब लड़ाई थी, करीब २००० के थी। इनमें से ३३२ पकड़ लिये गये हैं। हम लोगों के पास जिस लड़ाई छिड़ी थी ८००० से ऊपर जहाज थे इनमें से सिर्फ़ १०७ जहाज़ बरबाद हुए हैं। के जर्मनों ने हमारे सौदागरी जहाजों को —जैसा कि एमडेन ने बंगाल की खाड़ी में तो उनको उन्हें डुबा देना पड़ा क्योंकि वे उनको जर्मन बन्दरगाह में नहीं ले जा सकते थे। पर हम लोगों ने जिन जर्मन जहाजों को पाया पकड़ लिया और उनको बन्दरगाह में लाकर जो कुछ उनपर माल था उससे बड़ा फायदा उठाया। जर्मन सौदागरी जहाज अब बन्दरगाह के बाहर आने की हिम्मत नहीं कर सकते क्योंकि वे पकड़ लिये जायँगे और सिर्फ़ बाल्टिक समुद्र ही एक ऐसी जगह है जिसको कि ये जहाज़ अपने बचाव के लिये इस्तेमाल कर सकते हैं। समुद्र की हुकूमत इस तरह हम लोगों के लिये छोड़ कर जर्मनों ने अपनी तमाम समुद्री तिजारत को खो दिया है। इसके विरुद्ध हमारे जहाज़ समुद्री सड़कों पर उसी तरह आते जाते हैं जैसे कि वे शान्ति के समय करते थे और सिवाय सुरंगों और दक्षिणी अमेरिका के किनारे पर के दो छोटे जर्मन क्रूज़रों के जिनका पीछा हमारा बेड़ा किये हुए हैं और कोई खतरा नहीं है। सारी दुनियाँ में करीब १६००० धूआँकश हैं और इनमें से ८००० इंगलैंड के हैं, २००० जर्मनी के हैं और ६००० दूसरी कौमों के। चूँकि जर्मनी के जहाज़ बन्दरगाहों में बेकाम पड़े हैं या पकड़ लिये गये हैं, हम लोग सौदागरी जहाजों में लड़ाई के पहले की बनिस्बत इस वक्त और भी बढ़े चढ़े हुए हैं। पर बेड़ा एक और भी अच्छा काम कर रहा है। हम लोगों ने जर्मनी के खाने की चीज़ों को, जो समुद्र से आती हैं, रोकने का पक्का इरादा किया है। जर्मनी महीने में ३० करोड़ की खाने की चीज अपने मुल्क में ले जाता है। जब से लड़ाई शुरू हुई, यह ले जाना करीब करीब बंद हो गया है और यह काम हमारे बेड़े ने धीरे से किया है। बर्लिन में, जो जर्मनी की राजधानी है, गेहूँ का भाव रुपये का ६ सेर से बढ़ कर ५½ सेर हो गया है और जर्मन सरकार ने नानबाइयों को खालिस गेहूँ की रोटी बनाने के लिये मना कर दिया और उसके साथ जौ और आलू मिलाने का हुक्म दे दिया है। जर्मन लोगों के मछी के तेल की आमद भी बन्द की जा रही है। उनको यह अमेरिका और गैलीशिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मिलता था। पर अमेरिका का रास्ता समुद्र से है सो वहाँ के रास्ते से तो हमारे जहाजों ने माल का आना जाना रोक दिया है ग्रैार गैलीशिया को रूसियों ने दखल करके वहाँ से चीजों का आना बन्द कर दिया है। दूसरी चीज जिसको कि लोग कहते हैं जर्मनों का कमी है, वह ताँबा है। ताँबा गोलियों के बनाने में काम आता है। पर जर्मन लोग शायद किसी दूसरे धातु की गोलियाँ बना कर इस मुश्किल के हल कर लेंगे।

इस लेक्चर में मैंने आप लोगों को यह दिखलाने की कोशिश की है कि अंगरेज़ी राज्य की नेह समुद्री इज़्ज़त है जिसको हम लोगों ने सदियों से कायम रक्खा है। मैंने आप लोगों को यह भी दिखलाया है कि अँगरेज़ी बेड़ा जर्मन बेड़े से क़रीब दूने के मजबूत है ग्रैार जर्मन बेड़े ने हमारे बड़प्पन को मान लिया है, उनकी तिजारत बन्द हो गई है ग्रैार खाने की चीज़ों की कमी हो गई है। मैं उम्मेद करता हूँ कि आप लोग इस बात को समझ लेंगे कि इस लड़ाई में आखरी जीत फौज की बनिस्बत बेड़े की ही होगी, ग्रैार यह कि जितने किले अभी तक ध्यान में आये हैं उनमें जंगी जहाज़ सब से ज्यादः ताज्जुबदेह ग्रैार काम करनेवाले किले हैं; यह भी कि सड़कें जो हिन्दुस्तान ग्रैार इंगलिस्तान को मिलाती हैं किसी दुश्मन से काम में नहीं लाई जा सकतीं ग्रैार इंगलिस्तान ग्रैार हिन्दुस्तान दोनों एक ही हथियार को अपनी हिफाजत का जरिया मानते हैं ग्रैार चूँकि वह हथियार पिछले जमाने में कभी नहीं चूका है इसलिये हमको भरोसा है कि वह आगे भी नहीं चूकेगा।

एक प्राचीन बौद्ध विद्यापीठ।*



न् ६२९ ईसवी में युआनच्वांग नामक एक विद्वान् चीन के उत्तरपश्चिम शेन्से प्रांत के चंगन नामक स्थान पर—जहाँ इस समय स्यान या सिंगफू नामक नगर है—पहुँचा। उस समय उसकी अवस्था केवल २९ वर्ष की थी ग्रैार प्राचीन काव्यों के अध्ययन में उसने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। वह बहुत अच्छा वक्ता था ग्रैार स्थान स्थान पर घूमकर विद्याध्ययन करता ग्रैार उपदेश आदि देता था। उसकी विद्वत्ता के कारण लोग उसपर मुग्ध हो गए थे ग्रैार भिन्न भिन्न प्रान्तों के नरेश ग्रैार धर्माधिकारी उसका बहुत आदर करते थे। चंगन के प्रसिद्ध विद्वानों ने भी उसकी अगाध विद्वत्ता स्वीकार करके उसका सम्मान किया था। युआनच्वांग ने वहाँ के सब विद्वानों से भेंट की। शास्त्रीय विषयों पर वार्तालाप करने पर उसे मालूम हुआ कि अनेक धार्म्मिक ग्रन्थों के पाठों में बहुत कुछ भेद ग्रैार भिन्नता है। उसके लिए यह निश्चय करना कठिन हो गया कि कैान सा पाठ शुद्ध ग्रैार मूल है। अतः उसने भारतवर्ष में आकर यहाँ के विद्वानों से अपना भ्रम दूर करना निश्चय किया।

भारत में गंगा-तट पर, उस समय बौद्धों के कई प्रसिद्ध ग्रैार पवित्र पीठ थे। उन्हीं स्थानों पर रहकर महात्मा बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया ग्रैार उपदेश दिया था। काशी का मृगदाव (वर्त्तमान सारनाथ) नामक स्थान, जहाँ बुद्ध ने पहले पहल अपना उपदेश आरम्भ किया था, राजगृह के निकट गृद्धकूट जहाँ उसने अपने शिष्यों को ज्ञानोपदेश किया था, उसका जन्म ग्रैार मरण-स्थान आदि सभी

* प्रिंसिपल जे० एस्टिन कारपेन्टर महाशय द्वारा लिखित ग्रैार विलायत के हिब्बर्ट जर्नल नामक सामयिक पत्र में प्रकाशित एक लेख का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध थे। पास ही बुद्ध-गया के समीप नालंद
प्रसिद्ध विद्यापीठ था जो शताब्दियों से बौद्ध
द्वानों का प्रसिद्ध केन्द्र था।

यह सब कुछ था, पर युआनच्वांग के लिए उस
समय भारत-यात्रा बहुत ही कठिन थी। चीन में
सरकारी तौर पर विदेश-यात्रा बंद कर दी गई
थी। बड़े बड़े उजाड़ जंगलों और ऊँचे ऊँचे पहाड़ों
से होकर भारत का मार्ग था। बीच में पड़नेवाले
देशों की भाषाओं से भी वह एक दम अनभिज्ञ
था। जिन लोगों ने उसके साथ भारत तक आना
स्वीकार किया था, वे भी एक एक करके खसक
गए। पर इन सब कठिनाइयों और विघ्नों से वह
निराश नहीं हुआ। सितंबर सन् ६२९ में उसने
भारत के लिए प्रस्थान कर ही दिया। उसके मार्ग
में बड़ी बड़ी नदियाँ और सीमा-प्रान्त की चौकियाँ
पड़ती थीं। इन चौकियों पर से उसे बड़ी ही साव-
धानी से बचकर निकलना पड़ता था; क्योंकि यदि
कोई कोई इस प्रकार देश से बाहर आते देख लेता
तो उसे तुरन्त गिरिफ़्तार कर लेता। एक बार एक
चौकी पर किसी अधिकारी ने, जिसके पास उसके
पकड़ने का वारंट था, उसे पकड़ लिया। पर जब उस
अधिकारी के प्रश्नों का युआनच्वांग ने बिलकुल
ठीक ठीक उत्तर दे दिया तो वह अधिकारी उसके
सच बोलने से इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने
उसकी गिरिफ़्तारी का वारन्ट तुरन्त अपने हाथ से
फाड़ डाला। वहाँ से आगे बढ़ने पर उसे बड़े बड़े
मैदान मिले जिनमें भयानक बवँडर और आँधियाँ
चलती थीं। एक बार उसे लगातार पाँच दिनों
तक वहाँ एक बूँद भी जल न मिला था। उस
समय उसने अपने देवता से नम्र प्रार्थना की—
"युआनच्वांग धन-सम्पत्ति या दूसरे सांसारिक
लाभ के लिए यह यात्रा नहीं कर रहा है। वह
यश या कीर्त्ति भी नहीं चाहता, उसे केवल
सत्य और सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करने की अभि-
लाषा है। मैं जानता हूँ कि बोधिसत्त्व जीव-मात्र
को दुःख से मुक्त कराने की कृपा दिखलाता है।
क्या मेरे भीषण कष्टों की ओर उसकी दयादृष्टि न
होगी?" उसी समय ठंडी हवा चलने लगी और
उसके घोड़े में आगे बढ़ने की शक्ति पुनः आ गई।
कुछ देर विश्राम करके वह हलका हो गया। अपने
घोड़े पर सवार होकर वह चल पड़ा और कुछ
दूर आगे बढ़ने पर उसे अच्छी हरियाली और एक
जलाशय मिला।

आगे चलकर वह जनपद में पहुँचा। उस प्रान्त
के शासक काउचंग ने उसकी यात्रा का समाचार
सुना और उसे अपने राजनगर में बुलाया। जो
लोग उसे लाने के लिए भेजे गए थे उन्हें इस बात
की कड़ी आज्ञा दी गई थी कि उसे किसी तरह न
छोड़ें और आवश्यकता पड़ने पर उसे बलपूर्वक
साथ ले आवें। ६ दिन की कड़ी मंजिलें करके
सब लोग आधी रात के समय राजनगर के फाटक
तक पहुँचे। उसी समय राजा ने बहुत से आदमियों
के साथ महल से निकल कर उसका स्वागत किया।
उसने युआनच्वांग के आने के समय का अनुमान
पहले से ही कर लिया था। उसकी स्त्री और बच्चे
उसके आने के समय तक सो न जायँ, इसलिए
उसने उन्हें कई धर्मग्रन्थ पढ़ने के लिए दे दिये
थे। आदर सत्कार करके राजा उसे अपने अन्तःपुर
में ले गया। वहाँ उसे एक स्थान पर बैठाकर उसने
अपनी रानी को बुलाया और उससे बातचीत शुरू
की। बहुत अधिक विलंब हो जाने पर, प्रभात के
समय जब उसे बहुत निद्रा आने लगी तो उसने
राजा से बिदा माँगी। इसके बाद दस दिनों तक
वह वहीं रहा। उस समय अपनी यात्रा आरंभ
करने की उसकी प्रबल इच्छा थी; पर राजा उसे
सदा अपने ही पास रखकर अपनी प्रजा को उससे
उपदेश दिलवाना चाहता था। जब राजा से किसी
प्रकार छुट्टी न मिल सकी तो युआन-च्वांग ने अन्न
जल परित्याग कर दिया। लगातार तीन दिनों तक
न तो वह अपने स्थान से हिला और न उसने अन्न-
जल ग्रहण किया। चौथे दिन जब राजा ने देखा
कि उसकी शारीरिक अवस्था बिगड़ती जाती है तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाचार होकर उसे अपना हठ त्यागना पड़ा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि युआन-च्वांग वहाँ एक मास और ठहरकर लोगों को एक धर्म्मग्रन्थ की पूरी व्याख्या सुना दे और इसी बीच में उसकी यात्रा के लिए सब आवश्यक प्रबन्ध कर दिए जायँ। राजा ने उसके लिये बहुत से घोड़ों, सेवकों, और कपड़ों आदि का प्रबन्ध कर दिया और उसे बहुत कुछ धन भी दिया। यह सब चीजें उनके लिये बीस वर्ष के लिये यथेष्ट थीं। अनेक प्रकार के जूते, और दस्ताने आदि भी जिनकी आवश्यकता पर्वतीय यात्रा में पड़ती थी, उसे दिए गए थे। पिंग-शांग (हिम-पर्वत) की घाटियों में इन चीजों की सबसे अधिक आवश्यकता पड़ती थी क्योंकि वहाँ घोड़ों और गाड़ियों को बहुत दूर दूर तक बरफ पर ही चलना पड़ता था। इस यात्रा में उसे सात दिन लगे थे। इस बीच में भूख और सर्दी के कारण उनके बारह चौदह साथी और बहुत से घोड़े और बैल मर गये थे।

इस प्रकार की अनेक विपत्तियाँ झेलता हुआ वह बराबर आगे बढ़ता जाता था। मार्ग में पड़नेवाले सभी संघों, दूसरे पवित्र या प्रसिद्ध स्थानों और वहाँ के विद्वानों का भी वह पूरा परिचय प्राप्त करता जाता था। काशमार में वह दो वर्ष तक ठहरा रहा था और वहाँ के राजा ने अनेक धर्म्मग्रन्थों की नकल करने के लिये उसे बीस आदमी दिये थे। वहाँ से चलने पर एक बार मार्ग में उसके साथियों पर डाका पड़ा था। डाकुओं ने उनका सब सामान यहाँ तक कि कपड़े लत्ते भी छीन लिये थे। उसके साथी बहुत दुःखी हुए; पर उसने प्रसन्नवदन होकर सब से कहा—"जीवों के पास सबसे अधिक अमूल्य और महत्त्व का पदार्थ जीवन है। जब हमारा जीवन बच गया तब हमें और बातों की चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है?"

एक बार युआन-च्वांग बहुत से आदमियों के साथ कन्नौज से गंगाद्वारा पूर्व की यात्रा कर रहा था। जिस नाव पर वह सवार था उसके मल्लाह दुर्गा के भक्त थे और वे प्रति वर्ष देवी के सामने एक मनुष्य का बलिदान देते थे। उस समय विलक्षण आकृति के कारण उन्होंने युआन को ही बलि देना निश्चय किया। यद्यपि उसके साथियों ने उसे बचाने के अनेक प्रयत्न किये और कई आदमियों ने उसके बदले स्वयं बलि चढ़ना चाहा, पर मल्लाहों ने न माना। एक वेदी बनाई गई और सरदार की आज्ञा से युआन-च्वांग हाथ पैर बाँधकर उस पर लेटा दिया गया। युआन जरा भी भयभीत या चिंतित नहीं हुआ; उसने शांतिपूर्वक उन लोगों से कहा कि मुझे थोड़ी देर के लिये अकेला छोड़ दो और मेरे चारों ओर भीड़ मत लगाओ; मैं चाहता हूँ कि प्रसन्नचित्त होकर मैं अपने प्राण त्याग करूँ। इसके बाद उसने स्वर्ग की ओर ध्यान करके मैत्रेय बुद्ध से प्रार्थना की कि पहले मेरा जन्म स्वर्ग में हो और वहाँ मैं आप से सत्य-ज्ञान प्राप्त करूँ और तदुपरान्त इस पृथिवी पर मेरा जन्म हो, मैं लोगों को ज्ञान का उपदेश दूँ, उन्हें दुष्कर्म्मों से बचाऊँ और उन्हें सुकर्म्म में प्रवृत्त करूँ। इस प्रकार वह अपने ध्यान में मग्न था और उसे मल्लाहों, वेदी, और बलि आदि का कुछ भी ध्यान न था। इतने में बड़ी तेज आँधी आई, गंगा में बड़ी बड़ी लहरें उठने लगीं और ऊँचे ऊँचे वृक्ष टूट कर गिरने लगे। मल्लाहों ने अ[illegible] भीत होकर वेदी की परिक्रमा की और उनमें से एक ने जाकर युआन के शरीर पर हाथ रक्खा। युआन ने आँखें खोलकर पूछा—क्या बलि का समय हो गया? उत्तर में मल्लाहों ने उससे क्षमा प्रार्थना की, उसे बंधन-मुक्त किया, यात्रियों से छीन[illegible] हुआ सब माल उन्हें लौटा दिया, अपने शस्त्र आदि गंगा में फेंक दिए और उसके शिष्य और भक्त बन गये।

इस प्रकार बराबर यात्रा करता और मार्ग में प्रसिद्ध बौद्ध स्थान देखता हुआ वह गया में बोधि वृक्ष तक पहुँचा जहाँ गौतम ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। उस वृक्ष के चारों ओर अनेक मन्दिर और मठ थे। वहाँ से आगे चलकर वह नालंद पहुँ[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्वागत के लिये चार बड़े बड़े पंडित आए और आगे बढ़ने पर उसे सैकड़ों बड़े आदमियों र हज़ारों साधारण मनुष्यों का एक जुलूस जो उनके स्वागत के लिये आ रहा था। वे अपने साथ भेंट के लिये छाते, फूल की मालाएँ र अनेक प्रकार के सुगंधिद्रव्य लाए थे। सब बड़ी धूमधाम से और नाचते गाते हुए नालंद-द्यापीठ तक उसे ले गये। चंगन से उस स्थान पहुँचने में उसे सात वर्ष लगे थे।

उस समय वही प्रसिद्ध विद्या-पीठ था। वहाँ द्वान् भी रहते थे और धार्म्मिक आचार्य्य भी। यपि उस स्थान का धन-वैभव बहुत ही हाल का तथापि विद्या-बुद्धि के लिये वह स्थान बहुत दिनों प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि पाँच सौ बड़े बड़े पारियों ने बहुत सी भूमि मोल लेकर भगवान् को अर्पण कर दी थी और वहीं बुद्ध तीन मास तक रहकर धर्म्मोपदेश किया । बड़े बड़े मंदिर, विहार, उद्यान और जलाशयों कारण वहाँ की शोभा अपूर्व हो रही थी। वहाँ द्वार बहुत ही विशाल और सुन्दर बना हुआ वहाँ आठ बड़े बड़े चौकोर भवन बने हुए थे। अतिरिक्त आठ बड़े बड़े और सैकड़ों छोटे र थे जिनमें बहुत से बहुमूल्य रत्न आदि जड़े थे। पास ही सैकड़ों बड़े बड़े कमरे थे जिनमें हजार गुरु और शिष्य अध्यापन और अध्ययन थे। विद्यार्थियों के लिये चार चार खंडों के बड़े छः भवन बने हुए थे।

शीलभद्र नामक एक प्रसिद्ध वयस्क विद्वान् ने अपनी योग्यता के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त की, वहाँ का प्रधान अध्यापक और अधिकारी शीलभद्र का एक भतीजा था जिसकी अवस्था र वर्ष की थी। उसी के कमरे में युआन-च्वांग रहने के लिये स्थान दिया गया। उसके भोजन निर्वाह आदि के लिये भी यथेष्ट प्रबन्ध कर गया। मगध देश का एक प्रकार का बहुत सुगंधित चावल जो केवल बड़े बड़े राजाओं, महात्माओं और विद्वानों को ही मिलता था, उसे मिलने लगा। सवारी के लिये एक बड़ा हाथी और साथ रहने के लिये एक विद्यार्थी और एक ब्राह्मण भी उसे मिला। दो वर्ष तक युआन-च्वांग वहाँ रहा। इस बीच में उसने अनेक बौद्ध और हिन्दू शास्त्रों, न्याय, दर्शन, ज्यौतिष आदि के मुख्य मुख्य ग्रन्थों और पाणिनि-कृत व्याकरण का भली भाँति अध्ययन किया। बीच बीच में वह अपने हाथी या पालकी पर सवार होकर इधर उधर घूमने के लिये भी निकल जाता और अनेक पुण्य तीर्थों की यात्राएँ करके फिर नालन्द लौट आता था।

युआनच्वांग कहता है कि वहाँ के सभी विद्यार्थी और शिक्षक बड़े ही विद्वान् और सदाचारी थे, उनका सारा समय विद्या-संबंधी वादों में ही बीतता था। जो लोग किसी विषय पर भली भाँति मनन न कर सकते थे उन्हें वहिष्कृत होकर सब से अलग रहना पड़ता था। इस तथा और अनेक कठिनाइयों से बहुत से विदेशी विद्यार्थी वहाँ से छोड़कर चले जाते थे। गणित, भूगोल, वैद्यक आदि सभी विषयों के आचार्य वहाँ थे। बड़े बड़े पवित्र ग्रन्थों द्वारा भी शिक्षा दी जाती थी और भाषण तथा उपदेश के द्वारा भी। एक हजार विद्यार्थी वहाँ ऐसे थे जो बीस शास्त्रों और विषयों के ज्ञाता थे; पाँच सौ ऐसे विद्वान् थे जो तीस विषयों की शिक्षा दे सकते थे; दस (जिनमें से एक स्वयं युआनच्वांग भी था) पचास विषयों में पारंगत थे और केवल शीलभद्र एक ऐसा विद्वान् था जिसने समस्त विषयों का भली भाँति अध्ययन किया था।

बुद्ध की बारहवीं शताब्दी में युआनच्वांग के समय, बुद्धधर्म्म की ठीक वही दशा थी जो ईसा की बारहवीं शताब्दी में ईसाई धर्म्म की थी। बुद्ध के निर्वाण के थोड़े ही दिनों बाद उनके अनुयायियों में सिद्धान्त संबंधी बहुत कुछ मतभेद हो गया। ईसवी तीसरी शताब्दी में, अशोक के समय बौद्ध-धर्म्म में अट्ठारह प्रकार के मत मतान्तर हो गए थे। गौतम के धर्म्म का आदि और प्रधान लक्ष्य यह था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मनुष्य मोक्ष पा जाय और उसे पुनर्वार जन्म लेने की आवश्यकता न पड़े। पर धीरे धीरे उसमें अनेक प्रकार के परिवर्त्तन होने लगे। आरंभ में तो वे परिवर्त्तन उतने महत्त्व के नहीं थे; पर आगे चलकर उन्होंने भयंकर रूप धारण किया। बुद्ध का अष्टांग मार्ग ऐसा था जिससे जगत् की सत्ता विषयक बहुत सी बातों का समाधान हो जाता था। आरम्भ में जो मतभेद थे वे भारी नहीं थे। पर धीरे धीरे वे बढ़ते गये यहाँ तक कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों और भिन्न भिन्न धर्मग्रन्थों की सृष्टि हुई जिनमें से कोई तो शून्यवाद और कोई नास्तिकवाद की ओर बढ़ गये और कोई आत्मसत्ता लेकर कहने लगे कि विश्व के जो अनन्त विधान दिखाई पड़ते हैं वे भावना की अभिव्यक्ति मात्र हैं।

भारतीय तत्त्वचिन्तकों ने बहुत पहले ऐसे ऐसे सिद्धान्तों की नीव डाल दी थी जिनके विचार में मनुष्य जाति सदा लगी रहेगी। जिस समय उन्होंने बाह्य जगत् और अन्तर्जगत् की मीमांसा की, वे एक ऐसी अद्वैतता तक पहुँचे जिसके अन्तर्गत मनुष्य तथा विश्व सम्बन्धी समस्त भेद लीन दिखाई पड़ते थे। इस बात के बहुत से संकेत, गूढ़ दार्शनिक आभास, तथा आत्मा और शरीर सम्बन्धी स्थूल तर्कवितर्क पिछले वैदिक मंत्रों तथा उपनिषद् आदि में मिलते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में इस प्रकार के बहुत से तर्क वितर्क मिलते हैं जिनमें से बहुतेरे तो दुर्भाग्यवश ऐसे सांकेतिक रूप में हैं कि आजकल उनका समझना कठिन है। विवाद का प्रधान विषय था 'अहम्' और 'आत्मा'। गौतम के अनुसार अहंकार का अधिष्ठान यही था, और अहंकार ही समस्त क्लेशों और आवागमन का कारण था। अहंकार की निवृत्ति के लिये गौतम के अनुसार अहम् के भाव का निर्मूल होना आवश्यक था। बुद्ध के विचारों का सारांश यह था कि कोई वस्तु नित्य वा चिरस्थायी नहीं है, प्रत्येक वस्तु अखंड परिवर्त्तन क्रम के अन्तर्गत है। इस सिद्धान्त को मनुष्य पक्ष में घटाने से यह जान पड़ता है कि वह कई उपादानों के संयोग से उत्पन्न हुआ है और जब संयोग करनेवाला भौतिक बन्धन लुप्त हो जाता है तब मनुष्य भी नहीं रह जाता। बुद्ध का पूछना है कि क्या यह शरीर अर्थात् रक्त, मांस, चर्म आदि ही अहम् है? अथवा इंद्रिय ज्ञान, अंतर्बोध, गुणकर्म, वा चेतना का नाम अहम् है? इनमें से कोई परिवर्तन से मुक्त नहीं है, सभी परिवर्तनशील हैं। बुद्ध का एक शिष्य बड़े कठिन तर्क के साथ कहता है कि मनुष्य का जीवन अत्यन्त अल्प है, उसकी अवधि उतनी ही है जितनी एक भावना की। जिस प्रकार घूमता हुआ चक्र वा पहिया एक ही बिंदु पर घूमता है और एक ही बिंदु पर ठहरता है उसी प्रकार प्राणी का जीवन की अवधि उतनी ही है जितनी एक भावना की। जैसे ही वह भावना मिटी कि अस्तित्व भी मिटा समझिए।

"भावना के विगत क्षण की, सत्ता थी पर अब नहीं है, और न आगे रहेगी।"

"भावना के भावी क्षण की सत्ता होगी, पर पहले नहीं थी और न अभी है"

"भावना के वर्त्तमान् क्षण की सत्ता है, पर पहले नहीं थी, और न आगे रहेगी।"

शून्यवादी अध्यात्म इसके आगे नहीं जाता। पीछे यह शून्यवाद बढ़ते बढ़ते यहाँ तक बढ़ा कि उसने भूतों से परे ही यथार्थ सत्ता मानी तथा समस्त भौतिक ब्रह्मांड को असार और मिथ्या बतला कर इसने भावना ही की सत्ता स्वीकार की। पर सारा ब्रह्मांड और उसके अधिवासी अखंड परिवर्त्तन-क्रम के अधीन बताए गए थे और बुद्ध के उपदेश का पहला सिद्धान्त यह था कि कोई वस्तु स्थायी नहीं—क्या संसार, क्या कारणकार्य, क्या आत्मा और क्या ईश्वर। शून्यवादियों के विचार बुद्ध के उस शील-सम्बन्धी अष्टांग मार्ग के क्षेत्र से बाहर थे जो उनके सारे उपदेशों का तत्त्व था। वे अपने समय के जिज्ञासुओं के ऐसे प्रश्नों को वे बराबर टालते रहे कि क्या यह ब्रह्मांड अनंत और नित्य है, अथवा दिकाल द्वारा बद्ध है। ऐसे तर्क वितर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ई लाभ नहीं, उनसे न तो अन्तःकरण की ...ता और शांति प्राप्त हो सकती है और न ...र्थ ज्ञान और सात्विक आचरण की वृद्धि हो ...ती है; हाँ अहंकार, वा दुराग्रह अवश्य बढ़ ...ता है। बुद्ध ने एक दृष्टान्त द्वारा ऐसे कुतर्कियों ...उपमा उन अंधों से दी जो सब के सब हाथी ...ले गए थे। किसी ने सिर टटोला, किसी ने पेट, ...ने सूँड़, किसी ने पैर और किसी ने पूँछ। ...उन सबों से पूछा गया कि हाथी कैसा होता ...उन सब ने भिन्न भिन्न आकृतियाँ बतलाईं। जिसने ...टटोला था उसने कहा हाथी घड़े की तरह ...ता है, जिसने सूँड़ टटोली थी उसने कहा हल के ...की तरह होता है, जिसने पैर टटोले थे उसने ...खंभे की तरह होता है, जिसने दुम टटोली थी ...ने कहा नहीं, झाड़ू की तरह होता है। इस ...र वे एक दूसरे से झगड़ने लगे कि हाथी ऐसा ...ऐसा होता है। बुद्ध ने कहा ऐसे लोग एकांग- ...(एकांगदस्सिनो) होते हैं। विवाद करनेवालों ...चित्त-वृत्ति ऐसी ही होती है। किसी धर्मो- ...क ने इस प्रकार की चित्त-वृत्ति के अनर्थ इतनी ...ता से नहीं पहचाने थे जितनी सूक्ष्मता से बुद्ध- ...चाने थे। इस चित्त-वृत्ति से उस मैत्री का ...विरोध है जिसे बुद्ध ने सब प्राणियों के प्रति ...ठहराया था।

...सका फल भी विलक्षण हुआ। जिस प्रकार ...दुराग्रह-पूर्ण धर्म का स्थापन असंभव था ...कार प्रचलित आचार व्यवहार में बाधा ...भी असंभव था। बहुदेवोपासना का धर्म ...सिद्धान्तों को बहुत जल्दी ग्रहण कर सकता ...उनसे किसी प्रकार के राजनैतिक विप्लव ...शंका न हो। रोमन लोग क्रिस्तानों को इस ...जाने लगे कि उन्होंने राजा की धूप दीप से ...कर दी थी। ब्राह्मणों के धर्म में किसी ...राजनैतिक दबाव नहीं था इससे उसके ...बहुत से देवी देवता और अनेक प्रकार के ...आ गए। बौद्ध धर्म ने अपने पूर्ववर्ती ब्राह्मण-धर्म की बहुत कुछ उदारता ली; इसी से प्रारंभिक दशा में उसमें परस्पर सम्मान और स्नेह का भाव बहुत था। आरंभ में बुद्ध के आचरण के आदर्श द्वारा भी यह भाव बहुत दिनों तक बना था। वे आतुर संन्यास के विरोधी थे, लोगों को उत्कंठित देख उन्हें चटपट शिष्य बनाते जाना उन्हें इष्ट न था। वे कहते थे कि पहले उन्हें अच्छी तरह विचार कर लेने दो। जब तक वे अच्छी तरह परिपक्व न हो जायँ तब तक उनसे किसी प्रकार की प्रतिज्ञा लेना ठीक नहीं है। यह उदार भाव अशोक के शिलालेखों में बड़े ओज के साथ प्रकट किया गया है। इन शिलालेखों में महाराज अशोक ने कहा है कि वे सब सम्प्रदाय के लोगों का दान आदि द्वारा समान आदर करते थे और उन्हें सब सम्प्रदायों के सार तत्त्व की वृद्धि की परम उत्कंठा थी। वे चाहते थे कि लोग वचन का प्रतिबन्ध रक्खें और अपने सम्प्रदाय का आदर करने के लिए दूसरे सम्प्रदाय का निरादर न करें। जो अपने सम्प्रदाय में अनुरक्त होकर दूसरे सम्प्रदायों का अनादर करते हुए उसका आदर करता है और समझता है कि वह अपने धर्म का महत्त्व बढ़ा रहा है वह वास्तव में उसका महत्त्व घटाता है।"

इसके बाद एक ऐसा समय आया जब बौद्ध धर्म को एक कठिन परीक्षा में पड़ना पड़ा। बौद्धों के सामने अब बड़े बड़े गूढ़ प्रश्न फिर आने लगे। पहले खेवे के बौद्ध इस शंका के फेर में नहीं पड़ते थे कि भगवान् तथागत की सत्ता निर्वाण के उपरान्त भी बनी रहेगी या नहीं, वे अपने सहज भाव से उनकी स्मृति का आराधन करते थे। उनके जन्म-दिवस तथा जीवन की और और घटनाओं के उपलक्ष्य में बड़े बड़े त्योहार मनाए जाते थे। बुद्ध की अमर आत्मा के साक्षात्कार की वासना नहीं थी। धार्मिकों को अपनी प्रार्थना भगवान् तक पहुँचाने की फिक्र नहीं थी। पर धीरे धीरे एक बड़ा परिवर्त्तन उपस्थित होने लगा। बड़े बड़े गूढ़ प्रश्नों की मीमांसा की उत्कंठा दब नहीं सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धों को भी ब्राह्मणों के गूढ़ दार्शनिक विषयों का आश्रय लेना पड़ा। द्रव्य, कार्य्य कारण, और आत्मा आदि विषय जिन्हें बुद्ध ने छोड़ दिया था बौद्ध विचार-क्षेत्र के अन्तर्गत आ ही गए और उन्होंने बौद्ध धर्म का कायापलट कर दिया। ब्राह्मणों के संसर्ग के प्रभाव से बौद्ध लोग नए नए विचारों की ओर अग्रसर हुए जिनसे उनके मानव जीवन की समीक्षा का प्रकार ही बदल गया। ठीक यही दशा सीधे सादे ईसाई धर्म की हुई थी जिसने यूनानियों की गूढ़ विचार-परम्परा से मिल कर एक नवीन दार्शनिक रूप प्राप्त किया और अपने प्रवर्त्तक की भावना यूनानी दर्शन की परिभाषाओं द्वारा की।

इस नवीन सम्प्रदाय के बौद्ध जगत् को कर्मानुसार एक अनन्त और विभु आत्मा का कार्य्य-स्वरूप मानने लगे। होते होते बुद्ध और बोधिसत्त्व ऐसी ही आत्मा माने जाने लगे। ये उस आत्म-भू के मानवाभिव्यक्ति माने जाने लगे जो मनुष्यों और देवताओं के कल्याण के लिए और सत्य का शुभ बोध कराने के लिए समय समय पर धरातल पर अवतीर्ण होते हैं। यह वास्तव में ईश्वरवादी बौद्ध-धर्म था जिसमें अवतारवाद स्वीकार किया गया था। इस नए सम्प्रदाय में बुद्ध की भावना ही कुछ और हो गई; उनके शील और शुद्धाचार-सम्बन्धी उपदेश ईश्वरीय आज्ञा के रूप में समझे जाने लगे, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, दयामय, भवभयहारी बुद्ध भगवान् की आराधना और स्तुति का विधान हुआ। बौद्धों के उद्देश्य में भी बड़ा भारी परिवर्त्तन उपस्थित हुआ। पूर्वकालीन बौद्ध धर्मानुसार जो अर्हत निर्वाण प्राप्त हो जाता था वह केवल अपने को मुक्त कर लेता था। उसके उपदेश से औरों को लाभ पहुँचता था पर वह स्वयं विलुप्त हो जाता था, उसका कोई अंश कहीं नहीं रह जाता था। नए सम्प्रदाय के बौद्धों को यह बात स्वार्थमय प्रतीत हुई। अब धार्मिकों का लक्ष्य यह हुआ कि वे आगे होनेवाले बुद्धों के अनुगामी हों और भवमुक्ति के बृहद्विधान में योग दें। इन दोनों सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की तुलना दो रथों वा यानों से की गई है जिनमें एक तो ऐसा है जो भवसागर की लंबी यात्रा में एक ही आदमी को बिठा कर ले जा सकता है और दूसरा ऐसा है जो बहुतों को एक साथ ले जा सकता है। इसी से पुराने सम्प्रदाय का नाम पड़ा हीनयान और नए सम्प्रदाय का महायान। इस नए सम्प्रदाय के बहुत से नए नए धर्म ग्रंथ हुए, जिनमें से किसी किसी में गूढ़ दार्शनिक तत्त्व भरे हैं। इसके द्वारा एक नए रूप की भक्ति प्रकट हुई और नवीन विधि की पूजा आरंभ हुई। अब बौद्ध धर्म की दो शाखाएँ हो गईं एक शाखा तो इस विश्वविधान की ओट में एक अनंत चेतन आत्मा मानती है जिसके साथ शिष्यगण विश्वास और शान्ति-पूर्वक योग दे सकते हैं और दूसरी सृष्टि ब्रह्म आदि के विषय में कोई मत नहीं प्रकट करती।

ये दोनों सम्प्रदाय भिन्न भिन्न स्थानों में, कहीं एक दूसरे के साथ मिले हुए और कहीं अलग अलग रहते थे। युआनच्वांग ने अपने यात्रा-विवरण में स्थानों का उल्लेख करते हुए वहाँ इन दोनों सम्प्रदायों के अनुयायियों की संख्या का ठीक ठीक हिसाब अवश्य बताया है। कहीं तो राज्य का राज्य एक ही सम्प्रदाय का अनुयायी था और कहीं दोनों सम्प्रदाय साथ साथ रहते थे। मगध के राज्य में, जिसमें कई बौद्ध तीर्थ तथा नालन्द का प्रसिद्ध विद्यापीठ था, दोनों सम्प्रदाय के लोग मिले जुले रहते थे। नालन्द के विद्यालय में भी यही हाल था। ईचिंग आदि यात्री यह बात कह गए हैं। चीनियों में भी दोनों सम्प्रदाय के बौद्ध थे इससे उनके धर्मग्रंथों के संग्रह में दोनों के ग्रंथ मिले जुले हैं। युआन-च्वांग महायान का अनुयायी था और ईचिंग हीनयान का। ईचिंग ने लिखा है कि नालन्द के अठारहों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि विद्यमान थे। उनके धर्म-ग्रंथ जुदे जुदे थे, उनके आचार भिन्न भिन्न थे, कोई कषाय वस्त्र धारण के नियम आदि का पालन करते थे, कोई बुद्धों और बोधिसत्वों की आराधना और स्तुति करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ एक बड़े सुन्दर ढंग से चलती हुई धर्म-शिक्षा का चित्र दिखाई पड़ता था। एक धर्मप्रवर्त्तक के नाम पर परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तोंवाले कई भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के लोग एक स्थान पर बैठकर पठन-पाठन करते थे। उस विद्यालय में प्रवेश के लिए किसी सम्प्रदाय-विशेष की दीक्षा की आवश्यकता न थी। केवल बुद्ध, धर्म्म और संघ को स्वीकार करना होता था। आचार्य्यों के पद वा उपाधि आदि के संबंध में किसी प्रकार का साम्प्रदायिक पक्षपात नहीं था। विद्यालय का कुलपति वा प्रधान योग्यतानुसार ही चुना जाता था और वह निष्पक्ष भाव से अपने अधिकार का उपयोग करता था। वहाँ की एकता का तत्त्व यही था कि सब का एक ही प्रकार का जीवन था, सब का शीलादर्श एक था, सब में मनुष्य के उद्धार का वह भाव था जो उस गौतम-बुद्ध द्वारा प्रकट हुआ जो देवों और मानवों के कल्याण के निमित्त राजपाट छोड़ विरक्त हो गए। इसी तत्त्व के बल से बौद्ध धर्म्मोपदेशक नाना कष्ट झेलकर युआनच्वांग से पूर्वकाल में मध्य एशिया भर में "समस्त संसार को दीक्षित करने की कामना से, विचरते थे।" सिंहल के एक इतिहास में बौद्ध धर्म की विजय के विवरण में कहा गया है—"जिससे कि सारे जगत् का कल्याण है उससे कौन विमुख रह सकता है?"। इस सिद्धान्त का बौद्ध धर्म ने बराबर पालन किया। उसने साम्प्रदायिक विश्वास को संघ की कसौटी पर कभी नहीं रक्खा। उसके अन्तर अवान्तर भेद चाहे कितने ही रहे हों पर संघ में होनेवाले शिष्य से केवल इतना ही पूछा जाता था कि "तुम्हारी वृत्ति शुद्ध है" यह नहीं पूछा जाता था कि तुम्हें "अमुक बात पर विश्वास है"। बौद्धों ने कभी न तो अपने भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में से किसी के सम्बन्ध में और न ब्राह्मणों, जैनों, आदि भिन्न धर्मावलंबियों तथा इन सब से भूतवादियों और नास्तिकों आदि के सम्बन्ध में दुहाई दी कि इनसे धर्म के नाश की आशंका है इनका विध्वंस करो।

ईसा की सातवीं शताब्दी में बौद्ध-शिक्षा की यही स्थिति थी। उस समय के ब्राह्मण-धर्मानुयायी महाकवि बाण के हर्षचरित में इसका जो चित्र दिया गया है उसे देखिए। कवि ने एक स्थान पर महाराज हर्षवर्द्धन का विंध्य पर दल-बल सहित एक बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र के दर्शन को जाना वर्णन किया है जो पहले ब्राह्मण थे पर पीछे शाक्य धर्मानुयायी हो गए थे। राजा रथ से उतर अनुचरों को पीछे छोड़ कुटी की ओर बढ़ा। भिन्न भिन्न प्रदेशों से आए हुए भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के बौद्ध वहाँ एकत्र थे जिनमें से कुछ चबूतरों पर कुछ लताओं के कुँज में, कुछ पेड़ों की छाया में जड़ों पर बैठे थे। उनमें श्वेतांबर जैन और वासुदेवोपासक वैष्णव थे, कपिल के मतानुयायी लोकायतिक (भूतवादी नास्तिक), वेदांती, कणाद के अनुगामी, ईश्वर को कर्त्ता माननेवाले नैयायिक, स्मृति पुराण के वक्ता, आदि सभी थे जो अपने अपने सिद्धान्तों का अनुसरण, चिंतन, उनपर शंका समाधान आदि बड़े सुहृद्भाव से करते थे। बाण का यह वर्णन व्यंगपूर्ण हो सकता है क्यों कि आगे चलकर उसने लिखा है कि वहाँ आचार्य्य के चरणों के पास सिंह बैठे थे, ऐसे ऐसे व्याघ्र थे जो बौद्ध उपदेशों के प्रभाव से निरामिष हो गए थे, ऐसे बंदर थे जो स्तूप का पूजा-विधान करते थे, और ऐसे भक्त तोते थे जो बसुबंध, (एक बौद्ध कोशकार) के कोश की उद्धरणी करते थे। पर कुछ आधार था तब तो यह व्यंग्य किया गया। अरण्यों की यह शिक्षा-पद्धति बहुत प्राचीन काल की है। उसमें ऐसे आडंबर नहीं थे जिनमें बहुत से द्रव्य की आवश्यकता हो और स्वच्छंदता में बाधा पड़े। किसी न किसी दिन यूरोप के विद्यापीठों को भी उस सहस्रों वर्ष पूर्व की विद्यापद्धति की ओर ध्यान देना पड़ेगा। उससे पूर्वीय देशों के बीच इस सिद्धान्त का समर्थन पाया जाता है कि सत्य की जिज्ञासा के लिए स्वतन्त्रता अपेक्षित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैवन्द और कलम।

(लेखक—श्रीयुत गंगाशङ्कर पंचोली, हेड मास्टर हाई स्कूल, भरतपुर।)

प्रस्तावना।

भारतवर्ष प्रायः कृषकों का देश है, ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। पुरातन काल से देशवासियों के एक बड़े भाग का काम कृषि रहा है और इसी एक मुख्य व्यवसाय पर दूसरे व्यवसाय करनेवाले निर्भर रहते चले आए हैं। इस समय भी देखा जाय तो कृषि कर्म की आश्रित आधे से अधिक प्रजा है। आज कल जैसे और और धंधों तथा व्यापारों की वृद्धि होती दिखाई देती है वैसे ही कृषि कर्म को भी विशेष उत्तेजना देने तथा उसको अधिक लाभप्रद करने की ओर भी राजा प्रजा दोनों का ध्यान गया है। सरकार की ओर से जहाँ तहाँ सरकारी 'फार्म' खोले गए हैं जहाँ पर नूतन आविष्कार किये हुए औजारों से कृषि कर्म विषयक अनेक उपयोगी क्रियाएँ करके दिखाई जाती हैं और अनेक प्रकार के फल फूल तथा धान्यादि में भी बहुत तरह के आविष्कार किए जाते हैं। इन 'फार्मों' की परिपाटी पर यदि हमारे देश के कृषक कार्य्य करने लगें तो आशा है कि वे स्वयं अपने खेतों और वाटिकाओं से मनमानी जाति और गुण के अन्न तथा फल आदि उत्पन्न कर सकते हैं। सरकार की ओर से विश्वविद्यालयों की प्राथमिक परीक्षाओं में और विषयों के संग कृषि विद्या भी रक्खी गई है।

विद्यार्थियों को जब यह बात मालूम हुई कि वनस्पति में भी पुं० स्त्री० भेद है और उनकी एक जाति के साथ उसी भेद की दूसरी वनस्पति का मेल हो कर तीसरी संकर जाति का फल देनेवाली वनस्पति उत्पन्न की जा सकती है तब उनको इस क्रिया के जानने की उत्कण्ठा हुई जिसको पूर्ण करने तथा वनस्पति शास्त्र में वर्णित अनेक प्रकार के फल फूल उत्पन्न कर लेने की क्रिया को उन विद्यार्थियों को जताने के हेतु यह छोटा निबंध संग्रह कर लिखा गया है।

हमारे देश के माली नारंगी आदि के वृक्षों में उसी जाति के जुदा जुदा स्थान के वृक्षों के 'पैवन्द' वा 'आँख' चढ़ा कर संतरे आदि अनेक प्रकार के फल और मामूली देशी आम के वृक्षों में मालदह लंगड़े आदि जाति के आमों की 'कलम' चढ़ाकर नये प्रकार वा स्वाद के आम उत्पन्न करते हैं। गुलाब आदि के फूलों के पौधों में दो भिन्न प्रकार के फूलवाले पौधों को पास पास रखकर मक्खियों द्वारा नये प्रकार आकार और सुगंधि के गुलाब के फूल उत्पन्न करते हैं। पर इनसे बढ़कर रीति पाश्चिमात्य विद्वानों ने खोज निकाली है जिसके द्वारा वे एक फूल के पौधे में मनमाने फूल देनेवाले पौधे ही उत्पन्न नहीं कर लेते वरन् उसी रीति से गेहूँ, जौ आदि कृषि के अनाज तथा रूई आदि में भी अनेक रूप रंग और गुण के अनाज आदि उत्पन्न कर दिखाते हैं। इन्हीं सब क्रियाओं को यहाँ पर कृषकों, मालियों तथा विद्यार्थियों के मनोरञ्जनार्थ थोड़े में लिखते हैं। आशा है कि वाचकवृन्द स्वयं अनुभव कर देखेंगे और अनुभव से जो ज्ञात हो वह कर्त्ता को सूचित करते रहेंगे तो उसके अनुसार इस निबन्ध को ठीक कर लिया जायगा।

प्रकरण १

संयोग।

परमात्मा की लीला बड़ी विचित्र है और उसकी कृति वनस्पति तथा पशु पक्षी आदि में एक सी दिखाई देती है। जीवधारियों में प्रायः देखा जाता है कि उनकी उत्पत्ति के लिये स्त्री पुरुष के रज वीर्य के संयोग की जरूरत पड़ती है। उसी प्रकार अनेक वनस्पतियों में भी संयोग की आवश्यकता होती है और प्रायः फूलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली वनस्पतियों में तो संयोग अवश्य ही होता है। मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों में स्त्री (मादा) और पुरुष (नर) के जुदा जुदा शरीर होते हैं पर फूल देनेवाली वनस्पतियों में ये दोनों अंग फूल में ही मिले जुले होते हैं।

प्रत्येक फूल में 'पुं० केसर' और 'स्त्री० केसर' होते हैं। किसी में ये दोनों एक ही फूल में होते हैं और किसी में जुदा जुदा फूलों में होते हैं। कभी ऐसा भी देखने में आता है कि दोनों के एक फूल में होने पर भी दूसरे फूल के 'पुं० केसर' की 'पराग' आने से ही 'संयोग' होता है। इस स्थान पर फूलों के अंगों की रचना के विषय में लिखना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह विषय वनस्पतिशास्त्र का है जिसको जुदा ही लिखने का विचार है। इस स्थान पर इतना ही दिखाना है कि फूलों में 'संयोग' किस प्रकार होता है।

फूल के बीच में गर्भाशय (Overy) होता है उसके भीतर 'कलल' (Ovule)* रहता है। 'गर्भाशय' से 'स्त्रीकेसर' (Pistel) निकलता है और वह ऊपर को चला जाता है। 'स्त्रीकेसर' के चारों ओर कई 'पुं० केसर' (Stamen) रहते हैं। 'स्त्री० केसर' का मुख (Stygma) खिला होता है और 'पुं० केसर' के सिरे पर दो बहुत छोटी 'कोथलियां' (Anthers) रहती हैं जो आपस में चिपटी रहती हैं। उनमें पीला 'पराग' (Pollen) भरा होता है जो फूल के पूरे खिलने पर कोथिलियों के फट जाने से बाहर निकल आता है। यह 'पराग' पीले रंग के महीन महीन रवे होते हैं।

'संयोग' होने के लिये जैसे स्त्रियों में रजोदर्शन का होना जरूरी है वैसे ही 'स्त्रोकेसर' में भी उस का 'मुख' फूल जाता है और उस पर लसदार तरी सी हो जाती है। जब इधर 'स्त्रीकेसर' का मुख फूले और उधर 'पुं० केसर' का 'पराग' उसके ऊपर पड़े तो उसी समय 'संयोग' होता है।

'पराग' का एक कण पानी में डालने से वह पानी सोखता है और फट जाता है; परन्तु वह कण थोड़ी खाँड़ मिले पानी में डालने से उसमें से बहुत महीन तार निकलता है। जब 'स्त्री० केसर' के मुख पर 'पराग' लगता है तब उसके कण से एक तार निकलता है और वह तार 'स्त्री० केसर' के भीतर भीतर नीचे 'गर्भाशय' तक पहुँचता है और वहाँ 'कलल' (Ovule) में मिल जाता है जो बीज की आकृति में बदलता जाता है और फिर पक हो जाता है। इस प्रकार पका हुआ 'बीज' ही उस 'संयोग' से उत्पन्न संन्तान है जिससे उस पेड़ की नसल आगे बढ़ती है।

फूलों में यह 'संयोग' क्रिया स्वाभाविक होती रहती है और बहुत से फूलों में पवन और मधुमक्खी वा कीट द्वारा होती है। जब 'पुं० केसर' पर की 'रेत-कोथली' फट कर उसमें से 'पराग' निकल आता है तब महीन रवे सा होने के कारण फूल की पखड़ियों के 'पुं० केसरों' पर ही पड़ा रहता है। जब हवा चलती है तब उससे 'पराग' उड़ता है और 'स्त्री० केसर' के मुख अर्थात् 'रजपात्र' पर गिरता है। 'रजपात्र' के चिकना और लसीला होने पर 'रज' और 'पराग' का संयोग हो जाता है। किसी किसी वृक्ष के फूल में ऐसा भी देखने में आता है कि 'पराग' उत्पन्न कर 'पुं० केसर' सिकुड़ जाता है और 'स्त्री० केसर' पकने पर स्वयं पराग को ले लेता है। मधुमक्खी वा कीटपतंग मकरंद तथा पुष्प के रूप रंग से आकर्षित होकर पुष्प रस पीने के लिये उसके ऊपर आ बैठते हैं और पुष्प में का 'पराग' उनके शरीर और पंखों से लग जाता है और फिर जब वे एक फूल से उड़कर दूसरे पर बैठते हैं तो उनके शरीर से लगा 'पराग' 'स्त्री० केसर' के 'रजपात्र' से लग जाता है और 'संयोग' हो जाता है जिसका फल बीज की उत्पत्ति है। वृक्षों में बीज की वृद्धि के संग जो वस्तु गूदे के रूप में उसके चारों ओर उत्पन्न होती है वही फल भाग है। यह फल मनुष्यों के खाने और बीज वृक्ष

* इन सब अंगों को चित्र नं० १ में देखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लता आदि की सन्तति उत्पन्न करने के काम में आता है।

ऊपर लिखी संयोग क्रिया के पढ़ने से इतना अवश्य जानने में आता है कि जैसे जीवधारियों में सन्तति होती है उसी प्रकार वनस्पति सृष्टि में भी बीजोत्पत्ति होती है। अब आगे यह दिखाया जाता है कि जिस प्रकार मनुष्यों में द्वीप द्वीपान्तरों के निवासियों, जातियों और वर्णों में आपस के संयोग से अनेक गुण और लक्षणवाली मिश्र जातियाँ उत्पन्न हो गई हैं उसी प्रकार वनस्पति संसार में भी देश देशान्तर के भिन्न भिन्न प्रकार के फूलों के संयोग से विचित्र फल उत्पन्न करनेवाले अनेक बीज पैदा किये जा सकते हैं। पूर्व में दिखाया जा चुका है कि 'पराग' और 'रज' का 'संयोग' स्वाभाविक ही स्वतः वा पवन और कीट द्वारा होता रहता है; परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य चाहे तो अनाज वा फल तथा पुष्प वृक्षों में अपने हाथ से फूलों में संयोग द्वारा अनेक प्रकार के फल फूल आदि उत्पन्न कर सकता है। परन्तु इसमें नियम यह है कि वे फूल जिनमें मिश्र बीज उत्पन्न कराना अभीष्ट है एक ही जाति के वृक्ष के हों; अर्थात् जो गेहूँ की नसल सुधारना हो तो गेहूँ की जाति के दो फूलों में 'संयोग' कराना चाहिये। जो बढ़िया सूतवाली रूई उत्पन्न करना हो तो देशी और मिश्र देश की कपास के फूलों में आपस में संयोग कराया जाय। जो एक जाति के गेहूँ के फूल में कपास के फूल का संयोग होगा तो उससे परिणाम कुछ भी न होगा। इसलिये आगे यह बतलाया जायगा कि किसान तथा माली अपनी फसलों को अच्छी और लाभ देनेवाली उत्पन्न करना चाहें तो वे खुद इच्छित फल वा फसल देनेवाले वृक्षों के उत्पादक बीज किस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं। कपास और गेहूँ के फूलों के चित्रों द्वारा फूलों में 'संयोग' करने की रीति का वर्णन किया जाता है।

चित्र नं० २ में कपास का फूल और चित्र नं० ३ में गेहूँ का फूल दिखाया गया है। फूल छोटे होने के कारण इनके अंगों की पहचान सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा की जाती है और 'संयोग' करने के समय यन्त्र की सहायता से ही काम करना चाहिये। इस स्थान पर जो चित्र दिए गए हैं वे बड़े दिए गए हैं जिसमें फूलों के अंग ठीक समझ में आ जावें।

प्रथम यह निश्चय होना आवश्यक है कि अपने खेत वा बगीचे में जो वृक्ष हैं उनके बीजों को सुधारने के लिये कौन सी अवान्तर जाति के वृक्ष का संयोग कराना है। यदि देशी रूई के पौधे से ऐसे बीज उत्पन्न करना चाहते हैं कि जिनसे उपजे पौधों में मिश्र देश की कपास जैसे सूतवाली कपास उत्पन्न हो तो ऐसी अवस्था में मिश्रदेश की कपास का ऐसा वृक्ष छाँट लो कि जिसमें फूल पूरा पूरा खिला हो और 'पुंकेसर' से 'पराग' निकल आया हो। क्योंकि यही 'पराग' देसी कपास की 'स्त्रीकेसर' के 'रजपात्र' पर चढ़ाना है। अब अपने देसी कपास के पौधे के ऐसे फूल छाँटो कि जो अभी पूरे खिले न हों और जिनका 'पराग' बाहर न आया हो। यदि एक वृक्ष पर ऐसे कई फूल हों तो दो चार को छोड़ शेष को नोच डालने से उन दो चार फूलों की वृद्धि अधिक होगी। फूल की कली खोलकर बारीक चिमटी से इस प्रकार 'पुंकेसर' को नोच डालो कि जिससे न तो 'रेतथैली' फट कर 'पराग' निकल आवे और न 'स्त्रीकेसर' और 'रजपात्र' की कोई हानि हो। 'पुंकेसर' के निकाल लेने पर उस फूल के ऊपर कागज की थैली चढ़ाओ। इससे 'स्त्रीकेसर' के मुख पर और फूलों का 'पराग' न गिरने पावेगा। जब 'स्त्रीकेसर' पक जाय और उसके मुख पर चिकना लसदार पानी सा मालूम हो तो उस समय जिस वृक्ष के फूल के 'पराग' से संयोग कराना अभीष्ट हो उस फूल के पराग को रंग भरने के छोटे ब्रुश वा महीन चिमटी से उठाकर 'स्त्रीकेसर' के मुख पर छिड़को वा लगाओ। यह संयोग इस रीति से हो— जिस 'पुंकेसर' को लेना हो वह पकने पर हो या उसका 'पराग' निकलने लगा हो। ऐसे केसर को चिमटी से बीन लो और उसके सिरे की 'रेतथैली' को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रख कर थोड़ा दबाओ। इससे उसमें का 'पराग' निकल आवेगा। परागको तसवीरों में रंग भरने के बारीक ब्रुश वा कलम से 'स्त्रीकेसर' के मुख 'रजपात्र' पर लगाओ और फिर उस फूल को कागज़ की थैली में बन्द कर दो। यह कोथली उस समय तक बंधी रहनी चाहिये जब तक 'गर्भाशय' के भीतर बीज का बढ़ना प्रारम्भ न हो। जिस फूल का 'पुंकेसर' काम में लाना हो उसको 'पराग' के निकलने से पूर्व ही कागज की थैली में बंद रखने से उसका 'पराग' और वृक्षों के 'पराग' के मेल से बचा रहता है और फिर संयोग से जो बीज उत्पन्न होता है वह 'पुंकेसर' वाले वृक्ष के गुणवाला होता है। पर यदि 'पराग' खुला रहे और वायु, कीट पतंग आदि के कारण 'पराग' में मेल हो जाय तो बीज में भी दोनों 'परागों' का मेल हो जाना सम्भव है।

इस 'संयोग' क्रिया में यह बहुत आवश्यक है कि 'स्त्रीकेसर' का मुख चिकना हो गया हो। परन्तु कभी भी संयोग आ जाता है कि (१) 'स्त्रीकेसर' तो पक जाता है परन्तु 'पुंकेसर' जिसका 'संयोग' कराना है नहीं खिलता और 'पराग' नहीं निकलता (२) 'पुंकेसर' पक जाता है पर 'स्त्रीकेसर' के मुख 'रजपात्र' में लसी और चिकनाहट नहीं आती। पहिली दशा में जब 'पुंकेसर' कच्चा ही है तो 'संयोग' क्रिया नहीं हो सकती; परन्तु यदि पकने और खिलने पर ही हो तो ऊपर लिखी रीति से 'संयोग' कराया जा सकता है। द्वितीय अवस्था में 'स्त्रीकेसर' के पकने में देर होती है पर 'पुंकेसर' से 'पराग' निकलने लगता है; इस दशा में 'पुंकेसर' वाले फूल को तोड़कर एक पानी के गिलास में तैरता रख ऊपर से काँच का गिलास ढक देते हैं। जब 'स्त्रीकेसर' 'संयोग' के योग्य हो जाता है उस समय उस फूल में से 'पराग' लेकर 'स्त्रीकेसर' के मुख पर चढ़ाते हैं। ऊपर लिखी रीति से देसी रूई के वृक्ष अर्थात् देसी वृक्ष में जो फल फूल तथा बीज लगेंगे वे उसी वृक्ष के फूल फल या बीज से जुदा ही उत्पन्न और जिस वृक्ष के 'पुंकेसर' का 'पराग' चढ़ाया है उसके गुणवाले होंगे। देशी कपास के संग 'मिस्री' कपास का 'संयोग' करने से 'मिस्रजाति' की कपास होगी और वह रूप रंग तथा सूत और उपज में 'मिस्री कपास' से मिलती होगी। यदि 'संयोग' से उत्पन्न बीज को बोकर जो वृक्ष हो उसके फूल के 'स्त्रीकेसर' का 'मिश्री' कपास के फूल के 'पराग' से फिर पूर्ववत् 'संयोग' कराया जाय तो उससे उत्पन्न बीज में मिश्रीकपास के और भी विशेष गुण दिखाई देंगे। यह क्रिया कई वर्षों तक करते रहने से देसी वृक्ष का बीज एक दिन 'मिस्री कपास' का ही बीज हो जाना सम्भव है। इतना ही नहीं वरन् 'मिस्री कपास' से भी बढ़ जाना सम्भव है। वनस्पतियों के इस 'संयोग' के फल से प्राप्त अनुभव का समर्थन हमारे देश की जाति व्यवस्था से मिलता मालूम होता है। हमारे पूर्वज महर्षि लिख गये हैं कि—

> जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेपिवा ।
> व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥

इसका तात्पर्य यह है कि उच्च जाति के पुरुष से हीन जाति की स्त्री से जो कन्या हो वह यदि पुनः उसी उच्च जाति के पुरुष को विवाहे और फिर उस की सन्तान उसी उच्चजाति के पुरुष से 'संयोग' करे तो ऐसे संयोग से पाँचवीं वा सातवीं पीढ़ी में जो सन्तान होगी वह उसी शुद्ध उच्चवर्ण अर्थात् सुधरी जाति की होगी। इसी सिद्धान्त की छाया पर विदेशीय शिक्षित कृषकों तथा मालियों ने एक जाति के अन्न वा फल की अनेक जातियाँ उत्पन्न कर दिखाई हैं। हिन्दुस्तान के सरकारी फारमों में भी 'संयोग' क्रिया से अनेक प्रकार की रूई उत्पन्न कर दिखाई गई हैं। किसी में लंबा तार होता है; कोई ऊन की आभा की बनाई गई है और किसी वृक्ष से रेशम की सी जाति की रूई हुई है। गेहूँ की खेती में भी 'संयोग क्रिया' से विचित्र फल प्राप्त किए गए हैं। एक जाति का गेहूँ ऐसा पैदा किया गया है कि जिससे सूजी बहुत बढ़िया प्राप्त हो सकती है; दूसरी जाति से, मैदा तीसरी से दलिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि । अनेक जाति के गेहूं उत्पन्न किए जा चुके हैं । यदि देश के राजा महाराज ज़मीदार और कृषक खेती के सुधार की ओर ध्यान दें तो यह देश, जहाँ की प्रजा का बड़ा भाग कृषि पर ही गुजारा करता है और भी आगे बढ़ चले और गई हुई सम्पत्ति पुनः प्राप्त कर ले ।

यहाँ तक फूलों में के 'पुंकेसर' और 'स्त्रीकेसर' के संयोग से एक नई 'मिश्र जाति' का बीज उत्पन्न कर भिन्न प्रकार की फल-उत्पत्ति दिखाई गई है । यह 'संयोग' रीति उन्हीं वनस्पतियों में विशेष उपयोगी है जो एक वा दो वर्ष की आयु की होती हैं, पर जिनके उगने, फूलने और फलने में कई वर्ष लगते हैं उनके लिए उपयोगी नहीं; क्योंकि 'मिश्र जाति' का बीज बोने और उससे फल प्राप्त करने में कई वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । यदि नारंगी के फूलों में नागपुरी संतरे का 'संयोग' कराया जाय तो प्रथम तो नये बीज के बनने में समय लगेगा और फिर उस बीज से उत्पन्न वृक्ष से फल लेने में कम से कम सात आठ वर्ष का समय लगेगा; तब जाकर यह ज्ञात होगा कि नये फल उत्पन्न करने में क्या सफलता हुई । इस हेतु बड़े फल-वृक्ष, आम, नारंगी, सेब आदि नए नए प्रकार के रूप रंग और स्वाद के बनाने के लिये 'पैवन्द' तथा 'कलम' की रीतियां सुलभ और लाभदायक हैं । इन क्रियाओं से 'मिश्र' जाति उत्पन्न करने की रीति आगे लिखी जाती है ।

प्रकरण २

पैवन्द ।

फल-वृक्षों के फलों में सुधार कर उनमें मिठास अधिक करने, बीज-संख्या कम करने, गूदा वा खाद्य पदार्थ बढ़ाने आदि के लिये जो मिश्रजाति बनानी पड़ती है उसकी क्रिया में 'पैवन्द' चढ़ाने की रीति मुख्य है । यह रीति नींबू-नारंगी की जाति के फल-वृक्षों और गुलाब की जाति के पुष्प-वृक्षों में प्रायः प्रयोग की जाती है । यह रीति इस प्रकार है ।

जब किसी बहुत बढ़िया फूल वा फल के वृक्ष का 'पैवन्द' किसी हलकी जाति के फूल फल के वृक्ष पर चढ़ाना अभीष्ट हो तो प्रथम 'पैवन्द' बनाने के लिये रोगरहित पुष्ट, सुन्दर और बढ़िया फल फूल देनेवाला वृक्ष पसन्द करना चाहिए और फिर उस पर की वह डाली छाँट लेनी चाहिए जिसकी 'आँख' अर्थात् पत्ते की बगल की 'कली' (कोश) बहुत उभड़ी और अच्छी दिखाई दे (चित्र नं० ४, 'प') । जब इस रीति से 'पैवन्द' काटने के लिये डाली पसन्द हो जाय तब उस पर के 'कोश' से अनुमान एक अंगुल ऊपर की ओर डाली में छुरी से आड़ा चीरा लगाया जाय और फिर 'कोश' के दोनों ओर नीचे तक चीरा लगावे कि जिससे डाली चित्र नं० ४ में दिये 'प' की आकृति को बन जाय और 'कोश' बीच में रहे । इस 'कोश' वाले 'पैवन्द' को डाली में से इतना गहरा काटे कि भीतर से काठ का थोड़ा सा भाग कट आवे। 'कोश' के साथ जो पत्ता लगा होता है उसको भी आधा काट देवे । 'पैवन्द' के साथ जो काठ का भाग कट कर आवे उसको छुरी से धीरे से काट डाले और 'पैवन्द' में, बाहर की छाल, उससे लगा हीर और भीतर की ओर मुलायम झिल्ली भर रहे । जब 'प' की सूरत का 'पैवन्द' तैयार हो जाय तो उसको मुँह में रख ले वा पानी के भीगे कपड़े में रख ले जिसमें वह सूखने न पाये । 'पैवन्द' के भीतरी भाग में हाथ आदि न लगना चाहिए ।

जब ऊपर की रीति से 'पैवन्द' तैयार हो चुके तब जिस वृक्ष पर उसे चढ़ाना हो उसके तने में धरती से आधे वा पौन हाथ के अनुमान ऊपर को छुरी से इतना चौड़ा चीरे कि जिसमें 'पैवन्द' (आकृति 'प') का सिरा आ सके और फिर उस आड़े चीरे के मध्य भाग से नीचे की ओर खड़ा सीधा चीरा 'पैवन्द' की लम्बाई का लगावे। यह चीरा भी उतना ही गहरा किया जावे जिसमें छाल और हीर कट कर आवे और फिर जो भाग छाल का काठ से चिपटा रह जावे उस को छुरी के बेंट से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...कर दे। इस काम के लिये छुरी अलग ही ...ती है। देखो आकृति 'च'। जब चित्र नं० ४ में ...हुई आकृति 'अ' के अनुसार तने में खाँच हो ...तब उसी समय मुख वा गीले कपड़े में से ...'पैवन्द' निकाल कर उस चिह्न में बैठा दे जिससे वह ...में छाल और भीतर के गर्भ तथा काठ के बीच ...आकृति 'क' के अनुसार बैठ जावे।

पैवन्द के चिह्न में ठीक बैठ जाने पर उस ...के ऊपर से केले के गाभे की छाल के रेशों ...बांध देने से (जैसा कि चित्र नं० ४ की आकृति ...में दिया है) तने के भीतर 'पैवन्द' .खूब चिपक ...जायगा और सरदी गरमी भीतर न जा सकेगी। 'पैवन्द' का तने के अन्दर की भीतरी छाल से सम्बन्ध ...जाने से उस पर का 'कोश' वा 'आँख' .खूब ...जाती है। जब 'पैवन्द' चढ़े हुए 'कोश' में से ...फूटने लगे उस समय 'पैवन्द' के ऊपर उस ...वा पौधे के सिरों को छुरी से काट लेवे और ...'पैवन्द' के सिवा जहाँ जहाँ 'कली' वा 'कोश' ...रित होता मालूम दे उन सब डालियों को काट ...जिससे और किसी स्थान पर 'कोश' फूट न ...और पौधे का सब जोर 'पैवन्द' को ही मिले। ...कि अच्छे फल और फूल उस समय ही मिल ...ते हैं जब 'पैवन्द' में का 'कोश' बढ़े और फिर ...गुणों से मिल कर 'हीररस' सारे पौधे में ...जाय। बिना इसके अभीष्ट सिद्धि नहीं हो ...ती।

प्रकरण ३

'कलम चढ़ाने' की रीति।

यह 'कलम' चढ़ाने की क्रिया केवल उन वृक्षों ...सकती है जिनमें अंकुर निकलने के समय ...प्रथम दिखाई देते हैं; ऐसे वृक्षों में आम ...मुख्य है। इस क्रिया के लिखने से पूर्व यह ...ना आवश्यक है कि 'कलम' चढ़ाने से क्यों ...जुदा वृक्ष आपस में मिल जाते हैं और ...वृक्ष के फल क्यों सुधर जाते हैं। आम के वृक्ष की एक डाली को छुरी से काट कर उसके कटे भाग को ध्यानपूर्वक और खुर्दबीन से देखने से ज्ञात होगा कि उसमें कई वृत्ताकार चिह्न जैसे कि चित्र नम्बर ५ आकृति २ में हैं दिखाई देंगे। डाल यदि कई वर्षों की पुरानी होगी तो बीच में मुलायम गर्भ होगा और उसके चारों ओर काठ होगा जिसकी कई परतें होंगी। इन काठ की परतों और बाहर की मोटी कड़ी छाल के मध्य में चिकनी लसदार स्याही लिये हरी परत होगी जिसको वृक्ष का 'हीर' कह सकते हैं। इसी को 'अन्तर छाल' भी कह सकते हैं। परन्तु असल में अन्तर छाल के भीतर वृक्ष का 'मेद वा रस' भी रहता है जो अन्तर छाल में होकर वृक्ष की जड़ से पत्तों की अनी तक पहुँचता रहता है। इस प्रकार यह 'अन्तर छाल' बड़े उपयोग की वस्तु है। दो वृक्षों की इस अन्तरछाल में जब योग उत्पन्न होता है उस समय एक दूसरे का 'रस' एक हो जाता है और जिस वृक्ष की 'कलम' लगाई गई है उस वृक्ष के गुण असली वृक्ष में उत्पन्न हो जाते हैं। जब दोनों वृक्षों की डाली का व्यास एकसा होता है और वे एक ही जाति के होते हैं तभी 'कलम' लगाई जा सकती है। 'कलम' चढ़ाने की क्रिया कई रीति की है उनमें कुछ नीचे लिखी जाती हैं।

प्रथम रीति।

आम की गुठली बोने से वृक्ष होता है। यदि मामूली आम के वृक्ष से उम्दा कलमी लँगड़े आदि जाति के फल लेने अभीष्ट हों तो एक बड़े कूँडे वा गमले में अपने आम की तीन चार गुठलियाँ वर्षा के आदि में बो दो और जब कातिक वा अगहन में वे पौधे कुछ बड़े हो जावें तो उनमें जो पौधा जोरदार जान पड़े उसको छोड़ औरों को उखाड़ लो इस आम के पौधेवाले गमले को वृक्ष की छाया में रक्खो। पौधा दो वर्ष का होने पर कलम चढ़ाने के योग्य हो जाता है। अब यह देखना चाहिये कि कौनसी श्रेष्ठ जाति के आम की 'कलम' चढ़ानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जिस वृक्ष की कलम चढ़ानी हो उसी ग्राम के वृक्ष के पास कुंडा वा गमला ले जाग्रो। जो ग्राम के वृक्ष की डाली इतनी नीची हो कि गमले के पौधे से भिड़ सके तो गमले को धरती पर ही रक्खो ग्रौर यदि डाली ऊँची हो तो गमले को बाँस वा लकड़ी की ग्राड़ वा मचान बना कर इतने ऊँचे पर रक्खो कि गमले का पौधा वृक्ष की नीरोग हरी भरी डाली से जोड़ा जा सके। प्रथम यह ध्यान रखना चाहिए कि गमले का पौधा ग्रौर वृक्ष की डाली एक सी मोटाई की हो ग्रौर फिर यह देखना चाहिए कि वे दोनों ग्रापस में बिना किसी ग्रड़चन के मिले रह सकते हैं या नहीं ग्रौर जब सब रीति से यह निश्चय हो जाय कि दोनों की डालियाँ सुगमता से मिली रह सकती हैं तो फिर 'कलम' चढ़ाने की कारखाई करनी चाहिए।

'कलम' चढ़ाने की रीति चित्रद्वारा ग्रच्छी प्रकार समझाई जा सकती है। इस हेतु चित्र नं० ५ ग्राकृति १ को देखो। ग्राकृति में बाईं ग्रोर 'ग' गमला है ग्रौर दाहिनी ग्रोर 'व' वृक्ष है जिसमें से एक गुच्छा पत्तों का रहने दे कर बाकी का भाग ऊपर से छाँट दिया है। गमले के पौधे ग्रौर वृक्ष की डाली को ग्रापस में मिलाग्रो। जितना भाग ग्रापस में एक दूसरे से मिलता रहे उस हिस्से को दोनों में छुरी से छीलना चाहिए। छीलते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि कि ऊपर की छाल ग्रौर ग्रन्तर छाल कट कर निकल ग्रावे ग्रौर जब दोनों को मिलाया जाय तब दोनों कटे भाग एक दूसरे में ठीक बैठ जायँ। छीलने में भीतर का काठ चौथाई हिस्से तक छिल जाय तो कोई हरज नहीं। गमले के पौधे ग्रौर वृक्ष की डाली में की 'ग्रन्तर छाल' वा 'हीर' भाग को एक दूसरे से ठीक ग्रौर पूरा पूरा मिल जाना चाहिए। जब दोनों के छिले हुए भाग ग्रापस में मिल जाँय तब उनको केले की छाल की सौंट से जकड़ कर बाँध देना चाहिए।

जब पौधे ग्रौर डाली की मोटाई एक सी न हो ग्रौर 'हीर' भाग दोनों का पूरा पूरा ग्रापस में न मिले तो उसको एक तरफ तो ग्रवश्य मिलाए रखना चाहिए। 'कलम' को इस प्रकार बांधे कि उसके भीतर वायु न घुस सके क्योंकि वायु के घुस जाने से 'हीर' वा 'रस' सूख जायगा ग्रौर 'रस' ग्रापस में मिलेंगे नहीं। बंद बाँधने के पीछे उस स्थान पर गोबर ग्रौर मिट्टी मिलाकर थोप दे। इस मिलावट में चिकनी मिट्टी न मिलाई जांय क्योंकि वह सूखने पर तड़क जाती है जिससे उसमें वायु घुस जाती है ग्रौर फिर 'कलम' की संधि मिलने में कठिनता होती है। ऊपर की रीति से 'कलम' चढ़ाने के बाद गमले में रोज़ाना पानी दिया जाय। ऐसा करने से पौधे में रस ग्रधिक उत्पन्न होगा ग्रौर पौधा जोर पर रहेगा। जब एक सप्ताह तक दोनों डालियां हरी ही बनी रहें तो गमले के पौधे में 'कलम' के जोड़ से कुछ ऊपर छुरी से थोड़ा सा चीरा लगाना ग्रौर इसी रीति से वृक्ष की डाली में 'कलम' के जोड़ से कुछ नीचे की ग्रोर चीरा लगाना चाहिए। चित्र नं० ५ की ग्राकृति १ में ये दोनों चीरे 'प' ग्रौर 'फ' स्थान पर दिखाए गए हैं। यह चीरे चार पाँच दिन योंही रहने दिये जायँ ग्रौर उसके बाद इन चीरों को ग्रौर कुछ गहरा करना ग्रौर ग्रनुमान बीस बाइस दिन बाद इन चीरों के स्थान से डालों को काट देना ग्रौर दोनों को जुदा जुदा कर देना चाहिए। इस रीति से 'कलम' गमले की डाली में जम जायगी। गमले को वहाँ से हटा कर उसकी खबरदारी उसी प्रकार रखनी चाहिए जैसी कि वृक्ष के लिये रखते हैं। दो वर्ष पीछे गमले में के पौधे को जहाँ लगाना हो लगा देना चाहिए।

प्रकरण ४

'जीभ की कलम।'

ऊपर लिखी रीति से पौधे ग्रौर कलम के वृक्ष धरती पर उगे ही रहते हैं ग्रौर उसी ग्रवस्था में 'कलम' चढ़ जाती है। परन्तु इस रीति में 'कलम' के वृक्ष की डाल काट कर जुदा कर ली जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर पौधे पर चढ़ाई जाती है। काटने और ...ने के लिये पौधे और 'कलम' की डाल जीभ के ...कार की (चित्र नं० ६) काटी जाती है और ...ी कारण कहीं कहीं इस रीति को 'जीभ' भी ...ते हैं। इस रीति में एक यह विशेषता है कि ...ले में तथा भूमि पर ही लगे हुए वृक्ष में 'कलम' ...सकती है पर दोनों पास ही होने चाहिएं। ...त्र नं० ६ में 'अ' वृक्ष के तने के ऊपरी सिरे 'म' ...ऊपर पत्ते रहने दिए जाते हैं और वे 'कलम' के ... में जम जाने के समय तक रहते हैं। ...त्र नं० ६ की आकृति को ले कर चलना चाहिए ...जिसमें 'अ' उस वृक्ष का तना है जिस पर 'कलम' ...ढ़ानी है। तने के ऊपरी भाग पर पत्तियाँ लगी ...ती हैं। 'जीभ', जैसी कि आकृति २ में दिखाई ...है, बनाने के लिये पौधे के तने में पहली रीति ...अनुसार 'च' स्थान पर छुरी से छाल और ...छीलना चाहिए। 'च' स्थान के ऊपरी सिरे से ...चीरा ऊपर से नीचे को पौधे के बीच में ...मान ढ़ाई इंच का गहरा करना और उस ...को दूसरी ओर की आकृति में 'म' स्थान पर जिस ...र से दिखाया गया है उस प्रकार से काटना ...ए। जब पौधे के तने में 'जीभ' कट चुके तब ...समय 'कलम' के वृक्ष की उतनी ही मोटी ...छांट कर उस पर भी आकृति 'क' के अनुसार ...काटनी चाहिए। प्रथम 'कलम' की डाल में ...ान को ऊपर से नीचे को उतनी लम्बाई ...का छीलना चाहिए जितनी कि 'म' स्थान पर ...त् ऐसा चीरा लगाया जावे कि 'ज' भाग 'म' ...र ठीक बैठ जाय। जब 'ज' से 'छ' तक बरा- ...जीभ की लम्बाई के बराबर छिल चुके तब 'छ' ...की ओर ऐसा चीरा लगावे जो 'च' भाग ...फँस कर बैठ जाय। अब 'कलम' 'क' को ...इस प्रकार लगावे कि 'कलम' का निशान ...तने की निकली हुई जीभ 'च' में बैठ जाय ...और 'म' भाग भी .खूब सट जायं। इस ...ध्यान रहे कि दोनों की 'अन्तरछाल' अर्थात् 'हीर' भाग आपस में मिल जायं। आकृति 'ग' में 'कलम' को ठीक चढ़ाना दिखाया गया है। 'जीभ' के ठीक ठीक बैठ जाने पर केले के रेशों से जकड़ कर बाँधना और ऊपर से पहली रीति के अनुसार वा आगे जो रीति लिखी जायगी उस रीति से मिट्टी बना कर थोप देना चाहिए। इसके पश्चात् तने तथा 'कलम' पर के पत्तों को काटना, पट्टी खोलना आदि सब क्रियाएँ 'कलम' चढ़ाने की प्रथम रीति के अनुसार होती हैं।

प्रकरण ५

खूँटी की कलम।

'कलम' चढ़ाने की इस तीसरी रीति को 'ठूँठ' वा 'खूँटी' की रीति कहते हैं। अन्य रीतियों की अपेक्षा यह सरल रीति है। इस रीति में पौधे को गमले में लगाने की आवश्यकता नहीं; धरती में उगे हुए और चार पाँच वर्ष के पौधे पर 'कलम' चढ़ाई जा सकती है और यह भी आवश्यक नहीं कि पौधा और 'कलम' पास ही पास हों।

जिस पौधे पर 'कलम' चढ़ानी है उसके धड़ को धरती से हाथ भर के अन्दाज़ ऊपर आरी से काट दो और उस पर गुबरौटी मिट्टी थोप कर छोड़ दो जिससे धड़ में का रस बाहर न निकल जाय। थोड़े दिन इसी प्रकार रहने से धड़ जोर पकड़ेगा। जब अनुमान मास सवा मास हो जाय तब उस गुबरौटी को हटा कर धड़ के सिरे से इंच डेढ़ इंच नीचे आरी से फिर काट दो जिससे तरी का हरा भाग ऊपर आ जाय। इसके पीछे धड़ में सिरे से लगा कर नीचे की ओर एक बगल में तीन चार इंच लम्बा चीरा छुरी से ऐसा करे कि वह बाहरी छाल और अन्तर छाल को काट दे और काठ तक पहुँच जाय। फिर धड़ के सिरे के बीच में छाल और लकड़ी के बीचोबीच चित्र नं० ७ 'अ' में दिखाए हुए 'म' स्थान पर पचड़ लगाकर छाल और काठ को जुदा कर दे; परन्तु इतना ध्यान रहे कि छाल का थोड़ा सा भाग भी धड़ से जुदा न हो और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाल और काठ के मध्य इतनी पोल हो जाय कि जिसमें 'कलम' का पच्चर ठीक फसेवाँ बैठ जाय जैसा कि चि० नं० ५ आ० ३ में 'ग' स्थान पर दिखाया है। जिस वृक्ष की 'कलम' चढ़ानी हो उसकी ताजी काटी डाल में नीचे के दोनों और दाएँ बाएँ छुरी से छोल आकृति ३ में दिए 'र' स्थान की सूरत का पच्चर काटो और फिर इस 'र' पच्चरवाली डाल को धड़ पर के 'म' चीरे में बैठा दो जैसा कि आकृति 'प' 'फ' पर दिखाया गया है। इस रीति से भी 'कलम' चढ़ाने में धड़ और 'कलम' की अन्तर छाल अवश्य मिल जानी चाहिये। पीछे इस जोड़ को सुतली से मजबूत बाँध दो और उस पर गोबर मिट्टी चढ़ा दो जिससे वायु भीतर न घुस सके। जहाँ तक और जिस रीति से बने 'कलम' चढ़े धड़ को धूप से बचावे पर गरमी अवश्य पहुँचती रहे। प्रति दिन दो वा तीन बार धड़ में पानी देते रहना चाहिए और जब धड़ और 'कलम' की संधि आपस में ठीक जुड़ जाय तब यदि उस पर धूप पड़े तो कोई हरज की बात नहीं।

यह प्रायः देखने में आता है कि पौधे तथा वृक्ष का वर्ष में किसी विशेष ऋतु या मास में पतझड़ हो जाता है अर्थात् उनके भीतर की रस-वृद्धि पूरी पूरी नहीं होती और किसी विशेष ऋतु वा मास में उनमें नई कोपल फूट आती है और वे हैरे भरे हो जाते हैं। इसलिये 'पैवन्द' तथा 'कलम' चढ़ाने के लिये वह ऋतु व मास लिया जाना अच्छा है कि जिसमें 'पैवन्द' तथा 'कलम' चढ़ाने के पश्चात् ही उनमें नई कोपल आनेवाली हो क्योंकि ऐसा करने से 'पैवन्द' वा 'कलम' जोर पकड़ती है। पौधे की बढ़ती के दिनों में जब कि नई कोपल निकल आई हो और रस जोर से पौधे में दौड़ता हो 'कलम' चढ़ाने के लिये जो धड़ काटा जाता है उसमें का ज़ोर से बहता हुआ रस निकल जाता है और पौधा कमजोर हो जाता है। इस हेतु ठीक ऋतु के अनुकूल होने पर पौधों की 'अन्तरछाल' वा 'हीर' के आपस में मिल जाने की ओर ध्यान रहे काट छाँट तराश का काम सफाई से हो। यह विचार कर काम किया जाय तो 'पैवन्द' तथा 'कलम' चढ़ाने में सफलता अवश्य प्राप्त होती है।

'पैवन्द' तथा 'कलम' चढ़े हुए भाग को मज़बूती से बाँधने और हवा से बचाने के लिये बंद बाँधे जाते हैं और गुबरौटी मिट्टी थोपी जाती है। इसके लिए मोम और मिट्टी द्वारा विशेष क्रिया से मसाला बनाते हैं जिसे यहाँ पर लिख देना उचित समझा गया है।

मोम, राल, चरबी तथा ताड़पीन का तेल बराबर भाग में लेकर मन्दी आँच पर पिघला कर एक कर ले। जब उपयोग में लाना हो तब इस मसाले के बरतन को गरम पानी के बरतन में रख पिघलावे और फिर कुछ ठंढा हो जाने पर ब्रुश से 'कलम' वा 'पैवन्द' के बंधनों पर चुपड़े जिससे जोड़ के भीतर वायु न घुस सके।

दूसरी रीति जो मि० फर्मिंजर साहब ने अपनी पुस्तक में लिखी है वह यह है कि पीली राल २७ भाग को कड़ाही में धीमी अग्नि से तपावे, जब वह पिघल जाय तब उसमें १० भाग आल्कोहल मिला कर ख़ूब हिलावे और शीशी में भर रक्खे। जब 'पैवन्द' या 'कलम' के जोड़ पर चढ़ाना हो तब ब्रुश से चुपड़ दे। ऐसा करने से गरमी, सरदी, तरी और हवा का असर न होगा।

'कलम' आदि के जोड़ तथा पौधे पर के दूसरे घाव आदि पर लगाने के लिये गोबर एक भाग और महीन मिट्टी दो भाग लेकर ख़ूब मिलावे और जहाँ आवश्यकता हो वहाँ लगावे। इस गुबरौटी बनाने में काली मिट्टी काम में न लावे क्योंकि वह सूख कर तड़क जाती है।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका में चिकित्सा-शिक्षा।

न्यू यार्क से सानफ्रांसिस्को तक फैले हुए ४८ संयुक्त अमेरिकन राज्यों में सब मिला कर ११९ चिकित्सा-संस्थाएं हैं जिनमें से ११ होमियोपैथी, ३ इलेक्ट्रोपैथी और १०५ एलोपेथी शास्त्रों की शिक्षा देती हैं। कुछ वर्ष पहले शिकागो की अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन के अधिकारियों ने अमेरिका के सब राज्यों में घूम घूम कर इन संस्थाओं के चार विभाग किए थे। ये विभाग उन संस्थाओं के शिक्षकों की योग्यता, शिक्षा-प्रणाली, उनसे सम्बद्ध चिकित्सालय और उनकी साहित्य-सामग्री आदि की दृष्टि से किए गए थे और इसी लिये एसोसिएशन के किए हुए ये विभाग सब लोगों को पसन्द हुए हैं। एसोसिएशन में सरकारी अधिकारियों और प्रजापक्ष के लोगों की संख्या समान है इसलिए सब संस्थाओं पर उनका अधिकार भी समानरूप से ही चलता है। सब संस्थाओं को एसोसिएशन के नियम बिना किसी प्रकार की आपत्ति के स्वीकार करने पड़ते हैं। इन ११९ संस्थाओं के जो चार विभाग हुए हैं उनके नाम क्रम से "अ अधिक" (A Plus) "अ" (A) "ब" (B) और "स" (C) हैं। "अ अधिक" श्रेणी की संस्थाओं की संख्या २४ है और वे सर्वमान्य (Acceptable) हैं अर्थात् इन २४ संस्थाओं में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है और वे चिकित्सा-शास्त्र-सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए सब प्रकार योग्य और उपयुक्त हैं। "अ" वर्ग में ४२ संस्थाएं हैं जिनमें कुछ त्रुटियां तो अवश्य हैं पर तो भी वे शिक्षा देने का काम कर सकती हैं। बाक़ी बची हुई ५३ संस्थाओं को इस एसोसिएशन की यह सूचना है कि वे अपनी उन्नति या सुधार करें। "अ अधिक" की २४ संस्थाओं में से कुछ लोग केवल १०—१२ संस्थाओं को उत्तम समझते हैं और वही वास्तव में सर्वमान्य भी हैं। इनमें से हारवर्ड और जानहोपकिन्स संस्थाएं पूर्व में, स्टैनफोर्ड और केलिफोर्निया पश्चिम में और शिकागो और मिचिगन मध्य अमेरिका में हैं।

इन संस्थाओं में प्रविष्ट होने की इच्छा रखनेवाले विद्यार्थियों की योग्यता की दृष्टि से दो और विभाग किए गए हैं। क्योंकि हारवर्ड, जान होपकिन्स आदि संस्थाओं में बी० ए०, बी० एस सी० की डिग्री पाए हुए विद्यार्थियों के सिवा दूसरे विद्यार्थी प्रविष्ट नहीं हो सकते। यही नहीं बल्कि उनमें प्रविष्ट होने के लिए फिजिक्स, कैमिस्ट्री, जूलोजी और बोटानी (Physics, Chemistry, Zoology and Botany) के पूरे ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। बाक़ी संस्थाओं में किसी प्रकार की डिग्री आदि की कैद नहीं है; तो भी इस बात का प्रमाणपत्र उपस्थित करना पड़ता है कि विद्यार्थी ने किसी कालेज में एक या दो वर्ष तक फीजिक्स Physics का अध्ययन किया है। बिना ऐसे प्रमाण-पत्र उपस्थित किए किसी चिकित्सा-संस्था में प्रवेश नहीं हो सकता; क्योंकि अधिकारियों का विश्वास है कि बिना इस विषय के ज्ञान के आगे के विषयों का अध्ययन नहीं हो सकता। संस्था में प्रवेश करने के समय से एम० डी० की पदवी प्राप्त करने तक ४ वर्ष लगते हैं; पर आगे चल कर यह अवधि ५ वर्ष तक बढ़ा दी जायगी और विद्यार्थियों को एक वर्ष तक रुग्णालय में भी काम करना पड़ेगा। अर्थात् अब तक तो डाक्टर बनने में, दो वर्ष कालेज में और चार वर्ष चिकित्सा-संस्था में, कुल छः वर्ष लगते थे; पर अब यहाँ यह प्रकट किया गया है कि भविष्य में आठ वर्ष लगा करेंगे। जो विद्यार्थी फिजिक्स Physics आदि विषयों का अध्ययन करके दो एक वर्ष चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा पा चुकता है वही "अ अधिक" वर्ग की संस्थाओं में प्रवेश कर सकता है; पर जिन विषयों का विद्यार्थी ने अध्ययन किया हो उसमें उसकी परीक्षा ले ली जाती है। यदि इस परीक्षा में वह पास हो जाय तो उसे ऊपर की कक्षा और स्थान मिलता है और नहीं तो उसे पहली कक्षा से ही पढ़ाई आरम्भ करनी पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेश से आनेवाले विद्यार्थियों के लिए भी यही नियम है।

चिकित्सा-संस्थाओं का अभ्यासक्रम बड़ी उत्तमता से निश्चित किया गया है। पुस्तकें पढ़ाने की अपेक्षा वहाँ प्रत्यक्ष कार्य्यों (Practical work) की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। पहले वर्ष Anatomy, Physiology, Histology और Bacteriology की ही शिक्षा दी जाती है। इन दिनों में विद्यार्थियों को सवेरे ४ घंटे और तीसरे पहर ५ घंटे तक बराबर खड़े रह कर "प्रत्यक्ष कार्य्य" करना पड़ता है। यह काम कई बार भिन्न भिन्न रीतियों से कराया जाता है। विद्यार्थियों को सब काम अपनी समझ से करने पड़ते हैं; और यदि उनकी समझ कुछ काम न करे तो कम से कम उन्हें यह दिखलाना पड़ता है कि उन्होंने उसके लिए प्रयत्न किया है। यदि वे ऐसा न करें तो उन्हें कोई बात समझाई और सिखलाई ही नहीं जाती। परीक्षा के समय उनके दैनिक कार्य्यों का भी ध्यान रक्खा जाता है। जब तक सौ में सत्तर अंक न मिलें तब तक विद्यार्थी पास नहीं होता। दूसरे वर्ष उन्हें Pathology, Pharmacology, Hygiene, Surgical Anatomy आदि विषय सिखलाए जाते हैं। Medicine, Surgery, Midwifery आदि विषय तीसरे और चौथे वर्षों के लिए छोड़ दिए जाते हैं। पहले दो वर्षों के विषयों का तो कालेज के फिजिक्स आदि विषयों से ही सम्बन्ध होता है; पर बिना Bacteriology और Pathology आदि का पूरा ज्ञान हुए मनुष्य अच्छा डाक्टर हो ही नहीं सकता इसलिए इन विषयों की शिक्षा पर बहुत अधिक ज़ोर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष कार्य्यों पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। दूसरे वर्ष से लेकर अन्तिम वर्ष तक दोपहर को १ बजे से ६ बजे तक 'प्रत्यक्ष कार्य्य' करना पड़ता है और सवेरे आठ बजे से बारह बजे तक व्याख्यान सुनने पड़ते हैं।

अमेरिका में शिक्षा का व्यय और देशों की अपेक्षा बहुत कम पड़ता है। किसी किसी संस्था में तो सारे वर्ष की फीस कुल मिला कर केवल ५० डालर या १५६) ही होती है; पर कहीं कहीं वह २०० डालर तक भी पहुँच जाती है। पर गरीब अमेरिकनों को उससे अधिक कष्ट नहीं होता। वे लोग प्रायः वहीं जाते हैं जहाँ फीस बहुत कम होती है। पर विदेश से आनेवाले विद्यार्थियों के लिए यह फीस बहुत अधिक होती है। "प्रत्यक्ष कार्य्य" के लिए जिन चीजों की आवश्यकता होती है वह चीजें विद्यार्थियों को स्वयं खरीदनी या भाड़े पर लेनी पड़ती हैं। जैसे, वहाँ के नियमानुसार प्रत्येक विद्यार्थी को एक जन्तुदर्शक यंत्र (Microscope) अवश्य अपने पास रखना पड़ता है। जो विद्यार्थी यह यंत्र नहीं खरीद सकता वह किराए पर लेकर काम चला लेता है। यद्यपि इसमें भी खर्च अधिक होता है पर शिक्षा का महत्त्व देखते हुए यही कहना पड़ता है कि यह खर्च कुछ भी नहीं है।

"अ अधिक" श्रेणी की सभी संस्थाओं के शिक्षक यथेष्ट योग्य नहीं होते; पर तो भी उनमें से बहुतेरे अवश्य गुणवान होते हैं। इसके अतिरिक्त उन संस्थाओं में और भी कई विशेषताएँ होती हैं। अस्त्र-चिकित्सा और ओषध-प्रयोग आदि की जैसी अच्छी शिक्षा जान हापकिन्स और हारवर्ड संस्थाओं में दी जाती है वैसी और कहीं नहीं दी जाती। Bacteriology, Hygiene और स्त्रियों के रोग की चिकित्सा सिखाने का जैसा अच्छा प्रबन्ध मिचिगन और शिकागो में है वैसा और कहीं नहीं है।

न्यूयार्क के पोस्ट ग्रेजुएट स्कूल में आँख, कान, नाक आदि के रोगों के चिकित्सा बहुत भली भाँति सिखलाई जाती है। किसी एक ही संस्था में सभी विषयों के अच्छे शिक्षक नहीं मिल सकते। इसका कारण यह है कि अमेरिकन लोग जहाँ सुनते हैं कि अमुक स्थान पर किसी विषय का कोई अच्छा ज्ञाता है तो वे उसे तुरन्त अधिक वेतन का लालच देकर अपने यहाँ बुला लेते हैं। इसके बाद जब तक कोई संस्था नया अच्छा आदमी न मिले तब तक वह संस्था योंही पड़ी रह जाती है। उदाहरण के लिए मिचिगन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही लीजिए, वहाँ (Anatomy) की बहुत अच्छी शिक्षा दी जाती थी; पर जान हापकिन्सवालों ने खूब वेतन बढ़ा कर वहाँ के शिक्षक को अपने यहाँ बुला लिया और मिचिगन की संस्था बहुत दिनों तक यों ही पड़ी रही। इन तथा अन्य अनेक कारणों से अमेरिका की संस्थाओं में अन्त तक बहुत ही थोड़े विद्यार्थी ठहरते हैं। जिस संस्था में जो विषय अच्छी भाँति सिखाया जाता है उसे सीखने के लिए वे वहीं चले जाते हैं, परीक्षा देते हैं और अपना आगे का शिक्षा-क्रम समाप्त करते हैं।

यह तो हुई संस्थाओं और वहाँ की शिक्षा आदि की बात; अब यह देखना चाहिए कि उनसे भारतवासियों का क्या लाभ होता है। हिन्दुस्तानी काले हैं और अमेरिकन गोरे; और इसी काले-गोरे का झगड़ा यहाँ उपस्थित होता है। पूर्व और दक्षिण की अनेक संस्थाएं कालों का बड़ा विरोध करती हैं और उन्हें देखते ही वहाँ के गोरे अधिकारी नाक भौं चढ़ाते हैं। मध्य अमेरिका और पश्चिम की संस्थाएं अच्छी हैं और वे हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों का आदर करती हैं। पर इधर कुछ दिनों से वहाँ की यह बात भी कम होती जा रही है। इसके और जो कारण हैं वह तो हैं ही; बहुत अंशों में हमारे विद्यार्थी भी इसके लिए दोषी हैं। जो होनहार और जिज्ञासु विद्यार्थी चिकित्सा-संस्थाओं से शिक्षा आदि के सम्बन्ध में कुछ पूछ ताछ करें तब तो ठीक ही है; पर बहुत से अयोग्य लड़के भी—और वह भी बहुत बुरी तरह से—वहाँ के अधिकारियों को अनेक प्रकार से तंग करते हैं, जिसके कारण वे लोग भी अब कुछ नाराज हो चले हैं। यहाँ के संचालकों को जो पत्र लिखे जाते हैं वे बहुत ही विलक्षण और बड़ी बुरी तरह से लिखे होते हैं। चिट्ठी लिखने का कागज तक ठीक नहीं होता और न पत्र एक बार लिखने के बाद दोहराया ही जाता है। भ्रष्ट अक्षरों और अशुद्ध भाषा में लिखे हुए पत्र देख कर यदि वे लोग यह कहें कि—"जो लड़के हमारे यहाँ की शिक्षा किस प्रकार समाप्त कर सकेंगे; जो लोग पत्र तक नहीं लिख सकते वे चिकित्सा सरीखा कठिन विषय किस प्रकार सीखेंगे!" तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? बहुत से लड़के तो अपनी दो तीन पीढ़ियों का इतिहास लिख कर अपनी गरीबी जतलाते हैं और मुफ़ शिक्षा या छात्रवृत्ति आदि पाने के लिए प्रार्थना करते हैं। और भी अनेक प्रकार से वे अपनी दीनता दिखलाते हैं। उक्त विद्यालयों में पत्र भेजनेवालों को इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। उनका उद्देश्य भले ही प्रशंसनीय हो, पर उसकी सिद्धि का उपाय भी प्रशंसनीय ही होना चाहिए। थोड़े से विद्यार्थियों के उलटे-सीधे आचरण से सारे देश का उपहास और अपमान होता है। इस प्रकार के पत्र मुझे दो जगह दिखलाए गए थे; इसलिए यहाँ उनका जिक्र कर देना आवश्यक जान पड़ा। दूसरी बात यह है कि यहाँवालों का विश्वास है और बहुत ठीक विश्वास है कि चिकित्सा-सम्बन्धी भारतीय शिक्षालयों में यहाँ की अपेक्षा बहुत ही थोड़ी बातें सिखलाई जाती हैं। अमेरिका और भारतवर्ष के शिक्षाक्रम में बहुत बड़ा अन्तर है। पहले भारत की शिक्षा-पद्धति ही लीजिए—यहाँ पहले वर्ष फिजिक्स आदि विषय, दूसरे और तीसरे वर्ष Anatomy, Physiolgy और Materia Medica आदि और चौथे तथा पाँचवें वर्ष शेष विषय सिखलाए जाते हैं। चिकित्साशास्त्र में जो विषय मुख्य हैं वे यहाँ चौथे और पाँचवें वर्ष जबानी और रवारवी में सिखलाए जाते हैं। पर अमेरीका में वही विषय पहले और दूसरे वर्ष में समाप्त किए जाते हैं। हम यह नहीं कहना चाहते कि Bacteriology और Pathology आदि विषय भली भाँति न जानने के कारण यदि ओषधि-प्रयोग का पूरा ज्ञान न हो सके तो उसमें दोष विद्यार्थियों का है या शिक्षकों का; पर इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष की चिकित्सा-संस्थाओं में पाँच वर्ष तक शिक्षा पाकर तैयार होनेवाले डाक्टरों को अमेरिकन चिकित्सा-संस्थाओं के दूसरे वर्ष के विद्यार्थियों के बराबर भी ज्ञान नहीं होता। क्योंकि, उस

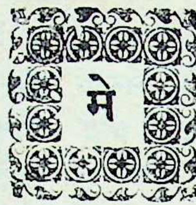
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष यहाँ प्रायः सभी विषय समाप्त करा दिए जाते हैं। भारतवर्ष के डाक्टरों को अपना पेट भरने के लिए किसी न किसी तरह चिकित्सा आरम्भ कर देनी पड़ती है; पर अधिकांश विषयों के नाम से वे प्रायः कोरे ही रहते हैं। सब विषयों को भली भाँति समझे हुए डाक्टर बहुत ही थोड़े दिखाई पड़ते हैं। ऐसे लोगों की यहाँ पहले परीक्षा ली जाती है और यदि वे उसमें पास हो गए तो उन्हें योग्यता के अनुसार उचित कक्षा में भर्त्ती कर लिया जाता है। भर्त्ती होनेवालों को इस विषय का सर्टीफिकेट भी दिखलाना पड़ता है कि उन्होंने दो वर्ष तक किसी कालिज में फिजिक्स आदि पढ़ा है। अमेरिका जानेवाले विद्यार्थियों को अपने साथ कुछ धन ले जाना चाहिए; और भारतवर्ष में उन्होंने जो ज्ञान प्राप्त किया हो उसका ध्यान छोड़ कर अमेरिका में अपनी शिक्षा का श्रीगणेश करना चाहिए। अथवा किसी विशिष्ट विषय में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए वहाँ जाना चाहिए। जो लोग भारतवर्ष में मिली हुई शिक्षा को ही यथेष्ट समझकर केवल पदवी पाना चाहते हैं उन्हें "अ अधिक" और "अ" श्रेणी की संस्थाओं से निराश ही होना पड़ता है। जो भारतीय जर्म्मन, फ्रेंच या लैटिन अथवा इनमें से कोई एक भाषा नहीं जानता उसे अमेरिकन संस्थाओं से पदवी नहीं मिलती। अमेरिका में कहीं कहीं पदवियाँ बिकती भी हैं; पर उनका कोई फल नहीं। यदि यह कहा जाय कि उन जगहों में शिक्षा बिलकुल नहीं दी जाती तो इसमें कोई झूठ नहीं है। और केवल इन्हीं पदवियों के लिए भारत से अमेरिका की यात्रा करना ठीक नहीं है। हाँ, किसी विषय में प्रवीणता प्राप्त करने अथवा भली भाँति शिक्षा पाने के विचार से ऐसा करना बहुत उत्तम है। यात्रा आरम्भ करने से पहले पत्रद्वारा भिन्न भिन्न संस्थाओं से, फीस, रहने के स्थान और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में सब बातें जान लेनी चाहिए। *

* अमेरिका-प्रवासी (युनिवर्सिटी आफ मिचिगन के) डा० नारायण सुबराव हर्डीकर के मराठी लेख का आशय।

'पत्रिका' और 'वेदप्रकाश'।



रठ के 'वेदप्रकाश' (फाल्गुन) ने 'पत्रिका' पर इस कारण अकृपा प्रकट की है कि वह कभी कभी ऐसे लेख प्रकाशित कर दिया करती है जिनसे वेदों की अनादिता, अपौरुषेयता तथा और न जाने क्या क्या बातें सिद्ध नहीं होतीं। निवेदन है कि 'पत्रिका' ने किसी वस्तु को किसी विशेष रूप में प्रकट करने की प्रतिज्ञा कभी नहीं की है। इस संसार में अनेक प्रकार के विश्वास हैं जिन सब के समर्थन की आशा प्रत्येक स्थान से नहीं की जा सकती। जिसे इतिहास की खोज होगी वह जहाँ कहीं ऐतिहासिक तत्त्व पावेगा वहाँ से संग्रह करेगा। मई-जून की पत्रिका में 'ऋग्वेद की यज्ञ प्रशस्तियाँ' इसलिए दी गई थीं कि उनमें बहुत से स्थानों, राजाओं तथा नदियों आदि के नाम आए हैं जिनसे उस काल की सामाजिक अवस्था का बहुत कुछ परिचय मिलता है। इसके लिए सभा के कार्य्यकर्त्ताओं की दुहाई देना तथा यह स्मरण दिलाना कि 'पत्रिका' हिन्दुओं की है, आर्य्यों की है, व्यर्थ है। पत्रिका हिन्दुओं की भी है, आर्य्यों की भी है, जैनों और बौद्धों की भी है तथा मुसलमानों और ईसाइयों की भी है; सारांश यह कि जिन्हें भाषा और विद्या के प्रचार से प्रेम है उन सब की है। यदि वेद में इतिहास का मिलना एक आपत्ति है तो वह कभी टल नहीं सकती।

सबसे अधिक आश्चर्य्य इस बात पर है कि सम्पादक जी ने "ऋग्वेद संहिता देखी, पता नहीं। फिर ऋक् सूची देखी तो उसमें भी पत्रिका के उद्धृत किए सूक्तों पर (?) उन मंत्रों का पता नहीं"। इस पर इतना ही वक्तव्य है कि पत्रिका में उद्धृत मंत्र परिशिष्ट के नहीं संहिता के ही हैं जिस पर सायण ने भाष्य किया है। जिस मंत्र को आपने मंडल ७ में ढूँढ़ना सूक्त ४७ में ढूँढ़ा उसे आपको मंडल ६ में ढूँढ़ना चाहिए था। अतः यदि ऋग्वेदसंहिता देखने पर भी आप को मंत्र नहीं मिले तो यह आपके देखने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होप है। अब आपकी सूचना के लिए उद्धृत मंत्रों का पूरा पूरा पता आपके "अजमेरीय वैदिकयन्त्रालयेमुद्रिता (सं० १९५७)" ऋग्वेदसंहिता ही में बतलाया जाता है—

प्रशस्ति	मंडल	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ	पंक्ति
१	६	२७	८	३०४	१६
२	६	४७	२२-२५	३१६	१
३	७	१८	२२-२५	३४५	२८
४	८	१	३०-३३	३९४	२६
५	८	२	४१-४२	३९६	२१
६	८	३	२१-२४	३९८	२
७	८	४	१९-२१	३९९	१०
८	८	५	३७-३९	४००	२७
९	८	६	४६-४८	४०२	२१
१०	८	१९	३६-३७	४१५	१३
११	८	२१	१७-१८	४१७	२५

अंत में यह विदित करा देना भी आवश्यक है कि पत्रिका का उक्त लेख सम्पादकीय नहीं था, बाबू जगन्मोहन वर्म्मा ही का था। भूल से उनका नाम छूट गया था।

—:o:—

सभा का कार्यविवरण।

साधारण अधिवेशन

शनिवार ता० ३० जनवरी १९१५ सन्ध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन।

(१) बाबू गौरीशंकरप्रसाद के प्रस्ताव तथा पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के अनुमोदन पर बाबू माधवप्रसाद सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (तारीख २ जनवरी १९१५) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति का ता० ५ सितम्बर १९१४ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(४) सभासद होने के लिए निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—

(१) बाबू गोपालनारायण सिंह, ग्राम भरतपुरा, पो० भरतपुरा, जि० पटना ५)
(२) पण्डित कुंजबिहारी चौबे, भटेहा, डाकखाना हरिहरपुर जि० बस्ती १॥)
(३) बाबू त्रिलोकनाथलाल—मौजे खड़सरा पो० हरिहरपुर—जि० बस्ती १॥)
(४) पण्डित उजागरलाल शुक्ल—तेलियानाला—काशी १॥)
(५) बाबू यमुनाप्रसाद—अहलमद—अदालत सबलगढ़—ग्वालियर १॥)
(६) बाबू प्रभूदयाल—नायबरजिस्ट्रार—पो० सबलगढ़—ग्वालियर १॥)
(७) बाबू दुर्गाप्रसाद—रजिस्ट्रार कानूगो—सबलगढ़—ग्वालियर १॥)
(८) बाबू विश्वनाथप्रसाद—कचौरीगली—काशी १॥)
(९) बाबू भोलानाथ सेठ—१०० मीरघाट—काशी १॥)
(१०) बाबू रघुबीरसिंह मुख्तार—रियासत पट्टी सैफ़ाबाद हिस्से ११ जिला प्रतापगढ़ १॥)
(११) पण्डित हीरालाल झा—शिक्षक—हाई इंगलिशस्कूल-मधीपुर-जि० भागलपुर १॥)
(१२) गोस्वामी श्रीकृष्णगिर—हरैया—जि० गोंडा ३)
(१३) बाबू हरेकृष्ण वैश्य—बुलानाला काशी १॥)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जायँ।

(५) खण्डवा के बाबू रेवतीप्रसाद कटारिया का इस्तीफ़ा उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(६) मंत्री ने इस सभा के उत्साही सभासद बाबू ब्रजचन्द्र की असामयिक मृत्यु की सूचना दी जिस पर सभा ने अत्यन्त शोक प्रगट किया।

(७) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित श्यामसुन्दराचार्य—काशी
रसायन सार भाग १
पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बेरिस्टर, छिंदवाड़ा
हिन्दी में हिन्दूला
मंत्री, सोमदेव सत्कर्म भण्डार—चिन्सुरा
आचार प्रबन्ध ८ प्रति
ज्योतिष संग्रह
महाभारतेर सूची (बंगला)

(८) सभापति का धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

गौरीशंकरप्रसाद
मंत्री।

—:o:—

मनोरंजन पुस्तकमाला के विषय में कुछ प्रसिद्ध समाचारपत्रों की सम्मतियां।

सद्धर्म-प्रचारक १३ मार्गशीर्ष शनिवार सन् १९१४

"यह पुस्तकमाला प्रारम्भ से ही हिन्दी साहित्य की उन्नति में अपूर्व साहस दिखा रही है और अन्त को उद्देश्य पूरा कर के भी पाठकों की रुचि को पूरा न होने देगी।

"इस की प्रथम पुस्तक "आदर्शजीवन" रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित प्रकाशित हो गई। पुस्तक की लेखशैली बड़ी रोचक, लिखने का ढंग स्वतंत्र तथा विचार रहस्यपूर्ण हैं।

"सांसारिक जीवन पर लिखते समय इस पुस्तक में संसार के ऊँच नीच बड़ी सरल तथा मनोहर भाषा में प्रतिदिन के व्यवहार की बातों के आधार पर बताये गए हैं। आत्मबल पर लिखते हुए मनुष्य की आत्मिक शक्तियों के स्वच्छ उपयोग का आदर्श खींच दिया है। आचरण का बड़ा मनोहर व्यवहारिक रूप दिखाया है। मध्यम प्रकरण में आपने वैदेशिक मर्मज्ञ ग्रन्थकारों के वाक्य और उदाहरण देकर ग्रन्थों का वास्तविक मूल्य बताया है जिससे ग्रन्थकार का मूल्य और ग्रन्थ का मूल्य भली प्रकार विदित होता है। स्वास्थ्य विधान प्रकरण में आपने बड़े संक्षेप से दैनदिन व्यवहार के स्वास्थ्य की रीति नीति का अच्छा वर्णन किया है। पुस्तक सर्वांशतः प्रशंसनीय है। प्रत्येक गृहस्थ को ऐसी ही पुस्तक अपने प्रत्येक नवयुवक पुत्र के हाथ में देना चाहिए और पढ़ाना चाहिए। भारत में अब ऐसीही पुस्तकों की अधिक आवश्यकता है।

"मनोरंजन पुस्तकमाला की दूसरी पुस्तक भी छपकर तैयार है। 'आत्मोद्धार' लेखक रामचन्द्र वर्मा × × × यह पुस्तक हरएक भारतवासी के पढ़ने योग्य है। मनुष्य संसार की स्वतंत्रता की लहरें उमंगे मारती हैं। अधिक क्या कहें पढ़ने पर ही सारा रहस्य खुल जाता है। (यह पुस्तक) भारतीय प्रत्येक नवयुवक को अपने पास रखना चाहिए। × × ×

"निस्वार्थ जीवन तथा जातीय सेवा तथा परोपकार का उद्देश्य किस प्रकार निबाहा जाता है यह इस पुस्तक से भली प्रकार विदित हो जायगा। वैसे पुस्तक की छपाई सुन्दर, जिल्द बन्धी हुई है। भाषा रोचक है।"

हिन्दी बङ्गबासी—७ दिसम्बर १९१४

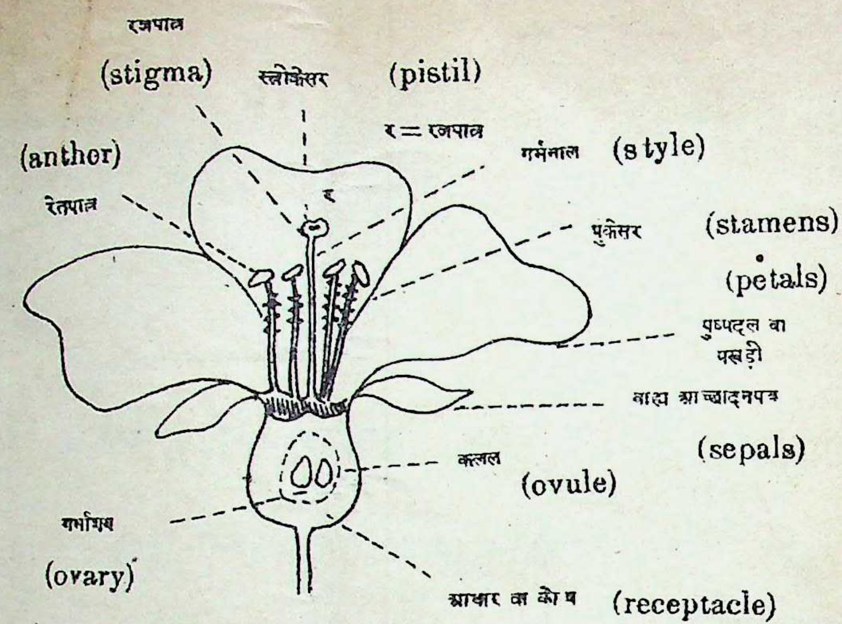
"यह कहने का प्रयोजन नहीं कि यह दोनों ही पुस्तकें (आदर्श जीवन और आत्मोद्धार) अतीव उपयोगी और संग्रहणीय हैं। समस्त हिन्दी-प्रेमियों से हमारा अनुरोध है कि वे इन दोनों पुस्तकों के संग्रह के साथ साथ मनोरंजन पुस्तकमाला की नियमाव लीभी मंगा देखें।"

अब तक इस माला की पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं शीघ्र ग्राहकों में नाम लिखाइए।

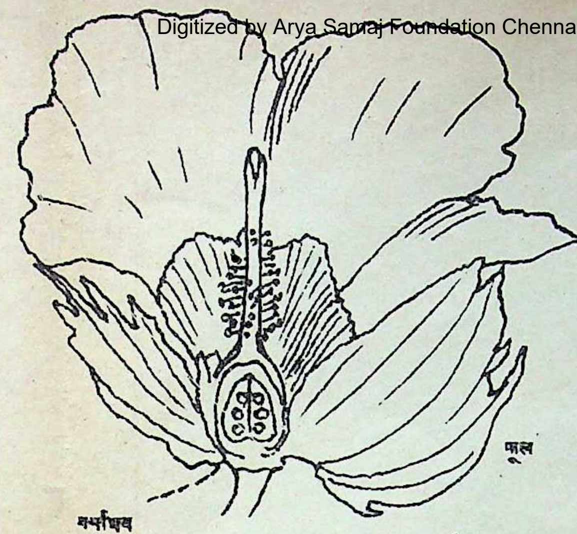
मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

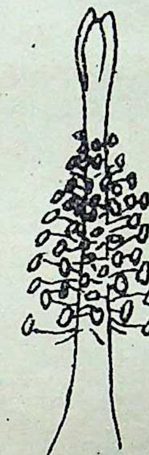
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चित्र नं० १



कपास



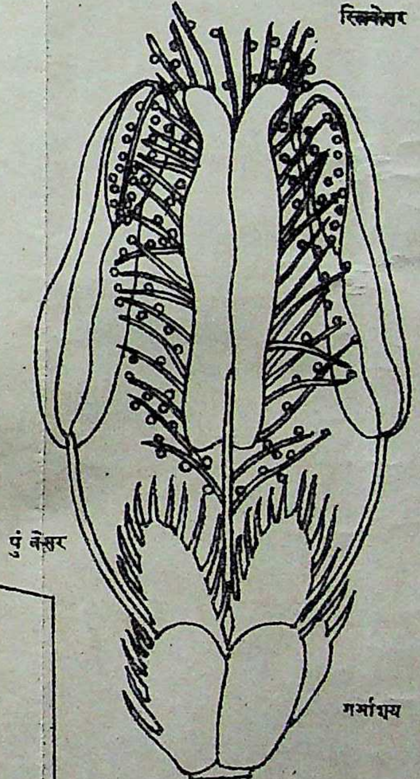
चित्र नं० २

पुं तथा स्त्रीकेसर



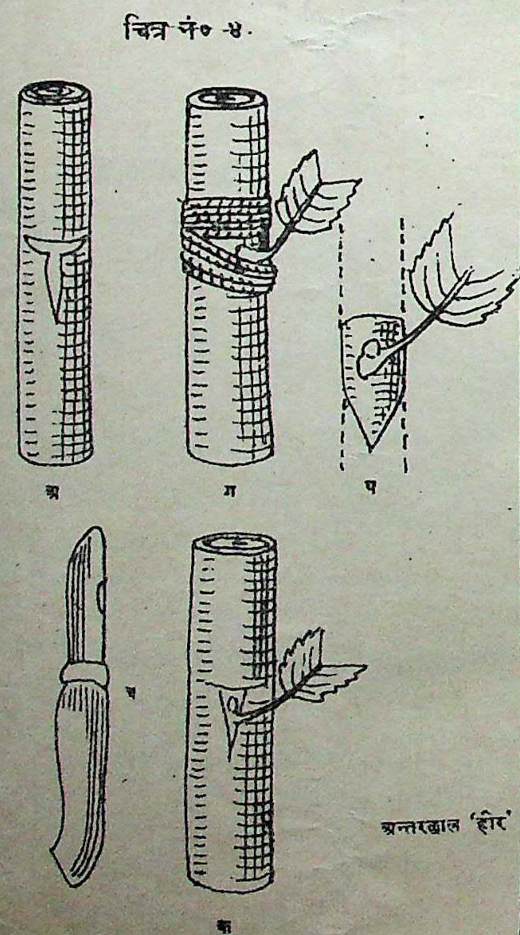
फूल की बाल

चित्र नं० ३



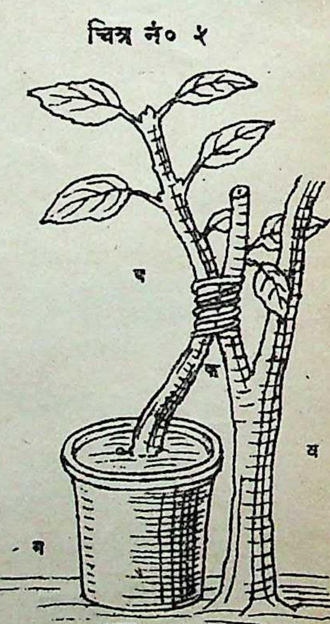
पुं तथा स्त्रीकेसर

चित्र नं० ४

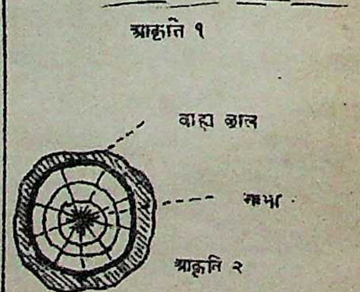


अन्तरछाल 'हीर'

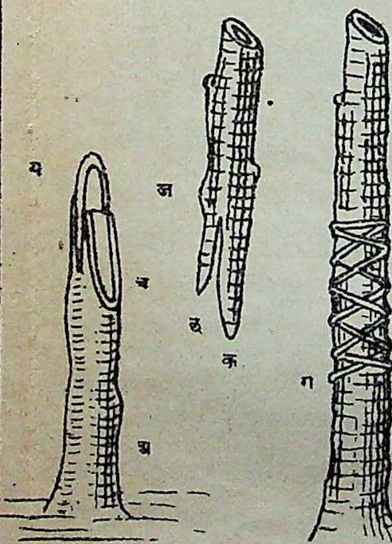
चित्र नं० ५



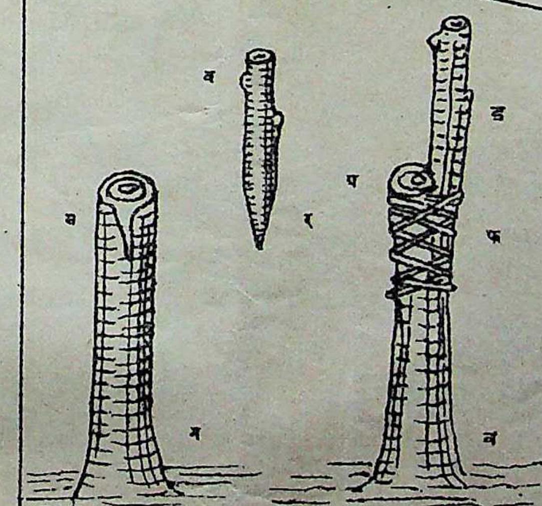
आकृति १



आकृति २



चित्र नं० ६



चित्र नं० ७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A414
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

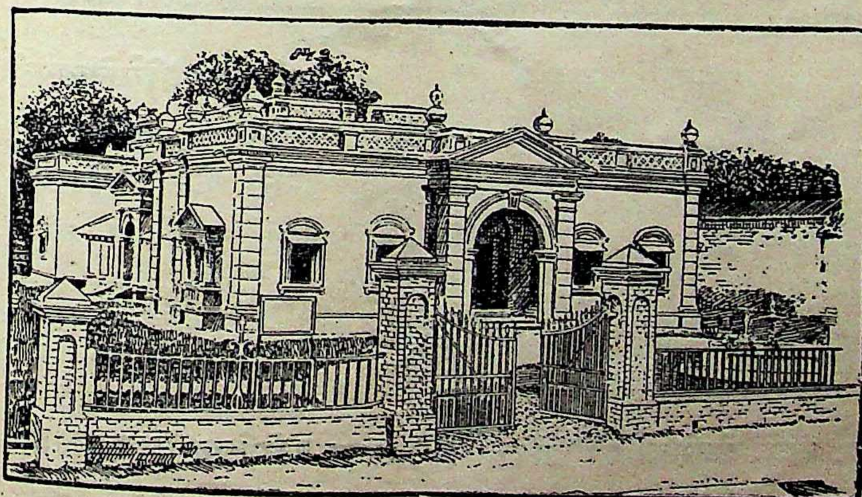
अप्रैल, १९१५

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

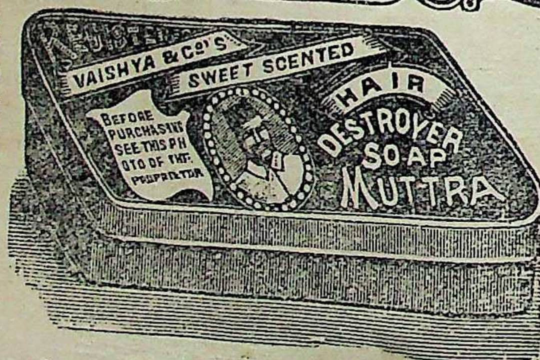
इन समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मंगाइये, पताः—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

पण्डित ऋषिकेशदत्त व्यास जी

वैश्य एण्ड कौं. मथुरा का

बाल उड़ाने का साबुन

३-४ मिनट में बाल उड़ा कर चमड़ी साफ और कोमल करता है.



खरीदनेसे पहिले विलायती रंगीन ऐसा बक्स हमारे फोटो सहित देख लेना चाहिये । कीमत गुलाब, केवड़ा, खस, का फी टिकिया ।।) ३ टि. का १।=)

नींबू, कपूर, संतरे का फी टिकिया ।-) आना ३ टिकिया का बक्स ।।।)

जरूरत है एजेण्टोंकी जरूरत है एजेण्टों को कमसे कम ५) का माल मंगानेसे २५)रु. सैंकड़ा कमीशन देंगे और खर्च माफ

पताः—एस. वी. गुप्ता ब्रादर्स—वैश्य एन्ड कम्पनी मथुरा.

पवित्र काश्मीरी केशर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ | अप्रैल, १९१५. | संख्या १०

मनुष्य और भूगोल।



आस्ट्रेलिया में विज्ञान की वृद्धि और प्रचार के लिए जो ब्रिटिश एसोसिएशन है, अभी हाल में उसके भौगोलिक विभाग में सर चार्ल्स पील्लूकस ने सभापति की हैसियत से एक वक्तृता दी थी। उसमें वक्ता महाशय ने यह दिखलाया था कि मनुष्य ने अब तक भूगोल में कितना परिवर्त्तन किया है और अभी भविष्य में और कितना अधिक परिवर्त्तन होने की सम्भावना है। यह भाषण नए और अच्छे विचारों से पूर्ण और बहुत रोचक हुआ था, अतः उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

लूकस महाशय ने आरम्भ में कहा कि आज कल लोग पृथिवी के एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक के सभी भागों से भली भाँति परिचित हैं। कुछ भाग ऐसे भी हैं जिनका थोड़ा बहुत पता लगाना बाकी है, पर वहाँ काम बराबर चल रहा है। रायल जाग्राफिकल सोसायटी के भूतपूर्व सभापति सर क्लीमेंट मारकूहम ने एक बार कहा था—"पृथिवी का मनुष्य के साथ जो सम्बन्ध है उसे देखते हुए पृथिवी का वर्णन ही भूगोल है; उससे पता लगता है कि मनुष्य के द्वारा पृथिवी में बहुत बड़े बड़े परिवर्त्तन हो रहे हैं। यह परिवर्त्तन केवल सीमाओं आदि के ही नहीं बल्कि उसके स्वरूप और ऋतु आदि के भी हैं। भविष्य के भूगोल में केवल उन्हीं परिवर्त्तनों का लेखा रह जायगा जो मनुष्य ने लगातार कई पीढ़ियों में किए हैं।"

अमेरिकन लेखक मि० जी० पी० मार्श ने 'Man and Nature' (मनुष्य और प्रकृति) नामक एक पुस्तक सन् १८६४ में और 'The Earth as modified by Human Action' (मनुष्य द्वारा संस्कृत पृथिवी) नामक पुस्तक सन् १८७४ में प्रकाशित की थी। इन पुस्तकों में अधिकांश भौगोलिक और ऋतु संबंधी उन्हीं परिवर्त्तनों का वर्णन था जो मनुष्य की सर्वनाशक प्रवृत्ति के कारण हुए हैं। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा था—"प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक पशु भौगोलिक परिवर्त्तनों का हेतु है; मनुष्य (पृथिवी को) नष्ट करता है और वनस्पति, और कभी कभी जंगली जानवर उसकी मरम्मत करते हैं।" और "यह बात साधारणतः ठीक है कि मनुष्य ने प्रकृति के जिन जिन अंगों पर अधिकार कर लिया है, मानों उन्हें नष्ट और भ्रष्ट करने का उसने ठेका सा ले लिया है।" ज्यों ज्यों मनुष्य की सभ्यता बढ़ती जाती है त्यों त्यों वह बराबर नाश ही करता जाता है।

पहले जंगलों को ही लीजिए। मनुष्य ने केवल अपने हाथों से ही जंगल नहीं काटे हैं बल्कि अपने पालतू जानवरों से भी उनका विनाश कराया है। जंगली जानवर, भेड़, बकरियाँ और दूसरे चौपाए वृक्षों की नई नई कोंपलें खाकर जितनी हानि करते हैं, मनुष्य द्वारा की हुई हानि उससे कहीं बढ़ कर है। मनुष्य बहुत दिनों से यह बात भूल सा गया है कि "यह पृथिवी उसे केवल फल आदि खाने के लिए दी गई है, व्यर्थ नष्ट करने के लिए नहीं।"

जंगल कटने से बरसात और सोतों का पानी बह कर जितनी हानि करता है उसका बहुत अच्छा प्रमाण दक्षिणी फ्रान्स और फ्रान्सीसी आल्प्स पर्वत में मिलता है। वृक्ष कटने और जंगलों में बकरियों के चरने से—क्योंकि बकरियाँ जमीन खोद डालती हैं और जड़ों के ऊपर की मिट्टी हटा देती हैं,—सारी भूमि शस्य-हीन हो गई है। फल यह होता है कि बरसाती पानी वहाँ से बहकर तराइयों में बाढ़ लाता और भूमि की बहुत हानि करता है। पहाड़ के आस पास का प्रान्त उजाड़ हो गया है और तराइयाँ दलदल से भर गई हैं। प्रायः तीस वर्ष हुए, फ्रेंच भौगोलिक रेक्लस ने लिखा था—"लोग जब जंगलों को नष्ट करते हैं तो उस भूमि को भी नष्ट कर देते हैं जिस पर वह जंगल होते हैं।" ऐतिहासिक दृष्टि से, फ्रेंच आल्प्स के सोतों के उपद्रव से एक और बात का पता लगता है। वह सीरिया, यूनान, एशिया-माइनर, अफ्रिका और स्पेन के उजाड़ और जनहीन होने का भेद बतलाता है। जहाँ जंगल नष्ट हुए वहाँ आबादी भी नहीं रह जाती। विजेता की तलवार की तरह लकड़हारों की कुदाल ने भी आबादी या तो नष्ट कर दी है और या स्थान से हटा दी है।

प्रश्न हो सकता है कि मनुष्य ने अब तक कितने परिवर्त्तन किए हैं और पृथिवी के भिन्न भिन्न भागों में, प्राकृतिक सीमाओं, विभागों और ऋतु आदि में अभी वह और कितना अधिक परिवर्त्तन करेगा? और ऐसी दशा में जब कि मनुष्य निसर्ग के वास्तविक स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं कर रहा है, कहाँ तक तरह देता जायगा? इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञान ने कुछ तो पुराने तरीकों से, बहुत अधिक मजबूत कलों द्वारा और कुछ नए तरीकों से निसर्ग में भी बहुत कुछ परिवर्त्तन किया है। और ज्यों ही किसी नवीन शक्ति का विकाश होता है त्योंही पृथिवी और मनुष्यों में कुछ न कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। कोयले और भाप के कारण, और अब आजकल जल और तेल की नई शक्ति के कारण बहुत कुछ उलट फेर हो गया है। जिन देशों में कोयला नहीं होता वहाँ पानी अथवा तेल से ही काम निकाला जाता है। जब से इंजिनों में तेल जलने लगा तब से यात्राएँ बराबर बढ़ती जाती हैं और कोयला लादने के स्थान व्यर्थ होते जाते हैं। यदि सच पूछिए तो पृथिवी स्वयं ही अपना तल परिवर्त्तन करने के लिए मनुष्य को साधन प्रदान करती है और मनुष्य अपनी बुद्धि की सहायता से उन साधनों का उपयोग करता है।

पृथिवी के तल पर स्थल और जल है। मनुष्य ने अब तक कितने जल को स्थल और कितने स्थल को जल बनाया है? और जल तथा स्थल के स्वरूप में बिना किसी प्रकार का परिवर्त्तन किए इन भौगोलिक विभागों को कहाँ तक, अपने काम के लिए व्यर्थ किया अथवा कम से कम उनका अर्थ बदल दिया है? एक लेखक कहता है—"रोमन लोग संसार के बहुत से भागों पर अधिकार करके भी सन्तुष्ट न हुए और उन्होंने अपने देश की बहुत सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झीलों और दलदलों को नष्ट करके नई भूमि बना ली।" आज कल भी दो एक ऐसी जातियां के उदाहरण मिलेंगी जिन्होंने—संसार के बहुत से देशों के अधिकारी होने पर भी—जल के बहुत से भाग को स्थल बना लिया है। समुद्र के जल से तो मनुष्य ने बहुत ही थोड़ा स्थल बनाया है पर नदियों और झीलों आदि से बहुत अधिक भाग लिया है। पर यह भाग समस्त जगत् का जल और स्थल देखते हुए बहुत ही थोड़ा है। दो एक छोटे छोटे देशों ने अवश्य ही अपेक्षाकृत अधिक स्थल बनाया है और उन्हीं देशों के निवासियों ने संसार के भूगोल और इतिहास का भी बहुत बड़ा भाग बनाया है। हालैंड, बेलजियम और ग्रेट-ब्रिटेन इसका उदाहरण हैं।

मनुष्य ने स्थल का कितना अंश जलमग्न किया है? यद्यपि यह अंश बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता तो भी देशों की छोटाई देखते हुए वह कम नहीं है। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी बहुत कुछ काम हुआ है। नगरों में रहने की आवश्यकता के कारण नई नई झीलें और नदियाँ बनती हैं। अमेरिका के न्यूयार्क नगर में कैटस्किल पर्वत से जिन बड़े बड़े टांकों और नलों से जल लाया जाता है उनके विषय में विलायत के टाइम्स पत्र में एक लेखक ने लिखा है कि वह मान आदि में पनामा नहर से कदाचित् ही कुछ कम हों। मिस्र में एक स्थान पर नील नदी को रोक कर अनन्त जलराशि एकत्र की जाती है। जहाजों के लिए बनी हुई बड़ी बड़ी नहरों को ही लीजिए। एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक स्वेज की नहर सो मील लंबी है और वह बराबर गहरी और चौड़ी होती जाती है। पनामा की प्रसिद्ध नहर के संबंध में टाइम्स में एक महाशय ने लिखा है कि इतने थोड़े से स्थान में आज तक मनुष्य ने कभी इतनी अधिक भूमि नहीं काटी है। एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक यह नहर केवल पचास मील लंबी है। पर उसे बनाने के लिए चेग्रेस नामक नदी का जल, दो पहाड़ियों के बीच में रोक कर इतनी बड़ी झील तैयार की गई है जो जनेवा झील की तीन चौथाई है।

मि० मार्श ने अपनी पुस्तक में मनुष्य के तत्संबंधी और भी बड़े बड़े विचारों का उल्लेख किया है। अफ्रिका के सहारा रेगिस्तान को जल-मग्न करने और भूमध्यसागर से जारडन तक एक नहर निकाल कर समुद्र तल से नीचे डेड सी (Dead Sea) के तल को जल-मग्न करने का विचार इसी के अन्तर्गत है। एक शताब्दी में जो विचार शेखचिल्लियों के से जान पड़ते हैं, दूसरी शताब्दी में वही सम्भव मालूम होने लगते हैं और तीसरी शताब्दी में वह कार्य्यरूप में भी परिणत हो जाते हैं। ज्यों ज्यों नए विचार निकलते आवेंगे त्यों त्यों मनुष्य अपनी सारी शक्तियाँ उन्हें पूर्ण करने में लगाता जायगा। अब तक जितने काम हुए हैं उन्हें देखते हुए कोई समझदार विज्ञान द्वारा भविष्य में होनेवाले कामों की सीमा निश्चित नहीं कर सकता।

अब इन बातों को छोड़ कर यह देखिए कि जल से स्थल का और स्थल से जल का कहां तक काम लिया जाता है। स्थल काट कर बनाए हुए जल-मार्ग ने बहुत से स्थानों में स्थल-मार्ग का नाश किया है। कनाडा तथा और स्थानों के डमरू-मध्य काट कर बनाई हुई नहरें इस बात का बहुत अच्छा प्रमाण हैं। सूखी जमीनें काट कर जल-मार्ग बनाया जाता है और प्रस्तुत जल-मार्ग बढ़ा कर समुद्रों से मिलाए जाते हैं। जहाजी नहर बन जाने के कारण मैनचेस्टर नगर बन्दर बन गया है। (इंगलैंड की) क्लाइड नामक बहुत ही छोटी नदी बढ़ा कर जहाजों के आने जाने योग्य बना दी गई है; यही दशा टाइन की भी हुई है। और अब इन्हीं नदियों में सारे संसार के लिए बहुत बड़े बड़े जहाज बनते हैं। (जर्म्मनी और हालैंड की) एल्ब और रहाइन तथा (अमेरिका की) मिसीसीपी और सेन्ट लारेन्स नामक नदियाँ भी इंजीनियरों के हाथों से बहुत कुछ परिवर्त्तित और परिवर्द्धित हो चुकी हैं।

उधर स्थल ने भी जल-मार्ग के बहुत बड़े भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अधिकार कर लिया है। प्राचीन काल में जब सड़कें बहुत कम और रेलें एक दम नहीं थीं, और जहाज बहुत ही छोटे होते थे, यह बात बहुत आवश्यक थी कि जल-मार्ग द्वारा, स्थल से जहाँ तक निकट हो सके, माल लाया जाय। इंगलैंड में छोटी छोटी नदियों के मुहानों पर पहले बहुत से अच्छे अच्छे बन्दर थे; पर आज कल प्रायः वह सभी नष्ट हो गए हैं। समुद्री व्यापार के संबंध में कैन्टरबरी और विन्सेस्टर का अब कोई नाम भी नहीं जानता। पर मि० बैलोक ने अपनी 'The Old Road' नाम की पुस्तक में यह दिखलाया है कि यह दोनों नगर—विशेषतः कैन्टरबरी—नदियों के किनारे, समुद्र तट से निकट और फ्रान्स जाने का मार्ग होने के कारण कितने महत्त्व के स्थान थे। उस समय इंगलैंड में जाने के लिए छः बन्दरों से, कैन्टरबरी में ही माल आता था और वह स्वयं एक बहुत बड़ा बन्दर समझा जाता था। पर आज कल केवल कुछ बड़े बड़े बन्दरों में ही माल आता है और रेल द्वारा देश के अन्तर्भाग में सीधा चला जाता है। प्राचीन काल में बन्दर प्राकृतिक हुआ करते थे और लोग चल कर बंदर तक जाया करते थे; पर आज कल लोग जहाँ अपनी आवश्यकता समझते हैं, वहीं बंदर बना लेते हैं। प्राकृतिक बंदरों तक जाने की उन्हें आवश्यकता नहीं होती।

अब और आगे चलिए। ग्रेटब्रिटेन एक द्वीप है। जब तक कि कोई बहुत बड़ा प्राकृतिक व्यापार न हो तब तक डोवर प्रणाली सदा उसे शेष युरोप से पृथक् रक्खेगी। पर आज कल भी प्रणाली के नीचे सुरंग खोदकर इंगलैंड से फ्रान्स जाने का मार्ग निकालने के विचार में लोग लगे हैं और बहुत से लोग आकाशयानों द्वारा उड़ कर इंगलैंड से फ्रान्स और फ्रान्स से इंगलैंड आते और जाते ही हैं। मान लीजिए कि प्रणाली के नीचे सुरंग बन जाय, आकाश-यात्रा में और भी अधिक उन्नति हो जाय—जो कि बराबर दिन पर दिन होती ही जाती है—तो इन सबका परिणाम क्या होगा? उस दशा में समुद्र का क्या होगा? नकशे पर तो वह जरूर दिखलाया जायगा पर मनुष्य के कामों के लिए भूगोल में बड़ा भारी परिवर्त्तन हो जायगा। समुद्र की कोई रुकावट न रह जायगी, इंगलैंड से फ्रान्स जाने का वह एकमात्र मार्ग न रह जायगा।

मनुष्य बरसों में कोई काम सोचते हैं; कभी कभी सोचने में जीवन बीत जाते हैं; यहाँ तक कि सोचने में ही उन्हें शताब्दियाँ लग जाती हैं। रैकलस का यह कथन बहुत ठीक है—"मनुष्य भविष्य में जितने काम करने में समर्थ होगा उन सब के मुकाबले में उसके अब तक किए हुए काम बहुत ही तुच्छ हैं।" स्त्रियाँ बात बात में "नहीं" कहती हैं, पर अन्त में वह "हाँ" ही कर दिखलाती हैं। इस बात में विज्ञान की उनसे बहुत कुछ समानता है।

स्थल और जल का वर्णन करते हुए मैंने अब तक प्राकृतिक विभागों और सीमाओं पर ही विचार किया है और ये सब भूगोल का एक अंग मात्र हैं। आकाश-यात्रा में इन सब विभागों और सीमाओं की, यहाँ तक कि समुद्र की भी, कुछ परवा नहीं की जाती। अब पृथिवी को लीजिए। दो समुद्रों के बीच डमरूमध्य प्राकृतिक विभाजक होता है। पर जहाजी नहरें उन्हें काट कर समुद्रों को मिला देती हैं। क्रीमिया और रूस के बीच की नहर, बाल्टिक नहर, स्वेज नहर, पनामा नहर आदि इसके उदाहरण हैं। स्थल में प्राकृतिक विभाजक हैं—पहाड़, जंगल, रेगिस्तान और कुछ अंशों में नदियाँ। पहले पहाड़ों को ही लीजिए। मिस सैम्पुल कहती हैं—"पृथिवीतल पर मनुष्य को जितनी रुकावटें मिलती हैं, उनमें बड़े बड़े ऊँचे पहाड़ ही सबसे बढ़ कर हैं।" पर क्या ये बड़े बड़े ऊँचे पहाड़ किसी प्रकार विभाजक कहे जा सकते हैं जब कि आज कल उनके ऊपर और बीच में से होकर रेल गाड़ियाँ रोज सैकड़ों हजारों आदमियों को लेकर आती जाती हैं। अमेरिका में ब्रिटिश कोलम्बिया और कनाडा के एक होने में पहाड़ के कारण कौन सी बाधा पड़ती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाइबिल में कहे अनुसार, पहाड़ खोदने में भले ही दृढ़ निश्चय की आवश्यकता हो, पर अन्य प्राकृतिक विभाग दूर करने में उसकी वैसी आवश्यता नहीं होती। आज कल मध्य अफ्रिका में जैसे घने जंगल हैं, इंगलैंड में भी किसी समय वैसे ही जंगल थे। प्रायः चालीस पचास वर्ष हुए, प्रोफेसर सी० एच० पियर्सन ने अपनी 'Historical Map of England' (इंगलैंड का ऐतिहासिक मानचित्र) नामक पुस्तक में लिखा था कि पूर्वी और पश्चिमी इंगलैंड के बीच के जंगल समुद्रों से भी बढ़ कर रुकावट डालते हैं। राजा एलफ्रेड के समय में मध्य इंगलैंड और कैन्ट के बीच में प्रायः सवा सौ मील लंबा घना जंगल था। प्रोफ़ेसर पियर्सन कहते हैं कि लकड़हारों की कुल्हाड़ी ने ही जंगल काट कर इंगलैंड को एक देश बना दिया है।

क्या रेगिस्तानों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है? अवश्य ही पहाड़ों की तरह वे भी पार किए जा सकते हैं। आस्ट्रेलिया का रेगिस्तान पश्चिमी और दक्षिणी आस्ट्रेलिया के मध्य में प्राकृतिक विभाजक है। उस रेगिस्तान पर से रेल ले जाने का विचार हो रहा है। पर क्या रेल बन जाने पर भी वह पहले की ही तरह प्राकृतिक विभाजक और मनुष्य के लिए बाधक रह जायगा? यदि बसाने के लिए मनुष्य मिलें तो यह स्पष्ट है कि रेल जिन स्थानों से होकर जायगी वे स्थान आबाद हो जायँगे और लोग वहाँ की भूमि सुधार लेंगे। क्या संसार के सारे रेगिस्तान सदा ऐसे ही व्यर्थ बने रहेंगे? मनुष्य उन्हें नष्ट कर रहा है और कुछ दिनों में, वही रेगिस्तान परिवर्त्तित होकर मनुष्य के रहने योग्य सुन्दर स्थान बन जायँगे। सूखी खेती करके और जंगल लगा के जमीनें आबाद की जायँगी। अभी हाल में 'The Conquest of the Desert' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसमें लेखक डाक्टर मैक्लनेड ने दक्षिणी अफ्रिका के कलहरी रेगिस्तान का जिक्र करते हुए कहा है कि रेगिस्तानों को नाश करने के लिए तीन चीजें आवश्यक होती हैं—आबादी, परिवर्तन और जंगल लगाना। उन्होंने यह दिखलाया है कि लगातार वृक्ष काटते रहने से रेगिस्तान कितने बढ़ गए हैं और अब किस प्रकार बदल कर बसने योग्य बनाए जा सकते हैं। परिवर्तन से उनका तात्पर्य्य सूखी खेती की प्रथा से है जिससे अमेरिका के संयुक्त राज्यों में इतनी सफलता हुई है। इस प्रथा से जमीन की नमी उसी में रक्षित रक्खी जाती है और रेगिस्तानों में, बीज बोने के समय से फसल काटने के समय तक बिना एक बूंद पानी बरसे हुए, बढ़िया गेहूँ की फसल तैयार की जाती है। यदि लोग आकर रेगिस्तानों में बसें, वृक्ष लगावें और खेती बारी करें तो अवश्य ही रेगिस्तानों का नाश हो जायगा।

अच्छा, रेगिस्तानों में सिंचाई का क्या परिणाम होगा? सिंचाई ने पृथिवी का स्वरूप बदल दिया है और ज्यों ज्यों दिन बीतते जायँगे और ज्ञान तथा बुद्धि बढ़ती जायगी, त्यों त्यों उसका स्वरूप और भी बदलता जायगा। मैंने कहीं पढ़ा है कि कलहरी के रेगिस्तान के नीचे जल है; लिबवान रेगिस्तान के संबंध में भी मैंने यही सुना है। सन् १९०२ के 'Geographical Journal' में छपा था कि उस तारीख तक एलजीरियन सहारा (उत्तरी अफ्रिका का रेगिस्तान) में प्राय २२००० वर्ग मील भूमि के नीचे बढ़िया पानी होने का पता लगा है जिसमें कूएँ बना कर काम चलाया जा सकता और कदाचित् चलता भी है। आस्ट्रेलिया में ऐसे कुओं से जो काम हुआ है वह सब लोग जानते हैं। चाहे अब तक खेती बारी के लिए उनसे यथेष्ट जल न मिल सका हो तो भी वहाँ गडरिये अपनी भेड़ बकरियाँ लेकर आनन्द से रह सकते हैं। अन्यथा वह प्रान्त पहले की भाँति ही रेगिस्तान और उजाड़ रह जाता।

इस प्रकार मैंने आप को बतला दिया है कि प्रकृति ने पृथिवी तल पर पहाड़, जंगल, रेगिस्तान और नदियाँ, ये चार बड़ी बड़ी बाधाएँ रक्खी हैं। इन में पहाड़ों को तो मनुष्य हटा नहीं सकता पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें पार करने की कठिनता से बचने के लिए वह उनमें सुरंगें बना लेता है। जंगलों को उसने बहुत से अंशों में साफ ही कर दिया है। जंगलों की भाँति रेगिस्तानों का नाश करना भी उसने आरम्भ कर दिया है। रहीं नदियाँ, सो अपने सुभीते के अनुसार वह उन्हें भी हटाता बढ़ाता है और जिस ओर चाहता है, उस ओर उनका रुख बदल देता है।

अब मैं ऋतुओं को लेता हूँ। ऋतुएँ गरम भी होती हैं, ठंढी भी ; वह सूखी भी होती हैं और उनमें जल भी बरसता है; वह स्वास्थ्य सुधारती भी हैं और बिगाड़ती भी हैं। वृक्षों का इन बातों से बहुत कुछ संबंध है। जब वृक्ष काट दिए जाते हैं और जमीन खुलती हो जाती है तो उस प्रदेश में या तो गरमी बहुत अधिक बढ़ जाती है और या सरदी। यदि वृक्ष नष्ट कर दिए जाते हैं तो सूखा पड़ने लग जाता है और यदि वृक्ष लगाए जाते हैं तो उनसे नमी रुकती है और पानी बरसता है। वृक्षों के काटने और लगाने का किसी न किसी रूप में उस प्रान्त के स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ता ही है। जमीन जोतने बोने से भी ऋतु में बहुत कुछ सुधार हो जाता है।

जिन स्थानों पर इंजीनियर अपनी कारगुजारी दिखलाते हैं वहाँ चिकित्सकों की भी खूब चल जाती है। डीलेसेन्स ने निश्चय किया था कि स्वेज नहर का केन्द्र इस्माइलिया नामक स्थान में रहे, पर वहाँ मलेरिया बहुत अधिक था; इसलिए सैयद बंदर में उसका केन्द्र ले जाने की आवश्यकता पड़ी। सन् १८८६ में इस्माइलिया में मलेरिया से २३०० आदमी मरे थे। सन् १९०० में भी प्रायः यही संख्या थी। सन् १९०१ में सम्मति देने के लिए सर रोनल्ड रोस बुलाए गए। सन् १९०६ से वहाँ मलेरिया का नाश हो गया और अब उस रोग का नाम भी नहीं रह गया। कई कारणों से विशेषतः मजदूरों के बहुत अधिक मरने से पनामा नहर बनाने के प्रयत्न में लेसेप्स को पूरी सफलता नहीं हुई। कहते हैं मलेरिया और पीतज्वर (Yellow fever) के कारण पचास हजार मजदूरों के प्राण गए। अमेरिकावालों ने जब यह काम आरम्भ किया तो मजदूरों के साथ उन्हें बहुत से डाक्टर भी भेजने पड़े थे। अन्त में डाक्टरों के प्रयत्न से मलेरिया एक दम उठ गया। मनुष्य भूगोल का निर्माता है और भूगोल बनने का प्रभाव ऋतु और स्वास्थ्य आदि पर स्वाभाविक रूप से पड़ता है।

यदि धरती की उपज को लीजिए तो उसमें भी आपको मनुष्य-कृत बहुत बड़ा परिवर्त्तन मिलेगा। बहुत से देशों में नई गोरी जातियाँ जाकर पुरानी जातियों के स्थान पर बस जाती हैं जिससे पुरानी जातियों की वृद्धि रुक जाती है। ये नई जातियाँ अपने साथ अनेक प्रकार के पशु और वनस्पतियाँ आदि ले जाती हैं जिनके कारण उन देशों के स्वरूप में बहुत बड़ा परिवर्त्तन हो जाता है।

आस्ट्रेलिया अब भी पहले की ही भाँति महाद्वीप है। उसके तट, पहाड़ और नदियाँ आदि सब ज्यों की त्यों हैं; पर वहाँ की भूमि का स्वरूप बिलकुल बदल गया है। पहले न तो वहाँ कोई नगर था और न बस्ती थी; सारा देश उजाड़ पड़ा रहता था। उसपर बसनेवाले जीव भी भिन्न और विलक्षण थे। वहाँ की भूमि के नीचे से जो पानी और दूसरे खनिज पदार्थ निकले हैं उनके अस्तित्व का पहले किसी को अनुमान भी न था। आज से एक शताब्दी बाद उसमें और भी भारी परिवर्त्तन हो जायँगे और मैं आस्ट्रेलिया के मानचित्र में अभी और भी बड़े बड़े परिवर्त्तन देखने की इच्छा रखता हूँ।

पचास वर्ष से अधिक हुए, बकल् ने अपनी 'History of Civilisation' (सभ्यता का इतिहास) नामक पुस्तक में लिखा था—'प्राचीन काल में वही देश अधिक समृद्ध और सम्पन्न समझे जाते थे जिनमें प्राकृतिक उपज बहुत अधिक हो; पर आज कल सबसे अधिक समृद्ध और सम्पन्न वही देश होता है जहां के मनुष्य सब से अधिक कर्मशील हों। क्योंकि आजकल लोग प्रकृति की कठिनाइयाँ दूर करने का उपाय जानने लग गए हैं। यदि कोई

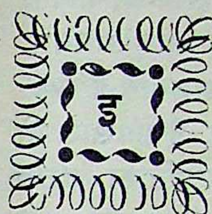
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी जहाजों के आने जाने योग्य न हो अथवा कोई देश दुर्गम हो तो इंजीनियर वह दोष या त्रुटि दूर कर देगा। जहाँ नदियाँ नहीं होतीं वहाँ लोग नहरें बना लेते हैं; यदि प्राकृतिक बन्दर नहीं होते तो कृत्रिम बन्दर बना लिए जाते हैं।"

आस्ट्रेलिया जिस प्रकार आजकल महाद्वीप है उसी प्रकार वह सदा नक्शे पर बना रहेगा। अन्य देशों से वह उतने ही मीलों के अन्तर पर रहेगा जितने अन्तर पर अब है। पर केवल इन बातों से उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट नहीं हो सकता। ऐसी दशा में जब कि यात्रा बहुत शीघ्र समाप्त करने के साधन दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं, मीलों का अन्तर कहाँ तक विचारणीय रह जायगा? क्या स्विस लोगों की तरह हम लोगों को अन्तर का अनुमान मीलों को छोड़ कर घंटों से न करना चाहिए? यदि समुद्र का विचार छोड़ दिया जाय तो महाद्वीप का क्या अर्थ रह जायगा। समस्त संसार की प्रवृत्ति अब एक होने की ओर है। अन्तर के विचार से मनुष्य के कामों के लिए आस्ट्रेलिया की भौगोलिक स्थिति वैज्ञानिकों के हाथों बहुत कुछ बदल गई है। दिन पर दिन अन्तर घटता जाता है और उपज बढ़ती जाती है। संसार बहुत जल्दी जल्दी और दृढ़ रूप से एक हो रहा है। यही सब बातें हैं जिन्हें भौगोलिकों को ध्यान में रखना और साधारण लोगों को जानना चाहिए। संसार ने प्रकृति के साथ जो कुछ किया है उसे भौगोलिकों ने संग्रह कर रक्खा है। मैं उन्हें यह समझाना चाहता हूँ कि सब कुछ होने पर भी मनुष्य ने प्रकृति में कहाँ तक परिवर्त्तन, और परिवर्द्धन ही नहीं बल्कि उसका पुनर्गठन किया है।

प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन।



इस वर्ष ईस्टर की छुट्टियों में गोरखपुर में जिन अनेक महासभाओं और सम्मेलनों के अधिवेशन हुए थे, हिन्दी के सौभाग्यवश "प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन" भी उन में से एक था। दो तीन मास पहले से ही गोरखपुर के कुछ उत्साही हिन्दी प्रेमियों ने प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन के अधिवेशन का उद्योग आरम्भ किया था और हर्ष का विषय है कि उसमें उन लोगों को आशातीत सफलता हुई। जो लोग अन्य सम्मेलनों और महासभाओं में सम्मिलित होने के लिए गोरखपुर गए थे, उनमें से अधिकांश प्रमुख सज्जनों ने तो उक्त सम्मेलन में पधारने की कृपा की ही थी; इसके अतिरिक्त काशी, प्रयाग आदि साहित्य के केन्द्रों तथा अन्य स्थानों से भी अनेक हिन्दी-सेवी केवल उक्त सम्मेलन में सम्मिलित होने के अभिप्राय से वहाँ गए थे। स्थानीय अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों ने भी सम्मेलन में सम्मिलित हो कर उसके कार्य्यों के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की थी और इन सब बातों के लिए सभी सज्जन हिन्दीप्रेमीमात्र के हार्दिक धन्यवाद के भागी हैं। दर्शकों और सम्मिलित होनेवाले प्रतिष्ठित सज्जनों में से गोरखपुर डिवीजन के कमिश्नर, तमकुही के राजा इन्द्रविक्रमजीतशाही, श्रीमती एनी बेसेन्ट, आनरेबुल मि० सच्चिदानन्दसिंह, आनरेबुल डा० तेजबहादुर सप्रू, लाला ईश्वरशरण आदि विशेष उल्लेख योग्य हैं।

सम्मेलन का अधिवेशन २ अप्रैल की सन्ध्या को आरम्भ हुआ था। इस अधिवेशन के लिए जो शामियाना तना था वह जोर की आँधी के कारण ठहर न सका था, और सम्मेलन खुले स्थान में ही हुआ था। उसमें लगभग दो सहस्र सज्जन उपस्थित थे। आरम्भ में गोरखपुर के रईस, स्वागतकारिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा के सभापति बा० महावीर प्रसाद अग्रवाल का व्याख्यान हुआ और तदुपरान्त पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने अपनी बनाई हुई स्वागत सम्बन्धी कविता पढ़ी। इस के पश्चात् बा० महावीरप्रसाद अग्रवाल के प्रस्ताव और पं० महादेवप्रसाद मालवीय के अनुमोदन पर कानपुर के श्रीयुक्त राय देवीप्रसाद जी पूर्ण बी० ए० एल एल० बी० ने सभापति का आसन ग्रहण किया और अपना लिखा हुआ सरस तथा भावपूर्ण वक्तव्य पढ़ सुनाया जिसे सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए थे। सभापति की वक्तृता समाप्त होने पर प्रस्ताव उपस्थित होने लगे। पहले प्रस्ताव में वर्त्तमान युरोपीय महायुद्ध में अँगरेजी सरकार के साथ सहानुभूति प्रगट की गई थी और उसके विजयी होने की कामना की गई थी। दूसरे प्रस्ताव में कतिपय हिन्दी प्रेमियों की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया था। ये दोनों प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए थे। तीसरे प्रस्ताव में आनरेबुल मि० रायनङ्कर के देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा सम्बधी उस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की गई थी जो उन्होंने भारतीय व्यवस्थापक सभा में उपस्थित किया था और भारत तथा संयुक्त प्रान्त की सरकारों से यह प्रार्थना की गई थी कि वे इस प्रस्ताव को स्वीकार करके शीघ्र कार्य्यरूप में परिणत करें। यह प्रस्ताव पं० नन्दकुमार देव शर्म्मा ने उपस्थित किया था और प्रयाग के पं० रमाकान्त मालवीय बी० ए० एल एल० बी० ने उसका अनुमोदन तथा लखीमपुर के पं० सूर्य्यनारायण दीक्षित बी० ए० एल एल० बी ने उसका समर्थन किया था। चौथे प्रस्ताव में, जिसे काशीनिवासी (ना० प्र० सभा के मन्त्री) बा० गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल० बी० ने उपस्थित किया था और गोरखपुर के बा० अभयनन्दन प्रसाद ने जिसका अनुमोदन किया था, संयुक्त प्रदेश की सरकार से प्रार्थना की गई थी कि (क) प्रान्तीय गजट हिन्दी में भी निकाला जाय, (ख) कलक्टरी के सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले अदालती फार्म हिन्दी में भी छपें (ग) नोटिस और हुकुमनामे आदि हिन्दी में भी जारी हों और फार्मों के खाने हिन्दी में भी भरे जायँ, (घ) पटवारियों के कुछ खास कागजात हिन्दी में भी हों और हिन्दी पढ़े पटवारी रक्खे जायँ, (च) अदालत की कार्रवाइयाँ जहाँ तक हो सके हिन्दी में हों और (छ) डिग्री के फार्म हिन्दी में भी हों और फार्मों के खाने हिन्दी में भी भरे जायँ।

पाँचवें प्रस्ताव में शिक्षा-प्रणाली में हिन्दी के स्थान के विषय में विशेष रूप से विचार किया गया था। इसे पं० चंदीप्रसाद वकील ने उपस्थित किया और "ज्ञानशक्ति"-सम्पादक पं० शिवकुमार ने इसका अनुमोदन किया था। इस प्रस्ताव के संबन्ध में बाबू रुद्रनारायण ने कुछ परिवर्त्तन चाहा था पर वह स्वीकृत नहीं हुआ। छठे प्रस्ताव में हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी को स्थान देने की प्रार्थना की गई थी। सातवें प्रस्ताव में राजा-महाराजों, जमीदारों, सेठ साहूकारों से सब कामकाज नागरी में करने और अपने बालकों को हिन्दी में प्रारम्भिक शिक्षा देने की प्रार्थना की गई थी। इस प्रस्ताव में जातीय और प्रान्तिक कान्फरेंसों से हिन्दी में कार्य्य करने, देश के शिक्षित युवकों से उपयोगी पुस्तकें लिखने और प्रकाशकों से यथाशक्ति कम मूल्य पर पुस्तकें बेचने की भी प्रार्थना की गई थी। आठवें प्रस्ताव में म्यूनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की रसीदें, रवन्ने आदि सब फार्म हिन्दी में भी छापने की प्रार्थना की गई। नवें प्रस्ताव में नोटों, सिक्कों और स्टाम्पों पर नागरी को स्थान देने की प्रार्थना की गई। दसवें प्रस्ताव के अनुसार नियमावली बनाने और सालभर तक कार्य्य करने के लिए एक समिति बनाई गई थी।

इसके पश्चात् बाहर से आए हुए पत्र पढ़े गए और सभापति ने प० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का का भेजा हिन्दी में शिक्षा देने के महत्व पर एक लेख पढ़ा। पं० मङ्गलप्रसाद द्विवेदी ने सभापति को धन्यवाद दिया। सभापति ने कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा कि "आप लोगों ने जो मेरी प्रशंसा की है उसका मैं अधिकारी नहीं हूँ। यहाँ हिन्दी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार स्थायी हो गया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। निस्सन्देह आपका प्रेम ही हिन्दी-प्रचार के कार्य्य में जीवन डाल देगा। इस कान्फरेंस का अधिवेशन प्रति वर्ष प्रान्तीय कान्फरेंस के साथ होना चाहिए" सम्राट् की जयजयकार होकर कान्फरेंस आनन्द-पूर्वक समाप्त हुई।

—:०:—

श्रीयुक्त पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० की स्वागत सम्बन्धिनी वह कविता जो उन्होंने गोरखपुर के प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन में पढ़ी थी,—

स्वागत।

स्वागत कवि कोविद सज्जनगण
सकल नागरी प्यारे।
करने को कृतार्थ हम सब को
गोरखपुर पग धारे॥ १॥
दूर दूर से कष्ट उठा कर
हिन्दी को अपनाने।
दुख दुर्गति से उसे बचाने
उसको अमर बनाने॥ २॥
नौका डूब रही पयोध में
उसमें हाथ लगाने।
गिरी मातृभाषा को ले
फिर सिंहासन बैठाने॥ ३॥
महाराष्ट्र मदरास बम्बई
हिन्दी को फैलाने।
हिन्दी हिन्द देश की भाषा
यह करके दिखलाने॥ ४॥
आए हैं ये अतिथि हमारे
हैं धन भाग हमारे।
गोरखनगर-नागरी-सेवी
सेवक सभी तुम्हारे॥ ५॥
मोहनमदन चरण-रज-परिमल
फिर फिर शीस चढ़ावें।
सुभग श्यामसुन्दर पुरुषोत्तम
बारम्बार मनावें॥ ६॥
विद्या बल प्रताप के दाता
श्रीगणेश गुण गाके।
क्यों न पूर्ण हों अभिलाषा ये
"पूर्ण" सभापति पाके॥ ७॥
जिसमें हुए सूर तुलसी से
कवि कबीर से ज्ञानी।
हुए रसिक मतिराम विहारी
भूषण से अभिमानी॥ ८॥
शिवप्रसाद से हिन्द सितारे
तम थे दूर हटाए।
श्री हरिचन्द सुकवि से सुन्दर
भारतेन्दु नभ छाए॥ ९॥
उसी नागरी की सेवा की
हुई आज तैयारी।
सज्जन क्षमा करेंगे हमको
हुई धृष्टता भारी॥ १०॥
समझ कृपा हे तात आपकी
हम यह भार उठाए।
गुरुवर के उपयुक्त आप भी
सभी हृदय अपनाए॥ ११॥
ऐसे ही आना इस नगरी
फिर यों ही अपनाना।
हम गँवार गोरखपुरियों को
भ्रातृ भूल मत जाना॥ १२॥

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मन्त्री श्रीयुक्त बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल० बी० ने गोरखपुर के प्रथम प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन में अदालतों में नागरी प्रचार संबन्धी प्रस्ताव उपस्थित करते समय कहा था,—

जिस प्रस्ताव के उपस्थित करने का भार मुझे सौंपा गया है उसके पढ़ने के पूर्व उससे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातों को आप लोगों के सम्मुख निवेदन करना चाहता हूँ। अदालतों में हिन्दी के प्रवेश न होने अथवा उसका कम प्रचार होने के दोषी तो वकील और मुख्तार ही विशेषकर हैं, तथापि यदि मुअक्किल भी इस पर उद्यत हों तो हिन्दी में कार्य्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना वकीलों और मुख्तारों को आवश्यक पड़ जायगा। यदि मुअक्किल इस बात को ठान ले कि मैं हिन्दी ही जानता हूँ और मेरे पत्रादिक वैसे ही अक्षरों में लिखे जायँ और अदालतों में उपस्थित किये जायँ जिनको मैं पढ़ सकूँ तो वकीलों और मुख्तारों को झख मार कर वैसा करना ही पड़ेगा। यह रोटी का मामला है, इसमें कोई नहीं कह सकेगा कि मैं उस अक्षर में तुम्हारे पत्र नहीं लिखूँगा जिसको तुम जानते हो। आप लोग बाबू शिवप्रसाद गुप्त से भली भाँति परिचित होंगे और यह भी आप लोगों से छिपा न होगा कि वे कितने बड़े हिन्दी के प्रेमी और देशभक्त हैं। कुछ दिन हुए उन्होंने अपने यहाँ यह आज्ञा दी कि मेरी नालिशें और अन्य कार्य्य नागरी अक्षरों में ही हुआ करें। उनके कार्य्यकर्ताओं ने इसमें कुछ आपत्तियाँ खड़ी कीं और कहा कि हमारे यहाँ के कतिपय वकील जो मुसलमान और कायस्थ हैं वे हिन्दी में अच्छी तरह कार्य्य नहीं कर सकते। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि यदि वे ऐसा करना स्वीकार न करें तो उनके स्थान पर ऐसे वकीलों से काम लिया जाय जो हिन्दी में काम कर सकते हैं। इस पर विवश हो कर उनके कार्य्यकर्ताओं को हिन्दी में काम करना पड़ा और उनके वकील भी हिन्दी में कार्य्य करने लगे। यदि इस प्रकार कोई कमर बाँध कर खड़ा हो जाय तो संसार में कोई भी ऐसा कार्य्य नहीं है जिसमें सफलता प्राप्त न हो। हाँ, सभी मुअक्किल ऐसे नहीं हो सकते और न सब को इतनी सामर्थ्य हो सकती है, इसलिए हम लोग जो कि एक प्रकार से अदालतों के पुजारी अथवा पंडे हैं, इसके लिए पूर्ण रीति से दोष के भागी हैं। हमारे सभापति महाशय ने अपनी वक्तृता में कहा है कि जो वकील हिन्दी में कार्य्य नहीं करते हैं उनको हिन्दी का विरोधी नहीं कहना चाहिए। परन्तु मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करूँगा कि मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। यदि वे विरोध नहीं करते हैं तो उदासीन अवश्य हैं और इस अंश में विरोधी अवश्य कहे जा सकते हैं। मैंने जहाँ तक इस संबन्ध में विचार तथा कार्य्य किया उससे यह प्रतीत हुआ कि जो वकील मुख्तार पहले के हैं और जिनके पास कार्य्य अधिक है उनसे यह बात कदापि नहीं हो सकती और न ऐसा होना सम्भव है कि वे एकदम अपने यहाँ की कार्य्यप्रणाली को बदल दें; परन्तु तो भी मुझ को हर्ष के साथ कहने का अवसर मिला है कि लखनऊ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में हमारे सभापति महाशय ने जो कानपुर के बहुत बड़े वकील हैं और जिनके यहाँ कार्य्य बराबर पहले की भाँति उर्दू में होता आया है उन्होंने इस बात का प्रण और दृढ़ प्रतिज्ञा की कि वे हिन्दी में कार्य्य किया करेंगे। उसके पश्चात् की जो सूची कानपुर से आई है उससे मालूम होता है कि उनके यहाँ भी तीन मास में हिन्दी में कुछ कार्य्य हुआ। परन्तु जितने कागज उनके द्वारा दाखिल हुए उनकी संख्या सन्तोषजनक नहीं है। इस प्रकार भी धीरे धीरे आरंभ करने से आगे चल कर संख्या की वृद्धि हो सकती है और मुझे पूरा विश्वास है कि वे दिनोंदिन इस ओर अपना ध्यान अधिक बढ़ाते जायँगे। परन्तु मुझे अपने नवयुवक वकीलों से इस संबन्ध में बहुत कुछ कहना है।

वे अपने कार्य्य को भली भाँति नागरी अक्षरों में आरम्भ कर सकते हैं और जैसे जैसे उनके यहाँ कार्य्य अधिक होता जायगा वैसे वैसे हिन्दी का स्थान पुष्ट होता जायगा। यदि उनको विश्वास है कि हिन्दी द्वारा देश का उद्धार हो सकता है, यदि वे इस बात को मानते हैं कि हिन्दी में कार्य्य करने से हमारे देशवासियों का उपकार है, यदि उनको इस बात के समझाने की आवश्यकता नहीं है कि अदालतों में हिन्दी का प्रचार होने से जनसमूह में शिक्षा का प्रचार अवश्य होगा और यदि उनको इस बात की लगन है तो उन्हें कमर बाँध कर कठिनाइयों को काटते हुए अवश्य कार्य्य करना चाहिए। जैसे सावन भादों की बढ़ी हुई नदी में धारा के साथ कोई तैर कर जाना चाहे तो उसको कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ेगा, बिना हाथ पैर फेंके ही वह धारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ बहता चला जायगा। परन्तु यदि उसका अभीष्ट उस पार जाने का है तो उसे बहुत परिश्रम करके तैरना होगा, गोता खाना होगा, उसके नाक-कान में पानी भर आवेगा, डुब्बियाँ लगानी पड़ेंगी और कदाचित् जल में डूब भी जाना पड़ेगा। ऐसी ही अवस्था संसार के कुल कार्य्यों की है। मैंने कुछ नवयुवक वकीलों से इस संबन्ध में कार्य्य करने की प्रार्थना की और कुछ अंशों में सफलता भी हुई। कई कार्य्य ऐसे हैं जिनमें बहुत सूक्ष्म लिखने की आवश्यकता पड़ती है, जैसे वकालतनामे और मिसलमुआयने के फार्म। इनको हमारे कई मित्रों ने नागरी में दाखिल करने का प्रण किया है और वे करते हैं। छपे वकालतनामे के फार्म और दूसरे कई प्रकार के फार्म अथवा दलालों के फार्म जैसे बेदखली, बकाया लगान, इजराय डिगरी इत्यादि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, गोरखपुर, झाँसी तथा अन्य स्थानों की सभाओं ने और प्रयाग के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय ने छपवाए हैं और वे बहुत सस्ते दाम पर बेचे जाते हैं। जो वकील अपने खास मुहर्रिरों पर अपनी वकालत के द्वारा काम पाने का आसरा रखते हैं वे तो कदापि कठिनाइयों को काटने के लिए उद्यत नहीं हो सकेंगे परन्तु जिन लोगों को अपने बाहुबल का भरोसा है, जिनकी कमर में बूता है, जो इस संसार के रणक्षेत्र में अपने पुरुषार्थ से ताल ठोंक कर लड़ने और कार्य्य में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रवेश करते हैं, ऐसे ही उद्यमी तथा साहसी भाइयों से मुझको आशा है और उन्हीं के प्रति मेरी प्रार्थना है। यदि कार्य्य हो सकता है तो उन्हीं लोगों के द्वारा होना सम्भव है। जो लोग केवल इस अभिप्राय से संसार में अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं कि हमको कुछ द्रव्य किसी प्रकार मिल जाय, दूसरों का उससे उपकार हो या अपकार, वे लोग अन्य जीवों की भाँति जीते और मरते ही रहेंगे। कुछ लोग कहते हैं कि अदालतों के मुहर्रिरों द्वारा विरोध होता है और कार्य्य में क्षति होती है। मैं इस बात को माननेवाला नहीं हूँ। कठिनाई तथा विरोध आरम्भ में जैसे हर कार्य्य में होता है वैसे इसमें भी है।

अदालतों के मुहर्रिर कुछ विरोध अवश्य आरम्भ में करते हैं पर वह केवल बंदरघुड़की की तरह है। जैसे कोई बालक बंदर पर एक ढेला फेंकना चाहे और वह उसको देखता हो तो वह बंदर दाँत निकाल कर खौवाता है परन्तु यदि बालक उस पर ढेला फेंक देता है तो वह मुँह फेर कर और पूँछ दबाकर भागता है। ऐसी ही दशा अदालतों के मुहर्रिरों की हिन्दी के संबन्ध में होती है। यदि हमारे नवयुवक वकील उनकी घुड़की में आकर दब गए तो ये मुकदमा क्या लड़ेंगे और मुकदमा लड़ने का उनमें साहस क्या हो सकता है? मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि जो कठिनाइयाँ मेरे मार्ग में अदालतों के मुहर्रिरों ने उपस्थित कीं उनसे न डर कर मैं बराबर हिन्दी में काम करता रहा और करता हूँ, परन्तु जब उन विरोधियों के पाप का घड़ा भरा तो फूट ही गया और उनका उनके पापों ने सर्वनाश किया। दो तीन मुहर्रिर तो बहुत बुरी तरह नौकरी से निकाले गए और मेरा काम भली भाँति चल ही रहा है। मैं किसी मुहर्रिर से विरोध नहीं करता परन्तु उनके चित्त में जो विरोध उत्पन्न होता है वह उन्हें खा डालता है। जो लोग उन मुहर्रिरों से डर कर अपना कार्य्य नहीं करते वे निर्मूल भूतों से डरते हैं। यदि एक बार चित्त में डर समा गया तो फिर वह डर अपना स्थान कर लेता है और डर का आकार प्रकार बढ़ता ही जाता है। परन्तु यदि आरम्भ में उस डर के मूल को नाश कर दीजिये और अँधेरी कोठरी में अथवा निर्जन स्थान में जहाँ भूत का होना आपको बताया गया है लालटेन लेकर और चित्त में बल उपस्थित करके देख लीजिये तो वह भूत गायब हो जाता है। और यदि आप भूत से डर गए तो आपके चित्त में भूत के उलटे पैर, लंबी जटा और बड़े बड़े नहँवाली भयानक शकल हमेशा उपस्थित हुआ करेगी और आप अकबक भी किया करेंगे और उस भूत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुड़ाने के लिए आपको मिर्चे की धूनी दी जायगी, जूता सुँघाया जायगा ग्रैार झाड़ू का प्रयोग किया जायगा, बहुत से ग्रोझों ग्रैार सयानों की बन पड़ेगी, तो भी भूत आपका पिण्ड न छोड़ेगा। यह तो हुग्रा हमारे पुरुषार्थ का काम। ग्रब ग्रदालतों के मुहर्रिरों की ग्रोर दूसरे प्रकार से दृष्टि दीजिए। गवर्नमेंट ने जो हिन्दी उर्दू दोनों ग्रक्षरों में सम्मन, नोटिस ग्रादि जारी होने की ग्राज्ञा प्रदान कर दी है परन्तु उसके ग्रनुसार कार्य्य नहीं होता।

इसके सम्बन्ध में लाला सुखवीरसिंह या किसी ग्रन्य माननीय महाशय ने लोकल लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रश्न किया था। इस पर ग्रानरेबिल मि० ग्रोडानल ने गवर्नमेंट की ग्रोर से यह उत्तर दिया कि कुल सम्मन ग्रैार नोटिस दोनों ग्रक्षरों में ग्रदालतों से जारी होते हैं। परन्तु ग्रोडानल साहब का यह कथन ग्रसत्य है। मैं नित्य देखता हूँ कि सम्मन ग्रैार नोटिसें केवल उर्दू ग्रक्षरों में जारी की जाती हैं ग्रैार प्रायः उर्दू का पर्त ही खानापूरी करके जारी होता है ग्रैार हिन्दी का पर्त फाड़कर मिसल बाँधे जाने का काम देता है या ग्रन्य रीतियों से रद्दी किया जाता है ग्रथवा हिन्दी का ग्रंश उर्दू ग्रक्षरों में खानापूरी करके जारी किया जाता है। यहाँ ग्राने से पूर्व दो तीन दिन में कुछ ऐसे फार्म मैंने एकत्रित किए हैं ग्रैार वे ग्राप लोगों के सामने उपस्थित हैं। बनारस की जजी से ग्रपील की हिन्दी ग्रक्षरों में छपी हुई नोटिस उर्दू खानापूरी करके जारी हुई है ग्रैार बनारस कलकृरी के सम्मन ग्रैार बेदखली की नोटिस ग्रैार गवाह के नाम सम्मन, हिन्दी के छपे हुए फार्म में उर्दू में खानापूरी करके जारी किया गया है, ग्रैार बनारस मुन्सफी से नोटिसें डिगरी जारी होने के सम्बन्ध में जिनका ग्राधा पर्त उर्दू का फार्म है ग्रैार ग्राधा हिन्दी का, केवल उर्दू ग्रक्षरों में खानापूरी करके जारी हुई हैं ग्रैार हिन्दी का ग्रंश बिना खाना पूरी किए हुए छूटा है। यदि इस प्रकार के सम्मन ग्रैार नोटिसें एकत्रित करके गाड़ियों में लदवाकर ग्रोडानल साहब के सामने रख दी जायँ तो कदाचित् उनका भ्रम दूर हो ग्रैार उनकी ग्राँखें खुलें। यदि केवल उर्दू के पर्त ही उनको दिखलाए जाते तो वे कह बैठते कि हिन्दी का पर्त तुमने स्वयं फाड़ कर ग्रलग कर दिया होगा ग्रैार व्यर्थ ग्रदालतों के मुहर्रिरों पर दोषारोषण करते हो। यह गलती गवर्नमेंट के क्लार्क मियाँ फितरतहुसैन, ग्राजादग्रली, दरबारीलाल, ग्रशरफीलाल, व हजारीलाल की नहीं है बल्कि इसके लिए उनको ग्रकारण दोषी बनाना है। परन्तु हमें विश्वास है कि जब हिन्दी के छपे हुए फार्म में उर्दू की खानापुरी की हुई ग्रथवा इजराय डिग्री की नोटिसों में केवल उर्दू का भाग लिखा हुग्रा ग्रैार हिन्दी का भाग बिना लिखा उनको दिखलाया जायगा तो वे ग्रवश्य इस ग्रोर ध्यान देंगे।

महाशयो, कुछ ग्रत्यावश्यक फार्म ऐसे हैं जो केवल उर्दू ही में छपे हैं ग्रैार हिन्दी में नहीं छपे हैं जिसके कारण यदि कोई हिन्दी में लिखना ग्रैार दाखिल करना चाहे तो नहीं कर सकता ग्रथवा उर्दू के खानों में उलटे हिन्दी में लिख सकता है। उदाहरण स्वरूप इस्मनवीसी ग्रर्थात् दीवानी में गवाहों को तलब कराने के वास्ते जो फार्म होते हैं उन्हें मैं बता सकता हूँ। डिग्रियों के फार्म प्रायः उर्दू ही में छपे हैं, इसलिए यदि उनकी नकल लेनेवाला हिन्दी पढ़ा है जैसा ग्रधिकतर मुकदमों में होता है तो उसको डिग्री पढ़ाने के लिए उर्दू जाननेवालों पर ही निर्भर होना पड़ता है। परन्तु दुःख तो यह है कि जैसे हिन्दी के सम्मन ग्रैार नोटिसों के फार्म नहीं भरे जाते वैसे मुतफर्कात की डिग्रियों के फार्म में जो हिन्दी का पर्त होता है वह ज्यों का त्यों छठी उँगुली की तरह बेकाम लटका करता है। कलक्टरी की डिग्रियों का फार्म तो उर्दू ही में होता है ग्रैार हाईकोर्ट की डिग्री भी केवल ग्रँग्रेजी ग्रैार उर्दू में होती है, हिन्दी में नहीं। परन्तु मैंने जितनी हाईकोर्ट की डिग्रियां देखी हैं उनमें ग्रंग्रेजी ग्रैार उर्दू दोनों में खाना पूरी रहा करती है। कोई कारण नहीं जान पड़ता कि दीवानी डिग्रिएँ हिन्दी में भी क्यों न हुग्रा करें ग्रैार जो मुतफर्कात की डिग्रियां दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षरों में छपी रहती हैं उनमें हिन्दीवाला पर्त भी क्यों न भरा जाया करे ? मैं आशा करता हूँ कि हाईकोर्ट तथा गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर शीघ्र आकर्षित होगा और इन त्रुटियों का शीघ्र सुधार हो जायगा।

—:०:—

सभापति का भाषण।

यं ब्रह्मवेदान्तविदो वदन्ति
परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा
नमोस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १ ॥
अमरीकबरीभारभ्रमरीमुखरीकृतं।
दूरी करोतु दुरितं गौरीचरण पङ्कजं ॥
या कुन्देन्दुतुषारहारधवला
या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा
या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युत शङ्करप्रभृतिभि-
र्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती
निश्शेषजाड्यापहा ॥ २ ॥

(हरिगीतिका)

अति शुभ प्रकृति ही से सदा,
अव्याज ही जो सुन्दरी।
शुभ देवकन्या की सुता,
शुभ वेश में सुरनागरी ॥
नवरस कलित, भूषणवलित,
शुभ नाम हिन्दी बलवती।
हो हिन्द की शुभकारिणी
श्री आर्यभाषा भगवती ॥

छप्पै।

प्रिय-सज्जन-समुदाय
आर्य्य-भाषा-हितकारक।
विद्वद्विद्या रसिक
प्रचुर-साहित्य-प्रचारक ॥
राज-भक्ति-युत-सदा
देश-उन्नति-अभिलाषी।
हिन्दहितैषी मधुर-
मनोहर-हिन्दी-भाषी ॥
परिपूर्ण प्रेम से नित्य जन
स्वीकृत पूर्ण-प्रणाम हो।
इस शुभागमन का शुभ
सुभग सुफल परिणाम हो ॥

महाशयो, दिसम्बर का अन्तिम सप्ताह इण्डियन नेशनल कांग्रेस और अनेक कान्फरेंसों के अधिवेशनों के नाम सा लिख ही गया है और इसी कारण वह नेशनल वीक कहा जाय तो उचित है। वे दिन महात्मा Christ के सम्बन्ध से भी पवित्र माने जाते हैं। अब ईस्टर के दिन भी उपयोगी अधिवेशनों के लिए नामांकित से होते जाते हैं। ये दिन भी आत्म-समर्पक महात्मा के सम्बन्ध से त्योहार माने जाते हैं। इस वर्ष के ईस्टर में गोरखपुर के निवासियों ने, परिश्रम, उदारता और देशानुराग की पराकाष्ठा दिखला रक्खी है। ऐसे कार्य बिना स्वार्थ के त्यागे नहीं होते। ये कार्य कर्मयोग के साधन हैं। मैं आप को बधाई देता हूँ कि तीन कान्फरेंसों का भार लिए हुए भी उनके साथ इस चौथी कान्फरेंस को योग देकर चार कार्यों से आपने महायोगी और महाकवि बाबा गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध नगर को चार दिशाओं की प्रशंसा-दृष्टि का पात्र बना दिया।

मित्रो, जब मेरे पास स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष महाशय का तार इस अभिप्राय से गया कि मैं इस प्रतिष्ठित अधिवेशन का अध्यक्ष बनूं, मैं कुछ कारणों से उक्त पद-सम्बन्ध Duty की उत्तम रीति से पूर्ति करने के लिए निज को समर्थ न समझ सका। इसी लिए मुझे धृष्ट होकर अस्वीकृति का उत्तर देना पड़ा। उसके लिए मैं उनसे और आप से क्षमा का प्रार्थी हूँ। उनके दूसरे तार के पहुँचने पर मुझे अधिक आज्ञा भङ्ग करने का साहस न हुआ। अब इस आसन से जो कुछ त्रुटियां मुझसे बन पड़ेंगी, आशा है कि उन्हें आप दो हेतुओं से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा करेंगे। एक समय की अल्पता, दूसरे मेरी अल्पज्ञता। अर्थात् आपके पूर्णोपनामधारी सेवक की अपूर्णता। मैं कई अंशों में इस पद के योग्य गुणों से अपूर्ण होते हुए भी हिन्दी-साहित्य के अनुराग से परिपूर्ण हूँ और ड्यूटी के बिगुल पर उपस्थित हो गया हूँ और आप को इस मानप्रदान के लिए धन्यवाद देता हुआ अपना हर्ष प्रकाश करता हूँ कि वर्तमान आवश्यकताओं को प्रतीत करते हुए साहित्य-सम्बन्धी कुछ वार्ता सुनाने के लिए मुझे यह सुविधा का अवसर और प्रतिष्ठा का स्थान मिला।

महाशयो, इस समय यूरोप में जो महासंग्राम उपस्थित हो रहा है, उसकी चर्चा से समस्त भूमण्डल व्याप्त है और क्यों न हो? मनुष्य-जीवन का कौन सा विभाग है जिस पर उसका प्रभाव नहीं पड़ रहा है? ऐसा कौन सा सांसारिक प्रकरण है जिसमें उस घोर उपद्रव से एक स्थायी विकार भावी प्रतीत नहीं होता। मेरा तो यह अनुमान है कि इस वीरोन्मादरूपी पतझड़ के उरान्त सच्ची सभ्यता का बसन्त आने वाला है। अब तक जिन देश-विदेशों में भौतिक उन्नति और दैहिक सुख को सभ्यता और सच्चा सुख समझा गया है उनमें भुजबल और नवसभ्य देशों में बूढ़े भारतवर्ष बाबा हिन्द के अनुभव की कसौटी के कसे हुए खरे सिद्धान्तों का अब अवश्यमेव प्रवेश होगा। बेचारा अध्यात्म प्रकरण जो यूरोपियन हृदय की देहली पर खड़ा हुआ विषय के बादल से दबी हुई अश्रुतप्राय ध्वनि से "यो वै भूमात्वेवसुखं" पुकार रहा है, उसके भीतर अब प्रवेश पावेगा। आत्म और अनात्म के समन्वय के साथ संसार के कार्य होंगे। मनुष्य-जीवन की दुर्गश्रेणी और देशशासन की नियमावली नवीन प्रकार से गढ़ी जायगी और जाति-वर्ण-भेद-रहित, मनुष्यमात्र की भ्रातृता नदी पर्वत समुद्र की सीमाओं से बाधा न माननेवाली, समस्त देशों की मित्रता और सार्वभौम सुख और लोकव्यापिनी शान्ति के लिए एक उद्देश्य रखते हुए उन सबों के सहायोगी बनने की आवश्यकता, उस नियमावली में भुलाई नहीं जावेगी। तभी सच्चा सुख पृथ्वी पर होगा और सच्ची सभ्यता देशों में होगी।

महाशयो, वे दिन अभी दूर हैं। अभी तो दुर्दिन-जनित दुर्दशा, जर्मनी की दुर्जनता, तद्दमनार्थ सम्मिलित जनपदों की समरधीरता, राजभक्त भारतवर्ष की तन मन धन से अपने सम्राट् की सेवा, हिन्दुस्तानी सैनिकों की संग्राम-क्षेत्र में प्राण-पुष्पाञ्जलि, हथेली पर रख कर अपनी मातृभूमि की प्रतिष्ठा और राजभक्ति की सिद्धि के लिए तत्परता, वा ग्रेट-ब्रिटेन और आयरलैंड का अपने आपस के कलहों का इस हेतु से विसर्जन करना कि वे एकत्रित होकर उच्च प्रकार की कार्यशैली से प्रमादशैलारूढ़, बैरी को नीचा दिखला सके, इत्यादि, अनेक आदरणीय, शिक्षाप्रद, और आश्वासक विषय हमारे ध्यान को वर्तमान की ओर खींच रहे हैं। हम लोग राजभक्त प्रजा के भाव से, प्राचीन से प्राचीन सभ्यता के Representatives भाव से, प्रकृति से शान्तिप्रिय मनुष्यों के भाव से, इस युद्ध से भारतवर्ष की हानि समझ कर, स्वभाव ही से ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भगवन्, धर्म और न्याय के बैरी, अबला स्त्री बाल-वृद्ध की हत्या से महापापी, साहित्य के भवन और पुस्तकालय जलाने से अधमता की पराकाष्ठा दिखलानेवाले, निदान, अकारण ही समर ठान कर लाखों जीवों का विनाश करानेवाले बस्तियों को उजड़वानेवाले, लाखों बच्चों और अबलाओं को अनाथ करानेवाले, रण में छल, पाखण्ड और क्रूरता से वीरत्व को कलंकित करनेवाले, जड़ जर्मनी की जड़ उखाड़ने में अधिक विलम्ब न कीजिए। हमारी गवर्नमेंट को विजय दीजिये, संसार को शान्ति दीजिए, भारतवर्ष को यश और कल्याण दीजिए। देशाभिमानी राजभक्तो! एक स्वर से कहिए, 'भारत सम्राट् की जय' 'भारतवर्ष की जय'।

महाशयो! यह युद्ध चर्चा करते हुए मुझे न्यूनान्यून दो विषय इसी समय कथनीय प्रतीत हुए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तो सभ्यता और साहित्य का सम्बन्ध। दूसरे वीर साहित्य की आवश्यकता। ये दोनों विषय इस सम्मेलन में आदरणीय भी हैं।

साहित्य और सभ्यता।

साहित्य और सभ्यता की व्युत्पत्ति में भाव की बड़ी भारी समानता है। इस समानता से स्वतः इस सम्मेलन की अपने ऊँचे कर्त्तव्य की ओर दृष्टि जायगी।

"साहित्य" बना है "सहित" से, "सहित" का भाव "साहित्य" है। इसलिए उसका अर्थ हुआ मेलन, मेल-मिलाप, साथ देना, सहायता, एक होना, संगठन, इत्यादि। दूसरे शब्दों में "साहित्य" "समाज" ही का व्यञ्जक है और "सभ्यता" शब्द जो अंग्रेजी शब्द Civilisation का पर्य्याय माना जाता है, "सभ्य" से बना है। "सभ्य" का भाव है "सभ्यता"। सभ्य कौन? "सभासम्बन्धी" अर्थात् "सभा" से सम्बन्ध रखनेवाला। "सभा" का अर्थ क्या?

"सह यान्ति अत्र" जहाँ बहुत से लोग एक साथ विराजें वही सभा है, "समूह" भी इसका अर्थ है। असभ्य Uncivilised लोग संगठन, सम्मेलन, अथवा सभा द्वारा समुदाय रूप से कार्य नहीं कर सकते। जिस जाति ने सम्मिलित होना, समुदाय रूप से अपनी और संसार की भलाई करना सीखा है वही सभ्य और Civilised कहलाती है। अब आपने स्पष्ट देख लिया कि 'साहित्य' में और "सभ्यता" में कोई अन्तर ही नहीं है और जहाँ साहित्य वा सभ्यता है, वहीं उसका प्रतिबिम्ब स्वरूप, पुस्तक-भांडार भी होता है और वह पुस्तकभांडार भी "साहित्य" कहलाता है। अब आया

वीर साहित्य।

वीर साहित्य की चर्चा के लिए, दुःख है कि इस अवसर पर मेरे पास पूरा समय नहीं है। तथापि उसका महत्व मुझे विवश करता है कि मैं उसका स्वरूप ही अंश में उल्लेख करूँ। यह समय है वीरता का, हमें आवश्यकता है वीर होने की, अपनी सन्तान को वीर बनाने की। हम वीर नरेश की प्रजा हैं, जो स्वयं सामरिक वस्त्र सजकर, शस्त्र धारण कर, समराङ्गण में जाते हैं और जिनके दुलारे पुत्र, बारी अवस्था ही में, सेना में भरती होकर, युद्धकौशल प्राप्त कर सकते हैं। वीर राजा की भीरु प्रजा, ऐसी होती है, जैसे बुद्धिमान् सुशिक्षित पुरुष की असभ्य और जड़ स्त्री। सेवा और सहायता दूर रही, उलटे सुख सम्पादन में बाधा डालनेवाली, उन्नति के मार्ग में पीछे पड़ो रहनेवाली, हठ और जड़ता से स्वामी के पीछे पड़ जानेवाली! कदाचित् कोई कहे कि साहित्य-सम्मेलन में इस चर्चा का क्या प्रयोजन! तो मैं उत्तर दूँगा कि "महाशय, आप साहित्य को समझे क्या हैं? क्या आप साहित्य को एक कोठरी में उससे एकान्त सेवन कराना चाहते हैं। अथवा पर्देवाली स्त्री की भाँति संसार की खुली हवा से उसका स्पर्श होना रोकते हैं? क्या आप साहित्य को अज्ञानियों का वेदान्त समझे हुए हैं? जो मनुष्य जीवन को दो अंशों में एक दूसरे से कोई सम्बन्ध न रखनेवाले दो भिन्न भिन्न टुकड़ों में विभक्त करता है और सिखलाता है कि "संसार से भागो, जंगल में बैठो, माता, पिता, भाई, सेवक, राजा, प्रजा, गुरु, चेला, सभा, अधिकारी, पत्रसंपादक, वक्ता, श्रोता, रिफार्मर, युद्धकारी इत्यादि के कर्त्तव्य ये सब "झूठे जगत् झमेले" हैं, 'ईश्वर को खोजो और संसार को त्यागो'! इत्यादि २ के कर्तव्य। वाह! खूब, बहुत समझे। वेदान्त को, कर्मयोग को, ईश्वर के स्वरूप को, उसके निर्माण किए हुए संसार को! यदि ऐसे ही अज्ञान से "साहित्य" को भी एकान्तवासी योगी बनाना है तो चलिए छुट्टी हुई, हम और आप सब चैन से अपने घर बैठें'।

अजी महाशय!

जगत् मध्य आकाश सम,
छाया है साहित्य।
कार्यक्षेत्र में ब्रह्म की,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया है साहित्य ॥
विद्या के आदित्य की,
छाया है साहित्य।
कार्यतत्व है प्राण तो,
काया है साहित्य ॥
अन्धकार का अपहरण,
करता है आदित्य।
सत्कर्त्तव्य सुपंथ का,
सूरज है साहित्य ॥
है सुख और विपत्ति में,
जनहितकर साहित्य।
सचिव और सच्चा सखा,
है गुरुवर साहित्य ॥
अवनति-रूपी ग्रीष्म में,
है पाला साहित्य।
खेती को उद्योग की,
घनमाला साहित्य ॥
निगमागम साहित्य हैं,
हैं पुराण साहित्य।
ज़ेन्दावस्ता बाइबिल,
है कुरान साहित्य ॥
शिल्प नीति विज्ञान शुभ,
विविध काव्य इतिहास।
आदि ग्रन्थ-समुदाय सब,
है साहित्य विकाश ॥

गिरी हुई जाति वा देश को एक बार फिर उन्नति के ऊँचे आसन पर बैठने के लिए उत्साह देना, उत्तेजित करना और धीरतापूर्वक उद्योग कराना, साहित्य का गुण है। सभी प्रकार के सुधार और संशोधन में प्रवृत्त करना, साहित्य का गुण है। कुटुम्ब, समाज और देश की सेवा के लिए तत्पर कर देना साहित्य का गुण है। धर्म के अभिमुख करना, अधर्म से निवृत्त करना, मनुष्य कर्तव्य का स्मरण कराना, संसार मात्र को कुटुम्बवत् दरसा कर उसका हितकारी बनाना, धन, बल, यश, प्रतिष्ठा प्राप्त कराना, कहाँ तक कहें, मनुष्य जन्म को सफल कराना, गिरे हुए जीव को ऊर्द्ध्वगामी बना कर ब्रह्मपद तक पहुँचाना साहित्य ही का गुण है। फिर भला वीरता का प्रकरण इससे बाहर कैसे? हाँ, अपने नियमों का निर्वाह करते हुए हम इस प्लैटफार्म पर विवादग्रस्त पोलिटिकल विषयों पर अपनी सम्मतियों का प्रकाश नहीं कर सकते। तथापि, हमारे लेखक, हमारे कवि, हमारे वक्ता, हमारे उपदेशक, देश और काल की आवश्यकता की रक्षत से अपनी वाणी को शून्य नहीं रख सकते। जिसको विधाता ने वाणी की शक्ति दी है, उससे आशा की जाती है कि उस शक्ति से वह उसी विधाता की रची हुई प्रजा को लाभ पहुँचा कर "परोपकाराय सतां विभूतयः" को सार्थक करेगा। हम लोग संसार के प्रसिद्ध कवियों में उन्हीं का विशेष आदर करते हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभाशक्ति से रसिक मनोरञ्जन के अतिरिक्त संसार को प्रभावशाली उपदेश भी दिए हैं। वीर साहित्य भारतवर्ष में बहुत है। रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण, उससे परिपूर्ण हैं परन्तु हिन्दी में अभी उसकी बहुत न्यूनता है। नायक-नायिका-भेद के पक्षपातियों ने, तत्सम्बन्धी शृङ्गार काव्य की हिन्दी में इतनी भरमार की, कि उस प्रकार का पद्य साहित्य-आकार में कदाचित् संस्कृत से भी अधिक बढ़ गया और नायिकाओं का ऐसा विभाग और अन्तर्विभाग किया गया कि आप संसार की नदियों के नाम चाहे कण्ठ कर लें परन्तु नायिकाओं के नाम और लक्षण स्मरण रखना बिना घोर परिश्रम के असंभव है।

जिन पुस्तकों में बेचारे वीर चार ही प्रकार के लिखे गए और वीरों के उदाहरण एक आध पन्ने में समाप्त कर दिए गए, उनमें नायिकाओं को सौ सौ पत्रों की पुष्पाञ्जलि चढ़ा दी गई और गिनती चार हजार के ऊपर बढ़ा दी गई! इसका कारण क्या हुआ? कवियों को दान देने में समर्थ राजाओं की विषयलोलुपता, और धनलोलुप कवियों की उनके भावों के अनुकूल पद्य लिखने की तत्परता! इसके अतिरिक्त अधःपतन के प्रवाह में कवि और रसिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों के हृदय में ऊँचे भावों का तिरोभाव ! जो हो अब गुलछर्रे उड़ाने का अवसर नहीं रहा । अब तक हमने कवि मतिराम की भाँति स्त्री जाति के हावभाव गुण अवस्था आदि में जितना काव्यरूपी पुरुषार्थ व्यय किया है उतना ही उनके भाई भूषण की तरह अब अपना वीर्य पराक्रम वीरों को जगाने में, भीरु लोगों को वीर बनाने में, अर्पण करें । ब्रह्मचर्य सिखलावें, कानून की मर्यादा के भीतर देश सेवा सिखलावें, देश के वैरियों से न दबना और उनको अमोघ उत्तर देना सिखलावें । विदेशियों के अवगुण का तिरस्कार और उनके गुण मात्र का ग्रहण करना सिखलावें, इन्द्रियों की वशता छुड़ा कर, संयम और हठ सिखलावें, कला और उद्योग सिखलावें, आलस्य का बहिष्कार, और परिश्रम का हर्षपूर्वक अङ्गीकार सिखलावें । धर्म पालन के सामने प्राण और सर्वस्व को तिनके के समान जानना सिखलावें । तभी साहित्य का उद्देश्य सफल होगा । तभी शिक्षा का उद्योग सफल होगा ।

स्वर्गनिवासी अयोध्या-नरेश महाराजा सर प्रतापनारायणसिंहजी ने अपने रसकुसुमाकर में केवल तीन प्रकार के वीर लिखे हैं अर्थात् युद्धवीर, दानवीर, दयावीर; कोई कोई चौथा प्रकार धर्मवीर भी मानते हैं ! बस ? वीर साहित्य का इतना ही विस्तार ? नहीं नहीं ! उसका उतना ही विस्तार होगा जितना शृङ्गार का हो चुका है । नायिका के सबसे पहिले तीन भेद किए गए, स्वकीया, परकीया, गणिका । फिर स्वकीया के तीन भेद किए गए मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा । फिर इनके भी अन्तर्भेद हैं । इस विभाग के अतिरिक्त अवसर विशेष के विचार से, प्रोषितपतिका, खंडिता इत्यादि १० भेद हैं । परकीया के विशेष भेद इनसे पृथक् ही हैं । कहाँ तक सुनियेगा, केशवकृत रसिकप्रिया के टीकाकार सरदार कवि ने ९२५२ भेद माने हैं । फिर नायिका का नखशिख वर्णन होता है । सखी और दूती का वर्णन होता है । शृङ्गार आभूषण का वर्णन होता है । स्वेद-रोमाञ्च इत्यादि ९ सात्विक भावों का वर्णन होता है । लीला-विलास इत्यादि १२ हाव होते हैं, इत्यादि ।

सत्य ही साहित्य के आचार्यों ने इस विस्तार में अद्भुत अनुभव, विवेकशक्ति, और वर्णनशक्ति दिखलाई है । नायिका भेद मनोवेगों का समुद्र है । अश्लील प्रसङ्गों को छोड़ कर शृङ्गार-साहित्य का चमत्कार प्रशंसा के योग्य है और प्रेम और अनुराग से गर्भित होने के कारण उपासना में भी उपयोगी है। क्या अच्छा हो यदि वर्त्तमान समय के कवि उसकी छाया पर वीर-साहित्य की रचना कर डालें । लीजिये आपके विनोद के लिए और अपना अभिप्राय दरसाने के लिए मैं कुछ उदाहरण देता हूँ । प्रतिभाशाली लेखक यदि मेरा मनोरथ सिद्ध करेंगे तो मैं क्या, हिन्दी-साहित्य और हमारा देश सभी उनका उपकार मानेंगे ।

युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, धर्मवीर, के अतिरिक्त हमको और भी कई प्रकार के वीर मानना चाहिए । चाहे वे उक्त चार में से किसी के अन्तर्गत ही क्यों न हो जायँ, जैसे—

सत्यवीर, वह वीर है जो सत्य में दृढ़ रहे ।

वचनवीर, वह वीर है जो वचन के पालन में दृढ़ रहे ।

सेवावीर, नाम ही से लक्षण विदित है । उसके अन्तर्गत स्वामिसेवावीर, उदाहरण हनुमान ।

देशसेवावीर, उदाहरण, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आदि ।

उद्योगवीर, वह वीर है जो परोपकार के लिए असाधारण उद्योग करें, उदाहरण, हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिए उद्योग करनेवाले मदनमोहन मालवीय ।

लेखवीर—जो देश और समाज के हित के लिए उत्तम पुस्तकें लिखें । उदाहरण, महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

भाषणवीर—प्रभावशाली वक्तृता से परोपकार करनेवाले, उदाहरण, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फीरोजशाह मेहता, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनी बीसेन्ट ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थवीर—धर्मपालन में, असाधारण स्वार्थ-त्याग व असाधारण द्युति दिखलानेवाला, उदाहरण, दधीचि, मोरध्वज, पन्ना दासी।

क्षमावीर—उदाहरण, भृगु की लात सहनेवाले विष्णु, राक्षसों का उपद्रव सहनेवाले विश्वामित्र, बम से घायल होकर कोप न करनेवाले लार्ड हार्डिञ्ज।

रक्षावीर—शरण वा रक्षणीय की रक्षा करनेवाला रक्षावीर, जैसे हम्मीर, दिलीप।

देशाभिमानवीर—देश की प्रतिष्ठा के लिए अन्याय वा अधर्म का विरोध करते हुए अपने धन और शरीर को तुच्छ जाननेवाला वीर, उदाहरण—साउथ एफ्रिका के विकट आन्दोलन में महानुभाव गन्धी और उनकी धर्मपत्नी।

सती वीराङ्गना—नाम ही से लक्षण सिद्ध है। उदाहरण—सती, गौरी, सावित्री, अरुन्धती, सीता, गान्धारी, पद्मिनी, गुन्नार की रानी, नीलदेवी, पयम्बर अयूब की धर्मपत्नी इत्यादि।

इस तरह बहुत प्रकार के वीरों का छन्द व उदाहरणों समेत ऐसा उल्लेख हो सकता है जिसके श्रवणमात्र से दूसरों के हृदय में वीरोत्साह उत्पन्न हो जाय।

इस वीरभेद के अतिरिक्त नायिका भेद की अवस्थाओं, हावों भावों के जवाब में भी अत्यन्त प्रभावशाली काव्य करने की अपेक्षा है। यथा प्रियतम के पास गमन करने के अभिसारिका के उत्तर में वीराभिसार का वर्णन भी होना चाहिए। चाहे वह युद्धवीर हो जो युद्ध के लिए जा रहा है अथवा और प्रकार का वीर हो और किसी दूसरे वीर कार्य्य के लिए जा रहा हो, जैसे मेघनाथ से लड़ने को लक्ष्मण जी का प्रस्थान। विप्रलब्धा नायिका के जवाब में उस वीर की अवस्था कि जो युद्ध के लिए गया परन्तु दूसरे पक्ष के क्षेत्र में उपस्थित ही न हो पाया इस कारण उसे विषाद हुआ।

प्रतिज्ञा—अर्थात् वीर का प्रतिज्ञा करना कि अमुक कार्य करके छोड़ूँगा। उदाहरण—भीष्मपितामह का वचन महाभारत में:—

जो मैं हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ,
तो लाजूँ गंगा मैया को,
शान्तनु-सुत न कहाऊँ। इत्यादि।

लक्ष्मण वचन, धनुषयज्ञशालाः में—

तोरौं छत्रक दण्ड जिमि,
तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं, प्रभु पद शपथ,
पुनि न धरौं धनु हाथ॥

सावित्री की प्रतिज्ञा सत्यवान को अल्पायु जान कर भी कि सत्यवान ही के साथ विवाह करूँगी।

तथा सत्यवती चन्द्रकला की प्रतिज्ञा—

करि अधीन मन एक के,
गुनहुँ न औषधि स्वामि।
प्रन न रह्यो जो हे सखी,
प्रानहुँ का प्रण मानि॥

वीर साहित्य की यह चर्चा लिखते हुए कलमरूपी तुरङ्ग के धावे के लिए एक लंबा चौड़ा मैदान दिखलाई देने लगा जिससे मुझे उसकी बाग खींचना ही उचित प्रतीत हुआ। अब कुछ ही उदाहरण देकर इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ।

चारण वचन—वीररस का उद्दीपन।

एकन से एक बली तेजसी समरधीर
बीर जब धावें भरे साहस गुमान में।
तृन के समान निज प्रान बलवान लेखें
राखैं न तनक नेह तीय तनयान में॥
रिपुन समूह सामने को होत बाँको समै
तोन में तें एक जहाँ होनहार आन में।
भागैं ते कहावैं कूर जीत नाम पावैं सूर
मरैं ते सिधारैं सुरपुर को विमान में॥

पुनः चारणवचन, निज पक्ष का उत्साहवर्द्धन, विपरीत पक्ष का मनोमर्दन।

धावौ रे समरधीर गाजौ रे विकट बीर
बैरिन को अंग खोर करहु पछार झार।
मारौ रे सघन तोर काटौ रे रिपुन भीर
छेदौ रे शरीर हूल हूल शूल धारदार॥
डारौ रे सघन चीर नेक न विचारौ पीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औसर मिलै न वीर बाजिवे को बार बार।
शत्रु हिये हार हार भागे शस्त्र डार डार
धाव धाव मार मार काट काट फार फार॥
कुंजरन झुंडन ज्यों केहरी गरजि गुंजि
चीर अरि भीर वीर तैसे चित चोपे हैं।
शत्रुन कटक काटि काल को कलेऊ दै दै
रुंड मुंड सागरी समरभूमि तोपे हैं॥
बानन की बरखा कृपानन की घमासान
भालन की बारन न काहू पग रोपे हैं।
भागहु रे बैरियो बचाओ निज प्रानन को
भानु औ प्रताप आज दोउन रन कोपे हैं॥

वीररस वार्ता के उदाहरण।

उदाहरण—रावण बाणासुर संबाद, केशवकृत रामचन्द्रिका में।

अथवा—

कह लंकेश कौन तैं बन्दर।
मैं रघुवीर दूत दशकंधर॥
याको फल पावहुगे आगे।
बानर भालु चपेटन लागे॥

अथवा—

अस मन समुझि सु कहत जानकी।
खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥

पराजित की उक्ति।

नाथ एक आवा कपि भारी।
जेहि अशोक बाटिका उजारी॥
खायसि फल अरु विटप उपारे।
रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे॥

भारि डारी मालिन की भीर धीर बानर ने
मल्लन की नखन विदारि डारी छाती है।
नोंच डारी डाढ़ी गाढ़ी खाल लैं खरोंच डारी
मोंछ डारी झटकि उपारि उतपाती है॥
भाग कोई बिरलो पुकारो रखवारो जाय
आयो कपि भारो बरियारो महाघाती है॥
बाग में न राख्यो शाखी, शाखो में न राखी शाख
शाखा में न राखी एक शाखामृग पाती है॥

काहू के उखारे हाथ काहू के विदारे माथ
काहू के हँकारे साथ कीन्हों चूर छाती है।
गरजि गरजि डांट चरजि चरजि छांटे
तरजि तरजि काटै ऐसो महाघाती है॥
एरे दशकंदर सुबाटिका के अन्दर यों
छाई धूम बन्दर महान उतपाती है।
बाग में न रूख रहे, रूख में ना शाखा रही
शाखा में न फल है न फल है न पाती है॥

वार वर्णन।

फन फटकार शेष बल के सँभार धार
झुंड झटकार घोर दिग्गज चिघारे हैं।
कच्छप विकल भो कोलाहल करत कोल
सिंधु जल होत हिलकोरे तुङ्ग भारे हैं॥
चकित जकित जै जै रटत सभीत सुर
राकस समूह शोर हाहाकार पारे हैं।
जाही छिन कोपि कोपि ताकि ताकि रावन को
रामचन्द्र जू ने इकतीस बान मारे हैं॥

दुष्ट के दमन पर प्रसन्नता की उक्ति।

बालि अनुज-नारी-रतहिं,
हन्यो राम बल सींव।
त्यों कामातुर कीचकहिं,
पटक पछार्यो भीम॥

उत्साहजनक शिक्षा का उदाहरण।

जागो जागो बन्धुगण आलस सकल विहाय।
देशहितै अर्पण करौ मन वाणी अरु काय॥
मन वाणी अरु काय देशसेवा को जानो।
जीवन धन यश मान उसी के हित सब मानो॥
वीर जनो! अब खेत छोड़ मत पीछे भागो।
सोतों को दो चेत, करो ध्वनि "जागो जागो"॥

दयावीर।

सुनि सेवक-दुख दीनदयाला।
फरकि उठे दोउ भुजा विशाला॥

दुःखो को आश्वासन।

सुन सुग्रीव मैं मारिहौं, बालिहिं एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र शरणागतहुँ, गए न उबरहिं प्रान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुषयज्ञ के पूर्वः—

देखी बिपुल बिकल वैदेही।
निमिष बिहात कल्प सम तेही॥
तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा।
मुए करै का सुधा-तड़ागा॥
का वर्षा जब कृषी सुखाने।
समय चूकि पुनि का पछताने॥

कर्म भक्ति वा प्रार्थना के वचनों से भी दयावीर का वर्णन हो जाता है।

जरत सकल-सुर-वृंद,
विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमंद,
को कृपालु शङ्कर सरिस॥

वारन की आरत गुहार सुनि दीनबंधु धाय चित दीन्हों ताहि ग्राह तै उबारन में।
दुखी जानि भार ही को ध्यान को रमायो किधौं अंडन बचाइवे कों घंटा तोरि डारन में॥
किधौं सुनि द्रौपदी की टेर करुणा की भरी राखन कौ लाज लागे अंबर सँवारन में।
पतित उधारन हा करुणाजलधिनाथ बार क्यों लगाई मेरी बिपत बिदारन में॥

महाशयो, अब मैं अपने निवेदन के शेष अंशों में प्रवेश करना चाहता हूँ। यदि मैंने वीररस की उमङ्ग में आपका समय लेते हुए आप में से किसी को भी अप्रसन्न किया हो तो मैं क्षमा का प्रार्थी हूँ। समय और देश की दशा को देख कर मुझसे इतना कहे बिना नहीं रहा गया। कवि कर्तव्यों में एक प्रधान कर्तव्य पर इतना आग्रह किये बिना न रहा गया। जिस अवस्था में हमारे बच्चों को कसरती, फुर्तीले, जवान, साहसी, तेजस्वी, ब्रह्मचारी, होना चाहिये उस अवस्था में हम जब उन्हें निस्तेज, रुक्षवदन, सुकुमार और भीरु पाते हैं और चूहे समान एक आध बच्चे का बाप पाते हैं तब हम दीर्घ साँस लेकर अपने ही हृदय से पूँछते हैं "क्या अभागे भारतवर्ष का उद्धार ऐसे ही गबद्दू बाबुओं से होगा?" मैं फिर आप से क्षमा माँगता हूँ परन्तु फिर दीनतापूर्वक और बारम्बार कहता हूँ कि इन बच्चों को समर्थ बनाना साहित्य का काम है और साहित्य को उस कार्य के लिए समर्थ बनाना समर्थ कवियों, लेखकों, व्याख्याताओं और उपदेशकों का काम है। मैं वाणी के व्यवहार को संसार के व्यवहार से एक क्षण को भी अलग नहीं मान सकता। मेरी देशकल्याण की प्रार्थना का उपक्रम हैः—

लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै।
विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीजै॥
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै।
कीजै कीजै देशकल्यान कीजै॥

और उपसंहार हैः—

समस्त वर्णाश्रम धर्म मानैं।
सदाहि कर्त्तव्य प्रधान जानैं॥
यशी तपस्वी बुध वीर होवें।
बली प्रतापी रणधीर होवें॥

(अपूर्ण।)

—:o:—

चीन का इतिहास।

(श्रीयुक्त प्रो० रामनाथन एम० ए० के अँगरेजी लेख के आधार पर।)

(१)



[ची]न देश के निवासियों का इतिहास पर सदा पूरा पूरा ध्यान रहता आया है। साम्राज्य की प्रधान प्रधान घटनाओं का, इतिहास के लिए, पूरा और ठीक विवरण रखना वहाँ की सरकार का मुख्य कर्त्तव्य समझा जाता है। हजरत नूह की बाढ़ के पहले के चीनी साम्राटों तक के नाम और कार्य आदि अब तक चीन के इतिहास में पाए जाते हैं। इस अवसर पर वहाँ के भिन्न भिन्न राजाओं और राजकुलों के उत्थान और पतन आदि का अलग अलग वर्णन न देकर संक्षेप में उनके सम्बन्ध में कुछ बातें बतलाई जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व इतिहास ।

अनुमान किया जाता है कि चीन देश के आदिम निवासी ईसवी शताब्दी से २३ सौ वर्ष पूर्व कैस्पियन समुद्र के दक्षिणी तट (वर्त्तमान फारस के उत्तरी भाग) से चल कर वहाँ आए थे। उनकी भाषा तथा सामाजिक और धार्म्मिक रीति-नीति आदि बैबिलोन की प्राचीन जाति एकेड आदि से मिलती जुलती है। आरम्भ में वे लोग खानाबदोश थे, भेड़ बकरियाँ चराते थे और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे; पर आगे चल कर वह यैंकसी और हुँगरो नदियों के आस पास के मैदानों में बस गए और खेती बारी करने लगे। पहले तो वे लोग अलग अलग सरदारों के अधीन दल बाँध कर रहते थे, पर आगे चल कर उन्होंने अनेक मांडलिक राज्यों की स्थापना की। कुछ दिनों बाद इनमें भी अनेक विभाग हो गए जिससे मांडलिक राजाओं की शक्ति बहुत कुछ घट गई। ह्वांगटी नामक राजा ने यह सिद्धान्त निकाला कि जिस प्रकार आकाश में केवल एक सूर्य होता है उसी प्रकार जाति में केवल एक शासक होना चाहिए; और इसी सिद्धान्त के अनुसार उसने भिन्न भिन्न छोटे राजाओं को दबा कर अपना साम्राज्य स्थापित किया। तातारियों के आक्रमण से बचने के लिए उसने प्रसिद्ध "चीन की दीवार" का बनवाना आरम्भ किया जो ईसा से २११ वर्ष पूर्व बनकर तैयार हो गई। उसके समय में गणित-ज्यौतिष की अच्छी उन्नति हुई, पंचांगमें सुधार हुए और अनेक निरर्थक प्रथाओं का अन्त हुआ। साम्राज्य को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए वह साहित्य और साहित्य-सेवियों का शत्रु हो गया और उसने चिकित्सा और कृषि-शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों को छोड़कर सब प्रकार के ग्रन्थ जलवा दिए। ह्वांगटी के परवर्त्ती शासक उतने योग्य और समर्थ नहीं हुए और उनके राज्य में अनेक छोटे छोटे स्वतंत्र शासक और अधिकारी बन गए। अन्त में हान राजवंश के काओटी नामक राजा ने फिर उन सब को परास्त करके एक साम्राज्य की स्थापना की। उसके शासन काल में, आने जाने के मार्गों का सुधार और संस्कार हुआ, पहले पहले झूलने पुल बनाए गए और ह्वांगटी द्वारा नष्ट किए हुए साहित्य के पुनरुद्धार के अनेक प्रयत्न हुए। चीन में चिरकाल के लिए बौद्ध-धर्म्म को दृढ़ता-पूर्वक संस्थापित करनेवाला हान-मीगंटी-इससे भिन्न, दूसरा राजा था।

अन्तिम हान के पतन और प्रथम तांग के उत्थान के मध्य प्रायः चार सौ वर्ष (२२० से ६१८ ईसवी तक) का अन्तर पड़ा था। इस बीच में साम्राज्य पहले तीन और पीछे छः स्वतंत्र खण्डों में विभक्त हो गया था और उनमें प्रायः परस्पर युद्ध भी हुआ करते थे। उस काल की मुख्य घटना केवल फाहसीन की भारत-यात्रा ही है जिसका आरम्भ सन् ४०० ईसवी में और अन्त चौदह वर्ष बाद हुआ था। चौदह वर्ष बाद वह भारत से अपने साथ बहुत सी अच्छी अच्छी पुस्तकें लेकर लौटा था। तांग राजवंश के उत्थान के साथ ही साथ चीनी साहित्य के भी सुदिन आए और उसी समय से कनफ्रूची के उपदेशों का, जो बुद्ध के उपदेशों के सामने कुछ दब से गए थे, फिर से प्रचार होने लगा। कोरिया के राज-कार्य्यों में जापान के हस्तक्षेप का प्रश्न लोग आजकल सुना करते हैं। तांग वंश के सत्र से बड़े राजा ताओत्सांग ने कोरियावालों को अपने अधीन करने के अनेक प्रयत्न किए थे, पर उसे सफलता न हुई। पर उसके उत्तराधिकारी काओत्सांग ने, अथवा यों कहिये कि उसकी पत्नी महारानी वू ने उस प्रयत्न में बहुत कुछ सफलता पाई थी। कोरिया के महाराज ने जापानियों को अपनी सहायता के लिए बुलाया था। पर महारानी व ने अपनी सारी शक्तियाँ युद्ध में लगा दीं और अन्त में जापानियों और कोरियनों के संयुक्त बेड़े नष्ट कर दिए।

ताँग राजवंश का अन्त और मिंग राजवंश का अभ्युदय ।

तांग राजवंश के दुर्बल हो जाने पर, उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतन से कुछ पूर्व ही साम्राज्य के दक्षिणी भाग पर तातारियों का आक्रमण होने लगा था। कई बार लड़ झगड़ कर उन्होंने अन्त में मैंगसी के समस्त उत्तरी भाग पर अपना पूरा पूरा अधिकार कर लिया। इसके बाद प्रायः दो सौ वर्षों में उनके सहवर्गी किन तातारों ने उन्हें वहाँ से मार भगाया। दक्षिणी चीन के अधिकारी संग लोगों ने इन तातार विजेताओं की अधीनता स्वीकार कर ली। उन लोगों ने कभी शान्ति भंग न होने दी और जब जब उनके पड़ोसियों ने किसी प्रकार का उपद्रव आरम्भ किया तब तब उन्होंने धन आदि देकर उन्हें शान्त कर दिया। इस प्रकार की हेय शान्ति के कारण वे लोग युद्ध-विद्या एक दम भूल गए और इसी लिए जब चंगेजखा ने चीन पर आक्रमण किया तो वे और किन तातार बड़ी सरलता से परास्त हो गए। इस मंगोल राजवंश में कुबलईखाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध शासक हुआ था। वेनेशिया के मारको पोलो नामक यात्री ने जो प्रायः १३ वीं शताब्दी के अन्त में वहाँ गया था, उसके शाही दरबार का बहुत अच्छा वर्णन किया है। कुबलईखाँ का जापानियों से भी कुछ झगड़ा हो गया था क्योंकि जापानी लोग प्रायः चीन और कोरिया के तटों पर छोटे मोटे आक्रमण किया करते थे और जब वे इस प्रकार अपना उद्देश्य सिद्ध करने में समर्थ नहीं हुए तो अन्त में उन्होंने अपना बेड़ा भी आक्रमण करने के लिए भेजा था। पर जापानियों को इस प्रयत्न में भी सफलता नहीं हुई। इसी बादशाह के शासन-काल में कैथोलिक मिशनरियों ने मंगोलों में ईसाई धर्म के प्रचार का आरम्भ किया था। इससे पहले सन् ६३५ में भी कुछ नैस्टोरियन धर्माधिकारी चीनियों को ईसाई बनाने के लिए वहाँ गए थे। वहाँ के अधिकारियों के विरोध करने पर भी उन लोगों को अपने प्रयत्न में थोड़ी बहुत सफलता हुई थी। तांग राजवंश के समृद्धि-काल में, ताओतसंग के राजत्व-काल में, धर्मप्रचार के अभिलाषी पोप ने चीन के राजदरबार में अपना एक दूत भेजा था। उस दूत ने वहाँ देखा कि फारस और नैपाल के राजदूत बड़े सम्मान से रखे गये हैं। कुबलईखाँ के पिता मंगूखाँ के शासन-काल में जान डी प्लैनो कारपीनी फ्रायर रविकिस वहाँ गये थे और खाँ ने उनका अच्छा आदर सत्कार किया था। उन्होंने नैस्टोरियन क्रिस्तानों की वहाँ दुर्दशा देखी; इसके अतिरिक्त स्वयं उनके उपदेश वहाँ बड़े चाव से सुने जाते थे क्योंकि मंगूखाँ और उनके दरबारी प्रायः हर समय नशे में चूर रहते थे। मारको पोलो ने कुबलईखाँ से भेंट करके उसे पोप के मित्रता और आश्वासन-सूचक पत्र आदि दिए। काफिर चीनियों को धर्म्म का उपदेश करने के लिए उसके साथ और भी बहुत से पादरी थे। कुबलईखाँ के परवर्त्ती शासक अकर्म्मण्य और दुर्बल थे इसलिए हैंगवा के नेतृत्व में चीनियों ने अपने आपको मंगोलों की अधीनता से निकाल लिया।

मिंग राजवंश।

हैंगवा के शासन काल में हैनलिन के विद्या-पीठ का संस्कार हुआ था और उसी ढंग का एक और पीठ दक्षिणी राजधानी नानकिंग में स्थापित हुआ था। उसी के समय में चीनी राजनियम संगठित और लिपि-बद्ध हुए थे। यह कार्य्य बहुत ही महत्व-पूर्ण था और इससे सर्वसाधारण को बहुत लाभ पहुँचा। हैंगवा के वंशज जो मिंग कहलाते थे, बहुत दिनों तक चीन का शासन करते रहे; पर आगे चलकर मंचू राजवंश ने उनको परास्त कर दिया। चीन पर तब से अब तक मंचू राजवंश का ही शासन रहा। मिंग राजवंश के चैंगटे नामक राजा के समय में जो सन् १५०६ से १५२२ तक शासक रहा, पुर्त्तगाली लोग चीन के दक्षिण तट पर पहुँचे थे। उस समय थोड़े से जहाजों को लेकर डी, 'आरडेड ने वहाँ प्रवेश किया था और कैन्टन के अधिकारियों ने उसका यथेष्ट आदर सत्कार किया था। वहाँ से चलकर वह पेकिंग गया और कई वर्षों तक वहीं अवैतनिक राजदूत की भाँति रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिनों बाद निंगपो ग्रैर दूसरे कई स्थानों में पुर्त्तगालियों ने कुछ उपद्रव ग्रैर उत्पात किया; ग्रैर इसी लिए डी' ग्रारडेड पकड़ कर कैद कर लिया गया। छः वर्ष तक वह कैद में पड़ा रहा ग्रैर ग्रन्त में उसका सिर काट लिया गया। पुर्त्तगालियों के साथ व्यवहार करके चीनी लोग बुरी तरह धोखा खा चुके थे इसलिए ग्रागे चलकर उन्होंने ग्जैवियर ग्रैर मिचैल राजर जैसे मिशनरियों को भी चीन में प्रवेश करने की ग्राज्ञा नहीं दी। पर रिस्सी को जो सन् १५८२ में मेकाग्रो पहुँचा था, कुछ विशेष सफलता हुई। ग्रपनी सहानुभूति, विद्वत्ता ग्रैर उदारता ग्रादि के कारण सब श्रेणियों के चीनियों में उसने ग्रच्छी प्रतिष्ठा ग्रैर मर्य्यादा प्राप्त कर ली ग्रैर पेकिंग में सम्राट् ने उसका बहुत ग्रच्छा स्वागत किया। उसके निरीक्षण में चीन में ईसाई धर्म्म की ग्रच्छी उन्नति हुई। साहित्य-सेवी सू ग्रैर उसकी पोती को उसी ने ईसाई बनाया था। उसी ग्रवसर पर (१६ वीं शताब्दी के ग्रन्त में) कोरिया के शासन के सम्बन्ध में चीन ग्रैर जापान में फिर झगड़ा हुग्रा। मिंग राजाग्रों ने नी राजवंश को कोरिया के राज्यासन पर ग्रारूढ़ होने में बहुत सहायता दी थी ग्रैर तभी से कोरिया पर चीनियों का बहुत दबाव पड़ता था; जापानियों की उन दिनों वहाँ कुछ भी न चलती थी। कोरिया के ग्रान्तरिक विरोध ग्रैर वैमनस्य से लाभ उठाकर हिदेयोशी नामक एक जापानी जनरल ने प्रायद्वीप में पहुँच कर सन् १५९२ में सिग्रोल पर ग्रधिकार कर लिया। कोरियावालों ने चीनियों से सहायता के लिए प्रार्थना की। तदनुसार चीनियों ने कोरिया में में ग्रपनी बहुत सी सेना भेजी जिसे उक्त जापानी जनरल ने परास्त कर दिया। पर इसके बाद ही पिंगयांग के निकट चीनियों ने ग्रन्तिम पूर्ण विजय प्राप्त कर ली ग्रैर साथ ही हिदेयोशी की फिर से ग्राक्रमण की तैयारी करने में ग्रचानक मृत्यु हो गई ग्रैर इसी लिए दोनों देशों में शान्ति भी स्थापित हो गई।

मंचू राजवंश द्वारा सदा के लिए नष्ट होने से कुछ ही पहले वानली के दीर्घ ग्रैर सुखद शासन के कारण मिंग राजवंश उसी प्रकार चमक उठा था जिस प्रकार बुझने से पहले दीपक प्रज्वलित हो उठता है। वानली के शासन काल में मंचुग्रों ने उसकी ग्रधीनता स्वीकार करके उत्तरी चीन में ग्रपना ग्रड्डा बना लिया था। पीछे नुराचू ग्रैर तोंत्संग के समय में चीनियों ग्रैर मंचुग्रों में कई लड़ाइयाँ हुई थीं ग्रैर ग्रन्त में मंचुग्रों की ही विजय हुई थी।

मंचू राजवंश।

संयुक्त चीन पर शासन करनेवाले पहले मंचू सम्राट् का नाम शुंशी था। उसके शासन-काल में दो युरोपियन राजदूत पेकिंग पहुँचे थे—एक तो डच ग्रैर दूसरा रूसी; पर उनका स्वागत उत्साहजनक नहीं था। सम्राट् की इच्छा थी कि वे राजदूत उसकी सेवा में उपस्थित होते समय "कैाटैा"* करें। डच राजदूत ने तो यह बात स्वीकार कर ली ग्रैर उसे ग्राज्ञा मिली कि वह प्रति ग्राठ वर्ष में एक बार सैा ग्रादमियों को ग्रपने साथ लेकर वहाँ ग्रावे ग्रैर उन सैा में से बीस ग्रादमी राजदरबार में उसके साथ ग्रा सकें। पर कैाटैा न करनेवाले उद्दण्ड रूसियों पर इस प्रकार की सन्दिग्ध कृपा नहीं हुई। दूसरे सम्राट् कांगशी के शासनकाल में रूसियों ने ग्रपनी पूर्वी सीमा बढ़ा ली ग्रैर ग्रमूर नदी के ऊपरी भाग में एलबेजिन के निकट ग्रपनी किलेबन्दी कर ली। चीनी सम्राट् ने देखा कि यदि इस ग्रवसर पर रूसियों को रोका न जायगा तो वे ग्रागे चल कर प्रबल हो जायँगे ग्रैर हमारे देश को हानि पहुँचावेंगे। इसलिए उसने ग्रपनी सेना वहाँ भेजी जो उन

* चीनियों में यह प्रथा है कि जब वे देव-पूजन करते ग्रथवा सम्राट् या किसी ग्रैर बड़े के सामने उपस्थित होते हैं तो तीन बार ग्रागे की ग्रोर घुटनों के बल झुकते ग्रैर तीनों बार ग्रपना माथा जमीन पर टेकते हैं। इसी को कैाटैा कहते हैं।—प० सम्पा०।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलेबन्दियों को नष्ट करके और वहाँ के रूसी सैनिकों को कैद करके पेकिंग ले आई। सन् १६८९ में नरचिंस्क की जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि रूसी अमूर नदी के उत्तर में ही रहें और उसके दक्षिणी तटों की शान्ति भंग न करें। कांगशी की उदार सहनशीलता के कारण ईसाइयों को अनेक सुविधाएँ मिल गईं पर बाद में दो ईसाई सम्प्रदायवालों में परस्पर झगड़ा होने के कारण चीनी खटक गए। उन्होंने यह समझा कि यह झगड़ा यहाँवालों को भड़काने के लिए हुआ है। कांगशी की मृत्यु के उपरान्त राजदरबार में ईसाइयों का उतना आदर न रह गया। इसके उपरान्त वहाँ पहुँचनेवालों को कष्ट और हानि के अतिरिक्त और कुछ भी न मिला। सन् १७२७ में रूसी राजदूत काउन्ट सेबा व्लैडीलैविश और पुर्त्तगाली राजदूत डोन मिटेलो सोज़ा मेंजेस वहाँ पहुँचे। चीन के दरबार में जाने के समय विदेशी राजदूतों को जिन अदब-कायदों का ध्यान रखना पड़ता है, उनसे यह दोनों राजदूत अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे; क्योंकि उनके पालन से वे अपने अपने शासकों की हेठी समझते थे। जेस्विट सम्प्रदाय के ईसाइयों को ही चीनी इस झगड़े की जड़ समझते थे इसलिए उन्हीं पर उनकी अप्रसन्नता भी बढ़ी। जेस्विट सम्प्रदाय के आए हुए कुछ लोगों से सम्राट् ने कहा भी था—"तुम लोग मुझ से कहते हो कि तुम्हारा धर्म्म मिथ्या नहीं है। मैं तुम्हारी बात का विश्वास करता हूँ। यदि मैं उसे झूठा समझता तो तुम्हारे गिरजे नष्ट करने और तुम्हें इस देश से मार भगाने से मुझे कौन रोक सकता था?......... पर यदि मैं अपने देश से बहुत से लामा तुम्हारे देश में धर्म्म-प्रचार के लिए भेज दूँ तो तुम लोग क्या कहोगे? उन लोगों का स्वागत तुम किस प्रकार करोगे?..........जिन लोगों को तुमने ईसाई बना लिया है वे तुम्हारे सिवा और किसी को नहीं मानते और आपत्ति के समय वे तुम्हारे सिवा और किसी की बात न सुनेंगे?" तात्पर्य्य यह कि मिशनरियों का मान न तो राजा के यहाँ हुआ और न प्रजा में। प्राचीन धार्म्मिक विश्वासों को भंग करने के लिए जो लोग बिना बुलाए और बिना सहानुभूति सम्पादित किए कहीं जाते हैं, साम्राज्य में थोड़ा सा उपद्रव ही, सब लोगों को उन पर कुपित कर देने के लिए यथेष्ट होता है। कियनलंग ने राजकार्य्य में सहायता देने के लिए जिन लोगों को आमन्त्रित किया था, वे भी मिशनरियों से प्रसन्न नहीं थे; और उन्हीं के कारण फ़ूकीन में ईसाइयों को कई बार तंग करने का प्रयत्न हुआ था।

इसी शासनकाल में सब से पहले सर्वाधिकार-प्राप्त अँगरेज़ी राजदूत को चीनी सम्राट् की सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा मिली। लार्ड मैकर्टनी को भली भाँति समझा दिया गया था कि जब तक उनके समान पद का कोई चीनी अधिकारी अँगरेज बादशाह की तसवीर के सामने "कौटौ" न करे तब तक तुम भी चीन-सम्राट् के सामने "कौटौ" न करना। जब कोई चीनी अधिकारी यह शर्त्त मानने के लिए तैयार न हुआ तो अँगरेज़ी दूत को भी कौटौ करने से छुटकारा मिल गया। लार्ड मैकर्टनी ने कोई व्यापारिक सुविधा प्राप्त न की। लार्ड महाशय चीनी भाषा नहीं जानते थे; इससे लाभ उठाकर उनकी नाव पर मन्दारिनों ने ऐसे चिह्न अंकित कर दिए थे जिनसे सूचित होता था कि अँगरेज़ों ने चीनियों की अधीनता स्वीकार करके, उस नाव पर लदी हुई चीजें करस्वरूप भेजी हैं। चीनियों के इस अपमानजनक व्यवहार का कारण यह था कि वे यह समझते थे कि "विदेशी असभ्य" यहाँ आकर हम लोगों को व्यर्थ तंग करते हैं और हमें उनसे मिलता जुलता कुछ भी नहीं है। इसके परवर्त्ती शासन में मिशनरियों और विदेशियों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार नहीं हुआ। कियनलंग का पुत्र कियाकिंग अपने पिता की अपेक्षा अयोग्य था और लोगों से नियमित अभिवादन आदि कराने का बड़ा पाबन्द था। रूसी राजदूत काउन्ट गोलिकेन चीनी सम्राट् के सामने केवल कौटौ करने के लिए तैयार न होने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उलटे पैरों स्वदेश लौट गया था । अँगरेजी राजदूत लार्ड एमहर्स्ट को भी इसी कारण चीन से बिना सम्राट् से भेंट किए वापस आना पड़ा था ।

(अपूर्ण ।)

—:०:—

पैवन्द और कलम ।

(लेखक—श्रीयुक्त हरिप्रसादजी पालधि बी० ए० काशी ।)

श्रीयुत गङ्गाशङ्कर पंचोली महाशय ने मार्च १९१५ की नागरीप्रचारिणी पत्रिका में 'पैवन्द और कलम' शीर्षक एक लेख लिखा है जिसमें पाठकों के ज्ञातव्य बहुत सा विषय है; परन्तु इस लेख का कोई कोई अंश साफ नहीं है। यथा पृष्ठ २७४ में लिखा हैः—

"हमारे देश के माली नारंगी आदि वृक्षों में उसी जाति के जुदा जुदा स्थान के वृक्षों के 'पैवन्द' वा 'आँख' चढ़ाकर संतरे आदि अनेक प्रकार के फल और मामूली देशी आम के वृक्षों में मालदह, लंगड़े आदि जाति के आमों की 'कलम' चढ़ा कर नये प्रकार वा स्वाद के आम उत्पन्न करते हैं"।

यह कथन सर्व्वतोभाव से ठीक नहीं है क्योंकि देशी आम पर लंगड़े की कलम चढ़ाने से जो वृक्ष तैयार होगा उसमें लंगड़ा आम फलेगा न कि किसी नये प्रकार का आम। इसलिए यह कहना कि "नये प्रकार वा स्वाद के आम उत्पन्न करते हैं" ठीक नहीं है ।

अब प्रश्न यह हुआ कि जब नये प्रकार का आम पैदा नहीं होता तो कलम बाँधने की आवश्यकता ही क्या है ? पाठकों को ज्ञात रहे कि बहुत से वृक्ष ऐसे हैं जो बीज से जम कर अपने असली भाव पर नहीं बने रहते । कारण यह है कि जब वृक्षों में फूल आता है तो पवन, मधुमक्षिका तथा अन्य प्रकार के कीट पतङ्गों के द्वारा पुंपराग एक प्रकार के वृक्षों के फूलों से दूसरे प्रकार के वृक्षों के फूलों में फैलता रहता है, जिससे इसका कोई निश्चय नहीं रह सकता कि लंगड़े आम के वृक्षों के फूलों में लंगड़ों का ही पुंपराग पहुँचा है। यही कारण है कि अच्छे से अच्छे आम की गुठली लगाने से जो वृक्ष पैदा हुआ हो उसका फल अति निकृष्ट भी हो सकता है। परन्तु लंगड़े आम की कलम में लंगड़ा ही फलता है, इसी लिए कलम लगाने की प्रथा चली है ।

कलम जोड़ है और कोई जोड़दार वस्तु असली के समान दृढ़ नहीं हो सकती । यही कारण है कि कलमी वृक्ष बीजू के समान उत्तम और दीर्घजीवी नहीं होते। उनकी बाढ़ और फलत कम होती है। यद्यपि कलमी वृक्षों के फल असली वृक्षों के फल के सदृश ही होते हैं परन्तु वृक्षों की कमज़ोरी के कारण फल में कुछ आभ्यन्तरीण हेरफेर भी हो सकता है । यथा कभी बीज कम हो जाते हैं, कभी गुठली छोटी हो जाती है और कभी कभी रेशा भी कम हो जाता है । यद्यपि वृक्षों का कमजोर हो जाना और फलत की कमी दोष हैं तथापि अमरूद में बीज का कम हो जाना और आम की गुठली का छोटा होना लोगों को अधिक रुचिकर होता है, इसलिए भी कलमी वृक्ष लगाए जाते हैं । कलमी वृक्ष छोटे होते हैं इसलिए बीजू वृक्षों की अपेक्षा निकट निकट लगाए जा सकते हैं ।

इस संसार का यह नियम है कि जीव अपने सजाति जीवों को पैदा करता है । ईश्वर ने फलों में बीज इसी लिए पैदा किए हैं कि उनसे सजातीय वृक्ष पैदा होते रहें। वृक्ष के अनुत्तम होने से फल के भी निकृष्ट होने की आशङ्का रहती है। परन्तु कभी कभी ऐसा होता है कि फलों की संख्या कम हो जाने के कारण फल बड़े हो जाते हैं । वृक्षों की कमजोरी से बीज भी कमजोर हो जाता है इसी लिए कलमी वृक्षों के फलों में बीज कम और छोटे होते हैं ।

बहुत से वृक्ष ऐसे होते हैं जो बीज से प्रायः जमते ही नहीं; यदि जमे भी तो प्रायः फलते नहीं या बहुत दिनों में फलते हैं । ऐसे वृक्ष प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे देश से लाए हुए होते हैं और इस देश में केवल कलम ही से बढ़ाए जाते हैं। यथा गुलाब का वृक्ष, इस देश में केवल कलम ही से बढ़ाया जा सकता है, परन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि गुलाब में बीज होते ही नहीं। यहाँ भी किसी किसी गुलाब में फल लगता है। यदि देखा जाय तो किसी किसी फल में बीज भी पड़ता होगा, और इन्हीं बीजों से सैकड़ों नये प्रकार के गुलाब निकले हैं।

कलम करके हम वृक्षों के ढंग को भी किसी परिमाण में बदल सकते हैं; अर्थात् उन्हें ऐसा बना सकते हैं कि ऊपर को अधिक बढ़ें अथवा चारों तरफ अधिक बढ़े परन्तु अधिक ऊँचे न हों।

फल के स्वाद में भी कलम की सहायता से कभी कभी हेर फेर किया जा सकता है, यथा मीठे नीबू के बीजू पर सन्तरे की कलम चढ़ाने से फल तो सन्तरा होता है परन्तु उसकी तुरशी कम हो जाती है। हमने स्वयं मीठे नीबू पर पंजाबी जंबीरी की कलम चढ़ी हुई देखी है। उसका फल देखने में जंबीरी का सा था परन्तु स्वाद मीठे नीबू का था। परन्तु आम के वृक्ष में हमने कोई हेर फेर नहीं देखा है। अलबत्ता यह देखा है कि किसी वृक्ष का फल बड़ा और किसी का छोटा होता है। यह कहना बहुत कठिन है कि यह भेद बीजू के कारण हुआ है या जमीन के गुण से। यह कहा जाता है कि बार बार बड़े आमों की गुठली से जमे हुए वृक्षों पर सफेदे की कलम बाँध कर मलीहाबादवालों ने सफेदे आम को बढ़ा लिया है।

हमने काश्मीर में बादाम, आड़ू और जंगली खूबानी पर, जिसको वहाँ हाड़ी कहते हैं खूबानी की कलम चढ़ाते देखा है। बादाम पर चढ़ी हुई कलमों में जो फल होता है उसकी गिरी भी मीठी होती है। आड़ू पर चढ़ी हुई कलमों में जो फल होता है वह बड़ा होता है और देखने में सुन्दर होता है परन्तु उसकी गिरी कड़ुई होती है। हाड़ी पर चढ़ी हुई कलमों का वृक्ष बड़ा होता है और उसमें फल अधिक लगते हैं परन्तु स्वाद में वह पहिले दो प्रकारों से घट कर होता है और उसकी गिरी भी कड़ुई होती है। अर्थात् इन तीनों प्रकारों के फलों में कुछ न कुछ विशेषत्व रहता ही है। विशेषत्व का कारण यह है कि बीजू यद्यपि एक ही जाति के थे परन्तु अलग अलग कुल के थे। एक बादाम पर था, दूसरा आड़ू पर था और तीसरा जंगली खूबानी पर था। यदि सब कलमें जंगली खूबानी पर ही होतीं तो फ़ल में कुछ हेर फेर न होता। और यही बात संतरे में भी है। अर्थात् यदि संतरे की कलम संतरे ही के बीजू पर बाँधी जाय तो फल का स्वाद और रूप न बदलेगा।

सारांश यह निकला कि अपने ही कुल के बीजू पर कलम चढ़ाने से जो वृक्ष होगा उसका फल स्वाद इत्यादि में कलम के कुल का होगा और कलम चढ़ाने से किसी मिश्र जाति का फल नहीं निकलेगा; परन्तु यदि बीजू सजाति किन्तु भिन्न कुल का हो तो कलम के चढ़ाने से स्वाद और रूप में भेद पड़ सकता है पर फल उसी कुल का होता है जिस कुल की कलम है।

पाठक! हमारे इस लेख को श्रीयुत् गङ्गाशङ्कर पंचोली महाशय के लेख की टीका समझिए। इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु जब तक यह निश्चय न हो जाय कि पंचोलीजी अब इस विषय पर कुछ न लिखेंगे तब तक हमारा इस विषय में दखल देना ठीक नहीं है। आशा है कि पंचोलीजी इस विषय पर अभी लिखेंगे क्योंकि यह बड़ा ही उपयोगी विषय है।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास जी का असली चित्र ।



भारत में बहुत ही थोड़े लोग होंगे जो महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी के नाम से परिचित न हों। गोस्वामीजी का काशी से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। उन्होंने अपने जीवन के अधिक दिन काशी में ही ही बिताए थे। काशी में उनके प्रधानतः चार स्थान थे—१ असीघाट, २ गोपालमन्दिर के निकट, ३ प्रल्हादघाट और ४ संकटमोचन। इन्हीं स्थानों में प्रायः वे रहते थे। गोस्वामीजी पहले पहल जब काशी में आते तब प्रल्हादघाट पर पं० गंगाराम जोशी के घर ठहरते थे। यह वही स्थान है जहाँ स्वयं रामचन्द्रजी ने आकर चोरों से गोस्वामीजी के भण्डारे के धन की रक्षा की थी। पं० गंगारामजी से आपका बड़ा प्रेमसम्बन्ध था और उनके अर्पण किए हुए धन से ही गुसांई जी ने शेष स्थान तथा महावीरजी के बारह मन्दिर बनवाए थे। पं० गंगारामजी को यह धन राजघाट के क्षत्रिय गहमार राजा से प्रश्न बताने पर मिला था और वह प्रश्न गोस्वामी जी ने दावात कलम के अभाव में कत्थे से लिखी हुई 'रामशलाका' से निकाला था। उसी समय अर्थात् सं० १६५५ में गोस्वामीजी की एक तसवीर जहाँगीर बादशाह ने जयपुर के चित्रकार से बनवाई थी। वह तसवीर और रामशलाका बराबर पं० गंगाराम जोशीजी के यहाँ थी।

ग्रियर्सन साहब ने तुलसीदासजी के विषय में लिखे हुए अपने १८९३ के इंडियन एंटिकेरियन में और पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने अपनी रामायण के तिलक में इन बातों का उल्लेख किया है। परन्तु रामचरितमानस, (ना० प्र० सभा काशी से प्रकाशित) इण्डियन एंटिकेरियन, या पं० ज्वालाप्रसाद जी के तिलक में प्रह्लादघाट के सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है कि तसवीर और रामाज्ञा एक ब्राह्मण के पास थी, अब वह खो गई है। इससे मालूम होता है कि उस ब्राह्मण का पूरा हाल शायद उन्हें नहीं मिला। उस ब्राह्मण के घर ग्रियर्सन साहब स्वयं गये थे और उन्होंने जहाँगीर की बनवाई हुई गुसांई जी की वह तसवीर प्रत्यक्ष देखी थी। गङ्गारामजी दो भाई थे। दूसरे भाई का नाम दौलतराम था। दोनों की मृत्यु १७ वीं सदी में हुई थी। उनके वंशजों में पं० गिरिवरव्यास हुए, जिनकी मृत्यु सं० १९५३ में हुई और इनके पास ही ग्रियर्सन साहब ने गुसांईजी की तसवीर देखी थी। इनकी मृत्यु के पीछे उनका उत्तराधिकारी मैं हुआ हूँ। मैं उनका भांजा हूँ। उक्त ग्रन्थकारों ने ब्राह्मण के पास रामाज्ञा के होने का उल्लेख किया है, वह असल में "रामाज्ञा" नहीं, किन्तु "रामशलाका" थी जो रामचन्द्र (मेरे बहनोई के भाई) और गंगाधर (मेरी मा की बुवा के पुत्र) के हाथ से सं० १९२०-२२ के करीब लुटेरों ने श्रीनाथ जी की यात्रा के समय उदयपुर के निकट लूट ली थी। उक्त महाशयों की मृत्यु हो गई है और उस रामशलाका की नकल मिरजापुरवासी पं० रामगुलामजी द्विवेदी के श्रोता मु० छगनलालजी के पास है। जहाँगीर की बनवाई गोस्वामीजी की तसवीर मेरे पास सुरक्षित है और उसे मैं जो देखना चाहें उन्हें दिखा सकता हूँ।

अब इस संसार में मेरा कोई नहीं है और मैं युवा होने पर भी विवाह कर गृहस्थी में फँसना नहीं चाहता। मेरा मन विरक्त सा बन गया है और रामकथा-वार्त्ता में ही अपना समय बिताना चाहता हूँ। जीविका निर्वाह के लिए मैंने फोटोग्राफी का काम सीखा है और आवश्यकता से अधिक पैसे के लिए मैं हाय हाय नहीं करता।

मुझ से कितने लोगों ने वह तसवीर माँगी, पर मेरी इच्छा उस तसवीर को अपनी सब सम्पत्ति अर्पण कर देने की है, इसलिए मैंने वह किसी को न दी। गोस्वामीजी के अन्य स्थान तो अच्छी दशा में हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर प्रह्लादघाट जो मूलस्थान है, दूसरे की मिलकियत होने के कारण जैसे का तैसा पड़ा है। दूसरे की अर्थात् मेरी ही वह सम्पत्ति है और अब वह सम्पत्ति मैं तुलसीदासजी को अर्पण करना चाहता हूँ।

मैं पुष्करना ब्राह्मण हूँ और मेरी इच्छा है कि निज का संगीन मकान गोसांईजी को अर्पण कर उसमें उनकी एक पाषाणमूर्त्ति उस तसवीर के साथ स्थापना कर दूँ, जिससे प्रह्लादघाट पर तुलसीदास जी का एक स्थिर स्मारक बन जाय और उनकी कीर्ति अपना सर्वस्व खर्च कर शेष न होने पावे।

मैं निर्धन हूँ। मेरे पास जो कुछ था, सो मैंने गोसांईजी के चरणों में अर्पण कर दिया है। पाषाण-मूर्त्ति की स्थापना के लिए कम से कम एक या डेढ़ हजार रुपया चाहिए। उनके जुटाने में मैं किसी के पास याचना नहीं करता। इसके लिए मैंने एक ऐसा उपाय निकाला है जिससे लोगों को कष्ट न पहुँच कर लाभ भी हो और काम भी बन जाय।

मेरे एक विद्वान् मित्र ने गोस्वामीजी की सुन्दर जीवनी लिख कर तुलसीस्मारक की सहायता की है। उस जीवनी, शत पंच चौपाई और गोस्वामीजी की प्राचीन तसवीर को मैंने छपवा लिया है। इन्हीं तीनों वस्तुओं की बिक्री के लाभ से मैं तुलसीस्मारक बनवाऊँगा। तुलसीदासजी की असल मूर्त्ति और उत्तम चरित का संग्रह देश के हर एक व्यक्ति के निकट रहना अत्यावश्यक है। किसी जाति, धर्म अथवा समाज का मनुष्य क्यों न हो, तुलसीदासजी से सब का समान सम्बन्ध है। आशा है इस पुस्तक को मँगवा कर लोग परम-पवित्र काशी क्षेत्र में राष्ट्र के भगवद्भक्त महापुरुष का स्थयीस्मारक बनवाने में मेरा हाथ बँटावेंगे। मूल्य १॥) मात्र। केवल फोटो का मूल्य १)

विनीत—निवेदक

रणछोड़लाल व्यास,

मन्त्री—तुलसीस्मारक कार्यालय।

प्रह्लादघाट, बनारस सिटी।

—:o:—

साधारण अधिवेशन।

शनिवार तारीख २४ अप्रैल १९१५ सन्ध्या के ५½ बजे

स्थान सभाभवन।

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव तथा पंडित सांवलजी नागर के अनुमोदन पर मुंशी भगवानदीन सभापति चुने गये।

(२) गत अधिवेशन (ता० २७ फरवरी १९१५) का कार्य्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिए निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किये गए।

१ बाबू हरिहरनाथ बी० ए०, १३२ मध्यमेश्वर, काशी १॥)
२ पण्डित नारायण आचार्य, बीबीहटिया, काशी १॥)
३ बाबू प्रतापसिंह स्टेट इन्जीनियर, डूंगरपुर १॥)
४ बाबू प्रियतमदास आनन्द, हैडमास्टर पिएडे स्कूल-डूंगरपुर १॥)
५ महन्त निर्मलाचार्य, श्रीसेतराम मन्दिर, ऋणमोचन घाट, अयोध्या ३)
६ बाबू शिमंगलप्रसाद, सराय गोवर्द्धन, काशी १॥)
७ पण्डित क्षेत्रपाल शर्म्मा, सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा १॥)
८ बाबू नन्दकिशोर मुखोपाध्याय, नं० ७ नया महादेव, काशी १॥)
९ श्रीमान ठाकुर बेनीमाधवसिंह साहित्य-दिवाकर, मलासा पो० मोहम्मद पुर जि० कानपुर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद बनाये जायँ।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१ बाबू प्रयागलाल गुरु—पटना
२ बाबू भैंवरलाल श्रेष्ठी—झालारपाटन
३ बाबू रघुनाथप्रसाद कपूर—हाथरस
४ सी० जी० हनुमानसिंह वर्म्मा—माइसूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) मंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी।

(१) बाबू कन्हैयालाल रमईपट्टी—मिर्जापुर (२) बाबू श्रीगोविन्ददास रायबरैली और (३) चौधरी हरिश्चन्द्र मुज़फ्फरनगर।

सभा ने इसपर शोक प्रकट किया।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं—

श्रीमती यशोदादेवी सम्पादिका स्त्रीधर्मशिक्षक प्रयाग

सच्चापतिप्रेम
नारीनीतिशिक्षा
महिलाहस्तभूषण
गर्भरक्षा
सच्ची सहेली
आदर्श हिन्दूविधवा
शिशुरक्षाविधान
जीवनरक्षा
महिलाजीवनसर्वस्व
सन्तति सुधार
वीर पत्नी संयोगिता
पत्नी पत्र दर्पण
छात्री विधान
आदर्श बालिका
महिला भजन बाटिका
सुखी कुटुम्ब
सन्तान पालन
घर का वैद्य
शास्त्रशिक्षा
बनिता पत्र दर्पण भाग १

बाबू भगवानदास हालना, अभ्युदय प्रेस प्रयाग

रामायणी कथा

पण्डित शिवनारायण मिश्र-प्रताप कार्य्यालय-कानपुर

युद्ध की कहानियाँ

पण्डित नीलमणि शर्म्मा–चन्द्रसूर राजिम–रायपुर

छत्तीसगढ़ी दानलीला

पं० दलीपदत्तशर्म्मा उपाध्याय-महाविद्यालय ज्वालापुर

संस्कृत लोक

डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग

पाचन क्रिया विकार

पण्डित शोभाराम धेनु सेवक लखना दोन-सिवनी

भरतचरित्रामृत
कपिलाक्रन्दन

पण्डित सोमेश्वर दत्त शुक्ल सीतापुर

जर्मन जासूस
तरलतरंग
आनन्दमय जीवन

पण्डित श्यामसुन्दराचार्य वैश्य—काशी

रसायन सार भाग १
ओंकार चित्र व्याख्या

पण्डित गौरीकान्त ओझा—काशी

बृहत् कुंभपर्व व्यवस्था

पण्डित मंगलदेव साधु—आगरा

साधुमहात्माओं की सेवा में आर्य जाति की पुकार

पण्डित शिवकुमारजी—जगन्नाथपुर गोरखपुर

प्रचलित संध्या या प्राणायाम से हानि और सत्य संध्या का प्रचार

ग्वालियर दरबार

तिब्बे हैवानात

बाबू मक्खनलाल अग्रवाल नागरीप्रचारककार्यालयदिल्ली

अमरदत्त
कुमारी

पण्डित गोबर्द्धन बी० ए० दिल्ली

मां और बच्चा

श्रीमान् ठाकुर साहब गुमानसिंहजी लछमनपुरा जि० मेवाड़

समान बतीसी
चतुर चिन्तामणि
पंचरत्न प्रश्नोत्तर मालिका
श्रीरामगीता
रामरत्नमाला

मंत्री प्रियतमधर्म सभा शिकारपुर (सिंध)

नशाइनि खे नसीहत (सिंधभाषा)
पतिव्रत धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औदुम्बर प्रेस—काशी

स्त्रीसुधार का दिव्य रसामृत

बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त काशी

कृषिदर्पण
कृषिशिक्षा
वृक्षरोपणप्रणाली चार भाग
चश्मा
अपूर्व संन्यासी
मधुरमंजरी
भारतेन्दुजी का जीवन-चरित
यंत्र चिन्तामणि
श्रीगुरुतत्व
विरहतरंगिणी
ध्रुवलीला
बंगला भाषा
सारनित्य क्रिया

पण्डित बदरीनाथ पांडेय ओंकार टोला—काशी

गीतामृत तरंगिणी
कर्मविपाक संहिता
पद्यपंचाशिका
नीतिरत्नमाला
स्तोत्र-संग्रह

खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त

कुसुम-संग्रह
मोतीमहल भाग १–२
वीरेन्द्रवीर
नरेन्द्रमोहिनी भाग १–२
खूनी कलाई भाग २
सूरशिरोमणि
राजदुलारी
ज़हर का प्याला
हिन्दी कुरान
कुरानादर्श

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

प्रबन्धकारिणी समिति

शनिवार ता० २४ अप्रैल १९१५ सन्ध्या के ६ बजे
स्थान-सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (तारीख २९ जनवरी १९१५) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) "ग्रामों की सफाई और तन्दुरुस्ती" के विषय में आये हुए लेखों पर पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० और डाकृर शोभाराम की यह सम्मति उपस्थित की गई कि कोई लेख स्वर्णपदक के योग्य नहीं है।

निश्चय हुआ कि इनमें से किसी लेखक को पदक नहीं दिया जा सकता।

(३) ग्रामों की सफाई तन्दुरुस्ती के विषय में पंडित श्रीलाल उपाध्याय का लेख उपस्थित किया गया जिसे उन्होंने नियत समय के उपरान्त भेज कर प्रार्थना की थी कि सभा यदि उचित समझे तो उसके लिए मेडल दे अथवा योंही उसे प्रकाशित कर दे।

निश्चय हुआ कि यह लेख भी पंडित रामनारायण मिश्र और डाकृर शोभाराम के पास सम्मति के लिए भेजा जाय।

(४) लाला सीताराम बी० ए० का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने एक ग्रन्थ में दुर्गेशनन्दनी कादम्बरी और उथेलो से कुछ अंशों को उद्धृत करने की आज्ञा माँगी थी।

निश्चय हुआ कि लाला सीताराम जी को सूचना दी जाय कि दुर्गेशनन्दनी और कादम्बरी का कापीराइट सभा ने बेच डाला है और उथेलो से वे जिस अंश को चाहें उसे सहर्ष उद्धृत कर सकते हैं।

(५) तिरहुत एजुकेशन सोसायटी का यह पत्र उपस्थित किया गया कि "हिन्दू विवाह आदर्श" पर सर्वोत्तम नाटक लिखनेवाले को उन्होंने ५०) रुपए का स्वर्णपदक देना निश्चय किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः इस सम्बन्ध में उनके पास जो नाटक आवें उनकी परीक्षा क्या इस सभा द्वारा हो सकती है?

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यह उत्तम होगा कि इन नाटकों की परीक्षा तिरहुत एजुकेशन सोसायटी के द्वारा ही हो।

(६) बुलन्दशहर की नागरीप्रचारिणी सभा का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा की वार्षिक रिपोर्ट में भारतवर्ष की सब नागरीप्रचारिणी सभाओं की सूची प्रकाशित हुआ करे।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय। बुलन्दशहर की नागरीप्रचारिणीसभा को लिखा जाय कि जितनी सभाओं का पता वे लगा सकें उनकी नामावली सभा के पास भेज दें और नागरीप्रचारिणी पत्रिका में भी इस विषय में एक विज्ञापन प्रकाशित कर दिया जाय।

(७) हिन्दी साहित्यसम्मेलन के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने नागरीप्रचारिणी पत्रिका से "इतिहास" शीर्षक लेख को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की अनुमति माँगी थी।

निश्चय हुआ कि उन्हें इस लेख को प्रकाशित करने की अनुमति दी जाय।

(८) मौलवी रमज़ान उपनाम पोथीमियाँ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे हिन्दी की हस्तलिखित पुरानी पोथियों द्वारा बराबर सभा की सेवा करते हैं अतः उन्हें सभा के पुस्तकालय से देखने के लिए पुस्तकें दी जाया करें और इसके लिए उनसे कोई चन्दा न लिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और एक बार में एक पुस्तक उन्हें दी जाया करे।

(९) हिन्दी शब्दसागर के सहकारी सम्पादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के मासिक वेतन में ५) रुपए की वृद्धि करने के सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदासजी का पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह मंत्री की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(१०) मनोरंजन पुस्तकमाला की छपाई के सम्बन्ध में लीडर प्रेस का ११ फरवरी का पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह भी मंत्री की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(११) सन् १९१५ की ग्वालियर की हिन्दी हस्तलिपि परीक्षा के पर्चे उपस्थित किये गये।

निश्चय हुआ कि इनकी परीक्षा के लिए निम्नलिखित सज्जनों की सब-कमेटी बना दी जाय अर्थात् पण्डित रामनारायण मिश्र बी॰ ए॰, बाबू मुरारीदास और बाबू अमीरसिंह।

(१२) आगरे के बाबू वृन्दावनलाल वर्म्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे इस सभा द्वारा उस लड़की को ६) रु॰ का एक पदक दिया चाहते हैं जो हिन्दी मिडिल परीक्षा में हिन्दी भाषा में सब से अधिक नम्बर पावे।

निश्चय हुआ कि उनके इच्छानुसार सभा द्वारा यह मेडल दिया जा सकता है पर इसके लिए १०) रु॰ से कम का मेडल ठीक नहीं होगा। यदि वे केवल ६) रु॰ ही व्यय किया चाहते हैं तो उत्तम होगा कि वे उसे नगद दे दें।

(१३) वेतनवृद्धि के लिए भरोस कहार का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह आगामी वर्ष के बजेट के साथ उपस्थित किया जाय।

(१४) पंडित केदारनाथ पाठक का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि महाराणा प्रताप नाटक का जो नया संस्करण सभा द्वारा प्रकाशित होनेवाला है उसमें कई एक सुधार होने आवश्यक हैं। अतः इसके लिए कुछ विद्वानों की एक कमेटी बना दी जाय और उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति के अनुसार आवश्यक संशोधन करने के उपरान्त दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाय।

निश्चय हुआ कि इस पुस्तक में आवश्यक सुधार करने के लिए प्रयाग के लाला सीताराम बी० ए०, पंडित माधव शुक्ल, पंडित गोविन्द शास्त्री दुग्वेकर, पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और पंडित रामचन्द्र शुक्ल की सब-कमेटी बना दी जाय।

(१५) संयुक्त प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर का २० मार्च का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि हिन्दी-पुस्तकों की खोज के लिए सभा ४८०) रु० वार्षिक वेतन पर जो ट्रेवेलिंग एजेण्ट नियत किया चाहती है वह किस योग्यता का होगा। साथ ही इस पत्र के उत्तर का ड्राफ्ट भी इस प्रस्ताव के सहित उपस्थित किया गया कि यदि हिन्दी-पुस्तकों की खोज के लिए गवर्नमेंट ३०००) की वार्षिक सहायता दे कि जिससे एक विद्वान् निरीक्षक वेतन पर नियत किया जा सके जो अपना सारा समय इस कार्य्य में लगावे तो सभा इस कार्य्य में फुटकर व्यय के लिये ५००) रुपया का वार्षिक व्यय देना स्वीकार करे।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय और ड्राफ्ट के अनुसार डाइरेक्टर साहब को उत्तर भेज दिया जाय।

(१६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

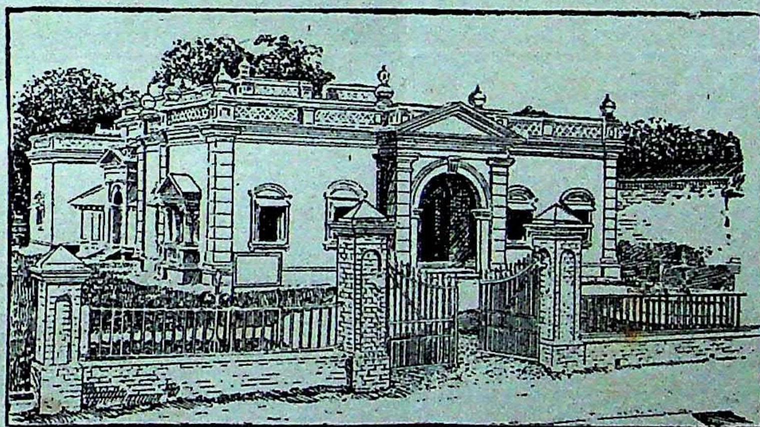
मई, जून, १९१५

सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल ।

सहकारी सम्पादक-रामचन्द्र वर्म्मा ।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

पवित्र काश्मीरी केशर—

दर्जे अव्वल ।।।=) तोला । शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला चीनी ममीरा २) तोला ।

काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर । ७–१३–६–१४

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी

कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये, पताः—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

भयंकर मार काट ।

जर्मन जासूस	।-)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मी	-)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	।।।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	॥)	नबाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहां	।)	रानाप्रताप नाटक	।।।)
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	।।।)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियां	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	।।।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर-संगीत	≡)
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१।।।)	व्यापारतत्व	॥)
रानी पन्ना	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	बिकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ | मई, जून, १९१५. | संख्या ११—१२

स्वीज़रलैण्ड।

[लेखक—श्रीयुत पंडित सूर्य्यप्रसाद त्रिपाठी, काशी।]

स्वीज़रलैण्ड, योरप के दक्षिणीय सुविख्यात भाग का एक पहाड़ी देश है। आल्पस पर्वत ही ने इस देश पर विशेष दया दृष्टि की है। स्वीज़रलैण्ड के पर्वतों के बीच बीच में बड़ी बड़ी झीलों ने मानों अपने सामने सब शोभाओं को मात कर रखा है।

यहाँ के निवासी स्विस् कहे जाते हैं। ये बहुत परिश्रमी और अल्पव्ययी होते हैं और अपने कर्त्तव्य-पालन में सर्वदा तन, मन, धन से प्रस्तुत रहते हैं। पहले स्वीज़रलैण्ड आज-कल की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत था। लगभग ६०० वर्ष पूर्व स्विस् लोग आष्ट्रिया के शासनाधीन थे। आष्ट्रियन शासकों ने इन लोगों को इतना दुःख दिया कि अन्त में उन बेचारों को परतन्त्रता का बन्धन छुड़ा कर स्वतन्त्रता का आश्रय लेना पड़ा। कहते हैं, विलियम टेल ही ने पहले पहल वहाँ स्वतन्त्रता देवी का आवाहन किया था। अब वहाँ प्रजातन्त्र राज्य है जो २२ क्यान्टनों (भागों) में विभक्त है और हर एक क्यान्टन के लिए अलग अलग शासक नियुक्त हैं। इन सब शासकों का एक प्रधान शासक होता है जो सारे स्वीज़रलैण्ड का शासन करता है।

भाषा, धर्म तथा नगर आदि।

इस देश में तीस लाख मनुष्य बसते हैं। इनकी जाति और भाषा एक नहीं है; किन्तु यहाँ जाति, भाषा और धर्म का एक विचित्र मिश्रण है। उत्तर और मध्य में जर्मन-स्विस् रहते हैं और जर्मन भाषा बोलते हैं। पश्चिम में लोग फ्रेञ्च और दक्षिण में इटालियन भाषा बोलते हैं। देश के दक्षिण-पूर्व अर्थात् ग्रिसन्स के मनुष्य लैडिन (Ladin) या रोमैंच (Roumanch) बोलते हैं, जो लैटिन भाषा का अपभ्रंश कही जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे भाषा में विभिन्नता है वैसे ही यहाँ के धर्म में भी भेद है। स्वीज़रलैण्ड के कुछ मनुष्य प्रोटेस्टेन्ट और कुछ क्याथोलिक धर्म को मानते हैं; किन्तु जेनेवा नगर जो रोन नदी पर बसा हुआ है, कालविन धर्म का उत्पत्ति-स्थान है।

पार्वत्य प्रदेश होने के कारण यहाँ बहुत कम नगर बसे हैं। कुछ सुविख्यात नगरों के नाम ये हैं—ज्यूरिक, स्वीज़रलैण्ड के सबसे बड़े नगरों में से है और इसी नाम के क्यान्टन में है। बेसेल नगर उत्तर में राइन नदी पर स्थित है। बर्न में फेडरल राजधानी है, जो स्विस् समस्थली के बीच में है। न्यूशाटेल इसी नाम की झील पर बसा है और ल्यूसर्न नगर यूगेडाइन में है।

भिन्न भिन्न जाति, धर्म और भाषा होने पर भी चाहे वे जर्मन, फ्रेञ्च या इटालियन क्यों न हों किन्तु स्वीज़रलैण्ड के सभी रहनेवाले अपने को एक राष्ट्र का अंग समझ कर अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करते हुए मरने या जीने के लिए सदा ही एकतावलम्बन किए रहते हैं। स्वतन्त्रतापूर्वक स्वदेश-प्रेम ही इन लोगों का बन्धनसूत्र है।

पर्वत और झील।

स्वीज़रलैण्ड अपने पर्वतों और झीलों के ही कारण यूरोप भर में प्रसिद्ध है। ये आल्प्स की पर्वतमालाएँ ही हैं जो लोगों पर जादू का सा असर डालती हैं। उसके बहुत से शैल-शिखर अविच्छिन्न हिम को छेद कर अपना मस्तक उन्नत किए रहते हैं। अधित्यकाओं पर शरद ऋतु और उपत्यकाओं में ग्रीष्म ऋतु का राज्य रहता है। इन पर्वतों का दृश्य संसार में अनुपम समझा जाता है। इनके विशाल शृङ्गों के मध्य में सुन्दर बड़ी बड़ी कन्दराएँ हैं जिनमें आकाश सदृश निर्मल नील जल भरा रहता है, पर्वत-पार्श्व के हजारों सोते बह बह कर इनमें विहार किया करते हैं। हिमाच्छन्न पर्वत-शिखर अपनी ही कान्ति में निमग्न रहते हैं; तिस पर सूर्यास्त की लालिमा उन्हें चमकीले चटकीले गुलाबी मुकुट पहना कर उनकी शोभा और भी बढ़ा देती है और सब को मुग्ध ही कर लेती है।

स्विस् लोगों के देश का यह अद्भुत सौन्दर्य ही उनका ऐश्वर्य्य है। यहाँ के शिल्पकार बड़े कुशल और कर्मशील होते हैं और कृषकों का तो पूछना ही क्या है! वे बोने लायक एक अंगुल भी भूमि पा जाने पर खाली नहीं छोड़ते। जहाँ केवल बकरियों ही का चढ़ना सम्भव हो सकता है वहाँ भी वे कुछ न कुछ बो देते हैं। इतना होने पर भी यदि ये लोग विदेश-धनास्वादन न करते होते तो न जाने अब तक किस घाट लग जाते। घड़ी बनाना ही इन लोगों का प्रधान व्यापार है। जेनेवा-वाच सब घड़ियों से अधिक उत्तम और ठीक होती है।

पाठकगण! जो जेनेवा-वाच आप लोग व्यवहार करते हैं वह सब यहीं की बनी होती हैं।

यहाँ कुछ मामूली अनाज ही पैदा होते हैं। सूई, रेशम और ऊन का व्यापार उत्तरीय स्वीज़रलैण्ड में होता है। खनिज पदार्थों के लिए तो यह देश अत्यन्त ही दरिद्र है।

इस देश का अधिकांश भाग निपट हिमाच्छादित चट्टानों ही से भरा पड़ा है जो न तो कृषकों ही को कुछ देता है और न गड़ेरियों ही को। इस देश में दूर दूर से भ्रमणार्थी मनुष्य पर्वतों की शोभा निरखने तथा उनपर चढ़ने के लिए बहुधा आया जाया करते हैं। इन लोगों के रहने आदि के निमित्त पर्वतों पर बहुत से होटल बने हैं।

अतिथि-सेवक स्विस् लोग स्वदेश-ऋतु ही विदेशियों के हाथ विक्रय करते हैं। इसका यथार्थ अभिप्राय यह है कि स्विस् होटल-रक्षक ग्रीष्म-काल में विदेशियों को यहाँ की अद्वितीय ऋतु-छबि दिखला कर उनका मन मोह लेते हैं। एक होटल उपत्यका में है, समीप ही एक घर है जिसके चारों ओर अंगूर की बेलें लगी हैं। इसी की छाया में लोग सुख की नींद ले रहे हैं। एक सौ फुट ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़िए तो आपके लिए दूसरा होटल तैयार है, जहाँ आल्प्स पर्वत हरा ही हरा दीख पड़ता है। दूसरी ओर रंगबिरंगे फूल खिल कर लोगों को चाँदनी के भ्रम में डालते हैं। सायं प्रातः मधुर तथा शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी चल कर लोगों के संकुचित मन प्रफुल्लित करती है। वसन्त तथा ग्रीष्म-ऋतु के जो आनन्द हैं वे सब उपत्यकाओं ही में मिलते हैं। और ऊपर चढ़िए तो वहाँ और ही दृश्य दिखाई पड़ता है। आल्प्स पर्वत क्या है मानो हिम संसार है। इस पर भी पथिकों के लिए होटल बने हुए हैं। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा है, ओले पाले भी ऊपर से गिर रहे हैं, हिम गिरने के कारण पहाड़ ढालू हो गए हैं। इस पर पथिक ज़रा सा भी चूके कि गए।

हरे भरे मैदानों में कहीं कहीं लकड़ी के छोटे छोटे घर बने रहते हैं जिनको चालेट (Chalet) कहते हैं। यहाँ गर्मी के दिनों में गड़ेरिए अपने जानवरों सहित रहते हैं। शीत पड़ते ही वे पहाड़ के नीचे बसे हुए गाँवों में जा आश्रय लेते हैं। पहाड़ से नीचे उतरने में केवल दो दिन लगते हैं। स्विस् लोगों को हरे भरे पहाड़ों पर रहने में बड़ा आनन्द मिलता है। जिस दिन ये लोग पहाड़ की यात्रा करते हैं उस दिन प्रातः काल के पूर्व ही सारे गाँव में खड़बड़ी मच जाती है। पशु भी अपने अपने स्वामी की तुरही के शब्द सुन बड़ी प्रसन्नता से उछलने कूदने लगते हैं। वे तुरन्त ही समझ जाते हैं कि अब हम लोगों का आनन्द-भूमि को प्रस्थान करने का समय आ पहुँचा।

यहाँ के पशु आल्प्स पर चढ़ते समय बहुत भले मालूम पड़ते हैं। उनके गले में छोटी छोटी घंटियाँ बँधी होती हैं और उनके सींग अच्छे अच्छे फूलों से गुथे हुए और सुशोभित रहते हैं। जो बालक सब से पहले पशुओं को आल्प्स पर्वत की तृण-भूमि पर ले जाने में समर्थ होते हैं, वे अपने को धन्य मानते हैं। पर्वत के अधोभाग से ये बालक मनोरञ्जक गीत गाते हुए पर्वतीय वन और हिम में पहुँच जाते हैं। यहाँ पर ये बालक नित्य नए आमोद प्रमोद में दिन बिताते हैं। कभी वे शीतान्वित समतलों में भगवान् मरीचिमाली की प्रखर रश्मियों का और कभी सुमधुर शैल समीर का आनन्द लेते हुए सुन्दर पुष्प तोड़ते हैं। यहाँ ये बालक अच्छी तरह से दूध पीने को पाते हैं क्योंकि गाएँ यहाँ कोमल हरी घासें चर कर बहुत दूध देती हैं।

यहाँ के गाय-बैल बहुत सीधे और समझदार होते हैं। आल्प्स पर्वत की गाएं प्रत्येक झाड़ी, गड्ढे और बढ़िया घास के मैदान को अच्छी तरह पहचानती हैं; अपने मालिक की बोली दूर ही से सुन लेती हैं। इतना ही नहीं, इन चतुर पशुओं को आँधी और तूफान के आने का समय भी मालूम हो जाता है। ये अखाद्य पदार्थों को सूँघ कर ही छोड़ देती हैं; गिरने लायक भयानक स्थानों में तो ये भूल कर भी नहीं जातीं। तूफान आने के पूर्व ही ग्वाले अपनी गायों को इकट्ठा कर लेते हैं। अपने अपने स्थानों पर ये गाएं तूफान के समय काँपती हुई खड़ी रहती हैं। उस समय रखवाला चुमकारता हुआ सब गायों के पास जाता है। तेज तूफान आने, ओलों की बहुत अधिक वर्षा होने या बहुत तेज बादल गरजने पर भी ये सीधे पशु अपने झुंड से अलग नहीं होते।

इन जानवरों के दूध का पनीर बनता है जिसे स्विस् लोग पहाड़ से नीचे उतरने के समय बड़े परिमाण में अपने साथ ले जाते हैं। वे लोग सितम्बर मास के आगमन ही में पहाड़ के नीचे की राह पकड़ते हैं। ग्वाले मामूली चालेट में रहते हैं। वन के निकट के झोंपड़े लकड़ी के कुन्दों से बनते हैं और उनकी दरजें काई से भर दी जाती हैं। पहाड़ पर के झोंपड़े पत्थर के ढोंकों से बनते हैं; इनकी दरजें भी काई से बन्द की जाती हैं। इनकी छाजन घास के चकत्ते और लकड़ी के तख्तों से छा कर भारी पत्थरों से दबा दी जाती है जिसमें वे बवन्डर में उड़ न जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरवाहे आल्प्स पर्वत को दो भागों में विभक्त करते हैं—एक को गाय-बैलों का आल्प्स और दूसरे को भेड़-बकरियों का आल्प्स कहते हैं। गाय बैलों के आल्प्स का पथ सुगम होता है और वहाँ घास के लंबे चौड़े और बढ़िया मैदान होते हैं। किन्तु ऊँचे, भयानक और चट्टानी मार्ग भेड़ और बकरियों के लिए ही उपयुक्त होते हैं क्योंकि वे ऊँचे से ऊँचे पर्वत-शिखरों पर बहुत शीघ्रता से चढ़ जाती हैं। कभी कभी घासों के मैदान हिम से आच्छादित और बड़ी बड़ी चट्टानों से घिरे होते हैं; वहाँ जाकर चरना इन्हीं स्थिर पगवाली भेड़ों या बकरियों का काम है। यहाँ चरवाहों में गडेरिए का जीवन सबसे निकृष्ट समझा जाता है। कभी कभी हजार से अधिक भेड़ों का झुण्ड एक आदमी के पास रहता है, जो उसी की रखवाली में सारी ग्रीष्म ऋतु बिता देता है। इन लोगों को पनीर वहाँ नहीं बनाना पड़ता; पनीर बनानेवाले अलग होते हैं। किन्तु गाय-बैलों का आल्प्स बड़े उद्यम और आनन्द का स्थान है। गाएं बड़े तड़के ही दुहाने के लिए अपने थान पर चली आती हैं। चरवाहे और पनीरवाले अपना अधिकांश समय गपशप में ही विताया करते हैं। गाय-बैलों के आल्प्स पर बहुत से सुअर भी रहते हैं जो पनीर बनाने से बचा हुआ मठा पी कर खूब मोटे हो जाते हैं।

आल्प्स के अधिकांश भागों में गाय दुहने के समय लोग एक प्रकार का सींग बजा कर उन्हें बुलाते हैं। यह एक काठ की बड़ी तुरही की तरह का और प्रायः दो फुट लम्बा होता है। चतुर बजानेवाला इसके चौड़े मुँह से बहुत गम्भीर और दीर्घ शब्द निकाल सकता है। इसमें से अनेक प्रकार के शब्द निकलते हैं। जब ये बजाए जाते हैं तब एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर की प्रतिध्वनि बहुत भली और विचित्र मालूम होती है। सूर्यास्त के समय इस बाजे का शब्द और भी मनोहर बोध होता है। आल्प्स के बहुत ऊँचे भागों में जहाँ संध्या के घंटे का शब्द कुछ भी नहीं सुन पड़ता, यही तुरही-घोष सायं-वन्दन का समय बताता है। ज्यों ही भगवान् दिनकर अस्ताचल का आश्रय लेते हैं, चरवाहे, गड़ेरिए और ग्वाले बड़े दीर्घ स्वर से तुरहियों द्वारा "प्रभु हम तुमहिं सराहत" गा गा कर नाचने लगते हैं। यही राग और शब्द उपत्यका, शिखर और कन्दराओं में सब ओर मधुरस्वर से गूँजने लगता है। यह शब्द सायं-वन्दन तथा विश्राम का समय निर्धारित करने का सङ्केत है। इसके बजाने के पीछे सब पशुओं को गोठ में बन्द कर देते हैं और चरवाहे लोग भी गर्मी की छोटी रातें बातें करने में ही बिता देते हैं।

१—लीमैन झील।

स्वीजरलैण्ड की मनोहरता और शोभा झीलों द्वारा ही बढ़ी हुई है। यहाँ छोटी बड़ी अनगिनत झीलें हैं। उपत्यकाओं के चारों ओर चहारदीवारी की तरह पहाड़ियाँ खड़ी हैं। इस देश में छोटे गढ़े से ले कर बड़ी बड़ी विस्तीर्ण झीलें हैं जिनमें धूआँकश चला करते हैं। इन झीलों का पानी भयानक तूफानों के समय पहाड़ों से कुश्ती लड़ता हुआ जान पड़ता है। सब से बड़ी झील का नाम जेनेवा झील है और लुसर्न झील अपनी मनोहरता के लिए प्रसिद्ध है।

जेनेवा झील को ही लीमैन झील भी कहते हैं। यह केवल स्वीजरलैण्ड ही में नहीं है बल्कि इसका कुछ अंश फ्रांस में भी है। इस झील पर प्रधान नगर जेनेवा स्थित है जो स्वीजरलैण्ड के नगरों में सर्व-श्रेष्ठ गिना जाता है। यह झील बहुत लम्बी है। इसको भरनेवाली रोन नदी है जो फ्रांस में जाने के पूर्व ही इसकी उपत्यका को भर देती है। इस झील का जल सुन्दर गहरे नीले रंग का है। जब रोन नदी यहाँ से बढ़ कर बड़े तोड़ से बहती है तो इसका नीला चमकीला रंग बहुत ही सुहावना मालूम होता है। जेनेवा नगर से थोड़ी ही दूर पर एक विचित्र दृश्य दृष्टिगोचर होता है। गँदली पर मन्द आर नदी नीली और द्रुतगामिनी रोन नदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मिलती है। कुछ दूर तक दोनों नदियाँ परस्पर बिना मिले ही बहती हैं। नदी में गर्भ (सोते) के एक ओर द्रुतवेगी निर्मल झरना और दूसरी ओर एक मन्द धूसर वारिप्रवाह दीखता है। थोड़ी ही दूर पर मन्द आर नदी शीघ्रता से निर्मल रोन नदी में मिल कर उसका सारा पानी गँदला कर देती है।

लीमैन झील के किनारे किनारे जेनेवा से धूआँकशों पर सुन्दर सुखप्रद सैर की जा सकती है। इस सैर से सम्पूर्ण नगरों की छटा का आनन्द मिलता है। जल से इसका दृश्य बहुधा बहुत ही रमणीय मालूम पड़ता है। केवल पास की पहाड़ियाँ ही नहीं दीख पड़तीं किन्तु आल्प्स के सब से उच्च शिखर मोव्लाँ का भी दर्शन होता है। वसन्त काल में लीमैन झील की शोभा अति कमनीय हो जाती है। चारों ओर पहाड़ों से घिरने के कारण यहाँ गरम हवा का नाम नहीं रहता। यहाँ से जिधर नजर फेरिए उधर ही हिमाच्छन्न शिखरों का मनोरम दृश्य दिखाई पड़ता है।

स्वीजरलैण्ड का विचित्र आश्चर्य्यजनक दृश्य देख कर कोई ऐसा मनुष्य न होगा जो मुक्त-कंठ से इस देश की प्रशंसा न करता हो। बड़े बड़े उच्च शिखरों पर भी मनुष्य बड़ी सुगमता से चढ़ जाते हैं। जो लोग हजारों फुट ऊँचे हरे मैदान तक पैदल जाने में असमर्थ होते हैं वे रेल पर जाते हैं। रेल बहुत घूमघुमौआ रास्ते से हो कर ढालुएँ टेढ़े तिरछे पर्वत पर पहुँच कर ठहर जाती है। इसमें चढ़े हुए लोग खिड़की से नीचे के छोटे छोटे घर और अद्भुत दृश्य देख कर चकित हो जाते हैं। यह रेलगाड़ी ठीक रेशम के कीड़े की तरह रेंगती हुई जान पड़ती है और लोगों को हिमावली के पास ही उतार देती है। शीत ऋतु भर आल्प्स पर्वत बरफ से ढँका रहता है। ज्यों ही वसन्त का शुभागमन होता है त्यों ही नीचे से ऊपर तक लदी हुई हिमावलियाँ पिघलने लगती हैं। इस समय नित्य घास के नए मैदान और काले देवदारु के वन दीख पड़ने लगते हैं। जहाँ देखिए वहाँ हरियाली और स्वच्छ मैदान नज़र आता है और उस पर जमा हुआ हिम गल कर गढ़े, नाले और नालियों में बहने लगता है।

यहाँ के कुसुममन की अनेक कुसुम-कलियों को खिलाने के हेतु हैं। ज्यों ही पहाड़ों पर से शीत की सफ़ेद चादर हटी कि तुरन्त हरे भरे फूल निकल पड़ते हैं और अपने सुहावने रंगबिरंगे अंगों से आल्प्स पर्वत की शोभा चौगुनी कर देते हैं। नीले, पीले, काले, लाल और तरह तरह के फूलों से पर्वतों की जो शोभा होती है वह झील के समीपवाले उद्यान की नहीं होती। यहाँ के फूलों में सब से भड़कीला और सुन्दर "आल्प्स-पर्वतीय गुलाब" होता है जिसको लोग फूलों का राजा कहते हैं। यह कभी ऊँचे नीचे स्थानों में उगता है और कभी हरे भरे मैदानों में अपने वसन्त ऋतु के रँगीले साथियों से खेलता है।

लीमैन झील के पूर्वीय तट पर सुविख्यात चिलियन नाम का दुर्ग है। यहाँ प्रायः सभी यात्री आते हैं। प्रसिद्ध कवि बाइरन् ने इसी दुर्ग के सम्बन्ध में "चिलियन का बन्दी" नाम की एक रोचक कविता लिखी है। यह कविता बहुत ही अच्छी और चित्ताकर्षक है; किन्तु, वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से इसके सत्य होने में संदेह है। इस कविता में कवि एक स्वदेशभक्त बोनीवर्ड़ (Bonivard) को दर्शाता है जो एक अन्धेरी कोठरी में मोटे खम्भे के साथ जंजीर से बाँध दिया गया है और इधर उधर उसी के आस पास उस समय तक घूमता है जब तक कि उसके पद-चिन्ह पत्थरों में खचित नहीं हो जाते। यह बात सत्य है कि बोनीवर्ड यहाँ १५३० से १५३६ ई० तक कैद किया गया था, जिस में से चार वर्ष तक वह तहख़ाने में रहा; किन्तु उसके वास्तविक जीवन-कार्य काव्य से नहीं मिलते। चाहे कुछ हो यह दुर्ग देखने ही योग्य है। यह बहुत ही प्राचीन है और उच्च पर्वतों से सुरक्षित अतीव मनोहर स्थान पर बना हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार क्यान्टन (प्रदेश) वाली झील।

सुन्दर लुसर्न झील ही चार क्यान्टन की झीलों में से एक सुविख्यात झील है। इसका नाम इस लिए पड़ा है कि इसके चारों ओर मिले हुए चार क्यान्टन हैं। पहले पहल स्वीजरलैण्ड देश के प्रजाकर्तृक प्रभुत्व का यहीं से अरुणोदय हुआ था। यह झील देखने में बहुत विलक्षण है और इसमें बहुत सी छोटी छोटी खाड़ियाँ हैं। इसके किनारे बहुत ही विचित्र और शोभा की खान हैं और धूआँ-कशों पर चढ़ कर देखने में बहुत भले मालूम होते हैं। जैसे जैसे नौका घूमती है वैसे ही वैसे प्रति क्षण यहाँ का दृश्य भी बदलता जाता है। कहीं तो पर्वत शिखर जल के निकट से निकले हुए तने खड़े हैं और कहीं झुकी हुई पहाड़ियाँ चमकीली सुन्दर झील से धीरे धीरे काना-फूसी करती दिखाई देती हैं। ये पहाड़ियाँ गाँवों, चालेटों और अंगूर की टट्टियों से ढकी हुई रहती हैं। इसी से कुछ दूर पर रीगी और पिलेटस नाम के ऊँचे पर्वत शिखर हैं जहाँ से इस झील की अनुपम शोभा मालूम होती है। रीगी सुविख्यात शिखरों में से एक है। यह बहुत ऊँचा नहीं है, किन्तु इसके शिखर पर से सब शिखरों की शोभा देखने में आती है। जो लोग लुसर्न की सैर करते हैं वे रेल द्वारा रीगी भी जाते हैं। इससे उतरने पर लुसर्न के निकट पिलेट्स पर्वत मिलता है। इस पर विना सहारे के चढ़ना अति कठिन है क्योंकि यह बहुत ही टेढ़ा तिरछा है। रेल बनने के पूर्व यहाँ बहुत ही थोड़े मनुष्य चढ़ सकते थे। पिलेट्स लुसर्न को "मौसिमी पहाड़" कहते हैं क्योंकि जब इसका मस्तक स्वच्छ रहता है तब मौसिम भी स्वच्छ रहता है। जब इस पर्वत पर बादल घिर जाते हैं तो लोग झट समझ लेते हैं कि वर्षा होनेवाली है। लुसर्न नगर बहुत ही सुन्दर है। यह एक छोटा सा मनोहर स्थान है। ग्रीष्म ऋतु भर यहाँ के लोग बड़ी धूम धाम से कामों में व्यस्त रहते हैं। इसके पुश्ते आनन्ददायक आश्रम-स्थान हैं और बहुत लंबे चौड़े हैं। इन पर लोग घूम फिर कर झील तथा झील की नौकाओं की शोभा देखते हैं और दोनों ओर की सजी हुई दुकानों और खोञ्चेवालों से छोटी छोटी चीजें खरीदते हैं। यहाँ की मन हर्षित करनेवाली सन्ध्या की छटा का तो कुछ कहना ही नहीं है। चन्द्रदेव की चटक चाँदनी इस रमणीय दृश्य पर पड़ते ही लोग सुन्दर लालटेनों से सजी गाने बजाने की सुन्दर सुमधुर ध्वनि करती हुई नौकाएँ चमकीले जल में खेने लगते हैं। इस समय यहाँ यूरोप के प्रत्येक प्रदेशों से झुण्ड के झुण्ड मनुष्य आ कर इकट्ठे होते हैं और हर प्रकार के आमोद प्रमोद से धूम मचा देते हैं।

लुसर्न नगर प्राचीन और अर्व्वाचीन दो भागों में विभक्त है। प्राचीन लुसर्न (Reuss) रियस नदी के किनारे किनारे बसा है। यह नदी बड़े वेग से प्राचीन चित्रित पुलों के नीचे हो कर बहती है। पाँच सौ वर्ष का पुराना वाच-टावर प्राचीन लुसर्न की दीवार पर ही बना है और उन दिनों की याद दिलाता है जिन दिनों में इस नगर के वासी उन शत्रुओं से अपनी रक्षा कर रहे थे जिन्होंने उनके सर्वनाश के लिए षड्यन्त्र रचा था। यहाँ के कुछ प्राचीन गृह बहुत ही सुन्दर हैं। ये बहुत बारीक लोहे के बरामदे से घिरे हुए हैं और इनकी दीवारों पर पालिश की हुई अच्छी अच्छी तसवीरें बनी हुई हैं जो देखने में बिलकुल नई मालूम पड़ती हैं। इन तसवीरों में प्रायः उन गृह-स्वामियों के इतिहास और जीवन-कार्य्य ही दिखलाए गए हैं।

यहाँ का सब से अच्छा स्मारक चिह्न एक सिंह की मूर्त्ति है जिसको देखने के लिए दूर दूर से लोग आते हैं। यह सिंह-मूर्त्ति पहाड़ ही में काट कर थोरवाल्डसेन (Thorwaldsen) नाम के एक संगतराश ने बनाई थी। यह उन स्विस-गार्डों की मृत्यु का स्मारक है जिन्होंने फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति (French Revolution) के समय प्राण विसर्जन किए थे। उस समय की यह चाल थी कि फ्रान्स के महाराजे अपने यहाँ स्विस बाडी गार्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्त करते थे। १० अगस्त १८९२ ई० को जब पेरिस के ट्वेलरीज Tuileries राजप्रासाद पर चढ़ाई की गई उसी समय ये शूर स्विस राजा की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे।

लुसर्न झील (Glacier Garden) "हिमानी उपवन" कहलाती है।

लुसर्न नगर विचित्र शोभा और आश्चर्य-जनक ऐतिहासिक रहस्यों का आकर है। यहाँ से लोग रेल-द्वारा Dellsplatte और Altdorf आदि ऐतिहासिक स्थान देखने के लिए जाते हैं।

लुढ़कनेवाली हिमराशि (Avalanche)।

शीतकाल में आल्प्स पर्वतवासियों को बड़ी बड़ी आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। उनमें से एक तूफानी बर्फ़ है जो पर्वतवासी और नीचे ऊँचे शिखरों का नामोनिशान मिटा देती है। इसको अंग्रेजी में एवेलैंश Avalanche कहते हैं।

यहाँ की सब आपदाओं से बढ़ कर यही एवेलैंश गिना जाता है। यह हिम की बड़ी चट्टान होती है जो पहाड़ से नीचे फिसल आती है और मार्ग के ग्राम और वृक्ष आदि को रसातल भेज देती है। कभी कभी यह शून्य उपत्यकाओं में जा रहती है और वसन्त ऋतु के आगमन तक इसी दशा में पड़ी रहती है। इन एवेलैंशों के गिरने का यह कारण है कि शीत के आरम्भ में ऊँचे ढालुए पहाड़ों पर बर्फ़ की पतली तह जम जाती है, दिन में इस पर सूर्य्य का ताप लगता है और रात में इस पर शीत पड़ता है जिससे यह और कड़ी हो जाती है। विशेष शीत पड़ते ही बरफ की पतली तह एक मोटी चट्टान हो जाती है।

बरफ की यह चट्टान पाँच या छः फुट चौड़ी होती है और इसके ऊपर की ये बरफ नीचे खसक आती है। इन एवेलैंशों के कई भेद हैं:—

(क) धूल का एवेलैंश (Dust Avalanche) यह बड़ा हानिकारक है। यह नई गिरी बरफ से बनता है और भयानक चक्रवात के बहने से चारों तरफ से बिखर पड़ता है और जीव, जन्तु, गृह, वृक्ष जो कुछ पाता है सब को तहस नहस कर डालता है। इसकी बरफ बहुत स्वच्छ होती है और इधर उधर जिन वस्तुओं का नाश करती है उन्हीं के ऊपर उसी जगह संगमरमर की तरह जम जाती है।

(ख) स्ट्रोक एवेलैंश (Stroke Avalanche) यह एवेलैंशों में प्रधान गिना जाता है। यह लम्बे चौड़े खेत की तरह बरफ की चट्टान होती है जो पहाड़ों पर से बड़े बड़े जंगलों को देखते देखते साफ कर डालती है। यहाँ तक कि तार के खम्भे भी इसके उपद्रव से नहीं बचने पाते।

(ग) ग्राउन्ड एवेलैंश (Ground Avalanche) फिसले हुए एवेलैंश को कहते हैं जो पहाड़ के बड़े बड़े ढोंके साथ लिए गिरते हैं। भूमि पर गिरने के कारण और तरह तरह की वस्तुओं से मिल कर स्वच्छ और सुन्दर होने के बदले यह मटमैले और भद्दे हो जाते हैं। कभी कभी ये एवेलैंश रात में गिरते हैं। उस समय प्रायः सम्पूर्ण गाँव इसमें दब जाता है और महीनों पीछे बरफ गलने पर उसके नीचे दबे हुए मृत-शरीर निकाले जाते हैं।

(च) हिमस्खलन (Snow-slip) यह उपर्युक्त एवेलैंश से कुछ छोटा होता है। ढालुई बरफ की चट्टानों से फिसल कर यह पंखे की तरह फैल जाता है। यद्यपि यह देखने में बहुत ही छोटा होता है किन्तु नाश करने में यह प्रायः बड़ा ही भयानक होता है। यह उछलता हुआ चलता है; यदि पथ में किसी को पा लेता है तो उसका पैर पकड़ते ही उसको गिरा देता है। यदि उस समय मनुष्य अपना सिर न बचावे तो वह शीघ्र ही मर जायगा। बरफ का यह छोटा टुकड़ा ऐसा भयानक होता है कि उसके विषय में स्विस् लोग एक लोकोक्ति कहते हैं कि "मुट्ठी भर बरफ, साफ करे हर तरफ"। कभी कभी सड़कों पर ५० या ६० फुट बरफ जम जाती है और लोगों को सुरंग काट कर राह बनानी पड़ती है। इसी लिए स्विस् लोग यात्रा के समय सदा एक कुदाली साथ रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्विस् पर्वत पर की चढ़ाई ।

सभी देशों के लोग आ आ कर स्विस् पर्वत की चढ़ाई का आनन्द लेते हैं। पहले लोग सहज ढालुएँ पथ से जाते हैं श्रैार घूम-घुमौाए पथ से हो कर मैदानों श्रैार देवदारु के जंगलों से होते हुए हिमावलियों के पास पहुँच जाते हैं। यहाँ पहुँच कर लोग ऊँची चढ़ाई की तैयारी करने लगते हैं।

प्रायः एक साथ पाँच मनुष्य चढ़ने के लिए जाते हैं; इनमें से दो तो यात्री श्रैार तीन मार्ग-प्रदर्शक होते हैं। स्विस-मार्ग-दर्शक अपने कार्य्य में बहुत कुशल होते हैं, बिना इनकी सहायता के बड़े बड़े चढ़ाके चूक जाते हैं। बड़े बड़े वीर, बली श्रैार दृढ़-पुरुष भी अपने साथ एक मामूली स्विस, मार्ग-प्रदर्शक रखते हैं जो आँधी, तूफान या श्रैार आपत्तियों से उनकी रक्षा करता है श्रैार कोई विकट समय आ पड़ने पर उनको बचा लेता है।

हर एक चढ़ाका अपने साथ बरफ खोदने की एक कुदाली रखता है। इसमें पाँच या छः फुट की लकड़ी लगी रहती है श्रैार एक काँटा भी लगा रहता है जो आदमियों को फिसलने से बचाता है। इसी लकड़ी में, एक नुकीला श्रैार धारदार फल लगा रहता है जो बरफ काटने के काम में आता है। इससे थोड़ी सी चिकनी बरफ हटा कर पैर रखने लायक स्थान बना लेते हैं।

बरफ पर फिसलने से बचने के लिए चढ़नेवाले दृढ़ श्रैार चोखी कील जड़े जूते पहनते हैं। वे लोग श्रोले से ढके हुए बरफीले स्थानों पर चढ़ने के समय साथ में जूते में बाँधने के लिए Crampon लिए रहते हैं। क्राम्पन लोहे का एक श्रैाजार होता है जिसमें छः लोहे की चोखी कीलें जड़ी रहती हैं। इसको बूट के नीचे रख कर घुटने के साथ पट्टी से बाँध देते हैं। ये कीलें अगल बगल जोड़ेदार होती हैं। दो एँड़ी के नीचे, दो तलुवे में श्रैार दो अगले पंजे के नीचे होती हैं। इन्हीं के सहारे चढ़ाके लोग फिसलनेवाली बरफ श्रैार चिकनी चट्टानों पर चलते हैं।

प्रत्येक मार्ग-प्रदर्शक अपने पास एक "Riisack" रखता है। यह सन का एक मजबूत थैला होता है। इसमें भोजन सामग्री श्रैार आवश्यकीय वस्तुएं रख कर झोले की तरह इसे कन्धे पर लटका लेते हैं। ये लोग अपने साथ एक बहुत मज़बूत रस्सी भी रखते हैं जिससे चढ़नेवाले भयानक पथों में एक दूसरे को पकड़ कर बड़ी आसानी से चले जाते हैं।

चढ़ाके लोग बिना किसी कठिनता के ही ग्लेशियर के पार हो जाते हैं; पर इसमें ठीक राह न मिलने से लोगों को बहुत थकावट आ जाती है। श्रैार किसी भारी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता। कुछ घंटों तक चढ़नेवाले ऊपर ही ऊपर चढ़े चले जाते हैं। इतना चढ़ने पर मार्ग-प्रदर्शक उन लोगों को दूर से ही एक काले धब्बे सरीखी छोटी सी वस्तु दिखाता है श्रैार यात्रियों को बतलाता है कि यह आश्रय-स्थान है। उसे देखते ही थके हुए चढ़नेवाले लोग वहाँ शीघ्र पहुँचने के लिए उत्कण्ठित हो जाते हैं। ये आश्रय-स्थान छोटे छोटे झोंपड़े हैं जहाँ यात्री लोग रात बिताते हैं; क्योंकि बड़े बड़े पर्वतों की चोटियाँ एक दिन में नहीं चढ़ी जा सकतीं। पहले दिन चढ़नेवाले पहली झोंपड़ी या चालेट तक पहुँचते हैं। यह चालेट बहुत मज़बूत बना रहता है इसलिए आश्रय लेनेवालों की आँधी श्रैार तूफान आदि आपत्तियों से यथेष्ट रक्षा रहती है। यहाँ निवास करने के उपरान्त दूसरे दिन की चढ़ाई के लिए तैयारी होती है। लोग सन्ध्या होते होते इस झोंपड़े तक पहुँच जाते हैं श्रैार बिना कुछ कहे सुने सिटकिनी उठा कर भीतर घुस जाते हैं। यह स्थान ऐसे यात्रियों के लिए ही बने होते हैं श्रैार उनमें ताले नहीं बन्द होते। वहाँ पहुँचते ही मार्ग-प्रदर्शक आग सुलगा कर ब्यालू तैयार करते हैं। भोजन करने के बाद लोग तुरन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो जाते हैं क्योंकि दो ही बजे रात को फिर रास्ता चलना पड़ता है।

मार्ग-प्रदर्शक यात्रियों को १½ बजे जगा देता है। उस समय गरम गरम कहवा तैयार किया जाता है और जल्दी जल्दी लोग प्रातःकाल का जलपान करते हैं। इस तरह दुरुस्त हो कर लोग आल्प्स पर्वत की ठंढी रात में झोंपड़े से निकल पड़ते हैं। उस समय के जगमगाते तारे उन लोगों के लिए रोशनी का काम देते हैं। पहला काम उन लोगों का परस्पर एक दूसरे को रस्सी में बाँधना है क्योंकि इसके बाद उनको दुर्गम और भयावह पथ मिलता है। रस्सी में गाँठ दे दे कर बड़ी सावधानी से लोग उसे पकड़ लेते हैं क्योंकि अब उन लोगों का जीवन इसी दृढ़ रस्सी पर निर्भर करता है। पहले प्रधान मार्ग-प्रदर्शक रस्सी पकड़ता है, उसके पीछे यात्री, फिर दूसरा मार्ग-दर्शक, उसके पीछे दूसरा यात्री और फिर अन्त में तीसरा मार्ग-प्रदर्शक रस्सी धर लेता है। प्रत्येक मनुष्य के बीच में १२ फुट का अन्तर रहता है। इस समय सब लोग बरफ काटने की अपनी अपनी कुदाली बड़ी सावधानी से पकड़े रहते हैं और प्रधान मार्ग-प्रदर्शक की आज्ञा पाते ही सब लोग एक साथ मार्ग बनाते हुए ऊपर चढ़ने लगते हैं।

पूर्व दिशा की ओर प्रातःकाल की शुभ और सुखद झलक पड़ते ही लोग ठहर जाते हैं। उनका यह ठहरना इस हिमावरण पर भगवान् मरीचिमाली की अनुपम गुलाबी शोभा देखने के लिए ही होता है। इन्हीं सब दृश्यों का आनन्द लेने के लिए ये लोग अपने अपने प्राण संकल्प कर के इन भयानक दुर्गम पर्वतों पर चढ़ने का श्रम उठाते हैं।

यहाँ तक लोगों को किसी प्रकार कुछ स्वच्छ और निर्विघ्न मार्ग मिलता है; किन्तु आगे चल कर लोगों को एक बरफ का कगार (arete) पार करना पड़ता है। इस कगार के दोनों ओर गहरी उपत्यकाएं होती हैं। यह कगार बहुत ही सँकरा होता है; इस पर से वही मनुष्य मस्तक उन्नत कर के जाने का साहस कर सकता है जो बहुत दृढ़ हो; क्योंकि किसी ओर झाँकने ही से झाँई आ जाती है और चढ़नेवाला नीचे गिर पड़ता है।

प्रधान मार्ग दर्शक अपनी कुदाली से बरफ काटता जाता और गड्ढे पर गड्ढा बनाता चला जाता है और उसके पीछे के लोग धीरे धीरे अग्रसर होते जाते हैं। इस तरह कगार से लोग पार हो कर एक मैदान में पहुँचते हैं जहाँ उतार शुरू होता है और बरफ के कगार पर नीचे की ओर जाना होता है। यहाँ बड़े बड़े सेराक़ों (Séracs) के ढेर लगे रहते हैं। इन स्थानों में बरफ और ओले के भी बड़े बड़े ढेर रहते हैं जिनके प्रति क्षण गिरने की आशङ्का लगी रहती है और जिससे हड्डी पसली तक के बचने की सम्भावना नहीं रहती।

यहाँ लोगों को प्रति क्षण कराल काल के मुँह में ही पड़ा हुआ समझना चाहिए। इसके पार होते ही लोगों को बरफ की एक विशाल खोह मिलती है। इसको किसी तरह पार कर के लोग आगे बरफ के पुल का आनन्द लेते हैं जिस पर प्रधान प्रदर्शक बहुत जमा कर पैर रखता है।

प्रदर्शक बड़ी सावधानी से आगे बढ़ता है और उसके पीछे दूसरे आदमी चलते हैं। इतने ही में प्रधान प्रदर्शक दीर्घ स्वर से सब को सचेत करता है। दो मनुष्य बरफ के पुल पर हैं और तीन खोह के पास ही ठस बरफ पर खड़े हैं। यह क्या? पुल उलट रहा है। लो, वह दो आदमी मुँह के बल जा रहे। किन्तु इन तीनों मनुष्यों के हाथ की रस्सी कसी मालूम पड़ती है। इससे मालूम होता है कि गिरे हुए मनुष्य अब तक जीवित हैं। वह देखिए गिरे मनुष्य रस्सी पकड़े बरफ काटते ऊपर आ रहे हैं। अब तो ऊपरवाले तीनों मनुष्यों के आनन्द की सीमा न रही। ऊपर पहुँच कर परस्पर धन्यवाद के शब्दों की बौछार होने लगी। अब लोग उस मार्ग को छोड़ कर दूसरे मार्ग का अनुसरण करते हैं। कमर में रस्सी बाँधे एक एक कर के लोग आगे बढ़ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद ही लोग बड़ी कठिनता से एक बड़े ग्लेशियर के पास पहुँचते हैं। यहाँ तो प्रधान प्रदर्शक के सब छक्के छक्के ही भूल गए। वह देखिए कुछ सफेद धुँआँ सा दिखाई दे रहा है। वह आल्प्स पर्वतीय ओले-पाले का तूफान है। हवा जोर से चलने लगी, इसके साथ ही साथ ओले भी गिरने लगे। सब यात्री सिर से पैर तक सफेद हो गए, लोगों की मूछ दाढ़ियों पर मकड़ी ने मानों जाला तान दिया। चारों ओर से घटा घिर आई, बादल छा गए, मालूम होता है कि बिजली भी उन लोगों के सिर ही के पास चमक रही है जिससे आँखें चौंधिया जाती हैं।

थोड़ी ही देर पीछे भगवान् भास्कर ने अपनी प्रखर रश्मियों से सारी घटा दूर कर उन लोगों के हिमावरण उतार लिए। जो पहले सरदी के मारे काँप रहे थे अब धूप की गरमी से व्याकुल हो अपने आपको बरफ के नीचे छिपाने की चेष्टा कर रहे हैं।

इन लोगों के सम्मुख ही ३०० फुट ऊँची बरफ की दीवार खड़ी है। लोग इस पर चढ़ने की तदबीर कर रहे हैं। रस्से को तान कर कुदाली से पैर रखने के लिए स्थान बना कर लोग खट खट ऊपर चढ़ने लगे। दूर से देखने से ठीक यही प्रतीत होता है कि खिड़की के शीशे पर पाँच मक्खियाँ चढ़ रही हैं। यह कोई सहज काम नहीं है; इसमें प्रति क्षण जीवन पर आ बनने की सम्भावना रहती है।

इस बरफ की चट्टान पर थोड़ी देर सुस्ता कर लोग भोजन करते हैं। एक यात्री कुछ खा ही नहीं सकता। उसका सिर दर्द कर रहा है, उसकी आँखों के सामने लाल पीला दीख रहा है और वह बहुत कठिनता से साँस लेता है। इसका कारण यह है कि बहुत ऊपर हवा बहुत कम है और बहुत से मनुष्य वहाँ इसी तरह मर जाते हैं। पास के लोग भी बहुत ज़ोर से बोलने पर ही सुन सकते हैं।

बस, इसके आगे अब चढ़ना नहीं पड़ेगा, लोग धीरे धीरे नीचे की ओर उतर रहे हैं। यहाँ इन लोगों के आनन्द की सीमा नहीं है। इसी शिखर के दर्शनार्थ इन लोगों ने इतना कष्ट उठाया है। इसमें एक मार्गप्रदर्शक कृतकार्य्यता के आनन्द में झण्डे उड़ाने लगा। उधर देखिए पहाड़ के नीचे लोग दूरबीन से इन यात्रियों को सफल-मनोरथ और सकुशल देख कर इन्हीं के उपलक्ष्य में तोपें छोड़ रहे हैं।

इस उच्च शिखर पर लोग थोड़ी देर तक पहाड़ का आनन्द लेते हैं। इसके बाद ही उतरने लग जाते हैं। पहले की अपेक्षा इन लोगों की चलाई अब बहुत भिन्न है। पहले जितनी दूर चढ़ने में चार घण्टे लगते थे अब उतनी दूर उतरने में केवल एक घण्टा लगता है। संध्या होने के पूर्व ही लोग चालेट में पहुँच कर सुख और शान्ति से रात व्यतीत करते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल धीरे धीरे पहाड़ के नीचे पहुँचने के लिए यात्रा आरम्भ होती है।

पर्वत-शिखर और घाटियाँ।

ऊँची घाटियों के बरफीले मार्ग बहुत सँकरे होते हैं और इस कारण खुलती रहडू गाड़ी (Sledge स्लेज) यहाँ एक घोड़े से खींची जाती है। इन दर्रों में आने जाने की यही मामूली सवारी है। यह साधारण गाड़ी की तरह बना हुआ एक संदूक होता है जिसमें दो मनुष्य बैठ सकते हैं या बैठने पर ढकने से जो कब्जे पर बन्द होता और खुलता है बन्द किए जा सकते हैं। इन गाड़ियों में पहिए नहीं होते। ये बरफ पर फिसलती चलती हैं। इन गाड़ियों में ऊपर जो ढकना लगा होता है वह मनुष्यों की छाती तक पहुँचता है, जिससे बरफ से उनके पैरों का बचाव हो जाता है। किन्तु उन लोगों के शरीर का ऊर्ध्व-भाग सदैव खुला ही रहता है। जब स्लेज उलट जाती है—जैसा कि बहुधा हुआ करता है—तो उसमें के मनुष्य बाहर लुढ़क पड़ते हैं। काठ का चौखटा या ढकना कब्जे पर हिलने डोलने के कारण मनुष्य शीघ्र ही सरलता से बाहर निकल आते हैं।

मोब्लाँ, आल्प्स का सबसे बड़ा शिखर है किन्तु यह स्विस् पर्वत नहीं है। यह पूर्णतया फ्रांस में स्थित है। इसी में Chamoutrin की सुन्दर उपत्यका है जहाँ ग्रीष्म ऋतु में सर्वदा दर्शकगणों की भीड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी रहती है। इस स्थान तक पहुँचने के लिए आर नदी की घाटी से हो कर एक लम्बा चौड़ा मार्ग गया है। इस सड़क के दोनों किनारों पर ऊँची ऊँची चट्टानें हैं जो देवदारु और बीच (beech) के वृक्षों से पूर्ण हैं। ऊँचाई में यह यूरोपीय पर्वतों में सब से बड़ा है और उनका राजा कहा जाता है। प्रति वर्ष बहुत से मनुष्य चतुर मार्ग-प्रदर्शकों के सहारे इसके शिखर पर चढ़ते हैं। प्रायः सब लोग ग्लेशियर ही देखने के लिए यहाँ के सब से ऊँचे पहाड़ी मार्गों पर चढ़ जाते हैं। उसके ग्लेशियरों में Mer de Glace सब से प्रधान और विख्यात है क्योंकि इसको लोग हिम-सागर (Sea of Ice) कहते हैं।

मोब्लाँ के पूर्व ओर सेन्ट बर्नर्ड St. Bernard की विख्यात घाटी है। इस मार्ग से स्वीज़रलैण्ड के जानेवाले दीन हीन यात्री, मज़दूर और फेरीवाले इटली को पैदल जाते हैं। इस घाटी के सिरे पर सेन्ट बर्नर्ड (St. Bernard) का मठ है, जहाँ बहुत से महन्त और सेन्ट बर्नर्ड के कुत्ते रहते हैं। ये कुत्ते जाड़े के दिनों में खोए हुए यात्रियों का पता लगाते हैं। बसन्त ऋतु के आगमन में, जब घाटियाँ बरफ से लबालब भर जाती हैं और बरफ की बड़ी बड़ी चट्टानें पहाड़ों पर से फिसलने लगती हैं तो उस समय पैदल चलनेवाले यात्री तार के खम्भों के सहारे ही चलते हैं। यदि कभी वे रास्ता भूल गए तो महन्त और उनके नौकर बरफ से ढके हुए मार्ग का पता लगाने निकलते हैं। साथ ही उनके कुत्ते भी रहते हैं जो गन्ध पाने से बरफ के नीचे दबे हुए मनुष्यों को ढूँढ निकालते हैं। सेन्ट बर्नर्ड के कुत्तों में बेरी Barry नाम का एक सब से विख्यात और चतुर कुत्ता था। इसने अपने जीवन में बहुतों की जीवन-रक्षा की थी। इसका एक स्मारक-चिन्ह भी यहाँ बना हुआ है।

सेन्ट बर्नर्ड के पूर्व में जेरमट Zermatt और मैटर हार्न Matter Horn नाम की चोटियाँ हैं। यह दूसरा पर्वतीय आश्रय स्थान है। इसी से थोड़ी दूर पर मान्ट रोसा (Monte Rosa) है। मान्ट रोसा Monte Rosa के निकट मैटर हार्न एक विस्तीर्ण गोलाकार शिखर है। स्वीज़रलैण्ड में ऊँचाई के विचार से यह पर्वत द्वितीय गिना जाता है।

१४ जुलाई १८६५ ई० में पहले पहल मैटर हार्न पर्वत पर सात मनुष्य चढ़े थे किन्तु कोई भी सकुशल नीचे न उतर सका। ज़रमट के उत्तर ओर और सेन नदी की उपत्यका के दूसरे ओर शानदार पहाड़ों का दूसरा झुण्ड Bernes Oberland है। इसमें Jungfrau, the Maiden सब से भड़कीला शानदार और अपने रंग का निराला शिखर है। यह सर्वदा बर्फीली सफेद चादर से ढँका रहता है। इस पर्वत का रमणीय दृश्य संसार में अद्वितीय माना जाता है। स्विस् दृश्य का पूरा पूरा पता ओबरलैण्ड (Oberland) के देखने से ही चल जाता है। इधर उधर हरी चराऊ उपत्यकाएँ हैं जो बड़ी बड़ी बरफीली चट्टानों से घिरी हुई हैं। ठीक इसी तरह चटकीली, भड़कीली ग्रिन्डेलवाल्ड (Grindelwald) की उपत्यका पर वेटर हार्न (Wetter Horn) और एगर (Eiger) नाम की चोटियाँ हैं।

आल्प्स पर इटली जाने की बहुत सी घाटियाँ हैं। बहुतों में अच्छी अच्छी सड़कें तैयार करा दी गई हैं। स्विस् पर्वतों पर सड़क बनाने की इञ्जीनियरों की अद्भुत चातुरी सराहनीय है। इन सड़कों के निर्माण करने में उनको बहुत बड़ी बड़ी कठनाइयों का सामना करना पड़ा था। यहाँ ऐसे मार्ग भी हैं जो पर्वत से अवरुद्ध हैं। इन पहाड़ों को देख कर इञ्जीनियरों ने अपनी बुद्धि न खोई बल्कि बड़ी उत्तमता से सुरङ्ग तैयार कर डाली। इन सुरङ्गों में प्रकाश आने के लिए पहाड़ों में छोटे छोटे छेद किए गए हैं। कहीं कहीं इन लोगों ने झूले की तरह पुल भी लटका दिया है जो पक्की मिहराबों से इसलिए ढँका है कि उस पर से बरफ की बड़ी बड़ी चट्टानें आसानी से फिसल जाया करें। आल्प्स में फ्रांस के मान्ट सेनिस (Mont Cenis) से स्वीज़रलैण्ड के सेन्ट गोथार्ड (St. Gothard) तथा सिम्प्लन (Simplon) से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरङ्ग गई है। सिम्प्लन की सुरंग सब से बड़ी है और उसको बने थोड़े ही दिन हुए हैं। यह १२½ मील लम्बी और धरातल से ७००० फुट गहरी है। सेन्ट गोथर्ड के नीचे की सुरंग-स्विस रेलवे के साथ इटालियन रेलवे को जोड़ती है। यह सुरंग दुनिया भर में सब से लम्बी है।

स्विस् लोगों के खेल।

स्वीज़रलैण्ड को बड़े बड़े पाश्चात्य लेखकों ने "यूरोप का क्रीड़ागार" कहा है; क्योंकि यहाँ छुट्टियों में प्रत्येक यूरोपीय प्रदेश के लोग आते हैं और विविध प्रकार से इस देश का आनन्द लेते हैं। स्वयं स्विस् लोग खेल-तमाशे में विशेष समय नहीं नष्ट करते, क्योंकि वे परिश्रमी होते हैं और जीविकार्थ कार्य्यों में लगे रहते हैं। परन्तु इन लोगों को भी बहुधा छुट्टी मिला करती है। उस आनन्द के समय स्विस् लोग आपस में मिल कर नाचते और गाते हैं।

ये लोग गाना बजाना बहुत पसन्द करते हैं और ताल सुर पर विशेष ध्यान देते हैं। पहाड़ों पर ये लोग झुण्ड के झुण्ड जाते हैं और जाते समय सुविख्यात प्राचीन गीतों से पहाड़ों को प्रतिध्वनित कर देते हैं। यहाँ के विख्यात गवैयों के पास बहुत से लोग गीत सुनने के लिए जुटते हैं।

स्विस्-छुट्टियों में नाच मामूली आनन्द गिना जाता है। नाच को ये लोग सर्वप्रिय और आनन्ददायिनी वस्तु समझते हैं। यहाँ की लड़कियाँ बड़ी उत्तमता और सफाई से नाचती हैं। मनुष्य भी यहाँ नाच में साथ देते हैं। लड़कियों का नाच सब तरह के हाव भाव और नाज़ नखरे से भरा रहता है पर आदमी लोग केवल एड़ी पटकते और कूदते हैं। गाने के साज़ में यहाँ दो एक बेहला (सारंगी) रहते हैं और दर्शकगणों में से कोई कोई अपने मित्र को नाचते देख ठेका देने लगते हैं। इस ठेके को यहाँ जाडेल (Jödel) कहते हैं।

नवयुवकों के लिए व्यायामशालाएँ (Athletic Clubs) रहती हैं जहाँ वे कसरत किया करते हैं। जब देश के प्रत्येक भाग के क्लब के लोग एकत्र होते हैं तो यहाँ एक बड़ा भारी मेला लग जाता है। इनमें से एक को National Sport Club कहते हैं। इसमें लोग बहुत अच्छे अच्छे खेल और व्यायाम करते हैं जो अनजान और जानकार सबको भले लगते हैं। कुछ जोड़ीदार लोग बड़े पत्थर उठा कर फ़ेंकते हैं, कुश्ती लड़ते हैं और उछल कूद कर भी एक प्रकार की कसरत करते हैं।

स्वीज़रलैण्ड में लोग दो प्रकार की कुश्तियाँ लड़ते हैं। पहली को रिंगेन (Ringen) कहते हैं। इस में हमारे देश की कुश्ती से किसी प्रकार का भेद नहीं है। दूसरी तरह की कुश्ती में लड़नेवाले अपने मामूली ब्रीजेज़ के ऊपर से ढीला ढाला किरमिज का पायजामा पहन कर चमड़े की एक पेटी कस लेते हैं। लड़नेवाले आपस में बाएं हाथ से एक दूसरे की कमर की पेटी और दूसरे हाथ से घुटने से ऊपर खसका कर पायजामे का सिरा पकड़ते हैं। बस ऐसा करते ही आपस में एक दूसरे को पटकने की कोशिश करता है। इस कुश्ती का नाम श्विंगेन (Schwingen) है। कुश्ती होने के पीछे दोनों लड़नेवाले परस्पर हाथ मिला कर एक एक प्याला शराब पीते हैं और एक दूसरे के गले में बाँहें डाल कर अखाड़े में इधर उधर टहलते हैं।

स्विस् लोगों का साधारण खेल निशाना लगाना है। ये लोग इसको खेल नहीं समझते बल्कि अपना धर्म और कर्त्तव्य मानते हैं; क्योंकि वे नहीं जानते कि किस समय इसका लड़ाई में काम पड़ जाय। इस खेल में उन लोगों को बहुत आनन्द मिलता है। प्रति रविवार को और दूसरी तातीलों में इन लोगों की बन्दूकें प्रायः देश के प्रत्येक भागों के शिखरों पर दायँ दायँ दगती ही रहती हैं। ये सब देशियों के खेल हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि स्वीज़रलैण्ड यूरोपीय प्रदेशों का क्रीड़ागार समझा जाता है; अतः इस देश में विदेशी भी बहुत आते हैं। ये लोग तरह तरह के खेलों में अपनी छुट्टी बिताते हैं। पहले पतझड़ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय में ही पहाड़ों के ऊपर के होटल बन्द हो जाते थे, पर आज कल ऐसा नहीं होता। यहाँ अब जाड़े में भी उनका कारबार जारी रहता है क्योंकि लोग बिना किसी प्रकार के भय के जाड़े में भी वहाँ जाते आते हैं। ये लोग तीन प्रकार के खेल खेलते हैं।

(१) इङ्गलैण्ड में बहुधा इतनी बर्फ़ नहीं पड़ती जिसमें लोग अच्छी तरह स्केटिङ्ग कर सकें। इसी लिए लोग यहाँ आते हैं और लगातार चार महीने तक स्केटिङ्ग की धूम मचाते हैं क्योंकि उस समय यहाँ की सब झीलें जम जाती हैं। स्केटिङ्ग बर्फ़ पर काठ के जूते (Skate) पहन कर चलने को कहते हैं।

(२) दूसरे खेल को Tobogganning कहते हैं। टोबोगन एक प्रकार की बिना पहिएवाली काठ की गाड़ी होती है। इसी पर लेट कर लोग ढालू पहाड़ पर फिसलते हैं। टोबोगनरों के लिए स्वीज़रलैण्ड मानों स्वर्ग ही है क्योंकि यहाँ बहुत से ढालू पर्वत हैं। सब से विख्यात एंगेडिन (Engadine) में सेन्ट मारिज St. Moritz में एक स्थान है जो १००० गज़ लम्बा है। इस पर शीशे की तरह चिकनी चमकीली बरफ़ जमी रहती है। बड़े चतुर टोबोगनर ही इस पर फिसल सकते हैं क्योंकि यह बहुत ढालुआँ है। इस पर प्रति वर्ष लोग चढ़ते हैं और जीतनेवाला जो बहुत जल्दी नीचे फिसल आता है, एक प्याला इनाम में पाता है। इस पर लोग एक मिनट के भीतर ही फिसल आते हैं और कहीं कहीं तो एक घंटे में ६० मील तक भी फिसलते हैं।

(३) तीसरे खेल का नाम Ski-ing है। इस खेल का भी प्रचार स्वीज़रलैण्ड में बहुत हो रहा है। Skis (शीज़) एक जोड़ा लकड़ी का टुकड़ा होता है। लम्बाई इसकी ७ या ८ फुट और चौड़ाई पैर के तलुए के बराबर होती है। इसके नीचे का भाग बहुत चिकना और पालिश किया होता है। नौसिखुओं का शीज़ बहुत अधिक दामों का होता है क्योंकि यह बहुत ही हलका होता है। इस पर चढ़ कर लोग एक घंटे में ४० मील तक दौड़ सकते हैं और इसके सहारे से बिना किसी भय के १०० फुट ऊँचे पहाड़ से नीचे कूद सकते हैं। प्रत्येक बाल-वृद्ध इस पर बड़ी आसानी से चलते हैं। प्रति वर्ष स्विस् सैनिकों को शीज़ सीखना पड़ता है। इसके द्वारा बरफ पर लड़के पाठशाला को और मनुष्य अपने कारबार के स्थानों को जाते हैं। प्रायः लोग अपने घर ही शीज़ बना लेते हैं। नार्वे (Norway) शीज का घर कहा जाता है पर आज कल स्वीजरलैण्ड ही इसको अपना रहा है।

शामवाव (Chamois)।

स्वीजरलैण्ड के जंगली जानवरों में शामवाव ही विख्यात है। यह सुन्दर जीव बहुधा नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि यह बड़ा डरपोक होता है और पहाड़ के बहुत ऊँचे भाग पर निवास करता है। यह मनुष्य की महक और आवाज से ही कोसों दूर भागता है। यह एक प्रकार का पहाड़ी हिरन है, उँचाई में यह बकरी के बराबर और वजन में ५० से ७० पाउण्ड तक होता और कभी कभी नर शामवाव १०० पाउण्ड तक भी हो जाता है।

इसके सींग लम्बाई में १० से १२ इंच तक के होते हैं और सिरे पर हुक की तरह घूमे हुए बहुत नुकीले रहते हैं। ये सींग ही शामवाव के शिकारियों का विजय-चिह्न हैं। दूसरा विजय-चिह्न इसकी दाढ़ी है जो कि बकरों की तरह ठुड्ढी पर नहीं उगती बल्कि नर शामवाव की पीठ पर उगती है। जाड़े के प्रारम्भ में इसका शरीर बड़े बड़े झबरीले बालों से ढँक जाता है और उसकी रीढ़ की हड्डी पर कतार के कतार चिकने काले रंग के बाल निकलने लगते हैं किन्तु उनका सिरा कुछ सफेद रंग का होता है जो सीधा खड़ा रहता है और हवा में हिलता है। इन बड़े बालों के गुच्छे शिकारी लोग त्यौहार के दिनों में अपनी टोपी में लगाते हैं। इस जानवर की दाढ़ी की इतनी कदर होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि कभी कभी तुर्रे या कलगी के लिए वह १०-१० पाउण्ड को बिक जाती है।

शामवाव गरमी के दिनों में चट्टानों पर की घास और काई से जीवन बिताता है। यह जाड़े के दिनों में पहाड़ से उतर कर साखू के जंगल में आ जाता है और भोजन के लिए सूखी घास खोजता है जो देवदारु की घनी डालियों के कारण बरफ से ढँकी रहती है। कभी कभी इन वृक्षों की डालियों का झुरमुट बरफ के कारण इन जीवों का कैदखाना हो जाता है। उस समय इन बेचारों की दुर्गति होती है क्योंकि भोजन रहने तक तो ये जीवित रहते हैं और उसके समाप्त होते ही सुरलोक की ओर सिधारते हैं।

ये जानवर अपना घर पहाड़ की चोटियों ही पर बनाते हैं क्योंकि ये बेचारे सैकड़ों वर्षों से स्विस् लोगों द्वारा मारे जाते हैं। स्वीजरलैण्ड के बाहर आल्प्स के Tyrol और Styria नामक स्थानों में इन पशुओं की सर्वथा रक्षा की जाती है और वह स्थान जहाँ ये रहते हैं एक प्रकार की सम्पत्ति समझी जाती है। वहाँ वे निर्भय हो पहाड़ से नीचे उतर आनन्द से भोजन करते हैं। स्वीजर-लैण्ड में इन जीवों का शिकार वही मनुष्य कर सकता है जिसका चित्त स्थिर और पैर दृढ़ हों। शामवाव के शिकारियों को ऊबड़ खाबड़ पर्वतों के बीच रहना और मार्ग-शून्य पर्वतों पर चढ़ना होता है। शिकारियों को चुपचाप बड़ी भयानक जगहों में इन जीवों की ताक में बैठना पड़ता है। इसलिए वे लोग इसका अभ्यास करते हैं।

स्वीजरलैण्ड में शामवाव के शिकारियों के बराबर पहाड़ चढ़नेवाला और कोई नहीं होता। ऊँची सीधी चट्टानों पर जिन पर एक इंच की भी पगडंडी नहीं है, ये पहाड़ी स्विस् मनुष्य खट् खट् चढ़ जाते हैं। इन चट्टानों पर से बड़े बड़े वृक्ष नन्हे नन्हे पौधों की तरह मालूम पड़ते हैं, चौड़ी चौड़ी नदियाँ चाँदी के तार सी, और चरते हुए जानवर काले धब्बे से नजर आते हैं। ऐसे पहाड़ों पर चढ़ कर शिकारी शामवाव के झुण्ड के पास पहुँच जाता है। प्रायः १५-२० का झुण्ड रहता है। शिकारी रेंग कर धीरे धीरे सरकता है क्योंकि चरनेवालों में से ही एक पहरेदार भी रहता है जो इधर उधर देखता है।

पहरे का काम किसी जानकार और बुड्ढी मादा ही के सिर रहता है जो किसी पास की चोटी पर बैठी रहती है और चारों ओर ध्यान रखती है जिससे उसको मनुष्य के आने की आहट शीघ्र ही लग जाती है। शिकारियों को इसकी नजर बचा कर शिकार करना जरा टेढ़ी खीर है। हाँ, अगर दस या बीस शिकारी साथ जायँ तो दो एक जान-वर हाथ लग जाते हैं। इनका शिकार करने में स्विस् लोग वीरता समझते हैं और सफल-मनोरथ होने पर बहुत आनन्द मनाते हैं।

ग्लेशियर और फोन (Fohn)।

अंग्रेजी भाषा में हिमसंहति को ग्लेशियर कहते हैं। यह नदियों की तरह बरफ के बड़े बड़े टुकड़ों के साथ साथ सूर्य्य की किरणों से पिघल कर नीचे की ओर गिरता है। जब यह जमी हुई दशा में रहता है तो अरुणोदय के समय इसका गुलाबी रंग मन को मोहित कर लेता है। पास के बड़े बड़े वृक्षों के कारण यह नीले रंग का दीखता है। बरफ के नीचे का भाग पानी रहने के कारण और भी गाढ़ा नीला मालूम होता है। इसका पानी आगे जाते जाते बिलकुल गायब हो जाता है क्योंकि पहाड़ों में बड़े बड़े गार होते हैं और उन्हीं में जा कर उनका पानी गुम हो जाता है। ग्लेशियरों की टक्कर से पहाड़ के बड़े बड़े टुकड़े भी चूर चूर हो जाते हैं। यहाँ के पहाड़ों पर इधर उधर बहुत से ग्लेशि-यर-टेबुल दिखाई पड़ते हैं। यह ग्लेशियर-टेबुल बरफ के ऊपर चिकनी चट्टान गिरने से बन जाता है।

कभी कभी वायु आदि के लक्षणज्ञ स्विस् वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में दक्षिण दिशा की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख कर विचित्र परिवर्त्तन का अनुमान करते हैं। पहाड़ों की चोटियों पर उन्हें रंगबिरंगे बादलों के परदे दिखाई पड़ते हैं। उस समय आकाश में भगवान् अंशुमाली अंशुहीन हो कर पीले पड़ जाते हैं। आकाश चमकीले नीले नीले रंग के बादलों के कारण चमकने लगता है। सायंकाल में चन्द्रिका-विहीन हो कर चन्द्रदेव उदय होते हैं किन्तु उनका मण्डल कुछ कुछ लाल रहता है। पहले ठंढी वायु झोंके से चलती है पर शीघ्रही उसका चलना रुक जाता है। इससे पशु, पक्षी और मनुष्यों को फोन के आगमन का ज्ञान हो जाता है और सब लोगों में एक तरह की हलचल मच जाती है। वायु एक विचित्र रूप धारण कर लेती है। दूर के शिखर निकट जान पड़ने लगते हैं। पहाड़ी जंगलों में खड़खड़ाहट और सनसनाहट के कारण जी घबराने लगता है। शान्त वायु में पहाड़ो नदियों का गरजना निकट सुनाई देने लगता है। एकाएक भयानक गरम हवा चारों ओर से बहने लगती है। किसी किसी उपत्यका और प्रायः कन्दराओं में फोन एक बड़ो आँधी की तरह बहने लगता है। वह बड़े बड़े वृक्षों को भूमि पर गिरा देता है, घरों और पशु-शालाओं के छप्परों को बहुत जल्दी उलट पुलट देता है और इस तरह हानि और दुःख का कारण बनता है। ज्यों ही फोन बहने लगता है त्यों ही सब गाँवों की आग बुझा दी जाती है क्योंकि एक आग की चिनगारी से प्रचण्ड आग लग सकती है। कभी कभी फोन स्वीजरलैण्ड के सैकड़ों गाँव जला देता है।

इस भयानक वायु का असर कुछ न कुछ सब पर पड़ता है। चिड़ियाँ अपने घोंसलों में छिप जाती हैं। जानवर इस वायु से बिलकुल सुस्त हो कर कई दिनों तक पड़े रह जाते हैं। इस अवसर पर मनुष्य की रग रग जकड़ जाती है और कलेजे पर एक धक्का सा लगता है।

इतना होने पर भी स्वीजरलैण्ड में फोन का स्वागत किया जाता है। यह वायु देश को शीत ऋतु से इतनी जल्दी छुटकारा दे देती है जितनी जल्दी प्रकृति का और कोई नियम नहीं दे सकता। बरफ और ओले गलाने में तो वह जादू का काम करता है। फोन एक दिन में इतनी बरफ गला सकता है जितनी सूर्य्य की किरणें १५ दिन में गलाती हैं। कुछ ही घंटों में ३० इंच बरफ बड़ी आसानी से गल जाती है। आल्पस पर्वत में ऐसी ऐसी भी उपत्यकाएँ हैं जहाँ सूर्य्य की किरणों की गति नहीं है। ऐसे स्थानों की बरफ बिना फोन के नहीं गलती। गलने पर उन स्थानों में हरी चाँदनी सी बिछ जाती है और बीच बीच के रंगबिरंगे फूल तो मानों उसको जरदोजी की चादर ही बना देते हैं। ग्रीष्म ऋतु आ जाती है। पशु भी हरे हरे चरागहों में चर कर प्रसन्न होने लगते हैं।

कभी कभी यह फोन-वायु सप्ताहों तक मन्द मन्द बहती रहती है और फूलों से युक्त हरी चादर पर्वत-शिखरों को ओढ़ा देती है। फोन का आगमन दिसम्बर और जनवरी मास में बहुधा हो जाया करता है।

कुछ ऐतिहासिक पुरुष तथा घटनाएँ।

विलियम टेल ही ने लुसर्न-झील के फारेस्ट क्यान्टनों में स्वतन्त्रता देवी की स्थापना की थी। यह बात पहले कही जा चुकी है कि स्वीजरलैण्ड आस्ट्रिया के अधीन था। विलियम टेल ने उस समय के आस्ट्रिया के शासक का बध किया था।

आस्ट्रियनों ने फारेस्ट क्यान्टन के हाथ से निकल जाने पर लुसर्न नगर पर अपना अधिकार जमाना चाहा। इस कार्य्य में सहायता लेने के लिए उन्होंने जेन डो माल्टर्स Jean de Malters नामक कुटिल, देश-द्रोही मनुष्य को अपनी ओर मिलाया। किन्तु ईश्वर को यह बात अनुचित मालूम हुई। जिस रात में बहुत से सिपाहियों और मनुष्यों के साथ लोग एक सुरंग द्वारा नगर में प्रवेश करना चाहते थे, उसी समय पीटर (Peter) नामक एक छोटा लड़का लुसर्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झील में गरमी लगने के कारण नहाने गया हुआ था। वह बेचारा नहा कर उसी झील के तट पर सो गया, किन्तु इतने ही में घोड़ों की टाप की आवाज़ से उसकी नींद उचट गई और वह चौकन्ना हो कर टोह लेने लगा। ज्यों ही वह सब बातें समझ कर अपने नगरवासी मनुष्यों को सचेत करने के लिए जाने लगा त्यों ही रास्ते में उन निष्ठुरों ने उसे पकड़ लिया। बहुतों ने उसका बध करना ही उचित समझा; किन्तु उनमें से एक को दया आई और उसने शपथ दिला कर भेद न खोलने की प्रतिज्ञा करा कर उसे छोड़ दिया। लड़का था बड़ा चतुर; उसने अपनी प्रतिज्ञा को भी भ्रष्ट न करना चाहा और अपना काम भी निकालना चाहा। अतः इन सब बातों को विचार कर वह घर पहुँचा। घर में अँगीठी जल रही थी और घर के मनुष्यों के अतिरिक्त वहाँ और लोग भी वर्त्तमान थे। अँगीठी के निकट पहुँचते ही उसने कहा—"अँगीठी! मैंने अभी एक विचित्र और भयानक बात सुनी है; उसे किसी जीवधारी से न कहूँगा पर तुमसे कहता हूँ।" यह कह कर उसने सम्पूर्ण घटनाएँ कह डालीं। इस बात को सुन लोग चकित हो गए और नगर-रक्षा के लिए तैयार हो कर उन्होंने शत्रु को मार भगाया। इस वीरता के कारण वह लड़का स्वीज़रलैण्ड में चिरस्मरणीय हो गया और "लुसर्न नगर का छोटा वीर" के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। तीसरा मनुष्य आर्नल्ड (Arnold) का विंकेलरीड (Winkelried) है। इसने मुट्ठी भर आदमियों की सहायता से आस्ट्रियनों के दाँत खट्टे किए थे। अपनी स्वतन्त्रता के लिए स्विस् लोग तीन लड़ाइयाँ लड़े थे। उनमें से सेम्पैश (Sempach) की लड़ाई जो १३८६ ई० में हुई थी, विशेष विख्यात है। इस लड़ाई में आस्ट्रियन लोग बर्छों से लड़ने आए थे। थोड़े से स्विस् इन लोगों के सामने कुछ न थे और भागना ही चाहते थे कि इतने में स्वदेश-भक्त विंकेलरीड ने कहा—भाइयो! मेरी स्त्री और बच्चों की रक्षा करना; मैं इस समराग्नि में अपने प्राणों की आहुती देता हूँ।" ऐसा कह वह शत्रुओं के बीच में घुस गया और बरछे, बरछियों से अपने आपको छिपा कर सदा के लिए प्रातःस्मरणीय बना। तब से स्वीज़रलैण्ड के इतिहास में उसका नाम सुवर्णाङ्कित हो गया।

—:०:—

देशी भाषाओं में शिक्षा।



गत १७ मार्च १९१५ को दिल्ली के इम्पीरियल सेक्रेट्रियट की काउन्सिल चेम्बर में बड़े लाट की लेजिस्लेटिव-काउन्सिल का जो अधिवेशन हुआ था उसमें आन० मि० रायनिङ्गर ने "देशी भाषाओं में शिक्षा" सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किया था। आपके प्रस्ताव का आशय यह था—"यह काउन्सिल गवर्नर-जनरल-इन-काउन्सिल से सिफारिश करती है कि वह प्रान्तीय सरकारों से परामर्श कर के सारे माध्यमिक (Secondary) स्कूलों में भारतीय विद्यार्थियों के लिए देशी भाषाओं में शिक्षा दिलवाने और अँगरेज़ी के अध्ययन को दूसरी भाषा की भाँति अनिवार्य बनाने के उपाय करें।" स्कूलों में देशी भाषाओं में शिक्षा देने का प्रश्न जितना ही महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है वह उतना ही पुराना भी है। इस सम्बन्ध में बराबर समय समय पर अनेक प्रकार से आन्दोलन होता आया है और दिन पर दिन उसकी आवश्यकता, उपयोगिता और महत्ता सिद्ध होती जाती है। आन० मि० रायनिङ्गर ने अपना प्रस्ताव उपस्थित करते समय जिस योग्यता और युक्तिपूर्वक उसकी उपयोगिता सिद्ध की थी वह अवश्य ही सराहनीय है। आपने अपने व्याख्यान के आरम्भ में कहा था,—"........थोड़े से विचार से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देशी भाषाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा देने से कई बड़े बड़े लाभ हैं और बिना मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास किए हुए बालकों को सब विषयों का वास्तविक ज्ञान उनकी मातृभाषा द्वारा ही कराया जा सकता है। इस प्रकार बालक को पाठ्य विषय की कठिनाइयों के अतिरिक्त और किसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता और मानसिक शक्तियों के एक ही ओर लग जाने के कारण कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और बालक सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पर विदेशी भाषा सीखने में होनेवाली कठिनाइयों के कारण शिक्षा का उद्देश्य ही पूरा नहीं होने पाता। कोमलमति बालक न तो भाषा ही सीख सकते हैं और न ज्ञान ही प्राप्त कर सकते हैं। फल यह होता है कि बालक मशीन की तरह आधे समझे हुए वाक्य रटता रहता है और उसे न तो देशी भाषा का यथेष्ट ज्ञान होता है और न विदेशी भाषा का। ऐसी शिक्षा वास्तविक नहीं होती और इन दोषों का परिणाम सारे शेष जीवन में भुगतना पड़ता है। ऐसी दशा में यदि हमारे ग्रेजुएट अपने सारे जीवन में कोई बड़ा काम न करें और निकम्मे कामों में अपनी शक्ति व्यय करें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? इंट्रेंस परीक्षा में फेल होनेवालों की दशा और भी बुरी होती है। न तो वे नौकरी के काम के रह जाते हैं और न रोजगार के काम के; और इसी लिए वे दुखी और असन्तुष्ट रहते हैं। पर यदि उन्हें देशी भाषाओं में शिक्षा मिले तो वे कला वा व्यापार आदि के योग्य बन सकते हैं। और यह भी सम्भव है कि देशी भाषा में शिक्षा पा कर वे अपने पैतृक व्यवसायों में ही लगे रह जायँ।"

इसके उपरान्त रायनिङ्गर महाशय ने यह भी बतलाया कि जिस स्त्री-शिक्षा की देश के सुधार के लिए इतनी आवश्यकता समझी जाती है उसकी वृद्धि में भी देशी भाषाओं में शिक्षा देने से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। आजकल के ढंग की माध्यमिक शिक्षा बहुत ही थोड़ी कन्याएँ प्राप्त कर सकती हैं। पर यदि शिक्षा देशी भाषाओं में दी जाय तो शिक्षा का प्रचार बहुत बढ़ सकता है। सर्व साधारण को शिक्षा केवल देशी भाषाओं में ही दी जा सकती है। आगे चल कर आपने यह दिखलाया कि देशी भाषाओं में शिक्षा देने के लाभ अधिकारी लोग बहुत दिनों से जानते हैं। आपने कहा,—"भारत में अँगरेजी शिक्षा का आरम्भ भारत सरकार के ७ मार्च सन् १८३५ वाले प्रसिद्ध रिजोल्यूशन से होता है। इससे पहले शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्तों में मत भेद था और इसी लिए सरकार की नीति अनिश्चित रही। लार्ड मेकाले की २ फरवरी सन् १८३५ वाली सूचना के अनुसार उक्त मन्तव्य स्थिर हुआ था और यह बात सदा के लिए निश्चित हो गई थी कि,—"भारतवासियों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान आदि का प्रचार करना अँगरेजी सरकार का एक बड़ा उद्देश्य होना चाहिए।" और सरकार द्वारा केवल अँगरेजी शिक्षा को उत्तेजना मिलनी चाहिए। पर स्वयं लार्ड मेकाले के कथन से भी इस बात का पता चलता है कि इस निश्चय का प्रधान कारण यह था कि देशी भाषाओं के साहित्य का अभाव था। लार्ड मेकाले ने कहा था,—"हमें ऐसे लोगों को शिक्षा देनी है जो इस समय अपनी मातृभाषा द्वारा शिक्षित नहीं हो सकते। हमें उन लोगों को विदेशी भाषा सिखलानी चाहिए।" लार्ड मेकाले के सभापतित्व में होनेवाली शिक्षा-सम्बन्धी काउन्सिल के निश्चय में देशी भाषाओं में शिक्षा देने के महत्त्व के विषय में जो सन्देह रह गया था वह उस काउन्सिल की पहली वार्षिक रिपोर्ट से दूर हो गया। काउन्सिल ने बतलाया था,—"देशी भाषाओं की उन्नति में उत्साह देने का महत्त्व हम बहुत अच्छी तरह जानते हैं।............देशी भाषाओं के अधिकारों को सभी दल के लोगों ने बहुत अच्छी तरह स्वीकार किया था।........" काउन्सिल उस समय की प्रतीक्षा करती थी जब कि शिक्षा का माध्यम बदला जाय और अंगरेजी के स्थान में देशी भाषाएँ रक्खी जायँ। उसने कहा था—"हम लोग यह बात समझते हैं कि देशी भाषाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य का संगठन ही अन्तिम उद्देश्य होना चाहिए और उसकी पूर्त्ति के लिए सब प्रकार का प्रयत्न होना चाहिए। देशी भाषाओं के साहित्य के एकदम अभाव के कारण विदेशी भाषा का प्रचार अनिवार्य्य हो रहा है और इसी लिए शिक्षा का ठीक ठीक प्रचार होना असम्भव है। भारत को प्रकाशमान् बनाने के लिए पहली सीढ़ी अँगरेजी का अध्ययन है। भारतवासियों को शिक्षक बनने से पहले स्वयं अध्ययन करना चाहिए। उनमें से सब से अच्छे सुशिक्षितों को सब से पहले अपना (विदेशी) ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और तब वह लोग वह ज्ञान अपनी भाषा में परिवर्त्तित करने के योग्य बन सकेंगे।"

"इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत में अँगरेजी शिक्षा के प्रारम्भिक काल में भी अफसरों को इस बात का जरा भी ध्यान न था कि अँगरेजी भाषा सदा के लिए शिक्षा का माध्यम हो जाय। और जब हम उस समय के किए हुए प्रयत्न को स्थायी करने का प्रयत्न करते हैं तो मानो उस समय की नीति के मुख्य उद्देश्य को एक दम छोड़ देते हैं। मेरी नम्र सम्मति में, जिस मार्ग का अनुसरण में कराना चाहता हूँ उसके समर्थन के लिए उस समय के सरकारी लेखों से यथेष्ट सहायता मिल सकती है पर उसके आधार पर किसी प्रकार की प्रार्थना करना अनावश्यक है। अस्तु, वह प्रथा चल पड़ी और उसके दोषों ने शीघ्र ही लोगों का ध्यान आकर्षित किया और यहाँ तथा इङ्गलैण्ड में सब लोगों ने यह बात समझ ली कि इस देश के लोगों में पश्चिमी सभ्यता और ज्ञान आदि का प्रचार करने के लिए देशी भाषाओं में शिक्षा देने की आवश्यकता है। सर चार्ल्स उड ने सन् १८५४ वाले अपने प्रसिद्ध डिस्पैच में पहले पहले सरकारी तौर पर देशी भाषा के स्कूलों और नए मिडिल स्कूलों का अस्तित्व स्वीकार किया था। पर देशी भाषाओं के सम्बन्ध में उसका फल सन्तोषजनक नहीं हुआ। विशेष अभिवृद्धि के लिए यह विषय सन् १८८२ वाली इण्डियन एजूकेशन कमीशन के सामने उपस्थित किया गया। यद्यपि कमीशन ने यह देख लिया था कि अँगरेजी की छात्रवृत्ति पा कर इंट्रेन्स की परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों की अपेक्षा हाई स्कूलों से देशी भाषा ले कर आए हुए विद्यार्थी बहुत अच्छे थे तो भी उसकी सिफारिश का कोई नतीजा न हुआ। इस विषय पर बड़े बड़े विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ और उनमें से कुछ लोगों की सम्मति में यथेष्ट शिक्षा देने के लिए भारतीय परिपाटी अप्राकृतिक और अनुपयुक्त थी। प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० मानियर विलियम्स ने अपनी Modern India (आधुनिक भारत) नामक पुस्तक में लिखा था— "भाषाओं के सम्बन्ध में भारी भूल की जा रही है। ....हम लोग देशी भाषाओं को यथेष्ट प्रोत्साहन नहीं देते। तो भी यह बात भूलनी न चाहिए कि वह किसी प्रकार नष्ट नहीं हो रही है। यह समझना केवल मूर्खता है कि हम लोग २४,००,००,००० आदमियों पर अँगरेजी भाषा लाद सकेंगे।"

भारत-सरकार भी इस सम्बन्ध में परिवर्त्तन की आवश्यकता समझती थी और उसने २३ अक्टूबर सन् १८८४ वाले निश्चय के अनुसार प्रान्तीय सरकारों और शिक्षा-विभाग के अधिकारियों से इस विषय पर पूरा पूरा विचार करने की सिफारिश की थी। गवर्नर-जनरल-इन काउन्सिल इस बात में कमीशन से सहमत थे कि मिडिल स्कूल तक शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों के लिए देशी भाषाओं में शिक्षा देना बहुत ही प्रभावोत्पादक और सन्तोषजनक होगा। बङ्गाल सरकार का अनुभव यह बतलाता है कि हाई स्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को देशी भाषा में शिक्षा देने का फल भी बहुत सन्तोषजनक होता है। बहुत से लोगों का यह कथन है कि इस देश के मिडिल और हाई स्कूलों के विद्यार्थियों की योग्यता के सन्तोषजनक न होने का कारण यही है कि उन्हें विदेशी भाषा में शिक्षा दी जाती है। बालक टूटी फूटी अँगरेजी सीख लेते हैं पर विद्याविषयक ज्ञान उन्हें कुछ भी नहीं होता। इस कठि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नता को दूर करने के लिए यह प्रस्ताव किया गया है कि मिडिल स्कूलों में अँगरेज़ी केवल भाषा के रूप में ही सिखलाई जाय और वह भी एक विशेष विषय की भाँति और केवल उसी दशा में जब कि उसके लिए वास्तविक अभिलाषा प्रकट की जाय।

\+ + + + + +

सर एल्फ्रेड क्राफ्ट ने सन् १८८६ में शिक्षा-सम्बन्धी अभिवृद्धि की आलोचना करते हुए कहा था—"इंगलैण्ड में आजकल यही सिद्धान्त माना जाता है कि बालक का ज्ञान, उसके विदेशी भाषा पढ़ने से पहले, उसकी मातृ-भाषा में शिक्षा देकर बढ़ाना चाहिए और इस प्रकार वह विदेशी भाषा की कठिनाइयाँ दूर करने में भली भाँति समर्थ हो सकेगा।"......इससे जान पड़ता है कि सर क्राफ्ट इस सम्बन्ध में परिवर्त्तन के पक्ष में थे।

मि० नेश ने अपनी दूसरी पंच-वार्षिक आलोचना में सर एल्फ्रेड की सम्मति का समर्थन करते हुए कहा था—"यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि इसमें व्यय भी कम पड़ेगा और काम भी पूरा होगा......पर यह प्रथा इसलिए अग्राह्य समझी जाती है कि उससे अँगरेज़ी भाषा की उन्नति में रुकावट होगी और इस वास्ते यही समझा जाता है कि उसका अवलम्बन स्वयं सर्वसाधारण की सद्-इच्छा पर ही छोड़ दिया जाय।"

शिक्षा सम्बन्धी छठी पंचवार्षिक आलोचना में आन० मि० शार्प ने "इतिहास और भूगोल आदि विषयों के साधारण पाठों की तरह पढ़ाए जाने" और "विद्यार्थियों को अंगरेज़ी समझने की योग्यता होने से पहले उस भाषा में शिक्षा देने के प्रयत्न" सम्बन्धी वर्त्तमान प्रणाली के दोषों पर ध्यान आकर्षित कराया है। सन् १९०२ वाली इण्डियन युनिवर्सिटीज़ कमेटी ने भी इन त्रुटियों पर ध्यान दिया है।' लड़के भाषा के रूप में अंगरेज़ी सीखना आरम्भ करते हैं और उसे समझने के योग्य होने से बहुत पहले ही उसी के द्वारा अन्य विषयों का अध्ययन भी आरम्भ कर देते हैं। भारत सरकार ने अपने २१ फरवरी १९१३ वाले रिज़ोल्यूशन में यह महत्त्व-पूर्ण सम्मति दी थी,—

"इस विषय में बहुत कुछ अनुभव हो चुका है कि जो विद्वान् अपना सारा अध्ययन देशी भाषा में करते हैं उनका मस्तिष्क बहुत परिपूर्ण रहता है। उन प्रान्तीय सरकारों और शासन-प्रबन्धों से, जिन्होंने अभी तक यह प्रथा प्रचलित नहीं की है, यह सरकार सिफ़ारिश करती है कि वे उक्त परिपाटी का प्रबन्ध करें।"

× × × × × × ×

और सब से अधिक महत्त्व की बात यह है कि सर्वसाधारण इस सम्मति के पक्ष में हैं। भारतीय राजनीति के सम्बन्ध में और प्रश्नों पर जिनकी सम्मति एक दम विपरीत है वे भी इस सुधार के पक्ष में हैं।

मदरास के सर सुब्रह्मण्य ऐयर ने द्रविड़ भाषा संगम में व्याख्यान देते हुए कहा था—"रे० डा० पोप तथा देशी भाषाओं के अन्य अंगरेज़ विद्वानों का यह विश्वास है कि बड़े बड़े महत्त्व-पूर्ण विचार करने और विज्ञान के पारिभाषिक शब्द बनाने के लिए तामील और तेलगू भाषा बहुत उपयुक्त है।" आन० मि० पी० एस० शिवस्वामी ऐयर ने जो आजकल मदरास सरकार के मेम्बर हैं, काउन्सिल आफ़ नेटिव एजूकेशन (Council of Native Education) के मंत्री की हैसियत से कहा था—"छोटे छोटे बालकों को ऐसे शब्द और वाक्य रटाए जाते हैं जिनसे उन्हें कोई स्पष्ट बोध नहीं होता। × × × × × × × इसी लिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में भाषा से भिन्न विषय अंगरेज़ी के बदले देशी भाषाओं में सिखलाए जायँ। बंगाल के सर गुरुदास बनर्जी ने अपनी "Educational Problem in India" (भारत की शिक्षा-समस्या) नामक पुस्तक में लिखा है—"प्रवृत्ति निस्सन्देह देशी भाषाओं में शिक्षा देने के पक्ष में है और विचार द्वारा बहुत से अंशों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रवृत्ति का समर्थन होता है। × × × × × इसलिए मैं यह कहता हूँ कि मैट्रिकुलेशन परीक्षा तक अंगरेजी के अतिरिक्त अन्य विषय विद्यार्थियों को मातृ-भाषा में सिखलाए जायँ।"

आन० जस्टिस सर आशुतोष मुकुर्जी ने सन् १९०७ वाले कलकत्ता कनवोकेशन एड्रेस (Convocation Address) में कहा थाः—

"मैट्रिकुलेशन में पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें विद्यार्थियों में विचार प्रकट करने और कुछ सोचने समझने की योग्यता आ जाय। विद्यार्थियों को विचार प्रकट करने के योग्य बनाने के लिए निस्सन्देह सब से अच्छा साधन उसकी मातृ-भाषा है जिसके संगठन और साहित्य से उसका काम चलाने योग्य परिचय होना चाहिए।"

सर वालेन्टाइन शिरोल अपनी "Indian Unrest" (भारतीय अशान्ति) नामक पुस्तक में हाई स्कूलों तक शिक्षा का माध्यम अंगरेजी होने को बुरा बतलाते हैं। मिसेज एनी बेसेन्ट ने इण्डियन रिव्यू के मई १९१४ के अंक में अपने एक लेख में कहा है—

"माध्यमिक स्कूलों में देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देने के सम्बन्ध में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। यह सिद्धान्त बहुत ही उपयुक्त होगा कि अंगरेजी भाषा के अतिरिक्त और सब विषय देशी भाषाओं में सिखलाए जायँ। उस दशा में हमारे भारतीय बालक भी उसी लाभदायक स्थिति में हो जायँगे जिस स्थिति में सब विषयों को अपनी मातृ-भाषा में पढ़नेवाले और अँगरेजी का अध्ययन अनिवार्य्य रूप से दूसरी भाषा की भाँति करनेवाले जापानी विद्यार्थी हैं। यदि मैट्रिकुलेशन तक इस सिद्धान्त का प्रयोग किया जाय तो शिक्षा वास्तविक और प्रभावकारिणी हो जायगी और सभी उपयोगी कार्य्यों के लिए अंगरेजी जानना वैसा ही आवश्यक रहेगा जैसा कि आजकल है।"

मदरास के लार्ड बिशप ने भी इसी परिवर्त्तन पर जोर दिया था। मदरास की काउन्सिल आफ एजूकेशन की भी यही सम्मति है और उसने इस परिवर्त्तन के लिए बहुत कुछ प्रयत्न भी किया है। इसलिए यह विश्वास करना कठिन है कि यदि सरकार देशी भाषाओं को माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बना देगी तो लोग उसे अच्छा न समझेंगे। इसके अतिरिक्त सरकार अपनी प्रकाशित की हुई नीति बदल भी नहीं सकती और हम लोगों को इस बात की आशा करने का अधिकार है कि सरकार इस विचार को एक पवित्र इच्छा के रूप में रहने देने के बदले उस सुधार को कार्य्य रूप में परिणित करने के लिए पूरा पूरा प्रयत्न करेगी।

इंगलैण्ड में इस प्रश्न की भली भाँति मीमांसा हो चुकी है और यूरोप के अन्य देशों में भी मातृ-भाषा में शिक्षा देने की प्रथा से बहुत अच्छी सफलता हो चुकी है। केवल हम भारतवासी ही इस विषय में पिछड़े हुए हैं। इस प्रस्ताव में काउन्सिल से जिस प्रथा की सिफारिश की गई है उससे देश को बहुत बड़ा और स्थायी लाभ होगा।

इस प्रस्तावित सुधार के सम्बन्ध में जो आपत्तियाँ की जाती हैं वे इस प्रकार हैंः—

(१) इस नई प्रथा से विद्यार्थी का अंगरेजी का ज्ञान कम हो जायगा।

(२) इसके लिए उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें नहीं मिलतीं।

(३) देशी भाषाओं में पारिभाषिक शब्द नहीं गढ़े जा सकते और इसलिए उनके द्वारा भूगोल, गणित और विज्ञान आदि की शिक्षा देना कठिन होगा।

(४) भाषा से भिन्न विषयों की देशी भाषा में शिक्षा देने के लिए योग्य शिक्षक नहीं मिलते।

(५) प्रत्येक प्रान्त में अनेक देशी भाषाएं होने के कारण देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा देने का प्रबन्ध करना यदि असम्भव नहीं तो कम से कम अत्यन्त कठिन अवश्य होगा; और इस कार्य्य के लिए अधिक शिक्षकों की आवश्यकता पड़ने के कारण व्यय भी बहुत बढ़ जायगा।

(६) इस प्रस्तावित सुधार से भारतवासियों के एकीकरण में बाधा पहुँचेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक अँगरेजी अनिवार्य्य रहेगी तब तक उसके ज्ञान के कम होने की कोई आशंका नहीं है। इस नई प्रथा में बालकों की शक्ति अँगरेजी को भाषा के रूप में सीखने में लगेगी। भाषा से भिन्न विषय उन्हें मातृभाषा में सिखलाए जायँगे और विद्यार्थी बहुत जल्दी, अधिक समय लगा कर और तिस पर भी चुने हुए शिक्षकों द्वारा अँगरेजी का ज्ञान प्राप्त करेगा। भाषा से भिन्न विषय सिखलानेवाले शिक्षकों की कृपा से बच कर वह अँगरेजी के अशुद्ध और भद्दे उच्चारण और मुहावरे भी न सीखेगा। दूसरी आपत्ति उपयुक्त पुस्तकों के अभाव के सम्बन्ध में है। अधिकांश देशी भाषाओं में माध्यमिक पाठ्य-क्रम के विषयों पर उपयुक्त पुस्तकें मौजूद हैं। यदि अधिक पुस्तकों की आवश्यकता होगी तो वह भी शीघ्र ही तैयार हो जायँगी। विस्तार की अधिक सम्भावना होने पर शीघ्र ही अच्छे अच्छे अनुवादित और मूल ग्रन्थ तैयार हो जायँगे। देशी भाषाओं में शब्द-गठन-शक्ति के अभाव के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि बहुत सी सार्वजनिक संस्थाओं ने आवश्यक वैज्ञानिक शब्दों की सूची तैयार करने का कार्य्य आरम्भ कर दिया है। समय पा कर अँगरेजी शब्दों के अपभ्रंश या शुद्ध रूप भी स्वभावतः व्यवहृत होने लगेंगे। इसके बाद शिक्षकों के अभाववाली आपत्ति है। यह आपत्ति वास्तविक की अपेक्षा कल्पित ही अधिक है। अँगरेजी भाषा में भाषा से भिन्न विषयों की शिक्षा देनेवाले अधिकांश शिक्षक इस समय भारतवासी ही हैं। वे अपनी मातृ-भाषाएं जानते हैं और यदि वे सिखलाए जानेवाले विषयों के ज्ञाता हों तो अवश्य ही उन विषयों को देशी भाषा में सिखला सकते हैं। अब भिन्न भिन्न भाषाएं बोलनेवाले विद्यार्थियों को उनकी मातृ-भाषा में शिक्षा देने के प्रबन्ध में होनेवाले अधिक व्यय की आपत्ति को लीजिए। यह कठिनता बहुत ही थोड़े स्थानों में होगी। ऐसे स्थानों में साधारणतः विभागों की संख्या बहुत होती है और उनमें अन्तर्विभाग किए जाते हैं। यदि अन्तर्विभागों को भाषा के विभागों से हटा दिया जाय तो बहुत सी कठिनता दूर हो जायगी। यह कहना कि इस प्रणाली से भारतवासियों के एकीकरण में बाधा पहुँचेगी एक दम निरर्थक है। कभी कभी लोग कहते हैं कि केवल भिन्न भिन्न भाषाओं के कारण ही भारतवासियों की एक जाति न हो सकेगी। पर मुझे इस सम्मति की उपयुक्तता में बहुत सन्देह है। यदि हम लोगों का जाति-भेद नष्ट हो जाय तो भाषाओं का भेद आप ही आप नष्ट हो जायगा।

हम लोग केवल शब्दों में ही नहीं बल्कि विचार और कार्य्य रूप में शिक्षा चाहते हैं।

इतना कह कर मैं काउन्सिल के सामने यह प्रस्ताव स्वीकृति के लिए उपस्थित करता हूँ।"

मि० रायनिंगर का भाषण समाप्त होने पर कोटला के आन० राजा कुशलपालसिंह उक्त प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए खड़े हुए। आपने पहले उक्त प्रस्ताव की उपयोगिता और उसके पक्ष में कही हुई मि० रायनिंगर की बातों की सत्यता का समर्थन किया और कहा कि छोटे दरजों में बालक प्रायः इतिहास, भूगोल आदि विषयों में इसी लिए अनुत्तीर्ण हो जाते हैं कि उन्हें देशी भाषाओं में शिक्षा नहीं दी जाती। आपकी योग्य सम्मति में देशी भाषाओं में शिक्षा का प्रबन्ध हो जाने से उन भाषाओं के साहित्य और भांडार की बहुत बड़ी वृद्धि होने के अतिरिक्त शिक्षा के व्यय में भी बहुत कुछ बचत होने की सम्भावना थी क्योंकि केवल देशी भाषाओं में शिक्षा देने के योग्य व्यक्ति थोड़े वेतन पर ही मिल सकते हैं।

"सभी प्रान्तों में एंग्लो-वर्नाक्युलर स्कूलों के छोटे दरजों में सब विषय देशी भाषाओं में ही सिखलाए जाते हैं। पंजाब विश्वविद्यालय में ललित-कला, विज्ञान और प्राचीन साहित्य (संस्कृत, फ़ारसी, अरबी आदि) की अलग अलग मैट्रिक परीक्षाओं का प्रबन्ध है। बम्बई की स्कूल फाइनल परीक्षा में सम्मिलित होनेवाले विद्यार्थी इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भूगोल आदि के प्रश्नों के उत्तर देशी भाषाओं में दे सकते हैं। और संयुक्त-प्रान्त की सरकार तो आन० प्रस्तावक की बतलाई हुई प्रणाली का अपने यहाँ आप ही प्रचार कर रही है।"

उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों का अभाव आपने भी स्वीकार किया और कहा कि यह कठिनता बहुत शीघ्र दूर हो जायगी। शम्स-उल्-उलमा मौलवी जकाउल्ला और रायबहादुर पं० लक्ष्मीशङ्कर मिश्र ने बहुत सी उपयुक्त पुस्तकों के उर्दू और हिन्दी अनुवाद कर ही दिए हैं और शीघ्र ही अन्य पुस्तकें भी तैयार हो जायँगी। उक्त प्रस्ताव को बहुत लाभदायक बतलाते हुए आपने उसका हृदय से समर्थन किया।

इसके उपरान्त आन० मि० दादाभाई इस प्रस्ताव का बहुत जोरों से विरोध करने के लिए खड़े हुए। आपने आरम्भ में ही इस प्रस्ताव को देश के लिए बहुत हानिकारक बतलाया और कहा कि वर्त्तमान कठिन समय में जब कि देश में युद्ध के कारण होनेवाली कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं सरकार के सामने शिक्षा-नीति सम्बन्धी एक और विवादास्पद विषय उपस्थित करना बुद्धिमत्ता नहीं है। आपने अपने कथन की पुष्टि के लिए यहाँ तक कह डाला कि इस प्रस्ताव के कारण सर्वसाधारण में इतना भयंकर विरोध फैल जायगा जिसके अन्त का अनुमान ही नहीं हो सकता!

आपकी समझ में यह प्रस्ताव खाली बेमौके ही नहीं बल्कि बहुत तरह से नुकसान पहुँचानेवाला भी था। अँगरेजी शासन का भारतवासियों को सब प्रकार से उन्नत और सभ्य बनाने का जो उद्देश्य है उसके लिए आपकी समझ में यह प्रस्ताव बड़ा ही घातक था। आपकी सम्मति में भारत ने अब तक जो उन्नति की थी वह सब अँगरेजी शिक्षा की कृपा से ही; और अब यह समझना कि भावी उन्नति देशी-भाषाओं द्वारा होगी, ठीक नहीं है। संस्कृत कालिजों और अरबी तथा फ़ारसी के सरकारी मदरसों के पास किए हुए छात्र अँगरेजी कालिजों के ग्रेजुएटों का कभी मुकाबला नहीं कर सकते; अतः देशी-भाषाओं की शिक्षा का प्रयत्न करना हानिकारक है।

अँगरेजी भाषा द्वारा अब तक देश में विचारों आदि की जो जागृति हुई है उसका वर्णन करते हुए आपने कहा कि उससे देशी-भाषाओं का भी थोड़ा बहुत उपकार ही हुआ है और कुछ प्रान्तों में वे इतनी पूर्णता को प्राप्त हुई हैं कि विदेश में भी उनका आदर होने लगा है। बँगाल के कई बड़े बड़े कवियों, लेखकों और नाटककारों आदि का नाम लेकर आपने कहा कि ये सब अँगरेजी के बड़े भारी विद्वान् थे; मराठी, हिन्दी, गुजराती, उर्दू और तैलंगी आदि भाषाएं भी अपने वर्त्तमान स्वरूप के लिए अँगरेजी की ही बहुत कुछ ऋणी हैं, आदि आदि।

प्रस्तावक महाशय के इस कथन के खण्डन में, कि अँगरेजी शिक्षा लोगों के विचारों आदि को उन्नत बनाने में असमर्थ प्रमाणित हुई है, आपने अनेक बड़े बड़े भारतीय वक्ताओं, राजनीतिज्ञों, कवियों और आविष्कर्त्ताओं के नाम लिए और उन सबकी योग्यता को एक मात्र अँगरेजी शिक्षा का ही प्रसाद बतलाया। यूरोपीय देशों और जापान आदि की स्थिति को भारत की स्थिति से एक दम भिन्न बतलाते हुए आपने कहा कि जापान, जर्मनी या फ्रांस आदि में केवल परस्पर बातचीत करने के लिए ही अँगरेजी भाषा की आवश्यकता पड़ती है; पर भारत में उसकी आवश्यकता राजकीय और शासनक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए भी होती है। यदि भारतवासी इस देश के शासन में पूरा पूरा अधिकार चाहते हों तो उन्हें अँगरेजी की बहुत अच्छी योग्यता सम्पादित करनी चाहिए। अपने कथन की पुष्टि के लिए आगे चल कर आपने दो एक अँगरेज विद्वानों के मत उपस्थित किए और तब आरम्भ से देशी भाषाओं में शिक्षा पाए हुए बालकों की उस कठिनता का वर्णन किया जो उन्हें मैट्रिकुलेशन और इंट्रेन्स की परीक्षा देने में पड़ सकती है। आपके सारे लम्बे चौड़े व्याख्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का, जो आगे चल कर आन० उपसभापति महाशय द्वारा रोक दिया गया था, सारांश यही था कि यदि मि० रायनिंगर के प्रस्ताव के अनुसार कार्य्य होने लगेगा तो उसका सबसे बुरा और शोचनीय परिणाम यह होगा कि भारत में उच्च शिक्षा की उन्नति एक दम रुक जायगी!

इसके बाद उक्त प्रस्ताव का विरोध और मि० दादाभाई के मत का समर्थन करने के लिए आन० मि० गजनवी खड़े हुए। आपने सब से पहले तो यही कहा कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि यदि देशी भाषाओं में शिक्षा दी जाने लगी तो उन भाषाओं की उन्नति और वृद्धि हो जायगी। आपने यह बात भी स्वीकार की कि भारत के कई प्रान्तों में इस समय भी यह प्रस्ताव कई अंशों में स्वतः कार्य्य-रूप में परिणत हो चुका है और कई कक्षाओं तक वास्तव में देशी भाषाओं में ही शिक्षा दी जाती है; पर आपने यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी कि उक्त प्रचलित प्रथा से लाभ हो रहा है या हानि। केवल बंगाल के विषय में आपने इतना अवश्य कहा कि वहाँ कुछ लोगों में इस सम्बन्ध में मतभेद है। आगे चल कर आपने जो कुछ कहा उससे यह भी प्रमाणित हो गया कि इस मतभेद का प्रधान कारण उर्दू और बँगला की प्रतिद्वन्द्विता है। आपकी सम्मति में यदि समस्त भारत की केवल एक ही भाषा होती तो कोई भारतवासी मि० रायनिंगर के प्रस्ताव का विरोध न करता। इससे यह सिद्ध होता है कि भारत के जिस प्रान्त में केवल एक ही भाषा हो वहाँ देशी भाषा में शिक्षा देने के प्रस्ताव का विरोध नहीं हो सकता।

आन० मि० बैनर्जी ने कहा कि यदि यह प्रस्ताव कुछ और कम व्यापक होता तो मैं उसका समर्थन करता। भारतीय आधुनिक विचारों और साहित्यों को आपने भी प्रायः अँगरेजी का ही ऋणी बतलाया और प्रस्ताव के विपक्ष और पक्ष दोनों में कुछ कुछ कहते हुए उक्त प्रस्ताव को इस प्रकार संशोधित रूप में उपस्थित कराना चाहा,—"यह काउन्सिल गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल से सिफारिश करती है कि वह प्रान्तीय सरकारों में पूछे कि क्या देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना और माध्यमिक स्कूलों में भारतीय विद्यार्थियों के लिए अँगरेजी को दूसरी अनिवार्य भाषा बनाना सम्भव है और यदि सम्भव है तो किस अंश तक।"

आन० राजा सर मुहम्मद अली खाँ ने प्रस्ताव और उसके संशोधित रूप दोनों का विरोध किया क्योंकि आपकी सम्मति में भी इस प्रस्ताव को कार्य्य रूप में लाना उच्च शिक्षा की उन्नति का बहुत बड़ा बाधक था। आन० मि० दास इस प्रस्ताव का विरोध करने में और लोगों से एक कदम आगे बढ़ गए क्योंकि आपकी समझ में देशी लिपियों में विदेशी शब्द शुद्धतापूर्वक लिखे ही नहीं जा सकते थे! बहुत सम्भव है कि आपकी इस धारणा का मुख्य कारण आपकी मातृभाषा बँगला की भद्दी और बेढंगी लेखन और उच्चारण-प्रणाली ही हो। मि० रायनिङ्गर के प्रस्ताव की हँसी उड़ाते हुए आपने उस भिखमँगे का दृष्टान्त दिया था जिसने किसी अमीर को चाँदी के कटोरे में फूँक फूँक कर गरम दूध पीते हुए देखा था और उसके इसी कार्य्य को आनन्द की चरम सीमा समझ कर अपने घर जा कर उसी तरह फूँक फूँक कर कटोरे में गरम दूध पीना चाहा था। पर उस भिखमँगे के पास फूँकने के लिए मुँह ही था, दूध पीने के लिए कटोरा नहीं। यदि वह भिखमँगा उसी अमीर के कटोरे में से फूँक फूँक कर दूध पी लेता तो कदाचित् मि० दास की सम्मति में उसका यह कार्य्य बहुत ही युक्तियुक्त और बुद्धिमता-पूर्ण होता; क्योंकि आपके कथन से यह बात प्रमाणित होती है कि आप इस बात के जरा भी पक्षपाती नहीं हैं कि वह बेचारा भिखमँगा यदि तत्काल ही चाँदी या पीतल का कटोरा न पा सके तो कम से कम अपने मिट्टी के कसोरे में ही दूध पी ले!

आन० सर फजलभाई करीमभाई ने कहा कि मैं एक ऐसे प्रान्त का प्रतिनिधि हूँ जो अँगरेजी शिक्षा के लिए सब प्रान्तों से बढ़ा चढ़ा है। मैं इस प्रस्ताव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विरोध करता हूँ क्योंकि बम्बई प्रान्त के लोग वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं चाहते। मदरासवाले भी इसके बहुत कुछ विरोधी हैं। केवल पञ्जाब ही एक ऐसा प्रान्त है, जहाँ देशी भाषाओं को उचित से अधिक स्थान दिया गया है; यहाँ तक कि विश्वविद्यालय में भी उसका आवश्यकता से अधिक प्रवेश हो चुका है। इस सम्बन्ध में इंडियन युनिवर्सिटीज कमीशन का कथन है,—

"हम लोग अभी इस बात की सिफारिश करने के लिए तैयार नहीं हैं कि अन्य विश्वविद्यालय भी पञ्जाब विश्वविद्यालय के उदाहरण का अनुकरण करें। पञ्जाब की प्रणाली को हम लोग परीक्षा और अनुभव स्वरूप में मानते हैं और अभी उसके परिणामों से उसकी उपयुक्तता सिद्ध नहीं हुई है।" आपने यह भी स्वीकार किया कि पञ्जाब में उक्त प्रथा के पूर्ण रूप से सफलीभूत न होने का मुख्य कारण वहाँ के निवासियों की उदासीनता है; पर इसका कारण आपकी समझ में यह था कि यह प्रथा वहाँवालों में सर्वप्रिय नहीं हुई। मि० रायनिङ्गर ने अँगरेजी भाषा द्वारा शिक्षा देने की जो जो हानियाँ बतलाई थीं उनमें से कुछ का आपने थोड़ा बहुत खण्डन भी किया। आपने यह भी कहा कि भारत में अनगिनत देशी भाषाएँ होने के कारण प्रस्तावक महाशय का प्रस्ताव कार्य्य रूप में परिणत ही नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त जो विद्यार्थी देशी भाषाओं में शिक्षा पा कर स्कूलों से कालिजों में जायँगे वे अँगरेजी भाषा में बिना सब विषय फिर से पढ़े कालिजों की शिक्षा के योग्य ही न होंगे। आपके कथनानुसार भारतवासियों की सब प्रकार की एकता और उन्नति के लिए अँगरेजी भाषा और अँगरेजी साहित्य के अतिरिक्त दूसरा और कोई साधन हो ही नहीं सकता।

इतने विरोधों के उपरान्त आन० पं० मदनमोहन मालवीय प्रस्ताव के पक्ष में कुछ बोलने के लिए खड़े हुए। आपने भी आरम्भ में अँगरेजी साहित्य के उपकारों को स्वीकार किया और अनन्तर प्रस्ताव का विषय छेड़ा। आपने सन् १८५४ के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के कागज-पत्रों से दो एक अवतरण पढ़ सुनाए और उनसे यह सिद्ध किया कि उस समय की सरकार भी देशी भाषाओं की उपयोगिता और उनमें शिक्षा देने की आवश्यकता समझती थी; अँगरेजी को सदा के लिए शिक्षा-विभाग में प्रतिष्ठित कर देने का उसका कदापि विचार न था। आपने इस बात को स्वीकार किया कि अँगरेजी शिक्षा का फल बहुत अच्छा होता है; पर उसमें त्रुटि यह बतलाई कि उससे बहुत ही थोड़े लोग लाभ उठा सकते हैं। गत मनुष्य-गणना के अनुसार भारत के प्रत्येक ३०० मनुष्यों में से केवल एक मनुष्य अँगरेजी जाननेवाला था और इस संख्या में भी इस देश में रहनेवाले युरोपियन और युरेशियन सम्मिलित थे। देशी भाषाओं की उन्नति और समृद्धि का वर्णन करते हुए आपने कहा कि प्रत्येक प्रान्त के स्कूलों में उनका आदर दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है और अब प्रत्येक देशी भाषा के साहित्य में बहुत से उत्तम उत्तम ग्रन्थ हो गए हैं। अब प्रश्न केवल यही है कि भाषा से भिन्न विषयों की शिक्षा आधुनिक प्रणाली के अनुसार अँगरेजी में ही दी जाय अथवा देशी भाषाओं में। शिक्षा देने के लिए मातृभाषा से बढ़ कर उपयुक्त और कोई भाषा हो ही नहीं सकती और न इस विषय में किसी प्रकार का मतभेद ही हो सकता है। संसार के किसी भाग में विदेशी भाषा में शिक्षा नहीं दी जाती। केवल भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ विदेशी भाषा में शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार का प्रबन्ध प्रकृति-विरुद्ध है और किसी देश को उससे शिक्षा-सम्बन्धी यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता। × × × × × जिन देशी भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद अँगरेजी और फ्रान्सीसी भाषाओं में हो जायँ, उन्हें शिक्षा के काम के लिए अयोग्य और अनुपयुक्त नहीं कह सकते। आप कह सकते हैं—"तुम्हारा सिद्धान्त तो हम मानते हैं, पर तुम्हारी भाषाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी इस योग्य नहीं हैं कि उनके द्वारा शिक्षा दी जा सके।" पर जब तक हम लोग उन्हें उस योग्य बनाने का दृढ़ संकल्प न कर लें तब तक वे वैसी योग्य हो ही नहीं सकतीं। इतनी विशाल अँगरेजी भाषा भी किसी समय इँगलैण्ड में बालकों को शिक्षा देने के अयोग्य ग्रैार अनुपयुक्त समझी जाती थी। "इसके उपरान्त आपने अँगरेजी भाषा की प्रारम्भिक दुरवस्था के दो एक प्रमाण ग्रैार अवतरण दिए। अन्त में आपने हिन्दी, उर्दू, बँगला, मराठी, गुजराती, तामील ग्रैार तैलगू भाषाओं को शिक्षा आदि के कामों के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त बतलाया। इस बीच में आपके बोलने का समय पूरा हो गया था अतः आपने कुछ मिनटों के लिए ग्रैार आज्ञा माँग कर दो एक आपत्तियों का उत्तर दिया। अन्त में आपने प्रस्ताव को निम्नलिखित परिवर्त्तित रूप में उपस्थित किए जाने की सम्मति दी,—

"यह काउन्सिल गवर्नर-जनरल-इन-काउन्सिल से सिफारिश करती है कि वह इस बात की जाँच के लिए एक कमेटी नियुक्त करें कि क्या माध्यमिक स्कूलों में देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने ग्रैार भारतीय विद्यार्थियों के लिए अँगरेजी की शिक्षा दूसरी भाषा की भाँति अनिवार्य्य बनाने का समय आ गया है?"

इसके उपरान्त आन० मि० हुदा ग्रैार आन० सर रहमत-उल्ला ने दबी जबान से इस प्रस्ताव का विरोध किया ग्रैार अँगरेजी भाषा की शिक्षा ग्रैार प्रचार की आवश्यकता पर ही अधिक जोर दिया। आन० राय सीतानाथ बहादुर ने जोरों से प्रस्ताव का विरोध किया। आन० सर हारकर्ट बटलर ने खड़े हो कर कह दिया कि अँगरेजी भाषा को इस देश में अपने पद वा स्थान से च्युत करने का जो प्रयत्न किया जायगा उसे न तो सरकार ग्रैार न यह काउन्सिल पसन्द करेगी। इसके अतिरिक्त आप ने लोगों के दो एक भ्रम बतलाए ग्रैार कहा कि इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि माध्यमिक स्कूलों के दशमांश विद्यार्थी ही युनिवर्सिटी में जाते हैं। जिसका तात्पर्य्य यह था कि विद्यार्थियों के युनिवर्सिटी में जा कर अँगरेजी में कमजोर रह जाने की आपत्ति उतने महत्त्व की नहीं है जितना इस प्रस्ताव के विरोधी उस पर जोर देते हैं। आपने अनुभव से ग्रैार बड़े बड़े अधिकारियों की सम्मति के आधार पर यह भी कह दिया कि इस देश में भी देशी भाषाओं में शिक्षा देने का फल उत्तमतर ही हुआ है। आपने इस सम्बन्ध में लोकमत का आदर करने की भी आवश्यकता बतलाई। अन्त में आपने कहा कि सरकार का मुख्य उद्देश्य केवल शिक्षा की वृद्धि ग्रैार उन्नति करना है; ग्रैार यदि यह प्रस्ताव युद्ध की समाप्ति तक दबा रहने दिया जाय तो अधिक उत्तम होगा। अतः मि० रायनिंगर ने इस विश्वास पर कि युद्ध की समाप्ति पर भारतीय सरकार इस प्रश्न पर प्रान्तीय सरकारों से सम्मति माँगेगी ग्रैार उसपर पुनः विचार करेगी, अपना प्रस्ताव लैाटा लिया।

—:o:—

चीन का इतिहास।

(गतांक से आगे।)

आधुनिक चीन।

सन् १८३४ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का चार्टर समाप्त हो गया तो चीन में अंगरेजों के हितों की रक्षा के लिए उनके प्रतिनिधि स्वरूप लार्ड नेपियर वहाँ नियुक्त हुए। पर बाधा डालनेवालों ने वह नियुक्ति भी स्वीकार नहीं की; यहाँ तक कि बिना हाँग व्यापारियों की आज्ञा के वे लार्ड महोदय को कैन्टन में प्रवेश तक न करने देते थे। अंगरेजी व्यापार के मार्ग में बहुत अधिक रुकावटें खड़ी हो गईं। लार्ड नेपियर की नियुक्ति तो हुई थी व्यापार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की वृद्धि के प्रयत्न के लिए, पर परिणाम उसका उलटा ही हुआ। उनकी मृत्यु के उपरान्त कप्तान ईलियट उनके स्थान पर नियुक्त हुए; पर उनके समय में भी किसी प्रकार का लाभ नहीं हुआ। स्थिति की जटिलताएँ बढ़ाने के लिए वहाँवालों ने नाराज हो कर यह भी कहना शुरू कर दिया कि अंगरेज व्यापारी जबरदस्ती चीनियों में अफीम का प्रचार करते और नैतिक दृष्टि से उन्हें हानि पहुँचाते हैं। झगड़ा ते करने के लिए चीनी कमिश्नर लिन नियुक्त हुए थे; उन्होंने ऐसी बड़ी बड़ी युक्तियाँ लड़ाईं जिनसे जान पड़ता था कि वह झगड़ा शान्त करना ही न चाहते थे। वह चीन देश में अपराध करनेवाले अंगरेजों को दण्ड देने का अधिकार चाहते थे; और एक बार जब बलवे के अभियुक्त कुछ अंगरेज उनके सपुर्द नहीं किए गए तो वह बहुत लाल पीले हुए थे। अन्तिम और अनिवार्य्य उपाय का समय दूर नहीं था। ३ नवम्बर सन् १८३९ को चुआनपी में जल-युद्ध हुआ जिसमें बहुत सी चीनी बड़ी नावें डूब गईं। धीरे धीरे चीनियों ने समझ लिया कि देवता लोग लड़ाई के बड़े बड़े जहाजों और व्यवस्थित सेना पर ही प्रसन्न हैं; और जब जल्दी जल्दी एमाय, टिंघाई, चिन्हाई और निंगपो उनके हाथों से निकल गए तो सम्राट् ने सन्धि के लिए कमिश्नर भेजे। सन्धि के निश्चयों के अनुसार एमाय, फूचो, निंगपो और शंघाई में व्यापार करने की मनाही न रह गई और अंगरेजों को हांगकांग के सिवा युद्ध की क्षति-पूर्त्ति के स्वरूप दो करोड़ दस लाख डालर भी मिले।

युद्ध के अन्त में बल का ह्रास हो जाने के कारण चीनी समाज का उद्दण्ड और असन्तुष्ट अंग और भी उत्तेजित और उत्साहित हो उठा। ट्रायड (Triad) और ह्वाइट लिली (White Lily) सरीखी गुप्त सभाओं ने शासक वंश के विरुद्ध दुष्ट आन्दोलन फैलाना आरम्भ किया पर शीघ्र ही भली भाँति उनका दमन कर दिया गया। कैन्टनवाले भी बराबर अंगरेजों को दिक करते रहे; पर सर जान डेविस की मजबूत कार्रवाइयों ने उनकी अक्ल ठिकाने कर दी। शंघाई में मि० एलकाक को भी ऐसी ही सफलता हुई। दूसरे अंगरेजी युद्ध का कारण यह था कि अंगरेजों की एरो (Arrow) नामक नाव पर कुछ मन्दारिनों ने आक्रमण कर के अधिकार कर लिया था। उसपर के माझियों को चीनी पकड़ ले गए थे और उसका अंगरेजी झण्डा तोड़ कर गिरा दिया गया था। जब माझियों को लौटाने के लिए कहा गया और उसपर किसी ने कुछ ध्यान न दिया तो अंगरेजों ने भी उसका बदला चुका लिया। इस पर चीनी गवरनर ने एक घोषणा द्वारा चीनियों से असभ्यों को देश-बाहर कर देने के लिए कहा और इसके उत्तर में अंगरेजों ने युद्ध की घोषणा कर दी। फैट्शन के निकट एक जल-युद्ध हुआ जिसमें कुछ चीनी नावें पकड़ ली गईं और कुछ जला दी गईं; और अन्त में जब कैन्टन पर अंगरेजों ने अधिकार कर लिया तो युद्ध की समाप्ति हो गई। इतने पर भी पेकिंग के दरबार से कुछ सन्तोषजनक निश्चय नहीं हुआ और अंगरेजों को टाकू के किलों पर अधिकार करने और राजधानी के आस पास के प्रान्त में बढ़ने की आवश्यकता पड़ी। टीँटसिन की सन्धि से युद्ध की शान्ति हो गई और कियंगचौ, न्यूचांग, टंगची, फारमोसा और स्याटौ के बन्दरों में अंगरेजों को व्यापार करने का अधिकार मिला, अफीम का व्यापार कानून से जायज़ माना गया और चीनियों ने युरोपियन जातियों का सभ्य होना स्वीकार किया। इन शर्तों पर चीनियों ने अनिच्छा-पूर्वक सन्धि की थी; और जब अंगरेजों ने इस बात पर जोर दिया कि यह सन्धि सम्राट् से नियमानुसार सकरवा ली जाय तो चीनियों की वह अनिच्छा स्पष्ट हो गई। पीयहो नदी के मुहाने पर अंगरेजी राजदूत के साथ जो जहाज गए थे उनपर चीनियों ने अचानक गोलेबारी आरम्भ कर दी। उस समय फ्रान्स की भी वही दशा थी जो इंगलैण्ड की थी। फ्रान्स के साथ की हुई एक सन्धि को सकारने से इन्कार किया गया था। इसलिए इंग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लैण्ड और फ्रान्स ने मिल कर "मध्य राज्य" पर आक्रमण करना निश्चय किया। टाकू के किलों पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया गया और दोनों शक्तियों की सेनाएं तुगंचौ तक बढ़ गईं। वहाँ पर कुछ अंगरेज जिनमें पारकर और लाच भी सम्मिलित थे, कैद कर लिए गए। इस पर मित्र-शक्तियों ने चैंगचियावान पर बहुत बड़ा धावा किया और शत्रु को परास्त करके राजनगर की ओर बढ़ना आरम्भ किया। सम्राट् ने जब सुना कि "जंगलियों की सेना" राजनगर के निकट आ गई है तो वह पेकिंग छोड़ कर जेहोल नामक स्थान में चला गया। मित्र दल ने सम्राट् के प्रिय राजमहल युआन मिंग-युआन पर अधिकार कर लिया, ग्रीष्मनिवास में आग लगा दी और नगर के उत्तरी फाटकवालों ने आत्म समर्पण कर दिया। राजकुमार कुंग ने देखा कि अब और अधिक लड़ना व्यर्थ है इसलिए उसने प्रयत्न करा के दोनों शक्तियों की बातें स्वीकार करा दीं। इस आपत्तिकाल में सेनफेंग वहाँ का सम्राट् था। वह पूर्व सम्राट् का चौथा लड़का था और राजपद के लिए वही चुना गया था। उसका दूसरा भाई प्रिन्स कुंग परराष्ट्र विभाग का प्रधान था। सन् १८६१ में सेनफेंग की मृत्यु के उपरान्त उसका लड़का राज्य का उत्तराधिकारी हुआ; उसने अपना नाम तुनशीः रक्खा। राजकुमार कुंग ने बड़ी कठिनता से विदेशियों का विरोध करनेवालों को शान्त किया और तत्कालीन तथा भूतपूर्व दोनों सम्राटों की माताओं को नए सम्राट् की रीजेन्ट बना कर उन्हें सम्राट् की ओर से शासन करने का अधिकार दिलाया।

इस अवसर पर तैपिंगवाले विद्रोह का वर्णन करना आवश्यक है जिससे साम्राज्य की शक्ति को कुछ धक्का पहुँचा था। इस विद्रोह की शान्ति में यदि विदेशी—जिन्हें चीनी घृणा की दृष्टि से देखते और जंगली बतलाते थे—सहायता न देते तो बड़ी भारी क्रान्ति हो जाती और शासक राजकुल में परिवर्त्तन हो जाता। सन् १८५० के आरम्भ में, जब सीनफेंग राज्यासन पर बैठा था, पूर्व-कथित गुप्त सभाओं ने चीन में बहुत कुछ विद्रोह-पूर्ण विचार फैला रक्खे थे; उन्हीं सभाओं के कर्मचारियों के कारण कई बार दंगे भी हुए थे जिनके शान्त करने में सरकारी सेनाओं को केवल कभी कभी सफलता होती थी। जब हंग नामक व्यक्ति उस आंदोलन का अगुआ हुआ तो उसने एक नया और विकट स्वरूप धारण किया। वह एक ईसाई पादरी के फेर में पड़ गया था और उसने एक ऐसा पंथ निकाला था जिसमें अनेक क्रान्तिकारक शिक्षाएँ और उपदेश थे। क्वांगटंग और क्वांगसी में उसने अच्छी तरह इस नए पंथ का प्रचार कर दिया था और बहुत से अनुयायी खड़े कर लिए थे। सन् १८५३ के आरम्भ में उसने नानकिंग पर अधिकार कर लिया। उसका विश्वास था कि तैपिंग (चीनी भाषा में इस शब्द का अर्थ है—शान्ति) राजकुल-प्रतिष्ठित करने के लिए ही मैं इस संसार में अवतीर्ण हुआ हूँ और इसी लिए उसने उक्त नगर को अपनी राजधानी बनाने की घोषणा कर दी। एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक बढ़ते बढ़ते इस आंदोलन का यथेष्ट प्रसार हुआ; यहाँ तक कि अनहुई, होनन, शैनृंग और दक्षिणी चिहली आदि तैपिंग अनुयायियों से भर गए। अब ली-हुंग-चंग ने देशसेवा सम्बन्धी अपने उन प्रयत्नों की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित कराया जो उसने विद्रोहपूर्ण आन्दोलनों को रोकने के लिए किए थे। उसके इन प्रयत्नों को चीनी सेनापति सेंग को फान ने बहुत सराहा और ली तथा उसके अनुयायियों को अपनी अधीनता में भरती कर लिया। ली अपने आपको सेंग की दृष्टि में बराबर योग्यतर प्रमाणित करता और एक से एक ऊँचा पद पाता रहा। अँगरेजों और फ्रान्सीसियों के साथ झगड़े छिड़े रहने के कारण चीनी सरकार इस आंदोलन के दबाने में अपनी सारी शक्तियाँ न लगा सकती थी। उपद्रव बराबर बढ़ता और विकट रूप धारण करता गया। हंग के स्वामिनिष्ठ लेफ्टिनेन्ट चंगवांग के उत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरीक्षण से उसमें और भी सहायता मिलती थी। अँगरेज़ों के साथ युद्ध छिड़ने से ली ने समझ लिया था कि चीन की सामरिक प्रणालियों की अपेक्षा विदेशी सामरिक प्रणालियाँ बहुत उत्तम हैं और इसी लिए उसने चीन में शासन की उचित व्यवस्था करने के लिए विदेशियों से सहायता माँगी। प्रसिद्ध अमेरिकन सेनापति वार्ड, जिसने अपनी सेना का नाम "सदा विजयिनी सेना" रक्खा था, और उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी मेजर गार्डन से चीनियों का नेतृत्व करने के लिए कहा गया और कुनशान और सचाउ में कई कड़ी लड़ाइयाँ होने के बाद विद्रोहियों का दमन हुआ। तैपिंग विद्रोह के शान्त होने पर चीन में नीनकी और मुसलमान विद्रोहियों ने उपद्रव आरम्भ किया; पर उनके दमन के लिए चीनी सरकार को अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ा और वे लोग अपने नेताओं के पारस्परिक वैमनस्य और मत-भेद के कारण ही ठण्ढे पड़ गए। यह सब उपद्रव प्रान्तिक थे और उनके कारण पेकिंग की प्रधान सरकार के कार्य्य में किसी प्रकार की बाधा न पड़ी थी।

तुंगचीह के शासन-काल की मुख्य मुख्य घटनाओं में से अब केवल तीन घटनाओं का वर्णन ही बाकी रह गया है। एक तो टोंटसिनवाली जन-हत्या, दूसरे चीनी सम्राट् के सामने विदेशियों के उपस्थित होने का प्रश्न और तीसरे फारमोसावाली दुर्घटना। टोंटसिनवाली जन-हत्या का कारण यह था कि अज्ञानता के कारण वहाँ के लोग पादरियों से बहुत नाराज़ हो गए थे। ईसाइयों के सम्बन्ध में चीनियों के विचार वैसे ही थे जैसे किसी समय में उनके सम्बन्ध में रोमनों के विचार थे। चीनियों का विश्वास था कि युरोपियन लोग मरे हुए बालकों की आँखें और कलेजे ओषधि के काम में लाते हैं; और जब बराबर बहुत से लोग मरे तो उनका वह मूर्खता-पूर्ण विश्वास और भी दृढ़ हो गया।*

अनाथालय की स्त्रियों पर आक्रमण किया गया और उनकी तथा फ्रान्सीसी राज-दूत की हत्या हुई। चीनी अफसरों ने अपराधियों और हत्याकारियों को उचित दण्ड देने के लिए यथेष्ट प्रयत्न

*अमेरिकन संयुक्त राज्यों के मंत्री के एक खरीते के इस अवतरण से यह बात प्रमाणित हो जायगी कि यह विश्वास सर्वथा निर्मूल नहीं था:—"चीन में जहां जहां विदेशियों को रहने की आज्ञा है, उनमें से अनेक स्थानों पर दान-कार्य्य करनेवाली भगिनियों (Sisters of Charity) ने संस्थाएँ स्थापित की थीं, जिनमें अनाथालय और अनाथों के लिए चिकित्सालय सम्मिलित थे। जब उन लोगों ने यह देखा कि चीनी अपने बालकों को उनकी अधीनता में नहीं रखना चाहते तो उन संस्थाओं के प्रबन्धकों ने यह निश्चय किया कि जो बालक या अनाथ हमारी संस्थाओं में लाए जायंगे उनमें से प्रत्येक के लिए कुछ निश्चित धन दिया जायगा। उन लोगों ने यह समझा था कि इस प्रकार जो बालक हमारे हाथ लगेंगे उनके माता-पिता या अभिभावकों को उन्हें लौटा लेने का कोई अधिकार न रह जायगा। चीनियों और यहां रहनेवाले कैथोलिक से इतर विदेशियों ने समझ और विश्वास कर लिया कि इस प्रकार धन देने की प्रथा से लोगों को इनाम के लालच से लड़के चुराने की उत्तेजना मिलती है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी पता लगा था कि "भगिनियां" और पादरी आए हुए बीमार बालकों को उनके अन्त समय में बपतिस्मा दिया करते थे। इस प्रकार बहुत से बीमार बालक अपने अंतिम समय में उन संस्थाओं में पहुँचे, वहां उनका बपतिस्मा हुआ और वे तुरन्त ही वहां से मृत हो कर निकले। इन सब कारणों तथा संस्थाओं की कार्रवाइयां, नियम तथा कार्य्य-प्रणालियां आदि गुप्त रहने के कारण चीनियों के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ और इन्हीं सन्देहों के कारण वहांवालों में भगिनियों के प्रति बहुत अधिक घृणा उत्पन्न हो गई है"—बौल्ज कृत चीन का इतिहास, तीसरा खण्ड, पृष्ठ ६६४-५ (१८८४ वाला संस्करण)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया। घटना-स्थल पर ली-हुंग-चंग भेजा गया। उसने वहाँ जा कर जाँच की और यद्यपि वहाँ के निवासी उन अपराधियों को वीर मान कर उनका सम्मान किया चाहते थे तथापि उसने उन अपराधियों को दण्ड दिया। फ्रान्स की भगिनियों की हत्या के बदले में चार लाख तापल (तापल = चांदी की एक तौल जो लगभग २॥ तोले की होती है।) दिए गए और एक विशेष राज-दूत इस दुर्घटना के लिए दुःख प्रकट करने के अभिप्राय से वहाँ भेजा गया। इससे कुछ ही पहले यैंगचौ में प्रोटेस्टेन्ट पादरियों के विरुद्ध भी एक ऐसी ही दुर्घटना हो गई थी और मि० मेडहर्स्ट के परिश्रम से उसका यथेष्ट प्रयत्न हो चुका था।

चीनियों और विदेशियों में झगड़े का दूसरा प्रश्न यह था कि चीन-सम्राट् के सामने विदेशी किस प्रकार उपस्थित किए जायँ। चीनी सिद्धान्त के अनुसार वहाँ का सम्राट् "स्वर्ग-पुत्र" माना और कहा जाता है और इसलिए वह संसार में "अद्वितीय" या "अनुपम" होता है। संसार के अन्य दूसरे सम्राट् या महाराज केवल उससे छोटे और उसके अधीन हो सकते हैं। इस दृष्टि से उन अधीन और करद-तुल्य राजाओं के प्रतिनिधियों को समस्त जगत् के प्रधान सम्राट् के सामने उपस्थित होने के समय उचित रूप से उसका अभिवादन करना चाहिए। शेखीबाज चीनियों का खुशामदवाला यह सिद्धान्त दूसरी शक्तियों को पसंद नहीं था और चीन के सम्बन्ध में विदेशी शक्तियों की गूढ़-नीति का इतिहास, अपने प्रतिनिधियों के लिए चीनी सम्राट् के बराबर पद पाने के लिए किए हुए प्रयत्नों का ही इतिहास है। टीटसिन की सन्धि में एक धारा इस आशय की भी है कि चीनी सम्राट के बराबर के पद के विदेशी सम्राटों के प्रतिनिधियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार होना चाहिए। जेहोल में चीनी सम्राट् का दरबार न होने के कारण और तुंगचीह के बहुत दिनों तक नाबालिग रहने के कारण सम्राट् के सामने उपस्थितिवाले इस प्रश्न ने जल्दी राजनीतिक रूप धारण न किया। जब तुंगचीह का दरबार पेकिंग में आ गया और उसने अपने स्वतंत्र होने की घोषणा कर के सम्राट् का पद प्राप्त किया तो युरोप के भिन्न भिन्न राज-दरबारों से आए हुए प्रतिनिधियों के सम्राज्ञों के साथ भेंट करने और उसके सामने उपस्थित होने का प्रश्न दबा न रह सका। चीनी राजनीतिज्ञों की अपटुता के कारण इस प्रश्न ने और भी जोर पकड़ा। उस समय विदेशी समान साम्राज्यों के राज-दूतों का स्वागत एक ऐसे स्थान पर होता था जो उनकी प्रतिष्ठा को देखते हुए शोभा न देता था; वहाँ नए वर्ष के आरम्भ में सम्राट् बैठ कर सीमा-प्रान्त की और बाहरी जातियों को दर्शन देते थे और कुश्तियाँ तथा इसी प्रकार के और तमाशे देखते थे। स्वागत की इस प्रथा के कारण विदेशी राजदूतों ने इस बात पर जोर दिया कि उन्हें स्वयं सम्राट् के सामने उपस्थित होने का अधिकार मिले। तो भी चीनियों ने युरोपीय राजदूतों को चीन सम्राट् का महत्त्व स्वयं अपने ही समान समझाने के प्रयत्न में किसी न किसी प्रकार सफलता प्राप्त कर ही ली।

फारमोसा द्वीप के पास एक बार एक जहाज़ डूब गया था और उसके जापानी मल्लाह द्वीप में चले गए थे। वहाँ के लोगों ने बड़ी निर्दयता से उन्हें मार डाला और इसी कारण फारमोसा-वाला झगड़ा खड़ा हो गया। चीनी न तो उस द्वीप के निवासियों को कोई दण्ड दे सकते थे और न जापानियों को किसी प्रकार का हरजाना ही देते थे। जब जापान ने अपना एक विशेष दूत और कुछ सेना भेजी तो चीनियों को फिर से अपनी स्थिति पर विचार करने की आवश्यकता हुई। सर थामस वेड की कृपा से यह झगड़ा बढ़ने नहीं पाया और जापानियों ने यह बात स्वीकार कर ली कि यदि हमें ५००००० तापल मिल जायँ तो हम अपनी सेना वापस बुला लेंगे। १२ जनवरी सन् १८७५ को चेचक से तुंगचीह का शरीरान्त हो गया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब से सम्राट् कांग्सू का, अनेक घटनाओं से पूर्ण, शासन आरम्भ हुआ।

सम्राट् कांग्स

कांग्सू पूर्व सम्राट् के सबसे छोटे चचा का शिशु पुत्र था। सियेनफेंग की विधवा महारानियों ने प्रिन्स कुंग के बड़े लड़के को राज्य का उत्तराधिकारी न बना कर कांग्सू को इसलिए अभिषिक्त किया था कि यदि कुंग का लड़का राज्यासन पर बैठ जाता तो उक्त विधवा महारानियाँ उसकी रीजेंट न बन सकती थीं। कांग्सू पूर्व सम्राट् के दत्तक होने के कारण नहीं बल्कि सियनफेंग का पुत्र होने के कारण राज्याधिकारी हुआ था। ऐसी दशा में विधवा महारानियों का माताओंवाला अधिकार बना रहा और उन्होंने समझ लिया कि अब हम लोग सुख से रीजेंट बन कर बहुत दिनों तक राज्य चलावेंगी। नियमानुसार उचित तो यह था कि पूर्व सम्राट् का एक व्यक्ति उत्तराधिकारी बनाया जाता और उस पूर्व सम्राट् की विधवा उसकी रीजेंट की भाँति कार्य्य करती। तुंगचीह का कोई दत्तक पुत्र बनाया जाना चाहिए था और उसकी विधवा को उस नए राज्याधिकारी की रीजेंट बनना चाहिए था। लेकिन तुंगचीह की वृद्धा माता सी एन और विमाता सी हसी बहुत दिनों तक अधिकार का आनन्द ले चुकी थीं और तुंगचीह की विधवा को अपना पुराना स्थान देना न चाहती थीं। उक्त नियम-भंग और नए राज्यप्रबन्ध का मुख्य कारण यही था।

कांग्सू के शासन-काल के आरम्भ में सब से पहले मि० मारगरी की हत्या का झगड़ा खड़ा हुआ। मि० मारगरी को भारत के वाइसराय ने युन्नन प्रान्त में कई अन्य अँगरेजों के साथ कुछ व्यापारिक कार्य्यों के लिए भेजा था। मि० मारगरी अपने दूसरे साथियों से पहले ही मैन्‌विन् नामक गाँव में जो चीनी सीमा के अन्दर था, पहुँच गए थे और वहाँवालों ने उनका अच्छा आदर-सत्कार भी किया था। दूसरे दिन जब वह एक खनिज झरना देखने के लिए पास के ही एक स्थान में गए तो वहाँ किसी ने बड़ी निर्दयता से उनकी हत्या कर डाली। सर तामस वेड ने सुङ्गली येमन (प्रधान मन्त्रि-मण्डल) से इस संबंध में लिखा पढ़ी की और इस बात पर जोर दिया कि अपराधी को पकड़ने के अभिप्राय से अँगरेज और चीनी अधिकारियों का एक संयुक्त कमीशन अनुसन्धान करने के लिए नियुक्त किया जाय। पर सुङ्गली येमन इसमें बाधक होता था। पेकिङ्ग पर आक्रमण होने पर जो सन्धि हुई थी उसके बाद से चीनी विदेशियों के और भी अधिक विरोधी हो गए थे। बहुत विलम्ब के उपरान्त योग्य अधिकारी नियुक्त किए गए और अनुसन्धान हुआ; बड़ी कठिनता से चीफूवाली अन्वेषक सभा के समाप्त होने पर अँगरेजों और चीनियों का मनोमालिन्य कुछ दूर हुआ। अँगरेजों को कुछ और नए बन्दरों में व्यापार करने का अधिकार मिला, लिकिन (माल की बिक्री पर लगनेवाला एक प्रकार का कर जिसकी आय सामरिक व्यय के लिए जमा की जाती थी) टैक्स के नियम आदि दुरुस्त किए गए और चीनी सम्राट् ने अपनी ओर से एक विशेष दूत क्षमा-प्रार्थना के पत्र सहित महारानी विक्टोरिया के पास भेजा।

दूसरा झगड़ा टांगकिंग के संबन्ध में था। १८७० वाले युद्ध के बाद से फ्रांसीसियों ने उपनिवेशों में बहुत स्पष्ट रूपसे अपना प्रसार बढ़ाना आरम्भ किया था और सैगन को जिसे उन्होंने सन् १८५८ में अपने अधिकार में कर लिया था अपना केन्द्र बना कर आस पास के प्रान्तों में अपने प्रभाव का विस्तार आरम्भ कर दिया था। उन्होंने दो एक बार अकारण और अनुचित बल-प्रयोग किया और हेनाय नगर पर अपना अधिकार जमा लिया। उस प्रान्त के राजा ने फ्रांसीसियों की इन कार्रवाइयों की सूचना अपने सम्राट् के पास पेकिङ्ग भेजी। ली हङ्ग चङ्ग ने सुझाया कि आक्रमणकारी फ्रांसीसियों की कुछ बातें मान ली जायँ और झगड़ा शान्तिपूर्वक समाप्त कर दिया जाय पर उसका कोई फल नहीं हुआ। फ्रांसीसियों ने और कई आक्रमण कर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नगरों को अपने अधीन कर लिया और तब मेल के लिए एक बड़ी सभा की गई। उस सभा में निश्चय हुआ कि चीन की दक्षिणी सीमा पर फ्रांसीसी अब आक्रमण न करेंगे बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उसकी रक्षा करेंगे; और चीन ने टांगकिङ्ग से अपनी सेना हटा लेना स्वीकार किया। इस सभा से भी युद्ध की समाप्ति नहीं हुई क्योंकि चीनी सेना के हटाए जाने की निश्चित तिथि के संबन्ध में अभी कुछ आपत्ति बच रही थी। कुछ अधिक समय तक युद्ध बराबर होता रहा पर कोई बड़ी विजय किसी पक्ष की भी न हुई। अन्त में ९ जून सन् १८८५ को दोनों शक्तियों में प्रायः उसी प्रकार और रूप में मेल हो गया जो प्रकार और रूप ली हङ्ग चङ्ग ने एक वर्ष पूर्व बतलाया था।

कोरिया का उपद्रव।

इसके उपरान्त उत्तर की ओर कोरिया में उपद्रव आरम्भ हुआ। कोरिया के आधिपत्य के संबन्ध में चीन और जापान में बहुत दिनों से जो झगड़ा चला आता था वही झगड़ा इस बार फिर उठा। कुछ लिखित प्रमाणों के अनुसार तो कोरिया आरम्भ में चीन का करद और उसके अधीन था और कुछ दूसरे लिखित प्रमाणों के अनुसार वह जापान का करद और माण्डलिक था। यहाँ इस बात का निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है कि दोनों में किस का अधिकार ठीक था। पर इसमें सन्देह नहीं कि जब से चीन के मिङ्ग राजवंश ने कोरिया में नी शाखावालों को अधिकार जमाने में सहायता दी थी तब से वह सदा चीन की अधीनता मानता आया था। चीन का सम्राट् सदा कोरिया के राजा को उसके राजत्व का अधिकार दिया करता था और कोरिया के राजनगर सिओल से प्रति वर्ष राज्य की ओर से भेजे हुए कुछ लोग अधीनता का चिन्ह धारण कर के पेकिंग जाया करते थे और वहाँ से उन्हें सम्राट् के संरक्षण में तैयार कराया हुआ एक विशेष प्रकार का तिथिपत्र मिला करता था। पेकिङ्ग के राज दरबार में जो बड़ी बड़ी और महत्त्वपूर्ण घटनाएं हुआ करती थीं उन सब की सूचना कोरिया के राजा के पास भेज दी जाया करती थी जो उसके सम्बन्ध में सम्राट् के पास सहानुभूति अथवा बधाई का समाचार भेज दिया करता था। जापान ने देखा कि अब कोरिया पर से हमारा अधिकार धीरे धीरे उठ रहा है। सन् १८६८ में जब जापान की सरकार बदली और उस परिवर्त्तन का समाचार जापानी राजदूत ने कोरिया के दरबार में सुना कर वहाँ की सरकार से किसी को जापान भेज कर पुरानी मित्रता और अधीनता की पुनरावृत्ति करने के लिए कहा तो कोरिया दरबार की ओर से वह बात बहुत अभिमानपूर्वक अस्वीकार की गई। सन् १८७५ में जब कोरियावालों ने एक जापानी युद्ध-पोत पर गोलियां चलाई थीं तब जापानवालों ने चीनवालों से ही उसकी शिकायत और अपील की थी। चीन ने अपने सिर इतना बड़ा उत्तरदायित्व लेना ठीक न समझा और अदूरदर्शितापूर्वक जल्दी में यह घोषणा कर दी कि कोरिया पर अब हमारा किसी प्रकार का अधिकार नहीं है। दूसरे ही वर्ष अर्थात् सन् १८७६ में जापान और कोरिया में पहली स्वतन्त्र सन्धि हो गई। सन्धि से पहले ही कोरिया की स्वतन्त्र शक्ति प्रमाणित हो चुकी थी और चीन वह बात जानता हुआ भी अनजान बना बैठा था। सन् १८८२ में कोरिया के राजा के पिता ने जापान के विरुद्ध कुछ षड्यन्त्र रचे थे; उसी के फल स्वरूप सिओल में जापानी राजदूत के निवास-स्थान पर आक्रमण हुआ। जापानी बड़ी कठिनता से भाग कर समुद्र तट तक पहुँच सके। षड्यंत्रकारी (कोरिया के राजा का पिता) तो कोरिया का राजा बन बैठा और उसका पुत्र (कोरिया का असली राजा) कैद हो गया। जब ली हङ्ग चंग ने इस उपद्रव का समाचार सुना तो उसने मा की अधीनता में उपद्रव शान्त करने के लिए एक बेड़ा भेजा जिसने वहाँ जा कर विद्रोहियों का दमन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानी सरकार ने फिर से वहाँ अपने दूतों के लिए निवास आदि का प्रबन्ध किया। कोरिया के राजा के दुष्ट पिता की स्वतन्त्रता शान्ति-स्थापन में बड़ी बाधक थी इसलिए वह कोरिया से हटा कर पेकिंग पहुँचाया गया। जापान ने एक प्रतिनिधि सभा की बैठक कराई जिसके द्वारा उसे कोरिया में जापानियों की रक्षा के लिए कुछ सेनाएं रखने का अधिकार मिला। सन् १८८२ में ही फिर से कुछ उपद्रव हुए थे जिनके कारण दो वर्ष बाद एक और प्रतिनिधि सभा की बैठक की आवश्यकता हुई। कोरिया के दुष्ट उपद्रवकारी ने पेकिङ्ग से भाग कर फिर जापानी दूतावास पर आक्रमण करने का प्रबन्ध कर लिया था। दूसरी प्रतिनिधि-सभा ने निश्चय किया कि इस सन्धि पर हस्ताक्षर होने की तारीख से चार महीने के अंदर चीन और जापान दोनों ही कोरिया से अपनी अपनी सेनाएं हटा लें और भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर बिना दूसरी शक्ति को सूचना दिए कोई वहाँ अपनी सेना न भेजे। इस सन्धि द्वारा कोरिया के सम्बन्ध में जापानियों ने चीनियों के समान अधिकार प्राप्त कर लिए। कोरिया के लिए चीन और जापान दोनों बराबर हो गए।

जब कोरिया में इस प्रकार की नित्य नई दुर्घटनाएँ होने लगीं तो उसके पड़ोसी रूस ने भी हाथ पाँव फैलाए। उसने कोरिया के झगड़ों पर असन्तोष प्रकट किया और दक्षिण की ओर बढ़ने की धमकी दी। उसे इस प्रकार बढ़ने से रोकने के लिए ही अँगरेजों ने अस्थायी रूप से हैमिल्टन बन्दर पर अधिकार कर लिया था। जब आगे किसी प्रकार का झगड़ा दिखाई न दिया तो अँगरेजों ने इस शर्त्त पर हैमिल्टन बन्दर खाली कर दिया कि उसपर और कोई दूसरी शक्ति अधिकार न कर ले। उधर रूसी मंत्री ने चीनी सरकार को इस बात का विश्वास दिला दिया कि भविष्य में कोरिया के सम्बन्ध में किसी अवस्था में हमारी ओर से हस्तक्षेप न होगा।

सन् १८९४ में कुछ लोग रोमन कैथोलिकवालों के विरोधी हो गए थे। कोरिया के राजा ने उनको दबाने के लिए जो सेना भेजी थी वह शान्ति स्थापित करने में समर्थ न हुई। कोरिया के राजा ने उस सम्बन्ध में पेकिंग सरकार से उसकी शान्ति के लिए प्रार्थना की और चीनियों ने सन् १८८४ वाली सन्धि का कुछ भी ध्यान न कर के बिना जापानियों को सूचना दिए ही कोरिया में अपनी सेना भेज दी। मिकाडो की सरकार ने चीन के इस कृत्य के विरोध के लिए अपनी सेना भी कोरिया में भेज दी। जापानियों ने चीनियों को ठीक मार्ग पर लाने के लिए जो जो प्रयत्न किए वे सब वृथा हुए। चीन अपने प्रतिद्वन्दी जापान को कोरिया के कार्य्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने देना चाहता था और न जापान के प्रस्तावित सुधार ही स्वीकार करता था। जापानियों ने कह दिया कि अब यदि कोरिया में चीन फिर सेना भेजेगा तो उसका वह कार्य्य युद्ध के तुल्य समझा जायगा। चीनियों ने इस धमकी की ज़रा भी परवा न की और अपनी सेनाओं से भर कर युद्ध-पोत वहाँ भेज ही दिए। इस पर जापान ने चीन के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। लड़ाई यद्यपि चीनियों ने ही खड़ी की थी तथापि वे उसके लिए किसी प्रकार तैयार न थे। एसन के युद्ध, पिंगयांग के घेरे, यालू नदी के नव-युद्ध और आर्थर बन्दर पर के आक्रमण से प्रमाणित हो गया कि जल और स्थल युद्ध में जापानी ही तेज और बढ़े चढ़े हैं। चीनी जब लगातार कई स्थानों पर पराजित हुए तो अन्त में उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक जापानियों से सन्धि कर लेना ही उचित समझा। सन्धि करने के लिए ली हंग चंग भेजा गया। उसने जा कर चीन की ओर से जापान को लिआओतंग प्रायद्वीप, फारमोसा और पेस्काडोर्स तथा युद्ध का व्यय पूरा करने के लिए बीस करोड़ तारल देना स्वीकार दिया। इस पर युरोपियन शक्तियों से अपील की गई और रूस, जर्मनी तथा फ्रान्स ने बीच में पड़ कर लिआओतंग प्रायद्वीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दिया जाना रोका। इस प्रकार जापान को अपनी विजय के सब से अच्छे फल से वंचित रहना पड़ा। युरोपियन शक्तियाँ भी समय पर हस्तक्षेप करने के बदले में कुछ माँगने लगीं। रूस ने चाहा कि कि मुझे मंचूरिया में से साइबेरियन रेलवे ले जाने और उसकी एक शाखा मकदन तथा आर्थर बन्दर तक ले जाने का अधिकार मिले। फ्रान्स की इच्छा थी कि सीमा पर टांगकिंग रेलवे से अपनी रेल मिला कर उसे क्रांगसी में नामिंगफू तक ले जाय। जर्म्मनी अपने लिए कुछ खनिज और आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त कर के ही सन्तुष्ट हो रहा।

तैपिंग विद्रोह के समय से ही एशियावालों ने समझ लिया था कि युद्ध-कला और शस्त्रास्त्रों आदि के सम्बन्ध में हमें युरोपवालों से अभी बहुत कुछ सीखना चाहिए। ली हुंग चंग चीन का सब से बड़ा और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। उसकी सम्मति थी कि विदेशियों का मुकाबला और बराबरी करने के लिए चीन में गोले बारूद और तोपों आदि के कारखाने जारी करने तथा अपनी जल-सेना दृढ़ करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। उसे इस प्रकार के सुधार की और अधिक आवश्यकता इसलिए ज्ञान पड़ती थी कि उसका पड़ोसी राज्य (जापान) इस ओर लंबे लंबे डग बढ़ा रहा था। चीनी सरकार की संरक्षणता में रेलें जारी करने और व्यापारिक कार्य्यों के लिए जहाजी कम्पनियाँ कायम करने के लिए प्रयत्न किए गए। सन् १८६६ में ही सुधार का एक प्रकार से आरम्भ हो चुका था; क्योंकि उसी समय पेकिंग में आधुनिक ढंग के एक नए कालिज की स्थापना हुई थी जिसमें चीनी युवकों को गणित और फुटकर विज्ञान आदि पढ़ाने के लिए युरोपियन प्रोफेसर नियुक्त किए गए थे। यह सुधार समय की आवश्यकता से कुछ बढ़ा चढ़ा था इसलिए उसमें अधिक सफलता न हुई। सन् १८८७ में सुगली यैमन (मंत्रि-मण्डल) की प्रार्थना पर कुछ विशेष परीक्षाओं में गणित भी सम्मिलित किया गया। संकीर्ण विचारवाले बहुत से चीनियों को ये नए सुधार जरा भी पसन्द न थे। तिस पर विशेषता यह थी कि उन सुधारों में उन्हीं पादरियों की विशेष सहायता ली जाती थी जिन्हें चीनी अनर्थकारी समझते थे। हुनान प्रान्त से जहाँ के निवासी सब से अधिक संकीर्ण विचार के थे, कुछ लोगों ने बहुत बड़े बड़े विज्ञापन छाप कर प्रकाशित किए जिनमें युरोपियन पादरियों पर सब प्रकार के अपराधों के अभियोग लगाए गए थे। पहले युरोपियनों पर यह अभियोग लगाया जाता था कि वे बालकों को चुरा ले जाते हैं और उनकी आँखें तथा अँतड़ियाँ आदि निकाल कर उनसे दवाइयाँ बनाते हैं; इस बार फिर उसी अभियोग की पुनरावृत्ति हुई। कई स्थानों में बलवे हुए, गिरजे तोड़ डाले गए और पादरियों के मकान लूट लिए गए। एक पादरी और समुद्री चुंगी के एक अधिकारी की हत्या भी हो गई। ये दोनों अँगरेजी प्रजा थे। अँगरेज सचिव ने चीनी मंत्रि-मण्डल को इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था उसका कोई फल नहीं हुआ। चीनी अधिकारियों ने इन सब उपद्रवों का मूल कर्त्ता एक ऐसे जंगली और तुच्छ व्यक्ति को बतला दिया जिसे वे स्वयं किसी प्रकार का कठोर दण्ड न दे सकते थे। लेकिन शीघ्र ही सम्राट् ने एक घोषणा द्वारा अपनी प्रजा से विदेशियों के साथ अच्छा व्यवहार करने के लिए कह दिया था और जापान के साथ चीन का युद्ध छिड़ गया था जिससे पादरियों के साथ होनेवाला अनुचित व्यवहार कुछ समय के लिए बन्द हो गया। पर चीन-जापान युद्ध के समाप्त होते ही सेशुआन और फूकीन में फिर से बलवे आरम्भ हो गए और अनेक स्थानों पर पादरियों पर आक्रमण कर के उनकी हत्या की गई। जब शांतंग में एक जर्म्मन पादरी मारा गया तो जर्म्मनी को किआऊ-चाऊ बन्दर और उसके आस पास के प्रान्त पर अधिकार कर लेने का बहुत अच्छा बहाना मिल गया। उसके इस उदाहरण का अन्य शक्तियों ने भी अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। रूस ने आर्थर बन्दर और तालियन यान ले लिया, अंगरेजों ने वेई-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाई-वेई पर अधिकार कर लिया और फ्रान्सीसियों ने कांगचाउ दबा लिया।

बाक्सर युद्ध।

चीनी सदा से पादरियों के प्रति वैर और शत्रु भाव रखते आए हैं और वे भाव दबाए भी बहुत बुरी तरह जाते हैं। कनफूची के नैतिक और बुद्धदेव के धार्म्मिक सिद्धान्तों के कट्टर अनुयायी चीनी उन विदेशियों को बहुत ही बुरा समझते थे जो उनके धार्म्मिक सिद्धान्तों को अन्य धार्म्मिक सिद्धान्तों के साथ तुलना कर के उनका महत्त्व घटाते थे। चीनी समझते थे कि पादरी उन्हें अपना प्रेम-तत्त्व सिखलाने में बहुत जबरदस्ती से काम लेते हैं। उनके दूरदर्शी राजनीतिज्ञ समझते थे कि हमारे साम्राज्य को हानि पहुँचाने और विप्लव करने के लिए किसी गुप्त सभा का भी संगठन हुआ है। क्रिस्तान होनेवाले चीनियों की संख्या बढ़ने से भी किसी प्रकार की शान्ति नहीं हुई। जब कभी चीनियों और ईसाइयों में किसी प्रकार का झगड़ा या मुकदमा होता था तब ईसाइयों के कृत्यों से यही प्रमाणित होता था कि वे चीनियों के सब कामों में हस्तक्षेप करना चाहते हैं। सदा से चीनियों की दृष्टि में स्त्रियों के अधिकार और उत्तर-दायित्व आदि भिन्न और विलक्षण रहे हैं इसलिए वे लोग ईसाइयों के अविवाहित पुरुषों और अविवा-हिता स्त्रियों के एक साथ रहने और मिल कर काम करने को बहुत बुरा समझते थे। कन्याओं को बिना पूरी रक्षा के वे कहीं जाने आने देना ठीक न सम-झते थे। वे यह भी देखते थे कि जिन जातियों के पादरियों को कष्ट और दण्ड दिए जाते हैं वह जातियाँ हमारे देश में अपना व्यापार भी बढ़ाती जाती हैं और अपने राजनीतिक अधिकारों का प्रसार भी करती जाती हैं। इस सम्बन्ध में जर्म्मनी की अन्तिम कार्रवाई और भी महत्त्व-पूर्ण हो गई थी। उसने किआऊचाऊ पर अधिकार कर लिया था और उसकी देखादेखी अन्य शक्तियों ने भी अनेक स्थान दबा लिए थे। जिसका जहाँ दाँव लगता था वह खुले आम वहाँ अपना अधिकार कर लेता था। ऐसी दशा में यदि आई-हो चुआन की देश-हितकारिणी सभा ने अपनी रक्षा के लिए कुछ वास्तविक कार्य्य आरम्भ कर दिए तो उसमें आश्चर्य्य की कोई बात न थी। प्रकाश्य रूप से उस सभा का उद्देश्य चीनियों को व्यायाम आदि सिखलाना और अपने केन्द्र के आस पास शान्ति बनाए रखना था। राजमाता सीशी ने उस सभा के साथ अपनी सहानुभूति भी प्रकट की थी और उसके सभासद उन दण्डों से बच गए थे जो गुप्त सभाओं के सभासदों को दिए जाते थे। इस प्रकार की सभाएं बढ़ कर सेशुआन तथा हुपेई आदि प्रान्तों तक फैल गई थीं। बाक्सर (मुक्केबाज) सभाएं प्रायः सभी जगह संगठित हो गई थीं और उनका बल और अधिकार भी बढ़ गया था। इस कार्य्य में बहुत बड़े बड़े लोग सम्मिलित हो गए थे और कई प्रधान मंचू अधिकारी भी बाक्सर सभाओं के सभासद हो चुके थे। गत जापान युद्ध के बाद से सुधार आदि के सम्बन्ध में जो आंदोलन आरम्भ हुए थे, इन सभाओं द्वारा उनका यथेष्ट विरोध और प्रतीकार होता था। युवक सम्राट् की सुधारकों के साथ सहानुभूति थी इसलिए सन् १८९८ के सितम्बर मास में राज-माता द्वारा वह राज्यासन से उतार दिया गया। इस कार्रवाई में राज-माता के सिवा राजकुमार चिंग, राजकुमार तुआन (राज्य के उत्तराधिकारी के पिता) कांगी और लीपिंग हंग भी शामिल थे।

वास्तव में बाक्सर आन्दोलन विदेशियों और पादरियों के विरोध के लिए था। ईसाई धर्म ग्रहण करनेवाले चीनियों की हत्या और ईसाई गाँवों की लूटपाट बहुत बढ़ गई थी। यहाँ तक कि २ जून सन् १९०० को पेकिंग से प्रायः चालीस मील की दूरी पर राबिनसन और नारमन नामक दो अंगरेज पादरी मार डाले गए थे। कई राजदूतावासों पर चीनी सिपाहियों ने आक्रमण किए थे। जब ११ जून को जापानी राजदूत और २० जून को जर्मन बेरन वान कैट्टेलर की हत्या हो गई तो लोगों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ लिया कि अब चीनी लोग विदेशियों से भिड़ कर अपनी शक्ति की विकट परीक्षा करने पर उतारू हो गए हैं। २० जून के। ही उन लोगों ने राजदूतावासों पर गोलियाँ चलानी आरम्भ कर दी थीं।

१४ जून के। ही तींतसिन ग्रैार पेकिंग के मध्य की रेल-लाइन तोड़ दी गई थी। उस टूटे हुए अंश की मरम्मत कर के रास्ता बनाने के लिए युरोपियनों ग्रैार जापानियों की एक सम्मिलित सेना बना कर एडमिरल सर ई० सेमोर तींतसिन से चल पड़े थे। बहुत से चीनियों ने उनका पूरा मुकाबला किया ग्रैार उन्हें भारी हानि सह कर वहाँ से लैाटना पड़ा। नई कुमक के आसरे में ही कुछ समय बिताया गया। जापानियों के सम्मिलित हो जाने के कारण जर्म्मनी ग्रैार रूस में जो अंतर्राष्ट्रीय ईर्ष्या फैल गई थी उसके कारण भी कुछ विलम्ब हुआ। लेकिन दो मास के उपरान्त १४ अगस्त के। किसी प्रकार पेकिंग का घेरा आरम्भ हो गया ग्रैार सब से पहले जनरल गैसिली की अधीनता में अँगरेजी सेना ने उस क्षेत्र में प्रवेश किया।

जो लोग राजदूतावासों में घिरे हुए बन्द पड़े थे उन लोगों ने बड़ी ही वीरतापूर्वक अपनी रक्षा की। अँगरेजी दूतावास के। चीनी जला देना चाहते थे पर कठिनता यह थी कि उसी दूतावास के निकट हेनलिन इमारतें, गोदाम, पुस्तकालय ग्रैार सरकारी दफ़्र थे; इसलिए वे लोग अपनी इच्छा पूरी न कर सके। चीनियों के सब काम राजमाता की सम्मति ग्रैार चीनी कमांडर तुंगफू-सियांग की सहायता से होते थे। विदेशियों की सम्पत्ति की बहुत अधिक हानि हुई थी। व्यापार आदि के सब स्थान जला कर राख कर दिए गए थे। लगातार कई दिनों तक सभी स्थानों पर लूट-मार होती रही। शान्ति-स्थापन ग्रैार लोगों के। सन्तुष्ट करने में महीनों लग गए थे।

राजमाता अपने दरबार सहित सिगानफू नामक स्थान के। जो शेन्सी प्रान्त में पेकिंग से ६०० मील की दूरी पर था, चली गई। राजकुमार चिंग ग्रैार लीहंगचंग ने अब तक विदेशियों के साथ किसी प्रकार का शत्रु-भाव नहीं प्रकट किया था इसलिए विदेशियों के साथ सन्धि करने का अधिकार दे कर राजमाता ने उन्हें पेकिंग में ही छोड़ दिया था।

विदेशी विजेताग्रों की आपस की ईर्ष्या ग्रैार एक दूसरे के विरुद्ध आकांक्षा के कारण झगड़े का निपटारा भी बहुत कठिन था। मंचूरिया प्रदेश तथा शान-हाईकान से पेकिंग तक की रेल पर से रूसी अपना अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे। जर्म्मन लोग अपने लिए हरजाने की रकम माँगते थे। लेकिन अँगरेज, जापानी ग्रैार अमेरिकन कुछ कुछ चीनियों के पक्ष में थे। बहुत सा वादाविवाद होने के बाद अन्त में मित्र-दल की ग्रोर से सन्धि की नीचे लिखी शर्तें २० ग्रैार २१ दिसम्बर के। पेश की गईं ग्रैार १४ जनवरी सन् १९०१ के। चीनियों ने उन्हें स्वीकार कर लिया,—

(१) वान कैटेलर ग्रैार मि० सुगियामा की हत्या के बदले में हरजाना दिया जाय ग्रैार हत्याकारियों के। उचित दण्ड दिया जाय। (२) जिन राज्यों, सभाग्रों ग्रैार व्यक्तियों के। चीनियों ने हानि या कष्ट पहुँचाया है उन्हें सब शक्तियों की सम्मति से उचित हरजाना दिया जाय ग्रैार हरजाने की रकम की जमानत कुछ आर्थिक प्रबन्धों द्वारा की जाय। (३) चीन में हथियारों ग्रैार युद्ध के उपयोगी सामानों का बनाना ग्रैार विदेश से आना बन्द कर दिया जाय। (४) स्थायी दूतावासों की रक्षा के लिए खर्च दिया जाय ग्रैार विदेशी शक्तियों से सम्बन्ध स्थिर रखने-वाले मार्गों की रक्षा के लिए राजधानी ग्रैार समुद्र-तट के मुख्य मुख्य स्थानों पर विदेशियों का अधिकार हो। (५) विदेशियों के विरुद्ध किसी प्रकार का उपद्रव न उठने देने का भार ग्रैार उत्तर-दायित्व प्रान्तीय गवर्नरों ग्रैार बड़े बड़े अधिकारियों पर हो। (६) सुंगली-यामन का सुधार हो ग्रैार विदेशी राजदूतों के स्वागत के नियमों आदि में उचित परिवर्त्तन हो।

रूस ने चीन के जिन भागों पर अपना अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया था वह उन्हें छोड़ना न चाहता था और साथ ही अपने लिए वह कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त करना चाहता था; उधर जर्म्मन सम्राट् चाहता था कि चीन के सम्राट् का राजदूत राजकुमार चुन उसके सामने "कौटौ" करे। इन्हीं दोनों बातों के कारण ऊपर लिखी हुई शर्त्तों की सन्धि की स्वीकृति में बहुत समय लग गया। जब जार और कैसर ने देखा कि उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं हो सकतीं तो उन लोगों ने स्वयं ही बुद्धिमत्तापूर्वक अपना अपना हठ छोड़ दिया और ७ सितम्बर को पेकिंग में उक्त सन्धि पर हस्ताक्षर हो गए।

७ अक्तूबर को चीन की राज-माता अपने दरबार सहित पेकिंग लौट आई और उसके ठीक एक महीने बाद ली-हंग-चंग का, जो राज-माता का सब से अधिक विश्वासपात्र था, देहान्त हो गया।

रूस के कारण मंचूरिया का उपद्रव, उसके फल-स्वरूप रूस-जापान युद्ध, पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा की पूर्ण रूप से स्वीकृति के कारण चीन में जागृति, जातीय साधनों का फिर से उचित प्रबन्ध, शासन-प्रणाली में सुधार और उसके फल-स्वरूप प्रजातंत्र शासन की स्थापना आदि बातें ऐसी हैं जो आजकल के चीन से सम्बन्ध रखती हैं।

हम ऊपर यह कह आए हैं कि रूस की इच्छा थी कि वह चीन की साइबेरिया से मिलती हुई सीमाओं पर चीन से अपने लिए गुप्त रूप से कुछ सुविधाएँ प्राप्त कर ले। पर जब रूस ने देखा कि उसकी इस कार्रवाई से अन्य शक्तियाँ भड़क कर चौकन्नी हो जायँगी और कदाचित् अपने लिए भी वैसी ही सुविधाएं प्राप्त करने का उद्योग कर के मेरे मार्ग में बाधक बन जायँगी तो उसने उस समय वह विचार छोड़ दिया। उसका वह विचार सदा के लिए नष्ट नहीं हुआ बल्कि कुछ समय बाद उसने फिर से उसके लिए उद्योग करना आरम्भ किया। ८ अप्रैल सन् १९०२ को चीन और रूस में जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार अप्रैल १९०३ में रूस को मंचूरिया खाली कर देना चाहिए था और पूर्व निश्चय के अनुसार उसके साथ और किसी प्रकार की रिआयत न हो सकती थी। अपने हित की दृष्टि से जापान ने कोरिया में अपना जो प्रभुत्व जमाया हुआ था, रूस के कार्य्यों से उसमें बाधा पड़ने की आशंका होने लगी। जापान यदि रूस की वह कार्रवाइयाँ चुपचाप बैठा देखता रहता तो उसकी बहुत अधिक हानि होती; हानि क्या होती, मानों उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता। उसके राजदूत ने सेण्ट पीटर्सबर्ग में कहा कि रूस के वचनों और कार्य्यों में बहुत बड़ा अन्तर पड़ रहा है; साथ ही उसने कुछ ऐसी शर्तें भी पेश कीं जिनके अनुसार मंचूरिया में रूस को और कोरिया में जापान को अपने अधिकारों का यथेष्ट प्रसार करने का अवसर मिल सकता था। रूस समझता था कि मैं जापान के इस कथन की उपेक्षा कर के भली भाँति अपना काम निकाल सकूंगा। उसने देखा कि इस समय मुझे दबने की कोई आवश्यकता नहीं है और मैं अपना प्रसार मंचूरिया तक ही सीमाबद्ध न रख कर यालू नदी के उस पार कोरिया तक भी कर सकूंगा। जापान भी समझता था कि रूस सीधी तरह से कोरिया पर से अपना अधिकार नहीं उठावेगा और इसलिए वह उससे लड़ने के लिए भी तैयार था। ५ फरवरी सन् १९०४ को रूस-जापान युद्ध की घोषणा हो गई।

यद्यपि देखने में रूस जैसी शक्ति के साथ लड़ने के लिए तैयार होना जापान की बड़ी भारी ढिठाई थी, पर वास्तव में जापान ने अपने सारे साधनों और शक्तियों के अतिरिक्त अपने शत्रु के साधनों और बल का भी पूरा पूरा अनुमान कर लिया था और इसी लिए उसे परिणाम के सम्बन्ध में कोई चिन्ता न रह गई थी। उस युद्ध में जापान ने किस प्रकार और क्या किया, इस बात के यहाँ बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारा मतलब केवल उसके अन्तिम परिणाम से है। जापान की विजय ने स्पष्ट रूप से लोगों को बतला दिया कि यदि एशियावाले पश्चिम का नया ज्ञान प्राप्त कर लें तो वे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी बात में पीछे नहीं रह सकते। जापान ने कोरिया पर अपना प्रभुत्व स्वीकार करा लिया श्रौर रूस से लिश्राश्रोतंग प्रायद्वीप, जिसमें श्रार्थर बन्दर श्रौर डालनी भी सम्मिलित था, ले लिया। १९०२ वाली सन्धि की शर्त्त के अनुसार रूस ने मंचूरिया खाली कर देना भी स्वीकार किया।

जापान के पहले युद्ध से सुस्त चीनियों ने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की थी। बाक्सरवाले झगड़े के बाद जब जापान ने रूस पर विजय प्राप्त की तब चीन ने अपनी शक्ति बढ़ाने श्रौर राजनीतिक व्यवस्था के लिए पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली श्रौर ज्ञान आदि की आवश्यकता समझी।

पादरियों के प्रति उन लोगों का जो वृथा सन्देह था वह मिट गया श्रौर उन लोगों ने अपने लिए प्राप्य ज्ञान संगृहीत करने के हेतु बड़ी उत्सुकता दिखलाई। अमेरिका की चीजों का बहिष्कार कर के उसने उन अमेरिकनों की आँखें खोल दीं जो अपने देश में चीनियों का अपमान करते थे। शिक्षा, जल-स्थल-सेना श्रौर शासन आदि सभी बातों में सुधार किए गए। राजकुमार चुन—जिसने सन् १९०१ में कैसर के सामने कैाटो करने से इनकार कर दिया था—चिहली के वाइसराय युश्रान-शी-काई, हुकांग के वाइसराय चांग-चीह-तुंग श्रौर बड़ी काउन्सिल के सभापति राजकुमार चिंग आदि ने सब प्रकार के सुधारों में बहुत सहायता दी थी।

राजसभा के पेकिंग लैाट आने पर सन् १९०२ से ही शिक्षा के सुधार के लिए नई प्रणालियों का अनुसरण करना निश्चित हो चुका था। यह भी निश्चय हो चुका था कि पेकिंग-युनिवर्सिटी में पाश्चात्य विद्याश्रों की शिक्षा दी जाय। कला-कौशल के लिए एक अलग कालिज श्रौर अध्यापकों की शिक्षा के लिए एक विशेष विभाग खुलनेवाला था। सन् १९०६ में परीक्षा के प्राचीन नियम रद्द हो गए। हजारों मन्दिरों का धन शिक्षा-सम्बन्धी कामों में लगने लगा। मई १९०६ में १५ विश्वविद्यालयों का कार्य्य आरम्भ हो गया। बहुत से चीनी युवक शिक्षा पाने के लिए विदेश गए श्रौर बालिकाश्रों की शिक्षा के लिए विद्यालय स्थापित हुए। अपने देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए चीनियों ने विदेशों से आनेवाले माल पर चुंगी लगाने के लिए नियम बनाए श्रौर सामाजिक स्थिति के सुधारने के लिए अपने देश में अफीम का आना बन्द कर दिया।

१४ नवम्बर सन् १९०८ को चीनी सम्राट् श्रौर उसके दूसरे दिन राजमाता का देहान्त हो गया। इस प्रकार प्राचीन चीन से सम्बन्ध रखनेवाले दो ऐतिहासिक व्यक्तियों का अन्त हो गया। २ दिसम्बर सन् १९०८ को भूतपूर्व सम्राट् का भतीजा राजकुमार चुन तीन वर्ष की अवस्था में चीन के राज्यासन पर अभिषिक्त हुआ। सन् १९१२ में जब चीन में प्रजातंत्र स्थापित हो गया श्रौर डाक्टर सन्-यात्-सेन उसके पहले सभापति हुए तो चुन को ६ वर्ष की अवस्था में राज्यासन त्यागना पड़ा।

सन् १९०५ में ही चीनियों का ध्यान शासन-सम्बन्धी सुधारों की श्रोर गया था श्रौर अनेक विदेशी राज्यों की शासन-प्रणालियों का विशेषतः इंगलैण्ड, जर्मनी श्रौर जापान की शासन-प्रणालियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई कमीशनों की नियुक्तियाँ हुई थीं। उन कमीशनों ने बहुत परिश्रमपूर्वक खोज श्रौर जाँच कर के चीन के लिए एक शासन-प्रणाली निश्चित की श्रौर उसी के अनुसार कार्य्य होना भी निश्चय हुआ। लोगों ने देखा कि शासक राज-वंश आगे चल कर देश की उन्नति में बाधक होगा। इसी बीच में राज्य को दो बहुत बड़े ऋण लेने की आवश्यकता पड़ी श्रौर देश में अकाल श्रौर बाढ़ के कारण बहुत विपत्ति फैली। एक दल चाहता था कि राजवंश का समूल नाश न हो बल्कि उसकी अध्यक्षता में नियंत्रित शासन की प्रथा चलाई जाय। डा० सन्-यात्-सेन ने बड़ी कठिनता से लोगों को इसके विरोध के लिए तैयार किया। सन् १९११ में जब चीन में विद्रोह आरम्भ हुआ उस समय वह इंगलैण्ड में था। विद्रोह का समा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार सुन कर वह स्वदेश लौटा और नानकिंग काउन्सिल ने जिसमें १४ प्रान्तों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे, उसे चीनी प्रजातंत्र का सभापति चुना। इस प्रकार चीन में नए युग का आरम्भ हो गया।

अब्बुलफ़ज़ल।*

न गोरे सिकन्दर न है क़ब्र दारा।
मिटे नामियों के निशां कैसे कैसे॥

—आतिश।

(लेखिका—श्रीमती बंग-महिला।)

जिन उदार-हृदय राजनीतिज्ञ दूरदर्शी महानुभावों ने मुगल-कुल श्रेष्ठ, नीति-विशारद अकबर बादशाह के राजत्व की जड़ विशाल भारतवर्ष में दृढ़ता से जमाई थी, उन्हीं महानुभावों में हमारे प्रबन्ध के चरित्नायक "अब्बुलफ़ज़ल" भी एक हैं। इस समय मोगल-राज्य कुटिल काल की अपार महिमा से मिट्टी में मिल गया है। मोग़ल राजधानी "दिल्ली" नगरी अपनी गत बातों की स्मृति से अपने दर्शकों की आँखों में अश्रुबिन्दुओं का उद्रेक करा रही है। उक्त राजत्व का गर्वास्पद और पाश्चिमात्य नृपतियों को चकित करनेवाला "तख़्त ताऊस" इस समय विदेशी व्यापारियों के हाथ में है। पृथ्वी पर के स्थापत्य (कारीगरी) की पराकाष्ठा "ताजमहल" की विशालाकार छाया को हृदय में धारण कर शैल-कुमारी सलिला "जमुना" उदासीन भाव से मृदु मन्द प्रवाहित हो भूत पूर्व ऐश्वर्य की स्मृति मात्र दिला रही हैं। उस जगद्-विमोहन, समृद्ध, दुर्दमनीय प्रताप और अतुल ऐश्वर्य का अब कुछ भी पता नहीं रहा।

स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने मर्मवेधी शब्दों में बहुत ही यथार्थ कहा है:—

कनक पात्र रतनग जटित, फेकत जौन उगार।
तिनकी आजु समाधि पर, मूतत स्वान सियार॥
जे सूरज सों बढ़ि तपे, गरजे सिंह समान।
भुजबल विक्रम पारि निज, जीत्यो सकल जहान॥
तिनकी आजु समाधि पै, बैठ्यो पूंछत काक।
को हो, तुम अब का भए, "कहाँ" गये करि साक॥

दिल्ली के शाही महल की उन्नत मीनारों और गुम्बजों पर अब मुगल बादशाहों की वह अर्द्ध-चन्द्रांकित वैजयन्ती (ध्वजा) नहीं फहरा रही है। शाहनशाह अकबर का वह "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" वाला विशेषण केवल इतिहासों के अन्तर्गत पृष्ठों की शोभा बढ़ा रहा है। किन्तु आज तक उस भूत पूर्व गौरव को अपनी अमर लेखनी से उज्वलित रखनेवाले "अब्बुलफजल" हैं। इस प्रबन्ध में मैं इन्हीं की संक्षिप्त जीवनी हिन्दी पाठकों को भेंट करती हूँ।

अब्बुल फजल का पूरा नाम "अब्बुलफजल बिन मुबारक" था। नाम के शेषांश का अर्थ है—"मुबारक का पुत्र"। भारतीय ग्रन्थकारों में जिस प्रकार (पुस्तक के आदि या अन्त में) निज इष्टदेव की बन्दना कर के अपने पूर्व पुरुषों का परिचय देने की रीति है, ठीक वैसी ही प्रथा फारसी ग्रन्थकारों में भी प्रचलित है। इस के अतिरिक्त वहाँ के निवासी अपने नाम के साथ अपने पूज्य पिता का भी नाम जोड़ देते हैं। इनके पिता मन्द्राज हाते के अन्तर्गत नागर नामक स्थान के निवासी थे। वहाँ से वह आगरे में जा बसे थे और वहीं कई वर्षों तक अब्बुल फजल ने मकतब (मुसलमानी पाठशाला) में शिक्षा पाई थी। मुसलमानों में "शिया" और "सुन्नी" दो प्रधान सम्प्रदाय हैं। अधिकांश लेखकों ने हमारे चरित्नायक का "सुन्नी" होना बताया

---

* कई वर्ष हुए बँगला मासिक पत्र प्रदीप में श्रीयुत जलधर सेन कृत आईन-अकबरी के बँगला अनुवाद के आधार पर एक लेख प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख उसी का आशय मात्र है। लेखिका इसके लिए मूल लेखक के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; पर पीछे वह उक्त मत परित्याग कर "शिया" सम्प्रदाय के अनुगामी हुए और आगे चल कर काल-क्रम से दोनों मतों को परित्याग कर स्वाधीनतावादी हो गए थे। धार्मिक मुसलमान धर्म्म-सम्बन्धी ऐसी उदारता को प्रायः नास्तिकता का रूपान्तर समझते हैं। आगे चलकर मैं इस प्रबन्ध में पाठकों को दिखलाऊँगी कि अब्बुल फजल को इस उदार स्वाधीनता-वाद के अनुयायी होने के कारण भविष्यत् में कैसा विपद्ग्रस्त होना पड़ा था; अथवा स्पष्ट शब्दों में यों कहना चाहिए कि इन्हीं कारणों से इन उदार-चेता महात्मा को कायरों की तलवार के नीचे अपने अमूल्य प्राण को न्योछावर कर देना पड़ा था। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि "सच्चे विश्वहितैषी, समाज सुधारक, सत्यवादी, उदारचेता, और स्पष्ट-भाषी महात्माओं की गर्दन सदा खड्‌ग के नीचे रहती है।" बहुतों का अनुमान है कि अब्बुल फजल और फैजी अपने पिता के उदार-धर्म्म (मत) के उत्तरा-धिकारी हुए थे; और यही कारण था कि अब्बुल-फजल के बराबर संसर्ग से भविष्यत् में अकबर की धर्मनिष्ठा भी विचलित हो गई थी। अब्बुल फजल और फैजी बाह्य रूप से इस्लाम धर्म के आचार-विचार के अनुकूल रहने पर भी गुप्त रूप से स्वाधीनता-वाद की युक्तियों के कट्टर समर्थक थे। प्रायः सभी इतिहासज्ञों का यह मत है कि इन दोनों भाइयों से अकबर का परिचय होने के पश्चात्, सदा संग रहने का फल यह हुआ कि अकबर ने भी उक्त मत प्रकाश्य रूप से ग्रहण कर लिया। इसी विश्वास के अनुगामी हो बहुतेरे मुसलमान, अमीर और उमरा अब्बुलफजल से डाह करने लगे; और अन्त में इसी बहाने से अकबर के ज्येष्ठ पुत्र भारत के भावी सम्राट् सलीम की उत्ते-जना पा विदेश में एक कुटिल विश्वास-घातक, निर्दयी ने उनके प्राण ले लिए।

९५४ हिजरी अर्थात् १५५१ ई० की १४ जनवरी को अब्बुलफजल का जन्म हुआ था। अब्बुलफजल के योग्य पिता ने मुहम्मदीय धर्म्मशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया था। अकबर का जीवनी—लेखक बदाउनी कहता है, कि मुसलमानी धर्म की कोई ऐसी बात न थी जो मुबारक न जानता हो ज्ञान-वृद्धि के साथ ही साथ उनकी धर्म-सम्बन्धी उदारता भी बढ़ती गई। मुबारक ने अपने पुत्रों को ऐसी सुशिक्षा दी थी कि वे लोग सब समाजों में समाहत होने योग्य गुणशाली निज पिता के सच्चे उत्तराधिकारी बने थे। उन लोगों की बुद्धि स्वभावतः ही बहुत परिमार्जित थी। इसी अनन्य साधारण शक्ति के ऊपर पितृ-प्रदत्त सुशिक्षा के बीज ने उर्वर-क्षेत्र में बोए हुए बीज की भाँति, अत्यन्त उत्तम फल प्रदान किया था। अब्बुलफजल ने बीस ही वर्ष की अवस्था में अध्ययन छोड़ कर अध्यापक का कठिन कार्य्य आरम्भ किया था। अकबर के राज्यशासन के बीस वर्ष पश्चात्, अर्थात् १५१४ ई० में अकबर से अब्बुलफजल का पहले पहल साक्षात् और परिचय हुआ था। उस समय अब्बुलफजल की अवस्था केवल तेईस वर्ष की थी। इतनी थोड़ी अवस्था में ही उनकी विद्या की चर्चा चारों ओर ऐसी फैल गई थी कि गुणग्राही अकबर बादशाह उनके गुणों पर मोहित हो सभासदों पर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट करने लगे। अध्यापक ब्लाकमैन ने उनके उस समय के जीवन की एक घटना का निज पुस्तक में उल्लेख किया है। उसमें उनके पांडित्य का बहुत कुछ आभास मिलता है। उन्होंने लिखा है कि किसी प्रकार एक इस्पहानी की एक अति दुष्प्राप्य हस्तलिखित पुस्तक अब्बुल-फजल के हाथ लगी। दुर्भाग्य से पुस्तक का कुछ अंश आग में जल जाने के कारण अक्षरों की ऐसी दुर्दशा हो गई थी कि उसे पढ़ना एक प्रकार असम्भव था। ऐसी दुष्प्राप्य अमूल्य पुस्तक जिसमें नष्ट न होने पावे, इस बात का अब्बुलफजल सर्वदा ध्यान रखते थे। उन्होंने उक्त पुस्तक के जले हुए अंशों को काट छाँट कर उसके प्रत्येक पृष्ठ में नया कागज चिपका दिया था। पश्चात् बार बार पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ कर वे उसके जले हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशों का उद्धार करने में भी सम्पूर्ण रूप से कृतकार्य्य हुए थे।

जिस समय अकबर शाह से उनका पहले पहल परिचय हुआ उस समय अकबर का अन्तःपुर मधु से पूर्ण मधुचक्र की भाँति नाना दिशाओं से लाई हुई राजकुलोत्पन्ना, सुन्दरियों के कंकण और नूपुर की मधुर ध्वनि से गूँज रहा था और उसकी इतिहास-प्रसिद्ध राजसभा नाना देशीय विद्वानों से अलंकृत हो रही थी। एक तो अकबर जैसा विचक्षण राजनीतिज्ञ पुरुष था वैसा ही विद्योत्साही भी था। क्या कवि, क्या धर्म्मोपदेष्टा, क्या दार्शनिक, क्या ऐतिहासिक, क्या सङ्गीत-कला-कुशल, क्या चित्रकार सभी अपनी अपनी योग्यता के अनुसार उसके निकट आदर पाते थे। इतिहास देखने से विदित होता है कि बौद्ध युग के पश्चात् भारतवर्ष की शिल्पकला, चित्रकारी, भास्कर्य्य (पत्थर के ऊपर मूर्ति बनाना) और स्थापत्य (मन्दिर, महल, पुल इत्यादि बनाना) की जैसी उन्नति उसके राजत्वकाल में हुई थी वैसी और किसी समय में नहीं हुई। इन सब बातों में अकबर की राजसभा, विक्रम की नवरत्न-सभा वा इङ्गलैण्ड की कुमारी एलीजेबिथ की सभा वा फ्रान्स के अधिपति सोलहवें लुई के दरबार वा स्पेनाधिपति दूसरे फिलिप के राजदरबार के बराबर कही जा सकती थी। अब्बुलफजल के ज्येष्ठ भ्राता सुकवि फैजी अकबर के राज्य-शासन के बारहवें वर्ष में, जब कि चित्तौर का घेरा पड़ा हुआ था, अकबर के खेमे में बुलाए गए थे। कहा जाता है कि फैजी संस्कृत के विचक्षण पंडित थे और वह प्रायः निज-लिखित १०१ पुस्तकें छोड़ कर मरे थे। अब उनमें से बहुतेरी पुस्तकें नष्ट भ्रष्ट हो गई हैं। उनके पुस्तकालय में ४३०० दुष्प्राप्य हस्त-लिखित पोथियाँ थीं!

पहले अब्बुलफजल ने शाही-दरबार में परिचित होने के हेतु विशेष आग्रह नहीं दिखाया था। उनके अग्रज फैजी बादशाह के अत्यन्त कृपापात्र थे। यदि वह चाहते तो सहज ही में अकबर से उनका परिचय करा सकते थे; किन्तु प्रतिभाशाली मनुष्य अपनी स्वाभाविक नम्रता के वशीभूत हो कर दूसरे के सामने सन्मानित होने के लिए उत्सुक नहीं होते। किसी न किसी समय मनुष्य-समाज में उनके गुणों की प्रतिष्ठा अवश्य होती है। जब अकबर ने उनको स्वयं आग्रह से अपने दरबार में बुलाया तब उस समय वह बादशाह का हुकुम न टाल सके। गुणग्राही अकबर उनको पा कर बड़े ही प्रसन्न हुए और वे सेना-विभाग के एक उच्च पद पर प्रतिष्ठित किए गए। अन्त में उन्हें अपना प्रधान-मन्त्री (वजीरे आजम) का पद दे कर उसने उनके सद्गुणों का उचित आदर किया। अब्बुलफजल उक्त पद पर प्रायः २८ वर्ष तक बने रहे। उनसे परिचित होने के समय से बादशाह ने उनके अमित गुण और पाण्डित्य पर मुग्ध होकर उनके साथ मित्रता की थी और वह मित्रता अब्बुलफजल के मृत्यु-काल तक बनी रही। अकबर के जीवनी-लेखक प्रसिद्ध ऐतिहासिक कर्नल मालेसन साहब इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि—"जिस दिन से अकबर का अब्बुलफजल से प्रथम परिचय हुआ उसी दिन से वह बादशाही दरबार की शोभा बढ़ाने लगे। अकबर और अब्बुलफजल के बीच परस्पर चरित्र के प्रति श्रद्धा और सहानुभूति से उत्पन्न विशुद्ध मित्रता के बीज दोनों के हृदय में अंकुरित हुए थे। आगे चल कर बादशाह अकबर अब्बुलफजल का एक प्रधान और प्रतिभाशाली शिष्य हो गया था। मृगया के उत्कट आनन्द, राज्यशासन की गम्भीर चिन्ता और विपुल श्रम के पश्चात् भी वह अपने श्रद्धास्पद मित्र के साथ परामर्श करने के हेतु उत्सुक रहता था। अकबर एक धर्मज्ञ मुसलमान था। मौलवी और मौलानाओं, वैदिकों और स्मृतिज्ञ पंडितों के वादाविवाद सुनने के सिवा उसका चित्त किसी और विनोद में लगता ही न था। बादशाह से सन्मानित हो कर अब्बुलफजल बहुत वर्षों तक सुख से रहे। उनकी यह प्रतिष्ठा अकबर के बहुतेरे ईर्ष्यालु सभासदों की आँखों में खटकती थी। विशे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षतः एक बात के कारण वह धर्मनिष्ठ मुसलमानों के और भी अधिक विराग-भाजन हो गए थे। ऊपर कहा जा चुका है कि अब्बुलफजल ने अपने पिता से उदार धर्म की जो शिक्षा प्राप्त की थी, सर्वदा एक साथ रहने अथवा हार्दिक श्रद्धा होने के कारण अकबर भी उनका पक्षपाती हो गया था। इसके अतिरिक्त सभी धर्म और सम्प्रदाय के श्रेष्ठ पंडित लोग उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे; इससे सम्पूर्ण धर्मों के सार या मर्म को वह भली भाँति जानता था। अकबर के उदार और पक्षपात-शून्य हृदय में धर्मान्धों का सन्मान न था, युक्ति और न्याय को वह अधिक सन्मान की दृष्टि से देखता था। कुछ दिनों में सम्पूर्ण धर्मों का सार ले कर उसने अपनी असाधारण प्रतिभा से एक और नए अपूर्व धर्म की सृष्टि की। वही उसका प्रवर्तक और प्रचारक था। वह नित्य प्रातः काल जगदीश्वर की ज्योति के छाया-स्वरूप लोक-साक्षी प्रभाकर की खुले-मैदान वन्दना करता था। सूर्य-कान्त मणि को सूर्य के सामने रख कर रूई में अग्नि उत्पन्न करता था और उस आग को अग्निहोत्रियों या पारसियों की भाँति सदा प्रज्वलित रखता था। कपूर, धूप, चन्दन इत्यादि से होम करके ललाट पर टीका लगाता था। वह अपनी राजपूत बेगमों के सन्मानार्थ हिन्दू देवी-देवताओं की भी पूजा करता था। एकादशी आदि का व्रत (उपवास) भी करता, कितने ही पर्व तिथियों में मांसाहार नहीं करता था। अकबर कभी गोमांस नहीं खाता था; प्रकाश्य स्थान में गोहत्या-कारियों को उचित दण्ड भी देता था। किसी किसी इतिहासज्ञ का कथन है कि कितने ही लोगों को उसने अपना मन्त्र-शिष्य भी बना लिया था। केवल यही क्यों, अपने को ईश्वर-प्रेरित कह कर वह उन लोगों से देवताओं की भाँति अपनी पूजा भी कराया करता था। ईश्वर और ईश्वर-प्रेरित मुहम्मद के अतिरिक्त दूसरे किसी की उपासना का नियम जिस धर्म में नहीं है उसके अनुयायियों के निकट इस भाँति का स्वेच्छाचार एक दम अक्षम्य था। इसके अति-रिक्त अकबर मुसलमान और अन्य धर्मावलम्बियों से किसी प्रकार की विभिन्नता नहीं रखता था। वह ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, जैन सब का सम्मान करता था। मुहम्मदीय धर्मशास्त्र और नीति-विशारद मुल्लाओं, मौलानाओं, हिन्दू धर्म-प्रचारक संन्यासियों व बौद्ध-श्रमणों का उसके यहाँ समान आदर था। अब्बुल-फजल ने अपने ग्रन्थ में बहुत जगह इस भाँति यहूदी और ईसाई, मुसलमान और हिन्दू-धर्मशास्त्रज्ञ पण्डितों के खुले-मैदान शास्त्रार्थ होने की बातें लिखी हैं। अक-बर के कितने ही कट्टर मुसलमान सभासद ऊपर से भले ही असन्तुष्ट न रहे हों, पर भीतर से वे लोग इस धर्म पर अत्यन्त ही अश्रद्धा रखते थे। अकबर के धर्म सम्बन्धी स्वेच्छाचार में जो लोग प्रधान-सहायक थे उन लोगों पर वे लोग बहुत क्रोध करने लगे थे। अकबर ने जिस उदार और पक्षपातशून्य राज-नैतिक भित्ति पर मुगल साम्राज्य को दृढ़तापूर्वक स्थापित किया था उसका गूढ़ मर्म इन अदूरदर्शियों की समझ में न आता था। अकबर के जीवनी-लेखकों में से बदाउनी बड़ा ही धर्मान्ध था। अकबर के किसी राजनीतिक या धार्मिक कार्य्य से वह संतुष्ट न था। अकबर क्यों ऐसा स्वेच्छाचार करने में प्रवृत्त हुआ था, इसके कुछ कारण बदाउनी ने बतलाए हैं। उसके मत में सम्राट् का यह अनुमान था कि "यदि सर्वत्र इस भाँति यथार्थ ज्ञान सहज में मिल सकता है तो जो धर्म अपेक्षाकृत आधुनिक और हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है, वही इस्लाम धर्म क्यों कर संपूर्ण रूप से सत्यपूर्ण हो सकता है। एक सम्प्रदाय जिस बात को स्वीकार करता है, दूसरे सम्प्रदायवाले उसे क्यों नहीं मानते? क्यों लोग सम्प्रदाय विशेष की श्रेष्ठता का मान करते हैं, जब कि उन्हें कहीं से श्रेष्ठता नहीं दी गई।*"

* If some true knowledge were thus everywhere to be found, why should truth be confined to one religion or to a creed. Like Islam, which is comparatively new and scarcely a thousand years old, why should one claim a preference, without having superiority conferred upon itself?

Badauni's words quoted in
Col. Malleson's Book p. 149.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो बात विवेक ग्रैार युक्ति के अनुकूल ग्रैार अमृतमय हो-उसे भी धर्मान्धता कभी स्वीकार नहीं करती। बादशाह अकबर के दरबारियों में से जो लोग अब्बुल-फज़ल ग्रैार उनके आत्मीय लोगों के प्रधान शत्रु थे, उनमें से मखदूम-उल-मुल्क ग्रैार शेख अबदुल नबी ही प्रबल थे। वे लोग सुन्नी सम्प्रदाय के नेता थे ग्रैार उस समय तक राज्य में धर्म सम्बन्धी शासनदण्ड का परिचालन करते आए थे। उन लोगों की अत्यधिक अहम्मति ग्रैार असह्य धर्मान्धता से ही अकबर को एक नवीन धर्मसम्प्रदाय के संगठन की आवश्यकता हुई थी। विशेषतः उनके प्रधान धर्माधिकारी की आज्ञा से राज्य में शिया सम्प्रदायवालों ग्रैार अन्य धर्मावलम्बियों पर जो अत्याचार हुआ करते थे उन्हीं के कारण समदर्शी सम्राट् बहुत मर्माहित हुए थे। इसी लिए उन्होंने उस अन्यान्यपूर्ण धर्मान्धता को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए कमर कसी थी। बिहार से लैाटने के पश्चात् वह प्रति वृहस्पतिवार को निज इतिहास प्रसिद्ध सन्ध्या-कालीन तर्क-सभा का अधिवेशन करते थे। उस सभा में समस्त धर्म-सम्प्रदायों के पण्डित लोग अपने अपने धर्मशास्त्रों के जटिल अर्थों की मीमांसा करने के हेतु उपस्थित होते थे। अध्यापक ब्लाकमैन कहते हैं कि फतेहपुर सीकरी की इस सभा में ही अकबर ने अपनी हिन्दू प्रजाग्रों की मर्य्यादा समझी थी। धर्म व जाति के विषय में निरपेक्ष ग्रैार सार्वजनीन उदारता की भित्ति पर रहनेवाली राज्यशासन की महिमा वहीं उन्होंने हृदयङ्गम की थी। इसी से उन्हें उक्त सभा के संगठन की आवश्यकता हुई थी। अकबर का कथन था कि धर्म विषयक जो सन्देह उपस्थित होंगे उनकी मीमांसा इसी सभा में हुआ करेगी। अकबर के धर्म-मत की विस्तृत आलोचना करना यहाँ पर अप्रासंगिक होगा, तथापि संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि उक्त सभा में छोटे मोटे विषयों से ले कर क्रम से बड़े बड़े विषयों पर विचार ग्रैार यहाँ तक कि मुहम्मद के चरित्र की आलोचना तक होती थी। बादशाह ने अब्बुलफजल को ही अपने पक्ष का नेता ग्रैार मध्यस्थ बनाया था। चतुर अब्बुलफज़ल भी धर्ममत के भिन्न भिन्न तर्कों को एक एक कर के उपस्थित करते थे। एक दिन उन्होंने उस सभा में प्रस्ताव किया कि जब राजा सम्पूर्ण पार्थिव विषयों का अधिनेता है तब उसे धर्म सम्बन्धी शासन-भार क्यों नहीं दिया जाता? ब्लाकमैन साहब कहते हैं कि इस प्रस्ताव से बढ़ कर मुसलमानी धर्म ग्रैार विश्वास का मूलोच्छेद करनेवाली ग्रैार कोई बात नहीं हो सकती। कारण यह कि उक्त धर्म का अनुशासन उसके सभी अनुयायियों के लिए शिरोधार्य्य होना चाहिए। कोई इसे अतिक्रमण वा उसकी समालोचना नहीं कर सकता। उसके अनुसार धर्म कभी राज्यशासन के अधीन नहीं रह सकता। राजा ही संपूर्ण रूप से धर्मानुशासन के अधीन है, क्योंकि राजा धर्म की रक्षा तथा पालन करनेवाला होता है, न कि बनानेवाला। अलाउद्दीन खिलजी आदि बादशाहों ने कभी कभी आवश्यकतानुसार कुरान की आज्ञा के विरुद्ध एकाध व्यवस्था चलाने की चेष्टा की थी, परन्तु धर्म को इस भाँति अनुशासन से विभिन्न कर के उसे मुल्लाग्रों के हाथ से छीनने में वे कभी सफल नहीं हो सके थे। अतः चार वर्ष के पीछे अर्थात् १५६८ ई० (९८६ रजब) में अब्बुलफजल ने जब उक्त प्रस्ताव एक वृहस्पति की सभा में उपस्थित किया तब मानो प्रतिवाद की झड़ी लग गई। अब तक उस सभा में इस्लाम धर्म के प्रचारकों के जीवन के किसी अंश पर विचार व अन्य सम्प्रदाय के मतामत की अलोचना ही होती थी, पर अब उक्त धर्म के मूलनिहित सत्य पर भी विचार होने लगा। जिस सुन्नी सम्प्रदाय की अब तक धर्म सम्बन्धी प्रधानता बनी हुई थी उसके अनुयाइयों ने देखा कि गत चार वर्षों से इसलाम धर्म की सुदृढ़ ग्रैार भली भाँति जमी हुई नींव में लोना लग रहा है। कर्नल मालेसन कहते हैं कि बदाउनी के ग्रन्थ से पहले जो कुछ लिखा गया है उससे अकबर के उस समय के धर्म मत के सम्बन्ध में उनकी मानसिक अवस्था का कुछ कुछ पता लगता है ग्रैार सम्राट् की सार्वभैाम उदारता का कुछ कुछ परिचय मिलता है। (शेष आगे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरार और हिन्दी।

[लेखक,—श्रीयुक्त देवीप्रसाद जी।]



जो महाशय हिन्दी भाषा को सारे हिन्दुस्तान और संपूर्ण हिन्दुओं की मातृभाषा ख्याल करते हैं, वे मेरी इस 'रामकहानी' को ध्यान दे कर सुनें। मैं दो ढाई महीने से एक इतिहास-संबंधी काम के लिए सफर कर रहा हूँ। मालवा और नीमाड़ तक तो मैंने देखा कि हिन्दू लोग हिन्दी बोलते हैं। मुसलमानों का इसमें जिक्र नहीं, क्योंकि वे तो सभी जगह हिन्दी और उनमें पढ़े लिखे लोग उर्दू बोलते हैं। यहाँ मेरा प्रयोजन हिन्दुओं से है इसलिए मैं उन्हीं की बोली की बाबत कहता हूँ।

दक्खिन में बुरहानपुर हिन्दी और मराठी बोली का सीमा प्रांत है। यहाँ के जो हिन्दू मराठे नहीं हैं और जिनको मराठे लोग राँगड़े कहते हैं, वे हिन्दी बोलते हैं और उनकी हिन्दी के कुछ नमूने भी मैं पाठकों की सेवा में उपस्थित करता हूँ।

मैं वहाँ तेलियों की बाड़ी में ठहरा था। वहाँ एक पानी का नल था जो रात दिन कभी बन्द न होता था। इसलिए उसमें नहाने-धोने, पानी पीने और भरने को बहुत लोग आते थे और कोई कोई स्वार्थी मनुष्य उसकी टोंटी खुली भी छोड़ देते थे। एक दिन मैंने कई लड़कों को यह कहते सुना कि "टोंटी तो कोई और खोल गया बिचारी भोली ढाली बामनी का नाम हो गया कि वह टोंटी खुली छोड़ गई।"

मैंने ख्याल किया कि ये लड़के मुसलमान होंगे क्योंकि बे-पढ़े मुसलमान, उनकी स्त्रियाँ और उनके लड़के बाले प्रायः ऐसी ही हिन्दी बोला करते हैं। मगर फिर सोचा कि मुसलमान नहीं हिन्दू हैं; मुसलमान होते तो 'भोली ढाली' न कह कर 'भोली भाली' कहते, दूसरे 'बामनी' के वास्ते उनको इतना तरस भी न आता। मैं अपना सन्देह मिटाने के लिए उनके पास गया तो वे लँगोट कसे नहा रहे थे जिससे उनकी जाति पूछनी पड़ी; क्योंकि वे धोती और पाजामा नहीं पहने थे जो कि इस तरफ हिन्दू-मुसलमानों की पहचान है। उन्होंने अपनी जाति राजपूत, सुनार, कायस्थ और ब्राह्मण बताई जिससे उनका हिन्दू होना विदित हो कर अचम्भा सा हुआ कि हिन्दी के सीमा प्रदेश के हिन्दू कैसी सीधी और सरल हिन्दी बोलते हैं।

अब आगे बीती सुनिए। बुरहानपुर से हम खामगाँव और खामगाँव से महकर गए। वहाँ जो शामत आई तो लोनार के पुराने पौराणिक तीर्थों और देवस्थानों के बखान सुन कर जी लहराया और वहाँ कुछ ऐतिहासिक छत्रियाँ भी बताई गई थीं जिनकी हमको तलाश थी। हमने एक बैलगाड़ी भाड़े पर की और पहर रात गए महकर से चल पड़े। सड़क नहीं थी। मेह बरस रहा था। रास्ते में कीचड़-पानी था। चाँद बादलों में छिपा हुआ था। ठण्ढी हवा चल रही थी। इन सब पर तुर्रा यह कि हमारा गाड़ीवाला मराठा था, वह हिन्दी नहीं जानता था। और न हम ही उसकी बोली समझते थे। आधी रात तक दो कोस गए होंगे कि उसने अचानक रास्ता छोड़ कर बैलों को मोड़ा और एक ऊजड़ जङ्गल की तरफ हाँकना शुरू किया। उससे बहुतेरा सिर मारा कि "तू जाता कहाँ है? रास्ता तो उधर रह गया?" मगर वह एक न सुनता था।

कोई आध कोस चल कर दूर से बाजे की आवाज आई और कुछ उजाला भी दिखाई दिया। उसने वहाँ पहुँच कर गाड़ी छोड़ दी और बैलों को एक खूँटे से बाँध कर वह उस भीड़ में अदीठ हो गया।

अब हम हैरान हुए कि कहाँ जाते थे और कहाँ आ गए। क्या यही लोनार है? वह तो महकर से आठ कोस पर बताया जाता था। क्या इधर के कोस इतने छोटे हैं? हम तो अपने दिल में इधर यह उधेड़बुन कर रहे थे, उधर वे लोग भी चौंके कि ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन हैं और कहाँ से आ गए। वे बाजा बन्द कर के हमारी गाड़ी के इर्द गिर्द हो गए एवं अपनी अनगढ़ बोली में कुछ बकवाद करने लगे। मैंने इशारे से पूछा कि यहाँ क्या हो रहा है और हमारा गाड़ीवाला कहाँ गया? इसके जवाब में उन्होंने जो कुछ कहा उसमें 'लग्न' शब्द से हम यह समझे कि यहाँ विवाह है और यह भीड़ बरात की है। इस बरात में महकर के दो एक मुसलमान भी थे। एक ने हमारे पास आ कर बड़ी मीठी हिन्दी बोली में पहले तो हमारा हाल पूछा और फिर उस मराठे गाड़ीवाले के सम्बन्ध में कहा कि "वह जाति का कुनबी है और यह गाँव भी कुनबियों का है, आज यहाँ शादी है, आपका गाड़ीवाला भी उसी में जा मिला है। मैं पहिचानता नहीं हूँ नहीं तो उसे पकड़ लाता। यह मराठे हमसे बहुत डरते हैं, पिटे बगैर काम नहीं देते। यह इनकी खासियत है। आप नए हैं इसलिए आपको छोड़ कर चला गया है। अब देखिए कब तक आपको उसका रास्ता देखना पड़े।"

इतना कह कर वह तो चला गया क्योंकि वह ताशेवाला था, उसे ताशे बजाने थे। और सब लोग भी जा कर जमीन पर बैठ गए। गाना होने लगा। हमारे एक साथी गाने के भी रसिया थे। समझ में तो कुछ भी नहीं आता था तो भी 'अहा हा' करते हुए उस मूर्ख-मण्डली में जा विराजे। अब वह गाड़ीवान आया और बैलों को भी खोल कर ले गया। मैंने अपने साथ के एक राजपूत को दौड़ाया कि जहाँ वह जाय उसे वहाँ से पकड़ लाओ। अब गाड़ी पर मैं अकेला रह गया। चपरासी नीचे बैठा बैठा पहले ही सो गया था।

कुछ देर पीछे नङ्गे सिरवाली मिस्सी लगाए हुए काली काली मराठिनें जिनकी टाँगें नङ्गी ही थीं, गाड़ी के पास हो कर निकलीं। मैंने उनको देख कर अपने दिल में कहा कि 'इब्नबतोता' जो अपने अरबी 'सफ़र नामे' में मराठिनों को हिन्दुस्तान भर की महिलाओं से अच्छी बताता है क्या यह वे ही मराठिनें हैं? या इनकी भी इस कलिकाल में कुछ काया पलट हो गई है? खैर मैंने उनमें से एक मराठिन से पूछा कि "यहाँ कोई मारवाड़ी भी है?" वह न जानें क्यों मारवाड़ी का नाम सुन कर हँसी और एक आदमी की तरफ़ उँगली उठा कर बोली कि "ते मारवाड़ी चाँगला मारवाड़ी।" वह मारवाड़ी भी मानों उसकी बोली पर लगा हुआ था; सीधा मेरे पास आया और बोला—"आप कहाँ रहते हैं?" मैंने अपना हाल बताया तो उसने कहा—"मैं उसको जानता हूँ। बोराखेड़ी का कुनबी है। बरात उसी की जाति की है। यहाँ रोटी खा कर बैलों को चराने अपने गाँव में गया है। अभी आ जायगा।"

थोड़ी देर तक उसके साथ बातचीत करने के अनन्तर मुझे नींद आ गई। पिछली रात को कुछ गड़बड़ होने से मेरी आँख खुल गई। देखता क्या हूँ कि वही मारवाड़ी गाड़ी हाँक रहा है और वह मराठा पीछे दौड़ रहा है। अब हमारे आदमी उसको ख़ूब धमकाते हैं और वह "बड़े मियाँ, बड़े मियाँ" कह रहा है।

मैंने उससे कहा कि,—"तुमने बहुत मिहनत और मेहरबानी की। अब इसको गाड़ी पर बैठने दो, अब यह सीधा हो गया है और इससे कह दो कि गाड़ी तड़के ही लोनार पहुँचा दे।"

चाँद उस वक्त तक निकला हुआ था क्योंकि पूनो की रात थी। मैं अपने दिल में कहता था कि रात तो यों कटी, देखिए दिन कैसे कटता है और किन किन मराठों से पाला पड़ता है? परन्तु ऐसा नहीं हुआ क्योंकि यहाँ मारवाड़ी बहुत थे। पुलिस के अफ़सर एक मुसलमान सज्जन थे। उन्होंने साथ चल कर आबा साहब नामक एक विद्वान् मराठे ब्राह्मण से मिलाया। वह हिन्दी बोलना जानते थे। इन दोनों भलेमानसों ने मुझे तीर्थ और मन्दिर दिखाए। आबा साहब ने सब का हाल कहा और मुझको बहुत अनुगृहीत किया। मुझे औरंगाबाद जाना था। रेल वहाँ से २५ कोस जालने में थी। दो तीन दिन और बैलगाड़ी में जाना होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये मैंने एक मारवाड़ी की गाड़ी भाड़े पर की।

बरार में मारवाड़ी बहुत हैं और उनके आश्रित ब्राह्मण भी। वे वहाँ आपस में मारवाड़ी और मराठों से मराठी बोलते हैं। हिन्दी की न उनको पहले परवा थी और न अब है। उन्हें केवल अपने व्याज-बट्टे से काम है जो वहाँ मारवाड़ से दूना डयोढ़ा मिलता है। बरार में हिन्दी की ढोल पीटनेवाले तो मुसलमान ही हैं और कमनसीबी से वे ही आजकल के सुलेखकों के क्लिष्ट और कष्टसाध्य लेखों में बदनाम हैं और थोड़े उर्दू बोलनेवाले और उर्दू के पक्षपाती उसी कैंडे के मुसलमानों के लेखों को देख कर वे सुलेखक महोदय सारे मुसलमानों पर हिन्दी के द्वेषी होने का दोष लगाते हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। मुसलमान यदि हिन्दी के द्वेषी होते तो ऐसे देशों में जहाँ की बोली हिन्दी नहीं है, हिन्दी न फैलाते। इन देशों में हिन्दी मुसलमानों ने फैलाई है, हिन्दुओं ने नहीं फैलाई। मुसलमान दिल्ली से उठ कर जिन जिन देशों को फतह करते गए वहीं अपने साथ हिन्दी भी लेते गए।

मारवाड़ी कहते हैं कि हमारे बाप दादे जब पहले-पहल बरार, तैलंग और मदरास वगैरा में व्यापार करने आए थे तो मुसलमानों से हिन्दी में बातचीत करके रास्ता चलते थे और अपना काम चलाते थे। जिस गाँव में मुसलमान नहीं मिलते थे वहाँ उनको उधर की भाषा समझने में बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़ती थी।

अब जो महाशय हिन्दी को सारे हिन्दुस्तान की भाषा बनाना चाहते हैं वे पहले यहाँ पधार कर मराठी सीखें और मराठों को हिन्दी सिखा कर उनके द्वारा हिन्दी का प्रचार करें। इसमें उनको मुसलमानों से बहुत मदद मिलेगी, क्योंकि यहाँ सरकारी दफ्तर मराठी में हैं और मराठी मोड़ी अक्षरों में लिखी जाती है या बालबोधी में। मुसलमान भी बहुधा हिन्दी उसी लिपि में लिखते और पढ़ते हैं क्योंकि उर्दू लिपि का यहाँ प्रचार नहीं है।

इसके सिवा एक बात यह भी सुभीते की है कि बरार अब मध्य प्रदेश में जोड़ा गया है जहाँ हिन्दी और नागरी लिपि के दफ़तर हैं और जहाँ के कानून और गजट हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों में छप कर बरार में आते हैं। नौकरी और कानूनी पेशा करनेवाले मराठों को वही पढ़ने पड़ते हैं। इस प्रसंग से बरार के प्रत्येक प्रांत और शहर तथा कसबे में दो चार, दस बीस मराठे हिन्दी जाननेवाले मिल सकते हैं।

इन सब बातों से इस प्रान्त में हिन्दी के जल्द फैल जाने की आशा है। पर इसके वास्ते पहले कुछ निःस्वार्थ हिन्दी-हितैषियों का यहाँ आना, रहना और प्रयत्न करना जरूरी है। दूर बैठे हुए लेखों और लेक्चरों के थोथे बाण फेंकने से कुछ होना नहीं है।

दूसरी बात हमारे सौभाग्य की यह भी है कि बरार की तरफ तो मध्यप्रदेश में हिन्दी और उधर दूसरी तरफ निजाम-राज्य में उर्दू दफतर हैं। हिन्दी और उर्दू बोली में लिपि के सिवा और कोई भेद नहीं है। इन दोनों तरफ के हिन्दी-हितैषियों के मेल-जोल और यत्न से बरार में हिन्दी अच्छी तरह फैल सकती है।

इस मराठे देश में हिन्दी फैलाने से हमारी यह मनसा नहीं है कि यहाँ से मराठी उठ जाय और न वह हमारे उठाए उठ ही सकती है। हाँ, इतना जरूर चाहते हैं कि जिन देशों में अब तक हिन्दी का प्रवेश नहीं हुआ है, उनमें सर्व साधारण के हित और देशी परदेशी लोगों के सुभीते के लिए हिन्दी का लिखना पढ़ना और बोलना भी चल निकले।

अन्त में हम अपने मारवाड़ी बनिए भाइयों से भी माफी माँग कर प्रार्थना करते हैं कि अगर उनको अपने बढ़े हुए व्यापार के कामों की भरमार से हिन्दी में अधिक समय लगाने का अवकाश न हो तो इतना वे ज़रूर करें कि अपने बही-खाते, हुण्डी-पुरजे, चिट्ठी-पत्री और बीजक आदि सब हिन्दी भाषा और नागरी लिपि में लिखा और लिखाया करें। उनकी इस सहायता से हिन्दी लक्ष्मी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रूप धारण कर के उनके भांडारों को अपने हितैषियों के आशीर्वादों से भर देगी ।

—:o:—

"पैवंद और कलम" ।

(लेखक—श्रीयुत गंगाशंकर पंचोली, भरतपुर ।)



गरीप्रचारिणी पत्रिका के पृष्ठ ३१३ में श्रीयुत हरिप्रसादजी पालधि महाशय बी० ए० की 'पैवन्द और कलम' शीर्षक लेख की समालोचना और टीका पढ़ी । टीका अच्छी है। विषय बहुत बड़ा है; इसी विषय पर बड़ी बड़ी पुस्तकें हैं और यदि भाषा में लिखा जाय तो एक अच्छा ग्रंथ लिखा जा सकता है । पर 'पैवन्द और कलम" का लेख केवल मैट्रिक में कृषि-विद्या के छात्रों को सिद्धान्त का दिग्दर्शन मात्र कराने के लिए लिखा है ।

वनस्पति शास्त्र में वनस्पति जाति के कई वर्ग नियत किए गए हैं और वनस्पतियों को वर्ग में नियत करने में उनके लक्षण भी दिए हैं । इन वर्गों में फिर अवान्तर भेद वा जातियां नियत हैं जिनका वर्णन वनस्पति शास्त्र (बोटानी) में दिया गया हैं । कृषि-विद्या के वेत्ता 'बागायत' के कर्ता तथा 'खेडुत' मासिकपत्र के तन्त्री महोदय ने तथा अँगरेजी विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि एक पेड़ की आँख चाहे जिस पेड़ पर नहीं चढ़ाई जा सकती; पर जिन पेड़ों में निकट का सम्बन्ध हो अर्थात् जो पेड़ वनस्पतिशास्त्र के नियमानुसार एक कुल के हों उनमें ही आँख चढ़ सकती है । उदाहरण के लिए नारंगी की आँख व कलम नीबू, चकोतरे, मीठे ज़ंबीरी आदि पर चढ़ सकती है पर नारंगी की आँख गुलाब पर नहीं चढ़ सकती । यह क्रिया द्विदल पौधों अर्थात् उन पौधों में हो सकती है जिनमें बीज के अंकुरित होने पर दो पत्ते पहले निकलते हैं और पत्तों की नसें आड़ी तिरछी होती हैं और लकड़ी एक सी होती है । आँख चढ़ाने से एक पेड़ पर दूसरी जाति के फल फूल हो सकते हैं । संतरे के पेड़ पर नीबू आदि की आँख चढ़ाने से नई रीति के संतरे नीबू आदि और एक गुलाब पर उसी जाति के दूसरे पेड़ की आँख चढ़ाने से तीसरी तरह के फूल हो सकते हैं ।

आँख वा कलम चढ़ाने की क्रिया ऐसी ऋतु में की जाती है जब पेड़ में रस जड़ों से ऊपर फुनगी की ओर चढ़ता रहता है वा जब आँख काटने में छाल पेड़ से चिपटी न हो और आँख उखाड़ने पर टूटी हुई निकले । उसी ऋतु को अनुभवी माली आँख वा कलम चढ़ाने के लिए उपयोगी समझते हैं । एसिस्टेंट डाइरेक्टर साहब राय बहादुर जोशी महोदय ने सन्तरों की आँख वा कलम चढ़ाने की रीति वर्णन करने में स्पष्ट लिखा है कि संतरे के पेड़ बीज से नहीं होते बल्कि आँख वा कलम चढ़ाने से होते हैं और थड़ अर्थात् कलम चढ़ाए जानेवाले पेड़ का प्रभाव कलम पर भी होता है । मीठे पर जब कलम चढ़ाई जाती है तो उससे उत्पन्न फल की छाल चिपटी रहती है और जंबीरी पर चढ़ाई हुई कलम से उत्पन्न फल की छाल ढीली हो जाती है । जंबीरी पर की कलम से फल की फसल शीघ्र प्रारम्भ हो जाती है और बहुत दिनों तक रहती है और मीठे पर चढ़ाई हुई आँख वा कलम से उत्पन्न फल अधिक मीठे होते हैं और छिलका भी पतला होता है । इस लेख से भी स्पष्ट है कि कलम चढ़ाने से कलम के पेड़ के फल के रूप और गुण का ही फल नहीं होता बल्कि उस पेड़ का भी प्रभाव अवश्य पड़ता है जिस पर कलम चढ़ाई गई है । ठीक इसी नियम के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि देशी आम के पेड़ पर यदि कलमी मालदह या लँगड़े आम की कलम चढ़ाई जाय तो वह फल कलमी, मालदह या लँगड़ा नहीं होगा बल्कि उसमें असली पेड़ देसी आम का भी प्रभाव अवश्य रहेगा और इसी लिए नया फल दोनों के गुण और रूप का मिश्रण एक नया फल होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ इतना अवश्य है कि धड़वाले ग्रैर कलमवाले वृक्ष में जो बलिष्ठ होता है उसके गुण नए फल में भी प्रधानता को पहुँच जाते हैं ग्रैर असली पेड़ के गुण तो रहते ही हैं। यदि कलम चढ़े पेड़ से फल ले कर उसके बीज से नया वृक्ष उत्पन्न किया जाय ग्रैर उस नए पेड़ पर पुनः असली कलमवाले पेड़ की आँख व कलम चढ़ाई जाय ग्रैर फिर उससे नया वृक्ष उत्पन्न कर उसी असली पेड़ से आँख व कलम चढ़ाई जाय तो इस प्रकार दो तीन बार करने से नए कलम चढ़े पेड़ पर असली पेड़ के फल के अनुसार ही रूप ग्रैर गुण के फल उत्पन्न हो सकते हैं।

फल देनेवाले पेड़ में पुष्प भी अवश्य होता है ग्रैर मधुमक्षिका सब फूलों पर बैठ सकती हैं, पवन भी सब फूलों को लग कर चलता ही है ग्रैर एक पेड़ के फूल का पुंपराग दूसरे पेड़ के पुष्प के स्त्री-रज से स्पर्श करता ही है; पर इस स्पर्श का फल उसी समय होता है जब पुंपराग ग्रैर रज दोनों समान जाति के होते हैं ग्रैर उस संयोग से जो फल उत्पन्न होता है वह दोनों के मिश्र गुण ग्रैर स्वभाव का होता है। सुना है कि कानपुर के सरकारी फार्म में जुदा जुदा स्थल के गेहूँ के वृक्ष बो कर उनके पुंपराग को दूसरे सजातीय पेड़ के रज से मिलाने से असली गेहूँ से जुदा गुण ग्रैर स्वभाव के गेहूँ उत्पन्न किए गए हैं। इसी प्रकार देसी, सूरती, मिस्री आदि कपास के पेड़ों में एक दूसरे के पुंपराग ग्रैर रज का संयोग करने से जुदा जुदा गुण ग्रैर स्वभाव की कपास उत्पन्न की गई है। ठीक इसी प्रकार एक जाति के आम के पुंपराग का संयोग दूसरे भेद के आम के रज से कराने से दोनों के मिश्र गुणवाला फल प्राप्त हो सकता है।

जैसा कि टीकाकार महोदय का कथन है यह विषय बड़ा उपयोगी है। इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है ग्रैर क्रम क्रम से अवकाशानुसार लिखा भी जायगा। टीकाकार महोदय यदि आगे अधिक लिखें तो इससे अधिक उत्तम ग्रैर क्या होगा। उनके लेख से इस विषय में ग्रैर अधिक जानकारी बढ़ेगी इसलिए उक्त महोदय को उचित है कि वे आगे भी इस विषय में बराबर लिखते रहें।

—:०:—

कृषि-विद्या।

[लेखक—श्रीयुक्त गंगाशंकर पंचोली, हेड मास्टर, हाई स्कूल, भरतपुर।]

(पृष्ठ १९० से आगे)

खली दो प्रकार की होती है। एक वह जो ढोरों को खिलाई नहीं जाती ग्रैर दूसरी वह जो ढोरों को खिलाई जाती है। पहले प्रकार में रेंडी, करञ्ज, महुए आदि की खलियां हैं। इन खलियों को ही खेत में देना चाहिए। रेंड़ी में खली बहुत होती है। वह खली काली ग्रैर सफेद दो रंगों की होती है। काली खली छिलके सहित रेंडी को पेरने से बनती है ग्रैर वह सफेद खली की अपेक्षा कमजोर होती है। रेंडी के चोरों पर का छिलका उतार कर जब तेल निकाला जाता है तब सफेद खली होती है। इस खली में ४ से ६ भाग प्रति सैंकड़ा 'नाइट्रोजन' होता है ग्रैर प्रति एकड़ १३५ मन के अनुमान खाद के लिए चाहिए। यदि पशुमूत्र की खाद बीस पच्चीस मन दे कर इस खली की खाद दी जाय तो ४० वा ४५ मन काफी होती है। करञ्जखली भी इसी प्रकार खाद में दी जाती है।

जो खलियां ढोरों को खिलाई जाती हैं उनमें बिनौलों की खली सब से अच्छी है। इसमें ३ से ४ भाग प्रति सैंकड़ा 'नाइट्रोजन' होता है। जब यह खली बिगड़ जाती है या उस पर पपड़ी आ जाती है तो वह ढोरों के काम की नहीं रहती ग्रैर खाद में दी जाती है। मूँगफली की खली में प्रति सैंकड़ा ६ वा ७ भाग 'नाइट्रोजन' होता है। इस खली के खानेवाले ढोर के गोबर की खाद में विशेष गुण रहते हैं। जब यह खली बहुत समय तक रख छोड़ने से बिगड़ जाय तो खाद के काम में लाई जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिल, सरसों और अलसी की फलियाँ ऊपर की रीति से ही काम में आती हैं।

मनुष्य के मलमूत्र की खाद—प्राणि-जन्य खादों में जैसे पशु के मलमूत्र की खाद पौधों को पुष्टि देनेवाले पदार्थों से भरी हुई है वैसे ही मनुष्य के मलमूत्र की खाद भी उपयोगी और श्रेष्ठ है। परन्तु इस खाद का पूरा उपयोग इस देश में अभी नहीं होता। बड़े बड़े शहरों में जहाँ सफाई के महकमे हैं वहाँ भङ्गी मैले को शहर से बाहर ले जा कर गड्ढों में गाड़ते हैं। किसी किसी शहर में सफाई के मुहकमे की ओर से मनुष्यों के मलमूत्रों से खाद बना कर किसानों के हाथ बेची जाती है और कहीं कहीं शहर से बाहर खेतों में नालियां खुदवा कर उसे गाड़ भी देते हैं और उसके सड़ कर धरती में मिल जाने पर खेती कराते हैं जिससे उन खेतों की हैसियत बहुत बढ़ जाती है। परन्तु छोटे छोटे कसबों या गाँवों की व्यवस्था ही जुदा है। उन स्थानों में प्रायः मनुष्य गांव के बाहर मल-त्याग को जाते हैं और उनका मलमूत्र वहीं पड़ा पड़ा सूख जाता है। यदि वे घर पर भी मलमूत्र त्यागते हैं तो भङ्गी कमा कर ले जाते हैं और गांव के बाहर गड्ढे आदि में डाल देते हैं और वहाँ वह सूख जाता है। मूत्र तो जहां धरती पर पड़ता है वहीं सूख जाता है।

मनुष्य के मल में साधारण रीति से पौन भाग जल का होता है। मल के सूखे भाग में १०० हिस्सों में १½ 'नाइट्रोजन' और १ हिस्सा 'फास्फरिक एसिड' होता है। फलदायक तत्त्वों को हानि न पहुँचे ऐसी रीति से यदि विष्ठा सुखाई जा सके तो एक अत्युत्तम खाद बन सकती है। बिलकुल सूखी विष्ठा की दो मन खाद पशुओं की खाद के एक मन के बराबर गुणवाली होती है। मूत्र की खाद इस से भी अधिक गुणवाली है; क्योंकि मूत्र के भीतर 'नाइट्रोजन' वाले पदार्थ 'यूरिया' 'यूरिक एसिड,' 'हियुरिक एसिड' आदि अधिकता से होते हैं। 'यूरिया' में सौ भाग में ५० भाग और 'यूरिक एसिड' में ३३ भाग 'नाइट्रोजन' होता है और मूत्र में 'फास्फरिक एसिड' भी रहता है। मूत्र का इकट्ठा होना ही कठिन काम है और उसमें का जल भाग सुखाना भी सहज नहीं है। यदि वह इकट्ठा किया जाता है तो सड़ने लगता है और उसमें के उपयोगी पदार्थ वायु में मिल जाते हैं। यह मल की अपेक्षा श्रेष्ठ खाद है। मलमूत्र की खाद कई रीति से बनाई जाती है। विष्ठा की खाद बनाने के समय उसमें राख, चूना, कोयले का चूरा आदि मिलाते हैं और ऐसी खाद को 'पूड्रेट' कहते हैं। इसमें कहीं सूखी और जली हुई मिट्टी भी मिलाते हैं। यह 'पूड्रेट' नाम की विष्ठा की सूखी खाद कई रीति से बनाते हैं,—१—संडास या पाखाने में मलमूत्र पर मिट्टी इतनी डाले कि उनमें का जलभाग मिट्टी सोख जाय और फिर उसको एक गड्ढे में दबा दे। जब दुर्गन्ध बन्द हो जाय तब काम में लावे। इस रीति से एक मनुष्य के दिन भर के मलमूत्र के लिए २ सेर से ५ सेर तक मिट्टी धूल चाहिए।

२—कसबे वा गांव की राख वा कूड़ा करकट तथा पेशाब करने के स्थान की मिट्टी विष्ठा के संग मिला कर दबा के गाड़ दे और तीन या चार वर्ष के पीछे निकाल कर खेत में खाद के काम में लावे।

३—फ्रांस देश में 'पूड्रेट' इस प्रकार बनाते हैं—जितना मूत्र हो उससे दुगुना कलई चूना बिना बुझा ले कर उसे मूत्र छिड़क कर बुझाते हैं। पीछे अढ़ाई भाग यह बुझा हुआ चूना और दो भाग विष्ठा मिला कर खाद के काम में लाते हैं। पूना में जिस प्रकार यह 'पूड्रेट' खाद बनाते हैं वह प्रकार 'खाद' नामक निबन्ध में दिया गया है। यह 'पूड्रेट' खाद बहुत कसवाली होती है और पीत की फसल ईख, गिनी घास, शाक भाजी आदि में दी जाती है। इस खाद से पत्ते अधिक निकलते हैं इसलिए फलवाले पेड़ों तथा अनाज के लिए यह विशेष उपयोगी नहीं। यह खाद एक एकड़ धरती में १५ गाड़ी और ईख में ८० गाड़ी तक दी जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनामा-प्रदर्शिनी।

[श्रीयुक्त लाला लाजपतराय द्वारा वर्णित।]

वक्तव्य।



मेरिका के आविष्कार, लोगों के वहाँ जा कर बसने और गत कई सौ वर्षों में होनेवाली वहाँ की उन्नति का इतिहास, बड़ा ही विलक्षण है। युरोपवाले, कुछ समय पूर्व, समझते थे कि भारतवर्ष बड़ा धनी देश है और यदि किसी प्रकार वहाँ का समुद्र-मार्ग मिल जाय तो हमारा देश भी उसके सम्बन्ध से बहुत धनी हो जाय। इसी विचार से भारत का समुद्र-मार्ग ढूँढ निकालने के लिए कोलम्बस चला और भूलता भटकता तथा अनेक कष्ट सहता हुआ संयोगवश अमेरिका के तट पर जा पहुँचा। अमेरिका के इस आविष्कार के सम्बन्ध में एक विद्वान् कहता है—"पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में युरोप में संसार के आकार आदि और भूगोल के सम्बन्ध में जो भ्रम फैला हुआ था, उसी के कारण अमेरिका का आविष्कार हुआ। जेनेवा का एक नाविक (कोलंबस) तीन टूटे फूटे जहाज ले कर भारत और चीन का समुद्र-मार्ग ढूँढ़ने के लिए पश्चिम की ओर चल पड़ा। उसका और उसके साथियों का वास्तविक उद्देश्य यह था कि वे एशिया के साथ व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करें।" लगभग एक शताब्दी तक उन्हें अपने आविष्कृत देश के आकार और लम्बाई चौड़ाई आदि का कुछ भी ज्ञान न था। बहुत से लोगों ने समझा कि क्यूबा का दक्षिणी भाग ही एशिया था। बहुत दिनों तक उनका यह अनुमान रहा कि मिसीसिपी नदी के उस पार एशिया है। उन लोगों ने सुन रखा था कि एशिया में हीरों की नदियाँ बहती हैं, मोतियों और दूसरे जवाहिरात के पेड़ उगते हैं और अमृत मिलता है जिसे पी कर मनुष्य सदा युवा बना रहता है। जिन लोगों ने अमेरिका का आविष्कार किया था उन्हें तो कोई धन-सम्पत्ति नहीं मिली; पर हाँ, जो लोग पीछे से वहाँ जा कर बस गए थे उन्होंने अवश्य वहाँ की नदियों को "हीरे की नदियाँ" बना कर वहाँ के पेड़ों पर मोती और पन्ने आदि उगाए। उन्होंने वहाँ के अधिकांश आदिम निवासियों को जिन्हें वे "इण्डियन" कहते थे नष्टप्राय कर दिया था।

आजकल अमेरिका बड़ा ही धनवान् और सम्पन्न देश माना जाता है। वहाँ बहुत बढ़िया बढ़िया प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं, अत्यन्त उपजाऊ अनन्त भूमि मिलती है और खनिज पदार्थों के अमिट उद्गम पाए जाते हैं। तरह तरह के सुन्दर फलों, फूलों और वनस्पतियों तथा पशुओं पक्षियों में वह देश संसार के किसी सर्वोत्तम देश से कम नहीं है। वहाँ के निवासियों ने अपनी विलक्षण बुद्धि और कौशल की सहायता से धन-प्राप्ति के साधन हजार गुने बढ़ा लिए हैं। वह देश गोरी जातियों की बुद्धिमत्ता, योग्यता और कर्मशीलता का अटल स्मृति-चिह्न बन गया है। काले आदमियों ने भी उस देश को सम्पन्न और उन्नत बनाने में बहुत कुछ सहायता दी है; पर उनका परिश्रम गौण है।

आविष्कार के समय अमेरिका की दशा बहुत कुछ एशिया के समान ही थी। वहाँ की प्राचीन सभ्यता भी अधिकांश में एशिया की सभ्यता से ही मिलती जुलती थी। वहाँ के आदिम निवासियों के आचार, विचार, व्यवहार और धार्मिक विश्वास आदि एशियावालों से ही अधिक मिलते जुलते थे, युरोपवालों से नहीं। मध्य अमेरिका में पुरातत्त्व-सम्बन्धी जो खोजें हुई हैं उनसे यही पता चलता है कि अमेरिका किसी समय आधा एशिया था। वहाँ के ऊँचे ऊँचे पहाड़, बरफ से ढकी हुई उनकी चोटियाँ, बड़ी बड़ी झीलें, लंबी चौड़ी नदियाँ, खुले और विस्तृत मैदान, अनाज के खेत, घने जंगल, विशाल वृक्ष और सपाट रेगिस्तान देख कर तुरन्त भारत का स्मरण हो आता है। यह तो हुई प्राकृतिक शोभा। मनुष्यों ने वहाँ जो मकान आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाए हैं उनका अधिकांश भी भारत से ही मिलता जुलता है। प्रशान्त महासागर के तट पर सदा वसन्त ऋतु बनी रहती है। काशमीर, मलाबार तट और आसाम की भांति यहाँ भी फल होते हैं। यदि स्वर्ग से किसी परम मनोहर स्थान का अभिप्राय हो तो वास्तव में अमेरिका इस पृथिवी का स्वर्ग है। यहां की रात का प्रकाश प्रायः दिन को मात करता है। लन्दन और पेरिस में भी रात को बहुत प्रकाश होता है पर अमेरिका का प्रकाश वहाँ से बढ़ा चढ़ा होता है। यहाँ के जल-प्रपातों और झीलों से अमेरिकनों ने अपने कामों के लिए अनन्त बिजली पैदा की है। देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिजली हद से ज्यादा काम देती है; यहाँ तक कि छोटे छोटे गाँवों तक भी बिजली पहुँची हुई है।

अमेरिकावाले संसार की सब बातों में सब से बढ़े चढ़े होने का दावा रखते हैं। वे अपने देश को "संसार में सब से बड़ा" "सब से सुन्दर" और "सब से सम्पन्न" बतलाते हैं; उनकी बातचीत और साहित्य आदि सब में इसी सर्व्वोत्तमता की भरमार रहती है। पहले तो उनकी ऐसी बातें कानों को बहुत खटकती हैं, पर जब विचारपूर्वक देखा जाता है तो जान पड़ता है कि कुछ अंशों में तो उनका कथन बहुत सत्य है और कुछ अंशों में वह उनकी महत्वाकांक्षा का परिचायक है। अमेरिकावाले डींगें हाँकना खूब जानते हैं। वे अपना शंख इतनी जोर से फूंकते हैं जिसकी आवाज के सामने औरों के शंखों की ध्वनि दब जाय। अपने शंखों की ध्वनि में वे दूसरों की बातों और वास्तविक घटनाओं तक को दबा देने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रयत्न में उन्हें बहुत कुछ सफलता भी हो जाती है क्योंकि दूसरे लोग बहुत से अंशों में उनकी बातें मान भी लेते हैं। खाली डींगें हाँकना आजकल की सभ्यता का मूल तत्व जान पड़ता है। इंगलैण्ड और जर्मनी में भी यही हाल है। इंगलैण्डवालों की भाषा कुछ दबी हुई और कोमल होती है और जर्मनीवालों की बहुत भारी भारी शब्दों से भरी हुई। छोटा सा इटली देश भी इस बात में किसी से कम नहीं है। हाँ, फ्रान्स में यह बात बहुत कम है। पर अमेरिका में तो इसकी हद हो गई है, यहाँ तक कि लोगों ने इसे एक "विद्या" बना डाला है। इसका मुख्य अभिप्राय यही है कि लोगों पर अपनी शक्ति, योग्यता और गुणों का पूरा पूरा सिक्का बैठा दिया जाय।

गोरी जातियां यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि कालों में भी कोई गुण या योग्यता है। अमेरिकन और युरोपियन सभी अपनी अपनी योग्यता और गुणों को सब से बढ़ कर बतलाते हैं। उनका यह व्यक्तिगत विश्वास बढ़ कर जातीय योग्यता का परिचायक हो जाता है। इससे उन्हें एक लाभ भी होता है। अपनी इसी डींग के कारण वे अपने प्रतिद्वन्दियों को मात कर के सब से आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। कभी कभी उनकी बातें सुन कर हँसी तो जरूर आती है पर उससे औरों की कोई हानि नहीं होती। शिकागो से पश्चिमी तट की ओर जाने के समय मार्ग में हम लोगों की रेल-गाड़ी एक जगह समुद्र से ८००० फुट की ऊँचाई पर पहुँच गई। अमेरिकनों ने इस स्थान का नाम "संसार का सिरा" रखा है। पहले तो मुझे यह नाम सुन कर हँसी आई पर पीछे मैंने समझा कि कदाचित् संसार से उनका तात्पर्य्य अपने संसार से है। व्यापार में उन्हें इसी डींग के कारण बहुत कुछ लाभ हो रहता है। संसार में जो कुछ है वह धन ही है। अधिकांश बड़े बड़े वैज्ञानिक, तत्ववेत्ता और विचारशील केवल धन के लिए इतना परिश्रम करते हैं। बहुत से लोग केवल ज्ञान और विद्या के प्रचार के लिए ही परिश्रम करते हैं; पर उनके पीछे भी प्रसिद्धि की लालसा लगी रहती है। पश्चिमी देशों में जितनी बातें होती हैं वह सब कोई अभूत या अश्रुतपूर्व कार्य कर दिखलाने के लिए ही होती हैं। सभी लोग एक न एक विलक्षण और सब से बढ़ चढ़ कर काम करना चाहते हैं। उनमें से कुछ को सफलता होती है और कुछ को विफलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मनुष्य राजनीति समझता है वह संयुक्त राज्य का सभापति नहीं तो कम से कम अपने प्रान्त का शासक अवश्य बनना चाहता है; और जो महाजनी का काम जानता है वह अपने देश या कम से कम प्रान्त में सब से बड़ी महाजनी कोठी या बंक खोलना चाहता है। पनामा प्रदर्शिनी की उत्पत्ति भी इसी विचार के कारण हुई है। पनामा नहर का खुलना संसार की बहुत बड़ी बड़ी घटनाओं में से एक है। अमेरिका के इतिहास में कोलम्बस के आविष्कार के बाद इसी का नंबर है। इसका प्रभाव सारे संसार के भविष्य पर और विशेषतः अमेरिका और एशिया के भविष्य पर पड़ेगा। उसके वास्तविक परिणाम का अनुमान करना असम्भव है, पर इसमें सन्देह नहीं कि यह संसार की एक बहुत बड़ी घटना है। इसके सम्बन्ध में एक सरकारी विवरण में लिखा हुआ है,—

"पनामा नहर के बन जाने से, जिसके उपलक्ष्य में यह प्रदर्शिनी की गई है और जिसके बन जाने के कारण पूर्वी और पश्चिमी जातियों का एकीकरण हो गया है, लोगों का चार सौ वर्षों का स्वप्न अब प्रत्यक्ष और वास्तविक हो गया है। ४ मई सन् १९०४ को पहले पहल इसकी खुदाई में हाथ लगा था और ग्यारह वर्षों में अब यह नहर बन कर तैयार हुई है। एक बार पहले एक फ्रान्सीसी कम्पनी ने यह नहर काटने का प्रयत्न किया था पर उसे सफलता नहीं हुई। इस नहर की लम्बाई पूरी पचास मील है। नहर के तल में सब से ऊँचा स्थान समुद्र की सतह से चालीस फुट ऊँचा है। उस तल के ऊपर पैंतालिस फुट ऊँचा पानी है। इसलिए उस नहर में से आने जानेवाले जहाजों को भिन्न भिन्न बाँधों में से हो कर पचासी फुट ऊँचा चढ़ना पड़ता है। अमेरिकनों ने इस घटना के उपलक्ष्य में प्रशान्त तट पर सैन डायगो और सैन फ्रान्सिसको में दो प्रदर्शिनियां खोली हैं। पहली "पनामा कैलिफोर्निया प्रदर्शिनी" कहलाती है और दूसरी "पनामा प्रशान्त अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी" कही जाती है। पहली कुछ छोटी और दूसरी बहुत बड़ी है। युद्ध का पहली पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वह प्रान्तीय है; पर दूसरी को उससे बहुत हानि हुई क्योंकि वह अन्तर्राष्ट्रीय है। बड़े बड़े अमेरिकन गवर्नर, शासक, विद्वान, लेखक, महाजन, व्यापारी, अध्यापक और सभी लोग एक स्वर से कहते हैं कि यह संसार का सब से बड़ा मेला है। यद्यपि युद्ध के कारण संसार के सभी देशों से आदमी और सामान वहाँ नहीं आ सके हैं तथापि इसमें सन्देह नहीं कि आज तक संसार में जितने मेले हुए हैं, उन सब से यह बड़ा है। मैंने पहले छोटी प्रदर्शिनी देखी थी और इसलिए मैं पहले उसी का वर्णन आरम्भ करता हूँ।

सैन डायगो की प्रदर्शिनी।

सब से पहले मैं यह कह देना चाहता हूँ कि कैलीफोर्निया संसार के सब से अधिक सुन्दर और मनोहर स्थानों में से है। यहाँ का जल-वायु सदा बहुत साधारण और मनोहर रहता है और सब ऋतुओं में सुन्दर वनस्पति और फूल अपनी शोभा दर्शाते हैं। यहाँ की सुषमा काश्मीर की सी और ठण्डक चम्बा और कुलु की तराइयों की सी है। यहाँ सदा नैनीताल, मसूरी और दारजिलिंग की सी सुन्दरता और, वहाँ की ग्रीष्म ऋतु की सी ठंढक रहती है।

सैन डायगो की प्रदर्शिनी साधारण भूमि से १३५ फुट ऊँची टेकरी पर है। वहाँ से नीचे के भूमि-तल तक ढाल पर बराबर मनोहर हरियाली, ऊँचे वृक्ष, सघन झाड़ियाँ अपनी अपूर्व शोभा दिखलाती हैं। नीचे दक्षिण की ओर सैन डायगो का नगर बसा हुआ है और पास ही एक सुन्दर बन्दर है। उत्तर की ओर बरफ से ढके हुए पहाड़ हैं। शेष दोनों ओर हरियाली अपनी छटा दिखलाती है। अनेक प्रकार के छोटे बड़े वृक्ष और सुहावने फूलों से लदे पौधे ही दिखाई देते हैं। सदर फाटक से अन्दर घुसते ही सामने लम्बा चौड़ा हरा भरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैदान दिखाई पड़ता है। इस मैदान में दिखलाई पड़नेवाली अधिकांश चीज़ें प्रायः लाल ही रङ्ग की हैं। इस मैदान के आगे मध्य में प्रदर्शिनी की इमारतें हैं।

प्रदर्शिनी की एक इमारत में केवल प्राचीन अमेरिका की सभ्यता से सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थ रखे गए हैं और प्रदर्शिनी का वही अंश मुझे सब से अधिक पसन्द आया। इसके पहले किसी प्रदर्शिनी में इस कार्य्य के लिए इतनी बड़ी इमारत नहीं बनी थी। मध्य अमेरिका के उन आदिय निवासियों की अच्छी अच्छी कृतियाँ यहाँ दिखलाई गई थीं जिनकी सभ्यता किसी समय पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी और गोरी जातियों के वहाँ पहुँचने से पहले ही नष्ट भी हो चुकी थी। इस इमारत में उनकी पुरानी मूर्तियों शिला-लेखों और बड़े बड़े स्मृति-चिन्हों के चित्र, मन्दिरों और प्रासादों के छोटे छोटे नमूने आदि दिखलाए गए हैं। इस प्रकार के दृश्य इतनी उत्तमता और पूर्णता से पहले कभी नहीं दिखाए गए थे।

कैलीफोर्नियाकी इमारत में उन स्मृति-चिह्नों के चित्र दिखलाए गए थे जिन के कारण कई पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने उनकी समता नैशापुर और बेबिलोन के स्मृति-चिह्नों से की है। लोगों का यह अनुमान बहुत ठीक जान पड़ता है कि प्राचीन काल में पूर्वी और पश्चिमी गोलार्द्ध के स्थल मिले हुए थे; क्योंकि यदि ऐसा न होता तो पूर्वी देशों की प्राचीन सभ्यता के चिह्नों का बहुत कुछ आभास प्राचीन अमेरिका की चीजों में न मिलता; ग्वेटामाला के जंगलों के प्राचीन पिरामिड, मन्दिर, मूर्तियाँ और अभिलेख आदि प्राचीन मिस्र, पैलेस्टाइन और यूनान आदि की उन्हीं चीजों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, अमेरिका के आदिम निवासी माया लोगों का बसाया हुआ किरिगुआ नामक एक बहुत बड़ा नगर था जो समय पा कर जमीन के नीचे दब गया था और जिस पर बहुत बड़ा जंगल लग गया था। अमेरिका की एक कम्पनी ने हाल में केले की खेती के लिए वह जंगल साफ कराना आरम्भ किया, उसी सफाई में उस प्राचीन नगर का पता लगा। उस नगर की दो हजार बरस की पुरानी मूर्तियां और दूसरी चीजें बिलकुल ज्यों की त्यों निकाली गई। उन प्राचीन माया लोगों और उनके देवताओं आदि की मूर्तियां मिस्र के प्राचीन निवासियों और उनके देवताओं की मूर्तियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। उन स्मृति-चिह्नों के बनाने में जो कारीगरी खर्च की गई है वह देखते ही बन पड़ती है। उनके चित्र भी ऐसी खूबी से बनाए गए हैं कि असल की कोई बात उनमें छूटने नहीं पाई है।

प्राचीन माया नगर की अनेक मूर्तियों के अतिरिक्त मन्दिरों और प्रासादों आदि के अनेक चित्र भी हैं। पत्थरों आदि पर खोदे हुए अनेक ऐसे चित्रों के प्रतिबिम्ब भी लिए गए हैं जिनमें माया लोगों के साधारण दैनिक जीवन के दृश्य दिखाए गए हैं। कहीं माया लोग मन्दिरों आदि के लिए पहाड़ों से बड़े बड़े पत्थर काट रहे हैं, कहीं लकड़ियों पर खोद कर चित्र आदि बना रहे हैं, कहीं मन्दिरों में देवपूजन हो रहा है, कहीं जलूस निकल रहा है, कहीं नाच हो रहा है और कहीं लोग रस्में पूरी करने के लिए एकत्र हैं। उनके बनाए हुए प्राचीन काल के मिट्टी के बरतन तक दिखाए गए हैं। बड़े बड़े मन्दिरों के दृश्य उस समय की महत्त्वपूर्ण शोभा आँखों के आगे ला रखते हैं। मानव-जाति के प्राचीन इतिहास के प्रेमियों के लिए ये सब दृश्य बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। ये प्राचीन भवन और दृश्य आदि हमारे देश के प्राचीन भवनों और दृश्यों से इतने मिलते जुलते हैं कि मन में प्रश्न उठने लगता है कि क्या प्राचीन काल में सारे जगत् के लोगों के विचार और कार्य्य एक से ही होते थे?

एक इमारत अमेरिका के प्राचीन निवासी इण्डियनों के संबन्ध की भी है। इसमें आज कल के इण्डियनों के बनाए हुए प्रायः पाँच हजार मिट्टी के बढ़िया बरतन और खिलौने आदि हैं। कुछ पुराने इकट्ठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए हुए टाट भी रक्खे गए हैं। उनके प्राचीन गाँवों के मिट्टी के ही बने हुए नमूने भी दिखलाए गए हैं। इनमें से सब से अधिक चित्ताकर्षक वह दृश्य है, जिसमें कई एकड़ भूमि में प्राचीन इण्डियनों की सब जातियों के थोड़े थोड़े आदमी ला कर रक्खे गए हैं। गोरी जातियों के पहुँचने से पहले सारे अमेरिका पर इन्हीं इण्डियनों का अधिकार था। उनके झोंपड़े और छोटे छोटे मकान पंजाब के देहातों के झोंपड़ों और मकानों से बहुत मिलते जुलते हैं। उनमें मिट्टी की दीवारें हैं जिन पर बाँस बल्ले रक्खे हुए हैं और जो ऊपर से घास-फूस से छाए हुए हैं।

इनके पास ही न्यू मेक्सिको के इण्डियनों के एक गाँव का दृश्य दिखलाया गया है। उसमें एक मकान के चारों ओर बहुत से इण्डियन काम कर रहे हैं; एक स्त्री अपने दुशाले में बच्चा लपेटे हुए सीढ़ियों पर चढ़ रही है, ऊपर की छत पर एक आदमी खड़ा हुआ है जो चारों ओर घूम घूम कर नीचे काम करनेवालों को आज्ञाएँ दे रहा है और पास ही एक मैदान में कई नंगे और गंदे बालक खेल रहे हैं। बहुत सी डोरियों में लाल मिरचें पिरो कर धूप में सुखाई जा रही हैं। दूसरे वर्ष की फसल बोने के लिए बल्लों में गल्ला लटक रहा है। खेती के कई तरह के औजार इधर उधर पड़े हुए हैं। कुछ वृद्ध उपासना आदि के लिए मन्दिर की ओर जा रहे हैं। आदि।

कुछ कमरों में स्त्रियाँ बैठी हुई गेहूँ और दूसरे गल्ले पीस रही हैं। एक ओर कुछ स्त्रियाँ भोजन बना रही हैं। मकान के चारों ओर तरह तरह के कारीगर काम कर रहे हैं। पास ही और भी अनेक प्रकार के दृश्य दिखलाए गए हैं। कहीं मिट्टी के बरतन बनाए और रंगे जा रहे हैं और कहीं बाँस की दौरियाँ बुनी जा रही हैं। अंदर एक बुढ़िया पतली पतली रोटियाँ बनाने के लिए खूब महीन पिसा हुआ आटा गूँध रही है।

एक ओर ढोल आदि के साथ होनेवाला इण्डियन गीत लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहा है। थोड़ी देर बाद बहुत से इण्डियन गाते बजाते आ पहुँचते हैं और वहीं उनका नाच आरम्भ होता है। इन इण्डियनों का नाच ही मुख्य धार्मिक कृत्य है। उनका विश्वास है कि इस संसार के शासक और पालक देवताओं को प्रसन्न और सन्तुष्ट करने के लिए नृत्य ही सब से बढ़िया साधन है। स्त्रियों और पुरुषों के इस प्रकार के तरह तरह के नाच यहाँ बराबर साल भर तक होते रहेंगे।

इसके पास ही लाल पत्थर का बना हुआ होपी-भवन है। होपी इण्डियन मिट्टी के बरतन आदि बनाने में सारे अमेरिकन इण्डियनों से बढ़ कर हैं।

यहाँ से आगे बढ़ने पर एक बिलकुल भिन्न और विलक्षण दृश्य दिखाई देता है। यह दृश्य स्थायी रूप से बसे हुए इण्डियन गाँवों से बिलकुल भिन्न और विपरीत है। कई पहाड़ियाँ हैं जिनके नीचे कई खानाबदोश और भेड़ बकरियाँ चरानेवाली जातियाँ ठहरी हुई हैं। एक पहाड़ी के नीचे अपच जाति के और दूसरी पहाड़ी के नीचे सुपाई जाति के लोगों के डेरे पड़े हैं। सब जातियों का रहन-सहन साधारणतः एक दम स्वाभाविक है। पहाड़ी की एक ऊँची चोटी पर एक गुफा है। किसी समय इस गुफा में कुछ लोग रहते थे; पर अब वे नष्ट हो गए हैं। हाँ, उनके रहने के बहुत से चिह्न अवश्य पाए जाते हैं। पहाड़ी की जड़ में एक छोटा चश्मा बह रहा है जिसे पार करने पर नवाहो की होगन जाति के लोगों की बस्ती है। वहाँ एक छोटे से मकान में कुछ स्त्रियाँ बैठी हुई अपना देशी ऊन ओट और कात रही हैं और कुछ स्त्रियाँ बैठी हुई उनकी पोनी बना रही हैं। पास ही कुछ स्त्रियाँ नवाहो के प्रसिद्ध सुन्दर कम्बल बुन रही हैं। इन इण्डियनों के भोजन और वस्त्र आदि हमारे देश के दरिद्र खेतिहरों के भोजन और वस्त्रों से बहुत मिलते जुलते हैं। दो झोंपड़ियों में तो मैंने उन लोगों को वही चपातियाँ खाते देखा जो हम लोग उत्तरी भारत में खाते हैं। पश्चिमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता के संसर्ग से अब वे लोग चमचों और तामचीनी के बरतनों का व्यवहार करने लग गए हैं और कहीं कहीं विलायती ढंग का बढ़िया स्टोव (एक प्रकार का चूल्हा) भी जलाया जाता है। एक झोंपड़ी में एक बुडढ़ा अँगरेजी में बातें करता था। जब मैंने उसे अपना परिचय दिया तो उसने बहुत प्रसन्न हो कर कहा—"हम लोग यह नहीं जानते कि हम इस देश में कहाँ से आए; पर मैं समझता हूँ कि शायद आपके भारत से ही हम लोग यहाँ आए हैं।" एक झोंपड़ी में एक बुढ़िया ने आने जानेवालों से मिलने और बात-चीत करने से इनकार कर दिया। वह अपना सिर ऊपर नहीं उठाती थी और लोगों से बात-चीत करने में अपनी हतक समझती थी। वह नहीं चाहती थी कि लोग उसे उस देश की प्राचीन अधिकारिणी जाति का नमूना समझ कर देखें। प्रदर्शिनी ऐसे स्थान में जहाँ कि वह सिर्फ लोगों को दिखलाने के लिए रक्खी गई थी, किसी प्रकार का परदा न हो सकता था; और इसी लिए वह मन ही मन बहुत अधिक कुढ़ती थी। पर तो भी कुछ डालरों (अमेरिकन सिक्का) के लालच से उसे वहाँ आ कर सारे संसार के सामने उस उपहासजनक दशा में प्रदर्शित होना पड़ा था। उस सम्पूर्ण दृश्य ने मुझे बहुत उदासीन कर दिया और मैं बहुत दुःखी हो कर अपने होटल में लौट आया।

सैन फ्रान्सिसको की प्रदर्शिनी।

विवरण।

अब मैं सैन फ्रान्सिसकोवाली बड़ी प्रदर्शिनी का वर्णन आरम्भ करता हूँ। अन्यान्य बातों से पहले मैं उसकी लंबाई चौड़ाई और उसके स्थान आदि का वर्णन करने के लिए एक सरकारी विवरण का सारांश यहाँ दे देना उचित समझता हूँ।

पनामा नहर के खुलने के उपलक्ष्य में समस्त संसार की ओर से सैन फ्रान्सिसको में पनामा प्रशान्त अन्तराष्ट्रीय प्रदर्शिनी खुली है। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में यह अपने ढंग की तीसरी और प्रदर्शिनियों के इतिहास में बारहवीं प्रदर्शिनी है। यह प्रदर्शिनी एक दम सामयिक है क्योंकि इसमें केवल उन्हीं चीजों के लिए पुरस्कार दिया जायगा जो सेन्ट लुइसवाली प्रदर्शिनी के बाद इधर गत दस वर्षों के अन्दर बनी हैं। एक दशक में संसार ने जो कुछ उन्नति की है वही इसमें दिखलाई गई है। इस प्रदर्शिनी के सार्वदेशीय गिने जाने के लिए इसमें संसार की समस्त सभ्य जातियों के कौशल आदि दिखलाए गए हैं। इस प्रदर्शिनी से सब से बढ़ कर जो उद्देश्य सिद्ध हुआ है वह यह है कि गत प्रदर्शिनी होने के समय से अब तक विज्ञान, शिल्प और कला आदि में जो उन्नति हुई है, उसी का इसमें प्रदर्शन किया गया है।

स्थान।

सैन फ्रान्सिस्को की खाड़ी के दक्षिणी तट पर प्रसिद्ध गोल्डन गेट (सुनहला फाटक) के अन्दर ६३५ एकड़ भूमि पर यह प्रदर्शिनी बनी है। यह प्रायः ढाई मील लंबी और आध मील चौड़ी है। इसके दोनों पार्श्वों पर ऊँची ऊँची टेकरियाँ हैं जिन पर मैसन दुर्ग की सरकारी किलेबंदियाँ हैं। खाड़ी के दूसरे पार भव्य पहाड़ियाँ हैं। प्रदर्शिनी के पीछे की ओर सैन फ्रान्सिस्को के ऊँचे ऊँचे टीले हैं। प्रदर्शिनी की इमारतें तीन मुख्य भागों में बँटी हुई हैं। पहला मध्य-भाग जिसमें प्रदर्शिनी के ग्यारह बड़े बड़े भवन और एक उत्सवगृह है; दूसरा पश्चिमी भाग जिसमें विदेशी जातियों और राज्यों आदि की इमारतें हैं और जिसमें सब प्रकार के पशुओं की शालाएँ हैं; और तीसरा पूर्वी भाग जिसमें मनोविनोद की सब सामग्रियाँ हैं और जिसके चारों ओर तीन तीन हजार फुट लंबा मैदान है। इसमें संसार की समस्त जातियों, संयुक्त राज्यों की सारी रियासतों, म्युनिसिपेलटियों और साधारण प्रदर्शकों की चीजें रखी गई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यय।

प्रदर्शिनी के प्रबन्धकों को उसके लिए पाँच करोड़ डालर या पन्द्रह करोड़ रुपए व्यय करने पड़े हैं। इस प्रदर्शिनी को संसार का सब से मनोहर और चित्ताकर्षक स्थल बनाने में धन, परिश्रम या विचार सम्बन्धी कोई बात उठा नहीं रखी गई है। नीचे इस प्रदर्शिनी की सुन्दरता आदि के सम्बन्ध में अधिकारियों द्वारा प्रकाशित एक विवरण का कुछ सरांश दिया जाता है जिसमें किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं है।

रोशनी।

इस प्रदर्शिनी की रोशनी प्रकाश-विज्ञान और रोशनी की कला की पराकाष्ठा है। पहले जो प्रदर्शिनियां हो चुकी हैं उनमें इमारतों की दीवारों पर प्रकाश के लिए लम्प आदि सजा कर लगाए जाते थे। इस प्रकार की रोशनी आजकल सारे संसार में बहुत फैल गई है। उसमें सबसे बड़ा दोष यह होता है कि आँखों पर रोशनी की बहुत बुरी तरह चमक पड़ती है और उसका प्रकाश केवल सफ़ेद रंग का होता है। पर इस प्रदर्शिनी में बिलकुल नए ढंग की रोशनी की गई है। इसमें बड़े बड़े मीनारों, दरवाजों और गुंबदो पर हलकी सफेद रोशनी की गई है और दूसरे बड़े बड़े लम्पों से उन पर रंग-बिरंगे प्रकाश डाले गए हैं। सब प्रकाशों के प्रधान उद्गम प्रदर्शिनी के बड़े बड़े भवनों में गुप्त रूप से रखे गए हैं। इस कृत्रिम प्रकाश का सूर्य्य और चन्द्रमा के प्रकाश से मुकाबला कराया गया है। जूलस गेरिन ने रंगीन प्रकाश की जो नई प्रथा निकाली है उसके मेल से बने हुए प्रकाश के इन दृश्यों को देख कर अलिफ़ लैला की विलक्षण कहानियाँ और दृश्य आँखों के सामने फिर जाते हैं। सारी प्रदर्शिनी और उसकी आसपास की भूमि में यहाँ का प्रधान प्रकाश फैल जाता है। उस प्रकाश में आतिशबाजी से बीसियों तरह के नाच और खेल-तमाशे होते हैं, बिना आग की आतिशबाजी छूटती है, बड़े बड़े गोले छूटते हैं जो आकाश में जा कर जोर का शब्द करते हुए फूट जाते हैं और जिनमें से भिन्न भिन्न देशों तथा जातियों के झण्डे निकलते हैं और इसी प्रकार के अनेक अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त आकाश में बड़े बड़े अन्वेषक प्रकाश डाले जाते हैं जिनके कारण उनकी शोभा और भी बढ़ जाती है। एक बड़े मीनार पर से ३६००००००००० (तीन अरब साठ करोड़) मोमबत्तियों का प्रकाश निकलता है जिससे तीन सौ प्रकार के भिन्न भिन्न दृश्य और कौतुक दिखाए जाते हैं। अन्य विलक्षण पदार्थों में से एक अद्भुत पदार्थ "जवाहिरात का मीनार" है जिसे संसार कभी न भूल सकेगा। इस मीनार में १३५००० (एक लाख पैंतीस हजार) बढ़िया बढ़िया हीरे, पन्ने, लाल, पुखराज और मोती आदि जड़े हुए हैं। दिन के प्रकाश में यह मीनार जो कुछ चमकता है, वह तो चमकता ही है; रात के समय उस पर दो सौ गुप्त अन्वेषक प्रकाशों की रोशनी डाली जाती है। यह मीनार ४३५ फुट ऊँचा है; ऊपर की ओर इसका घेरा बराबर कम होता गया है। इसमें सात खण्ड हैं और सातों खण्डों के बनाने में कारीगरों ने अपनी कारीगरी का कमाल कर दिया है।

प्रत्येक विभाग और मैदान में रोशनी का अलग अलग प्रबन्ध है और उसमें आवश्यकतानुसार बहुत कुछ अन्तर भी है। कृषि-विभाग में शीशे का एक बहुत बड़ा गुंबद है; उस गुंबद के अन्दर की रोशनी बाहर से देखने ही लायक होती है। उस पर बहुत से अन्वेषक-प्रकाशों की रोशनी डाली जाती है जिनके आगे रंगीन चक्कर घूमते रहते हैं और जिनके कारण शीशे के गुंबद पर तरह तरह के और हर दम बदलने वाले रंगीन प्रकाश पड़ते हैं। इसी स्थान पर सारे विश्व के सूर्यों, ग्रहों और नक्षत्रों आदि की गति दिखलाई जाती है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के मनोहर और चित्ताकर्षक दृश्य देखने में आते हैं। अन्य प्रदर्शि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियों में आँखों को चौंधियाने और कष्ट देनेवाले जो प्रकाश दिखलाई पड़ते थे, दिन या रात में यहाँ उनका नाम भी नहीं है। सारी इमारतें ऐसे रंगों से रंगी गई हैं जो धूप पड़ने पर आँखों को ठंढक पहुँचाते और बहुत भले मालूम होते हैं और रात के समय जिन पर अनन्त गुप्त प्रकाश पड़ते हैं। उस समय की अपार शोभा के कारण यह सारा स्थान स्वप्न के दृश्य के समान जान पड़ता है। (शेषआगे।)

—:०:—

सभा का कार्य्यविवरण ।

साधारण सभा ।

शनिवार तारीख २९ मई १९१५—सन्ध्या के ५½ बजे स्थान—सभा भवन ।

(१) गत अधिवेशन (ता० २४ अप्रैल १९१५) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभासद होने के लिए निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गएः—

१ ठाकुर कृष्णकुमारसिंह, गोइआं—चांद—जि० शाहाबाद १॥)

२ बाबू जगदम्बासहाय—डालटैनगंज—जि० पलामू १॥)

३ पण्डित लक्ष्मण कुन्दनलाल पाठक—डिपटी इंस्पेक्टर आफ स्कूलस, धमतरी, जि०—रायपूर ३)

४ पंडित बदरीनाथ पाण्डेय—२।३३ हंकार टोला —काशी १॥)

५ मेहता ज्ञानचन्द—महव ख़ास—जैसलमेर १॥)

६ श्रीयुत बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० सेवाश्रम—काशी ५)

७ श्रीयुत बाबू हज़ारीमल खंडेलवाल—रामकुमार मूलचन्द, जाठगंज—जबलपुर २)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(३) निम्न लिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुएः—

१ बाबू शारदाप्रसाद गुप्त—अहरौरा—ज़ि० मिर्ज़ापुर

२ बाबू शिवनाथसिंह—मलसीसर हाउस—जयपुर

३ बाबू रामेश्वरलाल बजाज—रानीगंज

४ लाला बाबूलाल हेडक्लार्क—सेवाय होटल, मंसूरी

५ पंडित सहदेव ओझा- ज़ि० मिर्ज़ापुर

६ बाबू जगद्विहारी सेठ—ठि—बाबू कुंजविहारी सेठ—सीतापुर

७ बाबू माताप्रसाद—रजिस्ट्रार कानूनगो—हमीरपुर

८ बाबू दुर्गाप्रसाद बी० ए० लकसा—काशी

९ बाबू नागेश्वरप्रसादसिंह—मरवटिया

१० पंडित घूरन दुबे—आज़मगढ़

११ बाबू हज़ारीलाल तहसीलदार

१२ बाबू व्रजलाल वर्म्मा—मथुरा

१३ पंडित डालूराम शर्म्मा—रानीगंज

(४) मंत्री ने सूचना दी कि निम्न लिखित सज्जनों के पास चन्दे के लिए जो पत्र भेजे गए थे वे अस्वीकृत हो कर लौट आए हैंः—

१ पण्डित जगन्नाथप्रसाद मिश्र—रोहली—सराय पिराग ज़ि० फर्रुखाबाद

२ बाबू सुखवासीलाल सांडिल—डिगडोली—पोहरी—ग्वालियर

३ बाबू चैतराम मुख़्तार—मुजफ्फ़रनगर

४ लाला जोरावर सिंह—कामदार महारानी श्री राठौर जी कालावात्

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों के नाम भी सभासदों की नामावली से काट दिए जांय।

(५) मंत्री ने निम्न लिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी जिस पर सभा ने शोक प्रकट किया।

१ श्रीमती नर्मदादेवी, झालरापाटन

२ पंडित लक्ष्मीशंकर शर्म्मा, काशी

३ डाक्टर जी० थीबो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं :—

बाबू उमराव सिंह जैन स्याद्वाद महाविद्यालय—काशी

आप्तपरीक्षा

सत्य समाचार कार्यालय—कालीमहल—काशी

वर्णपरिवर्त्तन

सृष्टि उत्पत्ति भाग १—२ और ३

कुरानानुवाद

ओं प्रकाश एण्ड ब्रदर्स—खिड़की टाउन स्कूल, बांदा

घर का डाकृर

पंडित जगन्नाथ पुच्छरत, अमृतसर

पंजाब युनिवर्सिटी में हिन्दी परीक्षाओं के साधारण नियम।

पण्डित चन्द्रसेन जैन वैद्य इटावा

पण्डित अर्जुनलाल सेठी की जीवनी

बाबू जगदीशनारायणसिंह गहलोत जोधपुर

नैना निश्चय २ प्रति

पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल बी० ए० प्रयाग

कैसररहस्य

पंडित इन्द्रवेदालंकार

प्रिन्स बिस्मार्क

खरीदी गईं तथा परिवर्त्तन में प्राप्त

कृष्णचरितखंड १—८

जहांगीरनामा

राजतरंगिणी

यूरोपीय महायुद्ध का इतिहास भाग २

लण्डन रहस्य सं० ५ से १५ तक

घटनाचक्र

अनाथ बालिका

काला कुत्ता

पिशाच पिता

गोपाल के गहने

खूनी खंजर

ताया का खून

राजा साहब

शशिबाला

हत्याकारी कौन है ?

सिर की चोरी

दारोगा का खून

कोहेनूर

डबल जासूस

भीषण डकैती

जासूसी कहानियाँ

रंगमहल रहस्य

महाराष्ट्र वीर

जासूसी पिटारा

विलायती जासूस

अंगरेज़ डाकू

अस्सी हज़ार की चोरी

जाली ज़मींदार

चतुरंग चैाकड़ी

चाची

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार तारीख २९ मई सन् १९१५ सन्ध्या के ६ बजे स्थान सभा-भवन।

उपस्थित

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० सभापति

बाबू केशवदास

पण्डित कृष्णराव पावगी

बाबू माधवप्रसाद

बाबू गौरीशङ्करप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०

बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

बाबू वेणीप्रसाद

पण्डित सांवलजी नागर

बाबू मुरारीदास

(१) गत अधिवेशन ता० २४ अप्रैल १९१५ का कार्य-विवरण पढ़ा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय हुआ कि निश्चय नं० ४ में कादम्बरी का कापीराइट जो इण्डियन प्रेस को लिखा गया है वह ठीक नहीं है। इण्डियन प्रेस को इस पुस्तक की केवल २००० प्रतियाँ छापने की आज्ञा दी गई थी अतः लाला सीताराम को लिखा जाय कि वे अपने ग्रन्थ में कादम्बरी के अंश उद्धृत कर सकते हैं और शेष कार्य-विवरण स्वीकार किया जाय।

(२) अहमदाबाद के सस्तुँ साहित्य-वर्द्धक कार्यालय का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा द्वारा प्रकाशित गुरुगेविन्दसिंह को गुजराती भाषा में निकालने की आज्ञा मांगी थी।

निश्चय हुआ कि इसके लिए उन्हें आज्ञा दी जाय और इस पुस्तक के जितने संस्करण वे प्रकाशित करें उसकी पाँच पाँच प्रतियाँ उनसे मँगवा ली जांय।

(३) बाबू श्यामसुन्दरदास जी के प्रस्ताव पर निश्चित हुआ कि गत अधिवेशन में महराणा प्रताप नाटक को जो परिवर्तन और संशोधन के साथ प्रकाशित करना निश्चित हुआ है वैसा न कर के यह पुस्तक ज्यों की त्यों प्रकाशित की जाय।

(४) निश्चय हुआ कि आगामी जुलाई मास से नागरीप्रचारिणी पत्रिका के संपादन के लिए प्रत्येक संख्या का १०) पुरस्कार स्वीकार किया जाय। ३० जून १९१५ के उपरान्त जितनी संख्याएं पिछड़ी हुई रह जायं उनके संपादन के लिए भी प्रत्येक संख्या का १० रु०) दिया जाय पर इनका पुरस्कार केवल उसी अवस्था में दिया जायगा जब पिछड़ी हुई सब संख्याएं प्रकाशित हो जायंगी। जुलाई से आगे की संख्याओं के लिए जिस मास की संख्या १५ तारीख तक न निकल जायगी उसका पुरस्कार न दिया जायगा। बाबू श्यामसुन्दरदास जी से प्रार्थना की जाय कि वे ऊपर लिखे हुए नियमों पर पत्रिका के सम्पादन का प्रबन्ध कर दें।

(५) मनोरञ्जन पुस्तकमाला के विषय में अनेक कथोपकथन के अनन्तर निश्चय हुआ कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी आगामी अधिवेशन में इस संबन्ध में प्रस्ताव उपस्थित करें कि क्या यह संभव है कि इस कार्य्य के लिए कहीं से आवश्यक आर्थिक सहायता प्राप्त हो अन्यथा इसका किस रूप में कैसा प्रबन्ध किया जाय।

(६) आगामी वार्षिक अधिवेशन में पदाधिकारियों और प्रबन्ध कारिणी समिति के सभासदों के चुनाव के लिए निम्न लिखित सूची तैयार की गई—

एक सभापति और दो उपसभापति।

पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०
बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०
रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स
पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०
बाबू गैरीशङ्कर प्रसाद बी० ए० एल एल० बी०
पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० ए०

एक मंत्री और एक उपमंत्री।

बाबू गैरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल० बी०
बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल एल० बी० बैरिस्टर
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
बाबू बेणीप्रसाद
पण्डित हरिप्रसाद पालोधी
बाबू बाँकेबिहारीलाल
पंडित साँवलजी नागर

प्रबन्ध कारिणी समिति के सभासद।

काशी से ४—पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०
बाबू गैरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०
बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल एल० बी०
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
बाबू हरिप्रसाद पालोधी
बाबू बाँकेबिहारीलाल
बाबू केशवदास
बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू गंगाप्रसाद गुप्त
बाबू जगन्नाथदास बी० ए०
पण्डित विजयानन्द तिवारी
बाबू छन्नूलाल

संयुक्त प्रदेश से एक—
ठाकुर हनुमंत सिंह
बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०
बाबू शिवकुमारसिंह

बम्बई से एक—
बाबू लक्ष्मीचन्द एम० ए०
पण्डित तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी

मध्यप्रदेश से एक—
पण्डित कामताप्रसाद गुरु
बाबू माणिकचन्द जैन

यह भी निश्चय हुआ कि इस सूची में प्रत्येक सज्जन का संक्षिप्त परिचय भी प्रकाशित किया जाय।

(७) उन सज्जनों की नामावली उपस्थित की गई जिनके यहाँ सभा का दो वर्ष से अधिक का चन्दा बाकी पड़ गया है।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों का चन्दा यदि ३० जून १९१५ तक न आ जाय तो इनका नाम सूची (ख) में लिख दिया जाय।

(८) सम्पादक के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि कोश कार्यालय में एक लेखक १०) वा १२) मासिक वेतन पर छः मास के लिए नियत कर लिया जाय।

(९) पुस्तकालय के निरीक्षक का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि पुस्तकों की जिल्द बँधवाने के लिए इस वर्ष एक और दफ़्तरी नियत कर लिया जाय और उससे ठीके पर काम लिया जाय।

निश्चय हुआ कि इस वर्ष पुस्तकालय के लिए बजेट में जितना धन स्वीकृत है उसके भीतर जितनी पुस्तकों की जिल्दें निरीक्षक आवश्यक समझें उन्हें वे बँधवा लें।

(१०) बाबू मुरारीदास का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि पुस्तकालय की सूची के सम्पादन के लिए पाँच सज्जनों की एक सब कमेटी बना दी जाय।

निश्चय हुआ कि पंडित साँवलजी नागर से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इस सूची के सम्पादन में पंडित केदारनाथ पाठक की सहायता करें और पाठकजी से कहा जाय कि वे ऐसा प्रबन्ध कर दें जिसमें तीन मास में यह सूची छप कर तैयार हो जाय। साथ ही प्रेस में छपने के लिए जो हस्तलिखित प्रति भेजी जाया करे उसमें फिर पुस्तकों के नाम न बढ़ाए जायँ।

(११) पण्डित कामताप्रसाद गुरु का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बीमारी के कारण वे अभी तक व्याकरण का कार्य समाप्त नहीं कर सके हैं और आगामी जूलाई मास तक वे उसे पूरा कर देंगे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(१२) लाला राधामोहन गोकुलजी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सिकन्दराबाद के गुरुकुल को सभा मनोरंजन-पुस्तकमाला का एक सेट दे और उसका मूल्य उनके पुरस्कार के हिसाब में से काट ले।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकृत किया जाय।

(१३) पंडित रामचन्द्र शुक्ल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने ४०) पेशगी माँगा था और प्रार्थना की थी कि यह द्रव्य उनके वेतन में से क्रमशः काट लिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और १०) प्रति मास वेतन में से काट लिया जाय।

(१४) निश्चय हुआ कि पंडित काशीप्रसाद तिवारी (लेखक) की उपस्थिति सन्तोषजनक नहीं है अतः वे पदच्युत किए जायँ और उनके स्थान पर बाबू रामप्रसाद १२) रु० मासिक वेतन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षार्थ तीन मास के लिए नियत किए जायँ।

(१५) निश्चय हुआ कि इंडियन प्रेस प्रयाग से पूछा जाय कि कादम्बरी की कितनी प्रतियाँ उन्होंने छापी हैं और अब तक कितनी बिकी हैं।

(१६) बाबू दामोदरदास खंडेलवाल का २६ मई का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि (क) सभा बाहरी सभासदों को समिति के अधिवेशन में आने के लिए रेल का किराया दिया करे और (ख) प्रत्येक अधिवेशन का कार्य्यविवरण-समिति के बाहरी सभ्यों के पास सदैव भेजा जाया करे।

निश्चय हुआ कि (क) सभा अभी बाहरी सभासदों को समिति के अधिवेशनों में आने के लिए रेल का किराया देने में असमर्थ है (ख) पत्रिका के पिछड़ जाने से कार्य्यविवरण की यथा समय सूचना नहीं मिलती। आगे से इस त्रुटि के दूर हो जाने की आशा है।

(१७) निश्चय हुआ कि सभा के पुस्तकालय के लिए पद्मावती की एक हस्तलिखित प्रति १०) रु० पर क्रय की जाय।

प्रबन्ध कारिणी समिति।

सोमवार ताः १४ जून १९१५—सन्ध्या के ६३/४ बजे
स्थान—सभाभवन।

उपस्थित

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० सभापति
बाबू बेणीप्रसाद
बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०
पण्डित साँवलजी नागर
बाबू केशवदास
,, माधवप्रसाद

सम्मति भेजनेवाले

पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०
ठाकुर हनुमंतसिंह

(१) गत अधिवेशन (ताः २९ मई १९१५) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) हिन्दी शब्दसागर के सम्पादक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्होंने पण्डित बालकृष्ण भट्ट के स्थान पर बाबू रामचन्द्र वर्म्मा को नियत किया है; पर अभी पूरा वेतन न दे कर ३०)—५)—१०) देना निश्चित किया है।

निश्चय हुआ कि १७ नवम्बर १९१० के निश्चय नं० ५ के अनुसार उन्हें यह करने का अधिकार है।

(३) बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने सूचना दी कि मनोरंजन पुस्तकमाला के लिए वे दो सज्जनों से पत्र-व्यवहार कर रहे हैं, जिनमें से एक महानुभाव से १५०००) रु० की आर्थिक सहायता मिलने की आशा है और दूसरे सज्जन से १५०००) इस शर्त पर मिलने की आशा है कि इस पुस्तकमाला की बिक्री से इसका सब व्यय निकल आने के उपरान्त जो लाभ हो उसका अर्द्धांश सभा उन महाशय को दे, तथा पुस्तकमाला की बिक्री से जब उसका व्यय निकल जाय तो उनका रुपया लौटा दिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह सभा बाबू श्यामसुन्दरदासजी को अधिकार देती है कि वे इन दोनों बातों में से किसी के शीघ्र निश्चय करने का उद्योग करें तथा जब तक इस पुस्तकमाला के लिए धन का कोई उपयुक्त प्रबन्ध न हो जाय अथवा उसके उपयुक्त संख्यक ग्राहक न हो जायँ तब तक वे इसके प्रकाशन का ऐसा प्रबन्ध करें जिसमें सभा पर आर्थिक बोझ न बढ़े।

(४) पण्डित केदारनाथ पाठक का २९ मई का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अस्वस्थता के कारण पुस्तकाध्यक्ष के पद से इस्तीफ़ा दिया था।

निश्चय हुआ कि उनका इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर पण्डित कन्हैयालाल ता० १ जुलाई १९१५ से १०) मासिक वेतन पर पुस्तकाध्यक्ष नियत किए जायँ।

(५) संयुक्त प्रदेश के शिक्षा-विभाग के डाइ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेकृर का १९ मई का पत्र नं० जी ९०८/१०-९१ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि क्या सभा हिन्दी के किसी ऐसे विद्वान् को जानती है जो ५०) रु० मासिक वेतन पर पंडित श्यामबिहारी मिश्र के प्रस्ताव के अनुसार पुस्तकों की खोज का कार्य्य कर सके।

निश्चय हुआ कि सभा को आशंका है कि ५०) रु० मासिक वेतन पर ऐसा विद्वान् नहीं मिल सकता।

(६) नागरीप्रचारिणी पत्रिका की पिछड़ी संख्याओं की पूर्ति करने और आगे से उसे ठीक समय पर निकालने के सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दर दासजी की यह सम्मति उपस्थित की गई कि बाबू रामचन्द्र वर्म्मा इस कार्य्य के लिये नियत किए जायँ और उन्हें १५ सितम्बर १९१५ तक का समय पिछड़ी संख्याओं को पूरा करने के लिये दिया जाय तथा १ मास पूर्व संख्या की पूर्ण सामग्री दे देने पर उनका दायित्व समाप्त समझा जाय।

निश्चय हुआ कि इसके अनुसार प्रबन्ध किया जाय।

(७) ललिता पारितोषिक के लिये मथुरा जिले की बालिकाओं की हस्तलिपि के पर्चे उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि उनकी परीक्षा के लिये पंडित रामनारायण मिश्र, बाबू अमीरसिंह और बाबू मुरारिदास की सब-कमेटी बना दी जाय और संयुक्त प्रदेश के बालकों के जो पर्चे आवें उनपर भी उक्त कमेटी की सम्मति माँगी जाय।

(८) प्रयाग की सेवा-समिति के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें उन्हें बिना मूल्य दी जायँ।

निश्चय हुआ कि उन्हें अर्द्धमूल्य पर पुस्तकें दी जा सकती हैं।

(९) पंडित कामताप्रसाद गुरु का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि आगामी वर्ष के पदाधिकारियों और प्रबन्धकारिणी समिति के सभासदों के चुनाव की सूची में अस्वस्थ रहने के कारण उनका नाम न रक्खा जाय।

निश्चय हुआ कि उनके स्थान पर पंडित प्यारेलाल मिश्र और माननीय पं० विष्णुदत्त शुक्ल के नाम बढ़ा दिए जायँ और बाबू माणिक्यचन्द्र जैन का नाम जो गत अधिवेशन में भ्रम से रखा गया था निकाल दिया जाय।

(१०) निश्चय हुआ कि आर्य्यचरितामृत की १००० प्रतियाँ छपवा ली जायँ।

(११) निश्चय हुआ कि संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेण्ट को लिखा जाय कि सभा की सम्मति में यह उचित और आवश्यक जान पड़ता है कि प्रान्तीय टेक्स्ट बुक कमेटी के सम्बन्ध में एक यह नया नियम बढ़ा दिया जाय कि उसका कोई सभासद जब तक वह उस कमेटी का सदस्य हो अथवा जब तक वह कमेटी वा शिक्षा-विभाग के डाइरेकृर किसी पाठ्य पुस्तक को प्रस्तुत करने के लिये उस से विशेष प्रार्थना न करें उसे किसी पाठ्य पुस्तक के लिखने अथवा उसके लिखने में किसी प्रकार की सहायता देने का अधिकार न हो।

(१२) मंत्री ने सूचना दी कि इस प्रान्त के एंगलो वर्नाक्युलर स्कूलों की आठवीं कक्षा तक देशी भाषा में पढ़ाई होने का जो नियम स्वीकृत हुआ है उसके लिये उन्होंने सभा की ओर से संयुक्त प्रदेश के श्रीमान् लेफ़टिनेण्ट गवर्नर और शिक्षा विभाग के डाइरेकृर को धन्यवाद के तार भेजे हैं।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(१३) मंत्री ने इस सभा के स्थायी सभासद डाकृर सतीशचन्द्र बेनर्जी की मृत्यु की सूचना दी जिस पर सभा ने अत्यन्त शोक प्रकट किया।

(१४) मंत्री ने सूचना दी कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा के लिये काशी भी केन्द्र नियत किया गया है और परीक्षा सभा-भवन में ता० ८ अगस्त से प्रारम्भ होगी।

निश्चय हुआ कि मंत्री इसका उपयुक्त प्रबन्ध कर दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण सभा ।

शनिवार तारीख २६ जून १९१५ संध्या के ५½ बजे
स्थान—सभाभवन ।

(१) बाबू गौरीशंकर प्रसाद के प्रस्ताव तथा बाबू अमीरसिंह के अनुमोदन पर भाई रामसिंह शिकारपुरी सभापति चुने गए ।

(२) गत अधिवेशन (तारीख़ २९ मई १९१५) का कार्य्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(३) प्रबन्ध-कारिणी समिति के तारीख़ २४ अप्रैल १९१५ और २९ मई १९१५ के अधिवेशनों के कार्य्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए ।

(४) सभासद होने के लिए निम्न-लिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गएः—

१ बाबू बाँकेबिहारी लाल—बरना का पुल काशी १॥)

२ बाबू दुर्गाप्रसादसिंह—सुपरवाइजर कानून-गो—पो० ठेकभा—ज़ि० आज़मगढ़ १॥)

३ बाबू रमणीकान्त नाग—पर्वतपुर चाय बागान बंगला—ज़ि० सिलहट १॥)

४ पंडित देवीदयाल ब्रह्मभट्ट—मुदर्रिस स्कूल मलासा—पो० मोहम्मदाबाद ज़िला कानपुर १॥)

५ बाबू घनश्यामदास, बाबू रामदास की कोठी ठठेरी बाज़ार—काशी १॥)

(५) निम्न-लिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुएः—

१ पंडित गुतारनाथ शर्म्मा—गोंड़ा

२ पंडित विनायक गणेश साठे—गुरुकुल काँगड़ी ज़िला बिजनौर

३ बाबू मुरलीधर करण गया

(६) मंत्री ने इस सभा के स्थायी सभासद और अद्वितीय विद्वान् डाकृर सतीशचन्द्र बैनर्जी की असामयिक मृत्यु की सूचना दी जो सभा की सहायता के लिये सदैव तत्पर रहा करते थे। निश्चय हुआ कि सभा को इनकी मृत्यु से विशेष दुःख हुआ है और इनके भ्राता बाबू सुरेशचन्द्र बैनर्जी के पास सहानुभूति का पत्र भेजा जाय ।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं ।

बाबू वल्लभदास—कराची
बारिस्टर
सूरश्याम नाटक
पं० रामकृष्ण शिवपुरी—गाज़ीपुर
वर्णपरिवर्तन
ठा० रामचरितराय—नौबतपुर—पटना
अध्यात्मतत्त्व
मु० महावीरप्रसाद बी० ए०—मिर्ज़ापुर
हैमलिन का रंगबिरंगा तुमड़ीवाला
पाँडे रामप्रताप अम्बालाल खरी—बम्बई
चन्द्रकान्ता भाग १
पं० रामस्वरूप शर्म्मा—अलीगढ़
त्रैभाषिक विश्वकोश
पं० शिवदत्त शर्म्मा—अजमेर
दुर्वासातृप्तिस्वीकारनाटक

खरीदी गईं :—

वाल्मीकीय रामायण पूर्वार्द्ध
देवनागरी वर्णमाला
इन्साफ़ संग्रह भाग २
सदुपदेश संग्रह
वनकुसुम
गौरांगजीवनी
चारण
शरीर और शरीर रक्षा
हिन्दी शब्दार्थपारिजात
हिन्दी महाभारत
भारतीय उपाख्यानमाला
पौराणिक उपाख्यान
राबिन्सन क्रूसो
हिन्दी पद्य संग्रह
आदर्श महात्मा गण भाग १—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी शेक्सपियर ६ भाग
हिन्दी बालबोध पाँच भाग
हैमलेट
भूल भुलैयां
मनमोहन का जाल
जंगल में मंगल
याज्ञवल्क्य स्मृतिसार
उपन्यासकल्पद्रुम
भगवतगीतार्थ संग्रह
हिन्दू तीर्थ

सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

प्रबन्ध कारिणी समिति।

सोमवार ता: २८ जून १९१५—सन्ध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन।

उपस्थित

बाबू माधवप्रसाद—सभापति
बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०
बाबू बेणीप्रसाद
बाबू केशवदास
पण्डित साँवलजी नागर

सम्मति भेजनेवाले

पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०

(१) बाबू माधवप्रसादजी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (ता: १४ जून १९१५) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) ग्वालियर और संयुक्त प्रदेश की हस्तलिपि परीक्षाओं तथा ललिता पारितोषिक के लिए आए हुए पर्चों के सम्बन्ध में सब कमेटी की रिपोर्ट उपस्थित की गई। निश्चय हुआ कि सब कमेटी की सम्मति के अनुसार निम्नलिखित बालकों को पारितोषिक और प्रशंसापत्र दिए जायँ।

ग्वालियर राज्य।

मिडिल विभाग

१ अनोखीलाल, कक्षा १, हिन्दी स्कूल उज्जैन ५)

२ हकीम सैयद अली नक़ी, सिविल सर्विस इन्स्टीट्यूट, लश्कर } प्रशंसा पत्र
३ घासीराम, कक्षा १ हिन्दी स्कूल उज्जैन } प्रशंसा पत्र

अपर प्राइमरी विभाग

१ रामजीराव, कक्षा ४, पाठशाला सबलगढ़ जि० तवरघार ३)

२ रहमत अली कक्षा ३ स्कूल गोहद, ग्वालियर } प्रशंसा पत्र
३ सरदारसिंह कक्षा ३ हिन्दी मिडिल स्कूल उज्जैन } प्रशंसा पत्र

लोअर प्राइमरी विभाग

१ महबूबखाँ, कक्षा ५ मिडिल स्कूल लहार जि० भिंड २)

२ रामस्वरूप, कक्षा ५, स्कूल मडुआ, परगना अम्बाह, जि० तवरघार } प्रशंसा पत्र
३ आनन्द स्वरूप कक्षा ५, हिन्दी मिडिल स्कूल उज्जैन } प्रशंसा पत्र

संयुक्त प्रदेश।

मिडिल विभाग

१ बचेसिंह राजपूत कक्षा ६, टाउन स्कूल अलमोड़ा ५)

२ रत्नसिंह राजपूत कक्षा ६ टाउन स्कूल अलमोड़ा ४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ शिवगिरि कक्षा ६ टाउन स्कूल अलमोड़ा ३)

प्रशंसा पत्र
४ राजकुमार, कक्षा ६ तहसीली स्कूल फरुखाबाद
५ मुरारीलाल, कक्षा ६ पाठशाला स्याना तहसील जिं० बुलन्दशहर
६ गोपालदास, कक्षा ६ टाउन स्कूल वज़ीरपुरा, आगरा
७ उदयसिंह, कक्षा ६ पाठशाला पोखड़ा जि० गढ़वाल
८ भगवानदयाल, कक्षा ६ पाठशाला परस्पुर तराबगंज जि० गोंडा
९ सूरतसिंह, कक्षा ६ तहसीली स्कूल आजमगढ़

अपर प्राइमरी विभाग

१ कैलासराम, कक्षा ३ पाठशाला बैरिया, जि० बलिया ५)
२ सूर्य्यराम, कक्षा ३ पाठशाला बैरिया, जि० बलिया ३)
३ अलीमुहम्मद, कक्षा ३ पाठशाला बैरिया, जि० बलिया २)

प्रशंसा पत्र
४ दशरथराम, कक्षा ३ पाठशाला बैरिया जि० बलिया
५ रामचन्द्रराम, कक्षा ३ पाठशाला बैरिया, जि० बलिया
६ नारायणलाल, कक्षा ३ पाठशाला जलालाबाद जि० फरुखाबाद
७ राधाकृष्ण, कक्षा ४ पाठशाला कटावाँ, जि० सुलतांपुर
८ लक्ष्मीचन्द, कक्षा ४ पाठशाला एतमादपुर जि० आगरा

लोअर प्राइमरी विभाग।

१ कुँवरसिंह, कक्षा २ पाठशाला स्याल्दे
२ रामजतनराम, कक्षा २ पाठशाला बैरिया जि० बलिया २)
३ अवधविहारीराम, कक्षा २ पाठशाला बैरिया जि० बलिया २)

प्रशंसा पत्र
४ हरीपांडे, कक्षा २ पाठशाला बैरिया जि० बलिया
५ देवनारायणसिंह, कक्षा २ पाठशाला बैरिया जि० बलिया
६ नर्मदाप्रसाद, कक्षा २ टाउन स्कूल कर्वी जि० बाँदा
७ सोमवारूराम, कक्षा २ पाठशाला महडडार जि० ग़ाज़ीपुर

ललिता पारितोषिक।

त्रिवेणी कक्षा ४ माडेल स्कूल वृन्दावन जि० मथुरा ५)

(४) वेतनवृद्धि के लिए भरोस कहार का प्रार्थना-पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि जुलाई १९१५ से उसके वेतन में १) की वृद्धि की जाय।

(५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A414 [संख्या १

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

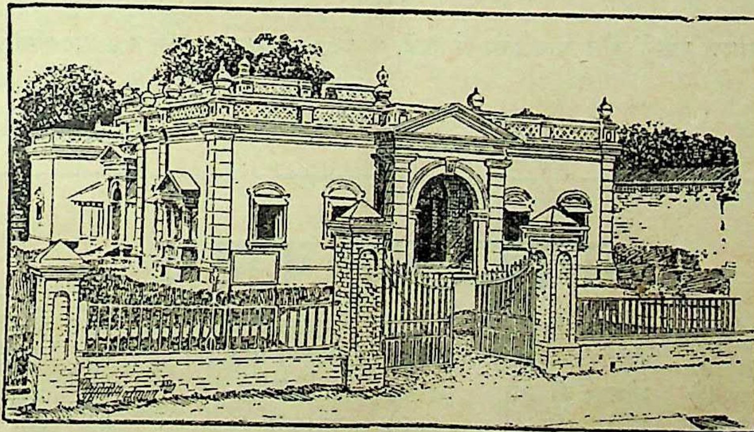
जुलाई, १९१५

सम्पादक–रामचन्द्र वर्म्मा।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची।

पवित्र काश्मीरी केशर—

दर्जे अव्वल ।||≈) तोला। शुद्ध शिलाजीत ||) तोला चीनी ममीरा २) तोला।

काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर। ७–१३–६–१४

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी

कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये, पताः—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

भयंकर मार काट।

जर्मन जासूस	।-)	वीर वारांगना	।≈)	हकीकतराय धर्मी	-)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	||)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	|||)	भोजपुर की ठगी	||)	वीरनारी जया	||)	नबाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	≈)	तारामती	||)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	≈)	वीर हम्मीर	≈)	नूरजहां	।)	रानाप्रताप नाटक	|||)
राणा सांगा और बाबर	≈)	झांसी की रानी	||)	जयश्री वा वीरबालिका	।≈)	अभिमन्यु नाटक	|||)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	≈)	वीर जयमल	।≈)	दस महारानियां	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	≈)	जीवन सन्ध्या	|||)	भीष्मपितामह	≈)	थियेटर संगीत	≈)
सिखों का साहस	≈)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१|||)	व्यापारतत्व	||)
रानी पन्ना	।≈)	सिखों के दस गुरु	||)	बिकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग २० | जुलाई, १९१५. | संख्या १

संगीत सूत्र के दो खंडित खंड ।

(लेखक—श्रीयुक्त पं० गणपति जानकीराम दुबे बी० ए०) ।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥

(सुभाषित०)



हित्य और संगीत का मेल बहुत प्रचीन काल से चला आता है। मानव जाति का प्राचीनतम साहित्य-भांडार अर्थात् हिन्दुओं के वेद स्वयं संगीत रूप में ही हैं। वेद गा कर पढ़े जाते हैं। आगे चल कर जब मीमांसकों ने वैदिक विषयों पर गूढ़ विचार ग्रथित किए तब शब्द को ब्रह्मत्व का महत्त्व प्राप्त हो गया, क्योंकि शब्द आकाश का गुण है और आकाश परमात्मा की आद्य सृष्टि है। इस कारण सृष्टि के अन्य तत्वों की अपेक्षा शब्द सब से प्रथम तत्त्व का निकट संबंधी है, इसी कारण शब्द को शब्दब्रह्म या नादब्रह्म कहने की प्रथा चली। शब्द में ब्रह्मप्रापकता का गुण होने के कारण आदि शब्द-महोदधि रूप वेदों की श्रेष्ठता मानी जाती है, यहाँ तक की संगीत को पंचम वेद कहा है।

जब किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करने के हेतु शब्दों का उपयोग मात्रा, गण इत्यादि के नियमों को छोड़ कर किया जाता है तब उस शब्दरचना को गद्य कहते हैं। और जब मात्रा-गणों के नियमानुसार शब्दप्रबन्ध होता है तब उसे पद्य कहते हैं। और जब षड्ज, ऋषभ, गाँधार, इत्यादि स्वरों के नियमों के अनुकूल पद्य-रचना होती है तब उसे संगीत कहते हैं। इन सब शब्द-रचनाओं में संगीत का गौरव अधिक है। गद्य अथवा पद्य को लीजिए, इन दोनों प्रकार की रचनाओं में अर्थबोधकता प्रथम गुण है। शब्द-रचना गौण रूप में देखी जाती है। सुन्दर शब्द भी यदि अर्थहीन हों तो वह रचना व्यर्थ है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थबोधकता की प्रधानता न हो कर केवल माधुरी के गुण से सुरीला संगीत मनुष्यों को तो क्या परन्तु अबोध बालकों तथा पशु और पक्षियों तक को मोहित और आकर्षित करनेवाला और सब का मनोरंजन करने की शक्ति रखता है। इतना ही नहीं किन्तु वह गद्य और पद्य की अपेक्षा अनिर्वचनीय शान्ति और प्रमोद उत्पन्न करता है।

यह गद्य, पद्य और संगीत मानो साहित्य-त्रिपथगा है जिसमें नव रस प्रवाहित होते रहते हैं। उनमें सत्त्वगुण-मय शान्त रस, रजोगुण-मय शृङ्गाररस और तमोगुण-मय वीर रस ये तीनों प्रधान हैं क्योंकि अन्य रस इन तीन प्रधान रसों के साधक और पोषक हैं। रस निबंधन की रीतियों में गद्य की अपेक्षा पद्य और पद्य की अपेक्षा संगीत में प्रवेश अधिकतर कठिन होता जाता है। परन्तु दूसरी ओर चित्त की एकाग्रता, तथा रसोत्पादकता के गुण में उत्तमता का प्रमाण गद्य की अपेक्षा पद्य में और पद्य की अपेक्षा संगीत में अधिक ही बढ़ता जाता है। इस प्रकार चित्तग्राही गुणों में संगीत सर्वोपरि है।

यथाशास्त्र संगीत के गाने से गायक और श्रोता एकाग्रचित्त होकर तन्मय हो जाते हैं। उस समय उनके चित्त की वृत्तियों में बाह्य आभासों के विषय में आप से आप विराग उत्पन्न हो कर, उनकी विषयों को ग्रहण करनेवाली मनोवृत्तियाँ श्रूयमाण नादरूप हो जाती हैं और जहाँ नाद का उदय, स्थिति और लय का केन्द्र है उस ब्रह्म को अनुलक्षित करने में समर्थ बन जाती हैं। उसमें गीत का अर्थ यदि शृङ्गार विषयक हो तो वह एकाग्रता काम अर्थ का साधक होता है और यदि गीतार्थ का विषय शान्त रस हो तो वह परमार्थ—मोक्ष—का साधक बन जाता है। इसी कारण जो योगी निरालंब समाधि में चित्त को स्थिर नहीं कर सकते वे नाद-विद्या अथवा संगीत-विद्या को एक सरल किन्तु बलवान् साधन मानते हैं।

शास्त्रगत विस्तृत अर्थवाले संक्षिप्त वाक्य को सूत्र कहते हैं। सूत्ररचना के कई कारण हैं। कर्मानुष्ठान की पद्धति के वैदिक भागों, ऋचाओं तथा सूक्तों के उपयोग की शृङ्खला को सूचित करनेवाले ग्रंथ सूत्रग्रंथ हैं। वे अध्यापकों तथा उपदेशकों के विस्तृत व्याख्यान के लिए आधार रूप और कृतविद्य अथवा पंडित शिष्य या श्रोताओं के लिए विषय-स्मरण में अत्यन्त सहायक होते हैं। इस प्रकार के सब शास्त्रों के सूत्र ग्रंथ संस्कृत भाषा के सिवा किसी अन्य भाषा में नहीं हैं। आर्य जाति की अप्रतिम प्रतिभा के परिणाम रूप तथा उनके गौरव को सूचित करनेवाले ये सूत्र ग्रंथ हैं।

इन सूत्र ग्रंथों में से एक प्राचीन ग्रंथ "संगीतसूत्रम्" नामक संगीत शास्त्र के विषय का है। जान पड़ता है कि इस अपूर्व ग्रंथ का पता आज तक नहीं लगा था। क्योंकि इस ग्रंथ का उल्लेख किसी टीका-ग्रंथ में नहीं पाया जाता। खेद है कि इस ग्रंथ के केवल दो पत्र मिले हैं; उन्हें ही यहाँ प्रकाशित करना उचित मालूम देता है। क्योंकि कदाचित् उत्तर भारत के मथुरा, काशी, प्रयाग, ग्वालियर आदि प्राचीन संगीत विद्या के केन्द्रस्थलों में किसी संगीत विद्या-प्रिय घराने में इस समग्र ग्रंथ का पता लग जाय। जितना भाग प्राप्त हुआ है उससे ज्ञात होता है कि वह सटीक-ग्रंथ है। उसका आरम्भ इस प्रकार है।

॥ श्रीः ॥

प्रणम्य वल्लभाचार्यान् तत्सुतान् विट्ठलेश्वरान्।*
कुरुते जयगोपालश्चिन्तामणिमुदारधीः ॥

इह खलु भरतादिमुन्यनुग्रहपूर्वकत्वेन तैः पृष्टा साहित्यमूलभूतं संगीतशास्त्रसूत्रमध्यायपञ्चकेन भगवती सरस्वती प्राह—

अथातः संगीतजिज्ञासा।

अथ शब्दस्य स्वयं मंगलरूपत्वात् आनन्तर्यार्थे-

* शुद्ध 'प्रणम्यवल्लभाचार्यं तत्पुत्रंविट्ठलेश्वरम्' होता है पर न जाने क्यों इस प्रकार पाठ प्रतिलिपि में है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों में संस्कृत अशुद्ध और संदिग्ध पद हैं जिससे अनुमान होता है कि मूल प्रति का लेखक अथवा टीकाकार संस्कृत का अच्छा विद्वान् नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऽधिकार्थेवाऽशब्दः। आनन्तत्यर्यन्तु मुख्यत्वेनालङ्कार शास्त्रनिरूपणात्—वावधेयम्। अधिकारार्थकत्वं तु संगीते मुमुक्षूणामधिकारस्य व्यवस्थापयिष्यमाणत्वेन "तेन ब्रम्हाधिगम" इति सूत्रे प्रतिपद्यते। अतः शब्दो हेत्वर्थः। यतोऽन्यत्रालङ्कारादौ रसस्य निरूपितत्वेऽपि उदाहरणस्यापरोक्षानुभवाभावो अत्र तु न तथा तौ हेतौर्जिज्ञासा। गीयत इति गीतम्। भावे क्तः। समस्तु विशेषेर्थः। तत्र सविशेषस्तु समभिव्याहरिष्यमाणत्रितयरूपस्तेन नाग्रिमसूत्रविरोध—इति वयंब्रूमः। अत्र दीपिकायां शार्ङ्गदेवाचार्याः—गीयते अनेनेति ठायालापचाल्यादिना करणभूतेन करणे क्तः, तत्र सम्यक्त्वं तु रंजकस्वरसंदर्भरूपत्वमित्याहुः। इदमेवाभिसंधाय शास्त्रदर्पणकारः कल्लिनाथोप्याह—सम्यक्त्वं जनादि हृदयानु रंजकत्वेनैवाव (१)

× × × × × ×

परस्परविरोधः कथं परिहर्तव्य इति वाच्यम् पूर्वोक्तश्रुतिषु प्रमत्तत्वादिविशिष्टस्य गायतो निषिद्धत्वश्रवणात्। गाने प्रमत्तत्वं त्वनुरंजकत्वेन कालक्रियामानादिठाया भाववत्वेन सानुनासिकत्वेनेत्यवधेयमिति। विधायिका श्रुतिस्तु तदंगसाहित्यविषयकत्वेन प्रतिपादनपरेति वयं ब्रूमः। कुम्भकर्णमहीपतिस्तु, गायन्तं ब्रम्हचारिणम् वानप्रस्थं वा स्त्रियः कामयन्ते तस्मात् गायते ब्रम्हचारिणे न देयं भिक्षान्नादिकमित्यर्थो निषेध विषयकश्रुतीनामित्याह। वयंतु "ईश्वरो गीयते यस्मिन् तद्गानम् वेदबोधितमिति" वचनेन ब्रम्हचारि वानप्रस्थविषयकमपि। तस्माद्गायते न देयमियंश्रुतिस्तु पूर्वोक्तदोषदुष्टाय गानविषयकं सान्तोषिक मुक्ताहारादि न देयमिति अर्थकतया व्याख्येयेतिदिक्। ननु पूर्वोक्तवचनेनेश्वरविषयकमेव गानं गेयं न तु नृपाज्ञया प्रयोक्तव्यमिति चेन्न। पूर्वोक्तवचनेन तादृशस्योत्कृष्टत्वमनीदृशस्यानुत्कृष्टत्वं तत इत्यर्थकतया सार्थकत्वात्। किं च "वीणावादनतत्वज्ञ" इति वचनेनैतस्यापि मोक्षसाधकत्वोक्तेः।

ननु किं तद्ब्रह्म यस्याधिगमो भवद्भिः प्रतिपाद्यते तत्राह—

ब्रह्मच शब्दप्रतिपन्नं सविशेषम्॥

वेदेन प्रतिपन्नं सविशेषं साकारमिति यावत्। "आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिरि" त्यादि वाक्यं विषयः। नन्वेवं करादि शब्दानां सर्वावच्छेदेनानन्दमयत्वप्रतिपादनपराणां तादृशार्थसमर्पकत्वेन कुत्रास्य विषयवाक्यत्वं चेति चेत् तथा सत्यानन्दमय इत्यनेनैव चरितार्थत्वापत्तेः। च शब्दो ऽवधारणे।

ननु वेद एव तथा प्रतिपादयति "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादिवाक्यैरिति चेत्तत्राह—

रसरूपत्वोक्तेः॥

ब्रह्म शब्दप्रतिपन्नं सविशेषं सधर्मकं न तु निर्धर्मकं। कुतः रसरूपत्वोक्तेः। यदि निर्धर्मकं स्यात्तदा रसरूपं न स्यात् "रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" इत्यादि श्रुतेः। रसश्च शृङ्गारादिरिति यावत्। स्यादेतत् रसस्यानन्दपदवाच्यत्वेन निर्धर्मकेपि रसरूपत्वं, अत एवैकवचनमपि प्रयुक्तं श्रुताविति चेत्। मैवम्। रसस्य नवरस पदवाच्यत्वात्। रूढियोगमपहरतीति न्यायेन तत्रैव रूढेः। श्रुतावेकवचनंतु रसेषु शृङ्गाररसस्याभ्यर्हितत्वात्। रसस्याधारणधर्मवचनं त्वग्रे प्रकीर्णकाध्याये प्रतिपादयिष्यते। अतएव "स इममेवात्मानं द्विधा विभज्यापा ... ... (७)

स्पष्टार्थ—वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विठ्ठलेश्वर को प्रणाम कर के विशाल बुद्धि जयगोपाल (संगीतसूत्र की) चिन्तामणि नामक टीका रचता है।

यहाँ (नाट्य शास्त्र के जन्मदाता) भरत आदि मुनि जनों पर कृपा कर के उनके द्वारा पूछे जाने पर श्रीमती भगवती सरस्वती देवी ने साहित्य-शास्त्र के मूल स्वरूप संगीतशास्त्र के सूत्र को पाँच अध्यायों में कथन किया। उसका प्रथम सूत्र यह है।

"अब यहाँ से संगीत की जिज्ञासा की जाती है" यहाँ "अथ" शब्द स्वयं (अर्थात् केवल शब्दस्वरूप से ही, अपने उच्चारण से ही) मंगल रूप है, (इस कारण उस अथ शब्द के उच्चारण मात्र से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगल प्राप्त होने से यहाँ किसी अन्य प्रकार का मंगलाचरण नहीं किया है)। अथ शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है (१) आनन्तर्य, (२) अधिकार। आनन्तर्य अर्थात् अमुक बात हो चुकने के अनन्तर और अधिकार अर्थात् नवीन प्रकरण के अर्थ में। आनन्तर्य तो संगीतशास्त्र के मुख्य होने के कारण (किसी दूसरे प्रासंगिक शास्त्र के ज्ञान के पश्चात्) अथवा "अंगभूत अलंकारशास्त्र के विवरण के पश्चात्" के अर्थ में समझना चाहिए। दूसरे अथ शब्द का अधिकारार्थ तो इस कारण है कि "उससे (संगीत से) ब्रह्म का अधिगम (ज्ञान) होता है" आगामी सूत्र में मुमुक्षुओं को अर्थात् मुक्ति पाने की इच्छा करनेवालों को अधिकार सिद्ध किया जानेवाला है। सूत्र में "अतः" शब्द 'अब,' या 'यहाँ से' कारण का बोधक है। वह कारण अथवा हेतु के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, जिससे अन्यत्र अलंकार आदि विषयों में रसों का निरूपण हुआ है। तथापि (उन उन रसों के) उदाहरणों में वर्णित प्रसंगों का अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) अनुभव नहीं होता। यहाँ (संगीत विषय में) वैसा नहीं है, संगीत के प्रभाव से रसाविर्भाव प्रत्यक्ष होता हुआ ज्ञात होता है। इस कारण संगीत की जिज्ञासा करना उचित है।

(अब संगीत शब्द की व्युत्पत्ति बताते हैं।) संगीत शब्द में जो कुछ गाया जाता है वह गीत है। यहाँ भाववाचक अर्थ में गै धातु में क्त प्रत्यय लगा है। सं (उपसर्ग) विशेषता के अर्थ में आया है। तस्मात् सविशेष अर्थात् आधिक्य के साथ सम्यक् रूप से जो कहा जाय वह संगीत गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समूह रूप है। इस कारण हम (जय गोपाल) कहते हैं कि आगामी सूत्र से इस प्रकार की व्युत्पत्ति करने से विरोध नहीं आता। संगीतरत्नाकर इत्यादि के कर्त्ता संगीत शब्द की व्युत्पत्ति अर्थात् धात्वर्थ और ही प्रकार से करते हैं। इस विषय में "दीपिका" में शार्ङ्गदेवाचार्य ने लिखा है कि—जिससे गाया जाता है—वह "ठाय" (संस्कृत शब्द स्थाय अर्थात् राग के अवयव, एक देश, भाग) "आलाप" (मंद, तार, इत्यादि स्वरों को अल्प, महा इत्यादि से जिसमें अभिव्यक्ति होती है) और "चाल्य" अर्थात् चलत फिरत इत्यादि गायन के कारण अर्थात् स्वरूप-दर्शन के कारण उनसे युक्त कारण के अर्थ में क्त प्रत्यय है। संगीत शब्द में सं का अर्थ सम्यकत्व है। अतः चित्तरंजन करनेवाले स्वरों का संगम ही संगीत का रूप है। इसी अर्थ का अनुसंधान कर के "शास्त्र-दर्पण" के कर्ता कल्लिनाथ भी कहते हैं कि—सम्यक्त्व का अर्थ जनमनरंजकत्व ही समझना चाहिए।

(यहाँ से हस्तलिखित प्रति के सातवें पृष्ठ का आरंभ है)। "ब्राह्मणौवीणागायिनौ गायतः" (वीणा के साथ गानेवाले दो ब्राह्मण गाते हैं)—अश्वमेध-प्रकरण की एक श्रुति—और "गायते न देयं" (गानेवाले को कुछ दानादि नहीं देना चाहिए) इन दोनों श्रुतियों का परस्पर विरोध किस प्रकार मिट सकता है सो कहते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त निषेधक श्रुति में ममत्त आदि दोषयुक्त गायक के निषेध का श्रवण है। इससे यह समझना चाहिए कि गायन में "प्रमत्तत्व" का काल, क्रिया, प्रमाण आदि ठाय के अभाव से सानुनासिकत्व के साथ गाने से रंजकत्व नहीं होता। और गान की अविरोधी श्रुति तो उसके अंग रूप साहित्य-विषयक होने के कारण साहित्य की प्रतिपादनपरा है।

इस विषय में कुंभकर्ण महीपति (मेवाड़ के राणा कुंभ) इस प्रकार कहते हैं कि गानेवाले ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थ को स्त्रियाँ चाहती हैं (गायन्तं स्त्रियः कामयन्ते) इस कारण गायक ब्रह्मचारी को भिक्षान्न आदि नहीं देना चाहिए; यही अर्थ संगीत का निषेध करनेवाली श्रुतियों का है।

परन्तु हमारा यह वक्तव्य है कि जिसमें ईश्वर का यशोगान किया जाय वह गीत है, वह वेदबोधित है—इस वचन से विधायक श्रुति ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ को भी सम्मिलित करती है। इससे "गायते न देयम्" वाली निषेधवाचक श्रुति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार उसकी व्याख्या इस प्रकार करनी चाहिए कि पूर्वोक्त प्रमत्ततादि दोषों से दूषित को गान संबंध में सांतोषिक अर्थात् पारितोषिक या इनाम, जैसे मोतियों की माला आदि, नहीं देना चाहिए।

पूर्वोक्त वचन के अनुसार केवल ईश्वर विषयक गीत गाना चाहिए। यदि यह शंका की जाय कि राजा की आज्ञा से गायन का प्रयोग न करना चाहिए, तो वह ठीक नहीं है क्योंकि पूर्वोक्त वचन से उस प्रकार का गायन अर्थात् वह गायन जो ईश्वर विषयक है, उत्कृष्ट है, सर्वोत्तम है। उसके समान जो न हो वह कम योग्यता का है और इससे पूर्वोक्त स्वमत की सार्थकता सिद्ध है। और फिर,—

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयत्नेन मोक्षमार्गं निगच्छति॥

याज्ञवल्क्य स्मृति।

इस वचन में संगीतज्ञ की भी मोक्षसाधकता वर्णित है। अर्थात् मोक्ष का विषय चित्तैकाग्र्य है और चित्त की एकाग्रता का उत्तम साधन संगीत है। अतः स्मृति का तात्पर्य है कि संगीत मोक्ष-साधक है।

(अब यहाँ यह शंका है कि) वह ब्रह्म क्या है। ऊपर कहा जा चुका है कि उसका अधिगम (ज्ञान-प्राप्ति) संगीत से होता है। इस विषय में सूत्र कहता है:—

ब्रह्म ही शब्द में (वेद में) प्रतिपन्न (दर्शित) सविशेष (साकार) है।

'वेदों का प्रतिपन्न सविशेष अर्थात् साकारत्व' इस सूत्र का विषय-वाक्य यह है—"आनन्द ही जिसके हाथ, पैर, मुख, उदर इत्यादि हैं"। इसमें यह शंका होती है कि कर आदि शब्द सब वस्तुओं का अवच्छेद कर के ब्रह्म का आनन्दमयत्व अर्थात् निराकारता सिद्ध करते हैं। ऐसा कहनेवालों को यदि यह शंका हो कि यह (आनन्दमात्रकरपाद मुखोदरादि) श्रुति किस प्रकार उपर्युक्त अर्थ का विषय-वाक्य होगी तो कहा जायगा कि "आनन्द-मय" श्रुति ही प्रयोजन-रहितता की प्राप्ति बन जाती है। सूत्र में "च" शब्द निश्चयार्थी है।

(इस पर यदि यह शंका हो कि) वेद ही "नित्य विज्ञान आनंद ब्रह्म है" इत्यादि वाक्यों से ब्रह्म का निराकारत्व प्रतिपादन करते हैं तो (उसके समाधान में सूत्र) कहता है,—

उसमें (ब्रह्म की) रसरूपत्व की उक्ति (कथन) है। ब्रह्म शब्द में दर्शित सविशेष सधर्मक है, निर्धर्मक (निर्गुण निराकारादि) नहीं है। यदि कोई पूछे कि यह कैसे तो उसका उत्तर है कि—रस-रूपत्व की उक्ति से। यदि वह ब्रह्म निर्धर्मक हो तो वह रस-रूप नहीं होगा; क्योंकि वह रस ही है। कहा भी है "रस ही को यह (आत्मा) प्राप्त हो कर आनन्दमय होती है" (तैतिरीय उपनिषद् २-६-१) इत्यादि श्रुतियाँ हैं।

यदि कोई कहे कि रस का वाच्य अर्थ आनंद भी है तो आनंद ही बृहदारण्यक श्रुति के अनुसार ब्रह्म होने के कारण रस-रूपत्व निर्धर्मक निर्गुण-ब्रह्म में हो सकता है। इसी कारण यदि यह शंका की जाय कि "रसो वै सः" इत्यादि श्रुतियों में एक वचन का प्रयोग है—तो वह ठीक नहीं, क्योंकि रस का वाच्यार्थ नवरस शब्द है। क्योंकि रूढ़ि अथवा रूढ़ अर्थ योग अर्थात् व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ का अपहार करता है। इस न्याय से उसी नवरस के अर्थ में रस पद की रूढ़ि का अर्थ है; इसी से श्रृङ्गार रस के नौ रसों में प्रधान होने के कारण श्रुति में रस पद का एक वचन में प्रयोग किया गया है। रस असाधारण धर्मयुक्त है। उसका वर्णन आगे प्रकीर्णकाध्याय में प्रतिपादित किया जायगा। "वह ब्रह्म ही इस आत्मा को (स्त्री-पुरुष) दो प्रकार से विभक्त करके.........—" (यहाँ सातवाँ पृष्ठ समाप्त होता है)।

इस खंडित भाग में आए हुए विषय से इस ग्रंथ की उपयोगिता और उत्तमता स्पष्ट ज्ञात होती है।

इस ग्रंथ से नीचे लिखी बातों का पता चलता है,—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) ये संगीतसूत्र सरस्वती देवी-प्रणीत हैं (!) और टीकाकार के लेख से ज्ञात होता है कि वे भरत महामुनि के नाट्य शास्त्र से भी पूर्व समय के हैं।

(२) जयगोपाल भट्ट विद्वान् टीकाकार थे। तैलङ्ग ब्राह्मणों के जिस कुल से श्री वल्लभाचार्य के गोस्वामी कुल के महाराज लोग कन्यादान का संबंध रखते हैं वह वर्ग भट्ट (भटजी) संज्ञा से प्रसिद्ध है। उसी वर्ग में से जयगोपाल भी थे। उनके पिता का नाम चिंतामणि दीक्षित और पुत्र का व्रजभूषण था। वे वल्लभ-कुल-मंडन सुप्रसिद्ध गोस्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे और संवत् १६३२ के लगभग हुए थे।

(३) उनके रचे हुए ग्रंथों में से अब तक तीन ग्रंथों का पता लगा है।

(क) श्री वल्लभाचार्य ने स्वकृत सेवाफल नामक स्तोत्र पर विवरण नामक जो टीका लिखी है, उस पर विशेष टीका। इसकी एक प्रति पूने के डेक्कन कालेज के ग्रंथ-संग्रह में है। (ख) बहिर्मुखमुखमर्दनं। इसकी एक प्रति ग्रंथकर्ता के पुत्र व्रजभूषण के हस्ताक्षर की सं० १६४७ की लिखी हुई नडियाद के उस पुस्तक संग्रह में है जिसमें से यह सूत्र खंड प्राप्त हुए हैं। (ग) यह प्रस्तुत ग्रंथ संगीत सूत्र टोका—चिंतामणि। जान पड़ता है कि इस टीका का यह नाम उन्होंने अपने पिता के स्मरणार्थ रक्खा है।

इसके अतिरिक्त इस टीका से और भी तीन बातें ज्ञात होती हैं,—

(१) संगीतरत्नाकर नामक प्रख्यात ग्रन्थकर्ता शार्ङ्गदेव ने (सं० १३००) (१) संगीतरत्नाकर, (२) अध्यात्म विवेक और पश्चात्, (३) संगीत-दीपिका नामक ग्रंथ रचे थे। इस अंतिम ग्रंथ का उल्लेख कहीं पाया नहीं जाता। इस संबंध में केवल यही अनुमान किया जा सकता है कि या तो यह ग्रंथ लुप्त हो गया हो या संगीतरत्नाकर पर अथवा संगीतसूत्र पर टीका हो।

(२) कुंभकर्ण महीपति—(सं० १४७५—१५२५) मेवाड़ का विख्यात राणा कुंभ है। वह बड़ा प्रतापी और विद्वान् था। उसके प्रसिद्ध ग्रंथ ये हैं। (१) गीतगोविंद पर परमोत्तम टोका "रसिक-प्रिया" नाम की (जो अब छप गई है) (२) संगीतराज वा रत्नकोश है। इस ग्रंथ की प्रति बीकानेर के राजपुस्तकालय में है। इसके सिवा "रसिक-प्रिया" से ज्ञात होता है कि राणा कुंभ ने (३) संगीत क्रम दीपिका और (४) लिंगाश्रय नामक ग्रंथ भी रचे हैं। (५) पाठ्य रत्नकोश और संगीत रत्नाकर की टीका का विशेष रूप से अभी तक पता नहीं लगा है।

(३) कल्लिनाथ—यह कर्नाटक देश का संगीत-विज्ञ सं० १५००—१६०० के बीच विद्यमान था। उसकी संगीत-रत्नाकर की कलानिधि नामक एक टीका छप चुकी है। शास्त्रदर्पण नामक उसके दूसरे ग्रंथ का पता उसके टीका-ग्रंथ से चलता है।

प्रस्तुत खंडित ग्रंथ कहाँ से प्राप्त हुआ ?

काठियावाड़ के नड़ियाद नामक नगर में भट्ट-मेवाड़े जाति के एक विद्वान् शास्त्री मनसारामजी सं० १८६० के लगभग विद्यमान् थे। उनके पूर्वपुरुष खंभायत के निवासी थे। सं० १८०० के क़रीब खंभायत छोड़ कर वे नड़ियाद के निवासी हुए। मनसाराम शास्त्री नड़ियाद के वल्लभ कुल के गोस्वामी महाराज के पास शास्त्री थे। वे उनके साथ यात्रा आदि में रहा करते थे। मनसाराम शास्त्री स्वयं विद्वान् और रसिक थे और जहाँ जाते वहाँ से अपूर्व ग्रंथों का संग्रह करते थे; और उससे उनके सेवाधिकार में भी सहायता होती थी। उनके ग्रंथ संग्रह का निरीक्षण करते हुए श्रीयुत तनसुखराम म० त्रिपाठी बी० ए० को दस बारह बरस पहिले प्रस्तुत पुस्तक के पन्ने मिले थे। उन्होंने सम्पूर्ण ग्रंथ को खोजने की इच्छा से उस ग्रंथ-संग्रह को पूरी तरह छान डाला। परन्तु और कुछ उपलब्ध नहीं हुआ। त्रिपाठी जी ने इस ग्रंथ के संबंध में वल्लभ कुल के विद्वान् गोस्वामी महाराज देवकीनन्दन जी से भी निवेदन किया था। क्योंकि टीकाकार जय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल भट्ट वल्लभमतानुयायी थे और उस दिशा में उनसे कुछ अधिक हाल मालूम होने की आशा की गई थी। गोस्वामी महाराज ने परिश्रम भी किया परन्तु सफलता नहीं हुई। फिर यह विवरण उन्होंने सं० १९६३ में प्रकाशित किया और उसी के आधार पर यह लेख लिखा गया है।

गोस्वामी पद को अलंकृत करनेवाले मथुरा,
वृंदावन, काशी, प्रयाग, ग्वालियर
इत्यादि स्थानों के विद्वान् लोगों
की सेवा में प्रार्थना।

हमारे मित्र त्रिपाठीजी ने उधर गुजरात में खोज की परन्तु वल्लभ कुल सांप्रदायियों के आकर-रूप व्रज-मंडल आदि स्थानों में बहुत प्राचीन ग्रंथों का होना संभव है और इस सम्प्रदाय के लोगों में संगीत विद्या का परिशीलन करने की प्रथा अद्यावधि चली आती है। अतः उनके पास उस विद्या संबंधी ग्रंथों का संग्रह होना भी अत्यंत संभव है। इसलिए गोस्वामी महोदयगण इस खंडित किन्तु अद्वितीय और उच्च कोटि के ग्रंथ की खोज करके पूर्ण रूप में मंडित करने का यत्न करें तो कदाचित् वह प्राप्त हो जाय और सम्पूर्ण ग्रंथ संगीत विद्या के रसिकों के उपकारार्थ प्रकाशित हो जाय। इस प्रकार केवल संगीत ही के साहित्य भंडार में एक अमूल्य ग्रंथ-रत्न की पूर्ति नहीं होगी किन्तु हिन्दी-साहित्य तथा संस्कृत ग्रंथ-भांडागार में भी विशेष रूप से वृद्धि होगी।

—:०:—

वायु-विज्ञान।

[लेखक—डा० कालीचरण दुबे एल० एम० एस० डी० पी एच० हेल्थ आफिसर, बनारस।]

मनुष्य की आरोग्यता के लिये सब से पहली और सब से अधिक आवश्यक चीज स्वच्छ और यथेष्ट हवा है। जिस प्रकार कोई मछली पानी के बाहर निकल कर किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार कोई मनुष्य हवा से अलग हो कर किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता। मछली के चारों ओर यदि जल-समुद्र का होना आवश्यक है तो मनुष्य के चारों ओर वायु-सागर का होना जरूरी है।

यदि मनुष्य को हर दम और विशेषतः सवेरे और सन्ध्या के समय सुन्दर, स्वच्छ और यथेष्ट वायु न मिले तो अच्छे से अच्छे स्वादिष्ट भोजन और बढ़िया से बढ़िया कपड़े और मकान आदि उसके लिये किसी काम के न होंगे। खराब हवा में साँस लेने से मनुष्य के शरीर का सारा खून जहरीला हो जाता है और हाथ, पैर या दूसरे अंग किसी काम के नहीं रह जाते। शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में अनेक दूषित पदार्थ इकट्ठे हो जाते हैं। साधारणतः अच्छी हवा में साँस लेने से मनुष्य के फेफड़े में जो आक्सीजन (Oxygen) नाम की वायु रहती है, वही उन इकट्ठे होनेवाले दूषित पदार्थों को जला देती है। यदि वह वायु न हो तो ये दूषित पदार्थ इतनी जल्दी और इतने अधिक बढ़ जायँ कि मनुष्य का जीना बहुत ही कठिन, बल्कि असम्भव हो जाय। वास्तव में अधिक समय तक खराब हवा में साँस लेना मानो दम घुट कर मरना ही है। पहली बात तो यह है कि खराब हवा से मनुष्य को आमवात रोग हो जाता है। इस रोग से मनुष्य यद्यपि तुरन्त नहीं मर जाता तो भी उससे होनेवाली हानि और कष्ट बहुत अधिक है। क्योंकि यह रोग मनुष्य के शरीर पर हलके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष के समान धीरे धीरे अपना प्रभाव डालता रहता है जिसके कारण उसकी आरोग्यता नष्ट होती रहती है और मनुष्य बहुत ही दुर्बल और अशक्त हो जाता है। इस दुर्बलता के कारण मनुष्य को और भी अनेक रोग घेर लेते हैं। उस दशा में भी यदि मनुष्य को स्वच्छ वायु न मिले तो मनुष्य का उन रोगों से बच कर नीरोग होना और भी कठिन हो जाता है और वह जल्दी जल्दी मृत्यु के पास पहुँचने लगता है। अधिकांश बच्चे प्रायः इन्हीं कारणों से मरा करते हैं। शहर और गाँव की हवा में बहुत अन्तर हुआ करता है। गाँव की हवा सदा साफ होगी और शहर की हवा कुछ गन्दी। इसके सिवा शहर की गलियों और सड़कों की अपेक्षा मकानों की कोठरियों आदि की हवा और भी खराब तथा गन्दी रहा करती है। हम लोगों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि अपने घरों की कोठरियों की हवा भी कम से कम उतनी ही साफ रक्खें जितनी हमारे शहरों की गलियों और सड़कों की हुआ करती है।

वायु किन किन चीजों से बनती है।

वायु कोई एक चीज नहीं है बल्कि वह कई चीजों का मेल है। उसमें

आक्सिजन (Oxygen) ...२०.९६ भाग

नाइट्रोजन (Nitrogen) ...७९.०भाग और

कारबनडाई और आक्साइड (Carbondi Oxide) .०४ भाग रहता है। इसके अतिरिक्त उस में पानी का कुछ अंश या भाप भी रहती है पर उसकी अधिकता या न्यूनता हवा की ठंढक और गरमी पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त उसमें बहुत ही थोड़े परिमाण में अमोनिया, ओजोन आदि पदार्थ भी रहते हैं। इनमें से स्वास्थ्य के लिये ओजोन सब से अधिक लाभदायक है।

साफ हवा में न तो किसी प्रकार का रंग ही होता है और न किसी प्रकार की गन्ध या स्वाद ही।

नाइट्रोजन (Nitrogen)।

वायु का नाइट्रोजन एक विशेष और मुख्य अंग है। यह पदार्थ सृष्टि में सब जगह पाया जाता है। विशेषतः मनुष्य के मांस और वृक्षों के गूदों में बहुत अधिकता से होता है। साधारणतः सभी प्राणियों के लिए यह बहुत आवश्यक है। हवा में इसका अस्तित्व आक्सीजन को फैलाने के लिए होता है।

आक्सिजन (Oxygen)।

यह भी वायु में रहनेवाली सूक्ष्म वायु ही है। वायु से आक्सिजन कुछ भारी होता है और पानी में घुल जाता है। यह बहुत से पदार्थों में मिलता है। आग जलने और प्राणियों के जीवित रहने के लिए इसका होना बहुत आवश्यक है।

ओजोन (Ozone)।

कुछ घने आक्सिजन का नाम ही ओजोन है। इसका घनत्व आक्सिजन से डयोढ़ा होता है पर गरमी पाने से वह साधारण ओजोन के रूप में हो जाता है। इसमें गंध दूर करने का विशेष गुण है और वायु में इसका बहुत थोड़ा अंश पाया जाता है। यह समुद्र के किनारे और बादलों के गरजने के समय कहीं कहीं अधिक पाया जाता है। शहरों की अपेक्षा गावों की वायु में यह कुछ अधिक होता है।

कारबन डाई आक्साइड।

(Carbon di Oxide)

यह पदार्थ आग या किसी और चीज के जलने से तथा मनुष्य के साँस के साथ उसके शरीर से बाहर निकलता रहता है। रात के समय वृक्ष भी साँस के के साथ इसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी लिए रात के समय सोने के कमरों में पौधों के गमले आदि न रखने चाहिए।

भाप।

भाप के रूप में पानी का कुछ अंश भी हवा में सदा रहता है। पर इसका परिमाण बहुत ही कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रायः एक हजार हिस्सों में आठ या दस हिस्से) होता है। नदी, तालाब, समुद्र आदि के किनारे की हवा में इसका परिमाण कुछ अधिक होता है। जिस हवा में पानी का यह रूप कम हो वह गरम जान पड़ती है और जिसमें अधिक हो वह ठंढी मालूम होती है।

हवा मनुष्य के शरीर में साँस के द्वारा प्रविष्ट होती और बाहर निकलती है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि वायु में आक्सिजन, नाइट्रोजन और कारबन डाई आक्साइड कितने कितने अंशों में रहते हैं। अब यहाँ यह बतलाया जाता है कि साँस लेने के बाद मनुष्य के मुँह या नाक से जो हवा बाहर निकलती है उसमें ऊपर कही हुई चीजें कितने भागों में रहती हैं,—

आक्सिजन ... ... १६½ भाग
नाइट्रोजन ... ... ७९"
कारबन डाई आक्साइड ... ... ४½"

अब दोनों के मिलान से जान पड़ेगा कि नाइट्रोजन तो साधारण वायु के साथ मनुष्य के शरीर में जितना जाता है उतना ही ज्यों का त्यों बाहर निकल आता है; पर आक्सिजन २०·९६ से घट कर १६½ भाग रह जाता है और कारबन डाई आक्साइड ·०४ से बढ़ कर ४½ भाग हो जाता है। अर्थात् कारबन लगभग सौगुना बढ़ गया।

एक पूरा जवान आदमी चौबीस घण्टों में ४०० घन फुट हवा साँस के द्वारा अन्दर खींचता और बाहर निकालता है। इसका अर्थ यह है कि एक मनुष्य एक दिन रात में ४०० घन फुट हवा खराब कर देता है और उसमें का कारबन सौ गुना बढ़ा देता है, जिसके कारण उसके आस पास की हवा खराब हो जाती है। अब यदि कमरे में साफ हवा आने का रास्ता न हो तो बहुत जल्दी उस कमरे की हवा खराब हो जायगी और साँस लेने के योग्य न रहेगी। और यदि यही दशा कुछ अधिक समय तक बनी रही तो उस कमरे में रहनेवाले आदमी का दम घुट जायगा और वह जल्दी ही मर जायगा। ऐसी दुर्घटनाएं प्रायः सुनने में आती हैं। कलकत्ते की इतिहास-प्रसिद्ध काल-कोठरी में यही हुआ था। सन्ध्या के समय एक छोटी सी कोठरी में १३३ आदमी बन्द कर दिए गए थे और सवेरे उनमें से एक या डेढ़ दरजन को छोड़ कर बाकी सब लोग मरे हुए पाए गए थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि एक आदमी के साँस लेने से २४ घण्टों में प्रायः ४०० घन फुट हवा खराब होती है। इस खराब हवा को साफ रखने के लिए कमरे में रहनेवाले आदमियों के हिसाब से उनकी लंबाई चौड़ाई आदि का निश्चय करना चाहिए। इसके सिवा खराब हवा के बाहर निकलने और अच्छी हवा के अन्दर आने के लिए उसमें यथेष्ट खिड़कियों और दरवाजों का होना भी बहुत आवश्यक है।

साँस से लाभ।

स्वच्छ वायु नाक के द्वारा फेफड़ों तक पहुँचती है। वहाँ उसमें आक्सिजन समा जाता है और उसके बदले में कारबन डाई आक्साइड बाहर निकलता है। वहाँ से आक्सिजन मनुष्य के खून में मिल कर उसका रंग लाल करता है। जिस खून में आक्सिजन का भाग आवश्यकता से कम हो उसका रंग काला होता है। उसके काले होने का कारण यह है कि उसमें अँतड़ी, जिगर, तिल्ली, पेट और गुरदे आदि का दूषित अंश मिल जाता है और उसी मिलावट के कारण उसका रंग काला हो जाता है। आक्सिजन उस दूषित अंश को जला कर खून का रंग फिर लाल कर देता है। प्रत्येक मनुष्य एक मिनट में १६ या १८ बार साँस लेता है और साँस लेने में जो हवा अन्दर जाती है उसके आक्सिजन से ही वह दूषित अंश जलता रहता है। अगर मनुष्य को पूरा पूरा आक्सिजन न मिले तो उसके खून में वह दूषित अंश या विकार इकट्ठा होता जायगा और आँत या पेट का पचाया हुआ भोजन शरीर के सब अंगों में न पहुँचा सकेगा। उलटे वह विकार जिसका प्रभाव विष के समान होता है, सारे शरीर में फैल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा और ज्यों ज्यों मनुष्य खराब हवा में साँस लेता रहेगा त्यों त्यों खून में इकट्ठा होनेवाला विकार बढ़ता जायगा और उसके शरीर के अंगों में विष फैलता जायगा। फल यह होगा कि मनुष्य जल्दी जल्दी कमजोर होने लगेगा और यदि उसे शीघ्र ही साफ हवा न मिलेगी तो वह मर जायगा।

हवा खराब होने के कारण।

हवा खराब होने के मुख्य कारण दो हैं। उनमें से एक तो स्वाभाविक और अनिवार्य्य कहा जा सकता है और दूसरा कृत्रिम और निवार्य्य। स्वाभाविक या निवार्य्य कारण के अन्तर्गत प्राणियों का साँस लेना, चीजों का जलना, खुली हवा में चीजों का सड़ना और गलना, पसीना, थूक, मल-मूत्र, पृथ्वी से गन्दी भाप निकलना आदि हैं। इसके अतिरिक्त घर के नित्य प्रति के बहुत से काम और पेशे आदि भी ऐसे हैं जिनसे नित्य हवा खराब होती रहती है और बहुधा जहरीली हो जाती है। स्वयं पृथ्वी भी ठोस नहीं बल्कि पोली है और हवा बराबर उसके अन्दर जाती और बाहर आती रहती है। जो हवा पृथ्वी के अन्दर जाती है वह वहाँ के गन्दे पदार्थों से मिल कर खराब हो जाती है और तब फिर उसी गन्दे रूप में बाहर निकलती है। वह हवा बाहर की साफ़ हवा को भी खराब कर देती है। लोगों के नहाने धोने और भोजन आदि पकाने तथा चमारों, रंगसाजों, कसाइयों, ठठेरों, छीपियों, हलवाइयों और कई तरह की चीजें गलानेवालों से भी हवा खराब होती है। पर इन सब कारणों से वायु में जो दोष उत्पन्न होते हैं वे मनुष्य को रोगी ही बना सकते, उनके प्राण नहीं ले सकते। इन सब कारणों को प्राकृतिक, अनिवार्य्य और ईश्वरीय ही कह सकते हैं और इसी लिए ईश्वर ने उन कारणों से उत्पन्न होनेवाले दोष दूर करने के अनेक उपाय भी कर दिए हैं। खराब हवा जब अच्छी हवा में मिलती है तो उसके दोष आपसे आप दूर होने लगते हैं। आँधी चलने के कारण भी हवा के बहुत से दोषों का नाश हो जाता है। पौधे, वृक्ष तथा वनस्पतियाँ वायु में का दूषित अंश कारबन डाई आक्साइड सोख लेती हैं और अपने अंगों से आक्सिजन निकाल कर हवा साफ करती हैं। वनस्पतियों की यह क्रिया केवल दिन के समय होती है, रात के समय उनका कार्य्य इससे उलटा होता है। पानी बरसने के कारण भी हवा का दूषित अंश निकल कर जमीन पर आ जाता है और मिट्टी आदि में मिल कर नष्ट हो जाता है।

अब हम उन कारणों का वर्णन करते हैं जो अनिवार्य्य नहीं हैं—जिनका प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं है और इसी लिए जिनका परिहार प्रकृति नहीं कर सकती। वह कारण मकानों और कोठरियों आदि का तंग और अँधेरा होना, थोड़ी सी जगह में बहुत से आदमियों का रहना, बन्द मकानों में आग जलना या रोशनी होना, मनुष्यों के रहने की जगह के आस पास मरे हुए जानवरों का सड़ना, मुरदों का अच्छी तरह न जलना, शरीर का स्वच्छ न रहना, पहनने के कपड़ों का गन्दा रहना, सफाई का ठीक ठीक और पूरा प्रबन्ध न होना, मल, मूत्र, गोबर, कूड़ा करकट आदि का जमा होना, गाँवों और शहरों आदि में छीपियों और चमारों आदि का ऐसे स्थानों पर बसना जिधर से हवा आती हो, बस्ती का घना होना आदि आदि हैं। इन सब कारणों को दूर करने के लिए उचित है कि मकान खूब खुले, हवादार और साफ हों, उनमें खिड़कियाँ, झरोखे और दरवाजे हों जिससे उनमें, कारबन इकट्ठा न हो, छोटे और तंग मकानों में अधिक लोग न रहा करें, जिन कमरों में धुआँ आदि निकलने का मार्ग न हो उनमें आग न जलाई जाय, मरे हुए जानवर आदि सड़ने से पहले ही बस्ती से दूर फेंक या गाड़ दिए जायँ, मुरदे बस्ती से दूर जलाए या गाड़े जाया करें, शरीर खूब स्वच्छ रक्खा जाय, मैला और कूड़ा करकट आदि बस्ती से दूर फेंकवा दिया जाय, जमीन की नमी से बचने के लिए मकानों की कुरसियाँ ऊँची रक्खी जायँ, सोने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठने आदि का स्थान साधारण जमीन से ऊँचा हो, मकान लीपे पोते और साफ रक्खे जाया करें, आबादी के आस पास दलदलों आदि के पानी के निकास का पूरा प्रबन्ध किया जाय, मोरियाँ आदि साफ रक्खी जायँ और उनका पानी जमा न होने दिया जाय, हवा खराब करनेवाले पेशेवर बस्ती से दूर बसाए जायँ, आदि आदि।

बच्चों, बीमारों और कमजोरों को साफ हवा की और भी अधिक आवश्यकता रहती है, क्योंकि इनके फेफड़ों से अधिक गन्दी हवा निकलती है। इसके अतिरिक्त बीमारी और कमजोरी के कारण उनसे हवा जल्दी और अधिक गन्दी होती है। बहुत से बालक पैदा होने के उपरान्त जल्दी मर जाते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि इस देश में उन्हें पूरी पूरी साफ हवा नहीं मिलती। मकानों के कमरे आदि बनवाने के समय जिस प्रकार उसमें रहनेवालों की संख्या का ध्यान रखना आवश्यक है, उसी प्रकार उसमें जलाए जानेवाले चूल्हों और चिरागों आदि का ध्यान रखना भी आवश्यक है। साधारणतः एक आदमी के रहने के लिए दस फुट लम्बा, दस फुट चौड़ा और दस फुट ऊँचा कमरा होना चाहिए। पर इतने बड़े कमरे में यदि मिट्टी के तेल का देशी दिआ जलाया जायगा तो उसकी हवा जल्दी और अधिक खराब होगी। कड़ुआ तेल जलाने से हवा इससे कम और लम्प जलाने से और भी कम खराब होगी। यदि हवा के तीन बार बदले जाने का प्रबन्ध हो तो साधारणतः एक मनुष्य के लिए सौ घन फुट स्थान और एक हजार घन फुट हवा की आवश्यकता होती है; पर यदि हवा केवल दो ही बार बदली जाती हो तो २००० घन फुट हवा और यदि केवल एक ही बार बदलती हो तो ३००० घन फुट हवा की आवश्यकता होती है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को और पुरुषों की अपेक्षा बालकों को कम जगह की आवश्यकता होती है। पर बीमारों और दुर्बलों को अधिक जगह और हवा चाहिए।

थोड़ी सी जगह में बहुत से आदमियों के रहने का बहुत बुरा परिणाम होता है। यदि तंग जगह में बहुत से लोग थोड़ी देर तक रहें तो सिर में दर्द होने लगता है और उसके उपरान्त बेहोशी आती है, कभी कभी कै और दस्त की नौबत पहुँच जाती है और यदि भाड़ भीड़ अधिक देर तक रहे तो मृत्यु का भी भय होता है।

यदि किसी छोटे घर में लगातार बहुत दिनों तक अधिक आदमी रहेंगे तो उनका स्वास्थ्य बहुत जल्दी बिगड़ जायगा और वे देखने में भी दुर्बल जान पड़ने लगेंगे। उन्हें न तो पूरी भूख लगेगी और न पूरी नींद आवेगी। इसके अतिरिक्त उन्हें बद-हजमी होगी, उनकी तबियत उदास और सुस्त रहेगी और वे शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम से घबराने लगेंगे। गन्दी हवा में रहने के कारण उनका खून काला पड़ता जायगा और उनके शरीर पर जर्दी छा जायगी। ऐसे लोगों को अनेक भयङ्कर रोग हो जाने की सम्भावना होती है। प्लेग, हैजे, या तपेदिक आदि से बचना उनके लिए क़ठिन होता है।

किसी कमरे की हवा उस समय साफ कही और समझी जा सकती है जब कि किसी मनुष्य को बाहर से आ कर प्रवेश करने के समय उसमें किसी प्रकार की बदबू या कुछ अधिक गरमी न मालूम हो। कमरे की हवा दो प्रकार से साफ की जा सकती है। एक तो स्वाभाविक रीति से, अर्थात् बड़े बड़े दरवाजे होने के कारण हर दम साफ हवा के आने से; और दूसरे कृत्रिम उपायों,—पंखे आदि से। हवा के साफ होने की स्वाभाविक रीति के अन्तर्गत और भी अनेक कारण हैं जिनमें से कुछ ये हैं;—

(१) पानी बरसना,

(२) कड़ी धूप आना,

(३) वृक्षों और पौधों की निकटता,

(४) आँधी या तेज हवा चलना और,

(५) गरमी का घटना बढ़ना से; जैसा कि दिन के चढ़ने या ढलने के कारण होता है। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव यह होता है कि गरमी के समय गरम हलकी हवा ऊपर चली जाती है और उसके बदले में ठंढी ताज़ी हवा नीचे आ जाती है जिससे एक चक्कर सा बँध जाता है।

हवा खराब होने के कारण प्रायः नीचे लिखी हुई बीमारियाँ हो जाया करती हैं:—

(१) बदहजमी या अपच।

(२) खाँसी।

(३) न्यूमोनिया।

(४) दुर्बलता,

(५) हृदय की गति का कम हो जाना या मूर्छा आदि। और

(६) खून में कारबोनिक एसिड गैस का इकट्ठा हो जाना या इसी प्रकार के किसी और विषाक्त पदार्थ का एकत्र होना।

यदि हवा बहुत अधिक खराब न हो तो इसका परिणाम यह होता है कि सिर में दर्द होने लगता है और दम घुटने लगता है। ज्यों ज्यों हवा अधिक खराब होगी त्यों त्यों दम अधिक घुटेगा। यहाँ तक कि धीरे धीरे बेहोशी होने लगेगी। यदि हवा का दोष बराबर बढ़ता जायगा तो अन्त में मनुष्य मर जायगा।

जिन पेशेवरों के कारण हवा खराब होती है उनके नाम क्रम से नीचे दिए जाते हैं:—

प्रथम श्रेणी में।

(१) सान आदि का काम करनेवाले, सान धरनेवाले, धात का काम करनेवाले, लोहार, सुनार आदि आदि।

(२) विषाक्त पदार्थ बनानेवाले, तेजाब का काम करनेवाले, शीशे का काम करनेवाले आदि आदि।

(३) बदबूदार चीजें बनानेवाले।

(४) चिकनी ईंटें बनानेवाले, आँतें साफ करनेवाले, साबुन बनानेवाले, कीमुख्त का काम करनेवाले, बत्तकें आदि पालनेवाले और चमार आदि।

दूसरी श्रेणी में।

(१) खरादवाले—

लोहे का काम करनेवाले, शीशे के बरतन बनानेवाले, चूने की भट्ठीवाले, शीशा तराशनेवाले, छापेखानेवाले, सीमेंट बनानेवाले, संगतराश, कुम्हार, ईंटें बनानेवाले, आदि।

(२) वनस्पति के सम्बन्ध के काम करनेवाले—

रुई कातनेवाले, कपड़े बुननेवाले, तम्बाकू के कारखानेवाले और आटे के कारखानेवाले आदि।

(३) खराद करनेवाले।

(क) बरतन बनानेवाले, बटन बनानेवाले, पत्थर और रेशम का काम करनेवाले आदि।

(ख) दरी बनानेवाले, बाल बुननेवाले, झाड़ू देनेवाले, नकली फूल-मालाएं आदि बनानेवाले, टोपियाँ बनानेवाले, रंगसाज आदि।

(ग) शीशे के अक्षर ढालनेवाले, ताँबे और पीतल का काम करनेवाले, ईंटें गढ़नेवाले आदि।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनामा प्रदर्शिनी।

[श्रीयुक्त लाला लाजपत राय द्वारा वर्णित।]

(गताङ्क से आगे।)

बनावट।

पहले की प्रदर्शिनियों में इमारतें बनाने के जो ढंग रखे गए थे, फ्रन्सिसको की इस प्रदर्शिनी की इमारतों के ढंग का उनसे आकाश-पाताल का अन्तर है। पहले की अधिकांश प्रदर्शिनियों में इमारतें प्रायः एक ही सी होती थीं जिसके कारण देखनेवालों का जी ऊब जाता था। पर इस प्रदर्शिनी की इमारतें ऐसे ढंग से और एक दूसरी से भिन्न बनाई गई हैं कि देखनेवालों को किसी प्रकार की थकावट नहीं मालूम होती। सब से पहली बात तो यह है कि स्वयं प्रदर्शिनी का स्थान ही बहुत रमणीक है और दूसरे उसमें सब चीजों का विभाग इतनी उत्तमता से किया गया है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। सान फ्रान्सिसको की खाड़ी के तट पर होने के कारण यह स्थान फ्रान्स, स्पेन या इटली का एक भाग मालूम होता है। इमारतों की बनावट के ढंग में केवल सुन्दरता ही नहीं है बल्कि उसमें अनेक विशेषताएँ और सुविधाएँ भी हैं। उसमें भीड़ का प्रबन्ध करने में कठिनाइयाँ बहुत कम हैं, दर्शक सब स्थानों पर बहुत सहज में पहुँच सकते हैं और विभाग तथा सजावट की सुन्दरता में कोई भेद नहीं पड़ता। यदि आज से कई शताब्दियाँ पूर्व किसी कारीगर से प्रदर्शिनी बनाने के लिए कहा जाता तो वह अकेला ही इंजीनियर, कारीगर और चित्रकार आदि के सब काम कर दिखलाता। इस प्रदर्शिनी में यद्यपि ये सब काम अलग अलग आदमियों ने किए हैं तो भी उसमें की कोई बात बेमेल नहीं है। इमारतें बनाने, उनके भिन्न भिन्न अंग गढ़ने और उन्हें रँगने तथा चित्रित करने में जहाँ तक हो सका है इस बात का ध्यान रखा गया है कि सब चीजें एक दूसरी के मेल में हों, उनमें किसी प्रकार का अन्तर न पड़ने पावे।

यह प्रदर्शिनी एक ऐसा स्थान है जहाँ सब जातियों के लोग आ कर एकत्र होते हैं; इसलिए इसकी इमारतों की बनावट में सब देशों के ढंग पाए जाते हैं।

रँगाई।

यह पहली प्रदर्शिनी है जिसमें सब प्रकार के रंगों के मेल से काम लिया गया है। प्रसिद्ध रँगसाज जूल्स गेरिन ने इस प्रदर्शिनी में बहुत बढ़िया बढ़िया रंग और रँगने के तरीके निकाले हैं। सारी प्रदर्शिनी आठ प्रकार के रंगों से रंगी गई है। बाग की जालियाँ आदि हरे रंग से रंगी गई हैं, आँगन और छत के नीचे के भाग का रंग नीला रखा गया है, झंडिओं की लकड़ियाँ नारंगी रंग की हैं, खम्भों का रंग पीलापन लिए लाल है; छोटे गुम्बजों पर सुनहला नारंगी रंग और बड़े गुम्बजों पर गेरू से मिलता जुलता रंग है, मूर्त्तियों पर सोने का पानी चढ़ा है और बरतनों आदि के लिए खाकी रंग का व्यवहार किया गया है।

इमारतों की दीवारों आदि का रंग हाथी दाँत का सा है। इमारतों, गुम्बदों और मीनारों आदि पर दृष्टि डालने से बहुत ही विलक्षण और स्वभावतः सरल तथा सुन्दर शोभा दिखाई पड़ती है।

नक्काशी।

प्रदर्शिनी की इमारतों में नक्काशी का जो काम किया गया है वह सब से बढ़ कर है। संयुक्त-राज्यों तथा वहाँ के लोगों ने पनामा नहर तैयार करने में गत पचास वर्षों में जो परिश्रम और प्रयत्न किया है, उसका भी इनसे बहुत अच्छा पता लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शिनी में नक़ाशी का काम ही सब से प्रधान है क्योंकि उसी में सब से अधिक बुद्धि की आवश्यकता होती है। बिना नक़ाशी के इमारतों की बनावट फीकी रहती है और देखनेवालों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसके बिना रँगाई को कोई अच्छा आधार ही नहीं मिलता। इमारतों की सारी शोभा इसी से बढ़ती है, उनकी मनोहरता इसी से उत्पन्न होती है।

नक़ाशी का जैसा अच्छा काम यहाँ किया गया है, प्रदर्शिनी में उससे अच्छा काम हो ही नहीं सकता। पहले की प्रदर्शिनियों में इसकी ओर इतना ध्यान नहीं दिया गया था; पर इस प्रदर्शिनी में यह दिखला दिया गया है कि उसमें कहाँ तक उन्नति हो सकती है। इससे अच्छा गढ़ाई का काम और कहीं देखने में नहीं आया। मेहराबों, खम्भों और फौवारों आदि पर गुलकारी का जो काम किया गया है वह सब एक दूसरे से भिन्न होने पर भी एक मेल और परम मनोहर है। विश्वशाला (Court of Universe) नाम की इमारत में नक़ाशी का सब से अच्छा काम किया गया है। उसकी दीवारों और छतों पर तरह तरह की नक़ाशी का काम बना है। दो मेहराबों पर सूर्य्योदय और सूर्य्यास्त के दृश्य दिखलाए गए हैं। इसी स्थान पर प्राच्य तथा पाश्चात्य राष्ट्रों के संयोग होने के कारण शोभा और भी बढ़ जाती है। सामने एक बाग है जिसमें दोनों सूर्य्यों के दृश्य दर्शकों को अपूर्व आनन्द देते हैं। उत्तरीय द्वार पर "उन्नति का स्तम्भ" है जो मनुष्यों के बढ़ते हुए प्रयत्नों का सूचक है; उसके सामने दक्षिण की ओर "शक्ति का स्तम्भ" है जो बहुत उत्तमतापूर्वक पनामा नहर के पूरे हो जाने की घोषणा कर रहा है।

संगीत की भाँति नक़ाशी या चित्रकारी में भी अपूर्व आनन्द मिलता है। इस स्थान पर नौ बहुत बढ़िया दृश्य हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) शक्ति का दृश्य—जो बहुत आनन्द-दायक और प्रसन्न करनेवाला है।

(२) जीवन का दृश्य—जिसके दृश्य नाटक के परदों की भाँति बदलते रहते हैं।

(३) और (४) सूर्य्योदय और सूर्य्यास्त के दृश्य जिनमें वास्तु-विद्या का बहुत अच्छा परिचय दिया गया है।

(५) सौन्दर्य्य का दृश्य—जो बिलकुल सादा और स्वाभाविक सुन्दरता से पूर्ण है।

(६) स्वर्ण-भूमिका दृश्य—जो बड़े गम्भीर और उच्च भाव प्रकट करता है।

(७) प्राचीन दृश्य—जो प्राचीन काल का दृश्य प्रकट करता है।

(८) चारों ऋतुओं के दृश्य—जो ग्रामीण दृश्य प्रकट करते हैं।

(९) 'सुन्दरता और पशु' का दृश्य—जो एक प्रकार का खेल है।

प्रदर्शिनी में दर्शकों की आवश्यकता और सुभीते के लिए सब प्रकार का प्रबन्ध किया गया है। प्रदर्शिनी-स्थल में एक बहुत बड़ा होटल है जिसमें एक ही समय में दो हजार आगन्तुक ठहर सकते हैं। प्रबन्धकर्त्ताओं, प्रदर्शकों और दर्शकों आदि के सुभीते के लिए एंग्लो-कैलिफोर्निया कम्पनी की एक शाखा भी खुली है। संयुक्त राज्यों की स्वास्थ्य सम्बन्धिनी एक संस्था की ओर से एक अस्पताल भी खुला है। भिन्न भिन्न स्थानों पर आग बुझानेवालों के तीन समूह हैं। आग बुझानेवालों के सामान बहुत बढ़िया और तेज मोटरों पर चलते हैं। संयुक्त-राज्यों की जीव-रक्षक संस्था के कर्म्मचारी सदा लोगों की रक्षा के लिए तैयार रहते हैं। खोए हुए बालकों आदि को उनके माता-पिता तक तुरन्त और आराम से पहुँचाने के लिए आठ सौ रक्षक नियुक्त हैं। संयुक्त राज्यों की सरकार की ओर से स्थान स्थान पर विश्रामागार खुले हुए हैं। प्रायः सभी उपयुक्त स्थानों पर टेलीफोन और तारघर भी हैं। सर्वसाधारण को सब प्रकार की सूचनाएँ देने के लिए एक दफतर और समाचारपत्रों के सम्पादकों और संवाददाताओं के सुभीते के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अलग इमारत है। रेल और जहाज की प्रायः सभी प्रधान कम्पनियों के दफ्तर भी वहाँ हैं, जहाँ से सब स्थानों के लिए टिकट खरीदे जा सकते हैं और बैठकें रिजर्व कराई जा सकती हैं। एक स्थान पर खोई हुई सब चीजें पहुँचाई जाती हैं जहाँ से उनके मालिक जा कर ले आते हैं। जगह जगह पर ऐसी कोठरियाँ बनी हुई हैं जहाँ दर्शक अपने कपड़े आदि रख सकते हैं। शौच और स्नान आदि के लिए भी स्थान का प्रबन्ध है। सारांश यह कि सब प्रकार की आवश्यकताओं और सुविधाओं का ध्यान रखा गया है। सारा प्रबन्ध सर्वाङ्ग-पूर्ण है।

प्रदर्शिनी-स्थल में दर्शकों आदि को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए अनेक प्रकार के और आवश्यकता से अधिक साधन एकत्र हैं। आप से आप चलनेवाली बिजली की कुरसियाँ, हाथ से ढकेल कर चलाई जानेवाली कुरसियाँ, और छोटी छोटी रेलें हैं जिनका किराया बहुत ही कम है।

संगीत।

प्रदर्शिनी में संगीत आदि के लिए विशेष रूप से प्रबन्ध किया गया है। आधुनिक जीवन में संगीत बहुत प्रधान समझा जाता है; प्रदर्शिनी में दर्शकों को तरह तरह के संगीत सुनाने के लिए बहुत अच्छा प्रबन्ध है। नित्य तरह तरह के गाने होते हैं और उनके सुनने के लिए दर्शकों से किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती। इसके अतिरिक्त बीच बीच में अमेरिका के सब से अच्छे और प्रसिद्ध गवैयों के गाने भी हुआ करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन।

संयुक्त-राज्यों की अड़तालीस रियासतों के अतिरिक्त, प्रदर्शिनी की इमारतों में पचीस विदेशी रियासतों के भी प्रदर्शन हुए हैं। पर विदेशी प्रदर्शन अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़ा और कम है। इसका मुख्य कारण वर्त्तमान युरोपीय युद्ध है। कनाडा, बेलजियम, हालैण्ड, चीन, जापान और दक्षिण अमेरिका के प्रजातंत्र राज्यों की ओर से बहुत अच्छा प्रदर्शन हुआ है। इनमें से अधिकांश की स्वतंत्र इमारतें हैं; संयुक्त राज्यों की मुख्य मुख्य रियासतों की इमारतें भी स्वतंत्र ही हैं।

महासभाएं आदि।

इस प्रदर्शिनी द्वारा संसार के बड़े बड़े विचार-शीलों को जीवन की बड़ी बड़ी समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करने और दूसरों के विचार सुनने का बहुत अच्छा अवसर मिला है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय पार्श्व तो युद्ध की छाया में दब गया है, पर जातीय पार्श्व के विकाश को अच्छा अवसर मिला है।

सन् १९१५ में प्रदर्शिनी-स्थल में जिन जिन कांग्रेसों और कान्फ्रेन्सों आदि ने अपना अपना अधिवेशन करना विचारा है उनका लेखा इस प्रकार है,—

कृषि-सम्बन्धी—३४; व्यापार-सम्बन्धी—४७; शिक्षा-सम्बन्धी—३८; भ्रातृभाव फैलानेवाली—६०; विकाश-सम्बन्धी—१५; कालेज के विद्यार्थियों की ४४; शासन-संस्थाओं-सम्बन्धी—२४; इतिहास और साहित्य-सम्बन्धी—५; शिल्प-सम्बन्धी—१२; परिश्रम-सम्बन्धी—१८; पेशों से सम्बन्ध रखनेवाली—२८; धार्म्मिक—२९; वैज्ञानिक—२६; जातीय और दान-सम्बन्धी—२०; कुल—४००।

इसके अतिरिक्त दर्शकों को आकर्षित करने और जातीय जीवन के भिन्न भिन्न अंगों पर जोर देने के लिए सेना और व्यायाम-सम्बन्धी तथा अनेक बातों के लिये अनगिनत क्रियाएँ आदि होंगी। अमेरिका के इतिहास की मुख्य मुख्य घटनाओं का उत्सव मनाने और जातीय जीवन के भिन्न भिन्न अंग दिखलाने और फलों, तरकारियों और पशुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि के प्रदर्शन के लिए विशेष तिथियाँ नियत की गई हैं। सारांश यह कि कठिनता से कोई ऐसा मानुषी कृत्य होगा जिसका प्रदर्शन यहाँ न किया गया हो। दर्शकों के लिए यह प्रदर्शिनी बहुत ही बोधप्रद और मनोरंजक है और संचालकों के लिए आर्थिक दृष्टि से लाभदायक। अमेरिकावाले जल्दी कोई ऐसा काम नहीं करते जिसमें उन्हें आर्थिक लाभ न हो। वे धन प्राप्त करने के लिए व्यय करना बहुत अच्छी तरह जानते हैं और प्राप्ति भी खूब करते हैं। वे खुले दिल से रुपया खर्च करते हैं और उससे कहीं अधिक रुपया पैदा भी कर लेते हैं। वे अनाज की तरह रुपए बोते और उसकी फसल काटते हैं। कभी कभी खर्च से उनकी प्राप्ति कई गुनी अधिक हो जाती है। उनके लिए जीवन ही व्यापार और व्यापार ही जीवन है।

वास्तु-विद्या।

पनामा प्रदर्शिनी से अमेरिका के संयुक्त राज्यों के बल और वैभव का बहुत अच्छा परिचय मिलता है। यह बात मानना बहुत ही कठिन है कि सन् १८२० या ३० में वर्त्तमान संयुक्त-राज्यों का दो तृतीयांश आदिम निवासी इण्डियनों से भरा हुआ था और वहाँ का अधिकांश प्रदेश उजाड़ और जंगल था। यह बात किसी तरह दिल में नहीं आ सकती कि ओरेगन और केलिफोरनिया की बड़ी बड़ी तराइयों में आज से ८० या ९० बरस पहले बहुत थोड़े इण्डियन व्यापारी और चरवाहे रहते थे। पर यह बात वास्तव में बहुत ठीक है और सन् १८४९ तक कैलिफोर्निया रियासत के सम्बन्ध में यह वर्णन बहुत ठीक था। सन् १८४९ में संयुक्त-राज्यों के पूर्व की ओर से बहुत से लोग पश्चिम की ओर बढ़े और उन्होंने आदिम निवासियों को वहाँ से हटा कर उनका प्रदेश छीन लिया और वे स्वयं उसके अधिकारी बन बैठे। कैलिफोर्निया रियासत के राजनगर सान फ्रान्सिसको की आबादी इस समय पाँच लाख से अधिक है और उसकी गणना अमेरिका के सर्वोत्तम नगरों में होती है। सामाजिक, राजनैतिक, भौतिक और बौद्धिक आदि सभी बातों में कैलिफोर्निया की रियासत सब से बढ़ी चढ़ी है। उसकी प्रधान शोभा अनेक प्रकार के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के कारण है; पहाड़ियों, बागों और समुद्र तथा नदियों के तटों के कारण उसका सौन्दर्य्य बढ़ा चढ़ा है। प्रकृति, ज्ञान और मानुषी परिश्रम ने मिल कर केवल उसकी शोभा और सुन्दरता ही नहीं बढ़ाई है बल्कि उसकी उत्पादिनी शक्तियों में भी बहुत वृद्धि की है। कैलिफोर्निया को वर्त्तमान स्थिति तक पहुँचाने के लिए साम्पत्तिक और राजनैतिक अवस्थाओं के अतिरिक्त नैसर्गिक अवस्था ने भी बहुत सहायता पहुँचाई है। इसकी गणना संसार में सब से अधिक फल उत्पन्न करनेवाले देशों में की जाती है। प्रदर्शिनी में कैलिफोर्निया की इमारत और वनस्पतिशाला देखने से इस बात का पता चलता है कि मनुष्यों ने फलों और वनस्पतियों की वृद्धि में कहाँ तक अधिक प्रयत्न किया है। तरकारियाँ इतनी बड़ी, सुन्दर और तरह तरह की हैं जिन्हें देख कर मनुष्य के मुँह से आप ही आप अत्यधिक प्रशंसा निकल पड़ती है। आम या लीची तो बेशक यहाँ नहीं दिखाई पड़ती पर इन दोनों के अतिरिक्त शायद ही कोई ऐसा फल होगा जो कैलिफोर्निया में उत्पन्न होनेवाले फलों में न दिखलाया गया हो। कैलिफोर्निया के भिन्न भिन्न प्रान्त फल उत्पन्न करने में सब से बढ़े चढ़े हैं और प्रत्येक प्रान्त की ओर से वहाँ की प्रधान उपज के लिए एक विशेष उत्सव हुआ करता है। उदाहरणार्थ लास एंजेलस प्रान्त की ओर से मार्च मास में एक दिन नारंगी का उत्सव हुआ था। उसमें बड़ी बड़ी गाड़ियों में तरह तरह की नारंगियाँ सजा कर एक जुलूस निकाला गया था। उसके साथ में बहुत सी सुन्दरी बालिकाएं नारंगी रंग के कपड़े पहने और हाथ में नारंगी रंग की झण्डियाँ लिए चलती थीं। नगर के प्रधान रईस अपनी अपनी सजी हुई मोटरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर सवार हो कर उस जलूस के साथ चलते थे। लड़कियाँ रास्ते के दोनों ओर खड़े होनेवाले दर्शकों पर नारंगियाँ फेंकती जाती थीं। एक दूसरे प्रान्त ने एक बार किशमिश का उत्सव मनाया था। किशमिश को यहाँ लोग फलों का राजा कहते हैं। इसी तरह कभी आलू का और कभी गुलाब का उत्सव होता है। कैलिफोर्निया में प्रधानतः फल ही अधिक उत्पन्न किए जाते हैं और अमेरिका की दूसरी रियासतों तथा योरप तक भेजे जाते हैं। फलों को सुरक्षित रखने के लिए यहाँ बहुत से वैज्ञानिक उपाय निकाले गए हैं। वैज्ञानिक रीति से कलमें लगाना, भूमि को उपजाऊ करना तथा अनेक कामों में मशीनों का व्यवहार करना आदि अनेक ऐसी बातें हैं, जिनका एशियावाले अनुमान भी नहीं कर सकते।

प्रसिद्ध बियरबैंक के बाग में, लोग कहते हैं, सेब का एक पेड़ है जिस पर १२५ तरह के सेबों के अतिरिक्त अनेक प्रकार की नारंगियाँ और दूसरे फल उत्पन्न होते हैं।

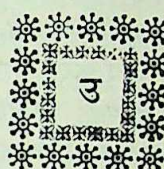
(शेष आगे।)

—:०:—

अब्बुल-फजल।

[लेखिका—श्रीमती वंग-महिला।]

(गतांक से आगे।).



उक्त घटना के कुछ दिनों बाद अब्बुल-फजल, उनके बड़े भाई फैजी, और उनके पिता मुबारक इन तीनों आदमियों ने मिल कर एक पाण्डुलिपि (मसविदा) तैयार की जिसमें अकबर को "मुजतहिद" अर्थात् इसलाम धर्म के सर्वज्ञ की पदवी दी गई। इसे बड़े बड़े पंडितों, और तो क्या पूर्वपरिचित मखदूम-उल-मुल्क और अब्दुन्नबी तक सभी ने धर्म-मत-संबन्ध में अकबर का मत स्वीकार किया। अब्बुल फजल "अकबर-नामः" में लिखते हैं कि इस मत के प्रचलित होने के समय से नाना-देशीय और प्रत्येक धर्मावलम्बियों ने अकबर के शाही दरबार की शोभा बढ़ाई थी। राज्य में सार्वभौमिक धर्म, और शान्ति स्थापित हुई थी। कुटिल नीचाशय मनुष्यों के सिर सम्राट् की उच्च अभिलाषाओं को देख कर नीचे हो गए। दूसरे वर्ष शेख अब्दुन्नबी और मखदूम-उल-मुल्क आदि ने मक्का-यात्रा के लिए प्रस्थान किया। अब मुबारक और उनके दोनों पुत्र सम्पूर्ण रूप से निष्कण्टक हो गए। अध्यापक ब्लाकमैन ने "आईन-अकबरी" के अपने उत्कृष्ट अनुवाद की भूमिका में जो बहुत से ग्रन्थों से संग्रह कर के अब्बुलफजल की अमूल्य जीवनी दी है, उसमें उन्होंने लिखा है कि—"जो दो मनुष्य अब्दुन्नबी और मखदूम-उल-मुल्क अब्बुलफजल की यथासाध्य हानि करने में तत्पर थे, यहाँ तक कि जिन्होंने उनके पिता का जीवन संशय में डाल रक्खा था, अब्बुलफजल ने अपने ग्रन्थों में उन्हीं दोनों आदमियों के विषय में एक भी अनुचित या ग्लानिसूचक शब्द नहीं लिखा।" इससे अब्बुलफजल की आन्तरिक उदारता का बहुत अच्छा प्रमाण मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५७९ ई० में इस धर्मकलह ग्रैार तर्कसंग्राम की एक प्रकार इतिश्री हो गई। इसके पीछे अब्बुलफजल ग्रैार फैजी के साथ बादशाह की मित्रता ग्रैार भी दृढ़ हो गई। फैजी को उन्होंने शाहजादे के शिक्षक के पद पर नियुक्त कर के उनके प्रति अपने विश्वास का प्रमाण दिया था। पीछे उनको काल्पी, ग्रागरे ग्रैार कालिंजर का सरदार बना कर ग्रैार चार सैा की मनसबदारी का पद दे कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया। किन्तु फैजी पार्थिव सन्मानों की अपेक्षा बादशाह की अमूल्य मित्रता को अधिक गैारव की चीज समझते थे।

उनके छोटे भाई ने उनसे भी अधिक सैाभाग्य ग्रैार सन्मान प्राप्त किया। १५८५ ई० के ग्रारम्भ में ही सम्राट् ने अब्बुलफजल को एक हजारी मनसबदार ग्रैार देहली प्रदेश का दीवान बनाया। इसके चार वर्ष बाद अर्थात् सन् १५८९ ई० में अब्बुलफजल की माता की मृत्यु हो गई। अकबरनामे के पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि अपनी माता के स्मारक में वह अपने ग्रन्थ के कई पन्ने खर्च कर गए हैं। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि वे लोग (अब्बुलफजल ग्रैार फैजी) कैसे चरित्रवान् माता-पिता के ग्रैारस थे। उनकी माता की मृत्यु पर अकबर उन्हें सान्त्वना देने के लिए उनके घर गया था ग्रैार जिन वाक्यों से उसने सान्त्वना दी थी वह उस उदार पुरुष के योग्य ही थे। बादशाह ने उनसे कहा था कि "यदि पृथ्वी में मनुष्य चिरकाल तक अमर हो कर रहते तो हितैषी मित्र वर्ग कभी उनके अन्तः करण में ईश्वर के प्रति विश्वास ग्रैार उनकी मंगलमय विधि पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर रहने का उपदेश देने के लिए अवसर न पाते। किन्तु पृथ्वी रूपी सराय में कोई अधिक दिन रहने के लिए नहीं आया है। शोकातुर मनुष्य इस सान्त्वना से शान्त हो कर अच्छा ही करते हैं।"

इसके उपरान्त बादशाह के धर्ममत के परिवर्तन के साथ ही साम्राज्य में मुहम्मदीय धर्म-मत का युगान्तर उपस्थित हुआ। यद्यपि इस सम्बन्ध में यहाँ विस्तृत रूप से ग्रालोचना करना अनुचित है तो भी यहाँ पर यह बतला देने की आवश्यकता है कि दूसरे पक्षवाले इस धर्म-विप्लव के हेतु अब्बुलफजल को ही प्रधान दोषी ठहरा कर उनसे बहुत अधिक क्रुद्ध हुए थे ग्रैार जहाँ तक हो सकता सदा उनके अनिष्ट की चेष्टा में लगे रहते थे। यहाँ तक कि शाहजादा सलीम भी उसी दल में मिला हुआ था। वे लोग चाहते थे कि युद्ध स्थल में अब्बुलफजल की अकर्मण्यता ग्रैार राज्य-प्रबन्ध में अपटुता प्रकट हो ग्रैार वह बादशाह के चित्त से उतर जायँ। इसी लिए शाहजादा सलीम प्रायः बादशाद से अब्बुलफजल को दक्षिण की ग्रोर भेजने का अनुरोध किया करता था। एक दिन अचानक सलीम उनके घर गया। वहाँ जा कर उसने बहुत से लेखकों को कुरान के भाष्य की नकल करते हुए देखा। उसी समय द्वेष-बुद्धि के वशीभूत हो कर उसने उन लोगों को चट सम्राट् के सन्मुख उपस्थित किया ग्रैार कहा कि—"अब्बुलफजल हम लोगों को तो ग्रैार ही शिक्षा देते हैं, पर आप विपरीत ग्रैार अन्यायपूर्ण ग्राचरण करते हैं।" इस घटना से सम्राट् ग्रैार उनके प्रिय सदस्यों में कुछ दिनों के लिए वैमनस्य हो गया था।

उसी समय बादशाह की ग्राज्ञा से अब्बुलफजल के निरीक्षण में बहुत से संस्कृत ग्रैार अरबी ग्रन्थ फारसी में अनुवादित हुए। अरबी ग्रन्थों के नामोल्लेख से यह प्रसंग नीरस हो जायगा इसलिए उनके नाम छोड दिए जाते हैं, किन्तु कुछ संस्कृत ग्रन्थों के नाम दे दिए जाते हैं।

अब्बुलफजल, फैजी, ऐतिहासिक विद्वान् बदाउनी, शेख सुलतान, हाजी इब्राहीम, शेख मुनव्वर आदि विद्वानों की चेष्टा से बहुत सी ऐतिहासिक ग्रैार दूसरी उत्तम पुस्तकें मूल संस्कृत ग्रैार हिन्दी से फारसी में अनुवादित हुई थीं। उनमें से प्राचीन संस्कृत गणित ग्रंथ लीलावती का अनुवाद फैजी ने किया था। अब्बुलफजल ने महाभारत के कुछ अंशों का अनुवाद करने का भार अपने ऊपर लिया था। उनके सम्पादन में ग्रैार अन्य अन्य लेखकों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता से "तवारीख अल्फी" (हज़ार वर्ष का इतिहास) की रचना हुई थी। इस ग्रंथ में मुहम्मदीय धर्म को प्रचलित धर्म न मान कर, विगत युग के इतिहास में लिखा हुआ धर्म्म माना गया है।

सन् १५९२ ई० के आरम्भ में अब्बुलफज़ल दो हजारी मनसबदार के पद पर नियुक्त हुए। उसी समय से वे श्रेष्ठ उमराओं में गिने जाने लगे। उसी समय उनके बड़े भाई दक्षिण में शाहजादा सलीम के ससुर अलीखाँ के पास भेज दिए गए थे।

पूर्वोक्त नवीन धर्म का मसौदा बनाने के बाद शेख मुबारक ने प्रायः समस्त पार्थिव कार्यों से हाथ खींच लिया था। उसके दूसरे वर्ष लाहौर में ९० वर्ष की अवस्था में ४ सितम्बर १५९३ ई० को उनका देहान्त हो गया। मृत्यु होने के समय तक उनकी बुद्धि अविकृत थी। मरने के कई साल पहले उन्होंने कुरान पर जो टीका लिखी थी उससे उनकी प्रतिभा और अगाध पांडित्य का परिचय मिलता है। अकबर बादशाह का दरबार विद्वानों से परिपूर्ण होने पर भी उनके जोड़ के पंडित उसमें थोड़े ही थे। उनके दोनों पुत्र उनकी प्रतिभा और पांडित्य के सम्पूर्ण उत्तराधिकारी हुए थे। फारसी और अरबी में, छन्द और अलंकार-शास्त्र में, दर्शन और विज्ञान में, शासन और ताजीरिया शास्त्र में, अनेक प्रकार से कुरान की अवृत्तियाँ करने में उनके समान मनुष्य दुष्प्राप्य थे। इस बात को उनके वंश के परम शत्रु बदाउनी ने भी स्वीकार किया है। इस विषय में उनके और उनके दोनों पुत्रों के सम्बन्ध में कुछ बुरा भला कहने का अवकाश न पाने पर भी बदाउनी ने केवल मुहम्मदीय शास्त्र पर उन लोगों के अविश्वास और नास्तिकता के कारण उन्हें बहुत कुछ खरी खोटी सुनाई है। यहाँ तक कि उन लोगों को नास्तिकता के लिए जहन्नुम का अधिकारी बतलाने में और अब्बुल-फजल की तुलना हुसैन के भाई और भ्रातृ विरोधी मजीद से करने में भी वह नहीं चूका है। बेचारे बदाउनी को बादशाह की कृपा से केवल दो हजार बीघा जमीन मिली थी जिसकी मालगुजारी उसे माफ कर दी गई थी। पर उसी के सहपाठी अब्बुल-फजल केवल दोहजारी मन्सबदार ही न थे बल्कि बादशाह के मित्र गिने जाते थे। इन्हीं सब कारणों से लोग अनुमान करते हैं कि बदाउनी उनके साथ बहुत द्वेष और ईर्ष्या रखता था।

मुबारक के मरने के दो वर्ष बाद फैजी का देहान्त हो गया। बादशाह का फैजी पर बहुत प्रेम था। कहा जाता है कि फैजी की मृत्यु से कुछ पहले स्वयँ अकबर अँधेरी रात में उनके मकान पर गया था। उस समय फैजी में बोलने की शक्ति न थी इसलिए वह बादशाह का अभिवादन न कर सके थे। अकबर ने उनको चुप देख कर धीरे से उनका सिर उठाया और कहा—"शेख जी, मैं आपके लिए कई अच्छे अच्छे हकीम लाया हूँ। आप चुप क्यों हैं, मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देते?" इतने पर भी जब फैजी ने कुछ उत्तर न दिया तो बादशाह ने बहुत शोकाकुल हो कर अपनी पगड़ी जमीन पर फेंक दी और जोर जोर से रोना आरम्भ किया। कुछ देर बाद कुछ शान्त हो कर अकबर ने अब्बुल-फजल को धैर्य्य दिलाया और अपने महल की ओर प्रस्थान किया। अब्बुल-फजल के ग्रन्थों से उनका अतुलनीय भ्रातृस्नेह बहुत कुछ प्रकट होता है। आईन-अकबरी और अकबरनामे में उन्होने फैजी की अनेक कविताएं उद्धृत की हैं। उन्होंने अपने बड़े भाई की स्फुट कविताओं का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ में संग्रह भी किया है।

लगभग उसी समय अब्बुलफजल ढाईहजारी मन्सबदार बनाए गए और पहले पहल रणभूमि में भेजे गए। दक्षिण में शाहजादा मुराद की बहुत अधिक शराबखोरी के कारण बहुत कुछ अव्यवस्था फैल गई थी। जब से वह वहाँ भेजा गया था तभी से शासन आदि में बहुत ढिलाई हो गई थी। उसकी सहायता के लिए बैरमखाँ के पुत्र मिरजा अब्बुल-रहीम खानखाना भेजे गये थे, पर वह भी सफल-मनोरथ न हो सके थे। बादशाह ने अब्बुलफजल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भेजते समय यह आज्ञा दी थी कि यदि जीते हुए राज्य की रक्षा करने में तुम्हारी सेना समर्थ न हो तो तुम मुराद को अपने साथ लेकर लौट आना। बादशाह को मालूम था कि मुराद बहुत बड़ा शराबी है और इसी लिए उसमें कोई काम करने की योग्यता नहीं है और वहाँ के राजकर्मचारी घूसखोर और विद्रोहियों से मिले हुए हैं। जब अब्बुलफजल बुरहानपुर के पास पहुँचे तो खानदेश का अधिपति बहरामखाँ उन्हें निमंत्रित कर के अपने यहाँ ले गया। बहादुर खाँ के भाई के साथ अब्बुलफजल की बहन ब्याही गई थी। बहादुरखाँ चाहता था कि वह अब्बुलफजल को बहुमूल्य भेंट दे कर अपनी ओर मिला ले और उन्हें किसी प्रकार का प्रयत्न न करने दे। अब्बुलफजल ने उसका उद्देश्य समझ कर सब चीजें फेर दीं और बहुत चिढ़ कर कहा—"मैंने कभी घूस न लेने की प्रतिज्ञा की है। उससे कार्य्य और कर्त्तव्यकर्म में विघ्न पड़ता है। बादशाह से मित्रता रख कर मैं किसी दूसरे से पारितोषिक लेने की अभिलाषा नहीं रखता।"

उधर शाहजादा मुराद भी अहमदनगर से एलिचपुर आ पहुँचा था। अपने बहुत छोटे पुत्र मिरजा रुस्तम की मृत्यु के कारण वह बहुत दुखी था; इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी कुछ बीमार था। पर उस दशा में भी उसने शराब नहीं छोड़ी थी। जब उसे मालूम हुआ कि अब्बुलफजल उसे बादशाह के पास ले जाने के लिये आए हैं तो वह रास्ते में से ही अहमदनगर लौट गया। मार्ग में दौलताबाद से सोलह कोस की दूरी पर पूर्णा नदी के किनारे उसका देहान्त हो गया। शाहजादे की मृत्यु के कारण सारी सेना हतोत्साह हो गई। सेना के बड़े बड़े अधिकारी इधर उधर भागने लगे। अब्बुलफजल ने देखा कि विद्रोही के राज्य में विपक्षी सेनाओं के भय से भागना बड़ी भारी विपत्ति में फँसना है; इसलिये उन्होंने हतोत्साह सैनिकों को ढारस दिला कर आगे बढ़ाया। थोड़े ही दिनों में लड़ कर उन्होंने अनेक नगर जीत लिए। अन्त में चाँद बीबी से उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह बादशाह की अधीनता स्वीकार कर लेगी और अहमदनगर का किला छोड़ देगी।

अकबर उस समय उज्जैन में था। शाहजादा दानियाल के न मानने के कारण बहादुरखाँ ने दक्षिण के मामले को और भी पेचीला कर रक्खा था। बहादुरखाँ के असीर नाम के किले पर आक्रमण करने के विचार से ही स्वयं बादशाह वहाँ गया था। शाहजादा दानियाल को अहमद नगर के युद्ध का भार दिया गया। बादशाह की आज्ञा के अनुसार अब्बुलफजल ने अपने स्थान पर कुछ विश्वासपात्र और योग्य मनुष्यों को छोड़ दिया और स्वयं बीजापुर के निकट खड़ेगाँव नामक स्थान में जाकर बादशाह से भेंट की। उन्हें देखते ही बादशाह ने कहा था,—

फरखंदा शबे बायद व खुश महताबे।
ता बा तु हिकायत कुनम अज हर बाबे*।

अर्थात् मनोहर रात और उसमें सुन्दर खिली हुई चाँदनी होनी चाहिए, जिसमें मैं तुम्हारे साथ सब विषयों में बात चीत कर सकूँ।

दक्षिण में अब्बुलफजल ने जो विजय प्राप्त की थी उसके कारण बादशाह ने उन्हें चारहजारी मन्सब दिया था। दक्षिण के अनेक किलों और प्रान्तों आदि के जीतने में उन्होंने जो वीरता दिखलाई थी, स्थानाभाव से उसका पूरा पूरा उल्लेख नहीं हो सकता। अब नीचों और पापियों के चक्र में पड़ कर उनके मारे जाने का विवरण दे कर यह निबन्ध समाप्त किया जाता है। ऊपर कहा जा चुका है कि नए धार्म्मिक मत और सिद्धान्त के कारण अकबर के बहुत से दरबारी अब्बुलफजल से मन ही मन बहुत जलते थे और शाहजादा सलीम भी उनमें से एक था। बादशाह की कृपा से अब्बुलफजल को

* فرخندہ شبے باید و خوش مہتابے
تا با تو حکایت کنم از ہر بابے

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तक बराबर ऊँचे ऊँचे पद मिलते आए थे और बादशाह के हृदय में उनके लिए बहुत उच्च स्थान और आदर था। इसी लिये शाहज़ादा अब तक उनका कोई अनिष्ट न कर सका था। तो भी वह ताक में लगा था और अन्त में उसे अवसर मिल ही गया। असीर दुर्ग पर आक्रमण करने के समय उदयपुर के महाराणा पर दबाव डालने के लिये शाहज़ादा सलीम भेजा गया था। जिस काम के लिये वह भेजा गया था वह काम करना तो दूर रहा, उलटे वह स्वयं विद्रोही हो गया। यद्यपि बुरहानपुर से लौटने के बाद पिता-पुत्र में मेल हो गया था तथापि उस अवसर पर सलीम का मन फिर अपने पिता की ओर से फिर गया। अकबर के दरबार के अधिकांश उमरा और सरदार भीतर ही भीतर शाहज़ादा सलीम से सहानुभूति रखते थे; इसलिये बादशाह ने अपने परम विश्वसनीय मित्र अब्बुलफज़ल को दक्षिण से वहाँ के सब आवश्यक काम छोड़ कर चले आने की आज्ञा भेजी। तदनुसार अब्बुलफज़ल ने अपने सब कामों का भार अपने पुत्र अबदुलरहमान को दे दिया और स्वयं कुछ आदमियों को साथ ले कर आगरे की ओर प्रस्थान किया। उसी अवसर पर शाहज़ादा सलीम ने ओड़छा-नरेश राजा वीर-सिंह देव को अब्बुलफजल की हत्या करने के लिये तत्पर कर के अपनी ओर मिला लिया। कई कारणों से वीरसिंह की अकबर के दरबार में प्रतिष्ठा नहीं थी; बादशाह उनसे बहुत रुष्ट था। अतः वह भावी सम्राट् की आज्ञा न टाल सके। अब्बुलफजल जिस मार्ग से आगरे लौट रहे थे उसी मार्ग के नरवर नामक स्थान में वीरसिंह थोड़ी सी सेना ले कर छिपे रहे। उज्जैन के पास पहुँचने पर कुछ लोगों ने उनसे शाहज़ादा सलीम की उक्त गुप्त-मंत्रणा की बात कही। उस पर उन्होंने बहुत वीरता-पूर्वक कहा—"मैं चोरों और डाकुओं के डर से बादशाह से भेंट करना नहीं रोक सकता"। वह नरवर की ओर बढ़े। प्रायः छः कोस आगे बढ़ने पर उन्हें एक स्थान पर वीरसिंह की कुछ सेना दिखलाई पड़ी। यदि वह उस समय भी वहाँ से लौट जाते तो उनके प्राण अवश्य बच जाते। उनके अनेक शुभचिन्तक नौकरों ने विशेषतः पुराने नौकर गदाईखाँ अफ़गान ने उनसे लौट चलने के लिये बहुत अनुरोध किया। अतरी नामक स्थान वहाँ से प्रायः तीन कोस था और वहाँ रायरायान और सूर्य्यसिंह अपनी तीन हज़ार सेना ले कर ठहरे हुए थे। किन्तु अब्बुलफ़ज़ल ने मृत्यु सामने देख कर भी कायरों की तरह पीछे हटना उचित न समझा। वह आगे बढ़े और अपनी थोड़ी सी सेना ले कर छापा मारनेवाले वीरसिंह की भारी सेना से लड़ने लगे। पर शत्रु की संख्या अधिक थी इसलिये उनके अद्भुत् रणकौशल और वीरोचित साहस का कुछ भी फल न हुआ। उनके थोड़े से सेवक वीरसिंह की भारी सेना के सामने न ठहर सके और थोड़ी देर में सब के सब मारे गए। उसी युद्ध में अब्बुलफ़जल भी एक सिपाही के भाले से वीर-गति को पहुँचे। वीरसिंह ने उनका सिर काट कर उपहार-स्वरूप शाहज़ादा सलीम के पास भेजा। सलीम ने वह सिर एक अयोग्य स्थान पर फेंक कर अपनी परम नीचता का परिचय दिया।

तैमूर लंग के वंशजों में यह रीति प्रचलित थी कि यदि किसी कुलीन वंश का सरदार या दरबारी मर जाता तो उसकी मृत्यु का समाचार बादशाह को ज़बानी नहीं सुनाया जाता था; बल्कि उस मृत मनुष्य का कोई वकील या प्रतिनिधि अपने हाथ में नीले रंग का रूमाल लपेट कर बादशाह के सामने उपस्थित होता था। इसी पुराने नियम के अनुसार अब्बुलफजल का वकील जब उक्त चिह्न धारण कर के बादशाह के सामने उपस्थित हुआ तो बादशाह मारे शोक के अधीर हो उठा। उसने रुद्ध-कण्ठ से कहा—"यदि शाहज़ादा भारतवर्ष का राज्य-सिंहासन प्राप्त करने के लिये इतना ही व्यग्र था तो उसने मुझको ही मार कर अपने मार्ग का काँटा क्यों न दूर किया? निर्दोष अब्बुलफजल की हत्या उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों की?" इसके बाद उसने ठंढी साँस ली और यह कविता पढ़ी—

शेखे मा अज शौक़े बेहद चूँ सुए मा आमदः।
जिश्तियाक़े पाएबोसी बे सरोपा आमदः॥*

अर्थात् मेरा शेख बड़े शौक से मेरी ओर आया। मेरी सेवा में उपस्थित होने की इच्छा से वह बिना सिर और पैर के ही चला आया।

यद्यपि बादशाह की आज्ञा से ओड़छा-नरेश वीरसिंह अपने राज्य से भगा दिए गए थे और बादशाह के जीवन-काल तक वह जंगल में ही छिपे रहे थे, तथापि थोड़े ही दिनों बाद अकबर की मृत्यु हो जाने पर जहाँगीर ने फिर से उन्हें राज्य दे कर सम्मानित किया। वीरसिंह के इस सन्मान का एक मात्र कारण अब्बुलफजल का वध था। जहाँगीर ने यह बात अपनी स्वाभाविक निर्लज्जता से आत्म-जीवनी में लिखी है।

अब्बुलफजल के सात भाई और चार बहनें थीं। उनमें से पाँच लड़के उनके पिता की पहली स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। अब्बुलफजल के एक पुत्र शेख अब्दुलरहमान का ऊपर जिक्र आ चुका है। जहाँगीर ने अब्बुलफजल को तो असमय में ही मरवा डाला था पर उसी के प्रायश्चित्त स्वरूप उसने अब्दुलरहमान को बिहार का सूबेदार बनाया था और गोरखपुर की जागीर दी थी। अब्बुलफजल ने अकबरनामा, आईने-अकबरी, रिसालए मुनाजात, कशकोल आदि कई ग्रन्थ रचे थे और एक कोश भी बनाया था। इन ग्रन्थों से अब्बुलफजल की विद्वत्ता, सत्यप्रियता, दूरदर्शिता, बहुज्ञता आदि का बहुत अच्छा प्रमाण मिलता है। वह जैसे विद्वान् और सद्गुण सम्पन्न थे वैसे ही धीर, उदार, वीर और विश्वसनीय भी थे; और इन्हीं सब बातों के कारण गुणग्राही अकबर के दरबार में उनकी इतनी प्रतिष्ठा होती थी। रोम के सम्राट् अगस्टस और भारत के विक्रमादित्य साहित्य-सेवियों के बहुत अच्छे सहायक और आश्रयदाता थे। उनकी गुण-ग्राहकता और दानशीलता के कारण अनेक श्रेष्ठ कवि और लेखक उनकी राजसभा की शोभा बढ़ाया करते थे। पर उन कवियों और लेखकों ने कभी कहीं किसी प्रकार की वीरता नहीं दिखलाई थी। बड़े बड़े इतिहासज्ञ सम्वत् चलानेवाले मालवा के अधिपति राजा विक्रमादित्य और कालिदास आदि कवियों के आश्रय-दाता विक्रमादित्य को एक ही मनुष्य नहीं मानते; पर यदि थोड़ी देर के लिये यह बात मान भी ली जाय कि वे दोनों एक ही थे तो भी उनके अथवा अगस्टस की राजसभा के सभासदों की शूरता वीरता और रण-कुशलता का कहीं कोई वर्णन नहीं मिलता। किन्तु दिल्ली-पति अकबर के दरबारी अपने लेखक और पण्डित होने के अतिरिक्त वीर होने का भी परिचय दे गए हैं। ऐश्वर्य्य और गौरव की दृष्टि से अकबर की जगत्-प्रसिद्ध राज-सभा की कुछ अंशों में तुलना रानी एलिजेबेथ की राज-सभा के साथ और पूर्ण रूप से उसकी समता स्पेन के अधीश्वर दूसरे फिलिप के राज-दरबार के साथ की जा सकती है। राजा भगवानदास, राजा मानसिंह, टोडमल, अब्बुलफजल, फैजी, मुबारक आदि सभी लोग अकबर की राज-सभा में रह कर विद्वत्ता और वीरता दोनों का ही बहुत अच्छा परिचय दे गए हैं। इनमें से अधिकांशों ने युद्ध-क्षेत्र में ही अपने प्राण त्यागे हैं। अब्बुलफजल और फैजी के समान विद्वान्, इतिहासज्ञ और कवि बहुत ही विरले हुए होंगे। इनमें से अब्बुलफजल भी रणभूमि में ही मारे गए थे। इतिहासज्ञ पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि द्वितीय फिलिप के सभासदों में से अरजाडी आरसिला, जरसिलेस्रो डीवेगा, सरवेन्टिस, लोपडी वेसा आदि भी अपनी विद्वत्ता के साथ साथ वीरता का परिचय दे गए हैं और इनमें से भी कई युद्धक्षेत्र में मारे गए हैं। गौरव में भी अकबर और फिलिप दोनों समकक्ष ही थे। अकबर के समय में मुगल-राज-कुल गौरव के सर्व्वोच्च शिखर पर पहुँचा

---

* شیخ ما از شوق بیحد چوں سوے ما آمدہ
زشتیاق پاے بوسي بے سر و پا آمدہ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था। दूसरे फिलिप के समय स्पेन का ऐश्वर्य्य, गौरव और प्रभुत्व जितना बढ़ा चढ़ा था, उसके पहले और पिछले समय पर दृष्टि डालने से जान पड़ता है कि उतना और कभी नहीं बढ़ा था।

अकबर के गौरव-मुकुट में अब्दुलफजल एक श्रेष्ठतम रत्न था। विद्वत्ता, लेखन-कुशलता, शूरता, वीरता और उदारता आदि उत्तम गुणों में उसका कोई समकक्ष नहीं था।

—:०:—

रणक्षेत्र में संवाददाता।



ज कल दैनिक समाचार पत्रों में युद्ध की खबरें जितनी शीघ्रता से छपती हैं उसे देखते हुए साधारण पाठकों को कौतुक और आश्चर्य होना बहुत सम्भव है। युरोप के वर्तमान युद्धस्थल में जो घटनाएं होती हैं उनका पूरा पूरा विवरण भारत के अँगरेजी तथा कुछ देशी दैनिकों में लगभग ३६-घण्टों में छप जाता है और वे समाचारपत्र हाथों हाथ बिक कर तुरन्त लोगों द्वारा पढ़ लिए जाते हैं। यह दशा तो भारत की है जो युद्ध-क्षेत्र से हजारों मील दूर है और जहाँ की अधिकांश प्रजा अशिक्षित है। युद्ध-क्षेत्र के समीपवर्त्ती देशों में जहाँ के निवासी शिक्षित, सभ्य और समाचार पाने में बड़े जल्दबाज होते हैं, युद्ध की खबरें छपने में पूरे चौबीस घण्टे भी नहीं लगते। ऐसी दशा में बहुत से लोग यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि युद्ध-क्षेत्र में पत्रों के संवाददाता किस प्रकार काम करते हैं और उनकी खबरें किस तरह इतनी जल्दी समाचारपत्रों के कार्य्यालयों तक पहुंच जाती हैं। पर वास्तव में इसके अन्दर कोई बहुत बड़ा रहस्य नहीं है। कार्य्य-प्रणाली बहुत सीधी सादी है, पर हाँ उसमें मेहनत और फुर्त्ती बहुत की जाती है।

समाचारों को इतनी शीघ्रता से सर्वसाधारण तक पहुँचाने में केवल तीन विभागों के आदमी सहायक होते हैं। सब से पहला काम तो संवाददाताओं का होता है, जो रण क्षेत्र में बैठ कर युद्ध के समाचार संग्रह करते और लिखते हैं। दूसरा नंबर तार-विभागवालों का है जो समाचार को तुरन्त तार द्वारा पास और दूर के देशों में भेजते हैं। अन्तिम काम छापेखानेवालों का होता है जो समाचारों को प्रकाशित कर के सर्वसाधारण तक पहुँचाने में शीघ्रता की पराकाष्ठा कर देते हैं। इनमें से तार भेजनेवालों का काम न तो बहुत अधिक असाधारण है और न अधिक महत्त्व का। छापेखानेवालों के कामों से भी प्रायः बहुत से लोग परिचित हुआ करते हैं। हाँ, रणक्षेत्र में रहनेवाले संवाददाताओं का काम अवश्य ऐसा है जो न तो नित्य पड़ा करता है और न जिसके सम्बन्ध में सर्वसाधारण को कुछ अधिक परिज्ञान ही होता है। यही कारण है कि लोगों को उनके सम्बन्ध में अधिक बातें जानने की उत्कंठा होती है। प्रस्तुत लेख में उन्हीं के सम्बन्ध में कुछ जानने योग्य बातें बतलाई जाती हैं।

वर्त्तमान युद्ध में लन्दन तथा दूसरे नगरों के बहुत बड़े बड़े समाचारपत्रों के अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि रणक्षेत्र में सदा अँगरेजी सेना के साथ रहते हैं और उसी का एक अङ्ग समझे जाते हैं। समाचारपत्रों के संवाददाताओं के साथ इस प्रकार की रिआयत बहुत हाल में होने लगी है। पहले संवाददाता लोग इस प्रकार सेना के साथ नहीं रखे जाते थे। संवाददाताओं को अपने रहने आदि के लिये स्वयं स्वतंत्र प्रबन्ध करना पड़ता था। वे लोग रणक्षेत्र के आस पास जहाँ जगह पाते, अपना डेरा लगा देते थे और वहीं से बैठे बैठे यथासाध्य समाचार संग्रह किया करते थे। उस समय उनकी रक्षा करनेवाला कोई न होता था और यदि अभाग्यवश गोला या गोली आदि लगने के कारण वे मर जाते तो कोई उनका उत्तरदायी भी नहीं समझा जाता था। आज से साठ वर्ष पूर्व क्रीमियन युद्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारपत्रों के प्रतिनिधियों को जो जो कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ सहनी पड़ी थीं, आजकल के प्रतिनिधियों और संवाददाताओं को उनका अनुमान भी नहीं हो सकता। आजकल संवाददाता प्रायः बड़े ही सुरक्षित स्थानों में रखे जाते हैं और उन्हें किसी प्रकार की जोखिम नहीं सहनी पड़ती।

समाचारपत्र के प्रत्येक संवाददाता को सरकारी युद्ध-विभाग के प्रधान कार्य्यालय से एक लाइसेन्स या अधिकारपत्र मिलता है। यही लाइसेन्स उनके लिये सब से अधिक आवश्यक होता है और इसी को उन्हें हर समय अपने पास रखना पड़ता है।

यह समझना ठीक नहीं है कि रण-क्षेत्र में पत्रों के संवाददाताओं को पूरी स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता रहती है और वहाँ वे मनमानी कार्रवाई कर सकते हैं। उन्हें बहुत कड़े कड़े नियमों का पालन करना पड़ता है। सेना के साथ रहने के कारण वे भी नियमानुसार सेना का एक अङ्ग ही समझे जाते हैं और यदि वे किसी प्रकार छावनी के नियमों का भंग करें तो फौजी अदालत में उनका विचार होता है और उनका लाइसेन्स छीन लिया जाता है।

आजकल रण-क्षेत्र में समाचारपत्रों के जो विशेष संवाददाता गए हुए हैं और जिनके भेजे हुए समाचार सब लोग नित्य पढ़ते हैं, उन्हें निम्नलिखित नियमों का पूरा पूरा पालन करना पड़ता है;—

(१) रण-क्षेत्र में सेना के साथ रहनेवाले संवाददाताओं के पास स्वदेश में रहनेवाले कमांडर-इन्-चीफ के हस्ताक्षर-युक्त एक लाइसेन्स रहना चाहिए। उस लाइसेन्स में उस पत्र या उन पत्रों का नाम रहना चाहिए जिनका वह प्रतिनिधि है।

(२) उसके लाइसेन्स में जिन समाचार-पत्रों के नाम आए हैं, संवाददाता उन पत्रों के अतिरिक्त किसी और पत्र को संवाद नहीं भेज सकता।

(३) जो लोग संवाददाता की भांति रण-क्षेत्र में सेना के साथ रखे जाने के योग्य न समझे जायँ या जिनका सेना के साथ रहना अभीष्ट न हो उन्हें लाइसेन्स नहीं दिया जाता। संवाददाता के काम के लिये वही लोग अधि उपयुक्त समझे जाते हैं जो किसी समय सरकारी अफसर रह चुके हों और जिन्होंने अपनी नौकरी पूरी कर के अवकाश ग्रहण कर लिया हो।

(४) सब संवाददाताओं को, जब तक वे रण-क्षेत्र में सेना के साथ रहें, Mutiny Act का पालन करना पड़ता है।

(५) बिना विशेष आज्ञा के संवाददाताओं को छावनी की सीमा पर जाने का अधिकार नहीं होता। जब जब वे छावनी की सीमा पर जाना चाहें तब तब उन्हें प्रधान अफसर के पास एक लिखित प्रार्थनापत्र भेजना पड़ता है।

(६) संवाददाता किसी प्रकार के सांकेतिक अक्षरों या शब्दों का व्यवहार नहीं कर सकते। विदेशी भाषाओं में से वे केवल फ्रान्सीसी और जर्मन भाषा का ही उपयोग कर सकते हैं।

(७) सेना का कोई बड़ा अधिकारी सेन्सर अफसर बना दिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर वही संवाददाताओं को युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिये पास देता है। जिस समाचार-पत्र का कोई संवाददाता रण-क्षेत्र में हो उस समाचार-पत्र के प्रत्येक अङ्क की एक प्रति उस सेन्सर अफसर के पास इस बात की जाँच के लिये पहुँचनी चाहिए कि समाचार-पत्रों-सम्बन्धी नियमों का पूरा पूरा पालन होता है या नहीं।

(८) संवाददाताओं के समस्त लेख उसी सेन्सर अफसर के द्वारा समाचारपत्र के कर्य्यालय में भेजे जाते हैं। यदि उसकी समझ में किसी लेख में कोई ऐसी बात निकले जो सेना के हित के लिये हानिकारक हो तो उस अफसर को अधिकार है कि वह उस लेख को रोक ले अथवा उसमें अपने इच्छानुसार परिवर्त्तन कर दे।

(९) प्रधान सेना-नायक अपने अधीनस्थ और सहकारी कर्म्मचारियों द्वारा युद्ध-सम्बन्धी जो जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें आवश्यक समझेगा, संवाददाताओं को कहला देगा और साथ ही उन्हें उनके कर्त्तव्य बतला देगा। सेन्सर अफसर एक ऐसा समय नियत कर देगा जब कि सब संवाददाता नित्य उसके पास आवश्यक बातें जानने के लिये आ सकें। उक्त अफसर को यह भी अधिकार होता है कि वह उन लोगों को समाचारपत्रों में प्रकाशित करने के लिये ऐसी बातें बतलावे जो सेना के लिये अहितकर न हों।

सेना के प्रधान अधिकारी जहाँ तक हो सकता है संवाददाताओं के लेखों को सुभीते से भिजवा देने का प्रबन्ध करते हैं।

पैवन्द और कलम।

(लेखक—श्रीयुक्त बा० हरिप्रसाद पालधि बी० ए०।)



इस विषय पर श्रीयुत गंगाशङ्कर पंचोली महाशय ने एक और लेख मई-जून की नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में भेजा है जिसमें दो तीन बातें ऐसी हैं जो मेरे अपने अनुभव के विपरीत हैं, इसलिये मैं अपना अनुभव प्रकट कर देता हूँ। कदाचित् किसी महाशय का अनुभव इसके विपरीत हो तो वह कृपा कर उसका विवरण "पत्रिका" में भेज दें अथवा मेरे पास भेज दें तो मैं उन महाशयों का चिर-कृतज्ञ रहूँगा। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि मेरा पहला मन्तव्य किसी ग्रन्थ के आधार पर नहीं था और न यह लेख ही किसी पुस्तक के आधार पर है। मुझको पौधों और बगीचे का शौक है और जो कुछ मैंने स्वयं देखा है, मैं वही लिखूँगा। यदि मेरे अनुभव में कुछ भ्रम हो गया हो तो पाठकों में से कोई महाशय अवश्य सुधार देने की कृपा करें।

पंचोली जी ने लिखा है—"एक गुलाब पर दूसरी उसी जाति के पेड़ की आँख चढ़ाने से तीसरी तरह के फूल हो सकते हैं"।

मेरा अपना अनुभव यह है कि बहुत से गुलाब केवल कलम ही से बढ़ाए जाते हैं। उसकी कलम लगाने की रीति यह है,—नौ नौ इंच की डालियाँ काट कर मिट्टी में गाड़ दी जाती हैं। कुछ दिनों में इन डालियों में जड़ें निकल आती हैं और डालियाँ बढ़ कर पौधे स्वतंत्र हो जाते हैं। परन्तु ऐसे भी कुछ गुलाब हैं जिनकी डालियों में, कम से कम यहाँ, जड़ नहीं निकलती; यथा 'मार्शल नील', इसलिये ऐसे गुलाबों को चश्मे से (आँख चढ़ा कर) बढ़ाते हैं। आँख हर एक गुलाब की डाली पर चढ़ाई जा सकती है; पर फूल उसी जाति का होगा जिस जाति की आँख है। ऐसा कभी नहीं देखा गया कि फूल पर मौलिक डाली का प्रभाव पड़ा हो।

यह ठीक है कि इस देश में संतरे के पेड़ बीज से नहीं होते, परन्तु मैंने स्टेट्समैन में साउथ सिलहट नोट्स शीर्षक लेख में कहीं पढ़ा है कि सिलहट में सन्तरे बीज से होते हैं, परन्तु इस लेख में इस विषय पर विचार की कोई आवश्यकता नहीं। पंचोली जी का यह लिखना कि देशी आम के पेड़ पर यदि कलमी, मालदह या लंगड़े आम की कलम चढ़ाई जाय तो वह फल कलमी, मालदह या लंगड़ा नहीं होगा, सर्वथा अनुभव के विरुद्ध है।

जखीरेवाले बाज़ारों में से आम की गुठलियाँ इकट्ठी करा कर गाड़ियों पर लाद कर ले जाते हैं और उनसे बीज तैयार कर के उन पर कलम बाँधते हैं। कोई यह नहीं जानता और न पूछता है कि बीजू किस जाति का आम था। यदि लंगड़े की डाली बाँधी जाय तो फल लंगड़ा होगा यही नियम है। यदि बीजू का प्रभाव भी पड़ता होता तो एक लंगड़े आम के वृक्ष की डालियों में जो भिन्न भिन्न बीजुओं पर बाँधी गई हैं उनमें लंगड़ा न हो कर तरह तरह के आम निकलते और अति शीघ्र लंगड़ा निर्वंश हो जाता।

यह तो मैंने पहले ही लेख में लिखा है कि अच्छे से अच्छे आम की गुठली लगाने से जो वृक्ष पैदा होता है उसका फल अति निकृष्ट भी हो सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

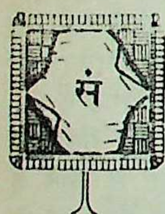
इसी लिये लंगड़े के बीजू पर लंगड़े की डाली बाँधने का कोई नियम नहीं है।

मेरा यह कथन नहीं है कि बीजू का कुछ भी प्रभाव कलम पर कभी नहीं पड़ता। प्रभाव तो पड़ना चाहिए; परन्तु ऐसा देखा नहीं गया। यदि कुछ प्रभाव पड़ता भी हो तो वह इतना कम है कि लोग उसको ग्राह्य नहीं करते।

Cross fertilisation से अर्थात् एक प्रकार के वृक्ष का पुंपराग का किसी दूसरे स्वजातीय वृक्ष के स्त्री-रज से संयोग करने से जो फल उत्पन्न होगा उसमें दोनों प्रकार के वृक्षों के फलों का कुछ कुछ असर आ जायगा जैसा कि पंचोली जी ने गेहूँ, सुरती और कपास के उदाहरणों से दिखाया है; परन्तु इसका सम्बन्ध पैवंद और कलम से नहीं है।

—:o:—

विनीत निवेदन।



सार की सब लिपियों में देवनागरी लिपि का आसन सब से ऊँचा है। सौन्दर्य और सुवचता में कोई लिपि देवनागरी की समता नहीं कर सकती। यह सब का स्वीकृत सिद्धान्त है। किन्तु खेद की बात है कि फ़ारसी और अँगरेजी लिपियों की भाँति यह लिपि अलंकृत होने का सौभाग्य लाभ नहीं कर सकी। फ़ारसी और अँगरेजी लिपियों के बहुत से भेद और विभेद हैं, जिन्हें देखने से मन प्रसन्न हो जाता है और उन लिपियों के संशोधकों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करनी पड़ती है। 'अरज़ङ्ग चोन' आदि पुस्तकों में फ़ारसी अक्षरों के कितने ही प्रकार के बढ़िया बढ़िया नमूने दिखाए गए हैं और अक्षरों को नाना प्रकार से अलंकृत और सुशोभित करने की रीतियाँ वर्णन की गई हैं। ख़ते आफ़्ताबी, ख़ते बैज़ावी, ख़ते गुलज़ार, ख़ते गुबार, ख़ते याही, ख़ते तुग़रा, ख़ते तौअम, ख़ते सरो, ख़ते नाख़ूनी, और ख़ते तिलस्म, आदि न जाने कितने भेद और विभेद फ़ारसी लिपि के हैं। 'भारत की कारीगरी' नामक पुस्तक में लिखा है कि मुसलमानी राज्य स्थापित होने के साथ अरबी फ़ारसी अक्षरों में बेल बूटे बनाने वा ख़ते गुलज़ार आदि लिखने की चाल चल निकली है। भारत में इस विद्या को उत्तेजन देनेवाले मुख्य बादशाह अकबर थे। उन्होंने 'भारत' का 'रज़्मनामा' के नाम से अनुवाद करा उसमें बढ़िया अक्षर लिखवाने के लिए चार लाख रुपए दिए थे। उसी रज़्मनामे की नक़ल जयपुर राज्य के पुस्तकालय में अब तक रक्खी हुई है। इस तरह से अक्षरों में ७२ वर्ष पहले अलवर के राजा विनयसिंह जी के समय में शेख़ सादी की गुलिस्तां लिखी गई थी। महाराज ने लेखक को पचास हज़ार रुपए इनाम दिए थे।

फ़ारसी से बढ़ कर अँगरेजी का तो कहना ही क्या है। अनेक विद्वानों ने अनेक वर्षों तक अँगरेजी लिपियों को पल्लवित और पुष्पित कर के सैकड़ों प्रकार के नमूने बना दिए हैं। ओल्ड इंगलिश, सेलटिक, चर्च टेक्स्ट, जर्मन टेक्स्ट, गाथिक, रोमन, इटैलिक, एनग्रोसिंग और इजिप्शियन आदि लिपियों को सैकड़ों प्रकार से अलंकृत किया है और उन्हें उन्नति की सीमा तक पहुंचा कर वे सम्मानित हुए हैं। विज्ञ जन जानते हैं कि उन लिपियों का कितना महत्व और कितना आदर है। किन्तु देवनागरी लिपि में ऐसा कुछ नहीं है। इसे उलटा यहाँ तक बिगाड़ा गया है कि मोड़ी, महाजनी और कैथी आदि का रूप दे कर इसका अपभ्रंश किया गया है। इसी से सैंकड़ों वर्षों तक देवनागरी लिपि फ़ारसी लिपि की उदासीन दासी सी बनी रह चुकी है। इसे न तो कोई बादशाह अकबर मिला और न कोई महाराज विनयसिंह। अब अँगरेज़ी लिपि की तुलना में तो इसका कुछ भी मान दिखाई नहीं देता। यदि कुछ है भी तो उसे मिटाने के लिए पादरी मिस्टर नोलस बहुत दिनों से अपना समय, परिश्रम और धन रोमन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रचार में लगा रहे हैं। वे शिर तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं कि भारत की समस्त भाषाएं रोमन लिपि में लिखी जाया करें। उन्होंने इसके लिए लेख भी लिखे हैं और व्याख्यान भी दिए हैं। इधर हम लोगों ने देवनागरी लिपि के संशोधन और प्रचार का क्या उपाय किया है सो भी विदित ही है।

लिपि का महत्व और सौन्दर्य सुवचता ही से प्रतिष्ठित होता है। देवनागरी में यह दोनों गुण विद्यमान रहते हुए भी जिस प्रकार अन्य लिपियां अलंकृत की गई हैं उस भांति बेचारी देवनागरी लिपि अब तक नहीं हुई। इसी कारण से लोगों को यह भी भ्रम सा हो गया कि देवनागरी लिपि अलंकृत हो ही नहीं सकती और इसी लिए प्रशंसित लिपियों के सामने यह बहुत नीचे गिरी हुई रसातल को जा रही है। किन्तु संसार की उन्नति के समय में, कलाकौशल के मनोहर स्वर्ण दिनों में और प्रकाशमान बृटिश राज्य के चमत्कृत उदयकाल में देवनागरी लिपि अलङ्कारहीन कैसे रह सकती थी? समय पा कर यह भी कुछ उदार सहायकों की कृपा से विशेष विशेष नियमों से परिमित होकर प्रचलित लिपि, शङ्करलिपि, सुडौललिपि, और सरललिपि के रूप में आ कर विविध प्रकार से अलंकृत और सुशोभित हुई है। अब इसके सम्पूर्ण सहायकों, सेवकों, तथा हितैषियों का यह परम कर्तव्य है कि यथाशक्ति इसकी रक्षा में सहायता दे कर इसकी उन्नति का उचित प्रबन्ध करने में त्रुटि न करें।

जीवन की स्थिरता नहीं है, समय पर अधिकार नहीं है, कल्पनाएँ और मन के भाव मन ही में गलते चले जाते हैं इसलिये मैं अपनी देवनागरी-लिपि-सम्बन्धी सम्पूर्ण रचना को ऐसे सांचों में ढाल देना चाहता हूँ कि वह मेरे न रहने पर भी सदा सर्वदा संसार में स्थिर रह कर देवनागरी लिपि की सेवा कर सके। भारतवर्ष की मुख्य मुख्य संस्थाओं और मध्यप्रदेश तथा पञ्जाब गवर्नमेंट ने कृपा कर उदारतापूर्वक मेरी रचना को आश्रय दिया है और उसका आदर किया है। इसलिये मुझे पूर्ण विश्वास है कि समय पा कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में, जहां कहीं देवनागरी लिपि का प्रचार है, वहां इसी रचना का सब से अधिक आदर होगा। अस्तु, जो हो, अब यह अभीष्ट है कि यथासम्भव शीघ्र ही मैं अपनी रचना के ब्लाक (सांचे) बनवा कर या टाइप ढलवा कर रख दूँ, जिससे मेरे न रहने पर भी लिपिसम्बन्धी प्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशन में कोई कठिनता या विघ्न बाधा उपस्थित होने का सन्देह न रह जाय।

अनुमान किया गया है कि लगभग २५००) रुपए की लागत से सम्पूर्ण रचना के ब्लाक बन कर तैयार हो जायँगे और सदैव देवनागरी लिपि की सेवा सुश्रूषा करते रहेंगे। इसलिये मैं अपने सम्पूर्ण इष्ट मित्रों सुपरिचित स्नेही सज्जनों, देवनागरी के सच्चे हितैषियों, नागरीप्रचारिणी सभाओं, आर्य्य समाजों, धर्म सभाओं, देशी संस्थाओं और पत्रसम्पादकों से विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूं कि आपने जिस प्रकार अपनी उदारतापूर्ण रुचि के अनुसार अनेक लोकोपकारी बड़े बड़े काम किए हैं, अथवा आप उनमें सहायक बने हैं वैसे हो देवनागरी लिपि के इस महत्वपूर्ण कार्य में यथासाध्य सामयिक सहायता दे कर मुझे भी उपकृत और कृतार्थ कीजिए।

गौरीशङ्कर भट्ट, मसवानपुर, कानपुर।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय।

जापान की शिक्षा-प्रणाली।

समाज और राष्ट्र के प्रति शिक्षा का उत्तरदायित्व जितना अधिक है, आधुनिक शिक्षा-प्रणाली भी प्रायः उतनी ही दोष और त्रुटिपूर्ण है। शिक्षा-प्रणाली का यह दोष एकदेशीय नहीं, सर्वव्यापी है। युरोप और अमेरिका तक के बहुत बड़े बड़े विद्वानों का ध्यान बहुत दिनों से आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के दोषों की ओर आकृष्ट हो रहा है और वे समय समय पर उसके सुधार के लिये आन्दोलन भी करते रहे हैं। अभी हाल में एक जापानी विश्वविद्यालय के सभापति ने भी अपने देश की शिक्षा-प्रणाली की बहुत निन्दा की थी। उनकी सम्मति में जापान की आधुनिक शिक्षा-प्रणाली एक ऐसी मशीन है जिसमें डाले हुए नवयुवक धान की भूसी की तरह थोथे और सारहीन निकलते हैं। देश की भिन्न भिन्न अवस्थाओं को देखते हुए उसकी आवश्यकताएं पूरी करने में वे नितान्त असमर्थ होते हैं। छोटी छोटी प्रारम्भिक पाठशालाओं से ले कर बड़े बड़े विश्वविद्यालयों तक की यही दशा है। विद्यार्थी की वास्तविक योग्यताओं या शक्तियों से लाभ उठाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता और इसी लिये उसकी मानसिक शक्तियों का विकाश नहीं होने पाता। जब तक वर्त्तमान प्रथा में किसी प्रकार का सुधार न हो तब तक जापान की राजनीतिक और वैज्ञानिक उन्नति नहीं हो सकती।.........यदि जातिको बुद्धिमान् और विचारशील नागरिकों की अपेक्षा आँखें बन्द कर के काम करनेवाले मनुष्यों को उत्पन्न करनेवाले साधनों की अधिक आवश्यकता हो तो बेशक वह उनकी प्राप्ति के लिये उचित उपाय कर रही है।......... इस दूषित प्रथा में जब तक सुधार न किया जायगा तब तक हमारी उन्नति बहुत ही धीरे धीरे होगी और संसार में हमारा उचित आदर न होगा। इत्यादि इत्यादि। जिस जापान ने अभी हाल में शिक्षा की आधुनिक प्रणाली का अवलम्बन किया है, उसके एक विश्वविद्यालय के सभापति की ऊपर कही हुई बातों का महत्त्व कुछ कम न समझना चाहिए।

***

रोनेवाले वृक्ष।

मनुष्यों की अनेक शारीरिक क्रियाओं की भाँति अथवा उनसे मिलती जुलती अनेक क्रियाएं वृक्षों में भी हुआ करती हैं। ना० प्र० पत्रिका के गत वर्ष की चौथी, पाँचवीं तथा छठी संख्याओं में श्रीयुत गंगाशंकर जी पंचोली का कृषि-सम्बन्धी जो लेख छपा है, उसमें पौधों की श्वासोच्छ्वास और प्रस्वेद-क्रिया का वर्णन दिया गया है। इसके अतिरिक्त बहुत से लोग यह बात भी जानते होंगे कि जो पौधे कुछ दिनों तक एक साथ रह चुकते हैं उनको यदि एक दूसरे से दूर कर दिया जाय तो वे कुछ मुरझा जाते हैं और इस प्रकार अपने दुखी होने का परिचय देते हैं। अभी हाल में भारत-सरकार के वनस्पति-विभाग के एक प्रधान कर्मचारी डाकृर डेविड हूपर ने कई ऐसे वृक्षों का पता लगाया है जिनमें पसीने के अतिरिक्त आँसू भी निकलते हैं। ये आँसू एकदम निरर्थक नहीं होते बल्कि व्यापारिक-दृष्टि से उनका कुछ मूल्य भी होता है; क्योंकि ये आँसू गोंद, रबर, वार्निश, तेजाब आदि अनेक रूपों में होते हैं। डाकृर साहब की सम्मति है कि यदि उन वृक्षोंके भिन्न भिन्न अङ्गों और क्रियाओं का ध्यानपूर्वक मनन किया जाय तो उनका यह निर्यास अनेक उपायों से बढ़ाया भी जा सकता है।

***

कुछ नए आविष्कार।

फ्रांसवालों ने अभी हाल में दो बहुत अच्छे नए आविष्कार किए हैं। उनमें से एक तो है सीमेन्ट से चुकन्दर बनाना और दूसरा रणक्षेत्र की सेना को सब की दृष्टि से अदृश्य कर देना। एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने पता लगाया कि चुकन्दर उबालने के समय पानी के ऊपर जो गाज जमा होता है उसमें चूनेका बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक अंश रहता है। साधारणतः वह गाज फेंक दिया जाता है और उसकी उत्पादक-शक्ति नष्ट कर दी जाती है। अब फ्रांस में एक कारखाना खुला है जो सत्तर हजार टन (१ टन = २८ मन) चुकन्दर उबाल कर बड़े बड़े टाँकों में उसका गाज सुखाता है और उसमें से एक विशेष रूप में चार हज़ार टन चूना निकलता है और उसमें ११०० टन साफ़ की हुई मिट्टी मिला कर भट्ठी की सहायता से बहुत बढ़िया सीमेण्ट तैयार कर लेता है। दूसरा आविष्कार दो सैनिकों का है। उन्होंने एक ऐसी क्रिया निकाली है जिसकी सहायता से खुले मैदान में खड़े हुए सैनिक औरों को दिखाई नहीं पड़ते। अभी हाल में उनकी क्रिया की परीक्षा हुई थी। कुछ सैनिक मैदान में खड़े कर दिए गए और एक हवाई जहाज २४ मिनट तक एक हज़ार फुट की ऊँचाई पर उस स्थान के चारों ओर मंडलाता रहा; पर तो भी उसे पता न लगा कि सेना किस स्थान पर खड़ी हुई है!

***

स्वास्थ्य और धर्म्म। अभी हाल में बड़ौदे में स्वास्थ्य-सम्बन्धिनी एक प्रदर्शिनी हुई थी। बड़ौदे के दीवान सी० वी० पी० माधवराव ने उसके सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित कराया है जिसमें आपने युक्तिपूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अधिकांश धार्म्मिक आचारों का मूल उद्देश्य मनुष्य को स्वस्थ और नीरोग रखना है। बहुत प्राचीन काल से भारतीय नरेशों और विद्वानों ने धर्म्म पर इसी लिये जोर दिया है कि उसके द्वारा शिक्षित और अशिक्षित जान बूझ कर अथवा अनजान में अनेक ऐसे आचरण करते हैं जो उनके शरीर और स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। आपकी सम्मति में प्राचीन काल के अनेक लाभदायक आचारों का सर्वसाधारण के हित के लिये फिर से प्रचार करने की बहुत आवश्यकता है।

***

भारतीय समाचार-पत्र। कुछ दिन हुए कलकत्ते की ईस्ट-इण्डियन-एसोसिएशन के सामने अँगरेजी दैनिक पत्र स्टेट्समैन के भूतपूर्व सम्पादक मि० एस० के० रैकलिफ ने भारतीय समाचार-पत्रों के इतिहास के सम्बन्ध में एक निबन्ध पढ़ सुनाया था। उस निबन्ध में कहा गया था कि पलासी के युद्ध के २५ वर्ष बाद भारत में सब से पहला अँगरेज़ी पत्र हिकी ने "बंगाल गजट" के नाम से निकाला था। उसकी देखा देखी देश में और भी कई छोटे मोटे समाचार-पत्र निकले। सन् १७९९ में पत्रों की संख्या बढ़ते देख मारक्विस आफ् वेलेस्ली ने उनके शासन के लिये कुछ नियम बनाए, और उन्हें पढ़ने और उनकी जाँच-पड़ताल करने के लिये कुछ आदमी नियुक्त किए। सन् १८१३ में मारक्विस आफ हेस्टिंग्स ने कुछ और नए नियम बनाए और समाचार-पत्रों में छपनेवाले विषयों की पहले से ही जाँच कर लेने के लिये सेन्सर की प्रथा चलाई। पर यह सेन्सर विभाग पाँच ही वर्ष बाद उठा दिया गया और समाचार-पत्रों के सम्पादकों को समझा दिया गया कि वे कम्पनी या उसके उच्च कर्म्मचारियों के कार्य्यों पर किसी प्रकार की द्वेष-पूर्ण टीका टिप्पणी न किया करें और न धर्म्मिक विवाद या दूसरों की बदनामी किया करें। लार्ड एमहर्स्ट ने कई सम्पादकों को देश-निकाला दे दिया और कुछ लोगों को और दण्ड भी दिए। लार्ड बैंटिंक ने पहले पहल सरकार की नीति पर होनेवाली टीकाओं का आदर किया और सम्पादकों को उदारतापूर्वक संसार सम्बन्धी बहुत सी बातें भी बतलाई थीं। मेटकाफ ने सम्पादकों को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त कर दिया और बीस वर्ष तक सम्पादकों की स्वाधीनता बनी रही। सन् १८५७ वाले विद्रोह के समय लार्ड कैनिङ्ग को विवश हो कर एक वर्ष के लिये समाचार-पत्रों के वास्ते कठोर नियम बनाने पड़े थे और एक एक् के द्वारा पत्रों को बन्द कर देने तक का अधिकार सरकार को हो गया था। विद्रोह के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों की संख्या बहुत बढ़ गई और उनके शासन के लिये ईस्ट इण्डियन पेनेल कोड में सुप्रसिद्ध १२४ ए वाली धारा बढ़ाने की आवश्यकता पड़ी। आयलैंण्ड के कोअर्शन एक्ट के ढंग पर लार्ड लिटन ने सन् १८७८ में देशी पत्रों के लिये एक नया एक्ट बनाया जिसके अनुसार देशी पत्रों के अध्यक्षों से जमानत ली जा सकती थी। चार वर्ष बाद लार्ड रिपन ने वह एक्ट तोड़ दिया और पचीस वर्ष तक पत्र फिर स्वतंत्र हो गए। इसके बाद प्रेस-कमिश्नरों की नियुक्ति हुई और सरकारी पत्र निकाला गया; पर यह प्रबन्ध भी अधिक दिनों तक न चल सके। इधर सन् १९०८ और १९१० में नए एक्ट पास हुए हैं जिनके द्वारा पत्रों या प्रेसों के अध्यक्षों से पाँच हज़ार रुपये तक की जमानत माँगी जा सकती है।

—:o:—

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार तारीख २४ जूलाई १९१५ सन्ध्या के ६ बजे स्थान सभा-भवन।

(१) गत अधिवेशन (तारीख २८ जून १९१५) का कार्य्यविवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(२) आगामी वर्ष के लिये बजेट उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि मंत्री जी इसे ठीक करके आगामी वार्षिक अधिवेशन में स्वीकृति के लिये उपस्थित करें।

(३) सन् १९१४—१५ का वार्षिक विवरण पढ़ा गया और आवश्यक परिवर्तन और सन्शोधन के उपरान्त स्वीकृत हुआ।

(४) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि नए वर्ष के लिये उपमंत्री के चुनाव की सूची में उनका नाम न रक्खा जाय।

उपस्थित सज्जनों के अनुरोध से बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा ने अपना वह पत्र लौटा दिया।

(५) बाबू रामलाल वर्म्मा का ६ जूलाई का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि सभा ने उनके "लण्डन रहस्य" का विज्ञापन नागरीप्रचारिणी पत्रिका में छापना क्यों अस्वीकार किया है? और इस सम्बन्ध में वह निरपेक्ष भाव से पुनः विचार करे।

अधिक सम्मति से यह निश्चय हुआ कि इस विज्ञापन का नागरी प्रचारिणी पत्रिका में छापना ठीक न होगा।

(६) पण्डित केदारनाथ पाठक का २४ जूलाई का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि (क) सभा के ६९ वें नियम में "३) वार्षिक" के स्थान पर २) वार्षिक" और "६) वार्षिक" के स्थान पर "४) वर्षिक" बना दिया जाय और नियम ७० में "सहायकों का आधा चन्दा" के स्थान पर "सहायकों के मासिक चन्दे का आधा" बना दिया जाय। (ख) सभा का वार्षिक अधिवेशन सोमवार को न हो कर अगस्त में और किसी दिन हुआ करे।

निश्चय हुआ कि (क) यह आगामी अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित किया जाय और (ख) आगामी वार्षिक अधिवेशन में यह प्रस्ताव उपस्थित किया जाय कि वह अधिवेशन अगस्त के प्रथम शनिवार को हुआ करे।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण अधिवेशन ।

शनिवार ता० २७ फरवरी १९१५ संध्या के ६ बजे*

स्थान सभाभवन ।

(१) पंडित साँवल जी नागर के प्रस्ताव तथा पंडित केदारनाथ पाठक के अनुमोदन पर लाला भगवानदीन सभापति चुने गए ।

(२) गत अधिवेशन (तारीख ३० जनवरी १९१५) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(३) प्रबन्ध कारिणी समिति का तारीख २ जनवरी १९१५ का कार्य विवरण सूचनार्थ पढ़ा गया ।

(४) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए ।

१ बाबू चक्खन लाल गुप्त विश्राना राज्य भरतपुर १॥)

२ ठाकुर रूपसिंहजी—फारेस्ट हलका शौपुररेंज—शौपुर—राज्य ग्वालियर १॥)

३ बाबू जयदेव गुप्त—रायपुर—अतरौली रोड—जिला अलीगढ़ ५)

४ बाबू निरंजनलाल अग्रवाल—ठि० लाला शिवचरनलाल बाँकेलाल—कासगंज—जि० एटा ३)

५ बाबू हनुमानप्रसाद—तहसील पट्टी—जि० प्रतापगढ़ १॥)

६ बाबू अनिरुद्धसिंह खत्री—पोस्ट आफिस बड़ा बाजार—कलकत्ता १॥)

७ पंडित शिवनन्दनप्रसाद—गिरदावर कानूनगो—तहसील पट्टी—जि० प्रतापगढ़ १॥)

८ पंडित भिखारीराम मिश्र वैद्य—अशोकपुर—पो० पट्टी—जि० प्रतापगढ़ १॥)

९ बाबू नर्मदाप्रसाद वर्म्मा—ठि० बाबू रामप्रसाद डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन्स जज—ग़ाजीपुर १॥)

१० बाबू चम्पालाल—चेनीलाल का कटरा—काशी ३)

११ पंडित अमरनाथ शर्म्मा राजवैद्य—आयुर्वेदोक्त औषधालय प्रयाग ३)

(५) निम्न लिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

१ पंडित रामनरेश पाँडे—मुदर्रिस, मुसैाला पो० बैरिया—जि० बलिया ।

२ पंडित रामशरण पांडेय—हेड मास्टर—मिडिल स्कूल डुमरी पो० चौरा—गोरखपुर ।

(६) इस सभा के सभासद लोकमान्य महात्मा गोपाल कृष्ण गोखले की असामयिक मृत्यु पर सभा ने अत्यन्त शोक प्रकट किया ।

(७) सहायक मंत्री ने निम्न लिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी जिस पर सभा ने शोक प्रकट किया ।

१ बाबू मथुराप्रसाद राय, मुंसरिम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—मैनपुरी ।

२ पंडित वैद्यनाथ शर्म्मा राजवैद्य—ज्ञानसेनगंज—प्रयाग ।

(८) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं:—

पंडित श्यामसुन्दराचार्य वैश्य—काशी
ओंकार चित्र व्याख्या ।

बाबू महावीरप्रसाद गहमरी—बांकीपुर
स्वर्ग की सुन्दरियाँ भाग १-२

गोस्वामी भोलानाथजी, वारी, सतना
गोपीपचीसी ।

बाबू झाबरमल दारुका—जसरापुर—खेतड़ी
केसर (उपन्यास) ।

बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त—काशी
राज्य श्री ।

* यह कार्य-विवरण भूल से ठीक समय पर न छप सका था, अतः इस बार प्रकाशित किया जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित नाथूराम प्रेमी—गिरगांव—बम्बई
श्रमण नारद ।
पंडित शिवनारायण द्विवेदी—देहली
युद्ध की झलक भाग १ ।
पंडित विश्वेश्वरदत्त गद्दा फाटक—जबलपुर
हिन्दी व्याकरण प्रवेशिका ।
बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त—काशी
जर्मन जासूस—योरप का महायुद्ध
कुँवर जोधसिंह मेहता—उदयपुर ।
पृथ्वीराज रासो की नवीनता ग्रैार अकबर के जन्मदिन में सन्देह ।
पंडित मुरलीधर त्रिपाठी—नाना साहब
का मंदिर—पुष्कर—अजमेर
मूर्खलक्षणावली ।
पंडित शिवदत्त त्रिपाठी—अजमेर
सामवेदी संध्या ।
पंडित श्यामाचरण शर्म्मा—अभ्युदय प्रेस—
प्रयाग ।
युद्ध की बातें ।
खरीदी गईं वा परिवर्त्तन में प्राप्त ।

(१) श्रीमद्भागवत (२) हिन्दू तीर्थ (३) सिक्ख इतिहास (४) तुलसीदास की ग्रंथावली (५) सुधा-सिंधु (६) सदाचार (७) खुदीराम या गरीबदास (८) जानकी (९) मिथिलेश कुमारी (१०) मोती महल भाग ४ ग्रैार ५ ।

संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट

Fauna of British India. The Sacred Books of the Hindus, Vols. XIII and XIV, General Report on Public Instruction in the United Provinces of Agra and Oudh for the year ending 31st March, 1914.

ठाकुर नन्दकुमारसिंह, सहसराम ।

The origin of the Hindi Language.

एशियाटिक सोसायटी ग्राफ बंगाल, कलकत्ता ।

Journal and Proceedings of the Society for June, 1914.

Memoirs of the Society, Vol. III, Indian Antiquary for October, November and December, 1914.

Indian Thought, Vol. VI, Nos. 2, 3 and 4.

(९) सभा को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

—:०:—

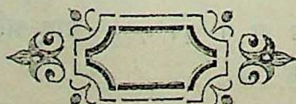
सभासदों का सूचना ।

इस समय तक जून १९१५ तक की पत्रिका की पिछड़ी हुई कुल संख्याएं प्रकाशित हो चुकी हैं ग्रैार सभासदों की सेवा में भेजी जा चुकी हैं । जिस कागज पर पत्रिका छपती है, वह कागज खतम हो गया था । नहीं तो ग्रब तक इधर की भी कई संख्याएं निकल जातीं । ग्रब कागज भी मिल गया है ग्रैार सम्पादन ग्रैार प्रकाशन ग्रादि का प्रबन्ध भी बिलकुल ठीक हो गया है ; इससे बहुत शीघ्र पत्रिका की सब पिछड़ी हुई संख्याएं प्रकाशित हो जायँगी ग्रैार भविष्य में पत्रिका बराबर ठीक समय पर निकला करेगी । ग्राशा है सभासदगण पिछले ग्रनिवार्य्य विलम्ब के लिये हमें धैर्य्य ग्रैार उदारता-पूर्वक क्षमा करेंगे ।

मंत्री

नागरी प्रचारिणी सभा,

काशी ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A414 [संख्या २
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

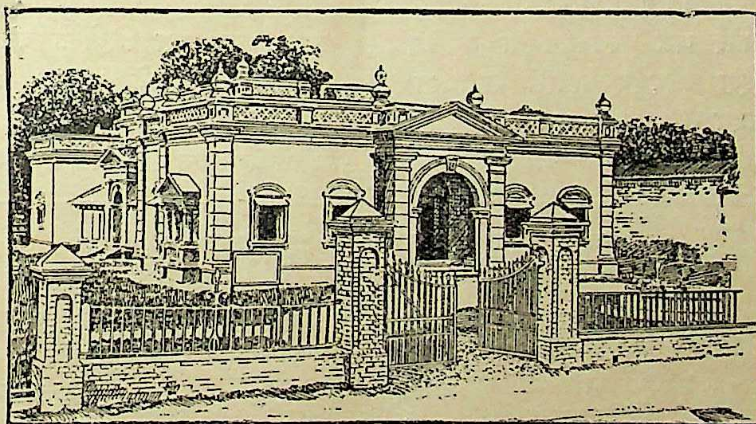
अगस्त, १९१५

सम्पादक–रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय-सूची ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी
कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मंगाइये,
पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

चित्रोंसे युक्त।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त ।]

लीजिये ! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है !—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक । तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २-), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दि० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य। शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये। नमूनेके लिये)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी।

पवित्र काश्मीरी केशर—दुर्ज अखुर्द ॥≡) तोला। शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला चीनी ममीरा २) तोला। काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर। ७-१३-६-१४

भयंकर मार काट ।

जर्मन जासूस	।-)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मी	-)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	॥।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	।)	नवाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहां	।)	रानाप्रताप नाटक	॥।)
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	॥।)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियां	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	॥।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर संगीत	≡)
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१॥।)	व्यापारतत्व	॥)
रानी पन्ना	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	बिकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग २० } अगस्त, १९१५. { संख्या २

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

हास्य रस ।*

अँगरेजी साहित्य के ग्रन्थों में तो हास्य की विवेचना उसे "रस" मान कर नहीं की गई है पर संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में उसका बहुत ही अच्छा और विस्तृत वर्णन किया गया है। यद्यपि और रसों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि हास्य रस की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है तो भी और और रसों की भाँति उसके भी अंग, उपांग, भाव, विभाव आदि दिए गए हैं। संस्कृत-ग्रन्थकारों ने हास्य रस पर पुरुषत्व का आरोप किया है। उसका रंग गोरा माना गया है और साहित्य-शास्त्रकारों का संकेत है कि इस रस पर प्रमथ नामक देवता का अधिराज्य है। हास्य रस का स्थायी भाव हास है। उसके विभाव अर्थात् उत्पत्ति-कारण वस्तु मात्र में देखी हुई विकृति अथवा विपरीतता, व्यंगदर्शन, परचेष्टा का अनुकरण, असंबद्ध-प्रलाप आदि हैं और उसके 'अनुभाव' होंठ, नाक या गालों का स्पंदन, दृष्टि का व्याकोश, पेट पकड़ कर हँसना आदि हैं। अर्थगोपन, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, स्वप्न आदि को हास्य का व्यभिचारी भाव माना है। हास्य दो प्रकार का होता है। एक आत्मस्थ और दूसरा परस्थ। जिस समय मनुष्य स्वयं हँसता है उस समय उसे 'आत्मस्थ हास' कहते हैं और जिस समय वह दूसरों को हँसाता है उस समय उसे 'परस्थ हास' कहते हैं। दूसरी रीति से हास्य के और भी छः भेद किए गए हैं:—(१) स्मित, (२) हसित, (३) विहसित, (४) उपहसित, (५) अपहसित और (६) अतिहसित। इनमें से स्मित और हसित श्रेष्ठ लोगों के योग्य हैं; विहसित और उपहसित दोनों प्रकार मध्यम श्रेणी के

* श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकर बी० ए० एल एल० बी० कृत "सुभाषित आणि विनोद" नामक मराठी ग्रन्थ के एक प्रकरण के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माने गए हैं और अपहसित तथा अतिहसित हास की गणना अधम हास में की गई है। साहित्यशास्त्र में इन सब प्रकारों का अलग अलग वर्णन किया गया है। जिस समय गाल पर जरा सी सिकुड़न पड़ती है, आँखें कुछ विकसित होती हैं, नीचे का होंठ कुछ हिलने या फड़कने लगता है, दाँत दिखलाई नहीं पड़ते, दृष्टि कुछ कटाक्ष-पूर्ण हो जाती है और इन सब कारणों से चेहरे पर एक प्रकार का माधुर्य आता है तो उसे स्मित हास कहते हैं। जिस हास में मुँह, गाल और आँखें फूली हुई जान पड़ती हैं और दाँतों की पंक्तियां कुछ कुछ दिखलाई पड़ती हैं उसे हसित कहते हैं। विहसित में हँसने की क्रिया शब्द-युक्त होती है और लोग उसे सुन लेते हैं; और इसमें आँखें कुछ सिकुड़ जाती हैं। उपहसित में नथुने फूल जाते हैं, सिर और कन्धे सिकुड़ जाते हैं और दृष्टि कुछ वक्र हो जाती है। जिस हास्य के कारण आँखों में जल आ जाय और सिर तथा कन्धे स्पष्ट रूप से हिलने लगें उसे अपहसित कहते हैं। अतिहसित में हास्य के सब लक्षण और परिणाम बहुत ही स्पष्ट होते हैं और मनुष्य को हँसते हँसते पेट पकड़ना पड़ता है। नाट्य-शास्त्रों में कहा है कि हास्य के अभिनय के योग्य दृष्टि को 'हास्या' कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में हास्य रस के अधिकांश उदाहरण भाण और प्रहसन में मिलते हैं। भाण का प्रधान रस हास्य नहीं है; तथापि विट आदि पात्रों के 'निपुण' भाषणों से और "धूर्त्त" चरित्रों के विनोद-पूर्ण वृत्तान्तों से हास्य रस प्रकट होता है। प्रहसनों में तो केवल हास्य रस ही प्रधान होता है और 'पाखंड' तथा 'कुहिनी' आदि नीच पात्रों के भाषणों से प्रकट होता है। अच्छे अच्छे नाटकों और प्रकरणों में भी हास्य रस रहता है। पर हाँ, उस स्थान पर उसका स्वरूप गौण होता है और विदूषक आदि छोटे दरजे के पात्रों की बात चीत में रहता है; और साहित्य-शास्त्रकारों का मत है कि उसका कार्य्य शृंगार आदि मुख्य रसों का पोषण करना होता है।

साहित्य-शास्त्रकारों ने हास्य रस का वर्णन करते समय उसके जो अच्छे अच्छे उदाहरण दिए हैं उनसे इस बात का अच्छा पता लगता है कि उत्तम प्रकार के हास्य रस के स्वरूप के सम्बन्ध में उनकी कैसी कल्पना थी। इसलिये इस स्थान में उनमें से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

साहित्यदर्पण में हास्य रस के उदाहरण में यह श्लोक दिया गया है;—

> गुरोर्गिरः पञ्च दिनान्यधीत्य
> वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च।
> अमी समाघ्राय च तर्कवादान्
> समागताः कुक्कुटमिश्रपादाः॥

अर्थात्—यह देखिए, कुक्कुट मिश्र आए, इन्होंने गुरु से कुल जमा पाँच दिन शिक्षा पाई है, सारा वेदान्त शास्त्र तीन दिन में पढ़ा है और तर्कशास्त्र को तो फूल की तरह सूँघ डाला है।

रसगंगाधर में हास्य का यह उदाहरण दिया गया है:—

> श्रीतातपादैर्विहिते निबन्धे
> निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा।
> अंगं गवां पूर्वं महो पवित्रं
> न वा कथं रासभधर्मपत्न्याः॥

अर्थात्—"हमारे पिता ने अपनी पुस्तक में एक नई युक्ति रखी है; (वह कहते हैं) गौ का अंग तो अब तक पवित्र माना ही जाता था; पर आगे से गधी भी क्यों न वैसी ही पवित्र मानी जाय?"

काव्य प्रकाश में यह उदाहरण दिया गया है:—

> आकुंच्य पाणिमशुचिं मम मूर्ध्नि वेश्या
> मंत्रांभसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे।
> तारस्वनं प्रतितथूत्कमदात्प्रहारम्
> हाहा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्म्मा॥

विष्णुशर्म्मा नामक किसी दुराचारी विद्वान् ब्राह्मण की दिल्लगी उड़ाता हुआ कोई कहता है—"देखिए, कैसे मजे की बात है। विष्णुशर्म्मा 'हाय हाय' करके रोते और कहते थे कि मेरे जिस मस्तक पर मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल छिड़का गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था उसी संस्कृत मस्तक पर इस वेश्या ने अपने पवित्र हाथों से तड़ातड़ चपत लगाए।'

मन्दारमरन्द चम्पू में यह उदाहरण दिया गया है:—

लेखिनीं इत इतो विलोकयन्
कुत्र कुत्र न जगाम पद्मभूः ।
तां पुनः श्रवणसीमसंगतां
प्राप्य नम्रवदनः स्मितं दधौ ॥

अर्थात्—कलम तो कान पर रखी हुई थी और उसे इधर उधर खूब ढूँढ़ा ; अन्त में वह कान पर ही मिली। यह देख कर उसे हँसी आई और उसने सिर नीचा कर लिया।

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार में हास्य रस के जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं:—

जिह्वायाःछेदनं नास्ति न तालुपतनाद्भयं ।
निर्विशेषेण वक्तव्यं निर्लज्जः को न पण्डितः ॥

'जीभ कट नहीं जाती, सिर फट नहीं जाता, तब फिर जो मुँह में आए सो कह डालने में हरज ही क्या है ? निर्लज्ज मनुष्य पण्डित बनने में देर क्यों करे ?'

परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कुरु ।
दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥

और भी:—

पूर्वं चेटी ततो वेटी पश्चात् भवति कुट्टिनी ।
सर्वोपायपरिभ्रष्टा वेश्या भवति तापसी ॥

(अर्थ बहुत सहज और स्पष्ट हैं ।)

सामगा नयिपूतं मे नोच्छिष्टमधरं कुरु ।
उत्कण्ठितासि चेद् भद्रे वामं करणं दशस्व मे ॥

एक अरसिक वैदिक ब्राह्मण किसी रमणी से कहता है— हे भद्रे ! मेरे यह होंठ सामवेद का गान करते करते बहुत पवित्र हो गए हैं। उन्हें तुम व्यर्थ जूठे मत करो। यदि तुम से किसी प्रकार न रहा जाता हो तो तुम मेरा बायाँ कान ही मुँह में ले कर चुभलाओ।

बिलाद्बहिर्बिलस्यांतः स्थितमार्जारसर्पयोः ।
मध्ये चाखुरिवाभाति पत्नीद्वययुतो नरः ॥

अर्थ—"दो स्त्रियोंवाले पति की दशा उस चूहे की सी होती है जिसकी बिल में तो साँप और बिल के बाहर बिल्ली हो।"

सदा वक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते ।
कन्याराशिस्थितोनित्यं जामाता दशमो ग्रहः ॥

अर्थ—"दामाद दसवाँ ग्रह है। वह सदा वक्र और क्रूर रहता है, सदा पूजा चाहता रहता है और सदा 'कन्या' राशि पर स्थित रहता है।

उपभुक्तखदिरवीटकजनिताधररागरंगभंगभयात् ।
पितरि मृतेऽपि हि वेश्या रोदिति हा तात तातेति ॥

अर्थ—"वेश्या का बाप यदि मर जाय तो वह "पिता पिता" नहीं चिल्लाती बल्कि "तात तात" कर के रोती है। क्योंकि पिता शब्द में का प ओष्ठ्य है और उसके उच्चारण से शायद पान की होंठों पर की लाली मिट जाय। इसी लिये वह 'तात तात' कह कर रोती है; क्योंकि त वर्ण दन्त्य है और उसके उच्चारण में होंटों की रगड़ की सम्भावना नहीं होती।

श्रमणः श्रावकवध्वाः सुरतविधौ दशति नाधरं दत्तं ।
मदिराक्षि मांसभक्षणममत्समये निषिद्धमिति ॥

श्रावक-पन्थियों की दिल्लगी उड़ाता हुआ एक दिल्लगीबाज कहता है:—श्रावक लोग प्रेम-प्रसंग में भी स्त्री का चुम्बन नहीं करते; क्योंकि उसके होंठ में दाँत लगने से शायद मांस-भक्षण का दोष लग जाय।

आपांडुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले
दन्तावलिर्विगलिता न च मे विषादः ।
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः ॥

एक रँगीला वृद्ध कहता है:—"क्या करें ! सिर के बाल सफेद हो गए, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गईं, दाँत टूट गये ; पर इन सब बातों का मुझे कोई दुःख नहीं है। हाँ, जब रास्ते में चलते समय मृग-नयनी स्त्रियाँ मुझे देख कर पूछती हैं कि—'बाबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किधर चले ?' तो उनका यह पूछना मेरे सिर पर वज्र की तरह गिरता है।"

हास्य रस का वर्णन तो संस्कृत साहित्य में है, पर अन्य रसों को देखते हुए जान पड़ता है कि उसकी ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। संस्कृत साहित्य में (और हिन्दी काव्य में भी) सारी शक्ति केवल शृंगार रस के लिये ही खर्च कर दी गई है। यदि यह कहा जाय कि संस्कृत का काव्य और शृंगार दोनों मिल कर एक हो गए हैं तो अत्युक्ति न होगी। नौ रसों के अनुक्रम में शृंगार रस ही सब से पहले स्थान पर विराजमान दिखाई पड़ता है। यद्यपि इस बात का कोई सबल आधार या प्रमाण नहीं है कि सब रसों का क्रम केवल उनके महत्त्व की दृष्टि से ही लगाया गया है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि शृंगार रस को केवल संयोग से ही पहला स्थान मिल गया है। सुभाषित-रत्न-भाण्डागार में संस्कृत साहित्य के सब प्रकार के पद्यों का जिस प्रकार समावेश किया गया है उसे देखते हुए शृंगार के महत्त्व की ही कल्पना होती है। भाण्डागार में शृंगार रस के अंगों और उपांगों के १८८ पृष्ठों में हजारों पद्य दिए गए हैं। पर उसी में हास्य-रस को केवल ५६ श्लोकों में ही छुट्टी मिल गई है। और वीर-रस के केवल ५१ और करुणा-रस के केवल ४१ श्लोक दिए गए हैं। इससे प्रकट होता है कि शृंगार रस को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। शृंगार रस को प्रधान रस मानने की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि कुछ लोगों ने श्रुति के "स एवैको रसः" वचन का अर्थ साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से यह लगाया है कि सब रसों का समावेश केवल एक रस में होना चाहिए और वह एक रस शृंगार रस है। पर जहाँ तक पता लगता है, कहीं सयुक्तिक रीति से यह नहीं दिखलाया गया है कि एक मात्र शृंगार रस में शेष सब रसों का समावेश या लय किस प्रकार हो सकता है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि मानव-सृष्टि की परम्परा चलाने के लिये रति-भाव आवश्यक है और रति-भाव ही शृंगार रस का स्थायी भाव है; इसलिये शृंगार रस को सब से पहला स्थान मिलना चाहिए। पर यह युक्ति भी ठीक नहीं है। क्योंकि मानव-सृष्टि की परम्परा चलाने अर्थात् प्रजोत्पत्ति करने के लिये जिस प्रकार रति-भाव आवश्यक है उसी प्रकार प्रजा-संरक्षण के लिये "वात्सल्य" भाव भी आवश्यक होना चाहिए। प्रजोत्पत्ति होने के उपरान्त भी यदि प्रजा-संरक्षण न होगा तो सृष्टि-परम्परा नहीं चल सकती।* प्रजा-पालन जैसे महान् कार्य्य की सिद्धि के लिये रति-भाव की जरा सी सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। केवल यही नहीं बल्कि स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रीति के कारण सन्तति की कामना का भी कुछ अंशों में विरोध या नाश होता है।† इससे सिद्ध होता है कि केवल अपत्य-प्रेम या वात्सल्य-भाव ही अधिक बलवान् हो कर सृष्टि का क्रम चलाने में मुख्य सहायक होता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो शृंगार की अपेक्षा वत्सल रस ही अधिक महत्त्व का ठहरता है; और बहुतों ने जहाँ उसका समावेश दसवें स्थान पर किया है वहाँ उसे बढ़ा कर और इधर कुछ ऊँचे स्थान पर लाना चाहिए। कुछ लोग शृंगार रस को प्रथम स्थान देने का यह कारण बतलाते हैं कि साधारणतः उसकी व्याप्ति समस्त सजीव जगत् में पाई जाती है। हास्य रस की तरह वह केवल मनुष्य के बाँटे ही नहीं पड़ा है। पर बात यह है कि रस का महत्त्व सारी सजीव सृष्टि के सम्बन्ध से नहीं देखना चाहिए बल्कि सारी सजीव सृष्टि में अग्रगण्य माने जानेवाले मनुष्य के सम्बन्ध से निश्चित करना चाहिए। उदाहरणार्थ, हास्य रस प्रायः मनुष्य-

* प्रो० ड्रमंड की Ascent of Man नामक पुस्तक में इस विषय की बहुत अच्छी तरह विवेचना की गई है।

† फ्रान्स आदि देशों में इस सम्बन्ध में कितने अनर्थ होते हैं और प्रजा-वृद्धि में इससे कितनी हानि होती है, सो प्रसिद्ध ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति में ही पाया जाता है, अन्य प्राणियों में नहीं। और जिस प्रकार अन्य सृष्टि से अलग मनुष्य को मिली हुई बुद्धि श्रेष्ठ है उसी प्रकार और उसी कारण से हास्य रस को भी श्रेष्ठ मानना पड़ता है; और सारी सृष्टि में पाया जानेवाला श्रृंगार रस उससे कम महत्त्व का ठहरता है। रस-विचार अथवा साहित्य-शास्त्र का कर्त्ता यदि केवल मनुष्य ही है और केवल वही उनका आनन्द ले सकता है तो केवल उसी में पाए जानेवाले हास्य को यदि कोई रस-विचार अथवा साहित्य-शास्त्रों में सब से पहला स्थान दे तो उसका यह कृत्य कुछ अनुचित न होगा। इसके अतिरिक्त एक दूसरी युक्ति और है। लोग कहते हैं कि मनुष्य के शरीर में श्रृंगार रस सम्बन्धी जैसी स्पष्ट इन्द्रिय है वैसी और किसी रस के सम्बन्ध की नहीं है; और इसी लिये श्रृंगार रस ही सब से श्रेष्ठ है। पर यह युक्ति भी ठीक नहीं है और न इसका कोई अर्थ ही है। मन भी एक मानवी इन्द्रिय ही है। केवल इन्द्रिय ही नहीं बल्कि वह सब से श्रेष्ठ इन्द्रिय है और उसी को हास्य रस की इन्द्रिय कह सकते हैं। "आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणां" आदि सर्वमान्य वचन से यह बात स्पष्ट है कि अन्य सब इन्द्रियों की क्रियाओं की अपेक्षा मन-इन्द्रिय और उसकी क्रिया का अधिक महत्त्व है। एक दूसरी दृष्टि से विचार करने पर यह बात मालूम हो जायगी कि मनुष्य मात्र को श्रृंगार का अनुभव केवल कुछ नियमित काल तक ही होता है। परन्तु हास्य आदि अनेक रसों का अनुभव जन्म भर होता रहता है। नौ अथवा दस रसों का यदि महत्त्व की दृष्टि से ठीक ठीक अनुक्रम लगाना हो तो हास्य और करुणा रस ही सब से पहले आवेंगे; उनके उपरान्त वीर रस रहेगा; इसके उपरान्त क्रम से वत्सल, श्रृंगार, अद्‌भुत, रौद्र, वीभत्स आदि को स्थान मिलेगा। चाहे मनुष्य-मात्र के जीवन में होनेवाली भाव-जागृति के विचार से देखिए अथवा उससे होनेवाले आनन्द और उसके उपयोग की दृष्टि से देखिए, हास्य, करुणा और वीर ये तीनों रस श्रृंगार रस की अपेक्षा अधिक महत्त्व के प्रमाणित होंगे। क्योंकि प्रायः हास्य और शोक में ही मनुष्य मात्र का अनुभव बँटा हुआ है। आनन्द उत्पन्न करनेवाला पदार्थ प्राप्त करने और दुःख उत्पन्न करनेवाली बात टालने में ही मनुष्य मात्र की सारी प्रवृत्ति रहती है। और इस प्रवृत्ति के विजयी होने में सदा उस वीर रस की सहायता की आवश्यकता हुआ करती है जिसका स्थायी भाव "उत्साह" है। मनुष्य मात्र सदा सुख या आनन्द प्राप्त करने, हास्य के अनेक प्रकारों में से किसी एक प्रकार का हास्य उत्पन्न करने और दुःख या करुणा रस का अनुभव करानेवाली बात दूर करने के प्रयत्न में ही लगा रहता है। और इन सब बातों की सिद्धि के लिये उसे पहले वीर रस का अनुभव करना पड़ता है, अर्थात् अपने शरीर में उत्साह उत्पन्न करना पड़ता है। वीर रस का उपयोग केवल योद्धाओं और समर-भूमि में लड़नेवालों के लिये ही नहीं है बल्कि मनुष्यमात्र के नित्य प्रति के व्यवहार में भी वीर रस का आविर्भाव दिखलाई पड़ता है। श्रृंगार रस का आनन्द जीवन की कुछ विशेष स्थिति में ही लिया जा सकता है। पर करुणा और हास्य के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। उदाहरणार्थ, श्रृंगार रस की कविता का आनन्द मनुष्य को लड़कपन या बुढ़ापे में नहीं मिल सकता; श्रृंगारिक मनोभावों की जागृति केवल युवावस्था में ही हो सकती है; और जब तक मनुष्य में भावों की जागृति हो सकती है तभी तक वह उन भावों के सम्बन्धी रसों के अनुभव करने का पात्र रहता है। पर करुणा और हास्य रस का अनुभव मनुष्य को बाल्य, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओं में होता है। हम लोग नित्य प्रति देखते हैं कि हास्य रस की बातें सुन या पढ़ कर छोटे छोटे बच्चे भी हँसते हैं और करुणा रस की बातें सुन या पढ़ कर वही बालक रोने लग जाते हैं। वृद्ध मनुष्यों पर करुणा रस का प्रभाव तो बहुत शीघ्र पड़ता ही है, पर उनमें से बहुत से आनन्दी और दिल्लगीबाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी देखने में आते हैं। भयानक, रौद्र अद्भुत आदि रसों का अनुभव करने के लिये ऊपर लिखी हुई किसी प्रकार की मर्यादा या सीमा की आवश्यकता नहीं; पर इन सब रसों का अनुभव बहुत ही थोड़े प्रसंगों पर होता है। पर यदि यह कहा जाय कि हास्य और करुणा रस का अनुभव मनुष्य को पग पग पर हुआ करता है तो कुछ अनुचित न होगा। इन रसों का अधिकार छोटे, बड़े, अमीर, गरीब सब पर और सब स्थितियों में बना रहता है। यदि करुणा और हास्य रस पर कुछ विचारपूर्वक ध्यान दिया जाय तो जान पड़ेगा कि मनुष्य को करुणा रस की अपेक्षा हास्य रस का अनुभव ही अधिक होता है। करुणा रस से हृदय के आर्द्र होने के लिये किसी सीमा तक अपनी हानि होने की आवश्यकता होती है और वह हानि अपनी किसी प्रिय वस्तु की होनी चाहिए। दूसरों की हानि देख कर भी दुःखी होनेवाले लोग संसार में हैं, पर यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि ऐसी प्रकृति के लोग संसार में बहुत ही कम हुआ करते हैं। परन्तु हास्य रस के सम्बन्ध में वह बात नहीं है। भिन्न भिन्न वस्तुओं में एक प्रकार की असंबद्धता दिखलाई पड़ने के कारण हास्य रस की उत्पत्ति होती है। संसार में यह असम्बद्धता प्रायः पग पग पर दिखलाई पड़ती है; और वह असंबद्धता चाहे अपने से सम्बन्ध रखती हो और चाहे पराए से, पर उसे देख कर मनुष्य का मनोविनोद अवश्य होता है। इस प्रकार विचार करने के उपरान्त यह बात सब लोग स्वीकार कर लेंगे कि हास्य रस को इस समय जितना महत्त्व दिया जाता है, वह उससे कहीं अधिक महत्त्व का पात्र है।

हास्य रस की मीमाँसा करते हुए उस रस के विभावों का भी कुछ वर्णन कर देना आवश्यक है। स्थूल रूप से विभाव शब्द का अर्थ 'कारण' कर सकते हैं, पर यह कारण उस रस की उत्पत्ति या उद्दीपन करनेवाला होता है। मूल मानसिक कारण कोई और होने पर भी प्रसंग या स्थिति के रूप में उसके और भी अनेक गौण कारण हुआ करते हैं; और इन्हीं गौण कारणों को विभाव कहते हैं। 'विभाव' शब्द की व्याख्या रसगंगाधर में इस प्रकार की गई है:—

स्थायिभावानां लोके तत्तन्नायकगतानां यानि आलम्बनतया उद्दीपनतया वा कारणत्वेन प्रसिद्धानि तान्यन्येषु काव्यनाट्ययोः व्यज्यमानेषु. विभावशब्देनव्यपदिश्यंते।"

अर्थात् अनेक प्रकार के अर्थ-चमत्कार, स्थिति या प्रसंग आदि जो हास्य रस के उद्दीपक होते हैं उन्हें हास्य रस का 'विभाव' कहते हैं। जिस प्रकार पदार्थ अनगिनत हैं और यथासमय उनकी अनगिनत घटनाएं हो सकती हैं उसी प्रकार मनुष्य अपनी कल्पना-शक्ति से भी अनगिनत घटनाएं खड़ी कर सकता है। मनुष्य अपने जन्मकाल से ले कर अब तक बराबर हँसता ही आया है; पर यह बात सम्भव नहीं है कि कल उसके हास्य का उद्दीपन करने के लिये जो घटना हुई थी, हूबहू वही घटना आज भी हो; अथवा जिस घटना के कारण मनुष्य आज हँस रहा है, हूबहू वही घटना कल भी उसके हास्य का उद्दीपन करने के लिये होगी। अर्थात् ये कारण प्रति दिन और प्रति क्षण एक दूसरे से भिन्न होंगे; और इसी लिये हम उन्हें अनगिनत कहते हैं। इतना होने पर भी ये घटनाएं यद्यपि अनगिनत हैं तथापि भिन्न भिन्न विभावों में जो समानता दिखाई पड़ती है उसके अनुसार उनकी जातियों या गणों का निश्चय हो सकता है। हास्य रस का विचार करते हुए पहले ही कहा जा चुका है कि वस्तु मात्र में देखी हुई विकृति अथवा विपरीतता, व्यंगदर्शन, पराई चेष्टा का अनुकरण, असंबद्ध प्रलाप आदि उसके विभाव हैं; और यही विभावों का वर्ग वा गण है। वहाँ इनका वर्णन केवल उपलक्षण स्वरूप हुआ है, उसके प्रधान प्रधान भेद इस प्रकार हैं:—

(१) वस्तु की नवीनता अथवा अपरिचितता, अर्थात् किसी एक अथवा दो वस्तुओं का नवीन और अपूर्व सम्बन्ध दिखाई पड़ना; (२) वस्तु-स्वरूप-विकृति अर्थात् किसी अच्छी चीज का तुरन्त ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुरे स्वरूप में दिखाई पड़ना; (३) शरीर आदि की किसी नियमित सीमा तक कुरूपता (४) नैतिक दृष्टि से मनुष्य स्वभाव की किसी प्रकार की कुरूपता; (इसमें केवल थोड़े से छोटे मोटे दुर्गुणों का समावेश होता है) (५) अपवाददर्शन—अर्थात् वस्तुओं आदि का जो स्वरूप, नियम या क्रम आदि नित्य दिखलाई पड़ता है उसमें कोई विरोध या दोष दिखलाई पड़ना; (६) सचेतन प्राणियों के सम्बन्ध में और विशेषतः मनुष्यों के सम्बन्ध में शिष्ट-सम्मत नियमों या मर्य्यादा आदि का उल्लंघन; (७) प्राणी मात्र पर आनेवाली बहुत ही क्षुद्र आपत्ति; (८) ऐसी बातें करना जो असभ्यता-पूर्ण समझी जाती हों और जो समाज में कहने योग्य न हों; (९) मिथ्याभियोग; अर्थात् हमें जो अधिकार नहीं हैं, धृष्टतापूर्वक अपने आपको उनका अधिकारी प्रकट करना; (१०) विशेष प्रकार का अज्ञान या बुद्धिमांद्य; (११) मन की विशेष प्रकार की कोमलता या भोलापन; (१२) सब प्रकार का अतिशयत्व—अर्थात् किसी बात का सीमा से बाहर हो जाना; (१३) व्याज अथवा कोई विशेष आशय रख कर बोलना—अर्थात् किसी विशेष हेतु वा अभिप्राय को छिपाने अथवा किसी विशेष हेतु वा अभिप्राय के न होने की अवस्था में उसके अस्तित्व का आभास प्रकट करने के लिये बोलना; (१४) पदार्थों की भांति शब्दों का भी विपरीत या असंबद्ध सम्बन्ध दिखलाना; (१५) मिथ्या-साम्य-दर्शन अथवा मिथ्या-विरोध-दर्शन; (१६) जड़ बुद्धि और तीव्र बुद्धि का विरोध; (१७) समझने में गड़बड़; (१८) विमनस्कता अथवा होश हवास कायम रहने पर भी पागलों की सी बातें करना (१९) परचेष्टा का अनुकरण आदि आदि*।

इन विभागों पर साधारणतः विचार करने से यह कहा जा सकता है कि काव्य में जो जो दोष माने गए हैं वे सब हास्य के विभाव हो सकते हैं*। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। काव्य में दोष होने के कारण उसकी रमणीयता की हानि होती है और उसका काव्य-स्वरूप नहीं बच जाता। पर जिस समय या स्थल पर रमणीयता की जान बूझ कर हानि की जाती है उस समय वह हानि हास्य रस के अनुकूल ही हो जाती है। यदि कविता में नाभि की उपमा पाताल से दी जाय तो उससे काव्य की शोभा नहीं बढ़ेगी, पर हास्य रस का उससे अच्छा उद्दीपन हो सकता है। मारवाड़ की स्त्रियों का वर्णन करते समय यह उपमा अतिशयोक्तिमूलक और हास्य रस की उत्पादक होगी और जिस प्रबन्ध में ऐसा वर्णन होगा वह 'विनोद' के अंतर्गत आ जायगा। यही बात काव्य का प्रत्येक दोष ले कर सिद्ध की जा सकती है। अर्थात् यह सिद्ध किया जा सकता है कि काव्य के जितने दोष हैं वे सब हास्य रस के विभाव हो सकते हैं। जैसे च्युत-संस्कृति (व्याकरण के लक्षणों की हीनता) काव्य का एक दोष है। अब मान लीजिए कि किसी मनुष्य को अपनी विद्वत्ता का बड़ा घमंड है पर वास्तव में उसे आता जाता कुछ भी नहीं; और लोग उसकी बेढंगी बातें सुन कर हँसी उड़ाते हैं; पर उसे उन बातों का कुछ भी ध्यान नहीं होता। यदि किसी ग्रंथकार को उसकी वास्तविक दशा का वर्णन करना हो और वह उस मनुष्य के मुँह से ठीक ठीक "संस्कृति-च्युत" वाक्य निकलवा सके तो उससे बहुत अच्छा विनोद हो सकता है।

ग्राम्य शब्दों का उपयोग भी काव्य का एक दोष है, पर यदि उसका उपयोग जान बूझ कर या वक्ता के लिये उपयुक्त होने के कारण किया जाय तो उससे लोगों का मनोविनोद ही होगा। पतत्प्रकर्षता भी काव्य का एक दोष है पर उसके योग से हास्य रस का बहुत अच्छा पोषण होता है। पतत्प्रकर्षता का यह उदाहरण लीजिए:—

*प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता लाक ने हास्य रस के बारह और ली हंट नामक प्रसिद्ध अँगरेज़ ग्रंथकार ने अपनी पुस्तक में ग्यारह विभाव बतलाए हैं; पर उनका वर्गीकरण किसी प्रकार ठीक नहीं है।

*काव्य के दोष स्थानाभाव से यहां नहीं दिए जा सके; पाठक उन्हें संस्कृत के किसी साहित्य ग्रंथ में देख सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोज्ज्वल ज्वलनज्वाला विकटोरुसटाच्छटः ।
श्वासक्षिप्तकुलक्ष्माभृत् पातु वो नरकेसरी ॥

इस श्लोक का प्रारम्भिक वर्णन अत्यन्त भयंकर और अन्तिम बहुत कोमल है। अर्थात् प्रकर्ष न हो कर एक प्रकार का आकर्ष ही हुआ है। पतत्प्रकर्षता को अँगरेजी में Bathos कहते हैं। पोप कवि की Rape of the Lock नामक कविता में इसके कई अच्छे अच्छे उदाहरण मिल सकते हैं।

प्रसिद्धि-विरुद्धता भी काव्य में अर्थालंकार का दोष हो सकता है; पर यदि कवि जान बूझ कर वह दोष करे तो वह हास्य रस के लिये उपकारक ही होता है। उदाहरणार्थः—

झण झण मिति बहुभूषणशब्दमिश्रं
किं द्रौपदी इव पलायसे रामभीता ।
एष हरामि झटिति यथा हनूमान्
विश्वावसोः इव भगिनीं तां सुभद्रां ॥

इस श्लोक में प्रसिद्धि-विरुद्ध कई ऐतिहासिक बातें दी गई हैं; और इसी लिये यह श्लोक विनोदात्मक हो गया है। इसी प्रकार विवेचना कर के यह बात अच्छे अच्छे प्रमाणों से सिद्ध की जा सकती है कि काव्य के जो दोष जान बूझ कर किए जायँगे वे हास्य रस के विभाव हो सकते हैं।

(शेष आगे।)

—:०:—

जल-विज्ञान।

[लेखक—डा० कालीचरण दुबे एल० एम० एस० डी० पी एच० हेल्थ आफिसर, बनारस।]

पृथ्वी पर जल भिन्न भिन्न रूपों में पाया जाता है। यथा,—

(१) तरल अवस्था में, जैसा कि समुद्र, नदी, तालाब, कुएं या वर्षा आदि का होता है।

(२) जमी हुई दशा में, जैसे पहाड़ों आदि पर जमी हुई अथवा कल आदि से जमाई हुई बरफ होती है।

(३) भाफ के रूप में जैसे बादल अथवा मनुष्य की साँस में होता है, इत्यादि। पर जल का मूल कारण वर्षा ही है।

जल से मनुष्य की अनेक प्रकार की आवश्यकताएं पूरी होती हैं और उससे अनेक काम निकलते हैं। जैसे,—

(१) नहाना,

(२) बरतन, कपड़े, मकान आदि धोना,

(३) भोजन बनाना,

(४) खेत और बाग आदि सींचना, इत्यादि। तात्पर्य्य यह कि उससे अनेक प्रकार के लाभ होते हैं।

प्रकृति ने जल में ऐसे गुण रखे हैं जिनके कारण उसमें डाली या पड़ी हुई सब चीजें हल हो जाती अथवा गल जाती हैं। खाने और पीने की प्रायः सब चीजें पानी में ही हल होती हैं; मनुष्य का भोजन पानी में ही तैयार होता है और पानी के द्वारा ही सारे शरीर में प्रवेश करता है। शरीर में पहुँच कर पचने के उपरान्त भोजन को पोषण करनेवाला अंश पानी में ही मिल कर लहू में प्रवेश करता है और उसके साथ शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में पहुँच कर उनका पोषण करता है। इसलिये यह बात बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य को भोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने, नहाने धोने और पीने आदि के लिये यथेष्ट और बहुत साफ़ जल मिले।

पानी मिलने के साधन।

(१) तालाब या झील आदि।

(२) नदी या नहर आदि।

(३) सोता।

(४) कुआँ।

(५) कल या बम्बा जिसका पानी प्रायः नदी से आता है।

जल में जो मैलापन या दोष होता है वह केवल उसकी जगह या हवा आदि के कारण अथवा उस भूमि के कारण होता है जिस पर से हो कर वह बहता है। अगर किसी शहर में बहुत से ऐसे कारखाने हों जिनमें शराब, आटा, दियासलाई, लोहा या इसी प्रकार की और चीजें तैयार की जाती हों तो वहाँ की हवा में कोयले के छोटे छोटे अणुओं के अतिरिक्त उन चीजों के अणु भी रहेंगे जो वहाँ के कारखानों में तैयार होती हैं। और जब पानी बरसेगा तो उसके साथ मिल कर वह सब अणु जमीन पर आ जायँगे। प्रायः लोग छतों पर कंडे या उपले थापते और लड़कों को पैखाना फिराते हैं। उन छतों पर जब पानी बरसता है तो वह सब चीजें उसी पानी में मिल कर बह जाती हैं। इसी तरह जमीन पर पड़ी हुई बहुत सी गन्दी चीजें पानी में मिल कर बहती और कुँओं, तालाबों, नदियों आदि अथवा समुद्र में मिल जाती हैं। पर स्वयं वर्षा का पानी बहुत साफ और अच्छा होता है और अगर चादर तान कर इकट्ठा किया जाय तो बहुत अच्छी दशा में मिलता है।

वर्षा का पानी।

ऊपर कहा जा चुका है कि संसार का सारा पानी वर्षा से ही मिलता है और अनेक प्रकार से पृथ्वी पर आता है; जैसे,—बरफ, कुहरा, ओला, पाला, वर्षा, ओस आदि। बरसे हुए पानी का कुछ भाग तो भाप बन कर उड़ जाता है और कुछ जमीन के अन्दर चला जाता है। पर उसका अधिक अंश कुंओं, नालों, नदियों और तालाबों आदि में ही पहुँचता है। बरसा हुआ पानी प्रायः साफ और हलका होता है और मनुष्यों के बड़े काम का है। पहलेपहल जब दो एक बार पानी बरसे तो उसे निकल जाने देना चाहिए और जब छत और दीवारें आदि अच्छी तरह साफ हो जायँ तो उसके बाद बरसा हुआ पानी जमा करना चाहिए। सर्वसाधारण इस प्रकार छतों आदि पर से वर्षा का पानी इकट्ठा करने का कष्ट नहीं उठाते; पर आजकल दवाखानों आदि में दवा के काम के वास्ते इस प्रकार पानी इकट्ठा किया जाता है।

नदी।

नदी का पानी भी प्रायः बहुत अच्छा होता है। इसका कारण यह है कि उस पर धूप और हवा का पूरा पूरा प्रभाव पड़ता है। नदी के पानी में बीमारी आदि के जो कीड़े आ जाते हैं वे कड़ी धूप से मर जाते हैं और हवा से उसकी बदबू जाती रहती है। पर तो भी नदी का पानी बरतने के समय नीचे लिखी बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

(१) नदी में किसी प्रकार की मैली या गन्दी चीज, कूड़ा करकट और यहाँ तक कि मोरी का पानी आदि कभी न जाने देना चाहिए।

(२) मरे हुए आदमियों या जानवरों की लाशें नदी में न डालनी चाहिए।

(३) नदी के किनारे पर चमड़ा, सन या और कोई बदबूदार चीज कभी गड़ा कर सड़ानी न चाहिए।

(४) प्रायः बड़े बड़े शहरों में लोग ऊपर लिखी बातों का ध्यान नहीं रखते। इसलिये जिन स्थानों पर ये बातें होती हैं वहाँ से ऊपर की ओर कुछ दूर हट कर नदी में नहाना धोना चाहिए और वहीं का पानी पीने के काम में लाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुआँ ।

कुएं का पानी भी प्रायः साफ और अच्छा ही होता है। कुएं तीन तरह के होते हैं ।

पहला—मिटकुइयां या वह कुआँ जिसमें दस बीस हाथ की गहराई पर ही पानी निकल आता है। ऐसे कुओं का सोता जमीन के अन्दर के जल से नहीं बल्कि छोटी छोटी नालियों और मकानों के गन्दे पानी के हौजों से मिला होता है। ऐसे कुओं में चारों ओर आधे मील तक का पानी आता है। चारों ओर आधे मील की दूरी में जितना गंदा और सड़ा हुआ पानी होगा उसका अंश उस कुएं में पहुँचेगा। यही कारण है कि ऐसे कुओं का पानी खराब और निकम्मा समझा जाता है।

अगर किसी गाँव या बस्ती में ऐसे कुओं के सिवा पानी मिलने का और कोई उपाय न हो तो इन कुओं को नीचे लिखी रीतियों से साफ रखना चाहिए।

(१) नया कुआँ कुछ ऊँची जमीन पर खोदा जाना चाहिए।

(२) कुएं के चारों ओर ऊँचा चबूतरा होना चाहिए।

(३) कुएं का मुँह ऊपर से बन्द रहना चाहिए और उसमें पानी भरने के वास्ते एक नल या छेद होना चाहिए।

(४) कुएं के अन्दर चारों तरफ की दीवार पक्की होनी चाहिए और उस पर नीचे तक पलस्तर होना चाहिए।

(५) कुएँ की तह में एक फुट मोटा कंकड़ फिर दो फुट महीन कंकड़ और तब एक फुट बहुत महीन कंकड़ी बिछा देनी चाहिए। इन तीनों तहों में से जो पानी आवेगा वह बहुत साफ होगा। कुएँ में जो गन्दा पानी उपस्थित होगा वह भी इस क्रिया से साफ हो जायगा और नया पानी भी बहुत साफ हो कर आवेगा।

(६) कुएँ के चारों तरफ जानवरों को नहलाना या पानी गिराना न चाहिए।

(७) आदमियों को स्वयं भी कुएँ पर नहाना या कपड़ा धोना न चाहिए।

दूसरा—घर का कुआँ जिसमें पचास साठ हाथ की गहराई पर पानी निकलता है। ऐसे कुओं का पानी प्रायः साफ और अच्छा रहता है; पर उनमें भी ऊपर लिखी उन बातों का ध्यान रखना चाहिए जो मिटकुइयों के सम्बन्ध में बतलाई गई हैं। घर के कुओं में कंकड़ आदि की तहें बिछा कर पानी साफ करने की आवश्यकता नहीं होती।

तीसरा—वह कुआँ जिसका पानी बहुत गहरा निकलता है और सोत के फूटते ही जो कुआँ लबालब भर जाता है। अँगरेज़ी में ऐसे कुएँ को Artesian well कहते हैं। ऐसे कुएँ का पानी बहुत साफ और अच्छा होता है और सब जगह नहीं मिल सकता।

तालाब या बावली ।

बड़े बड़े जंगलों और रेतीले मैदानों में पानी बड़ी कठिनता से मिलता है, इसलिये लोग वहाँ प्रायः धर्म्म के विचार से तालाब या बावड़ियाँ बनवा देते हैं जिसमें यात्रियों को पानी के बिना कष्ट न हो। इसके सिवा भारत में तो प्रायः सभी बड़े बड़े गाँवों और शहरों में तालाब आदि बनवाने की चाल है।

बरसात में जो पानी बरसता है वही तालाब या बावली आदि में जमा होता है और उसी को लोग बरस भर काम में लाते हैं। प्रायः तालाबों का पानी खराब होता है और उसके व्यवहार से कई तरह के रोग उत्पन्न होते हैं। तालाब या बावली आदि का पानी ख़राब होने के मुख्य कारण ये हैं,—

(१) पानी भरनेवाले लोग उसमें नंगे पैरों जाते हैं और रास्ते में पैरों में जो धूल या मैल लगती है वह सब वहाँ जाते ही उसके पानी में धोते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानों उसे अपने और दूसरों के बरतने के लिये चरणामृत बनाते हैं।

(२) पैखाने आदि से आ कर तालाब या बावली में ही लोग हाथ पैर और लोटा धोते और उसी में दातुन कुल्ला करते हैं। तालाबों आदि को लोग और भी सुभीते की जगह समझते हैं, उन्हीं के किनारों पर पैखाने जाते, वहीं पानी छूते और उसी में कुल्ला और स्नान आदि करते हैं।

(३) प्रायः मकान के सब कपड़े और बरतन आदि भी वहीं साफ किए और धोए जाते हैं।

(४) सब चौपाए,—गौएँ, भैंसे, बकरियाँ, घोड़े, बैल आदि—वहीं पानी पीते हैं; प्रायः मलमूत्र त्यागते हैं, उन्हीं में नहाते हैं और अन्दर हल कर बैठते हैं।

(५) आस पास के मकानों के कूड़े का ढेर उनके किनारों पर ही इकट्ठा किया जाता है।

ऐसी दशा में विचार करने की बात है कि तालाबों आदि का पानी कहाँ तक साफ और अच्छा रह सकता है और जहाँ के लोग ऐसे तालाबों के पानी का व्यवहार करते हों वहाँ सदा अनेक प्रकार बीमारियाँ क्यों न बनी रहें?

कल या बम्बे का पानी।

कल या बम्बे का पानी प्रायः साफ और अच्छा रहता है क्योंकि म्युनिसिपेलटियाँ उसकी सफाई के लिये विशेष रूप से प्रबन्ध करती हैं। यह पानी केवल साफ ही नहीं बल्कि बीमारी के कीड़ों आदि से भी रहित होता है। म्युनिसिपेलटी समय समय पर अच्छे अच्छे यंत्रों द्वारा डाकृरों से इसकी परीक्षा भी कराती रहती है। अगर जाँच करने पर इस पानी में कोई दोष जान पड़ता है तो वह दोष दूर करने का तुरन्त प्रयत्न किया जाता है।

पानी खराब होने के कारण।

(१) तालाबों, बावलियों और मिटकुइयों आदि के पानी के खराब होने के कारण ऊपर बतलाए जा चुके हैं।

(२) साधारण कुओं के पानी बिगड़ने के कई कारण हैं। हमारे यहाँ यह नियम है कि सब लोग अपने अपने बरतन से पानी भरते हैं। साधारण लोग धातु के बरतनों से और गरीब लोग मिट्टी के बरतनों से पानी भरते हैं। कुएँ के पानी पर इस प्रथा का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और इसी से उसका पानी जल्दी जल्दी खराब हो जाता है। मान लीजिए कि हैजे के किसी बीमार ने अपना लोटा माँज कर कुएँ से पानी भरा। अब उस कुएँ के सारे पानी में हैजे के कीड़ों का विष फैल जायगा और जो लोग उस कुएँ का पानी पीएँगे उनमें से बहुतों को हैजा हो जायगा। या अगर और कोई गरीब आदमी अपने गन्दे बरतन से पानी भरेगा तो भी उस कुएँ का पानी खराब हो जायगा। इसी तरह मैले और गन्दे डोलों या गगरों आदि से पानी भरने से भी कुओं का पानी खराब हो जाता है; और यदि उसके व्यवहार से आदमी तुरन्त बीमार न भी पड़े तो भी उसके स्वास्थ्य को कुछ हानि अवश्य पहुँचती है।

इस दोष को दूर करने का सब से अच्छा उपाय यह है कि कुएँ में नल या पाइप लगा दिया जाय और सारा पानी उसी की सहायता से निकाला जाय। और यदि यह न हो सके तो पानी भरने के लिये कुछ विशिष्ट डोल या गगरे नियत कर दिए जायँ और सब लोग उन्हीं डोलों या गगरों से पानी भरा करें। इसके सिवा कुएँ के ऊपर टीन आदि का सायबान और चारों तरफ पानी भरने के लिये गराड़ियाँ भी लगा देनी चाहिए।

पानी के बरतन।

पानी रखने के लिये ताँबे के बरतन सब से अच्छे होते हैं। स्वास्थ्य-शास्त्र के नियमों से और परीक्षा कर के यह बात जानी गई है कि यदि पानी गन्दा भी हो तो ताँबे के बरतन में रखने से थोड़ी देर में साफ हो जायगा। ताँबे के बाद दूसरा स्थान और और धातुओं का है और तीसरे दरजे में मिट्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बरतन हैं । पर इन सब बरतनों को प्रति दिन माँज और धो कर साफ कर लेना बहुत आवश्यक है ।

मशक ।

मशक जब एक बार बन जाती है तो फिर उसका साफ होना बहुत कठिन होता है । इसलिये यह बात बहुत आवश्यक है कि पीने का पानी मशक द्वारा कभी न मँगाया जाय । भिश्ती के पास एक ही मशक होती है और उसी एक मशक से वह तालाबों का पानी भर कर छिड़काव करता और दूसरी जगहों से पानी ले कर अमीरों और गरीबों के यहाँ पीने के लिये भरता है । ऐसी दशा में पानी चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, पर एक बार मशक के अन्दर जाते ही खराब हो जाता है और आरोग्यता के लिये बहुत हानिकारक होता है । जिन घरों में भिश्ती पानी भरता है, यदि उनमें से किसी में कोई छूतवाली बीमारी हुई तो वह बीमारी भी उसकी सहायता से सब घरों में फैल जाती है । इन बीमारियों में हैजा और पेचिश आदि प्रधान हैं ।

यदि पानी पूरा न मिले तो नीचे लिखी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी,—

(१) लोग नहाने धोने में कमी करेंगे ।

(२) धोबी कपड़े अच्छी तरह न धो सकेंगे अथवा कई बार धोए हुए पानी में धोएँगे ।

(३) भोजन पकाने में पानी की किफायत की जायगी ।

(४) मकानों और नालियों आदि की अच्छी तरह सफाई न हो सकेगी ।

इन सब बातों का फल यह होगा कि बहुत जल्दी लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ जायगा और त्वचा के रोग जैसे, खुजली, आँखों का दुखना आदि उत्पन्न हो कर फैलेंगे । अगर यही दशा अधिक दिनों तक बनी रहेगी तो बहुत जल्दी लोग दुर्बल और रोगी हो जायँगे ।

पानी के द्वारा फैलनेवाले रोग ।

पानी की सहायता से नीचे लिखे रोग फैलते हैं,—

(१) टायफाइड बुखार (Typhoid fever) जो प्रायः हैजे की तरह संक्रामक होता है ।

(२) हैजा (यदि हो सका तो इसके विषय में विशेष बातें एक स्वतंत्र लेख में दी जायँगी ।)

(३) पेचिश, कब्जियत और दस्त की बीमारियाँ जो प्रायः गन्दे और खराब पानी से उत्पन्न होती हैं । प्रायः कुछ विशिष्ट दूषित पदार्थ पानी में घुल जाते हैं और अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं ।

(४) बदहजमी या अनपच—यह रोग भी गन्दा पानी पीने से होता है । स्वयं किसी किसी पानी में भी यह रोग उत्पन्न करने की शक्ति होती है ।

(५) घेघा—कुछ लोगों का विश्वास है कि यह भी खराब पानी पीने से होता है ।

(६) इनके अतिरिक्त और भी अनेक बीमारियों के कीड़े गन्दे पानी के साथ शरीर में चले जाते हैं । जैसे,—(क) जिगर और फेफड़े की बीमारी के कीड़े । (ख) बड़े और छोटे कई प्रकार के केंचुए । (ग) नहरुए की जाति के सूत की तरह के कीड़े । और (घ) जोंक । आदि आदि ।

पानी साफ करने के उपाय ।

(१) पानी साफ करने का सब से अच्छा उपाय यह है कि उसे कम से कम १५ मिनट तक खूब गरम कर लिया जाय और तब ठंढा होने के बाद पीने आदि के काम में लाया जाय ।

(२) देग या भबके की सहायता से भी पानी साफ हो सकता है पर इसमें तरद्दुद बहुत है ।

(३) एक डोल पानी में ६ ग्रेन फिटकिरी डाल दी जाय ।

(४) एक डोल पानी में ६ ग्रेन पोटास परमेगनेट डाला जाय ।

(५) नीबू या सिरका मिला कर भी पानी साफ किया जा सकता है ।

(६) जिन स्थानों का पानी खराब हो वहाँ चाय पीनी चाहिए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनामा प्रदर्शिनी।

[श्रीयुक्त लाला लाजपतराय द्वारा वर्णित।]

(गतांक से आगे।)

कनेडियन मण्डप।

सारी प्रदर्शिनी में सब से सुन्दर और देखने योग्य स्थान कनेडियन मण्डप है। जो लोग अपना देश छोड़ कर विदेश में बसना चाहते हों उनके लिये यह बहुत आकर्षक विज्ञापन है। इसमें कनाडा की वह चीजें दिखलाई गई हैं जो लोगों के मन में लोभ उत्पन्न कर के उन्हें अपनी ओर आकर्षित करती हैं। उसकी उपजाऊ और बढ़िया भूमि, तरह तरह के सुन्दर दृश्य, स्थानान्तरित होने के साधन, खनिज सम्पत्ति, पशु और पक्षी, सुन्दर और सुखद जलवायु, व्यापार, कृषि तथा अन्य उपायों से धन-प्राप्ति की सम्भावनाएं आदि आदि आकर्षित करनेवाली चीजें बहुत अधिकता से और उत्तमतापूर्वक दिखलाई गई हैं। ये सब चीजें देखने ही लायक हैं। कनाडा में सब से अधिक आवश्यकता पुरुषों और स्त्रियों की है। इस मण्डप के कोने कोने से यही प्रकट हो रहा है कि कनाडा को मनुष्यों की आवश्यकता है। लोगों के वहाँ जा और बस कर कृषि और व्यापार आदि के द्वारा देश को सम्पन्न करने और फलतः स्वयं सम्पन्न होने की आवश्यकता है। कनाडा में धन मानों ग्रहण करनेवालों के आसरे खड़ा है। वहाँ की सरकार और प्रजा लोगों को अपने देश की ओर आकर्षित करने के लिये सब कुछ करने को तैयार हैं।

वे आगन्तुकों को जोतने बोने और मकान बनाने के लिये जमीन, सब प्रकार के आवश्यक सामान और पशु आदि देने के सुभीते उत्पन्न करने के लिये तैयार हैं। सारांश यह कि उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने के लिये जितनी बातें आवश्यक होती हैं, वे उन सब का प्रबन्ध कर सकते हैं। देश बहुत विस्तृत और आबादी बहुत थोड़ी है; मजदूरों की आवश्यकता बहुत अधिक है। इतना सब कुछ होने पर भी इतना अवश्य है कि वे केवल युरोपियनों को ही वहाँ बसाना चाहते हैं। युरोप के दरिद्र और बहुत छोटे लोगों तक का स्वागत करने के लिये वे तैयार हैं पर और देशों के सम्पन्न और उच्च जाति के लोगों को वे लेना नहीं चाहते। जो लोग युरोपियन रक्त से उत्पन्न न हों, वे चाहे कितने ही परिश्रमी और योग्य क्यों न हों, उन्हें वहाँ कोई स्थान नहीं मिल सकता। एशिया के जो लोग इस समय वहाँ उपस्थित हैं, उन्हें भी वे निकाल देने के प्रयत्न में लगे हैं।

शिक्षा सदन।

प्रदर्शिनी का जो अंश मुझे सब से अधिक पसन्द आया वह शिक्षा-सदन था। मैंने उसे कई दिनों तक देखा। उसमें शिक्षा-सम्बन्धी अंकों के अनेक कोष्ठक हैं और अनेक उपायों और रंगों से तथा बिजली द्वारा प्रकाशित करके वहाँ यह दिखलाया गया है कि संयुक्त राज्यों के भिन्न भिन्न भागों में शिक्षा-प्रचार के लिये क्या क्या काम हो रहे हैं। जूते बनाने की सारी क्रियाएं चलती फिरती तसवीरों से दिखलाई गई हैं। धार्म्मिक तथा अन्य प्रकार के उद्यमों का भी बहुत अच्छा प्रदर्शन किया गया है। भारत के प्रदर्शन में बालक कृष्णमूर्त्ति को उसका सिर और मिसेज एनी बेसेन्ट को उसका संरक्षक बनाया गया है। थियासोफिकल सोसाइटी का प्रदर्शन उसकी बगल में है।

इस सदन में एक और बहुत बढ़िया प्रदर्शन है जिस पर लिखा है—"जाति की उन्नति"। एक बड़े छपे हुए कागज पर शराब, चाय, कहवा और तंबाकू आदि पीने के बुरे परिणाम दिखलाए गए हैं। एक प्रदर्शन खुले स्थानों में विद्यालय बनाने की उपयोगिताएं बतलाता है और दूसरा सादे भोजन के लाभ दिखलाता है।

ईसाई धर्म्म के भिन्न भिन्न सम्प्रदाय देश और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेश में अपने धर्म्म के प्रचार के लिये जो जो उद्योग कर रहे हैं, उनका भी यहाँ अच्छा प्रदर्शन किया गया है। इनके परोपकार सम्बन्धी कार्य्य तो अवश्य प्रशंसनीय हैं पर इनकी संख्या अधिक और भेद अनन्त हैं। समाचार-पत्रों और व्याख्यानों आदि में वे एक दूसरे का जितना विरोध करते हैं, उसका बहुत कुछ प्रमाण इस प्रदर्शिनी में भी मिल जाता है। विचारपूर्वक देखनेवाले दर्शक को इनसे सब से अच्छी यह शिक्षा मिलती है कि इस जमाने में भी लोगों पर धर्म्म का कितना प्रभाव है और वह उनसे "काफिरों को धर्म्मपथ पर लाने के लिये" कितना अधिक धन व्यय कराता है।

खाद्य-पदार्थ भवन।

यह भवन देखने से मनुष्य समझ लेता है कि आजकल के पुरुषों और स्त्रियों का गार्हस्थ जीवन और पाक-विद्या से दिन पर दिन कितना अधिक सम्बन्ध छूटता जाता है। इन सब निरर्थक कामों में व्यय करने के लिये उन्हें समय ही नहीं मिलता। उन्हें होटलों और भोजनालयों में भोजन करने में ही सब से अधिक सुभीता होता है। भोजनालयों में उन्हें सब प्रकार के बने बनाए भोजन छुरी काँटों सहित सस्ते दामों में मिल जाते हैं। और स्थानों के भोजनालयों से इनमें भेद केवल इतना ही है कि इनमें परोसनेवाले नौकर नहीं मिलते खानेवाले को अपने लिये स्वयं ही परोस लेना पड़ता है। इसी में किफायत होती है। डब्बों में बन्द किए हुए जो भोजन आजकल मिलते हैं, उनके कारण भोजन पकाने की बहुत सी झंझटें दूर हो गई हैं। मांस से ले कर तरकारियों तक सब चीजें टीन के डब्बों में बन्द हो कर बिकती हैं। यहाँ एक स्थान पर चाय पिलानेवाला एक हिन्दू भी है। आटे की एक कम्पनी में भी एक हिन्दू है जो भारतीय भोजन बनाता है। उसी कम्पनी में चीनी, जापानी, हबशी, स्पेनी, फारसी आदि आदि अनेक भिन्न भिन्न जातियों के १२—१५ भोजन बनानेवाले हैं जो अपने अपने देश के भोजन बना कर लोगों को दिखलाते हैं। उनके बनाए हुए भोजन देखने और चखने के लिये उनके पास रोज हजारों आदमियों की भीड़ लगी रहती है। वहीं एक स्थान पर भिन्न भिन्न प्रकार के आटे और पकने आदि में उनके भिन्न भिन्न स्वरूप दिखलाए जाते हैं। उत्तरीय भारत की पकौड़ियाँ यहाँ बहुत प्रसिद्ध हो रही हैं; उनका स्वाद लेने और बनाने की तरकीब जानने के लिये हजारों मरदों और औरतों की भीड़ लगी रहती है। मैं समझता हूँ कि इससे हमारे देशवाले अब पकौड़ियों की अधिक कदर करने लगेंगे।

शिल्प और कला का भवन।

इस भवन में सब से अधिक आश्चर्य्य-जनक वोट देने की एक मशीन है जिसकी सहायता से मनुष्य एक स्थान पर बैठ कर एक ही समय में भिन्न भिन्न तीस पदों के लिये वोट दे सकता है। वोट देनेवाले को केवल मशीन में जा कर खड़े हो जाना पड़ता है और वोट का काम आप से आप होने लगता है। यदि उस मशीन से बाहर निकलने के पहले वह स्वयं अपना विचार बदल ले तब तो दूसरी बात है नहीं तो और किसी प्रकार उसका वोट बदला नहीं जा सकता। वोटों की गिनती आप से आप होती जाती है और एक स्थान पर लिखी भी जाती है। अमेरिकावालों की बुद्धिमत्ता का यह बहुत अच्छा उदाहरण है। संयुक्त-राज्यों में जीवन के प्रायः सभी अंगों के काम बहुधा मशीनों द्वारा ही होते हैं। मशीन से ही आप भोजन पका सकते हैं और मशीन से ही कपड़े सी सकते हैं; मशीनों से ही मकान झाड़ा और साफ किया जा सकता है और यदि आप चाहें तो मशीन की सहायता से बैठे बैठे हजारों मील की दूरी तक बातचीत कर सकते हैं। मशीन से आप वक्तृता दे सकते हैं, गा सकते हैं, हँस सकते हैं और वोट दे सकते हैं। तात्पर्य्य यह कि आप सब काम मशीन से कर सकते हैं। संयुक्त-राज्यवाले जिन जिन कामों में मशीनों का व्यवहार करते हैं, भारतवासी उनका अनुमान भी नहीं कर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः सभी सम्भव और असम्भव कामों में मशीन का व्यवहार होता है। आप से आप काम करनेवाली मशीन ही अमेरिकावालों की सब से बड़ी देवी है और अमेरिका की अधिकांश भौतिक उन्नति इन्हीं मशीनों की कृपा से हुई है। पहले भाफ से चलनेवाली मशीनों का स्थान गैस के इंजिनों ने ले लिया था और अब उनके स्थान पर बिजली का प्रचार बढ़ रहा है। यहाँ के सब काम बिजली से होते हैं। अनेक प्रकार से बिजली उत्पन्न की जाती है और अनगिनत कामों में उसका व्यवहार होता है। शिल्प और कृषि आदि के कामों की प्रायः सभी मशीनें बिजली से चलती हैं। एक स्थान पर मैंने एक मशीन देखी थी जिसमें बहुत से फल रख दिए जाते थे और जो उन सब को आकृति और आकार के अनुसार अलग अलग छाँट देती थी। उस मशीन में सब तरह के सेब रख दिए जाते हैं और आकारभेद से सब अलग अलग छँट कर और टोरियों में भर कर निकल आते हैं। सब स्थानों पर लटकाने योग्य, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने योग्य और भिन्न भिन्न आकार तथा प्रकार के बिजली के लम्प, भोजन पकाने के स्टोव, सब प्रकार के कमरे, जल और साज सामान आदि गरम करने के यंत्र, बिजली की कुरसियाँ, बिजली के पंखे, बिजली के स्नानागार, बिजली के औजार, बिजली की गाड़ियाँ, बिजली के खिलौने आदि आदि बिजली की प्रायः सभी चीजें यहाँ देखने में आती हैं।

मिट्टी के तेल का भी इस देश में बहुत से कामों में व्यवहार होता है। उसके भिन्न भिन्न प्रकारों और स्वरूपों की गिनती करना ही कठिन है।

कृषि-सम्बन्धी मशीन भी अमेरिका की एक विशेषता है। मशीनोंवाला भवन कृषि-सम्बन्धी मशीनों से ही भरा पड़ा है। इसी प्रकार इस्पात तथा लोहे की चीजें बनाने में अमेरिका संसार के सब देशों से बढ़ा चढ़ा है।

अमेरिका में डिक्टोफ़ोन नाम की एक विलक्षण मशीन का अविष्कार हुआ है। आप अपने पत्र या लेख आदि बोल कर उस मशीन से लिखा सकते हैं और उसी लिखे हुए अंश से प्रेसवाले कम्पोज कर लेंगे अथवा उसी पर से टाइप-राइटर पर छप जायगा। केवल यही नहीं, वह मशीन आपको सोचने, लिखने में की हुई भूलें सुधारने और उसे फिर से लिखने आदि का भी पूरा अवकाश और सुविधा देगी।

इसी प्रकार की एक और मशीन है जो यदि किसी कमरे में लगा दी जाय तो उस कमरे में होनेवाली सब बातें वह आप से आप लिख लेगी। पुलिस-विभाग के लोग मुकदमों का पता लगाने के लिये इसका बहुत व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार के अन्य कामों में भी इसका अच्छा उपयोग होता है।

कृषि-भवन।

कृषि की गणना अमेरिका के प्रधान उद्यमों में की जाती है और जैसा कि मैंने पहले कहा है, कृषि-सम्बन्धी मशीनों में अमेरिका संसार के सब देशों से बढ़ा चढ़ा है। प्रायः जितने काम हैं, वह सब मशीनों से होते हैं। गौएं मशीन से दुही जाती हैं और अंडे भी मशीन से ही सेए जाते हैं। अंडे पारसल से भेजे जा सकते हैं और केवल अंडों के पारसल ले जाने के लिये स्वतंत्र प्रबन्ध है। मकई यहाँ सैकड़ों तरह की दिखलाई गई है। यहाँ कई ऐसे मकान बना कर दिखलाए गए हैं जिनके खम्भे, अलमारियाँ, छतें, दरवाजे आदि सब कुछ मकई के ही बनाए गए हैं। सारे मकान की सजावट भी भिन्न भिन्न आकारों और रंगों की मकई से ही की गई है। भिन्न भिन्न राज्यों ने अपने यहाँ की पैदावार अलग अलग तरह से सजाई है। सब का मुख्य उद्देश्य केवल दर्शकों का ध्यान आकर्षित करना है। गोशाला, दूध और मक्खन के कारखाने आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सब मशीनों पर काम कर के दिखलाया जाता है। दूध छानने, मक्खन बनाने, छाछ निकालने आदि की अलग अलग मशीनें हैं। अमेरिकावाले छाछ या लसी पीने के बहुत शौक़ीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यदि हमारे देश के कुछ लोग दूध ग्रैार मक्खन ग्रादि के कारखानों की ग्रोर ध्यान दें तो मुझे विश्वास है कि कलकत्ते, बम्बई, लाहैार ग्रैार प्रयाग ग्रादि नगरों में उससे बहुत लाभ हो सकता है। इस प्रकार का काम करनेवाले व्यापार में स्वयं लाभ उठाने के ग्रतिरिक्त लोग ग्रपने देश-भाइयों को भी बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकते हैं। ग्रमेरिका में दूध से बनी हुई प्रायः सभी चीजें भारत की ग्रपेक्षा सस्ती मिलती हैं। ग्रैार सब चीजें तो यहाँ मँहगी मिलती हैं पर दूध, मलाई, मक्खन ग्रैार छाछ ग्रादि का दाम बहुत कम है; साथ ही ये सब चीजें होती भी बहुत ग्रच्छी हैं। यहाँ मक्खन केवल दूध का ही नहीं होता, गैा के ग्रतिरिक्त ग्रन्य ग्रनेक ग्रशुग्रों ग्रैार बहुत से फलों ग्रादि तक का मक्खन बनाया जाता है। यहाँ मैंने बहुत से जानवरों की चरबी तक से मक्खन बनते देखा है। तो भी गैा के दूध का ग्रच्छे से ग्रच्छा मक्खन यहाँ भारत की ग्रपेक्षा सस्ता मिलता है।

यान-शाला।

इसमें सब प्रकार के यान दिखलाए गए हैं। कल ही यहाँ यह दिखलाया गया था कि बहुत प्राचीन काल से ले कर ग्राज तक कितने प्रकार के यान बने ग्रैार उनसे किस प्रकार काम लिया जाता था ग्रथवा लिया जाता है। वहाँ मैंने ग्रपने यहाँ की पुरानी छकड़ा गाड़ी से ले कर ग्राज तक बने हुए वायुयान देखे। इन सब सवारियों का एक जुलूस निकला था। उसमें ग्रमेरिका के ग्रादिम निवासियों के यान, जापानियों के रिक्शे ग्रैार घोड़े ग्रादि दिखलाए गए थे। भिन्न भिन्न समय में बनी हुई गैसोलिन से चलनेवाली सैकड़ों प्रकार की गाड़ियाँ ग्रादि प्रदर्शित की गई थीं। एक गाड़ी पर चबूतरा बनाया गया था जिस पर दर्शकों की ग्रोर मुँह करा के बहुत से घोड़े खड़े किए गए थे। यह दृश्य बहुत हास्य-जनक था।

ग्राजकल के व्यापार के कामों में ग्रानेवाली सब प्रकार की गैसोलिन गाड़ियाँ इस जुलूस में दिखलाई गई थीं। पुराने ढंग की कुछ गाड़ियाँ भी, जिनमें मोटे ग्रैार भद्दे रबर टायर तथा बहुत शोर करनेवाले इंजिन लगे हुए थे, दिखलाए गए थे।

इन सब के ग्रतिरिक्त एक बढ़िया स्टीमर भी था जो कल साढ़े दस बजे यहाँ से उत्तर की ग्रोर रवाना हुग्रा था। जब वह विशालाकार स्टीमर प्रदर्शनी स्थल के पास से हो कर निकला तो उसने सीटियाँ ग्रादि बजा कर प्रदर्शिनी की ख़ूब ग्रभ्यर्थना की। उस दिन यानों की प्रदर्शिनी में यह क्रिया सब से पहले हुई थी।

स्थानान्तरित होने के साधनों का एक ग्रैार बहुत बड़ा प्रदर्शन हुग्रा था जिसमें सन् १८६० से ले कर ग्राज तक की बनी हुई बाइसिकिलें दिखलाई गई थीं।

खनिज-शाला।

इसमें खानों से सम्बन्ध रखनेवाले सब प्रकार के ग्रैाजारों ग्रैार कलों से काम कर के दिखलाया जाता है। केवल दिखलाने के लिये ही कई छोटी छोटी खानें बनाई गई हैं जिनमें लोग काम करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कई जगहों पर ग्रमेरिका की खानों से निकलनेवाली चीजों का ग्रन्य देशों की खानों से निकलनेवाली चीजों के साथ मुकाबला कर के दिखलाया गया है। मिट्टी के तेल, सोने ग्रैार बहुमूल्य पत्थरों के कोष्ठकों में भारत का भी नाम लिखा हुग्रा था जिसे देख कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

यंत्र-शाला।

प्रदर्शिनी की सारी इमारतों में से यही भवन सब से बड़ा है। यह भाग काठ का बना हुग्रा है ग्रैार काठ की बनी हुई संसार की सब इमारतों से बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाया जाता है। जब यह भवन खोला गया था तब एक अमेरिकन उड़ाका अपने वायुयान पर बैठ कर इसके हाल में उड़ा था! मशीनों आदि के सम्बन्ध में मैं बहुत कम बातें जानता हूँ और इसलिये इस भवन में प्रदर्शित की हुई बहुत बढ़िया मशीनों का मैं कोई वर्णन नहीं कर सकता। तथापि इतना अवश्य है कि उसमें सब प्रकार की और सब कामों के लिये बहुत अच्छी अच्छी मशीनें रखी हैं।

संयुक्त-राज्यों की सरकार के प्रदर्शन।

एक भवन में संयुक्त-राज्यों की सरकार के भिन्न भिन्न विभागों के सब काम दिखलाए गए हैं। शासन-सम्बन्धी कदाचित् ही कोई ऐसा विभाग होगा जिसका प्रदर्शन यहाँ न किया गया हो। बहुत से विभाग तो प्रत्यक्ष काम करते हुए दिखलाए गए हैं और शेष विभागों में बहुत बड़े बड़े जानकार रखे गए हैं जो दर्शकों के पूछने मात्र पर उन विभागों की छोटी से छोटी बातें बतला देते हैं।

डाकखाना, ख़ज़ाना और मेल ये तीनों विभाग प्रत्यक्ष काम करते हुए दिखलाए गए हैं। उसी इमारत में गवर्नमेण्ट बिल (करेन्सी नोट) बनाए और वहीं लोगों को दे कर रुपए वसूल किए जाते हैं। जल और स्थल-सेना सम्बन्धी सब बातें प्रवीण अफसर समझा देते हैं। बढ़िया से बढ़िया और नई तरह की मशीन-गनों, सब-मरीनों और टारपेडो-नावों के नमूने बना कर रखे गए हैं और लोगों को उनके सम्बन्ध की सब बातें समझाई जाती हैं। स्वास्थ्यविभाग का भी इसी प्रकार बहुत अच्छा प्रदर्शन किया गया है और यह दिखलाया गया है कि तरह तरह की बीमारियाँ किस तरह पैदा होती, बढ़ती, फैलती और रोकी जा सकती हैं। बीमारियां रोकने के सम्बन्ध की सब बातें बहुत अच्छी तरह और ब्योरेवार बतलाई जाती हैं और उनके सम्बन्ध के अंक और कोष्टक आदि रोशनी की सहायता से दिखलाए जाते हैं। यहाँ अधिक धन लगा कर बढ़िया बढ़िया झोपड़े और मकान आदि बनाने पर नहीं बल्कि सफाई आदि पर ही अधिक जोर दिया जाता है।

ललित-कला भवन।

इस भवन में चित्रों और ललित-कला सम्बन्धी दूसरे पदार्थों का बहुत अच्छा और बड़ा संग्रह किया गया है। इस स्थान पर इस बात का पता लगता है कि ललित-कला में यदि प्राचीन काल के लोग आजकलवालों से बढ़े चढ़े नहीं थे तो कुछ कम भी नहीं थे। इस भवन में चीन और जापान की ओर से बहुत अच्छा प्रदर्शन किया गया है। बेचारे भारत का इसमें कहीं प्रवेश नहीं है। हाँ, चीन यहाँ सब से बढ़ कर है। रंगों की मिलावट और उपयुक्तता बहुत अच्छी है।

जापान की अपेक्षा चीन की कला अधिक स्वच्छ और सुन्दर है। उसमें किसी तरह की नकलबाजी नहीं की गई है। वह सर्वथा मौलिक और अनुपम है। जानकार लोग उसे बहुत सराहते और उनके भावों को आध्यात्मिक तथा अत्यन्त उच्च श्रेणी का बतलाते हैं। प्राचीनों और अर्वाचीनों का सन्धि-स्थान कैलिफोर्निया है। जब मैं सान फ्रान्सिस्को के चीनी महल्लों में जाता हूँ और वहाँ चीनी पुरुषों और स्त्रियों को चलते फिरते देखता हूँ तो मुझे प्राचीनों और अर्वाचीनों का अन्तर बहुत प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई पड़ने लगता है। चलते समय चीनी बहुत सँभाल सँभाल कर और गिन गिन कर बड़ी शान से कदम उठाते हैं; मानों वे बड़े विचार और ध्यानपूर्वक चलते हैं। उनके चलने में किसी प्रकार की जल्दी या उतावलेपन का नाम भी नहीं होता। पर आजकल के लोगों (अमेरिकनों आदि) की चाल आँधी या बवंडर की तरह होती है। उनके सामने जो चीज पड़ती है उसे वे अपने धक्के से गिराते और कभी कभी अपने साथ ही घसीटते हुए चलते हैं। उन्हें शान से चलने का समय ही नहीं मिलता। उनका समय ही धन है, चलते समय वे किसी प्रकार के भय या आपत्ति की चिन्ता नहीं करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें एक एक मिनट और एक एक सेकेंड तक का ध्यान और हिसाब रखना पड़ता है। वे चलते नहीं बल्कि दौड़ते हैं। चलते समय भी वे कुछ बचत करना चाहते हैं। वे बहुत बड़ी प्राप्ति के पीछे पड़े रहते हैं। वे समझते हैं कि यदि हम सब से आगे बढ़ कर प्राप्ति न करेंगे तो हमारा नाश हो जायगा। वे किसी बात के आसरे नहीं ठहर सकते। उनका सर्वस्व इसी संसार में है—दूसरे जन्म या जगत की उन्हें भावना ही नहीं है। वे समझते हैं कि प्राप्ति या कार्य्य करने के लिये सब से अधिक आवश्यकता जल्दी की है। उनके पास उहापोह करने के लिये समय नहीं है। उनके लिये जीवन-काल बहुत ही अल्प है। इसलिये वे उससे अच्छे से अच्छा और अधिक से अधिक काम लेना चाहते हैं। इसी लिये आधुनिक कला में भी शान शौकत या आध्यात्मिक भाव का नाम भी नहीं रहता; पर प्राचीन कला में उनकी बहुत अधिकता है। प्राचीनों का विश्वास अविनश्वरता और अमरता पर है। उनमें किसी प्रकार का उतावलापन नहीं होता। वे परिणाम अथवा परलोक में मिलनेवाले फल के लिये ठहर सकते हैं। उन्हें परलोक का ध्यान करने और उसके आसरे में बैठे रहने में ही आनन्द मिलता है। उन्हें इस तुच्छ और नश्वर जीवन की कोई चिन्ता नहीं होती। वे वर्त्तमान काल को भविष्य के लिये तैयार होने का अवसर मात्र मानते हैं। पर अर्वाचीनों को उपस्थित जीवन का ही सब से अधिक ध्यान रहता है। उनका विश्वास न तो पूर्व जन्म पर होता है और न उन्हें भविष्य जीवन की ही कोई चिन्ता रहती है। वर्त्तमान जीवन और काल को ही वे सब से अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। वे उपस्थित समय में केवल काम ही काम करना जानते हैं। वे जीवन का तात्पर्य्य उसके प्रत्यक्ष परिणामों से लगाते हैं। इसी लिये अपने समय के एक एक सेकेंड का वे मूल्य समझते हैं। केवल ललित कला के भवन में ही दोनों के विचारों का बहुत अच्छा मुकाबला हो सकता है और इसी लिये दोनों के आन्तरिक भावों का सब से अधिक पता यहीं लगता है।

फुटकर बातें।

एक स्थान पर मनोविनोद के सब साधन हैं और वहीं पर अनेक फुटकर दृश्य भी दिखलाए गए हैं। उनमें से कई बहुत ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं।

(१) बाइबिल के अनुसार सृष्टि का निर्म्माण-इस दृश्य को यथासाध्य विज्ञान के अनुकूल ही रखने की चेष्टा की गई है। यह दृश्य बड़ा ही आश्चर्य्यजनक है और रंगशाला पर दिखलाया जाता है। उसका प्रत्येक दृश्य दिखलाने से पहले बाइबिल के अनुसार उसका वर्णन कर दिया जाता है। इसमें आदम और हौवा, केवल यही दो मानव पात्र हैं।

(२) ड्रेडनाट नामक बड़े जंगी जहाज़ के बनाने की सब क्रियाएं जो क्रम से एक एक कर के दिखलाई जाती हैं।

(३) एक स्थान पर यह दिखलाया जाता है कि निश्चित समय से पहले जन्मे हुए अथवा नष्ट अंगोंवाले शिशु वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से किस प्रकार जीवित रक्खे जा सकते हैं। उसी स्थान पर कुछ जीवित शिशु भी हैं जिनका पालन आदि उन्हीं यंत्रों द्वारा होता है।

(४) कई स्थानों पर यह दिखलाया जाता है कि गोरी जातियों के अमेरिका पहुँचने से पहले वहाँ के आदिम निवासी किस प्रकार रहते थे। वहाँ के आदिम निवासी इण्डियन बहुत अच्छे घोड़सवार होते हैं। वहाँ जीन-सवारी में स्त्रियाँ भी पुरुषों का मुकाबला करती हैं।

(५) पानी की एक बनावटी नहर में सब-मरीन नावों के काम भी दिखलाए जाते हैं।

(६) भिन्न भिन्न जातियों के नाच दिखलाने के लिये उन्हीं जातियों की पेशेवर नाचनेवालियाँ रखी गई हैं। प्राचीन ढंग के नाच दिखलाने के लिये तुर्किस्तान और मिस्र की नाचनेवालियाँ रखी गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। हवाइयों का नाच प्रायः आधुनिक ढंग के नाच से मिलता जुलता है।

(७) अमेरिकन इण्डियनों के बहुत से गाँवों के अतिरिक्त आयरलैण्ड, जर्म्मनी और चीन का भी एक एक गाँव दिखलाया गया है। "सुन्दर जापान" के मण्डप में बुद्धदेव की एक बहुत बढ़िया मूर्त्ति रखी हुई है जिसके ऊपर सोने का कलश है। इस मण्डप के सामने पहुँच कर भारतीयों को बुद्ध के देश के निवासी होने का अभिमान होता है। ललित-कला-भवन में ताँबे, चाँदी और सोने आदि की भी कई ढलुआँ मूर्त्तियाँ रखी हुई हैं।

(८) अमेरिका के इतिहास से गेटेसबर्ग के युद्ध आदि की अनेक घटनाएं दिखलाई गई हैं।

(९) पनामा की नहर का एक छोटा नमूना बना हुआ रखा है जिसके सम्बन्ध की सब बातें कई ग्रामोफोनों की सहायता से लोगों को मालूम होती हैं। एक मंच बना हुआ है जिस पर कुछ दर्शक बैठ जाते हैं। वह मंच नहर के चारों तरफ घूमता है और उसके जिस भाग के सामने पहुँचता है उसी भाग का वर्णन ग्रामोफोन द्वारा होता है। यह कृत्य बराबर लगातार होता रहता है।

(१०) सबसे बढ़िया प्रदर्शन एक शिक्षित घोड़ा है। अपने स्वामी के आज्ञानुसार वह घोड़ा टेबुल पर से अंकित चौखटे उठाता, जोड़ लगाता, बाकी निकालता और गुणा तथा भाग करता है। वह रंग भी पहचानता है और अनेक ऐसे कार्य्य करता है जिनसे उसकी समझदारी और स्मरण-शक्ति का बहुत अच्छा परिचय मिलता है।

इससे भी बढ़कर विलक्षण मैडम एलिस नाम की एक स्त्री है। वह आँखें बन्द कर के सामने आई हुई चीजों के नाम बतलाती है, यहाँ तक कि अपने सामने आनेवाले दर्शकों के नाम तक बतलाती है, आँखें बन्द रहने पर ही कार्डों पर छपे हुए नाम पढ़ लेती है, करेन्सी नोटों के नम्बर बतला देती है और लोगों के मन की बात बतला देती है। इस प्रकार के कौतुक भारत में तो बहुत होते हैं पर इस देश में बहुत कम होते हैं और इसी लिये उन्हें देखने के लिये बहुत भीड़ जमा रहती है।

इन स्थानों में लोगों के ध्यान आकर्षित करने के लिये बहुत सी बालिकाएं तरह तरह के विलक्षण कपड़े पहने हुए दिखलाई पड़ती हैं। यहाँ आ कर इस बात का पता लगता है कि भिन्न भिन्न देशों के नैतिक आचारों और नफासत में कितना भेद होता है। यहीं यह बात भी समझ में आ जाती है कि किसी को दूसरी जाति के लोगों के पहनावे, नफासत और फैशन आदि पर कभी हँसना न चाहिए। इस स्थान पर और भी अनेक प्रकार के मनोविनोद के साधन हैं जिनका वर्णन करने से विस्तार बहुत बढ़ जायगा। हस्तरेखा देख कर जीवन की बातें ठीक ठीक बतलानेवाले भी यहाँ उपस्थित हैं।

तात्पर्य्य यह है कि सारी प्रदर्शिनी का दृश्य बहुत बढ़िया है। और यदि युरोप का महा-युद्ध न छिड़ जाता तो इसकी शोभा और भी अधिक हो जाती। जब एक बार आप प्रदर्शिनी-स्थल में पहुँच जायँगे तब फिर आपको इस बात का जरा भी ध्यान न रह जायगा कि संसार में किसी स्थान पर लाखों मनुष्य अपने आपको एक दूसरे से अधिक सबल, अधिक शिक्षित और अधिक सभ्य प्रमाणित करने के लिये कट मर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातीयता का विकाश ।

[लेखक—श्रीयुत बाबू शारदाप्रसाद एम० ए० वकील हाई कोर्ट ।]



तिहासिक प्रमाणों से विदित है कि मनुष्य की संख्या-वृद्धि के साथ ही साथ उसमें कतिपय व्यक्तियों के एकत्र हो कर एक समूह की अवस्था में रहने की इच्छा प्रकट हुई। इन समूहों में आरम्भ में कोई ऐसे सिद्धान्त निश्चित नहीं किए जा सकते जिनसे यह स्थिर रूप से अनुमान किया जाय कि व्यक्तियों को एकत्र करने के क्या अवश्यमेव कारण कहे जा सकते हैं; तथापि इस सम्बन्ध में भली भाँति जाँचने से ऐसे सिद्धान्तों के सारांश का इतना ज्ञान अवश्य हो गया है कि इन कारणों के विषय में जो व्यक्तियों को एकत्र कर के समूह बनाते हैं निश्चित कर के जाना जाय। ऐसा मालूम होता है कि अपने को समूह में एकत्र करने की इच्छा मनुष्य में प्रायः स्वाभाविक है और स्वभावतः वह अपने वर्ग से पृथक् किए जाने से अत्यन्त भयभीत होता है। वस्तुतः यही सिद्धान्त जो ऐतिहासिक अनुभवों से प्रमाणित हो रहा है वह मानुषी समाजों की सृष्टि का कारण और सिद्धान्त समझना चाहिए। आरम्भ ही से मनुष्य, समूहों में एकत्र हो कर सामाजिक नियमों से अपने को बद्ध कर के रहते हुए पाए जाते हैं। इन समाजों में प्रायः यह देखने में आता है कि सम प्रकृति तथा सम आकार के मनुष्य ही प्रायः एक दूसरे के साथ सम्मिलित हो कर, समूहबद्ध हो कर कोई विशेष समाज बनाते हैं। जब इस प्रकार कोई विशेष समाज बन गया तो उस समाज के मनुष्यों में जाति का भाव स्वभावतः उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि आरम्भ ही से मनुष्य में जाति का ज्ञान और अभिमान सदैव रहा है और जो सामाजिक गुण उसमें स्वभावतः पाए जाते हैं उनके साथ ही साथ जाति का अभिमान भी हुआ है। इतिहास से प्रकट है कि जाति के इस मिथ्या अभिमान के कारण कितने कुलों का नाश और परस्पर विरोधजनित द्वेष से बहुतेरे समाजों का निर्मूल नाश हुआ है। जातीयता अपने दृढ़ चंगुल में मनुष्य के स्वभाव को ऐसा पकड़े हुए है कि उसका स्वभाव पूर्ण रूप से उसके प्रभाव से आच्छादित हो रहा है। जो अपने प्रकार के आचरणवाले न हों, जिन का भोजन तथा वसन अपने से भिन्न हो, जो अपनी त्वचा के रंग के न हों, उनको अपने से स्वभावतः मनुष्य अलग रखता और उनसे घृणा करता है। यह घृणा उसको विरोध और हानि के लिये प्रेरणा करती है और इस प्रकार प्रायः दो जातियों के एक दूसरे के साथ घोर युद्ध की घटना संसार में होती रहती है। विशेष प्रदेश की स्थिति और वहाँ का एकत्र निवास भी जातीयता का भाव उत्पन्न करता है। जन्मभूमि का प्राकृतिक स्नेह और जातीयता का ज्ञान वस्तुतः सारांश में एक दूसरे के साथ सम्मिलित है। निवास-स्थान और विशेष प्रदेश जहाँ पर एकत्र हो कर कतिपय मनुष्य रहते चले आए हैं, चाहे वह बहुत काल का न हो किन्तु अल्प ही काल का हो तथापि उसके सम्बन्ध में जन्मभूमि के तुल्य प्रायः अवश्यमेव व्यवहार होता है। जैसे दक्षिणी अफ्रिका में विविध प्रकार के जो मनुष्य एकत्र हो गए हैं उनमें नवीन प्रतिगृहीत निवास स्थान के प्रति वही भाव हैं जो चिरकाल से सम्बन्ध होने में होते। इससे प्रकट है कि स्वार्थ और सम उद्देश्य भी मनुष्यों में प्रायः जातीयता का भाव उत्पन्न कर देता है। इस समय जर्मन साम्राज्य में जो कई प्रकार के जनसमुदाय एक दूसरे के साथ बद्ध हो कर एक जाति की भाँति व्यवहार कर रहे हैं उसका कारण भी प्रदेश और निवास स्थान की एकता और स्वार्थ-प्रेरित हो कर केवल आत्ममहत्त्व ही की ओर उद्योग करना है। वस्तुतः इस पक्ष से देखा जाय तो जातीयता का ज्ञान मनुष्य के हेतु इस संसार में दुःख का ही कारण होता रहा है। परन्तु जातीय विकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

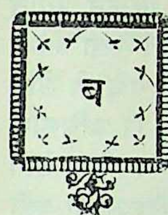
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मुख्य सिद्धान्तों पर ध्यान देने से प्रकट होगा कि यद्यपि कृत्रिम प्रबन्धों से जनसमूह बनते हैं और वस्तुतः जातियों की सृष्टि का मूल कारण भी यही है तथापि धर्म की तरह जातीयता का ज्ञान मनुष्य में आत्मिक है और संसार में जो हानि और विरोध प्रायः जातीयता के साथ मिलाए जाते हैं और उसके परिणाम कहे जाते हैं वे प्रायः उसी व्यवहार के कारण हैं जो उसके अन्तर्गत सारांश से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उदाहरण की भाँति भारतवर्ष में जातियों के जो विभाग रक्खे गए हैं वे आत्मिक आधार पर स्थिर किए गए थे और इसी कारण समाज के एक मत हो कर रहने में और उसमें विरोध के रोकने में यह जातीयता किसी प्रकार बाधक नहीं हुई। इस समय जो भीषण दृश्य युरोप के प्रदेशों में जातीयता-जनित विरोध के परिणाम रूप से हो रहा है और जिसका सभ्यता पर इतना असंतोषकारक प्रभाव पड़ रहा है उसका भारत की जातीयता के सम्बन्ध में हम अभाव देखते हैं। इस प्रबन्ध में हम क्रमशः इसके विकाश के सिद्धान्तों पर विचार करेंगे और उसी के साथ ऐतिहासिक प्रमाण भी देंगे। इस विचार से कदाचित् यह निश्चय हो सकेगा कि सभ्यता के सम्बन्ध में कौन बातें उपयोगी और हितकारी होंगी।

(शेष आगे।)

सभापति का व्याख्यान।

(यह व्याख्यान नागरीप्रचारिणी सभा के सभापति श्रीयुक्त पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए० का है जो गत २ अगस्त को सभा के वार्षिक अधिवेशन में पढ़ा गया था।)



ड़े आनन्द का विषय है कि हम लोग आज अपनी प्रिय काशी नागरीप्रचारिणी सभा का बाईसवाँ वार्षिकोत्सव मना रहे हैं। सभा को स्थापित हुए अब २२ वर्ष सम्पूर्ण हो गए और अब आपकी यह प्यारी सभा पूर्ण रीति से युवा अवस्था को प्राप्त हो गई है। यों तो १८ वर्ष की ही अवस्था हो जाने पर मनुष्य बालिग माना जाता है पर २२ वर्ष पूरे होने पर बड़े बड़े राजा-महाराजाओं तक को राज्य के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। आशा है कि आप महाशयों के उद्योग से अब नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का साम्राज्य भी समस्त भारतवर्ष में शीघ्र फैल जायगा। इसके शुभ लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं। यों तो बहुत दिनों से इनके प्रचार में उन्नति हो रही है और दिनोंदिन इनका अधिकार बढ़ता ही जाता है पर हाल ही में महाराष्ट्र एवं गुर्जर देशीय विद्वानों ने कुछ वाद-विवाद के पीछे हिन्दी की सर्वव्यापकता और उपयोगिता को मुक्तकंठ से स्वीकार कर लिया है और आशा है कि उसकी विशेष उन्नति का समय अब आ ही रहा है। अतः जिन उद्देश्यों से यह सभा २२ वर्ष हुए स्थापित हुई थी उनकी पूर्ति में कदाचित् अब विशेष अड़चन न रह जायगी। कुल मिला कर इस वर्ष हिन्दी की दशा अच्छी रही।

मैंने विगत और गत वार्षिक अधिवेशनों में आप लोगों को इस बात का साभिमान स्मरण दिलाया था कि जिस दिन से यह सभा स्थापित हुई है, प्रति वर्ष इसके सभासदों की संख्या निरंतर बढ़ती ही गई थी। इस वर्ष मुझे वही बात दोहरा सकने का गौरव प्राप्त नहीं है इसका मुझे विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख है। गत वर्ष सभासदों की संख्या १३६७ थी पर साल के अन्त में वह केवल १२०१ रह गई अर्थात् १६६ की कमी हो गई। इस से कोई यह न समझे कि इसका दोष सभा ही पर दिया जा सकता है। दुर्भाग्यवश १६१ सभासदों के नाम इस साल चन्दा न देने के कारण सूची ख में लिखने अर्थात् सदस्यों की नामावली से हटाने पड़े। ऐसा होना बड़ी लज्जा और दुःख की बात है। यदि ये लोग अपना चन्दा दे दिए होते और ४९ में से अधिकांश सज्जनों ने प्रायः इसी कारण इस्तीफे न दिए होते तो आज दिन हमारे सभासदों की संख्या भी बढ़ी चढ़ी देख पड़ती। अस्तु ऐसे महानुभावों का सभा से अलग हो जाना ही अच्छा है क्योंकि उनके द्वारा अब हमें उलटी हानि तो न उठानी पड़ेगी। तो भी जिस भाषा के भाषियों की संख्या कई करोड़ हो उसकी मुख्य सभा के केवल १२०० सदस्य हों यह बात हम लोगों की अधोगति का पूर्ण परिचय दे रही है। आशा है कि हिन्दीप्रेमी मात्र इस ओर ध्यान दे कर शीघ्र इस महा त्रुटि को दूर कर देंगे।

मुझे इस बात का भी दुःख है कि गत वर्ष सभा का ग्रंथप्रकाशन का काम समुचित रीति पर न चल सका। "पत्रिका" ठीक समय पर न निकल सकी पर इसका उचित प्रबन्ध अब हो गया है और दृढ़ आशा है कि वर्तमान साल में सब कमी पूरी हो जायगी। सभा के सुलेखक सदस्यों को भी लेखों द्वारा सहायता करनी चाहिए। ग्रंथमाला की एक संख्या कम निकली और लेखमाला की भी। शब्द-सागर का पवर्ग तक पहुँच जाना संतोष की बात है। इसका मान हिन्दी संसार ने अवश्य किया और इस ग्रंथरत्न के समाप्त होने पर सभा को अच्छा गौरव प्राप्त होगा। इस वर्ष इसकी भी केवल ३ संख्याएँ (७, ८ व ९) प्रकाशित हो सकीं। अब इसके ९४२ स्थायी ग्राहक हैं और उनकी संख्या के और भी बढ़ने की आशा है। प्रांतीय टेक्स्ट बुक कमिटी ने भी इसे पसन्द किया है। मनोरञ्जन पुस्तकमाला से हिन्दी के एक भारी अभाव की पूर्ति हो सकती है पर उसकी समुचित सहायता लोगों ने अभी नहीं की, जिससे उसके प्रकाशन का ठीक प्रबन्ध अब तक नहीं हो सका है। अभी केवल ७ संख्याएँ छपी हैं पर २१ अन्य ग्रंथ तैयार हैं जो धनाभाव से अद्यावधि मुद्रित न हो सके। इस ओर मैं आप लोगों तथा समस्त अन्य हिन्दीप्रेमियों का ध्यान आकर्षित करने का साहस करता हूँ। क्या ऐसे उत्तम कार्य के लिये हिन्दी प्रेमीगण १५-२० हज़ार रुपए का भी प्रबन्ध शीघ्र नहीं कर सकते? खोज का काम गड़बड़ाया जाता था पर हमारी प्रांतीय सरकार की उदारता से अब वह द्विगुणित उत्साह के साथ चलेगा।

इस वर्ष सभा की वास्तविक साधारण आय ४३६९) कुछ आने हुई और वैसा ही व्यय ४४६०) हुआ। यह प्रायः १००) की कमी अच्छी बात नहीं है और यदि हिन्दीप्रेमी गण सभासदों की संख्या बढ़ाने का शीघ्र प्रबन्ध न करेंगे तो सम्भव है कि सभा को अगत्या कुछ आवश्यक कार्यों से हाथ हटाना पड़े। सभा की समुचित उन्नति के लिये विशेष उपाय सोचे जा रहे हैं और उनसे काम लिये जाने पर आशा है कि उसकी दशा बहुत कुछ सुधर जायगी। इस सभा ने हिन्दी का इतने दिनों में जो उपकार किया है वह जानकार लोगों से छिपा नहीं है पर आगे को उसे और भी उपकारी बनाने की उत्कृष्ट इच्छा है जो आप लोगों की सहायता से अवश्य पूर्ण होगी।

अब मैं आप महाशयों का अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहता और इस व्याख्यान को यहीं समाप्त करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन में पढ़े जानेवाले निबन्धों की विषय-सूची।

(विचारार्थ)

लाहौर में होनेवाले आगामी हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन में जिन विषयों पर निबन्ध पढ़े जायँगे, उनकी सूची यह है:—

विषय-सूची।

(१) शाला, पाठशाला, महाविद्यालय आदि में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने की आवश्यकता। (२) हिन्दी कविता की अन्य भाषा के काव्यों से तुलना और भविष्य काल में उसकी उन्नति करने का विचार। (३) नागरी-लिपि की अन्य लिपियों से तुलना। नागरी के गुण दोषों का विवेचन तथा उसको सार्वदेशिक उपयोगी बनाने की संभावना। (४) राष्ट्र निर्माण में हिन्दी का महत्व। (५) हिन्दी भाषा का उत्पत्तिकाल, देव नागरी-लिपि का उत्पत्तिकाल, तथा दोनों के परस्पर के सम्बन्ध का इतिहास। (६) राष्ट्र सुधार में नाटकों का कार्य्य। (७) स्त्री-शिक्षा और हिन्दी-साहित्य। (८) हिन्दी में गद्य काव्य हैं या नहीं तथा हिन्दी में उत्तमोत्तम गद्य काव्य निर्माण। (९) विश्व के कवियों में तुलसीदास का स्थान। (१०) भविष्य में इस सम्मेलन को विस्तृत और अधिक उपकारक बनाने के लिये क्या करना चाहिए। (११) बालकों के हाथों में देने योग्य शिशु शिक्षा सम्बन्धी हिंदी ग्रन्थ। (१२) हिंदी में शुद्ध संस्कृत की प्रधानता तथा उसमें उर्दू की मिलावट। (१३) देशी रियासतें तथा हिंदी भाषा। (१४) हिंदी भाषा तथा उसमें संस्कृत के समस्त प्रयोगों की मर्यादा। (१५) हिंदी का साहित्य कैसे अलंकृत हो सकता है। (१६) राज्य व्यवहार, व्यापार आदि में हिन्दी। (१७) मुसलमान और हिंदी। (१८) देवनागरी-लिपि को शीघ्र लिखने योग्य बनाने का उपाय। (१९) पंजाब में हिंदी प्रचार कैसे हो सकता है। (२०) हिंदी में असभ्य साहित्य तथा उसको रोकने का प्रयत्न।

विविध-विषय।

***

अद्भुत पदार्थालय और शिक्षा।

भारत के कलकत्ते, बम्बई, मदरास, लखनऊ, लाहौर आदि नगरों में अद्भुत-पदार्थालय या अजायब-घर हैं; पर अधिकांश लोग उनसे केवल मनोविनोद के अतिरिक्त और किसी प्रकार का काम नहीं लेते। काम नहीं लेते क्या, बल्कि काम लेना जानते ही नहीं। पर पाश्चात्य देशों में, जहाँ के आदर्श पर भारत के ये अद्भुत-पदार्थालय बने हैं, ये पदार्थालय शिक्षा के बहुत अच्छे साधन माने जाते हैं और सर्व-साधारण का उनसे बहुत अधिक उपकार होता है। अमेरिका में इन पदार्थालयों का महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया है कि वहाँ केवल इन्हीं से सम्बन्ध रखनेवाले कई सामयिकपत्र तक निकलते हैं। वहाँ के चार्ल्सटन नगर के अद्भुतपदार्थालय के डाइरेक्टर ने वहाँ के 'म्यूजियम्स जर्नल' नामक पत्र में एक लेख द्वारा यह दिखलाया है कि स्कूलों में पढ़नेवाले बालकों का इन अजायब-घरों से शिक्षा-सम्बन्धी कितना उपकार होता है। अमेरिका में अब यह नियम हो गया है कि शिक्षक को कुछ निश्चित समयों पर अपने विद्यार्थियों को साथ ले कर नगर के अजायब-घर में जाना पड़ता है और वहाँ के अफसर उन विद्यार्थियों को अनेक काम की बातें बतलाते और अच्छी अच्छी चीजें दिखलाते हैं। अजायब-घर देख कर लौटने पर बालकों को स्कूल में भी वहाँ के सम्बन्ध में व्याख्यान सुनने पड़ते हैं। केवल स्कूलों में पढ़नेवाले छोटे छोटे बालकों को ही नहीं बल्कि वहाँ कालिजों आदि में पढ़नेवाले युवकों और यहाँ तक कि स्वयं शिक्षकों को भी इन पदार्थालयों द्वारा शिक्षा दी जाती है। जिन विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होती है, समय की बचत करने के लिये वहाँ के कुछ नगरों में यहाँ तक नियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि अजायब-घर के अधिकारी अपने यहाँ से उन विद्यालयों में 'चलते फिरते संग्रह' भेजा करते हैं जिनमें विद्यार्थियों के लिये सभी उपयोगी और आवश्यक प्रदर्शन रहते हैं। ऐसे चलते फिरते संग्रह बारी बारी से सभी बड़े बड़े विद्यालयों में जाते हैं। कई छोटे छोटे अजायब-घर ऐसे भी हैं जो केवल बालकों के लिये ही होते हैं और जिनमें बालकों को सब प्रकार के पशुओं और पक्षियों के रंगों और आकृतियों आदि का ज्ञान कराने के लिये अनेक प्रकार के संग्रह होते हैं। अमेरिका के विद्यालयों में पेशों, व्यापारों और शिल्प आदि की शिक्षा का विस्तार दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है; और इस श्रेणी के विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये अब अजायब-घरों से और भी अधिक सहायता ली जाने लगी है। वहाँ उन्हें सब प्रकार की चीजें बनाने के ढंग और व्यापार तथा शिल्प के साथ प्राकृतिक उद्भवों के सम्बन्ध आदि दिखलाए जाते हैं। तिस पर से यह भी कहा जाता है कि अभी तो इस प्रथा का आरम्भ ही हुआ है; अभी इसकी बहुत अधिक वृद्धि होगी! शिल्प सम्बन्धी विशेष पदार्थालय स्थापित किए जायँगे। भारतवर्ष में जहाँ लोग अजायब-घरों और चिड़िया-घरों को मनोविनोद का साधन और खाली तमाशा समझते हैं और जहाँ के शिक्षा-विभाग के अधिकारी तक उनके लाभों से बहुत ही कम परिचित हैं, लोगों को ऐसे भवनों का उपयोग बतलाने के साथ साथ प्रत्येक नगर में उनकी स्थापना की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है।

***

जीवों की आयु।

भिन्न भिन्न जीवों की आयु भी एक दूसरे से भिन्न हुआ करती है। संसार में अनेक ऐसे जीव हैं जो पूरे चौबीस घण्टे भी नहीं जीते और अनेक ऐसे जीव भी हैं जिन्हें कई सौ वर्षों तक मृत्यु नहीं पूछती। सब से अधिक आयु हाथी और ह्वेल मछली की होती है; ये दोनों जीव पाँच पाँच सौ वर्षों तक जीते हैं। मगर की आयु भी दो तीन सौ वर्षों की होती है। पर इसके सम्बन्ध में यह बड़ी विलक्षणता है कि संसार में जितने मगर उत्पन्न होते हैं उनमें से प्रति सैकड़े एक से अधिक मगर जीने नहीं पाता। बाकी सब का नाश या तो अंडे में और या बचपन में ही हो जाता है। तो भी अनेक प्रकार की आपत्तियों से बच कर मगर तीन सौ वर्ष की अवस्था तक पहुँच ही जाता है। मगर के सम्बन्ध में संसार के सब जीवों से भिन्न एक दूसरी विलक्षणता और विशेषता यह है कि शरीर धारण करने के बाद उसका आकार बराबर बढ़ता ही जाता है, वह कभी रुकना जानता ही नहीं। वह जब तक जीता रहेगा तब तक उसकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई बराबर बढ़ती ही जायगी! फ्रान्स के वरसेलस नामक नगर के एक तालाब में एक जाति की कुछ ऐसी मछलियाँ हैं जो फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति से पहले की—रानी मेरी एन्टोनेट के समय की—हैं। सेन्ट हेलेना टापू में एक बड़ा कछुआ है जो कई सौ वर्ष का है। नेपोलियन के कारावास के समय तक वह कछुआ वहीं था और उस समय भी बहुत बुड्ढा और पुराना जान पड़ता था। मारिशस टापू में भी एक ऐसा ही बहुत पुराना कछुआ है। १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में जब मारिशस पर अँगरेजों का अधिकार हुआ था उस समय वह कछुआ इतना बुड्ढा और पुराना समझा जाता था कि टापू में मिलनेवाली सम्पत्ति के साथ उसका भी वर्णन हुआ था। वह कछुआ अब तक वहीं जीवित है और वहाँ की छावनियों के सिपाही बहुधा उसके साथ खेलवाड़ किया करते हैं। लन्दन के चिड़ियाखाने में एक कछुआ है जो संसार के सब कछुओं से बड़ा समझा जाता है। वह चालीस इंच लम्बा है और तौल में सात आदमियों के बराबर है। अनेक प्रकार के पक्षियों की आयु भी बहुत अधिक होती है। सब से बड़ी आयु डोम कौवे की होती है जो प्रायः दो सौ वर्षों तक जीता है। भारत में बहुत बुड्ढे आदमियों के सम्बन्ध में ठट्ठा उड़ाते हुए लोग कहा करते हैं कि वह तो कौवा खा कर बैठे हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिद्धों और उकाबों की आयु भी बहुत अधिक होती है। एक उल्लू के विषय में प्रसिद्ध है कि वह जाल में फँसा कर पकड़े जाने के बाद नब्बे वर्षों तक जीता रहा।

***

सौर-जगतों का केन्द्र। खगोल की तीसरी वीथी के अर्णवयान मण्डल में अगस्त्य नाम का एक बहुत उज्वल स्थिर तारा है जिसे अँगरेजी में (Canopus) कहते हैं। उज्वलता में यह तारा मृगव्याधमण्डल के लुब्धक तारे को छोड़ कर बाकी सब तारों से बढ़ा चढ़ा है। अगस्त्य तारा लुब्धक से ३५° दक्षिण है और भादों में सिंह के सूर्य्य के १७ अंश पर उदय होता है। यह दक्षिण की ओर उदय होता है इस-लिये बहुत उत्तर के निवासियों को नहीं दिखाई पड़ता। इस बार इसके उदय के कारण कुछ लोगों का ध्यान विशेष रूप से इसकी ओर गया है। कुछ बड़े बड़े पाश्चात्य ज्योतिषियों का कहना है कि बहुत सम्भव है कि यही अगस्त्य तारा हमारे सौर जगत् का केन्द्र हो और हमारा सूर्य्य अपने बुध, शुक्र, वृहस्पति, पृथ्वी, शनि आदि अनेक ग्रहों और चन्द्रमाओं या उपग्रहों से अपनी परिक्रमा कराता हुआ स्वयं उक्त स्थिर तारे की परिक्रमा करता हो। इस अनुमान के मुख्य कारण अनेक हैं जिनमें से कुछ ये हैं;—घनत्व में उससे बड़े किसी और तारे का अब तक पता नहीं लगा; वह मन्दाकिनी वृत्त में और प्रायः उसके मध्य में है; प्रायः सभी सौर जगतों से वह समान अन्तर पर है; हमारे रविमार्ग के प्रायः केन्द्र में है आदि आदि। दारजिलिंग के ए० सी० रिड्सडेल नामक पादरी ने गणित कर के इस तारे के सम्बन्ध में और भी अनेक बातों का पता लगाया है। आपका कथन है कि,—(१) अगस्त्य तारा घनत्व में हमारे सूर्य्य से २४००,००० गुणा बड़ा है। (२) तोल में वह सूर्य्य से १४२० गुणा अधिक है। (३) सूर्य्य से वह ४९७०० गुणा अधिक प्रकाशमान् है। (४) उसका तल १८००० गुणा अधिक है। और (५) उससे हमारी पृथ्वी तक प्रकाश आने में ४८९ वर्ष लगते हैं। (प्रकाश की गति प्रति सेकेंड १८६००० मील है और सूर्य्य से पृथ्वी तक प्रकाश आने में प्रायः ८, मिनट लगते हैं।) अभी तक जो सूर्य्य स्वतंत्र ग्रह और हमारे सौर जगत् का केन्द्र माना जाता था, यदि उक्त अनुमान ठीक निकला तो, भविष्य में वही सूर्य्य एक दूसरे महा-सूर्य्य का ग्रह और उसकी परिक्रमा करनेवाला प्रमाणित होगा। यह आविष्कार बड़े महत्त्व का होगा और सारा संसार इसका फल जानने के लिये उत्सुक रहेगा।

***

आगामी साहित्य सम्मेलन। गत वर्ष जब लखनऊ में साहित्य सम्मेलन को आगामी वष के लिये लाहौर-वालों का निमंत्रण मिला था, उस समय उपस्थित हिन्दीप्रेमियों के आनन्द की सीमा न रह गई थी। पीछे से समस्त हिन्दी जगत् में भी यह समाचार बहुत अधिक प्रसन्नता और सन्तोष के साथ सुना गया था। इसका मुख्य कारण यह था कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब प्रान्त ही सम्मेलन के लिये सब से अधिक उपयुक्त था; और प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब में हिन्दी का सिक्का जमाने और वहाँवालों में उसका प्रचार करने की सब से अधिक आवश्यकता थी। पंजाब में आर्य्य समाज के कारण हिन्दी भाषा का कुछ न कुछ प्रचार हुआ ही है। उर्दू लिपि में निकलनेवाले वहाँ के आर्य्यसमाजी पत्रों की भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों की अपेक्षा संस्कृत के शुद्ध और अपभ्रंश शब्दों की ही अधिकता रहती है। पर नागरी लिपि का अब तक वहाँ जितना प्रचार होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ था। इस तथा अन्य अनेक कारणों से इस वर्ष हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का पंजाब में होना बहुत आवश्यक और उप-युक्त था और इसी लिये, सुनते हैं, युक्त प्रान्त के दो एक प्रतिष्ठित विद्वानों और हिन्दी-हितैषियों ने पंजाब-वालों पर सम्मेलन को निमंत्रित करने के लिये कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दबाव भी डाला था। पंजाब को सम्मेलन के लिये सब से अधिक उपयुक्त समझ कर ही मध्य प्रदेश-वालों को उसे अपने यहाँ निमंत्रित करने की इच्छा दबानी पड़ी थी। पर जब पाँचवाँ सम्मेलन होने के आठ नौ महीने बाद तक लाहौर में स्वागतकारिणी समिति का संगठन न हुआ और न उस सम्बन्ध की कोई चर्चा ही सुनाई दी तो सारा हिन्दी-संसार अपनी बदनामी के विचार से चिन्तित हो उठा। मध्य प्रदेशवालों ने उसे फिर अपने यहाँ बुलाने का प्रयत्न आरम्भ किया; पर इसी बीच में पंजाब प्रान्त के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों के उद्योग से वहाँ सम्मेलन की प्रारम्भिक कार्रवाइयाँ आरम्भ हो गईं और बहुत शीघ्र स्वागतकारिणी का संगठन कर के उन लोगों ने सम्मेलन सम्बन्धी अन्य प्रबन्ध भी कर लिए। बीच में सुना गया था कि धार्मिक मत-भेद के कारण वहाँ सम्मेलन के काम में अड़चनें पड़ना चाहती हैं, पर पीछे वह बात भी मिथ्या निकली। अब लाहौर में जिस स्वागतकारिणी समिति का संगठन हुआ है उसके प्रधान या सभापति आनरे-बुल राय बहादुर लाला रामशरणदास जी हैं और उपप्रधान म० मुंशीराम जी, लाला हंसराज जी, राय बहादुर लाला मुरलीधर जी, ठाकुर महानसिंह जी और दीवान कृष्णकिशोर जी हैं। प्रधान मंत्री का काम डी० ए० वी० कालेज के प्रोफेसर श्रीयुक्त राजाराम जी ने अपने ऊपर ले लिया है और पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा, पं० सातवलेकर जी और पं० परशु-राम जी उसके मंत्री हैं। ऐसे ऐसे योग्य और प्रति-ष्ठित सज्जनों का स्वागतकारिणी समिति में सम्मिलित हो कर सम्मेलन के कामों के लिये इतनी तत्परता दिखलाना अवश्य ही बहुत प्रशंसनीय और सम्मेलन की सफलता का शुभ लक्षण है। इस नोट के लिखे जाने के समय तक सम्मेलन के सभापति और समय आदि का निश्चय नहीं हुआ है, पर इसके प्रकाशित होने से पहले इन दोनों बातों का सम्भवतः सन्तोषजनक निश्चय हो जायगा। सम्मेलन में जिन विषयों पर निबन्ध पढ़े जायँगे, उनकी सूची भी सर्व साधारण के विचार के लिये प्रकाशित हो चुकी है और स्थानान्तर में दी जाती है। लाहौरवाले बहुत ही उत्तमतापूर्वक और प्रशंसनीय रीति से अपना काम कर रहे हैं। अब यदि सम्मेलन को सफलता न हो और पंजाब के उर्दू प्रेमियों को हिन्दी की दिल्लगी उड़ाने का अवसर मिले तो उसका दोष सम्मेलन के कार्य्यकर्त्ताओं पर नहीं बल्कि अन्य प्रान्तों के हिन्दीप्रेमियों के सिर पर होगा। आशा है, हिन्दी-प्रेमी अपने सिर यह बदनामी लेने के लिये तैयार न होंगे और आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा बहुत स्वार्थ-त्याग कर के भी लाहौर के सम्मेलन में सम्मिलित होंगे। सम्मेलन के इतिहास में उसका छठा अधिवे-शन अत्यन्त प्रभावशाली और सदा के लिये स्मर-णीय होना चाहिए क्योंकि हिन्दी की सर्वप्रियता और राष्ट्र-भाषा बनने की योग्यता प्रमाणित करने का यही सब से अच्छा अवसर है। यदि अपनी मातृ-भाषा के अभिमानी यह अवसर चूक गए तो औरों के सामने उनका भी सिर झुक जायगा और माता-तुल्य उनकी मातृभाषा का भी। आशा है, हिन्दी-प्रेमी ऐसा कुयोग कभी न आने देंगे।

***

महाराष्ट्र नाट्य-सम्मेलन का एक लेख।

भारत की अन्य अनेक देशी भाषाओं और उनके साहित्यों को देखते हुए हिन्दी भाषा और साहित्य में जो न्यूनता है वह एकांगी या आं-शिक नहीं बल्कि सर्वांगी और सर्वांशी है। यह बात स्वतः सिद्ध ही है, इसके लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। नाटकों की हिन्दी में जो दुर्दशा है, वह और सब चीजों की दुर्दशा से बढ़ी चढ़ी है। मराठों, गुजरातियों, पारसियों और बंगालियों के नाटकों और नाट्य-भवनों की सभी बातें स्वतंत्र होती हैं; उनकी भाषा प्रणाली, वेष-भूषण, रुचि आदि सब में पूरा पूरा निजत्व होता है। और लोग चाहे उनकी किसी बात की भले ही निन्दा करें, हँसी उड़ावें, पर वे लोग अपनी अपनी सभी बातों के लिये अभिमान करते हैं। पर हमारे हिन्दी-भाषी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-प्रेमी अन्य भाषा-भाषियों के नाटक देख कर और कभी कभी उनका स्वांग उतार कर ही फूले अंगों नहीं समाते। ऐसे लोगों को सौभाग्यवती भद्राबाई भाटगाँवकर से शिक्षा लेनी चाहिए जिन्होंने गत मई मास में बम्बई में होनेवाले महाराष्ट्र नाट्य-सम्मेलन में अपने यहाँ की नाट्य कला की उन्नति के सम्बन्ध में एक उत्तम लेख पढ़ा था। उस लेख की अधिकांश बातें ऐसी थीं जो नट और नाटककार मात्र के काम की थीं। आपने यह बतलाया था कि प्रत्येक नाटककार को नाटक लिखने के समय अपना ध्येय और आदर्श उच्च रखना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके नाटक से समाज का सुधार और उन्नति हो। नाटक-मण्डलियों का कर्त्तव्य है कि वे अपने यहाँ नट का काम करने के लिये ऐसे ही लोगों को पसन्द करें जो सुशील, शिक्षित, योग्य और सदाचारी हों; ऐसे लोगों को यदि वेतन अधिक देना पड़े तो भी हानि नहीं क्योंकि दर्शकों में ऐसी मंडलियों के गुणों का शीघ्र ही यथेष्ट आदर होने लगेगा और वे घाटे में न रहेंगी। रंगमंच के नटों के मुख पर एक प्रकार की प्रतिभा और कान्ति का—जो उनकी अमोघ सम्पत्ति समझी जाती है—होना बहुत आवश्यक है और वह प्रतिभा या कान्ति अयोग्य, अशिक्षित या दुराचारी के मुख पर नहीं हो सकती। युरोप में जिस प्रकार अन्य कलाओं की शिक्षा दी जाती है उसी प्रकार नाट्य कला की शिक्षा का भी वहाँ प्रबन्ध है। वहाँ लोग पहले शिक्षा पाते हैं और तब नट बनते हैं। ऐतिहासिक नाटकों और विशिष्ट देश तथा विशिष्ट काल के लोगों के पहनावे और आचार विचार आदि के ठीक ठीक दृश्य दिखलाने की आपने अधिक आवश्यकता बतलाई और विदूषकों की बातों से छिछोरापन और गँवारपन दूर रखने की सम्मति दी। आपने यह भी बतलाया कि प्रत्येक प्रवेश के लिये नए दृश्य या परदे की आवश्यकता नहीं; इंगलैण्डवाले प्रत्येक अंक में केवल एक या दो ही परदे रखते हैं। नाटकों में बाजे इतने जोर से बजाए जाते हैं कि जिस दर्शक के हाथ में गानों की किताब नहीं होती उसकी समझ में गाने का एक पद भी नहीं आता। किसी किसी मराठी नाटक में एक से अधिक हारमोनियम हुआ करते हैं। श्रीमती भद्राबाई तो चाहती हैं कि नाटकों में से हारमोनियम निकाल ही दिया जाय और उसके स्थान पर सारंगी रखी जाय। आजकल पारसी नाटकों में हारमोनियम के साथ बेहला बजाने की प्रथा भी चल पड़ी है जिसे सारंगी का एक नया पर अपूर्ण स्वरूप ही समझना चाहिए। नाटक में जो लड़के स्त्रियों का पार्ट करते हैं वे प्रायः सयाने होने पर उस काम के अयोग्य होने के कारण निकाल दिए जाते हैं और अपने शेष जीवन में वे किसी काम के नहीं रह जाते। इसलिये नाटक-मंडलियों को आरम्भ से ही उनकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध भी करना चाहिए। अन्त में आपने एक बहुत ही महत्त्व-पूर्ण बात कही। वह यह कि भारतीय स्त्रियाँ जितनी ही विलक्षण मर्य्यादशील होती हैं, अधिकांश भारतीय पुरुष प्रायः उतने ही अमर्याद होते हैं; पर वास्तव में कुलीन स्त्रियों की उपस्थिति पुरुषों को मर्यादशील बनाने का कारण होनी चाहिए; और कुलीन स्त्रियों के बैठने के स्थान और आने जाने का मार्ग अलग होना चाहिए। आदि। हिन्दी में जो नाटक और नाटक-मंडलियाँ बनें उनमें ऊपर लिखी अधिकांश बातों का बहुत कुछ ध्यान रखा जाना चाहिए।

***

सभा का बाईसवां वार्षिक अधिवेशन। गत २ अगस्त १९१५ की सन्ध्या को पाँच बजे काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का जो वार्षिक अधिवेशन हुआ था उसका पूरा कार्य्य विवरण नियमानुसार इस अंक के अन्त में प्रकाशित किया गया है। सभापति का आसन श्रीयुक्त पं० रामनारायण मिश्र बी० ए० ने ग्रहण किया था। सब से पहले गत वर्ष की रिपोर्ट पढ़ी गई थी जो छप रही है और आशा है शीघ्र ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब सभासदों की सेवा में पहुँच जायगी। सभा के स्थायी सभापति पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए० का लिखा हुआ जो व्याख्यान उक्त अवसर पर पढ़ा गया था वह भी स्थानान्तर में प्रकाशित किया गया है। श्रीयुक्त बा० गौरीशङ्करप्रसाद जी बी० ए० एल एल० बी० ने इतने दिनों तक सभा के मन्त्री का काम जिस योग्यता और उत्साह से किया उसके लिये वह सर्वथैव प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हैं। उक्त अधिवेशन में पदाधिकारियों के चुनाव के समय जब आपने अपनी अस्वस्थता के कारण मंत्री के पद से अवकाश ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की और उस काम के लिये अपनी असमर्थता जतलाई तो उपस्थित सभ्यों के बहुमत से स्थानीय चुंगी विभाग के सुपरिंटेंडेन्ट श्रीयुक्त बाबू हरिप्रसाद जी पालधि बी० ए० उनके स्थान पर सभा के मंत्री चुने गए। एक बंगाली सज्जन नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री चुने गए, इसे हिन्दी के लिये गौरव की बात ही समझना चाहिए। पालधि माहाशय अच्छे विद्वान् और हिन्दी के प्रेमी हैं। पाठकों ने समय समय पर अन्यान्य पत्रों में उनके लिखे हुए अनेक गवेषणा-पूर्ण ऐतिहासिक लेख पढ़े होंगे और सम्भवतः भविष्य में इस पत्रिका में भी उन्हें पढ़ने के लिये उनके लेख मिला करेंगे। अधिकारियों में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ; हाँ बाबू गौरीशङ्करप्रसाद जी उपसभापति बना दिए गए। अधिवेशन के शेष सब कार्य्य नियमानुसार और निर्विघ्न हो गए। अब सभा का तेईसवाँ वर्ष चल रहा है।

—:०:—

वार्षिक अधिवेशन ।

सोमवार तारीख २ अगस्त १९१५ संध्या के ५ बजे

स्थान—सभा-भवन ।

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव तथा पंडित साँवलजी नागर के अनुमोदन पर पंडित रामनारायण मिश्र सभापति चुने गए।

(२) प्रबन्धकारिणी समिति का बाईसवें वर्ष का कार्य्य-विवरण पढ़ा गया।

(३) निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकरप्रसाद जी ने गत वर्ष सभा का कार्य्य जिस उत्साह और योग्यता से कृपापूर्वक चलाया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय।

(४) सन् १९१४—१५ के आय व्यय के हिसाब के सहित आगामी वर्ष के लिये बजेट उपस्थित किया गया और वह नीचे लिखे अनुसार स्वीकृत हुआ। आय।

९७३॥) गत वर्ष की बचत
२०००) सभासदों का चन्दा
८००) पुस्तकों की बिक्री
१०००) हस्त लिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज
५००) पृथीराज रासो की बिक्री
२५०) नागरी-प्रचार
१५०) फुटकर आय
४५) पारितोषिक
६०) पुस्तकालय
३०००) हिन्दी कोश
८६६७॥-)॥ मनोरंजन पुस्तकमाला

१७९८६-)॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यय ।

१२७०) कार्यकर्ताओं का वेतन
३४५८॥-)। छपाई
५००) डाक व्यय
१००) नागरी प्रचार
१०९) पारितोषिक
५००) पुस्तकालय
१५०) पुस्तकों के लिये पुरस्कार
१०००) पुस्तकों की खोज
२५७) फुटकर व्यय
५०००) मनोरंजन पुस्तकमाला
५३२७॥=)९३ हिन्दी कोश
५०) मरम्मत
२०८≡)॥ अमानत खाते का देना

१७९२३॥≡)९३

व्यय का ब्योरा ।

कार्य्यकर्ताओं का वेतन

सहायक मंत्री......	६००)
क्लर्क १	१८०)
क्लर्क २	१४४)
चपरासी १	९०)
चपरासी २	७२)
मेहतर	१२)
पंखाकुली	१४)
माली	२४)
फुटकर	१४)
पत्रिका के सम्पादक	१२०)
	१२७०)

पुस्तकालय

पुस्तकाध्यक्ष	१२०)
चपरासी	७२)
दफ़्री	९६)
पंखाकुली	१८)
जिल्दबन्दी	३०)
पुस्तकें	१६४)
	५००

छपाई

ना० प्र० पत्रिका की १९ संख्याएँ	१४००)
ना० प्र० ग्रन्थमाला की ५ संख्याएँ	६४०)
ना० प्र० लेखमाला....................	३००)
सभा की वार्षिक रिपोर्ट............	१५०)
पिछले बिल..........................	९६८॥-)।
	३४५८॥-)।

(५) प्रबन्धकारिणी समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई है और उसका सब काम प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होता है। अतएव यह बोर्ड अब उठा दिया जाय और नियम ४८—६४ द्वारा जो अधिकार बोर्ड को दिए गए हैं उनके स्थान पर निम्न-लिखित नियम स्वीकार किए जायँ:—

(क) काशी नागरी प्रचारिणी सभा के स्थायी कोश का पूर्ण अधिकार सभा को होगा। इसका यह कर्तव्य होगा कि इस कोश से जो आय हो उसे नागरी प्रचारिणी सभा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही केवल उस सभा की प्रबन्ध-कारिणी समिति द्वारा व्यय करे।

(ख) स्थायी कोश के मूल धन में से रुपया न व्यय किया जायगा जब तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सभासदों का ३/४ भाग वैसा करने की स्पष्ट आज्ञा और सम्मति न दे।

(ग) प्रति वर्ष वार्षिक अधिवेशन में ४१ वें नियम के अनुसार दो हिसाब-जाँचनेवाले चुने जाँयगे।

मंत्री ने सूचना दी कि यह प्रस्ताव बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ के गत अधिवेशन में उपस्थित किया गया था और उसने इसे स्वीकार किया है।

अधिक सम्मति से निश्चय हुआ कि बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ तोड़ा न जाय वरन् उसमें इस प्रकार सुधार किया जाय जिसमें उसके अधिवेशनों में सभासदों की यथेष्ट उपस्थिति हुआ करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) पदाधिकारियों और प्रबन्धकारिणी समिति के सभासदों के चुनाव के लिये उपस्थित सज्जनों में निर्वाचनपत्र बाँटे गए और उनका परिणाम जाँचने के लिये सभापति ने बाबू वेणीप्रसाद और पंडित साँवलजी नागर को नियत किया। बाबू गौरीशंकरप्रसाद जी ने कहा कि वे इधर रुग्ण रहा करते हैं अतः इस वर्ष के चुनाव में उनका नाम मंत्रियों में न रक्खा जाय।

(७) सभा के सभापति पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० की वक्तृता पढ़ी गई जिस पर सभा ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

(८) प्रबन्धकारिणी समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा का वार्षिक अधिवेशन अगस्त मास के प्रथम सोमवार के बदले प्रथम शनिवार को हुआ करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(९) निर्वाचनपत्रों का निम्नलिखित परिणाम सूचनार्थ उपस्थित किया गया।

सभापति

पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०

उपसभापति।

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०

मंत्री।

पण्डित हरिप्रसाद पालधि बी० ए०

उपमंत्री।

बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

प्रबन्ध कारिणी समिति के अन्य सभासद।

संयुक्त प्रदेश से—बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०
बम्बई से—प्रोफ़ेसर लक्ष्मीचन्द एम० ए०
मध्यप्रदेश से—राय बहादुर पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल बी० ए०
काशी से—पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०।
बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०
बाबू छन्नूलाल
बाबू अम्बिकाप्रासाद गुप्त

(१०) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा।

शनिवार तारीख २८ अगस्त १९१५ संध्या के ५½ बजे
स्थान—सभाभवन

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव तथा बाबू अमीरसिंह के अनुमोदन पर लाला भगवानदीन सभापति चुने गए।

(२) तारीख़ २६ जून १९१५ के मासिक अधिवेशन और २ अगस्त १९१५ के वार्षिक अधिवेशन के कार्यविवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति के तारीख १४ जून और २८ जून १९१५ के कार्य्यविवरण सूचनार्थ उपस्थित किए गए।

(४) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के आवेदनपत्र उपस्थित किए गए:—

१ ठाकुर शिवनन्दन बी० ए० शन्तिभवन—चेतगंज—काशी १॥)
२ बाबू सुबोधचन्द्र चटर्जी एम० ए० एल एल० बी० टीकमगढ़ १॥)
३ बाबू महावीरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी० टीकमगढ़ १॥)
४ पण्डित रामशरण त्रिवेदी—प्रबन्ध-कर्ता—ग्राम खुदागंज—जिमीदारी श्रीमती आर्य्य-प्रतिनिधि सभा—पो० कमालगंज ज़ि० फ़र्रुख़ाबाद १॥)
५ पण्डित निरंजन उपाध्याय—४५।७ नवापुरा—काशी १॥)
६ पण्डित प्रयागप्रसाद त्रिपाठी—प्रधानमंत्री—सनातन-धर्म-परीक्षा समिति—आरा १॥)
७ बाबू शिवप्रसाद—बड़ा गणेश—काशी १॥)
८ पण्डित राधाकान्त पाण्डेय—नवाबगंज—काशी १॥)
९ पण्डित नारायणजी पुरुषोत्तम सागाणी—ठि० सेठ पदमसीमनजी आफ़िस—८२ टेमेरिंड लेन—कोट—बम्बई ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० बाबू कन्नोमल एम० ए०—सेशन्स जज और इंस्पेक्टर आफ़ स्कूल्स रियासत धौलपुर ५)
११ पण्डित सीताराम—नायब मुदर्रिस—स्कूल अखमेनपुर पो० शृंगी रामपुर—ज़ि० फतहगढ़ १॥)
१२ पण्डित विशालसिंह—हेडमास्टर—स्कूल खुदागंज-पो० कमालगंज ज़ि० फतहगढ़ १॥)
१३ बाबू पुरन्दरसिंह वर्म्मा—अध्यापक—गवर्नमेंट पाठशाला ग्राम खुदागंज—पो० कमालगंज—ज़िला फर्रुख़ाबाद १॥)
१४ बाबू श्यामलाल गुप्त—लैहिया—चावड़ी बाज़ार—दिल्ली ३)
१५ बाबू बनवारीलाल—ठि० भानामल गुलज़ारीमल—दिल्ली ५)
१६ बाबू भवानीचरण श्रीवास्तव—प्रधानाध्यापक सावित्री बालिका—विद्यालय—रानीगंज १॥)
१७ बाबू विनायक—हिन्दू पुस्तकालय–१२ शिवकुमारगली—कलकत्ता १॥)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाँय।

(५) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१ बाबू बालाप्रसाद-पनागर—ज़ि० जबलपुर।
२ बाबू मोहनलाल—हेडमास्टर—मिडिल स्कूल—पनागर—ज़ि० जबलपुर।

(६) हरदोई के बाबू शिवनारायण गुप्त का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने इस सभा के सभासद बाबू शिवदयाल गुप्त की मृत्यु की सूचना दी थी।

सभा ने इस पर शोक प्रकट किया।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं।

प्रदान की हुई पुस्तकें।

शिवदयालजी हिन्दू कालेज बनारस
संध्या दर्पण
शास्त्रार्थ फ़िरोज़ाबाद
अनुभ्रमोच्छेदन
गीता हमें क्या सिखलाती है
आर्य्य मत निराकरण प्रश्नावली
मूर्ति पूजामंडन
योगसार भा० १
तत्वबोध।
क्षय रोग।
ब्राह्मण महत्त्वादर्श काव्य।
सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा।
दयानंद लहरी।
भारतीय शासन पद्धति भा० १

पंडित केदारनाथ पाठक काशी।
लक्ष्मण द्विवेदी।

बाबू लक्ष्मीनारायण काशी।
रोशनाई बनाने की किताब।
कैसर रहस्य।

हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली खंडवा।
हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास।

श्रीमती बुद्धिमती राजकुमारी छुरा—रायपुर।
बुद्धिमनरंजन प्रकाश।
भजनावली।

एंग्लो ओरिएंटल प्रेस, लखनऊ
चुटकुले।

पंडित ओंकारनाथ वाजपेयी प्रयाग।
महात्मा गोखले।

पं० रामचरनदास बी० ए० लाहौर।
सुखी सन्तान

पं० प्रयागदत्त त्रिपाठी—हड़हा—उन्नाव।
भारतवर्ष का इतिहास—मुसलमानों का शासन।

श्रीयुत पन्नालाल भैया गयावाल—गया।
जमालमाला।

मूलचन्द किशनदास कापड़िया—सूरत
रूप सुन्दरी गुजराती।

बाबू उमरावसिंह बी० ए० देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक हित—भा० ५वाँ
खरीदी गईं।
गृहिणी भूषण।
चरित्र गठन और मनोबल।
शान्ति कुटीर।
फूलों का गुच्छा।
स्वदेश।
कठिनाई में विद्याभ्यास।
आत्मोद्धार।
कुसुमांजलि।
नसीब और उद्योग।
जर्मन जासूस की रामकहानी।
चिह्न विचार।
वाक्यविश्लेषण और पद परिचय।
रसातलयात्रा।
भारतरहस्य।
समासविवरण और काव्यप्रवेश।
लोकोक्ति संग्रह।
वेणी संहार नाटक।
गारफील्ड।
सभा वक्तृता।
चन्द्रगुप्त नाटक।
बुराई की रोक और दीर्घ जीवन।
हिन्दी साहित्य दुर्दशा।
राष्ट्रों की उन्नति।
स्वदेशी काव्य पुष्पांजलि।
बजरंगविजय रामायण।
हिन्दी अँगरेजी शिक्षा भाग—१, २।
वारांगना रहस्य—भाग १, २।
लंडन रहस्य नं० १६वां।
मोती महल भाग ६।
भारतवर्ष के धुरंधर कवि।

सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A414 [संख्या ३
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

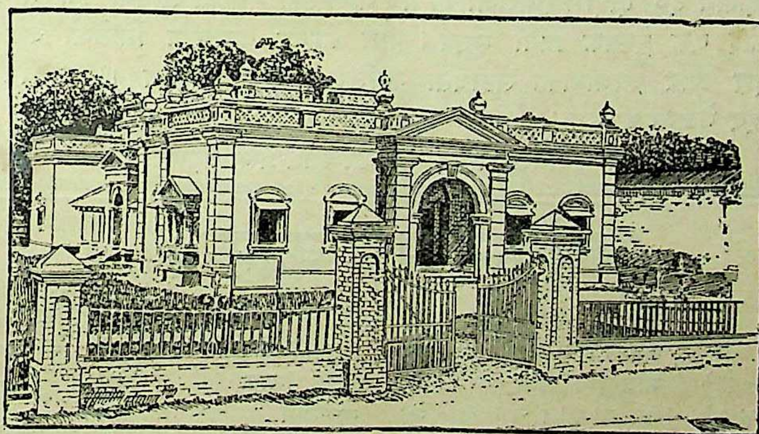
सितंबर, १९१५

सम्पादक—रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥)

प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय-सूची ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी
कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मंगाइये,
पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

चित्रोंसे युक्त ।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त ।]

लीजिये ! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है !—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक । तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २-), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दे० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य । शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये । नमूनेके लिये)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये ।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी ।

पवित्र काश्मीरी केशर—दस ख़ुल्ल ।।।=) तोला । शुद्ध शिलाजीत
।।=) तोला चीनी ममीरा २) तोला ।
काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर । ७-१३-६-२४

भयंकर मार काट ।

जर्मन जासूस	।-)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मा	-)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	॥।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	॥)	नवाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहाँ	।)	रानाप्रताप नाटक	॥।)
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	॥।)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियाँ	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	॥।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर संगीत	≡)
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१॥।)	व्यापारतत्व	॥)
रानी पन्ना	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	बिकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग २० | सितंबर, १९१५. | संख्या ३

हास्य-रस ।

(गतांक से आगे ।)

हास्य की उत्पत्ति ।

अनेक तत्ववेत्ता मनुष्य को हँसनेवाला प्राणी कहते हैं। किसी पदार्थ के लक्षण निश्चित करने का नियम यह है कि अन्य पदार्थों से उसे अलग करनेवाले गुणों का निर्देश कर दिया जाय; और यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो जिस समय हम मनुष्य को हँसनेवाला प्राणी बतलाते हैं उस समय हमारे कहने का तात्पर्य्य यह होता है कि प्राणियों की अन्य जातियां मनुष्यों की भाँति नहीं हँस सकतीं और ईश्वर ने यह देन केवल मनुष्य को ही दी है। प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं ने आज तक इस सम्बन्ध में जो कुछ खोज की है उस पर विचार करते हुए मनुष्य यथार्थ रीति से इस बात का गर्व नहीं कर सकता कि ईश्वर ने केवल मनुष्य को ही हँसने के योग्य बनाया है। विकास-वादियों के एक सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार मनुष्यों के पूर्वज बन्दर या बनमानुस थे। यदि यह बात मान ली जाय कि बन्दर से भी अधिक जंगली स्थिति में मनुष्य के पूर्वज यदि हँस सकते थे तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि यह गुण मनुष्य का स्व-सम्पादित नहीं है, बल्कि उसके पूर्वजों का उपार्जित है। अर्थात् मनुष्यों में इस समय हास्य का जितना विकास और पूर्णत्व दिखलाई पड़ता है उतना पहले नहीं था। और इस कारण मनुष्य की ऊपर की हुई व्याख्या में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती। ऊपर प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं की जिस खोज का जिक्र किया गया है उसमें वस्तु-निरीक्षण का जितना अंश है उतना ही अंश कोरे तर्क का भी है। तथापि इन दोनों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्रण से उन लोगों ने जो सिद्धान्त ठहराए हैं वे बिलकुल ठीक नहीं कहे जा सकते।

इसमें सन्देह नहीं कि आनन्द से खिलखिला कर हँसने, चित्त प्रसन्न होने के समय खूब खुल कर हँसने, वस्तुओं की असंबद्धता देख कर हँसने आदि आदि हास्य के जो श्रेष्ठ प्रकार हैं वे केवल मनुष्यों में ही दिखलाई पड़ते हैं। लेकिन हास्य के जो कनिष्ठ प्रकार हैं वे अन्य प्राणियों में भी देखने में आते हैं। जिस समय ये प्राणी राग, लोभ आदि तीक्ष्ण मनोविकारों के अधीन नहीं रहते और आपस में, और यदि वे पालतू हुए तो मनुष्यों के साथ, खेलते हैं उस समय उनके चेहरों की स्नायु में गति के कारण जो परिवर्त्तन होता है, उसका अधिकांश ऐसा ही होता है जिसे यदि 'हँसना' कहें तो कुछ अनुचित न होगा। इसमें सन्देह नहीं कि हम लोगों का हँसी-ठट्ठा और मसखरापन उन प्राणियों को बहुत पसन्द होता है। जिस प्रकार मनुष्य अपने से निर्बल और अशक्त प्राणी को पा कर अपने आनन्द के लिये उसे तरह तरह से दिक करता और खिझाता है, उसी तकार अन्य प्राणी भी करते हैं। कोई बिल्ली या कुत्ता किसी चूहे को पा कर उसके साथ जिस प्रकार व्यवहार करता है उससे यह बात बहुत अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है। जिस प्रकार कुश्ती में कोई पहलवान अपने से बहुत ही दुर्बल जोड़ को पा कर उसे इधर उधर उलट पलट कर हँसता हँसता चित कर देता है उसी प्रकार बिल्ली या कुत्ता भी किसी चूहे को पा कर अपने पंजे से गिरा देता है और जब वह उठ कर चलने लगता है तो उसे फिर पंजे से मारता है। यह सब कृत्य करने के समय उसके चेहरे पर एक प्रकार के जो बल पड़ते हैं यदि उन्हें सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो जान पड़ेगा कि वे हास्य के कारण होनेवाली मुख-विकृति के समान ही हैं। पर उनकी इस क्रिया में एक प्रकार का दुष्टता भी होती है। इसके अतिरिक्त हम लोग नित्य उनकी अनेक ऐसी क्रियाएँ भी देखते हैं जिनमें दुष्टता का लेश भी नहीं होता और जिनसे केवल उनके विनोदप्रिय होने का ही पता चलता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कुत्ते को दूर फेंका हुआ पत्थर उठा लाने की शिक्षा दी जाय तो उसे इस काम में इतना आनन्द मिलता है कि कभी कभी वह स्वयं अपने पंजों से पत्थर दूर ढकेलता और तब उसे उठा कर अपने मालिक के पैरों के पास ला रखता है। उस दशा में लोग बार बार उसके मुँह की ओर देखते हैं और कभी कभी उसे कष्ट दे कर उसके साथ खेलवाड़ खेलते हैं। इस प्रकार के अनुभव प्रायः नित्य हुआ करते हैं। किसी नए कुत्ते को देख कर पहले तो सब कुत्ते खूब भौंकते हैं और तब थोड़ी ही देर बाद उससे इतने अधिक हिलमिल जाते हैं कि मानों उनका बहुत ही छोटी अवस्था से साथ हो। इससे भी कुत्ते के विनोदी स्वभाव का पता लगता है। कभी कभी कुत्ते बाजार में चलते समय चुपचाप पीछे से किसी कुत्ते के बहुत पास पहुँच जाते हैं और तब अचानक जोर से इसलिये भौंकने लगते हैं कि जिसमें वह दूसरा कुत्ता डर जाय। इस बात में वे उन नटखट बालकों से बहुत मिलते जुलते होते हैं जो किसी अँधेरे स्थान में छिप कर बैठ जाते हैं और किसी मनुष्य के वहाँ पहुँचने पर उसे डराने के लिये जोर से चिल्ला उठते हैं। तात्पर्य्य यह कि इस दृष्टि से उन कुत्तों और बालकों की विनोदशीलता बहुत कुछ समान जान पड़ती है। प्रसिद्ध प्राणि-शास्त्र-वेत्ता प्रोफेसर मार्डन ने एक बार एक बहुत विलक्षण और चमत्कारिक बात देखी थी। एक बार समुद्र के किनारे बालू में एक कुत्ते ने एक गड्ढा खोदा था और उसमें कुछ केंकड़े रख कर ऊपर से बालू भर दिया था; इतना कृत्य कर के वह कुत्ता दूर बैठा हुआ तमाशा देखता था। जब कभी कोई केंकड़ा किसी प्रकार उस बालू में से अपने हाथ, पैर या सिर निकालता तो उस कुत्ते को बहुत अधिक प्रसन्नता होती थी और वह उसके चारों ओर भौंकता हुआ खूब उछलता और कूदता फिरता था। यह जिक्र एक ऐसे विनोदी स्वभाववाले कुत्ते का है जो जंगली था और जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी प्रकार की शिक्षा नहीं मिली थी। पालतू हो कर मनुष्यों के साथ रहने और शिक्षा पाने से उसकी विनोदप्रियता और भी अधिक बढ़ जाती है। सरकस या अन्य खेलों में बहुत से कुत्ते ऐसे काम करते हैं जिन्हें देख कर लोगों को खूब हँसी आती है; पर उन कामों के करने का मुख्य कारण आज्ञा-पालन ही होता है। तथापि उनके अतिरिक्त वे और जितने असंबद्ध और विनोदात्मक कृत्य करते हैं उन्हें देखते हुए यदि यह कहा जाय कि उनसे कुत्तों को विनोद-सुख होता है तो कुछ अनुचित न होगा। बिल्ली का स्वभाव कुत्ते के स्वभाव के समान विनोदी और खेलवाड़ी नहीं होता। पर एक बार कालेज के हमारे एक मित्र ने एक बार बहुत आग्रह-पूर्वक हमसे कहा था कि उन्होंने अपनी बिल्ली को हँसते हुए देखा था*। इस बात के मानने के अनेक सबल कारण हैं कि बन्दर की जाति के प्राणियों को स्मित और हास्य का अनुभव होता है। गुदगुदाए जाने पर अथवा किसी पहचाने हुए आदमी को बहुत दिनों बाद देखने पर उन्हें हँसी आती है। यदि बन्दरों को खिझाने के लिये या किसी और प्रकार उनसे दिल्लगी या ठट्ठा किया जाय तो वे उसे नापसन्द करते हैं; इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे समझते हैं कि हास्यास्पद होना किसे कहते हैं। इन सब विवेचनों के सम्बन्ध में इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि निम्न-श्रेणी के इन जीवों को जो हँसी आती है वह बहुधा स्मित से मिलती जुलती नहीं होती। अर्थात् ये प्राणी इस प्रकार खिलखिला कर हँसना नहीं जानते जिसमें किसी प्रकार का शब्द हो, ध्वनि के स्वरूप तक पहुँचनेवाला हास्य केवल मनुष्यों में ही पाया जाता है। निम्न-श्रेणी के प्राणियों की हँसी में स्मित के कारण उत्पन्न होनेवाली मुखविकृति नहीं होती।

इस सम्बन्ध में एक और मजेदार बात विचार करने योग्य है; वह यह कि स्वयं मनुष्य में सब से पहले हास्य किस अवस्था में उत्पन्न होता है; और अनेक अँगरेज प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं ने इसका निश्चय प्रयोग द्वारा किया है। उन्होंने नए जनमे हुए बालकों को एक अलग कोठरी में रख कर यह निश्चय किया है कि उनमें स्मित, हास्य, विनोद आदि बातों का सब से पहले कब और किस प्रकार प्रादुर्भाव होता है और इस सम्बन्ध में उन लोगों ने दिनचर्या भी लिख रखी है। विचारपूर्वक निरीक्षण कर के उन लोगों ने यह निश्चय किया है कि हास्य-क्रिया मनुष्य में आनुवंशिक है और केवल अनुकरण के कारण उसमें नहीं आई है। दूध पी कर पेट भरने पर छोटे बालकों को एक प्रकार का स्वाभाविक और सहज आनन्द होता है और उसी समय उनके चेहरे पर एक प्रकार के स्मित का आविर्भाव होता है। अर्थात् मनुष्य में यह क्रिया जन्म से बहुत ही थोड़े समय पीछे होने लगती है। उसमें ऐसी मुख-विकृति जिसे पूर्ण रूप से स्मित नहीं कह सकते, जन्म के उपरान्त दूसरे महीने के आरम्भ में दिखलाई पड़ती है और उसके थोड़े ही समय के उपरान्त ऐसा हास्य उत्पन्न होता है जिसमें कुछ शब्द भी रहता है। अर्थात् स्मित और हास्य दोनों पहलेपहल सुख-जन्य और आनन्द-जन्य होते हैं। इसके उपरान्त उनमें वह हास्य आता है जो गुदगुदाने आदि के कारण उत्पन्न होता है। प्रायः तीसरे महीने बालक इस योग्य हो जाता है कि यदि उसकी ओर देख कर हँसा जाय या उसकी ठुड्ढी पकड़ कर हिलाई जाय तो वह भी हँसने लगे। पेट भरने के कारण उत्पन्न होनेवाली और गुदगुदाने के कारण उत्पन्न होनेवाली हँसी का सम्बन्ध कुछ प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं ने ले जा कर मनुष्य के बहुत ही पुराने समय के पूर्वजों की स्थिति से भिड़ा दिया है। लड़कों को गुदगुदाने के कारण जो हँसी आती है उसकी आनुवंशिक उत्पत्ति वे यह बतलाते हैं कि आजकल शरीर के जिन भागों में गुदगुदाने से हँसी आती है वही भाग, बहुत प्राचीन

* कुछ दिन हुए, मराठी के करमणूक नामक पत्र में एक हाथी के हँसने का हाल छपा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में जब कि केवल नाखून और दाँत ही मनुष्य के लड़ने के आयुध होते थे, प्रतिपक्षी या शत्रु के प्रहार या आक्रमण के पात्र थे; उसी काल में मनुष्य को आत्मरक्षा के लिये उन भागों की स्नायु आदि सिकोड़ने और छिपाने की आदत पड़ गई थी; और यही कारण है कि आजकल बहुत ही छोटी अवस्था के बालकों को जब गुदगुदाते हैं तब वे उसी पुरानी पड़ी हुई बान का प्रकाश करते हैं। प्रो० सली ने इससे भी बढ़ कर एक विलक्षण कारण बतलाया है। उनका कहना है कि बहुत प्राचीन काल में मनुष्य की उत्क्रांन्ति के समय उसके अंगों पर उसका लहू चूसने के लिये बहुत से जीव चढ़ जाते थे और उन जीवों को हटाने के लिये उसकी माता उसके शरीर पर ठीक उसी प्रकार हाथ फेरती थी जिस प्रकार आजकल गौएँ भैंसें अपनी जीभ से चाट कर अपने बच्चों के अंग साफ करती हैं; हाथ फेरने से उन जीवों या कीड़ों के निकल जाने के कारण उस समय मनुष्य को जो आनन्द होता था सम्भवतः उसी आनन्द का स्मरण आज मनुष्य को बाल्यावस्था में उसके शरीर पर हाथ फेरने से होता है। अस्तु; पहले पहल मनुष्य में हास्य-तत्त्व बहुत ही स्थूल रूप में उत्पन्न हुआ था। पहले शरीर-सुख के कारण और उसके पीछे क्रमशः आनन्द, खेलवाड़, स्वकृत कृत्रिम आनन्द और ज्ञानोत्पत्ति के कारण असंबद्धता-दर्शन आदि एक एक कर के अनेक कारण उत्पन्न होते गए और इसी लिये जो हास्य बहुत ही स्थूल रूप में था वह आगे चल कर अनेक सूक्ष्म रूप धारण करता गया।

हास्य की मीमांसा करते समय छोटे बालकों के हास्य का जिस प्रकार ध्यान रखा गया है उसी प्रकार समाज की बाल्यावस्था में होनेवाले मनुष्य के हास्य के प्रकार का ध्यान रखा गया है; और उस पर विचार कर के अनेक विद्वानों ने सुनी और परीक्षा की हुई जो बातें लिख रखी हैं, इस स्थान पर उन पर भी थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है। जान पड़ता है कि छोटे बालकों और समाज की बाल्यावस्था के मनुष्यों की अनेक बातें एक दूसरे से मिलती जुलती हैं। किसी चीज को देख कर बिना किसी विशेष कारण के ही हँस पड़ना अथवा हास्य की प्रयोजकता अथवा अप्रयोजकता का मन में बिना विचार किए ही हँस पड़ना और अपने उस हँसने के लिये किसी प्रकार की लज्जा या विलक्षणता न मालूम होना उसी समय हो सकता है जब मनुष्य बहुत अधिक भोला और सीधा हो; और यह बात बालकों में भी देखी जाती है और बड़ी आयु के उन लोगों में भी पाई जाती है जो आजकल के सुधरे और सभ्य लोगों की दृष्टि में पूर्णता को प्राप्त नहीं हुए हैं। छोटे बालक जिस प्रकार किसी नए पराए आदमी को देख कर लजाते हैं और उसके सामने उनकी असली मनोवृत्ति प्रकट नहीं होती उसी प्रकार सम्भव है कि जंगली लोग आजकल के सुधरे हुए लोगों के सामने अपनी वास्तविक मनोवृत्तियाँ प्रकट न करते हों। इसी लिये कुछ लोगों ने यह भी समझ लिया है कि जंगली लोगों में विनोदशीलता कम होगी और उन्हें हास्य अधिक प्रिय न होगा। जंगली आदमियों को बिलकुल ही आदमी न समझनेवाले और अपनी सभ्यता का बहुत गर्व करनेवाले लोगों में परस्पर बहुत अधिक वाद-विवाद हो चुका है। लेकिन बात यह है कि जंगलियों के बीच में सभ्य लोग बहुत ही थोड़े समय तक रहते हैं और उस थोड़े समय में वे जो कुछ देखते हैं वही औरों को भी बतलाते हैं; और इसी लिये ऐसे लोगों के वर्णन से अधिक व्यापक सिद्धान्त नहीं निकाला जा सकता। लेकिन जिन मिशनरियों को बहुत दिनों तक जंगलियों के साथ रहने और उनसे सम्बन्ध रखने का अवसर मिला है, उनके वर्णन और लेख आदि के आधार पर यह बात निःसंकोच हो कर कही जा सकती है कि जंगलियों के चेहरों से ही साधारणतः इस बात का पता लग जाता है कि वे उदास और दुखी रहनेवाले प्राणी नहीं हैं बल्कि उन में बहुत कुछ विनोदशीलता होती है। वे प्रायः अपने मन के भाव और वृत्तियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट करते हैं। अंतःकरण में आए हुए हास्य के उद्वेग को दबा रखना शिक्षित और सुसंस्कृत लोगों के लिये जितना सहज और स्वाभाविक है उतना जंगली लोगों के लिये नहीं है। आस्ट्रेलिया आदि देशों के आदिम निवासी जंगलियों के सम्बन्ध में प्रवासियों ने जो कुछ लिख रखा है उससे जान पड़ता है कि अगर उन्हें किसी बात में अधिक आनन्द आता है तो वे ठठा कर हँसने और इधर उधर उछलने कूदने लगते हैं, चूतड़ पीटते और तालियाँ बजाते हैं और यहाँ तक कि कभी कभी बहुत अधिक हँसने के कारण उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है। अफ्रिका के काफिर या हब्शी भी जंगलियों का बहुत अच्छा नमूना हैं। पहलेपहल देखने में वे बहुत उग्र और भयानक जान पड़ते हैं और चार हाथ दूर रखने लायक मालूम होते हैं। परन्तु मिस किंग्सले नाम की एक प्रवासिनी स्त्री ने लिखा है कि जब तक आधुनिक सभ्य राष्ट्रों के लोगों से उनका सम्बन्ध नहीं होता और जब तक वे आधी जंगली और आधी सभ्य स्थिति तक नहीं पहुँचते तब तक वे बहुत ही विनोदप्रिय रहते हैं और उनके साथ रहने में बहुत आनन्द मिलता है। जंगली लोगों को जब हँसी आती है तब उनके हाथ और पैर एक ही साथ हिलने डोलने लगते हैं और उनकी आँखें पानी से भर जाती हैं। एक प्रकार की लज्जाशीलता, किसी प्रकार का उपद्रव करना, एक दूसरे को कष्ट देना, मुँह चिढ़ाना या किसी प्रकार की कुचेष्टा करना, व्यंग करना, खिझाना और विलक्षण नाम रखना आदि उनके हास्य के विभाव हैं; और इसी लिये देखा गया है कि सुशिक्षित लोगों की अपेक्षा जंगली हँसते हँसते अधिक लोटते हैं। कोई नई और अपरिचित चीज देख कर उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है। बोर्नियो द्वीप में एक बार एक सज्जन पहले पहल "पियानो" बाजा ले कर गए थे। जब वह उसे बजाने लगे तो उसकी सुरवाली पत्तियों को ऊपर नीचे होते देख वहाँ के लोगों को इतना आश्चर्य हुआ कि वे उन्हीं पत्तियों के ऊपर नीचे होने के साथ साथ उछलने कूदने और जोर से हँसने लगे। एक इंजीनियर के सन्दूक में एक छोटा सा कम्पास था; उसने जब अमेरिकन इण्डियनों को वह कम्पास दिखला कर कहा कि उसकी सहायता से तरह तरह की सुन्दर आकृतियाँ बनाई जा सकती हैं तो उन लोगों ने उस पर जरा भी विश्वास न किया और इंजीनियर के कथन को बिलकुल असंबद्ध-प्रलाप समझ कर वे इतना हँसे कि जल्दी उनकी हँसी न रुकती थी। सुशिक्षित युरोपियन के कला-कुशल सम्बन्धी अनेक कार्यों की नवीनता देख कर उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है*। अपने से भिन्न जातियों के लोगों की रीत-रसम आदि देख कर भी उन्हें बड़ा कुतूहल होता है और हँसी आती है। विशेषतः युरोपियनों की चालढाल देख कर तो उनका विनोद चरम सीमा को पहुँच जाता है, यहाँ तक कि जो जंगली मुँह धोना नहीं जानते वे गोरे लोगों को मुँह धोते देख कर हँसते हँसते लोट जाते हैं। कुछ युरोपियनों को अपनी हजामत आप ही बनाते देख कर दक्षिण अफ्रिका के जंगलियों के एक सरदार को बड़ा कुतूहल हुआ और उसने एक युरोपियन से अपनी हजामत बना देने की प्रार्थना की। युरोपियन ने भी प्रार्थना स्वीकार कर के उसकी हजामत आरम्भ की। जब तक उस सरदार की हजामत बन न गई तब तक

* एक बार अफ्रिका का एक जंगली सरदार किसी प्रकार इंगलैण्ड पहुँच गया। वहाँ वह मैंचेस्टर में कपड़ा बुनने का एक कारखाना देखने गया। जिस समय मनेजर उसे घूम घूम कर मशीनें दिखला रहा था उस समय उसके कोट का कोना किसी मशीन के चक्कर में फँस गया और उस चक्कर के जोर से मनेजर भी उसके साथ दो तीन बार घूम गया और अंत में जमीन पर गिर पड़ा। जंगली और उसके साथी इस क्रिया को तमाशा समझ कर उससे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने दुभाषिए से कई बार उस मनेजर से कहलाया कि वह फिर एक बार उस चक्कर के साथ घूम कर पहले की तरह उन्हें तमाशा दिखलाए! प० सम्पा०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके गाँव के सब लोग उन दोनों को चारों तरफ से घेर कर बैठे रहे ग्रैार जब हजामत खतम हो गई ते। सब लोग बहुत जोर से ठठा कर हँसने लगे। गोरे लोगों का गाना सुन कर उन्हें ऐसी दिल्लगी मालूम होती है कि मानों वे किसी पशु का गाना सुन रहे हैं; स्त्रियों ग्रैार पुरुषों को हाथ में हाथ दे कर ग्रैार पैर पर पैर रख कर नाचते देख उन्हें ग्रैार भी अधिक कुतूहल ग्रैार ग्रानन्द होता है। प्रायः लोगों का यह नियम होता है कि स्वयँ उनकी भाषा चाहे कितनी ही बेढंगी ग्रैार भद्दी क्यों न हो, पर जब वे दूसरों को वह भाषा बोलने में असमर्थ देखते हैं तो उन्हें बहुत हँसी ग्राती है; ग्रैार जंगली लोगों में भी इस नियम का यथेष्ट पालन होता है। गोरे लोगों की ईश्वरोपासना की प्रणाली देख कर भी जंगलियों को बहुत हँसी ग्राती है। एक बार एक पादरी ने अपने जंगली विद्यार्थियों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि ग्रात्मा अविनाशी है। उसका कथन सुन कर यह बात उसके विद्यार्थियों की समझ में ही न ग्राई कि कोई ऐसा मनुष्य या शरीर भी हो सकता है जिसके चलने के लिये न तो पैर हों ग्रैार न खाने के लिये मुँह; ग्रैार इसी बात पर वे घंटों खिलखिला कर हँसते रहे। सुशिक्षितों ग्रैार सभ्यों में जिस प्रकार स्त्रियाँ ग्रैार पुरुष अपने अपने वर्ग के गुण ग्रैार विशेषताएं ले कर एक दूसरे की दिल्लगी उड़ाते हैं उसी प्रकार जंगली भी दिल्लगी उड़ाते हुए देखे जाते हैं। जंगली लोग प्रायः रात के समय अपने रहने के स्थान पर एकत्र हो कर हँसी दिल्लगी ग्रैार बातचीत करते हुए सारी रात बिता देते हैं। जंगली लोग दूसरों की नकल भी बहुत अच्छी तरह करते हैं; ग्रैार अगर उनके साथ दिल्लगी की जाय ग्रैार वे उसे समझ लें तो उन्हें उतना ही क्रोध ग्राता है जितना दूसरों की नकल उतारने में उन्हें ग्रानन्द ग्रैार उत्साह होता है। मजेदार बातें करने, श्लेष शब्द कहने ग्रैार उत्तर के बदले में यथेष्ट प्रत्युत्तर दे कर अपने बदले दूसरे को हास्यास्पद बनाने में भी जंगली लोग कुछ न कुछ प्रवीण हुआ करते हैं। ग्रास्ट्रेलिया ग्रैार तस्मानिया के निवासी पूरे पूरे जंगलियों में भी अनेक प्रकार के विनोदपूर्ण खेल हुआ करते हैं। स्यामोग्रा प्रान्त की प्रत्येक जाति के सरदार के दरबार में एक दरबारी मसखरा रहता है। ग्रीनलैण्ड की एस्किमो जाति के जंगली लोगों में जिस समय किसी मुकदमे का फैसला होने लगता है उस समय वादी ग्रैार प्रतिवादी परस्पर एक दूसरे की निन्दा करने के लिये अनेक प्रकार की अश्लील कविताएं पढ़ते हैं ग्रैार उनमें से जो श्रोताग्रों ग्रैार उपस्थित लोगों को सब से अधिक हँसा ग्रैार उनका मनोरंजन कर सकता है, उसी के हक में फैसला होता है। तात्पर्य्य यह कि इस प्रकार की हँसी-दिल्लगी करनेवाले, जिसमें बहुत अधिक बुद्धिमत्ता की ग्रावश्यकता न हो, प्रायः सभी जंगलियों में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें विचारपूर्ण ग्रैार बुद्धिमत्तायुक्त विनोद करनेवालों की भी कमी नहीं होती। मिस किंग्सले नाम की प्रवासिनी स्त्री ने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है कि जंगलियों से जो काम बीसियों तरह के युक्तिवाद कर के ग्रैार यहाँ तक कि उनके सिर पर बन्दूक का कुन्दा रख कर या उनकी छाती पर गोली का निशाना लगा कर भी नहीं कराया जा सकता वही काम अवसर पड़ने पर उनके साथ थोड़ा सा विनोद कर के ग्रैार उन्हें हँसा के बहुत ही सहज में कराया जा सकता है। तात्पर्य्य यह कि विनोद के विचार से देखा जाय तो जंगली लोग अज्ञान बालकों की तरह बुद्धिहीन प्राणियों ग्रैार सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत लोगों के मध्य की स्थिति में मिलते हैं।

हास्य का इन्द्रिय-विज्ञान की दृष्टि से विचार।

संस्कृत-साहित्य के शास्त्रकारों ने हास्य के जो भिन्न प्रकार माने हैं ग्रैार उनके पहचानने के लिये जो लक्षण बतलाए हैं उनका वर्णन पहले किया जा चुका है। पर उस वर्णन से अधिक से अधिक इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पता चलता है कि यदि हृदय में हास्य रस का उत्कर्ष कम हो तो उसका परिणाम शरीर की अमुक अमुक क्रियाओं के द्वारा दिखाई पड़ता है और यदि उसका उत्कर्ष अधिक हो तो उसके परिणाम में होनेवाले लक्षण अमुक अमुक हैं। और इसी लिये दिखलाई पड़नेवाली भिन्न भिन्न क्रियाओं से निश्चय किया जा सकता है कि किस प्रसंग का हास्य किस प्रकार के अन्तर्गत है। परन्तु शारीरिक और दृश्य परिणामों की भाँति हास्य का अन्तस्थ परिणाम भी होता है। पर वह परिणाम दृश्य नहीं होता इसलिये साहित्य-शास्त्रकारों के वर्गीकरणों में उसका समावेश नहीं हुआ है। इसी प्रकार संस्कृत-साहित्य के ग्रंथों में हास्यवाली शारीरिक क्रिया के मूल कारण और उसकी उपपत्ति सम्बन्धी भी कहीं कोई विचार दिखाई नहीं पड़ता। इंद्रिय-विज्ञान-शास्त्र से यदि देखा जाय तो जान पड़ेगा कि शरीर और मन दोनों ही अलग अलग और अपनी अपनी रीति से हास्य के कारण होते हैं। 'मन' मनुष्य की छठी इंद्रिय है। इसलिये पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न होनेवाले हास्य के साथ साथ मन से उत्पन्न होनेवाले हास्य का भी विचार इन्द्रिय-विज्ञान की दृष्टि से किया जाना चाहिए।

अब पहले यह देखना चाहिए कि शरीर की इन्द्रियों के कारण हास्य किस प्रकार उत्पन्न होता है। शरीर से उत्पन्न होनेवाला सब से सहज और सब के ध्यान में तुरन्त आनेवाला वह हास्य है जो शरीर के किसी विवक्षित भाग को स्पर्श करने से उत्पन्न होता है। इसी विशिष्ट स्पर्श के परिणाम को गुदगुदी कहते हैं। पैरों के तलुए, बगल या कोख आदि कोमल अंगों पर ही गुदगुदी होती है; और स्पर्श करनेवाला पदार्थ जितना ही कोमल और गुलगुला हो गुदगुदी उतनी ही अधिक होती है। गुदगुदी छोटे बालकों से ले कर वृद्धों तक सभी को अर्थात् सभी अवस्थावालों को होती है। यह हास्य मनुष्य की इच्छा पर अवलम्बित नहीं होता; और यदि मनुष्य के मन की स्थिति हास्य से एक दम प्रतिकूल दुःख, राग आदि तीव्र मनोविकारों से प्रभावित न हो तो शायद ही कोई ऐसा मनुष्य मिलेगा जिसे गुदगुदाने से हँसी न आवे। यह नहीं कहा जा सकता कि गुदगुदी सदा और सब को सुखात्मक ही जान पड़ती है। हम लोग देखते हैं कि गुदगुदाने से एक प्रकार का सुख होता है और छोटे बालक विनोद के लिये प्रायः एक दूसरे को गुदगुदाया करते हैं और उनकी स्वयं इच्छा होती है कि कोई उन्हें गुदगुदावे। परन्तु इन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्र के जानकारों का मत है कि यदि गुदगुदाने से होनेवाली संवेदना का सूक्ष्म रूप से पृथक्करण किया जाय तो उससे शरीर को सुख भी होता है और दुःख भी। यदि शरीर का कोई अंग गुदगुदाया जाय तो वहाँ की नसों से दो प्रकार की क्रियाएं होती हैं। उनमें से एक क्रिया को संरक्षक और दूसरी क्रिया को आनन्द-दर्शक कह सकते हैं। गुदगुदी होने के समय हाथ पैर और विशेषतः गुदगुदाया जानेवाला अंग सिकोड़ना और गुदगुदानेवाले पदार्थ या हाथ को झटकार देना आदि संरक्षक क्रिया के अन्तर्गत हैं। और आनन्ददर्शक क्रिया के उदाहरण मन में आनन्द होने के कारण खिलखिलाकर हँसना, आँखों में आनन्द-अश्रु आ जाना और अंगों का इधर उधर हिलना आदि हैं। गुदगुदी का सब से पहला और निश्चित परिणाम यह होता है कि शरीर में एक प्रकार का अपूर्व अनुभव या साक्षात्कार होता जान पड़ता है। यह बात सिद्ध करने के लिये केवल इतना कहना यथेष्ट है कि स्वयं अपने आपको नहीं गुदगुदाया जा सकता; अथवा किसी दूसरे के हाथ की उँगलियाँ या पर सरीखा मुलायम पदार्थ अपने हाथ में पकड़ कर अपने आप को गुदगुदी नहीं की जा सकती। स्पर्श का प्रकार जितना ही अधिक अननुभूत और अनपेक्षित हो गुदगुदानेवाले को दूर हटा देने की उतनी ही अधिक इच्छा होती है। और यदि गुदगुदी से उत्पन्न होनेवाली हँसी का कोई ठीक कारण हो सकता है तो वह स्पर्श की अतर्कितता या आकस्मिकता ही है। पर यदि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतर्कितता किसी निश्चित सीमा से आगे बढ़ जाय—यदि अपने आपको इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाय कि स्पर्श करनेवाली वस्तु से अवश्य ही हमारा कोई अनिष्ट होगा अथवा ऐसे अनिष्ट का जरा सा भय या संशय भी उत्पन्न हो—तो गुदगुदी का परिणाम स्वाभाविक से भिन्न होगा। अर्थात् हमें हँसी नहीं आवेगी और डर लगेगा। गुदगुदी से होनेवाला संवेदन यद्यपि बहुधा सुखात्मक ही होता है, तथापि हँसने के समय उस गुदगुदानेवाले को झटकार देने की भी इच्छा होती है। सभी अवस्थाओं के लोगों को गुदगुदी के कारण हँसने के लिये मन की किसी विशेष प्रकार की स्थिति में पहुँचना पड़ता है। मान लीजिए कि यदि हाथ की उँगलियों से गुदगुदाने के बदले हाथ में साँप या बिच्छू पकड़ कर उसके किसी अंग से गुदगुदाने का प्रयत्न करें—और यदि वास्तव में उस बिच्छू का डंक या साँप का जहरीला दाँत भी तोड़ डाला गया हो—तो भी जब तक गुदगुदाए जानेवाले को यह बात पूरी तरह मालूम न हो जायगी तब तक वह हँसने के बदले रोए और चिल्लाएगा ही; और तब यदि उसे इस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि बिच्छू का डंक या साँप का मुँह बिलकुल निरुपद्रवी और किसी प्रकार का अनिष्ट न करनेवाला है तो दूसरी बार वह भय से न रोए या चिल्लाएगा। परन्तु पूरी तरह सन्देह न मिटने के कारण फिर भी वह दो एक बार उस पदार्थ के स्पर्श से घबराएगा और थोड़ा बहुत चिल्लाएगा। और जब उसे दस पाँच बार गुदगुदी की जायगी तो उसके मन का सब सन्देह मिट जायगा और तब उसके मन की स्थिति गुदगुदी के कारण हँसने के योग्य हो जायगी। गुदगुदी के सिवा एक और प्रकार से भी हँसी उत्पन्न की जा सकती है। रसायन-शास्त्र के वेत्ताओं ने हास्य-वायु नामक एक और वायु का पता लगाया है। वह वायु नाइट्रोजन और अक्सिजन के मिश्रण से बनती है और उसका एक मजेदार गुण यह है कि जब वह श्वास के साथ नाक के रास्ते दिमाग तक पहुँचती है तो मनुष्य आप से आप हँसने लगता है। यहाँ तक कि बिलकुल अनजान में बल्कि अपनी इच्छा के विरुद्ध भी वह हँसने लगता है। इस प्रकार के हास्य को ज्ञानतन्तु-जन्य अथवा मज्जातन्तु-जन्य हास्य कहते हैं। गुदगुदी से उत्पन्न होनेवाली हँसी का स्नायु से सम्बन्ध होता है और अन्तिम वायु-जन्य हास्य का सम्बन्ध तन्तुओं से होता है।

(शेष आगे)

—:०:—

भोजन-विज्ञान।

[लेखक—डा० कालीचरण दूबे एल० एम० एस० डी० पी एच० हेल्थ आफिसर, बनारस।]



द्यपि हम सब लोग यह बात जानते हैं कि भोजन सभी जीवधारियों के लिये बहुत ही आवश्यक वस्तु है—क्योंकि जिस समय किसी जीव को भूख लगती है उस समय भोजन के सिवा उसे और कोई चीज अच्छी ही नहीं लगती और यही जी चाहता है कि जो कुछ खाद्य पदार्थ मिलें सो खा लें—तो भी बहुत से लोग यह बात नहीं जानते कि भोजन कैसा और किस प्रकार करना चाहिए और किन किन चीजों से बचना चाहिए। पर इन सब बातों का जानना प्रत्येक मनुष्य के लिये बहुत आवश्यक है। इस स्थान पर इन्हीं बातों का विशेष विवरण दिया जाता है और आशा की जाती है कि लोगों को अपना स्वास्थ्य बनाए रखने में इससे बहुत सहायता मिलेगी।

खाने पीने की चीजें पसन्द करने और उन्हें खाने में चार बातों का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) भोजन बलवर्द्धक हो,
(२) गरमी पैदा करनेवाला हो,
(३) जल्दी पच सकने योग्य हो और
(४) उसका दाम हमारी बित्त के बाहर न हो।

साधारणतः खाने पीने की चीजों में दो प्रकार के द्रव्य पाए जाते हैं,—

(१) शरीर में मांस उत्पन्न करनेवाले द्रव्य और
(२) गरमी और बल उत्पन्न करनेवाले द्रव्य।

शरीर में मांस उत्पन्न करनेवाले द्रव्य को प्रोटेड (Protied) कहते हैं। प्रोटेड दो तरह का होता है। एक वह जो वनस्पतियों से प्राप्त होता है और दूसरा वह जो पशुओं से मिलता है। पहले प्रकार का द्रव्य आटे, दाल, मटर, मूँग, मोथे, आलू आदि में और दूसरे प्रकार का अंडे और मांस आदि में पाया जाता है।

प्रोटेड में साधारणतः नीचे लिखी हुई चीजें मिली रहती हैं,—

(१) नाइट्रोजन (Nitrogen) १६ भाग।
(२) कारबन (Carbon) १५२ ,,।
(३) हाइड्रोजन (Hydrogen) १७ ,,।
(४) आक्सीजन (Oxygen) १२३ ,,।
(५) गन्धक (Sulphur) १२ ,,।

जो द्रव्य शरीर में गरमी और बल उत्पन्न करता है वह कारबो-हाइड्रेट (Carbo-Hydrate) कहलाता है। उसमें नीचे लिखे पदार्थ होते हैं,—

(१) कारबन (Carbon) ४४ भाग।
(२) हाइड्रोजन (Hydrogen) ६ ,,।
(३) आक्सीजन (Oxygen) ५० ,,।

कारबो-हाइड्रेट और चरबी प्रायः एक ही चीज है। इन दोनों में भेद केवल कारबन की अधिकता और न्यूनता का है। ये दोनों चीजें शरीर में गरमी पहुँचाती और उसके भीतरी और बाहरी कामों में सहायता देती हैं। शरीर के भीतरी काम साँस चलना, खून दौड़ना, भोजन पचना आदि हैं और बाहरी काम शरीर के अंगों आदि का संचालन है।

गेहूँ, दाल, चावल, आलू, अरुई, शकरकंद, दूध, चीनी और अनेक प्रकार के फलों में कारबो-हाइड्रेट पाया जाता है और दूध, मक्खन, घी तथा अनेक प्रकार के फलों में चरबी पाई जाती है।

स्वयं मनुष्य का शरीर प्रोटेड, कारबो-हाइड्रेट, चरबी, नमक और पानी आदि से बना हुआ है; अतः उसकी वृद्धि, पोषण और रक्षा के लिये इन सब चीजों का व्यवहार करना बहुत आवश्यक है। आक्सीजन भी हमारे शरीर के लिये बहुत आवश्यक है; पर वह हवा का एक अंश या भाग है और साँस के साथ हमारे शरीर में प्रवेश करता रहता है। इसके सिवा बाकी सब आवश्यक पदार्थ भोजन के द्वारा ही शरीर में प्रवेश करते हैं। मनुष्य की आरोग्यता के लिये पानी भी बहुत आवश्यक है क्योंकि हमारे शरीर का दो तृतीयांश पानी ही है। फेफड़ों, आँतों, त्वचा, साँस के द्वारा (मल-मूत्र, पसीना, खराब हवा आदि) जो बचे हुए अनावश्यक और हानिकारक पदार्थ हमारे शरीर से प्रति दिन निकलते हैं उन सब का भोजन आदि के द्वारा उतने ही मान में फिर से हमारे शरीर में प्रतिदिन पहुँच जाना बहुत आवश्यक है; क्योंकि जब तक आय और व्यय दोनों बराबर न हों तब तक मनुष्य नीरोग और स्वस्थ नहीं रह सकता।

नीचे के कोष्ठक में यह दिखलाया गया है कि मुख्य मुख्य खाद्य-पदार्थों में कौन कौन सी चीजें कितनी कितनी होती हैं:—

पदार्थ के नाम	पानी	प्रोटेड	कारबो-हाइड्रेट	चीनी	चरबी	नमक
रोटी	३७	८	४७	३·१	१	२
चावल	१३	६	७९	०·४	०·७	०·५
मटर		२३	५५	२	२	२
आलू	७५	२	१८	३	०·२	०·७
मांस	७२	१९	०	०	३	५
दूध	८६	४	०	४	४	०·८
अंडा	७४	१४	०	०	१०	१·५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन कितना होना चाहिए।

यह बात जानना बहुत कठिन है कि प्रत्येक मनुष्य को दिन रात में कितना भोजन करना चाहिए, क्योंकि यह बात प्रत्येक मनुष्य की साधारण और पाचन शक्ति पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त शरीर तथा मस्तिष्क के बल और उनके व्यवहार से भी उसका बहुत कुछ सम्बन्ध है। तो भी इस स्थान पर यह बतला दिया जाता है कि साधारण काम करनेवाले एक युवा पुरुष को चौबीस घन्टों में कब और क्या क्या खाना चाहिए,—

(१) सबेरे के समय—अंडे के साथ या दूध में चीनी मिला कर, आध पाव आटे की रोटी।

(२) दोपहर के समय—डेढ़ पाव आटे की रोटी या इससे आधा चावल और आधी रोटी, डेढ़ पाव मांस का जूस या आध पाव चने या मूँग आदि की दाल, और एक छटाँक घी।

(३) सन्ध्या के समय—प्रायः उतना ही जितना दोपहर को खाया हो।

रोगियों, विद्यार्थियों और मस्तिष्क से काम करनेवाले लोगों को उनकी पाचन-शक्ति के अनुसार नीचे लिखी चीज़ें मिलनी चाहिए,—

(१) मछली, चाहे जिस प्रकार से पकाई गई हो।

(२) मांस का शोरबा और चावल।

(३) दूध और रोटी या चपाती और मांस का शोरबा।

(४) दलिया, निमकीन या मीठा।

(५) दूध में मिला हुआ सत्तू।

इस प्रान्त के देहातों और राजपूताने के लोग प्रायः नीचे लिखे प्रकार से एक प्रकार की रबड़ी बनाते हैं जो बहुत सस्ती और बलवर्द्धक होती है,—

मामूली मकई (बड़ी जोंधरी) को दाल की तरह दल कर छान लेते हैं और उसके बड़े बड़े टुकड़ों को मठे में उबालते और उसमें थोड़ा नमक छोड़ कर खाते हैं। मनुष्य का स्वास्थ्य बनाए रखनेवाली सब से अच्छी और सस्ती चीज नमक, प्याज और रोटी है।

भोजन किस प्रकार पचता है।

प्रथम अवस्था—पहले सब खाद्य-पदार्थ दाँतों से पीसे जा कर पतले होते हैं और तब थूक में मिल कर छोटी छोटी गोलियों के रूप में गले से होते हुए पेट में पहुँचते हैं।

दाँतों और थूक के लाभ।

(क) दाँत—दाँतों से खाद्य-पदार्थ के बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े होते हैं। मनुष्य को उचित है कि जहां तक हो सके खाने की चीज को दाँतों से खूब पीस कर बारीक कर ले; क्योंकि भोजन जितना ही अधिक कुचला जायगा उतना ही वह थूक में मिल कर गुणकारी होगा और जल्दी पचेगा।

(ख) थूक—खाद्य-पदार्थ में जितना कारबो-हाइड्रेट होता है, थूक उस सब में मिल कर उसे एक प्रकार का बूरा या शकर बना देती है जिससे भोजन बहुत शीघ्र पचने योग्य हो जाता है।

दूसरी अवस्था—जब थूक से मिल कर बनी हुई खाद्य-पदार्थ की छोटी छोटी गोलियां गले की नली द्वारा पेट में पहुँचती हैं तो वहाँ पेट में पहले खाई हुई चीज का वह अंश पीस कर महीन किया जाता है जो चबाने के समय दाँतों द्वारा पूरी तरह न कुचले जाने के कारण कुछ मोटा रह जाता है। इस प्रकार पेट को दो तरह के काम करने पड़ते हैं—

(क) मोटे भोजन को पीस कर महीन और पचने के योग्य बनाना; यह काम एक ऐसी क्रिया से होता है जो मथने की क्रिया के समान होती है।

(ख) पेट में पहुँची हुई सब चीजों को दोबारा खूब दबा दबा कर महीन करना।

आमाशय का आकार एक मशक या थैली का सा होता है। इसमें एक प्रकार की बुकनी और एक प्रकार का शोरे का तेजाब पैदा होता रहता है और ये दोनों चीजें प्रोटेड को हजम करती हैं।

तीसरी अवस्था—आमाशय से चल कर भोजन छोटी आँतों में पहुँचता है। यहाँ जिगर से एक छोटी नली के द्वारा पित्त आता है जो सब प्रकार की चरबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ मिल कर उसको दूध के रूप में बनाता और पचाता है। पित्त जितना अधिक होता है पाचन भी उतना ही अधिक होता है।

चौथी अवस्था—आँतों में कई तरह के रस बनते हैं और थूक तथा आमाशय से जो काम बच रहता है उसे वे पूरा करती हैं। आँतें बराबर सिकुड़ती और ढीली होती रहती हैं जिसके कारण खाद्य-पदार्थ ऊपर से नीचे उतरते और आगे बढ़ते रहते हैं।

भोजन पचने में कितना समय लगता है।

मुँह में—भोजन को मुँह में रखने के लिये कोई निश्चित समय नहीं बतलाया जा सकता। यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। खानेवाला चाहे भोजन जल्दी जल्दी चबावे और निगल जाय और चाहे बहुत धीरे धीरे और देर में। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हर एक कौर को साधारणतः कम से कम पन्द्रह बीस बार चबाना चाहिए।

आमाशय में—भोजन को आमाशय में आध घन्टे से चार घन्टे तक लगते हैं। यदि भोजन हलका हुआ हो तो जल्दी और यदि भारी हुआ हो तो देर से गलता और पचता है। जैसे दूध को पचने में ३०—४० मिनट लगते हैं पर मांस, रोटी और दाल आदि भारी चीजें चार घन्टे में पचती हैं।

आँतों में—साधारणतः आँतों में भोजन चौबीस से अड़तालीस घण्टों तक रहता है।

भोजन के समय।

भोजन सदा निश्चित समय पर करना चाहिए। दिन रात में केवल दो बार इकट्ठा भोजन कर लेने से स्वास्थ्य बिगड़ता है। रात को सोने में जो समय बीतता है उसको छोड़ कर दिन के बाकी समय में प्रत्येक मनुष्य को पाँच पाँच या छः छः घन्टों पर थोड़ा थोड़ा भोजन करना चाहिए। सवेरे के समय काम आरम्भ करने से पहले थोड़ा जलपान कर लेना भी बहुत आवश्यक है। भोजन के उपरान्त तुरन्त ही सोना या शारीरिक श्रम न करना चाहिए क्योंकि इससे मनुष्य की आरोग्यता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। भोजन के समय किसी प्रकार की चिन्ता न करनी चाहिए और भोजन बहुत प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए। भोजन के समय शोक करना या शोकातुर होना बहुत ही हानिकारक होता है। पाचन पर प्रसन्नता का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और उसके कारण खाया भी खूब जाता है। इसके सिवा उससे रक्त के संचार में बहुत लाभ होता है जिससे भोजन पचानेवाले अनेक रस अधिकता से उत्पन्न होते हैं। शोक और दुःख का प्रभाव इससे एक दम विपरीत होता है।

मस्तिष्क का पुष्टीकरण।

जिस प्रकार मनुष्य की शारीरिक आरोग्यता और वृद्धि के लिये साधारण भोजन अथवा व्यायाम आवश्यक पदार्थ हैं उसी प्रकार मस्तिष्क की आरोग्यता और पुष्टि के लिये उससे कुछ काम लेना आवश्यक है। भोजन के उपरान्त या फ़ुरसत के किसी और समय अखबार और शिक्षाप्रद पुस्तकें पढ़ना बहुत ही आवश्यक और हितकर है। इससे मनुष्य की बुद्धि तीव्र होती है और उसका ज्ञान बढ़ता है। पढ़ने लिखने और सोचने समझने को मस्तिष्क का व्यायाम ही समझना चाहिए।

भोजन किस प्रकार पकाना चाहिए।

भोजन पकाने का केवल यह तात्पर्य्य नहीं है कि वह पचने के योग्य होने के लिये कुछ गल जाय और खाने में कुछ स्वादिष्ट हो जाय; बल्कि कच्ची अवस्था में उसमें जो मैल अथवा छिलके आदि अनावश्यक या हानिकारक पदार्थ हों वे एक दम निकाल दिए जायँ। इसके अतिरिक्त भोजन पकाने का सब से बड़ा लाभ यह होना चाहिए कि यदि कच्ची अवस्था में उसमें किसी प्रकार के संक्रामक रोग के कुछ कीटाणु आ गए हों तो वे भी भली भाँति नष्ट हो जायँ और खानेवाले को किसी प्रकार की हानि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पहुँचा सके। साथ ही एक बात यह भी है कि तुरन्त का पका हुआ और गरम भोजन बहुत जल्दी और अच्छी तरह पच जाता है पर ठंढे या बासी भोजन के पचने में बहुत देर और कठिनता होती है। इस देश में लोग दरिद्रता या आलस्य के कारण प्रायः बासी भोजन करते हैं जो उनकी आरोग्यता के लिये बहुत ही हानिकारक होता है। भोजन में जहाँ तक हो सके व्यर्थ के मसाले आदि कम डाले जायँ क्योंकि उनके कारण भी भोजन के पचने में विलम्ब होता है। भोजन पकाने में जो जो क्रियाएँ प्रधान हैं उनके सम्बन्ध में कुछ बातें यहाँ पर दी जाती हैं:—

उबालना—किसी खाद्य-पदार्थ को उबालने के दो उद्देश्य होते हैं। एक तो यह कि उस पदार्थ का सार या बल-वर्द्धक भाग निकल आवे; जैसा कि माँस उबाल कर उसका शोरबा तैयार किया जाता है; और दूसरे उस पदार्थ को गला कर नरम करने के लिये, जैसा कि आलू, शकरकन्द या सिंघाड़े आदि के उबालने में होता है। इस दशा में उबाले हुए पदार्थ का कोई अंश पानी में नहीं उतर आता। जिस चीज का कोई अंश पानी में उतारना हो उसे छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर पानी से धो लेना चाहिए और तब साफ पानी में डाल कर बहुत धीमी आँच पर चढ़ा देना चाहिए। अगर उसका भाग न निकालना हो तो उसे बड़े बड़े टुकड़ों के रूप में ही खौलते हुए पानी में डाल देना चाहिए।

तलना—जैसे पूरी, समोसे, गुलगुले आदि। यद्यपि तलने से चीजों का स्वाद बढ़ जाता है पर साथ ही वे कुछ गरिष्ठ भी हो जाती हैं और देर में पचती हैं।

सेंकना—जैसे रोटी आदि।

यहाँ पर रोटी आदि के सम्बन्ध में यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि रोटी पकानेवाले को आटा गूँधने से पहले अपने हाथों को पानी से खूब साफ कर के उनकी सब मैल छुड़ा डालनी चाहिए और तब हाथ पोंछ कर आटा गूँधना चाहिए। प्रायः लोग मैले हाथों से आटा निकाल कर उसे गूँधने लग जाते हैं और उसके बाद उसे भिगो कर छोड़ देने के समय अपने हाथों की वह मैल भी खूब रगड़ रगड़ कर उसी आटे में डाल देते हैं जो उन्हें गूँधने से पहले अलग छुड़ा लेनी चाहिए थी। ऐसा करना बहुत हानिकर होता है।

पशुओं से प्राप्त होनेवाले खाद्य-पदार्थ।

मांस—भिन्न भिन्न पशुओं के मांस लोग भिन्न भिन्न प्रकार से खाते हैं। अच्छा मांस वही समझा जाता है जो लचीला, कुछ कड़ा और नम हो, गीला न हो और देखने में उसकी लाली और चरबी का पीलापन अलग अलग नजर आए। मांस के पानी में हलके तेजाब का सा गुण होता है।

मछली—मछली जितनी ही मोटी होगी उतनी ही जल्दी पचेगी, इसी लिये मछली खानेवाले लोग प्रायः बलिष्ठ और नीरोग हुआ करते हैं। रोगियों और निर्बलों के लिये मछली बहुत अच्छा भोजन है। ताजी मछली की पहचान यह है कि वह कड़ी होगी और उसकी आँखें लाल होंगी। यदि उसके डैने टूट या निकल गए हों तो समझना चाहिए कि वह देर की मारी हुई है। मछली की दुम से भी उसके ताजी या बासी होने का पता चल जाता है।

अंडा—अंडे को भी दूध की भाँति मनुष्य का स्वाभाविक भोजन समझना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य का पालन उसकी माता के दूध से होता है उसी प्रकार अंडज जीवों का पालन अंडों से होता है।

दूध—इसके सम्बन्ध में जानने योग्य बातें बहुत अधिक हैं; यदि हो सका तो इस का पूरा वर्णन आगामी अंक में दिया जायगा।

मक्खन—यह दूध और दही से निकाला जाता है। इसमें कई उद्देश्यों से कई तरह की चीजें मिलाई जाती हैं। तौल बढ़ाने के लिये पानी, निशास्ता या जानवरों की चरबी और रंग बदलने के लिये कई तरह की पीली चीजें मिलाई जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घी—यह दूध और मक्खन से तैयार किया जाता और बहुत बलवर्द्धक होता है। लोग इसमें प्रायः मूँगफली या इसी प्रकार की और चीजों के तेल और कई तरह के जानवरों की चरबी या जरदी मिलाते हैं। सुनते हैं, कलकत्ते में कुछ लोग इसमें साँप तक की चरबी मिलाते हैं।

पनीर—यह भी दूध से तैयार किया जाता है और बहुत बलवर्द्धक होता है।

वनस्पतियों से प्राप्त होनेवाले खाद्य-पदार्थ।

वनस्पतियों में प्रोटेड और चरबी कम होती है; पर कारबो-हाइड्रेट, एक प्रकार का (वनस्पति का) तेजाब, नमक और पानी बहुत होता है।

गेहूँ—अच्छे गेहूँ का खालिस आटा रंग में सफेद होता है और उसमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। आटा बेचनेवाले अपने लाभ के लिये उसमें आलू, मिट्टी अथवा ज्वार, बाजरे आदि निकृष्ट जाति के अनाजों का आटा मिला देते हैं। भारत में इससे प्रधानतः रोटी या पूरी बनाई जाती है और विलायत में अधिकतर बिस्कुट तैयार किया जाता है। विलायती बिस्कुट में अंडा भी मिला होता है; पर बिना अंडे की मिलावट के भी बिस्कुट बन सकता है। इसके अतिरिक्त साधारण आटे की सेवँई और उसमें खमीर उठा कर डबल या पाव-रोटी भी बनाई जाती है।

ज्वार—इसका आटा स्वाद में गेहूँ से कम होता और देर में पचता है।

बाजरा—यह बलवर्द्धक तो अवश्य है पर खुश्क होता और देर में पचता है।

मटर और मोठ—यद्यपि और दालों की अपेक्षा इनकी दालें देर में पचती हैं तथापि जो लोग मांस नहीं खाते उनके लिये यह बहुत लाभदायक हैं; क्योंकि इनमें प्रोटेड अधिक होता है। इसलिये जहाँ तक हो सके मटर, मोठ, चने और उर्द आदि का व्यवहार करना चाहिए। दाल के अतिरिक्त इनकी बड़ियां, पकौड़ियां और कई तरह के दूसरे पकवान बनते हैं और उन सभी रूपों में उन्हें खाना गुणकारक होता है।

आलू—इसमें प्रोटेड तो कम होता है पर एक प्रकार का रस होता है जो आरोग्यता के लिये बहुत लाभदायक है।

अरारोट और सागूदाना—इन दोनों चीजों के गुण प्रायः चावल के समान हैं।

नींबू—पाचन-शक्ति ठीक रखने और भूख बढ़ाने के लिये यह बहुत ही लाभदायक और उपयोगी है। भारतीय और यूनानी चिकित्सकों ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। गरमी के दिनों में इसका व्यवहार और भी लाभदायक होता है क्योंकि यह बहुत ठंढा होता है। यह भूख बढ़ाता और कबजियत दूर करता है। बुखार की दशा में यदि उसे चीर कर और इसके टुकड़ों पर नमक-मिर्च लगा कर उन्हें आग पर सेंक लिया जाय और तब चूसा जाय तो प्यास और हरारत कम होती है।

विशेष—हमारे देश में युरोप और अमेरिका आदि से अनेक प्रकार के भोजन टीन के डिब्बों में बन्द हो कर आते और बिकते हैं; और हमारे देश के लोग प्रायः उनका व्यवहार भी करते हैं। पर उनका व्यवहार आरोग्यता के लिये बहुत हानि-कारक होता है, क्योंकि ठंढे देशों में तो वह चीजें प्रायः ठीक दशा में रहती हैं; पर भारत सरीखे गरम देशों में आ कर यहाँ की गरमी के कारण भीतर ही भीतर सड़ने लगती हैं। जब वही सब चीजें हमें यहाँ ताजी मिल सकती हैं तो फिर हमें व्यर्थ बासी और सड़ी हुई चीजें न खानी चाहिए।

पकाने के बरतन।

मिट्टी के बरतनों में भोजन अच्छी तरह पकता और सोंधा हो जाता है; पर आरोग्यता की दृष्टि से उसमें पका हुआ भोजन हानिकारक होता है। विशेषतः ऐसी दशा में जब कि एक ही बरतन में बराबर नित्य कोई चीज पकाई जाय तो उससे और भी अधिक हानि होती है। क्योंकि नित्य वह पूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह से साफ नहीं किया जा सकता। हाँ, यदि मिट्टी का बरतन नित्य नया मिल जाय तो उससे कोई हानि नहीं होती।

इस देश में प्रायः देहात के लोग मिट्टी के बरतनों में ही दूध गरम करते हैं। दूध के ऐसे बरतन को नित्य गरम पानी से धोना चाहिए। लोहे की कड़ाही में गरम किया हुआ दूध अधिक बलवर्द्धक हो जाता है; क्योंकि उसमें कड़ाही के लोहे का भी कुछ अंश आ जाता है। तामचीनी के बरतनों में पका हुआ भोजन स्वास्थ्य के लिये तो हानिकारक नहीं होता पर वह बरतन प्रायः मँहगे पड़ते हैं। पीतल और ताँबे आदि धातु के बरतन भोजन बनाने के लिये सब से अच्छे हैं। खाने पीने आदि की चीजों में यदि खटाई न पड़ी हो तो वे ताँबे या पीतल आदि के बरतनों में रह कर और भी लाभदायक हो जाते हैं। पर यदि उनमें खटाई हो तो उन्हें ऐसे बरतनों में न रखना चाहिए। अगर घी पीतल के बरतन में रखा जायगा तो उसके किनारों पर और तह में हरा रंग जम जायगा। यह रंग विष है और जितना अधिक खाया जायगा उतना ही हानिकारक होगा। इसके विष होने की सब से अच्छी परीक्षा यह है कि पीतल या ताँबे के किसी बरतन को माँज कर देख लो कि वह कितना साफ है और तब उसमें घी गरम करो। गरम होने के बाद घी दूसरे बरतन में उलट कर पहले बरतन को फिर देखो कि वह पहले की अपेक्षा कितना अधिक साफ हो गया है। इससे सिद्ध हो जायगा कि उस बरतन का बहुत सा कसाव घी में चला गया है और वही कसाव विषाक्त और हानिकारक है।

चटनी, अचार, मुरब्बे आदि।

इस देश में लोग भोजन के साथ तरह तरह की चटनियाँ, अचार और मुरब्बे आदि खाते हैं। ये सब चीजें सदा स्वादिष्ट और बहुधा गुणकारक हुआ करती हैं। विशेषतः गरमी के दिनों में चटनी खाना बहुत लाभदायक होता है। चटनी मीठी भी होती है और नमकीन भी।

अचार यहाँ नीबू, आम, केले, लिसोड़े, कटहर, आलू, गन्ने, अरुई, गाजर, बैंगन आदि अनेक चीजों के डाले जाते हैं। अचार तीन प्रकार के होते हैं,—पानी के, तेल के और मीठे या चाशनी के। पर सभी अचार तीनों प्रकार के नहीं हो सकते और अधिकांश तेल के होते हैं। हाँ, आम के अचार तीनों प्रकार के होते हैं। कुछ लोग अचारों में राई नहीं डालते। पर राई डालना बहुत आवश्यक है क्योंकि वह बहुत पाचक होती है और पित्त को बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त सिरके का भी अचार होता है। सिरके में किसी चीज के डालने से ही उसका अचार तैयार हो जाता है। सिरके में डाल कर प्रायः प्याज, किशमिश, छोहारे, आलू, मूली, और ककड़ी आदि के अचार तैयार किए जाते हैं। सिरके के अचार औरों की अपेक्षा अधिक पाचक होते हैं।

मुरब्बे भी बहुत सी चीजों के बनाए जाते हैं जिनमें से आम, सेब, नासपाती, आँवला, पेठा आदि मुख्य हैं। जिस चीज का मुरब्बा बनाना होता है उसे उबाल कर चाशनी में डाल देते और कई दिनों तक पड़ा रहने देते हैं। इस प्रकार मुरब्बा तैयार हो जाता है।

चाय और कहवा।

आजकल इस देश में चाय पीने का रवाज दिन पर दिन बढ़ता जाता है। गरमी के दिनों में तो चाय न पीनी चाहिए पर जाड़े के दिनों में यदि सावधानतापूर्वक उसका व्यवहार किया जाय तो वह लाभदायक हो सकती है। चाय बाजार में कई तरह की होती है। एक तो बढ़िया और असली चाय जिसकी पत्तियां बहुत सुगन्धित और कोमल होती हैं। दूसरी वह चाय जो असली चाय में से बचे हुए कूड़े करकट से तैयार की जाती है। और तीसरे नकली चाय जो या तो रद्दी समझ कर फेंकी हुई पत्तियों से तैयार की जाती है और या एक बार व्यवहार की हुई चाय से। प्रायः देखा गया है कि साहबों के बावर्ची उबली और व्यवहार की हुई चाय सुखा कर इकट्ठी करते और बेच देते हैं। बाजार में बनियों के यहाँ पुड़ियों में बँधी हुई जो चाय बिकती है वह प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी ही हुआ करती है। अधिक चाय पीने से बदहजमी हो जाती है। पर थोड़ी चाय पीने से शरीर में फुरती आती है। इस देश में चाय का अधिक व्यवहार करना बहुत हानिकारक होता है।

चाय की अपेक्षा कहवा अधिक उत्तम और बलवर्द्धक है। पर इसका व्यवहार भी नित्य नहीं करना चाहिए नहीं तो उन्निद्र तथा और कई प्रकार के रोगों की सम्भावना होगी। हाँ, आवश्यकतानुसार पीना अवश्य लाभदायक है।

नशे की चीजें।

प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति में किसी न किसी प्रकार के नशे का व्यवहार हुआ करता है। पर भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहाँ प्रायः, सभी देशों के नशों का कुछ न कुछ व्यवहार अवश्य होता है। यहाँ के निवासी शराब, ताड़ी, गाँजा, चरस, भाँग और तंबाकू आदि पीते तथा अफीम, कोकेन और सुरती आदि खाते हैं। पर जैसा कि सब लोग जानते हैं, नशे का शरीर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। नशे का व्यवहार कभी नहीं करना चाहिए। हाँ, यदि किसी रोग आदि में कोई अच्छा वैद्य या डाकृर कुछ समय के लिये किसी विशेष प्रकार से किसी नशे का व्यवहार करने की सम्मति दे तो कोई हानि नहीं है।

अफीम—पहले इसका व्यवहार चीन में बहुत अधिकता से होता था पर आजकल भारत के सभी प्रान्तों और विशेषतः राजपूताने में यह बहुत प्रचलित हो गई है। प्रायः सभी देशों में स्त्रियां अपने बच्चों को सुलाने के लिये थोड़ी अफीम दिया करती हैं; पर यह प्रथा बहुत बुरी है और बालक के स्वास्थ्य पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अकारण और केवल नशे के लिये अफीम खाने से दो दोष उत्पन्न होते हैं। एक तो दिमाग की कमजोरी और दूसरे पित्त की बीमारी और कब्ज़ियत। कभी कभी इसके व्यवहार से कब्ज़ियत तो यहाँ तक बढ़ जाती है कि यदि अफीम खानेवाले को जमालगोटे का पूरा एक बीज भी खिला दिया जाय तो उसे एक दस्त बहुत कठिनता से होता है।

शराब—युरोप आदि ठंढे देशों में इसका व्यवहार अधिकता से होता है। हमारे देश में जिस प्रकार किसी आए गए की खातिर पान तंबाकू आदि से की जाती है उसी प्रकार उन देशों में शराब से खातिर की जाती है। अगर जाड़े के दिनों में शराब का व्यवहार थोड़ी मात्रा में किया जाय तो उससे शरीर में गरमी रहती, भूख बढ़ती और ताकत आती है। पर यह बात केवल ठंढे देशों के लिये है। भारत सरीखे गरम देशों में इसका व्यवहार करना अपने शरीर और स्वास्थ्य को नष्ट करना है। अधिक शराब पीने से जिगर बढ़ जाता है, जलोदर हो जाता है, सारे शरीर में लकवा मार जाता है, दिमाग खराब हो जाता है और आदमी बहुत जल्दी बुड्ढा हो जाता है। ठंढे मुल्कों के पागलखानों में प्रति सैकड़े ७५ पागल शराबी ही होते हैं।

भाँग—इस देश में भाँग का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है और लोगों का विश्वास है कि शिवजी को भाँग बहुत प्रिय है। यह बादाम, इलायची आदि के साथ पीस कर और दूध या शरबत में मिला कर पी जाती है। इससे माजून या फंकी भी बनती है। यदि भाँग का व्यवहार थोड़ी मात्रा में किया जाय तो भूख बढ़ती है और मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं। पर अधिक मात्रा में यह बहुत हानिकारक होती है।

भोजन-सम्बन्धी कुछ फुटकर बातें।

यदि भोजन अधिक किया जाय तो कै, कब्ज़ियत, दस्त या बुखार हो सकता है। यदि भोजन अच्छा और पूरा मिले पर परिश्रम यथेष्ट न किया जाय तो शरीर बेडौल और मोटा हो जाता है। प्रायः दूकानदार और सेठ आदि ऐसे ही होते हैं। ऐसे लोगों को कभी कभी गठिया भी हो जाती है। थोड़ा और खराब भोजन करने से मनुष्य दुबला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रैार कमजोर हो जाता है ग्रैार जल्दी मर जाता है। यदि मनुष्य को तरकारियाँ या ताजे फल यथेष्ट न मिलें तो उसके मसूड़े फूल जाते हैं ग्रैार रक्त दूषित, हलके नीले रंग का ग्रैार तेजाब की खासियतवाला हो जाता है।

गरमी के दिनों में घी, मांस ग्रादि का व्यवहार कम कर देना चाहिए ग्रैार दूध, दही, मट्ठे ग्रादि का व्यवहार खूब करना चाहिए। जाड़े के दिनों में इससे विपरीत ग्राचरण होना चाहिए। ग्रर्थात् उन दिनों घी, तैल, मांस ग्रैार ग्रनेक प्रकार के पकवानों का ग्रधिकता से व्यवहार करना चाहिए।

मांस खानेवालों को ग्रपने भोजन में बहुत सावधानता रखनी चाहिए। बहुत बड़े या बीमार जानवर का मांस खाने से ग्राँतों में एक प्रकार का कई गज लम्बा ग्रैार पैान इंच मोटा सफेद कीड़ा पड़ जाता है। बीमार बकरी का मांस खाने से जिगर में कीड़ा पड़ जाता है। बीमार मछली खाने से ग्राँतों में एक ग्रैार प्रकार का कीड़ा पड़ जाता है जो ग्रादमी का खून पीते पीते उसे बहुत दुबला कर देता ग्रैार ग्रन्त में मार डालता है।

सड़े हुए ग्रंडे खाने से दस्त ग्रैार कै की बीमारी हो जाती है। ताजे ग्रैार सड़े हुए ग्रंडे की पहचान यह है कि ग्रंडा पानी में छोड़ दिया जाय। यदि वह ताजा होगा तो पानी में नीचे बैठ जायगा ग्रैार यदि उसका कुछ भाग भी सड़ा होगा तो वह पानी पर तैरता रहेगा।

गेहूँ का ग्राटा यदि बहुत दिनों तक रखा रहे तो उसमें कई तरह के कीड़े या घुन लग जाते हैं। इसी प्रकार चावल में भी कई तरह के घुन ग्रैार कीड़े पड़ जाते हैं। ऐसी चीजें कभी खानी न चाहिए क्योंकि उनसे तरह तरह के रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार ग्रैार भी सब तरह की बासी या गन्दी चीजें बहुत हानिकारक होती हैं ग्रैार उनके व्यवहार से हैजे ग्रादि भयानक रोगों की सम्भावना होती है।

कविता ग्रैार मानव-जाति।

[लेखक—श्रीयुक्त लाला भगवानदीन जी, सम्पादक लक्ष्मी, काशी।]

विचारशील सज्जनों का कथन है कि कविता ग्रैार मानव-जाति का सम्बन्ध ग्रनादि है। मनुष्य के सिवा कोई ग्रन्य प्राणी न तो कविता कर सकता है ग्रैार न समझ ही सकता है। संसार भर में कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें थोड़ी बहुत कविता न हो। कोई प्रान्तिक या स्थानीय भाषा भी ऐसी न मिलेगी जिसमें कुछ न कुछ कविता न हो। ग्रब तो लोग यहाँ तक दावा करते हैं कि जिस भाषा में कविता नहीं वह भाषा 'भाषा' कहलाने के योग्य ही नहीं। जब से मानव-जाति की उत्पत्ति हुई तब से ग्राज तक जहाँ जो भाषा बोली गई, उसकी कविता ग्रब भी मैाजूद पाई जाती है। सब से प्राचीनतम ग्रंथ वेदों का भी बड़ा ग्रंश कविता ही में पाया जाता है। संसार की जंगली से जंगली, छोटी से छोटी, ग्रैार ग्रसभ्य से ग्रसभ्य मानव-जाति के लोग भी ग्रपने उत्सवों में कुछ कविता गा गा कर उत्सव का ग्रानन्द बढ़ाते थे ग्रैार बढ़ाते हैं; मानव-जाति का इतिहास यह बात बता रहा है।

मानव-जाति में यह प्राकृतिक स्वभाव पाया जाता है कि वह कभी कभी उत्सव मनाना चाहती है। उत्सव के समय कोई एक व्यक्ति स्वयं ग्रानन्द का ग्रनुभव करता है ग्रैार तब वह ग्रपनी भाषा की कविता में कुछ गान गा कर ग्रपने हृदय के ग्रानन्द की तरंगों ग्रैार झकोरों से दूसरों के हृदयों को हिला हिला कर उन सब को भी ग्रानन्द के ग्रनुभव के लिये उत्तेजित करता है। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है कि समस्त मंडली उस गान से प्रभावित हो कर ग्रानन्दित हो उठती है। ये प्रभाव ग्रनेक प्रकार के होते हैं; परन्तु ग्रानन्द-रस के मर्मज्ञों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने इसके बड़े बड़े केवल नौ विभाग किए हैं। उन्हीं को 'नव-रस' कहा जाता है।

स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु) ने रसों की संख्या बढ़ा कर १३ तक पहुँचा दी है; पर हमें उनके मत से सहमत होने में संकोच है। हमारा मत है कि रसों की संख्या बढ़ नहीं सकती, वरन् घट सकती है। हमारा यह ब्रह्मांड जिसमें हम पैदा हुए हैं और रहते सहते हैं, बड़े बड़े पाँच तत्वों से बना है। अतः हमें पाँच ही प्रकार से आनन्द का अनुभव होना भी सम्भव है। इसलिये हम पाँच ही रसों को प्रधान मान कर अपना काम चला सकते हैं। शेष रस उन्हीं पाँचों में से किसी न किसी के अंतर्गत आ जायँगे।

और भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो कविता का सम्बन्ध केवल मानव प्रकृति से ही है, और मानव प्रकृति में तीन ही वस्तुओं की प्रधानता है—अर्थात् वात, पित्त और कफ। इसलिये प्रधानतः तीन ही रसों से इस मानव जाति के आनन्द की वृद्धि का काम चल सकता है। हमारी बुद्धि के अनुसार कविता के नौ रस मनुष्य की तीन प्रकृतियों के इस तरह अनुकूल हैं:—

(१) वात प्रकृति के अनुकूल—शृंगार, अद्भुत और हास्य।

(२) पित्त प्रकृति के अनुकूल—वीर, रौद्र और भयानक।

(३) कफ प्रकृति के अनुकूल—शान्त, करुणा और वीभत्स।

इस प्रकार मुख्य तीन ही रसों अर्थात् शृंगार, वीर और शान्त को मान कर शेष दो दो को उनके अनुगामी वा भिन्न भिन्न अंतर्विभाग मान लेने से भी मानव जाति का काम चल सकता है। इस प्रकार रसों की गणना नौ से कम तो हो सकती है, पर नौ से अधिक मानना हमें युक्ति-संगत नहीं जान पड़ता। सम्भव है, हमाराय ह विचार भ्रमात्मक हो। योग्य पाठकों को अपने अपने लिये स्वयं विचार करना चाहिए। हमारा यह आग्रह नहीं है कि सब कोई ऐसा मान ही लें।

किसी भाषा की कविता पर आदि से अंत तक विचारपूर्वक दृष्टि डालने से स्पष्ट विदित होता है कि कविता मानव जाति के लिये बड़ी उपकारी वस्तु है। वह प्रकृति के अनगढ़ और भयंकर दृश्यों को भी लोचनाभिराम रूप दे कर हमारे सम्मुख उपस्थित करती है। शुष्क और नीरस वस्तुओं को भी सरस और कोमल रूप दे कर वह हमारे सामने पेश करती है और कटुक तथा तीक्ष्ण वस्तुओं को भी सुन्दर और मधुर बना देती है। उदाहरण लीजिए—क्या पर्पट मैदान, पथरीले पहाड़, भयंकर और हिंस्र जीवों से भरे जंगल कभी सुखदायक हो सकते हैं? परन्तु जब कोई कवि इन्हीं वस्तुओं का वर्णन कविता में करता है तब वह अपनी बुद्धि के बल से तथा शब्दों की योजना से इन्हीं को ऐसा रूप दे देता है कि उनकी भयंकरता काफूर हो जाती है और वही वस्तुएँ नयनाभिराम मालूम होने लगती हैं। भयंकर सामुद्रिक तूफान, अनावृष्टि वा अतिवृष्टि तथा अकालादि के दृश्य कभी मनोहर नहीं हो सकते। परन्तु इन्हीं बातों को जब कोई कवि वर्णन करेगा तो अपनी काव्य-शक्ति से वह इन्हीं दृश्यों को ऐसा मनोमुग्धकारी बना देगा कि पढ़नेवाले को एक प्रकार का विलक्षण आनन्द प्राप्त होगा। स्वजनों के मृतक देहों का अन्तिम संस्कार वा मरघट का दृश्य कभी सुन्दर नहीं कहा जा सकता, पर कवियों की कारीगरी से ये दृश्य भी भले मालूम होने लगते हैं। वसंत के पतझड़ से लुंड पिंड बने हुए पलाश और शाल वृक्षों से पूरित वन, ग्रीष्म ऋतु से संतप्त पहाड़, सूखे सरोवर, प्यास-भूख से व्याकुल वन जंतु, दावानल से जलते हुए जंगल और पहाड़, अथवा श्री हनुमानजी द्वारा विनष्ट की हुई अशोक वाटिका या उन्हीं द्वारा किए हुए लंकादहन के दृश्य प्रत्यक्ष देख कर क्या कोई मनुष्य आनन्द का अनुभव कर सकता है? परन्तु यह कविता ही है जो ऐसे नीरस, शुष्क,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयंकर और प्रलयकारी दृश्यों को भी ऐसा सुन्दर रूप रंग दे देती है जिससे मानव जाति उन दृश्यों को बार बार देखने को लालायित होती है। प्रह्लाद को विष दिया जाना, खौलते तेल के कड़ाह में डाला जाना, सर्पों से डसवाया जाना, अग्नि में झोंका जाना, हाथ पैर बाँध कर पहाड़ की चोटी से समुद्र की ओर लुढ़काया जाना तथा रण-खेतों में तोपों की गड़गड़ाहट और तलवारों तथा तीरों से असंख्य जनसंहार के दृश्य क्या आनन्दप्रद हो सकते हैं? परन्तु कविता की कृपा से, देखिए, यही दृश्य कैसे सुन्दर दिखाई देते हैं कि बार बार देख कर भी जी नहीं भरता।

जब ऐसे भयंकर, नीरस, और शुष्क विषयों को ले कर कविता उन्हें सुन्दर, मनोहर और सरस बना देती है तब संसार में जो वस्तुएँ स्वभावतः सरस, मधुर और मनोहर हैं उन्हें वह कहाँ तक न बढ़ा देगी, इसका अनुमान पाठक लोग स्वयं कर लें। संसार में यदि कोई वस्तु सरस, मनोहर, मधुर और कोमल है तो वह स्त्री-प्रकृति, स्त्री-स्वभाव वा स्त्री-जाति है। इसी कारण संसार भर की कविता में जितना अधिक और जितना मनोहर वर्णन स्त्री-जाति का है उतना दूसरी चीज़ का नहीं। वह चाहे जिस भाषा की हो, संसार भर की कविता का यही हाल है।

आजकल के नवशिक्षित युवक हिन्दी भाषा की कविता पर यह दोषारोपण करते हैं कि इस भाषा की कविता में शृंगार रस का बाहुल्य है। इस दोषारोपण के समय वे यह बात भूल सी जाते हैं कि इस जगत् में स्त्री-प्रकृति ही की प्रधानता है। कोमलता, सरसता, माधुर्य्य, और मनोहरता आदि गुण स्त्री-प्रकृति में ही पाए जाते हैं। चीनी, जापानी, फारसी, अरबी, इबरानी इत्यादि एशियाई भाषाओं की कविता हो, चाहे अँगरेजी, फ्रान्सीसी, जर्मन, लैटिन, ग्रीक, इत्यादि युरोपीय भाषाओं की कविता हो, सब को विचारपूर्वक देखियेगा तो मालूम हो जायगा कि सब की वही एक सी दशा है। फिर बेचारी हिन्दी ही पर यह लाञ्छन क्यों लगाया जाता है? इससे उपर्युक्त दोषारोपियों को हमारी समझ में या तो मानव हृदय-हीन समझना चाहिए या यह समझना चाहिए कि उन्हें मानव प्रकृति का पूरा ज्ञान वा अनुभव ही नहीं है।

कविता द्वारा संसार के ऐसे अनेक कार्य हुए हैं जो अन्य किसी प्रकार से न हो सकते थे। कविता द्वारा ही ईश्वर प्रार्थना हुई है और अब भी बहुधा होती है। कविता द्वारा ही देवताओं की स्तुति कर के उन्हें प्रसन्न किया गया है। कवि चंद ने कविता द्वारा ही संयोगिता के प्रेम-पाश में बँधे हुए विलासी पृथ्वीराज को पुनः ज़नानखाने से बाहर निकाल कर राज-कार्य्य में लगाया था। बिहारी कवि ने एक मुग्धा नायिका के प्रेम में फँसे हुए अपने आश्रय-दाता राजा को कविता द्वारा ही सचेत किया था। राजा पृथ्वीसिंह ने कविता द्वारा ही महाराणा प्रताप को निज पथ से विचलित होने से बचाया था। केशव कवि ने कविता के द्वारा ही अकबर से ओड़छा नरेश पर किया हुआ एक करोड़ का जुरमाना माफ कराया था। प्रवीणराय पातुरी ने काव्यचातुरी के ही द्वारा अकबर जैसे विलासी सम्राट् से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की थी और भूषण कवि ने भी कविता के ही द्वारा शिवा जी से बहुत कुछ जातीय कार्य्य कराया था। ये उपर्युक्त घटनाएं ऐतिहासिक मानी जाती हैं, कल्पित नहीं। वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी, कबीर इत्यादि कवि अपनी अपनी कविता द्वारा ही अमर हो कर अब तक संसार का बड़ा काम कर रहे हैं। यही हाल सब देशों के अच्छे अच्छे कवियों ने किया है और अब तक कर रहे हैं। जो काम बड़े बड़े सम्राट् नहीं करा सकते, वह काम एक कवि अपनी कविता द्वारा करा सकता है।

किसी देश की कोई मानव जाति ऐसी नहीं है जो संगीत से अनभिज्ञ हो, उसका आदर न करती हो और उससे आनन्द न उठाती हो। विचार से देखिए, संगीत क्या है? क्या आप कह सकते हैं कि कविता के सिवा संगीत कोई अन्य वस्तु भी है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीतवाली कविता का प्रभाव मानव जाति के सिवा पशु, पक्षी, कीट पतंगादि पर भी पड़ता हुआ देखा गया है। बिना संगीत के मानव जाति का कोई उत्सव पूरा नहीं हो सकता। बिना उत्सव मनाए मानव जाति जीवित नहीं रह सकती। इससे बिना घोर विचार तथा बिना कष्ट-कल्पना के यह फल निकाला जा सकता है कि अगर कविता न हो तो मानव जाति का जीवन बिलकुल निरानन्द हो कर नष्ट भ्रष्ट हो सकता है। मानव हृदय बिलकुल नीरस और शुष्क हो जाने से मनुष्य केवल यंत्रवत् काम करनेवाले ही बन जायँ। इतना ही नहीं वरन् हमारा मत तो यह है कि अगर अब भी संसार भर के काव्य ग्रंथ जहाजों में भर भर कर समुद्र में डुबो दिए जायँ, संसार भर के कवियों की काव्य शक्ति छीन ली जाय और केवल २०, २५ वर्ष तक संसार भर में कोई कवि पैदा न हो तो सारी की सारी मानव सृष्टि व्याकुल हो उठे और आनन्द रहित होने के कारण जड़वत् हो जाय।

बड़े बड़े वैज्ञानिकों और प्रकृतिज्ञों ने यह सिद्धान्त ठहराया है कि 'प्रेम' ही सृष्टि का मूल है। और प्रेमी संगीत के आश्रित है। कोई सच्चा प्रेमी ऐसा न मिलेगा जिसे किसी न किसी समय संगीत प्रिय न लगा हो अथवा जिसने स्वयं कभी कुछ न कुछ गाया न हो। संगीत क्या है? केवल कविता। अनुभव कर के देखिए तो आपको मालूम होगा कि प्रत्येक युवक जब वह पहले पहल किसी प्रेमिका के प्रेमपाश में फँसता है तब वह, चाहे शिक्षित हो वा अशिक्षित, नागरिक हो अथवा देहाती, ऊँच हो अथवा नीच, समय समय पर कुछ कविता गा गा कर अपने मन के भाव अपनी प्रेमिका को सुनाता और उसे अपने अनुकूल करने की चेष्टा करता है। मनुष्य की बात ही क्या कहें, कपोत, पंडुक और मयूरादि पक्षी और बकरे, घोड़े, बैल, गदहे और सुअर इत्यादि पशु भी अपनी अपनी मादा को अपने अनुकूल करने के लिये कुछ मधुर शब्द उच्चारण करते ह (जो शायद उनकी भाषा की संगीतमय कविता ही है)। इन प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा यह बात स्पष्ट विदित होती है कि कविता और संगीत एक वस्तु है, संगीत प्रेम का बड़ा भारी सहायक है और प्रेम ही सारी सृष्टि का मूल मंत्र है। अतएव नतीजा यह निकलता है कि कविता सृष्टि के अनेक कारणों में से एक प्रधान कारण है। यदि कविता न हो तो सृष्टि कार्य्य में कुछ गड़बड़ी अवश्य हो सकती है। इससे अधिक कविता का महत्त्व हम क्या दरसावें। ऐसी महत्त्वमयी वस्तु के प्रति जिस मनुष्य का रुझान न हो उसे मनुष्य कहना चाहिए या और कुछ सो हम नहीं जानते।

आजकल के नवशिक्षित युवकों में से बहुतों को हम देखते हैं कि वे निज मातृ-भाषा हिन्दी की कविता से घृणा करते हैं। अनेक ऐसे देखे जाते हैं जो उसे एक व्यर्थ वस्तु समझते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो पढ़ने और समझने की शक्ति रखते हुए भी उसे अश्लील कह कर छोड़ देते हैं। आज-कल कुछ नवयुवक ऐसे भी देखे जाते हैं जो कवि कहलाने की कामना से कविता की पूरी सामग्री न रखते हुए भी अपनी धृष्टता के वश कलम घसीट घसीट कर पद्य लिख रहे हैं और जो कोई उन्हें कवि नहीं मानता उससे अत्यंत असंतुष्ट होते हैं और कदाचित् लड़ने के लिये भी तैयार हो जाते हैं। इसलिये हम अपने होनहार युवकों में से उपर्युक्त सब प्रकार के युवकों से सप्रेम अनुरोध करते हैं कि वे प्राचीन काव्य का अध्ययन अवश्य करें, अपना अनुभव बढ़ावें और तदनन्तर यदि कवि बनने वा कहलाने की रुचि हो तो भाषा, व्याकरण, कोश, अलंकार इत्यादि का पूर्ण अभ्यास और परिज्ञान प्राप्त कर के किसी गुरु की सेवा करते हुए कविता रचने का अभ्यास करें। कविता रचना हँसी खेल नहीं है। प्राचीन कवियों के ग्रंथ पढ़े और मनन किए बिना यदि कोई चाहे कि मैं कवि हो जाऊँ वा कविता समझने लगूँ तो यह बात केवल कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा कुछ दिनों का अनुभव हमें यह भी बतला रहा है कि समय के हेर फेर से हमारे देश-निवासी जनों की रुचि कविता के पठन पाठन की ओर से कम होती जाती है जिसका प्रभाव यह हो रहा है कि लोगों में शुद्ध रसिकता का अभाव हो चला है। शुद्ध रसिकता के अभाव से उत्सवों में गान वाद्य का रिवाज घटता जाता है और इसी कारण आनन्द की मात्रा भी कम होती जाती है। बड़े बूढ़ों के मुँह से हमने यह बात कई बार सुनी है कि फलाना उत्सव या फलाना मेला वा त्यौहार अब रुपए में चार आना भी नहीं रह गया है। इस शुद्ध रसिकता के ह्रास से बहुत से लोग ऐसे देखे जाते हैं जो रात दिन सिवा मशीन की तरह काम करने के और कुछ जानने ही नहीं! तेली के बैल बने हुए अपने कार्य-क्षेत्र को ही सारा संसार समझ रहे हैं। ऊँचे और उदार विचारों से उनका परिचय नहीं, सहृदयता का वे नाम नहीं जानते, प्रेम और स्नेह किस चिड़िया का नाम है इसका वे स्वप्न तक नहीं नहीं देखते। इससे हानि क्या हो रही है? हमारी हिन्दू जाति में स्वार्थपरता बढ़ती जा रही है और आनन्द की मात्रा घटती जा रही है। आनन्द की मात्रा घटने से निरुत्साह बढ़ रहा है, निरुत्साह हमारी वीरता का ह्रास कर रहा है, हम निर्बल और तेजहीन हो रहे हैं। शक्तिहीनता कितनी बुरी वस्तु है इसे समझाने की जरूरत नहीं जान पड़ती।

कविता के पठन पाठन की ओर से हमारी रुचि कम हो रही है, यह बात हम अपने अनुभव से तथा कुछ और प्रमाणों से भी कह सकते हैं। अपने लड़कपन में हम देखते थे कि छोटे छोटे ग्रामों के लोग भी कुछ न कुछ कविता के पठन पाठन का अभ्यास किया करते थे। प्रत्येक युवक कुछ अच्छे अच्छे कवियों की चुनी हुई कविताएं कंठस्थ रखता था और समय समय पर उससे स्वयं आनन्द उठाता था और औरों का आनन्द बढ़ाता था। पर अब लगभग ४० वर्ष बाद देखते हैं तो ग्रामों की तो बात ही क्या, अच्छे अच्छे नगरों में भी कोई ऐसा युवक नहीं मिलता जिसे कुछ अच्छी कविता कंठस्थ हो। कंठस्थ होने की बात जाने दीजिए, अब के युवक इतना भी नहीं जानते कि कविता के कौन कौन से ग्रन्थ किस कवि ने रचे हैं। हमारे युवकों की यह दशा हमारे मत से शोचनीय अवश्य है।

दूसरा प्रमाण यह है कि इधर ४० वर्षों में जितने प्राचीन हिन्दी कविता के ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जिनका पाठ शुद्ध और प्रामाणिक हो। प्रकाशकों और सम्पादकों ने उनकी शुद्धता की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया? वे जानते हैं कि इन ग्रंथों के समझनेवाले ही नहीं रहे, अशुद्धियां कौन निकालेगा। बस झगड़ा खतम।

इन सब बातों के लिखने से हमारा तात्पर्य यह है कि हमारे देश के सुशिक्षित कहलानेवाले लोग कविता का महत्व समझें और मानव-जाति से उसका अनादि, अनिवार्य और प्रभावशाली सम्बन्ध समझ कर उसके सुधार की चेष्टा करें। अपना जातीय महत्व स्थायी रखने के लिये क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हिन्दी के प्रचीन काव्य ग्रंथों के शुद्ध और उत्तम रूप रंग के अच्छे अच्छे संस्करण निकाले जायँ। हम तो समझते हैं कि प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी, हिन्दीहितैषी और हिन्दीभाषी का यह मुख्य काम होना चाहिए कि वह इस ओर ध्यान दे।

आजकल अनेक ग्रंथ-प्रकाशक संस्थाओं ने भी जन्म लिया है और वे कुछ काम भी कर रही हैं। हम उनके काम की प्रशंसा करते हैं। पर साथ ही नम्रतापूर्वक यह भी निवेदन कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि वे केवल नवीन ग्रंथों ही की ओर अपना सारा ध्यान न लगा दें, जरा अपने घर के पुराने रत्नों की ओर भी दया दृष्टि से देखें और उन्हें नवीन जिला दे कर सुन्दर आबताब से सर्व-साधारण के सम्मुख उपस्थित करने की चेष्टा को भी अपना एक छोटा मोटा कर्तव्य समझें।

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस (रामायण) एक ऐसा ग्रंथ है जिसका प्रचार घर घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रति वर्ष उसकी लाखों प्रतियां खपती हैं, उसके अनेक प्रकार के संस्करण प्रचलित हैं, अनेक टीकाएं भी हुई हैं, किन्तु हमारे देखने में एक भी प्रति ऐसी नहीं आई जो सर्वतोभाव शुद्ध और निर्दोष हो। किसी में बेहद क्षेपक घुसड़े हुए हैं, किसी की टीका अंड वंड है, किसी का पाठ भ्रष्ट है और किसी में मनमाना हेरफेर है। क्या कोई हिन्दी-प्रेमी दावे के साथ यह कह सकता है कि उसने रामायण की कोई ऐसी प्रति (छपी हुई) देखी है या उसके पास है जिसका पाठ और जिसकी टीका शुद्ध और प्रामाणिक है। हम कहते हैं कि कोई ऐसा नहीं कह सकता। क्या इससे यह बात नहीं प्रकट होती कि हिन्दीवाले अपने प्राचीन काव्य-ग्रन्थों की उचित रक्षा नहीं कर सकते। क्या अन्य भाषा के किसी प्राचीन ग्रन्थ में भी आपने इतनी अशुद्धियां देखी हैं जितनी आजकल के छपे हुए तुलसी, सूर, जायसी, केशव, पद्माकर, भिखारी, मतिराम, देव और भूषण इत्यादि के ग्रन्थों में आप देख रहे हैं। इन सब बातों से यही प्रमाणित होता है कि आजकल हिन्दूसमाज की रुचि कविता की ओर बहुत कम है अथवा है तो नहीं के बराबर है।

हम अपने माननीय हिन्दी-हितैषियों से सप्रेम निवेदन करते हैं कि जो कुछ हुआ सो हुआ, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। अब भी इस ओर ध्यान दीजिए और उचित्त उद्योग कर के हिन्दी भाषा की प्राचीन कविता के उद्धार का उपाय सोचिए। हम यह नहीं कहते कि नवीन विषयों की ओर से ध्यान हटा कर ऐसा किया जाय। नहीं नहीं, ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए। नवीन विषयों पर देश के आवश्यकतानुसार अवश्य ग्रन्थ लिखे जायँ और उनका खूब प्रचार किया जाय। हमारा निवेदन केवल इतना ही है कि अपने घर के प्रचीन रत्नों को सड़ने गलने से बचा कर उनमें भी नवीन जिला दी जाय और अपने प्राचीन उपकारी को न भुला कर कृतघ्नता के दोष से हिन्दू जाति की रक्षा की जाय। यदि कोई संस्था प्राचीन हिन्दी काव्य-ग्रन्थों के संशोधन और प्रकाशन का काम उठावे तो हम आनन्दपूर्वक यथाशक्ति उसे सहायता देने के लिये तैयार हैं और अपने कई एक और मित्रों को भी तैयार कर सकते हैं।

आशा है हमारे इस निवेदन पर हिन्दी काव्य के प्रेमी लोग अवश्य ध्यान देंगे।

भयंकर पाधे।



साधारणतः वनस्पतियां बहुत ही उपयोगी और उत्तम समझी जाती हैं। उनसे मनुष्य को भोजन, औषध, वस्त्र तथा और अनेक आवश्यक पदार्थ मिला करते हैं। उनसे सांसारिक जीवों का बहुत उपकार होता और काम निकलता है। उनके दर्शन से आनन्द मिलता और स्पर्श से सुख होता है। पर अनेक पौधे, वृक्ष और वनस्पतियां आदि ऐसी भी हैं जिनका काम अनेक प्रकार के कीड़ों मकोड़ों आदि को पकड़ लेना अथवा आसपास से हो कर चलनेवाले दूसरे जीवों अथवा पशुओं को अनेक प्रकार से शारीरिक हानि पहुँचाना है। उनमें से कुछ पौधे आदि तो बहुत ही भयंकर होते हैं और जीवों को बहुत ही निर्दयतापूर्वक और व्यर्थ हानि और कष्ट पहुँचाते हैं।

वनस्पतियों की अनेक ऐसी जातियों का पता बहुत दिन पहले से लग चुका है जो नाइट्रोजन-युक्त खाद्य-पदार्थ पाने के लिये उड़ते हुए कीड़ों को पकड़ लेती हैं। कीड़े उनकी पत्तियों और कलियों आदि में फँस जाते हैं और बड़ी यात्ना से उनके प्राण ले कर पौधे उन्हें हजम कर जाते हैं। इस जाति की वनस्पतियां पकड़े हुए कीड़ों के प्राण तुरन्त नहीं ले लेतीं। एक प्रकार का पौधा सदा परदार कीड़ों को ही पकड़ा करता है। उसे अँगरेजी में डार्लिंगटोनिया (Darlingtonia) कहते हैं। इसकी पत्तियों के सिरों पर एक प्रकार का मधु होता है जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालच से उड़ती हुई मक्खियां जा कर उन पर बैठती हैं। मधु पत्तियों के ऊपर नहीं होता बल्कि एक पारदर्शी आवरण के अन्दर होता है। पत्ती के निचले भाग से मक्खी मधु तक पहुँचती है। ऊपर के पारदर्शी आवरण से प्रकाश पहुँचता रहता है; इसलिये जब वह मक्खी वहाँ से उड़ना चाहती है तो स्वभावतः ऊपर की ओर ही बढ़ती है। नीचेवाले जिस मार्ग से वह प्रवेश करती है वह उसकी छाया में पड़ जाने के कारण उसे दिखलाई नहीं पड़ता और वह ऊपर की ओर से निकलने का प्रयत्न करते करते मर जाती है। कुछ पौधे ऐसे भी हैं जिनमें एक प्रकार के जाल होते हैं और जिनमें फँस कर उड़नेवाले कीड़े मर जाते हैं। एक पौधे के फल में काँटे होते हैं जिनमें मक्खियों के पैर फँस जाते हैं और उन्हीं में फँसे फँसे उनका अन्त हो जाता है। पर यह कृत्य आकस्मिक होता है क्योंकि इस प्रकार मरी हुई मक्खियों से उस फलदार पौधे का किसी प्रकार का लाभ अथवा पोषण नहीं होता।

दक्षिण अमेरिका में एक प्रकार का पौधा होता है जिसके फलों में बड़े बड़े नुकीले काँटे होते हैं। ये काँटे पाँच छः इंच तक लम्बे होते हैं और विलक्षण रूप से अँकुड़े की तरह मुड़े हुए होते हैं। पशु आदि जब उस पौधे के पास से हो कर निकलते हैं तो वे भयंकर काँटे उनके शरीर में फँस कर उनका बहुत सा मांस निकाल लेते हैं। भैंसों को कभी कभी इन पौधों के कारण बड़े भयंकर घाव हो जाते हैं। जब ये काँटे किसी पशु के शरीर में फँस जाते हैं और वे आगे बढ़ने लगते हैं तो वह फल फट जाता है और उसमें के बीज जमीन पर गिर कर वैसे ही और अनेक नए पौधे उत्पन्न करते हैं।

दक्षिण अफ्रिका में इससे विलक्षण एक फलदार पौधा होता है। यह पौधा ऊपर की ओर नहीं बढ़ता बल्कि बहुत नीचे रहता और जमीन पर ही फैलता है। इसमें बड़े बड़े और नुकीले काँटेदार फल लगते हैं। नीचे फैले होने के कारण उन पर प्रायः भेड़ों, बकरियों और हिरनों आदि के पैर पड़ते हैं जिनमें नुकीले काँटे फँस जाते हैं। बेचारे जानवरों के लिये चलना फिरना तक कठिन हो जाता है और बहुधा इसी कारण वे शेरों और चीतों आदि के शिकार हो जाते हैं। यदि वे इन भयङ्कर जानवरों से बच गए तो भी उनके भयङ्कर घाव महीनों उन्हें कष्ट दिया करते हैं। इस सम्बन्ध में एक और बात बहुत विलक्षण है। जब कभी कोई शेर या चीता किसी ऐसी भेड़ या बकरी आदि को पा कर खाने लगता है तो वह भी उस फल के काँटों के दुष्ट प्रभाव से नहीं बच सकता। जब वह उनके पैर खाने लगता है तब उसमें के काँटे उसके मुँह में बड़े बड़े घाव कर देते हैं। पीड़ा के कारण वह अपना मुँह बिना हिलाए भी नहीं रह सकता और ज्यों ज्यों मुँह हिलाता है त्यों त्यों उसके घाव बढ़ते जाते हैं। फल यह होता है कि वह शेर या चीता कुछ खाने योग्य नहीं रह जाता और चल फिर भी नहीं सकता। एक ही स्थान पर वह बराबर बिना कुछ खाए पीए पड़ा रहता है, धीरे धीरे दुर्बल और अशक्त होता जाता है और अन्त में मर जाता है। इस प्रकार एक फल कई बकरियों और शेरों के प्राण ले लेता है।

इङ्गलैण्ड और फ्रान्स आदि में एक प्रकार का पौधा होता है जिस में बहुत ही मनोहर और चित्ताकर्षक चार पँखड़ियोंवाले फूल लगते हैं। इस फूल के नीचे का भाग कुछ खोखला होता है और नीचे डाली की ओर उसमें एक बहुत ही सुन्दर नली लगी रहती है। वह फूल इतना सुन्दर और मनोहर होता है कि बहुत से उड़नेवाले कीड़े पतंगे उसके ऊपर एक माला के स्वरूप बराबर उसके चारों ओर चक्कर लगाया करते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि कोई कीड़ा या तो जान बूझ कर या किसी और कारण से उस फूल पर गिर पड़ता है। ज्योंही कोई जीव उस फूल की पँखड़ियों पर गिरता है त्योंही वह फूल उस जीव को अपने साथ लेता हुआ नीचेवाली नली में अदृश्य हो जाता है। कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि वह कीड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी में मर जाता है और पैाधे की खुराक बन जाता है।

भारतवर्ष में भी इस प्रकार का एक पैाधा होता है जिसे अगिया या बिच्छू कहते हैं। यह पैाधा आठ दस फुट ऊँचा होता है और हिमालय, आसाम, ब्रह्मा तथा नीलगिरि आदि में पाया जाता है। इसके पत्तों और डंठलें में छोटे छोटे जहरीले रोएं होते हैं। मनुष्य या पशु आदि के शरीर से स्पर्श करते ही चमड़े के अन्दर घुसते और अपने जहर के कारण शरीर में भयंकर जलन उत्पन्न करने लगते हैं। यह जलन प्रहरों तक कष्ट देती रहती है। कई गरम देशों में इसी जाति के और भी पैाधे होते हैं जिनके विष इससे भी भयंकर दाहकारक होते हैं। भारत में ही इस जाति का एक पैाधा होता है जो प्रायः पन्द्रह फुट की ऊँचाई तक पहुँच जाता है। इसकी पत्तियां चैाड़ी और चमकीली होती हैं। ऊपर से देखने में तो उनमें किसी प्रकार के रोएं नहीं जान पड़ते पर स्पर्श करने से उनकी भयंकरता की पराकाष्ठा का ज्ञान हो जाता है। स्पर्श होने के थोड़ी देर बाद तक तो केवल हलकी जलन या पीड़ा होती है पर दो तीन घण्टों के बाद पीड़ा इतनी बढ़ जाती है कि मानें किसी ने वह अंग जलते हुए लाल लोहे से बहुत अच्छी तरह दाग दिया हो। स्पर्श होने के एकाध दिन बाद उसका भयंकर परिणाम स्पर्श किए हुए अंग के अतिरिक्त अन्य अंगें पर भी पड़ता है। यहाँ तक कि कभी कभी दृढ़तापूर्वक दाँत पर दाँत बैठ जाते हैं और बहुत बल लगाने से भी मुँह नहीं खुलता। एक बार एक आदमी दुर्भाग्यवश ऐसे ही बिच्छू की एक पत्ती से छू गया था। उसका भयंकर परिणाम उसे नै। दिनों तक भोगना पड़ा था!

कहा जाता है कि पैाधों को मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों आदि के आक्रमण से बचने और अपनी रक्षा करने के लिये इस प्रकार के साधनों का ग्रहण करन पड़ता है और इस बात को लोग मानते भी हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से पैाधे आत्म-रक्षा के जो साधन या उपाय ग्रहण करते हैं वे आवश्यकता से अधिक भयंकर और निर्दयतापूर्ण होते हैं। तिस पर भी मनुष्य एक ऐसा विलक्षण जीव है कि वह सब प्रकार की कठिनाइयों और रुकावटों को दूर कर के अपना काम निकालता ही है। नैपाल और हिमालय की तराइयों में लोग इन पैाधों के रेशे निकाल कर उनसे एक प्रकार का कपड़ा—जिसे भँगरा कहते हैं—बनाते हैं; कहीं कहीं उसके रेशों से रस्से भी बनते हैं। इन सब कामों के लिये इनकी डालियां आदि का संग्रह जाड़े के दिनों में किया जाता है। क्योंकि उन दिनों उनमें के रोएँ बहुत कुछ झड़ जाते हैं।

बहुत से जंगली पैाधों विशेषतः बहुत तरह की नागफनियों में आत्म-रक्षा के लिये जो काँटे होते हैं वे भयंकर होने के अतिरिक्त मनोहर भी होते हैं। काँटों से अवश्य ही पैाधों की बहुत कुछ रक्षा होती है; पर पैाधों की रक्षा होने से कहीं बढ़ कर उनके द्वारा आक्रमणकारियों को हानि पहुँचती है। एक प्रकार के पैाधों में काँटों के ऊपर बहुत ही छोटी छोटी और महीन अँकुड़ियां होती हैं। यदि कभी कोई पशु अपना कोई अंग उनसे रगड़ ले तो वे अँकुड़ीदार काँटे इतनी भयंकरता से उसके शरीर में गड़ जाते हैं कि किसी प्रकार उनसे छुटकारा नहीं हो सकता। उन काँटों की जड़ें बहुत कमजोर और नाज़ुक होती हैं; इसलिये जब वह जानवर पैाधे के पास से हटने लगता है तो बहुत से काँटे भी शरीर में धँसे हुए ही उसके साथ चले जाते हैं। उनके कारण पशु के शरीर में बड़े बड़े घाव हो जाते हैं जिनमें बहुत जलन होती है। इसी जाति का एक और पैाधा होता है जिसमें बहुत से छोटे छोटे सीधे काँटों के अतिरिक्त कुछ बड़े अँकुड़ेदार काँटे भी होते हैं। बड़े अँकुड़ेदार काँटे माँस या कपड़ों आदि में उलझकर पशु या मनुष्य को रोक रखते हैं और छोटे सीधे काँटे शरीर में धँस कर अपना काम करते हैं!

ऊपर जिस प्रकार के पैाधों का वर्णन किया गया है उस प्रकार के भयंकर पैाधों की इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक जातियाँ आदि हैं कि जिनके वर्णन से एक बहुत बड़ी किताब बन सकती है। वनस्पति-शास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि संसार में सैंकड़ों हजारों प्रकार के ऐसे पौधे होते हैं जिन पर अत्यन्त निर्दयता का अपराध लगाया जा सकता है। क्योंकि अपने आक्रमणकारियों के लिये वे जितने भयंकर प्रतीत होते हैं उससे कहीं थोड़ी भयंकरता से वे अपनी रक्षा का काम निकाल सकते हैं।

महाराज पृथ्वीराज चौहान ।

[लेखक,—श्रीयुक्त मुंशी देवीप्रसाद जी मुन्सिफ़, जोधपुर ।]

पृथ्वीराज चौहान का वृत्तान्त चंदबरदाई ने पृथ्वीराज रासे में तो उपन्यास के ढंग पर लिखा ही है; परन्तु मुसलमान इतिहास-वेत्ताओं ने अपनी इतिहास लिखने की शैली में गजनीन के सुलतान मुआज्जुद्दीन साम उर्फ शहाबुद्दीन गोरी के इतिहास में उनका जो वर्णन किया है वह हम यहाँ अपने इतिहासप्रेमी हिन्दू भाइयों के जानने के लिये लिखते हैं।

पृथ्वीराज का नाम किसी फारसी तवारीख में पृथ्वीराज नहीं लिखा है बल्कि पिथोरा राय, पिथोरा और पीथूराय ही लिखा है।

उर्दू के नामी शायर शाह नसीर देहलवी ने भी अपने इस शेर में पिथोरा ही कहा है।

संगो ख़िश्ते दरो दीवार शकिस्तः को देख ।
हाथ मलती है पिथोरा के महल की मक्खी ॥*

तवारीख़[1] तबकातनासिरी में लिखा है कि सुलतान शहाबउद्दीन ने (सन् ५७४ हि० सं० १२३५ में) उच्च और मुलतान की तरफ से नहरवाले पर चढ़ाई की। नहरवाले का राजा भीमदेव बालक था। तो भी उसके पास लश्कर और हाथी बहुत थे। जब लड़ाई हुई तो मुसलमानों का लश्कर भाग गया और सुलतान अपनी मुराद को न पहुँच कर लौट आया। फिर सुलतान महमूद गजनवी के पोतों से लाहौर ले कर सरहिंद[1] की तरफ आया और उसको फतह कर के काजी जियाउद्दीन को इस शर्त पर दिया कि मेरे आने तक आठ महीने बचाए रक्खे। परन्तु राय कोला[2] पिथोरा पास आ गया था। शहाबुद्दीन उस के सामने तरायन में लौट आया। हिंदुस्तान के सब राजा राय कोला के साथ थे। जब लड़ाई होने लगी तो सुलतान ने भाला ले कर एक हाथी पर हमला किया जिस पर दिल्ली का राजा गुंदराय[3] सवार था। सुलतान ने गुंदराय को भाला मारा; वह उसके मुँह पर लगा और उसके दो दाँत गिर पड़े। उसने सुलतान पर एक सेल मारा जिसका घाव गहरा लगा। सुलतान ने घोड़ा मोड़ा। लशकर में भागड़ पड़ गई। एक खिलजी बच्चे ने सुलतान को पकड़ लिया जो बहुत खून बहने से घोड़े पर से गिरने लगा था और रण से बाहर ले गया। हिंदुओं ने एक मंजिल तक हारे हुए लशकर का पीछा किया। जब सुलतान लशकर में पहुँचा तो डोली में डाला गया और वह सरहिन्द का किला जियाउद्दीन की अधीनता में ही छोड़ कर चला गया।

राय पिथोरा क़िले के नीचे आया। लड़ाई होने लगी जो तेरह महीने और कुछ दिनों तक होती रही।

सुलतान दूसरे बरस बड़ा भारी लशकर ले कर जिसमें एक लाख आठ हजार सवार थे हिंदुस्तान के राय (राजा) से पिछले बरस का बदला लेने

---

* سنگ و خشت و در و دیوار شکستہ کو دیکھو
ھاتھ ملتي ھے پتھورا کے محل کي مکھي

(१) यह तवारीख सन ६५८ संवत् १३१७ में बनी है जब कि सुलतान नासिररुद्दीन को राज करते हुए १५ बरस बीते थे। इसका बनानेवाला काजी मिनहाज सिराज सुलतान शहाबुद्दीन के नौकरों में से था। उसकी नानी ने सुलतान के भाई गयासुद्दीन के बेटे को दूध पिलाया था।

(१) सरहिंद—भटिंडा।

(२) यह शायद खिताब हो क्योंकि पृथ्वीराज के बेटे को भी कोला लिखा है।

(३) गोविंदराय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये आया। राय कोला ने क़िले को सुलह से ले कर तरायन के पास डेरा किया।

सुलतान डेरे, झंडे और छत्र आदि राज-चिह्नों को कई कोस पीछे छोड़ कर लशकर सजाए हुए धीरे धीरे आता था। उसके साथ सवार नंगे और छड़े[1] थे। उसने उनकी चार फौजें बनाई थीं और दुशमनों पर हर तरफ से धावा करने का हुक्म दे कर कहा था कि चारों तरफ मेमना[2] मैसेरा[3] ख़लफ[4] और कदाम[5] से दस दस हजार तीर मारनेवाले सवार तैयार रहें। जब दुशमन के हाथी, सवार और पैदल धावा करें तो पीठ दे कर घोड़े की एक दौड़ तक उनसे दूर हो जायँ।

मुसलमानों के लशकर ने इसी तौर से दुशमनों को थकाया। खुदा ने सुलतान को फ़तह दी और हिन्दुओं का लशकर भाग गया। पिथोरा हाथी पर था, उतर कर घोड़े पर सवार हुआ और सरस्वती तक भागा मगर पकड़ा गया और मार डाला गया।

दिल्ली का राजा गुंदराय रण में मारा गया। सुलतान ने उसके सिर को टूटे हुए दाँतो से पहचाना। राजधानी अजमेर और सारा सवालख, हाँसी, सरसी[6] और दूसरे देश फ़तह हो गए। यह हाल सन् ५८८ (सं० १२४९ में) हुआ। कुतुबुद्दीन को कुहराम में छोड़ा। उसने उसी सालमें हजरत देहली को फ़तह किया।"

जिस धोखाधड़ी से शहाबुद्दीन ने फ़तह पाई थी उसका सविस्तर वृत्तांत तवारीख़ फरिश्ता में इस तरह लिखा है कि जब सुलतान अपनी हार का बदला लेने को एक लाख आठ हजार सवार ले कर गजनी से लाहौर में आया तो उसने एक अमीर को अजमेर में पीथूराय के पास भेज कर मुसलमान होने को कहलाया। पीथूराय ने कड़ा जवाब दिया और तीन लाख राजपूत और पठान सवारों को साथ ले कर वह लड़ने को आया। उधर से सुलतान चला। तरायन नामक गाँव में सरस्वती नदी के किनारे दोनों लशकर आमने सामने आ भिड़े। डेढ़ सौ राजपूत राजाओं ने लड़ने मरने और जीते जी रण न छोड़ने की सौगंद खाई और बड़े घमंड से सुलतान को धमकी का खत भेजा जिसमें लिखा था कि तुझको हमारे लशकर की संख्या तो मालूम हो गई होगी; दिन पर दिन हिंदुस्तान के देशों से और भी फ़ौजें चली आ रही हैं। अगर तू अपने और अपने नामुराद लोगों पर रहम करके लौट जायगा तो हम तेरा पीछा नहीं करेंगे, नहीं तो तुझे और तेरे लशकर को जीता नहीं छोड़ेंगे।

शहाबुद्दीन ने जवाब में लिखा कि तुमने जो कुछ लिखा बड़ी मेहरबानी है; परन्तु सब जानते हैं कि इस मुल्क पर चढ़ाई करने में मेरा कुछ अख़तियार नहीं है। मैं अपने भाई के हुक्म से आता हूँ और तकलीफें उठाता हूँ। तुम मुझे इतनी मुहलत दो कि मैं एक समझदार आदमी को भाई के पास भेज कर तुम्हारे ज़ोर और लशकर का पूरा हाल अरज़ करूँ और उसकी इजाज़त ले कर तुमसे सुलह कर लूँ जिसमें सरहिंद तक पंजाब और मुसतान तो हमारे पास रहें और बाकी हिंदुस्तान तुम रखो। राजा लोग इस जवाब से उसका काम ढीला समझ कर ग़फ़लत से सो गए और शहाबुद्दीन ने उसी रात लशकर सजा कर तड़के ही जब कि राजपूत लोग पाख़ाने जाने और हाथ मुँह धोने को डेरों से बाहर निकल गए थे, धावा कर दिया। राजा घबरा तो गए परन्तु फिर भी जैसे तैसे हथियारों से सज कर आए और लड़ने लगे। सुलतान ने जब हिंदुओं की यह बहादुरी देखी तो वह उनको धोखा देने को भाग निकला। हिंदू उसके इस धोखे से ग़ाफ़िल थे। मुसलमानों को भागे हुए देख कर कुछ तो उनके पीछे दौड़े और बाक़ी आलस के मारे इधर उधर बिखर गए। सुलतान यह हाल देख कर लौटा और धावा कर के उसने हिंदुओं को हराया। पीथूराय सरस्वती के

---

(१) अर्थात् घोड़े कमचीवाले जैसा कि दूसरी तवारीख में लिखा है। (२) दाहिने हाथ की अनी। (३) बाएं हाथ की अनी। (४) पीछे की अनी। (५) आगे की अनी। (६) सिरसा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किनारे पर पकड़ा जा कर सुलतान के हुक्म से मारा गया। बहुत सी लूट उसके हाथ आई और सरस्वती, हाँसी, समाने और कुहराम के क़िले फ़तह हो गए। वह लौंडी गुलाम बनाने और लूट मार करने में कसर न रख कर अजमेर गया और पीथूराय के बेटे कोला को अजमेर दे कर दिल्ली आया। वहाँ के राजा से नज़राना ले कर दिल्ली से सत्तर कोस कुहराम में अपने गुलाम कुतुबुद्दीन को छोड़ कर सवालख पहाड़ों के रास्ते से गजनी को चला गया। कुतुबुद्दीन ने चढ़ाई कर के मेरठ और दिल्ली के किले पीथूराय और खंडेराय के भाई बंदों से ले लिए।

उन्हीं महाराज पृथ्वीराज के दरबार का पुराना एक चित्र है जो जोधपुर दरबार के तसवीरखाने में है।

इस चित्र की कारीगरी और कलम भी वैसी ही है जैसी कि कन्नौज के महाराज जयचंद जी की तसवीर में देखी जाती है। रंग भी इसका वैसा ही पक्का है और सोना भी जो चढ़ा हुआ है अब तक खूब चमकता है।

दरबार में महाराज पृथ्वीराज सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके दोनों और सूरमा सामंत लोहे में जड़े बैठे हैं। महाराज के काका कन्ह की आँखों पर पट्टी बँधी है। उनके विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि जिसको वे अपने आगे मूछों पर हाथ फेरते देखते थे उसे तुरंत मार डालते थे; इसलिये महाराज उनकी आँखों पर पट्टी बँधी रखते थे। यह पट्टी रणभूमि में शत्रुओं के सामने खोल दी जाती थी।

—:०:—

सम्मेलन के लिये विषय-सूची।

सम्मेलन की स्थायी समिति ने आगामी नवंबर मास में होनेवाले छठे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में पढ़ने के लिये निर्वाचित लेखों की जो विषय-सूची भेजी है, वह इस प्रकार हैः—

(१) प्राचीन भारतवासियों में गणित की उन्नति और उसकी शिक्षा-प्रणाली।
(२) हिन्दी और बङ्गला का सम्बन्ध।
(३) हिन्दी और गुजराती का सम्बन्ध।
(४) हिन्दी और मराठी का सम्बन्ध।
(५) हिन्दी का सङ्गीत-साहित्य।
(६) पञ्जाब और देहली प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार करने के उपाय।
(७) सम्मेलन द्वारा स्थापित हिन्दी परीक्षाओं की उपयोगिता और उनके कार्य्य-क्रम पर विचार।
(८) हिन्दी पत्र-सम्पादन और उसमें सुधार की अपेक्षा।
(९) हिन्दी-भाषियों और हिन्दी-प्रेमियों का सम्मेलन के प्रति कर्त्तव्य।
(१०) हिन्दी भाषा के लिङ्ग भेद पर विचार।
(११) भारतवर्ष में हिन्दी प्रचारिणी सभाएं, हिन्दी पुस्तकालय, हिन्दी यंत्रालय और हिन्दी समाचारपत्र।
(१२) देवनागरी लिखने में नवीन चिह्नों की आवश्यकता।
(१३) वर्त्तमान हिन्दी का झुकाव।
(१४) कौटिल्य शास्त्र में शासनपद्धति।
(१५) हिन्दी में गद्य काव्य।
(१६) हिन्दी में शिशुशिक्षासम्बन्धी पुस्तकें।
(१७) भारतीय राष्ट्रनिर्माण में हिन्दी का महत्त्व।
(१८) सूरदास
(१९) तुलसीदास
(२०) केशवदास
} इन लेखों में ग्रन्थों का परिचय और काव्यों की आलोचना होनी चाहिए।
(२१) हिन्दी लेख प्रणाली के विवादग्रस्त विषयों पर विचार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२) शाला, पाठशाला, महाविद्यालयों आदि में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने की आवश्यकता।

(२३) हिन्दी भाषा की कविता की अन्य भाषाओं की कविताओं से तुलना और भविष्य काल में उसकी उन्नति करने का विचार।

(२४) नागरी लिपि की अन्य लिपियों से तुलना, नागरी के गुण दोषों का विवेचन तथा उसको सार्वदेशिक उपयोगी बनाने की सम्भावना।

(२५) हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि की उत्पत्ति का काल तथा दोनों के परस्पर सम्बन्ध का इतिहास।

(२६) राष्ट्र सुधार में नाटकों का कार्य्य।

(२७) स्त्री-शिक्षा और हिन्दी साहित्य।

(२८) भविष्य में यह सम्मेलन विस्तृत और अधिकतर उपयोगी हो, इसके लिये क्या करना चाहिए।

(२९) हिन्दी में असभ्य साहित्य तथा उसके रोकने का प्रयत्न।

(३०) देशी रियासतें तथा हिन्दी भाषा।

(३१) हिन्दी भाषा में संस्कृत के समासान्त पदों के प्रयोगों की मर्यादा।

(३२) हिन्दी साहित्य को अलंकृत करने का यत्न कैसे करना चाहिए।

(३३) राजव्यवहार, व्यापार-व्यवहार आदि में हिन्दी।

(३४) मुसलमान और हिन्दी।

(३५) प्रान्तीय सम्मेलनों से लाभ और उनके संगठन की आवश्यकता।

(३६) वैज्ञानिक, पदार्थविद्या, इतिहास, भूगोल आदि उपयुक्त विषयों के प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुवाद की आवश्यकता।

—:o:—

विविध विषय।

संयुक्त-राज्यों में शिक्षा।

पनामा की प्रसिद्ध प्रदर्शिनी का जो वर्णन श्रीयुक्त लाला लाजपतराय ने किया है, उसका सारांश पाठक पत्रिका की गत कई संख्याओं में पढ़ चुके होंगे। अभी हाल में लाला साहब ने 'माडर्न रिव्यू' में एक और लेख छपवाया है जिसमें आपने यह बतलाया है कि अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में शिक्षा का कितना महत्त्व और आदर है। पनामा प्रदर्शिनी के शिक्षा विभाग में मोटे मोटे अक्षरों में दो विज्ञप्तियां लिखी हुई हैं; जिनमें से एक का अभिप्राय है—"जो राज्य अपने बालकों को शिक्षा नहीं देता वह उन बालकों को शिल्प-कला आदि के विचार से ऐसे राज्यों का मुखापेक्षी और उनके अधीन बना देता है जो अपने बालकों को शिक्षा देते हैं। शिक्षा के अभाव के कारण ही बहुत सी उन्नतियों से अनेक देशों को हाथ धोने पड़े हैं। क्या हम अपने बालकों को इस योग्य बना देंगे कि वे अपने देश पर अधिकार बनाए रख सकें?" और दूसरी का तात्पर्य्य है—"संसार में इस समय शिल्प-कला आदि की उन्नति की बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना किसी जाति का जीवित रहना सम्भव नहीं है। अतः हम लोगों को उचित है कि अपने बालकों को शिल्प और व्यापार आदि के लिये पूर्ण रूप से योग्य बना दें।" यह सारांश या भाव मात्र है; मूल की शब्द-योजना आदि इससे बहुत भिन्न और हमारे इन वाक्यों से कहीं अधिक जोरदार है। अमेरिकन राज्य और प्रजा दोनों मिल कर शिक्षा की वृद्धि और उन्नति के लिये आजकल जितना परिश्रम और व्यय कर रहे हैं उससे जान पड़ता है कि वे शिक्षा-सम्बन्धी अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक अड़े हुए हैं और उन्हीं के अनुसार निरन्तर काम करते जा रहे हैं। वहांवालों का सिद्धान्त है कि—"प्रत्येक बालक को जन्म लेते ही यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि समाज और राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक हो सके उसे उचित और योग्य शिक्षा देने का प्रबन्ध करें।" और इसी सिद्धान्त के फल-स्वरूप वहाँ बहुत सी ऐसी एजेन्सियां हैं जो इस सम्बन्ध में अपना कार्य्य गर्भवती स्त्रियों की रक्षा और प्रबन्ध आदि से आरम्भ कर के उस समय तक जारी रखती हैं जब तक कि बालक जन्म ले कर पूर्ण वयस्क न हो जाय। सब से पहले तो ये सभाएं गर्भवती स्त्रियों की सेवा-शुश्रूषा और चिकित्सा आदि करती हैं और प्रसव के उपरान्त शिशु के स्वास्थ्य आदि का उचित ध्यान रखती और प्रबन्ध करती हैं। ज्योंही बालक कुछ सयाना और पढ़ने योग्य होता है त्योंही उसकी शिक्षा का भार राज्य पर जा पड़ता है। जिन बालकों का कोई अंग बेकाम होता है उनकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध पृथक् और विशेष रूप से किया जाता है। बच्चों के आचरण आदि पर ध्यान रखने और उन्हें सुधारने के लिये राज्य की ओर से संगठित संस्थाएं भी हैं और राज्य की ओर से बनी हुई सभाएं भी। स्कूलों और कालेजों आदि के आन्तरिक प्रबन्ध में विद्यार्थियों का उतना ही अधिकार रहता है जितना किसी राज्य में वहाँ के शासक राजा का; आदि। उक्त लेख सभी उन्नतिशील देशों के निवासियों के पढ़ने, समझने और विचार करने योग्य है।

***

कृत्रिम बिजली से वर्षा।

एशिया के दक्षिण-पूर्व में स्थित आस्ट्रेलिया द्वीप को आविष्कृत हुए बहुत दिन नहीं हुए। थोड़े दिनों से लोग वहाँ जा कर बसने लगे हैं; पर द्वीप का बहुत बड़ा भाग लंबा चौड़ा रेगिस्तान ही है इसलिये अधिक लोग वहाँ जा कर नहीं बस सकते। वहाँ की भूमि को लोगों के रहने योग्य और उपजाऊ बनाने के अनेक प्रयत्न हो चुके और बराबर हो रहे हैं और उनमें से एक प्रयत्न कृत्रिम बिजली द्वारा वर्षा उत्पन्न करना भी है। यह बात प्रायः सभी लोग जानते हैं कि जल भरे हुए बादलों में से जल आकृष्ट करने में वनस्पतियों से बहुत सहायता मिलती है। जल भरे हुए बादल आस्ट्रेलिया द्वीप के एक ओर से उठते और दूसरी ओर निकल जाते थे; आस्ट्रेलिया की मरु-भूमि में उन्हें अपने ऊपर बरसाने की शक्ति नहीं थी। वहाँ के एक वैज्ञानिक मि० बैलसिले का ध्यान अपने देश की इस त्रुटि की ओर गया और उन्होंने बादलों को कृत्रिम बिजली की सहायता से बरसाने के कुछ उपाय सोचे। उनके सोचे हुए उपायों पर विचार करने के लिये कुछ वैज्ञानिकों की एक सभा नियुक्त की गई जिसने पांच घंटों तक मि० बैलसिले से वादाविवाद करने के उपरान्त उनके सिद्धान्त और उपाय स्वीकार कर लिए और सरकार से उन्हें प्रयोग आदि में सहायता देने की सिफारिश की। अब वहाँ कृत्रिम बिजली उत्पन्न करने के लिये एक बहुत बड़ा कारखाना बनाने का प्रबन्ध हो रहा है जिससे उत्पन्न की हुई बिजली ६-७ हजार फुट की ऊँचाई पर ठहराए हुए गुब्बारों में भरी जायगी और बादलों के आने पर दो भिन्न रूपों में छोड़ी जायगी। बादलों पर इस बिजली का वही असर होगा जो ऊँचे ऊँचे पहाड़ों की चोटियों का उन पर होता है; अर्थात् वह उन्हें आगे न बढ़ने देगी और उनमें गरमी उत्पन्न कर के उन्हें वहीं बरसा देगी। इस प्रयोग के लिये सब व्यय वहाँ की एक प्रान्तीय सरकार देगी। मि० बैलसिले का विश्वास है कि यदि द्वीप के भिन्न भिन्न भागों में—ऐसे स्थानों पर जो बादलों के मार्ग में पड़ते हों—इस प्रकार बिजली उत्पन्न कर के छोड़नेवाले कारखाने बना दिए जायँगे तो बादलों को अपने इच्छानुसार बरसाना अथवा बरसने से रोक देना बिलकुल अपने हाथ में हो जायगा! आपका यह भी विश्वास है कि जब इस प्रकार के कारखाने बन जायँगे तो देश में न तो कहीं बादलों की गरज सुनाई देगी और न कहीं बिजली गिरेगी!! और पानी तो बराबर इच्छानुसार बरसा ही करेगा!!!

***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किनेमेटोग्राफ द्वारा शिक्षा।

बायस्कोप भी प्रायः सभी लोगों ने देखे होंगे ग्रैार ग्रामोफोन भी सभी लोगों ने सुने होंगे। इन दोनों के योग से जो नया यंत्र बना है ग्रैार जिसका प्रचार इस देश में बहुत कम हुआ है, उसे किनेमेटोग्राफ कहते हैं। इस यंत्र में बायस्कोप के साथ ग्रामोफोन लगा रहता है। बायस्कोप से चलती फिरती तसवीरें दिखलाई जाती हैं ग्रैार दिखलाए जानेवाले दृश्यों के सम्बन्ध में ग्रैार उनके पात्रों की बातचीत ग्रादि फोनोग्राफ द्वारा सुनाई जाती है। तात्पर्य्य यह कि किनेमेटोग्राफ द्वारा चलती फिरती ग्रैार बोलती हुई तस्वीरें दिखलाई जाती हैं। इन सब यंत्रों के ग्राविष्कर्त्ता ग्रमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मि० एडिसन हैं। मि० एडिसन का कथन है कि बहुत शीघ्र वह समय ग्रावेगा जब कि विद्यालयों से किताबें एक दम उठ जायँगी ग्रैार विद्यार्थियों को सब शिक्षाएं केवल किनेमेटोग्राफ द्वारा ही दी जायँगी। ग्रापने किनेमेटोग्राफ द्वारा शिक्षा देने की प्रथा का प्रयोग भी ग्रारम्भ कर दिया है। ग्रापने प्रायः एक हजार उपयोगी पाठ्य-विषयों की सूची तैयार की है ग्रैार उनमें से प्रत्येक विषय की फिल्म तैयार करने का काम उस विषय के बहुत ग्रच्छे ज्ञाताग्रों को सौंपा है। कुछ फिल्म तैयार हो गए हैं ग्रैार उनसे किनेमेटोग्राफ द्वारा शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षा पानेवाले दस विद्यार्थी हैं जिनमें से एक स्वयं मि० एडिसन का पुत्र भी है। पर ग्रमेरिका के बड़े बड़े शिक्षकों को ग्रभी से इस बात का सन्देह होने लगा है कि शिक्षा पर इस नई प्रणाली का बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ेगा ग्रैार उनकी सम्मति है कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में इस नई प्रथा से सहायता मात्र ली जाय, उसे प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का स्थानापन्न बनाने का प्रयत्न न किया जाय।

* *
*

भांडारकर का सम्मान।

बम्बई के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाकृर सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर एम० ए० एल एल० डी० पी एच० डी० के० सी० ग्राई० ई० ग्रादि के परिचय देने की ग्रावश्यकता नहीं। ग्राप संस्कृत ग्रैार ग्रंगरेजी साहित्य, धर्म्मशास्त्र, भाषा-विज्ञान ग्रैार इतिहास ग्रादि के ग्रद्वितीय विद्वान् हैं। ग्रापकी विद्वत्ता से देश ग्रैार साहित्य की बहुत सी सेवा हुई है ग्रैार बराबर हो रही है। बम्बई प्रान्त के कुछ विद्वानों ग्रैार पण्डितों ने भांडारकर महाशय का सम्मान करने के ग्रभिप्राय से एक ऐसा काम करना विचारा है जिससे ग्रापकी ख्याति के ग्रमर होने के ग्रतिरिक्त देश ग्रैार साहित्य की भी बहुत बड़ी सेवा होगी ग्रैार ग्रनेक विद्वानों को भी बहुत ग्रच्छी सहायता मिलेगी। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध की ग्रसंख्य बातें ऐसी हैं जिनका ग्रभी तक किसी प्रकार का निर्णय नहीं हुआ है ग्रैार जिनकी यथार्थता घोर ग्रन्धकार में पड़ी हुई है। उस प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध की बहुत सी बातें प्रायः पुराने संस्कृत-साहित्य में ही हैं जिनका ग्रभी तक किसी को पता नहीं है। ग्रनुमान से कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा के ग्रभी हजारों ऐसे ग्रन्थ होंगे जिनको खोज कर निकालने ग्रैार सर्वसाधारण के सामने विचारार्थ उपस्थित करने की बहुत बड़ी ग्रावश्यकता है। उन ग्रन्थों के परिशीलन ग्रैार विवेचन से केवल इतिहास का पता ही नहीं चलेगा बलकि बहुत सा शास्त्रीय-ज्ञान भी बढ़ेगा। इस काम के लिये जिस प्रकार बहुत बड़े बड़े जिज्ञासु विद्वानों की ग्रावश्यकता है, उसी प्रकार उन्हें उत्तेजना ग्रैार सहायता देनेवाली संस्थाग्रों की भी जरूरत है। इस उद्देश्य को पूरा करने ग्रैार जिज्ञासु विद्वानों को ग्रच्छे ग्रच्छे ग्रन्थों ग्रैार दूसरे उपकरणों से सहायता देने के लिये पूना में 'भांडारकर ग्रोरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट" की स्थापना करना निश्चय हुआ है। जिन विद्वानों ग्रैार पण्डितों ने उक्त संस्था की स्थापना का विचार ग्रैार प्रबन्ध किया है हम उनका हृदय से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनन्दन करते हैं और उनके पूर्ण रूप से सफल-मनोरथ होने की कामना रखते हैं।

***

युद्ध, समाचारपत्र और पुस्तकें।

जब लोग अपने नगर के बाजारों आदि में बहुत से लड़कों को इधर उधर समाचारपत्र आदि बेचते हुए देखते हैं तो साधारणतः उनका यह अनुमान होता है कि युद्ध के कारण समाचार-पत्रों की बिक्री बढ़ जाती है और उन्हें बहुत लाभ होता है। पर बात वास्तव में इससे एक दम विपरीत होती है। इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध छिड़ते ही लोग उसके समाचार आदि जानने के लिये बहुत उत्कण्ठित होते हैं और इस कारण युद्ध छिड़ने के कुछ समय बाद तक उनकी अच्छी बिक्री होती है; पर यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रहती और शीघ्र ही बहुत से समाचार-पत्र बन्द हो जाते हैं। वर्त्तमान युद्ध के बाद भारत में बन्द होनेवाले पत्रों की भी कमी नहीं है। पर युद्ध-लिप्त देशों में समाचार-पत्रों की दशा और भी हीन हो जाती है। विलायत का प्रसिद्ध दैनिक-पत्र टाइम्स जो पहले चौबीस से बत्तीस पेजों तक छपता था, आजकल आधा ही रह गया है। जब सब से बड़े और प्रधान पत्र की यह दशा है तो फिर छोटे और साधारण पत्रों की बात ही क्या है? वहाँ के बहुत से पत्रों के कार्य्यालयों में सम्पादकों और काम करनेवालों की संख्या घटा दी गई है। उन देशों में इस ह्रास का मुख्य कारण यह है कि वहाँ के समाचारपत्रों के व्यय का निर्वाह उसके ग्राहकों से नहीं बल्कि विज्ञापनदाताओं से मिलने-वाले धन से होता है। युद्ध के समय व्यापार आदि में अनेक कारणों से जो कमी हो जाती है उसी का परिणाम समाचारपत्रों पर भी पड़ता है। युरोप के पुस्तक-प्रकाशकों का व्यापार भी इस समय बहुत मन्दा पड़ा हुआ है। सभी देशों में उपन्यासों की बिक्री अन्य विषयों के ग्रन्थों से अधिक होती है और उपन्यासों के पाठकों का अधिकांश युद्ध में चला जाता है। इंगलैण्ड के एक सज्जन ने इस ह्रास का एक और कारण बतलाया है। उनका कहना है कि युद्ध-काल में लोग कुछ चिन्ता-युक्त हो जाते हैं और उन्हें उपन्यास आदि अच्छे नहीं लगते। हाँ, यदि उनके स्थान पर करुणा-रस की कविताएं अथवा इसी प्रकार के निबन्ध आदि प्रकाशित हों तो सर्व-साधारण में उनका अधिक आदर हो सकता है। उनका यहाँ तक मत है कि युद्ध के बहुत दिनों बाद तक भी लोगों को उपन्यास अच्छे न लगेंगे। अभी और भविष्य में ऐसे ही ग्रन्थों की आवश्यकता होगी जिनमें चिन्ता और क्षतिग्रस्त लोगों के मन गूढ़ विचारों में डूब सकें; इसलिये प्रकाशकों का काम उस समय तक न चमकेगा जब तक वे उक्त विषय के ग्रन्थ प्रकाशित न करेंगे। दक्षिण अफ्रिका के युद्ध के समय भी लोगों की रुचि कुछ इसी प्रकार बदल गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्धकारिणी समिति ।

शनिवार तारीख २८ अगस्त १९१५ संध्या के ६ बजे।

स्थान—सभाभवन ।

(१) पं० रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव श्रोर बा० बालमुकुन्द के अनुमोदन पर बा० माधवप्रसादजी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (तारीख २४ जुलाई १९१५) का कार्य विवरण पढ़ा गया श्रोर स्वीकृत हुआ।

(३) निश्चय हुआ कि गत वर्ष प्रबन्धकारिणी समिति के अधिवेशनों में उपस्थित न होने वा इनके कार्यों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति न भेजने के कारण पंडित कृष्णराव पावगी, पंडित गिरिजादत्त वाजपेयी एम० ए०, पंडित गणपति जानकी राम दुबे बी० ए०, बाबू जुगुलकिशोर, पंडित देवीप्रसाद उपाध्याय, बाबू मुरारीदास, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, बाबू रामस्वरूप जैन, बाबू दामोदरदास खण्डेलवाल, बाबू जुगुलकिशोर अखौरी श्रोर पंडित जगन्नाथ निरुक्तरत्न के जो स्थान खाली होते हैं उन पर इस समिति में क्रमात् निम्नलिखित सज्जन चुने जायँ अर्थात् कृष्णराव पावगी, बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल एल० बी०, बेरिस्टर, पंडित गणपति जानकीराम दुबे बी० ए०, बाबू बांकेबिहारी लाल बी० एस सी०, बाबू केशवदास, बाबू मुरारीदास, बाबू शिवकुमारसिंह, बाबू दामोदरदास राठी, बाबू दामोदरदास खंडेलवाल राय पूरनचन्द श्रोर पंडित जगन्नाथ निरुकरत्न।

(४) निश्चय हुआ कि इस वर्ष नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, लेखमाला के सम्पादक बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०, नागरीप्रचार के निरीक्षक बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०, सुबोध व्याख्यान के निरीक्षक पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० श्रोर आर्यभाषा पुस्तकालय के निरीक्षक बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल एल० बी० नियत किए जायँ।

(५) निश्चय हुआ कि इस वर्ष कार्यालय सम्बन्धी सब दैनिक कार्य जैसे रसीदों में हस्ताक्षर करना, मनिआर्डर आदि का लेना, जिन सज्जनों के यहाँ कुछ द्रव्य बाकी हो उनसे उसे मँगवाना, साधारण पत्रों का उत्तर देना इत्यादि सहायक मंत्री किया करें श्रोर अन्य सब कार्यों को मंत्री या उपमंत्री पूर्ववत् करें।

(६) निश्चय हुआ कि इस वर्ष इस समिति के प्रधान बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी० चुने जायँ श्रोर इसके उपप्रधान पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०।

(६) इण्डियन प्रेस का तारीख २३ जून का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि कादम्बरी की २००० प्रतियों के प्रथम संस्करण के अतिरिक्त उन्होंने सन् १९०८ श्रोर १९१२ में इस पुस्तक की दे। दे। हजार प्रतियों के दे। संस्करण श्रोर भी प्रकाशित किए हैं। इनमें से प्रत्येक संस्करण के लिये वे ५०) रुपये सभा को देंगे श्रोर आगे के लिये भी २००० प्रतियों के प्रत्येक संस्करण के लिये वे ५०) रु० दे सकेंगे।

निश्चय हुआ कि जिन दे। संस्करणों को वे छाप चुके हैं उनमें से प्रत्येक के लिये उनसे ५०) रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले लिया जाय और आगे के लिये १००० प्रतियों का ५०) रुपया दे कर वे इस पुस्तक को प्रकाशित कर सकेंगे।

(८) मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनका "राजपूताने में प्राचीन शोध" शीर्षक जो लेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका में छपा है उसे यदि सभा जुदा पुस्तकाकार न छपवाया चाहती हो तो वे उस लेख का संशोधन कर के उसे फिर से छपवा लें।

निश्चय हुआ कि मुंशी देवीप्रसाद जी को लिखा जाय कि वे इस लेख को सहर्ष छपवा सकते हैं।

(९) हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्यालय का भाद्रपद कृ० १ का पोस्टकार्ड उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आगामी सम्मेलन के सभापति के आसन के लिये ५ सज्जनों के नाम माँगे थे।

निश्चय हुआ कि सभा निम्नलिखित सज्जनों के लिये प्रस्ताव करती है; अर्थात्—पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और साहित्याचार्य पंडित रामावतार पांडेय एम० ए०।

(१०) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग २०] Registered No. A414 [संख्या ४

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

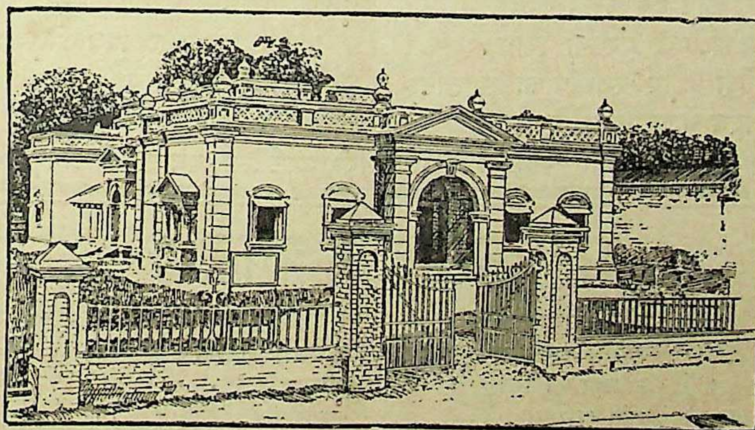
अक्तूबर, १९१५

सम्पादक–रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी
कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मंगाइये,
पताः—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

चित्रोंसे युक्त।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त ।]

लीजिये ! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है !—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक । तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २-), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दे० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य। शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये। नमूनेके लिये)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी।

पवित्र काश्मीरी केशर—दूध ख़ूब ॥॥=) तोला । शुद्ध शिलाजीत ॥=) तोला । चीनी ममीरा २) तोला । काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर । ७-१३-६-१४

भयंकर मार काट ।

जर्मन जासूस	।—)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मी	—)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	॥।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	॥)	नवाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहाँ	।)	रानाप्रताप नाटक	॥।)
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	॥।)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियाँ	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	॥।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर संगीत	≡)
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१॥।)	व्यापारतत्व	॥)
रानी पन्ना	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	विकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग २० | अक्तूबर, १९१५. | संख्या ४

युरोप का पुनरभ्युत्थान काल ।

[लेखक—श्रीयुक्त राधामोहन गोकुलजी ।]

जगत् बड़ा विचित्र है । जिस रोम ने युरोप में एक बार अपनी शक्ति व सभ्यता का गगनभेदी झंडा गाड़ा था वही फिर ऐसे गड्ढे में गिरा कि जिसका हाल पढ़ कर सहृदयों को दुःख हुए बिना नहीं रहता । लेकिन तेरहवीं शताब्दी मसीही के पीछे फिर उसके पुनरभ्युत्थान का वह काल आया जिसने न केवल इटली में ही वरन् सारे युरोप में जान डाल दी ।

लोग कहते हैं, इटली के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि डेंटी अलीगिरी ने जो १२६५ ई० में जन्मा व १३२१ ई० में स्वगवासी हुआ था, इस नए शाके का आरम्भ किया । लोग इसकी कविता बड़े ही आदर से पढ़ते हैं । और ते और महात्मा मेत्सिनी भी जो नवीन इटली का पिता कहलाता है (यह सन् १८७२ में स्वर्गवासी हुआ था) इसे अपना आदर्श कवि मानता है । लेकिन इस युरोपीय पुनरभ्युत्थान-काल का आरम्भ इतिहासकारों ने फ्रांसिसको पेट्रिआर्क से किया है जो १३०४ में पैदा हो कर १३७४ ई० में मरा था और मार्टिन लूथर के साथ जो जर्मनी का बड़ा प्रसिद्ध प्रोटेस्टेंट सुधारक था समाप्त करते हैं । लूथर ने १४८३ में जन्म ले कर १५४५ में पंचत्व प्राप्त किया । इसी काल की परिसमाप्ति पर २९ वर्ष के युवक निकोलो मेकियावेली ने भी इटली की राजनीतिक रंगभूमि में पहली बार पदार्पण किया था । सार यह कि इन्हीं दे। ढाई सौ वर्षों के साधारणतः युरोपीय व विशेषतः इटलीय इतिहास का नाम पुनरभ्युत्थान का इतिहास है ।

युरोपीय साहित्य में इस काल के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें मिलती हैं उतनी सम्भवतः और किसी विषय पर भी न मिलेंगी । इसका कारण यही है कि वहां की जनता में जातीयता है, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातियों के पतन व उत्थान का इतिहास सावधानी से पढ़ कर उसके कारण उसी प्रकार खोजती है जैसे चतुर वैद्य अपने रोगियों के बीमार पड़ने, चंगे होने या मर जाने के कारणों को सावधानी से खोजता है। जब हम किसी बात का कारण जान लेते हैं तब हमारा यह काम होता है कि अनिष्टकारी कारणों को हटाने व इष्टकारी कारणों को चिरस्थायी करने का प्रयत्न करें। इसी आधार पर इतिहास का पढ़ना सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है; नहीं तो जैसी सहस्त्ररजनीचरित्र की कहानी, जैसी चंडूखाने की गप्प, वैसा ही इतिहास, व्यर्थ समय काटने में सब समान हैं। आशा है कि इस इतिहास को पाठकगण विचार के साथ पढ़ेंगे क्योंकि यह इतिहास जीवनप्रद इतिहास है।

इस इतिहास का आरम्भ उस समय से होता है जब कि सामाजिक स्थिति का रूपान्तर बड़ी शीघ्रता के साथ होना आरम्भ हुआ, राशि राशि बुद्धि-बल जाति के सुधार में लग गए। पुराने आख्यान, पुरानी आकृति प्रकृति, पुरानी संस्थाएं धराशायी हो हो कर मिटने लगीं, माना नए विचारों, नए सुधारों के लिये जगह खाली करती जा रही थीं। पुरानी थोथी पंडिताई दर्शनों को आगे लाने के लिये पीछे हटने लगी। स्वतन्त्र विचार, तर्क व प्रत्यर्थीकरण के आगे पुराने प्रामाण्य सिद्धान्तों को सिर झुकाना पड़ा, माने हुए पुराने प्रमाणों को नई परीक्षा की अग्नि में तपा कर खरों को रखना व खोटों को हटाना आरम्भ हुआ।

इसी समय प्राकृत-विज्ञान का मनन आरम्भ हुआ। अलबर्टी, विन्सी प्रभृति विद्वानों ने प्रयोगानुभव-विधि की खोज के लिये सब से पहले साहसपूर्वक कदम बढ़ाया, वाणिज्य और व्यवसाय आदि उद्यमों ने समुन्नत होना आरम्भ किया और लोगों ने समुद्रयात्रा खूब जोर से बढ़ाई। इन्हीं दिनों कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया था। हमारे सरीखे मतों, विधानों और आदेशों से बँधे हुए कूप-मण्डूकों के लिये आज भी मसीही ग्यारहवीं ही शताब्दी है। पर नहीं आज से ४०० वर्ष पहले ही जर्मनी ने मुद्रण यन्त्र निकाला और तत्काल इटली ने उसे इस तरह अपनाया कि इसके व्यापार वा व्यवहार में जर्मनी को भी दो कदम पीछे छोड़ दिया। संस्कृत की सहगामिनी लेटिन को त्यागा नहीं, प्राचीन साहित्य को फैलाना बन्द नहीं किया लेकिन देश में उसका अधिक वा सच्चा ज्ञान फैला कर उसे शेष संसार के साथ मिलाने की चेष्टा की। आप दब कर दास और निकम्मे न बने किन्तु संसार के समकक्ष होने को आगे बढ़े और पीछे भी देखते रहे। राजनीति-विद्या और रणकला का आविर्भाव हुआ। पुरानी गाथाओं ने राजनीतिक इतिहास को अपना स्थान दिया। इस विभाग में प्रथम इतिहास जिसार्डिनो और मेकियावेली के प्रादुर्भूत हुए थे। पुरानी शिक्षा दीक्षा में नए प्राण सञ्चरित हुए और वीर पँवाडों ने प्रतिष्ठा पाई। प्राचीन शृङ्गार रस की कविता ने वीर रस को अपनी जगह सौंप दी। कला कौशल, कारीगरी, मूर्ति वा निर्माण विद्या ने भी अपना चोला बदला, चितेरी में प्राकृतिक भावों ने समाविष्ट होना आरम्भ किया। जान पड़ता था कि पुराने इटली ने काया पलट कर फिर जवानी धारण कर ली है, इटली के सूर्य्य ने फिर से युरोप को प्रकाश दान करने का बीड़ा उठाया है।

इस उन्नत दशा में अचम्भे की बात यही प्रतीत होगी कि इटली की धनी, उद्यमी और बुद्धिमान प्रजा शीघ्रता के साथ भ्रष्ट होने लगी। स्वतन्त्रता अदृश्य होने लगी, अन्यायी बढ़ने लगे, नाते रिश्तेदारियों के बन्धन ढीले पड़ गए। घरू पवित्रता विनष्ट हो गई, इटलीवालों का किसी को विश्वास न रहा। सार यह कि इस समय इटली की जाति की नैतिक वा राजनीतिक स्थिति इतनी मन्द वा निर्बल हो गई कि बाहरी आक्रमणों को रोकनेवाला कोई न रह गया। बाहरी आक्रमणकारी लगातार बिना रोक टोक इस प्रायद्वीप में घुस पड़े और उन्होंने देश को मनमाना लूटा खसोटा और बरबाद किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ने उनसे न पूछा कि तुम्हारे मुँह में कितने दाँत हैं।

हम लोग लगातार सुनते हैं व विश्वास भी करते हैं कि विद्या और उत्कर्ष से जाति का महत्त्व बढ़ता है और इन्हीं से जाति की शक्ति का अनुमान किया जाता है। फिर इटली में ऐसा विपरीत फल क्यों देखने में आया? धनी वा गुणी होते हुए भी इटली का राष्ट्र इतना निर्बल, दुष्ट, पतित व निकम्मा क्यों हो गया था? यह प्रश्न इतिहास के सभी विद्यार्थियों के मन में उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

यह कहना सहज है कि स्वयं इटलीवालों का ही यह दोष है कि जो आपस में ही वे एक दूसरे को नोचने खाने लगे, परस्पर गले काटने लगे, मिल कर रहने के बदले भाई भाई का शत्रु बन गया। लेकिन इतिहास के लिये इतना कहना पर्य्याप्त नहीं हो सकता; केवल यह कह देना कि इटली का ही अपराध उसे खा गया, उसके अधःपतन के कारणों की व्याख्या नहीं है। क्योंकि मध्यकाल का इटली इससे भी अधिक विभक्त या छिन्न भिन्न था; फिर भी इस समय से अधिक बलवान् था। उस समय के भीतरी झगड़े और प्रतिपीड़न आज से भी अधिक अन्धाधुन्ध, विचारविहीन और रक्तपात-प्रिय थे, पर इटली इतनी गिरी हुई दशा में न था। यदि उसका पाप ही कारण होता तो मध्यकाल में इटली आज से भी बुरा होता; परन्तु इतिहास इस परिणाम के प्रतिकूल ही साक्षी दे रहा है।

यदि कहा जाय कि भीतरी या आपस के लड़ाई-झगड़ों और मार-धाडों से देश तबाह हो चुका था, उसकी शक्ति नष्ट भ्रष्ट हो चुकी थी तो यह भी युक्तिसंगत नहीं हो सकता; क्योंकि जो जाति अपनी विद्या, बुद्धि, उद्योगशीलता और चालाकी से भूमण्डल में परिवर्तन कर रही हो उसे बिलकुल हो बीती नहीं कह सकते। इस दशा में घबरा कर जल्दी से कोई सार्वभौम्य कारण बतला देने से इतिहास का काम नहीं चल सकता, प्रत्युत् हमें उस समय की घटनाओं की व्यवस्था, अवस्था और अनुभूत बातों को सावधानी से देखना पड़ेगा। अस्तु, १५वीं शताब्दी की मुख्य बात यह है कि इटली की मध्य-कालीन संस्थाओं से समाज की दशा बिलकुल बदल कर नई हो गई थी और प्रजा की भीतरी उन्नति भी बहुत ज्यादः हो चुकी थी; साथ ही अब पुरानी संस्थाएं समाज का ठीक ठीक काम चलाने में असमर्थ होने के सिवा भयावह हो उठी थीं। इसलिये इटली का कायापलट होना और उसमें विप्लव होना अनिवार्य्य हो गया। यह ठीक उसी समय की बात है जब कि विदेशियों ने इटली पर अधिकार जमा कर भीतरी उन्नति को एक दम रोक दिया था और समाज में चारों ओर खलबली और असन्तोष पैदा हो गया था।

मध्य काल में आजकल के से राजनीतिक संगठन जिसे स्टेट या संकलित राष्ट्र कहते हैं, अथवा आजकल की सी राष्ट्रीय शासन-व्यवस्था मालूम न थी। इसलिये ठीक नियमानुसार सामाजिक शक्तियां उस समय न तो सब मिल कर एक हो सकती थीं और न समान पदाभिषिक्त ही की जा सकती थीं। क्योंकि यह दोनों बातें नए आविष्कृत 'राष्ट्र सङ्कलन' के ही फल हैं। इस न्यूनता के अतिरिक्त उस समय जनपद ठिकानेदारों और उपठिकानेदारों में विभक्त हो रहा था, जनता की छोटी छोटी और अलग अलग पञ्चायतें थीं जिनमें से प्रत्येक के साथ और छोटी छोटी उपसभाएं वा लघु पञ्चायतें कहने सुनने मात्र को सम्बद्ध थीं, वास्तव में उनके बन्धन जैसे चाहिए वैसे न थे। इस प्रकार के सामाजिक समूह पर एक ओर पोप महाराज और दूसरी ओर राजों महाराजों का दण्ड शासन करता था। यद्यपि पोप वा राजा के पारस्परिक युद्धों में जो प्रायः होते ही रहते थे प्रजा में एक प्रकार की गड़बड़ी बढ़ती जा रही थी परन्तु बाहरी सभ्य जगत् पर फिर भी कुछ न कुछ एकता की छाया पड़ती थी। किन्तु १५वीं शताब्दी में यह बात भी बिलकुल जाती रही। एक ओर बड़े बड़े राष्ट्रों का क्रमशः निर्म्माण हो रहा था, दूसरी ओर राज्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिकार सोलह आने जर्मनी के हाथ में था, इटली में तो केवल पिछले दिनों की यादगार बाकी रह गई थी। पोप दल यद्यपि धर्म्मनेता था, पर दुनियां की दौलत पर भी हाथ मारने में आगे रहता, राजनीतिक शासन में बहाना न करता किन्तु खुल्लम खुल्ला आप भी औरों की तरह अपना राज्य बढ़ाता, हकूमतें करता और चैन उड़ाता। इस बुरी दशा को जब इटली पहुँच गया तो उसकी उन पञ्चायतों की भी जो कभी इटली के महत्व का कारण थीं, दूसरी ही गति होनी थी।

अब कोई इनसे पूछनेवाला न रहा। यह भी बहुत दिनों से जिस स्वाधीनता की अभिलाषा करती थीं वह उन्हें स्वयं प्राप्त हो गई। पञ्चायत ने खूब समझ लिया कि अब सिवा अपने पैरों खड़े होने के दूसरे की सहायता की आशा व्यर्थ है। जब कभी पञ्चायतों में परस्पर युद्ध होता तो कोई उच्चतर उनके बीच में हस्ताक्षेप करनेवाला न होता। अब तो पञ्चायत भी अपनी भूमि और शक्ति बढ़ाने लगी। ज्यों ज्यों पञ्चायत देखती कि सारे युरोप में बड़े बड़े राजसंगठन चारों ओर हो रहे हैं और हथियार के ज़ोर से एक-मुखी राज्य भी बनते जाते हैं त्यों त्यों इसकी अभिलाषा और अभिरुचि भी राज्य व शक्ति-सम्वर्द्धन की ओर अधिक होती जाती। लेकिन एक बड़ी कठिनाई यह थी कि पञ्चायत का राज्य ज्यों ज्यों बढ़ता त्यों त्यों उसी के नाश होने की सम्भावना भी बढ़ती जाती।

कैसे दुःख की बात है कि जो काम बहुत जरूरी और अत्यन्त लाभ का था वही यम का दूत बन कर सामने खड़ा दीखने लगा। इस अनोखी बात का कारण यह था कि उस समय की पञ्चायत प्रतिनिधि-सत्ता के शासन-सिद्धान्तों से अनजान थी। वह केवल प्रधान नगर के निवासियों के द्वारा शासन करना जानती थी। यही नगरनिवासी स्वतन्त्र नागरिक थे। इसलिये नागरिक पद बहुत ही थोड़े लोगों को समझ बूझ कर दिया जाता जिसमें उपद्रव व विद्रोह की सम्भावना न हो या कम हो। और नागरिक लोग वही थोड़े से होते जो राजधानी व नगर के परिकोटे के भीतर रहते। फ्लोरेंस इटली में एक पुराना व प्रतिष्ठित पूरा पूरा जानपदीय प्रजातन्त्र था और सन् १४९४ में अत्यंत स्वतन्त्र संगठन प्राप्त कर चुका था। पर उसमें भी ९०००० प्रजा में से केवल ३२०० ही नागरिक थे। नगर के बाहर जो भूमि थी वहाँ की जनता एक प्रकार से दास ही थी, उसके मत का पञ्चायत में प्रवेश न होने पाता था। केवल उनको बेगार में पकड़ने की प्रथा बन्द कर दी गई थी और राज-काज से उनका कोई सम्बन्ध न था। यह बात न केवल कानून में साफ साफ लिखी थी किन्तु प्रत्येक बड़े बड़े लोगों तक के मन अंकित थी कि नगर के बाहर-वाले शासित प्रजा के सिवा और कुछ नहीं हैं न उनका और कोई अधिकार ही है। डेंटी सरीखा राष्ट्रीय महाकवि अपनी उस समय की कविता में दुःख के साथ कहता है कि "वास्तव में पञ्चायत की अधिकृति नगर के परिकोटे के बाहर दस पाँच कदम से आगे नहीं बढ़ती; कंम्पी, फिगलिन और सिगना आदि के पड़ोस में रहनेवाले लोग तक अभी फ्लोरेंस के साथ नहीं मिलते।"

पेट्रिआर्क भी जो प्राचीन प्रजातन्त्र-साम्राज्य का स्वप्न देखा करता था, यही अनुरोध करता था कि रोम के प्रजातन्त्र शासन को फिर से स्थापित करने में हमें उचित होगा कि शासन का अधिकार विश्वास-पूर्वक वास्तविक नगरनिवासियों (राजधानी के परिकोटे के भीतर रहनेवाले लोगों) को ही सौंपें। यहाँ तक कि उसने लेटियम, कोलोना आदि के रहनेवालों को विदेशी मान कर 'नागरिक' की सीमा से बाहर रखा, यद्यपि उनमें रोमन घराने के ही सारे लोग थे।

यही कारण था कि एक एक दो दो गाँवों की छोटी छोटी पञ्चायतें अलग रहने में ही सुखी थीं। वह जानती थीं कि जहाँ चार पंचायतें मिल कर एक हुईं वहाँ एक पंचायत के प्रधान नगरवालों का ही सोलह आने अधिकार रहेगा, बाकी तीन पंचायतों के लोगों की बात कोई न सुनेगा। इस तरह इटली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बलिष्ठ बनाने के लिये किसी को भी मिल कर एक होने का विचार न होता, प्रत्येक पञ्चायत इस प्रकार के मेल को अपना व्यक्तिक नाश समझती थी। उन दिनों फ़्लोरेंस के प्रजातन्त्र की राज-परिषदों में पाइसा निवासी ऐसे ही आश्चर्य से देखा जाता जैसे आजकल अँगरेजी पार्लिमेंट में फरांसीसी, जर्मन या रूसी देखा जायगा। इन बातों का फल यह हुआ कि लोग इस प्रकार के प्रजातन्त्र से एक-मुखी शासन (Monarchy) को हजार बार अच्छा समझने लगे; क्योंकि एक-मुखी शासन में प्रत्येक प्रजा के अधिकार, कुछ ही क्यों न हो, समान होते हैं और प्रत्येक प्रान्त, जाति व घराने का आदमी बिना भेद-भाव के राजकाज के काम में पद प्राप्त कर सकता है।

जिस समय इटली का सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मेकियावेली इटली के प्रजातंत्र का ढाँचा बनाने लगा, जिसिआर्डिनी ने यही बात कही थी कि "देखिए महाशय जो रूप आप प्रजातंत्र-शासन को देना चाहते हैं उससे केवल एक नगर का भला होगा। बाकी सब बरबाद हो जायँगे। क्योंकि प्रजातंत्र अपनी स्वतंत्रता का लाभ केवल अपने नगर के रहनेवालों को ही भोगने देता है। परन्तु एकमुखी शासन सब के साथ कहीं अधिक निष्पक्षता से बरताव करता है। क्या हमें वेनिस के प्रजातंत्र का अनुभव कुछ भी शिक्षा नहीं देता ? वेनिस अपनी प्रजा को दूसरे प्रजातंत्रों से कहीं अधिक स्वतंत्रता देता है फिर भी उसका ध्यान मुख्य राजधानी की सीमा के भीतर ही रहता है। यही कारण था कि इटली के लोग न केवल एकमुखी शासन की किन्तु विदेशी एकमुखी शासक के अधीन रहने की कामना करने लगे जिससे उनकी थोड़ी बहुत स्थानिक स्वतंत्रता बनी रहे, क्योंकि यह बात प्रजातंत्र नामधारी शासन में न थी।" इस यथार्थदर्शी ने यहाँ तक कहा कि "कासमोडाई मेडिसी ने जो सहायता दे कर फ्रांसिस्को स्फोर्जा को मिलन का राजा बना दिया तो अच्छा किया, इससे इटली की स्वतंत्रता बच गई; नहीं तो वह वेनिस के पंजे में जा रहता"।

इन बातों का मेकियावेली पर इतना प्रभाव पड़ा कि यद्यपि वह प्रजातंत्र के लिये सदा ठण्ढी सांसें भरा करता परन्तु उसने अपने सरकारी पत्रों आदि में लगातार वेनिस को इटली के स्वातन्त्र्य का शत्रु बतलाया है।

इस दशा में पाठक समझ सकते हैं कि इटली में दृढ़ प्रजातंत्र बनाने के लिये पञ्चायतों का मिल कर एक होना असम्भव था। जरूरत इस बात की थी कि पहले एक अलग शासनकेन्द्र हो चाहे वह कृतसन्धि संघ (Confederation) हो अथवा एकमुखी शासन; लेकिन कोई नगर विशेष शासक न हो। एक ओर प्रजा के इस प्रकार के भाव थे, दूसरी ओर पोपों व एकमुखी शासकों की पारस्परिक खींचतान व जनपदीय संस्थाओं की घोर क्रूर-दृष्टि, इन सब बातों से जो पञ्चायत एक समय इटली के बल व महत्त्व का कारण थी वही प्रजा के इन नवीन सामाजिक भावों के सामने मृतप्राय हो गई और चारों ओर नए नए प्रश्न खड़े हो गए, हजारों भय उसके मन में पैदा हो उठे। प्रत्यक्ष है कि जो पञ्चायत प्रकट रूप से समता व स्वतंत्रता की घोषणा करती थी, जिस पंचायत के साथ छोटी जाति या कक्षा के लोगों ने मिल कर अपना रक्त बहाया था, विजय प्राप्त की थी और रण में साथ देने के लिये धनिकों के साथ साथ जागीरें पाई थीं उसी पंचायत से मक्खी की तरह निकाल दिया जाना यह लोग कब पसन्द कर सकते थे।

इधर तो नगर की भीतों के बाहर के रहनेवाले जिन्हें देश के बचाव करने में रक्त बहाना पड़ता था इस बात को न सह सके, उधर ज्यों ज्यों राज्याधिकृति बढ़ी व नए अधिकारवाले नगर लुप्त हुए, दुखियों की संख्या भी बढ़ी; क्योंकि अनेक नगर जो अपनी पंचायत के अधिकार में रहते थे एक दूसरे ही नगर की हुकूमत में हाथ मुँह बन्द कर के रहने को बाध्य हुए। सार यह कि शान्ति की तुला के पलड़े बराबर न रह सके। इस दशा में यदि कोई विदेशी अत्याचारी आ धमकता तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुतेरे असन्तुष्ट लोग उसका साथ देते और वह सहज में ही एकमुखी शासक बन बैठता और मुक्तिदाता की तरह पूजा जाता। अब हम इटली की सामाजिक दशा पर थोड़ा सा विचार कर के दिखलाए देते हैं कि क्यों इटली में उस समय वह विचित्रता थी जिसका हमने आरम्भ में ही कथन किया है और क्यों इटली का इतना नैतिक अधःपात मध्यकालीन शाके में था।

इटली की सामाजिक दशा भी बड़ी भयानक थी, इसका कायापलट भी राजनीतिक स्थिति के ही समान हो रहा था। आजकल के विचारों के अनुसार मध्यकालीन पञ्चायतें अर्थात् कम्यून (Communes) दूर से देखने में पहलेपहल छोटे छोटे राज्य के समान दीखती हैं; किन्तु वास्तव में वे हजारों भिन्न भिन्न गोष्ठियों का समाहार ही थीं। बड़े बड़े समवाय और छोटे छोटे समवाय, सभा व समितियां सभी जुदा जुदा प्रजातंत्र के रूप में थीं। अपनी अलग परिषदें, अपने न्यायानुशासन (Statute of Laws) और न्यायालय थे; पञ्चायत केवल एक कैन्द्रिक संस्था होती थी। परन्तु यह समवाय कभी कभी कैन्द्रिक प्रधान शासन से भी दृढ़तर और बली होते थे। जब कभी विप्लव के कारण पञ्चायत स्थगित या बन्द रहती तो यही अपना सारा काम चला लिया करते थे। सच तो यह है कि पञ्चायतों का सारा बल इन समवायों में था जो उसके खण्ड खण्ड करनेवाले और सञ्चालक थे। यह प्रजा को ऐसे प्यारे थे कि प्रजा अपने स्वतन्त्र समवाय की रक्षा के लिये प्राण देने को सदा ही तय्यार रहती और बल रहते कदाचित् दूसरे के पंजे में नहीं पड़ती थी।

यही कारण है और ठीक कारण है जिससे मध्यकाल को जातियों और समवायों का काल कहा जाता है। यद्यपि प्राचीन काल से यह स्थिति बहुत भिन्न थी और इन समवायों की अधिकता के कारण स्वभावों, विचारों और मनोवेगों में अनन्त अन्तर देखने में आने लगे थे, परन्तु आजकल की सी व्यक्तिक स्वतन्त्रता उस समय अज्ञात थी। प्रत्येक प्राणी अपनी जाति के लिये जीता था, उसी के बन्धन में रहता था, उसकी भलाई व रक्षा के लिये तन मन धन देना अपना कर्तव्य समझता था। उस समय के इतिहास में राजनीतिज्ञों, कारीगरों और वीरों के व्यक्तिक नाम नहीं मिलते जिन्होंने इन विषयों में बड़े बड़े काम किये हों। इसका कारण यही है कि जो कारीगरी या वीरता आदि कोई करता वह उस पञ्चायत के नाम से प्रसिद्ध होती न कि व्यक्ति विशेष के नाम से। जब कोई बात करता तो कहता कि अमुक जाति के कारीगरों, चितेरों, वीरों या विद्वानों ने यह बात की, यह आविष्कार किया। आजकल की भाँति व्यक्तियों का नाम नहीं लिया जाता था।

१५ वीं शताब्दी मसीही में यह बात जाती रही। डेंटी का महाकाय शरीर मध्यकाल की यवनिका से एक दम बाहर निकला; यद्यपि वह उसी काल में था और अपनी इसी प्रकार की संस्था का अभिमान करता था जिसका हाल हम ऊपर बतला चुके हैं। उसके समय में कवियों, चित्रकारों, राजनीतिज्ञों, रंगसाजों और दलपतियों के व्यक्तिक नाम सुने जाने लगे और उचित पात्रों को व्यक्तिक सम्मान वा प्रतिष्ठा दी जाने लगी। मानो इटली के समाज का रूपान्तर होना आरम्भ हो गया। नई नई संस्थाएं वा परिषदें बनीं, समता का प्रत्यक्ष प्रादुर्भाव हुआ और प्राचीन सम्बद्धता (Feudalism) नष्ट हुई। सब से अधिक यह बात फ़्लोरेंस में स्पष्ट होती थी। इसने अनेक बुरे अमीरों वा अधिकारवाले धनिकों को कान पकड़ कर शासन से अलग कर दिया, कई सभाएं बन्द कर दीं और गुटबन्दी असम्भव कर दो। जो लोग गुट बाँध कर मनमानी किया करते थे अब बगलें झाँकने लगे; उनकी सारी दुष्टताएं बंद हुईं। १५ वीं सदी में इटली के सामने सब से प्रधान वा कठिन प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि पञ्चायत ने जो बढ़ता हुआ प्रजासत्तात्मक रूप धारण किया है उसे एक नियमित नवीन शासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रूप कैसे दिया जाय। इन हेर-फेरों व अदल-बदलों में हजारों भय थे। नई संस्थाओं के प्रादुर्भाव के पहले पुरानी संस्थाएं नष्ट भ्रष्ट होने लगीं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के ही अधीन हो गया, सब को अपना पथप्रदर्शक आप होना पड़ा, लोग मनमाना करने लगे; यही कारण था कि लोगों में अधर्म वा अनीति की वृद्धि होने लगी, स्वर्थपरायणता व छल बढ़ने लगा। कोई किसी को रोकने टोकनेवाला न रहा।

पाठकों को याद होगा कि ऊपर हमने कहा है कि इटली में गुणों के साथ घोर नैतिक अवगुणों का होना विलक्षण प्रतीत होता है। लेकिन इसका कारण खोजने के लिये बिना विचारे किसी एक बात, काम या व्यक्ति को दोष लगाना ठीक न होगा, किन्तु घटनाओं की ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर खोज करनी पड़ेगी। अस्तु, हमें इटली के पुनरभ्युत्थान-कालीन दोषों वा दुर्गुणों का कारण स्पष्ट रूप से हर एक व्यक्ति का उच्छृङ्खलतापूर्ण स्वेच्छाचार मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि जब समाज-शासन वा धर्मबन्धन से कोई जाति बिलकुल मुक्त हो जाती है तो उसकी व्यक्तियां स्वेच्छाचारी हो कर नीतिपथ से गिर जाती हैं। भारत के नैतिक पतन का भी कारण हम इतिहास-विज्ञान के अनुसार ढूँढ़ें तो सहज में ही मिल सकता है पर यह अवसर इस बात की खोज का नहीं है।

(शेषआगे।)

----:o:----

हास्य-रस।

हास्य का इन्द्रिय-विज्ञान की दृष्टि से विचार। (क्रमागत)।

(गतांक से आगे।)

प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने अपने एक ग्रन्थ में हास्य की मीमांसा इस प्रकार की है:—"मनुष्य मात्र की इन्द्रियों और वस्तुओं का जब सन्निकर्ष होता है उस समय यदि मनुष्य का मन जागृत हो तो उसे ज्ञान-संवेदन होता है और यह ज्ञान-संवेदन ही एक प्रकार की शक्ति है। जिस तरह भिन्न भिन्न प्रकार की दो बिजलियों के एक दूसरे के पास आने पर एक प्रकार की नई शक्ति उत्पन्न होती है और उसका परिणाम चिनगारी की तरह का प्रकाश और आघात होता है, उसी प्रकार इन्द्रियों और पदार्थों का सन्निकर्ष होने पर ज्ञान-संवेदन-रूपी शक्ति उत्पन्न होती है। यह संवेदन दो प्रकार के होते हैं। एक सुखात्मक और दूसरा दुःखात्मक। मन और शरीर पर इनमें से प्रत्येक का भिन्न भिन्न प्रकार का परिणाम होता है। सृष्टिकर्त्ता ने शरीर में ऐसी योजना कर रखी है कि सारे शरीर में दो प्रकार के ज्ञान-तन्तु फैले हुए हैं। इनमें से एक अन्तर्वाहक है और दूसरा बहिर्वाहक। इन्द्रियों और पदार्थ का संयोग होने के कारण जो ज्ञान-संवेदन होता है वह पहले अन्तर्वाहक तन्तुओं के द्वारा सीधा मस्तिष्क तक जा पहुँचता हैं और इसके उपरान्त मस्तिष्क जैसी आज्ञा देता है उसके अनुसार वह बहिर्वाहक तन्तुओं की सहायता से शरीर के भिन्न भिन्न भागों में पहुँचाया जाता है। यह बात नहीं है कि यह आज्ञा होने का काम जान या समझ बूझ कर ही होता हो। बिना जाने या समझे बूझे जो आज्ञा होती है उसका पालन भी उसी समय हो जाता है। तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रायः ज्ञान-संवेदन के समय इच्छा-शक्ति पूर्ण रूप से चैतन्य और विशेष विवरणों से परिचित नहीं होती; अथवा यदि वह चैतन्य भी हो तो मस्तिष्क की दी हुई आज्ञा के पालन का अवसर नहीं मिलता; इसलिये ज्ञान-संवेदन होते ही जो शरीर-क्रिया होती है वह सदा इच्छा-शक्ति की अनुमति से ही नहीं होती बल्कि कभी कभी बिना उनकी अनुमति के भी हो जाती है। उदाहरण के लिये गुदगुदी होने पर तुरन्त अंग सिकोड़ लेना, आँखों के सामने या बहुत पास अचानक किसी चीज के आ जाने के कारण पलकों का बन्द हो जाना, किसी अंग में खुजली होते ही नाखून से उसे तुरन्त खुजलाना आदि जो अनेक अनैच्छिक क्रियाएं होती हैं उनका उद्देश्य यद्यपि शरीर-संरक्षण ही होता है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वह क्रियाएं मनुष्य की इच्छा के बिना ही हो जाती हैं। यह तो हुई अनैच्छिक क्रियाओं की बात; अब ऐच्छिक क्रियाओं को लीजिए। ऐच्छिक क्रियाएं भी इन्हीं ज्ञान-तन्तुओं की सहायता से होती हैं। यदि उँगली कहीं दब जाय तो ज्ञानतन्तुओं से स्नायु तक आज्ञा पहुँचती है और उँगली पीछे को खिंच आती है; यह तो हुआ अनैच्छिक क्रिया का उदाहरण। परन्तु क्रिया जब ऐच्छिक होती है—उदाहरण स्वरूप जब मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न होता है और उस विकार के कारण जब हम कोई क्रिया करने में प्रवृत्त होते हैं—तब वह ज्ञान-तन्तुओं की सहायता से ही घटित होती है। ज्ञान-संवेदन और मनोविकार से अनैच्छिक और ऐच्छिक क्रियाएं किस प्रकार उत्पन्न होती हैं इसके उदाहरण हम लोग नित्य प्रति अपने व्यवहारों में देखते हैं। शरीर में ठंढी हवा लगते ही कँपकँपी छिड़ जाती है। सुखकर या आनन्द की बात सुनते ही मनुष्य की वृत्ति एक दम बदल जाती है। यदि हमारी इच्छा उसे न पलटने या बदलने देने की हो तो वैसा करने के लिये हमें अपनी तरफ से बहुत जोर लगाना पड़ता है। यदि अचानक कोई घोर निराशा की बात हो जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि मानों शरीर में अर्धांग रोग की तरह का कोई विकार हो गया है। अथवा किसी ऐसे मनुष्य को जिसे अर्धांग-रोग की तरह का कोई विकार हो, किसी निश्चित सीमा से अधिक आवेश, भय या दुःख अथवा इसी प्रकार का कोई मनोविकार हो तो उसके शरीर के विकृत या निर्जीव अवयवों में भी तुरन्त एक प्रकार की चेतनता आ जाती है। इसी प्रकार और भी अनेक अनुभव-सिद्ध बातें हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि ज्ञान-संवेदन और मनोविकार, दोनों के कारण एक प्रकार की क्षोभ-शक्ति उत्पन्न होती है। यह ज्ञान-संवेदन जितना ही अधिक तीक्ष्ण और मनोविकार जितना ही अधिक प्रबल होता है वह क्षोभ-शक्ति भी उतनी ही अधिक बलवती होती है। जंजीर से बँधा हुआ कुत्ता जब दूर से अपने मालिक को आते हुए देखता है तो पहले वह धीरे धीरे पूँछ हिलाने लगता है। उसकी इस क्रिया से यह प्रकट होता है कि उसके मन में यही आशा उत्पन्न हुई है कि मेरा मालिक शायद मुझे खोल देने के लिये आ रहा है। मालिक ज्यों ज्यों उसके पास पहुँचता है त्यों त्यों उसकी पूँछ का हिलना बढ़ता जाता है और उसके अंग भी हिलने डोलने लगते हैं। जब मालिक का हाथ उसके गले के पट्टे तक पहुँचता है तो उसे निश्चय हो जाता है कि अब मालिक मुझे अपने साथ घुमाने के लिये ले चलेगा। उस समय उसका पूँछ हिलाना और उछलना कूदना इतना बढ़ जाता है कि मालिक के लिये उसके गले की जंजीर तक खोलना कठिन हो जाता है। बिलकुल खुल जाने पर कुत्ते को जो आनन्द होता है उसके कारण वह खूब उछलने कूदने लगता है और बड़े जोर से इधर उधर दौड़ने लगता है। घर की बिल्ली के सम्बन्ध में भी यही बात होती है। घर की मालिकिन जब उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगती है तब वह अपनी दुम फुला कर कुछ ऐसी क्रिया करती है जिससे प्रकट होता है कि वह सुहलाना उसे बहुत अच्छा मालूम होता है। तोता या मैना भी पिँजड़े में इधर उधर उछल कूद-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है। पर जब प्राणियों को आनन्द के बदले दुःख होता या क्रोध आता है तो भी उनमें स्नायु-क्षोभ दिखलाई पड़ता है। कुत्ता अपना ऊपरी होंठ सिकोड़ कर दाँत दिखलाने लगता है, घोड़ा अपने कान पीछे कर लेता है, क्रुद्ध सिंह जोरों से अपनी पूँछ पटकने लगता है और खिझाई हुई बिल्ली तो एक विलक्षण ही रूप धारण कर लेती है। लड़कों को जब कोई चीज बहुत पसन्द आती है तब वे उसे जीभ से चाटने लगते हैं। यदि कोई अपरिचित ध्वनि सुनाई पड़ी या बहुत शोख रंग की कोई चीज दिखलाई पड़ी तो दाई की गोद में लेटे हुए अबोध शिशु तक खिलखिला कर हँस पड़ते हैं।

नाटक में दर्शकों को जब संगीत का कोई पद बहुत अच्छा लगता है तो वे अपनी छड़ियों से ताल देने लग जाते हैं। गवैए लोग इकट्ठे हो कर अपने सिर और हाथों से अपना आनन्द प्रकट करते हैं और मुँह से भी "वाह वा, बहुत अच्छे" की झड़ी लगा देते हैं। किसी नाटक के दृश्य या उपन्यास के वर्णन से हमें यह मालूम हो सकता है कि किसी मनोविकार के प्रबल होने पर मनुष्य का शरीर कहाँ तक चल-विचल हो सकता है। मनोविकार की प्रबलता के कारण मनुष्य अपने आप से उच्च स्वरमें बोलने लगता है। अपनी तलवार की मूठ पर बार बार हाथ रखनेवाला हेमलेट, कलपना-दृष्टि के सामने खड़े हुए की मुट्ठी पकड़ने के लिये अपने हाथ की मुट्ठी मरोड़नेवाला मैकबेथ, अपने हाथों पर का कल्पनामय रक्त धो डालने के लिये कंडाल के कंडाल खाली कर देनेवाली उसकी स्त्री, चित्रपट पर लिखी हुई शकुन्तला या उर्वशी को देहमयी समझ कर उसे सुनाने के लिये प्रेम-वचन कहनेवाला और उसे आलिंगन करने के लिये बाँहें पसारनेवाला दुष्यन्त अथवा पुरूरवा आदि यद्यपि नाटक के पात्र हैं तथापि संसार में उनकी ठीक ठीक प्रतिकृति मिलना अधिक कठिन नहीं है।

जो क्षोभ-शक्ति ऊपर लिखे अनुसार शरीर-क्रिया उत्पन्न करती है उसके व्यय या शान्ति के लिये वह क्रिया ही खुला मार्ग है। पर वह मार्ग एक ही नहीं है। उसका दूसरा मार्ग यह है कि शरीर की स्नायु पर यद्यपि उस शक्ति का परिणाम हुआ तौ भी शरीर के बाहरी अंगों पर वह दिखलाई नहीं पड़ता। पर हमें इतना ज्ञान अवश्य होता है कि शरीर के भीतरी भागों पर उसका कुछ परिणाम अवश्य हो रहा है। उदाहरण के लिये, यदि सुखात्मक या दुःखात्मक ज्ञान-संवेदन अधिक तीक्ष्ण स्वरूप का हो तो नाड़ी जोर से चलने लगती है, शरीरमें रक्त का अभिसरण जल्दी जल्दी होने लगता है, जी अधिक घबराने लगता है और यहाँ तक कि पक्वाशय पर भी उसका परिणाम पड़ता है। ज्ञान-संवेदन यदि सुखात्मक हो तो अन्न सदा की अपेक्षा जल्दी पच जाता है और भूख बढ़ती है और यदि वह दुःखात्मक हो तो परिणाम इसका उलटा होता है। ऐसे अवसरों पर शरीर के भीतरी अंगों और अंतिड़ियों आदि के द्वारा उसका व्यय या उपशम होता है। इस व्यय होने का एक तीसरा मार्ग और है। इस मार्ग में क्षोभ से इन्द्रियां क्रियावान् नहीं होतीं; ज्ञान-तन्तुओं के एक भाग में जो क्षोभ उत्पन्न होता है उससे ज्ञान-तन्तु-जाल का और कोई भाग सचेतन हो जाता है। उदाहरणार्थ, किसी बात पर शान्तिपूर्वक विचार करने के समय जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसका व्यय शरीर-क्रिया या अन्तरेन्द्रियों के चलन-विचलन आदि के द्वारा न हो कर एक विचार से दूसरा विचार उत्पन्न होता है। उस दूसरे विचार से तीसरा और तीसरे विचार से चौथा विचार उत्पन्न होता है और यह परम्परा बराबर चली जाती है। इस प्रकार वह क्षोभ-शक्ति उसी परम्परा में विलीन हो जाती है और उसकी दशा उस नदी की सी हो जाती है जिसमें से बहुत सी नहरें निकाल कर सारे देश में उनका पानी फैलाया जाता है और जिसका बचा हुआ पानी घूम फिर कर फिर उसी नदी में आ मिलता है। अर्थात् इस तीसरे प्रकार में क्षोभ-शक्ति की उत्पत्ति भी विचारों से ही होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसका लय भी उसी में होता है; शरीर के भीतरी या बाहरी भागों पर उसका कभी किसी प्रकार का परिणाम नहीं होता। क्षोभ-शक्ति के व्यय के जो ये तीन मार्ग बतलाए गए हैं, एक ही समय में यह व्यय उन तीनों में से एक या अधिक मार्गों द्वारा और कम या अधिक भी हो सकता है और यदि एक या अधिक मार्ग बन्द हों तो क्षोभ-शक्ति के व्यय का सारा भार उस बचे हुए मार्ग पर पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि अत्यन्त मानसिक दुःख हुआ हो और उसे प्रकट करना अयुक्त हो अथवा किसी अन्य कारण से वह प्रकट न किया जा सकता हो तो वह दुःख दुस्सह हो जाता है। जिसकी आँखों से आँसू बह सकते हैं उसके दुःख की अपेक्षा उसका दुःख अधिक दुस्सह होता है जिसकी आँखों से आँसू नहीं बह सकते। जो मनुष्य अपना दुःख प्रकट न कर के मन ही मन कुढ़ने लगता है उसका दुःख बढ़ाने के लिये सैकड़ों दुःखपूर्ण बातें उसे याद हो आती हैं और ऐसे ही दूसरे विचार उत्पन्न होने लगते हैं। इसका कारण यह है कि दुःख की क्रिया को रास्ता न मिलने के कारण क्षोभ-शक्ति का व्यय विचार-तरंग उत्पन्न करने की ओर होने लगता है। इसके विरुद्ध यदि देखा जाय तो जान पड़ेगा कि मनोविकार उत्पन्न होते ही जब मनुष्य उसके समाधान के लिये क्रिया करने में प्रवृत्त होता है तब उसका क्षोभ उतना दुस्सह नहीं होता। दुःखित होने के समय यदि मनुष्य टहलने या घूमने फिरने के लिये निकल जाय, अथवा बात चीत में लग कर या पुस्तकें पढ़ कर मन बहलाने लगे तो उसका दुःख विस्मृत हो जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि यह क्षोभ जब एक निश्चित सीमा से आगे बढ़ जाता है तब उसका परिणाम शरीर-क्रिया में होता है; और हास्य भी इसी प्रकार की एक क्रिया है। बात केवल इतनी ही है कि वह क्रिया अन्य स्वाभाविक क्रियाओं की तरह सहेतुक नहीं होती, निर्हेतुक होती है। स्पेन्सर के मतानुसार प्रायः किसी मनोविकार का अतिरेक होते ही उसका सब से पहला परिणाम हास्य ही होना चाहिए। अपने इस कथन के उदाहरण में उसने यह दिखलाया है कि अत्यन्त आनन्द होने पर सब से पहले हास्य ही उत्पन्न होता है और अत्यन्त क्रोध आने पर भी सब से पहले हँसी ही आती है; भेद केवल इतना ही है कि वह हँसी भीषण या विकृत होती है। लज्जा, द्वेष आदि विकार भी परमावधि तक पहुँच जाने पर देखने में भले ही भयंकर वा बुरे जान पड़ें लेकिन उनसे होनेवाली मुखचर्य्या लक्षण के विचार से हास्य के ही अन्तर्गत आती है। यहाँ तक कि प्रायः सभी लोग यह बात जानते हैं कि दुःख से जब मनुष्य पागल हो जाता है तब भी उसे हँसी ही आती है। लँग नामक एक डाक्टर ने अपने अनुभव से लिखा है कि एक बार एक युवक रोगी की जीभ पर एक फोड़ा हुआ था। उस पर बहुत ही तीव्र और दाहकारक ओषधि लगाई गई थी। उस ओषधि के कारण जब उसकी शारीरिक पीड़ा पराकाष्ठा को पहुँच गई उस समय वह रोगी खूब खिलखिला कर हँसने और ठहाका मारने लगा। शेक्सपियर के टाइटस एण्ड्रोनिकस नामक एक नायक का जिस समय हाथ काटा गया था उस समय वह भी हँसने लगा था। जब उससे हँसने का कारण पूछा गया तो उसने हँसते ही हँसते कहा—"पूछते क्या हो, रोने के लिये मेरी आँखों में आँसू ही कहाँ बच गया है?" जिस समय क्षोभजन्य क्रिया सहेतुक होती है उस समय होनेवाली अंगविक्षेपात्मक क्रिया चेहरे से भिन्न शरीर के अन्य भागों या अंगों से होती है। उदाहरणार्थ, जब क्रोध रूपी मनोविकार प्रबल होता है उस समय अपने मन में किसी दूसरे को दण्ड देने का भाव उदय होता है; अतः इस हेतु से जो क्रिया होती है वह बहुधा हाथों के द्वारा ही होती है। जिस समय भय रूपी मनोविकार प्रबल होता है उस समय हम छिपने या भागने लगते हैं; अर्थात् यह क्रिया हमारे आत्म-संरक्षण के प्रयत्न की द्योतक है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविकारों का क्षोभ होने पर भी, चाहे विचारों की प्रबलता के कारण मानिए ग्रैार चाहे किसी ग्रैार कारण से मानिए, जिस समय सहेतुक क्रिया करने की इच्छा, आवश्यकता या सम्भावना नहीं होती उस समय क्षोभ-शक्ति का व्यय अन्य अवयवों के द्वारा न हो कर केवल मुँह के द्वारा ही होता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य के सारे शरीर में उसका चेहरा बहुत ही नाजुक अंग है ग्रैार थोड़े से क्षोभ से भी उसमें विकार उत्पन्न हो सकता है। जिस प्रकार मनुष्य जहाँ तक हो सकता है अपने चिर-परिचित या नित्य के आने जाने के मार्ग से ही चलता है ग्रैार विना किसी विशेष कारण के अपना नित्यवाला मार्ग नहीं छोड़ता, उसी प्रकार जब तक ग्रैार कोई क्रिया करने का कोई विशेष कारण न हो तब तक उसकी क्षोभ-शक्ति चेहरेवाले चिर-परिचित ग्रैार नित्य के मार्ग से ही शान्त होती है। चेहरे पर की कोई कोई स्नायु बहुत ही सूक्ष्म, हलकी ग्रैार चल होती हैं ग्रैार ऐसे अवसरों पर उन्हीं में विकार उत्पन्न होता है। ग्रैार जब उन पर परिणाम पड़ चुकता है तब श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियों, हृदय, पक्वाशय ग्रैार उसके उपरान्त शरीर की बाहरी इन्द्रियों पर निर्हेतुक क्षोभ-शक्ति का परिणाम होता है। चेहरे पर परिणाम उत्पन्न करने के उपरान्त जब क्षोभ-शक्ति का कुछ ग्रंश बाकी बच जाता है तब उसका व्यय दूसरी इन्द्रियों के द्वारा होता है। स्मित से ले कर अतिहास तक हास्य के जो छः प्रकार इस प्रकरण के आरम्भ में बतलाए जा चुके हैं वे सब उक्त प्रभेद के ही उदाहरण हैं। अर्थात् यदि उत्पन्न क्षोभ-शक्ति अहेतुक ग्रैार सैाम्य हुई तो केवल स्मित ही उत्पन्न होगा। साहित्य-ग्रन्थों में कहा गया है कि स्मित केवल श्रेष्ठ लोगों के योग्य होता है; उसका कारण या उपपत्ति यही है कि श्रेष्ठ ग्रैार संस्कृत मनवाले मनुष्य के मनोविकार प्रायः उसके अधिकार में ही रहते हैं; वे उच्छृङ्खल या मर्य्यादा-विरुद्ध नहीं होते। अर्थात् यदि ज्ञान-तन्तु का क्षोभ हो तो भी उससे उत्पन्न होनेवाली शक्ति शान्त ग्रैार धीमी रहती है। इसलिये वह स्मित सरीखी सूक्ष्म ग्रैार सैाम्य क्रिया उत्पन्न करने के उपरान्त बाकी नहीं बच रहती। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ ग्रैार विचारी लोगों में ज्ञान-तन्तुग्रों का क्षोभ कोई विशेष कारण आ पड़ने पर ही होता है, सहसा अकारण नहीं उत्पन्न होता। पर अज्ञ ग्रैार अविचारी लोगों अथवा छोटे बालकों में मनोविकार प्रबल होता है, उन्हें कर्त्तव्य की अधिक चिन्ता नहीं होती ग्रैार इसी लिये वे अधिक हँसने ग्रैार ग्रंग-विक्षेप आदि सभी बातें करने के विशेष पात्र होते हैं।

ऊपर के सब विवेचनों में हास्य के जिन कारणों का विचार हुआ है वे कारण 'क्षोभ-शक्ति की शान्ति की आवश्यकताएं' हैं। परन्तु हास्य के ग्रैार भी अनेक कारण हैं। उनमें से एक कारण यह भी है कि जब बहुत समय तक मनुष्य पर एक ही प्रकार की मनोवृत्ति का अधिकार रहता है तब वह उससे मुक्त होना चाहता है। हास्य के सब कारण सर्वथा आनन्दमय ही होते हैं। पाठशाला में चार पाँच घन्टों तक कड़ी देख रेख में ग्रैार चुपचाप बैठे रहने के उपरान्त छुट्टी होने पर बालक जब पाठशाला से बाहर निकलते हैं उस समय वे प्रायः हँसते हुए ही दिखाई देते हैं। उनके इस हँसने का कारण यह नहीं होता कि उनका मनोविकार या ज्ञानतन्तु-क्षोभ निश्चित मर्य्यादा से बहुत बढ़ गया है; बल्कि उसका कारण यह है कि बहुत देर तक शान्तिपूर्वक रहने के कारण उनकी मनोवृत्ति पर जो जोर पड़ा था उससे वे एक दम मुक्त हो गए। घर में किसी प्रकार का संस्कार आदि अथवा वेद-पाठ होने के समय जब लोगों को बहुत देर तक शान्तिपूर्वक बैठे रहना पड़ता है अथवा श्रावणी के दिन साल में एक ही बार लगातार एक पहर तक आचार्यों के फेर में पड़ कर धार्म्मिक कवायद करनी पड़ती है उसके श्रद्धालुता से होने के कारण शरीर ग्रैार मन पर जोर कम पड़ता है; तो भी उसमें अथवा उसके बाद लोगों को बहुत हँसी आती है। इसका अनुभव बहुत से लोगों को हुआ होगा। जिस समय किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवमन्दिर में वेदान्ती का कीर्त्तन या पण्डित की कथा होती है उस समय बहुत से लोगें के स्तब्ध और चुपचाप बैठना पड़ता है। ऐसे कीर्त्तन या कथा के उपरान्त जब सभा समाप्त हो जाती है तब सभासदें या श्रोताओं के चेहरों पर एक प्रकार का हास्य दिखाई पड़ता है। दुःख से जब मनुष्य का मन बेकाम या जड़ हो जाता है उस समय ठंढी साँस लेने से मनुष्य को जिस प्रकार कुछ आराम मिलता है उसी प्रकार ऊपर बतलाए हुए भिन्न भिन्न अवसरों पर आनेवाली हँसी के कारण जोर पड़ी हुई चित्तवृत्ति को आराम मिलता है; अर्थात् उसकी सहायता से शरीर में रक्त का अभिसरण जल्दी जल्दी होने लगता है और मस्तिष्क से सम्बन्ध रखनेवाले ज्ञान-तन्तुओं के छेद खुल जाते हैं।

ऊपर लिखी उपपत्ति उसी प्रसंग पर प्रयुक्त होती है जहाँ गम्भीरता अथवा उत्सुकता-वृत्ति मन में स्वभावतः उत्पन्न नहीं होती बल्कि वह जबरदस्ती खींच तान कर ओढ़ाई जाती है। परन्तु इससे आगे चलने पर यह जान पड़ेगा कि बहुत से अवसरों पर शान्ति, गम्भीरता या उत्सुकता आदि शक्तियां अपने ऊपर जबरदस्ती लादी नहीं जातीं बल्कि ऐच्छिक होती हैं। ऐसे अवसरों पर भी यदि मनोवृत्ति को एक दम शिथिल कर देनेवाला कोई कारण आ पड़े तो भी हास्य उत्पन्न हो जाता है। मान लीजिए कि हम नाटक देखते देखते उसमें बिलकुल तल्लीन हो गए हैं और दुःख प्रसंग के कारण सब लोगों पर शोक-पूर्ण शान्ति छाई हुई है। ऐसे अवस पर यदि नायक अथवा नायिका को लगातार एक के बाद एक, तीन चार छींकें आ जायँ तो उस समय दर्शकों में शायद ही कोई ऐसा मनुष्य मिलेगा जिसे हँसी न आए। अथवा मान लीजिए कि रामलीला या नाटक आदि में, वसिष्ठ ऋषि बड़ी ही शान्ति और गम्भीरता से रामचन्द्र को उपदेश दे रहे हैं; उस समय यदि उनकी नकली दाढ़ी छूट कर जमीन पर गिर पड़े और ऋषिवर का अभिनय करनेवाले पात्र का सपाट चेहरा उसमें से निकल पड़े, अथवा ज्यों ही कर्ण को मारने के लिये अश्वत्थामा अपनी तलवार म्यान से बाहर निकालें और उसमें से तलवार न निकल कर खाली मूठ ही निकल पड़े तो सभी दर्शक अवश्य हँस पड़ेंगे। इन सब उदाहरणों में पहले से चली आई हुई विचार-परम्परा में अचानक अड़चन पड़ जायगी और क्षोभशक्ति का व्यय विचार-परम्परा में न हो सकेगा। क्योंकि वसिष्ठ का उपदेश अथवा अश्वत्थामा के क्रोध के वचन सुनते समय मन में जो उच्च प्रकार के भाव उत्पन्न हुए थे, आँखों के सामने आया हुआ नया दृश्य उन भावों की शक्ति के पूरी तरह लय होने के योग्य न होगा और लोगों को हँसी आ जायगी। ऐसे समय में नए दृश्य के सम्बन्ध में विचार उत्पन्न करने के बाद जो शक्ति बच रहेगी, जैसा कि पहले कहा चुका है, उसका व्यय अवश्य ही दूसरे मार्गों से करना पड़ेगा अथवा स्वयं होगा; और उन मार्गों में हास्य अथवा हास्य-क्रिया ही मुख्य मार्ग है। हास्य के अतिरिक्त और क्रियाओं के न होने का कारण यह है कि ऊपर बतलाए हुए उदाहरणों में असंबद्धता-दर्शन की अपेक्षा और कोई प्रबल मनोविकार उस समय मन में उत्पन्न नहीं होता। यदि और कोई मनोविकार उत्पन्न होता तो हँसी कभी न आती।

साधारणतः असंबद्धता देख कर लोगों को कुछ आनन्द आता है और वे हँसने लगते हैं; पर यदि किसी अवसर पर असंबद्धता देख कर आनन्द न हो अथवा बहुत ही थोड़ा आनन्द हो तो उस समय मन में उसकी अपेक्षा और अधिक प्रबल गम्भीर विचारों का उत्पन्न होना सम्भव है। असंबद्धता-दर्शन के कारण मनोवृत्ति में प्रतिबंध या अड़चन उत्पन्न होने से पहले मनोवृत्ति जितनी प्रबल थी, प्रतिबंध या अड़चन उत्पन्न होने के उपरान्त भी मनोवृत्ति को उतनी ही प्रबल बनाए रखने के लिये यदि मनोविकार या कोई कारण उत्पन्न हो जाय तो हास्य उत्पन्न न होगा। सब प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंबद्धताओं या बे-सुरेपन से देखनेवाले की मनोवृत्ति हलकी नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि हमारे सामने कोई मनुष्य किसी दुबले पतले या लूले लंगड़े आदमी के सिर पर जबरदस्ती कोई भारी बोझ लाद दे तो उस समय हमें हँसी नहीं आवेगी बल्कि उलटे क्रोध ही आवेगा। अगर किसी राह चलते भले आदमी की पगड़ी या टोपी में कोई दुष्ट बालक कागज आदि का कोई तुर्रा खोंस दे तो उसे देख कर हँसनेवाले लोग विरले ही होंगे। बहुत से लोग ऐसे ही होंगे जिन्हें उस लड़के के कृत्य पर क्रोध आवेगा। यदि गरमी के दिनों में दोपहर के समय भोजन के लिये कोई मनुष्य अपने सौ मित्रों या ब्राह्मणों को निमंत्रित करे और उनके आने पर उनके सामने सेर भर भुने हुए दाने रख दे तो उसका यह कृत्य भी असंबद्ध ही होगा; पर उसे देख कर लोगों को हँसी आवेगी या क्रोध चढ़ेगा, इसका अनुमान प्रत्येक मनुष्य अपने आपको उन सौ निमंत्रित मनुष्यों में से एक समझ कर भली भाँति कर सकता है। सितार देखने में तो सौ रुपए दाम की जान पड़े और उसे कोई छेड़े तो उसमें से कर्ण-कटु स्वर निकलने लगे; ऐसी अवस्था में हँसी आने के बदले उस सितार के बनाने अथवा खरीदनेवाले की मूर्खता पर खेद ही उत्पन्न होगा। खास कन्नौज से दशहरे के लिये बीस रुपए तोले का बहुत बढ़िया खस का इत्र मँगवाया जाय और ठीक दशहरेवाले दिन सब लोगों के आने पर शीशी खोली जाय तो उसमें से गरी का तेल निकले और उसमें भी मरी हुई मक्खी दिखलाई पड़े। ऐसी अवस्था में सब लोग स्वयं ही विचार सकते हैं कि असंबद्धता के कारण हँसी आवेगी या किए हुए खर्च, उठाए हुए कष्ट और होती हुई दुर्दशा का ध्यान कर के क्रोध आवेगा। एक ओर तो क्रोध से भरा झपटा हुआ शेर आ रहा हो और शिकारी दूसरी ओर खड़ा हुआ उसकी तस्वीर उतारने के लिये फोटो का कैमरा ठीक कर रहा हो; ऐसी दशा में असंबद्धता के कारण दर्शक को हँसी नहीं आवेगी बल्कि शिकारी की अलौकिक धीरता और प्रसंग की विकटता का ध्यान कर के गम्भीर विचारों से उसका मन पूर्ण हो जायगा। जेवनार का सब सामान ठीक हो, भोजन परोसा जा चुका हो, पंगत बैठ चुकी हो, सब लोग 'लक्ष्मीनारायण' कह के मुँह में कौर डाला ही चाहते हों और इतने में कोई दुष्ट कहीं से एक लाश घसीटता हुआ लाए और खानेवालों के बीच में पटक दे तो उस समय हँसी आवेगी या क्रोध चढ़ेगा? लड़का है, पर अपने बाप के अच्छे रास्ते पर चलने से कोसों भागता है; इससे बढ़ कर असंबद्धता वह और क्या दिखलाएगा। तथापि ऐसी अवस्था देख कर कभी किसी को हँसी नहीं आवेगी। हमारी समझ में इतने उदाहरण इस सिद्धांत को प्रमाणित करने के लिये यथेष्ट होंगे कि असंबद्धता दिखलाई पड़ने से पहले मन में जिस प्रकार के विचार आए हुए होंगे; असंबद्धता-दर्शन के उपरान्त यदि उनसे हलके अथवा कम गम्भीर विचार मन में उत्पन्न होंगे तभी उस असंबद्धता-दर्शन से हँसी आवेगी।

असंबद्धता तीन प्रकार की हो सकती है। एक 'उच्चगा', दूसरी 'समगा' और तीसरी 'नीचगा'। उच्चगा असंबद्धता के दर्शन से विचार पहले से अधिक गम्भीर और उदात्त होते हैं; और इसी लिये दर्शक को हँसी नहीं आती। यदि असंबद्धता समगा हो, अर्थात् परस्पर विरुद्ध होनेवाली बातें समान स्वरूप की हों, तो मन की स्थिति में परिवर्त्तन उत्पन्न करने का कोई कारण नहीं हो सकता; अर्थात् जिस प्रकार के विचार असंबद्धता-दर्शन से पहले थे वैसे ही उसके बाद भी रहेंगे, मन की स्थिति में किसी प्रकार का अन्तर न दिखलाई पड़ेगा। जब केवल नीचगा असंबद्धता होगी अर्थात् किसी बड़ी बात की छोटी बात के साथ असंबद्धता अथवा विरोध होगा, तो केवल उसी समय हँसी आवेगी।

हास्य की उपपत्ति के विषय में और भी बहुत से ग्रंथकारों ने अपनी अपनी समझ के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत कुछ कहा है। इस स्थान पर थोड़े में उनका भी वर्णन किया जाता है। उन उपपत्तियों में से जो उपपत्ति मुख्य है उसे हम 'लाघवी' कहेंगे। इस उपपत्ति के पुरस्कर्त्ता के मत से विषयगत-लघुता का दर्शन ही रस की दृष्टि से हास्य का कारण होता है। वस्तु मात्र में जो जो वस्तुएं लघु या हीन होंगी, अथवा अनेक वस्तुओं का कोई विवक्षित सम्बन्ध दिखलाई पड़ने पर जो लघुता या हीनता जान पड़ेगी, मनुष्य स्वभावतः प्रायः उन्हीं को देखने या देखते रहने की इच्छा करता है; और उसी स्वभाव के अनुसार लघुता या हीनता देख कर उसके मन में आनन्ददायक नई वृत्ति उत्पन्न होगी। इस उपपत्ति के पुरस्कर्त्ताओं में ग्रीस के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता अरस्तू, अँगरेज तत्त्ववेत्ता हाब्स और प्रोफेसर बेन का समावेश होता है। अरस्तू ने अपने काव्य (साहित्य) ग्रंथों में आजकल के प्रसिद्ध काव्य-प्रकार 'कामेडी' की व्याख्या करते हुए उसे 'मनुष्य-स्वभाव का हलकापन वर्णन करनेवाला काव्य' बतलाया है। जिस स्थिति या अवस्था में स्वभाव का हलकापन आदि बिलकुल नहीं होता और केवल स्थिति की अनपेक्षिता ही हास्य का कारण होती है, उस स्थिति या हास्यविभाव का जिक्र उसने नहीं किया है। यदि उसकी व्याख्या के अनुसार देखा जाय तो हास्यकारक बातों का समावेश "कुरूप" बातों के अन्तर्गत होता है। हाब्स का कथन है कि हम लोगों को जो हँसी आती है उसका मुख्य कारण यह है कि हमारे मन में पराए की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता का ध्यान आता है और एक प्रकार का क्षणिक अहंकार उत्पन्न होता है। इस उपपत्ति में लघुता-दर्शन अथवा हीनता-दर्शन हास्य का प्रत्यक्ष कारण नहीं है बल्कि उसका प्रत्यक्ष कारण विषयी-गत अहंकार-प्रतीति है। यह श्रेष्ठता पराए से तुलना की अपेक्षा नहीं करती। यद्यपि अपने मन में दूसरों की अपेक्षा अपने आपको श्रेष्ठ समझने के कारण भी बहुधा हमें हँसी आती है तथापि बहुत से अवसरों पर हमें यह समझ कर भी हँसी आती है कि हम पहले की अपेक्षा इस समय श्रेष्ठ हैं अथवा हम जितनी हीनता तक पहुँच सकते थे उतनी हीनता तक न पहुँच कर श्रेष्ठ ही बने रह गए। मूर्ख को देख कर जो हँसी आती है वह इस कारण नहीं कि 'वह' मूर्ख है; बल्कि इस कारण कि हम उसकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् या विचारी हैं। इसी प्रकार, उदाहाणार्थ, लड़कपन में लोग जो पाजीपन या मूर्खता करते हैं बड़े होने पर उनका स्मरण कर के उन लोगों को हँसी आती है। दूसरे प्रकार की इस उपपत्ति और पहली उपपत्ति में भेद केवल इतना ही है कि पहली उपपत्ति में लघुता-दर्शन ही आदि और वही अन्त होता है—अर्थात् उसमें आदि से अन्त तक मन में एक ही विचार आता या रहता है। लेकिन दूसरी उपपत्ति में आरम्भ तो लघुता-दर्शन से होता है और अन्त अहंकार-प्रतीति से। पर इस उपत्ति में एक बड़ा दोष जान पड़ता है। वह यह कि अचेतन वस्तुओं को हँसी आने योग्य अवस्था में देख कर—अर्थात् जिस समय अपने मन में श्रेष्ठता या हीनता के विचारों के उत्पन्न होने का कोई कारण या सम्बन्ध नहीं होता—जो हँसी आती है उसकी मीमांसा करने के लिये अहंकार-प्रतीतिवाला कारण किस प्रकार प्रयुक्त हो सकता है? हमारे सामने यदि मनुष्य जाति का कोई दूसरा प्राणी मूर्खता का कोई व्यवहार या कार्य्य करता हो और लोग उसे देख कर हँसते हों तो उस समय उक्त सिद्धान्त के अनुसार हमें यह मानना पड़ेगा कि हमारे मन में उस मूर्ख की अपेक्षा श्रेष्ठ होने का भाव उत्पन्न होता है और हम यह समझते हैं कि और लोग हम पर उस प्रकार नहीं हँस सकते। परन्तु मान लीजिए कि हमने किसी पेड़ पर बहुत ही विलक्षण आकृति का कोई फल लगा हुआ देखा अथवा किसी पेड़ की तस्वीर उतार कर देखी तो संयोगवश उसकी आकृति किसी बन्दर की सी दिखाई पड़ी तो उसे देख कर हमें जो हँसी आवेगी, उस हँसी का कारण आत्म-श्रेष्ठता-प्रतीति को किस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान सकते हैं? प्रोफेसर अलेकजेण्डर वेन ने पहले की इस उपपत्ति की थोड़ी सी मरम्मत की है। उनके मत से केवल लघुता-दर्शन ही हास्य का प्रत्यक्ष कारण है। उसमें आवश्यकता केवल इसी बात की है कि वह लघुता-दर्शन ऐसी परिस्थिति में न हो जिसमें गम्भीर अथवा आवेश-युक्त विचारों के उत्पन्न होने की सम्भावना हो।

(शेष आगे।

पहाड़ी वेधशालाएं।

ज्योतिष सम्बन्धी गणित करने और खगोल के नक्षत्रों, ग्रहों और ताराओं आदि की गति, दूरी और अन्यान्य दूसरी बातें जानने के लिये ही वेधशालाओं की सृष्टि होती है। बहुत सा धन व्यय कर के इन्हीं कामों के लिये उनमें अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे यंत्र रक्खे जाते हैं। भारतवर्ष का ज्योतिष-शास्त्र बहुत पुराना है और फलतः इसी देश में अच्छे अच्छे यंत्रों से सुसज्जित वेधशालाओं का सब से पहले बनना बहुत स्वाभाविक है। आज से प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व आमेर के प्रसिद्ध राजा मानसिंह ने काशी, दिल्ली, उज्जैन, मथुरा और जयपुर में बहुत अच्छी अच्छी वेधशालाएं बनवाई थीं। पश्चिमी देशों में वेधशालाएं बनाने का विचार बहुत बाद का है। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि युरोप और अमेरिका की आजकल की वेधशालाएं बहुत ही अच्छी अच्छी दूरबीनों और उत्तम यंत्रों से सुसज्जित होने के कारण बहुत अधिक उपयोगी हैं।

समतल भूमि से भिन्न ऊँचे स्थानों पर वेधशालाएं बनाने का विचार बहुत ही हाल का है। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में युरोपवाले आजकल के ढंग की वेधशाला का नाम भी न जानते थे; उसी समय सब से पहली दूरबीन हालैण्ड में सन् १६०८ के लगभग बनी और पेटेन्ट हुई थी। सब से पहली दूरबीन बनाने के सम्बन्ध में मेटिअस, लीपर ही और जोनसन के नाम लिए जाते हैं; पर निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि दूरबीन का वास्तविक आविष्कर्त्ता इन तीनों में से कौन था। दूरबीन के पेटेन्ट होने के प्रायः छः मास बाद प्रसिद्ध ज्योतिषी गेलीलिओ किसी काम से इटली के वेनिस नगर में गया था। वहाँ उसे पेरिस के एक मित्र का एक पत्र मिला जिसमें दूरबीन के आविष्कृत होने का समाचार लिखा था। इस पर उसने स्वयं परिश्रम कर के अपने लिये एक नई दूरबीन बनाई थी। उसका समकालीन केप्लर भी केवल दूरबीन का ही उपयोग करता था। दूरबीन के आविष्कार के उपरान्त सब लोगों ने समझ लिया कि ग्रहों और नक्षत्रों आदि को देखने के लिये अब और किसी चीज की आवश्यकता नहीं रह गई; और सब बातों से निश्चिन्त हो कर लोग केवल दूरबीन के सुधार में ही लगे रहे।

सन् १७१७ में न्यूटन ने यह सिद्धान्त निकाला कि ग्रहों के वेध के लिये केवल दूरबीन ही यथेष्ट नहीं है बल्कि उसके लिये स्वच्छ वायु की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है। उसका मत था कि दूरबीन कुछ निश्चित सीमाओं के बाहर काम नहीं कर सकती। वह जानता था कि नीची भूमि की हवा न तो स्वच्छ होती है और न स्थिर; और बहुत दूर की चीजें देखने के लिये हवा का स्वच्छ और स्थिर होना बहुत आवश्यक है। इसी लिये वह ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ कर वेधशाला का काम करने की आवश्यकता समझता था। न्यूटन के इस नए सिद्धान्त की आवश्यकता उसके उपरान्त कई ज्योतिषी धीरे धीरे समझते गए और उन्होंने उसके अनुसार युरोप के भिन्न भिन्न देशों में ऊँचे पहाड़ों पर वेध का काम भी किया। हैमिलटन, पटना और नाइस आदि पहाड़ों पर आजकल जो अच्छी अच्छी वेधशालाएं बनी हुई हैं उनकी नीव प्रायः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ही पड़ी थी। उन्हीं दिनों फ्रान्स के कुछ ज्योतिषी वहाँ के मान्टपेलिअर नामक पर्वत पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़ कर वेध किया करते थे । १८ जूलाई सन् १८६० वाले सूर्य्य-ग्रहण का फोटो भी उसी पहाड़ की चोटी पर से लिया गया था ।

१९ वीं शताब्दी के आरम्भ में सर जेम्स साउथ ने लन्दन में अपने लिये एक अच्छी वेधशाला बनाई थी । १८२१–२२–२३ में साउथ साहब सर जान हरशल के साथ उन नक्षत्र-युग्मों का वेध कर रहे थे जिनका पता सर विलियम हरशल ने लगाया था । पर वहाँ की परिस्थिति उनके काम के लिये अनुकूल नहीं थी इसलिये सन् १८२४ में वह अपनी सब से बड़ी दूरबीन उठा कर फ्रांस के पैसी नामक स्थान पर ले गए । इससे पहले किसी और ज्योतिषी ने जल-वायु या परिस्थिति आदि की प्रतिकूलता के कारण अपना स्थान नहीं बदला था ।

उसी अवसर पर हम्बल्ट ने इस बात का पता लगाया कि ठण्ढे देशों की अपेक्षा अयन वृत्त पर के और कुछ गरम देशों का जल-वायु वेध के काम के लिये बहुत अधिक उपयुक्त होता है ; क्योंकि ठण्ढे देशों में प्रायः समस्त तारे अस्थिर और जगमगाते हुए दिखाई पड़ते हैं पर गरम देशों में १० या १२ अंश से अधिक ऊँचाई पर वे नहीं जगमगाते और प्रायः स्थिर रहते हैं । जगमगाते हुए तारों की अपेक्षा स्थिर तारों पर दृष्टि गड़ाना बहुत सहज होता है । इसी लिये इंगलैण्ड या नारवे की अपेक्षा अरब या भारत में वेध का काम अधिक उत्तम और सहज में हो सकता है ।

सन् १८५१ में नारवे में एक खग्रास सूर्य्य-ग्रहण हुआ था । और लोगों के अतिरिक्त प्रोफेसर बाण्ड नामक एक ज्योतिषी ने भी उसे देखा था । नारवे से चलने के पहले बाण्ड ने निश्चय किया था कि मैं दिन के पूरे प्रकाश में दूरबीन से सूर्य्यमण्डल (Corona) देख लूँ ; इस काम के लिये उसने एक ऐसा ऊँचा स्थान निश्चित किया था जहाँ का वातावरण धूल और गर्द से साफ था । पर उसका वह उद्देश्य वहाँ सिद्ध नहीं हुआ और उसने स्वीजरलैण्ड पहुँच कर सूर्य्य-मण्डल की परीक्षा की ।

लैसल नामक एक ज्योतिषी ने लिवरपूल में वेध के काम के लिये एक दो फुट लंबी दूरबीन रखी थी । पर वहां उसका काम सन्तोषजनक रीति से नहीं होता था । इसलिये सन् १८५२ में ग्रहों के अधिक उत्तम दृश्य देखने के लिये वह अपनी दूरबीन उठा कर मालटा ले गया । सन् १८५९ में उसने चार फुट लंबी एक दूरबीन बनाई थी जो मालटा में ही सन् १८६१ में चढ़ाई गई थी और सन् १८६५ तक वहीं रही । सन् १८५६ में प्रोफेसर पियज़ी स्मिथ ने टेनरिफ (टापू) में जा कर ८९०० और १०७०० फुट की ऊँची दो पहाड़ियों पर बड़ी बड़ी दूरबीनें स्थापित कीं । वहाँ दो महीने तक रह कर स्मिथ ने ग्रहों को अच्छी तरह देखने के प्रश्न पर खूब विचार किया और आँधी, गर्द, हवा, कुहरे, बादल और ठण्ढ आदि के प्रभावों का ठीक ठीक पता लगाया । इन सब अनुभवों से यह सिद्ध हो गया कि उक्त दोनों पहाड़ियां वेध के काम के लिये बहुत उपयुक्त हैं । स्मिथ के अनुभवों का विवरण बहुत से वैज्ञानिक-पत्रों तथा एक पुस्तक में छप गया और उन सब का खूब प्रचार हुआ । उस समय से सब लोग यह बात भली भाँति समझने लग गए कि वेधशाला का काम केवल ज्योतिषी और दूरबीन से ही नहीं चल सकता बल्कि उसके लिये उपयुक्त स्थान की भी आवश्यकता होती है । लोगों ने यह भी जान लिया कि सभी पहाड़ों और पहाड़ियों पर इस सम्बन्ध में कुछ विशेष सुविधाएं हैं ।

सन् १८५२ वाली लैसल की यात्रा से केवल यही सिद्ध हुआ था कि बहुत बड़ी और बढ़िया दूरबीन भी केवल विशेष अवस्थाओं में ही पूरा काम दे सकती है और ये विशेष अवस्थाएं बहुधा पहाड़ों पर ही, और थोड़े से कामों के लिये समुद्र-तल के बराबरवाले (मालटा जैसे) स्थानों में ही मिल सकती हैं । जब उत्तम स्थान की उपयुक्तता प्रमाणित हो गई तब केवल उक्त "विशेष अवस्थाओं" का पता लगाना बाकी रह गया । बहुत बड़ी बड़ी दूरबीनों से पूरा पूरा काम लेने के लिये किन किन विशेष अवस्थाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता होती है इसका पता सब से पहले लैसल ने ही लगाया था। स्थान की उपयुक्तता का महत्त्व समझ कर कप्तान जैकब ने भी सन् १८६२ में दक्षिण भारत की नीलगिरी पहाड़ी पर एक बड़ी दूरबीन चढ़ाने का विचार किया था पर उसी वर्ष उसका देहान्त हो गया।

सन् १८६४ के अन्त में डाक्टर ड्रेपर नामक एक विद्वान् ने प्रोफेसर बाण्ड को एक पत्र भेजा था जिसमें उन्होंने यह लिखा था कि वेधशाला बनाने के लिये सब से अधिक उपयुक्त स्थान दक्षिण अमेरिका के पश्चिम-तट पर विषुवत्-रेखा के निकट किसी ऊँची पहाड़ी पर हो सकता है। बाण्ड की मृत्यु के उपरान्त वह पत्र किसी प्रकार कई ज्योतिषियों तक पहुँच गया और उन लोगों ने तदनुसार कुछ समय बाद पेरू देश (दक्षिण अमेरिका) की एक पहाड़ी पर एक वेधशाला बनवाई।

अब तक इस सम्बन्ध में जितनी बातें हुई थीं वह सब अलग अलग ज्योतिषियों ने ही की थीं; किसी सभा-संस्था ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया था। शिकागो में विज्ञान-वृद्धि के लिये अमेरिकनों की एक सभा (American Association for the Advancement of Science) है। सन् १८६८ में उस सभा के एक अधिवेशन में वेध के कामों के लिये पहाड़ी स्थानों की उपयुक्तता स्वीकार की गई। जो लोग विज्ञान-वृद्धि के लिये बहुत सा धन दान करते थे उनसे उक्त सभा ने अपने मन्तव्य में सिफारिश की थी कि वे अमेरिका के प्रशान्त तट पर नेबरास्का के निकट एक उत्तम वेधशाला बनवावें क्योंकि बादल वहाँ कम आते हैं और वातावरण दूसरे स्थानों की अपेक्षा अधिक स्वच्छ है। इसके दो वर्ष बाद ट्राय नामक स्थान में एक और सभा मे यह निश्चित हुआ था कि वहाँ की कांग्रेस के पास एक मेमोरियल भेज कर उससे प्रार्थना की जाय कि वह प्रशान्त रेल-पथ के सबसे ऊँचे स्थान पर जा कर एक वर्ष या इससे अधिक समय तक वेध का काम करने के लिये कुछ वैज्ञानिकों को अपनी ओर से नियुक्त करे। कांग्रेस ने भी यह प्रस्ताव मान लिया और तदनुसार काम करने के लिये कुछ लोगों को सरकारी बन्दोबस्त के मुहकमे के अधीन कर दिया। उन लोगों ने भिन्न भिन्न स्थानों पर रह कर बहुत सी नई और उपयोगी बातों का पता लगाया। प्रायः ५—६ वर्षों तक खूब परिश्रम और छान बीन कर के उन लोगों ने कुछ विशेष पहाड़ियों को वेध के लिये बहुत ही उपयुक्त, बतलाया; उनके बतलाए हुए स्थानों पर जो वेधशालाएं बनी हैं वही आजकल संसार में सब से बड़ी और अच्छी समझी जाती हैं।

ओन्टारियो (कनाडा) के हैमिलटन पर्वत पर पहलेपहल विधिपूर्वक सन् १८८१ में बुध ग्रह का याम्योत्तर गमन देखा गया था और सन् १८८२ में वहीं से शुक्र के याम्योत्तर गमन का फोटो लिया गया था। वहाँ के वेधों के फल बहुत से समाचार-पत्रों में छपे थे और सर्व साधारण का ध्यान इस प्रश्न पर खूब आकृष्ट हुआ था। इटली (युरोप) में एटना पर्वत पर भी सन् १८८१ में इसी लिये एक अच्छी वेधशाला बनाई गई थी। इस समय संसार में जितनी अच्छी अच्छी पहाड़ी वेधशालाएं हैं वे सब एटना और हैमिलटन पर्वतों पर की वेधशालाओं की सफलता देख कर ही बनी हैं।

पृथ्वी के निवासी केवल प्रकाश की सहायता से ही सब चीजों को देखते हैं। इस पृथिवी पर से ग्रहों और तारों के जो दृश्य हम लोगों को दिखलाई पड़ते हैं वे यथार्थ नहीं बल्कि कुछ परिवर्त्तित होते हैं। इस परिवर्त्तन का कारण यह है कि दूसरे ग्रह से उसके प्रकाश की जो किरणें इस पृथ्वी पर आती हैं उन पर हमारी पृथ्वी के वातावरण का कुछ प्रभाव पड़ता है। हम लोग मानों वायु के समुद्र में डूबे हुए हैं; इसलिये सब से पहले इस बात का पता लगाना बहुत आवश्यक है कि हमारे इस वायु-समुद्र को भेद कर दूसरे ग्रहों से जो प्रकाश आता है उस पर इस वायु-समुद्र का क्या प्रभाव पड़ता है। यह नियम है कि आकाश अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्य स्थान में, जहाँ वायु बिलकुल न हो, प्रकाश बिलकुल सीधा चलता है; पर हमारे वायु-समुद्र में जो प्रकाश पहुँचता है वह अपने सीधे मार्ग से कुछ विचलित हुआ रहता है और इसी लिये जो किरणें हमें दिखलाई पड़ती हैं वह अपने ग्रह से बिलकुल सीधे मार्ग पर नहीं आतीं कुछ विचलित हो कर आती हैं। इस विचलता का परिणाम यह होता है कि प्रत्येक तारा हमें अपने ठीक स्थान पर नहीं दिखलाई देता बल्कि उससे कुछ इधर उधर दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त किसी तारे का पूरा पूरा प्रकाश भी इसी वातावरण या वायु-सागर के कारण इस पृथ्वी तक नहीं पहुँचने पाता। उस प्रकाश का कुछ विशिष्ट और निश्चित अंश वातावरण में से पार होने के कारण उसी में गुम हो जाता है। इसका फल यह होता है कि वह तारा हमें अपेक्षाकृत धुँधला जान पड़ता है। यदि किसी प्रकार यह वातावरण हटाया जाय तो वह तारा हमें कुछ अधिक प्रकाशमान् दिखाई पड़ेगा। यदि तारा क्षितिज के पास हो तो वह हमें धुन्धला दिखाई पड़ता है, पर वही तारा यदि आकाश के मध्य में पहुँच जाय तो वह हमें अधिक प्रकाशमान् जान पड़ता है। प्रकाश के मान का तो कुछ अंश वायु में नष्ट ही हो जाता है; बल्कि इसके अतिरिक्त हमारी पृथ्वी की हवा में एक विशेषता यह है कि वह प्रकाश के जातीय गुण का भी कुछ अंश दबा रखती है। सभी पिण्डों में हमें कुछ लाली दिखाई पड़ती है। पर कोई पिण्ड वास्तव में उतना लाल नहीं है जितना वह हमें दिखाई पड़ता है। पिण्डों से दो प्रकार के प्रकाश आते हैं—एक नीला दूसरा लाल। लाली की अपेक्षा प्रकाश का नीलापन वायु के कारण कुछ अधिक नष्ट होता है। इस सिद्धान्त का सब से अच्छा प्रमाण अस्त होनेवाले सूर्य्य की लाली है। इसके अतिरिक्त केवल सूर्य्य से आनेवाले ताप की परीक्षा से ही इस बात का पता लग जाता है कि हमारे वातावरण के कारण उसके मान में भी अन्तर पड़ जाता है और गुण में भी।

वेध के काम के लिये इस अन्तर का ठीक ठीक पता लगाना बहुत ही आवश्यक है। पृथ्वी के वातावरण का तारों के प्रकाश पर जैसा और जितना प्रभाव पड़ता है उसके जानने के दो उपाय बहुत ही सुगम हैं। वेधक किसी एक स्थान पर किसी तारे के प्रकाश के मान का उस समय अनुमान कर ले जब कि वह तारा क्षितिज के पास हो और तदुपरान्त उसी तारे के प्रकाश का मान उस समय जान ले जब कि वह आकाश के ठीक मध्य में उसके सिर पर आ जाय। इन दोनों मानों से पता लग जायगा कि पृथ्वी के वातावरण का तारों के प्रकाश पर क्या प्रभाव पड़ता है। बात यह है कि जिस समय तारा क्षितिज पर होता है उस समय हमारी आँखों और उस तारे के मध्य में हमारी पृथ्वी का बहुत अधिक घना वातावरण रहता है; पर वही तारा जब हमारे शीर्ष-बिन्दु तक पहुँच जाता है तब उसे देखने के समय हमारी दृष्टि के सामने बहुत ही थोड़ी हवा रह जाती है। इसके अतिरिक्त प्रकाश पर पड़नेवाले वातावरण के प्रभाव को जानने का दूसरा उपाय यह है कि वेधक अपने काम के लिये दो स्थान नियत करे; उनमें से एक स्थान तो समुद्र-तल के बहुत निकट हो और दूसरा किसी ऊँचे पहाड़ पर हो। इन दोनों स्थानों में दृष्टि के आगे पड़नेवाले वातावरणों में भी बहुत अन्तर होगा। यदि हम समुद्र-तल के समीप से तारे को देखेंगे तो स्वभावतः हम बहुत गहरे वातावरण के नीचे रहेंगे; पर जब हम किसी पहाड़ की चोटी पर चढ़ जायँगे तो उस गहरे वातावरण का बहुत सा अंश हम अपने नीचे छोड़ देंगे और फलतः हमारी दृष्टि और तारे के बीच में बहुत ही थोड़ा वातावरण रह जायगा। ज्योतिष तथा विज्ञान आदि के सम्बन्ध की बहुत ही सूक्ष्म बातों का विचार करने के समय वातावरण के इस प्रभाव का पूरा ध्यान रखा जाता है; विशेषतः ज्योतिष-सम्बन्धी बड़ी बड़ी खोजें आजकल ऊँचे पहाड़ों पर ही होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बड़े ज्योतिषियों ने परीक्षा और अनुभव से पता लगाया है कि समुद्र-तल पर खड़े हो कर देखने की अपेक्षा दस हजार फुट ऊँचे पहाड़ पर चढ़ कर यदि देखा जाय तो सारे आकाश के नक्षत्र हमें कहीं अधिक चमकीले और प्रकाशमान् दिखाई देंगे। पर तारों की यह प्रकाश-सत्ता सारे आकाश में एक-समान नहीं होती। ऊँचे स्थान पर चढ़ कर यदि हम शीर्ष-बिन्दु पर के अथवा उसके आस पास के तारों को देखें तो उनके प्रकाश में हमें बहुत ही थोड़ी वृद्धि जान पड़ेगी; पर क्षितिज के पास के तारे हमें पहले की अपेक्षा प्रायः ढाई गुने अधिक चमकीले दिखाई पड़ेंगे। बात यह है कि ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ने से तारों के साथ आकाश-गंगा की चमक भी हमारे लिये बहुत बढ़ जाती है जिसके दोनों सिरे दोनों क्षितिजों से मिले होते हैं।

तारों का वेध करने के लिये ऊँचे स्थान पर चढ़ने से दूसरा लाभ यह होता है कि तारों की झिलमिलाहट कम हो जाती है। पृथ्वी-तल के बहुत समीप की हवा की अपेक्षा पहाड़ की ऊँचाई पर की हवा बहुत अधिक शान्त और स्थिर होती है जिसके कारण पहाड़ पर से तारे बहुत स्थिर जान पड़ते हैं; उस समय उनमें वह कम्प नहीं होता जो समुद्र-तल पर से देखने में जान पड़ता है। वेध के काम के लिये यह विशेषता बहुत ही महत्त्व की है। इसके अतिरिक्त खाली आँख या दूरबीन से देखने में इस विशेषता का जो महत्त्व होता है, तारे का फोटो लेने में वह महत्त्व और भी बढ़ जाता है। नीचे की ओर गहरी हवा की अपेक्षा ऊपर की ओर हलकी हवा में से नीली किरणें बहुत सुगमता से छनती हैं। ज्योतिष-सम्बन्धी वेध के लिये यह बात बहुत आवश्यक है कि जिस तारे का वेध किया जाता हो वह जहाँ तक सम्भव हो अधिक प्रकाशमान् जान पड़े; और साथ ही यथा सम्भव स्थिर और कम्प-रहित दिखलाई दे। तारों की चमक की अपेक्षा सब प्रकार के वेधों में उनकी स्थिरता की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है; क्योंकि जब तक तारे स्थिर न हों तब तक उनके ठीक ठीक स्थान आदि का निर्णय नहीं किया जा सकता।

तारों की चमक और स्थिरता पर कुहरे के आरम्भ का बड़ा ही विलक्षण और परस्पर विरोध-युक्त परिणाम पड़ता है। जिस समय वायु बिलकुल स्वच्छ हो—उसमें गर्द गुबार या कुहरे आदि का कहीं नाम न हो—उस समय यदि दूरबीन से दो ऐसे तारों को देखा जाय जो एक दूसरे के बहुत ही समीप हों तो वे तारे चमकते हुए तो खूब दिखलाई देंगे पर उनमें कम्प या चञ्चलता इतनी अधिक होगी कि उनके पारस्परिक अन्तर का ठीक ठीक पता लगाना बहुत ही कठिन हो जायगा। पर उसी समय यदि कुहरा आरम्भ हो जाय तो परिणाम यह होगा कि तारों का प्रकाश भी कम हो जायगा और चंचलता भी। इसका कारण यह है कि कुहरे के कारण वातावरण की भिन्न भिन्न तहों की तरी और गरमी बराबर होने लगेगी और वायु के स्थिर हो जाने से तारा भी स्थिर दिखाई पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कुहरे का दूसरा प्रभाव यह होगा कि तारे के प्रकाश का कुछ अंश उसमें लीन हो जायगा और तारा कुछ धुँधला दिखाई देगा। यदि कुहरा बहुत धीरे धीरे बढ़े और उसकी वृद्धि के साथ ही साथ तारे की चमक और चंचलता में पड़नेवाले अन्तर पर खूब ध्यान रखा जाय तो वह अन्तर बड़ा ही मनोरंजक और महत्त्व का जान पड़ेगा।

वेध के काम के लिये वायु का स्थिर और पारदर्शी होना भी बहुत आवश्यक है। पूरे वातावरण में वायु की कई परतें या तहें होती हैं; और इन तहों की तरतीब का तारों की स्थिरता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि वेधक किसी ऐसे लंबे चौड़े मैदान में खड़ा हो जो समुद्र-तल के प्रायः बराबर हो तो उसके ऊपर वातावरण की जितनी तहें होंगी वह पृथ्वी के ऊपर की ओर समानान्तर होंगी और उनके मान में भी किसी प्रकार का व्यतिक्रम न होगा। उस वातावरण की सब से नीचेवाली तह सब से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक गरम होगी, उसके बाद की तहों की गरमी क्रमशः कम होती जायगी और सब से ऊपरवाली तथा अन्तिम तह में सब से कम गरमी होगी। तहों के पारस्परिक मान का अन्तर क्रमागत और हिसाब से होगा। भिन्न भिन्न तहों की घनता और तरी बे-सिलसिले नहीं होगी बल्कि सिलसिलेवार होगी। अब उन तहों में से हो कर किसी तारे के प्रकाश की जो किरण आवेगी वह कुछ तिरछी होगी; पर उसका यह तिरछापन भी उतना ही निश्चित और हिसाब से होगा जितना कि तहों का क्रम है। पर यदि वातावरण की कुछ तहें बहुत ठण्ढी हों और उनके पास की ही दूसरी कुछ तहें अपेक्षाकृत गरम हों तो उस वातावरण में बहुत जल्दी जल्दी और अनिश्चित रूप से परिवर्तन होता रहेगा। नीचे की गरम हवा उठ कर ऊपरवाली ठण्ढी तह में चली जायगी और ठण्ढी तहवाली हवा नीचे उतर आवेगी; और यह परिवर्तन अवश्य ही बेढंगे और बेहिसाब होंगे। उस समय यदि कहीं ज़ोर से हवा चलने लगी तो यह बेढंगापन और बेतरतीबी और भी बढ़ जायगी। ऐसे क्षुब्ध वातावरण में से तारे के प्रकाश की जो किरण आवेगी वह बिलकुल टेढ़ी मेढ़ी होगी और उसमें हज़ारों बेतरतीबियां होंगी। फल यह होगा कि हम तारे का वास्तविक स्वरूप देखने में नितान्त असमर्थ हो जायँगे।

सितारों की जगमगाहट के कारण उनके रँगों में भी बड़ा भेद पड़ जाता है। यदि हम क्षितिज के पास के किसी चमकीले सितारे को देखें तो हमें उसके रँगों के परिवर्तन का बहुत कुछ पता चल जायगा। यदि दूरबीन से देखा जाय तो ये परिवर्तन और भी अधिकता से जान पड़ेंगे जिनके कारण कभी कभी गणित में बहुत बड़ी भूलें हो जाती हैं। ये सब परिवर्तन केवल वायुमान के घटते बढ़ते रहने और वातावरण की तहों के बदलते रहने के कारण होते हैं। हाँ, जिस समय सब तहें बराबर एक के ऊपर एक समानान्तर पर और वायुमान के विचार से क्रमयुक्त हों तो ये परिवर्तन नहीं होते। इसके अतिरिक्त दूरबीन जितनी ही बड़ी होगी और उसकी नाभी की दूरी जितनी अधिक होगी वातावरण के प्रभावों का उतना ही अधिक पता लगेगा। यही कारण है जिससे आजकल बड़े बड़े ज्योतिषी बहुत भारी भारी दूरबीनें लगाने के लिये पहाड़ी और ऊँचे स्थानों को ही सब से अधिक उपयुक्त समझते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें वायु-विज्ञान पर विचार-पूर्वक मनन करने की भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

साधारणतः यह कहा जा सकता है कि लंबे चौड़े मैदानों में वातावरण की तहें ऊँचाई में ठीक समानान्तर पर होती हैं। पर पहाड़ की चोटियों पर उनका टेढ़ा मेढ़ा होना स्वाभाविक ही है। पर यदि वायु बिलकुल ही स्थिर हो, चोटी के बहुत ऊपर से ले कर नीचे पृथ्वी तल तक का वायु-मान बराबर एक सा हो, समस्त वायु स्वच्छ हो अथवा चोटी के बहुत ऊपर से ले कर कुछ नीचे तक थोड़ा कुहरा हो तो अवश्य ही वहाँ की वायु सम होती है। और यदि सन्ध्या के समय वायु की ऐसी स्थिति हो तो वह प्रायः सारी रात वैसी ही बनी रहती है।

वेधशाला के लिये वही स्थान सब से अधिक उपयुक्त माना जाता है जहाँ लगातार कुछ अधिक समय तक मौसिम बहुत अच्छा और साफ रहे। वेध की तैयारियां करने में ही बहुत सा समय लग जाता है और यदि इन तैयारियों के बीच में ही भारी घटा या कुहरा आ जाय तो वह सारा समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है। पर यदि इस बात का निश्चय हो कि मौसिम बराबर अच्छा और साफ रहेगा तो कई सप्ताह पहले से ही वेध का कार्य्य-क्रम निश्चित किया जा सकता है और ठीक समय पर बड़ी उत्तमता से यह कार्य्य पूरा उतारा जा सकता है।

ऊपर जितनी बातों का वर्णन किया गया है उनमें से यदि किसी का भी अभाव हुआ तो वेध का काम सन्तोषजनक नहीं होता। डाकृर सदरफर्ड न्यूयार्क नगर के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी नगर में आपकी एक बढ़िया वेधशाला भी है; पर जिस स्थान पर वह वेधशाला है वह स्थान वेध के काम के लिये उपयुक्त नहीं है। डाकृर महाशय को इसका यह परिणाम भोगना पड़ा कि उनके द्वारा चन्द्रमा के उतारे हुए सैकड़ों चित्रों में से केवल दो चित्र कुछ ठीक आए; बाकी सब वायु की अस्थिरता के कारण खराब हो गए थे! उसी नगर के पास एक और स्थान पर आज से प्रायः चालीस वर्ष पहले डा० डे्पर की वेधशाला थी। डाकृर महाशय ने एक बार अपनी वेधशाला के सम्बन्ध में कहा था कि लगातार दो वर्षों में वे केवल तीन दिन ही चन्द्रमा का अच्छा चित्र उतार सके थे। इसकी वजह भी वायु की अस्थिरता ही थी।

यदि दोनों पक्षों की कुछ विशेष सुविधाओं का ध्यान छोड़ दिया जाय तो साधारणतः यह कहा जा सकता है कि किसी ऊँचे पहाड़ की खड़ी चोटी की अपेक्षा सपाट मैदान वेध के काम के लिये कुछ अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि वहाँ वातावरण की तहें समानान्तर और क्रमशः होती हैं। यदि किसी पहाड़ के ऊपर कोई अच्छा सपाट मैदान मिल जाय तो फिर बात ही क्या है। पर ऐसे मैदान प्रायः बरफीले होते हैं। यद्यपि स्वयं बरफीले मैदान से वेध के काम में किसी प्रकार की अड़चन नहीं पड़ती तथापि ऐसे मैदानों के वातावरण आदि में तथा अन्य बातों में कुछ ऐसी त्रुटियाँ और असुविधाएं होती हैं जिनके कारण ज्योतिषियों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।

पहाड़ की खड़ी और नुकीली चोटियाँ वेध के काम के लिये जरा भी उपयुक्त नहीं होतीं। दिन के समय तो वह चट्टानें धूप से तपती हैं और रात के समय वहाँ के वातावरण की तहें ठीक नहीं रहतीं। इसलिये न तो दिन के समय वहाँ से ग्रहों के अच्छे दर्शन हो सकते हैं और न रात के समय। जिन स्थानों की हवा बहुत खुश्क होती है और जहाँ दिन के समय वायुमान में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, वहाँ भी ग्रहों के ठीक ठीक दर्शन नहीं हो सकते। चट्टानी पहाड़ भी वेध के काम के लिये उतने उपयुक्त नहीं होते क्योंकि वहाँ की वायु में स्थिरता का अभाव होता है। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें हैं जिन्हें देखते हुए बड़े बड़े ज्योतिषी केवल कुछ विशिष्ट प्रयोगों के लिये ही ऊँचे पहाड़ों को अधिक उपयुक्त समझते हैं। शेष बहुत से कामों में उन्हें मैदानों में ही सुविधा होती है। यदि यह कहा जाय कि इस समय मैदानी और पहाड़ी वेधशालाओं की उपयोगिता-सम्बन्धी परीक्षा सी हो रही है तो कुछ अनुचित न होगा। यद्यपि बहुत सी बातों में दोनों प्रकार की वेधशालाएं समान रूप से उपयुक्त होती हैं तथापि इसमें सन्देह नहीं कि कुछ विशिष्ट और महत्त्व-पूर्ण प्रयोग केवल ऊँचे पहाड़ों पर ही हो सकते हैं, नीचे मैदानों में नहीं। इसी लिये कुछ आधुनिक ज्योतिषियों का मत है कि ऊँचे पहाड़ों पर स्थायी वेधशाला बनाने की आवश्यकता नहीं; हाँ जब कोई महत्त्व-पूर्ण प्रयोग करना हो तब अवश्य वहाँ जा कर छावनी डाल देनी चाहिए। इसी विचार से युरोप और अमेरिका में ऊँचे ऊँचे पहाड़ों पर बीसियों ऐसी बढ़िया वेधशालाएं बन गई हैं जहाँ आवश्यकता पड़ने पर ज्योतिषी लोग जा कर वेध करते हैं। उनमें से कुछ वेधशालाएं तो सरकारी हैं और कुछ बड़े बड़े लक्ष्मीपात्रों की बनवाई हुई हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पश्चिमी देशों के धनवान् विद्या और विज्ञान सम्बन्धी कामों में कितना अधिक धन व्यय करते हैं और उनकी सहायता से सदा कितनी बड़ी बड़ी खोजें होती रहती हैं। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में कालेजों से सम्बन्ध रखनेवाली भी बहुत सी वेधशालाएं हैं जिनमें गणित ज्योतिष के विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है और उन्हें वेध करने की रीतियां सिखलाई जाती हैं। ऐसी वेधशालाएं दस से बीस हजार डालर (एक डालर = ३=) तक में तैयार हो जाती हैं। उनके ऊपर का खर्च जिससे वैज्ञानिक खोजें होती हैं, इससे भिन्न होता है। अमेरिका में इस प्रकार की जो वेधशालाएं मौजूद हैं वे यथेष्ट नहीं समझी जातीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसी लिये वहाँ के बड़े बड़े धनवानों से विद्वान् लोग धन-दान की प्रार्थना कर रहे हैं। और एक देश हमारा भारत है जहाँ के लोग ऐसे ऐसे कामों का अनुमान स्वप्न में भी नहीं करते। अस्तु।

ऊपर कहा जा चुका है कि पहाड़ी वेधशालाओं में ज्योतिषी लोग सदा रहना पसन्द नहीं करते। उनके वहाँ सदा रहने की उतनी आवश्यकता भी नहीं होती। पर तो भी उन वेधशालाओं में एक एक अच्छा दफ्तर होता है जिसमें बारहो महीने कई आदमियों को रहना पड़ता है। वे लोग नित्य-प्रति होनेवाली बहुत सी बातें सदा लिखते रहते हैं। पाश्चात्य देशों में कई ऐसे अच्छे अच्छे यंत्र भी बन चुके हैं जो आप से आप—बिना किसी आदमी की सहायता के—नित्य-प्रति के प्राकृतिक परिवर्त्तनों और ग्रहों के सम्बन्ध की आवश्यक और जानने योग्य बातों का बराबर संग्रह करते रहते हैं। ऐसे यंत्र यदि किसी उपयुक्त स्थान पर लगा कर छोड़ दिए जायँ और साल भर बाद उन्हें फिर जा कर देखा जाय तो पूरे साल की घटित प्रायः सभी आवश्यक बातों का पता लग जायगा। पर एक तो इस प्रकार के यंत्रों का मूल्य बहुत अधिक होता है और दूसरे अभी उनमें कई त्रुटियां हैं। इन त्रुटियों को निकाल कर यंत्र को सब प्रकार से उपयुक्त और सुसंस्कृत करने तथा उन्हें कम लागत का बना कर सर्वसाधारण के वास्ते उन्हें सुलभ करने के लिये अमेरिका और युरोप के बड़े बड़े विद्वान् सिर-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। जब इस प्रकार के यंत्र बन जायँगे तब वेधशालाओं का नित्य का व्यय बहुत घट जायगा और उनकी संख्या बहुत बढ़ जायगी। इस सम्बन्ध में सब से विलक्षण बात यह है कि कुछ ज्योतिषी इस प्रकार की वेधशालाओं की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता ही नहीं समझते। उनका मत है कि प्राकृतिक दैनिक परिवर्त्तनों का पता थोड़ी सी वेधशालाओं से भी लग सकता है; और विशिष्ट अवसरों पर ग्रहों के चित्र आदि लेने में गुब्बारों और हवाई जहाजों से ही काम निकाला जा सकता है।

ऊँची पहाड़ियों और छोटे मोटे पहाड़ों पर की वेधशालाओं में तो आदमी बारहो मास रह सकते हैं; पर बहुत ऊँचे पहाड़ों पर जहाँ जाड़े के दिनों में बरफ पड़ता हो, आँधियां चलती हों और बिजलियाँ गिरती हों, आदमियों का सदा रहना असम्भव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य होता है। जो आदमी अधिक दिनों तक इस प्रकार के बुरे मौसिम में रहता है वह यदि किसी दिन मौसिम अच्छा भी हो तो अपना काम करने में असमर्थ ही रहता है। पहाड़ी वेधशालाओं से नीचे के मैदानों तक जो तार-सम्बन्ध होता है वह भी बुरे मौसिम में टूट जाता है। फल यह होता है कि ज्योतिषियों को कई कई सप्ताह निर्जन स्थानों में शेष संसार से बिना किसी प्रकार का सम्बन्ध रखे पड़े रहना पड़ता है। कठिन से कठिन संकट पड़ने पर भी वे अपनी सहायता के लिये नीचे से लोगों को नहीं बुला सकते। कई कई दिनों तक तार-सम्बन्ध होने पर भी उन्हें सहायता नहीं पहुँच सकती; क्योंकि बीच का रास्ता ही आने जाने योग्य नहीं होता। इसी प्रकार की और भी अनेक कठिनाइयां होती हैं जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ कर के प्रस्तुत लेख समाप्त किया जाता है।

पहाड़ी वेधशालाओं के बनाने में जो जो असुविधाएं या कठिनाइयाँ होती हैं उनमें से पहली कठिनता तो यह है कि पहाड़ के ऊपर सामान पहुँचाने और इमारत खड़ी करने में बहुत लागत आती है। दूसरे, बारहो महीने वहाँ दफ्तर रखने में बहुत खर्च पड़ता है। तीसरे, दैनिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये वहाँ जल पहुँचाने का ठीक और पूरा प्रबन्ध नहीं हो सकता। चौथे, नीचे के मैदानों से वहाँ तक सब प्रकार का माल और दूसरी चीजें भेजने में किराया बहुत लगता है। पाँचवीं कठिनता यह होती है कि पहाड़ के ऊपरवाले जंगलों में बहुधा आग लग जाती है। यद्यपि वेधशाला जंगलों में नहीं होती तथापि दूर के जंगलों में यदि आग लग जाय तो उसके धुएं से ही काम में बहुत बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अड़चन पड़ जाती है। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में यह कठिनता और भी बढ़ी हुई है क्योंकि वहाँ की सरकारें अपने अपने राज्य में जंगलों का ठीक प्रबन्ध नहीं करतीं। वहाँ पड़ती जमीनें गडरियों को मिल जाती हैं और गडरिए आगामी वर्ष अच्छी और अधिक घास पैदा करने के लिये प्रायः जंगलों में आग लगा दिया करते हैं। वहाँ असावधानी या प्राकृतिक कारणों से जंगलों में बहुत ही कम आग लगती है।

यह तो हुईं साधारण विपत्तियां; अब उन विपत्तियों को लीजिए जो भयंकर होती हैं। बरफीले पहाड़ों में प्राकृतिक बरफ पड़ने के कारण आदमी प्रायः अन्धा हो जाता है। अन्धा क्या हो जाता है उसकी आँखों में बहुत अधिक सूजन आ जाती है और उसे दिखाई नहीं पड़ता। यदि पाँच घंटे भी आदमी अपनी आँखों की रक्षा का प्रबन्ध बिना किए खुले मैदान के बरफ में रह जाय तो यह रोग उसे हो जाता है। कुछ औषधियाँ अवश्य ऐसी हैं जो यदि आरम्भ में ही दो तीन दिन तक लगाई जायँ तो रोग से छुटकारा हो जाता है पर तो भी आँखें महीनों तक बहुत कमजोर रहती हैं और अधिक समय तक देखने, दृष्टि गड़ाने या गरमी आदि सहने के अयोग्य हो जाती हैं। इससे बचने का सब से अच्छा उपाय यह है कि आदमी रंगीन चश्मा लगावे। दूसरी सब से बड़ी विपत्ति यह है कि अधिक ऊँचाई पर हवा बहुत ही हलकी और कम होती है और सब लोग वहाँ नहीं ठहर सकते। प्रायः दस हजार फुट की ऊँचाई से ऊपर आदमियों का रहना बहुत कठिन हो जाता है। बहुत स्वस्थ और बलिष्ठ आदमी भी वहाँ तीन चार घंटे से अधिक समय तक नहीं रह सकता। वह प्रायः बेहोश हो जाता है और उसके मुँह और नाक से खून जाने लगता है। बहुत से लोग तो पहाड़ों की चोटियों पर रहने में नितान्त असमर्थ होते हैं। बच्चों और बुड्ढों की अपेक्षा युवकों को ही यह रोग अधिक होता है। किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम करते ही यह रोग आ दबाता है। अमेरिका में एक पहाड़ प्रायः चौदह हजार फुट ऊँचा है। उसकी चोटी तक रेल गई है। प्रायः यात्री वहाँ की शोभा देखने के लिये जाते हैं। यद्यपि रेल वहाँ पौने दो घंटों में ही पहुँच जाती है और यात्रियों को मार्ग में किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता तो भी आधे से अधिक यात्रियों को यह रोग ग्रस ही लेता है। भिन्न भिन्न देशों के पहाड़ों में यह रोग भिन्न भिन्न ऊँचाइयों पर होता है; पर होता सब पहाड़ों पर है। कहते हैं कि अमेरिकन इण्डियनों पर इस रोग का प्रायः बहुत ही थोड़ा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऊँचे पहाड़ों पर मनुष्य की काम करने की शक्ति भी घट जाती है। जो काम मैदान में एक घंटे में होता है वही ऊँचे पहाड़ों पर दो घंटों में भी बड़ी कठिनता से होता है। ऊँचे पहाड़ों पर सदा रहनेवाले मनुष्य प्रायः अल्पजीवी भी हो जाते हैं।

इतनी बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ क्यों झेली जाती हैं? केवल विद्या-प्रेम के कारण—विज्ञान-सम्बन्धी अच्छे अच्छे सिद्धान्तों को ढूँढ़ निकालने के लिये। यदि विज्ञान-सम्बन्धी इतने लाभ न हों तो आप इतनी कठिनाइयाँ झेलने को मूर्खता के सिवा और क्या कहेंगे? और विद्या के लिये किसी प्रकार का श्रम न करना अथवा श्रम और कठिनाइयों से घबरा जाना भी मूर्खता नहीं तो और क्या है? यह प्रश्न ऐसा है जिसका उत्तर प्रत्येक पढ़े लिखे मनुष्य को अपने मन से लेना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध।

[लेखक—श्रीयुक्त डा० कालीचरण दूबे, एल० एम० एस० डी० पीएच० हेल्थ आफिसर, बनारस।]



दूध साधारणतः बच्चे ही पीते हैं और वह उन्हीं के लिये सब से अधिक उपयुक्त भी है। जिन तत्त्वों से मनुष्य के शरीर का पोषण होता है वे इसमें बहुत अधिकता से पाए जाते हैं। पर इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि केवल दूध से ही मनुष्य का गुजर हो सकता है; हाँ, इसमें पोषक और पौष्टिक तत्त्व बहुत अधिक हैं। जो लोग मांस नहीं खाते उनके लिये इसका व्यवहार और भी अधिक उपयोगी है। दूध बहुत स्वादिष्ट, पौष्टिक और हलका होता है इसलिये प्राचीन काल के भारतवासी इसे अमृत कहा करते थे। इसी दूध के कारण हिन्दू लोग गौ को माता के समान समझते हैं। मनुष्य का भविष्य उसके आरम्भिक भोजन पर ही निर्भर करता है, इसी लिये ईश्वर ने जन्म से ही उसके लिये दूध का प्रबन्ध किया है। भारतीय वैद्यों के अतिरिक्त यूनानी चिकित्सक भी दूध को सब से अधिक पौष्टिक मानते हैं और गुरदे की बीमारी, पेट के भीतरी घाव और मनुष्य को दुबला करनेवाले अनेक दूसरे रोगों में इसका व्यवहार करते हैं। पारा, संखिया आदि अनेक विषैले पदार्थ पेट में पहुँच कर आमाशय और अंतड़ियों में घाव या खराश कर देते हैं। दूध उन सब विषैले पदार्थों का मारक होता है और घावों की पीड़ा आदि कम करता है।

भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों के दूध का प्रभाव भी एक दूसरे से बहुत भिन्न होता है। उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जाता है।

(१) गौ का दूध—मनुष्य के लिये इसका गुण प्रायः माता के दूध के समान होता है। परन्तु गौ के दूध में "शक्कर" का भाग कम होता है और पोषक पदार्थ अधिक होते हैं; इसी लिये उसमें थोड़ा पानी और थोड़ी चीनी डालने की आवश्यकता होती है। इन दोनों क्रियाओं के उपरान्त वह माता के दूध के समान हो जाता है और जल्दी पचता है। वैद्यक के मत से गौ का दूध भारी, रसायन, शीतल, मधुर, जीवन को हितकारी और वात-पित्तनाशक है।

(२) बकरी का दूध—इसके गुण गौ के दूध के गुण से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं; पर यह उससे कुछ हलका होता है और श्वास, खाँसी तथा पित्त आदि को दूर करता है। बकरियां प्रायः नीम, बबूल और बैर आदि की पत्तियाँ खाती हैं, दिन भर घूमती रहती हैं और पानी कम पीती हैं; इसी कारण से उनका दूध बहुत से रोगों को दूर करता है। ज्वर आदि में वह हथेली और तलुओं में भी मला जाता है और प्रायः गुणकारी होता है।

(३) भैंस का दूध—और दूधों की अपेक्षा यह भारी और मीठा होता है; पर इसमें एक दोष यह है कि इससे भूख कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से आलस्य भी बढ़ता है। गौ के दूध की अपेक्षा यह अधिक शीतल, भारी और चिकना होता है और इसी लिये बीमारों और बच्चों के लिये उपयुक्त नहीं होता।

(४) ऊँटनी का दूध—यह औरों की अपेक्षा बलवर्द्धक तो अवश्य अधिक है पर बहुत जल्दी बिगड़ जाता है और इसी लिये लोग इसका व्यवहार भी कम करते हैं। प्रायः देहातों में इसका खोआ अधिक बिकता है। वैद्य लोग जलोदर के रोगी को केवल ऊँटनी का दूध ही पिलाते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई चीज रोगी को नहीं देते।

सवेरे और सन्ध्या के दूध में अन्तर।

जो दूध प्रातःकाल के समय दुहा जाता है वह भारी और ठंढा होता है क्योंकि रात भर जानवर एक ही और ठंढे स्थान में बँधे या पड़े रहते हैं। लेकिन दिन भर घूमने फिरने या परिश्रम करने के कारण पशु के शरीर में गरमी आ जाती है जिससे सायंकाल का दुहा हुआ दूध अधिक गुण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायक होता है। उससे बादी भी दूर होती है और थकावट भी।

कच्चे और पके दूध का अन्तर।

कच्चा दूध भारी होता है और उससे भूख मारी जाती है; पर औंटाया हुआ दूध हलका होता है और जल्दी पच जाता है। कभी कभी दूध फट जाता है और उसमें से हरे या नीले रंग का पानी अलग हो जाता है। ऐसे दूध का कभी व्यवहार न करना चाहिए।

ताजा दूध।

जो दूध ताजा और गरम होता है वह बहुत जल्दी पच जाता और शरीर को पुष्ट करता है।

मिलावट।

दूध में साधारणतः पानी ही अधिकता से मिलाया जाता है। पहले दूध में पानी मिलानेवाले को सरकारी कानून से किसी प्रकार का दण्ड न हो सकता था क्योंकि उस समय दूध या किसी और चीज में किसी प्रकार का हानिकारक पदार्थ मिलाना ही अपराध समझा जाता था; पर अब वह बात नहीं है। अब पानी मिला कर दूध बेचना अपराध समझा जाता है; इसलिये दूध में किसी प्रकार की मिलावट न होनी चाहिए। आजकल बाजारों में एक प्रकार का यंत्र मिलता है जिसे दूध में डालने से तुरन्त इस बात का पता लग जाता है कि दूध में कितना पानी मिला हुआ है। यह यंत्र साधारण थरमामेटर की तरह का होता है और इसकी नली पर अंक लिखे होते हैं। असली दूध में यदि यह यंत्र डाला जायगा तो एक हजार छब्बीस (१०२६) नम्बर से एक हजार छत्तीस (१०३६) नम्बर तक डूबा रहेगा। इस यंत्र को एक बार पानी में और फिर एक बार असली दूध में डाल कर देखने से इसके व्यवहार करने की रीति मालूम हो जायगी।

जिस दूध में पानी मिला हुआ होता है यदि उसे औंटाया जाय तो उस पर मलाई बहुत कम आती है। इसकी परीक्षा करने का एक उपाय यह है कि काँच की एक ऐसी नली लो जिसका मुँह एक तरफ खुला हुआ हो और दूसरी तरफ बंद। (ऐसी नली को टेस्ट ट्यूब (Test tube) कहते हैं।) इस नली पर बराबर दूरी पर पचास चिह्न लगाओ और उसमें दूध भर कर चार घण्टे तक उसे पड़ा रहने दो। यदि दूध असली और बिना किसी प्रकार की मिलावट का होगा तो उसमें ऊपर की ओर तीन भागों या चिह्नों तक मलाई जम जायगी। यदि मलाई इससे कम चिह्नों तक जमे तो समझना चाहिए कि उसमें पानी मिला हुआ है।

कुछ लोग मक्खन निकाले हुए दूध को असली दूध में मिला देते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं निशास्ता, सोडा, सिंघाड़े या चावल का आटा, खरबूजे की पीसी हुई गिरी आदि भी मिला देते हैं। सुनते हैं, सिंघाड़े का आटा पंजाब में और खरबूजे के पीसे हुए बीज युक्त प्रान्त के देहातों में मिलाए जाते हैं।

दूध से बननेवाले पदार्थ।

दूध से दही, मट्ठा, घी, मक्खन, खोआ आदि अनेक पदार्थ बनाए जाते हैं।

दही—दही दो तरह का होता है; मीठा और खट्टा। दही की तासीर ठंढी होती है। यह शरीर में बल बढ़ाता और मोटाई उत्पन्न करता है। वैद्यक के अनुसार दही चार प्रकार का होता है। इसके अतिरिक्त प्रकार-भेद से दही के गुण में भी भेद होता है।

(क) मीठा दही कफ उत्पन्न करता और भूख बढ़ाता है।

(ख) खट्टा दही कफ और पित्त बढ़ाता है।

(ग) बहुत खट्टा दही अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न करता और बहुत हानिकारक होता है।

(घ) गौ के दूध का दही भूख बढ़ाता और पौष्टिक होता है।

(च) बकरी के दूध का दही कफ, पित्त और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादी दूर करता है और बवासीर, खाँसी आदि रोगों में उसके व्यवहार से लाभ होता है।

(छ) दूध की मलाई की अपेक्षा दही की मलाई अधिक भारी और बल-वर्द्धक होती है।

मट्ठा—यह खट्टा, मीठा और कसैला कई तरह का होता है। यदि इसमें नमक और भुना हुआ जीरा आदि डाल कर इसका व्यवहार किया जाय तो यह बहुत पाचक और लाभदायक होता है। जाड़े की अपेक्षा गरमी में इसका व्यवहार करना अधिक लाभदायक होता है। बाजरे या जुआर की रोटी के साथ खाने से यह शरीर का बल बढ़ाता है। देहात के लोग प्रायः इसी तरह इसका व्यवहार करते हैं। इसका व्यवहार उसी अवस्था में अधिक करना चाहिए जब शरीर में किसी प्रकार का घाव हो, दस्त आते हों, पेचिश हो अथवा दुर्बलता बढ़ी हो।

घी—ताजा घी बल-वर्द्धक और पुराना घी दस्तावर होता है।

मक्खन—घी की अपेक्षा मक्खन जल्दी पचता और अधिक बलवर्द्धक होता है।

खोआ—इसका व्यवहार अनेक प्रकार की मिठाइयां आदि बनाने में होता है।

लस्सी या छाछ—यह दूध और दही से बनाई जाती है। प्रायः सूजाक के बीमारों के लिये यह अधिक लाभदायक होती है। बीमारों को अधिकतर दही की लस्सी ही दी जाती है।

दूध जल्दी खराब हो जाता है और अधिक समय तक नहीं रह सकता। यदि किसी प्रकार कोई जानदार कीड़ा इसमें पड़ जाय तो इससे उस कीड़े का बराबर पोषण होता रहता है। क्योंकि प्रत्येक जीव को गरमी और भोजन की आवश्यकता होती है और दूध में ये दोनों बातें होती हैं। दूध में और गुणों को सोखने की शक्ति भी होती है इसलिये यदि किसी छूतवाले रोग का कोई अंश किसी प्रकार इसमें पहुँच जाय तो इसकी सहायता से वह रोग फैल भी सकता है।

दूध से रोग उत्पन्न होने के कारण।

दूध के कारण मनुष्य को जितने रोग होते या हो सकते हैं उनका पहला कारण दूध देनेवाले चौपायों का रोग है। यदि गौ या भैंस आदि को चेचक या तपेदिक हो, उसके थन पर किसी प्रकार का घाव हो, साधारण बुखार या खुजली हो, या इसी प्रकार का कोई और भयानक रोग हो तो भी ग्वाले अपनी आय बनाए रखने के लिये प्रायः उसका दूध दुह कर बेचा करते हैं। पर ऐसे रोगी पशुओं का दूध पीने से मनुष्य को या तो स्वयं वह रोग हो जाता है जिस रोग से वह पशु पीड़ित हो, अथवा दस्त, पेचिश, तपेदिक आदि और दूसरे रोग हो जाते हैं।

दूध से रोग उत्पन्न होने का दूसरा कारण पशुओं की खूराक है। प्रायः देखा जाता है कि जब किसी बच्चे की माँ को कोई दस्तावर ओषधि दी जाती है तो उसका दूध पीनेवाले बच्चे को भी दस्त आने लगते हैं, अथवा यदि माँ बीमार हो तो उसका दूध पीनेवाले बच्चे का स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है। इसी प्रकार यदि दूध देनेवाला कोई पशु कोई हानिकारक पदार्थ खा ले तो उसका परिणाम उसका दूध पीनेवाले के स्वास्थ्य पर भी पड़ेगा। इसलिये पशुओं को घास, भूसा, बिनौला आदि बढ़िया चारा दिया जाय और उस चारे में किसी प्रकार का हानिकारक पदार्थ न रहने दिया जाय। बहुत से लोग दोनों समय अपनी गौओं का दूध दुह कर उन्हें छोड़ देते हैं और वे दिन रात इधर उधर मारी मारी फिरती हैं और जो कुछ उन्हें मिलता है सो खा लेती हैं। यह बात बहुत बुरी है; ऐसा कभी न होना चाहिए। बहुत से ग्वाले अपने चौपायों को घोड़ों की लीद तक खिलाते हैं; इसके खाने के बाद उनमें जो दूध पैदा होगा वह बहुत खराब और स्वास्थ्य के लिये हानिकर होगा।

दूध से रोग उत्पन्न होने का तीसरा कारण ग्वालों का गन्दापन होता है। जो ग्वाला सफाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से न रहता हो, जिसके हाथों और नाखूनों में मैल भरी रहती हो, जो बिना अपना हाथ वा पशु का थन धोए हुए दूध दुहता हो, जिस ग्वाले के घर में कोई मनुष्य किसी संक्रामक रोग से पीड़ित हो, जिस ग्वाले के हाथ या शरीर में किसी प्रकार का घाव हो उसे कभी दूध न दुहना चाहिए; नहीं तो उसका दुहा हुआ दूध पीनेवालों के लिये हानिकारक होगा। प्रायः ठण्ढे देशों के ग्वाले दूध दुहने के समय अपने हाथों और थन पर थूक कर उन्हें गीला कर लेते हैं। यह बात भी बहुत बुरी है। ग्वाले को सदा बहुत सफाई से रहना चाहिए।

दूध से होनेवाले रोग का चौथा कारण वह बरतन हो सकता है जिसमें दूध दुहा या रखा जाता हो। बरतन यदि साफ न हो अथवा यदि उसमें किसी प्रकार की बीमारी के कीड़े पहुँच जायँ तो उसमें रखा हुआ दूध खराब हो जायगा। इसके अतिरिक्त स्वयं दूध में भी कभी कभी एक विशेष प्रकार का कीड़ा उत्पन्न हो जाता है जिससे दूध के स्वाद में खट्टापन आ जाता है। अगर ऐसे दूध का व्यवहार किया जायगा तो कै और दस्त आने लगेंगे और सम्भव है कि मुँह में छाले पड़ जायँ या बदहजमी हो जाय।

जो पानी दूध में मिलाया जाता है उसका दोष या गन्दापन दूध से उत्पन्न होनेवाले रोगों का पाँचवां कारण है। दूध में प्रायः पानी ही मिलाया जाता है और पानी में अनेक रोगों के कीड़ों का होना सम्भव है। जल-विज्ञान में पाठक पढ़ चुके हैं कि पानी की सहायता से बुखार, तपेदिक, पेचिश आदि अनेक प्रकार की बीमारियां फैलती हैं। अगर ऐसे रोगों के कीड़ों से दूषित पानी दूध में मिलाया जायगा तो उस दूध के पीने से भी वही बीमारियां होंगी जो उस पानी के पीने से हो सकती हैं; अगर दूध में बहुत बासी, सड़ा हुआ या मैला पानी मिलाया जायगा तो दस्त आने लगेंगे या बदहज़मी हो जायगी।

गौशालाओं या गौओं के रहने के स्थान का गन्दा रहना छठा कारण है। प्रायः गौशालाओं की जमीन कच्ची होती है और उसमें गोबर मूत आदि एक ही स्थान पर पड़े पड़े सड़ा करते हैं। पर वास्तव में पशुओं के रहने की जगह पक्की होनी चाहिए और उसमें मूत आदि बह जाने के लिए नालियां बनी रहनी चाहिए।

दूध के सम्बन्ध में असावधानता सातवाँ कारण है जिससे अनेक प्रकार के रोग हो सकते और होते हैं। देहातों से शहरों में ग्वाले जो दूध लाते हैं उसे या तो खुला रखते हैं और या उस पर बहुत गन्दा, मैला और बदबूदार कपड़ा रख देते हैं। खुले मुँह रहने के कारण सारे रास्ते की धूल आदि उड़ कर दूध में पड़ती है। जिस दूकान पर दूध बिकता है, यदि उसके आस पास कोई पेशाबखाना, पैखाना, नल या मोरी आदि हो तो वहाँ की बदबूदार हवा का भी उस दूध पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार वह दूध रोग उत्पन्न करने का कारण हो जाता है।

कुछ आवश्यक बातें।

दूध सदा गरम कर के पीना चाहिए।

गौओं भैंसों आदि को गरमी में नित्य और जाड़े में आठवें दिन नहलाना चाहिए और दूध दुहने के समय हाथ और थन को अच्छी तरह धो कर साफ कर लेना चाहिए।

यदि जानवर बीमार हो तो उसका दूध दुह कर फेंक देना चाहिए।

बीमार मनुष्य को दूध में हाथ न लगाने देना चाहिए।

दूध का बरतन दूध रखने से पहले और निकालने के बाद सदा गरम पानी से अच्छी तरह धो डालना चाहिए और दूध को साफ कपड़े से छानना और ढकना चाहिए।

पशुओं को सदा चारा आदि बहुत अच्छा देना चाहिए और उसके रहने का स्थान खुला और बहुत साफ होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन लाहौर।

पाठ्य-लेखों की विषय-सूची।

जिन विषयों पर षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में लेख पढ़े जायंगे, वह विषय निम्नलिखित हैं—

(१) प्राचीन भारतवासियों में गणित की उन्नति और उसकी शिक्षा-प्रणाली

(२) हिन्दी और बंगला का सम्बन्ध।

(३) हिन्दी और गुजराती का सम्बन्ध।

(४) हिन्दी और मराठी का सम्बन्ध।

(५) हिन्दी का संगीत-साहित्य।

(६) पंजाब और देहली में हिन्दी प्रचार करने का उपाय।

(७) सम्मेलन द्वारा स्थापित हिन्दी परीक्षाओं की उपयोगिता और उनके कार्य-क्रम पर विचार।

(८) हिन्दी-पत्रसम्पादन और उसमें सुधार की अपेक्षा।

(९) हिन्दी-भाषियों और हिन्दी प्रेमियों का सम्मेलन के प्रति कर्तव्य।

(१०) हिन्दी-भाषा के लिंगभेद पर विचार।

(११) भारतवर्ष में हिन्दी प्रचारिणी सभाएं, हिन्दी-पुस्तकालय, हिन्दी यन्त्रालय और हिन्दी-समाचारपत्र।

(१२) देवनागरी लिखने में नवीन चिह्नों की आवश्यकता।

(१३) वर्तमान हिन्दी का झुकाव।

(१४) हिन्दी में गद्य-काव्य।

(१५) हिन्दी में शिशुशिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें।

(१६) भारतीय राष्ट्रनिर्माण में हिन्दी का महत्त्व।

(१७) सूरदास के ग्रन्थों का परिचय और उनकी आलोचना।

(१८) तुलसीदास के ,, ,, ,, ,,

(१९) केशवदास के ,, ,, ,, ,,

(२०) हिन्दी-लेखप्रणाली के विवाद-ग्रस्त विषयों पर विचार।

(२१) पाठशालाओं, महाविद्यालयों, और विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने की आवश्यकता।

(२२) हिन्दी-भाषा की कविता की अन्य भाषाओं की कविता से तुलना और भविष्यकाल में उसकी उन्नति करने का विचार।

(२३) नागरी लिपि की अन्य लिपियों से तुलना, नागरी के गुण-दोषों का विवेचन तथा उसके सार्वदेशिक उपयोगी बनने की संभावना।

(२४) हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का उत्पत्ति काल तथा दोनों के परस्पर सम्बन्ध का इतिहास।

(२५) राष्ट्र-सुधार में हिन्दी नाटकों का कार्य।

(२६) स्त्री-शिक्षा और हिन्दी साहित्य।

२७ भविष्य में यह सम्मेलन विस्तृत और अधिकतर उपयोगी हो, इसके लिये क्या करना चाहिए।

(२८) हिन्दी में असभ्यसाहित्य तथा उसके रोकने का प्रयत्न।

(२९) देशी रियासतें तथा हिन्दी भाषा।

(३०) हिन्दी भाषा में संस्कृत के समासान्त पदों के प्रयोगों की मर्यादा।

(३१) हिन्दी-साहित्य को अलंकृत करने का यत्न कैसे करना चाहिए।

(३२) राज्य-व्यवहार, व्यापार-व्यवहार आदि में हिन्दी।

(३३) हिन्दी के मुसलमान कवि और लेखक।

(३४) प्रान्तीय सम्मेलनों से लाभ और उनके संगठन की आवश्यकता।

(३५) वैज्ञानिक, पदार्थविद्या, इतिहास, भूगोल आदि उपयुक्त विषयों के प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुवाद की आवश्यकता।

(३६) पञ्जाब में हिन्दी की दशा।

(३७) व्यापारी लिपि (लंडे कैथी आदि) और नागरी लिपि।

(३८) पूर्वीय और पश्चिमीय (प्राचीन तथा अर्वाचीन) नाटक।

(३९) प्राचीन भारतवर्ष के विश्वविद्यालय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय।

***

पुरातत्त्व-विभाग का काम।

जब से भारत सरकार की राजधानी कलकत्ते से उठ कर देहली चली गई है तब से देहली के आसपास के स्थानों में पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज का काम बहुत उत्तमता ग्रैार अधिकता से हो रहा है। उस प्रान्त में जितने पुराने स्मृति-चिह्न आदि हैं उन सब का जीर्णोद्धार करने ग्रैार भविष्य में उनकी रक्षा आदि करने का प्रबन्ध भी सरकार कर रही है। पुरातत्त्व-विभाग के डाइरेकृर-जनरल सर जान एच० मार्शल ने अभी हाल में सन् १९१२—१३ की एक रिपोर्ट प्रकाशित की है जिससे इस बात का पता चलता है कि उस एक वर्ष में इन्द्रप्रस्थ के आसपास के किन किन स्थानों में खोज की गई है ग्रैार उसका क्या परिणाम निकला है। इससे पहले पंजाब सरकार की ग्रोर से लाहैार के आस पास की मुसलमानी इमारतों के जीर्णोद्धार ग्रैार रक्षा आदि का प्रबन्ध किया गया था। इस वर्ष भारत-सरकार ने देहली के आसपास की हिन्दुग्रों ग्रैार बैाद्धों की पुरानी स्मृतियों की भी उदारता-पूर्वक खोज कराई है। संयुक्त प्रान्त में प्रयाग तथा आगरे के क़िलों की दो इमारतों के जीर्णोद्धार का काम समाप्त हो गया है। इन दोनों इमारतों में कई वर्ष से काम लगा हुआ था। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि पश्चिमी भारत में प्राचीन काल की इमारतें ग्रैार स्मृति-चिह्न आदि बहुत अधिकता से हैं ग्रैार इसी लिये सरकार अभी उनके लिये एक साथ ही बहुत सा धन नहीं व्यय कर सकती। तथापि गत वर्ष में वहाँ जो काम हुआ है वह कुछ कम नहीं है। मध्य-भारत तथा उसके आस पास की देशी रियासतों में इस वर्ष खोज-सम्बन्धी कोई महत्त्व का काम नहीं हुआ, दक्षिण हैदराबाद में दैालताबाद के क़िले की मीनारों की मरम्मत हुई, एलोरा की गुफाग्रों की रक्षा के कुछ उपाय हुए ग्रैार कुछ मसजिदों ग्रैार मक़बरों की मरम्मत हुई। मदरास प्रान्त में पहले वर्ष की तरह अभी तक काम जारी है। बंगाल में इस वर्ष कोई अधिक महत्त्व-पूर्ण कार्य्य नहीं हुआ। नए शासन-प्रबन्ध में बिहार ग्रैार छोटा नागपुर आदि के बंगाल से अलग हो जाने के कारण बंगाल प्रान्त के प्राचीन स्थानों ग्रैार स्मृति-चिह्नों की संख्या भी घट गई। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बिहार, ग्रोड़ीसा, आसाम ग्रैार मध्य-प्रदेश में अधिक उत्तम ग्रैार सन्तोषजनक काम हुआ। बरमा में बहुत से प्राचीन बैाद्ध-मन्दिर ग्रैार मठ आदि हैं; पर वहाँ की सरकार अभी तक उनके लिये अधिक धन नहीं व्यय कर सकी है। उसे वैसा करने की विशेष आवश्यकता भी नहीं क्योंकि वहाँ के धनी बैाद्ध स्वयं ही उन इमारतों की खबर लेते रहते हैं ग्रैार इस प्रकार वहाँ की सरकार का बहुत कुछ बोझ हलका कर देते हैं।

***

इस वर्ष एक बात बहुत ही सन्तोष-जनक ग्रैार महत्त्व-पूर्ण हुई है। सरकार ने बहुत से प्राचीन स्थानों को खोदवाने ग्रैार पूर्ण रूप से उनकी परीक्षा करने का काम आरम्भ किया है। यह जान कर ग्रैार भी आनन्द होता है कि अब सर्वसाधारण भी इसका उपयोग समझने लगे हैं ग्रैार कुछ लोगों ने इसमें सरकार को अच्छी सहायता भी दी है। बम्बई के मि० रतनताता ने एक प्राचीन स्थान की खोदाई का व्यय देना स्वीकार किया है ग्रैार भूपाल की बेगम साहबा ने अपने राज्य में स्वयं पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज का काम आरम्भ किया है। रतनताता के व्यय से भारत-सरकार पाटलिपुत्र में काम करा रही है ग्रैार स्वयं अपनी ग्रोर से वह उत्तर पंजाब में प्राचीन तक्षशिला नगरी खुदवा रही है। पाटलिपुत्र की खोदाई के सम्बन्ध में एक विलक्षण बात यह है कि पुरातत्त्व-विभाग के वहाँ के सरकारी अधिकारियों ने अशोक ग्रैार चन्द्रगुप्त आदि को पारसी बतलाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'पारसी' कदाचित् इसलिये कि वहाँ का सारा व्यय एक पारसी सज्जन दे रहे हैं! तक्षशिला की खोदाई का काम पुरातत्त्व-विभाग के डाइरेकृर जनरल स्वयं सर जान मार्शल के निरीक्षण में हो रहा है। वहाँ की खोदाई में बहुत सी पुरानी इमारतों और मूर्त्तियों आदि के अतिरिक्त सिक्के आदि भी मिले हैं जिनसे बहुत सी महत्त्व-पूर्ण बातों का पता लगा है। किसी समय तक्षशिला और उसके समीपवर्त्ती प्रान्त में बौद्धों का बहुत जोर था। बहुत से लोगों का विश्वास था कि उत्तर भारत में बौद्ध-धर्म का प्रचार कनिष्क ने किया था। पर सर जान ने अनेक प्रमाणों की सहायता से इस सिद्धान्त का खण्डन किया है। अनेक सिक्कों और मूर्त्तियों से बहुत से राजाओं के समय और वंशावलियों का भी पता लगा है। पटने के निकट कुमरहट नामक स्थान में खोदने पर खम्भों पर बना हुआ एक बहुत बड़ा मण्डप निकला है जो मौर्य्य-काल—ईसा से प्रायः तीन सौ वर्ष पहले—का है। खोदाई का काम आरम्भ होने के एक ही मास पीछे इस मण्डप का पता लगा था इसलिये अधिकांश समय उसी में बिताया गया था। अब तक उस मण्डप में की दस दस खम्भों की आठ पंक्तियां निकल चुकी हैं और अभी अधिक पंक्तियों के निकलने की सम्भावना और आशा है। मण्डप की विशालता का अनुमान इसी से किया जा सकता है। इसकी खोदाई का काम समाप्त होने पर इतिहास-सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त प्राचीन भारत की वास्तु-विद्या के सम्बन्ध में भी बहुत सी नई बातों का पता लगेगा।

***

एक नया उष्णता-मापक यन्त्र।

यों तो अब तक संसार में अनेक प्रकार के और एक से एक बढ़ कर उष्णता-मापक यंत्र बने हैं, पर उन सब में से अधिक विलक्षण यंत्र संयुक्त राज्य के एक वैज्ञानिक के पास है। इस यंत्र की सहायता से अब तक एक सौ पाँच तारों और सात दूसरे आकाशीय पिण्डों की वह उष्णता नापी गई है जो उनसे इस पृथ्वी तक पहुँचती है। इतनी सूक्ष्म नपाई वास्तव में बहुत ही अद्भुत और अभूतपूर्व है। वैज्ञानिक महाशय का नाम है मि० डब्ल्यू० डब्ल्यू० काब्लेंज। आपने भिन्न भिन्न तारों से पहुँचानेवाली गरमी का हिसाब भी बड़ी विलक्षणता से लगाया है। आप कहते हैं कि एक बूँद पानी की उष्णता एक अंश बढ़ाने के लिये यदि ध्रुव तारे की गरमी से काम लिया जाय तो उसमें दस लाख वर्ष लगेंगे। सूर्य्य की किरणों से यह काम प्रायः एक ही मिनट में हो जाया करता है। मि० काब्लेंज ने अपने यंत्र में एक ऐसी युक्ति लगाई है जिससे एक अंश गरमी का १/१०००००० वाँ भाग तक नापा जा सकता है। उनके यंत्र से ५३ मील की दूरी पर रखी हुई मोमबत्ती की गरमी का भी ज्ञान हो सकता है!

***

आगरा प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

देखते हैं, दिन पर दिन लोगों में प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों के लिये उत्साह बढ़ता जाता है। हिन्दी की सर्वमान्यता और प्रचार के ये बहुत ही शुभ लक्षण हैं। गत १० और ११ अक्तूबर को फीरोजाबाद में विद्वद्वर पं० श्रीधर पाठक के सभापतित्व में आगरा प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पहला अधिवेशन बड़े समारोह से हुआ था जिसमें उस प्रान्त के बहुत से हिन्दी-लेखकों और विद्वानों के अतिरिक्त कोटले के श्रीमान् राजा कुशलपालसिंह एम० ए० एल एल० बी० तथा मल्हानी जिला इटावा के राजा साहब भी सम्मिलित हुए थे। आरम्भ में स्वागत की कुछ कविताएं पढ़ी गई थीं और तदनन्तर व्रजभाषा के सुकवि पं० सत्यनारायण कविरत्न का भाषण हुआ था। इसके उपरान्त सम्मेलन के सभापति पं० श्रीधर पाठक का मनोहर लिखित व्याख्यान पढ़ कर सुनाया गया। तदुपरान्त सभापति महाशय ने दो प्रस्ताव उपस्थित किए। पीछे स्वदेश-बान्धव और राजपूत-सम्पादक ठाकुर हनुमन्तसिंहजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का एक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन सवेरे प्रतिनिधियों का परस्पर मिलन हुआ और उनका चित्र लिया गया। दोपहर को कई व्याख्यान हुए और प्रस्ताव पास किए गए। विश्वविद्यालय में हिन्दी को स्थान दिलवाने के सम्बन्ध का प्रस्ताव माननीय राजा कुशलपालसिंह ने स्वयं उपस्थित किया और उसके साथ एक छोटी सी मनोहर वक्तृता भी दी। इसके उपरान्त और भी अनेक वक्तृताएं हुईं। तीसरे दिन प्रान्तीय सम्मेलन की स्थायी समिति का संगठन हुआ जिसके सभापति राजा कुशलपालसिंह जी चुने गए। इस कार्य्य के लिये स्वागतकारिणी समिति के सभापति पं० सत्यनारायण कविरत्न विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी-सेवियों को हिन्दी के परम पक्षपाती और सहायक माननीय राजा कुशलपालसिंह का भी कृतज्ञ होना चाहिए जिन्होंने केवल सम्मेलन के इसी अधिवेशन में साहाय्य और योग नहीं दिया है बल्कि उसकी स्थायी समिति का सभापति होना भी स्वीकार किया है। ऐसे प्रान्तीय सम्मेलनों की प्रायः सभी प्रान्तों में बहुत आवश्यकता है क्योंकि हिन्दी का घर घर यथेष्ट प्रचार करने के लिये इनसे बड़ी सहायता मिलती है। ऐसे सम्मेलन सर्वसाधारण तक हिन्दी की अपील पहुँचाने में बहुत उपयोगी होंगे।

***

बिहार–हाईकोर्ट में हिन्दी।

बहुत दिन हो चुके कि बिहार प्रान्त की भाषा सरकार ने हिन्दी मान ही नहीं ली वरन् उसने उसका प्रचार भी कर दिया। यद्यपि लिखने की सुविधा के कारण बिहार की अदालतों में लोग बहुधा हिन्दी के रूपान्तरित अक्षर कैथी का ही व्यवहार करते हैं किन्तु छापने में विशेषतः हिन्दी वर्णमाला ही काम में लाई जाती है। बिहार कलकत्ता हाईकोर्ट के अधिकार में होने के कारण कलकत्ता हाईकोर्ट में बिहार विभाग के वर्नाक्युलर डिपार्टमेंट में हिन्दी जाननेवाले लोग रखे गए थे, लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है इस वर्नाक्युलर डिपार्टमेंट के रजिस्टर अभी तक उर्दू में ही लिखे जाते हैं। हाल में बिहार को पृथक हाईकोर्ट और लफ़्टीनेंट गवर्नरी मिली है इसलिये लोगों को आशा हुई थी कि अब हिन्दी के प्रति जो अन्याय जान बूझ कर वा अनजान में हो रहा है वह स्वतः मिट जायगा और बिहार को आगे इस सम्बन्ध में शिकायत का अवसर न मिलेगा। लेकिन हम देखते हैं कि जो लोग वर्नाक्युलर डिपार्टमेंट में भावी बिहार हाइकोर्ट के लिये भर्ती किए जाते हैं उनके लिये एफ़० ए० पास होने की शर्त लगाई गई है और हिन्दी जानने न जानने का कोई जिक्र ही नहीं है। कौन नहीं जानता कि बिहार युरोप में नहीं भारत में ही है और वहाँ की प्रजा प्रति सैा ९५ हिन्दी ही लिखती पढ़ती वा बोलती है। इसलिये सिवा उन विभागों व दफ़्तरों के जिनमें बिना अँगरेजी रखे सरकार को अथवा माननीय न्यायाधीशों को अत्यंत असुविधा हो सकती है सर्वत्र हिन्दी का ही प्रचलन रखना प्रजा के लिये हितकारी हो सकता है। हमने विश्वासपात्र सूत्र से सुना है कि भावी हाईकोर्ट के लिये जो रजिष्टर बन रहे हैं वह भी अँगरेजी में ही बन रहे हैं। यदि हमारे उपर्युक्त समस्त सम्वाद मिथ्या न हों तो यही ठीक समय इस बात का है कि बिहार की सारी प्रजा एक मुख से अपना दुःख व कष्ट जो उसे राज-काज में हिन्दी न होने के कारण हो रहा है तुरंत अपनी न्यायशीला सरकार के सामने बलिष्ट व स्पष्ट शब्दों में रख दे जिससे उसे भविष्य में कुड़कुड़ाने का अवसर न हो। इसी बीच में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन व नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, आरा व कलकत्ता आदि को भी अपना आन्दोलन आरम्भ कर देना चाहिए, नहीं तो आदमी भर्त्ती हो चुकने व रजिस्टर आदि तय्यार हो जाने पर उनकी बात के माने जाने की आशा बहुत कम है। क्या बिहारी, बंगवासी, कलकत्ता-समाचार प्रभृति हिन्दी पत्र इस विषय की पूरी पूरी जाँच करने व आन्दोलन आरम्भ करने का कष्ट न उठावेंगे?*

* यह नोट श्रीयुक्त राधामोहन गोकुलजी ने कृपा कर भेजा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्धकारिणी समिति * ।

शुक्रवार ता० २९ जनवरी १९१५ संध्या के ५ बजे ।

स्थान—सभाभवन ।

(१) गत अधिवेशन (ता० २ जनवरी १९१५) का कार्य्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) निश्चय हुआ कि बाबू ब्रजचन्द के स्वर्गवास से प्रबन्ध कारिणी समिति में जो स्थान खाली हुआ है उसके लिये पंडित कृष्णराव पावगी चुने जायँ ।

(३) निश्चय हुआ कि इस वर्ष राधाकृष्णदास मेडल के लिये निम्नलिखित विषय नियत किया जाय अर्थात् "हिन्दी' समाचारपत्रों का इतिहास और वर्त्तमान हिन्दी-पत्रों में अभाव ।"

(४) पंडित साँवलजी नागर के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि पुस्तकालय का जो सूचीपत्र छप रहा है उसके मुखपृष्ठ पर पंडित केदारनाथ पाठक का नाम सम्पादक की भाँति प्रकाशित किया जाय ।

(५) "वायुयान" पर रेडिचे मेडल के लिये पंडित उमरावसिंह शर्म्मा के लेख के सम्बन्ध में पंडित रामनरायण मिश्र की यह सम्मति उपस्थित की गई कि लेखक महाशय को पदक मिलना चाहिए ।

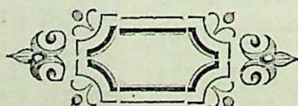
निश्चय हुआ कि पंडित उमरावसिंह शर्म्मा को इसके लिये मेडल दिया जाय और उन्हें लिखा जाय कि इधर वायुयान के सम्बन्ध में जितने नए आविष्कार हुए हों उनका वर्णन भी वे कृपापूर्वक इस लेख में सम्मिलित कर के इस विषय की पूर्ति कर दें ।

(६) पुस्तकालय के निरीक्षक का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि पुस्तकों की जिल्द बँधवाने के लिये इस वर्ष एक और दफ़्तरी नियुक्त कर लिया जाय और उससे ठीके पर काम लिया जाय ।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव पुस्तकालय के निरीक्षक की उपस्थिति में समिति के आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय ।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

* यह कार्य-विवरण भूल से ठीक समय पर प्रकाशित न हो सका था; अतः इस बार प्रकाशित किया जाता है ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A414 [संख्या ५
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

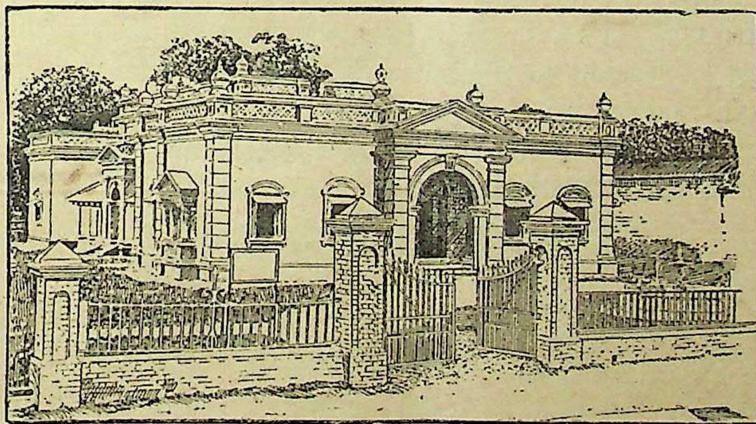
नवम्बर, १९१५

सम्पादक–रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मंगाइये, पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

चित्रोंसे युक्त।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त।]

लीजिये! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है!—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक। तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २-), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दे० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य। शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये। नमूनेके लिये)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी।

पवित्र काश्मीरी केशर—शुद्ध ॥=) तोला। शुद्ध शिलाजीत ।=) तोला कीमी ममीरा २) तोला। काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर। ७-१३-६-१४

भयंकर मार काट।

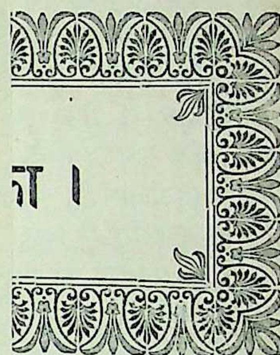
जर्मन जासूस	।-)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मी	-)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	॥।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	॥)	नवाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहां	।)	राणाप्रताप नाटक	॥।)
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	॥।)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियां	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	॥।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर संगीत	≡)
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१॥।)	व्यापारतत्व	॥)
रानी पन्ना	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	विकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा
काशी ।



मान्यवर महोदय,

सभा का २२ वाँ वार्षिकोत्सव माघ शुक्ल २ (ता: ५ फरवरी १९१६) शनिवार को ३॥ बजे होना निश्चित हुआ है । श्रीमान् महाराज साहब काश्मीर, बीकानेर, कोटा, अलवर, बनारस इत्यादि नृपतिगणों से इस शुभ अवसर पर सभा को सुशोभित करने की प्रार्थना की गई है और पूर्ण आशा है कि वे सभा पर अनुग्रह करेंगे । ऐसे समारोह के अवसर पर आप ऐसे उत्साही हिन्दी-प्रेमी का पधारना अत्यन्त आवश्यक है । आशा है कि आप अपने शुभागमन से सभा को अवश्य कृतार्थ करेंगे।

कृपाभिलाषी–

हरिप्रसाद पालधि

मंत्री ।

H. C. P.

ा ।

संख्या ५

देश में सेब, बिही और खूबानी उठाना चाहे तो उसको विफल- पड़ेगा । अब देखना यह है कि फल दूसरे देश में नहीं होते । देते हैं कि हवा पानी 'मुआफिक' से बड़े प्रश्न का यही उत्तर हो ओं से यदि पूछिए कि हवा पानी फिक है तो प्रायः कोई उत्तर नहीं सा उत्तर मिलता है जो अर्थ- ात यह है कि जब तक उत्तरदाता विषय के गूढ़ तत्व को न जाने सुनी सुनाई बातों पर निर्भर रह के ता है । विषय तो ऐसा है कि जब उत्तर न जाने तब तक बगीचों से ा जा सकता । हवा तो चलती ् के ऊपर की हवा कालान्तर में ी पर जाती है; फिर वहां से देश देशान्तर में घूमती फिरती समुद्र को पहुंचती है ।

यदि कोई काश्मीर में आम, कटहल इत्यादि लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय-सूची।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी
कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये,
पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

साप्ताहि

[सम्प

लीजिये ! 'हिन्दी-के
ली गई है !—यदि देशसे
तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण
उपयोगी बातें पढ़नेका शौ
हाल लड़ाईके सिलसिले
है तो तुरन्त ग्राहक हो
बर से साप्ताहिक । तौभ
रुपया वार्षिक मूल्य लि
आन्दोलन दे० दादाभाई
से कोई एक पुस्तक बि
स्वदेश और स्वभाषाकी
अवश्य भेजना चाहिये ।

☞ पता—मैने

भयंक

जर्मन जासूस	।=)	वीर वारांगना
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलव
राजपूतों की बहादुरी	॥।)	भोजपुर की ठग
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतया
रानी पन्ना	।=)	सिखों के दस गुरु

प...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग २० | नवम्बर, १९१५. | संख्या ५

वृक्षों पर जल-वायु का प्रभाव।

[लेखक,—श्रीयुक्त हरिप्रसादजी पालधि, बी० ए०।]



रोप और अमेरिका में फलों के बगीचे लगा कर लोग अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। उन देशों के लोग केवल ऐसा वैसा बीज नहीं लगा देते बल्कि इस बात पर ध्यान रखते हैं कि उनके बगीचों की धरती में कौन सी चीज़ सुख मानेगी। जो चीज़ जिस देश अथवा भूमि में सुख माने उसी के लगाने से लाभ हो सकता है। यथा समुद्र के निकट के स्थानों में नारियल, सुपारी इत्यादि फल अच्छे होते हैं। वहां इनके लगाने से बहुत लाभ है। परन्तु यदि कोई इस प्रान्त में नारियल अथवा सुपारी लगा कर लाभ उठाना चाहे तो दुराशा मात्र है। उसी तरह यदि कोई काश्मीर में आम, कटहल इत्यादि लगा कर अथवा इस देश में सेब, बिही और खूबानी लगा कर लाभ उठाना चाहे तो उसको विफल-मनोरथ ही होना पड़ेगा। अब देखना यह है कि क्यों एक देश के फल दूसरे देश में नहीं होते। लोग यह उत्तर देते हैं कि हवा पानी 'मुआफिक' नहीं है। क्या ऐसे बड़े प्रश्न का यही उत्तर हो गया? उत्तरदाताओं से यदि पूछिए कि हवा पानी क्यों नहीं मुआफिक है तो प्रायः कोई उत्तर नहीं मिलता; अथवा ऐसा उत्तर मिलता है जो अर्थ-शून्य होता है। बात यह है कि जब तक उत्तरदाता स्वयं विचारणीय विषय के गूढ़ तत्व को न जाने तब तक वह सुनी सुनाई बातों पर निर्भर रह के क्या उत्तर दे सकता है। विषय तो ऐसा है कि जब तक इस प्रश्न का उत्तर न जाने तब तक बगीचों से लाभ नहीं उठाया जा सकता। हवा तो चलती ही रहती है, समुद्र के ऊपर की हवा कालान्तर में हिमालय की चोटी पर जाती है; फ़िर वहां से देश देशान्तर में घूमती फिरती समुद्र को पहुंचती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवा की बनावट में कोई हेर फेर नहीं होता। फिर देखिए, जो पानी बरसता है वह प्रायः एक ही होता है। चाहे वह समुद्र में बरसे, चाहे हिमालय की चोटी पर। पृथ्वी पर गिरने के बाद उसमें बहुत से पदार्थ मिल जाते हैं; परन्तु फिर भी जो पानी काश्मीर में गिरता है नदियों की राह से वह पंजाब तक पहुंच जाता है। जब कि काश्मीर की हवा घूम फिर कर पंजाब में पहुंचती है ग्रैार काश्मीर का पानी भी पंजाब में पहुंच जाता है तो क्या कारण है कि काश्मीर का मेवा पंजाब में नहीं पैदा होता ग्रैार न पंजाबी मेवा काश्मीर में। इससे यह सिद्ध हुआ कि हवा पानी की बनावट को छोड़ कर भिन्न भिन्न स्थानों में कोई ग्रैार ही विशेषत्व होता है ग्रैार इस लेख में इसी विशेषत्व के दिखलाने की चेष्टा की जायगी।

इक्वेटर (Equator) अर्थात् निरक्ष देश या नाड़ी मंडल वह स्थान है जहां सूर्य्य मध्याह्न काल में सदा सिर पर देख पड़ता है। इस भूभाग में सूर्य्य की किरण खड़ी गिरती है इसलिये यह भूभाग बहुत गरम होता है। ज्यों ज्यों उत्तर अथवा दक्षिण जाइए, सूर्य्य की किरणें तिरछी गिरती हैं। इसलिये वहां गरमी कम पड़ती है। यहां तक कि दोनों ध्रुवों के देशों में सूर्य्य की गरमी इतनी कम होती है कि वहां पानी सदा जमा ही रहता है। यदि हवा गरम स्थान से आती हो तो गरम होती है ग्रैार इसके विपरीत यदि ठंढी जगह से आती हो तो ठंढी होती है। यदि वह समुद्र अथवा किसी ग्रैार बड़े जलाशय के ऊपर से आती हो तो उसमें जलीय भाग अधिक होता है; यदि जल-हीन देश से आती हो, यथा रेगिस्तान से, तो हवा शुष्क होगी। यदि किसी देश में अधिक हवा किसी गरम स्थान से आती है तो वह उस देश को गरम कर देती है।

इन बातों से यह सिद्ध हुआ कि किसी स्थान का गरम अथवा ठंढा होना उसकी स्थिति तथा उस स्थान पर जहाँ से वहाँ हवा हो कर आती है, निर्भर है। स्थिति के साथ एक ग्रैार बात पर भी ध्यान रखना चाहिए, वह यह है कि वह स्थान समुद्र के समतल से कितनी ऊँचाई पर है। यह स्थिर है कि जितनी ऊँचाई पर जाओ सरदी उतनी ही अधिक होती जाती है। यहां तक कि समुद्र तल से २०००० फुट की ऊँचाई पर इतनी सरदी होती है कि जल जमा रहता है। यही कारण है कि नैनीताल, शिमला काश्मीर इत्यादि स्थानों में सदा सर्दी बनी रहती है। इसलिये जो हवा ऊँचे पहाड़ों से आती है वह ठंढी होती है। यदि किसी स्थान में किसी महीने में बरफ पड़ता हो अथवा जाड़े में पाला पड़ता हो तो उस स्थान में आम, कटहल, केला इत्यादि कदापि अच्छे नहीं हो सकते। कारण यह है कि यह सब वृक्ष इतनी सरदी सहन नहीं कर सकते। या तो वे सरदी से मर जायंगे अथवा अधमरे हो कर रहेंगे। सरदी घट जाने पर वे फिर बढ़ने की चेष्टा करेंगे परन्तु फिर जाड़े में उनका वही बुरा हाल रहेगा। यदि निरक्ष देश से समान दूरी पर ऐसे दो स्थान हों जिनमें से एक तो ऐसा हो जहाँ उसकी ऊँचाई अथवा ठंढे वायु के प्रवाह के कारण सरदी अधिक हो ग्रैार दूसरा ऐसा हो जहां किसी गरम देश से हवा आने के कारण गरमी अधिक हो तो उन दोनों स्थानों के वृक्षों में बड़ा भेद देख पड़ेगा। पहिले स्थान में ऐसे वृक्ष लगाए जा सकते हैं जो प्रायः ठंढे देश के हैं ग्रैार दूसरे स्थान में गरम देश के वृक्ष सुख मानेंगे।

इससे यह सिद्ध हुआ कि बाग-बगीचों के लगाने के पहले यह जानना चाहिए कि उस स्थान में किस किस महीने में हवा किधर से बहती है ग्रैार उस स्थान की अधिक से अधिक गरमी ग्रैार इसी तरह अधिक से अधिक सरदी किस दरजे की होती है। क्योंकि यदि दस साल में भी एक साल गरमी अथवा सरदी ऐसी पड़ी कि जिसको किसी जाति का वृक्ष सह नहीं सकता तो उस जाति के सब वृक्ष उस साल मर जायँगे; बगीचा खाली हो जायगा ग्रैार कुल परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। इसलिये ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षों का लगाना ही व्यर्थ है जिनके असमय मर जाने की सम्भावना हो।

ऐसा देखा गया है कि बहुत से वृक्ष एक देश से देशान्तर में ले जाने से यद्यपि जीते भी रहते हैं परन्तु निर्जीव से रहते हैं। यदि विचार किया जाय तो यह मालूम हो जायगा कि ऐसे देशान्तरित वृक्षों के लिये उस स्थान की गरमी अथवा सरदी ऐसी है कि यद्यपि उसको एक दम मार नहीं देती तथापि उसको बढ़ने नहीं देती। इसका कारण यह होता है कि साल के कुछ महीनों में गरमी अथवा सरदी ऐसी पड़ती है जिससे वृक्ष को झटका पहुंच जाता है और जिसका असर बाकी महीनों में दूर होने से पहले ही फिर वही झटका लग जाता है। उस बेचारे की जिन्दगी इसी में बीतती है। वह सदारोगी ही बना रहता है। ऐसे वृक्ष को बगीचे में भले ही लगाइए और अपने चित्त को यह आश्वासन दीजिए कि हमारे बगीचे में ऐसी जाति का वृक्ष भी है, परन्तु ऐसे वृक्षों से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। यह भी देखा गया है कि देशान्तर से लाए हुए वृक्ष सतेज बढ़ते हैं, परन्तु फलते नहीं। फूल होता है और गिर जाता है। ऐसा क्यो होता है?

यदि अनुसन्धान किया जाय तो यह मालूम हो जायगा कि ऐसे वृक्षों के फूलने के समय उस स्थान में ऐसी हवा चलती है जो फूलों को मार देती है। यदि किसी साल ऐसी हवा न चली तो फल लग गए नहीं तो न लगे। ऐसे वृक्षों के लगाने से भी कोई लाभ नहीं। फिर देखिए कि ऐसे भी वृक्ष हैं जो हरे-ताजे रहते हैं, फूलते हैं और उनमें फल भी लगते हैं; परन्तु बाद का समय कुछ ऐसा हो जाता है कि फल के पकने की बारी नहीं आती। वह या तो गरमी से सूख कर गिर जाता है या उसके पकने के समय ऐसी बारिश होती है कि फल सड़ जाता है। अर्थात् लगानेवाले को कुछ विशेष लाभ नहीं होता। हाँ, किसी साल यदि गरमी कम पड़ी, अर्थात् गरम हवा कम चली अथवा वर्षा कम हुई तो पक्के फल भी मिल गए। बड़े आदमी अपने बगीचों में यदि ऐसे वृक्ष लगावें तो कोई बात नहीं। उनको यदि दस वर्ष में एक वर्ष भी फल मिल गया तो वे प्रसन्न हो गए। परन्तु जो आदमी लाभ के निमित्त बगीचा लगाता है उसको कदापि ऐसे वृक्षों का नाम भी न लेना चाहिए।

पाठकों को अब मालूम हो गया होगा कि हवा पानी के मुआफिक न होने का अर्थ क्या है। अर्थ केवल उसका ऐसा गरम अथवा ठंढा होना है जिसको वृक्ष सह न सके; अथवा उसका किसी विशेष या ऐसी अवस्था में बहना कि उस वृक्ष के फूल अथवा फल उसको सह न सकें। यह तो हुई हवा की बात। अब रहा पानी। पानी का असमय बरसना अथवा अधिक वा परिमाण से कम बरसना भी वृक्षों को हानि पहुंचाता है। उदाहरण स्वरूप मैं दिखाता हूं कि जिस साल आम के बौरने (कुसुमित होने) के समय बदली होती है उस साल आम के बौर (मुकुल) मर जाते हैं। यदि कोई ऐसा स्थान हो जहां हर साल पानी उसी समय बरसता हो जब कि आम के बौरने का समय हो तो उस स्थान में आम न होगा। इसलिये भारी बाग लगानेवालों को चाहिए कि वे इन बातों पर भी ध्यान रक्खें; नहीं तो बहुधा उनको विफल-मनोरथ होना पड़ेगा और उनका कुल व्यय और परिश्रम नष्ट हो जायगा। ऐसा भी देखा गया है कि एक ही जाति के फल के वृक्षों में अवान्तर भेद होता है; कोई पहिले पकता है और कोई पीछे। ऐसे फल के वृक्षों के लगाने के पहले यह देख लेना चाहिए कि इन अवान्तर भेदों में से कौन सा भेद हमारे स्थान के लिये उपयुक्त है। अमेरिका के भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न प्रकार के सेब के वृक्ष लगाए जाते हैं। इसका कारण केवल यही है कि उसी जाति के सेब वहाँ अच्छी तरह पकते हैं। भारतवर्ष ऐसे वृहत् देश में इसका विचार पहले कर लेना अत्यन्त आवश्यक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भिन्न भिन्न प्रकार के आड़ू के वृक्ष सहारनपुर के सरकारी बगीचे से मिल सकते हैं; परन्तु निश्चय है कि किसी विशेष स्थान में उन प्रकारों में से थोड़े ही प्रकार सुख माने। इसलिये हमको यह चाहिए कि पहिले ही से यह जान लें कि उन प्रकारों में से कौन सा किस समय फूलता और पकता है और अपने स्थान में वह काल उनके फूलने और पकने के लिये उपयुक्त है या नहीं। युरोप और अमेरिका में एक सरकारी महकमा है जिसका यही काम है कि वह हर प्रसिद्ध स्थान के लिये यह दरियाफ़ करे कि प्रति दिन वहाँ कितनी गरमी या सरदी पड़ती है, कितना पानी बरसता है, किस दिशा से हवा बहती है और कितने वेग से बहती है। पिछले दस बीस सालों का हिसाब देखने से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि कब कैसी अवस्था रहेगी। हवा के रुख से वर्षा होने की सम्भावना मालूम हो जाती है तथा शाम की सरदी से यह पता चल जाता है कि रात को पाला पड़ेगा कि नहीं। जब इन विषयों का ज्ञान हमको हो जाता है तभी हम अपने बचाव का उपाय भी कर सकते हैं।

ऊपर लिखे हुए झगड़ों का विचार तो केवल उन वृक्षों के लिये होगा जो अन्य देशों से लाए जायँ। यदि हम केवल उन्हीं वृक्षों को अपने बगीचे में लगावें जो हमारे प्रान्त में सर्वत्र लगाए जाते हैं तो हमको इन झगड़ों में पड़ने की आवश्यकता न होगी। तब तो हमको केवल इतना ही जानना आवश्यक होगा कि किस जाति के वृक्ष को कब और कैसे लगाना चाहिए और कैसे उनके फलों में उन्नति करनी चाहिए।

पहिली बात जो ध्यान देने के योग्य है वह यह है कि वृक्षों को बढ़ने के लिये उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए; अर्थात् उन्हें इतना स्थान देना चाहिए कि वे अपनी पूरी जवानी पर भी एक दूसरे से सट न जायँ, एक वृक्ष की जड़ दूसरे वृक्ष की जड़ से न मिल जाय। इसलिये हमको चाहिए कि यह देखें कि किस जाति का वृक्ष कितने स्थान पर अधिकार कर सकता है। इसका पता और और बगीचों के वृक्षों को देखने से लग सकता है।

दूसरी बात यह है कि वृक्षों के बढ़ने और सतेज रहने के लिये भोजन या खाद आवश्यक है। यह भोजन या खाद वे या तो हवा में से पाते हैं अथवा भूमि में से। बड़े बड़े वृक्षों की जड़ें बहुत नीचे तक आहार की तालाश में धँस जाती हैं। बगीचा लगानेवाला इन नीचे स्थानों में भोजन नहीं पहुँचा सकता। स्वभाव ही से जो कुछ भोजन उन स्थानों में हो वही वृक्ष पा सकते हैं। परन्तु भूपृष्ठ से हाथ डेढ़ हाथ की गहराई तक हम सहज ही में स्वेच्छा से खाद मिला कर मिट्टी की अवस्था बदल सकते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि हम वृक्षों की जड़ों को भूपृष्ठ ही के निकट रक्खें तो उनको जैसा भोजन हम चाहें, पहुँचा सकते हैं। इसलिये हमको चाहिए कि प्रारम्भ ही से ऐसी चेष्टा करें कि वृक्षों की पतली पतली जड़ें ऊपर ही फैलें। मूसला अलबत्ता नीचे धँसे, क्योंकि इससे वह वृक्ष मजबूत रहेगा और आँधी के झटके से जल्दी न गिरेगा तथा नीचे की तरी से उसकी हरियाली भी बनी रहेगी।

पतली जड़ों को ऊपर फैलाने के लिये हमको चाहिए कि बगीचे की मिट्टी को बार बार जोत कर पोली बनाए रक्खें जिसमें सहज ही में उसके अन्दर पानी धँस सके और वायु का मार्ग भी न रुके, उपयुक्त परिमाण में खाद डाली जाय और सूखे महीनों में पानी से सींचा जाय। जब तक मिट्टी में तरी न रहेगी तब तक वृक्ष कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। बार बार जोताई करने से और उसके बाद मिट्टी को समतल कर के छोड़ देने से तरी बहुत दिनों तक बनी रहती है।

फलदार वृक्षों के चारों तरफ जंगल और घास न जमने देनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उस मिट्टी की उर्वरता घास खींच लेती है। जब तक फल के वृक्ष छोटे रहें तब तक उनके पार्श्वों में फूल या तरकारी लगाना लाभदायक है। कारण यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि इनके लगाने के लिये मिट्टी में बहुत खाद डालने की आवश्यकता होती है, मिट्टी की जोताई भी अच्छी तरह करनी पड़ती है, घास-पात भी रहने नहीं दिया जाता और सिँचाई भी खूब की जाती है। इन सब बातों का फल अनायास ही वृक्षों को पहुँचता है और मिट्टी भी निस्तेज नहीं होती; और वृक्षों की सिँचाई इत्यादि में जो खरच होता है वह फूल और तरकारी से निकल आता है।

दूसरे लेख में यह दिखलाया जायगा कि सिँचाई कैसे करनी चाहिए, वृक्ष कब लगाना चाहिए और अच्छे फल पैदा करने के लिये और क्या क्या यत्न करने चाहिए।

युरोप का पुनरभ्युत्थान-काल।

[लेखक—श्रीयुक्त राधामोहन गोकुलजी, कलकत्ता।]

(गतांक से आगे।)



मध्यकाल (बिचले युगों) में नीति-धर्म्म का प्रधान आधार जाति-बन्धन वा कुलबन्धन का सामीप्य था। इन बन्धनों वा ग्रन्थियों के प्रबल संरक्षक शासन (Law) और प्रचलित रीत रवाज दोनों ही थे। इनके बल से कुल सम्पत्ति का उत्तराधिकार स्थिर था, विवाह-सम्बन्ध से एक पञ्चायत की भूसम्पत्ति दूसरी पञ्चायत के अधीन न जा सकती थी। दो पृथक् पञ्चायतों वा जातियों के व्यक्ति परस्पर ब्याह नहीं कर सकते थे, यहाँ तक कि एक पञ्चायत के दो विरोधी दलों में भी विवाह-सम्बन्ध न होने पाता था। इस तरह हर जाति में पूर्ण स्वार्थ, एकता बड़ी ही घनिष्ठ, प्रेम परले सिरे का और उत्सर्ग का भाव बढ़ा चढ़ा था। साथ ही पड़ोसियों के साथ डाह, घृणा और बदला लेने का भाव भी जोरों पर था। धीरे धीरे राजनीतिक सुधार के द्वारा पुराने बन्धन टूटे, पहली बातें मिटीं, नए सम्बन्ध, नई बराबरी, वा प्रेम के भाव का संचार हुआ; सभी अनुशासनों ने स्त्रियों को उनके कुटुम्बी पुरुषों की अधीनता के बोझ से बहुत कुछ हलका किया। और जब पञ्चायत अपने ही आश्रय पर चलने योग्य हुई तो राजा वा पोप का अधिकार उठ गया। हर एक नागरिक सारे बन्धनों से मुक्त हो कर अपने ही बल का आश्रयी होने को बाध्य हुआ था; किसी को पड़ोसी का ख्याल न रह गया था। इस तरह एक ही समय में अहमत्व ही समाज में बल हुआ और हर मनुष्य नए भिन्न रूप में उन्नत होने लगा। पञ्चायतों के झगड़ों की जगह व्यक्तियों के झगड़े पैदा हुए, हर नगर में एक आपापन्थी मुखिया खड़ा हो गया। नगर बलवान् और उपद्रवी नागरिकों के नामों से विभक्त हो गए। कुटुम्ब छिन्न भिन्न हुए। इस तरह अहंमन्यता समाज में एक बल बन गई और मनुष्यों का व्यक्तित्व नित्य नए नए और विविध भावों सहित उन्नत होने लगा। न केवल व्यक्तियों के नामों की ही संख्या बढ़ने लगी किन्तु बनावटी नेता भी चारों ओर पैदा हो गए। पञ्चायतों के भीतरी राजनीतिक झगड़े व्यक्तिगत झगड़े बन गए। नगर अपने महाबली और उपद्रवी नागरिकों के नाम से विभक्त हो गए, घराने छिन्न भिन्न हो हो कर आपस में ही एक दूसरे के प्राणनाश करने पर उद्यत हो गए। किसी प्रकार का बन्धन न रह गया, सर्वत्र उच्छृङ्खलता फैल गई। मध्ययुग के आम्नाय, धार्मिक हठ, भलाई व बुराई मानों सभी नए युग और उसके लोगों के लिये अपने स्थान खाली कर के अन्तर्धान हो गए।

यथेच्छाचारी (एकमुखी शासक) के स्वाभाविक दोष चाहे जो हों, पर इटली के यथेच्छाचारी में कुछ व्यक्तिक पात्रता और ऐतिहासिक महत्ता होती थी। यह आवश्यक न था कि वह बड़े घराने का हो, धनी वा बली का ही पुत्र हो, न यही बात थी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घराने के सब से बड़े (ज्येष्ठ) को ही गद्दी मिले। साहस, चातुर्य्य और कृतकार्य्यता की योग्यता जिसमें होती वह चाहे वणिक हो, अज्ञात जाति व कुल का हो, जारज हो, या राह चलता उद्योगी ही हो, सेनापति विप्लववादी दल का नेता और यथेच्छाचारी तक बन सकता। इस प्रकार की अनेक कहानियां इतिहास में मौजूद हैं। इटली के अनेकों उपन्यास-लेखकों ने, जिन्होंने अपने समय की चालढाल और रीतिनीति को बड़ी सचाई व शुद्धि के साथ चित्रित किया है, ऐसे अज्ञात लोगों की अनेकों जगह हँसी उड़ाई है जिन्होंने चेष्टा कर के यथेच्छाचारी बनने की ठानी थी। एक जगह शकेटी कहता है कि एक मोची ने रिडालको-डा-केमिरिनो समवाय के लोगों की धरती हस्तगत करने की चेष्टा की थी। यही कारण है कि १५ वीं शताब्दी को नीचों और भाग्य आजमानेवालों का युग कहते हैं। और यह कहना यथार्थ भी है। स्फोर्जा, फरडीनेण्ड, मालाटेस्टो प्रभृति कहां तक कहें सैकड़ों ही ऐसे शासक व अधिकारी हो गए हैं जिनके माता-पिता व कुल का पता भी न था। कहीं किसी तरह पर रीति, नीति व मर्य्यादा का बन्धन न था। जिसमें योग्यता हुई और जिसे इधर उधर चार सहायक मिले वही हाथ मार सकता था। कृतकार्य्य होना न होना दूसरी बात है।

आपस की छीन-खसोट झगड़े-बखेड़े लगे ही रहते थे, प्रतिद्वंद्विता आदि के हजारों भय किसी इच्छाचारी का पीछा एक क्षण भी नहीं छोड़ते थे। धोखा, छल, हत्या, जबरदस्ती मामूली बात थी। अपना मतलब निकलना चाहिए। इस प्रकार लोग दुराचारी होते गए, अत्याचारों व पापों की सीमा न रही। यह बात और थी कि कोई मतलब गाँठने और व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नीतिज्ञता व धर्मज्ञता झलकाता क्योंकि यह धर्मज्ञता भी स्वार्थ-सिद्धि का एक साधन मात्र थी। इस प्रकार के अमानवी काम, इस तरह के महापाप उस समय पाप नहीं समझे जाते थे; यहाँ तक कि अत्याचार की सीमा के आगे बढ़ जाना भी कोई अपराध न था। हाँ, यदि कार्य्य-सिद्धि न होती तो राजा काम करनेवाले को बेसमझ कहते व उसका काम राजनीतिज्ञोचित न समझा जाता। इन लोगों के अन्तःकरण पश्चात्ताप तो जानते ही न थे, इनके हाथ सब कुछ कर सकते थे, इनके मस्तक सब कुछ विचार सकते थे। दशा इतनी खराब थी कि अनेक पापों, छलों और न करने योग्य कामों को कर के भी जो कृतकार्य्यता किसी को होती उसकी स्थिरता का विश्वास न होता। वही खटका, वही भय, वही चिन्ता का भूत उनके सिरों पर सवार रहता। बहुधा निर्दोष लोगों का इसी लिये रक्त-पात होता कि कभी वे मार्ग के कण्टक न हो जायँ। कुछ लोग ऐसे होते जिनका जी बिना राजनीति और शासन में हाथ डाले मानता ही नहीं था और इस प्रकार के लोगों के कारण सदा अत्याचारों की ही बन्दिश बँधती नजर आती। विद्रोह और विप्लव होते ही रहते। इनके दबाने में चारों ओर से तलवारें निकलतीं, बहुतेरे व्यक्ति और तरह के बदले लेने को यह अवसर ज्यादः गनीमत समझते। भाई भाई, बाप बेटे चचा-भतीजे, मित्र मित्र, बहुधा राज्याधिकार के लिये लड़ते, परस्पर विष देते, हत्या कराते वा करते। सार यह कि इटली के अत्याचारी को एक प्रकार से प्रति दिन अपना राज्य जीतना पड़ता था और इस काम के लिये वह संसार के सारे दुष्कर्मों को उचित समझता था।

इस दुर्भाग्य के समय, इस पाप-पूर्ण युग में साहस, वीरता, अनुतापविहीन अन्तरात्मा आदि ही गुण न थे जिनकी जरूरत थी, किन्तु अत्यन्त प्रत्युत्पन्नमति, अभ्यस्त-छल और मनुष्यों और अवसरों की पूरी पहचान और सब के ऊपर अपनी इन्द्रियों को वश में रखने की शक्ति की भी जरूरत थी। उस समय सामाजिक दृश्यों का उसी तरह मनन करने की आवश्यकता थी जैसे विज्ञ लोग प्राकृत दृश्यों का मनन करते हैं; हर बात को पक्की तरह, सन्देह-विहीन और निश्चय करना पड़ता था। इसके सिवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों का ज्ञान ठीक जैसे का तैसा हुए बिना काम नहीं चलता था, तनिक भी भूल हुई कि आदमी मारा गया। प्रत्येक स्वेच्छाचारी का पहला काम यह था कि वह अपने राज्य और अपनी प्रजा को जिसके बीच में उसे रहना था अच्छी तरह पर समझ ले, बिना इसके वह उन पर शासन नहीं कर सकता था। हर एक यथेच्छाचारी को गद्दी पर बैठते ही अपना नया ढाँचा बनाना पड़ता था, पुराने खंडहरों पर उसे नई ही शासन-पद्धति, न्यायानुशासन, पुलिस, पूर्त्ति, निर्माण आदि की सब भीतें नए सिर से रचनी पड़ती थीं। सारी प्रधान शक्तियों की कुंजी यथेच्छाचारी की मुट्ठी में होती, इसलिये वही मानों नए राज्य का जन्मदाता होता, उसी में सामर्थ्य होने से राज्य समूचा ज्यों का त्यों बना रहता और वृद्धि करता, उसी की नीति देश की नीति होती। प्रत्येक अत्याचारी के सिंहासनारूढ़ होने के साथ साथ शासन-विज्ञान व कला जन्मती व उसी के साथ विलीन हो जाती। जिन दिनों समाज की यह दशा थी, उन्हीं दिनों एक नया ही मत (विचार) फैल गया जो धीरे धीरे सार्वभौम्य और घातक भ्रम बन गया—अर्थात् अनुशासन (Laws) और संस्थाएं (Institutions) ये राजनीतिज्ञों की आविष्कृति हैं न कि राष्ट्रीय इतिहास और उसकी सामाजिक समृद्धि व समुन्नति का नैसर्गिक फल। परन्तु मध्यकालीन विचार के अनुसार राज्य व इतिहास ईश्वरीय महिमा जनित समझे जाते थे, इनमें मानवी हाथ, इच्छा या तर्क को स्थान न था। इस पुनरुत्थान-काल में यह विचार बिलकुल उलट गया और लोग समझने लगे कि यह सब मनुष्य के हाथ का काम है; यदि मनुष्य अपने काम में चूका तो सिवा अपने व अपने भाग्य के और किसी को दोष नहीं लगा सकता। यद्यपि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता बहुत अंशों में आप ही है तो भी उस समय इटली या युरोपवालों को भी भाग्य का बड़ा भरोसा व विश्वास था। इटली जैसे देश में जहाँ अनेकों विभाग व उपविभाग हैं यह परिवर्तन खूब बढ़ा व फैला। अब हम सहज में ही समझ सकते हैं कि कितनी तरह से इन विचारों के परिवर्तनों से देश में बुराई, कदाचार और अशिष्टता फैली। प्रजासत्ताक शासनों में भी अत्याचारी प्रकट हो उठे, पोप व नेपुल्स के राजाओं में (और इधर उधर बलशालियों व प्रधान धनवानों में) होड़ाहोड़ी और पारस्परिक डाह बढ़ी, हर कोई पड़ोसियों व मित्रों की सहायता ले कर अपने शत्रु का मुँह तोड़ने की इच्छा से कटिबद्ध होने लगा। शत्रुओं में फूट डालना व उन्हें निर्बल करना ही मानों राजा व पुरोहितों का या यों कहें कि सारे इटली का एक मात्र काम रह गया। यहाँ तक कि किसी किसी ने अपना पक्ष बलवान करने के लिये विदेशियों को भी सहायता करने के लिये बुलाया। इस तरह छल, जोड़ तोड़, षडयन्त्र गढ़ने, व जाल बनाने की सीमा न रही। फिर साथ ही राजनीतिक स्वार्थों का एक विचित्र जाल फैल गया जिससे अलग अलग राज्यों में भीतरी, पारस्परिक या अन्तर सम्बन्ध बढ़ गए, पहले पहल इटली में राजनीतिक समतुल्यता का भाव पैदा हो उठा। आश्चर्य्यजनक सामप्रयोगज्ञता, बुद्धि, चातुर्य्य और उद्योगशीलता की पथ-प्रदर्शक बनी। इन दिनों हर एक इटालियन सामप्रयोगज्ञ मालूम होता था। क्या सौदागर, क्या पंडित, क्या गणनायक (कप्तान) व क्या योद्धा सभी जान गए थे कि राजाओं महाराजाओं से किस तरह बात चीत करनी होती है, किन किन शिष्टाचारों, लोकाचारों व दस्तूरों से प्रशस्त व्यवहार में काम लेना चाहिए। उस समय की प्रधान ऐतिहासिक व साहित्यिक स्मृतियां वहाँ के राजदूतों या प्रणिधियों के राजकीय पत्रव्यवहारों व लेखों में पाई जाती हैं। यदि वेनिसवालों का स्थान उत्तम व्यवहार-बुद्धि और तथ्यों के विचार में सब से ऊँचा था तो फ्लोरेंसवाले लेख-शैली की महत्ता और सूक्ष्म प्रकृति-ज्ञान में सर्वश्रेष्ठ थे परन्तु दूसरे राज्यों के प्रणिधियों में भी इनके सुयोग्य प्रतिद्वन्द्वियों का अभाव न था। इस तरह लिखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व बोलने का कौशल उग्र हथियार बन गया और इटलीवाले उसकी बड़ी ही कदर करने लगे।

इसी समय यह बात देखने में आती थी कि जो दोर्दण्ड, साहसी, निर्भीक, उच्चतम पद या राज्य लेने के लिये कटिबद्ध मनुष्य न धमकी से डरता, न विनय व प्रार्थना ही सुनता और न आर्तनाद से पिघलता वही कवियों और पंडितों के पद्यों के आगे मोम की तरह पिघल कर सिर झुका देता। एशियाई देशों के प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं है। भारत के इतिहास में भी राजपूतों के दरबार के कवियों का राजाओं में युद्ध छिड़वा देना व धधकती हुई समरानल को शान्त कर देना साधारण सा काम था। इसके व्यक्त उदाहरण विरल नहीं हैं।

कहते हैं कि एक बार लोरेंजो डाई मेडिसी ने नेपुल्स में जा कर अपनी वाक्-शक्ति के बल से फेंटी डी अरागोना को युद्ध बन्द करने को प्रबोधित किया और उसके साथ मित्रता स्थापित कर के हटा। एलफांसो विशालहृदय, फिलिप्पोमेरिया विराकोंटी का बन्दी था; सब लोग समझते थे कि वह मारा गया। पर वह सही सलामत कारागार से छूट कर निकला। उसके छुटकारा पाने का यह कारण था कि वह कठोर-हृदय दुरात्मा अत्याचारी इस बात को विश्वास कराने की चातुरी रखता था कि अरागोनवालों को नेपुल्स में रखने से जो कार्य्य-सिद्धि होगी वह रोंजो के अनुगामियों से सम्भव नहीं है। इस बात को बड़ी बुद्धिमत्ता से कहते हुए अन्त में उसने कहा—"तू अपनी मनमानी कर के अधिक सन्तुष्ट होगा या अपना राज्य बचा कर?"

इटली के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मेकियावेली ने कहा है कि प्रेटो (स्थान) के एक विप्लव में, जिसे बरनार्डो-नर्डी ने खड़ा किया था, उस विप्लव का नेता फ्लोरेंस के पोडेस्टा के गले में पाश डाल चुका था; लेकिन पोडेस्टा के सुन्दर तर्क ने उसे उसके छोड़ देने का अनुनय किया और उसने उसे छोड़ दिया। लेकिन इसका परिणाम बर्नार्डो के हक में अच्छा न हुआ। ऐसी बहुत सी बातें बहुधा अत्युक्तिपूर्ण या नितान्त मिथ्या भी होती हैं, लेकिन इस प्रकार की अनेक बातों को लगातार सुन और पढ़ कर हम इतना अवश्य अनुमान कर सकते हैं कि जो लोग इस तरह की बातों को कहते, सुनते व विश्वास करते थे उनके मन व स्वभाव कैसे होंगे।

इन सब बातों को देखते हुए यदि एकमुखी शासक साहित्य, कला, कौशल आदि विद्याओं और उत्कर्ष के साधनों से प्रेम रखते थे, तो कोई अचम्भा नहीं। इनके ये काम न केवल शासन-धर्म्म के ज्ञान से या इसी लिये होते थे कि लोगों का मन राजनीति से हट कर दूसरे कामों में लगा रहे, बल्कि उनकी आवश्यकता उन्हें मजबूर करती थी, उन्हें खुद सच्चे व वास्तविक ज्ञान व चातुर्य्य की जरूरत थी। जिसे गेहूँ की जरूरत है वह यदि अपनी प्रजा को गेहूँ बोने में उत्साहित न करे तो उसको अच्छा व अधिक गेहूँ कैसे मिल सकता है। यदि विद्या की उन्नति की ओर यथेच्छाचारीगण ध्यान न देते तो उन्हें अच्छे अच्छे लेखक, वक्ता और चतुर कार्यवाहक न मिलते; और समय ऐसा था कि नीतिचातुरी से लिखे हुए लेख व पत्र व बुद्धिमत्ता-पूर्ण वक्तृताएं बड़े बड़े गंभीर राजनीतिक प्रश्नों के सुलझाने में समर्थ होती थीं। यदि इटली का यथेच्छचारी स्वयं मेधावी न होता तो वह राज्य कैसे पाता, फिर यह कैसे हो सकता था कि वह उन कला कौशलों की ओर से उदासीन रहता जिनसे मेधा का उत्कर्ष होता हो और उसकी महिमा बढ़ती हो। अब भी हम देखते हैं कि जितनी महिमा विद्वान् राजा की होती है उतनी उसकी किसी विद्वान् प्रजा की नहीं होती। फिर विद्वान् लोग ही विद्वान् व चतुर अत्याचारी की महिमा को दसगुना कर के फैलानेवाले होते थे। यही कारण थे कि यथेच्छाचारी की फुरसत का जो समय राज काज से बचता वह पुस्तकों, साहित्यज्ञों और निपुण शिल्पियों के संग में बीतता। उसे वैचित्र्यागार और पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतने ही प्यारे लगते जितनी हयशालाएं व गुत्तियां। मन व बुद्धि को पैनी व उत्कर्षित करनेवाली बातें अत्याचारी के जीवन का एक प्रधान अंग होतीं, उसका प्रासाद वह गुणियों का दरबार होता जिसमें से नए नए गुणियों का प्रादुर्भाव होता रहता। सच है—विधिप्रपञ्च गुण अवगुण साना। एकमुखी यथेच्छाचारी में जहाँ अगणित अवगुण होते थे वहाँ कुछ गुण भी होते थे।

फिर भी उस समय के लोगों के जीवन में विचित्र स्वरूप की वह अननुरूपता पाई जाती थी जिसका पता लगाना अबूझ पहेली के बूझने की चेष्टा करना है। बड़े बड़े विद्वानों, सिद्धान्तज्ञों और पूर्ण पंडितों के बहुधा जो कर्म्म देखे जाते थे उनसे वैसा ही अचम्भा होता था जैसा धर्म्मराज युधिष्ठिर में जुए का व्यसन सुन कर भारतवासियों को होता है। रात दिन जो लोग उत्तम विचार, कथन और कर्म्म में लगे रहते हों उनको सहसा असभ्य जङ्गलियों का सा काम करते देख अवश्य ही मनुष्य को खयाल होता है कि यह आपे का विरोध कर रहा है। सार यह कि यह लोग कभी कभी घोर अत्याचार, महापाप, अश्लील, गर्हित और कुत्सित कर्म्म कर बैठते थे जिनसे जान पड़ता था कि इनमें दया, धर्म्म, मर्यादा, शिष्टता आदि सद्गुणों का सञ्चार ही नहीं है। किसी प्रतिद्वंद्वी को विष दे कर या घातकों द्वारा मरवा डालना, राज्य या ऐश्वर्य के लिये प्यारे सम्बन्धियों का वध करना कराना, पाशविक तृष्णा से अश्लील कर्म्म कर बैठना आदि क्या कभी विद्वत्ता, सभ्यता व मर्य्यादा की गिनती में आ सकता है। पर यह सब बातें इटली आदि पाश्चात्य देशों में थीं, विशेषतः इटली और साधारणतः सारे युरोप में जहाँ का यह इतिहास हम पाठकों को सुना रहे हैं। यह दुबिधा का समय था, यह परिवर्तन का काल था, यह दो फसला जमाना था। यदि हम आज की सभ्यता से उस समय के कामों पर व्यवस्था दें तो बड़ा अन्याय होगा। जिस समय की बात हो उसको उसी समय के नियम, रीति, नीति, व न्याय की दृष्टि से देख कर दोष देना या सराहना न्याय्य है। वेदों में आया है 'मनुष्यो! तुम अग्नि को जानो'। इसे पढ़ कर आजकल के नवयुवक हँस देते हैं पर वे नहीं जानते कि जब मनुष्य-जाति कच्चे फल व मांस पर जीवन बिताती थी तब अग्नि का आविष्कार कितना बड़ा आविष्कार समझा गया होगा, उससे जगत् का कितना हित हुआ होगा। आज हम क्यों अपने बच्चों से कहते हैं कि तुम रसायन, भौतिक, भूवृत्त, बिजली, गर्मी, प्रकाश, वायु गैस आदि के तत्वों को जानो व वैज्ञानिक बनो। यदि आज से ५० वर्ष पहले कहते कि भाई रेल को जानो कि क्या है, कैसे बनती व चलती है व क्या चीज है तो कोई न हँसता पर आज जो यही बात कहें तो बच्चे भी हँस देंगे, चाहे अब भी वे इस विषय के पूर्ण ज्ञाता न हों।

हम जिधर देखते हैं एक ही असलियत नजर आती है, रूप अलबत्ता जुदा जुदा होते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी का सैनिक बल मध्य काल के सैनिक बल के समान न था, दोनों में बड़ा अन्तर था। परन्तु इस बात से इनकार नहीं हो सकता कि पुराने बल से ही नए बल का जन्म या प्रादुर्भाव हुआ, पुरानी से ही नई सेना पैदा हुई। पंचायतों के समय साधारण थोड़े से हथियार ले कर लोग पैदल लड़ा करते थे। हर साल वसन्त ऋतु में सौदागर, कारीगर वा निर्वंशी लोग अपने कवच पहन कर नगर के परिकोटे से निकलते और पड़ोस की भूमियों के गढ़ों पर आक्रमण करते और फिर लौट कर अपने अपने कारखानों, दूकानों आदि पर आ काम करने लगते। इन दिनों अश्वारोही सेना को बहुत कम महत्त्व दिया जाता था और अश्वारोहियों में प्रायशः धनी व ठिकानेदार लोग (Nobles) ही हुआ करते थे। लेकिन धीरे धीरे ज्यों ज्यों समय बीतता गया सारी बातें बिलकुल बदल गईं। रण-कौशल कहीं ज्यादः पेचीले हो गए, सेना का प्रधान बल पैदल के स्थान पर अश्वारोहियों में गिना जाने लगा। इन सवारों का ही नाम शस्त्र-धर अर्थात् Men-at-arms

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा । वास्तव में इन्हें एक प्रकार से पत्ति कहना चाहिए । प्राचीन भारतीय सेना में पत्ति १ रथ, १ हाथी, १ घोड़े वा ३ पैदलों के योग को कहते थे, परन्तु मैन-एट-आर्म्स में एक रथी व तीन सवार होते थे । यह रथी भी घोड़े पर ही सवार होता था, कभी कभी रथी सहित तीन ही सवारों की पत्ति होती थी । पत्ति के सवार कवचधारी व सिर से पैर तक हथियारबन्द होते थे, कवच व भारी शस्त्रों का बोझ वे केवल लड़ने के समय पहनते थे, साधारण रण-नीति शिक्षा, सैनिक खेल-कूद और निकासी आदि के समय यह शस्त्र व कवच नहीं पहने जाते थे। इसका कारण यह था कि हथियारों व कवच का बोझ इतना हो जाता कि यदि कहीं योद्धा गिर पड़ता तो बिना दूसरों की सहायता के आप से आप फिर खड़ा न हो सकता था। इस तरह लोह-जटित योद्धा ऊँची खोद लगाए हुए स्तम्भ के समान खड़ा हो कर बड़े लम्बे लम्बे भाले चलाता । यह भाले इतने बड़े होते कि कवच-धर अश्वारोही सामने आते हुए विरोधी सैन्य के पदाति (Foot) को दूर से ही उलट सकता । पदाति की असि या दुधारा उसके पास पहुँच भी न सकता और वह उसको धराशायी कर देता । इस प्रकार के अश्वारोहियों का एक गण (गण=१२५ व अंगरेजी स्काडरन = १२०-२०० तक) पैदलों की एक पूरी पृतना (१२५५) या कभी कभी पूरे चमू को (चमू = ३६४५) भगा देता । इसके पीछे अग्नि चूर्ण या बारूद के आविष्कार और अग्न्यस्त्रों की अधिक उन्नति ने फिर रण-कौशल का रूपान्तर किया । फ़्लोरेंसवालों ने ठगे जा कर यह बात सीखी थी । १२६० ई० में एक मुट्ठी जर्मन योद्धाओं ने फ़्लोरेंस की बड़ी मजबूत पैदल सेना को जो टस्कनी में एकत्र थी मोंटापर्टी के रणक्षेत्र में ऐसा छिन्न भिन्न किया कि उसे भागने को भूमि न मिली । १२८९ ई० में भी टसकन पैदल दल को केम्पालडीनो में शत्रु के पत्तियों के सामने हार माननी पड़ी । यद्यपि पैदलों ने बड़ी वीरता की, सवारों के घोड़ों के तले पड़ कर नीचे से उनके पेट फाड़े, परन्तु फल प्रतिकूल ही हुआ । अच्छी पत्ति बनाने में बहुत शिक्षा और लगातार अभ्यास की जरूरत होती थी । जो हो, इस नई रण-रीति ने इटली के हक में बड़ा ही घातक फल दिखलाया । क्योंकि हम कह चुके हैं कि युद्ध के इस नए ढंग में दीक्षित व शिक्षित होने के लिये समय की आवश्यकता थी और कारीगरों, सौदागरों, निर्वेशियों व दूकानदारों के पास इतना समय कहाँ ? उस समय भाड़े की सेना हर दम तैयार नहीं रहा करती थी । जो हथियारबन्द लोग शिक्षित हो कर सदा समर के लिये तय्यार रह सकते थे वे इटलीय उपजातियों में बँट चुके थे । अब हो क्या सकता था, सिवा इसके कि विदेशियों की ओर आँख उठे । सार यह कि वैतनिक या भाड़े की सेना का काम में लाना आरम्भ हुआ ।

दूसरे देशों में अभिजातों (कुलीनों) का बल बहुत था । इसी लिये उनमें रण को ही अपना व्यवसाय बना लेनेवालों की कमी न थी । उनको खासा वेतन मिलता था । हर बार जब जब कोई राजा गद्दी से अलग होता, हारता या मरता तब तब उसकी खण्ड खण्ड सेना नए राजा के हाथ आती; वह उसे ठीक करता, नए उद्यमी व पराक्रमी लोगों को भरती करता । लोग सिपहगरी के प्रेम से, अच्छे मासिक वेतन के लालच से और कभी कभी प्रधान सेनापति, मन्त्री वा राजा तक हो जाने के अवसर पाने के लिये भी सेना में भरती हो जाया करते थे । विदेशी लोग जहाँ अधिक वेतन पाते वहाँ ही जा कर सेना में भरती हो जाते । यह लोग कभी कभी बहुत ही जोर पकड़ते व दुःख देते, एक पक्ष से दूसरे पक्ष में भी ठीक समर के समय पर चले जाते । परन्तु समय पा कर धीरे धीरे इटलीवाले भी इन झण्डों के तले लड़ने के लिये भरती होने लगे और इस नए वीर-जीवन से मोहित हो हो कर बहुत जल्दी इतने बढ़ गए कि देशियों की चमूएं तैयार होने लगीं । उच्च सैनिक कर्म्मचारियों के पद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये (जैसे गणपति, चमूपति आदि) भी आदमियों की इटली में कमी न थी। फिर दलपतियों के लिये तो सेना और भी अधिक मनमोहिनी हो गई क्योंकि वहाँ वे अपने दल का स्वार्थ काम पड़ने पर बाहुबल से भी अच्छी तरह साध सकते थे। बहुधा दलपति लोग अपनी ही सेना धीरे धीरे खड़ी कर लेते और अच्छे सेनापति के साथ काम करते करते अपनी ही भूमि की रक्षा करने व बढ़ाने में दक्ष हो जाते और छोटे छोटे यथेच्छाचारी बन बैठते। जब एक प्रजातन्त्र पराजित हो कर दूसरे के अधीन जाता तो पराजित नागरिक लोगों का कभी कभी समूह का समूह भाग निकलता और साहसपूर्वक अवसर ढूँढ़ता फिरता कि कहीं समर में घर की खोई हुई स्वतन्त्रता फिर मिल जाय। फ़्लोरेंसियों के हाथ में जब पायसा का प्रजातन्त्र आया था तो पायसाइयों ने भी यही किया था। इस बात के और भी अनेक उदाहरण हमें इटली के इतिहास में मिल सकते हैं। देहाती जिलों में बहुत सिपाही मिल सकते थे, बाजे बाजे प्रान्त तो किराए के योद्धाओं और नेताओं के पालनेवाले और बाजार बने थे, जैसे रोमागना, मारशेस, अम्ब्रया, जहाँ इतनी अराजकता विराजती थी कि मानों मनुष्यों के जीवन का साधन चोरी, डाका; मारधाड़, छीनखसोट, बदला व परधन से धनी होना आदि ही हो।

इन समूहों को न हम मध्यकालीन संस्था कह सकते हैं न नवीन। यह विशिष्ट समय दोनों युगों का सन्धिकाल था, इस समय के ये समूह अस्थायी रूप रखते थे, हाल में ही जो पुरानी संस्थाएं नष्ट भ्रष्ट हो चुकी थीं उन्हीं के टुकड़ों से ये बने थे। यद्यपि ये विपत्ति-वर्द्धक व अशुभ थे परन्तु इनमें नए इटली के पुनरुत्थान के भाव भरे थे, इसी कारण इनका महत्त्व है। इटली के लोगों की नई प्रतिभाएं जल्दी जल्दी और अधिक संख्या में बढ़ने लगीं और विदेशी योद्धाओं की सेना से अधिक बलवान हो गईं; विशेषतः इनका महत्त्व 'अलबरीकोडा बारबियानो' की नई रण-नीति व समर-कौशल के प्रादुर्भाव के पीछे बढ़ा और इन्हों ने नया ही रंग रूप धारण किया। विदेशी सेनांगों का कमांड (सञ्चालन) उन नेताओं की समिति के हाथ में था जिनमें से हर एक अपने अपने आदमियों पर बड़ा अधिकार रखता था। यह आदमी प्रायः अपने अधिष्ठाता के निज आयत्त होते थे, यदि सब नहीं तो एक हिस्सा तो अवश्य ही उसकी प्रजा या ताबेदारों का होता था। यह हिस्सा सदा अपने सरदार की आज्ञा मानने को तैयार रहता; यहाँ तक कि जब यह चाहता तब उन्हें शेष सेना से अलग कर लेता। मानों इनका राजा इनका सरदार ही होता। इसी सरदार की आज्ञा का पालन इनका सारा धर्म्म, कर्म्म, कर्तव्य सब कुछ था।

(शेष आगे।)

हास्य-रस।

हास्य का इन्द्रिय-विज्ञान की दृष्टि से विचार। (क्रमागत)।

(गतांक से आगे।)

तत्त्ववेत्ता कान्ट ने 'हास्य' की व्याख्या में कहा है कि जब बहुत देर से उठी हुई कोई अपेक्षायुक्त कल्पना अचानक अस्तित्वहीन हो जाती है उस समय उत्पन्न होनेवाली मनोविकार-जन्य क्रिया ही हास्य है*। परन्तु कान्ट की यह उपपत्ति सभी स्थानों पर समान रूप से प्रयुक्त होने योग्य नहीं जान

* An affection arising from the sudden transformation of a strained expectation into nothing.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ती। हाब्स और बेन ने जिस प्रकार सारा जोर विषयीगत विकार पर दिया है उसी प्रकार कान्ट ने भी सारा जोर विषय-गत विकार पर दिया है। पर यदि सारा भार केवल विषय-गत असंबद्धता पर ही छोड़ दिया जाय तो भी काम नहीं चलता; अर्थात् यह कारण या व्याख्या हास्य के सब प्रकार के विभागों पर समान रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकती। यदि कान्ट के मत के अनुसार देखा जाय तो कोई कल्पना पहले अपेक्षा के रूप में उत्पन्न हो कर नष्ट होती है; अर्थात् मनुष्य को हँसाने के लिये अपेक्षित कल्पना का निरास अनपेक्षित रीति से होना चाहिए। लेकिन व्यवहार में देखा जाय तो जान पड़ेगा कि जब जब हम हँसते हैं तब तब केवल उक्त घटना ही नहीं होती। जिस समय हम कोई विनोदपूर्ण लेख पहलेपहल पढ़ कर हँसते हैं उस समय कान्ट के कथनानुसार अपेक्षा का निरास होता है और इसी लिये हम हँसते हैं। परन्तु वही लेख जब कोई दूसरा आदमी पढ़ने लगता है तो उस समय हमें किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रह जाती, क्योंकि उस लेख की सब बातें हमें पहले से ही मालूम हो चुकी हैं। इसलिये यदि उस कल्पना का निरास हो तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह निरास अनपेक्षित रूप से होता है। लेकिन इतना होने पर भी हम दोबारा उस लेख को सुन कर हँसते ही हैं। उस समय हास्य के सब विभागों में केवल यही कारण समान रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकता कि मन में जमी हुई किसी अपेक्षा का अनपेक्षित रीति से निरास होने से ही हँसी आती है।

जर्मन-तत्त्ववेत्ता शोपेनहोर ने भी हास्य की एक उपपत्ति बतलाई है। वह कहता है कि अपनी कल्पना और उससे संबद्ध वस्तु में जब किसी प्रकार की असमानता होती है तब हास्य उत्पन्न होता है। कान्ट के अपेक्षा-निरासवाले सिद्धान्त से यह ध्वनि निकलती है कि हँसने में हँसनेवाले मनुष्य की किसी प्रकार की विडंबना या दुर्दशा होती है पर शोपेनहोर की उपपत्ति में इस प्रकार की विडंबना या दुर्दशा का कोई भाव नहीं है। उसके कथनानुसार हम जो कुछ देखते या अनुभव करते हैं वह यदि हमारी कल्पना के अनुकूल न हो कर उससे भिन्न हो तो उसके कारण हमें हँसी आती है। अर्थात् यह बात नहीं है कि जो घटना हम देखें उसकी कल्पना हमारे मन में अनुभव करने से पहले अवश्य ही हो। कभी कभी तो इस कल्पना का होना अनुभव के उपरान्त भी सम्भव है। कान्ट की उपपत्ति में तो विशिष्ट और पहले से की हुई कल्पना का निरास ही सब कुछ है; पर शोपेनहोर की उपपत्ति में कल्पना विशिष्ट न भी हो अथवा अनुभव के उपरान्त हो तो भी काम चल सकता है। परन्तु शोपेनहोर की उपपत्ति भी सब विभागों में समान रूप से नहीं घट सकती। क्योंकि मनुष्य-मात्र पर कोई छोटी मोटी आपत्ति आने अथवा इसी प्रकार के किसी और विभाग में अपेक्षा-निरास आदि की कोई सम्भावना नहीं होती। वही बात हास्य के उस विभाग के विषय में भी समझनी चाहिए जिसके अन्तर्गत समझ का फेर आदि कारण आते हैं।

इस प्रकार यह बात समझ में आ जायगी कि यह दोनों ही उपपत्तियां सब विभागों में समान रूप से नहीं घट सकतीं। अर्थात् यह बात निश्चित हो जाती है कि केवल लघुताप्रदर्शन अथवा असंबाद्धता-दर्शन ही हास्य-रस का कारण नहीं है, इसके और भी कारण हैं। अंगरेज टीकाकार हेजलिट और तत्त्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने दोनों कारणों का एक में समावेश कर के यह विरोध नष्ट करने का प्रयत्न किया है। पहले यह कहा जा चुका है कि स्पेनसर ने नीचगा असंबद्धता को हास्य का मुख्य कारण माना है। 'नीचगा असंबद्धता' में असंबद्धता और लघुता-दर्शन दोनों का ही समावेश होता है। अर्थात् स्पेन्सर के मत के अनुसार हँसी आने का कारण लघुता-दर्शन भी है और असंबद्धता-प्रतीति भी; फिर इन में से हर एक के प्रमाण चाहे कितने ही अधिक वा कम क्यों न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्ववेत्ता मि० सली के मत के अनुसार हास्य का जितना कारण लघुता-दर्शन अथवा असंबद्धता-दर्शन है उसकी अपेक्षा मनुष्य का वह खेलवाड़ी स्वभाव अधिक और प्रत्यक्ष कारण माना जा सकता है जिसके सम्बन्ध से छोटे बच्चे और सयाने आदमी समान हो जाते हैं। परन्तु हास्य पर उसने जो पुस्तक लिखी है उसमें उसने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है कि यह उपपत्ति हास्य के सब विभागों में समान रूप से नहीं घट सकती। तात्पर्य यह कि यदि इस प्रकार देखा जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि हास्य के कारण की अब तक एक भी ऐसी उपपत्ति निकली है जो सर्व्वसम्मत अथवा सर्वव्यापक हो; और साथ ही इसमें भी सन्देह है कि भविष्य में कोई ऐसी उपपत्ति निकलेगी या नहीं। यद्यपि शारीरिक-क्रिया की दृष्टि से हास्य-क्रिया एक ही प्रकार की जान पड़ती है तथापि यह बात स्वाभाविक ही है कि रस की दृष्टि देखते हुए हेतुभेद या विभाव-भेद से उसकी उपपत्ति भिन्न होगी* ।

हास्य-रस का व्यावहारिक उपयोग ।

हम यह बात अच्छी तरह समझते हैं कि यहाँ तक हास्य की जो कुछ विवेचना हुई है और अब तक हमारे लिखने का जो रुख रहा है उससे हम पर एक जबरदस्त आक्षेप किया जा सकता है। वह आक्षेप यह है कि हमने हास्य रस को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। आक्षेप करनेवाले समझ या कह सकते हैं कि हमने हास्य-रस को खूब बढ़ा चढ़ा कर रस-वर्ग में राजपद पर बैठा दिया है और ऐसा होने पर प्रौढ़ और गम्भीर विचारों अथवा रसपूर्ण सुन्दर काव्यों को मानों हमने इस संसार में अनाथ और निराधार सा कर दिया है। कोई कहेगा कि हास्य-रस को उचित से अधिक महत्व दे कर हम दिल्लगीबाजी का एक नया बाजार खोल कर बैठे हुए तमाशा देखते हैं; और इस बाजार के खुलने के कारण सभ्यता और गम्भीरता आदि को सदा के लिये छुट्टी मिल जायगी। कोई पूछेगा—"क्यों साहब, क्या हमें यह जीवन केवल हँसी दिल्लगी में ही बिताने के लिये मिला है जो हम सदा मसखरापन ही करते रहा करें? जहाँ दिल्लगीबाजी की आदत पड़ी वहाँ आवेश, गम्भीरता भक्ति आदि सद्गुणों को ठिकाने लगा ही समझिए। संसार का काम प्रायः इन्हीं गुणों की सहायता से चलता है और जब इन्हीं का नाश हो जायगा तो फिर संसार का काम किस प्रकार चलेगा?" यह आक्षेप विचार करने योग्य है; अतः हम शान्ति-पूर्वक उस पर विचार करते हैं।

* The impressions of the laughable cannot be reduced to one or two principles. Our laughter at times is of various tones. It gathers up into itself a number of primitive tendencies; it represents the products of widely removed stages of intellectual and moral evocation. This is virtually admitted by all who recognise the intellectual and the moral principles; for our laughter at seeing dignity unfrocked is presumably of more ancient origin than the laughter of the mind which discoursers on the ludicrous are for . Our arguments take us further, namely, to the conclusion that the effect of the laughable even of what is given by the philosophers, as a sample of the ludicrous, is a highly complex feeling containing something of the child's joyous surprise at the new and unheard of; something too of the child's gay responsiveness to a play challenge; often something also of the glorious sense of expansion after compression which gives the larger mobility to freshly freed limbs of young animals and children.

Sully, para 153.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति का वचन है—"सत्यं ब्र्यात् प्रियं ब्रूयात् नब्रूयात् सत्यमप्रियम्"। इस नीति-वाक्य को कौन न मानेगा? यह बात बहुत ठीक है कि यदि सच बोलना पड़े तो वह इस प्रकार बोला जाय जिसमें वह दूसरों को रुचे और पसन्द आए। परन्तु यदि बात सत्य हो और इस प्रकार कही जाय जिसमें औरों को रुचे और यदि वह ऊपर से हास्योत्पादक भी की जा सके तो क्या उसका आनन्द मिसरी पड़े हुए दूध के समान न हो जायगा? परन्तु यह तत्त्व या सिद्धान्त जितना युक्तिपूर्ण जान पड़ता है, व्यवहार करने के लिये वह उतना सहज नहीं मालूम होता। क्योंकि संसार में हास्य के विरुद्ध युक्ति-वाद और आचरण करनेवाले बहुत से लोग दिखलाई पड़ते हैं। सब से पहले, यदि हम साधारणतः सूक्ष्म-दृष्टि से भिन्न भिन्न लोगों के मुखों की आकृतियाँ देखें तो हम समझ जायँगे कि बहुतों की आकृतियां हास्य-रस के एक दम प्रतिकूल होती हैं। ऐसे लोगों के केवल चेहरे देख कर ही बिना किसी सोच विचार के यह कहा जा सकता है कि इन लोगों का हँसने के साथ सदा बारहवां वृहस्पति रहता है। लोग प्रायः आपस में कहा करते हैं—"क्यों भाई, रोते क्यों हो?" उत्तर होता है—"क्या करें, सूरत ही ऐसी है।" सम्भव है कि किसी समय हृदय की अंतरंग स्थिति और ऊपरी मुखचर्य्या का मेल न मिले। तथापि साधारण नियम यही है कि मनुष्य के स्वभाव और उसके हृदय के भीतरी विचार-भांडार की कुंजी उसकी मुख-चर्य्या में ही मिलेगी। और इस कुंजी की सहायता से संसार में प्रायः आधे ऐसे आदमी पहचान कर अलग किए जा सकेंगे जो मुहर्रमी और हास्य के शत्रु हों। ऐसी मुखचर्य्यावाले लोगों के सम्बन्ध में एक बड़ी मजेदार बात यह है कि यदि कभी पत्थर पर दूब जमने की तरह उनके रूखे मन में हास्य रस की थोड़ी बहुत उत्पत्ति हुई भी तो उनके चेहरे पर मोहकता या सौम्यता न आवेगी, बल्कि उलटे वह अधिक डरावना और कठोर मालूम होने लगेगा। ऐसे लोगों से काम पड़ना भी बड़ा भारी दुर्भाग्य ही है। दूसरे बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं जिनके चेहरे से सौम्यता और आनन्द-प्रियता बरसती है और जिन्हें देखते ही तुरन्त यह नहीं कहा जा सकता कि वे केवल विनोद के शत्रु ही हैं। तो भी वास्तव में उन्हें हास्य-विनोद पसन्द नहीं आता। वे स्वयं तो प्रायः कभी हास्य-विनोद के झगड़े में पड़ते ही नहीं; और यदि भूले भटके कहीं हास्य की थोड़ी बहुत ध्वनि भी उनके कानों तक जा पहुँची तो वे उसी तरह काँवरे-बावरे हो जाते हैं जिस तरह मेघ का गरजना सुन कर छोटे छोटे बालक। उनके अन्तःकरण के सौजन्य-क्षीर में हँसी-दिल्लगी मानों नमक की डली का सा काम करती है। चार मित्रों को हँसते बोलते देख कर उन्हें ऐसा डर लगता है कि मानों पंच महापातक आ कर उनके सिर पर सवार हो गए हों। ऐसे लोग यही समझते हैं कि संसार भर की सारी चतुराई, सारी विचारशीलता और सारा तत्त्वज्ञान बड़ी दृढ़ता से उसी गम्भीर और निश्चल चेहरे के साथ जड़ दिया गया है जिस पर विनोद आदि के कारण किसी प्रकार की रेखा या बल का पड़ना नितान्त असम्भव है। इसी कारण यदि कहीं कभी सुख की वृद्धि करनेवाला और उत्तम प्रकार का हास्य या विनोद उनके सामने हुआ तो भी शिकार पर छोड़े हुए कुत्ते के कानों की तरह उनकी मनोवृत्ति अपनी निश्चलता पर अटल रहती है। और बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिन्हें हास्य-रस बिलकुल करुण-रस ही जान पड़ता है। इस तीसरे प्रकार के लोगों में एक विशेष गुण होता है जो ऊपर बतलाए हुए दो प्रकार के लोगों में नहीं होता। वह गुण सहृदयता है। तीसरे वर्ग के लोगों के अन्तःकरण प्रेमपूर्ण होते हैं परन्तु उनका सारा प्रेम केवल करुण रस के ही अर्पित रहता है। ऐसी समझ के लोगों के लिये यह सारा संसार दुःखमय होता है। उनकी समझ में करुणात्मक वस्तु या घटना ही संसार के नियम के अनुकूल है; आनन्द-स्थानों को वे अपवाद के अन्तर्गत मानते हैं। उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त होता है कि हँसी दिल्लगी करना मानों सृष्टि के नियमों के विरुद्ध आचरण करना है। काम धन्धे में हँसी दिल्लगी को जगह मिल ही नहीं सकती और काम धन्धा करना ही जीवन का मुख्य हेतु है। इसी लिये उनका मत होता है कि हँसी दिल्लगी केवल लड़कों बच्चों को करनी चाहिए। जी खोल कर हँसने का काम तो वे प्रायः आधे पागलों अथवा पूरे पागलों को ही सौंप देते हैं। उन्हें मानों ऐसा जान पड़ता है कि दिल्लगी और अक्ल दोनों सगी बहनें हैं और एक ही समय में उन दोनों से विवाह-सम्बन्ध रखना एक दम अनीतिपूर्ण है। बुद्धिमत्ता को एक बार स्वीकार कर के उस पर अपनी अनन्य प्रीति बनाए रखने के लिये वे विनोद को मानों अपने रास्ते से हाँक कर अलग कर देते हैं। और इसी लिये जब वे विनोद पर प्रीति करनेवाले किसी आदमी को देखते हैं तो अच्छी तरह से समझ लेते हैं कि बुद्धिमत्ता से इसका कोई मतलब ही नहीं है। आप जो चाहें सो करें, पर विनोद उनके किए कभी नहीं होगा। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो यह युक्ति लड़ाते हैं कि हास्य की उत्पत्ति असंबद्धता के कारण होती है और असंबद्धता तिरस्कार करने योग्य दोष है, इसलिये विनोद को उत्तेजना देना मानों बुद्धि विकलता को उत्तेजना देना है।

विनोद-शत्रुओं के ऊपर जो भिन्न भिन्न इतने प्रकार बतलाए गए हैं, यह बात मुक्तकण्ठ से स्वीकार करनी पड़ेगी कि उनमें से कुछ प्रकार के विनोद-शत्रुओं का इलाज करने में हम नितान्त असमर्थ हैं। क्योंकि जिस पर स्वयं ब्रह्मदेव कुपित हों उसकी सहायता मनुष्य कहाँ से कर सकता है? जिसे ईश्वर ने नाक ही न दी हो उस पर यदि किसी को दया आ जाय तो भी वह उसे सुवास का सुख किस प्रकार दिला सकता है? जिस प्रकार सुगन्ध की इन्द्रिय नाक है उसी प्रकार विनोद की इन्द्रिय मन है। जिस मनुष्य की विनोद ग्रहण करने-वाली शक्ति नष्ट हो गई हो यदि उसके सामने स्वयं विनोद ही मूर्त्तिमान हो कर आ खड़ा हो तो उसका फल क्या होगा? लेकिन जिन लोगों की विनोद ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय भली चंगी और मौजूद हो पर जिन्हें केवल युक्तियों के कारण ही विनोद दोष-मय जान पड़ता हो उनकी अवश्य थोड़ी बहुत सहायता की जा सकती है। ऊपर जिस असंबद्धता का जिक्र किया गया है वह सदा केवल दोष-मयी ही नहीं होती। "असंबद्धता" शब्द में साधा-रणतः थोड़ी सी गौणता अवश्य मानी जाती है। परन्तु सब प्रकार के अपवादास्पद विकारों को मन में आने से रोक कर केवल मन की प्रसन्नता से असंबद्धता का व्यवहार किया जा सकता है। केवल इतना ही नहीं बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इस प्रकार का व्यवहार करना बुद्धि के एक भाग या प्रकार का आवश्यक और आनन्ददायक कार्य्य है। संसार की सभी चीजों से संबद्धता या संवादिता ढूँढ़ निकालना बुद्धि के लिये जितना भूषण-प्रद है, उसी प्रकार उचित स्थानों से उपयुक्त असंबद्धता या असंवादिता ढूँढ़ निकालना भी बुद्धि-शक्ति के लिये उतना ही शोभास्पद है। संवादिता जिस प्रकार वस्तु का गुण है, बुद्धि का नहीं, उसी प्रकार 'विसं-वादिता' यदि बहुत हो तो वस्तु का ही दोष माना जायगा, बुद्धि का नहीं। जिस स्थान पर इस विसं-वादिता अथवा असंबद्धता के होते हुए भी उसका ज्ञान प्राप्त करने में किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक दुःख नहीं होता, अथवा किसी मनुष्य के प्रति घृणा नहीं उत्पन्न होती, किंवा अपनी नीति-बुद्धि को किसी प्रकार का धक्का नहीं पहुँचता उस स्थान पर असंबद्धता का ज्ञान मनुष्य के लिये अवश्य ही बहुत आनन्ददायक होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि स्याही स्वच्छ नहीं होती; पर जिस प्रकार लिखने के लिये उसका उपयोग करने में कोई दोष वा हानि नहीं है उसी प्रकार असंबद्धता के दूषित होने पर भी उसका व्यवहार दोषास्पद नहीं हो सकता। तात्पर्य्य यह कि असंबद्धता के गुणों और दोषों का विचार केवल योजना के हेतु अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना से होनेवाले परिणाम पर ध्यान रख कर किया जाना चाहिए।

यह बात बहुत ठीक है कि हर दम की हँसी दिल्लगी या चुहलबाजी की आदत पड़ना अच्छा नहीं है। क्योंकि उसके कारण स्वभाव में एकदेशीयता आती है और एकदेशीयता का आना दोष है। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि वह एकदेशीयता जिन जिन गुणों से सम्बन्ध रखती है उन्हीं का नाश भी करती है; इस दृष्टि से विनोद चाहे गुण ही हो तथापि उसके साथ भी इसी नियम का पालन होगा। यह बात निर्विवाद है कि मनुष्य में गम्भीरता और आवेश की बहुत बड़ी आवश्यकता है। यदि विनोद अधिक किया जाय तो इन दोनों गुणों को बहुत कुछ धक्का पहुँचने की सम्भावना है। यदि हर एक चीज को देख कर हम केवल उसकी हँसी ही उड़ाने लग जायँगे तो सारा काम ही चौपट हो जायगा। विनोद हो और चाहे न हो, हमारा प्रधान लक्ष्य संसार की उदात्त और शुद्ध बातों की ओर होना चाहिए। यदि हँसी दिल्लगी को हम अनुचित न समझते हों तो भी संसार में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो अनुचित समझी जाने योग्य हैं; और उन्हीं बातों से मन में सदा घृणा करनी चाहिए। संसार में बहुत सी ऐसी असंबद्धताएं भी हैं जिन्हें देख कर हमें कदापि हँसी न आवेगी, उलटे दुःख ही होगा। अर्थात् उन सब बातों में विनोद को जगह नहीं मिलती; वहां आवेश या गम्भीरता आदि गुणों का ही आश्रय लेना पड़ता है। जिन लोगों को हम बहुत विनोदप्रिय समझते हैं उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें संसार की सभी बातें तुच्छ जान पड़ती हैं, वे सब बातों की दिल्लगी ही उड़ाया करते हैं, उन्हें किसी बात में कोई सार नहीं जान पड़ता *। ऐसे लोगों को संसार में कोई चीज पवित्र अथवा वन्दना करने योग्य नहीं जान पड़ती। पर साथ ही ऐसे लोगों के किए हुए विनोद को हम विनोद भी नहीं कह सकते। ऐसे लोगों से उसी प्रकार दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए जिस प्रकार किसी रोग से बचने का यत्न होता है। जिस प्रकार किसी दरबार में मसखरे के हँसी ठट्ठा करते रहने पर भी राजा साहब अपनी गद्दी पर और दरबारी लोग अदब-कायदे से अपनी अपनी जगहों पर बैठे रहते हैं उसी प्रकार विनोद के होते हुए भी मनुष्य के मानसिक दरबार में श्रेष्ठता, गम्भीरता, विचारशीलता अथवा सत्यप्रियता में से किसी एक न एक सद्गुण का मनःप्रवृत्ति पर पूर्ण रूप से अधिकार होना चाहिए। नित्य-प्रति संसार में बहुत से ऐसे विनोदप्रिय देखे जाते हैं जो बहुधा मूर्ख, दुष्ट या उपद्रवी आदि होते हैं। ऐसे लोगों को देख कर यह जान पड़ता है कि यदि केवल विनोद करने के कारण ही ऊपर के अनेक दुर्गुणों का हम पर अधिकार हो सकता हो तो इससे अच्छा यही है कि हम लोग विनोद से दूर रहें। क्योंकि विनोद चाहे कितना ही प्रिय और इष्ट क्यों न हो तो भी उसके मूल्य या महत्त्व की एक निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिए। पर ऊपर के सब कारणों के वास्ते जितना बट्टा काटना उचित हो उतना काटने के उपरान्त भी विनोद का कुछ न कुछ मूल्य बच रहता है। क्योंकि ऐसी बातें बहुत ही कम हैं जिनमें हमें किसी प्रकार का विनोद न करना चाहिए और ऐसी बातें बहुत हैं जिनमें विनोद के लिये बहुत कुछ जगह है। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि विनोद की गणमैत्री बहुत सी बातों से मिलती है; ऐसी बातें बहुत ही कम हैं जिनसे उसका मेल नहीं मिलता। यदि सद्गुणों के साथ विनोद का मेल होगा तो मानों दूध में मिसरी भी पड़ जायगी अथवा उनकी जोड़ी में वैसी ही

* ऐसे ही एक दिल्लगीबाज की बातों से बहुत चिढ़ कर एक बार एक धार्म्मिक पंडित ने कहा था कि मरने पर दिल्लगीबाजों की बड़ी दुर्दशा होगी। दिल्लगीबाज ने पूछा—क्यों महाराज, क्या होगा? पंडितजी ने कहा—वे सब उलट कर के टाँग दिए जायँगे। दिल्लगीबाज ने कहा—चलो, यह भी एक दिल्लगी होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उज्ज्वलता और देदीप्यता आ जायगी जैसी स्फटिक पर सूर्य की किरणों के पड़ने से होती है। बुद्धिमान्, तत्त्ववेत्ता, शूरवीर, सहृदय, विद्वान्, व्यवहार-चतुर, पण्डित, सद्-असद्-विवेकी अथवा इसी प्रकार के लोगों के लिये तो हमारे हृदय में आदर होता ही है; पर यदि उन लोगों में से प्रत्येक में सौभाग्य से विनोद-प्रियता भी हो तो हमारी आदर-बुद्धि में एक प्रकार के मधुर प्रेम का भी छींटा पड़ जाता है। केवल आदर-बुद्धि के कारण जो लोग हमें पराए या दूरतः सेव्य जान पड़ते हैं वे ही उक्त प्रेम के उत्पन्न होने के कारण हमारे साथ एक-दिल हो जाते हैं और उनके सद्गुण आ कर हममें संक्रमित होते हैं।

हास्य और विनोद के उपयोग का दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। एक तो सामाजिक दृष्टि से और दूसरे व्यक्तिगत दृष्टि से। इनमें से सामाजिक दृष्टि से विचार करने के समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि समाज कोई अलग व्यक्ति नहीं है और न उसका कोई पृथक् मन ही है। परन्तु जिस प्रकार व्यक्ति की बुद्धि और नैतिक कल्पनाओं की वृद्धि होती है उसी प्रकार सारे समाज की बुद्धि और नैतिक कल्पनाओं की भी वृद्धि होती है। जिन बातों की सहायता से इन दोनों विषयों में समाज अधिक सुशिक्षित हो सकता हो वही बातें समाज के लिये लाभदायक होंगी। कई बातों में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को विनोद की आवश्यकता कदाचित् अधिक है। एक व्यक्ति के मन का झुकाव बहुधा किसी विशिष्ट बात की ओर ही होता है, उसकी शिक्षा प्रायः एकांगी ही होती है और उसके विचार भी प्रायः एक ही ओर हुआ करते हैं। पर समाज की वह बात नहीं है; समाज के प्रायः सभी अंगों की वृद्धि होने की आवश्यकता हुआ करती है; और इसी लिये उसे अनेक अंगों की शिक्षा की भी आवश्यकता हुआ करती है। इस अनेकांगी शिक्षा की प्राप्ति में समाज की हास्य-विनोद-प्रियता का बहुत बड़ा उपयोग होता है। यदि कोई मनुष्य कोई बढ़िया सुभाषित अकेला ही पढ़े अथवा सुन ले तो उससे होनेवाला लाभ बहुत ही परिमित होता है; पर यदि उसी सुभाषित को दस आदमी एक साथ मिल कर पढ़ें या सुनें तो उसका लाभ अपेक्षाकृत कहीं अधिक होगा। एक व्यक्ति को तो उससे केवल शिक्षा ही मिलती है; पर यदि दस आदमी एक साथ मिल कर उस सुभाषित का आनन्द लें तो उन्हें अलग अलग शिक्षा तो मिलेगी ही, साथ में उनका मेल होगा और उनमें संघ-शक्ति उत्पन्न होगी। इसलिये किसी सुभाषित के गुण-दोष आदि का विचार करने के समय इस बात का ध्यान कम रखना चाहिए कि व्यक्ति के मन पर उसका क्या परिणाम होगा और समाज के मन पर होनेवाले उसके प्रभाव या परिणाम का अधिक ध्यान रखना चाहिए। हास्य-विनोद-शीलता एक सामाजिक गुण है और उसका प्रसार एक दूसरे के सम्पर्क के कारण बढ़ता है। सामाजिक हास्य-विनोद से सामाजिक सुस्वभाव, सामाजिक सद्गुण और समाज-हित-दृष्टि की वृद्धि होती है।

अब हास्य-विनोद से होनेवाले उस लाभ को लीजिए जो व्यक्ति को होता है। सब से पहले यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि आरोग्यता-शास्त्र की दृष्टि से हास्य-क्रिया का शरीर पर बहुत ही लाभदायक परिणाम होता है। शरीर और स्वास्थ्य पर हास्य का बहुत अच्छा परिणाम पड़ता है। जिस मनुष्य को वैद्यक आदि का कुछ भी ज्ञान न हो वह भी कह सकता है कि हँसने से शरीर की सब नसें खूब खुल जाती हैं। जिस समय मनुष्य नहीं हँसता उस समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया सीधी और शान्त रीति से होती है; पर हँसने के समय उसमें एक दम व्यत्यय हो उठता है। परन्तु उस व्यत्यय का परिणाम श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियों और शरीर के रक्त-प्रवाह पर अच्छा ही होता है। हास्य के कारण वक्ष-कपाट पर एक एक कर के कई आघात होते हैं। इनमें से प्रत्येक आघात के समय रक्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाहिनी नलियों में का रक्त हृदय तक पहुँचने से रुकता है। यही कारण है कि बहुत देर तक हँसने से मनुष्य का चेहरा किसी अंश में तमतमा उठता है। पर हास्य-क्रिया के बीच बीच में जल्दी जल्दी जो श्वासोच्छ्वास होता है उसकी सहायता से फेफड़े में हवा पहुँचती है जो उसे फुला देती है। इसका परिणाम यह होता है कि रक्त-वाहिनी नलियों में का रक्त कलेजे की ओर बढ़ता है। कलेजे की ओर जोर से रक्त जाने और रुकने की क्रियाओं के बराबर एक एक कर के होते रहने से रक्त में प्राण-वायु का अधिक संचार होता है और उसके प्रवाह की गति भी बढ़ जाती है। ये सब तो प्रत्यक्ष परिणाम होते हैं; इनके अतिरिक्त और अनेक अप्रत्यक्ष परिणाम भी हो सकते हैं। जब मनुष्य खुल कर हँसता है तब उसके मस्तक पर रक्त का दबाव कम पड़ता है। बालक के नाराज हो जाने पर लोग मुँह चिढ़ा कर, उसकी नकल उतार के अथवा और किसी प्रकार उसे हँसाते हैं; इसका कारण यही है कि हँसी आने के साथ ही दिमाग पर खून का जोर कम हो जाता है और मनोवृत्ति बदल जाती है। ये सब फल हँसी आने के साथ ही होते हैं; इसके अतिरिक्त मनुष्य के सारे शरीर या स्वास्थ्य पर हँसने के जो परिणाम होते हैं वे इतनी जल्दी नहीं होते। परन्तु उनके होने में कभी किसी को तनिक भी शंका नहीं हो सकती। अँगरेजी में एक कहावत है—Laugh and grow fat (हँसने से आदमी मोटा होता है।) इससे जान पड़ता है कि हँसने के सम्बन्ध में अँगरेजों का क्या विचार है*।

ग्रीक तत्ववेत्ता अरस्तू के समय से ले कर आज तक जितने इन्द्रिय-विज्ञान-विशारद हुए हैं, वे सब यही कहते चले आए हैं कि हँसने से फेफड़ों में बल आता है और शरीर की आरोग्यता का हास्य बहुत अच्छा साधन है। जब कभी कहीं रास्ते में बहुत भीड़ लग जाती है तो पुलिस डंडा ले कर वहाँ पहुँचती है और "चलो भीड़ मत लगाओ" कहती हुई सब लोगों में खलबली मचा देती है; इसी प्रकार जब मस्तिष्क या मन पर बहुत जोर पड़ता है तो खिलखिला कर हँसने से वह जोर जाता रहता है और मनुष्य बहुत हलका हो जाता है। शरीर पर भी हँसने का ऐसा ही परिणाम पड़ता है क्योंकि बहुधा खुल कर हँसने से हाथ पैर आदि अंग भी हिलते डोलते हैं। पर साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्" वाली कहावत के अनुसार सम्भव है कि बहुत अधिक हँसने से शरीर पर उसका बुरा परिणाम पड़े। औषध की तरह हास्य भी पथ्यकर और अपथ्यकर होता है और भिन्न भिन्न प्रकृति के लोगों के लिये हास्य रूपी औषधि भी भिन्न भिन्न प्रमाणों में विहित है।

सदा गम्भीर अथवा आवेशयुक्त विचारों के मन में उत्पन्न होते रहने से मन पर एक प्रकार का जोर पड़ता है। धनुष का जिस समय उपयोग नहीं करना होता उस समय उसकी डोरी खोल कर उस पर पड़ा हुआ जोर कम कर देते हैं। इस प्रकार जब कुछ विशिष्ट अवसरों पर आवेशयुक्त अथवा गम्भीर विचारों का मन पर जोर पड़े उस समय मन को स्वाभाविक और सरल स्थिति में लाने और उसका स्थिति-स्थापकतावाला गुण नष्ट न होने देने के लिये ही ईश्वर ने हास्य और विनोद की रचना कर रखी है। हास्य का यह उपयोग तो केवल अनुकरण रूप से हुआ। इसके अतिरिक्त उसके कई प्रत्यक्ष उपयोग भी हैं। उनमें से एक उपयोग यह भी है कि उसकी सहायता से मनुष्य आत्मस्वभाव का निरीक्षण कर सकता है। जो शस्त्र हम सदा औरों पर चलाया करते हैं उसी शस्त्र को आत्महित के विचार से अपने ऊपर चला कर देखने की इच्छा मनुष्य में कभी न कभी अवश्य होती है।

* (1) When man smiles and much more when he laughs he adds a fragment to his life. —Sterne.

(2) Laughter makes good blood. (Italian Proverb).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनोद एक केन्द्र पर ठहर कर चारों ओर घूमनेवाला प्रकाश है। जिस प्रकार उसका प्रकाश दूसरे पर पड़ता है उसी प्रकार वह प्रकाश अपने ऊपर पड़ा हुआ देख कर हमें उन बातों का सहज में ही बोध हो जाता है जो उसके उजाले में दिखाई पड़ती हैं। हम लोगों को प्रायः यह कहते हुए सुनते हैं कि—"हमें आप ही आप हँसी आती है।" इसका तात्पर्य्य स्पष्ट ही है। जिसे सदा औरों पर हँसी आती है उसे अपने ऊपर भी कभी न कभी हँसी आवेगी ही, परन्तु आत्म-निरीक्षण या आत्म-शिक्षण के अतिरिक्त हास्य से और भी कई लाभ होते हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में छोटी मोटी कठिनाइयों या संकटों का सामना अवश्य ही करना पड़ता है। उस समय बहुत से लोग उन कठिनाइयों या संकटों के बोझ से बेतरह दब जाते हैं। परन्तु हास्य की सहायता से हमारे जीवन-क्रम में उन कठिनाइयों या संकटों के कारण कोई व्यत्यय नहीं होने पाता और उनमें से बहुतों को हम सहज में ही बिता देते हैं। मान लीजिए कि हम कोई चीज किसी सुरक्षित स्थान में रख कर भूल गए और जब आवश्यकता पड़ने पर घबरा कर उसे इधर उधर ढूंढ़ने लगे तो वह हमें नहीं मिली। ऐसे अवसर पर हमें बहुत कुछ मानसिक कष्ट होने की सम्भावना होती है। यदि हम हँस कर उस क्षण को सुखपूर्ण न बना लेंगे तो वह अवश्य ही दुःखपूर्ण हो जायगा; और हमें एक व्यर्थ से कारण के लिये कुछ समय दुःख में ही बिताना पड़ेगा। कहीं बाहर जाने के लिये जल्दी जल्दी स्टेशन पर पहुँचे और पहुचँते ही गाड़ी छूट गई। ऐसा प्रसंग सभी लोगों को कभी न कभी आता ही है। अब गाड़ी छूट जाने के कारण खिन्न हो कर चार आदमियों के सामने मुँह लटका कर बैठनेवाले एक मुहर्रमी को लीजिए और दूसरे एक ऐसे आदमी को लीजिए जो गाड़ी छूटती हुई देख कर तनिक भी दुःखी नहीं होता और हँसता हुआ कहता है—"वाह, हम तो इतनी दौड़-धूप कर के इतनी दूर से आपके वास्ते यहाँ तक चल कर आए और आपने हमारे लिये एक मिनट की भी मुरौवत न की। यह कहाँ की भलमनसाहत है?" अब इन दोनों मनुष्यों की तुलना कीजिए और बतलाइए कि दोनों के समान कठिनाई और अड़चन का सामना करने पर भी उनमें से सुखी कौन है और दुखी कौन? मान लीजिए कि आप पैर-गाड़ी पर बैठ कर बड़ी तेजी से कहीं चले जा रहे हैं; ऐसे समय में कोई खेलवाड़ी और पाजी लड़का आपके सामने आ कर खड़ा हो जाता है अथवा अपने स्थान से नहीं हिलता; अथवा आप उसे बचाने के लिये बहुत कुछ दाहिने बाएँ हटते बढ़ते हैं; पर जिधर आप मुड़ते हैं उधर ही वह आपके सामने आ कर खड़ा हो जाता है। ऐसे अवसर पर प्रायः लोगों को बहुत त्रास होता है और उन्हें तुरन्त क्रोध आ जाता है। पर जो मनुष्य दुःखी और क्रुद्ध होता है वह उस लड़के को भी चार गालियां देता है और खुद भी चार गालियाँ खा कर निकल जाता है; और यदि कोई मनुष्य उस लड़के की तरफ से बोलने के लिये उठ खड़ा हुआ तो एक झगड़ा मोल ले लेता है। यदि क्रोध में कुवाच्यों की मात्रा बढ़ गई तो उसका क्या परिणाम होगा और वह बखेड़ा कहाँ तक बढ़ेगा, सो ईश्वर ही जाने। पर विनोद-प्रिय मनुष्यों की बात इससे बहुत भिन्न होती है। ऐसे अवसर पर यह बात वह तुरन्त समझ लेगा कि सड़क पर छोटे बालकों का खेलना निसर्ग-सिद्ध है और आने जानेवालों के साथ किसी तरह की दिल्लगी कर बैठना उनके खेल का एक अंग है। ऐसे अवसर पर यदि वह गाड़ी पर से गिर भी पड़ेगा तो भी, यदि चोट अधिक न आई तो, वह हँस कर यही कहता हुआ निकल जायगा कि——"गाड़ी को बड़ी चोट आई, चलो इसे डाक्टर साहब के पास ले चलें।" अथवा यदि वह न गिरा और लड़के को किसी प्रकार बचा कर आगे बढ़ गया तो पीछे देख कर वह लड़के से केवल यही कहता हुआ निकल जायगा—"क्यों, कैसी हुई? आ गए न चकमे में?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे समय वह स्वयं भी हँसता हुआ निकल जायगा, वह बालक भी हँसने लगेगा और देखनेवाले चार भले आदमी भी हँस पड़ेंगे। घोड़ा-गाड़ी से उतरते समय अपनी धोती पावदान में फँस जाने और फलतः जल्दी न उतर सकने के कारण गाड़ीवान को व्यर्थ गालियाँ देनेवाले और क्रुद्ध हो कर अकाण्ड ताण्डव करनेवाले लोग जिस प्रकार इस संसार में कम नहीं हैं उसी प्रकार ऐसे लोग भी बहुत हैं जो ऐसे अवसर पर एकाध चोज की बात कह कर अड़चन के उस क्षण को हँस कर बिता देते हैं। अँधेरी रात में रास्ते में ठोकर खा कर गिर पड़ने के कारण म्युनिसिपेलटी को गालियाँ दे कर अपने आपको दुःखी भी किया जा सकता है और हँसते हुए यह कह कर अपना रास्ता भी लिया जा सकता है कि—"आजकल हमारे यहाँ की म्युनिसिपल कमेटी ने रोशनी का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया है कि उसकी लालटेन देखने के लिये घर से एक लालटेन साथ लाने की आवश्यकता पड़ती है।" पर इस विषय में प्रायः किसी को विवाद न करना पड़ेगा कि बुद्धिमान् मनुष्य इन दोनों में से कौन सी बात स्वीकार करेगा। मान लीजिए कि आप नाटक देखने गए हैं; आपके सामनेवाली कुरसी पर कोई भला आदमी खूब लंबा चौड़ा पग्गड़ बांधे बैठा है जिसके कारण आपको नाटक देखने में कठिनता होती है। ऐसे अवसर पर आप बिगड़ कर कह सकते हैं कि—"साहब, जब आपको नाटक देखने के लिये आना हुआ करे तो चक्की के पाट ऐसा यह पग्गड़ घर पर रख कर आया कीजिए। समझे कि नहीं? हम आप के पीछे की कुरसी पर बैठे हैं तो क्या हुआ, पर टिकट का दाम हमने भी आपके बराबर ही दिया है। पगड़ी उतार कर रख दीजिए नहीं तो हम मनेजर को बुला कर कहते हैं।" इस पर उसके साथ आपकी कहासुनी होगी, दूसरे दर्शकों के आनन्द में विघ्न पड़ेगा और कदाचित् पुलिस तक जाने की नौबत आवेगी। यह तो हुआ एक मार्ग, अब दूसरा मार्ग लीजिए। यदि आप हँसते हुए उस भले आदमी से पूछेंगे कि—"कहिए साहब, स्टेज पर क्या हो रहा है? जरा हमें भी बतलाते चलिए।" और इस प्रकार व्यंग्य से उसे पगड़ीवाली अड़चन समझा देंगे अथवा हँस कर कह देंगे—"क्यों साहब, क्या आज आपको गरमी नहीं लगती? जरा पगड़ी उतार डालिए और सिर में हवा लगने दीजिए।" तो वह भी आपकी बात समझ कर हँसता हुआ कह देगा—"क्यों, आपको इन सब बातों की क्यों चिन्ता हो रही है? क्या आपको पगड़ी के कारण कुछ आड़ पड़ती है?" यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों मार्गों में से कौन सा मार्ग अच्छा है। कोई भिखमंगा अड़ कर दूकान के आगे बैठ गया है और दिक कर रहा है; उससे बिगड़ कर यह कहना अच्छा है कि—"क्यों जी, सौ दफे तुमसे कहा, तुम मानते नहीं? उठते हो कि गरदन में हाथ दें?" या यह कहना अच्छा है कि—"अरे देवता, बहुत देर हुई, तुम्हें और भी चार जगह जाना होगा; और लोग हाथ में दक्षिणा लिए हुए तुम्हारा रास्ता देखते होंगे। उन्हें क्या आज निराश कर दोगे?" कभी कभी ऐसा होता है कि ताला खोलने लगिए तो बिगड़ा होने अथवा किसी और कारण से वह नहीं खुलता। ऐसे अवसर पर घर के लड़कों बच्चों अथवा नौकरों चाकरों पर बिगड़ और खिजला कर गालियों की झड़ी लगा देनेवाले यहाँ तक कि ताला बनानेवाले कारखानेवालों को उलटी सीधी कह कर अखबारों तक में उनकी खबर लेने की इच्छा रखनेवाले लोग भी होते हैं और ऐसे लोग भी होते हैं जो हँस कर कह दें—"अख्खह, आज तो आप बेतरह नाराज हैं। आइए आपको थोड़ा तेल पिलाएं।" व्यास जी की कथा खूब जमी हुई है, इतने में किसी स्त्री की गोद का बालक जोर से रोने लगा। अब यदि व्यास जी मूर्ख हुए तो उस स्त्री से कह बैठेंगे—"तुम अपने लड़के को चुप कराती हो या नहीं? लोग यहाँ कथा सुनने आते हैं या तुम्हारे लड़के का रोना सुनने?" इस प्रकार व्यासजी स्वयं भी दिक होंगे और उस बेचारी स्त्री को भी दुःखी कर देंगे। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि व्यासजी विनोदप्रिय हुए तो कह देंगे—"छोटे बालकों और राजाओं का क्रोध तथा हठ बराबर ही होता है। उन्हें शान्त करने में कितनी कठिनाई होती है, इसका पता गोकुल की यशोदा से पूछने पर ही लग सकता है।" इसी तरह की बच्चों सम्बन्धी एकाध और बात कह कर व्यासजी अपने सभी श्रोताओं को थोड़ी देर के लिये अधिक प्रसन्न कर देंगे। इस प्रकार के जितने उदाहरण दिए जायँ सब थोड़े होंगे। इन सब का तात्पर्य्य केवल यही है कि संसार की छोटी मोटी कठिनाइयों या संकटों का जितना परिहार विनोद से होता है उतना क्रोध या दुःख आदि से नहीं होता। हम नित्य देखते हैं कि बहुत से काम प्रायः हलके हाथ से ही हो जाते हैं; अड़चनों को विनोद-दृष्टि से देखना भी मानों बहुत हलके हाथ से उनका परिहार करना है। ऐसे अवसर पर साधु या त्यागी लोग परमार्थ-दृष्टि से जिस प्रकार अपना समाधान कर लेते हैं उसी प्रकार संसारी लोग विनोद से अपने मन की शान्ति कर लेते हैं। सुकरात की कर्कशा स्त्री ने जब पहले उसे गालियाँ दीं और पीछे उसके सिर पर गरम पानी डाल दिया तो सुकरात ने कह दिया—"बिजली चमकने और बादल गरजने के बाद पानी बरसता ही है।" हम सब लोग चाहे इतने विनोदशील न हों, पर तो भी सभी लोग सांसारिक कठिनाइयों और संकटों के बहुत से अवसर इसी प्रकार हँस कर टाल सकते हैं। अनेक प्रकार की परिस्थितियों का—जिन्हें अँगरेजी में Circumstances कहते हैं—सामना मनुष्य-मात्र के लिये विषम होता है; क्योंकि उसमें एक ओर तो सर्वशक्तिमान् परिस्थिति होती है और दूसरी ओर अल्पशक्तिमान् मनुष्य। और हम जब तक जीते रहेंगे तब तक यह विषम-समस्या बराबर बनी रहेगी। जब यह बात भली भाँति समझ में आ जायगी तब मनुष्य को विश्वास हो जायगा कि जिस अवसर पर और कोई शक्ति काम नहीं कर सकती उस अवसर पर केवल विनोद-रूपी मायावी शक्ति की आराधना और सहायता से ही हम उस विषम-द्वन्द्व में यश प्राप्त कर सकते हैं।

(शेष आगे।)

पाल-वंश।*

बङ्गाल का पाल राजवंश बहुत प्रसिद्ध है। यह राजवंश पाल इसलिये कहलाता है कि इस वंश के सभी राजाओं के नामों के अन्त में "पाल" शब्द लगता था। इस वंश के राजाओं के हिन्दू होने में तो कोई सन्देह नहीं; पर उनकी ठीक जाति के सम्बन्ध में विद्वानों में अभी तक बहुत कुछ मत-भेद है। इस मत-भेद का मुख्य कारण यह है कि पाल राजाओं ने अपने किसी ताम्र-पत्र में अपनी जाति का जिक्र नहीं किया। प्रसिद्ध राजा कुमारपाल के मन्त्री वैद्यदेव ने अपने केवल एक दानपत्र में यह लिखा है कि पाल-राजवंश की उत्पत्ति 'मिहिर' (सूर्य्य) कुल में हुई थी। उसके इस कथन का अप्रत्यक्ष रूप से उन राजकीय दानपत्रों द्वारा समर्थन होता है जिनमें कुछ पाल राजाओं के प्रसिद्ध क्षत्रिय कुलों में ब्याहे जाने का जिक्र है।

'रामचरितम्' ग्रन्थ के कर्त्ता ने पाल राजवंश की उत्पत्ति का वर्णन केवल दो ही श्लोकों में किया है और आगे चल कर एक श्लोक में उनकी जाति का भी जिक्र किया है। उसके टीकाकार का मत है कि ग्रन्थकार की उक्ति राम और रामपाल दोनों के लिये समान रूप से प्रयुक्त हो सकती है और उसके अनुसार दोनों ही "श्रीपति-नाभि-सम्भूत अथवा क्षत्रिय" हैं।

---

* कई मास हुए, श्रीयुक्त बाबू अक्षयकुमार मैत्र ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट हाल में एक व्याख्यान दिया था। यह लेख उसी व्याख्यान की सहायता से लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाल-राजकुल के नष्ट हो जाने के बाद फ़ारसी बँगला और तिब्बती भाषाओं में उस वंश के जो इतिहास लिखे गए हैं उनमें दी हुई वंशावलियां परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त पुरातत्त्व की खोज में तत्कालीन जिन लेखों का पता लगा है उनसे भी उक्त वंशावलियां बहुत भिन्न हैं। तथापि इस समय भी उनमें से धर्म्मपाल, देवपाल, महिपाल और रामपाल के नाम बङ्गाल में बहुत प्रसिद्ध हैं और वहाँ के बहुत से नगरों और स्थानों के साथ ये नाम सम्बद्ध हैं। धर्म्मपाल और देवपाल के नाम तो ब्राह्मणों की वंशावलियों तक में घुस गए हैं। पर इन सब साधनों से पाल-वंशीय राजाओं की वंशावली नहीं जानी जा सकती। उसे जानने के साधन कुछ और ही हैं।

पाल-राजवंश के संबन्ध में आवश्यक बातें जानने के लिये सबसे पहले और उपयोगी साधन दो लेख हैं, जो सन् १७८० में दीनाजपुर जिले में अचानक मिल गए थे। उनमें से एक तो देवपाल का दानपत्र था और दूसरा एक स्तम्भ पर खुदा हुआ शिलालेख था। अभाग्यवश दानपत्र पूरी तरह से पढ़े जाने और अँगरेज़ी में अनुवादित हो कर प्रकाशित होने से पहले ही खो गया था। पर वह स्तम्भ, उस शिलालेखसहित, अपने स्थान पर ज्यों का त्यों अब तक स्थित है। इस दानपत्र में केवल गोपाल, धर्म्मपाल और देवपाल के नाम ही आए थे और यह लिखा था कि यही तीनों राजा पाल-राजवंश के आदिपुरुष हैं। स्तम्भवाले शिलालेख में चार नाम लिखे हैं—धर्म्मपाल, देवपाल, सुरपाल और नारायणपाल। अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक पाल-राजवंश के पहले पाँच राजाओं—गोपाल, धर्म्मपाल, देवपाल, सुरपाल और नारायणपाल—के नामों का ही ठीक ठीक पता लगा था। पर इस बात का कोई अनुसन्धान नहीं लगा था कि इस वंश की उत्पत्ति कब, कहाँ और किस प्रकार हुई और उसने अपना राज्य किस प्रकार स्थापित किया। पर इन दोनों लेखों से इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता था कि ये राजे बड़े शक्तिशाली थे और उनका साम्राज्य—कम से कम राजा देवपाल के समय में—बहुत विस्तृत, समुद्र तट से ले कर बहुत दूर पूरब और पच्छिम तक फैला हुआ था।

सन् १८०६ में दीनाजपुर जिले के एक दूसरे स्थान में विग्रहपाल नामक राजा का एक और दानपत्र मिल गया। पर वह लेख बहुत ही बुरी दशा में था और बहुत दिनों तक किसी से ठीक ठीक पढ़ा न गया। इसके कुछ ही समय पीछे भागलपुर में नारायणपाल का एक दानपत्र मिल गया जिससे पाल-राजवंश के सम्बन्ध की बहुत सी बातों का पता लग गया। आजकल के बड़े बड़े विद्वानों का पाल-राजवंश सम्बन्धी ज्ञान बहुधा उसी दानलेख पर निर्भर करता है। इसके बाद धीरे धीरे दीनाजपुर जिले में प्रथम महिपाल के, मालदह जिले में धर्म्मपाल के और तदुपरान्त दीनाजपुर में मदनपाल के कई दानलेख मिले। उन लेखों से पालवंश के जिन सत्रह प्रारम्भिक राजाओं के नामों का पता चला है वे इस प्रकार हैं:—

(१) गोपाल, प्रथम।
(२) धर्मपाल।
(३) देवपाल।
(४) विग्रहपाल प्रथम। (दूसरा नाम सुरपाल प्रथम।)
(५) नारायणपाल।
(६) राजीवपाल।
(७) गोपाल, द्वितीय।
(८) विग्रहपाल, द्वितीय।
(९) महिपाल, प्रथम।
(१०) नयपाल।
(११) विग्रहपाल, तृतीय।
(१२) महिपाल, द्वितीय।
(१३) सुरपाल, द्वितीय।
(१४) रामपाल।
(१५) कुमारपाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६) गोपाल, तृतीय।
(१७) मदनपाल।

उक्त लेख से यह भी पता लगा था कि धर्म्मपाल का बक्रपाल नामक एक भाई और त्रिभुवनपाल नामक एक लड़का था जो युवराज कहलाता था। इसके अतिरिक्त देवपाल का जयपाल नामक एक भाई था और राज्यपाल नामक एक लड़का भी था जो उसके राज्य का उत्तराधिकारी था।

सन् १८९७ में जब रामचरितम् नाम का ग्रन्थ मिला तो उससे बहुत से पालवंशीय राजाओं के सम्बन्ध की अनेक नई बातों और घटनाओं का पता चला। इस ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि (वंशावली में दिए हुए अन्तिम) राजा मदनपाल का एक पुत्र भी था; पर अभी तक इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला कि उस पुत्र को अपने पिता का राज्य मिला था या नहीं।

नारायणपालवाले दानपत्र के मिलने के उपरान्त यह विवाद खड़ा हुआ था कि उक्त दानपत्र के पाँचवें श्लोक में जिस देवपाल और उसके छोटे भाई जयपाल का नाम आया है, वे दोनों किसके पुत्र थे। उस समय सब लोगों ने यही मान लिया था कि धर्म्मपाल को कोई सन्तान नहीं हुई थी और इसी लिये वक्रपाल का लड़का (और धर्म्मपाल का भतीजा) देवपाल उसके राज्य का उत्तराधिकारी हुआ था। यह सिद्धान्त किस प्रमाण से निकाला गया था सो तो ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता, पर उसके बाद ही मालदह में धर्म्मपाल का जो दानपत्र मिला था उसमें इस सिद्धान्त का खण्डन हो गया था। उसमें यह लिखा था कि धर्म्मपाल का त्रिभुवनपाल नामक एक पुत्र था जो युवराज कहलाता था और वही उस दानपत्र का "द्योतक" था। उस समय यह सिद्धान्त निकाला गया कि धर्म्मपाल के जीवनकाल में ही युवराज त्रिभुवनपाल का देहान्त हो गया होगा और इसी लिये धर्म्मपाल का भतीजा देवपाल राज्याधिकारी हुआ होगा। पर देवपाल के दानपत्र से—जिसका पुनरुद्धार और अनुवाद प्रोफेसर कीलहार्न ने किया था—लोगों का मिथ्याभ्रम दूर हो गया और यह पता लग गया कि देवपाल, जिसे लोग भ्रम से वक्रपाल का लड़का समझते थे, वास्तव में धर्म्मपाल का ही लड़का था, और देवपाल का राज्यपाल नामक एक लड़का था जो युवराज कहलाता था और राज्य का उत्तराधिकारी था। इस प्रकार देवपाल के सम्बन्ध से पालवंशी राजाओं की वंशावली में जो गड़बड़ी पड़ गई थी वह दूर हो गई।

अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि भूल किस प्रकार पड़ी थी। पाँचवें श्लोक के आरम्भ में 'तस्मात्' शब्द था; जिसे लोग समझते थे कि यह धर्म्मपाल के लिये नहीं बल्कि वक्रपाल के लिये आया है। पहले पद में गोपाल देव का जिक्र था, दूसरे में धर्म्मपाल का और तीसरे में उसकी विजय और चक्रयुद्ध को कान्यकुब्ज का राज्य देने का जिक्र था। चौथे पद में वक्रपाल का वर्णन था जो धर्म्मपाल का छोटा भाई था और जिसने राजा धर्म्मपाल के शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। पाँचवां पद "तस्मात्" सर्वनाम से आरम्भ होता था, जिसका आशय था—"उसका जयपाल नामक एक बहुत प्रतापी पुत्र हुआ जिसकी विजयों का फल उसके बड़े भाई देवपाल ने भोगा।" वहाँ 'तस्मात्' से वक्रपाल का तात्पर्य्य लिया गया था। पर देवपाल के दानपत्र से यह बात स्पष्ट हो गई कि नयनपाल के राजकवि का 'तस्मात्' शब्द वक्रपाल के लिये नहीं बल्कि धर्म्मपाल के लिये था।

"देवपाल" शब्द से पाल-वंशीय राजा (देवपाल) का भी तात्पर्य्य निकलता था और देवताओं के रक्षक (पाल) इन्द्र का भी। इसलिये कवि ने राजा देवपाल के छोटे भाई की उपमा इन्द्र के छोटे भाई से दी थी। यदि "जयपाल" शब्द भी ऐसा ही श्लेष होता तो कवि का उपमालंकार बिलकुल पूर्ण और ठीक हो जाता। पर "जयपाल" शब्द से दोनों अभिप्राय नहीं निकल सकते थे, इसलिये कवि ने अपनी उपमा ठीक रखने के लिये "उपेन्द्र-चरितै"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द का व्यवहार किया था जिससे तात्पर्य्य यह निकलता था कि राजा इन्द्रपाल के छोटे भाई (जयपाल) ने भी सारा संसार जीत कर अपने भाई के अर्पित कर दिया था और देवताओं के राजा इन्द्र के छोटे भाई ने भी। पहले लोगों का ध्यान इस उपमा की ओर नहीं गया था। दूसरी मजेदार बात यह है कि प्रोफेसर कीलहार्न का अनुवाद छपने से पहले लोग यही समझते थे कि देवपाल और जयपाल दोनों चचेरे भाई नहीं बल्कि सगे भाई थे।

जब स्वयं देवपाल के दानपत्र से यह बात प्रमाणित हो गई कि वह वक्पाल का नहीं बल्कि धर्म्मपाल का पुत्र था तब जयपाल के विषय में भी यही समझा जाना चाहिए था कि वह धर्म्मपाल का पुत्र था। पर कुछ विद्वानों का सिद्धान्त इससे विलक्षण ही था। देवपाल को तो वे धर्म्मपाल का पुत्र समझने के लिये विवश थे पर जयपाल को वे धर्म्मपाल का पुत्र मानने के लिये तैयार न थे। अतः उन्होंने यह नया सिद्धान्त निकाला कि यदि देवपाल नहीं तो कम से कम जयपाल अवश्य ही वक्पाल का पुत्र था।

"रामचरितम्" ग्रन्थ के कर्त्ता की इच्छा थी कि वह अपने काव्य के नायक की उपमा रामायण के नायक रामचन्द्र से दे और दोनों को समान योग्यता का सिद्ध करे। इस विचार से उसने पालवंश के केवल इन्हीं राजाओं का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है जो उसकी इस उपमा के लिये सर्वथैव उपयुक्त थे। पाल-वंश का पहला राजा गोपाल इस योग्य नहीं था कि काव्य में उसकी तुलना रामवंश के आदिम राजा इक्ष्वाकु से की जा सके। इस तुलना के लिये उसने धर्म्मपाल को ही सब से अधिक उपयुक्त समझा था। धर्म्मपाल का जिक्र करते हुए उसने लिखा था कि उसके वंश में सारे संसार पर शासन करनेवाले और चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुए थे। यदि देवपाल की मृत्यु के उपरान्त धर्म्मपाल के वंश का वास्तव में अन्त हो जाता और देवपाल के उपरान्त (जयपाल के द्वारा) वक्पाल का वंश शासन करता तो कवि इक्ष्वाकु से धर्म्मपाल की उपमा न दे कर वक्पाल की ही उपमा देता।

पाल-वंशीय दूसरे राजाओं के नाम तो अब अधिक प्रसिद्ध नहीं है पर धर्म्मपाल, देवपाल, महीपाल और रामपाल के नाम अब तक बहुत प्रसिद्ध हैं और बंगाल के अनेक स्थान उनके नामों से सम्बद्ध हैं। धर्म्मपुर, पालपुर आदि अनेक नाम इसके उदाहरण हैं। पहाड़पुर नामक स्थान में एक बड़ा टीला है जिसे कुछ विद्वानों ने पहले बौद्धस्तूप बतलाया था। पर पीछे उसमें एक स्थान पर काली देवी की मूर्ति मिली जिससे लोगों ने उसे हिन्दुओं का स्मृति-चिह्न समझा। आजकल के कुछ विद्वानों का मत है कि उस स्थान पर पालवंश के पहले राजा गोपाल की अन्तिम क्रिया हुई थी। दीनाजपुर जिले में एक स्थान पर एक मन्दिर है जिसे लोग आजकल "योगी-गुफा" कहते हैं। इस मन्दिर में कुछ साधु आदि रहते हैं जो अपने आपको योगी कहते हैं। प्रायः सौ वर्ष पहले मि० बुकानन हैमिल्टन को वहाँ के कुछ योगियों ने यह बतलाया था कि यह मन्दिर प्रायः उसी स्थान पर बना है जहाँ किसी समय राजा देवपाल का महल था। सन् १८७९-८० में सर एलेक्ज़ेण्डर कनिंघम ने वहाँ की यात्रा की थी। कनिंघम साहब ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि लोगों ने उन्हें उस स्थान का नाम "राजा देवपाल की छतरी" बतलाया था। इसी लिये उन्होंने यह समझा था कि इस स्थान पर राजा देवपाल की दाह क्रिया हुई थी और उसी के फूलों पर वहाँ वह समाधि या छतरी बनाई गई थी। उस प्रान्त में पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज करने के लिये एक सभा है जिसके सभासदों ने दो बार वहाँ जा कर खोज लगाने के लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया था। अब तक जो बातें मालूम हुई हैं उनसे यही पता चलता है कि वह मन्दिर राजा देवपाल के महल के खण्डहरों पर नहीं बना है। हाँ, इतना अवश्य ज्ञात हुआ है कि वह स्थान बाबा गोरखनाथ का था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रैार राजा देवपाल की कन्या वहाँ बाबा गोरखनाथ के दर्शनों के लिये प्रायः आया करती थी। उसी स्थान पर ईंटों का बना हुआ एक ग्रैार टूटा फूटा छोटा सा मन्दिर है; कुछ लोग कहते हैं कि उसी मन्दिर में राजा देवपाल की उक्त कन्या की मूर्ति स्थापित थी। उस मूर्ति के ऊपर साड़ी पहिनाई हुई थी। जब वह साड़ी हटा कर उस मूर्ति की जाँच की गई तो जान पड़ा कि वह कोई मूर्ति नहीं थी बल्कि किसी बौद्ध स्तम्भ का ऊपरी टूटा हुआ भाग था जिसके नीचेवाले चारों कोनों पर चार चार इंच की बुद्ध की चार मूर्तियां बनी हुई थीं। इस स्थान से थोड़ी दूर पर एक ढूह है जिस पर बहुत से पेड़ पैाधे उग आए हैं। लोग कहते हैं कि ठीक उसी स्थान पर राजा देवपाल का महल था। प्रति वर्ष वैशाख सुदी दशमी को वहाँ मेला लगता है। सर एलेकज़ेण्डर कनिंघम का मत है कि किसी समय इसी स्थान पर राजा देवपाल की समाधि रही होगी। इसी प्रकार बोगड़ा जिले में देवरा नामक एक स्थान है जो सम्भवतः देवपुर या देवपाड़े का अपभ्रंश हो। इस स्थान पर भी कुछ खण्डहर हैं जिनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे राजा देवपाल के महलों का अवशेष हैं। यह खंडहर बहुत दूर तक फैले हुए हैं ग्रैार उनके आस पास कई तालाब ग्रैार मन्दिर आदि हैं जिनसे जान पड़ता है कि किसी समय यह प्रान्त बहुत उन्नत ग्रैार समृद्ध था। कुछ दिन हुए इन्हीं खण्डहरों में गरुड़ पर सवार विष्णु की एक बहुत बड़ी मूर्ति मिली थी जो वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी के अजायबघर में रखी हुई है। इसी प्रकार वारेन्द्र में ग्रैार भी अनेक ऐसे स्थान हैं। वहाँ महिपुर नामक एक स्थान है जिसके विषय में वहाँ के लोगों में यह प्रसिद्ध है कि यहाँ राजा प्रथम महिपाल की राजधानी थी। यह स्थान बहुत पुराना ग्रैार महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है। सारे वारेन्द्र में बहुत से बड़े बड़े तालाब ग्रैार मन्दिर आदि हैं, जिनमें से बहुतेरे पेड़ों ग्रैार पैाधों के नीचे दब गए हैं। वारेन्द्र सोसाइटी बहुत परिश्रम ग्रैार धन-व्यय कर के इन स्थानों में उत्तमतापूर्वक अनुसन्धान कर रही है। आशा है, उसके द्वारा शीघ्र ही बहुत सी नई ग्रैार उपयोगी बातों का पता लगेगा। उक्त सोसाइटी के जन्मदाता ग्रैार सभापति दीघापटिया के कुमार शरतकुमार राय एम० ए० एम० आर० ए० एस० का प्रयत्न सर्वथा प्रशंसनीय ग्रैार हिन्दीभाषी श्रीमानों के लिये अनुकरणीय है।

व्यायाम।

[लेखक,—श्रीयुक्त डा० कालीचरण दूबे एल० एम० एस० डी० पी एच० हेल्थ अफ़िसर, बनारस।]

मनुष्य की आरोग्यता उसी समय बनी रह सकती है जब कि उसका प्रत्येक ग्रंग उचित ग्रैार यथेष्ट रूप से अपना नियमित कार्य्य करता रहे। जो ग्रंग अपना नियमित कार्य्य न करेगा उसका भली भाँति पोषण न हो सकेगा ग्रैार वह धीरे धीरे दुर्बल हो कर बेकार हो जायगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी ग्रंग से अधिक काम लिया जायगा तो उसका पोषण आवश्यकता से अधिक होने लगेगा ग्रैार वह भी आसाधारण रूप से मोटा ग्रैार भारी होता होता बेकार हो जायगा।

व्यायाम दो प्रकार का हो सकता है; एक शारीरिक ग्रैार दूसरा मानसिक। साधारणतः लोग व्यायाम से केवल शारीरिक व्यायाम का ही अर्थ लेते हैं; अतः इस प्रकरण में उसी का वर्णन किया जायगा।

शारीरिक व्यायाम का शरीर के जिन ग्रंगों पर प्रभाव पड़ता है फेफड़ा उनमें से प्रधान है। व्यायाम करने से आदमी की साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है जिसका फल यह होता है कि साँस की सहायता से कारबन-डाई-आक्साइड अधिकता से निकलता है। यह कारबन-डाई-आक्साइड शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भिन्न भिन्न अंगों के मांस और रक्त में बनता है और रक्त के साथ हो कर फेफड़ों तक पहुँचता है। व्यायाम करने से फेफड़ों में खून जल्दी जल्दी पहुँचने और दौड़ने लगता है और मनुष्य साँस भी जल्दी जल्दी लेने लगता है। इन दोनों क्रियाओं का फल यह होता है कि जितना कारबन-डाई-आक्साइड खून की सहायता से फेफड़ों तक पहुँचता है वह सब साँस की सहायता से बाहर निकल जाता है।

यदि व्यायाम ठीक रीति से न किया जाय तो खून फेफड़ों में जमने लगता है जिसका फल यह होता है कि मनुष्य को खाँसी या निमोनिया हो जाता है अथवा मुँह के रास्ते खून निकलने लगता है। इसलिये यह उचित और आवश्यक है कि कसरत करने के समय शरीर पर विशेषतः छाती पर कोई तंग या कसा हुआ कपड़ा न हो और गरदन के चारों ओर किसी प्रकार का बन्धन न रहे। कसरत धीरे धीरे और अपनी शक्ति के अनुसार करनी चाहिए और यदि कसरत करते समय साँस लेने में किसी प्रकार का कष्ट बोध हो तो कसरत बन्द कर देनी चाहिए। लोग कसरत करते करते हाँफने लगते हैं और उस दशा में भी बराबर कसरत करते जाते हैं; ऐसा नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार बहुत अधिक थकावट जान पड़ने पर भी व्यायाम रोक देना चाहिए। व्यायाम सदा खुले, साफ और ऐसे स्थान में करना चाहिए जहाँ साफ और ताजी हवा अच्छी तरह आती हो। व्यायाम में शरीर से कारबन-डाई-आक्साइड अधिक निकलता है इसलिये व्यायाम करनेवाले को घी और दूध का सेवन अधिक करना चाहिए। पर किसी प्रकार के मादक द्रव्य का व्यवहार उसे कदापि न करना चाहिए।

फेफड़ों के उपरान्त व्यायाम का प्रभाव शरीर में दौड़नेवाले खून की गति पर पड़ता है। व्यायाम करने के समय हृदय की गति बढ़ जाती है जिसके कारण नाड़ी तेज हो जाती है और शरीर के सब अंगों में खून जल्दी जल्दी दौड़ने लगता है। व्यायाम करने के उपरान्त हृदय की गति मन्द पड़ जाती है। मनुष्य यदि अधिक व्यायाम करेगा तो व्यायाम के अन्त में उसका हृदय बहुत ही मन्द और दुर्बल हो जायगा। बहुत से लोग केवल व्यायाम करने के अभिप्राय से बहुत ऊँचे स्थानों पर चढ़ा करते हैं। ऊपर चढ़ने से हृदय पर अधिक जोर पड़ता है इसलिये जिन लोगों को खाँसी, दमा या हृदय-सम्बन्धी इसी प्रकार का कोई और रोग हो उन्हें पहाड़ियों या दूसरे ऊँचे स्थानों पर न चढ़ना चाहिए।

व्यायाम का तीसरा प्रभाव शरीर की त्वचा पर होता है। व्यायाम करने से त्वचा लाल हो जाती है और शरीर के अंगों में खून के जल्दी जल्दी दौड़ने से पसीना अधिक निकलने लगता है। शरीर से दूषित पदार्थों के बाहर निकलने के जो तीन प्रकार हैं पसीना उनमें से एक है। पसीने में पानी, नमक और तेजाब आदि पदार्थ होते हैं। पसीना निकलने के कारण खून की गरमी कम हो जाती है और पसीना सूखने के उपरान्त त्वचा ठंढी पड़ जाती है। यदि पसीना न सूखे तो शरीर भी गरम हो जायगा और शरीर में सुस्ती आ जायगी। व्यायाम करने के समय मनुष्य को चाहे सरदी न लगे पर व्यायाम करने के उपरान्त मनुष्य को सरदी से अपने शरीर की भली भाँति रक्षा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यायाम करनेवाले को अपने शरीर की त्वचा सदा साफ और स्वच्छ रखनी चाहिए और उस पर कभी किसी तरह की मैल आदि न जमने देनी चाहिए। व्यायाम करने के समय मनुष्य को अपना धड़ आदि या तो नंगा रखना चाहिए और या कोई महीन और ढीला कपड़ा पहनना चाहिए।

शारीरिक व्यायाम का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर केवल इतना ही पड़ता है कि उसकी आरोग्यता बनी रहती है; उसमें किसी प्रकार की वृद्धि या उन्नति नहीं होती। जो लोग केवल कसरत करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और अपने मस्तिष्क से कोई काम नहीं लेते वे कभी अधिक बुद्धिमान् नहीं होते।

व्यायाम का प्रभाव गुर्दों पर भी पड़ता है। शरीर का अनावश्यक पानी त्वचा के मार्ग से पसीना बन कर निकल जाता है और व्यायाम करनेवाले को पेशाब कम होते हैं। इस प्रकार व्यायाम का प्रभाव गुर्दों पर भी पड़ता है।

अँतड़ियों पर भी व्यायाम का कम प्रभाव नहीं होता। व्यायाम करनेवालों को पैखाना भी कम और बँधा हुआ होता है। इसका कारण यह है कि व्यायाम करने से मनुष्य की पाचन-शक्ति बढ़ जाती है और वह भोजन अच्छी तरह पचा लेता है। मनुष्य के शरीर की गरमी भी बढ़ जाती है पर वह गरमी केवल हाथ लगाने से नहीं मालूम होती; उसका पता थरमामीटर के व्यवहार से लगता है।

तात्पर्य्य यह कि व्यायाम का प्रभाव शरीर के सब अंगों पर कुछ न कुछ पड़ता है। कारबन-डाई-आक्साइड अधिक निकलता है जिसके कारण शरीर के भीतर के दूषित पदार्थ निकल जाते हैं। पसीने के रूप में शरीर का पानी भी निकल जाता है जिससे खून में पानी कम हो जाता है। शरीर के सब अंगो में खून की गति बढ़ जाती है जिसके कारण भोजन का सार पदार्थ सब अंगों में जल्दी जल्दी पहुँचने लगता है। इससे दूसरा लाभ यह होता है कि भीतरी अंगों में स्थान स्थान पर जमा हुआ गन्दा और दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलने के लिये आँतों, गुरदों, फेफड़ों और त्वचा तक पहुँचता है। इन सब बातों का फल यह होता है कि शरीर के सब अंग नीरोग, हृष्ट पुष्ट और कड़े हो जाते है और यही कारण है कि व्यायाम करनेवाले सदा नीरोग और प्रसन्न रहते हैं।

व्यायाम के अनेक प्रकार हैं जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जाता है।

डंड।

बहुत से लोग जल्दी जल्दी और बहुत से डंड एक साथ या एक साँस में कर जाते हैं; पर ऐसा करना ठीक नहीं है। डंड बहुत धीरे धीरे और शरीर के सब अंगों को बहुत साध साध कर करना चाहिए। इस प्रकार किए हुए पाँच डंड जल्दी जल्दी किए हुए पचास डंडों के बराबर होंगे।

बैठक।

यह भी डंड की भाँति ऊपर लिखे प्रकार से धीरे धीरे करनी चाहिए।

मुगदल।

इसके फेरने में भी ऊपर लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए।

डंबेल।

डंबेल के व्यायाम के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें छपी हुई हैं। और सब प्रकार के व्यायामों से आजकल यह व्यायाम बहुत अच्छा समझा जाता है क्योंकि इसमें शरीर के सब अंगों को कुछ न कुछ काम करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त घोड़े की सवारी, गेंद, फुटबाल, जिमनास्टिक, पटा, बनेठी, बाना, नाल आदि अनेक प्रकार की कसरते हैं जिनसे शरीर को बहुत लाभ पहुँचता है।

मानसिक व्यायाम।

मानसिक शक्तियों को बढ़ाने के लिये पुस्तकें और समाचारपत्र आदि पढ़ने, लिखने और तरह तरह की बातों पर विचार आदि करने की आवश्यकता होती है।

भोजन।

व्यायाम करनेवाले को तली हुई चने की दाल या भीगे हुए कच्चे चने का व्यवहार करना चाहिए। इससे शरीर का बल बढ़ता है। तुरन्त का दूहा हुआ या गरम किया हुआ ताजा दूध भी बहुत लाभदायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। इसके अतिरिक्त तरह तरह के मेवे, किशमिश, बादाम, छोहारे या पिस्ते के व्यवहार से भी बल बढ़ता है। प्रोफेसर राममूर्त्ति की सम्मति में व्यायाम करने के उपरान्त नीचे लिखी ठंढाई पीनी चाहिए।

बादाम २० दाने,
काली मिर्च २ दाने,
छोटी इलायची २ दाने और धनिया ¼ तोला।

इन सब चीजों को रात के समय मिट्टी या पत्थर के किसी बरतन में एक छटांक पानी में भिगो देना चाहिए और बादाम और इलायची के छिलके निकाल कर बाकी सब चीजों को खूब महीन पीस और छान कर पी लेना चाहिए। यदि रुचि हो तो उसमें थोड़ी सी मिसरी भी मिला लेनी चाहिए। जाड़े के दिनों में यदि इसमें थोड़ी सोंठ मिला दी जाय और इसे कुछ गरम कर लिया जाय तो और भी अच्छा है। मनुष्य ज्यों ज्यों व्यायाम बढ़ाता जाय त्यों त्यों उसे बादाम के दाने भी बढ़ा देने चाहिए।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

लाला हंसराजजी का भाषण।

लाहौर में होनेवाले आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सम्बन्ध के नियत किए हुए भाषणों में दूसरा * भाषण डी० ए० वी० कालेज की प्रबन्धकारिणि कमेटी के सभापति लाला हंसराजजी बी० ए० का गत १४ तारीख को सन्ध्या के ६॥ बजे लाहौर की हिन्दू-सभा के भवन में हुआ। राय साहब मुरलीधर वकील ने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। उक्त वक्ता महाशय ने हिन्दी की जो परमोपयोगी सेवा की है, सभापति ने छोटी किन्तु चित्ताकर्षक वक्तृता में उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

लाला हंसराज जी ने अपना भाषण इस प्रकार आरम्भ कियाः—गत कई वर्षों से लोग हिन्दी भाषा तथा साहित्य की उन्नति की बातें कर रहे हैं किन्तु यह जानना आवश्यक था कि इस कार्य के लिये इतना व्यय और परिश्रम क्यों उठाया जाय। किसी राष्ट्र के लिये संसार में सफलता पाना उस समय तक असम्भव है जिस समय तक वह अपने को उसके योग्य न बना ले। यह हो सकता है कि अपने निज के उद्योगों से एक आदमी यहाँ और एक किसी और जगह ख्याति प्राप्त कर ले और यही ख्याति खास खास कुटुम्बों को भी प्राप्त हो सकती है, किन्तु व्यक्तिगत कुटुम्ब ही की उन्नति से यह नहीं कहा जा सकता कि समस्त राष्ट्र में का उत्थान हो गया। तो फिर राष्ट्र के अभ्युदय के हेतु किन बातों की आवश्यकता है जिन्हें राष्ट्रीयता की आवश्यकीय बातें कह सकें?

इनमें सर्व प्रथम तो समाज के हर एक व्यक्ति के मन में यह अटल विश्वास होना चाहिए कि हम एक ही जड़ से उत्पन्न हुए हैं, एक ही मा बाप की सन्तति हैं और इसलिये सब भाई भाई हैं। समस्त राष्ट्र में भ्रातृभाव का जोश रहना चाहिए। अँगरेजी राष्ट्र में नार्मन, डेन, ब्रिटन, जूट, ऐङ्गल और सैक्सन आदि भिन्न भिन्न जाति के लोगों से मिल कर सङ्गठित हुआ है किन्तु हर एक व्यक्ति को यही विश्वास है कि वह अँगरेजी राष्ट्र का अंश या स्तम्भ है। पुनः इटालियन राष्ट्र में कई प्राचीन यूनानी तथा गाथ (एक प्राचीन जर्म्मन) जाति के लोग शामिल हैं किन्तु ये लोग भी अपने को वैसा ही इटालियन गिनते हैं जैसा कि एक सच्चे इटालियन को गिनना चाहिए। हिन्दू समाज में भी यद्यपि राष्ट्रीयता की चिंगारी एक दम नहीं बुझ गई है तो भी कई प्रकार की अनावश्यक बुराइयाँ भरी हैं। यह प्राचीन विचार

---

*पहला भाषण पं० दीनदयालु शर्म्मा का हुआ था। प० सम्पा०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हिन्दुओं में ब्राह्मण एक शरीर का शीश है, क्षत्रिय उसकी भुजा है, वैश्य उसका उदर है और शूद्र पद है, समाज से विस्मृत होता जा रहा है। ब्राह्मण और शूद्र में लोग भेद-भाव मानने लगे हैं। जब तक इस विचार के स्थान में भ्रातृत्व न पैदा कर दिया जाय तब तक राष्ट्रीयता का स्थापन करना कोरा स्वप्न है।

चाहे हम देश के किसी भाग के रहनेवाले हों, हमें आपस में एक दूसरे की भलाई का ध्यान रखना चाहिए।

किन्तु राष्ट्रीयता के लिये सब से अधिक एक भाषा की आवश्यकता है। उन्नति के लिये लोगों को आपस में मिलने तथा एक दूसरे की सलाह लेने की आवश्यकता पड़ती है किन्तु जब तक सब एक भाषा-भाषी न हो जायँ तब तक ऐसा होना असम्भव है। विलायत में एक समाचार अँगरेजी समाचारपत्र में प्रकाशित होते ही देश भर में फैल सकता है, किन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं होता। बङ्गाली विचार पञ्जाब में फैलाने को या पञ्जाबी बङ्गाल में फैलाने का कार्य्य बिना कठिनाई नहीं हो सकता। बङ्गला गीताञ्जली के लिये अँगरेजी अनुवाद की राह देखते हुए बैठे रहना पड़ा। इसके सिवा दूसरी बड़ी भारी असुविधा यह है कि भिन्न भिन्न स्थानों में एक ही विचार प्रकट करने के लिये भिन्न भिन्न शब्दों को ढूँढ़ने में व्यर्थ समय नष्ट करना पड़ता है।

अब यह देख कर कि देश में एक भाषा के प्रचार की आवश्यकता है तो फिर यह विचारना चाहिए कि इस कार्य के लिये किस भाषा का अवलम्बन अत्युत्तम होगा। अर्थात् ऐसी कौन सी भाषा है जो देश को एक भाषा-भाषी कह या बना सके।

कुछ लोगों की राय में देश की सामान्य भाषा होने के योग्य अँगरेजी ही मालूम हुई। किन्तु यह विचार बिलकुल ही गलत ठहरा क्योंकि १०० वर्ष से अँगरेजी शिक्षा का प्रचार करने में बहुत धन तथा परिश्रम लगा है, परन्तु सैकड़े पीछे ५ आदमी भी अच्छी तरह इसका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके। यदि यही अवस्था रही तो भारत को अपनी सन्तानों को शिक्षित बनाने में कई सौ वर्ष लग जायँगे। हाँ, कोई भाषा नहीं रहने पर भारतवासियों के लिये अँगरेजी भाषा उपयोगी है। इसके द्वारा हमें उच्च विचार प्राप्त हुए हैं। उक्त बात के कहने से यह अभिप्राय नहीं है कि अँगरेजी पढ़ना या छूना ही नहीं चाहिए; कहने का उद्देश्य यह है कि मातृभाषा को छोड़ कर और कोई विदेशी भाषा राष्ट्र-भाषा नहीं बन सकती, चाहे वह बड़े बड़े विचारों से परिपूर्ण क्यों न हो।

भाषाओं में संस्कृत भी एक भाषा है जो कि भाषाओं के मैदान में आने का दावा करती है, किन्तु वह कुछ लोगों के अनुसार, विशेष कर ब्राह्मणों के, प्रधान भाषा बन सकती है। यह विचार भी वैसा ही निर्मूल और व्यर्थ है जैसा कि अँगरेजी को भारत की सर्वमान्य भाषा बनाने का विचार निर्मूल और व्यर्थ है। अवश्य संस्कृत उत्तम विद्यार्थियों की योग्य भाषा हो सकती है किन्तु समस्त भारत उसे नहीं ग्रहण कर सकता।

अब यदि देशी भाषाओं का विचार किया जाय तो मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से विदित होता है कि हिन्दी भाषा के बोलने और समझने का क्षेत्र देश की अन्य भाषाओं में सबसे अधिक है। बङ्गला भाषा बोलनेवाले ४ करोड़ ८०·४ लाख हैं, मराठी बोलनेवाले १ करोड़ ९०·८ लाख हैं, पञ्जाबी बोलनेवाले १ करोड़ ५०·९ लाख हैं, राजस्थानी बोलनेवाले १ करोड़ ४०·१ लाख हैं, गुजराती बोलनेवाले १ करोड़ ·७ लाख हैं, उड़िया बोलनेवाले १ करोड़ ·२ लाख हैं, सरहद्दी भाषा बोलनेवाले ४०·८ लाख हैं, सिन्धी बोलनेवाले ३०·७ लाख हैं, आसामी भाषा बोलनेवाले १०·५ लाख हैं। इसी प्रकार और भी कई भाषा-भाषी थोड़े बहुत हैं। किन्तु ९ करोड़ ८०·९ लाख आदमी हिन्दी लिखते, पढ़ते और बोलते हैं अर्थात् तृतीयांश भारतवासी यह भाषा लिख और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोल सकते हैं । प्रत्येक १० हजार भारतवासियों में २६१६ हिन्दी बोलनेवाले, १५४३ बँगला बोलनेवाले, ७५१ तैलङ्गी बोलनेवाले, ६३३ मराठी बोलनेवाले, ७५८ तामिल् बोलनेवाले, ५०६ पञ्जाबी बोलनेवाले, ४४९ राजस्थानी बोलनेवाले, ४४८ पश्चिमी हिन्दी बोलनेवाले, २१६ मलयालम बोलनेवाले १५२ पश्चिम पञ्जाबी बोलनेवाले, ११७ सिन्धी बोलनेवाले और २९७ अन्यान्य भाषाएं बोलनेवाले, हैं । इन प्रमाणों से यह स्वयं सिद्ध है कि सब देशी भाषाओं में हिन्दी ही एक भाषा है जो समस्त देश की भाषा हो सकती है ।

इसके सिवा हिन्दी का उपयोग केवल किसी एक खास प्रान्त में नहीं है । उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम चारों ओर के प्रान्तों में वह भली भाँति समझी जाती है । हिन्दी के विषय में गत बार की मर्दुमशुमारी की यह रिपोर्ट हैः—"..........इसी प्रकार मद्रास में भी है जहाँ कि फी सदी ४१ आदमी तामिल बोलते हैं, ३८ तैलङ्गी बोलते हैं, ७ मलयालम बोलते हैं, ४ उड़िया बोलते हैं और यही औसत कनाडी बोलनेवालों का भी है । फी सदी केवल २ ही आदमी ऐसे मिले जो किसी प्रकार की हिन्दी नहीं बोल सकते थे । मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी ही ऐसी है जिसे अधिकांश लोग बोलते या समझते हैं । मि० मौलिङ्गन का कथन है कि इस प्रान्त या मलाबार में शायद ही कोई ऐसा स्थान होगा जहाँ हिन्दी बोलनेवाले को दुभाषिए की जरूरत हो । "

दूसरे हिन्दी भाषा की जो देवनागरी लिपि है वह सब से अधिक स्थानों में लिखी जाती है । बङ्गला लिपि के अक्षर यद्यपि रूप में देवनागरी से भिन्न हैं, किन्तु वास्तव में वे देवनागरी के ही भेद हैं । बङ्गला भाषा के फी सदी ९० शब्द हिन्दी भाषा में हैं । हिन्दी जाननेवाला गुजराती और मराठी आसानी से समझ सकता है । देवनागरी के अक्षरों में सब से बड़ा गुण तो यह है कि वे केवल १५ दिन में सीखे जा सकते हैं । वे अक्षर प्राकृतिक हैं और इसी लिये आसानी से सीखे जा सकते हैं ।

सब के अन्त में लाला हंसराज ने कहा, कि जिस प्रकार मानव-शरीर के अर्थ रक्त की आवश्यकता है ठीक उसी प्रकार राष्ट्र को एक भाषा की आवश्यकता है । जिस प्रकार बिना रक्त और उसके सञ्चार के शरीर नहीं बढ़ सकता उसी प्रकार राष्ट्र बिना एक भाषा के उन्नति नहीं कर सकता ।

इसके सिवा हर एक भाषा के साथ कोई न कोई परम्परागत कथा तथा आदर्श चरित्र रहते हैं जो कि केवल भाषा ही के साथ जीवित रहते हैं और उसके अन्त के साथ उनका भी अन्त हो जाता है । ग्रिफिथ साहब की लिखी हुई अँगरेजी रामायण का हिन्दू-समाज पर वैसा प्रभाव नहीं पड़ सका जैसा कि तुलसीदास जी की रामायण का पड़ा है ।

धर्मप्रचार और सामाजिक सुधार के लिये भाषा ही प्रधान सूत्र है । सिख धर्म पञ्जाब प्रान्त के बाहर नहीं फैल सका क्यों कि उसकी भाषा उसी प्रान्त की थी । यदि देश एक भाषा-भाषी हो गया तो उससे उपदेशकों और सुधारकों को बड़ा लाभ होगा ।

प्रबन्धकारिणी समिति ।*

शनिवार तारीख २९ अगस्त १९१४ सन्ध्या के ६¾ बजे ।

स्थान—सभाभवन ।

कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका ।

प्रबन्ध कारिणी समिति ।*

शनिवार ता० ५ सितम्बर १९१४ सन्ध्या के ६ बजे ।

स्थान—सभाभवन ।

(१) तारीख ४ जूलाई १९१४, २५ जूलाई १९१४,

*ये कार्य-विवरण भूल से ठीक समय पर प्रकाशित न हो सके थे; अतः इस बार प्रकाशित किए जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३० जूलाई १९१४ और २९ अगस्त १९१४ के कार्य्य विवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(२) मंत्री ने सूचना दी कि गत वर्ष प्रबन्धकारिणी समिति के अधिवेशनों में उपस्थित न होने और इन अधिवेशनों के कार्यों के सम्बन्ध में सम्मति न भेजने के कारण इस समिति में निम्नलिखित सज्जनों के स्थान खाली होते हैं अर्थात् (१) पण्डित मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० (२) बाबू जयशंकरप्रसाद (३) राय शिवप्रसाद (४) बाबू काशीप्रसाद जायसवाल बैरिस्टर (५) पंडित रामावतार पाण्डेय एम० ए० (६) राय मूलराज (७) कविगोविन्द गिल्लाभाई और (८) पंडित मुन्नालाल चौबे। इनके अतिरिक्त नगरस्थ सभासदों में से पंडित सर्यूनारायण त्रिपाठी एम० ए० अब काशी से बाहर चले गए हैं अतः इनका स्थान भी खाली हो गया है।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों के स्थान पर क्रमात् निम्नलिखित सज्जन प्रबन्धकारिणी समिति के सभ्य चुने जायँ अर्थात् (१) बाबू जुगलकिशोर (२) बाबू माधवप्रसाद (३) बाबू मुरारीदास (४) बाबू दामोदरदास खंडेलवाल (५) बाबू जुगलकिशोर अखौरी बी० ए० (६) पंडित जगन्नाथ निरुक्तरत्न (७) राय साहब पंडित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी एम० ए० (८) पंडित कामताप्रसाद गुरु और (९) बाबू केशवदास।

(३) निश्चय हुआ कि इस वर्ष ग्रन्थमाला के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, लेख माला के सम्पादक बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०, सुबोध व्याख्यान के निरीक्षक पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, नागरीप्रचार के निरीक्षक बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी० और आर्य्यभाषा-पुस्तकालय के निरीक्षक बाबू मुरारीदास चुने जायँ।

(४) पंडित रामचन्द्र शुक्ल और बाबू रामचन्द्र वर्म्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अवकाश न रहने के कारण नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सम्पादन से इस्तीफा दिया था।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इस वर्ष भी पत्रिका-सम्पादन का भार अपने ऊपर लें।

(५) निश्चय हुआ कि इस वर्ष प्रबन्धकारिणी समिति के प्रधान श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दरदास जी बी० ए० और इस समिति के उपप्रधान श्रीयुत पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० चुने जायँ।

(६) जिला हमीरपुर के बाबू महादेवप्रसाद का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने यह प्रस्ताव किया था कि सभा इस बात का उद्योग करे कि बुन्देलखंड में नहर के मुहकमे में हिन्दी जाननेवाले लोग पतरौल और अमीन के पद पर नियत किए जाया करें।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय और इस सम्बन्ध में गवर्न्मेण्ट को प्रार्थनापत्र भेजा जाय।

(७) गोरखपुर के सर्यूपारीण ब्राह्मण पुस्तकालय और पटना के श्री चैतन्य पुस्तकालय के मंत्रियों के पत्र उपस्थित किए गए जिनमें लिखा था कि वे किसी मूल्य पर भी सभा की पुस्तकों को क्रय करने में असमर्थ हैं अतः उन्हें ये पुस्तकें बिना मूल्य दी जायँ।

निश्चय हुआ कि उन्हें केवल अर्द्ध मूल्य पर सभा की पुस्तकों की एक एक प्रति दी जा सकती है।

(८) निश्चय हुआ कि मंत्री को यह अधिकार दिया जाय कि जिन पुस्तकालयों से सर्वसाधारण को लाभ पहुँचता हो उनकी स्थिति पर विचार कर उन्हें वे सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति अर्द्ध मूल्य पर दे दें। इस सम्बन्ध में जिन पुस्तकालयों के प्रार्थनापत्र आवें उन्हें इस समिति में उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) मंत्री के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि लखनऊ में अब देवनागरीप्रचारिणी नाम की कोई सभा नहीं रह गई है अतः उस सभा का नाम शाखा सभाओं में से निकाल दिया जाय ।

(१०) काशी के सुजन-समाज के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि (क) घर और जल के टिकस की रसीदें अँगरेजी और उर्दू के सिवा हिन्दी में भी छापी और भरी जाया करें । (ख) ईस्ट इंडियन रेलवे तथा अवध रूहेलखंड रेलवे के कर्म-चारियों से प्रार्थना की जाय वे अपने टाइम टेबुल हिन्दी में भी छपवा कर उनकी बिक्री का उचित प्रबन्ध कर दें ।

निश्चय हुआ कि (क) इस सम्बन्ध में बनारस की म्युनिस्पेलिटी को लिखा जाय (ख) रेलवे के टाइमटेबुल हिन्दी में छपते हैं पर उनकी छपाई ठीक नहीं होती अतः रेलवे के कर्म-चारियों को उसकी छपाई सुधारने के विषय में लिखा जाय ।

(११) पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि राजापुर की तुलसीस्मारक सभा के लिये काशी में जो चन्दा हुआ है वह इस सभा द्वारा एकत्रित किया जाय और तीसरे मास अथवा एक सौ रुपया एकत्रित हो जाने पर इसके पूर्व ही कुल एकत्रित द्रव्य तुलसीस्मारक सभा के पास भेज दिया जाया करे ।

(१२) मंत्री ने सूचना दी कि जिन सभासदों के यहाँ तीन वर्ष से अधिक का चन्दा बाकी था उनमें से निम्नलिखित सज्जनों ने नीचे लिखे अनुसार दे दिया हैः—

१ पंडित रामसहाय शुक्ल—प्रथमाध्यापक तहसीली स्कूल महोबा १॥)

२ राय जगन्नाथदास—बाबर शहीद की गली—काशी ६)

३ बाबू जगन्नाथप्रसाद—माथुर—चौक—काशी १)

४ पंडित वासुदेवराव विश्वासराव चांदवड़कर दशाश्वमेध—काशी—(४ वर्ष का) २०)

५ पंडित शिवनारायण शंखधर—सिद्ध माता की गली काशी २)

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों के नाम सूची (ख) में न लिखे जायँ और इनसे प्रार्थना की जाय कि वे अपना शेष चन्दा भी शीघ्र ही भेज दें ।

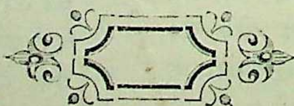
(१३) कलकत्ते के बाबू हरिकृष्ण जौहर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं है कि जिससे वे सभा का चन्दा दे सकें ।

निश्चय हुआ कि इनका चन्दा क्षमा किया जाय ।

(१४) पंडित साँवल जी नागर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा के पुस्तकालय के लिये लीडर नाम का दैनिक पत्र अपने व्यय से इस नियम पर देना स्वीकार किया था कि उसे कोई सज्जन उठा न ले जायँ ।

निश्चय हुआ कि यह धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया जाय ।

(१५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A414 [संख्या ६
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

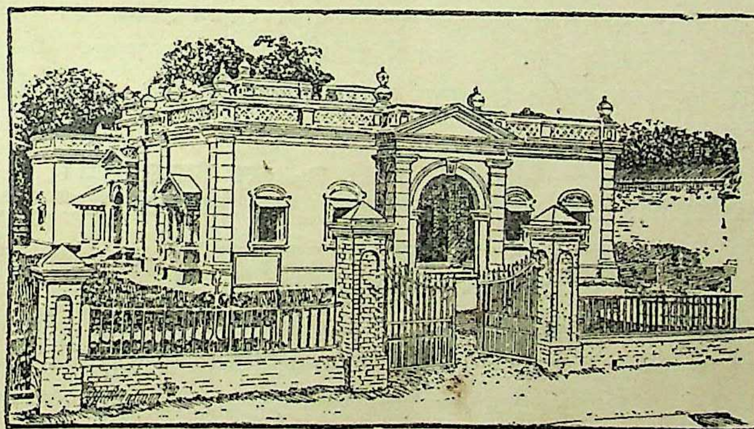
दिसम्बर, १९१५

सम्पादक–रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी
कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये,
पता:—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

चित्रोंसे युक्त।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त ।]

लीजिये ! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है !—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक । तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २-), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दे० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य। शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये । नमूनेके लिये)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये ।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी।

पवित्र काश्मीरी केशर—दूध अब्बल ।।।≡) तोला । शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला चाँदी ममीरा २) तोला । काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर । ७-१३-६-२४

भयंकर मार काट ।

जर्मन जासूस	।-)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मी	-)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	॥।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	॥)	नवाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहां	।)	रानाप्रताप नाटक	॥।)
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	॥।)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियां	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	॥।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर संगीत	≡)
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१॥।)	व्यापारतत्व	॥)
रानी पद्मा	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	विकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग २० | दिसम्बर, १९१५. | संख्या ६

षष्ठ

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के सभापति श्रीयुक्त बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० का वक्तव्य।

—:०:—

प्रिय सज्जनो,

मैं उस आनन्द को जो हिन्दी की हितकामना के प्रवाह में निमग्न इस समाज को देख मेरे हृदय में उमड़ रहा है अपने असमर्थ शब्दों में व्यंजित करने का निष्फल प्रयास छोड़ आप महानुभावों से उसका पूर्ण आभास अपने ही अन्तःकरण में देखने का अनुरोध करता हूँ। क्योंकि आज का यह अवसर ही ऐसा है कि जो भाव एक का है वही दूसरे का है, जो उद्देश्य एक का है वही दूसरे का है। भावों की इस एकता, विचारों की इस तुली हुई समानता के बीच मुझमें यदि कोई भाव विशेष है तो वह आप सज्जनों, विशेषकर प्रयागस्थ भाइयों, के प्रति कृतज्ञता का है, जिनके उत्कृष्ट उत्साह और सात्विक प्रयत्न ने उस खिन्नता को समूल नष्ट करके, जो इस वर्ष की आकस्मिक अव्यवस्था देख लोगों के हृदयों में आने लगी थी, यह आशापूर्ण और मनोरम दृश्य उपस्थित किया है। जिस भाँति आज प्रातःकाल आपने मेरा स्वागत किया है उसके लिये कृतज्ञता प्रगट करने की सामर्थ्य मेरे वचनों में नहीं है। मैं उसमें मातृभाषा का सम्मान समझ अपने को कृतकृत्य मानता हूँ।

इस बात के कहने की तो आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों का बिना किसी प्रकार की रोक टोक या विघ्नबाधा के निरन्तर होते रहना कितना प्रयोजनीय है। यद्यपि हिन्दी के अनेक सभासमाज हैं जो अनेक वर्षों से बराबर हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं और जिनके उद्योग और कार्य-परायणता का संतोष-जनक परिणाम भी अनेक अंशों में देखने में आ चुका है तथापि हिन्दी-साहित्य की पूर्ति, हिन्दी भाषा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि और देवनागरी अक्षरों के उत्तरोत्तर वर्द्धमान प्रचार के लिये सम्मेलन की संस्था का अखंड परम्परा के साथ अपने उद्देश्यों के साधन में प्रवृत्त रहना केवल सुसंगत ही नहीं वरन् नितान्त आवश्यक भी है। हम लोगों का यह परम कर्तव्य है कि हम प्रति वर्ष किसी न किसी स्थान में एकत्रित हो कर मातृभाषा हिन्दी और गुण-आगरी नागरी के सम्बन्ध में अपने आवश्यक कर्तव्यों पर विचार करें और भरसक उनके निर्वाह के नए नए मार्ग निश्चित करें और निश्चित मार्गों को सुगम और परिष्कृत करें, सोच कर उनको सफलीभूत करने में अग्रसर हों। जिन जिन स्थानों पर सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन हुए हैं उनपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। उन स्थानों में हिन्दी के सहायकों की संख्या में सन्तोष-जनक वृद्धि हुई है और उनमें किसी न किसी रूप में हिन्दी की चर्चा बराबर चलती ही रहती है। फिर बाहर से आए हुए लोग भी अपने साथ एक नई शक्ति का संचय कर ले जाते हैं और अपने अपने स्थानों में उसका संचार कर अन्य लोगों को भी अपने पथ का पथिक बनाने में समर्थ होते हैं। बहुत अंशों में ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य आदि का नाश हो कर सौहार्द भाव की स्थापना होती है। ये सब लाभ यदि सम्मेलन से न भी होते हों तो भी यह क्या कम महत्व की बात है कि प्रति वर्ष हिन्दी के सैकड़ों सेवक और सहायक एक स्थान में एकत्रित हो कर अपनी प्यारी मातृभाषा के हितचिन्तन में तत्पर होते हैं? यह युग परस्पर मिल कर काम करने का है। सहयोगिता की अमोघ शक्ति का प्रभाव सब के हृदयों पर अंकित हो चुका है और उसका सुमधुर फल अन्य देशों, अन्य संस्थाओं और अन्य कार्य-क्षेत्रों में दिखाई दे कर लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर चुका है। ऐसी अवस्था में भी यदि हम शिक्षा ग्रहण कर के अपने राष्ट्रीय निर्माण में भाषा के महत्व को स्वीकार कर के अपने कर्त्तव्य-कार्य में तत्पर न हों तो इससे बढ़ कर देश और भाषा का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

गत वर्ष लखनऊ में पाँचवें सम्मेलन के अवसर पर जिस समय महाशय हरिश्चन्द्र ने पंजाब के गण्य मान्य लोगों की इच्छा के अनुकूल सम्मेलन को लाहौर में निमन्त्रित किया था उस समय भावी सम्मेलन की महत्ता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विचार-तरंग हम लोगों के उल्लासपूर्ण हृदयों में उठे थे। हम लोगों ने सोचा था कि जिस पंचनद प्रदेश में हमारे महर्षि पवित्र वेदों के द्वारा अनेक तत्त्वों का उद्घाटन कर साक्षात् कृतकर्मा कहलाए थे, जहाँ से आर्य-सभ्यता समस्त भारत-भूमि में पल्लवित हो कर फैली थी, जहाँ भारत-भूमि के भाग्य का कई बेर निपटेरा हुआ था, जहाँ कर्म-वीर गुरु गोविन्दसिंह ने एक नई शक्ति का संचार कर अन्याय-शासन की अस्थिरता प्रमाणित की थी, जहाँ रणजीतसिंह की धीरता और संघटन-शक्ति ने सिक्ख सम्प्रदाय में वह अदम्य उत्साह और दुर्दमनीय वीरता भर दी थी जिससे इस युग में भी भारतमाता का मुख उज्ज्वल और उसकी कीर्त्ति-कौमुदी चिरस्था-यिनी और दिगन्तव्यापिनी बनी है और जहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मृतप्राय समाज के शरीर में नई संजीवनी शक्ति का संचार कर लोगों को नए उत्साह, नए उद्योग, नए भाव, नए विचार तथा नई अभिलाषाओं का भांडार बनाया था, उसी प्रदेश की राजधानी में हमारा सम्मेलन होगा और हमें अपने उद्योगों और प्रयत्नों में उसकी चिरसंचित शक्ति का अंश प्राप्त होगा तथा आगे के लिये हमारे कार्य की सीमा विस्तृत हो कर विशेष रूप से सुरक्षित और दृढ़ होगी। पर 'अपने मन कुछ और है, कर्त्ता के कुछ और' रंग ढंग देख क्रम क्रम से हम लोगों को अपना उत्साह मंद करना पड़ा और अन्त में कुछ ऐसे संयोग आ उपस्थित हुए जिनसे सम्मेलन की स्थायी समिति को यह निश्चय करना पड़ा कि सम्मेलन का छठा अधिवेशन प्रयाग ही में हो। इस स्थान पर यह आवश्यक नहीं है और न नीतिसंगत ही जान पड़ता है कि हम इस विषय पर कुछ विशेष विचार करें। जो कुछ हुआ वह संयोगवश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही हुआ। अब भी हम इस बात से निराश नहीं हुए हैं कि भविष्यत् में हमें लाहौर में सम्मेलन करने का कभी न कभी सौभाग्य अवश्य प्राप्त होगा।

जिस घटना चक्र से सम्मेलन का यह अधिवेशन लाहौर में न हो कर प्रयाग में हो रहा है उसीने मुझे इसका सभापति होने के लिये बाध्य किया है। आप लोग मुझे क्षमा करेंगे, यह समझ कर इस स्थान पर मैं अपने सम्बन्ध में दो चार बातें निवेदन करने का साहस करता हूँ। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में लाहौर से मुझे तार मिला कि तुम यहाँ आ कर सम्मेलन का सभापति होना स्वीकार करो। मैं उस समय इस आज्ञा के पालन करने में असमर्थ था। यों तो मैं पहिले से ही अपने को इस आसन के अनुपयुक्त और अयोग्य समझता था, पर सभापतित्व के लिये नामांकित अन्य सज्जनों के बीच अपना भी नाम देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। मैं समझ न सका कि किस विचार से हिन्दी के प्रेमियों ने माननीय मालवीय जी को और मुझे एक ही श्रेणी में गर्दान डाला है। अन्य महाशयों की चाहे जो धारणा रही हो, पर मैं कभी स्वप्न में भी यह धृष्टता नहीं कर सकता था कि जिस स्थान के लिए वे निर्वाचित हों उसके ग्रहण करने का अनुमान भी करूँ। इन्हीं विचारों से मैंने उस पद का ग्रहण करना अस्वीकार किया। जब प्रयाग में सम्मेलन का होना निश्चित हो चुका तब मेरे मित्र पंडित लक्ष्मीनारायण नागर ने मुझे दर्शन देने की कृपा की। उन्होंने सारी व्यवस्था समझा कर कहा कि अब तुम्हारे 'नहीं' करने से काम नहीं चलेगा। यदि तुम अब भी दुराग्रह-पूर्वक इस भार को उठाना अस्वीकार करोगे तो इसका स्पष्ट अर्थ यही होगा कि तुम सम्मेलन को एक और भारी धक्का पहुँचाया चहते हो। बहुत कुछ आगा पीछा विचारने पर यह सिद्धान्त ठहरा कि इस समय चुपचाप आज्ञा पालन करने ही में सम्मेलन का हित है। यह बात २२ दिसम्बर की है। आज २९ दिसम्बर को मैं आप लोगों के सम्मुख अपना निवेदन उपस्थित करने के लिये खड़ा हूँ। अतः यह आशा तो आप कर ही नहीं सकते कि इस ५, ६ दिन के बीच में मैंने कोई लम्बा चौड़ा वक्तव्य प्रस्तुत कर लिया होगा, जिसे आप की सेवा में उपस्थित कर के मैं आप लोगों का मनोरञ्जन तथा हिन्दी के हित के उपायों का विस्तृत निरीक्षण कर सकूँगा। मुझे आशा है कि इन सब बातों पर ध्यान रख कर और विवशता ही को मेरे इस अनुचित साहस का हेतु मान कर आप लोग मेरी त्रुटियों के लिये अब मुझे क्षमा प्रदान करेंगे और इस प्रकार मेरी सहयता करेंगे जिसमें इस अधिवेशन का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाय।

महाशयो, यदि आप लोगों ने विचार किया होगा तो आप लोगों को यह बात अवश्य आश्चर्यजनक प्रतीत हुई होगी कि हम एक ऐसे समय में साहित्य-चर्चा के लिये उपस्थित हुए हैं जब कि युरोप के मुख्य मुख्य राज्य एक भूमंडलव्यापी महाभारत में अपनी अपनी शक्तिभर एक दूसरे से भिड़ रहे हैं और धन-जन का मनमाना क्षय कर विजयलक्ष्मी को मुग्ध करने की चेष्टा में लगे हुए हैं। जय उसीकी होती है जिसका पक्ष न्याय और सत्य से अनुमोदित होता है। जहाँ अन्याय, अत्याचार, दूसरे के वैभव के प्रति ईर्ष्या, अपनी बढ़ती के लिये दूसरों की हानि का संकल्प, ऐसे आसुरी भावों का प्राबल्य है और जहाँ ये ही समस्त सांसारिक कार्यों के प्रेरक हैं वहाँ चाहे कुछ देर के लिये सफलता के लक्षण दिखाई भी दे जायँ पर अंत में वह पानी के बुलबुलों की भाँति बिला जाते हैं और फिर संसार में उनका महत्व नहीं रह जाता। यही बात इस बीसवीं शताब्दी के महाभारत में भी होगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

जो न्याय के दृढ़ आधार पर खड़ा है उसे चाहे आसुरी आक्रमणरूपी हवा के झकोरे कुछ काल के लिये डावांडोल कर दें पर अन्त में वह अपने स्थान पर और भी दृढ़ता से आसन जमा लेगा और भविष्यत् में उसे उस स्थान से हटाना कठिन ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं वरन् असम्भव हो जायगा। इस प्रकार हमें दृढ़ आशा है कि अंत में विजयलक्ष्मी मित्र राज्यों को ही अंगीकार करेगी और उनकी विजयपताका अविचल भाव से फहरा कर, भूमंडल पर न्याय, साम्य और स्वातंत्र्य का अविचल राज्य स्थापित करेगी। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि जगन्नियंता जगदीश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वह इस महाभारत को शीघ्र समाप्त करे और हमारे राजराजेश्वर को अन्य मित्र राज्यों सहित विजय प्रदान कर संसार का हित करे। मैं पहिले कह चुका हूँ कि इस भूमंडलव्यापी महाभारत के समय हमारा साहित्य-चर्चा के लिये एकत्रित होना एक विलक्षण बात है। यह तो सभी लोग जानते और मानते हैं कि इस महायुद्ध के अन्त के साथ ही साथ भारतमाता के भाग्य में भी बहुत कुछ हेरफेर होगा। फिर इसमें आश्चर्य की क्या बात है, यदि हम इसकी प्रत्येक घटना को ध्यानपूर्वक मनन करें और उससे भविष्यत् में होनेवाली घटनाओं का आभास पाने का उद्योग करें। अतएव हमारे ध्यान का इस ओर आकृष्ट होना उचित ही नहीं वरन् पूर्णतया स्वभाविक भी है। यह जान कर भी कि हमारे राजराजेश्वर एक ऐसे विकट युद्ध में फंस रहे हैं जिसमें भारतमाता के सपूतों ने भी भीषण वीरता दिखा कर अपने प्राचीन गौरव को और भी स्पष्ट झलकाया है और जिसमें विजय-लक्ष्मी को आलिंगन करने के उद्योग में वे प्राणपण से लगे हुए हैं, जो हम साहित्य-चर्चा करने बैठे हैं वह यह दिखलाने के लिये कि भारतीय क्या किसी राष्ट्र-निर्माण में साहित्य और सब उपादानों से बढ़ कर नहीं तो किसी से कम भी नहीं हैं। ऐसे विकट समय में भी हम सब भाँति सुरक्षित हैं और हमें अपने कर्त्तव्यों और विचारों के अनुकूल कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, यह ब्रिटिश शासन की महत्ता और न्यायपरता का पूर्ण निदर्शक है। इसलिये यदि और कारणों से नहीं तो अपने स्वार्थ के ही विचार से हम ब्रिटिश राज्य की विजय की कामना किए बिना नहीं रह सकते।

महाशयो, ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। जितना ही इसे देखते जाइए, इसका अन्वेषण करते जाइए, इसकी छान बीन करते जाइए, उतनी ही नई नई शृङ्खलाएं विचित्रता की मिलती जायँगी। कहाँ एक छोटा सा बीज और कहाँ उससे उत्पन्न एक विशाल वृक्ष; कहाँ एक बिन्दुमात्र पदार्थ और कहाँ उससे उत्पन्न मनुष्य। दोनों में कितना अंतर और फिर दोनों का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध। जरा सोचिए तो सही, एक छोटे से बीज के गर्भ में क्या क्या भरा हुआ है। उस नाम मात्र के पदार्थ में एक बड़े से बड़े वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है जो समय पा कर पत्र, पुष्प, फल से संपन्न हो वैसे ही अगणित बीज उत्पन्न करने में समर्थ होता है जैसे, बीज से उसकी स्वयं उत्पत्ति हुई थी। कैसे बिन्दुमात्र पदार्थ से मनुष्य का शरीर बनता है, कैसे क्रम क्रम से नवजात बालक के अंग पुष्ट होते जाते हैं, उसमें नई शक्ति आती जाती है, उसके मस्तिष्क का विकास होता जाता है, उसमें भावनाएं उत्पन्न होती जाती हैं और समय पा कर वह उस शक्ति से संपन्न हो जाता है जिससे वह अपनी ही सी सृष्टि की वृद्धि करता जाय। फिर एक ही प्रणाली से उत्पन्न अनेक प्राणियों की भिन्नता कैसी आश्चर्यजनक है, कोई बलवान् है तो कोई विचारवान्, कोई न्यायशील है तो कोई अत्याचारी, कोई दयामय है तो कोई क्रूरातिक्रूर, कोई सदाचारी है तो कोई दुराचारी, कोई संसार की माया में लिप्त है तो कोई परलोक-चिन्ता में रत। पर क्या इन विशेषताओं के बीच कोई सामान्य धर्म भी है या नहीं? विचार करके देखिए। सब बातें विचित्र, आश्चर्यजनक और कौतूहल-वर्द्धक होने पर भी किसी शासक द्वारा निर्धारित नियमावली से बद्ध हैं। सब अपने अपने नियमानुसार उत्पन्न होते, बढ़ते, पुष्ट होते और अन्त में उस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, जिसे हम मृत्यु कहते हैं; पर यहीं उनकी समाप्ति नहीं है। यहीं उनका अन्त नहीं है। वे सृष्टि के कार्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन में निरन्तर तत्पर हैं । मर कर भी वे सृष्टिनिर्माण में योग देते हैं । यों ही वे जीते मरते चले जाते हैं । इन्हीं सब बातों की जाँच विकास-वाद का विषय है । यह शास्त्र हमको इस बात की छानबीन में प्रवृत्त करता है ग्रैार बतलाता है कि कैसे संसार की सब बातों की सुक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में अभिव्यक्ति हुई, कैसे क्रम क्रम से उनकी उन्नति हुई ग्रैार किस प्रकार उनकी संकुलता बढ़ती गई । जैसे संसार की भूतात्मक अथवा जीवात्मक उत्पत्ति के सम्बन्ध में विकास-वाद के निश्चित नियम पूर्णरूप से घटते हैं वैसे ही वे मनुष्य के सामाजिक जीवन के उन्नति-क्रम आदि को भी अपने अधीन रखते हैं । यदि हम सामाजिक जीवन के इतिहास पर ध्यान देते हैं ता हमें विदित होता है कि पहिले मनुष्य असभ्य वा जंगली अवस्था में थे । वे झुण्डों में घूमा करते थे ग्रैार उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य उदर की पूर्त्ति था जिसका साधन वे जानवरों के शिकार से करते थे । क्रमशः शिकार में पकड़े हुए जानवरों की संख्या आवश्यकता से अधिक होने के कारण उनको बाँध रखना पड़ा । इसका लाभ उन्हें भूख लगने पर स्पष्ट विदित हो गया ग्रैार यहीं से मानों उनके पशु-पालन-विधान का बीजारोपण हुआ । धीरे धीरे वे पशु-पालन के लाभों को समझने लगे ग्रैार उनके चारे आदि के आयोजन में प्रवृत्त हुए । साथ ही पशुग्रों को साथ लिए लिए घूमने में उन्हें कष्ट दिखलाई पड़ने लगे ग्रैार वे एक नियत स्थान पर रह कर जीवन-निर्वाह का उपाय करने लगे । अब कृषि की ग्रोर उनका ध्यान गया । कृषिकर्म होने लगे, गाँव बसने लगे, पशुग्रों ग्रैार भू-भागों पर अधिकार की चर्चा चल पड़ी । लोहारों ग्रैार बढ़इयों की संस्थाएँ बन गईं । आपस में लेन-देन होने लगा । एक वस्तु दे कर दूसरी आवश्यक वस्तु प्राप्त करने का उद्योग हुआ ग्रैार यहीं माना व्यापार की नींव पड़ी । धीरे धीरे इन गाँवों के अधिपति हुए जिन्हें अपने अधिकार को बढ़ाने, अपनी सम्पत्ति को वृद्धि देने तथा अपने बल को पुष्ट करने की लालसा उत्पन्न हुई । सारांश यह कि आवश्यकतानुसार उनके रहन-सहन, भाव-विचार सब में परिवर्तन हो चला । जो सामाजिक जीवन पहिले था वह अब न रहा । अब उसका रूप ही बदल गया । अब नए विधान आ उपस्थित हुए । नई आवश्यकताग्रों ने नई चीज़ों के बनाने के उपाय निकाले । जब किसी चीज़ की आवश्यकता आ उपस्थित होती है तब मस्तिष्क को उस कठिनता को हल करने के लिये कष्ट देना पड़ता है । इस प्रकार सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ ही साथ मस्तिष्क-शक्ति का विकास होने लगा । सामाजिक जीवन के परिवर्तन का दूसरा नाम असभ्यावस्था से सभ्यावस्था को प्राप्त होना है; अर्थात ज्यों ज्यों सामाजिक जीवन, विकास, विस्तार ग्रैार उसकी संकुलता बढ़ती गई त्यों त्यों सभ्यता देवी का साम्राज्य स्थापित होता गया । जहां पहले असभ्यता व जंगलीपन ही में मनुष्य सन्तुष्ट रहते थे वहाँ उन्हें सभ्यतापूर्वक रहना पसंद आने लगा । सभ्यावस्था सामाजिक जीवन में उस स्थिति का नाम है जब मनुष्य को अपने सुख ग्रैार चैन के साथ साथ दूसरे के स्वत्वों ग्रैार अधिकारों का भी ज्ञान हो जाता है । आदर्श सभ्यता वह है जिसमें मनुष्य का यह स्थिर सिद्धान्त हो जाय कि "जितना किसी काम का करने का अधिकार मुझे है उतना ही दूसरे का भी है" ग्रैार उसे इस सिद्धान्त पर दृढ़ रखने के लिये किसी बाहरी अंकुश की आवश्यकता न रह जाय । यह भाव जिस जाति में जितना ही अधिक पाया जाता है उतनी ही अधिक वह जाति सभ्य समझी जाती है । इस अवस्था की प्राप्ति, बिना मस्तिष्क के विकास नहीं हो सकती अथवा यह कहना चाहिए कि सभ्यता की उन्नति ग्रैार मस्तिष्क की उन्नति साथ ही साथ होती है । एक दूसरे का अन्योन्याश्रय-संबंध है । एक का दूसरे के बिना आगे बढ़ जाना या पीछे पड़ जाना असम्भव है । दोनों साथ साथ चलते हैं । मस्तिष्क के विकास में साहित्य का स्थान बड़े महत्व का है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि आदि जीवनतत्व वा प्राणरस (प्रोटोप्लाज़म) का एक टुकड़ा जिसे हम आदिजीव वा जीवाणु (प्रोटोज़ोआ) कह सकते हैं, पहिले अपने सब अंगों से सब कार्य करता है। वह शरीर के प्रत्येक भाग से देख, सुन, सूंघ और चल सकता है। पर धीरे धीरे वह ज्यों ज्यों विशेष भागों से विशेष कार्य लेने लगता है त्यों त्यों उनके विषय-रूप बाह्य पंचभूतों का प्रभाव उन भागों का रूप परिवर्तित करने लगता है। जिस भाग से देखने का कार्य विशेष रूप से लिया जाने लगा उस पर प्रकाश की लहरें निरन्तर पड़ कर उसे उनकी उत्तेजना के लिये संवित बनाने लगीं। इस प्रकार धीरे धीरे चक्षुरिंद्रिय का आविर्भाव हुआ। इसी ढंग से अन्य इंद्रियों और अवयवों का प्रादुर्भाव हुआ और प्राकृत अवस्था के अनुकूल मानव शरीर की सृष्टि हुई जो क्रम क्रम से उन्नति करता हुआ उस अवस्था को प्राप्त हुआ जिसमें आजकल हम उसे पाते हैं। जीव-सृष्टि के आदि में सब आरम्भिक जीव समान ही थे पर सबने एक सी उन्नति न की। प्राकृतिक स्थिति के अनुकूल जिसकी जिस विषय की ओर विशेष प्रवृत्ति रही उसपर उसी की उत्तेजना का अधिक प्रभाव पड़ा। अन्त में प्रकृति देवी ने जैसा कार्य देखा वैसा ही फल भी दिया। जिसने जिस अवयव से कार्य लिया उसके उसी अवयव की पुष्टि और वृद्धि हुई। जिसने कुछ काम न लिया वह अवनत दशा में ही रह गया। यही कारण सृष्टि की विभिन्नता और विचित्रता का वैज्ञानिकों ने निर्धारित किया है। ठीक यही अवस्था साहित्य-रूपी उत्तेजना से सामाजिक मस्तिष्क की होती है। जैसे भौतिक शरीर की स्थिति और उन्नति बाह्य पंचभूतों के कार्यरूप प्रकाश, वायु जलादि की उपयुक्तता पर निर्भर है वैसे ही समाज के मस्तिष्क का बनना बिगड़ना साहित्य की अनुकूलता पर अवलम्बित है अर्थात् मस्तिष्क के विकास और वृद्धि का मुख्य साधन साहित्य है।

सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिये जो भाव-सामग्री निकाल कर समाज को सौंपता है उसी के संचित भांडार का नाम साहित्य है। अतः किसी जाति के साहित्य को हम उस जाति की सामाजिक शक्ति या सभ्यता का निर्देशक कह सकते हैं। वह उसका प्रतिरूप, प्रतिच्छाया या प्रतिबिम्ब कहला सकता है। जैसी उसकी सामाजिक अवस्था होगी वैसा ही उसका साहित्य होगा। किसी जाति के साहित्य को देख कर हम यह स्पष्ट बता सकते हैं कि उसकी सामाजिक अवस्था कैसी है। वह सभ्यता की सीढ़ी के किस डंडे तक चढ़ सकी है। साहित्य का मुख्य उद्देश्य विचारों के विधान तथा घटनाओं की स्मृति को संरक्षित रखना है। पहले पहल अद्भुत बातों के देखने से जो मनोविकार उत्पन्न होते हैं उन्हें वाणी द्वारा प्रदर्शित करने की स्फूर्ति होती है। धीरे धीरे युद्धों के वर्णन, अद्भुत घटनाओं के उल्लेख और कर्मकांड के विधानों तथा नियमों के निर्धारण में वाणी का विशेष स्थायी रूप में उपयोग होने लगता है। इस प्रकार वह सामाजिक जीवन का एक प्रधान अंग हो जाती है। एक विचार को सुन या पढ़ कर दूसरे विचार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार विचारों की एक शृंखला बँध जाती है जिससे साहित्य के विशेष विशेष अंगों की सृष्टि होती है। मस्तिष्क को क्रियमाण रखने तथा उसके विकास और वृद्धि में सहायता पहुंचाने के लिये साहित्यरूपी भोजन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार का यह भोजन होगा वैसी ही मस्तिष्क की स्थिति होगी।

जैसे शरीर की स्थिति और वृद्धि के लिये अनुकूल आहार की अपेक्षा होती है उसी प्रकार मस्तिष्क के के विकास के लिये साहित्य का प्रयोजन होता है। मनुष्य के विचारों में प्राकृतिक अवस्था का बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। शीतप्रधान देशों में अपने को जीवित रखने के लिये निरन्तर परिश्रम करने की आवश्यकता रहती है। ऐसे देशों में रहनेवाले मनुष्यों का सारा समय अपनी रक्षा के उपायों के सोचने और उन्हींका अवलम्बन करने में बीत जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतएव क्रम क्रम से उन्हें सांसारिक बातों से अधिक ममता हो जाती है और वे अपने जीवन का उद्देश्य सांसारिक वैभव प्राप्त करना ही मानने लगते हैं। जहां इसके प्रतिकूल अवस्था है वहां आलस्य का प्राबल्य होता है। जब प्रकृति ने खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने का सब सामान प्रस्तुत कर दिया तब फिर उसकी चिंता ही कहां रह जाती है। भारत-भूमि को प्रकृति देवी का प्रिय और प्रकांड क्रीड़ाक्षेत्र समझना चाहिए। यहां सब ऋतुओं का आवागमन होता रहता है। जल की यहां प्रचुरता है। भूमि भी इतनी उर्वरा है कि सब कुछ खाद्य पदार्थ यहां उत्पन्न हो सकते हैं। फिर इनकी चिन्ता यहाँ के निवासी कैसे कर सकते हैं? इस अवस्था में या तो सांसारिक बातों से मन हट कर जीव, जीवात्मा और परमात्मा की ओर लग जाता है अथवा विलास-प्रियता में फँस कर इन्द्रियों का शिकार बन बैठता है। यही मुख्य कारण है कि यहां का साहित्य धार्मिक विचारों या शृङ्गाररस के काव्यों से भरा हुआ है।

अस्तु, जो कुछ मैंने अब तक निवेदन किया है उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मनुष्य की सामाजिक स्थिति के विकास में साहित्य का प्रधान योग रहता है। यदि संसार के इतिहास की ओर हम ध्यान देते हैं तो हमें यह भली भांति विदित होता है कि साहित्य ने मनुष्यों की सामाजिक स्थिति में कैसा कुछ परिवर्तन कर दिया है। पाश्चात्य देशों में एक समय धर्म-सम्बन्धी शक्ति पोप के हाथ में आ गई थी। माध्यमिक काल में इस शक्ति का बड़ा दुरुपयोग होने लगा। अतएव जब पुनरुत्थान ने वर्तमान काल का सूत्रपात किया और यूरोपीय मस्तिष्क स्वतंत्रता देवी की आराधना में रत हुआ तब पहला काम जो उसने किया वह धर्म के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करना था। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोपीय कार्यक्षेत्र से धर्म का प्रभाव हटा और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की लालसा बढ़ी। यह कौन नहीं जानता कि फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति का सूत्रपात रूसो और वालटेयर के लेखों ने किया और इटली के पुनरुत्थान का बीज मेजनी के लेखों ने बोया। भारतवर्ष में भी साहित्य का प्रभाव इसकी अवस्था पर कम नहीं पड़ा। यहां की प्राकृतिक अवस्था के कारण सांसारिक चिन्ता ने लोगों को अधिक न ग्रसा। उनका विशेष ध्यान धर्म की ओर ही रहा। जब जब उसमें अव्यवस्था और अनीति की वृद्धि हुई, नए विचारों और नई संस्थाओं की सृष्टि हुई। बौद्ध धर्म और आर्य-समाज का प्राबल्य और प्रचार ऐसी ही स्थिति के बीच हुआ। इसलाम और हिन्दू धर्म जब परस्पर पड़ोसी हुए तब दोनों में से कूपमण्डूकता का भाव निकालने के लिये कबीर नानक आदि का प्रदुर्भाव हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि मानवजीवन की सामाजिक गति में साहित्य का स्थान बड़े गौरव का है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस साहित्य के प्रभाव से संसार में इतने उलट-फेर हुए हैं, जिसने युरोप के गौरव को बढ़ाया, जो मनुष्यसमाज का हित विधायक मित्र है वह क्या हमें राष्ट्र-निर्माण में सहायता नहीं दे सकता? क्या हमारे देश की उन्नति करने में हमारा पथप्रदर्शक नहीं हो सकता? हो अवश्य सकता है यदि हम लोग जीवन के व्यवहार में उसे अपने साथ साथ लेते चलें, उसे पीछे न छूटने दें। यदि हमारे जीवन का प्रवाह एक ओर जा रहा है और हमारे साहित्य का प्रवाह दूसरी ओर को है, तब तो हमारा उसका प्रकृति-संयोग ही नहीं हो सकता।

अब तक जो वह हमारा सहायक नहीं हो सका है, इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो इस विस्तृत देश की स्थिति एकान्त रही है और दूसरे इसके प्राकृतिक विभव का वारापार नहीं है। इन्हीं कारणों से इसमें संघशक्ति का संचार जैसा चाहिए वैसा नहीं हो सका है और यह अबतक आलसी और सुखलोलुप बना हुआ है। परन्तु अब इन अवस्थाओं में परिवर्त्तन हो चला है। इसके विस्तार की दुर्गमता और स्थिति की एकान्तता को आधुनिक वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कारों ने एक प्रकार से निर्मूल कर दिया है और प्राकृतिक वैभव का लाभालाभ बहुत कुछ तीव्र जीवन-संग्राम की समर्थता पर निर्भर है। यह जीवन-संग्राम दो भिन्न सभ्यताओं के संघर्षण से और भी तीव्र और दुःखमय प्रतीत होने लगा है। इस अवस्था के अनुकूल ही जब साहित्य उत्पन्न हो कर समाज के मस्तिष्क को प्रोत्साहित और प्रति-क्रियमाण करेगा तभी वास्तविक उन्नति के लक्षण देख पड़ेंगे और उसका कल्याणकारी फल देश को आधुनिक काल का गौरव प्रदान करेगा।

अब विचारणीय यह है कि वह साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए जिससे कथित उद्देश्य की सिद्धि हो सके? मेरे विचार के अनुसार इस समय हमें विशेष कर ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो मनोवेगों का परिष्कार करनेवाला, संजीवनी शक्ति का संचार करनेवाला, चरित्र को सुन्दर साँचे में ढालनेवाला, तथा बुद्धि को तीव्रता प्रदान करनेवाला हो। साथ ही इस बात की भी आवश्यकता है कि यह साहित्य परिमार्जित, सरस और ओजस्विनी भाषा में तैयार किया जाय। इसको सब लोग स्वीकार करेंगे कि ऐसे साहित्य का हमारी हिन्दी भाषा में अभी तक बड़ा अभाव है पर उसके शुभ लक्षण चारों ओर देखने में आ रहे हैं; और यह दृढ़ आशा होती है कि थोड़े ही दिनों में उसका उदय दिखाई पड़ेगा जिससे जनसमुदाय की आँखें खुलेंगी और भारतीय जीवन का प्रत्येक विभाग ज्ञान की ज्योति से जगमगा उठेगा।

पर क्या यह प्रश्न नहीं किया जा सकता कि इस बात की क्या आवश्यकता है कि ऐसे साहित्य के उत्पादन का उद्योग हिन्दी ही में किया जाय? क्या अन्य भारतीय देश-भाषाओं में इसका सूत्रपात नहीं हो चुका है और क्या उनसे हमारा काम न चलेगा? मेरा दृढ़ विश्वास है कि समस्त भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही ऐसी है जो मातृ-भूमि की सेवा के लिये सर्वथा उपयुक्त है और जिससे सबसे अधिक लाभ की आशा की जा सकती है। गुजराती, मराठी, बँगला आदि भाषाओं का आधुनिक साहित्य हमारी हिन्दी के वर्तमान साहित्य से कई अंशों में भरा पूरा है; पर उनके प्राचीन साहित्य की तुलना हिन्दी के पुराने साहित्य-भांडार से नहीं हो सकती, इस कारण उन्हें परम्परा की प्राचीनता का गौरव प्राप्त नहीं है। जैसे किसी जाति के अभ्युत्थान में उसके प्राचीन गौरवान्वित इतिहास का प्रभाव अतुलनीय है वैसे ही भाषाओं को क्षमता प्रदान करने में उसकी प्राचीन परम्परा का बल भी अत्यन्त प्रयोजनीय है। किसी लेखक ने बहुत ठीक कहा है कि इतिहास का मूल्य स्वतंत्रता से भी बढ़ कर है। स्वतंत्रता खो कर भी हमें इतिहास की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि इतिहास के द्वारा हम फिर स्वतंत्रता पा सकते हैं पर स्वतंत्रता के द्वारा खोए हुए इतिहास को हम फिर नहीं प्राप्त कर सकते। जिन जातियों का प्राचीन इतिहास नहीं है, जिन्हें अपनी प्राचीनता और पूर्व-गौरव का अभिमान नहीं है वे या तो शीघ्र ही निर्मूल हो जायँगी अथवा अपनी जातीयता के सारे लक्षण खो बैठेंगी। पर जिनका इतिहास वर्तमान है, जिनको अपने पूर्वजों का गौरव है, जो अपनी जननी जन्मभूमि के नाम पर आँसू बहाती हैं वे पददलित हो कर भी ज़ीवित रह सकती हैं और फिर कभी अनुकूल अवसर पा कर अपना सिर ऊँचा कर सकती हैं। ठीक यही अवस्था भाषाओं के प्राचीन भांडार की है।

दूसरा गुण जो हिन्दी में और भाषाओं की अपेक्षा अधिक पाया जाता है वह यह है कि इसका विस्तार किसी प्रान्त वा स्थान की सीमा के भीतर बद्ध नहीं है। समस्त भारत-भूमि में एक कोने से दूसरे कोने तक इसका थोड़ा बहुत आधिपत्य जमा हुआ है और इसके द्वारा एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के रहनेवालों से अपने मनोगत भावों को येनकेन प्रकारेण प्रकाशित कर सकते हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो राष्ट्रीयता के लिये यह एक आवश्यक गुण है। तीसरा गुण जिसके कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का स्थान ग्रौर भाषाग्रों की अपेक्षा उच्च है वह उसका अपनी मातामही से घनिष्ठ संबंध है। इन सब बातों का देख यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा होने के योग्य है ग्रौर उसी के द्वारा हमें राष्ट्र-निर्माण में अमूल्य तथा वांछनीय सहायता मिल सकती है। पर वे क्या उपाय हैं जिनसे हिन्दी के इस प्रकार गौरव प्राप्त करने का मार्ग सुगम ग्रौर सुलभ हो जाय?

मेरी समझ में इन उपायों में सबसे पहला स्थान हमें देवनागरी अक्षरों के वर्द्धमान प्रचार को देना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पहिले की अपेक्षा इस समय नागरी का प्रचार बहुत बढ़ चुका है ग्रौर दिनों दिन बढ़ता जा रहा है; फिर भी उन स्थानों में विशेष सफलता नहीं देख पड़ती जिनमें वह बहुत अधिक वांछनीय है। जब एक ग्रोर हम इस लिपि के नैसर्गिक गुणों की ग्रोर ध्यान देते हैं जिनकी बड़े बड़े विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है ग्रौर जिनके कारण सारा संसार इसके ग्रहण का पक्षपाती हो सकता है ग्रौर दूसरी ग्रोर अपने ही देश में उसके समुचित प्रचार में बाधाएँ देखते हैं तो न आश्चर्य करते बनता है ग्रौर न दुःख। इन बाधाग्रों के कई कारण हैं, जैसे हमारी राजनैतिक स्थिति, अनभिज्ञता ग्रौर दुराग्रह। इनका निवारण एक दिन में नहीं हो सकता। पर इसमें संदेह नहीं है कि ज्यों ज्यों इसके गुणों का ज्ञान लोगों को होता जायगा, वे अपने हानि-लाभ को समझने लगेंगे त्यों त्यों ये विघ्न-बाधाएँ कम होती जायँगी। फिर भी यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि विघ्न-बाधाएँ साधारण नहीं हैं ग्रौर इनके दूर करने में अनवरत परिश्रम की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। जो लोग इसके गुणों को जानते ग्रौर इसके प्रचार की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं वे भी जब "अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः" के सिद्धान्त पर चलने लगते हैं तब यही कहना पड़ता है कि हम लोगों में अभी चरित्र का बड़ा अभाव है। इन लोगों में कपट-व्यवहार का आधिक्य देख कर कभी कभी निराशा का अन्धकार हृदय पर छा जाता है। पर निश्चय जानिए कि अब सार्वजनिक जीवन सुगम नहीं रह गया है। जो लोग सार्वजनिक कामों में अग्रसर होने का विचार रखते हैं उन्हें अपने व्यवहार ग्रौर बर्ताव में बहुत कुछ परिवर्तन करना होगा ग्रौर जनसाधारण को अपने साथ ले कर चलना पड़ेगा। अब वह समय नहीं रहा कि लोग भेड़ बकरियों की तरह हाँके जा सकें।

संयुक्त-प्रदेश की अदालतों में नागरी-प्रचार के मुख्य बाधक वकील महाशय हैं। पहले तो इन्हें अपने मुन्शियों की बड़ी चिन्ता रहती है, फिर अपने स्वार्थ के लिये हाकिम की रुचि के ध्यान के आगे सारे हितकर सिद्धान्त ग्रौर विचार हवा हो जाते हैं। रहे कचहरी के अमले। वे भी पुरानी लकीर के फ़कीर बनने ग्रौर अदालत से प्रयोजन रखनेवाले लोगों को अपने चंगुल में फँसाए रखने की चिन्ता में रहते हैं। हमारे सामने कई ऐसे गण्य मान्य वकीलों के दृष्टान्त भी उपस्थित हैं जिन्होंने सब कुछ कह सुन कर ग्रौर प्रतिज्ञाबद्ध हो कर भी मातृ-भाषा की सेवा से मुँह मोड़ रक्खा है। यह सब होने पर भी नागरी का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। देशी राज्यों में भी यह प्रति दिन अपना उचित स्थान ग्रहण करती जाती है। इस बात को सब लोग जानते हैं ग्रौर यह गवर्नमेंट से भी छिपी नहीं है कि भारतवर्ष भर में देवनागरी अक्षरों से बढ़ कर ग्रौर किसी अक्षर का प्रचार नहीं है, अतः सिक्कों ग्रौर नोटों से उनका अलग किया जाना किसी गूढ़ नीति की महिमा है। गवर्नमेंट को इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि यदि वह अपनी बहु-संख्यक प्रजा की प्रार्थना पर ध्यान दे कर सिक्कों ग्रौर नोटों में नागरी का समावेश करेगी तो इससे उसके उदार सिद्धान्तों की दृढ़ता प्रकट होगी ग्रौर जनता के विश्वास की वृद्धि होगी। नागरी का प्रचार यहाँ की दीन प्रजा के पक्ष में अत्यन्त हित-कारी है ग्रौर वह दिन दिन बढ़ता भी जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः गवर्नमेंट का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह उसकी गति को सुगम करे और उसके मार्ग की कठिनाइयों को दूर करने में योग दे।

एक और उपाय वांछनीय साहित्य उत्पन्न करने का उपयुक्त प्रणाली पर शिक्षा का विधान है। गत मार्च मास में एक बड़े महत्त्व का प्रश्न भारतीय व्यवस्थापक-सभा में उपस्थित किया गया था। माननीय मिस्टर रयंगर ने यह प्रस्ताव किया था कि भारतवर्ष में शिक्षा का माध्यम देश-भाषाएँ हों। इस पर माननीय सदस्यों ने जो अपने अपने मत प्रकाशित किए थे उनके पढ़ने से यही विदित होता है कि उनमें से अधिकांश महाशयों की सम्मति में शिक्षा का माध्यम देश-भाषाओं को बनाने का अर्थ अँगरेज़ी के पढ़ने लिखने में बाधा उपस्थित कर क्रमशः उसे कम करते जाना और इस प्रकार जातीयता के उद्धार पर कुठाराघात करना है। समझदार लोगों में कोई ही ऐसा होगा जो इस बात को न स्वीकार करता हो कि हमारे जातीय जीवन या राजनैतिक जीवन के लिये अंगरेज़ी भाषा का जानना परम आवश्यक है। हमें अपने उद्धार के लिये पूर्व और पश्चिम को मिलाना और विचारों के परस्पर परिवर्तन और विनिमय से सहायता लेना नितान्त प्रयोजनीय है। इसलिये अंगरेज़ी शिक्षा का कोई विरोधी नहीं हो सकता। पर अंगरेज़ी शिक्षा से यह तात्पर्य नहीं है कि हम अपने को भूल जायँ और अपनी भाषा का समूल नाश कर अंगरेज़ी का बाना पहिन लें। अंगरेज़ी की शिक्षा प्रारम्भ हुए कोई सवा सौ वर्ष हुए होंगे। इतने काल में ६७ लाख लोग अंगरेज़ी पढ़ लिख सके हैं। गवर्नमेंट का कथन है कि गत १० वर्षों में अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों की संख्या ड्योढ़ी हो गई है। इस हिसाब से भी यदि अंगरेज़ी शिक्षा की उन्नति होती जाय तो भी समस्त भारतवर्ष में सब लोगों के अंगरेज़ी जान लेने में सहस्रों वर्षों की आवश्यकता होगी। इसके साथ ही गवर्नमेंट की रिपोर्टों से यह भी विदित होता है कि इस समय २ करोड़ ६३ लाख ऐसे पढ़े लिखे लोग भारतवर्ष में हैं जो अंगरेज़ी बिलकुल नहीं जानते। गत १० वर्षों में इनकी संख्या में २६ लाख की वृद्धि हुई है। दोनों संख्याओं को मिलाने से यह सिद्धांत निकलता है कि जहां अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोग प्रतिवर्ष ५० हज़ार बढ़ते हैं वहां देशभाषाओं के जाननेवालों की संख्या २ लाख ६० हज़ार बढ़ती है। इससे जहां आधुनिक उन्नति के हिसाब से भी अंगरेज़ी के पूर्ण प्रचार में हज़ारों वर्षों की आवश्यकता है वहाँ देशभाषाओं के प्रचार में कम से कम ५ गुना कम समय लगेगा। देशहितैषी लोग अब स्वयं सोच लें कि दोनों बातों में से कल्याणकर कौन सी बात निज मातृभूमि के लिये होगी। दूसरी बात जो इस संबंध में विचार करने की है वह यह है कि किसी भाषा के ज्ञान मात्र को शिक्षा नहीं कह सकते। शिक्षा से तात्पर्य मस्तिष्क के विकास का है जो भिन्न विषयों के मनन से होता है। अंगरेज़ी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता को तो हम मानने के लिए पूर्णतया उद्यत हैं पर हमारी समझ में यह नहीं आता कि इस बात की क्या आवश्यकता है कि हम भारत के मस्तिष्क-विकास के लिये भी एक विदेशीय भाषा का हो आश्रय ग्रहण करें। इस पद्धति के अनुसार चलने का परिणाम तो यही होगा कि अधिकांश बालकों की सारी आयु एक विदेशीय भाषा की जटिलता के हल करने में लग जायगी, न उनके मस्तिष्क का विकास होने पावेगा और न उन्हें किसी विषय का वास्तविक ज्ञान हो सकेगा। क्या संसार में कहीं का भी आप एक दृष्टांत उद्धृत कर सकते हैं जहां बालकों की शिक्षा विदेशीय भाषाओं द्वारा होती हो? क्या जापान ने अपनी उन्नति विदेशीय भाषा के प्रचार से की? क्या निज मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने के कारण उसके गौरव में, उसके महत्व में किसी प्रकार की कमी हुई? यदि ऐसा नहीं हुआ तो भारतवर्ष में इस अनोखे सिद्धांत का अनुकरण करने के लिये क्यों उद्योग किया जाता है? इस प्रांत के कांगड़ी ग्राम में इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात का ज्वाज्वल्य प्रमाण उपस्थित है कि देशभाषा द्वारा शिक्षा देने में उसके वास्तविक गुणों के अर्जन में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं होती। अतएव मेरा तो यह दृढ़ सिद्धांत है कि भारत का इसी में कल्याण है कि जैसे हो वैसे शिक्षा का भरपूर प्रचार किया जाय़ और यह शिक्षा देशभाषाओं के द्वारा हो। जो लोग उच्च शिक्षा के अभिलाषी हों उनके लिये अंगरेज़ी का अभ्यास आवश्यक और सर्वथा उचित है परन्तु वह भी अन्य वा द्वितीय भाषा के रूप में हो।

भारतीय व्यवस्थापक-सभा में इस प्रकार वादविवाद हो कर अन्त में यह निश्चय हुआ कि युद्ध के अनन्तर इस विषय पर प्रांतीय गवर्नमेंटों की सम्मति ली जायगी; परन्तु संयुक्त-प्रान्त में इस समय मिस्टर रायंगर के प्रस्ताव के अनुसार कुछ अंशों में अँगरेज़ी स्कूलों का माध्यम देशभाषाएँ बना दी गई हैं। यहां गत जुलाई मास से यह आज्ञा दी गई है कि तीसरी श्रेणी से ले कर आठवीं श्रेणी तक अंगरेज़ी को छोड़ कर सब विषयों की शिक्षा देशीय भाषाओं द्वारा हो और उन्हीं भाषाओं में विद्यार्थियों की परीक्षा भी हो। इस आज्ञा के पीछे दो नियम भी लगा दिए गए हैं, एक तो यह कि सब विषयों में पारिभाषिक शब्द अंगरेज़ी के हों और दूसरे यह कि आठवीं श्रेणी के अन्त में गणित की परीक्षा अंगरेज़ी में हो। जो लोग देशभाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्षपाती या समर्थक हैं, उन्हें इस आज्ञा से अवश्य आनन्द और सन्तोष हुआ होगा। अभी इस आज्ञा के अनुसार कार्य होते केवल ६ महीने हुए हैं, इसलिये इसकी अवस्था पर पूरा पूरा विचार करना न सम्भव ही है और न उचित ही। फिर भी दो तीन बातें ऐसी हैं जिनपर अभी से ध्यान दिला देना आवश्यक है। इन प्रान्तो में बालकों की मातृभाषा अथवा देशभाषा हिन्दी वा उर्दू मानी जाती है। कुछ विद्यार्थी हिन्दी को ग्रहण करते हैं कुछ उर्दू को। नवीन परिवर्तन के अनुकूल वे सब विषयों का अध्ययन हिन्दी या उर्दू दोनों में से किसी एक के द्वारा कर सकते हैं। यह दोमुही गंगा बहने से दोनों भाषाओं के पढ़नेवालों को विशेष आपत्ति का सामना करना पड़ता है। अध्यापक यदि हिन्दी का विशेष ज्ञाता हुआ तो वह उसीके द्वारा शिक्षा देता है और यदि उर्दू का ज्ञाता हुआ तो वह उसी भाषा की प्रधानता रखता है। इसके लिये हम उसे दोषी नहीं ठहरा सकते, वह अपने सुभीते पर ध्यान रख कर कार्य करेगा, और इसका उसे अधिकार भी है। यद्यपि नियमानुसार प्रत्येक अध्यापक के लिये हिन्दी-उर्दू दोनों का जानना उसी प्रकार अनिवार्य रक्खा गया है जिस प्रकार कि न्यायालयों में मुहर्रिरों के लिये है, पर वास्तविक अवस्था कुछ और ही है। इस अवस्था में कहीं हिन्दी जाननेवालों को हानि उठानी पड़ती है, कहीं उर्दू जाननेवालों को। अब प्रश्न यह है कि इस आपत्ति का निवारण कैसे किया जाय,- जिससे हिन्दी उर्दू पढ़नेवालों को सब स्थानों में समान लाभ प्राप्त हो सके। आप लोगों से यह बात छिपी नहीं है कि हमारी प्रान्तीय गवर्नमेंट ऐसी भाषा की पक्षपातिनी है जो हिन्दी उर्दू दोनों कहला सके और देवनागरी अथवा फारसी दोनों अक्षरों में लिखी जा सके। इस सिद्धान्त के अनुसार गवर्नमेंट ने साहित्य की पुस्तकें भी बनवाई हैं जो स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं। गवर्नमेंट के इस सिद्धान्त का विरोध हिन्दी-उर्दू दोनों के समर्थकों ने किया था, पर गवर्नमेंट अपने सिद्धान्त पर अटल रही। उसने किसी के कहने सुनने की कुछ भी परवा न की। मेरा तो अभी तक यह दृढ़ सिद्धान्त है कि साहित्य के ग्रन्थों में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कर गवर्नमेंट ने बड़ी भूल की है। इसका स्पष्ट परिणाम यह देखने में आता है कि वर्षों तक विद्यार्थी हिन्दी उर्दू पढ़ते हैं फिर भी उनका सम्यक् प्रवेश अपनी अपनी भाषाओं के भांडार में नहीं होने पाता। वे वर्षों परिश्रम कर के भी शुद्ध हिन्दी उर्दू लिखने या बोलने में असमर्थ होते हैं।

एक और बड़ी भूल जो गवर्नमेंट ने इस सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में की है और जिस पर वह अभी तक जमी हुई है वह उसकी एकांगदर्शिता है, अर्थात् जिसे वह हिन्दी में क्लिष्टता का लक्षण मानती है उसे उर्दू में नहीं मानती। जिस भाषा में तद्भव शब्दों का आधिक्य रहता है वह भाषा सरल मानी जाती है और जिसमें तत्सम शब्द अधिकता से प्रयुक्त रहते हैं वह क्लिष्ट भाषा समझी जाती है। पर क्लिष्टता का यह लक्षण अव्याप्ति दोषग्रस्त है अर्थात् तत्सम शब्दों के अभाव में भी क्लिष्टता आ सकती है। तद्भव शब्दों के होते हुए तत्सम शब्दों के अनावश्यक प्रयोग द्वारा आई हुई क्लिष्टता निस्सन्देह अस्वाभाविक और निन्दनीय है, पर भाषा की सरलता और कठिनता शब्दावली पर ही नहीं निर्भर है वरन् भावों की गंभीरता, पदों की बनावट, मुहाविरे के प्रयोग और पुरानी घटनाओं अथवा वार्त्ताओं के निर्देश के कारण भी जटिलता आती है जो मस्तिष्क को विस्तृत करने के लिये आवश्यक है। जो पुस्तकें इस समय पढ़ाई जाती हैं उनमें इन गुणों का सर्वथा अभाव है। अस्तु, कहने का तात्पर्य यह है कि गवर्नमेंट को अपने सिद्धान्तों पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। उसे दुराग्रह छोड़ सच्ची बातों को ग्रहण करने में आनाकानी नहीं करनी चाहिए। यह बात तो हुई साहित्य-विषयक पाठ्य-पुस्तकों की।

हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है की गवर्नमेंट अपने सिद्धान्त का सर्वत्र एक रूप से पालन भी नहीं कर सकी है। इतिहास, गणित, भूगोल, विज्ञान आदि की जो पुस्तकें इस समय प्रचलित हैं उनकी हिन्दी, उर्दू में आकाश-पाताल का अन्तर है। अंगरेज़ी स्कूलों में तो ऐसी पुस्तकों का प्रचार हुए अभी छः ही महीने हुए हैं, पर वर्नाक्युलर स्कूलों में इन विषयों की पुस्तकें उस समय से चली आ रही हैं जब से इन विषयों का अध्ययन इन स्कूलों में प्रारम्भ हुआ है। परिणाम भी दोनों प्रकार के स्कूलों में वैसा ही हुआ है जैसा कि मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूँ। इस विषय पर यहां विस्तार से कुछ कहने की इसलिये आवश्यकता है कि इस समय गवर्नमेंट नई पुस्तकें बनवा रही है। अतएव यही समय है जब हम गवर्नमेंट का ध्यान उसके सिद्धान्त की असङ्गति पर दिला कर उचित प्रणाली के अवलम्बन की प्रार्थना कर सकते हैं। जिस त्रुटि का मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूं उसका समाधान गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि पुस्तकों के ऐसी भाषा के लिखवाने से हो सकता है जिसे हम हिन्दी और उर्दू दोनों कह सकें और जो देवनागरी या फ़ारसी दोनों प्रकार के अक्षरों में लिखी जा सके। मैं उदाहरण के लिये कुछ अंश नीचे देता हूँ जो इतिहास की प्रचलित पुस्तकों से लिए गए हैं। जो शब्द कोष्ठ में दिए गए हैं उनका प्रयोग उर्दू की पुस्तकों में हो और जो उसके पहले हैं वे हिन्दी में हों तो दोनों भाषाओं का काम भली भांति चल जाय, दोनों की सम्यक् पुष्टि हो और शिक्षक तथा छात्र दोनों में से किसी को किसी प्रकार की कठिनता न उठानी पड़े।

हिन्दुस्तान, उसके पहाड़ और नदियां (दरिया)।

१–हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा देश (मुल्क) है। इसका एक सिरा एशिया के दक्खिनी समुद्र में चला गया है। इसको तीन तरफें हैं। उत्तर की तरफ हिमालय पहाड़ का ऊँचा सिलसिला है। पूरब और पच्छिम में समुद्र लहरें मारता है।

२–हिमालय दो शब्दों (लफ़्ज़ों) से बना है। 'हिम' संस्कृत में बर्फ़ को कहते हैं और 'आलय' घर को कहते हैं। इसलिये इसके अर्थ (माने) 'बर्फ़ के घर' के हैं। इसको हिमालय इसी लिये कहते हैं कि इसकी चोटियां बारह महीने बर्फ़ से ढकी रहती हैं। यह दुनियां के सब पहाड़ों से ऊँचा है। पहाड़ क्या है एक प्राकृतिक (कुदरती) दीवार है जो हिन्दुस्तान को एशिया के दूसरे देशों (मुल्कों) से अलग करती है। इस पहाड़ की चोटियों पर इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्दी पड़ती है कि वहाँ न आदमी और जानवर जी सकते हैं और न पेड़ उग सकते हैं।

३–अगर इस पहाड़ की ऊँचाई पूरब के समुद्र से पच्छिम के समुद्र तक सीधी एक सी चली जाती तो पहाड़ी देशों (मुल्कों) से कोई भी हिन्दुस्तान में न आ सकता, पर पूरब और पच्छिम दोनों किनारों पर पहाड़ बहुत नीचे हो गए हैं, यहाँ तक कि पहाड़ की जगह सिर्फ पहाड़ियाँ रह गई हैं। इन पहाड़ियों के बीच में घाटियां हैं जिनको दर्रे कहते हैं। उनमें से होकर लोग आते जाते हैं। ये घाटियां कहीं कहीं हज़ारों फुट ऊँची हैं। इनमें अक्सर बर्फ़ जमी रहती है।

४–उत्तर पच्छिम की तरफ जो पहाड़ियाँ हैं उनका नाम सुलेमान है। इन पहाड़ियों में सब से बड़ा दर्रा खैबर कहलाता है। उत्तर पूरब में पटकोई की पहाड़ी है। हिमालय के पूर्वी सिरे और इन पहाड़ियों के बीच से निकल कर ब्रह्मपुत्र नदी (दरिया) दक्खिन में जाती है। उत्तर पूरब में हिन्दुस्तान में आने के जितने रास्ते हैं वे सब ब्रह्मपुत्र के ही बनाए हुए हैं।

५–हिमालय के दक्खिन में हिन्दुस्तान खास का बड़ा मैदान है। इसमें दो बड़ी नदियाँ (दरिया) बहती हैं—सिंधु और गंगा। सिंधु पच्छिमी हिस्से को सींचती है। गंगा पूरबी हिस्से की प्यास बुझाती है। इस लंबे चौड़े देश (मुल्क) के दक्खिन में विन्ध्याचल और सतपुरा पहाड़ है। जैसे हिमालय हिन्दुस्तान को एशिया से अलग करता है वैसे ही विन्ध्याचल दक्खिन को हिन्दुस्तान खास से अलग करता है।

६–दक्खिन हिन्दुस्तान का वह हिस्सा है जो हिन्दुस्तान खास के दक्खिन में है। विन्ध्याचल पहाड़ दोनों के बीच में है। यह पहाड़ पच्छिम की तरफ बराबर समुद्र तक चला गया है पर पूरब में इसकी ऊँचाई घटती गई है। यहाँ तक कि छोटा नागपुर में एक ऊँची ज़मीन सी रह गई है। हिन्दुस्तान खास से दक्खिन में जाने का यही रास्ता है। जो लोग अब दक्खिन में रहते हैं वे पहले इसी रास्ते से आए थे।

७–दक्खिन का देश (मुल्क) पहाड़ियों और नदियों से भरा पड़ा है। पच्छिम में जो पहाड़ हैं वे पच्छिमी घाट और पूरब में जो पहाड़ हैं वे पूरबी घाट कहलाते हैं। पूरबी घाट पच्छिमी घाट से ऊँचाई में कुछ कम हैं। दक्खिन की करीब करीब सब नदियाँ (दरिया) पच्छिमी घाट से निकलती हैं और पूरब की तरफ बह कर पूरबी घाटों को चीरती हुई समुद्र में जा मिलती हैं। दोनों घाटों और समुद्र के बीच में कुछ नीची ज़मीन है जो उत्तर में बहुत छोटी रह गई है पर दक्खिन में उसकी चौड़ाई बहुत है और यहाँ उसे करनाटक का मैदान कहते हैं। उत्तर से दक्खिन में जाने का रास्ता यही नीची ज़मीन है।"

ऊपर जो अवतरण दृष्टान्त की भाँति दिया गया है उसमें केवल शब्दों का हेर फेर है। इतना हेर फेर दोनों भाषाओं के हित तथा दोनों के समर्थकों के संतोष के लिये आवश्यक है।

इस संबन्ध में दूसरा विचारणीय विषय पारिभाषिक शब्दों का है। गवर्नमेंट ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि बालकों को पारिभाषिक शब्द अंगरेजी के बताए जायँ जिसमें आगे चलकर उन्हें अंगरेजी द्वारा उन उन विषयों के अध्ययन में कठिनता न उपस्थित हो। जब तक बालकों की उच्च शिक्षा का माध्यम अंगरेजी है तब तक उन्हें अंगरेजी पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान अवश्य भविष्यत् में सहायता दे सकेगा और उनका कार्य्य कुछ सुगम हो जायगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। पर यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि वर्नाक्यूलर स्कूलों में क्या किया जाता है? वहाँ तो अंगरेज़ी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग नहीं होता। अंगरेजी पढ़नेवालों के सिर पर ही अज्ञानता का यह वज्र क्यों गिराया जाय कि वे अपनी भाषा के द्वीप, केन्द्र, वृत्त, जजीरा, कुतुर दायरा आदि शब्दों का बायकाट करें और उनके स्थान पर Island,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

centre, circle आदि शब्दों का ही ज्ञान रक्खें। क्या इसका परिणाम यह नहीं होगा कि आगे चल कर हमारे हिन्दी-उर्दू शब्दों का कहीं नाम ही न रह जायगा और उनके स्थान पर हमारे भावी लेखकों की भाषा में अंगरेजी शब्द रत्नावली देदीप्यमान होगी। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो इस मत के समर्थक और अनुयायी हैं कि हमारी भाषा में कोई विदेशीय शब्द न आने पावे, उसका समस्त भांडार संस्कृत के वा उससे उत्पन्न शब्दों से ही अलकृत हो। जब एक जाति का दूसरी जाति के साथ संघर्ष होता है तब उनके शब्दों, मनोगत भावों तथा विचारों में परस्पर कुछ न कुछ विनिमय अवश्य होने लगता है। पर वही भाषा शक्तिसंपन्न और सजीव मानी जाती है जिसे दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण कर उन्हें अपने रंग में रंगने, अपने ही साँचे में ढालने और उन्हें पूर्णतया अपनाने की सामर्थ्य होती है। अतएव मैं विदेशीय शब्दों के लेने का पक्षपाती हूँ, पर एक ही शर्त पर, वह यह कि पहले उनकी शुद्धि कर ली जाय तब वे हमारी सम्प्रदाय में सम्मिलित किए जायँ। पर इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि हम अपने शब्द-भांडार को नष्ट-भ्रष्ट कर दें, पहले अपनी संपत्ति खो दें तब दूसरों से ऋण ले कर अपना काम चलावें। जिस सिद्धांत पर गवर्नमेंट चलना चाहती है उसमें हिन्दी, उर्दू दोनों भाषाओं का अनिष्ट होगा। अतएव मेरा प्रस्ताव और निवेदन है कि विज्ञान, गणित आदि विषयों की प्रत्येक पुस्तकों में पारिभाषिक शब्द तीनों भाषाओं में रहें। मुख्यता तो उस शब्द को दी जाय जो उस भाषा का है जिसमें वह ग्रंथ लिखा है और शेष दोनों शब्द उसी स्थान पर वा फुट नोट में रहें।

तीसरी आपत्ति जिससे हमें बचने की आवश्यकता है वह यह है कि कहीं इस माध्यम के झगड़े में देवनागरी और फारसी अक्षरों का स्थान रोमन अक्षर ग्रहण न कर लें। मैं देखता हूँ कि यह प्रवृत्ति दिनों दिन बढ़ती जाती है कि जहाँ देवनागरी या फारसी दोनों अक्षरों में प्रश्नों के छापने का काम पड़ता है वहाँ लोग रोमन से काम लेते हैं। यह प्रथा भयंकर परिणामों से परिपूर्ण है और इसका दृढ़तापूर्वक विरोध होना चाहिए।

जब हम भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा-प्रणाली की जाँच करते हैं और यह जानना चाहते हैं कि देशभाषाओं का उन्होंने कितना ध्यान रक्खा है तब हमें बड़ी भिन्नता देख पड़ती है। मैं थोड़ी देर के लिये आपको भिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षा-क्रम का परिचय दे कर तब अपना वक्तव्य निवेदन करूँगा।

विश्वविद्यालयों का सम्बन्ध विशेष कर उच्च अथवा कालेज की शिक्षा से है। इसके लिये उन्होंने एक परीक्षा नियत कर रक्खी है जिसके पास करने पर विद्यार्थी कालेज में पढ़ सकते हैं। उसे मैट्रिकुलेशन परीक्षा कहते हैं। कलकत्ता और बम्बई विश्वविद्यालयों में मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिये किसी देशभाषा का अध्ययन अनिवार्य है परन्तु मद्रास, पंजाब और प्रयाग के विश्वविद्यालयों में उसका अध्ययन पढ़नेवालों की रुचि पर छोड़ा गया है; अर्थात् कलकत्ते और बम्बई में यह माना जाता है कि इस परीक्षा के लिये देशभाषा का पढ़ना सर्वथा आवश्यक है, पर अन्य तीनों विश्वविद्यालयों में उसकी अनिवार्यता स्वीकार नहीं की जाती। एफ़० ए० की परीक्षा में कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों में देशभाषा का ज्ञान अनिवार्य है और परीक्षार्थियों को किसी देशभाषा में एक निबंध लिखना पड़ता है। शेष तीन विश्वविद्यालयों में देशभाषा की शिक्षा इस परीक्षा के लिये अनावश्यक समझी जाती है। डिग्री परीक्षा में कलकत्ता विश्वविद्यालय में देशभाषा में निबंध लिखना अनिवार्य है। मद्रास में इसका अध्ययन विद्यार्थी की रुचि पर छोड़ा जाता है। बंबई, प्रयाग और पंजाब के विश्वविद्यालयों में देशभाषा का कहीं नाम भी नहीं है। इससे यह विदित होता है कि कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने देशभाषा की शिक्षा को बहुत उचित स्थान दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाक़ी तीनों ने इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। क्या यह आश्चर्य्य और दुःख की बात नहीं है कि हमारे विद्यार्थी उपाधि-परीक्षा पास कर लें और अपनी मातृभाषा के ज्ञान से वंचित रहें। इस सिद्धान्त की असारता के विषय में मैं पहले निवेदन कर चुका हूँ अतएव उसके यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इस सम्बन्ध में मैं आपका ध्यान एक बात की ओर दिलाना चाहता हूँ सन् १९०२ में जो युनिवर्सिटीज़ कमिशन बैठा था उसने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया था कि कालेज-विभाग में देश भाषाओं की शिक्षा अवश्य दी जाय। आगे चल कर गवर्नमेंट ने भी इस बात का अनुमोदन किया था। सन् १९०४ में युनिवर्सिटियों का नया क़ानून स्वीकार हुआ था। उसके अनुसार सब विश्वविद्यालयों ने अपने अपने नियमों और उपनियमों को सुधार कर ठीक किया था। उसी समय से कालेज-विभाग में देशभाषाओं की शिक्षा की चर्चा ने कुछ ज़ोर पकड़ा। पर इस बात को आज १३ वर्ष हो चुके और अभी तक कलकत्ते और मद्रास के विश्वविद्यालयों को छोड़ और कहीं इस बात का महत्व नहीं स्वीकार किया गया।

प्रयाग विश्वविद्यालय ने पहले मैट्रिकुलेशन परीक्षा में देश-भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य रक्खा था पर पीछे से उसे इस बात का पछतावा हुआ कि ऐसा अनुचित कार्य क्यों बन पड़ा! वह नियम बदल दिया गया। जिस समय इन प्रान्तों का शासनाधिकार सर जान हिवेट के हाथों में था उस समय उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि कालेजों की शिक्षा-प्रणाली में देशभाषाओं को उचित स्थान दिया जाय। कई कमेटियाँ इस विषय पर विचार करने के लिये बनाई गईं पर अब तक कोई सिद्धान्त स्थिर न हो सका। इसका मुख्य कारण यह है कि इस विश्वविद्यालय का एफ़० ए० परीक्षा का शिक्षाक्रम ऐसा टेढ़ा रक्खा गया है कि विद्यार्थियों को अंगरेज़ी के अतिरिक्त या तो गणित को अथवा संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं में से किसी एक को अवश्य लेना पड़ता है। बस उन्हें कुएँ या खाईं का सामना करना पड़ता है। इस विधान का अभिप्राय यह लक्षित होता है कि जो विद्यार्थी आर्ट कोर्स लेना चाहें उन्हें संस्कृत या फ़ारसी अवश्य पढ़ना पड़े। मेरी समझ में नहीं आता कि उनके लिये वह व्यवस्था क्यों की गई है जब कि बी० ए० की परीक्षा में इन प्राचीन भाषाओं का पढ़ना आवश्यक नहीं है। मेरी समझ में सब से सीधा उपाय इस क्रम को ठीक करने का यह होगा कि एफ़० ए० की परीक्षा के लिये अंगरेज़ी और देशभाषा का पढ़ना अनिवार्य बनाया जाय और बाक़ी विषयों में से विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुकूल दो या तीन को चुन लेने का अधिकार हो। इसी प्रकार बी० ए० की परीक्षा में भी देशभाषा का पढ़ना आवश्यक बनाया जाय।

प्रान्तीय कानफरेंस का जो अधिवेशन मेरठ में हुआ था उसके सभापति डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने अपने कथन में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया था कि एफ़० ए० की परीक्षा उठा दी जाय और उसके स्थान पर मैट्रिकेलुशेन परीक्षा तथा बी० ए० परीक्षा दोनों के लिये एक एक वर्ष की पढ़ाई बढ़ा दी जाय। डाक्टर सप्रू महोदय ने इस विषय में अपने विचार बड़े विस्तार के साथ प्रकट किए हैं। ऐसा जान पड़ा कि गवर्नमेंट का ध्यान भी उनके इन विचारों ने आकृष्ट किया है पर फिर न जाने क्यों इस विषय का विचार दब दबा गया। यदि सप्रू महाशय के विचार के अनुसार शिक्षा-क्रम स्थिर हो सके तो बहुत सी बाधाएँ दूर हो जायँ और देशभाषाओं की पढ़ाई का मार्ग स्वच्छ और परिष्कृत हो जाय।

अस्तु अब तो देषभाषाओं के भाग्य का निर्णय संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं की पढ़ाई के कुछ ऐसे कट्टर पक्षपातियों के हाथ में है जो विद्वानों की गिनती में अधिकांश ऐसे ही लोगों को देखना चाहते हैं जिन्होंने प्राचीन भाषाओं के अध्ययन में अपना बहुत सा समय अवश्य लगाया हो। इन प्राचीन भाषाओं में विद्यार्थियों का प्रवेश पूर्ण रूप से हो, इस कामना के आगे वे इस बात पर ध्यान नहीं देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते कि कोर्स को अधिक व क्लिष्ट करने से विद्यार्थियों की संख्या घटेगी वा बढ़ेगी। ऐसे लोग देशभाषाओं पर कहाँ तक ध्यान देंगे, ईश्वर ही जाने। मुझे दृढ़ विश्वास है कि हिंदी के भाग्य के इस निपटेरे में हिन्दीवालों को चूँ करने का भी अवसर न दिया जायगा। ठीक भी है, उन्हें अपनी भाषा के सम्बन्ध में बोलने का अवसर क्यों दिया जाय?

महाशयो! मैंने आपका बहुत सा समय शिक्षा का चरखा गा कर नष्ट किया है पर अब मैं इस सम्बन्ध में एक ही बात और आपसे कहूँगा। भारतवर्ष में आधुनिक शिक्षा की उत्पत्ति का मुख्य हेतु यही हुआ कि यहाँ की गवर्नमेंट को अपने काम के लिये अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों की आवश्यकता पड़ी। उसी अभाव की पूर्ति के लिये यहाँ गवर्नमेंट ने शिक्षा का कार्य आरम्भ किया। सरकारी नौकरी और शिक्षा का यह अप्राकृतिक सम्बन्ध अब तक चला जा रहा है और यही हमारी शिक्षा-सम्बन्धिनी आपत्तियों का मूल कारण है। संसार के और किसी देश में यह अनुचित सम्बन्ध देखने में नहीं आता। कहीं भी युनिवर्सिटी की परीक्षाएँ सरकारी नौकरी का द्वार खोलने की कुंजी नहीं मानी जातीं। जिस समय शिक्षा का उद्देश्य उसके वास्तविक लाभों को फैलाना हो जायगा उसी समय से हमारी शिक्षा-सम्बन्धिनी आपत्तियाँ दूर हो जायँगी। न लोगों के लिये नौकरी ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य रह जायगा, न राजनैतिक अवस्था के अनुसार शिक्षा में हेरफेर होगा और न विश्वविद्यालयों के परीक्षार्थियों को अधिक संख्या में अनुत्तीर्ण करने का अभिमान प्राप्त हो सकेगा।

महाशयो! मैं थोड़ी देर के लिये आपका ध्यान हिन्दी के गद्य और पद्य की ओर दिलाना चाहता हूँ। भाषा के इन दोनों अंगों की पुष्टि का प्रयत्न यद्यपि हो रहा है पर दोनों की गति समान रूप से व्यवस्थित नहीं दिखाई देती है। गद्य का रूप अब एक प्रकार से स्थिर हो चुका है, उसमें जो कुछ व्यतिक्रम व व्याघात दिखाई पड़ जाता है वह अधिकांश अवस्थाओं में मतभेद के कारण नहीं बल्कि अनभिज्ञता के कारण होता है। ये व्याघात व व्यतिक्रम प्रांतिक शब्दों के प्रयोग, व्याकरण के नियमों के उल्लङ्घन आदि के रूप में ही अधिकतर दिखाई पड़ते हैं। इनके लिये कोई मत-सम्बन्धी विवाद नहीं उठ सकता, इनके निवारण के लिये केवल समालोचकों की तत्परता और सहयोगिता की आवश्यकता है। इस कार्य में केवल व्यक्तिगत कारणों से समालोचकों को दो पक्षों में नहीं बाँटना चाहिए।

गद्य के विषय में इतना कह चुकने पर उसके आदर्श पर थोड़ा विचार कर लेना भी आवश्यक जान पड़ता है। इसमें तो कोई मतभेद नहीं कि जो बोली हिन्दी गद्य के लिये ग्रहण की गई है वह दिल्ली और मेरठ प्रांत की है। अतः शब्दों के रूप, लिंग आदि का बहुत कुछ निश्चय तो वहाँ के शिष्ट-प्रयोग द्वारा ही हो सकता है। जैसे पूरब में दही और हाथी को स्त्रीलिंग बोलते हैं पर पश्चिम में विशेष कर उस प्रान्त में ये दोनों शब्द पुल्लिङ्ग ही बोले जायँगे। अतः हम जो उन्हें पुल्लिङ्ग स्वीकार करते हैं वह इसलिये नहीं कि वे संस्कृत के अनुसार पुं० वा क्लीव होंगे बल्कि इसलिये कि वे पुं० रूप में उक्त प्रान्त में व्यवहृत होते हैं। एक पंडितजी ने अपनी एक पुस्तक में पूरबी और पश्चिमी हिन्दी का विलक्षण संयोग किया है। उसका एक शब्द है—"सूतते हैं"। 'सूतब' क्रिया पूरब की है, उसमें उक्त पंडितजी ने प्रत्यय लगा कर उसे 'सूतते हैं' बनाया। उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि जिस स्थान में 'आते हैं' 'जाते हैं' आदि बोले जाते हैं वहाँ 'सोते हैं' बोला जाता है 'सूतते हैं' नहीं। उन्होंने 'ने' विभक्ति पर भी अपनी बड़ी अरुचि दिखाई है, यह नहीं समझा कि वह किस प्रकार क्रिया के कृदंतमूलक रूप के कारण संस्कृत की तृतीया से खड़ी बोली में आई है। कुछ लोग विशेषतः बिहार के लोग क्रियाओं के रूपों से लिंगभेद उठाने की चर्चा भी कभी कभी कर बैठते हैं। पर वे यदि थोड़ी देर के लिये हिन्दी भाषा की विकास-प्रणाली पर ध्यान देंगे तो उन्हें विदित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा कि हिन्दी क्रियाओं के रूप संस्कृत के संज्ञा कृदंत रूपों के साँचे पर ढले हैं। जैसे 'करता है' रूप संज्ञा शब्द 'कर्त्ता' से बना है इसी से स्त्रीलिंग में वह संस्कृत 'कर्त्री' के अनुसार 'करती है' हो जाता है।

जैसा कि कहा जा चुका है यद्यपि हमारे गद्य की भाषा मेरठ और दिल्ली प्रांत की है पर साहित्य की भाषा हो जाने के कारण उसका विस्तार और और प्रांतों में भी हो गया है अतः वह उन प्रांतों के शब्दों का भी अभाव-पूर्त्ति के निमित्त अपने में समावेश करेगी। यदि उसके जन्मस्थान में किसी वस्तु वा भाव को व्यंजित करने के लिये कोई शब्द नहीं है तो वह दूसरे प्रांत से जहाँ उसका शिष्ट समाज वा साहित्य में प्रवेश है, शब्द ले सकती है। पर यह बात ध्यान रखने की है वह केवल अन्य स्थानों के शब्दमात्र अपने में मिला सकती है, प्रत्यय आदि नहीं ग्रहण कर सकती।

अब पद्य की शैली पर भी कुछ ध्यान देना चाहिए। भाषा का उद्देश्य यह है कि एक का भाव दूसरा ग्रहण करे और साहित्य का उद्देश्य यह है कि एक का भाव दूसरा ग्रहण कर के अपने अंतःकरण में भावों की अनेकरूपता का विकास करे। ये भाव साधारण भी होते हैं और जटिल भी होते हैं। अतः जो लेख साधारण भावों को प्रकट करता हो वह साधारण ही कहलावेगा चाहे उसमें सारे संस्कृत कोशों को ढूँढ़ ढूँढ़ कर शब्द रक्खे गए हों और चार चार अंगुल के समास बिछाए गए हों। पर जो लेख ऐसे जटिल भावों को प्रकट करेंगे जो अपरिचित होने के कारण अंतःकरण में जल्दी न धँसेंगे वे उच्च कहलावेंगे। चाहे उनमें बोलचाल के साधारण शब्द ही क्यों न भरे हों। ऐसे ही लेखों से उच्च साहित्य की सृष्टि होगी। जो जनता के बीच नए नए भावों का विकास करने में समर्थ हो, जो उनके जीवन-क्रम को उलटने पलटने की क्षमता रखता हो वही सच्चा साहित्य है। अतः लेखकों को अब इस युग में बाण और दंडी होने की आकांक्षा उतनी न करनी चाहिए जितनी वाल्मीकि और व्यास होने की, बर्क, कारलाइल और रस्किन होने की।

कविता का प्रवाह आजकल दो मुख्य धाराओं में विभक्त हो गया है। खड़ी बोली की कविता का आरंभ थोड़े ही दिनों से हुआ है अतः अभी उसमें उतनी शक्ति और सरसता नहीं आई है पर आशा है कि उचित पथ के अवलंबन द्वारा वह धीरे धीरे आ जायगी। खड़ी बोली में जो अधिकांश कविताएँ और पुस्तकें लिखी जाती हैं वे इस बात का ध्यान रख कर नहीं लिखी जातीं कि कविता की भाषा और गद्य की भाषा में भेद होता है। कविता की शब्दावली कुछ विशेष ढंग की होती है, उसके वाक्यों का रूप रंग कुछ निराला होता है। किसी साधारण गद्य को नाना छंदों में ढाल देने से ही उसे काव्य का रूप नहीं प्राप्त हो जायगा। अतः कविता की जो सरस और मधुर शब्दावली व्रज भाषा में चली आ रही है उसका बहुत कुछ अंश खड़ी बोली में भी रखना पड़ेगा। भाव-वैलक्षण्य के संबंध में जो बातें गद्य के प्रसंग में कही जा चुकी हैं वे कविता के विषय में भी ठीक घटती हैं। बिना भाव की कविता ही क्या! खड़ी बोली की कविता के प्रचार के साथ काव्यक्षेत्र में जो अनधिकार-प्रवेश की प्रवृत्ति अधिक हो रही है वह ठीक नहीं है। मैंने कई नवयुवकों को कविता के मैदान में एक विचित्र ढंग से उतरते देखा है। छात्रावस्था में उन्होंने किसी अंगरेज़ी रीडर का कोई पद्य उठाया है और कुछ तुकबंदी के साथ उसका अनुवाद कर के वे उसे किसी कवि वा लेखक के पास संशोधन के लिये ले गए हैं। कविता के अभ्यास का यह ढंग नहीं है। कविता का अभ्यास आरंभ करने के पहले अपनी भाषा के बहुत से नए पुराने काव्यों की शैली का मनन करना, नीतिग्रंथों का देखना, रस अलंकार आदि से परिचित होना आवश्यक है। आजकल बहुत सी कविताएँ ऐसी देखने में आती हैं जिन्हें आप न खड़ी बोली की कह सकते हैं न व्रजभाषा की। उनके लेखक खड़ी बोली और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजभाषा का भेद ही नहीं समझते। वे एक ही चरण में एक स्थान पर खड़ी बोली की क्रिया रखते हैं, दूसरे स्थान पर व्रजभाषा की। आशा है कि ये सब दोष शीघ्र दूर हो जायंगे और हमारे काव्य का प्रवाह एक सुव्यवस्थित मार्ग का अनुसरण करेगा।

इस प्रकार हिन्दी की गद्य-पद्यात्मक प्रवृत्ति की ओर विचार कर हमें यह देखना है कि इस वर्ष में हिन्दी की साधारणतः क्या अवस्था रही।* यह कुछ कम संतोष की बात नहीं है कि हिन्दी भाषा का साहित्य-सम्मत रूप अब उन स्थानों में भी क्रमशः स्वीकृत होता जाता है जहाँ पहले उसका प्रवेश नहीं था। युरोपीय महायुद्ध की ख़बरें जो कुछ काल तक सरकारी प्रेस ब्यूरो की ओर से प्रति-सप्ताह प्रकाशित होती थीं उसी भाषा में छपती थीं जिसमें हिन्दी के समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। विलायत में सरकार की ओर से एक युद्ध-समाचारपत्र भी इसी भाषा में निकलता है जिसका उद्देश्य सैनिकों को समाचार पहुँचाना है। 'एजुकेशनल गज़ट' की भाषा भी सामयिक पत्रिकाओं की भाषा से भिन्न नहीं होती। क्षत्रिय, वैश्य आदि जातीय सभाओं के प्रभाव से जिनकी कार्रवाइयाँ हिन्दी में होती हैं लोगों को आधुनिक हिन्दी के रूप का ज्ञान होता जाता है। देहातों तक में जो निमंत्रणपत्रादि बँटते हैं, अब वे सुधरी भाषा में होते हैं। समाचारपत्रों का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता जाता है और वर्तमान युरोपीय युद्ध से उनकी उन्नति में कई अंशों में सहायता पहुँची है। साहित्य-सम्मेलन तथा अन्य साहित्य-सभाओं के अधिवेशनों में, स्कूलों तथा कालेजों के छात्रों के योगदान देने से नव-शिक्षित युवक-समाज में मातृभाषा के महत्व की धारणा दृढ़ होती जाती है। इस विषय में बहुत कुछ प्रभाव उन लोगों का पड़ा है जो अध्यापक हैं या शिक्षाविभाग से सम्बन्ध रखते हैं। ईश्वर की कृपा से आज दिन अनेक विज्ञ हिन्दी-हितैषी सज्जन शिक्षा-विभाग में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं और अपने अनुकरणीय उद्योगों द्वारा हिन्दी का भावी मार्ग विस्तृत और सुगम कर रहे हैं। आर्य-समाज के शिक्षा-प्रचार-संबन्धी उद्योगों के प्रभाव से पंजाब आदि उदासीन प्रदेशों में भी अपनी देशभाषा और अपने साहित्य को अपनाने की आकांक्षा प्रबल हो रही है। प्रारम्भिक शिक्षाप्रचार के लिये जो सार्वजनिक प्रयत्न हो रहे हैं उनसे भी हिन्दी का हित-साधन हो रहा है। भिन्न भिन्न गवर्नमेंटें भी अब अच्छे हिन्दी-ग्रन्थों का आदर करने लगी हैं और यदाकदा उनके प्रकाशन में आर्थिक सहायता भी देती हैं। स्थान स्थान पर हिन्दी-पुस्तकालय बराबर खुलते जा रहे हैं जिनमें पुस्तकों के अतिरिक्त सामयिक-पत्रों का भी प्रबन्ध रहता है। हिन्दी के सभा-समाज तथा पूर्व-स्थापित पुस्तकालय उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ते दृष्टिगोचर होते हैं। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अतिरिक्त प्रान्तीय तथा ज़िला-सम्मेलनों की भी उत्पत्ति हो चली है। पहला प्रान्तीय-सम्मेलन इस वर्ष गोरखपुर में हुआ था जिसके सभापति परलोकवासी राय देवीप्रसादजी पूर्ण थे जिनकी विनोदपूर्ण और सरस पर चुभनेवाली वक्तृता ने पिछले सम्मेलन में अपूर्व आनन्द और विनोद की वर्षा की थी। अदालतों में भी नागरी का प्रचार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और देशी राज्य इसे अपना कर अक्षय यश के भागी हो रहे हैं। महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन में थोड़े ही विवाद के उपरान्त हिन्दी राष्ट्रभाषा स्वीकार की गई थी। गुजराती-साहित्य-सम्मेलन में तो वह निश्चय निर्विवाद ही हो गया। अब उत्तरीय भारत में बंगभाषाभाषियों को ही इस विषय में कुछ आगा पीछा रह गया है। नाटक मंडलियों में भी जो हिन्दी-भाषा-प्रचार में बड़ी अमूल्य सहायता पहुँचा सकती हैं, इस ओर प्रवृत्ति होती जा रही है। सारांश यह कि चारों ओर हिन्दी के लिये ऐसे शुभ लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं जिनसे इसका भविष्य बहुत आशामय प्रतीत होता है।

*इस अंश में काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की अंतिम वार्षिक रिपोर्ट से बहुत से उदाहरण लिए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि इस वर्ष हिन्दी की पुस्तकें अधिक निकलीं पर साहित्य की पूर्त्ति के लिये जैसी पुस्तकों की आवश्यकता है वैसी पुस्तकों की संख्या अधिक नहीं है। साहित्य की उच्च कोटि की पुस्तकों के दर्शन उत्साही प्रकाशकों के अभाव, उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की उदासीनता और विशेष कर पाठकों की न्यूनता के कारण बहुत कम होते हैं। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा, खँडवा की ग्रंथप्रसारक मंडली, बम्बई का ग्रंथरत्नाकर कार्यालय और ग्वालियर की गोपालकृष्णमंडली आदि संस्थाएँ उत्तम उत्तम पुस्तकों के प्रकाशन में प्रशंसनीय उद्योग कर रही हैं। सामयिक पुस्तकों में कलकत्ते के बाबू रामलाल वर्मन का 'युरोपीय महा-युद्ध सचित्र' अच्छे ढंग से निकल रहा है और हिन्दी-साहित्य के अच्छे ग्रंथों में गिने जाने के योग्य है। "अभ्युदय" प्रेस की "रामायणी" कथा भी हिन्दी की उत्तम पुस्तकों में स्थान पाने योग्य है। अन्य पुस्तकें जो उल्लेख करने योग्य हैं और जिनके द्वारा साहित्य-भांडार की पूर्त्ति हुई है, प्रोफ़ेसर बालकृष्ण का 'अर्थशास्त्र', महाशय इन्द्रवेदालंकार का 'प्रिंस बिस्मार्क', ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'पुरुषार्थ' और 'सफलता', पंडित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी का 'शब्द पारिजात', पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी की 'शासन-पद्धति', पंडित श्रीधर पाठक का 'देहरादून' (कविता), विज्ञान-परिषद् का 'ताप' और महाशय चन्द्रमणि विद्यालंकार का 'महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत' आदि हैं। सम्भव है कि और भी अच्छे ग्रन्थ निकले हों पर वे मेरे देखने में नहीं आए।

सामयिक पत्र और पत्रिकाओं की भी इस वर्ष अच्छी अवस्था रही। दैनिक पत्रों में 'भारत मित्र', साप्ताहिक पत्रों में 'अभ्युदय' तथा 'पाटलिपुत्र' और मासिक पत्रिकाओं में 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'विज्ञान' और 'इन्दु' हिन्दी के गौरव के कारण हैं। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि "अभ्युदय" अकाल काल का ग्रास बनते बनते बच गया। 'विज्ञान' ने हिन्दी के बड़े भारी अभाव की पूर्त्ति की। आशा है यह हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रंथों के अभाव की पूर्त्ति के लिये विशेष उत्साह उत्पन्न करने का साधन होगा। सामयिक पत्रों के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेख के योग्य है। इनमें से कुछ पत्र समय समय पर अपने विशेष अङ्क निकालते हैं जो बड़े ही सुन्दर और महत्त्व-पूर्ण होते हैं। इस वर्ष 'जयाजी-प्रताप' और 'प्रताप' के विशेष अङ्क जो मेरे देखने में आए, बहुत ही अच्छे निकले थे।

साहित्य-सम्मेलन ने जो हिन्दी परीक्षाएँ नियत की हैं उनसे हिन्दी-साहित्य के अध्ययन की प्रणाली बहुत कुछ स्थिर हो गई है और उनके द्वारा हिन्दी की विज्ञता बढ़ाने के लिये लोगों को अच्छा उत्साह मिल रहा है। यह बड़े आनन्द की बात है कि इसके परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है। हमें आशा है कि इसके द्वारा हिन्दी के उच्च कोटि के साहित्य के पठनपाठन में विशेष सहायता पहुँचेगी और यह हिन्दी के अच्छे अच्छे विद्वान् उत्पन्न करने में कृत-कार्य होगी। प्रसंग-वश यहाँ एक बात के निवेदन की धृष्टता करता हूँ। मुझे यह देख कर बड़ा दुःख होता है कि वे संस्थाएँ भी जिनका हिन्दी-साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो उसकी वृद्धि और उन्नति में किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करती हैं, हिन्दी-साहित्य-सेवियों को उपाधि प्रदान करने का भार लेने चली हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार के दुस्साहस से उनकी क्या इष्ट-सिद्धि है। उनके मुख्य मुख्य उद्देश्यों की पूर्त्ति में जिन महानुभावों ने उनकी सहायता की हो उनका वे जिस प्रकार से चाहें सम्मान करें, पर जहाँ उनका अधिकार नहीं है वहाँ हस्तक्षेप करने की वे कृपा न करें। हिन्दी-साहित्य-सेवियों का सम्मान करने का कार्य हमारे इस सम्मेलन का है और उसे इसी पर छोड़ देना चाहिए। जब यह उचित समझेगा, इस ओर ध्यान देगा।

महाशयो! मैंने अपने विचारों, भावों और आशाओं को आपके सम्मुख उपस्थित करने में आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बहुत सा समय ले लिया। आप लोग क्षमा करें। अब मैं दो चार वाक्य और कह कर अपने कथन को समाप्त करता हूँ। मैं पहले ही आप लोगों से निवेदन कर चुका हूँ कि सामाजिक मस्तिष्क के विकास और वृद्धि के लिये साहित्य की कितनी आवश्यकता है। वह साहित्य किस प्रकार का होना चाहिए, उसके साधन क्या हैं और उन साधनों के मार्ग में कौन कौन सी विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हैं जिनका निराकरण कर हम उपयुक्त साहित्य का भावी मार्ग इस प्रकार विस्तृत और परिष्कृत कर सकते हैं कि वह अपने लक्ष्य पर पहुँचने में समर्थ हो, इन विषयों के सम्बन्ध में भी अपने विचार आप लोगों के सम्मुख उपस्थित कर चुका हूँ। मुझे अब आपसे केवल इतना ही कहना है कि जो कुछ हम करना चाहते हैं वह एक या दो चार व्यक्तियों के करने से पूरा न होगा। उसके लिये हमें अपनी सारी बिखरी हुई शक्तियों को संयुक्त कर के उन्हें ऐसी बलवती बनाना पड़ेगा जिसमें फिर उनके मार्ग में कोई वस्तु किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित करने में समर्थ न हो। बिखरी हुई शक्ति से कोई बड़ा कार्य सुसम्पन्न नहीं हो सकता और एकत्रित शक्ति का बल ऐसा प्रबल हो जाता है कि उसका सामना करने का साहस किसी को नहीं होता, उसके आगे सारी विघ्नबाधाएं आपसे आप लुप्त हो जाती हैं। इसलिये भाइयो, मित्रो, मातृभाषा के सेवको! संघशक्ति का मूलमंत्र जपो, उसे अपने हृदयपटल पर भली भाँति खचित करो, उसी को अपनी आराध्यदेवी समझ कर सदा उसकी सहायता के मुखापेक्षी बने रहो, फिर आपको अपने उद्देश्यों को सिद्ध करने में ज़रा भी विलम्ब न लगेगा। जिस प्रकार छोटी छोटी नदियाँ, नाले और अन्य जल प्रवाह सिमट सिमट कर एक बड़ी नदी में जा मिलते और उसके वेग को ऐसा प्रबल कर देते हैं कि जिसके आगे सभी रुकावटें तृणवत् छिन्न भिन्न हो उसकी सहगामिनी होती हैं, उसी प्रकार आप अपनी भिन्न भिन्न शक्तियों को साहित्यरूपी सरिता के सबल और संजीवनी-शक्ति-संपन्न प्रवाह में सम्मिलित कर उस प्रवाह को घोर निनाद करते हुए राष्ट्रीय समुद्र में ला मिलाइए। फिर देखिए कि किस प्रकार आपकी प्यारी मातृ-भूमि संसार के समस्त राष्ट्रों में आदरणीय सिंहासन पर विराजने की अधिकारिणी हो जाती है।

क्या आप लोगों ने कभी शुद्ध हृदय से इस बात पर विचार किया है कि माता, मातृभूमि और मातृभाषा का आप पर कुछ ऋण है भी या नहीं? एक जननी आपको जन्म देती है, एक की गोद में खेल कूद कर और खा पी कर आप पुष्ट होते हैं और एक आपको अपने भावों को प्रकट करने की शक्ति दे आपके सांसारिक जीवन को सुखमय बनाती है। जिनका आप पर इतना उपकार है, क्या उनके लिये कुछ करना आपका परम कर्त्तव्य नहीं है? प्यारे भाइयो, उठो, आलस्य को छोड़ो, कमर कसो और अपनी मातृभाषा की सेवा में तत्पर हो जाओ। अपने को मातृ-ऋण से मुक्त करो, संसार में सपूत कहलाओ और मातृ-सेवकों में अपनी छाप छोड़ जाओ। पर ध्यान रहे, यह व्रत साधारण नहीं, इसके व्रती बन कर पार पाना तलवार की धार पर चलने के समान होगा। क्षुद्राशय, दुर्बुद्धि, दुराग्रही, छिद्रान्वेषी, ईर्ष्यालु लोग आपकी निन्दा करेंगे, आप का उपहास करेंगे, आपको बनावेंगे, सब प्रकार से आपको हेय सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे पर आप अपना अटल सिद्धांत यही बनाए रहें कि चाहे हमारी निंदा हो चाहे स्तुति, चाहे हमारी आज ही मृत्यु हो जाय चाहे हम अभी बरसों जीएँ, चाहे हमें लक्ष्मी अङ्गीकार करे चाहे हमारा सारा जीवन दारिद्र्यमय हो जाय पर हमने जो व्रत धारण किया है उससे न हम कभी विचलित होंगे, न कभी पराङ्मुख होंगे और न कभी सर्वस्व खो कर भी अपने किए पर पश्चात्ताप करेंगे। चुपचाप अपने व्रत को पूरा करने का उद्योग करते जाइए। अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ बने रहिए, अपने धर्म का पालन करने में अग्रसर होते जाइए, निश्चय जानिए आपकी

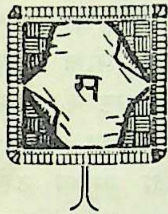
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय होगी, आपके उद्योग सफल होंगे और अन्त-काल में आपको यह संतोष होगा कि जगन्नियंता जगदीश्वर ने जो आपको मनुष्य-शरीर दिया था उसका उचित उपयोग करने में आप समर्थ हुए हैं और मातृ-भाषा की सेवा कर आप उससे उऋण हो सके हैं।

सम्पादन-कला ।

[लेखक,—श्रीयुक्त ठाकुर सूर्य्यकुमार वर्मा ।]



म्पादन-कला का ज्ञान होना सम्पादक के लिये बहुत जरूरी है। जो लोग सम्पादन करना नहीं जानते परन्तु किसी कारण-विशेष से उस काम को अपने हाथ में ले लेते हैं, उनका चित्त इस कला को सीखने में नहीं लगता। वे इस काम को ज्यों त्यों कर के पूरा करते हैं। परन्तु जिन्हें इस काम में अनुराग है वे इस कला को सीखने का भी उद्योग करते हैं। यह बात सच है कि बहुत से गुण मनुष्य में प्राकृतिक अर्थात् स्वाभाविक होते हैं। और स्वाभाविक गुणों का विकास शिक्षा, अभ्यास और अनुभव द्वारा होता है। परन्तु बहुधा ऐसे अवसर भी आ जाते हैं कि मनुष्य को विवश हो कर कोई कार्य करना पड़ता है और तब यह आवश्यकता होती है कि उस कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिये शिक्षा, अभ्यास और अनुभव प्राप्त किया जाय। अतएव इस लेख द्वारा दूसरे वर्ग के लोगों के हितार्थ कुछ विचार प्रकट किए जाते हैं जो एक अनुभवी अँगरेज़ विद्वान् ने प्रकट किए हैं।

बहुधा लोग सम्पादन-कला के सम्बन्ध में तीन प्रकार के प्रश्न किया करते हैं—

(१) वह कौन सी शिक्षा विशेष है जो सम्पादक के लिये बहुत ही जरूरी है?

(२) सम्पादक का व्यवसाय करने के लिये सब से अच्छा ढंग क्या है?

(३) इस व्यवसाय से सम्पादक को क्या लाभ पहुंचने की सम्भावना है?

पहले प्रश्न के सम्बन्ध में एक सज्जन ने यह मालूम करना चाहा था कि क्या इस कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिये किसी यूनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त कर लेना जरूरी है? इसी प्रकार एक सज्जन ने जानना चाहा कि क्या इस व्यवसाय के लिये समाज-शास्त्र का अध्ययन आवश्यकीय है? इसी तरह एक और सज्जन ने यह दरियाफ़ किया कि क्या एक साल जर्मनी में रह कर यह शिक्षा प्राप्त की जा सकती है? इन सब को एक ही उत्तर देना ठीक होगा। सम्पादन-कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हर प्रकार के विषयों का जानना बहुत जरूरी है। अर्थात् सम्पादक को थोड़ा बहुत ज्ञान सब बातों का होना चाहिए। हां, यह हो सकता है कि जो केवल किसी ख़ास विषय पर ही लेख लिखना चाहे उसे उसी ख़ास विषय का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अर्थात् जो केवल समाचारों के सम्पादन का काम करना चाहते हों, या जो केवल सम्वाददाता ही बनना चाहते हों, या जो केवल माल के सम्बन्ध में ही लेख लिखना चाहते हों, या जो केवल वाणिज्य व्यवसाय पर ही लेख लिखना चाहते हों, या जो केवल अंक शास्त्र पर हो अपनी सारी शक्ति, ख़र्च करने के अभिलाषी हों, वे अवश्य उस विषय का अध्ययन कर के उसके सम्पादक बन सकते हैं। क्योंकि जो योग्यता एक काम को करने के लिये चाहिए वैसी ही योग्यता की आवश्यकता दूसरे काम के लिये नहीं पड़ती। परन्तु जो लोग चाहते हैं कि सम्पादन-कला का ज्ञान पूरे तौर पर हो जाय तो उन्हें हर विषय में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। दैनिक पत्रों के सम्पादन में ऐसे सम्पादकों की बड़ी जरूरत रहती है। वे एक विभाग से दूसरे विभाग में बदल दिए जाने पर बड़ी योग्यता से काम करते हैं और ऐसा मनुष्य निश्चय रूप से हर एक काम कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी सकता है। जो लोग लीडर (मुख्य लेख) लिखने का काम करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे बड़े बड़े विषयों को थोड़े से शब्दों में लिखने का अभ्यास करें। देश सुधार के काम में मनुष्य आजन्म लिख सकता है, परन्तु उसे देश दशा का अच्छी तरह ज्ञान होना चाहिए। साथ ही अन्य देशों के हाल से जानकारी होना भी बहुत लाभदायक है। क्योंकि जब तक विदेश की बातों का ज्ञान न होगा वह कभी अपने लीडर को रोचक नहीं बना सकता। शुष्क वर्णन लिख देने से लीडर में रोचकता नहीं आती। इसलिये लीडर लिखनेवाले सम्पादक को देश दशा के कार्यों में सुधार चाहने की इच्छा से अन्य देशों की उच्च श्रेणी की पुस्तकें मन लगा कर पढ़नी चाहिए। इसके लिये घर काफी है, किसी विश्वविद्यालय में जाने की जरूरत नहीं। पुस्तकों को पढ़ने में विषय विवेचना के अनुसार नोट्स लिख रखने चाहिए जिसमें समय पड़ने पर उनके ढूँढ़ने में कठिनाई न हो। जर्मन और फ्रेंच-सम्पादकों के लिखे हुए लेखों को भी ग़ौर से पढ़ना चाहिए, इससे भी लाभ हो सकता है।

जो सम्पादक जर्मन-समाचारपत्र नहीं पढ़ सकता उसे अवश्य एक साल जर्मनी में जा कर जर्मन भाषा और साहित्य का अध्ययन कर के वहां के समाचारपत्रों के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना और वहां के सम्पदकों से सम्पादन कला का ज्ञान प्राप्त करना बहुत जरूरी है। इससे बहुत लाभ होगा। लेखक ने लिखा है कि "मुझे ऐसे बहुत से लोग मालूम हैं जो इस प्रकार का ज्ञान रखते हैं परन्तु इससे लाभ नहीं उठाते। और मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ जिनका ज्ञान बहुत थोड़ा है परन्तु जिन्होंने अन्य देशों की सैर कर के और अन्य देशों की भाषाएं सीख कर, अपने को योग्य सम्पादक बना लिया है। इसलिये अन्य देशों की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना सम्पादक के लिये बहुत जरूरी है।"

सम्पादन कला का ज्ञान रखनेवालों में इस समय बहुत से ऐसे मनुष्य मौजूद हैं जिन्होंने इस व्यवसाय में बहुत बड़ी योग्यता प्राप्त की है परन्तु उन्होंने किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा नहीं पाई और न यूनिवर्सिटी की कोई डिग्री ही प्राप्त की है। इसलिये यह कोई नहीं कह सकता कि सम्पादक के लिये यूनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त कर लेना बहुत ज़रूरी है। परन्तु हां, जिसने डिग्री प्राप्त की हो और वह यह कार्य्य करना चाहे तो वह बहुत सी भूलों से अपने को बचा सकता है।

सच्ची बात तो यह है कि सम्पादन का गुण स्वाभाविक है। यह सीखने से कुछ न कुछ आ तो जाता है परन्तु जैसा चाहिए वैसा स्वाभाविक अनुराग से ही आता है। सर वाल्टर स्काट ने बचपन में बहुत उद्योग किया कि वह ड्राइंग सीख जाय परन्तु वह सीख न सका। स्काट को इस बात का बड़ा अभिमान था कि वह जीवन पर्य्यन्त कुछ न कुछ सीखता ही रहा। जो मनुष्य उसे मिल जाता उससे वह कुछ न कुछ अवश्य सीख लेता। उसकी स्मरण शक्ति बड़ी तीक्ष्ण थी। वह जो कुछ पढ़ता या सुनता उसे याद रखता। समय पड़ने पर उसे बहुत ही ऊँचे दरजे के विचार सूझ जाते थे। जीवनचरित लिखनेवाले मनुष्य से अधिक इस कला को दूसरा मनुष्य नहीं समझ सकता। योग्य सम्पादक एक बार ही की भेंट में मनुष्य की सब बातें जान लेता है और उसकी बाबत एक उत्तम लेख लिख सकता है। सब से कठिन बात यह है कि बहुत से लोगों में किसी बात की जड़ तक जाने का स्वभाव नहीं होता। वे बाल की खाल उतारना नहीं जानते। वे लोग अपने विचारों में ही इतने मग्न रहते हैं कि दूसरों के विचारों और कार्यों की ओर ध्यान ही नहीं देते। उनका विचार है कि गप शप में इज्ज़त कम हो जाती है। यह बात एक दरजे तक ठीक भी है; परन्तु वर्तमान समय में कोई सम्पादक, सम्पादक नहीं बन सकता जब तक दूसरों का हाल सुनने के लिये उसके कान और दूसरों का काम देखने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी आंखें खुली न हों। परन्तु क्या यह गुण उद्योग अथवा परिश्रम से पैदा किया जा सकता है? लेखक ने लिखा है कि "मुझे तो इसमें सन्देह मालूम होता है। हाँ, यह हो सकता है कि उद्योग और परिश्रम से यह गुण चाहे अधिक हो जाय परन्तु पैदा नहीं हो सकता"।

सम्पादक बनने के लिये समाचारपत्रों और मासिक पुस्तकों से भी परिचय होना चाहिए। क्योंकि जो समाचारपत्रों में लेख लिख कर ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहता है उसको सामयिक साहित्य से जानकारी रखना बहुत ज़रूरी है। जो समाचारपत्रों और मासिक-पुस्तकों को पढ़ता ही नहीं है वह उनके लिये उपयोगी लेख किस तरह लिख सकता है? उसे क्या मालूम हो सकता है कि कौन लेख किस पत्र में भेजना चाहिए? बिना समाचारपत्रों का अध्ययन किए कोई योग्य सम्पादक बन जाय, यह बड़ा ही कठिन काम है। स्वाभाविक सम्पादक को भी सब पुस्तकों और समाचारपत्रों का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि बिना ऐसा किए ज्ञान-भांडार की वृद्धि नहीं होती। बहुत से अवसरों पर सम्पादकों को तुरन्त ही लेख लिखने पड़ते हैं। उसके लिये उन्हें सोचने समझने अथवा पुस्तकें देखने तक का अवकाश नहीं मिलता। यदि उनका ज्ञान-भांडार भरपूर है, उन्होंने पहले ही से अध्ययन कर रक्खा है तब तो उन्हें लेख लिखने में कठिनाई नहीं पड़ेगी, नहीं तो 'हूज़ हू' और 'इन्साइक्लोपीडिया' को ढूंढते ढूंढते और पृष्ठ पर पृष्ठ उलटते उलटते ही सारा समय चला जायगा और समय पर लेख लिखने का काम पूरा नहीं हो सकेगा।

सम्पादक के लिये यह भी ज़रूरी है कि वह समय-सूचकता का भी ज्ञान प्राप्त करे। अर्थात् कौन कार्य किस समय होगा इसका विचार रक्खे और अवसर आते ही लेख लिख कर प्रकाशित करे। इसके लिये यह बहुत जरूरी है कि वह पत्रों और पुस्तकों का कीड़ा बन जाय। क्योंकि ज़ब इसका अध्ययन ऊंचे दरजे का होगा तभी वह इस बात का पता रख सकेगा कि किस समय किस काम की आवश्यकता पड़ेगी और वह तुरन्त उस कार्य को कर सकेगा। जितनी अधिक बातें जिस सम्पादक को मालूम होंगी वह उतना ही योग्य सम्पादक कहलावेगा।

सम्पादन का काम बड़ा कठिन काम है। लार्ड मारले को समाचारपत्रों के सम्पादक बड़ी इज्जत की निगाह से देखते हैं। एक बार जब उन्होंने सर ए० टी० कुक को निमंत्रण दिया, उस समय उन्होंने कहा था कि "मुझे जहां तक स्मरण है, मैं कह सकता हूं कि मैंने कभी किसी मनुष्य को यह सलाह नहीं दी कि वह सम्पादक का व्यवसाय करे। मेरे विचार से जो लोग समाचारपत्रों के सम्पादन का कार्य कर चुके हैं उन सब की यही राय है कि सम्पादक बनने से बड़े लाभ होते हैं और ऐसे लाभ किसी दूसरे व्यवसाय में होना सम्भव नहीं। परन्तु साथ ही, सम्पादक का जीवन सदा जोखिम में रहता है। हर वक्त उसके सिर पर एक तलवार खिंची रहती है जिसके सम्बन्ध में यही आशंका बनी रहती है कि वह अब गिरी, अब गिरी और मेरा काम तमाम हुआ।" लार्ड मारले के उपर्युक्त वाक्यों से ही पत्र-सम्पादन के काम की उत्तमता और भयंकरता दोनों का पता चलता है। एक बार लार्ड मारले ने यह भी कहा था कि "यह पेशा जितना भयानक है उतना ही बेजड़ भी है। जब मालिक और सम्पादक के बीच अनबन हो जाती है या कुछ मत-भेद हो जाता है या मालिक ही पत्र को अपना सर्वस्व समझने लगता है और उसके द्वारा उचित और अनुचित सभी रूपों से धन कमाने की चिन्ता में लग जाता है और सम्पादक को कोई चीज न समझ, उसे केवल अपना नौकर खयाल कर मनमाने लेख लिखाने की इच्छा रखता है तब सम्पादन जी का जंजाल हो जाता है और सम्पादक को अपनी रोज़ी छोड़ कर घर बैठना पड़ता है। इसी से कहा ज़ाता है कि यह व्यवसाय बेजड़ है। जहाँ तक हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारपत्र का मालिक और सम्पादक दोनों एक ही व्यक्ति होना चाहिए जिससे पत्र की नीति में कभी अन्तर न आवे। क्योंकि पत्र-सम्पादकों के बार बार बदलते रहने से पत्र की नीति एक सी नहीं रहने पाती। बुढ़ापे में यह व्यवसाय बहुत दुःखदायी हो जाता है। वृद्धावस्था के कारण काम तो अधिक होता नहीं, परन्तु मालिक चाहता है कि काम ज्यादा हो। अधिक काम न करने से वह सुस्त और काहिल समझा जाता है और उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। इसी लिये लार्ड मारले का कहना है कि "सम्पादक का भाग्य सदा चक्कर में रहता है।"

इस व्यवसाय में आकर्षण शक्ति बहुत है। इसके द्वारा बहुत से लोगों से परिचय हो जाता है। बहुधा बड़े बड़े लोगों से मित्रता भी हो जाती है। यह व्यवसाय जहां भयानक है वहां आनन्ददायक भी अवश्य है। जिनका दिल इसमें लग जाता है वे इसे छोड़ना पसन्द नहीं करते। लाख झंझटें और कष्ट उठाने पर भी वे इसी की ओर दौड़ते हैं। इसके द्वारा परोपकार भी बहुत होता है। समाज और देश की बुराइयाँ दूर करने में जितनी सहायता इससे मिलती है उतनी और किसी व्यवसाय से नहीं मिलती।

हास्य-रस।

हास्य-रस का व्यावहारिक उपयोग।

(क्रमागत)।

(गतांक से आगे।)



साधारणतः प्रत्येक बात का परिणाम दो प्रकार का होता है; एक तो वह जो प्रत्यक्ष होता और पदार्थ-दृष्टि पर पड़ता है और दूसरा वह जो अप्रत्यक्ष होता और अपने मन पर पड़ता है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि इनमें से विनोद के द्वारा प्रत्यक्ष परिणाम नष्ट नहीं हो सकता; उसके लिये किसी योग्य और परिहार-कारक क्रिया की आवश्यकता होती है। परन्तु अप्रत्यक्ष अर्थात् मनुष्य के मन पर पड़नेवाला प्रभाव विनोद की सहायता से बहुत कुछ कम किया जा सकता है। यदि विनोद-दृष्टि से देखा जायगा तो संकट अथवा कठिनाई के प्रत्यक्ष परिणाम का भय न रह जायगा; अथवा कम से कम उसका स्वरूप वास्तविक से कुछ कम जान पड़ेगा। और यदि विनोद-दृष्टि से उसके अप्रत्यक्ष परिणाम को देखा जाय तो उस परिस्थिति के कई ऐसे अंग हमें मिलेंगे जिनमें हमें बहुत ही थोड़े या ऐसे वैसे संकट दिखाई पड़ेंगे*।

* प्रसिद्ध विद्वान् सली का इस सम्बन्ध में मत है कि—
"In much of this alleviating service of humours the laugh which liberates us from the thraldom of the momentary, is a laugh at ourselves. Indeed, one may safely say that the benefits here alluded to presuppose a habit of reflective self-quizzing. The blessed relief comes from the discernment of the preposterous in the forcing of our claims, of a folly in yielding to the currents of sentiment which diffuse their mists over the realm of reality.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात स्वयं सिद्ध है कि संकट जितने ही बड़े होंगे, केवल विनोद से उनका परिहार होना उतना ही कठिन होगा। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उन संकटों के निवारण के लिये मनुष्य जितने उपाय करता है उनमें से विनोदवाले मार्ग में उसे एक प्रकार का सुख मिलता है। यदि किसी दृढ़-निश्चयी और विचारी मनुष्य पर बराबर संकट पड़ते हों और वह धैर्यपूर्वक उनका सामना करता हो तो बीच बीच में यदि उसका मनोविनोद न होगा तो उसे बहुत कुछ मानसिक पीड़ा होगी और वह अधिक समय तक उन संकटों को न सह सकेगा। यही कारण है कि इतिहास में जिन बड़े बड़े उद्योगी पुरुषों के नाम आए हैं, वे प्रायः विनोदप्रिय थे।

हास्य और विनोद आदि ईश्वरी देन हैं; उनका उपयोग आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक रीति से भी किया जा सकता है। विनोद किसी घटना या परिस्थिति आदि पर टीका करने की एक रीति है। विनोद-प्रिय मनुष्य तात्त्विक विचारों में जितना ही अधिक डूबेगा उसके विनोद अथवा टीका का उतना ही अधिक मूल्य होगा। पहले कहा जा चुका है कि विनोद-शीलता के लिये मन के विकसित होने की आवश्यकता होती है। लेकिन साधारण सांसारिक मनुष्यों के विनोद और विद्वानों या तत्त्वज्ञों के विनोद में बहुत कुछ अन्तर होगा। जीवों के सम्बन्ध में अपनी कल्पना या विचार निश्चित कर लेने के उपरान्त जीवन-क्रम में विनोद का स्थान निश्चित किया जा सकता है। तत्त्व-ज्ञान से मनुष्य यह निश्चय कर सकता है कि कौन सी चीज अविनाशी है। परिस्थिति का स्वरूप और उसका वास्तविक अभिप्राय जानने के लिये विवेक की आवश्यकता होती है और इस काम में हास्य-विनोद से बहुत सहायता मिल सकती है। तत्त्वज्ञानी मनुष्य जब तत्त्व-ज्ञान के पङ्ख लगा कर ऊपर उड़ता है तब उसके और बाकी बचे हुए समाज के मत में बहुत अन्तर पड़ जाता है। और लोगों की अपेक्षा वह इस बात को बहुत अच्छी तरह समझ सकता है कि संसार इस समय कैसा है और उसे वास्तव में कैसा होना चाहिए। औरों की दृष्टि में जो बातें बड़ी होती हैं, वही उसे छोटी जान पड़ती हैं। जिन बहुत सी छोटी छोटी चीजों का महत्त्व लोग बहुत ही कम मानते हैं वही उसे अधिक महत्त्व-पूर्ण मालूम होने लगती हैं। जिन्हें लोग पदार्थ समझते हैं वही उसे छायामात्र जान पड़ते हैं। तात्पर्य्य यह कि जनसमूह की दृष्टि और तत्त्वज्ञ की दृष्टि में बहुत अन्तर पड़ जाता है। ऐसी दशा में यही कहना पड़ता है कि इस प्रकार की विषमता दिखलानेवाला तत्त्वज्ञान हास्य-जनक है; और वह वास्तव में वैसा ही है भी। पर साथ ही हम यह भी देखते हैं कि अनेक प्रकार के तत्त्वज्ञानों के पास विनोद फटकने भी नहीं पाता और बहुत से तत्त्ववेत्ताओं में विनोद-प्रियता नाम को भी नहीं होती। इसका कारण केवल यही है कि उन तत्त्ववेत्ताओं में तत्त्व-ज्ञानी बनने के उपरान्त भी मनुष्य-मात्र के सम्बन्ध में वह प्रेम नहीं रह गया था जितना वास्तव में होना चाहिए। यही दशा तत्त्वज्ञान के उन प्रकारों की भी है; और जब तक मन में मनुष्य-जाति के प्रति प्रेम न हो तब तक विनोद हो ही नहीं सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मन में एक ओर से तत्त्वज्ञान के प्रवेश करते ही हास्य-विनोद दूसरी ओर से निकल भागे।

गम्भीर और खेलवाड़ी दोनों वृत्तियां परस्पर एक दूसरी की विरोधिनी हैं और इन्हीं दोनों के मिश्रण से विनोद उत्पन्न होता है। संसार में की किसी प्रकार की उपपत्ति कभी समर्पक रीति से और सब अंशों में ठीक ठीक प्रयुक्त नहीं हो सकती; इसलिये तत्त्वज्ञानी होने से विनोद-प्रिय होने की सम्भावना-मात्र उत्पन्न होती है। आनन्दवाद या

The coming of the smile announces a shifting of the point of view, the mal-adjustment which a moment ago seemed to be wholly on the side of the world showing itself now to be on our side as well.—Sully, p. 329.

४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाशावाद (Optimism) को ही लीजिए। संसार में नित्य प्रति हम लोग जिन दुःखों का अनुभव करते हैं सदाशावाद से उनका किसी प्रकार मेल नहीं मिलाया जा सकता। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति के हृदय में मनुष्य-मात्र के लिये सच्ची चिन्ता और सहानुभूति है, ऐसे मनुष्य से यदि यह कहा जाय कि संसार में जो दुःख हमें दिखलाई पड़ते हैं, वे वास्तव में दुःख नहीं हैं बल्कि जीवों या संसार को आनन्द-पूर्ण बनाने के साधन हैं तो यह बात उसके मन में न जमेगी। परन्तु यदि वही मनुष्य विनोद-प्रिय तो हो पर इस प्रकार के आनन्दवाद या सदाशावाद से वह पूरी तरह सम्मत न हो तो भी वह निराशावादी या दुःखवादी (Pessimist) नहीं बन सकता। वह केवल यही समझेगा कि इस संसार में मनुष्यों के साथ ईश्वर एक प्रकार का खेलवाड़ खेल रहा है। इस प्रकार के विचार में प्रकारान्तर से गम्भीर और विनोद-पूर्ण विचारों का मिश्रण होगा और उसे हँसी आवेगी। उसे अपने स्वरूप की अज्ञानता के लिये खेद न होगा, बल्कि वह बहुधा अपने आपसे कहेगा—"यह सब गोरख-धन्धा है। यहाँ चाहे जिस उपपत्ति को लो, वह पूरी नहीं उतरती और न सभी अंशों में प्रयुक्त हो सकती है। तब फिर बराबर उपपत्तियाँ निकालने के लिये ही क्यों परिश्रम किया जाय? इस स्थिति का मनन करने से हमें जो मजा मिलता है, वही सब से अधिक ठीक है।"

विनोद के साथ आध्यात्मिक या पारमार्थिक विचारों का सम्बन्ध इसी प्रकार का है। परन्तु यदि इस सम्बन्ध को छोड़ कर भी हम विचार करें तो सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर हमें यह जान पड़ेगा कि संसार की नैतिक उन्नति में भी विनोद से बहुत कुछ अप्रत्यक्ष सहायता मिलती है। अनीति को ढूँढ़ निकालने का काम विनोद की सहायता से जितनी उत्तमतापूर्वक हो सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं। यदि हम केवल नाराज हो कर अनीति की निन्दा करें तो बहुत सम्भव है कि वह बिगड़ैल घोड़े की तरह उलटे और भी अनिष्ट कर डाले। परन्तु विनोद की मुलायम सलाई से अनीति की दोष-युक्त दृष्टि में अंजन लगाया जा सकता है और वह दोष धीरे धीरे दूर किया जा सकता है। स्वयं विनोदप्रिय स्वभाव को चाहे आप सद्गुणों में गिनें या न गिनें, पर उसके द्वारा होनेवाले नैतिक लाभ के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। विनोद को सद्गुण कहने में भी हमें कोई हानि नहीं दिखलाई देती। जिसके कारण मनुष्य को स्वयं इतना सुख हो सकता है और जिसके द्वारा दूसरों का इतना सुधार सम्भव है, हम नहीं समझ सकते कि उसे हम सद्गुण क्यों न कहें। पहले एक स्थान पर यह कहा जा चुका है कि मनुष्य के मन में चाहे कितना ही पाप या दुष्ट और निंद्य विचार क्यों न हो, उसे एक प्रकार की हँसी अवश्य आवेगी। परन्तु इस प्रकार के दूषित हास्य को छोड़ कर जिस मनुष्य को और प्रकार की निर्दोष हँसी आ सकती हो वह सचमुच धन्य है। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता कारलाइल ने एक स्थान पर कहा है कि जो मनुष्य अपने जीवन में एक बार भी खिलखिला कर और खुले मन से हँसा हो वह कदापि अत्यन्त बुरा नहीं हो सकता।*

विनोदप्रिय मनुष्य में कुछ न कुछ अच्छे गुण अवश्य होंगे। विनोद को हम चाहे सद्गुण कहें और चाहे न कहें, पर इतना अवश्य मानना होगा कि अनेक प्रकार के दूसरे सद्गुणों के होते हुए भी जब तक मनुष्य में विनोदप्रियता न हो तब तक वह पूर्ण सद्गुणी नहीं कहा जा सकता। जब तक सद्गुणों और सुस्वभाव का जोड़ न हो तब तक काम ही नहीं चल सकता। और सुस्वभाव की सब से अधिक उत्पत्ति विनोदशीलता के कारण ही होती है। विनोदी मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणों से अका-

* No man who has once wholly and heartily laughed, can be altogether irreclaimably bad. In cheerfull souls, there is no evil.—Carlyle.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण दूसरों के चित्त नहीं दुखाता, वह औरों को सदा योग्य उपायों से प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है और उनके साथ उत्तम तथा दयापूर्ण व्यवहार करता है। इस प्रकार वह स्वयं भी प्रसन्न रहता है और दूसरों की प्रसन्नता का भी कारण होता है। मनुष्यकृत दुःखरूपी अन्धकार का नाश करने के लिये मनुष्यकृत विनोद से बढ़ कर और कोई प्रभावशाली प्रकाश नहीं है। विनोदप्रिय मनुष्य को मनुष्य-जाति का श्रेष्ठ उपकारक मानना पड़ता है। शुद्ध भाव के विनोद से स्नेहियों का स्नेह और कुटुम्ब के लोगों का पारस्परिक प्रेम अधिक दृढ़ होता है। परस्पर केवल आदर-पूर्वक व्यवहार करनेवाले स्नेहियों का स्नेह, विनोद-युक्त आदर से व्यवहार करनेवाले स्नेहियों के स्नेह की अपेक्षा कम रम्य, कम सुखकर और कम स्थायी होता है। एक ऐसे कुटुम्ब को लीजिए जिसमें सब लोग आपस में केवल अपने अपने रिश्ते का ध्यान रख कर ही व्यवहार करते हों; और एक दूसरे ऐसे कुटुम्ब को लीजिए जिसमें लोग अपने रिश्ते को न भूलते हुए मित्रता के नाते से हँसी खुशी से बरताव करते हों। भला बतलाइए तो, इन दोनों कुटुम्बों में से सबसे अधिक सुखी किस कुटुम्ब के लोग होंगे। बहुत से घरों में जब किसी युवक के घर कोई लड़का-बाला होता है तो वह युवक अपने माता-पिता के सामने खड़ा भी नहीं होता; अधेड़ पति-पत्नी को परस्पर बातचीत करने के लिये एक मध्यस्थ की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मर्य्यादा का आवश्यकता से अधिक ध्यान रखनेवाले बहुत से विनोद-शत्रु कुटुम्ब दिखलाई देंगे। इसके विरूद्ध किसी कुटुम्ब में भाई-भाई, पति-पत्नी, माता-पिता और बालक आदि परस्पर हिल मिल कर बातचीत करते हैं, उठते बैठते हैं और अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार आमोद-प्रमोद करते हैं; छोटे बड़े सब एक दूसरे की बातों का शिष्ट और मर्य्यादा-युक्त उत्तर देते हैं और इस प्रकार सबका सदा मनोविनोद होता रहता है। ऐसी स्थिति में यदि उस कुटुम्ब को पृथ्वी पर सुख का अवतार मान लिया जाय तो कुछ अनुचित न होगा। अँगरेज कवि टेनिसन ने कहा है कि गृहस्थी में अच्छा हास्य सूर्य्योदय के समान है *। पाठशालाओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि शिक्षक और छात्र परस्पर विनोद करें तो यह न समझना चाहिए कि गुरु-शिष्यवाले सम्बन्ध को छुट्टी मिल गई। यही नहीं, बल्कि जो शिक्षक विद्वान् होने के अतिरिक्त विनोदप्रिय भी होता है, शिष्यों के लिये वही सबसे अधिक प्रिय और मान्य भी होता है।

हाँ, इस बात का उचित प्रतिबंध अवश्य होना चाहिए कि हास्य-विनोद सीमा से बढ़ न जाय और उसका कोई बुरा परिणाम न हो। पर इस प्रकार के प्रतिबंध के लिये किसी को विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती। विनोद के अतिरेक के कारण सद् और असद् के विवेक के नष्ट हो जाने की आशंका होती है और इसलिये लोगों को अपनी उचित मर्य्यादा का ध्यान ही नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त विषयीगत मर्य्यादा यदि न रह जाय तो भी विषयगत एक प्रकार की मर्य्यादा होती ही है। वह इस प्रकार कि यदि हमारे विनोद से दूसरे को दुःख पहुँचा तो उससे हमारे विनोद में आप ही आप प्रतिबंध हो जाता है। विनोद के अतिरेक का परिणाम भी वैसा ही होता है जैसा बहुत अधिक मद्य पीने का। जो मनुष्य अकारण और अनावश्यक विनोद करता है वह दूसरों के लिये उपद्रवकारक होता है। स्वयं उस मनुष्य को भी उस विनोद से कोई आनन्द नहीं मिलता। क्योंकि उसे विषाक्त और मादक पदार्थों की तरह इसका भी नशा हो जाता है। परन्तु जो हास्य-विनोद इस मर्य्यादा के अन्दर होता है वह बहुत ही उत्तम, नीतिसम्मत, और सुपरिणामी होता है। इसलिये आज तक बहुत से श्रेष्ठ लोग उसकी वृद्धि करते आए हैं और इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में भी बराबर करते रहेंगे। इस बात के समर्थन के लिये ऐतिहासिक और अनु-

* A good laugh is a sunrise in a house.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भव-सिद्ध साक्षियाँ ही यथेष्ट होंगी। राज-दरबारों, विद्या-मन्दिरों और कला-भवनों आदि में आज तक हास्य से जितनी सहायता ली गई है वह यदि समझ में आ जाय तो फिर और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यद्यपि इस बात का पता नहीं लगता कि प्राचीन काल में सब लोग हास्य-विनोद की कला को प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक समझते थे, तथापि यह बात सब लोगों ने स्वीकार की है कि उसके कारण सभ्यता में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। राज-दरबारों में और धनवानों के यहाँ बराबर हास्य-विनोद होता रहता था। हमारे यहाँ के संस्कृत नाटकों से पता लगता है कि विदूषक लोग राजाओं के परम प्रिय मित्र हुआ करते थे। राजाओं और दरबारियों के साथ विदूषक लोग मनमाना विनोद करते थे। विक्रम और भोज के दरबारों में कवियों की तरह विनोदी भी रहा करते थे। पाश्चात्य राष्ट्रों के राजाओं और रईसों के यहाँ भी विदूषक या विनोदी रहा करते थे। ये लोग दो प्रकार के होते थे, क्लाउन (Clown) और फूल (Fool)। इनके अलग अलग और नौ विभाग हैं। शेक्सपियर के नाटकों में इन दोनों प्रकारों के पात्र आए हैं। उनकी बातचीत बड़ी ही चमत्कारपूर्ण और हृदयग्राही है। बहुत से अँगरेज लेखकों ने अपने यहाँ के पुराने विदूषकों के विषय में बहुत कुछ लिख कर उनकी यथेष्ट प्रशंसा की है। एक महाशय ने तो उनकी प्रशंसा में यहाँ तक कह डाला है कि मैंने स्वयं ऐसे विदूषक देखे हैं जो ऐसे रोते हुए मनुष्य को हँसा सकते हैं जिसका पिता मृत्यु-शय्या पर पड़ा हो।

यह बात जानने के लिये कि विद्या-मन्दिर में हास्य-रस का कितना आदर हुआ है, हमें ग्रीक साहित्य को देखना चाहिए। आजकल की तरह ग्रीक साहित्य के उन्नति-काल में भी नाटक और प्रहसन आदि ही हास्य-विनोद के प्रधान आधार थे। हास्य का उद्दीपन करनेवाले विषयों का जितना अधिक समावेश नाटकों में हो सकता है उतना और किसी प्रकार के ग्रन्थों में नहीं हो सकता। ग्रीक लोग स्वभावतः दूसरों की नकलें उतारने, दिल्लगियाँ उड़ाने और हाजिरजवाबी में बहुत होशियार होते थे। खेत से फसल काट कर खलिहान में ला रखने के बाद वे अँगूरी शराब खूब पीते थे, हास्य-विनोद करते थे और बढ़िया गीत गाते थे। वे व्याजस्तुति की कविताएँ भी खूब बनाते थे। इन्हीं बातों के कारण ग्रीक भाषा में हास्य-रस प्रधान नाटक बनने लगे। जब ग्रीक राष्ट्र उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुका था उस समय एरिस्टोफेनीस नामक विद्वान् के द्वारा प्रहसनों का भी खूब उत्कर्ष हुआ था। उसके बनाए हुए नाटक या प्रहसन आजकल के नाटकों या प्रहसनों की तरह नहीं होते थे; क्योंकि उनमें पात्र, गीत, भाषण, नकल आदि बहुत सी बातों का समावेश होता था। वह प्रहसन बरस में तीन बार एथेन्स नगर में मद्य-देवता के महोत्सव के अवसर पर रंगभूमि पर खेले जाते थे। ग्रीक लोगों को हँसी दिल्लगी का बहुत शौक था। इन महोत्सवों पर प्रहसनों के लिये बड़े बड़े इनाम दिए जाते थे। उन प्रहसनों में बड़े बड़े आदमियों, सामाजिक रीति-नीति और राजकीय विषयों पर टीकाएँ और टिप्पणियाँ होती थीं। उन दिनों एथेन्स में शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार था। पर लोग छापे की विद्या न जानते थे, इसलिये पुस्तकें बहुत थोड़ी होती थीं। जो लोग नित्य न्यायालयों या राज-सभाओं में जा कर तरह तरह के ज्ञान प्राप्त करते थे उनके मनोविनोद के लिये प्रहसनों तथा इसी प्रकार के और साधनों की बहुत आवश्यकता होती थी। उस समय ग्रीक लोगों की सभ्यता और शिक्षा बहुत ऊँचे स्थान तक पहुँच चुकी थी। उनकी उन्नति का वास्तविक अनुमान करने के लिये उस समय के कवियों के सुन्दर काव्यों, इतिहासों, वक्तृताओं आदि की अपेक्षा हास्य-रसपूर्ण प्रहसनों का पढ़ना ही अधिक फलदायक होगा। अरिस्टाफेनीस के ग्रन्थों से इस बात का बहुत अच्छी तरह पता लग जाता है कि सर्वसाधारण की शिक्षा में हास्य-रसपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों से कितनी सहायता मिलती है। क्रीग्रान, एल्सीबायडीस ग्रैार साक्रेटीस आदि के समय की एथेन्स की वास्तविक स्थिति का ज्ञान अरिस्टोफेनीस के प्रहसनों को मूल भाषा में पढ़ने से ही हो सकता है; अन्य उपायों से नहीं। कहते हैं, सामराक्यूज के अत्याचारी राजा दिग्रानीशियस ने एक बार तत्त्ववेत्ता प्लेटो से एथेन्स की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। इस पर प्लेटो ने उसके पास केवल अरिस्टोफेनीस के "मेघमंडल" नामक प्रहसन की एक प्रति भेज दी। इस प्रकार आज से दो ढाई हजार बरस पहले प्रहसन विषयगत गुण-दोष पर टीका करने के मुख्य साधन हो गए थे। ऊपर कहा जा चुका है कि विषयीगत गुण-दोष पर टीका करने के लिये विनोद बहुत अच्छा साधन हो सकता है। इस बात का सब से अच्छा प्रमाण उसी प्रहसनकार के "शराब की बोतल" नामक ग्रन्थ में मिल सकता है। लोगों ने अरिस्टोफेनीस पर यह अपवाद लगाया था कि उसने अत्यन्त मद्यप हो कर अपनी धर्म्म-पत्नी काव्य-प्रतिभा का परित्याग कर दिया है। इसी विषय को ले कर उसने "शराब की बोतल" नामक प्रहसन लिखा है। उसका नायक वह स्वयं बना है ग्रैार उसका कथा-भाग उसने यह रक्खा है कि—मेरा शराब पीना कम हो गया है, मैंने प्रतिभारूपी अपनी धर्म्म-पत्नी को फिर सप्रेम अंगीकार कर लिया है ग्रैार अब मैं उस लोकापवाद से मुक्त हो गया हूँ। अरिस्टोफेनीस के लिखे हुए "मेघमंडल" "लिसिष्ट्राटा" "मंडूक-सभा" "रमणी-महोत्सव" "विहंगविलास" आदि अनेक प्रहसन हैं जो बहुत प्रसिद्ध हैं। "मेघमंडल" में उसने "स्कूलमैन" नाम के एक प्रकार के नए तत्त्वज्ञानियों की खूब फजीहत की है। "गंधालिका" (Wasps) नामक प्रहसन में उसने उन लोगों की बहुत निन्दा की है जो न्यायालयों में ज्यूरी या पंच बन कर बैठने के बहुत शौकीन होते हैं। "मंडूक-सभा" में उसने युरिपाइडिस नामक तत्त्ववेत्ता ग्रैार अपने सहव्यवसायी की खूब दिल्लगी उड़ाई है। तात्पर्य्य यह कि आज से ढ़ाई हजार बरस पहले अरिस्टोफेनीस ने हास्य-रस का जो व्यावहारिक उपयोग कर दिखलाया था, वही उपयोग आजकल ज्यों का त्यों होता हुआ दिखलाई पड़ता है। फ्रेंच प्रहसनकार मालियर तथा अँगरेज प्रहसनकार शेरिडन ग्रैार गोल्डस्मिथ भी अपने समय में बहुत प्रसिद्ध हो गए हैं। उनके लिखे हुए प्रहसन भी अब तक बड़े आनन्द ग्रैार प्रेम से पढ़े जाते ग्रैार बोधप्रद माने जाते हैं। यह तो हुई प्रहसनों की बात। पर हास्य-रस केवल प्रहसनों में ही नहीं भरा हुआ है बल्कि अच्छे अच्छे नाटकों ग्रैार उपन्यासों में भी संगृहीत है। यदि कोई मनुष्य हास्य-रस के लेख लिखनेवाले सर्वमान्य लेखकों की सूची तैयार करे तो अवश्य ही वह सूची बहुत बड़ी होगी। बड़े बड़े ग्रीक, फ्रान्सीसी, अँगरेज ग्रैार संस्कृत ग्रन्थकारों के नामों ग्रैार ग्रन्थों से यह बात सिद्ध की जा सकती है कि साहित्य में हास्य-रस बहुत ही ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित है। हिन्दी में हास्य-रस के ऊँचे दरजों के ग्रन्थ प्रायः नहीं के समान हैं। इस सम्बन्ध में जो कुछ थोड़ा बहुत काम किया है, वह केवल स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ग्रैार स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र ने।

(शेष आगे।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्धकारिणी समिति।

रविवार तारीख १९ दिसम्बर १९१५—संध्या के पाँच बजे।

स्थान—सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २८ अगस्त १९१५) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० का ५ सितम्बर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि सभा चाहे तो कलकत्ते के बाबू रामलाल वर्म्मा निम्नलिखित शर्तों पर मनोरंजन पुस्तकमाला के प्रकाशन का भार ले सकते हैं अर्थात् पुस्तकमाला के टाइटिल पृष्ठ पर सभा प्रकाशक और बाबू रामलाल वर्म्मा एजेण्ट लिखे जाँयगे, पुस्तकमाला की छपाई, कागज़ अथवा मूल्य आदि में वे कोई परिवर्तन न करेंगे, प्रत्येक पुस्तक का संस्करण दो हजार प्रतियों से अधिक का न होगा और प्रथम संस्करण के लिये वे सभा को १००) रु० और अन्य संस्करणों के लिये ५०) रु० पुस्तक के प्रकाशित होने के छः मास के भीतर दिया करेंगे, सभा द्वारा पुस्तकमाला की जो बिक्री होगी उस पर वे २५) रु० सैकड़े कमीशन तीसरे मास हिसाब कर के दे दिया करेंगे, स्थायी ग्राहकों के सब आर्डर बाबू रामलाल वर्म्मा के पास रहेंगे, प्रत्येक पुस्तक की १० प्रतियाँ वे सभा को दिया करेंगे, अब तक की प्रकाशित पुस्तकों के मूल्य और डाक व्यय का जितना धन सभा को प्राप्त हुआ है उसे मुजरे दे कर इन पुस्तकों के प्रकाशन का कुल व्यय १००) रु० प्रति पुस्तक के उपहार सहित जोड़ कर सभा उनसे २००) रु० मासिक कर के ले ले और जब तक पुस्तकमाला समाप्त न हो तब तक सभा की पत्रिका में इसका एक पृष्ठ पर विज्ञापन छपा करे।

बाबू रामलाल वर्म्मा भी इस अधिवेशन में उपस्थित हुए और उन्होंने सूचना दी कि वे इन शर्तों में निम्नलिखित संशोधन करना चाहते हैं। अर्थात् (१) पुस्तकमाला के टाइटिल पृष्ठ पर "सभा की अनुमति से बाबू रामलाल वर्म्मा द्वारा मुद्रित और प्रकाशित" छपा करेगा। (२) पुस्तकमाला की जैसी जिल्दें अब तक तैयार हुई हैं उनका मूल्य वे ज्यों का त्यों रक्खेंगे पर कपड़े की बढ़िया जिल्दों की कुछ प्रतियाँ भी वे तैयार करावेंगे और उस पर जो लागत आवेगी उतना मूल्य और बढ़ा लेंगे। (३) पुस्तकों के पहिले संस्करण के लिये वे सभा को कुछ पुरस्कार न दे सकेंगे। (४) जो पुस्तकें अब तक छप चुकी हैं उनके लिये भी सभा की वास्तविक लागत के अतिरिक्त वे सभा को और कोई पुरस्कार न दे सकेंगे। (५) प्रत्येक पुस्तक को वे यथासाध्य एक मास में प्रकाशित कर दिया करेंगे पर यदि छपाई आदि में देर हुई तो दो मास में वे उसे अवश्य निकाल देंगे।

निश्चय हुआ कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी से प्रार्थना की जाय कि वे इन शर्तों के सम्बन्ध में कृपापूर्वक अपनी सम्मति लिखें।

(३) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय का पोस्टकार्ड उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि इस वर्ष पश्न-पत्रों में क्या त्रुटियाँ थीं और परीक्षा-प्रबन्ध में क्या अभाव था। साथ ही बाबू जगन्मोहन वर्म्मा और मुंशी भगवानदीन की (जो यहाँ परीक्षा में निरीक्षक थे) यह सम्मति उपस्थित की गई कि कोई परचे बहुत लम्बे थे और कोई छोटे होने पर भी ऐसे थे कि उनके उत्तर के लिये दूने समय की आवश्यकता थी। परचे कठिन, जटिल और दुरूह न होने चाहिए और ऐसा मोडरेटर नियत होना चाहिए जिसका शिक्षा विभाग से सम्पर्क हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों की सम्मति सम्मेलन-कार्यालय को भेज दी जाय।

(४) बाबू रामजस अग्रवाल का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने "सनातन-धर्म भास्कर" नामक एक ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति भेजी थी और पूछा था कि सभा की सम्मति में वह छपवाने योग्य है अथवा नहीं।

निश्चय हुआ कि यह ग्रन्थ मत-मतान्तर से सम्बन्ध रखता है अतः सभा इसके विषय में कुछ सम्मति नहीं दे सकती।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि बाबू रामप्रसादलाल जो ३ मास के लिये क्लार्क के पद पर परीक्षार्थ नियत किए गए थे उनका कार्य संतोषजनक नहीं था अतः वे पदच्युत किए गए हैं और उनके स्थान पर पंडित गोविन्द देव परीक्षार्थ नियत किए गए हैं।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा।

शनिवार तारीख ३० अक्तूबर १९१५—संध्या के ५¾ बजे।

स्थान—सभाभवन।

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव तथा पंडित रामनारायण मिश्र के अनुमोदन पर बाबू श्रीप्रकाशजी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (तारीख २८ अगस्त १९१५) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबन्ध-कारिणी समिति के तारीख २४ जूलाई और २८ अगस्त के कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(४) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के आवेदनपत्र उपस्थित किए गएः—

१ बाबू सूरजबल विद्यार्थी—गवर्न्मेंण्ट हाई स्कूल—अजमेर

२ बाबू रामविलाससिंह—मधुवनी—दरभंगा १॥)

३ बाबू नैमीलालदेव वैद्य—शास्त्रीय औषधालय ग्राम नदपुरा—पे० सांई—पटना १॥)

४ पंडित पाटेश्वरीप्रसाद त्रिपाठी बी० ए०—ग्राम जमुनी—पे० शोहरतगंज बस्ती १॥)

५ बाबू विश्वेश्वरदयाल—असिस्टेण्ट मास्टर—बिहार स्कूल आफ़ इञ्जीनियरिंग—पो० महेन्द्रू—पटना ३)

६ बाबू बटुकप्रसाद—दालमंडी—बनारस १॥)

७ पंडित रामविशाल पाण्डेय—विजयराघवगढ़ १॥)

८ बाबू श्रीरमानन्द ठाकुर—मैथिल प्रिंटिंग वर्क्स—मधुबनी—दरभंगा १॥)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जायँ।

(५) डूंगरपुर के बाबू बालाप्रसाद का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि अब वे ३) रु० वार्षिक के स्थान पर १॥) रु० वार्षिक चन्दा देंगे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और इनका नाम जो २८ अगस्त १९१५ को काटा जा चुका है पुनः अधिकार-प्राप्त सभासदों की नामावली में लिख लिया जाय।

(६) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुएः—

१ पंडित विनायक गणेश साठे—रामपुर—बिजनौर

२ बाबू सांवलदास रस्तोगी—दिल्ली

३ पंडित द्वारका प्रसाद मास्टर तिवरी जबलपुर

४ पंडित रघुनाथ बलवन्त भागवत—लश्कर

५ बाबू घासीराम एम० ए०, वकील—मेरठ

६ कुंअर मोतीलाल जैन—ब्यावर

७ पंडित रोशनलाल चतुर्वेदी—हरदोई

८ पंडित द्वारकाप्रसाद ब्रह्मभट्ट—फ़र्रुखाबाद

(७) मंत्री ने सूचना दी कि निम्नलिखित सभासदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास उनके वार्षिक चन्दे के लिये जो पत्र भेजे गए थे वे अस्वीकृत हो कर लौट आए हैं:—

१ बाबू कुन्दनलाल भार्गव—बुलन्दशहर
२ लाला वासुदेवमल रामस्वरूप—बिजनौर
३ पंडित मदनगोपाल पुरोहित—कृष्णगढ़

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों को चन्दे के लिये पुनः पत्र भेजे जायँ।

(८) मंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी:—

१ बाबू गुरुशरणलाल—मुख़्तार—ग़ाज़ीपुर
२ पंडित देवीदत्त पांडे—अलमोड़ा
३ बाबू विश्वम्भरनाथ वकील—अमरोहा
४ बाबू अक्षयबर प्रसाद रईस—गोरखपुर
५ बाबू गिरिधरदास—बुलानाला—काशी
६ बाबू ऋषिलाल साहु, राजा का दरवाज़ा—काशी

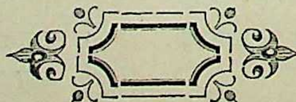
सभा ने इस पर शोक प्रकट किया।

(९) निश्चय हुआ कि षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिये सभा की ओर से निम्नलिखित सभासद प्रतिनिधि चुने जायँ,—पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, लाला मुन्शीरामजी, राय पूरनचन्द, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल बी०, बाबू गोपाललाल खत्री, पंडित कृष्णचन्द्र, बाबू वैष्णवदास बगाई, बाबू गोपीचन्द भार्गव, पंडित चेतराम शर्म्मा, पंडित विहारीलाल शास्त्री, राय मूलराज, रायसाहब रलाराम, राय रामशरणदास, बाबू लालचन्द, पंडित जगन्नाथ निरुक्तरत्न और पंडित जगन्नाथ पुच्छरत।

(१०) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं:—

साहित्य भूषणमंडली, काशी
सनेह सागर
ग्रन्थ प्रकाशक समिति, काशी
महात्मा टालस्टाय के लेख और पत्र
सत्यप्रकाश संन्यासी
ब्रह्मबोधिनी संध्या
पण्डित गंगाशंकर पंचोली, भरतपुर
कृषि विद्या भाग ४, ५
बाबू गोपाललाल खत्री, लखनऊ
हिन्दी-संगीत-संग्रह
बाबू बलदेवदास गुप्त, बहराइच
समस्यापूर्ति-पयोनिधि तरंग १, २ और ३
कुं० खड्गसिंह वर्म्मा, भरतुआ, अलीगढ़
हारमोनियम-दर्पण
खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त
लीलावती
बंगविजेता
हेमलता
जर्मनी के विधाता
स्वामी रामतीर्थ
स्वामी विवेकानन्द
अमेरिका भ्रमण

(११) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A 414 [संख्या ८

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

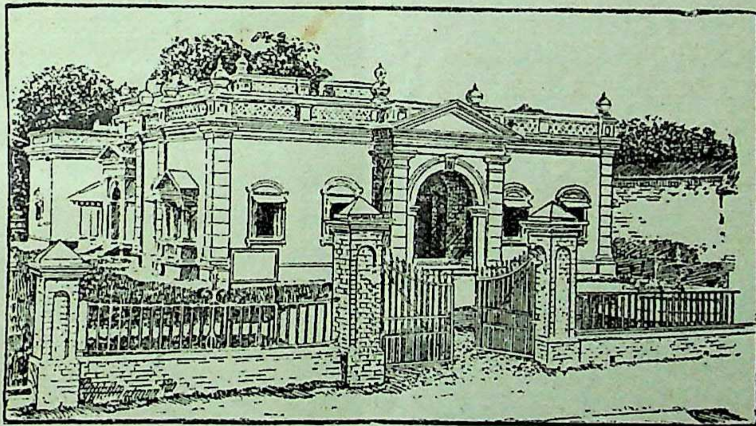
फरवरी, १९१६

सम्पादक—रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । विनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय-सूची।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित अम्बिकादत्त 'व्यास जी

कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये,

पताः—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

चित्रोंसे युक्त।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त ।]

लीजिये ! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है !—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक । तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २-), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दे० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य। शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये। नमूनेके लिये)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी।

पवित्र काश्मीरी केशर—दर्जे अव्वल ॥।=) तोला। शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला चीनी ममीरा २) तोला।

काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर। ७-१३-६-१४

भयंकर मार काट।

जर्मन जासूस	।-)	वीर वारांगना	।=)	हकीकतराय धर्मी	-)	कौशलकिशोर	१)
जर्मन युद्ध की कहानी	।)	हरीसिंह नलवह	≡)	छत्रपती शिवाजी	॥)	नीलवसना सुंदरी	१।)
राजपूतों की बहादुरी	॥।)	भोजपुर की ठगी	॥)	वीरनारी जया	॥)	नबाबनंदिनी (दो भाग)	१।)
भारत की प्राचीन झलक	२)	तांतिया भील	=)	तारामती	॥)	चोर सुलतान	१)
हल्दी घाटी की लड़ाई	=)	वीर हम्मीर	=)	नूरजहां	।)	रानाप्रताप नाटक	॥।)
राणा सांगा और बाबर	=)	झांसी की रानी	॥)	जयश्री वा वीरबालिका	।=)	अभिमन्यु नाटक	॥।)
मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	=)	वीर जयमल	।=)	दस महारानियाँ	।)	नारदमोह नाटक	≡)
राना प्रताप की वीरता	=)	जीवन सन्ध्या	॥।)	भीष्मपितामह	=)	थियेटर संगीत	≡)
सिखों का साहस	=)	बर्नियर की भारतयात्रा	२)	घटनाघटाटोप	१॥)	व्यापारतत्व	॥)
रानी पन्ना	।=)	सिखों के दस गुरु	॥)	बिकट बदलौअल	१)		

पता—मैनेजर—माणिक कार्यालय, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग २० | फरवरी, १९१६. | संख्या ८

वृक्षों के अंग।

[लेखक,—श्रीयुक्त बा० हरिप्रसादजी पालधि बी० ए०।]

नवम्बर महीने की पत्रिका में हमने एक लेख "वृक्षों पर जल-वायु का प्रभाव" शीर्षक लिखा था। उस लेख के अन्त में हमने यह लिखा था कि किसी दूसरे लेख में यह दिखलाया जायगा कि सिँचाई कैसे करनी चाहिए, वृक्ष कब लगाना चाहिए और अच्छे फल पैदा करने के लिये और क्या क्या यत्न करने चाहिए। उस लेख के पहले आज हम एक और लेख आप लोगों की सेवा में भेंट करते हैं। इस लेख के मुख्य उद्देश्य दो हैं। प्रथम तो यह कि आप लोगों को यह बतलाया जाय कि वृक्षों का कौन कौन सा अंश क्या काम करता है; क्योंकि बिना इन बातों को जाने हम विचार नहीं कर सकते कि किस क्रिया से क्या लाभ हो सकता है। दूसरा उद्देश्य यह है कि इसी लेख में उद्भिद सम्बन्धी पर्याय-वाचक शब्दों का भी जहाँ तक बन पड़े कुछ निरूपण कर दिया जाय। ऐसा करने से भविष्यत् के लेखों में पर्यायवाचक शब्दों की कठिनाई दूर हो जायगी। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक कोष में इस सम्बन्ध में अब तक कुछ नहीं किया गया है। इस कमी को पूरा करने का भी हम यथाक्षम प्रयत्न करेंगे। नए काम में त्रुटियाँ तो अवश्यम्भावी हैं, इसलिये सहृदय पाठकों से प्रार्थना है कि वे कृपा कर के त्रुटियों की मार्जना करें। और विज्ञ लोग भी यथा-सम्भव इसी मार्ग के पथिक बनें, जिससे हिन्दी-साहित्य में उद्भिद-शास्त्र-सम्बन्धी जो त्रुटियाँ हैं वह दूर हो जायँ।

आजकल हम लोग केवल नौकरी के पीछे दौड़ते फिरते हैं, यदि कृषि और वाणिज्य की ओर भी ध्यान दें तो हम लोगों को बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। प्राचीन अर्थ-नीतिज्ञों ने कहा है कि:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणिज्ये वसते लक्ष्मीस्तदर्द्धं कृषिकर्म्मणि ।
तदर्द्धं राजसेवायां भिक्षायां नैव नैव च ॥

वाणिज्य के लिये तो धन की आवश्यकता है और हमारा देश निर्धन है। यह देश सदा से कृषि-प्रधान रहा है; यद्यपि आजकल युरोप और अमेरिका-वाले हम लोगों से कृषि कार्य्य और वृक्ष-रोपण-प्रणाली में भी बहुत कुछ बढ़ गए हैं। कृषि और वृक्षारोपण का परस्पर बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है इसलिये कृषि का उल्लेख इस स्थान पर किया गया है। यदि कोई यह पूछे कि कृषि कार्य तो वैश्यों का है, ब्राह्मण क्षत्रिय इसको क्यों करें? तो इसका उत्तर यह है कि यदि आजकल के ब्राह्मण अपनी वृत्ति पर स्थिर रह सकें तो रहें। परन्तु जब कि यह देखा जा रहा है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय अपनी अपनी वृत्तियों पर स्थिर नहीं हैं, अधम वृत्तियाँ तथा सेवा-वृत्ति आदि भी करते हैं तो फिर कृषि और वाणिज्य के करने से क्या विशेष हानि हो सकती है। पर-लोक में चाहे कुछ भी हो, इस लोक में उन्नति होना तो स्वतःसिद्ध है ही।

परलोक में भी इससे हानि पहुँचने की कोई सम्भा-वना नहीं है। महर्षि पराशर ने कृषि सम्बन्धी विषयों पर एक संहिता लिखी है जिसमें यह लिखा है:—

षट्कर्म्मनिरतो विप्रः कृषिकर्म्माणि कारयेत्।

कृषि कार्य्य में कोई अपमान नहीं, वह पर-सेवा से अच्छा ही है। कवि ने कहा है—"पराधीन सुख सपनेहु नाहीं" इसलिये हमको चाहिए कि जागें और उद्भिद शास्त्र को पढ़ें और उससे यथासम्भव लाभ उठावें। वृक्षों के विषय में कहा गया है:—

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः ।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः ॥

और भी,—

क्रीड़ारामं तु यः कुर्या दुद्दाम फलसंयुतम् ।
सगच्छेच्छंकरपुरं वसेत्तत्र युगत्रयम् ॥

एतत्सर्वं परिज्ञाय वृक्षारोपं समारभेत् ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां द्रुमेभ्यः साधनं यतः ॥

यह तो हुई सामान्य वृक्षों के रोपण की प्रशंसा। फलदार वृक्षों के रोपण में और भी अधिक फल लिखा है। यथा—

पंचाम्रान्रोपयेद्यस्तु मार्गेषूपवनेषु च ।
भूतान्भविष्यान्पुरुषांस्तारयेत्स चतुर्दश ॥

केवल आम्र वृक्ष के रोपण ही का क्यों, कुल फलदार वृक्षों के रोपण का फल शास्त्रों में दिया हुआ है। यथा—

क्षीरिकाकदलीद्राक्षाप्रियालपनसान्वितान् ।
तरून्संरोपिणो दुःखी जायते सप्तजन्मसु ॥

कृषि और वृक्षारोपण की उपयोगिता पर ध्यान दो और उद्भिद शास्त्र को अपने अपने ज्ञान और अनुसन्धानानुसार हिन्दी में प्रकाश कर के परोप-कार करो। विना इस शास्त्र को जाने न तो कृषि में कोई उन्नति की जा सकती है और न बारी बगीचे के लगाने में। अलमिति विस्तरेण।

अधिकांश वृक्ष बीज से उत्पन्न होते हैं इसलिये पहले बीज ही पर विचार किया जाता है। यदि किसी बीज को उसकी लम्बाई की ओर से काटा जाय तो जान पड़ेगा कि वह किसी कठिन वस्तु से घिरा हुआ है, यथा आम, बादाम इत्यादि; अथवा किसी चिमड़े आवरण से ढका हुआ है, यथा कटहल, बड़हल, चना, मटर इत्यादि। इस आवरण को अँगरेजी में टेस्टा (Testa) कहते हैं, जिसको हिन्दी भाषा में बीजावरण वा बीजत्वक् कहा जा सकता है। बीजावरण के हटाने पर यह देखा जायगा कि बीज दो दलों से बना हुआ है। किसी किसी जाति के वृक्षों के बीज में एक ही दल होता है। यदि इन दो दलों को खोल दिया जाय तो इनके सन्धि-स्थान पर भावी वृक्ष प्रारम्भिक (Rudimen-tary) अवस्था में देख पड़ेगा। अणुवीक्षण यंत्र से देखने से यह भी ज्ञात हो जायगा कि इस प्रारम्भिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष के दो भाग हैं। एक तो वह है जो भविष्यत् में बढ़ कर वृक्ष का रूप धारण करेगा। इस भाग को हम स्कन्धांकुर कहेंगे और इसका अँगरेज़ी नाम प्लूम्यूल (Plumule) है। दूसरे भाग को हम मूलांकुर कहेंगे। यह वह भाग है जो बढ़ कर भावी वृक्ष का मूल बनेगा। इसका अँगरेज़ी नाम राडिकिल (Radicle) है।

प्रत्येक बीज के एक स्थान पर एक चिह्न देख पड़ेगा। यह वह स्थान है जहाँ बीज अपने कोष से संलग्न था। इसी स्थान से वृक्ष का अंकुर निकलता है, इसलिये इस स्थान को आँख वा अक्ष कह सकते हैं। अँगरेज़ी में इस स्थान का नाम हाइलम् (Hilum) है। किसी विद्वान् ने हाइलम् का अनुवाद बीजक्षत किया है। हमने इस शब्द को इसलिये ग्रहण नहीं किया कि किसान भी बीज के अँखुए को जानते हैं, इसलिये उसे आँख ही कहना ठीक है। जब बीज अपने कोष से पृथक् हुआ तो उसके उस स्थान पर क्षत हुआ जहाँ पर कि वह कोष से लगा था। और यह चिह्न उसी क्षत का चिह्न है। इसी लिये किसी ने उसको बीज-क्षत कहा है। अस्तु। इसी आँख के एक पार्श्व में एक अति क्षुद्र छिद्र होता है। उदाहरण स्वरूप मटर के एक दाने को कुछ देर तक जल में भिगो रखिए और जब वह भीग कर फूल जाय तो दो अँगुलियों से उसको धीरे धीरे दबाइए तो ऊपर लिखे हुए छिद्र में से जल का एक क्षुद्र बिन्दु निकलता हुआ देख पड़ेगा। इस छिद्र का नाम हम अक्षरंध्र रखते हैं, जिसको अँगरेजी में माइक्रोपाइल (Micropyle) कहते हैं। इसी छिद्र की राह से बढ़ कर मूलांकुर बाहर आता है।

बीज के ऊपर का आवरण केवल उसकी रक्षा के निमित्त है। मूलांकुर और स्कन्धांकुर प्रारम्भिक अवस्था में सजीव वृक्ष होते हैं परन्तु निद्रित अवस्था में रहते हैं, और जब तक वह नहीं जागते तब तक उनके बढ़ने की क्रिया रुकी रहती है। जिन दलों में यह अंकुर रहते हैं वे प्रारम्भिक वृक्ष का भोजन हैं। सद्यः जागृत बीजांकुर इस योग्य नहीं होता कि वह बाहर से अपना भोजन ले सके, इसी लिये परमेश्वर ने अंकुर के साथ ही साथ बीज में उसका उपयुक्त आहार जमा कर दिया है। यदि बीज अच्छा हुआ तो उस बीज-स्थित वृक्ष के बढ़ने के लिये उसमें पर्याप्त आहार उपस्थित रहता है और ऐसे बीज से उत्पन्न हुआ वृक्ष प्रथम ही से सतेज हो कर बढ़ता है।

हमारे देश के किसान बीज की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, जैसा तैसा बीज बो देते हैं; चाहे बीज घुने हों चाहे छोटे हों, उनको इसकी परवा नहीं होती। यदि उनसे कहिए कि ऐसा क्यों करते हो तो उत्तर देते हैं कि घुना है तो क्या, आँख तो है; बीज छोटा है तो क्या, जम तो जायगा। यदि बीज जम गया तो वह सन्तुष्ट हो गए; परन्तु यह न समझा कि जिस नव-प्रसूत वा नवोद्भव पौधे को पर्याप्त परिमाण में भोजन नहीं मिला वह पुष्ट कैसे हो सकता है। दूध-टूटा बालक सदा के लिये निर्जीव ही रहता है। इसी भाँति निकृष्ट बीज से जन्मा हुआ पौधा भी सदा निर्जीव ही रहेगा और तरह तरह की व्याधियाँ ऐसे ही बीज से प्रसूत पौधों को मार देती हैं। इसलिये हमको चाहिए कि ईश्वर के नियमों पर ध्यान रख के काम करें। जब ईश्वर की यही इच्छा है कि नव-प्रसूत पौधे को आहार पहले बीज ही से मिले तो हम क्यों न इस बात का ध्यान रखें कि जिस बीज में अधिकतर आहार हो वही बोया जाय। यह बात केवल पुष्ट और अक्षत बीजों ही में हो सकती है। इसलिये हमको चाहिए कि भावी खेती के लिये पुष्ट दाने छाँट कर रखा करें अथवा वृक्षोत्पादन के लिये सुपुष्ट फलों के नीरोग बीज काम में लावें। बीज को ऐसे स्थान में इस भाँति रखें कि वह सजीव रहे और निस्तेज न हो जाय। कृषि तथा वृक्षोत्पादन में उन्नति करने का यही प्रथम सोपान है। उत्तम से उत्तम बीज को अच्छी मिट्टी में अच्छी तरह से जोत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उपयुक्त समय में बोने से अभिलाषानुसार फल मिल सकता है, अन्यथा नहीं।

हमको यह देखना है कि बीज कैसे जमता है। बोया हुआ बीज मिट्टी में से जल और वायु का आकर्षण कर के फूल उठता है, जिसके कारण बीजावरण फट जाता है और अंकुर के निकलने के लिये पथ मिल जाता है। यह केवल भौतिक परिवर्तन (Physical change) है। साथ ही साथ बीज में रासायनिक परिवर्त्तन भी होता रहता है, अर्थात् बीज-स्थित आल्ब्यूमन् (albumen) जिसको हिन्दी में सफ़ेदी कह सकते हैं, रासायनिक प्रक्रिया से चीनी, चर्बी (fat) और स्टार्च (starch) में जिसको हिन्दी में श्वेतसार (माँड़) कह सकते हैं, परिवर्त्तित हो जाता है। इस परिवर्त्तन के लिये केवल जल, वायु और थोड़े से उत्ताप की आवश्यकता है। परिवर्त्तन के साथ ही साथ ऐसा कहना चाहिए कि बीज-स्थित अंकुर भी जाग उठता है, परिवर्त्तित पदार्थों को जल की सहायता से चूसने लगता है और साथ ही साथ बढ़ने भी लगता है। इस परिवर्त्तन के लिये सूर्य की रोशनी की आवश्यकता नहीं, उसके लिये अन्धकार ही अधिक उपयोगी है। स्कन्धांकुर बढ़ कर आलोक की ओर चलता है, मूलांकुर मिट्टी में धँसने लगता है और यह नवजात वृक्ष धीरे धीरे वायु और मिट्टी से भोजन खींचने के योग्य हो जाता है। जो भाग मिट्टी फोड़ कर बाहर निकलता है वह वृक्ष का भावी स्कन्ध है, इसकी चोटी पर छोटे छोटे पत्ते होते हैं। इसके अनन्तर यह वृक्ष केवल मिट्टी और वायु से भोजन खींचता है, जैसे कि बालक पहले माता के दुग्ध से पल कर बाद में अन्नादिक भोजन करने में समर्थ हो जाता है और फिर माता से स्वाधीन हो जाता है।

ऊपर लिखी हुई बातों में से कई विशेष ध्यान देने के योग्य हैं। वे यह हैं,—बीज को जमने के लिये जल वायु तथा उत्ताप की आवश्यकता है। यदि बीज अँधेरे में हो तो उत्तम है। इसलिये क्रिया में हमको चाहिए कि बीज को बोने के अनन्तर मिट्टी से ढँक दें। जिस मिट्टी से बीज ढँका जाय वह पोली हो, नहीं तो वायु का संयोग बीज के साथ नहीं हो सकेगा और न नवोद्भूत अंकुर ही बैठी हुई मिट्टी को फोड़ कर बाहर निकल सकेगा। जब तक वायु का समागम न हो तब तक बीज स्थित सफ़ेदी (albumen) चीनी इत्यादि में परिवर्तित नहीं हो सकती। इस परिवर्त्तन के समय बीज वायु से अम्लजन (oxygen) ले कर कार्ब्बोनिक एसिड छोड़ता है। यह क्रिया जीवों की श्वास-क्रिया के सदृश है और इस क्रिया का नाम श्वासन रक्खा जा सकता है। अँगरेज़ी में इस क्रिया को रेसपिरेशन (respiration) कहते हैं।

मिट्टी एक दम सूखी न हो, नहीं तो बीज मिट्टी से जल का आकर्षण न कर सकेगा। यहाँ यह भी लिखना आवश्यक है कि मोटे चमड़ेवाले बीजों को यदि बोने के पहले भिगा रखें और फिर बोएं तो वह जल्दी उगेंगे और मिट्टी में यदि जल की कुछ कमी भी होगी तो वे न मरेंगे। हमारे देश के किसान भी खरबूज़े के बीज को कई दिनों तक पानी में भिगो रखते हैं और फिर बोते हैं।

मिट्टी में कुछ उत्ताप भी रहना चाहिए नहीं तो बीज न जमेगा। यही कारण है कि ठंढी मिट्टी में और जाड़े की ऋतु में बीज अच्छी तरह से नहीं जमता।

ग्रीष्म ऋतु के अवसान होने पर जब वृष्टि आरम्भ हो जाती है तब किसान एक दम बरसाती खेती का काम प्रारम्भ कर देते हैं; इसका कारण केवल यही है कि अधिक वृष्टि से मिट्टी ठंढी न हो जाय। हम लोगों को यह भी चाहिए कि इसका ध्यान रखें कि जब बीजांकुर एक बार जागृत हो जाय तो उसको आहार मिलने में फिर कोई व्याघात न हो। यत्नपूर्वक रखने से बीज कई साल तक सजीव रह सकता है, परन्तु जागने के बाद यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको भोजन न मिले तो क्षण भर भी वह जीवित नहीं रह सकता। इसी लिये बीज को शुष्क तथा ठंढे स्थान में रखना चाहिए, नहीं तो वह वायु से जलीय भाग आकर्षण कर के और वायु-स्थित उत्ताप से जाग उठेगा। परन्तु उस बीज को इतना जल भी न मिलेगा कि उसमें रासायनिक परिवर्तन हो सके; इसलिये वह जाग्रत अंकुर बीज-स्थित भोजन से कुछ लाभ न उठा सकेगा और भूखा मर जायगा। बीज को ऐसे गरम स्थान में भी न रखना चाहिए कि वह गरमी से झुलस कर मर जाय। जाड़े के अन्त में चैती खेती का काम केवल इसी लिये किया जाता है कि वासन्ती हवा में कुछ उत्ताप उत्पन्न हो जाय और वह बीज को जगा सके।

यदि हम किसी चीज़ को समय से पहले उत्पन्न करना चाहें तो ऊपर लिखे हुए तत्वों पर ध्यान दे कर काम करने से सफल हो सकते हैं। इस देश के बुद्धिमान् काछी लोग भी परम्परागत ज्ञान से कुछ लाभ उठाते हैं। यथा कर्त्तिक मास में कुम्हड़े, कद्दू, करेले इत्यादि के बीज बो देते हैं। उस काल में इतना उत्ताप रहता है कि बीज अंकुरित हो जाय और कुछ बढ़ भी जाय। दो चार पत्तियाँ दे कर इस भाँति बोए हुए पौधे ठिठुरे रहते हैं। वसन्त के आगमन पर वे एक दम बढ़ने लगते हैं और अति शीघ्र फल दे देते हैं। परन्तु जो किसान आलसी हैं और तीन महीने तक इन पौधों की सेवा नहीं करना चाहते वे माघ में बीज बोते हैं। काछियों को चैत में फल मिलने लगता है और आलसी किसानों को बैसाख के अन्त में। हम लोग जाड़े में भी बीज बो कर फसल उत्पन्न कर सकते हैं, हमको केवल बीज में उत्ताप पहुँचाने का प्रबन्ध करना पड़ेगा। युरोप और अमेरिका में इस काम के लिये हाट बेड (hot bed) बनाया जाता है जो केवल लकड़ी का एक छिछला बकस होता है। उसमें छः सात इँच मिट्टी भर कर बीज बो दिया जाता है और बकस के नीचे से गरमी पहुँचाने का प्रबन्ध किया जाता है। उद्देश्य केवल इतना ही होता है कि बकस में की मिट्टी सदा उतने उत्ताप की बनी रहे जितने उत्ताप की वसन्त ऋतु में हुआ करती है। ऐसे बकसों में बीजों के जम आने पर जब वे इस योग्य हो जायँ कि खेतों में लगाए जा सकें तो वे बाहर निकाल कर बोए जा सकते हैं। इस क्रिया से ककड़ी आदि अपने स्वाभाविक समय से एक महीने पहले उत्पन्न की जा सकती हैं। प्राकृतिक नियमों को समझने से मनुष्य बहुत कुछ हेर फेर कर सकता और लाभ उठा सकता है।

अब हम पाठकों को यह बतलावेंगे कि सामान्यतः वृक्ष अपना भोजन कैसे पाते हैं। हम पहले वृक्षों के मूल की ओर ध्यान देंगे। बीज से निकला हुआ मूल सीधे नीचे की ओर घुसता है। कुछ दूर घुसने के अनन्तर उसमें से शाखा, मूल आदि निकलने लगते हैं और भोजन की खोज में इधर उधर फैलते हैं। जैसे स्कन्ध से डालियाँ निकलती हैं वैसे ही मूल से शाखा-मूल निकलते हैं; अन्तर केवल इतना ही है कि मूल में पत्रांकुर नहीं होता। असली मूल को मुसला कहते हैं और उसमें से जो छोटे छोटे दूसरे मूल निकलते हैं उनको शाखा-मूल कह सकते हैं; और जो मूल सूत की तरह सूक्ष्म होते हैं उनको तन्तु-मूल कह सकते हैं। इन्हीं तन्तु-मूलों से वृक्ष मिट्टी में से भोजन खींचता है।

वृक्षों की नव-प्रसूत शाखाओं का रंग हरिद्वर्ण होता है परन्तु इसके विपरीत मूल का रंग श्वेत होता है; पुराना होने पर भूरे, काले, लाल अथवा पीले रङ्ग का भी हो सकता है परन्तु हरिद्वर्ण का नहीं हो सकता। हरियाली तो तभी आती है जब रश्मि का संयोग वृक्ष के किसी भाग से हो। मूल से सूर्य की रश्मि का संयोग नहीं होता इसलिये उसमें हरियाली भी नहीं आती।

एक तन्तु-मूल को निकाल कर अणुवीक्षण यंत्र से देखिए तो उसका अग्र भाग एक आच्छादन से ढँका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ देख पड़ेगा। इस आच्छादन को हम कोष अथवा मूलाग्रकोष कह सकते हैं। इस कोष का काम केवल इतना ही है कि मूलाग्र को मिट्टी पत्थर आदि की रगड़ से बचावे। बाहर की ओर से यह कोष घिसता रहता है और भीतर से नया बनता जाता है।

किसी छोटे से पौधे को जड़ से उखाड़ लीजिए, कुछ देर के बाद वह मुरझा जायगा। कारण क्या है? उत्तर देने के पहले आप यह प्रयोग कीजिए। उस पौधे की जड़ को कुछ देर तक पानी में डुबा रखिए, यदि वह एक दम मर न गया होगा तो फिर सतेज हो जायगा और मुरझाई हुई पत्तियाँ फिर खड़ी हो जायँगी। इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि पौधे में जो जलीय भाग था उसके निकल जाने से पौधा मुरझा गया था, जब उसने फिर जल खींच लिया तब सतेज हो गया। यह भी सिद्ध हुआ कि जड़ में यह क्षमता है कि वह जल खींच ले। इस क्रिया को हम आकर्षण वा मूल की आकर्षिका शक्ति कह सकते हैं। अँगरेज़ी में इसको अबसोरप्शन् (absorption) कहते हैं। इस सम्बन्ध में एक और प्रयोग कीजिए। एक दूसरे मुरझाए हुए पौधे की डालियों और पत्तियों का कुछ अंश थोड़ी देर तक पानी में डुबा रखिए, आप देखेंगे कि यद्यपि पत्तियों ने कुछ पानी सोख लिया है परन्तु मुरझाया हुआ वृक्ष सतेज नहीं हुआ। पत्तियों का पानी सोखना उसी प्रकार की क्रिया है जैसी कि निर्जीव कपड़े को पानी में डालने से उसके पानी खींच लेने की क्रिया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जड़ ही में यह क्षमता है कि वह पानी खींच कर वृक्ष के सब अवयवों में पहुँचावे। पानी के साथ ही साथ उसमें घुली हुई वस्तुओं को भी मूलाग्र खींच कर वृक्ष को भोजन पहुँचाता है।

किसी वृक्ष से दो चार डंठीवाली पत्तियाँ तोड़िए और एक गिलास में पानी भर कर उसके मुँह को एक पतली तखती अथवा काग़ज की दफती से ढाँक दीजिए, और इस दफती में दो चार ऐसे छिद्र कीजिए जिनमें से उन पत्तियों की डंठियाँ भीतर घुस कर पानी में डूबी रहें। इस गिलास को धूप में रख दीजिए और एक दूसरे गिलास को उलट कर उस दफती पर इस भाँति रखिए कि पत्तियाँ ढँक जायँ। दो चार मिनट के बाद आप देखेंगे कि ऊपरवाले गिलास में पानी की भाफ़ ने लग कर उसको धुँधला कर दिया है। इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि पत्तियाँ वृक्षस्थित रस को खींच कर हवा में निकाल देती हैं। इस क्रिया को हम अपकर्षण कह सकते हैं, यह मूल की आकर्षण क्रिया से विपरीत क्रिया है। अँगरेज़ी में इसका नाम ट्रान्सपिरेशन् (transpiration) है। यह अपकर्षण-क्रिया वृक्ष के सब अवयवों से होती रहती है, परन्तु सब से अधिक यह काम पत्र ही से होता है। अब हम यह दिखावेंगे कि इस क्रिया से वृक्षों को क्या लाभ होता है। यदि अपकर्षण क्रिया जारी न रहे तो मूल मिट्टी से जल का आकर्षण ही न करेगा, जिसका फल यह होगा कि जल के साथ जो भोजन वृक्ष को मिलता था वह भी बन्द हो जायगा और वृक्ष की बाढ़ रुक जायगी। ईश्वर ने इसी लिये यह नियम बना दिया है कि एक ओर से मूल पानी खींचता जाय और उस जल के साथ जो भोजन वृक्ष को पहुँचे उससे वह लाभ उठावे, और दूसरी ओर से निथरा हुआ जल पत्तियों के मार्ग से हवा में जाता रहे। यह हुई पत्तियों की एक क्रिया। दूसरी बड़ी भारी क्रिया यह है कि वह सूर्य की रश्मि के संयोग से वायु-स्थित कार्बोनिक एसिड गैस (कर्ब्वनद्वम्लजिद् गैस) को खींच कर दो भागों में विश्लेषण कर देती है। वह कार्बन को स्वयं ग्रहण कर अम्लजन (आक्सिजन) को वायु में छोड़ देती है। इस क्रिया का नाम संयोजन कहा जा सकता है और अँगरेज़ी में इसको एसीमिलेशन् (assimilation) कहते हैं। यही कार्बन, अम्लजन, उज्जन (हाइड्रोजन), नत्रजन (नाइट्रोजन) और लवणाक्त तथा क्षार पदार्थों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल कर वृक्ष का सर्वावयव बनाते हैं। इनमें से कुल कार्बन और अधिकांश नत्रजन को पत्तियाँ वायु से खींचती हैं और अधिकांश जलीय भाग मूल मिट्टी से खींचता है और उसी के साथ साथ लवणाक्त और क्षार पदार्थ भी मिट्टी से पाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वृक्षों की जड़ और उनकी पत्तियाँ वृक्षों का पोषणांग हैं। वृक्षों की जड़ों का एक और काम यह है कि वह मिट्टी को पकड़ कर वृक्षों को सीधा खड़ा रखती हैं।

मूल से ले कर जहाँ तक पहली शाखा फूटे वहाँ तक का नाम वृक्ष-स्कन्ध अथवा स्कन्ध है। इस भाग का नाम प्रकाण्ड भी है। अँगरेज़ी में इसको ट्रङ्क (trunk) कहते हैं। स्कन्ध और शाखा-प्रशाखाएं केवल वृक्ष के भोजन की वाहक हैं और उनका यह भी काम है कि पत्र, पुष्प और फल का बोझ उठावें। वृक्षों की मोटी शाखा को कांड और सब से छोटी शाखा को अग्रशाखा कहते हैं।

हम पाठकों का ध्यान फिर उस सद्योजात वृक्ष की ओर दिलावेंगे। सद्योजात प्रकाण्ड वा स्कन्ध अभी डंठी के रूप में ही होता है, यद्यपि वह वृक्ष-स्कन्ध है और नई डंठियाँ एक पत्र और पुरानी डंठी के संयोग-स्थान से निकलती हैं। इस संयोग-स्थान को अँगरेज़ी में नोड कहते हैं। हिन्दी में हम इस स्थान को नोड, पत्र-सन्धि अथवा पत्र-ग्रन्थि कह सकते हैं। उस कोण को जो कि पत्र उस डंठी के साथ बनाता है हम पत्र-सन्धि-कोण कहेंगे। ऐसी ही सन्धियों से शाखाएं और प्रशाखाएं निकलती हैं। अँगरेज़ी में इस कोण का नाम एक्षिल (axil) है। बहुत सी पत्तियों में भी डण्ठी होती है और फूल भी डण्ठियों से लगे होते हैं और इन विशेष प्रकार की डंठियों के लिये अँगरेज़ी में पृथक् पृथक् शब्द व्यवहार किए जाते हैं। यथा पत्र-डंठी को पेटियोल और पुष्प-डंठी को पिंडकल् कहते हैं। हिन्दी में इनके लिये पृथक् पृथक् नामों की कोई आवश्यकता नहीं है; यदि नाम रखना ही हो तो पत्र-डंठी को बोंट और पुष्प-डंठी को वृन्त कह सकते हैं। यह दोनों संस्कृत शब्द एक ही पर्य्याय के हैं।

(शेष आगे।)

—:o:—

सेन वंश का आदिम स्थान *।

[अनुवादक,—बाबू नवलकिशोर, काशी।]

मिस्टर विन्सेन्ट ए० स्मिथ "Early History of India" के तीसरे संस्करण में लिखते हैं—"सेन वंश का आदिम स्थान ओड़ीसा की मातहत रियासतों (जिन में जिला मेदनीपुर भी सम्मिलित है) के बिलकुल उत्तर मयूरभञ्ज नामक राजधानी में सुवर्णरेखा रदी के तट पर काशीपुरी में था, जो आजकल कसियारी नाम से प्रसिद्ध है।" इस की पुष्टि नगेंद्रनाथ बसु के Archæological Survey of Mayurbhanj की रिपोर्ट से इस प्रकार होती है—

"हमने बंगाल की 'पाश्चात्य वैदिक' वंशावली के इतिहास में, जो ताड़ के पत्तों पर तीन सौ वर्ष पहले का लिखा हुआ था, यह लिखा पाया कि सेन लोगों का राजवंश सुवर्णरेखा नदो के किनारे काशीपुरी में राज्य करता था। इस स्थान के विजयसेन नामक एक राजा के दो पुत्र हुए थे, उनमें से बड़े का नाम मल्ल और छोटे का नाम श्यामल था। श्यामल ने पूर्वी बंगाल को विजय कर के अपने राज्य में मिलाया और विक्रमपुर नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया। पाश्चात्य कुलमंजरी के अनुसार श्यामल वर्म्मा का शासन शाके ९९४

* इंडियन एंटिकेरी में प्रकाशित श्रीयुक्त एस० कुमार के एक लेख के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सन् १०७२) से प्रारम्भ हुआ था। इसमें कुछ संदेह नहीं कि प्राचीन नाम काशीपुरी ही बिगड़ कर आजकल कसियारी हो गया है।"

मिस्टर स्मिथ लिखते हैं कि नाम के विषय में मैं कोई प्रमाण दृढ़ता-पूर्वक नहीं उपस्थित कर सकता; इस समय केवल इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सेन राजवंश का आदिम स्थान काशीपुरी वा कसियारी था। विजयसेन के राजकुमार के लिये सन् १०७२ बहुत पूर्व का समय मालूम होता है। पाद-टिप्पणी में मि० स्मिथ लिखते हैं—"यह समझना सहज नहीं है कि काशीपुरी से किस प्रकार बिगड़ कर कसियारी नाम हो गया। काशीपुरी से काशीवारी हो गया होगा और फिर उससे बिगड़ कर कसियारी हो गया होगा। नगर का नाम तारनाथ के चार सेनों में दूसरे काशसेन से निकला हुआ जान पड़ता है। तारनाथ या तो हेमंतसेन को कह सकते हैं और या विजयसेन को; पर सम्भवतः विजयसेन को ही कह सकते हैं जिनका नाम काशीपुरी से विशेष संबद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि "सेन राज-वंश सुवर्णरेखा नदी के तट पर काशीपुरी में राज्य करता था" नगेंद्रनाथ बसु ने बंगाल की पाश्चात्य वैदिक जाति की वंश-परंपरा के इतिहास में यह लिखा पाया था। यह इतिहास ताड़ के पत्तों पर लिखा हुआ है और बसु महाशय का कथन है कि यह ३०० वर्ष का पुराना है।

अब उक्त ताड़ के पत्तोंवाले लेख पर ऐतिहासिक दृष्टि डालनी चाहिए जिस पर बसु महाशय का इतना भरोसा है। उक्त लेख में निम्न-लिखित विवरण दिया गयाहै :—

श्यामल वर्म्मा नामक एक राजा शाकुनस्त्र नामक यज्ञ करने के निमित्त कर्णावती से कई साग्निक ब्राह्मणों को ले आया। इस राजा का बड़ा भाई 'मल्ल वर्म्मा' कहलाता था। यह दोनों वर्म्मा विजयसेन के पुत्र कहे जाते थे। और बसु महाशय दूसरी वंशावली के इतिहास से यह बात दिखाते हैं कि उक्त विजयसेन ने गौड़ देश को विजय किया था और वह बहुत विख्यात राजा बाल सेन का पिता था। पर बसु महाशय ने आगे चल कर कदाचित् इस सिद्धत का पालन नहीं किया कि विजयसेन ने गौड़ देशों का विजय किया था। क्योंकी ऐसा न करने से वह अपने पिछले लेख में इस बात को नहीं कह सकते थे कि श्यामल वर्म्मा बंगाल देश का पहला राजा था।

एक ताम्रपत्र बेलाबो में पाया गया है जिसे भोज वर्म्मा ने लिखवाया था और जो एशियाटिक सोसायटी के जरनल और एपिग्राफिका इण्डिका में प्रकाशित हो चुका है। इस ताम्रपत्र से कई नई बातें मालूम हुई हैं और वर्म्मा लोगों का नया वंश-वृक्ष विदित हुआ है। इसके अनुसार भोज वर्म्मा की वंशावली निम्न-लिखित प्रकार से है—

वज्र वर्म्मा
|
जात वर्म्मा
|
सामल वर्म्मा
|
भोज वर्म्मा

इसमें भोज वर्म्मा का पिता सामल वर्म्मा पाया जाता है, जिसे संभवतः श्यामल वर्म्मा कहना चाहिए। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि वज्र वर्म्मा और उनके उत्तर वंशज चंद्रवंश के यादवों से संबंध रखते थे।

इससे यह नहीं विदित होता कि श्यामल वर्म्मा किसी प्रकार से बंगाल के सेनों से संबद्ध थे। उनके पिता का नाम जात धर्म्मा था और उन्होंने कलचुरि-चेदि वंश के कर्णदेव को परास्त कर के उसकी कन्या से विवाह किया था।

इस लेख के पाए जाने पर मि० बसु के लिये निम्न-लिखित दो बातों में से एक माननीय हुई—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) यह श्यामल वर्म्मा उस श्यामल वर्म्मा से जो पाश्चात्य वैदिक वंशावली के इतिहास में वर्णित है, कोई भिन्न व्यक्ति है।

(२) दोनों श्यामल वर्म्मा एक ही व्यक्ति हैं।

बसु महाशय ने पिछली बात मानी। ऐसा करने में उन्हें इसके विरुद्ध यह विदित हुआ कि वह उस लेख के ताड़ के पत्तों पर लिखे हुए तीन सौ वर्ष पुराने होने को आगे चल कर प्रमाणित नहीं रख सकते और उसके पुराने होने ही की बुनियाद पर मि० बसु ने श्यामल वर्म्मा के वंश के आठ वर्ष पहले के लेख को ठीक समझा था। किसी बंगाली पत्रिका की एक टिप्पणी में बसु महाशय ने स्वीकार किया है कि कुल-पंजिका के भोज वर्म्मा के पिता श्यामल वर्म्मा थे। परन्तु तब भी वह कुल शास्त्र के कथनानुसार अपने उस विचार को कि श्यामल वर्म्मा विजयसेन के वंश से था, अधिक सत्य मानते हैं। और अपने कथन की पुष्टि में बसु महाशय का कथन है कि मुझे कुल-पंजिका में श्यामलवर्म्मा के लिखवाए हुए किसी ताम्रपत्र की नकल मिली है तथा वह कुल-पंजिका उन्हीं के अधिकार में है। इस ताम्रपत्र की नकल से उद्धृत करते हुए बसु महाशय यह मानते हैं कि यह उसी प्रकार का है जैसा कि विश्वरूप सेन का; परन्तु ठीक ठीक जाँच करने पर ताम्रपत्र का लेख अधिक सत्य नहीं प्रतीत होता। मुझे विश्वास है कि किसी चतुर ब्राह्मण ने स्वार्थ-वश यह जालसाज़ी की है। इस मिले हुए नष्ट लेख से जो कुछ मि० बसु ने निश्चय किया है वह वैज्ञानिक दलीलों के सामने नहीं ठहर सकता। बसु महाशय इस लेख को विश्वरूपसेन का सा जानते हैं पर यह ठीक उसी की नकल है और उसमें बहुत कम भिन्नता है जिससे वह सत्य नहीं कहा जा सकता। मि० बसु के शब्द ये हैं—"वे दोनों एक ही प्रकार से लिखे हुए हैं।" इन शब्दों से यह नहीं पता चल सकता कि दोनों में कौन असली है? दूसरे ताम्र-लेख में सेन-वंश-कुल-कमल के स्थान में वर्म्मा-वंश-कुल-कमल और असली नाम विश्वरूप सेन के स्थान में श्यामल वर्म्मा लिखा हुआ है। यहाँ पर यह प्रमाण विश्वसनीय नहीं हो सकता क्योंकि इसकी मिति संदेह-युक्त मालूम होती है। इस सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि ताम्रपत्र के लेख की नकल के शब्दों से ही कोई निश्चित सिद्धांत स्थिर नहीं कर सकते; क्योंकि इस दशा में किसी प्रकार की दलील लेख के विषय में करना असंभव है। किसी लेख के सत्य होने में ताम्र-पत्र पर खुदे हुए शब्द सच्चे प्रमाण हैं। यदि कोई लेख इस जाँच में नहीं ठहरता हो तो उसे असत्य वा जाल समझना ही उचित है और वह इस योग्य नहीं कहा जा सकता कि उसे कोई प्रमाण स्वरूप उपस्थित करे।

बसु महाशय इस बात को स्वीकार करते हैं कि वह लेख जिस पर वह अपने श्यामल वर्म्मा के वंश-विचार को अवलंबित करते हैं, केवल नकल है और उसमें बहुत सी ग़लतियाँ भरी हुई हैं क्योंकि हिन्दुस्तान में नकल का पेशा करनेवाले पूर्ण विद्वान न होने के कारण बहुत सी अशुद्धियाँ कर जाते हैं। उक्त लेख से बसु महाशय द्वारा उद्धृत निम्नलिखित श्लोक हैं—

त्रिविक्रम महाराज-सेनवंशसमुद्भवः।
आसीत्परम धर्म्मज्ञः काशीपुरसमीपतः॥
स्वर्णरेखा नदी यत्र स्वर्णयंत्रमयी शुभा।
स्वर्गंगासलिलैः पूता सल्लोकजनतारिणी॥
असौ तत्र महीपाल मालत्यां नामतः स्त्रियाम्।
आत्मजं जनयामास नाम्ना विजयासेनकम्॥
आसीत् स एव राजा च तत्र पुर्यां महामतिः।
पत्नी तस्य विलोला च पूर्ण-चंद्र-समद्युतिः॥
स्त्रियां तस्यां हि पुत्रौ द्वौ मल्लश्यामलवर्म्मकौ।
स एव जनयामास श्रौणि रत्न कराबुभौ॥
मल्लस्तत्रैव प्रथितः श्यामलोऽत्रसमागतः।
जेतुं शत्रुगणान् सर्वान् गौड़देशनिवासिनः॥
विजित्य रिपुशार्दूलं वंगदेशनिवासिनः।
राजासीत् परमधर्मज्ञो नाम्नाश्यामलवर्म्मकः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये श्लोक मि० बसु के विचारों के आधार हैं। इनसे मालूम होता है कि सेनों में विजयसेन आत्मज त्रिविक्रम के दो पुत्र थे, मल्ल और श्यामल। मल्ल अपने घर पर ही सुवर्णरेखा नदी के किनारे पर रहा और श्यामल गौड़ देश में गया और बंगाल में उसने एक राज्य की स्थापना की। उक्त लेख स्वयं ही बंगाल के इतिहास की घटनाओं के विरुद्ध है। हम इस मौके पर मि० बसु के द्वारा ही संपादित दान-सागर से कुछ दलीलें पेश करना चाहते हैं। उसमें लिखा है—

'तदनु विजयसेनः प्रादुरासीत्वरेंद्रे"

अर्थात् "जब विजयसेन (हेमंतसेन) उत्तरी बंगाल में आए उसके पश्चात्।" इस उपर्युक्त लेख से श्यामल वर्म्मा सेन राजाओं में पहला नहीं गिना जा सकता, जैसा कि कुल-पंजिका में कहा गया है; और कल्पित राजकुमार विजयसेन द्वारा उत्तरी बंगाल में सेन राज्य की स्थापना के लिये मिति शाके ९९४ अर्थात् सन् १०७२ केवल बहुत पूर्व का ही समय नहीं किन्तु इतिहास-विरुद्ध भी है।

परंतु जब वेलावे के ताम्र-पत्र से यह बात सिद्ध हो गई कि श्यामल वर्म्मा का वंश-वृक्ष इतिहासानुसार पक्का नहीं है तो उन्होंने ताड़ के पत्तों का लेख, जिसे वह तीन सौ वर्ष पुराना बतलाते हैं, सर्वसाधारण के सामने उपस्थित किया। यह लेख ईश्वर वैदिक रचित कुलपंजिका है जो एक पंडित के पास है। बसु महाशय का कथन है कि इसमें कोई अशुद्धि इत्यादि जैसी कि प्रथम के विषय में कही गई है, नहीं है। वह लेख इस प्रकार है,—

त्रिविक्रम महाराज सूरवंशसमुद्भवः ।
आसीत् परमधर्म्मज्ञो देशेकाशीसमीपतः ॥
सुवर्णरेखापुरी यत्र स्वर्णयंत्रामयोः शुभा ।
स्वर्गंगासलिलैः पूता सल्लोकजनतोषिणी ॥
असौ तत्र महीपालो मालत्यां नामतः स्त्रियां ।
आत्मजं जनयामास नाम्ना कणसेनकम् ॥
आसीत् सएव राजा च तत्र पुर्य्यां महामतिः ।
कन्या तस्य विलोला च पूर्णचंद्र समद्युतिः ॥
स्त्रियां तस्यांहि द्वौ पुत्रौ मल्ल-स्यामलवर्म्मकौ ।
सा एव जनयामास वौणि रत्नकावुभौ ॥
मल्लस्तत्रैव प्रथितः श्यामलोऽत्र समागतः ।
जेतुं शत्रुगणान् सर्वान् गौड़देशनिवासिनः ॥
विजित्या-रिपुशार्दूलंवंगदेशनिवासिनः ।
राजासीत् परम धर्म्मज्ञो नाम्ना श्यामलवर्म्मकः ॥
जित्वा सर्व महीपतिं भुजबलैः पंचास्यतुल्योबली ।
श्रीमद्विक्रमपुरनाम नगरे राजा भन्निश्चितम् ॥

इसमें निम्न-लिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(१) पहले लेख में 'सेन वंश' के स्थान पर 'सूर-वंश' लिखा हुआ है।
(२) दूसरे लेख में 'काशीपुर समीपतः' के स्थान पर 'देश काशी समीपतः' है।
(३) दूसरे लेख में 'स्वर्णरेखा नदी' के स्थान में 'स्वर्णरेखा पुरी' है।
(४) पहले लेख में 'कणसेनकम्' के स्थान में 'विजय-सेनकम्' है।
(५) उसके बाद का श्लोक बिलकुल एक दूसरे से भिन्न है, क्योंकि दूसरे लेख में विलोला को कण सेन की कन्या लिखा है और पहले में उसे विजयसेन की स्त्री लिखा है।
(६) दोनों लेखों में मल्ल और श्यामल विलोला के पुत्र लिखे हुए हैं।
(७) दूसरे लेख में श्यामल वर्म्मा के स्थान पर स्यामल वर्म्मा लिखा हुआ है।

उक्त लेख से यह पता चलता है कि सूर वंश के त्रिविक्रम की रानी मालती से एक पुत्र हुआ जिसका नाम कण सेन (शुद्ध कर्ण सेन) था। कर्ण सेन की कन्या विलोला से दो पुत्र हुए जिनका नाम मल्ल और श्यामल था।

ताम्रपत्र के लेख से ताड़ के पत्तोंवाला यह लेख बिलकुल भिन्न है। पहला लेख यह बतलाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि त्रिविक्रम सेन वंश का था और दूसरा उसे बंगाल के सूरवंश से बतलाता है। पहले लेख में कहा गया है कि सेनवंश का स्थान काशीपुर के करीब था और दूसरे में काशीपुर को सूरों का असली स्थान बतलाया है। दोनों लेखों में कहे गए वंश-वृक्षों में भी अंतर है। नीचे के नक़्शों से उसका पता चलेगा—

(नं० १)

त्रिविक्रम (सेन)=मालती
|
विजय सेन=विलोला
|
मल्ल वर्म्मा — श्यामल वर्म्मा

नं० (२)

त्रिविक्रम (शूर)=मालती
|
कण सेन
|
विलोला (कन्या)
|
मल्ल वर्म्मा — स्यामल वर्म्मा
(श्यामल वर्म्मा के स्थान में)

बेलावो के ताम्र-पत्र के लेख से हमें मालूम होता है कि श्यामल वर्म्मा की माता कर्णदेव की कन्या और कलचुरि चेदि वंश के गांगेय की नतनी थी। दूसरे लेख में विजयसेन के स्थान में कर्णसेन अथवा कणसेन होना अधिक संदेह-युक्त है। यह बात भी हम अवश्य कहेंगे कि जब बेलाबो के ताम्र-लेख से सर्वसाधारण परिचित हो चुके हैं तब उसके कुछ समय के पीछे ताड़ के पत्तोंवाला लेख मिला है। यदि इस लेख को असत्य माना जाय तो कुछ अनुचित न होगा। इसे जाल मानना अधिक उपयुक्त है। बसु महाशय इसे जिस प्रकार सत्य मान चुके हैं; दूसरा कोई उसे कदापि उस प्रकार सत्य मानने को न तैयार होता।

रामदेव विद्याभूषण रचित वैदिक कुलमंजरी में श्यामल वर्म्मा को शूर वंश के विजय सेन के पुत्रों में से एक लिखा हुआ है। यह लेख भी ईश्वर वैदिक रचित कुलपंजिका के सत्य होने का विरोधी है। बसु महाशय को स्वयं इन सब कुल-शास्त्रों को स्वीकार करने में बड़ी कठिनता होती है।

बसु महाशय ने यही निश्चय किया है कि श्यामल वर्म्मा अपने वंश का प्रथम पुरुष था जिसने गौड़ और बंगाल में राज्य किया, परन्तु बेलाबो के ताम्र-लेख से यह सिद्ध होता है कि वह पुरुष जात-वर्म्मा था।

बसु महाशय मयूरभंज के Archæological Survey की रिपोर्ट में यह लिखते हैं कि सेन राज-वंश सुवर्णरेखा नदी के किनारे काशीपुर में राज्य करता था; यद्यपि 'काशीपुरसमीपतः' का अर्थ 'काशीपुर के समीप' होता है; परंतु कुछ समय पीछे, और विशेषतः जब उन्होंने 'भारतवर्ष' में इस विषय पर लेख लिखा उस समय इस विचार को छोड़ कर उन्होंने दूसरे विचारों को ग्रहण किया था जो अधिक उत्तम नहीं जान पड़ते।

उन्होंने यह लिखा है कि बेलाबो के ताम्र-लेख का सिंहपुर काशीपुर के करीब कोई स्थान है और संभवतः ईश्वर वैदिक के कथनानुसार स्वर्णरेखा पुरी है। उनके इस विचार का मुख्य कारण यह है कि उन्होंने श्यामलवर्म्मा को विजय सेन का पुत्र माना है तथा यह कि श्यामल वर्म्मा बंगाल वा गौड़ देश का पहला राजा हुआ है। परंतु जब बहुत सी बातें उस विचार के विरुद्ध मिलती हैं तो वह लेख स्वीकार करने योग्य और माननीय नहीं हो सकता। बसु महाशय ने यह भी स्वीकार किया है कि सिंहपुर ह्वेनसांग का लिखा हुआ 'समहोपोली' है। तब फिर यह गंगा के तट पर अथवा काशी के निकट नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

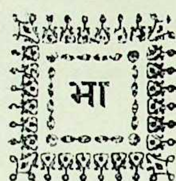
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता। तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बेलाबो के ताम्रलेख में वर्णित वर्म्मा लोगों का कुछ संबंध बंगाल के सेनों से नहीं था तथा श्यामल वर्म्मा वल्लाल सेन का कनिष्ठ भ्राता और विजय सेन का द्वितीय पुत्र, जैसा कि बसु महाशय ने कहा है, नहीं था। और यह भी नहीं अस्वीकार किया जा सकता कि हेमंत सेन का एक और नाम भी (पंजिका में वर्णित त्रिविक्रम) नहीं था। और यह भी किसी प्रकार विश्वसनीय नहीं है कि सेनों में केवल श्यामल वर्म्मा ही एक राजा हुआ।

यदि उपर्युक्त कथन ठीक है तो यह मानना होगा कि सिंहपुर से सेनों का कुछ संबंध नहीं था और वह न तो काशी और न उसके निकट ही है। सेनों के बंगाल में शासन करने के आदिम स्थान के संबंध में हम लोग अभी तक अनभिज्ञ हैं। विजय सेन के समान वीर पुरुषों के स्थान का पता चलाना बहुत ही कठिन है। कसियारी वा काशीपुरी को उनका स्थान बतलाना केवल साहस मात्र है। इस विषय में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि 'वल्लाल' शब्द विदेशीय संभवतः द्राविड़ी जान पड़ता है; इससे अधिक कुछ कहना अनुचित और अनिश्चित होगा।

—:o:—

हिन्दी पर एक महाराष्ट्र सज्जन की सम्मति।



रत के अन्य भाषा-भाषियों में से हिन्दी पर जितना अधिक अनुराग महाराष्ट्र सज्जनों का है उतना कदाचित् ही किसी और का होगा। महाराष्ट्रों का यह हिन्दी-प्रेम हिन्दी की भावी उन्नति का एक बहुत ही शुभ लक्षण है; और साथ ही बंगालियों और गुजरातियों आदि के लिये अनुकरणीय भी है। महाराष्ट्रों के हिन्दी-प्रेम का समय समय पर बहुत कुछ परिचय हम लोगों को मिलता ही रहत है। अभी हाल में श्रीयुक्त गणेश गोविन्द भोजराज जी बी० ए० ने बम्बई के मराठी भाषा के प्रसिद्ध दैनिक पत्र "सन्देश" में "राष्ट्र भाषा आणि हिन्दी केसरी" शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया था। उस लेख में आपने हिन्दी की उपयोगिता का वर्णन करते हुए हिन्दी-केसरी को महाराष्ट्रों के लिये हिन्दी सीखने का बहुत अच्छा साधन बतलाया है; और उसके द्वारा हिन्दी तथा मराठी-भाषियों में सुहृद भाव उत्पन्न होने की सम्भावना बतलाई है। हिन्दी के सम्बन्ध में अपने लेख में भोजराज जी ने जो सम्मति प्रकट की है, उसके लिये हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हुए, उसका अनुवाद अपने पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं। आप लिखते हैं,—

"गत पक्ष में भारत भूमि की उन्नति के लिये बम्बई में तथा अन्यत्र अनेक कार्य्य बड़े उत्साह और आनन्द से सम्पन्न हुए। इस बार के सभी उत्सवों में ऐसा अपूर्व उत्साह दिखाई देता था जैसा गत ७।८ वर्षों से नहीं दिखाई दिया। गत वर्ष स्वराज्य की कल्पना की विशेष छानबीन और आन्दोलन होने के कारण दूसरी बहुत सी मृतवत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थाओं में नवीन स्फूर्त्ति आ गई और उनमें से नई शाखाएं फूट निकलीं।

ऐसे शुभ प्रसङ्ग में राष्ट्र भाषा स्थिर कर उसके प्रसार के लिये उद्योग करने के विषय में बड़ा निरुत्साह दिखाई देता है; यह बात राष्ट्रहित की दृष्टि से ठीक नहीं। कौन सी भाषा राष्ट्रभाषा हो इसका प्रायः निश्चय सा हो चुका है और वह 'हिन्दी' ही हो इस विषय में भी विशेष मतभेद नहीं रह गया है। मराठी-पाठकों को यह बात भूली न होगी कि पिछले मराठी-साहित्य-सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास हो चुका है कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा होने के योग्य है। गुजराती-सम्मेलन ने भी यही प्रस्ताव बड़े आनन्द के साथ पास किया है। बङ्गाली लोगों का भी इस विषय में कोई मतभेद होना सम्भव नहीं है। बङ्गला और हिन्दी भाषा का भगिनी तुल्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। बङ्गाल के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्रीयुत बङ्किमचन्द्र और श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त के बङ्गला उपन्यासों के उत्कृष्ट भाषान्तरों से हिन्दी का साहित्य विभूषित हो रहा है। सुप्रसिद्ध डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर के कितने ही अमूल्य ग्रन्थों से—उनके नोबुल प्राइज़ पाने से पहले ही—हिन्दी लेखक-गण भाषान्तर रूप में अपने साहित्य को उच्च स्थान में ला उनके विषय में आदर व्यक्त कर चुके हैं। इतना ही नहीं बल्कि प्रत्येक वर्ष होनेवाले हिन्दी साहित्य- सम्मेलन का एक अधिवेशन खास कलकत्ते में हुआ था। सन् १९१० ई० में इलाहाबाद में जो बड़ी प्रदर्शिनी हुई थी उस समय एक भाषा और एकलिपि का निश्चय करने के लिये विद्वानों का एक बड़ा सम्मेलन हुआ था। उसमें जस्टिस शारदाचरण मित्र ने बड़े जोरों के साथ कहा था कि हिन्दी राष्ट्रभाषा और देवनागरी राष्ट्रलिपि हो। १०—१२ वर्ष पूर्व हिन्दी-साहित्य के प्रसारार्थ अविश्रान्त श्रम करने-वाली काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के उत्सव में लोकमान्य तिलक ने भी अपने उत्कृष्ट व्याख्यान द्वारा जस्टिस शारदाचरण मित्र के उपर्युक्त मत के अनुसार ही अपना अभिप्राय प्रकट किया था। गत पक्ष में पण्डित मदनमोहन मालवीय के बम्बई के हजारों श्रोतृसमूह को मोहित करनेवाले जो व्याख्यान हुए वे भी हिन्दी ही में थे। प्रत्येक व्याख्यान के आरम्भ में पण्डित जी के श्रोताओं से यह पूछने पर कि 'मैं किस भाषा में बोलूं ? अङ्गरेजी में या हिन्दी में' सब ने एक स्वर से तथा उच्च रव से यही उत्तर दिया कि 'हिन्दी में'; और सभी व्यख्यानों में दर्शकों ने चित्रवत् स्तब्ध हो कर पण्डितजी की रसमयी वाणी का जी भर के स्वाद लिया। इन सुननेवालों में दक्षिणी, गुजराती, पारसी, मारवाड़ी, मुसलमान, कृस्तान, पञ्जाबी आदि सभी प्रकार के लोग एकत्र होते थे। यही नहीं किन्तु गत 'अखिल भारत-हिन्दू सभा' के अधिवेशन का कार्य्य पण्डित जी ने स्वयं हिन्दी में सम्पादन किया था। ऊपर के विवरणों से प्रकट होगा कि राष्ट्र भाषा बनने का सन्मान हिन्दी भाषा को ही मिलने के सम्बन्ध में प्रस्तुत सभी विद्वानों का प्रायः एक सा मत है।

अस्तु, हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये भिन्न भिन्न समाजों ने क्या प्रयत्न किए इस ओर जरा ध्यान देना चाहिए। सब से पहले खास हिन्दी भाषा बोलनेवालों ने उस भाषा की उन्नति के अर्थ कौन कौन से उद्योग किए हैं उस पर विचार करने से प्रकट होगा कि हिन्दी भाषा की सुप्रतिष्ठित 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का कोई अङ्क हाथ में लीजिये, उसमें उत्तमोत्तम लेख दिखाई देंगे। पुस्तक-समालोचन की ओर देखने से मालूम होगा कि अच्छे अच्छे ग्रन्थों का प्रकाशन बढ़ता ही जाता है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन प्रति वर्ष होते हैं और उनमें भरपूर साहित्य-चर्चा होती है। उपयुक्तता की दृष्टि से प्रति वर्ष तैयार होनेवाले नूतन साहित्य में स्थिरता आती जाती है। नागरीप्रचारिणी सभा (काशी) का काम भी अत्यन्त प्रशंसनीय रीति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल रहा है। उक्त सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी शब्द-सागर' चिरस्मरणीय होगा। गत मास की ३०, ३१ तारीख को प्रयाग में षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य्य बड़े उत्साह के साथ हुआ और उसमें हिन्दी भाषा को अग्र स्थान देने के कारण मराठी साहित्य-सम्मेलन तथा गुजराती साहित्य-सम्मेलन के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने का प्रस्ताव सभापति ने पास किया। हिन्दी-लेखकों तथा विद्वानों का प्रयत्न इस प्रकार जारी है। महाराष्ट्र-समाज ने इस विषय में क्या उद्योग किया है इसपर विचार करने से स्थिति विशेष उत्साहजनक नहीं मालूम होती। उपर्युक्त मराठी-साहित्य-सम्मेलन के कागज़ी प्रस्ताव के सिवा प्रत्यक्ष कोई कृति आज तक दिखाई नहीं दी। बीच बीच में कोई प्रयत्न हो जाता है। मराठी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत वासुदेव गोविन्द आपटे ने हाल ही में इन्दौर से एक मराठी-हिन्दी साप्ताहिक निकालना आरम्भ किया है। मराठी और हिन्दी भाषा का परस्पर सम्बन्ध बढ़ाने के लिये यह प्रयत्न उत्तम है और इसके लिये श्रीयुत आपटे तथा पत्र के आश्रयदाता श्रीमान् होलकर मराठी पाठकों की स्तुति के पात्र हैं।

इस प्रकार का प्रयत्न महाराष्ट्र के किस भाग मे शीघ्र फलद्रूप होगा इस पर विचार करने से यह ध्यान में आता है कि मध्य प्रान्त और नागपुर में यह प्रयत्न बहुत शीघ्रता तथा उत्तमता से फलीभूत होगा। इसका कारण यह है कि मध्य प्रान्त में मराठी और हिन्दी भाषा की विशेष सख्यता हो चुकी है। मध्य प्रान्त और बरार के चार जिले छोड़ कर बाकी सब हिस्सा हिन्दी बोलनेवालों का है और उस प्रान्त का साधारण समाज दोनों ही भाषाएँ अच्छी तरह बोलता और समझता है। मध्य प्रान्त के कुछ विद्वान् जिस प्रकार मराठी में उसी प्रकार हिन्दी में भी सभाओं में व्याख्यान दे सकते हैं; इसके लिये एक ही उदाहरण डा० मुञ्जे का यथेष्ट होगा। डा० साहब ने उस दिन बम्बई की हिन्दू-सभा के अधिवेशन में आयुर्वेद के प्रस्ताव पर हिन्दी में जो उत्तम व्याख्यान दिया उसे बहुतों ने सुना ही है। देशभक्त दादासाहब खापर्डे भी हिन्दी के सुप्रसिद्ध वक्ता हैं, यह सब को विदित ही है। हिन्दी साहित्य-मण्डल में अच्छा नाम पानेवाले दक्षिणी अर्थात् महाराष्ट्र भाषा-भाषी लेखक पण्डित माधवरावजी सप्रे बी० ए० और हाल में अमेरिका से आए हुए श्रीयुत खानखोजे एम० एससी० मध्य प्रान्त में ही पैदा हुए हैं। मराठी पाठकों को यह बात जान कर आनन्द होगा कि पण्डित माधवराव सप्रे इस समय लोकमान्य तिलक के गीतारहस्य का भाषान्तर करने में निमग्न हैं* और समस्त हिन्दी-जनता उनके ग्रन्थ की बराबर राह देख रही है। अस्तु, तात्पर्य्य यही है कि महाराष्ट्र-समाज में हिन्दी का प्रसार करने के लिये उत्तम क्षेत्र मध्य प्रान्त और नागपुर ही हैं और अत्यन्त आनन्द का विषय है कि मध्य प्रान्त ने बड़े उद्योग तथा उत्साह से इस काम का भार अपने ऊपर लिया है।

अन्त में मैं अपने मध्यप्रदेशस्थ देशबन्धुओं के प्रति आग्रह सहित एक नम्र सूचना कर लेख समाप्त करता हूं। महाराष्ट्र-समाज में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का कर्तव्य मध्य प्रान्त के देशभक्तों का है, यह ऊपर बतला ही चुके हैं। नागपुर के सुप्रसिद्ध विद्वान् नेता श्रीयुत अलेकर मराठी भाषा की अभिवृद्धि के लिये ग्रन्थ-संग्रहालय स्थापन कर उसके सम्बन्ध में जो अविश्रान्त उद्योग कर रहे हैं वह सब को विदित ही है। परन्तु उसके साथ ही हिन्दी साहित्य का संग्रहालय खोलने का प्रयत्न करने से वह शीघ्र ही यशस्वी होंगे और इससे महाराष्ट्र-समाज पर उनका बहुत उपकार होगा। उनके इस प्रयत्न में नागपुर के युवा उत्साही तथा सार्वजनिक

* यह अनुवाद अब समाप्त हो चुका है और पूने के चित्रशाला प्रेस में छप रहा है। मई-जून तक छपने पर वहीं से मिलेगा। पं० सम्पा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामों के लिये सदा उद्यत रहनेवाले वकील श्रीयुत भवानीशङ्कर एम० ए० एलएल० एबी०, श्रीयुत दामोदर पन्त मङ्गलमूर्त्ति बी० ए०, एलएल० बी० और श्रीयुत रामचन्द्र नारायण पाध्ये बी० ए०, एलएल० बी० आदि आशा है कि उत्साहपूर्वक सहायता देंगे। इस प्रकार का संग्रहालय स्थापन करने का प्रयत्न करने से नागपुर में हिन्दी साहित्य का उत्तम केन्द्र उत्पन्न होगा। मध्य प्रान्तवालों के लिये यह एक विशेष आनन्द की बात है कि गत नागपुर-प्रान्तिक सभा के सन्मान्य अध्यक्ष तथा मध्य प्रान्त के नेता पं० विष्णुदत्त शुक्ल ने आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की सातवीं बैठक मध्य प्रान्त की ओर से जबलपुर में निमन्त्रित की है। इस बात से प्रकट होगा कि पण्डित जी केवल राजनीतिक विषयों में ही सर्व साधारण के नेता नहीं हैं वरन् साहित्य की भी सेवा कर रहे हैं। मराठी साहित्य-सम्मेलन अब तक अकोले के पार नहीं आया, पर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने मध्यप्रान्तीय जबलपुर में पहुंच कर आनन्द और उत्साह उत्पन्न किया है। ऐसे शुभ प्रसङ्ग में मैं यह विनय कर आप लोगों से बिदा होता हूं कि नागपुर जैसे महाराष्ट्र भाषा के प्रसिद्ध नगर में हिन्दी साहित्य का केन्द्र शीघ्र ही स्थापन करने के विचार में लग जाइए।

—:o:—

सभा का वार्षिकोत्सव।



ता ५ फरवरी को सन्ध्या के ५ बजे काशी नागरीप्रचारिणी सभा का २२ वां वार्षिकोत्सव बड़ी धूम-धाम से हो गया। इस अवसर के लिये सभा के पश्चिम ओर कम्पनी बाग की जमीन पर—जहां प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था—बड़े बड़े शामियाने खड़े किए गए थे। सारा सभा-स्थान तोरण और बन्धनवार आदि से भली भांति सजाया गया था। आज तक सभा का कोई वार्षिकोत्सव इतनी धूमधाम से नहीं हुआ था और न किसी अधिवेशन में इतने अधिक और प्रतिष्ठित सज्जन ही उपस्थित हुए थे। इस अधिवेशन की उपस्थिति, सम्मेलन की उपस्थिति से भी अधिक थी।

इस अधिवेशन में सभापति का आसन काश्मीर-नरेश महाराज सर प्रतापसिंह बहादुर ने सुशोभित किया था। श्रीमान् महाराज गिद्धौर, रामनगर (काशी) के कुँवर साहब, श्रीयुक्त मोहनदास कर्म्मचन्द्र गाँधी, काश्मीर के प्रधान मंत्री दीवान बिशनदास सी० आई० ई०, बम्बई के सर प्रभाशंकर पट्टनी, बा० मोतीचन्द्र सी० आई० ई०, काश्मीर के राजगुरु महामहोपध्याय पं० जगदीश जी, दिल्ली के महामहोपध्याय पं० बाँकेराय, नवल गोस्वामी, आनरेबुल लाला सुखबीरसिंह साहब, श्रीयुक्त पं० बदरीनारायण चौधरी, पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, पं० गोकर्णनाथ मिश्र, भगत ईश्वरदास एम० ए०, एक्सप्रेस सम्पादक बा० रामगोपालसिंह चौधरी, राय हरिदास साहब, बा० रामप्रसाद चौधरी, पं० श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, पं० गणेशबिहारी मिश्र, गोसाईं रामपुरी, डा० पुरुषोत्तमदास कक्कड़, रे० ई० ग्रीव्स आदि अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों ने भी पधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सभा की शोभा बढ़ाई थी। सब मिला कर उपस्थित जज्जनों की संख्या लगभग दो हजार के थी।

अधिवेशन का कार्य्य ठीक ५ बजे आरम्भ हुआ था। आरम्भ में प्रसिद्ध गायनाचार्य्य पं० विष्णु दिगंबर ने मंगलाचरण किया और तदुपरान्त पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने "उद्बोधन" नाम की कविता पढ़ी। इसके बाद सभा के सभापति पं० श्यामबिहारी मिश्र ने सभा के गत २२ वर्षों के कार्य्यों का संक्षिप्त विवरण पढ़ सुनाया। विवरण की समाप्ति पर काश्मीर के राय उदयचन्द्र साहब ने हिन्दी सम्बन्धी अपनी एक कविता पढ़ी। इसके उपरान्त श्रीयुक्त बा० श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० ने ओजस्विनी भाषा में "नागरी का सन्देसा" नामक एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया। आपने अपने व्याख्यान में कहा,—

"सभापति महोदय तथा सज्जनगण,

जिस सभा ने गत बाइस वर्षों से निरन्तर हिन्दी के प्रचार और हिन्दी-साहित्य-भाण्डार की पूर्त्ति का उद्योग किया है और जिसको अपने कार्य्यों में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है उसी का बाइसवाँ वार्षिकोत्सव मनाने के लिये हम यहाँ एकत्र हुए हैं। गत बाइस वर्षों में इस सभा ने जो जो काम किए हैं, इसके द्वारा जो जो उद्योग हुए हैं, उनमें इसे जितनी सफलता प्राप्त हुई है और समय समय पर इसे जिन जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है उनका विवरण पं० श्यामबिहारी मिश्र आप लोगों के सम्मुख उपस्थित कर चुके हैं। अब मुझे आज्ञा हुई है कि मैं भी इस सम्बन्ध में आपसे दो चार बातें निवेदन करूँ। आप लोगों के सामने जो कुछ निवेदन किया गया है उससे आपको ज्ञात हुआ होगा कि इस सभा के दो कार्य्य-विभाग हैं—एक तो हिन्दी और नागरी का प्रचार और दूसरा हिन्दी-साहित्य-भाण्डार की पूर्त्ति। हिन्दी और देवनागरी का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है, इसी लिये दोनों के प्रचार और वृद्धि के लिये समान रूप से उद्योग हुए हैं। देश की उन्नति में—देश के उत्थान में साहित्य से सब से अधिक सहायता मिलती है। इन कार्य्यों में भाषा और साहित्य का स्थान बहुत ही ऊँचा है। समाज की उन्नति पूर्ण रूप से उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि उसकी मातृ-भाषा का साहित्य-भाण्डार पूरा न हो। किसी देश की भाषा और साहित्य से ही हम यह बात जान सकते हैं कि वह देश उन्नति के मार्ग में कहाँ तक अग्रसर हुआ है। जिस देश के जैसे ग्रंथ होंगे वह देश भी उतना ही उन्नत होगा। बिना ग्रंथों के भाषा का अस्तित्व ही नहीं माना जाता और उसके भाषी असभ्य समझे जाते हैं। जिस जाति ने अपने कवियों और ऋषियों की कृतियों की रक्षा की है वही अब तक वर्त्तमान है और जिसने उनकी रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की वह नष्ट हो गई। किसी कवि ने कहा है कि यदि कोई मुझसे साहित्य और स्वतंत्रता में से किसी एक को चुन लेने के लिये कहे तो मैं साहित्य को ही चुनूँगा; क्योंकि साहित्य की सहायता से गई हुई स्वतंत्रता भी मिल सकती है और बिना साहित्य के बनी हुई स्वतंत्रता भी नष्ट हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि साहित्य का स्थान स्वतंत्रता से ऊँचा है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस साहित्य का प्रचार हिन्दी के ही प्रचार पर क्यों निर्भर किया जाय और देश की दूसरी भाषाओं की उन्नति क्यों न की जाय।

इसके कई कारण हैं। पहला तो यह कि भारत की आर्य्य भाषाओं में—मराठी, गुजराती, तामिल तैलगू, बंगला आदि भाषाओं में—हिन्दी का स्थान बहुत ऊँचा है। हिन्दी जानने पर भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में काम चल जाता है, पर अन्य भाषाओं से नहीं चलता। थोड़ी सी हिन्दी जाननेवाले पंजाबी और बंगाली भी तामिल देश में जा कर अपना काम चला सकते हैं। जिस भाषा में इतनी शक्ति है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके समझने और बोलनेवाले इतने अधिक हैं वही देश की प्रधान भाषा हो सकती है। हिन्दी की प्रधानता का दूसरा कारण यह है कि इसका प्राचीन साहित्य बहुत ही अधिक है। किसी भारतीय भाषा का साहित्य इतना बड़ा नहीं है। हजारों वर्षों से हजारों कवियों ने इसमें कविताएं की हैं और ग्रंथ रचे हैं। तीसरा सबल कारण देवनागरी अक्षरों से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। और इसी लिये हिन्दी और देवनागरी का प्रचार साथ ही साथ होता है। भारत ही क्या, सारे संसार में कोई ऐसी लिपि नहीं है जो इसके समान पूर्ण हो और जिसके अक्षरों का ऐसा सुन्दर वैज्ञानिक निर्माण हो। अन्य भाषाओं में अक्षरों का उच्चारण कुछ और तथा कार्य्य कुछ और होता है। उदाहरणार्थ अँगरेज़ी के ए० बी० और उर्दू के अलिफ बे को लीजिए। इन अक्षरों के नाम और उच्चारण तो कुछ और ही हैं और शब्दों में उनसे कार्य्य कुछ और ही लिया जाता है। पर देवनागरी के अक्षरों का जो उच्चारण और नाम होता है उसी का वे काम देते हैं। चाहे सारी सृष्टि उलट पुलट हो जाय पर अ का उच्चारण सदा 'अ' ही होगा— उसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं हो सकता। बहुत सी भाषाओं में तो कुछ उच्चारणों के लिये चिह्न ही नहीं हैं। अँगरेज़ी में 'च' लिखने के लिये सी और एच, दो अक्षरों से काम लिया जायगा और 'छ' लिखने में सी, एच और एच तीन अक्षरों से। मनुष्य के जितने स्वाभाविक और संस्कृत उच्चारण हैं इसमें उन सब के लिये अलग अलग चिह्न निर्द्धारित हैं। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि संसार की सभी भाषाएँ हिन्दी में लिखी जा सकती हैं तो भी थोड़े से संकेतों की सहायता से आप बहुत सी भाषाएँ लिख सकते हैं। हाँ, उन्हें ठीक ठीक पढ़ने के लिये उनके उच्चारणों का अध्ययन अवश्य करना होगा। पर हमारा प्रयोजन इसी देश से है। इस देश की कोई लिपि देवनागरी के सामने नहीं ठहर सकती। इन्हीं गुणों के कारण एक बालक भी प्रायः एक महीने में इसकी पहली पुस्तक पढ़ कर ही उसका शुद्ध उच्चारण कर लेगा। इसी लिये इसकी उन्नति इतनी उचित और आवश्यक जान पड़ती है। यदि भारत की कोई राष्ट्र-लिपि और राष्ट्र-भाषा हो सकती है तो देवनागरी और हिन्दी ही; और कोई नहीं।

इस नागरी के प्रचार का सन्देसा सुनाते हुए हमें बाइस वर्ष हो चुके। आज से बाइस वर्ष पहले जिस समय हमने इस कार्य्य को आरम्भ किया था उस समय लोग हमारी हँसी उड़ाते थे; कहते थे कि हम लोग गँवारपन की तरफ बढ़ रहे हैं। उस समय इसका आरम्भ बहुत सूक्ष्म रूप से हुआ था और बहुधा होनेवाले बड़े कामों का आरम्भ इसी प्रकार सूक्ष्म रूप से हुआ करता है। सन् १८०० में, कलकत्ते के फोर्ट विलियम में बैठ कर लल्लूलाल ने जब प्रेमसागर लिखा था तब क्या उन्हें अथवा डा० गिलक्रिस्ट को इस बात का स्वप्न भी था कि उनके प्रेमसागर का ढंग भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साधारण स्वरूप होगा और उसी का किसी समय इतना प्रचार होगा? आज हिन्दी-प्रचार का निनाद भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक सुनाई पड़ता है। बड़े बड़े राजा-महाराजों ने अपने राज्यों में इसका प्रचार किया है। इसका आदर करनेवालों में श्रीमान् रीवाँ नरेश प्रधान हैं। आज से बीस बाइस वर्ष पहले गद्दी पर बैठते ही श्रीमान् ने अपने राज्य में नागरी के प्रचार की आज्ञा दी थी। ठीक ही है, यदि महाराज रघुराजसिंह का पुत्र ऐसा न करता तो और कौन करता? अलवर, बीकानेर और छत्रपुर के महाराजों ने इसे अपने यहाँ स्थान दिया है। ये तो हिन्दी-भाषी राज्य हैं, यहाँ तक कि ग्वालियर और इन्दौर नरेशों ने भी, जिनकी भाषा मराठी है, अपने राज्यों में हिन्दी का प्रचार किया है। इन दोनों जगहों से हिन्दी को निकाल देने में लोगों ने अपनी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कोई बात उठा नहीं रखी थी, पर इन महाराजों ने उन्हें सफलता न होने दी और हिन्दी को बनी रहने दिया। इसकी उन्नति और प्रचार के ये बहुत ही शुभ लक्षण हैं। शमसुलउल्मा मौलवी सैयदअली बिलग्रामी ने भी मुक्तकण्ठ से हिन्दी की प्रशंसा की है। उन्होंने एक बार कहा था कि हमारे मुसलमान भाई बड़ी भूल में पड़े हुए हैं। शिक्षा आदि में उनके पिछड़े रहने का मुख्य कारण फारसी की दूषित लिपि ही है। यदि वे लोग हिन्दी को स्वीकार कर लें तो उनमें शिक्षा का बहुत अधिक और शीघ्र प्रचार हो सकता है।

हम हिन्दी के पक्षपाती अवश्य हैं, पर अन्य भाषाओं से हमारा किसी प्रकार का विरोध वा वैमनस्य नहीं है। सब लोग अपनी अपनी मातृ-भाषा पढ़ें और लिखें, हम आपत्ति नहीं करते। भारत से न तो अन्य भाषाओं का नाश किया जा सकता है और न हमारा वैसा उद्देश्य ही है। पर समस्त भारत के उपकार और उद्धार के लिये एक भाषा और एक लिपि की बहुत बड़ी आवश्यकता है। सब लोग अपनी अपनी भाषा के साथ राष्ट्र-भाषा भी पढ़ें यही हम चाहते हैं। हमारा किसी के साथ विरोध नहीं है। हमने उन लोगों को भी अपना सभाभवन मँगनी दिया है जिन्होंने जी खोल कर हिन्दी को गालियाँ दी हैं। हमारा उनसे यही निवेदन है कि देखो देश की भलाई किसमें है। यदि वे निष्पक्ष हो कर इस पर विचार करेंगे तो हमें पूर्ण विश्वास है कि वे हमारे उद्योगों में सहायक होंगे।

अब मैं दो चार शब्द हिन्दी-साहित्य की पूर्त्ति के सम्बन्ध में भी कहना चाहता हूँ। इसके भाण्डार की पूर्त्ति के लिये ऐसा साहित्य उत्पन्न किया जाना चाहिए जो पाठकों में स्फूर्त्ति और उत्साह उत्पन्न कर सके, जो उन्हें सुधार सके और जो उन्हें सन्मार्ग में ला सके। हिन्दी में पहले ऐसा साहित्य नहीं था, पर अब उत्पन्न होने लगा है और आशा है कि पचीस तीस वर्षों में अच्छी तरह हो जायगा। सभा ने इस सम्बन्ध में जो कुछ किया है वह आप सुन ही चुके हैं। भारत की किसी भाषा में ऐसा वृहत् और सर्वांग-पूर्ण शब्दकोश (हिन्दी शब्दसागर) नहीं छपा है जैसा कि यह सभा प्रकाशित कर रही है। किसी भाषा में ऐसा अच्छा वैज्ञानिक कोश नहीं छपा है। मराठी और गुजराती के कोशों में इससे बहुत कुछ सहायता ली गई है। इसी से इसकी उपयुक्तता और महत्ता समझी जा सकती है। अभी हम ऐसी सौ पुस्तकों के निकालने के प्रयत्न में लगे हैं जो सब विषयों की और उत्तमोत्तम हों। आठ नौ पुस्तकें निकल भी चुकी हैं।

इन उद्योगों में सभा ने सौभाग्य-वश जो सहायता पाई है वह भी कम नहीं है। हम वह समय भूल नहीं सकते जब कि हमने पहलेपहल नियमावली छपाने का उद्योग किया था, तब सभा के पास आठ आने भी नहीं थे। चन्द्रप्रभा प्रेसवालों से कहा गया था कि कागज तो हम किसी प्रकार दे देंगे, छपाई आप कर दीजिए। एक तो वह समय था जब हम आठ आने के लिये लालायित थे, पर तब से अब तक हमने डेढ़ लाख से अधिक रुपए खर्च किए हैं। जब जब हमें काम पड़ा तब तब हमें सहायता मिली है। भवन बनाने के लिये हमें धन और स्थान मिला। इस बाग में बरसात के दिनों में लोगों के खड़े होने तक का स्थान न था। कई बार इस बात का उद्योग किया गया कि कोई ऐसा स्थान बन जाय, पर सदा यही कहा जाता था कि इस बाग में कुछ नहीं बन सकता। उसी बाग में हमें सभा-भवन बनाने के लिये इतना बड़ा स्थान मिल गया। कोश के लिये प्रायः पचीस हजार का चन्दा हुआ। मनोरंजन पुस्तक-माला के लिये प्रायः साठ हजार की आवश्यकता है जिसमें हर महीने उसके दो ग्रंथ निकल सकें। आरम्भ में कोश की भी यही दशा थी। डाकृर सुन्दर-लाल ने एक हजार का चेक भेजा और कहा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई कार्य्य आरम्भ करो, ईश्वर सहायता करेगा। कार्य्य आरम्भ हुआ, उसमें सहायता मिली और अब वह अच्छी तरह चल रहा है। पास में कुछ न होने पर भी हमने इतना बड़ा काम करने का साहस किया है। कुछ लोग हमारे इस साहस को मूर्खता भी कह सकते हैं, पर हम लोग शुद्ध हृदय से और देश के हित की कामना से यह काम करते हैं। मैं इसके लिये किसी से कुछ नहीं मांगता। इस हितकर काम में जो लोग सहायता दें उनका सौभाग्य है। यदि लोग मातृभाषा के हित के लिये रुपए दें तो अभी उसकी बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। जो लोग लाखों रुपए ख़र्च करते हैं, वे क्या इसको भूल जायंगे ? हमारा तो यही कहना है कि जो लोग यश के भागी होना चाहें वे आ कर सम्मिलित हों और देश-हित के इस काम में सहयता दें।"

बाबू साहब के व्याख्यान की समाप्ति पर श्रीयुक्त मोहनदास कर्म्मचन्द्र गाँधी उठे। आपने कहा,—

"महाराज तथा भाई लोगो,

मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ कि आप लोगों के सामने हिन्दी में अच्छी तरह नहीं बोल सकता। आप जानते हैं कि मैं दक्षिण अफ्रिका में रहता था। वहीं अपने हिन्दी भाइयों के साथ काम पड़ने पर मैं थोड़ी बहुत हिन्दी सीख सका हूँ, इसलिये आप लोग मेरी भूल को क्षमा करें।

मैं नहीं जानता था कि मुझे इस सभा में बोलना पड़ेगा। मैं व्याख्यान देने के लायक भी नहीं हूँ। मुझसे कहा गया कि कुछ कहो। यद्यपि कुछ कहना मेरी शक्ति के बाहर है, तो भी दो चार बातें मैं आपको सुनाता हूँ जो इस समय मेरे खयाल में आई हैं। आप शायद यह नहीं जानते कि मेरे साथ तीस पैंतीस स्त्री पुरुष हैं। उन सब की प्रतिज्ञा है कि बराबर हिन्दी का अभ्यास करेंगे। मैंने इस सभा के साथ पत्र व्यवहार भी किया था। मुझे कुछ पुस्तकें दरकार थीं जो मिल नहीं सकीं। सभा ने जो कुछ किया है उसके लिये उसे धन्यवाद और मुबारकबाद देता हूँ और ईश्वर से प्रर्थना करताहूँ कि उसके मेम्बर बराबर बढ़ें। जो पुस्तकें मुझे नहीं मिली हैं वह उन सब के तैयार कराने का प्रयत्न करें। इसके पदाधिकारियों में सब एम० ए०, बी० ए०, एल० एल० बी० हैं जो अँगरेज़ी में उन पुस्तकों को पढ़ चुके हैं। इस सभा के जो अधिकारी वकील हैं उनसे मैं पूछता हूँ कि आप कोर्ट में अपना काम अँगरेज़ी में चलाते हैं या हिन्दी में। यदि वे अङ्गरेज़ी में चलाते हैं तो मैं उनसे कहूँगा कि वे हिन्दी में चलावें। जो युवक पढ़ते हैं उनसे भी मैं कहूँगा कि वे इतनी प्रतिज्ञा करें कि हम आपस का पत्रव्यवहार हिन्दी में करेंगे।

विना साहित्य के स्वतन्त्रता का संग्रह नहीं हो सकता, इसलिये लोगों को चाहिए कि वे अङ्गरेज़ी के उच्च विचार और नए ख्याल सब लोगों के सामने रखें। कल डाक्टर जे० सी० बोस व्याख्यान देंगे। यदि वे बंगला में देंगे तो मेरा कोई झगड़ा नहीं है, पर यदि वे अँगरेज़ी में देंगे तो वहीं मेरा झगड़ा है। नागरी-प्रचारणी सभा का कर्त्तव्य है कि जो पुस्तकें डाक्टर जे० सी० बोस ने अँगरेज़ी में लिखी हैं उनका वह हिन्दी में अनुवाद करे। जर्मनी में जो विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें तैयार होती हैं, अँगरेज़ी में दूसरे ही सप्ताह उनका अनुवाद हो जाता है। इसी से वह भाषा प्रौढ़ है। हिन्दी में भी ऐसा ही होना चाहिए। अपनी अपनी भाषा की उन्नति लोग जितनी चाहें कर लें, पर सच्चा गौरव उसी को प्राप्त होगा जिसमें अच्छे अच्छे विद्वान् जन्म लेंगे और उसी का सारे देश में प्रचार भी होगा। यदि तामिल में अच्छे अच्छे विद्वान् पैदा होंगे तो हम भी तामिल ही बोलने लग जायंगे। जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती। हमारा मुख्य काम हिन्दी सीखना है, पर तो भी हम और भाषाएं भी सीखेंगे। अगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम तामील सीख लेंगे तो तामील बोलनेवालों को भी हिन्दी सिखा सकेंगे।"

श्रीयुक्त गाँधी के व्याख्यान के उपरान्त लाहौर के श्रीयुक्त भगत ईश्वरदास एम० ए० ने "पंजाब में हिन्दी का प्रचार" पर एक उत्तम व्याख्यान दिया। आपने अपने व्याख्यान के आरम्भ में यह बतलाया कि हिन्दी की चर्चा पंजाब में पहलेपहल आज से चालीस वर्ष पूर्व—जब कि वहाँ पंजाब-युनिवर्सिटी कालेज खुला था—आरम्भ हुई थी। तब से अब तक आर्य्य समाज ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ काम किया है; गुरुकुल आदि भी इस विषय में अच्छा काम कर रहे हैं। इसके उपरान्त आपने पहले हिन्दू-पन की रक्षा करने पर जोर दिया और तदनन्तर यह कहा कि पंजाब में हिन्दी के लिये निस्स्वार्थ रूप से काम करनेवाले लोगों की बहुत कमी है। आपका व्याख्यान प्रायः आधे घण्टे तक होता रहा। उसके समाप्त हो जाने पर राय उदयचन्द जी ने सभापति श्रीमान् काश्मीर नरेश का लिखित व्याख्यान पढ़ सुनाया जो इस प्रकार था,—

"नागरीप्रचारिणी सभा के सभासदगण तथा अन्य महाशयवर,

नागरीप्रचारिणी सभा के सभासदों के कथनानुसार उनके बाईसवें वार्षिक अधिवेशन के सभापति बनने में हमें बड़ा हर्ष हुआ।

इस सभा ने जो काम गत २२ वर्षों में किए हैं उनका संक्षिप्त विवरण हम सब ने आनन्द और उत्साह से सुना है। उससे यह प्रकट होता है कि सभा ने इतने समय में बद्धपरिकर हो कर अत्युत्तम और गम्भीर काम किया है। सभा ने बहुत सी प्राचीन और अनर्घ पुस्तकें मुद्रित कीं, हिन्दी-साहित्य के गुप्त भाण्डार का अन्वेषण किया, हिन्दी कोश प्रस्तुत किया, हिन्दी का पुस्तकालय स्थापित किया जिसमें ६५०० से अधिक पुस्तकें हैं तथा और अन्य शास्त्रीय विषयों की छानबीन की है। इन सब से स्पष्ट प्रकट होता है कि ये सब काम ऐसी निपुणता और पाण्डित्य से किए गए हैं जिनका सभा को अभिमान हो सकता है। इस सभा का काम केवल साहित्य विषयों पर ही निर्भर नहीं रहा वरन् इसके सभासदों और नेताओं ने अन्य कार्य्यक्षेत्रों में भी उत्साह, पुरुषार्थ, दूरदर्शिता और गाम्भीर्य से काम किया है। इस सभा की उन्नति का मुख्य कारण उसका पूर्वोक्त रीति पर चलना ही है जिसके कारण हमारी ब्रिटिश गवर्नमेंट की सहायता और कृपालुता से पला हुआ यह पौधा (जिसे आप फूला फला देखते हैं) सदा बढ़ता ही गया। इसको अपने सहायता-रूपी जल से सींचने में राजाओं, महाराजों, विद्वानों तथा सर्वसाधारण ने कोई कमी नहीं की।

महानुभावो, हम भली भाँति समझते हैं कि अपना भविष्य स्थिर करने में इस सभा ने अपनी कार्य प्रणाली को गवर्नमेंट के शिक्षा सम्बन्धी कार्य्यों में साहाय्य रूप से परिचालित करते हुए बुद्धिमत्ता से काम लिया है। हमें यह सुन कर बड़ा आनन्द हुआ है कि हिन्दी साहित्य की उन्नति तथा उसकी समृद्धि करने में संयुक्त प्रान्त की गवर्नमेंट ने आपको पोषक रूप से सहायता दी है। जो दान समय समय पर गवर्नमेंट ने आपकी सभा को दिए हैं उनसे उसकी दयालुता प्रकट होती है। यह बात भी हर्ष की है कि सात रियासतों के अधिपति आपकी सभा के संरक्षक हैं। सज्जनवृन्द! आप जानते हैं कि देवनागरी अक्षर अन्य सब अक्षरों से सुगम हैं; अतः मैं उन विद्वानों से सहमत हूँ कि यदि भारतवर्ष की सार्वजनिक भाषा कोई हो सकती है तो वह हिन्दी ही है। ज्यों ज्यों विद्या का प्रकाश भारतवर्ष के अन्धेरे घरों में घुसता जायगा, ज्यों ज्यों राजभक्तियुक्त परस्पर सहायता के विचार दृढ़ होते जायँगे त्यों त्यों हिन्दी-भाषा के भांडार को बढ़ाने की आवश्यकता अधिक स्पष्ट होती हुई विद्वन्-मंडली तथा साधारण लोगों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त में अपना घर करती जायगी। इन सब बातों से हमें दृढ़ विश्वास है कि इस सभा का भविष्यत् अत्युत्तम है।

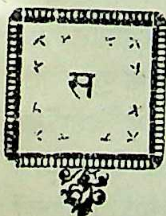
सज्जनो, जो उन्नति और वृद्धि आपको अपने पुरुषार्थ और कार्य में हुई है उस पर आप सब को बधाई देते हुए हम आपकी भविष्यत् आशाओं की वृद्धि और सफलता हृदय से चाहते हैं और श्रीविश्वनाथजी के चरणों में बद्धांजलि सविनय प्रार्थना करते हैं कि इस कार्य में वे आपको रास्ता दिखाते हुए, इस सभा की कठिन गाँठों को खोलते हुए, आपको देशवासी सज्जनों से सब प्रकार की सहायता दिलावें और हमारे सम्राट् का राज्य संसार में दृढ़ और चिरस्थायी करें। तथास्तु।"

अन्त में श्रीयुक्त बा० मोतीचन्द सी० आई० ई० ने सभापति महाराज काशमीर को धन्यवाद दिया और तब सभा विसर्जित हुई। श्रीमान् महाराज काशमीर ने चलते समय सभा को १०००) और श्रीमान् महाराज गिद्धौर ने ५००) दान दिए।

—:o:—

सभा के गत २२ वर्षों का संक्षिप्त विवरण।

[जूलाई १८९३ से जून १९१५ तक।]



सन् १८९३ ई० में बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह आदि कुछ युवक विद्यार्थियों ने नागरी अक्षरों के प्रचार और हिन्दी साहित्य की पुष्टि तथा उन्नति के विचार से एक सार्वजनिक सभा स्थापित करने का विचार किया था। उस समय उन लोगों ने जिस सभा की स्थापना की, वही यह नागरीप्रचारिणी सभा है। सब से पहले १६ जुलाई सन् १८९३ ई० को उसके नियम आदि बनाए गए थे और वही दिन सभा का जन्म दिन माना जाता है। दिन पर दिन उसके अधिवेशनों में सम्मिलित होनेवाले लोगों की संख्या बढ़ने लगी। आरम्भ में अधिवेशनों में भिन्न भिन्न विषयों पर अच्छे अच्छे विद्वानों के लेख पढ़े जाते थे। १७ फरवरी सन् १८९४ को स्वर्गीय बा० राधाकृष्णदास ने उसका सभापति होना स्वीकार किया और तभी से वे सभा के सब कामों में बहुत उत्साहपूर्वक योग देने लगे। २४ मार्चवाले अधिवेशन में पं० रामशंकर व्यास, स्वर्गीय बा० रामदीन सिंह तथा हिन्दी के और भी कई प्रतिष्ठित विद्वान् सम्मिलित हुए थे जिनके समक्ष बा० राधाकृष्णदास ने "नागरीदास का जीवनचरित्र" नामक एक विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़ा था। जब यह लेख प्रकाशित हो गया तब उसे देख कर पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया ने एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में नागरीदास के सम्बन्ध में एक लेख लिखा था जिसमें आपने कई स्थानों पर बा० राधाकृष्णदास के लेख की प्रशंसात्मक चर्चा की थी। उस आरम्भिक अवस्था में ही राय बहादुर पं० लक्ष्मीशंकर एम० ए०, बा० इन्द्रनारायणसिंह एम० ए०, बा० रामदीनसिंह, बा० जगन्नाथदास रत्नाकर, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, बा० रामकृष्ण वर्म्मा, बा० कार्त्तिकप्रसाद, बा० गदाधरसिंह, बा० देवकीनन्दन खत्री आदि अच्छे अच्छे और प्रतिष्ठित हिन्दीसेवी इस सभा में सम्मिलित हो गए थे। सौभाग्यवश उसी समय बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए० उसके मंत्री बना दिए गए थे जिनके अविरत परिश्रम और अध्यवसाय से सभा अब तक बराबर दिन पर दिन उन्नति करती चली आ रही है। सभा की वर्त्तमान उन्नत दशा आपही के दिन रात के परिश्रम का फल है। आपके द्वारा सभा के इतने अधिक काम और वह भी इतनी उत्तमतापूर्वक हुए हैं कि लोग आपको "सभा के प्राण" कहते हैं और यह बात वास्तव में है भी बहुत ठीक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ में ही सभा का ध्यान प्राचीन हिन्दी-साहित्य के उस महत्त्वपूर्ण अंश की ओर गया जो हस्त-लिखित पुस्तकों के रूप में बड़े बड़े पुस्तकालयों तथा साधारण लोगों के मकानों में दबा दबाया पड़ा था और जिसके विषय में लोगों की जानकारी प्रायः नहीं के समान थी। हिन्दी की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी, भारतीय सरकार, पश्चिमोत्तर देश (वर्त्तमान युक्त प्रांत) की सरकार तथा पंजाब की सरकार की ओर से संस्कृत की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज पहले से ही हो रही थी, अतः सभा ने उन सब से प्रार्थना की कि वे संस्कृत पुस्तकों के साथ साथ प्राचीन हिन्दी पुस्तकों की भी खोज करावें। भारतीय सरकार तथा एशियाटिक सोसाइटी ने सभा की प्रार्थना स्वीकार कर के उस सम्बन्ध में कुछ काम भी किया था, पर वह यथेष्ट और संतोषजनक नहीं था। उस समय हिन्दी भाषा के एक बढ़िया कोश की भी बहुत आवश्यकता थी जिसके निर्माण के लिये श्रीमान् महाराज दरभंगा से आर्थिक सहायता की प्रार्थना की गई। महाराज ने कृपा कर १२५) सहायतार्थ भेजे; पर वह कार्य्य बहुत बड़ा था, इसलिये तुरन्त ही उसका आरम्भ न हो सका। बा० राधाकृष्णदास के प्रस्ताव पर सुप्रसिद्ध लेखकों और संपादकों के जीवनचरित प्रकाशित करना भी निश्चय हुआ। तदनुसार छः जीवनियां संग्रह भी की गई थीं पर कई कारणों से इस सम्बन्ध में और अधिक कार्य्य न हो सका। हिन्दी में अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रस्तुत करना सभा का प्रधान उद्देश्य था, इसलिये अच्छे अच्छे लेखकों से इतिहास, विज्ञान, साहित्य और भ्रमण आदि की पुस्तकें तैयार करने की प्रार्थना की गई। उसी के अनुसार बा० राधाकृष्णदास ने "हिन्दी के सामयिक पत्रों का इतिहास" लिखा था जिसमें बहुत सी काम की और जानने योग्य बातें हैं।

स्कूलों और विद्यालयों आदि में नागरी का प्रचार करने के उद्देश्य से यह निश्चय किया गया कि सरकारी शिक्षा-विभाग के द्वारा प्रति वर्ष कुछ पुरस्कार उन विद्यार्थियों को दिए जायँ जो बहुत सुन्दर और स्पष्ट नागरी लिखते हों। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने कृपा कर के इस सम्बन्ध में सब प्रबन्ध कर दिए और तब से प्रति वर्ष सभा की ओर से पारितोषिक दिए जाने लगे। तब से अब तक इन पुरस्कारों की संख्या बहुत बढ़ गई है और उनसे यथेष्ट लाभ हुआ है।

साहित्य की उन्नति और प्रचार करनेवाली सभा या संस्था का काम विना एक अच्छे पुस्तकालय के नहीं चल सकता, इसी विचार से सभा ने "नागरी भांडार" नामक एक पुस्तकालय स्थापित किया। इन सब प्रयत्नों और कार्य्यों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि सभा ने पहले ही वर्ष अपने कार्य्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में सभी आवश्यक समस्याओं और प्रश्नों को अच्छी तरह समझ लिया था और यथासाध्य उसके भिन्न भिन्न अङ्गों का कार्य्य भी आरम्भ कर दिया था। सभा का पहला वार्षिकोत्सव ३० सितम्बर सन् १८९४ ई० को कारमाइकल लाइब्रेरी में पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए० के सभापतित्व में हुआ था जिसमें बाबू राधाकृष्णदास ने हिन्दी साहित्य के इतिहास तथा सभा के उद्देश्यों आदि के सम्बन्ध में एक बहुत उत्तम निबन्ध पढ़ा था। सभापति मिश्र जी ने अपने व्याख्यान में नागरी अक्षरों के गुण बतलाए थे और लोगों का ध्यान हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों की आवश्यकता पर आकर्षित किया था। सभा की प्रार्थना पर एशियाटिक सोसाइटी हिन्दी पुस्तकों की जो खोज करा रही थी, सन् १८९५ के आरम्भ में उस खोज के फल स्वरूप कई ऐसी प्राचीन पुस्तकों का पता लगा जिनकी पहले किसी को ख़बर भी न थी। उस समय तक लोगों की यही धारणा थी कि काव्य के लक्षणों आदि के सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सबसे पहले केशवदास ने ही "रसिकप्रिया" और "कविप्रिया" नामक ग्रंथ लिखे थे; पर खोज में केशव से पहले का लिखा हुआ भी एक ग्रंथ इस विषय का मिला था। इसके अतिरिक्त मुसलमान हिन्दी कवि कुतबन का लिखा हुआ "मृगावती" नामक एक बहुत प्राचीन काव्य भी मिला था, पर अभाग्यवश वह खंडित था। इन ग्रंथों के मिलने से खोज की उपयोगिता सिद्ध हो गई और सभा ने अधिक विस्तृत रूप में खोज का काम जारी रखना निश्चय किया।

हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति लोगों में अनुराग उत्पन्न करने के लिये उस समय भिन्न भिन्न स्थानों में एक डेपुटेशन भेजना उचित समझा गया और इसी लिये बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०, बा० माताप्रसाद एम० ए० और बा० कार्त्तिकप्रसाद खत्री प्रयाग तथा लखनऊ गए। उसी समय से सभा का कार्य्य-क्षेत्र बढ़ना आरम्भ हुआ था। सभा ने ऐसे काम हाथ में लिए थे जिनमें आगे चल कर उसकी सारी शक्तियों का आवश्यकता होती। उस समय सभा का विचार था कि बड़े बड़े सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों से इस बात की प्रार्थना की जाय कि वे सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले अदालती कामों में नागरी के व्यवहार की भी आज्ञा दें। अदालती सम्मन आदि उर्दू में ही भरे जाते थे जिसके कारण सर्वसाधारण को बहुत असुविधा होती थी, अतः बोर्ड आफ़ रेविन्यू से इस विषय में प्रार्थना की गई जिसका फल यह हुआ कि शीघ्र ही इस आशय की एक आज्ञा प्रचारित हुई कि सम्मन आदि नागरी और उर्दू दोनों अक्षरों में भरे जायँ। इन प्रान्तों में जहाँ के अधिकांश निवासियों की भाषा हिन्दी ही थी, इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि अदालतों में दरखास्तें आदि नागरी में भी लिख कर दी जा सकें। सन् १८९५ में जब इस प्रांत के छोटे लाट सर (आजकल लार्ड) एन्टनी मैकडानल काशी में आए तब सभा ने एक अभिनन्दनपत्र दे कर उनसे इस सम्बन्ध में प्रार्थना की। श्रीमान् ने कृपापूर्वक सभा की इस प्रार्थना पर विचार करना स्वीकार किया। सर्व साधारण को यह विषय भली भाँति समझाने के लिये "नागरी क्या है?" नामक एक पैंफ़लेट बिना मूल्य वितरण किया गया। इसी बीच में सभा को मालूम हुआ कि श्रीमान् महाराज ग्वालियर अपने राज्य में नागरी का प्रचार करने की आवश्यकता समझ रहे हैं, अतः सभा ने तुरन्त ही इस सम्बन्ध में श्रीमान् के पास एक मेमोरियल भेजा। उसी समय लोगों को यह भी शुभ समाचार मिला कि रीवाँ राज्य में हिन्दी का प्रचार हो गया। इन शुभ लक्षणों से उत्साहित हो कर सभा ने इस प्रान्त में और भी जोरों से इस सम्बन्ध में आन्दोलन करना आरम्भ किया और आठ सज्जनों की एक समिति स्थापित कर दी। उन सज्जनों ने भिन्न भिन्न स्थानों में घूम कर इस आन्दोलन में लोगों की सहानुभूति प्राप्त की। माननीय पं० मदनमोहन मालवीय ने भी उस समय इस सम्बन्ध में बहुत कुछ काम किया था।

उन्हीं दिनों यह भी प्रवाद फैला था कि सरकार फारसी लिपि के स्थान में रोमन लिपि के प्रचार के प्रश्न पर विचार कर रही है; इसलिये लोगों को विशेष चिन्ता उत्पन्न हुई। सभा की ओर से एक पैंफ्लेट की बहुत सी प्रतियाँ छाप कर मुफ्त बाँटी गई थीं जिसमें रोमन लिपि के दोष और नागरी लिपि के गुण बहुत अच्छी तरह दिखलाए गए थे। इस का परिणाम यह हुआ कि २७ जुलाई सन् १८९६ को लोगों को शान्त और संतुष्ट करने के लिये सरकार ने उस प्रवाद का खंडन प्रकाशित कर दिया।

उस समय तक सभा का कोई ऐसा मुखपत्र नहीं था जिसके द्वारा वह हिन्दी सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करती और सर्व साधारण को अपनी कार्रवाइयों की बराबर सूचना देती रहती। जुलाई सन् १८९६ से उसने नागरीप्रचारिणी पत्रिका नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जो आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलकर मासिक हो गई और जिसमें भिन्न भिन्न विषयों पर मौलिक लेख और सभा के अधिवेशनों के संक्षिप्त कार्य-विवरण रहा करते हैं।

५ सितम्बर सन् १८९६ को पेरिस में The International Congress of Orientalists का एक अधिवेशन होनेवाला था। सभा ने इस बात का यह बहुत ही उत्तम और उपयुक्त अवसर समझा कि संसार के बड़े बड़े विद्वानों का ध्यान प्राचीन विशाल हिंदी साहित्य की ओर आकर्षित करे। श्रीयुत बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० ने बहुत ही योग्यतापूर्वक प्राचीन हिंदी भाषा तथा साहित्य का एक संक्षिप्त इतिहास तैयार किया और उक्त कांग्रेस के भारतीय विभाग के मंत्री के पास भेज दिया। इसका फल भी आशानुरूप ही हुआ। तब से बहुत से लोगों का ध्यान हिंदी की ओर आकर्षित हुआ जिनमें से उसके मंत्री डा० लेवी विशेष रूप से हिंदी के भक्त हो गए।

इस प्रान्त के स्कूलों में देशी भाषा की शिक्षा का क्रम संतोषजनक नहीं था अतः सभा ने सरकार तथा शिक्षा-विभाग से इस संबंध में लिखापढ़ी की। इसके अतिरिक्त कवियों तथा कवि समाजों से भी इस बात की प्रार्थना की गई कि वे शृंगार आदि तक ही बद्ध न रह कर काव्यों का विषय-क्षेत्र और विस्तृत करें और उसे ऐसा रूप दें जिसमें वह सर्वसाधारण के लिये अधिक रुचिकर और लाभदायक हो जाय।

सभा ने जो नागरीभाँडार नामक पुस्तकालय खोल रक्खा था, स्वर्गीय बाबू गदाधरसिंह ने अपने आर्य्यभाषा नामक बड़े पुस्तकालय की सब सामग्री सभा के उस पुस्तकालय को दे कर उसे बहुत कुछ विशाल और स्थायी बना दिया। २५ जुलाई सन् १८९८ को उक्त बाबू साहब ने एक दानपत्र द्वारा अपनी सारी सम्पत्ति सभा के पुस्तकालय को दे दी। इस दानपत्र के सम्बन्ध में मुकदमा भी चला था जिसमें अंत में सभा की ही जीत हुई। उस समय तक सभा के सभासदों की संख्या भी बहुत बढ़ गई थी, उसकी पुस्तकों की बिक्री भी खूब होने लगी थी और श्रीमान् महाराज साहब रीवाँ तथा स्वर्गीय महाराज भिनगा जैसे सहायकों से उसे बहुत कुछ दान स्वरूप भी मिल चुका था जिससे उसकी आर्थिक अवस्था बहुत सुधर गई थी। सभा ने अब तक जो काम किए थे उनके कारण सर्व साधारण तथा सरकार की दृष्टि में उसका आदर भी खूब बढ़ गया। उन दिनों की सरकारी एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट में सभा के सम्बन्ध में जो कुछ निकला था उसका आशय यह था—"प्रजा के साहित्य सम्बन्धी कार्य्यों का वर्णन करते हुए इस स्थान पर यह बतला देना भी उचित जान पड़ता है कि बनारस में नागरीप्रचारिणी नाम की एक सभा है जो हिन्दी भाषा में विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ आदि प्रकाशित कर के हिन्दी साहित्य की वृद्धि करना चाहती है।"

सन् १८९७ में फ़्रांस के डा० लेवी ने सभा में पधारने की कृपा की थी और वह उसके एक अधिवेशन में उपस्थित भी हुए थे। उन्होंने सभा के कार्य्यों पर बहुत ही संतोष प्रकट किया था। १६ जुलाई सन् १८९८ को सभा का वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया जिसके सभापति काशी के मजिस्ट्रेट मि० काब हुए थे। इसके अतिरिक्त भिनगा के कुँवर साहब, जयपुर के ठाकुर साहब, प्रो० जान्सन्, रे० ग्रीव्स, ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट मि० मन्सन्, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, महामहोपाध्याय पं० महेशचंद्र न्यायरत्न आदि बड़े बड़े महानुभावों ने अपनी उपस्थिति से उक्त अधिवेशन की शोभा बढ़ाई थी। लोगों में खूब उत्साह फैला था और सभा के सुंदर भविष्य के बहुत कुछ चिह्न दिखाई देने लगे थे।

उस समय हिंदी लिखने की कोई निश्चित शैली नहीं थी। बहुत से शब्द आदि ऐसे थे जिन्हें लोग मनमाने रूप में लिखते थे। यह दोष भाषा के लिये बहुत ही हानिकारक था; अतः सभा ने भिन्न भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों की सम्मतियां एकत्र करने, भाषा को एक निश्चित रूप देने और हिंदी की शैली तथा व्याकरण के सम्बन्ध में कुछ प्रश्नों की मीमांसा करने के लिये ग्यारह सज्जनों की एक समिति संगठित की। बहुत कुछ विचार और वादानुवाद के उपरान्त कमेटी ने अपनी रिपोर्ट तैयार की जिसमें हिंदी की शैली और व्याकरण आदि के सम्बन्ध में उसने कुछ विशेष नियम निर्धारित कर दिए थे। विदेशी भाषाओं से आए हुए शब्दों के रूप, विभक्ति, प्रत्यय, बिन्दु, चन्द्रबिन्दु आदि सभी विवादग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में सब कमेटी ने विशिष्ट सिद्धान्त निर्दिष्ट कर दिए और भाषा तथा लिपि का मार्ग बहुत सी कठिनाइयों से साफ कर दिया।

पाठ्य पुस्तकों के दोषों आदि की सभा बहुत दिनों से आलोचना कर रही थी। उसके आन्दोलन का फल यह हुआ कि स्वर्गीय बा० इन्द्रनारायण सिंह एम० ए० भी टेक्स्ट बुक कमिटी के मेम्बर चुन लिए गए। यद्यपि सभा का केवल इतना ही उद्देश्य नहीं था तथापि इससे उसके अभीष्ट की बहुत कुछ सिद्धि हो गई।

उन दिनों अदालतों में नागरी के प्रचार के सम्बन्ध में बहुत आन्दोलन हो रहा था और उसके लिये सरकार की सेवा में एक बहुत बड़ा मेमोरियल भेजा जाने को था। जिस समय मेमोरियल की तैयारियां हो रही थीं, उस समय सभा ने अपने एजेन्टों को चारों ओर भेज कर प्रायः साठ हजार मनुष्यों के हस्ताक्षर कराए थे। इसी कार्य के लिये बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए० प्रयाग तथा लखनऊ गए थे। उसी अवसर पर माननीय पं० मदनमोहन मालवीय ने "The Court Character & Primary Education" नामक प्रसिद्ध पैम्फ्लेट प्रकाशित कराया था जिसमें नागरी अक्षरों के खूब प्रचार करने पर बहुत जोर दिया गया था। २ मार्च सन् १८९८ को इस प्रांत के छोटे लाट सर एन्टनी (आजकल लार्ड) मेकडानल की सेवा में एक डेपुटेशन गया था जिसमें निम्नलिखित सज्जन सम्मिलित थे,—

(१) श्रीमान महाराज सर प्रतापनारायण सिंह के० सी० आई० ई० अयोध्या, (२) राजा रामप्रतापसिंह मांडा (३) राजा बलवंतसिंह सी० आई० ई० आवागढ़ (४) राजा घनश्यामसिंह मुरसान, अलीगढ़ (५) माननीय राजा रामपालसिंह रामपुर प्रतापगढ़ (६) राजा सेठ लक्ष्मणदास सी० आई० ई० मथुरा (७) राय सिद्धेश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर सलीमगढ़, गोरखपुर (८) रायकुंवर हरिचरण मिश्र बहादुर, बरेली (९) राय कृष्णसहाय बहादुर सभापति देवनागरी प्रचारिणी सभा मेरठ (१०) राय निहालचंद बहादुर मुजफ्फरनगर (११) माननीय राय श्रीराम बहादुर एम० ए० एलएल० बी० (१२) राय प्रमदादास मित्र बहादुर एम० ए० बनारस (१३) माननीय सेठ रघुवरदयाल सीतापुर (१५) मुन्शी रामप्रसाद एडवोकेट इलाहाबाद हाईकोर्ट (१६) पं० सुन्दरलाल एडवोकेट इलाहाबाद हाईकोर्ट और (१७) पं० मदनमोहन मालवीय बी० ए० एलएल बी० सभा के प्रतिनिधि।

डेपुटेशन की प्रार्थना श्रीमान् ने बहुत ध्यानपूर्वक सुनी थी और उसका बहुत आशाजनक उत्तर दिया था। डेपुटेशन की सब बातों को स्वीकार करते हुए श्रीमान् ने कहा था कि इस सम्बन्ध में जो कुछ सुधार या परिवर्तन किया जायगा उसके लिये सभी आवश्यक प्रश्नों और अंगों पर बहुत ही गूढ़ विचार की आवश्यकता होगी। श्रीमान् के इस उत्तर से यह पता लग गया था कि सरकार इस प्रश्न पर अच्छी तरह विचार कर के इस प्रार्थना को बहुत से अंशों में स्वीकार कर लेगी। सरकार को इस काम में सहायता देने और मार्ग की कठिनाइयां दूर करने के लिये सभा ने भिन्न भिन्न स्थानों पर ऐसी संस्थाएं स्थापित करना निश्चित किया जो सर्व साधारण को अदालतों में नागरी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार होने के लाभ और उपयोगिता आदि भली भाँति समझा दें। इसी उद्देश्य से लखनऊ, प्रयाग, शाहजहानपुर, अलीगढ़, मथुरा, बरेली, मुरादाबाद, सहारनपुर, आगरा, बाराबंकी आदि स्थानों में नागरी सभाएं स्थापित की गईं और बा० श्यामसुन्दरदास और बा० कृष्णबलदेव वर्म्मा ने भी इसी उद्देश्य से अनेक स्थानों में भ्रमण किया था।

प्रायः संस्कृत के अधिकांश पण्डित हिन्दी भाषा से बिलकुल ही अनभिज्ञ हुआ करते हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिये सभा ने शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को लिखा कि वह संस्कृत के विद्यार्थियों के लिये हिन्दी को अनिवार्य्य कर देने के प्रश्न पर विचार करे। यदि संस्कृत के विद्यार्थियों के लिये हिन्दी पढ़ना अनिवार्य्य हो जाता तो संस्कृत के पण्डित आधुनिक शिक्षा तथा सुधार आदि के सम्बन्ध की बहुत सी बातों से परिचित हो जाते।

सन् १८९८ में श्रीमान् छोटे लाट काशी आए थे। उस समय सभा का एक डेपुटेशन श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हुआ था। डेपुटेशन के मेम्बरों से श्रीमान् ने बहुत देर तक बात चीत की थी। उस बीच में श्रीमान् ने कहा था कि हिन्दी उतनी शीघ्रता से नहीं लिखी जा सकती जितनी शीघ्रता से उर्दू लिखी जाती है। उस अवसर पर महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने तुरन्त श्रीमान् के सामने हिन्दी के कुछ वाक्य इतनी शीघ्रता से लिख कर दिखला दिए जितनी शीघ्रता से कोई साधारण मुंशी उर्दू लिख सकता है। ६ सितंबर सन् १८९८ को सभा की नियमानुसार रजिस्ट्री हुई। उस समय सभा के सभासदों की संख्या २४७ हो गई थी।

टेक्स्ट बुक कमेटी की अनुमति से सभा ने 'भाषा पत्रबोध', 'भाषासारसंग्रह', 'खेती विद्या की पहली पुस्तक' आदि कई पुस्तकें तैयार कराई थीं जो पीछे से पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित हो गईं। सभा ने बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर रचित हरिश्चन्द्र नामक एक बहुत ही उत्तम छोटा काव्य भी प्रकाशित किया था। उस समय हिन्दी में प्राचीन भारत का कोई उत्तम इतिहास नहीं था इसलिये सभा ने मि० आर० सी० दत्त कृत History of Civilisation in Ancient India का हिन्दी अनुवाद करने का प्रबंध किया था; पर कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। अतः उसका काम एक अलग कमेटी को सौंप दिया गया जिसने उसे प्रकाशित कर दिया।

सभा बीच बीच में वैज्ञानिक पुस्तकें और निबंध आदि लिखवाने का भी प्रयत्न करती थी; पर जब कभी किसी सज्जन से किसी वैज्ञानिक विषय पर कोई लेख या ग्रंथ लिखने की प्रर्थना की जाती तब उसे स्वीकार करते हुए लोग यही कहते कि सभा हमें विज्ञान-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द संग्रह कर दे। अन्त में सन् १८९८ ई० में सभा ने एक वैज्ञानिक कोश बनाना निश्चित किया और उसके सम्बन्ध में सब प्रश्नों पर विचार करने के लिये एक कमेटी स्थापित कर दी। जब भिन्न भिन्न विषयों के अंगरेज़ी के पारिभाषिक शब्द एकत्र हो चुके तब सभा ने निम्न लिखित सज्जनों को उनके हिन्दी समानार्थक शब्द बनाने का काम सौंपाः—

बा० श्यामसुन्दरदास—भूगोल।
बा० ठाकुरप्रसाद—रसायन और भौतिक।
म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी—ज्योतिष।
पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी—दर्शन शास्त्र।
पं० माधवराव सप्रे—अर्थ शास्त्र।

जब सब विषयों के पारिभाषिक शब्द बन चुके तब उनकी प्रतियां छाप छाप कर बहुत से बड़े बड़े विद्वानों के पास विचार और सम्मति आदि के लिये भेज दी गईं। साथ ही सभा ने पंजाब, मध्य प्रदेश, बंगाल तथा संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-विभागों से भी इस विषय में सहायता माँगी। मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग ने जबलपुर के ट्रेनिंग स्कूल के असिस्टेन्ट सुपरिंटेंडेंट पं० विनयकराव जी को इस काम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता देने के लिये नियुक्त किया। पंजाब के शिक्षा-विभाग ने पहले लाला मुंशीराम एम० ए० को नियुक्त किया था पर पीछे से जब वह कमेटी के अधिवेशनों में न आ सके तो उसने लाला खुशीराम एम० ए० को भेजा। बंगाल के शिक्षा-विभाग ने पहले बलदेवराम बी० ए० को और तदुपरांत स्कूलों के असिस्टेंट इंस्पेक्टर लाला भगवतीसहाय एम० ए० बी० एल० को भेजा। कोश के शब्दों को दोहराने और उनपर विचार करने का काम काशी में हुआ था। दर्शन शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों को फिर से दोहराने के लिये बा० भगवानदास एम० ए०, बा० इन्द्रनारायणसिंह एम० ए०, बा० वनमाली चक्रवर्ती और साहित्याचार्य पं० रामावतार पाण्डेय एम० ए० की एक स्वतंत्र सब कमेटी नियुक्त की गई। २७ दिसंबर सन् १९०३ को Revision Committee की जो बैठक हुई थी उसमें बम्बई के प्रो० टी० के० गज्जर एम० ए० बी० एससी०, बनारस के प्रो० ए० सी० सान्याल एम० ए०, बम्बई के प्रो० ए० सी० रानडे बी० ए० आदि आदि सज्जन भी सम्मिलित हुए थे। सब प्रकार के संशोधनों आदि के उपरांत सन् १९०६ में वह कोश बा० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित हो कर प्रकाशित हुआ। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह पहला कोश था। इसकी उपयोगिता केवल इसी बात से सिद्ध हो सकती है कि इस कोश का कनाड़ी भाषा में अनुवाद भी हुआ था और मराठी तथा गुजराती के वैज्ञानिक कोशों में भी इसके सब शब्द ले लिए गए थे। मदरास प्रांत के बहुत से वैज्ञानिक ग्रंथों में भी इस कोश के शब्द लिए गए थे।

हिन्दी की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज का काम बहुत ही मंद गति से हो रहा था क्योंकि एशियाटिक सोसाइटी उसके लिये अधिक तत्परता नहीं दिखला रही थी। उसी अवसर पर एशियाटिक सोसाइटी के वार्षिकोत्सव पर बड़े लाट लार्ड कर्जन की एक वक्तृता से जो ऐतिहासिक खोज के बहुत बड़े पक्षपाती थे, सभा का कुछ समाधान हुआ और उसने खोज का काम अधिक विस्तृत रूप से करने के लिये भारत सरकार से कुछ वार्षिक सहायता की प्रार्थना की। उसी समय सरकार का ध्यान सन् १९०० में होनेवाली मनुष्य-गणना की ओर भी आकर्षित किया गया था, जिसके सम्बन्ध में सभा ने यह प्रार्थना की थी कि गणना भाषाओं के विचार से हो, जिसमें देश की समस्त भाषाओं और उनके भाषियों की संख्या का भी ठीक ठीक पता लग जाय। सन् १८९९ में सरकार ने खोज के काम के लिये सभा को ३००) वार्षिक सहायता देना और उसकी तैय्यार की हुई रिपोर्ट को अपनी ओर से छपवा देना स्वीकार किया। खोज का महत्वपूर्ण काम बा० श्यामसुन्दरदास को सौंपा गया, जिन्होंने बहुत दिनों तक इस काम को बहुत योग्यता और उत्तमतापूर्वक किया। उनकी तैय्यार की हुई रिपोर्टों की प्रशंसा डा० ग्रियर्सन, डा० हार्नली, मि० ग्रिफिथ; प्रो० बार्थ और प्रो० पिशे आदि बहुत बड़े बड़े विद्वानों ने की है।

(शेष आगे।)

मातृ-भाषा-सेवी सभाओं की एक त्रुटि के दूर करने का उपाय।

कोटिशः धन्यवाद है उस जगत-नियन्ता को जिसकी कृपा से मातृ-भाषा की उन्नति दिनों दिन हो रही है और उसके पुत्र नागरीप्रचारिणी तथा अन्य ऐसी ही मातृ-भाषा-सेवी सभाओं तथा संस्थाओं की स्थान स्थान पर स्थापना कर अपनी भक्ति का परिचय दे रहे हैं। परन्तु अब तक इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि भारतवर्षीय मातृ-भाषा की सेवा करनेवाली सम्पूर्ण सभाएँ तथा संस्थाएँ एक सूत्र में रहें जिससे कार्य सुप्रबन्ध के साथ चलता रहे तथा प्रचार में वा प्रचार-प्रयत्न में सुगमतापूर्वक वे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी की सहायक हो सकें। इस त्रुटि को देख इस बात की आवश्यकता हो गई है कि एक सूची सम्पूर्ण सभाओं की प्रकाशित होती रहे। इस कमी को दूर करने के लिये इस प्रकार की सूची प्रकाशित करना निश्चय हुआ है। अतः सम्पूर्ण भारतवर्षीय मातृ-भाषा का प्रचार करनेवाली सभाओं के मंत्री महोदयों तथा उन सज्जनों (जिनको इस प्रकार की सभाओं का ज्ञान हो) से विनीत निवेदन है कि यदि वे इस कार्य्य को उपयोगी समझें तो अपनी अपनी सभा का ब्योरा नीचे लिखे नकशे के अनुसार यथा शक्ति शीघ्र मन्त्री नागरीप्रचारिणी सभा बुलन्दशहर के पास भेज देने की कृपा करें।

नकशे का नमूना।

१—सभा का नाम।

२—देश का नाम (भारतवर्ष अथवा समुद्र-पार का कोई देश)।

३—सूबे का नाम।

४—ज़िले का नाम।

५—उस स्थान का नाम जहाँ सभा स्थापित है।

६—मंत्री का नाम पूरे पते सहित।

७—उस नगर या ग्राम तथा स्थान का नाम जहाँ कार्यालय स्थापित है।

८—उस डाकघर का नाम जिसके अन्तर्गत कार्यालय है।

९—सभा के उद्देश्य।

(नोट) यदि नियमावली छपी हुई हो तो उसकी एक प्रति भी भेजने की कृपा करनी चाहिए।

१०—यदि किसी सभा की शाखा हो तो उसका नाम पूरे पते सहित।

११—यदि किसी सभा से सम्बद्ध हो तो उसका नाम पूरे पते सहित।

१२—यदि सभा किसी देशी राज्यान्तर्गत हो तो उस राज्य का नाम।

१३—और विशेष ब्योरा जो आप देना चाहें।

१४—इस विषय पर अपनी सम्मति कि कौन सी सभा प्रतिनिधि होनी चाहिए और क्या आपकी सभा उसको अपनी प्रतिनिधि स्वीकार करती है।

१५—यदि कार्य्य को देखने के लिये एक वैतनिक इन्स्पेक्टर नियत हो तो आपकी सभा क्या मासिक सहायता देगी।

१६—अपनी सम्मति लिखिए कि इस सूची में और क्या विषय रहने चाहिए।

प्रार्थना—कृपया नकशा बना कर खाने खींच कर क्रम से भर कर शुद्ध और स्पष्ट लिखिए।

कृपाभिलाषी,—

बाबूराम शर्म्मा गौड़,

मन्त्री ना० प्र० सभा,

बुलन्दशहर।

साधारण अधिवेशन

शनिवार तारीख २७ नवम्बर १९१५ संध्या के ५½ बजे

स्थान-सभाभवन।

उपस्थित

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० सभापति

बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एलएल० बी०

बाबू अमीरसिंह

पंडित रामचन्द्र शुक्ल

बाबू जगन्मोहन वर्म्मा

बाबू रामचन्द्र वर्म्मा

बाबू जयनारायणसिंह

बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

बाबू हरिप्रसाद पालीधी बी० ए०

बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त

बाबू गोपालदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) गत अधिवेशन (तारीख ३० अक्तूबर १९१५) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१ पंडित महादेव गोविन्द सावरकर बी० ए०, एलएल० बी०—वकील, अकोला १॥)

२ बाबू ओंकारमल सराफ़—१८० सूतापट्टी—कलकत्ता १॥)

३ बाबू तुलसीदास—सेक्रेटरी—शारदाभवन लाइब्रेरी—जबलपुर १॥)

४ ठाकुर नन्दकुमारसिंह—वकील—सहसराम १॥)

५ बाबू चम्पालाल—पींचा जैनी—पो० सरदार शहर—राजपूताना ५)

६ बाबू भागवतसिंह—रजिस्ट्रार क़ानूनगो—सदर तहसील—ग़ाज़ीपुर १॥)

७ पंडित शंकर नत्थो बाकथल कार—हेडमास्टर स्कूल सिहावा रायपुर १॥)

८ बाबू विश्रामसिंह—हेड मास्टर—स्कूलनगरी—रायपुर १॥)

९ बाबू मनीराम जैन—हेडमास्टर—प्रा० स्कूल—सांकरा १॥)

१० बाबू रिखीराम—हेडमास्टर—प्राइमरीस्कूल—मल्हारी—तहसील धमतरी—जि० रायपुर १॥)

११ बाबू सावंतराम—हेडमास्टर—स्कूल फरसींवा—रायपुर १॥)

(३) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

१ पंडित बलभद्रप्रसाद वाजपेयी—हमीरपुर

२ पंडित नारायण बैजनाथ कौल—काशी

(४) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:-

बाबू श्यामसुन्दर दासजी बी० ए०—लखनऊ
- रामचरित मानस
- मिश्रबन्धु विनोद भाग १, २ और ३

पंडित सोमेश्वर दत्त शुक्ल—सीतापुर
- विनोद वैचित्र्य

पंडित जगन्नाथ पुच्छरत—अमृतसर
- नवीन चन्द्रोदय।

पंडित उमरावसिंह त्रिपाठी—धौलपुर
- रहीमरत्नाकर

थैकर स्टोर्स, गणेशगंज—लखनऊ
- भारतीय दृश्य

पंडित शिवनारायण मिश्र—प्रताप कार्यालय—कानपुर
- भक्तियोग

बाबू विजयकृष्ण सेन—भागलपुर
- गर्भिणी तथा गर्भ चिकित्सा

पंडित चतुर्भुज मिश्र, नौआगढ़ी—गया
- गयावासी
- भागवत (दशम स्कन्ध)
- मनोहर रामायण

वैद्य जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी, अहमदाबाद
- उत्तम सन्तति

खरीदी गईं
- मेघदूत
- रामचरितमानस
- उदयप्रकाश
- षोड़शी
- तारा
- स्वर्गीय जीवन
- अद्भुत कथा
- सोमलता भाग २
- कृष्णकामिनी
- सुरेन्द्रसुन्दरी
- विरहिनी ब्रजांगना
- मौर्यविजय
- मेरे गुरुदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नवासवदत्त
सीता वनवास
पद्यपुष्पांजलि
किरणमयी
सौभाग्यवती
बहराम बहरोज
स्वास्थ्यरक्षक

(५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

—:०:—

प्रबन्धकारिणी समिति ।

शनिवार ता० २७ नवंबर १९१५

(गतांक से आगे ।)

(१०) बा० गोपालदास के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि मनोरंजन पुस्तक-माला, हिन्दी-शब्दसागर, नागरीप्रचारिणी पत्रिका और नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला के ग्राहक बढ़ाने, सभा के सभासद बनाने तथा सभा की अन्यान्य पुस्तकों की बिक्री के लिये निम्न-लिखित नियमों पर तीन ट्रैवलिंग एजेण्ट नियत किए जांय जिनमें से एक विहार की ओर, दूसरा संयुक्त प्रदेश में और तीसरा मध्य प्रदेश की ओर भेजा जाय ।

(१) प्रत्येक ट्रैवेलिंग एजेण्ट का मासिक वेतन १५) रु० रक्खा जाय । उनकी मासिक बिक्री १५०) रु० की होना चाहिए और किसी अवस्था में वह १००) रु० से कम की न हो । १५०) रु० से अधिक की जितनी बिक्री एक मास में कोई एजेण्ट करे उसपर उसे वेतन के सिवा १०) सैकड़ा कमिशन भी दिया जाय ।

(२) एजेण्टों की मासिक बिक्री में पुस्तकों की नगद बिक्री के सिवा निम्नलिखित रक़में भी समझी जायँ अर्थात् मनोरंजनपुस्तकमाला तथा हिन्दी-शब्दसागर की प्रकाशित संख्याओं का मूल्य जो ग्राहकों से प्राप्त हो और पत्रिका वा ग्रन्थमाला के ग्राहकों तथा सभा के सभासदों से जितना द्रव्य प्रथम बार प्राप्त हो ।

(३) एजेण्टों को केवल पूरे मूल्य पर ही पुस्तकें बेचने का अधिकार होगा ।

(४) एजेण्टों को तीसरे दर्जे का रेल भाड़ा तथा कुली आदि का व्यय दिया जायगा जो प्रतिमास साधारणतः ५) रु० से अधिक न हो ।

(५) एजेण्टों को किसी ग्राहक वा सभासद से किसी अवस्था में चन्दा वा अग्रिम मूल्य लेने का अधिकार न होगा ।

(६) तीनों एजेण्टों में से एक का व्यय मनोरंजन-पुस्तकमाला से, दूसरे का हिन्दी-शब्दसागर से और तीसरे का पुस्तकों की बिक्री से दिया जाय ।

(७) यह कार्य तीन मास तक परीक्षार्थ चलाया जाय और एजेण्टों की मासिक बिक्री के लिये जो रक़म ऊपर नियत कर दी गई है उतनी बिक्री यदि बराबर होती रहे तो यह कार्य सदैव चलता रहे ।

(८) इन नियमों के अनुसार एजेण्टों को नियत करने वा कार्य संतोषजनक न होने पर उन्हें पदच्युत करने का अधिकार मंत्री को होगा ।

(११) पण्डित केदारनाथ पाठक का २४ नवम्बर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पुस्तकालय की सूची के सम्पादन से इस्तीफ़ा दिया था । निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और पुस्तकालय के निरीक्षक से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा कर सूची के सम्पादन का उपयुक्त प्रबन्ध कर दें ।

(१२) निश्चय हुआ कि हिन्दी पुस्तकों की तृतीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट तैयार करने के लिये दो मास तक के लिये २०) मासिक वेतन पर एक लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियत कर लेने का अधिकार पुस्तकों की खोज के निरीक्षक महाशय को दिया जाय।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्धकारिणी समिति।

शुक्रवार तारीख़ २१ जनवरी १९१६ संध्या के ५ बजे।

स्थान—सभाभवन।

उपस्थित।

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एलएल० बी०—सभापति
बाबू हरिप्रसाद पालोधी बी० ए०
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
पंडित साँवलजी नागर
बाबू केशवदास
बाबू बाँकेविहारी लाल
बाबू छन्नूलाल
पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०
बाबू लक्ष्मीचन्द्र एम० ए०

सम्मति भेजनेवाले

पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०
ठाकुर शिवकुमारसिंह

(१) गत अधिवेशन (तारीख २७ नवम्बर १९१५) का कार्य्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० का ३ दिसम्बर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि हिन्दी-शब्दसागर के लिये शब्दों की स्लिपों को यथा क्रम लगाने तथा कोश की कापी तैयार करने का काम अभी तक पिछड़ा हुआ है अतः गत जून मास में एक अधिक क्लार्क की नियुक्ति जो ६ मास के लिये की गई थी वह जून १९१६ तक के लिये बढ़ा दी जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(३) डाकृर छन्नूलाल स्मारक मेडल के लिये "स्कूलों की स्वास्थ्य रक्षा" पर आए हुए आठ लेख उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि इनकी परीक्षा के लिये निम्नलिखित सज्जनों की सब कमेटी बना दी जाय; अर्थात् पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, डाकृर शोभाराम और बाबू श्रीप्रकाश बैरिस्टर।

इन सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि वे इन लेखों पर अपनी सम्मति ३० मार्च १९१६ तक भेज दें।

(४) रेडिची मेडल के लिये "रसायन-शास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों" पर आया हुआ एक लेख उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि बाबू बाँकेबिहारीलाल बी० एस सी० तथा बाबू चण्डीप्रसाद से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इसके सम्बन्ध में फ़रवरी के अन्त तक अपनी सम्मति भेज दें।

(५) पंडित रामनारायण मिश्र का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० का एक चित्र सभा के हाल में लगाया जाय।

सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और निश्चय हुआ कि पंडित रामनारायण मिश्र जी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इस चित्र के बनवाने का प्रबन्ध कर दें।

(६) बाबू गौरीशंकरप्रसादजी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि डाकृर सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर को हिन्दी-शब्दसागर और मनोरंजन पुस्तकमाला की एक एक प्रति सभा की ओर से भेंट की जाय।

(७) भूदेव सत्कर्म भंडार के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि भूदेव हिन्दी मेडल के लिये सभा कुछ आर्थिक सहायता दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय हुआ कि मंत्री को अधिकार दिया जाय कि यदि वे उचित समझें तो ५) सभा की ओर से दें दें।

(८) मंत्री ने सूचना दी कि श्रीमान् काली कमली-वाले बाबा श्रीरामनाथजी और बाबू भगवान-दास हालना ने क्रमात् अपने ३ वर्ष और ४ वर्ष के चन्दें का ७५) रु० और ६) रु० भेज दिया है।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों के नाम अधि-कार प्राप्त सभासदों की नामावली में लिख लिए जायँ।

(९) उपमंत्री की रिपोर्ट के सहित बाबू खानचन्द्र का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि नागरीप्रचारिणी पत्रिका में लेखमाला भी सम्मिलित कर ली जाय और पत्रिका का वार्षिक मूल्य १॥) के स्थान में २) कर दिया जाय।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में इसकी आवश्यकता नहीं है।

(१०) निश्चय हुआ कि सन् १९१६ के मेडलों के लिये निम्नलिखित विषय नियत किए जायँ:—

डाकृर छन्नूलाल स्मारक मेडल

ग्रामों की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती

रेडिची मेडल

मनुष्य का भोजन

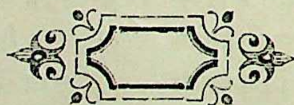
राधाकृष्णदास मेडल

इङ्गलेण्ड की शासन-पद्धति

(११) निश्चय हुआ कि आगामी फरवरी के प्रारम्भ में सभा का बाइसवाँ वार्षिकोत्सव किया जाय और इसका सब प्रबन्ध उसी कमेटी को सौंपा जाय जो राजों महाराजों के स्वागत के लिये बनाई गई है।

(१२) उक्त स्वागतकारिणी कमेटी का अब तक का कार्य्य विवरण सूचनार्थ उपस्थित किया गया।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A 414 [संख्या ९—१०
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

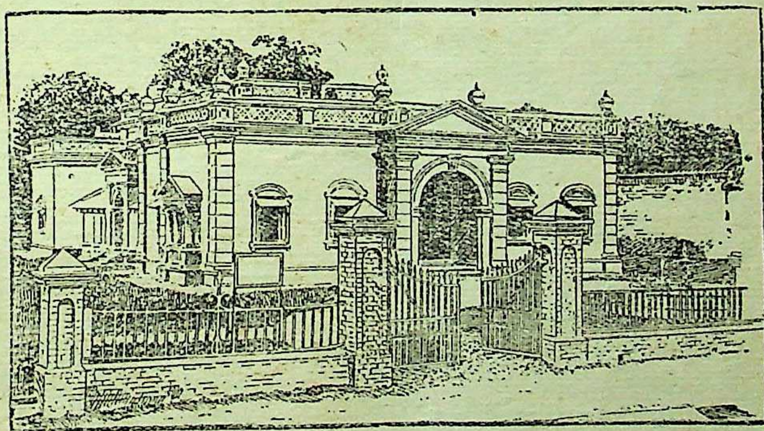
मार्च और अप्रैल १९१६

सम्पादक—रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या ≈)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची ।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी
कृत समस्त पुस्तकें और अन्य ग्रन्थ मँगाइये,
पता—व्यास कम्पनी, १४ मानमन्दिर, काशी

चित्रोंसे युक्त ।

साप्ताहिक हिन्दीकेसरी

[सम्पादक—श्रीयुत गङ्गाप्रसाद गुप्त ।]

लीजिये ! 'हिन्दी-केसरी' साप्ताहिक होगया और इसके लिये ज़मानत भी ली गई है !—यदि देशसे भक्ति है, हिन्दी भाषासे प्रेम है, महात्मा तिलकके तथा अन्य विद्वत्तापूर्ण ज़ोरदार लेख सम्पादकीय विचार तथा दूसरी अनेक उपयोगी बातें पढ़नेका शौक़ है और संसारकी समस्त मुख्य मुख्य घटनाओंका हाल लड़ाईके सिलसिलेवार समाचार तथा बड़े बड़े चित्र देखनेका अनुराग है तो तुरन्त ग्राहक हो जाइये। जूनसे पाक्षिक निकल रहा था, ७ अक्तूबर से साप्ताहिक । तौभी अभी जो ग्राहक हो जायँगे उनसे वही २) दो रुपया वार्षिक मूल्य लिया जायगा, वी. पी. से २-), उपहारमें स्वदेशी आन्दोलन दे० दादाभाईनौरोजी या म० गोखलेकी सचित्र जीवनी इन तीनोंमें से कोई एक पुस्तक बिना मूल्य । शीघ्र ग्राहक बन तथा मित्रोंको बनाकर स्वदेश और स्वभाषाकी सहायता कीजिये । नमूनेके लिये)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये ।

☞ पता—मैनेजर हिन्दी-केसरी, आर्ट प्रेस, बनारस सिटी।

पवित्र काश्मीरी केशर—दूर्ज अव्वल ।।।=) तोला । शुद्ध शिलाजीत ।।) तोला चीनी ममीरा २) तोला ।
काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर । ७-१३-६-१४

उत्तमोत्तम पुस्तकें ।

कविवर बिहारीलाल	=)	भारतेन्दु चरित्र	॥)	जुझार तेजा	=)	सिन्ध का इतिहास	।)
त्रिस्सहाय हिन्दू	।)	जंगनामा	।॥)	अनन्य ग्रन्थावली	≡)	चित्रावली	२)
परिचर्या प्रणाली	।)	महिला मृदुवाणी	॥)	बालशिक्षा	।)	राजविलास	१)
प्राचीन लेख मणिमाला	१)	यूरोपीय दर्शन	॥)	सैरी सुधार	॥)	कालबोध	≡)
पृथ्वीराजरासो	२)	सरल व्यायाम	।=)	छूतवाले रोग और उनसे बचने के उपाय	१)	हिन्दी लेक्चर	-)
प्रबोधचन्द्रिका	।=)	संक्षेप लेखप्रणाली	॥)	राज्य-प्रबन्ध शिक्षा	॥)	महाराणा प्रताप	॥)
विरहलीला	=)	हम्मीररासो	१)			भूषण ग्रन्थावली	।॥)
वीरविरुदावली	।=)	हरिश्चन्द्र	=)				

पता—मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा काशी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग २० } मार्च और अप्रैल १९१६. { संख्या ९—१०

उद्बोधन। *

(द्विपदी)

सज्जनो देखिए निज काम बनाना होगा।
जाति-भाषा के लिये योग कमाना होगा ॥ १ ॥
सामने आके उमग करके बड़े बीरों लौं।
मान हिन्दी का बढ़ा आन निभाना होगा ॥ २ ॥
सैकड़ों लाखों ही कठिनाइयाँ करेंगी क्या।
फूंक से हमको बलाओं को उड़ाना होगा ।३॥
सामने आए हमारे जो रुकावट का पहाड़।
खोद कर उसको भी मिट्टी में मिलाना होगा ॥४॥
उलझनों का जलनिधि राह में पड़े तो क्या।
तेज कुम्भज सा हमें काम में लाना होगा ॥५॥
मेंहदियों की तरह पिस जायँ भले ही लेकिन।
रंग अपना तो हमें खुल के दिखाना होगा ॥६॥
क्यों न इस राह में नुच जायँ या कुचल जावें।
दूब की भाँति पनप करके जम आना होगा ॥७॥
जो इसी धुन में ही मिल जायँ कभी मिट्टी में।
उग के बीजों की तरह सर को उठाना होगा ॥८॥
भगवे कपड़ों से नहीं काम चलेगा प्यारे।
हिन्दी हित रंग में कपड़ों को रंगाना होगा ॥९॥
स्वर्ग औ मुक्ति के झगड़ों से किनारे रह कर।
हिन्दी सेवा ही में सब जन्म बिताना होगा ॥१०॥
निज नई पौध की उरभूमि में परम रुचि से।
हिन्दी अनुराग का बर वृक्ष लगाना होगा ॥११॥
जिन उरों में है घिरा पर-भाषा ममता-तम।
दीप वाँ नागरी प्रियता का जलाना होगा ॥१२॥
यत्न से युक्ति से निज स्नेहमयी हिन्दी को।
गोद में ऐसे ही नृप-मणि के बिठाना होगा ॥१३॥
फिर बिनत हो के स-अनुराग पड़ेगा कहना।
जाति-भाषा का प्रभो ! मान बढ़ाना होगा ॥१४॥
सोच कर चाव सहित ऐसे ही सुअवसर पर।
उसकी सत्कीर्त्ति का कल पुष्प खिलाना होगा ॥१५
ऐसा कर करके सदा आप फलें फूलेंगे।
ईश की होगी दया जग में ठिकाना होगा ॥१६॥

---

*यह कविता श्रीयुत पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय ने नागरी प्रचारिणी सभा के २२ वें वार्षिकोत्सव के समय पढ़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षों के अंग।

(गतांक से आगे)

[लेखक,—श्रीयुक्त बा० हरिप्रसादजी पालधि बी० ए०।]

पत्ते की डंठी को छोड़ कर उसका जो चौड़ा भाग होता है उसको फलक कह सकते हैं। बहुत से पत्ते स्कन्ध, काण्ड अथवा डंठियों से न निकल कर एक दम मूल के ऊपर से निकते हैं; यथा मूली, गाजर इत्यादि के पत्ते। इनका नाम हम मूलज पत्र रखते हैं। अंगरेज़ी में इनको रेडिकल लीफ (radical leaf) कहते हैं। बहुत अवस्थाओं में इस प्रकार के पत्ते वास्तव में स्कन्ध ही से निकलते हैं, यद्यपि स्कन्ध बहुत छोटा और मिट्टी के नीचे दबा हुआ होने के कारण देख नहीं पड़ता। बरसों तक ताल (ताड़) और खजूर के वृक्ष इसी अवस्था में रहते हैं, उनकी पेड़ी (स्कन्ध) मिट्टी छोड़ कर ऊपर नहीं उठती।

जो पत्र शाखाओं में से निकलते हैं उनको हम दण्डज पत्र कह सकते हैं। अँगरेज़ी में ऐसे पत्र को कालाइन लीफ (cauline leaf) कहते हैं। बहुत प्रकार के वृक्षों के पत्ते चिकने और बहुतों के रोएँ-दार होते हैं; इनके लिये पृथक् पृथक् नाम रखने की कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती। यदि पृथक् पृथक् नाम रखना ही हो तो चिकने पत्तों को मसृण और रोएंदार पत्तों को रोंआर वा रोमशपत्र कह सकते हैं। बहुत से रोमशपत्र ऐसे हैं जिनके रोएं ऐसे कठिन होते हैं कि उनको हमलोग काँटा कहते हैं यथा नागफनी और बिछुआ (पीतपर्णी, स्वित्रघ्नी)। चिकने से चिकना पत्ता क्यों न लिया जाय और उसके फलक को अणु-वीक्षण यंत्र से देखा जाय तो मालूम होगा कि उसमें लाखों छोटे छोटे छिद्र हैं! इन्हीं छोटे छोटे छिद्रों की राह से पत्ते वायु से कार्बोनिक एसिड गैस, अमोनिया (क्षारिन् वायु) इत्यादि खींचते हैं। वे कार्बन को अपने अभ्यन्तर में हजम करके आक्सिजन (अम्लजन) को वायु में छोड़ देते हैं। पत्ते में जो सब्ज़ी होती है उसी में यह क्षमता है कि वह सूर्य्य की रश्मि के संयोग से कार्बोनिक एसिड का विश्लेषण कर दे। वृक्ष की नई डंठियों में भी सब्ज़ी होती है और वह भी इसी तरह काम करती है। रात्रिकाल में सूर्य्य की रश्मि का अभाव होने के कारण पत्तियों में यह क्षमता नहीं रहती। उस समय पत्तियों में से कार्बोनिक एसिड गैस ही निकलता है। हम यह ठीक नहीं कह सकते कि पत्तियाँ रात्रि को कार्बोनिक एसिड गैस कैसे छोड़ती हैं। जो भाग उन्होंने दिन को खींचा था और अभी उसका विश्लेषण नहीं हुआ था, क्या वही उन्होंने छोड़ दिया, अथवा रात्रि को उन्होंने वायु से आक्सिजन (अम्लजन) खींच कर अपने अभ्यन्तरस्थ कार्बन से संयोग कर के कार्बोनिक एसिड गैस बना कर छोड़ा। यह चाहे जिस प्रकार से होता हो पर यह तो निश्चय है कि रात्रि काल में वृक्षों की पत्तियों से कार्बोनिक एसिड गैस निकलता है। यह गैस वायु से गुरुतर होता है इसलिये भूपृष्ठ पर जमा होता है। इसलिये हम लोगों को चाहिए कि वृक्षों के नीचे तथा बड़े बड़े वृक्षोंवाली बारियों में रात्रि काल में न सोएँ क्यों कि ऐसे स्थान की वायु में रात्रि काल में कार्बोनिक एसिड गैस अतिरिक्त परिमाण में होने के कारण मनुष्य के स्वाथ्य के लिये हानिकारक होता है।

एक ही प्रकार की मिट्टी में भिन्न भिन्न जाति के वृक्ष भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं। मिट्टी में से जो रस एक खींचता है वही रस दूसरा भी खींचता है, परन्तु एक अमृत तुल्य आम और दाख (अँगूर) पैदा करता है और दूसरा कटु निम्ब और हलाहल विष। चन्दनादिक वृक्ष सुगन्धोतपादन करते हैं और दूसरे अनेक वृक्ष विष्ठा से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गन्धि। क्या इससे ईश्वर की अपार महिमा नहीं झलकती?

उद्भिद शास्त्र के विद्वानों ने यह स्थिर किया है कि वृक्षों के स्कन्ध और शाखा से जो कुछ उगता है वह पत्र है। कुछ तो पत्र ही बने रहते हैं और कुछ रूपान्तर धारण कर के भिन्न भिन्न प्रकार की क्रियाएं सम्पादन करते हैं। इन विद्वानों के मत से पुष्प भी पत्तों का रूपान्तर मात्र है, अथवा यह कहिए कि एक पुष्प भी कई प्रकार के पत्तों से बना होता है। हम पाठकों का ध्यान अब पुष्पों की ओर दिलाते हैं। आजकल नीबू, नारंगी इत्यादि फूले हुए हैं, इनमें से किसी बड़ी जाति का एक फूल लीजिए, आपको देख पड़ेगा कि सफ़ेद रंग का फूल एक हरी कटोरी में रखा हुआ है। यह हरी कटोरी भी पत्ते का एक रूपान्तर मात्र है। किसी किसी पुष्प में पत्तियाँ जुड़ कर एक कटोरी बन जाती हैं और कभी पत्तियाँ पृथक् ही रहती हैं। इन पत्तियों को हम पुष्पों का बाह्यावरण वा आवरणपत्र कह सकते हैं। अँगरेजी में इनको कालिक्स (calyx) कहते हैं। जिन भिन्न भिन्न पत्तों से यह आवरण बनता है। उनको अँगरेज़ी में सिपल कहते हैं। हिन्दी में भी हम उनको सिपल वा स्फल कह सकते हैं। यदि यही आवरण बहुत से सिपलों से बना हो तो उसको बहु-सिपलक वा बहुस्फलक कह सकते हैं। यदि ये स्फल परस्पर थोड़े बहुत संयुक्त हों जैसा कि नीबू जाति के फूल में आपने देखा है तो उनको युक्त-स्फलक कहा जा सकता है। बाह्यावरण के भीतर के भाग का नाम प्रसून, पुष्प मुकुट वा केवल मुकुट रखा जा सकता है। प्रसून के भिन्न भिन्न पत्तों को दल कहते हैं; यथा शतदल कमल। दल का अँगरेज़ी नाम पिटल है। पूर्ववत् इसके भी दो भेद हो सकते हैं यथा बहुदल और युक्तदल-पुष्प। यदि सब दल समान हों जैसा कि नींबू जाति के पुष्प में होता है तो पुष्प को समदल कहते हैं।

आगे चलकर हम पाठकों को दिखलावेंगे कि पुष्प का काम बीजोत्पादन है। पुष्प का जो भाग शेष पर्य्यंत बना रहता है उसको स्थायी कहते हैं और जो भाग अपनी क्रिया के सम्पादन के उपरान्त गिर जाता है, वह अस्थायी अथवा भंगुर कहा जा सकता है। वृन्त का अग्रभाग जिस पर पुष्प रहता है, वह पुष्पाधार, प्याला, वा कटोरी कहा जा सकता है। अँगरेज़ी में इसको रिसेप्टिकिल् (receptacl) कहते हैं।

सावधानता-पूर्वक आप उस फूल के बाह्यावरण तथा दलों को तोड़ डालिए। आपको देख पड़ेगा कि पाँच पतले पतले सूतों की भाँति कोई चीज़ खड़ी है। किसी किसी जाति के नीबू के फूल के सूत पाँच के स्थान पर तीन अथवा चार भी होते हैं। लोग इनको भी एक प्रकार का पत्र ही कहते हैं। यद्यपि इनमें और पत्तों में कोई सादृश्य नहीं है तथापि विद्वान् लोग इनको भी एक प्रकार का पत्र ही कहते हैं। पुष्प के इस भाग का नाम हम पुंस्तम्भ रखते हैं। पुष्प में जितने दल हों उतने ही अथवा उनसे कई गुण पुंस्तम्भ होते हैं। पुंस्तम्भ भी दो भागों में विभक्त होता है। सूत्रवत् भाग का नाम पुंकेसर है और उसके सिर पर के चिपटे भाग का नाम पराग कोश है। बनिए की दूकान का केसर वास्तव में केसर पुष्प का पुंकेसर ही है। अँगरेज़ी में पुंस्तम्भ का नाम स्टेमेन (stamen) है; और पुंकेसर को फिलामेन्ट (filament) और पराग-कोश को आन्थर (anther) कहते हैं। परागकोश जब पक कर फूटता है तब उसमें से पराग निकलता है। उसके एक एक दाने का नाम रेणु है। पराग को अँगरेज़ी में पोलेन (pollen) कहते हैं।

इन पाँचों पुंस्तम्भों को भी तोड़ डालिए, आप देखेंगे कि पुष्प के मध्य भाग में एक स्तम्भ है। इसको हम गर्भ स्तम्भ कहेंगे। गर्भ स्तम्भ के नीचे का स्थूल भाग जरायु है और यही बढ़ कर भावी नीबू वा नारंगी होनेवाला है। जरायु के ऊपर जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाली है उसको हम गर्भनाली कह सकते हैं और इस नाली की चोटी पर रजकोश होता है। गर्भस्तंभ को भी विद्वान् लोग वृक्ष का पत्र विशेष कहते हैं। कभी कभी जरायु एक ही कोश का होता है और कभी बहुत से कोश एक ही जरायु में होते हैं। इन अलग अलग कोशों को हम गर्भ-कोश या बीजकोश कह सकते हैं। जब एक ही कोश का जरायु होता है यथा मटर की छीमी तो जरायु और बीजकोश एक ही हो जाता है। परन्तु जब एक जरायु में बहुत से कोश होते हैं यथा नारंगी में तो कुल नारंगी को जरायु और पृथक् पृथक् कोश को एक एक बीज-कोश कहते हैं। एक एक कोश में एक वा एकाधिक भ्रूण वा डिम्ब (ovule) हो सकते हैं जो प्रत्येक बीज कोश से लगे रहते हैं।

अब हमको यह देखना है कि पुष्प के भिन्न भिन्न भागों की क्या क्रिया है; अर्थात् बीजोत्पादन में वह क्या करते हैं। बाह्यावरण तो पुष्प का केवल संरक्षक है, अर्थात् उसका यथा नाम तथा क्रिया है। मुकुट वा प्रसून का काम विचित्र है। बीजोत्पादन में भिन्न भिन्न प्रकार की मक्खियाँ बहुत ही काम देती हैं। प्रसून का काम केवल मधुमक्षिकाओं को अपनी ओर आकर्षण करना ही है। पुष्पों में प्रायः मधु पैदा होता है और इसी मधु के लालच से मक्षिका एक फूल से दूसरे फूल पर आती जाती रहती हैं। कोई प्रसून अपने रंग से, कोई अपनी गंध से और कोई इन दोनों के कारण मक्षिकाओं का चित्ताकर्षण करता है। सामान्य नियम यह है कि रंगीन पुष्पों पर दिन को विचरनेवाली मक्खियाँ बैठती हैं अर्थात् दूर से ऐसे पुष्पों को देख कर मक्खियाँ उनकी ओर जाती हैं। परन्तु रात्रि के अन्धकार में दूर से पुष्पों का देख पड़ना असम्भव है, इसलिये परमेश्वर ने गंध की सृष्टि की है; गंध के सहारे रात को भी मक्खियाँ पुष्पों को ढूँढ सकती हैं। जो पुष्प रंग तथा गंध युक्त हैं उन पर मक्खियाँ दिन को भी बैठती हैं और रात को भी। इस सामान्य नियम का व्यतिक्रम भी होता है, यथा किसी किसी पुष्प में प्रसून ही नहीं होता, परन्तु ऐसे विशेष स्थलों का विचार इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता।

बीजोत्पादन करनेवाले अंग केवल दो ही हैं अर्थात् पुंस्तम्भ और गर्भस्तम्भ। जैसे जीवों में स्त्री के गर्भ में बच्चा पैदा होता है वैसे ही वृक्षों में गर्भ-स्तम्भ के जरायु भाग में बीज पैदा होता है; अर्थात् पुष्प का पुरुषभाग पुंस्तम्भ है और स्त्रीभाग गर्भ-स्तम्भ है। किसी किसी पुष्प में यह दोनों भाग होते हैं और किसी में एक ही होता है। किसी किसी जाति के वृक्ष में ऐसा होता है कि किसी फूल में दोनों और किसी में एक ही अंग होता है। ऐसा भी होता है कि कोई पुष्प पुंस्तम्भवाला और कोई गर्भ-स्तम्भवाला होता है। किसी वृक्ष में केवल पुंस्तम्भ-वाले पुष्प ही होते हैं और दूसरे वृक्ष में केवल गर्भस्तम्भवाले पुष्प ही पैदा होते हैं। पहले प्रकार के पुष्प को पुंपुष्प और दूसरे प्रकार के पुष्प को स्त्री-पुष्प कहते हैं। जिस पुष्प में दोनों प्रकार के स्तम्भ हों उनको द्विलिंग वा उभयलिंग पुष्प कह सकते हैं। केवल गर्भस्तम्भवाले पुष्पों ही में बीज पैदा हो सकता है क्योंकि उन्हीं में जरायु होता है।

पहले पुष्पों में कलियाँ निकलती हैं। जब पुष्प इस योग्य होता है कि वह बीजोत्पादन में समर्थ हो तब वह प्रस्फुटित होता है और इसके साथ ही साथ पराग कोश पुष्ट होकर फट जाता है और उसमें का पराग निकल कर गिरने वा झड़ने लगता है; और ऐसी ही अवस्था में रज कोश के दाने उभड़ आते हैं और उनमें से एक प्रकार का रस निकलता है। प्रायः ऐसा होता है कि एक ही पुष्प में स्थित पराग-कोश का फटना और रज कोश में दानों का उभड़ना एक काल में नहीं होता, इसी लिये उसी पुष्प का पराग अपने रज कोश में सम्मिलित नहीं हो सकता। परन्तु एक पुष्प का पराग किसी दूसरे पुष्प के रज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्मिलित हो सकता है। यह क्रिया चाहे वायु द्वारा हो चाहे मक्षिकाओं के द्वारा हो, परन्तु जब तक पराग रज से सम्मिलित न हो, बीजोत्पादन नहीं हो सकता। रज कोश से जो सामान्य रस निकलता है उसी को रज कहते हैं। इसमें लस होता है और पराग रेणु इसी लस के कारण रज कोश से चिमड़ जाता है। पराग और रज के साथ सम्बन्ध होनेवाली क्रिया को ही वृक्षों का गर्भाधान कह सकते हैं।

इस गर्भाधान क्रिया को अब हम विस्तारपूर्वक लिखेंगे। पहली बात तो यह है कि एक ही पुष्प के पराग और रज के संयोग से प्रायः बीजोत्पादन नहीं होता। हां गर्भाधान हो सकता है और फल भी उत्पन्न हो सकता है। परन्तु ऐसे फलों में या तो बीज होगा ही नहीं या निर्जीव होगा और वृक्षोत्पादन में समर्थ नहीं होगा। यही कारण है कि एक ही पुष्प के पराग कोश का फटना और रज कोश में दानों का उभड़ना समकालीन नहीं होता। एक ही वृक्ष के भिन्न भिन्न पुष्पों के पराग और रज के संयोग से बीजोत्पादन हो सकता है और इन बीजों से वृक्षोत्पादन भी होता है; परन्तु ऐसे वृक्षों में उतना तेज नहीं होता जितना भिन्न भिन्न वृक्षों के पुष्पों से उत्पन्न हुए बीजों से जन्मे हुए वृक्षों में होता है। इसलिये हमको चाहिए कि एक से अधिक वृक्ष एक स्थान पर रोपण करें जिसमें सतेज बीजों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहे।

अब हमको यह देखना है कि मक्षिका बीजोत्पादन के विषय में कैसे सहायता करती हैं। प्रसूनों के भीतर एक कोश होता है जिसमें मधु पैदा होता है। इस पुष्प-मधुका नाम मकरंद है; और जिस कोश में मधु रहता है उसको हम मधुकोश कहते हैं। अँगरेज़ी में इसका नाम नेकटरी (nectary) है।

मधु कोश के पास पहुँचने के समय मक्षिकाओं का देह पराग-कोश के संघर्ष में आता है और कुछ पराग-रेणु उसके पैर तथा पंखों में लग जाते हैं। जब यह मक्षिका किसी दूसरे पुष्प में घुसती है तब उसके शरीर में लगा हुआ परागरेणु इस दूसरे पुष्प के रजकोश में लग जाता है। इसी भाँति मक्खियाँ पुष्पों से पुष्पान्तर में घुस घुस कर उनकी गर्भाधान-क्रिया सम्पादन करती हैं। वायु द्वारा संचालित हो कर भी परागरेणु पुष्पान्तर के रजकोश में पहुँच सकता है। चाहे जिस प्रकार से हो, ज्योंही पराग-रेणु का सम्पर्क रजकोश से होता है उसी क्षण से उस पुष्प में बीजोत्पादन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

रजकोश से मिले हुए परागरेणु में से एक सूक्ष्म सूत्रवत् तन्तु गर्भ नाली में प्रवेश करता है, और बढ़ते बढ़ते गर्भकोशस्थित एक भ्रूण (ovule) में जा पहुँचता है। उस भ्रूण में जीव का संचार होता है और वह भ्रूण बढ़ कर बीज का रूप धारण करता है यदि एक गर्भकोश में कई भ्रूण हों तो पृथक् पृथक् भ्रूण को सजीव करने के लिये पृथक् पृथक् पराग-रेणु की आवश्यकता होगी। यदि पराग-रेणु का सम्पर्क रजकोश से आवश्यकता से कम हुआ हो तो कुछ भ्रूण सजीव न होंगे। यही कारण है कि कभी कभी मटर की फलियों में दाने नहीं बैठते अथवा कम बैठते हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि पराग और रज के संयोग से भ्रूण में जीव का संचार होता है; इसलिये यदि हम ऐसा कर सकें कि एक ही वृक्ष के भिन्न भिन्न पुष्पों से परस्पर सम्बन्ध न होने पावे, परन्तु हमारे इच्छानुसार उसी जाति के किसी दूसरे वृक्ष के पुष्प से सम्बन्ध हो, तो उत्पन्न हुए बीज भी हमारे इच्छानुसार या तो प्रथम वृक्ष के समान फल और बीज उत्पन्न करेंगे और या दूसरे प्रकार के तुल्य; अथवा एक ऐसा फल और बीज उत्पन्न करेंगे जिसमें कुछ कुछ गुण दोनों वृक्षों के होंगे। युरोप और अमेरिका में इसी तत्त्व पर ध्यान रख कर काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है और विशेष विशेष गुणवाले फल, पुष्प और बीज उत्पन्न किए जाते हैं।

इस लेख को समाप्त करने के पहले हम पाठकों को सतर्क कर देना चाहते हैं कि वह ऐसा न समझ लें कि भिन्न भिन्न प्रकार के फल, पुष्प तथा बीजों के उत्पन्न करने के लिये केवल ऊपर लिखी हुई क्रिया ही यथेष्ट है। वृक्षों में उन्नति कैसे की जाती है यह किसी दूसरे लेख में हम दिखावेंगे। इस लेख में हमारा मुख्य उद्देश्य यह था कि हम पाठकों को कुछ पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान करा दें और यह बतला दें कि बीजोत्पादन में वृक्षों के कौन कौन से अंग क्या क्या क्रियाएं सम्पादन करते हैं।

—:०:—

प्राचीन मिस्र।

अफ़्रिका के मानचित्र में, उत्तर की ओर वर्त्तमान मिस्र की जो सीमा दी हुई है, वह प्राचीन और ऐतिहासिक मिस्र से बहुत भिन्न है। पूर्वकाल में उसके अंतर्गत नील नदी से सींचा जानेवाला उसके दोनों ओर का थोड़ा थोड़ा प्रदेश और मुहाने पर का कुछ अधिक चौड़ा प्रांत था। नील नदी अपने उद्गम से कछार तक प्रायः ७०० मील, एक झुकी हुई रेखा में चली गई है; जिसके दोनों ओर ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ होने के कारण बीच में उतनी ही लंबी बहुत सुंदर तराई पड़ गई है। इस तराई की चौड़ाई किसी स्थान पर दस मील से अधिक नहीं है। कहीं कहीं तो वह घट कर एक ही मील रह गई है। इसके मुहाने पर का प्रांत पौने दो सौ से सवा दो सौ मील तक लंबा और प्रायः सौ मील चौड़ा है। इन दोनों प्रांतों के मिलने से मिस्र देश का आकार लंबे झुके हुए डंठलवाले एक कमल का सा हो जाता है। संसार के समस्त देशों की अपेक्षा इस देश की रचना बहुत ही विलक्षण है। बहुत प्राचीनकाल में किसी एक स्थान पर रह कर सरलतापूर्वक सारे देश का शासन करना प्रायः असंभव था।

नील नदी की लंबी तराई और समुद्र किनारे के चौड़े कछार के कारण देश स्वभावतः दो भागों में बँट जाता है। इसी लिये वहाँ के आदिम निवासियों ने अपनी भाषा में उसका जो नाम रक्खा था उसका अर्थ होता है—"दो देश"। वहाँ की प्राचीन चित्र-लिपि में भी स्वदेश का बोध कराने के लिये देश-बोधक चिह्न को दो बार लिख देते थे। चौड़ा कछार एकदम समतल है, उसमें पहाड़ी, टीले आदि का कहीं नाम नहीं है। न तो उसमें कहीं जंगल आदि हैं और न कहीं चढ़ाव उतार है। सारा प्रांत बहुत सी नहरों से सींचा जाने के कारण बहुत उप-जाऊ है। देश का दूसरा प्रांत—नील नदी की तराई—प्रायः सात सौ मील लंबा और लगातार ऊँची ऊँची पहाड़ियों के मध्य में है। उन पहाड़ियों पर न तो किसी प्रकार के वृक्ष हैं और न हरियाली। इस तराई में नदी के साथ ही साथ बहुत दूर तक "नहर यूसुफ" नामक एक लंबी नहर चली गई है, जिसे वहाँ के आदिम निवासियों ने आज से कई हजार बरस पहले तैयार किया था। प्राचीन मिस्र को वर्त्तमान मिस्र का एक अंश मात्र समझना चाहिए। वर्त्तमान मिस्र में नील की तराई के दोनों ओर बहुत दूर दूर तक का जो चौड़ा मैदान सम्मिलित कर लिया गया है, वह न तो प्राचीन मिस्र के अंत-र्गत था और न इस समय उसमें मिस्र के आदिम निवासी ही रहते हैं।

तात्पर्य्य यह कि प्राचीन मिस्र में वही देश सम्मिलित था जो नील नदी अथवा उससे निकाली हुई नहरों से सींचा जाता था। नील का स्रोत बहुत ही प्रबल है,—उसका जल अथाह और अनंत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन मिस्री उसे हपी (गुप्त) कहते थे; अर्थात् उसका निवास अज्ञात था। वे उसे अनादि और अनंत समझते थे और समस्त उत्तम पदार्थों का दाता मानते थे। वे उसकी प्रशंसा में उत्तम उत्तम गीत बनाते और खेत जोतते समय गाते थे। नील का सुंदर नीला जल और उसके आस पास के प्रांत की शोभा बड़ी ही मनोहर है। मिस्र देश सारे संसार के देशों से अधिक उपजाऊ है। कहते हैं कि अपने उत्कर्ष काल में उस छोटे से देश में प्रायः बीस हज़ार नगर थे। यह बात कोई अधिक आश्चर्य्य की नहीं है, क्योंकि प्रायः सभी उन्नत और सभ्य प्राचीन जातियाँ अपेक्षाकृत छोटे और संकुचित देशों में ही रहनेवाली थीं।

बहुत प्राचीन काल से नील नदी में एक और भी विशेषता है। उसमें प्रति वर्ष बहुत भारी बाढ़ आया करती है जिससे प्रायः सारी तराई जलमय हो जाती है। जल उतर जाने पर उसके साथ आई हुई जो मिट्टी वहाँ बच जाती है वह भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने में बहुत सहायता देती है। प्राचीन मिस्री उस भूमि में साल में तीन फसलें तैयार करते थे; एक अनाज की और दो तरकारियों, फलों और घासों की। वहाँ के लोग गेहूँ, प्याज, गाजर, मूली, तरबूज, खीरा और ककड़ी आदि बोते थे और उन्हें बड़े शौक से खाते थे। स्थान स्थान पर खजूर, छोहारे और अंगूर भी होते थे। प्राचीन काल में सब से उत्तम और अधिक गेहूँ मिस्र में ही होता था और आसपास के प्रायः सभी देशों को भेजा जाता था। गेहूँ के लिये बहुत दिनों तक रोम को केवल मिस्र पर ही निर्भर रहना पड़ा था।

इसके अतिरिक्त मिस्र देश की स्थिति भी बहुत ही उत्तम स्थान पर थी। उसका अधिकांश समुद्र के किनारे पर था जिस कारण उसे समुद्र द्वारा व्यापार करने में तत्कालीन अन्य जातियों की अपेक्षा बहुत अधिक सुभीता था। फोनीशिया, एसीरिया और बैबिलोनिया आदि उत्कर्ष की चरम सीमा तक पहुँच कर भी इस बात में उसका मुकाबला न कर सकते थे। अरब या एबीसीनिया आदि में कोई प्रबल राज्य न होने के कारण आस पास के देशों पर भी उसका यथेष्ट प्रभाव पड़ता था। देश में न तो सड़कों का अभाव था और न बंदरों का। वह बड़ी सुगमता से अपने देश की पैदावार दूसरे देशों में भेज सकता और वहाँ से अपनी आवश्यकता की चीजें मँगा सकता था। मिस्री जहाज़ों द्वारा अपने देश का अनाज, मदिरा तथा शीशे के बने हुए सामान इटली, ग्रीस, कार्थेज, अरब, फारस, जंजीबार तथा भारत आदि देशों में भेजते थे और वहाँ से कपड़े, मूर्त्तियाँ, बरतन तथा अन्य पदार्थ मँगाते थे। नील द्वारा अपने ही देश में यात्रा करने का भी उन्हें बहुत सुभीता था। आजकल के देशों की भाँति प्राचीन मिस्र में पहाड़ों, जङ्गलों और दलदलों से होनेवाली कठिनाइयाँ नहीं थीं और न वहाँ पुल बनाने या पहाड़ों में गुफाएं खोदने की आवश्यकता होती थी। नील नदी उनके लिये बहुत अच्छी सड़क का काम देती थी। क्योंकि उसमें प्रायः बहाव या तरखा बहुत ही कम रहता है। मिस्री बहुत अच्छे नाविक होते थे। आज से बत्तीस सौ वर्ष पूर्व एक मिस्री राजा ने नील के उद्गम के पास से नावों पर भारी भारी पत्थर मँगवा कर साढ़े छः सौ मील दूर मेडिटरेनियन सागर के किनारे पर एक बहुत बड़ा मंदिर बनवाया था! वहाँ चैत से कातिक तक उत्तरी हवा चलती है जिसकी सहायता से पालवाली नाव बड़ी सरलता से चढ़ाव पर चली जाती है और बिना पाल की नाव को बहाव की सहायता से उतार की ओर जाने में जरा भी कठिनता नहीं होती।

यों तो मिस्र में प्रायः सभी ऋतुओं में कुछ न कुछ विलक्षणता रहती है पर जिस समय वहाँ नील में बाढ़ आती है, उस समय वहाँ का दृश्य बहुत ही अनुपम हो जाता है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा देश जलमय दिखाई देता है । पानी इतना अधिक चढ़ता है कि बड़े बड़े ताड़ और खजूर के वृक्षों की टहनियाँ उससे चार ही पाँच हाथ ऊपर निकली होती हैं! यद्यपि गाँवों और नगरों की कुरसियाँ बहुत ऊँची हैं तो भी अधिक बाढ़ के समय वहाँ के निवासियों और पशुओं को बड़ी भारी विपत्ति का सामना करना पड़ता है। थोड़ी बाढ़ में दिन के समय जल में गाँव की परछाईं बहुत ही शोभायमान मालूम होती है, पर अधिक बाढ़ के समय प्रायः गाँव के गाँव बह जाते हैं। पर ऐसा ईश्वरी प्रकोप बहुत कम होता है और मिस्रियों का अधिकांश समय बड़े ही सुख से बीतता है। कड़ी गरमी के दिनों में भी वहाँ उत्तरी हवा के कारण ठंढक रहती है वहाँ दो ही ऋतुएँ होती हैं— गरमी और वसंत। कातिक से जेठ तक वहाँ वसंत ऋतु रहती है। और चैत बैसाख में फसल तैयार हो जाती है। बरफ या कुहरा पड़ना तो दूर रहा, वहाँ वर्षा भी बहुत ही कम होती है। न हवा में अधिक तरी या सरदी आती है और न आकाश में मेघ दिखाई देते हैं। सब दिन प्रायः एक ही समान रहते हैं। हाँ, ग्रीष्म ऋतु में थोड़ा कष्ट अवश्य होता है, पर वह भी असह्य नहीं ।

मिस्र की पहाड़ियों में अनेक प्रकार के पत्थर होते हैं। प्राचीन काल में वहाँ सोना अधिकता से मिलता था पर अब कम हो गया है। ताँबा, लोहा और सीसा अब तक पाया जाता है और लोहे की एक खान में कुछ ऐसे चिह्न भी मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि प्राचीन काल में उससे लोहा निकाला जाता था। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के लाल, पन्ने, नीलम, बिल्लौर तथा अन्य प्रकार के बहुमूल्य रत्न भी पाए जाते हैं। फूल आदि वहाँ किसी प्रकार के नहीं होते। प्राचीन काल में एक प्रकार का सरकंडा होता था जिसके रेशे के बने हुए कपड़ों को ग्रीक और रोमन बहुत पसंद करते थे। बड़े बड़े सफेद कमल वहाँ अधिकता से होते थे और सजावट तथा देवताओं पर चढ़ाने के काम में आते थे। यहाँ तक कि राजसिंहासन भी उन्हीं से सजाए जाते थे। यद्यपि आजकल वहाँ के निवासी एक प्रकार के बड़े बकरों का शिकार बाज और कुत्तों की सहायता से करते हैं; पर प्राचीन काल में वहाँ शेर, भालू, बारहसिंघे, खरगोश आदि ऐसे पशुओं का नाम भी न था जो शिकार करने के योग्य होते। हाँ, मगरों और दरियाई घोड़ों का शिकार वहाँ अवश्य होता था और मछलियाँ तथा अन्य जल-पक्षी भी मारे जाते थे। आजकल भी वहाँ बत्तक, बगुले, आदि जल-पक्षी अधिकता से होते हैं। चैत में वहाँ तीतर, बन-मुर्गे तथा अन्य पक्षी भी आ जाते हैं। नील तथा उसकी नहरों में बहुत ही परिमित जाति की मछलियाँ अधिकता से होती हैं ।

यद्यपि मिस्र में वर्षा, मेघ, इंद्रधनुष आदि की प्राकृतिक शोभा और सुंदरता देखने को नहीं मिलती तथापि नित्य प्रातः और सायंकाल सारे देश पर सूर्य्य की किरणें इस विलक्षणता से पड़ती हैं कि उसका एक एक अंश अद्भुत रूप से चमकने लगता है। रात के समय वहाँ चंद्रमा की शोभा भी अपूर्व और दर्शनीय होती है। कृष्ण पक्ष की सुनसान रातों में अनेक रंग के सितारों की जगमगाहट से भी वहाँ का दृश्य बहुत सुहावना हो जाता है। अनेक स्थानों पर वहाँ के आदिम निवासियों के शिल्प-चातुर्य्य, उद्योग और बल आदि के भी बहुत अच्छे नमूने मिलते हैं। उनकी विशाल इमारतों को देख कर आजकल के बड़े बड़े चतुर इंजीनियरों को भी चकित होकर यही कहना पड़ता है कि इनका बनाना मानुषी शक्ति के बाहर है। केवल बहुत आरंभिक काल के अतिरिक्त शेष सभी कालों में उनकी बहुत कुछ रचना हुई है। ऊपर मिस्र की जिन विशेषताओं या गुणों का वर्णन किया गया है, उनके कारण नहीं, बल्कि इन्हीं अमानुषी रचनाओं के कारण वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य बहुत से यात्री आदि जाते हैं। मिस्र की सब से बड़ी कीर्त्ति उसकी वास्तु-विद्या ही है। उसका आरंभ बहुत प्राचीन-काल में हुआ था और उसका अंत हुए भी अभी बहुत दिन नहीं हुए। यदि मिस्र में इस विशेषता का अभाव होता तो आजकल का सभ्य संसार उस पर कभी इतना अधिक ध्यान न देता। साधारणतः लोग उसका ज़िक्र करने की भी आवश्यकता न समझते।

× × × × × × × ×

यह निश्चय करना बहुत ही कठिन है कि प्राचीन मिस्र-निवासी उस देश में कहाँ से आए। साधारणतः किसी देश का वर्णन करते समय लोग कह दिया करते हैं कि उनका जन्म उसी देश में हुआ था अथवा वे वहीं के वन-मानुसों के वंशज थे। कुछ लोगों का अनुमान है कि वे एशिया से ही वहाँ गए थे पर उनका आकार प्रकार आदि एशिया की किसी वर्त्तमान जाति से नहीं मिलता। यद्यपि उनकी भाषा बहुत थोड़ी बातों में एशिया की हिब्रू अथवा फीनीशियन आदि भाषाओं से मिलती थी पर उसका कारण उन तीनों जातियों के परस्पर संबंध के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके शरीर की गठन, भाषा की रचना और विचारों की प्रवृत्ति आदि कुछ कुछ हबशियों से अवश्य मिलती है। उनका रंग काला, सिर बड़ा, पैर चपटे और ओंठ मोटे होते थे। इससे बहुत संभव है कि उन्हीं की संतानों में परिवर्त्तन होते होते हब्शी जाति की सृष्टि हो गई हो; अथवा आदिम हब्शियों में ही कुछ परिवर्त्तनों से मिस्रियों की सृष्टि हुई हो। पर दृढ़तापूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि मिस्र के आदिम निवासी किसी संकर जाति के थे। पीछे से उनमें अवश्य इथोपियन और लिबियन आदि जातियों के लोग मिल गए थे। पुराने मिस्री छोटे कद के और दुबले पतले हुआ करते थे; पर आगे चल कर, कदाचित् अधिक परिश्रम करने के कारण उनके शरीर की गठन कुछ अधिक अच्छी हो गई थी।

पुराने अंकित अथवा खचित चित्रों, बचे खुचे साहित्य और विदेशियों के किए हुए देश-वर्णन से जाना जाता है कि आदिम मिस्री बड़े शांत, गंभीर और सदाचारी होते थे और अपना परलोक सुधारने पर अधिक ध्यान देते थे। राज्याधिकार प्राप्त करते ही राजा के मन में अपनी विशाल समाधि बनवाने का विचार उत्पन्न होता था। भोज आदि में दास लोग मोमियाई से रक्षित एक लाश ले कर सब अतिथियों के सामने घूमते और गंभीर स्वर में कहते थे—"पहले इसे देख लीजिए और तब खान पान कीजिए क्योंकि एक न एक दिन आपकी भी यही दशा अवश्य होगी।" यह स्थिति प्रायः सम्पन्न लोगों के यहाँ की ही थी। सर्वसाधारण का अधिकांश समय आनंद-मंगल में ही बीतता था। समाधियों के प्रार्थना-मन्दिरों की दीवारों अथवा चट्टानों पर जो चित्र बने हुए मिलते हैं वे इस बात का बहुत अच्छा प्रमाण हैं। उनमें वे नाचते कूदते और चैन करते दिखाई देते हैं। यहाँ तक कि समाधियों में भी वे आमोद प्रमोद करने से न चूकते थे। विद्यार्थी तक बड़े शौकीन होते थे और शिक्षकों को उन्हें हँसने, खेलने और कूदने से रोकने में बहुत कठिनता होती थी। कभी कभी शिक्षक लोग इसके लिये अपने विद्यार्थियों को छड़ियों से भी पीटते थे। साधारणतः मिस्री लोग खा पी कर बड़ी प्रसन्नता से ईश्वर से अपने दीर्घजीवी होने की प्रार्थना किया करते थे। बड़े बड़े धनवानों और सरदारों के अतिरिक्त और किसी को शिकार खेलने या मछलियाँ मारने की आज्ञा नहीं थी।

हेरोडोटस ने लिखा है कि नील नदी में नावों पर बड़े बड़े मेले लगते थे जिनमें हज़ारों स्त्रियाँ, पुरुष और बालक बड़ी प्रसन्नता से नाचते, कूदते और तालियाँ बजाते थे। ये मेले नदी के एक सिरे से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे सिरे तक जाते थे और बीच बीच में गाँवों के पास ठहर जाया करते थे, जहाँ उन गाँवों के निवासी भी आ कर उनमें सम्मिलित हो जाते थे। खेत जोतने, बोने और काटने, शराब तैयार करने और इमारतें बनाने के समय भी वे बड़ी प्रसन्नता से गाते थे। बैलों के प्रति उनके एक गीत का अभिप्राय है—"खूब अन्न तैयार करो। यह सब तुम्हारे ही लिये है। अपने लिये भी तैयार करो और अपने मालिकों के लिये भी।" वे राजा और उसकी बहुत सी रानियों का बोध कराने के लिये एक शेर और बहुत सी बड़ी बड़ी बकरियों के चित्र बनाते थे; किसी दुष्ट मनुष्य की परलोक में होनेवाली दुर्दशा दिखलाने के लिये वे सूअर और बंदर आदि के चित्र बनाते थे। तात्पर्य्य यह कि उनकी हास्य-प्रियता का कहीं अंत न होता था।

प्रत्येक जाति के आचार आदि का पता लगाने के लिये सब से अच्छा साधन उसका धर्म्म है। इसलिये इस स्थल पर प्राचीन मिस्रियों के धर्म का थोड़ा वर्णन अनुपयुक्त न होगा। मिस्र के विशाल देव-मंदिरों की दीवारों पर अनगिनत देवियों और देवताओं की बहुत सी पंक्तियां दिखाई पड़ती हैं। उन देवी-देवताओं के नाम अमन, खोन्स, नीथ, मंतु, शू, सेब, नत, ओसिरिससंत, होरस, थाह, तूम, पस्त, अनुक, थोथ, अभूविस, सती, खेम, अथोर, हरमशिस, सतेमी, खेप्ता, सबक, निसेम, कारतक, अनत, हपी आदि हैं और उनके आकार आदि सब एक दूसरे से भिन्न हैं। प्रकृति, वायु, जल और ऋतुओं आदि के देवता भिन्न भिन्न हैं। इन सब देवी-देवताओं का पूजन होता था और उन पर अनेक प्रकार की सामग्रियां चढ़ाई जाती थीं। तात्पर्य्य यह इन बातों में प्राचीन मिस्री वैदिक तथा परवर्ती काल के आर्य्यों से किसी प्रकार कम नहीं थे। किसी ने वहाँ के प्रधान देवताओं की संख्या तिहत्तर और किसी ने तिरसठ बतलाई है; गौण देवता इससे भिन्न हैं। स्वयं मिस्रियों के कथनानुसार उनके कुल देवताओं की संख्या एक सहस्र है और उनका विश्वास है कि ये देवता केवल मिस्र देश के हैं।

मिस्रियों के देवी-देवताओं का यहीं अंत नहीं हो जाता। वे मूर्त्ति-पूजक ही नहीं बल्कि पशु-पूजक भी होते थे। बकरों, भेड़ियों, दरियाई घोड़ों, मगरों, गिद्धों, मेंढकों आदि को भी वे लोग बहुत पवित्र समझते थे और उनका वध करनेवाले को प्राण-दण्ड मिलता था। ये देवता स्थानिक या प्रांतिक ही थे। गौएं, बिल्लियां, कुत्ते, बंदर आदि सार्वदेशिक पूज्य थे और उन्हें क्षति पहुँचाने से पातक सा लगता था। एक बार एक रोमन के हाथ से अचानक एक बिल्ली मर गई थी; इस पर मिस्रियों ने उसे बिना नियमानुसार विचार किए ही दण्डित कर दिया था। यदि किसी एक प्रांत के पवित्र पशु को किसी दूसरे प्रांत के लोग मार डालते अथवा खा जाते तो दोनों में परस्पर घोर युद्ध होता था। यदि किसी घर में कुत्ता या बिल्ली मर जाती तो उस घर के लोगों को उसके कारण अपने संबंधियों की भाँति शोक मनाना पड़ता था। इन पवित्र पशुओं के शव भी बड़ी विधि से पवित्र समाधियों में रखे जाते थे।

इस पशु-पूजा ने बढ़ते बढ़ते और भी विलक्षण रूप धारण कर लिया और कुछ विशिष्ट पशु ही भिन्न भिन्न देवताओं के अवतार माने जाने लगे। प्राचीन राजधानी मेम्फिस में ईसवी शताब्दी से लगभग साढ़े सोलह सौ वर्ष पूर्व हपी या अविस नामक एक पवित्र साँड़ रखा जाता था जिसे लोग थाह देवता का अवतार मानते थे। उस साँड़ के लिये एक अलग मंदिर, बहुत से पुजारी, अनेक गौएं, उत्तमोत्तम भोजन, उसे खरहरा करने और नहलानेवाले, बढ़िया शयनागार और सेवकों का पूरा पूरा प्रबंध था। निश्चित अवसरों पर उसका जुलूस निकाला जाता था और मार्ग में लोग उसके दर्शन और पूजन आदि करते थे। एक साँड़ के मरने पर उसका स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे को मिलता था। अविस की अंत्येष्टि क्रिया में कभी कभी तीन लाख रुपए तक ख़र्च किया जाता था। समाधि में ऐसे साँड़ों के शवों की संख्या चौंसठ है।

इसी प्रकार हेलियोपोलिस के सूर्य्य-मंदिर में भी एक साँड़ रखा जाताथा हरा जिसे लोग रा या तूम का अवतार समझते थे। हरमंथिस में भी बेसिस या पेसिस नाम का एक ऐसा ही साँड़ रहता था। मेमेम्फिस की एक सफ़ेद गौ को लोग अथोर का अवतार मानते थे।

पर इन सब मूर्त्तियों और पशुओं के अतिरिक्त उनका एक सर्वप्रधान देवता और था जिसका अत्यधिक सम्मान समस्त जाति के हृदय में समान रूप से रहता था। यह देवता तत्कालीन राजा होता था। बहुत प्राचीन काल से मिस्र-पति केवल "सूर्य्य का पुत्र" ही नहीं बल्कि "प्रत्यक्ष सूर्य्य" माना जाता था। उसके दरबारी अथवा विदेशी राजदूतों को उसे साष्टांग प्रणाम करके कहना पड़ता था—"तुम्हीं संसार का पालन और रक्षा करनेवाले ईश्वर हो। सूर्य्य, चन्द्र, आकाश, पाताल सब तुम्हारे अधीन हैं। तुम सर्वशक्तिमान् हो। तुम सब देवताओं से बढ़ कर और प्रत्यक्ष ईश्वर हो।" आदि। अनेक मंदिरों में देवमूर्त्तियों के बगल में ही राजाओं की मूर्त्तियां भी रखी हुई पाई जाती हैं जिनका पूजन समान रूप से हुआ करता था।

मिस्रियों की एक पुरानी कथा है—"एक बार देवता लोग स्वर्ग में रहते रहते घबरा गए और उन्होंने मनुष्य-देह धारण कर के मिस्र पर शासन करने का विचर किया। इस प्रकार बहुत दिनों तक चार देवताओं के राज्य करने के उपरांत नत और सेब के पुत्र ओसिरिस ने राज्यासन पाया। ओसिरिस सर्वगुण-सम्पन्न था। उसने मिस्रियों को सभ्य बनाया और उन्हें कृषि, शिल्प और धर्म आदि की शिक्षा दी। एक बार उसके सेत या सुतेक्स नामक भाई ने ईर्ष्यावश उसे मार डाला और एक संदूक़ में बंद कर के नील नदी में फेंक दिया। वह संदूक़ बहता बहता समुद्र में पहुँचा। ओसिरिस की ईसिस नामक विधवा और बहन ने नेप्थिस् नामकी अपनी बहन के साथ सारा देश ढूँढ़ डाला; अंत में उसे वह संदूक़ सीरिया के किनारे बिबलस में मिला। वह उसे साथ ले कर समाधिस्थ करने के लिये मेम्फिस की ओर चली; पर मार्ग में सेत ने किसी प्रकार वह शव चुरा लिया और उसके चौदह टुकड़े करके उन्हें भिन्न भिन्न स्थानों में छिपा दिया। ईसिस ने पुनः मिस्र का चप्पा चप्पा ढूँढ़ कर चौदहों टुकड़े निकाले और उन्हें उचित रीति से समाधिस्थ किया। तदुपरांत उसने होरस नामक अपने पुत्र को अपने चचा से पिता का बदला लेने के लिये कहा। होरस ने युद्ध कर के विजय प्राप्त की और सेत को कैद कर लिया। पर अंत में ईसिस ने (अपने भाई) सेत को मुक्त कर दिया। इस पर होरस ने क्रुद्ध हो कर ईसिस का सिर काट लिया। थाथा ने उसके सिर के स्थान पर एक गौ का सिर लगा कर उसे पुनः जीवित कर दिया। तदुपरांत होरस ने सेत से पुनः युद्ध करके उसे मार डाला।" इसी कथा के देवताओं को मिस्री मुख्यतः मानते थे; पर सेत उनकी दृष्टि में बहुत गिरा हुआ था।

मिस्री धर्म्म में केवल उत्तम ही नहीं बल्कि निकृष्ट और दूषित देवता भी हैं। सेत की उपमा हिन्दुओं के शनैश्चर से दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त तौर, बेस, रूवक आदि भी अनेक देवता थे जो निकृष्ट समझे जाते थे और जिनमें से कोई बौना, कोई मगर के मुँहवाला और कोई शेर की खालवाला माना जाता था। इन देवताओं के गुण और कर्म आदि भी एक दूसरे से भिन्न थे। मिस्र में भिन्न भिन्न प्रांतों के निवासियों के सम्प्रदाय और देवता आदि सब एक दूसरे से भिन्न थे। इस प्रकार के धर्म्म-संबंधी विश्वास जनसाधारण के ही थे;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहितों और शिक्षितों आदि का विश्वास इससे भिन्न और उच्च था। उनके धर्म्म ग्रन्थों में केवल एक ईश्वर का वर्णन होता था जिसे वे स्वयंभू, अनादि, अनंत और सारी सृष्टि का कर्त्ता-हर्त्ता मानते थे। उसके ध्यान के लिये न तो किसी प्रकार की मूर्त्ति थी और न कोई चिह्न। उनका विश्वास था कि या तो उस शक्ति का कोई नाम ही नहीं है और यदि है भी तो उसे उच्चारण या अंकित करना विधेय नहीं है। वे उसे सर्वशक्तिमान्, स्वतन्त्र, शुद्ध, अदृश्य, अज्ञेय, अनादि, सनातन और सब का उत्पादक मानते थे। न तो उसका स्वरूप अंकित हो सकता था और न वह किसी मंदिर में समा सकता था।

शेष सभी देवता उसका अंश माने जाते थे। हृदय, इन्द्री, तत्त्व, चंद्र, सूर्य्य, पृथ्वी, आकाश, पाताल, विद्या, बुद्धि, गुण आदि सब के अलग अलग देवता होते थे। पर शिक्षित समाज सब देवताओं को एक ही समझता था। उसका विश्वास था कि इन असंख्य देवताओं में से चाहे किसी का पूजन किया जाय, सब पूजन उसी एक ईश्वर को पहुँचता है। इसी लिये वे सब देवताओं को बिलकुल एक समझते थे और किसी एक देवता को शेष सब देवताओं के नामों से संबोधित कर देते थे। इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता था कि उत्तम देवताओं को निकृष्ट देवताओं के नाम से और निकृष्ट देवताओं को उत्तम देवताओं के नाम से संबोधित न किया जाय।

आत्मा के अमरत्व या कम से कम पुनर्जन्म पर मिस्रियों का दृढ़ विश्वास था और वे समझते थे कि मनुष्य को इस संसार में किए हुए पापों और पुण्यों का फल अवश्य मिलता है। उनके कथनानुसार मृत्यु होते ही आत्मा पाताल की ओर चली जाती थी; जहाँ वह सत्यमंदिर में ओसिरिस तथा सत्य के अन्य बयालीस देवताओं और विचारकों के सामने विचारार्थ उपस्थित की जाती थी। अनूबिस देवता एक तराजू ले कर उसके सत्कृत्यों को तौलते थे और थाथ पास खड़े हुए सब का परिमाण लिखते जाते थे। यदि उसके सुकर्म अधिक होते तो वह सूर्य्य की नौका पर चढ़ा कर ओसिरिस के शांति-निवास (स्वर्ग) में भेज दी जाती थी। और यदि उसके पापों का परिमाण अधिक होता तो वह पुनः संसार में अपवित्र और अशुद्ध पशुओं की योनियों में भ्रमण करने के लिये भेज दी जाती थी। इसके काल आदि का निर्णय भी परिमाण के अनुसार ही होता था। जो आत्मा अनेक बार यन्त्रणा भोगने पर भी पवित्र न होती थी वह अंत में ओसिरिस की आज्ञा से स्वर्ग के द्वार पर शू देवता द्वारा नष्ट कर दी जाती थी। उत्तम आत्मा को पहले अग्नि में प्रवेश कर के शुद्ध होना पड़ता था और तब उसे तीन हज़ार वर्ष तक ओसिरिस के साथ रहने की आज्ञा मिलती थी। तदुपरांत वह पुनः अपने पुराने शरीर में प्रवेश कर के संसार में निवास करने के लिये आती थी। अनेक बार इस प्रकार जन्म लेने और मरने के उपरांत, यदि आत्मा के सत्कर्मों की संख्या ही अधिक होती तो अंत में उसका मोक्ष हो जाता था और वह जीवन-मरण-मुक्त समझी जाती थी। तात्पर्य यह कि मिस्रियों और हिन्दुओं के धार्म्मिक विचारों में एक विलक्षण सादृश्य था।

जिन जातियों के धार्म्मिक विचार इस श्रेणी के हुआ करते हैं उनका नैतिक आचरण भी अपेक्षाकृत बहुत श्रेष्ठ हुआ करता है। कहते हैं, मिस्रियों के प्रधान उद्देश्य तीन होते थे—ईश्वर-प्रेम, सत्य-प्रेम और मनुष्य मात्र से प्रेम। एक प्रचीन मिस्री का कथन है—"मैं कभी अकर्म्मण्य नहीं था; मैंने प्यासे को पानी पिलाया और भूले हुए को मार्ग पर लगाया; मैंने अत्याचार और अत्याचारी का अंत किया।" दूसरा कहता है—"मैं सदा सच्चा और न्यायी रहा। मैंने शुद्ध हृदय से ईश्वर पर विश्वास रख कर उसके इच्छानुसार कार्य्य किया। संसार में मैंने सुकर्म्म ही किए हैं। मैंने कभी कोई बुरा काम नहीं किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सत्य बोल कर प्रसन्न हुआ हूँ। मेरी आत्मा शुद्ध है। मैंने कभी किसी से द्वेष नहीं किया। न्यायकर्त्ता के सामने मैं निरपराध और निर्दोष हूँ। मेरे उपरान्त होनेवाले लोग मेरे गुणों से चकित होंगे।" तीसरा कहता है—"मैंने किसी विधवा को नहीं सताया और न किसी को भूखों मरने दिया है। अकाल के दिनों में मैंने अपने खेत जोतवाए हैं और लोगों को भोजन दिया है। मैंने विधवा और सधवा को समान भाग दिए हैं और धनवान् और निर्धन में कभी कोई भेद नहीं माना।" चौथा कहता है—"मैंने सबल से दुर्बल की रक्षा की है, माता-पिता का आज्ञा-पालन किया है, लोगों के साथ कृपापूर्ण व्यवहार किया है, विपत्ति-काल में सुयोग्य पिता की भाँति लोगों के लिये भोजन और मकान आदि का प्रबंध किया है।" आदि।

प्राचीन मिस्रियों में माता-पुत्र और भाई-बहन तक में विवाह-संबंध होता था। उनके राजा बहुत वीर होते थे और युद्ध-क्षेत्र से लौटते समय उनके रथों में शत्रुओं के सिर लटका करते थे। जादू, टोना, भूत, प्रेत और यंत्र-मंत्र पर भी उनका विश्वास था। उनमें चोर भी ऐसे होते थे कि जो समाधियों में से रत्न आदि उठा लाते थे! ऐसे चोरों ने एक समय अपनी स्वतंत्र सभा ही बना ली थी। उनमें सामाजिक भेद की भी कमी नहीं थी। बड़े बड़े धनवानों के पास नौकर चाकर और कारीगर रहा करते थे। राजकर्मचारी बहुत प्रतिष्ठित समझे जाते थे। ऐसे लोग समय समय पर सेना पर अधिकार पाने को अहोभाग्य समझते थे। शिक्षित और व्यापार करनेवाले लोग भी आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। सर्वसाधारण का कोई विशेष मान न था। वे धनवानों के खेत जोतते या पशु चराते थे। नाविक, मछुए, जुलाहे, बढ़ई, राज, दरजी और चमार आदि भी साधारण श्रेणी में गिने जाते थे। एक पेशेवाला अपनी संतान को स्वतंत्रतापूर्वक दूसरे पेशे की शिक्षा दे सकता था। विद्यालयों में धनवानों और दरिद्रों की संतानों का समान आदर होता था। योग्य बालकों को भली भाँति शिक्षा दी जाती थी और शिक्षितों को सरकारी नौकरी अवश्य मिलती थी। इस प्रकार एक साधारण गड़रिए का लड़का राजमंत्री तक हो सकता था। मज़दूरों और छोटे कारीगरों की दशा अच्छी नहीं थी। राजा उनसे बलपूर्वक बहुत कठिन काम ले सकता था। साधारणतः ऐसे लोग छड़ियों से पीटे भी जाते थे और उनकी कहीं सुनाई न होती थी। उनकी दशा दासों की अपेक्षा कदाचित् ही कुछ अच्छी रही हो।

संयुक्त प्रांत के प्राचीन ऐतिहासिक स्थान।

[श्री युक्त पं० हीरानन्द शास्त्री एम० ए० के एक निबन्ध का छायानुवाद जिसे उन्होंने गत ३१ जनवरी को प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में पढ़ा था। अनुवादक,—श्रीयुक्त बा० नवलकिशोर, काशी।]

इतिहास के अध्ययन के लिये उपयुक्त यदि कोई प्रांत भारतवर्ष में है तो वह संयुक्त-प्रांत ही है। यहाँ पर विचारशील लोग एकत्र हो कर प्राचीन ऐतिहासिक बातों पर विचार कर सकते हैं और इसी प्रांत में अन्य प्रांतों की अपेक्षा ऐतिहासिक घटनाएँ भी अधिक हुई हैं। अनेक पुराने डीहों तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों से, जो जंगलों और ऊजड़ स्थानों में गुप्त हैं, अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का पता चलता है। उसी में के कुछ प्राचीन स्थानों का वर्णन नीचे दिया जाता है; आशा है कि पाठकों को रुचिकर होगाः—

मथुरा।

सब से पहले आधुनिक मथुरा पर विचार कीजिए। मेरी समझ में यह स्थान रामायण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णित 'मधुपुरी' है, जिसको श्री रामचन्द्र के छोटे भाई शत्रुघ्न ने रावण को मारने के पश्चात्, अपना निवास-स्थान बनाया था। इसका नाम कदाचित् 'मधुर' शब्द से सम्बद्ध मालूम होता है और वह मधुर शब्द अभी तक नगर का संज्ञा-बोधक माना जाता है। रामायण के ७ वें अध्याय के ७०५ वें श्लोक में कहा है—

"इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता"

अर्थात् यह रमणिक तथा अत्यन्त सुन्दर नगर देवताओं द्वारा निर्मित है। तथा ब्रह्मण में पाए जानेवाले शब्द 'माधव' और 'माथव' शब्दों से यह स्पष्टतः प्रकट है कि 'ध' का 'थ' हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। इसी नियमानुसार मधुरा से मथुरा होना अर्थात् अधुनिक मथुरा का पुराना नाम मधुरा होना सिद्ध है। वह मधुरा शब्द रघुवंश में पाया जाता है जिस में यह लिखा है कि यह नगर शत्रुघ्न का बसाया हुआ है। रघुवंश के पन्द्रहवें अध्याय के अट्ठाईसवें श्लोक में लिखा है—निर्ममे निर्ममार्थेषु मधुरा मधुराकृतिः अर्थात् मधुरा (नगर) को उस मधुर, रूपवान् और उदार पुरुष ने बसाया। खैर इस समय इस बात का विचार करना व्यर्थ है कि मथुरा नगर जिसकी गिनती सात* सबसे अधिक पवित्र नगरों में की जाती है, किस के द्वारा बसाया गया।

पर कुछ भी हो इस नगर की स्थापना का समय इतिहास में अत्यन्त प्राचीन माना जायगा। अब तक के मिले हुए प्राचीन लेखों से इस बात का पता चलता है कि यह स्थान देश की सभ्यता की उन्नति का सब से बड़ा केंद्र रहा है। इस समय यह केवल कृष्ण के जन्म तथा उनकी क्रीड़ाओं और लीलाओं के दृश्यों का केंद्र है। इस नगर से सम्बन्ध रखनेवाले शत्रुघ्न के उपर्युक्त कथानक तथा सर्प की पूजा के वर्णन से जो प्राचीन हस्त-लिखित लेखों में पाया जाता है, पता चलता है कि यह स्थान बहुत प्राचीन काल में असुरों का निवास स्थान था। इस नगर के कुछ स्थानों की जाँच की गई है। उससे जिन बातों का पता लगा है वे ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य हैं। पुरातत्त्व-विभाग द्वारा स्थापित मथुरा के अजायब घर में बहुत सी वस्तुएँ, जो पाई गई हैं, रखी हुई हैं; और बहुत सी अन्य अन्य अजायबघरों में भेज दी ही गई है। इन में से मैं केवल तीन वस्तुओं—मथुरा के सिंहासन ईसापुर के यूप अर्थात् बलिदान देने के खंभे और कनिष्क की मूर्त्ति का यहाँ पर वर्णन करूँगा। सिंहासन तो लदन नगर के सरकारी अजायबघर (British Museum) में रखा हुआ है स्वर्गीय पं० भगवानलाल इन्द्र जी ने जो हिन्दुस्तान के विख्यात पुरातत्त्वज्ञों में हो गए हैं, इसका अन्वेषण किया था और उन्होंने ही इसे उक्त अजायब घर को प्रदान भी कर दिया था। वह एक बलिदान की वेदी के किनारे बना हुआ पाया गया था और वह वेदी शीतला देवी को बलिदान देने के निमित्त बनी हुई जान पड़ती थी। यह सिंह की शकल का लाल बलुए पत्थर का बना हुआ है और स्तंभ रखने के निमित्त एक आसन सा जान पड़ता है। इसके ऊपर प्राकृत भाषा और खरोष्ठी लिपि में चारों ओर एक लेख खुदा हुआ है जिसमें मथुरा में राज्य करनेवाले सत्रपाल वंश की वंशावली दी हुई है और जिससे इस बात का पता चलता है कि ये सत्रप वा छत्रप लोग बौद्ध थे और उनका राज्य हिन्दुओं तथा यूनानियों के बाद हुआ था। उस पर कोई मिति नहीं है, तथापि उसके नीचे के भाग की बनावट फ़ारसी जान पड़ती है, जिससे उसका समय अत्यन्त प्राचीन जान पड़ता है। मोटे तौर पर यह ईसा से १२० वर्ष पूर्व का अनुमान किया जाता है।

दूसरी वस्तु, जिसका नाम ऊपर लिखा जा चुका है हाल ही में ईसापुर में, जो मथुरा के पास है,

* अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायकाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाई गई है। इस पर शुद्ध संस्कृत में जो लेख खुदा हुआ है उससे भारतवर्ष में शकों के राज्य काल के इतिहास की एक नवीन बात का पता चला है। इस से यह निश्चय रीति पर सिद्ध होता है कि शकों में राजा हविष्क के उत्तराधिकारी राजा कनिष्क ही नहीं हुए थे, बल्कि उक्त दोनों राजाओं के बीच में एक और राजा सिंहासनारूढ़ हुआ था जिसका नाम वशिष्क था। यह ब्राह्मण-काल का जान पड़ता है और इसका समय डाक्टर फ्लीट के मतानुसार ३३—३४ वर्ष ईसा के पूर्व का है।

मथुरा में पाए गए भिन्न भिन्न शिलालेख, जो उक्त अजायब घर में सुरक्षित हैं, इस बात को भी प्रकट करते हैं कि यहाँ पर एक मुख्य विद्यापीठ था जिसके द्वारा बौद्ध सिद्धान्तों और स्वदेशी कला-कौशल का प्रचार किया जाता था। उन लेखों का विचारपूर्वक अध्ययन करने से प्रकट होगा—जैसा कि डाक्टर वोगल स्पष्टतः सिद्ध करते हैं—कि उक्त विद्यापीठ के नियम और व्यवहार भारतवर्षीय थे; पर उत्तर पश्चिम की विद्याओं का भी अध्ययन वहाँ होता था।

ऐसी अनेक शिलाएँ प्रायः भूमि पर ही पड़ी हुई, दीवारों में लगी हुई अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में पाई गई हैं। इस नगर की सीमा के भीतर बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ पर ढूँढ़ने से बहुत से प्राचीन चिह्न, शिलालेख और इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ मिल सकती हैं; पर उन स्थानों में से कोई अभी तक भली भाँति नहीं देखा जा सका है।

तीसरी वस्तु, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, कनिष्क की एक मूर्त्ति है, जिसकी ऊँचाई ५ फुट ४ इंच है। यह मूर्त्ति माट में जो जमुना के बाएँ किनारे पर मथुरा से ९ मील उत्तर पर अवस्थित है, पाई गई थी।

वाराणसी।

अब मैं वाराणसी का कुछ वर्णन करता हूँ। वाराणसी नाम इसका इस कारण से है कि यह नगर बरना और अस्सी के जो गंगा की सहायक छोटी छोटी नदियाँ हैं, बीच में बसा हुआ है। यह नगर अब तक हिन्दुओं का मुख्य विद्यापीठ रहा है और इसे लोग शिव की नगरी तथा इसकी सीमा के भीतर मर जाने से मुक्ति मानते हैं। इस समय इसके उत्तर 'सारनाथ' नामक स्थान का वर्णन मुख्य है; क्योंकि यह स्थान बहुत ही प्राचीन है। यहाँ पर पत्थर का एक स्तूप है जिसे मौर्य्य वंश के सब से बड़े महाराज अशोक ने निर्माण कराया था। यहाँ पर जैसे नकाशी किए हुए तथा उन पर कुछ खुदे वा लिखे हुए पत्थर मिले हैं वैसे अब तक भारतवर्ष में और कहीं नहीं पाए गए। बौद्धों के लिये यह सब से बड़ा पवित्र स्थान है, क्योंकि गौतम बुद्ध ने बुद्ध होने के पश्चात् पहले पहल यहीं पर उपदेश दिया था। यह कई बार देखा जा चुका है। यहाँ जो कुछ मूर्त्तियाँ और पत्थरों पर खुदे हुए लेख इत्यादि पाए गए हैं वे सब उस स्तूप के पास ही एक अजायब घर में सुरक्षित हैं। मौर्य्य, संग, कुशन और मुख्यतः गुप्त वंश के राजाओं के समय के कला कौशल-तथा भारतवर्ष की उच्चावस्था का भली भाँति अनुमान करने के निमित्त उक्त सब वस्तुओं का लोग अवलोकन कर सकते हैं।

बौद्धों तथा गुप्त वंश के महाराजाओं से सम्बन्ध रखनेवाली उक्त सब शिलाएँ, मूर्त्तियाँ तथा इसी प्रकार की अन्य प्राचीन वस्तुएँ जो यहाँ पर प्राप्त हुई हैं वह ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अमूल्य हैं। इस सम्बन्ध में हम यहाँ पर यह भी बतला देना चाहते हैं कि यहाँ पर बुद्ध गुप्त के द्वारा लिखाया हुआ शिलालेख तथा एक ऐसे पत्थर पर जिस पर बुद्ध भगवान् की मूर्त्ति स्थापित थी, कुछ संस्कृत लेख मिला है, जिस में मृगदाव के दो मुख्य स्मारकों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीर्णोद्धार कराने तथा एक नवीन स्मारक बनवाने का जिक्र लिखा हुआ है और जिसकी मिति ग्यारहवीं शताब्दी की दी हुई है। इन पत्थरों को सरकारी पुरातत्व विभाग (Archaeological Survey Department) ने गत जाड़े के दिनों में खुदवाया है। बनारस सिटी रेलवे स्टेशन से थोड़ी ही दूर पर एक और इसी प्रकार का प्राचीन स्थान है जिसका कुछ भी अन्वेषण उक्त विभाग द्वारा अभी तक नहीं हुआ है और जिसे खुदवाने और अन्वेषण करने पर इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत सी वस्तुएँ अवश्य ही मिलेंगी।

इस स्थान पर एक खंभा है जिसके ऊपर बहुत मोटा पलस्तर किया हुआ है और मुझे विश्वास है कि यह खंभा अशोक के खंभे का निचला भाग है। यह इस समय लाट भैरव कहा जाता है और इसके विषय में बहुत सी दंत-कथाएं प्रसिद्ध हैं। यह स्थान हिंदुओं और मुसलमानों दोनों का तीर्थस्थान है और इसी कारण से हमारी गवर्नमेन्ट का ध्यान कदाचित् ही इसके अन्वेषण के लिये आकर्षित हो सकता है। इस स्थान से, अनुसन्धान होने पर, अवश्य ही शिलाएँ, मूर्त्तियाँ इत्यादि निकलेंगी और मेरा विचार है कि किसी न किसी प्रकार से यह कार्य्य अवश्य करना चाहिए।

भिटारी।

बनारस के पश्चात् अब मैं भिटारी का कुछ वर्णन करता हूँ। यह गाँव ग़ाज़ीपुर जिले की सैदपुर नामक तहसील में "बंगाल और नार्थ-वेस्टर्न रेलवे" के सैदपुर-भिटारी नामक स्टेशन से तीन मील उत्तर-पूर्व बसा हुआ है। यहाँ पर बहुत से भीटे इत्यादि हैं जिनकी जाँच यद्यपि जेनरल कनिंघम के द्वारा कुछ थोड़ी बहुत की गई है पर तो भी वह जाँच नहीं के बराबर है। यहाँ पर स्थित लाल बलुए पत्थर का स्तंभ एक विशेष स्थान की स्मरण कराता हुआ हमें अभी तक उस समय का ध्यान दिलाता है जब कि एक हिंदू राजा ने जंगली जाति के हून लोगों को, जो मध्य एशिया से उत्तर-पश्चिमीय घाटियों के द्वारा आर्य्यावर्त्त में उत्तर आए थे और यहाँ की उपजाऊ भूमि और भरे पूरे शहरों को बरबाद करते थे, परास्त करने के बाद अपनी माता को प्रणाम करके उसका आशीर्वाद ठीक उसी प्रकार ग्रहण किया था जैसे कृष्ण ने अपने वैरियों को मारने के पश्चात् अपनी माता देवकी के पास जा कर उनको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया था।

गोरखपुर।

अब हम गोरखपुर जिले के इसी प्रकार के कुछ विशेष स्थानों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। यहाँ के सब स्थानों में सब से अधिक प्रसिद्ध स्थान कसया है, जिसका प्राचीन नाम कुशनगर था। पुरातत्त्व-विभाग ने यहाँ पर कई बार अन्वेषण करना प्रारंभ किया और महापरिनिर्वाण नामक स्थान पर जहाँ पर बुद्ध भगवान् ने अपना शरीर छोड़ा था, कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि मेरे अन्वेषण से और विशेष कर ताम्रपत्र से जो महापरिनिर्वाण नामक स्थान में खुदवाने से मिला था जो कुछ अनुमान इस स्थान के विषय में किया गया था, वह ठीक निकला। यह सत्य है कि यह स्थान कई बार खोदा जा चुका है; पर इस स्थान के बहुत विस्तृत होने के कारण इसमें कुछ संदेह नहीं किया जा सकता कि अन्वेषणीय वस्तुएं फिर भी उसमें गड़ी पड़ी होंगी। इसके अतिरिक्त, प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाँग को अपनी यात्रा के समय अशोक का जो स्तंभ यहाँ पर मिला था वह अब भी अपनी जीर्ण अवस्था में वर्त्तमान है। यह एक विशेष स्थान में चारों ओर दीवार से घिरा हुआ था जिसके सब चिह्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलते हैं और जिसके भीतर का क्षेत्रफल लगभग ३६ एकड़ के है। इस स्थान के सब से निकट का स्टेशन देवरिया है जहाँ से उक्त स्थान की ओर एक पक्की सड़क गई है। उक्त स्टेशन से यह स्थान २३ मील की दूरी पर अवस्थित है।

इस ज़िले में बहुत से प्राचीन स्थान हैं जिनमें से बहुत थोड़े स्थानों को मैं जानता हूँ और जिनके विषय में मैं जो कुछ जानता हूँ उसका आगे वर्णन करता हूँ। एक स्थान खुखुंडो नामक है जो कि जैनियों का किष्किंधापुर है। यह स्थान कसया के दक्षिण-पश्चिम कोण पर २७ मील की दूरी पर है। यह अत्यंत प्राचीन नगर है और यहाँ पर प्राचीन काल के कुछ बड़े बड़े तालाब और कुछ छोटे छोटे भीटे हैं जिनके चारों ओर जंगल हैं जिनमें कुछ टूटी फूटी ईंटें इत्यादि हैं। जेनरल कनिंघम ने इसके विषय में लिखा है—"बड़े गाँव (प्राचीन समय के-नालंद) को छोड़ कर और कोई ऐसा स्थान मेरे देखने में नहीं आया जहाँ पर कि खुखुंडो की तरह आशाजनक अन्वेषण के चिह्न दिखाई पड़ें... ....मुझे पूर्ण आशा है कि यहाँ पर मूर्त्तियाँ और शिलालेख तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ पाई जा सकती हैं, जिनसे हिन्दुओं के उस समय के सिरतोड़ परिश्रम का, जब कि बौद्ध मत का ज़ोर कम हो चला था, पता चलना और दूसरी बहुत सी बातों का मालूम होना अधिक संभव है।"

तत्पश्चात् मैं कहाँव का, जो कि प्राचीन काल का ककुभ अथवा ककुभ ग्राम नामक स्थान था, वर्णन करता हूँ। यह स्थान खुखुंडो से ८ मील दक्षिण और गोरखपुर से ४६ मील दक्षिण-पश्चिम पर स्थित है। यहाँ पर पत्थर का एक स्तंभ है जिसपर स्कंध गुप्त का, जो इस देश के गुप्त वंश के प्रथम राजाओं में हो गए हैं, एक संस्कृत लेख खुदा हुआ है और जिसकी मिति पूर्वोक्त भिटारी के स्तंभ में लिखी हुई मिति के प्रतिकूल १४१ सन् ईसवी खुदी हुई है।

इस प्रकार आगे बढ़ने पर पड़रौना मिलता है जो कसया से १२ मील उत्तर है। यह प्राचीन काल का पावा कहा जाता है और यहाँ पर किसी समय बुद्ध के एक स्तूप के कुछ टूटे फूटे पत्थर इत्यादि मौजूद थे। इस स्थान का अन्वेषण करने में अधिक कठिनता नहीं प्रतीत होती और यह भी आशा की जाती है कि यहाँ पर अवश्य सफलता प्राप्त होगी। गोरखपुर के इर्द गिर्द भी जहाँ तहाँ कभी कभी खोदने पर बहुत सी आवश्यकीय प्राचीन शिलाएँ इत्यादि मिली हैं जो कि उसी प्रकार इतिहास के लिये अमूल्य हैं जैसे कि विष्णु की मूर्त्ति, जिसके लिये गत वर्ष में इतना आंदोलन मचा था, अथवा बरगदी के शिला लेख, जो पबलिक वर्क्स डिपारटमेन्ट के अधिकार में सुरक्षित हैं।

गोंड़ा और बहराइच।

अब मैं उन स्थानों का वर्णन करता हूँ जो कुछ तो गोंड़ा और कुछ बहराइच ज़िलों की सीमा के भीतर स्थित हैं। इन स्थानों के निरीक्षण के लिये सब से उत्तम मार्ग बलरामपुर से हो कर है। बलरामपुर बी० एन० डबलू० रेलवे का एक स्टेशन है और इस स्टेशन से १० मील पश्चिम वह स्थान है जहाँ का मैं वर्णन करना चाहता हूँ। वहाँ के लिये कोई पक्की सड़क नहीं; घोड़े वा एक्के की सवारी पर लोग वहाँ तक जा सकते हैं। यहाँ पर दो मुख्य स्थान हैं जो सहेठ और महेठ कहलाते हैं। इन स्थानों की प्राचीनता स्वीकार की जा चुकी है। मिस्टर विन्सेन्ट स्मिथ ने भी इसे स्वीकार किया है और उनकी स्वीकृति (Early History of India) के नए संस्करण की पादटिप्पणी से साफ जाहिर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहेठ जो दक्षिण-पश्चिम की ओर है, हमको जेतवन का, तथा महेठ जो कि सहेठ से ¼ मील की दूरी पर है, आजकल के अवध अथवा प्राचीन कोशलों की राजधानी का स्मरण दिलाता है। जेतवन में बहुत सी विशेष विशेष घटनाएँ हुई हैं। वह बुद्ध भगवान् का अत्यंत प्रिय स्थान था।

कुशन के समय की पाई गई बौद्ध मूर्त्तियों पर खुदे हुए लेख तथा महाराज गोविन्दचन्द्र के राज-काल के ताम्र-पत्र के लेख के आधार पर उपर्युक्त सिद्धांत ठहराया गया है। उक्त ताम्र-पत्र पर संवत् ११८६ विक्रमी की मिति दी हुई है और आजकल वह लखनऊ के अजायबघर में सुरक्षित है। एक अजनबी भी उक्त स्थान को देख कर यह अनुमान कर सकता है कि किसी समय यह एक बड़ा और सुरक्षित नगर, बहुत सी मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण वस्तुओं से पूर्ण था। कई बार खोद कर इस स्थान की जाँच की जा चुकी है तथापि अभी यहाँ और जाँच करने की आवश्यकता है।

महेठ नामक स्थान करीब करीब अर्द्ध वृत्ताकार १½ मील लंबा है और राप्ती नदी के किनारे पर है। पुरातत्त्व विभाग की ओर से इस स्थान की जो हाल में ही नपाई हुई है उसके अनुसार इसका घेरा १७२५० फुट और क्षेत्र फल ४०७४३ एकड़ है। इसकी चहारदीवारी में बीच बीच में मिट्टी के धुस हैं जिनकी ऊँचाई भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न है और जिसमें भीतर जाने के लिये खिड़कियाँ वा दरवाज़े भी हैं। इन खिड़कियों या दरवाज़ों में से बहुतेरे उक्त नगर के बड़े फाटक रहे होंगे। इनके नाम अभी तक नौशहर, संडल इत्यादि पड़े हुए हैं। उक्त दोनों स्थानों पर मिली हुई महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ लखनऊ के अजायबघर में सुरक्षित हैं जहाँ पर इनके लिये एक अलग ही कोठरी दी गई है। कुछ बची बचाई चीज़ें उक्त स्थानों पर भी देखने के लिये मौजूद हैं।

फैजाबाद।

अब मैं पहले अयोध्या का कुछ थोड़ा सा वर्णन कर के फिर फैजाबाद का वर्णन करूँगा। मैं इस समय के अयोध्या नगर को रामायण में वर्णित अयोध्या मानने के लिये तैय्यार नहीं हूँ। तथापि यहाँ पर कुछ ढूहे पाए जाते हैं। लखनऊ के निकट अथवा स्वयं लखनऊ को ही प्राचीन काल की अयोध्या नगरी कहना अनुचित सा जान पड़ता है। इस प्रश्न पर विचार किया जा चुका है। और अब हम यहाँ पर इसका कुछ जिक्र करना नहीं चाहते। अयोध्या में जो कुछ काम की चीज मिली है वह मिट्टी के केवल तीन ढूहें हैं जिनके नाम मनी पर्वत, कुबेर पर्वत और सुग्रीव पर्वत हैं; और प्राचीनता की दृष्टि से जिनकी कुछ कदर की जा सकती है। निस्संदेह नगर में बहुत से पवित्र मंदिर हैं पर वे सब आधुनिक समय के निर्मित हैं और उनकी इमारतों में कोई प्राचीनता का चिह्न नहीं पाया जाता। इसमें कुछ संदेह नहीं किया जा सकता कि वे सब मंदिर अपने ठीक उन्हीं स्थानों पर हैं जिन पर कि वे प्राचीन समय में थे और मुसलमानों के द्वारा नष्ट भ्रष्ट किए गए थे। उदाहरणार्थ रामकोट अथवा हनुमानगढ़ी एक छोटी सी गढ़ी अपने पुराने ढूहे पर ही स्थित है और जिस पर हनुमान का बना हुआ मंदिर मुग़ल बादशाहों के समय के पहले का नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार जन्म-स्थान का ढूहा है जिस पर आजकल एक मसजिद बनी हुई है जिसे मीरख़ाँ ने बाबर के शासन-काल में ९३० हिजरी में बनवाया था। बहुत संभव है कि अन्वेषण करने पर इन ढूहों के भीतर भी बहुत सी टूटी फूटी मूर्त्तियाँ और प्राचीन खुदे हुए शिला-लेख और खंभे तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ अन्य नगरों की भाँति पाई जायँ। यह भी बहुत संभव है कि मिट्टी का ढेर जो इस समय हम लोग देखते हैं वह भग्नावशेष हो और उसमें की ईंटों तथा इसी प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य प्राचीन वस्तुओं से फ़ैज़ाबाद के निकट के नगरों के मकान बनाए गए हों। कुछ भी हो, अयोध्या नगर के स्थानों का अन्वेषण करना अत्यंत उपयोगी और उचित है। मेरी यह इच्छा है कि इन स्थानों का कुछ अन्वेषण किया जाय।

अब मैं फ़ैजाबाद के निकट के एक स्थान का जिक्र करता हूँ। इसके लिये सब से पहले मैं यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि कई बार वे स्थान जो केवल खेत के सदृश जान पड़ते थे, जब खेती के लिये जोते गए हैं तो उनमें से बहुत सी मनोरंजक प्राचीन शिलाएँ इत्यादि निकली हैं जिनसे हमें 'सादी' के निम्न लिखित शेर का स्मरण होता है—

"हर बेशः गुमाँ मुबर कि ख़ालीस्त।
शायद कि पलंग ख़ुफ़्तः बाशद॥"

(किसी झाड़ी को खाली मत समझो; संभव है कि किसी में कोई चीता सोता हो।)

फ़ैज़ाबाद के निकट एक स्थान है जिसका नाम देवकली है। यहाँ पर एक खेत में जो राजा साहेब देउरा का है, एक किसान को जोतते समय एक अत्यंत सुंदर शिला-खंड मिला है जो कुशन के राज-काल का है। यद्यपि यह शिला निश्चय किसी मकान की दीवार का एक टुकड़ा है तथापि लोगों ने इसे ज्योंही पाया त्योंही पार्वतीजी की मूर्त्ति मान कर एक मंदिर में उसकी स्थापना कर दी। उसकी अब पहचान नहीं की जा सकती क्योंकि लोग उसे बहुत जल्द पालिश इत्यादि कर के उस पर की खुदाई को नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। मुझे दुःख है कि मैंने बहुतेरा चाहा कि इसको लखनऊ के अजायबघर के लिये ले सकूँ पर वह मुझे नहीं मिल सका। यह सत्य है कि हमें पवित्र धार्म्मिक वस्तुओं का आदर करना चाहिए पर साथ ही लोगों में शिक्षा का हमें इतना प्रचार भी करना चाहिए कि वे उन प्राचीन शिलाओं इत्यादि को जो मूर्त्तियाँ नहीं हैं, विचारशील विद्वानों के अध्ययन के निमित्त छोड़ दें। उन्हें अजायब घर को सबसे बढ़ कर मंदिर समझना चाहिए जहाँ का रक्षक उन गँवारों की अपेक्षा, जिनके लिये "काला अक्षर भैंस बराबर" की कहावत प्रचलित है, जो मूर्त्ति को उस दशा में जब कि वह किसी मंदिर में स्थापित की जाय, दर्शन के लिये आते हैं, अधिक सुबोध और होशियार होता है। मैं कई बार उक्त स्थान पर गया पर यह देख कर कि उसके नीचे बहुत सी प्राचीन चीज़ें पड़ी हुई हैं मुझे कुछ भी आश्चर्य्य नहीं हुआ। वहाँ पर मैं केवल कुछ घंटों तक रहा पर तो भी मैंने वहाँ के लोगों तथा राजा के नौकरों पर अपने कुल्हाड़े और फावड़े की बदौलत उक्त बात की सत्यता प्रमाणित कर दी।

इसी प्रकार कुछ वर्ष बीते, बिजनौर जिले के रायपुर नामक ग्राम में बहुत से हथियार इत्यादि पूर्व ऐतिहासिक काल के मिले हैं।

ऐसे स्थानों में हमको केवल बड़े बड़े ढूहों को ही देख कर अन्वेषण न करना चाहिए बल्कि प्राचीन काल के मिट्टी के बरतनों और ईंटों के टुकड़ों तथा तत्कालीन प्रचलित सिक्कों और इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं को भी देख कर उन स्थानों का अन्वेषण करना चाहिए। इन वस्तुओं से इस बात का ठीक ठीक पता चलता है कि कहाँ पर अन्वेषण करना ठीक है।

कानपुर।

अब मैं कानपुर के जिले का कुछ वर्णन करता हूँ। इस जिले में दो अत्यंत पवित्र स्थान हैं जिनके नाम ब्रह्मावर्त्त वा बिठूर और परिहार हैं। ये दोनों स्थान एक दूसरे के समीप हैं। परिहार गंगा के पार उन्नाव जिले में है। ये स्थान रामायण के पिछले दृश्यों अर्थात् सीता के घर से निकाल दिए जाने और लव और कुश के अपने ही पिता की सेना से युद्ध करने से सम्बद्ध है। इन स्थानों से ताँबे के कुछ हथियार इत्यादि मिले हैं जो अत्यंत महत्त्व-पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और लखनऊ के अजायबघर में रखे हैं। इनमें से बहुत से हथियार तो मेरे ही वहाँ जाने पर मिले थे। उनमें से कुछ उक्त स्थानों पर ही मंदिरों में रखे हुए हैं जिन्हें लोग लव और कुश की निशानी समझ कर पूजते हैं। ये सब गंगा जी के कछार में मिले हैं। इससे अनुमान होता है कि ध्रुव के पिता उत्तानपाद के किले का भी यदि उस मामूली गढ़ी के स्थान पर जो बहुत ऊँचा और फैला हुआ है, अन्वेषण किया जाय तो बहुत कुछ पता चल सकता है। यह ऊँचा भीटा गंगाजी के दाहिने किनारे पर गंगाजी से बिलकुल मिला हुआ स्थित है। यदि आप उसके किनारे से हो कर निकलें तो मुझे निश्चय है कि आपको अवश्य कुछ न कुछ ऐसी वस्तुएँ देख पड़ेंगी जिनके लिये आप मार्ग छोड़ कर उक्त स्थान में जाने का कष्ट उठाना सुफल समझेंगे। कानपुर से रेल की पटरी पर से अथवा किसी अन्य सवारी पर आप उस स्थान तक जा सकते हैं और केवल थोड़ी ही देर में वहाँ पहुँच सकते हैं। यह संभव नहीं है कि वहाँ पथिक को कुछ मूर्त्तियाँ प्राचीन काल की न मिलें।

अब मैं भिटार गाँव के एक मंदिर का जो छोटी छोटी ईंटों का बना हुआ है, कुछ वर्णन करता हूँ। यह मंदिर हमीरपुरवाली सड़क पर उक्त गाँव में २० मील दक्षिण की ओर है और चौथी शताब्दी तक का पुराना अनुमान किया जाता है। इस मंदिर को देखने के लिये दो स्थानों से जाने में सुभीता है—एक तो धर्म्मपुर की नहर के बंगले से जो कानपुर से १८ मील की दूरी पर है और दूसरे साढ़ से जहां पर नहर का बंगला है और रेलवे स्टेशन सरसौल है। यह नरवल तहसील में है। कानपुर और फ़तेहपुर ज़िलों के अन्य मंदिर जैसे रार और तिंदौली उतने पुराने नहीं जान पड़ते। तिंदौली का मंदिर मध्य ऐतिहासिक-काल की ईंटों के मंदिर का एक नमूना है। सब से अधिक मार्के की बात तो यहाँ पर यह है कि उक्त मंदिर का समस्त ऊपरी भाग नकाशीदार ईंटों से बना है। यह मंदिर बड़ी ईंटों (१७½+१०½+३) का बना हुआ है इसका वर्णन मैं आप लोगों से इस कारण करता हूँ कि यह हिंदुस्तान की मुख्य इमारतों में से है; इसके स्थान के कारण बहुत कम लोगों को इसका पता है। यह गुप्त वंश के राजाओं के समय के ईंट के मंदिरों में सब से निराले ढंग का है। यह पवित्र मंदिर ए० एम० पी० ऐक्ट के अनुसार हमारी सरकार द्वारा सुरक्षित है। इसके कुछ टुकड़े लखनऊ के अजायबघर में भी रखे हुए हैं।

बुंदेलखंड।

कानपुर के बाद अब बुंदेलखंड की ओर चलना चाहिए। बुंदेलखंड में ललितपुर और देवगढ़ या कीर्त्तिगिरि बेतवा नदी के ऊपर अत्यंत सुहावने स्थान हैं। यहाँ देवगढ़ का किला नदी के ठीक किनारे पर है और एक सीढ़ी किले से नदी के बीच तक बनी हुई है जिसका नाम राजघाटी है। किले के चारों ओर घना जंगल है और वहाँ पर जंगली जानवर लगते हैं; परन्तु इसका पूर्वी भाग भयानक जंगल से आच्छादित नहीं है किन्तु जैन-मंदिरों के खंडहरों से सुशोभित है। जो कुछ खंडाहर हमें यहाँ पर मिलते हैं वे यद्यपि बहुत पुराने नहीं हैं पर तो भी जैन काल के इतिहास के अध्ययन के निमित्त अत्यंत मनोरंजक हैं। इन मंदिरों की संख्या बहुत है। देवगढ़ के सब मंदिरों से अधिक चित्ता-कर्षक मंदिर गुप्तका विष्णुजी का मंदिर है। इस मंदिर की बनावट गुप्त राजाओं के काल की है और इसकी दीवारों पर बड़ी कारीगरी की तसवीरें तथा लेख इत्यादिक खुदे हुए हैं जो बहुत मनोरंजक हैं। अब मैं यहाँ के बाद कन्नौज का कुछ वर्णन करता हूँ जो फर्रुखाबाद के जिले में है। कन्नौज प्राचीन काल का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्यकुब्ज नामक नगर है जिसका वर्णन रामायण और पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है। यहाँ की बहुत सी चीजें इसकी प्राचीनता सिद्ध करती हैं। इस स्थान का अन्वेषण अभी तक प्रायः नहीं हुआ है। कन्नौज की बस्ती २५८ एकड़ के क्षेत्रफल में पाँच गावों को मिला कर है। आधुनिक कन्नौज प्राचीन कन्नौज का एक टुकड़ा मात्र है। प्राचीन कन्नौज का पता आधुनिक कन्नौज से दक्षिण की ओर सरायमीरां और राजगिरि हार तक मिलता है। चारों ओर जो खंडहर और प्राचीन इमारतों के चिह्न हैं उनसे जहाँ जहाँ पर धौरहरे, महल और मंदिर इत्यादिक थे उनका पता चलता है। प्राचीन काल में यह नगर अवश्य ही बहुत बड़ा और कई मीलों तक फैला हुआ होगा। दुर्भाग्यवश यहाँ पर कोई अधिक प्राचीन चिह्न नहीं मिलते हैं। महमूद गजनवी ने मूर्त्तियाँ और मंदिर तोड़ने की झक में उस समय तक की प्राचीन वस्तुओं का सत्तानाश कर डाला होगा। यहाँ के खेतों में जोतने के समय प्राचीन सिक्के तथा शिला-लेख इत्यादि मिलते हैं जिनसे हमें प्राचीन काल का स्मरण और अनुमान होता है। यहाँ की विशेष विशेष इमारतें मुसलमानों की ही हैं। पुरातत्त्व-वेत्ताओं के द्वारा हम लोगों को इसकी प्राचीनता का पता चल सकता है।

अब मैं कंपिला का वर्णन करता हूँ जो यद्यपि आधुनिक इतिहास में विख्यात नहीं है परंतु प्राचीन भारतवर्ष में एक मुख्य स्थान रहा होगा। यह एक ऐसी जगह पर है जहाँ से हमें वैदिक अथवा महाभारत और रामायण-काल के चिह्न इत्यादि मिलने की आशा हो सकती है। कंपिला को हमारे यहाँ पंचाल का मुख्य नगर बतलाया है जहाँ पर द्रौपदी के स्वयंवरवाली घटना हुई थी। कौरवों के गुरु द्रोण से परास्त हो कर द्रुपद ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। नगरनिवासियों के कथनानुसार अभी तक वे स्थान जहाँ पर स्वयंवर हुआ था, जहाँ पर द्रुपद राजा का महल था और वह तड़ाग जिसमें द्रौपदी स्नान करती थी, मौजूद हैं। अब आधुनिक संकिसा और प्राचीन संकस्य को लीजिए। यहाँ पहुँचने के लिये सब से निकट का रास्ता मोटा से हो कर है। यह मोटा स्टेशन ई० आई० रेलवे के मैनपुरी जिले में उक्त स्थान से सब से निकट का स्टेशन है। संकिसा यहाँ से ४ मील उत्तर की ओर काली नदी के जो गंगाजी की एक सहायक नदी है उस पार स्थित है। मोटा में कोई सवारी नहीं मिलती; केवल बैल गाड़ी अथवा टट्टू किराए पर तहसीलदारी के जरिए से मिल सकते हैं। संकिसा के लिये दूसरा रास्ता नीब करोरी हो कर है। नीब करोरी से भी संकिसा तक का रास्ता कच्चा है। एक्का और मझोली फ़र्रुखाबाद मे मिल सकते हैं पर नीब करोरी में एक्के आदि कुछ नहीं मिल सकते। संकिसा में कई कालों के सिक्के पाए गए हैं। यहाँ पर मथुरा के राजाओं, दिल्ली के सुलतानों और मुग़ल बादशाहों के सिक्के भी पाए गए है। यह संकिसा बसंतपुर के नाम से अधिक प्रसिद्ध है और फर्रुखाबाद तहसील का एक मुख्य गाँव है। यहाँ पर पुराने खंडहरों का एक टीला है जो ४० फुट ऊँचा, पूरब से पश्चिम तक १५०० फुट लंबा और १००० फुट चौड़ा है और इसे लोग किला कहते हैं। इस गाँव में दक्षिण की ओर स्तूप का गिरा पड़ा भाग ईंटों की चुनाई का है। इसके ऊपर एक मंदिर है जो बहुत पुराना नहीं है और जिसके ऊपर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। उसी से मिली हुई उत्तर की ओर अशोक के खंभे की चौकी है जो दुर्भाग्यवश खंडित है; पर तौभी वह कारीगरी का एक अच्छा नमूना है। इसकी पालिश उतर गई है पर तौभी यह मौर्य्य वंश के राजाओं के समय के ढंग का प्रतीत होता है। मौर्य्य राजाओं के समय की भारतवर्ष की नकाशी और लेख इत्यादि की खुदाई की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारीगरी का यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह एक ही पत्थर का बना हुआ है और इसके ऊपर हाथी की मूर्त्ति स्थापित है।

मुझे अत्यंत खेद है कि लोग इसको गणेश की मूर्त्ति समझ कर पूजते हैं; वे इसके प्रत्येक अंश को किसी न किसी देवता का स्वरूप मानते हैं। यह हाथी पूर्व दिशा का सुरक्षक है। इस प्रकार की चौकियों के ऊपरी भाग में चार जानवरों में से किसी न किसी की तसवीर बनी रहती है। उन चारों जानवरों में हाथी पूर्व दिशा का, घोड़ा दक्षिण दिशा का, बैल पश्चिम दिशा का और शेर उत्तर दिशा का रक्षक माना जाता था। घोड़े के अतिरिक्त और सब जानवरों की इस प्रकार की प्रतिमूर्त्तियाँ एक ही प्रकार की चौकियों पर मिल चुकी हैं। मेरे विचार से कदाचित् घोड़े की प्रतिमूर्त्ति रूमीदेई के स्तंभ पर, जहाँ पर बुद्ध भगवान् का जन्म हुआ था, स्थापित थी। सारनाथ में जो इस प्रकार की चौकी मिली है उसके ऊपर चारों जानवरों की प्रतिमूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। इससे मालूम होता है कि यह स्मारक चारों दिशाओं में बौद्ध मत के प्रचार के उपदेश के समय स्थापित किया गया था। संकिसा के स्तंभ पर अत्यंत सुंदर मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं।

उक्त स्थान दूर तक फैला हुआ है और उसमें बहुत सी खंडित चीजें मौजूद हैं। प्राचीन नगर जो कदाचित् उक्त भीटे के चारों ओर बसा हुआ था मिट्टी की दीवार से ३½ मील के घेरे में घिरा हुआ था। इस दीवार के बहुत से हिस्सों का अभी तक पता चलता है। मैं इसके विवरण की आवश्यकता नहीं समझता। यह स्थान मेरे लिये बहुत ही चित्ताकर्षक है और यदि मुझे इसके अन्वेषण की आज्ञा होती तो मुझे विश्वास है कि मैं इस स्थान से अनगिनत प्राचीन शिलाएँ इत्यादि जिनसे भारतवर्ष के इतिहास का गौरव बढ़ाने में सहायता मिलती, ढूँढ़ निकालता और इसकी जाँच का काम बहुत वर्षों तक जारी रहता। मैं 'सीढ़ो' तक को इस स्थान से ढूँढ़ निकालने का सौभाग्य प्राप्त करता।

बौद्ध मत से संपर्क रखनेवाले लोगों को यह भली भाँति मालूम है कि यह वही संकिसा वा संकाश्य है जहाँ भगवान् बुद्ध त्रयस्त्रिंश (स्वर्गलोक) में धर्म्म-शिक्षा देने के बाद उतर कर आए थे। कहते हैं कि उक्त स्वर्ग से उतरने के समय बुद्ध भगवान को तीन सीढ़ियाँ दृष्टिगोचर हुई थीं। बीच की सीढ़ी सप्तधातु की बनी हुई बहुत अमूल्य थी; इस पर स्वयं बुद्ध भगवान् चढ़े थे। दाहिनी ओर चाँदी की सीढ़ी थी; जिस पर ब्रह्माजी चवँर लिए हुए खड़े थे। बाईं ओर की सीढ़ी सोने की थी; उस पर इंद्र महाराज छत्र लिए हुए खड़े थे। अनेक प्राचीन बौद्ध-शिलाओं में इसका चित्र खुदा हुआ पाया गया है। कहा जाता है कि जब बुद्ध भगवान् उतर आए तो तीनों सीढ़ियाँ गायब हो गईं। कोई पुरातत्त्ववेत्ता अथवा धन का इच्छुक यदि उक्त सीढ़ियों का अन्वेषण करे तो मालामाल हो जायगा।

आधुनिक संकिसा प्राचीन संकाश्य है यह बात प्रायः सिद्ध है; इसे इस स्थान पर सिद्ध करने की हम कोई आवश्यकता नहीं समझते।

इलाहाबाद।

अब मैं इलाहाबाद के जिले में चलता हूँ। ई० आई० रेलवे द्वारा हम भरवारी स्टेशन पर पहुँचते हैं। यहाँ से मंझनपुर और धवरा हो कर कुछ कच्ची और कुछ पक्की सड़क पर चल कर कोसम नामक स्थान में पहुँचते हैं।

मेरा विचार है कि यह स्थान प्राचीन कोसांबी है जो प्राचीन भारत में परम विख्यात नगर था। यह बात अभी तक सिद्ध नहीं हो चुकी है और जब तक इस स्थान का अन्वेषण न किया जायगा तब तक इस बात को मानने में झगड़ा रहेगा। जिस कारण से हम इसे कोसांबी कहने का साहस करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वह यह है कि जैनियों में ऐसी किंवदंती है और सत्य भी है कि यह स्थान अकबर के समय में कोसांबी कहलाता था; और इसका प्रमाण भी मिलता है। क्योंकि उक्त स्थान में पत्थर के एक खंभे पर अकबर के शासनकाल का ही एक लेख है जिससे यह बात सिद्ध होती है। यहाँ पर दो स्थान हैं; एक का नाम कोसाम-खिराज है और दूसरे का नाम कोसाम-इनाम है। ये स्थान जमुना के बाएँ किनारे पर इलाहाबाद से २८ मील पश्चिम की ओर स्थित हैं।

मुख्य स्थान पर मिट्टी की दीवारों से बना हुआ ४ मील के घेरे में एक किला है जिसमें बीच बीच में बुर्ज भी बने हुए हैं। दीवार की ऊँचाई ३० फुट के लगभग है और बुर्ज की ऊँचाई ५० या ६० फुट के लगभग है। प्राचीन समय में उक्त किले के चारों ओर खाई अवश्य रही होगी; इस समय दीवार के नीचे केवल कुछ छिछला सा गड्ढा मौजूद है। इसे लोग देउरा कहते हैं; यह नाम एक मुख्य मंदिर का वाची है जिसमें बुद्ध भगवान् की चंदन की लकड़ी की प्रतिमूर्त्ति उनके जीवनकाल में ही स्थापित की गई थी।

इस स्थान का भी अन्वेषण नहीं किया गया है। इस स्थान तक की यात्रा से, चाहे वह जल्दी में ही क्यों न की जाय, यह अवश्य विदित हो जायगा कि प्राचीन शिलाखंड, मूर्त्ति, खंडहरों के चिह्न इत्यादि से यह स्थाह कितना परिपूर्ण है। बहुत से शिलालेख और मिट्टी मिले बालू की अग्नि में ईंटों की भाँति पकाई हुई मूर्त्तियाँ लोगों के मकानों के नीचे पड़ी हुई हैं। यदि इसके निमित्त कुछ इनाम मुकर्रर किया जाय तो संभव है कि लोग प्राचीन चिह्न और मुद्रा इत्यादि जो उन्हें प्रायः बरसात के बाद खेत जोतने तथा जानवरों को चराने के समय मिलते हैं, ढूँढ़ा करें। इस स्थान पर जो सिक्के मिले हैं वे अत्यंत प्राचीन हैं और उनमें से बहुत से ऐसे हैं जिनसे कई बातों का पूरा पता चलता है। इस स्थान के सब से पुराने सिक्के ईसा से दो वा तीन शताब्दी पूर्व के ठहराए जा सकते हैं। उन सिक्कों पर बृहस्पति, मित्र, अश्वघोष और पर्व्वत के चिह्न हैं और अन्य कुछ सिक्कों पर कोई चिह्न नहीं पाए जाते। उक्त सिक्कों के एक ओर एक वृक्ष बना हुआ है जो कदाचित् बोधी है और दूसरी ओर कोहांन निकले हुए दुबले बैल की तसवीर बनी हुई है। मुग़ल बादशाहों के समय के भी सिक्के यहाँ पाए गए हैं। सब से प्राचीन चिह्न जो यहाँ पर स्थित है वह उक्त स्तंभ है जो अभी तक पूर्ण रूप से खोदा नहीं गया है। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता मिस्टर कनिंघम महाशय ने इसको सात फुट की गहराई तक खोदा था जिससे वह उक्त स्तंभ की पालिश की हुई तह तक नहीं पहुँच सके थे। इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि स्तंभ के निचले भाग में कोई शिलालेख अथवा इसी प्रकार का कोई ऐतिहासिक चिह्न मौजूद होगा; और वह उसी प्रकार उक्त महाशय से छूट गया होगा जिस प्रकार बेसनगर के स्तंभ का कुछ अंश छूट गया था जिसमें से एक शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य निकला है और जिसमें अंत्यालकीदास का-जो पंजाब पर शासन करनेवाला एक यूनानी राजा था वर्णन दिया हुआ है। जो लेख उक्त स्तंभ के खुले हुए भाग पर खुदे हुए हैं वे गुप्त राजवंश के समय से ले कर आधुनिक काल तक के हैं। उनमें से जो सब से प्राचीन है वह अभी तक नहीं पढ़ा गया है। बड़े बड़े पढ़नेवालों के इसके पढ़ने में छक्के छूट गए हैं।

कोसाम के आगे पभोसा वा प्रभासपुर में, जो जैनियों का तीर्थ पद्मप्रभापुर है, एक प्राचीन गुफा है जिसमें ऊपर पहाड़ी के सामने एक लेख खुदा हुआ है। इस जिले में बहुत से प्राचीन स्थान हैं जिनमें प्राचीन चिह्न मौजूद हैं। उन स्थानों के वर्णन में अधिक समय लगेगा और मैं आप लोगों का अधिक समय नहीं लेना चाहता। स्वयं इस नगर की प्राचीनता से आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग परिचित हैं जिसे वर्णन करने की मैं कुछ आवश्यकता नहीं समझता। यहाँ पर अशोक का जो स्तंभ है उस पर समुद्रगुप्त का लेख खुदा है; इसे 'इंडियन एपिग्रैफ़ी' के विद्यार्थियों ने बड़े परिश्रम से पढ़ा है। परंतु यह शिला-लेख जो आज दिन मौजूद है और जिसमें उक्त राजा की तत्कालीन घटनाओं का वर्णन है, भारतवर्ष के अन्य सब शिला लेखों से बढ़ कर है जैसा की मिस्टर बी० स्मिथ साहब ने भी अपना मत प्रकट किया है। भारत के इतिहास में उक्त राजा से बढ़ कर और कोई राजा नहीं हुआ है; इसे भारत का नेपोलियन कह सकते हैं। स्मिथ साहब अपने भारत के प्राचीन इतिहास में लिखते हैं—"दुर्भाग्यवश यह कवि और गानविद्या में परम प्रवीण योद्धा राजा भारतीय ऐतिहासिकों का अपरिचित रहा है; इसने करीब करीब सारे भारतवर्ष पर अधिकार बढ़ाया था और आक्सस से लंका तक इसका राज्य था।" अत्यंत परिश्रम और विचार से उक्त राजा के लेख और सिक्के पढ़े गए हैं और इसलिये अब संभव है कि उसके स्मरणीय राज्य का सविस्तर विवरण लिखा जासके; यह धीर पुरातत्व-वेत्ताओं के परिश्रम का फल है जिन्होंने शिला-लेख के टुकड़ों को इस चतुराई से मिलाया है कि वह लेख भली भाँति पढ़ा जा सके। इससे भारत के पूर्वतम इतिहास का पता चल सकता है। अब मैं अपने लेख को समाप्त करने से पहले एक और स्थान का वर्णन करूँगा।

यह स्थान इलाहाबाद से १० मील दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम के कोण पर जमुना के दक्षिण के किनारे पर है। इस स्थान का अन्वेषण सन् १९०९ और १० में सर जान मारशल द्वारा हुआ था; जो कुछ चिह्न यहाँ पाए गए हैं उनसे प्राचीन काल के ग्रामीण जीवन और ग्रामीण घरों की बनावट का हाल मालूम होता है।

अधिक विस्तार न कर के इस स्थान पर मैं उनमें से कुछ घरों का संक्षेप में वर्णन करूँगा। यहाँ पर जो प्राचीनतम घर का पूर्ण ढाँचा मिला है उस पर एक लेख ईसा से तीन शताब्दी पूर्व की लिपि में खुदा हुआ है। लेख की दृष्टि से यह घर मौर्य्य राजाओं के समय का ठहराया जा सकता है। इसकी बनावट बिलकुल सादी है। इसके बीच का आँगन चौकोर और ऊपर की ओर खुला हुआ है और उसके चारों ओर बारह कोठरियाँ हैं और आँगन में जाने के लिये दो दरवाजे आमने सामने बने हुए हैं। मकान की बनावट प्राचीन बौद्ध मन्दिरों की सी है, वे बौद्ध मंदिर इसी के अनुरूप होते थे। यह मकान और मिले हुए मकानों की भाँति ईंटों का बना हुआ है। दीवारों की नींव के नीचे मिट्टी के बरतनों और ईंटों के टुकड़ों की एक तह और उस के नीचे भी पीटी हुई मिट्टी की एक तह है। मौर्य्य राजाओं के समय नीव की ऐसी ही बनावट प्रचलित थी; कभी कभी नीव के नीचे की तह में ईंटों और मिट्टी के बरतनों के टुकड़ों के साथ कंकड़ भी मिलाते थे और दीवारों के कोने में ज़मीन के नीचे पत्थर की टेक लगाते थे। इस घर के उत्तर-पश्चिम की ओर एक आदमी का घर उसकी दूकान है। उस आदमी का नाम नागदेव था। यह घर सुंग-काल का निश्चित किया जाता है। इसी प्रकार नागदेव के मकान के पश्चिम जयवसुदा नामक वणिक का घर है। उस घर के आँगन में उत्तर पूर्व के कोने पर एक कुआँ है। दूकान में तीन कोठरियाँ हैं जो घर से अलग हैं। कोठरियों के सामने एक बरामदा ठीक उसी प्रकार का है जैसा आजकल बाजारों में देखा जाता है।

इस स्थान पर बहुत से प्राचीन पदार्थ मिले हैं जो इंडियन म्युजियम नामक कलकत्ते के अजायबघर में प्रदर्शित हैं और जिनके वर्णन करने की यहाँ पर आवश्यकता नहीं। लेख को समाप्त करने के पूर्व मैं सर जान मारशल की राय उक्त नागदेव के घर के सम्बन्ध में यहाँ पर उद्धृत करना चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

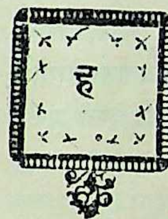
उक्त महाशय का कथन है कि नागदेव के घर और अन्य पाए गए घरों में अत्यन्त मनोरंजक वस्तुएँ और प्राचीन समय के पत्थर के हथियार मिले हैं; ये गुप्त और कुशन राजाओं के समय के हैं और उनके काल में कुछ संदेह नहीं किया जा सकता। ये हथियार क्यों मौजूद हैं? मेरी समझ में सबसे बढ़ कर इसका विवरण यही दिया जा सकता है कि उक्त नगर के वैरियों द्वारा लूटे जाने और उजड़ जाने के बाद पड़ोसी जंगली जातियाँ कई बार यहाँ पर आ कर बसीं और ये सब हथियार अपने पीछे छोड़ गईं। वह जातियाँ तब तक पूर्व-ऐतिहासिक काल में थीं। इन हथियारों के यहाँ पर पाए जाने का चाहे जो कारण हो पर अंत में यही सिद्ध होता है कि उक्त काल के हथियार मध्य ऐतिहासिक काल तक बरते जाते थे।

उक्त स्थान की जांच का फल अत्यन्त मनोरंजक है। चाक से बने हुए मिट्टी के जो बरतन पाए गए हैं वे १२०० वर्ष ईसा के पूर्व के निश्चित किए जाते हैं। इस समय मुझे और स्थानों का वर्णन नहीं करना है। कुछ और स्थान हैं जिनसे मैं अधिक परिचित नहीं हूँ। और कुछ स्थान ऐसे भी हैं जो अभी तक विद्वानों के ध्यान में नहीं आए हैं और जिनमें आशा की जा सकती है कि प्राचीन चिह्न पाए जा सकते हैं। उन स्थानों का भी इस समय वर्णन नहीं किया गया है जो उतने प्राचीन नहीं हैं।

अपने लेख को समाप्त करने से पूर्व यह बतला देना आवश्यक है कि इन प्रांतों में कितने ऐसे प्राचीन चिह्न भरे पड़े हैं जिनके अन्वेषण से भारत के इतिहास के प्राचीन स्थानों का पूर्ण पता चल सकता है। इन स्थानों को जंगली लोगों ने नष्ट कर दिया है और ठीकेदार लोगों ने भी ईंटें निकालने के लिये इन पर आक्रमण किए हैं। मकान बनानेवालों को भी तैय्यार सामान इन स्थानों में मिले हैं जिन्हें लेकर उन्होंने पुरातत्त्व सम्बन्धी कामों को अधिक हानि पहुँचाई है। यदि पढ़े लिखे लोगों की इसमें रुचि हो तो संभव है कि हमारे इस प्रकार के प्राचीन स्मारक-चिह्न इत्यादि तथा ऐसे स्थानों की रक्षा की जा सकती है और जो वस्तुएँ उनमें छिपी पड़ी हों वह ढूँढ़ कर निकालीं जा सकतीं हैं। भारत के प्राचीन इतिहास के लिये अभी बहुत कुछ कहना बाकी है। हमें बहुत कम ऐसी वस्तुएँ मिली हैं जो वैदिक, महाभारत वा रामायण-काल की हों। लेकिन यही वह प्रांत है जिसमें ऐसी वस्तुओं के मिलने की अधिक आशा की जा सकती है जो बहुत ही प्राचीन काल की हों।

—:०:—

सूर्य्य।



हमारे यहाँ के प्राचीन शास्त्रकारों ने सूर्य्य को ब्रह्म-स्वरूप, समस्त जगत् का स्वामी और वरदाता, आदि, मध्य और अन्त-स्वरूप और सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयकर्त्ता मान है। कुछ दिन हुए अँगरेजी में सूर्य्य के सम्बन्ध में एक पुस्तक छपी थी जिसका नाम था—"ग्रह-जगत् का शासक, प्रकाश और जीवन—सूर्य्य।" इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर सूर्य्य के जितने विशेषण दिए गए हैं वे सब बहुत ही ठीक हैं और उनमें किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं है। वास्तव में सूर्य्य ही हमारा—हमारा ही क्यों हमारे समस्त सौर जगत् का—कर्त्ता, जीवन और सर्वस्व है।

आकाशीय पिण्डों में सूर्य्य सब से प्रधान है। यद्यपि लोगों का यह विश्वास है और यह सम्भव भी जान पड़ता है कि हमारे सूर्य्य की तरह और भी ऐसे अनेक सूर्य्य हैं जो अपने अपने ग्रहों से अपनी परिक्रमा कराते हैं, तथापि इस स्थल पर हम इस बात की मीमांसा करना नहीं चाहते कि लोगों का यह विश्वास कहाँ तक ठीक है, आकाश में ऐसे सूर्य्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं या नहीं और यदि हैं तो संख्या में कितने हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि जिन आकाशचारी पिण्डों से हमारी पृथ्वी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है उनमें सूर्य्य ही सर्वप्रधान है। वह हमारी पृथ्वी तथा सौर जगत् के अन्य ग्रहों का केन्द्र है और उन ग्रहों से अपनी वार्षिक परिक्रमा कराता है। ईश्वर ने प्रकाश और ताप को ही मनुष्य, पशु और वनस्पति आदि के जीवन का प्रधान आधार बनाया है और यह दोनों चीज़ें हमें सूर्य्य से ही मिलती हैं। सूर्य्य के सम्बन्ध में जानने योग्य बहुत सी बातें ऐसी हैं जो केवल ज्योतिष से ही नहीं बल्कि पदार्थ और भौतिक आदि विज्ञानों से भी सम्बन्ध रखती हैं; इसलिये यदि सूर्य्य के सम्बन्ध की सब बातों का सविस्तर संग्रह किया जाय तो हजारों पृष्ठों का पोथा बन सकता है। उस वर्णन के समझने के लिये भी भिन्न भिन्न विज्ञानों की अच्छी जानकारी की आवश्यकता होगी। इस अवसर पर हम सूर्य्य सम्बन्धी कुछ ऐसी मुख्य मुख्य बातें देना चाहते हैं जिन्हें साधारणतः सभी पाठक समझ सकें।

सूर्य और पृथ्वी का अन्तर।

जो स्थान मनुष्य के लिये गम्य हो उसका अन्तर जान लेना तो कोई कठिन काम नहीं है पर जहाँ पहुँचना मनुष्य के लिये नितान्त असम्भव हो वहाँ की दूरी जान लेना सहज नहीं है। तो भी अनेक बड़े बड़े विद्वानों ने कई विश्वसनीय और प्रमाणिक आधारों पर यह निश्चित किया है कि सूर्य्य हमारी पृथ्वी से ९,३०,००,००० (नौ करोड़ तीस लाख) मील दूर है। पृथ्वी का मार्ग बिलकुल गोल नहीं बल्कि लंब-गोल है। इसलिये यह अन्तर कभी घट जाता है और कभी बढ़ जाता है। केवल कहने या सुनने से नौ करोड़ तीस लाख मील का सहज में अनुमान नहीं हो सकता, इसलिये कुछ मोटे हिसाबों से भी उसका अनुमान कर लेना चाहिए। हिसाब लगाइए कि एक घड़ी को नौ करोड़ तीस लाख बार 'टिक टिक' करने में कितना समय लगेगा। घड़ी एक मिनट में ६० बार, एक घन्टे में ३६०० बार और एक दिन-रात में ८६, ४०० बार टिक टिक करती है। यदि ९,३०,००,००० को ८४, ४०० से भाग दें तो लगभग १०७६ दिन निकलते हैं। तात्पर्य्य यह कि यदि कोई घड़ी लगातार तीन वर्षों तक बराबर दिन और रात टिक टिक किया करे तब कहीं जा कर नौ करोड़ तीस लाख की संख्या पूरी हो। एक और दूसरे प्रकार से विचार कीजिए। एक घन्टे में चालीस मील चलनेवाली डाक गाड़ी को नौ करोड़ तीस मील की यात्रा करने में कितना समय लगेगा? यदि वह रास्ते में कहीं न ठहरे तो दिन रात में ९६० मील चली जायगी, और सालभर में वह ३, ५०, ४०० मील निकल जायगी। इस प्रकार नौ करोड़ तीस लाख मील की यात्रा करने में उसे प्रायः तीन सौ वर्ष लगेंगे। यदि किसी प्रकार हमारी पृथ्वी से सूर्य्य तक रेल जा सकती होती और एक घन्टे में चालीस मील चलनेवाली गाड़ी जहाँगीर बादशाह के समय में रवाना होती, और रास्ते में कहीं न ठहरती, तो आज कहीं जा कर वह सूर्य्य तक पहुँच पाती। इतने वर्षों में ड्राइवर, गार्ड, और कोयला झोंकनेवालों की कितनी पीढ़ियाँ बीत जातीं, इसका अनुमान आप कर लीजिए।

पृथ्वी और सूर्य्य के बीच का अन्तर जानने के लिये विद्वानों ने कई उपाय निकाले हैं और समय समय पर उन उपायों की सहायता से सूर्य्य के अन्तर का पता लगाया गया है। इनमें से कई उपाय गणित सम्बन्धी हैं और कई दूसरे आधार पर हैं। यदि किसी बड़े कमरे की छत में एक कड़ी लगी हो तो जमीन से उस कड़ी का अन्तर फीते से नापने के सिवा एक और उपाय से भी जाना जा सकता है। उस कड़ी के ठीक नीचे एक लंबा टेबुल रख दीजिए और उस टेबुल के दोनों ओर दो लड़के खड़े कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीजिए। जिस समय लड़के आपस में एक दूसरे की ओर देखेंगे तो एक त्रिकोण बन जायगा जिसका एक भुज दोनों लड़कों की आँखों के बीच की रेखा होगी, दूसरा भुज एक लड़के की आँख से उस कड़ी तक की और तीसरा भुज दूसरे लड़के की आँख से कड़ी तक की रेखा होगी। इसके अतिरिक्त कड़ीवाली दोनों रेखाओं के नीचे दोनों लड़कों की आँखों पर दो कोण बन जायँगे। अब उन दोनों लड़कों के बीच का अन्तर और उनकी आँखों के पास बननेवाले दोनों कोणों को नाप कर सहज में गणित की सहायता से छतवाली उस कड़ी की ऊँचाई जानी जा सकती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर कुछ दूरी पर दो आदमी खड़े हो कर आकाशस्थ सूर्य्य का अन्तर जान सकते हैं। कोई पदार्थ हमसे कितने अन्तर पर है, इसका पता लगाने में हमें अपनी दोनों आंखों से भी बहुत सहायता मिलती है। यदि हमें केवल एक ही आंख होती तो हम अकेले अपनी उस एक आँख की सहायता से कदाचित् पदार्थों का अन्तर न जान सकते; पर दो आंखों की सहायता से सहज में जान सकते हैं। अपनी आंखों के ठीक सामने बीचोबीच कुछ दूरी पर अपनी एक उँगली खड़ी कीजिए। एक त्रिभुज बन जायगा जिसका एक भुज उँगली से एक आँख तक दूसरा उँगली से दूसरी आँख तक और तीसरा दोनों आंखों के बीचवाली रेखा का होगा। अब दोनों आंखों के बीच का अन्तर और दोनों आंखों पर बननेवाले दोनों कोणों को नाप कर आप आंखों और उँगली के बीच की दूरी जान सकते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषी एडमंड हेली ने—जिन्होंने प्रसिद्ध पुच्छल तारे के सम्बन्ध की अनेक बातों का पता लगाया था—पृथ्वी से सूर्य्य का अन्तर जानने का एक बहुत अच्छा उपाय निकाला था। शुक्र के संक्रमण के समय अर्थात् जब पृथ्वी और सूर्य्य के ठीक बीच में शुक्र तारा आ पड़ता है तब सूर्य्य पर शुक्र की जो छाया पड़ती है उससे सूर्य्य की दूरी बहुत अच्छी तरह नापी जाती है। सन् १७६१ और १७६९ में इसी रीति से सूर्य्य की दूरी नापी गई थी और निश्चय किया गया था कि वह पृथ्वी से लगभग नौ करोड़ पचास लाख मील दूर है। पर, इसके उपरान्त सन् १८७४ और १८८२ में जब शुक्र के संक्रमण के समय यह दूरी नापी गई तो वह लगभग नौ करोड़ तीस लाख मील निकली।

पृथ्वी और सूर्य्य का अन्तर जानने में प्रकाश के वेग से भी बहुत सहायता मिलती है। जो प्रकाश सूर्य्य से पृथ्वी पर आता है उसका वेग जानने पर सूर्य्य का अन्तर सहज में मालूम हो सकता है। साधारणतः प्रकाश का वेग एक सेकेंड में १,८६,३६० मील माना जाता है और सूर्य्य से पृथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में ४९८ सेकेंड लगते हैं। इस हिसाब से भी सूर्य्य की दूरी प्रायः उतनी ही ठहरती है जितनी ऊपर बतलाई जा चुकी है। मंगल और बृहस्पति के बीच में जो छोटे छोटे ग्रह हैं उनकी सहायता से भी सूर्य्य का अन्तर जाना जाता है। सन् १८७५ में डेन्मार्क के एक ज्योतिषी ने बृहस्पति के उपग्रहों के ग्रहण की निरीक्षा करके जो हिसाब लगाया था उससे पृथ्वी और सूर्य्य के बीच का अन्तर ९,२०,७०,००० (नौ करोड़ बीस लाख सत्तर हजार) मील निकला था।

आकार, तेज और ताप।

सूर्य्य का व्यास ८,६६,५०० मील है; यह व्यास हमारी पृथ्वी के व्यास से १०९ $\frac{1}{2}$ गुणा बड़ा है। यदि किसी प्रकार पृथ्वी को बढ़ा कर सूर्य्य के बराबर किया जा सके और उसी के अनुसार पृथ्वी की और सब चीजों के आकार भी बढ़ जायँ तो मनुष्य की ऊँचाई ६२५ फुट हो जायगी। इसी प्रकार उसकी मोटाई और चौड़ाई आदि भी १०९ $\frac{1}{2}$ गुनी बढ़ जायगी। यदि दस लाख पृथ्वियों को एक में जोड़ा जाय तब कहीं जा कर उन सब का मिश्रित आकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य्य के बराबर होगा; पर सूर्य्य में उतने रजकण नहीं हैं जितने पृथ्वी में हैं। केवल तीन लाख बत्तीस हजार पृथ्वियों के रजकण मिल कर ही वह तौल में सूर्य्य के बराबर हो जायँगे। यह मान सब ग्रहों के मिश्रित मान से ७०० गुना है।

जिस मनुष्य की आँखें साधारणतः अच्छी हों वह स्वच्छ आकाश में पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी में समाचारपत्र पढ़ सकता है। यदि १०,००,००० (दस लाख) पूर्णिमा के चन्द्रों की चाँदनी इकट्ठी हो सके तो आकाश में कितना प्रकाश हो? पर सूर्य्य का प्रकाश इससे भी छः गुना अर्थात् पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी से ६०,००,००० गुना है। यदि सूर्य्य और अपनी आँखों के बीच में बिजली की रोशनी रख कर काले शीशे से सूर्य्य को देखिए तो सूर्य्य के प्रकाश के सामने उस बिजली के दीए का प्रकाश काला जान पड़ेगा। तिस पर विलक्षणता यह है कि सूर्य्य से जितना प्रकाश निकलता है उसका केवल २,२०,००,००,००० वाँ भाग ही इस पृथ्वी पर पड़ता है। इससे भी बढ़ कर विलक्षणता यह है कि इस समय सूर्य्य चारों ओर जितनी वायु से घिरा हुआ है, यदि वह सब वायु न रहे तो सूर्य्य इस समय से तिगुना अधिक प्रकाशित दिखाई पड़े। और इस समय उसका जो रंग सफ़ेद दिखाई पड़ता है, उसके बदले वह भूरा दिखाई पड़े। इस समय उसकी किरणों की भूरी रंगत हवा में मिल जाती है और वह सफ़ेद दिखाई पड़ती हैं।

सूर्य्य में गरमी इतनी अधिक है कि उसका ठीक ठीक अनुमान करना बहुत ही कठिन है। किसी कृत्रिम उपाय से उतनी गरमी उत्पन्न ही नहीं की जा सकती। इतनी अधिक गरमी होने के कारण ही सूर्य्य में कोई चीज घन स्थिति में नहीं है। सारी पृथ्वी पर सूर्य्य से जितनी गरमी पहुँचती है उसकी सहायता से ६,००,००,००० (छः करोड़) टन पानी एक सेकेंड में सौ डिग्री तक गरम किया जा सकता है। सूर्य्य की गरमी को एकत्र कर के उससे बहुत कुछ काम लिया जा सकता है। छोटे आतशी शीशे से सूर्य्य की गरमी एकत्र करके कागज और कपड़े आदि जलाए जाते हैं। यदि यह आतशी शीशा बहुत बड़ा हो अथवा और किसी प्रकार से अधिक गरमी एकत्र की जा सके तो उसकी सहायता से बड़े बड़े कल-कारखाने चल सकते हैं। एक बुद्धिमान् ने एक तोप के ऊपर इस प्रकार एक आतशी शीशा लगा रखा था कि जिस समय सूर्य्य ठीक याम्योत्तर वृत्त पर आता था उस समय आतशी शीशे पर गरमी पड़ने के कारण वह तोप बिना फलीता लगाए आपही आप छूट पड़ती थी, उस समय न तो घड़ी देखने की जरूरत पड़ती थी और न तोप छोड़नेवाले की। लेंग्ले नामक एक विद्वान् ने एक बार हिसाब लगा कर बतलाया था कि लंदन नगर में दोपहर के समय जितनी गरमी पड़ती है उतनी गरमी से आधी दुनिया के सारे काम चल सकते हैं। यदि सारा सूर्य्य कोयले का ही बना होता और वह इसी प्रकार जलता रहता तो प्रायः ५—६ हजार वर्षों में ही वह भी जल कर समाप्त हो जाता। पर वह लाखों वर्षों से इसी प्रकार जल रहा है और अनन्त काल तक इसी प्रकार जलता रहेगा। कुछ लोगों का अनुमान है कि सूर्य्य जलती हुई हवा का गोला है और उसके छोटे होते जाने के कारण गरमी उत्पन्न होती है। सब लोग जानते हैं कि यदि ऊपर से कोई चीज जमीन पर गिरे तो उसके गिरने के कारण गरमी उत्पन्न होती है। लोगों का अनुमान है कि सूर्य्य का प्रत्येक कण भीतर की ओर धँसता और गरमी उत्पन्न करता है। इस प्रकार यद्यपि सूर्य्य बराबर छोटा होता जाता है तो भी छः हजार वर्षों में वह इतना छोटा हुआ है कि बहुत बड़ी बड़ी दूरबीनों से भी उसका अन्तर नहीं जाना जा सकता। पहले कुछ लोगों ने हिसाब लगाया था कि सूर्य्य की यह गरमी १,००,००,००० (एक करोड़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष तक रहेगी। पर जब से रेडियम नामक धातु का पता लगा है तब से लोग कहने लगे हैं कि सूर्य्य की गरमी इससे बहुत अधिक समय तक रहेगी।

पृष्ठ, आवरण और बनावट आदि।

सूर्य्य का जो तेजस्वी भाग हमें दिखाई पड़ता है उसे तेजावरण कहते हैं। इस तेजावरण की ओर देखने के लिये काले रंग के अथवा धूएं से काला किए हुए शीशे की आवश्यकता होती है। यदि सूर्य्य की ओर देखने में ऐसे शीशे का व्यवहार न किया जाय ते। आँखों के। बहुत नुकसान पहुँचेगा। खाली आँख से ते। सूर्य्य का पृष्ठ चपटा दिखाई पड़ता है पर दूरबीन से देखने से वह गोल जान पड़ता है। किनारे की अपेक्षा उसका मध्य भाग बहुत अधिक प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त उसके पृष्ठ पर बहुत से छोटे छोटे दानें जैसे प्रकाशित विन्दु दिखाई पड़ते हैं जो अनेक आकार और प्रकार के होते हैं। यदि दूरबीन की सहायता से सूर्य्य का प्रतिविम्ब किसी काले कागज पर डाला जाय ते। ये दाने स्पष्ट दिखलाई पड़ेंगे। सूर्य्य पर ये दाने उसी प्रकार तैरते हुए दिखलाई पड़ते हैं जिस प्रकार पानी पर भात के दाने तैरते हैं। इस तेजावरण के अन्दर सूर्य्य में और भी कई प्रकाशित भाग दिखाई पड़ते हैं। ऊपर जिन दानें का वर्णन किया गया है ये सूर्य्य के दाग या धब्बे कहलाते हैं और इनका विशेष विवरण आगे दिया गया है।

हमारी पृथ्वी चारें ओर वायु-मण्डल से घिरी हुई है। वायु का यह आवरण प्रत्येक स्थान पर लगभग पचास मील गहरा है। अर्थात् पृथ्वी-तल के ऊपर चारें ओर लगभग पचास मील तक वायु ही वायु है। यह वायु पारदर्शी होती है और इसी के। भेद कर अन्य ग्रहों के प्रकाश हमारी पृथ्वी तक पहुँचते हैं। यद्यपि वायु के कारण हमारे देखने में ग्रहों के प्रकाश और रंग में बहुत कुछ भेद पड़ जाता है तथापि वह वायु बहुत से अंशों में पारदर्शी ही मानी जाती है। वायु-मण्डल के अतिरिक्त, पृथ्वी पर एक और आवरण होता है जिसे मेघ कहते हैं। यह मेघ न ते। सदा सब स्थानों पर बना रहता है और न पारदर्शी ही होता है। यही कारण है कि जिस समय मेघ होता है उस समय सूर्य्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों अथवा दूसरे नक्षत्रों के दर्शन नहीं होते। इसी मेघ से जल बरसता है। ठीक इसी प्रकार सूर्य्य के चारें ओर भी तीन आवरण हैं। सूर्य्य का आकाश इन्हीं तीनें आवरणों से बना है। हमारी पृथ्वी जलती नहीं है इसी लिये इसका वायु-मण्डल भी ठण्ढा और प्रकाश-रहित है। लेकिन सूर्य्य दिन रात जलता रहता है इसलिये उसके आवरण भी सदा बहुत ही गरम और प्रकाशमान रहते हैं।

यदि दूरबीन से सूर्य्य के। देखा जाय ते। उसका पहला आवरण स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पृथ्वी के वाष्प-आवरण के। जिस प्रकार हम लोग वायु-मण्डल कहते हैं उसी प्रकार सूर्य्य के वाष्प-आवरण के। ज्योतिषी लोग आलोक-मण्डल (Photosphpere) कहते हैं। ज्योतिषियों का मत है कि सूर्य्य का यह आलोक-मण्डल पृथ्वी के मेघ से बहुत कुछ मिलता जुलता है। सूर्य्य के पिण्ड से जो जलती हुई भाफ निकलती है वही जम कर अलोक-मण्डल बन जाती है। लेकिन हमारे मेघ और सूर्य्य के आलोक-मण्डल में मुख्य भेद यह है कि हमारे मेघ में न ते। प्रकाश होता है और न ताप; पर सूर्य्य के आलोक-मण्डल में ये दोनें बातें होती हैं। वह सदा उज्ज्वल और तप्त रहता है। दूरबीन से देखने पर सारा आलोक-मण्डल समान उज्ज्वल नहीं दिखाई पड़ता; उसमें स्थान स्थान पर उभरे हुए दाने से दिखाई पड़ते हैं। इस आलोक-मण्डल से सूर्य्य पर एक प्रकार की वर्षा भी होती है जो कभी कभी २०—२५ बल्कि ३० दिनों तक जारी रहती है।

सूर्य्य का दूसरा आवरण रंगीन है, इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिषी उसे वर्ण-मण्डल (Chromosphere) कहते हैं। जिस समय खग्रास सूर्य्य-ग्रहण होता है उस समय यह वर्ण-मण्डल बहुत अच्छी तरह दिखाई पड़ता है। इसका रंग ठीक वैसा ही लाल है जैसा लाल फुलझड़ी या लाल दियासलाई जलाने से निकलता है। इस आवरण की गहराई साधारणतः प्रायः तीन हजार मील है। पर किसी किसी स्थान पर वह दस हजार मील तक गहरा है। कहा जाता है कि इसमें के मुख्य पदार्थ हाइड्रोजन, हेलियम और कैल्सियम हैं। जिस समय सूर्य्य का खग्रास ग्रहण होता है उस समय इस वर्ण-मण्डल में से ख़ूब ऊँची ऊँची शिखाएं या लपटें निकलती हुई दिखाई देती हैं। इसका कारण यह है कि सूर्य्य के भीतर से बहुत तेज हवा बाहर की तरफ निकलती है जिससे यह शिखाएं उत्पन्न होती हैं। एक बार खग्रास सूर्य्य-ग्रहण के समय एक ऐसी शिखा की ऊँचाई प्रायः अढ़ाई लाख मील और एक बार पौने पाँच लाख मील नापी गई थी। मूल में इनकी मोटाई भी प्रायः इतनी ही थी। ५ मई सन् १८९२ को एक ऐसी ही शिखा देखी गई थी जिसकी गति प्रति सेकेण्ड ३२३ मील थी। यह शिखाएं साधारण दूरबीनों से ग्रहण के समय और बहुत भारी स्पेक्ट्रास्कोप से प्रायः हर समय देखी जा सकती हैं। सूर्य्य पर के दागों की तरह यह शिखाएं भी कुछ विशेष अवसरों पर अधिकता से दिखाई पड़ती हैं। जिस वर्ष सूर्य्य में अधिक दाग दिखाई पड़ते हैं उसी वर्ष ये शिखाएं भी बहुत अधिकता से दिखाई पड़ती हैं।

सूर्य्य का अन्तिम या तीसरा आवरण छटा-मण्डल कहलाता है। यह छटा-मण्डल भी सदा खग्रास सूर्य्य ग्रहण के समय ही बहुत अच्छी तरह दिखाई देता है। शेष समय में यह सूर्य्य के प्रकाश के सामने बिलकुल दबा रहता है। ग्रहण को छोड़ कर अन्य समय में भी सूर्य्य का वर्ण-मण्डल देखने को तो एक उपाय ज्योतिषियों ने ढूँढ़ निकाला है, पर पूर्ण सूर्य्य-ग्रहण के अतिरिक्त छटा-मण्डल और किसी समय नहीं देखा जा सकता। अँगरेज़ी में इसे (Corona) कहते हैं। सन् १८७९ वाले सूर्य्य-ग्रहण के समय इसकी लम्बाई नव्वे लाख मील नापी गई थी। वास्तव में खग्रास ग्रहण के समय सूर्य्य की शोभा बहुत ही अपूर्व और देखने योग्य होती है। उस समय उसका सारा पिण्ड तो चन्द्रमा की आड़ में छिप जाता है और कुछ दूर तक उसका रंगीन वर्ण-मण्डल और तदुपरान्त बहुत दूर तक छटा-मण्डल देखने ही योग्य होता है। इस छटा-मण्डल की सृष्टि हाइड्रोजन के अतिरिक्त अन्य अनेक ऐसी गैसों के जलने से होती है जो इस पृथ्वी पर नहीं होतीं। इसलिये उन गैसों के नाम भी नहीं दिए जा सकते।

छटा-मण्डल के सम्बन्ध में अभी तक विशेष बातें नहीं मालूम हुई हैं। इस स्थान पर उल्लेख करने योग्य केवल वही बातें हैं जो सन् १८६९ में डाक्टर गोहे ने उसके सम्बन्ध में निश्चित की थीं। उन्होंने स्थिर किया था कि सूर्य्य के अन्दर से जो कण बाहर की ओर फेंके जाते हैं वही छटा-मण्डल के रूप में दिखाई देते हैं; और इन कणों की गति प्रति सेकेण्ड लगभग २०० मील हुआ करती है।

सूर्य्य न तो बिलकुल घन पदार्थ है और न द्रव। उसे खूब तेज जलती हुई हवा का गोला कह सकते हैं। उसके मध्य भाग पर गरमी का इतना अधिक जोर पड़ता है कि वहाँ का अंश आपसे आप द्रव हो जाता है। इतनी अधिक गरमी के कारण ही सूर्य्य में किसी प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया नहीं हो सकती। वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके निश्चित किया है कि सूर्य्य में लोहा, कारबन, हाइड्रोजन, निकल, ताँबा, हेलियम और रेडियम आदि पदार्थ अधिकता से हैं।

सूर्य्य के दाग

भारतवर्ष में चन्द्रमा के कलंक के सम्बन्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक बातें प्रसिद्ध हैं। पर चन्द्रमा का यह कलंक वास्तव में दाग या धब्बा है जिसके कारण चन्द्रमा का कुछ अंश काला जान पड़ता है। सूर्य्य में भी इसी प्रकार के बहुत से दाग या धब्बे हैं। यदि किसी साधारण दूरबीन से देखा जाय तो सूर्य्य का पिण्ड कुछ पीलापन लिए सफ़ेद रंग का दिखाई पड़ेगा। पर यदि हम उसे विशेष ध्यान से देखें तो उसके दृश्य बिम्ब पर हमें स्थान स्थान पर बहुत से काले दाग या धब्बे दिखाई पड़ेंगे। साधारणतः ये दाग किसी विशेष क्रम से नहीं होते बल्कि इधर उधर छितराए हुए होते हैं और प्रायः अपना स्थान बदला करते हैं। ये दाग़ इसलिये नहीं दिखलाई पड़ते कि सूर्य्य के दृश्य बिम्ब पर कोई दूसरी चीज आ जाती है बल्कि इसका कारण यह माना जाता है कि सूर्य्य के तल में उतनी दूर तक खूब गहरे गड्ढे पड़ जाते हैं। वही गहरे गड्ढे दूर से दाग के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इन गड्ढों या दागों के चारों ओर किनारे किनारे हलके पीले रंग की एक झालर सी भी दिखाई पड़ती है। इस झालर को वे उपच्छाया (Penumbra) कहते हैं। दागों का ऊपरी और चारों ओर का अंश साधारणतः काला जान पड़ता है और उसे प्रच्छाया (umbra) कहते हैं। उसका मध्यवर्त्ती भाग—जिसमें गड्ढे की गहराई बहुत अधिक होती है और इसी लिये जो गहरा काला दिखाई पड़ता है—सूर्य्य-कलंक या दाग़ (nucleus) कहलाता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक प्रच्छाया के चारों ओर एक उपच्छाया हो; हाँ, एक ही उपच्छाया के अन्दर अनेक प्रच्छायाएँ दिखाई पड़ती हैं। सूर्य्य-पिण्ड में समय समय पर जो भीतरी परिवर्त्तन हुआ करते हैं उन्हीं के ठीक आरम्भ और अन्त में यह बिना उपच्छाया के प्रच्छाया अथवा बिना प्रच्छाया के उपच्छाया दिखाई पड़ती है। उपच्छाया का बाहरी किनारा उसके भीतरी किनारे की अपेक्षा अधिक गहरे रंग का होता है और भीतरी किनारा जिस स्थान पर प्रच्छाया से मिलता है उस स्थान पर उसका रंग हलका होता है। उपच्छाया के किनारेवाली रेखा प्रायः बहुत ही टेढ़ी मेढ़ी और बेहिसाब हुआ करती है; प्रच्छाया के किनारेवाली रेखा उतनी टेढ़ी और बेहिसाब नहीं होती; और छाया या कलंक के चारों ओर की रेखा में टेढ़ाई और भी कम, प्रायः नहीं के बराबर होती है।

सूर्य्य के ये दाग उसकी विषुवद्रेखा के दोनों ओर ३५° तक के प्रदेश में बहुत अधिकता से होते हैं। इन दागों का न तो कोई स्थायी या निश्चित स्वरूप ही होता है और न कोई स्थान ही। ये दाग बहुधा अचानक ही प्रकट हो जाते हैं और प्रायः उतनी ही शीघ्रता से अदृश्य भी हो जाते हैं; इसलिये उनके सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्धान्त या नियम नहीं बनाए जा सकते।

इन दागों की गति दो प्रकार की होती है। पहली बात तो यह है कि सूर्य्य अपने अक्ष पर घूमता है और इस कारण उसके पृष्ठ पर के दाग भी उसके साथ साथ घूमते रहते हैं। लेकिन अनेक बार परीक्षाएँ करने पर यह भी प्रमाणित हुआ है कि सूर्य्य की गति से भिन्न इनकी एक और स्वतंत्र गति भी होती है। सूर्य्य की विषुवद्रेखा के दोनों ओर ८° तक तो ये दाग़ प्रायः नहीं होते और शायद ही कभी दिखाई पड़ते हैं; पर ८° से २०° तक उत्तर या दक्षिण की ओर ये बहुत अधिकता से होते हैं। १७° से १८° तक के प्रदेश में ये दाग सब से अधिक होते हैं। उत्तरीय गोलार्द्ध के ११° से १५° तक के प्रदेश में बहुत बड़े बड़े और बहुत अधिक संख्या में दाग होते हैं। इस प्रदेश के दाग रहते भी अपेक्षाकृत अधिक समय तक हैं। छोटे छोटे दाग प्रायः झुंडों में होते हैं और वे झुंड एक कतार में और इतनी अधिकता से होते हैं कि उनके कारण सूर्य्य की विषुवद्रेखा के समानान्तर एक कल्पित रेखा सी बन जाती है। सर जान हरशल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति में एक ही प्रदेश में इन दागों के दिखाई पड़ने से यह सिद्ध होता है कि सूर्य्य-पिण्ड के उस प्रदेश में अन्य प्रदेशों की अपेक्षा कोई विलक्षणता या विशेषता है। सूर्य के अपने अक्ष पर घूमने का उन दागों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और वे स्वतन्त्र रूप से घूमते रहते हैं, जिससे उनकी स्वतन्त्रत्व गति तथा अन्य बातें जानने में बहुत सहायता मिलती है। प्रत्येक बड़े दाग के पीछे बहुत से छोटे छोटे दागों की एक बड़ी कतार हुआ करती है; और यह कतार उस बड़े दाग के केवल पूर्व ओर ही हुआ करती है, और किसी ओर नहीं।

इन दागों के दिखलाई पड़ते रहने का समय भी कुछ निश्चित नहीं है। कोई दाग तो कुछ मिनटों में ही अदृश्य हो जाते हैं और कोई कई कई महीनों तक दिखाई पड़ते रहते हैं। पर मध्यम श्रेणी के दाग साधारणतः पन्द्रह बीस दिनों तक या अधिक से अधिक एक मास तक दिखाई दिया करते हैं। सूर्य्य अपने अक्ष पर २५½ दिन में एक बार घूमता है। साधारणतः दागों को सूर्य्य के पिण्ड के साथ सम्बद्ध ही मानना पड़ता है; इसलिये कोई दाग लगातार १२¾ दिनों से अधिक समय तक नहीं दिखाई पड़ सकता, क्योंकि यही समय सूर्य्य के अपने अक्ष पर घूमने का आधा समय है।

जिस प्रकार दागों की आयु में इतना भेद है उसी प्रकार उनके आकार में भी बहुत अन्तर है। उनमें से अधिकांश ऐसे ही हैं जो केवल दूरबीन की सहायता से ही देखे जा सकते हैं। लेकिन ऐसे दागों की भी कमी नहीं है जो बिना दूरबीन के खाली आँखों से भी देखे जा सकते हैं। प्राचीन काल में लोग सूर्य्य के संगठन आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे इसी लिये दागों आदि के विषय में भी वे कुछ निश्चय नहीं कर सके थे। उन्होंने सूर्य्य के दाग देखे अवश्य थे और उनके सम्बन्ध में कुछ अनुमान भी लड़ाए थे। जिस समय सूर्य्य क्षितिज के पास रहता था उसी समय उन्हें ये दाग दिखाई पड़ते थे। प्राचीन काल में कुछ लोगों का अनुमान था कि छोटे छोटे ग्रह पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में से गुजरते हैं और उन्हीं की छाया सूर्य्य पर पड़ती है। कुछ लोग इसे केवल प्रकृति की लीला ही समझ कर संतुष्ट हो रहे थे और उसका कारण जानने का उन्होंने यत्न नहीं किया था। इस सम्बन्ध में लिखित प्रमाण केवल चीनियों के सम्बन्ध में ही मिलता है जिन्होंने सबसे पहले केवल खाली आँखों से सूर्य्य के ये दाग देखे थ। चीन में मा-त्वान्-लिन् नामक एक बड़ा ज्योतिषी हो गया है जिसने केतु तारों के सम्बन्ध में बहुत सी नई बातों का पता लगाया था। उसने ज्योतिष-सम्बन्धी बहुत सी बातें एक ग्रन्थ में खतियाई हैं। उस ग्रन्थ से पता चलता है कि सन् ३०१ से लेकर १२०५ तक—९०४ वर्षों में—लोगों ने ४५ बार सूर्य्य में दाग देखे थे। उन दागों का पारस्परिक आकार बतलाने के लिये देखनेवालों ने आकार के अनुसार उनकी उपमा अंडों, छोहारों और बेरों आदि से दी थी। कभी कभी लोगों को ये दाग दस दस दिनों तक दिखाई दिया करते थे। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में भी कुल लोगों ने ये दाग अच्छी तरह देखे थे और यथामति उन पर विचार भी किया था। दूरबीन के आविष्कार से पहले युरोप में भी कभी कभी ये दाग देखे जाते थे। एडेलमस नामक एक ईसाई संन्यासी ने १७ मार्च सन् ११०७ को सूर्य्य में एक दाग देखा था। सन् ११६१ में एवेरोस नामक एक व्यक्ति ने भी ऐसा ही एक दाग देखा था। केप्लर नामक प्रसिद्ध युरोपियन ज्योतिषी ने भी एक बार सूर्य्य में एक बड़ा दाग देखा अवश्य था; पर उस समय उसने यही समझा था कि सूर्य्य और पृथ्वी के मध्य में से बुध तारा जा रहा है और सूर्य्य पर उसी की छाया पड़ रही है। उन लोगों ने ये दाग किस प्रकार देखे थे यह निश्चित रूप से नहीं कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता। पर आजकल तो छोटा सा बालक भी जानता है कि धुएँ से काले किए हुए शीशे की सहायता से सूर्य्य-बिम्ब देखा जाता है। युरोप में, दूरबीन का आविष्कार होने से पहले, लोग चारों ओर से बन्द एक कोठरी में बैठ जाते थे और उसमें एक छोटा सा सूराख़ कर लेते थे। उसी सूराख़ से सूर्य्य की किरणें उस कोठरी में आया करती थीं जिनकी सहायता से वे सूर्य्य-सम्बन्धी गणित आदि किया करते थे। दिसंबर सन् १६१० में जे० फैब्रीशियस नामक ज्योतिषी ने इसी क्रिया से सूर्य्य में एक बहुत बड़ा दाग देखा था और उसकी गति आदि से ही उसने सूर्य्य के अपने अक्ष पर घूमने के समय का अनुमान किया था।

दूरबीन में जो शीशा पीछे की ओर आँखों के पास रहता है उसके आगे गहरे रंग का एक शीशा लगा कर उस दूरबीन की सहायता से सूर्य्य के दाग बहुत सहज में देखे जा सकते हैं। यद्यपि इस काम के लिये सभी रंगों के शीशे काम में लाए जाते हैं पर गहरे हरे रंग का शीशा सब से अच्छा होता है। यह बतलाना सहज नहीं है कि खाली आँख या रंगीन शीशे की सहायता से कितना बड़ा दाग देखा जा सकता है; पर जो दाग प्रायः एक इंच व्यास का होता है वह बहुत सरलता से दिखाई पड़ता है। बहुत बड़े दाग प्रायः कम दिखलाई पड़ते हैं। सन् १८९३, १८९४, १९०५, १९०६ और १९०७ में बहुत बड़े बड़े दाग और वे भी बहुत अधिक संख्या में दिखाई पड़े थे। कभी कभी बहुत से छोटे छोटे दाग़ भी मिल कर एक जान पड़ते हैं और इस कारण उनका आकार बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है। सूर्य्य का सब से बड़ा दाग ३० सितंबर सन् १८५८ को देखा गया था, जिसकी लंबाई १,४०,००० मील थी।

सूर्य्य के दाग देखने का सब से अच्छा उपाय यह है कि दर्शक एक ऐसी कोठरी में बैठ जाय जो चारों ओर से बन्द हो और जिसमें किसी ओर से प्रकाश न आ सकता हो। उस कोठरी में सूर्य्य के रुख के सामनेवाली दीवार में इतना बड़ा एक छेद होना चाहिए जिसमें एक दूरबीन सरलता से रखी जा सके। दूरबीन की नली से वह छेद कुछ बड़ा होना चाहिए जिसमें आवश्यकतानुसार दूरबीन ऊपर-नीचे या दाहने-बाएँ हटाई बढ़ाई जा सके। अब उस दूरबीन को सूर्य्य के ठीक सामने करो और कोठरी में पीछे की ओर जहाँ उसकी परछाईं पड़ती हो सफेद कागज का एक बड़ा तख्ता लटका दो। अब उस दूरबीन के चक्षु-लेंस (Eye-piece) को प्रधान लेंस (Object-glass) से इतनी दूरी पर खसका कर लाओ जिसमें सूर्य्य का एक अच्छा प्रतिबिंब कागज के उस तख्ते पर पड़ सके। यदि उस समय सूर्य्य में दाग़ होंगे तो उस काग़ज़ पर वे स्पष्ट दिखाई पड़ेंगे। लेकिन दूरबीन से देखने पर सूर्य्य का जैसा दृश्य दिखाई पड़ता है, इस प्रकार छाया डालने से काग़ज़ पर उसका प्रतिबिंब बिलकुल उलटा पड़ेगा। हाँ यदि उस दूरबीन में ज्योतिषिक चक्षु-लेंस—जिसमें उलटा प्रतिबिंब डालने की शक्ति होती है—लगा होगा तो प्रतिबिंब ठीक ठीक पड़ेगा। अर्थात् कागज पर पड़नेवाले प्रतिबिंब की उत्तर-दक्षिण आदि दिशाएँ सूर्य्य-बिंब की उत्तर-दक्षिण आदि दिशाओं के अनुसार ही होंगी। उस समय यदि सूर्य्य में दाग होंगे तो वे सूर्य्य-बिंब में पूर्व की ओर से प्रविष्ट होते और पश्चिम की ओर जाते हुए दिखाई देंगे। पर यदि दूरबीन सादी होगी और उसमें ज्योतिषिक लेंस न होगा तो दृश्य बिलकुल उलटा दिखाई देगा। अर्थात् सूर्य्य में दाग जिधर से आते हैं, छाया में वे उधर जाते हुए दिखाई देंगे और सूर्य्य में वे जिस ओर वास्तव में जाते होंगे, छाया में वे उधर से आते हुए दिखाई देंगे।

दागों की गति।

अच्छा, अब दागों की गति के नियमों आदि को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीजिए। सभी दाग सदा सूर्य्य के पूर्वी भाग से निकलते और पश्चिम की ओर बढ़ते हैं। सूर्य्य के क्रान्तिवृत्त से धरातल को देखते हुए सूर्य्य के बिंब पर इन दागों के चलने से एक तिरछी रेखा बन जाती है। यदि बीच में ही कहीं दाग नष्ट न हो जाय तो वह बराबर तेरह दिनों तक दिखाई पड़ता रहता है, क्योंकि सूर्य्य अपने अक्ष पर २५ दिनों में घूमता है। तेरह दिनों बाद वह दाग सूर्य्य में दूसरी ओर चला जाता है और बारह तेरह दिनों तक हम उसे नहीं देख सकते। यदि इस बीच में वह नष्ट न हो जाय तो इतने समय के उपरान्त वह फिर पूर्व दिशा में हमें दिखाई पड़ता है और दूसरा चक्कर लगता है। इसी प्रकार वह एक तीसरा चक्कर भी लगा सकता है और कभी कभी चौथा चक्कर तक भी लगाता है। पर बहुधा या तो वह पहली बार दिखलाई पड़ने पर ही नष्ट अथवा विकृत हो जाता है और या जब वह सूर्य्य की दूसरी ओर जाता है तब नष्ट हो जाता है या कम से कम उसका रूप परिवर्त्तित हो जाता है।

जब कई दाग एक साथ ऊपर नीचे समानान्तर पर उत्पन्न होते हैं तो उनका मार्ग भी बराबर एक दूसरे के समानान्तर पर ही होता है और उनकी गति भी समान ही होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि दाग उपग्रह नहीं हैं और न वे सूर्य्य से स्वतंत्र कोई अलग पिंड हैं; बल्कि वे सूर्य्य के पृष्ठ से सम्बद्ध हैं और उसके घूमने का उन पर प्रभाव पड़ता है। ज्योतिषियों ने लगातार कई दिनों तक बहुत से दागों की गति और स्थान आदि का हिसाब निकाल कर निश्चित किया है कि सूर्य्य के मध्य भाग में तो उनकी गति बहुत तेज होती है पर ऊपर या नीचे की ओर वह कुछ कम हो जाती है। लेकिन यह अन्तर केवल देखने भर का है, वास्तविक नहीं। क्योंकि देखने में तो हमें ऐसा जान पड़ता है कि वे दाग किसी धरातल पर चल रहे हैं; पर वास्तव में वे एक ऐसे वृत्त पर घूमते हैं जो सूर्य्य के नाड़ी-मण्डल से समानान्तर पर होता है। मध्य में तो दाग गोल जान पड़ते हैं पर जब वे सूर्य्य के पश्चिमी भाग में पहुँचते हैं तो वे लम्बाकृति हो जाते हैं और यहाँ तक कि और आगे बढ़ कर वे केवल एक लंबी रेखा का रूप धारण कर लेते हैं। उनके दृश्य आकार में यह परिवर्त्तन केवल दूरी बढ़ने के कारण ही होता है। तो भी यही सिद्ध होता है कि वे दाग सूर्य्य के पृष्ठ से ही सम्बद्ध हैं।

इस दृश्य परिवर्त्तन के अतिरिक्त स्वयं उन दागों के आकार में भी प्रायः अनेक परिवर्त्तन हो जाया करते हैं। ये परिवर्त्तन होते भी बहुत जल्दी हैं। एक ही दिन में और कभी कभी कुछ ही घन्टों में इनके आकार और स्वरूप आदि में बहुत बड़ा परिवर्त्तन देखा गया है। थोड़ी ही देर पहले अलग अलग दिखलाई पड़नेवाले कई छोटे छोटे दाग मिलकर एक बड़ा दाग बन जाते हैं। इन्हीं सब कारणों से प्राचीन काल के ज्योतिषियों को सूर्य्य का परिभ्रमण काल निश्चित करने में बहुत कठिनता हुआ करती थी।

दागों की दृश्य गति में ऋतु के अनुसार भी बहुत कुछ परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है। चैत्र में उनका मार्ग बहुत लंबा दीर्घ वृत्त होता है। उस वृत्त का लंबा पक्ष क्रान्ति वृत्त के समानान्तर ही होता है और उसका विरुद्ध पक्ष उत्तर की ओर होता है। आगे चल कर यह दीर्घ वृत्त बराबर छोटा होता जाता है और यहाँ तक कि असाढ़ में उसका मार्ग बराबर सीधी रेखा का सा हो जाता है। असाढ़ के बाद उसका दीर्घ वृत्त आकार फिर प्रकट होने लगता है और कुआर तक फिर चैत्र के वृत्त का सा हो जाता है। इस बार अन्तर केवल इतना ही होता है कि उसके दूसरे पक्ष का झुकाव दक्षिण की ओर होता है। कुआर के उपरान्त उसका रूप फिर बदलने लगता है और वह सीधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा का रूप धारण करलेता है। लेकिन इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उसके मार्ग के रूप में कोई वास्तविक परिवर्त्तन नहीं होता बल्कि वे सदा ऐसे ही वृत्त पर घूमते रहते हैं जो सूर्य्य के नाभी-मण्डल से समानान्तर होते हैं। उनके मार्ग के रूप का परिवर्त्तन केवल दूरी के कारण और देखने भर का है। भिन्न भिन्न ऋतुओं में, सूर्य्य की परिक्रमा करते समय, हमारी पृथ्वी की स्थिति में जितना अन्तर पड़ता है उतनाही हमें दागों के मार्ग के रूप में परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है।

सूर्य्य के दागों की संख्या के विषय में भी कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। कभी कभी तो उनकी संख्या इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उनकी बहुलतावाला प्रदेश सहज में ही पहचाना जा सकता है और कभी ऐसा होता है कि कई कई हफ़े बीत जाते हैं और एक दाग के भी दर्शन नहीं होते। पर आजकल के ज्योतिषियों ने हिसाब लगा के इस बात का बहुत कुछ पता लगा लिया है कि किन अवसरों पर इनकी अधिकता होती है और कब इनका अभाव रहता है।

इस अवसर पर संक्षेप में यह बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि सूर्य्य के इन दागों को अब तक लोग क्या क्या समझते आए हैं। १७ वीं शताब्दी के आरम्भ में जब कि युरोप में दूरबीन का पहले पहल आविष्कार हुआ था, इन दाग़ों के सम्बन्ध में लोगों के दो प्रकार के विश्वास थे। कुछ लोग तो समझते थे कि ये दाग सूर्य्य की परिक्रमा करनेवाले आकारहीन उपग्रह हैं। और कुछ लोग उन्हें सूर्य्य के वातावरण में चारों ओर घूमनेवाले मेघ या धूएँ मानते थे। पर ज्यों ज्यों नई बातें मालूम होती गईं त्यों त्यों लोग इन विचारों को छोड़ते गए। जब लोगों ने बराबर एक शताब्दी तक उन दागों को दूरबीन की सहायता से देखा तो पुराने मत निर्मूल सिद्ध हुए। अन्त में विलसन नामक एक स्काच ने सूर्य्य और उसके दागों के सम्बन्ध में एक नया और महत्त्व का सिद्धान्त निकाला। उसने यह बात सप्रमाण सिद्ध कर दी कि वे सूर्य्य के अन्तर्गत अवकाश या शून्य स्थान हैं। सूर्य्य के जिस आवरण को हम लोग आलोक-मण्डल कहते हैं उसके सम्बन्ध में उसी ने पहलेपहल यह बतलाया था कि यह बहुत ही प्रकाशमान् मेघों का आवरण है। २७ नवम्बर सन् १६२९ को उसने सूर्य्य में एक बढ़िया गोल दाग देखा था जिसके ठीक चारों ओर बिलकुल गोल उपच्छाया थी। उसने उस दाग को उस समय तक देखा था जब तक कि वह न नष्ट हो गया। उस समय उसे मालूम हुआ था कि ज्यों ज्यों वह दाग आगे बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसकी उपच्छाया का वह भाग जो सूर्य्य के केन्द्र की तरफ था, छोटा होता जाता है। अन्त में वह भाग बिलकुल अदृश्य हो गया था पर उसका विपरीत भाग, आकार और चमक आदि में बिलकुल ज्यों का त्यों था। दाग के रूपों का इस प्रकार का परिवर्त्तन विल्सन के बाद और भी कई बार देखा गया था। उस दाग के पहले पहल प्रकट होने के समय से विल्सन उसे बराबर देखता रहा था। सूर्य्य के दूसरे पार्श्व में चले जाने के कारण कई दिनों बाद वह दाग अदृश्य हो गया पर सौभाग्यवश प्रायः चौदह दिनों के उपरान्त सूर्य्य के पश्चिमी भाग में वह उसे फिर दिखाई दिया। अस्त होते समय उसके जो जो रूप दिखाई पड़े थे, उदय होने के समय ठीक उलटे क्रम से उसके वही वही रूप दिखाई पड़े। इसलिये विल्सन ने निश्चय कर लिया कि वास्तव में दाग के स्वरूप या आकार आदि में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ, जो कुछ परिवर्त्तन दिखाई पड़ता था वह केवल दूरी आदि के कारण ही था। इसी लिये उसने यह भी कहा था कि ये दाग़ सूर्य्य में के अवकाश या विवर हैं। उसने हिसाब लगा कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी जान लिया था कि किसी किसी अवकाश की गहराई पृथ्वी के व्यासार्ध की एक तिहाई तक होती है। बहुत से लोगें ने विल्सन के इस सिद्धान्त का थोड़ा बहुत खण्डन किया था। प्रसिद्ध ज्योतिषी सर जान हरशल ने उसके सिद्धान्त पर बहुत अच्छी तरह विचार किया था और तदुपरान्त उसमें कुछ परिवर्त्तन और सुधार किया था। वही सुधरा हुआ और संस्कृत सिद्धान्त आज तक माना जाता है। हरशल बहुत बड़ा बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली मनुष्य था। उसने वेध के काम के लिये कई अच्छे अच्छे यंत्र बनाए थे और सब बातें पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार किया था। उसने पहले के कई भ्रमपूर्ण विचारों का खण्डन भी किया था। उसका कहना था कि यदि ये दाग केवल अवकाश हैं तो सूर्य्य का प्रकाशमान् तत्त्व न तो द्रव ही है और न वाष्प ही; क्योंकि यदि वह द्रव या बाष्प होता तो उस अवकाश को भरने के लिये वह स्वयं ही बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ता। और वह अवकाश बहुत ही थोड़े समय में भर जाता। पर वास्तव में यह बात नहीं थी। एक दाग सूर्य्य के कई कई परिभ्रमण में बराबर दिखाई पड़ता था। इसके अतिरिक्त दागों की विशिष्ट गति से यह भी प्रमाणित होता था कि आलोक-मण्डल घन पदार्थ नहीं है। इसी लिये उसने निश्चित किया था कि वह कुहरे या बादल का सा पदार्थ है और हमारी पृथ्वी की तरह के वातावरण में स्थित है।

(शेष आगे।)

—:o:—

स्यामी।

[लेखक—श्रीयुक्त कृष्णानन्द जी, काशी।]



स्याम देश के विषय में लोग बहुत ही कम बातें जानते हैं क्योंकि वहाँ के रहनेवाले अन्य देशवालों को अपने यहाँ आने नहीं देते। केवल एक स्थान ऐसा है जहाँ युरोपियनों को रहने की आज्ञा है। स्याम में अनेक जातियाँ बसती हैं जिनमें से एक जाति लाऊ भी है जिसकी संख्या थोड़ी है। इस जाति के लोग कम्बोजिया की तराई में बसते हैं। एक और जाति शान है जो उत्तरीय और पूर्वीय बरमा में बसती है। मैान या वगवान, कछ, करन और दूसरी पहाड़ी जातियों के अतिरिक्त वहाँ बहुत से चीनी भी बसते हैं जिन्होंने देश के व्यवसाय का एक बड़ा भाग अपने हाथ में ले लिया है। वे सदैव भ्रमण करते रहते हैं और स्यामी स्त्रियों से विवाह कर लेते हैं। जिस समय वे लोग चीन को वापस जाते हैं उस समय उनकी स्यामी स्त्रियाँ और बच्चे वहीं रह जाते हैं। स्यामी भी बैाद्ध हैं पर उनके मन्दिर चीनियों के मन्दिरों से भिन्न हैं। प्राचीन काल में स्याम कम्बोजिया का एक भाग था। इतिहास में लिखा है कि स्यामी राजाओं के चार वंश थे जो सन् १३५० ई० तक अधिकारारूढ़ रहे। पहले इस राज्य का केन्द्रस्थान अयूथिया था जो स्याम की वर्तमान राजधानी बैंकाक से कुछ उत्तर मीनाम नदी के किनारे पर था। सोलहवीं शताब्दी में पेगू के बर्म्मी राजाओं ने अयूथिया को हस्तगत किया था किन्तु उनका अधिकार बहुत समय तक उन पर न रहा। राजा नराई के समय में (१६५७—१६८३) बहुत से युरोपियन सैादागर व्यवसाय के लिये देश में आबाद हो गए। उनमें फालकन नामक एक प्रसिद्ध यात्री भी था जो व्यवसाय के लिये स्याम गया था। किन्तु राजा ने उसके गुणों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुग्ध हो कर उसे अपने यहाँ रख लिया था। उसने वहाँ बहुत सी युरोपियन चीज़ों (जैसे दूरबीन आदि) का प्रचार किया था। उसने राजा के लिये किले बनवाए और राजधानी के लिये वह स्थान पसन्द किया जहाँ इस समय बैंकाक बसा है। उसने राजा को अनुमति दे कर एक पुराने शहर की मरम्मत कराई और युरोपियन ढाँचे की एक आलीशान इमारत बनवाई। उसकी नई कारीगरी की दूर दूर तक धूम मच गई। कुछ लोग उसके शत्रु हो गए और उस पर अनेक दोष भी लगाए गए। अंत में वह एक विद्रोही राजकुमार की आज्ञा से मार डाला गया। फाल्कन की इमारत के खँडहर अब तक बचे हुए हैं।

बर्म्मियों ने स्यामियों पर विगत शताब्दी के मध्य में पुनः चढ़ाई की और अयूथिया को सन् १७६७ में ले कर जला दिया था।

जब बरमियों को स्याम में अपने अधिकार की स्थिति में कठिनाई मालूम हुई तो उन्होंने कुछ समय तक लूट मार से ही अपना काम चलाया। उनका अधिकार यहाँ तक बढ़ा कि एक साधारण चीनी फायकाट के नाम से बैंकाक का राजा बन बैठा। वर्त्तमान वंश एक नामी जनरल की सन्तान है जो फायकाट का नौकर था। भूतपूर्व राजा मनकूट (सन् १८५१—१८६१) बुद्धिमान् था और अँगरेज़ी भली भाँति लिख पढ़ सकता था। वर्त्तमान राजा चलालन कोर्न अपने पिता के समान बुद्धिमान् है। उसके महल में युरोपियन चाल की कारीगरी के कई नमूने हैं किन्तु उसकी छत स्यामी ढँग की है। उसके पुस्तकालय में इंगलैंड और अमेरिका की किताबें और समाचारपत्र रहते हैं। वह सारे राज्य का प्रबन्ध स्वयं करता है। सिंहासन पर बैठते ही उसकी पहली अनुमति यह हुई कि पुरानी प्रथा उठा दी जाय जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य राजा के पास अधीनता से सिर झुकाए हुए उपस्थित होता था। इस समय सारी प्रजा को राजा के पास जा कर अपना निवेदन करने का अवसर मिलता है और वह विना संकोच खड़ा रहता है। अपने राज्य में उसने गुलामी की प्रथा उठा दी। इस आज्ञा का संचार क्रमशः हुआ था। परन्तु यह अवस्था उत्तरी स्याम की नहीं है। वहाँ ऋण सम्बन्धी गुलाम विशेष हैं, अर्थात् ऐसे गुलाम जिनको ऋण चुका देने के समय तक काम करना पड़ता है। कार्लबाक ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि राजा अपनी प्रजा से सभ्यता में एक शताब्दी आगे बढ़ा हुआ है। वह विद्या और कला की हर प्रकार से उन्नति करता है। निज व्यय से उसने बहुत से नवयुवकों को फ्रान्स, इंगलैंड और अमेरिका विद्या सीखने के लिये भेजा है जिसमें वे पश्चिमीय सभ्यता सीख और समझ कर विद्वान् हो जायँ। उसका एक खास युरोपियन डाक्टर है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विभाग में वह युरोपियनों को ही नौकर रखता है। स्यामी या टाई रंग रूप में चीनी और मलाया जाति के मध्य में हैं। वहाँ के धनी और उच्च श्रेणी के लोग गोरे रंग के हैं; उनके बाल और आँखें काली होती हैं किन्तु आँखें कुछ छोटी और धुँधुली दिखाई पड़ती हैं। नाक छोटी और दाँत काले रंगे हुए होते हैं। विशेष पान खाने से उनके होठ लाल बने रहते हैं। बच्चे अधिक सुन्दर जान पड़ते हैं। बैंकाक के बहुतेरे निवासी सारे सर में बाल रखते हैं। पुरुषों और स्त्रियों के बाल प्रायः बराबर होते हैं। परन्तु एक प्रान्त के लोग सारा सर मुँड़ा देते हैं और एक ज़रा सी चोटी चँदिया पर रख लेते हैं, किन्तु स्त्रियाँ सर नहीं मुँड़ातीं, बल्कि छोटे छोटे बाल रखती हैं। वह भौं और आँखों की पलकों में सुरमा लगाती हैं। लाऊ लोग स्यामियों से गोरे और सुन्दर होते हैं। उनका ललाट ऊँचा और नाक सुडौल होती है। युवा स्त्रियों के चेहरे गोल और मोटे होते हैं और होंठ कुछ आगे को लटके हुए होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुतेरी लाऊ स्त्रियाँ अपनी कलाई को इस भाँति झुका सकती हैं कि उनकी हथेली का पिछला भाग बाँह से जा मिलता है। इसका अभ्यास बचपन ही से कराया जाता है और उसके लिये कुछ बल की भी आवश्यकता होती है। स्यामियों में यह विशेषता है कि स्त्री पुरुष के पहनावे में कम अन्तर होता है। स्कीमो जाति में भी यही बात है। उनका खास पहनावा ऐसा ही होता है कि उसमें एक लम्बा कपड़ा सूती या रेशमी कमर से लपेट कर दोनों पैरों के बीच से निकाला जाता है। इसका एक सिरा आगे बाँधा जाता है और दूसरा पीछे और इस भाँति उसकी पाजामे की सूरत हो जाती है। शरीर का शेष भाग एक लम्बे ओढ़ने से ढाँका जाता है जो छाती और कमर पर घुमाकर विचित्र ढँग से फिर सामने लाया जाता है। बहुतेरे सभ्य लोग खूब चुस्त सफेद रंग का जाकेट पहनते हैं। सफेद मोजा और जूता भी पहनावे का एक अंश है। स्यामी स्त्रियों को जेवर का बड़ा चाव होता है। कान में बालियाँ पहनने की तो चाल नहीं है पर छल्ले और सोने की सिकड़ी विशेषतः पहनी जाती हैं। बच्चों की दशा यह है कि वे कपड़ा नहीं पहनते किन्तु हाथ में कड़े अवश्य रखते हैं। पश्चिमी लाऊ बहुधा थोड़े कपड़े पर संतोष रखते हैं। उनके अधिकांश शरीर में नीले गोदने होते हैं। कमर से ले कर घुटनों तक कोई जगह खाली नहीं होती और गोदनों से ही कई प्रकार के पशु पक्षियों की चित्रकारी बनी रहती है जिसमें मोर, कबूतर, शेर, चीते, हाथी और वह भूत और जानवर आदि होते हैं जिनका जिक्र कहानियों में रहता है। बीचवाली खाली जगह लहरदार लकीर से भर दी जाती है। नीले गोदने का मसाला इस भाँति तैयार किया जाता है कि चरबी जलाकर उसकी स्याही निकाल कर उसमें एक प्रकार की पत्ती का रस मिला लेते हैं और फिर सूई से शरीर में लगाते हैं। यह कार्य्य बहुत भयानक होता है। लाऊ जाति के स्त्री पुरुषों के कान छिदे होते हैं और सूराख को बहुत बढ़ा दिया जाता है, क्योंकि उनमें लकड़ी, हाथीदाँत या धातु की कई कीलें महीन मोटी ठूंसी जाती हैं। पुरुष कानों में ताजे फूल पहनते हैं। या इस सूराख से एक और लाभ उठाते हैं; सिगार, तमाकू का पत्ता या कोई और चीटी चीज उसके भीतर रख लेते हैं। तमाकू की चाल पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों सब में अधिक है। स्त्रियों के कान का जेवर सोने की प्याली की तरह का लौंग होता है। गरीब लोग सोने का पतला पत्तर बनवा कर उसके भीतर सीसा भरवा लेते हैं। स्याम के विशेष भाग और उसके अधीन राज्यों में कुल काम काज की मालिक स्त्रियाँ होती हैं। यहाँ तक कि खेती-बारी बिलकुल उनके हाथ में है। पुरुष बहुधा शिकार और हँसी दिल्लगी के शौकीन होते हैं। स्यामी प्रायः आज्ञाकारी, प्रसन्नचित्त, डरपोक और बेपरवाह होते हैं। उनको क्रोध कभी नहीं आता। किन्तु यह अवस्था उत्तरी स्यामियों की नहीं है, जो नीच, स्वार्थी और झूठे होते हैं और अन्य देशवालों से घृणा करने के अतिरिक्त उन्हें बेईमान समझते हैं।

स्यामियों में विशेषता यह है कि पुरुषों और स्त्रियों का स्वभाव प्रायः एक सा होता है। उनके चेहरे से कभी कोई बात नहीं विदित होती। वह कभी हँसते या रोते नहीं। किन्तु जब किसी बात पर विगड़ जाते हैं तो वह क्रोध और कठोरता दिखाते हैं। कठोरता का चिह्न उनके चेहरे से नहीं जान पड़ता।

स्यामियों के मकान और सामान बहुत कम दाम के होते हैं। मकान बाँसों के बने हुए होते हैं। ऊँचाई कई फुट ज़मीन से ऊपर होती है क्योंकि वहाँ बाढ़ आने का अधिक भय रहता है।

लाऊ जाति का साधारण गृहस्थ भी अपने मकान को बहुत सुसज्जित और सुन्दर समझता है। उसके घर में केवल बाँस की बनी हुई कई चटाइयाँ और गद्दियाँ फर्श पर बिछाने के लिये मौजूद होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं; जब उनकी आवश्यकता नहीं होती तो उनको लपेट कर कोने में रख दिया जाता है। सब से उत्तम चटाइयाँ वह होती हैं जिनका किनारा लाल होता है; और गद्दियाँ या तो चौखूँटी या तिकोनी होती हैं। उनके सिरे पर रेशमी या सोनहरा काम बना रहता है। जब कोई परिचित आता है तो फर्श पर चटाई बिछा दी जाती है और तकिया लगाने के लिए गद्दी पीठ की ओर रखदी जाती है। जिस योग्यता का परिचित होता है उसके लिये वैसी ही गद्दी और चटाई का उपयोग किया जाता है। धनवानों के यहाँ बहुधा एक मेज और कई कुरसियाँ होती हैं। परन्तु कुरसियाँ उस समय काम में लाई जाती हैं जब कोई प्रतिष्ठित अपरिचित मिलने को आता है या जब वह कुछ कष्ट से बैठा हुआ दिखाई देता है, जैसे किसी जगह टाँगें आड़ी किए हो। चारपाई कहीं नहीं होती। सब लोग हाथ से बनाई हुई चटाई पर सोते हैं जिसमें रूई भरी रहती है और मच्छड़ों से बचने के लिये चारों ओर परदा लगा हुआ रहता है। घर में बर्तन बहुत ही थोड़े होते हैं, कई बरतन मिट्टी के और कुछ कड़ाहियाँ जिनके चमचे लकड़ी के होते हैं, रहते हैं। अमीरों के मकानों में लैम्प, घड़ी, आइने आदि भी होते हैं। ग़रीब लोग मिट्टी के चिराग में तेल भर कर और रूई की बत्ती बनाकर जलाते हैं। बच्चों का पालना एक टोकरा होता है जिसमें रस्सियाँ बाँध कर छत से लटका देते हैं। विवाह के अवसर पर स्यामी और लाऊ एक मध्यस्थ खड़ा करते हैं जिसके द्वारा सब बातचीत होती रहती है। अवस्था और दूसरी बातों के मिलान के लिये ज्योतिषियों से अनुमति ली जाती है।

जहेज दोनों ओर से बराबर दिया जाता है और उसके साथ बहुत सी सौगात आदि की चीजें भी होती हैं जो दुलहिन की बरात के साथ ले जाते हैं। पुरोहित बौद्ध मत की पुस्तक का कुछ पाठ पढ़ते हैं और वर-कन्या का कल्याण मनाते हैं। इस के बाद वह परदा जिसके भीतर वधू रहती है उठा दिया जाता है और उसको परदे के साथ एक स्थान पर बैठा कर पवित्र जल छिड़का जाता है। कुछ और आशीर्वाद देने के अनन्तर दो दिन तक भोज आदि का उत्सव रहता है। जब विवाह की रीतियाँ पूरी हो जाती हैं तब वर और वधू को वर के बाप के गृह में तब तक निवास करना पड़ता है जब तक कि सन्तान उत्पन्न न हो। स्यामी लोग एक ही विवाह करते हैं परन्तु उच्चश्रेणी के लोग उतनी स्त्रियाँ या दाइयाँ रख लेते हैं जितनी रखने की उनमें सामर्थ्य होती है। विवाहिता स्त्री का मान अधिक होता है। स्त्रियाँ प्रायः कम पढ़ी हुई होती हैं; परन्तु पुरुषों की शिक्षा स्त्रियों से उत्तम होती है। वहाँ की शिक्षा की दशा यह है कि थोड़ा सा लिखना पढ़ना और बौद्ध मत के सिद्धान्तों का जान लेना ही यथेष्ट समझा जाता है।

लाऊ लोग बच्चों को भूतों की सन्तान समझते हैं और बच्चा उत्पन्न होने पर उसको कोठे के सब से ऊपरवाली सीढ़ी पर लिटा देते हैं और भूतों को पुकार कर कह दिया जाता है कि यदि तुम उसको ले जाना चाहो तो उसी समय ले जाओ, नहीं तो पीछे दुःख न देना। भूतों को अनेक प्रकार की वस्तुएँ चढ़ाई जाती हैं। दूसरे दिन यह समझा जाता है कि उनका अधिकार बच्चे पर नहीं है और नाम मात्र मूल्य पर उसको किसी सम्बन्धी के हाथ बेच दिया जाता है। इनके विचार में जो वस्तु बेच दी जाती है उसको भूत नहीं ले जा सकते। परन्तु माताओं को बहुधा बहुत कष्ट पहुँचाया जाता है। उसके चारों ओर बाँस और वृक्ष की डालियाँ खड़ी कर के उनमें आग लगा दी जाती है मानों उस स्त्री को वे भूनना चाहते हैं। यह कार्य उसकी आरोग्यता के विचार से किया जाता है परन्तु इसमें कभी कभी उसकी जान भी जाती रहती है। यह कार्य्य कई दिनों तक जारी रहता है। स्यामियों में प्रायः एक मास पर्य्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। पहला बच्चा उत्पन्न होने पर जो स्त्री इस विपत्ति से बच जाय उसे बड़ी भाग्यवती समझना चाहिए। बच्चों को तीन साल तक दूध पिलाया जाता है।

मन्दिर और हाथी दोनों की यहाँ बहुत अधिकता है। मन्दिरों की अधिकता वास्तव में बौद्ध मत की उन्नति के कारण है। प्रधान मन्दिर वारपू में जो बैंकाक में बना हुआ है, महात्मा बुद्ध की एक विशाल मूर्त्ति है जिसकी लंबाई १६० फुट है। वह ईंटों से बनी हुई है और उसमें रंग मसाला भरा हुआ है। मूर्त्ति के पाँव के तलुओं में सीपी जमा दी गई है। उसका फ़र्श चौखूँटा संगमरमर का है। एक दूसरा बहुत बड़ा मन्दिर वाटचांग अर्थात् हाथियों का मन्दिर है जिसका मीनार बड़ा ऊँचा है। उसके बाहर की चित्रकारी दूर से बहुत भली जान पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें बहुत से जवाहिरात जड़े हुए हैं। परन्तु वास्तव में टूटे हुए बिल्लौर और संख के टुकड़े ही जड़े हैं। इस मन्दिर के चारों मीनारों पर तीन मस्तकवाले हाथी की मूर्त्ति बहुत स्पष्ट बनी हुई है।

मृतक साधारण रीति से जलाए जाते हैं। जब तक शव मन्दिर में नहीं पहुँच जाता तब तक पुजारी लोग दिन रात जप करते रहते हैं। धनी वा प्रतिष्ठित मनुष्य की अन्तिम क्रिया करने में कई कारणों से विलम्ब हो जाता है। धनी और प्रतिष्ठित की लाश महीनों रखी रहती है। उस समय तक निरन्तर जप होता रहता है। शव को फूलों से ढक दिया जाता है। चील कौओं के खाने के लिये लाश को खुले मैदान में रख देने की भी प्रथा प्रचलित है। लाश महीनों तक रखने से हैजा भी फैल जाता है। प्रजा को इतनी शिक्षा ही नहीं दी जाती कि वह इन दोषों से बच सके। पुजारी लोग रोग का कारण भूतों का फेर बतलाते हैं और इसी मिथ्या विश्वास के कारण चिकित्सा, शुद्धता और पवित्रता का प्रबन्ध नहीं होने देते।

स्याम देश में नर-हाथी बहुत अधिक होते हैं; इतने अधिक कि मादः हथिनी पर सवार होना नीच कर्म समझा जाता है। सफेद हाथी प्रतिष्ठा का चिह्न है। जितना ही हाथी का रंग साफ़ होता है उतना ही उसका दाम भी बढ़ जाता है और राजा का अधिकार उस पर विशेषतः हो जाता है। बहुत से हाथी जो सफेद माने जाते हैं उनका रंग साधारण हाथियों से कुछ खिला हुआ होता है या उनके शरीर और कान पर बहुत दिनों तक स्याही नहीं होती। जिस समय अधिक सुन्दर हाथी पकड़ा जाता है उस समय खूब आनन्द मनाया जाता है और भारी भोज की व्यवस्था की जाती है। इस भोज में राजा भी सम्मिलित रहता है।

इस समय जो बिलकुल सफेद हाथी कहलाता है उसका रंग लालिमा लिये पीला होता है और उसकी कमर पर थोड़े से सफेद बाल होते हैं। सफेद हाथी के मिल जाने पर उसके प्रदर्शन का उत्तम अवसर प्राप्त हो जाता है और उसका जुलूस निकाला जाता है। पीतल के डफ, स्यामी ढोल, मँजीरे, शंख और तोप आदि के साथ राजकुमार और धनिक उस जुलूस के साथ होते हैं। एक यात्री लिखता है कि कोई स्यामी इस जुलूस में सम्मिलित होने के लिये अपने घर से नहीं निकलता जब तक उसके साथ दो चार या दस बारह नौकर न हों। यह संख्या उसकी प्रतिष्ठा के अनुसार होती है। अपने स्वामी की प्रतिष्ठा और योग्यता के अनुसार वे केवल उसका छाता या आसा ही नहीं ले जाते किन्तु उसका पानदान और चाय के बरतन भी ले जाते हैं। उनके पास स्वामी की मुहर भी होती है क्योंकि स्यामी लोग मुहर से प्रतिष्ठित कोई दूसरी वस्तु नहीं समझते। मुहर बहुधा हाथीदाँत की होती है जिस पर देवता या कमल के फूल बने होते हैं। पिघली हुई लाह पर इन मुहरों का चिह्न नहीं उठाया जाता, बल्कि एक प्रकार का लाल रंग उनके भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो भरा रहता है। जहाँ कहीं मालिक सड़क पर ठहर जाता है उसके साथी नौकर जो पानदान छाता आदि लिए रहते हैं कुछ दूरी पर जमीन के ऊपर घुटनों के बल बैठ जाते हैं और जब वह अपने घर पहुँच जाता है तो वे नौकर बाहर जमीन पर या बरामदे के भीतर या सीढ़ियों पर रुक जाते हैं। बहुधा वे इतने समीप रहते हैं कि अपने स्वामी की बात भली भाँति सुन सकते हैं।

स्याम देश के निवासियों का मुख्य कार्य्य कृषि है। अधिकतर जेवर, जिनका प्रयोग स्यामी लोग करते हैं, चीनियों के बनाए हुए होते हैं। वे संगतराशी भली भाँति जानते हैं। पत्थर पर बुद्धदेव, हाथी और अन्य पशुओं के चित्र बड़ी ही उत्तमता से ज्यों के त्यों बनाते हैं। बहुतेरे स्यामी सीप के ऊपर फूल और बेल बूटे बनाते हैं और उसके भीतर बड़ी युक्ति से मसाला भरते हैं। वे बाँस से भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाते हैं और इस कार्य्य को बहुत से मनुष्य करते हैं। कृषि द्वारा चावल और तमाखू के अतिरिक्त वहाँ की उपज में कई प्रकार की लकड़ी, चीनी, काली मिर्च, गरम मसाला, सुगंधित वस्तुएँ, रूई, राल, गोंद और शहद हैं। मोम के सुन्दर फूल, चित्र और घरों के ठीक ठीक नमूने बनाए जाते हैं। स्याम में खनिज पदार्थ अधिक उत्पन्न होते हैं; सोना, ताँबा, टीन, लोहा, सीसा आदि तथा जवाहिरात की भी वहाँ कमी नहीं है। देश में एक बहुत बड़ा कार्य्यालय बुद्धदेव की मूर्त्तियाँ बनाने का है जिनकी माँग सदैव रहती है। उसमें खरीदनेवालों की भावना के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्त्तियाँ बनाई जाती हैं।

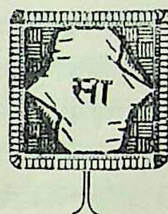
स्यामी और चीनी दोनों भाषाएँ प्रायः एक सी हैं। उस भाषा में धातु नहीं है। संस्कृत के बहुतेरे शब्द बिगड़ कर इस भाषा में मिल गए हैं। उसमें एकवचन, द्विवचन आदि तथा कर्त्ता और कर्म्म का बोध बड़ी कठिनता से होता है। खाली शब्दों की अपेक्षा गठित वाक्यों से अर्थ समझने में अधिक सहायता मिलती है। इस भाषा में साहित्य बहुत कम है। कई गद्य धर्म्म-ग्रन्थ, कुछ इतिहास और दो चार क़ानून की पुस्तकें ही साहित्य में गिनी जाती हैं।

हास्य-रस।

हास्य रस का व्यावहारिक उपयोग।

(क्रमागत)

(पृष्ठ १८९ से आगे।)



हित्य की दृष्टि से लेख और भाषण में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ सकता। हास्य-रस के लेख लिखनेवालों की अपेक्षा हास्य-रस के भाषण करनेवालों की संख्या प्रायः दस गुनी होगी। इसका कारण यह है कि लिखने की अपेक्षा बोलने के अवसर बहुत अधिक होते हैं। ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे जिनकी साधारण बातचीत में हास्य-रस का बहुत कुछ समावेश हो, पर जिन्होंने हास्य-रसात्मक एक पंक्ति भी न लिखी हो। इस बात में ज़रा भी विवाद नहीं हो सकता कि हास्य-रसात्मक बातें करना सभी देशों और सभी कालों में मन की संस्कृति का एक लक्षण माना जाता है। चाहे छोटे छोटे विनोदपूर्ण चुटकुले हों और चाहे हास्य-रस के बड़े बड़े ग्रन्थ, हमारी समझ में विनोद की योग्यता निश्चित करने के लिये दोनों का ही सामान रूप से उपयोग हो सकता है। राज दरबार से ले कर एक दरिद्र की झोंपड़ी तक सभी स्थानों में विनोद का उपयोग उत्तम और विहित माना गया है। खेत, खलियान, कारखाने, मित्र-मंडली, पाठशाला, दूकान, राजसभा आदि सभी स्थानों में लोग बराबर हास्य-पूर्ण बातें करते हैं; पर उन सब का संग्रह नहीं हो सकता। यद्यपि ग्रन्थकारों के लेखों की तरह उनका परिचय नहीं दिया जा सकता तथापि मन में उसकी कल्पना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य हो सकती है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे उसी कल्पना की सहायता से न्याय-पूर्वक विनोद के उपयोग का अनुमान कर लें। हास्य-रसात्मक भाषणों के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि प्राचीन काल की भोज और विक्रम आदि की सभाओं की तरह सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँची हुई बीसवीं शताब्दी की पश्चिमी राज-सभाओं में भी सर्व-मान्य, तत्त्ववेत्ता, राजनीतिज्ञ और ग्रन्थकार जो भाषण करते हैं, उनमें भी जहाँ तक हो सकता है, हास्य-रस की ही प्रधानता होती है। प्रसिद्ध वक्ता लार्ड रोजबरी के व्याख्यानों के सर्वप्रिय होने का मुख्य कारण यही हास्य-रस है। इसके विरुद्ध एडमंड बर्क को देखिए। वह था तो बहुत बड़ा विद्वान् और भारी तत्त्ववेत्ता, पर जब वह पारलीमेन्ट में बोलने के लिये खड़ा होता था तो लोग कहते थे कि अब भोजन पर जाने के लिये घंटी (Dinner Bell) बजी है। केवल हास्य-रस के अभाव के कारण लोग उसके व्याख्यान के आरम्भ होते ही उठ कर चले जाते थे। अब इस सम्बन्ध के अन्त में केवल इतना ही कहना बाकी रह गया है कि यदि ऐसे समय में जब कि व्यक्ति-सत्ता प्रबल थी, राज-दरबार में विनोद सर्वमान्य था, तब ऐसे समय में जब कि राज-कार्य्यों में एक आदमी की जगह सैकड़ों आदमियों को बोलना और मत देना पड़ता हो, सुभाषित का मान अवश्य ही पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जाना चाहिए।

अब यह देखना रह गया है कि कला-भवन में हास्य-रस का प्रवेश किस द्वार से हुआ है। सुन्दरता अथवा सुसम्बद्धता ही कला की आत्मा है और विनोद की आत्मा असम्बद्धता है। मनुष्य की वाक्-सृष्टि जितनी समृद्ध होती है उतनी कला-सृष्टि समृद्ध नहीं होती। कला-सृष्टि के चित्र-कला, शिल्प-कला और गायन-कला तीन मुख्य भेद हैं। इनमें से गायन-कला का हास्य-रस के साथ विरोध है। हास्य-रस उत्पन्न करनेवाला गान होना सम्भव नहीं जान पड़ता। गाना या तो सुरीला होगा और या बेसुरा। जो गाना सुरीला होगा वह सुनने में बहुत ही भला जान पड़ेगा; उसे सुन कर कभी हँसी नहीं आवेगी। काव्य-दोष जिस प्रकार सदा हास्य-रस का विभाव हो सकता है, उस प्रकार बेसुरे गाने से सदा हास्य नहीं उत्पन्न हो सकता; हाँ शायद कभी कभी उससे हँसी आ सकती है। विलक्षण अर्थवाले कुछ गाने अवश्य ऐसे होते हैं जिनसे हँसी आती है; पर वह हँसी गाने के कारण नहीं बल्कि अर्थ के कारण होती है। शिल्प-कला का उपयोग भी हास्य-रस उत्पन्न करने में होता हुआ नहीं देखा गया। लेकिन यदि केवल हास्य उत्पन्न करने के नियम से ही बुरी शिल्प-रचना की जायगी तो उसे देख कर अवश्य हँसी आवेगी। यदि गणेश जी की बढ़िया मूर्त्ति बना कर उनकी सूँड़ में एक चुरुट पकड़ा दिया जाय तो उसे देख कर अवश्य हँसी आवेगी। इस प्रकार जो बातें कल्पना में असंबद्ध जान पड़ती हैं, वह शिल्प-कला के द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं। लेकिन ऊपर गणेश जी की मूर्त्ति का जो उदाहरण दिया गया है उसमें मूर्त्ति को देख कर हँसी के बदले क्रोध आने की ही अधिक सम्भावना है। क्योंकि पवित्र पदार्थ में अपवित्रता लाना हास्य का अच्छा विभाव नहीं हो सकता। अब बाकी रही चित्र कला। सो उसमें भी बहुधा अन्य कलाओं की तरह जड़ द्रव्य के द्वारा निर्मित की हुई रम्य-कला ही भली जान पड़ती है।

पर इधर कुछ दिनों से चित्र-कला का उपयोग भी हास्य-रस उत्पन्न करने की ओर होने लगा है। यदि चित्रकार की अयोग्यता के कारण चित्र बेढँगा बन जाय तो वह चित्र कभी हास्य-रस का विभाव नहीं हो सकता। लेकिन यदि चित्र-कला या रेखन-कला का कोई अच्छा पण्डित जान बूझ कर किसी अद्भुत या विकृत कल्पना का चित्र बनावे तो उसे देख कर अवश्य हँसी आवेगी। अँगरेज चित्रकार होगार्थ ने सामाजिक स्थिति के दर्शक जो चित्र बनाए हैं वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कोटि के हैं । उसने अवश्य ही चित्र-कला का उपयोग हास्य उत्पन्न करने में किया है । आजकल समाचारपत्रों और मासिक पुस्तकों में सामयिक विषयों और व्यक्तियों पर हास्य-रस उत्पन्न करनेवाले चित्र दिए जाते हैं । लन्दन के अँगरेज़ी "पंच" और "वेस्ट मिनिस्टर गजट" आदि पत्रों में इसी प्रकार के चित्र रहा करते हैं । "रिव्यू आफ रिव्यूज" के एक स्वतन्त्र अंश में महीने भर की सब बातें इसी प्रकार के चित्रों से दिखलाई जाती हैं । विलायत में लिनले सबोर्न, बरनर्ड पारट्रिज, बेरिंग गूल्ड आदि लोगों ने इस प्रकार के चित्र बनाने में ही अपना सारा जीवन बिता दिया है । हास्य-रसात्मक चित्र बनाने और शब्दों या वाक्यों से विनोद करने का फल प्रायः समान ही होता है । बल्कि शब्द-चित्र की अपेक्षा रंगों और रेखाओं से बनाया हुआ चित्र अर्थ का ठीक ठीक बोध कराने में अधिक समर्थ होता है । आज-कल विलायत के राजकीय पक्ष आपस में एक दूसरे पर टीका टिप्पणी करने में जिन साधनों का उपयोग करते हैं उनमें हास्य-रसोद्दीपक चित्र बहुत ही मुख्य साधन हो गए हैं । मि० ग्लैडस्टन, लार्ड सालिसबरी, लार्ड रोजबरी मि० चेंबरलेन आदि बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और राज-कर्म-चारियों के इस प्रकार के कितने चित्र निकले, इसकी गिन्ती ही नहीं । जो वेष विकृति शब्दों से बड़ी कठिनता से दिखलाई जा सकती है, वही चित्रों से बड़ी सफाई से दिखलाई जा सकती है । ऐसे चित्रों को Cartoon या Caricature कहते हैं । अँगरेज़ी पत्रों की देखादेखी भारत में भी देशी पत्र आदि ऐसे चित्र निकालने लगे हैं । कुछ समय पहले लखनऊ से उर्दू में अवध पंच बहुत अच्छा निकलता था । होली आदि अवसरों पर भी बहुत से देशी पत्रों में ऐसे चित्र निकला करते हैं ।

लेकिन इस सम्बन्ध में एक प्रश्न बहुत ही महत्त्व का है । क्या हास्य-विनोद और बुद्धिमत्ता में किसी प्रकार का सम्बन्ध है ? यह तो स्वयं-सिद्ध बात है कि विनोद या चोज की बात सुन कर सब लोगों को हँसी आती है । परन्तु प्रश्न तो यह है कि उससे मनुष्य की बुद्धि भी परिष्कृत होती है या नहीं । जिन बातों को सुन कर हँसी आती है यदि उन्हें हम बिलकुल ही असत्य समझते हों तो बहुधा हमें हँसी नहीं आवेगी । इसका यह अर्थ होता है कि चोज या विनोद में सत्य का भी कुछ अंश होना चाहिए । अब वह अंश चाहे कितना ही थोड़ा क्यों न हो । यदि उसमें सत्य का बहुत ही थोड़ा अंश होगा तो यह मान लिया जायगा कि वह बात बहुत अधिक अतिशयोक्ति से अथवा नमक मिर्च लगा कर कही गई है । पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि अतिशयोक्ति और असत्य में बहुत बड़ा अन्तर है । चोज और विनोद-वचन की तह में कुछ सत्यता होती है और उस सत्यता को ढूँढ़ निकाले एक प्रकार की बुद्धिमत्ता ही है । लेकिन चोज और विनोद-वचन के द्वारा मिलनेवाले ज्ञान और बुद्धिमत्ता तथा सीधे सादे शब्दों से—उदाहरणार्थ नीति के वचनों से—मिलनेवाले ज्ञान या बुद्धिमत्ता में बहुत अन्तर है । चोज या विनोद से मिलने वाला ज्ञान कम और स्वरूपान्तर में होता है और साधारण वाक्यों के सभी अंगों में—भीतर और बाहर—ज्ञान ही ज्ञान भरा रहता है । लेकिन परिमाण में कम होने पर भी उपयुक्तता के विचार से चोज या विनोद के द्वारा मिलनेवाला ज्ञान ही अधिक उत्तम है । यदि कोई ओषधि—ज्यों की त्यों दी जाय तो वह थोड़े ही परिमाण में बहुत सी दी जा सकती है । अगर आप किसी को सोंठ का अर्क देना चाहें तो उसकी एक बूँद से ही काम चल जायगा । लेकिन अगर वह अर्क पानी या किसी दूसरी अच्छी चीज़ में मिला कर न दिया जायगा तो वह अच्छा भी न लगेगा और उसकी गन्ध भी बहुत तेज होगी । पर यदि उसी एक बूँद को आप जिंजरेड, या और किसी दूसरे बढ़िया पानी में थोड़ी सी चीनी के साथ देंगे तो उसका स्वाद भी बहुत बढ़ जायगा और उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण भी न घटेगा। इसी प्रकार यदि किसी को कोई बढ़िया और अच्छी बात समझाना हो तो उसे स्पष्ट अनलंकृत और गम्भीर वचनों में न कह कर अस्पष्ट रीति से सुन्दर और अलंकृत शब्दों में और हास्योत्पादक बना कर कहा जाय तो वह समझ में जल्दी आ जायगी और मन पर उसका प्रभाव भी बहुत अच्छा होगा। खरी और स्पष्ट बात बँधे रुपए की तरह है और हास्योत्पादक रूप में कही हुई बात भुनी हुई रजेगी की तरह है। दोनों का अन्तिम और मिला कर बराबर ही मूल्य होता है। लेकिन जिस प्रकार बँधे हुए रुपए की अपेक्षा भुनी हुई रेजगी का उपयोग अधिक होता है उसी प्रकार साधारण नीतिवचनों की अपेक्षा सुभाषित के अन्तर्गत कहे हुए ज्ञान का व्यवहार में अधिक उपयोग होता है। बाजार में यदि आपको दस पाँच सौदे लेने हों तो जगह जगह खाली बँधा रुपया दिखलाने का कोई फल नहीं होगा; दूकानदार के पास बाकी पैसा न होने के कारण, पास में द्रव्य होते हुए भी आप खाली हाथ हिलाते हुए घर लौट आवेंगे। उसी प्रकार यदि आपके पास ज्ञान का बहुत बड़ा भांडार हो तो भी वह हास्य-रस के बिना प्रायः व्यर्थ ही होगा और सम्भव है कि उससे आपका अभीष्ट सिद्ध न हो। यदि किसी व्याख्याता के विचार सर्वोत्कृष्ट हों पर उसके पास हास्य-रस की सामग्री न हो तो लोगों को शिक्षा देने का उसका श्रम ठीक उसी प्रकार व्यर्थ जायगा जिस प्रकार सौ रुपए का नोट ले कर तरकारी खरीदने के लिये बाजार जानेवाले किसी भले आदमी का। यदि किसी छत या कोने आदि में कहीं थोड़ा सा मकड़ी का जाला लगा हो तो उसे हाथ से साफ करने की अपेक्षा जोर से फूँकें मार कर या किसी भाती की सहायता से साफ कर लेना कहीं अच्छा है। उसी प्रकार केवल तर्क-वाद रूपी हाथ की सहायता से किसी मनुष्य के मन पर लगा हुआ जाला साफ करने की अपेक्षा विनोद रूपी फूँकों या भाती से उसे साफ करना अधिक उत्तम है। यदि आप किसी झूठ बोलनेवाले से लट्ठमार शब्दों में केवल इतना ही कह देंगे कि झूठ बोलना पाप है तो सम्भवतः उसका कोई विशेष फल नहीं होगा; पर यदि कोई दिल्लगीबाज किसी अच्छे ढंग से यही बात कहेगा तो झूठ बोलने वाला अधिक लज्जित होगा और आगे से झूठ न बोलेगा। तात्पर्य्य यह कि सुभाषित और विनोद में बुद्धिमत्ता का अंश बहुत कुछ होता है। केवल उसे व्यक्त करने और उपयोग में लाने का प्रकार कुछ भिन्न होता है।*

केवल इस प्रकार के कुछ भिन्न होने के कारण ही सुभाषित पर से नीति का अधिकार उठ नहीं जाता। बल्कि इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि सुभाषित का उद्देश्य सदा लोगों को ज्ञान देना ही होना चाहिए और हास्य-विनोद नीति-पथ या तारतम्य से अलग न होना चाहिए। जहाँ एक दृष्टि से सुभाषित के लिये स्वतंत्रता अधिक है, वहाँ दूसरी दृष्टि से उसके लिये बन्धन भी बहुत अधिक है। अँग्रेज ग्रन्थकार एडिसन ने सुभाषित का जो वंश-वृक्ष दिया है उसमें उसने सुभाषित को सत्य का दूर का सम्बन्धी परन्तु तारतम्य का औरस पुत्र ठहराया है। अर्थात् सुभाषित और विनोद

---

* मैक्स आरेल नामक एक फ्रेंच विनोदी ग्रन्थकार इस सम्बन्ध में लिखता है,—

*"The humorists are the wise men of the world, because the most forcible way to impart truth is to do it according to a principle laid down by Horace—through a laugh, "*Ridentem dicere verum quid vetat.*" Many sermon would be remembered if the preacher had not sent his hearers to sleep by his prosey delivery but had kept them cheerful and attentive by the introduction of a little wholesome humour.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी ऐसा न होना चाहिए जिससे उसके इन दोनों बड़ों की प्रतिष्ठा में किसी प्रकार का बट्टा लगे। *

इसमें सन्देह नहीं कि हास्य और विनोद बहुत ही अच्छी चीज है; पर तो भी व्यवहार में उसका उपयोग नमक या चीनी की तरह होना चाहिए। नमक या चीनी का व्यवहार अन्न में केवल रुचि उत्पन्न करने के लिये होता है और वह भी उतना ही होता है जितने से यथेष्ट रुचि उत्पन्न हो सके। रुचि उत्पन्न करने के लिये आम के मीठे अचार में भी नमक डाला जाता है और खट्टे अचार में भी; परन्तु यदि इनमें से किसी एक में भी नमक अधिक हो जाय तो वह बे-स्वाद हो जायगा और खाया न जा सकेगा। पेड़े या लड्डू में भी यदि चीनी अधिक पड़ जाय तो वह नष्ट हो जाता है। यही उदाहरण सुभाषित और विनोद के उपयोग के सम्बन्ध में भी ठीक घटता है। भगवच्चिंतन जिस प्रकार सोते जागते, उठते बैठते विहित बतलाया गया है उस प्रकार से विनोद सभी अवसरों पर विहित नहीं है। इसका पहला कारण यह है कि व्यवहार में हमें सैकड़ों आदमियों से काम पड़ता है और वह सब आदमी भिन्न भिन्न स्वभावों के होते हैं। इसके अतिरिक्त सभी अवसरों पर सभी लोगों की मनोवृत्तियाँ एक समान और हास्य के लिये उपयुक्त नहीं होतीं। दूसरी बात यह है कि साधारणतः कोई मनुष्य इतना अधिक बुद्धिमान् और योग्य नहीं होता कि प्रत्येक अवसर पर उत्तम और शिष्ट-सम्मत विनोद कर सके। जो लोग उठते बैठते दिल्लगी किया करते हैं, लोगों को उनकी दिल्लगी पर हँसी नहीं आती बल्कि स्वयं उन दिल्लगी करनेवालों पर ही हँसी आती है। विनोद स्त्रियों के कटाक्ष के समान होता है। जो स्त्री दिन भर कटाक्ष करती रहेगी उसके कटाक्ष की प्रशंसा कोई न करेगा। इसी प्रकार जो आदमी दिन भर दिल्लगी करता रहेगा उसे कोई दिल्लगीबाज न कहेगा बल्कि सब लोग उसे मूर्ख और निकम्मा बतलावेंगे। इसके अतिरिक्त एक और बात यह भी है कि विनोद के लिये और बातों की अपेक्षा कुछ विशेष फुरसत की भी आवश्यकता हुआ करती है और इसी लिये हर दम दिल्लगी करते रहना ठीक नहीं जान पड़ता। उसके औचित्य का स्थूल मान से विचार करना पड़ता है। यदि किसी नए पौधे को बिलकुल सीधा बढ़ाने के लिये और उसमें टेढ़ी तिरछी शाखें न निकलने देने के लिये हम उसकी जरा भी इधर उधर जानेवाली प्रत्येक मंजरी अथवा प्रत्येक डाली को काटने लगें तो वह पौधा प्रायः कभी बड़ा न होगा। जिस प्रकार ऐसे पौधे को बराबर काटते रहना ठीक नहीं है उसी प्रकार दिल्लगीबाज आदमी का हर एक बात पर सदा टीका टिप्पणी करते रहना भी ठीक नहीं है। यदि विनोद और कुछ नहीं केवल पदार्थों का विकृत स्वरूप दर्शन अथवा अद्भुत कल्पनाओं का विलास हो तो तर्कवाद के तराजू पर तौल में बिलकुल ठीक उतरनेवाली अथवा औचित्य की कसौटी पर पूरे पूरे सौ नंबर पानेवाली दिल्लगी अच्छे से अच्छे बुद्धिमान् और विनोदी मनुष्य के दिमाग से भी नहीं निकल सकती।

हास्य-विनोद की सर्वमान्यता सिद्ध करने के लिये एक सब से उत्तम प्रमाण यह दिया जा सकता है कि संसार में शायद एक मनुष्य भी ऐसा न मिलेगा जिसने कभी कोई दिल्लगी न की हो, अथवा जिसके मुँह से कभी कोई विनोद-पूर्ण वचन न निकला हो। मनुष्य को जितनी अधिक हँसी दिल्लगी करनी चाहिए यदि वह उतनी अधिक हँसी दिल्लगी करता हुआ दिखलाई न दे तो उसका यह अर्थ

* Wherever you meet with anything like humour, see if it is remotedly allied to truth and leniably descended from good sense; if not, you may conclude it to be counterfeit.

——ADDISSON.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है कि वह हँसी दिल्लगी के बहुत ही बुरा और निन्दनीय समझता है, बल्कि उसका अभिप्राय यह है कि जिन जिन अवसरों पर वह हँसी दिल्लगी करना चाहता है उन उन अवसरों पर हँसी दिल्लगी करने की योग्यता उसमें नहीं होती। हास्य-विनोद के सम्बन्ध में बहुधा ईसाप-नीति की लोमड़ी और अंगूरोंवाली कहानी ठीक घटती है और उनकी सम्मति का अर्थ "अंगूर खट्टे हैं" से बढ़कर और कुछ भी नहीं होता। हास्य-विनोद की निंदा करनेवाले लोग हास्य के अवसर पर उसकी निंदा करके अथवा नाक भौं सिकोड़ कर तद्विषयक अपनी अपात्रता या असमर्थता ही सिद्ध करते हैं। ऐसे आवश्यकता से अधिक विचारशील लोग संसार में बहुत ही कम मिलेंगे जो निशा काल के चन्द्रोदय की तरह मन में हास्य का पूरा पूरा उदय होने पर भी केवल यही समझ कर अपने होंठ कस कर दबा रखें कि उसके कारण अनेक भाँति के मुख-कमल प्रफुल्लित नहीं हो सकते और केवल इसी विचार से वे हास्य रूपी चन्द्रमा की सुधा-वर्षा न होने दें। मनुष्य का यह एक स्वाभाविक दोष है कि जो बात उसे नहीं आती उसकी महत्ता जहाँ तक हो सकता है, वह आवश्यकता से कम और थोड़ी समझता है। यदि लिखे हुए अथवा प्रत्यक्ष व्यवहार के विनोद को देख कर कोई मनुष्य बहुत नाक भौं सिकोड़े तो हमें उचित है कि हम इसी विवेचन के तत्त्व का ध्यान रख कर उसके नाक भौं सिकोड़ने के कारण का पता लगावें। जो लोग दिल्लगी करना जानते हैं पर केवल औचित्य के विचार से दिल्लगी नहीं करते उनकी अपेक्षा अवश्य ही संख्या में ऐसे लोग बहुत अधिक होंगे जो दिल्लगी करना न जान कर भी दिल्लगी करने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार अपनी हँसी करा बैठते हैं। दिल्लगी, सच पूछिए तो, एक चमत्कारिक स्वभाव की स्त्री के समान है। जो लोग उसके प्रेम के विशेष भिक्षुक होते हैं उनकी वह बहुधा अवहेलना ही करती है। पर जो लोग उसके प्रति उदासीनता दिखलाते हैं उन पर वह स्वयं अनुरक्त हो जाती है। किसी छोटे मोटे समाज को लीजिए; उसमें आप को प्रायः सभी लोग ऐसे मिलेंगे जो हास्य-विनोद करके अपनी बातों में रस उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हुए दिखाई पड़ेंगे। अपनी वाक्चातुरी से प्रायः सभी को आनन्द हुआ करता है। एक ग्रन्थकार ने लिखा है कि संसार में ऐसे मनुष्य बहुत ही कम मिलेंगे जो अपने भाग्य से प्रसन्न और सन्तुष्ट हों अथवा जो अपनी दिल्लगी या विनोद-वचन से अप्रसन्न और असन्तुष्ट, हों। इस विधान का अर्थ स्पष्ट ही है। मनुष्य चाहे कितना ही भाग्यशाली क्यों न हो, उसे कितनी ही सन्तति और सम्पत्ति क्यों न हो, वह सब प्रकार से कितना ही सुखी क्यों न हो, पर इन सब बातों से उसका पूरा पूरा समाधान कभी नहीं होता। लेकिन मनुष्य के मुँह से निकली हुई दिल्लगी की बात चाहे कितनी ही अनुचित, बेढंगी और नीरस क्यों न हो पर वह सदा यही समझ कर प्रसन्न होगा कि—"वाह! हमने भी क्या बढ़िया बात कही!" तात्पर्य्य यह कि इस प्रकार के निसर्ग-सिद्ध और मनुष्य मात्र को प्रिय और आनन्ददायी जान पड़नेवाले हास्य-विनोद की वास्तविक योग्यता समझ कर उसके उचित प्रसार का प्रयत्न करना प्रत्येक प्रगति-प्रिय मनुष्य का कर्त्तव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी सभा का गत २२ वर्षों का संक्षिप्त विवरण।

(गतांक से आगे ।)



न् १८९९ के आरंभ में लोगों को मेमोरियल के परिणाम के संबंध में बहुत चिन्ता होने लगी थी। इसी बीच में कुछ लोगों ने सर्व साधारण तथा सरकार को बहकाना चाहा था। पैंफ्लेट बाँट कर फारसी अक्षरों के पक्षपातियों से प्रार्थना की गई थी कि वे नागरी के दिखलाए हुए गुणों आदि का खंडन करें। कुछ लोगों ने धर्म्म की आड़ ले कर भी मुसलमानों को भड़काना चाहा था, पर सभा ने बड़ी ही योग्यता-पूर्वक इन सब आपत्तियों और कठिनाइयों का सामना किया। सभा ने अपनी ओर से "Should Nagari be introduced in Courts ?" नामक एक पैंफ्लेट की हज़ारों कापियाँ छाप कर सर्व साधारण में बाँटीं। श्री वेंकटेश्वर समाचार, भारतजीवन, हिन्दोस्थान और हिंदीप्रदीप आदि सभी हिंदी पत्रों और पत्रिकाओं ने एक स्वर से इस संबंध में आंदोलन किया। वैश्य और कायस्थ कान्फरेन्सों ने भी नागरी और सभा का पक्ष ले कर सरकार के पास अलग अलग मेमोरियल भेजे। प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय डा० सैयदअली बिलग्रामी तथा अन्य कई मुसलमान नेता सज्जनों ने भी इस आन्दोलन में बहुत सहायता दी। बिलग्रामी महाशय ने तो साहस-पूर्वक मुक्तकण्ठ से यह बात कह दी कि मुसलमानों के शिक्षा में पिछड़े रहने का कारण दोष-पूर्ण फारसी लिपि ही है, जिसके सीखने के लिये विद्यार्थियों को व्यर्थ दो बरस गँवाने पड़ते हैं; पर नागरी अक्षर बहुत ही थोड़े समय में उत्तमता-पूर्वक सीखे जा सकते हैं। उसी अवसर पर कई देशी राज्यों की अदालतों में नागरी अक्षरों का प्रचार हो गया था जिससे नागरी की तत्संबंधी योग्यता और भी भली भाँति सिद्ध हो गई थी। सरकार इस संबंध में जो कुछ जाँच कर रही थी, वह भी पूरी हो गई और १८ अप्रैल सन् १९०० को प्रांतीय सरकार के गज़ट में नीचे लिखी हुई आज्ञा प्रकाशित हुई,—

(१) सब लोग अपने अपने इच्छानुसार फारसी अथवा नागरी लिपि में अपनी दरखास्तें या दावे आदि उपस्थित कर सकते हैं।

(२) अदालतों अथवा माल के अफसरों आदि की ओर से देशी भाषा में जो सम्मन, विज्ञप्ति अथवा इसी प्रकार की और कोई चीज जारी की जायगी वह फारसी और नागरी दोनों लिपियों में होगी और उसमें नागरी के खाने आदि भी उसी प्रकार भरे जायँगे जिस प्रकार फारसी के भरे जाते हैं।

(३) ऐसे दफ़्तरों को छोड़ कर जिनमें केवल अंगरेज़ी में ही काम होता है, बाकी किसी दफ़्तर में इस मंतव्य के प्रकाशित होने की तारीख से, एक वर्ष बाद कोई मनुष्य न नियुक्त किया जायगा जब तक कि वह दोनों भाषाएँ न जानता हो। इस बीच में नियुक्त किए जानेवाले लोगों में से जो मनुष्य इन दोनों में से केवल एक ही भाषा जानता होगा उसे, अपने नियुक्त होने की तिथि से एक वर्ष के अंदर, दूसरी भाषा जिसे वह न जानता हो, सीख लेनी पड़ेगी।

अदालती लिपि संबन्धी सर्व साधारण की अनभिज्ञता से अनुचित लाभ उठानेवाले अथवा केवल पक्षपात के कारण बने हुए उर्दू के भक्त उस समय बहुत बिगड़े और उन्होंने इसका बहुत कुछ विरोध भी किया। उस समय सभा ने सात सज्जनों की एक कमेटी इस उद्देश्य से बनाई थी कि जिस में लोग धोखे या बहकावे में आ कर इस नई आज्ञा से लाभ उठाने से वंचित न रह जायँ। सर्व साधारण को सरकार की इस कृपापूर्ण आज्ञा का ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक अभिप्राय समझाने के लिये उसके अनुवाद की बहुत सी प्रतियाँ लोगों में बाँटी गईं और लोगों को जबानी समझाने के लिये सभा के एजेंट भी बाहर भेजे गए। इस कार्य्य के लिये श्रीमान् महाराज रीवाँ ने १००) और राजा साहब भिनगा ने ५००) से सभा की सहायता की थी।

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र की एक उत्तम जीवनी का अभाव सभा को बहुत खटक रहा था। बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस के स्वामी बा० रामदीनसिंह के पास उनकी जीवनी प्रस्तुत करने की बहुत कुछ सामग्री थी; इसलिये सभा ने उनसे जीवनी लिखने में सामग्री की सहायता माँगी। पर उन्होंने उत्तर दिया कि हम स्वयं एक विस्तृत जीवनी शीघ्र ही प्रकाशित करनेवाले हैं। जब कई बार प्रार्थना करने पर भी यही उत्तर मिलता रहा और जीवनी प्रकाशित न हुई तो सभा ने निश्चय किया कि बा० राधाकृष्णदास स्वयं अपने पास की सामग्री से ही एक जीवनी लिख डालें। इसी निश्चय के अनुसार भारतेन्दुजी की एक सचित्र जीवनी लिखी गई जो सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। सन् १८९९ में ही सभा ने हिन्दी की शीघ्र-लेखन-प्रणाली निकालने का प्रयत्न आरम्भ किया था। स्वर्गीय पं० अम्बिकादत्त व्यास ने कुछ थोड़े से चिह्न आदि भी बना लिए थे और सभा ने २५) का पुरस्कार उस व्यक्ति को देना निश्चय किया था जो शीघ्र-लेखन-प्रणाली सीख कर उसके अनुसार अच्छी तरह लिख सके; पर व्यासजी की अस्वस्थता के कारण उसका काम रुक गया। कुछ दिनों बाद रायबहादुर बा० श्रीशचन्द्र बसु की सहायता से पंडित निष्कामेश्वर मिश्र ने शीघ्र-लेखन-प्रणाली पर एक छोटी सी पुस्तक तैयार कर दी जिसे सभा ने इंगलैण्ड में छपवाया था। पर जहाँ तक मालूम हुआ है अभी तक किसी ने उस प्रणाली से लिखने का अभ्यास नहीं किया है। हिन्दी में तुलसीकृत रामायण का कोई शुद्ध और उत्तम संस्करण नहीं था पर अर्थाभाव के कारण सभा भी उसके प्रकाशन का भार ग्रहण करने का साहस न कर सकती थी। जब प्रयाग के इण्डियन प्रेस ने एक ऐसा संस्करण प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया तो सभा ने बड़ी प्रसन्नता से उसके सम्पादन का प्रबंध कर दिया। इस काम के लिये रामायण की बहुत सी प्राचीन हस्त-लिपियाँ एकत्र की गई थीं। उनमें से एक प्रति ऐसी भी थी जिसके विषय में यह कहा जाता था कि इसका संशोधन स्वयं गोस्वामीजी ने अपने हाथ से किया था। सन् १९०२ में रामायण के संपादन का कार्य्य आरंभ हुआ और बहुत कुछ खोज, जाँच और मिलान आदि के उपरांत सन् १९०४ में वह सफलतापूर्वक समाप्त हो गया। इस संस्करण में जो पाठ बहुत ठीक और शुद्ध जान पड़ा वह तो मूल में दिया गया है और पाठान्तर आदि नीचे पाद-टिप्पणी में दिए गए हैं। इससे तथा उसकी भूमिका देखने से इस बात का पता लग जाता है कि उसके संपादन में कितना परिश्रम किया गया है। इंडियन प्रेस के स्वामी उच्च श्रेणी की एक मासिक पत्रिका निकालना चाहते थे और उन्होंने सभा से उसका संपादन करने के लिये कहा था। सभा ने इस काम के लिए बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०, बा० राधाकृष्णदास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी आदि पाँच सज्जनों की एक कमेटी बना दी जिसके संपादन में सन् १९०१ से "सरस्वती" मासिक पत्रिका जो कि आजकल हिन्दी संसार में प्रथम श्रेणी की पत्रिका है, प्रकाशित होने लगी।

सरकार की सहायता से सभा ने प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का कार्य बहुत सफलतापूर्वक आरम्भ कर दिया था और सन् १९०० में २५७ नए ग्रन्थों का पता लगाया था। खोज की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी उसमें बहुत सी जानने योग्य और काम की बातें थीं। खोज में जिन नई पुस्तकों का पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा। उनमें से कुछ उत्तम और मुख्य पुस्तकों के प्रकाशन का भी सभा ने विचार किया और उन ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये त्रैमासिक नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला का प्रकाशन आरम्भ करना पड़ा। प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों को प्राप्त कर के शुद्धतापूर्वक संपादन करना सहज काम नहीं था पर तो भी सभा ने बड़े परिश्रम से ग्रन्थमाला में कई उत्तमोत्तम प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित किए। उसीमें लल्लूलाल जी के समकालीन सदल मिश्र की बनाई हुई चन्द्रावली (गद्य) और सुजानचरित्र नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए थे। यद्यपि इस माला के सभी ग्रंथ साहित्य की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं तथापि उसमें की बहुत सी पुस्तकें अवश्य ऐसी हैं जिनसे प्राचीन भारत के इतिहास, धर्म्म और राजनीति आदि के सम्बन्ध में बहुत सी नई बातों का पता लगता है। अस्तु, अभी हाल में सरकार ने खोज के काम के लिये सभा को ५००) वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया है।

लेखकों को उत्साहित कर के उनसे अच्छे अच्छे लेख और ग्रंथ आदि लिखवाने के लिये सभा ने चाँदी का एक पदक वैज्ञानिक तथा एक पदक साधारण विषयों पर प्रति वर्ष देना निश्चित किया था। पहले वर्ष मनोविज्ञान का विषय नियत किया गया था जिस पर एक उत्तम पुस्तक लिख कर पं० गणपति जानकीराम दुबे बी० ए० ने एक पदक प्राप्त किया था।

हिन्दी के प्रतिष्ठित सेवकों को सभा अपना आनरेरी सभासद बनाया करती है। पं० मदनमोहन मालवीय, डा० ए० एफ० हार्नली पीएच० डी० सी० आई० ई० और पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया को सभा ने इसी लिये अपना आनरेरी सभासद बना लिया था।

सभा बहुत दिनों से हिन्दी का एक सर्वांगपूर्ण व्याकरण बनाया चाहती थी और इसी काम के लिये उसने समय समय पर कई कमेटियाँ भी स्थापित की थीं। सन् १९०२ में डा० ग्रियर्सन ने जिन्हें सभा ने पहले ही वर्ष अपना संरक्षक चुना था, सभा को लिखा कि वह व्याकरण बनाने का विचार उस समय तक स्थगित रक्खे जब तक कि उनकी Linguistic Survey की रिपोर्ट तैयार न हो जाय, क्योंकि उससे इस सम्बन्ध में कुछ नई बातों का पता लगने की संभावना है।

उसी वर्ष बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए० तथा पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया द्वारा संपादित हो कर हिन्दी का प्रसिद्ध प्राचीन काव्य पृथिवीराजरासो खण्डों में सभा द्वारा प्रकाशित होने लगा था। यह ग्रन्थ अब २२ भागों में पूरा छप कर तैयार हो गया है और उसमें स्थान स्थान पर टिप्पणियाँ, कठिन शब्दों के अर्थ और सरल हिन्दी में सारांश आदि दे कर उसकी उपयोगिता और भी बढ़ाई गई है।

जब इस प्रांत के छोटे लाट सर जेम्स लाटूश काशी आए थे तो सभा ने उन्हें एक मानपत्र अर्पित किया था। उसका उत्तर देते हुए श्रीमान् ने सभा को विश्वास दिलाया था कि वे यथासाध्य बराबर सभा के कामों में सहायता करते रहेंगे।

बहुत से लोगों की यह इच्छा थी कि हिन्दी में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की आलोचना के लिये सभा एक सब कमेटी नियुक्त करे। पर ऐसी कमेटी की स्थापना से विरोध खड़े होने और सभा के कार्य्यों में हानि पहुँचने की संभावना थी, इसलिये यह निश्चय हुआ कि सभा द्वारा किसी पुस्तक की आलोचना न हो। सभा को चिरस्थायी बनाने और आर्थिक दृष्टि से उसे दृढ़ करने के लिये स्थायी कोश की स्थापना की गई थी जिसमें धनदान करने के लिये हिन्दीप्रेमियों से प्रार्थना भी की गई थी। फरवरी सन् १९०२ से सभा के कई सभासदों का एक डेपुटेशन ग्वालियर, इंदौर आदि नगरों में नागरी प्रचार के कामों के लिये गया था। उस डेपुटेशन ने बहुत प्रयत्न कर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा के स्थायी कोश के लिये १४३७८॥=) का चन्दा लिखवाया था और उसमें से ९०९१॥) वसूल भी किया था। इस कोश के प्रबन्ध आदि के लिये बोर्ड आफ़• ट्रस्टीज की भी योजना की गई थी। इस डेपुटेशन के भ्रमण के थोड़े ही समय पीछे ग्वालियर तथा इंदौर की अदालतों में नागरी का प्रचार हुआ था। दिन पर दिन सर्व साधारण तथा सरकार की दृष्टि में सभा का आदर कितना बढ़ता जाता था इसका अनुमान सन् १९०१-०२ की सरकारी Administration Report के उस अंश से हो सकता है जिसमें सभा का जिक्र इन शब्दों में किया गया था—

"उसी नगर (काशी) की नागरीप्रचारिणी सभा सन् १८९३ में स्थापित हुई थी। इस समय इसके ३८० सभासद हैं। अपना मुखपत्र प्रकाशित कर के और पुरस्कार, प्रशंसापत्र और पदक आदि बाँट कर यह हिन्दी का खूब प्रचार कर रही है। प्राचीन हिन्दी पुस्तकों की खोज के लिये उसे सरकार से ३००) वार्षिक सहायता मिलती है......जो नागरीप्रचारिणी सभा केवल नागरी अक्षरों के प्रचार के लिये स्थापित हुई थी, वह हिन्दी-साहित्य की भी बहुत कुछ सेवा कर रही है।"

हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों की शैली के सम्बन्ध में सन् १९०२ ई० में प्रांतीय सरकार ने शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को एक पत्र भेजा था जिसके अंत में लिखा था—

"इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि जब तक सिद्धांत निश्चित न कर लिए जायँ और प्रारंभिक स्कूल की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की शैली का निर्णय न हो जाय तब तक टेक्स्ट-बुक कमेटी को चाहिए कि वह पुस्तकों के सम्बन्ध में नागरीप्रचारिणी सभा के सभापति और दूसरे चुने हुए लोगों से सम्मति ले कर तब पुस्तकों के विषय में कोई निश्चित निर्णय किया करे। यदि वे लोग यह निर्णय करें कि पाठ्य पुस्तकें भाषा में होनी चाहिए जिसे सब लोग समझते हैं तो फिर कदाचित् आवश्यक पुस्तकें लिखने के लिये लेखक मिलने में कठिनता न होगी।"

तदनुसार टेक्स्ट-बुक-कमेटी ने सभा के सभापति के नाम पत्र भेज कर इस विषय में सभा की सम्मति माँगी थी। इस अवसर पर यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि साधारणतः लोगों का यह विश्वास है कि सरकार, बल्कि यों कहिए कि सरकारी अफ़सर उस हिन्दी को अच्छा नहीं समझते जिसमें हिन्दी की पुस्तकें और समाचारपत्र आदि प्रकाशित होते हैं और वे फरसी मिश्रित उर्दू से मिलती-जुलती भाषा ही अधिक पसन्द करते हैं। पर सभा ने हिन्दी व्याकरण और भाषा की शैली आदि के सम्बन्ध में पहले से ही अपने जो सिद्धांत निश्चित किए थे, उन्हीं सिद्धांतों पर वह दृढ़ रही। पर सभा के तत्कालीन सभापति राय बहादुर पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए० सभा के उस निर्णय से सहमत न थे, अतः उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी निज की सम्मति भेज दी थी। सभा ने मंत्री के हस्ताक्षर से अपनी अलग सम्मति भी भेजी थी जिसके कारण मिश्र जी सभा से अलग हो गए। उसी अवसर पर सरकार ने यह निश्चय कर दिया कि पाठ्य पुस्तकों की भाषा सरल और ऐसी हो जो हिन्दी और उर्दू दोनों में काम आ सके। उस समय विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें तैयार हो रही थीं, इसलिये सभा ने कई बार सरकार के इस अनुचित निर्णय के दोष दिखलाए, पर उसका कोई फल नहीं हुआ। इसी तरह की विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें बिहार के स्कूलों में प्रचलित हो चुकी थीं जिनकी भाषा-संबन्धी त्रुटियों की ओर सभा ने बंगाल के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर का ध्यान आकर्षित किया था। जब डाइरेक्टर महाशय ने सभा का वह पत्र मैकमिलन कंपनी के पास भेज दिया तो उस कंपनी ने इस विषय में सभा के साथ पत्र-व्यवहार करना आरंभ किया। सभा ने उसे सम्मति दी थी कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन रीडरों का हिन्दी के अच्छे अच्छे विद्वानों से संशोधन करा ले; पर आगे इस विषय में और कुछ भी न हुआ।

हिन्दी जाननेवाली साधारण प्रजा को नागरी अक्षरों में दरखास्तें आदि देने को उत्साहित करने के लिये सभा ने प्रत्येक जिले में कुछ ऐसे मुहर्रिरों को नियुक्त करने की व्यवस्था की जो लोगों से विना कुछ लिए हिन्दी में दरखास्तें आदि लिखा करें। पहलेपहल काशी की अदालत में ही यह कार्य्य आरम्भ किया गया; पीछे और स्थानों में भी इसका प्रबन्ध हुआ। स्वर्गवासी राजा साहब भिनगा ने, जो सभा के कार्य्यों में बराबर सहायता देते थे, सभा को ७००) इस निमित्त प्रदान किए कि अवध के बारह जिलों में इस प्रकार के मुहर्रिर नियुक्त किए जायँ।

सभा का अब तक कोई निज का भवन नहीं था। वह अब इस योग्य हो गई थी कि अपने लिये एक अच्छा भवन निर्माण कराने का उद्योग करे। नवंबर १९०२ में कंपनी बाग के पश्चिम की जमीन इस कार्य के लिये सभा ने खरीदी। २१ दिसंबर १९०२ को श्रीमान् काशीनिरेश महोदय ने सभाभवन की नीवँ रखी। उस अवसर पर एक बड़ी भारी सभा हुई थी जिसमें नगर के सब प्रतिष्ठित रईस और विद्वान् आदि तो थे ही, दूर दूर से भी बहुत से लोग सम्मिलित होने के लिये आए थे। सन् १९०४ के आरम्भ में सभा-भवन प्रायः बन कर तैयार हो गया और सभा की प्रार्थना पर इस प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जेम्स लाटूश महोदय ने १८ फरवरी १९०४ को अपने कर-कमलों से सभा-भवन खोला। इस शुभ अवसर पर सभा के समस्त सभासद निमंत्रित किए गए थे और गृहप्रवेशोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ हुआ था। दो दिन सभा के विशेष अधिवेशन भी हुए थे जिनमें माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय, पं० बदरीनारायण चौधरी, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा हिन्दी के और अनेक प्रसिद्ध विद्वान् और हितैषी उपस्थित थे। कई दिनों तक अच्छा समारोह रहा। काशी की जिस गली से निकलिए दो चार प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी प्रसन्नमुख आते जाते दिखाई पड़ते थे।

सन् १९०३ में सभा ने अपनी चुनी हुई पुस्तकों की बिक्री के लिये इंगलैंड और जरमनी में एजेंट नियुक्त किए। दिल्ली दरबार के समय भी सभा का एक डेपुटेशन दिल्ली गया था जिसने कई राजाओं और महाराजाओं की सेवा में उपस्थित हो कर उन्हें सभा के कार्य्यों का परिचय दिया था। पर इस डेपुटेशन का कुछ विशेष फल नहीं हुआ।

जिस समय शिक्षा-विभाग ने यह आज्ञा निकाली थी कि स्कूलों में ८ वीं श्रेणी के बालकों तक को हिन्दी और उर्दू दोनों सीखना आवश्यक होगा, उस समय सभा ने इस प्रान्त के सब स्कूलों के हेड मास्टरों से इस आज्ञा पर सम्मति माँगी थी। प्रायः सब की सम्मति इस आज्ञा के विरुद्ध पा कर सभा ने इसका विरोध किया था। सर्वसाधारण की ओर से एक डेपुटेशन भी इस सम्बन्ध में श्रीमान् लेफ्टि-नेंट गवर्नर महोदय की सेवा में उपस्थित हुआ था पर उसका कुछ फल न हुआ। सभा ने इस विषय पर विचार करने के लिये कई बार गवर्नमेन्ट को लिखा पर अन्त में गवर्नमेंट ने यही कहा कि "गवर्नमेंट सभा से इस विषय में सहमत है कि लड़कों को एक से अधिक देशभाषाएं सीखने के लिये बाध्य नहीं करना चाहिए, पर यह उन्हीं के हित की बात है कि वे दोनों भाषाएं जानें।"

२ अप्रैल १९०४ को काशी में यूनिवर्सिटी कमीशन आया जिसके समक्ष सभा की ओर से बाबू गोविन्ददास ने बहुत योग्यतापूर्ण साक्ष्य दिया। अपने साक्ष्य में उन्होंने यह सम्मति दी कि गवर्नमेंट जब डिगरी परीक्षाओं के आगे कुछ शिक्षापद्धति का प्रबन्ध करने लगे तो भिन्न भिन्न विषयों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबोध व्याख्यानों का भी प्रबन्ध करे जिन्हें सुन कर सर्वसाधारण लाभ उठा सकें। गवर्नमेंट ने तो इस विषय पर उस समय कुछ ध्यान नहीं दिया पर सभा ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार इस कार्य्य को अपने हाथ में लिया। रेवरेंड ई० ग्रीव्स साहब, बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० तथा पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० की एक कमेटी बनाई गई और सुबोध व्याख्यान के लिये पूरा प्रबन्ध हो गया। प्रथम वर्ष सब मिला कर सात व्याख्यान हुए। इन व्याख्यानों को सुनने के लिये बड़ी रुचि से लोग आने लगे। कभी कभी तो ऐसा भी होता कि सभा के हाल में कहीं खड़े होने तक की जगह नहीं रहती थी। एक बार इस सुबोध व्याख्यान के अवसर पर बनारस के सर्वप्रिय कलेक्टर मिस्टर रेडिचे साहब ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। उनके कृपापूर्वक लिखने पर बनारस के डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्ड ने ढाई सौ रुपए सभा को मैजिक लालटेन और स्लाइड मोल लेने के लिये प्रदान किए। इस नगर के प्रतिष्ठित रईस बाबू मोतीचन्द ने भी ५००) इस कार्य्य के निमित्त अनुग्रहपूर्वक प्रदान किए। श्रीमती एनी बेसंट ने सभा की प्रार्थना पर विलायत से मैजिक लालटेन और स्लाइड खरीद कर भेजीं। इनसे इन व्याख्यानों की उपयोगिता और मनोरंजकता और भी बढ़ गई। पंडित रामनारायण मिश्र के प्रशंसनीय उद्योग से इन व्याख्यानों में बड़ी सफलता हुई। पंडित जी सभा के संस्थापकों में से हैं और आरम्भ से आज तक बराबर इस की सेवा करते आ रहे हैं। शिक्षा-सम्बन्धी विषयों में आपकी रुचि कितनी अधिक रहती है इसके बतलाने की यहाँ आवश्यकता नहीं।

जिस समय यह आन्दोलन उठाया गया कि भारतवर्ष भर की सब भाषाओं के लिखने के लिये कोई एक ही लिपि स्वीकार की जाय, और माननीय शारदाचरण मित्र अपने संभाषणों तथा लेखों द्वारा केवल बंगालियों का ही नहीं वरन् समस्त भारतवर्ष के निवासियों का ध्यान इस ओर खींच रहे थे कि देवनागरी लिपि स्वीकार की जाय, उस समय सभा ने खूब तेजी के साथ काम कर के देश के अनेक भागों में लोगों को देवनागरी के पक्ष में कर लिया। सभा ने अपना एक डेपुटेशन भेज कर समस्त पंजाब को देवनागरी अक्षरों की उपयोगिता भली भाँति समझा दी। इसी भाँति का एक डेपुटेशन बंबई प्रान्त में भी गया था, जहाँ मि० बाल गंगाधर तिलक, स्वर्गीय मि० गोखले, मि० परांजपे और अनेक महाराष्ट्र नेतागण ने इस आन्दोलन से अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट की थी। सभा ने गुजराती साहित्य सभा से भी (जो सन् १९०५ ई० के जून मास में अहमदाबाद नगर में हुई थी) देवनागरी लिपि स्वीकार करने की सिफारिश की थी।

दिसंबर सन् १९०८ ई० में, जब इंडियन नेशनल कांगरेस की बैठक बनारस में हुई थी, तब सभा को एक अच्छा सुअवसर प्राप्त हुआ कि वह भिन्न भिन्न प्रांतों के बड़े बड़े पुरुषों को एक-लिपि के प्रचार पर विचार करने के लिये एक स्थान पर एकत्र कर सके। सभा ने एक बड़े भारी शामियाने के नीचे २९ दिसम्बर को एक बड़ी सभा की जिसका उद्देश्य यह था कि बड़े बड़े प्रामाणिक लोग इस विषय पर अपनी अपनी सम्मति प्रकट करें। स्वर्गीय मि० आर० सी० दत्त सी० आई० ई० सभा के सभापति हुए थे। कई हजार विद्वान् और धनी मानी नररत्न उस सभा में सम्मिलित हुए थे। भिन्न भिन्न प्रांतों के सर्वमान्य और विद्वान् प्रतिनिधि तथा नेतागण—जैसे मि० बाल गंगाधर तिलक, प्रो० एन० बी० रानडे, दीवान बहादुर अंबालाल साखरलाल देसाई, सर भालचंद्र कृष्ण, प्रो० क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद और मि० विजय राघवाचार्य आदि उस सभा में उपस्थित थे। इन सब विद्वानों ने इस विषय पर सब प्रकार से विचार किया और सबने अपने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित व्याख्यानों में एक स्वर से देवनागरी लिपि को सार्वदेशी लिपि स्वीकार करने की सम्मति प्रकट की। कतिपय विद्वान वक्ताओं ने एक भाषा-प्रचार पर भी कुछ कह डाला। इस सभा की कारवाई पैम्फ्लेट रूप में छाप कर सभा के सब सभासदों के पास भेजी गई थी।

जिस समय समस्त भारतवर्ष इस प्रकार एक लिपि तथा एक भाषा पर विचार कर रहा था, उसी समय बंगाल सरकार इस बात का उद्योग कर रही थी कि भाषा को तोड़ मरोड़ कर उसके उतने टुकड़े कर दिए जायँ जितने होने संभव हों। इस हेतु उसने एक अति आश्चर्य्यजनक प्रस्ताव किया कि स्कूलों के लिये भाषा की पुस्तकें उसी बोली में लिखी जायँ जो उस प्रांत में बोली जाती हो। सरकार की इस विलक्षण चाल ने जनसमूह में भ्रम पैदा कर दिया। उस समय सभा ने बंगाल सरकार के इस विचार का बहुत विरोध किया था।

उसी समय सभा ने श्रीमान् भिनगा नरेश की उदार सहायता पा कर कई पुस्तकें निकालीं, जिनमें से पं० रामावतार शर्म्मा लिखित युरोपीय दर्शन वनिताविनोद, प्रबोधचंद्रिका, सुघड़ दर्जिन और सरल व्यायाम उल्लेख योग्य हैं। बाबू श्रीशचंद्र वसु. एम. ए. द्वारा लिखित शीघ्रलिपिप्रणाली की पुस्तक इंगलैंड में छपवा कर प्रकाशित की गई क्योंकि भारत में उसकी छपाई का प्रबंध नहीं हो सकता था।

स्वर्गीय मि० आर० सी० दत्त सी० आई० ई० ने यह प्रस्ताव किया कि सभा हिन्दी साहित्य का एक इतिहास प्रकाशित करे। उन्होंने इस कार्य्य के हेतु सभा को आर्थिक सहायता देने का भी वचन दिया। सभा ने प्रस्ताव स्वीकार कर के इस कार्य का भार पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए० को दिया जिन्होंने उसे उत्साहपूर्वक आरंभ कर दिया। यह इतिहास अब प्रकाशित हो चुका है।

सन् १९०७ ई० में सभा के प्रसिद्ध और कर्मशील सहायक तथा उसके पहले सभापति बा० राधाकृष्णदास का, जो अपना सारा समय सभा की सेवा में लगाया करते थे, स्वर्गवास हो गया। सभा ने अपने जन्म समय में ही हिन्दी का एक कोश बनाने के लिये जो प्रयत्न किया था और उसका जो परिणाम हुआ था उसका वर्णन पहले किया जा चुका है। अब सभा का १५ वाँ वर्ष आरंभ हो गया था और उसकी स्थिति इस योग्य हो गई थी कि वह ऐसे बृहत् कार्य्य का भार भली भाँति अपने ऊपर ले सके। २३ जूलाई सन् १९०७ ई० को मि० ग्रीव्स ने सभा की प्रबन्धकारिणी समिति में सभा द्वारा एक बृहत् कोश तैयार होने का प्रस्ताव किया। तदनुसार एक कमेटी बना दी गई जिसने उसकी शैली आदि के विषय में सब मंतव्य स्थिर कर दिए और उसका प्रारंभिक कार्य्य आरंभ हो गया। इस काम के लिये प्रबन्धकारिणी ने पहले २००००) की स्वीकृति दी थी पर आगे चल कर यह पता लगा कि एक सर्वाङ्गपूर्ण बृहत् कोश तैयार करने में ५००००) से कम व्यय न होगा। धन के लिये सरकार, राजा महाराजाओं तथा सर्वसाधारण से प्रार्थना की गई और सबने उदारतापूर्वक खूब चंदे दिए। यह बात कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करनी पड़ती है कि बिना उन लोगों की सहानुभूति और सहायता के सभा इतना बड़ा कार्य्य करने में कदापि समर्थ न होती। कोश का कार्य्य सन् १९०८ में आरंभ हुआ था। भिन्न भिन्न विषयों की प्रायः २५० पुस्तकों से शब्द संग्रह किए गए थे और एक व्यक्ति उन भिन्न भिन्न पेशों और व्यापारों आदि के सम्बन्ध के शब्दों का संग्रह करने के लिये नियुक्त किया गया था जिनके शब्द इससे पहले हिन्दी के किसी कोश में सम्मिलित नहीं किए गए थे। इसके अतिरिक्त कृषि, व्यापार, कला-कौशल आदि सभी मुख्य मुख्य विषयों के प्रकाशित ग्रंथों से भी शब्द लिए गए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे पहले भारतवर्ष की किसी भाषा में इतना बड़ा कोश बनाने का प्रयत्न नहीं हुआ था। सन् १९१० में बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए० ने पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बा० अमीरसिंह की सहायता से इस का संपादन आरंभ किया था। बीच में संपादन विभाग में कई परिवर्त्तन हुए थे और अब इसमें पं० रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, बा० जगन्मोहन वर्म्मा, बा० अमीरसिंह और बा० रामचंद्र वर्म्मा ये ५ सज्जन काम कर रहे हैं।

कोश को ९६—९६ पेजों के अङ्कों में प्रकाशित करना निश्चित हुआ था और अब तक इसके दस अंक तैयार हो चुके हैं। यद्यपि यह कोश अभी तक समाप्त नहीं हुआ है तथापि उसका जितना अंश प्रकाशित हो चुका है उतने अंश से ही यह प्रकट हो जाता है कि इसके प्रस्तुत करने में कितना परिश्रम किया गया है। इस कोश में बहुत अधिक शब्द संगृहीत कर के व्युत्पत्ति सहित उनके अर्थ दिए गए हैं, स्थान स्थान पर अच्छे अच्छे कवियों और लेखकों के उदाहरण उद्धृत किए गए हैं; विज्ञान और दर्शन शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों की पूरी पूरी व्याख्या की गई है और प्रत्येक पदार्थ का समुचित विवरण दिया गया है। डा० ग्रियर्सन, डा० हार्नली, डा० गंगानाथ झा एम० ए० फ्रांस के प्रो० सिलवेनी आदि बड़े बड़े विद्वानों ने इसकी जितनी प्रशंसा की है वह इसकी उपयोगिता और उत्तमता का बहुत अच्छा प्रमाण है।

कोश के साथ साथ सभा हिन्दी भाषा का एक सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण भी बनवा रही है। उसने ५००) का पुरस्कार उन सज्जनों को देना निश्चित किया था जिनका बनाया हुआ व्याकरण सर्वोत्तम ठहरेगा। व्याकरण बनाने की शैली सभा ने पहले ही एक कमेटी द्वारा निश्चित कर दी थी और उसकी बहुत सी प्रतियाँ छाप कर जनसाधारण की जानकारी के लिये बाँट दी गई थीं।

साहित्य सम्बन्धी इतने कार्य्यों के साथ साथ सभा अदालतों में नागरी का प्रचार करने के लिये भी बराबर प्रयत्न करती रही है और यथासाध्य उसके स्वत्वों की रक्षा करती आई है। श्रीयुक्त बा० गौरीशंकरप्रसाद बी. ए., एल एल. बी. के प्रस्ताव पर सभा ने प्रयाग के हाई कोर्ट से इस बात की प्रार्थना की थी कि किसी दस्तावेज को पेश करते समय लोग उसका उर्दू अनुवाद भी दाखिल करने के लिये बाध्य न किए जायँ और यदि कोई दस्तावेज आदि किसी अन्य भाषा में लिखा हो तो उसका हिन्दी अनुवाद भी अदालतों में बिना किसी प्रकार की आपत्ति के ले लिया जाय। हाई कोर्ट ने कृपा कर सभा की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और इस सम्बन्ध में २० जून सन् १९०८ के गवर्नमेंट गजट में इस आशय की एक आज्ञा भी प्रकाशित हो गई। सन् १९०९ में विलायत के भारत सचिव (Secretary of State for India) ने प्रस्ताव किया था कि जो परीक्षार्थी सिविल सर्विस की परीक्षा देना चाहें वे हिंदुस्थानी भाषा और फारसी तथा नागरी लिपियों से अवश्य परिचित हों। अदालतों में नागरी की दरखास्तें आदि पेश करने में अमलों की स्वार्थपरता तथा उदासीनता और जन साधारण की अज्ञानता के कारण उपस्थित होनेवाली कठिनाइयों का सामना सभा को पहले भी करना पड़ता था और अब भी करना पड़ता है। यहाँ तक कि हिन्दी तथा नागरी के पक्षपाती वकीलों आदि को भी कभी कभी अपने सिद्धांतों का पालन करने में अपने व्यवसाय में हानि पहुँचने की आशंका होती है और उन्हें अपना सिद्धांत छोड़ना पड़ता है। सर्वसाधारण के नित्य के कार्य्यों और व्यवहारों में भी नागरी का प्रचार कराना सभा का एक मुख्य उद्देश्य है। सभा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न भिन्न कार्य्यों में बा० गौरीशंकरप्रसाद जी वकील से बहुत अधिक सहायता मिलती रहती है। अपने सब अदालती कामों में यथासाध्य नागरी अक्षरों का व्यवहार करके आप दूसरों के लिये केवल एक अच्छा आदर्श ही नहीं उपस्थित करते बल्कि जब कभी कोई अदालती कर्म्मचारी किसी दरखास्त आदि के नागरी में लिखे होने के कारण उसके लेने से इनकार करता अथवा उस पर कोई आपत्ति करता है तो आप तुरंत उसकी सूचना हाकिमों को देते और उसका उचित प्रतिकार कराते हैं।

सन् १९०७-०८ में तीन बड़े महानुभावों ने अपने शुभागमन से सभा को कृतार्थ किया था जिनमें से मुख्य इस प्रांत के छोटे लाट थे। श्रीमान् को एक अभिनंदनपत्र भी दिया गया था जिसका उत्तर देते हुए श्रीमान् ने सभा के उद्देश्यों से बहुत सहानुभूति प्रकट की थी और उसे सब प्रकार से सहायता देने का वचन दिया था। शेष दो अन्य प्रतिष्ठित निरीक्षकों में से एक मि० डेलाफास डाइरेक्टर और दूसरे स्वर्गीय मझौली नरेश थे। मिस्टर डेलाफास सभा में एक घंटे से अधिक समय तक रहे और सभा तथा उसके कार्यों की सब प्रकार की जानकारी प्राप्त करके उन्होंने उत्साहवर्द्धक रीति से अपनी प्रसन्नता प्रकट की। सन् १९०८ ई० के जूलाई मास में उन्होंने सभा के पंद्रहवें वार्षिकोत्सव में सभापति का आसन ग्रहण करने की कृपा की और अपनी छोटी परन्तु महत्वपूर्ण वक्तृता में सभा के काम से पूर्ण और सच्चा संतोष प्रकट किया। काश्मीर राज्य के राय बहादुर दीवान अमरनाथ जी का निरीक्षण भी बड़े मारके का था, जिससे यह लाभ हुआ कि श्रीमान् काश्मीर नरेश ने सभा के डेपुटेशन से मिलना स्वीकार किया और कृपा करके कोश-फंड में एक हजार रुपया प्रदान किया।

गत कुछ दिनों से लोगों के चित में यह विचार उठा करता था कि एक ऐसा वार्षिक सम्मेलन हुआ करे जिसमें लेखक, संपादक, प्रकाशक और हिन्दी के हितैषी सज्जन एकत्र होकर हिन्दी की हितकामना और उन्नति का विचार किया करें। यह सभा यह कार्य करने के लिये अग्रसर हुई।

बा० श्यामसुन्दरदास ने ७ मई सन १९१० ई० की प्रबन्ध-कारिणी समिति में इस विषय का प्रस्ताव किया कि ऐसी एक सभा बनारस में की जाय। तदनुसार सभा की देखरेख में १०, ११ और १२ अकतूबर को पहला हिन्दी साहित्यसम्मेलन बड़ी धूमधाम और सफलता से हो ही गया। तीन बड़े शामियाने इसी लम्बे चौड़े मैदान में खड़े किए गए थे। सजावट भी सुन्दर और मनोमुग्धकारी थी। इस सम्मेलन में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय बी० ए० एल एल० बी० ने सभापति का आसन सुशोभित किया था। इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये भारतवर्ष के सब भागों से ३०० प्रतिनिधि आए थे। ४२ प्रतिनिधि भिन्न भिन्न समाचारपत्रों के थे जो सभापति के आसन के सामने एक दर्शनीय पंक्ति में विराजमान थे। हिन्दी-प्रेमियों का ऐसा भारी जमाव और ऐसा उत्साह-प्रवाह पहले कभी नहीं देखा गया था।

१८ जनवरी सन् १९१३ ई० को इस प्रांत के छोटे लाट श्रीमान् सर जेम्स मेस्टन साहब बहादुर ने अपने निरीक्षण से इस सभा को सम्मानित किया। बा० श्यासुन्दरदास बी० ए०, पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०, बा० गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल० बी० और राय कृष्णजी ने उचित रीति और आदर से श्रीमान् का स्वगत किया और वे उन्हें सभाभवन में लिवा ले गए। मैजिक लालटैन और उसके स्लाइडों को देख कर श्रीमान् ने पुस्तकालय में पदार्पण किया और वहाँ की छपी हुई पुस्तकों तथा सभा द्वारा संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह देखा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर कोशविभाग में पधारे। यहाँ श्रीमान् ने कोश संपादन-कार्य का ढंग मन लगा कर देखा और कतिपय संपादित शब्दों के विषय में कुछ पूछ पाछ भी की। जब उन्हें कोश का कार्यक्रम भली भाँति समझा दिया गया तब श्रीमान् ने अपना पूर्ण संतोष प्रकट किया। इसके बाद श्रीमान् सभा के बड़े हाल में पधारे। श्रीमान् के बैठ जाने पर सभा की ओर से स्वागतपत्र अर्पित किया गया जिसे बा० श्यामसुन्दर-दास बी० ए० ने पढ़ सुनाया। श्रीमान् ने जो विस्तृत और उत्साहवर्द्धक उत्तर दिया उसमें सभा और उसके कार्य्यों के विषय में इस प्रकार कहा था—

"महाशयो,

न नागरीप्रचारिणी सभा से मैं अपरिचित हूँ और न नागरीप्रचारिणी सभा मुझसे। आप लोगों में से जो पुराने सभासद होंगे उन्हें वह बात चीत याद होगी जो उनसे और मुझसे सन् १९०० में हुई थी जब कि मैं लार्ड मैकडालन के समय में अर्थसचिव था।...........उस समय आप लोग जिस बड़े कार्य्य में लगे थे वह हिन्दी वैज्ञानिक कोश था और मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि मुझे आप लोगों के विचारे हुए कार्य्य के विस्तार को देख कितना आश्चर्य्य हुआ था ....आप लोगों के कार्य के महत्व और उस धीरता को देख जिसके साथ आप लोग उसमें लगे थे और उसको सफल बनाने की आशा में थे, मेरा मन मोहित हो गया। मैं आप लोगों के श्रम और दिन दिन बढ़ती हुई तत्परता को बड़े चाव से देखता आ रहा हूँ।.................
आप लोगों के वास्तविक कार्य्यों, प्रकाशित ग्रन्थों, सुन्दर पुस्तकालय तथा दुष्प्राप्य हस्तलिखित पोथियों के अनुसन्धान की मैं अत्यन्त प्रशंसा करता हूँ।............
आप लोगों का नवीन कोश मुझे विशेष रुचिकर हुआ है और यदि उसे पूरा करने के लिये आपको सरकार से कुछ सहायता की आवश्यकता होगी तो मैं जहाँ तक होगा आपकी प्रार्थना पर अनुकूल विचार कराने का उद्योग करूँगा।"

उसी वर्ष (२३ मार्च को) सभा के परम उदार संरक्षक और सहायक श्रीमान् महाराज छत्रपुर ने सभाभवन में पधारने की कृपा की थी। कोश-विभाग का कार्य्य देख कर श्रीमान् बहुत संतुष्ट हुए थे और उसके लिये आपने सभा को विशेष सहायता देने का वचन दिया था। इंडिया काउन्सिल के भूतपूर्व मेम्बर सर के० जी० गुप्त का सभा में पधारना भी विशेष उल्लेख योग्य और उसकी मान-वृद्धि का कारण है।

प्रत्येक जाति का भाग्य बहुत से अंशों में उसके साहित्य की उत्तमता और अधिकता पर ही निर्भर रहता है। बिना विचारों की वृद्धि और विकास के उसकी दशा का सुधार प्रायः असंभव होता है। हिंदी का अस्तित्व बनाए रखने के लिये उसे देश और काल के अनुकूल बनाने की बहुत बड़ी आवश्यकता है, उसमें सभी श्रेणियों और विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकों की बहुत जरूरत है। यह एक ऐसी आवश्यकता है जो प्रत्येक हिंदी-हितैषी को बहुत दुःखित औ चिंतित करती है। यद्यपि उसके प्राचीन कवियों में सूर, तुलसी, जायसी और केशव जैसे प्रतिभाशाली और जगत्प्रसिद्ध विद्वानों के नाम लिये जा सकते हैं, पर उनके ग्रंथों के शुद्ध और उत्तम संस्करणों के अभाव के कारण सर्व साधारण तक उनके विचार नहीं पहुँच सकते। इन्हीं सब बातों का ध्यान रख कर सभा ने बा० श्यामसुंदरदास बी० ए० से संपादित करा कर सौ पुस्तकों की "मनोरंजन पुस्तकमाला" प्रकाशित करना निश्चित किया है। इस पुस्तकमाला में इतिहास, जीवन-चरित, विज्ञान, भूगर्भ, समाजशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, राजनीति आदि सभी उत्तमोत्तम और उपयोगी विषयों की पुस्तकों के अतिरिक्त चंदबरदाई से लेकर दीनदयाल गिरि तक सभी अच्छे अच्छे कवियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताओं के सुंदर संग्रह भी रहेंगे। निम्नलिखित विद्वानों और हिंदी-सेवियों ने इस पुस्तकमाला के लिये पुस्तकें लिखना स्वीकार किया है।

साहित्याचार्य्य प्रो० रामावतार पांडे एम० ए०, मि० काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए० (आक्सफर्ड) बार ऐटला, पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० गणपति जानकीराम दूबे बी० ए०, पं० माधवराव सप्रे बी० ए०, पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, पं० रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, बा० जगन्मोहन वर्म्मा, बा० रामचंद्र वर्म्मा, पं० रामनारायन मिश्र बी० ए०, पं० चन्द्रमणि शुक्ल एम० ए०, ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा, ठाकुर गदाधरसिंह, डाक्टर महेन्द्रलाल गर्ग, बा० कृष्णबलदेव वर्म्मा, पं० हरीराम दिवेकर एम० ए०, बा० व्रजनंदन सहाय बी० ए०, प्रो० बसंतलाल बी० एस सी०, प्रो० रामदास गौड़ एम० ए०, बा० संपूर्णानंद बी० एस सी०, पं० लज्जाराम मेहता, पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०, पं० हीरानंद शास्त्री एम० ए०, बा० हरीकृष्ण जौहर, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, बा० सर्यू नारायण बी० ए०।

इस पुस्तकमाला में अब तक निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) आदर्श जीवन लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार " बा० रामचन्द्र वर्मा।
(३) गुरुगोविन्दसिंह " बा० वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिन्दू " पं० लज्जाराम मेहता।
(३ भागों में)
(५) राणा जंगबहादुर" बा० जगन्मोहन वर्म्मा।
(६) भीष्मपितामह " पं० द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी।

प्रायः सभी समाचारपत्रों ने इस माला की उक्त पुस्तकों की बहुत अच्छी आलोचनाएं की हैं और सर्वसाधारण ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। अब तक जितनी सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं उनसे पता लगता है कि समाप्त हो जाने पर यह पुस्तकमाला हिंदी साहित्य में बहुत ही उच्च स्थान प्राप्त करेगी।

सभा अपनी आयु के २१ वर्ष समाप्त कर चुकी है और अब उसका २२ वाँ वर्ष चल रहा है। उसके कार्यों के इस संक्षिप्त विवरण से प्रकट होता है कि भविष्य में हिंदी-साहित्य के निर्माण आदि में उससे बहुत अधिक सहायता मिलेगी। सभा के उत्साही सभासद रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स के शब्दों में यह सभा कोरे स्वप्न देखनेवालों की नहीं है, बल्कि सच्चे और समझदार काम करनेवालों की है। सभा ने अब तक जितने काम किए हैं, यद्यपि स्थानाभाव से उन सबका वर्णन नहीं हो सका है तथापि इस छोटे से लेख में जो बातें दी गई हैं उन्हीं से यह सिद्ध हो जाता है कि यह सभा मातृभाषा के सभी सेवियों और शुभचिन्तकों की सहायता और सहानुभूति की पात्र है। चाहे तीव्र समालोचक और दोषदर्शी सभा के किए हुए कामों को उन कामों के मुकाबले में कुछ भी न समझें जो अभी होने को बाकी हैं, तथापि इसमें संदेह नहीं कि सरकार तथा सर्व साधारण ने सभा की सेवाओं को अच्छी तरह स्वीकार कर लिया है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की गत २२ वर्षों के आयव्यय का लेखा

(जूलाई १८९३ से) (जून १९१५ तक)

आय का ब्योरा ।

	धन की संख्या		
	रुपया	आना	पाई
सभासदों का चन्दा	२८९१२	१२	३
विशेष चन्दा	३५६२	...	...
पुस्तकों की बिक्री	१४३८७	५	११
व्याज	७७	१३	१०
फुटकर आय	२६५८	९	८
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	४२६०	...	...
गवर्न्मेण्ट की सहायता	९७९१	८	...
स्थायी कोश	३१७७५	१	१
पुस्तकालय	७८३४	९	६
पृथ्वीराजरासो	८४०९	१	७
सम्मेलन	१४३८	४	६
नागरीप्रचार	१०४७	१३	४½
पारितोषिक	३६५	...	...
अमानत	२७६५	...	३
राधाकृष्णदास स्मारक	२१७	४	...
हिन्दी कोश	३१९८९	१०	४½
मनोरंजन पुस्तकमाला	२५३६	१२	...
	१५२०२८–१०–४		

व्यय का ब्योरा ।

	रुपया	आना	पाई
छपाई	२३७१९	१	८
कार्यकर्ताओं का वेतन	११५२९	५	१
डाक व्यय	५५६८	६	...
फुटकर व्यय	६४७७	६	..
पारितोषिक	११२३	...	...
नागरीप्रचार	३४९७	११	९
मकान का किराया	५६९	...	...
साहित्य सम्मेलन	१५२३	१	१½
पुस्तकालय	७९९२	१२	११
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	२९३५	२	...
पृथ्वीराजरासो	७२८४	७	...
हिन्दी पुस्तकों की खोज	८३४४	९	३
स्थायी कोश	३२५५९	८	११
व्याज	१२८	८	५
हिन्दा कोश	२९७६१	१५	७
मरम्मत	१५३	११३	११½
अमानत	२५५१	१५	...
राधाकृष्णदास स्मारक	१३१	...	...
मनोरंजन पुस्तकमाला	५२०४	५	९
	१५१०५५–२–४		
बचत	९७३–८–०		
	१५२०२८–१०–४		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत बाइस वर्षों में सभा की विशेष आर्थिक सहायता करनेवालों की नामावली ।

—:०:—

	रुपए
संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट	६०००
भारत की गवर्नमेंट	३०००
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर छत्रपुर ...	२७५०
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बीकानेर	२५००
एक सहायक (राजकोट निवासी) ...	२२५०
राय शिवप्रसाद	२०००
राजा कमलानन्दसिंह	२०००
श्रीमान् महाराजाधिराज बर्दवान	२०००
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बनारस	२०००
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर भावनगर	१५००
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अलवर...	१५००
आनरेब्ल डाकृर सुन्दरलाल सी० आई० ई०	१५००
श्रीमान् राजा साहब भिनगा	१०००
श्रीमान् ग्वालियर नरेश	१०००
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर काश्मीर	१०००
श्रीमान् गायकवाड़ बहादुर बड़ोदा ...	१०००
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अयोध्या	१०००
आनरेब्ल बाबू मोतीचन्द साहब	८५०
राजा माधवलाल सी० एस० आई०	५१५
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर इन्दौर ...	५००
राय राधारमण	५००
राजा बलवंतसिंह आवागढ़	५००

साधारण अधिवेशन ।

शनिवार ता० २९ जनवरी १९१६ संन्ध्या के ५ बजे

स्थान-सभाभवन ।

उपस्थित

पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० सभापति
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
बाबू छन्नूलाल
पंडित कृष्णराव पाउगी
पंडित केदारनाथ पाठक
पंडित रामचन्द्र शुक्ल
बाबू जगन्मोहन वर्म्मा
बाबू अमीरसिंह
बाबू रामचन्द्र वर्म्मा
बाबू हरिप्रसाद पालधि बी० ए०
बाबू गोपालदास ।

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव पर पंडित रामनारायण मिश्र सभापति चुने गए ।

(२) गत अधिवेशन (ता० २७ नवम्बर १९१५) का कार्य्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(३) प्रवन्धकारिणी समिति के ता० १९ सितम्बर १९१५ और २७ नवम्बर १९१५ के कार्य्य-विवरण सूचनार्थ उपस्थित किए गए ।

(४) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए ।

१—पंडित जगन्नाथ शास्त्री होशिंग—महल्ला गणेश दीक्षित—काशी ३॥)

२—पंडित नवलकिशोर पाण्डेय—रीवाँ कोठी—अस्सी काशी ३॥)

३—बाबू जगतबहादुर साही—रियासत डुमरिया पो० रामनगर—जिला चम्पारन ५)

४—ठाकुर रामपाल सिंह—तअल्लुकेदार—बसाई डीह—पो० सिधौली जिला सीतापुर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—पंडित भास्कर रामचन्द्र भालेराव—सम्पादक हिन्दी चित्रमय जगत—पूना १॥)

६—पंडित रामगोपाल चौबे—टेलिग्राफ मास्टर बनारस सिटी १॥)

७—पंडित शुभानन्द शर्म्मा—गंगेश्वरनाथ चुनार ३)

८—बाबू रघुनाथसिंह सब ओवरसियर—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आगरा १॥)

९—बाबू कन्हैयालाल माहौर—मंत्री माहौर वैश्य पाठशाला पो० तिलहर ज़िला शाहजहाँपुर १॥)

१०—मिस्टर सी० एल० मेहता—सब इन्पेक्टर आफ़ एकसाइस पो० सकोली जि० भंडारा ३)

११—पंडित मनिराम शर्म्मा वैद्य—स्थान रायपुर पो० कुठादें जि० जालौन १॥)

१२—बाबू बलदेवसिंह—मोहन भवन—देहरादून ६)

१३—बाबू ब्रह्मदीन सकसेना बी० ए०—खीरी लख़ीमपुर।

१४—पंडित नागेश्वरनाथ—नागेश्वरप्रेस—काशी १॥)

१५—बाबू भीमराज सिगतिया—१३१ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट—कलकत्ता ५)

१६—पंडित राममनोहर मिश्र मुनीम-पो० विजय राघवगढ़—तहसील मुरवाड़ा जि० जबलपुर

१७—पंडित लक्ष्मीनारायण नागर बी० ए० एल० एल० बी० प्रयाग ३)

१८—पंडित रामचन्द्र वैद्य—महा विद्यालय ज्वालापुर ५)

१९—पंडित अम्बिकादत्त पाठक—बकसर—शाहाबाद १॥)

२०—लाला निकामल गोल्डस्मिथ—अमृतसर १॥)

२१—बाबू रलयाराम—खत्री लक्खी चौतरा—काशी १॥)

(२२) पंडित बदरीदास शर्म्मा वेदान्तभूषण—सहकारी मंत्री—श्री सनातन धर्म्म प्रचारिणी सभा—जोधपुर (मारवाड़) १॥)

२३—बाबू उमरावसिंह स्याद्वाद महाविद्यालय काशी १॥)

२४—बाबू ब्रजेश्वरीप्रसाद चौधरी—ढकेहरी—पो० रामदत्तगंज बाजार—ज़ि० बस्ती ५)

२५—बाबू श्यामसुन्दरलाल हेड कापीइस्ट—कलेक्टरी—बस्ती १॥)

२६—पंडित रामचरित्रमणि पाँडे—मौजा बेलभरिया—पो० पैकवलिया—ज़ि० बस्ती १॥)

२७—बाबू धनुषधारी शरण—देव—गया ५)

२८—बाबू नागेश्वरसिंहजी—C/O बाबू लक्ष्मीनारायणलाल वकील औरंगाबाद ज़ि० गया १॥)

२९—बाबू हरखनारायण बी० ए० वकील औरंगाबाद ज़ि० गया १॥)

३०—बाबू बाबूलाल गुप्त—मैनेजर लक्ष्मी प्रेस गया ३)

३१—बाबू बलदेवसहाय—असिस्टेन्ट टीचर हरनचन्द्र एम० ई० स्कूल गया ५)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाँय।

(५) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं:—

पंडित ओंकारनाथ वाजपेयी—प्रयाग।

कन्यासदाचार
कन्यादिनचर्य्या
लक्ष्मी
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर
स्वामी विवेकानन्द
स्वामी रामतीर्थ
स्वामी दयानन्द
महात्मा गोखले
सौन्दर्य्यकुमारी
आदर्शपरिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्यापाकशास्त्र
समर्थ गुरु रामदास
दो कन्याओं की बातचीत
पंडित जटाशंकर लीलाधर वैद्य
उत्तम संतति
पंडित ज्योतिशरण शर्म्मा रतूड़ी टिहरी—गढ़वाल
जीवनादर्श
बाबू भगवानदास माहेश्वरी, शीशमहल, मेरठ
भारतीय शासन
पंडित श्रीधर पाठक इलाहाबाद
देहरादून
पंडित चुन्नीलाल ज्योतिषी कलकत्ता
मिस्ट्रीज़ आफ़ शेखावाटी
पंडित शंकर नरहर जोषी पूना
भगवद्गीता
प्रोफ़ेसर लक्ष्मीचन्द एम० ए० काशी
रोशनाई बनाने की किताब
साबुन
पंडित बदरीदास शर्म्मा जोधपुर
योगवासिष्ठ महारामायण
बाबू शिवलाल गणेशीलाल मुरादाबाद
पुनर्जन्मविचार
पंडित जयदेव शास्त्री—परसपुर—गोंड़ा
उपदेश भजनावली
बाबू हरिहरनाथ बी० ए० मध्यमेश्वर—काशी
श्रीमती एनी बेसेन्ट
पंडित बालप्रसाद शर्म्मा ज्वालापुर
भूगोल एशिया
कुमार चिदानन्द—फीलखाना—बनारस
योग गुरु
जैन भंडार भीनासर—बीकानेर
प्रश्नोत्तरसमीक्षा
सत्यमिथ्यार्थनिर्णय
लाला देवराज—कन्या महा विद्यालय जालन्धर
स्त्रियों का दान
पहली पाठावली
पंडित छबीलेलाल गोस्वामी—वृन्दावन
वेदान्त कामधेनु
श्री निम्बार्क महामुनीन्द्र
खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त
भारत भारती
हसीना भाग ३—४
स्वर्णकान्ता
कुसुमलता
लंडन रहस्य नं० १७, १८
मल्लिकादेवी
तारा
लखनऊ की कब्र

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्धकारिणी समिति।

रविवार तारीख १२ मार्च १९१६ सन्ध्या के ६ बजे

स्थान-सभाभवन।

उपस्थित

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० सभापति
बाबू हरिप्रसाद पालधि बी० ए०
पंडित रामनारायणमिश्र बी० ए०
पंडित कृष्णराव पावगी
बाबू छन्नूलाल
बाबू मुरारीदास
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
पंडित साँवलजी नागर
बाबू वेणीप्रसाद

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव तथा बाबू हरिप्रसाद पालधि के अनुमोदन पर बाबू श्यामसुन्दरदास बी०ए० सभापति चुने गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) गत अधिवेशन (ता० २१ जनवरी १९१६) का कार्य्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) बाबू गौरीशंकरप्रसाद तथा पंडित रामनारायण मिश्र के ये प्रस्ताव उपस्थित किए गए कि सभा के वार्षिकोत्सव पर श्रीमान् कश्मीर-नरेश ने जो १००० रु० सभा के सहायतार्थ दिया है वह स्थायी कोश में जमा किया जाय। उसका गवर्नमेंट प्रामिसरी नोट खरीद लिया जाय। अथवा वह तीन वर्ष के लिये बंक में फिक्सड डिपाजिट में रखा जाय।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव आगामी वर्ष का बजट बनाते समय तथा आगामी वार्षिक अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(४) नियम ७५ में "प्रबन्ध कारिणी समिति" के स्थान पर "निरीक्षक पुस्तकालय तथा सभा के मंत्री" करने के सम्बन्ध में बाबू मुरारीदासजी का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। पर इस प्रस्ताव को बाबू मुरारीदासजी ने लौटा लिया।

(५) पण्डित श्यामबिहारी मिश्र का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि हिन्दी पुस्तकों की खोज की त्रय-वार्षिक रिपोर्ट तैयार करने के लिये दो मास तक २०) मासिक वेतन पर एक लेखक नियत करने के बदले इस कार्य के लिये ३०) वा ३५) मासिक वेतन पर तीन मास के लिये एक लेखक की नियुक्ति स्वीकार की जाय।

निश्चय हुआ कि लेखक के तीन मास के वेतन के लिए १००) तक स्वीकार किया जाय।

(६) पण्डित गंगाशंकर पंचोली का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि नागरीप्रचारिणी पत्रिका में "कलम और पैवन्द" तथा "कृषिविद्या" पर उनके जो लेख छपे हैं उन्हें जुदा पुस्तकाकार प्रकाशित करने के लिये सभा उन्हें अपनी अनुमति दे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) प्रयाग के हरिभवन-पुस्तकालय का १४ जनवरी १९१६ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने पुस्तकालय के लिये सभा द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें बिना मूल्य माँगी थीं।

निश्चय हुआ कि हिन्दी शब्द सागर और मनोरंजन पुस्तकमाला को छोड़ कर अन्य जिन पुस्तकों के लिये उन्होंने लिखा है उनकी एक एक प्रति उन्हें बिना मूल्य दी जाय।

(८) जबलपुर के पण्डित सूर्य्यनारायण शर्मा का ६ फरवरी १९१६ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनकी आर्थिक अवस्था ठीक नहीं है अतः उनका वार्षिक चन्दा क्षमा किया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(९) पण्डित रामनारायण मिश्र का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि पण्डित श्यामनारायण शर्म्मा को पुस्तकालय के अँगरेज़ी विभाग से Fishers Gazeteer नामक पुस्तक दी जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(१०) बाबू शिवप्रसाद गुप्त का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि वाशिंगटन की पब्लिक लाइब्रेरी को सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य दी जायँ।

निश्चय हुआ कि अब तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनकी एक एक प्रति बाबू शिवप्रसाद गुप्त के पास वाशिंगटन की पब्लिक लाइब्रेरी के लिये भेज दी जाय।

(११) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा का ११ मार्च का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि (क) सभा के वर्त्तमान संरक्षकों से प्रार्थना की जाय कि वे सभा के लिये अपनी वार्षिक सहायता नियत कर दें। (ख) श्रीमान् महाराजा साहब काश्मीर, कोटा, झालावाड़ डूँगरपुर और गिद्धौर सभा के संरक्षक चुने जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय हुआ कि (क) इस सम्बन्ध में मंत्रीजी विचार कर यह सम्मति दें कि इसका प्रबन्ध किस प्रकार करना उचित होगा। (ख) इन नृपतियों के संरक्षक चुने जाने का प्रस्ताव साधारण सभा में उपस्थित किया जाय।

(१२) बुलन्दशहर की नागरीप्रचारिणी सभा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बदायूँ के मुन्सिफ़ के इजहार आदि नागरी में लिखने पर जो आन्दोलन हो रहा है उसके सम्बन्ध में सभा से उचित उद्योग किया जाय।

निश्चय हुआ कि सभा की ओर से गवर्न्मेण्ट के पास एक मेमोरियल इसी मास में इस समिति का एक विशेष अधिवेशन कर के भेजा जाय और बाबू गौरीशंकरप्रसाद जी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा कर इस मेमोरियल को तयार कर दें।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

साधारण सभा।

शनिवार तारीख २५ मार्च १९१६ सन्ध्या के ५॥ बजे

स्थान—सभाभवन।

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव पर पं० रामचन्द्र शुक्ल सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (ता० २६ फरवरी) का कार्य्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१—ठाकुर महावीरसिंह वर्म्मा—अटिया—पो० रसूलाबाद जि० उन्नाव १॥)

२—पंडित रामदहिन मिश्र—हेड पंडित—ट्रेनिंग स्कूल, महेन्द्रू—बाँकीपुर १॥)

३—बाबू बीजराज अग्रवाल—दानापुर केन्टून्मेन्ट ५)

४—बाबू भगवन्नारायण भार्गव वकील महल्ला टकसाल झाँसी ३)

५—बाबू कृष्णदेवप्रसाद गौड़ बड़ी पियरी—काशी १॥)

६—पंडित सीताराम उपाध्याय पिलकिछा—जौनपुर २)

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

१—पं० केशवानन्द चौबे, छुरा—रायगढ़—

२—पं० भिखारीराम मिश्र वैद्य, पट्टी—जि० प्रतापगढ़।

३—बाबू महावीरप्रसाद खजानची—नानपारा—बहराइच

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद-पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

पंडित भगवद्दत्त शर्म्मा—कारेलीबाग—बरोदा
सयाजीचरितामृत

पंडित महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य—ज्ञानपुर—बनारस
वैद्यकलाधर भाग १
व्यापारमहोदधि भाग १

बाबू भगवन्नारायण भार्गव बी० ए०—वकील—झाँसी—
राष्ट्रीय तरंग

पंडित बजरंगदत्त शर्म्मा—गया
होली में हजामत

पंडित श्यामजी शर्म्मा—भदवर—आरा
हिन्दी शिक्षक व्याकरण

बाबू वल्लभदास, रँगीलदास का फाटक—काशी
विनयपत्रिका

बाबू अम्बिकाचरण चक्रवर्त्ती—शास्त्रप्रकाशक प्रेस-काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विफल उद्यम

पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा कलकत्ता

इटाली की स्वाधीनता

बालबीर चरितावली

ख़रीदी गईं तथा परिवर्त्तन में प्राप्त:—

स्वावलम्बन

अन्नपूर्णा का मन्दिर

तिलोत्तमा

शकुन्तला

लण्डनरहस्य नं० १९—२०

अभागे का भाग्य भाग ४

वारांगनारहस्य

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

—:०:—

सूचना ।

आगामी वर्ष इस सभा की प्रबन्धकारिणी समिति में निम्नलिखित सज्जनों के स्थान खाली होनेवाले हैं,—

काशी से ।

(१) बा० बाँकेबिहारीलाल बी० एस सी० ।

(२) बा० केशवदास ।

(३) बा० माधवप्रसाद ।

(४) बा० मुरारीदास ।

बंगाल से ।

(५) बा० दमोदरदास खंडेलवाल ।

बिहार से ।

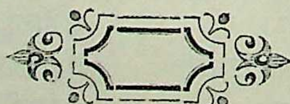
(६) राय पूरनचन्द ।

पंजाब से ।

(७) पं० जगन्नाथ निरुक्तरत्न ।

इसके अतिरिक्त नियमानुसार एक सभापति, दो उपसभापति (जिन तीनों में से एक का काशीस्थ होना आवश्यक है) एक मन्त्री और एक उपमन्त्री (जिन दोनों का काशीस्थ होना आवश्यक है) का भी आगामी वर्ष चुनाव होगा। सभा के २९ वें नियम के अनुसार सब सभासदों से सविनय प्रार्थना है कि यदि वे उक्त स्थानों की पूर्त्ति के लिये किसी सज्जन के लिये प्रस्ताव करना चाहें तो उसकी सूचना प्रबन्धकारिणी समिति को ३० जून १९१६ तक दे दें। स्मरण रहे कि जिन सज्जनों के स्थान खाली होनेवाले हैं वही सज्जन फिर से भी उन्हीं अथवा दूसरे स्थानों के लिये चुने जा सकते हैं ।

मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A 414 [संख्या ११

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

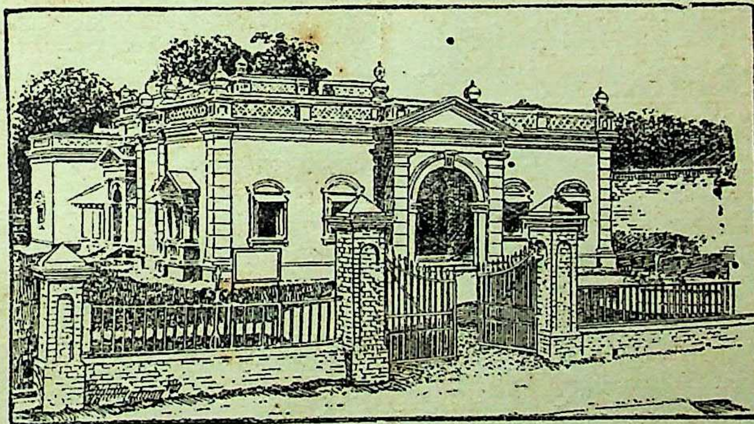
नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

मई १९१६

सम्पादक—रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:o:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥
भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय-सूची ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभास्कर रामचन्द्र भालेराव 'कविदास'

सम्पादित ।

क्या आपको यह मालूम है कि,

हिन्दी-चित्रमय-जगत्

राष्ट्र-भाषा हिन्दी की उच्चश्रेणी का ; हिन्दी-भाषा-भाषियों का अत्यन्त लाड़ला; मराठी, हिन्दी, अँग्रेज़ी, बँगला इत्यादिक भाषाओं के धुरन्धर लेखकों के लेख प्रकाशित करनेवाला; महाराष्ट्र में 'हिन्दी राष्ट्र-भाषा भवतु ' का झंडा फहरानेवाला; सामयिक महत्त्वपूर्ण लेख, कविता तथा चित्रों के प्रकाशित करने में युगांतर प्रस्थापक; हिन्दी में अपने ढंग का सब से पहिला और अनूठा मासिक पत्र है ?

यदि, नहीं,

तो आप उसे आज ही मंगाकर देखिये ! निस्सन्देह आप उसकी अन्तरंग की चटक मटक पर मोहित होंगे और हिन्दी में ऐसे अनूठे पत्रप्रकाशन के साहस पर दांतों उँगली दबायँगे । पत्र की लागत के देखते मूल्य कुछ नहीं । केवल सादा संस्करण ३।।) राजसंस्करण ५।।) तिसपर भी विशेषांक उपहार में ! एक प्रति का ।-), ।।)

पता—

मैनेजर, हिन्दी-चित्रमय-जगत्,

पूना सिटी ।

आवश्यकता है

हिन्दी पुस्तकों की बिक्री के लिये दो भ्रमणकारी एजेण्टों की । मासिक वेतन १५) रु० और मार्गव्यय दिया जायगा । ५०) रु० की नगद ज़मानत देनी चाहिए । जिन लोगों को इस काम का पहिले का अनुभव हो वही प्रार्थनापत्र भेजें ।

सेक्रेटरी

नागरीप्रचारिणी सभा—काशी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

भाग २० | मई १९१६. | संख्या ११

पाश्चात्य तर्क-शास्त्र ।

[लेखक,—श्रीयुक्त बा०हरिहरनाथ बी० ए०]

(पृष्ठ १९९ से आगे ।)

(१०)

अनुमान ।

किसी प्रतिज्ञा से (जिसकी सत्यता स्वीकृत हो) किसी ऐसी प्रतिज्ञा का निकालना, जो पहली प्रतिज्ञा से भिन्न तो अवश्य हो पर उसी के स्वीकार करने ही का फल हो, अनुमान कहा जाता है। पहली प्रतिज्ञा अर्थात् जिससे दूसरी प्रतिज्ञा निकाली जाती है उसको पूर्वावयव कहते हैं। और दूसरी प्रतिज्ञा को उपसंहार कहते हैं।

अनुमान दो प्रकार का होता है; एक वह जिसमें पूर्वावयव एक नहीं वरन् दो रहते हैं। इसको व्यवहितानुमान कहते हैं। और दूसरा वह जिसमें पूर्वावयव एक ही रहता है। इसको अव्यवहितानुमान कहते हैं।

अव्यवहितानुमान के दो भेद होते हैं एक विरोधजन्य और दूसरा संकृष्ट (Education)

(११)

अव्यवहित अनुमान ।

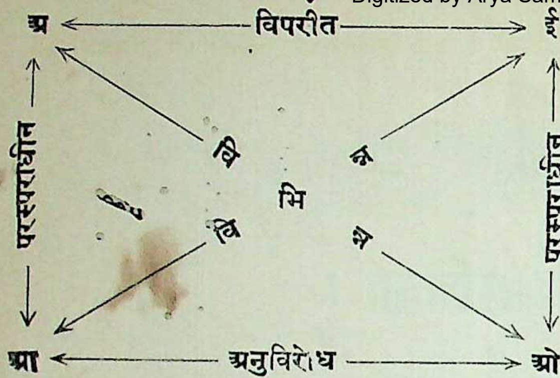
(१) विरोधजन्यानुमान ।

निरपेक्ष प्रतिज्ञा का परस्पर विरोध तब होता है जब उनके उद्देश्य और विधेय एक ही होते हैं पर उनके गुण* वा परिमाण* दोनों में परस्पर भेद रहता है। विरोध चार प्रकार के हैं :—(१) विभिन्न (२) विपरीत (३) अनुविरोध और (४) परस्पराधीन। नीचे दिए हुए चक्र से चारों प्रकार की प्रतिज्ञाओं का परस्पर विरोध स्पष्ट हो जाता है:—

*प्रतिज्ञा की विस्तृतता वा अविस्तृतता को प्रतिज्ञा का परिमाण कहते हैं और उसकी निषेधकता वा विधायकता को उसका गुण कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अर्थात् अ विपरीत है ई का; परस्पराधीन है आ का, और विभिन्न है ओ का; आ—परस्पराधीन है अ का, अनुविरोधी है ओ का, और विभिन्न है ई का, इत्यादि ।

अब यह स्पष्ट हुआ कि प्रत्येक प्रतिज्ञा का वही उद्देश्य और विधेय रखते हुए केवल गुण और परिमाण बदलने से चार प्रतिज्ञाएँ बनेंगी जिनमें चार प्रकार का विरोध सम्बन्ध रहेगा ।

उदाहरणः—

(पूर्वावयव) सब मनुष्य नश्वर हैं.........अ

इससे निम्नलिखित ३ विरोधजन्याव्यवहितानुमान हुएः—

(उपसंहार) कोई मनुष्य नश्वर नहीं है...... ई
" कुछ मनुष्य नश्वर हैं............ आ
" कुछ मनुष्य नश्वर नहीं हैं..... ओ

इनके परस्पर विरोध का नाम ऊपर लिखा जा चुका है । ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर के अ, इ, आ, ओ में से किसी को पूर्वावयव मान कर शेष का उपसंहार निकाल सकते हैं ।

अब प्रधान बात यह है कि इन चारों विरोधी प्रतिज्ञाओं को देखने से यह विदित होता है कि यदि एक को सत्य मानें तो दूसरी असत्य होती है और तीसरी कदाचित् अनिश्चित रह जाती है । इसलिये यह जानना आवश्यक है कि उक्त चारों विरोध-सम्बन्धों का फल प्रतिज्ञाओं की परस्पर सत्यता वा असत्यता पर क्या पड़ता है । नीचे लिखे नियम से यह स्पष्ट हो जाता हैः—

विभिन्न विरोध—यह सम्बन्ध एक ही उद्देश्य और विधेय-वाली ऐसी दो प्रतिज्ञाओं में होता है जिनका गुण और परिमाण दोनों से भिन्न होता है । ऐसी दो प्रतिज्ञाओं में यदि एक सत्य मानी जाय तो दूसरी अवश्य असत्य होगी क्योंकि दोनों समान नहीं हो सकतीं ।

विपरीत विरोध—यह दो विस्तृत और भिन्न गुण-वाली प्रतिज्ञाओं में होता है । ऐसी दो प्रतिज्ञाओं में यह होता है जो दोनों सत्य नहीं हो सकतीं पर दोनों असत्य हो सकती हैं ।

अनुविरोध—यह दो अविस्तृत और भिन्न गुणवाली प्रतिज्ञाओं में होता है । इन दोनों में दोनों असत्य नहीं हो सकतीं परन्तु दोनों सत्य हो सकती हैं ।

परस्पराधीन—यह दो भिन्न परिमाणवाली दो प्रतिज्ञाओं में होता है जिनमें एक विस्तृत और दूसरी अविस्तृत होती है । इसका यह नियम है कि यदि दोनों में विस्तृत प्रतिज्ञा सत्य हुई तो अविस्तृत अवश्य सत्य होगी पर यदि अविस्तृत सत्य हुई तो विस्तृत का सत्य होना सन्दिग्ध रहता है । और यदि अवि-स्तृत प्रतिज्ञा असत्य हुई तो विस्तृत अवश्य ही असत्य होगी परन्तु यदि विस्तृत असत्य हुई तो अविस्तृत की असत्यता सन्दिग्ध रहती है ।

[ये नियम उदाहरण बना कर सामने रखने से स्पष्ट हो जायंगे ।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त नियम को ध्यान में रखने से निम्न लिखित फल होता है:—

यदि ए सत्य हो तो उसका ई—असत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, आ—सत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, ओ—असत्य
,, ई ,, ,, ,, ,, ए— ,,
,, ,, ,, ,, ,, ,, आ—,,
,, ,, ,, ,, ,, ,, ओ—सत्य
,, आ ,, ,, ,, ,, ए—संदिग्ध
,, ,, ,, ,, ,, ,, इ—असत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, ओ—संदिग्ध
,, ओ ,, ,, ,, ,, ए—असत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, ई—संदिग्ध
,, ,, ,, ,, ,, ,, आ— ,,

इसी प्रकार

यदि ए असत्य हो तो उसका ई—संदिग्ध
,, ,, ,, ,, ,, ,, आ— ,,
,, ,, ,, ,, ,, ,, ओ—सत्य
,, ई ,, ,, ,, ,, ए—संदिग्ध
,, ,, ,, ,, ,, ,, आ—सत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, ओ—संदिग्ध
,, आ ,, ,, ,, ,, ए—असत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, ई—सत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, ओ—,,
,, ओ ,, ,, ,, ,, ए— ,,
,, ,, ,, ,, ,, ,, ई—असत्य
,, ,, ,, ,, ,, ,, अ—सत्य

(२) अव्यवहित संकृष्ट अनुमाम ।

प्रत्येक निरपेक्ष प्रतिज्ञा में पहले (विध्यात्मक) उद्देश्य और फिर (विध्यात्मक) विधेय होता है। पर प्रत्येक पद निषेधात्मक भी हो सकता है और उसके उद्देश्य तथा विधेय को उलट भी सकते हैं।

अतएव निम्न लिखित आठ प्रकार की प्रतिज्ञाएँ हो सकती हैं:—

(१) उ—वि
(२) उ—*अ वि
(३) वि—उ
(४) वि—अ उ
(५) अ वि—उ
(६) अ वि—अ उ
(७) अ उ—वि
(८) अ उ—अ वि

(ऊपर के रूपों में गुण और परिमाण नहीं दिए हैं, जहाँ जैसी आवश्यकता हो लगाया जा सकता है।)

उपर्युक्त आठ प्रकार के रूप बनाने के लिये चार क्रियाएं हैं जिनका विवरण यों है:—

(१) प्रतिवर्त्तन ।

इस क्रिया से साधारण उ—वि वाली प्रतिज्ञा का रूप उ—अ वि किया जाता है। विधि यह है कि प्रतिवर्त्य प्रतिज्ञा का गुण बदल दिया जाता है और उसके विधेय का विभिन्न रूप लेते हैं। हाँ, उद्देश्य जैसे का तैसा रहने देते हैं।

उदाहरण:—

संकेत।	परिवर्त्यप्रतिज्ञा।	प्रतिवर्तित प्रतिज्ञा।
ए	सब उ वि हैं।	कोई उ अ वि नहीं हैं।
आ	कुछ उ वि हैं।	कुछ उ अ वि नहीं हैं।
इ	कोई उ वि नहीं है।	सब उ अ वि हैं।
ओ	कुछ उ वि नहीं हैं।	कुछ उ अ वि है।

(२) परिवर्तन ।

इस क्रिया से साधारण उ—वि वाली प्रतिज्ञा का रूप वि—उ किया जाता है। विधि यह है,— परिवर्त्य प्रतिज्ञा के उ—वि का स्थानपरिवर्तन किया जाता है परन्तु गुण नहीं बदलते; और जो पद परिवर्त्य प्रतिज्ञा में अविस्तृत होता है उसको परिवर्तित प्रतिज्ञा में विस्तृत नहीं होने देते।

*निषेधक पद का चिह्न।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरणः—

संकेत ।	परिवर्त्य ।	परिवर्तित ।
ए	सब उ—वि हैं	कुछ वि उ हैं ।
ई	कोई उ वि नहीं हैं ।	कोई वि उ नहीं है ।
आ	कुछ उ वि हैं ।	कुछ वि उ हैं ।
ओ	कुछ उ वि नहीं हैं ।	...

ओ प्रतिज्ञा का परिवर्तन इस कारण से नहीं होता कि परिवर्तन में उसको निषेधात्मक ही रखना होगा और वि को उ बनाना होगा; ऐसी दशा में उ विस्तृत हो जायगा जो परिवर्त्य में अविस्तृत था । इसलिये ओ प्रतिज्ञा का परिवर्तन नहीं होता ।

(३) निषेध-व्यवस्थापन ।

इस क्रिया से साधारण उ—वि वाली प्रतिज्ञा का रूप अ वि—उ किया जाता है । विधि यह है कि निषेध व्यवस्थाप्य प्रतिज्ञा का पहले प्रतिवर्तन करके फिर उसका परिवर्तन करते हैं । उदाहरणः—

संकेत ।	नि० व्यवस्थाप्य ।	नि० व्यवस्थापित ।
ए	सब उ वि हैं	कोई अ वि उ नहीं है ।
आ	कुछ उ वि हैं	......
ई	कोई उ वि नहीं है ।	कुछ अवि उ हैं ।
ओ	कुछ उ वि नहीं हैं	कुछ अ वि उ हैं ।

(४) विपर्यय ।

इस क्रिया से साधारण उ—वि वाली प्रतिज्ञा का रूप अ उ—वि किया जाता है । विधि यह है कि ए प्रतिज्ञा का विपर्यय करने में पहले उसको निषेध-व्यवस्थापित कर फिर उसको प्रतिवर्तित करते हैं और फिर (उसको परिवर्तित करके) उसका भी प्रतिवर्तन करते हैं; तथा ई प्रतिज्ञा का विपर्यय करने में पहले उसका परिवर्तन और तब प्रतिवर्तन और फिर उसका परिवर्तन करते हैं । आ तथा ओ का विपर्यय नहीं होता । उदाहरणः—

संकेत ।	विपर्य्य ।	विपर्यित ।
ए	सब उ वि हैं	कुछ अ उ वि नहीं हैं ।
ई	कोई उ वि नहीं है ।	कुछ अ उ वि हैं ।

अतएव उपर्युक्त क्रियाओं के प्रयोग का फल यों होता है कि साधारण उ—वि वाली प्रतिज्ञा का बदल कर निम्न लिखित रूप हो जाता हैः—।

क्रिया ।	बदला हुआ रूप ।
१. प्रतिवर्तन	उ—अ वि
२. परिवर्तन	वि—उ
३. प्रतिवर्तित परिवर्तन	वि अ उ
४. निषेध-व्यवस्थापन	अ वि उ
५. प्रतिवर्तित निषेध-व्यवस्थापन	अ वि अ उ
६. विपर्यय	अ उ वि
७. प्रतिवर्तित विपर्यय	अ उ अ वि

(१२)

सापेक्ष प्रतिज्ञा ।

सापेक्ष प्रतिज्ञा दो प्रकार की होती हैः—

(१) सप्रतिबन्धक (२) अभ्युपगत ।

सप्रतिबन्धक प्रतिज्ञा में किसी बात का होना किसी बात पर निर्भर रहता है; अर्थात् एक प्रतिज्ञा का प्रतिबन्ध दूसरी प्रतिज्ञा से होता है । और अभ्युपगत प्रतिज्ञा में किसी पद की विशेष अवस्था किसी दूसरे पद की अवस्था से प्रतिबाधित रहती है । उदाहरणः—

सप्रतिबन्धक प्रतिज्ञाः—

ए—यदि कोई क, ख है तो वह क सर्वदा ग होता है ।

ई—यदि कोई क, ख है तो कदापि वह क ग नहीं होता ।

आ—यदि कोई क, ख है तो कभी कभी वह क ग होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ—यदि कोई क, ख है तो कभी कभी वह क ग नहीं होता।

अभ्युपगत प्रतिज्ञा:—

ए—यदि क सत्य है तो ख भी सत्य है।

ई—यदि क सत्य है तो ख सत्य नहीं है।

इसमें अ और ओ प्रतिज्ञाएं नहीं होतीं।

नोट—उक्त सापेक्ष प्रतिज्ञाओं का अव्यवहित अनुमान भाग अधिक होने के कारण इस प्रारम्भिक लेख में देना उचित नहीं समझा गया।

(१३)

वैकल्पिक प्रतिज्ञा।

यह वह प्रतिज्ञा है जिसके विधेय में (उद्देश्य में नहीं) विकल्प रहता है। ऐसी प्रतिज्ञा सर्वदा विधायक ही होती है।

उदाहरण:—

क, ख वा ग है।

नोट—इसका भी अव्यवहित अनुमान भाग उपर्युक्त कारण ही से नहीं किया गया।

(१४)

व्यवहितानुमान (निरपेक्ष न्याय)।

व्यवहितानुमान एक क्रिया है जिससे दो प्रतिज्ञाओं से जो एक सामान्य पद से सम्बद्ध रहती हैं (अर्थात् जिन दोनों में एक पद सामान्य रहता है और शेष दो पद भिन्न रहते हैं) एक तीसरी प्रतिज्ञा निकाली जाती है जिसके द्वारा पूर्व की दो प्रतिज्ञाओं के दो भिन्न पदों में सम्बन्ध व्यञ्जित होता है।*

उदाहरण:—

१. सब मनुष्य नश्वर हैं।

२. राम मनुष्य है।

३. अतः राम नश्वर है।

ऊपर के उदाहरण में १ और २ ये दो प्रतिज्ञाएँ हैं जिनसे व्यवहितानुमान क्रिया से तीसरी प्रतिज्ञा उपसंहार रूप निकाली गई है। इसमें 'राम' और 'नश्वर' ये भिन्न पद (जो उपसंहार के उ और वि हैं) और 'मनुष्य' पद १ और २ में सामान्य है। अतएव इस न्याय में केवल तीन पद होते हैं और प्रतिज्ञाएँ भी तीन ही होती हैं। जो पद उपसंहार का उद्देश्य होता है उसको पक्ष (व्याप्य पद, अप्रधानपद) कहते हैं और उपसंहार के विधेय को साध्य (व्यापक पद, प्रधान पद) कहते हैं। जिस पूर्वावयव में पक्ष रहता है उसको उपनय (व्याप्यपूर्वावयव) कहते हैं और जिसमें साध्य रहता है उसको उदाहरण (व्याप्ति-वाक्य, अनुगम वाक्य) कहते हैं। उपर्युक्त सामान्य पद को लिङ्ग (वा मध्यम पद) कहते हैं। न्याय प्रधानतः चार प्रकार का होता है:—

(१) निरपेक्ष न्याय (२) सापेक्ष न्याय (३) वैकल्पिक न्याय और (४) द्वापर न्याय (उभयतः पाश)।

जिस न्याय में सब प्रतिज्ञाएँ निरपेक्ष रहती हैं उसको निरपेक्ष न्याय कहते हैं।

(१५)

न्याय नियम।

प्रत्येक न्याय के लिये निम्न लिखित नियम अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि इनमें से किसी का भङ्ग हुआ तो वह न्याय अशुद्ध वा निष्प्रमाण समझा जायगा।

(१) प्रत्येक न्याय में केवल तीन ही भिन्न पद रहते हैं।

(२) प्रत्येक न्याय में केवल तीन ही प्रतिज्ञाएँ होती हैं।

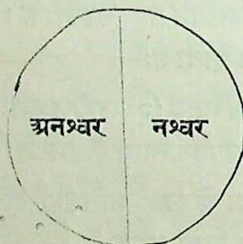
(३) मध्यम पद को कम से कम एक बार (चाहे उपनय में वा उदाहरण में) अवश्य विस्तृत रहना

* उपर्युक्त व्यवहितानुमान को सावयव वाक्य वा न्याय भी कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए । (इस नियम के भङ्ग को अविस्तृतलिङ्ग कहते हैं जो एक तर्काभास* है) । इस नियम की आवश्यकता यह है कि इसी लिङ्ग द्वारा उपनय और उदाहरण में सम्बन्ध स्थापित होता है और यदि वही लिङ्ग अविस्तृत रहा तो यह निश्चय नहीं हो सकता कि निर्णय जाति भर के व्यक्तियों के लिये हुआ वा नहीं । अर्थात् उपर्युक्त न्याय के उदाहरण में यदि 'मनुष्य' विस्तृत न होता तो यह निश्चय नहीं होता कि जाति के जितने व्यक्तियों के विषय में उपनय में निर्णय हुआ उन्हीं के विषय में उदाहरण भी हुआ या उन शेष के विषय में हुआ जो उस शेष से भिन्न हैं । और इस संदेह से उपसंहार के अशुद्ध होने का संदेह रहता है । जैसे उपर्युक्त न्याय के उदाहरण में 'मनुष्य' पद उदाहरण में विस्तृत है । यदि वहाँ 'कुछ मनुष्य' होता तो निम्न लिखित कोष्ठक के अनुसार फल होताः—



इसमें मान लीजिए कि पूरा वृत्त मनुष्यों का है जिसमें 'कुछ मनुष्य' नश्वर हैं । राम एक मनुष्य है । अब इससे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि राम भी नश्वर है । क्योंकि हम यह नहीं जानते कि राम ऊपर के दाहिने भाग में है वा बाएँ में । यदि दाहिने में है तो उपसंहार ठीक और यदि उसमें नहीं है तो अशुद्ध होगा । इसलिये उपसंहार संदिग्ध होगा ।

(शेष आगे ।)

* तर्काभास का निरूपण आगे किया जायगा ।

हवाई जहाज ।

[लेखक—श्रीयुक्त उमरावसिंह विद्यार्थी ।]

(१)

(इस लेख के लिये सभा से इस वर्ष चाँदी का रेडिचे मेडल दिया गया है ।)

हवाई जहाजों का विचार कोई नया विचार नहीं है । प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर व्योमयानों का वर्णन आया है । परन्तु वह केवल कथा-ग्रन्थों ही में है * । किन्तु अब पाश्चात्य वैज्ञानिकों की बदौलत—पाश्चात्य नवीन विज्ञान रूपी दीप के प्रकाश में—हमको केवल व्योमयानों का नाम पढ़ कर ही सन्तुष्ट नहीं होना पड़ता । किन्तु यदि हम चाहें तो उसमें बैठ कर आकाश की सैर भी कर सकते हैं ।

वायु में उड़ने के यंत्र दो प्रकार के होते हैं । एक वह जो वायु से हलके होते हैं और दूसरे वह जो वायु से भारी होते हैं । पहले प्रकार के यंत्रों को गुब्बारा (balloon) तथा दूसरे प्रकार के यंत्रों को वायुयान (aeroplane) कहते हैं ।

गुब्बारों का आरम्भिक इतिहास ।

मनुष्य में नक़्ल करने की इच्छा स्वाभाविक है । अतीत काल से मनुष्य पक्षियों को आकाश में उड़ता

* गत्वा तं यंत्रतक्षाणं वद प्राणधारं महत् ।
व्योमगामि विमानं नः प्रस्थानायोपकल्पय ॥ २२३ ॥
कथासरित्सागर, रत्नप्रभालंबक नवपतङ्ग ।
आदि आदि ।

यूनानी कथाओं में भी इसका पता चलता है । कहा जाता है कि आर्शमेदस (३६२—२८७ ईसा से पूर्व) ने—जो कि अपने समय का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था, शत्रुओं द्वारा कार्थेज के घेरे जाने पर नगरवासियों को आकाशमार्ग द्वारा बाहर ले जाने के लिये हवाई जहाज़ बनाये थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ देखता आया है। अतः धीरे धीरे मनुष्य की भी आकाश में उड़ने की इच्छा बलवती होती गई होगी और उसने उड़ने के अनेक प्रयत्न किए होंगे।

सबसे पहला प्रयत्न जिसका हमें पता चलता है एलर्ड (Allard) नामक एक फ्रांसीसी ने सन् १६६० ई० में किया था। सन् १६७१ ई० में बेस्नियर (Besnier) नामक दूसरे फ्रांसीसी ने भी उड़ने में कुछ सफलता प्राप्त की। मांटगोलिफयर(Montgolfier) नामक दो भाई गरम हवा भर कर गुब्बारे में उड़े। हवा गरम होने से अपने चारों ओर की हवा से हलकी हो जाती है तथा ऊपर को उठने लगती है। अब तक उड़ने के जितने प्रयत्न किए गए थे। सब पतली थैलियों में गरम हवा भर कर किए गए थे; किन्तु आगे चल कर प्रसिद्ध फ्रांसीसी वैज्ञानिक शार्ल्स (Charles) को सूझा कि हाइड्रोजन (Hydrogen) वायु से चौदह गुना हलका होता है; अतः हाइड्रोजन ही क्यों न इस काम में लाया जाय। रेशमी कपड़े पर वार्निश करके उसका गुब्बारा बनाया गया। उसके ऊपरी आधे भाग पर जाली लगाई गई। और जाली में मजबूत रस्सियां लटका कर आरोहियों केबैठने के लिये एक टोकरी सी बाँधी गई। गुब्बारे के बहुत हल्के हो जाने का भी भय था। इस कारण टोकरी में बालू के कुछ थैले भी रक्खे गए। पहले पहल इस प्रकार के गुब्बारे में १ दिसम्बर सन् १७८३ ई० को राबर्ट भ्रातृगण (Brothers Robert) हाइड्रोजन भर कर उड़े।

सन् १७८५ ई० में ब्लैंचर्ड (Blenchard) ने इंगलैण्ड की खाड़ी (English Channel) पार की। इसके पश्चात् १८३६ तक इस सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय उन्नति नहीं हुई।

१८३६ में एक बहुत बड़े गुब्बारे द्वारा जिसमें ८५००० घन फुट गैस भरा हुआ था, इंगलैण्ड की खाड़ी फिर दूसरी बार पार की गई। सन् १८६३ ई० में पेरिस (Paris) के एक फोटोग्राफर ने इससे भी बड़ा गुब्बारा तैय्यार किया। इसमें २००००० घनफुट गैस भरा हुआ था और यह १३ आरोहियों को ले जा सकता था।

इसके बाद समय समय पर अनेक सुधार होते गए। सबसे पहले मिस्टर गिफर्ड (Giffard) ने ऐसा गुब्बारा बनाया जो अपने इच्छानुसार उड़ाया जा सके। यह गुब्बारा ११४ फुट लम्बा था और मध्य में इसका व्यास ३९ फुट था। इसकी शकल सिगार से बहुत कुछ मिलती थी। चलाने के लिये भाप का एक एञ्जिन (engine) भी इसमें लगाया गया था।

इसके अनन्तर आविष्कारकों ने समय समय पर उद्देश्य सिद्धि के निमित्त अनेक यंत्र बनाए। कोई अपने यंत्र हाथों पैरों की शक्ति से चलाता था और कोई विद्युत-शक्ति से। किन्तु अब मिट्टी के तेल का एञ्जिन ही इस काम में आता है।

बनावट।

अच्छा अब गुब्बारों की बनावट आदि का ब्यौरा लीजिए। गुब्बारा केवल गैस भरी थैली को कहते हैं। जिस प्रकार नाव जल में तैरती रहती है उसी प्रकार यह गैस भरी थैली वायु में तैरती रहती है। इसी साधारण गुब्बारे (balloon) को जाल में भर कर उसके नीचे आरोहियों के बैठने के निमित्त टोकरी या गाड़ी की शक्ल की कोई वस्तु लटका कर गुब्बारेनुमा जहाज़ (dirigibles and airships) बनाए गए हैं।

गुब्बारेनुमा जहाज में मिट्टी के तेल का एञ्जिन भी लगा रहता है। साधारण गुब्बारे तथा गुब्बारेनुमा जहाज में यह भेद है कि साधारण गुब्बारा चाहे जहाँ चलाजाता है। परन्तु गुब्बारेनुमा जहाज को उड़ानेवाला एञ्जिन की सहायता से जिधर चाहे उधर घुमासकता है तथा स्वेच्छानुसार ऊपर चढ़ा या नीचे उतार सकता है।

"Aviation" नामक अंगरेजी की एक पुस्तक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुब्बारेनुमा जहाजों को चलाने, दाईं बाईं ओर फेरने तथा ऊपर नीचे चढ़ाने उतारने का बहुत ही अच्छा विवरण दिया है, अतः इस विषय की जानकारी के लिये उक्त पुस्तक के कुछ अंश का सारांश* नीचे देते हैं:—

गुब्बारेनुमा जहाज को दाईं या बाईं ओर कैसे फेरते हैं ?

"जिस तरह पतवार की सहायता से नाव दाहिने या बाएँ घुमाई और चलाई जाती है उसी तरह से गुब्बारेनुमा हवाई जहाज भी पतवार की सहायता से घुमाया और चलाया जाता है। गुब्बारेनुमा जहाज की पतवार अपेक्षाकृत बड़ी होती है और कनवास या उसी प्रकार के किसी और पदार्थ से बनाई जाती है। नाव तथा गुब्बारेनुमा जहाज की पतवार में भेद केवल इतना ही है कि यदि नाव का मुँह दाहिनी ओर घुमाना हो तो पतवार को बाईं ओर कर देते हैं। और यदि बाईं ओर घुमाना हो तो पतवार दाहिनी ओर कर देते हैं। पर गुब्बारेनुमा जहाज का यह नियम नहीं है। यदि उसे दाहिनी ओर घुमाना हो तो पतवार को दाहिनी ओर और यदि बाईं ओर घुमाना हो तो पतवार को बाईं ओर कर देंगे।

गुब्बारेनुमा जहाज को ऊपर कैसे चढ़ाते तथा नीचे कैसे उतारते हैं ?

गुब्बारेनुमा जहाज दो प्रकार से ऊपर चढ़ाया या नीचे उतारा जाता है। एक तो जिस कोण पर पंखा घूमता हो उस कोण में परिवर्तन करके और दूसरे एक आड़ी पतवार की सहायता से जहाज को ऊपर या नीचे ले जा सकते हैं। गुब्बारे को हवा में चलानेवाला एञ्जिन अपना कार्य करने के लिये दो या अधिक पंखों को तेजी से हवा में घुमाता है। ये पंखे साधारणतः दो ही होते हैं। इन पंखों की पत्तियाँ साधारण कलवाले पंखे की पत्तियों से अधिक लम्बी, चौड़ी और दृढ़ होती हैं। जब गुब्बारे को सीध में ले जाना होता है तो घूमनेवाले पंखे को मध्य में गुब्बारे के समतल खड़ा करते हैं। पर जब उसे ऊपर या नीचे ले जाना होता है तो पंखे को आगे या पीछे की ओर ले जा कर एक कोण पर कर देते हैं, अर्थात् यदि पंखे को पीछे की ओर हटा दें तो गुब्बारे का सिरा नीचे की ओर हो जायगा और यदि उसे आगे की ओर बढ़ा दें तो गुब्बारा ऊपर चढ़ने लगेगा।

जलमग्न नाव और गुब्बारे की आड़ी पतवार में जहाज के दोनों सिरों पर एक एक चौखटा होता है जिस पर कनवास या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ मढ़ा होता है। यह पतवार इस प्रकार जड़ी होती है कि यदि वह जरा भी टेढ़ी हो कर ऊपर या नीचे की ओर दबे तो उसमें हवा टकराने लगती है। यदि इस आड़ी पतवार का अगला भाग नीचे की ओर झुका दिया जाय तो गुबारा नीचे की ओर उतरने लगता है और यदि अगला भाग ऊपर की ओर कर दिया जाय तो गुब्बारा भी ऊपर की ओर चढ़ने लगता है। पंखे, दाहिनी और बाईं ओर घुमानेवाली पतवार, ऊपर या नीचे ले जानेवाली आड़ी पतवार और इन सब को चलाने के लिये पैट्रोल इंजिन हो तो जहाज़ चलानेवाला उस पर अपना पूरा अधिकार रख कर उसे जिस ओर चाहे ले जा सकता है।

एक और आवश्यक बात ।

इस स्थान पर एक और बात बता देना बहुत आवश्यक है। वह यह कि गरमी या सरदी पा कर गैस फैलती या सिकुड़ती है और गुब्बारे के चलाने पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि गुब्बारा दोपहर के

*यह सारांश फरवरी १९१९ की नागरीप्रचारिणी पत्रिका के एक लेख से लिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय बहुत ऊँचे आकाश में चढ़ जाय और उसके गैस-कोष पर अधिक गरमी पड़े तो उससे अन्दर की गैस बहुत अधिक फैलने लगेगी; और यदि उसमें से कुछ गैस बाहर न निकाली जाय तो वह कोष अवश्य फट जायगा। इस कठिनता को दूर करने के लिये गुब्बारे में कमानीदार ढकने होते हैं जो केवल अन्दर की गैस बढ़ने पर ऊपर की ओर खुल सकते हैं और जिनके द्वारा भीतर की बढ़नेवाली गैस तो बाहर निकल सकती है पर बाहर की साधारण हवा उसके अन्दर नहीं जा सकती। अब यदि कुछ देर तक धूप में रहने के बाद गुब्बारा अचानक छांह या बादल में पहुँच जाय तो ठंढ के कारण गैस सिकुड़ने लगेगी। इसलिये गैसवाली थैली या कोष के अन्दर एक और छोटी थैली लगाई जाती है जिसमें साधारण हवा भरी होती है। बड़े गुब्बारे में इस प्रकार की कई छोटी थैलियाँ होती हैं। साधारण स्थिति में इस थैली का एक निश्चित आकार होता है तथा निश्चित मान में वायु उसके अन्दर रहती है। जब गुब्बारे के धूप में जाने के कारण हाइड्रोजन या गैस फैलने लगती है तो भीतरवाली उस छोटी थैली में के कमानीदार ढकने की राह से हवा निकाल देते हैं। इस प्रकार थैली का आकार घट जाता है और फैलनेवाली गैस को अधिक स्थान मिलता है। थैली की हवा घटने के कारण उसका दबाव कम हो जाता है और तब गैस को फैलने में और भी सहायता मिलती है। जब गुब्बारा नीचे की ओर उतरता या ठंढे स्थान में आता है और गैस सिकुड़ने लगती है तो भीतरवाली थैलियों में पंखे की सहायता से हवा भरी जाती है जिससे वे थैलियाँ बढ़ जाती हैं तथा गैस सिकुड़ने के कारण जो स्थान खाली होता है उसे वे भर देती हैं। हवा भरनेवाला यह पंखा या तो इंजन से और या हवा में गुब्बारे को चलाने वाले पंखों में से किसी एक की सहायता से चलाया जाता है। बड़े बड़े गुब्बारों में घटने बढ़ने-वाली थैलियों के अनुसार ही उनमें हवा भरनेवाले पंखे भी होते हैं।"

गुब्बारानुमा जहाज के मुख्य भेद।

गुब्बारेनुमा जहाज तीन प्रकार के होते हैं; ठोस, अर्द्ध ठोस तथा लचीले।

ठोस जहाज़। (Rigid)

इनका गैस भरा रहने वाला भाग किसी ठोस वस्तु जैसे लकड़ी या धातु का बना होता है। गैस रहे चाहे न रहे, किन्तु इस प्रकार के जहाज़ों का आकार नहीं बदलता, सर्वदा एकसा ही रहता है। जर्मनी का मशहूर जहाज ज़ैप्लिन (Zeppeline) इसी प्रकार का जहाज है। यह ४५० फुट लम्बा होता है, इसके अन्दर कभी न सिकुड़नेवाले गैस भरने के १७ खाने होते हैं, जिनमें ५२००० घन फुट गैस आ सकती है। ये खाने एलुमिनम धातु के खोल से ढके रहते हैं तथा इनका आपस में एक दूसरे से कुछ सम्बन्ध नहीं होता। इसके नीचे बीस बीस फुट लम्बी तथा छः छः फुट चौड़ी नाव के आकार की दो गाड़ियाँ लगी रहती हैं, इन दोनों गाड़ियों के बीच में ११० घोड़ों की शक्ति का एञ्जिन लगा रहता है एक ज़ैप्लिन ३५००० पौण्ड बोझ ले जा सकता है तथा इसकी विशेषता यह है कि भीतरी दबाव (pressure) कम होने पर भी इससे गिरने का भय नहीं होता।

अर्द्ध ठोस जहाज। (Semi-rigid)

इनका गुब्बारेवाला भाग लचीला होता है तथा सवारी बैठनेवाला भाग ठोस। इसी कारण ये "अर्द्ध ठोस" कहलाते हैं। इनमें १२७१०० घनफुट के लगभग गैस समा सकती है। साधारणतः ये ५८ घोड़ों की शक्ति के एञ्जिन द्वारा चलाए जाते हैं।

लचीले जहाज। (Flexible)

ये सिगार के आकार के साधारण गुब्बारे होते हैं। इनका सारा भाग बिलकुल लचीला होता है; गैस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ख़ाने में २११९२ घन फुट के लगभग गैस आ सकती है। साधारणतः ये ११० फुट लम्बे होते हैं तथा ७० घोड़ों की ताकतवाले एञ्जिन से चलाए जाते हैं।

(२)

हवा से भारी यंत्र अर्थात् वायुयान।

आरम्भिक इतिहास।

सन् १८६७ ई० से ही बहुत से मनुष्यों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हो गया था। अमेरिका के प्रोफ़ेसर लैंगली (Langley) और सर हीरम मैक्सिम (Sir Hiram Maxim) ने इसके सम्बन्ध में बहुत से तजुरबे किए, किन्तु कृतकार्यता लिलैन्थल भ्रातृगण (Lilenthol) तथा अमेरिका के राइट भ्रातृगण (Wright) ही को हुई। सबसे पहले सन् १९०५ ई० में राइट भ्रातृगण अमेरिका में अपने ही बनाए हुए बाईप्लेन (Biplane) में उड़े। सन् १९०६ ई० में हैनरी फ़रमन (Henry Farman) ने एक बाइप्लेन बनाया जो आध मील उड़ा था।

सितम्बर सन् १९०८ ई० में आरविल राइट (Orville Wright) अमेरिका में ६० मील तक उड़ा। उसी समय उसके भाई विल्बर राइट (Wilber Wright) ने फ़्रांस में उड़ान-सम्बन्धी २०,००० पौण्ड का एक इनाम पाया था।

सन् १९०९ ई० में मानोप्लेन बने। लन्दन के डेली मेल (Daily Mail) नामक पत्र ने २००० पौण्ड का इनाम उस उड़नेवाले के लिये रक्खा जो सबसे पहले इँग्लिश चैनल को पार कर जाय। जूलाई मास में यह इनाम ब्लैरियट (Bleriot) ने जीता था। तब से अब तक इसमें बहुत उन्नत हो गई है। वायुयान-सम्बन्धी बहुत सी सभाएँ तथा प्रदर्शनियाँ हुई हैं, बहुत से एयरोड्रोम्स (Aerodromes) स्थापित किए गए हैं, प्रत्येक एयरोड्रोम के साथ एक एक फ्लाइङ्ग स्कूल (Flying School) भी है।

अब फिर डेली मेल ने लन्दन से मैनचैस्टर तक केवल एक पड़ाव डाल कर उड़ने के लिये १०,००० पौण्ड का इनाम रखा। दौड़ २७ अप्रैल सन् १९१० ई० को हुई। फ्रांसीसी यंत्र-कला-विशारद पाल्हन (Paulhan) और एक अँगरेज़ जिनका नाम ग्रेहम ह्वाइट (Graham White) था, उड़े; इनाम पाल्हन को मिला।

कुछ ही दिनों पश्चात् फिर डेली मेल ने ब्रिटेन (Britain) का चक्कर काटने के लिये १०,००० पौंड का पारितोषिक रक्खा। जूलाई सन् १९११ ई० में लन्दन के रायल एयरो क्लब की अध्यक्षता में दौड़ हुई, मार्ग इस प्रकार निश्चित किया गया—

ब्रूकलैण्ड से हैण्डन, हैण्डन से हैरोगेट, न्यूकैसल ऑन-टाइन (Newcastle-on-Tyne) एडिन्बरा, स्टरलिंग, ग्लासगो, कारलिस्ली, (Carlisle) मैनचैस्टर, ब्रिस्टल, एक्सिटर (Exeter) ब्राइटन, और ब्राइटन से फिर ब्रूकलैण्ड।

कोई सत्रह मनुष्य उड़े, किन्तु पारितोषिक लैफ़्टिनैन्ट कौनो (Lieut. Conneau) ने पाया। इसके अनन्तर युरोप का चक्कर, पैरिस से रोम, पैरिस से मैड्रिड, पैरिस से पैकिन, अमेरिका का चक्कर आदि बहुत सी दौड़ें हुईं।

वायुयानों ने अधिकतर उन्नति गत दस वर्षों ही में की है। पहले उड़नेवाले वायु में केवल कुछ मिनट ही ठहर सकते थे; किन्तु अब कई घण्टों बल्कि पहरों तक ठहर सकते हैं।

आरम्भ में पचीस वा तीस मील प्रति घण्टा उड़ना ही पर्याप्त समझा जाता था, पर यह गति बड़ी शीघ्रता से बढ़ी। थोड़े ही समय में मनुष्य अस्सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मील प्रति घण्टे तक उड़ने लगे और अब तो ग़ज़ब ही कर डाला है। थोड़े ही दिनों की बात है कि एक बड़ी यात्रा १४० मील प्रति घण्टे के हिसाब से की गई, एक मिनट में दो मील से अधिक फ़ासला तय हो गया! कुछ ठिकाना है! इस वायुयान में २६० घोड़ों की शक्ति का एञ्जिन लगा हुआ था। जब जलयानों की भाँति वायुयानों में भी सहस्रों घोड़ों की शक्ति के एञ्जिन लगाए जायँगे तो एक ही वायुयान में चार पाँच सहस्र मनुष्य सैकड़ों मील प्रति घण्टे के हिसाब से यात्रा कर सकेंगे। महीनों की यात्राएं घण्टों में हो जायँगी। जिस प्रकार इँगलैण्ड से लोग आजकल शनिवार की शाम को चल कर पैरिस या स्काटलैण्ड की सैर करके सोमवार की सुबह को अपने घर आ जाते हैं, उसी प्रकार अमेरिका की भी सैर किया करेंगे। शनिवार की शाम को लन्दन से वायुयान में सवार हो कर रविवार की सुबह को न्यूयार्क (New York) में जा पहुँचेंगे, दिन भर सैर करके सोमवार की सुबह को फिर लन्दन आ पहुँचेंगे। अस्तु।

अब हम वायुयानों की बनावट तथा मुख्य भेदों पर कुछ लिखेंगे।

बाक्स काइट (Box-kite)

पतंगों तथा चिड़ियों को हवा में उड़ते हुए देख कर वैज्ञानिकों का ध्यान हवा में उड़नेवाले यंत्र बनाने की ओर आकर्षित हुआ। लिलैन्थल आदि ने पतंग ही के नमूने पर बाक्स-काइट बनाया। बाक्स-काइट साधारणतः दो चपटे प्लेन्स (planes) का बना होता था। ये दो प्लेन इस तरतीब से लगाए गए थे कि इनके बीच में से हवा गुज़र सकती थी। ये प्लेन्स नीचे की ओर को कुछ झुके हुए होते थे। इस कारण आपस के दबाव से एक दूसरे को सहारा दे सकते थे तथा ऊपर का बोझ सँभाल सकते थे। प्लेन्स आगे की ओर से अधिक मोटे होते थे और पिछले भाग की ओर धीरे धीरे कम मोटे होते जाते थे। वास्तव में ये चिड़िया के पंख की तरह के थे, अतः हम प्लेन के स्थान में पंख शब्द ही का प्रयोग करेंगे।

पतंग उसी समय उड़ता है जब कुछ हवा होती है। जितनी तेज़ हवा होती है उतना ही वह अच्छा उड़ता है तथा उतना ही उसे थामना भी कठिन हो जाता है। इसी प्रकार बाक्स-काइट भी हवा तेज़ होने पर उठते थे, और उसके बन्द होने पर गिर पड़ते थे। आटो लिलैन्थल (Otto Lilenthol) वायु तेज़ हो जाने के कारण यंत्र उलट जाने से गिर पड़ा और मर गया था।

ग्लाइडर। (Glider.)

बाक्स-काइट में थोड़ा सा फेरफार करके ग्लाइडर बनाया गया, ग्लाइडर में दो पंख एक दूसरे के ऊपर लगे होते थे। तले के पंख के मध्यभाग में ग्लाइडर को बस में रखने का सामान होता था। ग्लाइडर को किसी पहाड़ी या चट्टान की चोटी पर ले जा कर उड़ाते थे। उतरते समय ग्लाइडर नीचे की हवा के दबाव के कारण धीरे धीरे उतरता था। (देखो चित्र नं० १)

वायुयान। (Aeroplane.)

वायुयान ग्लाइडर ही का परिवर्द्धित रूप है। सब प्रकार के वायुयानों में किञ्चित झुके हुए पंख वायु में पर्याप्त गति से चलाए जाने के लिये लगे रहते हैं। वायुयानों के मुख्य दो भेद हैं, मानोप्लेन और बाइप्लेन।

बाईप्लेन। (Biplane.)

बाई दो को कहते हैं और प्लेन का अर्थ है पंख अतः बाइप्लेन उन वायुयानों को कहते हैं जिनमें दो पंख हों। चित्र नं० २ बाइप्लेन का चित्र है। उसे देखने से मालूम होगा कि दो पंख (Planes) एक दूसरे पर आड़े रक्खे हुए हैं, सामने की ओर उन्नायक यंत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(elevator) लगा हुआ है, मुख्य पंखों के पीछे गति प्रदायक यंत्र (propellor) और बहुत सा सामान लगा हुआ है। बाइप्लेन के दो भागों में से नीचे का भाग बिल्कुल चबूतरे का सा होता है, चलाने का एञ्जिन तथा तत्-सम्बन्धी बहुत सा सामान इसी स्थान पर होता है, चलानेवाला भी यहीं बैठता है।

मानोप्लेन। (Monoplane.)

एक ही पंखवाले वायुयान को मानोप्लेन कहते हैं। यह बाइप्लेन से अधिक सुन्दर होता है और इस की शकल चिड़िया से बहुत मिलती जुलती है। मानोप्लेन में गतिप्रदायक यंत्र (propellor) ठीक चिड़िया के सिर के स्थान पर आगे की ओर होता है। गतिप्रदायक यंत्र के पीछे एञ्जिन होता है। एञ्जिन का गतिप्रदायक यंत्र से सम्बन्ध होता है। एञ्जिन चलानेवाला एञ्जिन के पीछे एक कुरसी पर बैठता है। कुरसी के समीप ही एञ्जिन को चलाने आदि का अन्य आवश्यकीय सामान भी होता है, नम्बर ३ का चित्र मानोप्लेन का है।

बाइप्लेन तथा मानोप्लेन के छोटे भेद।

फ़रमन (Forman), राइट (Wright), कर्टिस (Curtiss), ब्लैरियट (Bleriot), एन्टायनैट (Antoinette) आदि मुख्य मुख्य आविष्कारकों ने अपने बाइप्लेन तथा मानोप्लेन अलग ही बनाए हैं। इनकी मुख्य रचना में कुछ भेद नहीं है। चलाने आदि के साधनों में थोड़ा सा भेद है। इस भेद के विषय में इस छोटे से निबन्ध में अधिक नहीं लिखा जा सकता और साधारण पाठकों को अधिक जानने की आवश्यकता भी नहीं। इस विषय में अधिक जानकारी तो उनके लिये उपयोगी है जो वायुयान में बैठ कर उड़ना तथा उसे स्वयं ही चलाना चाहें।

बाइप्लेन और मानोप्लेन में से कौन अधिक उपयोगी है।

इस प्रश्न का उत्तर देना जरा टेढ़ी खीर है। अच्छे अच्छे विशारदों का भी इस विषय पर एक मत नहीं है। मानोप्लेन अधिक शीघ्रता से चल सकते हैं तथा उन्हें उड़ने में हवा के साथ कम जोर लगाना पड़ता है। अधिकतर इनका वायु में थमा रहना इनकी मोटर पर निर्भर है। बाइप्लेन इतनी शीघ्रता से नहीं चल सकते तथा इनका वायु में थमना अधिकतर चलानेवाले की कुशलता पर निर्भर है; किन्तु साथ ही साथ ये मानोप्लेनों से बड़े होते हैं और इस कारण सवारियाँ ले जाने में अधिक उपयोगी होते हैं।

ट्राईप्लेन। (Triplane.)

ट्राई का अर्थ तीन है, अतः तीन पंखवाले वायुयान ट्राईप्लेन कहलाते हैं। इनको भी एक प्रकार का बाइप्लेन ही समझना चाहिए। भेद केवल इतना ही होता है कि इनमें ऊपर की ओर एक पंखा और अधिक लगा रहता है।

हाइड्रो-एयरोप्लेन। (Hydro-Aeroplane.)

हाइड्रो-एयरोप्लेन उन वायुयानों को कहते हैं जो पानी में भी तैर सकते हैं। इनको हाइड्रोप्लेन भी कहते हैं। इनके नीचे लकड़ी के मुड़े हुए टुकड़े लगे रहते हैं जो वायुयान तथा उसके यात्रियों का जल पर बोझ सँभाले रहते हैं तथा वायुयान को जल में नहीं डूबने देते। जिस प्रकार साधारण वायुयान पृथ्वी पर से उड़ते हैं तथा फिर पृथ्वी ही पर उतर आते हैं, इसी प्रकार हाइड्रोप्लेन जल पर से उड़ते तथा फिर जल ही पर उतरते हैं। ये क्रूज़रों तथा स्टीमरों के साथ रहते और जासूसी का काम करते हैं।

वायुयान हवा में क्यों उड़ते हैं।

वायुयानों के हवा में उड़ने का वही कारण है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो किसी लड़के के पतंग, ग्लाइडर वा किसी चिड़िया के वायु में उड़ने का है। नीचे चलनेवाली वायु पतंग वा चिड़िया के उड़ने को स्थिर रखती है। इसी प्रकार वायुयान अपने नीचे चलनेवाली वायु के कारण चाहे वह वायु प्राकृतिक अर्थात् गरमी की न्यूनाधिकता आदि कारणों से चलनेवाली हो चाहे किसी यंत्र द्वारा वायुयान के चलाने से पैदा हुई हो, ऊपरी बोझ पर संभला रहता है तथा उड़ता है। सब वायुयानों या वायु से भारी यंत्रों के हवा में उड़ने का आधार यही सिद्धान्त है।

वायु की लहरों में भँवर नहीं उठते; किन्तु लहरों के मार्ग में थोड़ी सी भी रुकावट पड़ने पर भँवर उठने लगते हैं। इस कारण वायुयान बनानेवालों का आरम्भ ही से यह उद्देश्य रहा है कि यान की शकल तथा पंखे आदि ऐसे बनाए जायँ जिनसे वायु-सञ्चालन में बाधा न पड़े। इस कार्य के लिये बाक्स-काइट की शकल ही सब से अधिक उपयुक्त समझी गई है। वायु पंख के ऊपरी भाग से आ कर टकराती है और न्यून कोण बनाती हुई ऊपर की ओर लौट जाती है। इस प्रकार पिछले भाग के ऊपर का स्थान कुछ वायु-शून्य सा हो जाता है और वायुयान ऊपर उठा रहता है। अब वह वायु जो पंख के नीचे रह जाती है गद्दे का काम देती है और वायुयान को वायु में शीघ्र गति से चलते समय सँभाले रहती है।

वायुयान बनते किस चीज़ के हैं।

आरम्भ में वायुयान बाँस, एश (ash)* व हिकरी (hickory)† के बनाए गए थे, किन्तु अब इनका स्थान फौलाद व एलुमिनम मिश्रित धातुओं ने ले लिया है। धातुओं के टुकड़े लकड़ी के टुकड़ों से भी बहुत अधिक हलके तथा छोटे बनाए जा सकते हैं।

वायुयान कैसे ऊपर उठाए और नीचे उतारे जाते हैं।

उन्नायक यंत्र (elevator) की सहायता से वायुयानों को ऊपर उठाते और उतारते हैं। जब उन्नायक यंत्र को ऊपर की ओर उठाते हैं तो चलते समय उसके नीचे की ओर की वायु के दबाव तथा पीछे चलते समय उसके ऊपर की वायु के दबाव के कारण वायुयान का अग्र भाग ऊपर की ओर और पिछला भाग नीचे की ओर हो जाता है। दोनों दशाओं में वायुयान ऊपर की ओर उठता है।

जब उन्नायक यंत्र को नीचे की ओर दबाते हैं तो आगे चलते समय उसके ऊपर की ओर की वायु का दबाव तथा पीछे चलते समय उसके नीचे की ओर की वायु का दबाव वायुयान के अग्र भाग को नीचे की ओर कर देता है। दोनों दशाओं में वायुयान नीचे ही की ओर उतरता है।

वायुयान को दाईं बाईं ओर कैसे फेरते हैं।

दाईं बाईं ओर फेरने में शीर्ष पतवार (Vertical Rudder) की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। सब प्रकार के वायुयानों में पतवार पिछले ही भाग में होती है। किसी वायुयान में एक पतवार होती है, किसी में दो। कुछ वायुयानों में दोनों पतवार पास पास होती हैं, और कुछ में एक दूसरी के ऊपर।

शीर्ष पतवार (Vertical Rudder) को दाईं ओर फेरने से वायुयान का अग्र भाग दाईं ओर हो

* एक वृक्ष का नाम है। इसकी लकड़ी का रंग सफेद होता है और यह बहुत मजबूत होती है।

† हिकरी भी एक प्रकार का वृक्ष है जो उत्तरीय अमेरिका में होता है। इसकी लकड़ी भी बहुत मजबूत होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है तथा बाईं ओर फेरने से वायुयान का अग्र भाग बाईं ओर हो जाता है।

शीर्ष पतवार (Vertical Rudder) के ऊपर की वायु के दबाव के कारण वायुयान का पिछला भाग अग्र भाग की उल्टी ओर हो जाता है।

वायुयान वायु में किस प्रकार चलते हैं।

सब प्रकार के वायुयान वायु में गतिप्रदायक यंत्रों (propellors) की सहायता से चलते हैं। ये यंत्र यही तेल के एञ्जिनों से, जो ख़ास तौर पर इसी काम के लिये बनाए जाते हैं, बड़ी शीघ्रगति—एक मिनट में एक सहस्र बार के हिसाब से घूमते हैं। इनके घूमने से वायुयान आगे की ओर चलने लगता है।

वायुयान के कल पुर्ज़ों को बिगड़ते कुछ देर नहीं लगती। इस कारण बहुत से फालतू कल पुर्ज़े भी साथ रखने पड़ते हैं।

वायुयानों का मूल्य।

वायुयानों के विषय में इतना पढ़ जाने पर पाठकों के चित्त में वायुयानों का मूल्य जानने की अवश्य उत्कण्ठा होगी। अतः हम नीचे दो चार मुख्य मुख्य आविष्कारकों के वायुयानों का मूल्य लिखते हैं। इससे पाठकों को वायुयानों के मूल्य का कुछ कुछ अन्दाज हो जायगाः—

वायुयान का नाम		मूल्य
फर्मन (Forman)	...	१२००० रु० के लगभग
राइट (Wright) .	...	१६००० ,, ,,
कर्टिस (Curtiss)	...	१०००० ,, ,,
ब्लैरियट (Bleriot)	...	७००० ,, ,,
अन्टायनैट (Antoinette)		१५००० ,, ,,

वह दिन दूर नहीं है कि जब वायुयान भी मोटर-कारों की तरह सस्ते बिकने लगेंगे। ब्लैरियट (Bleriot) का वायुयान तो इस समय भी केवल ७००० रु० ही में आता है।

गुब्बारेनुमा जहाज़ों तथा वायुयानों पर तुलनात्मक दृष्टि।

गुब्बारेनुमा जहाजों तथा वायुयानों की आपेक्षिक उपयोगिता का विषय भी अभी विवाद ग्रस्त है। गुब्बारेनुमा जहाज वायुयानों की अपेक्षा अधिक विशाल होते हैं तथा देर तक वायु में ठहर सकते हैं। इसी कारण जर्मनी, जिसके जहाज़ पर से फेंके-जानेवाले गोलों का वज़न १०० पौण्ड है, अधिकतर गुब्बारेनुमा जहाजों ही को काम में लाता है। किन्तु साथ ही साथ गुब्बारेनुमा जहाज़ों में कुछ दोष भी हैं; जैसे धीरे धीरे चलना, अधिक ऊँचा न उड़ना तथा चलाने के लिये अधिक शक्तिवाले इञ्जिनों की और प्रबन्ध के लिये अधिक मनुष्यों की आवश्यकता। विशाल आकार होने के कारण शत्रु को पृथ्वीस्थित तोपों द्वारा निशाना मारने का भी अच्छा अवसर मिल जाता है। इस कारण कोई निश्चयात्मक बात नहीं कही जा सकती। आशा है वर्तमान युरोपीय महाभारत के समाप्त होने पर आपेक्षिक उपयोगिता संबन्धी प्रश्न हल हो जायगा।

(३)

हवाई जहाजों से लाभ।

आरम्भ में तो हवाई जहाज केवल खिलौने समझे गए थे। मनुष्यों को पक्षियों की भाँति उड़ने में विशेष आनन्द अनुभव होता था। किन्तु अब हवाई जहाज़ों से बड़े बड़े काम लिए जाने लगे हैं। युद्ध के समय तो इनके द्वारा सैकड़ों दुस्तर और दुरूह कार्य बात की बात में हो ही जाते हैं; परन्तु इसके अतिरिक्त शान्ति में भी ये कुछ कम लाभकारी नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) हवाई जहाज और यात्रा।

जर्मनी के कुछ बड़े बड़े नगरों में तो अब मनुष्य रेलों तथा जहाज़ों की तरह हवाई जहाज़ों द्वारा भी यात्रा करने लगे हैं। निश्चित समय पर हवाई जहाज एक शहर से दूसरे शहर को उड़ता है। यात्री चौड़े किनारे की टोपियाँ ओढ़े रहते हैं, क्योंकि सौ फुट ऊपर सूर्य्य की प्रखरता आँखों को चौंधियाने लगती है। दो हजार फुट ऊपर सरदी भी कुछ अधिक मालूम होने लगती है। वायु की कुछ कमी नहीं होती और उसका प्रवाह किसी विशेष दिशा की ओर नहीं होता। जिस प्रकार आजकल संसार के सब सभ्य देशों में रेलगाड़ियां तथा मोटरें दौड़ती हुई दिखाई देती हैं, उसी प्रकार थोड़े ही दिनों में हवाई जहाज आकाश में उड़ते हुए दृष्टिगोचर होने लगेंगे।

जल में चलनेवाले जहाजों के साथ भी हवाई जहाज रखने से समय पर बड़े काम निकलते हैं। आकस्मिक दुर्घटना उपस्थित होने पर अनन्त प्राणों के संहार तथा अपरिमित माल असबाब के नाश में बहुत कुछ कमी हो जाती है। यदि टाइटैनिक (Titanic) पर दो चार हवाई जहाज होते तो उसके सिन्धु-समाधिस्थ हो जाने से जितनी हानि पहुँची है उतनी कदापि न पहुँचती तथा संसार को मिस्टर स्टेड तथा लूथर बरबैंक जैसे नररत्नों से हाथ न धोना पड़ता।

हवाई जहाज़ों द्वारा वाणिज्य को भी बहुत कुछ लाभ होने की संभावना है।

(२) हवाई जहाज और युद्ध।

आकाश से गोलों की वर्षा।

युद्ध के समय हवाई जहाज बड़े काम आते हैं। शत्रु की सेना तथा उसकी रसद वा बारूद पर गोले बरसाते हैं। इन गोलों से शत्रु को बड़ी हानि पहुँचती है। इस हानि का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि यदि ऊँचे उड़नेवाले हवाई जहाज़ में बैठे हुए किसी मनुष्य के हाथ से सोडा-वाटर की बोतल छूट पड़े और किसी मनुष्य के सिर पर लगे तो उसका वहीं अन्त हो जाय।

जहाज पर से फेंके जानेवाले गोलों में स्फोटक पदार्थ, फौलाद के तीर या विषैली गैस भरी रहती है। गोलों की वर्षा अधिकतर गुब्बारेनुमा जहाज़ों (Airships) द्वारा की जाती है।

अब जहाज पर तोपें भी रखी जाने लगी हैं। तोपें आगे की ओर लगाई जाती हैं और जहाज का मोटर पीछे की ओर। बड़े बड़े दुर्भेद्य दुर्गों का हाल मालूम करना भी हवाई जहाज़ों ही का काम है। युद्ध के समय इन बातों का ज्ञात होना कि शत्रु कहाँ है, उसकी खाइयाँ हमसे कितनी दूर हैं, शत्रु संख्या में कितने हैं, कौनसी ओर सबल हैं कौन सी ओर निर्बल, रसद कहाँ से और किस प्रकार प्राप्त करते हैं, हमारे प्रतिरोध के लिये उसने क्या सामान किये हैं, हम पर किस ओर से गोले बरसावेंगे तथा हम को किस ओर से गोले बरसाने चाहिए, आदि बातें जानना नितान्त आवश्यक है। और ये बातें ऐसी हैं जो हवाई जहाज़ों की सहायता बिना नहीं जानी जा सकतीं; क्योंकि अब ऐसे ऐसे शस्त्र आविष्कृत हो गए हैं जिनके कारण भेदिए का भेद ले कर सही सलामत चले आना एक प्रकार से असंभव ही सा हो गया है। हवाई जहाजों का यह कार्य गोले बरसाने के कार्य से भी अधिक महत्व का है।

हवाई जहाज आकाश में उड़ कर शत्रु-सेना के ठीक ऊपर पहुँच कर कार्ड बोर्ड के छोटे छोटे टुकड़े नीचे की ओर डालने लगते हैं, वा इष्ट स्थान पर वर्तुलाकार घूमने लगते हैं तथा दाएं वा बाएं पंख (plane) द्वारा इस बात का संकेत कर देते हैं कि किस दिशा से गोला बरसाना अधिक लाभकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। एक मनुष्य दूर्बीन लिए सीधा जहाज़ की ओर देखता रहता है और जहाज़ से संकेत पाते ही तुरन्त तोपवाले को तार द्वारा सूचित कर देता है। तोपची फ़ौरन गोले बरसाना आरम्भ कर देते हैं। यदि गोला ठीक स्थान पर नहीं पड़ता किन्तु आस पास गिरता है तो हवाई जहाज़ नीचे की ओर उतरता है। यदि बहुत दूर जा गिरे तो जहाज़ ऊपर की ओर उठता है। इससे तोपचियों को अपनी गलती मालूम हो जाती है।

जलमग्न नावों (Submarines) का पता।

जलमग्न नावों का पता तो केवल हवाई जहाजों द्वारा ही लग सकता है। जलमग्न नावों का केवल परिवीक्षण यंत्र (पैरिस्कोप) ही जल पृष्ठ पर रहता है। यह अत्यन्त छोटा होता है। इस कारण जल पृष्ठ पर चलनेवाले जहाज़ों को नहीं दिखलाई पड़ सकता। परन्तु, हवाई जहाज़ जलमग्न नावों को अच्छी तरह देख सकते हैं।

आकाश में युद्ध।

कभी कभी दोनों पक्षों के हवाई जहाजों का आकाश में युद्ध भी छिड़ जाता है। इस कारण हवाई जहाजवाले अपने पास पिस्तौल भी रखते हैं। उस समय जीत उसी पक्ष की होती है जिसके पास अधिक तेज उड़नेवाले हवाई जहाज होते हैं।

पृथ्वी-स्थित तोपें।

अधिक ऊँचे न उड़नेवाले जहाज़ों को शत्रु की पृथ्वी-स्थित तोपों का भी भय रहता है। ये तोपें ५००० फुट की ऊँचाई तक गोला फेंक सकती हैं। किन्तु अभी तक इन तोपों ने कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर दिखाया है। अब सब देशवाले अपने जहाजों के मुख्य स्थानों पर तथा आस पास फौलाद मढ़ने लगे हैं।

युद्ध में काम आनेवाले जहाजों के मुख्य भेद।

युद्ध में काम आनेवाले जहाज़ मुख्यतः पाँच प्रकार के होते हैं:—

(१) एक ही मनुष्य को ले कर ऊँचे उड़नेवाले शीघ्रगामी जहाज। इन्हें किसी प्रकार के शस्त्र हानि नहीं पहुँचा सकते।

(२) दो मनुष्यों को लेकर ऊँचे उड़नेवाले शीघ्रगामी जहाज़, इनमें बेतार के तारबर्की का सामान भी लगा रहता है। ये भेद की खबरें भेजने के काम में आते हैं।

(३) दो मनुष्यों को ले कर अधिक ऊँचे न उड़नेवाले जहाज़। इनके द्वारा शत्रु की स्थिति देख कर इस बात का पता लगाया जाता है कि शत्रु हम पर किस ओर से गोले बरसावेगा तथा हमको किस ओर से गोले बरसाने चाहिए। इनको शत्रु की पृथ्वी-स्थित तोपों का भय रहता है।

(४) और (५) गन मैशीन (gun-machine) व हलकी तोपोंवाले जहाज। ये भी कम ऊँचे उड़ते हैं और गोलों की वर्षा करने के काम में आते हैं।

सुना है फ़्रांस ने हाल ही में बड़े विशाल हवाई जहाज बनाए हैं जिनका नाम हवाई ड्रेडनाट (Dreadnought) रखा है। इनकी सफलता के विषय में अभी तक कुछ नहीं सुना गया। अनुमान तो यह कहता है कि जब आज हवाई ड्रेडनाट (D r e adnought) का नाम सुना है तो आज नहीं तो दस दिन बाद सही, उनकी सफलता का वृत्तान्त भी अवश्य ही सुनेंगे। क्योंकि युरोप तथा अमेरिकावाले जिस काम में हाथ डालते हैं उसे विना अन्त तक पहुँचाए नहीं छोड़ते। "हताश" शब्द तो उनके कोष में है ही नहीं और यह है भी ठीक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यवसाय तथा परिश्रम से "सर्वश्रेष्ठ जीव" मनुष्य क्या नहीं कर सकता। एक ओर ये लोग हैं; और दूसरी ओर हम भारतीय हैं, जो अपना सारा समय तथा शक्ति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ रूपी अगाध सागर में गोते लगा कर ऐसे श्लोक खोज निकालने में ही लगा देते हैं जिनसे किसी तरह यह प्रमाणित हो जाय (चाहे खींचतान कर के ही सही) कि हमारे यहां प्राचीन काल में हवाई जहाज़ थे, रेलगाड़ियाँ थीं, ग्रामोफ़ोन थे, और स्टाइलोग्राफ पेन (Stylograph pen) भी था—नहीं तो गणेशजी महाभारत कैसे लिखते?—तथा आधुनिक विज्ञान के सारे सिद्धान्त शांडिल्य, भृगु और गौतम को पूर्णतया विदित थे। न जाने वह सुदिन कब आवेगा जब भारत में भी राइट, मारकोनी तथा एडिसन जन्म लेंगे।

—:०:—

शिक्षा।

[लेखक,—श्रीयुक्त भगवन्नारायणजी भार्गव, वकील।]



प्रत्येक मनुष्य का यह परमावश्यक कर्तव्य है कि वह अपने तथा अपने देश के जीवन को वास्तविक आनन्दमय बनावे। पर यह तभी हो सकता है जब मनुष्य सदाचारी हो और उसका सदाचारान्वित होना तभी स्वीकार किया जा सकता है जब वह अपने कर्तव्यों का उचित और हार्दिक पालन करे। यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि मानव जाति को अपने कर्तव्य का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? इसका छोटा सा उत्तर यही है कि सच्ची शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपने कर्तव्यों का सुव्यवस्थापूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीता का वचन है कि मनुष्य के लिये कार्य करने के तीन मार्ग हैं—कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग। मनुष्य चाहे जिस मार्ग का अनुसरण करे उसका उद्देश्य यही होना चाहिए कि उसका और समाज का जीवन लौकिक तथा पारलौकिक दृष्टि से वास्तविक आनन्दमय हो।

सारांश यह है कि यदि मनुष्य मनुष्यवत् संसार में अपना जीवन उचित रीति से व्यतीत करना चाहता है तो उसको शिक्षा की ऐसी आवश्यकता है जैसी विश्व को विश्वम्भर की। यदि आज ही परमात्मा जगत् की रक्षा तथा सहायता त्याग दें तो व्याकुल होकर समस्त भूमण्डल अपने अस्तित्व से हाथ धो बैठेगा। उसी प्रकार यदि शिक्षा मानव-जाति से उठ जाय तो कोई प्राणी मनुष्य-पदवी के योग्य न रहेगा, सभी "ज्ञानेन हीनाः पशुभिःसमानाः" हो जायंगे। शिक्षा द्वारा जब बुद्धि और विद्याशक्ति उत्कृष्टता को प्राप्त होती है तभी मनुष्य उचित रीति से किसी वस्तु का निरीक्षण करने तथा साधारण ज्ञानमात्र ही प्राप्त करने योग्य होता है। हम लोग सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द केवल नेत्रों द्वारा ही नहीं पा सकते, गान के मधुर स्वर का रसास्वादन हम अपने कर्णों द्वारा ही नहीं कर सकते, केवल जिह्वा रखते हुए ही हम दो वस्तुओं के स्वाद का भली प्रकार निर्णीत अन्तर नहीं बतला सकते इत्यादि; सकल विषयों के हेतु बुद्धि की अनिवार्य आवश्यकता है। यदि नहीं, तो एक शिक्षित और अशिक्षित के निरीक्षण तथा विवेचनाओं में किसी प्रकार का अन्तर न पाया जाता।

मनुष्य का विशेष सम्बन्ध शिक्षा से इस कारण है कि वह एक मननशील तथा उन्नतिशील प्राणी है। जैसे विचारों का प्रादुर्भाव उसके मन में हुआ करेगा कुछ काल पश्चात् वह उन भावों में ऐसा लिप्त हो जायगा कि फिर उसको अपना पूर्वरूप प्राप्त करना कठिन हो जायगा। यदि मनुष्य अशिक्षित होगा तो वह पशु पक्षी और जड़ पदार्थ के समान अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन व्यतीत करेगा क्योंकि उसके मस्तिष्क में ऐसी कोई विशेष बुद्धिसङ्गत बात उत्पन्न न होगी जिसपर वह मनन करे और उन विचारों को कार्य में परिणत कर सके। जब कभी उस पर कोई अल्प आपत्ति भी आवेगी तो वह विह्वल हो जायगा और उसको अपनी मुक्ति का कोई उपाय न सूझेगा। ऐसे मनुष्य को हम कैसे मननशील तथा उन्नतिशील कह सकते हैं? क्योंकि उसको तो मनन तथा उन्नति करने का उचित मार्ग ही प्राप्त नहीं हो सकता। ये सद्गुण मनुष्य में उसी समय आ सकते हैं जब वह शिक्षा देवी की सेवा में उत्कट प्रेम से तत्पर हो; तभी वह उन्नति के मार्ग का अन्वेषण कर सकेगा और तभी वह उस पथ पर मनुष्यवत् गमन करने का साहस कर सकेगा। शिक्षित पुरुष को अपनी उन्नति के लिये सर्वत्र मनोरञ्जक विषय प्राप्त हो सकते हैं और उन्हीं में से वह अपने उद्देश्य का भी निर्णय कर सकता है। जब कभी उस पर विपत्ति आवेगी वह अपने उद्देश्य को ध्यान में रख कर उस पर मनन करके उस आपत्ति को दूर हटा देगा। जिधर वह दृष्टि डालेगा उधर उसको आनन्द ही आनन्द मिलेगा।

प्रकृति देवी की विचित्र और अद्वितीय मञ्जुल छटा, सत्कला की अद्भुत लीलाएँ, सकल शुभगुण-सम्पन्न काव्य की अनुपम लोकोत्तरानन्ददायिनी तरङ्गें, इतिहास की मनमोहिनी और अपूर्व आन्दोलनकारिणी घटनाएं, मानव जाति के भूत, वर्तमान और भविष्यत् देशोन्नति-विषयक महत्त्वपूर्ण कार्य और परमोच्चभावमय शिक्षित मनुज-नारियों के हृदयसरोवरों में क्या उत्कर्ष की तरङ्गें सोत्साह लहराने को समर्थ नहीं है?

यहाँ पर यह शङ्का की जा सकती है कि हमारे भारत में अगणित शिक्षित पुरुष हैं; उन सब को ये विषय आनन्द क्यों नहीं देते?

यह शङ्का बहुत ही उचित है और यह उसी समय दूर हो सकती है जब शिक्षा का ठीक ठीक अर्थ ज्ञात हो जाय। तब ऐसा निश्चित होगा कि भारत में शिक्षित मनुष्यों की संख्या बहुत ही कम है।

क्या साधारण गिट पिट कर लेना और साहब लोगों से शान के साथ हाथ मिला लेना ही शिक्षा कहलाता है? बी० ए० वा एम० ए० की केवल डिगरी ले लेने ही से मनुष्य शिक्षा का ठेकेदार हो जाता है? क्या डेमफ़ूल के फूल मुख से झाड़ना और फ़ेशन की पूजा करना ही शिक्षा का लक्षण है? क्या अमरकोश और सारस्वत को घोट कर पी जानेवाले ही को आप शिक्षित मनुष्य कहेंगे? क्या हर बात में तर्कना और व्यर्थ विवाद करने और किसी की बात न मानने से मनुष्य शिक्षित शास्त्री की उपाधि से विभूषित हो जायगा? आप ही विचारिए क्या इनमें से किसी को शिक्षित कहना उचित प्रतीत होता है? नहीं, कदापि नहीं। वास्तविक शिक्षा तो कुछ और ही है। वेब्सटर (Webster) ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है और वही उचित है "शिक्षा सुधार और उपदेशों की उस परम्परा को कहते हैं जो बुद्धि को प्रकाशित करे, मनोवृत्ति का सुधार करे, यौवन के स्वभाव और नियमों का संगठन करे और उन्हीं की भविष्य स्थितियों में उपयोगी होने के हेतु सुयोग्य बनावे" उन्हीं महाशय का अन्यत्र कथन है कि "सच्चे मनुष्यत्व तथा स्त्रीत्व की निर्माण तथा वर्धन-विधि को ही शिक्षा कहते हैं" अब आप विचार कीजिए कि ऐसी सच्ची शिक्षा से विभूषित आपको कितने स्त्री पुरुष आज भारत में मिलेंगे। यदि मनुष्य सच्चे मनुष्य और स्त्रियाँ वास्तविक स्त्रियाँ बनना चाहें तो उनका यह परम कर्तव्य होगा कि वे शिक्षा प्राप्त करें। यदि वे चाहते हैं कि जिस उद्देश्यपूर्ति के हेतु ईश्वर ने उनको विश्व में भेजा है उसका पालन करें तो शिक्षा उनके लिये अनिवार्य है। यदि उनकी इस बात की प्रबल इच्छा है कि वे जानें कि वे कौन हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ से आए हैं, क्यों आए हैं और कहाँ जायँगे तो उनकी यह अभिलाषा बिना शिक्षा-प्राप्ति के पूरी नहीं हो सकती। यदि उनको स्वदेशोन्नति अभीष्ट है, यदि वे अपनी सत्कीर्ति-पताका समस्त वसुन्धरा में उत्साहपूर्ण हो कर फहराना चाहते हैं तो उनको सच्ची शिक्षा से ही सहायता मिलेगी और यदि उनके हृदय में अणुमात्र भी स्वाभिमान का सञ्चार होता है तो हमें पूर्ण विश्वास है कि वे सच्ची शिक्षा की प्राप्ति के हेतु उत्कट प्रेम के साथ कटिबद्ध हो कर पूर्ण उद्योग से बिना आन्दोलन मचाए न रहेंगे। प्रायः शिक्षा के तीन विभाग किए जाते हैं, आत्मिक, शारीरिक तथा मानसिक। इन तीनों का परस्पर ऐसा सम्बन्ध है जैसा वृक्ष और बीज का। बिना एक के दूसरी का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। साधारण विचार से शारीरिक शिक्षा के अभाव से मनुष्य कोई कार्य भली प्रकार सफलतापूर्वक नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य बहुत मुख्य बात है। जिसने इस रत्न को नष्ट कर दिया उसकी उन्नति कष्टसाध्य ही हो जाती है। आजकल बालविवाह इसके मूल को ऐसा भस्म कर रहा है कि कुछ कहते नहीं बनता। कुछ ऐसी कुरीतियाँ बहुत सी हिन्दू जातियों में प्रचलित हो रही हैं जो सामाजिक स्थिति को अस्तव्यस्त कर रही हैं। परन्तु इनके सुधार के लिये अन्य दोनों शिक्षाओं की आवश्यकता है। तात्पर्य यही है कि तीनों शिक्षाओं का साथ साथ चलना आवश्यक है। फिर भी मानसिक शिक्षा की 'अधिक' आवश्यकता है जिससे विचारों में उदारता, बुद्धि और उच्चता की बढ़ती की सम्भावना होती है। मानसिक शिक्षा से पाठक यह आशय न समझ बैठें कि पाठशाला या महाविद्यालय में पढ़ने को ही शिक्षा कहते हैं अथवा उस अध्ययन के समाप्त होते ही शिक्षा अपनी अन्तिम सीमा को प्राप्त हो जाती है। हमें "Live and learn" "जीयो और सीखो" वाली कहावत का ध्यान रखना चाहिए। शिक्षा का एक अगाध और अपार समुद्र है; उसको आप अगस्त्य मुनि के समान क्षणमात्र में सोख़ नहीं सकते। उसको आप जन्मजन्मान्तर में भी शुष्क नहीं कर सकते। जैसे जैसे आप उस समुद्र के अमृत का पान करते जायंगे वैसे ही वैसे आपकी तृष्णा बढ़ती जायगी और वह सिन्धु भी बढ़ता जायगा। शिक्षा एक नक्षत्र है जो दूर से देखने से लघु प्रतीत होता है परन्तु जैसे जैसे आप उसके समीप जायंगे वैसे वैसे वह बड़ा होता जायगा। संसार में ऐसे मनुष्य अगणित हैं जो अल्पमात्र ज्ञान प्राप्त करके अपने को बड़ा भारी पण्डित समझने लगते हैं और अन्य मनुष्यों को नितान्त मूर्ख समझे हैं। कारण यही है कि नक्षत्र को बहुत ही छोटा देख कर वे शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझते और विचारते हैं कि बस अब शिक्षा को परास्त कर दिया। ऐसी दशा अधिकतर विदेशी भाषा में शिक्षा देने से हो जाती है। शिक्षा वास्तविक शिक्षा ही नहीं जब तक वह मातृभाषा में न दी जाय। चाहे वह स्कूल की हो चाहे कालिज की और उसके पीछे आप कितने ही परिश्रम और उत्साह से पढ़ें; तब तक उन्नति के दर्शन हो ही नहीं सकते जब तक आप उसको उस भाषा में न दें जिसमें कि शिक्षा पानेवाला मनन करता है; क्योंकि विचार, भाव तथा भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। विचार एक भाषा में करे और भाव दूसरी भाषा में प्रकट करे, क्या इसमें कठिनाई नहीं। अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि एक भाषा के उच्च साहित्य का दूसरी भाषा में अनुवाद ठीक ठीक बिना भावों की जरा भी हानि किए हुए कदाचित् हो ही नहीं सकता।

मनोविज्ञान (Psychology) का यह एक सिद्धान्त है कि यदि मनुष्य अपने विचारों को ज्यों कों त्यों उसी भाषा में प्रकट कर दे जिसमें वह मनन करता है तो वह बहुत शीघ्र ही विद्वत्ता का परम सेवी बन जायगा। आजकल अनेकों बड़े बड़े विदेशी दर्शन शास्त्रवेत्ताओं का निश्चित मत है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हिन्दुस्थानियों को उन्हीं की भाषा में शिक्षा दी जाय तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वे समस्त संसार में अपनी तीव्र बुद्धि और उत्कृष्ट योग्यता द्वारा परमोच्च हो जायँगे। उनके लिये असुविधा और घोर कठिनाई है तो यही है कि दूसरों की भाषा का ग्रहण करना उनके लिये आवश्यक और अनिवार्य कर दिया गया है। जब तक वे विदेशी भाषाएँ न सीखें वे उच्च शिक्षा के योग्य होने का स्वप्न भी नहीं देख सकते। यह बात घोर खेद और असन्तोष-जनक है।

इससे भी अधिक शोक दिलानेवाला विषय यह है कि हम भारतवासियों में ही आज ऐसे कृतघ्न और जड़बुद्धि उत्पन्न हो गए हैं जो अपनी अम्बा के हृदय को दग्ध करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। न जाने उनका मुख ऐसे कुवाक्य कहने का कैसे साहस करता है कि अब भारत की राष्ट्र भाषा अँगरेज़ी हो जानी चाहिए और उसी में सब प्रकार की शिक्षा समस्त देश में अनिवार्य कर दी जानी चाहिए। हमारी न्याय-निष्ठ सरकार भी ऐसे लोगों का विरोध करती है और हमको विश्वास है कि आगे से वह पूर्ण रूप से करेगी। परन्तु जब तक हम लोग अपने इन विरोधी भाइयों को अपनी ओर आकृष्ट कर कर्मण्यता के क्षेत्र में न लावेंगे और जब तक उन लोगों को प्रियतम भारतभूमि के रजकणों से भी, अद्वितीय अनिवार्य, अपरिमित और अविचल हार्दिक प्रीति न करा देंगे तब तक हमारे कार्यों में वे बड़े ही विघ्नरूप रह कर महा अनर्थ के कारण होंगे। ऐसे लोगों को इस बात का जरा भी ज्ञान नहीं है कि उनका देश किस ओर चला जा रहा है किस ओर ले जाने की हम को आवश्यकता है; वे क्या हैं और क्या कर रहे हैं। परन्तु उनको इस बात का ज्ञान प्राप्त हो ही कैसे सकता है। उन्होंने तो अनुकरणशीलता और अन्धभक्ति की विद्या भली भाँति सीख रखी है। उनको जिधर जिस किसी ने धक्का दे दिया बस वे बिना किसी सोच विचार के उसी ओर लुढ़कते चले जाते हैं। उनको इस बात का ध्यान भी नहीं रहता कि कहीं वे किसी ऐसे अन्धकारमय कूप में न पड़ जायं जहां से उनका उद्धार असाध्य हो जाय। उनकी दशा तो मूर्ख मयूर के तुल्य हो रही है; वे पाश्चात्य मेघध्वनि सुनते ही अपनी सुधि बुधि विस्मृत कर देते हैं और उसी को अपनी मुक्ति का मूल मान बैठते हैं। और भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने मित्रों के समाज में तो हिन्दी की जय मनाते हैं परन्तु जीवनसंग्राम में परीक्षा का समय उपस्थित होने पर विदेशी भाषा ही का षोड़शोपचार पूजन करते हैं। बहुतों को तो हिन्दी से ऐसी घृणा हो गई है कि कहीं यदि उसकी असह्य प्रशंसा सुन लेते हैं तो अपने बूटों को फट फट करते हुए नाक सिकोड़ कर एक कोने में चले जाते हैं। यदि वे थोड़ी सी भी अँगरेज़ी जानते हैं तो बेचारे केवल हिन्दी जाननेवालों के सामने अपना लाल-बुझक्कड़ी ज्ञान अवश्य प्रकट कर के अपनी शान दिखाना चाहते हैं। जिन वस्तुओं के वे अँगरेज़ी नाम जानते हैं उनके लिये वे भूल से भी हिन्दी शब्द अपने मुख से नहीं निकालते। वे तो विदेशी भाषा ही को अपना सर्वस्व समझ बैठे हैं, वे अपना तन मन और धन दे कर उसके चेले ही हो गए हैं; उनको प्रत्येक भारतीय वस्तु से घृणा हो गई है! ये सकल कुपरिणाम हैं हिन्दी से द्वेष रखने के। हमारी हिन्दी वह भाषा है जिसके सीखने की सुगमता आज पृथ्वी पर विदित हो रही है, जिसके कुछ न कुछ प्रेमी आज भारत के प्रत्येक देश में और कहीं कहीं विदेश में भी पाए जाते हैं, जिसके सद्गुणों का गान अनेकों पाश्चात्य विद्वान् तथा हमारे पण्डितगण कर गए हैं और हम यदि प्रयत्न करें तो बड़ी ही सुगमता से वह हमारी राष्ट्र भाषा स्वीकार की जा सकती है और उसी प्यारी भाषा में समस्त भारत में उच्च शिक्षा भी दी जा सकती है। क्योंकि अन्य ऐसी कोई भाषा नहीं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे देश में सर्वत्र सुगमता से समझी जा सकती हो।

इन सब बातों का ज्ञान रखते हुए भी बहुत से भारतवासी उससे भारी द्वेष कर के उसको विषतुल्य त्याग देते हैं, विदेशी भाषा तथा शिक्षा के वश हो कर स्वदेशीय गौरव को विस्मृत कर देते हैं। इससे मेरा यह आशय नहीं हैं कि अँगरेज़ी शिक्षा से लाभ नहीं होते। नहीं, लाभ अनेक हैं और वे सराहनीय भी हैं। शिक्षा का प्रचार अँगरेज़ों ने बहुत किया, उसके लिए हम अति कृतज्ञ हैं। परन्तु थोड़ा ही ज्ञान पा कर लोग गर्वित हो जाते हैं और अँगरेजी सीखने के पश्चात् वे अपने को उस भाषा का पण्डित मान कर अँगरेजी न पढ़े हुए लोगों को मूर्ख तथा अन्धकार-पतित जान कर उनका निरादर करने लगते हैं। यदि ऐसे युवकों को ऐसी पुस्तकें पढ़ने को न मिलतीं जिनमें प्राचीन भारत की शिक्षा, सभ्यता तथा सदाचार की निन्दा की भरमार है, जो स्वदेशीय गर्व को नष्ट करने में भी समर्थ होती हैं तो कैसा अच्छा होता ! यदि उनको अपनी भाषा ही में उच्च शिक्षा दी जाती, यदि उनके हृदय में उसी की प्रीति उपजाई जाती तो हमारा महान् सौभाग्य होता। बहुत से भारतीय नवयुवक जिन पर अँगरेज़ी शिक्षा का बुरा प्रभाव पड़ गया है और जिनको यह निश्चय हो गया है कि उनके सकल पूर्वज अज्ञानान्धकार में पड़े थे, आलस्य की मूर्तियाँ बने रह कर धर्म और तप के गोरखधन्धे ही में लगे रहे, जातीयता के भावों से सर्वथा अनभिज्ञ थे और देश-भक्ति का सञ्चार उनके हृदय में नाम-मात्र को नहीं था। ऐसे मनुष्यों के ज्ञान को हम मिथ्या समझते हैं और उनके बनावटी स्वाभिमान को हम तृण के समान भी नहीं मानते।

ऐसे स्वयं-निर्वाचित सभ्य शिक्षित मनुष्य कभी स्वप्न में भी देशोन्नति करने के भागी नहीं हो सकते। क्योंकि वे तो यह जानते ही नहीं कि देशोन्नति किस चिड़िया का नाम है। यह तो निश्चय ही है कि अब भारत उनका देश नहीं रहा। भाइयो! यह जान कर आपको घोर दुःख और महदाश्चर्य होगा कि मैंने ऐसे हिन्दुओं को भी देखा है जो हृदय से चाहते हैं कि उनका पुनर्जन्म योरप में ही हो। अब आप विचार सकते हैं कि इनके लिये देशोन्नति का क्या अर्थ हो सकता है? बस यही कि जैसा विदेशों में हो रहा है वैसी ही ठीक प्रथा तुम ग्रहण करो। जिस रीति और परिपाटी से तथा जिन विषयों में समाज-सुधार वहाँ हो रहा है वैसा ही तुम करो, इसकी कुछ परवा नहीं कि तुम्हारे देश की तथा विदेश की दशा में क्या अन्तर है। तुम्हारे देश की अब क्या क्या आवश्यकताएं हैं और वे किन किन नीति तथा रीति से पूर्ण हो सकती हैं। तुम्हारा कर्तव्य तो यह है कि उनकी प्रतिबिम्बता पर कटिबद्ध हो जाओ, परिणाम चाहे जो हो इसका भार तुम पर नहीं है। ऐसे मिस्टरों को प्राचीन संस्कृत साहित्य से तो और भी घोर शत्रुता होती है। क्योंकि वे इस बात को सीखे हुए होते हैं कि वेदों तथा शास्त्रों में मूर्खता की बातों ही की भरमार है, उनके रचयिता जङ्गली तथा असभ्य थे, उनको एक अक्षर भी लिखना नहीं आता था और वे पशुओं के तुल्य वास करते थे। परन्तु इन मिस्टरों को यह पता ही नहीं कि वेद के रचयिता जो थे सो थे ही, अब वे स्वयं ही पशुओं से अधमतर हो गए!

यदि ऐसे मिस्टरों का तैयार करना ही सच्ची शिक्षा का उद्देश्य बना दिया जाय, अर्थात् यदि स्वदेशाभिमान को नाशाग्नि के समर्पण किया जाय, यदि मनुष्यत्व को सर्वथा तिलाञ्जलि ही दे दी जाय, यदि विद्योन्नति तथा स्वदेशोन्नति पर तीक्ष्ण कटार और कुठार चलाए जायँ और यदि बुद्धिस्वातन्त्र्य (Rationalism) को घोर शत्रु समझा जाय, तो थोड़े ही समय के पश्चात् क्या भारत में कोई मनुष्य कहलाने योग्य रहेगा? और फिर इस परम प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामकृष्ण की प्राणप्रिया पावन मही का नाम भी क्या इस संसार में कहीं सुनाई देगा ?

अभीष्ट शिक्षा का उद्देश्य ऐसा निकृष्ट और अधम नहीं हो सकता। उसका वास्तविक उद्देश्य यही है कि वह केवल विद्या प्राप्ति के निमित्त ही ग्रहण की जाय, उससे बुद्धि का स्वतन्त्र विकाश किया जाय। और मनुष्य के चरित्र तथा आचरण का सुधार पूर्ण रूप से हो; इन तीनों बातों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। वे एक दूसरे से पृथक् नहीं हैं। शिक्षा का यह उद्देश्य नहीं रखना चाहिए कि हमको १५०) की नौकरी मिलेगी, हम वकील होंगे, इनजीनियर होंगे, सिपाही होंगे इत्यादि। किन्तु इस उद्देश्य से शिक्षा ग्रहण करें कि हम सच्चे मनुष्य बनें, सत्य को पहचानें और उसी के मार्ग पर चलें। सांसारिक पदवियां और उपाधियाँ तो फिर बिना बुलाए ही चली आवेंगी। बस हम को सदाचारी, सत्यरत और स्वतन्त्रबुद्धिमय बनना चाहिए तभी हम मनुष्य कहे जा सकते हैं। डाकटर आरनल्ड का वचन है कि "सच्चरित्रता ही शिक्षा का परिणाम है। यदि मनुष्यों में से सदाचार निकाल दिया जाय तो वह बालक की अवस्था को नहीं किन्तु पशु की अधमाधम गति को प्राप्त होगा।" रेवरेन्ड ह्यू का कथन है कि "सुयोग्य सदाचार की उन्नति, न कि ज्ञान-प्राप्ति, समस्त शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। वास्तव में सच्चरित्र स्वयमेव मनुष्य ही है" इसका यह आशय नहीं है कि शिक्षा से ज्ञान प्राप्त ही नहीं होता, जब मनुष्य सच्चरित्र होगा और उसमें बुद्धि-स्वातन्त्र्य का विकाश होगा तब ज्ञान स्वतः आ जायगा। शिक्षा उदर पोषण का द्वार नहीं है। "यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति "शिक्षा इसलिये नहीं होनी चाहिए कि हम ईश्वर से ऊँचे बन कर उसकी निन्दा करें अथवा उसको वृद्ध समझ कर पेनशन दें, शिक्षा इसलिये नहीं है कि हम भाट के समान चाटूक्तिशतक का जप किया करें और मनुष्यत्व को नष्ट करते हुए अपने जीवन को अधम बनावें। किन्तु बेकन साहब के कथनानुसार हमारी शिक्षा जीवन की उच्च स्थिति का तथा ईश्वर की महिमा का भवन भण्डार बनना चाहिए। यदि हम ईश्वर को विस्मृत कर देंगे जैसा कि आज बहुत से स्वयं-निर्वाचित विद्वान् करते हैं तो हमारा पतन अवश्य होगा। परन्तु हम जब तक अपने आत्मा, महात्मा तथा परमात्मा का स्मरण किए हुए हैं, और जब तक उन पर हमारी श्रद्धा है तब तक और लोग जो चाहें सो करें, हमारे प्यारे देश की अणुमात्र भी हानि नहीं हो सकती। श्रीस्वामी विवेकानन्द जी का कथन है कि "भारतीय राष्ट्र का विनाश कदापि नहीं हो सकता, वह अमर तथा अजर है और सदैव ऐसा ही रहेगा, यदि यहाँ के निवासीजन अपने आत्मभावों को नहीं त्यागेंगे अर्थात् अपने ईश्वर को विस्मृत न करेंगे।"

ठनाठन कमाने के लिये शिक्षा को कष्ट देना उचित नहीं, वरञ्च अपने आत्मभावों को उन्नत करने के लिये ही शिक्षा ग्रहण करना परम योग्य है। एपिकटेटस (Epictetus) का वचन है कि "यदि तुम नगर-वासियों की आत्माओं को न कि घर की छतों को ऊँचा कर दोगे तो तुम मानव-समूह के उत्तम सेवी कहलाओगे। क्योंकि यह वाञ्छनीय है कि महात्मा जन छोटे घरों में रहें परन्तु यह ठीक नहीं कि अधम तथा अनधिकारी दास जन बड़े घरों में निवास करें।" शिक्षा द्वारा यदि हम विद्या देवी की कृपा प्राप्त कर लें तो वास्तव में धन तुच्छ ही है। यहाँ पर मैं यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि हम चाहे दरिद्री हो जायं, झोंपड़ों में भले ही रहें, दो चार रुपए गज़ का कपड़ा भी न पहन सकें, बड़े बड़े लोगों से हाथ भी न मिला सकें, चाहे मरण हो जाय परन्तु हम अपने स्वाभिमान को, अपने आत्मिकभावों को, प्राचीन साहित्य की रक्षा तथा सेवा को, अपने पूर्वजों के आदर को और विद्यादेवी की सेवा को कदापि त्यागना उचित नहीं समझते। यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात न्याय तथा बुद्धि-सङ्गत प्रतीत होती है। "निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टं॥ अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥" यदि हम धीर तथा गम्भीर पुरुष हैं तो न्याय से कदापि विचलित न होंगे। और धन के ढेर लगाना कोई सच्चा मनुष्य शिक्षा का उद्देश्य नहीं मान सकता। लबक (Lubbock) का कथन है कि "हम लोगों को अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे हमारा जातीय इतिहास तथा काव्य, हमारे उचित स्वाभिमान तथा स्वातन्त्र्य-बुद्धिमय आनन्द का मूल कारण हो। वास्तव में सच्ची शिक्षा का हमको यही उद्देश्य बनाना चाहिए कि हम जातीय भावों से प्रपूर्ण सद्विद्या, धर्म और मनुष्यत्व से युक्त सच्चे पुरुष बनें और अपने सहवासियों को भी वैसा ही बनावें न कि मनुष्यता से ही हाथ धो बैठें। हम ऊपर कह आए हैं कि स्वतन्त्र बुद्धि का विकाश ही शिक्षा का वास्तविक परिमाण है। इस बात का हमको सदैव ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा हम झट से 'अयं निजः परोवेतिगणना लघुचेतसां' कह कर पराए को अपना समझ कर अनर्थ कर बैठेंगे।

हमको शिक्षा के सच्चे उद्देश्य के अस्तित्व के लिये परम उद्योग के साथ प्रयत्न करना चाहिए। कष्ट चाहे जितने हों क्योंकि 'मनस्वी कार्यार्थी गणयति दुःखं न च सुखम्'। जब हम अपने मन में ठान लेंगे कि हमारी शिक्षा का यही उद्देश्य हो तो हमको कोई कठिनता अपनी कार्यसिद्धि में न होगी। यह प्रसिद्ध ही है कि जहाँ किसी बात के लिये प्रबल इच्छा होती है वहाँ उसके हेतुमार्ग भी अपने आप बन जाता है। हमको पहले ही से यह विचार कर कि इस कार्य में विघ्न और अनेकों कठिनाइयाँ होंगी उसका परित्याग नहीं करना चाहिए। हम जानते हैं कि हम पुरुष हैं तब विघ्नों की क्यों परवाह करें? क्या हम में परम पूज्य उद्योगी महात्माओं का रक्त अद्यावधि सञ्चार नहीं कर रहा है? क्या हम पशुओं से और जड़ पदार्थों से भी गए बीते हो गए हैं? वे तो अपनी टेक पूरी कर लें और हम यों ही मुँह ताकते रह जायं। यदि ऐसा है तो लाख बार धिक्कार है हमारे मनुष्यत्व पर। हम को चाहिए कि आज ही से सब काम त्याग कर अपने को पशुओं से भी अधम समझ कर कहीं एक कोने में मुँह छिपा कर बैठ जायं। परन्तु यदि हम लोगों को मनुष्य पुरुष इत्यादि नामों तथा उनकी पदवी से प्रीति हो तो हमारा परमावश्यक कर्तव्य है कि अपना कार्य आरम्भ कर दें और भर्तृहरि जी के कथनानुसार उत्तम जन कहलावें। "प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्याः। विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्यतूत्तमजना न परित्यजन्ति'। यह भी स्मरण रखना परमावश्यक है कि जैसा हम शिक्षा का उद्देश्य चाहते हैं शिक्षा भी वैसी ही होनी चाहिए अन्यथा उद्देश्य की पूर्त्ति असम्भव ही होगी।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो हमारे हृदय में सच्ची राष्ट्रीय तरङ्गों का प्रोत्थान करे, जो हमारे चित्त में स्वाभिमान तथा स्वदेश-गर्व का सञ्चार करे जो हमको सर्वदा स्वधर्म और स्वकर्तव्य से हार्दिक प्रीति करावे, जो हमारे मन-सर में सत्ज्ञानरूपी मरालों का मधुर गान करावे, जो हम में विद्या और अपने साहित्य की भक्ति उत्पन्न करे, जो हमको ईश्वर ही का दास और उसी के अधीन रखे और जो हम से पूज्य पूर्वज महर्षियों का सच्चा और हार्दिक सम्मान करावे।

ऐसी शिक्षा होने के लिये यह परमावश्यक है कि छोटे छोटे विद्यालयों में शिक्षा प्रणाली ही ऐसी रखी जाय। शिक्षकों के उच्च विचार हों तथा उनमें ऐसे ऐसे ही गुण हों और उनमें इतनी आत्मशक्ति तथा योग्यता हो कि वे उन गुणों का अपने शिष्यों पर पूरा पूरा प्रभाव डाल सकें। पुस्तकें जो प्रत्येक वर्ग में रखी जायं वे खूब सोच समझ कर हमारी अनुमति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही रखी जायं, जो हमारी आवश्यकताओं तथा हमारे साहित्य के महत्त्वको नहीं जानते उनके हाथों में यह काम न देना चाहिए। पुस्तकालयों में भी ऐसे भावों की ही पुस्तकें तथा समाचारपत्रादि होने चाहिए तथा जैसे हो ऐसे ही भावों का प्रचार होना चाहिए।

अभी हमको इस बात की आवश्यकता है कि हम लोग अपने प्यारे अतीत भारत की परमोज्ज्वल कीर्ति और विमल उत्कृष्ट गौरव से सोत्साह उत्तेजित किए जायं; परन्तु यह बात कठिन है। क्योंकि बहुत से नव-शिक्षित विद्वज्जनों के हृदय में यह बात भली प्रकार जमाई गई है कि उनके पूर्वज मूर्ख थे और उनके अतीत भारत में न तो कोई महात्मा हुआ और न कोई महत्वपूर्ण बात हुई। उनका जितना साहित्य है वह सर्वथा मिथ्या है, अतएव यदि हम अपने प्राचीन संस्कृत-साहित्य द्वारा अपनी पूर्वमहत्ता सिद्ध करना चाहें तो उन शिक्षित महाशयों को विश्वास ही न होगा। यदि अपना इतिहास, अपना साहित्य अविश्वसनीय है तो पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे देश और साहित्य की जो मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है कृपा कर उसी से उत्तेजना प्राप्त करके उसके महत्त्व को हृदय में रख कर अपने साहित्य तथा देश की रक्षा और सेवा में उत्कट प्रेम और उद्योग से स्वार्थ को तिलाञ्जलि दे कर आज ही से निमग्न हो जाओ। वर्तमान दर्शन शास्त्र के इतिहास में विकटर कज़न कहते हैं "जब हम भारत की दार्शनिक तथा काव्यस्मृतियों का अध्ययन करते हैं, तब हम वहाँ ऐसा गम्भीर और अगाध सत्य पाते हैं जिसकी तुलना यदि उन तुच्छ परिणामों (the meanness of the results) से की जाय जिनके आगे कभी कभी योरप के बड़े बड़े विद्वान् नहीं बढ़ सके हैं तो हमको विवश हो कर पूर्व के समक्ष नम्रतापूर्वक झुकना पड़ता है"। एक अन्य ऐतिहासिक विद्वान् का कथन है—"भारत का पावन साहित्य वैचित्र्य तथा विस्तार में किसी से कम नहीं है; किन्तु वह सकल साहित्यों से विचारों की उच्चतामें, भावों की पवित्रता में और विस्तृत व्यापकता में बढ़ा चढ़ा हुआ है। वह समस्त प्राचीन तथा वर्तमान साहित्यों से सौन्दर्य तथा विस्तार में तुलना करने को सर्वथा समर्थ है"। इन प्रशंसा के वचनों को सुनकर अनेकों नवयुवक हँस कर कहेंगे कि इस रोने धोने से क्या लाभ है? परन्तु स्मरण रखो कि जब तक यही रोना जोरों के साथ हमारे देश के घर घर में व्याप्त न हो जायगा जब तक हम अपने बालक बालिकाओं के भी मुख से भारत की प्रशंसा के मधुर गान न सुनेंगे और जब तक हम अतीत भारत के महत्त्व के चित्र को भली प्रकार अपने हृदय पटल पर न उतार लेंगे तब तक हमारी उन्नति सर्वथा असम्भव ही है। प्राचीन काल से द्वेष रखने में हमारा कल्याण न होगा। यह बात बुद्धि-सङ्गत नहीं है कि जो कुछ पुराना है वह निन्दनीय है, क्या साहित्य, क्या मनुष्य, क्या बोलने और क्या काव्य की भाषा। विदेशों के विद्वानों ने तो हमारे अतीत भारत का अपने यहाँ पुनरुत्थान चाहा है और हम उसी का सर्वनाश चाहें! कैसे दुःख का विषय है। एम लूई जे कोलियट (M. Louis Jacolliat) का भी वचन ध्यान से सुनिए—"हे प्राचीन भारत की रज! तूने मानव जाति को पालने में झुलाया है। हे पूजनीया तथा निपुण धात्री! तेरा बारम्बार स्वागत है। तुझको अनेक शताब्दियों के क्रूर आक्रमण भी विस्मृति की धूलि में अद्यावधि नहीं मिला सके। हे पितृभूमि! हे भक्ति वसुन्धरे! हे प्रेम काव्य! तथा विज्ञान के देश तेरा सादर स्वागत है। हम लोग तेरे भूत काल का पुनरुत्थान अपने पश्चिमीय भविष्य में स्वागत करते हैं"। क्या यह उत्तेजनापूर्ण भारत-महत्त्व-गान हमारे अलसित और देशद्रोही भाइयों के हृदय में देश-भक्ति की तरङ्गें नहीं उठा सकता। वो तो मनुष्य हैं, यहां के जड़ पदार्थ भी यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे वाक्यों से देशाभिमान में मत्त हो कर कर्मण्यता-क्षेत्र में कूद पड़ें तो कोई आश्चर्य नहीं!

अपनी शिक्षा में यदि आप अपने अतीत भारत से, उसके प्राचीन साहित्य से और उस साहित्य के परमोच्च भावों से सम्बन्ध रखेंगे तभी वह शिक्षा शुभ फलान्विता होगी। मेक्समूलर का कहना है कि "मेरी मति के अनुसार समस्त विश्वविद्यालयों का यह कर्तव्य है कि वे अतीत काल से सम्बन्ध न त्यागें" क्योंकि "सकल वर्तमान जीवित भाषाएं, साहित्य और दर्शनशास्त्र मृत तुल्य हो जावेंगे यदि तुम उनको उन ऐतिहासिक सूत्रों से अलग कर दोगे जिनके द्वारा वे अपनी प्राचीन भूमि से बँधे हुए हैं"।

अतएव हम लोगों को अपने प्यारे अतीत भारत से सम्बन्ध रखते हुए अपनी शिक्षा का आदर्श वही बनाना चाहिए जिसके द्वारा हम उसका पूर्व-कथित उद्देश्य पूरा कर सकें, प्राचीन साहित्य के उच्च भावों का अनुपालन कर सकें और वास्तविक मनुष्य बन सकें। प्लेटो का वचन है कि "बुद्धिमान मनुष्य उसी शिक्षा का आदर करेगा जो उसकी आत्मा को शान्ति, सद्धर्म और विद्या प्रदान करे औरों का वह कम सम्मान करेगा।"

यदि हम ऐसे गुणों से विभूषित होना चाहते हैं, यदि हम अपनी शिक्षा के आदर्श को निर्मल और प्रतिष्ठित रखना चाहते हैं और हमको यदि अपने देश की उन्नति अभीष्ट है तो हमें अपने साहित्य से परम प्रीति करनी चाहिए। जान मारले (John Morley) का भी कथन है—"साहित्य एक महाशक्तिशाली यन्त्र है जो लोगों को सच्चरित्र बनाता और हमको ऐसे स्त्री-पुरुष देता है जो कि बुद्धि के कवच से युक्त, ज्ञान से परिवेष्टित, साहस और चित्त-निश्चलता से उपयुक्त और उस जनता-सम्बन्धी आत्मभाव और पुण्य से उत्तेजित किए हुए होते हैं जो मनुष्य की बुद्धि के परमोज्ज्वल आभूषण कहे जाते हैं और "साहित्य जितनी सहायता हमको ज्ञानमय विचारों और शुद्ध अनुभवों के पावन तथा श्रेष्ठ सहवास में देता है उतनी सहायता अन्यत्र नहीं मिल सकती"।

जब हम लोग ऐसी उच्चादर्शयुक्त शिक्षा-द्वारा विद्या देवी की कृपा के भाजन हो जायंगे, तब हमको कोई क्लेश न रहेगा। जहाँ कहीं हम जायंगे हमको सर्वत्र आनन्द ही अनन्द प्राप्त होगा! भर्तृहरि जी का श्लोक स्मरण कीजिए,—

> "विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्।
> विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥
> विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्।
> विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः॥

तब यही विद्यादेवी हमारी आत्मा को पूर्ण प्रकाशमय कर देगी, वह हमारे समक्ष प्रकृति देवी के ग्रन्थ रख देगी, हमारे जीवन को श्रेष्ठ तथा पुनीततम बना देगी और हमारी लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति का मार्ग प्रकाशित करके हमको उस पर चलावेगी। उसके महत्वपूर्ण सद्गुण अवर्णनीय हैं। अब हमारा कर्तव्य है कि हम विद्या देवी का सेवन करते हुए तीनों प्रकार की शिक्षा (शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक) का आश्रय लें जिससे हम अपने स्वत्वों को जान सकें, उनको ग्रहण कर सकें और उनकी रक्षा करके आत्मोन्नति कर सकें। शिक्षा के आदर्श तथा उद्देश्य की सिद्धि के हेतु हम प्रयत्न करें और न तो अपने कार्यों में विघ्नों का भय मानें और न यह विचारें कि हमारे प्रयत्न का कुछ परिणाम होगा या नहीं। ऐसे निराशापूर्ण विचार श्रीकृष्णचन्द्र जी की शिक्षा लेते हुए हमको सर्वथा दूरही रखने चाहिए—"कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि॥"

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षियों की उपयोगिता।

[अनुवादक,—पं० त्र्यम्बकदेव काशी।]

(सन् १८४६ में अमेरिका के स्मिथसन नामक एक सज्जन ने प्रायः सोलह लाख रुपए वहाँ की सरकार को वैज्ञानिक विषयों की खोज करने के लिये वहाँ की सरकार को दिए थे। उसी के नाम पर वहाँ के वाशिंग्टन नगर में स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूट स्थापित है। समय समय पर और भी बहुत से लोगों ने बड़ी बड़ी रकमों से उक्त संस्था की सहायता की है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों के राष्ट्रपति इसके चैन्सलर होते हैं और राज्य के दूसरे बड़े बड़े कर्म्मचारी इसके पदाधिकारी और कार्य्यकर्त्ता होते हैं। यह संस्था बराबर उन्नति करती जा रही है और इसने अब तक कई सौ परम उपयोगी ग्रन्थ बड़े परिश्रम से तैयार कराए हैं। इस संस्था की प्रति वर्ष जो रिपोर्ट प्रकाशित होती है उसमें भी अनेक उपयोगी निबन्ध होते हैं। सन् १९१३ की रिपोर्ट के एक निबन्ध के आधार पर श्रीयुक्त गोविन्द सीताराम सरदेसाई बी० ए० ने मराठी मनोरंजन के वसन्त अंक में "सृष्टि-कर्याच्या योजनेंत-पक्ष्यांचे कार्य्य" शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया है। प्रस्तुत लेख उसी की सहायता से लिखा गया है।)



मनुष्य समझता है कि पृथ्वी पर मेरे समान सामर्थ्यवान् प्राणी अन्य कोई नहीं है। पर उसकी यह कल्पना व्यर्थ है। वास्तव में सामर्थ्यवान् कीटक ही हैं। कीटकों की संख्या, बाढ़ और करतूत देखी जाय तो आश्चर्य प्रतीत होता है। मनुष्य ने बुद्धि की सहायता से अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र निर्माण कर सृष्टि का संहार करने में विलक्षण कौशल सम्पादन किया है। परन्तु इस कीटक-कोटि के सामने उसे सिर झुकाना पड़ता है। इस कीटक जाति की सच्ची कल्पना बहुत ही थोड़े लोगों को होगी। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि से कीटकों की जाति की संख्या अधिक होती है। इस जाति की संख्या तीन लाख तक गिनी गई है और इससे दूनी संख्या अभी तक गिनने को बाकी है! इसकी तो कल्पना ही नहीं होती कि इन सब कीटकों के लिये खाना कितना अधिक लगता होगा। सब प्रकार के प्राणियों तथा वनस्पतियों पर कीटकों का जीवन निर्भर होता है। कितने ही कीटकों की बाढ़ भी बहुत अधिक है। रायल नामक एक शास्त्रज्ञ का कहना है कि पिस्सू के समान एक कीटक-जाति है; उसकी एक वर्ष में तेरह पुश्तें होती हैं और उनके संहार की योजना न हो तो एक वर्ष में उनकी संख्या इतनी बढ़ जाय कि एक पर छत्तीस शून्य देने पड़ें! अमेरिका में आलू में लगनेवाले एक प्रकार के कीड़े होते हैं। यदि उनका संहार न हो तो एक ही मौसिम में उनकी संख्या छः करोड़ हो जाय। टिड्डियों को तो प्रायः सभी जानते हैं। यदि उनका संहार न हो तो इस पृथ्वी का सर्वस्व नष्ट हो जाय।

जैसी कीटकों की वृद्धि बहुत अधिक है वैसे ही उनका भक्ष्य भी बहुत अधिक है। एक प्रकार की टिड्डी होती है जो प्रति दिन अपने वजन से दूनी घास-पत्ती खाती है। यदि घोड़ा अपने वजन से दूनी घास प्रति दिन खाय तो कैसी दिल्लगी हो? इस ओर ध्यान देने ही से उपर्युक्त कल्पनाएं सुगमता से समझ में आ सकती हैं। एक प्रकार का मांसभक्षक जन्तु है जो चौबीस घण्टे में अपने वज़न से दो सौ गुना अधिक मांस खा जाता है। रेशम के कीड़ों का परिचय प्रायः सभी लोगों को है। उसकी उत्पत्ति के समय एक कीड़े का जितना वज़न होता है उससे ८६,००० गुने अधिक वज़न की पत्ती उसे छप्पन दिन में खाने को चाहिए। यदि उत्पन्न हुए इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सभी कीड़े बचें तो वनस्पति का कितना संहार हो इसकी कल्पना कर लेनी चाहिए।

इस प्रकार के सर्वभक्षक कीटकों का संहार करने की सृष्टिकर्त्ता की योजना भी विचित्र ही है। उसने खास कर इसी लिये पक्षी उत्पन्न किए हैं। पक्षियों का मुख्य भक्ष्य कीटक हैं। पक्षी के कारण ही मनुष्य का इस पृथ्वी पर जीवन है। आलू तथा अन्य प्रकार के फल-फूल आदि पर इतने जीव-जन्तुओं का आक्रमण होता है कि नाना प्रकार की योजना कर उनकी रक्षा करते करते मनुष्य की नाक में दम हो जाता है। परन्तु बड़े बड़े जङ्गलों का इस तरह रक्षण करना मनुष्य मात्र के लिये असम्भव है। सृष्टि के सब प्राणियों का कार्य्य सुरक्षित रूप से चलने के लिये पक्षियों की अत्यन्त आवश्यकता है।

पक्षियों का इतना उपयोग होने पर भी उनका व्यर्थ नाश करने का कार्य्य आज पचासों वर्ष से सर्वत्र चल रहा है; यह देख हर एक मनुष्य को आश्चर्य होगा। सृष्टिकर्ता की उपयुक्त योजना के नाश करने का कार्य्य अत्यन्त घातक है। मनुष्य की समझ में यह नहीं आता कि इस कार्य्य से भावी सन्तति का बहुत नुकसान हो रहा है। बन्दूक की सहायता से मनुष्य बहुत अन्तर से दूसरे का प्राण-नाश कर सकता है। इस शक्ति से वह अपने को सारी सृष्टि का मालिक समझता है। मानों जीवन, मरण आदि का सब अधिकार मनुष्य ने अपने ही हाथों में ले लिया है। परन्तु सृष्टिकर्ता ने सर्वत्र समान व्यवस्था कर सृष्टि के जो नियम बना दिए हैं उन्हें तोड़ने से बड़ा भयङ्कर परिणाम होगा। इस व्यवस्था का यदि थोड़ा सा भाग भी नष्ट हुआ तो सृष्टि का लय ही होगा। कीटकों के संहार करनेवाले पक्षियों का यदि नाश किया गया तो कीटकों की संख्या इतनी बढ़ेगी कि जिससे कोई प्राणी या वनस्पति इस भूतल पर न बचेगी।

कुछ वर्ष पूर्व हंगरी के किसानों को यह खयाल हुआ कि चिड़ियाँ हमारे खेतों का नाश करती हैं। इस कारण उन लोगों ने सब चिड़ियों के मार डालने की आज्ञा सरकार से ली; और इसके अनुसार सब चिड़ियों का नाश होने के पश्चात् पाँच ही वर्ष में यह परिणाम हुआ कि खेतों में कीड़े लग गए और उनमें कुछ भी उपज न हुई! तब उन्हीं किसानों ने इस कायदे का रद करा कर फिर चिड़ियों की वृद्धि की जिससे उनके खेतों में पूर्ववत् फसल होने लगी। ऐसा ही एक बार बूर्बो द्वीप में भी हुआ था। वहाँ पर मार्टिन नामक एक प्रकार का पक्षी था। उसे मार डालने का प्रबन्ध करते ही टिड्डियों की बाढ़ यहाँ तक हुई कि अन्त में लोगों को फिर से मार्टिन पक्षी पालने और बढ़ाने पड़े। सन् १८६१ में फ्रांस देश की खेती का भी इसी प्रकार सर्वनाश हुआ। इसके लिये वहाँ की सरकार ने कमीशन स्थापित किया। कमीशन ने रिपोर्ट की कि इस देश के सब पक्षियों का नाश होने के कारण भिन्न भिन्न प्रकार के कीटकों की वृद्धि से सब खेती नष्ट हुई है। इसी रिपोर्ट के कारण नवीन कायदा बना कर देश में पक्षियों का मारना बन्द किया गया। इस से खेतों की पुनः रक्षा होने लगी। इस प्रकार अन्य अन्य स्थानों के सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत हैं। पक्षियों के परों का मूल्य अधिक होने के कारण सैबेरिया से पक्षी मार मार कर उनके परों से रेलगाड़ियाँ भर कर युरोप जाने लगीं। साथ ही वहाँ टिड्डियों का दल और उपद्रव भी बढ़ने लगा और फसल कम होने लगी। इससे आगे के लिये अनेक प्रकार के नवीन प्रबन्ध करने पड़े। जमाय का द्वीप का हाल भी इसी प्रकार है। पच्छिम अफ्रिका में बत्तकों को मार डालने का परिणाम भी यही हुआ था। अमेरिका न्यूजीलैंड आदि स्थानों में जब युरोपियन लोग पहले पहल जा कर रहने लगे तब वहाँ कीटकों की संख्या भी बहुत अधिक थी। नवीन खेत कीटकों को खाने के लिये प्राप्त होने के कारण उनका पोषण उत्तम रीति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने लगा और यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इनसे खेतों का रक्षण किस प्रकार हो। उन दिनों युरोपियन लोग वहाँ के पक्षियों का बेतरह नाश करते थे; पर जब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तब पक्षियों का मारना बन्द हुआ और तभी से उनकी खेती पूर्ववत् होने लगी।

बहुत से लोगों को स्मरण होगा कि कुछ वर्ष हुए दक्षिण प्रान्त में टिड्डी—दल आया था। असंख्य टिड्डियों से आकाश ढक गया था और सूर्य्य आच्छादित होने के कारण पृथ्वी पर अँधेरा छा गया था। यह दल दो चार कोस के गिर्द के पेड़ों तथा खेतों पर गिर कर थोड़ी ही देर में सब पेड़ों तथा खेतों को खा कर साफ कर डालता था। यहाँ तक कि ओषधि के लिये भी एक पत्ती न बचती थी। इन टिड्डियों को पकड़ कर जला देना या इनके अण्डे बच्चों का नाश करना आरम्भ हुआ पर इसका कुछ भी फल न हुआ। न्यूजीलैंड में भी ऐसे टिड्डी-दल बराबर आते थे। वे दल इतने बड़े होते थे जिनकी वजह से रेल-गाड़ियों की गति तक बन्द हो जाती थी। तब वहाँ के लोगों ने युरोप से चिड़ियाँ ला कर पालीं और तब से धीरे धीरे टिड्डियों का उपद्रव कम हुआ। सब प्राणियों में पक्षियों की पाचन-शक्ति अति तीव्र है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो उन्हें न पचता हो; दिन भर वे खाते ही रहते हैं। इसी से टिड्डियों के निवारणार्थ पक्षियों के समान सामर्थ्यवान् प्राणी अन्य कोई नहीं है। आस्ट्रेलिया में एक महाशय ने हिसाब लगाया कि एक पक्षी एक दिन में २४१० टिड्डियाँ खाता है। यदि पक्षियों की संख्या दो लाख भी हो तो प्रति दिन टिड्डियों का नाश कितना होगा, इसकी कल्पना सहज में हो सकती है। वैसे ही समग्र पक्षियों को कितना आहार चाहिए, यह भी मालूम हो सकता है। आस्ट्रेलिया में जोंक आदि कीड़े इतने रहते थे कि हर एक काम में उनके कारण बाधा उत्पन्न होती थी। परन्तु इन जोंकों को जल-पक्षियों ने ही समाप्त किया। इस प्रकार के उदाहरण बहुत हैं। उन सब के यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। प्रत्यक्ष मनुष्यों के लिये पक्षियों का उपयोग कितना है यह इसी विवरण से व्यक्त हो जायगा।

मनुष्य ने आरम्भ से सृष्टि-योजना में बहुत से फेर फार किए हैं। पर तो भी भूपृष्ठ पर बहुत से बड़े बड़े जंगल अभी तक आरम्भ ही की स्थिति में वर्तमान हैं। इन जंगलों के रक्षणार्थ पक्षियों का कितना उपयोग है यह सहसा किसी के ध्यान में नहीं आता। जंगलों के पेड़ों के भी अनेक प्रकार के प्रचण्ड शत्रु हैं। अनेक प्रकार के कीटक, जन्तु आदि पेड़ों की जड़ों में शाखाओं पर तथा तनों में रह कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पेड़ों ही का आश्रय लेकर रहनेवाले पक्षी इन कीटकों का संहार कर पेड़ों को बचाते हैं। पेड़ न होते तो कीटक न जीते; कीटक न होते तो पक्षी न जीते और पेड़ न होते तो सृष्टि ही न रहती। सृष्टिकर्त्ता की योजना अन्योन्यावलम्बी है। पेड़ों के बीज के पृथ्वी पर गिरते ही उसके शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। बीज में कल्ले फूटते ही उसमें कितने ही कीटक प्रवेश करते हैं। उनसे भी बचने पर आगे कोमल पत्तियाँ निकलते ही उन्हें चमगादड़ आदि पक्षी खाने लगते हैं। पेड़ बढ़ते ही इसके तने में अनेक कीटक अंडे देने लगते हैं। अंडों से कीटकों की वृद्धि होते ही वे उसी पेड़ को छेद कर अपना घर बना लेते हैं। इन छेदों में से बरसात का पानी जाता है जिससे पेड़ों का अन्तर भाग सड़ने गलने लगता है और धीरे धीरे पेड़ सूख कर अन्त में मर जाता है। दूसरे कई प्रकार के ऐसे कीटक हैं जो छाल के भीतर का कोमल भाग खा कर और रस पी कर पेड़ों का नाश करते हैं। चमगादड़ शाखाओं पर अपना अंडज रस रखते हैं जिसके कारण शाखाओं की उतनी जगह सड़ जाती है। इसी प्रकार के अन्यान्य प्राणी पेड़ों का नाश करने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। वे छाल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छेद कर पेड़ का रस खाते हैं और उन्हीं छिद्रों में से पेड़ों का पोषक रस बह जाता है। अनेक प्रकार की मक्खियों का पोषण भी पेड़ों ही से होता है। पेड़ों में फल लगते ही अनेक जन्तु उसमें रहने और अंडे देने लगते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार की टिड्डियाँ पेड़ों की पत्तियाँ ही खाती हैं। युरोप का ओक नामक वृक्ष बहुत प्रसिद्ध है; इसका संहार करने-वाले कम से कम पाँच सौ से अधिक कीटक हैं।

वनस्पति का संहार करनेवाले कीटकों की ओर यदि ध्यान दिया जाय तो यह समझ में नहीं आता की इतने असंख्य कीटकों का सृष्टिकर्त्ता की योजना में क्या उपयोग होगा। कदाचित् पेड़ों की काट छाँट करने में ही उनका उपयोग होता होगा। परन्तु कीटकों का संहार करनेवाले पक्षी हैं और यही एक पेड़ों की रक्षा का उपाय है। पत्तियों की सहायता से पेड़ श्वास लेते हैं। इन पत्तियों को यदि टिड्डियों ने खा डाला तो पेड़ों का श्वासोच्छ्वास बन्द हो जायगा और पेड़ मर जायँगे। पत्तियाँ नष्ट हो जाने के कारण पक्षी भी पेड़ पर नहीं रह सकते। पक्षियों के न रहने के कारण कीटकों की वृद्धि होगी और मरणोन्मुख वृक्ष शीघ्रही मृत्यु-मुख में पड़ेंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि पेड़, कीटक और पक्षी आदि का परस्परा-वलंबन कितना सयुक्तिक है। यदि पृथ्वी के सभी पेड़ या जंगल नष्ट हो जायँ तो खेतों को भी तरी न पहुँचेगी और खेत शीघ्र ही सूख जायँगे। खेतों के सूखने से अन्न का अभाव होगा और अन्न के भाव के कारण मनुष्य के भी प्राण न बच सकेंगे।

पेड़ों की जड़ों में तरह तरह की ओषधियाँ अथवा एसिड आदि दे कर मनुष्य अपने बाग की रक्षा कर सकता है। पर इस तरह बड़े बड़े जंगलों का रक्षा करना असंभव है। हर प्रकार से जंगल के अथवा अन्य ठिकानों के पक्षियों का बचाव करना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। पर ऐसे उपयोगी पक्षियों को लोग केवल परों के लालच से मार डालते हैं! यह मनुष्य जाति का दुर्भाग्य ही है। पक्षी वध का कारण क्या है? गोरी युवतियों के सिरहाने परों के सिवा अन्य कोई पदार्थ सहन नहीं होता, केवल इसी लिये लोग पक्षियों का वध करते हैं। बहुत से लोगों को पक्षियों के अंडों की बेतरह आवश्यकता रहती है। सन् १९१२ में आस्ट्रेलिया के एक महाशय ने इतने अधिक अंडे एकत्र किए थे कि वे गाड़ियों में न लद सके और इसी कारण कङ्कड़ पत्थर के समान सड़कों पर उनका ढेर लगाया गया था। जंगलों की रक्षा करना पक्षियों का ही काम है। जैसे मनुष्य ने सृष्टिकर्त्ता के नियमों का अनादर किया है, वैसे पक्षियों ने अभी तक नहीं किया। वे बेचारे रात दिन परिश्रम कर अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। पर मनुष्य ही उनके साथ उलटा व्यव-हार करता है। पक्षियों की वृद्धि करना छोड़ मनुष्य कहीं आलू, कन्द, नीबू आदि बढ़ाने की चेष्टा करता है और कहीं रसायन-शास्त्र से भिन्न भिन्न ओष-धियाँ प्राप्त कर उसका प्रयोग पेड़ों पर करता है। पर वह यह नहीं समझता कि बिना पक्षियों की सहायता के उनका रक्षण होना संभव नहीं है। अफ्रिका में पहले जहाँ जंगल थे अब वहाँ शहर बस गए हैं। इसलिये वहाँ पक्षियों की बाढ़ कम हो जाने के कारण शहर के आस पास तरकारी फल फलहरी आदि कुछ नहीं होती। कदाचित् कहीं पर पेड़ जम भी आए तो वहीं पर कीटक उसका संहार करना आरम्भ कर देते हैं। मान लिया कि पक्षी फल खाते हैं। पर वे सारे फल नहीं खाते; वे केवल अपने परिश्रम का पुरस्कार लेते हैं। जहाँ बाग है वहाँ कीटकों का भी उपद्रव होता है। एक प्रकार का कीटक होता है जो दिन भर तो पेड़ के नीचे पोली जमीन में घुसा रहता है और रात होते ही बाहर निकल कर वनस्पति खाने लगता है। इस चोर को पकड़ने के लिये पक्षी तत्पर रहते हैं। सवेरे अन्धेरा रहते ही पक्षी उठ कर बाग के चारों तरफ घूम घूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर इन चोरों को पकड़ते और मार कर खा जाते हैं। पर मनुष्य ही चोर छोड़ रक्षक को सूली देता है। रोज अपने प्यारे पेड़ों का नाश हुआ देख चोर पकड़ने के लिये मनुष्य प्रयत्न करता है। सवेरे बाग़ में आ कर वह देखता है कि चिड़ियाँ इधर उधर घूम रही हैं। बस वह समझ लेता है कि यही उन पेड़ों का नष्ट करनेवाली हैं और तुरन्त बन्दूक़ लेकर चिड़ियाँ मारना प्रारम्भ कर देता है। चिड़ियों के मरते ही चोरों की वृद्धि होने लगती है और सारा बाग नष्ट हो जाता है। यदि कीटकों को ज़बान होती तो इस उपकार के बदले वे मनुष्य को धन्यवाद दिए बिना न रहते।

घास तैयार करने के लिये भी पक्षियों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। बहुत से पक्षी अपना घोंसला घास ही में बनाते हैं और वहीं कीटकों पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं जिससे घास की रक्षा होती है। घास का रक्षण होने से पृथ्वी को खाद मिलती है। पृथ्वी को खाद मिलने के कारण खेती उत्तम प्रकार से होती है। यही परस्परावलम्बी योजना है; इस योजना को बिगाड़ते ही हाहाकार मच जाता है। आस्ट्रेलिया, आफ्रिका, न्यूज़ीलैण्ड आदि स्थानों पर पक्षियों का संहार प्रारंभ होते ही थोड़े समय में वहाँ के लोगों को आपत्ति का सामना करना पड़ा है। यह बड़ी भूल है कि उल्लू, चील, बहरी, आदि पक्षी दुष्ट समझे जाते हैं। इन क्रूर पक्षियों से मनुष्य को अतीव लाभ होता है। जंगली चूहों आदि को नष्ट करना चील ही का काम है। इन जंगली चूहों की बाढ़ इतनी प्रचण्ड है कि यदि चील आदि पक्षी न होते तो वे सारी वनस्पति नष्ट कर डालते। उल्लू का भी ऐसा ही उपयोग है। चूहों की तरह के छोटे बड़े अनेक प्राणी जंगलों, खेतों और बागों में उत्पन्न होते हैं। खेत काट कर फसल को खलियान में रखने पर भी वे उसका नाश कर देते हैं। वे आलू, सकरकंद आदि ज़मीन में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों को ज़मीन खोद कर नष्ट कर डालते हैं। फल फूल तरकारियाँ आदि उनके सामने कुछ नहीं बचने पातीं। प्लेग आदि भयङ्कर रोगों के कीड़े चूहों के द्वारा ही इधर उधर फैलते हैं। इन चूहों का नाश चील और उल्लू ही कर सकते हैं। चील, उल्लू आदि पक्षियों के बच्चों के बढ़ने में अधिक समय लगता है और वे जब घोंसलों में रहते हैं तब उन्हें भोजन भी अधिक मात्रा में आवश्यक होता है। ऐसे समय में अपने बच्चों को खाना पहुँचाने में उनके माँ-बाप को अतिशय कष्ट उठाना पड़ता है। वे बड़े कष्ट और दक्षता से दूर दूर से खाना ला कर बच्चों को पोसते हैं। किसी समय जब उन्हें खाना नहीं मिलता तब वे एक-आध छोटी सी मुर्गी ही ले आते हैं। पर उनके अन्य उपकारों का बदला इतनी छोटी कीमत की चीज से होता है, इससे हमें सन्तोष ही मानना चाहिए। कुछ समय तक वाशिंग्टन में एक ऊँचे मकान में दो उल्लू रहते थे। वे वहाँ से बड़े प्रयत्न से निकाल दिए गए। उस समय उनके निवास-स्थान में ४५४ चूहों की खोपड़ियाँ मिलीं!

पता लगाने से सब जगह ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं। सन् १८८५ में अमेरिका के पेन्सिलवेनिया परगने में यह घोषणा की गई थी कि चील तथा उल्लू मार कर लानेवालों को प्रत्येक जीव के बदले इतना इनाम दिया जायगा; और डेढ़ ही वर्ष में तीन लाख रुपए बाँट दिए गए थे। चीलों और उल्लुओं के मारे जाने के कारण जंगली चूहों की इतनी बाढ़ हुई कि उन्होंने एक करोड़ से भी ज्यादे के खेतों का नुकसान किया। इसके अतिरिक्त और और बागों का जो नुकसान हुआ सो अलग ही है। मोटाना परगने का हाल भी इसी प्रकार है। चूहों की वृद्धि के कारण उनके नाशार्थ भी इनाम रखना पड़ा। बहुत कुछ द्रव्य खर्च करने पर भी चूहे नष्ट न हुए; अन्त में चील और उल्लू का मारना बन्द करना पड़ा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब जाकर पूर्ववत् काम चलने लगा । टिड्डियों आदि छोटे छोटे पक्षियों का भी चील और उल्लू संहार करते हैं । ये पक्षी यों तो क्रूर प्रतीत होते हैं पर इनका उपयोग बहुत है ।

एक प्रकार का बगुला होता है । बरसाती पानी जहाँ जमा रहता है वहाँ रह कर वह अनेक प्रकार के जन्तु भक्षण करता है । विशेषतः धान के खेतों का नाश करनेवाले जन्तुओं को वह नष्ट करता है । हिन्दुस्तान, चीन आदि स्थानों में जहाँ चावल अधिक होता है वहां इसका निवास भी अधिक होता है । इस बगुले के स्वच्छ सुन्दर सफेद पर लोकप्रिय होते हैं इस कारण उनकी हत्या आस्ट्रेलिया आदि स्थानों में अधिक होने लगी और साथ ही चावलों की खेती भी नष्ट होने लगी । मिस्र देश की नील नदी के किनारे इसी प्रकार कितने ही उपयुक्त पक्षियों का संहार होता था; पर लार्ड किचनर ने १९१२ में एक नया कायदा बना कर उसे बन्द किया । बगुले आदि पक्षी हिन्दुस्तान और चीन में पशुओं के चरने की जगह पर उनके साथ साथ घूमा करते हैं । वे पशुओं को दुःख देनेवाली मक्खियों और कीटकों को मार कर खा जाते हैं । पशुओं को इससे बड़ा आराम होता है और इसकी वजह से वे नीरोग रहते हैं ।

अनेक प्रकार की मक्खियाँ, कीटक आदि जन्तु पशुओं को दिक करते हैं । यदि पक्षी न होते तो उनका संरक्षण होना ही असंभव था ।

एक प्रकार की मोटी और नीले रंग की मक्खी होती है । उसकी उत्पत्ति पशुओं की पीठ पर ही होती है, जिसके कारण पशुओं की पीठ पर फोड़ा हो जाता है और उनको असह्य वेदना होती है । उस फोड़े के फूट जाने पर कौए आदि पक्षी उसमें से कीड़े बीन कर खाते हैं जिसके कारण पशुओं को आराम मिलता है । घोड़े, बकरी, भेड़ आदि पशुओं के शरीर पर अपना निर्वाह करनेवाले अनेक जन्तु होते हैं पर उनके संहार की योजना देख कर आश्चर्य प्रतीत होता है । पृथ्वी के अनेक पृष्ठ भागों पर विषाक्त जन्तुओं को यदि पक्षियों ने नष्ट न किया होता तो उन जगहों पर मनुष्यों के लिये बसना और तरह तरह के व्यापार आदि करना असंभव था । मच्छरों, पिस्सुओं और मक्खियों आदि का उपद्रव उष्ण कटिबन्ध के अनेक भागों में अधिक है और उनके संहार करनेवाले पक्षी भी वहीं पर प्रस्तुत हैं । पनामा की नहर खोदने के समय उस प्रदेश में पक्षी मारने की मनाही प्रेसिडेंट विल्सन ने कर दी थी ।

खेतों में घास उग कर उन्हें नष्ट कर देती है । ऐसी घासों को निर्बीज करना कुदाली या फावड़ों से असंभव है । पर बहुत से पक्षी ऐसे होते हैं जो उन घासों का बीज खा कर खेतों का रक्षण करते हैं । मनुष्य खाने के लिये जो पक्षी मारता है वे प्रायः अपना जीवन इन्हीं घासों के बीजों पर करते हैं । जमीन खोद कर वे कीटकों के अंडे खाते हैं । ऐसे पक्षी मार कर पेट भरने की अपेक्षा उनको जीवित रखने में ही मनुष्य का अधिक लाभ है । तीतर अथवा बटेर मांस-भक्षकों को अत्यन्त प्रिय हैं । परन्तु उनके समान उपयोगी पक्षी अन्य कोई नहीं है । रूई, आलू, सकरकन्द आदि पदार्थों के संहारकारक अनेक जन्तु हैं ; पर उनको यही पक्षी मार कर खा जाते हैं ।

यही दशा बत्तकों की भी है । मछली मारनेवाले समझते हैं कि हमारी मछली बगुला खा जाता है; पर यह केवल उनका भ्रम है । एक-आध मछली हाथ लगने पर वह उसे खा लेता है । पर दलदल अथवा गन्दी जमीन का मैला खा कर मनुष्य को सुख देनेवाला यदि कोई प्राणी है तो वह केवल बत्तक और जल-मुर्ग ही है । जल के उतार के समय जलाशय के तीर पर अनेक प्रकार के जन्तु जमीन खोद कर ऊपर निकल आते हैं । उन्हीं जन्तुओं को बत्तकें खाती हैं । यदि ये जन्तु जीवित रहें तो भरती के समय वे एक भी मछली बाकी न छोड़ें । जैसे गीदड़ सड़े हुए मुरदे

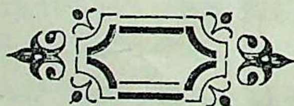
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खा कर स्वच्छता रखते हैं वैसे ही समुद्र किनारे के गांवों की स्वच्छता बत्तकें रखती हैं । इस प्रकार की स्वच्छता वे न रखें तो अनेक प्रकार की दुर्गन्ध फैले और वहां की प्रजा निर्बल हो जाय । आजकल भी समुद्र अथवा खाड़ियों के तट पर अनेक प्रकार की दुर्गन्ध रहती है । वह इन पक्षियों के द्वारा ही कम होती है ।

परन्तु इन पक्षियों का वध भी बहुत सी जगहों में जारी है । मनुष्य के भोजनार्थ असंख्य पक्षियों का वध होता है । पूर्व में हडसन उपसागर के तट पर इतनी बत्तकें रहती थीं कि हर एक मनुष्य उन्हें मार कर बिक्री के लिये अन्य ठिकानों पर भेजा करता था । आजकल बत्तकों के कम हो जाने के कारण मछलियों का मिलना भी मुश्किल हो गया है जिससे लोगों को बड़ी कठिनता होने लगी है ।

सृष्टि में पक्षी बड़े महत्त्व का प्राणी है और विधाता की योजना में उसकी बहुत आवश्यकता है । पक्षियों का गाना सुन कर अत्यन्त दुःखी मन भी प्रसन्न हो जाता है । बड़े बड़े जंगलों में जा कर एक बार पक्षियों के भिन्न भिन्न स्वर सुनना बड़ा मनोरञ्जक है । कवियों में तो पक्षियों के सहवास से बहुत स्फूर्ति आती है । ऐसे पक्षियों की उपयोगिता मनुष्य को न मालूम हो, यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है ! क्या यह बात शोभा देती है कि पक्षियों के सुन्दर पर निकाल कर उनका क्रय विक्रय किया जाय ? सृष्टि से पक्षियों का नाश हो जाने के कारण भिन्न भिन्न आपत्तियाँ उत्पन्न होने लगेंगी और मनुष्य का जीवन कठिन हो जायगा । लेकिन पर बेचनेवाले, अंडे जमा करनेवाले और भोजन के लिये पक्षी वध करनेवाले अनेक राक्षसी कृति के लोग व्यर्थ उनके पीछे पड़ कर अत्यन्त सुन्दर और अत्यन्त उपयोगी जीवों का नाश कर रहे हैं । इसकी कल्पना ही नहीं होती कि यदि वे लोग अभी से सावधान न हो जायँगे तो उनके इस भयङ्कर कृत्य का परिणाम आगे क्या होगा ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

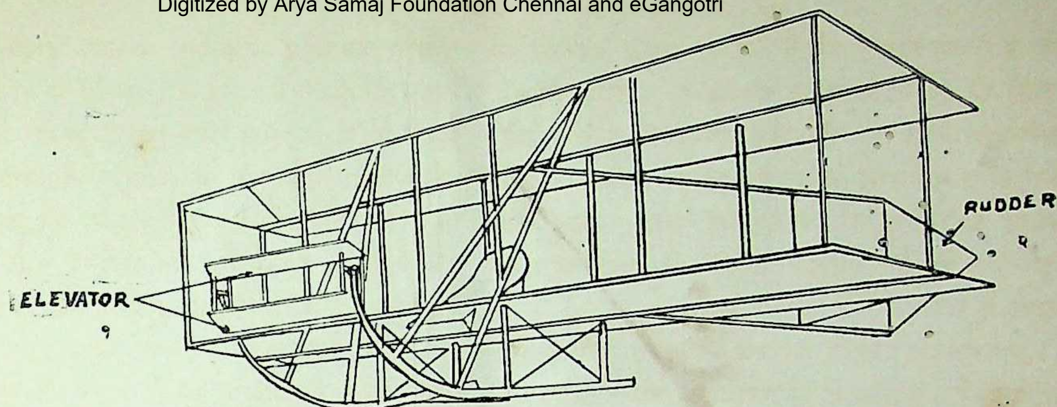


FIG. 1. TYPICAL GLIDER· ग्लाइडर (चित्र नं० १)

(१) उद्धारक यन्त्र (२) पतवार

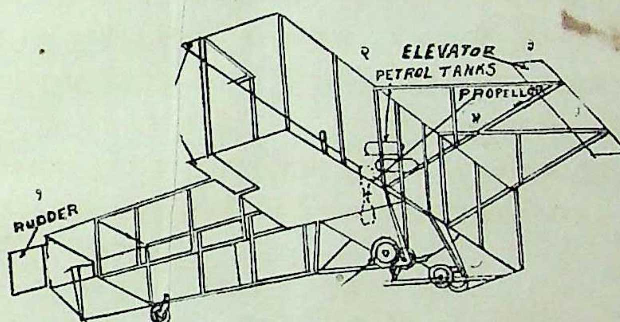


FIG.2. BIPLANE. बाईप्लेन (चित्र नं० २)

(१) पतवार (२) मिट्टी के तेल की टंकियां (३) उद्धारक यन्त्र (४) गतिप्रदायक यन्त्र

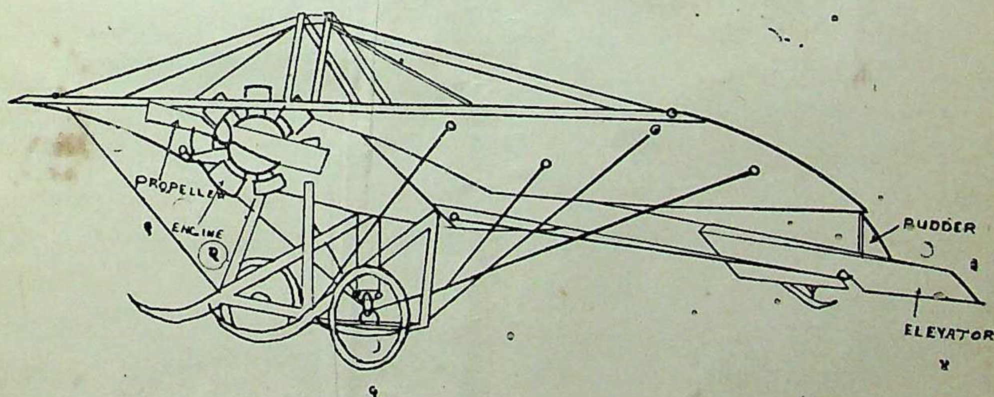


FIG.3. MONOPLANE मनोप्लेन (चित्र नं० ३)

(१) गतिप्रदायक यन्त्र (२) एंजिन (३) पतवार (४) उद्धारक यन्त्र (५) उतरने के पहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग २०] Registered No. A 414 [संख्या १२

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

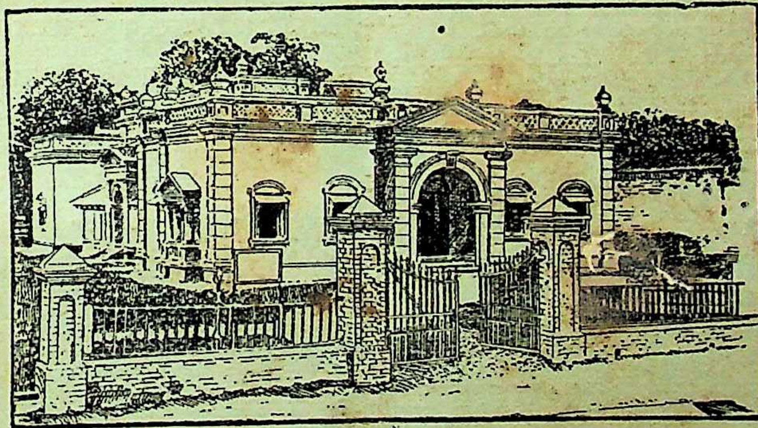
जून १९१६

गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी. पुस्तक सं० ... आगत सं० १०(२०) तिथि०.........

सम्पादक—रामचन्द्र वर्म्मा ।

—:०:—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु विलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥
भारतेंदु हरिश्चंद्र ।



प्रति अंगरेज़ी मास में काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

श्री अपूर्वकृष्ण बोस द्वारा इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित ।

वार्षिक मूल्य १॥) प्रति संख्या =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय-सूची ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभास्कर रामचन्द्र भालेराव 'कविदास'

सम्पादित ।

क्या आपको यह मालूम है कि,

हिन्दी-चित्रमय-जगत्

राष्ट्र-भाषा हिन्दी की उच्चश्रेणी का; हिन्दी-भाषा-भाषियों का अत्यन्त लाड़ला; मराठी, हिन्दी, अँग्रेज़ी, बँगला इत्यादिक भाषाओं के धुरन्धर लेखकों के लेख प्रकाशित करनेवाला; महाराष्ट्र में 'हिन्दी राष्ट्र-भाषा भवतु' का झंडा फहरानेवाला; सामयिक महत्त्वपूर्ण लेख, कविता तथा चित्रों के प्रकाशित करने में युगांतर प्रस्थापक; हिन्दी में अपने ढंग का सब से पहिला और अनूठा मासिक पत्र है ?

यदि, नहीं,

तो आप उसे आज ही मंगाकर देखिये ! निस्सन्देह आप उसकी अन्तरंग की चटक मटक पर मोहित होंगे और हिन्दी में ऐसे अनूठे पत्रप्रकाशन के साहस पर दांतों उँगली दबायँगे । पत्र की लागत के देखते मूल्य कुछ नहीं । केवल सादा संस्करण ३॥) राजसंस्करण ५॥) तिसपर भी विशेषांक उपहार में ! एक प्रति का ।-), ॥)

पता—

मैनेजर, हिन्दी-चित्रमय-जगत्,

पूना सिटी ।

आवश्यकता है

हिन्दी पुस्तकों की बिक्री के लिये दो भ्रमणकारी एजेण्टों की । मासिक वेतन १५) रु० और मार्गव्यय दिया जायगा । ५०) रु० की नगद ज़मानत देनी चाहिए । जिन लोगों को इस काम का पहिले का अनुभव हो वही प्रार्थनापत्र भेजें ।

सेक्रेटरी

नागरीप्रचारिणी सभा—काशी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग २० | जून १९१६. | संख्या १२

चित्तौर का अंतिम साका।

[लेखक,—श्रीयुक्त बा० ब्रजरत्नदास, काशी।]

मेवाड़ के चिरप्रसिद्ध राजदुर्ग चित्तौर में संवत १५९७ में महाराणा उदयसिंह राजसिंहासन पर बैठे। उनके समय में मुगल सम्राट् अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की, पर वह हार कर लौट गए। कुछ दिनों के अनन्तर मेवाड़ में आपस का विरोध देख कर अकबर ने फिर बड़े उत्साहपूर्वक भारी सेना तैय्यार कर के चढ़ाई की।

बादशाह की चढ़ाई का वृत्तान्त सुन कर महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ की रक्षा का भार चूंड़ाजी के वंशधर रावल साहीदास सालुंबर को सौंप स्वयं पर्वतों में चले गए। सालुंबर मेवाड़ के सब से बड़े सरदार और प्रधान सेनापति थे। उन्होंने चित्तौर के रक्षार्थ अनेक प्रकार का सामान कई वर्ष के घेरे के लिये इकट्ठा कर लिया और महाराणा की आज्ञा से दुर्ग के चारों ओर बहुत दूर दूर तक खेती इत्यादि नष्ट कर दी। मांडलगढ़, गोघूंदा और कुम्भलमेर के गढ़ भी सब प्रकार से सज्जित और सुरक्षित बनाए गए।

चित्तौड़ के और सामन्तों के अतिरिक्त मदारिआ के रावत दूदा जी, बिजौली के प्रमार, पृथ्वीराज चौहान के वंशधर बेदला, कोठरिया के ठाकुर और सदरी के झाला भी थे। इनके अतिरिक्त अनेक बाहर के क्षत्रिय वीर चित्तौर के रक्षार्थ दुर्ग में उपस्थित थे जिनमें जालौरवाले सोनी गर्रावव, प्रतापगढ़ के रावल बाघसिंह जी के पुत्र दूदा सदनी कछवाहा, ईश्वरदास राठौर, कर्मसिंह कछवाहा और ग्वालियर के रामसिंह तोमर मुख्य थे।

सम्राट् अकबर धौलपुर होते हुए मार्ग में शिवपुर और कोटा विजय करते हुए मेवाड़ में पहुँचे। बादशाह ने आसफखाँ के चित्तौर के समीपवर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गों को लेने के लिये सेना के साथ भेजा। सब से पहले उसने मांडलगढ़ पर आक्रमण किया परन्तु दुर्गाध्यक्ष राव बल्लूसिंह सोलंकी ने बड़ी वीरतापूर्वक सामना करके उसको भगा दिया। वहाँ से हार कर आसफखाँ ने रामपुर जा घेरा और उसे ले लिया। राव दुर्गासिंह शत्रुओं की संख्या अधिक होने के कारण हार मान कर महाराणा के पास उदयपुर चले गए।

फिर अकबर ने हुसैनअली खाँ को एक बड़ी सेना दे कर उदयपुर भेजा जिसको महाराणा हरा कर कुम्भलमेर होते हुए गुजरात की ओर राजपीपले के जंगलों में चले गए।

यहां चित्तौर घेर कर चारों ओर से मोरचे बांधे गए जिनमें तीन मुख्य थे। पहला फाटक के सामनेवाला बादशाह का मोरचा था जिसके हसनखां, राय पीतांबरदास और काजी अली बगदादी अफसर थे। दूसरे पर राजा टोडरमल, शुजाअतखाँ और कासिमखाँ और तीसरे पर आसफखाँ और वजीरखाँ थे। जिस स्थान पर अकबर का मोरचा था वहाँ एक स्मारक बना है जिसे 'अकबर का दीआ' कहते हैं। यह तीस फुट ऊँचा सफेद पत्थर का बना है।

राजपूत सैनिक गढ़ से निकल निकल कर मुसलमानों पर छापा मारते और ये लोग गढ़ पर आक्रमण करते थे; किन्तु जब बादशाह ने देखा कि केवल घेरने ही से कुछ लाभ नहीं होता तब दीवार तक एक सुरंग बनाने और दीवार को बारूद से उड़ाने का प्रबंध किया। परन्तु दुर्ग के गोला चलानेवाले ऐसे ताक ताक कर गोले मारते थे कि सुरंग बनानेवाले मजूरे मर कर जहाँ के तहां ढेर हो जाते थे। इसके साथ ही वे गोलियाँ और तीर भी चलाते जाते थे। यह देख कर बादशाह ने लोहे और चमड़े की बड़ी बड़ी ढालें इनके रक्षार्थ बनवाईं किन्तु तिस पर भी कम से कम दो सौ मनुष्य प्रत्येक दिन मारे जाते थे। अकबरनामे में अबुलफजल ने लिखा है कि मिट्टी का मोल चाँदी सोने के बराबर हो गया था। यहाँ तक कि बादशाह ने अन्त में दमदमे के ऊपर मिट्टी फेंकनेवालों को प्रत्येक टोकरी की एक अशरफी मजदूरी लगा दी थी। यह मानों उनके प्राणों का मूल्य था जो वहीं मर कर दमदमे की ऊँचाई बढ़ाते जाते थे! यह स्थल अब तक चित्तोड़ी के नाम से प्रसिद्ध है।

अन्त में दो सुरंगें तैय्यार हुईं। उनमें से एक में १२० मन और दूसरी में ८० मन बारूद भरी गई। पूस सुदी सप्तमी संबत् १६२४ को बुध के दिन पहली सुरंग उड़ाई गई जिससे दुर्ग का एक बुर्ज कुल मनुष्यों समेत नष्ट हो गया। अभी दूसरी सुरंग में आग नहीं लगी थी कि बादशाही सेना दौड़ पड़ी जिससे दूसरी सुरंग के उड़ते ही मुसलमानी सेना उसमें जल मरी। इधर राजपूतों ने बड़ी वीरता से शाही सेना को रोकना और गिरी हुई दीवार को उठाना आरंभ किया। अन्त में मुसलमानों को पराजित हो कर भागना ही पड़ा। इसी चढ़ाई में रावल साहीदास सूरजपोल नामक फाटक पर लड़ते हुए काम आए जहाँ उनके रक्त से रञ्जित एक पत्थर पर उनका स्मारक आज तक स्थापित है।

सालुंबरा की मृत्यु के उपरान्त राजपूत सेना की अध्यक्षता ठाकुर प्रतापसिंह (पत्ता जी) केलवावाले को सौंपी गई। उस समय उनकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। संसार के इतिहास में ऐसे दृष्टान्त बहुत कम हैं कि ऐसे अल्पवयस्क युवा को चितौर के से अभेद्य दुर्ग की सरदारी ऐसे समय में मिली हो जब कि विजयी अकबर सा प्रबल शत्रु उसे घेरे हुए हो। उस पर इनकी माता ने अपने एकलौते पुत्र को केसरिया वस्त्र पहना कर चितौड़ के रक्षार्थ प्राण विसर्जन करने की आज्ञा दी। पत्ता जी भी कई दिनों तक चितौड़ की रक्षा बड़ी योग्यता से कर के वीरगति को प्राप्त हुए।

पत्ता जी के मरने पर वीर-शिरोमणि जयमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राठौर दुर्ग के मुख्य अध्यक्ष बनाए गए। मेवाड़ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अङ्कित एवं प्रबल प्रतापान्वित मुगल सम्राट् अकबर की लेखनी द्वारा अमर ये दोनों नाम आज तक चारण और देशभक्त राजपूत सगर्व स्मरण करते हैं। अकबर ने दिल्ली में अपने राजमहल के फाटक के दोनों ओर दो पत्थर के हाथियों पर इन वीरों की मूर्त्तियाँ खड़ी कर दी थीं जिनका वर्णन बर्नियर ने अपनी पुस्तक में किया है।

चैत बदी दसमी को पुनः बादशाही सेना ने चित्तौर पर धावा किया। मुसलमानी गोलों के मारे दुर्ग की दीवार कई स्थानों पर टूट गई थी किन्तु वीर राजपूतों के आगे मुगलों की वीरता कुछ न चली। राजपूत उनको रोकते और साथ ही साथ टूटी हुई जगहों को बनाते जाते थे। वीर जयमल चारों ओर घूमते, सैनिकों को उत्साह दिलाते और दीवार बनवाते थे। आधी रात तक युद्ध करने के अनन्तर मुगल सेना लौट पड़ी। अकबर ने इसी रात को एक बुर्ज पर जयमल को घूमते हुए देखा और अपनी संग्राम नामक बन्दूक मँगा कर उस पर गोली चलाई। किन्तु गोली इतनी दूर से चलाई गई थी कि वह तत्काल प्राणघातक नहीं हुई। जयमल ने अपना और चित्तौड़ का अन्त आया देख कर जोहार के लिये आज्ञा दी। यह जोहार भी तीन स्थानों पर हुआ, पहला पत्ता जी के घर पर, दूसरा राव जयमल राठौर के यहाँ और तीसरा ईश्वरदास चौहान के घर।

उस समय आठ सहस्र वीर राजपूतों ने अंतिम बीड़ा खाया और केसरिया वस्त्र पहन कर वे मरने और मारने पर उद्यत हुए।

गढ़ का फाटक खोल दिया गया, तोपों और बन्दूकों की दनदनाहट और जोहार के धूएँ से वह अँधेरी रात और अधिक भयानक हो गई। इसके अतिरिक्त बादशाही सेना में एक आश्चर्य-जनक सन्नाटा छा गया और सभी सोचने लगे कि दूसरे दिन सिसौदिया किस प्रकार अपना पराक्रम दिखलावेंगे।

दूसरे दिन आदित्यवार को जो सूर्यवंशियों का पवित्र दिन है बादशाही सेना ने फिर बड़े वेग से आक्रमण किया। किन्तु राजपूतों ने बढ़ते हुए मुगलों को अपनी छातियों की दीवार पर जो पत्थर की दीवार से कहीं अधिक दृढ़ थी, रोका। राव जयमल इस लड़ाई में मारे गए और बादशाही सेना राजपूतों की मार के कारण पीछे हटने लगी। बादशाह स्वयं सेना के आगे खड़े अपने सैनिकों को साहस दिला रहे थे किन्तु उन राजपूतों के आगे जिन्होंने मरने मारने ही की ठान ली थी, ठहरना असम्भव हो गया।

जब बादशाह ने इन वीर राजपूतों को बिना हाथियों की सहायता के हटाना असम्भव समझ लिया तब हाथियों की पल्टनों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। इन मस्त हाथियों की सहायता से जो गिन्ती में पाँच सौ से अधिक थे मुसलमान धीरे धीरे दुर्ग में घुसने लगे। टाड साहब अपने राजस्थान के इतिहास में लिखते हैं कि अकबर उस समय चित्तौड़ में पहुँचा था जब कि उसमें के रहनेवाले तीस सहस्र वीरों की उसके उमंग रूपी यज्ञ में आहुति पड़ चुकी थी।

इस युद्ध में महाराणा के सत्तरह सौ वंशवाले और मेवाड़ तथा बाहर के आए हुए कुल सरदारों ने स्वदेश-रक्षार्थ प्राण विसर्जन किए। मंदिर और महल इत्यादि तोड़ डाले गए और वे नक्कारे जिनके शब्द कोसों तक महाराणाओं का आगमन सूचित करते थे फाड़ डाले गए। चित्तौरवालों की सारी शक्ति नष्ट हो गई।

इस युद्ध के अनन्तर चित्तौर को फिर राजदुर्ग की पदवी नहीं मिली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाविक-हीन धूम्रपोत ।*

[लेखक—श्रीयुक्त शोभाचन्द जम्मड़, कृष्णगंज ।]



ना तार के संवाद भेजनेवाली विद्या अब नई नहीं रही । सम्प्रति तार से भी बढ़ कर आश्चर्य्य-व्यापार सम्भव हो गया है । बिना परिचलाक के भी जहाज चलने लगे हैं । परिचालक तो समुद्र-तीर वर्त्ती अपने घर में बैठा है और जहाज बीच समुद्र में अठखेलियाँ करता हुआ मजे में चला जा रहा है !

जहाज में उसका परिचालक नहीं है, पर तो भी वह कुशल-पूर्वक समुद्र-गर्भ में टेढ़ी बाँकी चाल से निरापद चला जा रहा है, समुद्र-तीरवर्त्ती गृह में बैठे हुए परिचालक की उंगली के संकेत मात्र से जहाज में हजारों बिजली की बत्तियाँ जल उठती हैं; शक्तिशाली एंजिन अपना कार्य्य आरम्भ कर देता है । रात्रि के घोर अंधकार में भी यह जहाज नियमित रूप से अग्रसर हो सकता है । जगत् में वैज्ञानिक शक्ति की यह नवीन घोषणा है ।

समुद्र के किनारे एक पर्वत पर तीन सौ साठ फुट ऊँचे दो स्तम्भ खड़े हैं । स्तम्भों पर अवस्थित एक मंच पर बैठा हुआ आविष्कारक जान हेमण्ड "रेडियो डाइनामिक्स" (Radio-dynamics) नामक शक्ति की सहायता से बिना तार के ही समुद्र में जहाज चलाता है !

शेफिल्ड के विश्वविद्यालय में हेमण्ड ने सन् १९१० ईसवी में शिक्षा समाप्त की थी । एक दिन वह किसी गणिताध्यापक के साथ भिन्न भिन्न विषयों पर बातें कर रहा था; प्रसंगवश वैज्ञानिक आविष्कारों की चर्चा चलते ही सहसा हेमण्ड बोल उठा—"एक दिन मैं किसी भ्रमणशील वस्तु को दूर से अपने इच्छानुसार चलाऊँगा" ।

यथार्थ में हेमण्ड ने यह बात अन्तःकरण से कही थी । वह अपने वाक्य की सत्यता कहाँ तक प्रमाणित कर सका है, इस प्रबंध में यही बतलाया जायगा ।

अध्ययन समाप्त कर के उसने स्थिर किया कि मैं अपना समस्त जीवन वैज्ञानिक-गवेषणा में ही बिताऊँगा । वह Radio-dynamics लेकर जी जान से विविध गवेषणाओं में प्रवृत्त हुआ । कुछ ही वर्षों के भीतर उसके द्वारा सम्पादित कई एक विचित्र आविष्कारों की चर्चा लोगों में होने लगी । जिस घर में वह रहता था उसके सामने ही मैदान में एक स्तम्भ पर रोशनी की किरणों द्वारा अनेक प्रकार के आश्चर्य्य-जनक एवं अश्रुतपूर्व्व कार्य्य हुआ करते थे । रोशनी की किरणें जब उस पर पड़ती थीं उस समय कभी तो आपही आप स्तम्भ पर की बंसी बजने लगती थी और कभी डिनामाईट का धड़ाका होता था; तथा कभी कभी स्तम्भ की बत्तियाँ लाल, नीले, हरे प्रभृति विविध रंगों में परिवर्तित हो कर एक निराली ही छटा दिखलाती थीं ।

स्तम्भ और हेमण्ड के साथ तार या अन्य किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था । स्तम्भ पर एक छोटा सा बिजली का यंत्र रखा रहता था; जब उस यंत्र पर रोशनी पड़ती थी तब वह यंत्र शक्ति-सम्पन्न हो कर विज्ञान के सरल नियमानुसार यह सब आश्चर्य्योत्पादक दृश्य उत्पन्न करता था ।

प्रोफेसर जेकब् लायन का एक सिद्धान्त है कि, "पतंगों के शरीर में एक प्रकार का रासायनिक पदार्थ है और उसी के कारण वे आकृष्ट हो कर रोशनी में पड़ते हैं" । इसी सिद्धान्त को ले कर हेमण्ड अपने असाधारण प्रतिभा-बल की सहायता

* बङ्ग भाषा की "भारती" नामक मासिक-पत्रिका के चयन स्तम्भ में प्रकाशित श्रीयुत सुधांशुकुमार चौधरी के एक लेख का आशय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रथम ही प्रथम किनारे से समुद्र-स्थित जहाज पर रोशनी डाल कर उसको चलाता था। जहाज पर कई एक Solanium cells बने हुए थे। रोशनी की किरणें पड़ते ही उन सब में शक्ति-संचार होने लगता था, जिससे जहाज के समस्त यंत्र स्वयं ही परिचालित होने लगते थे। किन्तु पीछे केवल इसी उपाय द्वारा दूर से जहाज चलाने में पूरी उन्नति असम्भव समझ कर हेमण्ड ने एक नई प्रणाली से, अर्थात् बिना तार के ही वैद्युतिक शक्ति उत्पन्न कर उससे इच्छानुकूल जहाज चलाने का दृढ़ सङ्कल्प किया।

अपने इस नवीन आविष्कार की प्रथम परीक्षा के दिन वह अपने बहुत से इष्ट मित्रों को अपने घर पर बुला लाया। उसके विज्ञानागार में एक बड़ी कोठरी की छत से लगा हुआ वायरलेस ट्रान्समिटर (Wireless transmitter) नामक एक यंत्र लटक रहा था। नीचे एक टेबुल पर जहाज चलानेवाले यंत्र की तरह का एक यंत्र पड़ा था और दो चुम्बक यंत्रों के बीच जहाज की पतवार झूल रही थी। हेमण्ड ने एक बटन दबा कर ऊपर के यंत्र द्वारा दोनों चुम्बक यंत्रों को शक्ति-सम्पन्न कर दिया। इसका फल यह हुआ कि पतवार उसके इच्छानुसार दाँएँ बाँएँ घूमने लगी।

इसमें सन्देह नहीं कि हेमण्ड अपने नवीन आविष्कार की उपयोगिता और कार्य्यकारिता समझ गया था; किन्तु कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हो कर उसने देखा कि अपने क्षुद्र विज्ञानागार तथा संसार के प्रशस्त परीक्षा-क्षेत्र में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्रतिदिन नए नए विघ्नों के कारण उसको बहुत दिनों तक अपने कार्य्य में सफलता नहीं प्राप्त हुई।

बार बार विफलता एवं अनेक परीक्षाओं के उपरान्त अंत में हेमण्ड की एकान्त साधना के गुण से रैबिओ (Rabio) बन कर समुद्र में शोभायमान हुआ। यह चालीस फुट लम्बा, एक सौ अस्सी घोड़ों की शक्तिवाला और घंटे में तीस मील चलनेवाला एक जहाज था।

रैबिओ नामक इस अत्याश्चर्य्यजनक जलयान के सम्बन्ध में एक प्रत्यक्षदर्शी इस तरह लिखता है:—

"कुछ दिन हुए एक रात को मुझे पर्वत-स्थित मंच पर बैठे हुए रैबिओ के परिचालक महाशय के साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ये महाशय एक जहाज को अँधेरी रात में वहीं बैठे बैठे आठ मील तक दुर्गम सागर में घुमा फिरा कर पुनः निर्विघ्न उसको बंदर पर लौटा लाए थे।

यह ठीक है कि जहाज अपने एंजिन के जोर से ही चलता था, किन्तु उसको गति देनेवाले तथा उसके वेग को नियंत्रित रखनेवाले बहुत दूर किनारे पर बैठे हुए इसके परिचालक महाशय ही थे। बिना उनके चलाए जहाज एक कदम भी आगे नहीं चल सकता था।

परिचालक के कान में एक टेलिफोन (Telephone) लगा रहता था जिसकी सहायता से वायु-तरङ्गों के शब्द सुन कर (क्योंकि वह बेतार का टेलिफोन था.) अवस्था समझ जाते थे और फिर आवश्यकतानुसार व्यवस्था कर देते थे।। अस्तु।

परिचालक महाशय ने ज्यों ही एक बटन दबाया त्योंही एक अलौकिक घटना हुई। रोशनी की एक कौंध तथा धीमी हिस् हिस् के सिवा मैं और कुछ भी देख या सुन नहीं सका। और इसी के प्रभाव से नीचे बहुत दूर पर बने हुए विद्युत्-उत्पादन-गृह में एक प्रबल शक्ति का विकाश हुआ; और उसी शक्ति से जहाज ने अपने आप चलना आरम्भ कर दिया!

अभी तक जहाज यात्रा के लिये प्रस्तुत हो कर परिचालक की आज्ञा की प्रतीक्षा करता हुआ स्थिर भाव से नीचे खड़ा था। किनारे पर की एक बहुत बड़ी सर्च लाइट या अन्वेषक प्रकाश से निकल कर रोशनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तेज किरणें उस जहाज पर पड़ रही थीं। किसी बड़े से बड़े लड़ाऊ जहाज पर भी आज तक इतना बड़ा तथा इतने प्रखर प्रकाशवाला लैम्प नहीं देखा गया। सात मील दूर तक यह लैम्प १८६०००००० मोमबत्तियों की रोशनी डालता था!

मंच पर बैठे हुए परिचालक महाशय सहज ही में इस सर्च लाइट को इच्छानुसार ऊपर नीचे दाएँ बाएँ घुमा सकते थे। यह लैम्प कुछ दूर पर बने हुए एक मकान में रखा हुआ था। इस तरह का प्रखर-प्रकाश निकट रहने से कुछ समय में वह परिचालक को अंधा बना देता है, इसी भय से लैम्पवाला घर दूर ही बनाया गया था। परिचालक एक तरह से अंधकार में ही बैठ कर (क्योंकि सिर्फ एक मंद रोशनीवाली लालटेन ही मंच पर जल रही थी) अपना कार्य्य सम्पादन कर रहे थे। उन्हीं की सतर्कता पर जहाज की निर्विघ्न यात्रा सम्पूर्ण रूप से निर्भर थी। सर्च लाइट से वे सागर तल को बहुत दूर तक देख सकते थे; अतएव अति सामान्य विपत्ति भी उनकी तीव्र दृष्टि से नहीं बच सकती थी।

बंदर छोड़ कर अब जहाज ने खुले समुद्र में चलना आरंभ कर दिया। हठात् सर्च लाइट को जरा एक ओर घुमा कर परिचालक महाशय बोल उठे—

"वह देखिए, और जरा सी देर होते ही जहाज उस बोट पर चढ़ जाता। आप देख रहे हैं न? देखिए, सामने से एक बड़ा बोट इधर ही चला आ रहा है। कोई रोशनी भी तो उसमें नहीं है। कुछ नहीं, वे लोग बराबर इसी तरह चलते फिरते हैं। बहुधा इससे बड़ी बड़ी दुर्घटनाएं भी हो जाती हैं। खैर, मैं ही अपने जहाज को हटाए लेता हूँ"।

इतना कह कर उन्होंने एक बटन जोर से दबा दिया। देखते देखते जहाज बाईं ओर घूम गया।

मैंने पूछा—"आपका जहाज इस समय कितनी दूर पर है"?

उन्होंने कहा—"प्राय तीन मील। देखिए, बोट को दो सौ गज दाहिने छोड़ कर 'रैबिओ' उसका रास्ता काटता हुआ निकल गया।"

बीच बीच में परिचालक महाशय एक नकशे (Chart) में उल्लेखनीय घटनाएं लिखते भी जाते थे।

सर्च लाईट को एक बार बाईं ओर घुमा कर उन्होंने कहा—"इस माल के जहाज की मनशा क्या है? क्या यह हमारे जहाज पर ही चढ़ आवेगा? उसके साथ दोनों तरफ दस बारह लदी हुई नावें भी हैं। अपने जहाज को तीन सौ गज दाहिनी ओर हटा लेने के सिवा अब और कोई उपाय ही नहीं सूझता। बस अब ठीक चलता है"।

मैंने फिर पूछा—"क्यों महाशय, अब आपका जहाज कितनी दूर चला गया होगा?"

"पाँच मील से कम नहीं। क्या आप भी थोड़ी देर के लिये इसको चलाना चाहते हैं?"

"मैं?"

"हाँ—क्यों? यह लीजिए। दाहिनी ओर कुछ सरकाना चाहते हैं? ठीक है।—इस तरह बटन दबा दीजिए।—धीरे।—हो गया। बस अब बैठे बैठे देखते रहिए कि जहाज आपके इच्छानुसार चलता है या नहीं"।

मैंने ध्यानपूर्वक देखा, कैसे आश्चर्य का विषय है! केवल मेरी उंगली के स्पर्श से पाँच छः मील दूरवर्त्ती छः सात सौ टन का एक बड़ा जहाज, न मालूम किस दैवी शक्ति की प्रेरणा से ठीक मेरे इच्छानुसार तीर की तरह रास्ता काटता हुआ चला जा रहा है।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य्य ।

(विगत अंक से आगे ।)



हरशल ने पीछे से सूर्य्य के संबंध में और भी अनेक बातें कही थीं जिनमें से कुछ यद्यपि असंगत और असत्य थीं तो भी जिनसे बाद के ज्योतिषियों को अनेक सिद्धान्त निश्चित करने में बहुत बड़ी सहायता मिली। उसका एक भ्रमपूर्ण मत यह था कि सूर्य्य ठोस है और उस पर बस्ती बसी हुई है! उसका यह भी मत था कि सूर्य्य के चारों ओर बादल भी हैं जो आलोक-मण्डल के बहुत ही पास—प्रायः मिले हुए हैं; जिस समय आलोक-मण्डल और बादल हट जाते हैं उस समय हमें सूर्य्य-पृष्ठ देखने का अवसर मिलता है। इत्यादि इत्यादि।

विलसन ने सूर्य्य के संबंध में जो जो बातें बतलाई थीं, बाद में परीक्षा करने और अच्छे अच्छे यंत्रों द्वारा देखने से वह सब बातें प्रायः बहुत ही ठीक उतरीं। डी लारे नामक एक ज्योतिषी ने एक बार सूर्य्य के ८९ दागों का वेध किया था; उनमें से ७२ दाग उसे ऐसे मिले जिनकी सब बातों से विलसन के सिद्धान्त की पुष्टि होती थी। बाकी १७ दाग उससे एक दम विपरीत थे। पर दागों के आकार आदि में जितने शीघ्र और जितने विलक्षण परिवर्त्तन होते रहते हैं उन्हें देखते हुए यह थोड़ी सी विपरीतता कभी आश्चर्य्य-जनक नहीं हो सकती। डीलारे ने सूर्य्य के दागों के अवकाश होने की बहुत सहज परीक्षा बतलाई है। वह कहता है कि एक दिन के अन्तर पर सूर्य्य के दो चित्र लो और उन्हें स्टीरिसकोप (Stereoscope) में रख कर देखो; उस समय स्पष्ट जान पड़ेगा कि ये दाग सूर्य्य-पृष्ठ पर के बड़े बड़े विवर हैं। जिस समय ये दाग सूर्य्य के दृश्य बिम्ब के बिलकुल किनारे पर पहुँच जाते हैं उस समय उनका अवकाश होना और भी अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है; क्योंकि उस समय उन्हें देखने से ठीक यही जान पड़ता है कि वह दाग नहीं बल्कि बहुत बड़ी खरोंच या खराश है। ८ जूलाई सन् १८७३ को सेशी ने एक ऐसी ही खरोंच देखी थी जो प्रायः ३६०० मील गहरी थी।

फे तथा अन्य कई ज्योतिषियों का मत है कि सूर्य्य के दाग हवा के बवंडर या अन्धड़ हैं पर यह मत सर्वसम्मत नहीं है। यदि वे दाग सचमुच ही हवा के बहुत जोर से घूमने के कारण दिखलाई पड़ते हों तो उस दशा में उपच्छाया की किरणें बिलकुल टेढ़ी होनी चाहिएं, पर वास्तव में वह बात नहीं है। दाग में अन्धड़ अवश्य चलते हैं पर वह बहुत ही कम। ये अन्धड़ एक या दो दिन से अधिक नहीं ठहरते। उस एक या दो दिन में दागों की आकृति कुछ ऐंठन या मुरेड़दार भी हो जाती है। जब अन्धड़ खतम हो जाते हैं तब दागों की आकृति फिर पहले की सी हो जाती है और उसके बहुत दिनों बाद तक दाग बराबर बने रहते हैं। कभी कभी यह अन्धड़ रुक जाने के बाद फिर शुरू होते हैं और उस समय उनकी गति उल्टी ओर हो जाती है। दागों की यह अवस्थाएँ वेध करनेवालों के लिये बहुत ही मनोरंजक होती हैं; पर इन्हीं के कारण दागों की उत्पत्ति केवल बवंडर से बतलाना ठीक नहीं है।

सूर्य्य को बहुत बड़ी बड़ी दूरबीनों से देखने पर मालूम होता है कि उसका पृष्ठ सम और चिकना नहीं है; बल्कि उसकी आकृति किसी ऐसे तालाब के तल के समान जान पड़ती है जो तेज हवा चलने के कारण क्षुब्ध हो गया हो। बहुत ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ता है कि सूर्य्य-पृष्ठ पर बहुत सी विलक्षण धारियाँ या झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं। कुछ विशिष्ट स्थानों पर और विशेषतः दृश्य बिम्ब के ठीक मध्य में यह बात और भी ज्यादः है। भिन्न भिन्न अवसरों पर इस दृश्य में बहुत कुछ परिवर्त्तन भी हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिसका मुख्य कारण बहुत से अंशों में हमारी पृथ्वी का वातावरण ही है जिसकी तहों आदि में सदा बहुत बड़ा परिवर्त्तन हुआ करता है। जिस समय पृथ्वी पर हवा बहुत तेज चलती रहती है उस समय वह धारियाँ या झुर्रियाँ बिलकुल ही दिखाई नहीं पड़तीं। सूर्य्य के आलोक-मण्डल में होनेवाले परिवर्त्तनों का भी उनके दृश्य पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः उन्हें देखने के लिये सब से बढ़ कर उपयुक्त अवसर वही है जब कि पृथ्वी का वातावरण और सूर्य्य का आलोक-मण्डल दोनों शान्त और स्थिर हों।

सूर्य्य के पृष्ठ का वर्णन करते हुए यह बतलाया जा चुका है कि उस पर बहुत से छोटे छोटे दानों जैसे प्रकाशित बिन्दु दिखलाई पड़ते हैं जो अनेक आकार और प्रकार के होते हैं। यह भी कहा जा चुका है कि सूर्य्य-पृष्ठ पर ये दाने ठीक उसी प्रकार तैरते हुए दिखाई देते हैं जिस प्रकार पानी पर भात के दाने तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। सूर्य्य का सारा पृष्ठ इसी प्रकार के दानों से भरा हुआ दिखाई देता है। प्रायः सभी दाने कद में तो एक दूसरे के बराबर होते हैं पर उनकी शकल अलग अलग होती है; हाँ कुछ न कुछ अंडाकृति सभी होते हैं। इन दानों के बीच में जो थोड़ा थोड़ा स्थान या अंश है वह कुछ कुछ काले रंग का है और सूर्य्य के सारे पृष्ठ पर मानों उसका जाल सा बिछा हुआ है। पर उसे अच्छी तरह देखने के लिये वातावरण बहुत ही शान्त, स्थिर और स्वच्छ होना चाहिए। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि काले जाल पर बहुत से सफेद दाग हैं। दूरबीन लगाते ही सूर्य्य का जो दृश्य दिखाई पड़ता है उसमें यह जाल और धब्बे बहुत साफ नजर आते हैं। पर थोड़ी ही देर बाद वह दृश्य बदल जाता है। इसका कारण यह है कि आँखें थक जाती हैं, दूरबीन का शीशा गरम हो जाता है और दूरबीन के भीतर की हवा गरम हो जाने के कारण क्षुब्ध हो जाती है। कभी कभी यह दृश्य और भी विलक्षण हो जाता है और उस जाल पर सफेद और चमकीले दागों के सिवा छोटे छोटे काले छेद भी दिखाई पड़ते हैं। दागों के आस पास जो दाने होते हैं वे कुछ लंबाकृति जान पड़ते हैं। ये दाने बहुत ही छोटे छोटे होते हैं इसलिये उनका ठीक ठीक स्वरूप बिना किसी बहुत बड़ी और अच्छी दूरबीन के नहीं दिखाई पड़ता। विद्वानों का मत है कि साधारणतः इन दानों का व्यास १२० से १५० मील तक है। इन दानों की गति भी कुछ निश्चित ही होती है पर उसका वह निश्चय बहुत अधिक और प्रामाणिक नहीं है। उनकी गति बहुधा उन्हीं लहरों की तरह होती है जो किसी तालाब में ढेला फेंकने से उठती हैं। कभी कभी ये दाने चलते चलते उपच्छाया के किनारों तक भी पहुँच जाते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि सूर्य्य के ये दाने प्रायः उसके दृश्य बिम्ब के मध्य भाग में ही बहुत अधिकता से दिखाई देते हैं। इसी लिये यह सिद्धान्त निकाला गया है कि ये हाइड्रोजन गैस के उभार हैं जो उसके साधारण पृष्ठ से ऊपर उठे हुए हैं। मध्य के अतिरिक्त अन्य भागों में भी इस प्रकार के उभार हैं पर वे पार्श्व में होने के कारण प्रायः एक दूसरे की आड़ में पड़ जाते हैं। सूर्य्य के चारों ओर अग्नि-शिखाएँ हैं और उन्हीं के मध्य में से हो कर उक्त उभार दिखाई पड़ते हैं। कभी कभी सूर्य्य का पृष्ठ इन दानों से इतना अधिक भर जाता है कि सारे पृष्ठ में छोटे छोटे छेद से दिखाई पड़ने लगते हैं और ऐसा जान पड़ता है कि दागों की सृष्टि होना चाहती है। पर यह दृश्य स्थायी नहीं होता और कुछ तो पृथ्वी के वातावरण में परिवर्त्तन होने के कारण और विशेषतः सूर्य्य-पृष्ठ में परिवर्त्तन होने के कारण वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। मालूम होता है कि दो दानों के मध्य में जो स्थान आल के जोड़ की तरह जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है वह खाली हो कर दाग बन जाता है। पर तो भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि दागों की सृष्टि किस परिस्थिति में होती है। अभी तो यही कहना असम्भव है कि इसका कोई निश्चित नियम भी है। कभी तो छोटे छेद बहुत ही धीरे धीरे बढ़ कर दाग का रूप धारण करते हैं और कभी वे एक दम से बन जाते हैं। दाग चाहे कितनी ही जल्दी क्यों न बने तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी सृष्टि तुरन्त हो जाती है। हाँ, कई दिन पहले से यह कहा जा सकता है कि सूर्य्य-पृष्ठ में अमुक स्थान पर दाग हो जायगा। उस समय आलोक-मण्डल क्षुब्ध होता है जिसके कारण एक या अनेक छेद बन जाते हैं। पहले प्रायः बहुत से छोटे छोटे काले दाग दिखाई पड़ते हैं, मानों उस स्थान पर से सूर्य्य की चमक धीरे धीरे कम होती जाती हो और तब अन्त में एक बड़ा दाग बन जाता है। आरम्भ में उसमें कोई स्पष्ट उपच्छाया नहीं होती; धीरे धीरे दाग कुछ गोल होता जाता है और तब उसमें उपच्छाया दिखाई पड़ने लगती है। पर दाग की इस प्रकार की सृष्टि तभी होती है जब सूर्य्य का वातावरण बहुत ही स्थिर और शान्त रहता है; शेष अवसरों पर जो क्रियाएँ होती हैं वे प्रायः इतनी पेचीली होती हैं कि उनके सम्बन्ध में कोई नियम निश्चित ही नहीं किया जा सकता।

साधारणतः प्रत्येक दाग को तीन अवस्थाएँ पार करनी पड़ती हैं,—(१) जन्म-काल, जब कि उसकी सृष्टि होती है, (२) शान्ति-काल, जब कि सृष्टि होने के उपरान्त उसका अस्तित्व बना रहता है और (३) अन्त-काल, जब कि वह नष्ट होने लगता है। जब कोई दाग नष्ट होने लगता है उस समय आलोक-मण्डल का अंश, मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न रह जाने के कारण उभड़ कर उस छेद को भरने लगता है। सेशी ने दागों की उपमा अग्नि-शिखाओं वा बादलों के बीच के अवकाश से दी है और उपच्छाया के विषय में उसका मत है कि उस अवकाश के कारण जो स्थान खाली और फलतः अन्धेरा पड़ जाता है उसके किनारे पर का प्रकाशमान् अंश नीचे के अन्धेरे के कारण कुछ हलके रंग का हो जाता है।

अब तक दागों के संबंध में जितनी बातों का पता लगा है उनसे यही सिद्ध होता है कि उनका मूल कारण सूर्य्य के भीतर होनेवाला किसी प्रकार का बहुत बड़ा परिवर्त्तन या क्षोभ आदि है। यह परिवर्त्तन या क्षोभ कभी कभी बहुत अधिक होता है पर उसका और उसके कारणों का अभी तक लोगों को पता नहीं लगा है। जिन पदार्थों से सूर्य्य-पिण्ड बना है उनमें भारी क्षोभ होने के कारण ही दागों की सृष्टि होती है। यह क्षोभ सूर्य्य के बहुत ही भीतरी भाग में होता है।

दागों और दानों के अतिरिक्त सूर्य्य के पृष्ठ पर कभी कभी प्रकाश की रेखाएँ या शिखाएँ दिखलाई पड़ती हैं। ये रेखाएँ दागों के बहुत पास होती हैं; अथवा कभी तो वे दाग के नष्ट हो जाने पर उसके स्थान पर दिखाई पड़ती हैं और कभी ऐसे स्थान पर दिखाई पड़ती हैं जहाँ शीघ्र ही कोई दाग बनने को होता है। किनारे पर की रेखाएँ बहुधा एक दूसरे से समानान्तर होती हैं और बीच की रेखाओं की आकृति अनियमित और अनिश्चित होती है। सूर्य्य के पृष्ठ की अपेक्षा वे अधिक प्रकाशमान होती हैं; पर उनके अधिक प्रकाशमान जान पड़ने का मुख्य कारण कदाचित् यह है कि सूर्य्य का किनारा उसके मध्य की अपेक्षा सदा कम चमकीला दिखाई पड़ता है। यदि किसी बढ़िया दूरबीन से पहले एक बार सूर्य्य के दृश्य-बिम्ब का किनारा देखा जाय और तब तुरन्त ही उसका मध्य भाग देखा जाय तो यह अन्तर सहज में ही मालूम हो सकता है। अथवा यदि पूर्वोक्त रीति से किसी परचे पर सूर्य्य की छाया डाली जाय तो भी इसका पता अच्छी तरह लग सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दागों की आकृति और गति आदि जान कर स्वभावतः यह प्रश्न हो सकता है कि क्या भिन्न भिन्न अवसरों पर उनका दिखलाई पड़ना किसी निश्चित नियम के अधीन है। आधुनिक ज्योतिषियों ने इस प्रश्न पर बहुत अधिक विचार किया है। प्राचीन ज्योतिषियों ने केवल इतना ही पता लगाया था कि भिन्न भिन्न वर्षों में दिखाई पड़नेवाले दागों की संख्या भी परस्पर भिन्न हुआ करती है और कई बार ऐसा भी होता है कि लगातार कई वर्ष बीत जाते हैं और एक भी दाग दिखाई नहीं पड़ता। यद्यपि यह बात मानी जा सकती है कि लगातार कई वर्षों तक दागों का दिखाई न पड़ना अतिशयोक्ति है अथवा वर्षों तक दागों के दिखाई न पड़ने का मुख्य कारण यह हो सकता है कि या तो उन प्राचीन ज्योतिषियों ने अच्छी तरह वेध न किया हो अथवा उनके पास वेध के लिये अच्छे यंत्र न हों; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि भिन्न भिन्न वर्षों में दागों की संख्या में बहुत कुछ अन्तर होता है और कभी कभी बहुत ही कम दाग दिखाई पड़ते हैं।

सब से पहले पहल सर विलियम हरशल ने दागों के इस अन्तर का अपनी पृथ्वी के भिन्न भिन्न कार्यों और परिवर्त्तनों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहा था। किसी और उपयुक्त पदार्थ के अभाव में उन्होंने दागों की वार्षिक संख्या का गेहूँ के भाव से मिलान किया था पर इस मिलान का कोई अर्थ नहीं निकल सकता था और न निकला। पर इसमें सन्देह नहीं कि सूर्य्य में होनेवाले परिवर्त्तनों का हमारी पृथ्वी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और यहाँ के जल-वायु आदि के साथ उसका घनिष्ट संबंध है।

आधुनिक ज्योतिषियों में से इस संबंध में सब से अधिक अनुसन्धान ज्यूरिच (स्विजरलैण्ड) की वेधशाला के डाइरेक्टर मि० उल्फ ने किया है। बहुत प्राचीन काल से अब तक इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान और उनके फल हुए हैं उन सबका उन्होंने बहुत उत्तम संग्रह किया है और बहुत योग्यतापूर्वक उन सब का मिलान कर के फल निकालने का प्रयत्न किया है।

आरम्भ में सूर्य्य के दागों का बहुत अच्छी तरह निरीक्षण और वेध करनेवाले युरोप में दो ज्योतिषी मुख्य थे। एक तो इंगलैण्ड के मेरियट साहब और दूसरे जर्मनी के शेनर साहब। लेकिन शेनर ने स्वयं यह बात लिख दी है कि मैंने जितने दाग देखे हैं उन सब का विवरण मैंने नहीं लिखा, उनमें से केवल उन्हीं दागों का कुछ हाल लिखा है जिनसे सूर्य्य का परिभ्रमण-काल जानने में सहायता मिलने की सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त बाद में और भी अनेक ज्योतिषियों ने वेध किए थे; पर उनमें से कुछ के सिद्धान्त तो निरर्थक और अपूर्ण थे और कुछ ज्योतिषियों का परस्पर बहुत कुछ मत-भेद था। जर्मनी के स्टाडेकर नामक ज्योतिषी ने बहुत ही परिश्रम और धैर्य्यपूर्वक सन् १७४९ से १७९९ तक लगातार पचास वर्ष सूर्य्य के दागों का निरीक्षण किया था। उससे पहले भी कई ज्योतिषियों ने उनका निरीक्षण किया था, पर वह ठीक नहीं था। इसके अतिरिक्त लोगों के मत-भेद का यह भी कारण था कि उनमें से किसी के यंत्र अच्छे थे और किसी के निकम्मे। इसी लिये किसी ने एक वर्ष में अधिक दाग देखे और किसी ने उसी वर्ष में कम। अपने अपने रजिस्टरों में वे लोग उन दागों की जो संख्याएं लिख गए हैं उनमें परस्पर अन्तर होने का मुख्य कारण यही है। पर उल्फ साहब ने बहुत परिश्रम कर के यही पता लगाया है कि बहुत प्राचीन काल से अब तक बराबर सूर्य्य में अधिक संख्या में ही दाग दिखाई पड़ते आए हैं। आधुनिक ज्योतिषियों में जर्मनी के श्वेबे साहब ने इस सम्बन्ध में बहुत परिश्रम किया था। उन्होंने सन् १८२६ से १८६८ तक यथासाध्य नित्य ही सूर्य्य का निरीक्षण किया था—केवल बदली के समय वह निरीक्षण न कर सकते थे। इधर कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों से तो बहुत से ज्योतिषी नित्य-प्रति सूर्य्य के फ़ोटो लेने लग गए हैं अतः उन प्राचीन ज्योतिषियों के दिए और आजकल के ज्योतिषियों के संग्रह किए हुए विवरणों से इन दागों की वार्षिक संख्या और गति आदि निश्चित करने में बहुत सहायता मिलती है।

आजकल भी बहुत से ज्योतिषी बहुत ही सावधानतापूर्वक दागों का वेध करने में लगे हुए हैं। पर इस काम में धैर्य्य की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है । आजकल प्रायः नित्य सूर्य्य के फ़ोटो लिए जाते हैं जिनसे बहुत अच्छा काम निकलता है; पर इस काम में व्यय अधिक होता है। कुछ ज्योतिषी ऐसे भी हैं जो केवल हाथ से चित्र आदि बना कर उन पर चिह्न लगाते चलते हैं । अभी हाल में कुछ ऐसे यंत्र भी बन गए हैं जो पहाड़ों आदि ऊँचे ऊँचे स्थानों पर लगा दिए जाते हैं। ये यंत्र नित्य सूर्य्य तथा दूसरे ग्रहों के चित्र लेते चलते हैं और उनके संबंध की मुख्य मुख्य बातें आप से आप दर्ज भी होती चलती हैं। पर ऐसे यंत्र मूल्य में बहुत अधिक और संख्या में बहुत कम हैं ।

बहुत ध्यानपूर्वक दागों का निरीक्षण करने के उपरान्त श्वेबे ने यह निश्चय किया था कि प्रति दस या ग्यारह वर्ष के उपरान्त एक बार दाग बहुत अधिक संख्या में दिखाई पड़ते हैं और एक बार उनकी संख्या बहुत ही कम हो जाती है । दागों की संख्या के घटने बढ़ने का यही क्रम बराबर चलता रहता है । यदि श्वेबे का यह निश्चय कुछ भ्रम-पूर्ण हो तो उसमें विशेष आश्चर्य्य न करना चाहिए ; क्योंकि बादल आदि के कारण जिस दिन दाग न दिखाई पड़ें उस दिन की गणना विवश हो कर प्रायः छोड़ ही देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त छोटे बड़े सब दागों की ठीक ठीक संख्या का पता लगाना भी अनेक कारणों से बहुत ही कठिन होता है। तो भी इस सम्बन्ध में एक तालिका बनाने में श्वेबे ने जो परिश्रम किया है, वह अवश्य ही बहुत प्रशंसनीय है । अब भी यह बात प्रायः निश्चित ही मानी जाती है कि दस से बारह वर्ष तक में पहले एक बार दागों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है और एक बार वह बहुत ही घट जाती है। गत २५० वर्षों में इन दागों का जो कुछ निरीक्षण हुआ है उससे यही बात सिद्ध होती है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि दागों की यह अधिकता और न्यूनता ५०—६० वर्ष में होती है। उल्फ साहब ने बड़े परिश्रम से यह निश्चय किया है कि ५५ वर्ष में एक बार दागों की संख्या अधिक और एक बार कम होती है। लूमिस नामक एक ज्योतिषी ने निश्चित किया था कि सन् १८१० से १८८२ तक सूर्य्य में दाग अपेक्षाकृत बहुत ही कम थे।

जिस समय सूर्य्य में दागों की संख्या बहुत अधिक होती है उसके उपरान्त वह संख्या शीघ्र ही बहुत घट जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि प्रायः ११ वर्षों में दागों की संख्या एक बार बहुत बढ़ती और घटती है। इन ११ वर्षों में ३ वर्ष तो दागों की संख्या में बहुत वृद्धि होती है और प्रायः ७ वर्ष तक वह संख्या बराबर घटती रहती है। यहाँ तक कि वह बहुत ही कम रह जाती है और उसके बाद फिर बहुत ही शीघ्रता से बढ़ने लगती है। दागों के ह्रास और वृद्धि में एक विलक्षण विरोध दिखाई पड़ता है। यदि किसी समय ह्रास धीरे धीरे या बहुत जल्दी जल्दी हो तो उसके बाद होनेवाली वृद्धि भी उसी मान में बहुत जल्दी जल्दी अथवा धीरे धीरे होगी। इस कारण प्रायः भविष्यद्-वाणी की जा सकती है कि ह्रास या वृद्धि कब और कितनी मात्रा में होगी।

कैरिंगटन ने कोष्ठक बना कर यह भी पता लगाया है कि ज्यों ज्यों दागों की संख्या घटने लगती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है त्यों त्यों वे सूर्य्य-बिम्ब पर नीचे की ओर उतरते आते हैं; और जब दागों की संख्या में वृद्धि होने को होती है तब वे ऊँचे अक्षांश पर दिखाई पड़ने लगते हैं। उसके इस मत का और भी कई ज्योतिषियों ने समर्थन किया है।

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रायः ११ वर्ष में दागों के घटने-बढ़ने का एक चक्र पूरा होता है। इस प्रकार निश्चित समय मालूम हो जाने पर बड़े बड़े ज्योतिषियों के लिये यह स्वाभाविक था कि वे उसके कारणों का भी कुछ पता लगाते। सूर्य्य में ये दाग केवल राशि-चक्रवाले प्रान्तों में ही पाए जाते हैं। इससे गेलीलियो ने अनुमान किया था कि इन दागों और ग्रहों की स्थिति में कोई विशेष सम्बन्ध है। पर अभी तक इस विषय में कोई सिद्धान्त निश्चित नहीं हो सका है। बहुत सम्भव है कि इसका मुख्य कारण सूर्य्य के अन्तर्भाग की कोई गुप्त प्राकृतिक घटना हो और जिसका पता हमें अभी न लग सकता हो। अथवा यह भी सम्भव है कि वह किसी बाहरी प्रभाव के कारण हो या ग्रहों के प्रभाव के कारण ही हो। उल्फ की भी यही सम्मति है कि ग्रहों के आकर्षण का सूर्य्य-पृष्ठ पर बहुत प्रभाव पड़ता है, उस पर तरंगें उठती हैं और उन्हीं तरंगों के कारण दागों की सृष्टि होती है। ग्रहों की स्थिति सदा बदलती रहती है और इस परिवर्त्तन का प्रभाव सूर्य्य-पृष्ठ की तरंगों पर भी बहुत कुछ पड़ता है। बृहस्पति में भी इसी प्रकार के दाग पड़ते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि सूर्य्य और बृहस्पति के दागों में परस्पर बहुत कुछ सम्बन्ध है और उनमें से हर एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। सम्भव है कि बुध और शुक्र का भी उस पर प्रभाव पड़ता हो क्योंकि वे सूर्य्य से थोड़े ही अन्तर पर हैं; पर यह अनुमान केवल इसी लिये संदिग्ध रह जाता है कि वे दोनों ग्रह आकार में बहुत छोटे हैं और यह विश्वास नहीं होता कि सूर्य्य सरीखे विशाल ग्रह पर भी उनका कोई विशेष प्रभाव पड़ता हो। फिर भी इस बात के अनेक प्रमाण मिले हैं कि बृहस्पति और शुक्र की स्थिति आदि का सूर्य्य के दागों के साथ विशेष सम्बन्ध है। डी लारे ने दागों के प्रायः आठ सौ समूहों का भली भाँति निरीक्षण कर के यह पता लगाया है कि सूर्य्य का जो भाग शुक्र और मंगल के सामने रहता है उसमें दाग कम होते हैं और जो भाग इन दोनों ग्रहों की दूसरी ओर होते हैं उनमें दागों की संख्या अधिक होती है। कैरिंगटन ने भी निरीक्षण कर के यही सिद्धान्त निकाला था। उल्फ का यह भी मत है कि शनि का भी इन दागों पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है; पर इस मत का अभी तक किसी ने समर्थन नहीं किया है।

कभी कभी दागों का आविर्भाव और नाश इतनी शीघ्रता और विलक्षणता से होता है कि सारे जगत् की किसी दूसरी प्राकृतिक घटना से उसका कोई सम्बन्ध स्थापित करना बहुत ही असम्भव जान पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि दागों का मूल कारण सूर्य्य का आन्तरिक परिवर्त्तन भी है और ग्रहों की पारस्परिक स्थिति और गति भी। पर तो भी इन बातों का ठीक ठीक हिसाब और पता लगाना प्रायः असम्भव ही है। अपनी पृथ्वी को ही लीजिए। यद्यपि सूर्य्य और पृथ्वी की पारस्परिक स्थिति में सदा नियमित रूप से ही परिवर्त्तन होता रहता है, तो भी यहाँ के जल-वायु और वातावरण आदि पर उसका जो प्रभाव पड़ता है वह बिलकुल ही अनियमित और बहुत विलक्षण होता है। अतः ऐसी बातों के सम्बन्ध में सहसा कोई नियम निश्चित नहीं किया जा सकता। हाँ, इन सब बातों से एक परिणाम अवश्य निकाला जा सकता है। वह यह कि सूर्य्य का भीतरी भाग अभी तक शान्त और स्थिर नहीं हुआ है, वह बहुत ही क्षुब्ध है। इस क्षोभ का प्रभाव सूर्य्य से निकनेवाले ताप और प्रकाश पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है और फलतः वे ग्रह भी उस प्रभाव से वंचित नहीं रहते जो हमारे सौर जगत् के अन्तर्गत हैं और जिन्हें प्रकाश, ताप और जीवन आदि सूर्य्य से प्राप्त होता है।

कई घटनाएं अवश्य ऐसी हैं जिनका सूर्य्य के सामायिक परिवर्त्तन से विलक्षण सम्बन्ध है। पाठक जानते हैं कि ध्रुव-दर्शक यंत्र में चुंबक की एक सूई या सलाई लगी रहती है, साधारणतः जिसका एक सिरा सदा उत्तर की ओर और दूसरा दक्षिण की ओर रहता है। पर उसे ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ेगा कि चुंबक की उस सूई से मालूम होनेवाला उत्तर या दक्षिण हमारे उत्तर या दक्षिण से कुछ भिन्न और अन्तर पर होता है। भिन्न भिन्न स्थानों में चुंबक का यह अन्तर भी अलग अलग होता है। इस अन्तर को चुंबक-प्रवृत्ति कहते हैं। इसका कारण भौतिक परिवर्त्तन माना जाता है; पर सूर्य्य के दागों के साथ इसका एक विलक्षण सम्बन्ध है। ऊपर कहा जा चुका है कि ११ वर्ष में प्रायः एक चक्र सा घूमता है जिसमें एक बार दाग बहुत अधिक और एक बार बहुत कम दिखाई देते हैं। ध्रुवदर्शक यंत्र की सूई में जो दैनिक व्यतिक्रम होता है वह भी ग्यारह वर्ष में ही एक बार पराकाष्ठा को पहुँचता है; अर्थात् उसका चक्र भी ग्यारह वर्ष का ही है। केवल यही नहीं, बल्कि इन दोनों का परस्पर यहाँ तक घनिष्ट सम्बन्ध है कि जिस समय सूर्य्य में दाग बहुत अधिक दिखाई पड़ते हैं उस समय सूई में भी बहुत व्यतिक्रम होता है और जिन दिनों सूर्य्य में दाग कम होते हैं उन दिनों उसमें व्यतिक्रम भी बहुत थोड़ा होता है।

एक विलक्षण सम्बन्ध और सुनिए। पृथ्वी के भीतरी भाग में प्रायः विद्युत्-प्रवाह चला करता है, जिसके कारण कभी कभी तार (टेलिग्रफ) के कामों में बाधा पड़ती है। जब कभी पृथ्वी के भीतर विद्युत् का प्रबल प्रवाह चलता है तब सारे देश के तार बेकाम हो जाते हैं और एक स्थान से तार द्वारा भेजा हुआ समाचार दूसरे स्थान पर नहीं पहुँचता। तार के काम में इस प्रकार की बाधा के समाचार समय समय पर पत्रों में भी छपा करते हैं। इस विद्युत्-प्रवाह का काल-चक्र भी ग्यारह ही वर्ष का है और सूर्य्य के दागों की अधिकता और न्यूनता से इसका भी वैसा ही सामंजस्य है जैसा चुंबक की सूई का। चुंबक में भी विद्युत्-शक्ति ही काम करती है अतः यह मानना पड़ता है कि सूर्य्य के दागों का भी बहुत कुछ सम्बन्ध विद्युत् से ही है।

ऊपर सूर्य्य के सम्बन्ध में जितनी बातें कही गई हैं उनसे सूर्य्य के विषय में मोटी मोटी बातों का पाठकों को ज्ञान हो गया होगा। जैसा कि इस लेख के आरम्भ में कहा गया है, यदि सूर्य्य की एक एक बात का विस्तृत विवरण दिया जाय तो बड़ा भारी पोथा तैयार हो सकता है। विशेषतः गत चालीस पचास वर्षों में सूर्य्य के सम्बन्ध में जो नई बातें मालूम हुई हैं वे विलक्षण और मनोरंजक होने के अतिरिक्त बहुत अधिक भी हैं। आजकल जो नए नए आविष्कार हुए हैं उनके कारण बहुत से प्राचीन सिद्धान्तों और विचारों का खंडन हो गया है; तिस पर अभी और भी बहुत सी नई बातों के मालूम होने और भेदों के खुलने की सम्भावना है ही।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम्मीर-माता और हम्मीर-पत्नी।

[लेखक,—श्रीयुक्त बा० पुरुषोत्तमदास।]



चित्तौर-पतन के कुछ दिन पूर्व राणा लक्ष्मणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह आखेट के लिये अन्दावा नामक एक वन को गए थे। अरिसिंह तथा उनके साथी एक सूअर को देख कर सशस्त्र उसके पीछे दौड़े। सूअर इन लोगों को अपने पीछे आते हुए देख कर एक खेत में घुस गया।

वन्य पशु वा पक्षी, खेती को किसी प्रकार नष्ट न करें, इस कारण खेतिहर लोग खेत के मध्य में एक मचान बाँध और उस पर बैठ कर पहरा देते हैं। इस खेत के स्वामी की एक युवती कन्या थी, उस समय वही मचान पर बैठ कर खेत की रक्षा कर रही थी। सूअर ने खेत में प्रवेश किया है, राजपुत्र और उनके अनुचर आदि उसके साथ साथ खेत में प्रवेश कर सूअर को मारेंगे तो खेती बिलकुल नष्ट हो जायगी, इस भय से किसान की बेटी ने मचान पर खड़ी हो कर बड़ी नम्रता से अरिसिंह से कहा—"राजकुमार! आप खेत में घुस कर खेती को नष्ट न कीजिए। मैं सूअर को अभी मार लाती हूँ"। सब लोग रुक गए।

किसान की लड़की ने खेत में से जना का एक पौधा काट कर उसके आगे के हिस्से को ख़ूब चोखा कर लिया। फिर खेत में प्रवेश कर उसी से सूअर को मार कर वह राजकुमार के सन्मुख ले आई। खेतिहर की लड़की का पुरुषों से भी अधिक बल तथा साहस देख सब के सब मुग्ध हो उसकी प्रशंसा करते हुए पड़ाव को लौट गए।

पड़ाव पर लौट कर जिस समय राजकुमार तथा उनके साथी लोग नदी-तीर पर स्नान, पूजा इत्यादि कर रहे थे, उसी समय पत्थर का एक बड़ा टुकड़ा अरिसिंह के घोड़े के पैर पर आ कर गिरा। घोड़ा उसी समय पृथ्वी पर गिर पड़ा। सब ने देखा कि उसी किसान की बेटी का मचान पर से पशु पक्षियों को उड़ाने के लिये फेंका हुआ एक पत्थर इतनी दूर आ कर पड़ा और उसीसे घोड़े का पैर टूट गया! किसान की बेटी की शक्ति का दूसरा परिचय पा कर सब के सब दंग हो गए। किसान की बेटी राजकुमार के घोड़े की दशा देख लज्जित हुई और डरती हुई निकट आ कर बोली—"राजकुमार! मुझे क्षमा कीजिए, मैंने असावधानी से आपके घोड़े को चोट पहुंचाई। मैं स्त्री हूँ—आप की प्रजा हूँ, मेरा अपराध क्षमा कीजिए।"

अरिसिंह ने हँस कर कहा,—"तुम्हारी शक्ति देख कर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। तुम्हारे सदृश स्त्रियाँ यदि और भी इस देश में हों तो प्रत्येक के हाथ से ऐसे ऐसे दस घोड़ों के पैर टूटने का भी मुझे दुःख नहीं। मुझे यही दुःख है कि इस समय मेरे पास तुम्हें उचित पुरस्कार देने योग्य कोई वस्तु नहीं है।"

कृषक-कन्या ने कहा "राजपुत्र, आपकी कृपा और क्षमा ही मेरे लिये यथेष्ट पुरस्कार है। मैं और कोई पुरस्कार आपसे नहीं चाहती। दीन प्रजा का स्मरण रखिएगा, यही प्रार्थना है।" राजपुत्र को प्रणाम कर कृषक कन्या अपने काम पर चली गई।

अरिसिंह अपने साथियों के साथ राजधानी की तरफ जा रहे थे, राह में उन लोगों को फिर वही कृषक-कन्या दिखलाई दी। वह सिर पर एक बड़ी दूध की कल्सी रखे और दोनों हाथों से दो बड़ी बड़ी भैंसों को रस्सी से बाँध कर खींचती हुई जा रही थी। राजकुमार के एक साथी ने यह विचारा कि इस लड़की ने हम सब को बड़ा नीचा दिखलाया है; उसको धक्का दे कर गिरा देने का यह बहुत अच्छा अवसर है। यह विचार कर उसने उसकी ओर इस प्रकार से घोड़े को चलाया कि उस कन्या के सिर से दूध की मटकी पृथ्वी पर गिर पड़े। उस कन्या ने भी उसके मन की बात ताड़ ली और जरा मुसकरा कर अपने हाथ के भैंस के रस्से को उसके घोड़े के पैर में ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फँसाया कि वह दुर्बुद्धि कौतुक-प्रिय सिपाही घोड़े को लिए दिए एकदम पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सब के सब खिलखिला कर हँसने लगे। राजपुत्र का वह अनुचर कौतुक करने चला था, किन्तु वह स्वयं सब का कौतुक बन गया। टूटे हुए पैर से कृषक-पुत्री के समीप आ कर उसने कहा—"ठकुरानी! तुम ऐसी वैसी नहीं हो। तुम हमारे शिकारी राजपुत्र की रानी बनो, मैं और कुछ तुम से कुछ नहीं चाहता। तुम इनके साथ घोड़े पर चढ़ कर शिकार और लड़ाई करना"।

कृषक-कन्या लज्जित हो कर चली गई। अरिसिंह की वास्तव में उस कन्या से विवाह करने की इच्छा थी। वीर ही वीर की मर्य्यादा समझ सकता है। किस वीर का चित्त ऐसी वीर स्त्री की ओर आकर्षित न होगा?

उन्होंने कहा—"यदि यह स्त्री क्षत्रिय-कन्या हो तो मैं इससे विवाह करूँगा।"

राजपुत्र ने राजधानी जाने का विचार छोड़ दिया। खोज करने से उनको विदित हुआ कि यह किसी क्षत्रिय की कन्या है।

वृद्ध कृषक को बुला कर राजपुत्र ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया। उसने न मालूम क्या समझा और इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। राजपुत्र निराश और दुःखी हो कर चित्तौर चले गए।

वृद्ध ने घर आ कर अपनी स्त्री से सब वृत्तान्त कह सुनाया। बुड्ढी उस बुड्ढे सी मूर्ख न थी। ऐसे राजपुत्र को दामाद पा कर छोड़ देने के लिये बुड्ढी ने वृद्ध को बहुत सी बातें कहीं और कहा—"अभी लड़की ले कर चित्तौर जाओ। राजपुत्र से प्रार्थना कर लड़की उन्हें दे आओ"।

वृद्ध ने भी अपनी भूल स्वीकार की और तुरन्त कन्या को साथ ले कर वह चित्तौर गया। अरिसिंह ऐसी वीर स्त्री को पा कर बड़े प्रसन्न हुए। इसी किसान की लड़की के गर्भ से अरिसिंह के ज्येष्ठ पुत्र हम्मीर का जन्म हुआ। जिस समय अलाउद्दीन ने चित्तौर को ध्वंस किया उस समय हम्मीर की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी; उस समय वह माता के साथ नाना के यहाँ थे।

ऐसी वीर माता का पुत्र हम्मीर क्यों न वीर्य्यवान् हो। हम्मीर ने ही चित्तौर का उद्धार कर फिर से वहाँ राणा-वंश की प्रतिष्ठा की। जिस पर्वतीय प्रदेश में हम्मीर के नाना का घर था, उसका नाम कैलवारा है। राजपूताने में जमींदारों को सरदार कहते हैं। राजपूताने में भील जाति के लोग जिनका रंग काला होता है, वास करते हैं। भील लोग साहस और रण-कौशल के लिये विख्यात हैं। भील सरदार सदैव से राजपूत राजाओं की एक मात्र विश्वसनीय और आज्ञाकारी प्रजा थे। युद्ध और विपद के समय परंपरा से राजपूत राजाओं को उनसे सहायता मिलती चली आई है। इस कैलवारे प्रदेश में अनेक भील सरदार रहते थे। राणा के वंशधर होने के कारण ये सब हम्मीर के विशेष आज्ञाकारी हो गए थे।

राणा लक्ष्मणसिंह ने अलाउद्दीन से अन्तिम युद्ध के समय अपने एक मात्र बचे हुए पुत्र अजयसिंह को दूसरे स्थान को भेज उनकी जगह स्वयं रण में प्राण दे कर चित्तौर की अधिष्ठात्री देवी की आज्ञापालन किया था। यही अजयसिंह कैलवारे में आ कर रहने लगे थे। कुछ राजपूत सरदारों से उनसे झगड़ा हो गया। इस झगड़े में उनके दोनों पुत्र अजीतसिंह तथा सुजानसिंह ने उनकी पूर्ण सहायता न की। किन्तु उनके भतीजे हम्मीर ने उनके शत्रु का दमन कर उनको संतुष्ट किया। उनके मुख्य वैरी मुञ्ज नामक सरदार का मस्तक काट कर जिस समय हम्मीर उनके सम्मुख ले गए, उसी समय अजयसिंह ने उस कटे सिर के बहते हुए लहू को ले कर हम्मीर के मस्तक पर राजतिलक लगा कर उन्हें राणा के वंश का उत्तराधिकारी बना दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्तौर और मेवाड़ की भूमि पर अलाउद्दीन का अधिकार था। अलाउद्दीन की ओर से मालदेव नाम का एक राजपूत सरदार मेवाड़ का शासनाधिकारी था। किन्तु हम्मीर राणा की उपाधि से भूषित हो कैलवारे तथा उसके समीपवर्ती पवर्तीय देशों में अपने राज्य का विस्तार करने लगे। इसी कारण मालदेव और हम्मीर में शत्रुता उत्पन्न हो गई।

राजपूतों में एक नियम था कि जब किसी से कन्या के विवाह का प्रस्ताव करना होता था तो कन्या का पिता उसके यहाँ एक नारियल भेजता था। वर पक्षवालों के नारियल के रख लेने से प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता था। परस्पर इतनी शत्रुता रहते हुए भी मालदेव ने अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव कर हम्मीर के यहाँ नारियल भेजा। हम्मीर ने कहा—"राणा के वंशधरों की विपत्ति चिरसंगिनी है। उसके लिये वे भय नहीं करते। एक क्षण के लिये अपने पुरुषों के राजनगर में जा कर मैं अपने को कृतार्थ करूँगा।"

विवाह का दिन नियत हुआ। हम्मीर केवल पाँच सौ सवारों को साथ ले चित्तौर गए, किन्तु विवाह की कुछ भी तैयारी न देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मालदेव और उनके पुत्रों ने ही उनका स्वागत किया। केवल उन्हीं लोगों के सन्मुख विवाह भी हो गया।

रात के समय हम्मीर शयनागार में गए। उनकी नव-विवाहिता पत्नी आई और उन्हें प्रणाम कर के दूर ही खड़ी रही। हम्मीर ने उसे अपने पास बुलाना चाहा। इस पर उसने सिर झुकाए हुए कहा—"महाराणा! आप इस दासी को क्षमा करें। मैं आपकी स्त्री होने के योग्य नहीं हूँ।"

हम्मीर ने कहा—"मालदेव ने देश के शत्रुओं के अधीन रहते ही स्वयं अपनी इच्छा से आज तुम्हारा विवाह हमारे साथ कर दिया है। तो भी स्त्री सब प्रकार से स्वामी के सम्मान और आदर की पात्री है। तब तुम ऐसी बातें क्यों करती हो?"

मालदेव की पुत्री ने कहा—"मैं अपने पिता के व्यवहारों के कारण सदैव लज्जित और दुःखी हूँ। मैं आपको देवता समझती हूँ और आपकी चरण-सेवा भी कर सकती हूँ। पर मेरी समझ में इसमें एक बाधा पड़ती है। आप विचार कर मेरा संशय दूर कीजिए।"

हम्मीर ने पूछा—"वह कौन सा कारण है?

मालदेव की कन्या ने उत्तर दिया—"महाराणा, मैं विधवा हूँ। मैं जब बहुत छोटी थी, मेरा विवाह किसी भट्टवंशीय सेनापति के साथ हुआ था। विवाह के पश्चात् ही मेरे स्वामी की मृत्यु हो गई। विवाह अथवा स्वामी का वृत्तान्त मुझे कुछ भी याद नहीं है। मेरे पिता ने शत्रुता के कारण ही आपका अपमान करने के हेतु आपके साथ अपनी विधवा कन्या का पुनर्विवाह किया है। विधवा के संसर्ग से राणा का वंश कलङ्कित होगा, यही उनका सिद्धान्त है। जिसमें विवाह के पूर्व ही यह बात फूट न जाय, इसी कारण उन्होंने अपने किसी बन्धु को निमन्त्रण नहीं दिया, कन्या के विवाह के समय किसी प्रकार की तैयारी नहीं की।"

हम्मीर अवाक् रह गए। क्रोध और अपमान से उनका शरीर काँपने लगा।

किन्तु उनकी विवाहिता पत्नी मालदेव की कन्या उनके सम्मुख खड़ी रही। मालदेव की कन्या परम रूपवती थी। हम्मीर ने प्रेम भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। उसे देख कर उनका क्रोध और अभिमान धीरे धीरे कम होने लगा।

मालदेव की कन्या ने फिर कहा—"महाराणा! मुझे आप अपराधिनी न समझिएगा। विवाह का मंत्रमात्र उच्चरित हुआ है। इससे इस तुच्छ शरीर के छू जाने से आपका चरण अपवित्र न होगा। पर इस समय आप मुझे त्याग कर अपने महत् वंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को निर्मल और निष्कलंक रखिए। पहले के विवाह तथा स्वामी का मुझे जरा भी स्मरण नहीं आता। मेरा शरीर कुमारी के सदृश पवित्र है। मैं आपको अपना स्वामी मान कर आपकी पूजा करने की अधिकारिणी हूँ। इस विवाह का मैंने कुछ भी विरोध न किया। मैंने मन में ठान लिया था कि सब वृत्तान्त आपसे निवेदन करूँगी। यदि इस अवसर पर आप मुझे अपने पद की सेवा करने योग्य समझ मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिएगा, तो मैं अपने जीवन को धन्य मानूँगी। यदि न दिया, तो अन्तःकरण से मैं आपको स्वामी मान पूजा करूँगी। वही इस अभागिन के लिये बहुत सुख तथा गौरव है।"

हम्मीर चकित और मुग्ध हो गए। पत्नी को हृदय से लगा कर उन्होंने कहा—"तुम्हारे ही सदृश सरल नारी चित्तौर के राणा की पत्नी कहलाने योग्य है। तुम्हारे सदृश अमूल्य रत्न पाने से राणा वंश कलंकित न होगा। मालदेव आज ऐसे रत्न दान देने से मेरे धन्यवाद के पात्र बने।"

स्वामी से इतनी कृपा और क्षमा की आशा मालदेव की कन्या को न थी। पर उनका इतना उदार व्यवहार देख कर वह गद्गद हो गई। थोड़ी देर बाद उसने चित्तौर की पराधीनता की बात चलाई। उसने कहा—"चित्तौर इस समय पठानों के अधीन है और राणा-वंश वहाँ से राज्यच्युत है; इस बात की मुझे सदा से बहुत चिन्ता रही है। यद्यपि स्वयं मेरे पिता ही चित्तौर के अधिकारी हैं तथापि चित्तौर पराधीन ही है और मुझे इसका बहुत दुःख है। मैं चाहती हूँ कि किसी प्रकार फिर से चित्तौर का उद्धार हो। इस कार्य्य में आपको दासी से भी बहुत सहायता मिलेगी। मेरे पिता का जाल नामक एक बहुत ही चतुर और विश्वसनीय कर्म्मचारी है। राज्य के शासन और रक्षा आदि के काम में वह मेरे पिता का दाहिना हाथ है। आप पिता जी से दहेज में उसी को माँग लीजिए।"

अपनी स्त्री की सम्मति के अनुसार हम्मीर ने ससुर से दहेज में जाल को माँगा। मालदेव अपने दामाद की यह प्रार्थना अस्वीकार न कर सके। विवाह के कई दिन बाद हम्मीर अपनी स्त्री और जाल को ले कर कैलवारे चले गए।

कुछ दिनों बाद हम्मीर को एक पुत्र हुआ। उस पुत्र के जन्मोत्सव के समय मालदेव ने कैलवारा तथा उसके आस पास का प्रान्त अपने नाती को दे दिया।

चित्तौर में क्षेत्रपाल नामक एक देवता थे। अपने पुत्र के कल्याणार्थ उन्हीं देवता के पूजन के लिये अपने पति से आज्ञा ले कर हम्मीर की स्त्री जाल के साथ चित्तौर गई। चित्तौर उस समय खाली था। उसके पिता मालदेव अपनी सेना ले कर शत्रुओं से लड़ने के लिये कहीं गए हुए थे। चित्तौर के उद्धार करने का उसने यह बहुत अच्छा अवसर देखा और जाल की सम्मति से उसने तुरन्त वहाँ के सब राजपूतों को बुलवाया। पठानों के अत्याचारों आदि का स्मरण करा कर राजपूतों को स्वाधीन होने के लिये उसने इतना उत्तेजित किया कि वे तुरन्त ही मालदेव का पक्ष छोड़ कर हम्मीर के पक्ष में हो गए। जब उसने देखा कि सब राजपूत मेरी सहायता के लिये तैयार हैं तब उसने तुरन्त अपने पति हम्मीर के पास समाचार भेजा। हम्मीर के आते ही सब राजपूत उनके पक्ष में हो गए और सहज में ही चित्तौर उनके अधिकार में आ गया। चित्तौर पर फिर चित्तौर के पुराने और वास्तविक राणा-वंश का अधिकार हुआ। लक्ष्मणसिंह और उनके ग्यारहों पुत्रों के रक्त से चित्तौर की अधिष्ठात्री देवी की जो प्यास बुझाई गई थी उसका फल इतने दिनों बाद मिला। *

* श्रीयुक्त कालीप्रसन्न दास एम० ए० कृत "आर्य्य-नारी" के एक प्रकरण की सहायता से लिखित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राबर्ट रोलक।

एडिनबरा विश्व-विद्यालय के पहले प्रिंसिपल।

[लेखक,—पं० हरिशंकरप्रसाद उपाध्याय, काशी।]



बर्ट रोलक स्काटलैण्ड के उन थोड़े से महानुभावों में से थे जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी के अन्त में अपने सदाचार, शिक्षा-प्रेम और लोकोपकार आदि के कारण बहुत कुछ कीर्त्ति और सर्वप्रियता सम्पादित की थी। उनकी मृत्यु पर उनकी कीर्त्ति चिरस्थायी करने के लिये जितनी अधिक कविताएं बनी थीं, उतनी तत्कालीन और किसी देश-सेवी के लिये नहीं बनीं। वह बड़े ही ईश्वर-निष्ठ, कर्तव्य-परायण और परोपकारी थे तथा शिक्षा के प्रसार में उन्होंने बहुत अधिक परिश्रम किया था। वह बड़े ही शान्त, सुशील और नम्र थे; विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के साथ उनका व्यवहार बहुत ही प्रेम तथा कृपापूर्ण होता था। वह कभी किसी से किसी प्रकार का वादविवाद या लड़ाई झगड़ा न करते थे और सदा चुपचाप अपना कार्य्य करते रहते थे। उनके यही सब गुण ऐसे थे जिनके कारण उन्होंने सर्वसाधारण में बहुत अधिक आदर और सम्मान प्राप्त कर लिया था। सर एलेकजेण्डर ग्रांट ने एडिनबरा-विश्वविद्यालय का जो इतिहास लिखा है उसमें उन्होंने रोलक के परिश्रम, ज्ञान, बुद्धिमत्ता और सदाचार की बहुत अधिक प्रशंसा की है।

जन्म और शिक्षा।

राबर्ट रोलक, के पिता डेविड रोलक पेविस के जमींदार थे। यह जमींदारी स्टरलिङ्ग के समीप में ही थी। वहीं राबर्ट रोलक का जन्म सन् १५५५ ई० में हुआ। उनकी माता का नाम मेरी लेविङ्गस्टोन था। जब वह चार ही वर्ष के थे तभी जैान नौक्स सदा के लिये स्काटलैण्ड को लौट आए थे। जब रोलक की अवस्था पाँच वर्ष की थी तब वहाँ पादरियों और गिरजाओं आदि के सुधार के लिये घोर आन्दोलन हो रहा था। उस समय इस सम्बन्ध में इस रूप से तर्क वितर्क और आन्दोलन हो रहा था कि सभी लोगों के हृदय पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा। युवक रोलक का भी उत्साह बहुत बढ़ा और इसका परिणाम यह हुआ कि रोलक की इच्छा विद्या-अध्ययन में अधिक हो गई। उनके पिता की पूर्ण इच्छा थी कि वह पूरे विद्वान् हों। उनकी तीव्र बुद्धि देख कर उनके पिता ने उनको स्टरलिङ्ग में विद्याध्ययन के लिये भेज दिया। वहाँ वे प्रसिद्ध जान बुकानन के भतीजे टैामस बुकानन के अधिकार में रक्खे गए। १५७१ ई० में टैामस बुकानन स्टरलिङ्ग के हाई स्कूल में (जहाँ उनके पिता पढ़ाते थे) अध्यापक नियत किए गए। वह बड़े विद्वान् और प्रसिद्ध अध्यापक थे और युवक रोलक पर अधिक प्रेम रखते थे। रोलक भी उन पर अधिक श्रद्धा रखते थे। रोलक के प्रेम का परिचय इसी से होता है कि उन्होंने अपने गुरु को बड़े ही आदर के साथ अपनी एक पुस्तक* समर्पित की थी। यद्यपि रोलक अति शोचनीय अवस्था में थे तो भी उनके लिये यह असह्य था कि उनके गुरु उनके नगर में आकर और किसी दूसरे के मकान में ठहरें। वह सदा अपने अध्यापक को अपने ही मकान में आदर के साथ ठहरा कर उनका सत्कार करते थे।

उनके पिता ने रोलक को ग्रीक और लैटिन आदि भाषाओं में अधिक उन्नति करते देख कर उन्हें

* उस पुस्तक में रोलक ने लिखा था:—

आप मेरे साधारण अध्यापक ही नहीं वरन् पिता-तुल्य हैं। आपने मेरे हृदय में विद्या ही का बीज नहीं बोया वरन् मुझे धार्म्मिक शिक्षा भी प्रदान की है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि यदि मेरी पुस्तक किसी को लाभदायक हो तो वह यह समझे कि यह सब आपही के पुण्य और प्रताप का फल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेण्टएन्ड्रूज कालेज में दर्शनशास्त्र के अध्ययन के हेतु भेज दिया। १५७४ ई० में जब कि उनकी अवस्था लगभग १९ वर्ष की थी, तब उनके पिता ने उनको सेण्ट सालवेटर कालेज में भरती करा दिया।

रोलक के समय में सेण्ट एन्ड्रूज युनिवरसिटी की अवस्था।

सेण्ट एन्ड्रूज को स्काटलैण्ड की प्रथम युनिवरसिटी पर अधिकार का सौभाग्य और सम्मान प्राप्त हुआ। इस युनीवर्सिटी को बिशपवार्डला ने १४११ ई० में स्थापित किया था और अपने ही सुभीते के अनुसार नियम आदि बना लिए थे। कुछ दिनों के बाद सेण्ट एन्ड्रूज युनिवर्सिटी के तीन पृथक् पृथक् कालेज हो गए। १४५९ ई० में सेण्ट सालवेटर कालेज १५१२ ई० सेण्ट लियूनर्ड कालेज और १५३७ में सेण्ट मेरी कालेज बना। शिक्षा का कार्य्य पादरियों के अधिकार में था। यद्यपि कालेजों के लिये धन बहुत अधिक आता था, पर उसमें व्यय बहुत ही कम किया जाता था, जिससे उनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही थी। ग्लासगो और अबर्डीन में भी सुधार Reformation के पहले युनिवरसिटियां स्थापित की गई थीं किन्तु वह दोनों भी शोचनीय अवस्था में थीं। सुधार होने के समय सेण्ट, एन्ड्रूज की युनिवरसिटी को स्थापित हुए १५० वर्ष हो चुके थे और उसने शिक्षा-संबन्धी बहुत कुछ कार्य्य किए थे। स्काटलैण्ड के बहुत बड़े बड़े और प्रसिद्ध महानुभावों ने उसी में विद्याध्ययन किया था। युनिवरसिटी स्थापित होने के समय बहुत से विद्यार्थियों का जमाव हुआ पर कुछ दिनों के बाद और विशेषतः ग्लासगो युनिवरसिटी के स्थापित होने पर बालकों की संख्या बहुत घट गई। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में उस युनिवरसिटी में दो सौ से भी कम विद्यार्थी थे और इसके पहले और भी कम संख्या रही होगी। और यदि अन्य कालेज न खुलते और प्रोफेसरों और दरिद्र छात्रों के निमित्त अच्छी वृत्ति का प्रबन्ध न किया जाता तो इस युनिवरसिटी का नाम निशान तक न रहता।

उपर्युक्त तीन कालेजों का प्रबन्ध उत्तम रीति से किया गया। सेण्ट सालवेटर कालेज में दर्शन और चिकित्सा-शास्त्र की पढ़ाई होने लगी। दर्शन-शास्त्र की पढ़ाई तीन वर्ष की थी—पहले वर्ष तर्क-शास्त्र, दूसरे वर्ष गणित-शास्त्र और तीसरे वर्ष प्राकृतिक दर्शन शास्त्र। जान बुकानन ने इस प्रणाली में परिवर्तन करने के लिये कुछ प्रस्ताव किए थे परन्तु उनकी इच्छा पूर्ण न हुई।

ऐसे ही समय में सेण्ट सालवेटर की पढ़ाई समाप्त कर के रोलक अध्यापक नियत हो गए। थोड़े ही समय में उन्होंने अपनी योग्यता के कारण इस काम में बहुत यश और कीर्त्ति सम्पादित कर ली।

सन् १५७४ ई० में एक ऐसी घटना हुई, साधारणतः जिसका प्रभाव स्काटलैण्ड की सभी युनिवरसिटियों की शिक्षा पर पड़ा। प्रसिद्ध एण्ड्रू मेलवाइल स्काटलैण्ड में आ गए और ग्लासगो युनिवरसिटी के प्रिंसिपल हो गए। इस युनिवरसिटी में उन्होंने अपनी योग्यता के कारण बड़ा नाम पैदा किया। कुछ वर्ष के उपरान्त उनकी बदली सेण्ट एण्ड्रूज कालेज में हो गई। वहाँ रोलक से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया क्योंकि दोनों ही योग्यता और विद्वत्ता में पूर्ण थे।

एडिनबरा में कालेज का स्थापन।

उस समय एडिनबरा में कोई अच्छा कालेज या स्कूल नहीं था। एक सुप्रबन्ध-युक्त उत्तम विद्यालय की बहुत अधिक आवश्यकता थी। अतएव वहाँ के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने एक कालेज स्थापन करने का विचार किया और इस विचार को कार्य्यरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी परिणत किया। अब एक विद्वान् प्रिंसिपल की बड़ी आवश्यकता हुई जो कि उसका शिक्षण-कार्य्य भली भाँति चला सके। लासन साहेब एडिनबरा में बड़े प्रसिद्ध और प्रभावशाली पुरुष थे। उन्होंने रोलक की विद्वत्ता की बहुत अधिक प्रशंसा सुनी थी। उन्होंने तुरन्त दो प्रसिद्ध नगर-निवासियों को इस सम्बन्ध में वार्त्तालाप करने के लिये रोलक के पास भेजा जिन्होंने उनका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया। एडिनबरा पहुँचने पर नगर-कौन्सिल ने उनका सादर और सहर्ष स्वागत किया। एडिनबरा कालेज के सब कार्य्य रोलक के अधिकार में कर दिए गए। यह आसन प्राप्त करने पर भी उनको उस समय किसी सहायक की आवश्यकता न पड़ी। वह स्वयं ही सब कार्य्य करते थे। कालेज का कार्य्य जब अच्छी तरह चलने लगा तो शीघ्र ही अस्सी नब्बे लड़के भरती हो गए। कालेज के संचालकों की यह इच्छा थी कि अध्यापक और छात्र सदा साथ रहें। किन्तु स्थानाभाव के कारण वे असमर्थ थे। कुछ विद्यार्थी वहाँ रहते भी थे परन्तु भोजन का प्रबन्ध उन्हें स्वयं करना पड़ता था।

पहले पहल कालेज में कोई पुस्तकालय न था। पर कुछ वर्षों के बाद कुछ धर्म्म और नीति संबन्धी पुस्तकें जिन्हें एक सज्जन ने नगर के पादरियों के निमित्त प्रदान किया था इस कालेज को दे दी गईं। इस प्रकार कालेज के साथ एक पुस्तकालय भी हो गया। १५८५ के फरवरी मास में रोलक कालेज के प्रिंसिपल हो गए।

रोलक की शिक्षा-प्रणाली।

कालेज का नया वर्ष अक्तूबर से आरम्भ होता था और अगस्त में समाप्त होता था। पहले वर्ष वहाँ विशेषतः लैटिन और ग्रीक की शिक्षा दी जाती थी और थोड़ा तर्क शास्त्र पढ़ाया जाता था। दूसरे वर्ष भाषा-विज्ञान की पढ़ाई होती थी और अरस्तू (Aristotle) का तर्क शास्त्र पूर्ण रीति से समझाया जाता था। इसी वर्ष में अंक गणित की ओर भी कुछ ध्यान दिया जाता था। तीसरे वर्ष के लिये हिब्रू, व्याकरण, शारीरिक-विज्ञान, भाषा-विज्ञान और अरस्तू (Aristotle) के तर्क शास्त्र का अभ्यास कराया जाता था। चौथे वर्ष में ज्योतिष, दर्शन शास्त्र, भूगोल और इसी प्रकार के दूसरे विषय पढ़ाए जाते थे। समय समय पर भिन्न भिन्न विषयों में शास्त्रार्थ भी होता था।

रोलक यह नहीं मानते थे कि विद्यार्थियों को विद्वान् बनाना ही विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य है बल्कि उनके समस्त परिश्रमों का मुख्य उद्देश्य युवकों का आचरण शुद्ध और पवित्र करना, ईश्वर-सेवा में जीवन समर्पण करने के लिये उनका उत्साह बढ़ाना और उन्हें देश-भक्त बनाना ही था। इसी अभिप्राय से वह उनकी धार्म्मिक शिक्षा में अधिक परिश्रम करते और कालेज का सब काम धार्म्मिक दृष्टि से चलाते थे। ईश्वर की कृपा से रोलक का मनोरथ भी सफल हुआ। अपने यहाँ के विद्यार्थियों को एम० ए० (M. A.) की उपाधि प्रदान करते समय वह स्वयं उन्हें अनेक प्रकार के उपदेश भी देते थे।

उनके अधीनस्थ एक अध्यापक का कथन है कि रोलक बहुधा प्रत्येक श्रेणी में जा कर प्रत्येक छात्र की परीक्षा लेते थे और देखते थे कि अध्ययन में उसने कहाँ तक उन्नति की है। यदि कोई कलह उत्पन्न होता था तो उसे वह शीघ्र ही शान्त कर देते थे। छात्रों को दृढ़ और कर्तव्यपरायण बनाने के लिये वह उत्साह देते थे। कालेज के सब विद्यार्थियों और शिक्षकों को एकत्र कर के बड़े उत्साह के साथ वह किसी धर्म्म-पुस्तक का पाठ करते थे और विद्यार्थियों को इस बात का उपदेश देते थे कि वे अपने जीवन को पवित्र करें। जब विद्यार्थी कोई अपराध करते थे तो रोलक धीरे से उन्हें समझा बुझा कर ठीक मार्ग पर ले आते थे। उनकी सुशी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लता इतनी प्रबल थी कि बड़े बड़े उजड्ड विद्यार्थी भी उन पर श्रद्धा और भक्ति रखते थे और साधारणतः अपने बुरे कर्म्मों को छोड़ देते थे। इन्हीं सब कारणों से उनके कालेज को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ था।

धार्म्मिक शिक्षा की ओर रोलक का विशेष ध्यान रहता था। वास्तव में उनकी धार्म्मिक शिक्षा का प्रभाव छात्रों पर इतना पड़ता था कि वे सहज में ही अपने जीवन को पवित्र मार्ग पर ले जाते थे। सदैव उनका यह उपदेश होता था कि धर्म्म की आड़ में अधर्म न करो। दूसरों की निन्दा और दोषारोपण की चेष्टा न करो। आपका मनोरथ भी बहुत कुछ सफल हुआ। आपने बहुतों को अपने सदृश धार्म्मिक और सुशील बना लिया था। कुछ समय के उपरान्त रोलक धर्म्म-प्रचारक भी बन गए।

अपने जीवन में रोलक ने अनेक ग्रन्थ भी रचे थे जिनमें से अधिकांश धर्म्म या नीति-सम्बन्धी ही थे। उनके देशवासियों में उनकी पुस्तकों का बड़ा मान था। इन पुस्तकों से उनकी अगाध योग्यता, दृढ़ता, ईश्वर-ज्ञान आदि का बहुत अच्छा परिचय मिलता है।

रोलक की मृत्यु।

रोलक का स्वास्थ्य कभी अधिक अच्छी दशा में नहीं रहा। उन्हें सदा कोई न कोई रोग लगा ही रहता था। १५५८ ई० के उपरान्त वह कभी घर से बाहर ही न निकले और सदा उन्हें बिछौने पर ही रहना पड़ा। जब उन्होंने देखा कि मेरा अन्तकाल आ गया है तब वह ईश्वर-भजन में मग्न हो गए। किन्तु उनके मित्र इस बात का शोक करते थे कि जीवन का पूरा सुख भोगने के पूर्व ही उनका एक हितकारी और उपकारी महानुभाव संसार को त्याग रहा है। उनकी मृत्यु के समय देश के बड़े बड़े प्रसिद्ध मनुष्य उनके दर्शनार्थ आए थे।

एक दिन सन्ध्या को रोलक ने देखा कि मृत्यु अब आनेवाली है और इस समय औषध कोई कार्य्य न करेगी। उन्होंने ईश्वर से सत्य हृदय से शान्ति और सुखपूर्वक मरने की प्रार्थना की।

उन्होंने दर्शकों का हाथ पकड़ कर प्रत्येक को आशीर्वाद और उपदेश दिया। दूसरे दिन नगर के मजिस्ट्रेट और जज उनके अन्तिम दर्शन करने आए। रोलक ने उन लोगों से कहा कि मैं तो अब जाता हूँ, मेरे जीवन का कार्य्य अब समाप्त हुआ। मेरी मृत्यु से कालेज अनाथ हो जायगा और मेरी गर्भवती स्त्री के जीवन-निर्वाह का कोई प्रबन्ध नहीं है। मेरा विचार है कि अध्यापक हेनरी चारटेरिस को मेरे स्थान पर नियत किया जाय। अपनी स्त्री के बारे में मुझे यह कहना है कि मेरे जीते जी आप लोगों ने उस पर बड़ी कृपा की और आशा करता हूँ कि मेरी मृत्यु के पश्चात् भी आप लोग उस पर कृपा बनाए रहेंगे। रोलक ने अध्यापकों को भी कुछ उपदेश दिए थे। तदुपरान्त उन्होंने कोर्ट आफ सेशन्स के सभापति और नगर के लार्ड प्रोवोस्ट को भी उपदेश दिया था। १५९९ ई० की १९ वीं फरवरी को उनका देहान्त हो गया। उस समय उनकी अवस्था केवल ४३ वर्ष की थी। रोलक की मृत्यु का समाचार फैलते ही नगर में कोलाहल मच गया। कौन्सिल के सभ्य, कालेज के अध्यापक, छात्र, नगरनिवासी और साधारण मनुष्य सभी इस प्रकार दुःखी हुए कि मानों उनका कोई सम्बन्धी ही संसार से उठ गया हो। उनकी श्मशान-यात्रा में जितने लोग सम्मिलित हुए थे, एडिनबरा की किसी श्मशान-यात्रा में पहले उतने लोग सम्मिलित नहीं हुए थे। बहुत ही कम ऐसे मनुष्य होंगे जिन्होंने इतनी कम अवस्था में इतना भारी काम किया हो और इतना सम्मान पाया हो। कालेज पर उनका इतना प्रेम था कि चाहे कैसी ही कठिनता आ पड़ती वह उसका कार्य्य अवश्य ही करते थे। एडिनबरा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब प्लेग फैला तब भी वह वहीं स्थिर रहे। इस प्रकार उन्होंने दृढ़ता, बुद्धिमत्ता और परिश्रम से एक ऐसी संस्था को इतना पुष्ट कर दिखाया कि जिसके कारण उनका नाम पाश्चात्य शिक्षा के इतिहास में सदा के लिये अमर और अमिट हो गया।

हिन्दी ग्रन्थों की प्रदर्शिनी ।

हिन्दी-साहित्य की उन्नति को हृदय से चाहनेवाले सज्जनों के लिये यह शुभ संवाद है कि जबलपुर के हिन्दी-साहित्यानुरागी सज्जनों ने आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय जबलपुर में हिन्दी के मुद्रित और हस्तलिखित ग्रंथों की एक प्रदर्शिनी खोलना निश्चित किया है। प्रदर्शिनी से होनेवाले लाभों को समझाने के लिये अब बड़े बड़े ग्रंथ और लेख लिखने की तादृश आवश्यकता नहीं बोध होती। अभी कुछ वर्षों के पूर्व हमारी सरकार ने नागपुर और प्रयाग में जो प्रदर्शिनियाँ की थीं उनको देखने का सौभाग्य जिन वस्त्वर्थ-ज्ञानी सज्जनों को हुआ होगा वे प्रदर्शिनी के लाभ से भली भाँति परिचित हो गए होंगे। प्रदर्शिनी से बड़ा भारी लाभ यह होता है कि उसके दर्शक को अपनी अभीष्ट एवं आदिम वस्तु का ज्ञान तथा लाभ बहुत ही सरलता और सुगमता-पूर्वक हो जाता है। हिन्दी-साहित्य-विषयक ग्रन्थों के इसी ज्ञानलाभ को हिन्दी साहित्यानुरागी सज्जनों के दृष्टि-प्रदेश में स्थापित करने के अभिप्राय से जबलपुर-निवासी हिन्दी-साहित्य-सेवकों ने प्रदर्शिनी खोलने का विचार किया है। इस कार्य को सफलता प्राप्त कराना प्रत्येक हिन्दी-साहित्य-सेवी का परम पुनीत एवं पवित्र पुण्य-कर्म है।

आशा की जाती है कि इस प्रदर्शिनी की सहायता से हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करनेवाले नेता और नायक लोगों को उन ग्रन्थों का ज्ञान हो जायगा जिनके द्वारा इस समय हिन्दी में उच्च कोटि की शिक्षा दी जा सकती है। साथ ही यह भी ज्ञात हो जायगा कि हिन्दी भाषा के साहित्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग को परिपुष्ट करने के लिये किन किन विषयों पर ग्रन्थ प्रस्तुत हैं और किन किन विषयों पर ग्रन्थ प्रस्तुत नहीं हैं।

इस महत् कार्य्य को अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूर्ण करने की इच्छा रखते हुए हम हिन्दी के समस्त ग्रन्थ लेखकों, प्रकाशकों और विक्रेताओं से प्रार्थना करते हैं कि वे लोग अपनी तथा अपने यहाँ की कविता, निबन्ध, उपन्यास, नाटक, इतिहास, पदार्थ विज्ञान, दर्शन, भाषा-विज्ञान, कृषि-विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, समाज शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगोल, खगोल, सम्पत्ति शास्त्र, पुराण साहित्य, बालोपयोगी साहित्य, पाठशालोपयोगी पुस्तकें, स्त्री-जनोपयोगी साहित्य और कोषादि-विषयक मुद्रित ग्रन्थों की एक एक प्रति स्वा० का० स० के मंत्री श्रीयुत पं० दयाशंकरजी झा, बी० एस सी० एल एल० बी०, वकील जबलपुर के पास पेड पारसल द्वारा भेजने की कृपा करें। ग्रन्थों के साथ उनकी निम्न लिखित प्रकार की सूची भी भेजनी चाहिए।

अनुक्रम संख्या, ग्रन्थ का नाम, ग्रन्थकर्त्ता का नाम और पूरा पता, ग्रन्थ का विषय, ग्रन्थ का मूल्य, ग्रन्थ मिलने का पूरा पता, ग्रन्थ के कितने संस्करण हुए, विशेष विवरण।

हिन्दी के ग्रन्थ-विक्रेतागणों से भी प्रार्थना है कि वे लोग अपने यहाँ की सब प्रकार की और सब काल की मुद्रित पुस्तकें ले कर प्रदर्शनी के समय जबलपुर आवें। यहाँ उनके दुकान रखने आदि का समयानुसार प्रबन्ध सूचना मिलने पर सम्मेलन की ओर से कर दिया जायगा। ग्रन्थ-विक्रेतागणों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आने की सूचना स्वा० का० स० के मंत्री को एक मास पूर्व दे देनी होगी।

जिन सज्जनों के पास प्राचीन तथा अर्वाचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ हों उनसे भी सानुरोध किन्तु विनयान्वित प्रार्थना है कि वे लोग उन्हें रजिष्ट्री द्वारा स्वा० का० स० के उक्त मंत्री महाशय के पास भेजने की दया करें। ग्रन्थों के साथ उनकी एक सूची भी उक्त प्रकार के नमूने में उचित हेर फेर कर भेजें। उनके ग्रन्थ यहाँ उचित सावधानी के साथ रक्खे और प्रदर्शित किए जायँगे। प्रदर्शनी का कार्य्य पूरा हो जाने [illegible]र वे उनके पास प्रदर्शिनी के परिणाम की सूचना के साथ धन्यवाद-पूर्वक लौटा दिए जायँगे।

प्रदर्शनार्थ आए हुए ग्रन्थों में से प्रदर्शिनी में रखने योग्य ग्रन्थों का चुनाव प्रदर्शिनी-समिति और संयोजक करेंगे। जो मुद्रित और हस्त-लिखित ग्रंथ प्रदर्शित किए जायँगे उनकी एक सूची पूर्ण विवरण के साथ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित की जायगी, जिसकी सहायता से प्रत्येक मनुष्य अपने अभीष्ट ग्रन्थ के प्राप्ति-स्थान और मूल्य का ज्ञान बहुत सरलता से प्राप्त कर सकेगा। इसके सिवा ग्रन्थों के प्रचार में भी इस सूची से विशेष सहायता मिलेगी।

मुद्रित ग्रन्थों के जो प्रेषकगण अपने ग्रन्थों को प्रदर्शिनी के पश्चात् जबलपुर के सम्मेलन पुस्तकालय को भेंट में देने की उदारता प्रकट करेंगे उनके ग्रन्थ सहर्ष ससाधुवाद स्वीकृत कर लिए जायँगे और जो सज्जन अपने मुद्रित ग्रन्थ लौटा लेना चाहेंगे उनके ग्रन्थ उनके व्यय भेज देने पर धन्यवाद-पूर्वक लौटा दिए जायँगे। जिन सज्जनों के ग्रन्थ प्रदर्शिनी में स्थान नहीं पा सकेंगे उनके ग्रन्थ भी उनके व्यय भेजने पर धन्यवाद-पूर्वक लौटा दिए जायँगे।

प्रदर्शनी के विषय में जिन महाशयों को और कुछ पूछ ताछ करनी हो वे हमसे पत्र द्वारा कर सकते हैं।

दीक्षितपुरा, जबलपुर। (म० प्र०)

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री,
संयोजक
प्रदर्शिनी समिति।

साधारण सभा

शनिवार तारीख २६ फरवरी १९१६ सन्ध्या के ५½ बजे।

स्थान—सभाभवन।

उपस्थित—

लाला भगवानदीन—सभापति
पंडित रामचन्द्र शुक्ल
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
बाबू रामचन्द्र वर्म्मा
बाबू अमीर सिंह
बाबू जगन्मोहन वर्म्मा
बाबू वेणीप्रसाद
बाबू गोपालदास

(१) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के प्रस्ताव तथा बाबू जगन्मोहन वर्म्मा के अनुमोदन पर लाला भगवानदीन सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (तां० २९ जनवरी १९१६) का कार्य्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

१—बाबू नवमीलाल देव वैद्य—नदपुरा पो० साई ज़ि० पटना १॥)

२—बाबू सुखसागरप्रसाद वर्म्मा—रामनगर स्टेट, बनारस। १॥)

३—चौधरी दौलतसिंह जी वकील नरसिंहपुर ५)

४—श्रीयुत महाजन महाराजसिंह जी—सिंहपुर पो० सिंहपुर ज़ि० नरसिंहपुर १॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—बाबू नन्दनलाल साह ठि० लाला परसी साह फोटोग्राफर—लखनऊ ३)

६—बाबू देवीदास खन्ना ब्रह्मनाल काशी १॥)

७—पंडित वासुदेव शर्म्मा वैद्य—गुरु-कुल-विद्यालय होशंगाबाद १॥)

८—पंडित दुर्गादत्त शर्म्मा, गुरु-कुल-विद्यालय होशंगाबाद १॥)

९—बाबू रामसहाय लाल बुकसेलर—गया १॥)

१०—पंडित कृष्णचन्द्र शर्म्मा वैद्यराज—काल भैरव काशी १॥)

११—बाबू बटुकनाथ खत्री—कुंजगली—काशी १॥)

१२—बाबू तोताराम मंत्री आर्य्य-समाज—काँठ जि० मुरादाबाद १॥)

(४) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईः—

बाबू रासबिहारी लालदास, दरभंगा

मिथिलादर्पण खंड १—२

लाला बलदेवसिंह रईस देहरादून

मानव धर्म्मसार

छोटी सन्ध्या

छोटा काम और बड़ा परिमाण

बाबू स्वामीदीन बछरावाँ, रायबरैली

प्रेस की कुंजी

परिव्राजक सत्यदेव जी, प्रयाग

शिक्षा का आदर्श और लेखन-कला

बाबू शिवकुमारसिंह प्रयाग

पं० मदन मोहन मालवीय और हिन्दू विश्व-विद्यालय।

बाबू मैकूलाल खत्री—कलकत्ता

श्री हरिभजनरसायन

पंडित शिवराम शर्म्मा—कुलपहाड़—हमीरपुर

विवाहगीतावली

पंडित तेजशंकर कोचक कृषि-कालेज, कानपुर

कृषिशास्त्र

बाबू अनन्त प्रसाद कुसवा—एटा

विचार कल्पद्रुम दूसरा भाग।

विधवा-विवाह-निर्णय

लाला भगवान दीन—काशी

स्वास्थ्यविद्या

श्री नीलमणि शर्म्मा जमींदार चन्द्र सूर, राजिम रायपुर

श्री राजीवक्षेत्र-माहात्म्य

पंडित शिवचन्द्र शर्म्मा वैद्य हरिद्वार

संसार दुःख नाशक तमाशा

तीर्थरक्षा

गो भक्ति-प्रकाश

पंडित रामप्रसाद पाण्डेय, चौधरी टोला, बाँकीपुर

बाबू राम गोपालसिंह की जीवनी

बाबू महावीर प्रसाद गहमर—गाजीपुर

स्वर्ग की सड़क

लाला ज्वाला प्रताप सिंह रईस कोटा मिर्जापुर

वैरन वसन्त

पावस पचीसी

पावस प्रेम तरंग

वसन्त विनोद

खरीदी गईं तथा परिवर्त्तन में प्राप्त—

सीता बनवास

मानव सन्ततिशास्त्र

पड़िहार वंशप्रकाश

दादा भाई नौरोजी

लंदन के पत्र

अठारह नाते

अमेरिका का गृहप्रबन्ध

शिशु शिक्षा

दिया तले अँधेरा

हिन्दू जाति मर रही है

अक्षर विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान कुमारी
सफलता की कुंजी
धनुर्धर अर्जुन
होनहार
उपवन

५—सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्ध-कारिणी समिति।

बृहस्पतिवार तारीख ३० मार्च १९१६ सन्ध्या के ५½ बजे।

स्थान-सभा-भवन।

(१) बदाऊँ के मुंसिफ़ के इज़हार आदि नागरी में लिखने के सम्बन्ध में जो विरोध हुआ है उस सम्बन्ध में गवर्नमेंट की सेवा में भेजने के लिये बाबू गौरीशंकरप्रसाद जी का तैयार किया हुआ मेमोरियल उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह संयुक्त प्रदेश की हाई कोर्ट के रजिस्ट्रार के पास भेज दिया जाय।

प्रबन्ध-कारिणी समिति।

रविवार तारीख ७ मई १९१६ सन्ध्या के ६½ बजे।

स्थान-सभा भवन।

(१) ता० १२ मार्च १९१६ और तीस मार्च १९१६ के कार्यविवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(१) संयुक्त प्रदेश के हाई कोर्ट के रजिस्ट्रार का १५ अप्रैल १९१६ का पत्र नं० १३४५-१३२ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि अदालत के हाकिमों के नागरी अक्षरों में गवाही आदि लिखने के विषय में सभा से जो पत्र उन्हें भेजा गया था उसके सम्बन्ध में कोर्ट ने जाँच करने के उपरान्त यह निश्चय किया है कि इसके लिये कोई आज्ञा प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है।

निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकरप्रसाद से प्रार्थना की जाय कि वे इसका उचित उत्तर लिख दें।

(३) "रसायनशास्त्र के मुख्य सिद्धान्त" पर रेडिचे पदक के लिये आया हुआ लेख, बाबू बाँकेबिहारी लाल और बाबू चंडीप्रसाद जी की सम्मति के सहित उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह लेख पदक के योग्य नहीं है।

(४) ग्वालियर की हस्तलिपि-परीक्षा के परचे उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि 'इनकी परीक्षा के लिये निम्न लिखित सज्जनों की सब कमेटी बना दी जाय अर्थात् बाबू अमीरसिंह, बाबू वेणीप्रसाद और बाबू मुरारीदास।

(५) एटा के बाबू अनन्तप्रसाद वर्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा के सभासद चुने जाने और अपना चन्दा क्षमा किए जाने की प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि उनका पत्र किसी सभासद का अनुमोदन कराने के लिये उनके पास भेज दिया जाय और साथ ही उन्हें लिखा जाय कि उन्होंने हिन्दी में जो ग्रन्थ लिखे हैं उन्हें सभा के देखने के लिये भेज दें।

(६) पंडित गौरीशंकर भट्ट का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने देवनागरी लिपि के ब्लाक ढालने के लिये सभा से आर्थिक सहायता माँगी थी।

निश्चय हुआ कि धनाभाव से सभा इसके लिये कुछ आर्थिक सहायता नहीं दे सकती।

(७) पंडित चन्द्रशेखर वाजपेई का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा की मेजिक लालटेन कुछ स्लाइड़ों के सहित तीन चार दिनों के लिये माँगी थी।

निश्चय हुआ कि नियमानुसार मेजिक लालटेन नहीं दी जा सकती।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्ध-कारिणी समिति।

शनिवार तारीख ७ मई १९१६ सन्ध्या समय ६ बजे।

स्थान—सभा-भवन।

कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका। निश्चय हुआ कि अब यह अधिवेशन ता० २९ मई १९१६ को ६ बजे किया जाय।

प्रबन्ध-कारिणी समिति।

सोमवार ता० २९ मई १९१६ सन्ध्या के ६½ बजे।

स्थान—सभा-भवन।

(१) ता० ७ मई और २७ मई १९१६ के कार्य-विवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(२) संयुक्त प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेकृर का १८ मई १९१६ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूचना दी थी कि संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेन्ट ने ८ मई १९१६ के पत्र नं० ४४० $\frac{१९}{३७८}$ के द्वारा सभा को हिन्दी पुस्तकों की खोज के लिए २०००) रु० की वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया है जिसमें इस सम्बन्ध की रिपोर्ट सर जार्ज ग्रियर्सन के प्रस्तावों के अनुकार लिखी जा सके।

निश्चय हुआ कि (क) इसके लिये गवर्नमेन्ट को धन्यवाद दिया जाय और पूछा जाय कि वार्षिक सहायता कब कब मिला करेगी। (ख) पंडित श्यामविहारी मिश्र जी से पूछा जाय कि उनकी सम्मति में किस प्रणाली से कार्य करना ठीक होगा। साथ ही उनसे यह भी पूछा जाय कि क्या वे कृपा-पूर्वक आगे के लिये हिन्दी पुस्तकों की खोज के निरीक्षक होना स्वीकार करेंगे ? यदि वे किसी कारण से इसे स्वीकार न करें तो कृपा-पूर्वक सभा को यह सम्मति दें कि कौन सज्जन निरीक्षक चुने जायँ, तथा इस कार्य का प्रोग्राम क्या होना चाहिए और किसे एजेण्ट नियत करना चाहिए।

(३) राय कृष्णदास का ११ मई १९१६ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि हिन्दी का जो टाइपराइटर उन्होंने २५०) रु० में सभा से लिया है और जिसके मूल्य मद्धे वे ८२॥) सभा को दे चुके हैं उसे सभा लौटा ले और उनका ८२॥) अपने सहायतार्थ जमा कर ले।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और टाइपराइटर जो वापस आया है उसकी मरम्मत करवा ली जाय और वह सभा ही के काम में लाया जाय।

(४) आरा नागरीप्रचारिणी सभा का २९ अप्रै० १९१६ का पत्र उपस्थित किया गया, जिसमें उन्होंने अपने पुस्तकालय के लिये मनोरंजन पुस्तकमाला बिना मूल्य दिए जाने के लिए लिखा था।

निश्चय हुआ कि पुस्तकमाला उन्हें अर्द्ध मूल्य पर दी जाय।

(५) बाबू मुरारीदासने सूचना दी कि ग्वालियर की हिन्दी-हस्त लिपि परीक्षा के लिये जो सब कमेटी बनाई गई है उसमें वे कार्य की अधिकता से सम्मिलित न हो सकेंगे।

निश्चय हुआ कि उनके स्थान पर श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दरदास जी इस सब-कमेटी के सदस्य चुने जायँ।

(६) बाबू श्यामसुन्दरदास जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि आर्यभाषा पुस्तकालय की सूची के १६ फर्मे जो छप गए हैं वे एक भाग में प्रकाशित कर दिए जायँ और बाबू वेणीप्रसाद जी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा-पूर्वक सभा को सम्मति दें कि इसका शेष अंश किस प्रकार शीघ्र छप सकता है।

(७) बाबू श्यामसुन्दरदास जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि आर्यभाषा पुस्तकालय के खुलने का समय जो २७ नवम्बर १९१५ के निश्चय नं० ३ के अनुसार १ अप्रैल से ३१ अक्तूबर तक प्रातःकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७ बजे से १० बजे तक रक्खा गया है, अब छ बजे से नौ बजे तक कर दिया जाय।

(८) बाबू श्यामसुन्दरदास जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि सभा के पुस्तकालय तथा बिक्री की पुस्तकें रखने के कमरों में स्थान की बड़ी संकीर्णता है। अतः पुस्तकालय अब सभा के हाल में कर दिया जाय, कोश कार्य्यालय पुस्तकालय के कमरे में चला आवे और जिस स्थान में इस समय कोश कार्यालय है वहाँ बिक्री की पुस्तकें रक्खी जायँ।

(९) निश्चय हुआ कि राय साहब पंडित चन्द्रिका-प्रसाद त्रिपाठी और पंडित चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी को लिखा जाय कि वे कृपापूर्वक सभा को यह सम्मति दें कि दादूदयाल की बानी और दादू दयाल के सबद की जो प्रतियाँ सभा के स्टाक में हैं उनका क्या किया जाय।

(१०) निश्चय हुआ कि निम्नलिखित सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक सभा को सम्मति दें कि सभा के कार्य्यालय में किन किन सुधारों की आवश्यकता है, तथा कोशकार्य्यालय के सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदास जी के जो प्रस्ताव हैं उनके अनुसार कहाँ तक कार्य करना उचित होगा?

बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०
बाबू हरिप्रसाद पालधि, बी० ए०
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा और
बाबू माधव प्रासद

(११) निश्चय हुआ कि हिन्दी-शब्द-सागर के प्रकाशन के लिये द्रव्य की जो आवश्यकता है उस सम्बन्ध में संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेण्ट की सेवा में यथोचित सहायता के लिये एक प्रार्थनापत्र भेजा जाय।

(१२) निश्चय हुआ कि प्रबन्ध-कारिणी समिति का अगला अधिवेशन मंगलवार ता० ६ जून १९१६ को सन्ध्या के ६ बजे किया जाय।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्ध-कारिणी समिति।

मंगलवार ता० ६ जून १९१६ सन्ध्या के ६ बजे।

स्थान—सभा-भवन।

(१) ग्वालियर की हिन्दी-हस्तलिपि-परीक्षा के पत्रों के विषय में सब कमेटी की रिपोर्ट उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि सब कमेटी की सम्मति के अनुसार निम्न-लिखित बालकों को पारितोषिक और प्रशंशापत्र दिए जायँः—

मिडिल विभाग।

१—भँवर लाल, मिडिल कक्षा, रन्नौद स्कूल, कोलारस ज़ि० नरवर ५)

२—गोपाल, मिडिल कक्षा, हिन्दी मिडिल स्कूल उज्जैन—प्रशंसापत्र।

३—हंसराज, मिडिल कक्षा हिन्दी स्कूल उज्जैन प्रशंसापत्र।

अपर प्राइमरी विभाग।

१—रामेश्वरदयाल कक्षा ३, पाठशाला भिण्ड ज़ि० भिण्ड—३)

२—लक्ष्मण, कक्षा ३, हिन्दी मिडिल स्कूल उज्जैन—प्रशंसापत्र।

३—रनजीतसिंह बी०, कक्षा ४ सरदार स्कूल ग्वालियर—प्रशंसापत्र।

लोअर प्राइमरी विभाग।

१—जमुनाप्रसाद कक्षा ५ बी० एम० स्कूल अतरी ज़िला गिर्द २)

२—दौलतराम, कक्षा ५ पाठशाला नूराबाद, ज़िला तरवंरधार, प्रशंसापत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—गोकरणसिंह कक्षा ५ सरदार स्कूल ग्वालियर—प्रशंसापत्र ।

(२) सभा कार्यालय और कोश-कार्यालय के सम्बन्ध में सब कमेटी की रिपोर्ट उपस्थित की गई जिसमें यह प्रस्ताव था कि सभा के कार्यालय में कार्य का विभाग इस प्रकार किया जाय ।

सहायक मंत्री ।

१—पत्रव्यवहार ।

२—कुल रुपया वसूल करना और खर्च करना और डे बुक (Day book) में सियाहा करना ।

३—दैनिक हिसाब के खातों पर, जो कि एकाउण्टेण्ट रक्खेगा, जाँच कर स्वाक्षर करना ।

४—सभा के अधिवेशनों का कार्यविवरण लिखना ।

५—अकाउण्टेण्ट, क्लार्क और लाइब्रेरियन के कामों को देखते रहना ।

सहायक मंत्री के अधीन जो दो क्लार्क हैं उनमें से एक अकाउण्टेण्ट हो और दूसरा क्लार्क अथवा डिस्पेचर । उनका मासिक वेतन क्रमात् २०) रु० और १२) रु० हो ।

अकाउण्टेण्ट के निम्नलिखित कार्य होंगेः—

१—सहायक मंत्री की डे बुक पर से प्रति दिन हिसाब रोकड़ बही में जमा करना ।

२—कुल जमा-खर्च का हिसाब रखना ।

३—रसीदें लिखना, वाउचर लिखना और हिसाब-सम्बन्धी कुल कार्यों को करना ।

४—स्टाक का हिसाब रखना ।

५—सभा के चन्दे का वसूल करना ।

क्लार्क अथवा डिस्पेचर के निम्न लिखित कार्य होंगे—

१—पुस्तकों की माँग के पार्सलों को दफ़्तरी से बनवा कर वी० पी० भेजना ।

२—स्टाक-बुक में किताबों का जमा-खर्च करना ।

३—चिट्ठियों की नकल रखनी ।

४—टिकट का हिसाब रखना । इत्यादि ।

एक लिटरेरी असिस्टेण्ट भी नियत किया जाय जिसका मासिक वेतन ४०) रु० हो । यह असिस्टेण्ट नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला और नागरीप्रचारिणी लेख-माला तथा सभा की अन्य पुस्तकों के छपवाने आदि का तत्त्वावधान करेगा ।

इस समय सभा में तीन चपरासी हैं; उनका काम इस प्रकार बाँटा जाय कि उनमें से एक केवल चन्दा वसूल करने और सभा की नोटिसें आदि बाँटने का काम करे, दूसरा सभाभवन तथा मेज कुर्सी इत्यादि को साफ रक्खे और डाकघर का काम किया करे और तीसरा चपरासी लाइब्रेरी का काम करे, रोशनी का प्रबन्ध ठीक रक्खे और यथावसर दोनों चपरासियों की सहायता दे ।

५) मासिक वेतन पर एक माली रक्खा जाय । कोशकार्यालय में स्लिपों की जाँच पुस्तकों से करने के लिये पन्द्रह पन्द्रह रुपए के मासिक वेतन पर दो क्लार्क नियत कर लिये जायँ और इस समय जो दो सहायक सम्पादक इस कार्य में लगे हुए हैं वे हिन्दी शब्दसागर का प्रथम सम्पादन करें ।

निश्चय हुआ कि (क) सब कमेटी की सम्मति के अनुसार १ जुलाई १९१६ से एकाउण्टेण्ट और क्लार्क क्रमात् २०) रु० और १२) रु० पर रख लिये जायँ और कार्यकर्त्ताओं के कार्य का विभाग ऊपर लिखे अनुसार ही किया जाय (ख) ५) रु० पर एक माली १६ जून १९१६ से नियत कर लिया जाय । (ग) समिति की सम्मति में एक लिटरेरी असिस्टेण्ट का नियत करना आवश्यक है । बजट में यदि सम्भव हो तो इसका प्रबन्ध अवश्य किया जाय । (घ) कोश कार्यालय में पन्द्रह पन्द्रह रुपए के दो क्लार्क नियत कर लिए जायँ ।

आगामी वर्ष के लिये पदाधिकारियों और प्रबन्ध-कारिणी समिति के सभासदों के चुनाव के लिये निम्नलिखित सूची बनाई गई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सभापति और दो उप-सभापति।

पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०
बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०
रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स
पंडित रामनारायण मिश्र० बी० ए०
बाबू काशीप्रसाद जायसवाल
बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल एल० बी०
पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
मुंशी देवी प्रसाद

एक मंत्री और एक उपमंत्री।

बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल बी०
बाबू हरि प्रसाद पालधि बी० ए०
गोस्वामी रामपुरी
पंडित साँवल जी नागर
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
बाबू वेणीप्रसाद
बाबू माधवप्रसाद

प्रबन्ध-कारिणी समिति के सभासद।

काशी से चार सभासदः—
बाबू बाँकेबिहारीलाल बी० एस सी०
पंडित विजयानन्द तिवारी
बाबू केशवदास
बाबू माधवप्रसाद
बाबू मुरारीदास
बाबू हरिप्रसाद पालधि बी० ए०
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा
गोस्वामी रामपुरी
रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स
पंडित गिरिजादत्त वाजपेयी एम ए०
बाबू हरिहर नाथ बी० ए०

बंगाल से एक सभासद—बाबू दामोदर दास खंडेलवाल
बाबू राधा मोहन गोकुल जी
विहार से एक सभासद—राय पूरन चन्द
बाबू काशीप्रसाद जायसवाल
पंजाब से एक सभासद—पंडित जगन्नाथ निरुक्त रत्न
पंडित दयाराम साहनी

निश्चय हुआ कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आगामी अधिवेशन के सभापति के लिये सभा की ओर से निम्न-लिखित महानुभावों के नाम निर्वाचित किए जायँ अर्थात् (१) श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर ग्वालियर। (२) पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (३) लाला हंसराज (४) साहित्याचार्य प्रोफेसर रामावतार शर्मा एम० ए० और (५) पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०।

(६) उन सभासदों की नामावली उपस्थित की गई जिनके यहाँ दो वर्ष से अधिक का चन्दा बाकी है।

निश्चय हुआ कि इन सभासदों को लिखा जाय कि यदि वे १ जुलाई १९१६ तक अपना चन्दा न भेज दें तो दुःख के साथ उनका नाम सूची "ख" में लिखा जायगा।

(६) निश्चय हुआ कि इस समय सभा के कार्यालय में जो छुट्टियाँ होती हैं उनमें से नवरात्र की पंचमी और षष्ठी, बुढ़वा मंगल, वेदव्यास और रथयात्रा की छुट्टियाँ निकाल दी जायँ और वसन्तपंचमी और मेष संक्रान्ति की छुट्टियाँ बढ़ा दी जायँ।

(७) मालवा के पोलिटिकल एजेन्ट का २९ मई का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने लाला नन्दकिशोर निगम की "श्री वृत्तरामायण" भेज कर पूछा था कि क्या यह पुस्तक प्रकाशित करने योग्य है।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यह पुस्तक प्रकाशित करने योग्य नहीं है। इसे प्रकाशित करना मानों गोस्वामी तुलसीदास जी का अपमान करना होगा।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण सभा।

शनिवार ता० २९ अप्रैल १९१६ सन्ध्या समय ५ बजे।

स्थान—सभा-भवन।

(१) बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त के प्रस्ताव तथा मुंशी भगवानदीन के अनुमोदन पर बाबू कालिदास माणिक सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (ता० २५ मार्च १९१६) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति का ता० २१ जनवरी १९१६ का कार्यविवरण सूचनार्थ उपस्थित किया गया।

(४) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए।

१—बाबू वैद्यनाथप्रसाद जमींदार लाल बाग दरभंगा १॥)

२—बाबू हरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्य सेण्ट्रेल हिन्दू कालेज काशी १॥)

३—पंडित रामचरित्र पाण्डेय बेलभरिया, पो० पैकौलिया जि० बस्ती १॥)

४—बाबू गंगासहाय चौड़ा बाज़ार लुधियाना ५)

५—डाकृर आई० जे० एस० तारापुरवाला, सेण्ट्रेल हिन्दू कालेजज़िएट स्कूल काशी ५)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जायँ।

(५) निम्न लिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

१—बाबू जगजीवन दास, भुतही इमली, काशी।

२—बाबू जगदम्बसहाय महल्ला टिलहा, गया।

३—पं० रामदहिन पाठक, सुरेमनपुर, बलिया।

(६) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं।

पं० चरणदास बी० ए० लहौर
राम कोश

पंडित द्वारिकाप्रसाद इन्दौर
दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इति[हास]

पं० चन्द्रसेन जैन इटावा
सच्चे सुख की कुञ्जियाँ
संसार और मोक्ष

लाला भगवानदीन काशी
बाल कथामाला
इतिहासविद्या
भूगोलविद्या

श्री शंकरदयाल श्रीवास्तव, रामपुर
शिरोमणि

पंडित लक्ष्मीनारायण दीक्षित कन्नौज
शिव-प्रार्थना

पंडित दयाचन्द्र जैन बी० ए० लखनऊ
बुद्धि और मांसाहार पर विचार
मांस भक्षण पर विचार

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित [हुई।]

साधारण सभा।

शनिवार ता० २७ मई १९१६ सन्ध्या के ५ बजे

स्थान—सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २९ अप्रैल [१९१६)] का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हु[आ।]

(२) सभासद होने के लिये निम्नलिखित स[ज्जनों] के फार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए

१—जहूरबख्श असिस्टेन्ट मास्टर—प्रौढ़ स्कूल सागर १॥)

२—पंडित गोविन्दप्रसाद सिलाकारी—घाट सागर सी० पी० १॥)

३—ठाकुर बेनीमाधवसिंह—मौजा गँभी[र] पो० गाजीपुर ज़िला फतेहपुर ३)

४—ठाकुर शिवरतनसिंह गिर्दावर क़ानू[नगो] तहसील और जिला फतेहपुर ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...जपेई बी० ए० एल

...मिति का यह प्रस्ताव ...मान् महाराजा साहब ...ीर, कोट..., श्रौर डूँगरपुर सभा ...रक्षक चुने जायँ।

सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

(४) प्रबन्ध-कारिणीसमिति के १२ मार्च श्रौर ...ार्च १९१६ के कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(५) मंत्री ने निम्नलिखित मृत्यु की सूचना दीः—

...—बाबू लोचनप्रसाद रिटायर्ड डिपटी मजि- मैनपुरी।

...—बाबू फुत्तूलाल पटवारी सिरसीकलाँ— ...।

...—पंडित रामसहाय शुक्ल, तहसीली स्कूल ...ा जिला हमीरपुर।

...—पंडित दम्मीलाल चतुर्वेदी वकील मैनपुरी।

...—बाबू रामअयोध्या सिंह—शिवपुर— जि० ...स।

...—मौलवी रमजान—काशी।

...० लीलाधरप्रसाद पांडेय—छपरा।

... ने इन सज्जनों की मृत्यु पर शोक प्रकट ...

(...) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत ...

रामचन्द्र वर्म्मा काशी

सफलता श्रौर उसके साधन के उपाय।

उपवासचिकित्सा।

...बहादुर पंडा बैजनाथ बी० ए०

सनातन ज्ञान

...तन में प्राप्त—

सच्चा उपन्यास भाग १

भीमसिंह

चन्द्रलोक की यात्रा

लंडन रहस्य नं० २१—२२

भूतनाथ सातवाँ भाग

सिन्धवाद जहाजी

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

110778

अपील

यह बात अब प्रायः सब लोगों को मालूम है कि लखनऊ में एक सभा १४ फ़रवरी को यह विचार करने के लिये हुई थी कि अँगरेज़ी सरकार की बढ़ती श्रौर उन वैरियों पर जिन से लड़ाई हो रही है विजय लाभ में सहायता देने के लिये संयुक्त प्रदेश की श्रोर से एक खास फन्ड खोला जाय। यह सभा संयुक्त प्रदेश के बहुत से प्रतिष्ठित निवासियों के उत्साह से हुई थी जिन्होंने अकसर यह इच्छा प्रकट की थी कि वह भी श्रौर श्रौर प्रदेशों की भाँति इस बड़े काम में सरकार का साथ दें। श्रौर जो चन्दा बड़ी उदारता से बीमारों श्रौर घायलों की सेवा श्रौर अपने उन भाइयों के आराम के लिये जो सरकार के लिये वीरता से लड़ रहे हैं वह दे चुके हैं उसके सिवाय एक संयुक्त प्रदेश फन्ड खोलें जिससे अँग्रेजी सरकार को लड़ाई जीतने में मदद मिले। सो वह फन्ड खोल दिया गया है श्रौर बहुत से लोगों ने उदारतापूर्वक बहुत कुछ चन्दा देने का वादा किया है श्रौर दिया है। यह संदेह होने से कि सहायता देने का सबसे अच्छा ढङ्ग क्या होगा यह निश्चय हुआ कि इस विषय में श्रीमान् राजराजेश्वर की इच्छा मालूम की जाय। इसके बारे में सेक्रेटरी आफ़ स्टेट महाशय ने सूचना दी है कि श्रीमान् की यह इच्छा है कि इस फन्ड से मोटर एम्बुल्यन्स (मोटर गाड़ियाँ जो घायलों को रण भूमि से अस-पताल में ले जाने के काम में लाई जाती हैं) मोल ले कर चलाई जायँ। एक मोटर एम्बुल्यन्स ७५००)

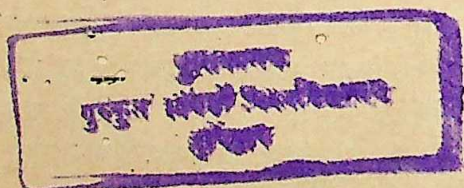
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

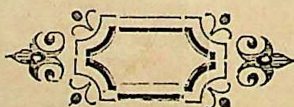
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आती है और इतना ही और द्रव्य उसको साल भर चलाने के लिये दरकार होगा। समस्त प्रदेश के लिये एक एक्ज़िक्युटिव कमेटी अर्थात् कार्य्य-कारिणी समिति नियत हुई है। और लखनऊवाली सभा ने मुझको उस कमेटी का सभापति बनाने की कृपा की है। उस कमेटी से अवध प्रान्त और आगरा प्रान्त के लिये अलग अलग सब कमेटियाँ अर्थात् उपसमितियां बनाई गई हैं। प्रत्येक जिले में एक जिला कमेटी बनाई गई है और इस फन्ड का पूरा हाल जिले के अफसरों से दरियाफ़ किया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि यह निवेदन प्रदेश भर में पूरे तौर से प्रकाशित हो जाय जिसमें संयुक्त प्रदेश के लोगों को मालूम हो जाय कि किस प्रयोजन के लिये उनसे चन्दे की सहायता माँगी जाती है। और वह उदारता के साथ द्रव्य दान दे कर भारतवर्ष को उस बड़े काम में जो उसने इस युद्ध में किये हैं और कर रहा है और भी अधिक सहायता पहुँचावें और उसका सुयश और भी ज्यादा बढ़ावें। किसी को यह न सोचना चाहिए कि जितना हम दे सकते हैं वह बहुत है... लाभ हो सकता है। ... व्यर्थ नहीं है। अब वह ... राज्य के प्रत्येक निवासी ... प्राप्ति के लिये सहायता ... । हम जो भारतवर्ष में हैं उस ... संग्राम स्थल से दूर होने के कारण मुश्किल से समझ सकते ... सरकारी राज्य भर में हमारे भाई अपने प्राण ... और समय की कितनी बड़ी आहुति दे रहे ... हमने सहायता देने में संकोच नहीं किया है ... हम और भी अधिक सहायता दे सकते हैं। ... देनेवाले अपना चन्दा चाहे जिले की कमेटी ... चाहे बंगाल बैंक या इलाहाबाद बैंक की किसी ... में भेज सकते हैं। यदि वह इन बैंकों में चन्दा ... तो जिले की कमेटी को भी इत्तिला दें जिसमें ... रीति से उनके पास रसीद भेज दी जाय।

हस्ताक्षर हेनरी रिचर्ड्स नाइट के० सी० ... जस्टिस सभापति कार्य्यकारिणी समिति ... प्रदेश स्पेशल वार फ़न्ड।

इन्दौर ... के सत्याग्रह का इति... ...वा ... कुञ्जियाँ





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

Compiled
19-9-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

